०७५५६७

RI-332

079958

079957

खंड २, अंश १

त्यागभूमि

079957

LIBRARY

है।

संपादक { श्री हरिभाऊ उपाध्याय
श्री क्षेमानन्द 'राहत'

एक संख्या का ।।)
विदेशों के लिए ५)

अजमेर

सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर, से प्रकाशित

पाठकों को दो सूचनाएँ

मंडल का दूसरे प्रकाशकों की पुस्तकों का पुस्तक-भंडार हम उठा
जिन भाइयों को पुस्तकें खरीदने की इच्छा हो वे हमारा नया सूचीपत्र मंगालें।

पुस्तकों पर २५) से लगा कर ५०) सैंकड़ा तक कमीशन दिया

इतनी सस्ती कीमत पर पुस्तकें मिलने का शायद ही दूसरा अवसर अ

'त्यागभूमि' का प्रथम अंक समाप्त

प्रथम अंक की मांग हमारे यहां बराबर आ रही है। इसलिये उस
दुबारा छपाने का हम विचार कर रहे हैं, इसलिये जो सज्जन 'त्यागभूमि
से ही ग्राहक बनना चाहें और पूरी फ़ाइल शुरू से अपने यहां
वे हमारे यहां अपना आर्डर तुरन्त भेज दें। जितने आर्डर हमारे पास दर्ज हों
प्रतियां हम छपावेंगे।

* * *

प्रचारकों की आवश्यकता

साहित्य सेवा और साथ ही लाभ का सु

(१) त्यागभूमि का जन्म महान् उद्देश्यों और आदर्शों को लेकर हुआ
को घर घर में पहुंचाने के लिये हमें ऐसे परिश्रमी, विश्वस्त प्रचारकों की आ
भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में घूम फिर कर इसके ग्राहक बना सकें। यह तो अ
कि 'त्यागभूमि' से सस्ती और उच्च आदर्शों वाली हिन्दी प
नहीं है और यदि इसके लिए काफी उद्योग किया जाय तो बहुत बड़ी संख्या
हैं। अतएव जो भाई साहित्य और देश की सेवा के नाते बिना कुछ लिए
हम से पत्रव्यवहार करें।

(२) जो भाई कमीशन लेना चाहें, उन्हें आठ आने फ़ी ग्राहक पीछे
कि वे कम से कम दस ग्राहक बना कर भेजें।

(३) जो भाई वेतन लेकर काम करना चाहें, उन्हें हमसे पत्रव्यवहार

आशा है जो भाई इन सूचनाओं को पढ़ेंगे वे किर
में देश-सेवा के इस उद्योग में अवश्य सहायक होंगे।

व्यवस्थापक—"त्याग

१) में ५०० से ६०० पृष्ठों की उत्तम पुस्तकें

लागत मूल्य में हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित करनेवाली भारतवर्ष की एक मात्र सार्वजनिक संस्था

सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर

संस्थापक—सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला, सेठ जमनालालजी बजाज आदि

अबतक डेढ़ वर्ष में पांचहज़ार पृष्ठोंके ऊपरकी २६ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं

पुस्तकों का पूरा वर्णन बड़ा सूचीपत्र मंगाकर पढ़िये—कुछ पुस्तकों के नाम नीचे लिखे जाते हैं।

सस्ती-साहित्य-माला

दक्षिण आफ्रिका का सत्याग्रह [म० गांधी] (पूर्वार्द्ध) पृष्ठ २७२ मूल्य ॥)
तामिल-वेद [महर्षि त्रिरुवल्लुवर] पृष्ठ २५० मूल्य ॥=)
स्त्री और पुरुष [टाल्स्टाय] पृष्ठ १६० मू० ।=)
हाथ की कताई-बुनाई पृष्ठ २६० मूल्य ॥=)
चीन की आवाज़ पृष्ठ १३० मूल्य ।-)
जीवन साहित्य [कालेलकर] पृष्ठ २१८ मू० ॥)

नीचे लिखे ग्रन्थ अभी निकले हैं

आत्म-कथा [म० गांधी] पृष्ठ ४१६ मूल्य ॥=)
दक्षिण आफ्रिका का सत्याग्रह [म० गांधी] (उत्तरार्द्ध) पृष्ठ २२८ मूल्य ॥)

सस्ती प्रकीर्ण माला

(१) ब्रह्मचर्य-विज्ञान पृष्ठ ३७४ मूल्य ॥।-)
(२) यूरोप का संपूर्ण इतिहास पृष्ठ ८३० मूल्य २)
(३) स्वामीजी का बलिदान और हमारा कर्तव्य (ले. पं. हरिभाऊ उपाध्याय) पृष्ठ १२८ मू. ।-)
(४) तरंगितहृदय (गुरुकुल काँगड़ी के आचार्य पं. देवशर्मा विद्यालंकार) पृष्ठ १७५ मू० ।≡)
(५) गंगागोविंदसिंह (चण्डीचरणसेन) पृ० २८८ मू० ॥=)

नीचे लिखे ग्रंथ अभी छपे हैं।

(१) गोरोंका प्रभुत्व (रामचंद्र वर्मा) पृ० २७४ ॥=)
(२) जीवन साहित्य (दूसरा भाग) पृ० २०० मू. ॥)
(३) अनोखा (विक्टर ह्यूगो का उपन्यास) पृ० ४७४ मूल्य १।=)

उपरोक्त मूल्य सर्व साधारण का है। ग्राहकों को तो पौनी कीमत में पुस्तकें मिलती हैं।

नियम—प्रतिवर्ष मण्डल से ३२०० पृष्ठों की लगभग अठारह बीस पुस्तकें प्रकाशित होती हैं। और ग्राहकों से इन पुस्तकों का लागत मूल्य केवल ६) और डाकव्यय २) इस तरह ८) वार्षिक मूल्य लिया जाता है। स्थाई ग्राहक बनने के लिये केवल एक बार एक रुपया प्रवेश फीस ली जाती है। इस तरह पहले वर्ष ९) भेजना चाहिये। आगामी वर्षों में वही ८) लेने का नियम है।

पता—सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर

सस्तामंडल के ग्राहक होने के नियम

(१) हमारे यहाँ से " सस्ती-पुस्तकमाला " नाम की माला निकलती है जिसमें वर्ष भर लगभग ३२०० पृष्ठों की कोई अठारह बीस पुस्तकें निकलती हैं और वार्षिक मूल्य पोस्ट खर्च सहि केवल ८) है। अर्थात ६) रुपये ३२०० पृष्ठों का मूल्य और २) डाकव्यय। इस (सस्ती-पुस्तक-माल के दो विभाग हैं; एक साहित्य-माला और दूसरी प्रकीर्णमाला। दो विभाग इसलिये कर दिये हैं कि सज्जन वर्ष भर में आठ रुपये खर्च न कर सकें वे एक ही माला के ग्राहक बन जावें। प्रत्येक माला १६०० पृष्ठों की पुस्तकें निकलती हैं और पोस्ट खर्च सहित ४) वार्षिक मूल्य है।

(२) **वार्षिक ग्राहकों को** उस वर्ष की—जिस वर्ष में वे ग्राहक बनें—सब पुस्तकें ले होती हैं। यदि उन्होंने उस वर्ष की कुछ पुस्तकें पहले से ले रक्खी हों, तो अगले वर्ष की ग्राहक-श्रेणी क पूरा रुपया यानि ४) या ८) भेज देने पर उस माला की (दोनों मालाओं के ग्राहक बनें तो दोनों मालाओं की) पिछले वर्षों की पुस्तकें जिस के वे ग्राहक बनें जो वे चाहें एक एक कापी लागत कीमत पर मंगा सकते हैं।

(३) **वार्षिक ग्राहक बनने के लिए** शुरू में केवल एक बार प्रत्येक माला पीछे आ आना प्रवेश फ़ीस यानि दोनों मालाओं का १) प्रवेश फीस जमा कराना होता है। यह प्रवेश फ़ी वापिस नहीं लोटाई जाती। इस तरह शुरू शुरू में (केवल एक बार) ग्राहक होते समय प्रत्येक माला पीछे ॥ प्रवेश फ़ीस और ४) वार्षिक मूल्य अर्थात दोनों मालाओं के ग्राहक बनने के लिये ९) भेजने होते हैं फिर आगे के सालों के लिए प्रत्येक माला पीछे केवल ४) या दोनों मालाओं का ८) भेजने होते हैं।

(४) **दोनों मालाओं का वर्ष**--जनवरी मास से शुरू हो कर दिसम्बर मास में समाप्त होता है। मालाओं की पुस्तकें प्रायः हर चौथे महीने इकट्ठी निकलती हैं और ग्राहकों के पास भेजदीजाती हैं।

दोनों मालाओं में नीचे लिखी पुस्तकें प्रथम वर्ष में निकली हैं—

सस्ती-साहित्य-माला (प्रथम वर्ष)

(१) द० आफ्रिका का सत्याग्रह (महात्मा गाँधी लिखित) पृष्ठ २७२ मूल्य ।।।)
(२) शिवाजी की योग्यता पृ० १३२ मू० ।=)
(३) दिव्यजीवन पृष्ठ १३६ (चौथी बार) मू० ।=)
(४) भारतके स्त्री-रत्न-पृष्ठ ४१० (दू०बार) मू० १)
(५) व्यावहारिक सभ्यता-पृ० १०८ " मू० ।)॥
(६) आत्मोपदेश-पृष्ठ १०४ (दूसरी बार) मू० ।)
(७) क्या करें ? (टॉल्सटॉय) पृष्ठ-२६६ मू० ॥=)
(८) कलवार की करतूत (,,) पृष्ठ ४० मू० -)॥।
(९) जीवन-साहित्य पृष्ठ २१८ (कालेलकर) मू०॥)
(भू० ले० बाबू राजेन्द्रप्रसादजी)

सस्ती-प्रकीर्ण-माला (प्रथम वर्ष)

(१) कर्मयोग पृष्ठ १५२ मू० ।=
(२) सीताजी की अग्नि-परीक्षा मू० ।-
(३) कन्या-शिक्षा पृष्ठ ९४ मू० ।
(४) यथार्थ आदर्श जीवन-पृष्ठ २६४ मू० ॥-
(५) स्वाधीनता के सिद्धांत-पृष्ठ २०० मू० ॥
(६) तरंगित हृदय (ले० गुरुकुल कांगड़ी के आचा पं० देवशर्मा विद्यालंकार) पृ० १७५ मू० ।≡
(७) गंगा गोविंदसिंह पृ० २८८ मू० ॥≈
(८) स्वामीजी का बलिदान और हमारा कर्तव्य (ले० पं० हरिभाऊ उपाध्याय) पृ० १५८मू० ।-
(९) यूरोपका इतिहास (प्र०भाग) पृ० ३६६मू०॥।

विषय-सूची

पृष्ठ

धोखा (कविता)—[क्षेमानन्द 'राहत' ... १
अमरता की गोद में—[हरिभाऊ उपाध्याय ... २
हमारा झण्डा (कविता)—[श्री 'कण्टक' ... ६
भारतीय दर्शन-शास्त्र—[श्री पं० सुखलालजी जैन ... ७
समाज की दो दशायें—[श्री अवध उपाध्याय, अध्यापक हिन्दी-विद्यापीठ ... १०
जापान और भारत—[श्री केशवकुमार ठाकुर ... १४
कौन ? (कविता)—[श्री 'किसान' ... १७
उन्नीसवीं शताब्दि के जापानी नाटक—[श्री रामनाथलाल 'सुमन' ... १८
रौरव को स्वर्ग बना जाऊँ (कविता)—[श्री मोहनलाल महतो गयावाल ... २२
राजा गिरधर कछवाहा—[श्री रायबहादुर पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ... २३
प्रण (कविता)—[श्री भुवनेश्वरसिंह 'भुवन', 'लेखमाला'-सम्पादक ... २५
चिलों का क़ैदी—[श्री पारसनाथसिंह, बी. ए. एल-एल० बी० ... २६
निराश पथिक (कविता)—[श्री भद्रजित 'भद्र' ... ३३
मध्यभारत के कुछ ऐतिहासिक स्थान—[श्री भास्कर रामचन्द्र भालेराव ... ३४
शिक्षा की व्यावहारिक कसौटी—[श्री गोविन्द बलवन्त माकोड़े ... ३८
विश्वास—[क्षेमानन्द 'राहत' ... ४२
हृदय की फुलझड़ी (आंखें)—[क्षेमानन्द 'राहत' ... ४२
आधी दुनिया ... ४३
    १. विवाह—[क्षेमानन्द 'राहत' ... ४३
    २. वेश्यावृत्ति की समस्या—[मुकुटबिहारी वर्मा ... ४४
    ३. नारी-महिमा (कविता)—[श्री महाराज चतुरसिंहजी, उदयपर ... ४९
    ४. उन्नति कैसे हो ?—[स्वर्गीया सौ० सुभद्रादेवीजी, धर्मपत्नी श्री परमानन्दजी उपदेशक जात-पांत-तोड़क मण्डल ... ५०
    ५. लड़कियों की शिक्षा—[श्री गोविन्द बलवन्त माकोड़े ... ५२
    ६. पढ़ो कम, गुनो ज़्यादा (कहानी)—[क्षेमानन्द 'राहत' ... ५३
    ७. पुरुष ध्यान दें—[श्री शिवप्रसादसिंह 'विश्वेन' ... ५९
    ८. माता की याद—[श्री देवव्रत शास्त्री, सहकारी सम्पादक 'प्रताप' (कानपुर) ६१
    ९. स्वर्गीय राजकिशोरी मेहरोत्रा—[श्री शंकरलाल टण्डन ... ६४
    १०. बाल-विवाह का धार्मिक स्वरूप—[श्री मदनगोपाल काबरा ... ६७
    ११. ब्रह्मदेश की स्त्रियाँ—[श्री शिवदेवसिंह चंदेल ... ६९

१२. **स्फुट प्रसंग**—स्त्रियों का युग; स्त्रियों का शासन ?; स्वाधीनता कैसी ?;
हमारी दशा; बाल-विवाह-निषेध बिल; माता की शिक्षा
राष्ट्र की शिक्षा; सौ० सुभद्रादेवी का स्वर्गवास ... ७१
१९. उगता राष्ट्र ... ...
१. **कर्म-भूमि** (कविता)—[श्रीमती तोरनदेवी शुक्ल 'लली' ... ७५
२. **पुरुषार्थी बनो**—[श्री वैजनाथ महोदय, बी० ए० ... ७६
३. **विचार-वीचि**—[श्री 'गोताखोर,' बी० ए० ... ... ७८
४. **करने से पहचानना**—[श्री साधु टी० एल० वास्वानी ... ७९
५. **युवकों के विचार** ८०
६. **झूठ का आरम्भ**—[श्री 'सत्येन्द्र,' बी० ए० ... ... ८२
२०. **साहित्य-संगीत-कला** ... ...
१. **मराठी का सामयिक साहित्य**—[श्री 'महाराष्ट्र-साहित्य मधुप' ... ८३
२. **अरबी साहित्य-सुमन**—[श्री श्रीराम शर्मा ८५
३. **गौरव-गीत**—[श्री बालकृष्ण बलदुआ ८७
४. **हिन्दी कवियों से**—[श्री उमाशंकर मेहता ८८
२१. **विश्व-दर्शन**—**अमीर अफ़ग़ानिस्तान की यूरोप-यात्रा; पनडुब्बियों के अन्त का असफल प्रयत्न;
इंग्लैण्ड और मिस्र; ईराक़ पर इब्नसऊद; फ्रांस और संयुक्तराष्ट्र की संधि** ... ८
२२. **समाज के हाथ-पाँव**—**वस्त्र-व्यवसाय के मज़दूर; रेलवे मज़दूरों की हड़ताल; किसानों के सुधार
की समस्या** ९
२३. **विविध**—**फ़ैसिस्ट सरकार की आर्थिक नीति** (श्री परिपूर्णानन्द वर्मा); **प्रतिस्वर** (श्री ब्रह्मचारी
विश्वेश्वर); **वर्तमान शासन और हिंसा; मिलें क्या कर सकती हैं ?; मृत्यु पर विजय !;
कुछ ज्ञातव्य अंक** (श्री नन्दकिशोर अग्रवाल चौधरी) ९
२४. **पहला सुख**—**एक अचेत आत्मघात** (श्री डा० ज्वालाप्रसाद, जयपुर); **जीवन-वृद्धि का उपाय**
(श्री 'क'); **उपवास; दिल खोलकर हँसो** (श्री 'हँसोड़'); **बलवान बनो** ... १०
२५. **नीर-क्षीर-विवेक**—**मदर इण्डिया** (हिन्दी); **कुमार-हृदय का उच्छ्वास; होलिकाङ्क; साहित्य सत्कार** १०
२६. **स्व-गत**—[हरिभाऊ उपाध्याय ११
२७. **सम्पादकीय**—**प्रताप की पूजा; आर्यसमाज अजमेर का उत्सव; हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सामने
कार्य; मिल-मालिकों के लिए अनुकरणीय; सौदे से काम कैसे चलेगा ?; क्रान्ति के
लिए बेचैनी** ११
२८. **चित्र-दर्शन**—**विवाह समारंभ; अभिवचन** ... ... १२० (क

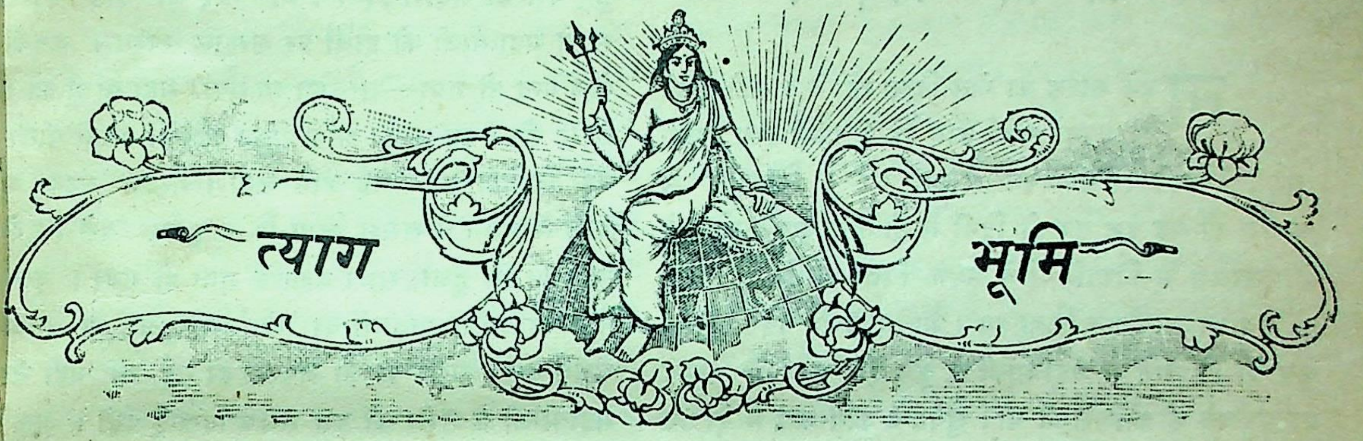

त्याग भूमि

(जीवन, जागृति, बल और बलिदान की पत्रिका)

आत्म-समर्पण होत जहँ, जहँ विशुभ्र बलिदान ।
मर मिटवे की साध जहँ, तहँ हैं श्रीभगवान् ॥

खण्ड २
अंश १
सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर।
वैशाख
संवत् १९८५

57
1929

धोखा

न कर, यह, भ्रमर भयंकर भूल ।
सरस सुमन यह नहीं, अरे यह नीरस कृत्रिम फूल ॥

मुख पर मृदु मुस्क्यान-मधुरिमा सुन्दर रूप अनूप ।
अन्तर में पर छिपी हुई है गन्ध-हीन कुछ धूल ॥

तजकर व्यर्थ विमोह विश्व-उपवन में खुल कर खेल ।
ललित-कलित स्वातंत्र्य-लता पर झूम-झूम कर झूल ॥

'राहत'

अमरता की गोद में—

लड़के नाटक का खेल दिखा रहे थे । महात्माजी अपना चर्ख़ा कात रहे थे । मैंने देखा, महात्माजी के चेहरे पर पीलापन छा रहा था । विद्यापीठ से आश्रम को वह इन एक दो दिनों में दो-तीन वार आते-जाते थे । आश्रम के विद्यार्थियों ने अपने विद्या-मन्दिर के वार्षिकोत्सव का आयोजन किया था । शायद उसी दिन सुबह कुछ देर हो जाने से महात्माजी ने कुछ दौड़ कर भी समय पर पहुँचने की कोशिश की थी । सुबह के कार्य-क्रम में देर तक धूप में भी बैठे रहे । इधर राष्ट्रीय महासभा से लौटने के बाद से दूध लेना बन्द कर दिया था—बादाम और नारियल का दूध बना कर पीते थे—इस बात का प्रयोग बुढ़ापे में, शुरू कर दिया था कि बिना दूध के भी मनुष्य रह सकता है, और दूध का गुण देने वाले दूसरे पदार्थ भी हैं । वह शायद यह समझते हैं कि और बातों में तो मैंने अपना सन्देश दे दिया, व्यवहार-विधि भी बहुत-कुछ बता दी, अब एक काम रह जाता है—इसको भी करता जाऊँ । इस लोभ में दूध बन्द कर दिया था, खुराक कम लेते थे, वज़न कम होता जाता था, शरीर दुबला पड़ता जाता था । इधर गुजरात-विद्यापीठ की पुनर्रचना की धुन में मन में काफ़ी परिश्रम का बोझ पड़ रहा था । फिर आश्रम के उत्सव में आने की दौड़-धूप । उस पीलेपन में इतना इतिहास छिपा हुआ था । जमनालालजी ने भी देखा कि बापू कुछ उदास मालूम होते हैं । उन्होंने एकाध ऐसी बात छेड़ी, जिससे हँसी आवे । पर महात्माजी हँसे नहीं । थोड़ी ही देर में उन्होंने चर्ख़ा कातना बन्द कर दिया, एक विद्यार्थी तार लपेटने लगा । सब लोगों का ध्यान नाटक की ओर लगा हुआ था । एकाएक मैंने देखा कि महात्माजी मीराबहन के कंधे का सहारा लेकर उठ रहे हैं । मुझे आश्चर्य हुआ कि यह क्या ? मैंने सोचा कि बुढ़ापा है, फिर इधर कमज़ोरी ज़्यादा आ गई है, उठते समय सहारा लेने की ज़रूरत पड़ गई हो । मीराबहन एक ही दो क़दम आगे बढ़ी होंगी कि पैर लटक गये—शरीर का सारा बोझ मीराबहन पर आ गया जमनालालजी ने मुझे सचेत किया—फ़िट आ गया, पैर सम्हाल लो । मैं झपटा और
हुए पैरों को सहारा दिया । और भाई भी दौड़ पड़े
सबने महात्माजी को हाथों पर सम्हाल रक्खा । लड़
खेल बन्द हो गया—सन्नाटा छा गया । महात्माजी का
शरीर पीला पड़ गया । आँखें खिंच आईं । इतनी पील
गईं कि देख कर रुलाई आने लगी । गरदन लटक
बहुत-से लोगों ने समझ लिया कि बापू चल बसे ।
ऐसा मालूम हुआ, सारा ब्रह्माण्ड सूना हो गया । कु
दिन पहले मेरी माताजी का स्वर्गवास हुआ था ।
समय उनके शरीर की जो अवस्था हो गई थी वही
महात्माजी के शरीर की इस समय दिखाई पड़ी ।
दो दिन पहले महात्माजी ने प्रार्थना के समय प्रवचन
हुए कहा था—'मरना तो ऐसा कि चर्ख़ा कात रहे हैं, क
कातते दम निकल गया । बात कर रहे हैं, बोलते-बोलते
छूट गई ।' मेरे मन में हुआ, महात्माजी मृत्यु का भी पा
पाठ दे गये । मौत भी करके दिखा दी । वह एक पुनीत
था । शोक, करुणा, उदासीनता, चिन्ता, उद्विग्नता का
मिश्रण लोगों के चेहरे पर छा गया था । कोई देश के
की चिन्ता में डूब गया था । कोई आश्रम के सोच में
गया था । किसी के सामने खुद अपनी समस्यायें आ
हुई थीं । किसी को बापू के मिशन की फ़िक्र थी । मेरे
में उस समय क्या-क्या भाव उठे, यह लिखना शक्ति
बाहर है । या तो हृदय भाव-शून्य हो गया था, या वे
मात्रा में और इतनी तेज़ी से आते-जाते थे कि उनका
रहना असम्भव था । मैं तो बड़ी कठिनाई से अपनी
रोके उनके पैरों में सोंठ मलता रहा । इसीको मैंने बड़ा
भाग्य माना । जिसे मैंने अपना हृदय-देव बनाया है
समय उसकी चरण-सेवा करने का सौभाग्य मिला—
महा अन्धकार में यह भाव एक प्रकाश-रेखा सा मेरे
को आश्वासन दे रहा था । ढाई-तीन मिनट में महात्मा
आँखें खोलीं । नज़र सीधी रंग-मंच की ओर गई । कष्ट-पूर्व
झाये मुख से आवाज़ निकली—'खेल क्यों बंद कर दिया, उसे
करो ।' यह शब्द सुनते ही इधर लड़कों का खेल फिर
हुआ, उधर हम लोगों के गये प्राण मानों फिर लौट
ब्रह्माण्ड फिर हिलता-डोलता मालूम हुआ । ५-७ मिन

और सहात्माजी ने पूछा—'मेरा सूत कितना हुआ है, गिना ?
पड़े कितना कम है ?' एक ने कहा—१६ तार कम है। हुक्म
लड़ेआ—'मेरा चर्ख़ा लाओ, शेष तार कातना है।' आस-पास
ों का ालों के खिले चेहरे फिर मुरझाने लगे। प्राण तो शरीर में
ो पीलेभी लौटे ही नहीं हैं, और बैठ कर चर्ख़ा कातने का आग्रह !
टक ास, यह कैसा बे-पीर है। जमनालालजी ने बुरा मुँह बना
े। फ़िर कहा—बापूजी, अब आज न कातें तो न चलेगा ? उत्तर
। कुमला—'यह कैसे हो सकता है ?' इस समय महात्माजी
। ः चेहरे का भाव मानों कह रहा था—'जमनालालजी, तुम तो
वही वैसा न कहते ?' शंकरलाल भाई को तो चर्ख़ा कातने
। एको बात एकबारगी असह्य हो गई। एक तो उनका यह
वचन लज़ाम रहा ही करता है कि बापू शरीर की पर्वा नहीं करते।
े हैं, कार ऐसे समय चर्ख़ा कातने का आग्रह उन्हें इतना बुरा लग
-बोलतो था मानों बापू हम लोगों की बिलकुल पर्वा न करके मौत
भी पा ज़बर्दस्ती बुला रहे हों। अन्त को चर्ख़ा आया और
पुनीतहात्माजी कातने बैठे। कात रहे थे कि डाक्टर शहर से
ा का खने आये। देख कर बोले—'यह तो भले-चंगे हैं, इन्हें
ा के भाा देखूँ ?' महात्माजी ने हँस कर कहा—'मेरी नहीं,
ाच में करलाल की दवा करो।'

ें आ एक मित्र, जो दूर खड़े अनिमेष नेत्रों से महात्माजी
। मेरे पी रहे थे, मुस्कुरा कर बोले—भाऊजी, आज तो भूत,
शत्विष्य, वर्तमान तीनों की फ़िल्में मेरी आँखों के सामने
या वेड़ रहीं थीं—बुढ़ऊ, इसी तरह, एकाएक चल बसने वाले हैं।
नका लड़कों के नाटक का जो नया दृश्य खुला तो एक पात्र
पनी ह रहा था—'देखो, अभी दो घड़ी के बाद मेरी मृत्यु आने
बड़ा ली है, इसलिए धर्म के बारे में जो कुछ पूछना हो, पूछ लो।'
या है दिल में एक हलका सा भय दौड़ गया—'ईश्वर, यह
मिला-सी भविष्यवाणी ?'—अतिस्नेहः पाप शंकी' !

ा मेरे वह चित्र मेरी आँखों से हटाये नहीं हटता। अब वह
हात्माक सपना-सा मालूम होता है—पर उस दृश्य में कितनी
-पूर्वकवित्रता थी, कितना जीवन था ! उस मूर्च्छा में और उस
या, उसे उत्पन्न उद्विग्नता में कितनी ग़ज़ब की चेतना थी ! मृत्यु-
फ़िर मूर्च्छा; ज़रा चेतना आते ही खेल शुरू करने की आज्ञा;
लौट अचित् थकावट दूर होते ही चर्ख़ा कातने बैठना—इन बातों
मिनट इतिहास में महात्माजी के सारे जीवन का रहस्य और

माहात्म्य आ जाता है। जब-जब उस भव्य और दिव्य दृश्य का स्मरण हो आता है तब-तब हृदय के अन्तस्तल से यह आवाज़ उठती है—धन्य है हमारी यह गुलामी ! अमर रहे हमारी यह विपत्ति ! इन्हींके बदौलत ऐसे पुरुष हमें नसीब होते हैं। यदि ईश्वर कहे कि 'लो मैं तुम्हें आज़ाद कर देता हूँ, तुम्हारे सब दुःखों और कष्टों को दूर किये देता हूँ, पर इसके बदले में महात्माजी जैसों का जन्म लेना बन्द कर देना चाहता हूँ, तो मैं कहूँगा—'मैं गुलामी से ज़रूर ऊब गया हूँ, आज़ादी का ज़रूर भूखा हूँ, देश की दुर्दशा मुझे बिच्छू की तरह डस रही है, उसके लिए मुझसे बड़ी से बड़ी क़ीमत ले लीजिए—महात्माजी जैसे तक की आहुति लेना हो तो ले लीजिए, पर उनका आना मत रोकिए।' यदि गुलामी और विपत्ति की यातना में ही ऐसों का जन्म होता हो, तो मैं आगे बढ़ कर उस गुलामी और विपत्ति के चरण चूमूँगा। वह स्वराज्य बेकार है, जिसमें पवित्र विभूति न हो—उसके लिए स्थान न हो; वह पराधीनता, वह नरक, स्वर्ग और अपवर्ग से भी बढ़ कर है, जिसमें पवित्र विभूतियों का दर्शन होता हो।

(२)

बुद्धि के उदय के युग की याद दिलाने वाले हमारे मित्र इसे भोली भावुकता कह कर इसपर हँस पड़ेंगे। मुझे इसकी शिकायत नहीं। मैं कह चुका हूँ, दीवानों का रास्ता जुदा है—समझदारों का रास्ता जुदा है। समझदारी का ठण्डापन, ख़ुदग़रज़ी, ग़ैरत और ज़िल्लत से मुझे दीवानों का आत्मार्पण, ऊँचा उठना, उड़ना और कूद पड़ना अधिक गौरवपूर्ण मालूम होता है। बुद्धि की तीव्रता की अपेक्षा हृदय की शुद्धता मनुष्यत्व के अधिक नज़दीक है। बुद्धि की तीक्ष्णता में हृदय को ऊँचा उठाने का उतना सामर्थ्य नहीं है, जितना हृदय की निर्मलता में बुद्धि को तीक्ष्ण बनाने का है। हृदय की मलिनता ज्यों-ज्यों कम होती जाती है त्यों-त्यों बुद्धि की तीव्रता और साथ ही निर्णय की शुद्धता अपने आप बढ़ती जाती है। पवित्रता की चाह और स्वाधीनता की चाह एक ही वस्तु है। कोरी स्वाधीनता चाहने वाला दूसरे व्यक्तियों के अंकुश से अपनेको छुड़ाना चाहता है; पर पवित्रता का इच्छुक तो अपनी भी बुराइयों और दोषों से अपनेको मुक्त कर लेना

चाहता है । अतएव वह बढ़कर और ऊँचे दर्जे का स्वाधीनता-प्रेमी है ।

मेरे दूसरे भाई कहेंगे—यह क्या बीसवीं सदी में तुम व्यक्ति-माहात्म्य का गीत गाने लगे ? दुनिया कहां जा रही है, तुम कहां जा रहे हो ?

हां, बात कुछ है उल्टी ही । उस पवित्र दृश्य को पाठकों के सामने उपस्थित करने की आज़ादी मैंने इसलिए नहीं ली कि पाठक महात्माजी को ईश्वर समझ लें, उनकी मूर्ति बनाकर उसका ध्यान और उनके नाम का जप किया करें—हालां कि हिन्दू-जीवन की वस्तुस्थिति में तो इसे भी एक हद तक स्थान है । मेरा कहना इतना ही है कि दुनिया व्यक्तियों की बनी हुई है, व्यक्तियों के लिए है, और सिद्धांतों, आदर्शों की कल्पना हम व्यक्तियों के ही द्वारा कर सकते हैं । व्यक्ति क्या है ? एक जीता-जागता आदर्श और सिद्धांत ही तो है ? लोग क्यों राम, कृष्ण, ईसा, बुद्ध महावीर, रामदास, मुहम्मद, गोविंदसिंह, मार्क्स, लेनिन को याद करते हैं ? क्यों गांधी को याद रखना चाहते हैं ? यदि ये कुछ सिद्धांतों के प्रतिपालक, कुछ आदर्शों के प्रवर्त्तक न होते, तो इनकी हड्डी-पसलियों में क्या रक्खा था ? लोग उनके शरीर को नहीं मानते हैं, उनके गुणों और कार्य को पूजते हैं; और शरीर इन बातों का साधन होता है, इसलिए जब तक वह है तब तक उसकी महिमा और प्रतिष्ठा को मिटा देने का सामर्थ्य किसी में नहीं । फिर मैंने तो उस पवित्र प्रसंग का वर्णन इसलिए किया है कि हम—महात्माजी को किसी भी अंश और किसी भी अर्थ में अपनेसे श्रेष्ठ समझने वाले—उनके संबन्ध में सावधान हो जायँ । जो उनसे विशेष अनुराग रखते हैं, जिन्हें उनका जीवनादर्श प्रिय है, जो अपनेको उनका अनुयायी मानते हैं, वे अपने कर्त्तव्य का विशेषरूप से विचार और निश्चय कर लें । अब तक न समझा हो तो अब शीघ्र समझ लें कि महात्माजी क्या चाहते हैं. और क्या कर रहे हैं । देश के नवयुवक और विद्यार्थी कम से कम उनके जीवन से तो वाक़िफ़ हो लें । यह कितने आश्चर्य और दुःख की बात है कि जर्मनी, आष्ट्रिया और फ्रांस के विद्वान महात्माजी पर बढ़िया विवेचनात्मक पुस्तकें लिखें और भारतवर्ष के स्कूल-कालेजों में पढ़ने वाले हज़ारों विद्यार्थी उनके जीवन के मर्म तक को समझने फ़ुरसत न पावें ! अस्तु ।

जिन्हें पहचानने की बुद्धि और भविष्य को देखने वा आंखें हैं वे तो आज भी देख सकते हैं कि महात्मा भारत के ही मन, वचन, कर्म में नहीं बल्कि दुनिया के इतिहास में क्या उलट फेर कर रहे हैं; फिर भी अधिकां लोग तो उन बातों को स्पष्ट रूप से तभी समझ पावेंगे, ज आज का भविष्य अपनेको वर्त्तमान के रूप में साम लावेगा । यह बात मानकर चलने में कोई बुराई नहीं कि महात्माजी का शरीर अधिक दिनों तक उनकी आत्म का साथ न दे सकेगा । यह हम इसलिए नहीं मानें कि हा उनके जीवन से निराश हो चुके हैं, बल्कि इसलिए मानें मृत्यु प्रकृति का एक नियम है और जागरूक मनुष्य सदा उसके लिए तैयार रहना चाहिए और न हम मृत्यु बातों और चर्चा को अमंगल या भयजनक ही समझें मृत्यु शरीर की एक मीठी चिरनिद्रा है । मृत्यु जीवन विकास की एक अवस्था है । शरीर का विकास मर्यादित वह प्रकृति के—पंचमहाभूतों के—नियमों से बंधा हुआ आत्मा का विकास अमर्याद है और प्रकृति की पहुँच के होना ही उसका अन्तिम लक्ष्य है । किसी की आत्मा विकास जब एक शरीर के विकास की मर्यादा के बाहर ज लगता है तब शरीर का छूट जाना अनिवार्य हो जाता विकासशील आत्माओं के जीवन में शरीर की जीर्णता और अ स्थिति को हम विशेष-रूप से देख सकते हैं । अतएव श का नाश दुःख, भय, या निराशा का कारण न होना चाहिए महात्माजी के संबंध में भी, शरीर-मोह से, हमें किसी प्रक प्रभावित न होना चाहिए । बल्कि मैं तो देखता हूँ कि व तो अमरता की गोद में दिन-दिन आगे बढ़ रहे हैं । हाँ, ज तक उनका शरीर अपने स्वाभाविक क्रम में छूटने की स्थि को नहीं पहुँच जाता तब तक उसके रक्षा और पोषण चिन्ता उन्हें और हमें सबको होनी चाहिए; पर उनके शरी की वर्त्तमान जीर्ण-शीर्णता को ध्यान में लाकर हमें अप अपने कर्तव्यों में अधिक सावधान और जागरूक अव हो जाना चाहिए ।

(३)

खुद महात्माजी ने तो अपनी ओर से यह कही है कि मेरे शरीर का ख़याल छोड़ दो—असली बात स्वराज्य है; उसकी प्राप्ति में जुट पड़ो, और उसके लिए ाश-पाताल एक कर दो। साथ ही उन्होंने बताया कि शी कपड़े का बहिष्कार इस समय स्वराज्य-प्राप्ति का वशाली कार्य-क्रम हो सकता है। और उसका मध्य है खादी और चर्ख़ा। अतएव स्वराज्य-प्राप्ति के लिए कम से कम इतना अवश्य करना चाहिए—

(१) विलायती वस्त्र का उपयोग हम बिलकुल छोड़ विलायती वस्त्र पहनते या इस्तेमाल करते हुए हमें शर्म लगे और मन को असह्य पीड़ा होने लगे।

(२) केवल स्वदेशी ही वस्त्र पहनें और बरतें। उसमें जतनी अधिक खादी इस्तेमाल कर सकें नियम-पूर्वक —कम से कम हर भारतवासी एक कुरता और टोपी की अवश्य पहनें और बहनें खादी की साड़ी या फ़िल-कंचुकी ही पहनने का व्रत धारण कर लें।

(३) रोज़ नियम-पूर्वक चर्ख़ा या तकली पर सूत कातें।

जिन्हें महात्माजी का जीवनादर्श प्रिय है उन्हें इतनी पर ख़ास तौर पर ध्यान देना चाहिए—

(१) मन, वचन और कार्य में अधिकाधिक सत्य का वन करें।

(२) मनुष्य-मात्र के प्रति प्रेम का व्यवहार करने का करें।

(३) जीवन के हर अंग में संयम को प्रधानता दें; स्त्री-पुरुषों के पारस्परिक संबंध में, क्या भोजन-पान और सहन में, क्या सुख और भोग की सामग्री में; सब संयम से काम लेने की आदत डालें।

(४) अछूतों से छुआछूत मानना छोड़ दें।

(५) हिन्दुओं और मुसलमानों के वैमनस्य को घटाने पनी शक्ति लगावें। कम से कम अपनी ओर से उसे न दें।

(६) नियमनिष्ठ और निर्भय बनने का यत्न करें।

(७) मरे हुए पशु की ही खाल का चमड़ा इस्तेमाल कटे पशु का नहीं।

(८) जिन लोगों ने कुछ न कुछ काम अपनी तरफ़ ले रक्खा है वे इस उत्साह, भाव और लगन से उसमें जुट पड़ें, मानों महात्माजी को हम जीते-जी दिखा दें कि आपके न रहने पर भी हम अपने कामों को और भी ज़िम्मेवारी और दृढ़ता के साथ करते रहेंगे।

यदि हम इतना कर सके तो महात्माजी के मर जाने पर भी, सर्वदा हमें अमरता की गोद में दिखाई देंगे और यदि हम कोरे शब्दों से उनकी पूजा करते रहे तो वह हमारे सामने अमर होकर भी अपनेको मरे से बदतर समझेंगे। और मैं ज़रूर मानता हूँ कि इस पिछली अमरता से पहली मृत्यु हर तरह श्रेयस्कर है। यों तो महापुरुषों का जीवन जैसे चैतन्य का स्रोत और प्रकाश की शिखा होता है, वैसे ही मृत्यु एक स्फूर्त्ति की बैटरी होती है। जीवित अवस्था में उसकी आत्मा शरीर के क़ैदख़ाने में बंद रह कर अपना काम करती है; पर मृत्यु के पश्चात् वह स्वतंत्र और स्वाधीन होकर फैलती और अपना काम करती है। अतएव, आइए, हम तो चिन्ता और आशङ्का की घटाओं को चीर कर अपने काम में आगे बढ़ते चले जावें और इसी बात पर परमात्मा का उपकार मानें कि हम महात्माजी जैसी विभूति के समय में उसीके देश में उत्पन्न हुए, रहे, उसके दर्शन किये, उसके लेख पढ़े, उपदेश सुने और स्वराज्य की सेना में—एक छोटे और मामूली क्यों न हों—उसके सिपाही बनने का गौरव प्राप्त किया। और महात्माजी के पुरुषार्थी जीवन को देखकर उनकी सी विभूति बनने का हौसला रक्खें। महात्माजी का जीवन क्या है? आशा, अमरता और आत्मा का सन्देश है; जीवन, जागृति, बल और बलिदान का नमूना है। अमरता की गोद ऐसे ही जीवन के लिए सिरजी और खुली है। ओ मनुष्य, तू मृत्यु की भयानकता से न सिहर—उसके अंदर अमरता की ज्योति जगमगा रही है। तू गा—

“अब हम अमर भये न मरेंगे।
या कारण मिथ्यात दियो तज, क्यों कर देह धरेंगे?
राग-द्वेष जग-बंध करत है, इनको नाश करेंगे।
मरयो अनन्तकाल ते प्रानी, सो हम काल हरेंगे॥
देह विनाशी हूँ अविनाशी, अपनी गति पकरेंगे।
नासी-नासी हम थिरवासी, चोखे व्है निखरेंगे॥’

हरिभाऊ उपाध्याय

हमारा झण्डा

हमारा झण्डा उड़ता रहे !
राष्ट्र का मूर्तिमान अभिमान ।
विश्व में स्वतन्त्रता की शान ।
देश के नवजीवन की जान ।
करेगा यह उठ कर उत्थान ।
दृढ़ता की—
ध्रुव-धर्म-वीरता की—
विक्रम की खान ।
विपुल वैभव का विशद वितान ।
सुझायेगा सुनीति का मर्म ।
सिखायेगा यह सच्चा धर्म ।
सदा देश-सेवक-दल—
इसके नीचे जुड़ता रहे !
हमारा झण्डा उड़ता रहे !

(२)

हमारा झण्डा उड़ता रहे !
त्रिवेणी सी हैं तीन तरंग ।
सरस्वति सुन्दर यमुना-गंग ।
विष्णु का चक्र सुदर्शन संग ।
बढ़ाता उर में अतुल उमंग ।
एक ओर है शांति—
दूसरी ओर—
जंग का रंग ।
हो रही दुनिया सारी दंग ।
मित्र लहराना लख कर मस्त ।
शत्रुओं की हिम्मत है पस्त ।
सदा देश-सेवक दल—
इसके नीचे जुड़ता रहे !
हमारा झण्डा उड़ता रहे !

(३)

हमारा झण्डा उड़ता रहे !
दीन भारत के सिर का ताज ।
सम्हाले यह स्वदेश के काज ।
सुखी छाया में रहे समाज ।
कह रहे कोटि-कोटि मुख आज—
मिट जायें—
चाहे हम, हमको—
रखना इसकी लाज ।
दिलायेगा यह सुखद स्वराज ।
फूँक देगा यह ऐसा मंत्र ।
बनेगा भारतवर्ष स्वतंत्र ।
सदा देश-सेवक-दल—
इसके नीचे जुड़ता रहे !
हमारा झण्डा उड़ता रहे !

(४)

हमारा झण्डा उड़ता रहे !
कौमियत के दिल का अरमान ।
यही है मातृ-भूमि का मान ।
यही भारत-वीरों की आन ।
यही है धर्म यही ईमान ।
बसते इसमें
गुप्त रूप से—
हैं त्रिमूर्ति भगवान् !
चलो, सब इसपर हों बलिदान !
बताकर सीधी-साधी युक्ति ।
दिलायेगा यह जीवन-मुक्ति ।
सदा देश-सेवक-दल—
इसके नीचे जुड़ता रहे !
हमारा झण्डा उड़ता रहे !

भारतीय दर्शनशास्त्र

दर्शन उत्तर और परिपक्व जीवन का विषय है। जीवन की अनुभव-भूमिका में इस विषय के रा रस लिया जाता है।

दर्शनशास्त्र—दर्शन और शास्त्र। दर्शन के मानी ? दर्शन । सामान्य अर्थ है आँख से देखना। परन्तु यह सामान्य र्थ यहाँ पर नहीं लेना चाहिए। यहाँ पर तो इसका अर्थ नुभव या साक्षात्कार लगाना चाहिए। तब दर्शनशास्त्र का भिप्राय हुआ साक्षात्कार का शास्त्र। किसी भी वस्तु का धिक से अधिक ज्ञान प्राप्त कर लेने का नाम है साक्षा-ार; और इसी अर्थ में दर्शन शब्द व्यवहृत हुआ है।

पर, यदि दर्शनशास्त्र साक्षात्कार का शास्त्र है तो कहना गा कि समस्त दार्शनिकों ने अपने दर्शनशास्त्रों में अपने ाक्षात्कार ही दर्ज किये हैं। और साक्षात्कार यदि सत्य तो प्रत्येक के लिए वह एकसा ही होना चाहिए।

समस्त दार्शनिकों के साक्षात्कार एक-दूसरे से जुदे हैं। ार ये सब साक्षात्कार सत्य हों तो उनमें किसी प्रकार का ।भेद नहीं होना चाहिए। पर हम देखते हैं कि इन भिन्न-न्न दर्शनों के विचारों और उन्हें जिस भाषा में प्रकट या गया है, उसमें बड़ा फ़र्क़ है। दर्शन का अर्थ यदि हम बा साक्षात्कार मानें तो फिर उसमें मतभेद की गुंजाइश होनी चाहिए। उसी एक बात को सबको भिन्न-भिन्न ाषा में वर्णन करना चाहिए। परन्तु हुआ इससे बिलकुल परीत है। यहाँ तो भिन्न-भिन्न दार्शनिकों ने अपने से भिन्न । वालों का खंडन किया है।

अतएव दर्शन का अर्थ पूर्ण साक्षात्कार नहीं हो सकता। ेक ऋषियों ने भिन्न-भिन्न विचार करते हुए जो अनुभव प्त किये उनका नाम साक्षात्कार है. परन्तु उसे पूर्ण साक्षा-र नहीं कहा जा सकता। इससे दर्शन का अर्थ साक्षा-ार का प्रयत्न अथवा प्रयत्न करते हुए प्राप्त हुआ अनुभव-। फल हो सकता है। वे ऋषि अपने अनुभव को पूर्ण क्षात्कार भले ही मानें; पर हम तो उसे अंतिम अनुभव ापि नहीं कह सकते। दर्शनशास्त्र का अभिप्राय तो है वह ज्ञ जोकि संपूर्ण साक्षात्कार के लिए प्रयत्न करते हुए प्राप्त हो। भारतीय जनता में दर्शनशास्त्र का विकास किस तरह होता है, इसकी हमें जाँच करनी चाहिए। क्योंकि भारतीय जनता का इतिहास जितना थोड़ा मिलता है उतना भारतीय दर्शन का इतिहास विरल, अल्प नहीं है। दूसरी सारी चीज़ों के विस्तार के साथ-साथ दर्शन का विकास भी धीरे-धीरे ख़ूब बढ़ता है। और जब भारत का समाज उन्नति-शिखर पर पहुँचता है तो दार्शनिक विचार भी उतने ही ऊँचे चढ़े हुए दृष्टिगोचर होते हैं।

हमारे पास ऐसे अनेक साधन हैं कि जिनसे हम भारत के दार्शनिक ज्ञान की प्रतिष्ठा के बारे में जान सकते हैं। कोई भी विषय लीजिए, उसमें आपको दर्शनों की प्रतिष्ठा के विस्तार का आभास मिल जायगा। प्राचीन नाटक, काव्य आदि चाहे जो रस-प्रधान चीज़ लीजिए; योगी, तप, आत्मा एवं आश्रमादि का कुछ न कुछ ज़िक्र तो उनमें आपको अवश्य ही मिलेगा। वानप्रस्थ के एकांतवास की अवस्था में तो धर्म-चिंतन होता ही है; परन्तु बिलकुल बाल्यावस्था से भी धर्म को साथ ही रक्खा गया है। भारत में तो प्रत्येक युग में दार्शनिक विचारों को बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है।

दार्शनिक विचार से अभिप्राय है तत्त्व विचार—भारतीय दर्शन में विचार का मुख्य विषय त्याग है। भारतीय दर्शन का जब पूर्ण विकास हुआ तब त्याग भी उतनीही उत्कृष्टता पर पहुँचा था। चार वर्ण, चार आश्रम, चार पुरुषार्थ, सब में दार्शनिक विचारों की छाप मौजूद है। कामशास्त्र को देखिए या अर्थशास्त्र को, सबका परमोद्देश्य तो मोक्ष ही है। यहाँ तक कि वैद्यक और ज्योतिष वाले भी अपने शास्त्रों का परमोद्देश्य मोक्ष को ही मानते हैं।

अच्छे से अच्छे तत्व को मनुष्य ग्रहण न कर सके तो उसकी विचार-शक्ति की ख़ामी ही उसका कारण है। केवल योगी ही नहीं बल्कि रोगी और भोगी भी हमारे यहाँ तो तत्त्वज्ञान की बातें करते दिखाई देंगे। इस प्रकार, हमारे यहाँ, सार्वजनिक जीवन में सब प्रसंगों पर तत्त्वज्ञान का उपयोग हुआ है। और सामान्यतः सबके जीवन में तात्विक विचारों की प्रधानता है।

भारत के कवियों और कलाविदों ने भी जाने-अनजाने, अपने काव्य-कलाओं में, तत्त्वज्ञान के कलापूर्ण और गूढ़

विचार रक्खे हैं । अपने स्वभावानुसार मनुष्य तत्त्वज्ञान का उपयोग करता है । रस नौ हैं । उनमें शृंगार प्राथमिक है, हास्य, करुण इत्यादि भी सहज हैं । पर शांत-रस स्वाभाविक नहीं है । इसका उद्भव तो जीवन के परिपाक में ही हुआ है। अलंकारशास्त्र में नौ रस थे, परन्तु दर्शनशास्त्र जब उच्च कोटि को पहुंचा तो दसवां शान्त-रस भी उसमें शामिल हो गया । इस प्रकार शांत-रस दर्शनशास्त्र का परिणाम है ।

तरह-तरह की राग-रागनियां एवं नयी-नयी पद्धतियों के बढ़ते जाने पर भी संगीत में संत पुरुषों के भजनों को ही सर्वाधिक लोकप्रियता मिली है । इसका कारण उनके जीवन-स्पर्शी दार्शनिक विचार ही हैं । इन भजनों में विचार पृथक्-पृथक् रीति से भलेही रक्खे हुए मिलें, परन्तु वे भक्ति, श्रद्धा, त्याग आदि से उमड़े पड़ते हैं । भक्त कवियों की आत्मा से तो संगीत सहज ही गर्ज उठता है ।

व्यापारी भी अद्वैत आदि के दार्शनिक विचार तो करता ही है । यह दूसरी बात है कि उसमें उसका उद्देश्य जुदा होता है । मनुष्य को जब आश्वासन पाना हो तो वह अद्वैत के विचार करता है । सदाचारी हो या दुराचारी दार्शनिक विचार तो फिर भी होते ही हैं ।

कौन दार्शनिक श्रेष्ठ है, यह कहना मुश्किल है । हमतो यही कह सकते हैं कि अपनी-अपनी जगह प्रत्येक दार्शनिक असाधारण है ।

उपनिषद्-पूर्व काल में दार्शनिक विचार स्थूल और अस्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं । उसके बाद समय के साथ-साथ वे विचार सूक्ष्म, विशद और विशाल होते गये हैं ।

भौतिक विषयों में भी इन विचारों ने बड़ी प्रगति की है । बौद्धिक और काल्पनिक क्षेत्र में प्राचीन ऋषियों की पंक्ति में बैठने योग्य विचारक तो आज भी कम ही मिलेंगे । इसीलिए, भारतीय आध्यात्मिक दर्शन का स्थान अभी भी सर्वश्रेष्ठ है ।

भारतीय दर्शन के प्रकार मुख्यतः दो हैं–(१)प्रवृत्ति-प्रधान दर्शन और (२) निवृत्ति-प्रधान दर्शन । कुछ का मत है कि भोगों को भोग कर क्रमशः त्याग करना चाहिए । दूसरों का कहना है कि वासना को दबा कर भोगों को भोगे बिना त्याग करना चाहिए । 'न जातु कामः कामानां उपभोगेन शाम्यति । हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते, पहला मत व्यावहारिक जीवन बिताने का उपदेश दे दूसरा 'यदहरेव गिरिजेत् तदहरेव प्रव्रजेत्' यह सलाह है । दर्शनों में प्रवृत्ति-प्रधान को प्रधानता दी गई है औ में निवृत्तिप्रधान है । इन दोनों के विचार एक से होंगे, परन्तु इनके साहित्य इत्यादि में तो भेद हैं ही ।

मनुष्य जब तक विचार के अनुसार आचरण न तब तक वह प्रवृत्ति और निवृत्ति को ठीक-ठीक तौर से पहचान सकता ।

निवृत्ति-सम्प्रदाय के दर्शन निवृत्ति को प्रधान ब प्रवृत्ति को गौण मानते हैं । प्रवृत्ति-सम्प्रदाय वाले विपरीत करते हैं। पर मनुष्य ऐसा ऐकान्तिक नहीं हो कि वह केवल निवृत्ति-परायण या प्रवृत्ति-परायण ही

इस बात को और स्पष्ट करने की ज़रुरत है कि शास्त्र का अर्थ संपूर्ण साक्षात्कार न करना चाहिए। निक कभी सर्वज्ञ और सम्पूर्ण होने का दावा नहीं करते, अपने मत का समर्थन और दूसरे के मत का खण्डन क हम उन्हें देखते हैं। अपने मत को बिलकुल सच्चा उन्हों बताया । उनके अनुयायियों ने उन्हें सर्वज्ञ और सम्पू करने के लिए बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे हैं, परन्तु मूल प्रव इस तरह का दावा कभी नहीं किया । इससे हमें चा दर्शन का अर्थ सम्पूर्ण साक्षात्कार न करें ।

यूरोप के तत्त्वज्ञ जगत् को सम्पूर्ण ज्ञेय नहीं मा अज्ञेयवादी हैं। इसके विपरीत पूर्वी दार्शनिकों के हैं । वे अपने दार्शनिक को पूर्ण ज्ञानी मानते हैं, औ के मत को अयथार्थ और अपूर्ण मानते हैं ।

पर हमें तो समस्त दर्शनों का विचार तटस्थता करना चाहिए । इन सब दर्शनों का विचार करके, पूर्वग्रहों को दूर करके हमें यह सोचना चाहिए दर्शनों में वर्णित मत उचित हैं या अनुचित, अथवा भी अधिक बड़ा सत्य कोई हो सकता है या नहीं ।

पश्चिम में तो केवल अज्ञेयवाद है, पर भारत एवं अज्ञेय दोनों वाद हैं ।

आर्य दर्शनों की आत्मा है विचार और त्याग, ज्ञान और क्रिया। विचार और त्याग दोनों आर्य द

ात्मा का भला कैसे ? पश्चिम में दार्शनिक अपने विचार
कट करता है और उसके अनुयायी भी होते हैं ।
रन्तु उस दर्शन में क्रिया के लिए स्थान नहीं हैं। केवल
चार ही विचार है। वहाँ तत्त्वज्ञानी के अनुयायियों का
सके आचरण से सम्बन्ध नहीं होता । पर हमारे यहाँ यह
त नहीं है । जैन अथवा ब्राह्मण अपने धर्म-पंथ के
नुसार विचार रखता हुआ भी यदि तदनुसार आचरण
करे, तो कोई उसे जैन या ब्राह्मण नहीं कहेगा। यदि कोई
नी वैष्णव मन्दिर में जाता होगा तो लोग उसे जैन नहीं
न्तु वैष्णव ही मानेंगे। महात्माजी और आचार्य ध्रुव
नेकान्तिक दृष्टि से विचार करते रहते हैं । तथापि इन्हें
ई महावीर का अनुयायी न कहेगा, बल्कि वैदिक ही
नेगा; क्यों कि इनके आचरण वैदिक मत के अनुसार हैं।
ारे दर्शनों में विचार और कर्म का समन्वय है, जब कि
श्चिम में केवल ज्ञान है ।

हमारे देश में ज्ञान और क्रिया का समुच्चय और प-
म में केवल विचार—यह क्यों ? बात यह है कि भारत
जो दार्शनिक विचार हुए हैं वे केवल जिज्ञासा या कुतू-
ी ही के लिए नहीं हुए । पर पश्चिम में विचार के लिए
ार हुआ है। हमारे देश में जिज्ञासा के साथ ध्येय
है। मोक्ष ही साध्य है, दूसरे सब साधन हैं।
भी एक साधन ही है। प्रत्येक भारतीय दर्शन का
न्तिम ध्येय तो मोक्ष-प्राप्ति ही है। इसी कारण दर्शनों की
ानी गणना में चार्वाक के मत को दर्शन के रूप में नहीं
दा गया है। दर्शनों में तो इसकी गणना पीछे से
है। कर्मकांड तो वासनाओं की पूर्त्ति के लिए है।
न्तु उसका अंतिम फल तो मोक्ष ही है। अथातोधर्म
ज्ञासा की पूर्ति में अथातो ब्रह्मजिज्ञासा है ।
न्तु इन दोनों का समन्वय होने के बाद प्राप्ति तो
 पुनरावर्त्तते न स पुनरावर्त्तते अर्थात् आत्यन्तिक मोक्ष ही
। जैन दर्शन में भी आस्रव (वासना) में से स्वतंत्र होना
ात् मोक्ष-प्राप्ति ही परम ध्येय है। बौद्ध दर्शन में भी
ासिक और बाह्य जगत् का विचार करने के उपरान्त भी
न्तिम ध्येय तो निर्वाण ही रहता है। भारतवर्ष के दार्श-
निकों ने सूचित किया है कि मोक्ष ज्ञान ही से मिलता है।

परन्तु जब यह बात उठी कि केवल विचार से ही मोक्ष प्राप्त नहीं होता, तब उन्होंने आचरण को भी स्थान दिया और मोक्ष के साधन-स्वरूप इन दोनों के समन्वय का उपदेश दिया। हमारे तत्त्वचिन्तकों ने यह निर्णय किया कि विचारों के अनुसार जब तक आचरण न हो तब तक मोक्ष ही प्राप्त नहीं होती।

दार्शनिकों के गृहत्याग आदि प्रयत्नों का उद्देश सिर्फ़ ज्ञान-प्राप्ति न था; उनका उद्देश तो था विचारों के अनुसार अपना जीवन बनाना; धार्मिक जीवन कैसे बिताया जाय इस बात का अनुभव करना, और इस बात का निश्चय करना कि मुमुक्षु अपना आचरण कैसा रक्खे । धर्म-प्रवर्त्तक के त्याग को मनुष्य पूरी तरह नहीं समझते। बस, उनके आचरण के स्थूल रूप को ही झट से लोग ग्रहण कर लेते हैं; अन्दर के सूक्ष्म रहस्य को समझने वाले तो विरले ही होते हैं। अस्तु।

इसमें ख़ास तौर पर विचारणीय हैं ये बातें:—

(१) भारतीय प्रजा में दर्शनों का विकास—क्रम।

(२) भारतीय जनता में दर्शनों की प्रतिष्ठा।

(३) दर्शनों के दो विभाग।

(४) आर्य दर्शनशास्त्र की उत्पत्ति का मूल मोक्ष की इच्छा है।

(५) आर्य दर्शनशास्त्र में ज्ञान-समुच्चयवाद के कारण और इष्ट-अनिष्ट दोनों उत्पन्न हुए हैं।

(६) मोक्ष के लिए जो विचार हुए हों वही काम के हैं और जो कर्म विचार-पूर्वक हुए हों वही निर्दोष हैं।

सुखलाल

अज्ञानियों के लिए 'एकान्त' के समान कोई दूसरा वैरी नहीं; और आत्म-ज्ञानियों के लिऐ 'मनुष्य-संसर्ग' के समान दूसरा कोई सबल वैरी नहीं।

जो वस्तु स्वभाव ही से अनित्य और वियोगशील है, भला उस वस्तु पर ममता रखने से किस प्रकार शाश्वत सुख प्राप्त करने की आशा की जा सकती है?

एक अनुभवी

समाज की दो दशायें

जिन लोगों ने किसी भी समाज का कुछ भी अध्ययन किया है उनका ध्यान समाज की आदर्श तथा वास्तविक दशाओं से अवश्य ही आकृष्ट हुआ होगा। जिन लोगों को सूक्ष्म विचार करने का अभ्यास नहीं है, वे भी किसी समाज की इन दोनों दशाओं से किसी न किसी रूप में अवश्य ही परिचित रहते हैं। सब लोग जानते हैं कि किसी समाज के वैवाहिक आदर्श क्या हैं और वास्तविक अवस्था क्या है ? प्रसंगवश यहाँ विवाह का उल्लेख कर दिया गया, परन्तु इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि केवल विवाह ही के सम्बन्ध में यह नियम लागू होता है। कदापि नहीं। यही बात समाज की हर एक बात के लिए सत्य है। जिन लोगों का ध्यान समाज की इन दो दशाओं—आदर्श और वास्तविक की ओर आकर्षित हुआ होगा, उन लोगों ने इन दोनों दशाओं के अन्तरों को भी खूब समझा होगा। उन्नत से उन्नत तथा अवनत से अवनत सभी समाजों में ये अन्तर पाये जाते हैं। यहाँ पर यह तो प्रश्न ही नहीं है कि किसी समाज को आदर्शों की ओर अधिक ध्यान देना चाहिए अथवा वास्तविकता की ओर। यहाँ पर केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि सब समाजों में इन दोनों दशाओं का अस्तित्व पाया जाता है और सभी समाजों में इन दोनों दशाओं में अन्तर भी अवश्य ही रहता है। प्रत्येक समाज में यह बात स्वीकार की जाती है कि हमेशा सच बोलना चाहिए, परन्तु प्रत्येक समाज में झूठे भी पाये जाते हैं। समाज का आदर्श सच बोलना है, परन्तु समाज की वास्तविक दशा सर्वदा ऐसी नहीं रहती। इसलिए कहा जाता है कि किसी समाज की वास्तविक दशा तथा उसके आदर्श में अवश्य अन्तर पाया जाता है।

जब हम लोग इस बात को मुक्त कण्ठ से स्वीक कर लेते हैं कि समाज के आदर्श तथा वास्तविक द में अन्तर सर्वदा ही पाया जाता है, तब यह प्र उत्पन्न हो जाता है कि यह अन्तर सर्वदा बना रहे अथवा इस अन्तर का कभी अन्त भी होगा ? इस लेश-मात्र भी सन्देह नहीं है कि समाज के प्रारम्भ ही इस अन्तर का अस्तित्व पाया जाता है। चाहे किसी देश के इतिहास का अध्ययन करें अथवा उस साहित्य का, समाज की इन दोनों दशाओं का अस्तित्व किसी न किसी रूप में अवश्य ही पा जाता है। इसमें भी सन्देह नहीं कि इस अन्तर क सत्ता आज भी पाई जाती है। अब प्रश्न ये उठते हैं क्या यह अन्तर स्वाभाविक है ? क्या इस अन्तर अन्त न होगा ? क्या इस अन्तर का नाश करने लिए कोई औषधि नहीं है ? क्या इसका भी उद्देश्य है ?

समाजशास्त्र का यह एक बड़ा ही महत्व प्रश्न है। भिन्न-भिन्न मनुष्यों ने इसका उत्तर दिया जो एक नहीं है और सम्भवत: एक हो भी नहीं सक क्योंकि इन उत्तरों के आधार प्राय: धर्म, आ तथा भिन्न-भिन्न परिस्थितियाँ हैं और यह भी प्रक है कि इस संसार में भिन्न-भिन्न धर्मों का अ पाया ही जाता है। जिसे एक समाज अच्छा सम है, उसे दूसरा समाज बुरा समझता है। एक स की आचार-नीति में गाय खाना कोई पाप नहीं और दूसरे समाज के लिए इससे बढ़ कर कोई द पाप हो ही नहीं सकता। धार्मिक, राजनैतिक, आ सम्बन्धी, सामाजिक तथा अन्य विभिन्नताओं के क उक्त प्रश्न के उत्तर भी भिन्न-भिन्न हुआ करते हैं

यदि यह बात मान ली जाय कि इस अन्त अस्तित्व कभी नहीं मिट सकता, यदि हम लोग बात को स्वीकार कर लें कि अन्तर स्वाभाविक है

सदा इसी प्रकार बना रहेगा, तो हम लोगों के सामने एक बड़ी भारी समस्या उठ खड़ी होती है । उस दशा में हम लोग धार्मिक रह जाते हैं या नहीं, इसमें भी सन्देह उत्पन्न हो जाता है ।

यदि हम लोग इन सामाजिक बुराइयों को मिटा नहीं सकते, यदि हम लोग इन अनन्त दोषों को दूर नहीं कर सकते, यदि हम लोगों में पाप का अस्तित्व सदा इसी प्रकार बना ही रहेगा, तो फिर भला बनने का प्रयत्न किसलिए किया जाय? यदि हमारे सामाजिक भाई सदा बुरे कामों में ही लगे रहेंगे, यदि वे कभी भी उन्नति कर ही नहीं सकते, यदि वे अथवा उनमें से अधिक सदा इन बुराइयों के शिकार ही बनते रहेंगे, तो हम लोग समाज से इन बुराइयों के अस्तित्व को हटा देने का प्रयत्न क्यों करें? यदि दुःख तथा बुराई का भी कुछ उद्देश्य है, यदि यह स्वाभाविक , यदि यह आवश्यक है, तो इसके दूर करने का प्रयत्न क्यों किया जाय? यदि इन सामाजिक बुराइयों की सत्ता नहीं मिटाई जा सकती, यदि ये दुःख दूर नहीं किये जा सकते तो फिर सांख्यदर्शन के कर्ता ने दुःखों को दूर करने को अत्यन्त पुरुषार्थ क्यों कहा? यदि समाज की इन दोनों दशाओं—आदर्श और वास्तविक—में सर्वदा अन्तर ही बना रहेगा, तो फिर दार्शनिक तथा धार्मिक लोग इसे हटाने का उपाय क्यों बतलाते हैं?

यदि हम लोग इस बात को स्वीकार कर लें कि यह अन्तर सदा इसी प्रकार बना रहेगा, तो फिर हम लोग स्वार्थियों तथा चोरों को कैसे समझावेंगे? ऐसी दशा में जब कोई चोर हमसे कहेगा कि 'चोरी तो स्वाभाविक है, आवश्यक है, और उसका भी एक उद्देश्य है, और वह उद्देश्य बहुत अच्छा है,' तो उसे हम किस प्रकार समझायेंगे कि चोरी करना बुरा है? जब चोर कहेगा कि चोरी करना भी हम लोगों का स्वधर्म है, तो हम लोग उसका क्या उत्तर देंगे?

जो दार्शनिक यह मानकर चलेगा कि इन बुराइयों का अस्तित्व अवश्य ही समाज में रहेगा, उसे कई कठिनाइयों का सामना पड़ेगा और उसके लिए संसार की इन उलझनों को सुलझाना असंभव हो जायगा ।

यदि कोई धार्मिक मनुष्य उक्त बात को मान लेगा, तो फिर उसे इस संसार से बहुत अधिक संबंध रखना असंभव हो जायगा; क्योंकि इस संसार में उसकी आशायें कभी पूरी नहीं हो सकतीं । वह धार्मिक मनुष्य इस संसार की बुराइयों को मिटाने की आशा कर ही नहीं सकता । इसलिए उसे एक ऐसे आदर्श परन्तु दूरस्थ संसार का स्वप्न देखना होगा, जहाँ उसकी आशायें पूरी होंगी । उसके लिए इस संसार में भलाई का स्वप्न ही देखना अच्छा होगा, क्योंकि वास्तविक भलाई की आशा तो यहाँ वह कर ही नहीं सकता ।

परन्तु ऐसा मानना स्वयं अपने स्वभाव के विरुद्ध जाना होगा । यदि हम यह मान लें कि हम बुराई के अस्तित्व कभी नहीं मिटा सकते, तो फिर भलाई तथा भले कामों के करने का प्रयत्न करना व्यर्थ है । तथापि हम लोग भली भाँति जानते हैं कि भलाई करना भी हम लोगों का स्वभाव है । आजतक संसार भर के धर्म भलाई करने का ही उपदेश देते चले आये हैं । इस लेख में मैं भिन्न-भिन्न दार्शनिकों की युक्तियों के द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयत्न नहीं करूँगा कि भलाई करना मनुष्य का स्वभाव है अथवा बुराई करना । परन्तु इसमें तो कुछ भी संदेह नहीं है कि समाज में ऐसे लोग भी अवश्य ही पाये जाते हैं जो भलाई करते हैं और ऐसे लोग भी पाये जाते हैं जो बुराई करते हैं । इस प्रश्न का हल करने के लिए कि मनुष्य का स्वभाव भलाई करना है अथवा बुराई करना, एक महाभारत लिखने की आवश्यकता होगी और तब भी निश्चित रूप से एक बात नहीं सिद्ध हो सकेगी ।

अतएव इस प्रश्न को प्रायः सब लोग अपने-अपने विश्वास की सहायता से ही हल कर लेते हैं, क्योंकि इस सम्बन्ध में युक्ति-वाद बड़ा जटिल रूप धारण कर लेता है। इसमें भी संदेह नहीं कि इस संसार में दोनों बातों में विश्वास करने वाले आदमी पाये जाते हैं। कुछ लोग विश्वास करते हैं कि इस संसार-समाज से एक न एक दिन सब बुराइयों का अन्त अवश्य होगा। आज आदर्श और वास्तविक दशा में जो अन्तर पाया जाता है एक न एक दिन उसका अन्त अवश्य हो जायगा। एक दिन आदर्श और वास्तविकता के अन्तर अवश्य मिट जायँगे और भलाई बुराई पर विजय पा जायगी। इन लोगों का विचार है कि एक दिन हम लोगों का समाज उस आदर्श की प्राप्ति अवश्य कर लेगा, जिसकी ओर यह जा रहा है। प्लेटो ने इस आदर्श समाज की कल्पना बहुत पहले की थी। पाश्चात्य देश के अनेक और विद्वानों ने भी इस आदर्श समाज के विषय में बहुत कुछ लिखा है। प्लेटो ने तो उस आदर्श समाज के बारे में बहुत कुछ लिखा है। संस्कृत ग्रन्थों में भी ऐसे आदर्श समाज का वर्णन मिलता है। महाकवि वाल्मीकि ने अपनी रामायण में अयोध्या के जिस समाज का वर्णन किया है वह वास्तव में आदर्श समाज ही है। जब हम लोग ऐसे आदर्श समाज की सत्ता में विश्वास करेंगे, तब हम लोगों को भलाई करना सुगम हो जायगा और तब हमें भलाई करना आवश्यक भी होगा। सरकार, धर्मोपदेशक, दार्शनिक, धर्म, कला तथा विज्ञान इसी आदर्श के वास्तविक अनुभव कराने का प्रयत्न करते रहते हैं। इन सबों का एक आदर्श रहता है और इसी आदर्श की ओर ये सबका ध्यान आकर्षित करते हैं।

इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे लोग भी पाये जाते हैं, जो विश्वास करते हैं कि दिन-दिन बुराई तो कम
होती चली जायगी परन्तु इसका अस्तित्व कभी
हट सकता। इनका विचार है कि जीवन सहने यो
हो सकता है, परन्तु वह आनन्द-मय नहीं हो सक
परन्तु यह बात ठीक नहीं मालूम पड़ती। क्योंकि, स
पवित्रता का भी इस संसार में अस्तित्व पाया ज
है। यदि ईश्वर इस संसार का निर्माता है, यदि प
त्रता की भी वास्तविक सत्ता है, यदि आत्मो
केवल उपन्यासों में ही नहीं किन्तु मनुष्य के वास्त
जीवन में भी पाया जाता है, यदि त्याग भी
संसार का एक वास्तविक पदार्थ है, तो मनुष्य-समा
का भी एक वास्तविक आदर्श अवश्य है। कोई
आदर्श की कितनी ही निन्दा क्यों न करे, कोई
आदर्श के विपक्ष में चाहे कितना कहे, परन्तु इ
अस्तित्व को सबको स्वीकार करना ही पड़ेगा।
आदर्श पर ही आज संसार चल रहा है। हम ले
प्रतिज्ञा करते हैं और उसके अनुसार कार्य भी क
हैं। इसमें संदेह नहीं कि बहुत लोग अपनी प्रतिज्ञा
को भंग भी कर देते हैं। परन्तु प्रतिज्ञा-पालन
का आदर्श लगभग सब समाजों में वर्त्तमान है।
यह आदर्श न होता, तो इस संसार का एक दिन
काम न चलता। न तो कोई प्रतिज्ञा करता औ
कोई उसके अनुसार काम करने का प्रयत्न ही कर

इसमें संदेह नहीं कि समाज में बुराइयाँ हैं,
कोई भी शंका नहीं कर सकता कि समाज अंध
में है; परन्तु इन सबका अन्त अवश्य होगा।
इनका अन्त न होता, तो परमेश्वर को ऐसी
करने में क्या मज़ा मिलता कि जिसमें ऐसी-
उलझनें भरी पड़ी हैं? इसपर यह कहा जा स
है कि परमेश्वर के मानने की आवश्यकता ही
है? क्या परमेश्वर की सत्ता बिना माने ही इस
का उत्तर नहीं आ सकता? यहाँ पर इन सब
की विवेचना करने की न तो आवश्यकता है औ

ान है। इस संबंध में इतना ही लिखना पर्याप्त होगा ईश्वर के न मानने से ही यह प्रश्न सुगम नहीं हो ता,। उस दशा में भी इस समस्या का हल करना वश्यक ही रह जाता है। क्योंकि जिन दार्शनिकों ईश्वर के अस्तित्व को भी नहीं स्वीकार किया है, भी आचार-शास्त्र के नियमों को बनाना पड़ा है। त्व में ऐसे कई बड़े प्रसिद्ध दार्शनिक हो भी गये परन्तु समाज-शास्त्र के उक्त प्रश्न का उत्तर उन्हें देना पड़ा है। इसीलिए समाज को इन दो दशाओं संबंध में ग्रेज कहता है—“मैं इस बात को स्वी- र ही नहीं कर सकता कि जीवन एक बुरा सौदा । मैं इस बात को कभी नहीं मान सकता कि जन्म में हम लोग बुराई ही बुराई की आशा सकते हैं और आनन्द, पवित्रता तथा भलाई ले जन्म में। मैं बुराई की अन्तिम तथा आवश्यक का में कभी भी विश्वास नहीं कर सकता। मेरा विश्वास है कि हम लोग बुराइयों का सुधार कर क्ते हैं। इसमें संदेह नहीं कि इन बुराइयों को ने के लिए हम लोगों को भगीरथ प्रयत्न करना दिना—सिर तोड़ परिश्रम करना पड़ेगा।”

इसी सम्बन्ध में पाश्चात्य देश का एक प्रधान कहता है—

seek; to find, to strive, and not to yield.”

र्थात्, खोजो पता लगाओ, प्रयत्न करो और नी पराजय मत स्वीकार करो।

यह वाक्य उपनिषद् के वाक्य से बहुत कुछ ता है।

इसी सम्बन्ध में एक दूसरा विद्वान् कहता है— मों तो लेशमात्र भी संदेह नहीं है कि हम लोगों ी इस संसार में बुराइयों को जन्म दिया है। जो इयों को जन्म दे सकता है वह उन्हें दूर भी कर ता है।”

यदि हम लोग इस बात को स्वीकार कर लें कि एक न एक दिन समाज का आदर्श वास्तविक घटना हो जायगा, एक दिन समाज की दोनों दशा मिलकर एक ही रूप धारण कर लेंगी और उस दिन समाज में आदर्श का ही पूर्ण साम्राज्य होगा, तब यह प्रश्न उठता है—इस आदर्श का अनुभव हम लोग कैसे कर सकते हैं?

यह प्रश्न भी बड़े महत्व का है। इस सम्बन्ध में हम लोगों को समाज में उन-उन बातों पर विचार करना पड़ेगा, जिनका प्रभाव समाज की उन्नति तथा अवनति पर पड़ता है। इस सम्बन्ध में समाज के राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, शारीरिक, बौद्धिक, आत्मिक तथा शिक्षा सम्बन्धी सभी बातों का विश्लेषण करना पड़ेगा। इस सम्बन्ध में समाज में व्यक्ति का स्थान भी निश्चित करना पड़ेगा। इसके लिए हमें यह भी देखना पड़ेगा कि समाज के लिए व्यक्ति है अथवा व्यक्ति के लिए समाज? इसके लिए हमें इस बात का भी पता लगाना पड़ेगा कि कभी व्यक्ति समाज के विरुद्ध जा सकता है अथवा नहीं? एक प्रकार से समाज तथा व्यक्ति के सब सम्बन्धों की पर्यालोचना ही नहीं किन्तु विवेचना भी करनी पड़ेगी। समाज और व्यक्ति के इस सम्बन्ध के बारे में मैं फिर कभी विचार करूंगा।

अवध उपाध्याय

“वेद भी अगर विस्मृत हो जाय तो फिर याद कर लिये जा सकते हैं; मगर सदाचार से यदि एक बार भी मनुष्य स्खलित हो गया, तो सदा के लिए अपने स्थान से भ्रष्ट हो जाता है।

ऋषि तिरुवल्लुवर

जापान और भारत

लगभग पचास वर्ष पूर्व जापान भी भारतवर्ष की भाँति एक पराधीन देश था और अपने अन्तरङ्ग तथा बहिरङ्ग जीवन में उतना ही परवश एवं विवश था, जितना कि आज भारतवर्ष है। परन्तु, आज ? आज जापान पराधीन देश नहीं है। विदेशियों के पद-दलन आज उसे उसके अस्तित्व और स्वाभिमान से वंचित नहीं कर रहे हैं। आज तो वह संसार के दूसरे स्वतंत्र राष्ट्रों की भाँति एक स्वाधीन देश है। यह कैसे हुआ ? विवशता और परवशता से जापान को किस प्रकार मुक्ति मिली ? विदेशी शासन के दास्य-बन्धनों से निकल कर किस प्रकार वह विश्व के स्वाभिमानी राष्ट्रों के सन्मुख अपनी मान-मर्यादा की रक्षा कर सका ? ये ऐसी बातें है कि परतंत्रता के कठोर बन्धनों में जकड़े हुए, अपनी धार्मिक और नैतिक क्लेश-वेदना में बिलबिलाने और तड़पने वाले, हमारे जैसे देशों के लिए उनका जान लेना उचित ही नहीं बल्कि श्रेयस्कर भी है।

जापान का इतिहास पठनीय है। पराधीन समाज तथा देश के लिए वह आदर्श है। जापान के इतिहास को तीन भागों में विभक्त कर उसके एक-एक भाग का अध्ययन और अनुशीलन करना चाहिए। (१) जापान का पराधीन-काल, (२) उसके स्वतंत्र साधन, और फिर (३) उसका स्वतंत्र जीवन। भारतवर्ष की भाँति जापान में विदेशी शासन का आडम्बर कभी कृतकार्य नहीं हुआ। विदेशी सभ्यता और शिष्टाचार की मुहर जापान में अपना प्रभाव नहीं कर सकी। भारतीयों की भाँति जापान के निवासी विदेशी शिक्षा-सभ्यता में अनुरक्त नहीं हुए। अपने पराधीन जीवन में भी जापान अपने पूर्वजों की मान-मर्यादा का विस्मरण नहीं कर सका। और बड़ी बात तो यह थी कि जापान को अपने जी जो स्वाभिमान था, वह विदेशी शासन-काल नष्ट नहीं हो सका। जापान के गर्वित शब्द "देश का नैतिक और धार्मिक जीवन जो कुछ है सब कुछ है" पराधीन देशों के लिए प्राण हैं।

अपने यहाँ विदेशियों को पदार्पण करने जापानियों को स्वीकार न था। उनको किसी से घृणा न थी, विदेशियों के सहवास, संस्पर्श से घृणा न थी, उन्हें घृणा थी—उन्हें अरुचि थी, वि शासन से—विदेशी हुकूमत से। इसीलिए स्वाभि जापानियों ने सबसे प्रथम यह चेष्टा की कि जा विदेशी शक्तियों को स्थान न मिले। किन्तु समय दौर्भाग्य-क्रम से वे इसमें कृतकार्य न हो सके। बल-प्रयोग असफल हुआ। तब उन्होंने विदेशी सभ्यता के रोग से अपने देश और समाज को क्षित रखने के लिए चेष्टा की। इसी अवसर उन लोगों ने एक बात और की। उन्होंने शक्तियों का भली प्रकार मनन किया और यह निष्कर्ष निकाला कि विदेशी साधनों को हमें अपने साधन शक्तिशाली बना लेने चाहिएँ। लिए उन्होंने यथोचित आयोजना की। जिस की गम्भीरता और उत्साह के साथ जापानियों ने साधन और शक्तियों का संचय किया, वह ज्वलन्त देशानुराग का प्रमाण है। देश का अपने हाथों में लेने के लिए जिन शक्तियों और नों की आवश्यकता होती है, एक-एक करके, नियों ने उनका संकलन किया। जिस उत्साह उद्योग से उन्होंने कार्यारंभ किया, उसने देश के युवकों में देशानुराग की लहर उत्पन्न करदी। असमर्थता की भी जापानियों ने खूब विवेचना उनका राष्ट्रीय आन्दोलन पद-पद पर सफल

नी शीघ्रता के साथ हो सका, देश में आधुनिक
ा-प्रणाली प्रवर्तित की गई। प्रत्येक बालक और
का को शिक्षा के लिए अनिवार्य शिक्षा का प्रबन्ध
, जब कि इसके पहले जापान में स्त्री-शिक्षा बहुत
थी और बालकों की शिक्षा भी साधारण ही थी।
ही इसके सेना-विभाग में अनिवार्य भर्त्ती जारी
जिससे प्रत्येक वयस्क व्यक्ति को सेना में भर्ती
की सुबिधा होगई। देश का वाणिज्य-व्यवसाय
लित किया गया और कितने ही सरकारी-गैर-
ारी बैंकों की स्थापना हुई। इस प्रकार देश में
न जीवन का आविर्भाव हुआ। इस नवीन अनुष्ठित
व्यवस्थित परिचालन में देश के कार्य-संचालकों
ार्य लेने में अनेक असुविधायें हुई। उस समय
संभव विदेशी व्यक्तियों से काम लेकर तुरन्त देश
हस्रों नवयुवक शिक्षा-दीक्षा के लिए विदेश भेजे
विदेश से लौटकर उन नवयुवकों ने जापान के
न्न राजकीय विभागों में अधिकार किया।
कार अपनी नवीन प्रणाली के आधार से जापान
धीरे अपने देश का कार्य-संचालन करने के
क्त हो गया।

भारतवर्ष की भांति उस समय जापान में भी
क जातियाँ और उपजातियाँ थीं और उनका परस्पर
ागत पार्थक्य ठीक वैसा ही था, जैसा आज
तवर्ष में विद्यमान है। एक जाति का दूसरी जाति
ाथ विवाह जैसी लौकिक प्रथाओं में सम्बध न
था। जापानियों ने इन प्रथाओं को राष्ट्र के लिए
समझा और उन्हें दूर करने का प्रयास किया।
न रूढ़ियों को सुसंस्कृत करने में जो कठिनाइयाँ
बाधायें पड़ती हैं वे उनके सन्मुख भी उपस्थित
परन्तु, सौभाग्य और अनवरत परिश्रम से, जापा-
को इसमें सफलता हुई। आज जापान की उन
में और वर्त्तमान परिस्थितियों में अत्यधिक अंतर
है। वहाँ आज जातीय विद्वेष नहीं है। ऊँच और नीच का झगड़ा नहीं है। समस्त जापान के निवासी एक राष्ट्र के नाम से पुकारे जाते हैं। वहाँ का एक कुली समाज में वही अधिकार रखता है, जो अधिकार एक प्रधान मंत्री का होता है। वहाँ के इन सामाजिक सुधारों ने राष्ट्र को शक्तिशाली होने में साथ दिया। राष्ट्रीय अभ्युत्थान के लिए सामाजिक परिष्कार और सुसंस्कृति की अत्यन्त आवश्यकता है। भारतवर्ष में भी सामाजिक आन्दोलन हो रहा है। हिन्दू महासभा का आन्दोलन हमारा सामाजिक और धार्मिक आन्दोलन है। परन्तु जापान के आन्दोलन और हमारे आन्दोलन में उतना ही अन्तर है, जितना अन्तर वहाँ के सामाजिक आन्दोलन की सफलता और हमारी सफलता की आशावादिता में है। समाज-गत प्राचीन रूढ़ियों में हमें किन-किन प्रथाओं में क्या-क्या परिष्कार और परिवर्तन करने हैं, हमारे आन्दोलन ने कदाचित् अभीतक इन बातों को स्पर्श भी नहीं किया। आन्दोलन के प्रवर्त्तकों एवं व्यवस्थापकों ने अभी तक यह सोचा भी नहीं है कि सामाजिक सुधार एक दूसरे के साथ अश्लील व्यवहार करने और अपने आपको देवता समझने में ही हो जाते हैं अथवा उनके लिए और भी कुछ करना होता है। जब हम अपने देश के पत्र-प्रकाशकों तथा संपादकों के नैतिक ढिंढोरे और उनकी कार्य-प्रणाली की आलोचना करते हैं, तब तो हमें अपनी आशावादिता पर भी सन्देह होता है।

संकल्प और विकल्प ने हमारे नैतिक जीवन को जर्जरित कर डाला है। हम कभी राष्ट्रीयता के रंग में होते हैं और कभी सामाजिकता के बन्धन में! कभी हम राष्ट्रीय प्रगति में इतनी उतावली दिखाते हैं, मानों स्वराज्य को कहीं से लेकर ही लौटेंगे, और कभी सामाजिकता तथा धार्मिकता में पिघल कर राष्ट्रीयता से इतनी दूर हो जाते हैं, मानों अब तक हमारी राष्ट्रीय

यात्रा हमारे लिए भ्रान्ति मात्र थी। कदाचित् अब तक हम राष्ट्रीयता और सामाजिकता के वास्तविक अर्थ भी नहीं समझ पाये हैं। कितना बड़ा हमारे लिए राष्ट्रीय आन्दोलन का उपहास है। एक ज्वर-पीड़ित व्यक्ति को ज्वर के साथ-साथ शारीरिक वेदना, मस्तक-पीड़ा, कफ़, खाँसी आदि अनेक कष्ट होते हैं। इन कष्टों को प्रथम दूर करने का प्रयत्न कितना भ्रान्ति-मूलक है, यह बताना अत्यन्त दुरूह है। चतुर वैद्य और डाक्टर ज्वर के साथ-साथ इन कष्टों को दूर करने का प्रयत्न करते हैं और ज्वर दूर होने के पश्चात् इन कष्टों का यदि कुछ अंश शेष रह गया तो वह अत्यन्त सरलता-पूर्वक शांत हो जाता है। पराधीन देशों के राष्ट्रीय आन्दोलन उनके समाजगत और जातिगत सुधारों तथा परिष्कारों से बनते हैं। सामाजिक तथा जातीय सुचारु व्यवस्थायें राष्ट्र के आन्दोलन की सहायक होती हैं। दुर्भाग्य से अभी तक तो हम यही नहीं समझ पाये कि देश में पहले राष्ट्रीय उद्धार होगा अथवा सामाजिक और धार्मिक परिष्कार! जापान के निवासियों ने इस जटिलता को हल करने में उतना समय नहीं लगाया, जितना हमारे लिए आवश्यक जान पड़ता है। उन लोगों ने समस्त बन्धनों को तोड़ कर समुज्ज्वल, परिष्कृत राष्ट्रवादी होने में ही अपना परमार्थ समझा था। जातिगत और समाजगत उलझनों में पड़े रहने के स्थान पर उन्होंने अपने देश में कल-कारखानों, वाणिज्य-व्यवसाय को जन्म देना और देशानुराग का व्रत लेना प्रारम्भ किया था। शिक्षा, चिकित्सा और वैज्ञानिक उन्नति के साथ-साथ अपनी युद्ध-शक्ति से पृथ्वी की श्रेष्ठ जातियों को परास्त करने की प्रतिज्ञा की थी। वीर-व्रती जापानियों की दृढ़ प्रतिज्ञाओं से जापान स्वाधीन हो सका था। देश को स्वाधीन देखने के हम नित्य स्वप्न देखते हैं; किन्तु, करते क्या हैं? हमारी विदेशी सरकार में अनेक दोष हैं—अनेक त्रुटियाँ हैं। क्या सरकार की त्रुटियाँ और उसके दोषों का निर
करने से ही हमारे देश का उद्धार हो जायगा ? स
में हम या तो सरकार की आलोचना करते है
दूसरों की बुराइयों की तालिका उपस्थित कर
और उसके पश्चात् दिन और रात के चौबीस
अर्थ-चिंता में विह्वल रहते हैं ! किन्तु देश में
व्यक्तियों की भी कमी नहीं है, जिनके सन्मुख अ
चिंता नहीं है—जिनके नेत्रों में प्रत्येक घड़ी अन्न
का प्रश्न नहीं है। उनका सम्बन्ध न तो राष्ट्र के
न्दोलन से है और न सामाजिक सुधारों से।
और विलास के उन ठेकेदारों के कानों में अभी
न तो राष्ट्रीय पुकारों की ध्वनि-प्रतिध्वनि का
हुआ है और न सामाजिक तथा धार्मिक बा
पदार्पण ! कल-कारखानों की बातें जाने दीजि
उनकी व्यवस्था में आर्थिक प्रश्न की बात है, त
देश में अनेक बातों की ऐसी व्यवस्था की जा
है, जिससे हमारे राष्ट्र और धर्म की प्रगति ए
मार्ग पर गमन करने लगे। दोनों एक दूसरे से
न रह कर परस्पर एक दूसरे के जीवन-प्राण बन
अन्य बातों को छोड़ कर यदि शिक्षा-समस्या
विचार किया जाय, तो भी कितना आश्चर्य हो
हमारे देश के प्रेत-तत्त्व, भूत-तत्त्व, प्राणितत्त्व,
विज्ञान, मानव-जाति-तत्त्व आदि का यूरोप के
अध्ययन और अनुशीलन करें और हम लोग
आर्यत्व की प्रशंसा करें—इससे अधिक हमारी
कर अवस्था का और क्या प्रमाण हो सकता है

भारतवर्ष की भाँति बालक और बालिका
शिक्षा-समस्या जापान में नहीं है। वहाँ पर
शिक्षा के लिए राजकीय नियम है, जिससे वि
कर जापान के प्रत्येक बालक और बालिका को
प्राप्त करनी पड़ती है। वहाँ पर बालक और बा
समान रूप से—समान संख्या में शिक्षा पा

किन्तु भारतवर्ष में यह बात नहीं है। अत्यन्त प्रयत्न करने पर प्रति-शत बीस बालक शिक्षा पाते हैं और बालिकाओं की संख्या प्रति-शत दो से अधिक नहीं है—यह हमारे देश की शिक्षा-समस्या है ! पृथ्वी के समस्त देश स्त्री-शिक्षा के पक्षपाती हैं; किन्तु स्त्री-शिक्षा के सम्बन्ध में भारतवर्ष की नीति क्या है, यह कल्पना एक जटिल बात है। अशिक्षित व्यक्तियों का तो कोई प्रश्न ही नहीं है, शिक्षित व्यक्तियों में भी एक बड़ी संख्या है, जो वर्तमान स्त्री-शिक्षा-प्रणाली की अनुयायी नहीं है। उनकी समझ में वर्तमान स्त्री-शिक्षा-प्रणाली स्त्री-समाज को मिटा कर नष्ट-भ्रष्ट कर देगी। उनकी बातों से अभी तक यही निष्कर्ष निकलता है कि वे स्त्री-शिक्षा के विपक्षी नहीं हैं; विपक्षी हैं वर्तमान प्रणाली के। इस वर्तमान प्रणाली के स्थान पर वे किस प्रणाली की आयोजना करना चाहते हैं, इसका कुछ पता नहीं। हो यह रहा है कि या तो किसी ने स्त्री-शिक्षा को आवश्यक समझ कर उसका अनुमोदन समर्थन कर दिया; नहीं तो स्त्री-शिक्षा के कुछ दोष दिखा कर वर्त्तमान प्रणाली की निन्दा करने लगे। इन दोनों ही बातों से स्त्री-शिक्षा का प्रश्न हल नहीं होता, जब तक कि कार्य-रूप में परिणत करने के लिए उसकी आयोजना न की जाय।

सहस्रों की संख्या में जापान ने अपने नवयुवकों को देशानुराग का व्रत लेकर कला-कौशल के सम्बन्ध में विदेश भेजा था; किन्तु भारतवर्ष के लिए तो यह स्वप्न की बात होगी न ! भारत को तो अपनी जातीयता और धार्मिकता की रक्षा से ही अवकाश नहीं है। क्षण-क्षण में वह अपनी जातीयता और धार्मिकता के खोने के दुःस्वप्न देखता है। हमारी जातीयता और धार्मिकता संसार के बड़े से बड़े पाप काण्ड करने में नहीं जाती, पर वह घर से बाहर निकलने में चली जाती है ! चोरी और व्यभिचार में हमारा धर्म नहीं जाता, किन्तु शिक्षा-प्राप्ति के लिए विदेश जाने में हमारा धर्म जाता है ! परमात्मा जाने, हमारे इस धर्म और जाति की कब तक रक्षा होगी, जो जीवन की श्रेष्ठता से विमुख करके विश्व की दासता के लिए हमें विवश करती है !

हमें अपने सामाजिक जीवन में क्रान्ति करने की आवश्यकता है। जापान की भाँति देश के नवयुवकों को देशानुरागी बनाने की आवश्यकता है। विवाह करके घरों के भीतर स्त्रियों के मुँह ताकने से काम न चलेगा। रोटी के एक-एक टुकड़े के लिए घर के भाइयों में कलह करने में हमारा कल्याण नहीं है। हमारा कल्याण है घरों को छोड़ कर बाहर विदेशों में जाने में। वहाँ रह कर हमें वकील और डाक्टर बनने की आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है वहाँ रह कर विज्ञान, वाणिज्य और व्यवसाय के लिए शिक्षा प्राप्त करने की। ऐसा करने के लिए हमें त्याग और तपश्चर्या करनी होगी। बिना जीवन के सुखों का बलिदान किये देशों को स्वाधीनता नहीं मिला करती।

केशवकुमार ठाकुर

कौन ?

कौन राजपूतों बिना माता की व्यथा को हरे ?
डूबते स्वधर्म के जहाज़ को बचावे कौन ?
कौन बढ़ आगे रण-चण्डी की पुकार सुने ?
प्यासी हुई काली की पिपासा को बुझावे कौन ?
प्राण-धन-धाम-सुत-नारी डालि संकट में—
झुकती पताका हिन्द-देश की उठावे कौन ?
पूछता "किसान" राजपूत, राजपूतों ही से—
आप बिना देश-धर्म जाति को बचावे कौन ?

'किसान'

उन्नीसवीं शताब्दि के जापानी नाटक

जापान के प्राचीन नाटकों का आरंभ संसार के अधिकांश साहित्यों की भाँति धार्मिकता से होता है। इस विषय में एशिया और यूरोप—पूर्व और पश्चिम में अत्यधिक सादृश्य है। यूरोप में भी नाटकों का आरंभ धार्मिक रूढ़ियों और विश्वासों से संबध रखने वाले आनन्दोत्सवों का ही फल था। प्रायः सभी देशों के प्रारंभिक साहित्य पर धार्मिक विश्वासों और गाथाओं ने बहुत अधिक प्रभाव डाला है। हमारे यहां भी संस्कृत, हिंदी, बँगला इत्यादि में नाटक और रंगमंच का आरंभकाल धार्मिकता के परदे के अंदर से ही होता है। जापान के साहित्य और विशेषतः नाटकों के सम्बंध में भी यही क्रम दीख पड़ता है। जापानी नाटकों का रूप बनने के पहले जो 'नो'-नृत्य वहाँ प्रचलित थे और शताब्दियों तक जनता का मनोरंजन करते एवं साधारण विश्वास के साँचे में ढली हुई टोलियों के सामने धर्म का एक अस्पष्ट रहस्यमूलक और असाधारण भयप्रद रूप प्रकट करते रहे, और जो आज भी विशेष अवसरों पर धनियों एवं रईसों द्वारा अभिनीत कराये जाते हैं, वे ही एक प्रकार से जापान के लोकप्रिय नाटकों के जन्मदाता कहे जा सकते हैं।

परन्तु इतना सादृश्य होते हुए भी जापानी नाटकों की प्रारंभिक गति और सबसे भिन्न है। नो'-प्रणाली के संगीत-नृत्य-नाट्य के बादही जिन धार्मिक नाटकों का आरंभ हुआ, उनमें देश-प्रेम का भाव सर्वत्र दीख पड़ता है। इस प्रकार जहाँ प्रारंभिक यूरोपीय अथवा अन्य देशीय नाटक केवल पौराणिक गाथाओं और धार्मिक विवादों से ही भरे पड़े हैं, वहाँ प्राचीनतम जापानी धार्मिक नाटक भी पाठक के देश-प्रेम और धर्मजन्य विश्वास दोनों उपकरणों को सन्तुष्ट करते हैं। 'शिटो-' सम्प्रदाय के नाटकों में यह बात विशेष रूप से पाई जाती है। ये नाटक तो आज भी कभी-कभी अभिनीत होते रहते हैं और यद्यपि कला की दृष्टि से इनमें अपूर्णता विद्यमान है और ये वर्तमान उन्नत नाटकीय दृष्टि से अविकसित मस्तिष्क उपज मालूम होते हैं, फिर भी सुसंस्कृति से भरे हुए हैं।

जापानी नृत्य ने कब अभिनय का रूप धारण कि इसके सम्बंध में ठीक-ठीक कहना तो कठिन है, पर खोज इतना मालूम होता है कि वे सुन्दर 'स्मृति-नृत्य' (कियोकू-मा जिनमें जापान के उल्लसित अन्तःकरण और संगीत त आंदोलन-कला का बहुत सुंदर सम्मिश्रण दीख पड़ता मारमोची शोगन के समय से अभिनय और नाट्य-कला ओर झुकने लगे। कियोत्सूगू (जिसकी मृत्यु १४०६ ई० हुई) ने इस परिवर्तन में बड़ा भाग लिया था, पर इस परिर्तन का स्पष्ट आभास तो उसके पुत्र मोतोकियो (जो १४५ में मरा) के समय में मिलता है। इन पिता-पुत्र ने युसाकी-कुटुम्ब में जन्म लिया था, उसका शताब्दियों नारा स्टेज के प्रबंध में प्रधान हाथ था; अतएव इन को अपनी योजना को कार्यान्वित करने में दूसरों सहायता पर बहुत अधिक निर्भर नहीं रहना पड़ा। फिर लोगों को बड़ी सरलता से राजकीय संरक्षण भी होगया था।

किन्तु सच पूछिए तो इन नाटकों में भी संगीत नृत्य की इतनी अधिकता थी कि इन्हें नाटकों का बहु आरंभिक और अविकसित रूप मान सकते हैं। इनके अधिक विकास होने पर जो नाटक बने उनमें राजनी और पुरोहित (धार्मिकनेता) के द्वंद्व-प्रकाशन की स्पष्ट है। सच पूछिए तो रोमन चित्रकला और कविता भांति जापानी नाट्यकला में भी इन दो प्रधान वि शक्तियों का खूब संघर्ष देख पड़ता है।

सोलहवीं शताब्दि में जा कर इन पौराणिक संगीत-न नाटकों का रूप स्थिर होता है। इस काल के नाटक निम्नकोटि के अज्ञानजन्य पौराणिक विश्वासों का घटता मालूम पड़ता है। भूत-प्रेत, जो प्रारम्भिक नाटक पुरोहितों के उपदेशों को न मानने पर कष्ट देने के अवतीर्ण होते थे, नष्ट हो गये-से मालूम पड़ते हैं। धार्मि अथवा साम्प्रदायिकता की छाया भी क्षीण और जीर्ण है —विशेषतः युद्धवाद का पुरोहितों द्वारा प्रचलित रू प्रभावजनक हो गया है। यह सब राजनैतिक प्रभा

वृद्धि के स्पष्ट चिन्ह हैं। यद्यपि अब भी और इसके बाद भी बहुत दिनों तक 'नो'-नृत्य-प्रणाली की लोकप्रियता कम नहीं हुई, फिर भी इतिहास इसका साक्षी है कि सोलहवीं शताब्दि के बाद कोई लोकप्रिय नया 'नो'-गीत नहीं लिखा गया। धनियों और ज़मींदारों के यहाँ उनके आनन्द-प्रमोद के लिए अवश्य ही सत्रहवीं शताब्दि के अंतिम भाग तक 'नो'-नर्तकियों और नर्तकों का एक न एक दल रहता था। और अब भी टोकियो में इस प्रकार के मध्यकालिक नृत्यों के ज्ञाता नर्त्तकों का एक बड़ा दल मौजूद है।

ज्यों-ज्यों समय बीतता गया और जापान में धार्मिक अधिकारियों के ऊपर राजनैतिक शक्तियाँ विजय पाती गईं, इन धार्मिक नाटकों का रूप बदलता गया। पहले राजनीति और धार्मिक शक्ति का युद्ध प्रतिफलित हुआ; फिर पिछले नाटकों में धार्मिक अंध-विश्वास पर राजनैतिक भावनाओं और बुद्धिवाद ने विजय पाना आरंभ किया। धीरे-धीरे व्यंग्य का प्रवेश हुआ। इन पौराणिक नाटकों में ही धार्मिक उपदेशकों और अत्याचारी पुरोहितों की दिल्लगी उड़ाई जाने लगी। शुंकु-उन' नामक नाटक में (जिसका अर्थ ही 'महापुरोहित निर्वासन में' होता है) पुरोहितों और पोपों पर राजनैतिक विजय के लक्षण स्पष्ट हैं। पिछले काल में जब ये नाटक अभिनीत होने लगे तो दर्शक इनमें अत्याचारी महन्तों को राजभक्त एवं देशप्रेमी राजनैतिक अधिकारियों द्वारा दण्डित और शासित होते देखकर बड़े प्रसन्न होते थे।* इन दर्शकों में युवकों की संख्या सबसे अधिक थी। इससे मालूम होता है कि नई संतति के भाव बदल रहे थे और उनमें एक नई शक्ति काम कर रही थी।

धीरे-धीरे इन नाटकों का विकास होता गया और उन्नीसवीं शताब्दि में पौराणिक नाटकों ने काल्पनिक एवं ऐतिहासिक लोकप्रिय नाटकों का रूप धारण कर लिया। उन्नीसवीं शताब्दि के अंतिम अर्द्धांश में, जो जापान के इतिहास में सबसे प्रगतिशील समय है, देश के सब अंगों की भाँति साहित्य ने भी बड़ी तीव्रगति से अपनी दौड़ आरंभ कर दी। इस काल के कतिपय नाटक तो बहुत ही लोकप्रिय हुए।

इस काल के नाटकों की उन्नति का बहुत बड़ा श्रेय उन महान् अभिनेताओं को है, जिन्होंने अपनी परमोन्नत अभिनय-कला के बल पर जापान का मुखोज्ज्वल किया है। जैसे गिरीश बाबू का नाम बँगला स्टेज और नाट्यकला के साथ इस तरह मिल गया है कि अलग नहीं किया जा सकता, वैसे ही इस काल के तीन-चार जापानी अभिनेताओं का नाम जापानी नाट्य-साहित्य के साथ मिल कर एक हो गया है। इनमें श्री 'इछिकावा इनजूरों' का नाम सबसे अधिक उल्लेखनीय है। ५० वर्ष से भी अधिक काल तक ऐतिहासिक और काल्पनिक चरित्रों का अभिनय करने के कारण वह इस कला में इतने निपुण हो गये थे कि उनका नाम ही नाट्यकला-प्रेमियों के मन में एक विचित्र श्रद्धा की सृष्टि करता था। हेनरी इरविंग का नाम जैसे शेक्सपीरियन नाटकों के अभिनय का समानार्थवाची शब्द हो गया है, और जैसे उस महान् नट के अभिनय के समय लोग यह बिलकुल ही भूल जाते थे कि यह इरविंग अभिनय कर रहा है, वैसे ही इछिकाव इनजूरों भी अपनी आश्चर्यजनक शक्ति से लोगों को विमूढ़ कर देते थे।

श्री ओबोजीरो कावाकामी दूसरे प्रसिद्ध नट हैं, जिनका जापानी स्टेज की उन्नति में बड़ा हाथ रहा है। अभिनय की बात छोड़ दी जाय तो भी नाटकों के विकास के इतिहास में इनका नाम अमर रहेगा। इन्होंने स्वयं कई अभिनय-योग्य नाटक लिखे, जिनमें दो-तीन तो उन्नीसवीं शताब्दि के सर्वाधिक लोकप्रिय नाटकों में गिने जाते हैं। दो तो बहुत ही अधिक प्रसिद्ध हैं, जिनमें एक चीन-जापान-युद्ध को लेकर लिखा गया है। इस नाटक में देशभक्ति की मात्रा इतनी अधिक है और उसके ऐसे ऊँचे दृश्य देखने को मिलते हैं कि देशभक्त जापानी युवक के प्राण इसे देख कर उद्दीपित हुए बिना रह ही नहीं सकते; और यही कारण है कि इस नाटक के द्वारा जितनी ख्याति श्री कावाकामी को प्राप्त हुई और जितना आर्थिक लाभ उन्हें हुआ, और किसी नाटक से नहीं हुआ। श्री कावाकामी का दूसरा नाटक भी, जो अंग्रेज़ी के

---

* ये मध्यकालिक नाटक अब भी जब कभी खेले जाते हैं तो जनता उनसे अपना खूब मनोरंजन करती है। उन्नीसवीं शताब्दि के अंतिम चतुर्थांश में तो इन नाटकों के अभिनय प्रायः होते रहते थे।

'अस्सी दिन में पृथ्वी की परिक्रमा' (Round the World in Eighty Days) के आधार पर लिखा गया है, कम प्रसिद्ध नहीं हुआ।

'ज़िगोरो' नाटक नामक भी उन्नीसवीं शताब्दि के अभिनीत होने वाले लोकप्रिय नाटकों में से एक है। यह नाटक घात-प्रतिघात-मूलक चरित्र-चित्रण की दृष्टि से तो उतना महत्वपूर्ण नहीं है, पर रहस्यपूर्ण सांकेतिकता ('सिम्बोलिज़्म' से अभिप्राय है) के विचार से पूर्व के एकाध ही नाटक इसकी कोटि में रक्खे जा सकते हैं।

इसका छोटा सा कथा-भाग अभूतपूर्व मनोवैज्ञानिक आदर्श का संगम-चित्र है। ज़िगोरों एक मूर्त्तिकार है। वह गेलेटी नामक परमसुंदरी लज्जावती कुमारी गेशा ('गेशा' एक प्रकार की नर्तकी होती है, जो बहुधा सभ्य घराने की होती है और नृत्यकला से मनोरंजन करना ही उसका कार्य है। गेशा को पाठक हमारे यहाँ की वेश्यायें न समझ लें) की मूर्ति (लकड़ी पर) बनाता है। यह कलाकार (ज़िंगोरों) पीछे अपनी कलाजन्य मूर्ति पर ही आसक्त हो जाता है। इस प्रकार अपनी कृति में घनिष्ट आकर्षण के उपकरण पाने की घटना नई नहीं है। मनुष्य-जीवन के विकास के इतिहास में ऐसे अवसर अनेक बार आये हैं। कई यूनानी मूर्तिकार, स्वनिर्मित मूर्तियों के सौंदर्य में जीवन की कलाओं की स्पष्ट छाया देखकर, उनपर सर्वस्व न्यौछावर कर चुके हैं। किन्तु इस नाटक में एक अद्भुत स्वर्गीय सत्य की सृष्टि की गई है। लेखक कहता है—'परछाँई वा प्रतिकृति स्त्री की प्राण-शक्ति है': और इसीको सिद्ध करने की चेष्टा नाटक में की गई है। धीरे-धीरे मूर्तिकार (ज़िंगोरों) मूर्ति (गेलेटी) के प्रेम में निमग्न होता जाता है और अन्त में स्पर्श करते ही मूर्ति को सजीव स्त्री (गेलेटी) के रूप में पाता है। मूर्ति में मूर्त्त को प्रत्यक्ष करना, चित्र और चित्रकार—मूर्ति और मूर्तिकार का एकाकार करने की साधना, बड़ा विराट भाव है। मूर्ति में प्राण-प्रतिष्ठा साधारण साधना के अन्तर्गत नहीं है। इसी तरह की कुछ कल्पना फ्रेंच नाटक 'लार्पो' तथा रवि बाबू की एक छोटीसी कहानी में भी है। यह अन्यंत उच्च कोटि के 'सिम्बोलिज़्म' का उदाहरण है।

'कोजीमा ताकानोरी'* नाटक भी सच्चे 'जापानी' बहुत प्राणोदित करता है। यह देशभक्ति की भावनाओं ओत-प्रोत एक ऐतिहासिक नाटक है। इसका वस्तु-भा तेरहवीं शताब्दि की उस घटना के आधार पर तैयार कि गया है, जो जापान के इतिहास में योशी-तोकी के अभ्यु के नाम से विख्यात है। कथानक के अनुसार 'होजो'-वंश सरदार 'योशी-तोकी' शक्ति-संचय कर जापान का सर्वेस बन बैठता है और 'शिक्केन' (प्रधान सेनापति) की उपा धारण करता है। वह तीन सम्राटों (इस समय जापा एक राष्ट्र नहीं था) को 'ओकी'—द्वीप में निर्वासित कर दे है। इनमें से एक 'कोदीगो' जब इनोशा नामक स्थान गुज़र रहा था, तो 'ताकानोरी' नामक एक स्वामी-भक्त सरदा उसके आगमन का समाचार सुनकर किसान का वेश ब राजकीय उद्यान में छिप गया। चूंकि इस स्थान पर दूस 'योशी-तोकी' के सैनिक अधिकारियों और पहरेदारों से आ सम्राट् की रक्षा करना उसकी शक्ति के बाहर था, उस वीरता और वफ़ादारी के प्रदर्शन द्वारा अपने स्वामी हृदय में सन्तोष की एक हलकी रेखा खींचने का निश्च किया। अपनी तलवार से एक वृक्ष की ऊपरी छाल काट एक स्थान पर उसने वह प्रसिद्ध जापानी कहावत लिख जिसका अर्थ यह होता है कि 'जब तक मैं जीता हूँ, सिंहासन से कोई नहीं हटा सकता।' इस लिखावट को दे कर 'शिक्केन' के पहरेदार उसे खोज निकालते और उस आक्रमण करते हैं। वह वीरता के हाथ दिखाकर उन्हें भगा देता पर अंत में चुटीला हो जाता है। इसी स उद्यान-प्रासाद की खिड़की खुलती है और निर्वासित मि अपने वफ़ादार सरदार के वीर कृत्य पर मुस्कुराते दि पड़ते हैं। स्वामी-भक्त 'ताकानोरी' द्रवित-हृदय हो भ आँखों में आँसू भर लाता है और प्राणोत्सर्ग करता है। कथानक का सारांश है।

इस नाटक में श्री कावाकामी 'ताकानोरी' का अभि स्वयं करते थे और उनका अभिनय इतना उच्चकोटि होता था कि दर्शक नाटक के भावों से भावावेश में आ जा

---

*इस शब्द का अर्थ 'राज-भक्त' से मिलता-जुलता है

श्री कावाकामी का लिखा एक नाटक पिछले समय में बहुत प्रिय हुआ। इसका नाम 'गेशा और सरदार' है। १८९० ई० गभग इसे श्री कावागामी ने लिखा था। बहुतों के मत से उनके नाटकों में सर्वश्रेष्ठ है। कावागामी के साथ इस के अभिनय में श्रीमती सादा या को भी भाग लेती थीं। ती सादा की गणना जापान की सर्वश्रेष्ठ अभिनेत्रियों । पश्चिमी आलोचक उन्हें 'जापान की एलेनटेरी' कहा थे। कितने ही यूरोपीय आलोचकों ने उनके अभिनय र उनके अद्भुत नाट्यकला-ज्ञान की प्रशंसा में पन्ने के रंग डाले हैं।

'गेशा और सरदार' के कथा-भाग का सारांश यह है—रगी एक परमसुंदरी युवती है। उसे बंजा और नागोया दो सरदार प्रेम करते हैं, पर नागोया का विवाह पीछे दूसरी रमणी ओरीकीम से ठीक हो जाता है और एक अपने पहले रक़ीब—प्रतिद्वंदी—बंज़ा द्वारा अपमानित अपनी प्रेमपात्री ओरीकीम को साथ ले कस्तूरगी (पूर्व-स्वामीत्री) के भय से भाग जाता है। पीछे एक बुद्ध-मंदिर कर शरण लेता है। जिस समय का यह कथानक है समय इन मन्दिरों में कोई स्त्री अकेले नहीं प्रवेश करने थी। इतना जानकर भी कस्तूरगी उक्त मन्दिर में (जहाँ ा अपनी प्रेमपात्री ओरीकीम के साथ छिपा है) जाती बुद्ध की भक्ति में नाचने का बहाना करके पुरो- को धोखा देना चाहती है। आज्ञा मिल जाती हले वह मन्दिर के उपयुक्त एक 'नो-माई' (नृत्य) है और ज्यों-ज्यों पुरोहित उसपर मुग्ध हो अपनी प्रस- प्रकट करते हैं, वह एक के बाद दूसरा और दूसरे के तीसरा नृत्य करती है। निश्चय ही उसके भावावेशमय से पुरोहितों पर एक प्रकार का नशा चढ़ जाता है, पर चालाकी में सफलता नहीं मिलती। किसी भी बहाने से र में प्रवेश करने की चेष्टा करते ही पुरोहित एवं पण्डे बुरी तरह फटकारते हैं। पर कस्तूरगी इससे हताश नहीं और एक बार नाचते-नाचते अतिशय शीघ्रता से फाटक तर जाती और ओरीकीम को घसीट लाती है। फिर न्दिर का घण्टा पीटने की बड़ी मोगरी से उसे मारती दबाती है। इस समय उसके नंगे हाथ और बिखरे हुए बाल उसे स्टेज पर एक भयानक प्रतिशोध की आकांक्षा से पागल रमणी के रूप में व्यक्त करते हैं। विनोदकर दृश्य एकाएक, आशातीत शीघ्रता से, भयप्रद दृश्य में बदल जाता है—'कामेडी' 'ट्रेजेडी' हो जाती है। एक पुरोहित उसको कोई प्राणघातक चीज़ फेंक कर मारना चाहता है। ऐसे ही समय नागोया आ जाता है और पुरोहित को ऐसा करने से अलग कर देता है। विरोधी भावनाओं के संघर्षण और घात-प्रतिघात में डूब कर तथा नागोया की इस प्रेम-प्रवीणता पर मुग्ध हो सुषुप्तावस्था में वह उसके बाहु-पाश में लिपट जाती है।

जिन्होंने अंग्रेज़ी नाटक के विकास का अध्ययन किया होगा उन्हें दोनों देशों के वर्तमान राजनैतिक सादृश्यों की भांति नाटकों के सम्बन्ध में भी एक विचित्र समानता दिखाई पड़ेगी। जापान में अभिनय तथा नाटक का आरम्भ वस्तुतः १५७५ ई० से होता है। पहला अभिनय क्योटो में पुजारिन ओकोनी (जो नागोया सेंजाबुरो के साथ भाग गई थी) द्वारा हुआ। इंग्लैण्ड में भी नाटकों का अभिनय १५७६ ई० से आरम्भ हुआ, जब लाइसेस्टर के अर्ल के कर्मचारियों द्वारा ब्लैक फ्रायर्स में सार्वजनिक थियेटर की नींव डाली गई। स्टेज के नेताओं में भी समानता पाई जाती है। इंग्लैण्ड के ग्रीन एवं मार्लो तथा जापान के चिकामत्सु दोनों ही परम्परा के विरुद्ध उठ खड़े हुए थे। फिर इसाई 'रहस्यों' तथा बौद्ध 'नो' में भी बहुत कुछ समानता पाई जाती है। शेक्सपियर और चिकामत्सु का काल भी लगभग एक है।

ऊपर उन्नीसवीं शताब्दि के जिन लोक प्रियनाटकों का उल्लेख किया गया है उनमें से अधिकांश आज भी खेले जाते हैं। उनके अभिनय की मूल प्रणाली में भी बहुत कम अन्तर हुआ है। जापान की अधिकांश जनता ऐसे नाटकों को देख कर प्रसन्नतालाभ करती है, जिसमें सौंदर्य और कर्तव्य ये दो प्रधान उपकरण हों। जापान के सब नाटक कर्तव्य तथा देश-प्रेम की भावनाओं से ओत-प्रोत हैं। इनका तथा चीनी एवं उच्चकोटि के भारतीय नाटकों का विश्लेषण किसी अंग्रेज़ लेखक की इस बात का पूर्ण समर्थन करता है कि 'पूर्वीय कला का उद्देश्य व्यामोह नहीं विकास है' (The aim of eastern art is not illusion,

079957

but edifiction)। इनमें सौंदर्य की भावना चाहे जितनी शक्तिशालिनी हो, पर कर्तव्य-ज्ञान का भाव उससे भी अधिक ज़बर्दस्त होता है।

जिस प्रकार के नाटकों का उल्लेख मैं ऊपर कर चुका हूँ उनके अतिरिक्त 'सेवामोनो' (सामाजिक नाटक) प्रणाली के भी कई नाटक बहुत लोकप्रिय हैं। इनमें प्रायः प्रेम की शक्तियों का चित्रण है; पर यह प्रेम यूरोपीय ढँग का नहीं, कर्तव्य और त्याग की भावना उसमें भी प्रधान ही रहती है। उन्नीसवीं शताब्दि के अंतिम भाग में सोशी-शीबाई स्कूल के लोगों ने, जिनमें अधिकांश सोशी * थे, जापानी नाट्य-प्रणाली में क्रांति करने के लिए टोकियो में एक थियेटर खोला। इनमें अन्य देशों के कई अच्छे नाटक अनुवाद करके खेले भी गये, पर इन लोगों के पास धन न होने के कारण शीघ्र ही इस थियेटर का प्राणान्त हो गया। श्री कावाकामी ने--जो सोशी ही थे--बीच का मार्ग पकड़ा, इसलिए अधिक सफल हुए। नाटकों को यूरोपीय रूप देने का श्री ओसादा ने भी बहुत प्रयत्न किया। वह स्वयं पेरिस स्कूल के भक्त हैं और इसीलिए उन्होंने १८९८ में प्रसिद्ध फ्रेंच 'कामेडी' Le monde on l'on s'ennuie' का अनुवाद करके स्टेज पर खेला भी था, पर इस चेष्टा में उन्हें अधिक सफलता न मिली।

पिछले काल में जापानी नाटकों में सुधार करने वालों में सबसे सफल श्री तसूबोची और श्री फूकोची हुए। इनमें श्री तसूबोची नाटक लिखने के पूर्व समालोचना और उपन्यास के क्षेत्र में अच्छी सफलता प्राप्त कर चुके थे। इन लोगों ने भी बीच का रास्ता पकड़ा। अपने यहाँ की ऐतिहासिक घटनाओं को लेकर नये ढंग से नाटक लिखने की प्रथा चलाई। श्री फूकोची ने लगभग ४० नाटक लिखे, जिनमें कई बहुत लोकप्रिय हुए। इनमें बिलकुल आधुनिक ढंग से लिखा हुआ 'कासूगा--नो--तसूबोन' बहुत प्रसिद्ध हुआ।

जापानी स्टेज और नाटक को आधुनिक उन्नत यूरोपीय रूप देने में अनेक बाधायें हैं। जापानी का राजभक्त हृदय और संस्कार अपनी मूल संस्कृति पर विश्व-प्रेम को नहीं होने दे सकता। इसीलिए जापानी साहित्य में व्यापी चरित्र-चित्रण का अतिशय अभाव है। की क्षेत्र में तो इधर क्रांति हुई है, पर नाटक तथा अन्य में पूर्ण परिवर्तन अभी 'दूर की बात' है।

श्रीरामनाथलाल

रौरव को स्वर्ग बना जा

मां, क्यों आप दूर जा बैठीं-वीणा गहा कर क
क्या मैं इसे बजा सकता हूं उसी मनोहर स्वर
हँसती है रजनी विलोक कर मेरी करुण दश
नहीं जानता पुलकित है क्यों क्या रस मिला रस
उड कर नन्दन-वन से ये मन्दार सुमन आ
मेरे लज्जानत सिर पर भी फूले नहीं समाते
इस सुर धुनि-निर्झर काशी कर करता है मेरा आ
करती हैं ऋतुयें प्रदक्षिणा शीश झुका कर बार-
ताराओं के दीप सजा शशि आ आरती उता
त्रिविध-समीर सुगन्ध और शीतलता मुझपर वार
प्रति मुहूर्त करता है सागर, मां, क्यों यों मेरा ज
प्रकट कर रहा है वह दुर्लभ रत्न लुटा सच्चा आ
विश्रुत अहंकारियों ने आ कर मेरे चरणों के
समझा निज को धन्य-धन्य श्रद्धांजलि देकर साहित
मां, तेरी वीणा पा कर मैंने इतना आदर
सुधि समाज को खड़ा चतुर्दिक स्तुति करते सादर
कवि-मानस-मन्दिर-निवासिनी ! जो मैं कहीं तुझे
आह ! लेखनी के बल से रौरव को स्वर्ग बना

मोहनलाल महतो गय

---

* सोशी स्कूल, उन विद्यार्थियों द्वारा चलाया गया था जो जापानी स्टेज में सुधार करने के पक्षपाती थे।

079952

राजा गिरधर कछवाहा

कछवाहों का राज्य पहले नरवर और ग्वालियर पर था। ग्वालियर के राजा लराज कछवाहे के पीछे उसका ज्येष्ठ पुत्र वज्रदामा अपने पिता के राज्य का उत्तराधिकारी हुआ और (मंगलराज) के छोटे पुत्र सुमित्र को जागीर ी। सुमित्र के पांचवे वंशधर ईशासिंह ने द्यौसा आकर वहाँ पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार पूताने में कछवाहों का प्रवेश हुआ और शनैः : वे अपना राज्य बढ़ाते गये और पीछे से उनकी धानी आंबेर में स्थिर हुई। ईसासिंह का चौद- वंशधर राजा उदयकरण था, उसके पीछे उसका पुत्र नरसिंह (बरसिंह) आंबेर का स्वामी हुआ। (नरसिंह) का छोटाभाई बाला और उसका मोकल तथा पौत्र शेखा हुआ। शेखा के नाम से ाहों की शेखावत-शाखा प्रसिद्ध हुई। शेखा और के वंशजों ने अपने बाहुबल से एक विस्तृत स्वतंत्र स्थापित किया, जो शेखावाटी नाम से प्रसिद्ध ये लोग बहुत बढ़े, परन्तु पीछे से जयपुर राज्य नको अपने आधीन कर लिया और उनके परस्पर गड़ों से लाभ उठाकर उनका बल तोड़ने के खेतड़ी और सीकर के सिवा शेखावतों के सब नों में यह नियम कर दिया कि एक सरदार के ने पुत्र हों वे सब अपने पिता की जागीर का र हिस्सा करलें।* इस प्रकार शेखावतों की रों के अनेक विभाग हो गये।

शेखा का पुत्र रायमल हुआ। हुमायूँ से दिल्ली राज्य छीनने वाले शेरशाह सूर का पिता हसनखां रायमल के दरबार में बहुत दिनों तक नौकर रहा था।‡ उक्त रायमल के पुत्र सूरजमल का पांचवां बेटा रायसाल बहुत प्रसिद्ध हुआ।

रायसाल ने बादशाह अकबर की सेवा स्वीकार कर ली, और अपनी बुद्धिमानी से वह उसका इतना विश्वास-पात्र बन गया कि शाही ज़नानख़ाने का मुहाफ़िज़ (अध्यक्ष) नियत हुआ। यह बादशाह के दरबार में सदा उपस्थित रहता था, जिससे 'दरबारी' के ख़िताब से प्रसिद्ध हुआ। वि० सं० १६६२ (ई० सं० १६०५) में उसका मनसब तीन हज़ारी हो गया। उसी वर्ष उदयपुर के महाराणा अमरसिंह को अधीन करने के लिए शाहज़ादा परवेज़ के साथ बादशाह जहाँगीर ने सैन्य भेजी, जिसमें रायसाल भी शामिल था।* फिर वह दक्षिण में नियत हुआ और वहीं उसका देहांत हो गया।

रायसाल दरबारी के पीछे उसके २१ पुत्रों में से सबसे बड़ा राजा गिरधर बादशाही सेवा में उपस्थित हुआ। वि० सं० १६७२ में जहांगीर ने दक्षिण में फ़ौज भेजी, जिसके साथ गिरधर को भी ८०० ज़ात और ८०० सवार का मनसब देकर भेजा।†

गिरधर की सेवासे प्रसन्न होकर वि०सं०१६७५ (ई० स० १६१८) में बादशाह (जहांगीर) ने उसका मनसब १००० ज़ात और ८०० सवार का‡ और संवत् १६७८ (ई० स० १६२१) में १२०० ज़ात और ९०० सवारों का कर दिया।× फिर दक्षिण से लौटने पर वि० सं० १६७९ (ई० स० १६२२) में राजा का ख़िताब और ख़िलअत देकर उसका मनसब दो हज़ार ज़ात और डेढ़ हज़ार सवार कर दिया गया।÷

---

* कर्नल जे० सी० ब्रुक; पॉलेटिकल हिस्ट्री आफ़ दी आफ़ जयपुर; पृ० ९।

‡ मुंशी देवीप्रसाद; हुमायूं नामा; पृ० २१।

* अलेग्जेंडर रोजर्स-कृत तुजुके जहांगीरी का अंग्रेज़ी अनुवाद; जिल्द १, पृ० १६-१७।

† वही; जिल्द १, पृ० २९८।

‡ वही; जिल्द २, पृ० ४४-४५।

× वही; जिल्द २, पृ० २०६।

÷ वही; जिल्द २, पृ० २५२।

बादशाह जहांगीर अपने पिछले दिनों अपनी बेगम नूरजहां के हाथ की कठपुतली हो गया था, जिससे जो वह चाहती वही उससे करा लेती थी। नूरजहां ने अपने प्रथम पति शेर अफ़ग़ान से उत्पन्न पुत्री का विवाह शाहज़ादे शहरयार से किया था, जिससे वह जहांगीर के पीछे उसको बादशाह बनाना चाहती थी; इसलिए वह शाहज़ादे खुर्रम (शाहजहाँ) के विरुद्ध बादशाह के कान भरा करती थी। उसने उक्त शाहज़ादे को हिन्दुस्थान से बाहर इस अभिप्राय से भिजवाना चाहा कि यदि वह उधर रहे तो शहरयार के लिये मार्ग सुगम हो जाय। उन्हीं दिनों ईरान के शाह अब्बास ने कन्धार का क़िला अपने आधीन कर लिया था; जिसको फिर से विजय करने के लिए नूरजहां ने खुर्रम को वहां भेजने की सम्मति बादशाह को दी। बेगम के कथनानुसार बादशाह ने उसको बुरहानपुर से कन्धार जाने की आज्ञा दी, परन्तु वह बेगम के प्रपञ्च से परिचित हो गया था और यह भी जानता था कि यदि हिन्दुस्थान का कोई भी हिस्सा मेरे अधिकार में न रहा तो मेरे लिए बादशाह बनने की कोई आशा न रहेगी। इसी विचार से उसने बादशाह की आज्ञा के अनुसार कन्धार जाना स्वीकार न किया, जिससे बादशाह ने उसे विद्रोही मान लिया और उसको सज़ा देने के लिए ४०००० सवार और कई बड़े-बड़े अधिकारियों को दक्षिण में भेजा। उस समय गिरधर भी उक्त सैना के साथ दक्षिण में भेजा गया, जहाँ थोड़े ही दिनों बाद वि० सं० १६८० में उसने अपने प्राण परार्थ न्यौछावर कर दिये। इस विषय में स्वयं बादशाह जहांगीर अपनी दिनचर्या की पुस्तक में इस प्रकार लिखते हैं:—

"इन दिनों सूबे दक्षिण से बख़शी अक़ीदतख़ाँ की अर्ज़ी आई, जिसमें राजा गिरधर के मारे जाने का हाल इस तरह था। शाहज़ादा परवेज़ के नौकर बारहा के सैयद कबीर के एक भाई ने अपनी त
चमकीली बनाने और धार तेज़ कराने के लिए
सिकलीगर को दी थी, जिसकी दूकान राजा ि
की हवेली के निकट थी। दूसरे दिन जब वह
तलवार लेने को आया तो मज़दूरी की बाबत
चीत करते हुए सैयद के नौकरों ने सिकलीग
कुछ लाठियां मार दीं। राजा के नौकरों ने सिक
की हिमायत कर सैयद के नोकरों को पीटा। संयो
बारहा के दो-तीन जवान सैयद, जो नज़दी
रहते थे, उस सैयद की मदद को गये, जिससे
की आग भड़क उठी और सैयदों तथा राजपू
तीर-तलवार चलने की नौबत पहुँच गई। यह
पातेही सैयद कबीर तीस-चालीस सवारों के स
सैयदों की मदद को पहुँचा। उस समय राजा
हिन्दुओं की रीति के अनुसार वस्त्र खोल
अपने राजपूत भाई-बन्धुओं के साथ बैठ कर
कर रहा था। सैयद कबीर के आने और सैय
ज़्यादती की ख़बर पाने पर राजा गिरधर ने
आदमियों को हवेली में बुला लिया और
का दर्वाज़ा बन्द करवा दिया। सैयदों ने दव
जला कर हवेली में प्रवेश कर लिया, जिस
ऐसी लड़ाई हुई कि राजा गिरधर अपने २६
सहित मारा गया और ४० आदमी घायल हु
४ सैयद भी मारे गये। राजा गिरधर के मारे
पर सैयद कबीर उसके तबेले से घोड़े लेकर लौट
अन्य राजपूत मनसबदार राजा गिरधर के मा
की ख़बर पाते ही घोड़ों पर सवार होकर बड़ी
में अपने-अपने डेरों से चले। उधर बारहा के
सैयद भी कबीर की सहायता को आ पहुँचे
के बाहर के मैदान में वे जमा हो गये,
से आपत्ति की आग भड़क कर बड़ा
होने वाला ही था कि इतने में यह

महाबतख़ांॐ के पास पहुँची । वह तुरन्त सवार होकर वहाँ आ गया और सैयदों को क़िले में लाकर राजपूतों की समयानुकूल सान्त्वना कर दी, और उनके कईएक मुखियों को अपने साथ लेकर ख़ान आलम के यहाँ पहुँचा, जो निकट ही था। उसने अच्छी तरह उनको शांत कर इस विषय की तहक़ीक़ात करने का ज़िम्मा अपनेपर लेने का वचन दिया । जब इसके समाचार शाहज़ादे (परवेज़) को मिले तो वह ख़ान आलम के डेरे पर पहुँचा और समयानुसार राजपूतों को तसल्ली देकर उन्हें अपने डेरों पर भेज दिया । दूसरे दिन महाबतख़ां ने राजा गिरधर की हवेली पर पहुँच कर उनके पुत्रों को दिला-सा देते हुए शोक प्रकट किया और सैयद कबीर को कड़वा कर क़ैद कर दिया। राजपूत लोग सैयद कबीर ो मारे बिना शांत नहीं होते थे, इसलिए कुछ दिनों ाद उसने उसका शिरच्छेद करवा दिया ।"‡

इस प्रकार सैयदों के ज़्यादती करने तथा राजा ारधर की हवेली के दर्वाज़े के किवाड़ जला या तोड़ र भोजन करते हुए राजपूतों पर टूट पड़ने से राज- तों की विशेष हानि हुई, तोभी उस समय वहाँ हने वाले अन्य राजपूत मनसबदारों की एकता के ारण ही सैयद कबीर को प्राणांत-दंड दिये जाने की ज्ञा हुई । यह एक प्रकार से वहाँ के शासक की ायपरायणता का एक अच्छा उदाहरण है ।

राजा गिरधर का उत्तराधिकारी उसका पुत्र द्वारकादास भी बड़ा वीर राजपूत था, जिसको शाहजहाँ के राज्य के पहले वर्ष (वि० सं० १६८५) में एक हज़ार ज़ात और ८०० सवार का मनसब मिला था।* दो वर्ष पीछे दक्षिण के निज़ामुल्मुल्क पर की चढ़ाई में उसने ऐसी वीरता दिखलाई कि बादशाह ने उसकी बहादुरी से प्रसन्न होकर १५०० ज़ात और हज़ार सवार का मनसब दिया।† फिर संवत् १६८७ में ख़ांजहां लोदी की चढ़ाई के समय वीरता से लड़ता हुआ तीर के लगने से वह मारा गया । उसका पुत्र बरसिंहदास भी अच्छा वीर था, जिससे उसका मनसब भी ८०० ज़ात और ८०० सवार तक पहुँच गया था, और वह काबुल तथा बरार के क़िलों का सूबेदार भी रहा था।

इस समय राजा गिरधर के वंश में जयपुर राज्य के खंडेला (दोनों विभाग), कूहड़ी और दांता के सरदार हैं ।

गौरीशंकर हीराचंद ओझा

प्रण

दीन, मति-हीन, पंगु, बधिर रहूँ मैं मूक;
तृषित क्षुधा से होके व्याकुल ही पड़ा रहूँ ।
घोर विपदा की मार सहता रहूँ जीवन में,
पाप-पंक में न किन्तु सिर तक गड़ा रहूँ ।
आंसुओं की धारायें बहा दूं यदि रो-रो के ही,
कंटक-मय पथ में चाहे विकल खड़ा रहूँ ।
किन्तु निज शत्रुओं को पीठ दिखलाऊं नहीं,
करुणा-निधान निज 'प्रण' पै अड़ा रहूँ ।

भुवनेश्वरसिंह 'भुवन'

ॐउसका असली नाम ज़माबेग था । वह काबुल के रहने ले गारबग का पुत्र था । बादशाह अकबर के समय उसका सब ५०० का था, परन्तु जहांगीर के समय वह बहुत सिद्ध हो गया और बादशाह के अफ़सरों में सर्वोपरि गिना ने लगा । उसका देहांत ई० स० १६३४ में दक्षिण में हुआ ।

‡ तुज़ुके जहांगीरी का अंग्रेज़ी अनुवाद; जिल्द २, पृ० २–८४ ।

* मुंशी देवीप्रसाद; शाहजहां नामा; भाग १, पृ० ८ ।

† वही; भाग १ पृ० ३३ ।

चिलों का क़ैदी

"ये पद चिन्ह न मिटने पावें--
रहे सभी का इनकी याद;
ज़ालिम के ज़ुल्मों की करते,
क्योंकि, ख़ुदा से ये फ़र्याद !"
(महाकवि बायरन की कविता से)

यूरोप में स्विट्ज़लैंड देश के प्राकृतिक सौन्दर्य की बड़ी प्रशंसा है---यहाँ तक कि उसे वहाँ का 'नन्दन-वन' कहा जाता है। इसी स्विट्ज़लैंड में जेनेवा की प्रसिद्ध झील है, जिसके तट पर कितनी ही ऐतिहासिक घटनायें घट चुकी हैं और जिसका जल कितनी ही बार स्वतंत्रता के संग्राम में मर मिटने वालों के रक्त से रंजित हो चुका है। इस समय तो जेनेवा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति का केन्द्र सा हो रहा है। राष्ट्र-संघ, अन्तर्राष्ट्रीय मजूर-परिषद् इत्यादि के दफ़्तर यहीं हैं; और इसके निवासियों में संसार के प्राय: प्रत्येक देश के प्रतिनिधि मिल सकते हैं। जेनेवा नगर उक्त झील और एक छोटी सी नदी के संगम पर बसा हुआ है। इस समय यहाँ पूर्ण शांति है, पर इसके इतिहास से पता चलता है किसी समय यहाँ बड़ी ख़ून-ख़राबी हो चुकी है और जिस सुख-शांति का लोगों को यहां आज अनुभव हो रहा है वह इसके उसी 'विशुभ्र बलिदान' का फल है। इस देश के अन्य नगरों का इतिहास भी इस विषय में इससे मिलता-जुलता है। मौक़ा पड़ने पर सभी बहादुरी से लड़ चुके हैं, सभी अपनी स्वतंत्रता की रक्षा के लिए यथेष्ट आत्म-त्याग कर चुके हैं। स्विट्ज़लैण्ड की एकता के मार्ग में कई कठिनाइयाँ थीं। विभिन्न जातियाँ, विभिन्न भाषायें। यहाँ तक कि आज भी सभी की सन्तुष्टि के लिए इस देश में तीन सरकारी भाषायें—जर्मन, फ़्रेंच और इटालियन—हैं। पर स्वतंत्रता की प्यास सब की एकसी तीव्र थी, अन्याय और अत्याचार का विरोध करने का भाव सब का एकसा प्रबल था। इसलिए नगरों या प्रांतों ने अपनी सारी कठिनाइयों पर विजय प्र
कर अपनेको एकराष्ट्र में परिणत कर डाला। स्विट्ज़
बल या क्षेत्रफल में, ब्रिटिश साम्राज्य की समता नहीं
सकता; न उसके पास जहाज़ी बेड़े हैं, न बड़ी फ़ौज है,
बड़ी तोपें हैं। संसार में न तो उसके कोई उपनिवेश
न 'सन्धि-पत्र द्वारा प्राप्त' कोई बन्दरगाह है। पर वहाँ स्व
त्रता की सच्ची उपासना है, परतंत्रता से वास्तविक घृणा
और इसका फल यह है कि दारिद्र्य-दुःख वहाँ के लोगों

जेनेवा की झील

दूर है, जो साधन प्रकृति से प्राप्त हुए हैं उनका राष्ट्रीय सदुपयोग हो रहा है, खेती और कल-कारख़ाने दोनों ही उन्नत अवस्था में हैं। वहाँ के निवासी आप मक्खन-मलाई खा रहे हैं और संसार को भी खिला रहे हैं। आप समयानुकूल चल रहे हैं और—अपनी बनाई हुई घड़ियों के द्वारा——संसार को भी समयानुकूल चला रहे हैं।

पर मैं जेनेवा की झील की बात कर रहा ा। गत बार जब ी घनश्यामदासजी ड़ला जेनेवा गये थे ब अपनी मण्डली के ाथ इस झील के तट र प्रायः तीन सप्ताह हरे थे। उनके साथ क दिन झील की रिक्रमा करने का भाग्य मुझे प्राप्त ा था। झील बहुत ी चौड़ी है। परि ा में पूरा दिन लग ा। पर ऐतिहा क महत्वपूर्ण स्थानों देखने का यह र्व अवसर था। इस ठ के तट ने समय य पर कितने ही विप्लववादी लेखकों स्वदेश-भक्तों को य प्रदान किया जिन्हें और कहीं होने को भी जगह मिल सकती थी। भारत-भक्त श्री श्यामजी कृष्ण को अपना देश तो क्या, लंदन और पेरिस का रित्याग करना पड़ा। पर जेनेवा और जेनेवा की झील ने उनका स्वागत किया। आज भी वह इसीके तट पर भारत के भविष्य की चिन्तना करते हुए अपने जीवन-दीप के निर्वाण की राह देख रहे हैं। इस स्थल की नैसर्गिक सुंदरता और शान्ति में भी कम आकर्षण-शक्ति नहीं है। क्या आश्चर्य कि इसके किनारे ऐसी वीर आत्मायें काल-यापन कर चुकी हैं और कर रही हैं, जिन्हें संग्राम के बाद विश्राम की आवश्यकता थी और जिन्हें उस विश्राम के लिए ऐसा उपयुक्त स्थान दूसरा नहीं मिल सकता था?

महाकवि बायरन

हम लोगों की इस परिक्रमा का प्रधान उद्देश्य चिलों का जगत्प्रसिद्ध क़िला देखना था। यह झील के उत्तर तट पर है। और यद्यपि इस समय इसका नाम सार्थक नहीं है, तथापि किसी समय इसका महत्व बढ़ा-चढ़ा था और अभेद्य दुर्ग होने के साथ यह प्रसिद्ध शासन-केन्द्र भी था। पर आज जो सैकड़ों यात्री दूर-दूर से यहां आते हैं और इसके दर्शन कर अपने को धन्य समझते हैं, इसका कारण इस क़िले का वह अतीत गौरव नहीं है। क़िले तो ऐसे, या इससे भी बढ़े-चढ़े, यूरोप में सैकड़ों होंगे; पर उनमें यह आकर्षण-शक्ति कहाँ? चिलों की प्रसिद्धि केवल एक कविता के कारण हुई—

और उस कविता का विषय एक ऐसे क़ैदी की कहानी है, जिसे वर्षों इस क़िले की कालकोठरी में रहना पड़ा था। अँग्रेज़ कवि बायरन के हृदय से निकले हुए उद्गार ने "चिलों के क़ैदी", और साथ ही चिलों के क़िले को, अमरत्व प्रदान कर दिया है; इसीलिए यह प्राचीन स्थान आज राजनैतिक मुक्ति चाहने वालों के लिए तीर्थ-स्वरूप हो रहा है और इसका यशःसौरभ संसार भर में फैल रहा है।

इस क़िले में स्वतन्त्रता के कितने भक्त क़ैदी रह चुके हैं—कितनों की जीवन-लीला इसीकी काल-कोठरियों में समाप्त हो चुकी है, यह बताना कठिन क्या असम्भव है। पर एक क़ैदी—बोनिवार्ड—की कहानी लोग इतने वर्षों से कहते-सुनते चले आते हैं और बायरन की कविता का विषय उसी एक का कारावास है। बायरन ने यह कविता सौ से कुछ अधिक वर्ष पहले लिखी थी। इस बीच में ऐतिहासिक गवेषणा से उसकी कविता का कुछ अंश निर्मूल सिद्ध हो गया है। पर फिर भी उसमें यथेष्ट ऐतिहासिकता है और कविता के आरंभ में तो जो चतुर्दशपदी है उसका दाम चौदह लाख भी थेति ऐसं ही है। घाटी

Château de Chillon
Prison de Bonivard en 1235

चिलों का क़िला, जहां बोनिवार्ड क़ैद था

इस क़िले की नींव कब और किसके द्वारा पड़ी, यह रता तक निश्चित नहीं हो पाया। पर इतना निश्चित है कि, आज क़िला कम से कम हज़ार बरस पहले, इस क़िले का कुछ अंश क़ैदरिणा के तौर पर बर्ता जाता था। इस समय हम इसे जिस इतिहा में देखते हैं वह इसे तेरहवीं सदी में प्राप्त हुआ था। में इ समय चिलों सवाय नामक प्रान्त के ड्यूक के अधिका है : वहाँ आ गया था। पर यह चाहे जब बना हो और इंदों ने जिसने बनाया हो, इसमें सन्देह नहीं कि यह जिस आग पर बना है उसकी समता आसानी से नहीं हो टक ए एक ओर तो इसकी दीवारें झील के पानी में खड़ी हैं, सो ओर उनका हिम-मण्डित गिरि-शिखर से, सान्निध्य का धिपत्य है। स्वच्छ-गोया झील मानों इसके पैर पखारती ल के उत्तुङ्ग गिरि-शृङ्ग इसका पृष्ठपोषक है। वास्तव में र न चट्टानों के समूह पर बना हुआ है, और इसकी नी स्व

भी थेति ऐसी है कि प्राचीन समय में यह जब चाहता पास घाटी से लोगों का आना-जाना बिलकुल बन्द कर देता। यह क्रूरता के बीच भयङ्करता का मूर्तिमान् उदाहरण यह चिलों कि, आक़िला है। इसलिए यहाँ की दृश्यावली देखकर मनुष्य की श क़ैदह्रिणा प्रसभं हृतः'' की सी अवस्था हो जाती है; पर यहाँ जिस इतिहास स्मरण कर उसे रोमाञ्च हो आता है, यद्यपि था ।। में इन सब भावों के स्थान पर केवल यह उल्लास रह नधिकाा है कि ऐसे क़िले की कालकोठरियों में बन्द किये जाने : वहाँ बरसों बेरहमी से सताये जाने पर भी इन आधुनिक

भोगने लगे। कुछ समय के लिए ड्यूकशाही नादिरशाही की बराबरी में आ गई। जिन लोगों ने ड्यूक का विरोध किया था उनके साथ बेहद सख़्ती की जाने लगी। क़ैद और क़त्ल—दोनों ही सज़ाओं का दौर-दौरा हो चला। कुछ समय के लिए जेनेवा में ऐसा आतङ्क फैल गया कि जान पड़ता था वहाँ ड्यूक का विरोध करने की किसीमें हिम्मत न रही। पर यह आशंका निर्मूल निकली। अपने नगर और प्रान्त की स्वतंत्रता के लिए अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देने वाले वीर सैकड़ों की संख्या में निकल पड़े और अपने

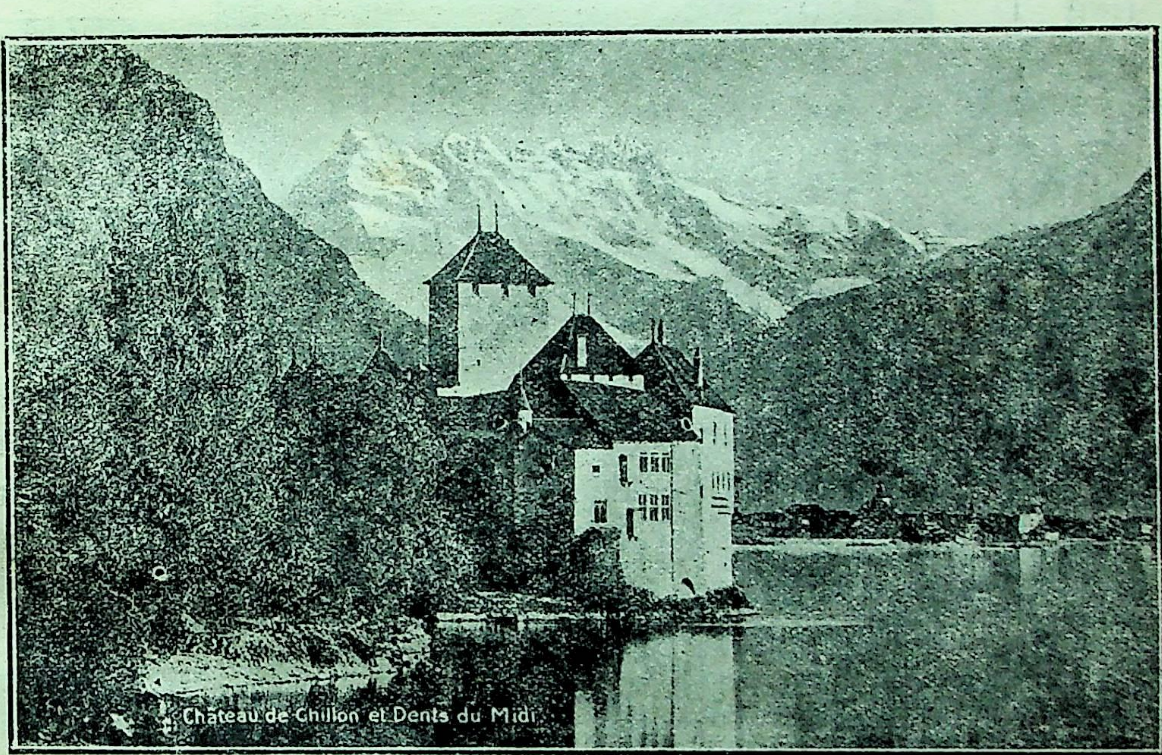

Chateau de Chillon et Dents du Midi

झील से क़िले का दृश्य

ौर इलादों ने अपनी हट न छोड़ी और उनके प्रेम या उत्साह जिस आग में उनके देश या जाति की स्वतंत्रता के मार्ग के हो टक एक न एक दिन भस्म ही हो गये!

ड़ी हैं, सोलहवीं सदी में सवाय के ड्यूक का जेनेवा पर ध्य का धिपत्य हो चला। बहुत दिनों से इस घराने की नज़र वारती ल के दक्षिण तट पर लगी हुई थी, यद्यपि उसके पैर व में िर नहीं जम सके थे। जेनेवा-निवासियों ने एक ओर की अनी स्वतंत्रता खोई, दूसरी ओर इस पाप का दारुण फल

ध्येय की प्राप्ति के लिए वे सब के सब इस बहादुरी से लड़े कि जेनेवा की तो बात ही क्या, ड्यूक के घराने को चिलों से भी सदा के लिए हाथ धोना पड़ा।

जिस समय जेनेवा-निवासियों का यह आन्दोलन आरम्भ हुआ उस समय नगर से थोड़ी ही दूर पर किसी गिर्जाघर में एक पदाधिकारी था, जिसका नाम बोनिवार्ड था। यह वास्तव में 'सवाय' प्रदेश का निवासी था और ड्यूक की सेना में भरती होकर चिलों आया था। बोनिवार्ड की

विद्वत्ता बढ़ी-चढ़ी थी; साथ ही वह बड़ा आदर्शवादी था। जब उसने देखा कि सत्य और न्याय जेनेवा-निवासियों के पक्ष में हैं और ड्यूक की ओर से ही सारी ज़्यादतियाँ हो रही हैं, तब उसने अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया और जेनेवा आकर ड्यूक के विरोधी-दल में सम्मिलित हो गया। इस आन्दोलन में बोनिवार्ड ने बड़ी कार्य-क्षमता दिखाई। जेनेवा और उसके आस-पास के प्रदेशों का यह विश्वास हो चला था कि बिना आपस की एकता के, हममें से कोई न तो अपनी खोई हुई स्वाधीनता को फिर से पा सकता है, न अपनी बची-खुची स्वाधीनता की रक्षा कर सकता है। इसीलिए उन्होंने, एक दूसरे की सहायता करने के उद्देश्य से, अपना छोटा-मोटा संघ बनाया और इस एकता के बल के आधार पर ड्यूक का सामना करने की तैयारी करने लगे।

बोनिवार्ड ने इस संघ के निर्माणमें प्रमुख भाग लिया था। इसलिए ड्यूक की आँखों में वह काँटे के समान चुभ रहा था। संयोग-वश वह एक दिन ड्यूक के हाथ पड़ गया। बस, उसके हाथ-पैर ज़ंजीरों से जकड़ दिये गये और वह बात की बात में चिलों के क़िले की एक कोठरी

दिया गया। वह दो बरस उसी कोठरी में ब

इसके बाद वह किसी प्रकार फिर जेनेवा जा पहुँ

उसकी यह स्वतंत्रता अधिक काल के लिए न थी।

वह कहीं से नगर को लौ रहा था कि ड्यूक के कुछ जो घात में उसपर टूट प उसके हाथ-पैर कर उसे चिलों गये। वहाँ इस बोनिवार्ड भया भयानक कोठ रक्खा गया। आशंका से कहीं फिर न भागे, उससे कोठरी में घूमने की भी आज़ाद ली गई और व मज़बूत ज़ंजी पत्थर के ख बाँध दिया गया आज भी वह ज्यों का त्यों और बोनिवा कठोर कारावा स्मारक का रहा है। उस के आस-पास की पटरी आज भी लोगों को बोनिवार्ड के इन शब्दों दिलाती है—"घूमने के लिए काफ़ी समय होने के का दिन भर उस खम्भे के चारों ओर चक्कर लगाता, जिस

शृंखलाबद्ध बोनिवार्ड

नीचे के पत्थर भी बहुत कुछ घिस चले थे ।" बोनिवार्ड स बार पूरे छः बरस इस कालकोठरी में बिताने पड़े । स्थान का नाम कालकोठरी ही उपयुक्त है । ज़मीन के सुरङ्ग खोदकर, यह क़ैदखाना बनाया गया है। सीढ़ियों चे उतर कर इसमें कठिनता से प्रवेश करना होता है, और करने पर जिस भयङ्करता का अनुभव होता है, वह तीत है। दीवारों में कुछ पतले सूराख़ हैं, जिनसे सूर्य नी-गिनी कमजोर किरणें कभी-कभी इन कोठरियों में ती हैं—नहीं तो यहाँ प्रकाश को दुर्लभ ही समझना । चारों ओर मोटे-रूखड़े पत्थर ही पत्थर नज़र आते गर इस अंधकार-कूप में कोई भी वस्तु नज़र आ है तो ! पथ-प्रदर्शक बड़ी जल्दी से सब स्थानों का देता जाता है—"यहाँ बोनिवार्ड इतने बरसों तक बद्ध रहा—यह देखिए, उसके पैरों से घिसे हुए पत्थर पैरों के नीचे हैं । यहाँ फाँसी की सज़ा पाने वाले जीवन की आख़िरी रात बिताते थे और जो टूटी-फूटी, बेहद रूखड़ी पत्थर की पटरी आपके सामने है वह उस रात उनके बिछावन का काम देती थी । यह यन्त्रणागार है । यह सूली घर है ।" तब तक आप बायरन की मूर्ति के सामने पहुँच जाते हैं । "यह उस अंग्रेज़ महाकवि की मूर्ति है जिसने प्रायः तीन सौ बरस बाद बोनिवार्ड की स्मृति में ऐसी कविता लिखी, जिसके कारण सारा संसार इस स्थान और इसके इतिहास से परिचित हो गया ।" केवल रूस ही नहीं, और देशों में भी ऐसे लेखक, कवि या कार्यकर्ता हुए हैं, जो उच्च या धनाढ्य कुल के होते हुए भी विप्लववादी थे और जिनके हृदय में अपनी श्रेणी के लोगों के प्रति सहानुभूति का लेश भी न था । अगर संस्कार का प्रभाव पड़ता तो लार्ड बायरन बोनिवार्ड जैसे व्यक्तियों को ऐसी गीतांजलि कभी समर्पण न करता और हम आज ऐसे स्थानों में उसका स्मारक न पाते । ऐसे महापुरुषों की वाणी या कृति से उनकी श्रेणी के लोगों के पाप का थोड़ा बहुत प्रक्षालन अवश्य होता है । पर जो

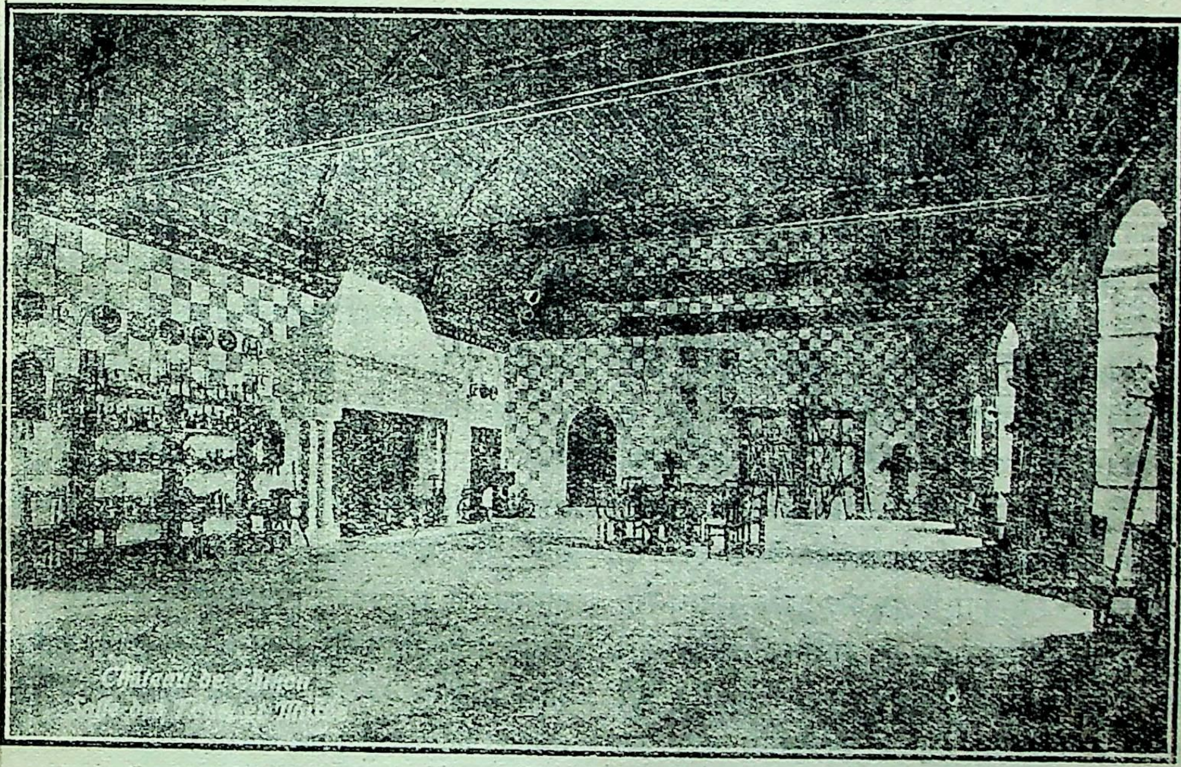

क़िले का सरदार-भवन

कुछ भयङ्करता है वह क़िले के इसी भाग में। सीढ़ियों से ऊपर उठते ही सारा दृश्य बदल जाता है। पहले आप न्यायालय में पहुँचते हैं, जहां वस्तुतः न्याय का गला घोंटा जाता था। न मालूम इस न्यायालय की आज्ञा से कितने बेगुनाह सूली पर चढ़ा दिये गये, कितने यों ही क़त्ल कर दिये गये और कितने उन कालकोठरियों में सड़ा कर मार डाले गये। पर कर्तूतें चाहे जितनी काली रही हों, देखने में यह स्थान, उन अन्धेरी गुफ़ाओं की तुलना में, दूसरा ही लोक जान पड़ता है। इसके बाद, क़िले के ऊपरी हिस्से में भी जो कमरे मिलते हैं, उनकी सजावट भी किसी समय देखते ही बनती होगी। बहुत से सामान जो उस समय ड्यूक या उनके अनुचरों द्वारा काम में लाये जाते थे, अपनी-अपनी जगह पर बड़ी हिफ़ाज़त से रक्खे हुए हैं। ड्यूक के सोने के कमरे में उनका पलंग ज्यों का त्यों सुरक्षित है। रसोई-घर में पुराने बर्तनों का ख़ासा बड़ा संग्रह है। पास ही वह स्थान है, जहाँ ड्यूक के सरदारों की सभा हुआ करती थी—अब उनके कुछ अस्त्र-शस्त्र और वेश-भूषा के सामान यहाँ दर्शकों की दृष्टि अपनी ओर आकर्षित करते हैं। हाँ, इन सब के साथ क़िले में गिर्जाघर भी था। प्रति रविवार को वहाँ ड्यूक, सरदार तथा क़िले के कर्मचारी, स-परिवार एकत्र होकर, सामाहिक पूजा-प्रार्थना में सम्मिलित होते थे। क्या ही वैषम्य था! ऊपर की दुनिया में आमोद-प्रमोद, नाच-रंग, शराब-कवाब, और धार्मिकता का वह अभिनय—और नीचे की दुनिया में यन्त्रणाओं के नित-नये संस्करण, अन्याय और अत्याचार की चक्की में इतने बेगुनाहों का पिसना, कहीं कुछ कमज़ोर दिलों का कराहना, कहीं वीर आत्माओं का हँसते-हँसते सूली पर चढ़ जाना! ऐसे ही स्थान में सत्य और स्वतन्त्रता का साथ देने वाले बोनिवार्ड ने, पिंजरे में बन्द शेर की तरह, अपने जीवन के छः वर्ष बिताये। इस बीच में क़िले की चहारदीवारी के बाहर भी बहुत से पत्थर घिस चले थे। अस्तु।

छः वर्ष बाद जेनेवा के भाग्य ने पलटा खाया और वहाँ स्वतंत्रता का झंडा फिर फहराने लगा। पर जेनेवा-निवासी इतने से ही सन्तुष्ट न हुए। बर्न और जेनेवा की सम्मिलित सेना ने चिलों पर चढ़ाई करदी। दो दिन तक ड्यूक की फ़ौज ने किसी प्रकार सामना किया, पर जब उसने कि जीत की आशा दुराशामात्र है, तब उसने आत्म कर दिया। इस प्रकार ड्यूक के घराने को अन्त के देने पड़े। क़िले में प्रवेश करते ही जेनेवा-निवा नेता बोनिवार्ड की कालकोठरी की ओर दौड़ पड़े। पास पहुँचते ही हर्ष और अधीरता से चिल्ला उठे—' तू अब स्वतंत्र है'। पर बोनिवार्ड को इससे सन्तोष क्योंकि उसे वह समाचार नहीं मिला था, जिसे वह अधीर था। उसने पूछा, "और जेनेवा?" उत्त कि "जेनेवा भी स्वतंत्र है"। जिस ज़ंजीर से बोनिव हुआ था वह तोड़ दी गई और विजयी सेना बड़े स साथ उसे अपने स्थान पर ले गई। चलने के समय की आँखों से आँसू बह चले। कालकोठरी से उसे हो गया था कि उसे छोड़ते समय बोनिवार्ड वि अनुभव करने लगा। कहते हैं कि कुछ काल तक उ भी अच्छा नहीं लगता था, बल्कि उसकी आँखों को कष्ट सा होता था।

इसके बाद भी चिलों इतिहास के रंग-मंच प आता है; पर हम उससे यहीं बिदा ग्रहण करते है भारतवासियों को चिलों का क़ैदी क्या उपदेश देता निर्णय भी हमारे पाठक ही करलें। यूरोप या अ इतिहास से कोई शिक्षा मिलती है तो यही कि आ क़ीमत पाई-पाई चुकाये बिना कोई उसे पा नहीं भारत पहले आत्म-त्याग की भूमि बन ले, फिर वह नता की निवास-भूमि बन सकेगा।

पारसना

"हम इसलिए विजय प्राप्त नहीं करेंगे कि हमने के मैदान में जवांमर्दी दिखाई है, हम इसलिए वि नहीं करेंगे कि हमारे देशवासियों ने देश-देशान्तरों शत्रुओं के दाँत खट्टे किये हैं; परन्तु हम विजय प्र वीर प्रसविनी जन्मभूमि के उन पवित्र स्थानों की य जिन्होंने इस जन्मभूमि का नाम संसार की अजेय सूची में अंकित कर दिया है।"

टेरेन्स मै

निराश पथिक

(१)

कितनी दूर चला मैं आया,
चलना है कितना अब और।
कबतक पहुँच सकूँगा, अबतक—
निकल चुके हैं कितने ठौर।
पता नहीं मुझको यह कुछ भी,
चला जा रहा हूँ अश्रान्त।
किन्तु अभी उतने ही अन्तर—
पर लगता है लक्षित प्रान्त॥

* * *

(२)

उषा बहन ने लग छाती से,
किया रोकने का उद्योग।
हाथ पकड़ कर लगी सिसकने,
रख छाती पर सिर सवियोग।
मेरे उत्तरीय में मुख को,
ढक कर रोने लगी समीर।
कहने लगी, "कहाँ जाते हो—
मुझको सौंप हृदय की पीर"॥

(३)

पथ-प्रान्त-वर्ती वृक्षों पर,
बैठ विहंगगण ने कर गान।
निज कलरव से आकर्षित कर
लेना चाहा मेरा ध्यान।
रात्रि दिवस ने मुझे उठाया,
निज गोदी में कितनी बार।
ऋतुओं ने रत करना चाहा,
डाल नवल हाथों का हार॥

(४)

प्रकृति-जननि ने रह जाने को,
साग्रह कहा बना कर अंक।
मृदुल हरी घासों को मेरे—
प्रशिथिल अंगों का पर्यङ्क॥

* * *

उधर हृदय तो खिंचा जा रहा,
था अज्ञात देश की ओर।
इधर प्रेम के आकर्षण से,
उठी हृदय में विषम हिलोर॥

(५)

किन्तु न विचलित हुआ ध्येय से,
बढ़ा हृदय पर धर कर हाथ।
बस उन चिर-परिचित प्रणयी जन
की रख स्मृति अपने साथ।
पावस में पानी की झड़ियां,
गरमी का प्रचन्ड उत्ताप।
शीतकाल का असह शीत, सब—
बीत गये कितने चुपचाप॥

(६)

कांटों से क्षत-विक्षत, पथ में,
जर्जर पैर हुए बल-हीन।
उस मोहन के मधुर ध्यान में,
किन्तु हुए दुख सभी विलीन।
इतनी दूर चला मैं आया,
साहस किन्तु रहा अब टूट।
कोई आकर मुझे पिला दो,
आशा का सञ्जीवन घूँट॥

(७)

यद्यपि हरा-भरा है अब तक,
मन का कल्पित सुखमय द्वीप।
किन्तु क्षीण होता जाता है,
मेरा यह आशा का दीप।
हृदय मिलन की उत्कण्ठा से,
उछल रहा है बारम्बार।

निरुत्साह, नैराश्य उसे, पर—
दबा रहे हैं सौ-सौ बार ॥

(८)

पैरों में अब शक्ति नहीं है,
मार्ग बहुत है अब भी शेष ।
किन्तु बैठ जाने से होगा,
भग्न हृदय को अति ही क्लेश ।
ले जावेगा पर कौन वहाँ तक,
मुझ व्याकुल का यह सन्देश ।

❀ ❀ ❀

है अनन्त पथ, तुम ही आकर,
मिल जाओ मेरे हृदयेश ॥

भद्रजित् "भद्र"

मध्यभारत के कुछ ऐतिहासिक स्थान

ग्वालियर राज्य के प्राचीन स्थानों में उज्जयिनी (उज्जैन), विदिशा (भेलसा), पद्मावती (आधुनिक पवाया पिछौर), कुन्तलपुर, (आधुनिक कोतवाल, ग्वालियर), मयूरवन, (मोरबन, नीमच), दशपुर (मन्दसौर), तुंबवन (आधुनिक तुमेन, पछार) मुख्य स्थान हैं; और, विश्वास है कि, यदि इन स्थानों पर खुदाई का काम किया जाय तो वहां इतिहास की अपूर्व सामग्री उपलब्ध होगी । उज्जयिनी प्राचीन-तर महत्व-पूर्ण स्थान है; और उदयन, वत्सराज, विक्रमादित्य आदि राजाओं से उसका संबन्ध रहा है । विदिशा का नाम बुद्ध-धर्म के ग्रंथों, पुराणों तथा "मालविकाग्नि मित्र" नाटक में पाया जाता है । पद्मावती और कुन्तलपुर तृतीय शताब्दि में नाग राजाओं की राजधानी थे । पद्मावती का नाम भवभूति के "मालती माधव" नाटक में पाया जाता है। यहां पर प्रथम शताब्दि के प्राचीन चिन्ह पाये जाते हैं, और नाटक में वर्णित संगम, महादेव तथा जल-प्रपात भी मौजूद हैं । मयू में ईसा-पूर्व की सामग्री भी उपलब्ध हुई है । दशपु पांचवीं और छठी शताब्दि की गुप्त-कालीन सामग्री जाती हैं । बुद्ध-ग्रंथों में उल्लेख है कि तुम्बवन श्रावस्ती प्रतिष्ठान के मार्ग पर है। सांची-स्तूप पर भी इस बात का ख है । बुद्ध-कालीन शिल्प के नमूने बेसनगर, (भेलसा), बाग (अमझेरा), खेजड़िया, भोप (मन्द तथा राजपुर (नरवर) में पाये जाते हैं, विदिशा के पास ईसा-पूर्व तृतीय शताब्दि से लगाकर दशवीं शत तक के स्तूप और विहार पाये जाते हैं, जो विशे सांची (भोपाल) में हैं । बाग में बड़े-बड़े और गुफायें हैं, जो चट्टानों में खुदी हुई हैं । वह चित्रकला भारत की तत्कालीन परिस्थिति का ज्ञान कराती है । यह स्थान भारतवर्ष के प्रसिद्ध में से है और हमें यह कहते हुए हर्ष होता लंदन की इन्डिया-सोसायटी के द्वारा बाग के चित्र प्रक हो गये हैं । इनका समय सातवीं शताब्दि है । ८ वीं ब्दि का एक विहार खेजड़िया भोप में पाया गया है । राजपुर में भी एक स्तूप है । बेसनगर में प्राचीनतर शिल्प का नमूना गरुड़-स्तम्भ के रूप में पाया ग जिसके लेख से एक यूनानी राजा के भागवत-धर्म की लेने का पता चलता है । भेलसा के निकट ही उदय चौथी से लगाकर छठी शताब्दि तक के शिल्प और शि पाये जाते हैं । वहां की विशालकाय वराह-मूर्ति की भारत में अन्यत्र नहीं मिली । मध्यकालीन शिल्प के नमू लियर के सास-बहू-मन्दिर और तेली के मन्दिर में पा हैं । सुहानिया (तवरघार) दसवीं-ग्यारहवीं शत एक प्रसिद्ध नगर था । नरवर के सुरवाया और ते ईसागढ़ के कछवाहा में तथा भेलसा के बड़ोह, और ग्यारसपुर में अच्छे मन्दिर हैं । विशेष कर उद परमार राजा का ग्यारहवीं शताब्दि में बनाया हुआ मन्दिर देखने योग्य है । मध्ययुगीन हिन्दू शिल्प वह एक उत्कृष्ट नमूना है । मन्दसौर के निकट वाले गांव में छठी शताब्दि में हूण राजाओं को परास्त यशोधर्मदेव का बनाया हुआ विजय-स्तम्भ भी

जिसपर एक शिला-लेख भी अंकित है। हिन्दू विहार के
मूने (९-१० वीं शताब्दि) सुरवाया, रनोद, तेरही, और
द्वाहा में पाये जाते हैं। १५ वीं शताब्दि के राजा मान-
सिंह के मान-मन्दिर का उल्लेख पीछे किया ही जा चुका है।
न शिल्प-कला के नमूने आठवीं और दसवीं शताब्दि के
र्व के नहीं पाये जाते। चट्टानों पर खुदे हुए पन्द्रहवीं सदी
मन्दिर और मूर्तियां ग्वालियर में मौजूद हैं। ऐसी विशा-
मूर्तियां मैसोर को छोड़कर अन्यत्र नहीं मिलतीं। इसी
मय की कुछ जैन मूर्तियां चंदेरी में भी पाई जाती हैं।
वरघार के पढावली और सुहानिया में, ग्वालियर के बराई
र पनिहार में, नरवर के सेसई और भीमपुर में, शिवपुर
दूपकुंज में, ईसागढ़ के इन्दोर, पचराई, गोलाकोट, बूंढी
देरी, थोवन और तुमेन में, भेलसा के ग्यारसपुर, बढ़ोर
र अहमदपुर में, उज्जैन ज़िले के गंधावल और मकर्सा में
र मन्दसौर ज़िले के नीमपूर गांव में भी तत्कालीन अव-
पाये जाते हैं। मुसलमान-कालीन इमारतें उज्जैन,
देरी और ग्वालियर में पाई जाती हैं। क्षिप्रा के तट पर
ाया हुआ रमणीय कालियादेह महल, चंदेरी के पास का
ाक महल, और चंदेरी की जामा मसज़िद पठान बादशाहों
समय के अच्छे नमूने हैं, जो पंद्रहवीं शताब्दि के हैं।
लहवीं शताब्दि की ग्वालियर की मुहम्मद ग़ोस साहब की
गाह प्रेक्षणीय है। ग्वालियर राज्य में ख़ास ग्वालियर,
वर, चंदेरी के क़िले उल्लेखनीय हैं। बजरंगगढ़, शिवपुर,
द आदि छोटे-छोटे क़िले तथा गढ़ियां भी बहुतायत सी
जाती हैं। ऐतिहासिक दृष्टि से सती-स्तंभों का भी बड़ा
त्व है। छठी शताब्दि का एक सती-स्तम्भ शिवपुर ज़िले
हसलपुर ग्राम में पाया गया है; और ९ वीं १० वीं
ाब्दि के तेरही, लगाढ़ी, बड़ोद (नरवर), बढ़ोह (भेलसा), और
ारस (तवरघार) में पाये जाते हैं। आंत्रीग्राम अकबर के
र अबुलफ़ज़ल का मृत्यु-स्थान है। और शिवपुरी में 'ग़दर'
मशहूर सेनापति तांत्या टोपी को फाँसी दी गई थी।
लेखों की दृष्टि से भी ग्वालियर राज्य अत्यन्त समृद्ध
उर्वर क्षेत्र है। यहाँ शिलालेखों, सिक्कों, तथा
शेषों आदि से ईसा की द्वितीय शताब्दि से लेकर १८
शताब्दि तक के इतिहास की कई अज्ञात बातें पाई जाती
हैं। किन्तु वे स्थान अब नष्ट-प्राय से हो गये हैं। तथापि ग्वालियर में पुरातत्व का कार्य एक स्वतंत्र विभाग के द्वारा किया जाता है, यह सौभाग्य की बात है।

ग्वालियर के अनंतर मध्यभारत की बड़ी रियासतों में दूसरा नम्बर इन्दौर का है। यद्यपि इन्दौर राज्य मध्य-भारत की प्राचीन महत्व-पूर्ण ऐतिहासिक सीमा में विभाजित है, तथापि इस राज्य ने पुरातत्व के विषय में कोई विशेष कार्य नहीं किया। कुछ वर्ष पूर्व सुप्रसिद्ध पुरातत्वज्ञ, दक्षिणी पुरातत्व—विभाग के अधिकारी, श्रीयुत राखालदास बनरजी महोदय ने गरोठ के निकटस्थ कुछ प्राचीन स्थानों की अवहेलना को देख कर उसके विषय में कुछ कड़ी आलोचना भी की थी। किन्तु उसका कोई संतोषप्रद फल दृष्टि-गोचर नहीं हुआ। आशा है, इन्दौर की वर्तमान कौन्सिल इस विषय में कुछ प्रयत्न करेगी।

इन्दौर राज्य में धमनार और वहाँ के प्राचीन स्थान ही विशेष उल्लेखनीय हैं। माचलपुर, ज़ीरापुर, रायपुर, गरोठ, महीदपुर आदि होलकरशाही परगनों में दसवीं से लगा कर तेरहवीं शताब्दि तक के हिन्दू तथा जैन मन्दिर पाये जाते हैं। मोरी, इन्दोक, झारडा, मकला आदि स्थानों के अवशेष नष्ट-प्राय से हो गये हैं। निमाड़ ज़िले में पठान-कालीन इमारतें पाई जाती हैं। हिंगलाजगढ़, बीजागढ़ तथा सेंधवा के क़िले विशेष उल्लेखनीय हैं। धमनार, पोला डोंगर, तथा खोलवी (झालावाड़) में, जो पास पास हैं, सातवीं शताब्दि से लगा कर नवीं शताब्दि तक के चैत्य और विहार, धमनार की बड़ी कचहरी, भीम का बाज़ार, पांडव-मूर्तियां तथा चतुर्भुज, आदि हिन्दू देवता तथा खोलवा के अर्जुन, भीम आदि देखने के योग्य हैं। वास्तव में ये बुद्ध की मूर्तियां हैं, जो चट्टानों में खुदे हुए मौजूद हैं। नेमावर ग्राम में परमार राजाओं के समय का एक सुंदर जैन-मन्दिर बना हुआ अभी तक क़ायम है। ईसा की तीसरी शताब्दि में हैहयवंशी राजा बड़े पराक्रमी हो गये हैं। उनकी राजधानी माहिष्मती (महेश्वर) थी। यह स्थान परमार राजाओं के अधिकार में भी रहा है। उनके समय के जैन और हिन्दू मन्दिर ऊन, हरसूद, सिंघाना और देवला में मौजूद हैं। खोलवी का ऊपर उल्लेख आ चुका है। खोलवी, आवर और बिनेगा पहले होलकर राज्य में थे, जो

अब झालावाड़ में हैं। रामगाँव और हाथीगाँव होलकर राज्य से ही टोंक राज्य को दिये गये हैं। इन स्थानों पर भी बुद्ध कालीन तथा ब्राह्मण-कालीन गुफायें, विहार तथा चैत्य पाये जाते हैं; किन्तु वे धमनार की अपेक्षा केवल दो शताब्दि बाद के हैं। जिन पुण्यशीला सती देवी अहिल्याबाई की राजधानी बनने का सौभाग्य महेश्वर को प्राप्त हुआ है उसका प्राचीन ऐतिहासिक महत्व भी कम नहीं है। इस नगर के हैहय-वंश की राजधानी होने का उल्लेख पीछे किया जा चुका है। सातवीं शताब्दि में पश्चिमी क्षत्रप राजा विनयादित्य ने हैहय-वंश पर अपना राजनैतिक प्रभुत्व स्थापित किया था। हैहय राजाओं का चालु राजाओं के सूबेदार होने का भी उल्लेख पाया जाता है। ७ वीं शताब्दि में यह स्थान परमारों के अधिकार में था। महीदपुर का उल्लेख प्राचीन पुराणों में महाकालवन के नाम से पाया जाता है। वहाँ पर हमें ईसा-पूर्व के बहुत से पंच-चिन्हों के सिक्के उपलब्ध हुए हैं। ख़ास महीदपुर और उसके आस-पास हिन्दू शिल्प के भी बहुत से नमूने पाये जाते हैं। यहीं पर सन् १८१५ में अंग्रेज़ों का होलकरों से युद्ध हुआ था। सुनेल ग्यारहवीं शताब्दि में गुहिलोत राजपूतों के अधिकार में था। उसके आस-पास भी बहुत से हिन्दू शिल्प के अवशेष पाये जाते हैं।

इंदौर के अनन्तर भोपाल का नम्बर है। इस राज्य में भारत के अद्वितीय साँची-स्तूप हैं, जो मध्य-भारत के लिए एक बड़ी गौरव की वस्तु की हैं। भोपाल के पास ही राजा भोज का बसाया हुआ भोजपुर ग्राम है, जहाँ पर सन् ११८४ में उदयादित्य की रानी का बनाया हुआ सभा-मंडल मंदिर है। महिलपुर, सम्भसगढ़, नरवर, साचेर, जामगढ़ आदि स्थानों पर भी प्राचीन ऐतिहासिक अवशेष क़ायम हैं। रायसेन, गिनूरगढ़, सिवांस और चौकीगढ़ के क़िले उल्लेखनीय हैं। महिलपुर और भोजपुर में हिन्दू मंदिर पाये जाते हैं। उपर्युक्त अन्य स्थानों पर भी हिन्दू तथा जैन शिल्प के नमूने हैं। भोपाल के निकट ही पठारी नामक एक छोटी सी जागीर है, जिसका राजकीय संबन्ध ग्वालियर राज्य से है। यह स्थान प्राचीन काल में बड़ा महत्वपूर्ण रहा होगा। सन् ९६१ का परबल राष्ट्रकूट राजा का एक शिलालेख भी यहां पर प्राप्त हुआ है। इस स्थान पर विष्णु, शिव, आदि हिन्दू देवताओं की बहुत सी मूर्तियां और कई ध्वंसा
पाये जाते हैं। अनहिलपट्टन गुजरात का राजा जय
सिद्धराज मालवे की चढ़ाई के समय अपने साथ सेंगर
पूत लाया था और उन्हें उसने मालवा में बसाया।
सेंगरों ने सिरोंज को अपनी राजधानी बनाया था।

देवास राज्य में केवल नागदा नामक स्थान पर प
और उनके पूर्वकालीन मूर्तियां तथा मंदिरों के निशान
जाते हैं। प्रसिद्ध महाराष्ट्रीय इतिहासज्ञ श्रीयुत नी
राव कीर्त्तने ने, जब यह ४० वर्ष पूर्व देवास में दीवा
नागदा में बहुत कुछ संशोधन किया था। उनके
इकट्ठा किया गया मूर्तियों का संग्रह अब भी उपलब्ध
११ वीं शताब्दि के परमारों का एक शिलालेख उन्हें
था, जिसकी प्रतिलिपि हमारे पास मौजूद है। नाग
अब भी हिन्दू और जैन मूर्तियां बिखरी पड़ी हैं।
स्थान पर भी हिन्दू और जैन शिल्प पाया जाता है।
राज्य के अन्तर्गत सारंगपुर नामक स्थान है, जो बाज़
दुर नामक मालवे के सुलतान की राजधानी था। बाज़
दुर और रूपमती के प्रेमालाप की अनेक दंत-कथायें
लोकगीत अब भी गाये जाते हैं। बाज़बहादुर को
ने परास्त किया था। रूपमती और बाज़बहादुर के
सारंगपुर में बतलाये जाते हैं। उस स्थान से अब भी
ध्वनि निकलती है—

> 'तुम बिन जियरा रहत है, मांगत है सुखराज।
> रूपमती दुखिया भई, बिना बहादुरबाज़॥
> पापी प्राण रहत घट-भीतर, क्यों चाहत सुखराज।
> रूपमती पिया हमसी दुखिया, कहां गया पिया बहादुरब
> बाज़ बहादुर के स्नेह ऊपर निछावर करूंगी जीवन
> और धन........"

यद्यपि सारंगपुर में मसजिद और मक़बरों में चुने
मंदिरों के अंश पाये जाते हैं, और उनसे उसकी प्राच
का पता चलता है, किन्तु इस समय वहाँ पर पठान
के ही नमूने बहुतायत से हैं। सन् ११२१ का एक त
का मंदिर भी वहाँ मौजूद है।

टोंक राज्य की गुफायें गरोठ(होलकरशाही)के निक

पहले उल्लेख किया जा चुका है । इसी राज्य का पिडावा न बहुत प्राचीन है । उसमें ग्यारहवीं शताब्दि का एक मंदिर मौजूद है ।

धार राज्य की राजधानी धारानगरी का नाम भारतवर्ष साहित्य के इतिहास से कदापि नहीं भुलाया जा सकता । मुंजे यशः पुंजे निरालंबा सरस्वती'—मुंज राजा के अन· सरस्वती निराश्रित हो गई । यह कहावत धार का त्व बतलाने के लिए पर्याप्त है । धार का प्राचीन इतिहास शित करने का प्रयत्न मेरे सम्माननीय मास्टर लेले ब तथा कर्नल ल्यूअर्ड ने किया था । धार के साथ वैभवशाली राजवंश परमारों का संबंध ९वीं शताब्दि से रहा है । ार राजा द्वितीय वैरीसिंह ने धार को अपनी राजधानी या था । मुंज, वाक्पति, सिन्धुराज तथा भोज के समय यह स्थान भारतवर्ष में विद्या के केन्द्र के नाम से प्रसिद्ध है । धार में वास्तव में हिन्दू शिल्प का बाहुल्य होना ए था; किन्तु, मुसलमानों के आक्रमणों के कारण, न मंदिरों के अंश लाट-मसज़िद, कमालमौला आदि मानी स्थानों पर पाये जाते हैं । भोजकालीन सरस्वती- र और उसके पास की ज्ञानवापि (आधुनिक अक़लकुई) ता वहाँ पर बड़ी भारी शिला पर लिखे हुए एक संस्कृत से पाया गया । इसी राज्य में मांडू का नाम मुसल- राजत्वकाल के इतिहास में बहुत प्रसिद्ध है । यों तो धार्मिक ग्रन्थों में मांडवगढ़ एक तीर्थक्षेत्र माना गया पर हमारे प्राचीन हिन्दू ग्रन्थों में भी यह मंडप दुर्ग म से मशहूर है । यहाँ की पठान इमारतों में हिन्दू के जो अवशेष चुन दिये गये हैं उनसे साफ़-साफ़ चलता है कि यहाँ पर पठान राज्य की स्थापना होने के हिन्दू और जैन मंदिर बहुतायत से होंगे । यहाँ का क़िला विस्तृत और प्रेक्षणीय है; जिसमें विशाल इमारतें, ज़िदें, महल तथा दरगाहें हैं, जो पठान शिल्प के अच्छे हैं । हिन्डोला महल, जहाज़ महल, जामा मसज़िद, शाह की क़बर, मुहम्मद ख़िलज़ी की क़बर, बाज़बहा- और रूपमती के महल, आदि क़िले पर की इमारतें योग्य हैं । तिरला की रणभूमि, अडूर (कंचनपुर) की र्तियाँ, नालछा, बूढ़ी मांडू, धरमपुरी आदि स्थान भी इतिहास-प्रसिद्ध हैं ।

बड़वानी राज्य में बावनगज़ा पहाड़ पर गोमतेश्वर की एक विशालकाय मूर्ति है, जिसके कारण वह जैनियों का एक तीर्थ माना जाता है । यहाँ पर बारहवीं शताब्दि के लेख भी पाये जाते हैं ।

दतिया की सीमा बुन्देलखंड और मध्यभारत की सीमा पर है और वह ग्वालियर के निकट होने के कारण हम उसे मध्य-भारत ही में गिनते हैं । ओरछा, चरखारी, छत्रपुर, पन्ना आदि बुन्देलखंडों के राज्यों का हमने अपने लेख में उल्लेख नहीं किया है । दतिया के राजा बीरसिंहदेव और राजा शुभकरण के सत्रहवीं शताब्दि के महल देखने के योग्य हैं । दतिया से ५ मील पर उनाव ग्राम है, यहाँ का सूर्य मंदिर देखने के योग्य है ।

यह मध्यभारत के मुख्य-मुख्य प्राचीन ऐतिहासिक स्थान हैं । बुन्देलखंड के स्थानों का इसमें समावेश नहीं किया गया है । इतिहास-प्रेमी सज्जन यदि चाहें तो पन्द्रह दिन में लगभग १५० रुपये व्यय करके उक्त सभी स्थान देख सकते हैं । हमने उन छोटे छोटे ग्रामों का उल्लेख नहीं किया है, जहाँ पर केवल नाम-मात्र के प्राचीन अवशेष मिलते हैं । उनका विस्तार-पूर्वक उल्लेख पुरातत्व-संबंधी प्रकाशित साहित्य में पर्याप्त रूप से पाया जाता है । हमने तो इस निबंध में इतिहास की अभिरुचि उत्पन्न करने के विचार से सिर्फ़ मोटी मोटी बातें ही बतलाई हैं । इतिहास-ज्ञान का प्रचार करने और खोज करने के लिए तथा होनहार विद्यार्थियों को उत्साह प्रदान करने के लिए यदि मध्य-भारत-हिन्दी-साहित्य समिति मध्य-भारत के ऐतिहासिक स्थानों पर एक सचित्र विस्तृत ग्रंथ प्रकाशित करने का उद्योग करे तो निस्सन्देह हिन्दी-साहित्य में उससे एक अच्छे ग्रन्थ की वृद्धि होगी । अस्तु । यदि इस निबंध को पढ़कर हमारे मध्यभारत के ऐतिहासिक स्थानों को देखने की स्फूर्ति किसी को होगी, तो मैं अपना यह परिश्रम सफल समझूँगा ।

भास्कर रामचन्द्र भालेराव

शिक्षा की व्यावहारिक कसौटी

शिक्षा के जिस पहलू की बड़ी उपेक्षा की जाती है वह है उसका आर्थिक महत्व। शिक्षा का महत्व आर्थिक दृष्टि से भी है, इस बात को अमेरिकनों ने भली भांति सिद्ध कर दिया है। उन्होंने शिक्षा को ऐसा सुसंगठित और सुव्यवस्थित कर दिया है कि अब वहाँ शिक्षा एक भूषण या विलास की वस्तु नहीं रह गई, जिसका आनंद केवल इने-गिने भाग्यवान लोग ही ले सकें। वह तो व्यक्तिगत विकास का एक असली क्रम है, जिसकी सहायता से ग़रीब से ग़रीब आदमी भी देश के ऊँचे से ऊँचे स्थान पर पहुँचने की आशा कर सकता है। अमेरिका की शिक्षा-प्रणाली संसार को हाथ उठाकर कहती है कि ज्ञान के समान सस्ती और अज्ञान के समान महँगी कोई चीज़ नहीं है। शिक्षा से होने वाले आर्थिक लाभ का हिसाब लगाकर श्रीयुत जेम्स एम्० डॉज़ नामक एक अमेरिकन सज्जन ने एक पुस्तक में अपने विचार अंकित किये हैं। श्री डॉज़ अमेरिका के एक विख्यात कारख़ाने वाले हैं और अमेरिकन सोसायटी ऑफ़ मेकानिकल एंजीनियर्स के सभापति रह चुके हैं। मामूली मज़दूरों की कमाने की शक्ति की अपने अधीनस्थ अनेक कारख़ानों में काम करने वाली भिन्न-भिन्न कोटि के पढ़े-लिखे आदमियों की अर्जन-शक्ति से तुलना करके उन्होंने बताया है कि किस तरह मनुष्य ज्यों-ज्यों उसे शिक्षा अधिकाधिक मिलती जाती है त्यों-त्यों मज़दूर से गुमाश्ता, गुमाश्ते से तालीम पाया हुआ कारीगर, वहाँ से व्यापारी, ग्रेजुएट आदि बनकर अपनी आमदनी बढ़ाता जाता है। उनकी पुस्तक से लिया हुआ नीचे लिखा उद्धरण बड़ा शिक्षाप्रद होगा—

"इस तरह जो कोष्टक बनता है वह बताता है कि एक मज़दूर प्रति सप्ताह ३ डॉलर के हिसाब से १६ वर्ष की अवस्था में जीवन की शुरुआत करता है। और २१ वर्ष तक पहुँचते-पहुँचते वह १० डॉलर प्रति सप्ताह तक बढ़ जाता है। इससे आगे नहीं बढ़ने पाता। उस समय उसकी कुल अर्जन-शक्ति १०,२०० डॉलर होती है। एक मुनीम या गुमाश्ता भी जो दूकान में काम सीखने के लिए रहता है, उसी उम्र में उतनी ही तनख़्वाह से शुरुआत करता है, पर अधिक तेज़ी से बढ़ता है और २४ वर्ष की उ वह प्रति सप्ताह १५.८० डॉलर पैदा करने लग जा और उस समय उसकी कुल पैदा करने की शक्ति १५ डॉलर समझी जाती है। पर वह इससे अधिक नहीं सकता। एक ट्रेड-स्कूल ग्रेजुएट की आमदनी भी की अवस्था में वही होती है, पर वह और भी तेज़ी से है। २५ वर्ष की उम्र तक पहुँचते पहुँचते वह २२ प्रति सप्ताह पैदा करने लग जाता है। और तब उसकी अर्जन-शक्ति २२,००० डॉलर आंकी जाती है। यहाँ बहुत धीरे-धीरे बढ़ता है। ३२ वर्ष की उम्र में वा डॉलर प्रति सप्ताह कमाने लग जाता है, और तब अर्जन-शक्ति भी ३५,००० डॉलर तक बढ़ जाती है निकल स्कूल का ग्रेजुएट भी उसी आय से, अर्थात् प्रति ३ डॉलर से शुरुआत करता है। जब वह १८ व अवस्था में कॉलेज में भरती होता है तब प्रति स डॉलर पैदा करता है। २२ वर्ष की अवस्था में वहाँ की प्राप्त कर लेने पर उसे प्रति सप्ताह १३ डॉलर मि वह मामूली मज़दूर से तो आगे बढ़ गया, पर अभी गुमाश्तों से पीछे रहता है। परन्तु नौकरी पर तो ल वह उसे भी मात कर जाता है। पर ट्रेड स्कूल का अब भी उससे आगे ही रहता है। २५ वर्ष की अवस पहुँचने के पहले वह उसकी बराबरी में आ जाता अब वह ट्रेड स्कूल ग्रेजुएट से भी आगे बढ़ता जा ३२ वर्ष की अवस्था तक पहुँचते-पहुँचते वह प्रति ह ४३ डॉलर पैदा करने लग जाता है। तब उसकी अर्ज ४३,००० डॉलर हो जाती है। इस तरह टेक्निकल चार वर्ष शिक्षा पाने पर एक आदमी ३२ वर्ष की उम्र पहुँचते-पहुँचते गुमाश्ते की अपेक्षा चौगुना और एक स्कूल ग्रेजुएट की अपेक्षा ७२ फ़ी सैकड़ा अधिक की जाता है। सचमुच ४ वर्ष की तैयारी का यह कितना बदला हुआ!

"बच्चों के विषय में भी यह देखना उपयोगी शिक्षा से उनकी योग्यता और धन कमाने की शक्ति बढ़ जाती है।

"एक लड़के ने १४ वर्ष की अवस्था में पाठशा

और दूसरे ने १८ वर्ष की अवस्था में। जब दूसरा लड़का वर्ष की अवस्था में पहुँचा तब उसने पहले लड़के की ना २,००० डॉलर अधिक कमा लिये थे। और प्रति- पहले लड़के की अपेक्षा ९०० डॉलर अधिक कमाता था। भी इस अधिक शिक्षा पाये हुए लड़के की तनख़्वाह ही की थी। और यदि प्रतिवर्ष ९०० डॉलर का फ़र्क़ की तनख़्वाह में मान लिया जाय, तो वह उस रक़म रावर होजाती है, जो किसी विश्वसनीय बीमा-कम्पनी १९,००० डॉलर देकर ख़रीदी जा सकती है। यौवन के चार वर्ष स्कूल में ख़र्च करने के बदले में यह रक़म मिलना कोई कम नहीं है।"

श्री डब्ल्यू० डब्ल्यू० स्मिथ नामक एक दूसरे अमेरिकन सज्जन ने अमेरिका के 'हू-इज़-हू' (Who is who ?) का बड़ी बारीकी के साथ निरीक्षण किया और नीचे लिखे नतीजे पर पहुँचा। अमेरिका के इस 'हू इज़ हू' नामक ग्रन्थ में उस देश के ८००० विख्यात नेताओं के नाम हैं, उनका वितरण यों हुआ है—

	स्त्री-पुरुषों में से	नेता हो सकें	अर्थात्
अशिक्षित	५०,००,०००	३२	१,५०,००० में १ बालक
मामूली पाठशाला में पढ़े	३,३०,००,०००		
		८०८	„ में ४ बालक
हाइस्कूल में पढ़े	२०,००,०००	१२४५	„ में ८७ बालक
कालेज-शिक्षा या यूनिवर्सिटी की उपाधि प्राप्त	१०,००,०००	५७६८	„ में ८०० बालक

यह स्मरण रहे कि उपर्युक्त ८००० स्त्री-पुरुषों में ख़ास तथा उद्योग, व्यापार, खेती आदि सभी क्षेत्रों में काम वाले लोगों के नाम हैं। फिर भी शिक्षित लोग ही अधिक कार्यकुशल और धनोपार्जन करने वाले पाये हैं।

इन उद्धरणों से ज्ञात होता है कि किस प्रकार एक वस्थित शिक्षा-प्रणाली देश के स्त्री-पुरुषों के जीवन को ल बना देती है। वहां हम देखते हैं कि मनुष्य ज्यों-ज्यों क-अधिक शिक्षा प्राप्त करता जाता हैं, उसकी धनोपा- शक्ति भी उसी परिमाण में बढ़ती चली जाती है। इस खते हुए हम यहाँ पर यह कह सकते हैं कि जो शिक्षा- ली इस तरह के परिणाम नहीं बता सकती वह बिल- निकम्मी है। सचमुच यह बड़े ही दुःख की बात है कि क्षितों की बेकारी के कारण भारतवर्ष में तो शिक्षा बजाय भलाई के बुराई साबित हो रही है। शिक्षितों की बेकारी श्न दिन ब दिन गंभीर होता जा रहा है। उसकी भयंकरता प्रतिदिन बढ़ती ही जाती है। सचमुच यह शिक्षा का कैसा दुर्भाग्य है कि जहाँ उसके भक्तों को इस ख़तरे से सुरक्षित रहना चाहिए वहां वे ही उसके शिकार हो रहे हैं! यह भी दुःख की बात है कि यह बुराई अशिक्षितों की अपेक्षा शिक्षितों में ही अधिक भयंकर रूप में दिखाई देती है। पर इसका कारण वह शिक्षा-प्रणाली है जो एक ख़ास राजनैतिक उद्देश्य की पूर्ति के लिए जारी की गई थी। वह उद्देश्य पूर्ण हो जाने के कारण वह अब निकम्मी हो गई है। लोगों की आर्थिक दशा सुधारने में शिक्षा का असफल होना इस बात को स्पष्टतया प्रमाणित करता है कि उस शिक्षा में अब महान् और जड़ से परिवर्तन कर देने की ज़रूरत खड़ी हो गई है। शिक्षा की उपयोगिता पर विचार करते समय यह भी स्मरण रहना ज़रूरी है कि उससे मनुष्य की धनोपार्जन की शक्ति भी अवश्य बढ़नी चाहिए। बल्कि शिक्षा-नीति का यही उद्देश हो कि प्रत्येक विद्यार्थी ऐसा तैयार होकर निकले जो अपने समाज की सम्पत्ति को बढ़ा सके। बेकारी एक

महाभयंकर चीज़ है, जो समाज में ऐसी-ऐसी बुराइयों को भर देती है कि उनसे सारा समाज छिन्न-भिन्न होजाता है । अपनी शिक्षा को समाप्त करने वाले प्रत्येक युवक में इतनी योग्यता आ जानी चाहिए कि वह समाज की सम्पत्ति और आय को बढ़ा सके । सामाजिक प्रतिष्ठा और आर्थिक स्थिति में भी एक अशिक्षित और शिक्षित के बीच स्पष्ट अंतर दिखाई देना चाहिए । आदर्शवाद से आत्म-सुधार में बड़ी सहायता मिलती है । अतः शिक्षा-प्रणाली ऐसी रक्खी जाय, जिससे शिक्षा से मिलने वाली उच्चाभिरुचि ज़रा भी कम न होते हुए मनुष्य अपने दैनिक जीवन के लिए आवश्यक चीज़ों को जुटाने में समर्थ हो सके । संक्षेप में कहना चाहें तो उच्चाभिरुचि और योग्यता दोनों पर प्रत्येक प्रकार की शिक्षा में सबसे पहले ध्यान दिया जाना चाहिए । इन दोनों में से एक भी बात की जिस शिक्षा में त्रुटि हो वह निकम्मी ही समझिए । इसलिए उपर्युक्त ढंग से शिक्षा देना परम आवश्यक है ।

देशी राज्य और ख़ासकर जो कि बड़े हैं और जिन्हें इस बात की ख़ास सुविधायें हैं वे नये रास्ते ढूँढ सकते हैं, नये नये प्रयोग कर सकते हैं और पुराने अनुभव तथा वर्तमान परिस्थिति पर विचार करके अपनी पूर्व कार्य-प्रणाली में आवश्यक परिवर्त्तन तथा सुधार या विकास कर सकते हैं । नवीन ढंग के विश्वविद्यालयों की स्थापना करना बड़ा ख़र्चीला काम है । अतः उसे हाथ में लेने से पहले यदि वे अपने राज्य के प्रारम्भिक और मध्यम शिक्षा के क्रम पर ही ध्यान देकर उनकी त्रुटियां दूर कर दें और इन्हें विश्वविद्यालयों के साथ जोड़ दें तो बड़ा अच्छा हो । इसमें ख़र्च भी कम लगेगा और फ़ायदा भी ज़्यादा होगा । हमारी इस सूचना का यह अर्थ नहीं है कि जिनके पास अनुकूल साधन हैं वे भी विश्वविद्यालयों की शिक्षा को अपने हाथ में न लें । यूनिवर्सिटी में शिक्षा प्राप्त करने से मनुष्य में जो बौद्धिक शक्ति आ जाती है उससे कोई इन्कार नहीं कर सकता । पर हम तो इस बात पर ज़ोर देना चाहते हैं कि यदि वे चाहें और आवश्यक व्यवस्था कर दें तो बहुत सी रियासतें विश्वविद्यालय के नीचे की श्रेणी की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध आसानी से कर सकती हैं । दूसरे उसकी ज़रूरत भी ज़्यादा है । आवश्यकता है सिर्फ़ सुयोग्य और कार्यदक्ष कार्यकर्ताओं की नियुक्ति कर देने की—क्योंकि किसी भी योजना की
या विफलता कार्यकर्ताओं पर ही निर्भर रहती है ।
अच्छे फल की आशा दिलाने वाली योजना अयो
कर्ताओं के हाथ में विफल हो सकती है, तहाँ एक
और सदोष योजना उत्तम कार्यकर्ताओं के हाथ में
सम्पूर्णता और सरलता को प्राप्त कर सकती है ।
सबसे भारी शत्रु तो वे दिमाग़ होते हैं, जो पुरा
पड़े-पड़े अपनी ताज़गी को खो देते हैं । उनके
प्रत्येक नई बात ख़्वाबी, अव्यवहार्य और मूर्खता
जाती है । वे कभी नई राह को पसंद नहीं करते—
होता है ऐसे कामों में रुकावटें ही डालते हैं ।

व्यक्तियों की उन्नति से समाज किस प्रकार उन्न
है और सामाजिक उन्नति का व्यक्तियों के जीवन
असर होता है, यह दिखाने के लिए हम श्री० क्रो
ये उद्‌गार उद्‌धृत कर देना आवश्यक समझते हैं—
दैनिक व्यापार-व्यवहार में आप जिन लोगों के स
आवेंगे उन्हींके हिसाब से आपकी भी उन्नति होगी
अधिकांश जनता ग़रीब और अपढ़ है, तो समाज के प्रत्ये
प्रत्येक संस्था और प्रत्येक उद्यम-व्यवसाय पर उस
ही गिराने और नीचे खींचने वाला परिणाम होगा,
थरमामेटर पर वायु-मण्डल की गर्मी और सर्दी का
अनिवार्यतः होता है । व्यापारी का व्यापार कम
वकील और डॉक्टरों की फ़ीस कम होगी, रेलों पर जा
वालों की आमद-रफ़्त कम होगी, बैंकों में कम औ
छोटी रक़में जमा होंगी और मास्टर तथा धर्मोपदेश
की तनख़्वाहें भी कम होंगी । इससे हमें यह शिक्षा
है कि यदि कोई मनुष्य विद्या या तालीम के
अथवा अयोग्यता के कारण अपनी शक्ति से आधा
पैदा करता है तो वह अपनी अयोग्यता से सारे स
ग़रीब बनाता रहता है ।" इसलिए शिक्षा और द्रव्य
र्जन करने की शक्ति का बहुत घनिष्ट सम्बन्ध होना
और प्रत्येक प्रकार की शिक्षा-प्रणाली में यह बात ख़
से ध्यान में रहनी चाहिए; बल्कि यदि वह सच्ची शि
चाहती है, तो यह उसका मूलभूत सिद्धान्त होना
और यह तभी हो सकता है, जब हमारी शिक्षा प्र

व्यवहारोपयोगी और अमली हो ।

पाठशाला भी तो एक जाति या समाज ही है । तब सका अर्थ यह हुआ कि शिक्षक उस जाति या समाज का ता है । वह डरावना शासक नहीं परन्तु एक ऐसा लोक ायक है, जिसके दिल में सहानुभूति और प्रेम है, जो ाति के हिताहित को अपना हिताहित समझता है । उस ाम के सुधार की सारी ज़िम्मेदारी उसके सिर पर रहती है। सकी पाठशाला में गाँव के गण्यमान्य लोग आकर उससे पने काम-काज में सलाह मशविरा ले सकते हैं और अपने ल की बातें उसपर प्रकट कर सकते हैं । पाठशाला का चालक होने के कारण गाँव में फैले हुए अज्ञान, अनीति ौर पतन पर वह सीधा प्रहार कर सकता है । लड़कों में ो अपने गाँव के प्रति स्वाभाविक प्रेम होता है उसको उच्च स्वार्थ सेवा-भाव से परिणित करने की शक्ति शिक्षक में ानी चाहिए । सच तो यह है कि शिक्षक बिजली सी शक्ति दा करने वाला यंत्र और लड़के उस शक्ति को गाँव के कोने-ोने में पहुँचाने वाले साधन हैं ।

यहां पर शिक्षकों की वर्तमान अवस्था पर एक-दो ब्द कह दें तो अनुचित न होगा । उच्च अथवा मध्यम किसी श्रेणी की पाठशालाओं में काम करने के लिए जिस ढंग से क्षकों को चुना जाता है, उसपर हमें गंभीरता-पूर्वक विचार ना चाहिए । जान पड़ता है कि इस समय तो माँग और ज का क़ानून शिक्षकों की योग्यता का निर्णय करता है । वमुच यह तो बड़े दुःख की बात है । अबतक शिक्षक की कुछ भी दशा रही हो, उससे जिन कर्तव्यों के पालन की शा की जाती है, उनका ख़याल करते हुए जहाँतक हो सके इस योग्य बना देना आवश्यक है कि वह अपना जीवन ी भांति और प्रतिष्ठा-पूर्वक व्यतीत कर सके। शिक्षक को अपने ार्थियों के आचार-व्यवहार और चरित्र का निर्माण करना ता है। उसे उनमें उच्च आदर्श के भाव भरने पड़ते हैं और ति-सिद्धान्तों के प्रति प्रेम उत्पन्न करना पड़ता है। इसलिए ाँ तक हो सके उसके मार्ग में ऐसी कोई बाधा न होनी हिए, जो उसे अपने अंगीकृत कार्य में हानि पहुँचावे । कों में अपने शिक्षक के प्रति श्रद्धा उपजाने के लिए यह त आवश्यक है कि शिक्षक समाज में नीति और प्रतिष्ठा-पूर्वक रह सके । उसकी परिस्थिति ऐसी होना परमावश्यक है कि वह समाज में एक उच्च स्थान प्राप्त कर सके ।

• दूसरे शिक्षकों का चुनाव करते समय बौद्धिक विकास पर आवश्यकता से भी अधिक ज़ोर दिया जाता है । सच तो यह है कि यही सबसे बड़ी और एकमात्र कसौटी समझी जाती है । होना यह चाहिए कि अन्य महत्वपूर्ण बातों में से यह केवल एक हो । मानवता के गुणों की तो बिलकुलही पर्वा नहीं की जाती, जब कि बच्चों को पढ़ाने के लिए इन्हीं गुणों की सबसे अधिक ज़रूरत होती है । एक कवि, चित्रकार या सिपाही की भाँति शिक्षक भी स्वयं जन्मतः अपने आवश्यक गुणों को लेकर आते हैं । और ऐसे शिक्षकों को खोजना पड़ता है । वयस का भी ध्यान रखना चाहिए । छोटे-छोटे बालकों को पढ़ाने के लिए वयो वृद्ध लोगों को रखना बहुत आवश्यक है ।

यदि शिक्षा के प्रचार के लिए हम ख़र्च करना चाहें तो इस बात का भी ध्यान रखना ज़रूरी है कि वह पढ़ाई जनता में क़ायम रहे । यदि लोग पढ़-पढ़ कर फिर भूल गये, तो पढ़ाई और ख़र्चा दोनों व्यर्थ होंगे । भारत में शिक्षा के प्रचार पर (१९०७-१९१२, पैरा ३२४) जो सरकारी रिपोर्ट प्रकाशित हुई उसमें साफ़ लिखा है कि पाठशालाओं में शिक्षा पाने वाले फ़ी सैकड़ा ३९ विद्यार्थी पाठशाला छोडने पर पांच ही साल के अन्दर सब पढ़ाई भूल-भाल जाते हैं और अपढ़ से हो जाते हैं । इस बुराई को दूर करने के लिए अमली उपायों को काम में लाना चाहिए । इस बात को ध्यान में रखते हुए प्रांतीय भाषाओं में विविध विषयों पर सस्ती और सरल पुस्तकों का प्रकाशित होना बहुत ज़रूरी है । ऐसे साहित्य के अभाव के कारण प्रायः लोगों की पढ़ने की रुचि ही मर गई है । इस आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए एक छोटा सा पत्र प्रकाशित किया जा सकता है, जो पाठशालाओं में पढ़े विद्यार्थियों की विद्याभिरुचि बनाये रख सकता है । उसमें अच्छी-अच्छी कहानियां, प्रचलित विषयों और घटनाओं की ख़बरें, स्वच्छता, शिक्षा जैसे ग्राम्य-जीवन सम्बन्धी विषयों पर सरल-सरल लेख हों । महाभारत, रामायण तथा पुराणों में से भी इनके लिए बड़ी अच्छी और काफ़ी सामग्री मिल सकती है । घूमते हुए ग्रन्थालयों के प्रश्न पर भी इस विषय में विचार कर लेना चाहिए । बड़ौदा राज्य का उदाहरण

बड़ा शिक्षाप्रद है । अनिवार्य शिक्षा के क़ानून के बाद ही वहाँ ग्रन्थालयों का भी एक विभाग खोल दिया गया । और उसे शिक्षा-संगठन का एक अंग बना दिया गया है ।

पश्चिम में शिक्षा-विज्ञान और शिक्षा की कला ने बहुत तरक़्क़ी कर ली है । परन्तु इधर उनका ध्यानपूर्वक अनुकरण करनें के प्रयत्नों का भी अभाव है ।

वहाँ नित्य नये-नये प्रयोग होते रहते हैं । प्रतिदिन नये सिद्धांत और नवीन प्रणालियों का वहां आविष्कार और विकास होता है । स्थानीय परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए उनके उन परिश्रमों से फ़ायदा उठाने, उनके आविष्कारों को अपनाने या उचित परिवर्तनों के साथ स्वीकार करने की व्यवस्था होना परमावश्यक है । दरिद्रता, अज्ञान,वहम,संकीर्णता,पुराणप्रियता, अंधविश्वास, धर्मान्धता तथा पराधीनता इत्यादि अनेक सामाजिक और राजनैतिक बुराइयाँ और पापों के लिए शिक्षा एक रामबाण दवा है और उनका दूर होना ही शिक्षा की व्यावहारिक कसौटी है । अतः शिक्षा-विभाग को सेवाक्षम और लोपकारी बनाने के लिए जितना भी द्रव्य व्यय किया जाय वह उसका सदुपयोग ही होगा ।

गोविन्द बलवन्त माकोड़े

विश्वास

हम जिस चीज़ को लेने चले थे, वह हमें न मिली । हम पहली ही चोट में ठोकर खाकर गिर पड़े । आह, कितनी सुन्दर, कितनी उच्च, कितनी उत्कृष्ट दीखती है वह !

सफल साहस सन्मान का पात्र होता है । पर आज हमारे पड़ोसी हमारे जी की बावली विकलता पर हँस रहे हैं ।

आज तो हम छोटे और क्षुद्र हैं, उपेक्षणीय और निन्द्य हैं, निरीह और निरस्त्र हैं; पर एक दिन आयेगा, जब सारे संसार को अभिमान से मर्दन करने वाले तुम झुकोगे और झुक कर हमें अभिवादन करोगे ।

क्या हारे हुए सदा हारे हुए ही रहते हैं ? नहीं ! कोई कहता है, हम जीतेंगे और जीत कर रहेंगे ।

'राहत'

हृदय की फुलझड़ी

आंखें

आंखें हृदय की वाणी हैं; लाख तप करते भी गिरा को वह शक्ति और सरसता न मिल स

आँखें बालक की भाँति संसार के सौन्द चखती हैं और वैसीही चञ्चल उदारता के हृदय की सरसता को डंडौत देती हैं ।

प्रेम और लज्जा ही से तो सुंदर मुखड़े पर हुए इन दो बड़े-बड़े अमूल्य मोतियों की आब है

यह आँखें हैं या प्रेम-मद से लबालब भरे दो प्याले !

रूप-सुधा का भिखारी आँखों के दो प्याले कर तेरे द्वार पर खड़ा है । क्या तू इन्हें भर दे है, ऐ मेरे दाता ?

अरे ओ आनन्दी खिलाड़ी ! चारों ओर लीला का जाल बिछाकर क़ैदी की तरह अन्द कर इन झरोखों से तू उसे क्यों देखता है रे ?

भूलभुलैयों की चादर ओढ़कर तू मेरी आं आगे आकर सो गया और कहता है, मुझे खो

बेचारी भोली आंखें तुझे कहां पातीं ? ढूं कर थक गईं और थक कर रो उठीं ।

आज सामने पड़ी हुई सबसे पहली चीं लेकर प्याज़ के छिलके की तरह उसे जो छील देखा कि निगूढ़ अन्तर में बैठा हुआ तू हँस र

तबसे यह मेरी वहमी आँखें आग और में, शत्रु और मित्र में, तुझीको खोजती हैं ।

क्षेमानन्द '

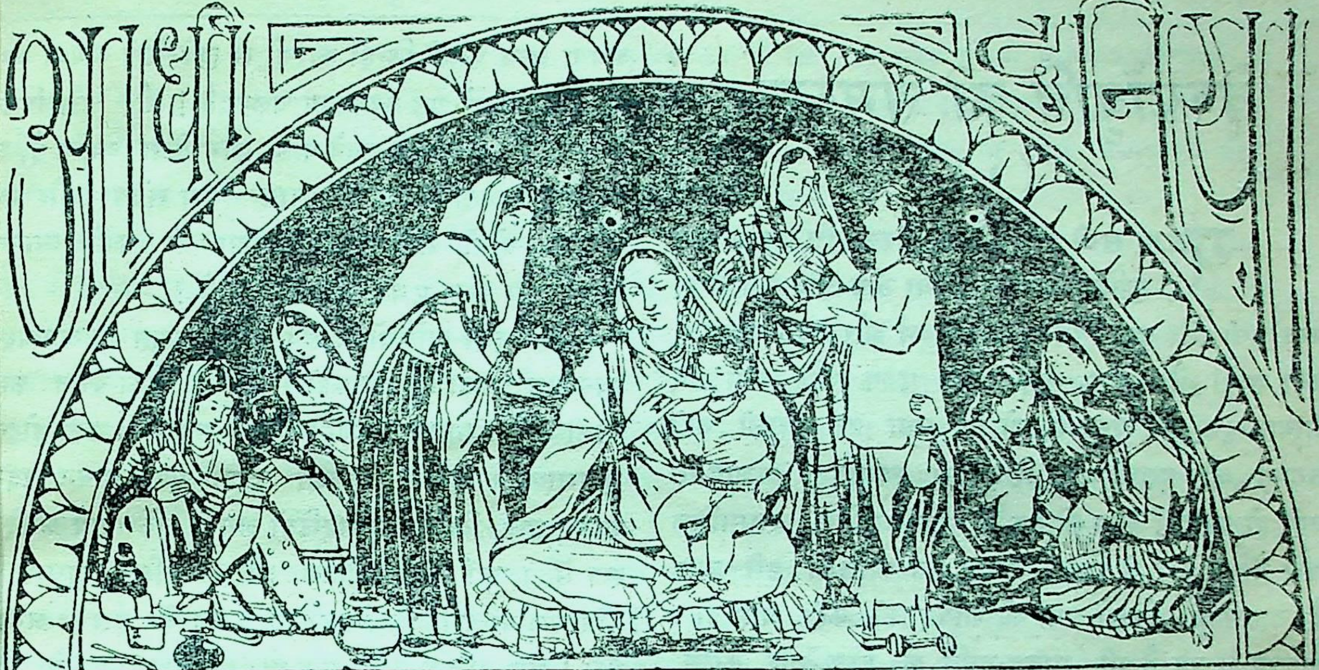

'हम जाग उठीं, सब समझ गईं, अब करके कुछ दिखला देंगी ।
हाँ, विश्व गगन में भारत को फिर एक बार चमका देंगी ॥''

विवाह

विवाह क्या बुरी चीज़ है ? क्या वह गा-बजा कर काठ में पाँव देने के समान है ? बेशक वह व्यर्थ है, यदि किसी को उसकी आवश्यकता नहीं है।

विवाह दुनिया का खेल खेलने का आज्ञापत्र है सही, पर साथ ही वह संयम का जनक है ।

शरीर के मंदिर में बैठी हुई दो आत्मायें जब एक दूसरे का आह्वान करती हैं तो विवाह दौड़कर उन्हें मिला देता है ।

विवाह हमें इकाई की परिधि से निकालकर विश्व-प्रेम का पहला पाठ पढ़ाता है ।

विवाह गुड़ियों का खेल नहीं है, वह आनन्द मनाने का अस्थाई प्रबन्ध भी नहीं है । वह तो दो आत्माओं का परस्पर मिलन है—कभी न टूटने वाला बन्धन है ।

सच्चा विवाह तो आत्माओं का होता है, शरीर का विवाह भी लोग करते हैं सही ।

यह कहना बहुत बड़ी बात है कि विवाह आनंद के लिए नहीं हैं; पर इसमें सन्देह नहीं कि वह आनंद आनन्द के लिए नहीं, कर्तव्य को सुस्निग्ध बनाने के लिए है ।

विवाह हाथ पकड़कर आत्मा को प्रेम की दीक्षा देता है । वह उसे आत्म-समर्पण करना, दूसरे के लिए जान देना, मरना और मिटना सिखाता है ।

विवाह का लक्ष्य क्या है ? यही कि मनुष्य अपने अनुभूत ज्ञान-समुच्चय संसार को दान कर जाय, अथवा पुत्र के रूप में संसार की सेवा करने के लिए अपने को एक बार फिर संसार में भेजे ।

क्षेमानन्द 'राहत'

वेश्यावृत्ति की समस्या

(१)

यह तो सभी मानते हैं कि वेश्यावृत्ति एक अत्यन्त कुत्सित प्रथा है। क्या ऊँच और क्या नीच, क्या धनी और क्या निर्धन, क्या सवर्ण और क्या अस्पृश्य, क्या ज्ञानी और क्या मूर्ख, क्या पुरुष और क्या स्त्री, आबाल-वृद्ध कौन ऐसा है, जो इस प्रथा पर अंगुली नहीं उठाता और इसकी चर्चा छिड़ने पर स्वभावतः लज्जावनत नहीं हो जाता? सच तो यह है कि धार्मिक, सामाजिक और नैतिक दृष्टि से जितनी हेयता एवं कालिमा इसे प्राप्त है, उतनी और किसी प्रथा को शायद ही कहीं प्राप्त हो। वास्तव में यह है भी मानव-जाति के लिए घोर कलङ्क, मनुष्य को पतित कर शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य-सम्पत्ति से हीन-कर्त्ता, और अन्त में उसे समस्त भौतिक एवं आध्यात्मिक सुखों से ही वञ्चित कर देने वाली।

परन्तु फिर भी संसार और ख़ास कर हमारे भारतवर्ष में आज इसने जो व्यापकता और भीषणता धारण कर रक्खी है, उसे कौन नहीं जानता? गाँवों में तो अवश्य ही इसका उतना बाहुल्य और बीभत्स रूप नहीं; पर आधुनिक सभ्यता के चिह्न-रूप शहरों में तो, जो जितना बड़ा और समृद्ध उतना ही अधिक, इसका नग्नरूप ही दृष्टिगोचर होता है। उदाहरण के लिए संसार के कुछ ख़ास-ख़ास शहरों को देखिए। उनकी वेश्याओं की संख्यायें निम्नप्रकार हैं—

नाम शहर	वेश्याओं की संख्या
न्यूयार्क	४०, ०००
बर्लिन	४०,०००
पेरिस	५०, ०००
लन्दन	६०, ०००
कलकत्ता	१६, ०००

फिर यह संख्या तो सिर्फ़ उनकी हुई जो खुलेआम, समाज और देश की मान-मर्यादा को तिलाञ्जलि दे, अपने शरीर का सौदा करती हैं। लोकलाज अथवा परम्परागत या स्वाभाविक सङ्कोच-वश किम्वा परिस्थिति की विवशता अथवा अन्य ऐसेही किन्हीं कारणों से लुके-छिपे अथवा नामों से भी तो यह व्यवसाय चलता है! और इस वि से ज़रा भी दिलचस्पी रखने वाला कौन ऐसा व्यक्ति है यह नहीं जानता कि वह व्यवसाय—क्या संख्या और परिणाम, दोनों में—इसकी अपेक्षा भी कहीं ज्या भीषण और निंद्य एवं हानिकर होता है?

कहीं दास-दासियों के रूप में यह (गुप्त वा अप्रत्य व्यवसाय चलता है, तो कहीं रोटी या चौका-बर्त्तन वाली अथवा मालन-नायनों आदि के रूप में। कहीं हों नृत्यशाला के रूप में तो कहीं उपहार-गृह, गायन-वा शाला, क्लब, विभिन्न सुसाइटियों अथवा टर्किशबाथ आ रूप में। यहाँ तक कि नैतिक और मानसिक सुधार नींवस्थल मन्दिरों और शिक्षणालयों तक में इसका अ नहीं! सच तो यह है कि गुप्त वा अप्रत्यक्ष रूप से वाले दुराचार का यदि पूरा पता लगाया जा सके तो संख्या और भीषणता उससे अत्यधिक नहीं तो दूनी अ निकलेगी, जो कि चौड़े-धाड़े वा प्रत्यक्ष होता है।

क्या यह स्थिति वाञ्छनीय है? इस प्रश्न का य कोई भी यही देगा—'नहीं, हर्गिज़ नहीं। तब, क्या यह नहीं कि जैसे भी हो इसके निवारण का उपाय किया जा जिसे हम समाज और मनुष्य-जाति का कलङ्क समझते मानते हैं उसका उन्मूलन ही क्यों न कर डालें? क्यों न कुछ करें कि जिससे हमारे बीच इसका अस्तित्व ही शे रहे? यदि ऐसा हो जाय तो हमें वह सुख और लाभ प्राप्त होगा, जिससे कि आज यह कुप्रथा हमें व किये हुए है?

पर, प्रश्न यह है, ऐसा हो कैसे? जैसा कि वर्ष 'स्वराज्य' (मद्रास) में श्रीयुत एम० कृष्ण ने लि था, "उस वक़्त तक इससे छुटकारा कहीं मिल स जबतक कि वेश्यावृत्ति के उत्पादक कारणों का ही अन्त हो जाता। अतः यदि सचमुच ही सुधारकगण इस अभि से समाज को मुक्त देखना चाहते हैं, तो उन्हें चाहिए सर्वप्रथम वे इसके कारणों की ही खोज और मीमांसा क यही है भी ठीक। अतः आइए, हम भी, पहले इसके क पर ही दृष्टिपात करें।

(२)

"वेश्यावृत्ति समाज-सङ्गठन से उद्भूत एक ऐसा रोग है ासकी जड़ें भी सामाजिक ढाँचे में ही धँसी हुई हैं।" ा कृष्ण का यह कथन बिलकुल ठीक है। और देशों के तो हम नहीं कह सकते, प्रत्येक देश की परिस्थिति में ा कुछ विभिन्नता एवं विशेषता होती ही है, पर हमारे ा तो वेश्यावृत्ति का बहुत कुछ उत्तरदायित्व निश्चय ही समाज-सङ्गठन पर ही है। यही कारण है कि पराधीन-ा पश्चात्य सभ्यता के प्रभावस्वरूप हमारे सामाजिक ा में जो अस्त-व्यस्तता एवं शिथिलता आती जाती है, साथ-साथ, यह समस्या भी अधिकाधिक विस्तृत वषम रूप ही धारण करती चली जा रही है। सच तो कि संसार के अनेक व्यावसायिक कार्य जिस प्रकार नियमों पर सञ्चालित होते हैं, ठीक उसी प्रकार ृत्ति ने भी आज दिन एक व्यवसाय का ही रूप धारण क्खा है।

ारीबी सारे अनर्थों का मूल है'—यह जो कहा जाता है, यथार्थ नहीं। इस समस्या पर तो यह बहुत ही ोता है। कौन नहीं जानता कि इसमें पड़ने वाली ांश स्त्रियां किसी न किसी प्रकार के अर्थाभाव वा प्रलोभन से ही इसपर आकर्षित होती हैं? यह एक बात है कि वेश्यावृत्ति अख़्त्यार करनेवालियों में संख्या नीच और ग़रीब जातियों की ही है। यहाँ अस्सी सैकड़ा से भी अधिक संख्या आप उन्हींकी । वस्तुस्थिति यह है कि एक ओर तो अर्थाभाव के अपनी सांसारिक आवश्यकताओं को ही वे पूरा नहीं तीं, साथही कुछ तो स्वभावतः और कुछ दूसरों को कर आराम और ऐश्वर्य-भोग की भी इच्छा होती है। स्थिति में बड़ों-बड़ों के चित्त डावाँडोल हो जाते हैं, तो ठहरीं अज्ञान और बहुतांश में निपट मूढ़; तब ाश्चर्य, यदि वे इस ओर लुढ़क पड़ती हैं? सच तो यह मारे यहाँ आज वेश्याओं का जो संख्याधिक्य दृष्टिगो-ता है उनमें से अधिकांश इस या इससे मिलती- किसी स्थिति के ही कारण इसपर आकर्षित अथवा हुई मिलेंगी। इनमें से बहुतों में तो इस पेशे के प्रति आदर-भाव भी नहीं, पर भीख माँगने अथवा भूखों मरने से बचने के लिए किसी तरह वे इसे अख़्त्यार किये हुए हैं। वेश्यावृत्ति का सबसे बड़ा कारण तो यही अर्थाभाव और भौतिक आकांक्षा है।

और ऐसी परिस्थिति की विवशता के कारण जो इस वृत्ति पर आकर्षित होती हैं उनमें भी अधिकता किनकी? विधवा, अनाथा और जातिच्युतों ही की न? इसके कारणों पर विचार करने पर हमारे समाज-संगठन का दोष स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। विधवा, अनाथिनी और जातिच्युतों का अस्तित्व ही क्यों बढ़े और क्यों उसे ऐसी बाध्यावस्था प्राप्त हो? बाल-विवाह, बलात् वैधव्य, और कठोर एवं किसी हद तक अस्वाभाविक नियम-पालन ही क्या इसके लिए दायी नहीं? ज़रा-ज़रा सी वय में, गुड्डे-गुड़ियों की भांति, बालक-बालिकाओं के जो विवाह कर दिये जाते हैं—बिना उनके स्वास्थ्य, योग्यता एवं उपयुक्तता का कुछ विचार किये—उसीका तो यह परिणाम है कि हमारे यहाँ और तो और पर दुधमुँही विधवाओं तक की संख्या कुछ नगण्य नहीं! फिर, 'दुबले को दो आषाढ़'। एक तो ऐसी स्थिति में वैसे ही उनके लिए वैधव्य मुश्किल होता है, ऊपर से कड़े से कड़े नियमों से उन्हें और दबोचा जाता है। चाहिए तो यह कि जिनको ऐसा वैधव्य कठोर जान पड़े उनको सहर्ष पुनर्विवाह करने दिया जाय—कम से कम उन अबोधों को तो इससे हर्गिज़ ही वंचित न रक्खा जाय, जिन्होंने कि अपने पतियों को कभी मन भर कर देखा तक नहीं। पर होता क्या है? उलटे यह कि वे वैधव्य का पालन भी करें ऐसी कठोरता के साथ कि जो, कम से कम इस ज़माने में, बड़े-बड़े पकी उम्र वालों के लिए भी सरल नहीं! राग-रंग, पहरना-ओढ़ना, हँसना-बोलना, खाना-पीना तो दूर, एकादशी आदि त्यौहारों पर 'पानी-पानी' चिल्लाते हुए मर जाने पर भी उन्हें पानी तक न दिये जाने की घटनायें ही क्या कम होती हैं? यह सब अमानुषी नहीं तो क्या? फिर यह और दिल्लगी कि इच्छा वा अनिच्छा से, जाने-अनजाने, उनसे ज़रा भी किसी नियम का भंग हुआ नहीं कि जात-बाहर का दण्ड सिर पर सवार! न केवल जात-बाहर बल्कि निर्दयता के साथ कुटुम्ब से भी उन्हें निकाल दिया जाता है। फलतः उदर-पूर्ति के लिए उन्हें

कुछ सहारा ढूँढना ही पड़ता है। इधर सामाजिक और पारिवारिक कठोरता की प्रतिक्रिया होती है। तब इन दोनों के बीच वे वाध्य होती हैं इस नीच वेश्यावृत्ति को ही स्वीकार करने के लिए ! यह इसका दूसरा और ज़बर्दस्त कारण है।

तीसरा कारण है बेमेल विवाह। वेश्याओं की संख्या-वृद्धि में इसका भी कुछ कम भाग नहीं। हमारे यहाँ नारीत्व का आदर्श तो यह है कि पति के प्रति पूर्ण भक्ति रक्खी जाय—मनसा, वाचा, कर्मणा उसमें श्रद्ध-भक्ति रहे; पर इसके लिए वातावरण का कुछ ख़याल नहीं। मनोविज्ञान पता नहीं किस लिए है, जब कि ऐसे महत्व के मामलों में ही उसका उपयोग नहीं किया जाता ! जब आदर्श इतना ऊँचा है, तो क्या यह वांछनीय नहीं कि परिस्थिति भी इसके अनुकूल ही रक्खी जाय ? और उस वक्त तक क्या यह सम्भव है, जब तक कि पति-पत्नी का मन बिलकुल न मिल जाय—एक-दूसरे का तादात्म्य न हो जाय ? प्राचीन स्वयंबर की प्रथा थी भी सर्वथा इसके उपयुक्त। पर आजकल तो सब औंधा कारबार है। सवाल तो पति-पत्नी के मन-मिलन का; पर उन्हें इस बारे में बोलने का हक़ नहीं—मानों उन्हें नहीं बरन् उनके अभिभावकों को ही विवाह से लाभ-हानि होती है, जो सब कुछ उन्हींकी पसन्द-बेपसन्द पर निर्भर ! नतीजा यह होता है कि अधिकतर विवाह बेमेल रहते हैं। पति जाये उत्तर तो पत्नी जाये दक्षिण यही ढंग रहता है। यहाँ तक कि अनेक स्वार्थान्ध अभिभावक, रुपयों के प्रलोभनवश, अल्पायु कन्याओं को बुड्ढे-ठुड्डे, पौरुषहीन, रोगाक्रांत और मरणोन्मुखों तक को समर्पित करने में भी नहीं हिचकते। ऐसी स्थिति में क्या यह सम्भव है कि कन्या दृढ़ता के साथ पति में श्रद्धा-भक्ति रख सके ? जो ऐसा कर सकें, वे वन्दनीय; पर, सामान्यतः तो यह अस्वाभाविक ही है। मगर लुत्फ़ यह कि जाने-अनजाने किसी से ज़रा इस नियम की उपेक्षा हुई नहीं कि कलंक का सेहरा उसके सिर बँधा; हो गई वह पक्की पापिन; पापी भी ऐसी कि जिसका फिर उद्धार भी सम्भव नहीं ! यहाँ तो वही हिसाब कि 'गिरा सो गिरा'। इन बातों का नतीजा यही होता है कि घर में तो रहती है कलह, और मनों में अशांति एवं तृष्णा। तब रात-दिन की कटकट और अशांति के फलस्वरूप घर से निकलने की नौबत आती है; अथवा इस बेमेल वातावरण के कारण अतृप्त वास

किसी प्रकार पूर्ति की स्वाभाविक उत्कट प्रेरणा

और दोनों का ही परिणाम अन्त में होता है यही वेश

पहली दशा में प्रकट और दूसरी में अप्रकट।

स्त्रियों में अर्थोपार्जन की अयोग्यता इसका चौ

है। हमारे समाज की यह एक बड़ी भारी कमी है

को आरम्भ से ही परावलम्बी बनाया जाता है। शा

आदेश है कि स्त्री कौमार्यावस्था में पितादि के, विवा

में पति-श्वसुरादि के, और वैधव्यावस्था में पुत्रादि

रहे, उसको लेकर ही उन्हें अर्थोपार्जन की योग्यता

रक्खा जाता है। नतीजा यह होता है कि जहाँ कहीं

आर्थिक समस्या आकर पड़ी नहीं कि वे घबरा उठ

क्या करें ? कभी कुछ सिखाया गया हो, तब न

सदैव पुरुषों की अधीनता में रहने का तो यह का

ही है, साथ ही उन्हें वेश्यावृत्ति पर घसीट ले जा

इसका प्राबल्य कुछ कम नहीं होता। और ऐसी

जीवन में प्रायः पड़ा ही करती हैं। जैसे किसी के

का एकाएक ख़ात्मा हो जाय, घरवालों से सहसा

किसी घटनावश घर के लोग अकेले छोड़ कर गुस

निकल पड़ें और परिस्थितिवश ख़ैर-ख़बर न ले

अप्रसन्नतादि किसी कारण घर से ही निकाल दें।

अनेक अभिभावक ग़रीबी आदि कारणों से क

विवाह करने में ही समर्थ नहीं होते उधर बड़ी

पर कन्या को घर में रखना भी असह्य हो जाता

अनेक स्थितियां हैं कि उनमें यदि स्त्रियां स्वयं

कर सकें तो कोई ख़तरा न रहे। पर उन्हें इस यो

ही कहाँ जाता है ? फलतः इधर-उधर टक्कर खा

वेश्यावृत्ति पर ही उन्हें अपना अवलम्ब करना पड़

धर्म के नाम पर जो वेश्यावृत्ति चलती है, उसे

नहीं जानता ? तीर्थस्थानों में लुके-छिपे जो

होता है, सो तो होता ही है; पर यहाँ हमारा अभि

वेश्यावृत्ति से है, जो धर्म के नाम पर प्रत्यक्ष औ

होती है। देवदासी की प्रथा से कौन धार्मिक हिन्

नहीं ? इसने तो धार्मिकता का ऐसा रूप धारण

इसे भक्तिपूर्ण जीवन और मुक्ति का निश्चित मार्ग

लगा है ! वस्तुतः तो देवदासी और खुलेआम व्यभि-करने वाली वेश्या दोनों एक ही समान हैं; पर बाहरे कता, जहाँ दूसरी निंद्य मानी जाती हैं वहाँ पहली मानी हैं पवित्र और निर्दोष ! यह हमारी बेवकूफ़ी और श्रद्धा तो है ही, साथ ही वेश्यावृत्ति को भी इससे कुछ ोत्साहना नहीं मिलती। ऐसी दशा में इसे भी वेश्या-का एक कारण अवश्य मानना होगा।

इनके अलावा यह भी मानना होगा कि कुछ स्त्रियाँ व से ही चंचलमना होती हैं। वे जब देखती हैं कि इस वाली कैसी शान-शौक़त, तड़क-भड़क के साथ रहती हैं, च्छे-अच्छे कपड़े-लत्ते पहरती और नाज़-नख़रे से रहती फर वह दिखावटी ही क्यों न हो,—तो वे इस ओर लगती हैं; और क्रमशः पतित होती हुई अन्त में, सम्पूर्ण-इसीपर अवलम्बित हो जाती हैं। साथ ही घर की यों, होटलादि की नौकरानियों, नटनियों, नर्तकियों आदि प्रकार के धन्धेवालियों में भी कुछ तो स्वभावतः इस वृत्ति होती है, कुछ आस-पास का वातावरण भी उन्हें ही मिलता है कि जिससे वे शीघ्र ही इस ओर आक-ो जाती हैं।

े सब तो वेश्यावृत्ति के कारण हैं ही, पर इनके अलावा, निक सभ्यता भी इसके लिए कुछ कम उत्तरदायी नहीं। तो यह है कि "आधुनिक परिस्थिति में वेश्यावृत्ति एक जिक आवश्यकता ही हो गई है। समाज की एक नि-आवश्यकता की इससे पूर्ति होती है। इसीलिए यह बुराई है, पर वर्तमान दशाओं में यह है अवश्यम्भावी।" से ? यह जानने के लिए हमें आधुनिक सभ्यता के रूप शहरों पर दृष्टिपात करना होगा। शहरों में वेश्या-सी बढ़ी हुई है, यह तो हम पहले बता ही चुके हैं, खना यह है कि इस वृद्धि का कारण क्या ? इसके किसी भी एक बड़े शहर को हम ले लें तो हम देखेंगे मान पूँजीवाद के कारण वहाँ ऐसे पुरुषों की संख्या बहुत ि, जो कि दूर-दूर के गाँवों और छोटे शहरों से जीवि-र्जन के लिए वहाँ आये होते हैं पर शहर के बढ़े हुए के कारण अपने कुटुम्बों—ख़ास कर स्त्रियों—को अपने नहीं लाते। कम से कम आधी जन संख्या को ऐसे स्थानों में ज़रूर ही अविवाहित वा ख़र्च के अभाव से अकेले रहते पाया जायगा। फिर यह भी मानना ही होगा कि वे सब सद्गुणों के अवतार ही नहीं होते। अलावा इसके अर्थाभाव अथवा अन्य ऐसे कारण स्वाभाविक कामवासना को भी रोक सकें, सो बात नहीं। फिर वहाँ का वातावरण तो और उत्तेजक ही न होता है ? इस प्रकार एक ओर तो वास-नायें उठतीं और उत्तेजना पा-पा कर प्रबल होती हैं, दूसरी ओर अर्थाभाव या तो विवाह से ही वंचित रखता है नहीं तो विवाहित जीवन के उपभोग से। ऐसी दशा में वे अपनी वासनाओं की पूर्ति वेश्यावृत्ति द्वारा न करें तो और करें भी कैसे ? निश्चय ही कुछ लोग शौक़ की पूर्ति के लिए भी इसे करते हैं; पर अधिकांश तो उक्त परिस्थितिवश ही न इसपर आकर्षित—नहीं, कहना चाहिए, बाध्य—होते हैं! "या तो वे प्रकृति के आदेश की अवहेलना करें अथवा वेश्या के पास जायें, सिवा इसके और चारा भी क्या?" और यह सब वर्त्त-मान सभ्यता के फलरूप पूँजीवाद और आर्थिक विषमता का ही परिणाम नहीं तो और क्या है ?

(३)

वेश्यावृत्ति के जो कारण हैं, उनका दिग्दर्शन हो चुका; अब विचार यह करना है कि इसका हल कैसे किया जाय ? क्या उपाय अथवा कौन से साधन अख़्त्यार किये जायें कि जिनसे हम इस समस्या पर विजय प्राप्त कर सकें ? ऊपर वेश्यावृत्ति के जो कारण बताये गये हैं उनका किसी प्रकार हम निवारण भी कर सकते हैं या नहीं ?

कईयों का मत है कि यदि सरकार कोई अवरोधक क़ानून बना दे तो इस समस्या का बहुत कुछ हल हो जायगा। अनेक समाज-सुधारक नर-नारी इसके लिए प्रयत्नशील भी हैं। और इसमें शक नहीं कि यदि सरकार नेकनीयती से इसके लिए प्रयत्न करे तो इस दिशा में बहुत कुछ सुधार हो भी सकता है। पर पहले तो हमारी सरकार नेकनीयती से इस ओर प्रवृत्त ही क्यों होने लगी ? फिर, जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, जब कि इसका मूल हमारे समाज-संगठन के ही अन्तर्गत है, तब मात्र क़ानून से हो भी क्या सकता है ? क्षणिक सुधार भले ही हो; पर स्थायी सुधार तो तभी न होगा, जब कि इसके उत्पादक उपर्युक्त कारणों को ही दूर किया

जाय ? सच तो यह है कि इसके मूल में ही हमें कुठाराघात करना होगा।

इसके लिए सर्वप्रथम हमें अपने समाज-संगठन और आर्थिक बँटवारे की विषमता को दुरुस्त करना चाहिए। समाज का संगठन ऐसी भित्ति पर होना चाहिए कि जिससे पुरुष या स्त्री कोई भी एक जाति दूसरी एक जाति पर अन्याय, अत्याचार या सख़्ती न कर सके। स्त्रियों को इच्छा वा अनिच्छावश सदैव ही जो पुरुषों की मनमानी के अधीन होना पड़ता है, उसका ख़ात्मा होना चाहिए। स्त्रियाँ पुरुषों से अपेक्षाकृत छोटी बन कर रहें, यह तो समझ में आ सकता है; पर स्त्री होने ही के कारण वे उनके सब अन्याय-अत्याचारों को भी न केवल चुपचाप बल्कि प्रसन्नतापूर्वक सहें और फिर भी उनमें अचल-अगाध श्रद्धा-भक्ति ही रक्खे रहें, यह नहीं हो सकता। आदर्श की दृष्टि से चाहे यह ठीक हो, पर व्यवहारतः तो असम्भव और अस्वाभाविक ही है। अतः इसका भी अन्त होना चाहिए। यदि विवाह एक पवित्र और जीवन-मरण का प्रश्न है, तो इस सम्बन्ध में ऐसी उपेक्षा न होनी चाहिए, जैसी कि आजकल होती है। बेमेल विवाह क्यों हों, यदि जिनका इससे सम्बन्ध हो उन्हींकी पसन्द-बेपसन्द पर यह निर्भर रहे ? अभिभावकों का कर्त्तव्य तो यहीं तक न सीमित होना चाहिए कि वे अपने पुत्र या कन्या को उपयुक्त पालन-पोषण और शिक्षण द्वारा इस योग्य बना दें कि अपना साथी चुनने में वे धोखा न खायें ? बाल-विवाह रूपी अभिशाप पर एकदम ही कुठाराघात करना चाहिए। ऐसी दशा में विधवाओं का प्रश्न प्रथम तो स्वयं ही न रहेगा। फिर जो विधवायें हों भी उन्हें हम इतना क्यों जकड़ें ? क्या विधुरों पर भी हम ऐसा ही कड़ा नियंत्रण करते हैं ? यदि नहीं तो बेचारी विधवाओं पर ही इतना दबाव क्यों ? उनके साथ जब तक हम मनुष्योचित व्यवहार करना न सीखेंगे तब तक यह स्वाभाविक ही है कि वे अन्ततः वेश्यावृत्ति को ही गले लगायें। उन्हें अछूत मानना, उनसे शुभावसरों पर परहेज़ करना आदि बातें बिलकुल वाहियात हैं—इनसे दौरात्म्य एवं घृणा-भाव प्रकट होता है। ऐसी बातों का बिलकुल उठ जाना ही वांछनीय है। इसी प्रकार धर्म के नाम पर प्रचलित देवदासी की प्रथा भी सच पूछो तो एक कलङ्क ही है। इसका जितना

शीघ्र और समूल नाश हो उतना ही श्रेयस्कर, औ
विलम्ब हो उतना ही हानिकर। यदि ये बातें दूर
तो नौकर-चाकरों द्वारा ललचाये जाने तथा ऐसे
प्रलोभनों में फँसने का भी अपने आप ही अन्त हो

रही आर्थिक विषमता। सो इसके लिए
तांश में समाज-संगठन को ही दोषी मानना
हमारे समाज मे आज जो यह स्थिति है कि
अपने ज़रा-ज़रा से नाज़-नख़रों के लिए ला
न्यौछावर कर देता और इच्छानुसार ऐ
भोगता है और कोई दाने-दाने के लिए ता
उसका अन्त होना चाहिए। जब तक यह विषमता
है, वेश्यावृत्ति भो किसी न किसी रूप में अपना
रक्खे होगी। क्योंकि आवश्यकता से अधिक
साधनों के उपयोग से एक समुदाय में तो विष
बढ़ेगी, दूसरा समुदाय भी उनकी यह दशा देख, अ
वस्था पर झुंझलाकर अपनी वृत्तियों को तृप्त करने
जैसे भी हो इसी पर प्रवृत्त होगा। इधर जब तक
मता न मिटे, शहरों में मध्यम तथा निम्न श्रेणी
अकेले रहना नहीं मिट सकता; न स्त्रियों का नि
गंदे व्यक्तियों के बीच काम करना ही बन्द किया
और इन दोनों ही दशाओं में वेश्यावृत्ति का अस्तित
भावी है। साथ ह जब तक स्त्रियों को भी अर्थ
उपयुक्त न बनाया जाय, वे पुरुषों पर निर्भर रहना
और पुरुषों पर बिलकुल निर्भर रहना, दूसरे रूप
वृत्ति को उत्तेजन देना ही नहीं तो और क्या है ?
दशा में जहाँ ज़रा भी पुरुष का आसरा कम हुआ
एकदम निराश्रय होकर भटक ही तो पड़ती हैं और उस
स्थिति में यही एक सहारा तो उन्हें मिलता है !
दूर-समुदाय का गन्दी गलियों में रहना, मध्यम
ग़रीब लोगों का अधिक किराया न दे सकने के
घरों में रहना, स्त्रियों का केवल पुरुष की आय
रहना, विधवा स्त्रियों की कला कौशल द्वारा निर्वा
शक्ति और पारिवारिक बन्धन के शिथिल हो जा
धन-सम्बन्धी प्राचीन तत्वों का नष्ट होना, मज़दूर
मिलों में तुच्छ दशाओं तथा हीन परस्थितियों में नि

ह और अनेक आर्थिक और सामाजिक कुप्रथाओं का न ही नाश होने की अत्यधिक आवश्यकता है। इसके ही हमें वर्त्तमान आर्थिकवाद के फलरूप शहरों की क-दमक के प्रलोभन और उद्योगों को छोड़ प्राचीन ग्रामों चर्खा-खादी सरीखे घरेलू उद्योगों की ओर भी प्रवृत्त होना पड़ेगा। तभी और एकमात्र तभी हम इस समस्या से मुक्ति पा सकते हैं; नहीं तो यह दिन-दूनी रात-चौगुनी जैसी बढ़ रही है बढ़ती ही रहेगी, और हम साश्चर्य मूढ़वत् ताका ही करेंगे।

मुकुटबिहारी वर्मा

नारी-महिमा

बेना आपो ओछी नीहाँ,
छमित रे कणी कियो के नीच जात नारी हाँ।
ी हाँ तो कँई वियो म्हे नारारी नारी हाँ ॥१॥
त्र में सदा पछाड़ी री हाँ, दुख में आगे वी हाँ।
थो काट हाथ सुं मेल्यो पीतम पेली गी हाँ ॥२॥
नां पेट फाड़ पाप्यां सुं म्हे ललकार लड़ी हाँ।
ती धशी धधकती में म्हें अब पण वीरी वी हाँ ॥३॥
सुवरण-पुरी शीश दश ऊपर म्हें थूंकण वाली हाँ।
सत्यवान रो प्राण बचायो जम शूं पण जीती हाँ ॥४॥
सिद्धराज रो शाप न लागो कियो कँई बुगली हाँ।
कोड्यो खोड्यो पति उँचाय ने वेश्या रे लेगी हाँ ॥५॥
शूरां रे जन्मी हाँ आपां शूरां रे परणी हाँ।
शूरां री जननी हां आपां पोते ही शूरी हाँ ॥६॥

(महाराज) चतुरसिंह

भावार्थ

बहनो, हम क्षुद्र नहीं हैं।

कौन कहता है कि हम नारियां क्षुद्र और नीचे दर्जे की ? ऐसा कहने वाला स्वयं ही कोई ओछी बुद्धि वाला ष्य होगा। यदि नारी हैं तो क्या हुआ, हैं तो नाहरों— ह पुरुषों की ही नारियां ॥ १ ॥

हम सुख के समय हमेशा पीछे रहीं और दुःख में सदैव गे हुई हैं। अपने हाथों से सिर काट कर सामने रख दिया और प्रियतम से पहले हम परलोक चली गई हैं ॥ २ ॥

अपने हाथों से पेट फाड़ कर ललकारते हुए हमने पापियों लड़ाई की है। हमने धधकती हुई आग में हँसते-हँसते प्रवेश किया, हम अब भी वैसी ही वीर नारियां हैं ॥ ३ ॥

स्वर्णपुरी लंका में रावण पर थूकने वाली भी हम ही हैं। सत्यवान का प्राण बचा कर हम ही यमराज से जीती हैं ॥ ४ ॥

हमें सिद्धराज का शाप भी नहीं लगा, हमने उनसे कहा कि हम कोई बगुली नहीं हैं। अपने कोढ़ी और पंगु पति को उठा कर वैश्या के यहां हम ही ले गई हैं ॥ ५ ॥

हम शूरों के यहाँ जन्मी हैं और शूरों के साथ ही ब्याही गई हैं। इसी प्रकार हम शूरों की जननी हैं और खुद भी शूर-वीर हैं ॥ ६ ॥

उन्नति कैसे हो ?

संसार कर्म-क्षेत्र है। जो मनुष्य या जो जातियां कर्मशील हैं, वे श्रेष्ठ और शिरोमणि बनकर संसार के अन्दर चैन और सुख का उपभोग करती हैं; और जो अकर्मण्य हैं, वे दूसरी जातियों द्वारा पददलित होती हुई अपना नामोनिशान मिटा देती हैं। आज जातियों की घुड़दौड़ हो रही है। प्रत्येक दूसरे से आगे बढ़ने की कोशिश कर रही है। परन्तु हम भारतवासी सिर्फ़ ज़बानी जोड़–बाक़ी निकालकर प्रसन्न हो रहे हैं, और फूले नहीं समाते। अपने प्राचीन उज्ज्वल इतिहास का नक़शा खींचना, अपने प्राचीन ऋषियों के ज़माने का राग, और अपनी पुरानी सभ्यता का ढोल पीटना यहीं तक भारतवासियों की कर्मशीलता की पराकाष्ठा हो जाती है। जब समय पड़ता है, तब छाती खोलकर आगे बढ़ने वाले माई के लाल अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं; शेष संख्या भीरुओं की होती है।

हम भारतवासियों को क़हना आता है, करना नहीं आता। जिन जातियों ने उन्नति की है, उनके इतिहास के पन्ने कर्मण्यता के उदाहरणों से पूर्ण हैं—थोथी बातों से नहीं। नैपोलियन अपनी सेना का सेनानायक बना हुआ दुर्ग जीतने के विचार से दुर्ग की ओर प्रस्थान करता है। सामने खाई पड़ती है; सेना असमञ्जस में पड़ जाती है कि खाई को कैसे पार किया जाय ? उसी समय दुबला-पतला सेनापति हाथ में झंडा लिये आगे बढ़ता है और अपनी सेना को सम्बोधन करके कहता है—'ऐ फ़्रान्स के वीरो, क्या यह छोटी सी खाई फ़्रान्स के वीरों को कर्त्तव्य से च्युत कर देगी ? हमें दुर्ग को प्राप्त करना है। जो फ़्रांस की लाज रखना चाहें, वे मेरे पीछे आ जायँ, शेष अपने घरों को वापिस चले जायँ।' अब कौन था जो वापिस जाता ? सेनाप गोलों की बौछार से दूर करके सेना क़तारें बाँ खड़ी हो जाती है। एक, दो, तीन क़तारें गो भुनती हुई खाई के अन्दर गिरती चली जाती खाई भर जाती है, शेष सेना लाशों प रखती हुई आगे बढ़ जाती है और दुर्ग पर कार करके फ़्रान्स का झंडा फहराती है। जाप देखिए, थोड़े दिनों के अन्दर वह उन्नति के पर चढ़ गया है। रूस-जापान का युद्ध हुए व्यतीत नहीं हुई। देखते ही देखते थोड़े से बद्ध जापानियों ने इतने बड़े देश पर विजय प्रा है। सेनापति घोषणा करता है कि सैनिकों की श्यकता है। उसी समय नौजवानों ने अपनी लियों से खून निकाल कर पत्र लिखे कि हम होने को तैयार हैं और मरने-मारने को उद्यत मेवाड़ का इतिहास ही लीजिए, कितना रक्त है ! राणा लाखा से लेकर राणाप्रताप तक बड़ हास वीरता और स्वतन्त्रता के लिए बलिद इतिहास है। राणा सांगा मरते समय ८ खाकर तथा नेत्र, हस्त, पाद से विहीन होकर राणा प्रताप ने सारी आयु बनों में भटकते तथ मूल खाते व्यतीत की। तात्पर्य यह है कि जो अपने सुखों पर लात मार कर अपने कर्तव्य प रहती है और कर्तव्य-पथ की ओर अग्रसर हो वही इतिहास में अमर हो जाती है।

परन्तु, आज यह सब कहां है ? भारतवर्ष स्वतन्त्रता, भारत की वह कर्मनिष्ठा, भारत शौर्य, और भारतवर्ष का वह ऐश्वर्य आज क आज तो भारतवर्ष गुलाम है ग़रीब है, कम अपने पैरों उठ नहीं सकता। कारण ? क्यों की कोशिश करने पर भी नहीं उठ सकता उसमें कर्मण्यता का प्रादुर्भाव नहीं होता

हुत से कारण बताये जा सकते हैं; परन्तु सबसे ुख्य कारण तो है अशिक्षा और स्त्रियों की वर्तमान ोचनीय स्थिति । अगर अशिक्षा किसी के भाग में धिक आई है, तो अभागे भारतीय स्त्री-समाज के । ायद सम्पूर्ण भारत में एक(?)प्रतिशत स्त्रियां शिक्षित । अन्य दृष्टियों से भी स्त्री-जाति बहुत नीचे है ।

कोई जाति तब तक उन्नत नहीं हो सकती, तब क संसार की घुड़दौड़ में आगे नहीं बढ़ सकती, ब तक कि उस जाति का आधा अंग—स्त्री-समाज- न्नत न होजाय । यह निश्चित है, इसमें आज विवाद ो आवश्यकता नहीं । जबतक भारतीय पुरुष स्त्री- माज की उन्नति की ओर विशेष ध्यान नहीं देंगे, नकी उन्नति की, शेष सम्पूर्ण योजनायें और आन्दो- न व्यर्थ जावेंगे । जब तक भारत का स्त्री-समाज र्भय, उत्साही, पुरुषार्थी और उन्नत नहीं होगा, ारतवर्ष की उन्नति असंभव है । जब तक वृक्ष की ड़ में घुन लगा हुआ है, उस ओर ध्यान न देकर ार यत्न करने पर भी, वृक्ष कभी नहीं लहलहायगा। ब तक भारत का सारा समाज शिक्षित,कर्मण्य तथा त न हो, उससे उत्पन्न भारत की भावी सन्तान से ई आशा करना व्यर्थ है । अतएव स्त्री-समाज की ाति और शिक्षा की तरफ़ ध्यान देना सबसे प्रथम र आवश्यक है ।

यदि जापान इतना उन्नत हुआ तो जापान की हेलाओं के अपूर्व त्याग-भाव और अनुपम देश- के से । एक जापानी माता के पाँच पुत्र रण-क्षेत्र काम आये । एक सैनिक ने आकर माता को यह क-संवाद सुनाया । माता सुनकर रोने लगी । सब- सांत्वना दी और समझाया । उस समय माता ने शब्द कहे, वे सुनहले अक्षरों में लिखने-योग्य हैं । ने कहा—'मैं इसलिए नहीं रोती कि मेरे पाँचों मारे गये हैं । मैं तो इसलिए रोती हूँ कि मेरे घर में और कोई ऐसा पुत्र नहीं, जिसे सुसज्जित कर रणभूमि में भेजूँ ।' धन्य ! माता, तुम धन्य हो, तुम्हीं जैसी माताओं ने ही जापान को बनाया है ।

यह भाव जब तक देश की स्त्रियों में नहीं आवेगा, तब तक देश का स्वतंत्र होना कठिन ही नहीं असंभव है ।

मेवाड़ के उज्ज्वल और गौरवशाली इतिहास के बनाने में भी स्त्रियों के साहस, त्याग, व देश-प्रेम का बहुत बड़ा भाग है । रानी पद्मिनी, रानी हाड़ी, ताराबाई, राजमाता जवाहरबाई, पन्ना धाय और चंचलकुमारी के चरित्र मेवाड़ के इतिहास के उज्ज्वल पृष्ठ हैं । जब-जब राजपूत राजा या सैनिक अपने कर्तव्य से च्युत होने लगे, तब-तब उनकी माताओं और पत्नियों ने उनको उत्साहित कर कर्तव्य से विमुख न होने दिया । पृथ्वीराज को संयुक्ता ने, आल्हा-ऊदल को उनकी वीर माता ने, और महाराज जसवन्तसिंह को लक्ष्मीबाई ने ही कर्तव्य से विमुख होने से बचाया था । कितनी ही राजपूत रमणियों ने देश की विकट-स्थिति में स्वयं शस्त्रास्त्र से सुसज्जित होकर रणक्षेत्र में राजपूत सैन्य का संचालन करते हुए देश की स्वतन्त्रता को क़ायम रक्खा । इन्दौर की अहल्यबाई और झांसी की लक्ष्मीबाई ने जो कुछ किया, वह किसी से अविदित नहीं ।

संसार के प्रायः सब महापुरुषों के जीवन पर उनकी माताओं ने गहरा प्रभाव डाला है । शिवाजी, नैपोलियन और महात्मा गांधी इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं । शतपथ ब्राह्मण में बिलकुल ठीक कहा है—'मातृमान्, पितृमान् आचार्य्यवान् पुरुषो वेद ।' माता यदि गुणवती और विदुषी हो, तो सन्तान को गुणी और विद्वान् बना दे; और यदि वह स्वयं भीरु और मूर्ख हो, तो पुत्र ऐसा हुए बिना रह नहीं सकता । आजकल सोने-चांदी की बेड़ियों से बन्धा

हुआ भारतवर्ष का परतन्त्र महिला-समाज घरों में बन्द है, तो यह स्वाभाविक ही है कि उसकी सन्तान छोटी-छोटी बातों में फँसी हुई भीरु, अकर्मण्य, कायर और मूर्ख हो।

आज भी भारतवर्ष उन्नति करता हुआ फिर अपना पूर्व-गौरव पा सकता है; परन्तु तभी, जब स्त्री-समाज की उन्नति की ओर भी विशेष ध्यान दिया जाय। सन्तान को उन्नत, संयमी, और देशभक्त बनाने के लिए पहले स्त्रियों को सुशिक्षित कीजिए, उनकी आत्माओं को अपनी आत्मा के समान समझ कर उनके साथ सखा-भाव से व्यवहार कीजिए। फिर आप इसी लोक में स्वर्ग का सुख अनुभव करेंगे, आपका गार्हस्थ्य जीवन शान्तिमय होगा और आपकी भावी संतान देशभक्त तथा सुयोग्य बनेगी।

(स्व०) सुभद्रादेवी

लड़कियों की शिक्षा

लड़कियों की शिक्षा के लिए कोई योजना तैयार करने से पहले वे जिस जाति में पैदा हुई हों उसकी पूर्व-परम्परा तथा उनके भावी कर्त्तव्यों का ख़याल कर लेना और उनके आदर्शों को भी समझ लेना ज़रूरी है। लड़कियों के माता-पिता उनमें जिन उदात्त विशेषताओं को देखना तथा विकसित करना चाहते हैं, तथा जिन कार्यों की उनसे आशा की जाती हो, उनको भी ध्यान में रखना आवश्यक है।

ग्रामों में लड़कियों को बहुत काम करना पड़ता है। वे कुँए से पानी खींचती हैं, पीसती हैं, नाज साफ़ करती हैं, ईंधन इकट्ठा करती हैं, मकान को झाड़-बुहार कर साफ़ करती हैं; और इन सब कामों से जब छुट्टी मिलती है तब अपनी गोद में उस बच्चे को भी लेकर घूमती हैं, जिसकी हिफ़ाज़त और परवरिश करने का उन्हें काफ़ी ज्ञान तक नहीं होता। फिर कह देना ज़रूरी है कि शिक्षा के प्रारम्भ में पाठ में लड़कियों के लिए अलग ध्यान देने की ज़रू है। क्योंकि इस समय पढ़ने-लिखने आदि लड़कों के साथ-साथ आसानी से चल सकती वय में उन्हें गृहस्थी के आवश्यक कर्त्तव्यों की देना अनुचित भी है।

लड़के और लड़कियों की साथ-साथ शि भी बहुत महत्वपूर्ण है। नैतिक और आर्थिक प्रत्येक विचारशील मनुष्य उसकी उपयोगि फ़ायदे को महसूस किये बिना न रहेगा। हां, में भले ही मतभेद हो सकता है कि लड़के को किस वय तक साथ-साथ शिक्षा दी जाय यह मतभेद ऐसा नहीं होगा, जो उसके सम इस बात में निरुत्साह करे या उसे अव्य बना दे। उससे स्त्री-पुरुषों के चित्त पर जो एवं हितकर प्रभाव पड़ेगा, उसकी उपेक्षा जा सकती। एक तो उससे लड़के-लड़कियां को ठीक-ठीक तरह समझ सकेंगे, और दूसरे आचार-व्यवहार को अधिक शुद्ध और देगी। बालक-बालिकाओं के दिल से अशु भाव हट कर उनमें अधिक कोमल, उदात्त औ भावों का संचार होगा। इस विषय में वायक के, जो एक विख्यात तत्वज्ञानी इतिहासकार बड़े मननीय हैं। वह लिखते हैं—"जिस विद्यालय में जाता हूँ, मैं बराबर इस बा ताछ करता हूँ। और प्रत्येक स्थान पर मु दिलाया गया है कि लड़के और लड़कि साथ ही बैठा कर पढ़ाने से लड़कों का आ शिष्ट हो जाता है और लड़कियों की प्रति है। दोनों को आत्म-संयम की आदत और पढ़ाई में आनन्द आता है।"

आर्थिक दृष्टि से भी वह फ़ायदेमन्द तो है ही। ख़र्चा बहुत कम हो जायगा। स्त्री-शिक्षिकायें निःसंदेह छोटी तनख़्वाहों पर मिल सकेंगी। ज्यों-ज्यों स्त्री-शिक्षिकाओं की माँग बढ़ेगी त्यों-त्यों उससे पढ़ी-लिखी विधवाओं या अन्य रीति से असहाय बनी हुई स्त्रियों को बहुत लाभ होगा। सहशिक्षा उनके समाज-सेवा-विषयक भावों को जगा देगी। उनके हृदय में आनन्द होगा और आत्मा को सान्त्वना मिलेगी। और भी कई प्रकार से सामाजिक प्रगति में उनसे बड़ी सहायता मिलेगी। उनके आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र हो जाने के कारण समाज का बोझा भी हलका हो जायगा।

गोविन्द बलवन्त माकोड़े

पढ़ो कम, गुनो ज्यादा

(१)

'बेटा, तेरी हज़ार बरस की उमर हो!'

'बड़ी अच्छी लड़की है, माँ, तू देख कर खुश होगी।'

'आख़िर वक़्त में यही इच्छा थी कि तेरी बहू को देखती जाती।'

'इसी महीने में ब्याह पक्का हो जायगा। फिर तुझे इतनी मेहनत न करनी पड़ेगी मां! हम दोनों जने खूब तेरी सेवा करेंगे।'

'सेवा! ना बेटा! इस बुढ़ौती बेर मैं तुमसे सेवा लूंगी! मेरी ही सेवा करने की साध पूरी नहीं हुई।'

'तेरी रोटियां तो बड़ी स्वाद लगती हैं, मां, पर अब चौका-चूलहा हम तुझे न करने देंगे।'

'लड़की पढ़ी-लिखी होगी?'

'हाँ, खूब पढ़ी-लिखी है। कन्या-महाविद्यालय के सबसे ऊँचें दर्जे में पढ़ती है।'

'आजकल की लड़कियां पढ़ती-लिखती बहुत हैं। जाने पढ़ने में उनका जी कैसे लगता है! तुम्हारे लाला ने बहुत कहा-सुना, पर मैं तो पहली किताब से आगे न पढ़ सकी। घर-गृहस्थी के काम से ही फ़ुरसत नहीं मिलती। हां, बेटा, यह ब्याह ठीक किसने किया?'

'हमीं दोनों ने।'

मां ने आश्चर्य से पूछा—सो कैसे?

सुरेश बोला—उस दिन हाकी-मैच था। इलाहाबाद से एक ज़बर्दस्त टीम आई थी। हम लोग हार चुके थे, मगर आख़ीर वक़्त हम लोग जी तोड़ कर खेले और एक गोल से उसे हरा दिया। शहर के लोग मारे खुशी के उछल पड़े। मुझे तो गोद में उठा कर तोहफ़े की तरह इधर-उधर लिये-लिये फिरे।

माँ ने कहा—हां, उस दिन तूने खेल का ज़िक्र किया था।

सुरेश—मैच देखने के लिए कुछ स्त्रियां भी आई थीं। उनमें से एक लड़की ने मेरे पास आकर कहा—'कैप्टन साहब, आपकी इस विजय पर नगर की महिलायें आपको बधाई देती हैं।' यह कह कर उसने गुलाब का फूल और रेशमी रुमाल मुझे दिया। रुमाल के एक कोने पर लिखा हुआ था—'करुणाकुमारी'। यही करुणा तुम्हारी बहू है।

माँ ने कहा—अच्छा; तो तू अपनी बहू को देख भी चुका है।

सुरेश—देखा भी है और बातें भी की हैं।

माँ ने कहा—भैया, आजकल के छोकरे-छोकरियाँ जो न करें सो थोड़ा है!

(२)

सुरेश और करुणा का ब्याह हो गया। नये-नये विवाह के नये-नये दिन नये-नये आनन्द का उपहार लेकर उपस्थित होने लगे। सुरेश ने देखा, संसार कितना सुंदर है! इसकी सभी चीज़ें प्यार करने लायक़

हैं। न जाने दुनिया ने अब तक अपने इतने बड़े आनन्द-भण्डार को कहाँ छिपा रक्खा था?

प्रेम-सागर उर्मिल हो रहा था। प्रेम की एक लहर समाप्त भी न हो पाती थी कि दूसरी लहर लहराती हुई दिखाई देती थी। जितना ही अन्दर घुसो उतना ही रस का स्रोत उमड़ता आता था। प्रेम की भूख जैसे कभी बुझेगी ही नहीं। पर यह पंचम की तान थी, गायक का गला कब तक साथ देता? बे-हिसाब अन्धाधुन्ध ख़र्च दीवाला निकाले बिना नहीं रहता।

सुरेश के लिए सारा संसार 'करुणा'-मय बन रहा था और करुणा 'सुरेश-दीवानी' हो रही थी। सुरेश जब तक दफ़्तर से न लौटता, करुणा छटपटाती रहती। शाम के वक़्त की प्रतीक्षा कुछ देखने ही लायक़ थी। क़ान कितने सतर्क रहते! ज़रा-सी आहट हुई और वे दौड़े! दिल तो उछल कर पहले ही से दर्वाज़े के पास खड़ा हो जाता। समय से पूर्व दफ़्तर से लौटने के लिए भांति-भांति के बहानों का आविष्कार करने के लिए सुरेश को तो एक पदक दिया जा सकता है!

एक दिन करुणा पलङ्ग पर लेटी हुई किताब पढ़ रही थी। सुरेश ने चुपके से आकर उसकी आँखें मींच लीं।

करुणा ने पूछा—आज तुम इतनी जल्दी कैसे आ गये?

सुरेश बोला—आज तुम्हारे लिए आया हूँ।

करुणा—और रोज़ किसके लिए आते थे?

सुरेश—रोज़ तो मैं अपने घर आता था अपनी प्यारी बीबी से मिलने के लिए। आज मैं आया हूँ एक आसामी को पकड़ाने के लिए।

करुणा—वह आसामी कौन है?

सुरेश—तुम।

करुणा—मैं? क्यों मैंने क्या अपराध किया है?

सुरेश—तुमने ख़ून किया है।

करुणा—किसका? यह तुम कैसी हँसी रहे हो?

सुरेश—हँसी नहीं, तुम्हें फाँसी दी जाय

करुणा ने ठुनक कर कहा—हाँ, अब मुझे न दोगे, तो और क्या करोगे?

सुरेश—दोष तुम्हारा ही है। मैं क्या क

करुणा—मेरा क्या दोष है?

सुरेश—तुमने तो मोहनी डाल कर जैसे मति ही काट दी है!

करुणा—साफ़ क्यों नहीं कहते, आख़िर क्या हुई?

सुरेश—बात क्या बताऊँ? आज दफ़्तर निब लगाया था। उसे साफ़ करने के लिए जाने कितनी बार लिखा 'करुणाकुमारी', 'करुणा उसके बाद मैंने जो मिसल तैयार की, उसमें अ राधी के नाम के स्थान पर मैंने लिख दिया—' कुमारी'। साहब यह देख कर बहुत बिगड़े। हँसा, पर मुझे बचाने के लिए बोला—'क्यों सिर-दर्द अभी बन्द नहीं हुआ?' मैंने कहा— बताऊँ, आज तबियत बड़ी बेचैन रही।' साहब करके मुझे छुट्टी दे दी और मैं हँसता हुआ यहाँ पास चला आया।

(३)

वह प्रेम था या मोह? ख़ैर, कुछ भी कहो नशा पैदा करने वाली दवा ख़तम हो गई, नीचे तलछट रह गई। दरिया का चढ़ा हुआ पानी गया। किनारे पर कीचड़ की कोई कमी न थी

पहले यह बात थी कि बात-बात पर हँसी थी। अब ठीक वैसी ही बात नहीं रही। पहले बात में ख़ूबी नज़र आती थी, अब उसी बा केवल अर्थ समझा जाता है। पहले बेचारे बा

जाने कितनी बार करुणा के मुख की तुलना में ज्जित और अपमानित होकर लौटना पड़ा था, पर उस प्यारे मुखड़े की जगह एक अच्छा सा तान का मुँह भर रह गया है। स्वर्ग की देवी ने ार की साधारण स्त्री का रूप धारण कर लिया।

सुरेश की माँ के लिए तो वे दोनों राजा-रानी वह दिन-रात अपने मुन्नू और मुन्नू की बहू के व्यस्त रहती। थक जाने पर भी अपने बूढ़े हाड़ों आ गन भर में घसीटे लिये फिरती, कभी इस घर ी कभी उस घर में जाती। जब तक उसका बस ा, उसने कभी किसी को ज़रासी बात की भी ीफ़ न होने दी। पर आख़िरकार उसे चारपाई शरण लेनी ही पड़ी।

करुणा तो 'पंडिता' थी, वह कोई रसोईदारिन थी ही नहीं। सखी-सहेलियों में बैठ कर किस र हँस-हँसकर बातें की जाती हैं, यह वह जानती कालिदास और भवभूति, शेक्सपियर और शेली कुछ-कुछ तुलसीदास की आलोचना भी वह कर ती थी; पर भीड़ पड़ने पर घर को किस तरह ाला जाता है, यह उसे बिलकुल मालूम न था। सँवारकर अच्छी सी साड़ी को अच्छी तरह कर क़रीने के साथ सभा में बैठना तो वह जानती पर अपनेको भूलकर तनदेही के साथ रोगी की -सुश्रूषा करना बिलकुल दूसरी ही बात है। यह लिखी सभ्य स्त्रियों का काम नहीं है। इससे ी साड़ी में शिकनें पड़ जाने का डर है!

माँ के बीमार पड़ जाने पर करुणा चौके को अपने चरणों से कृतार्थ अवश्य करने लगी, मगर चौके स अजनवी व्यक्ति का कोई विशेष स्वागत नहीं ा। चूल्हा है कि जलता ही नहीं। करुणा जब झुँझला लकड़ियों को झकझोर कर फूँकती है तो ढेर का धुँआ उसकी आँखों में घुसकर आँसू निकाल लाता है। करुणा सचमुच दुखी हो उठती। वह कहती पक्वान्न होते तो अच्छे हैं, उन्हें बिलकुल भले आदमियों की तरह खाया जा सकता है, पर उन्हें पकाना तो एक दम 'फूहरपन' का काम है। सुरेश किसी तरह रोटियाँ बनाता, माँ को खिलाता, थाली परोस कर देवी जी को भेंट करता, और फिर खा कर दफ़्तर जाता!

माँ जब सुरेश को रोटियाँ बनाते देखती, तो उससे रहा न जाता। लाख मना करने पर भी वह कढ़िलती हुई आ बैठती और सुरेश को खाना बनाने में मदद देती। सुरेश करुणा के सम्बन्ध में जब कुछ कहता तो, वह कहती—'बेटा, उसने यह काम सीखा ही नहीं। इसके लिए तुम उसे तंग न किया करो। मैं अब अच्छी हो गई हूँ। अब कुछ चिंता नहीं।'

ऐसे नितांत गद्य-मय समय को कुछ कविता-मय बनाने के लिए करुणा अपने ऊपर के कमरे में चली जाती और वहाँ सुगन्धित तेल के नये आये हुए पार्सल को खोलती होती अथवा कुर्सी पर बैठी कोई उपन्यास पढ़ती होती।

(४)

आज सुरेश किसी काम से बाहर चला गया। माँ तो बीमार थी ही। रसोई का काम करुणा को सम्हालना पड़ा। दस बजे के क़रीब जब सुरेश लौट कर आया, तो देखा कि अभी दाल ही नहीं गली है। बटलोई एकदम धुँआगई है। वह बिना खाये ही दफ़्तर चला गया।

लौटना भी उसका देर से हुआ। एक तो दिन भर का भूखा था, दूसरे काम करने के कारण, थक गया था। घर सुनसान था। दाल की बटलोई वैसी ही चूल्हे पर चढ़ी हुई थी। आवाज़ दी, पर किसीने कोई जवाब न दिया? घर में घुसकर देखा, माँ बुख़ार में बेहोश पड़ी है।

करुणा ऊपर के कमरे में थी। देखते ही बोली—तुम्हें तो दफ़्तर के काम से ही फ़ुरसत नहीं मिलती। मैं यहाँ दिन भर की भूखी हूँ। घर में कुछ खाने को नहीं था।

सुरेश—क्यों रोटी नहीं बनाई ?

करुणा—रोटी बने तब न ?

सुरेश—तब तो फिर यह भूखे रहने ही के ढंग हैं।

करुणा—तुम भूखे रहो तो रहो, मुझ से तो भूखे रहा नहीं जाता।

उसने एक रुपया मेज़ पर फेंककर कहा—जाओ, बाज़ार से पूरियाँ ले आओ।

सुरेश ने बिना कुछ कहे ही वह रुपया उठाकर जेब में रख लिया और नीचे माँ के कमरे में पहुँचा। माँ वैसी ही बेसुध पड़ी थी।

थोड़ी दूर पर एक हक़ीम जी रहते थे। वह दौड़कर उन्हें बुला लाया। उसके बाद बाज़ार से जाकर माँ के लिए दवा और करुणा के लिए पूरियाँ ख़रीद लाया। अपने लिए उसने रोटियाँ बनाईं। माँ ने आज कुछ नहीं खाया।

रात को सुरेश ने कहा—आख़िर ऐसे कितने दिन चलेगा ?

करुणा बोली—मैं भी यही कहना चाहती थी। मैंने जो इतना पढ़ा-लिखा है, वह रसोईदारिन बनने के लिए नहीं।

सुरेश—मगर रोटियाँ तो पढ़े-लिखे भी खाते ही हैं।

करुणा—इसके लिए एक ब्राह्मणी क्यों नहीं रख लेते ?

सुरेश—तुम्हारे कहने से कहारी तो मैंने रख ली। ब्राह्मणी भी तलाश की, पर कोई मिलती ही नहीं तो क्या करूँ ?

करुणा—मिलती क्यों नहीं ? रुपये की जगह दो रुपये दो तो जितनी चाहिए उतनी मिल जाँय।

सुरेश—इतने रुपये लाऊँ कहाँ से ? तुम जा हो कि मैं ग़रीब आदमी हूँ।

करुणा—जब ऐसे ग़रीब हो तो फिर क्यों किया था ?

सुरेश सुनकर सन्न रह गया। थोड़ी देर बोला—देखता हूँ, अब निभाव होना कठिन है

करुणा बोली—इसके लिए चिंता करने रूरत नहीं है। मैं सवेरा होते ही पिता के घर जाऊँगी;

आज चार दिन होने आये, पर करुणा की इस घर में दिखाई न पड़ी।

(५)

श्रीमती करुणाकुमारी स्थानीय कन्या-पा की मुख्य अध्यापिका हैं। जब से वह आई हैं पाठशाला ने बड़ी उन्नति की है। नगर भर योग्यता की धूम है।

लच्छी पाठशाला के चौकीदार की स्त्री है। वह किसी छोटे से गाँव की नीच जाति है। यह सब जानते हैं। तभी तो यह आश्च है कि पाठशाला की लड़कियाँ उससे इतना प्रे करती हैं!

करुणाकुमारी की योग्यता तो प्रसिद्ध है ही उनका अभिमान भी कुछ कम प्रसिद्ध इसका हाल पूछिए अध्यापिकाओं की सह तथा मिलने वालियों से। बेचारी लच्छी तो अवाक् रह गई, जब उसने करुणाकुमारी अपने द्वार पर खड़े देखा।

करुणा ने कहा—अरी लच्छी, लड़कि तेरे पास पानी पीने आती हैं, तब तू उन्हें खाया करती है ?

लच्छी—मैं बेपढ़ी भला क्या सिखाऊँ

कह देती हूँ कि माँ-बाप का कहा करो, रोज़ सवेरे उन्हें प्रणाम किया करो।

करुणा—कल तेरी एक शिकायत आई थी।

लच्छी—कौन बात की हज़ूर ?

करुणा—कल तू बाहर गई थी, तो रानीसाहबा यहाँ आई थीं; तुझे पूछ रही थीं।

लच्छी—मुझे क्यों पूछ रही थीं ?

करुणा—तूने राधा को कुछ सिखाया था ?

लच्छी—मैंने तो कोई ऐसी बात नहीं सिखाई।

करुणा—राधा बड़ी हठीली लड़की है, किसी का कहा नहीं मानती। कल जब पाठशाला से गई तो उसने माँ के पाँव छुए और कहा—'अब मैं तुमसे कभी न लड़ूंगी।' क्या तूनेही उसे यह सीख दी थी ?

लच्छी—कल वह आई तो मुझसे अपनी बहादुरी का बखान करने लगी। तब मैंने उसे समझाया कि माँ से लड़ने में बहादुरी नहीं, यह भली लड़कियों को शोभा नहीं देता। बड़े-बूढ़ों से तो नम कर चलने में ही बड़ाई है।

करुणा—रानीसाहबा तेरे लिए २० रुपये इनाम के दे गई हैं।

लच्छी—इसमें इनाम की कौन सी बात है ? आप उन्हें लौटा दें

करुणा—लौटाना अच्छा नहीं; बड़े लोग हैं, बुरा मान जायँगे।

लच्छी—तो लड़कियों को मिठाई बाँट दें। इससे लड़कियों को भी शिक्षा मिलेगी।

(६)

करुणा—लच्छी, मुझे तुझपर ईर्ष्या होती है !

लच्छी—क्यों मास्टरनीजी ?

करुणा—जहाँ जाती हूँ तेरी ही प्रशंसा सुनती हूँ।

लच्छी—मेरी प्रशंसा किस बात की ?

करुणा—यह मैं न बताऊँगी। अच्छा, यह कहो, तुम्हारा रामू कैसा है ?

लच्छी—मेरा महरा हीरा है, हज़ारों में एक है।

करुणा—रामू है तो अच्छा, सीधा और मिहनती आदमी। पर क्या तुमने उसमें कभी कोई दोष नहीं देखा ?

लच्छी—पहले तो उन्हें दारू पीने की और जुआ खेलने की लत थी।

करुणा—फिर कैसे छूटी ?

लच्छी—बड़ी मुश्किल से। मेरे मना करने पर एक बार उन्होंने मुझे मारा भी।

इसके बाद स्नेह और विनम्र अभिमान के साथ लच्छी ने कहा—यह देखो उनकी निशानी है।

करुणा—फिर भी तुमने उसे नहीं छोड़ा ?

लच्छी—राम-राम, भला अपने पति को कोई छोड़ती है? उस दिन से मैं उनकी सेवा-टहल और भी अधिक जी लगा के करने लगी। अब कभी महरा उस चोट को देख लेते तो लजा जाते हैं।

करुणा—अच्छा, यह तो कहो, क्या रामू भी तुम्हें प्यार करता है ?

लच्छी कुछ शर्मा गई। बोली—यह तो वही जानें। मैं तो यही जानती हूँ कि अपनी दासी को कौन नहीं चाहेगा ?

करुणा—मैंने सुना है, तुम रामू के पाँव का धोवन पीती हो; यह तो गन्दी आदत है।

लच्छी—हज़ूर यह चरनामृत का ही प्रताप है, जो मेरी बुद्धि ठीक-ठिकाने रहती है।

करुणा—पर आदमी के पैर का धोवन !

लच्छी—जब हम अपने हाथ से बनाये हुए देवता का चरनामृत पीते हैं, तो फिर भगवान् के बनाये पतिदेव का चरनामृत पीना क्या बुरा है? मेरे तो वही देवता, वही गुरु, वही सब कुछ हैं।

करुणा—हां, आदमी अच्छा हो तब तो सब ठीक है।

लच्छी—अच्छा तो अच्छा है ही; पर जिसे हम अपने हाथों अपने मन के अनुकूल बनाते हैं उसमें जो मामता होती है, उसे कौन पा सकता है?

करुणा—पर जो अपने अनुकूल न हो तो क्या करें?

लच्छी—पति को अपने अनुकूल बनाने का सबसे अच्छा तरीक़ा यह है कि हम अपनेको पति के मन के माफ़िक बनायें।

करुणा—बहन लच्छी, तुम पढ़ी-लिखी तो नहीं, फिर ये बातें कहाँ सीखीं?

लच्छी—मेरे गाँव में एक लालाइन थीं। उन्होंने मुझे यह ज्ञान की बातें बताईं। वह कहा करती थीं, 'पढ़ो कम, गुनो ज्यादा।'

करुणा—इसका क्या मतलब?

लच्छी—वह कहती थीं कि यों तो पढ़ने और सीखने को दुनिया भर है; पर जो सीखने लायक़ बातें हैं, वे बहुत अधिक नहीं हैं।

करुणा—हां, पर गुनने से क्या मतलब?

लच्छी—गुनने से यही मतलब है कि हम जो कुछ पढ़ें उसे अपने घट में उतार लें, उससे अपने अन्तर को रङ्ग लें, उसे हम अपने जीवन का गुण बना लें।

करुणा—हूँ!

लच्छी—वह तो कहती थीं कि गुने बिना जो अधिक पढ़ता है उसे हानि होती है।

करुणा—सो कैसे?

लच्छी—जो भोजन पच कर, रस बन कर, अङ्ग में नहीं समा जाता वह विकार पैदा करता है। इसी तरह जो विद्या पढ़ी तो गई, पर गुनी नहीं, वह फूट निकलती है।

करुणा—हूँ—हूँ।

लच्छी—गुनी हुई विद्या से ज्ञान पैदा होता कच्ची विद्या से अभिमान।

करुणा—लच्छी, लच्छी, तुम नौकरानी मेरी गुरुआनी हो। तुमने आज मेरी आंखें खोल

लच्छी—क्यों, क्या हुआ?

करुणा—मैं अपनी विद्या के अभिमान में हो गई थी। अपने पति और अपनी सास को आई।

लच्छी—कब? कब?

करुणा—आज पाँच वर्ष होने आये।

लच्छी—नहीं, झूठ है, आप हँसी करती हैं

करुणा—नहीं, लच्छी, हँसी नहीं, मैं बड़ी हूँ। मैं दुनिया भर को सिखाती हूं, पर खुद बैठी हूँ।

लच्छी—तुम्हारे पति कहाँ रहते हैं?

करुणा—यहीं, इसी शहर में।

लच्छी—मास्टरनीजी, आपने बड़ी भूल आपने आज तक मुझसे कहा क्यों नहीं! आज ही उनका पता लगाती हूँ।

करुणा—नहीं, लच्छी, अब वह मेरा मुँह नहीं देखेंगे।

लच्छी—आप इसकी चिन्ता न करें। अपने मन को साफ़ कर लें।

करुणा ने बहुत कुछ सोच-विचार कर कह मुझ अभिमानिनी से तो यह बेपढ़ी लच्छी अच्छी मैं तो इसके पैरों की धूल के बराबर भी नहीं हूँ। झूठ नहीं कहते, लच्छी सचमुच सती है।

क्षेमानन्द 'रा

पुरुष ध्यान दें

आज हमारे देश में जो दुर्व्यहार पति अपनी पत्नियों के साथ करते हैं, उसका दृश्य बड़ा हृदय-विदारक है। इसका फल यह होता है कि राष्ट्र की भावी मातायें कुन्ती, सीता और लक्ष्मीबाई की तरह न हो कर मूर्ख और कुरूप सन्तान पैदा करती हैं। इस मूर्ख सन्तान से उत्पन्न सन्तान भी कुरूप और मूर्ख होती जाती है; और हम अपनी आँखों से देख रहे हैं कि इस कार्य-क्रम से हमारा भारत का विशाल राष्ट्र दासता की ओर बड़े वेग से प्रगतिशील हो रहा है।

देश की भावी उन्नति का मूल स्त्रियां ही हुआ करती हैं। एक लेखक ने लिखा है—Slaves suckle slaves; pure and enthusiastic women bring forth saints and heroes. All his tory atest the fact that great men had mothers. अर्थात्, दासदासी ही का पालन करता है। सच्चरित्र और उत्साही स्त्रियां शूर और धार्मिक संतान पैदा करती हैं। इतिहास कहता है कि बड़े-बड़े आदमियों की मातायें भी वैसी ही होती थीं। यदि उन्हीं माताओं को अनाड़ी रक्खें या उनको मानसिक, शारीरिक अथवा सामाजिक रूप से क़ैद कर दें, तो क्या उनकी सन्तान भी ग़ुलाम विचारों वाली न होगी?

लेकिन, हमारे यहाँ, आज क्या दशा है? पुरुष कितना ही दोष क्यों न करे, वह कभी दोषी नहीं कहलाता; जितना भी दोष है, वह सब, हमारे यहाँ स्त्रियों के ही हिस्से आया है—मानों वह स्त्रियों की जन्मसिद्ध विरासत ही न हो! वैसे, अनुभव बतलाता है कि, प्रत्येक अपराध में ज्यादा भाग पुरुषों का ही हुआ करता है। मैं यह नहीं कहता कि स्त्रियाँ सर्वथा निर्दोष ही होती हैं। लेकिन, यह तो मानना ही पड़ेगा कि, अधिकांश दशाओं में उसका कारण पुरुष ही हुआ करते हैं। समाचारपत्रों में हम सदैव पढ़ते हैं कि अमुक स्थान में अमुक गुण्डे ने बलात्कार किया, पर क्या कभी यह भी देखते हैं कि किसी स्त्री ने किसी पुरुष के साथ जबर्दस्ती की?

पति शराबी हैं। नशे में चूर बाहर से आते हैं। भोजन में थोड़ी सी देर है, फ़ौरन जूता उठाकर अपनी स्त्री पर टूट पड़ते हैं। यदि स्त्री बेचारी सहनशील हुई, तब तो कोई बात नहीं—सब कुछ सह लेगी; पर यदि श्रीमतीजी भी कुछ उग्रस्वभाव हुई, तो बस लीजिए, घर ही में देवासुर-संग्राम आरम्भ होजाता है। और यदि कहीं स्त्री से सहन भी न हुआ, और उसके शरीर में बल भी नहीं है, तो वह किसी न किसी तरह आत्मघात कर डालती है। हम प्रति दिन सुनते हैं कि अमुक स्त्री कुँए में गिर कर मर गई। सेठ देवीप्रसाद की लड़की ज़हर खाकर मर गई, हनुमान पण्डित की पतोहू ने रेल की लाइन पर अपने प्राणों की आहुति देदी। यह सब क्यों होता है? अधिकांश दशाओं में यह पता चलता है कि इन लोगों का दाम्पत्य-जीवन कलहपूर्ण था—शान्तिदेवी इनसे रुष्ट थी। क्यों? क्योंकि स्त्री ने जूते पर पालिश नहीं की। रसोई में देर होजाती है। भोजन अच्छा नहीं बनाती।

पड़ोस के पंडित रामदेव शुक्ल की स्त्री ने प्राण दे दिये। पता लगा कि उसकी यह इच्छा नहीं थी कि पंडितजी मुवक्किलों से घूस लिया करें। शुक्लजी सरिश्तेदार थे। घूस न लें, तो काम न चले। स्त्री ने कई बार समझाया। इसपर यह कहकर कि 'तुम मुझको उपदेश देने चली हो!' वह उसपर टूट पड़े—और फिर कई दिन तक उससे बोले तक नहीं। स्त्री ने दूसरा रास्ता न देख विष खाकर प्राण दे दिये।

पुलिस ने मुक़द्दमा चलाना चाहा। पर वहाँ भी 'घूस' की ही विजय रही।

उस दिन मेरी बहन कमला कन्या-पाठशाला में पढ़ने गई। कन्या-पाठशाला में प्रधानाध्यापिका अपनी पुत्री-सहित पढ़ाने का कार्य करती हैं। प्रधानध्यापिका की पुत्री विवाहिता है। उसने मेरी बहन से ज़हर माँगा; क्योंकि वह जानती थी कि मेरे यहाँ औषधियों के तौर पर कुछ ज़हर भी रहता है। कमला ने अपने भोलेपन से यह न जानकर कि विष क्या होगा, वादा कर लिया कि 'भैया जब कहीं जायँगे तो मैं उनकी ताली लेकर आलमारी खोलकर लादूंगी'। यह घटना श्रीमतीजी की माता को मालूम होगई। वह हाँफती हुई मेरे पास आई। और मेरे पैर पकड़ कर कहने लगीं कि 'ताली कहीं ऐसी जगह रख दीजिए कि कमला न पा सके'। कमला को समझा दिया। श्रीमतीजी की माता से कारण पूछने पर पता चला कि पति व्यभिचारी है और श्रीमतीजी से प्रेम नहीं करता। श्रीमतीजी एक पवित्र और सुयोग्य स्त्री है। यह बात भी नहीं कि उसके कुरूप होने के कारण पति महाशय ने उसका परित्याग किया हो।

तहसीलदार साहब विवाह होने के पहले से ही अनैसर्गिक व्यभिचारी हैं। फलतः पत्नी भी व्यभिचारिणी हैं। एक पुत्र और एक पुत्री वर्तमान है। पुत्री बाल-विधवा है। तहसीलदार के ही साथ रहती है। माता की देखा-देखी वह भी व्यभिचारिणी होगई है। और तारीफ़ यह कि पिता का माशूक़ पुत्री का आशिक़ है। पुत्री के कई बार गर्भ रह गया। लड़का कालेज में पढ़ता है। सदाचारी है। उससे न रहा गया। उसने तहसीलदार साहब के माशूक़ की हत्या करने की ठानी। पर कई कारणों से ऐसा कर न सका। तब अपने पिता के विरुद्ध कलक्टर के पास गुमनाम अर्ज़ी दी। कलक्टर साहब के यहाँ से तहसीलदार साहब के माशूक़ को तहसी की चहारदिवारी से बाहर निकल जाने की आ हुई। पर व्यावहारिक रूप में वह अब भी वहीं रहता और तहसीलदार धार्मिक इतने हैं कि बिना 'श्रीग शाय नमः' लिखे कोई काम ही आरम्भ नहीं कर

पण्डितजी कथा-वाचक हैं, पर हैं मांसाहा श्रीमती जी ने कभी मांसाहार किया ही नहीं। श पकाना नहीं आता—कभी नमक ज्यादा होजाता तो कभी माँस जल जाता है। फलतः रोज़ दुर्ग का प्रसाद श्रीमतीजी को मिला करता है। सभा पण्डितजी मांस का नाम सुनते ही कानों पर रख लेते हैं और राम-राम जपने लगते हैं!

हेडमास्टर साहब नपुंसक हैं। लुई कुहनी बाथ (स्नान) लेते और शिलाजीत का सेवन क करते थक गये—पर, सब व्यर्थ। तिसपर भी ज बूझकर शादी करली। सन्तान न होने से दुःखी और उसका रंज स्त्री की पीठ पर घूँसे जमा निकालते हैं!

पेश्कार साहब बड़े कमज़ोर कायस्थ हैं। कल साहब अभी फ़ौज से आये हैं। जब कोई बात सा की समझ में नहीं आती, तो फ़ौरन पेश्कार के पर एक चाँटा जमाते हैं। पेशकार साहब भी बहादुर हैं! दिन भर साहब के चांटे गिनते जा और सन्ध्या-समय उनका वर्ग निकाल कर अ स्त्री ही को साहब मानकर उससे बदला लेते

यही क्रम आज चारों तरफ़ दृष्टिगोचर हो है। समझ में नहीं आता, हम पुरुषों ने क्या रक्खा है। नहीं तो हमारी शरीर-रचना में कुछ थोड़ी भिन्नता है, समाज की सुव्यवस्था के किसी समय हमने-उन्होंने मिल-जुलकर अपनी-अ ज़िम्मेदारियों का विभाजन किया हुआ है; मगर भी हमारी-उनकी आत्मा तो एक ही न है? फिर

तो धर्म और नीति, नैतिकता और व्यावहारिकता ष्टि से भी उचित नहीं । न इससे समाज की स्था का ही कोई सम्बन्ध है । और अब तो शनी आ रही है । ज़माना दिन-दिन समानता पारतन्त्र्य-नाश का आ रहा है । यदि हम स्वयं लिए तैयार न भी हुए, तो काल और गति का इसके लिए अवश्य बाध्य करेगा । अतः क्या च्छा न होगा कि हमारे पुरुष-बन्धु, बुद्धिमानों ति, पहले से ही सचेत हो जायँ और बजाय अधिकारों के अपने कर्त्तव्यों के पालन पर ही ध्यान देने लगें ? ऐसा होने पर स्त्रियों को ही यं पुरुषों को भी शांति प्राप्त होगी और हमारा आज से कहीं अधिक सुव्यवस्थित एवं सुखी यगा ।

शिवप्रसादसिंह 'विश्वेन'

माता की याद

हृदय फटा जा रहा है ! आह !! आज मेरी बुरी हालत है !!! आज उस स्वर्गीय की याद हृदय में एक भयंकर उथल-पुथल, एक हलचल और एक ग़ज़ब की अशान्ति मचाये हुए है । स पूजनीय प्रेम-मूर्ति की एक-एक बात--उसका ा, पुचकारना, उसका स्नेह-सिक्त मीठी-मीठी डाट ा और उसकी वे अमृतोपम बातें---हृदय पर पत्थर क की नाईं एक-एक शब्द लिख लेनेवाली बातें याद आ ! 'जननी-जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' के एक-क्षर का मूल्य आज मुझे जितना अमूल्य, जितना मह- और जितना उत्कृष्ट मालूम हो रहा है, उतना पहले ोचा भी न था । सचमुच, माँ ! ऐ मेरे लिए सौ सौ ान देने वाली, मेरे सुख-शौक़ के लिए अपना सर्वस्व करने वाली माँ ! तुम्हारा स्थान मेरे ही लिए नहीं, में सब के लिए अत्यन्त आदरणीय, बहुत उच्च-सर्वोपरि है । पर कितने खेद और विषाद की बात है कि अपने जीवनकाल में तुमने अपने पद के इस महत्व की झलक अप्रत्यक्ष रूप से भी नहीं दिखला दी ! अगर तुम्हारा महत्व उस समय अब ही की नाईं महसूस किया होता, तो माँ ! एक बार तुम्हारे चरण-कमलों को अपने अकिंचन आँसुओं से पखार कर, हृदय-निकुंज की एक-एक अधखिली कली को निर्दयतापूर्वक पर अत्यन्त उल्लास के साथ तोड़ कर, उनपर चढ़ा देता और तुम्हारे प्रति अपने अटूट प्रेम के कमनीय कर्पूर की अनोखी आरती उतार, एक बार मन भर कर तुम्हारी पूजा--तुम्हारी उपासना--कर लेता और तब शायद इतना तृप्त हो गया होता कि आज ऐसी व्याकुलता, इतनी उद्विग्नता और इतना शोक न होता ! पर उस समय तुम्हें अपने 'लल्लू' के सामने अपने महत्व की आभा दिखाने की फुर्सत कहाँ थी ? उस समय उसके लिए अच्छे खाने-पहनने और उसे इस संसार में एक आदर्श मनुष्य बनाने के सिवा तुमने और कुछ सोचा ही कब था ? और अगर सोच कर अपने मातृत्व के महत्व को जतलातीं ही, तो मैं इसपर कैसे विश्वास करूँ कि उस समय दरअस्ल में तुम्हारी महत्ता को महसूस कर ही लेता ? उस समय तो मैं शायद उसपर ध्यान भी न देता । उस समय मुझे ऐसी बातों पर ध्यान देने की फ़ुर्सत और सुध भी कहाँ थी ? तब तो मेरा सारा समय तुम्हारी उपदेशमय विनोद की बातें सुनने और अठखेलियाँ करके तथा घूम-फिर कर घर में आ तुम्हें बार-बार तंग करने ही में बीत जाता था ! माँ, ऐ मेरी स्वर्गीय माँ, इस समय तुम्हारी वे सारी स्मृतियाँ मेरे हृदय को खल रही हैं । क्या तुम नहीं जानती थीं कि तुम मुझे एक दिन छोड़कर चली जाओगी, और उस समय मैं तड़पता रह जाऊँगा ? फिर तुमने मुझे इतना अधिक प्यार ही क्यों किया ? अपने प्रेम-बन्धन में इतनी दृढ़ता के साथ, न मालूम कैसे अनोखे लोहे की इतनी मज़बूत ज़ंजीर में, क्यों बाँध गईं ? और अगर ऐसा ही करना था, तो जिस प्रकार देश की बलिवेदी पर हँसते हँसते क़ुर्बान होने, परोपकारी कार्यों के लिए अपना सर्वस्व देने, उसमें आने वाली अनेक आपत्तियों को सहने और धर्म, आत्म-गौरव की रक्षा के लिए अविचल दृढ़ता दिखाने का उपदेश देकर, अपने बड़े

के हृदय को कुछ हद तक दृढ़ बना गईं, उसी प्रकार अपने वियोग की ऐसी व्यथा को सहने और शान्ति के साथ सहने की ओर एक बार इशारा तक क्यों न किया ? जिस प्रकार मुझे अनेक अच्छी-अच्छी चीज़ें खिलाने, सुन्दर-सुन्दर कपड़े पहनाने और चरित्र-निर्माण-सम्बन्धी अनेक आदर्श बातें बताने में तुम्हें सुख मिलता था, क्या अपने जाने—और सदा के लिए जाने के बाद मुझे इस प्रकार तड़पाने में भी तुम्हें कुछ वैसा ही सुख मिलने वाला था ? अगर ऐसी बात है और दरअस्ल तुम्हें इस प्रकार कुछ सुख मिला हो, या मिल रहा हो, तब तो मुझे बहुत संतोष है ! पर मैं कैसे विश्वास करूँ कि अपने जीवन-काल में जो अपने 'राजू' के एक काँटा चुभने पर भी अत्यन्त कातर और विह्वल हो जाती थी, जिसे अपने 'ललू' का एक क्षण के लिए भी अपनेसे अलग होना नागवार गुज़रता था, वह अपने जाने के बाद——जब कि 'राजू' को उसी स्नेह और दुलार के साथ कोई सान्त्वना देने वाला भी न होगा——उसका ऐसा तड़पना पसन्द कर सकती होगी ?

शुरू से ही ब्रह्मचर्य की महत्ता बतला, ब्रह्मचर्य-मय जीवन बिताने के अनुकूल ही खाना-पीना और परिस्थितियाँ रखकर भी दो वर्ष पहले क्या तुमने इसीलिए मुझे गृहस्थ बना दिया था कि तुम्हारे प्रति मेरा प्रेम विभक्त हो जाय, अथवा तुम्हारे न रहने पर तुम्हारी प्यारी 'बहू' मुझे उत्साही, प्रसन्न और तृप्त रख सके, जिस प्रकार तुम रखती थीं ? सच कहता हूँ, और एक-एक अक्षर सत्य कहता हूँ, ऐ स्वर्ग से मेरे अन्तस्थल को देखने वाली माँ, मैं आज २५ वर्ष का होकर भी तुम्हारे सामने वही १० वर्ष का अबोध बालक था और हूँ; और, तुम्हारे प्रति मेरी जो अपार श्रद्धा, जो अलौकिक प्रेम और जो अनोखा भाव हृदय में जम गया था, विवाह के बाद भी उसमें रत्ती भर की भी कमी न हुई थी। पत्नी बहुत प्यार करती है, दुःख और आपत्ति में बहुत भारी सहारा है, उसका प्रेम और श्रद्धा मेरे लिए एक अनुपम वस्तु है; पर तो भी, आज मैं तुम्हें यह कैसे बतलाऊँ कि पत्नी और माता के प्रेम की तुलना नहीं हो सकती——क़तई नहीं हो सकती ? मातृत्व के अभाव की पूर्ति पत्नी के द्वारा कदापि नहीं हो सकती। दोनों दो विभिन्न वस्तुयें हैं और अपने-अपने स्थान पर अपना अलग अलग महत्व रखती हैं। किन्तु माँ क्या तुम
यह नहीं समझती थीं ? ख़ूब समझती थीं और मु
ज़्यादा समझती थीं। फिर भी मेरी इस वेदना-म
लिए तुम क्यों न कुछ कर गईं ?

अगर तुम समझो कि 'मुन्नी' और पिताजी
छोड़ गई हो और वे मेरे लिए बड़े सहारे और बहु
तो माँ, मैं आज तुम्हें यह कैसे बतलाऊँ कि वे मे
धधकती हुई ज्वाला को शान्त नहीं कर सकते-
कर सकते ? मुन्नी ? आह ! उस नन्हीं-सी बच्ची
वह कोमल, स्निग्ध, कमल की नाईं उत्फुल्ल दम
प्रसन्न मुख-मण्डल, और कहाँ आज उसका मुरझ
पड़ा हुआ, यह अवसन्न बदन ! ! ओह ! उसकी
बिलखना और समय-समय पर 'माँ माँ' शब्दों
स्तल को जाकर चोट पहुँचाने वाली आज की
और भी मुझे व्याकुल किये देती है ! आज उस
तुम्हारी तरह गोद में बैठाकर पुचकारने वाली,
उसके गालों पर चपतें लगाकर हँसाने वाली,
सावित्री, दमयन्ती, गान्धारी आदि महिलाओं
एवं रोचक कहानियाँ सुना-सुना कर तृप्त करने वा
माँ ? अब तो उसे यह संसार निःसार और बि
जान पड़ता है! वह एक निरी अबोध बालिका है
कता से लाखों कोस दूर है, वह अनजान—विळकु
है; पर इतना होते हुए भी तुम्हारा वियोग वह
अनुभव ही नहीं कर रही, बल्कि वह इस कारण
है। जब मेरे हृदय और मन की यह हालत
अबोध बालिका के हृदय में और क्या क्या बीत
यह मैं बतला भी क्या सकता हूँ ? पिताजी ? भ
क्योंकर सान्त्वना दे सकेंगे ? उनकी गंभीरता, उ
दगी और उनके आचार-विचार को देख और
उनसे इतना भयभीत सा रहा, और तुम्हारे
इतना हिलने-मिलने का अवकाश भी न मि
उनसे अच्छी तरह कभी बात भी नहीं कर सका
एक आवश्यकताओं और एक एक इच्छित वस्तु
भलीभाँति जानती और समझती थीं; पिताजी
खटाने को कभी ज़रूरत ही न हुई। तब भी व
करते थे और अब, जब तुम नहीं हो, और भी

ता से मुझसे बातें करते और मुझे समझाते हैं। मैं भी चरणों में घंटों बैठकर उनकी बातों को सुनता और मन ान्त करने की चेष्टा करता हूँ । पर यहाँ भी पिता और के प्रेम का अन्तर आकर बीच में खड़ा हो जाता है न मालूम क्यों मुझे पिताजी के प्यार द्वारा वही आनन्द, सुख और वही तृप्ति नहीं प्राप्त करने देता, जो तुम्हारे ा प्यार से प्राप्त होती थी। पिताजी भी अब साधारण- ैसे प्रसन्न नहीं रहते और उनका मन वैसा उल्लसित ालूम होता, जैसा तुम्हारे रहते रहा करता था । आज बिना मेरा यह घर ही हीन हो गया है—उसकी रौनक़, सारी प्रभा मारी गई है ! क्या एक बार और इस घर में घी के चिराग़ न जलाओगी? माँ, क्या एक ौर आकर इस घर में आनन्द और प्रेम का— जो सब के राग, मोह और वासना से पूर्णतया रहित था—न बहाओगी ?

र्ष के सभी त्यौहार और उत्सव आयेंगे। विविध प्रकार स्वादु और बढ़िया वस्तुयें भी बनेंगी। पर उतनी रुचि, आग्रह और उतने प्रेम के साथ मेरे पास बैठकर ी और बार-बार कुछ और खा लेने का अनुरोध अब करेगा ? उत्सव और त्यौहारों के हफ़्तों बाद तक मेरे चुन चुन कर अच्छी-अच्छी मिठाइयाँ कौन रक्खेगा ? इतना बड़ा होकर बच्चों की नाईं तुम्हें तंग करते देख, ी 'बहू' को कोने से मेरे लड़कपन पर मुस्करा देने ाक़ा अब कौन देगा माँ ? तुम्हारे जीवन की क बातें अब याद आती हैं। घर के कमरे, आँगन र सभी तुम्हारे बिना शून्य—बिलकुल शून्य दीखते हैं। धा लड़का रोज़ 'माँजी-माँजी' कहते हुए तुम्हारी याद हुआ द्वार पर पहुँच जाता है और तुम्हारी दया, उदा- ार प्रेम को याद करके बार-बार आँसू बहाता है। दीन नाथों के लिए तुम्हारे हृदय में कितनी दया—कितनी ा थी माँ ! माँ, तुम साक्षात लक्ष्मी थीं—कम से कम र के लिए ज़रूर। तुम्हें, इस घर को इस प्रकार हीन वसन्न कर जाना कैसे अच्छा लगा ?

र से कुछ दिनों के लिए भी जब बाहर जाने लगता, अलग होता, तुम्हारी छाती फटने लगती थी। तुम्हारे नेत्रों से ममता और प्रेम की अमूल्य बूँदें छलक-छलक तुम्हारे मुख-मंडल को भिगोने लगती थीं। तुम उद्विग्न हो जाती थीं। तुम्हारी हालत देख मुझ दुर्बलात्मा की जो हालत होती, तुम्हें अच्छी तरह मालूम था। तुम्हारे आँसुओं को देख मेरा चित्त अस्थिर हो जाता, हृदय में एकदम हलचल मच जाती, और मैं हज़ार कोशिश करने पर भी अपनेको कभी न रोक पाता—रो देता था ! तुम्हें मेरा कुछ दिनों के लिए भी अलग होना इतना अखरता था; पर अब सदा के लिए तुम मुझे छोड़कर चली गईं, फिर भी यह वियोग तुम्हें कैसे सह्य हुआ—कैसे इस कठिनता को तुम सम्हाल सकीं, मेरी अत्यंत कोमल हृदय वाली माँ ?

तुम चली गईं और सदा के लिए चली गईं। हाय ! अब तुम्हारी उस दिव्य, सौम्य और पवित्रता की साक्षात् मूर्ति का दर्शन न होगा ! माँ, इस समय मैं क्या कहूँ, क्या सोचूँ और क्या गुनूँ ? तुम अगर एक बार फिर लौटकर अपने 'लल्लू' को पुचकार नहीं सकतीं, अगर एक बार और उसे बड़े प्रेम से अपने पास बिठाकर अपने हाथों बनाये सुंदर और सुस्वादु पदार्थ खिला नहीं सकतीं, अगर अपने स्नेह के रंग में सराबोर आँचल से अपने बच्चे का मुख एक बार और पोंछ नहीं सकतीं, अगर एक बार और मुझे अपनी मीठी डांट नहीं बतला सकतीं, और अगर एक बार धर्म-सेवा-देश की भक्ति से परिपूर्ण अपनी विमल वाणी सुना नहीं जा सकतीं, तो इतना तो कर सकती हो कि वहीं से—स्वर्ग से अपने 'लल्लू' को इतना आशीर्वाद दे दो, ताकि वह तुम्हारे बताये हुए सुन्दर पथ का दृढ़ अनुगामी हो, वह अपनी मातृभूमि, धर्म-रक्षा और परोपकार के लिए अपना सर्वस्व अर्पण करने में अपना सौभाग्य माने, और उसमें कर्त्तव्य-परायणता, निर्भीकता, सत्यनिष्ठा, सहिष्णुता, वीरता और धीरता कूट-कूट कर भर जाय, जिससे वह लाखों विपत्ति पड़ने पर भी अपने कर्त्तव्य-पथ से विचलित न हो ! माँ, मेरी यह प्रार्थना स्वीकार करना और अवश्य स्वीकार करना ! मैं यह भी जानता हूँ कि मुझे इन बातों के लिए आरज़ू करने की ज़रूरत नहीं, क्योंकि मेरे कर्त्तव्य-भ्रष्ट होने और तुम्हारे दूध की लाज रक्षित रखने की मुझसे कहीं अधिक चिन्ता तुम्हें स्वयं थी और स्वर्ग में भी होगी। पर, क्या करूँ माँ, मैं तो अभी निरा

बच्चा, वही तुम्हारा दूधमुँहा अबोध बच्चा ही तो हूँ । इसी लिए उस अत्यन्त विषाद की घड़ी में ये शब्द निकल गये हैं। इसके लिए क्षमा करना ।

एक बात और । माँ ! तुम अपने गाँव के दूसरे लड़के-लड़कियों को भी कितना प्यार करती थीं और मेरे मित्रों को तो तुम मानों अपने उदर का पूत ही बना लेती थीं ! गाँव का कोई भी लड़का, मेरा कोई भी मित्र या सहपाठी, द्वार पर आ जाता, तो उसे बिना कुछ खिलाये घर से जाने ही नहीं देती थीं । उनसे उनके पढ़ने-लिखने की, स्वास्थ्य-शरीर की और अन्य अनेक मनोरंजक बातें करती थीं ! क्या मैं तुमसे यह भी प्रार्थना करने की धृष्ठता करूँ कि उनके लिए भी तुम भगवान् से इतनी विनय कर देना कि वे नवयुवक और नवयुवतियाँ अपने मानवोचित अधिकारों और कर्त्तव्यों को अच्छी तरह महसूस करें और उनके अनुसार आचरण करें। वे अपनी मातृभूमि की बलिवेदी पर अपनेको बलिदान करना सीखें । माँ, मातृभूमि को इस समय इसीकी सबसे बड़ी आवश्यकता है । यह बात मैंने तुम्हींसे सैकड़ों बार सुनी है और अनुभव भी कर रहा हूँ । और ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूँ कि भारत के प्रत्येक घर में तुम्हारे ही जैसी माताओं का आविर्भाव हो; तभी युधिष्ठिर और अर्जुन, राम और कृष्ण, हरिश्चन्द्र और दधीचि, शिवाजी और प्रताप, तिलक और गाँधी जन्मेंगे; और तभी इस अभागे देश का उद्धार भी होगा। तभी यहाँ के परिवारों में आनन्द के सोते बहेंगे और तभी गार्हस्थ्य जीवन स्वर्ग-तुल्य होगा । मैं तो तुम्हारी काया में जन्म ले कृत्य कृत्य हो गया, माँ !

देवव्रत शास्त्री

"मेरी माँ ने मुझपर नज़र रखके मुझे मेरे सहचरों के बुरे प्रभाव से बचाया है ।"

—स्व० दादाभाई नौरोजी

"मेरे सूक्ष्म विचारों का मूल मेरी जननी की प्रेमपूर्ण लोरियों में है ।"

—जॉन्सन

"एक आदर्श जननी सौ उस्तादों से भी श्रेष्ठ है ।"

—जार्ज हरबर्ट

स्व० राजकिशोरी मेहरो

राजकिशोरी मेहरोत्रा खत्री-जाति
सुयोग्य महिला थीं । सम्वत्
वि० में, फ़र्रुख़ाबाद ज़िले में, उनका
था और बाल्यकाल के १४ वर्ष फ़र्रुख़ाबा
व्यतीत हुए। कुमारी राजकिशोरी अपने
पड़ोसियों तथा अध्यापिकाओं की नज़र में
हार कन्या थीं; और, अपनी मृदुलता एवं
कारिता के कारण, सबकी प्यारी थीं ।

इनका विवाह, इनकी इच्छानुसार,
श्री परशुराम मेहरोत्रा के साथ सन् १९
हुआ था। विवाह के एक वर्ष पश्चात् तक
और संयम से रहती रहीं; क्योंकि पाणि-ग्रहण
इनके पति बी० ए० की परीक्षा देने वाले थे
प्रवेश के उपरान्त भी राजकिशोरी को
अवसर मिला, क्योंकि परशुरामजी फ़ौरन ही
और एम० ए० पढ़ने प्रयाग चल दिये ।
नहीं, पाँच मास पश्चात् हो वह असहयोग-
में कूद पड़े और कालेज छोड़ कर महात्मा
साथ भारत-भ्रमण करने लगे ।

दिसम्बर १९२० में राजकिशोरी नाग
में सम्मिलित हुईं और वहां उन्होंने महात्मा
सन्देश को अपने कानों सुना। तदनन्तर वह
हुई सत्याग्रह-आश्रम, साबरमती, गईं, जहां
दिन रहीं भी । वहां उन्होंने अपने जीवन
पहल अमीर घरानों की स्त्रियों को खद्दर
यमों का यथावत् पालन तथा अपने हाथ से
करते हुए देखा । अभिजातकुल में पली
खुशहाल घराने में ब्याही हुई और कोई
शायद सरल और सात्विक जीवन के पाठ
जल्दी न सीख सकती थी । पर इनके

ो मदद पहुँचाई और अनुभव ने इनका साथ । यही कारण है कि एक मास पश्चात् जब यह पुर लौटीं तब इनको खद्दर धारण करते असमंजस ुआ। कुछ आभूषण तो यह नागपुर में ही उतार दे आई थीं, शेष बांध कर रख दिये और आव-कता पड़ने पर एक दिन अपने जेठ के हवाले कर । कुछ बेल-फीते जला डाले, कुछ धोतियां बांट और कुछ साड़ियां ग़रीब कन्याओं के विवाह में लीं। सन् १९२१ में इनका खद्दर का व्यवहार रीक था, सन् १९२२ से क़रीब-क़रीब पूरा हो गया, तक कि प्रथम पुत्र को, जो संवत् १९७८ में , इन्होंने केवल खद्दर के वस्त्र पहनाये।

सौ० राजकिशोरी मेहरोत्रा

ऐसे वायुमंडल में जहाँ कपड़ों-गहनों से लदना ँ शोभा समझती हों, जहाँ पति को प्रतिवर्ष नये ूषण बनवाना पड़ते हों और जहाँ छत्र, पछेली, ेस, पारसी धोती पहने स्त्रियाँ गहना न पहनने स्त्रियों को तिरस्कार की दृष्टि से देखती हों, तथा जहाँ पर आपस में गहने-कपड़े का अधिक स्टाक रखने की स्पर्धा होती हो, वहाँ राजकिशोरी जैसी परिस्थिति में रहने वाली स्त्री को, जिनका पति रुपया कमाने के बजाय अवैतनिक सेवा कर रहा हो, कितना कठोर मानसिक संयम करना पड़ता है, इसका अनुमान नारी-स्वभाव से परिचय रखने वाले लोग सहज में कर सकेंगे। राजकिशोरी को पाणिग्रहण से मरण-पर्यंत इसी प्रकार का आत्म-शासन करना पड़ा। मगर श्रीमती कस्तूरबाई गाँधी, श्रीमती जानकीबाई बजाज तथा श्रीमती अनुसूया बहन सरीखी आदर्श महिलाओं के सात्विक जीवन को देख चुकने वाली "नन्हींबहू" (राजकिशोरी का ससुराल का नाम) भला मन में क्षोभ कैसे कर सकती थी ? इनके पति सन् १९२३ के मध्य तक प्रायः भ्रमण, सम्पादन और चर्खा-प्रचार में ही लगे रहे और यह घर में आश्रम के सिद्धान्तों का यथासंभव पालन तथा पति के कार्य में सुविधायें पैदा करती हुई शान्ति से रहती रहीं। आवश्यकता पड़ने पर कई बार उनके साथ भी गईं और सन् १९२२ ई० में तो उन दोनों को आनन्द-भवन (प्रयाग) में काफ़ी समय तक रहना भी पड़ा।

इसके बाद श्रीमती कमला नेहरू ने 'स्त्री-दर्पण' नामक मासिकपत्र का भार इनके कंधों पर डाला। 'स्त्री-दर्पण' को जीवित रखने तथा उसके द्वारा १४ वर्षों से होती आई स्त्री-समाज की सेवा को जारी रखने की लगन ने इनके जीवन के चार वर्ष लिये, विश्राम का अपहरण किया, स्वास्थ्य बिगाड़ा और रहा-सहा जेवर इत्यादि तक उसकी भेंट चढ़ गया। सन् १९२५ की कानपुर-कांग्रेस में यह स्वयंसेविका भी थी। 'स्त्रीदर्पण' की उचित व्यवस्था करके सन् १९२६ में बीमारी से तंग आकर, स्वास्थ्य-लाभ के लिए, मंसूरी गईं और वहां से सीधी साबरमती चली गईं। वहां तथा वर्धा में वह छः मास रहीं, तदनन्तर कानपुर आईं।

‘स्त्री-दर्पण की स्थिति को फिर सम्हाल कर आने पर जनवरी सन् १९२७ में अपने पिता के यहां गईं। कुछ दिनों बाद दिल्ली में असेम्बली देखने तथा कुंभ पर हरिद्वार, स्नान करने के बाद अपने विलायत से लौटे हुए बड़े भाई के पास मेरठ गईं। वहीं, दो मास ज्वर से पीड़ित रहने के बाद, हृदय की धड़कन बन्द हो जाने से उनका शरीरांत होगया।

उनके विचार तथा उनके जीवन की चंद फुटकर बातें उल्लेखनीय हैं—

(१) वह बाल-विधवा-विवाह के पक्ष में थीं और कहा करती थीं कि जो विधवायें संयम से न रह सकें उन्हें विवाह कर लेना चाहिए। छिपकर व्यभिचार करने से समाज की हानि अधिक होती है।

(२) परदे के विषय में उनकी धारणा यह थी कि स्त्री का चारित्र्य-बल ही स्त्री का सच्चा संरक्षक है। आजकल का परदा निरर्थक और स्वार्थपरता तथा अविश्वास का द्योतक है।

(३) कन्याओं के विवाह के पूर्व उनके माता-पिता को अपने ही सुभीते, मान-मर्यादा, बदनामी-नेकनामी अथवा शील-दबाव को न देखना चाहिए; उन्हें ब्याही जाने वाली कन्या की भी अभिरुचि का ध्यान रखना चाहिए।

(४) एक बार रोग-शय्या पर जब ताक़त के वास्ते अंडा उनके सामने लाया गया तब दृढ़तापूर्वक उन्होंने अपना संकल्प प्रकट किया कि प्राण बचाने के हेतु मैं अंडे का सेवन न करूँगी।

(५) उनका ख़याल यह था कि स्त्री के चरित्र के विषय में पुरुष ज़रूरत से ज्यादा सतर्क रहा करता है।

(६) वह कहा करती थीं कि बाज़ स्त्रियों में द्वेष, रोष और छल इतना अधिक होता है कि कभी-कभी भयंकर परिस्थितियां लाकर खड़ी कर देता है। स्त्रियों को अपना स्वाभाविक सौजन्य कभी चाहिए।

(७) भूगोल और भारतवर्ष का इतिहा अँग्रेज़ी की ए. बी. सी. डी. जान लेने से तर है।

(८) यदि हो सके तो संगीत का प्रत्येक महिला को थोड़ा-बहुत करना चाहिए

(९) आजकल की आपस की गृह-कलह मुख्यतः मिथ्याभास अथवा अनमे के कारण होती है। यदि दम्पती दोषों एक दूसरे के गुणों को अधिक पहचानने की करें तो पति-पत्नी के मानसिक धरातलों में भ रहते हुए भी शान्ति भंग होने की कम संभावना

जो हो, अब राजकिशोरी इस दुनिया हैं। अपने पति और दो अबोध बालकों व्याकुल छोड़कर किशोरावस्था में ही असार संसार को त्याग दिया। इसमें शक पति और बालकों के लिए ही नहीं बल्कि ख के लिए भी उनका यह असामयिक विछोह है। पर परमात्मा की करनी में किसका बस तो परमेश्वर से यही प्रार्थना है कि स्वर्गीय वह सद्गति दें, दुःखी परिवार को शान्ति खत्री जाति की इस कमी को शीघ्र पूर्ण करें

शंकरलाल

“मनुष्य का चरित्र उसकी रक्षा करने में एक सवार सेना से भी बढ़कर है।”

“सर्वश्रेष्ठ आदत यह है कि अच्छी आदत सीखने धान रहने की आदत डाली जाय।”

“मुझे प्रसन्नचित्त रहना पसन्द है; पर लाख आमदनी वाली जायदाद का मालिक बन कर भी उद पसन्द नहीं है।”

बाल-विवाह का धार्मिक स्वरूप

हिन्दू-समाज में बाल-विवाह प्रचलित है । समाज के हित-चिन्तक इस प्रथा से वाली बुराइयों की ओर दृष्टिपात कर इस प्रथा समाज से लुप्त करने की चेष्टा में हैं । किन्तु -समाज में रूढ़ीवाद की प्रबलता है । समाज वाद से जर्जरित हो चुका है । ऐसी बहुतसी त्य बातों को, जिनका धर्म से कोई सबन्ध ही नहीं, कता का जामा पहना कर अशिक्षित पुरुषों को पथ से विचालित करने में रूढ़ीवादी लोग बहुत हुए बढ़े हैं । किन्तु असत्य का अस्तित्व क्षणिक है, लिए यह अनिवार्य है कि क्रान्तिमय उपायों द्वारा का प्रकाश प्रकट हो और भूली हुई जनता सत्य हचाने । वर्तमान में इसी नियमानुसार हिन्दू- ज में क्रान्ति उत्पन्न हो चुकी है । समाज में र-कार्य की ओर जनता का दृष्टिकोण बदल गया रूढ़ीवादी समय की इस तीव्र गति को देखकर । गये हैं और रूढ़ियों से स्वाभाविक मोह होने ारण झूठ को सच करने में धन और समय की ादी कर रहे हैं । बाल-विवाह रूपी अनार्य प्रथा अत्यन्त प्रयत्न करने पर भी समाज से दूर न देखकर, लुप्त करने के लिए, कुछ समय पूर्व श्री लास सारडा ने एक क़ानून का मसविदा बड़ी -सभा में पेश किया है । अधिकांश हिन्दू-समाज सका समर्थन किया है । किन्तु रुढ़ी के गुलाम अपनेको धर्मध्वजी समझने वाले कुछ लोगों तो देश और समाज के काम में सदैव से विरोधी हैं, इस अनार्य प्रथा पर कुठाराघात होते देखकर र्म डूबा, धर्म डूबा" आदि चिल्लाना आरम्भ कर दिया है । किन्तु जब हम प्राचीन ग्रन्थों का अवलोकन करते हैं, और यह ढूँढते हैं कि बाल-विवाह जैसी अनार्य प्रथा को रोकने में धर्म में क्या बाधा पड़ती है, तब हमें निराश होना पड़ता है । हिन्दू-धर्म का गौरव ऐसी हीन प्रथाओं से नहीं है । हिन्दू-धर्म का गौरव तो इसकी नैतिकता, धार्मिकता की विशालता से ही हुआ है । जिस बाल-विवाह से नैतिकता नष्ट होती हो उसका हिन्दू-धर्म कभी समर्थन नहीं कर सकता है । हमने प्राचीन ग्रन्थावलोकन से विवाह-प्रणाली के सम्बन्ध में जो कुछ उदाहरण प्राप्त किये हैं उनसे स्पष्ट है कि हिन्दू-समाज में मुसलमानी समय के पूर्व इस बाल-विवाह रूपी अनार्य प्रथा का नामोनिशान भी नहीं था ।

हिन्दू-समाज में वर्णाश्रम-व्यवस्था प्रचलित है । यह वैदिक काल की प्रथा है । आश्रम-व्यवस्था चार भागों में विभक्त है । ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यस्त। ब्रह्मचर्य अवस्था का प्रमाण वैदिक और पौराणिक ग्रन्थों में पच्चीस वर्ष का मिलता है । कहीं-कहीं इससे भी ज्यादा अवस्था का प्रमाण प्राप्त होता है । पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन कर मनुष्य गृहस्थाश्रम में प्रवेश करता है । गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने का अर्थ ही स्त्री और पुरुष का विवाह-बन्धन में आबद्ध हो जाना है । अतः इससे निर्विवाद सिद्ध है कि वैदिक काल में ब्रह्मचर्य-व्रत के बाद अर्थात् पच्चीस वर्ष की उम्र हो जाने पर विवाह किया जाता था । महाभारत काल में भी प्रौढ़ावस्था में विवाह करने के ही प्रमाण मिलते हैं । महाभारत-काल में स्वयंबर की प्रथा थी । स्वयंबर की अवस्था प्रौढ़ थी । द्रौपदी का स्वयंबर के समय प्रौढ़ होना जाहिर है । अर्जुन ने जिस समय सुभद्रा का हरण किया, उस समय सुभद्रा की अवस्था भी प्रौढ़ थी । महाभारत-काल में तो विवाह होते ही पति-पत्नी-समागम की विधि प्रचलित

थी। इससे स्पष्ट है कि महाभारत-काल में विवाह की अवस्था प्रौढ़ ही थी।

महाभारत-काल के पश्चात् भी ईस्वी सन् ८०० तक प्रौढ़ावस्था में ही विवाह होने के प्रमाण मिलते हैं। हर्ष-चरित्र में बाण ने हर्ष की बहन के विवाह का वर्णन किया है। उसमें वर संध्या-समय बड़े सज-धज से वधू के घर आता है। दरबार में स्वागत होने पर मधुपर्क से उसकी पूजा होती है और विवाह-लग्न आते ही अग्नि के सन्मुख सप्तपदी की जाकर विवाह-कर्म सम्पन्न होता है। फिर भोजनादि होने के पश्चात् खास तौर पर सजाये हुए महल में पति-पत्नी का समागम होता है। सारांश यह है कि हर्ष की बहन राज्यश्री के विवाह तक जो प्रमाण मिलते हैं उनसे यही सिद्ध होता है कि प्राचीन हिन्दू-समाज में विवाह प्रौढ़ावस्था में ही होता था और बाल-विवाह का नामो-निशान भी न था।

जो लोग आजकल पण्डित काशीनाथ जी का श्लोक

> "अष्ट वर्षा भवेद् गौरी नव वर्षाच रोहिणी।
> दश वर्षा भवेत् कन्या तदूर्ध्वंच-रजस्वला॥"

आदि देकर बाल-विवाह की पुष्टि करते हैं, उन्हें सोचना चाहिए कि काशीनाथजी मुसलमानी ज़माने में हुए हैं; और मुसलमानों का उस समय स्त्री-समाज पर अत्याचार बहुत था। अतः यवन राज्य की कठोरता को देखकर उस समय यह नियम बनाना आवश्यक हुआ होगा। लेकिन, आज की अवस्था में यह वाञ्छनीय नहीं है। बहुतसे लोग स्मृतियों का भी सहारा लेते हैं। उन्हें भी समझ लेना चाहिए कि स्मृतियां सिर्फ़ देश और समाज का उस समय का क़ानून मात्र समझी जाती हैं। समय के अनुकूल वातावरण देखकर ही उस समय ऋषियों ने अनेक स्मृति-ग्रन्थ रचे हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि जैसा समय हो उसके अनुकूल ही स्मृति बनने की आवश्यकता है। भारत-काल में विवाह की अवस्था के लिए "
वार्षिकम्' प्रमाण आता है, तो मनुजी के
"त्रिंशद्वर्षो भवेत् कन्यां हृद्यां द्वादशवार्षिकम्' प्रमाण
है; अतः स्मृतियों का सहारा अनावश्यक है।

वर्तमान समय में समाजिक शृंखला छि
हो चुकी है। यवनों का सा अत्याचार भी स्त्री
पर इस समय नहीं है। ऐसी परिस्थिति में सा
शृंखला को सुसंगठित करने के लिए, और जो
पतन समाज में हो रहा है उसका पुनरुत्थान
लिए, बाल-विवाह जैसी अनार्य प्रथा का सदा
लुप्त हो जाना ही श्रेष्ठ है। कई सज्जन यह
कि सामाजिक काम राज्याधीन करने में हानि
है। वर्तमान में यह कई अंशों में ठीक भी है
जब अन्य उपायों से इस प्रथा का प्रतिकार
हुआ प्रतीत नहीं होता, तो मजबूरन राज्य
अवलम्बन भी करना पड़ता है। अनेक स
सभाओं और धार्मिक परिषदों ने उपाय किया
बनाये, लेकिन सब व्यर्थ गये। अतः जो भी
मिले उसीपर चलना श्रेयस्कर है।

हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि भगवा
अनार्य प्रथा को हिन्दू-समाज से लुप्त कर दे,
समाज को बल दे कि यह पुनः संगठित हो
की उन्नति करे।

मदनगोपाल

"मेरी समझ में, यह धर्म-सङ्कट नहीं है।...
श्लोक के अनेक अर्थ हो सकते हैं, और वे एक दूसरे
भी होते हैं।......फिर यह बात भी नहीं कि प्रत्येक
ही हाथ से लिखा गया हो। ...स्वेच्छाचार हर्गिज़
हो सकता।"

—महा

ब्रह्मदेश की स्त्रियां

किसी देश के रहन-सहन अथवा आचार-विचार से भली प्रकार परिचित होने लिए यह आवश्यक है कि उन लोगों के बीच कुछ मय तक रहा जाय । पाँच वर्ष ब्रह्मा में रहकर जो नुभव प्राप्त किया है, वही, मैं यहाँ प्रस्तुत करता हूँ ।

ब्रह्मी स्त्रियों को पुरुषों के समान पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है ही, साथ ही वे पैत्रिक संपत्ति में भी बरा-र की हिस्सेदार होती हैं । इस बात ने सोने पर हागे का काम किया है। एक कुमारी अथवा विधवा माता-पिता या पति का साया सिर से उठ जाने ग़ैरों के टुकड़ों का मुहताज होने की ज़रूरत नहीं ड़ती, बल्कि वह फ़ौरन् अपनी पैत्रिक संपत्ति से ोई छोटी-मोटी दूकान कर लेती है । सच तो यह कि वहाँ पर अधिकतर विवाहिता स्त्रियाँ भी अपने ति की रोटियों की मुहताज नहीं होतीं । कारण यह कि माता-पिता लड़कों की अपेक्षा लड़कियों से धिक प्यार करते हैं और उनको ही अपने बुढ़ापे सहारा समझा जाता है । इसीलिए लड़कियों की क्षा पर भी विशेष ध्यान दिया जाता है । उन्हें तो थोड़ा-बहुत लिखा-पढ़ाकर व्यवसाय का ज्ञान प्त करने के लिए किसी दूकान पर बैठा दिया जाता , अथवा किसी सिगार-फ़ैक्टरी में काम सिखाने के ाए छोड़ दिया जाता है । ब्रह्मी स्त्रियाँ साग-तरकारी चने के काम से लेकर जौहरी तक के काम को पूरी ोग्यता से करती हैं । आप किसी भी शहर के म्यू-निसिपल बाज़ार में जाकर देखें, ९० फ़ी सदी दूकान-ार स्त्रियाँ ही नज़र आयेंगी । ब्रह्मी स्त्रियों में से ायद एक भी स्त्री ऐसी न निकलेगी, जो ब्रह्मी भाषा ख-पढ़ न सकती हो ।

ब्रह्मी स्त्रियाँ अक़सर शौक़ीन और सफ़ाई-पसन्द होती हैं । मैंने तैल के कुँओं पर कुली का काम करने वाली स्त्रियों को देखा है। वे भी काम पर जाते समय साफ़ कपड़े पहन कर जाती हैं और एक मैलख़ोर पोशाक तौलिये में लपेट कर अपने साथ ले जाती हैं। काम शुरू करने से पहले साफ़ कपड़े उतार कर रख देती हैं और मैले कपड़े पहन कर दिन भर काम करती हैं । शाम को, काम समाप्त होने पर, वहीं स्नानादि करके, साफ़ कपड़े पहन कर हँसती-खेलती घर को वापस आ जाती हैं ।

उच्च शिक्षा उनमें अभी नहीं के बराबर है । जो अँग्रेज़ी ढँग की शिक्षा प्राप्त कर भी लेती हैं वे फिर दूकानदारी और हाथ का काम करना पसन्द नहीं करतीं; बल्कि अधिकतर नौकरी की तरफ़ झुक जाती हैं ।

जहाँ स्वतंत्रता ने उन्हें पुरुषों से भी अधिक उद्योगी, साहसी और मिहनती बनाया है वहाँ उसके अनुचित इस्तैमाल ने उनको फ़जूल-ख़र्च, विलासिता-प्रिय, व्यभिचारी और बेवफ़ा भी बना दिया है । विवाह-संबंध उनके यहाँ कोई धार्मिक वस्तु नहीं है; वह जितनी आसानी से हो सकता है, उतनी ही आसानी से तोड़ा जा सकता है । लड़कियाँ अपना वर खुद तलाश करती हैं । यदि माता-पिता स्वीकृति दें तो ठीक, न दें तो न सही; परन्तु वे विवाह करती उसीसे हैं, जिससे उनका दिल चाहे । विवाह हो चुकने के बाद यह ज़रूरी नहीं कि वे अपने पति के घर चली जायँ; बल्कि जिन स्त्रियों के पास कुछ संपत्ति हो और पतिदेव कुछ ग़रीब हों, तो अक्सर पति कोही पत्नी के घर बसना पड़ता है । ऐसी दशा में पति की ख़ैर इसीमें होती है कि वह एक 'राजा बेटे' (Good boy) की तरह पत्नी के हरएक हुक्म को स्वीकार करता रहे । इस प्रकार की एक सच्ची घटना सुनिए । एक युवती दूकानदारिन ने एक युवक से विवाह किया, जिसकी माता की भी कुछ दूकानें थीं और

उनका किराया आता था। स्त्री को पति के घर पर रहना स्वीकार न था, और युवक की माता यह चाहती न थी कि उसका पुत्र घर छोड़कर अपनी स्त्री के यहाँ बसे। तब स्त्री ने यह ढंग निकाला कि दिन भर तो वह दूकान करती और शाम को घर लौटते समय पति के घर के सामने होकर निकलती। पति पहले से ही उसके इन्तज़ार में बैठे रहते। फिर पति को साथ लेकर वह घर आती, भोजन बनाती, स्वयं खाती, पति को खिलाती, और रात भर आराम करती। भोर होते ही पति अपने घर लौट आते और पत्नी अपनी दूकान पर चली जाती। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि ऐसी हालतों में पति अकसर अपनी स्त्रियों की ही कमाई खाते हैं और स्वयं काम-धन्धा बहुत कम करते हैं।

ब्रह्मी स्त्रियों में पति-भक्ति नहीं के ही बराबर होती है। ज़रा सा मत-भेद होने पर भी स्त्री पति को छोड़ने पर कटिबद्ध हो जाती है! जिस प्रकार विवाह की कोई ख़ास रस्म नहीं है, उसी तरह, तलाक के लिए भी कोई ख़ास रस्म नहीं। हाँ, स्त्रियाँ खर्चे का दावा (यदि वे स्वयं दोषी न हों) अदालत में कर सकती हैं। मगर वे ऐसा करती नहीं; क्योंकि वे एक पुरुष को छोड़कर दूसरा पुरुष कर लेती हैं, और इसलिए अदालत में जाने की नौबत ही नहीं आती। ऐसी स्त्रियों की संख्या कुछ कम नहीं; जो अपने जीवन-काल में दो या तीन बार पति-परिवर्तन न कर लेती हों। यों तो पुरुष किसी भी प्रदेश का हो, वे उससे विवाह-संबंध कर लेती हैं, परन्तु गोरी जाति के पुरुषों से विवाह करने में वे अपना बड़ा गौरव समझती हैं। विलासिता की तो वे ऐसी दासी हो गई हैं कि धन की कमी होने पर, कपड़े-गहने गिरवी रख देना तो एक ओर, कभी-कभी अपने सतीत्व को बेच डालने में भी वे संकोच नहीं करतीं!

ब्रह्मी स्त्रियों की इस शोचनीय दशा के दो
कारण मालूम होते हैं। एक तो ब्रह्मी फुंगी (
धर्माचार्य) हैं, जो स्वयं काफ़ी विलासी हैं और
स्त्री-पुरुषों के विलासी और अन्ध-विश्वासी बने
में ही अपनी चाँदी समझते हैं; दूसरा कारण है
का बढ़ता हुआ अश्लील साहित्य और गंदी सि
फ़िल्में। ये सब अवगुण जो मैंने लिखे हैं
करके उन्हीं स्त्रियों में पाये जाते हैं, जो शहर या
की रहने वाली हैं और जहाँ वर्तमान सभ्य
चरण-कमल पहुँच चुके हैं। रेल और जहा
पहुँच से इन छोटे छोटे ग्रामों में रहने वाली
स्त्रियाँ इन अवगुणों से मुक्त हैं। विलासिता
बेचारी जानती नहीं किस चिड़िया का नाम है
का कता हुआ मोटा खद्दर पहनती हैं, और रूखा
भोजन करके दिन भर खेत में काम करती हैं
भक्ति की भी उनमें कमी नहीं। परन्तु शोक!
संख्या प्रति दिन घटती ही जाती है। शहर
आबादी बढ़ती जाती है और गाँव उजड़ते जा
देश के नेता कौन्सिलों के चक्कर में पड़े हैं।
देश-हितैषी उत्तमा का प्रभाव क़रीब-क़रीब
चुका है। असहयोग के समय जो आशा की
दिखाई दी थी, वह लुप्त सी हो चुकी है।
शिक्षा-प्राप्त स्त्रियाँ सरकारी नौकरियों के गोर
में फँसती सी नज़र आ रही हैं। नौकरशा
जादू जैसा ब्रह्मा में चला है, शायद वैसा कहीं भ
चला। भारतीय बहनो! स्वतंत्रता के लिए युद्ध
और खूब ज़ोरों से करो। परन्तु, देखना, कहीं
पश्चिमी सभ्यता के चंगुल में न फँस जाना।
के अत्याचार से तो छुटकारा हो सकता है,
इससे नहीं। यदि इसके जादू-भरे असर से
चाहती हो, तो खद्दर के तावीज़ को धारण करो

—— शिवदेवसिंह

स्फुट प्रसंग

स्त्रियों का युग

मिस मेयो के देश की एक महिला क़रीब एक वर्ष से रत का निरीक्षण और अध्ययन कर रही हैं। भारत की र्तमान अवस्था का चित्र चित्रित करते हुए उन्होंने अपनी तचीत के सिलसिले में जो कहा, उसका सार इस कार है—

“दिल्ली की महिला-परिषद् के दृश्य को देख कर मुझे ी प्रसन्नता हुई। हम सुनते हैं कि भारत में एकता के थ कोई काम नहीं हो सकता। पर उस परिषद् को देख तो मुझे वर्णनातीत आनन्द हुआ। मालूम होता है भारत स्त्री-सुधार का आन्दोलन बहुत जड़ पकड़ गया है। देश भ्रमण करते हुए भी मुझे इस बात का काफ़ी प्रमाण मिल हा है। मैं देखती हूँ कि अब भारत के बहुतसे लोग इस त को अनुभव करने लग गये हैं कि देश का उद्धार स्त्रियों सुधार के बिना नहीं हो सकता। क्या शास्त्रों में वर्णित -युग के आगमन के ये स्पष्ट चिन्ह नहीं हैं। और यह परिषद् ल दो दिन का उत्सव होकर ही नहीं रहेगी, ऐसा मुझे श्वास है। परिषद् में ही शिक्षा के कोष के लिए तीस हज़ार ये का एकत्र हो जाना ऐसी-वैसी बात नहीं है। बाल-वाह को रोकने के लिए महारानी मण्डी का एक प्रस्ताव । इसी सम्बन्ध में वाइसराय से मिलने के लिए एक तिनिधि मण्डल भी गया है। वह असेम्बली के सभ्यों से मिला और उसने अपने इस कार्य में उनकी सहानुभूति प्राप्त की है। अब इस सम्बन्ध में जो समिति नियुक्त है उससे महारानी मण्डी काम ले रही हैं। और वह एक व्यापी आन्दोलन करने की तैयारी कर रही है। परिषद् दिये गये सुन्दर भाषणों को सुन कर तो मैं चकित हो । भारतीय महिलाओं का चरित्र, बुद्धि, उद्योगशीलता उच्च नीतिशीलता से मैं बड़ी प्रभावान्वित हुई हूँ। अब से भारी ज़रूरत है स्त्री शिक्षा के प्रचार की। इसके लिए देशव्यापी संगठन होना आवश्यक है। यह भारत की महत्वपूर्ण समस्या को हल कर देगा। मैं समझती हूँ, इस सम्बन्ध के अनेकों प्रश्नों से इस देश की महिलायें नावाक़िफ़ नहीं हैं।

“कई वर्षों तक विशाल जनता को ध्यान में रख कर उच्च शिक्षा के प्रश्न पर विचार करने की ज़रूरत नहीं है। अभी हाल सबसे भारी ज़रूरत तो प्राथमिक शिक्षा की है। और इस काम के लिए अध्यापिकायें तैयार करने के लिए एक बहुत भारी ट्रेनिंग स्कूल (अध्यापन-मन्दिर) चाहिए। मेरा ख़याल है इस आवश्यकता को देश की विदुषी महिलायें अनुभव भी करती हैं और उसे पूर्ण करने के उद्योग में लग जावेंगी। इस नवीन शिक्षा कोष का इससे बढ़ कर उपयोग और क्या हो सकता है? मैं आशा करती हूँ कि इस आन्दोलन में भाग लेने वाले और उसका संचालन करनेवाले व्यक्ति पश्चिम की स्त्री-शिक्षा की संस्थाओं और उनके कार्य का भी अध्ययन करेंगे। उनको बड़ी सावधानी के साथ यह काम करना चाहिए। इस काम में पश्चिम ने जो ग़लतियां की हैं उनसे लाभ उठा कर उनकी प्रगति को अवश्य अपना लेना चाहिए। आँखें मूँद कर पश्चिम का अनुकरण करते चले जाना बहुत बुरा है। और उतना ही बुरा है पश्चिम की बातों का अंधा विरोध भी। भारतवर्ष के विषय में यह एक बड़ी बुरी बात मैं देखती हूँ कि यहाँ के निवासी पश्चिमी जातियों के दुर्गुण तो ले लेते हैं; पर उन गुणों को ग्रहण नहीं करते, जो उन दुर्गुणों के होते हुए भी उन्हें जीवित रहने में सहायता करते हैं।”

अन्त में मिस मेयो की पुस्तक की निन्दा करते हुए श्रीमती पिम ने विश्वास दिलाया है कि “मिस मेयो उन लोगों में से है, जिसके लेखों को उच्चशिक्षित अमेरिकन बहुत कम पढ़ते हैं। मुझे आश्चर्य है कि इस देश के निवासियों ने उसपर इतना ध्यान ही कैसे दिया! वह तो एक ऐसी चीज़ थी, जिसे एक हँसी में उड़ा दिया जा सकता था।” श्रीमती पिम भी एक पुस्तक लिख रही हैं। लेकिन वह उनके निजी अनुभवों के रूप में प्रकट होगी। मैं अपने भारतीय मित्रों की बहुत ऋणी हूँ, मैं अब तक किसी ऐसे देश में नहीं गई, जिन्होंने एक विदेशी को इतनी आत्मीयता के साथ अपना लिया हो। मैं तो भारत को अपना स्वदेश बनाने की इच्छा रखती हूँ। क्योंकि मैं जानती हूँ कि मुझे यहां बड़ा सुख

मिल सकता है। मिस मेयो की पुस्तक मुझे दुःख दे रही है; उसका एक यह भी कारण है कि मैं जानती हूँ कि उसे भी इस देश में ऐसा ही सुख मिला था। और किसी देश का नमक खा करके बाहर फिर उसके निवासियों के बारे में झूठी-झूठी ऊट-पटांग बातें फैलाना तो अमेरिकन स्वभाव के विपरीत है।

किरीट

स्त्रियों का शासन ?

"यह एक ऐसा युग है, जिसमें एकाएक स्त्रियों की महत्ता बढ़ रही है। वर्तमान युग में स्त्रियों का उत्थान और आन्दोलन आरम्भ हो गया है। समग्र संसार और जीवन के समस्त कार्यों में स्त्रियों की हलचल दिखाई पड़ती है। 'समानता' प्राप्त करने के लिए वे यह सब कर रही हैं, यह कहना ठीक नहीं, वस्तुतः तो वे प्रभुता प्राप्त करने के लिए उद्योगशील हैं।" यह लिखते हुए जर्मनी का एक प्रसिद्ध लेखक और दार्शनिक काउण्ट हरमेन ए० केसरलिङ्ग लिखता है— "अमेरिका के लिए यह बात बिलकुल सच है। वहाँ पर स्त्रियाँ आरम्भ से ही बड़े-बड़े कार्य करती आई हैं। वहाँ कहने को तो पुरुष शासन करते हैं; पर, उनके पीछे वास्तविक शासन स्त्रियों के ही हाथ में है। स्त्रियाँ नियम बनाती हैं। वे नियम और बन्धन बहुत लगाती हैं। उन्होंने विवाह को सहयोग-संबंध समझ लिया है, जिसका कोई अर्थ ही नहीं है। स्त्रियों ने यह एक नई ही बात निकाली है। स्वतंत्रता की अपेक्षा वे अधिक रीति-रिवाज़ों के विवाह जारी कर रही हैं। इसका परिणाम यह होगा कि लोग जल्दी और प्रायः विवाह करेंगे। यदि पुरुषों ने नियम बनाये होते, तो वे सहयोग-संबंध के विवाह न करते। वे कहते—'पहले हम संसार का उपयोग कर लें, फिर विवाह करेंगे'।"

इसपर, 'श्रीकृष्ण-सन्देश' के अनुसार, न्यूयार्क (अमेरिका का 'ईवनिङ्ग पोस्ट' लिखता है—"हमारी इस प्रवृत्ति या रुचि का कारण यह है कि हमारा सामाजिक संघटन बिलकुल मातृत्व की मर्यादा पर स्थापित है। स्त्रियाँ हमपर शासन करती हैं। और, यह उनकी स्वाभाविक इच्छा है कि प्रत्येक कार्य नियम या क़ानून के द्वारा हो।" एक दूसरा अमेरिकन पत्र लिखता है—"हम अमेरिकन लोग जातियों से अधिक धनाढ्य और प्रसन्न हैं। इसका हमें आश्चर्य था कि अन्य जातियों से हममें क्या भि पर अब जर्मन काउण्ट ने उसे समझ लिया है—हम कन, संसार के आश्चर्य हैं; क्योंकि यहाँ स्त्रियाँ शास हैं। ठीक ! उन्हें शासन करने दो। वे शासन क हम चाहे उन्हें करने दें या न करने दें।" और जटरू नामक एक उन्नतिशील अमेरिकन महिला लिखती है- ने बहुत समय तक मनमानी कर ली, अब स्त्रियों क है। आज कितने ही उन्नतिशील सभ्य राज्यों में राजनैतिक अधिकार पुरुषों के समान हैं, और अधि में स्त्रियाँ राजनैतिक क्षेत्र में पुरुषों के समान कार्य इस प्रकार एक बार फिर संसार नर-नारी की समा ओर झुक रहा है। क्या स्त्रियाँ फिर शासन करेंगी

यही ध्वनि हमें एक बार पहले भी सुनाई दी कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर के एक सिद्धान्त का स करते हुए महामना एण्डरूज़ ने बताया था कि भावी शासन स्त्रियाँ करेंगी। यह बात एकदम अस भी नहीं कही जा सकती। क्योंकि प्रतिक्रिया स्व नियम है; और इस मामले में भी यदि वह लागू हो क्या ताज्जुब ? फिर प्रेम के द्वारा तो स्त्रियाँ सदा से पर अपना प्रभुत्व रखती रही हैं। आज भी—स्त्रियों की प्रभुता के इस ज़माने में भी—और तो और हम में ही ऐसे अनेक पुरुष मिलेंगे जो स्त्रियों पर दबंग भी, नारी-प्रेम के वश, अनेक बातों में उनसे दबते लेकिन, यह भी हमें जान लेना आवश्यक है कि शासन एक बात है और अधिकारों का शासन दूसरी बात है। प्रेम के शासन में शासित स्वयं करता है—उसपर न किसी दबाव की ज़रूरत हो वह उसे असह्य ही होता है। इसके विपरीत अधि शासन में शासित अनिच्छापूर्वक बाध्य होता असंतोष सदा बना रहता है, और ज़बर्दस्ती 'भक्त' (बनाये रखने के लिए उसपर किसी प्रकार का दबा श्यक होता है। पहली स्थिति सुख-शान्ति-कारक दूसरी सुख-शान्ति-नाशक। पहली से समाज में सु

ती है और दूसरी से अव्यवस्था उत्पन्न होती है । इस-
ए जैसे पुरुषों का शासन पूर्ण स्वाभाविक स्थिति नहीं
ी प्रकार स्त्रियों का शासन भी, यदि किसी समय वह हो,
ं स्वाभाविक स्थिति न होगा । शासन पूर्ण और स्वा-
विक और इसलिए शान्तिकारक भी वही होगा कि जो
ष-स्त्री दोनों के सम्मिलित सहयोग पर निर्भर हो—सह-
ग भी कैसा ? ज़बर्दस्ती या बाध्यता पर नहीं, किन्तु,
रस्परिक प्रेम और सद्भाव पर स्वेच्छया प्रस्थापित सहयोग।
ी और एकमात्र तभी मानव-समाज सुख-शांति की
वदायी गोद में क्रीड़ा कर सकेगा—फिर शासन-शीर्ष पर
हे कोई पुरुष हो या स्त्री । नहीं कह सकते कि ऐसी स्थिति
ी आयगी भी या नहीं, पर यह एक आदर्श और सुख-
म तो है ही। क्या मानव-समाज इस दिशा में प्रयत्न करेगा ?

ाधीनता कैसी ?

हिन्दुओं के सामाजिक सुधार का विवेचन करते हुए,
ियों की स्वाधीनता के बारे में, 'वेदान्त-केसरी' में स्वामी
रानन्द लिखते हैं:—

"कट्टर लोग तो इसके विचार से ही बड़े डरते हैं, जब
सुधारक हर हालत में इसके लिए तुले हुए हैं । कट्टर
ों को भय है कि उनके लड़के-लड़की इससे कहीं अपने—
ाचार और पवित्रता से न गिर जायँ । यही विचार
के दिमाग़ों में भरा हुआ है । परन्तु हमारी स्त्रियां पश्चिम-
ों की स्वाधीनता को उस सदाचार एवं पवित्रता में क्यों
ं मिला लेतीं, जिसके लिए कि हिन्दू स्त्रियां जीती और
ी रही हैं ? सीता क्या महीनों और सालों तक राक्षसों
ीच नहीं रही ? प्राचीन काल की ब्रह्मवादिनियां अपने
य के बड़े-बड़े दुराचारियों को चुनौती देती हुई निर्भयता
ाथ इधर-उधर नहीं घूमी फिरीं ? इस प्रकार हम देखते
के स्त्रियों की स्वाधीनता हिन्दू-समाज के लिए कोई
ा विचार नहीं है । लेकिन सुधारक-दल इस बात को
ता है कि स्वतंत्रता के साथ-साथ प्राचीन काल में
चर्य से उद्भूत ज़बर्दस्त इच्छा-शक्ति और शुद्धता एवं
म-संयम की ज्वाला भी रहती थी । जहाँ पर यह बात
ी वहाँ स्त्री-पुरुषों का स्वतंत्रता-पूर्वक मिलना-जुलना निश्चय ही ख़तरनाक है, जैसा कि शनैःशनैः पश्चिमी राष्ट्र स्वयं ही समझ रहे हैं । और जब कि यह आवश्यक बात पूरी हो जाय तब आप देखेंगे कि कोई कट्टर मत वाला स्त्रियों की स्वाधीनता का विरोध नहीं करेगा । इस प्रकार हम देखते हैं कि जहाँ जाति के आदर्श सुरक्षित हों, दूसरी सब बातों को हम यथासम्भव होने दे सकते हैं । इसलिए सुधारकों का प्रथम कर्त्तव्य यह है कि प्राचीन काल की नाईं स्त्रियों को जाति के आदर्शों की शिक्षा दें, और फिर उन्हें अपने आप अपनी समस्याओं को हल करने दें ।"

हमारी दशा

हमारी दशा आज भी क़रीब-क़रीब वैसी ही है, जैसी कि पहले थी । महिलाओं ने उसके निवारणार्थ आन्दोलन शुरू किया है सही; पर उससे सफलता कहाँ तक मिलेगी, यह अभी कुछ संदिग्ध ही है । इस दिशा में हमारी सबसे ज़बर्दस्त आशा महिलाओं की अपनी परिषद् से है, जो कि अभी गत मास दिल्ली में हो चुकी है। जहाँ तक हमें पता है, उससे अधिक प्रातिनिधिक और कोई संगठन हमारे देश की स्त्रियों का अभी तक नहीं है । और पिछले दिनों देश भर में—भिन्न-भिन्न सभी भागों में—उसकी खासी धूम भी रही है । मगर हमें दुःख होता है, जब हम देखते हैं कि उसकी कार्य-प्रणाली कुछ बहुत सन्तोषजनक नहीं बताई जाती । जहाँ परिषद् हुई वहीं का सहयोगी 'महारथी' उसपर किसी दूसरे ही रूप में विचार करता है । उसके लेखानुसार परिषद् मानों एक तरह की अच्छी-ख़ासी औरतों की नुमायश थी ! परिषद् में सर्व-साधारण के बजाय अमीर-उमरा औरतों का जमाव था । खद्दर और सादगी के बजाय विदेशी साज-सामान और तड़क-भड़क का प्राबल्य था । लेडी इर्विन के स्वागतार्थ क़तार के रूप में चुन-चुनकर गोरी और शानदार औरतें ही खड़ी की गईं । जिस परिषद् में देश की ग़रीबी पर भी विचार हो रहा था उसमें कोई महिला दो-तीन सौ मूल्य से कम के वस्त्राडम्बरों से युक्त न थी ! यही नहीं, काम सब अंग्रेज़ी में होता था और देश के नेताओं के बजाय देश के बहिष्कृत सर साइमन और सरकारी अफ़सरों की ही आव भगत पर विशेष ध्यान दिया गया । हम नहीं कह सकते,

ये सब बातें बिलकुल ठीक हैं या नहीं; लेकिन यह निश्चित है कि महिलाओं का रुख़ जनता के बजाय सरकार की ही ओर अधिक है। हमारी नम्र-सम्मति में सुधार का यह उपाय नहीं—ख़ास कर जब कि हमारी सरकार हमारी अपनी नहीं, बल्कि एक विदेशी और हमसे विमुख हितों वाली सरकार है। अपने सुधार के लिए तो हमें अपने भाई-बहनों पर ही अवलम्ब रखना होगा—फिर वह पुरुषों-संबंधी सुधार हो या स्त्रियों-संबंधी, अथवा दोनों के हित का हो। हमारा आग्रह है कि सुधार के लिए उतावली हमारी बहनें हमारी इस नम्र-प्रार्थना पर ध्यान दें और बिलकुल अपने पर निर्भर होकर अपने ही ढंग पर इसके लिए प्रयत्न करें।

बाल-विवाह-निषेध बिल

हिन्दुओं में बाल-विवाह रोकने के लिए अजमेर के राय-साहब हरविलास सारडा ने बड़ी धारा-सभा में जो बाल-विवाह-निषेध बिल पेश किया था, उसपर विचार करने के लिए नियुक्त सिलेक्ट कमिटी ने अपनी रिपोर्ट पेश कर दी है। बिल में बहुत कुछ फेर-बदल होकर सिर्फ़ हिन्दुओं के बजाय अब वह भारत की सब जातियों के लिए हो गया है। विवाह-वय बढ़ाकर लड़के-लड़कियों के लिए १८ और १४ वर्ष कर दी गई है। क़ानून भंग करने वाले के लिए एक मास की सादी क़ैद या एक हज़ार रुपये जुर्माना अथवा दोनों सज़ायें साथ-साथ रक्खी गई हैं। इस बात का ध्यान रक्खा जायगा कि ज़रा ज़रा सी बात के लिए मुक़द्दमा न चलाया जाय। यही नहीं, एक ख़ास बात यह भी हुई है कि जो विवाह इस क़ानून के ख़िलाफ़ होंगे उन्हें रद्द करने के बजाय उनके कराने वालों को ही सज़ा दी जायगी। विवाह-वय की वृद्धि में भी सिवा मालवीयजी के और किसी सदस्य ने कोई आपत्ति न की। परंतु अभी भी बिल पास होने में विलंब ही है। नये रूप के कारण वह फिर से प्रकाशित होगा और ३ मास बाद शिमला के अधिवेशन में उस पर विचार होगा। जो हो, 'देर आयद दुरुस्त आयद' का ही मसला यदि सिद्ध हो, तो मानना होगा कि होता है अच्छा ही होता है।' हम शिमलाधि प्रतीक्षा में हैं।

माता की शिक्षा राष्ट्र की शिक्षा

१८ मार्च के सवेरे नागपुर में सेवा-सदन(पूना) शाखा का प्रथम वार्षिकोत्सव मनाया गया। इस पर उसके सभापति-पद से रायबहादुर डा० लक्ष्म ने सुन्दर भाषण दिया। उन्होंने बताया कि माता ही राष्ट्र की शिक्षा है। "अगर हम माताओं को शि दें तो हम राष्ट्र को शिक्षित कर देंगे"—यही उन का निचोड़ है। इसकी सत्यता में संदेह ही क्या है? राष्ट्र-निर्माताओं की जननी भी तो मातायें ही और मातायें क्या—स्त्रियाँ ही माता होती हैं! वे समुचित शिक्षा प्राप्त कर लेंगी वह दिन अवश्य देश के लिए उद्धार की दिशा में पदार्पण का दि

सौ० सुभद्रादेवी का स्वर्गवास

सौ० सुभद्रादेवीजी जात-पांत-तोड़क मण्ड परमानन्दजी की धर्मपत्नी थीं। आप एक योग्य, धैर्यशील और धर्म-परायण सुशिक्षिता महिला थीं विचारों की झलक अन्यत्र प्रकाशित 'उन्नति कैसे हो आपके लेख से मिलेगी, जो अपने स्वर्गवास से मास पूर्व आपने 'त्यागभूमि' के लिए लिखा था। भी आप अच्छी थीं। आपकी उम्र इस समय बीच थी और प्रसव-पीड़ा से आपका स्वर्गवास आपकी इस असमय मृत्यु से श्री परमानन्दजी हुआ ही, किन्तु परिचितों को भी कम शोक नहीं। नन्दजी और उनके दोनों बालकों के प्रति हम अ वेदना प्रकट करते हैं। परमेश्वर उन्हें शान्ति औ को सद्गति दें।

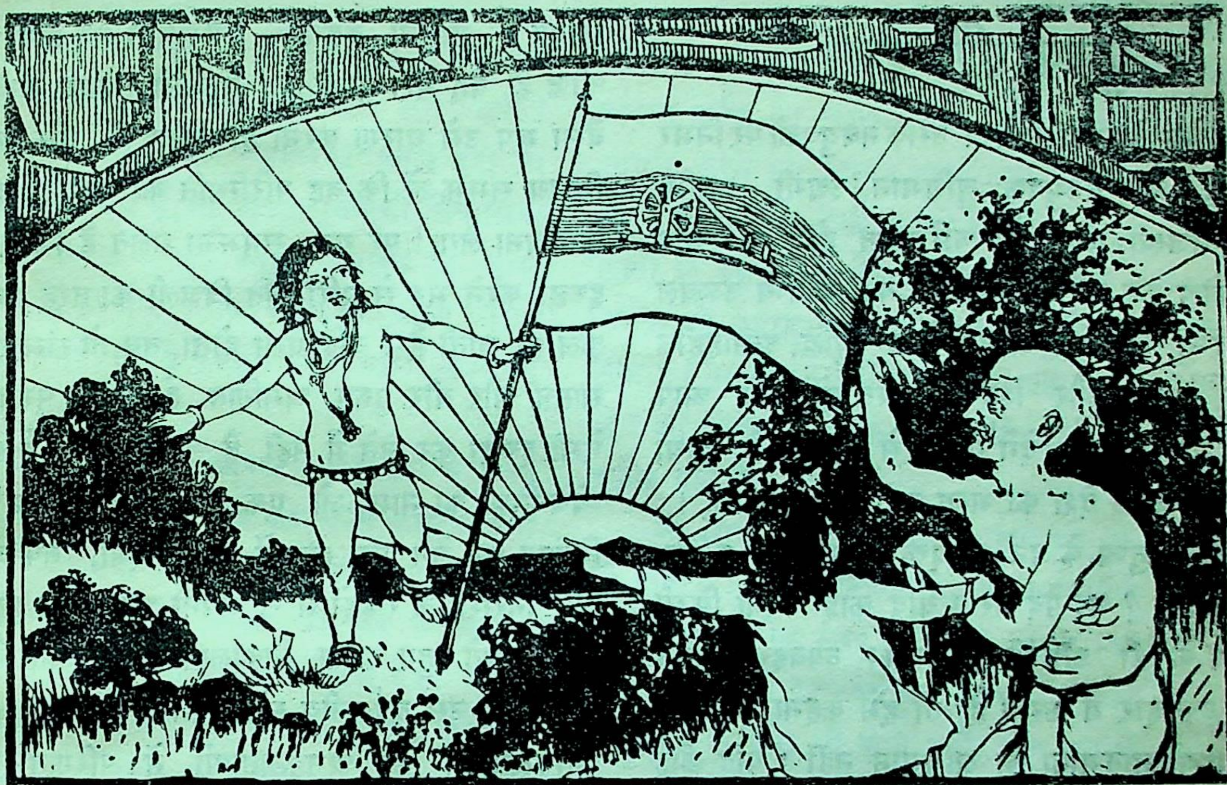

कर्म-भूमि

अब उठो, चलो, बढ़ चलो वीर !
है यही तुम्हारी कर्म-भूमि ।
इस पर भगवान् अवधपति ने,
निशिचर-कुल का संहार किया ।
इसपर करुणानिधि केशव ने,
श्रीगीता-ज्ञान प्रसार किया ।।
इसपर ऋषि गौतम बुद्ध हुए,
प्रभु शंकर की यह पुण्यभूमि ।
अब उठो, चलो, बढ़ चलो वीर !
है यही तुम्हारी कर्म-भूमि ।।
इसपर रणवीर शिवाजी से,
सारे अरिगण श्री-हीन हुए ।
वन-वासी हो राना प्रतापसिंह,
धन्य अमर स्वाधीन हुए ।।
जिनके गौरव की स्वर्ण-शिखा,
अब तक भारत-नभ रहा चूमि ।
अब उठो, चलो, बढ़ चलो वीर !
है यही तुम्हारी कर्म-भूमि ।।
इसके सुत मालवीय से हैं,
भगवन् ! उनका सम्मान रहे ।
अनुपम त्यागी श्री गांधीजी का,
नित्य हमें अभिमान रहे ।।
आदर्शों से परिपूर्ण सुधी,
अगणित वीरों की त्यागभूमि ।
अब उठो, चलो, बढ़ चलो वीर !
है यही तुम्हारी कर्म-भूमि ।।

तोरनदेवी शुक्ल 'लली'

पुरुषार्थी बनो

प्रत्येक देश का भविष्य उसके नवयुवकों पर निर्भर रहता है। यदि नवयुवक बुद्धिमान, उद्यमी, स्वाभिमानी, तेजस्वी, वीर और चरित्रवान् होंगे, तो आप निःसंकोच कह देंगे कि उस देश का भविष्य उज्ज्वल है। परन्तु यदि यही आलसी, मन्दबुद्धि, उत्साहहीन गुलाम, कायर और शिथिल-चरित्र होंगे, तो आप आँखें मूंदकर कह देंगे कि ऐसे युवकों के हाथों उनका या उनके देश का भला नहीं हो सकता है।

और मनुष्य के इन उपर्युक्त गुणों की परीक्षा कब होती है? पद-पद पर। यदि कोई बिना किसी प्रयोजन के ही अँग्रेज़ी भाषा का व्यवहार अपने दैनिक व्यवहार में करता है, तो हमें कहना होगा कि उसे अपनी मातृभाषा का अभिमान नहीं। यदि कोई दूसरे के परिश्रम पर गुलछर्रे उड़ाना चाहता है तो यह कहने के लिए किसी ज्योतिषाचार्य की जरूरत नहीं कि वह काहिल है। स्वाभिमानी और तेजस्वी पुरुषों को कभी किसी बात में पराधीनता बर्दाश्त नहीं हो सकती। ऐसे प्रसंगों पर वे आग की तरह चमक उठेंगे और अपने तथा अपने आस-पास के लोगों में बिजली भर देंगे। चरित्रवान् और वीर पुरुषों की परीक्षा आपत्काल और प्रलोभनों के सामने होती है। संकट के समय वीर पुरुष अपने मित्र और प्रियजनों या पूजास्थानों को अरक्षित छोड़कर कभी नहीं भागते देखे जाते। ऐसे मौक़े पर पर्वत की तरह अचल रह कर वे संकट का सामना करते हैं और या तो उसपर विजय प्राप्त करते हैं या खुद वहीं मर मिटते हैं।

पुरुषार्थी मनुष्य के मुँह से कभी ये शब्द नहीं निकलते—"क्या करें, अभी ऐसी परिस्थिति नहीं है; जब परिस्थिति अनुकूल होगी, तब यह किया जा सकेगा।" वह तो कहेगा—"परिस्थिति मेरे हाथ चीज़ है, वह मेरी दासी है। मैं जैसी आज्ञा क वैसा रूप उसे धारण करना ही पड़ेगा।" और निश्चय समझ लें कि वह परिस्थिति को अपने कूल बना लेगा। पर यह समझना ग़लत है कि इच्छा करने भर से परिस्थिति बिजली की तरह कूल हो जाती है। यदि ऐसा होता, तब तो संसा सफल और वीर पुरुष अगणित होजाते। पु ऐसी इच्छा कर लेने में नहीं है। पुरुषार्थ है ध्येय-निष्ठा का नाम, जो एक बार अपने ध्येय निश्चित कर लेने पर हज़ारों कठिनाइयों, रुक और निराशा के गड़हों में से अपनी आशा को लित रखते हुए रास्ता निकालती चली जाती पुरुषार्थ है उस दुर्दमनीय संकल्पशक्ति का नाम प्रतिकूलताओं को अनुकूलताओं में परिणत देती है।

पुरुषार्थी मनुष्य पुरानी लकीर को नहीं पी रहते। वे अपनी आँखें खोलकर चलते हैं। प्राचीनता एवं नवीनता का भी आवश्यक उपयोग चले जाते हैं।

विचारों को सुलझा लेना पुरुषार्थी पुरुष प्रधान लक्षण है, और विचार सुलझ जाने पर अनुसार आचरण करना उनका अटल स्वभाव है।

पुरुषार्थी मनुष्य पुराने पण्डितों की तरह बौ विजय पाने या समय गँवाने के लिए वाद-वि नहीं करते। उनका उद्देश्य होता है सत्यान्वेषण सत्यान्वेषण सत्य-पालन के लिए।

मुसीबतों और कठिनाइयों का रोना रो पुरुषार्थ नहीं, उनको दूर करने में सच्चा षार्थ है।

आज भारतवर्ष को स्वतंत्र बनाने के लिए अ प्रकार के कामों की जरूरत है। प्रत्येक मनुष्य

ए कि वह अपनी रुचि और स्वभाव के अनुसार काम को उठा ले और उसे करने लग जाय। इंग्लैण्ड, जर्मनी और अमेरिका आदि देश जो आगे बढ़ गये हैं, सो अपने पुरुषार्थी निवासियों र्य के कारण। यदि उनके निवासी भी दूसरे ढ़े लोगों की ओर अंगुली दिखाकर अपने भाइयों सते रहते, तो वे कदापि इतने आगे नहीं बढ़ थे।

ारत के नवयुवक अपनी मातृभाषा के दोष कर, खादी को बुरी बता कर, देशी कारखानों में चीज़ों को भद्दी कह कर और अपने ग़रीब देश- को गुलाम और ग़रीब कह कर न अपना कर सकते हैं, न देश का; और न ऐसा कहने संसार में भले ही कहला सकते हैं। अगर वे हैं, देश के लिए उनके हृदय में सच्चा प्रेम है, हें चाहिए कि वे इन त्रुटियों को फ़ौरन दूर में लग जावें और संसार को दिखा दें कि भारत इसके निवासी किसी देश से पीछे नहीं रह सकते। किसी की ग़लती या त्रुटि को देखकर उसकी ोगों का ध्यान आकर्षित करने में नहीं, उसे दुरुस्त करके आगे बढ़ने में सच्चा पुरुषार्थ रत के नवयुवकों में इस पुरुषार्थ की सबसे बड़ी है। जब वे इस एक बात को सीख लेंगे, तो व्यर्थ की बड़बड़ाहट कम हो जायगी और काम तेज़ी से होने लग जायगा। परन्तु मनुष्य को एक ख़तरे से बचना चाहिए।

रुषार्थ जब व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा के लिए ाता है तब उसे कहते हैं स्वार्थ-साधन की उसमें मनुष्य के पतन की बड़ी भारी संभा- ती है। तब उसके कार्यों में न स्फूर्ति होती है, न लोग उसकी मदद भी कम करते हैं। परन्तु ह किसी सार्वजनिक हित के लिए अपनी शक्तियों का उपयोग करता है तब वह अपने हृदय को अनन्त शक्ति का ख़ज़ाना बना लेता है। कठिनाइयों का सामना करते हुए उसकी अन्तरात्मा कुम्हलाती नहीं, वह दूने ज़ोरों से खिल उठती है और मनुष्य खुली छाती से कष्ट का सामना करता है। बल्कि इस समय जनता की सहानुभूति को भी वह अपनी तरफ़ खींच लेता है। इसलिए तुलसीदासजी ने कहा है, जिसे पर-हित की चिन्ता है उसके लिए संसार में कोई बात दुर्लभ नहीं है।

कई बार पुरुषार्थ के मानी समझने में ग़लती भी होती है। मनुष्य स्वच्छन्दता को स्वाधीनता समझ लेता है और ठीक रास्ते से बहुत भटक जाता है। सार्वजनिक कार्य करते हुए अनुशासन (Discipline) को भूलने से ज़रा भी काम नहीं चल सकता। अंध नियम-निष्ठा बहुत बुरी चीज़ है। परन्तु अन्ध अनियम-निष्ठा तो उससे भी बुरी होगी न? कितने ही कार्यकर्ता और सब बातों में अच्छे होने पर भी केवल इस एक कमज़ोरी के कारण अपने हाथ आई हुई सफलता को खो देते हैं।

कीर्ति की इच्छा भी एक स्वार्थ है। इसकी सिद्धि का—यदि यह इष्ट ही है—उपाय तो यही है कि वह अपने आपको सार्वजनिक सेवा में भुला दे। कुछ समय तक उसे खूब परिश्रम करना होगा, ग़लतफ़हमी का भी सामना करना होगा। परंतु अंत में विमल यश उसका पुरस्कार होगा। उसे दुहेरी सफलता मिलेगी—सेवा और यश दोनों, तहां नाम का लोभी मनुष्य सेवा को भी खोयेगा और यश को भी।

पुरुषार्थी युवकों के लिए सार्वजनिक सेवा से बढ़कर और कौनसा क्षेत्र हो सकता है?

बैजनाथ महोदय

विचार-वीचि

कहते हैं, 'धर्म' में बड़ी शक्ति होती है। शक्ति उसी धर्म में हो सकती है, जो प्रति दिन के जीवन में चरितार्थ होता रहता हो। आपके धर्म में और वास्तविक जीवन में जितना अन्तर है, आपके धर्म की शक्ति उतनी ही कम होनी चाहिए। केवल बाह्य स्वरूप को धर्म समझने वालों का धर्म शक्तिशाली नहीं हो सकता।

❀ ❀ ❀

सत्य एक है। अन्तर उसके समझने में है। सत्य के चारों ओर जब और, अनेक जाल बन जाते हैं तो सत्य का स्वरूप छिप जाता है; और जो अनेक स्थानों में अनेक प्रकार के जाल हो जाते हैं उनका अन्तर समाज के लिए बड़ा अहितकर सिद्ध होता है।

❀ ❀ ❀

अन्तःकरण के विश्वास में बड़ा सामर्थ्य होता है। आन्तरिक विश्वास से कार्य करना एक प्रकार का योग-साधन है, जो निष्फल नहीं जा सकता है। अन्तःकरण के भाव के बिना चाहे जितने बाहर के आडम्बर की रचना कर लीजिए, और थोड़ी देर के लिए संसार को चाहे उससे प्रभाणित भी कर दीजिए, फिर भी आपको उससे वास्तविक सिद्धि नहीं मिल सकती।

❀ ❀ ❀

सत्य-भावना और वस्तु है, हठधर्मी और। मनुष्य सत्य-भावना से ही प्रेरित हुआ करें, तो समाज में सुख का प्रचार हो। और हठधर्मी तो हानि ही करेगी।

❀ ❀ ❀

एक शिकारी अपने धनुष की डोरी को ठीक कर रहा था, उसको समय लगा। इसी समय में एक सेना उसके पास होकर निकल गई। सेना के निकल जाने के बाद एक ऋषि आये। उन्होंने शिकारी से पूछा—"अभी इधर होकर सेना गई न ?" शि
कहा—"नहीं"। ऋषि ने शिकारी को अपना गुरु
क्यों कि वह अपने कार्य में इतना दत्तचित्त
शक्ति वाला था कि सेना निकल गई और
पता नहीं।

❀ ❀ ❀

धनुष की डोरी सुधारने में और प्रार्थना
बड़ा अन्तर है। यदि आप वास्तव में प्रार्थ
हैं, तो किसी प्रकार भी बाजा या संगीत
एकाग्रता में बाधक नहीं हो सकता। एक
संध्या कर रहा था। एक और बालक उसे
उद्योग में लग रहा था—संध्या करने वाले को
बार हँसी आ भी गई। संध्या से निवृत्त होने पर
वाले बालक की माता के पास संध्या कर
पहुँचा और शिकायत की। अशिक्षिता
फ़ौरन उत्तर दिया--"तुम ऐसी क्या संध्या
जिसे करते-करते तुमको हँसी आगई ?
संध्या किया करो ! यह तुमको हँसाता थ
तुम संध्या करते हुए क्यों हँसे ?"

❀ ❀ ❀

आप बड़े भारी अहिंसावादी हैं। ह
हिंसा नहीं करते। आप अपना यह धर्म स
कि दूसरों को भी अहिंसा का उपदेश दें।
उपदेश दिया और उन्होंने नहीं माना त
इससे क्या ? फिर उद्योग कीजिए। आपक
वादी होने का हक़ हासिल है, दूसरों को
होने का हक़ हो सकता है, करने दीजिए
अपने धर्म को बल-पूर्वक दूसरों पर कैसे
कर सकते हैं ?

करने से पहचानना

कहानियों से मुझे प्रेम है। अतएव मैं एक सुन्दर छोटी-सी कहानी ही न सुनाऊँ? हानी भी एक ऐसे आदमी की है कि जो पूर्णतया द्वान् और शुद्ध एवं प्रेमल है। अनेक तरुणों पर सके सादा जीवन और ज़ोरदार उपदेश का चमत्कृत भाव पड़ चुका है। और, वे उसे 'सन्त' कहते हैं। क दिन वे उसके पास पहुँचे और विज्ञान, तत्त्व-ज्ञान, ष्ट्रीय जीवन तथा धर्म सम्बन्धी विविध विषयों की तें उससे पूछीं। चुपचाप वह सब सुनता रहा; सके बाद बोला:—"तुम्हारे सारे सवालों का मेरे स सिर्फ़ एक जवाब है।" तरुणों को बड़ा आश्चर्य आ। उन्होंने कहा:—"भला यह कैसे हो सकता ! महाराज, हमारे प्रश्न तो विचार और जीवन के भिन्न विभागों और भावनाओं से सम्बन्धित हैं; र सब का एक ही जवाब भला कैसे सम्भव है?" सन्त सिर्फ़ मुस्कुराया और, अपने उपयुक्त, शान साथ बोला:—"अनेक प्रश्न?—हाँ, ठीक है; पर वाब तो, सबका, एक ही है।" तरुणों की उत्सुता और बढ़ी और अधीरता के साथ उन्होंने हा:—"तो, बताइए न महाराज!" इसपर वह ला:—"तुम्हारे सारे सवालों का जवाब इन तीन ब्दों में है—'करने से पहचानना'।"

कितना सुन्दर सत्य है! सचमुच, कोई भी ऐसा न नहीं कि जिसमें थोड़ा-बहुत काम न करना पड़े। या तुम विज्ञान का कोई तथ्य जानोगे? तब तुम्हें छ काम अवश्य करना होगा—विज्ञानशाला में ीक्षण करने ही पड़ेंगे। तत्त्वज्ञान का कोई तथ्य न जानोगे? तब भी कुछ न कुछ काम तुम्हें करना पड़ेगा—अपने आत्मसंयम का विकास तो तुम्हें वश्य ही करना होगा। जो अपनी वासनाओं पर क़ाबू नहीं रखता, उन्हें मनमाने तौर पर फूलने-फलने देता है, वह तत्त्वज्ञान का उपयुक्त विद्यार्थी नहीं हो सकता। क्या तुम आध्यात्मिक धारणाओं में वृद्धि करोगे? तब भी थोड़ा-बहुत काम तुम्हें करना ही होगा—अपने दैनिक जीवन में आदर्श की प्राप्ति के लिए, मतवाले होकर, तुम्हें जुटना ही पड़ेगा। धर्म कोई पुस्तकों का विषय नहीं है; वस्तुतः यह जीवन ही का विषय है--करने से पहचानना है।

इस प्राचीन आदर्श पर मैंने बारम्बार ज़ोर दिया है। यही रात को मेरा सपना है और दिन को मेरा गीत है। प्राचीन राष्ट्रों के बीच भारत का निवास है-और वह बिना किसी प्रयोजन के नहीं। ऋषियों के प्राचीन सन्देश को देने के लिए ही वह क़ायम है। उस प्राचीन आदर्श को अधिक से अधिक जानने के लिए तुम उत्सुक हो। अगर तुम उसे अधिकाधिक जानोगे और उसमें सहायक बनोगे तो, मैं अपने पूरे ज़ोर के साथ तुमसे कहूँगा, कि आदर्श को अपने दैनिक जीवन में कार्यान्वित करने के लिए जुट पड़ो! करने के द्वारा पहचानो; अमल में लाकर जानो। इस सन्देश को हृदयस्थ करलो। भारतीय आदर्श को कार्य में परिणत करके बतला दो। क्रियात्मकता ही आने वाले काल का धर्म है। हमारी आध्यात्मिकता और देश-भक्ति का विस्फोट होना आवश्यक है। भारत और भारतीय आदर्श की हम सेवा करें—माता और उसके प्राचीन सन्देश को अपने दैनिक जीवन के द्वारा गौरवान्वित करें! दिन की चहल-पहल और जोरों के शोर-गुल से बचकर, दैनिक प्रेरणा के लिए प्राचीन माता की शान्त मुद्रा पर ही अवलम्बित रहते हुए, चुप-चाप हम अपना कार्य करें; और, उसके आशीर्वाद हमारे सिर पर हों!❀

टी० एल० वास्वानी

❀ अंग्रेजी से

युवकों के विचार

['त्यागभूमि' खण्ड १ अंश ५ में युवकों से यह प्रश्न किया गया था—"अपने देश के लिए तुम क्या करना चाहते हो और अब तक उसके लिए तुमने क्या किया है?" इसपर हमारे पास युवकों के जो विचार आये, उनमें से दो यहाँ दिये जाते हैं। —सं० 'त्यागभूमि']

(१)

मैं गत मई से शुद्ध खद्दर पहनता हूँ और इस बात की प्रतिज्ञा कर चुका हूँ कि आजन्म खद्दर ही पहनूँगा। दूसरी प्रतिज्ञा यह है कि मैं, जब तक भारत को स्वतंत्र न कर लूँगा तब तक, विवाह नहीं करूँगा। तीसरी यह कि, जब तक भारत को स्वतंत्र न कर लूँगा, सिर के बाल न कटवाऊँगा—जैसे कि महाराणा प्रताप ने दिल्ली लेने की कठोर प्रतिज्ञा की थी। चौथी यह कि अपने वचन पर अटल रहूँगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं इन प्रतिज्ञाओं को पूर्ण रूप से पालन कर सकूँगा।

मैं अभी तक तो कोई कार्य नहीं कर सका हूँ—केवल दूसरे लड़कों को राष्ट्रीयता की ओर खींचने की चेष्टा करता रहा हूँ; परन्तु, हाँ, भविष्य में मैं यथाशक्ति बहुत कुछ करने की चेष्टा करूँगा।

मेरा उद्देश्य है कि मैं भारत को स्वतंत्र करके फिर उसी सीढ़ी पर पहुँचा दूँगा, जिसपर वह भगवान् रामचन्द्रजी के समय में था।

कुछ दिन हुए, मैंने महात्माजी की एक पुस्तक पढ़ी थी। उसमें महात्माजी के लिखे एक पत्र से कुछ बातें दी थीं। जैसे—

पश्चिमी या यूरोपीय सभ्यता के ऐसी कोई चीज नहीं है; हाँ, आधुनिक सभ्यता है, और वह बिलकुल भौतिक है।

आधुनिक सभ्यता के सम्पर्क में आने से पहले यूरोप-वासी पूर्व-निवासियों से बहुत कुछ मिल थे। यहाँ तक कि भारतवासी और आज के भी, जो कि आधुनिक सभ्यता के सम्प आये हैं, उस सभ्यता से बने हुओं की अपे तीयों से अधिक अच्छी तरह मिल-जुल स

भारत पर ब्रिटिश लोग नहीं किन्तु सभ्यता अपनी रेलों, तार, टेलीफ़ोन और उस की विजय-रूप प्रायः प्रत्येक खोज के द्वारा रही है।

अगर कल भारत पर ब्रिटिश शासन आधुनिक उपायों पर अवलम्बित भारतीय जाय, तो भी भारत की दशा आज से कु अच्छी न होगी—सिवा इसके कि इंग्लै धन खिंचा जा रहा है उसमें कुछ कमी लेकिन उस वक्त भारत यूरोप या अमेरिका या पंचम आवृत्ति-मात्र बन जायगा।

पूर्व और पश्चिम केवल और वस्तुतः त सकते हैं, जब कि पश्चिम लगभग पूरी तौर निक सभ्यता को दूर फेंक दे।

यह आम तौर पर कहा जा सकता है कि सुविधाओं की वृद्धि से किसी प्रकार नैति नहीं होता।

भारत की मुक्ति इसी बात में है कि पिछ सालों में उसने जो कुछ सीखा है उसे भूल रेल, तार, अस्पताल, वकील, डाक्टर जैसी को नष्ट होना होगा; और 'उच्चवर्ग' कहलाने सादा कृषक-जीवन को ही जीवनप्रद सच्चा मानते हुए, जान-बूझ कर विचार-पूर्वक धर्म अपनाना पड़ेगा।

भारतवासियों को मशीन से बना न पहनना चाहिए—चाहे वह अंग्रेज़ी मिलों हो या भारतीय मिलों का बना हो।

इंग्लैण्ड इसमें भारत की मदद कर सकता है ौर तभी वह इस बात को सिद्ध कर सकेगा कि उसने ारत पर जो अधिकार किया है वह अनुचित नहीं या।

प्राचीन ऋषि सच्चे ज्ञानी थे, जो उन्होंने माज की भौतिक आवश्यकताओं की मर्यादा बांध है। पाँच हज़ार बरस पहले जो भद्दा हल था वही आज के किसानों के पास है। इसीमें हमारी क्ति है। ऐसी दशाओं में लोग अधिक समय तक ते हैं, और उस शांति को अनुभव कर सकते हैं जिसे आधुनिक आविष्कार एवं हलचल को अपनाने ला यूरोप भी नहीं अनुभव कर सकता। और मैं हता हूँ कि हरेक सभ्य मनुष्य—हां, अंग्रेज़ भी, दे वे चाहें तो—इस सचाई को समझें और उस- अमल करें।

इनमें से कई बातें ऐसी हैं, जिनको मैं इनके ने के पहले ही मानता था; शेष में अब मेरा पूर्ण श्वास है।

मेरा विचार है कि मैं भारत को 'शान्ति-मय गत्' बना दूँ। मैं गान्धीजी की सभी किताबें पढ़ना हता हूँ और उनसे मिलकर अपने विचारों को रिपक्व करना चाहता हूँ।

मैंने भारत को स्वतंत्र करने का एक कार्यक्रम लिखा था, और लाहोर के 'स्वाधीन भारत-संघ' भेजा था।

❀❀❀ विद्यार्थी कक्षा १०,
गवर्नमेंट हाइस्कूल, मथुरा।

(२)

मैं अपनी जन्मभूमि भारत-देश की हर तरह न्नति करना अपना महान् कर्त्तव्य और उद्देश्य मझता हूँ। इसकी अवनति को अपनी अवनति समझता हूँ; और, इसलिए, मेरा धर्म है कि देश के लिए तन-मन-धन द्वारा सेवा करूँ।

(१) त्याग और सादगी से जीवन व्यतीत करके अधर्म और अत्याचारों को इस देश से बाहर करने का इच्छुक हूँ। ऐसा करने वालों से प्रायश्चित कराने का भी इच्छुक हूँ।

(२) अपने जीवन को सादगी में लाकर ग़रीब भाइयों के दुःख में दुःखी और उनको शिक्षा-द्वारा उन्नत बनाने की कोशिश की है। हर तरह से उनके साथ सहानुभूति प्रकट करने को अपना कर्त्तव्य समझता रहा हूँ।

(३) अछूत शब्द से मैं घृणा करता हूँ और उनको अपने भाई बल्कि उच्च सेवा करने वाले समझता हूँ। उनके अपवित्र विचारों को हटाने के लिए समय-समय पर शिक्षा-द्वारा उनकी आर्थिक दशा पर विचार करके उनके साथ सहानुभूति प्रकट करता रहता हूँ। सिवाय खान-पान के मैं उनसे मिलना-जुलना और स्वरस होना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ। उनसे मिलने में मुझे हार्दिक प्रसन्नता होती है।

(४) खद्दर-स्वदेशी धारण करने को मैं देश-हितैषिता समझता हूँ; और अपने मित्रों से तथा घर में सब से यही उत्तम भिक्षा, प्रार्थना-रूप से, माँगता रहता हूँ कि देश के लिए पवित्र खद्दर का ही प्रयोग करो।

(५) अन्याय और अत्याचार का विरोध करना और उसके मुक़ाबिले में हर तरह के अपमान सहने को अपना मुख्य कर्त्तव्य समझता हूँ।

(६) देश की उन्नति के लिए ब्याह-शादी, औसर-मोसर में ज्यादा खर्च करने को मैं इस समय पाप समझता हूँ। मेरा ख़याल है कि इसी कारण से ग़रीबों का ह्रास हुआ है और मैं समझता हूँ कि अपने धन

का दुरुपयोग करना देश की उन्नति के लिए बाधक है।

(७) दुःख पड़ने पर सत्य से विमुख होने को मैं पाप समझता हूँ। अपनी कमज़ोरियों का हर वक्त ख़याल रहता है और किये पर प्रायश्चित करने को हर वक्त तैयार हूँ।

(८) किसी भाई की आत्मा को दुखाना मैं हिंसा समझता हूँ, लेकिन भय खाना और दूसरों को डराना भी पाप समझता हूँ।

ख़ूबराम सराफ़, भादरा।

झूठ का आरम्भ

(१)

श्रीहरि (एक ढाई साल का बच्चा)—ऊं ऊं, चाची पाछ दाऊं ऊं ऊं ऊं।

चाचाजी—यहीं खेलो लल्ला, तुम्हारी चाची रोटी पका रही है।

श्रीहरि—ऊं ऊं, दादी पाछ दाऊं ऊं ऊं ऊं।

चाचाजी—ठहरो, दादी यहीं आई जाती हैं।

श्रीहरि—ऊं ऊं, पन्नी (पंडित) पाछ दाऊं।

(जब बड़ा भाई पंडित खुद ही उसके पास आ गया तब)

श्रीहरि—ऊं ऊं, नीचे उतलूं।

ज्योंही श्रीहरि को नीचे उतारा वह फ़ौरन चाची के पास भाग गया।

* * *

प्रायः हम ध्यान नहीं देते कि किस तरह छोटी-छोटी बातों का असर बच्चों के दिल पर पड़ता है। श्रीहरि ने पहले तो सच कहा कि मैं चाची के पास जाना चाहता हूँ। जब उसकी सच्ची बात न सुनी गई, तब उसने कई झूठी बातें बनाकर चाची के पास जाना चाहा।

मनुष्य पहले-पहल तो सत्य ही बोलता है; जब उससे काम नहीं चलता, तब वह टेढ़े रास्ते ढूंढता है। माता-पिताओं को चाहिए कि जहाँ तक वे बच्चों को ऐसे प्रसंगों से बचावें, जिनमें बोलना पड़े।

(२)

शकुन्तला—दा साहब, आज जीजी मारा।

दा साहब—क्यों मारा बच्ची ?

शकुन्तला ज़रा सोचने लग गई।

दा साहब—बताओ बच्ची, तुमने कोई नहीं बिगाड़ा था, जो तुम्हारी जीजी ने तुम

शकुन्तला—जीजी कपड़े धो लई थी, पानी उछाल लई थी। जीजी ने कहा—जा न खेल। पर मैं खेलती लई; तब, जीजी ने

दा साहब—राजा बेटी मेरी, कैसे सब बता दिया ! तो बता बच्ची, पहले तुझे चाहिए था न कि मैं पानी उछाल रही थी ने मारा ?

शकुन्तला (ज़रा सोचकर)—हाँ।

दा साहब—राजा बेटी, अब कह जीजी ने अच्छा किया कि बुरा ? तूने जब माना, तब वह क्या करती ?

शकुन्तला—हाँ, अच्छा किया।

दा साहब—तो बच्ची, अबसे सब बात कहनी चाहिए न भला ?

शकुन्तला—हाँ।

बालकों को इस तरह सच कहने की डालने से वे किसी बात की शिकायत करने खुद ही सोचते हैं कि हमने अच्छा किया और इसका असर उनके आचार-विचार पर नहीं रहता।

साहित्य-संगीत-कला

ठी का सामायिक साहित्य

महाराष्ट्रीय भाषा में जितने मासिक-पत्र हैं उनमें
ध ज्ञान-विस्तार" विशेष महत्व रखता है। मराठी
कों में यही सबसे पुराना मासिक-पत्र है, तथापि आज
बहुत आदर की दृष्टि से देखा जाता है। आजकल
श्रीयुत चापेकर के ग्राम्य जीवन सम्बन्धी लेख प्रकाशित
हैं। इन लेखों में देहात के धंधे, ग़रीब किसान, कारी-
दि लोगों की स्थिति, उनके रीति-रस्म, काम करने के
, इत्यादि सहित कोंकण की एक आदर्श ग्राम्य संस्था
बी स्थिति का वर्णन, जो अंकों की सहायता से सिद्ध
है, प्रकाशित हो रहा है। ऐसे गाँवों में रहने वाले
चाहे इसको महत्व न दें, परन्तु दूसरे प्रान्तों में रहने
और समाज-शास्त्र का अध्ययन करने वाले सज्जनों के
ह बड़ी उपयोगी चीज़ होगी। सितम्बर और अक्तूबर
में उदार मतवादी दल पर एक मार्मिक लेख प्रकाशित
। इस दल के मुख्य-मुख्य लोगों के वचनों के उद्धरण
इस दल के तीन महत्वपूर्ण लक्षण बताये गये हैं।
लक्षण है उनका आशावाद। "इंग्लैंड के समान प्रत्येक
आगे बढ़े हुए देश से हमारा बिलकुल नज़दीक का
प्रस्थापित हो गया है। इससे लाभ उठाकर हमें
यक बातें गृहण कर लेनी चाहिएँ। अपने आलस्य को
र कुछ पुरानी बातों को फिर से उजली करके हम
ील बनेंगे तो निश्चय ही हम अपने देश का भविष्य
कर सकते हैं।" इस दल का दूसरा लक्षण है यह
कि देश को उन्नति की ओर अग्रसर करने के लिए
तिक, सामाजिक और धार्मिक सुधार का एक साथ
लन किया जाय। और तीसरा लक्षण है इसकी सब
के विषय में समत्व-भावना और सबको साथ में लेकर चलने की इच्छा। स्व० दादाभाई नौरोजी, फ़िरोज़शाह मेहता, तय्यबजी, डॉ० भांडारकर, न्यायमूर्ति रानडे, न्या० तैलंग, श्री ह्यूम, सर चंदावरकर, महात्मा गोखले आदि इस दल के अध्वर्यु थे। यह बात जुदी है कि इनके अनुयायियों का आचरण उपर्युक्त लक्षणों के अनुरूप था या नहीं। परन्तु इस दल के नेताओं के जीवन में तो ये बातें पद-पद पर प्रकट होती हैं। यह बात श्रीयुत कर्नाटकी ने इनमें से प्रत्येक नेता के लेखांश और वचनों को उद्धृत करके तथा उनके जीवन की कुछ घटनायें सुनाकर सिद्ध कर दी है। भारत के एक महत्वपूर्ण राजनैतिक दल का यह छोटा सा इतिहास और परम्परात्मक वर्णन सचमुच पठनीय एवं मननीय है। इसी पत्र में मराठी के प्रसिद्ध व्याकरणकार दादोबा पाण्डुरङ्ग का आत्मचरित्र भी क्रमशः प्रकाशित हो रहा है। यह आत्म-चरित्र क्या है, तत्कालीन अंग्रेज़ी सल्तनत के प्रारम्भकाल का पूरा इतिहास ही है। "महानुभावी" मराठी वाङ्मय में से "महदंबा का धवल" नामक लेख दिसम्बर में सम्पूर्ण हो गया है। लेख का विषय है एक श्रीकृष्ण और रुक्मिणी की भक्ता स्त्री और उसके भजन। "महानुभावियों" के गुप्त संग्रह में से यह तो केवल एक ही रत्न प्रकाशित किया गया है। "महानुभावियों" के पंथ को स्थापित हुए आज सदियाँ हो गईं। परन्तु उस संप्रदाय के ग्रंथों को बिलकुल गुप्त रक्खा गया है। हाल ही में मठाधिपति के सौजन्य से कुछ ग्रन्थ प्रकाशित होने लगे हैं। इस संप्रदाय का प्रचार महाराष्ट्र से लेकर ठेठ पंजाब तक हो गया था। आज भी इस संप्रदाय के कई मठ पंजाब में मौजूद हैं। संप्रदाय इतना फैल जाने पर भी इसकी ग्रन्थ-सम्पत्ति को बिलकुल गुप्त ही रक्खा गया था। इस संप्रदाय के ग्रन्थ अत्यन्त प्राचीन मराठी भाषा में लिखे हुए हैं। यह क़रीब-क़रीब सिद्ध हो चुका है कि इनमें से कुछ ग्रन्थ तो ज्ञानेश्वरी से भी—जो कि अब तक मराठी

का आद्यग्रन्थ समझी जाती थी—प्राचीन हैं। इसलिए मराठी भाषा की दृष्टि से ये ग्रन्थ बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। इस पंथ के आद्य-संस्थापक श्री चक्रधर नामक कोई पुरुष थे। चक्रधर के श्रीमुख से निकले हुए तमाम सूत्रों का संग्रह केशव राज सूरि ने अपने "सिद्धान्त सूत्रपाठ" नामक ग्रन्थ में किया है। इसलिए यह ग्रन्थ इस संप्रदाय का धर्म ग्रन्थ समझा जाता है। श्री देशपांडे ने इस पत्र के नवम्बर और दिसम्बर के अंकों में इस ग्रन्थ का विस्तृत रूप से विवेचन किया है। इसके अतिरिक्त सरदार किबे का 'धर्म-शिक्षण' नामक लेख, आचार्य राजवाड़े का "ब्राह्मण-कालीन जातिभेद", श्री ओगले का "कालिदास और चित्रकला", श्री नांदेड़कर का "अविमारक" और श्री कोल्हटकर के "मूक नायक" का तुलनात्मक विवेचन आदि मननीय लेख गत तीन-चार महीनों में प्रकाशित हुए हैं।

"रत्नाकर" के दिसम्बर के अंक में राजकुमारों के शिक्षा-संवर्धन पर जो बातें लिखी गई हैं वे और लोगों के भी काम की हैं। स्वर्गीय ग्वालियर-नरेश महाराजा माधवराव सेंधिया के हिन्दी और उर्दू भाषा में लिखे "दरबार पॉलिसी" नामक ग्रन्थ से वे बातें उद्धृत की गई हैं।

नवम्बर के "मनोरंजन" में "माझा (मेरा) आश्रम" नामक एक लेख प्रकाशित हुआ है। उसमें लिखे विचार किसी भी संस्था के विद्यार्थी तथा संचालकों के लिए अनुकरणीय हैं। किसी भी संस्था का कार्य तब तक सफल नहीं हो सकता, जब तक उसमें काम करने वाला प्रत्येक मनुष्य उसमें आत्मीयता नहीं अनुभव करने लगता। सितम्बर के "मनोरंजन" में "शाहीर की लड़की" नामक कविता बड़ी रम्य है। एक सुशील लड़की अपने मधुर गायन और प्रकृति-मनोहर पवित्रता के सहारे किस तरह एक क़िले की स्वामिनी बन गई—यह है उस कविता का विषय। कवि ने प्रसग के अनुरूप भाषा को प्राचीनता का स्पर्श देकर निसर्ग-रमणीय स्थान के सौंदर्य का हूबहू भी वर्णन किया है। कोल्हटकर के नाटकों की समीक्षा मराठी भाषा के अध्ययनकर्ता के लिए बड़ी उपयोगी है।

औद्योगिक विषयों से सम्बन्ध रखने वाले केवल दो ही मासिकपत्र मराठी भाषा में हैं। एक तो नागपुर का "उद्यम" और दूसरा "किर्लोस्कर ख़बर"। 'उद्यम" में क्र
न एक चीज़ बनाने की सम्पूर्ण विधि प्रकाशित हो
है। जनवरी से साबुन बनाने की विधि प्रकाशित
हैं। व्यवहार-शास्त्र पढ़ाने का ठेका "किर्लोस्कर ख़
रक्खा है। उपदेशक बनने का प्रयत्न छोड़ कर यदि
उपयोगी कला सिखाने का उद्योग करेगी तो "ख़ब
अधिक काम कर जायगी।

आजकल मराठी में प्रकाशित होने वाले सा
प्रायः उपन्यास और कहानियों की पुस्तकों की
भरमार है। यह साहित्य प्रायः अल्पजीवी ही होता
से बहुत थोड़ी पुस्तकें चिरकाल तक टिक पाती
उपयोगी पुस्तकों में से कुछ "भारत-गौरव-ग्रन्थमा
"महाराष्ट्र कुटुम्ब-माला" द्वारा प्रकाशित हो रही हैं
गौरव-ग्रन्थमाला" में प्रकाशित अध्या० बेहरे
सत्तावन का ग़दर" पठनीय है। उसी प्रकार कु
की "स्वाधीन संसार" नामक पुस्तक भी पढ़ने ला
है। परन्तु उपन्यास-संसार में अगर किसी चीज़
उत्पन्न कर दी है तो वह है डा० केतकर (महाराष्ट्र
के सम्पादक) का "आशावादी" नामक उपन्यास।
में नवीन कल्पनायें, नवीन विचार और पुरानी
ज़बर्दस्त ठेस पहुँचाने वाले नवीन व्यवहार-सूत्रों
है। यद्यपि पात्रों की भूमिकायें पूर्ण नहीं हो पाई हैं
पद-पद पर नवीन दृश्य, नवीन कल्पना, नवीन
नवीन पात्र इस तेज़ी से हमारे सामने आ कर उप
हैं कि उस अपूर्णता की ओर पाठकों का ध्यान
नहीं होता। प्रसंगानुसार राजनीति, सामाजिक
शुद्धि, संगठन आदि सभी नये-पुराने आन्दोलन
चलों पर अपने विचार प्रकट करके पात्रों का स्वभा
भी डा० केतकर ने बड़ी कुशलता के साथ किया
तरह की पुस्तकों में श्री हड़प-लिखित "पेशवा
ढळला", श्री खाडिलकर का 'सवतीमत्सर" ना
श्री ना० ह० आपटे की "पहाटे पूर्वीचा काळोख"
पुस्तकें स्वतंत्र रचना की दृष्टि से अच्छी हैं। "
मण्डल" की "प्रभा" भी उसी मण्डल की अन्य
समान सुन्दर है।

गत दो-तीन महीनों में जो पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं उन जमेर के अध्यापक ल० ग० साठे, एम० ए०, लिखित तिवरील गद्य-संवाद" मननीय और प्रशंसनीय है। मद्भगवद्गीता भारतवर्ष का प्रधान धर्म-ग्रन्थ है। इयों की बाइबल तथा मुसलमानों के कुरान के समान का पाठ घर-घर और रोज़ होना चाहिए। गीताधर्म-डल भी इस बात के लिए प्रयत्न कर रहा है। गीता के र्वत्रिक प्रचार के ख़याल से यह ज़रूरी है कि गीता रूप में और भाषा में प्रकाशित की जावे जो सबकी झ में आ सके। कई लोग अपने अनुभव से इस बात को नते हैं कि केवल श्लोकों का अनुवाद भर कर देने से गीता दुर्बोधता दूर नहीं होती। इसलिए अध्यापक साठे ने ता को सवाल-जवाब के रूप में सरल भाषा में लिखी है। न पुस्तक के द्वारा पाठकों के लिए गीता बहुत कुछ सरल गयी है। पुस्तक का हिन्दी अनुवाद भी हो रहा है। हम शा करते हैं कि हिन्दी के पाठकों को उससे बहुत लाभ गा। धर्म-विषयक दो पुस्तकें और प्रकाशित हुई हैं, जिन-उल्लेख यहाँ पर कर देना ज़रूरी है। एक तो है प्रार्थना-माज का इतिहास और दूसरी "नवयुग-धर्म" खण्ड १, जिसमें ब्राह्म समाज और देव-समाज इन दो नवीन धर्म-न्थों का इतिहास है। पुस्तक अच्छी है और ख़ूब जानने ग्य बातों से भरी हुई है।

सात्विक ग्रंथों में अध्या० गो० चि० भाटे लिखित ललितकला मीमांसा" पुस्तक महत्वपूर्ण है। इस पुस्तक साहित्य, संगीत, चित्रकला आदि कलाओं पर तत्त्वविवेचनात्मक और उदाहरण-संगीत वर्णन है। इस विषय पर श्री वासुदेव गोविंद आपटे लिखित "मृण्मूर्ति व रंगकला-विज्ञान", "सौंदर्य और ललितकला-विज्ञान" आदि कुछ इनी-गिनी पुस्तकें और श्री वझे जैसे इस विषय के विशेषज्ञ तथा पं० श्री कृ० कोल्हटकर आदि सज्जनों के लिखे मार्मिक लेखों के अतिरिक्त बहुत थोड़ा साहित्य है। ललितकला का मुख्य काम है प्राकृतिक अथवा कृत्रिम सौंदर्य-कृति की सहायता से मानव-हृदय में भव्य भावनाओं को उत्पन्न करके उसे ऊंचा उठा देना। परमेश्वर सौंदर्य की आत्मा और भोक्ता है। सौंदर्य ही सत्य है और सत्य का नाम सौंदर्य है (Beauty is truth and truth is beauty)—यह कीट्स की व्याख्या कितनी औचित्यपूर्ण है! अतः अध्या० भाटे कहते हैं कि सौंदर्य की उपासना करने वाली ललितकलायें ईश्वर-प्राप्ति की मार्ग-दर्शक ही हैं। इस पुस्तक ने मराठी-साहित्य की समृद्धि को सचमुच बढ़ा दिया है।

महाराष्ट्र-साहित्य-मधुप

अरबी साहित्य-सुमन

वार्त्तायें

(१)

किसी ईश्वर-भक्त ने यह बात कही कि मैंने अपने मित्रों के साथ एक दिन जंगल में एक लड़की देखी। वह अकेली ही आनंद-पूर्वक घूम रही थी। मेरे साथियों ने पूछा—'तू कहाँ से आई है?' उसने कहा—'अपने मित्र के पास से।' फिर कहा—'तू किधर जाना चाहती है?' उसने कहा—'अपने मित्र के पास।' उन्होंने कहा—'तू अकेली है। क्या तुझको इस भयानक जंगल में डर नहीं लगता?' वह ज़ोर से चिल्ला कर बोली—'मनुष्य कहीं भी जाय, चाहे आकाश में उड़े चाहे भूमि पर घूमे, परमात्मा हर जगह मौजूद है। हर स्थान पर हमारे किये हुए को देखता है। ऐ मूर्खों, जिसने परमात्मा से चित्त को जोड़ा, उसका संसार की वस्तुओं में चित्त नहीं लग सकता; जिसने उसकी प्रसन्नता को ढूँढा, उसका चित्त हर स्थिति में निर्भय रहता है।' यह कहकर वह हमारे सामने से चलदी।

(२)

अब्र अबी फ़रहा ने कहा कि एक बार मैंने रमज़ान के महीने में एक लौंडी ख़रीदी, जो शरीर से दुबली थी और रंग उसका पीला पड़ गया था। मैंने उससे कहा—'चलो, बाज़ार से रमज़ान के महीने में रात के खाने की सामग्री ख़रीद लायें?' उसने कहा—'हमारे घरवाले तो बराबर ही रमज़ान मनाते हैं।' मैंने समझ लिया, इसके माता-पिता नेक थे। वह रातभर खड़ी रहकर नमाज़ में लगी रहती थी। फिर जब ईद की रात आई, तो मैंने उससे कहा—'चलो, बाज़ार से ईद का सौदा ख़रीद कर लायें।' उसने पूछा—'है

स्वामिन्, आप साधारण लोगों का सौदा ख़रीदना चाहते हैं या विशेष लोगों का ?' मैंने पूछा—'साधारण लोगों का सौदा कौनसा है और विशेष लोगों का कौनसा ?'. इसपर उसने बताया कि साधारण लोगों के लिए तो ईद का सामान खाने-पीने की सामग्रियां होती हैं। विशेष लोगों की सामग्री यह होती है कि एकांत-सेवन करके अपने चित्त को स्थिर करें, जिससे ईश्वर की सेवा यथार्थ हो सके और चित्त में निरभिमानता की मात्रा अधिक बढ़ सके। मैंने उससे कहा कि मुझे तो भोजन की सामग्री की ज़रूरत है। इस पर उस लौंडी ने कहा—'भोजन भी दो प्रकार का होता है। एक तो शरीर सम्बंधी और दूसरा मन-सम्बन्धी। आप कौनसा भोजन चाहते हैं ?' फिर मैंने पूछा कि शरीर सम्बन्धी भोजन कौनसा है और मन सम्बन्धी कौनसा ? उसने कहा—'शरीर सम्बन्धी वही है, जिसको सर्व-साधारण खाते हैं और मन-सम्बन्धी इस प्रकार है, जैसे—

पापों को त्याग देना।

अपनी बुरी आदतों को दुरुस्त करना।

आत्म-साक्षात्कार करके अपना परम अभीष्ट प्राप्त करना।

अपनेको तुच्छ समझना और इन्द्रिय-दमन करना।

घमंड एवं अहंकार का त्याग करना।

अपने स्वामी की ओर चित्त को केन्द्रित करना।

अंतर्बहिर ईश्वर पर ही भरोसा रखना।'

शिक्षा

(१)

हज़रत अली ने फ़र्माया—

जो कोई प्रेमी बना जन्नत का,
वह दौड़ा नेकी की तरफ़।
जो कोई डरा नरक की अग्नि से,
वह दूर रहा विषयों से।
जिसने निश्चय माना मरने को,
नहीं आया उसको आनंद विषयों में।
जिसने दुनिया के तत्त्व को जान लिया,
दूर हुईं उससे मुसीबतें।

(२)

अब अब्बास ने वर्णन किया कि एक दिन हमा मुहम्मद साहब ने शैतान से पूछा कि मेरे मत के वालों में से तेरे मित्र कौन-कौन हैं ?

शैतान ने उत्तर दिया—वे दस व्यक्ति, जो इस के स्वभाव वाले होते हैं—

१—वह इमाम (धर्म-पथ-प्रदर्शक), जो लो पीड़ा देने वाला और घमंडी हो।

२—वह धनी, जो यह ध्यान नहीं रखता कि मै साधनों से धन प्राप्त करता हूँ और किन-किन का दान करता हूँ।

३—वह विद्वान्, जो किसी बड़े व्यक्ति के अन्या कार्य को भी युक्ति और प्रमाणों द्वारा सच्चा सिद्ध वाला हो।

४—व्यापारी पेशे का वह व्यक्ति, जो अपने किसी के रक्खे हुए धन को हड़प जाय।

५—वह वाणिज्यकर्ता, जो अन्न को रोक रक्खे।

६—वह मनुष्य, जो व्यभिचार में रत रहे।

७—वह धनी, जो कृपण हो।

८—मद्यपान करने वाला व्यक्ति।

९—मद्य पर सदा निर्वाह करने वाला।

१०—सूदख़ोर (ब्याज खाने वाला) व्यक्ति।

* * *

पुनः मुहम्मदसाहब ने पूछा कि मेरे अनुयायियों तेरे (शैतान के) शत्रु कौन-कौन हैं ? इसपर उसने कहा

१—विधवाओं, अनाथों और दरिद्रों के साथ करने वाला।

२—मृत्यु के लिए सदा तत्पर रहने वाला।

३—उदारचेता और सरल स्वभाव वाला एवं ईश्वर को सत्य मानने वाला।

४—जिसके चित्त में कोई बुराई न रहे।

५—वह व्यक्ति, जो रात्रि को नमाज़ पढ़े, जब अन्य लोग सोते हों।

६—जो धर्म की कमाई खाता है।

७—जो अपने मनको हराम चीज़ों से रोके और लोगों भलाई करे।

८—जो लालच करे, किन्तु नमाज़ पढ़ने में।

९—जो जवानी में बढ़े ईश्वर की भक्ति के लिए।

१०—जो प्रेम रखते हैं, ईश्वर में।❀

श्रीराम शर्मा

गौरव-गीत

(१)

चन्द्रगुप्त मौर्य का गीत

"किसने संसार-विजयी अलक्षेन्द्र के साम्राज्य से पञ्च- को स्वाधीन करने में नेतृत्व ग्रहण किया था? किसने ह्मण-द्रोही, नीच-कुलोत्पन्न, अन्यायी शासक के शासन से तन्त्र कर पाटलिपुत्र-निवासियों को सुखी किया था? किसने शल, तिरहुत, वाराणसी, अङ्ग तथा मगध के अधिपतियों र विजय प्राप्त कर अपना साम्राज्य विस्तृत किया था? र्य-वंश-संस्थापक, प्रबल, प्रतापी महान् चन्द्रगुप्त ने।

"किसने अपनी अद्वितीय चतुरङ्गिणी से सिन्धु से गंगासागर तक और हिमाचल से विन्ध्याचल तक को कंपित कर दिया था? किसने अपनी अद्वितीय चतुरङ्गिणी से विजयी सेल्युकस का साम्राज्य स्वप्न भङ्ग कर दिया था? किसने अपनी अद्वितीय चतुरङ्गिणी के बल पर यवन-राज को परोपनिसदई,[1] एरिया,[2] अरकोसिया,[3] जेड्रोसिया[4] तथा अपनी प्राणप्रिय कन्या देकर प्राण छुड़ाने पर वाध्य किया था? मौर्य्य-वंश-संस्थापक, प्रबल, प्रतापी महान् चन्द्रगुप्त ने।

"किसने अपने पराक्रम से आर्य-जाति का प्रताप दिग-दिगन्त प्रस्फुरित कर दिया था? किसने अपने अतुल वैभव से यूरोप-शिरोमणि ग्रीकों को चकित कर दिया था? किसने अपनी असाधारण योग्यता से प्रसिद्ध नीति-विशारद चाणक्य को अपने पर मुग्ध कर लिया था? मौर्य्य वंश संस्थापक, प्रबल, प्रतापी महान् चन्द्रगुप्त ने।"

(२)

अशोकवर्धन का गीत

"वह कौन है, जिसने बौद्ध-धर्म्म को विश्वव्यापी बना दिया था? वह कौन है, जिसने बौद्ध-धर्म्म-प्रचारार्थ काश्मीर, गान्धार, महिषमंडल,[5] बनवासी,[6] अपरांत[7] और महाराष्ट्र में बौद्ध-भिक्षु भेजे थे? वह कौन है, जिसने यूनान, हेमवत,[8] सुवर्णभूमि,[9] सिंहल आदि सुदुरवर्ती देशों में बौद्ध-धर्म्म का प्रचार किया था? वह उनका वंशज है, जिसने यवन राज्य का साम्राज्य-स्वप्न भङ्ग किया था। वह उनका पौत्र है, जिसने पञ्चनद को विदेशी चंगुल से मुक्त किया था। वह 'देवताओं का प्यारा' 'प्रियदर्शी' अशोक है।

"वह कौन है, जिसने अपने समस्त साम्राज्य में परोपनिसदई महिषमण्डल और सौराष्ट्र[10] से ताम्रलिप्ति[11] तक में धर्म्म-प्रचारार्थ आज्ञायें प्रचलित की थीं? वह कौन है, जिसने एक-दो नहीं, चौरासी हज़ार स्तूपों का निर्माण किया था? वह उस भाग्यवान को छोड़कर और कौन हो सकता है, जो

❀ मुहम्मद साहब ने शैतान से पूछा और उसने र दिया। इस प्रकार से जो बातें लिखी हुई पाई जाती हैं से पता चलता है कि आख्यायिकायें लिखने का इस्लामी कारों में भी प्रचार था। परन्तु खेद है कि अधिकांश संख्या लमानों की ऐसी ही पाई जाती है, जो ठीक यही मानते हैं वह शैतान जिस पर लानत हो खुदा की, सचमुच शरीर-री व्यक्ति है और सचमुच उसके साथ खुदाताला और मुह-दसाहब आदि की बातें हुई। जिस समय मुसलमान लोग अन्य कोई भी व्यक्ति, जिनका ऐसा विश्वास है कि आख्या-कायें सच्ची घटनायें ही हैं, विज्ञानमयी शिक्षा द्वारा लेखों के र भाषणों के तात्विक अधिकारों को समझने लग जायेंगे भी साम्प्रदायिक झगड़ों का अंत हो सकेगा। कोई भी लेख के तो सबसे प्रथम यह अवश्य विचारना चाहिए कि इसका त्विक अभिप्राय क्या है और किस देश-काल के लिए ऐसा खा गया था। अरबी-साहित्य में से सुमन-चयन का अभिप्राय हीं है कि हमारे देशवासी यह अनुमान कर सकें कि उन गों ने कहां तक ईश्वरादि अपरोक्ष विषयों को पहचाना था र किस प्रकार का जीवन-ध्येय उनको अभीष्ट था।

—अनुवादक

१ काबुल। २ हिरात। ३ कन्दहार। ४ बलोचिस्तान। ५ मैसूर। ६ पश्चिमीय मैसूर और उत्तरीय-दाक्षिणीय कनाडा। ७ गुजरात। ८ नैपाल। ९ ब्रह्मा। १० काठियावाड़। ११ तमलुक।

आचार्य्य उपगुप्त का शिष्य था। वह 'देवताओं का प्यारा' 'प्रियदर्शी' अशोक है।

"वह कौन है, जो प्रसिद्ध योद्धा होते हुए भी धर्म्म-प्रचारक था? वह कौन है, जो प्रबल शक्तिशाली कलिङ्ग-नरेश को नतमस्तक करने की शक्ति रखता हुआ भी इतना दयालु था कि फिर उस शक्ति से काम नहीं लेता? वह उन विशाल और सुन्दर स्तूपों का निर्माता है, जिन्हें विदेशियों ने मानव-निर्मित होने की अपेक्षा देव-निर्मित होना ही अधिक बुद्धि-ग्राह्य समझा था। वह 'देवताओं का प्यारा' 'प्रियदर्शी' अशोक है।

"वह कौन है, जिसने नवीन भारतीय सभ्यता से संसार को परिचित किया था? वह कौन है, जिसने विदेशों से भारत राष्ट्र का सम्पर्क जोड़ा था? वह यवन-राज अन्तियोक[1] मिश्राधिपति तुरमय,[2] मकदूनिया नरेश अन्तिकोन[3] और एपिरस-नरेश अलिकसुन्दर[4] का मित्र, 'देवताओं का प्यारा' 'प्रियदर्शी' अशोक है।'

[३]

कनिष्क का गीत

'वह कौन था, जिसकी सेना ने चीनी तुर्किस्तान में हलचल मचा दी थी? वह कौन था, जिसकी चतुरंगिणी ने विदेशों में आर्य वीरत्व का डंका बजा दिया था? वह कौन था, जो काशगर, यारकन्द और खोतान को अपने साम्राज्य के अंग बनाने में कृतकार्य हुआ था? वह कौन था, जो विदेशी राज-परिवार को प्रतिबन्धक के रूप में लाया था? आर्य वीरो! ऐसे अद्भुत कार्यों का सम्पादन एक मनुष्य ने किया था। वह था, तुम्हारा पूर्वज, पुरुषाधिपति, महाराज कनिष्क।

"वह कौन था, जिसके सुशासन में काश्मीर-सा प्राकृतिक वन फला-फूला था? वह कौन था, जिसका साम्राज्य समस्त उत्तरीय-पश्चिमीय भारत था? वह कौन था, जिसकी राजाज्ञा हिमाचल से लेकर विन्ध्याचल तक अविरोध स्वीकार की जाती थी? वह कौन था, जिसका साम्राज्य सौराष्ट्र तक अपना अञ्चल फैलाये था? आर्य-वीरों! केवल ऐसा था। वह था तुम्हारा पूर्वज, पुरुषपुर[1] से घुमाने वाला महाराज कनिष्क।

"वह कौन था, जिसकी अपरिमित कार्य-श राजनैतिक क्षेत्र में ही परिमित न रही थी? अशोक के समान बौद्ध-धर्म को विश्वव्यापी बनाने स्मरणीय वीर कौन था? आर्य पुत्रो! केवल ऐसा था। वह था तुम्हारा पूर्वज, प्रबल, प्रतापी कनिष्क।"

बालकृष्ण

हिन्दी कवियों से

भारतवर्ष की अवनति का एक कारण राज-श्रृंगाररस-प्रधान कवियों का आदर भी है। जब प्रधान काव्य को दबाकर श्रृंगार-रस ने अपना सि है, तभी से हमारे यहाँ के बल का ह्रास हुआ, ते हुआ और सभी ऐश-आराम में लीन हो गये।

जयचंद और पृथ्वीराज के समय तक वीर साम्राज्य था। यदि चंदबरदाई ने पृथ्वीराज को उ का भान न कराया होता, तो पृथ्वीराज को लोग की दृष्टि से न देखते, जैसे आज देखते हैं। यदि और चंपादे ने राणा प्रताप को उसके प्रण और दिग्दर्शन न कराया होता, तो राणा प्रताप शाय आन से च्युत हो गये होते। यदि भूषण ने शि इतना उत्साहित न किया होता, तो महाराष्ट्र-सा जड़ दक्षिण में न जमती। मतलब यह कि वीर काव्य ही इनमें शक्ति का संचार करता है। उसमें शक्ति है, जो वास्तविक बल में नहीं है। यहाँ तक आया है कि वीरता पूर्ण कथन के कारण एक सा साधारण व्यक्ति बड़े से बड़े हटे-कट्टे जवान से भि और उसे परास्त कर दिया है। नित्य प्रति ऐसे उ हरण सभी जगह देखने को मिलते हैं।

जब वीररस पूर्ण काव्य में इतनी शक्ति है, फि इतना ह्रास हो, यह क्या हमारे लिए हास्यास्पद

---

[1] Antiochos। [2] Ptolemy Philadelphus। [3] Antigonos Gonatos। [4] Alexander।

[1] पुरुषपुर-पेशावर।

हमारे शब्दों में कुछ भी शक्ति है, हमारे कवियों में कुछ उद्गार है, तो उन्हें दिल खोलकर वीर-रस-पूर्ण काव्य पुनः अपनी जातीय शक्ति को जीवित करना चाहिए। हममें जो मुर्दे-दिल लोग दिखाई पड़ते हैं, उन्हें पुनः -दिल बनाना इन्हीं कवियों के हाथ में है। जो काम ड़े नहीं कर सकते, वे ये कवि बड़ी सरलता से कर ते हैं।

श्री मैथिलीशरण गुप्त की 'भारत-भारती' ने जितना ार हमारा किया है, क्या वह किसी से छिपा है? स्व० र बाबू के 'वन्देमातरम्' गान ने जो शक्ति हमें दी है, हम कभी भूल सकते हैं? 'के बोले माँ तुमि अबले?' पद सुनकर कौनसा ऐसा भारतीय हृदय है, जिसके नहीं खड़े हो जाते? आज इन दोनों कवियों का जितना हममें प्रचार है, उतना क्या किसी भी श्रृंगारी कवि का हो सकता है? इतना होते हुए भी यदि हमारे कविगण श्रृंगार-रस पर ही ध्यान दें और वीर-रस की ओर ज़रा भी अपनी दृष्टि न डालें, यह हमारे लिए कितना हानिकर है? इस समय हमें श्रृंगार-रस के कवियों की ज़रूरत नहीं; हमें ज़रूरत है चन्द्र बरदाई जैसों की। यदि हमारे में चन्द्र बरदाई से कविगण दो-चार ही हो जावें, तो फिर देखिए हमारा देश कितना शीघ्र परतंत्रता की बेड़ी से छूटता है। अतः हमें अपने कवियों से यही प्रार्थना करनी है कि अब चन्द्र बनिए। यदि वे ज़रा भी हमारी प्रार्थना के अनुसार अपनी क़लम को मोड़ दें, तो फिर देखिए सब काम फ़तह है। आशा है, कविगण इसपर पूरा ध्यान देंगे।

उमाशंकर मेहता

विश्व-दर्शन

ीर अफ़ग़ानिस्तान की यूरोप-यात्रा

कुछ महीनों से अफ़ग़ानिस्तान के अमीर अमानुल्लाख़ां प की यात्रा कर रहे हैं। वह टर्की, इटली, फ़्रांस, जर्मनी इंग्लैण्ड इन सभी देशों में गये और वहां की सरकारों से ग़ानिस्तान के सम्बन्ध में उन्होंने बातचीत की। यह यात्रा नैतिक दृष्टि से भी बहुत महत्त्व की है। जब वह टर्की में समय तक रहे थे तभी इंग्लैण्ड और इटली के समाचार- में अमीर की यात्रा के राजनैतिक रहस्य की चर्चा चली कई राजनीतिज्ञों का विचार था कि वे दोनों देश मुसलिम के संघ बनाने पर विचार कर रहे हैं, जिसमें टर्की, त्र, अरब, ईरान, और अफ़ग़ानिस्तान होंगे। हम नहीं कह सकते कि यह अनुमान कहाँ तक ठीक है। परन्तु यदि यह सत्य हो, तो संसार में एक नवीन बृहत् शक्ति पैदा हो जायगी, जो यूरोप के साम्राज्यवादी देशों के लिए बहुत भयप्रद और चिन्ताजनक होगी। इसका प्रभाव अवशिष्ट एशिया पर भी पड़े बिना नहीं रहेगा। परन्तु यह प्रभाव कैसा पड़ेगा, यह उस संघ की मनोवृत्ति पर निर्भर है।

अफ़ग़ानिस्तान एक प्रगतिशील राष्ट्र है। उसकी राजनैतिक स्थिति भी बहुत महत्त्व की है। अमीर स्वयं नीतिज्ञ और बहुत महत्त्वाकांक्षी है, अमेरिका के 'न्यूयार्क टाइम्स' ने अमीर की मुसोलिनी से उपमा दी है। उस पत्र ने लिखा है कि जिस प्रकार मुसोलिनी ने कुछ ही समय में इटली को उन्नत बना दिया है, उसी तरह अमीर ने भी देखते-देखते

अफ़ग़ानिस्तान का दर्जा ऊँचा कर दिया है। 'डेली टेलीग्राफ़' 'डेली न्यूज़' और 'वेस्टमिंस्टर गज़ट' ने उसकी नवीन जापान से उपमा दी है। इस नवीन अभ्युदीयमान शक्ति से सभी राष्ट्र अच्छा सम्बन्ध स्थापित करना चाहते हैं, और इसी कारण सब राष्ट्र एक दूसरे से बढ़कर उसका स्वागत कर रहे हैं। अफ़ग़ानिस्तान में रूसी और जर्मन विशेषज्ञों के बहुत अधिक मात्रा में होने के कारण इंग्लैण्ड वाले ज़रूर चिन्तित हैं, और अमीर का विशेष स्वागत कर रहे हैं। अंग्रेज़ी सरकार उसे हर तरह से खुश करने का प्रयत्न कर रही है। स्थान स्थान पर भिन्न-भिन्न संस्थाओं की ओर से मानपत्र और उपाधियां दी जा रही हैं। उसे प्रत्येक प्रकार की युद्ध-सामग्री दिखाई जा रही है। हमारा अनुभव है कि इसमें भी एक रहस्य है। वह यह कि अमीर उसे देख कर भयभीत हो जाय और इंग्लैण्ड से मित्रता करने में ही अपना हित समझे। परन्तु अमीर भी इतना भोला नहीं कि इनसे विचलित हो जाय।

पनडुब्बियों के अन्त का असफल प्रयत्न

गत युद्ध में जर्मनी की पनडुब्बियों ने अपने शत्रुओं को बहुत हानि पहुँचाई थी। इसलिए तभी से इसका प्रयोग बन्द करने की चर्चा छिड़ती रही, परन्तु इसका कोई विशेष फल नहीं हुआ। अब संयुक्तराष्ट्र के मन्त्री श्रीयुत किलोग फिर इस चर्चा को छेड़ रहे हैं। उनकी इच्छा है कि सब राष्ट्रों से सन्धि द्वारा निश्चित कर लिया जाय कि पनडुब्बियों का प्रयोग युद्ध में न हो। उन्होंने इसके लिए प्रयत्न किया भी, परन्तु सफलता की आशा नहीं है। इंग्लैंड इसका विरोध नहीं कर रहा, क्योंकि इससे उसको विशेष हानि नहीं है। उसके जंगी जहाज़ों को नष्ट करने वाली पनडुब्बियां नष्ट हो जायँ तो अच्छा ही है। कई अंग्रेज़ राजनीतिज्ञों ने अमेरिका के इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया है। परन्तु इंग्लैंड के स्वीकार करने पर बात समाप्त नहीं हो जाती। आस्ट्रेलिया ने अभी इंग्लैंड में दो बड़ी-बड़ी पनडुब्बियां बनाई हैं। उसका कहना है कि पनडुब्बियाँ ही छोटे राष्ट्रों के लिए क्रियात्मक और कमख़र्चीली हैं, जिनसे वे अपने समुद्री तटों की रक्षा कर सकते हैं। वे न बड़े-बड़े जहाज़ बना सकते हैं और न भारी सेनायें रख सकते हैं। केवल आस्ट्रेलिया ही
नहीं, जापान भी पनडुब्बियों को नष्ट करने के
नहीं हैं। इटली भूमध्यसागर के पास रहते हु
की इस योजना को स्वीकार करेगा, यह असंभव
के समाचारपत्र भी इसके पक्ष में कुछ नहीं
फ़्रांस के लिए भी यह विकट समस्या है। उसकी
ताक़त ही पनडुब्बियों में है। वाशिंगटन के प्रसि
में पनडुब्बियों का प्रयोग न करने का निश्चय
परन्तु फ़्रांस के न घटाने पर यह विचार क्रिय
सका। फ़्रांस का कहना है कि उसकी स्थिति ही
कि सामुद्रिक शक्ति में प्रबल इंग्लैंड उसके दबा
मध्यसागर में भी, जिसके द्वारा फ़्रांस उत्तरीय
व्यापार करता है, कई महत्वशाली स्थानों पर
अधिकार है। वह केवल पनडुब्बियों द्वारा ही
और तट की रक्षा कर सकता है। इटली के
यह कहा जा सकता है कि उसका तट सुरक्षि
केवल यूरोप ही नहीं अमेरिका के भी कई छोटे
जना को मानने के लिए तैयार नहीं हैं। पेरू के
केवल पनडुब्बियों में है। यहीं तक ही नहीं, संयु
कुछ पत्र श्रीयुत किलौग की इस योजना के पक्ष
वाशिंगटन के 'पोस्ट' ने लिखा है कि पनडुब्बि
करने से इंग्लैंड ही जल-सेना में सबसे प्रबल हो
संयुक्तराष्ट्र को भी अपने व्यापारियों और पनाम
रक्षा के लिए शस्त्रास्त्र से सुसज्जित जंगी जहाज़ों
में समर्थ पनडुब्बियों की आवश्यकता है। जब त
अन्य सभी राष्ट्र जहाज़ी शक्ति कम नहीं करते,
अपनी नाशक पनडुब्बियों को बहुत बढ़ावेगा।

तीन ऐसे छोटे-छोटे राष्ट्र भी हैं, जो श्रीयुत
इस योजना को मानने के लिए तैयार हैं। ऐसे
स्विट्ज़रलैण्ड, अण्डोरा, ज़ैकोस्लोवेकिया और
हैं। इनमें से पहले दो के पास तो समुद्र ही नहीं
तीनों का अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर कुछ प्रभाव

इस तरह श्रीयुत किलौग का यह प्रयत्न भी व्य

इंगलैण्ड और मिस्र

इंग्लैण्ड ने मिस्र के साथ अब तक क्या कु
हैं, यह पाठक जानते ही हैं। स्व० जगलूलपाशा

ाँ राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न हुई, उसके कारण मिस्र पर से अपना नाम का अधिकार तो दूर कर लिया था, वहाँ सेना रखने और कुछ विशेष अधिकार लेने का पंजा वैसे का वैसा ही रहा था। इसे दूर करने में सफल न हो सका। जगलूलपाशा के बाद सरवतपाशा के राष्ट्रीय आन्दोलन को जारी रक्खा।

भी कुछ समय हुआ कि अँग्रेज़ों ने एक संधि की मिस्री सरकार के पास भेजी। इसके अनुसार मिस्र ज़ी सेनायें रखने का अधिकार इंग्लैण्ड के पास ही और वहाँ अँग्रेज़ों के जान-माल की रक्षा के बहाने अधिकार इंग्लैण्ड के पास रक्खे गये थे। मिस्र की सरकार के प्रधान मन्त्री सरवतपाशा ने इसे यह कह स्वीकृत कर दिया कि इससे मिस्र की स्वतन्त्रता का ग होता है। सरवतपाशा के इस उत्तर से अँग्रेज़ ह गये हैं। उन्हें मिस्र से ऐसे साहस की आशा न थी। से सेना हटाने और विशेषाधिकार छोड़ने के लिए यार नहीं होंगे, यह निश्चित है। अँग्रेज़ों का कहना है ने संधि में पर्याप्त उदारता दिखाई है।

स घटना के बाद सरवतपाशा ने प्रधानमन्त्री के पद ग-पत्र दे दिया है। अब नहसपाशा वहाँ के नये मन्त्री नियुक्त हुए हैं। उन्होंने आते ही कहा कि में समझौता हो जाने की बहुत संभावना है, परन्तु की सरकार कोई ऐसी बात स्वीकार नहीं करना चाहती ससे मिस्र की पूर्ण स्वतन्त्रता और उसके सूडान के ारों में कोई बाधा होती हो। समझौता दो मित्रराष्ट्रों ह होना चाहिए, न कि जैसा प्रभु और सेवक में होता ये प्रधानमन्त्री ने विदेशियों को भी विश्वास दिलाया उनके हितों की रक्षा की जायगी। अभी नहीं कहा जा कि इस विरोध का भावी परिणाम क्या होगा। अपने अधिकार छोड़ने को कहाँ तक तैयार होंगे, यह कठिन है। इस स्थान पर अधिकार रखना अँग्रेज़ों के राजनैतिक दृष्टि से बहुत महत्व का है। स्वेज़ नहर पर ार रखने के लिए उसपर अधिकार रहना आवश्यक रन्तु मिस्र भी अब अँग्रेज़ों के इस पंजे से छूटने के लिए कटिबद्ध हो चुका है। एक न एक दिन अवश्य ही वह इस जुए को अपने कंधे से उतार कर फेंक देगा।

ईराक़ पर इब्नसऊद

ईराक़ का राज्य भले ही स्वतन्त्र कहा जाता हो, परन्तु है उसपर अंग्रेज़ों का प्रभुत्व ही। वहां का नाम मात्र का राजा फ़ैज़ूल है, पर वहां के शासन और सैनिक रक्षा के सम्बन्ध का सब उत्तरदायित्व अंग्रेज़ों ने ले रक्खा है। अभी कुछ समय हुआ, हेज्जाज़ के महत्त्वाकांक्षी शासक इब्न सऊद ने उस प्रदेश पर आक्रमण कर दिया, जिसे वह धार्मिक युद्ध के नाम से पुकारता था। वह इस उपजाऊ प्रदेश पर बहुत समय से आँखें लगाये हुए है। इब्नसऊद के इस आकस्मिक आक्रमण से अंग्रेज़ों को बहुत चिन्ता हुई और उन्होंने भी सीमा की रक्षा का पूरा प्रबन्ध करने के लिए हवाई सेना भेजदी। बहुत संभव था कि यह युद्ध विकट रूप धारण कर लेता, परन्तु शीघ्र समझौते की बातें चलने लगीं। अभी नहीं कहा जा सकता कि क्या समझौता होगा? ईराक़ का प्रदेश व्यापारिक दृष्टि से ही महत्वशाली नहीं, फ़ारस की खाड़ी के तट के समीपवर्ती होने के कारण राजनैतिक दृष्टि से भी कम महत्व नहीं रखता। इसलिए अंग्रेज़ों ने इस प्रदेश पर फैजूल को राजा मान कर अपना अधिकार कर रक्खा है। पहले भी इब्नसऊद ने इस प्रदेश पर अधिकार करने का प्रयत्न किया था, परन्तु सफलता नहीं हुई। गत वर्ष जेद्दा की संधि में इब्नसऊद ने कोर्वीट और बेहरिन से मित्रता बनाये रखना स्वीकार किया था, परन्तु यह निश्चित है कि वह केवल हेज्जाज़ से संतुष्ट नहीं हो सकता। वह ईराक़ के उपजाऊ प्रदेश को लेने की कोशिश में है और इसके लिए उद्योग करता रहेगा। बेहरिन के रास्ते से ही प्रायः उसका संपूर्ण व्यापार होता है।

फ्रांस और संयुक्तराष्ट्र की संधि

इस सन्धि का वस्तुतः कोई महत्व नहीं है। केवल पुरानी संधि को किसी तरह जारी रखने के लिए ही दोनों राष्ट्रों ने यह संधि की है। इससे युद्ध रुके, ऐसी कोई सम्भावना नहीं है।

कृष्ण

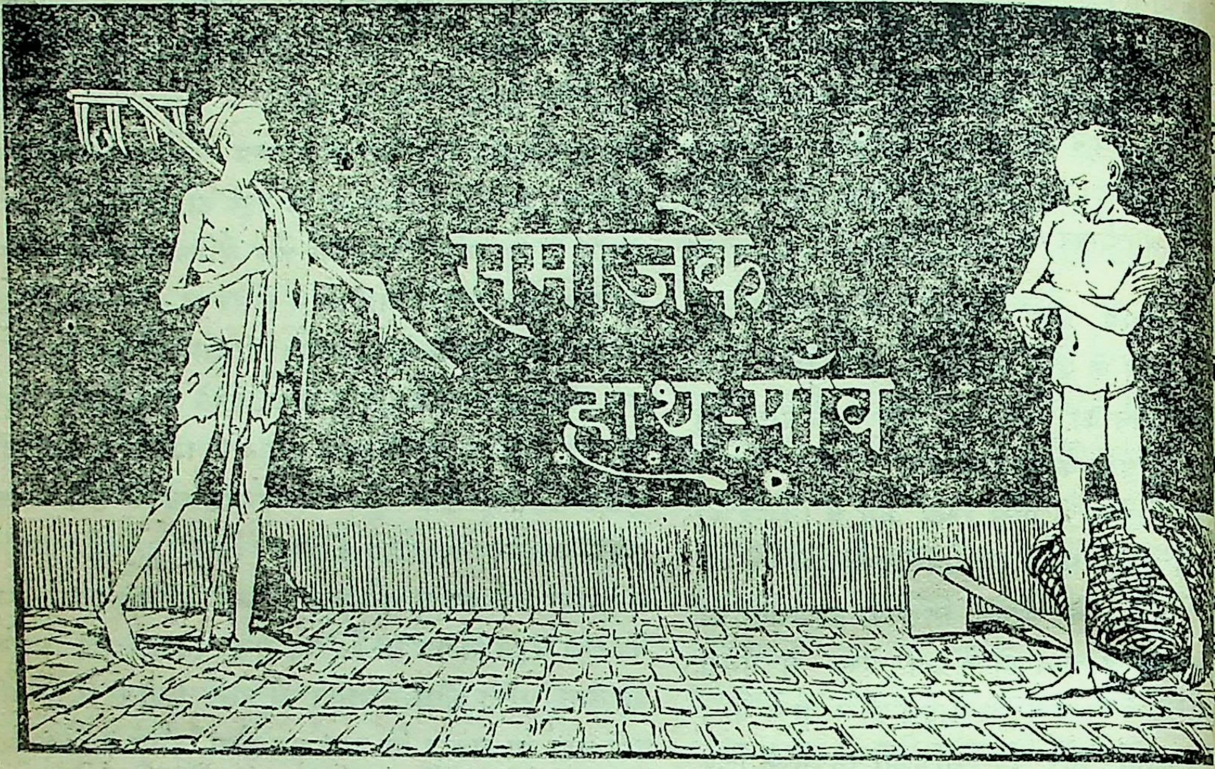

वस्त्र-व्यवसाय के मज़दूर

नवम्बर १९२६ में श्रीयुत टी० शा की अध्यक्षता में वस्त्र-व्यवसाय के श्रमिकों के अन्तर्राष्ट्रीय संघ की ओर से एक प्रतिनिधि-मण्डल भारतवर्ष के कपड़े के कारख़ानों के मज़दूरों की जांच करने आया था। एक साल तक उसने भारत में भ्रमण कर श्रमिकों की दशा के सम्बन्ध में जो रिपोर्ट लिखी, उसका सारांश 'आज' के आधार पर नीचे दिया जाता है—

"श्रमिकों की आर्थिक अवस्था बहुत ही ख़राब है। उनके रहने का तो कोई प्रबन्ध नहीं किया जाता। आबो-हवा, आदत, परम्परा तथा धर्म का विचार करते हुए भी भारतीय मज़दूरों के रहने के मकान, किसी भी सरकार के, चाहे वह ब्रिटिश हो या भारतीय, कार्य पर काला धब्बा और अप्रतिष्ठा हैं।

"भारतीय और यूरोपीय मिलों के मज़दूरों के कार्य-काल तथा वेतन में कोई अन्तर नहीं है। ब्रिटिश भारत से कहीं कम वेतन पर देशी रजवाड़ों में अधिक काम करना पड़ता है।

"केवल राजनैतिक स्वाधीनता से ही काम न ब्रिटिश भारत (यूरोपियन और भारतीय) तथा में संगठित श्रमीसंघों आवश्यकता है। परन्तु इस बड़ी कठिनता यह है कि मज़दूर अशिक्षित हैं। इस के कार्यकर्ताओं द्वारा सञ्चालित एक शक्ति-सम्पन्न संघ (श्रमीसंघ) न होने का उत्तरदायित्व ब्रि देशी सरकारों की लज्जास्पद उपेक्षा पर है। अपेक्षा तो मिल-मालिक ही मज़दूरों की शिक्षा प ध्यान दे रहे हैं।

"जब तक मज़दूर स्वयं शिक्षित होकर व्यव का कार्य नहीं करेंगे, तब तक विशेष लाभ न होगा

" अखिलभारतीय व्यवसास-संघ के बनने में कठिनता है और वह यह कि भारत के एक केन्द्र केन्द्र में इतना अन्तर है कि व्यवसाय-संघ की संस्था बनने में कई वर्ष लगेंगे। स्वतन्त्र तथा बहुत से बन गये हैं।

"मज़दूर अनपढ़ होने के कारण बहुत कम काम करने को तैयार हो जाते हैं।

"भारतीय व्यवसाय-संघों की दशा बहुत शोचनीय है। ई में वस्तु व्यवसाय के मज़दूरों के दो संघ हैं, पर ोनों एक दूसरे से प्रतिस्पर्द्धा कर रहे हैं । मद्रास ी यही अवस्था है ।

"व्यवसाय-संघ की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण धिक उपयोगी काम नहीं कर सकते । उसके सदस्यों चन्दा ही इतना कम है कि आर्थिक व्यवस्था अच्छी हो सकती ।

"भारतीय मज़दूरों को उस विकट परिस्थिति का मना तो करना ही पड़ रहा है, जिसका यूरोप के मज़दूरों पहले करना पड़ा था; परन्तु साथ ही उन्हें जाति-पांति, -रिवाज़ तथा धर्म-भेदों से भी लड़ना पड़ रहा है। भी भारत के मज़दूर इतने उन्नत हो गये हैं कि वे बड़ी ेरी और साहस के साथ किसी अन्याय का विरोध ते हैं ।

"यह आश्चर्य की बात है कि भारत में श्रमिकों की श्यकता-पूर्ति के लिए कोई सहयोग की संस्था नहीं है ।

"अहमदाबाद को छोड़कर चारों ओर व्यवसाय-संघ तुतः व्यवसाय-संघ न होकर प्रतिस्पर्द्धी-संघ बन गये । स्फुट प्रयत्न तथा विभाजित कार्य का सबसे कठिन कटु, खद उदाहरण कलकत्ता है । यद्यपि वहां कई हज़ार श्रमी परन्तु उनमें केवल दो हज़ार ही संगठित हैं । और उनमें दो दल हैं । मज़दूरों का प्रबल संगठन बम्बई, अहमदाबाद तथा मद्रास में है ।

"यूरोपीयन देशों के मिल मालिकों की भांति भारतीय ल-मालिक व्यवसाय-संघों की स्थापना में वैसी बाधा हीं डालते । कई तो इसे उत्तेजन भी देते हैं ।

"यूरोप के कारख़ानों से भारतीय कारख़ानों की तुलना रना असंभव है । रुई या ऊन के सूत को कंघा करने के म में लंकाशायर के कारखाने से ५ गुने अधिक श्रमी रत में लगते हैं । जिस काम पर लंकाशायर में एक ादमी नियुक्त रहता है, उसी काम पर मद्रास में चार ादमी लगते हैं ।

"भारत में मज़दूरों की दशा बहुत बुरी है, तथापि अब ह एक गुलाम नहीं रह गया है । उसको व्यवसाय-संघ में सम्मिलित होजाने का अधिकार है । यूरोप में इन संघों के जन्म के समय जो अवस्था थी, उससे अच्छी अवस्था भारत में अब है । यह आशा करनी चाहिए कि शीघ्र ही भारत का व्यवसाय-संघ उन्नत होजायगा ।"

इस रिपोर्ट में भारतीय श्रमिकों की शारीरिक अवस्था, जाति-पांति, उनके व्यर्थ व्यय आदि पर भी कुछ प्रकाश डाला गया है । कुछ ऐसी बातें भी लिखी गई हैं, जो सरकार की व्यर्थ और असत्य प्रशंसा में हैं । उन्हें हमने छोड़ दिया है ।

रेलवे मज़दूरों की हड़ताल

भारतवर्ष के तमाम मज़दूरों में सबसे अधिक संगठित और सुव्यवस्थित वस्त्र-व्यवसाय और रेलवे के मज़दूर हैं । इन्हीं में सबसे अधिक जागृति और शक्ति है । अन्य मज़दूरों की अपेक्षा अन्याय का विरोध यही दोनों अधिक काल तक और सफलता के साथ कर सकते हैं । कुछ मास पूर्व खड़गपुर के रेलवे मज़दूरों ने बड़ी शानदार विजय प्राप्त की थी । उसके बाद लिलुआ के वर्कशाप में हड़ताल शुरू हुई, परन्तु शीघ्र समझौता होजाने के कारण वह बन्द कर दी गई । अब फिर लिलुआ के वर्कशाप में हड़ताल होने के समाचार मिले हैं ।

इस हड़ताल का कारण वही है, जो प्रायः होता है । मज़दूरों के वेतन और उनके साथ दुर्व्यवहार का प्रश्न । लिलुआ के वर्कशाप के मज़दूरों की देखा-देखी हबड़ा के कैरेज विभाग के ५०० मज़दूरों और वामनगाछी के २०० मज़दूरों ने भी हड़ताल कर दी है । यही नहीं, बंगाल-नागपुर रेलवे के श्रमी-संघ की कार्यकारिणी ने उनकी सहायता करने का निश्चय किया है ।

खड़गपुर की शानदार हड़ताल से पराजित होने पर भी सरकार ने कोई शिक्षा नहीं ली, ऐसा मालूम होता है । अब मज़दूर जाग चुके हैं, उन्हें अपनी शक्ति पर विश्वास हो चुका है । अब सरकार को यह समझ लेना चाहिए कि उन्हें दबाने से काम नहीं चलेगा । इसी तरह मिल-मालिकों को भी हर समय यह ख़याल रखना चाहिए । टाटा के लोहे के कारख़ाने में रेल की पटरी बनाने वाले मज़दूरों ने वेतन न

बढ़ाने के कारण हड़ताल कर दी है; यह समाचार भी अभी मिला है।

यह समय हमारे लिए बहुत विकट है; यह समय हमारे राष्ट्र-निर्माण का समय है। इस समय का प्रत्येक आन्दोलन हमारे अन्दर एक विशेष स्थिर भाव—एक विशेष प्रवृत्ति—पैदा कर देगा, जो हमारे राष्ट्र के बन जाने पर दूर न होगी। वह हमारा स्थिर स्वभाव बन जायगा। यदि अभी हमने मज़दूर-जागृति को उपेक्षा की दृष्टि से देखा, तो यह पूंजीपति-मज़दूर-विद्वेष बढ़कर एक उग्र समस्या हो जायगी, जो हमारे राष्ट्र-निर्माण अथवा राष्ट्र की प्रगति में बहुत भयावह बाधा उपस्थित करेगी। यूरोप के राष्ट्रों की वर्तमान विकट स्थिति से उन्हें शिक्षा लेनी चाहिए। पिछली इंग्लैण्ड की सार्वजनिक हड़ताल से उसे करोड़ों रुपयों का नुक़सान हुआ।

एक बात और। पूंजीपतियों की इस विदेशी सरकार से यह आशा करना व्यर्थ है कि वह भारत में इस समस्या का सच्चे दिल से उपाय सोचेगी। भले ही वह भारतीय लोकमत के आन्दोलन के कारण अन्तर्राष्ट्रीय श्रमी-संघ में भारतीय प्रतिनिधि भेज दे और श्रमी-सम्बन्धी कुछ क़ानून भी बना दे, परन्तु वह इस विद्वेष को सच्चे दिल से शान्त करने की चेष्टा करे, यह असंभव है। वह तो चाहती है कि यहां विद्वेष बढ़े और हमारे कारख़ानों को क्षति पहुँचे। इसलिए यह काम भारतीय मिल-मालिकों तथा नेताओं को ही करना पड़ेगा। यदि वे चाहते हैं कि भारतीय व्यवसाय उन्नत हो, और उसे संरक्षण मिले, तो उन्हें मज़दूरों को उन्नत करना होगा और उन्हें संरक्षण देना होगा।

कृष्ण

किसानों के सुधार की समस्या

बम्बई इलाक़े के खेती विभाग के सुप्रसिद्ध डाइरेक्टर डॉ० मैन अभी २० वर्ष की अपनी नौकरी की अवधि पूरी करके इंग्लैण्ड गये हैं। वहाँ उन्होंने 'टाइम्स आफ़ इण्डिया' के संवाददाता को मुलाक़ात दी। उसमें अपने अनु
सार सुनाते हुए उन्होंने कहा—

"भारतवर्ष के किसानों की स्थिति का विचार का
हम एक बात को नहीं भूल सकते। वह यह कि भा
किसानों को साल में छः महीने कोई काम न रहने के
बेकार रहना पड़ता है। आबपाशी के लिए चाहे कित
प्रयत्न लिया जाय, बम्बई इलाक़े में तो फ़ी सैकड़ा ती
चार ही आदमियों को बारहों महीने काम मिल स
अन्य किसानों को तो मामूली खेती पर ही निर्वाह
पड़ता है। और उसमें ज़मीन में हद दर्जे का सुधा
लेने पर भी उन्हें छः महीने से अधिक काम नहीं मिल
और खेती को छोड़कर देश के और सब धन्धे नष्ट हो
के कारण किसानों को शेष छः महीने बेकार ही रहना
है। इसलिए किसानों का सुधार करते समय हमें जि
का विचार करना चाहिए वह उनकी खेती का सुधा
बल्कि उनकी इस बेकारी को दूर कैसे किया जाय य
उनका सवाल यह है कि बेकारी के छः महीने कैसे क
के शासक और समाज-सुधारक इस बेकारी के प्रश्न की
करके किसानों की उन्नति के लिए और चाहे कितने ही
करें, पर यह निश्चय है कि उन्हें उन प्रयत्नों में स
नहीं होगी। आप लोगों के सामने चाहे कितनी ही बड़ी
और उदात्त योजनायें रक्खें, परन्तु यह पेट इन भूखों
वाले किसानों के दिमाग़ में उन्हें घुसने ही न देगा।
इसीलिए सरकार तथा देश के अन्य सुधारकों के प्रय
ष्फल हो रहे हैं। इसलिए उन्हें चाहिए कि वे इस मह
प्रश्न को हाथ में ले। दूसरी बातों में महात्मा गांधी के
जो कुछ भी हों, परन्तु वर्तमान परिस्थिति में तो सिवा
के बेकार किसानों की मुक्ति का और कोई उपाय ही नहीं

हमें आशा है कि बीस वर्ष के लम्बे अनुभव और
यन के पश्चात् प्रकट किये गये डॉ० मैन के इन
पर पाठक भी विचार करेंगे।

वै०

विविध

फ़ैसिस्ट सरकार की आर्थिक नीति

किसी भी देश की आर्थिक अवस्था का ज्ञान सप्ताह दो प्ताह के अध्ययन से नहीं हो सकता । फिर यदि कोई ात्री विदेश देखने की नियत से सरकारी अहलकारों की हायता पाकर ख़ूब घूमे भी, और साथ ही सरकारी आँक-ों के साथ पुस्तकें भी लिखता चले, तो उस पुस्तक को हाँ तक प्रामाण्य माना जा सकता है ? दूसरों को बदनाम रना हम नहीं चाहते, किन्तु हमें आश्चर्य होता है कि सर ंक फ़ोक्स ऐसे सुलेखक ने किस प्रकार केवल १०-१५ दिन ं 'वर्त्तमान इटली' नामक पुस्तक लिखी और उसमें मुसोलिनी के शासन की आर्थिक विजय का झूठा चित्र खींच डाला ! र फ्रैंक ने यहाँ तक लिख डाला है कि मुसोलिनी के शा-नारूढ़ होने के समय इटली छिन्न भिन्न हुआ ही चाहता ा, तथा उसकी आबादी भूखों मरा चाहती थी । इन थनों तथा मुसोलिनी की प्रशंसाओं की सत्यता ानने के लिए यह उचित है कि हम 'रोम पर फ़ैसिस्ट ाक्रमण' के समय के पूर्व अर्थात् अक्तूबर १९२२ के र्व की इटली की अवस्था का थोड़ा सा ज्ञान प्राप्त कर लें ।

१९१३ में इटली का आंतरिक व्यवसाय इतना बढ़ा ढ़ा था कि वहाँ की रेलों द्वारा लगभग ३७१ लाख टन ामान का प्रति वर्ष यातायात होता था । महासमर के ारण चारों ओर कारोबार मन्दा पड़ रहा था । उस समय ९१८ में हिसाब करने पर पता चला कि वह संख्या घट िर केवल २८० लाख टन ही रह गई है । महासमर के ारण उत्पन्न दरिद्रता के परिणाम-स्वरूप १९२० में यह ाल २७० लाख टन के लगभग हो रह गया । परन्तु व्यापार ौर व्यवसाय पुनः चमका और १९२२ में रेलवे कम्पनियाँ ६१ लाख टन के लगभग माल पुनः ले जाने लगीं ।

इटली का व्यवसाय भी साधारण न था । १९१३ में १११ लाख टन के लगभग कोयला यहाँ ख़र्च होता था और बाहर से आता था । महासमर में जब चारों ओर माल आना जाना बन्द हो रहा था, इटली में भी कोयला केवल ५० लाख टन ही आता था । परन्तु यह अवस्था सदैव न रही । यद्यपि सन् १९१९ में यह संख्या ६० लाख तक पहुँची थी, पर पुनः सन् १९२० में ५०½ लाख के लगभग हो गई थी । परन्तु इसमें इटली की दरिद्रता का कारण नहीं, हरन्तु आवागमन की कठिनाइयों के साथ साथ कोयले के मूल्य में बेहद बढ़ती थी । जो कोयला ब्रिटिश बन्दरगाहों पर २ पौंड प्रति टन के हिसाब से पड़ता था, वही इटली आकर ८ पौंड प्रति टन पड़ता । परन्तु सन् १९२१ में कोयले का दाम घटकर २ पौंड १० शिलिंग हो गया था इटली में इसका आयात पुनः बढ़ गया और १९२२ में बढ़कर पुनः ९० लाख टन हो गया । परन्तु इस बीच में जब कोयले की खपत विशेष होने पर भी कोयला न मिला तो बिजली और तेल से बहुत सा काम लिया जाने लगा । उद्योग-धन्धे, जिन्हें कहा जाता है कि मुसोलिनी-शासन में बड़ी उत्तेजना मिली है, उस समय कैसे पनप रहे थे, इसका उदाहरण निम्न अंकों से जाना जा सकता है—

वर्ष	कम्पनियों की संख्या	पूंजी
१९१८	३,४६३	७२,५७० लिरा (इटली का सिक्का)
१९१९	४,५२०	१,३०,१४० ,,
१९२०	५ ५४१	१,७७,८४० ,,
१९२१	६,१९१	२,०३,५०० ,,
१९२२	६,८५०	२,१३,९५० ,,

पाठक भली प्रकार समझ गये होंगे कि वह, जो सर फ्रैंक की पुस्तक❀ के अनुसार 'रोम पर आक्रमण' के समय

❀ Italy Today. By Sir Frank Fox (Jenkins. 105 6d). March to Rome.

'भूखों मर रहा था,'‡ किस प्रकार उत्तरोत्तर वृद्धि और उन्नति करता जा रहा था। पाठकों को एक संख्या और भी रोचक ज्ञात होगी। यदि इटली भूखों मर रहा था, तो उसने नीचे लिखी संख्या के अनुसार मोटर आदि विलासिता की वस्तुओं को किस प्रकार ख़रीदा होगा? निम्नलिखित संख्या इटली में रजिस्ट्री की हुई मोटर-गाड़ियों की है—

वर्ष	निजी गाड़ियां	सरकारी गाड़ियां
१९१८ ...	१५,५६२	... १,२३५
१९१९ ...	२१,७५६	... २,११४
१९२० ...	२८,६०४	... २,८६२
१९२१ ...	३१,१६१	... २ ६७७
१९२२ ...	३७,१६४	... ३,८७१

इससे पाठकों को मालूम होगया कि इटली मुसोलिनी से पूर्व कितना समृद्ध और सम्पन्न हो रहा था। परन्तु ऐसे अवसर पर सर फ्रेंक समृद्धि का श्रेय मुसोलिनी को देते हुए लिखते हैं कि १९२२ में सरकारी बजट में १२६,४९० लाख लिरा की कमी थी। फ़ैसिज़्म के प्रथम वर्ष अर्थात् १९२३ में वह कमी ३०,२९० लाख लिरा ही रह गयी और सन् १९२४ में तो वह घट कर ४,१८० लाख लिरा ही रही। १९२५ में ४,७९० लाख लिरा की बढ़ती हुई तथा १९२६ में वह बढ़ कर २२,६८० लाख हो गयी। इस प्रकार १९२२ से तुलना करने पर १९२६ में १४९,१७० लाख लिरा का लाभ रहा। यह है मुसोलिनी-शासन का महत्व। परन्तु अभी हम देखेंगे कि सर फ्रेंक के कथन में कहाँ तक सचाई है।

ख़ज़ाने के हिसाबों को जाँचने के लिए एक समिति इटली में होती है। उसका नाम है 'कोर्ते दी कॉन्ती' (corte dei conti)। इसके सभापति ने सन् १९२६ की २२,६८० लाख की अधिक आय पर बड़ी प्रसन्नता प्रकट की थी तथा यह घोषित किया था कि हम आपको १८,००० लाख लिरा इटली के पुनरार्थिक निर्माण (Economic reconstruction) के लिए व्यय किया जायगा।

अब हम पाठकों को आय की इस धोखे की पूरा-पूरा रहस्योद्घाटन करेंगे। जिस समय शासन अपने हाथ में लिया उस समय महासमर के उपरा लित आर्थिक अग्नि शान्त हो चुकी थी। महासमर संसार की अधिकांश महाशक्तियों को भयंकर आर्थि का सामना करना पड़ा था। उस तूफ़ान का मुक़ाब लिनी-सरकार को नहीं, पर उसके पूर्व की सरकार पड़ा था। परन्तु फिर भी बहुत प्रशंसनीय योग्यता उसने अपना सङ्कट निबाहा। जनवरी १९२० में ए राष्ट्रीय ऋण द्वारा १८०,००० लाख लिरा उगाहा १९२१ में साधारण क़ानून द्वारा ६०,००० लाख व्यय कम कर दिया गया। सरकारी आय किस प्र गयी, यह निम्नलिखित अङ्कों से जाना जा सकता है

वर्ष	आय
१९१८–१९	६,७५० लाख
१९२०–२१	१८८,२०० लाख
१९२१–२२	१९७,९०० लाख

यह तो उसकी आय हुई। परन्तु व्यय कित पड़ता था, यह भी जानना चाहिए। महासमर विशेष व्यय बहुत बढ़ गये थे और बहुत बड़ी र सम्बन्धी ऋण आदि के चुकाने के किए देनी थी। २१ में १२१,००० लाख लिरा और १९२१–२२ ००० लाख लिरा उस व्यय की मद में दिया गया फ्रेंक की संख्या पर विश्वास न कर पाठक यदि अंकों पर ध्यान देंगे तो उन्हें यह स्वीकार करना मुसोलिनी-सरकार से कहीं अच्छी वह पूर्व की सर १९१८–१९ में महासमर के व्यय इत्यादि के का २२७,००० लाख की कमी थी, तहाँ सन् १९२ कमी केवल ४५,००० लाख की ही रह गयी। इत काम इतने थोड़े समय में फ़ैसिस्ट सरकार से पहले कार ने किया। अब ज़रा सन् १९२६ के फ़ैसिस्ट इस अप्रतिम आय का रहस्य भी समझना चाहिए पूर्व की सरकार ने इतना सुंदर प्रबन्ध किया था समय इनका शासन हुआ उस समय लड़ाई के केवल ६१ लाख लिरा के लगभग की रक़म देनी रह

---

‡ Italy Today Page 62.—'Italy seamed on the verge of dissolution...." Population was put to the stress of starvation."

—२४ में यह रक़म ४१ लाख के लगभग और —२५ में ३१ लाख रह गई। परन्तु इतने पर भी कर या गया था। इस प्रकार आय होती ही रही।

ज़रा सन् २६ की महान् आय का असली अर्थ समझना चाहिए। आय व्यय के चिट्ठे में आय तथा व्यय ा जोड़ लेने के उपरान्त जो बचता है वह अधिक हा जाता है। परन्तु बिना व्यय जोड़े यदि हम चाहें तो सभी व्यय की रक़म को आय कह सकते हैं। सिस्ट बजट का रहस्य है, जिसको न समझने के सारा संसार चमत्कृत हो जाता है तथा फ़ैसिस्ट की भूरि-भूरि प्रशंसा करता है। पाठकों ने ऊपर दी कॉन्ती' के सभापति का वक्तव्य पढ़ा है। आपने सन्नता के साथ २२,६८० लाख अधिक 'आय' की है। परन्तु किस मक्कारी के साथ व्यय बिना ी यह 'आय' 'आय' बतलायी गयी है, यह आपके थन से जाना जा सकता है कि इसमें से १८,००० लिरा देश के आर्थिक निर्माण में व्यय होगा। अब इस २२,६८० लाख की नक़ली या ख़याली 'अधिक में से १८,००० लाख की रक़म निकाल दी जाय तो ४,६८० लाख ही बचता है और वास्तव में यही अधिक आय है, × जो मुसोलिनी के कई वर्षों के म से तथा उस शान्तिकाल का विचार करते हुए बहुत है। क्रान्ति और आर्थिक संकट की अवस्था में ही मुसोलिनी के पूर्व की सरकार ने जो आर्थिक व्यवस्था और सुप्रबन्ध किया था, वस्तुतः उसीका यह परिणाम है। १९२१ के अन्त में ही इटली के एक प्रसिद्ध अर्थशास्त्री ने तत्कालीन आर्थिक प्रगति देख कर कह दिया था कि १९२३-२४ तक सरकारी बजट की यह कमी पूरी होजायगी।

'विशेष आय' का रहस्य पाठक समझ गये। अब मुसोलिनी—सरकार की दूसरी आर्थिक विजय पर विचार करना चाहिए। कहा जाता है कि मुसोलिनी—सरकार की सफल आर्थिक नीति का यह परिणाम है कि (मई १९२७ तक) लिरा का मूल्य पौंड स्टर्लिंग में ८८ के बराबर होगया है। कहाँ १९२५ में १२१.१६ का अनुपात था, १९२६ में तो वह १४८.३२ तक होगया था। यदि हम 'मुसोलिनी—युगागमन' के पूर्व सन् १९२२ का विचार करें तो उस समय वह लिरा ९३ के मूल्य का (पौंड स्टर्लिंग में) था। फ़ैसिस्ट शासन प्रारम्भ होते ही वह गिर कर ९९ हो गया। इसके बाद यह फ़ैसिस्ट शासन का ही कुपरिणाम था कि वह निरन्तर गिरता ही जा रहा था। इसी कारण इटली की बहुत बड़ी हानि हुई। ऐसी अवस्था में यदि फ़ैसिस्ट-शासन ने अन्त में बड़े प्रयत्न के उपरान्त उसे ८८ तक पहुँचाया—सो भी अपनी आर्थिक योग्यता के कारण नहीं, परन्तु अमेरिका से तीन करोड़ लिरा कर्ज़ लेकर—तो यह किसी प्रकार से उनकी योग्यता का समर्थन नहीं कर सकता।

कहा जाता है कि मुद्रा के चलन में नियन्त्रण करके यह मूल्य स्थिर किया गया है। चलन में जो रक़म फँसी थी, उसे कम किया गया है तथा १९२६ के अगस्त से लेकर १९२७ के अगस्त तक एक अरब लिरा चलन में से उठा लिया गया है। परन्तु किस मक्कारी के साथ यह रक़म बतलायी जाती है! हम इतने मूर्ख नहीं हैं कि साधारण अर्थशास्त्र की बात भी न समझ सकें। अवश्य एक अरब मूल्य की चलन उठा ली गयी है। पर वह रक़म काग़ज़ी चलन थी। चाँदी का भी मूल्य नीति से तय किया गया है। जहाँ उसका असली मूल्य सुवर्ण का $\frac{१}{३८}$ भाग है वहाँ $\frac{१}{९६}$ ही रक्खा गया है। स्पष्ट शब्दों में काग़ज़ी सिक्का हटा कर चाँदी का सिक्का चलाया गया है, परन्तु चलन की संख्या में वह मात्रा छिपा दी गयी है। किस मात्रा में

× यह वस्तुतः ठीक नहीं है। मुसोलिनी के इस नये में पहले सालों की अपेक्षा बहुत अधिक आय हुई है। साधारण व्यय को देखते हुए २२,६८० लाख लिरा आय ही है। इस बचत का बड़ा हिस्सा वहां की सर आर्थिक निर्माण—व्यवसाय, व्यापारादि की उन्नति के (जो प्रतिवर्ष का ख़र्च नहीं है)—लगाया है, जो उसका प्रशंसनीय कार्य है। एक दूकानदार अपने वार्षिक व्यय काल कर २००० रु० बचत करता है और उसमें से को नयी पूंजी का रूप देकर व्यापार बढ़ा लेता है, तो पकी बचत १५०० न कहला कर २००० कहलायगी। व्यवस्था यहां भी है। सं०

चाँदी का सिक्का चलाया गया है, यह भी किसी को नहीं मालूम! मुसोलिनी की आर्थिक विजय का राग अलापने वाले भी यह नहीं जानते!

इस प्रकार आर्थिक दृष्टि से मुसोलिनी का फ़ैसिस्ट शासन कोई भी महत्व नहीं रखता, यह पाठकों को भली भांति विदित हो गया होगा।⊛

परिपूर्णानन्द वर्मा

प्रतिस्वर

साधारणतः यूरोपीय विद्वानों और उनके अनुयायी भारतीय विद्वानों का विश्वास है कि भारतवासी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में बिलकुल जंगली और वहशी थे। उन्हें शिक्षा और सभ्यता का पाठ पढ़ाने का गौरव किसी को है तो वह यूरोप है। यही नहीं, बल्कि उनका यह भी विश्वास है कि संसार के लम्बे इतिहास में आज की बीसवीं सदी ही सब से उज्ज्वल पर्व है। आये दिन संसार में जो नाना प्रकार के वैज्ञानिक आविष्कार और उनके विविध उपयोग दिखाई दे रहे हैं उनके आविष्कार का सेहरा भी दरअस्ल पश्चिम के सिर ही है। उनके इस विश्वास का एक कारण है; और वह कारण बड़ा प्रबल है। यूरोपीय शिक्षित समुदाय के दिमाग़ पर सृष्टि की उत्पत्ति और उसके विकास के सम्बन्ध में डार्विन के विकास-वाद ने गहरा प्रभाव डाल रक्खा है। हम जिस किसी भी प्रसिद्ध लेखक की पुस्तक को उठाकर देखते हैं उसपर डार्विन के विकासवाद की छाप लगी हुई होती है। उनके विश्वास के अनुसार मनुष्य (Vertebrate Type) रीढ़दार प्राणी है और उसके अवान्तरभेद (Mammat) स्तन वाले प्राणी की विभिन्न जातियों से विकसित होकर अथवा बन्दर (Ape) और (Half ape) वानर के भीतर से होता हुआ मानव रूप में पहुँचा है और वहाँ से विकासवाद के सिद्धांत के अनुसार क्रमशः उन्नति करता हुआ आज इस योग्य हो सका है। विकास-वाद का यह सिद्धांत उनके दिल में इतना गहरा स्थान पा चुका है कि वे इसके विरोध में किसी बात को सुनना ही नहीं चाहते।

मगर हम डार्विन के विकास-सिद्धांत के अनुया इसलिए सभ्यता-विकास सम्बन्धी हमारा विश्वास से बिलकुल विभिन्न है। भगवान मनु ने लिखा है

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानवाः

हमारा—और हमारा ही नहीं, बहुत से यूरोपीय का भी—विश्वास है कि भारतवर्ष ही संसार का है। उसने ही दुनिया को शिक्षा और सभ्यता का पा है। हम युक्ति और प्रबल प्रमाणों के आधार पर शब्दों में कह सकते हैं कि विज्ञान के वे आविष्का ऊपर आज पश्चिम नाज़ कर रहा है, भारतीय के दिमाग़ से बाहर नहीं थे। नीचे की पंक्तियों भौतिकी के प्रकाश वाले अध्याय में आये प्रतिस्वर (का उज्ज्वल स्वरूप संस्कृत साहित्य में दिख प्रयत्न करेंगे। साथ ही यह भी सिद्ध करने का य कि यह वृद्ध भारत, जिसके चरणों में बैठकर एक दि ने आचार-व्यवहार, शिक्षा और सभ्यता का पाठ संसार को अध्यात्म-ज्ञान का प्रमाण दिखलाने भौतिक विज्ञान के लिए भी यूरोप, अमेरिका या ऋणी नहीं है; बल्कि उसके वह लंगोटबन्द ऋषि ही आज जङ्गली और वहशी गिना जाता है, इसके विज्ञान के भी जन्मदाता हैं और वह मानवीय प्रयो (Loboratory) में बैठकर उन सिद्धांतों की आलोच सुन्दर और कदाचित् उससे बढ़कर विद्वत्ता, दृढ़ सुन्दरता के साथ कर सकते थे, जितनी से कि आज के ठेकेदार और विज्ञान के उपासक पश्चिमी करते हैं।

प्रायः हमारे पाठक आतिशी शीशे से परिचित आतिशी शीशे को धूप में सूर्य के सामने रख कर दूसरी ओर एक नियमित दूरी पर अगर हम कोई रखदें तो हम देखेंगे कि शीशे की शक्ति के अनुसार या देर से उसमें अग्नि पैदा हो जायगी और यदि में तीव्र शक्ति है तो वह चीज़ स्पष्टतः और अच्छी जलने लगेगी। पश्चिमी विज्ञान के शब्दों में इसी को हम इस रूप में कह सकते हैं——

⊛ अध्यापक सेलवेनी के एक लेख के आधार पर।

Heat is also reflected to the focus, d if the glass is large paper can be ited.

वैज्ञानिक कोष में इस शीशे का एक नाम Burning rror भी है और वही बिन्दु, जिसका संकेत हमने 'नियमित ' शब्द से. किया है, वैज्ञानिकों की भाषा में Focus ाता है।

पाश्चात्य विज्ञान का फ़ोकस और उसका उपयोग लग- इसी प्रकार का है।

संस्कृत साहित्य में भी हमें यह (Focus) बिन्दु उतने उज्ज्वल और प्रकाशमान रूप में दिखाई देता है, ना कि वैज्ञानिक साहित्य के प्रकृत क्षेत्र में।

संस्कृत साहित्य का परिशीलन करने वालों से यास्क का काफ़ी से ज़्यादा परिचय होना चाहिए। इन्हींके क्त के 'वैश्वानर' की विवेचना वाले प्रकरण में फ़ोकस का ूप दिखाई देता है। उन्होंने लिखा है—

'उदीचि प्रथम समावृत्त आदित्ये कंसं वा मणिं वा परि- प्रतिस्वर यत्र शुष्क गोमयसंस्पर्शान् धारपति तत्प्रदीप्यते।'
(दैवत; अ०, १, पा० ६।)

अर्थात् सूर्योदय होने पर कंस या मणि को शुद्ध करके इसके प्रतिस्वर बिन्दु पर शुष्क गोमय–उपला–रख दिया तो वह जलने लगता है। यास्क मुनि की ऊपर त की हुई पंक्तियां इतनी स्पष्ट हैं कि उनकी विशेष ख्या करने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। परन्तु फिर इनमें दो ऐसे रहस्य प्रयुक्त हुए हैं, जिनके सम्बन्ध में न लिखना केवल उनके साथ ही नहीं बल्कि सारे कृत साहित्य के साथ अन्याय करना है। संस्कृत साहित्य हरएक शब्द रहस्यमय और भावपूर्ण है—उसके एक- शब्द के भीतर लम्बा-चौड़ा और विस्तृत अर्थ भरा ा है।

उपर्युक्त पंक्तियों में प्रयुक्त हुआ प्रतिस्वर शब्द इसी प्रकार का रहस्यमय शब्द है। हम ज्यों-ज्यों उसकी में घुसते हैं त्यों-त्यों उसके सौन्दर्य का विकास होता ता है और अन्त तक पहुंचते-पहुंचते हम मुग्ध और स्तब्ध हो जाते हैं। और ऋषियों के दिव्य मस्तिष्क की, जिसने इसकी सृष्टि की, हज़ार बार तारीफ़ करते हैं।

संस्कृत व्याकरण के अनुसार प्रतिस्वर शब्द की उत्पत्ति "स्वृ शब्दोपतापयोः" धातु से होती है, जिसका एक अर्थ है उपताप और दूसरा शब्द।

वैज्ञानिक संसार में भी फ़ोकस का प्रयोग विशेषतः दो बाद के प्रकरणों में ही आता है। एक है प्रकाश या ताप का प्रकरण और दूसरा है शब्द वाला अध्याय। स्वृ धातु के दोनों अर्थ इन्हीं दो भिन्न-भिन्न प्रकरणों में प्रयुक्त होने वाले भिन्नार्थक और एकरूप 'प्रतिस्वर' शब्द के बोधक हैं। प्रकाश के प्रकरण में आये हुए Focus शब्द के पर्याय में 'प्रतिस्वर' उपतापार्थक 'स्वृ' धातु से सिद्ध होता है। उपताप शब्द में आया हुआ उपसर्ग उप उसी अर्थ का बोधक है, जिसका कि 'उपप्रधान' शब्द का उप। एक ताप होता है और वह सीधा सूर्य से आता है। परन्तु इस शीशे से—लैंस से–कंस से—प्राप्त होनेवाला ताप सचमुच ताप नहीं है। वह उपताप है। अर्थात् प्रतिस्वर (Focus) से प्राप्त होने वाला ताप सीधा सूर्य से नहीं आता बल्कि वह उन किरणों का उपताप है जो कि उस लैंस–कंस–के द्वारा प्राप्त हुआ है अर्थात् प्रकाश या ताप के प्रकरण में आये हुए प्रतिस्वर शब्द में 'उपताप' की विशेषता रहती है। इस धातु से बने इस शब्द के साथ प्रति उपसर्ग को जोड़कर उसे और भी रहस्यमय बना दिया गया है।

स्वृ धातु का दूसरा अर्थ शब्द है। हम ऊपर की पंक्तियों में लिख आये हैं कि आधुनिक विज्ञान में फ़ोकस का उपयोग शब्द के अध्याय में भी होता है। फलतः स्वृ धातु के दूसरे अर्थ को लेना ही 'प्रतिस्वर' शब्द वाले अध्याय में प्रयुक्त हुए फ़ोकस का वाची होता है।

जिस प्रकार फ़ोकस बिन्दु के द्वारा ताप का विशेष प्रभाव देखा जा सकता है उसी प्रकार फ़ोकस शब्द के विशेष प्रभाव को भी स्पष्ट कर सकता है। जिस प्रकार फ़ोकस द्वारा ताप प्राप्त हो सकता है उसी प्रकार शब्द भी। विज्ञान की पुस्तकों में इस प्रकार के अनेक परीक्षण दिये हुए हैं।

जिस प्रकार फ़ोकस के द्वारा प्राप्त ताप ताप नहीं

कहलाता है उसी प्रकार फ़ोकस के द्वारा प्राप्त शब्द स्वर नहीं कहला सकता। फ़ोकस द्वारा उपलब्ध ताप उपताप के रूप में परिणत हो जाता है तो फ़ोकस के द्वारा प्राप्त शब्द स्वर भी उपशब्द--प्रतिशब्द–प्रतिस्वर के रूप में परिवर्तित हो सकता है।

धन्य है! कमाल है!! एक ज़रा से शब्द के भीतर इतना रहस्य!!! गागर में सागर भरना और किसे कहते हैं?

अन्त में हम ज़ोरदार शब्दों में कह सकते हैं कि भारतीय ऋषि इस प्रकार के सम्पूर्ण वैज्ञानिक तत्त्वों से पूर्णतया अभिज्ञ थे, मगर फिर भी ये भौतिक बातें उनका ध्येय न थीं। इस त्याग-भूमि भारत में रह कर उनका ध्येय बस एक त्याग था—भौतिक सुख का त्याग, धन का त्याग, ऐश्वर्य और भोग का त्याग। बस, इस त्यागभूमि का त्याग ही एक आदर्श था और उसके त्यागी ऋषि इन सब लौकिक वासनाओं को त्याग कर अन्त में भगवान् कृष्ण के आदेशानुसार

मयि सर्वाणि कर्माणि सन्यस्याध्यात्मचेतसा
निराशीर्निर्ममो भूत्वा युद्धस्व विगतज्वरः। (गी० अ० ३)

का अनुसरण करते हुए अपनी इहलीला को त्याग देते थे।

विश्वेश्वर

वर्तमान शासन और हिंसा

महात्मा गाँधी ने एक सज्जन के प्रश्न के उत्तर में उपर्युक्त विषय पर कुछ प्रकाश नीचे लिखे शब्दों में डाला है—

"...अगर मुझे इस सरकार और हिंसा में से एक को चुनना ही पड़े, तो मैं हिंसा को ही पसंद करूँगा, गो कि मैं हिंसा के आधार पर चलते हुए युद्ध में सहायता नहीं करूँगा और न कर सकूँगा। मेरे लिए तो इसमें दूसरा रास्ता ही नहीं। आज की शान्ति तो हिंसा का ख़तरनाक रूप है, जो उससे भी बड़ी हिंसा या उसके करने की तय्यारी के नीचे दबाई हुई है। क्या यह अच्छा न होगा कि जो मरने या घर-बार छिन जाने के कायर भय से, मन में हिंसा से कुढ़ते हुए भी, जब्र किये हुए हैं, हिंसा कर लें और गुलामी से या तो स्वतन्त्र हो जावें या अपने जन्मसिद्ध अधिकारों को लेने के प्रयत्न में मर जायँ? ...

......मैंने उसे (पुजारी को) कहा था
अपनी जगह पर अहिंसा-भाव से डटे रह कर
की रक्षा में मर नहीं सकते थे, तो तुम्हें दूसरों
भी मूर्ति की रक्षा करनी चाहिए थी। इसी भाँ
हूँ कि वर्तमान कुशासन से हिंसा के द्वारा
की स्वतन्त्रता प्राप्त करना अच्छा है, बनिस्बत
उसकी सम्पत्ति और प्रतिष्ठा दिन-रात लूटी
वह असहाय होकर तमाशा देखे।

मिलें क्या कर सकती हैं?

आजकल खद्दर का आन्दोलन बहुत महत्व
है, परन्तु क्या यह आन्दोलन करते हुए स्वदे
बिलकुल उपेक्षा कर देनी होगी? यह शायद
भी क्रियात्मक नहीं है। इसलिए अब विकट
त्मा गाँधी ने मिल-मालिकों और खद्दर के आन्
को मिल जाने की सलाह दी है। मिलें क्या
इसके लिए उन्होंने निम्नलिखित एक योजना
में लिखी है—

किसी दिन उन्हें (व्यापारियों को) इस
और प्रजा में से एक को चुनना ही पड़ेगा।
सन्देह नहीं कि अधिकांश में इस सरकार की
नहीं तो रज़ामन्दी पर उनका जीवन निर्भर है।

......मगर कारख़ानों का अस्तित्व यदि
रज़ामन्दी या सहायता पर निर्भर है, तो प्रजा
यता या रज़ामन्दी पर भी कम निर्भर नहीं है।
प्रजा की उपेक्षा तभी तक कर सकते हैं जब
अज्ञान, निर्बल या असंगठित रहे।

किन्तु मिलों की तो एक प्रकार की विशिष्ट
थोड़ा सा साहस, राष्ट्र के सच्चे स्वार्थ की
और थोड़ा सा ही आत्मत्याग करके, मिल-
और सरकार दोनों की सेवा कर सकते हैं।
सम्मति में वे यह काम यों कर सकते हैं—

(१) कुछ तेज़ी और मन्दी के सालों का
औसत जोड़कर वे अपने कपड़ों का दाम निश्चित

(२) बहिष्कार-आन्दोलन (विदेशी

संगठनकर्ता नेताओं के साथ वे इसका समझौता कर सकते हैं कि कितना और किस क़िस्म का बनाना चाहिए।

(३) खादी बनाने वाले जो कपड़े तुरंत बना सकते हैं, उन कपड़ों का बनाना छोड़कर वे उन्हीं कपड़ों को बनाने में शक्ति लगा सकते हैं, जिन्हें वे खादी वालों से ज़्यादा जल्दी ही बना सकते हैं।

(४) अपना लाभ कम से कम लेकर जो बचत रहे, उसे वे बहिष्कार-आन्दोलन में लगा सकते हैं या यह ज़रूरी न होने पर अपने मज़दूरों की दशा सुधारने में लगा सकते हैं।

इसके अर्थ होंगे सभी ओर से ईमानदारी का बर्ताव, अध्यवसाय, पारस्परिक विश्वास, मज़दूरों, पूंजीपतियों और ख़रीदारों के बीच में स्वेच्छापूर्वक और तिहरा सन्मानित संगठन। इससे बहुत बड़े पैमाने पर संगठन करने की शक्ति सिद्ध होगी। यदि एक दिन हमें अहिंसा के द्वारा विदेशी कपड़े का बहिष्कार पूरा करना है, तो मेरी बतलाई जाँचें पूरी करनी होंगी।

······बहिष्कार में शीघ्र सफलता पाने के लिए खादी और सच्ची स्वदेशी मिलों का मेल इष्ट है, परन्तु नितान्त अनिवार्य नहीं है।

मृत्यु पर विजय !

आज कल पाश्चात्य वैज्ञानिक जो आविष्कार कर रहे हैं, उनको देख कर दांतों-तले अँगुली दबानी पड़ती है। उन्होंने प्रायः सब काम करने के लिए मशीनों का आविष्कार कर लिया है। बहुतसे वैज्ञानिक कृत्रिम मनुष्य तथा कृत्रिम हृदय बनाने का बहुत काल से प्रयत्न कर रहे थे। कुछ ही समय पूर्व एक वैज्ञानिक ने एक ऐसा कृत्रिम मनुष्य बनाया था, जो बिलकुल जीता जागता मालूम होता था। उसमें ऐसा यन्त्र लगाया गया था कि वह अपने हाथों को उठा और नीचे कर सकता व स्वयं चल भी सकता था। अब एक दूसरे वैज्ञानिक ने बिजली के एक कृत्रिम हृदय का आविष्कार किया है। इस कृत्रिम हृदय को बहुतसे डॉक्टरों के सामने एक मरे हुए कुत्ते के शरीर में लगाया गया। हृदय की हरकत से कुत्ते के रुधिर में गति पैदा हुई और कुत्ते ने आँखें खोल कर इधर-उधर देखना शुरू किया। यह हालत एक-दो मिनट नहीं, कई घण्टे तक रही। अभी इसके दूसरे भी परीक्षण किये जा रहे हैं और उसकी कमियों को सुधारने का प्रयत्न हो रहा है। यदि इसमें वैज्ञानिकों ने पूर्ण सफलता पाई, तो मृत्यु पर विजय पाना आसान हो जायगा।

कृष्ण

कुछ ज्ञातव्य अंक

मृत्यु-संख्या

सन् १८७१-१८७५ से सन् १९२१ तक भिन्न भिन्न देशों की मृत्यु-संख्या में इस क्रम से कमी हुई—

देश	१८७१-७५	१९२१
	प्रति सहस्र	
इङ्गलैण्ड	२२०	१२१
जर्मनी	२८२	१४८
आस्ट्रिया	३२६	१७१
हंगरी	४५३	१९३
बेल्जियम	२३४	१३५
फ़्रांस	२५०	१७७
स्पेन	३०१	२१५
इटली	३०५	१७५

परन्तु हमारे 'मा-बाप' अँग्रेज़ों के शासन-काल भारत में २७४ से ३०६ हो गई है, अर्थात् ३२ प्रति सहस्र बढ़ गई है!

पदार्थों की महंगाई

ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथ से निकल कर जब भारतवर्ष इंगलैण्ड के हाथ में गया, तब से यहाँ पदार्थों की महंगाई निम्नलिखित वेग से बढ़ी—

पदार्थ	१८५७		१८९०	१९१८	
गेहूं	३९	सेर	२५ सेर	५ सेर	प्रति रुपया
चना	५१॥	,,	२८ ,,	७ ,,	,,
चावल	१८॥	,,	१२ ,,	४ ,,	,,
दूध	१६०	,,	६४ ,,	४ ,,	,,

नन्दकिशोर अग्रवाल चौधरी

पहला सुख

एक नया अचेत आत्मघात

कुछ काल से इस देश में एक नवीन रूप में अचेत आत्मघात होने लगा है । इस आत्मघात में बहुधा एक दो घण्टे नहीं वरन् कई मास व्यतीत हो जाते हैं तब यह समाप्त होता है । यही कारण है कि इसका सच्चारूप मरने वाले को अंत तक भी प्रकट नहीं होता । वह बिलकुल नहीं जानता कि मैं आत्मघात कर रहा हूँ । विपरीत इसके वह तो शरीर को सुख पहुँचाने के लिए इसको ग्रहण करता है । यह नया आत्मघात कोकेन का सेवन है ।

कोकेन एक प्रसिद्ध औषधि है, जिसको डॉक्टर लोग अकसर आपरेशन करने के लिए काम में लाते हैं । इसको युक्त रीति से जहां भी शरीर में लगाया जाता है वही अंग ऐसा सुन्न हो जाता है कि चाकू से काटने पर भी पीड़ा नहीं होती । इस अनोखे और अत्यंत कष्ट-निवारक गुण के कारण डॉक्टरों के हाथ में इस विष ने अमृत-रूप होकर मनुष्य-जाति का बड़ा उपकार किया है ।

यह तो इसका सदुपयोग है । परंतु ज्ञाताओं के हाथों से निकल कर यह चीज़ जहां अज्ञानों के हाथों में गई वहां उन्होंने अज्ञानवश इसको मनुष्य जाति के नाश का हेतु बना दिया । मूर्ख लोगों ने इस विष को पान में खाना प्रारंभ कर दिया । इसके सेवन करने वालों को यह ज्ञान नहीं कि यह विष है । एक ने खाया, दूसरे को खिलाया; इस भेड़चाल से इसके प्रेमियों की संख्या प्रतिदिन बढ़ती जाती है । सरकार ने इस विष को सर्व-साधारण मनुष्यों तक न पहुँचने के लिए पूरा यत्न कर रक्खा है, तिसपर भी इसका प्रचार दिन-दिन बढ़ता ही दीख रहा है ।

इसका क्या कारण है ? क्या इस वस्तु में कोई अनुपम गुण है, या पुष्टिकारक शक्ति है, कि जिसको प्राप्त करने के लिए लोग इसके बेतरह पीछे पड़े हुए हैं ?

इस प्रश्न का उत्तर डॉक्टरी-शास्त्र से मिल सकता कोई सा भी विष-शास्त्र निकाल कर कोकेन के गुण-अ देख लीजिए । सब शास्त्रकारों की यही सम्मति है कोकेन बड़ा भारी विष है । कोकेन के एक रत्ती के भाग से भी कम का सेवन करने से साधारण व्यक्ति विष चढ़ जाता है और पाँच रत्ती खाने से तो ४०–५० के अन्दर मनुष्य मर जाता है । कई और विष भी ऐसे जिनका मनुष्य सेवन करता है—जैसे अफ़ीम, चण्डू, ता भंग, सुलफ़ा, गांजा, पोस्त, शराब इत्यादि । मगर को इन सबका दादा है । कोकेन पान में खाने से मुँह में पैदा करता है, ऐसा प्रतीत होता है कि मानों जिह्वा नहीं, और क्षण-मात्र के लिए शरीर में बल मालूम होता बस, इतने ही सुख के लिए मूर्ख लोग इसको खाते हैं ।

नशा–मात्र का यही स्वभाव है कि थोड़ी देर के शरीर में कुछ जाग्रति पैदा होती है । सुख का भ्रम है । परंतु शीघ्र ही नक़ली सुख अपना सच्चा रूप (अ दुःख का) धारण कर लेता है । थोड़ी देर पहले शरी जो जाग्रति मालूम पड़ती थी, क्रम–क्रम से अशक्ति प्रकट होती है । मनुष्य निर्बल होकर फिर मात्रा को है । फिर ज़रा सी क्षणिक प्रबलता के पश्चात् वही पहले की अपेक्षा अधिक अशक्तता लौट आती है । ज्यों नशे की मात्रा ली जाती है त्यों–त्यों उसकी आ (craving) और प्रबल होती जाती है । परंतु सा साथ शरीर का नाश भी होता जाता है । पहले-पहल दृष्टिगोचर नहीं होता, इसी कारण नशे वाले को अ ज्ञान नहीं होता, परंतु कहां तक ? आख़िर विष अ राज्य जमाता ही है । शारीरिक सहायक शक्ति की प होती है । कोकेन की जय होती है । नशे ही नशे में भ की सुधि नहीं रहती । पाचन-शक्ति न्यून होती जाती मानसिक हानि साथ-साथ चलती है । शरीर के

होते-होते सब इंद्रियां शिथिल होती जाती हैं । रक्त पैदा नहीं होता । निद्रा का अभाव होने से रहा-सहा शरीर-बल नष्ट हो जाता है । अन्ततः मनुष्य नपुंसक हो जाता है ।

यहां यह बताना उचित है कि बहुधा कोकेन खाने वाले इसकी वाजीकरण समझ कर खाते हैं । परन्तु इसका तो असर बिलकुल उलटा है । बस, होते-होते एक घातक चक्र (Vicious circle) के फंदे में वह मनुष्य फँसकर अत्यन्त दुःखदाई जीवन व्यतीत कर अकाल मृत्यु को प्राप्त होता है ।

भला बताइए, ऐसी कोकेन कि जो तन, मन, धन तीनों को हर लेती है, कहाँ तक सेवन करने योग्य है ? प्राण को पुष्ट करने वाले तो दुग्ध, अन्न, जल ही हैं । अतः बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि इन नशों को उनके सच्चे रूप में देख कर, अर्थात् विष जान कर, अपने शरीर में उनको कदापि स्थान न दें । शरीर-साधन के वास्ते इनकी तनिक भी आवश्यकता नहीं है । इनको तो दूर से ही नमस्कार करना उचित है ।

रहा यह कि जो फंदे में फंसे हुए हैं वे किस उपाय से मुक्त हों । उनके लिए परमावश्यक बात यह है कि प्रथम तो उनको कटिबद्ध होना चाहिए कि नशे का परित्याग करना है । जब यह निश्चय कर लिया तो किसी अच्छे डॉक्टर की सहायता लेनी चाहिए । नशा त्यागने के दो मार्ग हैं । एक तो तत्काल त्याग और दूसरा क्रम-क्रम से । किस जगह कौन-सा काम देगा, यह निर्णय स्वयं नहीं करना चाहिए; बल्कि डॉक्टर की राय पर छोड़ना चाहिए । वह जैसा उचित समझे, उसकी आज्ञा पालन करके, अपना कार्य सफल करना चाहिए ।

नशे की आतुरता का स्वभाव है कि ज्यों-ज्यों उसकी पूर्ति करो त्यों-त्यों वह प्रबल होती जाती है । यदि मन को दृढ़ करके उसको रोका जाय, तो प्रथम बार जो रोकने में मानसिक बल ख़र्च होगा उससे दूसरी बार कम और तीसरी बार उससे भी कम ख़र्च करना पड़ेगा और इस प्रकार आतुरता का वेग क्षीण होता जायगा । इसके विपरीत मानसिक बल बढ़ता जायगा, जो अन्त में आतुरता का नाश कर देगा ।

इसकी सचाई और सफलता की परीक्षा करसे हर एक को मालूम हो सकती है । आशा है, इस नये अचेत आत्मघात से तो लोग बचें होंगे; पर दूसरे नशों में भी यदि वे पड़े होवें, तो उनसे भी छूटने का प्रयत्न करेंगे ।

(डॉ०) ज्वालाप्रसाद

जीवन-वृद्धि का उपाय

समस्त प्राकृत पदार्थों में चैतन्य ताव का अस्तित्व है । पशु-पक्षी, जल-चरादि प्राणी-मात्र इसी ताव की सत्ता से घटते-बढ़ते और चलते-फिरते हैं । इस ताव के 'प्रकट' होने से 'लय' होने तक का काल जीवन कहलाता है । इसी जीवन के उपयोगार्थ सद्गुणादि से द्रव्यादिक संग्रह किये जाते हैं । जीवन-संग्राम में सुख-शान्ति-लाभ का सन्मान भी इसी ताव को प्राप्त है । यथार्थ में जीवन ईश्वरीय कृपा का अमूल्य प्रसाद तथा चैतन्य तत्त्व का शस्त्र है । इसी शस्त्र की सहायता से हम अपने लिए मोक्ष प्राप्त करते और भ्रमीभूत बन्धुओं को नरक के पञ्जे से छुड़ाते हैं । अस्तु ।

यूनान और मिस्र के प्राचीन इतिहास पर दृष्टि डालने से विदित होता है कि पूर्वकाल में मनुष्यों ने जीवन को दीर्घ बना कर उससे लाभ उठाने के बड़े-बड़े उपाय किये थे । उनका विश्वास था कि प्रकृति के नियमों का पालन कर से आयुष्य की वृद्धि होती है । इसके लिए हिपाक्रेटिस और लाइकरगस आदि तत्कालीन विद्वानों ने जो नियम बनाये, वे आज भी उपयोगी हो सकते हैं—

१. स्वच्छ वायु-सेवन ।

२. स्वच्छ जल से स्नान ।

३. व्यायाम करना, और शरीर को मसल कर उसके प्रत्येक अवयव को सुन्दर-सुडौल बनाना ।

४. मिताहारी बनना ।

इन उपायों को वे प्रकृति के नियमानुकूल और श्रेष्ठ मानते थे । इन्हीं व्यायामों से आगे चलकर कसरत-विद्या (Gymnastic) का जन्म हुआ है ।

यही क्यों, मस्तिष्क शक्ति को सुशिक्षित करने पर भी वे पूर्ण ध्यान देते थे । डाक्टर क्रिस्तोफर के कथनानुसार शस्त्र-विद्या, खगोल-विद्या, शास्त्रोपचार तथा अन्य कला-कौशलादि का वे उत्साह-पूर्वक अध्ययन करते थे । व्यायाम

और आयुर्वेद में पूर्ण दक्षता प्राप्त करना तो उनका परमोद्देश्य था। उनका सिद्धान्त यह नहीं था कि उन्हें योद्धा प्राप्त हों, बल्कि उनके द्वारा रोगादि शत्रुओं पर पूर्ण विजय प्राप्त करके दीर्घकाल तक जीवित रहना उनका लक्ष्य था।

इसी परमोत्तम जीवन की वृद्धि के अर्थ, जो यथार्थ में मनुष्य-मात्र के लिए बड़ा हितंकर है, श्री प्लीटार्क का कहना है—"अपने दिमाग़ को शान्त रक्खो। पैरों को गर्म रक्खो। हरएक कमज़ोरी को दूर करने के लिए दवा खाने के बदले उपवास करो। शरीर और मन को एकसा व्यायाम कराओ, तो तुम्हारा जीवन दीर्घता और सुख-श्रेष्ठता को अवश्य प्राप्त होगा।"

अठारहवीं शताब्दि में यह विद्या यूरोप के अन्धकार में लुप्त थी, पर उन्नीसवीं शताब्दि में वेर मिलन नामक एक नामाङ्कित डाक्टर ने इंग्लैण्ड में इसपर प्रकाश डाला। इससे वहाँ अनेकों व्यक्ति रोग-मुक्त हो चुके हैं और अब दिनोंदिन इसकी प्रगति हो रही है। हम भी इसपर ध्यान दें, और उपर्युक्त नियमों का पालन करें, तो क्या अच्छा न होगा?

क

उपवास

('फ़िज़िकल साइन्स' में बरनार मैक्फ़डन नामक विद्वान ने इस सम्बन्ध में एक विचारपूर्ण लेख लिखा है। उसके मुख्य-मुख्य अंशों का आशय निम्न प्रकार है।]

रोग-निवारण के लिए उपवास करने की प्रथा उतनी ही पुरानी है जितनी कि यह मनुष्य-जाति। बाइबल (ईसाइयों की धर्मपुस्तक) तक में, स्थान-स्थान पर, इसके अनेक हवाले मिलते हैं। कितनी ही बीमारियों के लिए उसमें उपवास और प्रार्थना करने का आदेश किया हुआ है।

क्षुधा हो चाहे नहीं पर अपने शरीर-बल को क़ायम रखने के लिए भोजन तो हमें करना ही चाहिए, यह विचार भ्रमोन्माद है। सालोंसाल जो अनेक व्यक्ति अपने समय से पहले ही चल बसते हैं वे सब प्रायः भोजन सम्बन्धी हमारी इन विक्षिप्त आदतों—ठूँस ठूँस कर खाने ही के कारण। सम्भव है कि कदाचित् विक्षिप्त शब्द इसके लिए बहुत उपयुक्त न हो, पर विवेक तो इसमें निश्चय ही बिल्कुल
यह तो हमारी जिह्वा वा स्वाद की गुलामी के ही कारण

फिर दावतों आदि में हम जितना खा जाते हैं साधा
तथा वह हमारी आवश्यकता से कहीं ज़्यादा होता है।
पूछो तो हमारी आवश्यकता तो उससे आधे में ही
भांति पूर्ण हो सकती है। अतः यदि हम इतना ही
साथ ही बीच-बीच में उपवास द्वारा पेट को शान्ति
पहुँचाते रहें, तो हम अपनी इच्छानुसार तो खायेंगे ही,
ही भोजन लगेगा भी मज़ेदार।

ऐसे भोजन से मांसपेशियों को उत्तेजना और पुष्टि
ख़ूब मिलेगी। क्योंकि भोजन के आनन्द के प्रभाव से
द्रवपदार्थ पेट में पहुँच जाते हैं और वहाँ पहुँचते ही पा
क्रिया का आरम्भ हो जाता है। इसके विरुद्ध भूख न
पर जो खाया जाता है वह अनिच्छित पेट में पहुँचता
वह हज़म तो होता नहीं, बस वहाँ पड़ा रहता और स
गुड़गुड़ किया करता है। असल में इसीसे फिर हममें
भयंकर-भयंकर बीमारियाँ भी पैदा हो जाती हैं।

अतः यह बात सचमुच बड़ी बढ़िया और विचार
कि "अपने स्वास्थ्य एवं बल को क़ायम रखने के लिए
भी कम भोजन किया जाय ये अमूल्य निधियाँ उत
अधिक काल तक क़ायम रहेंगी।"

पर विचित्रता तो यह है कि हरएक यही चाहता
करता है कि जितना भी मुझसे खाया जा सके वह स
खा जाऊँ! यदि इसका उलटा हो जाय—अर्थात् अपने
स्थ्य एवं बल को क़ायम रखने के लिए हम कम से
खाने लगें, तो निश्चय ही इससे बड़ा लाभ होगा। स
यह है कि तमाम आधि-व्याधियों (रोगों) से बिलकुल
जा सकता है, ज़रूरत है सिर्फ़ यह जान लेने की कि
और कैसे उपवास किया जाय? अपवाद इसमें भी
सही, पर बहुत कम।

अनेक धर्मादेशों में उपवास के लिए कुछ दिन नि
भी किये हुए हैं। बहुतसे धर्मोत्साहियों ने बिलकुल नि
या दूध-फल अथवा ऐसे ही कठिन किसी अन्य नियम
रहकर उनका पालन भी किया है। परन्तु बाद में जब 'श
बल को क़ायम रखने के अर्थ ठूंस-ठूंस कर खाने' की

सवार हुई, तो उनकी इस धुन पर चौका फिर गया। लेकिन शरीर को तो इसकी ज़रूरत है ही। उसे तो बीच-बीच में अनेक बार भोजन की छुट्टी या उपवास की आवश्यकता होती है—ख़ास कर जब कि हमेशा हमें अपनी इच्छानुसार भोजन, बिना किसी रुकावट के मिल जाता हो। क्योंकि जो लोग इस प्रकार के भोजन के आदी होते हैं, बीच-बीच में, उन्हें कोई न कोई रोग घेरे ही रहता है। यहाँ तक कि धीरे-धीरे उनकी क्षुधा भी नष्ट हो जाती है; इच्छा होने पर भी वे खा नहीं सकते। उगल-सुगल कर ज़बर्दस्ती कुछ खा भी लेते हैं तो पेट हज़म नहीं कर पाता; किसी न किसी रूप में तुरत ही उसे बाहर निकाल देता है। तब अन्त में उन्हें उपवास करना ही पड़ता है। ऐसी दशाओं में अच्छा यही है कि उसी समय उपवास शुरू कर दिया जाय, जब कि भूख न लगने की शिकायत का आरम्भ ही हो। ऐसा किया जाय तो फिर न तो उन्हें अन्त में उत्पन्न होने वाली बाध्यावस्था का सामना करना पड़े, और न रोग ही उनपर हमला कर सकेगा। अतः सलाह की बात यही है कि हमेशा जब कभी भूख में कमी मालूम दे अपनी ख़ूराक कम कर दी जाय--भोजन बिलकुल बन्द कर दिया जाय तब तो कहना ही क्या!

सप्ताह में एक-दो दिन का उपवास करने की आदत ही डाल ली जाय, तब तो बड़ा अच्छा। इसके लिए सोमवार का दिन मुझे तो सबसे उपयुक्त जँचता है। क्योंकि इससे पहला दिन रविवार छुट्टी का दिन होने से पेट के लिए साधारणतया वह भाररूप होता है---काम-काज तो कुछ नहीं, बस दिन-भर यहाँ-वहाँ खाना ही खाना, और वह भी और दिन से भारी। पर हरएक इसका निर्णय अपनी-अपनी आवश्यकता के अनुसार भी कर सकते हैं।

रहा यह कि उपवास किया कैसे जाय? सो इसमें ध्यान रखने की बात यही है कि पानी की पर्याप्त पिलाई में कसर न हो। इसके लिए हर एक या दूसरे घण्टे में अपनी प्यास को शान्त करने के लिए धीरे-धीरे पर काफ़ी पानी चूस कर पियो। दिन भर में चौथाई से एक गैलन तक पानी पिया जा सकता है। ऐसा न करने से बहुधा रक्त गाढ़ा पड़ जाता है और उसका अभिसरण भलीभाँति नहीं होता। और उस दशा में रक्तविकार के चिह्न प्रकट होने लगते हैं।

कुछ उपवास ऐसे भी हैं कि जिनके साथ कुछ खाया भी जा सकता है और इसलिए उनके करने में ज़्यादा दिक़्क़त नहीं होती। जैसे कुछ लोग बिल्कुल भूखे न रहकर दिन भर में दो-तीन नारङ्गियाँ अथवा उनका रस खा लेते हैं। ऐसे उपवास में यदि पेट की सफ़ाई लक्ष्य हो तो नारंगी के रस के साथ उसके छिलके में लगे हुए सफ़ेद गूदे को खाना भी हितकर है। इसी प्रकार कुछ लोग दिन में तीन बार एक-एक गिलास मट्ठा (Butter-milk) पीकर उपवास करते हैं। इससे भी पेट की सफ़ाई अच्छी होती है; साथ ही इससे उपवास का बोझ भी हलका हो जाता है। जिस प्याज़ को हम लोग हिक़ारत की नज़र से देखते हैं, वह भी कुछ कम फ़ायदेमन्द नहीं। शोधन-कार्य के लिए तो कच्ची प्याज़ ख़ास तौर पर उपयोगी है। इसमें बदबू तो ज़रूर है, पर कृमिनाशक तत्त्व भी खूब है। ख़ास कर कच्ची प्याज़ में। वैसे रँधी हुई भी अच्छी होती है।

संक्षेप में उपवास के मुख्य सिद्धान्त यही हैं कि जब कभी भूख में कमी मालूम दे तभी उपवास कर लो। अच्छा तो यह है कि इसके लिए सप्ताह में नहीं तो कम से कम महीने में तो ज़रूर ही एक दिन निश्चित कर लो, और उस दिन अपनी आवश्यकता का विचार कर तदनुसार उपवास कर लिया करो।

मुझे तो अपने लिए सोमवार का दिन उपवास के बहुत अनुकूल जँचता है। तुम भी अगर हार्दिक क्षुधा को क़ायम रखना और स्वस्थ बने रहना चाहता हो तो तुम्हें भी ऐसा ही कोई ढँग अख़्त्यार कर लेना चाहिए। अगर तुम स्वभावतः अल्पाहारी हो तो निश्चय ही बिना किसी कष्ट के तुम इस विधि का पालन कर सकते और बहुत दिनों तक अपने स्वास्थ्य को क़ायम रख सकते हो।

अनिश्चित काल तक स्वस्थ रहना चाहो तो, बीच-बीच में, एक-एक दिन का उपवास करने का निश्चय कर लो। ऐसा नियम न किया तो हर साल कुछ दिनों तक बीमार रहकर इसका दण्ड भुगतना पड़ेगा। और उस असहायावस्था में पड़े हुए पछताओगे कि 'हाय! पहले ही उपवास कर लिया होता तो यह दुःख न उठाना पड़ता!' ऐसे कुछ

अनुभव होने पर फिर बेज़रूरत अथवा बेभूख भोजन न करने का महत्त्व भी आप ही समझ में आ जायगा।

जब कभी सुस्ती और आलस्य मालूम पड़े, रोज़मर्रा का काम बोझ सा मालूम पड़े, और उत्साह व लगन न मालूम दे, तभी समझ लो कि तुम्हें उपवास की ज़रूरत है। ऐसे समय, एक या दो बार भोजन न करने पर तुम अपनी पूर्वावस्था पर आ जाओगे। इसके विरुद्ध वहीं तुम क्षुधा-वृद्धि की दवा लेने जा पहुँचे, या अपना शरीर-बल क़ायम रखने के अर्थ ठूँस-ठूँस कर खाने का सिद्धान्त बना लिया तो बस क़यामत ही समझो—या तो सीधे क़ब्र का रास्ता नापोगे अथवा बिस्तरे की शरण।

इन नियमों पर यदि ध्यान दिया और इनका पुरा-पूरा पालन किया जाय तो ऐसी बाधायें बहुत कुछ रुक सकती हैं।

दिल खोलकर हँसो

इसलिए कि हँसने से दिमाग़ को कुव्वत (पुष्टि) मिलती है और शरीर बलवान बनता है—फिर अगर तहे-दिल से हँसा जाय, तब तो कहना ही क्या ! आत्मा रूपी मकान की खिड़कियाँ खुल कर प्रफुल्लता रूपी धूप का साम्राज्य हो जाता है; जिससे उस सील और गर्द की तो क़यामत ही आ जाती है, जो कि भय और चिन्ता से पैदा होकर जमती है।

भय, क्रोध, और चिन्ता जीवन के प्रभात को सुखा डालते हैं। जहाँ इनका प्रादुर्भाव हुआ नहीं कि जीवन मानों शून्य और रस-हीन ही बन जाता है। फलस्वरूप मुँह में लार का प्रवाह नहीं रहता, सूखी ज़बान तालू से जा चिपटती है; होते-होते पेट, जिगर, यहाँ तक कि प्राणोपयोगी प्रत्येक अवयव का काम बिलकुल ही बन्द अथवा मन्द पड़ जाता है।

ऐसे समय हँसना बड़ा उपयोगी है। हँसने से शरीर के सारे कल-पुर्ज़े अपनी नियमित अवस्था को प्राप्त हो जाते हैं। स्नायुओं में नये वेग से रक्त का दौरा शुरू हो जाता और शरीर एवं मस्तिष्क को नयी उत्तेजना प्राप्त होती है। खुले दिल से, दिल खोल कर, 'हा ! हा ! हा !' हँसिए नहीं कि कलेजा खुशी के मारे ऊपर-नीचे उछलने लगता है। शरीरावयवों को ऐसा हृदयोल्लास मिलता है कि असर से पाचन-शक्ति सबल होती है; मूत्राशय का विकार शमन होता है, और भोज्यनलिका में अनुकूल की ऊहापोह मच जाती है।

सच तो यह है कि खुश होने पर तो हम हँसते परन्तु हँसने से भी हमें खुशी होती है, यह भी निसं हँसना क्या है, मानों गुलाब की कली का खिलना! तहे दिल के हँसने का तो कहना ही क्या ? निपट होना वह, जिसके रोम हँसने से खिल न उठें।

अतएव हँसो, खूब हँसो, दिल खोलकर हँसो! की प्रत्येक मलीनता को हास्यरूपी धारा में बहा दो। हँसो कि रंज और ग़म, मलाल और द्वेष, हिंसा औ हिंसा, ईर्षा और डाह तुम्हारे पास भी न फटकने कलह राक्षसी की तो फिर मजाल ही क्या, जो तुम्हारे और निष्कलङ्क जीवन को स्पर्श भी कर सके। सोते हँसते, काम करो तो हँसते हुए, बात करो तो हँसते मिलो-जुलो तो हँसते हुए, और विश्राम भी करो तो हुए ! हँसने के धनी बन जाओ, सुरुचिपूर्ण हँसी मूल-मंत्र बनालो—जीवन की दीर्घता, प्रसन्नता और ता का। अन्तरतम से एक बार तो गूंज ही उठे हा ! हा !'

हँसो

बलवान बनो

" बलवान बनो। 'गीता' का पाठ अपेक्षा यदि तुम 'फुटबाल' खेलो, तो स्वर्ग के बहुत पहुँच सकते हो। तुम्हारा शरीर ज़रा तगड़ा हो जाय तुम पहले की अपेक्षा कहीं अधिक 'गीता' को समझ तुम्हारा ख़ून ज़रा ताज़ा रहने लगे, तो तुम श्रीकृ विशाल प्रतिभा और दृढ़ शक्ति को अच्छी तरह सम

—स्वामी विवेकानन्द (बाल

नीर-क्षीर-विवेक

[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आना आवश्यक है। एक प्रति आने पर आलोचना न हो सकेगी। प्रत्येक पुस्तक का साहित्य-सत्कार तो उसी अंक में हो जाया करेगा—आलोचना, यदि हुई तो, सुविधानुसार बाद में होगी।]

मदर इण्डिया (हिन्दी)

मिस मेयो ने अपनी पुस्तक 'मदर इण्डिया' में, जिसका परिचय 'त्यागभूमि' में पहले दिया जा चुका है, हमारे विरुद्ध जो विष उगला है, जो झूठी-सच्ची लनतरानियाँ हाँकी है, उसके प्रतिवाद-स्वरूप छोटे-से-छोटे से लेकर बड़े-से-बड़े भारतीय तक अपनी आवाज़ें उठा चुके हैं। श्रीयुत रंगा ऐयर 'फ़ादर इण्डिया' द्वारा 'जैसे को तैसा' जवाब दे चुके हैं। श्रीयुत नटराजन तर्कपूर्ण पद्धति में पुस्तक प्रकाशित कर चुके हैं। लालाजी की 'दुखी भारत' पुस्तक प्रकाशित होने ही में है—हो भी गई हो तो ताज्जुब नहीं। इधर महामना एण्डरूज़ तथा रावलपिण्डी के एक पादरी साहब भी शायद इसपर लिखने का विचार कर रहे हैं। हिन्दी में भी श्रीमती चन्द्रावती लखनपाल बी० ए० 'मदर इण्डिया का जवाब' लिख चुकी हैं—और उन्होंने अच्छा लिखा है। परन्तु प्रस्तुत पुस्तक अपने ढंग की अनूठी है। जो बहन-भाई अंग्रेज़ी नहीं जानते—और हमारी अधिकांश संख्या ऐसी ही है—वे इसमें पूरी 'मदर इण्डिया' का हिन्दी-अनुवाद पढ़ सकते हैं। इसमें पूरा अनुवाद तो है ही, साथ ही श्रीमती नेहरू लिखित "भूमिका" तथा "मिस मेयो से दो दो बातें' भी हैं। और 'परिशिष्ट' में महात्मा गाँधी, ला० लाजपतराय, कवीन्द्र रवीन्द्र, श्री नटराजन, आदि की आलोचनायें भी जोड़ दी गई हैं। कोई ऐसी मुख्य बात नहीं रह जाती, जो इस संबंध में कोई महत्व रखती हो। दस चित्र भी हैं, जो मिस मेयो की 'मदर इण्डिया' के अमेरिकन संस्करण से लिये गये हैं। इस प्रकार पुस्तक सर्वाङ्गीण है।

'मदर इण्डिया' कैसी है, यह तो पहले बताया ही जा चुका है। हाँ, उसका अनुवाद साधारणतः ठीक है। 'भूमिका' और 'मिस मेयो से दो दो बातें' श्रीमती उमा नेहरू की अपनी सूझ है, और, हमें कहना चाहिए कि, इसमें उन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। स्वर्गीय महाकवि अकबर के इस पद्य से उन्होंने अपनी भूमिका का आरम्भ किया है, जो सर्वथा सत्य है-—

"ज़ख़्मी न हुआ था दिल ऐसा,
सीने में खटक दिन-रात न थी।
आगे भी हुए थे कुछ सदमे,
रोये थे मगर यह बात न थी।"

इसके बाद गुलामी की स्थिति का विवेचन करते हुए भारत की दशा का वर्णन करके रुडयार्ड किपलिंग के इन उद्धत शब्दों की याद दिलाई है—

'East is East and West is West,
And never the twain shall meet"

उनका कहना है, और बहुत ठीक कहना है, कि "जब पूरब और पश्चिम मिल नहीं सकते, साथ नहीं रह सकते, तो इन दोनों में से एक का मिटना लाज़मी है। इन दोनों में से कौन मिटेगा, यह हमें और भविष्य को निश्चय करना है।"

तब ? आत्म-रक्षा के लिए हम क्या करें ? मिस मेयो का वास्तविक उद्देश्य, श्रीमती नेहरू के शब्दों में, बिलकुल

संक्षेप में कहें तो,'संसार की सभ्य जातियों में हमें घृणित करना है।' और 'मदर इण्डिया' का प्रचार न करना या उसे न पढ़ना और इस प्रकार इस चित्र पर अपने देश में परदा डाल लेने से हमें कोई लाभ नहीं पहुँच सकता।... इस चित्र का उत्तर हम केवल एक ही प्रकार से दे सकते हैं कि हम इसे अपने एक-एक देशवासी को दिखा कर उसके हृदय पर इस चित्र के वास्तविक उद्देश्य को अङ्कित कर दें। हम इसी चित्र को, जो हमें अपमानित करने के लिए खींचा गया है, इस देश में स्वाभिमान उत्पन्न करने का साधन बनायें। और उस साम्राज्य-वाद को, जिसकी बुनियादों को पुष्ट करने के लिए ऐसी निर्लज्ज बातों के गढ़ने की आवश्यकता होती है, उसकी निर्लज्जता को, उसकी क्रूरता और घमण्ड को, जो 'मदर इण्डिया' की कल्पना और रचना दोनों से टपकता है, लोगों को इसी चित्र में दर्शाकर उस साम्राज्यवाद को, जो हमारी दृष्टि में 'संसार का भय' है, कम से कम भारत से निर्मूल कर देने के लिए उत्सुक बना दें।" यही ठीक भी है।

मिस मेयो द्वारा चित्रित भारतीय स्त्रियों की दुर्दशा, ख़ास कर प्रसूता और दाई का ज़िक्र करते हुए उन्होंने मिस मेयो से पूछा है—'क्यों मिस मेयो, अंतिम दो सौ वर्ष से तुम्हारे ही सजातीय, जिनकी तुम मुखपात्र हो, हमारे राजा हैं, रक्षक हैं, और अभिभावक हैं। इन दो सौ वर्ष के पहले भारतवर्ष की सभ्यता और सम्पन्नता की समस्त संसार में धूम थी। आज यह देश अछूत अभागिनी दाई के समान क्यों हो गया? और इसकी यह दुर्दशा किसने बना दी?' निस्सन्देह यह प्रश्न बड़ा रहस्य पूर्ण है और इसी में मिस मेयो के आक्षेपों का मूल छिपा हुआ है। श्रीमती नेहरू कहती हैं—"वास्तव में इसी प्रश्न के व्यंग को मिटाने और भारत-माता की वर्तमान भयंकर स्थिति का उत्तरदायित्व अपने सिर से हटाने के लिए ही 'मदर इण्डिया' की कल्पना और रचना की गई है।" और इसीलिए "यह एक अनभिज्ञ कुमारी के अनुभव नहीं बल्कि इतिहास के आरम्भ से आज तक जो कुछ भारत के विरुद्ध कहा गया है, या कहा जा सकता है, उस सबकी एक अपूर्व प्रदर्शिनी है। इस सुयोग्य पुस्तक में अँग्रेज़ी राज्य के भारत में क़ायम रहने की जितनी दलीलें इन्सानी मस्तक में आ सकती हैं, सब मौजूद साथ ही साथ भारतवासियों की दृष्टि को राजनैतिक से हटाकर अन्य क्षेत्रों की ओर मोड़ देने के लिए जो भी अधिक से अधिक योग्यता के साथ कहा जा सकता कहा गया है।'

उक्त प्रश्न के दोनों पक्षों को हम पूर्ण रीति से सकें, इसके लिए श्रीमती नेहरू ने 'मिस मेयो से दो-दो शीर्षक कल्पित वाद-विवाद लिखा है। प्रश्नोत्तर के रूप इसमें उन्होंने यह सिद्ध कर दिया है कि भारत की जो दशा है—क्या राजनैतिक, क्या सामाजिक, क्या रिक और क्या नैतिक, सभी प्रकार—वह ब्रिटिश शासन पहले न थी। हमारी तिजारत ख़ूब बढ़ी-चढ़ी थी, ऐसी सुव्यवस्थित और विस्तृत कि विदेशी चकराते बीमारियों की गुज़र न थी, दुष्काल का तो नाम भी प्राचीन काल में भी हम औरों से बढ़े-चढ़े थे। परन्तु, के सब्ज़-क़दम हमारी पवित्र भू पर पड़े नहीं कि एक के एक सभी उन बातों का आगमन आरम्भ हुआ, जिनके कि आज हमें कोसा और हमपर ब्रिटिश छत्र छाया समर्थन किया जा रहा है! ब्रिटिश साम्राज्य और कुटिलताओं के साथ-साथ हमारी अधोगति भी बढ़ती गई यहाँ तक कि अन्ततोगत्वा हम आज की हीन स्थिति आ पहुँचे। फिर यह सब भी किसी स्वाभाविक नियमानु नहीं हुआ; बल्कि कूटनीति, जब्र और ज़बर्दस्ती के किया गया। नये सुधार और नयी खोजों के नाम पर भी नयी सभ्यता की चीज़ें जारी की गईं सब विरुद्ध से और उनके द्वारा हमारे स्वाभिमान एवं ऊँची नैतिकता ही नहीं बल्कि हमारे 'अपनेपन' को भी हमसे भुला गया। ये सब बातें कोरी काल्पनिक नहीं, उद्धरण उद्धरण और अंक पर अंक देकर श्रीमती नेहरू ने इस को दर्शाया है। और सिद्ध किया है कि स्वराज्य-प्राप्ति हमारी मुक्ति का साधन है। यह जो कहा जाता है पहले हम अपनी कुरीतियां दूर करें, इसपर श्रीमती कहती हैं—"सुनो! इस संकट के समय हमें यह देना कि हम अंपनी तीस करोड़ जनता को शिक्षा दें— करोड़ अछूतों को और करोड़ों ब्राह्मणों को उनके

न्धविश्वासों से मुक्त करें—वैधव्य को रोकें—बालविवाह निर्मूल कर दें—और तब ही स्वतन्त्रता की ओर बढ़ें—में अपने विनाश का मार्ग दिखाना है।……देश की प्रधान ावश्यकता यह है कि हम अपनी समस्त शक्ति इस रथ के ल-रूपी चक्रों को रोकने में (स्वराज्य-प्राप्ति के लिए) लगा।……यदि हमने इन्हें शीघ्र ही न रोका और समाज-धार के काम में लगे रहे तो वह सब जनता, जिसका हम धार करना चाहते हैं, पिस कर चूर-चूर हो चुकी होगी।” सीलिए तो यह ‘मदर इण्डिया’ का जाल रचा गया है! रन्तु, श्रीमती नेहरू कहती हैं, “फिर भी हम अभी मरे हीं, जीवित हैं।” और हमारी मुक्ति के साधनों का इस न्दर भावुकता के साथ उन्होंने वर्णन किया है—

“दिन प्रति दिन यह विचार कि हम स्वयं अपने मिटाने आपको सहायता दे रहे हैं, हमारे हृदय पर अंकित होता रहा है। और जिस दिन हमने आपके रथ से अपना थ हटा लिया उसी दिन उसका चलना बन्द हो जायगा। मारा हाथ रोक लेना अविश्वसनीय नहीं, अविश्वसनीय यह कि इसे हम स्वयं अपने हाथों से चला रहे हैं।

“दूसरे, मिस मेयो, आपके व्यापारिक अजगर से अपने मुक्त कर लेने का साधन भी हमारे हाथ आ गया है; स अजगर का विष खद्दर पर असर नहीं करता। इस अजगर भयंकर शरीर के लिए खद्दर एक आग के लूके के समान है कि जिसकी आँच पहुँचते ही यह अपने शरीर की घातक गुण्डलियों ढीला करने पर विवश हो जाता है। गो, मिस मेयो, आपकी शिक्षा ने, हमारे समाज के हृदय को पश्चिमी चीज़ों के मोह जाल में फाँस दिया है, मगर फिर भी यदि हमें जीवित रहना है तो हम इस जाल से निकल जायँगे। देखो, यह जाल टूट रहा है। धीरे-धीरे, परन्तु अटल, असन्दिग्ध रूप में हम अपने उद्देश्य की ओर जा रहे हैं। हमारा आन्दोलन समुद्र की भाँति विशाल और शांत है। निस्सन्देह हम इस समय कृष्णपक्ष में हैं। परन्तु, मिस मेयो, देखिए! देखिए! वह दूर को देखिए! आपको कुछ प्रभा सी दिखाई देती है? यह सौंदर्यपूर्ण आकार हमारे दुःखमय अन्धकार के अन्त हो जाने के चिह्न हैं। यह बताते हैं कि हमारे जातीय जीवन का ङ्क-विहीन—सुशील—प्रकाशमान—आकर्षणपूर्ण चन्द्रमा उदय हो रहा है। अबकी बार उसके उदय होने पर इस शान्त समुद्र में वह तूफ़ान उठेगा, जिसकी प्रबल अदम्य तरंगे आपके विशाल शक्तिशाली टाइटेनिक जहाज़ का ज़ोर आज़मावेंगी।”

निस्सन्देह! क्या ही अच्छा हो, यदि हम भारतीय इनके अनुसार करने भी लगें?

भाषा और भाव दोनों दृष्टि से श्रीमती नेहरू की ये ‘दो-दो बातें’ बड़ी अच्छी हैं। मेरा तो ख़याल है, ‘मदर इण्डिया’ पढ़ने के बाद इन्हें ज़रूर पढ़ना चाहिए। जो-जो दुर्भाव उससे उत्पन्न होते हैं, सचमुच, इनसे उनका बहुत कुछ समाधान ही नहीं हो जाता; बल्कि भारत की स्वतंत्रता के लिए जी कुछ छटपटाने सा लगता है। सुना है, श्रीमती जी इसी ढंग पर एक दो-ढाई सौ पृष्ठ की पुस्तक और लिखने वाली हैं। यदि ऐसा हो तो हमें आशा है कम से कम हिन्दी-संसार उसका ज़रूर स्वागत करेगा।

भाषा सरल है। दो एक जगह उर्दू या अंग्रेज़ी के कड़े शब्द आ गये हैं, उनसे बचना और अच्छा होता। क्रम में, हमारी समझ में, ‘दो-दो बातें’ यदि ‘मदर इण्डिया’ के अनुवाद के बाद दी जातीं तो अच्छा होता। छपाई-सफ़ाई साधारणतः अच्छी है। जिल्द पक्की है। मूल्य भी १८४-।-४८४-।-८७ पृष्ठ की इस पुस्तक का ३॥) रु० अधिक नहीं। मिलने का पता है—हिन्दुस्थान प्रेस, प्रयाग स्ट्रीट, इलाहाबाद।

मुकुट

कुमार-हृदय का उच्छ्वास

लेखक—‘शिशु-हृदय’। प्रकाशक—दक्षिण-भारत हिन्दी प्रचार सभा, १९३ हाइरोड, ट्रिप्लिकेन, मद्रास। पृष्ठ-संख्या १२८। मूल्य ॥)

उक्त सभा ने इस पुस्तक को प्रकाशित करके भारतीय नवयुवकों का बड़ा उपकार किया है। इससे बड़े पवित्र विचारों की ओर रुचि होती है। पुस्तक लिखी भी अच्छे ढंग से गई है। भाषा कुछ क्लिष्ट है, मगर एक बार हाथ में ले लेने पर बिना ख़त्म किये उसे छोड़ने को जी नहीं चाहता। पढ़ते-पढ़ते कहीं-कहीं तो इसमें रवि बाबू की ‘गीतांजलि’ तथा ‘गार्डनर’ का सा रस आने लगता है। नवयुवकों को इसे ज़रूर पढ़ना चाहिए।

सा० उ०

होलिकाङ्क

होली के अवसर पर हास्य, विनोद, चुटकियों आदि मनोरञ्जक साहित्य से परिपूर्ण अंक निकालने की हिन्दी-पत्रों में कुछ प्रथा सी पड़ गई है। आर्यमित्र, अर्जुन, स्वदेश, प्रताप, भ्रमर, स्वतंत्र, हिन्दू—संसार, आर्य-मार्त्तण्ड,मतवाला आदि कई पत्रों के होलिकांक हमें प्राप्त हुए हैं। सभी में अपनी अपनी थोड़ी-बहुत विशेषता है। कोई शाइस्ता मज़ाक़ में बढ़ा हुआ है, तो कोई अपनी निम्न रुचि का परिचय कराता है। होली की आड़ में अश्लील प्रवृत्ति का परिचय कइयों के लिए 'पेटेण्ट' सा हो गया है। हम नहीं समझते, यह कहाँ तक ठीक है। हास्य-विनोद, चुटकियां आदि हों ज़रूर, पर औचित्य की सीमा का उल्लंघन न किया जाय वहीं तक। जो हो, इस बार के पत्रों में 'स्वदेश' और 'आर्यमित्र' के होलिकांक सबसे अच्छे रहे। उनका चुनाव और मज़ाक़ प्रायः सभी अच्छा है। आशा है, अगले वर्ष हमें उनमें और सुरुचि और प्रगति के दर्शन होंगे।

मुकुट

साहित्य-सत्कार

मराठी

१. ताक व आरोग्य
२. हार्ट डिसीज़ व त्यावर उपाय
३. अमृतपान (उषःपान-सचित्र)
४. मज्जातंतूंची दुर्बलता
५. डोके दुखी

पाँचों पुस्तकों के लेखक व प्रकाशक—वैद्य गणेश पाण्डुरंग शास्त्री परांजपे (हरीपुरकर), सांगली, एस० एम० सी०। मूल्य, क्रमशः, ≡), ।=), ।=), ।=), ।=)

विविध

१. मीठी चुटकी (सामाजिक उपन्यास)—लेखक—"त्रिमूर्ति"। प्रकाशक—साहित्य-मन्दिर, दारागञ्ज, प्रयाग। पृष्ठ-संख्या ८ + १७०। सजिल्द। मूल्य १॥)

२. रंगीला भक्तराज (सचित्र कहानी)—लेख श्री 'दिनेश'। प्रकाशक—सरस साहित्य-माला-कार्या पो० बा० ६८३७, कलकत्ता। पृष्ठ-संख्या ५६। मू० ।=

३. साहित्य-मीमांसा—लेखक—पं० किशोरी वाजपेयी, शास्त्री। प्रकाशक—साहित्य-रत्न-भण्डार, आग पृष्ठ-संख्या ५०। मू० ।)

४. लाठी-शिक्षक (सचित्र)—लेखक व प्रकाश श्री यज्ञदत्त जाखड़, लाठी मास्टर राजपूत बोर्डिंग हा तथा दाणी महाविद्यालय, अजमेर। पृष्ठ-संख्या ८ मूल्य १) रु०

५. श्रीकृष्ण-सन्देश (गीता का हिन्दी गद्यानुवाद) मुद्रक और प्रकाशक—'श्रीराम' प्रेस, स्यावरी, झाँ पृष्ठ-संख्या ९७। मू० ॥)

६. पाशुपत-प्राप्ति—सम्पादक और प्रकाशक—ह भक्तिपरायण विष्णु नरहर ललित, हरिकीर्त्तनाचार्य, काश पृष्ठसंख्या लगभग ६०। मू० ।=)

७ कपिला-क्रन्दन—लेखक—श्री शोभाराम ध सेवक। प्रकाशक—श्री तुलसी ग्रंथमाला, लखना (सिवनी), मध्यप्रदेश। पृष्ठ-संख्या ३३। मू०=)

८. मित्रता—लेखक व प्रकाशक—श्री प्रताप नाहटा, मोमासर (बीकानेर)। मिलने का पता—ग्रन्थ-प्र शक, ७।१ प्यारीमोहनपाल लेन, कलकत्ता। पृष्ठ-सं ८९। मू० ।=)

९. क्षत्रिय-वंश-प्रदीप—लेखक व प्रकाशक-श्री पं० छोटेलाल शर्मा, वर्ण-व्यवस्था-मण्डल, फुलेरा, रिया जयपुर। पृष्ठ संख्या १०५४। मू० २॥)

१०. कवि-केलि—सम्पादक—श्री बा० अवन्तविहा माथुर। प्रकाशक—हिन्दी-साहित्य हितैषी-भवन, नवमह ग्वालियर सिटी। पृष्ठ-संख्या २६।३ चित्र। मू० ।=)

११. योगी गुरु—ले०—श्री स्वामी निगमान परमहंस। दक्षिण-बंगाल सारस्वतमठ, हाली शहर (चौबी पर्गना) से प्रकाशित। पृष्ठ-संख्या ३०३। मू० १॥)

१२. ब्रह्मचर्यसाधन—लेखक और प्रकाशक उपर्युक्त पृष्ठ-संख्या ९६। मू० ॥)

१३. बालबोध व्याकरण—लेखक-पं० मोह

शर्मा, शिक्षक एम० एम० स्कूल, उदयपुर (मेवाड़)। पृष्ठ संख्या ५६। मूल्य ।)

पत्र-पत्रिका

१. वालंटियर (अँग्रेज़ी मासिक)—सम्पादक व प्रकाशक—डा० एन० एस० हार्डीकर, हुबली। वार्षिक मूल्य ३) रु०

२. करेण्ट थॉट (अँग्रेज़ी मासिक)— प्रकाशक—एस० गनेशन, ट्रिप्लिकेन, मद्रास। वार्षिक मूल्य ५)

३. कलकत्ता म्युनिसिपल गज़ट—(अँग्रेज़ी साप्ताहिक)—प्रकाशक—कार्पोरेशन, कलकत्ता। वार्षिक मूल्य ४) रु०

४. आर्य दर्पण—(बंगला मासिक) श्री आसाम बंगला सारस्वत आश्रम, पो० कोकिलामुख (जोरहाट, आसाम)। वार्षिक मूल्य २) रु०

५—जैन-साहित्य-संशोधक—जैन इतिहास, साहित्य, तत्त्वज्ञान आदि विविध विषयक गुजराती त्रैमासिक। सम्पादक—मुनि श्री जिनविजयजी प्रकाशन-स्थान—अहमदाबाद। वार्षिक मूल्य ६) रु०

स्व-गत

यदि अपने सुख से सम्बन्ध रखने वाली श्रेष्ठ और कनिष्ट दो वस्तुओं में से किसी एक को पसंद करने का अवसर आवे, तो कनिष्ठ वस्तु को स्वीकार करो। यदि लड्डू और रोटी में से, गद्दे और चटाई में से, हाथी की सवारी और बहली में से, दूध और छाछ में से, किसी एक चीज़ को पसन्द करना हो, तो देश-सेवक को रोटी, चटाई, बहली और छाछ पंसद करनी चाहिए।

❀ ❀ ❀

पर यदि कर्तव्य-पालन करने का अवसर हो और कठिन तथा आसान बात में से किसी एक को चुनने का प्रसंग आवे, तो सुधारक को चाहिए कि वह कठिन व कष्टप्रद बात को अङ्गीकार करे।

❀ ❀ ❀

एक साधु की एक गृहस्थ से रेल में लड़ाई हो गई। गृहस्थ साधु को असाधु कह कर गाली देने लगा। साधु उसे, 'साधु' को गाली देने के अपराध में, उससे दूनी गाली देने लगा। मैंने दोनों को दूर से प्रणाम कर लिया। बताइए, इसमें किस के नाम को रोवें?

❀ ❀ ❀

कई मित्र कहा करते हैं कि कीर्ति के हेतु से भी अच्छा काम करने में क्या बुराई है? मेरा निवेदन है कि जब कीर्ति के बजाय अपकीर्ति मिलने लगेगी, तब वह मनुष्य उस कार्य से दूर हट जायगा और कभी-कभी कीर्ति-लोभ से अनुचित कामों को भी कर बैठेगा।

❀ ❀ ❀

क्या तुम्हें स्वराज्य की चाह है? आज़ादी की उमंग है? तो, भाई, फिर मिष्टान्न की योजना, ब्याह-शादी का रंग-राग, बाल-बच्चों की दुहाई, गद्दे और गलीचों की चिन्ता कैसी?

❀ ❀ ❀

जब-जब मैं किसी पढ़े-लिखे आदमी को यह कहते सुनता हूँ कि आपकी खादी तो महँगी पड़ती है, इसलिए लेने को जी नहीं चाहता: तो, ईश्वर जाने, मेरे मन में क्या-

क्या होने लगता है ! जब किसी प्रौढ़ विद्यार्थी को, महात्मा जी अथवा लोकमान्य या मालवीय जी जैसे के जीवन की मुख्य-मुख्य घटनाओं और सिद्धान्तों से अपरिचित पाता हूँ, तो मेरा सिर चक्कर खाने लगता है !

❀ ❀ ❀

जिसे समय पर खाना खाने की सुध रहती है, जो कभी बीमार नहीं पड़ता, जिसका वज़न घटता नहीं रहता, जिसे दूध-फल खाने को पैसे मिल जाते हैं, जो साफ़-सुथरे कपड़े तरतीब से पहनता है, जिसे हास्य-विनोद के लिए समय मिल जाता है, वह कैसा देश-भक्त ? जिसे रात-दिन देश की सच्ची चिन्ता रहती है, उसे भला इन सब बातों के लिए होश कैसे रह सकता है ! !

❀ ❀ ❀

आजकल नेताओं को कोसने की बीमारी चल पड़ी है । कभी-कभी मन में यह शंका उठ खड़ी होती है कि कहीं कोसने वाले तो नेतागिरी के मर्ज़ में मुब्तिला नहीं हैं ?

❀ ❀ ❀

नेता बनने की इच्छा बुरी नहीं, पर केवल औरों को कोस कर नेता बनने का उदाहरण इतिहास में शायद ही मिले ।

❀ ❀ ❀

अपनेको बड़ा मान लेने से केवल अपनी ही हानि नहीं होती, केवल अपनी ही उन्नति नहीं रुकती, बल्कि औरों के साथ भी अन्याय होता है—उन्हें हम तुच्छ दृष्टि से देखने लगते हैं ।

❀ ❀ ❀

अहंकार कई बार आत्म-सन्मान के रूप में आकर हमें धोखा दे जाता है ! मान तो वह, जिसकी चिन्ता हमें न करनी पड़े ।

❀ ❀ ❀

एक मित्र ने कहा —'त्यागभूमि' तुमने निकाली तो खूब है; पर, इस प्रतिस्पर्धा के युग में उसे टिका कैसे सकोगे ? मैंने उत्तर दिया—मेरे सामने प्रतिस्पर्धा का सवाल नहीं है । मेरे सामने तो सिर्फ एक ही बात है—'त्यागभूमि' के द्वारा देश की अधिक से अधिक सेवा किस तरह हो ? जिस दिन उसमें से सेवा का भाव निकल जाय दिन प्रतिस्पर्धा न होगी तो भी, वह न टिक सकेगी

❀ ❀ ❀

एक मित्र ने उस दिन कहा—जी, आजकल बात-बात में अश्लीलता की बू आ जाया करती है चित्र में कृष्ण पीछे से गोपी का पल्ला पकड़ रहे हैं होने लगी पुकार अश्लीलता की ! मैंने अर्ज़ किया- कृष्ण को क्या पड़ी थी, जो किसी राह-चलती पल्ला पकड़ते—उससे छेड़खानी करते ? और इस के रस के सिवाय कौनसा आकर्षण उसमें था, वशवर्ती होकर संपादक जी ने उसे पत्रिका में स्थान

❀ ❀ ❀

एक सज्जन लिखते हैं—"आप तो त्याग का करते हैं, खुद ही त्याग करके 'त्यागभूमि' मुझे बि भिजवा दीजिए ।" यदि सभी ग्राहक इतने उस्ताद और हमें त्याग की इस कसौटी पर कसने लगें, तो 'त्यागभूमि' को अपना जीवन ही त्याग देना पड़े।

❀ ❀ ❀

स्वार्थ-भाव, न्याय-भाव और सेवा-भाव ये म विकास की उत्तरोत्तर सीढ़ियाँ हैं । स्वार्थ-भाव में हिताहित गौण होता है, न्याय-भाव में अपना और का हिताहित समान होता है, सेवा-भाव में दूसरे की प्रधानता होती है। स्वार्थी मनुष्य निष्ठुर होता है, कठोर होता है, और सेवार्थी सदय, सहृदय ।

❀ ❀ ❀

अक्सर लोग कहा करते हैं, सत्य तो कड़वा हो मेरी तो धारणा ऐसी होती जाती है कि सत्य और एक साथ नहीं रह सकते ।

❀ ❀ ❀

मनुष्य या तो गुस्से में, या निराशा में, या छोड़ते हुए, कड़वी बात मुँह से निकालता है । पुजारी इन तीनों दोषों से बचता रहता है ।

❀ ❀

हरिभाऊ उपा

सम्पादकीय

प्रताप की पूजा

प्रताप की पूजा का पवित्र दिन समीप आ रहा है। २ मई, ज्येष्ठ शुक्ल तृतिया, इस स्वतंत्रता के पुजारी और रता के देवता का जन्मदिन है। उस दिन न केवल राजथान बल्कि समस्त भारतवर्ष में प्रेम और उत्साह के साथ प्रताप जयन्ती मनाई जानी चाहिए। भारत इन दिनों बुरी ह परतंत्रता की बेड़ियों में जकड़ा हुआ है, उसका शौर्य र उसका पौरुष इस समय सोया हुआ है, वीरों की तरह ने की और वीरों ही की तरह हँसते-हँसते मर-मिटने की सकी वे मानवोचित आकांक्षायें न जाने कहां विलीन हो ई हैं। अपनी उन सोती हुई शक्तियों को जाग्रत करने के हए और अपनी नसों में संजीवन की विद्युल्लहरी सञ्चारित रने के लिए मुर्दा दिलों में भी रुह फूँकदेने वाले इस पवित्र नाम ा स्मरण और उसका गौरव-मय गुण-गान करके हमें अपनी त्माओं को सुषुप्ति की गुहा से निकालने का प्रबल प्रयत्न रना चाहिए। सच्चे वीर की पूजा अवश्य ही वीरता के रोवर में स्नान करने के समान सुफलदायिनी है।

प्रताप वास्तव में सच्चा वीर है। संसार के इतिहास उसका स्थान बिलकुल अपना ही स्थान है। वह असंख्य ना के बल पर दिग्विजय के लोभ में पड़ कर निरीह और र्दोष लोगों पर अनाचार और अत्याचार करने वाला 'वीर' हीं; वह तो अपने देश की स्वाधीनता की रक्षा में मर मिटने वाला, अपने देश, अपने धर्म और अपनी जाति की र्यादा में सर्वस्व स्वाहा कर देने वाला एक ऐसा वीर है जिसने निर्भय होकर अपने ज़माने के संसार के सबसे बड़े म्राट को युद्ध के लिए ललकारा और जिसने जीवन-पर्यन्त एक से एक बढ़-चढ़ कर आने वाली अकबर की सेनाओं का मान मर्दन किया, जिसकी पराजय भी बड़ी से बड़ी विजय से अधिक गौरवशालिनी थी और जिसने न केवल शत्रु-सेना के साहस को ही बल्कि अपनी सच्चरित्रता और उदारता से अपने परमशत्रु के हृदय को भी जीत लिया। प्रताप के गुण-गान से हमें उसके पद-चिह्नों का अनुसरण करने की प्राण-मयी प्रेरणा मिले बिना न रहेगी। इसलिए प्रत्येक भारत-वासी और विशेषतः राजस्थान-निवासियों का यह कर्तव्य है कि उस पुण्यतिथि को प्रताप की पवित्र स्मृति के चरणों में सब मिलकर अपनी प्रेममयी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने की तैयारी करें।

कार्यक्रम के तौर पर कुछ विचार यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं। आशा है, प्रताप-प्रेमी उनपर ध्यान देंगे और कार्य-रूप में उन्हें परिणित करेंगेः—

(१) जहाँ कुछ भी सजीव और प्रताप-भक्त हृदय हों वहाँ नगर-नगर और गाँव-गाँव में सार्वजनिक सभा हो और सम्भव हो तो जलूस निकले।

(२) रात्रि को घर के बालकों और स्त्रियों आदि को एकत्रित करके प्रताप की कथा कही जाय।

(३) सहृदय भक्त और मातायें उस दिन व्रत रक्खें और प्रताप-कथा सुनने के बाद पारणा के समय मातायें ईश्वर से प्रार्थना करें कि हमारे पुत्र प्रताप जैसे हों और बहनें कहें कि हमारे भाई प्रताप के समान हों।

(४) पाठशालाओं में उस दिन केवल प्रताप-गाथा हो और फिर छुट्टी रहे।

(५) राज्यों की ओर से प्रताप-जयन्ती मनाई जाय। अदालतों आदि की उस दिन छुट्टी रहे। शक्ति का परिचय देने वाले खेलों का निदर्शन हो।

(६) जिनकी श्रद्धा हो वे भाई और बहन प्रताप-स्मारक के लिए कुछ दान का सङ्कल्प करें।

पुण्य-भूमि मेवाड़ के अधिकारी और कार्यकर्ताओं से मेरा सप्रेम और साग्रह अनुरोध है कि

(१) इस बार प्रताप-जयन्ती गत वर्ष से भी अधिक धूम-धाम और प्रेम से मनायें ।

(२) पिछले वर्ष प्रार्थना देर से की गई फिर भी राज्य की ओर से आधे दिन की छुट्टी कर दी गई थी । अब प्रताप-जयन्ती के उपलक्ष्य में एक या दो दिन की छुट्टी निश्चित हो जानी चाहिए ।

(३) मेवाड़ की राजधानी में शानदार जलूस निकले जिसमें प्रजावर्ग के साथ-साथ अधिकारीवर्ग भी सम्मिलित हों ।

(४) नगर भर के विद्यार्थियों को मिठाई बाँटी जाय ताकि उनके मन पर उस दिन के महात्म्य की छाप पड़े ।

(५) मेवाड़ के सामन्तों को भी बड़े उत्साह और प्रेम के साथ इसमें भाग लेना चाहिए और अपने-अपने ठिकानों में प्रताप-जयन्ती मनाने का आयोजन करना चाहिए ।

(६) प्रताप-स्मारक और हल्दीघाटी पर प्रताप-मेले का अवश्य ही और शीघ्र ही आयोजन करना चाहिए ।

गत वर्ष कई स्थलों पर प्रताप-जयन्ती समारोह के साथ मनाई गई थी । मुझे आशा है, इस वर्ष और भी अधिक उत्साह के साथ हम अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित करने की तैयारी करेंगे । अजमेर में आर्य-समाज और हिन्दू-सभा दोनों प्रतिष्ठित और प्रभाव-शाली संस्थाओं को मिल कर अपने देश के इस अपूर्व गौरवस्तम्भ और स्वतंत्रता के मतवाले वीर की जयन्ती मनाने का आयोजन करना चाहिए । मेवाड़ को तो अपने इस विश्व-वंद्य पूर्वज का समुचित सन्मान करना ही होगा ।

आर्यसमाज अजमेर का उत्सव

आर्यसमाज देश की एक जीती-जागति संस्था है । और अजमेर, आर्यसमाज का, एक शक्तिशाली और प्रसिद्ध केन्द्र है । आर्यसमाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द अजमेर में बहुत दिनों तक रहे और यहीं उन्होंने अपनी भौतिक लीला संवरण की । बीसवीं शताब्दि के इस मृत्युञ्जय वीर और ब्रह्मचारी ऋषि को अजमेर प्यारा था, इसमें एक रहस्य है । ऋ
राजपूताने में बड़ी श्रद्धा थी । राजपूतों के वीरता से भ
अद्वितीय इतिहास में—उस इतिहास में, कि जिसका
संसार भर में खोजने पर भी नहीं मिलता, दयानन्द को
नैसर्गिक आकर्षण दिखाई दिया । उन्होंने सोचा कि
इस निर्भय, वीर और धर्म-प्राण राजपूत जाति को ए
जागृत कर दिया, तो देश की इस गिरी हुई दशा को सु
में, धर्म के मूल तत्त्वों की संस्थापना करने और भारत
को बन्धन-मुक्त कराने में बड़ी सहायता मिलेगी । इस
वह राजपूताने में घूमे और जब उन्होंने राजपूत राजाओं
अपने धर्म से च्युत और विषय-विलास की कीचड़ में
हुए पाया, तो दुःखित हृदय से उन्हें फटकारा भी । राज
उस समय सो रहा था । उसने इस तपो-मूर्ति सन्यासि
ठीक तरह से पहचाना नहीं, और इसलिए स्वामी के
वह बात दिल की दिल ही में रह गई !

किन्तु स्वामी दयानन्द के घनिष्ट संसर्ग से राजपू
केन्द्र अजमेर नगर को लाभ पहुँचा । यहाँ के अधिवा
में जीवन की ज्योति प्रज्वलित हुई और वह अब तक
प्रकाश फैला रही है । यही कारण है कि पञ्जाब के शे
आर्यसमाजी भी अजमेर के उत्साह को मानते हैं और
मथुरा-शताब्दि के अवसर पर यह बात देखने में भी
आर्यसमाज की ओर से अजमेर में इस समय कई सं
अच्छा काम कर रही हैं, जिनमें दयानन्द-अनाथालय,
यन्त्रालय, डी० ए० वी० स्कूल और कन्या-पाठशालायें
अजमेर नगर में आर्यसमाज का ज़बरदस्त प्रभाव है,
कि उसके वार्षिक उत्सवों तथा नगर-कीर्तनों में प्रेम
सम्मिलित होने वाले जन-समूह की संख्या से स्पष्ट
होता है । यह ठीक है कि इनमें सम्मिलित होने वाले
आर्यसमाजी नहीं हैं; किन्तु आर्यसमाज के प्रति उनकी
सहानुभूति है, इसमें तो कोई सन्देह ही नहीं ।

सदा की भांति इस वर्ष भी आर्यसमाज अज
अपना वार्षिकोत्सव मनाया और भजनों, व्याख्यानों
नगर-कीर्तन के अतिरिक्त शारीरिक बल तथा शस्त्र-वि
दिग्दर्शन, अछूत-सम्मेलन तथा कवि-सम्मेलन
विशेषतायें थीं ।

पहले दिन राजस्थान के आर्योपदेशक श्री परमानन्दजी का भाषण सुना। रामायण की चर्चा करते हुए, अन्त में, उन्होंने कहा—वैसे तो बहुतसी बातें हैं, पर सारी रामायण में मुझे दो मुख्य सार-भूत बातें मालूम पड़ती हैं। एक यह कि राम संगठन के देवता हैं, और दूसरी यह कि रावण फूट का राक्षस है। राम निर्वासित होने पर भी जङ्गली जातियों को संगठित करके लङ्का को जीत लेते हैं; सुग्रीव, हनुमान और विभीषण को अपना परम-भक्त बना लेते हैं। जो उनसे एक बार मिलता है वह सदा के लिए उनका हो जाता है। उधर रावण अपने भाई विभीषण और रानी मन्दोदरी को भी सन्तुष्ट नहीं कर पाता और लङ्का के नाश का कारण बनता है। संगठन के इस युग में यह सन्देश अवश्य ही उपादेय है। पर संगठन धर्म पर अवलम्बित है। अधर्म भी संगठित हो कर धर्म का मुक़ाबला करता है सही, पर उसका संगठन भी उतना ही सबल और स्थायी होगा, जितना कि प्रेम और संयम आदि धर्म के उच्च और उदात्त तत्त्वों का उसमें समावेश होगा। अतएव संगठन के लिए भी हमें धर्म के मूल तत्त्वों की शरण लेनी होगी और उन बातों को खोज कर अपनाना होगा कि जिनके कारण राम, राम बने थे।

दूसरे दिन 'मिलाप' और आर्य गज़ट' के सम्पादक, लाहोर के, श्रीयुत् खुशहालचन्दजी 'खुरसन्द' का विस्तृत और प्रभावशाली भाषण हुआ। उन्होंने बताया कि जातीय जीवन के तीन चिह्न हैं—बुद्धि, बल और धन। फिर उदाहरणों द्वारा इस बात को सिद्ध किया कि हिन्दुओं में ये तीनों बातें पर्याप्त मात्रा में मौजूद हैं, किन्तु फिर भी इनका ह्रास होता जा रहा है इसका क्या कारण? ऋग्वेद के एक मन्त्र की व्याख्या करते हुए कहा कि जहाँ दिल की भट्टी में भ्रातृ-भाव, सदाचार और ईश्वर-प्रेम ये तीन चीज़ें जलती रहती हैं वहाँ जीवन को पोषण करने वाली उष्णता और प्रकाश दोनों मौजूद रहते हैं। खेद है कि हिन्दुओं में आज इन बातों की कमी है। भ्रातृ-भाव तो मानों अपने पूर्ण अभाव में ही उपस्थित है। यदि भ्रातृ-भाव होता, तो संगठन के लिए इस तरह इतना अधिक चिल्लाना न पड़ता। और आज जो संगठन हो रहा है वह भी भ्रातृ-भाव की भित्ति पर इतना नहीं, जितना कि मजबूरी के कारण हो रहा है। आज जो हम अछूतों को अपने में मिला रहे हैं—मिला कहाँ रहे हैं, मिलाने की आवाज़ उठा रहे हैं,—यह इसलिए नहीं कि हम उन्हें भाई बना कर भाई के समान उनके साथ व्यवहार करने के लिए लालायित हैं; बल्कि वे दूसरी जातियों में न मिल जायें, इसके लिए उन्हें हम कुछ मानवी सुविधायें देने की बात कर रहे हैं। सचमुच भ्रातृ-भाव के उदाहरण युधिष्ठिर हैं, जो अपने भाइयों को छोड़ कर स्वर्ग में भी रहने से इन्कार कर देते हैं। संगठन वही सच्चा और स्थायी होगा जो भ्रातृ-भाव पर अवलम्बित होगा, और जहाँ परस्पर ऐसा प्रेम होगा कि पैर की छोटी से छोटी अंगुली में चोट लगने पर सारा शरीर बेचैन हो उठे। हम याद रक्खें कि कोई भी ईश्वर को अपना पिता नहीं कह सकता कि जो मनुष्य को अपना भाई कहने को तैयार नहीं।

ईश्वर विश्वास तो आजकल के हिन्दुओं में जैसे है ही नहीं; हाँ, भाग्य को कोसना उन्हें ज़रूर आता है। जहाँ ईश्वर विश्वास होता है वहाँ हृदय के अन्दर एक अदम्य शक्ति वास करती है, जो संसार की बड़ी से बड़ी मुसीबत को भी ललकारने का अपने में साहस रखती है। हिन्दू लोग यदि ईश्वर में विश्वास करके अपने-अपने कामों में जुट पड़ा करें, तो आज जो साहस-हीनता हम लोगों में घुस गई है वह बहुत कुछ दूर हो जाय। कृष्ण सच कहते हैं—

नहि कल्याण-कृत् कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति।

सदाचार की 'खुरसन्द' जी ने तीन कसौटियाँ बताईं। जो मनुष्य धन के प्रलोभन से ऊपर है और लोगों का भी उसपर ऐसा ही विश्वास है, वह धन-सम्बन्ध में सदाचारी है। जिसके सामने दुनिया की मातायें और बहनें अपनी इज़्ज़त को सुरक्षित समझें और, मित्र तो मित्र, शत्रु भी अपने घर की स्त्रियों को सौंपते हुए न झिझकें, वह स्त्री-सम्बन्ध में सदाचारी है। इसी प्रकार जो मनुष्य ईमानदारी से अपने कर्तव्य का पालन करता है, वह कर्तव्य के सम्बन्ध में सदाचारी है। सदाचार की ये कसौटियां यदि हम अपने सामने रखकर इनपर अपने आचरणों को कसें, तो हमारे लिए श्रेयस्कर होगा।

भ्रातृ-भाव, सदाचार और ईश्वर-प्रेम—इनके अन्दर वास्तव में समाज-शास्त्र के गूढ़ातिगूढ़ तत्त्व अन्तर्निहित हैं।

ऋग्वेद का यह मंत्र संगठन और सजीवता का अविस्मरणीय सूत्र है।

स्वामी सर्वदानन्द आर्यसमाज के प्रतिष्ठित और पुराने सेवक हैं। उनके व्याख्यान को सुनकर मेरे मन ने कहा कि जब तक आर्यसमाजियों को ऐसी निर्भयता और सहृदयता के साथ फटकारने वाले संन्यासी मौजूद हैं तब तक आर्यसमाज के भविष्य में विशेष आशङ्का करने की ज़रूरत नहीं। आपके भाषण की शैली मधुर और घरेलू होती है। आपने कहा—'तुम बातें तो बड़ी-बड़ी करते हो, पर तथ्य की बात को नहीं देखते। तुम्हारी बुद्धि बिगड़ी हुई है। तुम सबसे पहले अपनी बुद्धि की शुद्धि तो करो। अन्यथा, मैं साफ़ कहे देता हूँ कि, तुम्हारा यह सारा आडम्बर व्यर्थ सिद्ध होगा।'

यह उनके व्याख्यान का सार-मात्र है। मैं आशा करता हूँ कि आर्यसमाज उनके वचनों पर ध्यान देगा। मैं महसूस करता हूँ कि आर्यसमाज को अन्तरमुखी प्रवृत्ति की सख़्त ज़रूरत है। आज आर्यसमाज एक बहादुर सिपाही की हैसियत से ही दिखाई पड़ता है, उसकी धार्मिकता और आत्मिक तपश्चर्या लोप होती जा रही है। आर्यसमाज ने आर्यसमाजी तो बनाये, पर अब सबसे बड़ी ज़रूरत इस बात की है कि आर्यसमाजियों को आर्यसमाजी बनाया जाय। प्रारम्भिक काल में आर्यसमाज ने तपश्चर्या से अपनी आत्मा को पुष्ट किया था और उसीके बल पर आज वह इतना फल-फूल रहा है। पर यदि आर्यसमाज अपने उस महान् उद्देश्य 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' को सफल करना चाहता है, तो उसे तपश्चर्या के तोशे को फिर से भर लेने की ज़रूरत है।

नगर-कीर्तन आर्यसमाज की विशेषता है। इस बार का नगर-कीर्तन बहुत बड़ा और प्रभावोत्पादक था। पर, लोगों की राय है कि, वह श्रवणीय न रहकर अब केवल दर्शनीय रह गया है। बहुत से स्त्री-पुरुष भजनादि सुनने के उत्सुक थे, पर उन्हें चलाचली के कारण निराश होना पड़ा। दूसरी बात यह थी कि जलूस में स्त्रियों का नितान्त अभाव था। यह क्यों? आर्य बहनें डरती हैं, यह तो मैं सुनना नहीं चाहता। उनमें श्रद्धा नहीं, यह तो कहा ही नहीं जा सकता; क्योंकि उत्सव के समय हज़ारों की संख्या में सम्मिलित होकर वे अपनी श्रद्धा को प्रदर्शित करती हैं। मैं संयोजकों का ध्यान शताब्दि के उस बड़े जलूस को आकर्षित करना चाहता हूँ कि जिसमें सैकड़ों पंजाबी ने सम्मिलित होकर उत्साह और प्रेम के साथ गाते भ्रमण किया था और मथुरा की गलियाँ उस दृश्य को न भुला सकेंगी कि जब आवेश के साथ आकाश-नि स्वर में यह गाती हुई वे गुज़र रही थीं—

'सिर जावे तो जावे, मेरा वैदिक धर्म न जावे।'

हिन्दुओं ने जगह-जगह पर शरबत और पान-सु तथा पुष्प-वर्षा से जलूस का स्वागत किया, यह प्रशं है। पर क्या ही अच्छा होता, यदि दरगाह के पास मु मान भाइयों की ओर से भी प्रेम-पूर्ण स्वागत का प्रबन्ध होता! पर, मैं समझता हूँ, बड़े भाई की हैसि हिन्दुओं को ही आगे बढ़कर यह पथ-प्रदर्शन का करना होगा।

'राहत'

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के सामने

जल्द ही बिहार में अखिल-भारत हिन्दी-साहित्य-स लन का अधिवेशन होने वाला है। अबतक हि० सम्मेलन ने हिन्दी भाषा के प्रचार और साहित्य की वृद्धि के लिए बहुत-कुछ उद्योग किया है, पर पिछले दो वर्षों से सम्मेलन के अन्दर से प्राण कम-सा होता जा है। लोगों की आम शिकायत है कि सम्मेलन के क पदाधिकारियों में अधिकतर ऐसे व्यक्ति हैं; जो राष्ट्रीय से अपनेको दूर रखते हैं। जो हो; पर इतनी बात वाद है कि यदि सम्मेलन इसी तरह संकुचित भाव निर्जीव रूप से काम करता रहा तो थोड़े ही दिनों में उ अस्तित्व अनावश्यक सिद्ध होजायगा। मेरी राय में स अब नीचे लिखे कार्यों की ओर विशेष ध्यान दे और उ सिद्धि में अपनी पूरी शक्ति लगावे—

(१) राष्ट्रभाषा का एक स्वरूप निश्चित करे। मराठी, बंगला, गुजराती, पंजाबी, सिंधी, तामिल, आदि प्रान्तीय भाषाओं के ऐसे शब्दों, प्रयोगों और मु का समावेश करे, जिनसे एक ओर जहाँ भाषा का भण्डार बढ़ जाय तहाँ दूसरी ओर विभिन्न भाषा-भाषि वह अपने अधिक नज़दीक जान पड़े।

(२) देव-नागरी लिपि में ऐसा सुधार करने का प्रयत्न करे, जिससे वह और जल्दी लिखी जा सके तथा छपाई और टाइपराइटर की लिखाई में सुविधा हो जाय। अभी इस लिपि में कई अक्षर ऐसे हैं, जो अनावश्यक हैं; कई अक्षर ऐसे हैं, जिनके शामिल करने की आवश्यकता है; और मात्रायें इतनी अधिक हैं और इस तरह लगानी पड़ती हैं कि छापे में जगह बहुत ज़्यादा घिर जाती है। इस असुविधा को मिटाने की ओर सम्मेलन का ध्यान तुरंत जाना चाहिए। महाराष्ट्र में कुछ विचारक इस बात का उद्योग कर रहे हैं, उससे लाभ उठाने की चेष्टा करनी चाहिए।

(३) ऐसे साहित्य के निर्माण की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए जो देश और समाज की आवश्यकता को पूरा करता हो। पुराने ढंग के, पुराने समय के, कोरे काव्य-साहित्य के जीर्णोद्धार से हमारा विशेष लाभ न होगा। आधुनिक विश्व-साहित्य की नवीनता का भी लाभ उसे हिन्दी-संसार को पहुँचाना चाहिए।

(४) राष्ट्रीय महासभा का जो स्थान भारतवर्ष में है, हिन्दू-महासभा का जो स्थान हिन्दुओं में है, वही स्थान हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का हिन्दी-जगत् में हो जाना चाहिए। इसका यह अर्थ हुआ कि हिन्दी की सारी हलचलों—संस्थाओं, कार्य-प्रणालियों पर सम्मेलन का नियंत्रण हो, सम्मेलन उनका मार्ग-दर्शक और नियामक हो। साहित्यिक कुरुचि, अश्लील और विलासितावर्द्धक पुस्तकों, चित्रों और विज्ञापनों की रोक का वह उचित प्रबन्ध करे।

(५) अंग्रेज़ी से हिन्दी और हिन्दी से अंग्रेज़ी का एक बृहत् कोष तैयार करे।

(६) एक-लिपि-विस्तार के लिए गुजराती, बंगला, गुरुमुखी और उर्दू अक्षरों की जगह देवनागरी अक्षरों के प्रचार का उद्योग ज़ोर-शोर से करे, जिससे राष्ट्रीय एकता और संगठन में सहायता मिले। उर्दू अक्षरों की जगह देवनागरी का प्रचार करने में अभी मुसलमान भाइयों की ग़लतफ़हमी होजाने का अंदेशा है, अतएव जबतक दोनों के दिल साफ़ न हों तबतक यदि उर्दू को छोड़ भी दिया जाय, तो हर्ज नहीं।

आशा है, हि० सा० सम्मेलन के कर्णधार इन विषयों पर विचार करेंगे।

मिल-मालिकों के लिए अनुकरणीय

भाफ और बिजली से चलने वाले कल-कारख़ाने जिस तरह इस देश में विलायत से आये उसी तरह मज़दूरों का संगठन भी वहीं से आया है। इन कारख़ानों के बदौलत जब लाभ का धन एक या इने-गिने लोगों के घर में जमा होता रहता है और कारख़ानों में काम करने वाले मज़दूरों की सुख-सुविधा पर ध्यान नहीं दिया जाता, तब मज़दूरों को अपने हित के लिए अपना संगठन करना अनिवार्य हो जाता है। जहाँ मिल-मालिक अपने ही स्वार्थ का विचार करते हैं और मज़दूरों के सुख की ओर तनिक भी ध्यान नहीं देते, वहाँ मजूरों में और मालिकों में खिंच जाती है, जिसका परिणाम हड़ताल होता है। मेरा तो विश्वास है कि यदि मिल मालिक मजूरों के हित और सुख पर पूरा-पूरा ध्यान दें, तो इसमें अन्त को खुद उन्हींका ज़्यादा लाभ होता है। कल-कारख़ाने न बिना धन के चल सकते हैं, न बिना मज़दूरों के। धन तो ग़रीब लोग भी थोड़ा-थोड़ा करके एकत्र कर सकते हैं; पर मज़दूर यदि असन्तुष्ट रहे, तो कारख़ाना घड़ी भर नहीं चल सकता। खुशी की बात है कि हिन्दुस्थान के मिल-मालिक इस सत्य को अनुभव करते जा रहे हैं। कहते हैं कि शोलापुर मिल्स, जिसके कि मालिक बंबई के श्री नरोत्तम मुरारजी हैं, इस विषय में देश की समस्त मिलों से आगे हैं। वहाँ मज़दूरों के लिए अस्पताल, प्रसूति-गृह, उनके बच्चों के लिए पाठशाला, झूलागृह आदि का अच्छा प्रबंध है। इसी तरह हाल ही में ग्वालियर की जयाजीराव काटन मिल्स के मालिक श्री बिड़लाजी ने भी एक लाख रुपये लगा कर अपने मजूरों के लिए अस्पताल, प्रसूति-गृह और झूलागृह बनाने का श्रीगणेश किया है। दो हज़ार रुपये मासिक वह इन कामों के लिए मिल की तरफ़ से ख़र्च करने का इरादा रखते हैं। एक और बात बिड़लाजी ने करने का निश्चय किया है, जिसके लिए वह मेरी राय में विशेष धन्यवाद के पात्र हैं। ग्वालियर राज्य में कोई फ़ैक्टरी-क़ानून नहीं है। अतएव ग्वालियर और उज्जैन की

मिलें १२–१३ घण्टे चलती थीं, जहाँ कि सारे देश में १० घण्टे चलती हैं। बिड़लाजी को यह बात बहुत दिनों से खटकती थी। अब उन्होंने आज्ञा दे दी है कि आगामी एक ही दो महीने में ग्वालियर की मिल १० घण्टे चलने लगे। जिस बात के लिए इन्दौर में मजूरों को भारी हड़ताल करनी पड़ी और इंदौर-सरकार को १० घण्टे का नियम बनाकर मिल-मालिकों को मजबूर करना पड़ा, उस बात को बिड़ला जी ने खुद-ब-खुद कर दिया। आशा है, उज्जैन के मिल मालिक बिड़लाजी का अनुकरण करके यश के भागी बनेंगे। दानवीरता में तो बिड़लाजी दिन-दिन आगे बढ़ ही रहे हैं। देशभक्ति भी उनकी दिन-दिन चमकती जा रही है। एक मिल-मालिक की हैसियत से यदि वह अपनी मिल को सब अर्थ में एक आदर्श मिल बना दें, ऐसा प्रबंध कर दें कि मज़दूरों के हित और सुख को कोई बात बाक़ी न रह जाय, तो क्या अच्छा हो! श्री घनश्यामदासजी बिड़ला ने मजूरों के अस्पताल के भवन का शिलारोपण करने की प्रार्थना ग्वालियर के बाल-महाराज से करते समय अपनी वक्तृता में जो उद्गार प्रकट किये हैं, वे मेरी इस आशा को दृढ़ करते हैं। आपने कहा कि "हमारी यह कदापि मंशा नहीं है कि मुनाफ़ा बढ़ाते जावें, बल्कि हम चाहते हैं कि मिल की उन्नति के साथ-साथ मजूरोंके भी सुख-साधन बढ़ाये जावें। ❀❀❀ मैं श्रीमान् से यही आशीर्वाद चाहता हूँ कि मिल दिनों दिन फूले-फले और हम मज़दूरों के हित के लिए इसी तरह कोशिश करते रहें। ❀❀❀ श्रीमान् अपने कर कमलों से इस बुनियादी पत्थर को इस दृढ़ता से रक्खें कि यह केवल इस अस्पताल का ही नहीं, बल्कि मज़दूरों के लिए भी सुख की बुनियाद का पत्थर सिद्ध हो।" यदि दो चार ही आदर्श मिल-मालिक भारत में पैदा हो जायँ, तो मजूरों और मालिकों की खींचातानी बहुत कम हो जाय। परमेश्वर मालिकों को सुबुद्धि दें!

सौदे से काम कैसे चलेगा?

साइमन साहब अपने साथियों सहित विलायत लौट रहे हैं। भारत में अब तक कमीशन का पूरा बहिष्कार रहा। ऐरे-ग़ैरे स्वार्थी और खुशामदी एक तरह के सरकारी लोगों के अतिरिक्त किसी प्रभावशाली देश-सेवक ने उनसे अप ताल्लुक़ न रक्खा। समझौते के लिए साइमन सा कोशिश की; मगर बेकार हुई। वह चाहते थे कि धा के सदस्यों की एक ऐसी कमिटी बना दी जाय, कमीशन के साथ बैठ सके और कमीशन की इ गवाहों से जिरह आदि कर सके। इसके बदले, बहिष्कार के कुछ नेताओं ने यह तजवीज़ पेश की कि असेम्बली के चुने हुए सात प्रतिनिधियों की एक कमेटी और उसे गवाही लेने, रिपोर्ट लिखने आदि के अधिकार दिये जावें, जितने कि इस कमीशन को हैं शब्दों में इसका यह अर्थ हुआ कि १४ सदस्यों का बनाया जाय, जिसमें ७ अंग्रेज़ तो चुन ही लिये ७ भारतवासी और चुन लिये जायँ। शायद निय विधि-विधान की पेचीदगियों से बचने के लिए इस को अलहदा कमिटी का रूप दिया गया है। जो कु मुझे तो इस बात में सन्देह मालूम होता है कि इस की कमिटी बना कर ब्रिटिश सरकार बहिष्कारवादियों समझौता करे। बहिष्कार-आन्दोलन ने भारत और इङ्ग्लै असर तो किया है; पर मेरी राय में वह इतना काफ़ी है कि इङ्गलैण्ड वाले इस क़दर झुक जायँ। हाँ, यदि विदेशी वस्त्र के बहिष्कार पर कमर कस ले तो कुछ अवश्य निकल सकता है। कोरे ज़बानी सौदे से दुनि बड़ी बातें नहीं तय हुआ करतीं। विदेशी वस्त्र के बहि की सफलता में मुझे तो कोई भारी बाधा नहीं दिखाई देश की खपत का $\frac{1}{3}$ वस्त्र यहीं हाथ-करघों पर बन जा $\frac{1}{3}$ मिलें बना लेती हैं और सिर्फ़ $\frac{1}{3}$ बाहर से आता है। कुछ खादी की उत्पत्ति बढ़ा ली जाय और कुछ मिलें दि काम करने लगें, तो सारा कपड़ा यहाँ का यहीं बन है। सिर्फ़ कठिनाई रहेगी महीन कपड़े की। ४० से अंक का सूत भारत में नहीं कतता। एक तो लम्बे धा कपास की कमी है और दूसरे महीन माल के लिए सामग्री विलायत वाले यहाँ नहीं भेजते। अतएव यह मिलों को मोटा ही सूत कातना पड़ता है और उ कपड़ा बुनना पड़ता है। अतएव बहिष्कार तब तक सफल नहीं हो सकता, जब तक कि महीन कपड़ा

लों की रुचि बदल कर मोटा पहनने पर उन्हें तैयार न क्या जाय। उपदेश, प्रचार और आन्दोलन के द्वारा यह चि बदली जा सकती है।

कुछ लोगों को यह भय है कि मिल वाले मांग बढ़ने पर हुतेरा मुनाफ़ा चढ़ाने लगेंगे और लोगों के मनोभावों का रुपयोग अपने लाभ के लिए करेंगे। मिल वालों का हना है कि अब भी मिल वालों में आपस में इतनी स्पर्द्धा ढ़ी हुई है कि बहुत सस्ता माल वे दे रहे हैं। आन्दोलन ी अवस्था में भी यह पारस्परिक स्पर्द्धा भावों को बढ़ने न ी। अतएव मिलों के भावों पर नियंत्रण रखने की शर्त नावश्यक है। इसके बदले, कुछ लोग कहते हैं, मिल लों से उत्पत्ति या मुनाफ़े पर कुछ रक़म बहिष्कार-आन्दो- न के सञ्चालन के लिए ले ली जाय। मिल वालों की यह त समझ में तो आ जाती है। फिर भी महात्माजी और ल-मालिक इस विषय में आपस में बात-चीत कर रहे हैं र हमें उनके निश्चित निर्णय की राह देखनी चाहिए।

ान्ति के लिए बेचैनी

देश की वर्तमान राजनैतिक और राष्ट्रीय अवस्था का नि यदि एक शब्द में करना चाहें तो कह सकते हैं——यह बूढ़ों र युवकों की खींचातानी का—दूसरे शब्दों में क्रांति का ा है। महात्माजी कहते हैं, वर्तमान दशा में विदेशी के हिष्कार में हमारी सारी शक्ति लगनी चाहिए। वे इसके ए खादी और मिल के कपड़े का मेल मिलाने के लिए ार हो गये हैं। बंबई और अहमदाबाद के कई मिल- लिक उनसे मिले भी थे और कुछ निश्चित बातें उनके म्यान चल रही हैं। देश के दूसरे नेता भी इसपर गंभी- ा के साथ विचार करते हुए नज़र आ रहे हैं। बम्बई, ाल और महाराष्ट्र में तो अंग्रेज़ी माल के बहिष्कार के म से अर्थात् कुछ बिगड़े हुए रूप में, यह संदेश काम करने लगा है। परन्तु अभी सारा देश विदेशी वस्त्र के हिष्कार के लिए अपने को एक नहीं कर पाया है। इधर ० मालवीयजी ने पंजाब में यह घोषणा की है कि यदि ग मेरी बात सुनेंगे तो मैं दो वर्ष में स्वराज्य लेकर ूँगा। आपने अभी अपना कोई कार्यक्रम तो उपस्थित नहीं किया है; पर भाषण में खादी, हिन्दू-मुस्लिमएकता, अस्पृश्यता-निवारण पर ज़ोर दिया है। महात्माजी के बाद देश में, यदि आज किसी के नाम में कुछ जादू है तो वह है पू० मालवीयजी के नाम में। वह भारत के बूढ़े ब्राह्मण—भू देव हैं। वह यदि जी-जान से कूद पड़ें और नवयुवकों को ललकारें तो स्वराज्य को बहुत नज़दीक ला सकते हैं। त्यागमूर्ति पं० मोतीलालजी नेहरू की भी ऐसी हस्ती है जिसकी ओर देखकर देश को बहुत ढारस बँध रही है। कहते हैं, वह देश में क्रान्ति कर डालने की धुन में हैं। उन्होंने भी न तो कोई कार्यक्रम ही देश के सामने रक्खा है और न सार्वजनिक रूप से अभी कुछ कहा ही है। वह यदि दिल पर धार लें तो क्या नहीं कर सकते? अब रहे पंजाब-केसरी लालाजी, सो उन्होंने पहले ही कह दिया है——भैया, हम तो अब बूढ़े हो गये, जो कुछ बन सकता है वही हमें करने दो, आगे का काम तुम अपना सम्हालो। इन चार नेताओं में निश्चित बात अभी तक महात्माजी ही ने देश के सामने रक्खी है। देश जब कभी उसे समझे और अपनावे; पर इतनी बात निर्विवाद है कि देश में इस छोर से उस छोर तक एक क्रान्तिकारिणी भावना फैल जाय। इस बात में अब देश में किसी का मतभेद नहीं रहा। अपने-अपने अनुभव और रुचि के अनुसार नेता चाहे साधन जुदे-जुदे अख़्त्यार करें; पर सबके मूल में भाव यही है कि किसी तरह देश का बच्चा-बच्चा जाग उठे, एक-एक झोंपड़े में जीवन, जागृति और बलिदान के भाव पहुँच जायँ। देश की भिन्न भिन्न संस्थायें——यथा राष्ट्रीय महासभा, हिन्दू महासभा, मुस्लिम लीग और ख़िलाफ़त परिषद्, आर्यसमाज तथा अग्रवाल माहेश्वरी आदि जातीय सभायें, चर्खा-संघ, आदि——अपने-अपने क्षेत्र में अपना निश्चित कार्य करते हुए यदि राष्ट्रीय जागृति और राष्ट्र के लिए मर मिटने के भाव छोटे-छोटे गाँवों तक में फैलाने की ओर विशेष ध्यान दें, तो यह काम आसानी से हो सकता है। खुशी की बात है कि देश का नवयुवकदल इस कार्य के लिए भीतर ही भीतर अपनेको तैयार कर रहा है। टण्डनजी का स्वाधीन भारत-दल, वास्वानी जी का युवक-संघ, हार्डीकरजी का हिन्दुस्तानी सेवा-दल, इसी शक्ति के नमूने हैं। इधर पं० जवाहरलालजी नेहरू ने एक विज्ञप्ति मुझे भेजने की कृपा की है; जिसमें उन्होंने

एक नवयुवक-दल की स्थापना की ओर संकेत किया है। कई मित्रों ने उन्हें प्रेरणा की है कि इस समय देश में एक ऐसा दल बने जो स्वाधीनता का उपासक हो, समाज में समान अधिकार और समान सुविधा का हामी हो, जो धार्मिक अन्धता का विरोधी हो। बड़े-बूढ़ों को छोड़ दें, तो देश में इस समय पं० जवाहरलालजी ही ऐसे पुरुष हैं जिनके अन्दर देश का नवयुवक-दल अपनी आकांक्षाओं को छिपा हुआ पाता है। जवाहरलालजी जिस बात को उठाते हैं उसमें जी-जान से लग जाते हैं और अपना सब कुछ झोंक देते हैं। मुझे तो ऐसा दीख रहा है कि हम चाहें या न चाहें, अन्दर ही अन्दर देश की नवयुवक आत्मा जागृत और संगठित हो रही है। अभी जो भिन्न-भिन्न नवयुवकदल अलग-अलग काम कर रहे हैं उनके एकसूत्र में बँध जाने की आवश्यकता अवश्य है। मेरी राय में राष्ट्रीय महासभा के अलावा देश में नवयुवकों की एक ऐसी संस्था की परम आवश्यकता है जो युवकों के उत्साह और अकांक्षाओं की चीज़ हो, जिसके कर्ता-धर्ता नवयुवक हों। बड़े-बूढ़ों और नवयुवकों की खींचातानी सनातन है। इस खींचातानी में जीवन और जागृति का, दूसरे शब्दों में क्रान्ति का, बीज है। बड़े-बूढ़े अनुभव की ठोकरों से, कड़वी घूटों से, अधिक समझदार अतएव अधिक धीमे होजाते हैं। उनका ज्ञान और अनुभव बहुमूल्य होता है। उससे लाभ उठाते हुए युवक अपना रास्ता आप तय करें, यह सर्वथा वाञ्छनीय है। अतएव मैं पं० जवाहरलालजी की इस विज्ञप्ति का अपनी तरफ़ से अनुमोदन करता हूँ। यह दूसरी बात है कि ऐसी संस्था किन सिद्धान्तों पर क़ायम की जाय। इसके विचार के लिए किसी मौक़े पर एक छोटी सी परिषद् की जा सकती है।

साइमन-कमीशन के बदौलत देश का बिखरा बल कुछ संगठित ज़रूर हुआ है, परन्तु अब भी न तो सब नेता ही किसी एक बात पर एकमत हो पाये हैं और न नेता और कार्यकर्ता एक दूसरे से सन्तुष्ट नज़र आते हैं। ऐसा मालूम होता है मानों नेता लोग थक से गये हैं और साइमन-कमीशन सिर पर आ पड़ा है, इसलिए सं से कुछ करने-धरने की आवश्यकता महसूस हो र इस दृश्य को देखकर दिल उबलने लगता है और जी लगता है अपनी बेबसी, अकर्मण्यता और उदासीनता को कभी कभी जी कहने लगता है इससे तो इस अभागे कुछ उत्पात ही हो जाय तो क्या बुरा?—पर इसी समय वान् के ये वचन आश्वासन के लिए दौड़ पड़ते हैं—

"नहि कल्याणकृत् कश्चित् दुर्गतिं तात गच्छति।"

अर्थात् तू हित-बुद्धि से सत्कर्म किये जा, तेरा कभी बुरा न सकता। जो हो। एक मामूली संपादक के हाथ में अप पाठकों के सामने खोल कर रख देने से अधिक क्या सकता है? मैं ये बातें निराशा के झोंके में नहीं लिख हूँ। एक सेवक तब तक क्यों निराश होने लगा, ज कि उसका लक्ष्य सिद्ध न हो? यह तो एक ऐसी युवक बेकली और आतुरता है, जो स्वराज्य के जल्दी दर्शन के लिए और उसकी भारी से भारी क़ीमत तुरंत दे लिए उत्सुक है। यही आतुरता नेताओं के धीमेपन को नहीं रही है। इस समय तक तो मेरी बुद्धि दो बा आगे नहीं बढ़ रही है—(१) लोगों के विचारों में उथल और खलबली मचा देना, (२) विदेशी वस्त्र का बहिष्कार। मुझे यह भी विश्वास होता है कि यदि युवक आत्मा एक-दिल से इन दोनों बातों को अ और इनके लिए जी-जान झोंक देने को तैयार हो जा नेता और गुरुजन उन्हें मैदान में अकेला न रहने दें आगे बढ़कर हमारी ढाल और अदम्य प्रेरक शक्ति बन उस समय न किसी को साइमन साहब का रुख देखने की फ़ुरसत रहेगी और न आपस में एक दूसरे को की ही ज़रूरत रह जायगी।

ह०

चित्र-दर्शन

विवाह-समारम्भ

इधर कई वर्षों से अजंता की गुफाओं के चित्र बहुत कप्रिय हो रहे हैं। जब पहले-पहल ये चित्र पश्चिम के कारों की नज़र में आये, तो वे प्राचीन भारतीयों की ा-निपुणता को देखकर दंग रह गये। तब से वह प्रत्येक कला प्रदर्शिनी जिसमें अजंता के चित्रों की प्रतिलिपियाँ पाई जातीं, अधूरी समझी जाने लगी। अजंता के चित्रों भारतीय कलाकारों की रुचि और शैली में एक नवीन ंति उत्पन्न कर दी।

यह चित्र भी उसी गिरि-मंदिर की चित्रावलि में से अत्यन्त मनोहर चित्र की प्रतिलिपि है। कितने ही कला-ों का कथन है कि इन मन्दिरों के आलेखों पर आर्य ता की अपेक्षा द्राविड़ सभ्यता का असर अधिक दिखाई है। हमारी समझ में यह चित्र इस कथन की पुष्टि ा है।

एक ही पट पर भिन्न-भिन्न स्थानों के दृश्य दिखाना रे प्राचीन चित्रकारों की विशेषता है। यहाँ भी विवाह-ारम्भ के तीन अंग दिखाये गये हैं। बायें हाथ की ओर में कुछ युवतियाँ मंगल-गान गा रही हैं। कोई मृदङ्ग रही है, तो कोई वेणु (बाँसुरी)। कोई अपना नृत्य-ल दिखा रही है, तो कोई मंजीरों पर ताल दे रही हैं। लूम होता है, सभी अद्भुत तल्लीनता का अनुभव कर हैं। चित्र के मध्य से लेकर दाहिने हाथ की ओर नीचे दूल्हे का जलूस है। एक सुंदर द्वार के बीच से छत्र ये दूल्हे की सवारी हाथी पर बैठकर निकल रही है और के आगे बाराती लोग गाते-बजाते और शंख-ध्वनि करते जा रहे हैं।

ऊपर दाहिने हाथ की तरफ़ वर-वधू एक श्वेत आसन पर बैठे किसी साधु महात्मा से आशीर्वाद माँग रहे हैं।

एक में गान-मग्नता है, दूसरे में उल्लास उमड़ रहा है, और तीसरे की पवित्र धार्मिक गंभीरता हमारे चित्त पर अपना प्रभाव डाल रही है।

तत्कालीन चित्रकला के विकास के साथ-साथ यह हमें उस समय की रहन-सहन, वेश-भूषा और गृह-रचना का भी परिचय देती है।

अभिवचन

प्रातःस्मरणीय महाराणा प्रताप की जयंती हमारे सामने है। हम इस पुण्य उत्सव को कैसे मनावें? उनके जीवन का व्रत था स्वाधीनता की प्राप्ति। स्वाधीनता के लिए वह जीये, और उसी के लिए लड़ते-लड़ते वह मरे। परन्तु मृत्यु के समय वह हमसे एक अभिवचन ले गये हैं। राष्ट्र की अमर आत्मा ने उनके पुत्र अमरसिंह के रूप में उन्हें एक पवित्र अभिवचन दिया है—"आपके इस कठोर व्रत को हम लोग पूरा करके आपकी आत्मा को संतुष्ट करेंगे।" आज यह अभिवचन दिये कितने वर्ष बीत गये? और हमने उसकी पूर्ति करने के लिए क्या-क्या किया?—यही न कि रहा-सहा देश भी—जिसके एक-एक गज़ की रक्षा के लिए कई प्राणों की आहुतियाँ दी गई हैं—हमने गँवा दिया?

ओ भारत के अमर सिंह, तू अपने इस अभिवचन की पूर्ति करके प्रताप की उस पुण्यात्मा को कब संतुष्ट करेगा?

कला की दृष्टि से नहीं, एक भाव-विशेष को जागृत करने के लिए एक महाराष्ट्रीय चित्रकार की यह कृति हम पाठकों की सेवा में अर्पण कर रहे हैं। ईश्वर करे कि यह उस महान् ऐतिहासिक अभिवचन की याद दिलाकर हमारे अन्दर छिपी हुई आग को एक बार प्रज्वलित कर दे!

वे० म०

१) में ५०० से ६०६ पृष्ठों की उत्तम पुस्तकें

(सेठ जमनालालजी बजाज, सेठ घनश्यामदासजी बिडला, आदि सात सज्जनों द्वारा स्थापित, हिंदी प्रचार करने के लिए, लागत मूल्य में पुस्तकें प्रकाशित करने वाली भारतवर्ष की एकमात्र सार्वजनिक संस्था

सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर

(भारत सरकार के सन् १८६० के एक्ट नं० २१ द्वारा रजिस्टर्ड)

उद्देश्य—हिंदी भाषा भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा का स्थान पा चुकी है पर अभीतक इसमें वि विषयों के उच्च कोटि के ग्रन्थों का बहुत अभाव है। इसके अलावा व्यापारिक दृष्टि से पुस्तकों का मू भी अधिक रखे जाने के कारण सर्व साधारण इच्छा होते हुए भी पुस्तकें खरीदने में असमर्थ रहते अतएव ऐसी संस्था की परम आवश्यकता थी जो कि शुद्ध सेवा-भाव से, किसी प्रकार के लाभ की इच्छा रखते हुए, उच्च साहित्य की पुस्तकें लागत-मात्र पर लोगों को दे सके। इसी उद्देश से इस संस्था का ज हुआ है। इस मंडल से विविध विषयों पर सर्व-साधारण और शिक्षित समुदाय स्त्री और बालक सब लिए उपयोगी, अच्छी और सस्ती पुस्तकें प्रकाशित होंगी।

पुस्तकों का मूल्य—स्थायी ग्राहकों के लिए लागत मात्र रहेगा—अर्थात् बाज़ार में जिन पुस्तकों मूल्य व्यापाराना ढंग से १) रखा जाता है उनका मूल्य हमारे यहां केवल ।-) या ।=) रहेगा। स पुस्तकों में खर्च अधिक पडने से कुछ कीमत अधिक रहेगी। जैसे जैसे स्थाई ग्राहकों की संख्या ब जायगी वैसे वैसे मूल्य और भी कम रखा जा सकेगा।

गुजरात के 'सस्तुं-साहित्य-कार्यालय' की सफलता

इस समय इसके सात हज़ार ग्राहक हैं। गुजराती भाइयों ने इसकी सूचना पाते ही प्रथम वर्ष में चारहज़ार की संख्या में इसके स्थायी ग्राहक बन कर अपने कर्तव्य का पालन किया। उसीका फल आ यह है कि उस संस्था से सैंकडों उपयोगी ग्रंथ सस्ते मूल्य में प्रकाशित हो रहे हैं।

हिंदी-भाषा प्रेमियों से निवेदन

यदि आप चाहते हैं कि हिन्दी का यह "सस्ता-मंडल" भी फले फूले और सैंकडों उपयोगी सस्ती कीमत में निकलें तो आपका कर्तव्य है कि "बूँद बूँद से घड़ा भर जाता है" इस कहावत के अनु

इस मंडल के स्वयं ग्राहक बनें, या कमसे कम एक ग्राहक बनाकर इस स साहित्यप्रचार में मदद करें, क्योंकि ग्राहक ही इस मंडल की सफलता की नींव है।

अभी मंडल बाल्यावस्था में है। इसके काम को आगे बढाने के लिए आपकी सहायता की हमें आवश्यकता है। आशा है, आप हर प्रकार से इस सस्ते साहित्य के प्रचार में मंडल की मदद करेंगे।

हमारे ज़माने की गुलामी (महात्मा टाल्स्टाय)

यदि आप अपने देश को गुलामी से छुड़ाने का उपाय जानना चाहते हैं तो इस पुस्तक को ज़रूर पढ़िये । विचारों की दृष्टि से यह गागर में सागर है । संसार की साम्राज्यलोलुप सरकारों का नग्न किन्तु यथार्थ स्वरूप आपकी आंखों के सामने आ जायगा । पृष्ठ १००, मूल्य ।)

इस प्रकार उपरोक्त पांच पुस्तकें ८६६ पृष्ठों की हैं । अब ७०० पृष्ठों की पुस्तकें इस माला में फरवरी सन् २८ तक निकलेंगी ।

सस्ती-प्रकीर्ण-माला के दूसरे वर्ष के प्रकाशित ग्रंथ

यूरोप का सम्पूर्ण इतिहास (दूसरा व तीसरा भाग)

लेखक—श्री रामकिशोर शर्म्मा, बी० ए०, विशारद

इसका पहला भाग प्रकीर्ण माला के प्रथम वर्ष में प्रकाशित हुआ था। पृष्ठ ३६६ और मूल्य ।।।=) जो सज्जन इन दोनों भागों को मंगावें वे प्रथम भाग को भी ज़रूर मंगा लें नहीं तो ग्रंथ अधूरा रहेगा ।

इस ग्रंथ में शुरू से लेकर सन् २६ तक का समस्त यूरोप का इतिहास है । यूरोप का इतिहास स्वाधीनता का इतिहास है । जागृत जातियों की प्रगति का इतिहास है और पश्चिमी सभ्यता के विकास का पाठक्रम है । यदि भारत के युवक स्वराज्य चाहते हैं तो वे इस विविध घटना और परम उपयोगी शिक्षाओं से भरे यूरोप के इतिहास को अवश्य पढ़ लें । पृष्ठ-संख्या दोनों भागों की ४६७, मूल्य केवल १=)

ब्रह्मचर्य-विज्ञान

लेखक—पं० जगन्नारायणदेव शर्मा 'साहित्य-शास्त्री'

भूमिका लेखक—पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे, सम्पादक "श्री कृष्णसंदेश"

यदि आज भारत को किसी चीज़ की सबसे अधिक ज़रूरत है तो वह है ब्रह्मचर्य-पालन । ब्रह्मचर्य-विज्ञान में पंडितजी ने अपनी बालबोध शैली में ब्रह्मचर्य की आवश्यकता, महत्व तथा उसकी प्राप्ति के उपाय सात बृहत् खण्डों में बताये हैं । वेद, पुराण, दर्शन उपनिषद आदि की चुनी हुई सूक्तियों और महत्वपूर्ण प्रमाणों से ग्रन्थ भरा पड़ा है । प्रत्येक गृहस्थ और युवक तथा विद्यार्थी को यह ग्रन्थ पढ़ना चाहिए ।

"इसमें लेखक ने ब्रह्मचर्य की महिमा और विधि के विषय में बहुत अच्छा संग्रह किया है जो सर्व-साधारण तथा विद्यार्थी युवकों के लिए बहुत ही उपकारक होगा । प्राचीन ग्रन्थों से जो अवतरण दिये हैं वे बहुत ही स्फूर्तिदायक और समय पर काम देने वाले हैं । इसमें सभी विचारणीय विषयों का समावेश है जिससे पुस्तकसबके लिए बड़े काम की हुई है। ऐसी पुस्तकों का देश में जितना प्रचार हो, उतना अच्छा है। पृष्ठ-संख्या ३७४, मूल्य केवल ।।।–) हरएक गृहस्थ को एक प्रति अपने पास रखनी चाहिए ।

इस प्रकार इस माला में अब तक कुल ८४० पृष्ठों की पुस्तकें निकल चुकी हैं । और 'अनोखा' उपन्यास(विक्टर ह्यूगो लिखित)'जीवन-साहित्य'(दूसरा भाग)'गोरोंका प्रभुत्व' ये तीन ग्रन्थ अभी निकले हैं।

६) भेजकर दोनों मालाओं के वार्षिक ग्राहक बन जाइये

अखिल भारत चर्खा-संघ का खादी-भण्डार जयपुर

राजपुताने की तरह-तरह की खादी

गाढ़ा [महीन सूत का और बढ़िया बुना हुआ कुरते कमीज़ों का कपड़ा]

कीमत फ़ी थान बिला

स्पेशल लगभग १६ गज़ लम्बा, ३० इञ्च चौड़ा
नंबर १ ,, ,,
नंबर २ ,, ,,
नंबर ३ ,, ,, ५।।।
नंबर ४ ,, ,,

दोसूती (मजबूत, कोट का कपड़ा

नंबर ५ लगभग १० गज़ लम्बा, २७ इञ्च चौड़ा
नंबर ६ ,, ,, ४।

रेज़ी (साधारण कपड़ा सस्ती क़िस्म)

नंबर ७ १४ गज़ लम्बा २७ इञ्च चौड़ा
नंबर ८ ,,
नंबर ९ ,,
फेंटा ८ गज़ लम्बा, १८ व २० इञ्च चौड़ा १।=) से
खेस ३ गज़ × ५३ इञ्च ३।
३ गज़ × ५९ इञ्च ३।।।
३ गज़ × ६३ इञ्च
६ गज़ × २८ इञ्च
रूमाल (छपी हुई किनारों के धुले) १८ × १८ १।-)
फ़ैंसी तौलिये (धुले हुए चार पावड़ी के) ५४ × २४ ।।
,, ,, ५४ × २९ ।।।
दो-सूती तौलिये (धुले हुए) २ गज़ × २७ ।।

इसके सिवाय हमारे यहाँ धोती जोड़े, डुपट्टे, नैपकिन, झोले तथा टोपियां भी सस्ते दामों पर मिलती

माल भेजने के नियम

१—ऊपर लिखी हुई क़ीमतों पर कोई कमशिन नहीं दिया जायगा।
२—धुलाई फ़ी थान चार आने के हिसाब से और पैकिंग-ख़र्च अलहदा लिया जावेगा।
३—माल नक़द दामों पर अथवा वी० पी० से भेजा जायगा।
४—जो सज्जन माल वी० पी० से मंगावें, उन्हें २५) सैकड़ा पेशगी भेजना चाहिए।

मैनेजर खादी-भण्डार,
जौहरी बाज़ार, जयपुर,

त्यागभूमि

जीवन, जागृति, बल और बलिदान की पत्रिका

आत्म-समर्पण होम जहँ, जहँ विशुद्ध बलिदान ।
मर मिटने की साध जहँ, तहँ हैं श्रीभगवान ॥

प्रथम खण्ड

(विजयादशमी संवत् १९८४ से चैत्र संवत् १९८५)

विषय-सूची

सम्पादक { श्री हरिभाऊ उपाध्याय
श्री क्षेमानन्द 'राहत'

र्षिक मूल्य ४)
माही मूल्य २॥)

एक संख्या का ॥)
विदेशों के लिए ५)

पद्य

विषय	लेखक	
१. अभिलाषा	श्रीमती तोरनदेवी शुक्ल 'लली' ...	...
२. अमर शान्ति	श्री चतुर्वेदी रामचन्द्र शर्मा 'विद्यार्थी'	...
३. अन्तर-दर्शन	" नरोत्तमदास स्वामी, एम० ए०	...
५. आश्चर्य	" पं० रामनरेश त्रिपाठी ...	...
४. आकांक्षा	" श्रीगोपाल नेवटिया 'विशारद'	...
६. आदर्श महिला	श्रीमती जान्हवीदेवी भटनागर ...	...
७. आत्म-बोध	श्री 'राहत'	...
८. आशा	श्रीमती 'मञ्जु'	...
९. आतुरता	श्री क्षेमानन्द 'राहत' ...	...
१०. कामना	" " ...	...
११. क्यों ?	" " ...	...
१२. खादी की चादर	" सियारामशरण गुप्त ...	...
१३. गुञ्जार	,, बाबू मैथिलीशरण गुप्त ...	...
१४. चर्खा	,, पं० जगन्नारायणदेव शर्मा 'कवि पुष्कर'	...
१५. जीवन-सुमन	,, श्रीगोपाल नेवटिया 'विशारद' ...	...
१६. झोली भर दें !	,, 'नेति-नेति'	...
१७. 'त्याग-भूमि' में	,, सूर्यनारायण व्यास, ज्योतिषाचार्य 'सूर्य'	...
१८. तारे	,, 'विजय'	...
१९. तुम दोनों	,, बाबू जयशंकर 'प्रसाद' ...	...
२०. त्याग-भूमि का वीर	,, "प्रेम-विह्वल शिशु" ...	...
२१. प्रार्थना	,, ठाकुर गोपालशरणसिंह ...	...
२२. पैदा कर	,, क्षेमानन्द 'राहत' ...	...
२३. प्रबोधन	,, ,, ...	...
२४. प्रार्थना	,, पं० रामनरेश त्रिपाठी ...	...
२५. प्रश्न	,, पं० श्रीधर पाठक ...	...
२६. बसन्त-स्वागत	,, भद्रजित 'भद्र'	...
२७. बन्दी	,, सियारामशरण गुप्त ...	...
२८. बलिदान	,, जगदीश झा 'विमल' ...	...

विषय	लेखक	पृष्ठ
२९. मृत्यु-विजय	श्री महाराज चतुरसिंह जी, उदयपुर ...	२९०
३०. माता की महिमा	,, पं० जगन्नारायणदेव शर्मा 'कवि पुष्कर' ...	३११
३१. माँ	,, शान्तिप्रिय द्विवेदी	५६१
३२. महिला-महिमा	श्रीमती जान्हवीदेवी भटनागर	५६३
३३. राणा प्रताप	श्री महाराज चतुसिंहजी, उदयपुर	५१
३४. राजपूतों को	,, पं० गिरिधर शर्मा नवरत्न	२८३
३५. रणराते रजपूत	,, क्षेमानन्द 'राहत'	४०२
३६. लानतान	,, पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ...	३८९
३७. वीर बालक के उद्गार	,, पं० जगन्नारायणदेव शर्मा 'कवि पुष्कर' ...	४४
३८. विनम्र विनय	,, ,, ...	१८९
३९. विनय	,, ठाकुर गोपालशरणसिंह	२६७
४०. शीर्षक-हीन	,, 'हृदय', बी० ए०	४६७
४१. स्वत्व के समर में	,, 'सनेही'	१३५
४२. हम क्या हैं ?	श्रीमती सबलकुमारी राठौड़	१५१

गद्य

१. अमर कला	श्रीमती लूसी सुलतानअहमद (स्वर्गीय)	६
२. अन्तर्राष्ट्रीय मजूर-परिषद्	श्री पारसनाथसिंह, बी० ए० एल०-एल० बी०	१४१
३. अनीराय सिंहदलन	रायबहादुर पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा	२५८
४. आशीर्वाद	महात्मा गांधी	मुखपृष्ठ (अंश १ का)
५. आधुनिक हिन्दी कविता	सरदार डॉक्टर माधव विनायक कीबे, एम० ए०, एम० आर० एस०, डिप्टी प्राइममिनिस्टर, इन्दौर	२९
६. आबू-दर्शन	श्रीमती सौ० कमलाबाई कीबे	८६
७. आधुनिक दाता और भिखारी	श्री हरिभाऊ उपाध्याय	३७८
८. इतिहास का सबसे घृणित पृष्ठ	" परिपूर्णानन्द वर्मा	५२१
९. किस बात की कसर है ?	" सेठ जमनालाल बजाज ...	७९
१०. कल्पना	" अध्यापक अवध उपाध्याय	१५४
११. क्रान्ति-युग	" हरिभाऊ उपाध्याय	२५६
१२. कनिष्क	" गोपालस्वरूप भटनागर	५१०
१३. क्या रावण की लंका दो हैं ?	" सूर्यनारायण व्यास, ज्योतिषाचार्य ...	५३३

विषय	लेखक
१४. चौथा पुरुषार्थ	श्री किशोरलाल घनश्याम मश्रुवाला, बी० ए०, एल–एल० बी० ... ...
१५. जज़िया	" रायबहादुर पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
१६. जर्मनी में	" घनश्यामदास बिड़ला, एम० एल० ए०
१७. ज़ेकोस्लोवेकिया का एक निर्माण-कर्त्ता	" बालकृष्ण विश्वनाथ केसकर, इतिहासाध्यापक काशी-विद्यापीठ ... ...
१८. 'त्यागभूमि'	" हरिभाऊ उपाध्याय ... ...
१९. 'त्यागभूमि' ?	" लाला लाजपतराय ... ...
२०. तरुण अवस्था	" मुकुटबिहारी वर्मा ... ...
२१. तारतम्य-बुद्धि	" किशोरलाल घनश्याम मश्रुवाला, बी० ए० एल-एल० बी० ... ...
२२. त्यागभूमि	" देवीप्रसाद खेतान, एम० ए० बी० एल०
२३. तत्व-परिवर्तन	" बाबू फूलदेवसहाय वर्मा, एम० एस-सी०
२४. तप	" शीतलासहाय, बी० ए० ...
२५. देशी व्यापारी और लिमिटेड कम्पनियां	" केशवदेव नेवटिया ... ...
२६. देशीराज्यों की कुछ समस्यायें	" हरिभाऊ उपाध्याय ... ...
२७. पराजय का वीर	" " ... ...
२८. धर्म-अधर्म (कहानी)	श्रीमती उमा नेहरू ... ...
२९. प्राथमिक शिक्षा का महत्व	श्री गोविन्द बलवन्त माकोड़े ...
३०. पराधीनता से स्वाधीनता	" 'पञ्जरस्थ' ... ...
३१. पंखड़ियां	" "विजय" ... ...
३२. प्रकृति का नैहर	" रामनाथलाल 'सुमन' ...
३३. बच्चों का खेल (कहानी)	" क्षेमानन्द 'राहत' ... ...
३४. ब्रिटिश नृशंसता का नमूना	" देवव्रत शास्त्री, स० सम्पादक 'प्रताप'
३५. भारतशक्ति	" दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर, आचार्य गुजरात विद्यापीठ, अहमदाबाद ...
३६. भारतवर्ष का पौराणिक इतिहास	" हरि रामचन्द्र दिवेकर, एम० ए०
३७. भिखारी और भिखारिन (कहानी)	" क्षेमानन्द 'राहत' ...
३८. भारतीयसाहित्य और उसका विश्वव्यापी प्रभाव	" रामगोपाल शास्त्री, रिसर्चस्कालर
३९. महाराणा प्रताप की सम्पत्ति	" रायबहादुर पं० गौरीशंकर हीराचन्द ओझा
४०. मध्यभारत का सार्वजनिक जीवन	" त्र्यम्बक दामोदर पुस्तके, बी० ए० एल-एल० बी० वकील, उज्जैन ...

विषय	लेखक	पृष्ठ
४१. मुझसे सब अच्छे	श्री घनश्यामदास बिड़ला, एम० एल० ए०	७७
४२. मार्सैलीज़ से जेनेवा	" "	१७१
४३. राजपूताना	" लाला लाजपतराय	८
४४. रिजर्व बैंक बिल	" रायसाहब हरविलास सारडा, एम० एल० ए०	२५
४५. राजस्थान की समस्यायें	" हरिभाऊ उपाध्याय	७१
४६. राजद्रोह या प्रजाद्रोह ?	" वैजनाथ महोदय, बी० ए०	५२७
४७. लंदन का पत्र	" कस्तूरल बांठिया बी० कॉम०	२८४
४८. विजय (कहानी)	" क्षेमानन्द 'राहत'	१४
४९. वीर-जननी राजस्थान	,, शिवनारायण तोसर्नावाल देसनोक	२७२
५०. विदेशियों की राजनीति का क्रीड़ा-स्थल	,, चन्द्रभाल जौहरी, बी० ए०, अध्यापक गुजरात महाविद्यालय	५८७
५१. शहरों में दुधार पशु	,, यशवन्त महादेव पारनेरकर	८१
५२. श्रम-धर्म	,, वैजनाथ महोदय, बी० ए०,	९८
५३. सुधारने का ढङ्ग ! (कहानी)	" वामन मल्हार जोशी, एम० ए०,	५१
५४. सिद्धि-योग	,, हरिभाऊ उपाध्याय	२७८
५५. स्वाधीनता के वीर	,, 'पञ्जरस्थ' से 'कुञ्जरस्थ'	५२५
५६. हम पराधीन क्यों हैं ?—	,, घनश्यामदास बिड़ला, एम० एल० ए०	२२
५७. हृदय की फुलझड़ी—	" क्षेमानन्द 'राहत	
ब्रह्मचर्य		३२
ब्रह्मचारी		३२
प्रेम		१००
बच्चा		२५४
मित्र		४१६
त्याग		५३७
५८. हिन्दू-धर्म की रूप-रेखा	,, हरिभाऊ उपाध्याय	१३६
५९. हमारे सूर्यदेव	,, जगन्नाथ खन्ना, एम० एस-सी०	१६९
६०. हृदय के टुकड़े	,, क्षेमानन्द 'राहत'	
१		९७
२,३,४		१८२
५,६,७		२९३
८,९,१०		५३८
६१. हमारी कमज़ोरी	,, रायसाहब हरविलास सारडा, एम० एल० ए०	२८०

विषय लेखक
६२. हमारी व्यापारी संस्थायें श्री बाबू देवीप्रसाद खेतान, बी० ए० बी० एल०
६३. हिन्दू-समाज की अधोगति ,, श ... ...
६४. हिन्दू-धर्म का विराट रूप ,, हरिभाऊ उपाध्याय ... ...

आधी दुनिया

१. अन्तर्राष्ट्रीय अपमान श्री 'एक भारतीय' ... ...
२. अनाथों का मूल श्रीमती लक्ष्मीबाई सोगानी ... ...
३. अमेरिका की एक आदर्श कन्याशाला श्री सूर्यनारायण व्यास, 'सूर्य' ...
४. आत्मबोध (उद्धरण) श्रीमती सरोजिनी नायडू ... ...
५. आदर्श जीवन-संगिनी महात्मा गांधी ... ...
६. काया-पलट (कहानी) श्री गोपालकृष्ण शर्मा, बी० ए० ...
७. गृह-सौन्दर्य श्रीमती सुवीरादेवी शास्त्री ... ...
८. चम्पावती (कहानी) श्री शिवदेवसिंह चन्देल ... ...
९. त्याग-मूर्ति महात्मा गांधी ... ...
१०. देवकी श्री मार्त्तण्ड उपाध्याय ... ...
११. नव-दम्पती के लिए ,, हरिभाऊ उपाध्याय ... ...
१२. नोवलप्राइज़-विजेत्री ,, मुकुट ... ...
१३. प्रगति-पथ पर (चीन और बाल-विवाह; टर्की में नारी सन्मान; पूना में स्त्री-सम्मेलन)
१४. पति-आज्ञा और राष्ट्र-धर्म श्री जगदीशकुमार ... ...
१५. पत्नीव्रत-धर्म ,, हरिभाऊ उपाध्याय ... ...
१६. परदा ,, घनश्यामदास बिड़ला, एम० एल० ए०
१७. परदा या घूंघट ,, मदनगोपाल काबरा ... ...
१८. पवित्र किरणें (एक मित्र के पत्र से) ...
१९. बालिका ,, क्षेमानन्द 'राहत' ...
२०. बाल-विवाह ,, कृष्णचन्द्र विद्यालंकार ... ...
२१. बुराई का मूल ,, मुकुटबिहारी वर्मा ... ...
२२. बुराई कैसे मिटे ? ,, मुकुटबिहारी वर्मा ... ...
२३. ब्रेज़िल की कवयित्री ,, मुकुट ... ...
२४. भारतीय महिला-परिषद् का कार्य 'एक महिला' ... .
२५. भारतीय महिला-परिषद् का दिल्ली अधिवेशन (संक्षिप्त विवरण) ...
२६. मातायें और बहनें श्री मुकुट ... ...
२७. मातृ-वियोग पर श्री पं० माखनलाल चतुर्वेदी, 'कर्मवीर'-सम्पादक

विषय	लेखक	पृष्ठ
२८. महामाया को जगाओ (उद्धरण)	स्वामी विवेकानन्द	२९५
२९. मातृत्व की शोचनीय अवस्था	श्री रामगोपाल मोहता, बीकानेर ...	४२७
३०. मिस्री बहनों का स्वदेश-प्रेम	,, 'एक भारतीय'	४३६
३१. यह तो चोरी है	(एक मित्र के पत्र से)	४४२
३२, राजनैतिक क्षेत्र में स्त्रियां	('अभ्युदय' से)	४४०
३३. विवाह	श्री हरिभाऊ उपाध्याय	२०३
३४. विधवा-विवाह ?	श्रीमती सौ० तारादेवी, धर्मपत्नी कुँवर भागचन्दजी सोनी, अजमेर	५५७
३५. स्त्रीत्व का आदर्श (उद्धरण)	श्री पं० मदनमोहन मालवीय	४०
३६. स्त्री	,, क्षेमानन्द 'राहत'	४०
३७. स्फुट प्रसंग	(सम्पादकीय)	४०, २१२, ३२१, ४४३, ५६४
३८. स्त्री-सुधार का प्रश्न	,, जमनालाल बजाज	१८७
३९. स्त्री-शिक्षा	,, आचार्य आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव, प्रिंसिपल काशी हिन्दू विश्वविद्यालय	१९९
४०. सन्तति-निग्रह	,, वैजनाथ महोदय, बी० ए०	२०७
४१. स्त्रियों का प्रश्न	,, मुकुटबिहारी वर्मा	२९५
४२. स्त्री-पुरुष का सम्बन्ध	,, ला० लाजपतराय	३००
४३. स्त्रियों की ओर से	श्रीमती शारदाकुमारी बिड़ला	३०५
४४. स्त्री-शिक्षा कैसी हो ?	श्रीमती सौ० कञ्चनबाई, धर्मपत्नी सर सेठ हुकुमचन्दजी, इन्दौर	३१२
४५. स्त्री-शिक्षा की कसौटी	श्रीमती चन्द्रावती, बी० ए०	३१४
४६. स्त्रियां बनाम पुरुष	श्री शिवप्रसादसिंह 'विश्वेन'	५४२
४७. हमारे अधिकार	स्वर्गीया कुन्तीदेवीजी, धर्मपत्नी श्री आनन्दभिक्षुजी ...	३०७
४८. हमारी असफलता का कारण	श्रीमती विद्याधरी, जौहरी विशारदा	४२१
४९. हमें स्वराज्य चाहिए	,, स्वर्गीया सौ० कुन्तीदेवीजी	५४७

उगता राष्ट्र

१. आश्वासन	श्री रामप्रसाद	४४९
२. उद्बोधन (उद्धरण)	,, साधु वास्वानी	११६
३. उच्छृंखलता	,, 'उच्छृंखल'	११७
४. कमल	,, काका कालेलकर	११८
५. कौशल	,, बैजनाथ महोदय, बी ए०	४९०

विषय	लेखक
६. चीनी बालकों का आदर्श	श्री मुकुट
७. जीवन क्या है ?	,, साधु टी० एल० वास्वानी
८. तरुणों के आदर्श	,, ”
९. नवयुवको, आगे बढ़ो (उद्धरण)	,, डा० केशवदेव शास्त्री, एम० डी०; श्री शापुरजी सकलातवाला एम० पी०; पं० मोतीलाल नेहरू
१०. बालकों से	” मुकुट
११. भिखारिन	” शान्तिप्रसाद वर्मा
१२. भारतीय युवकों का कर्तव्य	” साधु टी० एल० वास्वानी
१३. मत झुको	” मुकुट
१४. युवक-सम्मेलन	
१५. युवकों को आह्वान	
१६. यज्ञ-तत्त्व या त्याग तत्त्व	” ब्योहार राजेन्द्रसिंह, एम० एल० सी०, जबलपुर
१७. विद्यार्थियों के प्रति (उद्धरण)	म० गाँधी; श्री एण्डरूज़
१८. ”	अध्यापक शेषाद्रि अय्यर; म० गाँधी
१९. विजय	” बैजनाथ महोदय, बी० ए०
२०. विवेक-सूत्र	” ह्री० शा०
२१. विचार-वीचि	” 'गोताखोर'
२२. सत्यान्वेषण	” विज्ञानाचार्य जगदीशचन्द्र बसु
२३. सेवा (कहानी)	” मार्तण्ड उपाध्याय
२४. सद्बोध	” महात्मा गांधी

पहला सुख

१. आरोग्यता के शत्रु
२. इधर-उधर से
३. तमाम साल तन्दुरुस्त रहो
४. दिव्योपदेश
५. बीच का रास्ता
६. भोजन के नियम
७. मक्खियों से बचो
८. सुस्वास्थ्य के नियम
९. हमारा स्वास्थ्य

साहित्य-सङ्गीत-कला

विषय	लेखक	पृष्ठ
१. कवि और कविता	श्री हरिभाऊ उपाध्याय	३३५
२. कौलमत तथा हिन्दी पत्रिकायें	" बाबूराम सक्सेना, एम० ए०, लेक्चरार प्रयाग-विश्वविद्यालय	४५७
३. देशी सिनेमा	" दत्तात्रेय दामोदर देवलालीकर, बी० ए० ...	५८१
४. बंगला मासिक पत्र	" बाबू पारसनाथसिंह बी० ए० एल-एल० बी०	४६४
५. राष्ट्रभाषा हिन्दी-सम्मेलन	" हृषीकेश शर्मा	४६५
६. शेखावाटी का एक गीत	" पं० रामनरेश त्रिपाठी	३४१
७. सीता-परित्याग	" पं० जयदेव शर्मा विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ	३२७,४६१,५७९

ज्ञानाञ्जन

विषय	लेखक	पृष्ठ
१. अरपेन्द तीर्थ	श्री काका कालेलकर	१०३
२. कल्याण का राजमार्ग	" हनुमानप्रसाद पोद्दार	३४६
३. चन्द्रलोक के कुछ रहस्य	" 'आकाशदर्शी'	३३२
४. चन्द्रमा के दिव्य प्रकाश में	" आनन्दभिक्षुजी	३४३
५. नालन्दा-विश्वविद्यालय	... ...	२२१
६. प्राचीन भारतीय जीवन	" देवदूत विद्यार्थी	५८४
७. भिक्षा	" आचार्य विनोबाजी भावे	५८५
८. महान् पुरुषों का कार्य	... ...	१०१
९. राष्ट्र-धर्म	... ...	१०१
१०. लक्ष्य कैसा हो ?	... ...	१०३
११. व्यक्तिगत सम्पत्ति	... ...	१०२
१२. वेदों में गोबलि	... ...	२१९
१३. सत्याग्रही का मार्ग	... ...	१०४
१४. स्वार्थत्याग का मनोविज्ञान	" अध्यापक देवकीनन्दन शर्मा, एम० ए०	३४४
१५. हमारा पतन क्यों हुआ ?	"	२१८

युग-निर्माण

१. ईसा की वाणी ३५४
२. गीता का संदेश ३५३
३. बौद्धिक स्वदेशी ३३
४. महान् भारत ३४
५. राष्ट्रभाषा हिन्दी ३५

विश्व-दर्शन

अंश १ ... ३६
” २ १०५
” ३ २२४
” ४ ३४८
” ५ ४६८
” ६ ५९५

विविध

अंश १ ... ... ५१
” २ १२१
” ३ २४०
” ५ ४८१
” ६ ५९१

स्व-गत

अंश १ ... १०, ३१, ५५
” ६ ६०६

नीर-चीर-विवेक

अंश २ १०८
” ३ २२८
” ४ ३६९
” ५ ४७२
” ६ ६०६

जनता का स्वराज्य

अंश २ ११९
" ३ २३८
" ४ ३६६
" ६ ६०४

हमारे अछूत भाई

अंश २ २३४

भग्नावशेष

अंश ४ ३५७

खोज में

अंश ५ ४८४
" ६ ५८७

घर का हाल

अंश ५ ५८९

सम्पादकीय

अंश १ ५७
" २ १२५
" ३ २४३
" ४ ३७०
" ५ ४९१
" ६ ६०९

चित्र-दर्शन

अंश १ ६६
" २ १३३
" ३ २५३
" ४ ३७४
" ५ ४९८
" ६ ६२०

चित्र-सूची

(सचित्र लेखों के चित्रों के अलावा)

१. वीर शिरोमणि महाराणा प्रतापसिंह	(रंगीन)	१
२. आनन्दोत्सव	,,	६३
३. भक्त मीरा	,,	६९
४. दीप-दर्शन	,,	९७
५. छत्रपति श्री शिवाजी	,,	१३५
६. त्यागी लक्ष्मण	,,	१८२
७. सत्यं शिवं सुन्दरम्	,,	२५५
८. श्रीगोपाल	,,	३३७
९. प्रलोभन	,,	३७७
१०. मुग़ल दरबार	,,	४१६
११. त्याग	,,	४९९
१२. अनित्य	,,	५३९

१. अंग्रेज़ी राज्य में भारत—	दीनता	(सादा)	४३६
२. ,,	दुर्बल मातृत्व	,,	४२७

तामिल साहित्य का सर्वोत्कृष्ट सुमन

तामिल-वेद

१८०० वर्ष पूर्व का प्राचीन अमूल्य ग्रन्थ

जिसमें

हृदय को ऊँचा उठानेवाले अमर, उज्ज्वल काव्यमय उपदेश हैं, धर्म और राजनीति का अत्यन्त सुन्दर और हृदयग्राही विश्लेषण हैं

और जो

नरेशों, राजनीतिज्ञों तथा राजसंचालकों के बड़े काम की चीज है, चरित्रगठन और ज्ञानप्राप्ति का स्फूर्ति-प्रद स्रोत है

विद्यार्थियों तथा मित्रों के लिये अत्यन्त उपयोगी उपहार

लेखक—दाक्षिणात्य ऋषि तिरुवल्लुवर

भूमिका लेखक—श्रीमान् सी. राजगोपालाचार्य्य

हिन्दीकार—श्री क्षेमानन्द राहत

इसका जर्मन, फ्रेंच, लेटिन आदि योरोपीय भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। हिन्दी के आधार पर मराठी और गुजराती अनुवाद तैयार हो रहे हैं।

इस २४८ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल ॥=)

पता--सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर

नीचे लिखे ग्रन्थ प्रकाशित हो गये हैं

१—आत्म-कथा

[लेखक महात्मा गांधी]

पृष्ठ संख्या लगभग ४५० मूल्य लगभग ॥=)

२—द० आफ्रिका का सत्याग्रह (उत्तरार्द्ध)

[लेखक महात्मा गांधी]

पृष्ठ संख्या २२८ मूल्य ॥)

३—गोरों का प्रभुत्व

(लेखक बाबू रामचन्द्र वर्म्मा)

पृष्ठ संख्या लगभग २८०, मूल्य ॥=)

४—जीवन-साहित्य (दूसरा भाग)

(लेखक—काका कालेलकर)

पृष्ठ संख्या लगभग २००, मूल्य लगभग ॥)

५—अनोखा (उपन्यास)

(मूल लेखक-विकटर [illegible] अनुवादक—ठाकुर लक्ष्मणसिंहजी बी० ए०, एल-एल० बी०)

पृष्ठ संख्या ४७४ मूल्य १।=) रु०

नोट—(१) प्रथम दो पुस्तकें सस्ती-साहित्य-माला की हैं और शेष तीन पुस्तकें प्रकीर्ण-माला की
(२) तीसरे वर्ष से दोनों मालाओं के नाम बदल कर क्रमशः “राष्ट्र-जीवन माला” और
“राष्ट्र-जागृति माला” कर दिये गये हैं ।
(३) स्थाई ग्राहकों को ये पुस्तकें पौनी कीमत में पड़ेंगी । स्थाई ग्राहक होने के नियम अ
दिये हुए हैं सो पढ़ लें ।

पता—सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर

मुद्रक और प्रकाशक—जीतमल लूणिया, सस्ता-साहित्य प्रेस, अजमेर

ज्येष्ठ १९८५ खंड २, अंक

त्यागभूमि

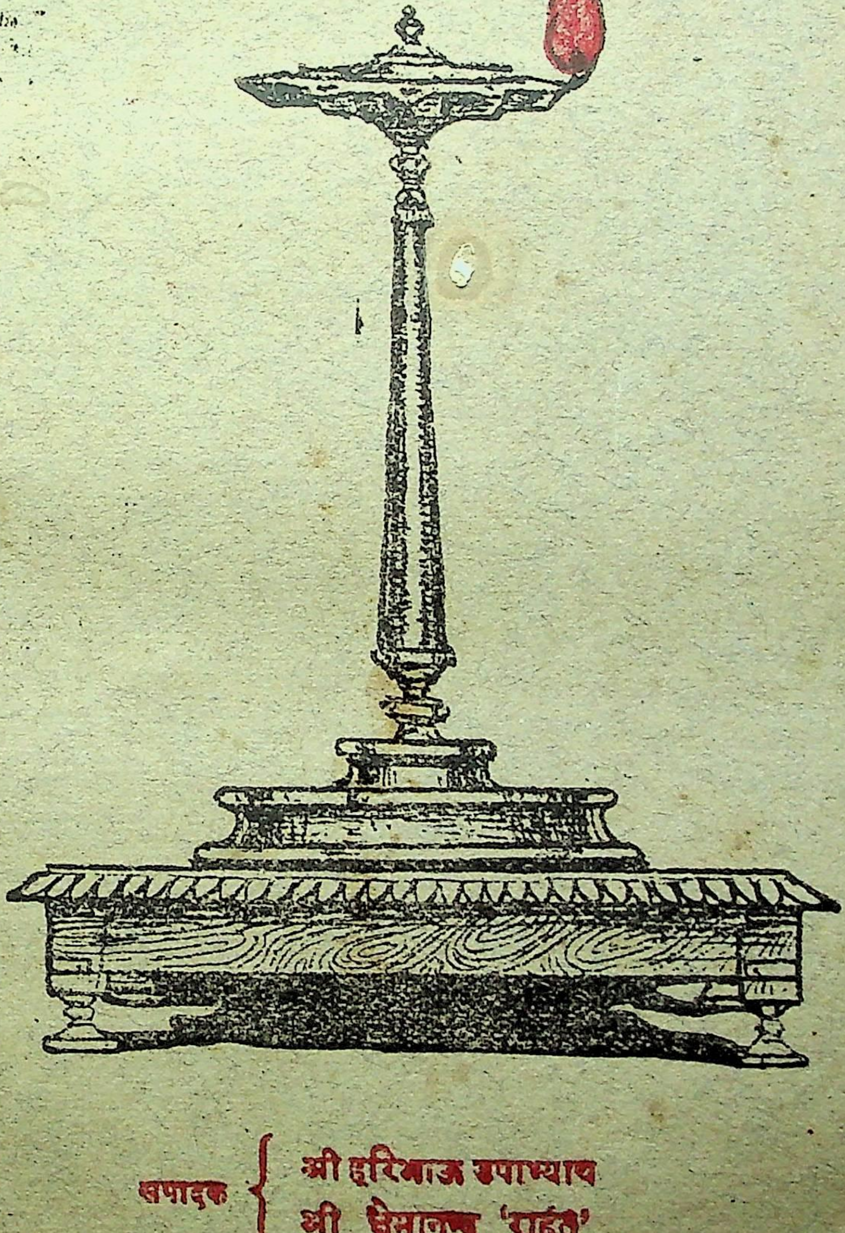

ार्षिक मूल्य ४)
ः माही मूल्य २॥)

संपादक { श्री हरिभाऊ उपाध्याय
श्री क्षेमानन्द 'राहत'

एक संख्या का ॥)
विदेशों के लिए ५)

सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर, से प्रकाशित

पाठकों को दो सूचनाएँ

मंडल का दूसरे प्रकाशकों की पुस्तकों का पुस्तक-भंडार **हम उठा रहे हैं** इसलिये जिन भाइयों को पुस्तकें खरीदने की इच्छा हो वे हमारा नया सूचीपत्र मंगालें ।

पुस्तकों पर २५) से लगा कर ५०) सेंकड़ा तक कमीशन दिया जायगा

इतनी सस्ती कीमत पर पुस्तकें मिलने का शायद ही दूसरा अवसर आवे

'त्यागभूमि' का प्रथम अंक समाप्त

प्रथम अंक की मांग हमारे यहां बराबर आ रही है । इसलिये उसकी प्रतियां फिर से **दुबारा छपाने का हम विचार कर रहे हैं,** इसलिये जो सज्जन 'त्यागभूमि' के प्रथम अंक **से ही ग्राहक बनना चाहें और पूरी फ़ाइल शुरू से अपने यहां रखना चाहें,** वे हमारे यहां अपना आर्डर तुरन्त भेज दें । जितने आर्डर हमारे पास दर्ज होंगे, लगभग उतनी ही प्रतियां हम छपावेंगे ।

प्रचारकों की आवश्यकता

साहित्य सेवा और साथ ही लाभ का सुअवसर

(१) त्यागभूमि का जन्म महान् उद्देश्यों और आदर्शों को लेकर हुआ है, उसके संदेश को घर घर में पहुंचाने के लिये हमें ऐसे परिश्रमी, विश्वस्त प्रचारकों की आवश्यक्ता है जो कि भारत के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में घूम फिर कर इसके ग्राहक बना सकें । यह तो अब मानी हुई बात है **कि 'त्यागभूमि' से सस्ती और उच्च आदर्शों वाली हिन्दी पत्रिका कोई दूसरी नहीं है** और यदि इसके लिए काफी उद्योग किया जाय तो बहुत बड़ी संख्या में ग्राहक बन सकते हैं । अतएव जो भाई साहित्य और देश की सेवा के नाते बिना कुछ लिए प्रचार करना चाहें, वे हम से पत्रव्यवहार करें ।

(२) जो भाई कमीशन लेना चाहें, उन्हें आठ आने फ़ी ग्राहक पीछे दिया जायगा; बशर्ते कि वे कम से कम दस ग्राहक बना कर भेजें ।

(३) जो भाई वेतन लेकर काम करना चाहें, उन्हें हमसे पत्रव्यवहार करना चाहिए ।

आशा है जो भाई इन सूचनाओं को पढ़ेंगे वे किसी न किसी रूप में देश-सेवा के इस उद्योग में अवश्य सहायक होंगे ।

व्यवस्थापक—"त्यागभूमि" अजमेर

पुस्तकें खरीदने का अपूर्व अवसर

चौथाई, आधी और पोनी कीमत में

पुस्तकों की सूची आगे छपी है

हमारे पास किसी की एक प्रति, किसी की दो प्रति इस तरह पुस्तकें बची हैं । इस लिए जिन भाइयों को मँगाना हो वे तुरन्त ही आर्डर भेजदें अन्यथा पुस्तकें समाप्त होजाने पर हम न भेज सकेंगे । मंडल का अपनाही काम बड़ी तेजी से बढ रहा है । इसलिए अब हम बाहरी दूसरे प्रकाशकों की पुस्तकों का पुस्तक-भंडार उठा रहे हैं । अतएव इतनी सस्ती पुस्तकें दी जा रही हैं ।

अपने मित्रों से भी इस की चर्चा कर दीजिए

मुफ्त में 'त्यागभूमि' मुफ्त में

लाभ का लाभ और देश सेवा की देश सेवा

जो भाई 'त्यागभूमि' के **छै ग्राहक** बनाकर भेजेंगे, उन्हें **एक वर्ष तक**, **चार ग्राहक** बनाकर भेजेंगे उन्हें **छै मासतक**, और **दो ग्राहक** बनाकर भेजेंगे उन्हें **तीन मासतक** पत्रिका **मुफ्त** में मिलेगी

इतनी रिआयत हम क्यों कर रहे है ?

आप पूछेंगे कि लागत मूल्य से भी कम मूल्य रखने पर भी इतनी रिआयत क्यों की जा रही है । उत्तर में निवेदन है कि यह पत्रिका शुद्ध सेवा भाव से निकाली गई है । कोई व्यापारिक हेतु नहीं है । इसी लिए तो बाहरी विज्ञापन भी इसमें नहीं छपे जाते जिस से कि अन्य पत्रों को काफ़ी आमदनी होजाया करती है ।

'त्यागभूमि' का उद्देश्य

"निकट भविष्य में होने वाली शान्तिमय क्रान्ति के लिए लोगों को तैय्यार करना"
बस यही हमारा उद्देश्य है और यही हमारा लोभ है और इसी लिए हम चाहते हैं कि
किसी तरह से भी इसका संदेश घर घर में पहुंच जाय

क्या हम आशा करें कि आप इस पवित्र कार्य में ग्राहक बनाकर हमारा हाथ बटावेंगे

थोड़ा सा परिश्रम काफ़ी है

आप अपने स्थान के स्कूल, पुस्तकालय, वकील व अन्य शिक्षित लोगों के पास त्यागभूमि का नमूना लेकर जाइए । उन्हें इसका उद्देश्य, इसका सस्तापन, विज्ञापन न लेने की नीति, स्त्रियों और और बालकों के लिए भी उपयोगीपन आदि बातें समझाइए । हमारा विश्वास है इतना प्रयत्न करने पर आपको काफ़ी सफलता मिलेगी ।

क्या आप अपने तथा देशके लाभ के लिए इतना परिश्रम करेंगे ?

(पीछे देखिए)

जो 'त्यागभूमि' के ग्राहक हैं, उन्हें क्या मिलेगा !

जो सज्जन पहले से ही त्यागभूमि के ग्राहक हैं यदि वे कम से कम दो ग्राहक बनावेंगे तो प्रति ग्राहक के पीछे आठ आने मूल्य की पुस्तकें मुफ्त में मिलेंगी पोस्टेज खर्च जो उन पुस्तकें भेजने में लगेगा, उतने दामों की वी०पी०करदी जावेगी । नीचे लिखी पुस्तकों में से आर्डर भेजना चाहिए ।

नवयुवकोपयोगी—नैतिक जीवन १) मातृभाषा ॥) माता =) नवयुवको स्वाधीन बनो ॥) आर्य्य गौर उन्नति ॥=) कल्याणमयी चिन्ता ॥) गाँधीजी की दिव्य बाणी =) जातीयता (अरविंद घोष) ।=) जाति भे पंचभूत (रवीन्द्रनाथ) १॥) पंचरत्न १) नीति धर्म (महात्मा गाँधी) ।) अरविंद मंदिर में ॥।) बाल रामकथा ॥) ब्र सोपान ।) मानव संतति शास्त्र १॥) सफलता ।॥) स्वास्थ्य शिक्षा १) सुखी गृहस्थ ॥।) रामतीर्थ का राष्ट्रीय संदे

कविता—कंस बध ।=) स्वतंत्रता की झनकार ॥) पंचों का पोल खाता ।=)॥ स्वराज्य दर्शन ।=) पद्य-प्र मिलन ।) राष्ट्रीय-गीत ≡) काव्यनिकुंज ।) विनय तरंगिणी -)॥ अयोध्याकांड ।॥) विधवा ॥) जातीय कविता १॥) अ तरंगिणी ।) सदाये भारत ।=) सुधार गायन संग्रह =) रंगीला चर्खा =) पद्य रत्न प्रभा ।) मातृ वंदना ॥) सु भजनावली =)॥ राष्ट्रीय मंत्र ॥) प्रतापयश दर्पण ।) बम्बके गोले ।) भारतीय तरंग ।) श्रीकृष्ण चरित्र =)॥ भव्य भार

इतिहास—मराठों का उत्कर्ष १॥) रूस में युगान्तर २) सन् ५७ का ग़दर १॥) पृथ्वीराज रासो ॥) भा हिन्दू सम्राट् १॥) आयर्लैंड की राज्य क्रांति ।-) खादी का इतिहास ॥=) इंग्लेंड का इतिहास १)

राष्ट्रीय—ट्रांसवाल में भारतवासी ।≡) असहयोग दर्शन १।) देश-भक्ति की पुकार १) नेटाली हिन्दू ॥=) स्व और स्वराज्य ।=) पंजाब का नर हत्याकांड ॥।≡) चरखा और स्वराज्य ≡) जातीय शिक्षा -) हिन्दुस्थान का राष्ट्रीय झं हस्तरेखा =) बोलशेविज्म १।=) भारत और अँग्रेज़ १॥) भारत और इंग्लेंड १॥) भारत बीती ॥।) माडरेटों की पो राजनीति प्रवेशिका ।=) भारत को स्वाधीनता का संदेश १।) सत्याग्रह और असहयोग सजिल्द २।) भारतीय नवयुवकों राष्ट्रीय संदेश ॥।) अकालियों का आदर्श सत्याग्रह ॥) फ़ीजी रहस्य १) कानून भंग ॥) कौन्सिल की मेम्बरी ।) गाँ का अभियोग ।) देशी राज्य दर्शन १॥) सत्याग्रह जाँच कमेटी की रिपोर्ट १॥) हिन्द स्वराज्य ॥) राष्ट्रीय आन्दोलन भारतीय किसान ≡)॥ भारतीय जागृति १) हंगरी में असहयोग =)॥ हम असहयोग क्यों करें ॥) हिन्दू जाति का ह्रा

धार्मिक—अहिंसा तत्व ।=) आचार चंद्रिका ॥) अवतार रहस्य ।॥) गीता पंचरत्न २) गीता की भूमिका १) सत्य योग १।) जीवन वेद १) योगासन ।) नित्यकर्म चन्द्रिका ॥) श्रुतिसंगीतक्रम ॥) नियोग मीमांसा १॥।)

स्त्रियोपयोगी—अंजनासुंदरी ।॥) पुत्री शिक्षक ॥) महिलामहत्व २) नारी धर्म विचार १॥) कुल लक्ष्मी रमणी कर्तव्य ॥=) सती सीता ॥=) सती सुनीति ॥।) वीर बाला =) आदर्श बलिदान ।=) महिला कर्तव्य ।=) अं देवी ॥=) कुल कमला ॥।) सच्ची देवियाँ ॥।) सती सावित्री ।)

उपन्यास—अनोखी लीला ॥) अविवाहिता ॥) अजेय तारा १॥) अनाथ सरला ॥।) आत्म विजय ।॥) उपदे कहानियाँ ॥) कर्तव्याघात २॥) दुर्गेशनंदनी (बंकिम) १।) सीताराम (बंकिम) १॥) कपाल कुंडला (बंकिम) ॥।) का होस्टल ।) गल्पांजली ॥।) दुरंगीदुनिया २) फूलों का हार ॥।) विलासिनी १॥) भारत प्रेमी ।॥) मिलन मंदिर बनदेवी ॥।) वीर राजपूत १) वैज्ञानिक कहानियाँ ।) वंदे मातरम् १॥।) शांति निकेतन १।) शाही जादूगरनी सूर्य्यास्त ॥।) सूर्य्य गृहण २॥) कुमारी १=) प्रेमकान्त १॥) भीषण नारी हत्या ।=) जादूगर ॥) सप्तसोपान ।=) सर चंद्र १॥।) विश्राम बाग १॥) अपूर्व सन्यासी =)॥ गंगोत्तरी ॥।) भारत सम्राट् परीक्षित ।।) राजनैतिक षडयंत्र

नाटक—ऊषांगिनी १) कलिमद मर्दन ≡) खून का खून ॥) ग़रीब हिन्दुस्थान १।) चित्रांगदा [रवीन्द्रनाथ] भक्त तुलसीदास ॥=) देश दीपक ॥।) दोधारी तलवार ॥) नवीन भारत ॥।) रणबांकुरा चौहान १।) हिन्द १) राजा-रानी फ़नतमाशबीनी ।=) राई का पर्वत १॥।) जया जयंत १।) कृष्णावतार १) भक्ति विजय ॥=) भूतखेलनी आंसू

जीवन चरित्र—तिलक जीवनादर्श =) पीपाजी ।=) भवानीदयालजी ।) पं० मोतीलाल नेहरू ।॥) लाजपतराय गाँधीजी की संक्षिप्त जीवनी ≡) सिनफ़िनर ।) बा० कुंवरसिंह २) देशबन्धु सी० आर० दास ॥) गाँधी दर्शन (जीवनी) १) स्वाधीनता के पुजारी १।) सेठ जमनालालजी बजाज १) लो० तिलक ॥)

फुटकर—भूमि ।॥) केशव कौमुदी [रामचंद्रिका] प्रथम भाग २॥) पत्र संपादन कला १) प्राचीन लिपि माला

आर्डर भेजने का तरीका—जितने ग्राहक बनाये हों, उनके आठ आना फी ग्राहक के हिसाब से जितना मूल्य होता हो उतने मूल्य की ऊपर लिखी पुस्तकों में से तीन चार सेट बनाकर आर्डर भेज दें। जैसे आपने तीन ग्राहक बनाए। इस हिसाब से १॥) की एक पुस्तक अथवा कम मूल्य की कई पुस्तकें जिन सब का मूल्य जोड़ने से १॥) होता हो आप मंगा सकते हैं। संभव है जिन पुस्तकों का आप आर्डर देवें उनमें से कुछ खतम हो जावें अतएव व्यर्थ पत्र व्यवहार न बढे इसलिए आप उतने मूल्य के दो तीन आर्डर भेज दें और लिख दें कि इनमें जिस आर्डर की पुस्तकें हों वे भेज दें। उदाहरणार्थः—

(१) चित्रांदा ।=)
वीर बाला =)
नैतिक जीवन १)
———
१॥)

(२) भारत के हिन्दू सम्राट् १॥)
———
१॥)

(३) सुखी गृहस्थ ।॥)
(२) ब्रह्मचर्य सोपान ।)
(३) मातृ भाषा ॥)
———
१॥)

अब इन तीन आर्डर में से किसी भी एक आर्डर की पुस्तकें हम भेज देंगे आप यह लिख दें कि प्रथम आर्डर की पुस्तकें पहले, भेजें। उसमें की कोई पुस्तक न हो तो दूसरे आर्डर की पुस्तकें भेजें और वह भी न हो तो तीसरे आर्डर की भेज दें।

आर्डर फार्म अन्दर लगा है, उसे भर कर भेज दें

'त्यागभूमि' के ग्राहक आपको क्यों होना चाहिए ?

ज़रा ख़याल कीजिए

१—सब से पहले और केवल मूल्य ही को देखा जाय तो और पत्रिकाओं के हिसाब से 'त्यागभूमि' का मूल्य कम से कम ६) या ६॥) रक्खा जाना चाहिए था जैसा कि इतने ही पृष्ठों की अन्य पत्रिकाओं का है। पर त्यागभूमि का मूल्य तो डाक व्यय सहित केवल वार्षिक ४) ही है।

२—'त्यागभूमि' गंदे और लुभावने विज्ञापनों में आपको नहीं लुभाती। एक मासिक पत्रिका के लिए विज्ञापनों की आमदनी कम नहीं होती। फिर भी पाठकों के हित के ख्याल से त्यागभूमि अपने आपको इस दूषित आय से अछूती रखना चाहती है। इससे पाठक और उनका धन भी धूर्त विज्ञापनबाज़ों के चंगुल से बचता है, और वे अपनी शक्ति, समय और द्रव्य कहीं अच्छे कामों में लगा सकते हैं। पाठक देखेंगे कि त्यागभूमि के इस त्याग को देखते हुए अपनी घटी को पूरी करने के लिए उसे अपना वार्षिक चन्दा अन्य पत्रिकाओं से भी अधिक रखना चाहिए था।

३—परन्तु त्यागभूमि का उद्देश साहित्य का व्यवसाय करना नहीं है। वह कष्ट सहकर भी पाठकों की सेवा करने के लिए आई है।

अतएव पाठक त्यागभूमि से तभी अधिक से अधिक सेवा ले सकेंगे जब वे अधिक से अधिक संख्या में उसके ग्राहक बनकर व बनाकर उसके जीवन-संघर्ष को सौम्य करने में सहायक होंगे।

सस्ता-मंडल की सस्ती पुस्तकें आगे देखिए

सस्ता-मंडल, अजमेर की सस्ती और उपयोगी पुस्तकें

पुस्तकों का विषय, उनकी पृष्ठ संख्या और मूल्य पर विचार कीजिये

अन्य प्रकाशक प्रायः १०० पृष्ठों की पुस्तक के लगभग ॥) या ॥=) मूल्य रखते हैं

पर मंडल इतने ही पृष्ठों का मूल्य केवल ।) रखता है

म० गांधीजी के आत्मचरित्र पृष्ठ ४१६ का मूल्य तो केवल ॥=) रखा गया है।

सस्तीमाला के प्रथम और द्वितीय वर्ष की पुस्तकें

(१) दक्षिण आफ्रिका का सत्याग्रह (म० गांधी) (पूर्वार्द्ध) पृष्ठ २७२ मूल्य ॥।)
(२) „ „ (उत्तरार्द्ध पृष्ठ २२८ मूल्य ॥)
(३) तमिलवेद (महर्षि तिरुवल्लुवर) धर्म, अर्थ और मोक्ष पर अमृतमय उपदेश—१५०० वर्ष पूर्व का प्राचीन ग्रंथ पृष्ठ २४८ मू० ॥=)
(४) हाथ की कताई बुनाई-(अनु० रामदास गौड़ एम. ए.) पृष्ठ २६६ मूल्य ॥=)
(५) भारत के स्त्री रत्न (प्रथम भाग) अनुवादक बाबू रामचन्द्र वर्म्मा पृष्ठ ४१० मूल्य १)
(६) स्त्रीरत्न (दूसरा भाग) पृष्ठ ३०० मूल्य ॥।-)
(७) आत्मोपदेश-पृष्ठ १०४ मूल्य ।)
(८) जीवन-साहित्य (काका कालेलकर) (प्रथम भाग) पृष्ठ २१८ मूल्य ॥) (दूसरा भाग) पृष्ठ २०० मूल्य ॥)
(९) शिवाजी की योग्यता-पृष्ठ १३६ मू० ।=)
(१०) दिव्य जीवन-पृष्ठ १३६ मू० ।=)
(११) व्यावहारिक सभ्यता-पृष्ठ १२८ मू० ।)॥
(१२) क्या करें? (टालसटाय) पृष्ठ २६६ मू० ।=)
(१३) स्त्री और पुरुष पृष्ठ १५४ मू० ।=)
(१४) हमारे जमाने की गुलामी पृष्ठ १०० मू० ।)
(१५) कलवार की करतूत पृष्ठ ४० मू० -)॥।
(१६) चीन की आवाज़-पृष्ठ १३० मू० ।-)

❀राष्ट्रनिर्माण माला [सस्तीमाला]-तृतीय वर्ष

(१) आत्म-चरित्र (म० गांधीजी के सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा) पृष्ठ ४१६ मू० ।=)

प्रकीर्णमाला के प्रथम और द्वितीय वर्ष की पुस्तकें

(१) कर्मयोग—पृष्ठ १५६ मूल्य ।=)
(२) कन्या-शिक्षा-पृष्ठ ९४ मूल्य ।)
(३) सीताजी की अग्निपरिक्षा-पृष्ठ १२४ मू. ।-)
(४) स्वाधीनता के सिद्धान्त-पृष्ठ २०८ मू० ॥)
(५) यथार्थ आदर्श जीवन-पृष्ठ २६४ मू० ॥-)
(६) तरंगित हृदय—पृष्ठ १७५ मू० ।≡)
(७) स्वामीजी (श्रद्धानन्दजी) का बलिदान और हमारा कर्तव्य—(ले. पं. हरिभाऊ उपाध्याय) पृष्ठ १२५ मू. ।-)
(८) गंगा गोविन्दसिंह (श्री चण्डीचरणसेन लिखित राष्ट्रीय उपन्यास) पृष्ठ २८८ मू० ॥=)
(९) यूरोप का सम्पूर्ण इतिहास (मौलिक ग्रंथ) (ले० श्री रामकिशोर शर्म्मा बी.ए. विशारद) पृ० ८३० मूल्य २)
(१०) गोरों का प्रभुत्व (रामचन्द्र वर्म्मा) पृष्ठ २७४ मू० ॥।=)
(११) अनोखा विक्टर ह्यूगो के "The Laughing man" का हिन्दी-अनुवाद—अनुवादक ठाकुर लक्ष्मणसिंह बी० ए० एल० एल० बी० पृष्ठ ४७४ मू० १।=)
(१२) ब्रह्मचर्य-विज्ञान—इस विषय की सर्वोत्कृष्ट पुस्तक (ले० पं० जगन्नारायण देव शर्म्मा साहित्य शास्त्री) पृष्ठ ३७४ मूल्य ॥।-)

❀राष्ट्रजागृति माला [प्रकीर्णमाला]-तृतीय वर्ष

(१) सामाजिक कुरीतियां (टालसटाय) पृष्ठ २८० मू० ॥≤)

नियम—प्रतिवर्ष मण्डल से दोनों मालाओं में ३२०० पृष्ठों की लगभग पन्द्रह सोलह पुस्तकें निकलती हैं। वार्षिक ग्राहकों से इन पुस्तकों का डाक व्यय सहित केवल ८) वार्षिक मूल्य लिया जाता है। स्थाई ग्राहक बनने के लिये केवल एक बार एक रुपया प्रवेश फ़ीस ली जाती है। जिस वर्ष के और जिस माला के जो ग्राहक बनें उसके पिछले वर्षों की सब या चुनी हुई पुस्तकों की एक एक प्रति लागत मूल्य (पोने मूल्य) में वे मंगा सकते हैं।

(त्यागभूमि का विज्ञापन पीछे देखिये)

पता—सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर.

❀ सस्तीमाला का नाम अब राष्ट्रनिर्माण-माला और प्रकीर्णमाला का नाम राष्ट्रजागृति-माला रखा गया है।

नीचे लिखी सब पुस्तकें आधी कीमत में मिलेंगी

नवयुवकोपयोगी

युवको स्वाधीन बनो	।।)
शेविज़्म [भू० ले० बाबू भगानदास एम० ए०]	१।=)
तृभाषा	।।)
नामावली	।।)
रेखा देखने की विधि	=)
दुओं पर वज्राघात	=)

जीवन चरित्र

ई किचनर	१)
धीजी की जीवनी	।)
धीजी कौन हैं ?	।।–)
ी दर्शन [बड़ी जीवनी]	१)
नी के विधाता	।)
० तिलक	।।)
क जीवनादर्श	=)
ाजी	।=)
नीदयालजी	।)
मोतीलाल नहरू	।।।)
र्टन लूथर	।=)
देवगोबिंद रानाडे	=)।।
नमोहन मालवीय	।)
ा राममोहनराय	–)।।
जपतराय	।।)
तंत्रता के प्रेमी सिनफ़िनर	।)
गांधीजी की जीवनी	≡)

कविता

तंत्रता की झनकार	।।)
तीय कविता	१।।)
ाप यश दर्पण	।)
याग्रही प्रह्लाद	।–)

प्रेम पुष्पांजली	।–)
प्रेमधारा	।≡)
पद्य कुसुमांजली	।।।)
प्रवास कुसुमावली	।=)
बम्ब के गोले	।।)
श्रीकृष्ण चरित्र	=)।।
भव्य भारत	।–)
भारत गीतांजली	≡)
भारतीय तरंग	।)
मुसाफ़िर भजनावली	=)।।
रंगीला चर्खा	।–)
राष्ट्रीय मंत्र	।।)
राष्ट्रीय गीत	≡)
राष्ट्रभारती	।।)
राष्ट्रीय बाणी	।)
राष्ट्रीय झनकार	।।)
विधवा	।।)
विनय तरंगिणी	=)
बीणा झनकार	।=)
शिशुलोरी	=)।।
विपंची	।)
शृंगार तिलक	–)।।
श्रद्धानंद वियोगांजली	।।=)
स्त्री ज्ञानप्रकाश [प्रथम भाग]	।)
[दूसरा भाग]	।)
[तीसरा भाग]	।)
स्त्री संगीत पुष्पमाला	।=)
सामाजिक चित्रदर्पण	=)
संगीत सागर	≡)।।
स्त्री गीतसार	।=)
सदाये भारत	।=)

इतिहास

आयर्लैंड की राज्यक्रान्ति	।–)
इंग्लेंड का इतिहास	१)
दिल्ली अथवा इंद्रप्रस्थ	।।)
बीसवीं सदी का महाभारत	।।।)
सिवनी सरोजनी	।=)
हमारे देश की प्राचीन उन्नति	।।)
खादी का इतिहास	।।=)

राष्ट्रीय

आयर्लैंड में होमरूल	।।–)
कानून भंग	।।)
किसानों का अधिकार	।)।।
किसानों पर अत्याचार	।–)
कौन्सिल की मेंबरी	।)
गांधीजी का अभियोग	।)
गांधीजी का बयान	।।)
चम्पारन में महात्मा गांधी	।।)
जेलयात्रा और संदेश	।।)
डायरशाही	।।)
देशी राज्य दर्शन	१।।)
नवीन भारत	१।।)
पंजाब का नर इत्याकाण्ड	।।।≡)
भारतमाता का संदेश	।।)
भारतवर्ष के लिए स्वराज्य	।=)
भारतीय किसान	≡)।।
भारतीय जेल	।।)
भारतीय नवयुवकों को राष्ट्रीय संदेश	।।।)
राष्ट्रीय आन्दोलन	१।।)
स्वराज्य-दर्शन	।=)
स्वराज्य सोपान	१)

किसी की एक, किसी की दो ऐसी ही प्रतियां हमारे पास बची हैं इसलिए जल्दी आर्डर भेज दें

अन्यथा समाप्त होनेपर हम इस रिआयत में न भेज सकेंगे

नीचे लिखी सब पुस्तकें आधी कीमत में मिलेंगी

स्वराज्य और हमारी योग्यता	।)
हंगरी में असहयोग	=)।।
हम असहयोग क्यों करें ?	।।)
हिन्द स्वराज्य	।।)
हिन्दू जाति का ह्रास	-)

धार्मिक

नियोग मीमांसा	१।।)
,, सजिल्द	१।।।)
ब्रह्मयज्ञ	।।=)
संस्कार चन्द्रिका	४)

स्त्रियोपयोगी

सती अंजनादेवी	।।=)
अनन्तमती	।।।=)
कुलकमला	।।।=)
श्रीमती निवेदिता	।-)
द्रौपदी और सत्यभामा	≡)
बालाविनोद	।=)
भारत की क्षत्राणी	।=)
सच्ची देवियां	।।।)
महिला कर्तव्य	।=)
माता	।।।)
वनिता विलास	।-)
वीर महिलाओं के संदेश	=)।।
सच्चीस्त्रियां	।।।)
सती सावित्री	।)

उपन्यास

अपूर्व सन्यासी	=)।।
खरा सोना	१)
खद्दर की आत्मकथा	।।)
खद्दर प्रतिभा	।।।)
गंगोत्तरी	।।।)
चरित्र चित्रण	१।।)
जयविजय	।।)
जयमाला	।=)
जहर का प्याला	१)
जीवन ज्योति	१।)
तरंग	।।=)
तरुण तपस्विनी	।।=)
दुर्गा	।=)
निहिलिस्ट रहस्य	१)
परीक्षा गुरु	१)
पुनरुत्थान	।।।=)
पूना में हलचल	।।)
पौराणिक गाथा	।-)
प्रोत्साहन	।।-)
प्रेम प्रभाकर [टाल्स्टाय]	१।।)
बोल्शेविकों की करतूत	।।=)
भारत सम्राट् परीक्षित	१।)
भरतमिलाप	।=)
राजनैतिक षडयंत्र	२।।)
तपस्वी भरत	।-)
भेदभरी सुंदरी	।।।=)
मदन विलाप	।।)
माधवी माधव	१।)
सोना रानी	=)
बच्चों के लिए सोने का चांद	।)
हेर फेर	।।।)
होमर गाथा	१)

नाटक

अज्ञातवास	।।।=)
अत्याचार का अन्त	।।।)
अत्याचार का परिणाम	।।।-)

काशी विश्वनाथ
किरणमयी
कृष्णावतार
भक्तिविजय
भूतखेलनी ओझा
मानी वसन्त
मैना सुंदरी
रामराज्य वियोग नाटक
रामलीला
रामायण
सुनहरी खंजर
संयोगिता हरण

नीचे लिखी सब पुस्
चौथाई मूल्य में मिलें

असहयोग दर्शन
हिंदुस्थान का राष्ट्रीय झंडा
अकालियों का आदर्श सत्याग्रह
देशबन्धु सी० आर० दास
(ले० बाबू संपूर्णानन्द बी० ए
नागपुर की कांग्रेस
असहयोग और भारत के नेता
अहमदाबाद की कांग्रेस
चरखा और स्वराज्य
चम्पारन की जांच
भारत को स्वाधीनता का संदेश
भारत बीती
सत्याग्रह जांच कमेटी की रिपोर्ट
स्वदेशी और स्वराज्य
संसार व्यापी असहयोग
स्वदेशी पर महात्मागांधी
स्वदेशीधर्म

पौने मूल्यवाली पुस्तकें आगे लिखी हैं

मिलने का पताः—सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर

विषय-सूची

पृष्ठ

१. अन्तर-निनाद (कविता)—[क्षेमानन्द 'राहत' १२१
२. संसार की समस्या—[हरिभाऊ उपाध्याय १२२
३. अभिलाषा (कविता)—[श्री देवीदीन दीक्षित 'दिवाकर' १२५
४. हमारी पराधीनता के कारण—[अध्यापक हरि रामचन्द्र दिवेकर, एम० ए० साहित्याचार्य (पेरिस) १२५
५. शिक्षा का ढंग—[श्री हरिहर भट्ट, बी० ए० ... ... १२७
६. गुलामों का त्राता गैरिज़न—[श्री गणेश पाण्डेय १२९
७. प्रताप-प्रतिज्ञा(कविता)—[श्री भद्रजित 'भद्र' १३३
८. कालेदह महल (उज्जैन)—[श्री सूर्यनारायण व्यास ज्योतिषाचार्य (उज्जैन) ... १३५
९. ज़िम्मी—[श्री गोपालस्वरूप भटनागर १३८
१०. स्मारक (कविता)—[श्रीमती महादेवी वर्मा १४०
११. विदेशी कपड़े का बहिष्कार—[श्री जी० एस० पथिक, बी-कॉम० .. ... १४१
१२. उद्धार कैसे हो ?—[श्री हीरालाल शास्त्री, बी० ए० ... ... १४४
१३. विजय (कविता)--[श्री उच्चेश्वर प्रसादसिंह १४८
१४. जननी के अञ्चल में--[श्री शिवप्रसादसिंह 'विश्वेन' १४८
१५. विन्ध्या और किष्किन्धा—[श्री 'पुरातत्त्वज्ञों का एक प्रशंसक' १५१
१६. योगी (कविता)—[श्री गोविन्दलाल झंवर 'आर्य' १५३
१७. गो रक्षा--[श्री यशवन्त महादेव पारनेरकर, बी० ए-जी० ... ... १५३
१८. हमारे पाप--[हरिभाऊ उपाध्याय १५७
१९. जीवन (कविता)--[श्री 'कण्टक' १६०
२० हृदय की फुलझड़ी (दिल)—[क्षेमानन्द 'राहत' १६०
२१. आधी दुनिया १६१
    १. विधवा--[क्षेमानन्द 'राहत' १६०
    २. पाप या पुण्य--[मुकुटबिहारी वर्मा १६१
    ३. जात-पाँत का भूत—[श्रीमती विद्याधरी जौहरी, विशारदा ... १६६
    ४. गार्हस्थ्य जीवन का रहस्य —श्रीमती स्वर्गीया कुन्तीदेवीजी ... १६८
    ५. शिल्पी (कहानी)--[श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त १७१
    ६. कुटुम्ब-प्रणाली और मानवी सुख—[श्री बसन्तलाल, एम० ए० ... १७५
    ७. श्री सीताजी—[श्री ब्रह्मचारी प्रभुदत्त शर्मा १७७
    ८. पतियों का कर्तव्य —[श्री 'एक भारतीय' १८२
    ९. वाणी —[श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी १८४

१०. स्फुट प्रसंग—[स्त्री और पुरुष; स्त्री-आन्दोलन; महिला संस्थायें; युवतियों की अकाल मृत्यु; जर्मनी में महिला आन्दोलन ... १८७

२२. उगता राष्ट्र ... ...

१. शुभ-प्रभात (कविता) —[श्री गुरुप्रसाद पाण्डेय 'गुरु' ... १९२
२. आह्वान—[श्री देवव्रत शास्त्री १९२
३. नवयुवकों ? (कविता)—[श्री प्रभुनारायण शर्मा १९५
४. बाग़ी—[श्री प्रलयङ्कर शङ्कर १९५
५. शक्ति का रहस्य—[श्री साधु टी० एल० वास्वानी ... १९८
६. त्याग—[श्री बाबूराम श्रीवास्तव २००

२३. साहित्य-संगीत-कला ... ...

१. टीबों से—[श्री श्रीगोपाल नेवटिया २०१
२. गौरव-गीत—[श्री बालकृष्ण बलदुआ २०३
३. पंखी-गीत—[आचार्य दत्तात्रेय बालकृष्ण कालेलकर ... २०४
४. टूटी वीणा (कविता)—[श्री व्रजकिशोर शर्मा 'पंकज' ... २०८

२४. विश्व-दर्शन— ... ...

२५. भविष्यद्द्रष्टा—स्वतंत्रता कैसे ?; शिक्षा-प्रणाली; अँग्रेज़ी या हिन्दी; राष्ट्रीयता ... ...

२६. विविध—हमारी आवश्यकता-ज़मीन (श्री छगनलाल जोशी); विज्ञापनबाज़ी (श्री रामेश्वरदयाल); दुर्भिक्ष और दरिद्रता की भूमि; पुस्तकालय-सम्बन्धी नवीन दृष्टिकोण; अग्रवालों में जागृति (हरिभाऊ उपाध्याय); देहात में सफ़ाई की व्यवस्था (श्री काशीनाथ त्रिवेदी); स्व० सर रमण भाई (श्री गोपीवल्लभ उपाध्याय); स्वराज्य और खादी (जवाहरलाल नेहरू)

२७. नीर-क्षीर-विवेक—राजपूताने का इतिहास (खण्ड २); विशाल भारत, सरस्वती; साहित्य-मीमांसा

२८. सम्पादकीय—मगनलाल भाई जीवित हैं; नवजीवन आ रहा है; बम्बई के मिल मजदूरों की गम्भीर हड़ताल; हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के पदाधिकारी; अ० भा० मराठी साहित्य सम्मेलन ग्वालियर ... ...

२९. चित्र-दर्शन— ... ...

आवश्यकता है

सस्ता-साहित्य प्रेस के लिए एक होशियार और अनुभवी ट्रेडलमैन की। जो कि सादी और रंगी चित्रों की छपाई का काम भी उत्तमतापूर्वक कर सके; और समय पर सिलैण्डर मशीन पर भी छप कर सके। वेतन योग्यतानुसार दिया जायगा।

मैनेजर—सस्ता-साहित्य प्रेस, अजमे

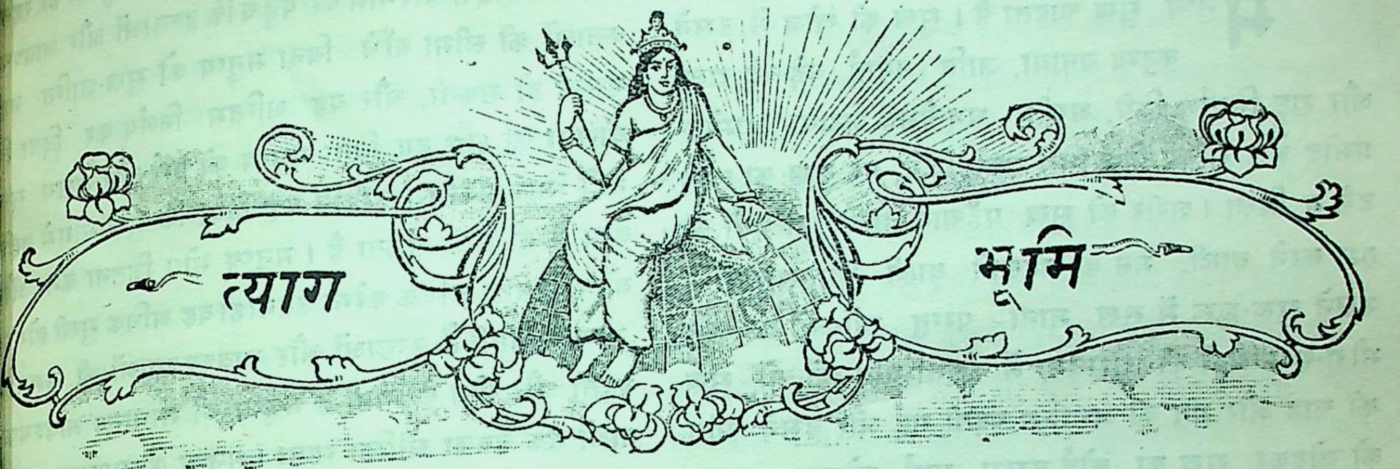

त्याग भूमि

(जीवन, जागृति, बल और बलिदान की पत्रिका)

आत्म-समर्पण होत जहँ, जहँ विशुभ्र बलिदान।
मर मिटवे की साध जहँ, तहँ हैं श्रीभगवान्॥

खण्ड २
अंश
सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर।
ज्येष्ठ
संवत १९८५

अन्तर-निनाद

खिले अब एक नया ही रंग!

इधर सिंह है, उधर खड़ा है भीषण काल भुजंग।
क्या पर्वा, ऐ विजन बाँकुरे! छिड़े दुतरफ़ा जंग॥

ऐ मिट्टी के पुतले! तुझको क्यों इतना व्यासंग?
क्या बिगड़े, यदि अमर खिलाडी! अंग-अंग हो भंग?

जीवन है, न मरण है; यह तो, केवल कृत्या-व्यंग!
मर मिट कर भी हो स्वतन्त्र, ऐ बन्धन-बद्ध विहंग!

क्षेमानन्द 'राहत'

संसार की समस्या

मनुष्य सुख चाहता है। सुख की खोज में उसने कुटुम्ब बनाया, जाति बनाई, बड़े-बड़े राज्य और राष्ट्र निर्माण किये, असीम धन-वैभव जुटाया, आमोद-प्रमोद और सौंदर्य के साधन एकत्र किये, पर सुख का स्वाद उसे न मिला। शरीर को सुख पहुँचाने वाली, इन्द्रियों को तृप्त करने वाली, मन को बहलाने वाली भोग-सामग्री में उसने शुरू-शुरू में सुख माना; परन्तु ज्यों-ज्यों वह इन भोग-सामग्रियों की आराधना में फंसता गया त्यों-त्यों सुख की चाह और मन की अशान्ति बढ़ती गई और उसने भोग को छोड़कर सुख का कोई दूसरा मार्ग खोजना चाहा। सम्राट् और चक्रवर्ती का राज-वैभव, विजय-वैभव और शत्रु-संहारक सैन्य-वैभव जहाँ थक गया, कुबेर और कारूं का धन-वैभव जहाँ हताश हो गया, रति और कामदेव का शृंगार और सौंदर्य-वैभव जहाँ न पहुँच सका, कवि और कलाकार जहाँ बीहड़ में भटकते रहे, अर्थात् जिस समस्या को भोगी भोग-प्रचार करके न हल कर पाये, उसके लिए योगियों ने आगे क़दम बढ़ाया। उन्होंने गहरा विचार करके देखा कि तमाम सांसारिक ऐश्वर्य को प्राप्त करके भी मनुष्य दुःखी का दुःखी ही बना हुआ है। तब उन्होंने सुख के मूल की खोज शुरू की। उन्होंने सोचा कि मनुष्य आख़िर क्यों दुःखी रहता है। वे इस नतीजे पर पहुँचे कि मनुष्य इच्छायें तो बहुत करता है, अपनी आवश्यकतायें तो बहुत बढ़ा लेता है, इनमें तो बहुत स्वतन्त्र है; परन्तु अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह बहुत परतन्त्र है। इससे उसकी बहुतेरी आवश्यकतायें और इच्छायें अधूरी रह जाती हैं। और इस कारण वह दुःखी बना रहता है। जब हर आदमी अपनी इच्छाओं और आवश्यकताओं को बढ़ाने लगता है तब उनमें परस्पर संघर्ष और कलह होने लगता है। क्योंकि एक की इच्छायें और आवश्यकतायें दूसरे की इच्छाओं और आवश्यकताओं में बाधक होने लगती हैं। फिर उन्होंने देखा कि इच्छाओं और आवश्यकताओं का तो कोई अन्त ही नहीं है। मनुष्य जितनी चाहे बढ़ा सकता है; और दूसरे यह है कि उनकी तृप्ति के साधन मिलते रहने पर भी, अनेक भोगों को भोगने पर भी, मनुष्य अतृप्त और दुःखी ही है। तब वे इस परिणाम पर पहुँचे कि इच्छाओं और कताओं की सीमा बाँधे बिना मनुष्य को सुख-शान्ति नसीब हो सकती, और यह अन्तिम निर्णय कर वासना का क्षय हुए बिना मनुष्य को पूर्ण और अक्षय नहीं मिल सकता। उन्होंने कह दिया कि सुख भोग से योग से ही मिल सकता है। मनुष्य भोग जितना कम योग जितना अधिक करेगा उतना ही वह अधिक सुखी भोग के मानी हैं इच्छाओं और आवश्यकताओं की बढ़ती और योग के मानी हैं मनुष्य की साधारण आव ताओं तक उनका सीमित रहना। मनुष्य की साधारण श्यकता क्या है? पेट भर स्वच्छ सादा भोजन, तन कपड़ा, रहने के लिए सुडौल हवादार मकान, बाल-बच्चे शिक्षा-दीक्षा पालन-पोषण आदि के लिए आवश्यक इससे अधिक की इच्छा रखने या वस्तुओं को संग्रह वाले को उन्होंने चोर की उपाधि दी और अपरिग्रह को सुख मूल सिद्धान्त निश्चित किया एवं अपरिग्रह के सिद्धान्त समाज की रचना करना चाहा।

परन्तु इच्छाओं का त्याग और उससे घट कर अप की बात एकाएक मनुष्य को जँची नहीं। वर्ण-व्यवस्था द्वारा भोग-सामग्रियों के बंटवारे की चेष्टा की गई। प भोग-लोलुपों की महत्वाकांक्षाओं ने उसको भी छिन्न-वि कर दिया। तत्व-रूप से यद्यपि सुख की समस्या हल हो परन्तु व्यवहार-रूप में बहु-जन-समाज के सामने वह तक बिना हल हुए ही खड़ी है। भारतवर्ष के जीवन यद्यपि भोग की जगह संयम का भाव फैला हुआ है, आता है तथापि उनका संयम अकर्मण्यता और कायरता कीटाणुओं से आक्रान्त होकर उनके दुःख का कारण बन है। उनके संयम का फल तो होना चाहिए था अधिक सु अधिक स्वतन्त्रता; परन्तु आज दुनिया में वे सबसे अ दुःखी और पराधीन बने बैठे हैं। सुख का मूलमन्त्र जा हुए भी भारतवासी उसका प्रयोग न जानने के कारण से वञ्चित हो रहे हैं।

इधर नयी दुनिया के लोग भी सुख के लिए छट रहे हैं। भारत जिस प्रकार सुख की शोध में पहले भोग

रण में पहुँचा, फिर योग के चरणों में उसे सुख-शान्ति ली। उसी प्रकार पश्चिमी संसार भी अभी भोग ही में टक रहा है। यद्यपि योग की किरणें वहां तक जा पहुँची तथापि उनका प्रकाश अभी उन्हें आकर्षित नहीं कर सका। भारतवर्ष के पास औषधि है, पर वह प्रयोग भूल गया पश्चिमी दुनिया में जीवन है, किन्तु दिशा-भूल हो है। अस्तु।

व्यावहारिक संसार के सामने आज यह भी सम- ा खड़ी है कि समाज में सुख और शान्ति की वृद्धि किस ह हो। जातियों और राष्ट्रों में परस्पर ईर्षा-द्वेष, प्रतिस्पर्द्धा र संघर्ष के भाव प्रबल हो रहे हैं और युद्ध की आवाज़ रों ओर से उठ रही है। शान्ति परिषदें, निःशस्त्रीकरण प्रस्ताव की चर्चा जगह-जगह हो रही है। साम्राज्यवादी पनी लूट की धुन में किसी की सुनते नज़र नहीं आ रहे। बोल्शेविक और कम्यूनिस्ट अलग अपनी समाज-रचना योजना लिये फिरते हैं, तो उधर मुसोलिनी फिर एक- त्री पद्धति का संस्करण कर रहा है। साम्राज्यवादी कहते सारा शासन-यंत्र जबतक एकसूत्र से सञ्चालित न होगा बतक समाज में सुख-शान्ति स्थापित न होगी। साम्यवादी हते हैं, जबतक सम्पत्ति का बटवारा समान रूप से न ोगा तब तक समाज से कलह दूर नहीं हो सकता। प्रजा- ादी कहते हैं, जबतक प्रजा के मत से समाज और राज्य ा काम न चलेगा तब तक समाज की उन्नति नहीं हो केगी। तात्पर्य यह कि भौतिक पदार्थों में ही अबतक दुनिया सुख की शोध कर रही है। जहां तक मेरी बुद्धि पहुँच पाई है, मुझे साम्यवादियों का दल भौतिक दृष्टि से सुख और सुव्यवस्था के अधिक नज़दीक मालूम होता है। दुनिया में सुख प्राप्त करने के जितने साधन हैं वे सब के लिए समान-रूप से सुलभ होने चाहिएँ। चाहे अमीर हो या ग़रीब, स्त्री हो या पुरुष, सभ्य हो वा असभ्य, जीवन की साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सबको समान रूप से सुविधा होनी चाहिए। केवल धन, सत्ता, या विद्या के बल पर जब किसी को कोई विशेष सुविधा मिलने लगती है और जब उसे वह अपना अधिकार समझने लगता है तभी समाज में कलह उत्पन्न होता है। बलवान् और निर्बल ये दो वर्ग निर्माण होने लगते हैं और बलवान् क्रमशः निर्बल को निगलते जाते हैं। आज दुनिया में यही हो रहा है और इसीलिए विश्व समाज की शान्ति के लिए चिन्ताशील नज़र आता है। मेरा यह विश्वास है कि निकट-भविष्य में संसार को साम्यवादियों का यह हल मानना पड़ेगा; क्योंकि मनुष्य की बुद्धि और तर्कशक्ति का उससे समाधान हो जाता है और उसमें अधिकांश लोगों का अधिक हित छिपा हुआ है।

फिर भी यह हल मेरी दृष्टि में एकांगी है। एकहद तक समाज का हित-सधान इससे होगा। जहाँ तक सुख-सामग्री के बटवारे की वर्तमान प्रथा में दोष है वहाँ तक तो यह हल काम दे देगा; पर सम्पत्ति और सुख-सामग्री को बढ़ाने की अभिलाषा उससे शान्त न होगी। आज निर्धनों और धनवानों और वैभवशालियों और दीन-दुखियों में, राजा और रंक में जो विशाल खाई पड़ गई है वह इससे अवश्य बहुत कुछ भर जायगी, यह द्वेष बहुत-कुछ कम हो जायगा; परन्तु साथ ही धनैश्वर्य की प्रतिस्पर्द्धा बहुत-कुछ बढ़ भी जायगी। जब तक सुख-भोग का कोई सीमित आदर्श समाज के सामने नहीं रक्खा जायगा तब तक प्रतिस्पर्द्धा और वर्ग-कलह से समाज को बचाना असम्भव है। यह सीमा दो प्रकार की हो सकती है—(१) मनुष्य अपने शारीरिक श्रम से जितना उपार्जन करे उतना ही सुख-भोग वह कर सकता है; (२) मनुष्य की साधारण आवश्यकतायें निश्चित कर ली जायँ और उससे अधिक परिग्रह करने का किसी को अधिकार न रहे। दोनों में मनुष्य से संयम करने के लिए कहा गया है। पहली बात कृत्रिम बंधन सी पर अधिक व्यावहारिक है। वह मनुष्य की इच्छा की मर्यादा नहीं बाँधती, व्यवहार में ऐसी शर्त लगा देती है कि अधिक इच्छा करते हुए भी मनुष्य अपने आप उसकी पूर्ति नहीं कर सकता। किन्तु मनुष्य बार-बार इच्छा करते हुए भी जब इस शर्त के कारण उसको पूरा न कर पावेगा, तब इस शर्त को तोड़ने की उसकी इच्छा प्रबल हो उठेगी और आगे चल कर यह शर्त ठहर न सकेगी। इसके विपरीत दूसरी बात मनुष्य की इच्छा ही को नियंत्रित कर देती है। वह उसके सामने ऐसा आदर्श उपस्थित करती है कि मनुष्य अधिक इच्छा करना ही बुरा समझने लगता है। इसलिए मेरी राय में यह

उपाय अधिक स्थायी और अधिक फलदायी है। साम्यवादियों की समाज-व्यवस्था में, जहाँ तक मैंने समझा है, अभी इसके लिए स्थान नहीं तजवीज़ हुआ है; शायद उनका समाजशास्त्र अभी इस परिणत अवस्था को नहीं प्राप्त हुआ है। वे समानता के सिद्धान्त तक तो पहुँच गये हैं; अपरिग्रह या संयम के सिद्धान्त तक पहुँचना अभी बाक़ी है। यदि वे सचमुच वैज्ञानिक समाज-शास्त्री हैं, तो उन्हें भोग को छोड़कर योग पर आना पड़ेगा। इसमें मुझे तिलमात्र संदेह नहीं है।

कुछ मित्र कहते हैं कि भोग से पुरुषार्थ और कर्मण्यता की वृद्धि होती है और योग से संसार के प्रति उदासीनता और उसके फलस्वरूप अकर्मण्यता बढ़ती है। मेरी समझ में यह भ्रम है। भोग से पुरुषार्थ की नहीं, स्वार्थ की वृद्धि होती है, जिसका अंत होता है या तो विलासिता में या अत्याचार में; और दोनों का अंतिम फल होता है घोर पतन योग से जो उदासीनता आती है वह संसार के प्रति नहीं, बल्कि अपने स्वार्थ के प्रति होती है, जिसका पर्यवसान होता है सेवा-भाव की वृद्धि में। सच्चे योगी की कसौटी ही यह है कि उसका एक-एक क्षण दीन-दुखी, पीड़ित-पतित की सेवा में व्यतीत होता है। भारत ने योग-मार्ग का अनुसरण तो किया; किन्तु कर्मण्यता को भुला दिया, इससे आज निर्जीव और निःसत्व हो रहा है। जीवन का दूसरा नाम है कर्म। अपने लिए जो कर्म किया जाता है उससे आसुरी जीवन बढ़ता है; दूसरों के लिए जो कर्म किया जाता है उससे दैवी जीवन मिलता है। कर्म-हीन जीवन वृथा है। मेरी राय में निकम्मा मनुष्य पशु से भी गया बीता है। अस्तु।

सुख के मूल को फ़िलहाल यदि एक ओर रख दें और फिर विश्व की वर्तमान समस्या का विचार करें, तो वह उतनी राजनैतिक नहीं मालूम होती जितनी कि आर्थिक है। पिछले ज़माने की तरह आज राज्य और साम्राज्य केवल दिग्विजय के लिए अथवा चक्रवर्ती-पद प्राप्त करने के लिए नहीं क़ायम है। राजसत्ता आज ध्येय से हट कर साधन बन गई है। नित-नये भोगों की चाह दुनिया में बढ़ रही है। बिना धन और ऐश्वर्य के उसकी पूर्ति नहीं हो सकती। धन बिना व्यापार-उद्योग और कल-कारख़ाने के नहीं मिल सकता। बड़े-बड़े व्यापार-धन्धों को सफलतापूर्वक चलाने के लिए रा अनिवार्य है। इसलिए राजसत्ता की वृद्धि की आ हम देख रहे हैं। संसार में आज वह राज्य प्रबल है, पास कच्चे माल के साधन विपुल हैं और तैयार मा बिक्री के लिए विशाल बाज़ार है। जिन देशों में कच्चे की बहुतायत है और तैयार माल की बिक्री का बाज़ा है, उनपर सब देशों की ज़हरीली नज़र गड़ी हुई है। ऐसे देशों में सबसे बड़ा नहीं तो एक विशाल देश है। ब्रिटेन के व्यापारी इसीलिए उसे जी-जान से ज हैं। यह बात भारत के बच्चे-बच्चे को समझ लेनी चा

यह कहना शायद ग़लत न होगा कि इस अनि भोग-तृष्णा का ही एक फल है वर्तमान साम्यवाद। सा यद्यपि सारे समाज की भोग तृष्णा पर प्रहार नहीं क तथापि धनैश्वर्य में बढ़े-चढ़े लोगों को वह संयम का अवश्य पढ़ाना चाहता है। तात्विक जगत् में जिस संयम या अपरिग्रह ही समाज के सुख का मूल सि उसी प्रकार व्यावहारिक जगत् में शारीरिक श्रम का सि उच्च कोटि का है। शारीरिक श्रम ही एकमात्र ऐसा सा है जिसके द्वारा सम्पत्ति एक जगह एकत्र नहीं हो पाती, जगह यथेष्ट मात्रा में बँट जाती है। आजकल उद्योग और कल-कारख़ाने शारीरिक श्रम के सिद्धान्त पर नहीं, धन के प्रभाव पर चल रहे हैं, इसलिए मुनाफे का बँ श्रम के लिहाज से नहीं बल्कि शेयरों के लिहाज़ से हो और यही मूल है असमान बँटवारे का। अतएव यदि ब कल-कारख़ाने और उद्योग-धन्धे समाज के लिए अभीष्ट अनिवार्य हैं, तो मुनाफ़े के बँटवारे की वर्तमान पद्धति अवश्य सुधार हो जाना चाहिए। पर यदि हम अपने की एक सीमा बाँध लें और मनुष्य की शक्ति का पहले योग करके फिर, उसके कम पड़ने पर, भाफ या बि की सहायता लें तो समाज की विषमता और बेकारी का सवाल आसानी से हल हो सकता है। बड़े-बड़े कल ख़ानों की कल्पना उन्हीं देशों में उदित और विकसित है जहाँ मानव-शक्ति कम थी। भारतवर्ष जैसे देश में करोड़ों लोगों को साल में छः महीने बेकारी में बिताने हैं, बड़े-बड़े कारख़ानों को खड़ा करना मानवी-शक्ति

रस्कार करना है और तिसपर भी मुनाफ़े के बँटवारे में
षमता से काम लेना तो मानों करेले को नीम पर चढ़ाना
। कितने आश्चर्य की बात है कि अपनी भोगेच्छा को तनिक
यम में रखना मनुष्य को, शिक्षित मनुष्य को, कठिन बात
लूम होती है; और दुनिया भर की आसुरी महत्वाकांक्षा
और उनकी सिद्धि के लिए उचित और अनुचित सब
कार के भगीरथ प्रयत्न उसे आसान मालूम होते हैं । अस्तु ।
सारांश यह है कि दुनिया सुख की शोध में है । सयम,
परिग्रह अथवा इच्छाओं का नाश सुख का मूलमन्त्र है ।
रन्तु इसकी साधना उसे कठिन मालूम होती है । वह सरल
पाय चाहती है । साम्यवादियों ने सम्पत्ति के समान
टवारे का हल उसके सामने रक्खा है । एक हद तक वह
सार की विषमता कम कर सकेगा । यदि शारीरिक श्रम
मार्ग को समाज स्वीकार कर ले तो समानता के सिद्धान्त
अपूर्णता कम हो सकती है । इस दृष्टि से विश्व की प्रधान
मस्या आज साम्पत्तिक है, राजनीति तो उसका अंग-मात्र
। कल-कारख़ाने इसे हल नहीं कर सकते । श्रम-धर्म या
ानवी शक्ति ही इसका एक-मात्र उपाय है । ऐ उलटी
ुनिया, जड़ता को छोड़ कर चैतन्य की पूजा कर !

हरिभाऊ उपाध्याय

अभिलाषा

रूखा-सूखा मिले, बहुत है, पर न सहें अपमान;
लोक लाज मर्य्यादा का हो, संतत मन में ध्यान ।
नंगे रहें, असभ्य कहावें, मर जावें, स्वीकार;
पर न दासता-मय जीवन से किञ्चित भी हो प्यार ।
भगवन् ! रौरव नर्क भले ही मिले, नहीं कुछ खेद;
हों प्रतारणा से प्राणों के तार तार विच्छेद ।
किन्तु ! न करना, किसी दशा में, स्वतंत्रता से हीन;
जन्में किसी योनि में पर हम सदा रहें स्वाधीन ॥

देवीदीन दीक्षित 'दिवाकर'

हमारी पराधीनता के कारण

भारत-भूमि से बाहर निकलते ही जो पहली बात खटकती है, वह हमारी पराधीनता । बाहर के छोटे से छोटे देश को भी दुनिया में स्वतंत्र स्थान है । पर इस विस्तीर्ण भारत को ? कहीं नहीं । हम बाहर 'भारतीय' के नाते से नहीं पहचाने जाते हैं । बाहर तो सब दुनिया हमें 'ब्रिटिश प्रजाजन' के नाते से पहचानती है । ब्रिटिश प्रजाजन होने का अभिमान ब्रिटिश आदमी को जैसे हो सकता है, वैसे हमें कैसे हो ? विशेषतः 'ब्रिटिश-इंडियन' कह कर जब बाहर के छोटे-छोटे स्वतंत्र देशों के निवासी हमारी ओर ताकते हैं, उनकी दृष्टि पर से इस शब्द में जो अमृत या जो विष भरा हुआ है, उसकी 'लज़्ज़त' जी ही जानता है ! कई बार तो यह मूक दृष्टिपात तीखी कटार-सा हृदय पर वार कर जाता है । पर घायल हृदय को चुपचाप छिपे आंसुओं के जल से धोने के सिवा दूसरा क्या इलाज है ? 'इतना प्रचंड देश और ऐसा पराधीन,' यह विभारतीय लोगों को बड़ी जटिल समस्या है । समस्या तो मुझे भी है, पर हल कैसे हो ?

हम इतने पराधीन क्यों हैं ? कारण, हमारी पराधीनता का हमें पूर्णतया ज्ञान ही नहीं है । हमारी परवशता का काँटा हमें चुभता ही नहीं है । 'हम पराधीन हैं,' यह मुख से तो हम सब लोग कहते हैं; पर यह बात हमारे हृदय को बेधती नहीं है । हमें पराधीन रखने वालों की ख़ूबी इसीमें है । और हमारे पराधीन रहने का कारण भी यही है । यदि इस परतंत्रता का ज्ञान है, तो इने-गिने लोगों को है; और जिन्हें है, वे बेचारे तड़फते हैं और कराह रहे हैं । पर दूसरे करोड़ों भाई-बहनों की ओर देखिए तो बेचारे अज्ञान नन्हें-नन्हें बच्चों के से सुख की नींद सो रहे हैं ! उन्हें बेचारों

को तो पता तक नहीं है कि हम परतंत्र हैं! यह ज्ञान जब तक देश के कोने-काने और बच्चे-बच्चे तक नहीं पहुँचेगा, और यह बात समाज के हरएक व्यक्ति को ज़बतक न चुभेगी, तब तक हमारा उत्थान असंभव है।

थोड़े दिन की बात है। एक मोची की दूकान पर मैं जूता सिलवा रहा था। मेरे एक फ्रेंच मित्र मुझसे बातें कर रहे थे। बातों में एशियाटिक सोसाइटी की बात छिड़ी। मेरे मुख से निकला कि 'क्या लंदन की रायल एशियाटिक सोसाइटी की यह शाखा है?' मेरे मित्र हँसने लगे। मेरे ध्यान में उनकी हँसी का कारण न आया। मैं उनका मुँह ताकने लगा। तब, बीच में, मोची बोला—'महाशय! रोयाल (फ्रेंच Royal शब्द का उच्चारण यों करते हैं) बातों की तो गठरी फ़्राँस के बाहर कभी की फेंक दी गई है।' मित्र महाशय बोले—'फ़्राँस में कोई बात रोयाल नहीं है। यहां तो सब बातें पबलिक (Public) हैं।' मैं समझ गया, पर बोला—'ठीक है, पर मैं तो अभी रायल बन्दर (Boulevard de Port Royal) पर ही रहता हूँ।' जवाब मिला कि 'रोयाल शब्द केवल शब्दों में ही बाक़ी है।' मुझे कालिदास के 'श्रुतौ तस्करता स्थिता' की याद आई और मैं चुप हो गया। राष्ट्रीय भावनायें इस प्रकार समाज भर में फैलनी चाहिएँ।

परंतु हमारी परवशता हमें न चुभने का कारण केवल अज्ञान ही नहीं है। इसका दूसरा एक कारण है, हमारा अन्य सब बातों में पराधीन रहना। केवल राजकीय दृष्ट्याही हम परवश नहीं, किंतु सभी बातों में हम बेबस हैं। हमारी राजकीय परतंत्रता तो अन्य परतंत्रताओं का एक स्वाभाविक परिणाम है। इसका श्रेय हमारे राज्यकर्ताओं को तो निमित्तमात्र है। असली कारण तो हमारे हम ही हैं। न मालूम कितने काल से हम परवश ही रहते चले आये हैं और इसी कारण से उसके काँटे चुभते-चुभते हमारे समा शरीर के व्रण ऐसे हो गये हैं कि उन काँटों की पी अब दुःख ही नहीं देती। किस बात में हम हैं? समाज का आधा भाग तो हमने 'न स्वातंत्र्य कर रक्खा है। बाक़ी के आधे विभाग में भी स्पर्श करने का अधिकार नहीं', 'इसे—वेद का ही न हो पर—अध्ययन का अधिकार नहीं', 'इसे ध्यापन का अधिकार नहीं' इत्यादि हज़ारों बेड़ि समाज के भिन्न-भिन्न अवयवों को जकड़ डाला इन बेड़ियों को हम चिरपरिचितता के सबब प्रकार के आभूषण समझते हैं। यहाँ तक कि कोई इन बेड़ियों को तोड़ने का यत्न करें, तो वाले को केवल दूसरे लोग ही नहीं कोसते; बलि लोग भी कोसते हैं, जिनकी बेड़ियाँ तोड़ने का बेचारा यत्न करता है।

मुझे अच्छी तरह याद है कि एक समय के दिनों में साइकिल से मैं प्रवास कर रहा पचास मील के लगभग मैं चल चुका था। धूप कड़ी थी। प्यास के मारे मैं मरा जा रहा था। कहीं पास दीखता भी न था। चलते-चलते झोंपडा दिखाई दिया। मैं नीचे उतर झोंपडे में और मैंने पानी पीने के लिए माँगा। पूछा गया 'कौन ठाकुर?' 'ब्राह्मण,' मेरे मुख से निक उसने ज़मीन पर सिर रख कर प्रणाम किया कहा कि 'मैं महार (दक्षिण की एक अछूत जाति मेरे हाथ का पानी आप कैसे पीयेंगे?' मैंने कहा— भी मनुष्य हो। बहुतेरे ब्राह्मणों के घरों में भी जि स्वच्छता न होगी, उतनी तुम्हारे घर में मुझे दी है। फिर तुम्हारे हाथ का पानी पीने में हर्ज ही है? मुझे चलता है। मैं चाहे जिस साफ़ आदमी हाथ का पानी पीने में कुछ हर्ज नहीं समझता वह बोला—'आप न समझते होंगे। पर आपको

अछूत हाथों का पानी देने में मुझे जो पाप लगेगा, उसका क्या ? मैं हर्गिज़ न दूँगा। आप मेरे साथ चलें। कुँआ आध ही मील पर है, मैं आपके साथ चलता हूँ।' नंगे पैर वह मेरे साथ धूप में आया, कुँआ दिखाया, पर पानी न पिलाया। मैं उसको दोष नहीं देता। मुझे पानी न देने में उसका कुछ स्वार्थ था। अपने मतानुसार उसने तो धर्म-कृत्य ही किया। तो केवल यह दिखाना चाहता हूँ कि 'हम अछूत हैं' अछूत जाति के लोग भी बुरा नहीं मानते। उसे तना तो बुरा अवश्य लगा कि ब्राह्मण न होने के कारण उसे मुझे इतने कष्ट देने पड़े। पर मेरी अछूत- चली जावे, यह इच्छा उसे ज़रा भी न हुई। चिर-परिचय का प्रभाव है।

आर्थिक दृष्टि से देखें, तो भी यही हाल है। कुल एक प्रधान आदमी द्रव्यार्जन करे, बाक़ी उसीपर निर्भर रहें। जो रोटा का टुकड़ा सामने दिखाई दे, सपर जैसे कुत्ते दौड़ते हैं, वैसे ही बाप-दादाओं की कमाई हुई जायदाद के टुकड़े-टुकड़े करने के लिए भाई-भाई दौड़े जाते हैं। विचारों के बारे में हम लोग राने ज़माने से पुरानी लकीर के फ़क़ीर हैं। विचार-स्वातंत्र्य में विहार करके निर्भीकता से जो अनुभव पावे, उसे 'न विभेति कुतश्चन' समझ कर, बुलंद आवाज़ से दुनिया भर को कहने वाले उपनिषत्कालीन ऋषि कहाँ और 'इति श्रुतिः' 'इति मनुरब्रवीत्' वचन को आगे बढ़ा कर अपना विचार-पारतंत्र्य छिपाने वाले हम कहाँ ? जहाँ विचार तक का स्वातंत्र्य नहीं, वहाँ काहे का उच्चार-स्वातंत्र्य और कैसे हो आचार-स्वातंत्र्य ? सभी प्रकार से पारतंत्र्य-शृंखला जहाँ कनकना रही हैं वहाँ राजकीय स्वातंत्र्य कैसे मिल सकता है ? और अगर मिल भी जाय तो कैसे रह सकता है ?

अन्य राष्ट्रों की ओर देखो। धर्म, अर्थ, काम, विद्या, कला सभी बातों में निर्भीकता से हरएक राष्ट्र अपनी-अपनी प्रगति कर रहा है। केवल हम भारतीय ही, 'यह सब अनाध्यात्मिक हैं' कह कर, यह सिद्ध करने में झगड़ रहे हैं कि एक समय पुराने खंडहरों में ये नई चीज़ें थीं—'वेद में रेलगाड़ी थी', 'पुराणों में विमान थे,' 'उपनिषदों में बेतार की ख़बरें थीं।' होंगी; पर आज न तो हम रेलगाड़ी बना सकते हैं, न विमान, न बेतार के तार; तब केवल उच्च स्वर से लगातार 'हम यों थे, हम त्यों थे' की डींग मारने से लाभ ही क्या ? अतः उठो, जागो; दुनिया में क्या हो रहा है, यह देखो; और अपना उद्धार करने के लिए क्या करना चाहिए, इसका निर्भयतापूर्वक विचार करो।

हरि रामचन्द्र दिवेकर

शिक्षा का ढंग

परमात्मा ने सबको भिन्न-भिन्न देह और बुद्धि दी है। यह तो हरएक का कर्तव्य है कि वह यह प्रयत्न करे कि उसकी वर्तमान स्थिति से भविष्य की स्थिति अच्छी हो। पर दूसरे किसीको कुचल कर उससे आगे बढ़ने की इच्छा और प्रयत्न करना अनिष्ट है। शक्तियों को अपने नैसर्गिक विकास का ही मार्ग ग्रहण करना चाहिए। कृत्रिम मार्गों से उनके विकास का प्रयत्न करना कच्चे फलों को कृत्रिम रीति से पकाने का प्रयत्न करने के समान है। फिर मानसिक विकास-मार्ग भी उतने ही निश्चित और व्यवस्थित हैं, जितने कि शारीरिक विकास के मार्ग। इसलिए उसमें कृत्रिम उपाय भी कुछ काम नहीं देते। तथापि हम मानसिक विकास के क्षेत्र में स्पर्द्धा को आवश्यक समझते हैं। इसका कारण यह है कि हम बाहर से यह देख सकते हैं कि शारीरिक स्पर्द्धा हमारे लिए कहाँ अशक्य है और कहाँ शक्य, पर हम मानसिक स्पर्द्धा की शक्याशक्यता का पता इसी तरह बाहर से नहीं लगा सकते।

विकास का अंदाज़ हम बाह्य साधनों से कभी ठीक-ठीक

नहीं लगा सकते। हमें अक्सर इसमें धोखा ही होता है। परीक्षायें हमेशा बाह्य परिणामों को ही नाप सकती हैं, आन्तरिक शक्तियों को नहीं। जिस वस्तु की परीक्षा होती है, वह शक्ति नहीं है बल्कि शक्ति का प्रदर्शन करने की शैली है। स्पर्द्धा में परीक्षा है और परीक्षा में स्पर्द्धा। फ़र्क़ ख़ाली इतना ही है कि स्पर्द्धा में दूसरे की अपेक्षा अधिक परिणाम दिखाने की वृत्ति होती है और परीक्षा में एक ख़ास सीमा। सच्ची शक्ति की नाप तो इन दोनों में से एक साधन से भी नहीं होती।

मुहल्ले की एक छोटी-सी लड़ाई से लेकर बड़े-बड़े महा-युद्ध तक स्पर्द्धा से ही उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक यूरोपीय देश ने और ख़ास कर जर्मनी ने अपनी शिक्षा में स्पर्द्धा के तत्त्व को स्थान दिया है। इसका परिणाम यह हुआ है कि आवश्यकता सिद्ध होने पर दूसरे को हानि पहुँचा कर भी आगे बढ़ने की वृत्ति वहाँ पैदा हो गई। स्पर्द्धा में हमेशा यही होता है। दुष्ट लोग तो दूसरे को हानि पहुँचाकर भी आगे बढ़ते हैं। भले लोग भी यह तो इच्छा करते हैं कि हमारे प्रतिस्पर्द्धी को कुछ हानि पहुँच जाय तो हम आगे बढ़ जावें। उनसे अच्छे लोग अपने प्रतिस्पर्द्धी को हानि पहुँचते हुए देखें तो उनको दुःख नहीं होता। अपने प्रतिस्पर्द्धी को दुखी देख कर दुखी होने वाले तो विरले ही होते हैं। इसलिए पाठशालाओं में नंबर आदि स्पर्द्धा के साधनों को निकाल डालना चाहिए। स्पर्द्धा नहीं, बल्कि सहयोग—परस्पर सहयोग, सहायता, और सहानुभूति ही शिक्षा का ध्येय होना चाहिए।

जिस प्रकार आपस में स्पर्द्धा करना एक अनिष्ट वस्तु है उसी प्रकार किसी विशेष शक्ति का प्रदर्शन करने की वृत्ति भी उतनी ही अनिष्ट है। इससे सच्ची ज्ञान-पिपासा मारी जाती है। पाण्डित्य-प्रदर्शन की वृत्ति का जन्म होता है। ज्ञान प्राप्त करते समय प्रदर्शन की दृष्टि हमेशा उपस्थित रहती है और इसी वृत्ति से सारा ज्ञान प्राप्त किया जाता है। शिक्षा के द्वारा हम सारे संसार का ज्ञान नहीं दे सकते। पर उस ज्ञान को प्राप्त करने की उत्कंठा ज़रूर पैदा कर सकते हैं। और अगर इतना भी हम कर सकें तो कहा जा सकता है कि शिक्षा का हेतु सम्पन्न हो गया। अगर यह न हो सके तो अवश्य ही कहना होगा कि हमारी शिक्षा का हेतु सफल न हुआ। ज्ञान के प्रदर्शन से नहीं, बल्कि ज्ञान की प्राप्ति से मनुष्य को सच्चा आनन्द होना चाहिए। सज़ा का तो है मनुष्य स्वभाव के अंदर छिपी हुई भय-वृत्ति को कर उससे काम लेना। यह जितना अनिष्ट है उतना लोभ से काम लेना भी है। लोभ-वृत्ति को जगा कर काम लेने की प्रथा का ही स्वरूप शिक्षा में इनाम जितनी दलीलें विद्यार्थियों को सज़ा देने के ख़िलाफ़ जा सकती हैं वे सब लोभ-मूलक इनाम की प्रथा के भी पेश की जा सकती हैं। सत्कार्य इनाम के लोभ बल्कि उसके सद्गुण के आकर्षण के द्वारा ही किया चाहिए। लोभ अथवा भय से वहीं काम लिया जहाँ सारासार विचार-बुद्धि की न्यूनता होती क्या हम इस तरह काम लेकर विवेक को जाग्रत कर हैं? इससे तो हम उलटा विवेक-बुद्धि के विकास खड़े करते हैं। भय और इनाम के परदे खड़े कर हम सत्कार्य के सहज सौन्दर्य और दुष्कार्य की सहज को छिपा देते हैं। शिक्षा का मतलब यह नहीं है कि विद्यार्थी पाठशाला में पढ़े वह अमुक कार्य करे और नहीं। शिक्षा का हेतु तो यह है कि जहाँ कहीं उसके चित्त में सत्कार्य के लिए सहज प्रेम और दु सहज घृणा उत्पन्न होनी चाहिए।

शिक्षा मानव-जीवन की इमारत की बुनियाद है लिए इस बात के विषय में मनुष्य को बड़ी सा रखनी चाहिए कि इसकी बुनियाद में कोई अनिष्ट पैठ जाय। क्योंकि यदि कहीं ऐसा होगा तो वह इमारत को गिरा देगा। जितने भी शिक्षा के प्रयोग जायँ उनका आरम्भ मानव-हृदय के उच्च गुणों को करके होना चाहिए, न कि अधम गुणों को। हरएक विद्यार्थी को दो तरह से समझाई जा सकती है— उसकी बुद्धि को क़ायल करके और दूसरे उसके हृ किसी प्रकार का असर डाल कर। तीसरा शुद्ध प्रकार हुई नहीं। अतः अगर इन दो मार्गों में से हमें एक न हो तो हम अभी लाचार हैं। पर मनुष्य-जाति के और बुद्धि पर हमें विश्वास है। उनको जगाने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। एक न एक दिन विजय ज़रूर

हरि

गुलामों का त्राता गैरिज़न

आज हम जिस महात्मा के जीवन पर प्रकाश डालना चाहते हैं वह अमेरिका के निवासी थे। अमेरिका से गलामी की प्रथा के निर्मूल कराने का सबसे अधिक श्रेय इन्हींको है। इन्हें ही लोग इस आन्दोलन का अगुआ कहते हैं—क्योंकि, यद्यपि और लोग भी गुलामों के उद्धार के लिए प्रयत्न करते थे, परन्तु यही सबसे पहले व्यक्ति हैं, जिन्होंने गुलामों को तुरन्त स्वतंत्र करने के लिए आवाज़ उठाई और इसे उस समय का सबसे बड़ा प्रश्न बना दिया।

इनका जन्म, उन्नीसवीं शताब्दि के आरम्भ में, एक बिलकुल साधारण श्रेणी के कुटुम्ब में हुआ था। इनका बाल्यकाल बड़ी कठिनाई में बीता। इनके पिता ने अपनी स्त्री (इनकी माता) को त्याग दिया था, इसलिए इन्हें अपने तथा अपनी माता के भरण-पोषण के लिए द्रव्योपार्जन की आवश्यकता पड़ी। जब यह बच्चे ही थे तभी सेवों की फेरी करके, जूते बना कर, और झोंपड़ियाँ बना कर अपनी गुजर करने लगे। इन्हें पुस्तकों के पढ़ने का समय ही नहीं मिलता था, और स्कूल का तो इन्होंने मुँह ही नहीं देखा! हाँ, जब तेरह वर्ष के हुए तो प्रेस का काम सीखने लगे और इस काम में इन्होंने अपना मन भी खूब लगाया। यही नहीं, यहाँ पर इन्होंने लिखने का भी अभ्यास बढ़ाया और लेख लिख-लिख कर पत्रों में भेजने लगे। पढ़ने का मौक़ा भी यहाँ अच्छा मिला। सर वाल्टर स्कॉट के उपन्यास और बाइरन की कविता में इन्हें विशेष आनन्द मिलता था।

यह १८ वर्ष के थे, तभी इनकी माता की मृत्यु हो गई। और यह बिलकुल अकेले रह गये। इनका एकमात्र भाई पहले ही मर चुका था।

२१ वर्ष की अवस्था में इन्होंने प्रेस का काम अच्छी तरह से सीख लिया। इस समय यह बड़े मिलनसार, आमोद-प्रिय और देखने में आकर्षक थे; नियम से गिर्जे जाया करते और लोगों पर अच्छा प्रभाव डालते थे। और भी कई ऐसे गुण थे, जो केवल नेत्रों से नहीं देखे जा सकते। इनके मित्रों ने इन्हें एक पत्र निकालने के लिए धन दिया। पर इनके लेखों में स्वाधीनता का भाव इतना अधिक रहता था, कि साधारण लोग एकाएक उसे ग्राह्य ही नहीं कर पाये! फलतः कुछ ही दिनों बाद उसे बन्द कर देना पड़ा!

स्वतंत्रता के प्रेमी यह बाल्यावस्था ही से थे। यूनानियों ने तुर्कों को निकाल बाहर करने के लिए जो स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ी, उसका इनपर बड़ा प्रभाव पड़ा। किन्तु अपने पत्र के बन्द होजाने से दूसरे काम की तलाश हुई और बहुत दौड़-धूप करने पर एक पत्र के सम्पादक हुए, जिसका उद्देश्य था मादक द्रव्य-निषेध। इसके बाद 'जर्नल्स ऑफ़ दी टाइम्स' नामक पत्र के स्वामी हुए। इस पत्र के एक अंक में इन्होंने अमेरिका की एक रियासत में काली जातियों में पढ़ने-लिखने के विरुद्ध जो क़ानून बना था उसपर एक बड़ा कड़ा लेख लिखा, जिसमें इन्होंने बताया कि मनुष्य के मस्तिष्क और प्रतिभा पर मुहर लगाना कितना अन्याय है। साथ ही ज़ोरदार शब्दों में यह भी लिखा कि ऐसी बातों का अन्त हो जाना चाहिए। इस लेख ने बैंजमिन लैंडी नामक एक वृद्ध पुरुष का ध्यान आकर्षित किया। यह महानुभाव कई वर्ष पहले से गुलामी की प्रथा उठा देने का आन्दोलन कर रहे थे। गैरिज़न पर लैंडी के उपदेशों का बड़ा प्रभाव पड़ा; साथ ही पादरियों के भावों से इन्हें बड़ी घृणा हो गई, जिन्हें लैंडी व्यर्थ ही समझाने का प्रयत्न करता था।

गुलामी के विरुद्ध आन्दोलन करने वाली सभाओं के लिए गिर्जेघर या स्कूल में स्थान मिलना कठिन था। एक बार बहुत मुश्किल से एक स्थान मिल गया, लेकिन एक पादरी ने गुलामी के विरुद्ध आन्दोलन को ख़तरनाक बताते हुए सभा भंग कर दी! गैरिज़न लिखता है कि "उस समय की नैतिक कायरता, साहस पर पानी फेरने वाली निर्जीवता और क्रूरतापूर्ण पाखण्ड ने मुझे क्रोध से भर दिया।" उस समय से उसने गिर्जे जाना बन्द कर दिया।

लैंडी ने उससे एक पत्र का सम्पादक होने के लिए कहा। उस पत्र का उद्देश्य शराबख़ोरी को बन्द करना और नीग्रो जाति को आज़ाद करना था। गैरिज़न ने उसका साथ दिया। उसने लिखने का काम शुरू किया, उधर लैंडी ने व्याख्यान देने का। गैरिज़न के लेख बहुत ही ओजस्वी और सरल

होते थे। उसने इन शब्दों में अपनी नीति घोषित की—"हम लोगों ने अन्त तक इसके विरुद्ध आन्दोलन करने का निश्चय कर लिया है और सिवाय मृत्यु के संसार में और कोई शक्ति हम लोगों के इस काम में बाधा नहीं डाल सकती।" यही नहीं, बल्कि दो हज़ार आदमियों के हस्तक्षरों के साथ गुलामी के विरुद्ध एक प्रार्थनापत्र भी उसने तैयार किया और अपने देश की कांग्रेस में उसे उपस्थित किया। लेकिन उसका उत्तर यह मिला कि इस आन्दोलन से गुलाम जग जायँगे और तब उन्हें क़ाबू में रखना कठिन होगा!

उस समय की स्थिति ही और थी। इस प्रथा ने सिनेटर लोगों की बुद्धि और विचार को कुण्ठित कर दिया था, अतः उनपर कुछ प्रभाव न पड़ा और वे टस से मस न हुए। गैरिज़न के समान नौजवान, तेजस्वी, ताज़ा दिमाग़ वाले की आवश्यकता थी, जो उन्हें मार्ग दिखाये। उस समय गैरिज़न की अवस्था केवल २६ वर्ष की थी। पर उसने स्पष्ट रूप से देख लिया कि उससे अधिक अवस्था वाले कुछ नहीं कर रहे हैं। उसने विचार करके देखा कि सत्य मार्ग पर चलना ही आवश्यक कर्त्तव्य है, और सब बातें व्यर्थ हैं। गुलामी के सम्बन्ध में लोगों की धारणा और विचार सुनकर उसका हृदय काँप उठा। उसने देखा कि हज़ारों उदार और दयालु लोग भी गुलामी की प्रथा का समर्थन कर रहे हैं। यह देश की प्रथा और शासन-प्रबन्ध का एक अंग-सा हो रही है। लोग इस प्रथा पर सोचने-विचारने का कष्ट ही नहीं करते। उनकी ऐसी धारणा हो गई थी कि गुलामी की प्रथा उठाई नहीं कि देश तबाह हो जायगा! न तो रुई पैदा होगी, और न अनाज और तम्बाकू। खेतों में काम करने के लिए मज़दूर ही नहीं मिलेंगे। काले नीग्रो मर्द और औरतें बिना मज़दूरी के काम करती थीं। किन्तु वे व्यवसायी लोग इतने अदूरदर्शी और मूर्ख थे कि इस बात का वे विचार नहीं करते थे कि यह प्रथा केवल नैतिक दृष्टि से ही दूषित नहीं है किन्तु आर्थिक दृष्टि से भी दूषित है। इस प्रकार काम लेने से व्यय अधिक पड़ता था, क्योंकि काम ठीक तरह से नहीं होता था। उधर सारा काम काले लोगों के करने से गोरे लोग काहिल और अकर्मण्य हो रहे थे। वे काम करना नीच कर्म और केवल गुलामों का धन्धा समझते थे। लोगों में आत्म-निर्भरता और स्वावलम्बन का भाव दूर हो रहा था। को खाना पकाना तथा गृहस्थी के दूसरे कामों के शिक्षा नहीं दी जाती थी। दक्षिण में तो उन्होंने जातियों को जानवरों की तरह मर-मर करके काम देखा। वे लोग ऐसे मालिक के लिए काम करते, जो ओर आँख उठा कर भी नहीं देखता। यहां तक कि सियर भी उनका नाम तक नहीं जानते थे। इन ओवर के समान कठोर हृदयवाले अन्यत्र शायद ढूंढने पर मिलेंगे। उनके काम ने उन्हें बिलकुल वहशी और बना दिया था, क्योंकि वे बिलकुल गँवार थे और उन्हें रिमित शक्ति दे दी गई थी। बेचारे हबशियों को पढ़ने का ज़रा भी मौक़ा नहीं दिया जाता था। वे आदि धार्मिक कृत्य करने के लिए भी एक स्थान पर नहीं हो सकते थे और न एक दूसरे से मिल-जुल ही थे। उन्हें जानवरों की श्रेणी से ऊपर उठाने की चेष्टा की जाती थी। क्योंकि, गोरी जातियां डरती थीं कि करने पर वे बग़ावत कर बैठेंगे और स्वतंत्र हो जा हवशी लोग आपस में पति-पत्नी का सम्बन्ध भी नहीं सकते थे—क्योंकि, उनके मालिक जब चाहते उन्हें दूसरे से अलग कर सकते थे। उनके बच्चों को गोरे छीन कर बाज़ार में नीलाम कर देते थे। माता-पि अपनी सन्तान पर भी कोई अधिकार न रहता था। के रहने वाले अपनेको बहुत बड़ा समझते थे और वालों से घृणा कर उनका मज़ाक़ उड़ाया करते थे। उन लोगों ने धीरे-धीरे गुलामों को रखना छोड़ दिया

एक दिन रविवार को गैरिज़न ने एक गुलाम को जो थोड़ी ही देर पहले कोड़े से मारा गया था। उसकी से खून बह रहा था और सिर में सख़्त चोट लगी थी। का अपराध केवल यह था कि उसने अपने मालिक के के मुताबिक़ गाड़ी नहीं लादी थी। गैरिज़न एक सड़क से जा रहा था, इतने में उसने कोड़े और चिल्लाने की सुनी। कहीं दया अथवा न्याय का नाम-मात्र न था। देश का ऐसा पशुपन देखकर उसका माथा लज्जा से गया। और इस पशुता का अन्त करने का उसने दृढ़ कर लिया।

गैरिज़न केवल थोड़े से सुधार से सन्तुष्ट होजाने वाला आदमी न था। उसका विश्वास था कि यदि कोई चीज़ ख़राब और अनुचित है, तो उसके क़ायम रहने की ज़रूरत नहीं। फिर जब तक उसके देश में ऐसा वहशीपन और अन्याय जारी हो, तब तक उसे कहाँ चैन और आनन्द था! अतः हवशियों की पूरी आज़ादी को उसने अपना ध्येय बनाया। यहीं पर लैंडी में और उसमें मतभेद पैदा हुआ। लैंडी उतने गर्म विचार का न था, जितना कि गैरिज़न था। उसका यह विचार था कि हवशियों को धीरे-धीरे आज़ादी दी जाय और दूसरे मुल्कों में उपनिवेश बसाने के लिए भेजा जाय। गैरिज़न इस प्रथा को अमेरिका में रहने देना घोर पाप समझता था। गुलामों के मालिकों ने हवशियों को भविष्य में आज़ाद करने के सम्बन्ध में बहुत कुछ सुना था, किन्तु उनकी तात्कालिक स्वाधीनता की उन लोगों ने कल्पना भी न की थी, इसलिए गैरिज़न के इस भाव से वे बड़े नाराज़ हुए और उनपर आतंक छा गया। तब गैरिज़न ने लैंडी का साथ छोड़ दिया और अकेले ही इस युद्ध को जारी रक्खा। कुछ समय बाद, गुलामों का व्यवसाय करने वाले एक गोरे पर आपत्तिजनक लेख लिखने के कारण इन्हें जेल की हवा खानी पड़ी। जुर्माना न दे सकने के कारण यह ४९ दिन तक जेल में रहे। एक क्वेकर कवि ने जुर्माने का रुपया चुका कर इन्हें छुड़ाया। गोरों के इस व्यवहार से इनका क्रोध और भड़क उठा। और यह पहले से भी अधिक मुस्तैदी से काम करने लगे। सहायता के लिए एक बार इन्होंने फिर गिर्जे का दर्वाज़ा खटखटाया, लेकिन उसका कोई फल न हुआ। बोस्टन में सब लोगों ने दर्वाज़े बन्द कर लिये। अन्त में स्वाधीन विचार रखने वालों की एक समिति ने इन्हें व्याख्यान देने के लिए एक हॉल दिया। उनमें से कुछ लोगों पर इनके भाषण का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उन लोगों ने इस संग्राम में साथ देने का वादा किया। तब यह बोस्टन के सभी ख़ास-ख़ास व्यक्तियों से मिले और उन लोगों से विचार करने का अनुरोध किया। पादरियों को इन्होंने महात्मा ईसामसीह के उपदेशों का ध्यान दिलाया और उनको व्यवहार में लाने के लिए कहा। हवशियों के प्रति सर्वत्र घृणा का भाव देख कर इनका दिल बैठ गया, किन्तु अपना प्रयत्न पूर्ववत जारी रक्खा।

अपने विचारों को फैलाने के लिए इन्होंने एक पत्र निकालने की ठानी। इनके पास न तो रुपया था और न कोई ग्राहक ही था; किन्तु इनको एक साथी मिल गया। तब इन दोनों ने मिलकर "लिबरेटर" नाम का पत्र निकालना शुरू किया, जिसका आदर्श वाक्य था—"दुनिया मेरा देश है, सम्पूर्ण मनुष्य-जाति मेरे देश-वासी हैं।" प्रथम अंक में इन्होंने एक घोषणापत्र भी निकाला, जिसके प्रत्येक शब्द इनकी सजीवता और साहस के परिचायक हैं। इन्होंने घोषित किया कि "मैं गुलामों की आज़ादी के अतिरिक्त कुछ नहीं सोचूँगा और इसीके लिए जी जान से प्रयत्न करूँगा।" उसकी अन्तिम पंक्तियाँ ये हैं—"मैं अत्यन्त व्यग्र हूँ, मैं अब हिचकिचाहट से काम न लूँगा और न क्षमा करूँगा। मैं एक इञ्च भी पीछे पैर न रक्खूँगा।" इस घोषणापत्र पर १२ आदमियों के हस्ताक्षर थे, जिसमें सबके सब ग़रीब थे। इस घोषणापत्र के कारण बहुत से ग्राहकों ने पत्र ख़रीदना बन्द कर दिया, क्योंकि, लोगों ने उसे बहुत ही गर्म समझा, किन्तु धीरे-धीरे उसका लोगों पर प्रभाव पड़ने लगा। इस पत्र के कारण बहुत सी समितियाँ क़ायम हुईं, जिनका उद्देश्य गुलामी का विरोध करना था।

इंग्लैण्ड में गुलामी की प्रथा की विरोधिनी एक समिति थी, जिसके समर्थक विल्बरफ़ोर्स जैसे साहसी और बड़े भारी राजनीतिज्ञ लोग थे। यह समिति कई वर्ष से गुलामी के विरुद्ध आवाज़ उठाती आ रही थी और इसने ब्रिटिश साम्राज्य से दासता का अन्त कर दिया था। गैरिज़न को इस समिति में भाषण देने के लिए निमन्त्रण मिला। यह वहाँ गये। वहाँ वालों ने बहुत उत्साह से इनका स्वागत किया। गैरिज़न की सच्चाई और जोश का, जो इनके सरल और शान्त भाव के अन्तर दबे हुए थे, उनपर बड़ा प्रभाव पड़ा। गैरिज़न इससे उत्साहित हुआ, लेकिन अमेरिका आने पर उसे कठिनाइयों से मुक़ाबला करना पड़ा। उसका कारण यह था कि वह इङ्गलैण्ड में यह कह चुका था कि जब तक अमेरिका में यह प्रथा क़ायम है, तब तक वह ढोंगी और धूर्त कहलायगा। न्यूयार्क में गुलामी के विरुद्ध समिति क़ायम करने को एक सभा होने वाली थी, उसे जनता की भीड़ ने

भंग कर दिया। बोस्टन में जनता की दूसरी भीड़ ने 'लिबरेटर'-कार्यालय को घेर लिया और उसे नष्ट कर देने की चेष्टा की। इस प्रकार हर तरफ़ उत्तेजना फैल रही थी। मगर इतने पर भी उसने लोगों पर आक्षेप करना नहीं छोड़ा और गुलामों के मालिकों के प्रति कड़े से कड़े शब्दों का प्रयोग किया। लोगों ने कहना शुरू किया कि देशवासियों के विरुद्ध आवाज़ उठाना, बुराई करना, विश्वासघातक नीचता है और देशभक्ति के प्रतिकूल है। किन्तु गैरिज़न ने कहा, "मैं सत्य भाषण कर रहा हूँ, जो बहुत ही दुःख-प्रद और भयानक है। और मैंने ऐसा कहने का साहस किया है, इसीलिए क्या मुझे देशद्रोही कह कर दण्ड दिया जाना चाहिए? यदि हम अपने भाई के पापों को सहन कर हृदय से उसे घृणा करें, तो अपने देश के पापों को सहन करना मेरी घृणा का परिचायक है, न कि प्रेम का। मैं इसके पाप कर्मों में शरीक इसलिए नहीं होता, क्योंकि व्यक्तिगत स्वार्थों की अपेक्षा उसपर मेरा प्रेम कहीं अधिक है। मेरा ऐसा विचार है कि जब तक इसकी आबादी का षष्ठांश बेड़ियों से जकड़ा रहेगा तब तक यह वास्तव में न तो ख़ुशहाल होगा, और न समृद्धिशाली।" गुलामी की विरोधी (अमेरिकन एण्टीस्लेवरी) संस्था को चलाने के लिए गैरिज़न को बहुत से सहायक मिल गये। इसके लिए फ़िलाडेल्फ़िया में उसने एक सभा की। इस सभा में उसने अपने विश्वासों को जनता के सम्मुख रक्खा। उसने गुलामों की दशा तथा उनके स्वतन्त्रता के अधिकार को बड़े ही मार्मिक एवं ज़ोरदार शब्दों में रक्खा। उसने बतलाया कि उनका काम प्रत्येक स्थान में गुलामी का विरोध करने वाली समितियों का संगठन करना, लगातार सभायें करना, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए साहित्य निकालना, और जब तक राष्ट्र अपनी भूल न सुधारे तब तक बराबर प्रयत्न करना होगा।

अब अमेरिका में वह युग आरम्भ हुआ, जिसे 'शहीदों का युग कहते हैं। वह युग गैरिज़न के जीवन की क्रियाशीलता का युग था। वह और उसके अनुयायी दिन-रात सभायें करते, उनकी सभाओं को भंग करने के लिए उनके शत्रुओं की ओर से बहुत असभ्य और वहशी लोग भेजे जाते। इन लोगों की ज़िन्दगी हमेशा ख़तरे में रहती; ये जहाँ कहा भी जाते, वहीं लोग इन्हें मारने-पीटने को तैयार हो इनके घर जला दिये जाते अथवा मिट्टी में मिला दिये जिन हॉलों में सभायें होतीं, वे भी गिरा दिये जाते विद्यार्थी को खुलेआम इसलिए कोड़े लगाये गये, उसके झोले में दासता-विरोधी साहित्य था। दूसरा वि जो वहशी लोगों के आक्रमण करने पर अपने मित्र की यता करने के लिए दौड़ा गया, अपनी जान से हाथ धो दक्षिण में ऐसा अन्धेरखाता था कि जिन लोगों पर गु के प्रति सहानुभूति रखने का सन्देह किया जाता उन्हें विचार किये ही दण्ड दे दिया जाता। न्यायाधीश लोग गु की प्रथा के पक्ष में थे, और गुलामी के विरोधी लोगों के वैसा ही व्यवहार करते, जैसा बदमाशों के साथ किया है। एक मौक़े पर गैरिज़न के कपड़े फाड़ डाले गये, रस्सी बाँध कर उन्हें सड़क पर घसीटा गया। एक बा जनता की एक भीड़ उनपर टूट पड़ी और शहर के मे उन्हें बचाने का और कोई मार्ग न देख कर उन्हें जेल में दिया। जेल की कोठरी की दीवार पर उसने ये शब्द थे—"बुधवार ता० २१ सन् १८३५ को तीसरे पहर को क्रुद्ध जनता की भीड़ के आक्रमण से रक्षा करने के इस कोठरी में डाल दिया गया। भीड़ उसपर इस टूट पड़ी कि वह इस भयंकर सिद्धान्त का प्रचार करता कि ईश्वर की दृष्टि में कुत्सित है।" एक सौदागर ने इन विरो के सम्बन्ध में एक बड़ी सभा में ये शब्द कहे थे— लोगों के सामने सिद्धान्त का प्रश्न नहीं है। हम लोग तुम्हें सफल न होने देंगे, हम लोग तुम लोगों का नाश के लिए उचित-अनुचित सभी उपायों को काम में लायेंगे

गैरिज़न का कहना यह था कि सरकार और व्यव दल ही गुलामी को क़ायम रक्खे हुए हैं। अपनी सारी शक्ति और वक्तृत्वकला लोगों पर डालने में लगा दी, कि लोग बुद्धि और न्याय से काम वह गुलामी को केवल नैतिक बल से दूर करना था, उसने राजकीय शक्ति से इसे दूर कराने की कभी नहीं की। उसने उत्तर के लोगों पर यह प्रभाव की कोशिश की कि उत्तर के लोग इस बात को महसूस कि जब तक दक्षिण के लोग गुलामी की प्रथा को

ष्ट न करें तब तक उत्तर और दक्षिण में एकता नहीं रह सकती। वह केवल उत्तर ही में काम करता, क्योंकि दक्षिण के लोग इसे क़ायम रखने के लिए बिलकुल संगठित थे।

गैरिज़न को 'फ़्यूज़िटिव स्लेव लॉ' से बहुत सहायता मिली। उस क़ानून का आशय यह था कि 'जो गुलाम दक्षिण से भाग कर कनाडा और उत्तरी अमेरिका में जाकर रहने लगे हैं, उनमें से जो काम लायक हों, उन्हें पकड़ लाया जाय और वे फिर से गुलाम बना लिये जायँ। जिन लोगों ने उन्हें अपने घर में आश्रय दिया हो, अथवा भागने में किसी तरह की उन्हें सहायता ही हो, उन्हें क़ैद किया जाय अथवा उनपर जुर्माना किया जाय।" इस क्रूर क़ानून का यह प्रभाव पड़ा कि लोग उत्तेजित हो उठे और उनके दिलों को चोट पहुँची। जब उन लोगों ने भागे हुए गुलामों को सडकों पर गाड़ियों में जकड़े हुए देखा, तो उनके दिल भर आये।

इस अवसर पर उत्तर के लोगों को बहुत नीचा देखना पड़ा, क्योंकि उस समय के क़ानून के अनुसार उन्हें अपनी फ़ौज को गुलामों को पकड़े के लिए भेजना पड़ा। उस समय जॉन ब्रॉउन भी गुलामी के विरुद्ध बड़ा प्रबल आन्दोलन कर रहा था। जब 'फ्यूजिटिव लॉ' पास हुआ, तो गुलामों की सहायता करने के लिए उसने एक नई तरकीब सोची। 'विरजीनिया' के पहाड़ में एक किला बनवाया, और भागे हुए गुलामों को वहाँ आश्रय देने लगा। उस रियासत पर गुलामों को लेकर उसने आक्रमण किया और एक अस्त्रागार अपने अधिकार में कर लिया। उसपर विद्रोह का मुक़दमा चला और उसे फांसी पर लटका दिया गया।

गैरिज़न जॉन ब्रॉउन को बहुत साहसी और निःस्वार्थ समझता था, किन्तु उसने आक्रमण को बहुत बेकार और बर्बरतापूर्ण समझा। वह जॉन ब्राउन के रक्तपात और युद्ध के सिद्धान्त से बिलकुल सहमत न था। तीस वर्षों तक गुलामी की प्रथा के विरुद्ध लगातार आन्दोलन करने का उसने एक बहुत ही अच्छा प्रभाव देखा। लोगों की सहानुभूति हठात् इस आन्दोलन के प्रति होने लगी और ब्रॉउन की फाँसी पर लोगों ने अत्यन्त क्रोध प्रदर्शित किया।

अब तक ऐसा चला आता था कि वही व्यक्ति राष्ट्रपति चुना जाता था, जो गुलामी की प्रथा का समर्थक होता। लेकिन अब समय बदल गया था। कहना न होगा, इसका अधिकांश श्रेय गैरिज़न को ही दिया जा सकता है। अब्राहम लिंकन, जो गुलामों से बहुत सहानुभूति रखता था और जिसने इस आन्दोलन में बहुत कुछ भाग लिया था, राष्ट्रपति के पद के लिए खड़ा हुआ। उत्तर के लोगों ने उसे चुन लिया, क्योंकि उनके हृदय पर गैरिज़न का बहुत प्रभाव पड़ चुका था। लेकिन दक्षिण के लोग इस चुनाव पर बहुत क्रुद्ध हुए और 'कनफ़िडरेट स्टेट्स आफ़ अमेरिका' नामक स्वतंत्र राष्ट्र क़ायम किया। इसपर गृह-युद्ध शुरू हुआ। यह युद्ध दो राज्यों में न था, और न इसी बात के लिए था कि दक्षिण की रियासतें उत्तर की रियासतों में मिला ली जायँ। किन्तु यह युद्ध सत्य और असत्य में तथा उन लोगों में हुआ, जिनमें से एक दल गुलामी को पसन्द करता था और दूसरा गुलामी के विरुद्ध था। गैरिज़न बहुत शान्तिप्रिय मनुष्य था। वह युद्ध से घृणा करता और इसके विरुद्ध उपदेश किया करता था। फिर भी उसने देखा कि संघर्ष का रोकना बिलकुल असम्भव है। मामला उसके हाथ के बाहर चला गया था। उसने देखा कि बिना रक्तपात के काम नहीं चल सकता। गृह-युद्ध १८६१ ई० में आरम्भ हुआ और ४ वर्ष तक होता रहा। अन्त में उत्तर वालों की विजय हुई। जिस समय युद्ध हो रहा था, उस समय गुलामी के प्रति लोगों की घृणा बढ़ती जाती थी। लोगों ने बहुत से गुलामों को स्वतंत्र कर दिया था, बहुत सी रियासतों से गुलामों को आज़ाद करने के लिए कहा गया था। अन्त में सन् १८६५ ई० में गुलामी बिलकुल बन्द कर दी गई।

अब गैरिज़न का काम समाप्त हो गया और उसने सार्वजनिक काम से अपना हाथ खींच लिया। वह अपनी प्रसिद्धि पर कभी न फूलता था, और न वस्तुतः उत्तेजनापूर्ण जीवन ही पसन्द करता था। उसका गृह-जीवन भी आनन्दमय था और वह अपनी स्त्री और बच्चों पर सदा अनुरक्त रहा। जब वह ७० वर्ष का था तब उसकी स्त्री मरी और उसके तीन वर्ष बाद, ७३ वर्ष की आयु में, उसने भी अपनी इहलीला समाप्त कर दी।

गणेश पाण्डेय

प्रताप-प्रतिज्ञा

(१)

अत्याचार यवनों का देश में असह्य हुआ,
पीड़ित प्रजायें भयभीत हो रहीं हैं भाग ।
राजपूती तेज में है ज्वाला उठती ही नहीं,
होके निस्तरङ्ग सोया जन्मभूमि-अनुराग ।।
पुण्य-भूमि प्यारे चित्तौड़ के हृदय पर,
टेके घुटने हैं अकबर ने जलाई आग ।
लुटता सुहाग राजपुत्रियों का देख के भी,
आत्म-अभिमान क्यों न उठता तुम्हारा जाग?

(२)

आज कुलकान है कराहती, मुग़ल-पति,
मूँछें ऐंठता है राजपूत बेटी व्याह कर ।
निज अभिमान को दबाये राजपूत गण,
पग पग झुक पग चूमते सराह कर ।
प्यारी जन्मभूमि, प्यारी आन, प्यारा अभिमान,
प्यारी ये स्वतन्त्रता खड़ी है आज राह पर ।
गृह-निर्वासिता निराश्रिता कहां ये जायें,
कैसे ये जियेंगी इस भूमि पै निवाह कर ।।

(३)

कोई भयभीत होके शरण गये हैं, और-
होकर सहाय अपनों पै करते हैं वार ।
कोई द्वेषवश एक दूसरे के नाश हित,
जाते हैं सहाय हित यवनपती के द्वार ।
कोई दर्पवश बैठे अकड़-अकड़, और-
लड़ते अकेले, यवनों से हैं न पाते पार ।
कोई हम जैसे एक-आध संघ-शक्ति-हित,
करते प्रयत्न, होते खिन्न ये दशा निहार ।।

(४)

यदि कुछ दिन इस भांति चुपचाप रहे,
और आर्य्य जाति के रहे जो ऐसे ही ढब ।
फूट, दम्भ, भीरुता ने पैर न उठाया यदि,
वीरता कुलाभिमान डूबते रहे ज्यों
जन्मभूमि पद्दलित यवनगणों से रही,
गौरव हमारा क्षीण-क्षीण होता गया
उठने न पावेगी कभी अनन्तकाल तक,
जावेगा अवश्य हिन्दू जाति का भविष्य

(५)

वही जन्मभूमि यह, जिसमें बसा हुआ है
पूर्व-पुरुषों का पुण्य-तेज कण कण
जिसको किया पवित्र उन वीर पुरुषों ने,
शत्रु-मुण्ड-माल को चढ़ा के रण-र
सदियां रहेंगी अभिमानित सदैव जिन-
की पुण्य-स्मृतियां ले अतीत क्षण-क्ष
आज पादाक्रान्त होके नीच यवनों से कैसे,
फूँकती न क्यों है ज्वाल-माल शत्रुगण

(६)

चिन्ता करो न मां ! तुम्हारी इस धूल से ही,
विकट कराल ज्वाल ऐसी मैं उठा
इस शान्त हुए वायु मण्डल में एक बार,
फिर से प्रचण्ड मैं तूफ़ान ऐसा ला
सोती हुई भीरु आत्माओं को प्रबल कर,
तेरी पुण्यशक्ति से ही सबल बनाऊं
ऐसी विकराल युद्धाग्नि दवानल तुल्य,
जाके अति शीघ्र हल्दीघाट में जलाऊं

(७)

जिसकी धधकती शिखाओं बीच पड़ कर,
बचने न अधम यवन-दल पा
जिस तूफ़ान में तुम्हारे शत्रुओं के दिल,
विस्तृत दिगन्त काँप जल-थल जायँ
जोकि अति साहस अतीव वीरता के साथ,
शत्रु-दल में उथल-पुथल मचाय
जिस युद्धाग्नि में ही प्राणाहुति देंगे हम,
अथवा तुम्हारा दूध सफल बनायँ

भद्रजित "

कालेदह महल (उज्जैन)

अवन्तिका या उज्जयिनी, जिसे आजकल उज्जैन कहा जाता है, एक बहुत चीन और प्रसिद्ध स्थान है। वैदिक एवं पौराणिक ल में भी इसका वर्णन पाया जाता है। यहाँ तक कि हाभारत और भागवत जैसे ग्रन्थ भी इसके वर्णन अछूते नहीं।

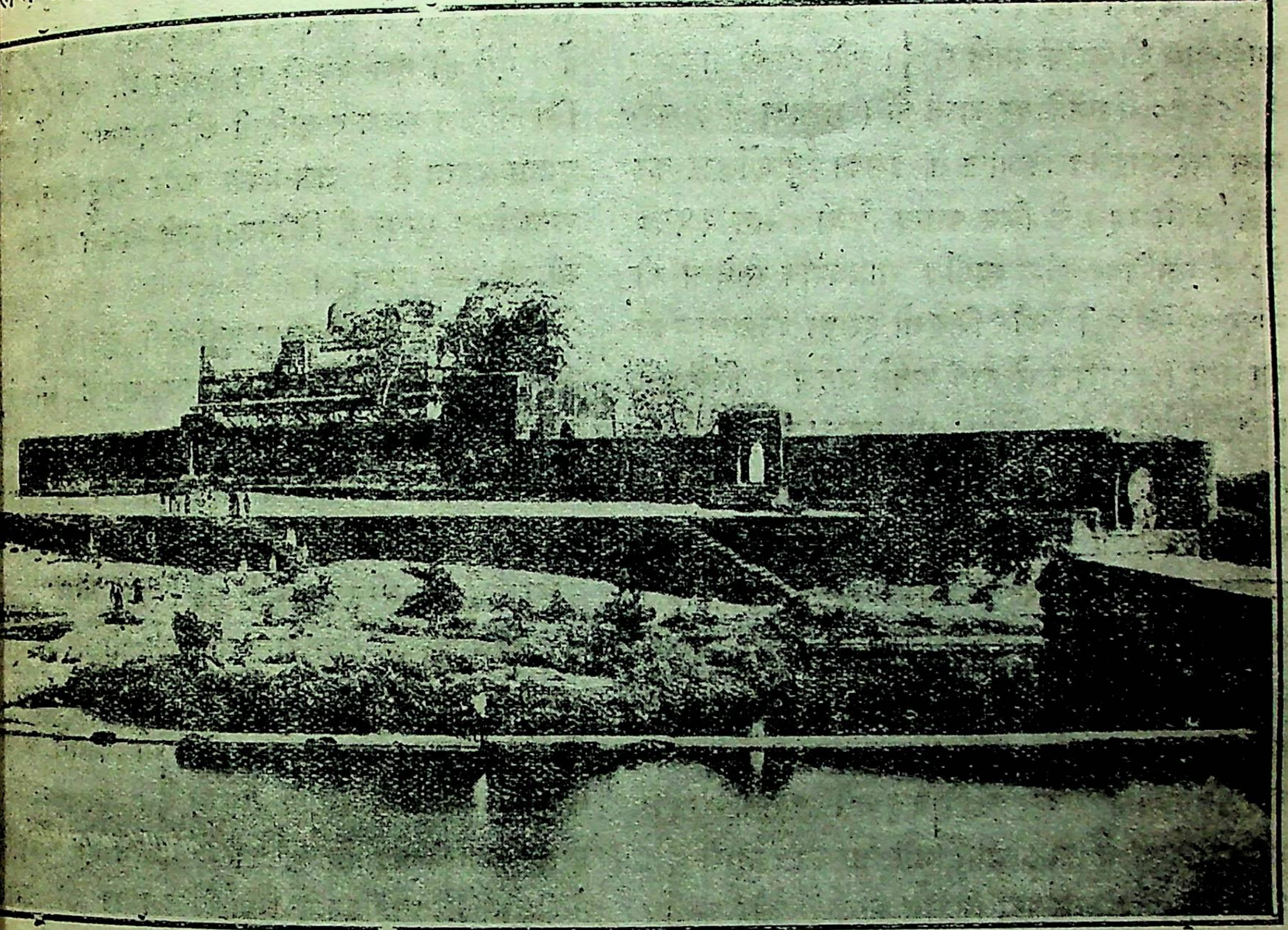

कालेदह महल

कालेदह महल, जिसका कि आज हम 'त्याग-मि' के पाठकों को परिचय कराना चाहते हैं, यहीं एक सुंदर और ऐतिहासिक स्थान है। प्राचीन काल में यहाँ श्री सूर्यनारायण का मन्दिर तथा अनेक पत्थर के घाट और धर्मशालायें थीं—कुछ घाटों के चिह्न तो आज भी मौजूद हैं, यद्यपि धर्मशालाओं का नाम-निशान भी आज कहीं दृष्टिगोचर नहीं होता। 'अवन्ती-माहात्म्य' नामक ग्रन्थ में विस्तार से इन बातों का वर्णन मिलता है।

चार सौ तीन वर्ष पहले की बात है। माँडो के सुलतान नसीरुद्दीन खिलजी ने मूल स्थान को तोड़ कर यह 'कालेदह' महल बनाया था। पश्चात् सम्राट् अकबर के समय, जब कि जहाँगीर मालवे का सूबेदार था, कुण्ड और उसके आस-पास की इमारतें बनाई गईं। अकबर बादशाह यहाँ होते हुए ही दक्षिण और खानदेश की विजय करने गया और

आया था। उसने उज्जैन तथा इस स्थल को बहुत पसन्द किया और कुछ समय तक वह यहाँ रहा भी। उस अवसर पर इसका सौंदर्य बहुत बढ़ गया मालूम होता है, जैसा कि 'तवारीख़ फ़रिश्ता' में इसकी रमणीयता के ख़ूब विस्तृत वर्णन से विदित होता है।

पिंडारियों के ज़माने में, यह नष्ट-भ्रष्ट हो गया। पश्चात् हिजरी सन् १००७ में कुंड और कुण्ड के आस-पास की कुशकें बनाई गईं। और इसके बाद सन् १८८६ ई० में ग्वालियर राज्य के (मालवा के) सर-सूबा सर माइकेल फ़िलोज ने इसका जीर्णोद्धार कर इसे अपने रहने के लिए पसन्द किया। सन् १९२० ई० में ग्वालियर-नरेश स्वर्गीय माधवराव सेंधिया की नजर इसपर पड़ी और फिर तो इसका उन्नतकाल ही आ गया। महाराज ने स्वयं अपने महल के लिए इसे पसंद किया, फिर क्या था—महाराज के रहने के लिए पहले जो विशालकाय कोठी थी उसमें शहर की सारी कचहरियाँ स्थापित करदी गईं और वहाँ का फ़र्नीचर तथा आराइश का सामान इसमें पहुँच गया। यही नहीं, कई लाख रुपये और ख़र्च करके आस-पास की सुंदरता भी बढ़ा दी गई। धीरे-धीरे यहाँ कई दूकानें बन गईं, बड़े-बड़े बाग़ लग गये और अब तो ज़नाना महल आदि कई नये दर्शनीय स्थल भी बन चुके हैं, तथा आगे और भी कार्य जारी हैं। १००-१५० मनुष्य यहाँ निवास करते हैं और स्वर्गीय ग्वालियर महाराज भी कईबार आकर इसमें रह चुके हैं।

इस महल की विशेषता यह है कि आजतक कभी इसकी मरम्मत की ज़रूरत नहीं पड़ी। इसके बुर्ज, स्नानागार, भोजनगृह, विश्रामागार, महमानघर आदि आज भी जैसे के तैसे ही हैं; अगर कुछ ख़र्च की ज़रूरत पड़ी, तो वह सिर्फ़ बाहरी दृश्य के निर्माण में। अस्तु।

महल काफ़ी ऊँचा है। नीचे एक तलघर (गुप्त-गृह) है, जहाँ भोजन बनाने की जगह है, प्रका यहाँ पर्याप्त प्रवेश है। महल के नीचे, उसी से लगे विचित्र कारीगरी से बनाये गये ५२ जल-कु इनमें सदैव थोड़ा-बहुत जल इधर से उधर करता है। चतुराई यह है कि बड़ी देर तक रहने पर भी यह पता नहीं चलता कि ५२ कुण्ड से पानी कहाँ से चला आ रहा है और कहाँ जा हैं! ऐसे ही एक चक्की का स्वरूप भी बना हु जिसमें जल एकबार दाहिनी और एकबार बाईं घूमता रहता है। जल-प्रवेश और जल-निर्ग दृश्य ऐसा सुन्दर है कि घण्टों खड़े देखते रह भी जी नहीं भरता।

कुण्डों के चारों तरफ़ बड़ी-बड़ी कुशकें हैं, ऊपर से ढकी हुई हैं, जिनके ऊपर सड़कें भी इन कुशकों के अन्दर दस हज़ार आदमी काम रहें तो भी ऊपर वालों को ज़रा पता भी न नया इसमें कुछ नहीं बना है, न सुधार की ज़रूरत है; बहुत पुख़्ता बनी हुई हैं।

एक विचित्र बात ज़नाना महल की भी सु इस महल से कुछ ही फ़र्लांग दूर एक गुप्तमा जिसके अन्दर होकर मोटर-द्वारा भी ज़नाने के ठीक अन्दर जाया जा सकता है। इस सम इसमें बिजली की रोशनी का भी प्रबन्ध हो गय टेलीफ़ोन भी यहाँ पर है। और जल का तो आराम है कि कहने की ज़रूरत नहीं। पास ही बड़ी नदी है, जिसमें सदा अपरिमित जल बना है, फिर भी सुभीते के लिए पानी की नलों का प्रबन्ध है।

शहर के लोग अक्सर मित्र-मण्डली के सैर-सपाटे के लिए शाम के वक्त यहाँ जाया कर क़िन्तु सवारी के बग़ैर, पैदल, शहर से यहाँ कठिन है; क्योंकि, शहर से इसका फ़ासला ६-७ मी

यह स्थान इतना सुन्दर और मनोहर है, कि क्या कहा जाय ! स्वर्गीय सौन्दर्य का दृश्य है। कुण्डों के पास जाकर जल-विहार करने को किसका जी न चाहेगा ? सायङ्कालीन शीतल मन्द समीर तो शिमला को भी मात करती है।

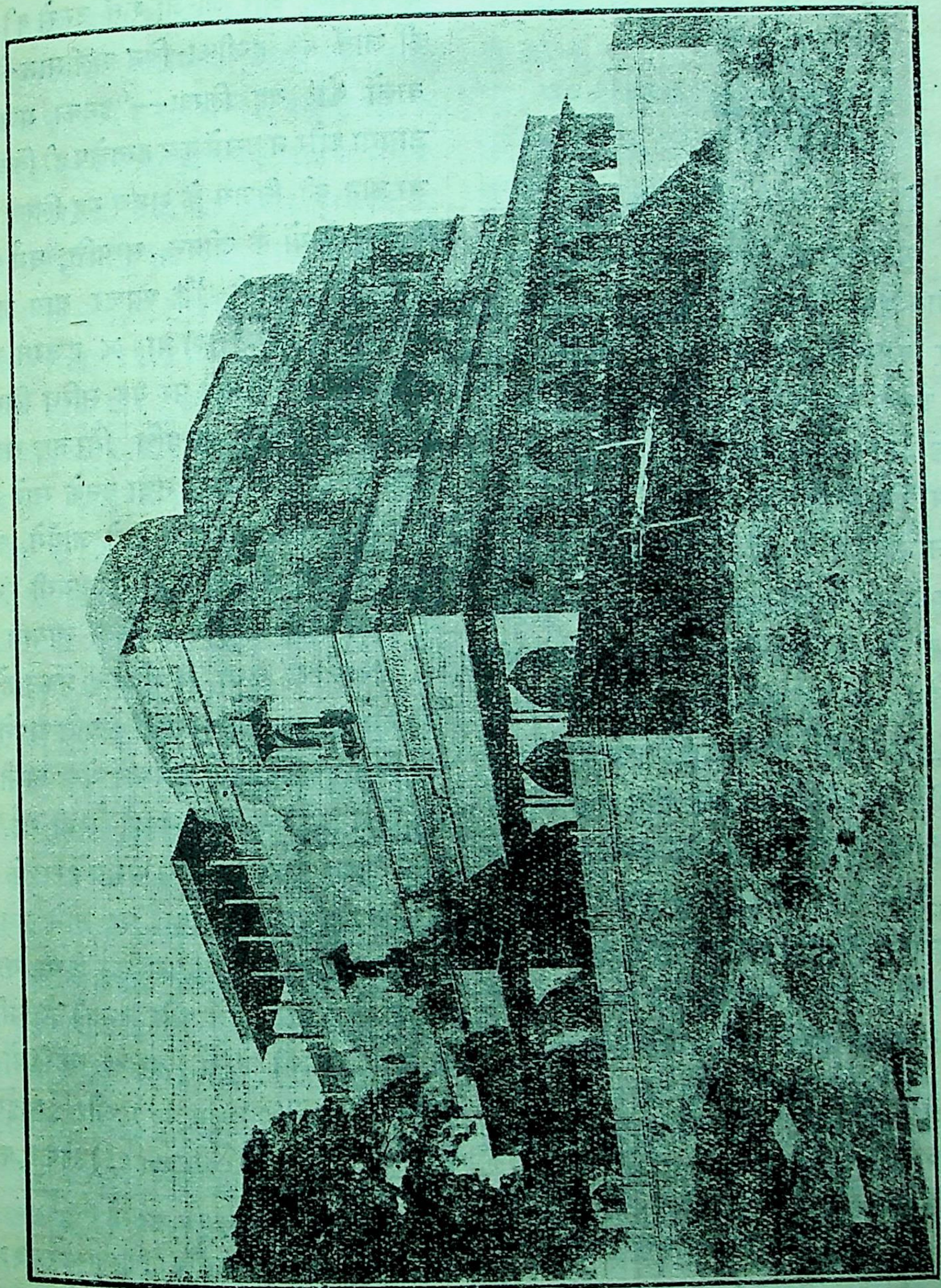

कालेदह महल (पश्चिम ओर से)

उज्जैन आने वाले यात्रियों को यह स्थान अवश्य देखना चाहिए। देखने के लिए इजाजत महल के अध्यक्ष (पैलेस-ऑफ़िसर) से लेनी होती है। जो

लोग इसे देखेंगे, उन्हें हमारी सचाई स्वयं स्पष्ट हो जायगी।❀

सूर्यनारायण व्यास

ज़िम्मी

यह तो सभी लोग जानते हैं कि हज़रत मुहम्मद की शिक्षाओं का पालन करने वाले मुसलमान कहलाते हैं, और उनसे इनकार करने वाले काफ़िर कहलाते हैं। जो काफ़िर मुस्लिम सत्ता को न माने, उसके विरुद्ध युद्ध करना और उसे राजद्रोह का दण्ड देना धर्म है। परन्तु जो काफ़िर मुसलमानी सरकार की शरण में आ जावे, लेकिन धर्म-परिवर्तन करना स्वीकार न करे, उसको मुसलमान कष्ट न देंगे। वह पुरुष उनके कुटुम्ब का, उनके भ्रातृत्व का सदस्य नहीं है, इसलिए वे उसकी रक्षा करने को बाध्य नहीं हैं। यदि वह अपनी रक्षा चाहता है, तो उसे उचित है कि विधर्मी सरकार को कुछ कर दे।

इस प्रकार जो जातियाँ मुसलमान न होते हुए भी मुस्लिम राज्य में रहती थीं, वे ज़िम्मी कहलाती थीं। अर्थात् मुस्लिम सरकार पर जिनकी रक्षा का 'ज़िम्मा' हो—जिन के प्रति वह उत्तरदायी हो। हज़रत उमर ने शाम की फ़तह के बाद हज़रत अबू अबीदा को जो फ़रमान लिखा उसके शब्द ये थे—मुसलमान ज़िम्मियों पर ज़ुल्म न करने पायें, न उनको पहुँचायें, न अकारण ही उनकी सम्पत्ति पर आ करने पायें, और जो-जो शर्तें उनसे की गई हैं की जायँ।❀ हज़ीफ़ा बिन अलीमान ने माह वालों को यह लिखा—"इनका मज़हब न जायगा और न उसमें कुछ हस्तक्षेप ही किया जायगा जरजान की विजय के समय यह लिखा गया— के निवासियों के जीवन, सम्पत्ति, धर्म और शा रक्षा की जायगी।"‡ आज़र बाय जान की में भी यही लिखा गया था। × हज़रत उमर के में जरूसलम के जीतने पर यह सन्धि लिखी गई सन्धि उनके प्राण, सम्पत्ति, गिरजा, सलीब (क्रॉ स्वस्थ व अस्वस्थ लोगों तथा उनके सारे सहधर्मि लिए है। उनके गिरजे न ढाये जायँगे, उनके स और सम्पत्ति में कुछ कमी न जायगी। धार्मिक में उनपर कुछ अन्याय न किया जायगा। इत्यादि

निम्नोक्त कथा से भी यह प्रकट हो जायगा मुस्लिम शासक कर-दाताओं के प्रति अपने उत्तरदा को कितना महत्वपूर्ण समझते थे। ख़लीफ़ा उम समय में मरमूक की लड़ाई लड़ी गई, जिसके शाम फ़तह हुआ था। उस समय हम्स के लोग थे। जब मुसलमान लड़ाई पर जाने लगे तब हम्स वालों का कर वापिस कर दिया, क्योंकि था वे लोग हार जाते और उनकी ज़िम्मी प्रजा के हाथों सतायी जाती। इसपर यहूदियों ने तौरैत (Old Testament) और ईसाईयों ने इञ्जील (New Testament) लेकर कहा कि

❀(१) इस वर्णन के लिखने में मुझे स्थानीय (उज्जैन के) 'माधव कॉलेज' के विविध भाषा-विज्ञ और पुरातत्ववेत्ता अध्यापक ठा० कन्हैयालालजी से जो सूचनायें मिलीं, उनके लिए मैं उनका आभारी हूँ।

(२) जो समयादि सूचित किये गये हैं वे उक्त महल के एक (कुशक के) स्तम्भ पर खुदे हुए उर्दू लेख के आधार पर हैं, जो बादशाही ज़माने का लिखा हुआ है। लेखक

❀किताबुल ख़िराज; पृ० ८२।

†अबू जाफ़र कृत तारीख़े तिब्री; पृ० २६३३।

‡ वहीं; पृ० २६५।

+ वहीं; पृ० २६६२।

=वहीं; अध्याय फ़तहे बैतुल मुकद्दस।

मुसलमानों से अधिक न्यायकारी और प्रजावत्सल शासक दूसरा नहीं मिलेगा।* यही कारण था कि मुसलमानों की ज़िम्मी प्रजा अपने ही धर्म वाले रूमियों के विरुद्ध मुसलमानों की सहायता करती थी; उन्हें सद पहुँचाती तथा रूमियों के गुप्त सन्देश बताती थी।†

इतना ही नहीं, रसूलिल्लाह मुहम्मदसाहब के समय ज़ैद बिन हारिस ज़िम्मियों को तोरैत सिखाने के लए नियुक्त किये गये थे।‡ एक दफ़ा हम्स के शासक अमीर बिन साद के मुख से "ख़ज़ा कल्लाह" (ईश्वर झे बदनाम करे) ये शब्द एक ज़िम्मी के प्रति निकल ये। इसपर उन्हें इतना खेद हुआ कि वह उसी समय ज़रत उमर के पास पहुँचे और कहा कि आप अपनी करी वापिस लें, इसी नौकरी के कारण मेरे मुँह ये शब्द निकले हैं। × एक बार किसी मुसलमान किसी ईसाई को मार डाला। इसपर घातक मृतक परिवार वालों के सुपुर्द कर दिया गया, ताकि वे से जो चाहें उचित दण्ड दें। =

उक्त बातों से सिद्ध होता है कि मुसलमानों का या व्यवहार था। ज़िम्मियों को नागरिक-स्वत्व प्राप्त —उनमें और मुस्लिमों में कोई अन्तर नहीं समझा ता था। और जिन क़ानूनों से ज़िम्मियों का म्बन्ध था उनको बनाते समय उनसे सलाह लेली ाती थी। ÷ हाँ, पोशाक उनको अपनी ही पहननी ड़ती थी। + इसका कारण यह नहीं कि उनकी पोशाक णित समझी जाती थी; बल्कि इससे शासक और शासित जातियों में अन्तर रखना ही अभीष्ट था। बाद में तो ख़लीफ़ा अब्दुलमलिक के समय में ज़िम्मियों की पोशाक ही दरबारी लिबास कर दी गई।

अब कुप्रसिद्ध 'जज़िया' कर के सम्बन्ध में दो शब्द सुनिए; क्योंकि, जज़िया का ज़िम्मी शब्द से बड़ा घनिष्ठ सम्बन्ध है। क़ुरान शरीफ़ में तो इसका कहीं उल्लेख आया नहीं—हां, हदीसों में यह पाया जाता है। यह शब्द इस्लाम की जन्मभूमि अरब का शब्द नहीं है। यह फ़ारसी शब्द गज़िया से अरबी में लिया गया। अरबी में 'ग' अक्षर न होने से ही गज़िया को जज़िया करना पड़ा। यह सैनिक कर था और उन लोगों से लिया जाता था, जो अनिवार्य सैनिक सेवा से बचना चाहते थे। ईरान के प्रसिद्ध न्यायी बादशाह नौशेरवाँ के समय में उनके यहाँ भी यह कर था।

मुसलमानी राजकर्त्ताओं ने इसकी उपयोगिता देख कर अपनी विधर्मी प्रजा पर यह कर लगाया। केवल विधर्मी प्रजा पर इसलिए कि इस्लामिक भ्रातृत्व के सदस्य अर्थात् मुसलमान लोग आवश्यकता पड़ने पर अपने भाइयों के लिए मर सकते थे। परन्तु ग़ैर-मुस्लिम प्रजा के लिए न तो सेना में भरती होना बाध्य था और न सैनिक का उत्तरदायित्वपूर्ण पद देने के लिए उनपर विश्वास ही किया जा सकता था। (आधुनिक समय में भी ब्रिटिश सरकार की ऐसी ही नीति है।) अमीर से अमीर आदमी से भी यह कर बीस रुपये वार्षिक से अधिक नहीं लिया जाता था, और ग़रीब आदमियों से तीन रुपये वार्षिक। स्त्री, बच्चे, अपाहिज और २० वर्ष से कम व ५० वर्ष से अधिक आयु वाले पुरुषों से यह कर नहीं लिया जाता था। इस कर के समान ही 'ज़कात' नामक एक दूसरा कर मुसलमानों से लिया जाता था। ❀

❀ फ़ीरोज़ुद्दीन कृत दरबारे इस्लाम; पृ० २७०—२७१।
† अलफ़ारूक़ – मौलाना शिब्ली कृत।
‡ दरबारे इस्लाम; पृ० २७०—२७१।
× इज़ालतुल ख़फ़ा; पृ० २१३। अलफ़ारूक़; पृ० १२८।
= अलफ़ारूक़; पृ० १२७।
÷ अलफ़ारूक़; पृ० १२७।
+ वहीं; पृ० १३०।

❀ दरबारे इस्लाम।

ख़लीफ़ा उमर के समय में एक दिन एक मनुष्य भीख माँग रहा था। ख़लीफ़ा ने भीख माँगने का कारण पूछा। उसने उत्तर दिया कि मैं जज़िया देने में असमर्थ हूँ। इसपर उमर उसे अपने घर ले गये, अपने पास से धन दिया और नियम बना दिया कि भविष्य में ग़रीब ज़िम्मियों को भी बैतुल माल (राज्यकोष) से सहायता दी जाय, जो अब तक केवल मुसलमान ग़रीबों को ही दी जाती थी। ❀

'धर्म और जाति का कुछ भी भेदभाव न रखने' की डींग हाँकने वाले आधुनिक साम्राज्यवादियों की अपेक्षा तो प्राचीन मुसलमानों का शासन कहीं अ था। मुहम्मदसाहब के ग़ारफ़ा नामक एक साथी शब्दों में ज़िम्मियों के ये अधिकार थे—"उ यह आज्ञा कदापि नहीं दी गई है कि रसूलिल्लाह खुल्लमखुल्ला गालियाँ दें। उनसे यही शर्त्त हुई है अपने गिरजों में जो चाहें करें और यदि उनपर शत्रु चढ़ आवे तो हम (मुसलमान) उनकी से लड़ें और उनपर कोई ऐसा भार न डालें, जिसे सहन कर सकें।" ÷

गोपालस्वरूप भटना

स्मारक

झूमते-से सौरभ के साथ,
लिये मिटते स्वप्नों का हार।
मधुर जो सोने का संगीत,
जा रहा है जीवन के पार।
तुम्हीं अपने प्राणों में मौन।
बांध लेते उसकी झंकार॥
कालकी लहरों में अविराम,
बुलबुले होते अंतर्ध्यान।
हाय, उनका छोटा ऐश्वर्य्य,
डूबता लेकर प्यासे प्राण।
समाहित हो जाती वह याद।
हृदय में तेरे हे पाषाण॥
पिघलती आँखों के संदेश,
आँसुओं के वे पारावार।
भग्न आशाओं के अवशेष,
जली अभिलाषाओं के तार।
मिला कर उच्छ्वासों की धूलि।
रँगाई है तूने तस्वीर॥
गूँथ करके सूखे अनुराग,
बीन करके प्राणों के दान।
मिले रज में स्वप्नों को ढूँढ,
खोज करके भूले आह्वान।
अनोखे-से माली निर्जीव।
बनाई है आंसू की माल॥
मिटा जिनको जाता है काल,
अमिट करते हो उनकी याद।
डुबा देता जिसको तूफ़ान,
अमर कर देते हो वह साध।
लुप्त जो हो जाती है चाह।
तुम्हीं उसको देते संदेश॥
राख में सोने का सा राज्य,
शून्य में रखते हो संगीत।
धूल से लिखते हो इतिहास,
बिन्दु में भरते हो वारीश।
तुम्हीमें रहता मूक वसन्त।
अरे सूखे फूलों के हास॥

महादेवी

❀ अलफ़ारूक़; पृ० १२८। किताबुल ख़िराज; पृ० ७२।

÷ अलफ़ारूक़; पृ० १२५।

विदेशी कपड़े का बहिष्कार

विलायती कपड़े के बहिष्कार का आन्दोलन पुनः इस देश में आरंभ हो गया है। इस बार बहिष्कार के आन्दोलन में कांग्रेस और लिबरल फ़ेडरेशन ों हैं। दोनों ही चाहते हैं कि विलायती कपड़े का पूर्ण ष्कार हो। सरकार ने १८ पेंस की हुंडियामन की दर के, रिज़र्व बैंक बिल उठा कर, और कमीशन में भारतीयों न रख कर नरमदल वालों का विश्वास खो दिया है। त नरमदल वाले सरकार के कट्टर आलोचक हो गये हैं। त वे भी यह समझ गये हैं कि ब्रिटिश राजनीतिज्ञों को स्त करने के लिए विलायती कपड़े का बहिष्कार अमोघ है। व्यावहारिक दृष्टि से सारे ब्रिटिश माल के ष्कार की आवश्यकता नहीं है। कारण, उसमें एक तो क बँट जाती है, और दूसरे पूर्ण न होने से बहिष्कार-यों में ही मतभेद हो जाता है। इसलिए, समस्त शी कपड़ों के बहिष्कार की माँग अत्यंत उपयुक्त है। कपड़े के बहिष्कार से अन्य वस्तुओं का बहिष्कार न ने पर भी अपने आप उनका बहिष्कार हो जाता है।

विदेशी कपड़े का यह बहिष्कार खादी और मिलों के ड़ों से किया जा सकता है। जो लोग कपड़े का व्यापार ते हैं, वे यह भलीभांति जानते हैं कि लंकाशायर के कपड़े व्यापार दिन पर दिन गिर रहा है। लंकाशायर का यह पार किसी तात्कालिक कारण से नहीं गिरा है। इस षय में लंदन के 'टाइम्स' में जो लेख प्रकाशित हुए हैं, नसे पता चलता है कि भारतवर्ष की माँग दिन पर दिन ट रही है, और चीन भी युद्ध आरंभ हो जाने के समय से टा और सस्ता कपड़ा नहीं मंगाता है। 'टाइम्स' के लेखक यह बतलाया है कि गत तीन-चार वर्ष से लंकाशायर के पड़े की दुर्दशा हो रही है। जब 'टाइम्स' के लेखक से छा गया कि 'भैया, बतलाओ, तुम्हारे लंकाशायर का यापार भारतवर्ष और चीन में क्यों गिरता जा रहा है?' तब सने सिर्फ़ यह कहा कि 'कुछ ऐसे गहरे कारण हैं, जिन्हें मैं तुम्हें ता नहीं सकता।' फिर थोड़ी देर के उपरांत वह लेखक प्रश्नकर्ता के सामने आकर कहने लगा कि तुम इससे प्रसन्न मत हो जाना कि लंकाशायर का व्यापार अब भारतवर्ष और चीन में नहीं चलेगा। उसने कहा कि अब यद्यपि स्वदेशी आन्दोलन से हमारे व्यापार को धक्का पहुँच रहा हैं, किन्तु वैदेशिक विनिमय की दर १८ पेंस हो जाने से हमें कुछ लाभ हुआ है। जबसे यह दर पास हुई है तबसे हमारे माल की भारतवर्ष में खपत बढ़ने लगी है। इधर कुछ महीनों में इतना माल भारतवर्ष में गया है कि जिसका कुछ ठिकाना नहीं। इससे यह स्पष्ट है कि हुंडियामन की दर से लंकाशायर को १२॥ रुपये सैकड़े का लाभ मिल गया और उसका माल देशी कपड़े से सस्ता पड़ने लगा। इस संबंध में बड़ी धारा-सभा में सरकार से कार्यवाही करने के के लिए बम्बई के प्रतिनिधियों ने निवेदन किया था; किन्तु सरकार ने अपनी असमर्थता प्रकट की। यदि भारतीय प्रतिनिधि कमीशन के बहिष्कार वाले प्रस्ताव की तरह एक-मत हो इस बार बजट के अवसर पर १६ पेंस की दर का प्रस्ताव पास कर दें, तो स्वदेशी कपड़े के प्रचार में विघ्न पैदा करने वाला यह कारण भी दूर हो जायगा। इसके साथ ही उन्हें यह भी प्रयत्न करना चाहिए कि विलायती कपड़े पर अधिक ज़कात बढ़े। क्योंकि भारत--सरकार की आय में वृद्धि होने के लिए विलायती कपड़े पर ज़कात बढ़ाना अत्यंत आवश्यक है।

खादी तैयार करने वाले और देशी कपड़ों के व्यापारियों का भी कुछ कर्तव्य है। यदि खादी के उत्पादक व्यापारिक दृष्टि से-सहकारी मण्डलों द्वारा खादी तैयार करें, तो उन्हें भी अच्छा मुनाफ़ा होगा और सर्व-साधारण को भी सस्ती खादी पहनने को मिलेगी। खादी के प्रचार के लिए भीख माँग कर रुपया एकत्र करने के बजाय व्यापारिक रूप में लोगों को धन लगाने के लिए उत्तेजित करना चाहिए। व्यापारियों को केवल साधारण ब्याज मिलना चाहिए। पर इससे भी अधिक कर्तव्य सूती मिलों के व्यापारियों का है। उन्हें अपना व्यापार स्वदेशी की वृद्धि के लिए करना चाहिए। हमें यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि भारतवर्ष भर में एक भी ऐसी कपड़े की मिल नहीं है, जो कपड़े का व्यापार स्वदेशी के अनुराग से करती हो। यद्यपि भारतीय

प्रजा देशी मिलों के कपड़े पर अपनी जान होम देती है, पर हमारे देशी कपड़े के व्यापारी अपनी जेबें भरते हैं। उन्हें स्वदेशी की कुछ भी चिंता नहीं। वे यह नहीं जानते हैं कि यह स्वदेशी की ही हलचल है, कि उनके माल की अत्यधिक खपत होती है। यदि उनके अनुकूल परिस्थिति भी हो तो बजाय इसके कि कुछ दाम घटावें वे अपना मुनाफ़ा बढ़ा देंगे। यह बात हम अपने कई वर्षों के अनुभव से लिख रहे हैं। देशी मिलों के मालिक मज़दूरों की मज़दूरी घटाने के लिए तो तुरंत आगे बढ़ आते हैं, किन्तु वे सस्ते इंजीनियर, मैनेजर और व्यवस्थापक नहीं रखते। मैनेजिंग एजन्ट् लाखों रुपयों पर प्रति वर्ष गुलछर्रे उड़ाते हैं बड़ी-बड़ी तनख़्वाहों पर अपने रिश्तेदारों को नौकर रखते हैं। सात-सात हज़ार रुपये एक-एक मैनेजर को मासिक वेतन मिलता है। व्यवस्था के नाम से वे ख़ूब अपना मेहनताना लेते हैं। इतना ही नहीं, कम्पनी की पूंजी को अपने व्यापार में लगाते हैं। उस पूंजी में से रक़म निकाल कर रुई का फाटका करते हैं। अगर फाटके में नफ़ा हुआ तो वह सौदा नहीं लिखा गया, और नफ़ा मैनेजिंग एजंट की जेब में गया; पर यदि घाटा हुआ, तो वह सौदा मिल के हिसाब में चढ़ा दिया गया! मिल के कच्चे और पक्के माल के ख़रीदने और बेचने में अपना नफ़ा अलग तय कर लेते हैं। बेचारे हिस्सेदार मिल-एजेंटों के इन काले-कारनामों से अनजान होते हैं। डाइरेक्टर ही कर्ता-धर्ता होने से मिलों के हिस्सेदारों को दिवाला निकलने पर रोना पड़ता है। बंगाल लक्ष्मी काटन मिल ही नहीं, भारतवर्ष की अधिकांश मिलों में यह अँधेरखाता जारी है। महायुद्ध के समय इन मिल वालों ने अत्यधिक नफ़ा बाँट दिया, पर रिज़र्व फंड बढ़ा कर मिलों का उद्योग बढ़ाने की किंचित् भी चेष्टा नहीं की। मिलों के डाइरेक्टर मोटरों में बैठकर अवसर-विशेष पर कारख़ानों में अपनी झाँकी दे आते हैं। इस अवस्था में भारतीय मिलों का माल जापान से क्यों न महँगा तैयार हो? जिस जापान की मिलों के लिए सरकारी सहायता के अलावा उसके डाइरेक्टर प्रति वर्ष नाम मात्र का नफ़ा लेते हैं, और पैदावार बढ़ाने के लिए अधिक से अधिक परिश्रम करते हैं, वहाँ दुगने शटल चलते हैं। मैनेजिंग एजंट सेवा-रूप में काम करते हैं। मिलों के लिए सस्ते भाव में रुई ख़रीदते हैं। वे रुई का सट्टा और बीमे का नफ़ा अपनी जेबें नहीं भरते हैं। मिलों का नफ़ा पैदावार के अलावा मज़दूरों की आर्थिक और नैतिक अवस्था में लगाते हैं। जापानी मज़दूरों की शारीरिक अवस्था आमदनी और काम करने की योग्यता मिल-मालि उद्योग से बढ़ी हुई है। यहाँ के २० मज़दूरों का काम ८ मज़दूर करते हैं। शरीर में वे हृष्ट-पुष्ट हैं। पर और अहमदाबाद के मज़दूरों का सर्वनाश हो इसलिए समय रहते सुधार होना चाहिए। मिलों के और मज़दूरों के नेता दोनों को इन सुधारों के लिए होना चाहिए।

इसके अलावा इस बहिष्कार की हलचल में मालिकों को अपने माल का ख़ूब प्रचार करना चा मिल-मालिक इस समय स्वदेशी कपड़े की खपत आ से बढ़ा सकते हैं। प्रचार इसका सबसे सुगम साध इसी प्रचार के द्वारा कपड़े की खपत बढ़ेगी। लंका और जापान ने इसी प्रचार के द्वारा विदेशों में अपने की खपत बढ़ाई है। स्वदेशी-प्रदर्शिनी, स्वदेशी कायल मेला, स्वदेशी कपड़े की ख़ास-ख़ास दूकानें, और सामयिक पत्रों में विज्ञप्तियाँ आदि प्रचार के अनेक साधन हैं। मालिकों को ये सब साधन भारतवर्ष के गाँव-गाँव में कर देने चाहिएँ, जिससे कि लोगों को सस्ते भाव में मिलने लगे। यदि वे सच्चे भाव से काम करने को तत्पर हों, तो देश के राजनैतिक नेता भी उनका पूरा देंगे। इससे उनके माल की खपत बढ़ेगी और खादी का व्यवहार बढ़ेगा।

यह अवसर है कि कपड़े के व्यवसाय में भा अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है। १९१३-१४ में भा में ३०४ करोड़ २० लाख गज़ कपड़ा विदेशों से आया इसमें ९३ सैकड़ा माल ग्रेट ब्रिटेन से आया था। पर के मार्च महीने के अंत में १७६ करोड़ ७० लाख गज़ विदेशों से आया, और इसमें ग्रेट ब्रिटेन के माल का ८२.५ सैकड़ा था। इससे अनुमान लग जायगा कि वर्ष में विदेशी कपड़े का आयात कितना अधिक है। अब भारतीय मिलों की पैदावार १९१३-१४ से

रोड़ गज़ बढ़ गई है। पर यह भी ध्यान देने योग्य है कि
९१३-१४ की अपेक्षा इस समय भारतवर्ष में मिलों के
ने हुए कपड़ों की खपत ७० करोड़ गज़ रह गई है, जो
पत १९१३-१४ की अपेक्षा कम है। निश्चय ही खादी की
दावार ने इसका कुछ स्थान ले लिया है। हम यह तो नहीं
ह सकते कि भारतीय मिलों में ७० करोड़ गज़ कपड़ा
यार होता है, पर आज इस महँगी के ज़माने में लोगों ने
पड़ा पहनना कम कर दिया है। बिना किसी नये उद्योग
किये भी केवल चतुर्थांश माँग छोड़कर भारतवर्ष विदेशी
पड़े का बहिष्कार कर सकता है। पर इस चतुर्थांश कपड़े
पैदावार भी मिल वाले और खादी पैदा करने वाले एक-
वर्ष ही में बढ़ा सकते हैं। आवश्यकता है व्यापारिक
से अच्छे माल की पैदावार बढ़ाने की।

खादी के उत्पादकों को भी अपने माल का प्रचार करना
हिए। खादी की पैदावार व्यापारिक ढंग से करने पर
दी की अत्यधिक खपत बढ़ेगी। खादी के उत्पादकों को
हकों की अधिक दामों की शिकायतें बंद करने का पूर्ण
यत्न करना चाहिए। कपड़े की अपेक्षा सूत की अवस्था
ज़ुक है। १९२४ से भारतीय मिलों में ७२ करोड़ ४०
ख गज़ सूत खपा, और इतना ही सूत इस देश में तैयार
आ। पर यदि भारतवर्ष को कपड़े के व्यवसाय में विदेशी
धन से स्वतंत्रता करना है, तो उसे अपनी पैदावार से
२ करोड़ ९० लाख गज़ कपड़े की आमदनी रोकनी
हिए, जो प्रति वर्ष इस देश में होती है। दूसरे शब्दों में
में कपड़े के व्यवसाय में स्वतंत्र होने के लिए ३६ करोड़
ज़ सूत चाहिए अर्थात् आजकल भारतीय मिलों में जितना
त पैदा हो रहा है, उसका आधा। पर क्या यह संभव है
के भारतीय मिलें पचास सैकड़ा सूत की पैदावार बढ़ा देंगी?

यही प्रश्न सबसे मुख्य है। पर हम यह विश्वास करते
कि यदि मिल वाले और खादी वाले दोनों मिल कर
यत्न करें, तो वे विदेशी कपड़े की चौथाई आमदनी को बंद
र सकते हैं। इस समय ८० लाख तकुए ७२ करोड़ गज़
सूत तैयार करते हैं। इससे यह स्पष्ट है कि यदि ४०
लाख तकुए और बढ़ा दिये जायँ, तो निश्चय ही पचास
सैकड़ा सूत की पैदावार बढ़ जाय। हमारा विश्वास है कि तकुओं की यह संख्या अवश्य बढ़ जायगी। इससे हमें भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है। कारण, भारतवर्ष ने जापान की घोर प्रतिद्वंदिता के सामने भी सात वर्ष में २० लाख तकुओं की मिलों में वृद्धि की है। इसके अतिरिक्त विशुद्ध खादी के उत्पादकों के तकुओं की संख्या भी उपेक्षणीय नहीं है।

अंत में हमारे कहने का तात्पर्य यह है कि कपड़े के व्यवसाय में भारतवर्ष थोड़े समय में ही स्वतन्त्र हो सकता है, यदि हम पूर्ण उत्साह और परिश्रम से प्रयत्न करें। मिलें, हैण्डलूम और चर्खा तीनों का सहयोग प्रयोजनीय है। यद्यपि भारतवासियों में मोटा कपड़ा पहनने की आदत पड़ गई है, तथापि इस ओर भी अधिक आंदोलन करने की आवश्यकता है। कारण, व्यापारिक दृष्टि से यह संभव नहीं है कि आरंभ में ही भारतवर्ष लंकाशायर की मिलों की प्रतिद्वंद्विता सुंदर बारीक कपड़ा तैयार करने में करने लगे। इस समय एकमात्र आवश्यकता यह है कि भारतवासी फ़ैंसी कपड़ा पहनना छोड़ दें, जिससे उसकी आमदनी घटे। बहिष्कारवादियों को अपना ध्यान इस फ़ैंसी कपड़े की आमदनी घटाने में लगाना चाहिए।

जी० एस० पथिक

"यह आशा मैं नहीं छोड़ता कि किसी दिन मिलवाले राष्ट्र की दृष्टि को स्वीकार कर लेंगे। ...अगर मिलें जनता को लूटने के लिए नहीं, जैसी कि वे आज चलायी जा रही हैं, बल्कि उनकी सेवा करने के लिए चलायी जायँ, तो वे घर घर के चर्खों और कर्घों के काम में मदद करेंगी, और उनकी जगह नहीं ले लेंगी, जो आज वे लेती हैं। इसमें कोई शक नहीं है कि अगर वे मेरी बतलायी शर्त्तें स्वीकार करने में हिचकें तो इसका कारण यह होगा कि उन शर्त्तों के युक्तिसंगत फल से मिल-मालिक घबराते हैं, जैसे कि अँग्रेज़ों को इस युक्तिसंगत नतीजे से घबराहट होती है कि वे सचमुच में राष्ट्र के सेवक हैं।" —महात्मा गाँधी

उद्धार कैसे हो ?

भारतवर्ष पराधीन क्यों है ? यहाँ पर कमी किस बात की है ? इस देश पर प्रकृति प्रसन्न है । इस देश में करोड़ों इतरदेशीय लोग अपना पेट भरते हैं । इस देश के मनुष्यों में आजकल भी जगत्प्रसिद्ध कवि, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ और आचार्य मौजूद हैं। सम्पत्तिशाली मनुष्यों की भी वैसी कमी नहीं है । फिर भी यह देश पराधीन है, और इस देश के रहने वालों को अपने स्वाधीन होने की आशा दूर भागती हुई दिखाई देती है ! यह क्यों ? इसका कारण ? कसर किस बात की है ?

इस प्रश्न का उत्तर देना जितना सहज है उतना ही कठिन है । सब अपने-अपने दृष्टिकोण से इसका उत्तर देने को तैयार हैं । फ़ौरन कहा जा सकता है— यहाँ पर एकता नहीं; यहाँ हिन्दू-मुस्लिम वैमनस्य बढ़ा हुआ है; यहाँ पर हिन्दू-समाज संगठित नहीं है; यहाँ पर जनता का एक बड़ा भाग अछूत समझा जाता है; यहाँ पर असंख्य विधवायें कष्ट भोग रही हैं; यहाँ नाना प्रकार की सामाजिक कुरीतियाँ प्रचलित हैं; यहाँ पर प्राचीन मर्यादा छोड़ दी गई है, वर्णाश्रम-व्यवस्था का भङ्ग होगया है; यहाँ के लोग संसार के साथ चलने को तैयार नहीं हैं—वे कूपमण्डूक हैं और दूसरों से सद्गुण लेने को तत्पर नहीं हैं; यहाँ की शिक्षा-पद्धति अच्छी नहीं; व्यवसाय सीखने का सुप्रबन्ध नहीं; ब्रिटिश लोग इस देश को स्वाधीन नहीं होने देते; वे इस देश के निवासियों को सैनिक शिक्षा नहीं देते, वे दमन-नीति का प्रयोग करते हैं, यहाँ के उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन नहीं देते । और भी अनेक बातें इस प्रश्न के उत्तर में कही जा सकती हैं । और इन बातों की सचाई को अस्वीकार भी कौन कर सकता है ?

परन्तु मेरे मन में तो यह प्रश्न फिर भी ज्यों का त्यों रहता है; और मैं तो फिर पूछता हूँ—आख़िर भारतवर्ष पराधीन क्यों है ? मेरी समझ में तो सब बातोंकी एक बात यह है कि भारत पराधीन है, क्योंकि भारतवासियोंको स्वाधीन होने की सच्ची लगन नहीं है । संभव है, इस बात को ठीक न समझा जाय; संभव है, इस उत्तर में क्षुद्रता की गन्ध जान पड़े; परन्तु मैं तो फिर भी यही कहूँगा कि भारतवासियों को स्वाधीन होने की सच्ची लगन नहीं। अर्थ यह है । हम लोगों की नस-नस में कौड़ि पड़ी है; सामाजिक जीवन का रहस्य क्या है, म है, यह हमने समझा ही नहीं है । जितनी चि अपना विवाह करने की, अपने बालकों को सुशि की, कुटुम्ब का भरण-पोषण करने की, समाज में लाने की, अपने मौज से रहने की है, उससे सौ भी देश का कार्य करने की चिन्ता हमको नहीं समाज, देश या धर्म के लिए कुछ करने का प्रश्न तो हमारी सबकी 'परिस्थिति' आकर सामने खड़ी है। पर पुत्र या पुत्री का विवाह करना होगा, तो कहीं से भी रुपया लावेंगे, उधार भी लावेंगे औ से विवाह करेंगे । पिता का श्राद्ध करना होगा, भाँति से भी उसे सम्पन्न करेंगे । बालकों की शिक्षा बन्ध करने में कुछ उठा न रक्खेंगे —और नहीं भले आदमी से छात्रवृत्ति की भिक्षा ही माँगें आशय यह नहीं कि कुटुम्ब का पालन करना, शिक्षा देना आदि मनुष्य के लिए कर्त्तव्य नहीं शब्दों का यह अर्थ लगाना तो लेखक पर अ होगा । मेरा आशय तो यह है कि क्या मनुष्य का प्रति ही कर्तव्य है, समाज के प्रति कुछ नहीं है क्या ? जिस देश में जन्म लिया, जहाँ के से पोषित हुए, जिसमें रहते हैं, शिक्षा पाये हैं, देश का हमारे ऊपर किसी प्रकार का हक़ ही नहीं

जिस देश में रहकर हम सैकड़ों, हज़ारों, ला करोड़ों कमाते हैं, उस देश के कार्य के लिए हमारी 'परिस्थिति' क्यों रुकावट पैदा करती है? को इतना आवश्यक समझते हैं, तो समाज के का उतना आवश्यक क्यों नहीं मानते ? जिस दे अपने निज के कार्य के लिए २४ घण्टे बिताते हैं, के कार्य के लिए घण्टा दो घण्टा भी नहीं बचा भाई ख़ूब कमाने पर उतरे हुए हैं, तो वे पां सेवा के लिए भी क्यों नहीं समर्पण कर देते ?

महात्मा गांधी ने एक बार लिखा था—दू देश-भक्ति करना जनता का स्वभाव है, इस देश

भी सिखाना पड़ती है। महात्मा जी की यह उक्ति मुझको अक्षरशः सही मालूम पड़ती है। इसका तात्पर्य यह है कि हम लोग अपने व्यक्तिगत अथवा कौटुम्बिक हित-साधन के लिए चाहे जितना परिश्रम कर सकते हैं, परन्तु सामाजिक हित-साधन के लिए भी उतना ही परिश्रम करने को हम तैयार नहीं हैं। समाज के व्यक्तियों की इस दुरवस्था के बराबरी का और कोई दुर्भाग्य समाज के लिए नहीं है। जब सभी यह कह कर दूर हट जावें कि 'साहब, हमारे तो घर की स्थिति ऐसी नहीं है—क्या करें ?' तो फिर बताइये देश का कार्य करेगा कौन ? पराधीनता ऐसी-वैसी बात तो है नहीं, जिसे मिटाने में आप अपने व्यक्तिगत और कौटुम्बिक सुख को बिना छेड़े हुए ही सहायक हो सकें। जिस प्रकार हम अपने आपको असमर्थ मानकर चुप हो जाते हैं, वैसे ही दूसरे भी अपने आपको असमर्थ मान लेंगे, तो उन्हें कुछ कहने का हमें क्या अधिकार हो सकता है ?

यह तो हुई एक बात। दूसरी बात यह है कि हम शास्त्रार्थ तो बहुत करते हैं, परन्तु जितना शास्त्रार्थ करते हैं, उसके शतांश का भी प्रभाव हमारे खुद के जीवन पर नहीं पड़ता है। जिस मार्ग पर चलने का वास्तव में हमारा निश्चय कभी भी नहीं होता, उसको अन्त तक पहले से ही देख लेने का लोभ हमको रहता है। पाठशाला के विद्यार्थी अपनी वाद सभा में कुछ भी प्रस्ताव सर्व-सम्मति से स्वीकार कर लेने पर भी अपनेको उस प्रस्ताव से बँधा हुआ नहीं मानते। यही भाव हमारा है। हम बहस तो बहुत फैला लेंगे, पर निर्णय पर पहुँचने में बड़ा समय लगायेंगे; किंतु निर्णय हो जाने के बाद कुछ करना भी है, इसका विचार ही नहीं आता है। केवल कल्पना के क्षेत्र में विचरण करने से हमारा जी नहीं ऊबता। कुछ सभाओं का मुझे अनुभव है। वहाँ पर उद्देश्य, नियम स्थिर करने में बड़ी बहस चली—घण्टे बीत गये; परंतु जिन्होंने इस बहस को लम्बी की, उनके कुछ भी न करने के इरादे का तड़पाने वाला ज्ञान मुझको है। जिसको वादा करके पूरा करने का भी ध्यान रहता है, वह सदा सोच-समझकर वादा करेगा। जिसको वास्तव में चन्दा देना है, वह सोच-समझ कर लिखेगा। जिसको बहस के बाद कुछ करना भी है वह, मेरी सम्मति में, अवश्य कम बहस करेगा। अतएव आजकल की परिस्थिति में जब हमको अवश्य कुछ करना चाहिए, तो केवल कल्पना से सम्बन्ध रखने वाली बहस को बढ़ाने से क्या लाभ है ? क्यों व्यर्थ झूठी आपत्तियाँ उठा-उठाकर वास्तविक कार्य के मार्ग में कांटे फैलायें ? क्यों संगृहीत मतभेद खड़े करें ? महात्माजी की 'सत्य' की नीति के विरुद्ध दलील देते समय मेरे एक मित्र ने कहा—'जब हमारे दूत दूसरे देशों में जायेंगे, तो क्या वे केवल सत्य ही बोल सकेंगे ?' और सत्य ही बोलेंगे, तो क्या देश का हितसाधन कर सकेंगे ? इसका क्या उत्तर दिया जाय ? सत्य के आदर्श की कठिनाइयों की कल्पना करने के बजाय हमको चाहिए कि स्वयं व्यक्तिगत जीवन में तो सत्य का अभ्यास करें। मेरे मित्र की जैसी दलील से सत्य के आदर्श में विश्वास रखने वालों को धक्का पहुँचता है—और वे सत्य की कठिनाइयों की कल्पना से असत्य की ओर प्रवृत्त हो जावें, अथवा असत्य में कम बुराई देखने लग जायँ, तो आश्चर्य नहीं। जिसने सत्य का अभ्यास व्यक्तिगत और सार्वजनिक जीवन में कर लिया है, वह सहज समझ सकता है कि सत्य का सिद्धांत व्यवहार में उतना कठिन नहीं है, जितना अभ्यास न करने वाले लोग समझते हैं।

आजकल 'त्याग' शब्द की ही दुर्दशा हो रही है। त्याग के भाव का प्रचार तो हुआ ही नहीं, उसके विरुद्ध आवाज़ें भी चारों ओर से उठने लगीं। इसमें भी मुझे हमारी विचार प्रणाली का ही दोष मालूम होता है। हम लोग दलील अपने सुभीते के अनुकूल कर लेते हैं। त्याग के विरुद्ध कहने वाले यह दलील देते हैं कि सभी त्यागी हो जायेंगे तो देश का क्या हाल होगा—जिनको पेट भर खाने को नहीं मिलता उन्हें त्याग के लिए कैसे कहा जाय, उन्हें तो यही उपदेश न दिया जाय कि तुम तो लाखों-करोड़ों कमाओ और आराम से रहने की योग्यता प्राप्त करो ? परन्तु इस दलील के मूल में भ्रम है और, सच पूछिए तो, इस प्रकार 'त्याग' शब्द के अर्थ की हत्या करना है।

त्याग शब्द का अर्थ केवल इतना ही होना चाहिए कि हम लोग हमारे लिए जैसे परिश्रम करते हैं, कमाते हैं, वैसे ही समाज के लिए भी करें। संसार को त्याग देना, देश को त्याग देना, विरक्त हो जाना, कम कमाने से सन्तुष्ट होजाना,

यह त्याग का अर्थ नहीं है। इसके अलावा त्याग करने वालों की श्रेणियां होती हैं। समाज के सामूहिक हित के लिए अपने निज के और अपने कुटुम्ब के स्वार्थ को थोड़ा-बहुत तो सभी को छोड़ना पड़ेगा—परन्तु उन सभी का त्याग बराबर नहीं हो सकता।

एक तो ब्राह्मण-वृत्ति होती है और दूसरी होती है वैश्य-वृत्ति। ब्राह्मण-वृत्ति उसकी कही जाती है कि जो अपने आपको समाज के लिए क़तई सौंप चुका—जिसकी कुल शक्तियां समाज के काम में लगेंगी—जिसे अपने अथवा अपने कुटुम्ब के लिए अपना जीवन बिता देना स्वीकार न होने से जो समाज को ही अपना कुटुम्ब समझ लेगा और समाज के लिए ही वे काम करेगा, जो वह अपने कुटुम्ब के लिए करता। ऐसे ब्राह्मण पहले भी कम थे, और अब भी अवश्य कम रहेंगे। इन ब्राह्मणों की आवश्यकतायें कम होना स्वाभाविक है, इनको अपने ख़ुद के लिए कम रुपया चाहिएगा—चाहे वे समाज के लिए करोड़ों उथल-पुथल करते रहें। ऐसे ब्राह्मणों के पालन-पोषण का भार समाज पर होता है। जो लोग २४ घण्टे समाज के सामूहिक हित के लिए अपने आपको झोंकते रहते हैं, ऐसे तपस्वी त्यागियों की सेवा करना समाज का कर्त्तव्य है।

यह स्पष्ट है कि यह आदमी साधारण आदमियों के लिए बड़ा कठिन है। इसलिए इसके अधिक प्रचार होजाने का डर हमारे भोलेपन को प्रमाणित करता है। अपने आप मौज में रहना, कुटुम्ब को मौज में रखना, यह तो हर कोई आपके उपदेशों के बिना भी करेगा ही। इसके लिए आपको प्रचार करने की आवश्यकता नहीं। परन्तु अपने आपको भूल कर समाज के दुखों को अपने दुःख समझ लेना सहज का काम नहीं है। लाखों आदमियों को जब आप कहेंगे, तो सैकड़ों भी मुश्किल से तैयार होंगे। इसलिए त्याग के इस महान् आदर्श के अधिक परिचालन से हमारी उत्पादक शक्ति कम होजायगी, हमारा देश दरिद्र रह जायगा, हम कम सम्पन्न होंगे, हमारे नवयुवक विरक्त होकर संन्यासी होजायेंगे,—ये सब डर निर्मूल हैं।

मेरी सम्मति में एक धुन तो प्रत्येक देशवासी में होनी चाहिए—वह यह कि मैं समाज का आदमी हूँ, इसलिए समाज की सेवा के लिए भी यथाशक्ति श्रम करूँगा, कार्यों में भी भाग लूँगा, जिनसे मेरे ख़ुद के घर में नहीं आता; जिनसे चाहे मेरी कीर्त्ति नहीं होती, जि मुझे कष्ट भी उठाना न पड़े, परन्तु जिनसे मेरे ज का कुछ लाभ अवश्य होगा। इस धुन को मैं सामाजि धुन कहता हूँ— जब यह धुन सच्ची होगी, जब य वास्तव में लग जायगी, तो मनुष्य में एक विशेष प्र आकुलता आजायगी, एक बेचैनी हो जायगी, जो तीत है—जो केवल अनुभवगम्य है। इस धुन के आ किसी सामूहिक दुःख का पता लगेगा तो वह फिर होकर तमाशे नहीं देख सकता। वह चुपचाप नहीं वह कुछ न कुछ अवश्य करेगा, फिर वह अपनी श के अनुसार ही क्यों न हो। और वैसे साधारण भी वह अवश्य थोड़ा-बहुत समय ऐसे कामों में ल जिनका लाभ उसको या उसके कुटुम्ब को ही नहीं उसके देश या समाज को मिलेगा।

अब यह धुन या तो इतनी तीव्र हो सकती है कि व्य अपनी ५०००) मासिक कमा सकने की योग्य भूल कर केवल ७५) मासिक पर अपना गुज़र क समाज से ५०००) लेने के बजाय लाखों की मालि उसे दे दे—ऐसे आदमी खड़े करदे जो लाखों क्या की सम्पत्ति पैदा कर लें। जो मनुष्य ५०००) कमा हो, वह यह काम न करके यदि और प्रकार से सम शक्ति बढ़ायेगा, तो क्या यह समझा जायगा कि उस के लाभ से हानि हुई—उसके त्याग से देश की घटी? परन्तु जैसे ऊपर कहा, ऐसे ब्राह्मण अवश्य हो सकते हैं। जिस देश में बत्तीस करोड़ आदमी उसमें एक लाख तपस्वी होजायँ, तो कौनसी बड़ी हो गई? रही स्वयं सम्पत्ति कमाने की, सो बाक़ी के करोड़ निन्नानवें लाख आदमी बहुतसी सम्पत्ति कमा हैं और इस छोटीसी ब्राह्मण जाति को भोजन वस्त्र सकते हैं।

परन्तु हम तो दलील करते समय ऐसा ख़याल मालूम होते हैं, जैसे इस देश में करोड़ों त्यागी तपस्वी हैं। लाखों की संख्या में भिखारी और ठग इ

फिर रहे हैं उनको सम्पत्ति के उत्पादन में लगाने का विचार चाहे हम न करना चाहें, किन्तु विद्यार्थियों और नवयुवकों के सामने त्यागी हो कर देश की सेवा करने के आदर्श की निन्दा करने में हमें तनिक सङ्कोच नहीं होता! यह कितने बड़े मर्मभेदी दुःख का विषय है।

ऐसी कड़ी ब्राह्मण-वृत्ति को अङ्गीकार करने की दिव्य शक्ति जो अपने आप नहीं पाते, उन्हें सोचना चाहिए कि वे उससे कितना कम और किस समय में क्या कर सकते हैं? उनमें से यदि कोई करोड़पति बनने की शक्ति अपने आप में पाता है, तो अवश्य दो करोड़ से भी अधिक कमावे, परन्तु इतना ध्यान रक्खे कि उसकी करोड़ की सम्पत्ति पर उसका अकेले का कोई हक़ नहीं है—वह रुपया भी समाज का ही है—उसे प्रत्यक्ष में कमाने का रूप संयोगवश मिल-गया है। इसका यह अर्थ हर्गिज़ नहीं कि इसको उस सम्पत्ति का उपभोग करने का अकेले को स्वत्व है। वह सम्पत्ति समाज से प्राप्त हुई है। और उसीके हित में ख़र्च होनी चाहिए। यह वैश्य-वृत्ति हुई और उससे सम्बन्ध रखने वाले त्याग का यह स्वरूप है।

कुछ मनुष्य क्षात्र वृत्ति से देश की सेवा कर सकते हैं। यह ब्राह्मण-वृत्ति और वैश्य-वृत्ति दोनों से भिन्न है। समाज के शत्रुओं से उसकी रक्षा करना क्षात्र वृत्ति वाले का धर्म है। समाज उसको रक्षा के बदले में अवश्य यथोचित देगा; किन्तु यदि वह रक्षक होने के गर्व में समाज को दबाने लगेगा, तो समाज उसके अत्याचार को नहीं सहेगा—और, ऐसे रक्षक के विरुद्ध समाज अपनी रक्षा करने को कटिबद्ध हो जायगा।

जिन लोगों में तीनों में से कोई सी भी शक्ति न हो, उनके लिए भी समाज में स्थान है। ऐसे साधारण कोटि के मनुष्य भी समाज का हित साधन कर सकते हैं—क्योंकि, तलवार की जगह तलवार और सुई की जगह सुई ही काम देती है।

इसका मतलब यह है कि समाज के प्रत्येक व्यक्ति को यह याद रखना चाहिये कि वह अमुक समाज का सभ्य है। और यदि उस समाज में आराम से रहने का उसको अधिकार प्राप्त है, यदि उसे कहीं की नागरिकता प्राप्त है, तो उस अधिकार के साथ-साथ उसका कर्तव्य भी है, ज़िम्मेवारी भी है। अधिकारों की कम चर्चा करके, उससे कम से कम लाभ उठाने का इरादा रखता हुआ, जितना अधिक से अधिक सामाजिक कर्तव्य का पालन मनुष्य करेगा, उतना ही वह अधिक बड़ा होगा—अधिक ऊँचा उठेगा। ऐसी सामाजिक वृत्ति वाले मनुष्य जिस समाज में होंगे, उस समाज पर दूसरे लोग शासन नहीं कर सकेंगे।

परन्तु जिनपर दूसरों का शासन जम चुका है, वे क्या करें? उनको तो लाखों-करोड़ों की संख्या में जलती हुई आग में कूद पड़ना चाहिए, गोले बरसाने वाली तोपों के सामने दौड़ना चाहिए। घमासान युद्ध में कूद कर मर जाना चाहिए। उनको कहाँ कुटुंब याद आवेगा? उनको कहाँ राग-रंग सूझेगा? उनके लिए साहित्य-संगीत-कला अवश्य गौण वस्तुयें होंगी। उनके लिए चटक-मटक की पोशाकों और शौक़ीनी के नाच-खेल का कुछ भी अर्थ नहीं हो सकता। भूखे रहें, प्यासे रहें, नंगे रहें, परन्तु करें वही काम, जिससे उनका समाज स्वाधीन हो। फिर ऐसे महायज्ञ में ऐसों की आहुति हो चुकने के बाद वह युग आ जायगा, जिसमें साहित्य बढ़ेगा, आमोद-प्रमोद होगा और मौज उड़ेगी। परन्तु ऐसा यज्ञ हुए बिना आमोद-प्रमोद बिडम्बना-मात्र है, साहित्य भार-मात्र है, संगीत बकवास-मात्र है।

अब प्रश्न उठ सकता है—इन वाक्यों का अर्थ क्या हुआ? हम करें क्या? इसका उत्तर मैं क्या दूँ! जिनके दिलों में पीड़ा होती हो, वे अपना-अपना अलग इलाज आप ढूँढें—आख़िर में सब सयानों का एक मत हो जायगा—आवश्यकता केवल सचाई की हैं। चर्ख़े में विश्वास हो, चर्ख़े का प्रचार करें; ग्राम्य-संगठन में विश्वास हो, ग्राम्य-संगठन करें; सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध प्रचार करना हो, तो वह करें; अछूतों का उद्धार करना हो, तो उनका उद्धार करें; राज्य करने वालों को दरख़्वास्तें देने में विश्वास हो, उनको ज़ोरदार दरख़्वास्तें दे-देकर ही उनकी नाक में दम करदें; व्यापारिक उन्नति के लिए लड़ना हो, उनके लिए लड़ें; सैनिक शिक्षा का अधिकार लेना हो, तो उसके लिए कमर कस लें; स्कूल में मास्टर रहने-मात्र की ही शक्ति हो, अथवा यही सर्वोत्तम मालूम होता हो, तो अपने शिष्यों को इस चालू महासमर

की तैयारी करा दें, परन्तु सच्चे दिल से कुछ करें तो सही—एक बार कुटुम्ब के बाहर कूद कर निकलें तो सही—एक बार सार्वजनिक कार्य का नशा छावे तो सही।

मनुष्यों का साधारण कार्य-क्रम बन्द नहीं हो सकता। खाना, पीना, हँसना, रोना, विवाद करना, संतान पैदा करना, मरना—यह सभी कुछ चलता रहेगा। परन्तु जैसे संसार में रहने वाले जीवन-मुक्त को करते हुए भी कुछ छू नहीं सकता, वैसे ही समाज-सेवा के महत्व ही में आहुति देने-वाले को भी उस यज्ञ की लहर में ही रहना होगा। तभी यज्ञ सफल है, नहीं तो राक्षस यज्ञ का विध्वंस करने में कोई कसर न रक्खेंगे।

छोटी ज़िम्मेवारी को ठीक-ठीक पूरी करने वाला बड़ी को भी पूरी कर सकता है। छोटी ज़िम्मेवारियों को भूल जाने पर ज़ोर नहीं है, ज़ोर है बड़ी ज़िम्मेवारियों को न भूल जाने पर और अपनी अधिक से अधिक शक्ति की छोटी ज़िम्मेवारियों से बचाकर बड़ी ज़िम्मेवारियों में लगा देने पर। भगवान् करें कि हम लोग इस तत्त्व को पहचानें और भगवान् की कृपा से कौटुंबिक कर्त्तव्य को सर्वथा गौण करके नहीं तो उसके साथ-साथ सामाजिक कर्त्तव्य का पालन करने की शक्ति हममें अवश्य आवे!

हीरालाल शास्त्री

विजय

धारण किये वर्म खद्दर का, साहस-शौर्य दिखाते थे।
भ्रातृ-भाव का शंख बजाते, गीत राष्ट्र का गाते थे॥
अपने प्रबल अहिंसा-बल से, शासक-दिल दहलाते थे।
मातृ-भूमि के वीर लड़ाके, आगे बढ़ते जाते थे॥
वह उत्साह-उमंग देख कर,
हुआ विजय का मन चंचल।
एक बार फहरा दे फिर वह,
राष्ट्र-पताका का अंचल॥

उच्चेश्वरप्रसाद सिंह

जननी के अञ्चल में

भारत-माता अपने नव-जनित शिशु को पान करा रही थी। उसका रत्न हार चमक रहा था और उसकी ज्योति उसके के मुख को प्रकाशमान कर रही थी। लोगों की उसके हृदय-प्रदेश पर पड़ी और उन्होंने माता आक्रमण कर दिया। माता ने बच्चे को रोता छो अपना स्तन ढक लिया। क्या कोई कह सकता कितने रत्न और भारत की विस्मृतियाँ उसके अ में छिपी पड़ी हैं? तक्षशिला (Taxila) और नाथ के स्तूपों के खोदने की बात अभी कल की पर यह भी स्कूल की पुस्तकों में पर्याप्त स्थान पा हैं। परन्तु अभा तो माता के हृदय-प्रदेश में ऐसी वस्तुयें वर्त्तमान हैं, जिनसे भारत का प्रा गौरव डंके की चोट संसार में फैल रहा है। भारत को ब्रिटिश साम्राज्यवादी 'असभ्य' और अ क्षित कहते हैं, उसी भारत की प्राचीन कला देख कर संसार आज चकित हो रहा है। दिल्ली लौह-स्तम्भ को काट कर संसार के सबसे बड़े रसा शास्त्रियों ने परीक्षा की, परन्तु यह जानने में अस रहे कि वह किस वस्तु का बना है! सारनाथ 'धर्म-चक्र' को देखकर यह प्रतीत होता है कि १० मिनट पूर्व सांचे में ढलकर तैयार हुआ है। ऐसा ही स्थान मैंने भी देखा है, जो प्राचीन कला का भंडार प्रतीत होता है। क्या पाठक उसे जा चाहेंगे?

शेखावाटी प्रान्त के पास दक्षिण-पश्चिम के में जोधपुर राज्य के अंतर्गत एक सुँजरासन नाम छोटा सा ग्राम है। यह ग्राम शेखावाटी में 'लोसल' से लगभग ५ मील पश्चिम की ओर जब मैंने इसके बारे में किम्बदन्तियाँ सुनीं, तो

वहाँ जाने की इच्छा हुई । और गत २९ फ़रवरी मैं वहाँ गया भी ।

सुँजरासन एक छोटा-सा ग्राम है; लगभग सवा घर होंगे । इस ग्राम के मालिक एक ठाकुर हैं। ने ज़माने में यह नगर महाभारत के प्रसिद्ध वीर ा शल्य की राजधानी थी । और उस समय इसका 'सुंदराआसन' बताया जाता है । यही सुंदरासन ाड़ते-बिगड़ते 'सुंजरासन' हो गया । इस बात का प्रमाण अभी हाल ही में मिला है । एक टीला दने से यहाँ पत्थरों का एक सुन्दर आसन निकला जिसमें बहुत से अमूल्य-रत्न जड़े हुए थे । इस सन का कुछ भाग अब भी भग्नावस्था में ठाकुर ब के यहाँ वर्त्तमान है । यह घटना केवल २५-३० की है ।

गाँव से उत्तर ओर एक देवी का मन्दिर है । का नाम 'सुरजलदेवी' है । लोगों से पूछने पर चला कि एक देवी यहाँ चिता बनाकर भस्म हो । बस, उन्हींके स्मारक-स्वरूप, 'राव' के यहाँ से मन्दिर बन गया । यह तो लोक-कथा हुई । सच्ची मैं क्या जानूं ? यह तो ओझाजी सरीखे इतिहा- जानें । हमें मन्दिर के पूरब और दक्षिण एक ा है, उसमें कुछ गड़ा हुआ प्रतीत होता है । ा खुदवाने पर कुछ नई बातों के मिलने की आशा क्योंकि आसन भी यहीं कहीं गड़ा मिला था ।

मन्दिर एक पुरानी रचना है । इसका प्रमाण ल इतना ही पर्याप्त होगा कि मन्दिर की छत का ापन देखकर कौवा भी थोड़ी देर के लिए लज्जित जावेगा—मन्दिर की कुर्सी लगभग आदमी की ाई के बराबर होगी । एक कमरा लगभग २० थ लम्बा और १० हाथ चौड़ा है, उसमें चित्रकारी हुए ८ छोटे और ८ बड़े खम्भे हैं । कमरे के भाग से पश्चिम की ओर मन्दिर स्थित है । मन्दिर शिवालय के आकार का है—परन्तु, बीच में एक तह है । मन्दिर की छत बहुत नीची है । मन्दिर का आंधार लगभग ५ हाथ लम्बे, २ हाथ चौड़े तथा १ हाथ ऊँचे पत्थरों का बना हुआ है । अन्दर एक शिला, जिसपर सिंहासन है, ३ हाथ लम्बी और २ हाथ ऊँची है और उसपर अनेक प्रकार की शिल्पकारी को हुई है । उस सिंहासन पर अनेक स्थानों से मूर्तियाँ एकत्रित करके रक्खी हुई हैं । मन्दिर के द्वार पर बहुत सी मूर्तियाँ बनाई गई हैं । कुछ टूट-फूट गई हैं । शान्ति यहाँ पर इतनी है कि उसका वर्णन नहीं हो सकता । यहाँ पहुँचते ही एकाएक मुँह से निकल पड़ता है—

> देवि प्रपन्नार्तिहरे प्रसीद, प्रसीद मातर्जगतोऽखिलस्य ।
> प्रसीद विश्वेश्वरि पाहि विश्वं, त्वमीश्वरी देवि चराचरास्य ॥

सचमुच यहाँ पर मैंने साकार शांति देखी । मन्दिर के उत्तरपार्श्व में सिंह की मुखाकृति का एक पत्थर का नाबदान है । मन्दिर का बाहरी पार्श्व (अर्थात् उत्तर, पश्चिम और दक्षिण की ओर का हिस्सा) एक ही आकार, एक ही तक्षणकला और एक ही प्रकार की मूर्तियों की बनी हुई एक-एक शिला से बना हुआ है । मूर्तियाँ अधिकाँश प्राचीनता के कारण टूट गई हैं। जहाँ तक मैंने ध्यानपूर्वक देखा, उस शिला का आकार लगभग ५ हाथ लंबा और ५ हाथ चौड़ा मिला । यह शिला नीचे से ऊपर तक चार मुख्य खंडों में विभाजित है । ऊपर से सर्वप्रथम खंड में आसन जमाये हुए सर्प और त्रिशूलधारी भगवान् शंकर की मूर्ति वर्त्तमान है । दूसरे खंड में एक महाकाय नाहर पर विराजमान चतुर्भुजी दुर्गा की मूर्ति है । एक हाथ में खड्ग, दूसरे में मुंड, तीसरे में कमल है, चौथे में साफ़ पता नहीं चला कि क्या वस्तु है । दुर्गा की विशाल मूर्ति के नीचे लक्ष्मी की मूर्ति है । लक्ष्मीजी कमल पर आरूढ़ होकर क्षीर-

सागर में भगवान् का ध्यान कर रही हैं और उन्हीं के नीचे सरस्वतीदेवी सितार लिये भगवान् का गुण-गान कर संसार को भगवद्भक्ति में तल्लीन होने का आदेश कर रही हैं। ठीक इसी प्रकार की तीन और मूर्तियाँ उत्तर, पश्चिम और दक्षिण की ओर के पार्श्व में लगी हुई हैं।

ऊपर का खंड आदमी की ऊँचाई से कुछ ही अधिक है। यह तीन हाथ लम्बे और क़रीब इतने ही चौड़े कारीगरी किये हुए पत्थरों से बना हुआ है। ऊपर का कोना समय ने कहीं उठाकर फेंक दिया है। प्राचीन मन्दिर होने पर भी ऊपर का भाग अभी कल का बना हुआ प्रतीत होता है।

मंदिर के भीतर कुछ ख़ज़ाना गड़ा हुआ है। यहाँ के लोग कहते हैं कि वर्त्तमान ठाकुर के पिता ने उस धन का कुछ अंश किसी और आदमी की सहायता से निकाला, परन्तु घर पहुँचते ही पहुँचते दोनों आदमी मर गये। प्रमाण-स्वरूप मंदिर के भीतर आसन से उत्तर-पूर्व के कोने का पत्थर कुछ उभड़ा हुआ भी है। और देखने से साफ़ पता चलता है कि यहां खोदा गया है। इसके चारों ओर लगभग २०० बीघा शमी-तरु से आच्छादित भूमि गोचारण के लिए छोड़ दी गई है। सुना जाता है कि जो कोई उसमें खेती करता है वह तत्काल मर जाता है। यहाँ तक कि जिस शमय जंगलों में शमी-तरु का पत्ता भी चारे के लिए नहीं छोड़ा जाता उस समय भी इन वृक्षों पर पत्तियां हवा और ऊँटों को छोड़ कर कोई आदमी नहीं छूता। एक बात और आश्चर्य की यह है कि इस देवी का दर्शन करने के लिए हर्षनाथ डूंगर से एक नाहर प्रति वर्ष आश्विन मास के नवरात्र में आता है और दर्शन करके लौट जाता है। यह नाहर किसी को कुछ हानि नहीं पहुँचाता है। इसको कितने ही मनुष्यों ने देखा है। स्वयं मुझसे कितने ऐसे मिले, जिन्होंने अपने आप उसे देखा है।
आस-पास बहुत से शिलालेख भी हैं। माता
स्थान से लगभग ३०० गज़ की दूरी पर दक्षिण-
के कोने में एक बावड़ी है। यह वापी खेत के
स्थित है। दूर से इसका कोई भाग नहीं दिखाई
इसका किनारा लगभग पृथ्वी के ही बराबर
बावड़ी के ऊपर की लम्बाई २० गज़ और
१० गज़ है। पश्चिम तरफ़ का किनारा सीधा
गया है और क़रीब ८० हाथ गहरा है।
दक्षिण के पार्श्व में आदमी के बराबर ऊंची
बनी हैं। कदाचित् यह पानी की गहराई
के लिए बनाया गया है। पूछने पर पता
पूर्व का किनारा गिर-गिर कर बावड़ी का कुछ
भर गया है। पूर्व की तरफ़ से २०
आदमी उतर सकता है। बावड़ी के अन्दर
की ओर, कुछ पत्थरों पर शिलालेख का पता
है। मैंने स्वयं उन शिलाओं को नहीं देखा,
वहां तक पहुँचना कुछ कठिन है। हां, इतना
कहूँगा कि वहाँ तक जाना असम्भव नहीं है।
में जाकर बावड़ी चौकोर कुँए के आकार
गई है। इसका पानी बहुत ही स्वादिष्ट है।
नीचे से ऊपर तक पत्थर की बनी हुई है,
शिलायें चौकोर काट कर एक दूसरे के ऊपर
गई हैं; जुड़ाई में चूने का कहीं पता भी नहीं
कुँए में थोड़े दिन पहले चूने से प्लास्तर कर दिया
पत्थरों की इतनी अधिकता देखकर पता नहीं
कि इसके बनवाने में कितना ख़र्च पड़ा होगा
बात और ध्यान देने योग्य यह है कि यहां
२० मील के भीतर कोई डूँगर (पर्वत)
शिलायें काफ़ी बड़ी-बड़ी हैं। पश्चिम
शिला, जो मुँह पर है, क़रीब ८ हाथ लंबी,
चौड़ी और ३ हाथ मोटी है। मैंने बहुत ढूंढा

हीं जोड़ का पता चले, परन्तु सब व्यर्थ। बावड़ी ल पत्थरों की बनी हुई है।

'सुरजलदेवी' के मन्दिर से लगभग १५० गज़ क्षिण-पूर्व की ओर एक और जीर्ण मंदिर है। इस दिर की बनावट ठीक माता के मंदिर की तरह है, र पत्थर बावड़ी के हैं। कारीगरी की हद करदी है। अनेक स्थानों पर भिन्न-भिन्न प्रकार की तियाँ विराजमान हैं। मंदिर का पूर्व, उत्तर और क्षिण भाग अभी अधिक नष्ट नहीं हुआ है; पर श्चिम का भाग तो पृथ्वी के जल से हिल-मिल रहा । मंदिर शिलाओं का ही बना हुआ है। और अब थोड़े से परिश्रम और ख़र्च से इसकी मरम्मत सकती है। एक शिला दूसरी के साथ छोटे-छोटे हे के टुकड़ों से जुड़ी हुई है। सबसे आश्चर्य बात यह है कि इसकी नींव बिलकुल नहीं है। ह तो हो ही नहीं सकता कि ऐसा बड़ा रीगर इतना मूर्ख रहा होगा कि उसने नींव न ली हो। दन्त-कथायें इसका कारण यह बताती कि एक देव मंदिर बनाकर आकाश-मार्ग से से लिये जा रहा था, माता ने उसको वह मंदिर रख ने की आज्ञा दी। और उसने मन्दिर उसी स्थान र रख दिया। यहाँ पर किसी शिलालेख का पता हीं चलता कि जिससे इस मन्दिर की व्यवस्था लूम हो सके। मुख्य मूर्ति का पता ही नहीं लगता, ायद गाँव के किसी महाशय ने उसपर दया करके हीं हटा दी हो।

इस प्रकार यह एक अद्भुत स्थान हमारे बीच जूद है। यदि कोई शोधक इतिहासज्ञ इस ओर ान दे इसपर विशेष प्रकाश डालें तो क्या अच्छा हो!

शिवप्रसादसिंह 'विश्वेन'

विन्ध्या और किष्किन्धा

सरदारबहादुर कीबे के "मध्यभारत में लङ्का" की स्थिति-निर्धारण-विषयक विचार ने विन्ध्या और किष्किन्धा की स्थिति के प्रश्नों को भी इतिहासप्रिय पाठकों के सन्मुख ला रक्खा है। "इन दोनों पर्वतों की स्थिति मध्यभारत में मानी जाय," इस विचार के पक्षपाती कई प्रसिद्ध पुरातत्त्वज्ञ भी हैं।

पर एक विन्ध्य पर्वत का होना मैसूर राज्य में बतलाया जाता है। यथा—

At the time of Ramayan, many communities of *Massagetae* had settled in the Deccan as has been allegorically described in the story of *Jatayu* and his brother Sampati. In fact Jatayu lived In **जनस्थान** and Sampati dwelt in a cave in the **विन्ध्य पर्वत** in *Mysore*, which should not be confounded with its namesake in Upper India. *

अर्थात् उस विन्ध्य पर्वत की स्थिति मैसूर राज्य में मानी गई है, जिसपर "सम्पत्ति" का निवास था।

यह अंश हमने श्रीयुत नन्दलाल दे एम० ए० बी० एल० महोदय के एक लेख से लिया है। उस लेख का नाम है "रसातल" (Rasatal or the Under-world) जो 'इण्डियन हिस्टॉरिकल कार्टरली' (Indian Historical Quarterly) के सितम्बर १९२५ के अंक में प्रकाशित हुआ है।

उसी पत्रिका के पृष्ठ ५६२ पर लिखा है कि तेलुगू साहित्य के कई ग्रन्थों में "पूर्वीय घाट" के पर्वतश्रेणी का नाम "विन्ध्य" लिखा हुआ

---

* Ramayan; अरण्यकाण्ड, अ० ४९; किष्किन्धाकाण्ड, अ० ५६।

मिलता है:—It may be curious to note that the Eastein Ghats which run across the *Telagu* country are referred to as *Vindhyas* in early *Telagu works* and in some Sanskrit books composed in the Telagu country ❀

तेलुगू देश मैसूर राज्य तक फैला हुआ था और इसे आन्ध्रमण्डल भी कहा जाता था। सन् ईस्वी की चौथी सदी में आन्ध्रमण्डल का विस्तार मैसूर राज्य के कोलार ज़िले तक रहा—

In the Bana grant of 339 A. D. is mentioned the *Andhra Mandalam* in which lay Madiyunur and Awani now in Kolar Dist. of Mysore.

इन बातों से यह समर्थित होता है कि "पूर्वीय-घाट" की पर्वतश्रेणियों में "विन्ध्य" पर्वत की स्थिति रही। अब उसे कोई विद्वान् मध्यभारत में अमर-कण्टक के आस-पास मानें तो क्या किया जाय!

किष्किन्धा

आदिकवि वाल्मीकिजी के लेखानुसार "शवरी" के आश्रम के निकट 'मतङ्ग बन' था। इस बन में मुनियों के आश्रम थे, जिनके प्रभाव से भगवान् रामचन्द्रजी आश्चर्यित हुए थे। उस प्रदेश को उन्होंने कल्याण-दायक और शुभ माना था। वहाँ सातों समुद्रों के जल मुनियों के प्रभाव से लभ्य थे, जिनमें स्नान करने से 'पितर' भी तृप्त हो जाते थे। मतङ्ग बन से दोनों भाई "पम्पासर" की ओर चले। उसके निकट ही ऋष्यमूक पर्वत था, जिसपर सूर्य का पुत्र सुग्रीव रहता था। यथा—

सप्तानां च समुद्राणां तेषां तीर्थेषु लक्ष्मण !
उपस्पृष्टं च विधिवत् पितरश्चापि तर्पिताः ॥४॥
प्रणष्टमशुभं यन्नः कल्याणं समुपस्थितम्।
तेन त्वेत प्रहृष्टं मे मनोलक्ष्मण सम्प्रति ॥५
हृदये मे नरव्याघ्र शुभमाविर्भविष्यति
तदा गच्छ गमिष्यावः पंपां तां प्रियदर्शनाम्
ऋष्यमूको गिरिर्यत्र नाति दूरे प्रकाशते
यस्मिन्वसति धर्मात्मा सुग्रीवो शुभतः सुतः

पम्पासर के पास "मतङ्गकुण्ड" था। किनारे अन्यान्य वृक्षों के साथ "चन्दन" भी थे—

शाल्मल्यः किंशुकाश्चैव रक्ताः कुरबकास्तथा
तिनिशानक्तमालाश्च चन्दनाः स्यंदनास्तथा
(किष्कि

ऋष्यमूक पर्वत के निकट 'मलय' पर्वत ऋष्यमूक के पास ज्यों ही राम-लक्ष्मण प सुग्रीव बहुत भयभीत हुए थे। तब हनुमानजी से कहा था—

ततस्तु भय संत्रस्तं वालि-किल्विष-शंकितम्
उवाच हनुमान्वाक्यं सुग्रीवं काव्यकोविदः॥
संभ्रमस्त्यज्यतामेष सर्वैर्वालिकृते महान्।
मलयोऽयं गिरिवरो भयं नेहास्ति वालिनः॥

हनुमानजी ऋष्यमूक से ही राम-ल 'मलय' पर ले गये। यथा—

ऋष्यमूकात्तु हनुमान् गत्वा तं मलयं गिरिम्।
आचचक्षे तदा वीरौ कपि राजा च राघवौ॥

आगे हनुमानजी लक्ष्मणजी के बैठने चन्दन की शाखा देते हैं:—

लक्ष्मणायाथ संहृष्टो हनुमान्मारुतात्मजः।
शाखां चन्दन वृक्षस्य ददौ परम पुष्पिताम्॥
(किष्किन्धाकाण्ड; सर्ग ५, श्लोक

अब प्रश्न यह है कि क्या मध्यभारत पर्वत भी था? क्या मध्यभारत में 'चन्द भी हुआ करते थे? यदि हुआ करते थे, उन वृक्षों की ऐसी अधिकता थी कि उन

❀ श्रीनाथ कृत 'भमिखण्ड' पेमभूपाल चरित।

ोड़-तोड़ कर बैठने के काम में लाई जाती थीं ? ध्यभारत के किसी प्राचीन शिला-लेख में ऋष्यमूक, लय आदि पर्वतों का उल्लेख क्यों नहीं पाया जाता ? वा (नर्मदा) या सुवर्ण (सोन) नदियों के नाम इस संग में क्यों नहीं मिलते, जब कि मध्यभारत में ये वख्यात और पुराण-प्रसिद्ध नदियाँ हैं ? फिर ज़बर्दस्ती ध्यभारत में 'किष्किन्धा' की स्थिति मान लेना कहाँ क ठीक है, इसका निर्णय विद्वान्वृन्द ही करें ।

पुरातत्वज्ञों का एक प्रशंसक

योगी

आँखें बन्द किये योगी तू,
ढ रहा है किसको आह !
किसे बिठाया है हृदयासन पर,
ाक रहा है किसकी राह ?

सुर-धुनि की अव्यक्त रागिनी
से, उद्वेलित तेरा प्राण ।
बुला रहा है किस अनादि को,
सुना सुना कर मीठी तान ?

ंधकार-रजनी में सुनकर
उस अनंत का अनहद नाद ।
स्म रमा कर डटा हुआ है,
याग सकल चंचल अवसाद ।

जाग, समय आया उठने का,
कितनी बीत गयीं सदियाँ !
पलक मारते पलट गयी हैं,
जग की सारी चौहादियाँ ॥

गोविन्दलाल [illegible] 'आर'

गो-रक्षा

भारत की उन्नति के लिए प्रयत्न करने वालों में गो-सेवकों का बहुत भाग है और इस देश को गोरक्षा-पूर्ण व स्वतंत्र स्थिति में लाने के लिए अच्छे दूध देने वाले और काम करने वाले मवेशियों की बहुत ज़रूरत है । यह एक मानी हुई बात है ।

इस प्रश्न को हल करने के लिए भिन्न-भिन्न व्यक्ति अपने-अपने ढंग से उपयुक्त काम कर रहे हैं । बूढ़े तथा अपंग निर्बल जीवों को एकत्रित कर उनका शेष आयुष्य सुख में बिताने के लिए खुले हुए अनेक पिंजरापोल देशभर में दिखाई देते हैं । थोड़ी अच्छी गायें पालकर उनके लिए उत्तम खुराक, घर वगैरा का बन्दोबस्त कर उनकी सेवा करने वाली गोशालाओं की भी कुछ कमी नहीं है । कसाईखाने जाने से बचाकर निराधार गायों को आश्रय देने वाली संस्थाओं का कार्य भी कभी-कभी मनमुग्ध करता है । गोसेवा का प्रचार करने वाले लेखकों तथा वक्ताओं की भी आज वृद्धि हो रही है । मगर जो लोग गाय की उत्पादन-शक्ति बढ़ाकर उसे ज्यादा उपयोगी बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं वे ही सबसे ज्यादा फ़ायदेमंद काम को हाथ में लेते हैं । वर्तमान स्थिति में हमें गाय के बारे में ज्यादा सोचना पड़ता है, अथवा गाय को ज्यादा संरक्षण देने की जरूरत होती है; इसका यही कारण है कि गाय की उत्पादन-शक्ति इतनी घट गई है कि वह अपने खुद के बल पर खड़ी नहीं हो सकती । यदि गायों के मालिक उन्हें नहीं पालना चाहते, या उन्हें कसाई को बेच देते हैं, तो वह सिर्फ़ इसी कारण कि साधारण गाय रखना उन्हें भार-रूप होता है । अगर गाय इतना ज्यादा दूध देने लगे कि उसको पालने का खर्च अदा

करके नफ़ा रहने लगे, तो हमारी समझ में नहीं आता कि कोई भी समझदार मालिक अपनी गाय को अपने हाथ से क्यों जाने देगा। यदि हमें गो-सेवा के कार्य को अच्छे पाये पर खड़ा रखकर उसे चिरञ्जीवि करना है, तो देश में जगह-जगह ऊँचे दर्जे के दुग्धालय खोलना चाहिए, जिससे अच्छी मवेशियों की उत्पत्ति बढ़े और देश में सस्ते दूध की इफ़रात हो।

देश में दुग्धालयों की स्थिति इतनी गिर जाने के अनेक कारणों में से इस एक ही कार्य का अनेक छोटे-छोटे भागों में बट जाना और अलग-अलग व्यक्तियों के हाथ में रहना बड़ा महत्त्व का कारण मालूम होता है। हमारे यहाँ अक्सर गाय पालने वालों का धंधा गायों के झुण्ड रखकर उनके बच्चों को छोटेपन में ही बेच देने का होता है। इनके पास न तो चारे का क़ाफी स्टाक होता है, न गायों को चराने के लिए चरागाहें। गायों का दूध निकाल कर उसे बेचने के फंदे में ये लोग पड़ते ही नहीं। इससे गायों की दूध देने के शक्ति नहीं बढ़ पाती, और इतनी गायों का दूध मुफ़्त जाता है। पूरे साधन न होने से वे अपने मवेशियों को अच्छी हालत में नहीं रख सकते। इस कारण हर साल उनमें क़ाफी कमी होती है। दुर्भिक्ष के दिनों में तो, जिनकी कि हिन्दुस्थान में कमी नहीं है, उनकी हालत असह्य हो जाती है। दूसरे यह काम अक्सर निरक्षर और निर्धन लोगों के हाथ में होने से सुधार करने में भी बड़ी भारी अड़चन पड़ती है।

प्रायः छोटे बच्चे–ख़ासकर नर–जब दूध पीना बंद कर देते हैं, तो किसानों को बेच दिये जाते हैं; और वे उनको अच्छी तरह पालकर बैल बना लेते हैं। कभी-कभी किसानों के हाथ जाने के पहले इन बेचारे बच्चों को बाघरी जैसे लोगों के पास रहना पड़ता है। ये बाघरी सिर्फ़ दलाली का धन्धा करते हैं। बधिया करने का काम अक्सर इन्हींके हाथ में होता है। साधारण मादाओं को तो इन गाय पालने पास ही रहना पड़ता है। चूँकि इन्हें मोल कोई तैयार नहीं होता, इसलिए इन्हींको पा अपनी गायों की तादाद में कमी नहीं होने

हाँ, अच्छी गायों को शहर के निकट ग्वाल वग़ैरा इनके पास से लेकर शहर वालों पिलाने का धंधा करते हैं। इसका अनिष्ट यह होता है कि गाय पालने वालों के पास और हलके दर्जे की गायें रह जाती हैं वजह से दिन ब दिन उनकी नस्ल गिरती अच्छे साँड रखकर नस्ल को सुधारना तो लोगों को मालूम ही नहीं होता। और अग समझता भी हो, तो भी अच्छा साँड मिल आसानी की बात नहीं।

जो ग्वाल अच्छी-अच्छी गायें देहातों ढूँढ लाते हैं, वे उनको बतौर दूध देने वाली के इस्तैमाल करते हैं। उनकी फ़िक्र तभी त है, जब तक कि वे दूध दे सकती हैं। उन होने वाले सुंदर बच्चों की वे क्यों पर्वाह क जब कि वे जानते हैं कि उनको पाल कर बड़ उनके क़ाबू के बाहर की बात है! इस तरह सुंदर पशुधन नष्ट हो रहा है।

गाय पालने वालों की तरह इन शहरी पास भी कोई ज़मीन नहीं होती। घास इत्या चीज़ उनको मोल लेनी पड़ती है, जो कि महँगी और हलके दर्जे की होती है। क़ीमत का ईंधन के सिवा और कुछ भी उपयोग नहीं गोमूत्र तो बिलकुल मुफ़्त ही जाता है। बेचारे खाद के वास्ते तरसते हैं। अलावा इस यहाँ मवेशियों का काफ़ी स्टाक न होने के पैदा होने वाली कड़ब वग़ैरा को उन्हें बिना देना पड़ता है।

भी कभी तो यह हालत होती है कि ग्वाले ाहक को सीधे दूध भी नहीं बेच सकते, क्योंकि य शहर के हलवाइयों या अहीरों के मार्फ़त कता है।

पाठकगण! ज़रा विचार तो कीजिएगा कि यह क ही धंधा कितने हिस्सों में बट जाता है। फिर ेक जगह कार्य करने वाले अज्ञान और दरिद्री होते । इससे दलालों की बन आती है। ये दलाल पने असामी को ख़ूब अच्छी तरह से चूसकर पने कब्ज़े में रखने का कैसा यत्न करते हैं, यह हरेक चारवान व्यक्ति जानता है। इस वृक्ष की जड़ में ह एक बड़ा कीड़ा लगा है, जो इसे पनपने नहीं ता और दिनों दिन इसका नाश करता जाता है।

इस बड़ी आपत्ति से बचने के लिए आज इस त की बड़ी ज़रूरत है कि देश में अच्छी गायें ा करना, दूध निकालना, और उसे सीधे ग्राहकों हाथ में पहुँचाना एकही व्यक्ति अथवा संस्था के थ में होना चाहिए। चाहे यह काम एकही व्यक्ति े, या कंपनी के द्वारा कराया जाय, अथवा अनेक सान या गाँव वाले मिल-जुलकर करें; पर हो से ही। क्योंकि, बहुत दिनों के अनुभव से अब ह सिद्ध हो चुका है कि, यदि अनेक छोटे-छोटे धे वाले स्वतंत्र पद्धति से काम करें और उनका ाप से कुछ भी सम्बन्ध न हो, तो यह काम अच्छे ा पर नहीं चल सकता और राष्ट्रीय कार्य में तो ससे कुछ भी लाभ होही नहीं सकता। ग्वालों के ास काफ़ी साधन न होने के सबब उनको बहुत क़सान उठाना पड़ता है। दलालों को हस्तक्षेप कर न लोगों को क़ाबू में रखने का मौक़ा मिल जाता है और इस वजह से धीरे-धीरे आपत्ति बढ़ती ाती है।

कुछ वर्षों से व्यापारी दृष्टि से बड़े पैमाने पर इस काम को करने के लिए बड़ी-बड़ी कंपनियां खोली जाने लगी हैं और यह सब काम एकही जगह कराने का भी प्रबंध किया जा रहा है। मगर दुर्भाग्य से अभीतक कोई भी कंपनी अच्छी और फ़ायदेमंद हालत में काम करते देखने का अवसर नहीं मिल सकता।

साधारणतः कम्पनियों के सब कारोबार नौकरों के ही द्वारा कराये जाते हैं। इस वजह से काम की देख-भाल वग़ैरा का ख़र्च बहुत बढ़ जाता है। फिर सच्चे, मेहनती और दिल लगाकर काम करने वाले कार्य-कर्ताओं का मिलना अत्यन्त कठिन होता है। पूंजी का एक अच्छा भाग इन लोगों के वेतन में ही ख़र्च हो जाता हैं। गायों को चारा-पानी देना, उनकी देख-भाल करना, दूध निकालना, बच्चों की परवरिश करना वग़ैरा सब काम अज्ञानी और वेतन पाने वाले मजूरों के द्वाराही कराये जाते हैं। इन लोगों का अपने काम पर बिलकुल प्रेम नहीं होता और इनकी लापर्वाही से दिनों दिन आय घटती जाती है। मवेशियों के साथ प्रेम से बर्ताव न होने के कारण उनकी भी हालत ठीक नहीं रहती और वे धीरे-धीरे निकम्मे होते जाते हैं।

इसका यह भी परिणाम होता है कि जब कोई नई डेअरी का काम शुरू होता हैं, तो गाँव के अनेक ग्वालों पर इसका असर पड़ता है और कभी-कभी उनकी रोज़ी भी मारी जाती है। बेचारों का धन्धा हाथ में से जाने से कहीं मिलों में नौकरी करना पड़ती है, या बेकारी का बुरा परिणाम भोगना पड़ता है। सच तो यह है कि गायों के रक्षण की जितनी आज ज़रूरत है, उतनाही इन ग़रीब लोगों को हमें हमेशा ध्यान में रखना चाहिए। इस धन्धे में गायों जैसे सजीव प्राणियों से काम होने से, यदि गायों से सम्बन्ध रखने वाले उन्हें अपनी निजी संपत्ति समझ कर उन्हींकी उन्नति में अपना फ़ायदा समझें, तो बहुत अधिक लाभ होने की संभावना है।

जबतक यह काम वेतन पाने वालों के पास रहेगा, तब तक लाभ हर्गिज़ न होगा।

इन सब त्रुटियों को दूर करने के वास्ते हमें यह ठीक मालूम होता है कि यदि जगह-जगह इन लोगों का संगठन किया जाय और सहकारी तत्त्व पर देशभर में जगह-जगह गोशालायें खोल दी जावें, तो उन्नति की बड़ा सुविधा हो जायगी।

जहाँ पर ऐसी गोशाला खोलने का निश्चय हो जाय, वहाँ ग्वालों को एक सहयोग-समिति बनाकर गाँव के सच्चे उत्साही और अनुभवी युवक के द्वारा इसका कारोबार कराया जावे। गोशाला के आरम्भिक व्यय के लिए कुछ पूंजी एकत्र की जाय, जो फंड द्वारा अथवा कर्ज़ के द्वारा अथवा किसी सहकारी बैंक से मिल सकती है। इस रक़म में से गोशाला के लिए ज़मीन, चरागाहों, इमारतों वग़ैरा जिन बातों की जरूरत हो वे तैयार की जा सकती हैं। शहर के ग्वालों में से जो इसका लाभ लेना चाहें उनसे निश्चित शुल्क लेकर उन्हें इसका सदस्य बनाया जाय। वे लोग अपनी मवेशियों को लेकर उस जगह आकर रहें और चरागाहों में अपनी मवेशी चरावें। वहीं भण्डार में से अपने खान-पान की व्यवस्था करलें और अपना दूध वहीं बेच दें। उनकी गायों की नस्ल सुधारने के वास्ते वहीं पर अच्छे सांडों की व्यवस्था की जाय। बीमार वग़ैरा जानवरों की चिकित्सा वहीं का डाक्टर करे। अनुभवी युवक उन्हें गो-पालन के बारे में हमेशा परामर्श देता रहे। वहाँ पर पैदा होने वाले बच्चों वग़ैरा को परवरिश करके उनकी निकास का काम भी वहाँ बड़ी सरलता से हो सकता है। वहीं पर खेती की जावे, जिससे गोबर के खाद का अच्छा उपयोग होकर सस्ता और उमदा चारा बारहों महीने मिलने लगे, यही नहीं, बल्कि ग्वालों की स्त्रियों और बच्चों को अच्छा और उचित काम भी मिलता रहे।

अगर यह काम हमारे पढ़े-लिखे युवकगण में लेलें, तो बेचारे ग्वालों वग़ैरा को निष्ठुर
के फंदे से छूटकर आज़ादी के साथ अपनी
कमाई खाने को मिलेगी। गायों की दशा दिनों
सुधरती जायगी। सस्ता और अमृततुल्य दूध
मिल सकेगा। और देश के अनेक धंधों में से
सुसंघटित और ठीक रास्ते पर चलने लगेगा।

गो-प्रेमी भारत में इस कार्य के वास्ते मिलना कुछ बड़ी बात नहीं है। इस समय ज़रूरत है तो सत्यनिष्ठ और मेहनती युवकों
क्या हम आशा कर सकते हैं कि स्वदेश-प्रिय
इस महत्वपूर्ण कार्य को तुरंत ही अपने हाथ में ले

भगवन्त महादेव पार

निम्नलिखित भिन्न-भिन्न देशों में जन संख्या
पशुओं का परिमाण इस प्रकार है—

देश	पशु-संख्या	जन-संख्या	प्रति संख पशुआ
यूरुग्वे	६८३००००	१४०००००	
अर्जेण्टाइन	२५८४४८००	८००००००	
आस्ट्रेलिया	११२,६०२४	५५०००००	
न्यूज़ीलैण्ड	१८१६३००	१२०००००	
केपकॉलोनी	१२५००००	१००००००	
कनाडा	५५७६१००	७२५००००	
सं० राष्ट्र अमेरिका	७२५३४३००	९२००००००	
डेनमार्क	१८३०५००	२५०००००	
ब्रिटिशभारत	१४७३३६७००	२४४२६७५४२	

❀ ❀ ❀

भारत में मरने वाले पशुओं के कुछ अंक इस प्र

सन् १९०४-५ २१११
" १९०९-१० ३०२७५
" १९१४-१५ २३६३

(स

हमारे पाप

जिस कार्य से व्यक्ति और समाज को दुःख पहुँचता है, उनकी हानि होती है, उसे प कहते हैं; और जिस काम से उन्हें सुख मिलता है, नका लाभ होता है, उसे पुण्य। जिस काम से केवल क्ति की हानि होती है वह व्यक्तिगत पाप, जिससे समाज हानि हो उसे सामाजिक पाप, और जिससे सारे राष्ट्र को कसान पहुँचता है वह राष्ट्रीय पाप है। पाप का फल धोगति के सिवा दूसरा नहीं हो सकता। इसलिए पाप रने की स्वाधीनता मनुष्य को नहीं दी गई है। फिर भी क्तिगत पाप करने में मनुष्य जितना स्वाधीन हो सकता उतना सामाजिक पाप करने में नहीं, और जितना सामाक पाप करने में वह स्वतंत्र समझा जा सकता है उतना ष्ट्रीय पाप करने में नहीं। क्योंकि व्यक्तिगत पाप के फल स्वयं उसकी अपनी हानि होती है, लेकिन सामाजिक र राष्ट्रीय पाप से सारे समाज और राष्ट्र को हानि पहुँती है। जैसे मैले कपड़े पहनना, या कच्ची रोटी खाना, क्तिगत पाप है; क्योंकि इससे जो बीमारी पैदा होगी सका फल प्रधानतः उस व्यक्ति को ही भोगना पड़ता है। रन्तु व्यभिचार एक सामाजिक पाप है; क्योंकि, इससे सारे माज की जड़ खोखली होती है। इसी प्रकार विदेशी स्तु का व्यवहार राष्ट्रीय पाप है, क्योंकि, इससे राष्ट्र में र्बलता आती है। ज्यों-ज्यों मनुष्य के बुरे कर्मों का फल धिकाधिक लोगों को भोगना पड़ता हो त्यों-त्यों उनके बुरे मों की स्वतंत्रता कम कम होती जाती है। मनुष्य ने ही नेक प्रकार के अनुभवों और व्यवहारों को देखकर अच्छाई र बुराई के अनेक नियम बना दिये हैं, जिन्हें हम पाप पुण्य अथवा नीति और अनीति के नियम कहते हैं। ये स उद्देश से बनाये गये हैं कि व्यक्ति, समाज और राष्ट्र की न्नति हो, उन्हें सुख पहुँचे, वे पूर्णता को प्राप्त करें। इन यमों की सबसे श्रेष्ठ कसौटी यह है कि मनुष्य खुद स्वतंत्र और सुखी रहे; परन्तु दूसरे की स्वतंत्रता और सुख में सके कारण कमी न हो। अर्थात् मनुष्य न केवल अपनी तंत्रता और सुख की रक्षा करे, बल्कि दूसरों की सुख स्वतंत्रता की भी उतनी ही रक्षा करे। इसीका नाम है संयम। संयम स्वतंत्रता का मूल है। जो मनुष्य जितना ही अधिक संयमी होता है वह उतना ही अधिक स्वतंत्र हो सकता है। क्योंकि वह जितना ही अधिक औरों के सुख, सुविधा और स्वतंत्रता का विचार रक्खेगा उतना ही दूसरे उसके सुखादि का ख़याल रक्खेंगे और इससे उसकी स्वतंत्रता अपने आप बढ़ जाती है। संयम-हीन स्वतंत्रता उच्छृंखलता और अंत को अत्याचार में परिणत हो जाती है और उसका आगे चलकर परिणाम होता है यह कि मनुष्य को अपनी सारी स्वतन्त्रता खो देनी पड़ती है।

स्वाधीनता में मनुष्य पाप कम करता है; पराधीनता में अधिक। क्योंकि स्वाधीनता में मनुष्य का जीवन उतना नहीं होता, जितना पराधीनता में होता है। स्वाधीनता में भले बुरे की ज़िम्मेवारी खुद उसीपर होती है; पराधीनता में दूसरे पर। मनुष्य पाप तब करता है, जब पुण्य करते हुए उसे हानि होने लगती है। जब सच बोलने से हानि होती है, तो मनुष्य झूठ बोलकर लाभ उठाने की चेष्टा करता है। जब न्यायोचित साधनों द्वारा मनुष्य अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं कर पाता, तब वह बुरे मार्ग का अनुसरण करता है। यदि किसी समाज में युवकों को कन्यायें न मिलती हों, विधवाओं को ज़बर्दस्ती विवाह से रोका जाता हो, तो वहाँ व्यभिचार फैलना स्वाभाविक हो जाता है। जिस राज्य में कृत्रिम बंधनों द्वारा मनुष्य इस तरह जकड़ दिया गया है कि उसे सच बोलने तक में भय मालूम होने लगता है तब उसमें उस राज्य को उखाड़ फेंकने के भाव प्रबल होने लगते हैं। मनुष्य पाप दो कारणों से करता है— एक तो संयम का महत्व न समझने से, अर्थात् दूसरों की स्वाधीनता और सुख का ख़याल न रखने से, और दूसरे अपनी स्वाधीनता के अपहरण से, अर्थात् अपने न्यायोचित अधिकारों के अनुसार बर्तने की सुविधा न रहने से। दोनों बातों का एक ही निष्कर्ष निकलता है कि स्वतंत्रता के अपहरण से मनुष्य पाप में प्रवृत्त होता है। जिसकी स्वतंत्रता छीन ली गई है, वह भी पाप करने लगता है; और जो स्वतंत्रता का अपहरण करता है, वह भी पापी हो जाता है। पीड़ित और पीड़क दोनों पापी होते हैं। पीड़ित भयभीत

रहता है, इसलिए गुप्त पाप करता है। पीड़क उद्धत होता है, इसलिए अत्याचारी बन कर विधान और क़ानून के नाम पर पाप को पुण्य का रूप देकर पाप करता है। पीड़ित की आत्मा दब-दब कर पाप करती रहती है; पीड़क खुल खुल कर पाप करता है। पीड़ित एक समय के बाद जागरूक होता है और साहस एकत्र करके पीड़क के ख़िलाफ़ बग़ावत पर उतारू हो जाता है; पर पीड़क पीड़ित और पतित होने के पहले सहसा नहीं उठ पाता। पीड़ित पापी सहसा उठ सकता है; पीड़क पापी नहीं। इसलिए कहा गया है कि पीड़क बनने से पीड़ित बनना कहीं अच्छा है। पर सच पूछिए तो पीड़क और पीड़ित दोनों बनना, या बने रहना, पाप है। पीड़ित बने रह कर मनुष्य खुद अपने प्रति पाप करता है; बल्कि, पीड़क को पीड़क बना रहने देकर, उसके पापों में सहायक होता है। इस दृष्टि से दुहरा पापी है। गुलामी सबसे बड़ा पाप है।

भारत आज दुनिया में सबसे बड़ा पापी है; क्योंकि वह सबसे बड़ा गुलाम है। दुनिया के इतिहास में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता कि इतना बड़ा विशाल देश इतनी सदियों से गुलाम बना आ रहा हो और चारों तरफ़ से इतना जकड़ा हुआ हो कि कहीं से भी विस्तार की गुंजाइश नहीं मालूम होती। बड़ों-बड़ों की अक़ल गुम हो रही है। यदि काक-दृष्टि से देखें, यदि कृष्ण-पक्ष का अवलोकन करें, तो दुनिया का कोई ऐसा पाप नहीं, जो यहाँ काफ़ी मात्रा में न दिखाई देता हो। मिस मेयो ने हमारे कुछ पापों के नाम गिनाये, तो हम बिगड़ पड़े और उसे कोसने लगे। 'अबलाओं का इन्साफ़' देख कर उसपर घृणा प्रकट करने लगे। पर जब तक उनमें लिखी आधी बातें भी सही हैं, और हम उन बुराइयों को दूर करने के लिए प्राण-पण से उद्योग नहीं करते, तब तक हम अपने पापों से कैसे छूट सकते हैं? अबलाओं के इन्साफ़ की बातों पर मुझे सहसा विश्वास नहीं हुआ, पर एक मित्र ने कहा—'ये सब बुराइयाँ मैं राजपूताने के किसी भी एक ही नगर में दिखा सकता हूँ।' 'राजस्थान की समस्यायें' शीर्षक लेख में मैंने व्यभिचार को भी स्थान दिया है। इसपर एक आदरणीय मित्र ने कहा—'उपाध्यायजी, आपने अभी राजपूताने के देहातों को नहीं देखा है। शहरों की बुरा हम देहात का अन्दाज़ नहीं लगा सकते।' यह लेख देहात में बैठ कर लिख रहा हूँ, जो कि रेलवे-स्टेशन मील दूर है। इस तरफ़ के ब्राह्मण-वैश्यों के घर की और लीलाओं को सुनता हूँ, तो सिर चक्कर खाने ल घर और कपड़ों की स्वच्छता तो मानों इनसे डरती है बारह-चौदह वर्ष के लड़कों की शादी करने का आम है। लड़कियों की उम्र लड़कों से बहुधा बराबर या बड़ी हैं; इसलिए, कहते हैं, अधिकांश लड़कपन में बिगड़ हैं। विधवायें मानों गुण्डों और व्यभिचारियों की समझी जाती हैं। घर ही में अनर्थ होते देखे जाते हैं। फ़ी सदी विधवायें साफ़ पाक मानी जाती हैं। बाल-वि की संख्या दिन-दिन बढ़ती जा रही है। गर्भपात के आये दिन कानों पर आती रहती हैं।

इसी गाँव के सम्बन्ध की कुछ ऐसी बीभत्स घ जानता हूँ, जिन्हें देख कर मनुष्यता का सिर नीचा हो है और हिन्दू-धर्म की छाती पर तो वे मृत्यु-प्रहार समान हैं। पर उन सब बातों का उल्लेख करके मैं "अबलाओं का इन्साफ़" लिखना नहीं चाहता। आँखें, हृदय और बुद्धि है, वे ऐसी घटनायें देखकर चु बैठ सकते। जो लोग इनकी ओर आँखें मूँदे हुए हैं मैं कहूँगा कि इस तरह ठण्डे दिल से अपना और जाति का सर्वनाश न करो। इन पापों की ज्वाला जड़ मूल से भस्म कर देगी। जिन लोगों ने इन बुरा नीति-अनीति के दायरे से उठाकर कुदरत के क़ानून में ला रक्खा है, उनसे मैं कहता हूँ—कामान्धता पर मनुष्य-जाति के कई सद्गुणों और सद्भावों की क्यों करते हो? जो धीमे सुधारक हैं, उनसे कहना हूँ कि बुराई सचमुच बुराई है तो फिर उसे एकाएक डालने में हिचपिचाहट क्यों? परदा यदि बुराई परदे में यदि कई बुराइयाँ छिपी रहती हैं, तो घर के के लिहाज़ से उसे हम कब्र तक सहन करते चले जाति और राष्ट्र की बर्बादी की ओर हम देखें, या की नाराज़गी की ओर? समष्टि के हित के सामने व्यक्ति की कल्पित प्रसन्नता को खो देने के लिए

रहना चाहिए? हमारी सहृदयता क्या तक़ाज़ा नहीं करती कि हम समाज की विधवाओं की रक्षा, सधवाओं के सतीत्व की रक्षा और नवयुवकों को ऐसी मानसिक यातनाओं से बचाने के लिए अपनी व्यक्तिगत असुविधाओं को ताक पर रख कर उनके लिए दौड़ पड़ें?

धनिकों और रईसों में व्यभिचार का कारण है विषय-तृष्णा के कारणों की बहुलता और उसकी तृप्ति के साधनों की कमी; मध्यमवर्ग के लोगों की व्यभिचार-प्रवृत्ति का कारण है दरिद्रता। एक बड़े राज्य के चीफ़ मेडिकल आफ़िसर ने उस दिन कहा कि आम लोगों के व्यभिचार के मूल कारण की खोज में जो मैं निकला तो पता लगा कि आमदनी की कमी और आवश्यकताओं की वृद्धि इसका मुख्य कारण है। 'बुभुक्षितः किन्न करोति पापं', दरिद्रता अनेक अनर्थों की जड़ होती है। भारतवर्ष मुसलमानों के समय में चाहे पराधीन हो गया हो, पर दरिद्र नहीं हुआ था। लेकिन इस अँग्रेज़ी राज्य में तो सोलह आना पराधीन और बीस आने दरिद्र भी हो गया है। जिस देश के ग़रीब लोग गोबर में से अनाज चुनकर पेट पालने पर मजबूर होते हैं, उसकी दरिद्रता की करुण कथा किस लेखनी से लिखें? वहाँ यदि स्त्रियों को अपना सतीत्व चुराकर बेचना पड़े तो कौन आश्चर्य की बात? आश्चर्य की बात तो यह है कि इन बुराइयों से हमारे दिल को जैसी चाहिए चोट नहीं पहुँचती। अपने सुख और आराम की चिन्ता या धुन में अपने पड़ोसी का करुण-क्रन्दन हमारे कानों तक नहीं पहुँचता! हम ब्याह-शादियों में, अपने ऐश-आराम में, तथा मामले-मुक़दमों में हज़ारों रुपया पानी की तरह बहा देंगे। पर ग़रीबों की ग़रीबी दूर करने के लिए, विधवाओं के धर्म की रक्षा के लिए खादी न पहनेंगे—खादी के लिए रुपया न देंगे! एक ओर धन-वैभव को ऐश-आराम में लगा कर हम अपने आस-पास विषय-भोग का और उसके फल-स्वरूप व्यभिचार का वायु-मण्डल निर्माण करते हैं, और दूसरी ओर अपने पड़ोसियों को दरिद्र बनाकर या बना रहने देकर उन्हें व्यभिचार के लिए मजबूर करते हैं। इस तरह हम दुहेरे पापी बनते हैं।

जो अच्छा काम स्वेच्छा-पूर्वक किया जाता है वह भूषण होता है, और जो दूसरे के दबाव से किया जाता है वह दूषण की सीमा को पहुँच जाता है। यदि कोई अपनी खुशी से विवाह नहीं करता, तो इससे उसे सब तरह लाभ पहुँचता है। यदि कोई किसी के दबाव या संकोच से विवाह नहीं करता, तो उसमें छिपे-छिपे पाप करने की कुवृत्ति पैदा होने का भय रहता है। स्वेच्छा-पूर्वक किये गये पाप के प्रायश्चित से मनुष्य की आत्मा का विकास होता है। परन्तु बल-पूर्वक दिये गये दण्ड से उसका तेजोनाश होकर आत्मा दब जाती है। इसी प्रकार जो दरिद्रता खुशी-खुशी प्राप्त की जाती है वह मनुष्य के लिए भूषण-रूप होती है; परिस्थिति से दब कर इच्छा के विरुद्ध जो दरिद्रता अख़्त्यार करनी पड़ती है, वह मनुष्य के पतन का कारण होती है। महात्माजी, लोकमान्य, मालवीयजी, लालाजी, नेहरूजी, देशबन्धु तथा उनके सैकड़ों अनुयायी जिन्होंने स्वेच्छा-पूर्वक दरिद्रता अंगीकार की, उनमें तथा भारत के करोड़ों लोग जिन्हें ब्रिटेन की व्यापारिक लूट-नीति और आसुरी साम्राज्यवादिता ने राह का भिखारी बना दिया है, उनमें ज़मीन-आसमान का अन्तर है। सच्चा धनी वह है जिसने धन को ठोकर मार दी, या धन को दीन-दुखियों की सेवा में लगाकर खुद निर्धन की तरह रहता है। वह तो धन का गुलाम है, जो धन को बटोर-बटोर कर अपने ही सुख-चैन में लगाता है। धन का दूसरा नाम है भय। जिसको निर्भय होना हो, वह निर्धन बनना सीखे। जिसको तेजस्वी बनना हो, वह दरिद्रता का व्रत धारण करे। भारत का वैश्य-समुदाय आज इसीलिए दब्बू और कायर बना हुआ है कि उसे धन को बटोर कर रखने का असीम लोभ है। यूरोप के वैश्य जो सेना और सत्ता की सहायता से तीस करोड़ भारत-वासियों को पद-दलित करके उनके जड़-मूल को मिटाने का पाप कमा रहे हैं उसका कारण है उनका धन लोभ। इसीलिए श्री शंकराचार्य ने कहा है—

'अर्थमनर्थं भावय नित्यं
नास्ति ततः सुख लेशं सत्यम्।'

परन्तु धन का लोभ एक बात है, और मनुष्य की साधारण आवश्यकताओं के लिए धन की पर्याप्तता दूसरी बात। दरिद्र उस मनुष्य को कहते हैं, जिसके पास अपनी साधारण आवश्यकताओं की पूर्ति के योग्य धन या धन के

साधन न हों। भारत इस अर्थ में आज कंगालों का घर बना हुआ है। आज यहाँ सोलहों आने दरिद्रनारायण का निवास है। लक्ष्मीनारायण की नहीं, अब यहाँ दरिद्रनारायण की पूजा होनी चाहिए।

इस इतने विवेचन से हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि हमारे सबसे बड़े तीन पाप हैं—(१) दरिद्रता (२) व्यभिचार (३) पराधीनता। दरिद्रता से व्यभिचार फैलता है और पराधीनता दरिद्रता का मूल कारण है। इस पराधीनता से छुटकारा पाये बिना न पूरी तरह दरिद्रता ही दूर हो सकती है, न व्यभिचार ही। व्यभिचार हमारा सामाजिक पाप है, दरिद्रता राष्ट्रीय पाप है, और पराधीनता मानवी पाप है। इस त्रिविध पाप की एकमात्र औषध है स्वाधीनता। आइए, इसीकी प्राप्ति में हम अपनी सारी शक्ति लगावें!

हरिभाऊ उपाध्याय

जीवन!

पड़ आमोद-प्रमोद-गोद में,
सोते में सपना देखा;
सुधा-पूर्ण वसुधा पर,
मंगलमय जीवन अपना देखा।
कठिन त्याग की विषम आग में,
तनिक नहीं तपना देखा;
लगी लालसा की वेदी पर
कभी न, हाँ, खपना देखा।

तन्द्रा टूटी,—ध्यान जग उठा,
देख दृश्य पामाली का।
'जीवन है कर्तव्य'—सुन पड़ा,
सन्देशा वन-माली का॥

'कण्टक'

हृदय की फुलझड़ी

दिल

मेरा दिल मेरी घड़ी है। उसकी प्रत्येक
मुझे मिलन-बेला की याद दिलाती है।

कैसा पागल हूँ मैं! तुम्हारी पूजा की सा
मैंने घर को इतना भर लिया कि जब तुम
तुम्हें बैठने को जगह ही न मिली!

सारी दुनिया तुम्हारी हो, पर यह दिल
मुझसे बिना पूछे, मेरी इच्छा के विरुद्ध, तुम
आ नहीं सकते!

वह आये तो थे विजय करने, पर, उलटे
होकर, यहीं इसी दिल में क़ैद हो गये!

हाय, कितनी आकांक्षायें, कितनी
इस घर में बैठी तुम्हारी राह देख रही हैं!

अरे निष्ठुर! तुम इस दिल के मूल्य को
समझो? तुम पत्थर हो और इन पत्थरों ही से

देखो, कहा मानो; मत ठुकराओ उसे
निर्दयता से! जिससे तुम खेले थे, उसे छोड़
डालते हो मेरे प्रियतम?

संसार का सताया हुआ मैं, अकेला बैठ कर
दिल के साथ खेलता था; पर, आज, वह मुझे
उस ज़ालिम के साथ मिल गया!

अरे, यह दिल भी कैसी बला है! कभी
से भरा हुआ थाल लाकर सामने रख देता है
कभी दुःखों की पिटारी को खोल देता है।

क्षेमानन्द

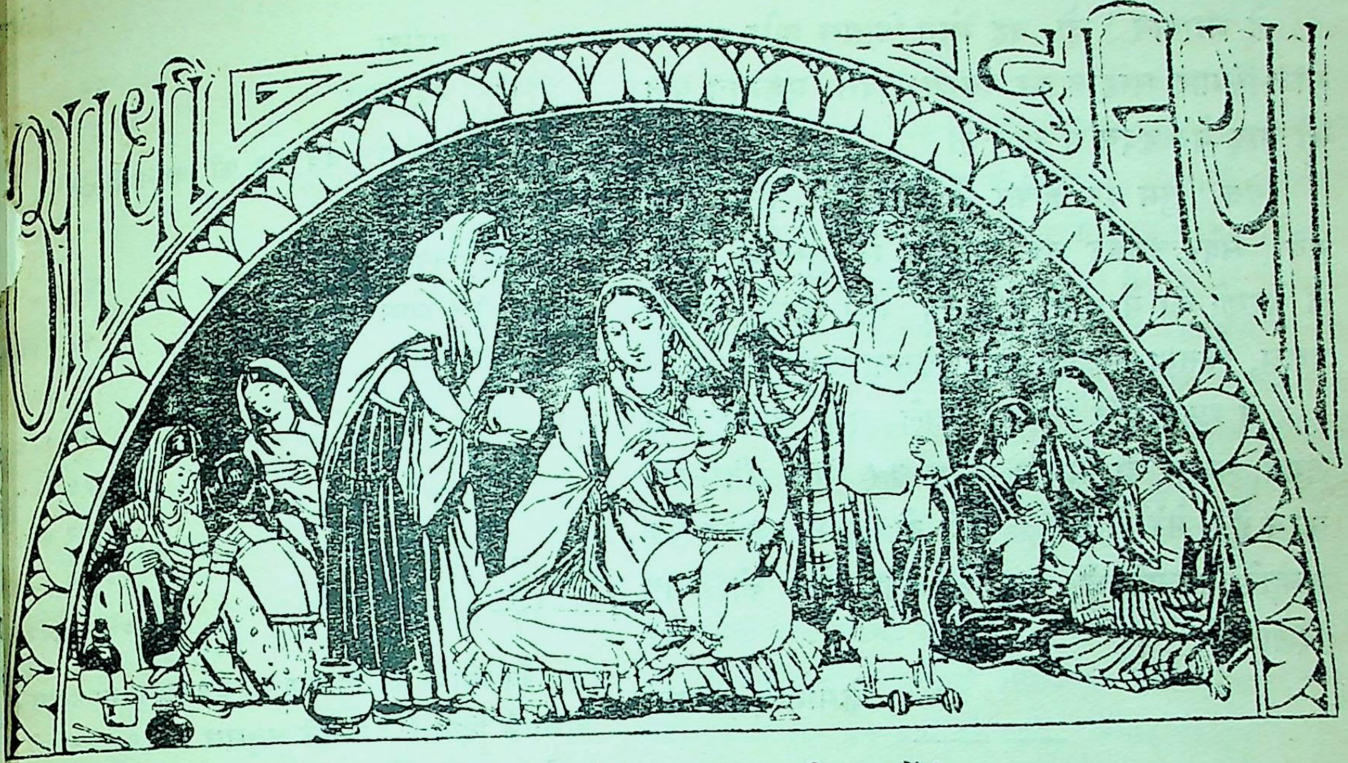

"हम जाग उठीं, सब समझ गईं, अब करके कुछ दिखला देंगी।
हाँ, विश्व-गगन में भारत को, फिर एक बार चमका देंगी॥"

विधवा

हाय, मैं क्या करूँ! मेरी आँखों के आगे, यह र का ढेर अन्धकार कहाँ से फट पड़ा?

ऐ मेरे देव! तुम चले गये। पूजा करने की, ी भर कर प्यार करने की, मेरी लालसा मन की मन ी में रह गई।

उस दिन मैं रूठकर पड़ रहा; तुम्हारे बुलाने र, मिन्नत करने पर भी, मैं बोली नहीं; क्या उसी ा बदला चुकाने के लिए, हे नाथ, तुम मुझे छोड़कर ल दिये?

मेरी आँखों के आँसू देखकर तुम इन अभागे रों को पकड़ लेते थे, मुझे गोद में बिठाकर कितने प्रेम से चूमते थे; पर आज मैं रो-रो कर मर रही हूँ, फिर तुम बोलते क्यों नहीं? ओ निठुर! निठुर! निठुर!

आ, मेरे लाल! तेरा मुँह चूम लूँ। अब तू मेरा बेटा ही नहीं, उस निर्दयी-निष्ठुर की एकमात्र निशानी है।

संसार मुझसे सहानुभूति रक्खे, या मेरा तिरस्कार करे, इससे मुझे क्या? ऐ मेरे बच्चे! इस अन्धकारमय संसार से निकाल ले चल। अब तू ही मेरा जगत् है।

हायरी, मायाविनी दुनिया! जब वह थे तब यह कितनी सुन्दर, कितनी लुभाविनी दीखती थी! पर अब तो यह मुझे काट खाने को दौड़ती है।

हे भगवान् ! लो, यह भोग-विलास और अपना साज-सिंगार सम्हाल कर रक्खो । बस, एकमात्र पति की याद मेरे हृदय में रहने दो ।

देव ! तुम दूर जाकर तो और भी मधुर बन गये ! सवेरे उठकर जब आँसुओं से तुम्हारी स्मृति के चरणों को मैं धोती हूँ, तब मेरा हृदय कितना प्रसन्न, कितना प्रफुल्लित और कितना उल्लसित होता है !

ये सहानुभूति दिखाने वाले मुझे अच्छे नहीं लगते; पर वे जो विधवा समझ कर मेरा तिरस्कार करते हैं, मेरे हितू हैं । वही तो मुझे रह-रह कर तुम्हारे चरणों की, तुम्हारे मधुर प्रेम की, याद दिलाते हैं !

क्षेमानन्द 'राहत'

पाप या पुण्य ?

(१)

सबसे हाल के सरकारी विवरण (Statistical Abstrcat for British India, 1914-15 to 1923-24) के अनुसार हमारे यहाँ २,६८,३४,८३८ विधवायें हैं।

भारत की कुल आबादी में 'टाइम्स' की ईयरबुक के अनुसार, प्रति सहस्र पुरुषों पीछे १००८ स्त्रियाँ विवाहित हैं । विभिन्न प्रांतों में यह औसत इस प्रकार है—

आसाम	९७६
बंगाल	९६६
बिहार-उड़ीसा	१०३४
बम्बई	९८७
ब्रह्मा	९२४
मध्यप्रांत-बरार	१०२५
मद्रास	१०६१
पंजाब	१०२१
संयुक्तप्रांत	१०१३
बड़ौदा	७८३
हैदराबाद	६७८३

इनमें सिर्फ़ १५ वर्ष तक की वय-वालियों
निम्न प्रकार है—

वय	विवाहि
१–१२ मास	१३,
१–२ वर्ष	१७,
२–३ ,,	४९,
३–४ ,,	१,३४,
४–५ ,,	३,०२,
५–१० ,,	२२,१९,
१०–१५ ,,	१,००,८७,

विधवाओं का विवरण श्री कंचनलाल मगनलाल
वाला ने दिया है । उसके अनुसार १५ वर्ष तक
वायें इस प्रकार हैं—

वय	विधवायें		
	हिन्दू	मुसलमान	
१-१२मास	८६६	१०९	
१-२ वर्ष	७५५	६४	
२-३ ,,	१,५६४	१६६	
३-४ ,,	३,५८७	५,८०९	
४-५ ,,	७,६०३	१,२८१	
५-१० ,,	७७,५८५	१४,२७६	
१०-१५ ,,	१,८१,५०७	३६,२६४	२,

प्रान्तवार लें, तो १० वर्ष तक की वय-
संख्या है—बंगाल १७,५८३; बिहार ३६,२५
६,७२९; मद्रास ५,०४६; संयुक्तप्रान्त १७,
कुल जन-संख्या में विधवाओं का औसत, 'टाइम्स
बुक के अनुसार, है प्रति सहस्र १७५.०, जो
में इस प्रकार विभाजित है—

संवत् १९८५]

वय	प्रति सहस्र औसत
०-५ वर्ष	.७
५-१० ,,	४.५
१०-१५ ,,	१६.८
१५-२० ,,	४१.४
२०-२५ ,,	७१.५
२५-३५ ,,	१४६.९
३५-४५ ,,	३२५.२
४५-६५ ,,	६१९.४
६५ और इससे अधिक	८३४.०

इंग्लैण्ड और वेल्स में यह औसत है सिर्फ़ ७३.२—वह भी किस वय का ?

वय	प्रति सहस्र विधवायें
२०-२५ वर्ष	१.५
२५-३५ ,,	१३.१
३५-४५ ,,	५०.५
४५-६५ ,,	.९३.२
६५ और इससे अधिक	५६५.९

इसका कारण ? हमारे यहाँ विधवाओं का इतना संख्या-य क्यों है ?

उक्त 'ईयरबुक' ही के लेखानुसार, इसका कारण है तो बाल-विवाह, कुछ पति-पत्नी की उम्रों का बेमेलपन; ास वजह है विधवाओं का पुनर्विवाह न होना।"

(२)

विधवा ? आह, कैसा हृदय-स्पर्शी शब्द है यह ! ा की पुण्य तपश्चर्या के स्मरण-मात्र से जहाँ एक ओर क श्रद्धावनत हो जाता है, तहाँ दूसरी ओर, उनकी ान दुर्दशा देख, करुणा और शोक के आँसू उमड़ आते हैं !! महात्माजी लिखते हैं—और बिलकुल ठीक लिखते हैं—व्य को मैं हिन्दू-धर्म का भूषण मानता हूँ। विधवा को देखने पर अनायास ही, उसके प्रति, मेरा मस्तक जाता है।...सुबह के वक़्त तो उसका दर्शन करके मैं र्थ हो जाता हूँ। उसका आशीर्वाद अपने लिए बड़ी ी बख़्शीश मानता हूँ। अपने सारे दुःख उसे देख कर भूल जाता हूँ। विधवा के सामने पुरुष तो तुच्छ प्राणी है। विधवा के धैर्य का अनुकरण तो मानों असम्भव ही है। विधवा को प्राचीन काल की जो विरासत मिली है, उसके सामने पुरुष के क्षणिक त्याग की पूंजी का क्या मूल्य ?"

कितनी उदात्त और पवित्र कल्पना है ! परन्तु, आह, इन्हीं बहनों की आज क्या दशा है ? ला० लाजपतराय के शब्दों में कहें तो वर्णनातीत है। सचमुच आज उनकी जो दशा है उसे देख आश्चर्य नहीं, यदि निर्जीव पत्थर भी बिलबिलाकर फट पड़े ! उनके दुःखों और उनकी दुर्दशा को समझने के लिए हमें हृदय को ज़रा मज़बूत करना होगा और तब सूक्ष्म विचारोपरान्त उनकी वास्तविक स्थिति को हम कहीं थोड़ी-बहुत समझ सकेंगे।

ज़रा कल्पना तो कीजिए किसी बेचारी विधवा की। वह देखिए वह हड्डियों की ठठरी, विषाद की मूर्त्त रूप, काम-काम-काम—बस यही रात-दिन की उसकी धुन ! कोई बात पूछने वाला नहीं; कोई ढंग से बोलने वाला नहीं; आराम-सुविधा अलग, दुःख-दर्द की ही पूछने वाला कौन ? बस, काम करो काम; क्या मतलब किसी के राग-रंग और हँसी-खुशी से ? क्या पर्वाह जीवन के कष्टों की ? क्या ज़रूरत अच्छा खाने-पीने की ? क्या ज़रूरत किसी से हिलने-मिलने की ? अपने तो अपने, पर किसी दूसरे के राग-रंग, हँसी-खुशी, त्यौहार-टेहले में शामिल होने की भी क्या ज़रूरत ? ख़बरदार ! उधर मत जाना, वहाँ मंगल-कृत्य हो रहा है ! ख़बरदार, जो सुबह कहीं शक्ल सामने आ गई ! ख़बरदार, जो कहीं सधवा पर परछाईं पड़ गई !

यह क्यों ? क्योंकि, वह विधवा है ! उसपर परमेश्वर का श्राप पड़ चुका है !! वह अपने पति-परमेश्वर को हड़प चुकी है !!! हमारी मान्यता है कि पति जो पत्नी के ज़िन्दा रहते मरता है वह पत्नी के पापों ही के कारण—उसका अपना कोई क़सूर नहीं होता—क्योंकि, पुरुष तो सब तरह से दूध का धोया होता है न ?

अपने बित्ते पर वह रह नहीं सकती। प्रथम तो उसमें इतनी क़ाबलियत और ताक़त ही नहीं होती कि अपने बूते पर कुछ कर सके। फिर मौक़ा भी कौन देता है ? किसीसे बोले तो पापिन; बच्चों से हिले-मिले तो डायन; सखी-सहे-

लियों से मिले-जुले तो निर्लज्ज। घरकों की ज़्यादती का प्रतिवाद करे तो ज़बांदराज़ और निर्लज्ज; ननद-भौजाई आदि को कुछ सिखावे-समझावे तो खतरनाक; बच्चों की किसी बात को टोके तो उन्हें देख-देख कर कुढ़ने वाली। अच्छे साफ़ सुथरे कपड़े पहने तो संदिग्धचरित्र; बिन्दी-चोटी करे तो घर की सधवाओं की अमंगलेच्छु; गावे-बजावे, खाये पिये, हँसे-बोले तब तो महापातकी !

हाँ, वह करे क्या ? सेवा, सेवा, सबकी सेवा—बड़ों से लेकर छोटों तक हरएक की निरन्तर सेवा, बस यही उसका काम है। घर के छोटे से लेकर बड़े तक, जब जैसी ज़रूरत पड़े, सब काम बिना किसी न नु-नच के करे; सबकी लानत-मलामत, भर्त्सना, ताने-तिसने बिना माथे पर ज़रा भी सल डाले सुनती-सहती और फिर भी वैसी ही लगन और तत्परता के साथ सबका काम करती रहे; खुद तो किसीसे अनुराग बढ़ाये ही नहीं; पर यदि घर-बाहर का कोई दुष्ट पुरुष बिना उसकी इच्छा या उसके जाने ही उसपर बुरी नज़र डाले, तो भी वही उसका दण्ड भोगे !

कैसी करुण स्थिति है यह !

(२)

इसमें शक नहीं कि इस सबके अन्दर जो कल्पना समाविष्ट है वह ऊँची और बहुत ऊँची है। इसका मूल संयम में है। इसके द्वारा विधवा के रूप में कुटुम्ब और समाज के सन्मुख—विस्तृत रूप में कहें तो विश्व-मञ्च पर—एक ऐसी व्यक्ति उपस्थित होती है, जो निजी स्वार्थ के संकुचित दायरे से निकल कर सेवा के विस्तृत दायरे को ग्रहण करती है। वह प्रेम जो अभी तक पति परमेश्वर में वासनामय रूप में केन्द्रित था, पति-प्रेम की ज्वाला-रूप भट्टी में तप कर और खरा बन कर अब बिलकुल शुद्ध और पवित्र रूप में अखिल विश्व के प्रेम और हित के लिए अपनी रश्मियाँ फैलाता है। जो स्त्री कल तक अपने पति की ही सेवा-टहल, आराम-सुविधा आदि में तन्मय थी, आज उसमें अनुभव प्राप्त कर उससे बड़े दायरे को और भी उत्तमता के साथ पूर्ण करने के लिए पदार्पण करती है। अब अपनेपन को मानों वह बिसार देती है, अपनी सुविधा-असुविधा आदि को वह समर्पित कर देती है, और अपनी पूर्णशक्ति के साथ अनन्त और अनवरत सेवा के लिए कमर कस क
कूद पड़ती है। जहाँ तक मेरी कल्पना दौड़ती है,
का मूल भाव है। और, मेरी नम्र-सम्मति में,
महान् एवं पवित्र है कि, महात्माजी की इस
भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि, "यह
यदि लुप्त हो जाय, अथवा अपने अज्ञान और
सेवा की इस साक्षात् मूर्ति का कोई खण्डन करे,
हिन्दू-धर्म को बड़ी ठेस लगेगी।"

"पर", महात्माजी के ही शब्दों में हम
वैधव्य को सुरक्षित कैसे किया जा सकता है ?
कन्या का ब्याह करने वाले मा-बाप को क्या वैधव्य
में कुछ भाग मिल सकता है ? आज ब्याह कर आज
कन्या का पति मर जाय, वह क्या विधवा मानी
है ? वैधव्य की अतिशयता को धर्म का नाम देकर
घोर पाप नहीं करते ?......भला जिसका मन
हुआ हो, उसका शरीर विधवा रह सकता है ?
ही ब्याही हुई बालिका के मन को समझ ही कौन
उसके पिता का, उसके प्रति, क्या कर्त्तव्य है ? या
गले पर छुरी फेर कर उसके प्रति अपने कर्त्त
निबाह चुका ?"

महात्माजी समय-समय पर इस सम्बन्ध में
रहे हैं और उन्होंने अब तक जो बातें सामने रक्खीं
अनुसार बाल-विधवा जैसी कोई वस्तु ही न होनी
उनका कहना है कि १५ वर्ष से पहले कन्या का
न किया जाय, इस उम्र की या इस उम्र में ब्याह
वर्ष बाद होने वाली विधवा को विधवा ही न मा
और विधवाओं को अमंगल-रूप न मान कर,
उपयुक्त आदर-भाव रखते हुए, उनकी ज्ञान-वृद्धि
जुटायें जायँ। बाल-विवाह ही नहीं बल्कि जब तक
को एक साथ रहने का मौक़ा न हो तब तक भी
करने के लिए तो वह कहते ही हैं, पर साथ
वैधव्य के भी वह विरोधी हैं, और १५ वर्ष तक
वालियों को तो वह विधवा ही नहीं मानते।

लालाजी का भी कहना है कि "जो लोग उन
का विरोध करते हैं, उन्हें ईश्वर खुश रक्खे; किन्तु

अंध-विश्वास के कारण समाज में इतनी बुराइयाँ फैलती हैं और इतना नैतिक तथा शारीरिक कष्ट बढ़ता है, कि वह समस्त समाज को पङ्गु कर रहा है और उसके कारण जीवन संग्राम में हमें सफलता मिलना कठिन हो रहा है।"

(४)

यदि हमारे विवाहों का ढंग ठीक होता—हमारे यहाँ बाल, वृद्ध और बेमेल विवाहों के बजाय प्राचीन ढंग के स्वेच्छया उपयुक्त जोड़ी के विवाहों का क्रम होता—और हम पुरुषों का विधुरपन भी ऐसा ही उच्च और दृढ़ बना रहता, तो बहनों का वैधव्य समझ में आ सकता था—तब वह स्वाभाविक होता और सम्भव भी होता। परन्तु आज तो हमारे यहाँ उपर्युक्त सभी दोष वर्त्तमान हैं. उधर भौतिकवादिनी पश्चिमी सभ्यता भोग की ओर हमें घसीटे लिये जा रही है। ऐसी स्थिति में स्वेच्छया ऐसे कड़े संयम की आशा नहीं की जा सकती, और ज़बर्दस्ती का संयम में कोई काम नहीं। क्योंकि, जैसा गाँधीजी ने लिखा, "बलात्कार और संयम परस्पर विरोधी वस्तु हैं। एक मनुष्य को ऊँचा उठाती है और दूसरी उसे नीचा गिराती है।" और इसलिए बलात् वैधव्य धर्म नहीं, बल्कि कुछ और ही होना चाहिए। ऐसी दशा में इसे स्वाभाविक तो कह ही कौन सकता है, और अस्वाभाविक वस्तु सदैव पापों या बुराइयों की जनक हुआ ही करती है।

विधवाओं के सम्बन्ध में तो यह बात सोलहों आने घटती है। उपर्युक्त ज़बर्दस्ती और दुर्व्यवहार के कारण आज उनकी जो हीन दशा है, उसे कौन नहीं जानता? इस सख़्ती और अपनी निराधारता के कारण चाहे वे ज़ाहिरा कुछ न कहें; पर यह सम्भव नहीं कि इसकी प्रतिक्रिया उनपर न हो। अच्छे-भले आदमी रात-दिन के ऐसे दुर्व्यवहार और स्नेह-शून्य वातावरण से पागल हो उठते हैं, बड़े-बडे सदाचारी घर के कठोर और स्नेह-शून्य व्यवहार से नीच से नीच और दुराचारी से दुराचारी बनते देखे गये हैं; तब भला स्त्रियाँ बेचारी ही क्या करें? उधर वातावरण भी तो उनकी वासनायें प्रदीप्त करने से बाज़ नहीं आता। नतीजा यह होता है कि गुप्त व्यभिचार चलता है। बड़े घरों में नौकर-चाकर या विशेष व्यक्तियों से, छोटे घरों में मालदार या चालाकों से। जादू-टोने, जन्तर-मन्तर और पूजा-पाठ के बहाने मुस्टण्डे फ़क़ीर-जोगी और महन्त-पुजारियों के साथ प्रायः उनके सम्बन्ध कुछ ऐसे ही रहते हैं। यही नहीं, घर के निकट से निकट सम्बन्धियों तक से गर्भ रहने आदि की घटनायें भी प्रायः सुनने में आती रहती हैं। और इस प्रकार बच्चों की जो दुर्दशा होती रही है, वह तो रात-दिन की घटनायें हैं। स्थिति इतनी करुण और घृण्य है कि इसपर अधिक लिखना संभव नहीं। परन्तु, वाह रे समाज, 'चुप-चुप' की नीति से इसे दबाया जा रहा है और काशी मथुरा जैसी पुण्यभूमियों को ऐसे पापियों का आश्रय-स्थान बनाया गया है!

यह स्थिति शर्मनाक है। भले आदमी इसे कैसे बर्दाश्त करते हैं, यही समझ में नहीं आता! फिर दिल्लगी यह कि आज भी बाल और वृद्ध तथा अनमेल विवाहों के रूप में ऐसी विधवाओं की संख्या बढ़ती ही जा रही है, जो शायद वैधव्य और संयम तो क्या विवाह का मर्म भी नहीं समझतीं!

यह स्थिति और कुछ चाहे हो या न हो, पर धर्म या पुण्य तो अवश्य ही नहीं है। ऐसी स्थिति में विधवा-विवाह क्या उपयोगी न होगा? जिन्होंने पतीत्व का कोई अनुभव नहीं प्राप्त किया, अथवा जिन्हें अभी लालसा बाक़ी है, इसके जारी होने पर गुप्त रूप से उनका उस विषय की पूर्ति करना न बन्द हो जायगा? कम तो ज़रूर ही होगा। इसलिए कम से कम आज की स्थिति में यह पाप तो कहा ही कैसे जा सकता है? यदि बुराई ही हो, जैसा कि इस समय तो नहीं ही है, तो वह छोटी बुराई (Lesser Evil) होगी ओर उपर्युक्त बड़ी बुराई (Greater Evil) के नाश के लिए यदि हमें इस छोटी बुराई को **ग्रहण** करना पड़े, तो वह बुरा नहीं। अतएव सिद्धान्त-रूप में हम विधवा-विवाह को चाहे पुण्य और आदर्श न मानें; पर आज की स्थिति में, व्यवहार-रूप में, वह पाप तो हर्गिज़ हई नहीं, और न लज्जा की ही बात है। मेरी समझ में तो इस समय यह एक मध्य-मार्ग है और, उपर्युक्त बुराइयों से बचने के लिए, रामबाण उपाय है। यदि ईमानदारी के साथ इसे ग्रहण किया जाय, तो हमारी दशा आज से कहीं अच्छी होगी।

मुकुटबिहारी वर्मा

जात-पाँत का भूत

हमारा देश आज जिस मुमुर्ष्वावस्था को प्राप्त हो रहा है, उसके कई कारण हैं । इनमें से एक मुख्य कारण जात-पाँत और छूआ-छूत का भूत है । यद्यपि सभ्य और शिक्षित लोग "भूत-प्रेत" को नहीं मानते; और यदि कोई भूत-प्रेत का नाम लेता है तो शिक्षित-समुदाय उसकी हँसी उड़ाता है; किन्तु, इस भूत की तो उपासना वे लोग भी करते हैं ! यह भूत तो सच्चा और प्रत्यक्ष है और इसने भारत को, उत्तर से दक्षिण तक और पूर्व से पश्चिम तक, बुरी तरह से ग्रसा हुआ है । यह भूत लाखों होनहार युवक और युवतियों को, जिनपर देश का भविष्य निर्भर है, जीवितावस्था में ही मृतप्राय बनाए हुए है और बना रहा है । इसीके कारण जुए के पाँसों की तरह लड़के-लड़कियों का विवाह कर दिया जाता है । कहीं लड़का ग्रेजुएट है, तो लड़की निरक्षर भट्टाचार्य; और कहीं लड़की योग्य हो गई है, तो उसके लायक़ लड़का ही बिरादरी में मिलना कठिन हो जाता है । जहाँ सुख और शान्ति का साम्राज्य होना चाहिए था, वहाँ ऐसी-ऐसी घटनाओं से, आज हज़ारों गृहस्थ दुःख और क्लेश की क्रीड़ा-भूमि हो रहे हैं । जिन युवक-युवतियों के गुण-कर्म-स्वभाव मिलते हैं, जिनके विवाह-सम्बन्ध हो जाने से कई गृहस्थ सुख के आगार बन सकते हैं, उनकी केवल जाति न मिलने से वहाँ विवाह नहीं हो पाता । बहुत से माता-पिता इस भय से कि लड़की सयानी हो जाने पर शायद अपनी जात-बिरादरी में लड़का न मिले, छोटी-छोटी दूध-मुँही बच्चियों का विवाह कर देते हैं; और जब वे बचपन में ही विधवा हो जाती हैं, उनपर समाज के निरंकुश-अत्याचारों के कारण, उनका पुनर्विवाह भी न कर सकने से जन्म-भर घर भर को दुःखी बना लेते हैं, और अपने
को कोसा करते हैं ।

जीव-विज्ञान (Biology) की दृष्टि से देखा
तो इससे हमारी जाति को भयङ्कर हानि पहुँच
है । अपने ही वंश में विवाह होने से नवीन
(Fresh blood), जो कि दूसरी जातियों में से
सकता है, नहीं मिलता । इससे सन्तान अधम,
निकृष्ट उत्पन्न होती है और वंश बिगड़ जाता है
नसों में नवीन रक्त-संचार न होने से मनुष्य
शक्तियाँ धीरे-धीरे क्षीण होती जाती हैं । अपने
के लड़के-लड़की को हमारे यहाँ जो भाई-बहन सम
जाता है, वह इसी कारण; और उसके साथ वि
करना शास्त्रों में भी धर्म-विरुद्ध माना गया है । कि
जात-पाँत का बन्धन मानने से होता क्या है ? अप
ही उपजाति में विवाह किया जाता है, दूसरी में नहीं
जैसे कायस्थों में सक्सेना, श्रीवास्तव, माथुर, भटनागर
कुलश्रेष्ठ, अष्ठाना इत्यादि १२ उपजातियां हैं; इनमें
कोई भी उपजाति वाले अपनी उसी उपजाति के दा
में अपना सम्बन्ध करेंगे । सक्सेना कायस्थ सक्से
में ही अपना विवाह-सम्बन्ध करेंगे, श्रीवास्तवों
नहीं । इसी प्रकार श्रीवास्तव श्रीवास्तवों में ही विवा
कर सकते हैं, दूसरों में नहीं । केवल गोत्र
ध्यान रक्खा जाता है । मान लीजिए कि सक्सेनों
६० गोत्र हैं, तो जाति से बाहर न निकल कर इ
छोटे दायरे में ही सम्बन्ध करने से कुछ ही वर्षों
लौट-फेर कर भाई-बहनों में ही विवाह-सम्बन्ध
जायगा, यद्यपि वे इस बात को न जानते होंगे
उदाहरणार्थ—क, ख, ग तीन गोत्रों के नाम हैं । अ
क और ख गोत्र का विवाह हुआ तो इनसे जो सन्ता
होगी वह कख होगी, अर्थात् उसमें क और ख दो
गोत्रों का रक्त तथा गुण मिश्रित होंगे । फिर ख औ
ग गोत्र में आपस में विवाह-सम्बन्ध होगा, तो उन

सन्तान खग होगी। और फिर क, ग का परस्पर विवाह होगा, तो उनसे जो सन्तान होगी वह कग होगी । अब इन तीनों वर्गों में से किसी का विवाह करेंगे तो कख, खग और कग में एक चीज़ सामान्य (Common) होगी । सारांश यह कि यदि किसी उपजाति में केवल तीन गोत्र हों, तो उनकी दूसरी पीढ़ी में ही भाई-बहन में विवाह हो जायगा । इसी प्रकार ६० गोत्रों वाली उपजाति में १०-१५ पीढ़ी बाद भाई-बहन में विवाह हो जायगा । इस प्रमाण से यह सिद्ध हुआ कि इस समय हिन्दुओं में सैकड़ों वर्षों से अपनी ही जाति या उपजाति में जो विवाह होते आ रहे हैं, वे अपने ही भाई-बहनों में हुए। इससे देशमें हास(Degeneration) के बढ़ते जाने से तथा दूसरी जातियों से नवीन रक्त न मिलने से हिन्दू-जाति की शक्तियों का धीरे-धीरे हास होता जा रहा है; और दिनों-दिन निर्बल, बुद्धि-हीन, निकम्मी तथा रोगी सन्तान उत्पन्न हो रही है । अब प्रश्न यह उठता है कि जाति या उपजाति से बाहर—अर्थात् जाति-बन्धन को तोड़ कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य या कायस्थ आदि जातियों का भी ध्यान न रख कर—सब जातियों में विवाह-सम्बन्ध करने से भी तो कभी न कभी वही बात आ जायगी । इसका उत्तर यह है कि विभिन्न जातियों में सम्बन्ध होते रहने से नित्यप्रति नवीन रक्त मिलता रहेगा और क्षेत्र इतना विस्तृत हो जायगा कि कहीं लाखों वर्षों बाद सामान्य गुण-धर्म(Common factor)के मिलने की सम्भावना होगी और तब उनमें वह रक्त न होने के ही बराबर होगा । क्योंकि भिन्न-भिन्न रक्तों के लाखों वर्षों तक सम्मिश्रण होते रहने से वह एक नवीन ही वस्तु हो जायगी ।

इनके सिवाय इस भूत के कारण हमारी आज कितनी आर्थिक तथा राजनैतिक हानियाँ हो रही हैं ! इसीके झूठे ढकोसले के कारण आज हज़ारों हिन्दू अपने समाज से ठुकराये जा कर अन्य धर्मावलम्बियों की संख्या बढ़ा रहे हैं । ब्राह्मण वेशधारी हो कर घृणित से घृणित कार्य करते रहो, सब ठीक है; किंतु असहनीय विपद में पड़ भूख-प्यास से मर रहे हो । और प्राण बचाने के लिए विवश हो नीच जाति के हाथ से एक घूँट पानी पी लिया, कि जाति-भ्रष्ट हुए ! बिरादरी से निकाल दिये गये ! धर्मात्मा तिलकधारी समाज की आँखों में धूल झोंक दुनिया भर के पाप करते रहें, किन्तु ऊपर से कट्टर बने रहें, वे पूज्य हैं; पर एक सत्यनिष्ठ, झूठे आडम्बरों से घृणा करने वाला, पुरुष या स्त्री खुले-आम अपने से किसी छोटी जाति में विवाह कर ले, तो उसकी जाति काफ़ूर हुए बिना न रहेगी !

इन सब बातों से आज देश की अकथनीय हानियाँ हो रही हैं । अस्तु । यदि हम अपनेको इस पतितावस्था से निकालना चाहते हैं, यदि हम चाहते हैं कि हमारी सन्तान अधिक बलशाली, विचारवान, तीव्रबुद्धि तथा पराक्रमी उत्पन्न हो, यदि हम चाहते हैं कि हमारे गृहस्थ सद्गृहस्थ बन जायँ—वहाँ दुःख और क्लेश की जगह सुख और शान्ति का साम्राज्य हो, यदि हम चाहते हैं कि इस परिवर्तन-मय समय में हम दूसरे देशों की स्वाधीनता तथा उन्नतिशील जातियों के सन्मुख सिर ऊँचा कर सकें, तो हमें इन जाति-पांति और छुआ-छूत के तुच्छ बन्धनों को छोड़ विवाह-सम्बन्ध करते समय केवल गुण, कर्म और स्वभाव का ध्यान रखना चाहिए। इसीमें हमारा और हमारी भावी पीढ़ियों का कल्याण है ।

विद्याधरी जौहरी

गार्हस्थ्य जीवन का रहस्य

"स्त्री भोग–विलास की सामग्री नहीं है। वह भी तुम्हारी तरह एक शरीरस्थ आत्मा है। उसके शरीर में भी तुम्हारे जैसा अन्तःकरण; मन बुद्धि व अहंकार इत्यादि विद्यमान है। उसके हृदय में भी संकल्प-विकल्प, आशा व अभिलाषा की तरङ्गें उठा करती हैं। दैव ने तुम दोनों को समान अधिकार और कर्तव्य दिये हैं। इसे स्मरण रक्खो, और इसका आदर करो।" —आर्यआत्मा

"जिस कुल में स्त्री से पति और पति से स्त्री प्रसन्न रहती है, वहाँ, सुख और सम्पत्ति की कमी कभी नहीं रहती। जहाँ स्त्रियों का सत्कार होता है, वहाँ देवता रमण करते हैं; और जहां उनकी पूजा नहीं होती, वहां शुभ कार्य भी व्यर्थ हो जाते हैं।" यह भगवान् मनु की आज्ञा है; धर्मशास्त्र का विधान है। गृहस्थाश्रम का विशाल भवन इसी पवित्र सूक्ति की सुदृढ़ नींव पर बना हुआ है। आर्य जाति के दीर्घ जीवन में तरह-तरह के आंधी और तूफ़ान आये। नाना प्रकार की आपत्तियों और कठिनाइयों से उसे सामना करना पड़ा। परन्तु इसमें जहाँ तक स्त्रियों का सम्बन्ध रहा, वे कभी भी अपने धर्म और कर्त्तव्य-कर्मों को प्राण-पण से पालन करने में उदासीन नहीं रहीं। सतीत्व और पातिव्रत्य के लिए तो वे सदा से ही आदर्श रूप रहती आई हैं।

पति-सेवा स्त्रियों का परम धर्म है। एक पतिव्रता स्त्री के लिए तो उसका पति ही सर्वस्व है। वह अपने पति के सिवाय और किसी को जानती ही नहीं। पति से अलग अपने लिए कोई यज्ञ, तप, व्रत, ध्यान और तीर्थ इत्यादि समझती ही नहीं। वह अपने पतिदेव को ही एकमात्र आराध्यदेव मानती आई है। पति-सेवा में ही वह अपनी मुक्ति और मानती रही है। उसका पति चाहे कैसाही कुमार्गी और बुरे स्वभाव वाला क्यों न हो, और उसे कैसा और कितना ही घोर कष्ट और ही क्यों न सहना पड़ा हो; पर वह उसके लिए सर्वोपरि और पूज्य रहा है। दूसरे पुरुष की कैसी उसने कभी इस सम्बन्ध में अपने विचार भी उठने का अवसर नहीं आने दिया। पति के मरने पर वह बड़ी श्रद्धा और भक्ति-भा या तो उसके साथ ही आप भी सती हो जा जीवन पर्यन्त ब्रह्मचारिणी रहने में ही अपनी समझती।

इतना ही नहीं हम में से अनेक ऐसी और धर्मशीला देवियाँ हुई हैं, जिन्होंने अपने दुःख को देख कर खुद भी सहर्ष दुखी रहने अपना सुख समझा। कुरुराज महाराज जन्मान्ध थे। सती गान्धरी का विवाह उनके हुआ। देवी ने विवाह होते समय ही अपनी आँ भी पट्टी बाँधली और परमेश्वर की आराधना हुए यह प्रतिज्ञा की कि "अब मैं अपनी इन आँ इस संसार को नहीं देखूंगी और अपने पति अन्धा समझ कर उनके प्रति अपनी भक्ति सेवा–शुश्रुषा में किसी प्रकार की कमी न दूंगी।" आह! कैसी वीर और कठोर है और किस प्रकार की पति-निष्ठा है। गान्धारी ने अपनी इस कठोर प्रतिज्ञा को किस पालन किया, यह महाभारत और अन्य इतिहा विज्ञ पाठकों से छिपा नहीं। क्या भारत-ललना सिवाय कोई ऐसा साहस कर सकता है?

महारानी गान्धारी को आज पाँच हजार समय हो गया। इस दीर्घ काल में देश और आदर्श और उद्देश्य में अनेक उथल-पुथल होना

विक है। परन्तु क्या कोई यह कहने का साहस कर सकता है कि हम आर्य महिलाओं के इस परम-पुनीत धर्म और आदर्श में भी कोई अन्तर हुआ है? सती गान्धारी के समान स्वभाव और चरित्र की देवियाँ अब भी—इस गये-गुज़रे समय में भी—मौजूद हैं। सती होने की रस्म सरकारी आज्ञा से बन्द कर दी गई है; परन्तु अब भी शायद ही कोई ऐसा वर्ष होता होगा, जब देश में सती होने के दो-चार समाचार सुनाई न पड़ते हों।

हमें अपनी इस स्थिति पर हर्ष और अभिमान है और हम अपनी इस कीर्त्ति की रक्षा की हृदय से कामना रखती हैं। लेकिन, इसके साथ ही, हम यह भी चाहती हैं कि पुरुषों को भी अपने धर्म और कर्तव्य की ओर यथेष्ट ध्यान देना चाहिए। एक तरफ़ की बात सदा पूरी नहीं पड़ती। एक किनारे की नदी कहीं नहीं बही। ताली दोनों हाथों से बजती है। हर-एक बात अपनी सीमा के अन्दर ही मर्यादित रहती और शोभा को प्राप्त होती है। मनु भगवान् ने जहाँ स्त्रियों के लिए पातिव्रत्य की आज्ञा दी है, वहाँ पुरुषों को भी खुले और ज़ोरदार शब्दों में पत्नीव्रत होने को कहा है। पातिव्रत्य-धर्म का माहात्म्य स्त्रियों के लिए ठीक इसी प्रकार है, जैसे पुरुषों के लिए पत्नीव्रत का महत्व।

निःसन्देह एक पत्नी के लिए अपने पति की ही पत्नी होना उसी प्रकार अनिवार्य है, जिस प्रकार कि एक पति को एकमात्र अपनी पत्नी का ही पति होना। इसके विरुद्ध व्यवहार करना दोनों के लिए अनुचित अधर्म और पाप है।

यह है हिन्दू-शास्त्र का विधान; मनु-संहिता की आज्ञा। इसके अतिरिक्त विवाह के समय वर-वधू की प्रतिज्ञायें होती हैं। उनमें एक प्रतिज्ञा में वर कहता है—"हे प्रिये, मैं तेरे हाथ को ग्रहण करता हूँ। तू धर्म से मेरी पत्नी है और मैं धर्म से तेरा पति हूँ। तेरा हृदय मेरा हृदय है और मेरा हृदय तेरा हृदय है। ये दोनों हृदय जल के समान शान्त और मिले हुए रहेंगे। हम दोनों मिलकर घर के कामों को सिद्ध करेंगे और जो दोनों का अप्रियाचरण कर्म है, उसको कभी न करेंगे।"

यह प्रतिज्ञा यज्ञशाला में बैठे हुए अनेक विद्वानों और वर-वधू दोनों पक्ष के मान्य सम्बन्धियों के सामने, अग्नि और देवता को साक्षी करते हुए, की जाती है। यह प्रतिज्ञा कैसी पवित्र, कितनी भावपूर्ण और न्याययुक्त है, यह बताने की आवश्यकता नहीं। पर इसका प्रभाव वर के हृदय में कब तक और कहाँ तक रहता है यह भी अप्रकट नहीं है। विवाह के बाद कुछ समय तक—चाहे वह किसी भी दृष्टि से हो—नववधू का अच्छा आदर-सत्कार रहता है; परन्तु चार दिन की चाँदनी के पश्चात् फिर वही अन्धेरी रात! वही आपाधापी! न प्रतिज्ञा का ख़याल, न मनु-आज्ञा की पर्वाह। क्या कोई कह सकता है कि हम अपने पत्नीव्रत धर्म का ठीक उसी तरह पालन करते हैं, जिस तरह स्त्रियां अपने पातिव्रत्य धर्म का? क्या पुरुषों के हृदय में स्त्रियों के प्रति वैसे ही आदर, प्रेम और सद्भाव हैं, जैसे कि स्त्रियाँ अपने व्यवहार और चरित्र से प्रकट कर रही हैं? मैं इन प्रश्नों का उत्तर अपनी ओर से कुछ नहीं देना चाहती। प्रत्येक पुरुष को स्वयं इसका जवाब देकर अपनी आत्मा को सन्तुष्ट कर लेना चाहिए। मैं यह नहीं कहती कि सभी स्त्री-पुरुष एकसे होते हैं। पूज्य और निकृष्ट उदाहरण उभयपक्ष में मिल सकते हैं। पर मैं यहाँ पर सर्वसाधारण की ही बात करती हूँ, आदर्श पति व पत्नी पर विचार नहीं करती।

स्त्री और पुरुष मानव समाज के दो स्वतन्त्र अंग हैं। इन दोनों की प्रकृति में कुछ विभिन्नता और विषमता होते हुए भी बड़ी अद्भुत समानता है और ये

दोनों मिल कर एक महान् उद्देश्य की पूर्ति के लिए उत्पन्न किये गये हैं। इनमें से कोई एक दूसरे से बुद्धि, योग्यता और सामर्थ्य में कम नहीं है । सृष्टि-कर्त्ता परमात्मा ने दोनों को समान अधिकार दिये हैं। ये प्रत्येक अपनी-अपनी आत्मा और अन्तःकरण इत्यादि रखते हैं और अपने स्वाभाविक मनुष्य-जीवन के उद्देश्यानुसार हरएक मोक्ष-मार्ग के यात्री हैं और स्वभावतः ही एक उचित सीमा तक स्वाधीनता चाहते हैं। क्या स्त्रियों के लिए केवल पातिव्रत्य धर्म का पालन करना ही मोक्ष-प्राप्ति के लिए पर्याप्त होगा ? क्या एकमात्र पति की आज्ञा मान कर ही वे मुक्ति की अधिकारी समझी जा सकेंगी और उन्हें ईश्वर तथा अपनी आत्मा की आज्ञाओं का पालन करने की आवश्यकता नहीं ? यह बात धर्मानुकूल और न्याय-संगत नहीं प्रतीत होती।

ईश्वर, आत्मा, देश, धर्म, जाति इत्यादि स्त्रियों के लिए भी ठीक उसी प्रकार हैं, जैसे पुरुषों के लिए। जिस प्रकार पुरुष को ईश्वर-आराधना, देश-सेवा इत्यादि पवित्र और सार्वजनिक हित के कार्यों में पूर्ण स्वतन्त्रता है, उसी प्रकार स्त्री भी इन मामलों में पूर्णतया स्वाधीन है। यदि पति की इच्छा ईश्वर अथवा आत्मा की आज्ञाओं के प्रतिकूल हो, तो उसका पालन करना एक पतिव्रता स्त्री के लिए आवश्यक नहीं है, बल्कि पाप और अधर्म है. और उसका पालन न करने से उसका पातिव्रत्य-धर्म नहीं बिगड़ता। उसे पूर्ण अधिकार है कि वह वही करे, जो उसकी आत्मा और कर्त्तव्य-बुद्धि आज्ञा दे। इस काम से चाहे उसका पति प्रसन्न हो अथवा अप्रसन्न, उसे तनिक भी पर्वाह न करनी चाहिए। मीराबाई जैसी अनेक धर्मवीर माताओं के विमल चरित्र हमारे लिए पथ-प्रदर्शक हैं।

पति की आज्ञाकारिणी होने का यह अर्थ नहीं है कि उसकी उचित और अनुचित प्रत्येक बात ही मान ली जावे। एक सच्ची पतिव्रता अर्द्धाङ्गि सहधर्मिणी बनने वाली देवी के लिए यह आ है कि वह अपने सत्परामर्श और मनुष्योचित बुद्धि से उसे सहायता दे और उसे सन्मार्ग पर अन्यथा वह अपने पति की क्रीतदासी हो सक पतिव्रता पत्नी और मंगलकारिणी मित्र तथा और स्वार्थ-रहित सहायक नहीं। परन्तु यह सम्भव है, जब उसमें काफ़ी विद्या और शिक्ष और उसे पर्याप्त स्वतन्त्रता प्राप्त हो।

देश, धर्म और मनुष्य-जाति के प्रति योग्यता के अनुसार प्रत्येक नर-नारी का कर्त्तव्य है। हां, तदि कर्त्तव्य-कर्मों में कभी गृह कर्त्तव्यों के साथ टक्कर हो जाय, तो देश और म जाति के हित का विचार रखना ही सच्चा मा धर्म होगा।

हां, एक बात और कही जाती है; वह यह स्त्री का विवाहिता होना आवश्यक है, बिना प उसकी गति नहीं होती। मैं इसे नहीं मानती। धर्मशास्त्र में इस प्रकार की कोई बात नहीं है भगवान् की आज्ञायें स्त्री-पुरुषों के लिए सम वैदिक धर्म किसी विशेष जाति या वर्ण का प नहीं है। जिस प्रकार कोई पुरुष अविवाहित या ब्रह्मचारी रह कर किसी उच्च आदर्श की प्र लिए अपना जीवन बिता देता है. और उसकी नहीं होती, उसे कोई बुरा नहीं कहता, बल्कि जन्म सफल समझा जाता है, देश और जाति सन्मान की दृष्टि से देखते हैं, उसी प्रकार स्त्री के लिए भी यह अनिवार्य नहीं है कि वह हिता हुए बिना किसी महान् उद्देश्य की प्राप्ति उद्योग न कर सके। प्राचीन भारत में गार्गी अनेक ब्रह्मवादिनी स्त्रियां हुई हैं, जो आजन्म

ब्रह्मचारिणी भी रहीं। अब भी कोई हो, तो बड़े अभिमान की बात है।

मनुष्य-जीवन का मूल्य उसकी उच्च सेवाओं और उपयोगी कार्यों पर निर्भर है। घर के भीतर भी न पत्नी का एकमात्र काम पति को आनन्दित रखना ही है, और न पति का काम केवल अपनी पत्नी को सुखी रखना ही है। वस्तुतः पति-पत्नी का पवित्र सम्बन्ध सृष्टि-क्रम के अनुसार एक प्रकार की मैत्री, एकता, समता, प्रेम और पारस्परिक आनन्द है, जिसके द्वारा यह मानवी जीवन-यात्रा निर्विघ्न और सुख-पूर्वक समाप्त हो और अन्त को परमानन्द प्राप्त किया जावे। *

(स्व०) कुन्तीदेवी

शिल्पी

१

भग्न कुटीर

उषा की मंद मुस्कान से जगत् में प्रकाश हो चला था। प्रभात-समीरण के झकोरों से निकटवर्त्ती विटपों के पत्र धीरे-धीरे हिल रहे थे। विहंग-वृन्द मुदित होकर 'उपपुर' भग्न कुटीर के खंडहरों को गुँजा रहे थे। युवक की भग्न कुटीर पर अब भी ओस के मोती बिखरे हुए थे। उसने अपने हाथ का चित्रपट धीरे से पृथ्वी पर रख कर कुटी के बाहर देखा। मार्ग पर कभी-कभी कोई पथिक गुनगुनाता हुआ निकल जाता था। इसके अतिरिक्त चतुर्दिक शांति थी।

कुटी की भीत कई स्थान पर गिर गई थी। छत भी, स्थान-स्थान से टूटी होने के कारण, कुटी में सूर्य का आह्वान करती थी। अंदर इधर-उधर कई बने और अधबने चित्र पड़े थे। युवक के पास ही संगमरमर की दो-एक छोटी मूर्तियां रक्खी थीं।

उसने चित्रपट की ओर स्नेहाभिषिक्त दृष्टि से देखते हुए धीरे से कहा—'माया!' किसी ने उत्तर दिया—'शिल्पी! क्या कर रहे हो?' सामने से एक चपल बालिका उसकी कुटी में चली आई।

"क्यों जालौक, तुमने मेरा नाम लेकर क्यों आवाज़ दी?"

"चपल बालिका, तुम इसका कारण नहीं समझ सकतीं।"

"यह चित्र किसका है—मेरा?"

"हाँ।"

"तब मुझे दे दो।"

"माया, आज तुम बहुत शीघ्र चली आई हो। तुम्हारे पिता तो रुष्ट न होंगे?"

"नहीं शिल्पी, आज हम राजधानी चलेंगे। उन्होंने आज्ञा दे दी है।" बालिका शिल्पी का हाथ पकड़ कर उठाने लगी।

"चलो जालौक, आज हम माधवी के कुँजों में भ्रमर-गुंजार और पक्षियों का कलरव सुनेंगे। कुछ दिन और चढ़ने पर पाटलिपुत्र चलेंगे।"

युवक उठ कर बालिका के साथ हो लिया। माया इधर-उधर से पुष्प तोड़ कर अपने कान, हाथ और सिर पर धरने लगी। फिर उसने युवक को फूलों के अलङ्कार बना कर पहनाना आरंभ किया।

"यदि जालौक तुम चित्र बनाना छोड़ दो और पिताजी की तरह सोन को मथ कर भांति-भांति की मछलियां पकड़ा करो, तो मैं तुम्हारे साथ विवाह कर लूँ।"

युवक ने चौंक कर बालिका का हाथ छोड़ दिया और कहा—"देखो माया, ऐसी बातें न किया करो। पिताजी सुनेंगे तो नाराज़ होंगे।"

---

* श्री आनन्दभिक्षुजी द्वारा प्राप्त।

बालिका यह सुनकर खीझ उठी। उसने अपने सब अलङ्कार फेंक दिये और एक लता से लिपट कर सिसकने लगी। शिल्पी कुछ देर तक सोचता रहा, फिर उसने बालिका का हाथ पकड़ कर कहा—"उठो, माया तुम बनदेवी बनो। मैं वंशी बजाऊँगा।"

× × ×

२

राजधानी

"धीवर-कन्या, चलो, उस ओर चलें।"

"नहीं शिल्पी, उधर देखो। कितनी अच्छी सीपियां हैं! यदि मैं सागर-तट गई तो खूब सीपियां बटोरूंगी।"

"देखो माया, उस मनुष्य के पास कितने सुंदर मोर-पंख हैं!"

नगर के चौड़े राजपथ मनुष्यों की भीड़ से सागर की भांति उमड़ रहे थे। जब भीड़ किसी एक ओर या दूसरी ओर झुकती, तो वह सागर हिलोरें लेता हुआ प्रतीत होता।

राजपथ के दोनों ओर बड़े-बड़े धनी वणिक मणि, मुक्ता और बहुमूल्य वस्त्रों की दूकानों पर बैठे थे। नीचे पथ पर अनेक विक्रेता भांति-भांति की वस्तुयें सजाये बैठे थे। श्वेत वस्त्र पहने और गलों में पुष्प-हार डाले हुए नागरिक इधर-उधर चले जा रहे थे।

राजधानी में आकर वनदेवी और वनदेवता नगर का ऐश्वर्य निरखने लगे। शिल्पी ने कई विक्रेताओं के यहाँ जाकर चित्र देखे। धीवर-कन्या ने बड़ी और छोटी मछलियों को देखकर अपनी सम्मति प्रकट करनी आरम्भ की।

अचानक ही जयध्वनि से राजपथ गूँज उठा—'सम्राट् आ रहे हैं!' शिल्पी ने कहा, 'चलो माया, उस दूकान में चित्र देख लें। यहां भीड़ बहुत हो रही है।'

'नहीं जालौक, मैं तो सम्राट् को देखूँगी। जा सकते हो।'

राजसेवक आकर भीड़ को ठेलने लगे। ही उन्होंने पथ को साफ़ कर दोनों ओर रस्से दिये, जिससे कि कोई मनुष्य बढ़ न सके।

जालौक ने सिर उठा कर देखा, माया व न थी। घबरा कर उसने पुकारना आरम्भ किया, कोई फल न हुआ।

फिर जयध्वनि हुई। अपनी शरीर-रक्षक से घिरे हुए सम्राट् एक सुवर्ण-यान पर च निकल गये।

शिल्पी बहुत घबरा गया था। पाटलिपुत्र विशाल नगर में माया कहाँ मिलेगी? उसने ना से पूछना आरम्भ किया, "क्यों भाई, तुमने फू लदी किसी बालिका को देखा है?" चारों ओर घूमते शिल्पी बहुत थक गया। वह बिना किसी के इधर-उधर दौड़ रहा था। अन्त में प्या व्याकुल होकर उसने नदी की ओर प्रस्थान कि

× × ×

पिपासा शान्त होने पर युवक को कुछ आई। एक नाविक ने उससे पूछा—'उपपुर है?' शिल्पी ने सिर हिला दिया—'वहीं सही

राजनगर के विशाल भवन धीरे-धीरे ने ओझल होते गये। सोन के वक्ष पर एक-दो मयूर नौकायें विचर रही थीं। राजधानी स्वप्न की अदृश्य हो रही थी। सूर्य भगवान् अस्ताच हो चुके थे। उनकी कतिपय नटखट किरणें सोन के जल से आँख-मिचौनी खेलने लगीं। वायु के स्पर्श से शिल्पी के वस्त्र हिलने लगे। की घटनायें उसे किसी झूठे कवि की कल्प ज्ञात हुईं।

नाविक पूछ रहा था—'किधर उतरिएगा

[संवत १९८५]

शिल्पी चौंक पड़ा । बोला—"यहीं उतार दो ।"

सन्ध्या की शीतल वायु की थपकी खा कर युवक सोन के ठण्डे बालू पर लेट गया ।

× × ×

३

सोन के तट पर

"जालौक, जालौक !"

युवक उठ कर बैठ गया । उसने स्वप्न देखा था कि एक बड़ा भारी राक्षक माया को खाने के लिए आ रहा है, और वह उसे पुकार रही है ।

फिर आवाज़ आई—'जालौक !' शिल्पी ने कोष से खड्ग खींच लिया । चारों ओर शान्ति थी । आकाश से हँस-हँस कर चन्द्रदेव पृथ्वी पर अपनी शुभ्र ज्योत्सना बखेर रहे थे । कुछ ही दूर पर छाया-सी हिल रही थी ।

जालौक ने जाकर देखा, सुंदर वस्त्र पहने हुए एक नवयुवक माया के हाथ पकड़ कर यह कहते हुए उसे झकोर रहा है—"बुला न जालौक को ! कुबेर को छोड़ कर किस भिखारी के गले पड़ी है ? वह तो तुझे कौड़ी भर भी नहीं पूछता ।"

आँसू टपकाते हुए माया ने कहा—"झूठ है; बिल्कुल झूठ ।"

"तब, बुला न उसे !"

"मैं आ गया !" कह कर किसी ने युवक के कंधे पर हाथ रक्खा—"इधर देखो ।"

"कौन ?"

"मैं हूँ जालौक; मेरा स्मरण कर रहे थे ?"

"क्या मृत्यु बहुत प्यारी है ?"

"यह तो अभी पता लग जायगा । तुम कौन हो ?"

"मैं विख्यात धनी रविगुप्त का पुत्र शशिमित्र हूँ ।"

"अच्छा तो वणिक और शिल्पी का युद्ध सही ।"

'जालौक इस समय बड़ा गम्भीर हो गया था । वह सूखी हँसी हँस कर बात करता था । दिन भर की वेदना ने उसे एक विचित्र शक्ति दे दी थी ।

पल मारते उसका खड्ग शशिमित्र का वक्ष पार कर गया ।

"ठीक तो यही होता कि दूकान का हिसाब बनाते !"

शशिमित्र ने गिरते-गिरते धीरे से वंशी निकाल कर बजा दी ।

माया जालौक से लिपट कर रो रही थी । इतने ही में कई अश्वारोहियों ने चारों ओर से दोनों को घेर लिया । जालौक ने युद्ध करने का प्रयत्न किया, परंतु माया उसकी बाहु पर लटकी थी । अश्वारोही जालौक को अच्छी तरह से बाँध कर राजनगर की ओर ले गये ।

माया मूर्च्छित हो कर गिर पड़ी और वहीं पड़ी रह गई ।

× × ×

४

बन्दी

जालौक रात्रि में ही पाटलिपुत्र के कारागार में डाल दिया गया था । उसे तनिक भी निद्रा न आई । वह सोचता रहा कि माया की क्या दशा हुई होगी ।

प्रातःकाल ही उसे समाचार मिला कि सम्राट् न्याय करेंगे । जालौक अपनी विचार-धारा में लीन था, किंतु पास के रक्षकों की बात सुन कर चौंक पड़ा । और ध्यान लगा कर सुनने लगा—

"सुनो जी, आज सम्राट् कौशाम्बी के अमात्य से मिलेंगे ।"

जालौक ने एक रक्षक को अपने पास बुलाया और उसे कुछ 'पण' देते हुए कहा—"इनसे तुम पुष्प-हार लेकर पहनना, अथवा माधवी वा कादंब पी लेना। यह मुद्रिका कोशाम्बी के अमात्य के पास पहुँचा दो।"

रक्षक ने प्रसन्न होकर 'पण' अपने उत्तरीय में बांध लिया और मुद्रिका लेकर बाहर चला गया।

× × ×

संसार कितना परिवर्तनशील है! रात्रि में बंदी होकर कारागार में रक्खे गये। रक्षकों के दुर्वचन सुने। पर प्रभात ही राजकुमारों की भाँति दास-दासियों-सहित राजनगर के पथ गुंजा दिये!

मुद्रिका देखते ही अमात्य पहचान गया। रक्षक को आसव पीने के लिए और बहुत से 'पण' मिल गये। अमात्य ने जाकर सम्राट् से कहा कि 'कोशांबी के राजकुमार कारागार में हैं।'

कुछ ही पल के उपरांत पाटलिपुत्र राजकुमार की जयध्वनि से गूंज उठा।

जालौक बड़ी उत्सुकता से सोच रहा था कि यहाँ से छूटें तो उपपुर जावें।

× × ×

५

अनंत के पथ पर

माया का हृदय क्षत-विक्षत हो गया। उसकी आशाओं पर तुषार पड़ गया। उसने रात्रि बड़े कष्ट से व्यतीत की। एक के उपरांत दूसरा नक्षत्र अन्तरिक्ष में विलीन हुआ। जब मलिन मुख चन्द्रदेव मेघमाला में अपना मुख छिपा कर भागने लगे, तब बालिका को कुछ चेतना आई।

माया बिना किसी भय के फिर पाटलिपुत्र आई, राजधानी में कुहराम मचा था। नागरिक सुन्दर वस्त्र पहन कर राजपथों पर टहल रहे थे। कुछ ही देर में एक रूपवान युवक अश्वारूढ़ हुआ अनेक सेवकों के साथ पथ से निकला। नागरिकों ने जयध्वनि

'राजकुमार जालौक की जय!'

माया ने सिर उठाकर देखा। सचमुच आराध्य-देवता शिल्पी राजकुमार था!

माया सन्न हो गई। उसके मुख से शब्द न निकला। उसकी रही-सही आशायें चक्र के एक ही प्रहार से चूर-चूर हो गईं। राजा और कहाँ यह भिखमंगी!

माया एक ओर को चल दी। उसे न ज्ञान था, न देश का। उसका लक्ष्य केवल 'अपनी भग्न आशाओं से दूर भागना।' कोई अपने हृदय से दूर भी भागा है? वेदना निरन्तर बढ़ती गई। 'भग्न-कुटीर' 'धीवर-कुटी' आदि होती हुई वह बन में पहुँच वहाँ भी उसका केवल एक लक्ष्य था। वेदना' से दूर भागना। माया ने समझा, 'वह तृष्णा की ओर जा रही थी; अब उससे परन्तु यह उसकी भूल थी।

वह समझी कि 'वह एक छाया के पीछे रही थी। अब उलटी लौट रही है।' किन्तु बालिका अनंत के पथ पर अग्रसर हो रही जाने उसके भ्रमण का कब अन्त होगा! विटप पक्षी, भ्रमर और पुष्प उसके दुः संभवतः कम कर सकें!

× × ×

कुछ दिन चढ़ने पर उपपुर के निव देखा कि राजकुमार 'जालौक' बड़े व्याकुल इधर-उधर घूम रहे हैं!❀

प्रकाशचन्द

❀ बंगला से!

कुटुम्ब-प्रणाली और मानवी सुख

सुख की इच्छा मनुष्य में स्वाभाविक होती है। आजकल भी सुख-वृद्धि के उपाय सोचने में मनुष्य तन्मय है। भारतीय सुख-चिन्तकों के मार्ग में अब एक नयी समस्या आ उपस्थित हुई है। वे पूछते हैं कि सम्मिलित कुटुम्ब-प्रणाली मनुष्य को अधिक सुखदायी है अथवा वैयक्तिक कुटुम्ब-प्रणाली ? जिस भारतवर्ष में 'वसुधैव कुटुम्बकम्' में ही मानव-जीवन का एक-मात्र सिद्धांत रहा हो, उसमें इस प्रश्न का उठना कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं।

परन्तु मानव-समाज एक विचित्र रहस्य है। काल का बृहत् चक्र अपनी लीला का प्रदर्शन सबसे अधिक यहीं करता है। कहां तो भारतवासी समस्त भूमण्डल को भी अपना कुटुम्ब मान कर सन्तुष्ट नहीं होते थे, कहां आज यह प्रश्न उपस्थित है कि भाई का भाई के साथ रहना उचित है या नहीं ? पिता अपने प्राणों से भी प्यारे पुत्र को साथ रक्खे या न रक्खे ?

इस प्रश्न का लक्ष्य है मानव-जीवन का सुख। यदि यह दार्शनिक सुख है, जिसकी ओर भी संकेत हो सकता है, तब वह सुख कौटुम्बिक जीवन में, चाहे वह सम्मिलित हो अथवा वैयक्तिक. प्रायः असंभव ही सा है। इसलिए उसकी तो चर्चा ही व्यर्थ है। अब संभवतः सांसारिक सुख ही इसका लक्ष्य हो सकता है। परन्तु सांसारिक सुख की कल्पना एक कुटुम्ब-विहीन के लिए ठीक वैसी ही है, जैसे कि एक बांझ के लिए पुत्र-स्नेह। जिसके घर में वयोवृद्ध पुरुषों का अभाव हो, जिसको माता के समान स्नेह करने वाली देवियों के दर्शन दुर्लभ हों, जिसका हृदय कुटुंब के प्रेम से परिपूर्ण न हो, वह चाहे जितना धनवान हो और चाहे जितना बलवान, उसके लिए वह परम सुख, जिसका अनुभव करने के लिए यथार्थ में मनुष्य का जन्म होता है, प्रायः अलभ्य है।

धन और ऐश्वर्य ही केवल जीवन के सुख के निर्माणकर्ता नहीं हैं। न जाने कितने राजा महाराजा अमित धन और ऐश्वर्य से संयुक्त होते हुए भी अत्यन्त दीन देख पड़ते हैं। न जाने कितनी रानियाँ पुत्रहीन होने ही के कारण अपनेको एक महा-दरिद्री से भी अधिक दीन समझती हैं। धन जीवन की सुविधायें तथा आमोद–प्रमोद अवश्य मोल ले सकता है, परन्तु जीवन का सच्चा सुख धन की सीमा के परे है। धन के प्रशंसक विद्वानों ने भी "सर्वेगुणाः काञ्चन माश्रयन्ती" ही कह कर छोड़ दिया है। इससे आगे बढ़कर "सर्वे सुखाः काञ्चन माश्रयन्ती" कहने का साहस वे भी नहीं कर सके हैं। सम्मिलित कुटुम्ब की प्रथा केवल धनोपार्जन की ही दृष्टि से अवाञ्छनीय हो सकती है, परन्तु केवल धनोपार्जन ही तो मानव-जीवन का ध्येय नहीं है। जीवन की सुविधायें कुछ और वस्तु हैं, किन्तु जीवन का सुख कुछ और। अंकित धन और बल सुविधाओं का श्रोत भले ही हो, पर सुख के लिए तो किसी और ही वस्तु की आवश्यकता है। क्योंकि, यदि धन ही मानव-जीवन के सुख का एकमात्र साधन होता, तो एक परम-स्नेही मित्र की अपेक्षा एक स्नेह-शून्य धनिक से मिलकर ही मनुष्य को अत्यन्त प्रसन्नता होती। परन्तु दैनिक जीवन में तो क्रम इसके विपरीत ही पाया जाता है।

वास्तव में वैयक्तिक जीवन का विचार पश्चिम से उदय होता है, जहाँ का निवासी यदि भोजन एक स्थान पर करता है तो सोने प्रायःमीलों दूर जाता है–यदि दिन भर काम एक जगह पर करता है तो आमोद-प्रमोद के लिए कोसों अन्यत्र जाता है ! यहां तक कि यदि किसी आत्मीय से भेंट भी करनी होती है, तो समय-निर्धारण किसी क्लब या होटल में ही

करना पड़ता है। क्या ऐसे गृह-हीन जीवन को भी गृहस्थ-जीवन कह सकते हैं? वहां तो न पिता का पुत्र से सम्बन्ध है, न भगिनी का भाई से। यदि कुछ भी चिंता है तो बस अपनी या अधिक से अधिक अपनी प्रेयसी की। वह भी प्रायः नहीं के तुल्य—क्योंकि, वहां प्रायः इस पवित्र बन्धन का भी मूल प्रेम की अपेक्षा धन और वैभव ही हुआ करता है।

भला इस स्वार्थ-पूर्ण पाशविक जीवन में वे निःस्वार्थ ऊँचे आदर्श जो प्रत्येक भारतवासी के सन्मुख उसके जन्मकाल से ही रक्खे जाते हैं, कैसे समाविष्ट किये जा सकते हैं?

एक वैयक्तिक कुटुम्ब की रमणी कई बालकों की जननी भले ही बन जाय, परन्तु क्या वह सचमुच माता कहलाने की अधिकारिणी हो सकती है? सम्भव है, यह प्रश्न विपक्षियों को चकित कर दे। परन्तु वह जननी जो इस सिद्धांत की मानने वाली है कि जहाँ बालक ज़रा बड़ा हो गया कि उसे पशु-पक्षियों की भांति पृथक् कर देना ही उचित है, अपने हृदय में—अपने स्वार्थपूर्ण हृदय में—माता का वह अमित प्रेम कैसे धारण कर सकती है, जो एक भारत-रमणी के हृदय में रत्न के तुल्य विराजमान होता है—भारत रमणी, जो अपने बालक की रक्षा केवल इसी लोक में करके सन्तुष्ट नहीं होती वरन परलोक में भी जिसकी यही चिरभिलाषा रहती है कि अपनी सन्तति को सुखी देखे। जिसका सरल हृदय अपरिमित स्नेह का आगार नहीं है, जहाँ अगाध ममता नहीं है, वह हृदय क्या मातृत्व का अभिमान कर सकता है? जिस जीवन की जड़ ही स्वार्थ पर है, अपना सुख ही जहाँ जीवन का सिद्धांत है, उसे वैयक्तिक कुटुम्ब कहते हैं।

यह माना कि वैयक्तिक जीवन का तात्पर्य कुटुंब के प्राणियों से विरोध कर लेना नहीं है; परन्तु तोभी यह तो मानना ही पड़ेगा कि अलग रह कर हृदय में वह स्नेह कदापि नहीं रह सकता, जो स
जीवन में होता है। स्नेह के लिए सहवास उ
आवश्यक है, जितना कि एक कोमल पौधे के
जल और थल।

सम्मिलित कुटुंब-प्रणाली पर यह आ
वह मनुष्यों को पुरुषार्थ-विहीन बना देती है,
मिथ्या है। ऐसा कहने वालों से मैं यह पू
कि लक्ष्मण और भरत का राम के लिए वह
त्याग क्या वैयक्तिक जीवन की शिक्षा के द्वा
उत्पन्न हो सकता था? भीम और अर्जुन की यु
में वह असीम श्रद्धा क्या वैयक्तिक जीवन की
के द्वारा भी उत्पन्न की जा सकती थी?

केवल प्राचीन इतिहासों के पन्नों में ही
उदाहरण नहीं हैं वरन आजकल भी भारत
भगिनी का भाई के प्रति तथा भाई का भाई
जो पवित्र और निस्पृह प्रेम देख पड़ता है
अन्यत्र यदि दुर्लभ नहीं तो असुलभ तो अवश

यह सब कुछ होते हुए भी इतना तो
पड़ेगा कि सम्मिलित कुटुम्ब की प्रथा जो ए
आदर्श पर स्थित थी आजकल अपने लक्ष्य से
पतित अवश्य हो गई है। परन्तु इसमें आश्च
क्या है? वास्तव में यदि देखा जाय तो ए
क्या सभी व्यवस्थायें अपने अपने उच्चाद
पतित हो रही हैं। यही कारण है कि जीवन की
त्तियाँ इतनी कठिन होती जाती हैं।

परन्तु जब यह निर्विवाद है कि सम्मिलित
का आदर्श अत्यन्त उच्च और महत्वपूर्ण है, त
मानव-जीवन को पाशविक जीवन से विशे
तब ऐसी प्रथा का सुधार न करके उसका ब
कर देना कहाँ तक उचित है? इसका निर्णय
स्वयं कर सकते हैं।

श्री सीताजी

श्री सीताजी मिथिला देश के महाराज जनक की पुत्री, अयोध्या के महाराज दशरथ की पुत्र-वधू तथा मर्यादा-पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्रजी की पत्नी थीं। यह अपने समय की अपूर्व रूप-लावण्यवती, परम सुन्दरी और अद्वितीय बुद्धिमती तथा सुशीला नारी थीं। महाराज जनक की हार्दिक इच्छा थी, कि सीताजी के लिए इनके उपयुक्त ही परम सुंदर महान योद्धा,कुलीन,सुशिक्षित तथा सर्वगुण-संपन्न वर प्राप्त हो। इसीलिए उन्होंने सीताजी का विवाह करके स्वयंवर रचा।

उन्होंने एक बड़ा भारी धनुष-यज्ञ किया। उसमें सभी देशों के नामी-नामी प्रसिद्ध तथा प्रतिष्ठित राजे-महाराजे आमन्त्रित किये गये थे। महाराज के यहाँ शिवजी का एक बड़ा भारी धनुष था। उन्होंने यह प्रतिज्ञा की थी, कि जो इस भारी धनुष की प्रत्यंचा चढ़ाकर इसे ऊपर ले जाकर तान देगा उसी के साथ मैं सीता का विवाह करूँगा और वह आदमी त्रिभुवन-विजयी समझा जायगा।

सभी राजा उस धनुष को चढ़ाने के लिए उद्यत हुए, किन्तु वह जमीन पर से भी उठता नहीं था। जब सभी राजा थक कर बैठ गये, तब श्रीरामचंद्रजी उठे। उन्होंने बात की बात में धनुष को चढ़ा ही नहीं दिया, बल्कि उसके टुकड़े-टुकड़े कर डाले। इस बात से महाराज जनक बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने श्रीरामचन्द्रजी के साथ सीताजी का विवाह कर दिया। रामचन्द्रजी,सीताजी के साथ, प्रसन्नता-पूर्वक अयोध्या को लौट आये।

जब रामचन्द्रजी वन को गये, तो सीताजी भी उनके साथ गईं। रामचन्द्रजी की अनुपस्थिति में पञ्चवटी की कुटी में से रावण सीताजी को हर ले गया। इस पर श्रीरामचन्द्रजी ने दल-बल-सहित उसपर चढ़ाई की और उसे मारकर सीताजी को ले आये। वन की अवधि समाप्त होने पर रामचन्द्रजी, सीताजी सहित, अयोध्यापुरी में लौट आये और सुख-पूर्वक रहने लगे। अवध में आकर सीताजी के लव और कुश नाम के दो पुत्र उत्पन्न हुए।

सौंदर्य

सीताजी अपने समय की अद्वितीय सुंदरी थीं। उस समय में पृथ्वी पर उनके सदृश एक भी सुंदरी युवती न थी। सीताजी के सौंदर्य को लक्ष्य करके ही तो किसी कवि ने कहा है-"अति सर्वत्र वर्जयेत्" अर्थात् किसी काम की अति अच्छी नहीं होती। सचमुच में सीताजी आवश्यकता से अधिक सुंदर थीं।

मानस में अवगाहन करते समय सबसे पहले हमें सीताजी पुष्पवाटिका में मिलती हैं। प्रारम्भ में ही उनके अद्वितीय रूप-लावण्य का परिचय मिलता है। उस समय वह युवती होनेपर भी कुमारी थीं, सखियों को साथ लेकर वह गौरी की पूजा करने के निमित्त आई थीं। पैरों में पायजेब और घुंघरू पड़े हुए थे, घुँघरू कड़े और छड़े मिल कर एक अद्भुत ध्वनि उत्पन्न कर रहे थे। उस समय परदे आदि की प्रथा तो थी ही नहीं, रामचन्द्रजी भी लक्ष्मणजी के साथ गुरुजी की पूजा के निमित्त पुष्प लेने के लिए उसी वाटिका में आये हुए थे।

रामचन्द्रजी भी सुन्दरता में किसी से कम न थे; साथ ही वह सुशील, गम्भीर तथा परम सदाचारी थे। स्त्री-जाति के प्रति उनके हृदय में परम आदर था। वे सभी अविवाहिता कन्यायों को भगिनी-तुल्य समझते थे। विधि का विधान समझिए, या संयोग की बात कहिए, अथवा भावी की प्रेरणा समझ लीजिए, रामचन्द्रजी सीताजी को बस एक बार ही देखते हैं; बस इसी पर अपने छोटे भाई लक्ष्मणजी

के सामने प्रकट न करने योग्य बात को भी कहते हैं।

तात जनक तनया यह सोई, धनुष-यज्ञ जेहि कारण होई।
जासु विलोकि अलौकिक शोभा, सहज पुनीत मोर मन छोभा॥

वह यह सब समझते हैं कि

रघुवंशिन कर सहज सुभाऊ, मन कुपंथ पग धरैं न काऊ।
मोंहि अतिशय प्रतीति जिय केरी, जेहि सपनेहु पर नारि न हेरि॥

परन्तु इनके रूप-लावण्य को देखकर क्यों लट्टू होगये, इसका वह स्वयं भी कुछ कारण न बता सके। वह कहते हैं—

सो सब कारण जान विधाता, फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता।

ठीक ही है—

मृगा मृगैः संगमनुव्रजन्ति, गावश्च गोभिस्तुरगास्तुरंगैः।
मूर्खाश्च मूर्खैः सुधयस्सुधीभिः समान शीलव्यसनेषु सख्यम्॥

जैसा तुम्हारा निष्कपट-निश्छल मन तथा अपूर्व सौन्दर्य्य है, यदि उसने स्वच्छ हृदय, निष्कलंक तथा अनिंद्य और अनवद्य रूपवती सीता को ग्रहण ही कर लिया, तो इसमें आश्चर्य्य ही क्या है? जो जैसा होता है वह वैसे पर ही तो आकर्षित होता है।

मुख की उत्तम से उत्तम उपमा चन्द्रमा से दी जाती है। सुन्दरी स्त्री को "चन्द्रमुखी" "विधुवदनी" "शशिवदनी" आदि नामों से सम्बोधित करते हैं। रात्रि में जब चन्द्रदेव अपनी सोलहों कला से युक्त होकर आकाश में भ्रमण करने लगे, तब श्रीरामचन्द्र जी की दृष्टि उन पर पड़ी। झट उन्हें सीता की याद आगई, अब लगे सीताजी के मुख की और चन्द्रमा की बराबरी करने! सीताजी के मुख के सामने चन्द्रमा श्री रामचन्द्रजी को फीका सा प्रतीत होने लगा। उसमें उन्हें दोष दिखाई देने लगे। एक-दो नहीं, एक सांस में उसके पूरे चार सुअवगुण गिना गये! सुनिए—

जन्म सिन्धु, पुनि बन्धु विष, दिन मलीन सकलंक।
सिय-मुख-समता पाव किमि, चन्द्र बापुरो

चन्द्रदेव! बड़े फूले-फूले डोल रहे थे। सामने किसी को सुन्दर ही नहीं समझते थे। सुना आपने? सीताजी के मुख के सामने कुछ भी हस्ती नहीं है! अपने अवगुणों को पूर्वक सुनिए और तब बताइए कि ठीक हैं या कोई ईर्ष्या के कारण बनावटी दोष तो आपके नहीं मढ़ दिया गया है? चारों दोष ठीक हैं परन्तु अभी आपका पिंड नहीं छूटेगा। आप होंगे, बस इतने ही अवगुण होंगे? अभी हैं, आगे सुनिए—

घटै बढ़ै, विरहिन दुखदाई ग्रसै राहु निज संधि
कोक शोक प्रद, पंकज द्रोही, अवगुण बहुत चन्द्रमा

और सुनिएगा? पूरी फ़िहरिस्त बनाने की हो तो वैसी कहिए। बस, अब रहने दो। कान पकड़ो। फिर कभी सीताजी के मुख की करने का दावा न करना। तुम्हारे साथ वैदेही मुख की बराबरी करना सीताजी के साथ अन्याय करना है, अनुचित काम है—

वैदेही मुख पटतर दीन्हे, होत दोष बड़ अनुचित

❀ ❀ ❀

जब सीताजी ने धनुष-यज्ञ में पदार्पण कि तो उनके रूप को देख कर नर-नारी सभी मोहि गये हैं—

रंग भूमि जब सिय पगु धारी, देखि रूप मोहे नर

कहाँ तो एक स्थान में कवि कह आये "मोहे न नारि-नारि के रूपा", कहाँ वही के साथ नारियों का भी मोहित होजाना ठीक ही है। पिछला नियम तो साधारण सम्बन्ध में है। सीताजी तो रूप-लावण्य की से भी परे थीं। उनके सम्बन्ध में यह नियम नहीं होता। कवि ने नारियों का मोहित होना

बड़ी बुद्धिमानी के साथ सीताजी के अवर्णनीय सौन्दर्य का वर्णन किया है।

❀ ❀ ❀

कौशल्याजी भी ऐसी सुन्दर और सुलक्षणा पुत्र-वधू को पाकर बड़ी प्रसन्न हुईं। उन्होंने स्वयं कहा है—

मैं पुनि पुत्र वधू प्रिय पाई, रूपराशि गुण शील सुहाई।
नयन पुतरि इव प्रीति बढ़ाई, राखेउँ प्राण जानकिहि लाई॥

❀ ❀ ❀

रावण बड़ा प्रतापी और बलवान राजा था, देवता उसकी क़ैद में पड़े-पड़े दुःख से अपने दिन काटते थे। देवराज इन्द्र हाथ जोड़ कर उसकी आज्ञा की बाट जोहा करते थे। वह जितना ही बलवान और कठोर था, उतना ही सौन्दर्योपासक भी था। सीताजी की सुन्दरता की ख्याति सुन कर वह भी धनुष-यज्ञ में पहुँचा था, किन्तु धनुष को न उठा सकने के कारण वह सीताजी को प्राप्त नहीं कर सका था।

सीताजी को वह वन में से हर ले गया और महलों में जाकर उसने उन्हें रख दिया। अब वह सीताजी को अपनाने के लिए भाँति-भाँति की युक्तियाँ सोचने लगा। वह उनके सौन्दर्य पर इतना अनुरक्त हो गया था, कि अपना सर्वस्व वह इनके ऊपर वार देने को तैयार था! सीताजी उसकी ओर एक बार प्रेम भरी दृष्टि से देख भर दें, बस यही वह चाहता था। मन्दोदरी जैसी सती साध्वी और रूप-गुण-सम्पन्ना स्त्री तक को वह इनकी दासी बनाने को तैयार था। देखिए, कैसी दीनता से विनय कर रहा है—

कह रावण सुनु सुमुखि सयानी, मंदोदरी आदि सब रानी।
तव अनुचरी करौं प्रण मोरा, एक बार विलोकु मम ओरा॥

सीताजी के सौन्दर्य के वर्णन करने की शक्ति भला किसमें हो सकती है। ब्रह्मा ने अपनी सम्पूर्ण कारीगरी मानो सीताजी के सौन्दर्य के ऊपर ख़र्च कर दी थी। तभी तो इनके सौन्दर्य को देखकर सुन्दरता भी शरमा जाती थी। तभी तो कवि ने इनके सम्बन्ध में कहा है—

जनु विरंचि सब निज निपुणाई, विरचि विश्व कहँ प्रकट दिखाई।
सुन्दरता कहँ सुन्दर करई, छवि-गृह दीप-शिखा जनु बरई॥

अब बोलिए, सीताजी को किस की उपमा दें?

सब उपमा कवि रहे जुठारी, केहि पटतरिय विदेह कुमारी।

❀ ❀ ❀

सरलता और भोलापन

सीताजी बड़ी सरल और भोली थीं। वह बात बनाना और छल-छिद्र तो जानती ही न थीं। रामचन्द्रजी जिस समय धनुष तोड़ने के लिए उठते हैं, उस समय वह अनेक देवी-देवताओं को मनाती हैं और उनसे प्रार्थना करती हैं कि वे आकर ऐसे वक्त पर मेरे सहायक हों और धनुष्य को हलका कर दें। फिर अपने भोले-भाले स्वभाव से सोचती हैं—इतने बड़े कठोर धनुष को यह कोमल शरीर वाले रामचन्द्रजी कैसे उठा सकेंगे! मेरे पिता को कोई समझाता भी नहीं। मन ही मन में वह कह रही हैं—

अहह तात दारुण हठ ठानी, समुझत नहिं कछु लाभ न हानी।
सचिव सभय सिख देइ न कोई, बुध समाज बड़ अनुचित होई॥
कहँ धनु कुलिशहु चाहि कठोरा, कहँ श्यामल मृदुगात किशोरा।
विधि केहि भाँति धरौं उर धीरा, सिरस सुमन किमि वेधहि हीरा।

❀ ❀ ❀

जब रामचन्द्रजी ने धनुष तोड़ दिया, तो सखी के कहने पर इन्होंने जयमाला पहनाई। फिर सीताजी से सखियों ने कहा कि इनके पैर छूलो। किन्तु सीताजी पैर नहीं छूतीं—

सखी कहहिं प्रभु पद गहु सीता, करत न चरण परस अति भीता।

क्यों भला?

गोतम-तिय गति सुरति करि, नहीं परसति पद पानि।
मन बिहँसे रघुवंश मणि, प्रीति अलौकिक जानि॥

देखा आपने ? कितनी सिधाई है। वह सोचती हैं—यदि मैं भी इनके पैरों को स्पर्श करके दिव्य लोक की नारी होगई तो इनके सहवास से वंचित रह जाऊँगी !

शील और संकोच

सीताजी के शील-संकोच का क्या कहना है ! इनका सम्पूर्ण जीवन शीलमय है। स्थान स्थान पर इनका शील झलकता है। नारी-सुलभ संकोच तो इनके जीवन का सबसे बड़ा सौन्दर्य्य है।

पुष्प वाटिका में जब सीताजी गौरी की पूजा के निमित्त जाती हैं और एक सखी से रामचन्द्रजी तथा लक्ष्मणजी के रूप-लावण्य की प्रशंसा सुनकर उसे आगे करके उनके दर्शनों की लालसा से आगे बढ़ती है, तो आगे दोनों कुमारों को देख कर व्याकुल हो जाती हैं। इतने में ही रामजी तथा लक्ष्मणजी लताओं की ओट में हो जाते हैं। सीताजी आँखें मूंदकर रामजी की मोहनी मूर्ति का ध्यान करने लगती हैं। इतने ही में दोनों कुमार लताओं की ओट में से फिर प्रकट होते हैं। तब एक सखी हँसी के साथ कहती है—

बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू, भूप किशोर देखि किन लेहू।

सखी की यह बात सुन कर सीताजी सकुचा गईं—

सकुचि सीय तब नयन उघारे, संमुख दोउ रघुसिंह निहारे।

बस, फिर क्या है—रामचन्द्रजी की नख-शिख शोभा को देखकर वह मुग्ध हो गईं। फिर, पिताजी के प्रण को स्मरण करके, कुछ दुःखी भी हुईं। रामचन्द्रजी को एक टक निहारती रहीं। पलकों का झँपना भी बन्द हो गया। सखियों ने सीताजी के प्रेम-भाव को ताड़ लिया। एक ने मीठी चुटकी हुए कहा—

पुनि आउब इहि बिरियाँ काली, अस कहि मन बिहसी इक

सखियाँ मेरी प्रीति की बात को जान गई ऐसा विचार करके और सखी के गहरे व्यंग समझ कर सीताजी सकुचा गईं—

गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी, भयउ बिलंब मातु भय

माता के भय की बात कह कर उस बात कैसी सफ़ाई के साथ उड़ा दिया है !

* * *

जब रंगभूमि में जाती हैं, तो श्रीरामच को मुनि के पास बैठे देख कर उन्हें बार-बार रती हैं। आँखें चाहती है कि उन्हें एक टक रहें, किन्तु वहाँ गुरुजन, भाई बन्धु सभी बैठे हैं। अतः संकोच के कारण वह आँखों की इच्छा पूर्ण नहीं कर सकती हैं—

गुरु जन लाज समाज बड़ि, देखि सीय सकुचानि
लागि बिलोकन सखिन तन, रघुबीरहि उर आनि।

अपने संकोच को किस प्रकार छिपाने का कर रही हैं, मानों उन्होंने रामचन्द्रजी को देखा नहीं है। सखियों की ओर ताकने का यही अभिप्राय

* * *

रामचन्द्रजी के साथ सीताजी बन को जाती रामजी, लक्ष्मणजी तथा सीताजी के सुकुमार स्वरूप को देख कर गाँव की स्त्रियाँ उन्हें देखने लिए आती हैं। स्त्रियाँ प्रायः स्त्रियों की बात को बड़ी उत्सुक रहती हैं। किसी विचित्र घटना देख कर स्त्रियों को उसे जानने की प्रबल उत्कंठा है। स्त्रियों ने देखा कि ये मुनि बालक तो हैं कोई राजकुमार जान पड़ते हैं। परन्तु वेष तो मुनियों जैसा है। परन्तु एक बात और है, मुनि साथ स्त्रियाँ तो नहीं होतीं। अच्छा कोई मुनि

सुन कर दूसरी स्त्री कहती है—"नहीं यह होगी। यह सुन कर दूसरी स्त्री कहती है—"नहीं यह बात नहीं है। ये कोई राजकुमार हैं, किसी भारी विपत्ति के कारण राज्य छोड़ कर जंगलों में चले आये हैं। यह सुकुमारी इनकी पत्नी है।" इस पर दूसरी पूछती है—"इन दोनों में से यह किस की पत्नी है?" वही सखी जवाब देती है—"ये जो आकाश जैसे वर्ण वाले इधर बैठे हैं, उन्हींकी यह पत्नी मालूम होती है।" दूसरी यह सुन कर कहती है—"नहीं, ये जो गौर वर्ण वाले दाईं ओर बैठे हैं, ये ही इसके पति हैं।" इस प्रकार वे आपस में विवाद कर रही थीं। एक उनमें सयानी सखी थी; वह कुछ प्रगल्भा, वाक्पटु तथा प्रवीणा थी। उसने कहा—"अच्छा, च तो इसीसे चल कर न पूछ लें? स्त्रियों को स्त्री से बात चीत करने में हानि ही क्या है?" यह सुन कर सब सखी सीताजी के पास जाती हैं। उनमें भी नारी-सुलभ संकोच था, वे भी एक अपरिचित स्त्री से यकायक उसका परिचय पूछने में झिझकती थीं। किन्तु वे अपनी उत्सुकता को संवरण न कर सकीं। एक उनमें से सीताजी से पूछ ही तो बैठी—

राजकुमारि विनय हम करहीं, तिय सुभाव कुछु पूछत डरहीं।
स्वामिनि अविनय क्षमब हमारी, विलगु न मानव जानि गँवारी।
राज कुँवर दोउ सहज सलोने, इनते लहि दुति मरकत सोने।
श्यामल गौर किशोर वर, सुन्दर सुषमा ऐन।
शरद शर्वरी नाथ मुख, शरद सरोरुह नैन॥
कोटि मनोज लजावन हारे, सुमुखि कहहु को अहहिं तुम्हारे?

अब तो सीताजी कुछ सहमीं। वह भला किस प्रकार साफ़-साफ़ कह सकती थीं कि यह मेरे पति हैं? भारतीय ललनायें अपने पति का नाम लेना तो अलग रहा, उसके सामने किसी अन्य से पति-सम्बन्धी बातें करना भी अनुचित समझती हैं। सीताजी कैसी चतुराई के साथ संकोच-पूर्वक उत्तर देती हैं—

सकुचि सप्रेम बालमृग नयनी, बोलि मधुर बचन पिक वयनी।
सहज सुभाव सुभग तनु गोरे, नाम लषण लघु देवर मोरे।

इतना तो कह दिया। अब आगे वाणी का विषय नहीं रहा। आगे का भाव हृदय की भाषा में व्यक्त किया जा सकता है और हृदय की भाषा मौन है, इसलिए सखियों को इशारे में समझाती हैं—

बहुरि बदन विधु अंचल ढाँकी, पियतन चितै भौंह करि बाँकी।
खंजन मंजु तिरीछे नयननि निजपति कहेउ तिनहिं सिय सेननि

सेनों में उत्तर दे दिया। हमारे यहाँ कहावत है—"गूँगे की सैन में गूँगा जाने या जानैं उसके घर के लोग।" स्त्रियों ने सीताजी के सेनों की बात समझ ली। समझ क्यों न लेतीं? उन्हें भी तो इसी प्रकार दूसरों को समझाना पड़ता है! सीताजी ने बड़ी ही बुद्धिमानी के साथ अपने हृदय के भाव को व्यक्त किया है।

* * *

भरतजी वन में रामचन्द्रजी से मिलने जाते हैं, जनकजी भी वहाँ सपरिवार आ जाते हैं। सीताजी की माता सीताजी को अपने यहाँ बुलाती हैं। बहुत दिनों बाद पुत्री से भेंट हुई है। सभी लोग बड़े प्रेम के साथ सीताजी से मिलते हैं। सभी का सीताजी के प्रति अपार प्रेम था, मिलने जुलने में बहुत रात्रि हो जाती है। सीताजी सोचती हैं, रामचन्द्रजी को छोड़ कर यहाँ रात्रि में एकाकी रहना ठीक नहीं है, परन्तु माता-पिता से वह स्पष्ट कैसे कह सकती थीं कि मैं अपने पति के पास जाऊँगी। वह अपने स्वाभाविक संकोच के द्वारा कुछ ऐसा भाव प्रदर्शित करती हैं, कि उनकी माताजी उनके मनोगत भाव को झट ताड़ जाती हैं और महाराज जनकजी के कान में इस बात को कह देती हैं—

कहति न सीय सकुचि मन माहीं, इहाँ बसब रजनी भल नाहीं।
लखि रुख रानि जनायउ राऊ, हृदय सराहत शील सुभाऊ।

धन्य है! ऐसे शील स्वभाव के ऊपर सर्वस्व वारा जा सकता है। सीताजी के शील स्वभाव को वर्णन करने की सामर्थ्य किसमें है?

प्रभुदत्त शर्मा

पतियों का कर्त्तव्य

पहले की तो भगवान् जानें; पर आज तो अधिकांश घरों में कुछ न कुछ अशांति अवश्य दृष्टि गोचर होती है। विरले ही दम्पती ऐसे होंगे, जिनका सुख और शांति के साथ जीवनयापन हो रहा हो। भारत में तो बाल और बे-मेल विवाह होते हैं, विवाह करने वालों के बजाय उनके अभिभावकों की ही पसन्द बे-पसन्द पर सब कुछ निर्भर रहता है; पर विदेशों में तो लड़के-लड़की एक-दूसरे को पसन्द करके और हिल-मिल जाने पर ही विवाह करते हैं। परंतु वहां भी दाम्पत्य-जीवन कुछ यहाँ से अच्छा नहीं दृष्टिगोचर होता। यहाँ पति-पत्नी जैसे तैसे आजन्म अपना सम्बन्ध तो निबाहते हैं; पर विदेशों में तो यह भी नहीं—वहाँ तो 'आज विवाह और कल तलाक' का मसला है। और दिन पर दिन बे तरह बढ़ती हुई तलाकों की संख्याओं को देखकर तो यह निश्चय सा प्रतीत होता कि पति-पत्नियों के पारस्परिक मनमुटावों का कारण हमारे यहाँ का बाल और बेमेल विवाह ही नहीं; कोई और ही बात होनी चाहिए।

इस पर विचार करने पर सहसा यह ख़याल होता है कि उनके पारस्परिक व्यवहार के सिवाय इसका और क्या कारण हो सकता है? और इसमें शक नहीं कि बात भी वस्तुतः यही है।

इस सम्बन्ध में स्त्रियों के दोषों और कर्त्तव्यों को तो अनेकों ने इङ्गित किया है; पर पुरुषों की और कर्त्तव्यों पर, आश्चर्य है, अभी तक बहुत ध्यान दिया गया है। वैसे देखा जाय तो, पु मामले में स्त्रियों से कम दोषी नहीं; बल्कि हद तक वही इसके लिए ज्यादा जिम्मेवार है

जब कि गार्हस्थ्य-जीवन में पति की प्रधा और सब मामलों में उसीकी बात मुख्य र ऐसी दशा में स्वाभाविक ही है कि अच्छे दारमदार भी मुख्यतया उसीपर हो। और हो यही है—अपने प्रति सुव्यवहार के लिए पति बल्कि पत्नी ही पति के प्रति आकांक्षिणी रह हमारे भारतवर्ष में तो पति की इच्छा-अनिच्छा प्रसन्नता ही स्त्री का महासौभाग्य और महा मानी जाती है।

खेद की बात है कि पुरुष इस पर कोई नहीं देते। जब से व्यक्ति का निर्माण हुआ, तो वे तभी से करते आ रहे हैं; पर अपनी के साथ व्यवहार करने का ढङ्ग सीखने की त वे कभी नहीं उठाते। यह कितने दुःख की बा कुछ समय-पूर्व शिकागो (अमेरिका) के एक धीश जोसफ़ वर्क का ध्यान इस ओर गया था तलाकों के अनेक मुक़द्दमों के अनुभवों के पर उन्होंने पुरुषों को अपनी पत्नियों के प्रति में निम्न बातों पर ध्यान रखने की सलाह दी

(१) अपनी ग़लती स्वीकार करने में आनाकानी मत करो।

(२) किसी बात पर ज़िद मत करो। कर लो कि कोई दिन अप्रसन्नावस्था में ही हो; जो भी बात खटकती हो, सोने से पहले बिलकुल भुला दो।

(३) लम्बे तर्क-वितर्क में कभी मत

(४) पत्नी के सद्गुणों की प्रशंसा दिल खोल कर करो।

(५) यह याद रक्खो कि उसके निमित्त र्च का रुपया यदि तुम किसी दूसरी औरत को दे गे तो उसे बहुत बुरा लगेगा।

(६) घर के काम-धन्धों के साथ उसके दिल-हलाव का भी उसे अवसर दो।

(७) तुम्हारी जो आमदनी हो वह निःसंकोच से बताओ और दोनों की सम्मिलित इच्छानुसार से खर्च करो।

(८) सोते वक्त रात को काम-धन्धे की छोटी-टी बातों या त्रुटियों पर उससे बातचीत मत करो।

ऊपरी व्यवहार के लिए ये नियम उपयोगी हैं, समें शक नहीं। पुरुष यदि इन पर अमल करने गें तो आज की स्थिति से थोड़ी-बहुत प्रगति तो वश्य होगी। पर सबसे बड़ा सवाल तो है पत्नी के ति पति की मनोवृत्ति का। क्योंकि ऊपरी व्यवहार गौण है, मुख्य वस्तु तो अन्दर की ही चीज है। दि अन्दर सुगन्ध है, तो लाख रोकने पर भी बाहर गन्ध ही निकलेगी; पर यदि अन्दर ही दुर्गन्ध भरी ही तो, ऊपर से छिपाने की बहुतेरी कोशिश करने र भी, सड़न ही न बाहर निकलेगी ?

लेकिन पुरुषों की—पतियों की—मनोवृत्ति क्या है ? नके लिए स्त्री या पत्नी या तो संतानोत्पत्ति का साधन है अथवा घर-गृहस्थी के काम-धन्धे करने के लिए निर्माण की गई है। और इसलिए उनके साथ व्यवहार के उन्होंने दो ढङ्ग बना रक्खे हैं। कुछ लोग तो उनसे सिवा इन दोनों कामों के और कोई वास्ता ही नहीं रखते—स्त्री की अच्छाई-बुराई, सुख दुःख से उन्हें कोई सरोकार नहीं होता। दूसरे उसे मानों गुड़िया समझते हैं। उसे तकलीफ देने की तो पहली श्रेणी के पुरुषों की भी इच्छा नहीं होती; पर अपनी समझ में, ये उसे खुश करने की कोशिश करते हैं। उसके लिए अच्छे-अच्छे गहने कपड़े बनवाते हैं, तरह-तरह की छोटी-मोटी चीजें उसके लिए लाते हैं, उसके खाने-पीने की अच्छी व्यवस्था करते हैं और भी जो कुछ आराम उसे पहुँचा सकें उसके लिए कोशिश करते हैं, काम-काजके लिए दास-दासी नियुक्त कर उसे महा आलसिन बना देते हैं। लेकिन मैं, पूछता हूँ कि क्या इतना ही बस है ? केवल बाहरी आरामों की सुविधा कर देना ही काफी नहीं हो सकता। स्त्रियों में भी पुरुषों ही की तरह आत्मा है, उनके सीने में भी एक हृदय है और वह पुरुषों की अपेक्षा कहीं अधिक बहुमूल्य, सुस्निग्ध भावुक और कोमल होता है। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि जहाँ उनकी शारीरिक सुविधाओं का पूरा ख्याल रक्खा जाय वहाँ उनके मन और आत्मा की भी अत्यन्त सावधानी से सत्कार करने की प्रवृत्ति रहनी चाहिए। पुरुष स्त्रियों के लिए जितना जो कुछ करते हैं स्त्रियाँ उसके लिए उनकी कृतज्ञ रहती हैं। परन्तु केवल वे संतुष्ट नहीं हो सकतीं; केवल गुड़िया न बनकर वे पुरुष की सच्ची सहधर्मिणी अथवा साथिन बनना चाहती हैं। गहने-कपड़े आदि की वे उतनी भूखी नहीं होतीं, जितनी की इस बात की आकांक्षिणी कि हम भी मनुष्य समझी जायँ—न केवल कहने के लिए बल्कि सर्वसामान्य व्यवहार में भी। पर इससे यह न समझ लिया जाय कि अपने पर से पुरुष के नियंत्रण को वे उठा देना चाहती हैं। नहीं, वस्तुतः जो कुछ वे चाहती हैं वह यही कि पुरुष उन्हें ज़रा मनुष्य समझ कर बर्त्तें-बर्त्तावें। 'यह करो, वह मत करो' के हुक्मों के बजाय वे पतियों से वैसे समानता के बर्ताव की अपेक्षा रखती हैं कि जैसा कोई मित्र अपने छोटे मित्र के साथ करता है। क्यों कि स्त्री होने के ही कारण वे उन सब प्रकृत बातों से वंचित नहीं हो

जाना चाहतीं, जो कि मनुष्य-सृष्टि के लिए विधाता ने निर्माण किये हैं। पुरुषका उपेक्षा-भाव भी उनके लिए सह्य नहीं। और सबसे बड़ी बात यह है कि पति के द्वारा अपने प्रति हेय और अविश्वास के भाव को वे ज़रा भी बर्दाश्त नहीं कर सकतीं। उनकी यह सबसे बड़ी महत्वाकांक्षा होती है कि घर आने पर पुरुष अपने रोज़गार, धन्धे या काम-काज के सम्बन्ध में छोटी-छोटी से लेकर गूढ़ से गूढ़ बात तक हमसे करे, विश्वस्त से विश्वस्त मित्र से जैसे वह उस सम्बन्ध में सलाह लेता है उससे भी ज्यादा विश्वास के साथ वह हमसे सलाह-मश्वरा करे; मतलब यह कि पति पत्नी में न तो कोई दुराव या छिपाव की बात रहे, न पति का पत्नी के प्रति यही भाव कि 'ऊँह! यह तो स्त्री है—यह इन मामलों को क्या समझे' यह हीनावस्था और अविश्वास का भाव ही उन्हें सबसे ज्यादा खटकता है, और यही गार्हस्थ्य पति-पत्नी के बीच की-अशान्ति का सर्वप्रधान कारण है। अत; पुरुषों का-जो पति हो चुके हैं या होने वाले हैं उन सबका-यह कर्तव्य है कि वे इस बात पर खूब ध्यान दें और फिर वैसा ही अपना व्यवहार बनायें। ऐसा होने पर, हमारा ख़याल है, गार्हस्थ जीवन, कम से कम आज की अपेक्षा, कहीं अधिक शान्तिपूर्ण हो जायगा।

एक भारतीय

सच्चा त्याग

तामिल नाड़ की एक महिला डाक्टर ने अपने ५००) रु. मूल्य के गहने महात्माजी के पास इस आशय के पत्र के साथ भेजे हैं—"खादी-कार्य के लिए आप इनका इस्तैमाल कर सकते हैं। और यों कुछ भूखों मरने वालों को मदद दे सकते हैं। मुझे इसका निश्चय है कि मेरे बक्स के एक कोने में पड़े रहने की बनिस्बत इनका यह उपयोग ज़्यादा अच्छा होगा।"

वाणी

जिह्वा सभी को मिली है, किन्तु बहुत कम लोग जानते हैं। लोग कड़वी-तीती बातों में, दूसरों की व्यर्थ स्तुति में, वाणी की सार्थकता समझते हैं। ऐ पुरुषों की संख्या अँगुलियों पर ही गिनी जा है, जिनकी जिह्वा में अमृतोपम मधुरता एवं हि सी शीतलता रहती है। ऐसे लोगों की वा निराश जीवन को उत्साह मिलता है; नरक की में छटपटाने वाले को धैर्य और आश्वासन मि

यदि हमें बोलना न आवे, तो चुप रह अच्छा है। क्योंकि अनर्गल वचनों से दूसरों को पहुँचा कर हम जिस पाप के भागी बनते हैं, बचे रहेंगे। यदि बोलो, तो कोकिल की तरह जिसकी एक हूक से ही हम अपनी सारी विपत्ति को भूल जाते हैं। वह कृष्णा होकर भी व रानी बनी हुई है, क्या हमारी जिह्वा वैसी नहीं सकती?

तुम गोराई में चन्द्रमा को भी मात करते हो तो क्या, यदि वाणी में कटु-कुवाक्य भरे एक जापानी नीतिकार का कहना है—'रत्न हुआ दाग़ खराद पर चढ़ा कर निकाला जा है, परन्तु हृदय में लगा हुआ कुवाक्य का मिटाया नहीं जा सकता।' यदि हम सदा के दूसरों की आँखों से गिर जाना नहीं चाहते, तो भूल कर भी मुँह से कुवाक्य न निकालें।

ज्ञानी लोग प्राय: मौन-साधन इसीलिए करते हैं, कि उनकी जिह्वा उनके वश में रहे। ऐसा न हो कि कभी आवेश या उत्तेजना में नक कोई ऐसा कुवाक्य निकल जाय, जिससे को मुँह दिखाने में शर्म मालूम पड़े। और उस

ज्ञान एवं विद्वत्ता के होते हुए भी हम अपने को सुखी न कर सकें। मौन-साधना जिह्वा को संयम सिखा कर तपस्विनी बनाने के लिए है। जितनी ही अधिक मौन-साधना की जायगी, उतनी ही अधिक वाणी को सद्गति प्राप्त होगी, तथा आत्मा को विश्व-तोषिणी शांति मिलेगी। प्राचीन भारत के ऋषि-मुनि विजन-विपिन में, वर्षों तक मौन-साधना करके, आत्मा के लिए दृढ़-चरित्र और जिह्वा के लिए शीतल अमृत-वाणी उपलब्ध करते थे।

जिह्वा को संयत बनाने के लिए, हमारे यहाँ बहुत-सी दिव्यवाणियों का पाठ्यक्रम भी उन्हीं प्राचीन महर्षियों का चलाया हुआ है। संध्या-वंदन, गायत्री-जप, इत्यादि का अभिप्राय क्या है? यही कि उन सुनीतिमयी मीठी शब्दावलियों का पाठ करते-करते हमारी जिह्वा भी वैसी ही भावमयी एवं मधुर-कोमल हो जाय, और हमारे मुँह से भी वैसे ही शांतिमय दिव्य बचन स्वतः निकलें। किंतु अधिकांश लोग संध्या और गायत्री का पाठ करके भी, अपनी जिह्वा में सर्पिणी की-सी जहरीली फ़ुफकार बनाये रहते हैं। क्यों? इसका उत्तर है—मौन-साधना का अभाव। संध्या और गायत्री के जप से भी अधिक आवश्यकता है—चरित्र की। चरित्र-प्राप्ति का एक विशेष साधन है—मौन-साधना। इस साधना के समय मनुष्य नितांत एकांत में जा पहुँचता है। वहां सिर्फ़ उसकी आत्मा रहती है और उसका जीवन। जो शक्ति, जो समय, वह बातों में लगाता, उसे वह एकांत में आत्म-चिंतन एवं जीवन को महान् बनाने की आंतरिक मंत्रणा में लगाता है। धीरे-धीरे उसे सफलता मिलती है। एक दिन जब उसका अन्तर और बाहर एक हो जाता है उस समय संसार की कोई भी विषमता, कोई भी उत्तेजना उसकी वाणी को चंचल या अनर्गल बनाने में समर्थ नहीं होती। कारण, उसके चरित्र में वह महानता और दृढ़ता आ जाती है, जो किसी तरह भी डिग नहीं सकती।

ऐसे चरित्रवान् महापुरुष जब बोलते हैं, तब उसमें विनम्रता का रस रहता है। सिर्फ़ उनके मुँह से वाणी निकलने की देर रहती है; वह निकली और लोग उनके दासानुदास हुए। यही नहीं, उनकी वाणी पत्थर को भी बर्फ़ की तरह पिघला देती है।

वाणी व्यक्तित्व का परिचय देने में प्रथम है। क्योंकि अन्य गुण तो साथ रहने पर धीरे-धीरे प्रकट होते हैं पर वाणी की गरिमा तत्काल प्रकट होती है। इसके द्वारा सर्वथा अपरिचित को भी, थोड़े वार्त्तालाप में ही स्नेह और सहानुभूति के सूत्र में बाँधा जा सकता है। दिव्य वाणी बोलनेवालों के लिए संसार में चारों तरफ-अमीर-गरीब, परिचित-अपरिचित-सबके द्वार स्वागत के लिए खुले रहते हैं। उनके मग में लोग पलक-पाँवड़े बिछा देते हैं—ऐसा सन्मान छत्रधारी सम्राट होने पर भी शायद ही कोई पा सकें।

आज संसार में महात्मा गांधी के प्रति लोगों का जितना सन्मान और अनुराग है, उतना किसी भी धनकुबेर या शाहंशाह के प्रति नहीं। इसका अभिप्राय यही है कि वर्त्तमान संसार में उनकी वाणी सर्वश्रेष्ठ है। वाणी चरित्र की प्रतिध्वनि है, अतः महात्मा जी के सन्म्मान का मूल उद्गम उनका पूजनीय चरित्र है। जिसका चरित्र जितना ही ऊँचा है, उसकी वाणी उतनी ही वंदनीय, और मर्मस्पर्शिनी है।

वाणी की यह दिव्यता हमारे देश में अनेक महापुरुषों-द्वारा कृतकार्य हुई है। अपने उज्वल चरित्र से वाणी को जीवन देने वाले-अमरपुरुषों का हमारे देश में न कभी-अभाव रहा है, और न रहेगा। चरित्र वाणी को किस प्रकार, कैसा, हृदयग्राह्य बना देता है, इसका एक वृत्तांत हम यहाँ स्वामी रामतीर्थ जी की जीवनी से देते हैं—

स्वामी रामतीर्थ जब जापान से अमेरिका को जा रहे थे, उस समय उनके पास सिवा अपने शरीर और आत्मा के और कुछ नहीं था। जब जहाज़ सेन फ्रांसिस्को के नज़दीक पहुँचा, उस समय ज़हाज़ पर हलचल मच गई। उतरने वाले सबके-सब मुसाफिर अपना-अपना असबाब लेकर उतावले हो रहे थे। हमें लिवा ले जाने के लिए भाई, बहन, अथवा मित्र कोई आया है या नहीं, यह जानने के लिए बंदरगाह की ओर सब गर्दन उठा-उठा कर और आंखों में दूर्बीन लगा-लगा कर देख रहे थे। परन्तु स्वामीजी इस हलचल में भी चुपचाप शांति-भाव से बैठे थे। जो आपको देखता, वही समझता कि आपको यहाँ उतरना नहीं है। [स्वामीजी की इस निश्चल शांतमूर्ति को देखकर, एक अमेरिकन मुसाफिर की निगाह उनपर पड़ी। फौरन् स्वामीजी के पास गया और उनसे पूछा—"आपका असबाब कहाँ है ?"

स्वामीजी ने उत्तर दिया—"राम अपने साथ उतना ही असबाब रखता है, जितना वह स्वयं चाहे जहाँ उठा ले जा सकता है।"

"आपके पास कुछ रुपया—पैसा तो अवश्य ही होगा ?"

"नहीं, राम रुपये-पैसे को स्पर्श नहीं करता।"

"क्या आप यहीं उतरेंगे ?"

"हाँ।"

"तो आपकी सहायता करने वाले आपके मित्र यहाँ होंगे ?"

"हाँ, हैं।"

"वे कौन हैं ?"

प्रश्न करने वाले पुरुष के कंधे पर हाथ रख कर स्वामीजी ने उत्तर दिया—"आप।"

'आप'—इस शब्द का उस अमेरिकन सज्जन पर इतना प्रभाव पड़ा कि जब तक स्वामीजी अमेरिका में थे तब तक उनके खाने-पीने-रहने आ सब प्रबन्ध वही करता था।

सतत आत्म-चिन्तन और एकांत-वास से स्वा जी अपने चरित्र को उस श्रेणी तक पहुँचा चुके जहाँ पहुँच कर मनुष्य समझने लगता है—सा संसार मेरा है और मैं उसका हूँ। यही कारण जो उन्होंने जहाज़ पर एक अपरिचित को भी आत्मी बतला कर अभिन्न बना लिया था। अगर ये ही अक्षरशः किसी ऐसे मनुष्य से होतीं, जिसका अं कुछ है और बाहर कुछ तो उसका ज़रा असर न पड़ता।

बाइबल की एक प्रसिद्ध कथा यों है—एक कुछ लोग एक स्त्री को पकड़ कर महात्मा ईसा पास ले गये। लोगों ने उनसे कहा—'श्रीमान स्त्री परम दुराचारिणी है; इसे दण्ड मिलना चाहिए यह सुनकर प्रभु ईसा की आँखें उमड़ आईं। उन्हों कहा—'अच्छा, तुम लोगों में से जो सबसे अधि सच्चरित्र हो, वह इस स्त्री को पत्थरों से मारे।' कि इस दण्ड के लिए, किसी के भी हाथ न उठे और सब शर्म से गर्दन नीची किये चले गये। अगर लोगों के चरित्र में बल होता, तो जितनी वाक्श उन्होंने 'दुराचारिणी' को दण्ड दिलाने के अनुरोध लगाई उतनी ही में वे उसे 'सदाचारिणी' बना तथा उसके पापों का प्रायश्चित स्वयं उसकी आँखों करा देते।

संसार में ऐसे लोगों की भी कमी नहीं जिनकी वाणी का उनके चरित्र से कोई संबंध है। वे कहते कुछ हैं, करते कुछ हैं। ऐसे बहुत जो अपना प्रभाव डालने के लिए वाणी द्वारा नम्रता और दीनता प्रदर्शित करने में ज़रा भी सं नहीं करते। ऐसे लोगों के मुँह से बात निकलते उसे स्वीकार करने में अन्तरात्मा को स्वतः हिचकि

हट होने लगती है। थोड़ी देर के लिए कोई उनके भूल-भुलैयाँ में भले ही आ जाय, पर जब किसी-न-किसी दिन उनकी क़लई खुल जायगी, तब सोचिए लोग उस समय उनके साथ कैसा व्यवहार करेंगे। ऐसे ही लोगों को लक्ष्य कर, शायर दबीर ने, कैसी आज़मूदा बात कही है—

> "दुश्मन को बरंगे दोस्त पाया हमने,
> दिल मस्लहतन उसका जलाया हमने,
> तमिया गया आतशे ग़ज़ब से चेहरा,
> क़लई वहीं खुल गई जो ताया हमने।"

स्त्रियों के लिए तो इस पर ध्यान रखने की और भी अधिक आवश्यकता है। क्योंकि उन्हींकी तो वे मधुर लोरियां हैं, जोकि सबसे पहले और निरंतर शिशुओं के कानों में पहुँचतीं और भविष्य के लिए उन्हें किसी ढाँचे में ढालती है। उन्हींके तो सरल-निश्छल-मधुर सुबोध शब्दों, बातों और व्यवहारों का उनके कोमल शिशु हृदयों पर असर पड़ता है—जो चिरस्थायी होता और परिणाम-स्वरूप उस कुटुंब, देश और समाज के जीवन को बनाने-बिगाड़ने का काम करता है। वैसे भी गृहस्वामिनी-घर की एकच्छत्र अधिष्ठात्री और प्रबन्धिका ठहरीं। अतः वे इसे जितना ही अपनावें उतना ही अधिक वे कल्याणकारिणी होंगी।

शांतिप्रिय द्विवेदी

मैं स्त्रियों की केवल इसलिए प्रशंसा नहीं करता कि वे संसार में सबसे अधिक सुंदरी हैं, और न मैं केवल इसी लिए उनसे प्रेम करता हूँ कि वे मानवीय सुख-साधना की केन्द्र स्थली हैं, बल्कि मैं उन्हें मनुष्य के मनुष्यत्व की रक्षण-कर्त्री मानकर ही आदर की दृष्टि से देखता हूँ। उनके मस्तिष्क और हृदय में वह अपूर्व सामग्री विद्यमान है, जिसके द्वारा एक तुच्छ मनुष्य भी देवता बन सकता है।

"ह्यूरस होस"

स्फुट प्रसंग

स्त्री और पुरुष

गत १२ अप्रैल को बम्बई में ला० लाजपतराय ने स्त्रियों के प्रश्न पर बड़ा महत्वपूर्ण भाषण दिया। उन्होंने कहा—

'स्त्रियों का प्रश्न पुरुषों का प्रश्न है। क्योंकि, दोनों का एक-दूसरे पर प्रभाव पड़ता है। चाहे भूतकाल हो या भविष्य, पुरुषों की उन्नति बहुत-कुछ स्त्रियों की उन्नति पर निर्भर है। प्राचीन हिन्दू-धर्म नारियों से वास्तविक नर पैदा करने की आशा करता है। केवल स्त्रियां ही पुरुष पैदा कर सकती हैं। पर उन स्त्रियों से आप निश्चय ही वास्तविक नर पैदा करने की आशा नहीं कर सकते, जो कि गुलामी की ज़ञ्जीरों से जकड़ी हुई हैं और प्रायः सभी बातों में पराश्रित हैं। आजकल के हम पुरुष लोग वैसे ही हैं, जैसा कि स्त्रियों ने हमें बना रक्खा है। निस्सन्देह स्त्रियां भी इसके जवाब में यह कह सकती हैं कि वे भी वैसी ही हैं, जैसा कि हम पुरुषों ने उन्हें बना रक्खा है। संसार के अनेक देशों का भ्रमण करने के पश्चात् मैं कहता हूँ कि कोई दूसरा देश ऐसा नहीं है, जिसने कि भारतीय नारियों के समान आदर्श मातायें और आदर्श स्त्रियां पैदा की हों। लेकिन, आज? आज हमने इस सिद्धान्त को मानों भुला दिया है।" 'हम इसी लिए नर नहीं हैं, क्योंकि आप स्त्रियां वास्तविक नारियां नहीं हैं। हम इस समय जैसे हैं, आपही के बनाये हुए हैं। पुरुषों से मैं कहता हूँ कि तुम अपनी स्त्रियों को अपने दासत्व से पूर्णतया स्वतंत्र होने दो। उन्हें अपने बराबर समझो।

'मैं इस सिद्धान्त का क़ायल नहीं हूँ कि स्त्रियां और पुरुष सभी बातों में समान हैं। परन्तु उत्कृष्टता और निकृष्टता का तो कोई प्रश्न ही नहीं है। स्त्रियों का अपना स्थान है। पुरुषों का काम स्त्रियां नहीं कर सकतीं और स्त्रियों का काम पुरुषों से नहीं हो सकता। पुरुष माता नहीं बन सकते और स्त्रियां पिता नहीं बन सकती; लेकिन इसमें ऊँचनीच का कोई सवाल नहीं है। अतएव पुरुषों को पुरुष और। स्त्रियों को स्त्री ही बनना चाहिए।'

तथास्तु ! लेकिन लालाजी के ही शब्दों में हम कहेंगे कि 'स्त्रियां जब तक स्वयं न चेत जायँगी तब तक उन्हें उनके अधिकार नहीं मिलेंगे ।'—बल्कि, हम तो कहेंगे मिल भी नहीं सकते । अतः यदि अपनी वास्तविक स्थिति को पहुँचना अभीष्ट है, तो उन्हें इसके लिये स्वयं प्रयत्नशील होना चाहिए । और हमें हर्ष है कि हमारी बहनों ने इस बात को समझ भी लिया है । चारों ओर आज उनकी हलचलें जो दृष्टिगोचर हो रही हैं वे उनकी जागृति की ही तो प्रमाण हैं। परमात्मा आशीर्वाद दें कि शुभ-प्रयत्न में वे विजयी हों !

स्त्री--आन्दोलन

स्त्रियों का अन्दोलन इन दिनों अच्छी प्रगति कर रहा है । कुछ तो रायसाहब हरविलास सारडा के बाल-विवाह-निषेधक बिल के समर्थन के लिए जगह-जगह उनकी सभायें हो रही हैं, कुछ वैसे भी उनमें भी जागृति आई है । उनकी इस हलचल ने देश के मान्य नेताओं का ध्यान भी अपनी ओर आकर्षित किया है । महात्मा गांधी तो पहले से समय-समय पर उनकी समस्याओं पर विचार करते रहे हैं, इन दिनों ला० लाजपतराय भी स्त्रियों के सम्बन्ध में अपने विचार खूब प्रकट कर रहे हैं । अख़बारों में भी, प्रायः सभी में, थोड़ी बहुत चर्चा स्त्रियों के सम्बन्ध में अकसर दीखने लगी है । फिर कोरी हलचल ही नहीं, इस दिशा में कुछ क्रियात्मक कार्य भी इन दिनों हुआ है ।

मण्डी में बालविवाह-निषेध

इनमें मुख्य है । दिल्ली-परिषद् के बाद ही बाल-विवाह के विरुद्ध हमारी बहनों ने आवाज़ उठाई थी । मण्डी की उत्साही रानी साहबा ने तो इसके लिए एक लीग की स्थापना भी कर डाली थी । ऐसी दशा में इस दिशा में मण्डी का प्रथम पदार्पण सर्वथा उचित ही है । पर हम भूल करेंगे, यदि मण्डी के राजासाहब को भी इस श्रेय का भागीदार और बहुत अधिक भागीदार न मानें । क्योंकि, उनका कहना है—'तीन बरस हुए, जब मैं शासनारूढ़ हुआ था । तभीसे बाल-विवाह रोकने के प्रश्न पर मैं विचार करता रहा हूँ । और इस विषय पर बहुत विचार करने के बाद ही मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि एक मात्र क़ानून द्वारा ही इस घातक प्रथा को रोका जा सकता है ।" और आज बल्कि गत वर्ष ही, अपने जन्म दिवस पर हुए दरबार उन्होंने यह घोषित किया था कि 'बाल विवाह रोकने सम्बन्ध में क़ानून बनाने पर विचार हो रहा है।' अतः यह क़ानून बन गया है और राजा साहब ने इसपर स्वीकृति भी दे दी है । यही नहीं, बल्कि चैत्र १९८५ से अमल में भी आ गया है । १८ वर्ष से पहले लड़कों १२ वर्ष से पहले लड़कियों का विवाह इसके अनुसार नीय क़रार दिया गया है । यह उम्र कुछ कम ज़रूर है, साहब भी कहते हैं—मैं समझता हूँ कि लड़कियों के वि की उम्र १२ वर्ष निर्धारित कारना बहुत कम है ।" लेकिन उनका कहना है, "मैं अनुभव करता हूँ कि जिसे लोग समझ रहे हैं उसके बारे में बहुत समझ बूझ कर धीरे पैर बढ़ाना चाहिए ।" और इसलिए, उनका कहना है "यह न समझा जाय कि लड़कियों के विवाह की कम कम उम्र १२ वर्ष सदा के लिए निर्धारित कर दी गई सच तो यह है कि बाल-विवाह की प्रथा उठाने का काम केवल शुरू किया गया है । भविष्य में इस विधान बारे में फिर विचार किया जा सकेगा और लड़कियों विवाह की उम्र बढ़ाई जा सकेगी ।" दण्ड के बारे में राजा साहब ने बड़ी कुशलता प्रकट की है, उनका कहना "इस विधान के विरुद्ध आचरण करने पर लड़की या वाले ही नहीं बल्कि वे लोग भी दण्डित होंगे, जो विवाह की आयोजना करेंगे, ऐसे विवाह के सम्बन्ध स्वीकृति देंगे, पुरोहिती करेंगे, या अन्य किसी प्रकार से में सहायक होंगे ।" और लीजिए, "ऐसा न हो कि राज्य के बाहर जा कर विवाह करके इस विधान के को व्यर्थ कर दें, इसलिए यह विधान इस राज्य के लोगों के लिए भी लागू रहेगा, जो राज्य से बाहर शादी करेंगे । और जिन विवाहों के बारे में इस विधान विरुद्ध कार्य होने का पता लगेगा उन्हें आज्ञा निकाल रोका जा सकेगा ।" कहना न होगा कि हम भारतीय ह्रास में बाल-विवाह का कितना ज़बर्दस्त भाग है । दशा में, मण्डी राजा साहब का यह कार्य सर्वथा प्रशंस ही नहीं, बल्कि अन्य नरेशों के लिए अनुकरणीय भी है।

भ्यता' का दावेदार ब्रिटिश भारतीय सरकार को इस ज़रा-ी पहाड़ी रियासत के इस कार्य को देख कर शर्म आनी ाहिए।

स्त्रियों के अधिकार

स्त्रियों के अधिकारों की चर्चा ११ अप्रेल की बम्बई की भा में हुई। डा० देशमुख ने कहा कि स्वतन्त्रता केवल र्यों के लिए नहीं है। स्त्रियों के साथ न्याय होने से समान न फट जायगा। उन्हें और अधिक समय तक लामी में रखना राष्ट्र के लिए भारी सङ्कटजनक होगा। ारी मीठा ताता ने कहा कि स्त्रियों के प्रति पुरुषों के भाव र्थी और अत्याचार-पूर्ण हैं। यह कहां का न्याय है कि ुष स्वयं तो तीन-चार विवाह करें, पर स्त्रियों को ऐसा ने से रोकें? मैं तो सबको एक ही विवाह करने के लिए हती हूँ। लेकिन अगर पुरुष दूसरा विवाह करते हैं, तो यों को भी पुनर्विवाह का अधिकार होना चाहिए। अन्त यह प्रस्ताव पास हुआ—"कौंसिलों के ग़ैरसरकारी सदस्यों प्रार्थना की जाय कि वे बड़ी धारा सभा और राज्य-परिषद् प्रस्ताव पेश करके भारत-सरकार से अनुरोध करें कि बिना लम्ब एक ऐसी कमिटी नियुक्त की जाय, जो विवाह और रासत (उत्तराधिकार) सम्बन्धी क़ानूनों की जाँच करे और न क़ानूनों को स्त्रियों के लिए न्यायपूर्ण बनावें— ख़ास कर) पुरुष का एक से अधिक स्त्री का विवाह करना रोका ाय, (२) जिस स्त्री को पति छोड़ दे उसके निर्वाह के लिए फ़ी रुपया दिलाने की व्यवस्था हो, (३) स्त्री को अदालत पति को तलाक देने का अधिकार प्राप्त हो, (४) लड़की अपने पिता की पैतृक सम्पत्ति का अपने जीवन भर के ए उत्तराधिकार दिया जाय और विधवा अपने पति की तृक सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी बने।"

स्त्रियों की शक्ति और कर्त्तव्य

श्रीमती डा० एनी बेसेण्ट का कहना है कि भारतीय यों के आन्दोलन ने पिछले नौ वर्षों में जो प्रगति की है ह बड़ी महत्वपूर्ण है। ९ वर्ष पूर्व जब भारतमन्त्री श्री ाण्टेगु ने उन्हें मताधिकार देने से इन्कार किया था तब से ब वे कहीं आगे बढ़ गई हैं। उनका कहना है कि स्त्रियाँ क्ति या बल की प्रतिनिधि हैं और भारतीय स्त्रियों की तेज़ जागृति का आज सबसे अधिक आशाप्रद चिह्न है यह कि व्यावहारिक होने के सबब अपनी जागृति से वे भारत के राजनैतिक पुनरुद्धार को सम्भव बना देंगी। मुझे यकीन है कि भारत का स्वातन्त्र्य-दिवस अब निकट है, क्योंकि आने वाले आन्दोलन में स्त्रियां अच्छा भाग लेंगी।

बम्बई की स्त्रियों की सभा में आपने इस बात पर ज़ोर दिया है कि अगले कुछ महीनों में हमें अपनी शक्ति का परिचय देना होगा। और साइमन कमीशन के बहिष्कार का ज़िक्र करते हुए कहा—"इसमें स्त्रियां पुरुषों से भी अधिक काम कर सकती हैं। सब प्रकार के विदेशी कपड़ों का बहिष्कार स्त्रियों को स्वयं तो करना ही चाहिए; साथ ही अपने पति और पुत्रों से भी वे यह कह सकती हैं कि 'हम तुम्हें घर में न आने देंगी, यदि तुम विदेशी कपड़े पहन कर आओगे।' इस तरह स्त्रियों के हाथ में बड़ा अधिकार है। स्त्रियाँ चाहें तो पुरुषों की हालत को अत्यन्त शोचनीय बना दें। अतः सभी स्त्रियों को सामने आ कर अपने पुरुषों को कर्तव्य पालन के लिए ज़ोर देना चाहिए। अगर स्त्रियां साहसी होंगी तो पुरुष भी साहसी होंगे।"

क्या हमारी बहनें इन वयोवृद्धा की बातों पर अमल करेंगी?

महिला-संस्थायें

स्त्रियों की संस्थायें इन दिनों अच्छी प्रगति कर रही हैं, यह हर्ष की बात है। अप्रैल को मद्रास में भारतीय महिला-संघ का वार्षिकोत्सव मनाया गया। यह संस्था स्त्रियों की उन्नति के लिए प्रयत्न करने वाली संस्थाओं में सबसे प्रमुख और शायद सब से पुरानी है। श्रीमती कज़िन्स सात साल से इसकी मंत्री हैं और उनके सहयोग से इसने स्त्रियोद्धार का बहुत कुछ कार्य किया है। देवदासी और बाल-विवाह की कुप्रथाओं के विरुद्ध तो इसका कार्य बड़ा महत्वपूर्ण है। ७ साल के बाद अब श्रीमती कज़िन्स ने मंत्री-पद छोड़ा है और श्रीमती पटवर्धन इस वर्ष के लिए मंत्री चुनी गई हैं। इस अवसर पर श्रीमती कज़िन्स ने इसकी प्रगति का जो वर्णन सुनाया उससे मालूम पड़ता है कि इन सात सालों में बढ़ते हुए अब यह संघ एक ज़बर्दस्त संस्था बन गई है। अब इसकी ७१ तो शाखायें हैं, २४ केन्द्र हैं और ४ हज़ार

के क़रीब सदस्य हैं । देश के अनेक भागों में इसकी शाखायें फैली हुई हैं और इसकी ७ सदस्यायें विभिन्न कौंसिलों की मेम्बर है । ८० से अधिक स्थानिक संस्थाओं की सदस्या, आनरेरी मजिस्ट्रेट और यूनिवर्सिटियों की सीनेट की सदस्या हैं । श्रीमती कज़िन्स विश्व-भ्रमण के लिए जा रही हैं और इस संघ ने उन्हें अपना अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिनिधि बनाया है ।

* * *

पूना में १८ अप्रेल को महिला-विद्यापीठ और सेवा-सदन के प्रसिद्ध संस्थापक, स्त्रियों के हितार्थ अनवरत प्रयत्न करने वाले, त्यागी महानुभाव अध्यापक कर्वे की ७१ वीं वर्ष गांठ मनाई गई । इस अवसर पर कर्वे-जयन्ती समिति के सभापति श्रीयुत वामन मल्हार जोशी ने जो अपील प्रकाशित की, उसमें उन्होंने लिखा हैं—

“वह (कर्वे) न सिर्फ़ पूना के विधवा-गृह और भारतीय महिला विद्यापीठ के संस्थापक ही हैं; बल्कि वह स्वयं भी एक प्रकार की संस्था हैं ।

उनका नाम न केवल महाराष्ट्र में बल्कि सारे भारतवर्ष में, न केवल धनी ही किन्तु धनी-ग़रीब सभी कोई, न केवल कुछ विशेष राजनैतिक दल ही बल्कि सभी दल, न केवल सुधारक ही किन्तु पुराने विचारों के लोग भी बड़े आदर से लेते हैं । यह अपूर्व स्थान उन्हें कोई एक दिन में ही नहीं मिला है । उन्हें भी वे सभी कष्ट उठाने पड़े हैं, जो हर एक आदमी के भाग्य में बदे होते हैं—जो साधारण लोगों के वहमों और पुराने ख़यालों के विरुद्ध कुछ भलाई का काम करना चाहते हैं और ख़ास कर जब कि उनके पीछे धन या पद का सहारा न हो । वह आप ग़रीब आदमी थे । अपने काम के पहले दस वर्ष तक तो धनियों से कुछ भी अधिक मदद या प्रशंसा नहीं मिलती थी । उधर बेपढ़े लोग विधवाओं को शिक्षा देने की उनकी सुधार-प्रवृत्ति के लिए उन्हें गालियाँ दिया करते थे । फिर पढ़े लिखे लोग भी उन्हें बहुत थोड़े उत्साह से सहायता दिया करते थे, क्योंकि उन लोगों की दृष्टि में अध्यापक कर्वे का यथेष्ट आगे न बढ़ना उनकी कायरता थी । इन सब कठिनाइयों को जीत कर वर्षों की मिहनत, धैर्य और आत्म-त्याग से उन्होंने शत्रुओं को श्रद्धालु, और थोड़ी सहानुभूति करने वालों को उत्साही अनुयायी बना लिया है । उनके समान देशों में विरले ही होंगे, और ख़ास कर हिन्दुस्तान जो कि कई परिस्थितियों के कारण न तो अपने पहचान ही सकता है और न उनको उत्साह सकता है । उनको जानने वाले या जिन्होंने सुना है (यानी प्रायः सारा का सारा शिक्षित वे स्वभावतः ही चाहते हैं कि हमारे बीच अभी बहुत दिन रहें । और ऐसे लोगों की आयु का एक अच्छे से अच्छा तरीका यह है कि हम से उनके मन में यह भावना उत्पन्न करावें कि क़ीमत हम ज़रूर समझते हैं और उस काम करना चाहते है, जिसे उन्होंने इतने आत्मत्याग-पूर्व लिया है । उनके कुछ मित्रों और भक्तों ने उनके असहाय विधवाओं को पढ़ाने के लिए छात्र वृत्ति लिए एक कोष खोल दिया है । आशा की जाती है और शिक्षित वर्ग के सभी कोई खुशी से उस सहायता करेंगे ।

कर्वे महाशय की कार्य पद्धति से भले ही थोड़ा-बहुत मतभेद हो; पर इसमें शक नहीं उद्देश्य निस्संदिग्ध है । उनमें त्याग है, निःस्वार्थता है, और इन सब से भी बढ़ कर उनके हृदय में स्त्रियों की दयनीय दुर्दशा की और उसे दूर करने की । स्त्रियों के हितार्थ कार्य करने वालों और कार्य-कर्ताओं को कर्वे महाशय के उदाहरण से करनी चाहिए और उनके उठाये हुए काम को तब बर जारी रखना चाहिए, जबतक कि उसका नहीं होजाता । जयन्ती के संगठन-कर्ताओं ने रु० जमा करने का नम्र-भार उठाया है । कहना है कि “यह रक़म तो तुरन्त ही उन पुरुषों के यहाँ से आजानी चाहिए, जिनपर करने वालों के इस सरदार का असर पड़ा है इनके आजीवन श्रम से लाभ उठाया है ।” कार्य से दिलचस्पी राखने वाले स्त्री-पुरुषों को इस देना चाहिए ।

* * *

प्रयाग में गत २ फ़रवरी १९२२ को एक महिला-द्यापीठ की स्थापना हुई थी। उसकी पहली रिपोर्ट प्रका-त हुई है। उससे मालूम होता हैं कि इस अरसे में उसने छी तरक्की की है। उसमें तीन परिक्षायें होती हैं—द्याविनोदिनी, विदुषी और सरस्वती। मैट्रिक, बी० ए० एम० ए० के मुक़ाबले की इन्हें बताया जाता है। इनमें अब तक कुल ३२१ स्त्रियां विद्याविनोदिनी परीक्षा पास चुकी हैं, ६१ विदुषी हो चुकी हैं, और २ सरस्वती हुई विद्यापीठ इंग्लैण्ड के 'अभिभावक राष्ट्रीय शिक्षा-संघ' ग की संस्था है; इसमें सिर्फ़ परीक्षायें होती हैं, पढ़ाई पर ही की जाती है। पंजाब, बिहार-उड़ीसा, दिल्ली, मध्य-त, बंगाल, आसाम, राजपूताना और ब्रह्मा के अनेक नों में इसकी परीक्षायें होती हैं। कई स्थानों के बोर्डों ने र्ण परीक्षार्थिनियों को पुरस्कार आदि दे कर और जयपुर, नेर, बांसवाड़ा, ग्वालियर आदि कुछ रियासतों ने अपने-ने यहाँ परीक्षाओं का काम अपने नियंत्रण में करके इस-हयोग किया है। कई जगह नौकरी के लिए भी ये क्षायें स्वीकृत हो गई हैं, इससे परदेदार औरतों और ली विधवाओं के लिए पढ़ाई की बड़ी सुविधा गई हो है। रिपोर्ट से मालूम होता है कि उत्तीर्ण विद्यार्थिनियों का ज्यादातर नौकरी ही रहा है। यह बात खटकती है। ा हो, इसके संगठन-कर्त्ता इस ख़ामी को दूर करने का करें। क्योंकि, हमारी नम्र-सम्मति में, शिक्षा का परम नौकरी नहीं, बल्कि मनुष्य-जीवन में सम्पूर्णता को ा है। नौकरी तो एक गौण बात है, और आज के दिन वह और भी निष्कृष्ट है। हाँ, स्वावलम्बन की बात समझ ा सकती है—पर क्या ही अच्छा हो, यदि वह नौकरी के य किसी घरेलू उद्योग-धन्धे के द्वारा हो !

वतियों की अकाल मृत्यु

सहयोगी 'आज इस शीर्षक से लिखता है—१५ से वर्ष तक की युवतियाँ बहुत अधिक संख्या में क्षय रोग मरती हैं। कलकत्ते के हैल्थ आफ़िसर का कहना है कि उम्र के जितने पुरुष इस रोग से मरते हैं उससे छः अधिक स्त्रियाँ मरती हैं। इसके दो प्रधान कारण आपने ये हैं—परदा और बाल-विवाह। कलकत्ते जैसे घने शहर में जो परदे की रक्षा करना चाहते हैं, उन्हें अपनी स्त्रियों को ऐसी जगह बंद कर रखना पड़ता है, जहाँ ताज़ी हवा और धूप भी पहुँच नहीं सकती। स्वास्थ्य-रक्षा के ईश्वरदत्त इन दो उपायों से वंचित स्त्रियाँ स्वभावतः अल्पवयस में ही परलोक सिधार जाती हैं। दूसरा कारण बाल-विवाह है। शरीर पुष्ट होकर माता बनने योग्य बनने के पहले ही लड़कियाँ गर्भवती होती हैं और वर्षों बच्चों को दूध पिलाती हैं। फलतः जो समय स्वभावतः उनके यौवन का होना चाहिए वही बुढ़ौती का होता है और बीस साल की उम्र तक उनकी इहलीला समाप्त हो जाती है। यदि समाज अपनी बहू-बेटियों की रक्षा करना चाहता हो, तो उसे इन दोनों कारणों का प्रतिकार करना चाहिए।"

जर्मनी में महिला-आंदोलन

"पृथ्वी के प्रायः जितने सभ्य देश हैं, बींसवीं शताब्दि के प्रारम्भ से ही, वे सब इस बात का प्रयत्न कर रहे हैं कि उनकी स्त्रियां भी उनकी राष्ट्रीय और सामाजिक उन्नति में उनसे सहयोग करें या करने योग्य हों।" यह लिखते हुए गोरखपुर के डा० विश्वनाथ मुकर्जी ने 'आज' में बताया है कि 'इस विषय में यदि किसी देश की स्त्रियों ने सब से अधिक सफलता प्राप्त की है तो वह जर्मनी ही है।" उनके लेखानुसार,

स्त्रियों की स्वाधीनता का आंदोलन जर्मनी देश में बहुत पहले ही से मौजूद था; परन्तु महासमर के बाद थोड़े ही दिनों में इसको आश्चर्यजनक सफलता मिली। इसके पूर्व राष्ट्रीय परिषदों के सदस्य-निर्वाचन का अधिकार उनको केवल नाम-मात्र के लिए था। परन्तु अब वे स्वयं निर्वाचन-प्रार्थी होकर यथारीति प्रतियोगिता करने के बाद अपनी योग्यता को भली भांति प्रमाणित करके सदस्य-पद को प्राप्त कर रही हैं। अब तो बड़ी जर्मन व्यवस्थापक सभा, प्रादेशिक सभाओं और मन्त्रिमंडलों में—कहीं भी योग्य महिला सदस्य की कमी नहीं दिखलाई देती। क़रीब सत्तर वर्ष पहले जर्मनी स्त्रियों ने विश्व-विद्यालय में प्रवेश का अधिकार प्राप्त किया था। परन्तु अब तो जर्मनी की लड़कियों को भी लड़कों की ही तरह सब प्रकार की शिक्षा दी जाती है।"

मुकुट

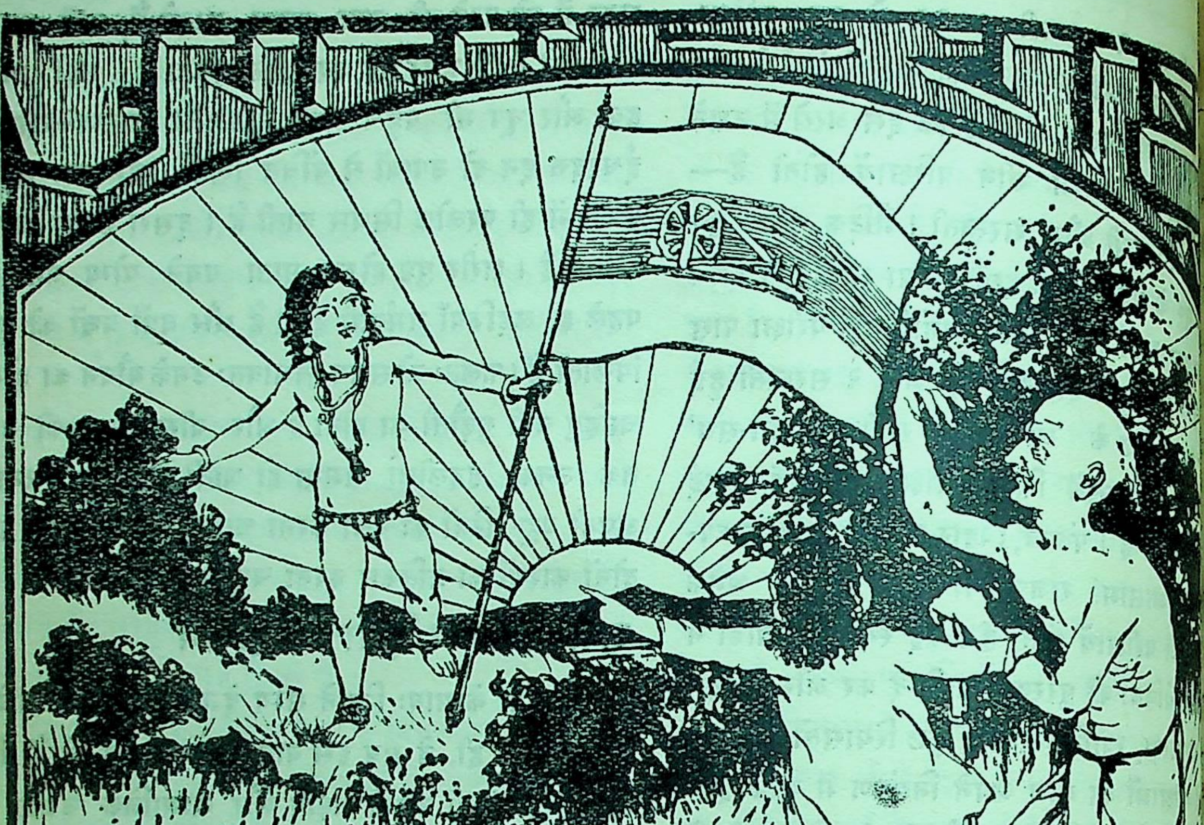

शुभ-प्रभात

सत्य सूर्य की अरुण छटा ने,
अनुपम दृश्य दिखाया है;
तिमिर-राशि को भेदन करके,
नवजीवन सरसाया है।
विश्व-विजयिनी प्रबल क्रांति ने,
यह संदेश सुनाया है—
शीघ्र तजो दासत्व-भाव को,
कर्मयोग युग आया है।
मातृ-वंदना करके वीरो, आगे को अब बढ़े चलो।
विजय तुम्हारी निश्चय होगी, दृढ़प्रतिज्ञ हो चले चलो॥

गुरुप्रसाद पाण्डेय 'गुरु'

आह्वान!

मां, आज तुम्हारी यह कैसी दशा है ? तुम तो अत्यन्त शालिनी, कीर्तिवती, प्रकाशमयी और अपनी एवं जाज्वल्यमान ज्योति से सारे जगत् को ज वाली हो ! तुम्हारे अतीत-उत्कृष्ट गौरव, तुम्हारे यश, तुम्हारी विशालहृदयता, तुम्हारे स विश्वप्रेम, तुम्हारी अगाध ज्ञानराशि और तुम्ह की अनुकरणीय कर्त्तव्यपरायणता का लोहा सं चुका है। तुम्हारी वात्सल्यमयी, दयामयी, क्षमामयी, ओजमयी, सौन्दर्यमयी और कर्त्तव्यम विभूतियों का स्मरण कर दुनिया के निष्पक्ष विद्वान् आज भी तुम्हारे सामने नत-मस्तक तुम्हारा गौरव, तुम्हारी कीर्ति और तुम्हारी बहुत महान, अत्यन्त उज्ज्वल और बहुत प्रा

पर, माँ, आज ये सब बातें एक स्वप्न की वस्तु क्यों हो रही हैं ? आज इनका साक्षात् दर्शन तो दूर रहा, इनकी एक झलक-मात्र का मिलना भी क्यों दुर्लभ हो रहा है ? क्या तुम्हारे वे अनोखे दिन, तुम्हारी वह स्वर्णखचित पुण्यभूमि और तुम्हारे उस यशाभिभूत दमकते हुए तथा सूखे और निर्जीव देह में प्राण-संचार करने वाले मुखारविन्द के दर्शन न होंगे ? क्या स्वर्ग और इन्द्रपुरी में रहने वाले देवता और देवियाँ यहाँ आने को फिर न तरसेंगी ? माँ, हमारी प्रेम की धारा बहाने वाली माँ, कुछ उत्तर क्यों नहीं देतीं ? आज तुम इतनी अस्तव्यस्त, इतनी दीन-हीन, इतनी विमना और खिन्न, ऐसी विरूपा और कान्ति-हीन तथा ऐसी हतोत्साहित एवं निराश क्यों दीखती हो ? तुम किस शोक, ग्लानि, क्रोध, प्रमाद या पश्चात्ताप की भयंकर आग में जल रही हो ? माँ, तुम्हारा यह कैसा विचित्र हाल है ? इतनी बड़ी गृहस्थी रख कर भी तुम्हारे यहाँ आनन्द के सोते बहते थे, दुःख और चिन्ता फटकने भी नहीं पाती थी, चारों ओर प्रेम और शान्ति विराजमान थी; संसार में तुम्हारे उस सुख-सौख्य, प्रसन्नता और प्रेम का सानी रखने वाला कोई नहीं था। पर, उसके ठीक विपरीत, आज तुम्हारी यह कैसी शोचनीय दशा है ? तुम्हारी यह विशाल गृहस्थी आज इतनी छिन्न-भिन्न क्यों हो रही है ? तुम्हारे बच्चे जहाँ दूध से कुल्ले करते थे, जहाँ दही और दूध की नदियाँ बहती थीं, वहीं पर तुम्हारी सन्तान आज एक टुकड़े सूखी रोटी और जरा से शाक के लिए तरस-तरस और तड़प-तड़प कर इस संसार से अकाल ही में क्यों कूच कर रही है माँ ? जननि, ३२ करोड़ सन्तान की माँ हो कर भी आज तुम इतनी जर्जर, इतनी बेबस और ऐसी अनाथिनी क्यों हो रही हो ? क्या तुम्हें इसमें भी कोई आनन्द मिल रहा है ? अथवा अपने बहुसंख्यक पुत्रों की आँखों के सामने अपनी भयंकर दुर्दशा—जर्जरावस्था का स्पष्ट चित्र रख कर उन्हें लज्जित कर, कर्त्तव्य-पथ पर अग्रसर होने का इशारा कर रही हो ? यह तो हम कैसे मानें कि इस शोचनीय अवस्था में अवस्थित रहने में तुम्हें कोई सुख मिल रहा है ! हाँ, दूसरी बात हो सकती है। पर, माँ, तुम्हारा यह ढंग हमें पसन्द नहीं आता। ऐ हमारी महाशक्तिशालिनी माँ, तुम्हारे पुत्र ऐसे पतित, ऐसे हीन, ऐसे ग़ुलाम, और ऐसे नगण्य हो गये हैं तथा उनसे आत्मगौरव, स्वातंत्र्य-प्रियता और मातृप्रेम के भाव इस प्रकार विलुप्तप्राय हो गये हैं कि उनपर तुम्हारा कितना ऋण है, इसका वे ख़याल भी नहीं कर रहे हैं ! तुम्हारी इस महाभयंकर जर्जरावस्था का उन्हें अनुभव तक नहीं हो रहा है। तुम्हारी दुर्दशा-रूपी शहतीर उनकी आँखों में घुसेड़ी जा रही है, पर यह उन्हें सूझ भी नहीं पड़ रहा है ! वे आज हाथ-पाँव रखते हुए भी लूले और पंगु, आँख रख कर भी अन्धे और शरीर रख कर भी जड़ हो रहे हैं। उनमें कोई शक्ति, कोई हिम्मत, ज़रा भी अवशेष नहीं रही। इसीलिए हम कहते हैं कि तुम्हारा यह ढंग हमें पसन्द नहीं आ रहा माँ, इस प्रकार तो तुम शायद ताकती ही रह जाओ और बहुत सम्भव है कि तुम्हारी इन ३२ करोड़ सन्तानों की कर्त्तव्य-विमुखता के कारण तुम्हें और भी विपद्ग्रस्त हो जाना पड़े। फिर ऐ मेरी विकराल काली-स्वरूपा जननि, तुम क्यों नहीं थोड़ी देर के लिए अपने इस रुख़ को बदलतीं ? माँ, तुम इन सब बातों को अच्छी तरह जानती, समझती और महसूस करती होगी। और हम से कहीं अधिक महसूस करती होगी। पर, फिर भी, तुम कुछ हिल-डुल नहीं रही हो ! माँ, इसका क्या रहस्य है ? क्या तुम यह समझ रही हो कि तुम्हारे उठने का, तुम्हारे कर्त्तव्यादेश करने का और रणभेरि बजाने का समय नहीं आया ? माँ, तुम

महान् हो, तुम्हारी गरिमा, बुद्धिमत्ता, दूरदर्शिता और कार्यदक्षता अनोखी है। यह तो हम कैसे कहें कि तुम यह समझ कर भूल कर रही हो कि अभी तुम्हारे उठने का समय नहीं आया; पर, मेरी तुच्छ बुद्धि में, यही समझ पड़ता है कि समय और माक़ूल समय आ गया है। बहुत हो चुका—इतना हो चुका कि अब आगे असह्य होगा, प्रतीक्षा भी तुमने काफ़ी की और अब एक घड़ी भी और प्रतीक्षा करने की गुँजाइश प्रतीत नहीं होती। अब ज़रा भी आह-ओच, दया-माया और कृपा कोर दिखलाने का समय नहीं है। तुम्हारी सन्तानें आज चाहे कितनी ही पतित हो गई हों; पर उनमें तुम्हारे रक्त का कुछ प्रभाव अब भी विद्यमान है, उन्हें अपने अतीत उज्ज्वल गौरव का अभिमान है, और तुम्हारी जैसी अतुल विशालहृदया एवं अनेक गुणों से युक्त महिमामयी पूजनीया माता का बहुत भरोसा है। माँ, इन्हें उठाओ, जगाओ और यों न उठें तो कोड़े मार कर उठाओ। उनके उठ जाने भर की देर है, फिर तो वे रण-बाँकुरे तुम्हारे इशारे पर उसी प्रकार नाचेंगे, जिस प्रकार महाभारत में भीष्म और अर्जुन के इशारे पर कौरव और पाण्डवों की सेना नाचती थी। माँ, अब, तुम्हारी दिनों-दिन अब्तर होने वाली दशा के अवरोध एवं उसके सुधार का इसके सिवा कोई तरीक़ा नज़र नहीं आता!

ऐ हमारी परमगौरवमयी, रत्नगर्भा, संसार में सभ्यता का स्रोत प्रसारित करने वाली, अनन्त कीर्तिवती माँ! आज तुम्हारी हालत देख हमें रोना आता है—हृदय टूक-टूक हुआ जाता है। पर आज हम इतने कायर, ऐसे पस्तहिम्मत और ऐसे शक्तिहीन हो गये हैं कि तुम्हारी सन्तान कहलाने में भी हमें लज्जा आती है—सिर नीचा हो जाता है। पर, माँ, हमारी इस दयनीय दशा पर दयार्द्र होना भी सिवा और किसे आता है? हमारा सहा सान्त्वना और सन्तोष देनेवाला, हमारी खिन्न आलस्य को रौंद कर हमें प्रसन्न और जागरूक वाला और हमें कर्त्तव्यविमुखता से मोड़ कर परायणता के मार्ग पर अग्रसर कराने वाला सिवा और कौन है माँ? हमारे हृदय में पवित्र प्रेम का सोता बहाने वाली जननि, तुम्हार तुम्हारी सहिष्णुता, तुम्हारा प्रेम, और तुम्हारी लता अनुपम—स्वर्गीय है। पर अब धैर्य, सहि और मृदुलता का समय नहीं रहा माँ, अब अधिक इन्तज़ारी की भी आवश्यकता नहीं। बच्चे सो चुके, बहुत सो चुके और अगर अपने वा मय कोमल करों से झंझोड़ कर उन्हें अब नहीं उठातीं तो हमें तो इस अनुपम विशाल भा का भविष्य सर्वथा अन्धकारमय और निराश ही प्रतीत होगा।

मातेश्वरि! अब देर न करो; उठो और इन ३२ करोड़ सन्तानों की देह पर एक बार परम प्रसादमय हाथों को फेर दो, ताकि इनमें और तपस्या, बल और बलिदान एवं जीवन जागृति की ज्योति जगमगाने लगे और एक बार वे अपनी अद्भुत अनोखी तथा अतुलनीय श प्रदर्शन कर स्वतन्त्रतादेवी के चरणों में अपने पुष्पों' की श्रद्धांजलि चढ़ा कर अपनेको कृत कर सकें और स्वतन्त्रतादेवी के आलोकमय आ को पा कर एक बार फिर वे संसार को कर दें!

देवव्रत शा

नवयुवको !

(१)

भारत के नवयुवको ! उठकर,
खड़े नहीं हो जाते क्यों ?
वृथा विलासी जीवन में फँस,
निज उपहास कराते क्यों ?

(२)

पद-पद पर हो रहे पराजित,
खोते हो अपना सन्मान ।
फिर भी ध्यान न आता तुमको,
जाती है पुरुखों की शान ।

(३)

निद्रा-तन्द्रा को तज करके,
स्वत्व-समर में आ जाओ ।
दास्य-पाश को छिन्न-भिन्नकर,
फिर स्वतंत्र कहला जाओ ।

(४)

एक बार सब मिल जायें तो,
सारा विश्व हिलादें हम ।
विश्व-सरोवर के तट पर अब,
स्वर्ग-सरोज खिलादें हम ।

प्रभुनारायण शर्मा

"मातृभूमि की महान् आत्मा वही बलि-वेदी है, जहाँ के सपूतों की बलियों का ढेर लगा है ।"

श्रीमती डॉ० एनी बेसेण्ट

बाग़ी

हाँ, मैं बाग़ी हूँ । बलवे का झण्डा मेरे हाथ में है । मैं दौड़ता हूँ । धीरे-धीरे चलने की फ़ुरसत मुझे कहाँ ? जो चाहें, इस झण्डे के नीचे दौड़ कर आ जायँ और होलें मेरे साथ । मैं किसी के लिए ठहर नहीं सकता । कोई शौर न मचावें । काम करते चले जावें । बस, यही सच्चे बाग़ी के लक्षण हैं ।

यह बग़ावत का झण्डा है—संसार की तमाम अव्यवस्थाओं को तोड़ने के लिए, विषमताओं को जलाने के लिए, अन्यायों को डुबोने के लिए । सावधान हो जायँ वे ब्राह्मण, जो आज तक अपनी धार्मिक सत्ता और प्रतिष्ठा को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए नाना प्रकार के छल-कपट करते आये हैं, जो अन्य वर्णों को नीच समझते आये हैं, जो अपनेको विद्या, बुद्धि और पवित्रता का ठेकेदार मानते आये हैं, जो वेदों के ख़ज़ांची होने का दावा करने पर भी वेदों की दुम को भी नहीं जानते, जो नित्य पुराण पढ़ते रहने पर भी उनका रहस्य नहीं समझते, जिन्हें पता नहीं कि दर्शन किस खेत की मूली है, जिनकी पहुँच शब्द ब्रह्म से परे नहीं है, जिनकी रक्षा अपने धार्मिक ज्ञान को गुप्त रखने ही में है, और जो ब्राह्मण-भोजन पर अपनी आजीविका चलाते हैं ! हाँ, वे ब्राह्मण अब सावधान हो जायँ और याद रक्खें कि घोर कलिकाल मेरे झण्डे के नीचे खड़ा है । अब बिना चमत्कार के नमस्कार न होगा । केवल "ब्राह्मण" शब्द के सुन लेने भर से समाज का सिर उनके चरणों में नहीं झुकेगा । भारत—जागृत भारत अब ब्राह्मण-धर्म की निर्जीव प्रतिमा की पूजा नहीं करेगा । ब्राह्मणो, क्रोध से तुम्हारी भौंहें तन रही हैं ! ये बड़ी-बड़ी आँखें अपने समाज पर डालिए । देखिए उसकी दशा, और

लज्जा से सिर नीचा कीजिए। वेदों की रक्षा करने का तुम्हें अभिमान है? भारतीय संस्कृति को हमने जीवित रक्खा, इसका तुम्हें गर्व है? पर यह अहसान तुम किसपर जता रहे हो? केवल धर्मग्रन्थों की रक्षा देश, धर्म और जाति की रक्षा नहीं है। जिस समय हाथों में शमशीर लेकर देश की स्वाधीनता की रक्षा के लिए तुम्हें दौड़ पड़ना चाहिए था, जिस समय अपने अगाध आध्यात्मिक ज्ञान को देश की समस्त शक्तियों को एकत्र करके आक्रामक सत्ताओं का युद्ध द्वारा प्रतिकार करने में लग जाना था, तब तुम परमहंस बनकर अपने योगाभ्यास में लगे हुए थे वह योगाभ्यास था या कायरता? इस भयंकर लापर्वाही के कलंक को ब्राह्मणवर्ण के सिर से कौन धो सकता है?

क्षत्रियो,—भारत के उज्वल युग के निर्जीव स्मारक-जीवो! सदियों तक मेरे झण्डे के नीचे लड़-लड़ कर भी तुमने यह नहीं जाना कि मैं कितना दुष्ट और कैसा निर्दय हूँ! जब मुझे तुम्हारे वर्तमान पतन का ख़याल होता है, तो मेरी आँखों में ख़ून उतर आता है।। अरे, एक महान् जाति का इतना पतन भी इस आकाश के नीचे कभी हुआ होगा! तुम्हारा वह अतीत गौरव आज क्या मूल्य रखता है? उस समय तुमने जो कुछ किया वह केवल कर्तव्य था। आज उसके गीत गाकर तुम लोगों से आदर और श्रद्धा की आशा न रक्खो। तुम्हारा वर्तमान जीवन आज जितना घृणित है, शायद ही संसार में कभी किसी जाति का ऐसा रहा होगा।

कल और परसों जो स्वाधीनता के दुर्ग थे, आज वे ही पराधीनता और गुलामी के दुर्ग हो रहे हैं। जो स्थान एक समय सतीत्व-धर्म के पुण्य प्रकाश से जगमगा रहे थे, आज वहाँ से घोर घृणित व्यभिचार की गंदी हवा निकल कर संसार में दुर्गन्धि फैला रही है। जिन शमशीरों को देख कर दुश्मनों के छूट जाते थे, वही तलवारें आज देश को बनाये रखने के काम में ली जा रही हैं। आह है भारतीयों की इस मूर्ख धारणा का परिणा देश की रक्षा के लिए केवल क्षत्रिय ही ज़िम्मे ओफ़, एक टुकड़े और चमकीले पट्टे के लिए अ बनराज पालतू कुत्ता कैसे हो गया?

परन्तु मुझे इसकी पर्वा नहीं है। न इस में पड़ने का समय ही मेरे पास है। आज जो गति से चल सकता है वही जीता रहेगा। यह का ज़माना है। देश और जाति को गिराने तमाम शक्तियों को मैं नष्ट करने के लिए निक हूँ। मैं शंकर—परन्तु प्रलयंकर रुद्र हूँ। अतीत का विचार करने के लिए मेरे पास समय तुम अगर आज कुछ काम कर सकते हो, इच्छा से काम न चलेगा, तो इस झण्डे के नी हो जाओ। वरना, अलग हटो। पृथ्वी पर लोगों की ज़रूरत नहीं है।

परन्तु, सबसे अधिक अभिमान है इन रियों को। करोड़ों ग़रीबों की रोज़ी छीन अपने देश का कच्चा माल विदेशों में भेजने बना-बनाया विदेशी माल अपने देश में उसकी दलाली पर बड़े-बड़े प्रासादोपम भवन करने वाले व्यापारियो, ठहरो! देखते नहीं, तुम्हारे भिमान और ग़रीब-द्रोही हलचलों को चूर-चू के लिए एक महान् शक्ति का अवतार हो चुक देखते नहीं, उसके खप्पर की ज्वाला कितने देशों सत्ता को झुलसती हुई तुम्हारी ओर दौड़ी है? निर्णय करो। समय थोड़ा है। स्वदेशी पालन करना चाहते हो, या आसुरी साम्राज्य का? याद रक्खो, ये साम्राज्य नाश हैं। मेरी फूँक लगते ही भुर्र से उड़ जावेंगे।

के जीवन को पीस डालने वाले बड़े-बड़े कल-कारखाने अब नहीं चल सकेंगे—कम से कम तुम उनके मालिक बन कर मजूरों की कमाई पर गुलछर्रें नहीं उड़ा सकोगे। और न मनमाना माल पैदा करके उसे दूसरे देश के लोगों पर बिला ज़रूरत जबर्दस्ती लाद सकोगे। अरे, अपने माल के लिए बाज़ार तैयार करने के लिए तुम्हारे अन्यदेशीय भाइयों ने कितने घृणित काम किये हैं, धर्म के पवित्र नाम को कितना कलङ्कित किया है! सत्य, न्याय, समानाधिकार और स्वतंत्र व्यापारिक हक़ों के नाम पर विदेशों को कैसे लूटा है! कैसे-कैसे महायुद्ध छेड़े हैं और उनमें कितनी भीषण प्राण-हानि की है! ख़ून का पानी करके तन-तोड़ मिहनत करके कमावे कौन और उसपर गुलछर्रें उड़ावे कौन! यह अब नहीं होगा। जाओ। यह देखो, बलवे का झण्डा खड़ा होगया है!

आओ, मेरे प्यारे मजूरो, किसानो, कारीगरो, अछूतो, आओ। तुम्हारे स्वत्वों के लिए लड़ने को मैं आतुर हो रहा हूँ। संसार की बाल्यावस्था से ही तुम न जाने कितनी मुसीबतें झेलते आये हो। न जाने कितने अत्याचार तुमने सहे हैं। जो आया, तुम्हें नोचताही आया। जिसने चाहा, उसने ठुकराया। पर तुम भी ऐसी मुलायम मिट्टी के बने हुए हो कि यह सब चुपचाप हाथ जोड़-जोड़ कर सहते चले गये। धनिकों की लूट को तुमने विधाता का कोप समझा और राज्याधिकारियों की ठोकरों को अपने पूर्व जन्म के पाप का फल। किसने कहा कि तुम अछूत हो? यह सब ढकोसला है। न कोई छूत है, न अछूत। सब एकसे हैं। यहां तो सिर्फ़ एक कसौटी है—पुरुषार्थ। जो चाहे अपने पुरुषार्थ के बल पर सद्गुण, सम्पत्ति और ऐश्वर्य कमावे और दूसरों के आदर का पात्र बने। पूर्वजों की कमाई पर मूछें मरोड़ना मूर्खों का काम है। संसार का ज्ञान-भण्डार तुम्हारा है। जितना चाहो लूटो। वेद, कुरान, बाइबल किसी जाति या वर्ग-विशेष की सम्पत्ति नहीं, जो उनके अनुसार आचरण करना चाहे उन्हींकी हैं। वह देखो आचार्य, मुहम्मद और ईसा की आत्मायें पुकार-पुकार कर कह रही हैं कि परमात्मा बचाओ हमें इन अनुयायियों से—हम इनके मारे तंग आगये! इनकी ज़बान पर तो "एक मेवा द्वितीयो" है और ख़ुद हज़ारों जातियों में बँटे हुए हैं। ये अमर आत्मा के गुण-गान करते हैं और तुच्छ पशु-जीवन के लिए अपने कर्तव्य से मुँह मोड़ कर दुम दबा के भागते हैं! इनकी ज़बान पर "अल्लाहो अकबर" है और बुरे से बुरे और घृणित काम करने से भी नहीं लजाते। ये अपनेको ईसा के अहिंसा-धर्म और प्रेम-धर्म के अनुयायी बताते हैं और एक के बाद एक महायुद्ध करते चले जाते हैं; अन्य देशों की ग़रीब, दरिद्र, अज्ञान और भोली-भाली प्रजाओं में बाइबल लेकर के धर्म का प्रचार करने जाते हैं—बड़ी बगुला-भक्ति बताते हैं, जब कि सारा ईसाई-संसार मुझे भुला कर शैतान का अनुयायी हो बेतहाशा उसके पीछे दौड़ा जा रहा है।

मंदिर, मसजिद और गिरजाघर सब पाखंड के अड्डे हो रहे हैं। आओ, दिल को साफ़ करके यह बलवे का झण्डा उठा लो और इन पवित्र स्थानों से शैतान को मार भगाओ।

पर, ज़रा सम्हल कर! बलवे के मानी स्वेच्छाचारिता नहीं। बलवा निरंकुशता और अव्यवस्था का दूसरा नाम नहीं है। यह न समझ बैठो कि दुनिया में अकेले तुम्हीं ख़ुदा के बन्दे हो, और सब काफ़िर हैं—नास्तिक हैं। बल्कि याद रक्खो कि तुम इन बुराइयों को दूर करने के लिए निकले हो। अगर तुम्हारे अन्दर सचाई, और समभाव, सेवा और भक्ति के भाव नहीं हैं, तो इस विशुभ्र झंडे के नीचे न आओ; जल कर भस्म हो जाओगे। यह बलवे का झण्डा है। अग्नि की

प्रचण्ड ज्वाला है। प्रबल झंझावात है। समुद्र का तूफ़ान है।

यह झण्डा लेकर मैं संसार के कोने-कोने में एक नयी आग लगाने के लिए आया हूँ। समाज, शासक-संस्थायें, जातियां, कुटुम्ब, पाठशालायें, क़ानून, नीतिशास्त्र और धर्मशास्त्र की नये सिरे से, नये सिद्धान्तों पर, रचना करने के लिए मैं आया हूँ। एक अद्भुत चैतन्य का उद्भव हो रहा है। आकाश नवीन प्रकाश से जगमगा रहा है।

शान्ति ! सुनो !! देखो !!

एक नवीन शक्ति जन्म ले रही है। नवीन युग का उदय हो रहा है। आओ, उसका स्वागत करो। इस विजय-पताका का—अभिवादन करो।

ओह ! यह क्या ? परसों जो चोरी थी, जो कल बग़ावत थी, वही आज हमारे देश की परम मंगलमय आत्मा है !

प्रलयङ्कर शङ्कर

शक्ति का रहस्य

ब्रह्मचर्य ही प्राचीन भारतीय सभ्यता का आधार है। संसार की ऊंची-ऊंची सभ्यतायें भोग-विलास में पड़ कर नष्ट होती रही हैं। परन्तु हिन्दू सभ्यता के अचार्यों ने इस बात को भली प्रकार समझ लिया था कि इन्द्रिय-संयम ही उन्नतिशील सभ्यता का एकमात्र आवश्यक सिद्धान्त है। मेरी सम्मति में प्राचीन ब्रह्मचर्य शब्द का अर्थ ही अत्यन्त भावपूर्ण है। संस्कृत के अनेक शब्दों में आश्चर्यजनक सौन्दर्य होता है और उनके अन्दर अत्यन्त गम्भीर रहस्य भरे होते हैं। "ब्रह्मचर्य" शब्द के धात्वर्थ पर ज़रा विचार कीजिए। यह दो शब्दों के मेल से बना है। ब्रह्म और चर्य। इसका अर्थ है, "ब्रह्म के साथ गति।" ब्रह्म का अर्थ है, वृद्धि या विकास। ब्रह्म शक्ति का स्रोत है। ऐ को ! तुममें भी उस प्रजापति की दैवी अंश मौजूद है। क्या तुम उसके साथ सहयो हो, या भोग-विलास तथा क्षणिक सुखों और के लिए उसका दुरुपयोग करते हो ? ब्रह्म सभ्यता और सदाचार का मूल है। यही रा का मूलमंत्र है। यही शक्ति का रहस्य है। के सारे डाक्टरों की सारी दवायें स्वास्थ्य की रक्षा नहीं कर सकतीं, जितनी एक ब्रह्मचर्य द्वा जा सकती है। पुरुषत्व की शक्ति इन्द्रिय-सं ही प्राप्त होती है। हिन्दू-समाज और हिन्दू-स का प्राण ब्रह्मचर्य ही था। हिन्दू-सभ्यता के स्वरूप ब्रह्मचर्य का हमने अपमान किया है, लिए हमारा हर तरह से अधःपतन हो गया मुझे पूरा निश्चय है कि भारत सम्बन्धी सारी स्यायें नवीन पुरुषत्व और नवीन शक्ति के सञ्चा हल हो सकती हैं। जो जाति स्वतन्त्र होना चाहे उसे पहले बलिष्ठ बनाना चाहिए। सच तो यह है दुर्भाग्य से आधुनिक प्रचलित शिक्षा-प्रणाली ब्रह्मचर्य पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। पर हमें इस पर हैरान नहीं होना चाहिए कि स्कूलों और कॉ से खूब चालाक व्यक्ति पैदा होते हैं। देश को च कों की नहीं, किन्तु सरल लोगों की आवश्यकता जो कि बलिष्ठ हों और देश की सेवा में अपने को बलिदान कर सकें। एक बात मैं साफ़-साफ़ देना चाहता हूँ कि पाश्चात्य सभ्यता की नक़ल से हिन्दुस्थान का कुछ नहीं बन सकता। भारत को तो उन ब्रह्मचारियों के समूहों से ही आशा जो कि संसार के कोने-कोने में जाकर धर्म-पि लोगों को ऋषियों का पुनीत सन्देश सुना सकें।

आधुनिक शिक्षा के प्रभाव से हमारे दिमाग़ एक नशा पैदा हो गया है। नक़ल करना कमज़

है। विचार तथा जीवन के हर क्षेत्र में एक वस्तु की आवश्यकता है—शक्ति, बल। परन्तु बल का रहस्य यही है कि नक़ल न करके स्वयं अपने पैरों पर खड़ा हुआ जाय। वैदिक सभ्यता का युग न मालूम कितना पुराना है। एक आधुनिक ऐतिहासिक का कहना है कि २०००० या २५००० वर्ष पहले वैदिक सभ्यता का युग था। इस युग के विषय में मैं जितना अधिक विचार करता हूँ उतना ही इसकी और सरलता पर मुग्ध होता जाता हूँ। आधुनिक सभ्यता की अपेक्षा प्राचीन सभ्यता में अधिक सरलता थी। सरलता ही सभ्यता की कुञ्जी है। अकसर हम लोग प्रजातन्त्र राज्य पर विचार किया करते हैं। मेरी राय है कि वैदिक प्रजातन्त्र अधिक उच्च था। राजा सदा जनता द्वारा चुना जाता था। मेरी राय में प्राचीन राजव्यवस्था का मुख्य तत्त्व प्रजातन्त्रवाद ही था। जनता की इच्छा को सन्मान दिया जाता था। प्रजातन्त्रवाद प्राचीन आर्यों को अज्ञात न था। धर्म का स्थान सदैव राजा के ऊपर रक्खा जाता था। वैदिक राजव्यवस्था का आधार आत्मनियन्त्रण और आत्मसन्मान था। आजकल दुनियादारी और व्यवहारकुशलता पर अधिक ज़ोर दिया जाता है। पान के पत्तों की तरह चालाक लोगों की सर्वत्र ही अधिकता है। ऐसे आदमी भारत को स्वतन्त्रता नहीं दिला सकते। आर्यों का ज़ोर सदैव आत्मा की उन्नति पर था। मानसिक चतुरता द्वारा सफलता तथा स्वार्थ-साधन में कुछ सहायता तो मिल सकती है, परन्तु सफलता की प्राप्ति वस्तुतः आत्मा द्वारा ही होती है। जो कुछ स्थायी है, उसका निर्माता आत्मा है। आत्मा को ही अपने स्वाध्याय तथा जीवन का वास्तविक निर्माता समझो। आत्मिक शक्ति ही भारत को स्वराज्य दिलायेगी। अगर भारत में आत्मिक शक्ति की न्यूनता होगी, तो हम ऊँचे-ऊँचे उद्देश्यों तक नहीं पहुँच सकते। हमारे जातीय आन्दोलन यदि आत्मिक शक्ति से शून्य होंगे, तो वे गर्व, विषय-सुख, घृणा और झगड़ों के ही पैदा करने वाले होंगे।

आधुनिक ज़माने का ख़तरा यह है कि आजकल आत्मा को पराधीन कर दिया गया है। दैवी शक्तियों को मशीन का ग़ुलाम बनाया जा रहा है। आत्मा के अधिकारों को शक्ति-मदोद्धत सभ्यता पर क़ुर्बान किया जा रहा है।

ऋषियों की बुद्धिमत्ता का अनुसरण करना आपका प्रयत्न होना चाहिए। आजकल की स्पर्द्धा और पेचीदगियों ने मनुष्यों के जीवनों को बिलकुल पागलों की तरह बाह्य सुखों के पीछे भागना सिखा दिया है। इसीलिए आन्तरिक शक्तियों को विकसित करने की बहुत अधिक आवश्यकता है। आधुनिक शिक्षा सर्वथा असफल रही है, क्योंकि इसने विद्यार्थियों की आन्तरिक शक्तियों को विकसित नहीं किया। अभी कुछ दिन हुए कि जर्मनी के एक महान् विचारक और राजनीतिज्ञ महापुरुष की मृत्यु हुई है, उनका नाम 'रैथिनो' था। उन्होंने अपनी एक किताब में लिखा है कि "आत्मा को विकसित करो"। यह तो प्राचीन ऋषियों के सिद्धान्तों का एक अनुवाद-मात्र है। मैं आधुनिक स्कूलों, कालिजों, यूनिवर्सिटियों और संसार भर की सरकारों से एक प्रश्न पूछना चाहता हूँ, कि आप अपने नवयुवक विद्यार्थियों की आत्माओं को विकसित करने के लिए क्या यत्न कर रहे हैं? क्योंकि, मुझे दृढ़ निश्चय है, आत्मा को विकसित करने से ही वास्तविक नवजीवन का विकास होता है।❀

टी० एल० वास्वानी

❀ गुरुकुल-कांगड़ी के दीक्षान्त भाषण से

त्याग

(१) जब कृषक अपना सर्वस्व त्याग कर भूमि को दे देता है, तब उसको वह रत्न प्राप्त होता है, जो संसार का जीवनाधार है।

(२) मातृभूमि की बलि-वेदी पर जब वीर आत्मायें अपना जीवन त्याग देती हैं उसी समय देश के उत्थान-काल का उदय होता है।

(३) यदि अपना और देश का भला चाहो, तो त्याग का मंत्र जपो—जीवन त्याग-मय बना लो। जो त्याग की महिमा समझता है, वह दूसरों के बंधन का त्याग करा सकता है। जो त्याग के महत्व को नहीं जानता, वह स्वयं दासता में जकड़ा हुआ है; दूसरों की मुक्ति वह क्या करा सकता है?

(४) हमारे जन्म-मरण का नग्न चित्र त्याग-मय है। जन्म-मरण का मध्यकाल ही सांसारिक जीवन का नाम है। यदि इस जीवन में जन्म-मरण के रहस्य को समझना है, तो उसी नग्न चित्र को सामने रखलो। त्याग का महत्व समझ लो, यही परमगति है—यही 'जीवन-मुक्ति' है।

(५) मनुष्य-मात्र को अपना भाई समझो। द्वेष का त्याग करो। यही सफलता की कुञ्जी है।

(६) विविध साम्प्रदायिक और धार्मिक झगड़ों को कभी महत्व की दृष्टि से मत देखो, न यह समझो कि साम्प्रदायिक तथा धार्मिक मतभेद हमारी अधोगति का मूल कारण है। वास्तव में जो इनका सत्य स्वरूप है, वह देखो। याद रक्खो कि प्रत्येक सम्प्रदाय की नींव उस महान् आत्मा की डाली हुई है, जिसके जीवन का मूल सिद्धांत केवल त्याग था। यदि हम यह समझ लें कि प्रत्येक संप्रदाय एक ही आधार पर अवलंबित है, तो सब संप्रदाय एक ही सूत्र में बंध जाते हैं। अनेकता मिट जाती है। एक्यता प्राप्त होजाती है। एक्यता ही तो उद्धार मंत्र है। एक्यता ही परमात्मा का साक्षात वहदानियत इसीका तो नाम है। परन्तु प्राप्ति का साधन है एकमात्र त्याग।

(७) बहुत से लोग हिंसा अथवा अ जाल में ऐसे फँसे हैं कि उन्हें अपने कर्म-प ज्ञान नहीं। सामान्य रूप से हम यही समझे हु किसी जीव को दुःख देना ही हिंसा है; परन् दुःख का अंत अथवा फल यदि सुखदायक हिंसा अपने गुण से प्रथक होजाती है—हिंसा कठोरता का परित्याग कर देती है। हिंसा अहिंस णत हो जाती है। इसलिए हिंसा केवल दुः नहीं कही जा सकती। वास्तव में हिंसा वह है हानि हो। हानि का प्रतिपादन नहीं कि सकता। इतना समझते हुए हमें स्पष्ट विदि है कि मनुष्यता का प्रतिपादन केवल अ किया जा सकता है। परन्तु अहिंसा क किस युक्ति से प्राप्त हो सकता है? इस सुन्दर उदाहरण महात्मा कबीर देते हैं:—

"कबिरा आप ठगाइए, और न ठगिये कोय।
आप ठगे सुख उपजे, और ठगे दुख हो

"और न ठगिये कोय" यही तो अहिं मूल-मन्त्र है। एक शब्द में इसीका नाम

(८) त्याग जीवन का अनमोल रत्न है शक्ति का केन्द्र है। स्वर्ग और मर्त्य में साम्राज्य है। जो त्याग करने से झिझकता है भौतिक सुख मिलता है, न स्वर्गीय आनन्द लिए त्याग को अपनाना चाहिए। त्याग हमारे का मन्त्र हो। इसीके द्वारा हम दासता औ द्रता से मुक्त हो सकते हैं।

—बाबूराम श्रीवा

साहित्य-संगीत-कला

टीबों से—

रे मित्र,

तुम्हारे काश्मीर-वर्णन के पत्र पढ़-पढ़ कर मुझे ऐसा नुभव होता है, मानों मैं भी तुम्हारे साथ प्रकृतिदेवी की स लीला-भूमि में विचरण कर रहा हूँ। जब तुम वहाँ के ता-वितानों से सुशोभित, कुसुमावलि से सुरभित, नय-भिराम वृक्ष-समूहों से आच्छादित, हिमगिरि-श्रेणी से ष्टित, हरित-वसना उपत्यका-भूमि का वर्णन लिखते हो, तो भूल जाता हूँ कि मैं ऐसे प्रदेश में हूँ, जहाँ हरियाली र्धन की गाँठ के पैसे के समान है! उस शोभामयी प्रकृति-वी की गोद में तुम्हें देख कर मेरे मन में कोई स्पर्द्धा नहीं ती; पर, हाँ, जैसी सरस नीरस गोद मुझे खेलने-कूदने मिली है, उसीमें अधिकाधिक आनन्द का उपभोग रने के लिए मैं उत्साहित अवश्य होता हूँ।

तुम तो हो उस माता की गोद में, जो सर्वांग-भूषिता, चिर-वसना है; पर मैं हूँ अलंकार-विहीना माता गोद में! माता की गोद किसे प्यारी नहीं होती? हे वह सजी-सजाई हो चाहे सीधी सादी। उस द की कोमलता, वात्सल्य की मृदुलता में भी क्या साज-गार की आवश्यकता है? यहाँ और वहाँ देवी वसुन्धरा वेश विन्यास में ही अन्तर है। वेश-विन्यास के अन्तर से रूप-लावण्य में भी तो अन्तर नहीं हो जाता? वह तो मान प्रकार से सौन्दर्य-सम्पन्न और चित्ताल्हादकारी होता। प्रकृति कहाँ सुन्दर नहीं? उसका अंग प्रत्यंग सुन्दर है। न्दर्य आनन्दमय है। सर्वत्र सौन्दर्य है, आनन्द है। उस न्दर्य को देखने वाली आँखें चाहिएँ, और चाहिए उस नन्द का अनुभव करने वाला मन। यह मरुदेश है, लोग से नीरस बताते हैं, सौन्दर्य-विहीन बताते हैं; पर मैं तो सीके सौन्दर्य पर मुग्ध हूँ। तुम इस बात पर ज़रूर हँसोगे, पर मुझे तो इसी उपहास में सुख मालूम होता है।

आज प्रातःकाल की बात है; एक ऊँचे से टीबे के सिर पर बैठ कर मैं सूर्योदय देख रहा था। नील उदधि के उस छोर से निकलते हुए भगवान् अंशुमाली को पर्वत के उच्च शिखर पर से झाँकते हुए सूर्य को भी कई बार देख चुका हूँ, आज मरु प्रदेश के उस सिरे से ऊपर उठते हुए सूरज को देख कर क्या मेरी हृत्तन्त्रियाँ नहीं झंकृत हुईं? उस सौन्दर्य-दर्शन में कितनी आत्म-विस्मृति थी? मेरे मनोगत भावों को वाणी ने इस प्रकार प्रकट किया—

मरुस्थली की शोभा को चमका कर रूप-रतन से।
नभ-दुकूल से आच्छादित, नित-विरहित हरित-वसन से॥
स्वर्ण-कान्ति सम शोभामय इस अतिशय कोमल तन को।
प्रकृतिसुन्दरी दिखा रही है अपने प्रेमीजन को॥
आते-जाते क्षितिजप्रान्त पर देख स्थान निर्जन सा।
कर पसार, आलिंगन-आतुर होकर विह्वल मन सा॥
चूम रहा है प्रकृति-रूप में मुग्ध भानु धरती को।
विस्मृत कर दूँ इस क्रीड़ा में ताप-तप्त जगती को॥

उस सौन्दर्य के अवलोकन से जिस आनन्द की प्राप्ति हुई, उसीको हृदय में समेट कर ये पंक्तियाँ लिख रहा हूँ। काश्मीर के कमनीय कलेवर में बैठ कर तुम इन्हें पढ़ोगे। तुम्हारी आँखों के आगे शुभ्र हिमाच्छादित शैल-शृंग होंगे, ये पंक्तियाँ तुम्हारी स्मृति को 'टीबों' की ओर आकृषित करेंगी। अच्छा संघर्ष रहेगा।

हाँ, एक बात सूझी है। प्रकृतिदेवी काश्मीर में सोलह शृंगार से विराजमान है। यहाँ मरुभूमि में उसे किस वेश में देखूँ? वैधव्य वेश में? हाँ, ठीक तो है. कितना सुन्दर मिलान है! वहाँ यदि उन्मादकारी सौन्दर्य है, तो यहाँ गंभीर शांतिमय तेजपूरित सौन्दर्य है। उस सौन्दर्य को देख कर मस्तक ऊपर उठता है, रूप-रस पान करने के लिए

आँखें टकटकी लगाये स्थिर हो जाती हैं, परन्तु यहाँ तो मस्तक नत हो जाता है—इस रूप के रजःकण को मस्तक पर धारण करने को जी चाहता है।

* * *

तुमने गत प्रतिपदा को जो पत्र लिखा था, उसमें वहाँ के शैल-शिखरों पर लोटती हुई चारु चन्द्रिका का वर्णन था। मैं भी उस दृश्य को कल्पना की झाड़ियों में से आते हुए प्रकाश की भाँति देख रहा था कि सहसा मेरे नैत्र-द्वय के सन्मुख चन्द्रिकासिक्त सिकता-समूह का दृश्य आ गया। मेरी कल्पना की आँखें चन्द्रिका-सिक्त हिमगिरि देख रही थीं और मेरी असली आँखें सिकता-समूह! इन दोनों की क्या तुलना करूँ? वहाँ चाँदी पर चाँदी बरस रही है, यहाँ सोने पर चाँदी!

वही पूर्ण चंद्र, वे ही क्षीणप्रभ तारे काश्मीर के कमनीय कलेवर का अवलोकन कर रहे थे; और वे ही मरुस्थली के इस दीन-हीन वेश का भी! पूर्णिमा को बालू के कोमल से टीबे पर बैठकर मैं घण्टों तक उस हँसते हुए चाँद को देखता रहा। चाँद की वह हँसी मुझे भी हँसा रही थी, मेरे रोम-रोम को मुकुलित कर रही थी। चाँदनी से आलोकित क्षितिज प्रान्त पर सिकता-समूह और नीलनभ को गाढ़ालिंगन में निमग्न देख चाँद हँसता हुआ सा मालूम होता था। चाँद की वह हँसी देखकर क्या मेरे मन-मानस में हास्योर्मियाँ उत्थित न होतीं? ओह! कितना आनन्द, कितनी शांति, कितना सौन्दर्य था! कौन उसे नापेगा-तौलेगा? मेरी 'कविता' अभी पूरी नहीं हुई थी, मैंने उसमें ये पंक्तियाँ और जोड़ दीं-

चारु चन्द्र की मुदित चन्द्रिका नभपथ में जब आती।
कञ्चनसम सिकता-समूह पर रजत-राशि बरसाती॥
सुन्दरतर रमणीय वेश में प्रकृतिरमा इठलाती।
मेरे मन को मुग्ध बना कर रूप-सुधा भर जाती॥
रव-विहीन यह परमशांति की सुखकर भूमि दिखाती।
आदि-नाद की तान प्रणव होकर मन में छिड़ जाती॥
कभी-कभी केका मयूर की बैठ वायु के रथ में।
आती है इस परमशांति-मय निर्जन-नीरव पथ में॥
सुन-सुन कर इस मधुर तान को नवजीवन भरता हूँ।
ईश! तुम्हारा रूप मनोहर मैं देखा करता हूँ॥

यह सब क्या था? इस सौन्दर्य में किस होता था? उस सौन्दर्य के रचयिता का। कला में अवलोकन करना चाहिए। प्रकृति किस कलाकार की कृति है? प्रकृति के मनोमुग्धकारी सौन्दर्य प्रकृति-निर्माता के चरणों में वन्दन क्यों न किया प्रकृति के रूप-रस-पान का प्यासा बनने का सुन्दर उद्देश है! ये भावनायें हृदय में जागृत रहें कितना सदुद्देश्य सम्पादन किया जा सकता है?

चाँदनी रात तो प्रकृति की न जाने कितनी थाती है! उसके बारे में तो तुम्हें क्या लिखूँ लिखूँ? तुमने भी तो लिखा है कि तुम के प्रांगण में बैठकर थोड़ी देरतक उस नयनाभिराम निहार रहे थे। कैसा सुन्दर सुयोग था? तुम चाँ रहे थे, मैं भी! दोनों की आँखें एक ही जगह तो क्या हम दोनों दूर थे?

* * *

यह सर्वंत्रव्यापी सौन्दर्य और आनन्द भी वेश बदल कर कैसा पाठ पढ़ा जाया करता है! से कितनी गरमी है, कितनी धूल बरस रही है! सुन्दरी का क्रोध है! इस क्रोध में उसे ताण्डव हुए देखे बिना भी मैं नहीं रह सका। तेज़ धूप खाँ-खाँ करके उड़ रही थी। ओह, कितना भयानक काश्मीर में भी सर्वत्र सौन्दर्य और आनन्द का करते-करते एक बार पहाड़ की चोटी से फिसलती को देखकर तुम घबराये थे! प्रकृति, ऐसा मालूम अपने सौन्दर्य प्रदर्शन के साथ ही साथ कभी-कभी रूप-रंग भी दिखा देती है। कोई सीखने वाला हो वह इससे कुछ सीख नहीं सकता? इन दिनों गरमी के इस ताण्डव नृत्य ने मेरे हृदय में उथल मचा दी है। प्रकृति के उस सौन्दर्य को देख कर जगती को विस्मृत कर देने के लिए आतुर हो रहा यह क्या? आज वही प्रकृति मुझे उसी ओर उसका कैसा अस्पष्ट आदेश मेरे कर्ण-कुहरों में रहा है? प्राकृतिक सौन्दर्य-दर्शन में पागल सा

उसके संबध में जो कुछ लिखा था, उसका अंत मैंने इस प्रकार किया है —

प्रखर सूर्य की किरणों से जब मरुस्थली तपती है।
दीन जनों के जले हृदय की वह्नि देख पड़ती है॥
मरु-समुद्र में बालू की नीरस लहरें उठती हैं।
दीन जनों के मन में भी दुःख की आँधी चलती है॥
मरुस्थली से दीन हृदय में करुणानिधि! तुम आओ।
हर्षनाद से पूरित करके सौख्य-सुधा सरसाओ॥

प्रकृति के सुन्दर स्वरूप में मैंने ईश का अवलोकन रने का प्रयत्न किया था, परन्तु ईश के निवास-स्थान का केत तो आज मिला ! इन टीबों से ही मैंने कितना सीखा, र न जाने अभी और कितना सीख सकता हूँ ? बस,आज तनाही ! पत्र देना ।

स्नेहाबद्ध—
श्रीगोपाल नेवटिया

गौरव-गीत

४

समुद्रगुप्त का गीत

"आर्यवीरो ! तुम्हारे पूर्वज अपूर्व प्रतिभाशाली तथा धात्री थे। वे ऐसे योग्य हुआ करते थे कि स्वयं ज्येष्ठ पुत्र होने पर भी, अपनी योग्यता के बल से, युवराज-पद प्राप्त र लेते थे। वे केवल कवि, विद्वान, विद्वान-प्रिय तथा कला-पुण ही न होते थे, बल्कि अनुपम वीर भी होते थे। वीरत्व-दर्शक क्षत सैकड़ों की संख्या में उनके शरीर पर शोभित हते थे। आर्य समुद्रगुप्त तुम्हारे ऐसे आदरणीय एवं अनु-रणीय पूर्वजों में से एक थे।

"वीरो ! उस वीर-शिरोमणि की याद करो, जिसने द्धाओं को योद्धापन भुला दिया था; जिसने माद्रकों का द नष्ट कर दिया था; जिसने देव-पुत्रों का देवत्व तथा ाही-शाहानुसाहियों का शकत्व धूल में मिला दिया था। ार्य-वंश-उजागरो ! तुम उस आर्य-वंश-प्रदीप को अपना मझ कर गर्व करो, जिसने कौशलपति महेन्द्र का महेन्द्रत्व, हाकान्ताराधिपति व्याघ्रराज का एकाधिपत्य तथा कोट्टूर रेश स्वामिदत्त का स्वामित्व धूल में मिला दिया था। वीरो! म इसे न भूलो कि मालव-सी भीषण जाति को आर्य समुद्र-गुप्त ने ही अधीन किया था; देवराष्ट्र महाराष्ट्र के कुबेर का मान-मर्दन करने वाला आर्य समुद्रगुप्त ही था; और सुदूर-वर्ती लंकाधिपति से सिर नवाने वाला भी आर्य समुद्र-गुप्त ही था।

"वीरो ! स्मरण करो इस बात को कि वह और किसी का पूर्वज नहीं था, तुम्हारा ही पूर्वज था, जिसके सन्मुख रुद्रदेव, मतिल, नागदत्त, नागदेव तथा नन्दी के मस्तक झुके थे। न भूलो इस बात को कि पिष्टपुरावलम्ब महेन्द्र, स्थलापुर-नरेश धनञ्जय तथा वेंगी का प्रबल वीर हस्तिवर्म्म झुके थे तो केवल एक वीर के सामने, और वह वीर था आर्य समुद्र-गुप्त। साथ ही सोचो किसने अर्जुनायन, आभीरादि जातियों को नतमस्तक किया था—किसने समतट, कामरूप, नैपालादि के नरेशों को गरुड़-ध्वज[*] का सेवक बनाया था—किसने और भी अनेकों अतुलित बलशालियों का छत्र भङ्ग किया था ? तुम्हारे नेत्रों के सामने आर्य समुद्रगुप्त का चित्र नाचने लगेगा।"

५

हर्षवर्धन का गीत

"वीरो ! प्राचीन समय में तुम्हारा एक पूर्वज दिग्विजय करने निकला था। उसके दिग्विजय की कथा चारणगण सैकड़ों वर्ष तक बड़े ओज और उत्साह से गाते रहे। उस वीर ने सुदूरवर्ती पूर्व में स्थित आसाम के प्रबल, प्रतापी, दुर्धर्ष नरेश को अपना सामन्त बनाया था। उस वीर ने सुदूरवर्ती पश्चिम में स्थित सौराष्ट्र के दिगदिगन्त प्रसिद्ध वल्लभी नरेश से अपनी श्रेष्ठता मनवायी थी। उस वीर ने दिग्विजयी समुद्रगुप्त के गुप्त-साम्राज्य का नाश किया था। उस वीर ने गुप्त-वंशी महाराज शशांक से गौड़ छीना था। उस वीर से प्रागज्योतिष के प्रसिद्ध नरेश भास्कर वर्म्मा ने मैत्री कर अपनेको सौभाग्यशाली समझा था। ऐसे वीर का नाम था—महाराजाधिराज हर्षवर्धन।

"वीरो ! प्राचीन समय में तुम्हारा एक पूर्वज प्रत्येक पांचवें वर्ष मौक्ष-महापरिषद् किया करता था। उस मौक्ष-महापरिषद की कथा चीनी परिव्राजक ने बड़े ओज और उत्साह से वर्णन की है। उस मौक्ष-महापरिषद में आसाम तथा नैपाल के महीपों से लेकर नर्मदा तथा सौराष्ट्र तक के

---

[*] गुप्त-सम्राटों का राजकीय चिह्न

नरेश आते थे। उस मौक्षमहापरिषद् में राज्य-प्रबन्ध की अत्यन्त ही आवश्यक वस्तुओं को छोड़ कर वह प्रत्येक वस्तु दान दे देता था। उस मौक्ष-महापरिषद् के अन्त में, वह अपनी भगिनी द्वारा दिया हुआ केवल एक वस्त्र पहने रहता था। उस मौक्ष-महापरिषद् का वर्णन वृद्ध लोग सैकड़ों वर्ष पीछे तक बड़े चाव से किया करते थे। ऐसे एक नहीं, कई मौक्षमहापरिषदों के करने वाले धर्मात्मा का नाम था—महाराजाधिराज हर्षवर्धन।

"वीरो! प्राचीन समय में तुम्हारा एक पूर्वज वर्षा को छोड़कर समस्त वर्ष अपने आसाम से सौराष्ट्र तक सुविस्तृत साम्राज्य में प्रजा के सुख-वर्धनार्थ परिभ्रमण किया करता था। उसके परिभ्रमण की कथायें सैकड़ों वर्ष तक प्रजा के हृदय में अभूतपूर्व आनन्द उत्पन्न करती रहीं। उस वीर की मैत्री सुविस्तृत चीन-महासाम्राज्य के अधिपति से थी। उस वीर के समय में भारतीयों और चीनियों में सुहृद-भाव स्थापित हुआ था। वह वीर था—प्रसिद्ध हर्ष-सम्वत् का संस्थापक महाराजाधिराज हर्षवर्धन।"

बालकृष्ण बलदुवा

पंखी-गीत

१

हे परम-गायक! तेरा गान कब सुनेंगे? तेरे पंख कब देखेंगे? तेरे साथ तालाब में कब स्नान करेंगे? रोज़ हमारे माँगते ही तू अपने प्रकाश का गोला आकाश में फेंक देता है। हे गायक! यदि हम कभी प्रकाश के गोले के लिए प्रार्थना करना भूल जायँ, तो हम पर दया करके बिना माँगे ही हमें प्रकाश भेज देना।

हम नहीं जानते कि तू कहाँ रहता है! तेरे पंख किस रंग के हैं, यह हमें कौन कहेगा? यह ऊपर दिखाई देने वाला मेघाच्छन्न आकाश ज़रूर तेरा अंडा है। अपने छोटे अंडे को तोड़कर हम बाहर निकले तब इस विशाल सृष्टि पर उड़ पाये। पर जब तेरा यह बड़ा अंग फूटेगा, तब कितना विशाल जगत्—और सच पूछो तो उड़ान हमें उड़ने को मिलेगी। फिर तो हमें गाना भी नहीं पड़ेगा। तब तो हम तेरा गान ही सुनते रहेंगे। फिर तो रात में भी अंधेरा नहीं रहेगा। आंखें मूँद लेने पर भी हमें प्रकाश दि उस दिव्य प्रकाश से ही हमारी प्यास बुझेगी। उ से ही हमारी भूख शांत होगी। उस दिव्य ज बिल्ली तो होगी ही नहीं। हमारे अंडे खा जाने भी नहीं होंगे। और सभी पक्षी बिना ज़रा भी किये इधर-उधर उड़ते रहेंगे। किसी को भूख भी नहीं इसलिए कोई पक्षी किसी दूसरे पक्षी को क खायगा। बड़े-बड़े बाज़ पक्षी भी गरुड़ की भांति पक्षियों को अपने पंखों पर बैठाकर घुमाते ले जायेंगे

हे परम प्रकाश! समय आ गया हो, तो अंडे को तोड़ दे। इस तंग दुनिया में अब नहीं सकता। भय और भूख से हम व्याकुल हो गये हैं। अंत कर। तेरी विशाल उड़ान हमें देखने दे।

२

हे परम-सुन्दर! तूने वह सप्तवर्णी पुल आ फैला दिया है। क्या उस रास्ते होकर हम तेरे पास हम अकेले-अकेले कैसे आवें? जुदे-जुदे रंग वाले हम होने के पहले ही तेरा वह पुल अदृश्य हो जाता है। वर्ण वाले भी इकट्ठे नहीं हो सकते, और न अनेक व ही इकट्ठे हो सकते हैं। बगुले कौवे को नहीं पहचान पन्ना की आभा वाला तोता दोनों को नहीं जानता यह सप्तवर्णी पुल तो साफ़-साफ़ यह कह देता है कि वर्ण एकत्र हों तभी इस रास्ते तेरे पास जा सकते हैं वे एकता-पूर्वक रहने लग जांय। पर, करें क्या? वर्ण ही हमारे बाधक हो रहे हैं। पर बिना वर्णों के कैसे जा सकता है? यह भी एक कठिनाई है। का अभाव तो अंधेरे में होता है और अं हमें ज़रा भी पसन्द नहीं। अंधेरा यानी अशांति। हुआ कि उसके बोझ से हमारे पंख दब जाते हैं। उ एक ओर रहा; पंख फड़फड़ाना भी कठिन हो जा इसलिए, हे सूक्ष्म-किरण! या तो हमें अंधेरे में दे उड़ने की शक्ति दे, या ऐसी बुद्धि दे जिससे सब दूसरे को पहचानें और तेरे सप्तवर्णी पुल की तरह अ हुए भी एक दूसरे से हिल-मिल कर रह सकें। बड़े हैं कि कुछ पक्षी ऐसे होते हैं, जो अंधेरे में भी देख स

लेकिन वे बड़े दुष्ट होते हैं—हमारे बच्चों को ही खा जाते हैं। हे किरण ! अंधेरा है ही ख़राब चीज़। हमारे लिए अंधेरा दूर कर। अंधेरे में घूमने वाले पक्षी हमें न बना। सुबह-शाम, ऐसा हमें याद है, हम तेरा नाम गाते रहेंगे। तेरे लिए तो आनन्द है ! आनन्द !! हाँ, आनन्द !!!

३

तेरे नाम असंख्य हैं। हम तो तुझे प्रकाश का गोला जानते हैं। हम तुझे किरण कहते हैं। तू ही गायन है, तू ही वर्ण है, तू ही अन्न है, तू ही प्राणी है, चित्र-विचित्र छायाओं का बनाने वाला भी तू ही है, भय के समय छिपे रहने के लिए हमारा आश्रय-स्थान भी तू ही है। तू ही धूप और तू ही वर्षा है। जागृति और निद्रा तेरे ही रूप हैं। हमारे हृदय को सुख देने वाली और हमारे पंखों को ऊपर रखने वाली वायु भी तू ही है। दाना चुगने के लिए हम चाहे कहीं किसी भी दिशा में उड़ गये हों, तो भी हमें अपने बच्चों का स्मरण रहता है। वह भी तू ही है। और दाना खाते-खाते उससे अरुचि हो जाती है, तब पत्तों के नीचे या कीचड़ में मिलने वाला कीड़ा भी तो तू ही है। गरमी के दिनों में छाती फुला-फुला कर तू ही हमारे साथ नहाता है। सुबह-शाम तू ही हमारे कण्ठ में बैठ कर तरह-तरह के आलाप लेता है। अंधेरा होते ही हमारी आँखों में तू ही सो जाता है। सुबह होने पर तू ही आँखें खोलता है। तुझे आनन्द है ! आनन्द है !! आनन्द !!!

४

अरे, यह क्या हुआ ? ऐ प्रकाश ! यह क्या हुआ ? रोज़ सुबह, अंधेरे पर, तू विजय पाता है। आज तो अंधेरा ही तुझे निगले जा रहा है ! बाज़ जब हमें पकड़ने को दौड़ते हैं, तब हम तेरा स्मरण करते हैं, और तू हमें बचाता है। आज तुझे बचाने के लिए कौन दौड़ सकता है ? अरे ! गया ! गया—प्रकाश का बिम्ब गया ! अब जगत् का और उड़ान का क्या होगा ? तब क्या अंधेरा ही सबसे अधिक बलशाली है ? हे काल-स्वरूप अंधकार ! आज भले ही तेरी बन आय, पर हम तुझे नमन नहीं करेंगे। हम तेरा गान नहीं गावेंगे। यदि तू तेज के गोले को खा जायगा, तो भी हम तो उसीका ध्यान करेंगे। तू बिल्ली है, तू साँप है। तू बाज़ों का बाज़ है। तुझे भय हो ! भय !

'हाय-हाय ! अब क्या होगा ? यह तो चारों ओर अंधेरा छा गया ! लेकिन यह अंधेरा तो विचित्र मालूम होता है। यह एकाएक आता है, लेकिन इसका बोझ नहीं लगता। इतना अंधेरा छा गया, लेकिन आँखें बन्द नहीं होतीं और पंख भी भारी नहीं मालूम होते।

भाइयो ! यह समय बैठे रहने का नहीं है। सभी उड़ो। जिधर सूझे उड़े जाओ। गले में जितना ज़ोर हो, उतना लगा कर, कोलाहल करो। इस अंधेरे को निकाल भगाना ही होगा। नहीं तो हमारे घोंसले तक पहुँचने के पहले ही वह हमारे अंडों और बच्चों को खा जायगा। न मालूम उसके कितनी चोंचें हैं ! एक ही क्षण में वह सबों के घोंसलों में पहुँच जाता है। उसे भय हो ! भय हो !! भय !!!

५

हारा ! अंधेरा गया ! तेज का गोला विजयी हुआ। चलो हम सब गावें। गाते-गाते घर जायँ। घर जाकर अंडों-बच्चों के समाचार जानें। काला स्याह अंधेरा न जाने कितना उनके शरीर पर चिपका होगा। एक बार नहा डालें, तो अच्छा हो। न मालूम अंधेरा कहाँ से आया था। रोज़ अँधेरा पूर्व से आता है, और सुबह पश्चिम की ओर दौड़ता चला जाता है। वह भारी होता है। हमें सुलाता है। लेकिन यह बिल्ली के जैसा अंधेरा, बिल्ली के समान ही, अचानक न जाने कहां से आ गया। और पता नहीं न जाने कहां एकाएक चला भी गया ! बड़े कहते हैं कि तेज के गोले ने अपने किरणों के कोड़ों से उसे धुन डाला। यदि ऐसा है तो उसके टुकड़े कहां हैं ? शायद वह हमारे अंडों के अंदर ही छिप गया है। यदि ऐसा न होता, तो हमें हमारे अंडों को इतने दिन सेना न पड़ता।

अब हम इसके लिए किस देवता की प्रार्थना करें कि यह अंधेरा तेज के गोले को फिर न सतावे और उसे खा न जाय ? इस अंधेरे को अजीर्ण हो, इसके पेट में कुछ भी न रहे, इसका अंडा फूट जाय ! प्रकाश तुझे आनन्द है ! आनन्द है !! आनन्द !!!

६

प्रकाश ! यदि तुझे प्यास लगती हो, तो उन बादलों को पी जाना। हमारे तालाब में अपने किरण मत डालना। देख, यह पानी कितना कम हो गया है !

नहीं, हम कृतघ्न नहीं हैं ! हम यह जानते हैं कि तेरी कठोरता में भी तेरी कृपा ही है। देख, पानी कम करके तूने हमें कितनी मछलियां और जीव-जन्तु दिये। सचमुच तू दयामय है। अन्नपूर्णा भी तेरा ही नाम है। खेतों का अनाज ख़तम हो जायगा, यह जानकर ही तूने इतनी मछलियां और जीव बनाये। और जब हमारी ज़रूरतें अधिक होती हैं तब तू पानी का भंडार खोल कर हमारे आगे बहुत सी अन्न-सम्पत्ति रख देता है। लेकिन, हे प्रकाश ! क्या तू एकाध तालाब में भी पानी भरा हुआ न रहने देगा ? हम उसे पक्षपात नहीं कहेंगे। हम सब आपस में समझ लेंगे और सब वर्ण के पक्षी एक ही सरोवर के पानी में नहायेंगे और क्रीड़ा करेंगे।

७

बारिश ! तुझे इतनी जल्दी पड़ी है ? हम शरीर में तैल की मालिश करें, तब तक भी तू ठहर नहीं सकती ? साँझ होने आई। हम भीग जायँगे, तो रात में हमारा क्या होगा ? हम हमारे अंडों को किस तरह सेवेंगे ? अपने बच्चों को गरमी कैसे देंगे ? हमारा घोंसला सब भीग जायगा। फिर आकाश के समान वह भी रोने लगेगा। हमारे घोंसलों को छोड़कर खेतों को ही पानी पिलाना तू नहीं जानता ? तेरी किरणें भी तो प्रकाश के गोले की किरणों के समान लम्बी-लम्बी होती हैं। लेकिन वे इतनी ठण्डी क्यों होती हैं ? तुम दोनों एक ही पेड़ पर तो रहते हो न ? सम्भव है कि वह तीखे फल ज़्यादा खाता हो, और तू खट्टे। हम मारे ठंड के धूज रहे हैं। और, ज़रा देख तो, यह पृथ्वी भी धूजती है। इसके शरीर पर हरे हरे रोंगटे खड़े हो गये हैं।

८

शाम को जब हम सो जाते हैं, तब आकाश में कैसे चमकीले फूल खिलते हैं ? ये लाल रंग से बहुत डरते हैं। इतने सारे ये फूल हैं, लेकिन ऐसा मालूम होता है कि जहाँ लाल रंग हो वहाँ जाने की इनकी हिम्मत नहीं हो कर उठते हैं तब तो आकाश में दूसरे ही तरह दिखाई देते हैं। लेकिन वे भी तभी तक चमकते हैं, कि लाल रंग नहीं खिलता। ये लाल रंग से इतने हैं ? तेज का गोला ऐसा नहीं डरता। वह तो एकदम लाल रंग पहन लेता है। वह पक्षी जिससे उसे एक ही रंग में रहना पड़े !

९

हे निर्भय ! तुझे इस तेज के गोले की इतनी रत है, जो हमेशा इसे अपने साथ-साथ लिये तेज के गोले की ज़रूरत तो हमें है। क्या तू इसे ले जाता है कि हम सो जाते हैं ? यदि यही हो, तुझे वचन देते हैं कि सारी रात जागते ही रहेंगे। एक बड़ा सा घोंसला भी बना देंगे, जिससे रात सर्दी न लगने पावे। रात को यदि नींद आही गई, सब उसपर पंख फैला कर सो जायँगे। इस काम ख़ास कर शुतुर्मुर्ग़ को नियुक्त करेंगे। फिर तो उसे बात की चिंता नहीं न रहेगी ?

हाँ, शायद पश्चिम के पक्षी तुझसे एक तेज माँगते होंगे। क्या तेरे पास एक ही तेज का एकाक्ष कौआ कहता था कि द्विजराज ने पहले दो गोले रक्खे थे। एक पश्चिम की ओर गया। दूसरा ओर से निकलता—लेकिन, वह ऐयाश निकला। वह शौक़ में पड़ गया और आलस्य के कारण रोज़ पहुँचने लगा। दिन-दिन वह तो सूखता ही जाता है वह सूख कर बिलकुल काँटा हो जाता है, तब द्विजराज अपने घर ले जाते हैं और उसे इतना पौष्टिक पाक दे जो १५ रोज़ तक काम दे सके। यदि वह नियमित दूसरे तेज के गोले की भाँति नियमित चलने लगे, तो समान ही चमकीला हो जाय। लेकिन यह आवारा राह चले तब न ? यह तो फिर क्षीण होता जाता है। द्विजराज का नहीं, वह तो आलसी चंद्र का ही है।

जो कुछ हो, हे निर्भय ! हम कब निर्भय हों गया—तेज का गोला लाल होकर उस पहाड़ी के गया। अब फ़ौरन घोंसले पर चलना चाहिए—

गये हैं। अंधेरा अभी आता है। उसका बोझ कौन उठावेगा? हे निर्भय! तू कुछ ऐसी बात नहीं कर सकता, जिससे रात में बारिश ही न हो? हमारे अंडे-बच्चों की बिल्ली जैसे अंधेरे से रक्षा करना।

१०

एक रोज़ एक विचित्र हाथ वाले मनुष्य से हमारी बातचीत हुई। वह हमें खेत से अनाज नहीं खाने देता था। मैंने कहा—"हम खायेंगे, खायेंगे और खायेंगे।" उसने मुझसे पूछा—"यह क्या तेरे बाप का खेत है?" इस प्रकार उसने क्यों पूछा होगा? मैंने उससे कहा—"तब दूसरे किसका है? क्या यह हमारे पिता का नहीं है? सारी ज़मीन तो उसीकी है। उसके पंख सब जगह पहुँच सकते हैं। उसीकी चोंच सबको दाना खिलाती है। और उसी की गरमी से तो जीते भी हैं।" वह बेवक़ूफ़ कहने लगा—"क़ानून के अनुसार यह खेत मेरा है।" न मालूम यह क़ानून क्या चीज़ है! हमें तो इस क़ानून की ख़बर तक नहीं! पिता का खेत उसका कैसे हो सकता है? मैंने उससे कहा—"देखो भाई, हम क़ानून-वानून कुछ नहीं समझते। हम तो दाना खायेंगे, खायेंगे, और फिर खायेंगे। तुझे भूख लगे तो तू भी खाना। मना कौन करता है?" लेकिन वह नालायक़ तो अनाज को इकट्ठा करके फिर ज़मीन में गाड़ देता है, और ऊपर से घास रख देता है। पिता तो घांस के ऊपर अनाज रखते हैं, ये औंधी खोपड़ी के लोग अनाज के ऊपर घास रख देते हैं! ज़मीन ही में से पैदा हुआ अनाज ये फिर ज़मीन ही में क्यों गाड़ देते हैं? वह कहने लगा—"इस अनाज को पैदा करने के लिए हमने मेहनत की है, इसलिए इसे हम लेजाते हैं।" तब मैंने एकदम पूछा—"ठीक! तो बताओ फिर तुम लोग मधुमक्खियों का इकट्ठा किया शहद क्यों लेजाते हो?" बस, यह सुनते ही वह मुँह फेर कर चलता बना। झेंपा हुआ तो मालूम हुआ, लेकिन जाते समय खेत में अनाज नहीं रहने दिया। बड़ी बेहया जात!

११

ये मनुष्य अपना इतना समय व्यर्थ क्यों खोते होंगे? रोज़ उठकर नई तरह के नये घोंसले बनाते हैं! अनाज खेतों में खाने के बजाय घर लेजाते हैं! पैदल चलने का लाभ छोड़कर मुर्दों की तरह अपने आपको दूसरों से खिचवाते हैं! सिर्जनहार ने भी इन्हें ऐसा दरिद्र बनाया कि इनके शरीर पर पूरे बाल भी नहीं हैं! नंगी चमड़ी वाले ये लोग कैसे कुरूप मालूम होते हैं? यदि ये सिर्जनहार की दिल से प्रार्थना करते, तो क्या इन्हें बाल नहीं मिलते? लेकिन, इन अहंकारी लोगों को प्रार्थना करने की सूझती ही नहीं। इन लोगों को एक प्रकार का रोग हो गया है। वृद्ध लोग कहते हैं कि हम लोगों की भाषा में इस रोग का नाम 'बुद्धिभ्रंश" है। मनुष्यों की भाषा में इसका नाम 'प्रगति' है। ब्रह्माणुनायक के पास से बाल माँगने के बदले ये सब कपास का या ऊन का घोंसला अपने शरीर पर धारण करके हमेशा उसे लिये-लिये घूमते रहते हैं। इनकी चमड़ी भद्दी होती है, इसलिए उस घोंसले के ऊपर ये रंग चढ़ाते हैं। लेकिन, ये तो रंग चढ़ाना भी नहीं जानते! हम लोग इन लोगों के बीच में फिरते हैं, फिर भी ये रंग की पसंदगी करना नहीं सीख लेते। एकदम कला-शून्य जाति—इन्हें प्रार्थना करने का समय मिले भी तो कैसे? 'प्रगति' के रोग से जब ये मुक्ति पावेंगे तभी सिर्जनहार को याद कर सकेंगे।

१२

कहा जाता है कि हम लोगों को बुद्धि नहीं है—क्योंकि हमें प्रगति का रोग नहीं हुआ। उस परम-विहंग ने हमें इतने सुंदर और कोमल बालों से सजाया है, इसमें हम और कौन सुधार करेंगे? तेज का गोला हमारे लिए तरह-तरह के फल पकाता है। उनके स्वाद में और कौनसा सुधार हो सकता है? अनाज को कूटकर खाने से क्या लाभ? और क्या किसी मनुष्य ने आजतक हमारे घोंसले जैसा सुंदर घर भी कभी बनाया है? ज्ञान-सिंधु ने उन्हें इतनी कम बुद्धि क्यों दी होगी? उनके बच्चे भी हमारे बच्चों के समान होशियार नहीं होते। महीनों तक तो वे अनाज और फल भी नहीं खा सकते। 'माँ-बाप' जैसा बोलने के पहले कितनी ही ऋतुयें गुज़र जाती हैं। और इन लोगों की भाषा भी तो कितनी ख़राब है। बिलकुल शहरी! तरह-तरह के उच्चारण करने पर भी ये एक दूसरे की बात समझ नहीं सकते। हे भगवान्, इस नीच योनी में से इनका उद्धार कब होगा?

'प्रगति' के रोग से ये कब मुक्त होंगे। लगातार आधे दिन भी ये तेरी प्रार्थना नहीं करते। इनका उद्धार कैसे होगा? हे दयाबुद्धे! इन्हें बुद्धि दे और तब तक इन्हें मूढ़ जानकर इनपर दया कर!

१३

क्या मनुष्यों ने इस सनातन के साथ दुश्मनी कर रक्खी है? हम लोग इनके बीच बैठकर इस आशय से प्रार्थना करते हैं कि इन्हें भी उस सनातन का स्मरण हो। लेकिन, ये दुष्ट लोग हमें या तो मार डालते हैं या पिंजड़े में बंद कर देते हैं। हम यदि मन में ही प्रर्थना करते हैं, तो वह इन्हें अच्छा नहीं लगता! हम लोगों से प्रार्थना करवाते हैं और जब हम प्रार्थना करते हैं, तो हमारे पास देखने को बैठ जाते हैं। इतना अविवेक और निर्लज्जता इनमें कहाँ से आई? क्या अनाज को मारकर खाते हैं इससे?

१४

एक मनुष्य कहता था कि एकादशी के रोज़ ये अपना सब काम-धंधा छोड़ कर अपना ज़्यादातर समय प्रार्थना में व्यतीत करते हैं। ये लोग जब हर पंद्रहवें दिन इस प्रकार प्रार्थना करते हैं (जिसे ये उपवास कहते हैं) तब ये भले कहे जाते हैं, और रोज़ प्रार्थना करने वाले हमें मनुष्य कहते हैं कि इन्हें बुद्धि नहीं होती। कुछ लोग हर सातवें रोज़ इकट्ठे होकर प्रार्थना करते हैं। और वह भी कितनी? हम लोग किसी तालाब पर चक्कर लगा आवें बस इतने ही में इनकी प्रार्थना ख़तम हो जाती है, और फिर सब एक-दूसरे के वरों को देखते चले जाते हैं। हम लोग सुबह-शाम वृक्षों पर बैठकर सामुदायिक प्रार्थना करते हैं। ऐसा करने में इन्हें इतना आलस्य क्यों? मालूम होता है कि इन्हें अभी प्रार्थना का स्वाद ही नहीं लगा। ये लोग प्रार्थना करते समय कैसा मुँह करते हैं? किसीको तकलीफ़ न हो, इसलिए हम सबों की प्रार्थना के मालिक ने इस विशाल विश्व का रूप धारण किया है। वही हमारा तेज का गोला बना गया है। वही हमारी खुराक, वही नदी और समुद्र और वही समुद्र की मछलियाँ बनकर हमारे पेट में भी जाता है। पेड़ और पत्तियाँ, आकाश और तारे सब कुछ वही बना है। तो भी मनुष्य उसके नाम से मकान बाँधक उस परम-सुंदर को अपने जैसा ही कुरूप बना क मज़ाक़ करते हैं। उसे खाने के लिए पूछकर खु वृक्ष के फूल तोड़ उस मूर्ति के ऊपर रखते हैं। पर के फूल उस गंधराज को अच्छे नहीं लगते! हो सकता है ये लोग उसके विश्व में बिगाड़ ही क बनिस्बत इसके लिए उसका आनन्द गावें, बच्चे वे तो जो मुँह में आवे वही माँगते रहते हैं। इन्हें कौ वे? हम लोग इतना आनन्द गाते हैं, फिर भी इन्हें कोई ज्ञान नहीं होता। सचमुच ये लोग दयापात्र हैं

दत्तात्रेय बालकृष्ण काले

टूटी वीणा

संध्या के धुँधले प्रकाश में तेरी रस-मय मीठी
थिरक-थिरक कर विरह-तप्त हृदयों में करती जीव
लुप्त हो गया कैसे सहसा वीणे! तेरा वह मृदु
अब मेरे सूने मानस में कौन करेगा शांति
मुझ निर्धन की सूनी झोली का थी तू ही संचि
मेरे इस मृतप्राय कलेवर का थी तू ही बस
जगतीतल में जब मुझको यश-वैभव ने ठुकरा
तब तू ही ने मुझ दुखिया को आश्रय दे अपना
वीणे! तेरे उपकारों से दबा हुआ है मेरा
सब कुछ तेरा ही है वीणे! यह तन, मन, जीवन,
बतला तेरे बिना विश्व में मैं कैसे जी
बस तेरे चरणों में सादर जीवन कुसुम चढ़ा

व्रजकिशोर शर्मा 'पंक

---

† गुजराती 'मधपूड़ो' से।

विश्व-दर्शन

इटली

आजकल के सत्ताधिकारियों—डिक्टेटरों—में सबसे अधिक प्रभावशाली इटली का प्रधानमन्त्री बेनितो मुसोलिनी है। उसके शासन-काल में इटली में आश्चर्यजनक परिवर्तन हुए हैं। उसने इटली के व्यापार-व्यवसाय आदि सभी तरफ़ विशेष ध्यान दिया है। आज उसीके सतत परिश्रम के कारण इटली संसार की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में विशेष महत्वशाली हो गया है। आज पाठकों के सामने इटली की आन्तरिक व अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति पर कुछ विचार रक्खेंगे।

इटली में नवीन शासन-पद्धति

मुसोलिनी ने किस तरह शनैःशनैः करके शासन के सब अधिकार अपने हाथ में कर लिए हैं, यह पाठकों से छिपा नहीं। अब कुछ समय हुआ, उसने इटली का नया शासन-विधान बनाने की घोषणा की है। इसके अनुसार इटली की प्रतिनिधि सभा के उम्मेदवार इटली की उत्पादक गण-संस्थाओं (Guilds) की ओर से चुने जावेंगे। इनमें भी सब गण मत न दे सकेंगे; जो सच्चे देशभक्त होंगे और जिनकी देशभक्ति की परीक्षा मुसोलिनी की सरकार करेगी, वही मत दे सकेंगे। इस प्रतिनिधि सभा को भी पूरे अधिकार प्राप्त न होंगे। सरकार की नीति की कड़ी आलोचना करने का अधिकार इस सभा को नहीं रहेगा। यह केवल सम्मति दिया करेगी।

प्रजातन्त्र की मूल संस्थायें म्यूनिसिपैलिटियां भी मुसोलिनी ने रहने नहीं दीं। म्यूनिसिपैलिटियां तोड़ दी गई हैं। उनका काम प्रिफ़ैक्ट नामक अधिकारी करेगा। वह अपनी सलाह के लिए स्वयं एक समिति को नियुक्त करेगा। इस समिति के आधे सदस्य मज़दूर और आधे पूँजीपति होंगे। प्रिफ़ैक्ट का कथन सर्वमान्य रहेगा। इस नवीन शासन-विधान के कारण वस्तुतः सम्पूर्ण शक्ति मुसोलिनी के पास आ गई है। उसने प्रजातन्त्र की लहर को नष्ट कर फ़ासिज़्म (दण्डनीति) की स्थापना कर ही तो डाली।

इटली की आर्थिक प्रगति

जब मुसोलिनी ने इटली का शासनसूत्र अपने हाथ में लिया, तब इटली की आर्थिक अवस्था बहुत ख़राब थी। उस समय के बेसमझ साम्यवादी उच्छृंखल हो कर व्यापार व व्यवसाय को नष्ट कर रहे थे। यदि वे रूसी साम्यवादियों की तरह केवल पूंजीवाद को नष्ट कर देश के व्यापार-व्यवसाय को सुव्यवस्थित रूप से उन्नत करते तो बहुत लाभ की संभावना थी। मुसोलिनी ने इस आर्थिक अराजकता को कठोर उपायों से दूर कर देश के व्यापार व व्यवसाय को बहुत बढ़ाया। इटली के सिक्के लिरा की स्थिति बहुत गिर रही थी, उसे मुसोलिनी ने अब बिलकुल ठीक कर लिया है। अमेरिका से बहुतसा ऋण ले कर उसने इटली की पूँजी में वृद्धि की है। मज़दूरों और पूँजीपतियों को वश में करके उसने अभी कुछ समय हुआ, एक घोषणा द्वारा दोनों के संघों को समान अधिकार दे दिये हैं। न मज़दूर ही अब हड़ताल कर सकते हैं और न पूँजीपति ही उनपर कोई अत्याचार कर सकते हैं। इन प्रयत्नों का परिणाम यह हुआ कि इटली की साख फिर बढ़ गई है। सबसे बड़ी बात जो उसने इटली की साख को उन्नत करने के लिए की है, वह यह है कि उसने

इटली के सिक्के को सोने के आधार (Cold Standard) पर प्रचलित किया है। १९ लिरा एक डालर के बराबर होंगे। इससे इटली की कृषि, व्यापार और व्यवसाय पर आश्चर्यजनक प्रभाव पड़ेगा।

अब हम उसकी अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर कुछ प्रकाश डालेंगे।

इटली की मांगें

मुसोलिनी इस समय इटली की शक्ति और समृद्धि बढ़ाने में लगा हुआ है। वह जानता है कि भविष्य में होने वाले युद्धों की तैयारी इटली को अभी से शुरू कर देनी चाहिए, नहीं तो इटली नष्ट हो जायगा। इसलिए वह युद्ध की सब तैयारियों के अतिरिक्त इटली की जनसंख्या बढ़ाने के लिए भी इटलीवासियों को विशेष रूप से उत्साहित कर रहा है। उसकी एक योजना के अनुसार २० साल में वहाँ दो करोड़ मनुष्य बढ़ जावेंगे। इधर वह जनसंख्या के बढ़ाने के उद्योग में लगा हुआ है, तो उधर वह इटली की आबादी बढ़ने के कारण राष्ट्र-संघ से उपनिवेश माँगने की कोशिश कर रहा है। इटली के पत्र आन्दोलन कर रहे हैं कि यदि इटली की इस समस्या को राष्ट्र-संघ ने जल्दी न सुलझाया, तो युद्ध होने की बहुत सम्भावना है। राष्ट्रसंघ को चाहिए कि वह इटली के रक्षित राज्य (mandates) बढ़ा दे। इसके अतिरिक्त इटली एड्रियाटिक समुद्र पर अपना अधिकार करना चाहता है, क्योंकि उसे फ्रांस और यूगोस्लेविया की सन्धि के कारण भय उत्पन्न हो गया है। इटली के पत्रों का कहना है कि वे देश, जो इटली की इन दोनों माँगों का विरोध करते हैं, युद्ध के लिए प्रयत्न कर रहे हैं।

इटली और टर्की

इटली इतने पर ही सन्तुष्ट नहीं, वह टर्की के स्मर्ना पर भी अधिकार करना चाहता है। स्मर्ना पश्चिमीय टर्की में ईजियन समुद्र के तट पर एक महत्वपूर्ण नगर है। इसपर अधिकार कर वह सरलता से सीरिया की तरफ़ बढ़ सकता है। यह कोशिश आज की नहीं, बहुत पहले से हो रही है। १९१५ ई० की एक सन्धि के अनुसार यह निश्चय हुआ था कि यदि एशियायी टर्की का विभाजन हो, तो स्मर्ना के आसपास का प्रदेश इटली को मिलना चाहिए। १९१ इसी आशय की सन्धि स्वीकार की गई। इस कोयला, लोहा, जस्ता, शीशा और चांदी खूब मि लेकिन इस सन्धि में रूस की स्वीकृति आवश्यक थी लिए इटली को सफलता न हुई। १९१९ में उसने माइनर के एडालिया स्थान पर अपनी सेनायें भेज प्रयत्न किया। फ्रांस भी अवसर पाकर एशियामा सिलिशिया प्रान्त को दबा बैठा था। इधर टर्की के जन्मदाता कमालपाशा ने राष्ट्रीय सेनाओं का संगठन दोनों को एशियामाइनर से निकाल दिया और की सन्धि करने पर बाधित किया, फिर भी कई प्र परन्तु कमालपाशा की तलवार ने किसी को टर्की में दिया। अन्त में १९२३ई० में, लूसान की सन्धि में पूरे माइनर पर टर्की का अधिकार मान लिया गया। माइनर से तो इटली निकल गया, परन्तु उससे ईजियन समुद्र के कई द्वीप इटली के हाथ में हैं, जो और अडालिया से अधिक दूर नहीं है। इन्हीं टापुओं पर इटली ने सुदृढ़ सैनिक दुर्ग बना रक्खे हैं। स्पष्ट उद्देश्य यह है कि वह कभी टर्की को असावधा कर स्मर्ना पर अधिकार कर ले। इधर बहुत पुराने ग्रीस और इटली में मित्रता हो रही है, जिसका का एशिया माइनर का उपजाऊ भूभाग ही है। परन्तु टर्की भी निश्चिन्त नहीं है। वह यूरोप की चालों समझता है। इसलिए जल्दी आशा नहीं कि इटली ग्रीस अपने मनोरथों में सफल हो जावें।

इटली और फ्रांस

इटली का सबसे अधिक विषम सम्बन्ध फ्रांस है। इस विषम सम्बन्ध के बढ़ाने में फ्रांस के प्र इटालियनों की असन्तोषजनक स्थिति, लिबिया की सीमा सम्बन्धी झगड़ा, टैंजियर का सवाल, मध्य और नीति सम्बन्धी तथा भूमध्यसागर सम्बन्धी सब प्र मुख्य रूप से कारण बन गये हैं। फ्रांस और इटली की सीमायें भूमध्यसागर से लगती हैं। दोनों का इस समुद्र के द्वारा अधिकतर होता है। व्यापारिक

छोड़कर भूमध्य सागर दोनों के लिए सैनिक दृष्टि से भी बहुत महत्व का है। इसलिए दोनों इसपर अपना-अपना अधिकार चाहते हैं। कुछ समय पूर्व इटली ने लिबिया पर अधिकार कर मोगरबा की विद्रोही जातियों को परास्त कर दिया था। फ्रांस के आवाज़ उठाने पर भी राष्ट्र-संघ ने इटली का विरोध नहीं किया। अफ्रिका महाद्वीप में मोरक्को के समीप टैंजियर प्रदेश पर फ्रांस का अधिकार मुसोलिनी को बिलकुल इष्ट नहीं है। परन्तु फ्रांस उसपर अधिकार करने के प्रयत्न में लगा हुआ है। उसे भय है कि यदि मोरक्को से टैंजियर न मिले, तो वहाँ फ्रांस का कोई प्रभाव न रहेगा। स्पेन को भी यही भय है। टैंजियर का प्रश्न इंग्लैण्ड से भी कुछ सम्बन्ध रखता है। वह फ्रांस के पक्ष में है।

फ्रांस में रहने वाले इटालियन प्रवासियों का प्रश्न भी विशेष महत्वशाली होता जा रहा है। इस समय फ्रांस में कुल इटालियन ८,०७,६५० है। स्वेच्छाचारी मुसोलिनी इन्हें भी इटली का नागरिक बनाये रखना चाहता है। इसके लिए उसने अभी कुछ समय पूर्व एक घोषणा प्रकाशित की है, जिसका विस्तृत परिचय हम आगे देंगे। फ्रांस में बहुत ऐसे इटालियन भी गये हुए हैं, जिन्हें इटली की सरकार राजनैतिक कारणों से निकाला था। फ्रांस के ट्यूनिस नगर तो फ्रांसीसियों की अपेक्षा इटालियन ३०,००० अधिक है। परन्तु यदि उदासीनता सम्बन्धी नियमों के कारण उदासीन हुए लोगों की संख्या निकाल भी दी जाय, तो भी यह इटालियनों की संख्या १८,००० से कम नहीं होती। फ्रांस चाहता है कि वहाँ रहने वाले लोग फ्रांस के नियमों के अनुसार वहीं के नागरिक बन जावें। प्रत्येक राष्ट्र की यह दृढ़ अभिलाषा होती है कि विदेशों के लोग उसमें आकर बसें और वहीं के नागरिक बन जायँ। इससे उनकी जनसंख्या बढ़ जाती है और उनको युद्ध आदि में उनसे पूरी सहायता लेने का अधिकार होता है। इटली प्रवासी इटालियों को फ्रांस का नागरिक नहीं बनाना चाहता, इसीलिए यह सारा झगड़ा उत्पन्न होगया है। मुसोलिनी की आन्तरिक अभिलाषा यह है कि इटालियन दूसरे देशों में बड़ी संख्या में जाकर भी इटली के ही रहें और उन देशों में इटली का राज्य या प्रभाव बढ़ाने में वे साधन बन सकें। इस उद्देश को देखकर फ्रांस, पोलैंड आदि अन्य देशवासियों को अपने यहां बसने के लिए उत्साहित कर रहा है, ताकि इटालियनों की संख्या अपेक्षाकृत ठीक हो जाय। फ्रांस ने इटालियनों के साथ अच्छा व्यवहार करने का वचन भी दिया है।

इटली और बलकान राष्ट्र

सबसे अधिक महत्वपूर्ण प्रश्न जो इटली और फ्रांस में वैमनस्य का कारण है, वह है बलकान राष्ट्रों के सम्बन्ध की नीति ।जुगोस्लेविया, ग्रीस, रूमानिया, बलगेरिया, अलबानिया और टर्की आदि बलकान राष्ट्र कहे जाते हैं। मध्य और पूर्वीय यूरोप की स्थिति वस्तुतः भयावह है। यहां कभी भी कोई छोटी सी चिंगारी उड़कर यूरोप में अशान्ति और युद्ध उत्पन्न कर सकती है। रूमानिया की आन्तरिक क्रांति, पोलैंड और लिथुआनिया का निरन्तर रहने वाला पारस्परिक झगड़ा, मैसिडोनिया के मामले, बलकान राष्ट्रों के पारस्परिक संबन्ध, ग्रीस के सैलोनिका बन्दर पर जुगोस्लेविया आदि कई राष्ट्रों की दृष्टि, आदि बहुत सी ऐसी बातें हैं, जिनसे यूरोप का यह भाग बहुत अशांतिपूर्ण है। फ्रांस और इटली ही नहीं, रूस और जर्मनी भी सदा इन राष्ट्रों की स्थिति से फ़ायदा उठाने की ताक में हैं। वस्तुतः यह स्थिति सभी के लिए ख़तरनाक है। कुछ समय पूर्व फ्रांस ने जुगोस्लेविया से सन्धि की थी, जिसका वर्णन पाठक 'त्यागभूमि' के पिछले अंकों में पढ़ चुके हैं। फ्रांस चाहता है कि इटली बलकान राष्ट्रों में अपना प्रभाव व प्रभुत्व स्थापित न करे। उसका कहना है कि बलकान बलकानवासियों के लिए है। उसपर और किसी का अधिकार नहीं। फ्रांस की यह उदार नीति किसी रहस्य से ख़ाली नहीं। 'बलकान बलकानवासियों के लिए' की नीति का अभिप्राय यह है कि जुगोस्लेविया का, जिसकी बलकान राष्ट्रों में एक विशेष स्थिति है, प्राधान्य बलकान राष्ट्रों में हो जायगा। जुगोस्लेविया फ्रांस का मित्र है, इसलिए फ्रांस को उन राष्ट्रों में विशेषाधिकार मिलने कठिन न होंगे। जुगोस्लेविया के पत्र भी फ्रांस की नीति का समर्थन कर रहे हैं, परन्तु बलगेरिया के पत्र इस नीति का विरोध कर रहे हैं। उनका कहना है कि जुगोस्लेविया बार-बार इस नीति का समर्थन इसीलिए करता है कि जुगो-

स्लेविया चाहता है कि उसका प्राधान्य कालासागर से एड्रियाटिक और ईजियन समुद्र तक हो जाय। इससे छोटे-छोटे बलकान राष्ट्र बहुत कमज़ोर हो जायंगे।

इटली बलकान राष्ट्रों में फ़्रांस के इस हस्तक्षेप से बहुत अप्रसन्न है। उसका कहना है कि जब फ़्रांस के बलकान राष्ट्रों में कोई विशेष स्वार्थ नहीं, तो क्यों फ़्रांस इस तरह का हस्तक्षेप करता है। इटली के तो वहाँ विशेष स्वार्थ हैं। ९ नवम्बर १९२१ की पेरिस की घोषणा में अलबानिया में इटली के विशेष स्वार्थ स्वीकृत किये गये थे। फ़्रांस को यह याद रखना चाहिए कि यदि उसका मित्र जुगोस्लेविया है, तो उसके चारों ओर के हंगरी, अलबानिया, बलगेरिया, ग्रीस रुमानिया में से कई प्रदेश इटली के भी मित्र हैं।

इन सब कारणों से फ़्रांस और इटली का पारस्परिक सम्बन्ध बिगड़ता जा रहा है। यद्यपि कुछ मास पूर्व दोनों राष्ट्रों में मित्रता की संधि स्थापित हुई थी, परन्तु उसका विशेष फल न निकलेगा, यह भी निश्चित है।

इटली और ग्रीस

बलकान राष्ट्रों में ग्रीस भी एक विशेष महत्व रखता है। उसका सैलोनिकी बन्दरगाह अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से विशेष महत्व का है। इसपर अनेक राष्ट्र आंख लगाये हुए हैं, इसलिए वह जुगोस्लेविया, ज़ैकोस्लोवेकिया, पोलैण्ड, बलगेरिया, रुमानिया और हंगरी को बुला कर समझौता करने को तैयार है, परन्तु राष्ट्रों के भिन्न-भिन्न स्वार्थ रखने के कारण सन्धि का एक सूत्र बनाना कठिन है।

कुछ समय हुआ कि मुसोलिनी और ग्रीस के परराष्ट्र-सचिव में एक समझौता हुआ था कि इटली जुगोस्लेविया को सैलोनिकी के नीचे आने से रोकने में ग्रीस को सहायता दे और ग्रीस बलकान में जुगोस्लेविया के प्राधान्य को नष्ट करने में इटली को सहायता दे। यह दोनों राष्ट्र टर्की में भी स्वार्थों की एकता के कारण परस्पर मिल रहे हैं, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है! इस तरह भूमध्यसागर में इन दोनों राष्ट्रों का एक नवीन संगठन तैयार हो गया है. जिसका उद्देश्य फ़्रांस, जुगोस्लेविया तथा अन्य कुछ राष्ट्रों से बने हुए संगठन का बल तोड़ना है।

इटली और इंग्लैण्ड

जो भी देश आज विशेष उन्नति करना चाहता
इंग्लैण्ड का अवश्य विरोध करना पड़ता है। इ
विरोध इंग्लैण्ड से बढ़ रहा है। अरब में इटली और
के वैमनस्य पर हम विस्तार से किसी पिछले अंक
चुके हैं। उसको दुहराने की आवश्यकता नहीं।
सागर के विषय में तो मुसोलिनी कई बार स्पष्ट रू
चुका है कि इटली उसमें हज़ारों किलोमीटरों लम्बे
स्नान करता है, वह उसीका स्नानागार है। इस
अपना अधिकार करने के लिए उसकी इंग्लैण्ड से
भिड़न्त होगी।

इटालियन प्रवासी

अभी कुछ समय पूर्व मुसोलिनी ने प्रवासी इटा
के नाम एक घोषणा प्रकाशित की है जिसके द्वारा उन्हें
ये आठ शिक्षाएँ दी हैं। १—प्रवासी इटालियनों को
देश के, जिसमें वे अब रहते हों नियमों का आदर
चाहिए। २—उन्हें उस देश की आन्तरिक राज
भाग नहीं लेना चाहिए। ३—उन्हें अलग-अलग इ
बस्तियां न बसा कर फ़ासिज़्म के सिद्धान्तों के
इकट्ठा रहने का प्रयत्न करना चाहिए। ४—उन्हें श
और प्रतिष्ठित बन कर रहना चाहिए। ५—उन्हें इ
राजदूतों का अवश्य आदर करना चाहिए और
सलाह तथा आज्ञा अवश्य माननी चाहिए। ६—
इटालियनपन (Italianism) की वर्तमान और भवि
रक्षा करनी चाहिए। ७—उन्हें आपत्तिग्रस्त इटालि
अवश्य सहायता देनी चाहिए। ८—उन्हें संगठित
नियन्त्रित होकर रहना चाहिए।

उसकी इस घोषणा पर यूरोप और अमेरिका के
बहुत चर्चा चली है। इटली के पत्र तो इसकी बहुत
कर रहे हैं। अमेरिका के पत्र इसका विरोध कर र
'न्यूयार्क वर्ल्ड' ने इस घोषणा के विरोध में लिखा कि
अमेरिकावासी इटालियन यदि अमेरिका की राज
कोई भाग न ले और इटली के राजदूतों तथा प्रति
की आज्ञायें माने तो इसका स्पष्ट अर्थ यही है कि व

रिका का नागरिक नहीं बन सकता। अमेरिका में रह कर भी इटली के शासन-नियन्त्रण में रहने का अर्थ राज्य में दूसरा राज्य स्थापित करने (Setting up a Kingdom within a Kingdom) के सिवाय और कोई नहीं।' लिटरेरी डाइजेस्ट' ने इसे संसार-विजय का फ़ासिस्ट उपक्रम कहा है। इटली के बाहर भी फ़ासिस्ट संगठन का यह क्रम प्रवासी इटालियनों को रोम के शासन के नीचे लायगा। अन्य देश भी मुसोलिनी की इस घोषणा के विरुद्ध हैं, जिनमें इंग्लैण्ड और फ्रांस मुख्य हैं। यदि यह घोषणा क्रिया में आगई, तो इसका बुरा परिणाम हुए बिना न रहेगा।

इटली और अन्य देश

उपर्युक्त देशों को छोड़ कर अन्य देशों से इटली का संबंध विशेष महत्व का नहीं। जर्मनी से उसका सम्बन्ध अच्छा नहीं है। किन्हीं छोटी-मोटी बातों पर विवाद चला जाता है। रूस के बोलशेविज़्म को नष्ट करने में वह इंग्लैण्ड का साथी है। अफ़गानिस्तान के अमीर से उसने अभी दोस्ती की है। नहीं कहा जा सकता कि इसका क्या परिणाम होगा। अफ़्रीका में वह अपने लिए उपनिवेश बढ़ाने की कोशिश में है। भारतवर्ष से वह अपना व्यापार बढ़ाने के प्रयत्न में लगा हुआ है।

लैटिन संघ

मुसोलिनी इटली को अधिक शक्तिसम्पन्न करने के लिए नयी-नयी योजनायें बनाता रहता है। दो-तीन मास पूर्व उसने एक सभा में भाषण देते हुए लैटिन संघ (Latin Bloc) बनाने का विचार लोगों के सामने रक्खा। उसने कहा कि एंग्लोसैक्सन संघ के मुक़ाबले में लैटिन संघ बनाने की ज़रूरत है। एंग्लो सैक्सन सभ्यता लैटिन सभ्यता की अपेक्षा उच्चतर नहीं है। प्रोटेस्टेन्ट मनोवृत्ति लैटिन मनोवृत्ति से कमडदार है। यूरोप के लैटिन प्रदेश और लैटिन अमेरिका के प्रदेश इस संघ में सम्मिलित हो सकते हैं।

आजकल कोई राष्ट्र बिना किसी दूसरे राष्ट्र की सहायता के अकेले उन्नत नहीं हो सकता। इसलिए उन्नति का अभिलाषी प्रत्येक राष्ट्र अपने साथ एक समूह को आगे बढ़ना चाहता है।

संयुक्तराष्ट्र इसी लिए बृहत् अमेरिकन संघ बनाने की तैयारी में है। अफ़ग़ानिस्तान भी इसीलिए मुस्लिम राष्ट्रों का संघ बनाने की तैयारी में है। मुसोलिनी भी लैटिन संघ बनाना चाहता है। अभी नहीं कहा जा सकता कि इस संघ का रूप क्या होगा, इसमें कौन राष्ट्र सम्मिलित होंगे और इसका परिणाम क्या होगा।

इटली की सैनिक तय्यारियां

आजकल अन्य सब प्रकार के उपाय करते हुए भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में विशेष स्थान पाने के लिए सैनिक शक्ति की वृद्धि सबसे अधिक आवश्यक उपाय है। मुसोलिनी इसके लिए बहुत पहले से कोशिश कर रहा है। आजकल इटली की सेना में २,९०,००० पेशेवर सिपाही और ३,२६,००० नागरिक सिपाही हैं। सामुद्रिक जहाज़ी ताक़त को बढ़ाने का भी वह विशेष प्रयत्न कर रहा है। इस समय उसके पास १५०० हवाई जहाज़ हैं, जो नयी योजना के अनुसार शीघ्र ही ४५०० हो जायंगे। मुसोलिनी ने कहा है कि इटली इतने हवाई जहाज़ बनाएगा, जिनके पंखों से सूर्य छिप जावेगा। साधारण जनता में भी वह सैनिक भावना लाने का विशेष रूप से प्रयत्न कर रहा है।

मुसोलिनी की महत्वाकांक्षायें तथा कारनामे आजकल संसार के सभी पत्रों की आलोचना के विषय हो रहे हैं। बहुत से पत्र उसे बीसवीं सदी का नैपोलियन कह रहे हैं। प्रसिद्ध पत्र "स्टार" ने उसके विषय में लिखा है—"शक्ति के मद से मतवाले नैपोलियन ने भी सबसे अधिक पागलपन के अपने जीवन में इतनी स्वेच्छनारिता का स्वप्न नहीं लिया, जिसका मुसोलिनी आज ले रहा है।" बहुत से राजनीतिज्ञ मुसोलिनी के उन्नति-शिखर पर चढ़कर एकदम गिरने की संभावना भी कर रहे हैं। बहुत संभव है, उनका यह विचार ठीक हो; परन्तु हमें तो अभी इसमें कुछ देरी मालूम होती है।

कृष्ण

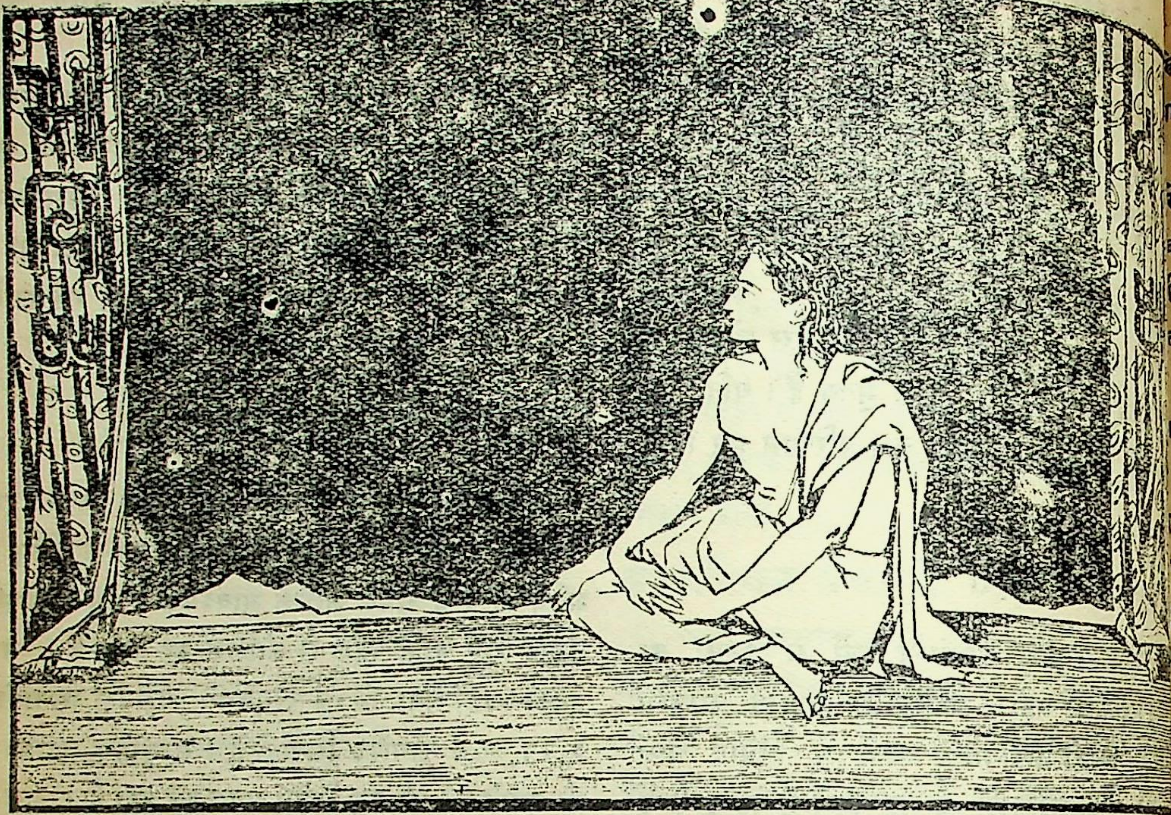

स्वतंत्रता कैसे ?

पञ्जाब प्रान्तिक राजनैतिक सम्मेलन के सभापति-पद से पं० जवाहरलाल नेहरू ने जो भाषण किया, वह बड़ा सारगर्भित और महत्वपूर्ण है । भारत की वर्तमान स्थिति में उसकी आज़ादी के लिए भारतवासी क्या करें, इसपर बोलते हुए उन्होंने जो कुछ कहा, उसके मुख्य-मुख्य अंश नीचे दिये जाते हैं—

संसार में उथल-पुथल मची हुई है । विचित्र शक्तियाँ काम कर रही हैं । कल के देवता आज विस्मृति के कूप में पड़े हुए हैं । नवीन विचारों ने मनुष्यों के हृदयों में संग्राम मचा रक्खा है । प्राचीन संस्कारों से दबा हुआ और परिवर्तन से भयभीत भारत भी इस नई रोशनी से चकित हो उठा है । वह भी आज़ादी के लिए तड़प रहा है । परन्तु, वह आज़ादी कैसी होगी ? स्वराज्य-भोगी भारत का क्या स्वरूप होगा ?

इसे समझने के लिए पहले अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर विचार कर लेना ज़रूरी है । संसार में औद्योगिक
चुकी है । उत्पत्ति और सम्पत्ति बहुत बढ़ गई है,
थोड़े से देशों और मुट्ठी भर लोगों के हाथ में है
कच्चे माल की आवश्यकता और पक्के माल की खपत
स्पर्द्धा हो कर साम्राज्यों की उत्पत्ति हुई और आये
युद्धों से संसार की अतुल धन-जन-हानि होने
साम्राज्यवादियों का स्थान पूंजीवाद ले रहा है।
ग़रीब देशों का रक्तशोषण करने में पूंजीवाद
से कम नहीं है । साथ ही राष्ट्रों की संकुचित सीमायें
सब व्यापार और व्यवहार अब अन्तर्राष्ट्रीय रूप
चुका है । सब देशों को एक दूसरे पर निर्भर रहना
है । कोई देश एकान्तवासी नहीं रह सकता ।
जो लोग वैदिक सभ्यता अथवा इसलामी तहज़ीब
स्थापना के स्वप्न देखते हैं, वे इन विश्वव्यापी नवीन
से अपरिचित हैं । वे यह भूल जाते हैं कि सारी
इस नवीन युग में नहीं चल सकतीं। हमारे बहुत से
रीति-रिवाज़ और सामाजिक क़ानून, हमारी

यों के प्रति हमारा दृष्टिकोण और हमारी बहुत सी धार्मिक ारणायें इस नये ज़माने के लिए सर्वथा निकम्मी हो गई । यदि हम मूर्खों की भाँति इनसे चिपटे रहने की चेष्टा रेंगे, तो हमारी उन्नति में व्यर्थ विलम्ब होगा। यदि हम र्की और रूस की भाँति विवेक का परिचय देकर विश्वव्यापी क्रियों का स्वागत करते हुए अपना व्यवहार उनके अनु- ल बना लेंगे, तो हमारी प्रगति शीघ्रगति से होगी।

इस दृष्टि से विचार करने पर हमें न केवल ब्रिटिश म्राज्यवाद से ही प्रत्युत पूंजीवाद से भी छुटकारा पाना क्योंकि ये दोनों एक दूसरे के सहायक हैं। अतः हमें ऐसे सन की स्थापना करनी पड़ेगी, जिसमें सम्पत्ति की उत्पत्ति र उसके विभाजन के साधनों पर व्यक्तियों का नहीं प्रत्युत् ृ का स्वामित्व हो, जिसमें जन्म और जाति के आधार पर स विशेषाधिकार रद्द कर दिये जायँ और जिसमें मुफ़्त- रों के लिए कोई स्थान न हो! ऐसा करने ही से असंख्य -कङ्कालों को जीवन की उपयोगी सामग्री पर्याप्त परिमाण मिल सकेगी। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि दरिद्रता कारण उत्पत्ति की कमी नहीं है, प्रत्युत यह है कि मुट्ठी लोग अच्छी-अच्छी चीज़ें आवश्यकता से अधिक रख हैं और बहुसंख्यक लोग नङ्गे, भूखे, रोगी और मूर्ख जाते हैं।

यह अवस्था भारत के लिए ब्रिटिश साम्राज्य से अलग ने पर ही आ सकती है। ब्रिटिश साम्राज्य और भारत के तों में पग-पग पर विरोध है। राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय और र्थिक, किसी भी दृष्टि से यह भक्षक और भक्ष्य का सम्बन्ध कने योग्य नहीं। हां, स्वतन्त्र होने पर भारत अन्य देशों भाँति इङ्गलैण्ड से भी मैत्री और सहयोग स्थापित कर कता है। और जब हम पूर्ण स्वाधीनता चाहते हैं, तो हम पने देश की रक्षा के बहाने ब्रिटेन की सेना को कैसे हमारी ती पर मूङ्ग दलने दे सकते हैं? मैं यह नहीं मानता कि ब्रिटिश ना के न रहने पर हम बाहर के आक्रमणों से अपनी रक्षा हीं कर सकेंगे। आज एक देश पर दूसरे देश का आक्रमण ना बड़ी टेढ़ी खीर है। संसार की राजनैतिक स्थिति, ड़ौसी राष्ट्रों से हमारे सम्बन्ध और स्वयं भारत की सैनिक क्ति हमें ऐसे आक्रमण से निश्चिंत करने के लिए काफ़ी है। वैसे भी, जिस राष्ट्र ने हमपर आज तक इतना जुल्म किया और हमारे उद्धार का मार्ग रोक रक्खा है उसीसे सहायता चाहना कितनी लज्जा और कायरता की बात है! अतः अंग्रेज़ी सेना को भारत से तुरन्त हटवा देना हमारा पहला काम है।

परन्तु सबसे अधिक आवश्यक बात यह है कि हमारा स्वराज्य जनता का—सर्वसाधारण का—ग़रीबों का राज्य हो। अब तक शिक्षितवर्ग ने ही स्वराज्य-संग्राम में प्रमुख भाग लिया है; सर्वसाधारण की आवश्यकताओं का—उनके जीवन मरण का—जब-जब सवाल उठता है, उसे ताक़ में रख दिया गया है। परन्तु यदि कल ही अंग्रेज़ों के स्थान पर सभी ऊँचे पदों पर हिन्दुस्थानी बिठा दिये जायँ, तो उन करोड़ों ग़रीबों को—मज़दूरों और किसानों को, दूकानदारों और कारीगरों को क्या लाभ होगा? उनका वास्तविक हित तो साम्यवादी लोकसत्तात्मक शासन-प्रणाली के स्थापित होने से ही होगा। शिक्षितवर्ग के एकान्त स्वार्थ की दृष्टि से भी यह आवश्यक है कि स्वराज्य की लड़ाई में वे ग़रीबों को साथ रक्खें, क्योंकि इनकी सहायता के बिना अकेला शिक्षितवर्ग सरकार पर कोई दबाव नहीं डाल सकता। ग़रीब इस लड़ाई में तभी शामिल होंगे, जब वे अच्छी तरह समझ लें कि स्वराज्य से उनकी भलाई होगी। यह विश्वास दिलाने के लिए हमें राष्ट्रीय कार्य-क्रम में वे बातें रखनी चाहिएँ, जिनसे ग़रीबों के भावी हितों की रक्षा हो सके और उनके वर्तमान कष्ट कम हो सकें।

यह एक क्रांतिकारी दृष्टिकोण अवश्य है। परन्तु इसके बिना काम नहीं चल सकता। जो लोग थोड़े से सुधारों से सन्तुष्ट हो जाते हैं, वे एक प्रकार से वर्तमान अत्याचारी प्रणाली की आयु बढ़ाते हैं। क्रांतिकारी दृष्टिकोण रखने वाला साम्प्रदायिक झगड़ों से नहीं घबराता। वह समझता है कि साम्प्रदायिक कलह राक्षसी शरीर भले ही धारण कर ले, पर उसके पैर मिट्टी के होते हैं। लोगों के अन्धविश्वास से लाभ उठा कर शिक्षितवर्ग अपने ऐश आराम के लिए इस कलह को खड़ा करते हैं। अन्यथा एक हाइकोर्ट जज के मुसलमान, हिन्दू या ईसाई होने से उस जाति के सामान्य लोगों को क्या लाभ? और एक मुसलमान जागीरदार और उसकी

मुसलमान प्रजा में सादृश्य ही क्या हो सकता है ? इनके तो हित स्वभावतः ही विरोधी हैं। अतः हमें आर्थिक दृष्टि से राष्ट्रीय प्रश्न को देखना चाहिए। तब यह साम्प्रदायिक भेद-भाव का भूत अपने आप भाग जायगा। उस दशा में संघर्ष यदि होगा, तो ग़रीब और अमीर का होगा। हां, जातियों में यदि कोई वास्तविक विभिन्नता है, और उसकी रक्षा करनी आवश्यक है, तो वह है उन जातियों की भाषा एवं संस्कृति की। इसके लिए प्रत्येक जाति को स्वतन्त्रता होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त प्रश्न केवल प्रतिनिधित्व का रह जाता है। मेरी सम्मति में न तो पृथक् निर्वाचन से अल्प-संख्यक जातियों का भला होगा और न सम्मिलित निर्वाचन में उनके प्रतिनिधि सुरक्षित कर देने से। इन दोनों ही व्यवस्थाओं में कुछ बड़े लोग ग़रीबों के मतों से लाभ उठाते रहेंगे। अतः निर्वाचन-संघ आर्थिक आधार पर बनाये जाने चाहिएँ।

इस समय हमारे देश में एक तृतीयांश कपड़ा तो देशी मिलों में बनता है दूसरा तृतीयांश खादी है और तीसरा विलायत से आता है। अँग्रेज़ी कपड़े का बहिष्कार तभी हो सकता है, जब हम सभी विदेशी वस्त्रों को वर्जित क़रार दे दें; अन्यथा अमेरिका और जापान के नाम से अँग्रेज़ी कपड़ा आता रहेगा। इस प्रकार सफल वस्त्र बहिष्कार करके हम इंग्लैण्ड को झुका सकते हैं। इसके लिए खादी और देशी मिलों का सहयोग आवश्यक है। यदि यह सहयोग हो जाय, तो देश के लिए पर्याप्त कपड़ा सरलता से देश में ही उत्पन्न हो सकता है। इसके लिए हमें विदेशी वस्त्र मंगानेवाले व्यापारियों की उपेक्षा करनी पड़ेगी और मिल मालिकों को देश और ग़रीब मज़दूरों के हितों का ध्यान रख कर कपड़ा सस्ता और मज़दूरी काफ़ी देनी होगी। परन्तु यदि मिल वाले इस प्रकार सहयोग न करें, तो देश की शक्ति खादी पर ही केंद्रित होगी।

आगामी युद्ध के लिए भी हमें तैयार हो जाना चाहिए। युद्ध तो होगा ही। उसके लिए पहली बात तो यह है कि मिलों के कपड़े की महँगाई और विदेशी कपड़े के अभाव के कष्टों से बचने के लिए हमें खादी ग्रहण कर लेना चाहिए। दूसरी बात यह है कि हमें ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि अँग्रेज़ लोग हमारे धन-जन का उपयोग न कर सकें। हमें उस युद्ध में माल लेने अथवा सहयोग देने से स कार कर देना चाहिए। ऐसा कर देने में आपत्ति परन्तु यदि हमने साहस-पूर्वक उनका सामना और थोड़े से दान से राज़ी न हुए, तो हमारी वि है; और हमारा देश, जो चिरकाल से गुलामी की जकड़ा हुआ है, अवश्य स्वाधीन हो जायगा।

शिक्षा-प्रणाली

गुरुकुल-कांगड़ी के वार्षिकोत्सव पर हु साधु टी० एल० वास्वानी ने दीक्षान्त भाषण उसमें उन्होंने कहा—

क्या सचमुच अविद्या ने ही वर्तमान भारत सिक दासता को पैदा नहीं किया ? राजनैतिक स्व और हृदय की अन्दरूनी आज़ादी का बाह्य प्रका और इस सच्चाई को अब अनुभव किया जा रहा राष्ट्र के निर्माण के लिए शिक्षा आवश्यक है। भी जाति के निर्माण में शिक्षा का सबसे बड़ा अ है। इसके उद्देश्यों तथा आदर्शों से जाति की दबाना नहीं चाहिए, बल्कि प्रकट करना चाहिए।

इस देश में प्रचलित वर्तमान शिक्षा-पद्धति विक है। यह एक नक़ल—बड़ी भद्दी नक़ल है; नपुंसकता है। भारत की कमज़ोरी के ज़माने में शिक्षा-प्रणाली को उसपर ज़बर्दस्ती लाद दिया नैपोलियन के समय फ्रांस में इस शिक्षा-प्रणाली हुआ था। इंगलैण्ड ने इसे भारत में भी प्रचलि चाहा। इसका उद्देश्य लोगों की शक्तियों का विका नहीं, बल्कि विदेशी सरकार को मज़बूत करना था। मुख्यतया यह नौकरशाही (Bureaucratic इस शिक्षा का उद्देश्य ब्रिटिश शासन की सहायता सस्ते क्लर्क और छोटे-छोटे अधिकारियों को तैयार क यही वर्तमान पद्धति की बड़ी त्रुटि है। लोगों की इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। यह लोगों को मिला नहीं, बल्कि अलग कर देती है। श्रीकृष्ण महाराज में ठीक कहा है—"स्मृति भ्रंशाद् बुद्धिनाशो, बुद्धि प्रणश्यति।"

वर्तमान शिक्षा में साहित्य, इतिहास, अर्थशास्त्र और राजनीति के क्षेत्रों में पाश्चात्यों के अनुभव को, भारतीय अनुभवों के साथ सम्बद्ध किये बिना, भारतीय विद्यार्थियों पर ज़बर्दस्ती लाद दिया जाता है। यह भुला दिया जाता है कि जीवन के अन्य क्षेत्रों की भाँति शिक्षा में भी अनुभव ही का नियम लागू है। मैं भारतीय परम्परागत विश्वासों Traditions के शिक्षा सम्बन्धी महत्व का मानने वाला हूँ। वर्तमान शिक्षा-प्रणाली विद्यार्थियों को उनसे अलग करती है। इस उन्नत प्राचीन जाति के वीरों और मुनियों की स्मृति जागृत करके विद्यार्थी का अपने उज्ज्वल भूत के साथ सम्बन्ध अवश्य होना चाहिए।

अंग्रेज़ी या हिन्दी

हमारी शिक्षा का माध्यम क्या हो ? इस पर बोलते हुए साधु वास्वानी ने कहा—

आज कल सरकारी शिक्षणालयों में शिक्षा का माध्यम अंग्रेज़ी को बनाया गया है, परन्तु यह बात मनोविज्ञान-शास्त्र के सिद्धान्तों के सर्वथा प्रतिकूल है। जहाँ तक मैं समझता हूँ, शिक्षा का मूल सिद्धान्त यह है कि "ज्ञात से अज्ञात की तरफ़ बढ़ना"। मेरा यह हर्गिज़ मतलब नहीं कि अंग्रेज़ी-भाषा सर्वथा निकम्मी और अनुपयोगी है। जिस अंग्रेज़ी-भाषा को मिल्टन, शेक्सपीयर, शैली, बर्नाड शा, बेकन और बर्क आदि विद्वानों ने अपनाया है वह अवश्य ही सद्विचारों और अनुभवों का ख़ज़ाना है। अंग्रेज़ी हमें शेष सारे संसार से सम्बद्ध करती है। अंग्रेज़ी-भाषा द्वारा ही हम आधुनिक विज्ञान, राजनीति, समाजशास्त्र तथा पाश्चात्य सभ्यता का परिचय प्राप्त करते हैं। किन्तु अंग्रेज़ी को शिक्षा का माध्यम बनाये बिना भी हम यह लाभ प्राप्त कर सकते हैं। अंग्रेज़ी पढ़ो, किन्तु उसे एक गौण भाषा की तरह पढ़ो। हमारी मातृभाषा हिन्दी है, उसका स्थान अंग्रेज़ी नहीं ले सकती।........जर्मनी ने जब पोलैण्ड को जीत लिया तो वहाँ के लोगों में से राष्ट्रीयता के भावों को समूल नष्ट करने के लिए उन्होंने यही सर्वोत्तम उपाय समझा कि पोलैण्ड के स्कूलों में शिक्षा का माध्यम जर्मन-भाषा हो। तदनुसार सब स्कूलों में पोलैण्ड की भाषा को हटाकर जर्मन-भाषा प्रचलित कर दी गई। स्कूलों के उन नन्हें-नन्हें बालकों को जर्मन-मास्टरों ने बहुत ही निर्दयता से पीटा जो कि पोलैण्ड की भाषा में प्रार्थना के भजन गाते थे। भाषा का मनुष्यों के विचारों और जीवनों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। अगर एक विदेशी भाषा को शिक्षा का माध्यम बना दिया जाय तो विद्यार्थियों में से स्वतन्त्र विचार करने की शक्ति अवश्य नष्ट हो जायगी। वे विदेशियों के विचारों और रीति-रिवाज़ों की नक़ल करने लगेंगे और उनमें से मानसिक और आत्मिक विकास का सर्वथा लोप हो जायगा। स्वाधीन आयर्लैण्ड के मन्त्रि-मण्डल ने बिना कुछ विचारे ही यों ही गैलिक भाषा को आयर्लैंड की मातृ-भाषा नहीं बनाया था, न ही "नवीन यहूदी युवक सङ्घ" के नेताओं ने, बिना किसी मसलहत के, हिब्रू-भाषा को अपने प्राथमिक तथा उच्च श्रेणी के स्कूलों में भी शिक्षा का माध्यम बनाया था। परन्तु वे लोग वस्तुतः समझते थे कि उनकी सभ्यता और राष्ट्रीयता की उन्नति उनकी ही मातृ-भाषा द्वारा हो सकती है।

राष्ट्रीयता

तंग ? हाँ, यह अन्तर्राष्ट्रीयता से अधिक तंग है, परन्तु यह उस राजनीतिज्ञ के स्वार्थ से अधिक विस्तृत है, जो अपने या अपने रिश्तेदारों के लिए नौकरियाँ चाहता है। वह मनुष्य जिसे अपने देश की अपेक्षा अपनी अधिक ममता है, कभी अन्तर्राष्ट्रीय नहीं हो सकता। जब कोई मनुष्य मुझसे यह कहता है कि मैं "मानव जाति' की सेवा करना चाहता हूँ, तो मैं आम तौर से यह उत्तर दे दिया करती हूँ कि 'यह एक महान् आकांक्षा है, आप अपने घर के लिए क्या कर रहे हैं, अपने शहर के लिए क्या कर रहे हैं और अपने प्रांत के लिए क्या कर रहे हैं ?" और यदि उसका उत्तर यह होता है कि 'कुछ नहीं' तो मैं समझ लेती हूँ कि वह देश-सेवा का उम्मेदवार भी नहीं है, चतुर कार्यकर्त्ता या निर्माणकर्त्ता तो दूर रहा। छोटे से बाग़ में हम यह सीखते हैं कि बड़ा खेत कैसे बोया जाता है। ❀

(डॉ०) एनी बेसेण्ट

❀'न्यूइण्डिया' के एक लेख से

विविध

हमारी आवश्यकता—ज़मीन

आज कल भारतवर्ष के मनुष्य यदि मजूरी करके मर भी जायँ, तो भी वे महीने में औसतन तीन रुपये से ज़्यादा शायद ही कमा सकें। परन्तु अमेरिका, कनाड़ा, आस्ट्रेलिया तथा इंग्लैंड में रहने वाले मजूर रोज़ के दो-तीन रुपये आसानी से कमा लेते हैं !

काठियावाड़ी तथा मारवाड़ी, संयुक्त-प्रान्त के भैया लोग और पंजाब के सिख, महाराष्ट्र के घाटी तथा तामिल-नाड़ के स्वामी लोग पेट भरने के लिए अपना 'देश' छोड़ भारत के दूसरे बड़े शहरों में अथवा समुद्र पार जाकर रहने लगे; किन्तु इतना होने पर भी उनकी भूख शांत नहीं होती—उनका पेट नहीं भरता ! इसका कारण यही है कि मनुष्य की सब से बड़ी ज़रूरत—ज़मीन—ही गोरे लोगों ने हज़म कर ली है। इस सम्बन्ध के कुछ अंक देने से यह विषय अधिक स्पष्ट हो जायगा।

सारी दुनियाँ का—पाँचों खंडों का—विस्तार ५ करोड़ ३० लाख वर्ग मील है। इस सवा पाँच करोड़ वर्ग मील की पृथ्वी पर कुल १९० करोड़ के लगभग मनुष्य रहते हैं। ये १९० करोड़ मनुष्य चार मुख्य वर्णों में विभक्त किये जा सकते हैं।

७० करोड़ पीत वर्ण के लोग
६० ,, गोरे लोग
४० ,, गेहुँए रंग के लोग
२७ ,, काले लोग

ऊपर के आँकड़ों से हम देख सकते हैं कि दुनिया की आबादी का तृतीयांश तो पीत वर्ण प्रजा का ही है, किन्तु उसकी सत्ता दुनिया के दसवें भाग में भी नहीं। दुनिया के ५ करोड़ ३० लाख वर्ग मील के विस्तार में से ४ करोड़ ७१ लाख वर्ग मील पर गोरी प्रजा का झंडा फहराता है। यदि इसे दूसरी तरह से कहा जाय तो यह कहें कि के $\frac{९}{१०}$ भाग पर गोरी प्रजा ने ज़बर्दस्ती अधिकार है। गोरे देशों के दर्वाज़े पीत तथा गेहुँए वर्ण की प्रजा बन्द हैं। लेकिन यहाँ हम गोरे देशों की बात छोड़ ब्रिटिश राज्य का ही विचार करेंगे।

अँग्रेज़ी राज्य में सूर्य अस्त नहीं होता। पृथ्वी चौथाई भाग में अँग्रेज़ों की तूती सुनाई देती है। और आबादी भी दुनिया की आबादी के एक-चौथाई के अर्थात् ४६ करोड़ है। लेकिन इन ४६ करोड़ में भारतवर्ष में रहने वाले ३२ करोड़ तथा द० आफ्रि उपनिवेशों में रहने वाले लगभग ६ करोड़ काले कम करें, तो अँग्रेज़ मात्र ६॥ करोड़ के लगभग रह और उसमें से भी यदि ब्रिटिश राज्य में रहने वाले ७० लाख अँग्रेज़ कम करें तो ५ करोड़ और ९० लगभग अँग्रेज़ रहे, जो अँग्रेज़ी राज्य में रहते हैं। ब्रिटेन में रहने वाले ४ करोड़ ७० लाख अँग्रेज़ों कम कर दें तो मालूम हो जायगा कि कितने अँग्रेज़ के और दूसरे भागों पर राज्य करते हैं। केवल सवा अँग्रेज़ मिल कर दुनिया का एक चौथाई राज्य बैठे हैं।

फ़िजी, मारिशस तथा न्यूगायना जैसे गरम अँग्रेज़ लोग रहना पसंद नहीं करते। वे पहले दूसरे के लोगों को वहाँ गिरमिट के तौर पर आबाद कर और देश जब रोग-मुक्त, साफ़ तथा उपजाऊ हो जाता वहाँ बसाये गये उन लोगों को दूर करने का प्रयत्न कर दिया जाता है।

ब्रिटिश राज्य के सोने के टुकड़े के समान देशों—केनाड़ा, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैंड तथा न्यूफ़ाउंड दूसरी जाति के लोगों अर्थात् भारतीयों को जाने की

मुमानियत कर दी गई है। पूर्वोक्त देशों का कुल विस्तार लगभग ८० लाख वर्ग मील है। और १७० लाख अंग्रेज़ रहते हैं। यानी सारी दुनिया के सातवें भाग में सारी दुनिया की आबादी का हिस्सा रहता है।

अकेला आष्ट्रेलिया खंड ही इतना विशाल और उपजाऊ है कि उसमें २० करोड़ मनुष्य तो आसानी से रह सकते हैं। वहाँ आज केवल ६० लाख मनुष्य—लंदन शहर से भी कम—रहते हैं। और वहां के सिडनी जैसे दो-चार शहरों की आबादी न गिनें तो वहां प्रति वर्ग मील एक आदमी या ांच वर्ग मील के घेरे में एक कुटुंब रहता है।

आष्ट्रेलिया से ८०० मील की दूरी पर जावा नाम का क टापू है। उसका क्षेत्रफल ५० हज़ार वर्ग मील है। उस ोटे से टापू में प्रति वर्ग मील ७०० मनुष्य रहते हैं। जावा से छोटे से टापू की आबादी ३॥ करोड़ है। आष्ट्रेलिया खंड इसकी आबादी ६ गुनी ज़्यादा है।

पीतवर्ण में प्रजा की आबादी प्रति वर्ग मील में १३० हिसाब से हैं।

संक्षेप में गेहुँए वर्ण के तथा पीतवर्ण के लोग ज़मीन के भाव से भूखों मरते हैं और तिलमिलाते हैं, दूसरी ओर क मुट्ठी भर गोरे लोग साम्राज्य के मद में मत्त होकर गोरे ोगों के सिवा किसी को उन उपजाऊ प्रदेशों में घुसने तक हीं देते।

गोरे लोग अपने मुल्क में स्वतंत्र तथा सुखी हैं। इसीलिए वे आष्ट्रेलिया तथा कनाडा जैसे उपजाऊ प्रदेशों में जाने लिए राज़ी नहीं होते। इसीसे ये उपजाऊ मुल्क अभी क आबाद नहीं हो पाये हैं। कुत्ता जैसे खुद तो घास ाता ही नहीं है और गाय या बैल को भी नहीं खाने देता है—ोंकता रहता है, उसी प्रकार संस्कृति का उत्तेजक नाम दे र गोरे लोग और खासकर अंग्रेज़ लोग इससे मनुष्य-जाति को वंचित रख रहे हैं।

आज पीली प्रजा ज़रा ज़ोर में आने लगी है। काली जा में भी राष्ट्रीय-जागृति के कोंपल फूटने लगे हैं। और ब गेहुँए-वर्ण की प्रजा अर्थात् हम भारतीयों में वास्तविक ीवन आवेगा—जब हम स्वतंत्र हो जावेंगे—तब हम सब जा एकत्र होकर, सदियों से हम पर जो ज़ुल्म, अन्याय तथा अत्याचार किया गया है, उसका हिसाब लिए बिना उन्हें नहीं छोड़ेंगे।

छगनलाल जोशी

विज्ञापन-बाज़ी

इस दिनों भारत में विज्ञापन-बाज़ी खूब धड़ाके से हो रही है। कोई बिरला ही दैनिक, साप्ताहिक व मासिक पत्र ऐसा न होगा, जिसके दो-चार पृष्ठ विज्ञापनों से न भरे हों। कई-कई पत्रों की तो आधी पृष्ठ-संख्या विज्ञापनों से भरी रहती है।

विज्ञापन का प्रधान उद्देश्य जनता के कानों तक किसी वस्तु-विशेष की सूचना पहुँचाना है। जो कार्य प्रत्येक व्यक्ति के पास प्रथक्-प्रथक् पत्र भेजने से नहीं निकल सकता वही कार्य किसी समाचार पत्र में छोटासा विज्ञापन देने से, हो जाता है।

पाश्चात्य देशों के समाचारपत्रों में विज्ञापन अधिकतर नये आविष्कारों के होते हैं, या खेल-तमाशे और नीलाम के, तथा, बड़ी-बड़ी संस्थायें जो वर्ष के अन्त में अपना माल बेच देना चाहती हैं उनके मूल्य घटने की सूचना के। विज्ञापन वही मनुष्य या संस्था देती है, जिसको अपने माल की श्रेष्ठता का विश्वास होता है। विज्ञापन द्वारा वे अपने ग्राहकों के मन में यह जमा देते हैं कि हमारे यहाँ से माल सर्वोत्तम भेजा जायगा और उसमें आपको लाभ ही होगा। यदि भूल से कोई माल बुरा पहुँचे, या ग्राहक की रुचि के अनुसार न हो, तो वे उसे सहर्ष लौटा लेते हैं और प्रायः डाक-व्यय इत्यादि का भार स्वयं उठाते हैं। इससे ग्राहक को उनके यहाँ से माल मँगाने में कदापि कोई सङ्कोच नहीं होता और वहाँ बेखटके अपनी आवश्यकता की वस्तुओं की मांग उनको भेजता रहता है। वहां अश्लील या गन्दे विज्ञापन देखने में नहीं आते।

इसके विपरीत भारत के समाचारपत्रों के विज्ञापनों पर दृष्टि डालिए। सरकारी, अँग्रेज़ी तथा कुछ उच्च कोटि की अन्य संस्थाओं के विज्ञापनों को छोड़कर अधिकतर विज्ञापन धोखे के होते हैं। इन विज्ञापनों की अधिकांश संख्या "धातु स्तम्भन गोलियाँ" 'कोकशास्त्र" तथा ऐसे ही अन्य गन्दे विज्ञापनों की होती है। कई समाचार पत्रों का अधिकांश

भाग इन्हीं से भरा रहता है। इस श्रेणी के इनके अतिरिक्त और जो विज्ञापन होते हैं, उनके यहां से भी आप कोई माल मँगा कर देखें तो अनुभव हो जायगा विज्ञापन-दाता धोखे बाज हैं तथा समाचार-पत्रों की आड़ में जनता से पैसे लूटते हैं। विचारने की बात है कि जिस वस्तु का मूल्य ॥।) या १) हो और उसका विज्ञापन सदैव कई पत्र-पत्रिकाओं में निकलता रहे, तो विज्ञापनदाता को क्या लाभ हो सकता है, जब कि विज्ञापन के दर कम नहीं होते? ऐसी हालत में निश्चय ही या तो वह माल ख़राब देगा या दूने-चौगुने दाम लगादेगा।

जिस प्रकार समाचारों की सत्यता के लिए पत्र-संपादक कुछ अंश में उत्तरदाता होते हैं, इसी प्रकार यदि वे अपने पत्र के विज्ञापनों के लिए भी उत्तरदाता बनाए जायँ* तो क्या ही अच्छा हो। यह नहीं तो पत्र-संपादकों को चाहिए कि अपने पत्रों के विज्ञापनों की सत्यता की जाँच अवश्य किया करें। ऐसा करने से वे अपने निर्धन देश-वासियों के द्रव्य को व्यर्थ बर्बाद होने से बचा सकेंगे।

यदि भारत के समाचार-पत्रों में अश्लील या गन्दे विज्ञापन न छपते होते तो आज विदेशियों को भारतवासियों की ओर अंगुली उठाकर 'नपुंसक' इत्यादि कहने का साहस न होता। वास्तव में जब हम देखते हैं कि ऐसे विज्ञापन अधिक संख्या में निकलते हैं, इनकी संख्या दिनों-दिन बढ़ती ही जाती है, तथा प्रायः सभी समाचार-पत्रों में ये हमेशा निकलते रहते हैं, तो मानना पड़ता है कि इन विज्ञापनदाताओं की दवाइयों की आवश्यकता जनता को है—अर्थात् जनता इन व्याधियों में ग्रस्त है और विदेशियों का कहना अक्षरशः सत्य है। यह बतलाने की आवश्यकता नहीं है कि इन दवाइयों से हानि ही हानि होती है। लाभ सर्वथा असंभव है, यदि रोगग्रस्त जनता जितना रुपया इन विज्ञापनदाता तथा डाक की भेट करती है उतना किसी वैद्य हकीम या डाक्टर को दे, तो वह उसके रोग को कम समय में समूल नाश कर सकता है। अस्तु।

इस लेख द्वारा मैं उन पत्र तथा पत्रिकाओं के से प्रार्थना करता हूँ, जो अपने पत्रों को उच्च मानते हैं कि वे ऐसे विज्ञापनों का छापना एकदम दें। यदि सभी पत्र-पत्रिका "त्याग-भूमि" की अवलम्बन करते हुए व्यर्थ के विज्ञापनों का कर दें, तो अति उत्तम हो। परन्तु यदि वे विज्ञा करने से होने वाली आर्थिक हानि को सहन न हों, तो कम से कम कोकशास्त्र, नपुंसकता आदि के तथा गन्दे विज्ञापनों का, छापना तो अवश्य ऐसे विज्ञापनों द्वारा आमदनी पर लानत है, जिससे देश दूसरों की दृष्टि में गिरता हो।

क्या मैं आशा करूँ कि सम्पादक लोग इस ओ देकर इस सुधार में अग्रसर होने का साहस करेंगे!

रामेश्वर

दुर्भिक्ष और दरिद्रता की भूमि

अभी कुछ दिन हुए अमेरिका की सीनेट में संधि पर विचार हो रहा था, जिसे गत महासमर यूरोपीय-राष्ट्रों ने स्वीकृत किया था। इस संधि के इंग्लैण्ड तथा अन्य मित्र राष्ट्रों ने सारे संसार का आपस में किया था। सब राष्ट्रों ने मिलकर भारत को के अधीन रखना स्वीकार किया था। उस समय अ इस संधि पर हस्ताक्षर नहीं किये थे। अमेरिका की में ज़ोसेफ़ इरविन फ्रांस ने इस सन्धि का विरो हुए अंग्रेज़ों के भारत में कुशासन पर भी कुछ डाला था। पाठकों के परिचय के लिए हम उसका नीचे देते हैं—

"क्या आप ऐसी संधि का समर्थन कर जिससे अंग्रेज़ों का बुरा शासन भारत में जारी रहे। वर्ष एक उच्च सभ्यता की आदि भूमि है। इसका व्यवसाय और व्यापार पहले बहुत उन्नत था। इसका और मिस्र से व्यापार होता था। इसकी ढाका की प्रसिद्ध थी। अंग्रेज़ों के भारत में आने से पूर्व सम्पन्न तथा ऐश्वर्यशाली देश था, परन्तु भारत में के शासन के प्रारंभ के साथ-साथ भारत की ग़रीबी

---

* क़ानूनन् वे जिम्मेदार हैं और कई अपनी उपेक्षा के कारण इसके लिए सज़ा भी भुगत चुके हैं।—सं०

ोगई । भारत का रुपया और अन्न बड़े वेग से बाहर जाने लगा । अंग्रेज़ों के शासन का मुख्य सिद्धान्त यही रहा है के सम्पूर्ण भारत-राष्ट्र को वे हर तरह से अपने लाभ के ेर अधीन करलें । उन्होंने भारतीयों पर खूब भारी कर गा दिये । भारत के नाम से व्यर्थ ऋण लेकर बड़े-बड़े युद्धों , जो इंग्लैण्ड के हित के लिए किये गये थे भारत को क़र्ज़ र बना दिया । श्रीयुत ए० जे० विल्सन ने १८८४ में खा था कि अंग्रेज़ ३,००,००,००० पौंड अर्थात् भारत ी सम्पूर्ण पूंजी का दसवां हिस्सा ऋण प्रति वर्ष वसूल रते हैं । किसानों से फ़ी सदी ५० कर के अलावा सरे भी कई कर लिये जाते हैं, जो मिला कर ७५ फ़ी सदी क हो जाते हैं । इससे भारत में दरिद्रता ने बहुत बुरी तरह र कर लिया है । अन्न पैदा करने वाले किसानों तक को रपेट भोजन नहीं मिलता । भारत की आधी जन संख्या ही नहीं जानती कि पेट भर खाना किसे कहते हैं । इसी रह से सरकार के बुरे शासन के कारण भारत में भयंकर र्भिक्ष पड़ने लगे हैं । दुर्भिक्ष के कारण १८५४ से १९०१ ० तक २,८८,२५,००० मनुष्य मरे और पिछले दस वर्षों प्रति वर्ष दस लाख की औसत से मनुष्य मरे । डिग्बी ने खा है कि १ जनवरी १८९९ से ३० सितम्बर १९०१ तक ति दिन के प्रत्येक मिनट में भारतीय प्रजा दुर्भिक्ष के कारण री । भारत में प्लेग का मुख्य चूहा दरिद्रता है और इस िमारी का विष फैलनने वाली सरकार है । बिना भोजन के टे हुए रक्त-हीन भारतीयों के शरीर, प्लेग को सहन करने ी शक्ति न रखने के कारण उसके शिकार हो जाते हैं ।

"भारत में अशिक्षा भी खूब बढ़ी हुई है । बहुत ही म द्रव्य लोगों की शिक्षा के लिए व्यय किया जाता है । हां फ़ी सदी ७ मनुष्य शिक्षित हैं और वह अंग्रेज़ों के वहां १४० वर्ष राज्य करने के बाद, जब कि अमेरिका के फ़िलिपाइन्स में २० वर्ष तक शासन करने के बाद वहां फ़ी सदी ५६ मनुष्य शिक्षित हो गये हैं । उपनिवेशी-प्रजा के सम्बन्ध में अंग्रेज़ शासकों ने कहा है कि हमें सेनापतियों, राजनीतिज्ञों और व्यवस्थापकों की आवश्यकता नहीं हैं, हम परिश्रमी किसानों को चाहते हैं ।

"जर्मन महासमर में लाखों भारतीय हमारे आत्मनिर्णय की प्रतिज्ञा के भरोसे इंग्लैण्ड के लिए लड़े और जब युद्ध समाप्त होगया और भारतीयों ने आत्मनिर्णय का दावा किया तो रौलेट ऐक्ट पास किया गया और जब उसका विरोध किया गया तो अंग्रेज़ों ने मशीनगनों से उन्हें भून डाला । हम ऐसी संधि का समर्थन नहीं कर सकते, जिसके द्वारा भारत में अंग्रेज़ों को इस तरह अत्याचार करने का अधिकार मिले ।"

कृष्ण

पुस्तकालय-सम्बन्धी नवीन दृष्टिकोण

पुस्तकालय अर्थात् पुस्तकों का संग्रह स्थान; जो चाहे, वहाँ आकर, उसका उपयोग करें । पुस्तकालय के संबन्ध में यह विचार पहले से चले आते हैं । (यह लिखते हुए 'पुस्तकालय' शीर्षक गुजराती मासिक में श्री शङ्करभाई सोमाभाई पटेल बताते हैं कि) अब यह विचार बदल गया है । अब सिर्फ़ पुस्तकों का संग्रह रखना, अथवा उन्हें पढ़ने के लिए आने वालों की प्रतीक्षा करते बैठे रहना-भर उनका काम नहीं रहा । अब तो, उन्हें ऐसे प्रयत्न करने होते हैं कि जिससे सारी पुस्तकें अधिक से अधिक पढ़ी जायँ । प्रत्येक पुस्तक के लिए पाठक और प्रत्येक पाठक के लिए पुस्तक प्रस्तुत करना ही, संक्षेप में, अब तो उनका काम माना जाता है । पहले के (प्राचीन) और इस (अर्वाचीन) विचार में, इस प्रकार सारे दृष्टि कोण का ही अंतर है । अर्थात् पहले पुस्तकालय एक ही जगह निश्चेष्ट जमे रहते थे, तहाँ अब वे प्रयत्नशील हो गये हैं ।

ईस्वी सन् की उन्नीसवीं शताब्दि के उत्तरार्द्ध में इन नवीन प्रवृत्तियों का आरंभ हुआ; और इनमें से मुख्य है । यह कि (१) पुस्तकालय का महत्त्व भी स्कूलों जितना ही राष्ट्रोपयोगी माना जाने लगा है । (२) पुस्तकालय की पुस्तकें हर कोई देख सके, इसके लिए उन्हें खुली रखने की प्रणाली–Freedon of Access–का प्रारम्भ हुआ है । (३) बालकों के प्रति पुस्तकालयों का ध्यान आकर्षित हुआ है । (४) स्कूलों के साथ पुस्तकालय सहयोग करते हैं । (५) चलते-फिरते पुस्तकालय एवं उनकी शाखाओं की प्रणाली आरम्भ हुई है । और (६) कैसी पुस्तकें पढ़नी व कैसी नहीं पढ़नी इत्यादि की सूचियां बनाकर पुस्तकालय

प्रदर्शनों-पुस्तकालय के उत्सवों आदि-आदि के द्वारा पुस्तकालय की आवश्यकता सर्वसाधारण को समझाने के प्रयत्न हो सकें।

पुस्तकों का चुनाव

पुस्तकें पसन्द करते समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए ? इसके लिए गुजराती 'पुस्तकालय में, श्री नानाभाई चन्द दीवानजी लिखते हैं:—

१—कुछ ही लोग नहीं किन्तु ज्यादा से ज्यादा व्यक्ति उनका उपयोग उठा सकें।

२—सिर्फ़ आलमारी की शोभा बढ़ाने के लिए ही न खरीदी जायँ।

३—जिनसे गाँव वालों का जीवन रसमय और आनंद मय बने, अपने काम-धन्धों में वे अधिक दिलचस्पी लेने लगे और उसकी मुश्किलों को सरलता से हल करना सीख सकें, ऐसी पुस्तकें खास तौर पर पसन्द की जायँ।

४—प्रत्येक विषय एक समान समृद्ध किया जाय।

५—स्त्रियों व बालकों सम्बन्धी पुस्तकें खास तौर पर काफ़ी तादाद में पसन्द की जायँ।

६—ऐसी आकर्षक पुस्तकें भी पसन्द की जायँ कि जिनसे पढ़ने का शौक न रखने वाले लोग भी ललचा उठें। मुकुट

अग्रवालों में जागृति

जब तक संघर्ष होता हो तभी तक उन्नति और सुधार की आशा समझनी चाहिए। व्यक्ति, कुटुम्ब, जाति और देश सब पर यह नियम चरितार्थ होता है। पिछले दो-तीन सालों से अग्रवालों में संघर्ष बढ़ता हुआ दिखाई देता है। समाज में एक ऐसा दल बन गया है जो, सामाजिक-सुधारों के लिए छटपटा रहा है समाज की भयंकर कुरीतियाँ जिसे विषैले साँप की तरह डँस रही हैं। अभी जिस बात के लिए अग्रवाल महासभा के दो टुकड़े बंबई में हो गये वह तो थी जाति-बहिष्कार। अग्रवालों में हाल ही कुछ विधवा-विवाह हुए हैं, कुछ ऐसे सज्जन भी हैं जो छुआछूत को न मानने के अलावा
के साथ एक सीमा के अन्दर खान-पान में भी
मानते हैं। ऐसे को जाति के बाहर निकाल
चेष्टा अपने को सनातनी कहने वाले भाइयों

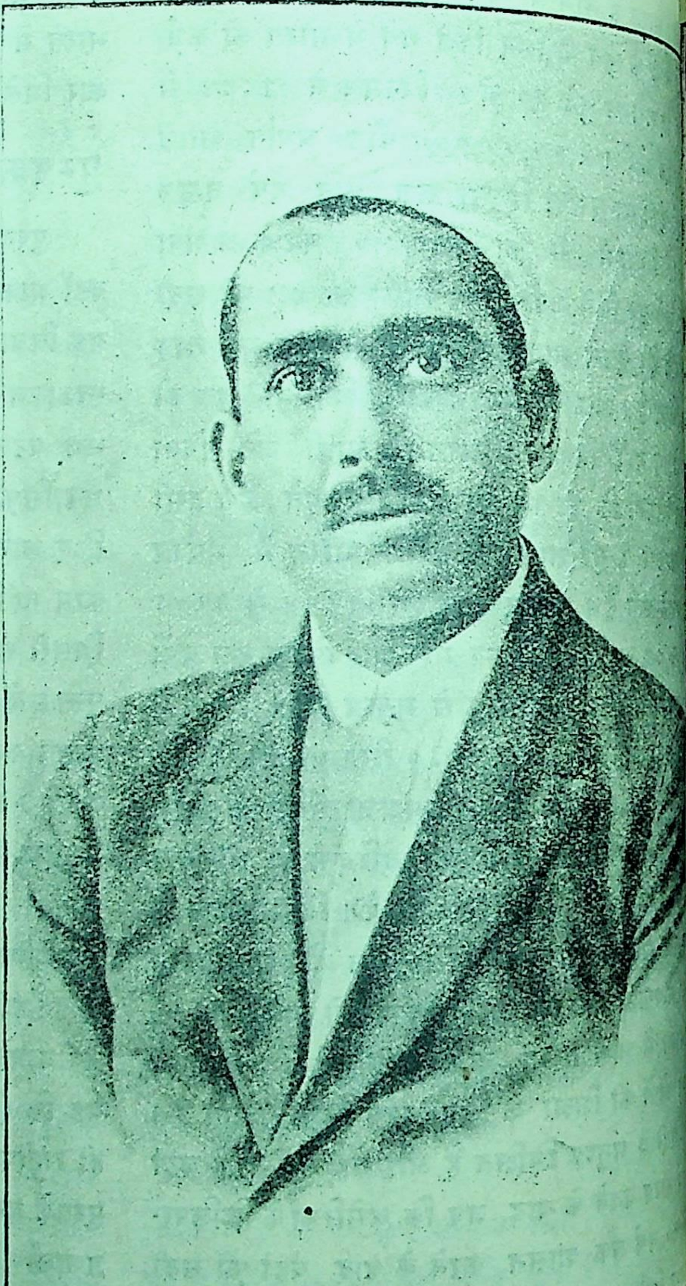

श्रीबालकृष्णदासजी पोद्दार (अग्रवाल महासभा के स्वागताध्यक्ष)

से हो रही थी। इसी प्रश्न पर बंबई में
महासभा के अधिवेशन के पहले से ही दोनों

मैं काफ़ी तू-तू मैं-मैं, अख़बार-बाज़ी और पर्चे-बाज़ी हो रही थी। अन्त को मनोनीत सभापति श्री हनूमानप्रसादजी पोद्दार के स्वागत के समय स्टेशन पर 'सनातनी' भाइयों ने जो धाँधली की और जिसके बदौलत सभापतिजी को दोनों दलवालों के स्वागत को छोड़ कर अलहदा विक्टोरिया किराये करके अपने स्थान पर आना पड़ा और अन्त को सनातनियों के इस बात की गैरण्टी न देने पर कि सभा में हमारी तरफ़ से किसी बात का हो-हल्ला या बखेड़ा न होने पावेगा, इस्तीफ़ा दे देना पड़ा एवं श्रीरंगलालजी जाजोदिया सभापति चुने गये—इन बातों के फलस्वरूप दोनों दलों ने अपने अलग-अलग अधिवेशन किये। दोनों सभाओं में प्रस्ताव प्रायः एक-से पास हुए। सिर्फ़ दो बातों में ख़ास भेद रहा—एक तो सुधारकों ने विवाह के समय लड़के की उम्र १६ की जगह १८ कर दी और दूसरे सनातनियों ने विधवा-विवाह करने वालों को जाति से बहिष्कृत करने तथा उनके समर्थकों को उचित दण्ड देने का प्रस्ताव स्वीकृत किया। विधवा-विवाह को निन्दास्पद तो दोनों सभाओं ने माना। सुधारक यदि विधवा-विवाह के विषय में तटस्थ रह जाते तो अच्छा था; पर मेरे दुःख की सीमा न रही जब उन्होंने न केवल उसे घृणास्पद बताया बल्कि उसे रोकने की भी आवश्यकता का प्रतिपादन किया। यद्यपि आगे बढ़े हुए सुधारकों में इससे भारी खलबली और असन्तोष फैला—परन्तु कमजोरी समझदारी का जामा पहन कर जब सामने आ जाती है तब बड़ों-बड़ों को मोह उत्पन्न हो जाता है। फिर अग्रवालों के नौसिखिया नवयुवक यदि उसके चँगुल में फँस जाएँ तो कौन आश्चर्य है? बम्बई की महासभा के सञ्चालकों के प्रति पूर्ण आदर-भाव रखते हुए भी यह कहे बिना नहीं रह सकता कि सुधारकों के प्रस्ताव अग्रवालों को सामाजिक विषय में प्रायः वहीं छोड देते हैं जहाँ वे पहले थे। केवल यह कहना कि हम बहिष्कार को नहीं मानते, व्यक्तिगत असहयोग को कोई भले ही अख्त्यार करे, उनके लिए शोभास्पद नहीं। महासभा के मोह को छोड़कर उन्हें या तो उसे दूसरे दल वालों को सौंप कर पृथक् हो जाना चाहिए था, या विधवा-विवाह के संबंध में चुप रह जाना चाहिए था।

श्री वेणीप्रसादजी डालमिया (अग्रवाल महासभा के महामंत्री)

इस बार के अधिवेशन में क्या स्वागत-कारिणी समिति, क्या कार्य-कारिणी सभा, क्या मनोनीत सभापति, क्या दोनों दल वालों के अधिवेशन, सबने बड़ी-बड़ी ग़लतियाँ की। स्वागत-कारिणी वालों ने दो गलतियाँ की—(१) यह ऐलानसा कर दिया था कि जो भी सज्जन प्रतिनिधि बनना चाहेगा बन सकेगा, यह कोई ज़रूरी बात नहीं कि वह शाखासभा से निर्वाचित होकर प्रतिनिधि बने। (२) महासभा के अधिवेशन में जबतक कोई बात तय न हो जाय तबतक विधवा-विवाह करने वाले महासभा में शरीक न हों, इस आशय का प्रस्ताव पास कर देना। कार्य कारिणी ने पीछे से स्वागत-समिति की पहली बात के खिलाफ़ प्रस्ताव किया कि केवल शाखासभा आदि से निर्वाचित प्रतिनिधि ही प्रतिनिधि समझे जावेंगे और यह प्रस्ताव तब किया जब कि बहुतेरे लोग बंबई में आ चुके थे। इस प्रस्ताव को पास करते समय सुधारकों के मनमें न्याय-वृत्ति उतनी काम नहीं कर रहीथी जितना सनातनियों को हरा देने का भाव ज़ोर मार रहा था। यह देखकर मुझे दुःख हुआ। मनोनीत सभापति श्री हनूमानप्रसाद जी ने यह ग़लती की कि वे अलहदा विक्टोरिया करके स्टेशन से घर चले गये। वे स्वागताध्यक्ष के चार्ज में थे और हर तरह के ख़तरे का सामना करके उन्हें उनके चार्ज से, मेरी राय में, पृथक् न होना चाहिए था। सुधारकों अथवा महासभावादियों ने यह गलती की जो उन्होंने श्री आनंदीलाल जी पोद्दार के इस प्रस्ताव को स्वीकार न किया कि महासभा का अधिवेशन कल तक स्थगित करदिया जाय जिससे समझौते की कोई सूरत निकल आवे। श्री आनंदी लाल जी ने यह भूल की कि उन्होंने
यह आश्वासन नहीं दिया कि यदि सनातनी
के अनुकूल न हुए तो वे स्वयं अपने दल-बल
के अधिवेशन में आवेंगे। पंचायत या सनातनी
स्टेशन पर सभापति का बुरी तरह अपमान

श्री नारायणलालजी पीत्ती (अग्रवाल महासभा के स्वागत

जाति-बहिष्कार और दण्ड देने का प्रस्ताव पास करके गलती की। उनके पर्चे और अख़बार शिष्टता और विवेक में बहुत गिरे हुए दिखाई दिये।

इन तमाम गलतियों और धाँधल-बाजियों के होते हुए महासभा के दोनों अधिवेशन सकुशल समाप्त हुए और सारे सुधारक कम से कम इस एक बात पर सहमत हो गये कि जाति-बहिष्कार इस समय बुरी चीज़ है, यह भी एक तरहसे कुछ कम लाभ नहीं है। खुशी की बात है कि हमारे अजमेर के अग्रवाल भाइयों ने इस बार महासभा को अपने यहाँ निमन्त्रित किया है। पिछली गलती से लाभ उठाकर, आशा है कि वे अगले अधिवेशन को इस तरह सफल बनाने का उद्योग करेंगे जिससे समाज-सुधार में उनका क़दम बहुत आगे बढ़ जाय। चींटी की चाल से चलने का यह युग नहीं है। जो बातें सरासर बुरी और हानिकर सिद्ध हो रही हैं, उन्हें एक बारगी मिटा देने में हिच-किचाहट क्यों होनी चाहिए? कम से कम सुधारकों की मनोवृत्ति तो इसके अनुकूल ही होनी चाहिए। सुधारकों को न संघर्ष से भय-भीत होना चाहिए न संस्थाओं पर कब्जा रखने का मोह रखना चाहिए, न विपक्षी को हटाने की भावना को हृदयमें स्थान देना चाहिए। सुधारक तो विपक्षी को अपने पक्ष में मिलाना चाहता है, उसे बरबाद करना नहीं चाहता।

हाँ, एक काम ज़रूर सुधारकों की महासभा ने ऐसा किया है जिससे उनके पूरे राष्ट्रीय-भाव का पता चलता है। उसने दिल से सायमन-कमीशन के बहिष्कार का समर्थन किया है, खादी और स्वदेशी के इस्तैमाल पर भी ज़ोर दिया है। इसके लिए महासभा धन्यवाद और प्रशंसा की पात्र है।

हरिभाऊ उपाध्याय

देहात में सफ़ाई की व्यवस्था

हिन्दुस्तान एक ग्राम-प्रधान देश है। यहाँ के शहरों की संख्या जहाँ २,३१६ ही है, वहाँ गाँव लगभग ७ लांख के हैं। देश के राष्ट्रीय-आन्दोलन में गाँवों की जनता का बहुत थोड़ा भाग है। शिक्षा और स्वास्थ्य-सम्बन्धी नियमों की दृष्टि से गाँवों के लोगों को अभी बहुत कुछ सीखना है। जब तक देश के उच्च शिक्षा प्राप्त नवयुवकों और देश-नेताओं का ध्यान ग्राम-सुधार जैसे महत्व के प्रश्न की ओर अच्छी तरह नहीं जाता है, तब तक स्वराज्य प्राप्ति के लिए आवश्यक ग्राम-संघटन, किसी पुख्ता नींव पर कायम न हो सकेगा।

मनुष्य के जीवन में शिक्षा और सफ़ाई अपना खास महत्व रखते हैं। शिक्षा से भी अधिक आवश्यक सफ़ाई है। क्योंकि बिना सफ़ाई के तन्दुरुस्ती कायम नहीं रह सकती। बीमार मनुष्य की शिक्षा देश के लिए उचित फलदायी नहीं होती। खेद है कि हमारे देश के अधिकांश गाँवों में लोगों का सफाई की ओर बहुत कम ख्याल रहता है। एक बार आप किसी गाँव के किनारे से निकल जाइए। चारों ओर आपको कई तरह का कूड़ा-करकट भरा मिलेगा। गाँव में जाने वाले रास्तों और पगडंडियों के पास ही—कभी-कभी उनके किनारे और बीच में—लोग मल-मूत्र विसर्जन कर देते हैं। इससे यात्रियों को तो कष्ट होता ही है, परन्तु गाँव के स्वास्थ्य पर भी इसका बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। सबेरे और शाम के समय जब कि मनुष्य को शुद्ध वायु की ज़रूरत रहती है, गाँवों का वायु-मंडल मल-मूत्रादि की दुर्गन्ध से भरा रहता है। यदि देहाती भाई तनिक विचार करें तो इस सामाजिक कष्ट को वे सहज ही दूर सकते हैं। नीचे हम कुछ ऐसे उपाय बतलाते हैं जिनसे देहात की सफाई का यह मसला हल करने में उत्साही भाइयों को कुछ मदद मिल सकेगी।

१—जिन गाँवों में भंगी नहीं है वे या तो एकाध भंगी-कुटुम्ब को अपने यहाँ बसालें, या फिर ऐसा प्रबन्ध करें कि गाँव के आस पास लगभग एक मील घेरे में पड़ने वाले आम रास्तों पर कोई टट्टी न फिरने पावे।

२—यदि गाँव के मुखिया चाहें तो वे अपनी बस्ती के आस पास के स्थान को बाग़-बगीचों, विश्राम-स्थानों, आदि सार्वजनिक-हित के साधनों से इतना मनोरम बना दें कि किसी को उसे गँदला करने का साहस न हो।

३—जहाँ तक हो सके गाँव के सारे स्त्री, पुरुष आस-पास के खेतों में मल-मूत्र का विसर्जन करें। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपने लिये एक गढ़ा खोद ले, और टट्टी फिर लेने के बाद उसे सूखी मिट्टी से ढँकता जाय तो दुहेरा लाभ हो। एक तो दुर्गन्ध के द्वारा वायु दूषित होने से बचेगी, और

दूसरे, भीतर ही भीतर खेत के लिए पोषक–खाद के तत्व तैयार होते रहेंगे।

४—गाँवों में ढोरों के गोबर, उनके मूत्र और खाने से बची हुई कड़बी, घास, भूसी, आदि का बड़ा दुरुपयोग होता रहता है। ढोरों का गोबर तो जलाऊ-लकड़ी के अभाव में उपले बनाने के काम में लग जाता है। और मूत्र यों ही सूख जाता है। वैज्ञानिक दृष्टि से गाय, बैल, भैंस आदि प्राणियों का मल-मूत्र उपजाऊ ज़मीन के लिए एक तरह की उत्तम खाद है। इसमें पौधों को पुष्ट करने के लिए आवश्यक, नाइट्रोजन, फॉस्फरस, और पोटाश आदि तत्व बहुतायत से पाये जाते हैं। यदि हमारे देहाती भाई इनका सदुपयोग करना सीख लें तो उनकी पैदावार को बढ़ते देर न लगे।

गोबर का खाद बनाने का सब से सरल तरीका यह है कि गाँव से कुछ दूर कुछ ख़ूब गहरे गड्ढे खोद लिये जाँय। और उन्हें भीतर से चूने या मिट्टी से पोत दिया जाय। फिर प्रति दिन का गोबर, घास, पत्तियाँ घर और बाहर का अन्य कूड़ा-कचरा, नाली का पानी, वगैरह उसमें डालते रहना चाहिए। और प्रति दिन ऊपर से कुछ राख भी। गढ़े के भर जाने पर उसपर ४-५ अँगुल मिट्टी या राख की तह जमा देनी चाहिए। खाद को अच्छी तरह सड़ाने के लिए उसपर थोड़ा थोड़ा पानी भी छिटकते रहना चाहिए। और समय-समय पर उसे ऊँचा नीचा करके, पलट भी देना चाहिए। इस तरह बनी हुई खाद बड़ी कीमती और गुणकारी होगी।

मूत्र का सदुपयोग करने की सबसे सरल विधि यह है कि ढोरों की थान की ज़मीन को मिट्टी और कंकर पीट कर खूब कड़ी कर ली जाय। जिससे पेशाब ज़मीन में जज़्ब न होने पावे। ऊपर से घास, पात, छिलके, राख, भूसे आदि से उसे ढँक दिया जाय। गोबर भी वहीं पड़ा रहे। इस तह को हर रोज बदल दिया जाय। जब थान की ज़मीन करीब दो-ढाई बालिश्त ऊँची हो जाय, तब उसे खोद कर खेतों में डाल देना चाहिए।

५—गाँवों में कुओं, तालाबों और बावड़ियों की सफाई का पूरा-पूरा प्रबन्ध रहना चाहिए। पानी पीने के कुओं में कपड़े धोना, बरतन मलना, गाय ढोरों का नहलाना काम कतई बन्द होने चाहिएँ। समय-समय पर कीड़े करने के लिए निवाणों में दवाई भी डलवाते रहना

६—कपड़े-लत्तों की सफ़ाई, घर आँगन की और चौके की सफाई थोड़े से परिश्रम से अच्छी जा सकती है। हम लोग ज़रूरत से ज़्यादा आलसी हैं। इसी कारण हमारे घरों में मच्छर, डाँस, पिस्सू जैसे स्वास्थ्य-घातक जन्तु बहुतायत से पैदा होते इनसे और मक्खियों से बचने का एक मात्र साधन सब तरह की सफ़ाई है।

काशीनाथ

स्व० सर रमणभाई

सर रमणभाई महिपतराम नीलकंठ, नाइट, का गत ६ मार्च को होगया। महात्मा गांधीजी के आप गुजरात के पिछले पचास वर्षों के सजीव इति आपने स्व० पं० महिपतराम नीलकंठ जैसे अद्वितीय शास्त्री और साहसी-सुधारक के घर ता० १३ मा १८६८ के दिन जन्म धारण किया था। इस तरह अवस्था पाकर आपने जिस साहस, शौर्य और लगन से देश, भाषा और समाज की आदरणीय सेवा की, वह में अंकित किये जाने योग्य है। आप गुजराती सा अद्वितीय साक्षर-रत्न थे। आधुनिक गुजरात का प्रजा निर्माण कर उसे योग्य मार्ग पर लगाने और नया उत्पन्न करने वालों में रमणभाई का स्थान सर्वो

यद्यपि संपूर्ण गुजरात में आप शिक्षा-शास्त्री विख्यात थे, किन्तु इसीके साथ-साथ समाज-सु अग्रसर होने; प्रार्थना-समाज तथा गुजरात व सोसाइटी की जड़ जमाने में भी आपका पूरा-पूरा हाथ

“होनहार बिरवान के होत चीकने पात” के आप बचपन से ही तीव्र बुद्धिशाली और अद्भुत रहे। पंद्रह वर्ष की अवस्था में जब आपने मेट्रिक्यूलेशन पास की तो उसमें आप अहमदाबाद में सर्वश्रेष्ठ रहे प्रकार आपका कालेज-जीवन भी बड़ा ही यशस्वी था छोटी सी अवस्था में आपने बम्बई में एल्फिंस्टन

गुजराती-मंडल के सामने "कविता" जैसे गूढ़ विषय पर जो मार्मिक भाषण किया, उसे सुनकर बड़े-बड़े साहित्य महारथियों को दाँतों तले उँगली दबानी पड़ी थी ।

इसके बाद जब कि पाश्चात्य-शिक्षा और साहित्य के प्रभाव से नवशिक्षित युवक-समाज को नई प्रेरणा मिली, और अदम्य उत्साह के साथ वह पाश्चात्य-संस्कृति का नया दृष्टिकोण प्राप्त कर आगे बढ़ने लगा, तब उसे उचित मार्ग पर गाने और जनता तक उनका संदेश पहुँचाने का कार्य व० सर रमणभाई ने "ज्ञानसुधा" (मासिकपत्र) के द्वारा म्पादन किया था । पुराने आचार-विचार और रूढ़ि-धर्म हटाकर उनके स्थान पर, नवीन आदर्शों का प्रचार करने लिए आपको कठिन परिश्रम करना और विरोधियों से लना पड़ा । आपके "भद्रंभद्र"* नामक ग्रंथ में इसी पारम्परिक संघर्ष की मार्मिक किन्तु मनोरंजक आलोचना की गई है । इस ग्रंथ के प्रकाशित होने पर जनता में हलचल मच गई थी । किंतु उस समय सामाजिक अनिष्ट-अंगों नाश के लिए ऐसे तीव्र विवेचन की अतीव आवश्यकता थी। न सब दृष्टियों के अतिरिक्त स्थायी-साहित्य के नाते भी ह पुस्तक अद्वितीय सिद्ध हुई है । इसके अतिरिक्त आपकी वनराज चावड़ो" और "सिद्धराज जयसिंह" ये दो पुस्तकें ऐतिहासिक साहित्य में अमर कृतियाँ कहला सकती हैं । न्तु "राईनो पर्वत" † नामक आपका नाटक तो गुजराती ाहित्य में एकदम ही उच्चकोटि का ग्रंथ माना जाता है; और ह उच्च कक्षाओं में पाठ्य-पुस्तक के रूप में भी स्वीकृत या गया है ।

साहित्य की ही तरह समाज-सुधार में भी आपकी प्रवृत्ति शंसनीय एवं उपकारक रही है । विदेशगमन, बाल-विवाह, न्या-विक्रय, विधवा-विवाह, स्त्री-शिक्षा, प्रौढ़-विवाह, तर्जातीय-विवाह आदि सभी सामाजिक-विषयों में आपने दैव अग्रसर होकर भाग लिया और स्वयं कई बातों के आदर्श बने । इसी प्रकार म्युनिसिपालिटी और कौंसिल के सदस्य बनकर भी आपने सामाजिक-जीवन के नवीन प्रश्नों पर, जैसे कि, मज़दूर और पूंजीवाद, मालिक और नौकर का सम्बन्ध, रहने के मकानों की व्यवस्था और उनका किराया, जनता के लिए हवाख़ोरी के स्थान, प्रीति-विवाह, पति-पत्नी का संबन्ध-विच्छेद, पतितोद्धार, स्त्री-जीवन की मुक्ति और व्यक्ति-स्वातंत्र्यादि पर स्वतंत्र-विचार प्रकट कर, सुधारकों को उचित मार्ग दिखलाया था । अनाथों के लिए आपके पिताके नाम पर महिपतराम-आश्रम आज ३५ वर्षों से अपूर्व सेवा कर रहा है । इसी प्रकार स्त्री-जाति के सर्वांगीण विकास के लिए भी आपका परिवार आदर्श माना जाता है। स्व० रमण भाई ने इस विषय में अनेक प्रकार से उद्योग किया है ।

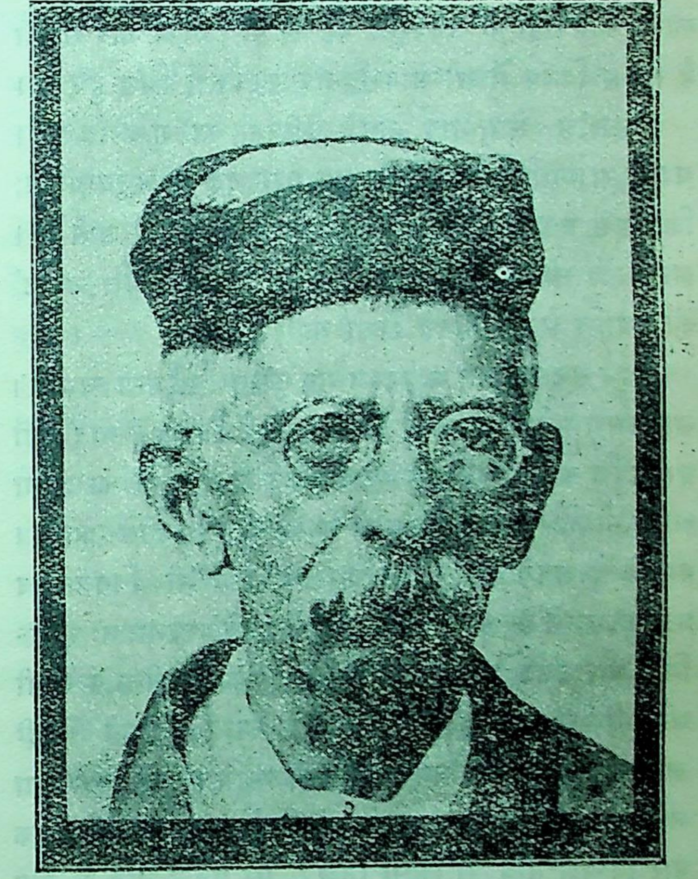
स्व० सर रमणभाई महिपतराम नीलकंठ

आपका धार्मिक-जीवन एक सच्चे भक्त की तरह निर्मल था । जिसने प्रार्थना समाज की वेदी पर से उपदेश करते हुए आपको देखा है, अथवा "ज्ञानसुधा" में आपके धार्मिक

---

* "मालव-मयूर" के तीसरे वर्ष में इसके कुछ परिच्छेदों अनुवाद निकल चुका है ।

† इसका हिन्दी अनुवाद भी पं० गिरधर शर्मा, नवरत्न ारा हो चुका है ।

लेखों का पढ़ा है, वही आपके धर्म-भाव को भलीभांति पहचान सकता है।

इस प्रकार साहित्य, समाज और धर्म-विषयक सेवाओं की चर्चा के बाद, जब हम आप की म्युनिसिपल और सार्वजनिक-हित से सम्बन्ध रखने वाली सेवाओं पर दृष्टिपात करते हैं, तब भी हमें अवाक् रह जाना पड़ता है। प्रारम्भ में आप शहर-म्युनिसिपिलिटी के साधारण सदस्य रहे, बाद में उपाध्यक्ष और स्कूल-बोर्ड के चेयरमैन के नाते आपने जो कठिन श्रम और ठोस कार्य किया, उसकी कल्पना तत्कालीन कार्यवाही के विवरणों पर से ही आँकी जा सकती है। इस विषय में भी आप द्वितीय कार्यकर्ता सिद्ध हुए हैं।

सारांश, सेवा-भाव आपके जीवन का मूल-मंत्र था। यद्यपि राजनीतिक-विषयों में आप नरम दल के अनुयायी थे; किंतु इस दल में भी आप बड़े आदरणीय समझे जाते थे। सरकार ने भी आपको गत दो वर्ष पूर्व ही 'सर' और 'नाइट' की उपाधि से सम्मानित किया था।

इन सबसे बढ़कर आपका प्रधान गुण था 'सौजन्य स्वभाव'। सर रमणभाई के साथियों का कहना है कि, हमें याद नहीं पड़ता कि कभी उनके मुँह से कोई कटु शब्द सुनने का प्रसंग आया हो और शायद ही कभी किसी पर क्रुद्ध होते देखा हो। क्योंकि वे अपने कट्टर विरोधियों के प्रति भी विनय-भाव प्रदर्शित करने में कभी पीछे नहीं रहे। वे स्वभावतः सत्य-प्रिय और उनके कार्यों में प्रामाणिकता की गहरी-छाप रहती थी। वकील के रूप में वे सदैव न्याय दिलाने के ही अभिलाषी रहते थे। जब तक किसी व्यक्तिपर कोई दोष लगा नहीं दिया जाता, तब तक वे उसे निर्दोष समझते और एक बार निष्पक्ष-भाव से किसी निश्चय पर पहुँच जाने के बाद उससे सहज ही में विचलित नहीं हो जाते थे। मनुष्य स्वभाव की निर्बलता को आप भलीभांति समझते थे, और इसीलिए आपका दया-भाव समय-समय पर स्वयमेव प्रकट हो उठता था। आप विरोधी के साथ भी उदार मनोवृत्ति प्रकट करते थे। आपके स्वभाव में न राग के लिए स्थान था और न द्वेष के लिए। निरभिमानी तो इतने थे कि एक छोटा सा बच्चा भी आप से आज़ादी से बातचीत कर सकता था। दूसरों को अकारण कष्ट देने के भी आप आदी नहीं थे, इसीलिए अधिकांश कार्य अपने हाथों से कर लेते थे।

सारांश, आपका जीवन, शान्त, गंभीर, अ
निर्मल सरिता की भांति सदैव अपने समागम
वालों के लिए आनन्ददायी और उत्साहप्रद रहा
आदर्श नररत्न के उठ जाने से गुजरात प्रान्त की जो
हुई है उसकी पूर्ति हो सकना कठिन है। परमात्मा
आत्मा को शान्ति प्रदान करे।

गोपीवल्लभ उपा

स्वराज्य और खादी

जो आदमी कुछ पैदा नहीं करता, जो दिमाग
हाथ से काम नहीं करता वह देश के लिए बोझ है।
दार, महाजन, पूंजीपति, भिखमंगे ये सब देश के
बोझ हैं। किसान भी किसी अंश में देश के लिए
रहे हैं। उनका बहुत सा समय बेकारी में बीतता है
लिए वे भी कुछ अंश में देश के लिए बोझ हैं।
बेकारी के समय चर्खा चलावें तो उनका समय व्यर्थ
हो और उनकी गरीबी दूर हो जाय। जिस-जिस
चरखा चलने लगा उस-उस गाँव की हालत बदल
अगर भारतीय अपना कपड़ा आप तैयार करें
अँग्रेज़ों पर ७० करोड़ की ज़बरदस्त चोट पड़े। इ
के सारे रोजगार मारे गये हैं। अगर चरखे का प्रचा
तो देश के बहुत से आदमियों को कुछ रोजगार मि
क्यों कि स्वराज्य-प्राप्ति का एक मात्र उपाय यह
अँगरेज़ों पर दबाव डाल कर उनमें डर पैदा कि
असहयोग का आन्दोलन इसीलिए किया गया था।
में कर न देना भी शामिल है। हो सकता है कि
लिए यह भी करना पड़े। इसके लिए बहुत कष्ट
जरूरत होगी। पर खादी का काम ऐसा है कि
कुछ त्याग नहीं करना पड़ता, या इसमें कम से क
है। यदि सब लोग खादी पहनें तो इसके द्वारा
ग़रीबी दूर कर सकेंगे और साथ ही अँगरेज़ों पर
डाल सकेंगे। इस समय हमारे हाथ में यही
कि हम विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार करें और
व्यवहार करें।

जवाहरला

नीर-क्षीर-विवेक

[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आना आवश्यक है। एक प्रति आने पर आलोचना न हो सकेगी। प्रत्येक पुस्तक का साहित्य-सत्कार तो उसी अंक में हो जाया करेगा—आलोचना, यदि हुई तो, सुविधानुसार बाद में होगी।]

राजपूताने का इतिहास (खंड २)

लेखक और प्रकाशक राय बहादुर पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा, अजमेर। पृ० सं० ५४६ से ७३६। मूल्य ६)

उक्त ग्रन्थ ओझाजी महाराज के बृहत् इतिहास का सरा खण्ड है। इसमें प्रथम खण्ड से जो उदयपुर का तिहास आरम्भ हुआ था, वही अन्त तक है और समाप्त नहीं आ है।

माननीय ओझाजी एवं उनके ग्रन्थ के विषय में कुछ लिखना अनावश्यक है।

भारत के जिन शोधकों एवं विद्वानों की गवेषणा तथा खोज सर्वमान्य हुई है, ओझाजी उन विद्वानों में प्रमुख हैं। आपकी खोज, इतिहास तथा पुरातत्व की प्रौढ़ विद्वत्ता का लोहा भारत और यूरोप के सभी विद्वान् मानते हैं। आपके ग्रन्थों का देश एवं विदेश में बड़ा सम्मान हुआ है और आप प्राचीन भारतीय इतिहास एवं राजस्थान के इतिहास पर सर्वोच्च प्रमाण माने जाते हैं। ऐसे विद्वान् की लिखी हुई पुस्तक में जो विशेषता होनी चाहिए वह सब आपके ग्रन्थ में है। आपके ग्रन्थ-प्रणयन में जिन सैकड़ों संस्कृत, अँगरेज़ी, पाली, प्राकृत, गुजराती, अरबी तथा फ़ारसी पुस्तकों की सहायता ली गई है और जिनकी सूची उक्त ग्रन्थ में दी गई है, उनको देखने से आपके विशाल पाण्डित्य का पता लगता है और यह भी पता लगता है कि आप ग्रन्थ-प्रणयन में कितना कठोर परिश्रम करते हैं। ४० वर्ष से आप इस क्षेत्र में शोध कर रहे हैं और इस ६५ वर्ष की आयु में, आँखों में तकलीफ़ रहने पर भी, गर्मी की कड़ी धूप तक में शिलालेखों के संग्रह के लिए भ्रमण करते हैं।

अस्तु। पुस्तक का प्रथम खण्ड ५३३ पृष्ठ में समाप्त होता है। इसके बाद लगभग ६० पृष्ठ की एक सुन्दर भूमिका है। यह भूमिका नहीं, प्रत्युत इतिहासज्ञों के मनन के लिए एक अत्यन्त मननीय निबंध है।

इसमें स्थान-स्थान पर प्रत्येक बात के लिए प्रमाण दिये हैं और डा० भांडारकर, स्मिथ, टाड आदि देशी एवं विदेशी विद्वानों के मत का खण्डन पढ़ने से बड़ा मनोरंजन होता है। महाराणा जैत्रसिंह का हमीर-मद-मर्दन काव्य तथा अन्य शिलालेखों के आधार पर शमसुद्दीन अल्तमश की सेना के युद्ध तथा शाही सेना के पराजय का नवीन वर्णन है।

महाराणा रत्नसिंह के वर्णन में ओझाजी महारानी पद्मिनी की ७०० डोलियों के साथ अलाउद्दीन के कैम्प से राणा को छुड़ा कर पुनः जौहर की अग्नि में प्रवेश करने विषयक कथा को कल्पित मानते हैं। उनका मत है कि अलाउद्दीन ने जब चित्तौड़ पर चढ़ाई की तब राणा रत्नसिंह, लक्ष्मणसिंह आदि सामन्तों सहित वीरतापूर्वक युद्ध करते हुए मारा गया, और उसकी रानी पद्मिनी ने कई स्त्रियों सहित जौहर की अग्नि में प्राणाहुति दी, इस प्रकार थोड़े समय के लिए चित्तौड़ पर मुसलमानों का अधिकार हो गया।

ओझाजी का विचार है कि ७०० डोली आदि की कथा जायसी के पद्मावत से, जो कवि-कल्पित उपन्यास है, सिद्ध हुई तथा फरिश्ता ने भी पद्मावत से ही यह कथा ली है एवं पद्मिनी को रानी की जगह बेटी बना दिया है। आपका कहना

है कि कर्नल टाड ने भी यह कथा भाटों से ली है। इस संबंध में हम ओझाजी महाराज से नम्रता-पूर्वक अपना मतभेद प्रकट करते हैं। जायसी अलाउद्दीन से लगभग २०० ही वर्ष पीछे हुआ था, इतने समय में ही वह एक नवीन कथानक गढ़ डालता, यह ज़रा विचारणीय है। यह तो निश्चय है कि जायसी का पद्मावत ऐतिहासिक ग्रन्थ नहीं है, वह काव्य है और उसमें कई कल्पित पात्र हैं, परन्तु इतना होने पर भी कथा का हृदय ही—अर्थात् पद्मिनी का ७०० डोलों को साथ लेकर शाह के केम्प में जाना एवं राणा को छुड़ा लाना आदि—नया रख देना यह असंभव नहीं तो भी विचारणीय अवश्य था।

इसके साथ ही यह भी स्मरण रखने की बात है कि मलिक मुहम्मद जायसी हिन्दी का सुकवि होते हुए भी मुसलमान था। वह राजपूत स्त्रियों को अनावश्यक महत्व देने के लिए शायद ही तैयार होता।

प्रसिद्ध मुसलमान इतिहास लेखक फरिश्ता ने भी पद्मिनी की ऐसी ही कथा अपनी तवारीख में लिखी है। ओझा जी इसे भी पद्मावत से लिया हुआ विचार करते हैं। परन्तु यह भी अनुमान ही है। फरिश्ता जैसा मुतास्सुब लेखक राजपूत स्त्रियों के गौरव-गीत कैसे गाता? इसी प्रकार टॉड के लिए आपका लिखना है कि टाड ने यह कथा मेवाड़ के भाटों से ली है और भाटों ने पद्मावत से। पहले तो इसका कोई प्रमाण नहीं कि भाटों ने यह कथा पद्मावत से ली है। इसके अतिरिक्त १६वीं शताब्दी में हिन्दी के प्रसिद्ध कवि जटवर (नाहर खां) हुए हैं जिन्होंने गोरा-बादल की विराग-पूर्ण कथा पर एक सुन्दर काव्य लिखा है, जो बीकानेर के पुस्तकालय में है। यह काव्य पद्मिनी के थोड़े ही वर्ष बाद लिखा गया था। अतः इसके कथानक का अधिक सत्य होना सम्भव है। इसने भी पद्मिनी का वर्णन किया है। माननीय ओझाजी ने अपने इतिहास में बादल का ज़िक्र नहीं किया। इन दो वीर आत्माओं के पुण्य-चरित्र बिना देवी पद्मिनी तथा रत्नसिंह का वर्णन अपूर्ण प्रतीत होता है। कविवर जटमल्ल ने इन वीरों का जैसा सुन्दर सजीव वर्णन किया है वह ऐतिहासिक ही प्रतीत होता है।

पद्मिनी के विषय में जो कुछ लिखा है वह भी हमारा अनुमान मात्र है, एवं लिखने के लिए साहस होने यह है कि ओझा जी महाराज जैसे छोटी से छो लिए प्रमाण देते हैं, जिस प्रकार उनका कोई ले बिना प्रमाण नहीं होता वैसा उक्त कथन नहीं है अनुमान की प्रधानता है और हमारा मत भी अ भित्ति पर ही है।

अस्तु; इसके पश्चात् कतिपय राजाओं का व के अनन्तर सुप्रसिद्ध राणा हम्मीर का इतिहास है। बड़ा ही वीर राजा था। महाराणा कुंभा की प्रशस्ति विषमघाटी पंचानन, कहा है। उसने रावल र पश्चात् मेवाड़ के भाग्य को फिर चमका दिया। कथनानुसार उस समय हिन्दुस्तान में हमीर ही प्र राजा रह गया था, शेष सब प्राचीन राजवंश नष्ट हो

हमीर के अनन्तर क्रमशः राणा क्षेत्रसिंह और का वर्णन है। इन्हीं लक्षसिंह के पुत्र प्रसिद्ध चूंडा जिन्होंने पिता की इच्छामात्र से मेवाड़ का विशाल परित्याग किया था। डाक्टर एनी बीसेन्ट ने इन्हें भीष्म लिखा है, जो उचित ही है।

इन्हीं राणा लाखा के समय में नकली बूंदी ब उसे तोड़ने तथा उसकी रक्षा के लिए हाड़ा कुम्भ प्राण देने की कथा प्रसिद्ध है, जिसका ओझाजी ने किया है। अपने प्रमाण में ओझाजी ने मैनाल के १४४६ के शिलालेख का हवाला दिया है, जिस जाता है कि तत्कालीन बूंदी का राव महादेव हाड़ा का सरदार था एवं अमीशाह के साथ उक्त मह लड़ाई में बड़ी वीरता से लड़ा था। जिसका स्वयं अपने शिलालेख में बड़े गौरव के साथ वर्णन कि ओझाजी को आश्चर्य है कि कूड़ा-करकट के सम कथायें इतिहास में कैसे स्थान पा गईं। परन्तु हमें कोई आश्चर्य नहीं है। जब ओझाजी का एक चेला इतिहास में कई कथायें घुसेड़ रहा है तब बेचारे ऐसा किया तो क्या आश्चर्य है?

इसके उपरान्त मोकल राव और उसके पुत्र प्रसि राणा कुंभा का वर्णन पृष्ठ ५९१ से लेकर ६३ कुंभा का इतिहास लिखने में ओझाजी ने कमाल

तने शिला लेख, ताम्र-पत्र, प्रशस्तियाँ, काव्य एवं फ़ारसी था अँगरेज़ी इतिहासज्ञों का हवाला दिया है कि पढ़ कर बीयत खुश हो जाती है। कुछ वर्ष पूर्व एक सज्जन ने व जोधा का झूठा गौरव दिखाने की चेष्टा में महाराणा मा जैसे प्रतापी राजा को नीचा दिखाने की चेष्टा की थी। झाजी का उक्त वर्णन पढ़ कर उन महाशय का इतिहास न नाच-नृत्य करने लगता है। किस प्रकार राठौड़ राव-लजी मेवाड़ में आये, अपनी बहन का राणा से विवाह या एवं उनकी मृत्यु पर अपने भांजे राणा को मारने के ए षड्यन्त्र रचा, तथा स्वयं ही मारा गया एवं जोधा को ी दशा में भागना पड़ा, इत्यादि प्रत्येक घटनायें सप्रमाण खी गई हैं परन्तु यहाँ भी हमें एक बात नहीं मिली।

टाड ने लिखा है—कि "जोधा ने अपने आरम्भिक तथा मेवाड़ की महान् शक्ति पर विचार करके संधि प्रार्थना की और गोरवाड़ का सारा प्रदेश मूंड-कटी में ा को दिया; जो कई सदियों तक मेवाड़ के अधीन रहा कर्नल टाड के एजेन्ट होने के कुछ ही वर्ष पूर्व धोखे ोधपुर वालों ने पीछा ले लिया।

हमें नहीं मालूम कि या तो ओझाजी गोरवाड़ के देने बात पर विश्वास नहीं करते अथवा कुछ समय का अन्तर ते हैं, जो हो; इस बात का उल्लेख उनकी पुस्तक में है। कर्नल टाड राजपूताना का ए० जी० जी० था और ने स्वयं गोरवाड़ के संबंध के कागज़ात देखे थे।

महाराणा कुंभा अपने समय के भारत में सब से बड़े शाली राजा (Most Powerful Sovereign of s time) थे। उन्होंने दिल्ली, गुजरात, मालवा के बादशाहों अलग-अलग तथा अंतिम दो को सम्मिलित रूप से भी हराया कैद किया था। परन्तु कुंभा ने यहाँ भी वही गलती जो अनेक हिन्दू राजाओं ने की है; अर्थात् उनसे दंड न र छोड़ दिया। प्रसिद्ध मुसलमान इतिहास लेखक फरि- इस निमित्त कुंभा की बड़ी प्रशंसा करता है; परन्तु टाड राजनैतिक अदूरदर्शिता, अहंकार, तथा कुलाभिमान बत-ा है, जो ठीक है। कुंभा ने नागपुर, अजमेर, मंडोर [मारवाड़] पुर, बूंदी आदि अनेक राज्यों को जीता था, एवं हिन्दू माण की उपाधि धारण की थी। कुंभा जैसा वीर था, वैसा ही विद्वान्, कवि, शिल्पशास्त्रज्ञ, संगीताचार्य, नाट्य-शास्त्रज्ञ, ग्रन्थकर्ता एवं अमर-विजयी था। हिन्दुओं में शायद गुप्तों के पश्चात् कुंभा से अधिक प्रतापी राजा कोई नहीं हुआ। यह वह महावीर था, जिनसे इतिहास बनते हैं और जिन पर जातियाँ अभिमान करती हैं।

इसके पश्चात् रायमल आदि राणाओं का तथा प्रसंग-वश प्रतापगढ़-राज्य के संस्थापक सूरजमल के युद्ध का वर्णन है। चाचा भतीजों का दिन भर लड़ना तथा रात्रि में शामिल भोजन करना एक ऐसी घटना है जो महाभारत-काल की याद दिलाती है।

इसके पश्चात् परम प्रसिद्ध महाराणा सांगा का वर्णन है। सांगा भारत में अपने समय के सबसे बड़े प्रबल, प्रतापी राजा थे। कई लेखकों ने इनको भारत का अंतिम हिंदू-सम्राट् माना है जो उनकी वीरता, विजय तथा तेजस्विता को देखते हुए सर्वथा उचित ही है। सांगा ने अपने जीवन में अनेक भयंकर लड़ाइयां लड़ीं। उसने रणथंभौर सारंगपुर, भिलसा और चंदेरी ले लिए थे और सुलतान महमूद आदि कई प्रबल राजाओं को क़ैद किया था एवं दिल्ली के बादशाह इब्राहिम लोदी को खातोली की लड़ाई में हराया।

परन्तु अन्तिम-युद्ध में भारत की राज्य-श्री ने सांगा को धोखा दिया। बाबर के साथ खानवा के युद्ध में सांगा हार गया और विजय-लक्ष्मी ने विदेशी-विजेताओं को वरण किया। इस युद्ध में साँगा के अधीन राजस्थान के अनेक राजा तथा सरदार थे, एवं यह क्षत्रियों का सबसे बड़ा तथा अंतिम-संगठन था जो विदेशियों को भारत से निकालने के लिए किया गया था। इस युद्ध में बाबर ने तोपों से काम लिया था तथा उसकी व्यूह-रचना उत्कृष्ट थी, इसीसे उसकी विजय हुई; इसके विपरीत राजपूत लोग केवल तल-वारों तथा अपने बाहुबल पर विश्वास किए बैठे थे।

स्वयं बाबर ने सांगा की बड़ी तारीफ़ की है, यह देश का दुर्भाग्य ही था कि वह हार गया एवं भारत सदा के लिए दासता की जंजीरों में जकड़ा गया।

यदि इस युद्ध में सांगा की विजय होती तो आज भारत का नकशा ही दूसरा होता। किंतु दैव को यह मंजूर न था। पुस्तक महाराणा उदयसिंह का वृत्तान्त देकर समाप्त की गई है।

ऐसी सुंदर पुस्तक का हिन्दी में निकलना हिन्दी के लिए गौरव की बात है। अनेक देशी तथा विदेशी विद्वानों ने इस ग्रंथ-रत्न की मुक्तकंठ से जो प्रशंसा की है यह ग्रंथ सर्वथा उसके योग्य है। कई यूरोपीय विद्वानों ने तो यहाँ तक लिखा है कि इस पुस्तक के जोड़ का ग्रन्थ भारत की किसी भाषा में नहीं है। सचमुच इस ग्रंथ-प्रणयन में इसके परम विद्वान् लेखक ने जिस पांडित्य का प्रदर्शन किया है; उस के लिए ग्रंथकर्त्ता के प्रति हम कृतज्ञता प्रकट करते हैं, और ओझाजी से सादर निवेदन करते हैं कि वे इसके शेष खंडों को शीघ्र निकालकर मातृ-भाषा का महोपकार साधन करें।

एक इतिहास-भक्त

विशाल भारत

इसकी ४ संख्यायें अब तक प्रकाशित हुई हैं। प्रायः निरंतर भ्रमण में रहने के कारण इस चौथी संख्या को ही मैं ग़ौर से देख सका हूँ। मनुष्य जैसा होता है वैसी ही उसकी कृति प्रायः हुआ करती है। बाबू रामानंद चटर्जी जैसे संपादन-कार्य में लब्ध-प्रतिष्ठ सञ्चालक, भाई बनारसीदास जी जैसे उत्साही, सहृदय और धुन के पक्के संपादक और कलकत्ते में प्रवासी तथा मॉडर्नरिव्यू जैसे विख्यात और गण्य-मान्य पत्रों के सिवा प्रेस की सारी साधन-सामग्री इनको देखते हुए इससे कम अच्छे पत्र की आशा नहीं की जा सकती थी। बहिरंग से जहाँ तक संबंध है, 'विशाल भारत' सुरुचि, सुन्दरता, प्रौढ़ता और स्वच्छता में हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ पत्रों से टक्कर ले लेता है। अन्तरंग भी विशेषताओं से ख़ाली नहीं हैं। विषयों की विविधता पर राष्ट्रीयता और युग-धर्म की छाप है। भारत को ऐतिहासिक काल में शायद सबसे पहले अपनी संस्कृति की विशालता का अनुभव कराने वाले बुद्ध का चित्र मुखपृष्ठ के लिए सर्वथा उचित चुनाव है। भीतर विशालता के लिए वटवृक्ष की कल्पना भी हृदयग्राहिणी है। रंगीन चित्रों की उत्तमता, सुरुचि आदि के संबंध में तो कहना ही क्या है? लेखों के चुनाव में यहाँ से वहाँ तक बनारसीदास जी की आत्मा प्रतिबिंबित दिखाई पड़ती है। इस अंक के प्रायः सभी लेख सुपाठ्य, विचारपूर्ण, मनोरंजक और शिक्षाप्रद हैं। साहित्य-सेवियों के संस्मरण और अनुभव इसकी ख़ास विशेषता है। पं० जोशी के कला-संबंधी विचारों से यद्यपि मैं सहम तथापि उनका लेख -'प्रेमचंद्रजी की कला का मूल की अच्छी विवेचना करता है और पढ़ने के योग्य में पारिभाषिकता अधिक आगई है। श्री रामानं के दोनों लेख, सदा की तरह, विवेचना-युक्त हकीकतों से पूर्ण हैं, अतएव प्रभावकारी हैं। संबंधी दोनों लेख समयोपयोगी और आवश्यक हैं साहित्य-सम्मेलन के वर्तमान अधिकारि-मण्डल प गोला चतुर्वेदीजी ने फेंका है, वह उनकी स्पष्टव भावुकता के सर्वथा अनुकूल है। वह उनके निर्लिप्तता और अन्तःकरण की निर्मलता पर प्रकाश डालता है। कविताओं में 'आँसू, भारतीय आँसू हैं और उसका आनन्द दक्षिण', शुल्क सवकुछ आँसू है। 'जातीय-जीवन' मैंने कोई एक साल प एक अछूत पाठशाला में अछूत-बालकों के मुँह से संपादकीय-टिप्पणियों के संबंध में पिछले किसी सम्पादकजी ने पाठकों को निराश कराना चाह उनके इस विनय ने उनकी आशा को और बढ़ा आशा है, हिन्दी-पाठकों की सेवा करने की उनकी पा इस विनय को पराजित करने में सफल होगी।

'विशाल भारत' का विज्ञापन पढ़ते ही उसके के संबन्ध में मेरे मन में इतने अनुमान हुए थे— बनारसीदासजी के संपादकत्व में यह प्रवासी पत्र होगा। (२) श्री रामानन्दजी चटर्जी के में विशाल-भारत-संघ का मुखपत्र अर्थात् अखिल या अन्तर्राष्ट्रीय पत्र होगा या (३) 'माडर्नरिव्यू संस्करण होगा। वर्त्तमान विशेषताओं के अतिरिक्त इनमें से एकाधिक विशेषता और न हो तब तक मुझ को सन्तोष होना कठिन है। जब तक किसी पत्र विशेष कार्यक्षेत्र न हो, वह देश समाज और धर्म कमी के पूरा करने के लिए न पैदा हुआ हो, तब जन्म और जीवन को मैं विशेष आवश्यक या नहीं समझता। 'विशाल भारत' के पास जैसी क्षमता है उसको देखते हुए उससे ऐसी आशा

वत नहीं है। भाई बनारसीदासजी ने तो हिन्दी की सेवा को पने जीवन का एक ध्येय ही बना लिया है; पर बाबू रामा- न्दजी के 'हिन्दी-प्रेम' पर मित्रों में टीका-टिप्पणी हुआ रती है। आशा है 'विशाल-भारत' इन टीका-टिप्पणियों का र्ग बन्द कर देगा।

वर्तमान—समस्त हिन्दी मासिकों में 'त्यागभूमि' वशालभारत' को अपने हृदय के अधिक नज़दीक पाती है। अपनी तथा 'त्यागभूमि' की तरफ से 'विशाल भारत' को म, सद्भाव और सहानुभूति का संदेश भेजता हूँ।

पत्र 'त्यागभूमि' के आकार का है। पृष्ठ-संख्या लगभग ा सौ और वार्षिक मूल्य ४) रु० है। मिलने का पता है—

९१, अपर सर्कूलर रोड़, कलकत्ता।

ह० उ०

रस्वती (वार्षिकाङ्क)

संपादक—श्री पदुमलाल पन्नालाल बख्शी बी० ए० तथा ० पं० देवीदत्त शुक्ल, इंडियन प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित। ० सं० ३०४, वार्षिक मूल्य ६॥) रु० इस अंक का मूल्य १॥)

सरस्वती, ने पिछले २९ वर्षों में हिन्दी-साहित्य की जो छ सेवा की है उसे देखते हुए यह वार्षिक अंक प्रकाशित रने का आयोजन सर्वथा उसकी मर्यादा और प्रतिष्ठा के य ही कहा जा सकता है। क्योंकि हिन्दी के मासिक हित्य में जहाँ 'सरस्वती' ने कई नवीन प्रथाओं का अविर्भाव या है, वहीं वार्षिकाङ्क प्रकाशित करने के उद्योग में भी ही सब से पहले अग्रसर हुई है। प्रस्तुत विशेषांक में भ्रमण, ल वर्णन, कथा-कहानी, उपन्यास आदि मनोरंजक एवं रस साहित्य का समावेश किया गया है। कई हानियाँ तो इतनी सुन्दर है कि बार-बार पढ़ने को जी ाहता है; किन्तु इसी के साथ-साथ कुछ कहानियाँ ऐसी ी हैं जिन्हें पूरा पढ़ना भी कठिन हो जाता है। श्री अवध पाध्याय का प्रारंभिक लेख अत्यन्त रूक्ष होने के कारण ऐसे रस-साहित्य के संग्रह में उसका रहना समुचित नहीं जान ड़ता। श्रीसंतराम बी० ए० का 'काश्मीर वर्णन' संक्षिप्त ोने पर भी अच्छा है। कुछ सचित्र कहानियाँ भी इसमें दी गई हैं; किन्तु उन्हें पढ़ कर और चित्रों को देख कर यही जान पड़ता है कि ये कहानियाँ चित्रों के लिए लिखी गई हैं, कहानी के लिए चित्र नहीं बनवाये गये। 'दर्पण' शीर्षक कहानी आज से लगभग चार वर्ष पूर्व कानपुर के "हिन्दी मनोरंजन" में इन पंक्तियों के लेखक द्वारा (अनुवाद रूप में) छप चुकी है। काव्य-कल्पना, काल-रात्रि और एकान्त-वास शीर्षक कहानियों में मानव-स्वभाव की विविध भावनाओं का बड़ी उत्तमता-पूर्वक चित्रण किया गया है। मृत्यु-शय्या सामाजिक मनोभाव का उत्तम आदर्श सामने रखती है। इतिहास-समीक्षा, अजंता और लुका-छिपी शीर्षक सचित्र लेख अपने ढँग के अच्छे हैं। कवितायें भी दो तीन बड़ी भावपूर्ण हैं। शरद् बाबू के "स्वामी" नामक छोटे से उपन्यास का पूरा अनुवाद भी इसमें दे दिया गया है, जो कि मनोरंजक है। प्रत्येक लेख के शीर्षक-चित्र भी उसके नाम अथवा भाव के अनुरूप बनाये गये हैं। कई रंगीन चित्र बढ़िया हुए हैं। सादे चित्र और छपाई के विषय में तो इंडियन प्रेस का नाम ही काफ़ी है। सारांश, इस आयोजन में संपादक और प्रकाशक ने जितने समय, शक्ति और सम्पत्ति का उपयोग किया है, वह बहुत कुछ सफल हुआ है। और डेढ़ रुपया जैसे सुलभ मूल्य में इतना बड़ा अंक देकर तो आप लोगों ने सर्व-साधारण पर बहुत ही उपकार किया है। अंक संग्राह्य है। इस सफलता पर हम आप लोगों को बधाई देते हैं।

साहित्य-मीमांसा

लेखक—श्री पं० किशोरीदासजी वाजपेयी शास्त्री।

प्रकाशक—साहित्य रत्न-भंडार आगरा। पृष्ठ संख्या ५०, मू० ।)

इस पुस्तक में लेखक ने साहित्य शब्द की उत्पत्ति से लगाकर उसके वर्त्तमान आलोचना-काल तक की संक्षिप्त मीमांसा की है। पुस्तक चार अध्यायों में विभक्त है। साहित्य-विषयक प्रारम्भिक जानकारी के लिए यह पुस्तक बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी। लेखक का प्रयत्न प्रशंसनीय है।

गोपीवल्लभ उपाध्याय

[स्थानाभाव के कारण 'साहित्य-सत्कार' इस अंक में नहीं जा सका। संपादक]

सम्पादकीय

मगनलाल भाई जीवित हैं

यं० इं० और 'नवजीवन' में महात्माजी के हृदय-विदारक महाशोक और महादेव भाई के विलाप को पढ़कर भी अब तक मुझे विश्वास नहीं होता कि मगनलाल भाई हम लोगों को दग़ा देकर चल बसे। महात्माजी की उस मूर्छा के दिन, जब कि तमाम लोगों के चेहरे मुरझा गये थे, एक मगनलाल भाई ही थे जिनका खिला हुआ चेहरा अपनी तेजस्वी आँखों से एकटक महात्माजी के चेहरे को निरखता हुआ हाथों से पाँवों में सोंठ मलवा रहा था। वह चित्र मेरी आँखों के सामने ज्यों का त्यों खड़ा है। अब मैं कैसे मानूँ कि मगनलाल भाई दुनियाँ में नहीं हैं? मगनलाल भाई तो उस दिन मरेंगे जिस दिन आश्रम सारा उजड़ जायगा, नेस्तनाबूद हो जायगा और खादी नाम की कोई चीज़ भारत में न रह जायगी। जब तक आश्रम की मिट्टी आश्रम की हद में मौजूद है, जब तक खादी का नाम तक सुनाई देता रहेगा तब तक किसका सामर्थ्य है जो मगनलाल भाई को जीवित न रहने दे? उनका पाञ्चभौतिक शरीर न रहने पर भी उनके पवित्र कार्य तो हमें स्फूर्ति देने के लिए, राह दिखाने के लिए और उनकी अमर आत्मा हमें आशीर्वाद देने के लिए, हम पर अपनी छाया करने के लिए सदा हमारे सामने ही हैं। और जब तक हमारा यह विश्वास है तब तक हम क्यों मानें कि मगनलाल भाई हमसे दूर हैं? मनुष्य का सच्चा जीवन तो उसके कार्य हैं। अतएव अगले अंश में हम उनके उन पवित्र कार्यों का स्मरण करेंगे जिन्होंने उन्हें यह अमरता प्रदान की है और उनकी तरह हम अपने जीवन को भी अमर बनाने की कुंजी खोजेंगे। यदि हम सचमुच ऐसा करें तो इससे बढ़कर आश्वासन इस समय हमारी ओर से पू० महात्माजी को और मगनलाल भाई के दुखी और क्या दे सकते हैं? और मगनलाल भाई के ईश्वर से प्रार्थना करने की हमें आवश्यकता ही क्या तो हमारी ऐसी प्रार्थनाओं के पहले ही, अपने पर, परलोक में किसी आश्रम के अधिष्ठाता बन

नवजीवन आ रहा है

देश के कोने-कोने से यह आवाज़ आ रही है भविष्य में यहाँ कुछ उथल-पुथल होने वाला है। नाशील हृदय यह अनुभव कर रहा है कि देश में आ रहा है और फिर १९२१ के सपने देखे जा रहे युवकों की आत्मायें, थक-थक कर, दब-दब कर, कर, अब फिर अपना ज़ोर जमाती जा रही है; हुई शक्ति जाग्रत होकर हुँकार करने की चिन्ता में जवाहरलालजी ने विलायत से लौटते ही 'स्वा शंख महासभा के मंच से फूँका और तब से निरन्त घूम-घूम कर सोई हुई जनता और थके हुए लोगों और उठा रहे हैं। इधर सुभास बाबू जेल से छूट को जगाने में जुट पड़े। ब्रिटिश माल के बहि आवाज़ वे सारे बंगाल में गुँजा रहे हैं। श्री जम बजाज़ बंगाल-दौरे से अपने एक पत्र में लिखते हैं खादी-यात्रा में अच्छी सफलता मिल रही है, है देश में फिर नवजीवन आ रहा है। साथ अलग नवयुवकों को बनाने और संगठित धुन में जगह-जगह आश्रम खोल रहे हैं। कि जगाने और संगठित करने की भी योजनायें बन मजदूर तो जागृत हो ही गये हैं; वे तो अपने अधि कष्टों के लिए बड़ी-बड़ी हड़तालें करना भी सीख

कानपुर में विद्यार्थीजी ने प्युनिटिव टैक्स न देने की लड़ाई छेड़ रखी है। बारडोली में किसानों का सत्याग्रह अपना रंग अलग जमा रहा है तथा महात्माजी विदेशी वस्त्र के बहिष्कार की बात एक-एक कदम आगे बढ़ाते ही जा रहे हैं। लाला लाजपतरायजी ने भी घोषणा कर दी है कि महात्माजी के नेतृत्व में बहिष्कार का झण्डा खड़ा कर दिया जाय। पर मिल-मालिक कुछ पीछे हट रहे हैं। उन्हें देश-हित को प्रधानता देने का यह अच्छा अवसर उपस्थित हुआ है। इस समय वे चूक जायँगे तो, मुझे डर है, लोगों की सहानुभूति उनके साथ कम हो जायगी। इससे विदेशी-वस्त्र के बहिष्कार में, संभव है, कुछ समय ज्यादह भी लग जाय। महात्माजी ने तो यहाँ तक कह दिया है कि यदि देश की राजनीति में पड़े हुए भाई खादी-प्रचार का भार ले लें तो अकेले खादी के बल पर विदेशी-वस्त्रों का बहिष्कार किया जा सकता है। ये सब लक्षण हमें बरबस इस नतीजे पर चे जा रहे हैं कि देश में जल्द ही कोई चमत्कार होने वाला है और हमें उसके स्वागत के लिए अपने को अभी से तैयार रखना चाहिए।

ह० उ०

बम्बई के मिल-मजदूरों की गंभीर हड़ताल

१९२६ ईसवी से हिन्दुस्तानी मिल-मालिकों का यह डर बराबर बढ़ता जा रहा था यदि विदेशी कपड़े का स्पर्द्धात्मक आयात कम न कर दिया गया तो देश का वस्त्र-व्यापार गिर जायगा। इन लोगों ने इस स्थिति के प्रतिकार के लिए सरकार का दरवाज़ा खटखटाया। सिर तोड़ प्रयत्न करने पर सरकार ने एक टैरिफ बोर्ड की नियुक्ति की। इस बोर्ड ने आवश्यक जाँच-पड़ताल के बाद अपनी रिपोर्ट पेश की, जिसमें दो सिफारशें बड़े महत्व की हैं—

१—देशी वस्त्र-व्यापार की उन्नति के लिए यंत्रों की कार्यक्षमता बढ़ाई जाय, और

२—जिन मदों में आवश्यकता से अधिक खर्च किया जाता है उसमें कमी की जाय। इस बीच सरकार ने देशी मिलवालों को सन्तुष्ट करने के लिए विदेशी वस्त्रों पर थोड़ा सा आयात कर भी लगा दिया।

यन्त्रों की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए नये सुधरे हुए यंत्रों की संख्या बढ़ाना जरूरी है। नई-नई मशीनों के उपयोग के बिना थोड़े समय में अधिक उत्पादन-कार्य नहीं हो सकता। खर्च में कमी करने के लिए एजंटों का अँधाधुन्ध कमीशन, मैनेजर आदि उच्च पदस्थ अधिकारियों का विशाल वेतन, डिपाज़िट रूप में जमा होने वाला बहुतसा रुपया, सभा में उपस्थित रहने के लिए डायरेक्टरों को ललचाने वाली भारी फीस, पूँजी का मनमाना ब्याज, आदि मदों के खर्च में कमी करना आवश्यक है। परन्तु बंबई के मिल-मालिकों ने उलटा बेचारे गरीब मज़दूरों का पेट काटना ही, खर्च कम करने के लिए, उचित समझा!

मिलों की नवीन व्यवस्था

उक्त सिफारिशों को कार्य-रूप में परिणत करने के लिए मिल-मालिकों ने नीचे लिखे सुधार-प्रारंभ किये—

१—पहले के एक फ्रेम के स्थान पर मजदूर अब दो फ्रेम सँभाले।

२—अभी तक दो साँचों पर काम करने वाले आगे तीन साँचे सँभालें!

इस सुधार से मज़दूरों की विशेष हानि हुई है। अपने पहले वेतन या मजदूरी पर ही उन्हें पहले से दूना काम करना पड़ता है। मिलों में मजदूरों की संख्या भी अपने आप घट जाती है। यंत्रों में सुधार या परिवर्तन न होने के कारण मजदूर पुराने यंत्रों से इच्छित काम नहीं ले सकते। इससे भी काम के परिमाण पर मज़दूरी पाने वाले मजदूर नुक़सान उठाते हैं।

प्रश्न यहीं हल नहीं हो जाता। मिल-मालिकों ने इन सुधारों के साथ क्रमशः कुछ और भी सुधार अपनी मिलों में प्रारंभ कर दिये हैं जिनसे स्वभावतः ही मज़दूरों को हानि पहुँचती है। जैसेः—

१—कुछ मिलों में आठ घंटे काम लिया जाता था। अब वह बढ़ा कर कहीं ९॥ और कहीं १०॥ कर दिये गये।

२—कुछ मिलों में इस बहाने मज़दूरी कम कर दी गई कि पहले दी जाने वाली मज़दूरी आवश्यकता से अधिक थी।

३—मोटे कपड़े के बदले मिलों में महीन कपड़ा तैयार किया जाने लगा।

४—कुछ स्थानों में सूत के बदले नकली रेशम के कपड़े बनना शुरू हुए।

इन क्रमशः लादे गये सुधारों के कारण जब मज़दूरों की आमदनी पर लगभग १५) प्रतिमास का धक्का पहुँचने लगा, तब गत जनवरी महीने से मज़दूरों ने संगठित होकर इसके खिलाफ़ अपनी आवाज़ उठाई।

मज़दूरों की शिकायत

१—वर्त्तमान साँचों की दशा देखते हुए तीन साँचों पर एक मज़दूर अच्छी तरह काम नहीं कर सकता। यदि यह सुधार आवश्यक ही है तो मिलमालिकों को नई आविष्कृत मशीनें मँगानी चाहिएँ। कपास और अन्य सामग्री के गुणों में सुधार किया जाना चाहिए और मज़दूरों को इस बात का विश्वास दिलाना चाहिए कि इस सुधार के कारण उनमें से कोई भी बेकार न होगा।

२—जहाँ मज़दूरी घटा दी गई है वहाँ वह पूर्ववत् जारी कर दी जाय और काम के घण्टे न बढ़ाये जायँ।

३—मज़दूरों को उनके बनाये कपड़े के वजन पर मज़दूरी दी जाती है। अभी तक मज़दूर लोग मोटा कपड़ा बुनते थे। अब महीन बुनना पड़ता है। कपड़े के महीन होने के कारण उनका वजन घटना स्वाभाविक है। इस पर वज़न के भाव की दर बढ़ाना आवश्यक था। परन्तु यह भी नहीं हुआ। अतः दर बढ़ाई जाय।

४—रेशमी कपड़े के सम्बन्ध में भी उपर्युक्त शिकायतें लागू होती हैं।

५—आजकल की मँहगी में मज़दूर अपनी और अपने परिवार की जीविका का प्रबन्ध अच्छी तरह कर सके, इतनी मज़दूरी उसे देना चाहिए।

इसके अतिरिक्त मिल मालिकों की एक ठगी का उदाहरण यह है कि वे मजदूरों को ८॥ गज़ कपड़ा बुनने पर ७ गज़ की मजदूरी देते हैं और ग्राहकों से इसी कपड़े के ९ गज़ के दाम वसूल करते हैं।

जनवरी से आरम्भ किये गये इस आन्दोलन में प्रारंभिक सफलता बहुत थोड़ी रही। किन्तु इधर ता० २ जब कि मजदूरों का एक बड़ा समूह पिकेटिंग के लि कर रहा था, गोल्ड मोहर मिल के एक मजदूर श्री जाधव के सुपरिंटेन्डेन्ट पॉवर की गोली से मृत्यु इस आन्दोलन ने आशातीत ज़ोर पकड़ा और बात की बम्बई की लगभग सारी मिलें, डेढ़ लाख मजदूरों होकर बन्द हो गईं—उनमें ताले पड़ गये। मज़दूरों का इतना जबरदस्त और ऐसा संगठित प्रयत्न के इतिहास में यह पहली बार हुआ है! अब स निराश होकर मज़दूर अपने-अपने घर को लौट गये।

खेद इस बात का है कि इस आन्दोलन के प्रा ही मजदूर-संघ के नरम और गरम नेताओं में पर मत-भेद हो गया है। नरम-दल वालों में श्री श्री ना० म० जोशी और श्री बखले का, तथा गरम में श्री झाबवाला, निमकर, डांगे, आलतेकर और का नाम उल्लेखनीय है। पहले पक्ष की शर्तों का है कि मजदूरी की दर १९२५ के अनुसार क़ायम मजदूरों को दो की जगह तीन सांचों पर काम करने कुछ मिल-मालिकों ने व्यक्तिशः प्रबन्ध किया है। मिल ओनर्स असोसिएशन की अनुमति से सब मिल को एक साथ आरंभ करना चाहिए। और इस परिवर्तन की सूचना मजदूरों को पहले से ही चाहिए, जिससे गलत-फ़हमी न होने पावे। मालि मज़दूरों की एक संयुक्त कमिटी बनाई जाय और की शिकायतों का निपटारा करना ही इस समिति हो। तीन सांचों का नियम लगाना ही है तो मँगाये जाँय और सूत के प्रकार में तथा अन्य उचित सुधार किया जाय।

दूसरे पक्ष वालों का कहना है कि इन शर्तों काम के घंटे आठ ही रक्खे जाँय और मज़दूरों को इत तनख्वाह दी जाय कि वे सुख से अपना पेट पाल

मजदूर नेताओं का यह आपस का मत-भेद मालिकों से सहयोग न करने की उनकी अलग बम्बई की इस हड़ताल को एक गंभीर-तर समस्या दे दिया है। यदि मिलें देश के लिए हितकर और

हैं तो मजदूर नेताओं और मिल-मालिकों को परस्पर सहयोग का भाव रक्खे बिना दूसरी गति नहीं है। इस सहयोग का राज मार्ग है-दोनों एक-दूसरे के लिए थोड़ा-थोड़ा त्याग करें।

"वैदेशिक स्पर्धा के कारण देशी कपड़ा मँहगा हो गया है। मँहगा माल बाजार में जल्द बिकता नहीं। पड़ा रहता है। जब तक पुराना माल नहीं बिकता तब तक नया तैयार करने में हानि है। हमारे मिल-मालिकों की पुराण-प्रियता, उनके पुराने कल-पुर्जे, बीच के दलालों की नफ़ेबाज़ी, मज़दूरों की अयोग्यता और अज्ञान, सरकारी संरक्षण-नीति का अभाव, इत्यादि कारणों से यह परिस्थिति और भी जटिल हो गई है। ऐसी दशा में मिल-मालिकों को खर्चा घटाने और थोड़े समय में ज्यादह माल तैयार कराने के सिवा कोई रास्ता नहीं है। इससे आरम्भ में कुछ मजदूरों को जरूर ही बेकार होना पड़ेगा। परन्तु बाजार के स्थायी हो जाने पर और देशी कपड़े की माँग के बढ़ते ही बेकार मजदूरों की फिर आवश्यकता पड़ेगी तथा धीरे-धीरे अधिक संख्या में मज़दूरों की नियुक्ति अनिवार्य हो जायगी। मजदूरों की दूरदर्शिता की परीक्षा का यही मौका है। अन्यथा विवश हो मालिकों को मिलें बन्द करनी पड़ेंगी। मिल-मालिकों को तो ऐसा प्रबन्ध करना है कि जिससे कपड़े की कीमत खासी कम हो जाय" यह मत एक तरह से ठीक है; पर जब तक ऊपर बताये तमाम बड़े बड़े खर्च बंद नहीं किये जाते तब तक मजूरों का असन्तोष कैसे कम हो सकता है? मिल मालिकों को भी चाहिए कि वे मजदूरों के कष्टों पर विचार करें और उनके न्याय्य अधिकारों की हत्या करने से बाज़ आवें। मिलों की हड़ताल का यह मसला किस तरह तय होता है, मिल मालिक और मजदूर किस प्रकार अपने-आप दूरदर्शिता से काम लेकर इस जटिलतर समस्या को हल करते हैं, इस बात की ओर सारे राष्ट्र का ध्यान बड़ी चिन्ता के साथ लगा हुआ है। हम भी इस हड़ताल के परिणाम की बड़ी उत्सुकता से प्रतीक्षा करते हुए आज यहीं विश्राम लेते हैं।

का०

हिंदी सा० सम्मेलन के पदाधिकारी

संस्थायें कार्य के लिए बनाई जाती हैं; पर, आगे चल कर, संस्था मुख्य बन जाती है और कार्य एक कोने में रक्खा रह जाता है। संस्था पर कब्जा रखने और कब्जा करने के लिए झगड़े शुरू हो जाते हैं और दोनों तरफ की प्रायः सारी शक्ति आपस के लड़ाई-झगड़ों में खर्च होती रहती है। ऐसी स्थिति तब पैदा होती है जब या तो संस्था पर जिनका कब्जा है वे कार्यार्थी और पुरुषार्थी न हों, या दूसरे स्वार्थी और महत्त्वाकांक्षी पुरुष उसे हथियाना चाहते हों। यह दूसरी स्थिति तब और तभी उत्पन्न होती है जब संस्था की प्रतिष्ठा खूब जम जाती है अथवा संस्था के पास धन-संपत्ति विपुल हो जाती है। इसी लिए, कम से कम भारत जैसे देश में तो, यह नियम अनिवार्य रूप से होना उचित है कि उनके पास स्थायी कोष न रहे। दूसरा नियम यह होना चाहिए कि जो लोग संस्था के मूल उद्देश के खिलाफ काम करते हों, आपस में दल-बन्दी करके संस्था का धन झगड़ों में खर्च करते हों, अथवा निरंकुश हो गये हों, उन पर संस्थाओं का भार न रहना चाहिए। आज मन्दिरों, तीर्थ-स्थानों और मठों का जो हाल हो रहा है उसका कारण यही है कि एक तो धन बिना परिश्रम के मिल जाता है और दूसरे समाज का कोई अंकुश उन पर नहीं। इससे नसीहत लेकर हमें अपनी सार्वजनिक संस्थायें इन दोषों से बचानी चाहिए, अन्यथा इनका भी भाग्य मन्दिरों आदि की तरह होकर रहे तो आश्चर्य नहीं।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन आज इसी अवस्था में चक्कर खा रहा है। ऐसा जान पड़ता है कि वर्त्तमान पदाधिकारियों से बहुतेरे लोग असंतुष्ट हैं। डेढ़-दो साल से यह ध्वनि बराबर कानों पर आ रही है। अब की तो पं० बनारसीदास जी चतुर्वेदी ने अपने 'विशाल भारत' में अपना इस्तग़ासा ही पेश कर दिया है। उन्होंने वर्त्तमान पदाधिकारियों पर इतने अभियोग लगाये हैं—

१—दलबन्दी द्वारा एक साहित्य-संस्था के वायु-मण्डल को दूषित करना।

२—महात्मा गांधी के साथ दक्षिण-भारत के हिन्दी-प्रचार-संबन्धी कार्य में बड़ी अदूरदर्शिता से काम लेना।

३—शासन-व्यवस्था-संबन्धी अनुचित कार्य।

४—परीक्षामन्त्री का यह जानते हुए भी कि उनके पास समय नहीं है, मन्त्रिमण्डल में बना रहना।

'विशाल भारत' की उसी संख्या में पं० ज्योतिप्रसाद 'निर्मल' का भी एक लेख सम्मेलन पर है; जिसमें बताया गया है कि—

१ – वर्त्तमान मन्त्रिमण्डल ने २६०००) रु० सम्मेलन को अपने समय में दिया है।

२—प्रचार का काम भी काफ़ी बढ़ गया है। २५०) देने वाले ८ से बढ़कर ३२ हो गये; हितैषी नहीं से १५२ और साधारण सदस्य १५ से १८३ हो गये।

३—परीक्षार्थियों की संख्या ६६४ से २०५६ हो गई। पत्रों की संख्या ३००० से ९-१० हज़ार होगई।

४—सम्मेलन की प्रकाशित पुस्तकों की संख्या २८,८७६ (मूल्य १४६५९॥)) से बढ़कर ४०,००० (मूल्य १९ हज़ार) हो गई।

आपने यह भी बताया है कि सम्मेलन संबन्धी वर्त्तमान कटुता का मूल कारण है हिन्दी-विद्यापीठ सम्मेलन के अधीन रहे या अलग, इसके संबन्ध में श्रद्धेय टंडनजी तथा वर्त्तमान मन्त्रियों का मतभेद। टंडनजी दूसरे पक्ष में थे।

दोनों पक्षों की बातें पढ़कर एक तटस्थ आदमी तो इसी नतीजे पर पहुँचता है कि एक निष्पक्ष-कमिटी जाँच के लिए बनाई जाय और उसकी सिफ़ारिशों के अनुसार सम्मेलन की भावी गति-विधि रक्खी जाय। पं० बनारसीदासजी का यह प्रस्ताव बिलकुल निर्दोष, बहुत समयोपयोगी और आवश्यक है। हां, इतनी बात ज़रूर है कि यह आंदोलन केवल वस्तुस्थिति के आधार पर, सम्मेलन के हित के लिए, सिद्धांतों और कार्य प्रणालियों की आलोचना प्रत्यालोचना द्वारा होना चाहिए; व्यक्तिगत निन्दा-स्तुति और ईर्षा द्वेष से प्रभावित होकर नहीं।

अब रही मत-भेद के मूल की बात—हिन्दी-विद्यापीठ सम्बन्धी। मेरी अपनी राय इस संबन्ध में यह है कि टंडन जी जैसे सम्मेलन के अनन्य-सेवक के मतभेद और उसके फल स्वरूप उनकी उदासीनता एवं लोकभ्रम के दुष्परिणाम वर्त्तमान मन्त्रिमण्डल के ध्यान में उसी समय आ जाने चाहिए थे। फिर विद्यापीठ का सम्मेलन के अधीन रहना या जुदा रहना कोई ऐसा धर्माधर्म का प्रश्न नहीं था, जिस पर कोई समझौता नहीं हो सकता था। कार्यार्थी पुरुष ऐसी परिस्थिति में दोनों अवस्थाओं में प्रसन्न रहना मामलों का मेरा सूक्ष्म अवलोकन तो मुझे इस पहुँचाता है कि जब तक कोई व्यक्तिगत राग-द्वे तह में न हो तब तक ऐसे छोटे मामले इतना पकड़ते। आशा है, दोनों पक्ष के लोग अपना आ टटोल कर देखेंगे और इस बात का सच्चे दिल से करेंगे कि उनके व्यक्तिगत दोषों से सम्मेलन की हा प्रकार न होने पावे। संस्था का हित हम सदा कब्जा करके या रखके नहीं, बल्कि कभी कभी उस कर ही भली भांति कर सकते हैं।

अ० भा० मराठी साहित्य-सम्मेलन ग्वालियर

स्वाधीनता का भाव मनुष्य के अंदर सब से प्र है। दासता तो वन-भर पशु भी स्वीकार नहीं कर कोई मनुष्य-समाज यदि गुलामी की जंजीर में जकड़ा हो तो उसके कष्ट, और संताप का पूछना ही क्या अब अपनी गुलामी के बंधनों को तोड़ देने के लि गया है और इसकी प्रतिध्वनि हमें, देश की प्रत्ये प्रत्येक सभा, प्रत्येक शिक्षित घर में सुनाई देती है। सम्मेलन यों एक भाषा की उन्नति, विस्तार और अभि तो ज्ञान-संवर्द्धन करने वाली संस्थायें हैं। परंतु देश का मन, राष्ट्रीय-स्वाधीनता की बातों में इतना है कि जब तक इस भाव की झलक कहीं नहीं दिखा तब तक लोगों का जी उससे नहीं भरता। ग्वालियर ही हुए मराठी साहित्य सम्मेलन के कार्य-क्रम पीठ पर

मराठी आमुची बोली, शिवाजी आमुचा रा
गनीमी आमुचा कावा, मराठी आमुचा बा

—इन चार सूत्रों में महाराष्ट्र की राष्ट्रीय दर्शन कर मुझ जैसे सैकड़ों का हृदय फड़क उठा। कि भाषा और व्याकरण-सुधार-संबन्धी विषयों में लोगों को रुचि होती थी; पर काव्य-सम्मेलन में टेकाड़े ने 'शिलेदार' का आवाहन किया और श्री

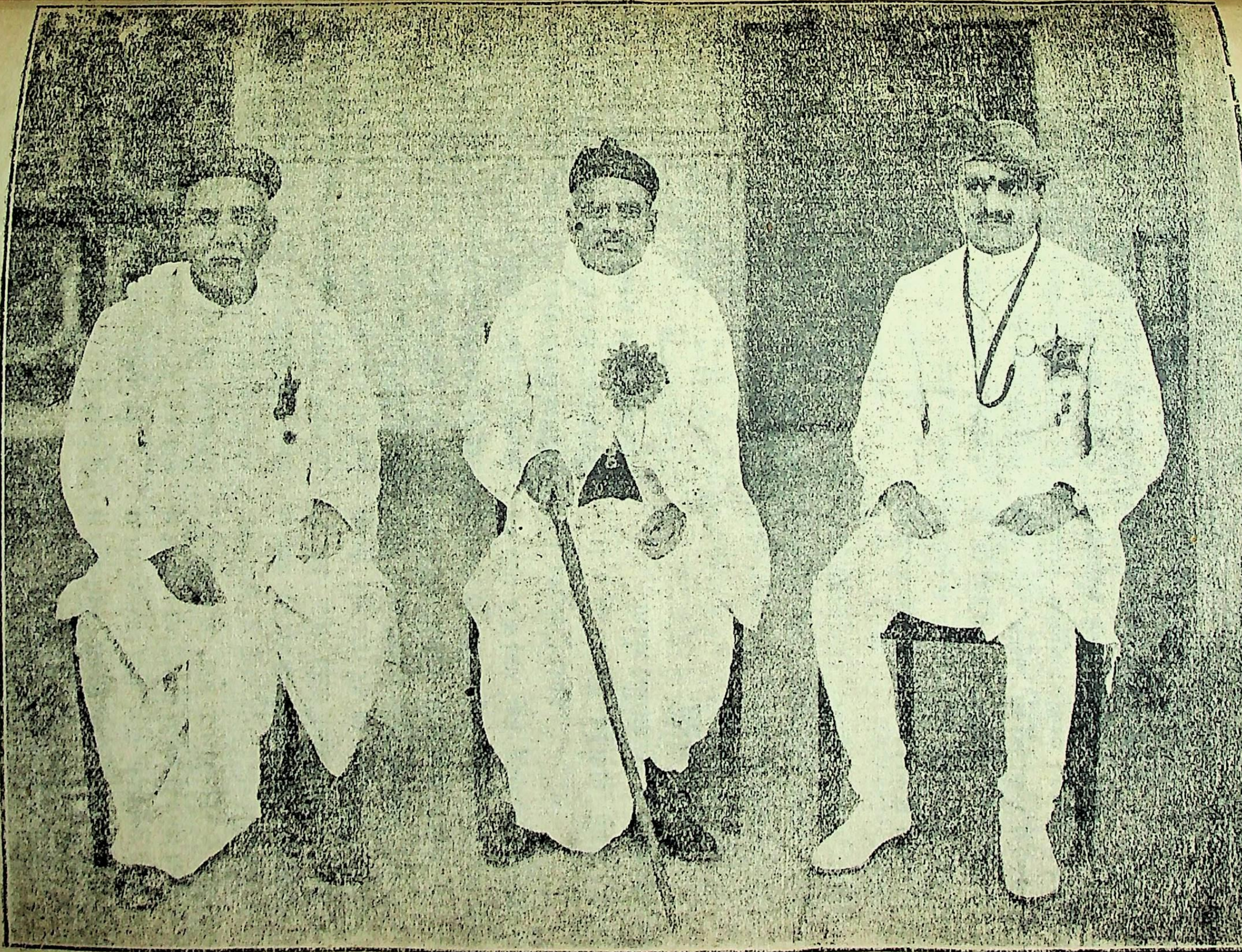

श्री० चिं० वि० वैद्य (स्वागताध्यक्ष), श्रीयुत अणे (अध्यक्ष) श्री सरदार आंग्रे (कार्याध्यक्ष)

'तो पहा महात्मा आला' की घोषणा की, एवं ग्वालियर की सेना के एक सिपाही ने विदेशी वस्त्र के बहिष्कार पर कविता पढ़ी, तब ऐसा मालूम होता था मानों, लोगों को अपने दिल की चीज़ मिल रही है। स्वागताध्यक्ष श्री० चिन्तामणि विनायक वैद्य का भाषण अपने वृद्ध इतिहास-ज्ञान और भाषा भक्ति से भरा हुआ था; परन्तु सम्मेलन के अध्यक्ष श्री० अणे ने तो अपने अस्खलित मौखिक काव्यपूर्ण विवेचनात्मक भाषण से श्रोताजनों को चकित और मुग्ध कर लिया। उन्होंने आरम्भ तो किया यह कह कर कि मैं 'साहित्य-सेवी' नहीं हूँ और इस पद के सर्वथा अयोग्य हूं परन्तु अपने ही भाषण से आपने 'वदतो व्याघात' का सुंदर उदाहरण पेश कर दिया। स्थानाभाव से इन औ का स्वाद पाठकों को चखाने में असमर्थ हूँ।

प्रस्तावों में एक प्रस्ताव ने मेरा ध्यान विशे आकर्षित किया। वह है अखिल महाराष्ट्रीय शार (Academy) स्थापना के संबन्ध में। इससे साहित्य की अच्छी अभिवृद्धि होने की आशा की जा है। ग्वालियर जैसे मराठी प्रांत से दूर स्थान में पूर्वक सम्मेलन हो जाने का प्रधान श्रेय है, सा कार्याध्यक्ष सरदार आंग्रे साहब की कर्तृत्वशक्ति को।

हृ

चित्र-दर्शन

अभिमन्यु

विष्णोःस्वसुर्नन्दकरः स विष्णवायुध भूषणः
रराजातिरथः संख्ये जनार्दन इवापरः ॥ १ ॥

द्रोणपर्व, अध्याय ४९

द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, कर्ण, भोज और शल्य इन छः महारथियों द्वारा वीर अभिमन्यु घेरा गया और इन छहों ने जब उसके घोड़े तथा सारथी को मारकर रथ, धनुष एवं कवच को तोड़ दिया; तब वह कुसुम कोमल शरीर वाला घायल बाल-वीर क्षण भर ज़मीन पर बैठ गया और सोचने लगा कि अब क्या करूँ? टूटा हुआ धनुष नीचे पड़ा है, तूणीर में केवल दो ही बाण बचे हैं, कृपाण तो कभी से टुकड़े टुकड़े हो गया था। सारा शरीर बाणों से छिद गया, फिर भी समरभूमि में कहीं चुपचाप बैठा जा सकता है? चारों तरफ से बाणों की वर्षा बराबर हो रही थी। शरीर में चुभे हुए बाण उसने निकालना शुरू किये जमीन पर से चक्र लेकर लड़ता हुआ वह अतिरथी सौभद्र समरभूमि में उस समय दूसरे कृष्ण के समान शोभा देने लगा।

ज्ञान-दीप

जब सारा संसार अँधकार-मय हो जाता है, अपना रास्ता साफ साफ नहीं दिखाई देता, तब किंकर्तव्य मूढ न होकर अपने मार्ग में आगे बढ़ते करते हैं तो उस अँधकार में भी एक भास्वान दी हाथ में लेकर एक देवी हमारी ओर आती हुई हमें देती है। प्रश्न यह नहीं कि हम अपने गन्तव्य कितनी दूर हैं और कब पहुँचेंगे। ऐसे गहन वन लिए तो यही जान लेना काफ़ी है कि हम अपने ठी पर तो हैं! आकाश में सहस्त्रों तारे टिम टिमा रहे पथिकों की श्रमहारिणी और उत्साह-दायिनी शक्ति की चंद्रिकोज्वल ज्योति ही में है। हे मनुष्य, जब वह नसीब नहीं होती तब तक प्रज्ञा-देवी के हाथ दीप देकर ही तू उसका अनुगमन कर।

इन दोनों चित्रों के लिए हम श्री लक्ष्मी-निवास के कृतज्ञ हैं।

नीचे लिखी सब पुस्तकें पोनी कीमत में मिलेंगी

किसी की एक, किसी की दो ऐसी ही प्रतियां हमारे पास बची हैं इसलिए जल्दी आर्डर भेज दें

अन्यथा समाप्त होनेपर हम इस रिआयत में न भेज सकेंगे

नवयुवकोपयोगी

अरविंद मंदिर में	।।।)
आदर्श गौरव	।।)
इतना तो जानो	।–)
उन्नति	।।=)
कल्याणमयी चिंता	।।)
कहावत रत्नमाला	१।)
कर्तव्य	१।।)
कथा-कहानी	।)
गांधीजी के निजी पत्र	।–)
गांधीजी की दिव्यवाणी	=)
गृह शिक्षक	।।।)
चरित्र-सुधार	।।=)
जातीयता (अरविंदघोष)	।=)
जातिभेद	।।।)
जातीय-शिक्षा	–)
म० टालस्टाय के विचार	।–)
दम्पति कर्तव्य-शास्त्र	१।।)
दृष्टान्त-सागर	१।)
नैतिक जीवन	१)
पंचभूत (रवीन्द्रनाथ)	१।।)
पंचरत्न (म० गांधी लिखित)	१)
नीतिधर्म (म० गांधी लिखित)	।)
प्रबन्ध पारिजात	।।–)

पाश्चात्य संसार और भारतवर्ष (मिस मेयो की पुस्तक का सारांश व उसका उत्तर)	१)
पुनर्जन्म	१।)
प्रेमपुष्प	।।)
बच्चों का होमियोपैथिक इलाज	।।)
बच्चों की कहानियां	≡)
बालकथा कहानी (प्रथम भाग) (ले० पं० रामनरेश त्रिपाठी)	।)
बाल रामकथा	।।।)
ब्रह्मचर्य सोपान	।)
भाव चित्रावली	४)
मतिराम ग्रंथावली	२।।)
मनकी मौज	।।)
मानव संतति शास्त्र	१।।)
मनुष्य जीवन की उपयोगिता	।।=)
रामतीर्थ के राष्ट्रीय संदेश	।।।)
सचित्र रामायण	२)
शिक्षा	।।)
सफलता	।।।)
संसार सुख साधन	।≡)
सफलता की कुंजी (रामतीर्थ)	।)
संसार को भारत का संदेश	१।।।)
स्वास्थ्य शिक्षा	१)
स्वास्थ्य	≡)
सुखी गृहस्थ	।।)

सौंदर्योपासक	।।)
विजयी जीवन	।≡)।।
हितकारक	≡)
भारतीय सभ्यता और उसका विश्वव्यापी प्रभाव	१)
भारतीय विद्यार्थी विनोद	।=)
निर्वाचन नियम	।–)
अरविन्द घोष के पत्र	।)
सुभाषित-मंजूषा	१।।)
उपदेश मंजरी	।।।)
सुखमार्ग	।=)
कहावत कल्पद्रुप	।।।)
हिन्दू विवाह	।।=)
बाल विवाह और विधवा विलाप	=)
संतान कल्पद्रुम	।)
युवाओं को उपदेश	।।–)
लोकोक्ति संग्रह	।=)

जीवन चारित्र

अरविन्द घोष	।।)
कृष्ण चरित्र	।=)
केशवचन्द्र सेन	१≡)
बा० कुंवरसिंह २) सजिल्द	२।।)
गेरीबालडी	१।।)
चरित्र चंद्रिका प्रथम भाग	१)
,, दूसरा भाग	१।)
आदर्श चरितावली	।=)

अपने मित्रों को भी इतनी सस्ती पुस्तकें मिलने की सूचना दे दीजिए—आधी और चौथाई मू० की पुस्तकें शुरू में लिखी हैं

मई सन् १९२८ मिलने का पता: -सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर

नीचे लिखी सब पुस्तकें पौनी कीमत में मिलेंगी

सेठ जमनालालजी बजाज	१)
टालस्टाय की आत्मकहानी	।।=)
लो० तिलक की जीवनी	१)
देशभक्त दामोदर	।।।)
दादाभाई नौरोजी	१।।)
परशुराम	३)
बोल्शेविक जादूगर अर्थात्	
लेनिन की जीवनी	।।)
मेजिनी (लें. लाला लाजपतराय)	।।।)
वीर बभ्रुवाहन	।।)
भारत के दशरत्न	।-)
मेजिनी	१।।)
(ले० राधामोहन गोकुलजी)	
मेवाड़ के महावीर	१।)
राष्ट्रीयरत्न पंचक	१)
आर्य पथिक लेखराम	१।)
लाजपत महिमा	३)
(लालाजी की सब से बड़ी जीवनी)	
सिराजुद्दौला	२)
सिकन्दर शाह	१।।=)
वीरश्रेष्ठ सावरकर	।।=)
स्वाधीनता के पुजारी	१।)
सनयाटसेन	।)
सम्राट श्रीहर्ष	।।।)
सम्राट् अशोक	१)
अब्राहम लिंकन २।।) सजिल्द	३)
भारतभक्त ऐंड्रयूज़	२।)
विदेशियों की दृष्टि में म०गांधी	=)
इटली के विधायक महात्मागण	२।)
जमशेदजी ताता	।)
न्यायी नौशेरवां	।।=)
नवरत्न	१)
भक्त प्रहलाद	।।=)

प्रेमपुजारी	१)
राजर्षि भीष्म	।)
भगवान महावीर [सजिल्द]	४।।)
भगवान महावीर [राजसंस्करण]	१०)
महाराष्ट्र नेता समदास	=)।।
वैज्ञानिक जीवनी	१)

कविता

अन्योक्ति तरंगिणी	।)
अयोध्याकांड	।।।)
आर्य सत्संग गुटका	।)
आलमकेलि	१)
ईश्वरदास	।।)
उपदेशरत्नमाला	≡)।।
ऊजड़ ग्राम	।=)
कविता कुसुम	।)
कविरत्नमाला	।=)
कंसबध	।=)
काव्यनिकुंज	।)
कारुण्यभारती	।=)
गांधी गौरव	।।।)
जागृतभारत(पं० माधवशुक्ल)	।।)
जगद् विनोद (पद्माकर)	।।।)
चुभते चौपदे	१।।)
(ले० पं० रामचरित उपाध्याय)	
चोखे चौपदे ” ”	१।।)
तपस्वी तिलक	२)
नवीन वीन	२)
निर्माल्य	१)
पद्यपुंज	।।)
पद्य पुष्पांजली	।=)
पंचों का पोलखाता	।=)।।
पद्य प्रदीप	।।)
पद्यपारिजात	।)

बाल विलास
बच्चों के गीत
बाल मनोरंजन
भोज प्रबंध
मातृ वंदना
मन की लहर
मिलन
संजीवनी
हिंदू गायन
त्रिशूल तरंग
हृदय बीणा
अनामिका
अर्जुन मोह
अखरावती
ऊषा
उर्वशी चम्पू
कबीर साहब की शब्दावली
मौर्य्य विजय
किसान (बा० मैथिलीशरणगु
पत्रावलि (,,)
श्रीकृष्ण गायन
गीतावली रामायण
दोहावली
बेगारी विलाप
बोध प्रकाशी
राजस्थानी गीत
राष्ट्रीय वीणा
सुधार गायन संग्रह
सुमन
पलासी का युद्ध
ज्ञानगजरा
हकीक़त बलिदान
पद्यरत्न प्रभा

सत्यनारायणकी कथा	।)
सुदामा चरित्र	।)

इतिहास

एतिहासिक सार	॥।=)
कांग्रेस का इतिहास	॥-)
ग्रीस का इतिहास	१=)
चेतसिंह और काशी का विद्रोह	।=)
पृथ्वीराज रासो	॥)
फ्रांस की राज्यक्रांति	१=)
प्राचीन भारत की सभ्यता का इतिहास तीन भाग	४॥)
मराठों का उत्कर्ष	१॥)
रूस में युगान्तर	२)
सन् ५७ का गदर	१॥)
संस्कृत साहित्य का इतिहास	२)
संसार की राज्यक्रांतियां	१॥=)
हिन्दूपाद पादशाही(सावरकर)	१॥।)
हिन्दू जाति का स्वातंत्र्य प्रेम	॥।≡)
हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास	।=)
भारतवर्ष का इतिहास	।-)
आधुनिक भारत	॥=)
इतिहास समुच्चय (हरिश्चन्द्र)	२)
चीन की राज्यक्रांति	१॥)
सचित्र बनारस	१॥)
ब्रिटिश भारत का आर्थिक इतिहास	१।-)
भारतीय आत्मत्याग	१।)
यूरोप में बुद्धि स्वातंत्र्य	१।)
रूस का पुनर्जन्म	॥।)
वेदोक्त राज्य	॥)
वीरोपाख्यान	१।)
सारनाथ का इतिहास	१॥)
सुलेमान सौदागर	१।)
हुमायूँनामा	१॥)
संसार के व्यवसाय का इतिहास	॥=)
सुयेन च्वांग	१।)
हिन्दुस्थान दो भाग	२)
भारत के हिन्दू सम्राट्	१।)

राष्ट्रीय

अंदमान की गूँज	॥=)
आप बीती (भाई परमानंद)	१॥)
एशिया निवासियों के प्रति यूरोपियनों का बर्ताव	।=)
ओसवाल समाज की वर्तमान स्थिति	।=)
जर्मनी की राज्यव्यवस्था	॥)
ट्रांसवाल में भारतवासी	।≡)
देशपूजा में आत्म-बलिदान (भाई परमानंद एम० ए०)	१।)
देशभक्त मेजनी के लेख	२)
देशभक्ति की पुकार(लाजपतराय)	१)
देशी करघा	॥।≡)
निर्वाचन नियम	॥-)
नेटाली हिन्दू	॥=)
पतितपावन	॥।-)
पंजाब का भीषण हत्याकांड	१॥।)
भारतीय चिन्तन	॥।=)
भारत और अंग्रेज	१॥)
प्रवासी भारतवासी	४।)
भारत और इंग्लैन्ड	१॥)
भारतीय राजस्व	॥।=)
भारतीय राष्ट्रनिर्माण	॥।=)
भारतीय शासन	॥।=)
भारतीय शासनसुधार	॥)
मनुष्य की अवस्था पर विचार	।)॥
माडरेटों की पोल	।)
मारवाड़ी सुधार	१॥)
मेरे जेल के अनुभव	।=)
यूरोपीय सभ्यता का दिवाला	।=)
राजनीति प्रवेशिका	।=)
राजनीति शब्दावली	।-)
राजपथ का पथिक	।-)
राजसत्ता	॥)
राजशिक्षा सोपान	≡)
राजसंबंधी सिद्धांत	१॥।)
शिक्षाप्रणाली (भाई परमानंद)	१)
शिक्षित और किसान	॥=)
सत्याग्रह और असहयोग	१॥।)
(ले० चतुर्सेनजी शास्त्री) सजिल्द	२।)
लाला हरदयाल के स्वाधीन विचार	१)
हिन्दू संगठन	॥।)
हमारा देश	॥।)
यंगइंडिया प्र० भाग	१)
यंगइंडिया दूसरा भाग	१॥)
यंगइंडिया तीसरा भाग	२)

(इन तीनों भागों में महात्मा गांधीजी के लेखों का संग्रह है। तीनों की पृष्ठसंख्या लगभग २४०० है। अन्दर कई चित्र हैं इस तरह १) में ६०० पृष्ठ पड़ते हैं। इसपर भी पचीस सैकड़ा कमीशन है)

अकाली दर्शन	॥।)
अमेरिका के संयुक्त राज्य की शासन-प्रणाली	१।)
अमेरिका कैसे स्वाधीन हुआ?	॥)
गांधीजी के ५१ व्याख्यान	१।)
पूर्ण स्वाधीनता का दावा	≡)
मनुष्य के अधिकार	।≡)

नीचे लिखी सब पुस्तकें पौनी कीमत में मिलेंगी

मिश्र की स्वाधीनता	२)
वर्तमान एशिया	२)
जातियों को संदेश (पालरिचार्ड)	।।–)
प्रजा के अधिकार	।।)
फौजी रहस्य [सचित्र] (ले०पं० बनारसी दासजी चतुर्वेदी)	१)

धार्मिक

अघमर्षण रहस्य (इंडियन प्रेस)	१)
अहिंसा तत्व	।≈)
आचार चंद्रिका	।।)
अवतार रहस्य	।।।)
कल्कि पुराण	१।।)
बुद्ध गीता	।।।)
शम्भू गीता	१)
सन्यास गीता	।।।)
विष्णु गीता	१)
सूर्य गीता	।।)
गुरु शिष्य संवाद	।)
गीता पंचरत्न	२)
गीता की भूमिका (अरविंद घोष)	।।।)
गीतामृत (भाई परमानंद)	१।।।)
गीता सत्य-योग	१।)
प्राचीन भगवद्गीता	।≈)
छह ढाला (जैनधर्म की पुस्तक)	≡)
जीवन वेद	१)
दिग्विज्ञान	१।।)
दैवी मीमांसादर्शन	१।।)
धर्मपद	।।।≈)
धर्म इतिहास रहस्य	२)
परलोक रहस्य	।)
भर्तृहरि शतक	।।)
भक्ति का मार्ग	।।)
योगासन	।)
योगदर्शन	२)
रामायण मूल (मोटा टाइप)	१।।)
रामायण मूल (गुटका)	।।)
वेदान्त सिद्धान्त दो भाग	१)
विचार दर्शन	१।)
श्रुतिसंगीतकम् [सचित्र] (वेदों के आदर्श मंत्रों का संग्रह)	।।)
जैन संप्रदाय शिक्षा	३।।)
दयानंद तिमिर भास्कर	४)
नित्यकर्मविधि	≡)
नित्यकर्म चंद्रिका	।।)
ब्रजभाषा विलास	२)
ब्रह्मयोग विद्या	१।)
भक्तामर कथा	१)
राजयोग	१।।)
विश्रामसागर	१।)
वैदिक उपदेशमाला	।।)
सद्गुरु रहस्य	२।।)
साधारण धर्म	१)
हठयोग संहिता	।।।)
योगशास्त्रांगतधर्म	।।)
योगत्रयी	।।)
जीवन मरण रहस्य	।≈)

स्त्रियोपयोगी

अंजना सुंदरी	।।)
आजकल की श्रीमती	।)
आदर्श महिला	।।≈)
कुल लक्ष्मी	।।)
गृहधर्म	।।।)
गृहणी शिक्षा	१।)
विदुषी गार्गी	।।)
गांधारी	।।।)
गृहणी कर्त्तव्य	२)

गुप्तसंदेश
जया (चित्तोड़ की रजपूतनी
दुलहिन
देवी द्रौपदी
नारीधर्म विचार
नारी रत्नमाला
पतिव्रता स्त्रियों की जीवनी
पत्रांजलि
प्राचीन हिन्दू माताएँ
सती पार्वती
पुत्री शिक्षक
वनिताविनोद
महिला महत्व
मानवती (राजपूतनी का विवा
बाल ब्रह्मचारिणी कुंती देवी
” ” सजिल्द
रमणी कर्तव्य
मीरांबाई की जीवनी
राजस्थान की वीर रानियां
सती-चरित्र-संग्रह प्रथम भा
” दूसरा भ
सती सतीत्व
सती सुचरित्र
स्त्री कर्तव्य शिक्षा
स्त्री शिक्षा
सती सारंधा
सती सीता
सीता बनवास
सती सुनीति
शकुन्तला
शर्मिष्ठा
शर्मिष्ठा और देवयानी
महारानी शैव्या
शैव्या और हरिश्चन्द्र

नीचे लिखी सब पुस्तकें पौनी कीमत में मिलेंगी

ी अरुन्धती	॥=)
नन्दी बाई	।।।)
ी ऊषा	॥)
ुपी खन्ना	१॥)
ी दमयन्ती	।)
री नीति	।=)
-जीवन	॥-)
ी पद्मनी	॥=)
ी सुकन्या	।।।)
क्ष्मी चरित्र	१)
धवा कर्तव्य	॥)
ती सुलोचना	१)
र बाला	=)
शु रक्षा विधान	।)
ी सामर्थ्य	।।।)
हासती वृंदा	१)
ी की चिट्ठी	२)
ती सुलक्षणा	॥)

उपन्यास

अपराधिनी	१॥)
अनोखी लीला	॥)
अविवाहिता	॥)
अमृत में विष	।=)
अजेय तारा	१॥)
सम्राट अशोक [सजिल्द]	३।)
अर्द्धांगिनी	।=)
अधखिली कली	२।)
अनाथ सरला	।।।)
अमृत और विष	५)
रण परिशोध	२।)
आलोकलता	१॥=)
आदर्श देशभक्त	१।)
आदर्श बलिदान	।=)
आत्म विजय	।।।)
आदर्श डाकू	३)
आदर्श मित्र	॥)
उदय प्रकाश	१।)
उमासुन्दरी	।।।)
उर्वशी	१)
उपदेशप्रद कहानियाँ	॥)
कर्तव्याघात [मौलिक उपन्यास]	२॥)
कलंकिनी	१।=)
कपाल कुंडला (बंकिमचंद्र)	।।।)
कृष्णकांत का वसीयतनामा ,,	१)
दुर्गेशनंदिनी ,,	१।)
कामिनी कांचन	३)
कमला	१)
कमला कुसुम	१)
कर्मपथ	२)
कर्मवीर	।)
क्लर्क का भाग्य	॥)
वीर कर्ण	१।)
कर्मफल	१॥)
कालेज होस्टल	।)
कुसुम संग्रह	१॥)
कृष्णकुमारी	।=)
कृष्णकांता आठ भाग	४)
गिरवी का लड़का	।=)
गुदगुदी	॥)
गृहलक्ष्मी	१।)
गौरी शंकर	॥=)
गल्पलहरी	१।)
गृह का फेर	॥)
गल्पांजली	।।।)
चंद्रधर	॥)
चंद्रनाथ	।।।)
चंद्रभागा	१॥)
चंद्रशेखर [बंकिमचंद्र]	१।)
चित्रशाला	१।।।)
चिंता	१॥)
दिलचस्प कहानियां	।=)
दुरंगी दुनिया	२)
दुलारी बहू	।।।)
देवकली	।=)
देशोद्धार	१)
देवदास	१)
दो बहिन	॥)
देहाती दुनियां	१॥)
नव्वाबी के अंतिम दिन	१।)
नव्वाब नंदिनी	।।।)
पतिमन्दिर	१॥=)
पंचवटी	।।।)
परिणिता	१)
पाप का फल	।≡)
प्राणनाथ	२।।।)
प्रायश्चित	३)
प्रिया	१॥=)
प्रेमिका	२॥)
प्रेम प्रसून (प्रेमचंद)	१=)
प्रेम प्रमोद (प्रेमचंद)	२॥)
फूलों की डाली	≡)॥
फूलों का हार	।।।)
विलासिनी	१॥)
बलिदान	१)
बसंत का सौभाग्य	।)
भारत प्रेमी	।।।)
भोजपुर की ठगी	॥)
मनोरमा	२॥)
मंगल प्रभात	५)

नीचे लिखी सब पुस्तकें पौनी कीमत में मिलेंगी

मायापुरी	२।।)
मृणमयी (बंकिमचंद्र)	।।।)
मेघनाथ बध	।।।)
मोहिनी	।।=)
मिलन-मंदिर	२।।)
युगल कुसुम	।=)
रजनी (बंकिमचंद्र)	।।=)
लवकुश	१।।।)
ललिता	।।)
लालपंजा	१।।)
लीलावती	१।।।)
बनदेवी	।।।)
बिमाता	२।)
वैवाहिक अत्याचार और मातृत्व	।।)
वीर रमणी	१।)
वीर राजपूत	१)
वीर वारांगना	।।)
वैज्ञानिक कहानियां	।)
बंग विजेता	।।।)
वनमाला	३)
बंदेमातरम्	१।।।)
श्यामा	।)
शांतिनिकेतन	१।)
शांता	।।।)
शाहज़ादा और फकीर	।।।)
शाही जादूगरनी	१।।)
शाही पतिपरायण	।।=)
शैतान की शैतानी	३)
शैलबाला	१)
सहधर्मिणी	।।।)
सर्वस्व समर्पण	४)
सर्पिणी	।।=)
सत्यप्रेम	।।)

सप्तसुमन	।।।)
सरला	१।।)
सखाराम (बालविवाह)	१)
सुखद सम्मिलन	≡)
सरोजबाला	।।)
सुहासिनी	।≡)
सुभद्रा	।।)
सूर्यास्त	।।।)
सुप्रभात	१।।)
सोने की प्याली	।।।)
रज़िया बेग़म दो भाग	१।-)
रसातल यात्रा	।-)
रागिणी	४)
राजसिंह	२)
सूर्य्यग्रहण–शिवाजी के समय का ऐतिहासिक उपन्यास) (अनु० बा० रामचन्द्र वर्म्मा)	मूल्य २।।) सजिल्द ३)
अमीर हमज़ा	३।।)
अनुचरी या सहचरी	।।।)
अधखिला फूल	।=)
आदर्श दम्पति	१)
आगकी चिनगारी	१)
एम० ए० बना के क्यों, मेरी मिट्टी पलीद की	२)
कंकण चोर	२)
कादम्बरी	२।।।)
कुमारी	१=)
कृष्णवसना सुन्दरी	१।।।)
घटना चक्र	२।)
चन्द्रशेखर	१।)
चंद्रमालती	।=)
जन्मभूमि	१)

जादू का महल दो भा
जादूगर
ठेठ हिन्दी का ठाठ
तीनफूल
देवी या दानवी
दानवी लीला
भीषण नारी हत्या
निर्धन की कन्या
पतिव्रत
प्रवासिनी
प्रेततर्पण
प्रेम का फल
प्रेमकान्त
प्रेमकान्ता सन्तति (आठ
प्रेमकान्ता (चार भाग)
फूलों का हार
बड़े घर की बड़ी बात
बालिकाहरण
फूलों का गुच्छा
भयानक बदला
भ्रमर
भागवन्ति
भारती
हेमचंद्र
हेमलता (तीन भाग)
रमणी रहस्य
भयंकर तूफान
मृणालिनी (बंकिमचंद्र)
लक्ष्मीदेवी
रामकृष्ण की गल्पें
लच्छमा
लीलावती
वारांगना रहस्य
रहस्य भेद तीन भाग

नीचे लिखी सब पुस्तकें पौनी कीमत में मिलेंगी

जकुमा ी	१।)
धारानी	।=)
चित्र जाल	।=)
चित्र परिवर्तन	२)
वाह कुसुम	१।)
षवृत्त	१।)
ाक्त प्रेम	१।)
श्राम बाग	१॥)
वाजी व रोशनआरा	।=)
तान की करामात	१॥)
ाज कंटक	२॥)
क़ैद औरत	१॥)
सोपान	।=)
सुन्दरी	१॥)
ाज	॥।)
र्णकान्ता चार भाग	२॥)
ार रहस्य	१॥)
स्वती चन्द्र	१॥।)
धे पंडित	१॥)
यानन्द	१॥)
ने की कंठी	१)
चंद्र	१॥=)
लता [तीन भाग]	२।)

नाटक

ाट् अशोक	१।)
चलायतन	॥)
खों का गुनाह	॥)
ंगिनी	१)
नी कर्ण	॥=)
लावती	।=)
लिमद मर्दन	≡)
हात्मा कबीर	१)
णार्जुनयुद्ध	॥=)
का खून	॥)

गरीब हिन्दुस्थान	१।)
गरीब किसान	॥।)
गंगावतरण	।=)
गुलामी का नशा	।≡)
गृहलक्ष्मी	१॥)
गौतमबुद्ध	॥।)
छद्मयोगिनी	।)
वीर कुमार छत्रसाल	१॥)
जनक नन्दिनी	२)
जयन्त	॥)
झखमारी	।=)
भक्त तुलसीदास	॥=)
देशदीपक	॥।)
दोधारी तलवार	॥)
धर्माधर्म युद्ध	॥।)
भक्त ध्रुव	॥)
देवी द्रौपदी	।=)
नलदमयन्ती	॥।)
नवीन भारत	॥)
नेत्रोन्मिलन	।≡)
परोपकार	१॥)
प्रफुल्ल	१=)
सत्याग्रही प्रह्लाद	१)
बालविवाह नाटक	≡)
भारतदर्पण	१)
भारत गौरव	१॥)
भारत विजय	॥।)
भीष्म-प्रतिज्ञा	॥।)
महाभारत	॥=)
महेन्द्रकुमार	॥)
मूर्ख मंडली	॥=)
महामाया	१)
मायावी	॥)
रणबांकुरा चौहान	१।)
राजारानी	॥।)

वर माला	॥)
महात्मा विदुर	१)
वीर पूजा	१॥)
वैधव्य कठोर दंड है या शांति	॥≡)
वीरांगना	॥)
शकुंतला	॥।)
सुभद्राहरण	।=)
संग्राम [प्रेमचंद]	१॥।)
सिद्धार्थकुमार	१।)
सीता	॥-)
सौभाग्यसुंदरी	॥।)
श्रवणकुमार	॥)
हिन्द	१)
हुब्बेवतन	॥)
हिन्दू की गाय	॥)
हिन्दू स्त्री	॥।)
महात्मा ईसा	॥।=)

[ले० श्रीवेचनशर्मा 'उग्र']

वीर अभिमन्युवध	॥)
आतशीनाग	॥)
आल्हू पुराण	॥=)
कलियुग की सती	॥।)
खूने नाहक	।≡)
चंद्रहास [बाबू मैथली शरण]	॥।)
चन्द्रावती	≡)
जयाजयन्त १।) सजिल्द	१॥।)
ज़हरी सांप	॥)
दलजीत सिंह	॥-)
दागी माल	॥)
नाट्यसंभव	।=)
नूरजहां	१=)
सम्राट् परीक्षित	१।)
पूर्वभारत	॥।=)
पांडवप्रताप	॥)
फ़न तमाशबीनी	।=)

प्रबोध चन्द्रोदय	१)
बूढ़ा वर	।)
भयंकर भूत	१।)
भुलभुलैयां	।≡)
मुद्राराक्षस	।।।)
महामाया	१)
राई का पर्वत	१।।।)
विद्या सुंदर	≡)
शकुंतला	।।।)
समय	।।)
सिलवरकिंग	।।)
सैदेहवस	।।)
स्वामी भक्ति	१।)
हुब्बेवतन	।।)
हिन्दू स्त्री	।।।)
चित्रांगदा अर्थात् अर्जुन और चित्रांगदा का स्वाभाविक प्रेम [ले० श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर] सचित्र	।=)

विज्ञान व कृषि

आयुर्विज्ञान	।)
आरोग्यता	।।)
अमेरिका का व्यवसाय	।=)
कृषि सुधार	।)
कृषि सार	१)
ताप	।=)
दुकानदारी	।।।)
भूमि	।।।)
रसायन संहिता	१)
व्यापार प्रवेशिका	।।।)
व्यावहारिक विज्ञान	२)
विज्ञापन विज्ञान	१।।)
अफीम की खेती	।)

साहित्य

अनुवाद संग्रह	।)
ईलियड काव्यसार	।=)
केशवकौमुदी प्र० भाग	२।।)
तुलसी साहित्य	।।)
नवरस तरंग	१)
प्रवेशिका हिन्दी व्याकरण	१)
पत्रसंपादन कला	१)
बिहारी रत्नाकर	४)
प्राचीन लिपि माला	२५)
बिहार का साहित्य	१।।)
राजकोष	१।)
विद्यापति की पद्यावली	२)
विनयपत्रिका [भगवानदीन]	।।=)
शब्दसुमन माला	≡)
हिंदी कवियों की अनोखी सूझ	।।)
हिन्दी कौमुदी	।।=)
हिन्दी पद्य रचना	।)
हिन्दी लिंग विचार	≡)
करघा कला	।।।)
कोष की कथा	।।≡)
भारत में रेलपथ	२।)
राजारानी	।=)
व्यापारिक पत्र व्यवहार [ले. श्रीकस्तूरमल बांठिया बी. काम]	१=)
हरफनमौला	१)
व्यंगचित्रावली	१)
युद्ध की झलक	।)
युद्ध परिचय	।)
भारतीय इतिहास का भौगोलिक आधार	।।।)
क्रियाकोष [जैनधर्म का ग्रन्थ]	२।)
खद्दर शिक्षक	।।)
चलन कलन	१।।)

तंत्र कौमुदी
देशी हिसाब
बनारस के व्यापारी
वृक्ष में जीव है
अलंकार प्रकाश
काव्य-निर्णय
देव और बिहारी
पद्मावत
बीसलदेव रासो
भाषाभास्कर
भाषा भूषण
रसिक प्रिया
रचना विचार प्र० भाग
" दूसरा भाग
रघुवंशसार
राग रामायण
साहित्य मीमांसा
साहित्य संगीत निरूपण
हिन्दी ट्रांसलेशन
हिंदी बंगला कोष
हिंदी भाषा का विकास
हिंदी व्याकरण
हिंदी भाषासार
हिंदी रचनाप्रणाली
पद्यप्रसून
आरोग्य विधान
विज्ञान और आविष्कार
विज्ञान प्रवेशिका प्र०
विज्ञान प्रवेशिका दूसरा
शुश्रूषा
अभिज्ञान शाकुंतल की
बहिष्कृत भारत
Key of Knowled
Philosophy) (Ch
M. A.)

तामिल साहित्य का सर्वोत्कृष्ट सुमन

तामिल-वेद

१४०० वर्ष पूर्व का प्राचीन अमूल्य ग्रन्थ

जिसमें

हृदय को ऊँचा उठानेवाले अमर, उज्ज्वल काव्यमय उपदेश हैं, धर्म और राजनीति का अत्यन्त सुन्दर और हृदयग्राही विश्लेषण है

और जो

नरेशों, राजनीतिज्ञों तथा राजसंचालकों के बड़े काम की चीज है, चरित्रगठन और ज्ञानप्राप्ति का स्फूर्ति-प्रद स्रोत है

विद्यार्थियों तथा मित्रों के लिये अत्यन्त उपयोगी उपहार

लेखक—दाक्षिणात्य ऋषि तिरुवल्लुवर

भूमिका लेखक—श्रीमान् सी. राजगोपालाचार्य्य

हिन्दीकार—श्री क्षेमानन्द राहत

इसका जर्मन, फ्रेंच, लेटिन आदि योरोपीय भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। हिन्दी के आधार पर मराठी और गुजराती अनुवाद तैयार हो रहे हैं।

इस २४८ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य केवल ॥=)

पता--सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर

पुस्तक-भंडार की बहुत सी पुस्तकें समाप्त हो रहीं

खरीददारों को जल्दी करनी चाहिए

त्यागभूमि के गत (आठवें) अंक में चौथाई, आधी और पौनी कीमत में दी जाने वाली पुस्त सूची दी गई थी। हर्ष की बात है कि इस अवसर से कई पाठकों और पुस्तकालयों ने अपनी अनुसार पुस्तकें मँगा कर लाभ उठाया। हमने गत अंक में यह भी लिख दिया था कि किसी की दो, किसी पुस्तक की तीन इस प्रकार हमारे पास पुस्तकें बची हैं। अतएव जिन भाइयों ने तक आर्डर न भेजे हों, उन्हें

तुरन्त ही आर्डर भेज देना चाहिए

ताकि फिर पीछे से निराश न होना पड़े। चौथाई और आधे मूल्य की पुस्तकों की सूची तो इसी में फिर से छपी है। पौने मूल्य की सूची त्यागभूमि के ८ वें अंक में छपी थी सो देख लें।

पुस्तकालयवालों को तो इस अवसर से पूरा लाभ उठाना चाहिए

दूसरा और तीसरा अंक समाप्त

त्यागभूमि का पहला अंक तो छप गया है। अभी उसके चित्र छप रहे हैं और बाइंडिंग बाकी है। जिन ग्राहकों को पहला अंक देना बाकी है, उनको आगामी अंक के साथ प्रथम अंक भी दिया जायगा। दूसरा और तीसरा अंक भी हमारे यहाँ नहीं रहा है अतएव जो भाई ये दो अंक हमें वापस भेज देंगे उनके हम बड़े कृतज्ञ होंगे। दोनों अङ्कों के बदले में हम

१) मूल्य की कोई पुस्तक मुफ़्त में भेज दें

हमारे पास चौथे अंक से आगे के अंक तो काफी संख्या में हैं। पहला अंक छप ही गया है।

दोनों अंक मिल जाने से हमारी फाइल पूरी हो जायगी।

ग्राहक सज्जन पत्र-व्यवहार करते समय अपना ग्राहक नंबर अवश्य लि करें अन्यथा हजारों ग्राहकों के रजिस्टर में उनका नाम खोजना बहुत कष्टदायक होता है। आशा है ग्राहक इस बात को ध्यान में रक्खेंगे।

व्यवस्थापक—"त्यागभूमि" अजमेर

पुस्तकें खरीदने का अपूर्व अवसर टि की

चौथाई, आधी और पोनी की

पुस्तकों की सूची आगे छपी है

हमारे पास किसी की एक प्रति, किसी की दो प्रति इस तरह पुस्तकें बची
भाइयों को मँगाना हो वे तुरन्त ही आर्डर भेजदें अन्यथा पुस्तकें समाप्त हो
सकेंगे। मंडल का अपनाही काम बड़ी तेजी से बढ रहा है। इसलिए अब हम बा
की पुस्तकों का पुस्तक-भंडार उठा रहे हैं। अतएव इतनी सस्ती पुस्तकें दी जा रही है

अपने मित्रों से भी इस की चर्चा कर दीजिए

मुफ्त में 'त्यागभूमि' मुफ्त

लाभ का लाभ और देश सेवा की देश सेवा

जो भाई 'त्यागभूमि' के छै ग्राहक बनाकर भेजेंगे, उन्हें **एक वर्ष तक**, चार ग्राहक
उन्हें **छै मासतक**, और दो ग्राहक बनाकर भेजेंगे उन्हें **तीन मासतक** पत्रिका मु

इतनी रिआयत हम क्यों कर रहे है ?

आप पूछेंगे कि लागत मूल्य से भी कम मूल्य रखने पर भी इतनी रिआयत क्यों की जा रही
निवेदन है कि यह पत्रिका शुद्ध सेवा भाव से निकाली गई ह। कोई व्यापारिक हेतु नहीं है।
बाहरी विज्ञापन भा इसमें नहीं छापे जाते जिस से कि अन्य पत्रों को काफ़ी आमदनी होजाय।

'त्यागभूमि' का उद्देश्य है

"निकट भविष्य में होने वाली शान्तिमय क्रान्ति के लिए लोगों को तैय्यार करना'
बस यही हमारा उद्देश्य है और यही हमारा लोभ है और इसी लिए हम चाहते हैं कि
किसी तरह से भी इसका संदेश घर घर में पहुंच जाय

क्या हम आशा करें कि आप इस पवित्र कार्य में ग्राहक बना
हमारा हाथ बटावेंगे

थोड़ा सा परिश्रम काफ़ी है

आप अपने स्थान के स्कूल, पुस्तकालय, वकील व अन्य शिक्षित लोगों के पास त्याग
नमूना लेकर जाइए। उन्हें इसका उद्देश्य, इसका सस्तापन, विज्ञापन न लेने की नीति,
और बालकों के लिए भी उपयोगीपन आदि बातें समझाइए। हमारा विश्वास है इतना प्रयत्न
आपको काफ़ी सफलता मिलेगी।

क्या आप अपने तथा देशके लाभ के लिए इतना परिश्रम करेंगे

(पी

, अजमेर से प्रकाशित
क पत्रिका
त्र
खिए:--
ा लेकर अवतीर्ण
मीधर वाजपेई
उठा। पराजय
रसाद पाराडेय
मदालसा, की
लक्ष्मणाचार्यजी
आध्यात्मिक
क' मद्रास
नीबेसराट
प्रदायक सा-
है मौलिकता
है। पत्रिका
(अजमेर)
। गया थोड़े
इका मिलना
हो रहा है।
उपाध्याय
ा ?

पुस्तक-भं

खरीद

त्यागभूमि के
सूची दी गई थी । ह
अनुसार पुस्तकें मँगा
की दो, किसी पुस्तक
तक आर्डर न भेजे

ताकि फिर पीछे
में फिर से छपी

द

त्याग
बाकी है । जि
दिया जाय
अंक हमें
१)

हमारे पा

ग्रा
करें अ
कष्टदार

'त्यागभूमि' के उद्देश्य

मि केवल बुद्धि की भूख बुझाने नहीं आई है । देश के कोने-कोने में और समाज के
हणीय उथल पुथल मचाने की धुन इसे सवार है ।

मि मनुष्यता और स्वाधीनता को एक ही वस्तु मानती है । वह उस राज्यप्रणाली के
प्रजा के सच्चे प्रतिनिधि प्रजा के हित के लिए प्रजा की सुव्यवस्था करें ।

म मानती है कि सत्य मनुष्य का परम साध्य और अहिंसा उसकी परम नीति है ।
ली, सीधी और मधुर होगी ।

मि असत्य, अन्याय, अत्याचार और असमानता की प्रबल विरोधिनी है ।

क कुरीतियों और दुर्बलताओं की यह दुश्मन है । समाज-सुधार में वह सदा आगे रहे
ां, मजूरों को तो वह अपने स्वजन समझती है और स्त्रियों एवं अछूतों के उद्धार को
ी सेवा करने में वह अपने बस कोई बात उठा न रक्खेगी ।

की अपेक्षा गाँव उसके हृदय के अधिक नज़दीक हैं । गाँवों को ऊपर उठाने और गां
का यह यत्न करेगी ।

र्यसनों, अश्लीलता तथा कामुकता के बढ़ाने वाले चित्रों, विज्ञापनों एवं पुस्तकों का यह
भूमि स्वयं कोई बाहरी विज्ञापन नहीं छापती ।

ागभूमि खादी और चर्खे को भारत का युगधर्म मानती है और अपने जीवन का पवित्र
ं—लोकरुचि की अंधी आराधना नहीं उसका सहैतुक उन्नयन त्यागभूमि का जीवनोद्दे

भूमि' के ग्राहक आपको क्यों होना चाहिए

ज़रा ख़याल कीजिए

से पहले और केवल मूल्य ही को देखा जाय तो और पत्रिकाओं के हिसाब से 'त्याग
म से कम ६) या ६॥) रक्खा जाना चाहिए था जैसा कि इतने ही पृष्ठों की अन्य पत्रि
त्यागभूमि का मूल्य तो डाक व्यय सहित केवल वार्षिक ४) ही है ।

त्यागभूमि' गंदे और लुभावने विज्ञापनों में आपको नहीं लुभाती । एक मासिक पत्रिका
पनों की आमदनी कम नहीं होती । फिर भी पाठकों के हित के ख़याल से त्यागभूमि
स दूषित आय से अछूती रखना चाहती है । इससे पाठक और उनका धन भी धूर्त वि
चंगुल से बचता है, और वे अपनी शक्ति, समय और द्रव्य कहीं अच्छे कामों में
। पाठक देखेंगे कि त्यागभूमि के इस त्याग को देखते हुए अपनी घटी को पूरी करने के
ा वार्षिक चन्दा अन्य पत्रिकाओं से भी अधिक रखना चाहिए था ।

—परन्तु त्यागभूमि का उद्देश साहित्य का व्यवसाय करना नहीं है
ष्ट सहकर भी पाठकों की सेवा करने के लिए आई है ।

तएव पाठक त्यागभूमि से तभी अधिक से अधिक सेवा ले सकेंगे जब वे अधिक से अ
उसके ग्राहक बनकर व बनाकर उसके जीवन-संघर्ष को सौम्य करने में सहायक होंगे

ठ घ
ज
पढ़ना
पूर्ण
रखने
दृष्टि
दामों
शरीर
से उ
'इत
की
तेज

सेठ घनश्यामदासजी विड़ला, सेठ जमनालालजी वजाज आदि द्वारा स्थापित सस्ता-मंडल, अजमेर से प्रकाशित

भारतवर्ष में सब से सस्ती, सचित्र उच्चकोटि की

त्यागभूमि

जीवन, जागृति, बल और बलिदान की मासिक पत्रिका

संपादक—श्री हरिभाऊ उपाध्याय, श्री क्षेमानंद राहत

पृष्ठ संख्या १२०, दो रंगीन और कई सादे चित्र

स्त्रियों और युवकों के लिए ४० पृष्ठ सुरक्षित

वार्षिक मूल्य केवल ४)

नमूने की प्रति के लिए ॥) के टिकट भेजिए

हिन्दी संसार ने जिन शब्दों में इसका स्वागत किया है उसमें से कुछ के नमूने देखिए:--

"लेख इतने सुन्दर और विद्वत्तापूर्ण हैं कि उनका पढ़ना ज्ञानप्रद और हृदय को ऊँचा उठाने वाला होता है।"

"सम्पादकीय टिप्पणियां इतनी नपी तुली विचार-पूर्ण और सत्यानुमोदित होती हैं कि एकबार विरुद्ध मत रखने वाले व्यक्ति भी उन्हें पढ़ कर मुग्ध हो जाते हैं"

"प्रताप" कानपुर

"हाल में जितनी पत्रिकाऐं निकली हैं उनमें प्रत्येक दृष्टि से हम "त्यागभूमि" को सर्व श्रेष्ठ कह सकते हैं',

'माधुरी' लखनऊ

"त्यागभूमि' में अच्छी से अच्छी चीज़ कम से कम दामों में देने की प्रवृत्ति है। शुद्ध सात्विक व्यंजनों से शरीर को जो लाभ होना है वह 'त्यागभूमि' के लेखों से उसके पाठकों को होगा !"

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी

'इतनी अच्छी पत्रिका मैंने आज तक नहीं पढ़ी"।

सरदार० डा० किबे, इंदौर

"पत्रिका सर्वाङ्ग सुन्दर है, सौंदर्य में सर्वत्र सादगी की शोभा, उच्च आदर्श की ज्योति तथा त्याग का तेज दृश्यमान है"

"आज" बनारस

"यह नूतन युग का नूतन संदेश लेकर अवतीर्ण हुई हैं"

पं० लक्ष्मीधर वाजपेई

"त्यागभूमि" पाकर हृदय नाच उठा। पराजय का वीर तो अनूठा ही है"

पं० लोचनप्रसाद पाण्डेय

"यह पत्रिका सुमित्रा, विदुला, मदालसा, की कोटि की उपदेशिका जननी है।" श्रीलक्ष्मणाचार्यजी

" इसका आदर्श एक शब्द में आध्यात्मिक राष्ट्रवाद है " 'हिन्दी प्रचारक' मदरास

मैं आपकी सफलता चाहती हूँ।

श्रीमती एनीबेसण्ट

इसमें स्फूर्त्ति संचारक एवं जीवन प्रदायक साहित्य-सुधा है। लेखों में प्रवाह है, ओज है मौलिकता है। विषयों का चुनाव भी विद्वत्तापूर्ण होता है। पत्रिका सब तरह से सुन्दर और उपयोगी है।

'तरुण राजस्थान' (अजमेर)

त्यागभूमि का अंक देखकर मैं मुग्ध हो गया थोड़े मूल्य में ऐसी सुसम्पादित और सुन्दर पत्रिका मिलना दुर्लभ है। इसका संपादन बड़ी योग्यता से हो रहा है।

पं० अयोध्या सिंह उपाध्याय

जो 'त्यागभूमि' के पहले से ही ग्राहक हैं, यदि वे और ग्राहक बनादें, तो उन्हें क्या मिलेगा ?

इसका हाल आगे पढ़िए

जो 'त्यागभूमि' के ग्राहक हैं, उन्हें क्या मिलेगा !

जो सज्जन पहले से ही त्यागभूमि के ग्राहक हैं यदि वे कम से कम दो ग्राहक बनावेंगे तो प्रति ग्राहक के पीछे आठ आने मूल्य की पुस्तकें मुफ्त में मिलेंगी पोस्टेज खर्च जो उन पुस्तकों के भेजने में लगेगा, उतने दामों की वी०पी० करदी जावेगी। नीचे लिखी पुस्तकों में से आर्डर भेजना चाहिए।

नवयुवकोपयोगी—नैतिक जीवन १) मातृभाषा ॥) माता =) नवयुवको स्वाधीन बनो ॥) आदर्श गौरव उन्नति ॥=) कल्याणमयी चिन्ता ॥) गाँधीजी की दिव्य बाणी =) जातीयता (अरविंद घोष) ।=) जाति भेद पंचभूत (रवीन्द्रनाथ) १॥) पंचरत्न १) नीति धर्म (महात्मा गाँधी) ।) अरविंद मंदिर में ॥) बाल रामकथा ॥) सोपान ।) मानव संतति शास्त्र १॥) सफलता ।॥) स्वास्थ्य शिक्षा १) सुखी गृहस्थ ॥) रामतीर्थ का राष्ट्रीय संदेश

कविता—कंस बध ।=) स्वतंत्रता की झनकार ॥) पंचों का पोल खाता ।=)॥ स्वराज्य दर्शन ।=) पद्य-प्रसून मिलन ।) राष्ट्रीय-गीत ≡) काव्यनिकुंज ।) विनय तरंगिणी -)॥ अयोध्याकांड ।॥) विधवा ॥) जातीय कविता १॥) तरंगिणी ।) सदाये भारत ।=) सुधार गायन संग्रह =) रंगीला चर्खा =) पद्य रत्न प्रभा ।) मातृ वंदना ॥) भजनावली =)॥ राष्ट्रीय मंत्र ॥) प्रतापयश दर्पण ।) बम्बके गोले ।) भारतीय तरंग ।) श्रीकृष्ण चरित्र =)॥ भव्य भारत

इतिहास—मराठों का उत्कर्ष १॥) रूस में युगान्तर २) सन् ५७ का गदर १॥) पृथ्वीराज रासो ॥) हिन्दू सम्राट् १॥) आयर्लैंड की राज्य क्रांति ।-) खादी का इतिहास ॥=) इंग्लैंड का इतिहास १)

राष्ट्रीय—ट्रांसवाल में भारतवासी ।≡) असहयोग दर्शन १।) देश भक्ति की पुकार १) नेटाली हिन्दू ॥=) और स्वराज्य ।=) पंजाब का नर हत्याकांड ॥≡) चरखा और स्वराज्य ≡) जातीय शिक्षा -) हिन्दुस्थान का राष्ट्रीय हस्तरेखा =) बोलशेविज्म १=) भारत और अँग्रेज़ १॥) भारत और इंग्लेंड १॥) भारत बीती ॥) माडरेटों की राजनीति प्रवेशिका ।=) भारत को स्वाधीनता का संदेश १।) सत्याग्रह और असहयोग सजिल्द २।) भारतीय नवयुवकों राष्ट्रीय संदेश ॥।) अकालियों का आदर्श सत्याग्रह ॥) फ़ीजी रहस्य १) कानून भंग ॥) कौन्सिल की मेम्बरी ।) का अभियोग ।) देशी राज्य दर्शन १॥) सत्याग्रह जाँच कमेटी की रिपोर्ट १॥) हिन्द स्वराज्य ॥) राष्ट्रीय आन्दोलन भारतीय किसान ≡)॥ भारतीय जागृति १) हंगरी में असहयोग =)॥ हम असहयोग क्यों करें ॥) हिन्दू जाति का ह्रास

धार्मिक—अहिंसा तत्व ।=) आचार चंद्रिका ॥) अवतार रहस्य ।॥) गीता पंचरत्न २) गीता की भूमिका १) सत्य योग १।) जीवन वेद १) योगासन ।) नित्यकर्म चन्द्रिका ॥) श्रुतिसंगीतकम ॥) नियोग मीमांसा १॥)

स्त्रियोपयोगी—अंजनासुंदरी ॥) पुत्री शिक्षक ॥) महिलामहत्व २) नारी धर्म विचार १॥) कुल लक्ष्मी रमणी कर्तव्य ॥=) सती सीता ॥=) सती सुनीति ॥।) वीर बाला =) आदर्श बलिदान ।=) महिला कर्तव्य ।=) देवी ॥=) कुल कमला ॥।) सच्ची देवियाँ ॥।) सती सावित्री ।)

उपन्यास—अनोखी लीला ॥) अविवाहिता ॥) अजेय तारा १॥) अनाथ सरला ॥।) आत्म विजय ।॥) उपदेश कहानियाँ ॥) कर्तव्याघात २॥) दुर्गेशनंदनी (बंकिम) १।) सीताराम (बंकिम) १॥) कपाल कुंडला (बंकिम) ॥) होस्टल ।) गल्पांजली ॥।) दुरंगीदुनिया ‿) फूलों का हार ॥) विलासिनी १॥) भारत प्रेमी ।॥) मिलन मंदिर बनदेवी ॥।) वीर राजपूत १) वैज्ञानिक कहानियाँ ।) वंदे मातरम् १॥।) शांति निकेतन १।) शाही जादूगरनी सूर्यास्त ॥।) सूर्य्य गृहण २॥) कुमारी १=) प्रेमकान्त १॥) भीषण नारी हत्या ।=) जादूगर ॥) सप्तसोपान ।=) चंद्र १॥।) विश्राम बाग १॥) अपूर्व सन्यासी =)॥ गंगोत्तरी ॥।) भारत सम्राट् परीक्षित १।) राजनैतिक षडयंत्र

नाटक—अर्धांगिनी १) कलिमद मर्दन ≡) खून का खून ॥) ग़रीब हिन्दुस्थान १।) चित्रांगदा [रवीन्द्रनाथ] भक्त तुलसीदास ॥=) देश दीपक ॥।) दोधारी तलवार ॥) नवीन भारत ॥।) रणबांकुरा चौहान १।) हिन्द १) राजा-रानी फ़नतमाशबीनी ।=) राई का पर्वत १॥।) जया जयंत १।) कृष्णावतार १) भक्ति विजय ॥=) भूतखेलनी आंशा

जीवन चरित्र—तिलक जीवनादर्श =) पीपाजी =) भवानीदयालजी ।) पं० मोतीलाल नेहरू ।॥) लाजपतराय गाँधीजी की संक्षिप्त जीवनी ≡) सिनफ़िनर ।) बा० कुंवरसिंह २) देशबन्धु सी० आर० दास ॥) गाँधी दर्शन (गाँधी जीवनी) १) स्वाधीनता के पुजारी १।) सेठ जमनालालजी बजाज १) लो० तिलक ॥)

फुटकर—भूमि ।॥) केशव कौमुदी [रामचंद्रिका] प्रथम भाग २॥) पत्र संपादन कला १) प्राचीन लिपि माला

आर्डर भेजने का तरीका—जितने ग्राहक बनाये हों, उनके आठ आना फी ग्राहक के हिसाब से जितना मूल्य होता हो उतने मूल्य की ऊपर लिखी पुस्तकों में से तीन चार सेट बनाकर आर्डर भेज दें। जैसे आपने तीन ग्राहक बनाए। इस हिसाब से १॥) की एक पुस्तक अथवा कम मूल्य की कई पुस्तकें जिन सब का मूल्य जोड़ने से १॥) होता हो आप मंगा सकते हैं। संभव है जिन पुस्तकों का आप आर्डर देवें उनमें से कुछ खतम हो जावें अतएव व्यर्थ पत्र व्यवहार न बढे इसलिए आप उतने मूल्य के दो तीन आर्डर भेज दें और लिख दें कि इनमें से जिस आर्डर की पुस्तकें हों वे भेज दें। उदाहरणार्थ:—

(१) चित्रांदा ।=)
वीर बाला =)
नैतिक जीवन १)
———
१॥)

(२) भारत के हिन्दू सम्राट् १॥)
———
१॥)

(३) सुखी गृहस्थ ।॥)
(२) ब्रह्मचर्य सोपान ।)
(३) मातृ भाषा ॥)
———
१॥)

अब इन तीन आर्डर में से किसी भी एक आर्डर की पुस्तकें हम भेज देंगे आप यह लिख दें कि प्रथम आर्डर की पुस्तकें पहले, भेजें। उसमें की कोई पुस्तक न हो तो दूसरे आर्डर की पुस्तकें भेजें और वह भी न हो तो तीसरे आर्डर की भेज दें।

आर्डर फार्म अन्दर लगा है, उसे भर कर भेज दें

कुछ सम्मतियां

"त्यागभूमि हिन्दी की प्रथम श्रेणी की मासिक पत्रिका है। यह पत्रिका जीवन, जागृति और बल से परिपूर्ण है और हिन्दी संसार में इसका जन्म स्वागत करने योग्य है। पत्रिका की छपाई, सफ़ाई, लेख सामग्री और चित्र आदि सभी उत्तम श्रेणी के हैं।"

'इंडियन नेशनल हेरल्ड' बम्बई

"त्यागभूमि से हिन्दी-भाषी भारतीयों से उन भावों की प्रेरणा होने की आशा है जिन्हें अभी तक अन्य पत्रिकाएँ उद्दीप्त नहीं कर सकी हैं। इसके गद्य और पद्य के लेख सभी उच्चकोटि के हैं। सम्पादन बड़ी योग्यता से होता है। स्त्रियों के लिऐ 'आधी दुनिया' वाला स्तम्भ विशेष मनोरंजक और उपयोगी है।"

कान्ताप्रसाद गुरु, जबलपुर

"त्यागभूमि के लेखों का चुनाव बहुत ही उत्तम है। ऐसे उत्तम लेख अन्य मासिक पत्रों में बहुत कम देखने में आते हैं। मैं इसकी उत्तरोत्तर वृद्धि चाहता हूँ।"

दयाशंकर दुबे एम० ए० एल-एल बी० प्रयाग

"त्यागभूमि के चार अंक देखने के बाद आपको बधाई देता हूँ। केवल ४) वार्षिक मूल्य और ६) ६॥) मूल्य की पत्रिका सा ठाठ-बाट, साज-सामान। इतना त्याग करने का साहस, शक्ति और भावना त्यागभूमि के सिवा और किसको है। 'त्यागभूमि' के लेखों का चुनाव, विषय-विभाग और चित्रादि, सभी उच्चकोटि के हैं।"

श्री मातादीन शुक्ल, साहित्य शास्त्री काव्यभूषण, स० सम्पादक 'सुधा' लखनऊ

सस्ता-मंडल की सस्ती पुस्तकों का हाल आगे पढ़िए

सस्ता-मंडल, अजमेर की सस्ती और उपयोगी पुस्तकें

पुस्तकों का विषय, उनकी पृष्ठ संख्या और मूल्य पर विचार कीजिये

अन्य प्रकाशक प्रायः १०० पृष्ठों की पुस्तक के लगभग ॥) या ॥=) मूल्य रखते हैं

पर मंडल इतने ही पृष्ठों का मूल्य केवल ।) रखता है

म० गांधीजी के आत्मचरित्र पृष्ठ ४१६ का मूल्य तो केवल ॥=) रखा गया है।

सस्तीमाला के प्रथम और द्वितीय वर्ष की पुस्तकें †

(१) दक्षिण आफ्रिका का सत्याग्रह (म० गांधी) (पूर्वार्द्ध) पृष्ठ २७२ मूल्य ॥।)
(२) „ „ (उत्तरार्द्ध पृष्ठ २२८ मूल्य ॥)
(३) तमिलवेद (महर्षि तिरुवल्लुवर) धर्म, अर्थ और मोक्ष पर अमृतमय उपदेश—१५०० वर्ष पूर्व का प्राचीन ग्रंथ पृष्ठ २४८ मू० ॥=)
(४) हाथ की कताई बुनाई–(अनु० रामदास गौड़ एम. ए.) पृष्ठ २६६ मूल्य ॥=)
(५) भारत के स्त्री रत्न (प्रथम भाग) अनुवादक बाबू रामचन्द्र वर्म्मा पृष्ठ ४१० मूल्य १)
(६) स्त्रीरत्न (दूसरा भाग) पृष्ठ ३२८ मूल्य ॥।–)
(७) आत्मोपदेश–पृष्ठ १०४ मूल्य ।)
(८) जीवन-साहित्य (काका कालेलकर)
(प्रथम भाग) पृष्ठ २१८ मूल्य ॥)
(दूसरा भाग) पृष्ठ २०० मूल्य ॥)
(९) शिवाजी की योग्यता–पृष्ठ १३६ मू० ।=)
(१०) दिव्य जीवन–पृष्ठ १३६ मू० ।=)
(११) व्यावहारिक सभ्यता–पृष्ठ १२८ मू० ।)॥
(१२) क्या करें ? (टाल्सटाय) पृष्ठ २६६ मू० ॥=)
(१३) स्त्री और पुरुष पृष्ठ १५४ मू० ।=)
(१४) हमारे जमाने की गुलामी पृष्ठ १०० मू० ।)
(१५) कलवार की करतूत पृष्ठ ४० मू० –)॥।
(१६) चीन की आवाज़–पृष्ठ १३० मू० ।–)

*राष्ट्रनिर्माण माला [सस्तीमाला]–तृतीय वर्ष

(१) आत्म-चरित्र (म० गांधीजी के सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा) पृष्ठ ४१६ मू० ॥=)

प्रकीर्णमाला के प्रथम और द्वितीय वर्ष की पुस्तकें

(१) कर्मयोग—पृष्ठ १५६ मूल्य ।=)
(२) कन्या-शिक्षा–पृष्ठ ९४ मूल्य ।)
(३) सीताजी की अग्निपरिक्षा–पृष्ठ १२४ मू. ।–)
(४) स्वाधीनता के सिद्धान्त–पृष्ठ २०८ मू० ॥)
(५) यथार्थ आदर्श जीवन–पृष्ठ २६४ मू० ॥–)
(६) तरंगित हृदय—पृष्ठ १७५ मू० ।≡)
(७) स्वामीजी (श्रद्धानन्दजी) का बलिदान और हमारा कर्तव्य—(ले. पं. हरिभाऊ उपाध्याय) पृष्ठ १२५ मू. ।–)
(८) गंगा गोविन्दसिंह (श्री चण्डीचरणसेन लिखित राष्ट्रीय उपन्यास) पृष्ठ २८८ मू० ॥=)
(९) यूरोप का सम्पूर्ण इतिहास (मौलिक ग्रंथ) (ले० श्री रामकिशोर शर्म्मा बी.ए. विशारद) पृ० ८३० मूल्य ३)
(१०) गोरों का प्रभुत्व (रामचन्द्र वर्म्मा) पृष्ठ २७४ मू० ॥=)
(११) अनोखा विक्टर ह्यूगो के "The Laughing man" का हिन्दी-अनुवाद–अनुवादक ठाकुर लक्ष्मणसिंह बी० ए० एल० एल० बी० पृष्ठ ४७४ मू० १।=)
(१२) ब्रह्मचर्य-विज्ञान–इस विषय की सर्वोत्कृष्ट पुस्तक (ले० पं० जगन्नारायण देव शर्म्मा साहित्य शास्त्री) पृष्ठ ३७४ मूल्य ॥।–)

*राष्ट्रजागृति माला [प्रकीर्णमाला]–तृतीय वर्ष

(१) सामाजिक कुरीतियां (टाल्सटाय) पृष्ठ २८० मू० ॥=)

नियम—प्रतिवर्ष मण्डल से दोनों मालाओं में ३२०० पृष्ठों की लगभग पन्द्रह सोलह पुस्तकें निकलती हैं वार्षिक ग्राहकों से इन पुस्तकों का डाक व्यय सहित केवल ८) वार्षिक मूल्य लिया जाता है। स्थाई ग्राहक बनने के लिये केवल एक बार एक रुपया प्रवेश फ़ीस ली जाती है। जिस वर्ष के और जिस माला के जो ग्राहक बनें उसके पिछले वर्षों की सब या चुनी हुई पुस्तकों की एक एक प्रति लागत मूल्य (पोने मूल्य) में वे मंगा सकते हैं।

(त्यागभूमि का विज्ञापन पीछे देखिये)

पता—सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर

* सस्तीमाला का नाम अब राष्ट्रनिर्माण-माला और प्रकीर्णमाला का नाम राष्ट्रजागृति-माला रखा गया है।

नीचे लिखी सब पुस्तकें आधी कीमत में मिलेंगी

किसी की एक, किसी की दो ऐसी ही प्रतियां हमारे पास बची हैं इसलिए जल्दी आर्डर भेज दें

अन्यथा समाप्त होनेपर हम इस रिआयत में न भेज सकेंगे

नवयुवकोपयोगी

युवको स्वाधीन बनो	||)
शोविज्म [भू० ले० बाबू भगवानदास एम० ए०]	१|=)
तृभाषा	||)
नामावली	||)
रेखा देखने की विधि	=)
न्दुओं पर वज्राघात	=)

जीवन चरित्र

र्ड किचनर	१)
धीजी की जीवनी	|)
धीजी कौन हैं ?	||−)
धी दर्शन [बड़ी जीवनी]	१)
मंती के विधाता	|)
० तिलक	||)
लक जीवनादर्श	=)
राजी	|=)
वानीदयालजी	|)
० मोतीलाल नहरू	|||)
र्टिन लूथर	|=)
हादेवगोबिंद रानाडे	=)||
दनमोहन मालवीय	|)
जा राममोहनराय	−)||
जपतराय	||)
तंत्रता के प्रेमी सिनकिनर	|)
० गांधीजी की जीवनी	≡)

कविता

तंत्रता की झनकार	||)
जातीय कविता	१||)
ताप यश दर्पण	|)
त्याग्रही प्रह्लाद	|−)

प्रेम पुष्पांजली	|−)
प्रेमधारा	|≡)
पद्य कुसुमांजली	|||)
प्रवास कुसुमावली	|=)
बम्ब के गोले	||)
श्रीकृष्ण चरित्र	=)||
भव्य भारत	|−)
भारत गीतांजली	≡)
भारतीय तरंग	|)
मुसाफ़िर भजनावली	=)||
रंगीला चर्खा	|−)
राष्ट्रीय मंत्र	||)
राष्ट्रीय गीत	≡)
राष्ट्रभारती	||)
राष्ट्रीय वाणी	|)
राष्ट्रीय झनकार	||)
विधवा	||)
विनय तरंगिणी	=)
वीणा झनकार	|=)
शिशुलोरी	=)||
विपंची	|)
शृंगार तिलक	−)||
श्रद्धानंद वियोगांजली	||=)
श्री ज्ञानप्रकाश [प्रथम भाग]	|)
[दूसरा भाग]	|)
[तीसरा भाग]	|)
श्री संगीत पुष्पमाला	|=)
सामाजिक चित्रदर्पण	=)
संगीत सागर	≡)||
श्री गीतसार	|=)
सदाये भारत	|=)

इतिहास

आयर्लैंड की राज्यक्रान्ति	|−)
इंग्लैंड का इतिहास	१)
दिल्ली अथवा इंद्रप्रस्थ	||)
बीसवीं सदी का महाभारत	|||)
सिवनी सरोजनी	|=)
हमारे देश की प्राचीन उन्नति	||)
खादी का इतिहास	||=)

राष्ट्रीय

आयर्लैंड में होमरूल	||−)
कानून भंग	||)
किसानों का अधिकार	|)||
किसानों पर अत्याचार	|−)
कौन्सिल की मेंबरी	|)
गांधीजी का अभियोग	|)
गांधीजी का बयान	||)
चम्पारन में महात्मा गांधी	||)
जेलयात्रा और संदेश	||)
डायरशाही	||)
देशी राज्य दर्शन	१||)
नवीन भारत	१||)
पंजाब का नर हत्याकाण्ड	|||≡)
भारतमाता का संदेश	||)
भारतवर्ष के लिए स्वराज्य	|=)
भारतीय किसान	≡)||
भारतीय जेल	||)
भारतीय नवयुवकों को राष्ट्रीय संदेश	|||)
राष्ट्रीय आन्दोलन	१||)
स्वराज्य-दर्शन	|=)
स्वराज्य सोपान	१)

नीचे लिखी सब पुस्तकें आधी कीमत में मिलेंगी

स्वराज्य और हमारी योग्यता	|)
हंगरी में असहयोग	=)||
हम असहयोग क्यों करें ?	||)
हिन्द स्वराज्य	||)
हिन्दू जाति का ह्रास	−)

धार्मिक

नियोग मीमांसा	१||)
,, सजिल्द	१|||)
ब्रह्मयज्ञ	||=)
संस्कार चन्द्रिका	४)

स्त्रियोपयोगी

सती अंजनादेवी	||=)
अनन्तमती	|||=)
कुलकमला	|||=)
श्रीमती निवेदिता	|−)
द्रौपदी और सत्यभामा	≡)
बालाविनोद	|=)
भारत की क्षत्राणी	|=)
सच्ची देवियां	|||)
महिला कर्तव्य	|=)
माता	|||)
वनिता विलास	|−)
वीर महिलाओं के संदेश	=)||
सच्चीस्त्रियां	|||)
सती सावित्री	|)

उपन्यास

अपूर्व सन्यासी	=)||
खरा सोना	१)
खद्दर की आत्मकथा	||)
खद्दर प्रतिभा	|||)
गंगोत्तरी	||||
चरित्र चित्रण)	|)
जयविजय	||)
जयमाला	|=)
जहर का प्याला	१)
जीवन ज्योति	१|)
तरंग	||=)
तरुण तपस्विनी	||=)
दुर्गा	|=)
निहिलिस्ट रहस्य	१)
परीक्षा गुरु	१)
पुनरुत्थान	|||=)
पूना में हलचल	||)
पौराणिक गाथा	|−)
प्रोत्साहन	||−)
प्रेम प्रभाकर [टाल्स्टाय]	१||)
बोल्शेबिकों की करतूत	||=)
भारत सम्राट् परीक्षित	१|)
भरतमिलाप	|=)
राजनैतिक षडयंत्र	२||)
तपस्वी भरत	|−)
भेदभरी सुंदरी	||=)
मदन विलाप	||)
माधवी माधव	१|)
सोना रानी	=)
बच्चों के लिए सोने का चांद	|)
हेर फेर	|||)
होमर गाथा	१)

नाटक

अज्ञातवास	|||=)
अत्याचार का अन्त	|||)
अत्याचार का परिणाम	|||−)

- काशी विश्वनाथ
- किरणमयी
- कृष्णावतार
- भक्तिविजय
- भूतखेलनी ओझा
- मानी वसन्त
- मैना सुंदरी
- रामराज्य वियोग नाटक
- रामलीला
- रामायण
- सुनहरी खंजर
- संयोगिता हरण

नीचे लिखी सब पुस्
चौथाई मूल्य में मिलेंगी

- असहयोग दर्शन
- हिंदुस्थान का राष्ट्रीय झंडा
- अकालियों का आदर्श सत्याग्रह
- देशबन्धु सी० आर० दास
- (ले० बाबू संपूर्णानन्द बी० ए
- नागपुर की कांग्रेस
- असहयोग और भारत के नेता
- अहमदाबाद की कांग्रेस
- चरखा और स्वराज्य
- चम्पारन की जांच
- भारत को स्वाधीनता का संदेश
- भारत बीती
- सत्याग्रह जांच कमेटीकी रिपोर्ट
- स्वदेशी और स्वराज्य
- संसार व्यापी असहयोग
- स्वदेशी पर महात्मागांधी
- स्वदेशीधर्म

मिलने का पता:—सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर

पौने मूल्यवाली पुस्तकों की सूची 'त्यागभूमि' के सातवें अंक में छपी है उसे दे

विषय-सूची

पृष्ठ

स्वतन्त्रता (उद्धरण)—[श्री सुभाषचन्द्र बोस २४१
पहला प्रश्न—[हरिभाऊ उपाध्याय २४२
मद्रास की दुनिया—[लाला लाजपतराय २४५
प्रभु-दर्शन (कविता)—[श्री देवीप्रसाद गुप्त, 'कुसुमाकर', बी. ए. एलएल. बी. २४८
डाक्टर सगडरलैगड—[श्री रामलाल वाजपेयी (अमेरिका) २४९
भारत में औद्योगिक उन्नति का प्रश्न—[अध्यापक शंकरसहाय सकसेना, बी. एस. सी. ... २५२
मृत मृग-शावक (कविता)—[श्री गुलाबराय, एम. ए २५६
देहात के काम—[आचार्य विनोबा भावे २५७
ओ मतवाले !—[श्री दिव्य कवि २५९
भारतीय सिक्कों का इतिहास—[श्री देवव्रत शास्त्री २५९
ब्रिटिश साम्राज्य की शासन-पद्धति—[अध्यापक दयाशंकर दुबे, एम. ए. एलएल. बी,
तथा श्री भगवानदास केला २६६
विश्व-वैचित्र्य (कविता)—[श्री प्रेमनारायण त्रिपाठी 'प्रेम' २६९
मनस्वी मगनलाल भाई—[श्री "सिपाही" २६९
पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों के चित्र—[श्री गोपाल दामोदर तामस्कर, एम. ए. एल. टी. ... २७५
सोवियट रूस—[वैजनाथ महोदय, बी. ए. २७८
हृदय की फुलझड़ी (ईर्ष्या)—[क्षेमानन्द 'राहत' २८०
आधी दुनिया— २८१
1. अञ्जलि (कविता)—[श्री अवन्तविहारी माथुर २८१
2. परदे को फाड़ फेंको—[वैजनाथ महोदय, बी. ए. २८१
3. मेरी स्पिरीडोनोवा—[श्री पारसनाथसिंह, बी. ए. बी. एल. २८५
4. कामना (कविता)—[श्री "विठ्ठल" २८६
5. श्री सीताजी (२)—[ब्रह्मचारी प्रभुदत्त शर्मा २९०
6. कला (कहानी)—[श्री श्रीगोपाल नेवटिया, विशारद २९६
7. विवाह का उद्देश्य—[श्री काशीनाथ नारायण त्रिवेदी २९९
8. संतति-निग्रह—[श्री शिवप्रसादसिंह 'विश्वेन' ३०२
9. रूसी बहनों की प्रगति—[श्री 'एक भारतीय' ३०७
10. स्फुट प्रसंग—समाज और स्त्रियां; विधवा-विवाह; परदा और बहुपत्नीत्व; मुसलमान
बहनों की जागृति; बहनों का साहस; संयुक्तप्रान्त में स्त्री-शिक्षा ... ३१०
जगता राष्ट्र— ३१२
1. जगो लाल ! (कविता)—[श्री जगन्नारायणदेव शर्मा 'कवि पुष्कर' ३१२
2. नवभारत—[साधु टी. एल. वास्वानी ३१४

३. आशा-युग—[श्री काशीनाथ नारायण त्रिवेदी ... ३१४
४. स्वतन्त्र भारत की सृष्टि—[श्री सुभाषचन्द्र बोस ... ३१६
५. यौवन—[डा० फ्रैंक क्रेन ... ३१७
६. बुद्धि का अजीर्ण !—[श्री गोपालराव कुलकर्णी ... ३१८
१९. साहित्य-संगीत-कला— ... ...
१. साहित्य-संगीत-कला—[श्री कृष्णजी रामचन्द्र कुलकर्णी ... ३२१
२. अब तो दीपक-राग गाओ—[श्री भद्राजित 'भद्र' ... ३२३
३. नवयुग—[श्री बाबूराम सकसेना, एम. ए., लेक्चरर प्रयाग-विश्वविद्यालय... ... ३२५
४. मेरी अभिलाषा—[डाक्टर रघुनन्दन भट्ट ... ३२६
२०. ज्ञानाञ्जन— ... ...
१. माया—[डाक्टर जी. एस. विशारद ... ३२७
२. तेजस्विनी का वक्तव्य—['रणदुन्दुभि' से ... ३२९
२१. युग-निर्माण— ... ...
१. बुद्धदेव का संदेश—[साधु टी. एल. वास्वानी ... ३३३
२२. विश्व-दर्शन—चीन और जापान; अफ़ग़ानिस्तान और अंग्रेज़; अंग्रेज़ और ईरान; इंग्लैण्ड और मिस्र; रूमानिया में क्रान्ति का प्रयत्न ... ...
२३. देश-दर्शन—भारत का अशान्त वातावरण; मज़दूरों की व्यापक हड़ताल; बारडोली का सत्याग्रह; सर्वदल-सम्मेलन ... ...
२४. जनता का स्वराज्य— ... ...
१. खादी क्या है और क्या नहीं है ?—[श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य ... ३४४
२. चर्खा राजा और तकली रानी—[श्री वालजीभाई देसाई ... ३४४
३. खादी-माहात्म्य (कविता)—[श्री 'कवि पुष्कर' ... ३४६
२५. नीर-क्षीर-विवेक—पुराणमत पर्यालोचन; हिन्दी में रेलवे टाइम टेबुल; शिशु; बाल-सखा; खिलौना; साहित्य-सत्कार ... ...
२६. विविध—"मृगपक्षिशास्त्रम्" (श्री रामेश्वर गौरीशंकर ओझा, बी. ए.); अछूतों में कुछ ठोस काम (श्री शर्मा) ... ...
२७. सम्पादकीय—जयन्तियों की धूम; प्रताप-जयन्ती; स्वराज्य-विधान का प्रश्न; मजूर और मालिक; बहिष्कार और मिल-मालिक; अजमेर की समस्या ... ...
२८. चित्र-दर्शन—चित्रों के सम्बन्ध में—;पार्श्व-भूमिका; सती पार्वती; मसजिद में ... ...

आवश्यकता

हिन्दुस्थानी एकेडेमी कुछ पुस्तकें अंग्रेज़ी से हिन्दी तथा उर्दू में अनुवाद कराना चाहती है। अनु
एकेडेमी के स्थायी कर्मचारी न होंगे। जो सज्जन वैज्ञानिक तथा साहित्यिक विषयों की पुस्तकों का अनु
कर सकते हों, तथा करना चाहते हों, वे अपने अनुवाद का नमूना भेजें और अपनी शर्तों का
करें। प्रार्थनापत्र इस पते पर आना चाहिए—

मंत्री, हिन्दुस्थानी एकेडेमी,
सयुक्तप्रान्त,

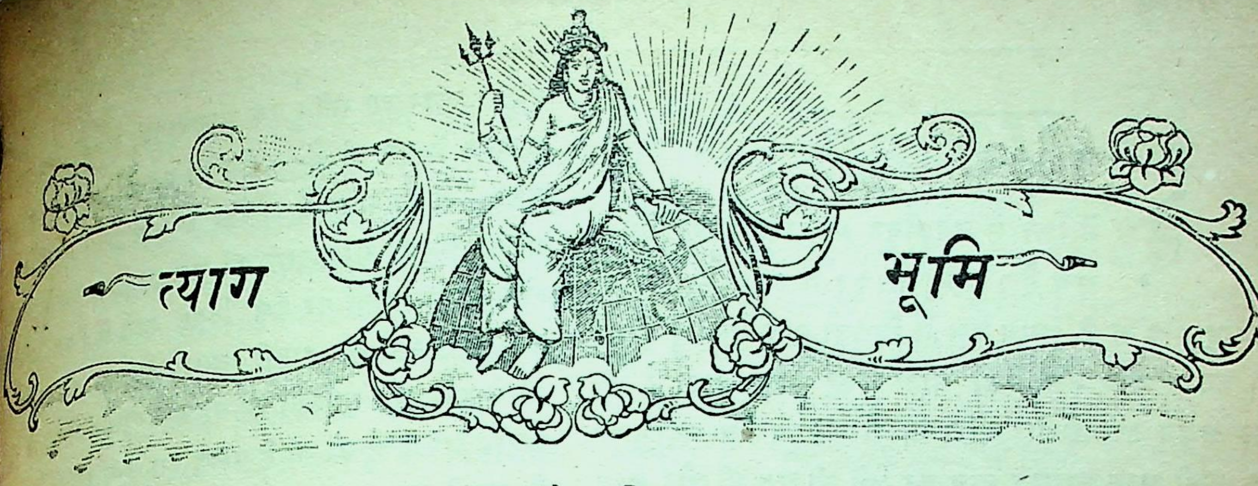

(जीवन जागृति, बल और बलिदान की पत्रिका)

आत्म-समर्पण होत जहँ, जहँ विशुभ्र बलिदान ।
मर मिटबे की साध जहँ, तहँ हैं श्रीभगवान् ॥

वर्ष १
खण्ड २

सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर।
आषाढ़ संवत् १९८५

अंश ३
पूर्ण अंश ९

स्वतन्त्रता

"स्वयं मैं तो स्वतन्त्र फेडरल प्रजातन्त्र शासन का समर्थक हूँ। और यही अन्तिम लक्ष्य है जिसे मैं सदा अपने सन्मुख रखता हूँ। मैं चाहता हूँ कि भारत अपने भाग्य का स्वयं निर्णय करने वाला बने, जैसा कि वह अपने गौरवमय अतीत में था। ऐसा होने पर ही वह अपनी विशेषता का विकाश कर सकेगा। मेरी यह उत्कट अभिलाषा है कि भारत अनियन्त्रित स्वातंत्र्य को प्राप्त करे और संसार के स्वतन्त्र राष्ट्रों में अपना मस्तक ऊँचा कर के खड़ा रह सके। मैं चाहता हूँ कि भारत पूर्ण स्वतन्त्रता से मिलने वाले आनन्द का उपभोग करे और उस आनन्द में उन तमाम बातों का आविष्कार करे जो उसके तथा समस्त संसार के लिए लाभप्रद हों। मैं चाहता हूँ कि भारत का अपना जुदा झंडा हो, अपनी पृथक जल-सेना और थल-सेना हो, और उसके राजदूत अन्य स्वतन्त्र देशों की राजधानियों में रहें। स्वतन्त्रता तो मेरा ध्येय है। वह एक ऐसी वस्तु है, जिसका मूल्य आंकना असंभव है। मनुष्य की आत्मा के लिए स्वाधीनता उतनी ही आवश्यक है जितनी कि उसके फेफड़ों के लिए हवा है। स्वामी विवेकानन्द ने ठीक ही तो कहा है:— "स्वतंत्रता आत्मा का गीत है।" स्वाधीनता सच्चा अमृत है—मृत्युलोक का जीवन—रसायन है।"

सुभाषचंद्र बोस

पहला प्रश्न

देश में फिर से नवजीवन आ रहा है यह बात सच है। परन्तु १९२१ में ख़ास कर अहमदाबाद काँग्रेस के समय देश में जितना एका दिखाई देता था उतना आज नज़र नहीं आता। यह बात सही है कि उस समय उत्साह और जोश का पारा बहुत ऊँचा चढ़ा हुआ था; उसी साल स्वराज्य प्राप्त कर लेने की धुन थी और आज समझदारी का फ़ख़ अधिक है, और अपने बल और कुर्बानी के बल पर नहीं, बल्कि तरकीब से स्वराज्य ले लेने की तरफ़ पिछले दिनों ज्यादा ध्यान रहा है। इसी कारण १९२१ में जहाँ एका था, प्रायः एक-सूत्र से स्वराज्य की लड़ाई लड़ी जा रही थी तहाँ आज 'नौ कनोजिया और तेरह चूल्हे' वाली मसल हो रही है। जहाँ तक मेरी विचार शक्ति दौड़ती है और अवलोकन शक्ति काम करती है, तहाँ तक अकेले महात्माजी तो जहाँ के तहाँ हिमालय की तरह अचल खड़े हैं, बाकी सब हवा में इधर-उधर चक्कर खा रहे हैं। स्वर्गीय देशबन्धु ने धारा-सभा में बाधा-नीति की तरकीब निकाली और महा-सभा में परिवर्तनवादी और अपरिवर्तनवादी ये दो दल बन गये। बाद को पटेल साहब धारा-सभा के सभापति बन गये, जयकर और केलकर साहब ने प्रति-सहयोग की अक्ल भिड़ाई और उनका एक अलग दल बन गया। नेहरूजी भी खासे फिसले लालाजी कभी नेहरूजी की तरफ झुके, कभी मालवीयजी की तरफ और आज शायद अकेले खड़े हैं। मालवीयजी हिन्दू-महासभा के अगुआ हुए, किचलू और जिन्ना साहब मुसलमानों के, और आपस में खूब चली। अली भाई न इधर के रहे न उधर के। चर्खा-पन्थी खादी वाले राज-नीति-शून्य—ग्राम्य भाषा में कहें तो मूर्ख, समझे गये। और देश में नेता-गिरी के लिए काफ़ी छीना-झपटी होती रही। अब कुछ ऐसा प्रतीत हो रहा है कि नेता-गिरी के फेर में पड़ने वालों का हौसला बहुत-कुछ पूरा हो चुका। कुछ तो ऊपर पहुँच कर बुरी तरह फिसले, और औंधे मुँह गिरे। कुछ जब ऊपर उड़ने लगे तो पता लगा कि म्याऊ का ठौर मुश्किल है और वैसे ही नीचे खिसक आये। असहयोग-काल के प्रायः तमाम नेता छन छनकर ऊपर आ गये। एक मालवीयजी अलबत्ते अब कुछ आवाज में कह रहे हैं—'अँग्रेज़ों पर से मेरा विश्वास उ गया, "मैं दो साल में स्वराज्य लेकर छोड़ूँगा" हालांकि उ समय बहुत समझदारी की सलाह दिया करते थे और लोग उनकी बातों पर हँस दिया करते थे। यह है पिछ छः सात बरसों की हमारी स्वराज्य-साधना का इतिहास अपने पूज्य और गुरुजनों की यह समालोचना लेखक के लि अनधिकार चर्चा-सी तो है परन्तु इस अ-धीरज की ज़िम्मेदा है उसकी युवावस्था। आशा है, युवावस्था में से गुज़र जा वाले हमारे बुज़ुर्ग नेता इसके लिए उसे क्षमा कर देंगे। किन्तु ऐसा मालूम होता है कि देश की युवक-प्रजा इन तरकीबों से ऊब गई है। और वह सीधे बेरोक अपनी मंज़िल पहुँचना चाहती है। उसने एक तरह से बग़ावत का झ खड़ा कर रक्खा है।

इससे देश में यद्यपि फिर नवचेतना और नूतन प्र का सञ्चार हो रहा है; परन्तु अभी एकसूत्रता क बाक़ी है। आज देश में न कांग्रेस की ही पुकार एक का सुनी जाती है, न महात्माजी का ही संदेश यहाँ से वहाँ एक-सा सुना जा रहा है; न मालवीयजी और नेहरू पैग़ामों पर लोग काफ़ी संजीदगी से विचार करते हुए आते हैं। हाँ, सायमन कमीशन के बहिष्कार की उमं एक ओर जहाँ जवाहरलालजी ने स्वाधीनता की आ बुलन्द की, महात्माजी ने विदेशी-वस्त्र के बहिष्कार घोषणा की, और मालवीयजी ने दो साल में स्वराज्य की आशा प्रकट की, और उससे उत्साह और जोश लहर ऊँची उठी, तहाँ नई-नई बातें भी देश के सामने लगीं। 'स्वराज्य' और 'स्वतंत्रता' का विवाद ख़तम होने नहीं पाया था कि सामाजिक आदर्शों का विकट प्रश्न सा आ रहा है। पं० जवाहरलालजी का ख़याल है कि के राजनैतिक स्वाधीनता काफ़ी नहीं है। जब तक ह सामाजिक आदर्श ही नहीं बदला जायगा तब तक न भा का भला हो सकता है, न दुनियाँ का। इस अर्थ में दुनिया की और भारत की एक ही समस्या है। कुछ पहले तक यह माना जाता रहा था कि एक राजा हो वह प्रजा का हित करता रहे। समय पाकर यह राजा

का भला करने के बजाय आप ही उसका प्रभु और कर्ता-धर्ता बन गया और अपने स्वेच्छाचारों की पूर्ति के लिए प्रजा पर मनमाना ज़ोरो-जुल्म करने लगा। तब लोगों ने देखा कि यह तो गलती हुई—कुछ नहीं-राजा को छोड़ो, अब से प्रजा का चुना हुआ प्रतिनिधि-मण्डल और अध्यक्ष प्रजा का हित-साधन करे। अब इसका भी फल कई जगह यह हो रहा है कि धनी और प्रभावशाली लोग साँठ-गाँठ लगा कर प्रतिनिधि-मण्डल में पहुँच जाते हैं और एक राजा के बजाय बीसों राजा, प्रजा के प्रतिनिधि के नाते, प्रजा के हित के नाम पर, अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करते हैं और उन पर प्रजा को कुरबान करते हुए भी नहीं हिचकते। योरपीय महाभारत में यही अनुभव हुआ। तब लोगों के विचारों ने फिर पलटा खाया। अब कुछ लोग कहने लगे हैं, नहीं, धनी और प्रभुताशाली लोगों के हाथों में शासन की बागडोर न होनी चाहिए, सर्व-साधारण और जनता के हाथों में होनी चाहिए। इस विचार के लोग, थोड़े थोड़े विचार-भेद के साथ, सोशलिस्ट, कम्युनिस्ट और बोल्शेविक कहे जाते हैं। वे कहते हैं कि केवल राज-काज में नहीं बल्कि सारे सामाजिक-जीवन में सब को अपनी उन्नति और सुख के समान साधन और सुविधायें मिलनी चाहिए, फिर वह राजा हो या रंक, धनी हो वा किसान, पढ़ा हो या अपढ़, स्त्री हो या पुरुष। यह कोई राजनैतिक ही नहीं एक भारी सामाजिक क्रान्ति का चिन्ह है। ऐसा जान पड़ता है कि पं० जवाहरलाल नेहरू भारत को यही सन्देश देना चाहते हैं कि तुम्हारा काम ख़ाली राजनैतिक सत्ता ले लेने से नहीं चलेगा, बल्कि ऐसा प्रबन्ध होना चाहिए जिससे वह सत्ता मुट्ठीभर प्रभावशाली लोगों के हाथों में न रहे, जनता के हाथों में रहे। फिर केवल राजनैतिक क्षेत्र में ही नहीं, बल्कि जीवन के सभी विभागों में समता और समानता का दौर-दौरा होना चाहिए। इसी दिशा में यदि दूर तक विचार करें तो हमें इस नतीजे पर पहुँचना पड़ता है कि जब तक सरकार अर्थात् सत्ता रखने वाली कोई भी, किसी भी प्रकार की संस्था, समाज में रहेगी तबतक सब को समान साधन और समान सुविधा नहीं मिल सकती—आत्मविकास की पूरी स्वाधीनता किसी को नहीं मिल सकती। यह तो तभी हो सकता है जब समाज में सब लोग ऐसे बन जायँ और इस तरह परस्पर व्यवहार करने लगें जिससे किसी बाहरी सत्ता की आवश्यकता उनकी रक्षा, शिक्षा और न्याय आदि के लिए न रहे। पर सारे समाज की ऐसी दशा भी उसी अवस्था में हो सकती है जब लोग खुद ब खुद उन तमाम नियमों और कानूनों को मानने लगें जिन्हें सरकार अपनी हुकूमत के अर्थात् दण्ड-भय के बल पर मनवाती है। यहाँ आकर हम देख सकते हैं कि मनुष्य के सामाजिक और राजनैतिक जीवन में भी संयम का कितना महत्व है। इस विषय पर बहुत दूर तक बारीकी के साथ जिन जिन विचारकों ने विचार किया है उनका यही कहना है कि समाज में किसी सरकार का रहना समाज की बे-बसी का सबूत है, समाज के लिए एक तरह से शर्म की बात है। थोरो, टालस्टाय, क्रोपाटकिन, लेनिन और गांधी—ऐसे विचारकों की श्रेणी में आते हैं। सामाजिक आदर्श से जहाँ तक संबंध है, यदि मैं ग़लती नहीं करता हूँ तो, ये सभी प्रायः एक-मत हैं; पर आगे चलकर आदर्श को पहुँचने के साधन या मार्ग में मतभेद हो जाता है। लेनिन का कहना है कि भाई जबतक मौजूदा सत्ता को जबर्दस्ती तोड़-फोड़ कर बागडोर अपने हाथ में नहीं ले ली जाती, अपने आदर्श के अनुसार शासन-व्यवस्था बनाने की पूरी सुविधा सब तरह नहीं प्राप्त कर ली जाती, तबतक अपने मनोवांछित सामाजिक आदर्श को पहुँचना असंभव है। अतएव इस संक्रमण-काल—बीच के समय—में तो हमें हर उपाय से सत्ता अपने पास रखनी ही चाहिए। मसोलिनी भी इसी भाव से प्रेरित होकर इटली में आज सर्व-सत्ताधीश बन गया है। पर टालस्टाय और गांधी कहते हैं कि यह तो तुम उल्टे रास्ते चल पड़े। तुम उस सामाजिक आदर्श को तब तक नहीं पहुँच सकते जबतक ख़ास किस्म के गुणों की वृद्धि और दोषों की कमी समाज में न कर दो। इसके लिए दो शर्तें लाजिमी हैं—(१) सामाजिक नियमों का उल्लंघन कोई न करे—सब खुद ब खुद राजी-खुशी उनका पालन करें (२) किसी के उल्लंघन करने पर दूसरा उसका बदला लेना न चाहे, उसे क्षमा कर दे। इन्हीं दो शर्तों का नाम है संयम और शान्ति। इसे एक ही शब्द में कहना चाहें तो

'अहिंसा' कह सकते हैं। उनका कहना है कि जबतक तुम अहिंसा को अपना पहला और अन्तिम पाठ नहीं बना लेते तबतक तुम चक्कर में हो—ग़ोते खाते रहोगे। सर्वसाधारण अर्थात् जनता संयम और क्षमा अथवा अहिंसा का अवलंबन तभी कर सकती है जब तुम समाज के बड़े, नेता कहाने वाले अपने जीवन में उसे प्रधान-पद दो। पर तुम तो मार-काट और हत्याकाण्ड मचा कर उसे मार काट और हत्याकाण्ड का ही रास्ता बताते हो और कहते हो कि इसके बिना काम नहीं चलेगा तो फिर लोगों में संयम और क्षमा कैसे आवेगी और जबतक ये गुण न आवेंगे तबतक तुम अपने सामाजिक आदर्श को कैसे पा सकोगे? तुम तो बबूल का बीज बो कर उससे आम के फल की आशा रखते हो। मैं स्वयं इसी दूसरे मत का क़ायल और अनुयायी हूँ; क्योंकि इसमें मुझे विचार की सुलझाहट मालूम होती है। अस्तु।

हां, तो पण्डित जवाहरलालजी स्वराज्य और स्वाधीनता के आगे बढ़कर हमारा ध्यान सामाजिक आदर्शों के परिवर्तन की ओर खींचना चाहते हैं; और बंगाल के युवक नेता सुभाषचन्द्र बोस भी इसी दिशा में विचार करते हुए नज़र आते हैं; यद्यपि वे पं० जवाहरलालजी से पूरे सहमत नहीं दिखाई देते। देश में और भी छोटे-बड़े लोग ऐसे हैं जो इन विचारों से सहानुभूति रखते हैं।

सामाजिक आदर्श के बारे में हमारा दिमाग़ सुलझा हुआ रहे, यह तो आवश्यक और अच्छी बात है; पर शंका यह होती है कि आज हमारे सामने पहला प्रश्न कौन सा है—स्वराज्य का या सामाजिक आदर्शों की क्रान्ति का। यदि स्वराज्य प्राप्त किये बिना—अर्थात् अपने समाज को अपनी इच्छा के अनुसार बनाने की स्वाधीनता हुए बिना हम अपने सामाजिक आदर्शों में सुधार या परिवर्तन कर सकते हैं तो फिर कोई बात नहीं। पर यदि ऐसा संभव नहीं है तो फिर लोगों के सामने एक नया प्रश्न और उपस्थित करके उनके ध्यान को अलहदा अलहदा बाँटना और मतभेद, वाद-विवाद और खण्डन-मण्डन के लिए अवसर उपस्थित करना क्या आज ही वाञ्छनीय है? अनिच्छा, असुविधा, अज्ञान, पूर्व-संस्कार या दुराग्रह के कारण नये सामाजिक आदर्शों के संबंध में किसी का थोड़ा या बहुत मतभेद हो सकता है; पर 'स्वराज्य' के सम्बन्ध में सब दल और सब मत के एकमत हैं उसी को सामने रख कर हम क्यों न लोगों शक्ति एक ही बात पर केन्द्रित करें? हाँ, प्रसंगोपात्त का अन्तिम आदर्श भी लोगों के सामने रखते रहें, प आन्दोलन का विषय बना लेना कहाँ तक दूरदर्शिता होगा, यह एक प्रश्न है। नवीन शब्द, नवीन बात में आकर्षण होता है, लोगों की बुद्धि पर उसकी छाप जाती है, इससे लोगों के उत्साह को एक ज़ोर का धक्का जाता है, इस दलील में कुछ बल अवश्य है. पर बार एक ही बात एक ही रूप में रखने से भी बड़ी केन्द्रित उत्पन्न होती है—यह उससे कहीं अधिक ज़ोरदार है। मेरी राय में तो स्वराज्य या स्वाधीनता का आदर्श भारत को मस्त बनाकर सर्वस्व बलिदान करने के अभी बहुत काफ़ी है, और इसी पर हमें सब से अधिक देने की और इसी की भनक लोगों के कानों तक रोज़ पहुँचाने की आवश्यकता है—यह पैग़ाम हम एक एक तक, एक एक झोंपड़े तक इस सरगर्मी के साथ पहुँचा कि या तो इस नाम से उनका जी ऊब उठे और या इतना बेचैन हो उठें कि यदि वे जियें तो स्वाधीन ब जियें; अन्यथा स्वाधीनता के लिए जेल में या नरक में सड़ते रहें। मुझे विश्वास है कि ज्यों ज्यों लोग अधिक करेंगे, वे इसी नतीजे पर पहुँचेंगे कि इस समय स्व की माँग को बलवती बनाने के लिए बहिष्कार से बढ़ अस्त्र हमारे पास नहीं है। अतएव यद्यपि मैं उस सामा आदर्श का क़ायल हूँ जो पं० जवाहरलालजी देश के स रख रहे हैं, तथापि मैं स्वराज्य और बहिष्कार की सी आगे बढ़ना अभी व्यावहारिकता की मर्यादा का उल्ल करना समझता हूँ। मैं जितना ही विचार करता हूँ मुझे आज देश के सामने पहला प्रश्न 'स्वराज्य' और 'बहि ही दिखाई पड़ता है।

परमात्मा हमें इसके लिए काफ़ी बल, और और दें सब कुछ होम देने की छटपटाहट।

हरिभाऊ उपा

मद्रास की दुनिया

मैं इससे पहले दो एक दफ़े मद्रास गया हूँ। मद्रास की असली अवस्था की जाँच-परताल करने का मौक़ा नहीं मिला। उत्तर भारत में हिन्दू-मुसलमानों के झगड़े ने बहुत-कुछ ऊधम मचा रक्खा है, परन्तु मद्रास में हिन्दू हिन्दुओं के झगड़े ने ही तूफ़ान बरपा कर रक्खा है। मद्रास की दुनिया ठीक उस नमूने की दुनिया है, जिसमें प्राचीन हिन्दू सभ्यता का कोई चिन्ह नज़र नहीं आता। मद्रास का हिन्दू-धर्म, हिन्दू-सभ्यता क़रीबन सारी की सारी उस ज़माने की है जो श्री शंकराचार्य के पीछे का ज़माना कहा जाता है। मध्यकालीन या पौराणिक भारत के तीनों बड़े आचार्य श्री शंकराचार्य, मध्वाचार्य, और रामानुजाचार्य, जन्म से मद्रासी थे। मद्रास इस समय उनके द्वारा प्रचलित की हुई हिन्दूसभ्यता का अनुयायी है। हम किसी के धार्मिक विश्वासों पर किसी किस्म का आक्षेप नहीं करना चाहते, परन्तु मद्रास की वर्त्तमान हिन्दू-सभ्यता को देख कर हमें यही निश्चय होता है कि जो वृत्ति इस समय मद्रास प्रान्त में प्रचलित हिन्दू-समाज की जड़ में है वह स्वराज्य की ओर हमें नहीं ले जा सकती। मद्रास में हिन्दू-दर्शन बहुत ऊँचे स्थान पर है, पर हिन्दू-धर्म और हिन्दू-जीवन बहुत नीच अवस्था को पहुँच चुका है। मद्रास के तमाम मन्दिर जो अपने भवन-शिल्पकला में अत्यन्त उन्नत हैं बहुत हद तक मैले कारागार हैं, जिनके इर्दगिर्द बहुत-कुछ मलीन और असभ्य जीवन देख पड़ता है। और यह भी मालूम होता है कि अंग्रेजी शिक्षा ने इन लोगों के धार्मिक एवं सामाजिक जीवन पर बहुत-कुछ असर नहीं किया।

जहां एक तरफ़ यह देख कर प्रसन्नता होती है कि उत्तर-भारत की तरह बहुत कम मद्रासी अंग्रेज़ी पोशाक पहनते हैं; वहाँ यह देख कर अत्यन्त दुःख भी होता है कि हिन्दुओं में जाति-भेद, सामाजिक-भेद और पारस्परिक घृणा हद दर्जे की बढ़ी हुई है। हम मद्रास की हिन्दू–जनता को तीन श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं? ब्राह्मण-अब्राह्मण, (जो अपने को नान-ब्राह्मण कहते हैं) और अछूत। ऐसा प्रतीत होता है कि कुछ साल पहले इस प्रान्त की तमाम राजनैतिक ताक़त ब्राह्मणों के हाथ में थी। इससे असन्तुष्ट होकर ब्राह्मण सम्प्रदाय में एक ऐसा दल खड़ा हुआ जिसने ब्राह्मणों के विरुद्ध आन्दोलन शुरू कर दिया। ब्राह्मण और अब्राह्मणों के अन्तर्गत भी बहुत से दल और बहुत सी जातियाँ हैं, परन्तु एक दूसरे के बख़िलाफ़ युद्ध करने के लिए सबों ने एका कर लिया है। बहुत से ऐसे भी व्यक्ति हैं जो ब्राह्मण और अब्राह्मण दोनों के साथ हमदर्दी रखते हैं, परन्तु दोनों श्रेणियों में एक दूसरे के विरुद्ध संघर्ष चलरहा है।

कांग्रेस में पिछले काल तक ब्राह्मणों का ज़ोर था। १९२६ के कौन्सिल के चुनाव में कांग्रेसपार्टी ने बहुत से ब्राह्मणों को भी अपने अन्दर सम्मिलित कर लिया और इस तरह कौंसिल में कांग्रेसियों का बहुत ज़ोर हो गया। परन्तु पिछले महीने में एक-एक दो-दो कर के करीबन १० आदमी उसपार्टी से निकल गये और प्रायः सरकार के साथ जा मिले, जिससे इस समय कांग्रेस पार्टी को बहुत-कुछ हानि पहुँची है। मद्रास कांग्रेस के राजनैतिक सिद्धान्त क्या हैं इसका निश्चय करना बहुत कठिन है। पिछली मद्रास कांग्रेस में दो प्रस्ताव मद्रास की ओर से पेश हुए जिन में बढ़ २ कर वक्तृतायें की गयीं। परन्तु एक पर भी कांग्रेसपार्टी इस समय स्थिर न रहीं। मद्रास की कांग्रेसपार्टी की ताक़त इस समय बहुत बिखरी हुई है इसमें किसी को

सन्देह नहीं हो सकता। एकदिन मद्रास कांग्रेस पार्टी के नेता श्रीयुत श्रीनिवास आयंगर से मेरी बातचीत हुई, उस समय ४,५ आदमी और भी बैठेहुए थे। उन्होंने जिस दुःख से कांग्रेसपार्टी का बर्ताव वर्णन किया, वह लिखना मुझे उचित नहीं जान पड़ता। उन्होंने हाल के एक भाषण में स्पष्ट-रूप से कहा है कि कांग्रेसपार्टी में न विचार की एकता है, न कर्म की। इस कारण यही उचित मालूम होता है कि कांग्रेस में जो लोग एकमत के हों, वे अपनी एक जुदी पार्टी बनावें--दूसरे मत के दूसरी। हरएक अपने २ मत के अनुसार काम करे। तभी कुछ काम हो सकता है, परन्तु काम क्या करना चाहिए यह कुछ नहीं बताया। उन्होंने कहा कि उनके सामने तीन प्रश्न हैं (एक तो) भारत की पूर्ण स्वतंत्रता के लिए यत्न किया जाय, दूसरे साधारण जनता को अपने साथ मिलाया जाय, तीसरे आवश्यक कार्यों के लिए रुपया इकट्ठा किया जाय।

कुछ काल से पूर्ण राजनैतिक स्वतंत्रता का भूत हिन्दुस्तानियों के दिलों पर चढ़ा हुआ मालूम होता है। ऐसा कौन पाजी हिन्दुस्तानी होगा कि जो यह इच्छा न रखता हो कि हमारा मुल्क कभी पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करे। परन्तु न तो पूर्ण स्वतंत्रता और न अधूरी स्वतंत्रता केवल बातों से प्राप्त होगी। इस समय तो हमें सारे राजनैतिक कामों का आदि अन्त केवल ज़बानी जमा-खर्च पर टिका हुआ मालूम होता है। नवयुवक सम्मेलन में बढ़ २ कर बातें करते हैं। बूढ़े लीडरों के बखिलाफ़ असन्तोष प्रकट करते हैं। सरकार के विरुद्ध बढ़-चढ़ कर तक़रीरें करते हैं। वे जो बात करते हैं वह सत्य ही क्यों न हो, परन्तु वह स्वयं विवश मन की दीवानी भर नज़र आती है—क्योंकि उसके पीछे कुछ नहीं–बड़ी २ धुवाँधार वक्तृताओं के आदि या अन्त में आगे या पीछे सन्तोष-प्रद काम नहीं दिखाई देता। देश में महात्मा गांधी के कथनानुसार इस समय काम करने योग्य हैं—एक खादी प्रचार—विदे वस्त्र-बहिष्कार, दूसरा अन्त्यजों का उद्धार, ती हिन्दू-मुसलमानों की एकता। हम इन तीनों पर एक करके विचार करेंगे।

मद्रास में हिन्दू-मुसलमानों का प्रश्न कोई जागता प्रश्न नहीं है। इसलिए मद्रास वालों को विषय में जो कार्यवाही करनी पड़ती है, वह दू प्रान्तों के लिए ही होती है। और हमारा अनुभव यह कि मद्रास के नेताओं ने यह प्रश्न सुलझाना चाहा, किन्तु और भी उलझा दिया। बाज़-बाज़ ने तो यह समझते हैं कि अपनी योग्यता और बुद्धिम से इसे हल कर डालेंगे, परन्तु हमारे पाठक जा हैं कि अभी यह प्रश्न हल नहीं हुआ। और न मद्रा नेता हल कर ही सकते हैं—साइमन कमिशन के से हिन्दू मुसलमानों के परस्पर सम्बन्ध उत्तर भा में अच्छे हो गये हैं। उत्तर भारत के हिन्दू-मुसल इस समय से लाभ उठाकर इस प्रश्न को हल क चाहें तो कर सकते हैं, परन्तु हमारी राय में मद्रास के नेता सहायता दे सकते हैं, न महाराष्ट्र

इससे उतर कर खादी प्रचार का काम है। अब कांग्रेस से सीधा सम्बन्ध नहीं रखता; महात्माजी अखिल भारतीय चर्खा-संघ के द्वारा रहे हैं। संघ ने देश भर में २५० खादी-भंडार रक्खे हैं। संघ की रिपोर्ट पढ़ने से मालूम होता है वह बहुत अच्छा काम कर रहा है। मैं खादी-प्र के संबन्ध में अपने विचार एक और लेख में प्र करूँगा इसलिए इसे यहीं छोड़ता हूँ। परन्तु मैं जा हूँ कि मद्रास के कांग्रेस के नेता बहैसियत कांग्रे होने के कोई ख़ास काम इस संबन्ध में नहीं कर रहे हैं

तीसरा प्रश्न अन्त्यजों का है। इस तरफ़ मद्रास कांग्रेस के कार्य कर्ताओं का कुछ भी ध्यान

ऐसा नजर नहीं आता। मद्रास कांग्रेस के नेताओं में कट्टर हिन्दुओं का ज़ोर है। उनके अन्दर वह तमाम भेद-भाव मौजूद है जो पौराणिक हिन्दू-धर्म ने क़ायम कर दिये हैं और इसलिए वह अपने सामाजिक जीवन सुधारने के लिए कोई ऐसा काम नहीं कर रहे जो संतोष देने वाला हो। अछूतों के सम्बन्ध में इस प्रांत में जो हो रहा है वह बाहर से लाये हुए धन से होता है। सब से बुरी हालत मलावार के अछूतों की है। मैंने मलावार के अछूतों की अवस्था जानने के लिए कई दिन लगाये। मुझे उनकी अवस्था, इस कार्य की महत्ता और कठिनता देखकर बहुत दुःख हुआ। जो देखा और सुना उसका वृत्तान्त पृथक् लेख में लिखूँगा; परन्तु यह कहे बिना नहीं रह सकता कि जो लोग समाज-सुधार के बिना राजनैतिक स्वतंत्रता का आंदोलन करते हैं; वह देश की अवस्था को नहीं समझते। जब तक वह ईमानदारी के साथ हिन्दू-समाज की सामाजिक मनोवृत्ति को बदलने की चेष्टा नहीं करेंगे, आजादी को पाना असंभव है। यों तो मेरा सदा ही विचार रहा, परंतु मद्रास की दशा देखकर यह विचार और भी दृढ़ हो गया। मद्रास में अभी समाज-सुधार के लिए कुछ भी कार्य नहीं किया गया। वहाँ के कुछ सज्जन प्रार्थना-समाज या थियोसोफिकल सोसाइटी के प्रभाव में आकर समाज-सुधार पर ध्यान देते हैं, परन्तु साधारण जनता जो अशिक्षित है समाज-सुधार को हिन्दू-धर्म के विरुद्ध और व्यर्थ समझती है।

मैंने मद्रास में इस बार श्रीरंगम, त्रिचनापली का महान् वैष्णव मंदिर देखा। इस मन्दिर में श्रीरंगनाथ देवता की पूजा होती है। कहा जाता है कि रामानुजाचार्य के विशिष्टाद्वैत मत के अनुसार यह पूजा प्रारंभ की गई, परन्तु मुझे क्षमा किया जाय—मुझे तो उस मन्दिर के इर्द-गिर्द सारे सामान को देखकर बहुत घृणा हुई और मैं कई घंटे उदास रहा, मुझे इस मन्दिर में कोई बात ऐसी नहीं मिली कि जो मनुष्य की बुद्धि को जँच जाय। वहाँ के दुराचार की जो कथायें सुनीं वे भी कम दुःख देने वाली नहीं। बड़े बड़े तिलकधारी अंग्रेजी पढ़े विद्वानों की बातचीत सुनकर यह भी निश्चय हुआ कि केवल पुस्तकों के पढ़ने से बुद्धि का विकास नहीं होता। मैं किसी मत का प्रचारक नहीं। मैं तो मत मतांतरों से दुखी होकर मतों से अलग हो गया हूँ, परन्तु इतनी क्षमता मुझ में है कि मैं यह समझ सका कि कौनसा धर्म मनुष्य को उन्नति की ओर ले जा सकता है और कौन नहीं। मैं समझता हूँ कि मद्रास के मंदिरों की पूजा की वृत्ति हमें सामाजिक नरक की ओर ले जाती है। जिन मन्दिरों में अभी तक देव-पूजा के बहाने दुराचार होता है, जिनमें अभी तक लोग मलिनता को मन्दिर-पूजा का एक आवश्यक अंग समझते हैं, जिस समाज में अभी तक यह आवश्यक समझा जाय कि किसी का मत प्रकट करने के लिए उसके माथे का टीका लंबा चौड़ा या गोल हो, उस समाज में राजनैतिक स्वतंत्रता का भाव प्रचलित करना असंभव मालूम होता है।

धार्मिक, राजनैतिक या सामाजिक किसी भी प्रकार की स्वतन्त्रता का प्रचार करना हो तो पहली शर्त यह है कि मनुष्य की बुद्धि में स्वतन्त्रता का कुछ प्रकाश हो। जिस धर्म में सोचने-विचारने का कुछ भी भाव न हो—धर्म के संबन्ध में भी थोड़ा विचारने की स्वतन्त्रता न हो, उसमें राजनैतिक स्वतन्त्रता का भाव फैलाना असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। हमारे मद्रासी भाई बड़े विद्वान् हैं, और गणित में उन्होंने विशेष नाम पाया है, वे विचार-दर्शन में भी ऊँचा दर्जा रखते हैं—अंग्रेजी लिखने-पढ़ने में वे शिरोमणि हैं, परन्तु व्यावहारिक संसार या धार्मिक और

सामाजिक संसार में उनका व्यवहार इन दो बातों से खाली नहीं-या तो उनकी बुद्धि इधर दौड़ती नहीं या वे निहायत दर्जे के ढोंगी (मक्कार) हैं। यों तो मक्कारी उस जाति के चरित्र की स्पष्ट रेखा हो ही जाती है, जो दूसरी के अधीन हो। पराधीनता मक्कारी की माँ है, पर जहाँ पर जाब्ते के धर्म का-धर्म के बाहरी अंग का-राज्य प्रभावशाली हो, वहाँ पर पहले बुद्धि की पराधीनता और उसके बाद शरीर की पराधीनता भी एक ही जीवन के दो रूप हैं। मद्रास की धार्मिक और सामाजिक अवस्था देख कर मुझे यह ख्याल हुआ कि मद्रास को एक ऋषि दयानन्द की आवश्यकता है। मौजूदा आर्य-समाजियों में यह शक्ति नहीं कि वे मद्रास जैसे कट्टर हिन्दू-प्रांत को सुधार की ओर ले जा सकें। अब तक तो सुधारक संस्थाओं का यही रूप देख पड़ा कि वह मद्रास में किश्ती डुबा बैठे। आर्यसमाज ने भी मद्रास में संतोष-जनक कार्य नहीं किया। मद्रास में ऐसे हिन्दू-सुधारकों की आवश्यकता है जो हिन्दू-शास्त्र में निपुण और निडर हों। इस समय तक मद्रास में आर्य-समाज के फैलाने की जो कोशिश की गई है उसमें बहुत सफलता प्राप्त नहीं हुई। यहां की धार्मिक आबोहवा अत्यन्त ज़हरीली और सामाजिक आबोहवा अत्यन्त तंग है। इस आबोहवा में सफलता प्राप्त करने के लिए किसी ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता है जो शास्त्र-विद्या में निपुण और चरित्र में उत्तम से उत्तम श्रेणी को प्राप्त हुआ हो। खुद मद्रासियों में अभी हमें ऐसे व्यक्तियों के पैदा होने की कोई आशा नहीं। मद्रास प्रान्त पढ़ने लिखने की दृष्टि से सबसे अच्छी हालत में है, यहाँ तक कि वहाँ की स्त्रियाँ भी अन्य प्रान्तों की अपेक्षा विदुषी हैं। केवल यही रेखा आशा की है। स्त्रियों में जागृति है और आशा है कि वे कुछ कर दिखावें; नहीं तो वहां के पुरुषों से तो मुझे कुछ भी आशा नहीं। वे तो बातूनी, झगड़ और बाल की खाल निकालने वाले हैं।

लाजपतरा

प्रभु-दर्शन

सन्त जनों को मैंने देखा, माला जपते जाते थे।
किसी अलख अदृष्ट देव से, कुछ धीरे बतराते थे।
मैंने सोचा मनकाओं में, कोई बैठा है छिपकर।
जिससे ये बातें करते हैं, वह होगा इनके भीतर॥

किसी यत्न से एक सन्त की, सेवा को तैयार हुआ।
जिसकी शिक्षाओं से सारा, उदासीन संसार हुआ।
राम राम बरसों रटवा कर, उसने मुझे थका डाला।
मैंने कहा बता दो अब तो, वह प्यारा धनुही वाला॥

सुनकर के मुसकाया वह फिर, कहा और कुछ धैर्य धरो
राम राम श्री राम नाम का, और निरन्तर जाप करो
कुछ दिन मैंने और चित्त को, रोका और सम्हाला सा
अन्त अधीर हुआ मैं मन में, हुआ प्रेम-मतवाला सा॥

आँख बचाकर स्वामीजी की, मालायें मैंने तोड़ीं।
सारी मनिकाओं को उनकी, एक एक करके फोड़ीं।
किन्तु किसी में मिला नहीं वह, धनुष-बाण धरने वा
रावण-मद-हारी वह प्यारा, भव-बाधा हरने वाला।

और निराशा की तब बढ़कर, हृदय-मध्य भड़की ज्वा
जिसने कुछ हतबुद्ध और फिर, मुझे विकल सा कर डा
इतने में मेरे स्वामीजी, बाहर से ज्योंही आये
मेरी करतूतें जब देखीं, उग्र रूप होकर धाये॥

उनकी शान्ति मूर्ति को मैंने, क्रोध-रूप में तब जाना
परसराम अवतार वही थे, उनको मैंने पहचाना
बढ़ा, किन्तु वे बोले—'मिलना व्यर्थ समझ बिन ज्ञान हु
इतना कहकर बिना सुने कुछ, प्रभुकर अन्तर्धान हुए॥

देवीप्रसाद (कुसुमाकर)

भारत भक्त
डॉ० जे० टी० सन्डर लैण्ड

डाक्टर सन्डरलैन्ड

१२ मई सन १९२८ ई०के दिन अमेरिका के न्यूयार्क नगर में डाक्टर जे० टी० सन्डरलैन्ड के सन्मान में एक प्रीतिभोज दिया जाने वाला है। उसमें वे भी सम्मिलित होंगे। इस अवसर पर हिन्दुस्थान ऐसोसिएशन के सदस्यों ने, दि इण्डियन-फ्रीडम फाउन्डेशन नामक संस्था ने, और संयुक्त राज्य के हिन्दुस्थानी भाइयों ने उनकी महान भारत-भक्ति और विशुद्ध प्रेम की सराहना करने तथा भारत की दीर्घ-कालीन सेवाओं के लिए उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करने का निश्चय किया है।

इस शुभ अवसर के उपलक्ष्य में कवि-सम्राट् रवीन्द्रनाथ टागोर ने अपना सन्देश और अपने हस्ताक्षर वाला एक सुन्दर चित्र डाक्टर महोदय के लिए भेजा है। वह और साथ ही भारत तथा दूसरे देशों के मित्रों द्वारा भेजे हुए सन्देशों और मधुर संस्मरणों की पुष्पांजलि उन्हें उस दिन आदरपूर्वक समर्पित की जायगी।

भारत की स्वतंत्रता-प्राप्ति के प्रयत्नों में सहायक होकर, सारे देश में भ्रमण करके, पत्रों, लेखों तथा भाषणों द्वारा देश की स्वतंत्रता के लिए लड़ कर डाक्टर साहब ने देश की जो सेवा की है, उसके कारण भारत के शिक्षित-समाज में आप खूब मशहूर हैं। देश की स्वतंत्रता के लिए किये गये सारे संगठित आन्दोलनों में आप ई० सन १८९५ से बराबर भाग लेते रहे हैं। इसी साल आप पहले-पहल भारत पधारे थे।

आपका जन्म ११ फरवरी सन १८४२ ई० में हुआ था। इस समय आपकी आयु ८६ वर्ष की है। अभी हाल, आपने हिन्दुस्थान पर एक महत्व-पूर्ण पुस्तक लिखी है, और इधर वर्षों से भारत तथा अमेरिका के पत्रों में आपके गंभीर एवं सुपाठ्य लेख बराबर छपते रहे हैं।

यहाँ अमेरिका की हिन्दुस्तानियों की सभाओं और उनसे सम्बन्ध रखने वाले प्रीति-भोजों के अवसर पर सभापति-पद के लिए बार-बार आप ही निमंत्रित किये जाते हैं। और इतने वृद्ध होते हुए भी बुलावा पाने पर ऐसी सभाओं में आप पूरे उत्साह के साथ सम्मिलित होते रहे हैं।

भारत की स्वतंत्रता आपके जीवन की एक भारी साध है। इसी प्रबल साध के कारण अपने जीवन के इस अन्तिम और आराम के समय में भी आप हिन्दुस्थान की स्वतंत्रता पर कुछ न कुछ सप्रमाण बातें लिखा ही करते हैं।

इधर कुमारी मेयो ने अपने 'चार मास' के भारत भ्रमण के थोथे आधार पर दुष्ट भाव से प्रेरित हो वह कुत्सित पुस्तक—भारत की निन्दा की गरज से—प्रकाशित की और तब से भारतीय बातों में उसकी बड़ी पूछ होने लगी थी। इसलिए ऐसे समय आपकी पुस्तक अमेरिका में बड़े मौके से प्रकाशित हुई है।

वर्षों की गंभीर खोज के फल-स्वरूप भारत के बारे में जो बातें आपको मालूम हुईं, उन्हें आपने बड़ी खूबी से ज़ोरदार भाषा में इस पुस्तक में प्रकट किया है। भारतीय सभ्यता और राजनीति से—आपका जो स्थायी सम्बन्ध रहा है, उसके कारण प्रस्तुत पुस्तक का महत्व और भी बढ़ गया है।

अभी तक भारत के विषय में इतने अधिकार पूर्वक आप क्यों कर लिख सके, इसका कुछ विवेचन यहाँ असंगत न होगा।

अपनी युवावस्था के आरम्भ ही से डाक्टर सा० को भारत से बहुत ज्यादा प्रेम होगया था। इस प्रेम का अंकुर तो बचपन में ही फूटा था। इसी कारण उस अवस्था में आपने भारत-सम्बन्धी कई तरह का

साहित्य पढ़ा, बहुत सी बातें सुनीं, और भारत से लौटे हुए ईसाई पादरियों से अपना परिचय भी बढ़ा लिया था। इस तरह जीवन के प्रभात-काल में ही आपके हृदय में मिशनरी बनने की इच्छा जाग्रत हुई। कॉलेज में और धार्मिक पाठशाला में (Theological Seminery) रहते हुए भी यह इच्छा—यह सुख-स्वप्न, आपके भावुक हृदय में सदा जाग्रत रहा। इसी कारण भारतीय वायुमण्डल के अनुकूल बनाने वाली पुस्तकों का ही आप ध्यान से पठन-पाठन और स्वाध्याय करने लगे थे।

आपकी छोटी बहन और कालेज के कुछ अभिन्न-हृदय मित्र तो भारत में कुछ समय बाद, मिशनरी बन कर पधारे भी। किन्तु ये विचार बदल जाने के कारण आपने खुद मिशनरी का काम नहीं किया। फिर भी भारत-विषयक आपका सहज-प्रेम तो वैसा ही बना रहा, न कभी कम हुआ और न आगे ही होने की संभावना है। चालीस से भी अधिक वर्ष हुए, आप भारत के अनेक धर्मों के विशाल साहित्य, दर्शनशास्त्र, उन्नत कला-कौशल, सुदीर्घ इतिहास और सर्वतोपरि उसकी आज तक की सामाजिक और राजनैतिक समस्याओं का बड़ी गम्भीरता-पूर्वक अध्ययन कर रहे हैं।

भारत-सम्बन्धी मामलों में आपके इस विशाल ज्ञान को देख कर ही सन् १८९५-९६ में ब्रिटिश नैशनल यूनीटेरियन असोसिएशन ने, आपको एक विशेष कमिश्नर के नाते, भारतवर्ष की धार्मिक, सामाजिक, शिक्षा-संबंधी और दूसरी महत्व की रीतियों का अध्ययन करने के लिए हिन्दुस्थान भेजा था। यह काम करके लण्डन लौटने पर आपने अपनी एक लम्बी, खुलासेवार रिपोर्ट प्रकाशित की थी। सन् १९१३-१९१४ में आप पुनः इसी तरह के एक कमीशन पर भारत आये, किन्तु इस समय आपकी नियुक्ति में अमेरिका के यूनिटेरियन असोसिएशन का हाथ था।

इन दो कमीशनों के सिलसिले में, आपको भा वर्ष में १३,००० से भी अधिक मीलों की यात्रा क पड़ी थी। इस अवसर पर आपने कई मिशनरियों भेट की, कितने ही सरकारी हाकिमों और अं व्यापारियों से आप मिले, हिन्दुस्थान के कई प्रसि लोक-नेताओं, अधिकारियों, व्यापारियों और विद्वा से, यहाँ के सारे प्रसिद्ध नगरों में मिले, और उ खूब वार्तालाप किया। भारत की राजनैतिक औ धार्मिक समस्याओं पर बड़ी-बड़ी सभाओं में उपस्थि रहे और नेताओं के साथ आपने घण्टों विचार-परामर्श किया।

आपका यह कार्य केवल शहरों तक ही सीमि नहीं रहा। कई तरह की असुविधाओं और कष्टों सहर्ष झेलते हुए आप हिन्दुस्तान के अधिकतर क और गाँवों में गये और कई हफ्तों तक भ्रमण क रहे। घोड़े की सवारी पर भारत का अन्तरङ्ग-ग्रा जीवन देखने वाले आप ही पहले अमेरिकन स थे। इस तरह लोगों से प्रत्यक्ष बातचीत करने उनके कष्टों एवं असन्तोष का कारण मालूम करने आप खूब कामयाब हुए। आपके इस कष्ट-सहन परिणाम यह हुआ कि भारत की देहाती और न रिक जनता की सच्ची हालत का आप बड़ी सफ से अध्ययन कर सके। इससे आपके द्वारा गु भारत की कई सच्ची और आँखों देखी जानने बातें, ब्रिटिश जनता के समीप पहुँच सकीं।

राष्ट्रीय महासभा, समाज-सुधार परिषद् अखिल भारतीय ऐतिहासिक परिषद् के दो वार्षिक अधिवेशनों में सम्मिलित होने का सौभा आपको प्राप्त हो चुका है। पहली दो सभाओं आपने महत्त्वपूर्ण भाषण दिये और अन्तिम परि

के तो सभापति बनने तथा उस पद से अपना अभिभाषण देने का भी आपको सौभाग्य मिला था। ऐसे राष्ट्रीय महत्त्व के अवसरों पर बार बार सम्मिलित होकर आपने भारत के लगभग सारे प्रांतों के राजनैतिक, सामाजिक, ब्रह्मसमाजी, आर्यसमाजी और दूसरे आस्तिक नेताओं से गहरा परिचय प्राप्त कर लिया था।

भारत में रहते हुए डाक्टर महोदय को यहाँ के सामयिक अग्रगण्य समाचार-पत्रों, साप्ताहिकों एवं मासिकों आदि से बड़ा प्रेम हो गया था। इनमें से कुछ की सुन्दरता और श्रेष्ठता पर तो आप बड़े ही मुग्ध थे। इन पत्रों को, अपनी दोनों बार की भारत-यात्रा में आप बड़े ध्यान-पूर्वक पढ़ते रहते थे। और सन् १८९६ में जब पहली यात्रा समाप्त कर आप घर लौटे तब से आप इन पत्रों में से कम से कम सात पत्रों के तो बराबर स्थायी ग्राहक रहे हैं। कलकत्ता, बम्बई, मद्रास, पूना, लाहौर और प्रयाग के पत्र इनमें प्रधान हैं। इस तरह तब से लेकर आज तक अपनी जन्मभूमि की भांति ही भारत-सम्बन्धी हरएक छोटे-बड़े मामले में आपकी दिलचस्पी बराबर जाग्रत रही है।

भारतवर्ष-विषयक आपका वाचन केवल इन सामयिक मासिकों तक ही परिमित नहीं रहा, बल्कि गत ३०, ३५ वर्षों में अंग्रेज़, अमेरिकन, या भारतीय प्रकाशक की ऐसी एक भी पुस्तक जिसका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष सम्बन्ध भारतीय राजनीति या सामाजिक आदि समस्याओं से रहा है, आपने अछूती नहीं छोड़ी। सारांश, इस प्रकार की प्रत्येक पुस्तक के पढ़ने में आपको कर्त्तव्य-पालन का सा सुख प्राप्त होता था।

जिस समय लाला लाजपतरायजी देश से निर्वासित होकर सन् १९१४ से १९१९ तक अमेरिका में रहे थे, उस समय इन सुप्रसिद्ध भारत-भक्त के साहित्यक कार्यों में आपने हर तरह की सहायता पहुँचाई थी। अमेरिका में लिखी हुई लालाजी की तीनों पुस्तकों के प्रूफ़ आपने देख लिये थे। इनमें से एक पुस्तक की तो आपने भूमिका भी लिखी है। इस तरह जब तक लालाजी वहाँ रहे, आप उनके हर तरह से सच्चे सुहृद् और सहायक बने रहे और उनके भारत लौट आने पर न्यूयार्क में स्थापित 'यंग इन्डिया' नामक मासिक पत्र के संपादन का भार भी आपने कंधों पर उठाया था। लालाजी के उत्तराधिकारी के नाते, अमेरिका की इन्डियन होमरूल लीग और इन्डिया-इन्फ़ारमेशन ब्यूरो-न्यूयार्क के आप सभापति भी रहे।

संयुक्तराज्य और कनाड़ा में भारतीय धर्म, कला, साहित्य, समाज और स्वातन्त्र्य-युद्ध पर डाक्टर साहब समय समय पर बड़े गंभीर और विस्तृत व्याख्यान देते रहते हैं। भारतीय मासिक पत्रों में, आज तक आपने अनेक महत्त्वपूर्ण सुपाठ्य लेख प्रकाशित कराये हैं। और आपकी लिखी कई पुस्तकों में से दो तो भारत में ही प्रकाशित हुई हैं।

'भारतीय दुर्भिक्षों का कारण' 'भारत, अमेरिका और विश्व-बन्धुत्व' तथा 'भारतीय स्वतन्त्रता का दावा' ये तीन पुस्तकें आपकी भारत-सम्बन्धी सेवाओं की अमर थाती हैं। प्रत्येक शिक्षित भारतीय को चाहिए कि वह उन्हें एक बार ध्यान-पूर्वक पढ़ जाय।

सर डिग्बी की 'उन्नत ब्रिटिश भारत' पुस्तक आप ही की प्रेरणा का फल है।

मेरी अल्पमति में डाक्टर महोदय की भारत सेवायें, हमारे स्वर्गीय 'भीष्म पितामह' दादाभाई नौरोजी की सेवाओं से यदि बढ़कर नहीं तो बराबर ज़रूर हैं। भारतीय न होने के कारण आपकी सेवायें और भी अधिक मूल्यवान हो जाती हैं। केवल न्याय

और सत्य की ज्वलन्त भावना से प्रेरित होकर ही आप वर्षों से हमारे स्वातन्त्र्य-युद्ध में इतनी बहुमूल्य सहायता पहुँचा रहे हैं।

हमें विश्वास है कि डाक्टर संडरलैंड को भारतवर्ष की कृतज्ञता कभी नहीं भूल सकेगी। निस्सन्देह आपकी सेवायें भारत के भावी इतिहास में चिर स्मरणीय रहेंगी। हम अमेरिका-निवासी भारतवासी भी डाक्टर महोदय के प्रति अपनी अनन्य कृतज्ञता प्रकट करते हैं। और परमेश्वर से यही वर चाहते हैं कि हम लोग शीघ्र ही अपने आपको इन वृद्ध पितामह की आशीषों और सेवाओं के योग्य सिद्ध कर सकें। ईश्वर वह दिन शीघ्र लावे, जब डाक्टर साहब अपने जीवन-काल में ही भारत में स्वाधीनता का झंडा फहराता हुआ देख सकें।

रामलाल वाजपेयी (अमेरिका)

भारत में औद्योगिक उन्नति का प्रश्न

आज भारतवर्ष की आर्थिक समस्या कितनी विकट हो गई है, भारत-माता का प्रत्येक पुत्र इसका अनुभव करता है। जिस देश की असंख्य जन-संख्या केवल पेट भरने में ही अपना समस्त परिश्रम लगा कर भी एक मनुष्य की भाँति अपना जीवन निर्वाह नहीं कर सकती, उस देश का भविष्य क्या है यह भगवान् ही जानते हैं। मैं बहुत से अंकों को न देकर केवल साधारण रीति से यह दिखलाऊंगा कि हमारे देश-वासी दरिद्रता-पाश में किस प्रकार फँसे हुए हैं। स्व० रानडे के मतानुसार प्रत्येक मनुष्य की वार्षिक आय का औसत २१) था किन्तु अब समय का परिवर्तन हो गया है, भारत की आर्थिक अवस्था भी भिन्न हो गई है और यह औसत अब ७८) तक पहुँच गया है। इस अनुमान में अर्थशास्त्र-वेत्ताओं में बहुत-कुछ मतभेद है और औसत निकालने में बहुत सी त्रुटियों की भी सम्भावना है। फिर भी यदि यह मान लिया जाय कि यह संख्या ठी है, तब प्रति मास ६) के हिसाबसे प्रत्येक व्यक्ति की आय औसत निकलता है। किन्तु इसके वास्तविक तत्व को सम के लिए दो बातों का विशेष ध्यान रखना होगा—एक राष्ट्र की सम्पत्ति का विभाजन एक-सा नहीं है। स भाषा में इसका अर्थ यह हुआ कि कुछ मनुष्य तो ऐसे कि जिनके पास भारतवर्ष की औसत आय से कई गु आय है। इसका फल यह है कि निर्धन जनता के पा औसत आय से भी कम आय रह जाती है। दूसरी बा जो विशेष महत्व की है वह है ग्रामीण जनता की आवश्य ताओं में परिवर्तन अर्थात् अब ग्रामीण जनता केवल थोड़ी सी आवश्यकताओं से सन्तुष्ट नहीं है, बल्कि उन भी आवश्यकतायें शनैः शनैः बढ़ रही हैं। इन दोनों बा को ध्यान में रखते हुए प्रत्येक विचारवान् पुरुष को म होगा कि भारतीय जनता किसी प्रकार केवल अपने प्रा को जीवित रख सकती है। संसार के सुख भोगना, पौ पदार्थ खाना, अपने पुत्रों को शिक्षा दिलवाना, रोगी औषधि का ठीक ठीक प्रबन्ध करना आदि इतनी आय में ही असम्भव है। यह सब तो दूर रहा, भारत की बहुत जन-संख्या के रहने के स्थान और भोज्य-पदार्थ इतने निकृ होते हैं कि जिनके द्वारा स्वस्थ शरीर का पालन ही नहीं सकता। इसके अलावा अनावश्यक व्यय भी भारत कृषक पर बहुत लगा रहता है। विवाह, मरण और जन्म व्यर्थ के सामाजिक व्यय से भारतीय ग्रामीण दबा रहता है अर्थशास्त्र के बड़े २ विद्वानों का यह मत है कि भारत चीन जैसी निर्धन जन-संख्या किसी भी देश की नहीं है भारतीय निर्धन ग्रामीणों को देख कर उनके कष्ट-मय जी का अनुभव जिसने किया है उसने मनुष्यता के नाते दु तो अवश्य ही प्रकट किया है। किन्तु आश्चर्य यह है कि अर्थशास्त्रज्ञ भारत की इस निर्धनता का दुःख-मय श में वर्णन करते हैं वे भारतीयों को केवल कृषि करने में ही रहकर धनोपार्जन करने की नीति का समर्थन भी करते हैं उनका कथन है कि भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है जिस ७३ प्रतिशत जन-संख्या केवल कृषक है। उनका यह भी म है कि यदि नवीन रीति से उद्योग-धन्धे भारतवर्ष में चला

गी तो खेती को बहुत बड़ा धक्का लगेगा। कृषक लोग बड़े पुतलीघरों में श्रम-जीवी होकर चले जायेंगे और जो पूंजी अभी खेती में लगाई जा रही है वह उद्योग-धन्धों लगाई जाने के कारण खेती की अवनति का कारण होगी। का यह भी कथन है कि भारतवर्ष को कृषि में प्रकृति बहुत सहायता देती है। यहां की उर्वरा भूमि, यहां जल-वायु और कृषि-कर्म में कृषक की निपुणता यह कारण मिल कर कृषि को ही धनोपार्जन का साधन बना देते हैं। इसके विपरीत यदि रतवर्ष में बड़े बड़े उद्योग-धंधों का नवीन रीति से आविहोगा तो पश्चिमीय देशों की भांति कृषक-जनता शनैः २ ग्रामों को छोड़कर बड़े बड़े नगरों में जा कर बसेगी और जो समस्या इस समय पश्चिमीय देशों के समक्ष उपस्थित है, भारतवर्ष में भी भीषण रूप से उपस्थित हो जायगी। प्रश्न जो यह लोग करते हैं वह दूसरे देशों की प्रतिद्वन्द्विता के विषय में है। उनका कथन है कि भारतीय श्रमजीवी स्वभाव से ही आलसी तथा धीरे-धीरे काम करने वाला होता है। वह बड़े बड़े पुतलीघरों में कभी सफलता-पूर्वक नहीं कर सकता। वे यह भी कहते हैं कि भारत केवल कृषक देश रहा है। प्राचीन काल में भी केवल कपड़े के धंधे को छोड़ कर, भारत में उद्योग-धंधे कभी उन्नत नहीं रहे और न अब भारत दूसरे समृद्धिशाली देशों की प्रतिद्वन्द्विता में सफल हो सकता है। किन्तु यह मत उन्हीं लोगों का है जो अर्थ-शास्त्र के तो बहुत बड़े विद्वान् हैं किन्तु भारतवासी नहीं हैं। इसके विपरीत जो भारतीय अर्थशास्त्र के जानकार हैं, वे एक मत होकर कहते हैं कि भारत का सबसे बड़ा धंधा कृषि-कर्म ही रहेगा, किन्तु ३१ करोड़ से अधिक जनसंख्या को केवल कृषि पर निर्वाह करने का परामर्श देना उसको भयंकर विपत्ति में डालना है। भारत की जोतने योग्य भूमि में से बहुत बड़ा भाग तो जोता ही जाता है, इस कारण अब अधिक भूमि कृषि के लिए मिल सकना बहुत कठिन है। देश की जन-संख्या दिन प्रति दिन बढ़ रही है और खाद इत्यादि के न देने से भूमि की उर्वरा शक्ति भी शनैः शनैः लग गई है। जितनी भी भूमि कृषि के योग्य थी सब काम में ले ली गई है, यहाँ तक कि गाँवों में चरागाह भी खेतों में परिणत कर दिये गये, फलतः किसान के पशुओं को पेट भर घास नहीं मिलती, जिससे वे निर्बल और शक्तिहीन हो जाते हैं। डाक्टर म्योलकर का (जो कि अर्थशास्त्र के अच्छे पंडित हैं) कथन है कि यदि भारतवर्ष की जोती हुई भूमि के क्षेत्रफल का औसत प्रति मनुष्य के हिसाब से लगाया जाय, तो प्रत्येक मनुष्य के लिए एक एकड़ से कुछ ही अधिक औसत निकलता है। इसी एक एकड़ में से उत्पन्न कच्चे माल को बाहर भेजकर भारतीय जनता वे देशी पुतलीघरों के बने हुए माल को मँगाती है। यदि इसका भी ध्यान रक्खा जावे तो केवल दो-तिहाई एकड़ प्रत्येक व्यक्ति के लिए रह जाता है। इस दो-तिहाई एकड़ से ही भारत के निवासी एक वर्ष तक भोजन-सामग्री उत्पन्न करते हैं। एक लेखक का कथन है—The small patch of land is made to give all the necessary good and to a certain extent clothes, a heavy work which no land can be expected to do. अर्थात् इस छोटी सी भूमि के टुकड़े से भारत के लोग वर्ष भर का भोजन और कपड़ों के लिए कच्चा माल उत्पन्न करते हैं। संसार के अन्य देश की भूमि यह नहीं कर सकती है। तिस पर भी आश्चर्य की बात यह है कि प्रति वर्ष कृषकों की संख्या बढ़ती जा रही है। इसका कारण यह है कि छोटे २ उद्योग-धंधे विदेशी पुतलीघरों के बने हुए सस्ते माल की खपत के कारण नष्ट हो रहे हैं। सूत कातने, कपड़ा बुनने, लोहे, काठ, पत्थर, तेल इत्यादि के गृहोद्योग विदेशी माल की प्रतिद्वन्द्विता के कारण शिथिल होते जा रहे हैं और जुलाहे, बढ़ई, लुहार इत्यादि जब निर्वाह योग्य धन नहीं पाते तो थोड़े दिनों तक तो उसी उद्योग में लगे रहते हैं और अन्त में कृषि की शरण में जाते हैं।

भारतवर्ष के कृषि-कार्य में वर्षा का विशेष स्थान है। यदि एक वर्ष वर्षा न हुई या कम हो गई अथवा वर्षा आवश्यकता से अधिक हो गई तो देश को भयंकर दुर्भिक्ष का सामना करना पड़ता है, और देश की इतनी बड़ी जनसंख्या के केवल कृषि पर निर्भर रहने से महा-भयंकर परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। करोड़ों रुपया सरकार उस समय जनता के प्राण-रक्षार्थ व्यय करती है। किन्तु इसी

समय सरकार की भी आय घट जाती है, वह लगान इकट्ठा नहीं कर पाती है, रेलों को भी घाटा होने लगता है और व्यापार शिथिल हो जाता है। जब देश की तीन-चौथाई जन-संख्या से अधिक केवल कृषि पर निर्वाह करते हों, तो यह स्थिति उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक ही है। फिर यहां की वर्षा भी बहुत अनिश्चित है। आये दिन देश का कोई न कोई भाग दुर्भिक्ष के भयंकर जाल में फँसा ही रहता है। यद्यपि नहरों से लाभ अवश्य हुआ है, किन्तु वे भी इस डर को दूर नहीं कर सकतीं। इसी बात पर विचार करने के उपरान्त दुर्भिक्ष-कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में उद्योग-धंधों की उन्नति करने पर बहुत-कुछ ज़ोर दिया था। उनका कथन है कि जब बहुत सी जन-संख्या भिन्न २ प्रकार के उद्योगों में लगी रहेगी तो दुर्भिक्ष का इतना भयंकर प्रभाव देश पर न होगा। इन्हीं सब कारणों से भारतीय जनता भी अब एक स्वर से उद्योग-धंधों की उन्नति के प्रयत्न का समर्थन करने लग गई है।

अब प्रश्न यह होता है कि क्या भारतवर्ष के उद्योग-धंधे विदेशी प्रतिद्वन्द्विता के सामने ठहर सकते हैं? इस पर विचार करने के प्रथम यह समझ लेना आवश्यक है कि औद्योगिक उन्नति के लिए किन २ वस्तुओं की आवश्यकता है? यदि भारतवर्ष में वे सब मिल सकतीं हैं तब तो यह कहना कि भारतवर्ष के उद्योग-धन्धे सफल न होंगे केवल हठ-मात्र है। सबसे प्रथम वस्तु जो कि आवश्यक होगी वह है कच्चा माल सो इसके लिए हमारे देश को दूसरे देशों का मुँह ताकने की आवश्यकता न पड़ेगी। भारतवर्ष संसार के बड़े-बड़े देशों को कच्चा माल भेजता है। कच्चा माल जो कि विदेशों को भेजा जाता है उसमें निम्नलिखित मुख्य हैं:— कपास, जूट, तिलहन, खालें, मूंगफली, अबरख, मैंगानीज़ चाय, क़हवा, तम्बाकू, अफीम इत्यादि। इससे स्पष्ट है कि हम को कच्चा माल बाहर से मंगाने की आवश्यकता नहीं है। दूसरी आवश्यकता है श्रमजीवी-समुदाय की। अब तक अर्थशास्त्रज्ञों का यह विचार था कि भारतीय श्रमजीवी पुतलीघरों के अयोग्य और निकम्मा होता है। किन्तु अब उनके विचार बदलने लगे हैं। बहुत से विद्वानों की राय में भारतीय श्रमजीवी मिहनती और कार्य-दक्ष होते हैं। उनका कथन है कि इन लोगों को बुरे खाद्य-पदार्थ मिलने के कारण बुरी स्थिति में रहने के कारण वे पश्चिमीय श्रमजीवी के हृष्ट-पुष्ट नहीं होते। वे यह भी कहते हैं कि यदि समुचित वेतन देकर इनकी स्थिति में उन्नति की जावे थोड़ी सी शिक्षा भी देदी जावे तो यहां के मज़दूर भी मज़दूर से कम न रहेंगे। औद्योगिक कमीशन के बम्बई के कुछ मिल-मालिकों ने और ताता के लोहे के के मैनेजर ने अपने मज़दूरों की जो प्रशंसा की है उससे ध्वनि निकलती है। तीसरी बात जो कि औद्योगिक में आवश्यक है उसका नाम है "शक्ति"। विना शक्ति के बड़े पुतलीघरों की मशीनें चल ही नहीं सकतीं। भारत की कोयले की खानें बिहार प्रान्त में हैं। यद्यपि कोयला समुचित राशि में निकाला जा सकता है, किन्तु कम्पनियों की नीति के कारण यह कोयला सुदूर प्रान्तों बहुत मँहगा पड़ता है। इसका फल यह होता है कि बम्बई इंगलैण्ड और अफ़्रीका से कोयला आता है, क्योंकि वह पड़ता है। किन्तु प्रयत्न करने से यह कमी भी पूर्ण की सकती है। ताता के पश्चमीय घाट पर जल-द्वारा उत्पन्न करने की योजना में सफलता होने से इस ओर कुछ आशा होगई है। क्योंकि जल-द्वारा उत्पन्न की हुई बहुत सस्ती पड़ती है। अभी भारत में केवल तीन स्थानों यह उत्पन्न की जाती है-एक पश्चमीय घाट में, दूसरे में कावेरी नदी पर, और तीसरे काश्मीर में झेलम पर। वर्ष में इस प्रकार से विद्युत् उत्पन्न करने की सुविधायें स्थानों पर हैं। हिमालय और बर्मा में तो इसका प्रबन्ध हो रहा है। इस प्रकार शक्ति का प्रश्न भी हल हो चौथा प्रश्न माल की खपत के विषय में होता है। लिए कोई विशेष चिन्ता की आवश्यकता नहीं है। भारत अभी विदेशी माल बाहर से असंख्य-राशि में रहा है, वह अपने माल को भी अवश्य लेगा इसमें संदेह नहीं। ३२ करोड़ जन-संख्या की मांग उन धंधों को चालू रखने के लिए यथेष्ट है। फिर भारत के साथी अपने माल की खपत बहुत सरलता से एशिया के देशों में कर सकते हैं जहां के उद्योग-धंधे अभी उन्नत हुए हैं। अब प्रश्न यह होता है कि क्या इस

उन्नति के कारण भारत की कृषि की अवनति होगी। भारतीय विद्वान् एक-मत होकर कह रहे हैं कि यह नहीं होगा। इसके विपरीत उनका तो कहना यह है कि इस देश में औद्योगिक उन्नति के साथ ही साथ कृषि की उन्नति भी हो सकती है। उनका कथन है कि जो संख्या कृषि-कर्म में लगी हुई है वह आवश्यकता से अधिक है। कुछ लोगों का यह अनुमान है कि यदि प्रति-शत ४० किसान कम हो जावें तो भी कृषि कार्य उसी भांति चलता रहेगा, जैसा कि इस समय चल रहा है। ये ४० प्रतिशत किसान उद्योग-धंधों में लग सकते हैं। रहा पूंजी का प्रश्न। वह भी जटिल नहीं है। उद्योग-धंधों में पूंजी लगाने वाला तो व्यापारी-समुदाय है, न कि नौकरी करने वाला वर्ग; सो इस समय जो विदेशी व्यापार में करोड़ों रुपये लगा रहा है वही देशी कारखानों में भी लगा सकेगा। अन्त में विचार करने की बात यह है कि क्या भारत के लिए अमरीका, जरमनी और इंग्लैंड की नीति की नक़ल करना श्रेयस्कर है? अमरीका में ट्रस्ट और मोनोपली का जो प्रादुर्भाव हुआ है, जो आर्थिक और राजनैतिक शक्ति ट्रस्टों के हाथ में आगई है, उससे वहां की सरकार भी चिन्तित है। जिन लोगों को स्टैन्डर्ड आइल ट्रस्ट के इतिहास का विवरण तनिक भी ज्ञात है वे समझ सकते हैं कि कुछ इने-गिने पूंजी-पतियों के हाथ में कितनी शक्ति आ जाती है। यही नहीं, बल्कि वे व्यवसायी संसार में जैसा चाहें वैसा कर सकते हैं, और राजनैतिक बागडोर भी उनके हाथ में आजाती है क्योंकि वर्तमान समय में धन ही प्रधान शक्ति है। स्टैंडर्ड आइल ट्रस्ट की नीति कितनी विनाशक रही है इसका पता इसी से लगता है कि यत्न करने पर भी कोई तेल का कारख़ाना इसकी प्रतिद्वन्द्विता में न चल सका। जब कोई चलता भी तो यह तेल का मूल्य घटा कर उस स्थान में जहां पर कि प्रतिद्वन्द्वी का तेल बिकता हो, घाटे से बेच कर प्रतिद्वन्द्वी का व्यवसाय नष्ट कर देता। इन ट्रस्टों के हाथ में अमेरिका के बैंक और रेलें भी आगईं जिनसे इनकी शक्ति और भी बढ़ गई। राजनैतिक शक्ति का उदाहरण यदि कोई देखना चाहता है तो उसको आफ्रिका की सोने की खानों के ट्रस्ट, डी, बियर्स के इतिहास को पढ़ना चाहिए। एक प्रकार से आफ्रीका के शासन की बागडोर इसी ट्रस्ट के अधीन है। और पूंजीपतियों का राजनैतिक प्रभाव ही संसार की वर्तमान अशान्ति का मुख्य कारण है। गत महायुद्ध भी उसी बात का प्रतिपादन करता है, और जिस भावी महायुद्ध की आशंका संसार इस समय कर रहा है वह भी उसी पूंजीवाद के कारण होगा। इसपर पश्चिमीय विद्वान भी अब विचार करने लग गये हैं। और बहुतों का तो अब यह विचार भी हो गया है कि इन बड़े-बड़े कारख़ानों के स्थान पर छोटे कारख़ाने स्थापित किये जावें। इससे लाभ यह होगा कि यह छोटे-छोटे कारख़ाने गांवों और क़सबों में भी खोले जा सकेंगे। जिससे श्रमजीवी समुदाय के रहने की जो समस्या बड़े २ नगरों में उपस्थित होती है वह हल हो जायगी। कारख़ानों के छोटे होने से उनके मालिकों के हाथ में उतनी शक्ति भी नहीं रहेगी और बहुत से लाभ हो सकेंगे। कोई भी उत्साही नवयुवक परिश्रम करके स्वयं छोटा कारख़ाना खोल सकता है; किन्तु इस बड़े पुतलीघरों के युग में तो यह विचार स्वप्न-तुल्य ही है। अमरीका के सुप्रसिद्ध मोटर व्यवसायी हेनरी फोर्ड ने इस विचार को बड़े ही अच्छे शब्दों में प्रकट किया है। वे कहते हैं "We need instead of mammoth mills a multitude of smaller mills whereever it is possible, the section that produces raw materials ought to produce the finished goods. Where ever possible a policy of decentralisation in Industries ought to be followed (Henry Ford)" अर्थात् "हमको अब भीमकाय पुतलीघरों के स्थान पर छोटे छोटे कारख़ानों की आवश्यकता है और जहाँ तक सम्भव हो कच्चा माल और पका माल साथ साथ एक स्थान पर ही बने। अब समय आ गया है कि इस प्रश्न पर संसार को विचार करना ही होगा और पूंजीवाद का जो संसार पर इतना प्रभाव पड़ा है वह भी शनैः शनैः कम होगा। भारतवर्ष को इस ओर बहुत सावधानी से पग बढ़ाना चाहिए। ऐसा न हो कि जिस वस्तु को वह नष्ट कर चुका हो उसी वस्तु को फिर से जीवनदान देना पड़े। भारतवर्ष बहुत प्राचीन काल से (जिस समय कि इसकी औद्योगिक उन्नति का सिक्का समस्त संसार मानता

था, फोनीसियन, कारथेजियन लोग अरबी सौदागरों से भारत के माल को ख़रीद कर योरोप में मन माने मूल्य पर बेंचते थे) ही छोटे छोटे कारखानों का देश रहा है। यहां के मनुष्यों की प्रकृति भी इन्हीं कारख़ानों के अनुकूल है और यही कारण है कि भारतीय श्रमजीवी स्थायी रूप से मिल मज़दूर में परिणत नहीं हो गया, वह अब भी प्रतिवर्ष कुछ दिनों अपने गांव में जाकर अपने खेत इत्यादि का कार्य करता है। मेरे कहने का यह अर्थ नहीं है कि बड़े २ पुतलीघर बिलकुल ही न रहें। कुछ वस्तुयें ऐसी हैं जिनको बनाने में बड़े पुतलीघरों की आवश्यकता अवश्य होगी किन्तु मनुष्य जीवन को सुखी शान्त और श्रेष्ठ बनाने में जितना छोटे कारख़ाने सहायक होंगे उतने बड़े कदापि नहीं हो सकते। जिन लोगों ने कलकत्ते की बस्तियां और बम्बई की चालों का निरीक्षण किया है, क्या क्षण भर के लिए उनके हृदय में यह विचार नहीं उठा कि हम मनुष्यता को नष्ट करके औद्योगिक उन्नति कर रहे हैं ? अब समय आ गया है कि भारतीय जनता को सावधान होना चाहिए। मेरे विचार में तो देश की आर्थिक स्वतंत्रता राजनैतिक स्वतंत्रता की आधारभूत है। बिना आर्थिक स्वतंत्रता को प्राप्त किये राजनैतिक स्वतंत्रता स्वप्न-तुल्य है। किन्तु आवेश में आकर हमको वह कार्य नहीं करना चाहिए जिससे कि भविष्य में हम स्वयं अपना नाश करलें। यह बात केवल महात्मा गांधीजी ने ही समझी है और यही कारण है कि वे तन, मन, धन से इस कार्य को कर रहे हैं। यद्यपि हम औद्योगिक उन्नति को इतना संकुचित तो नहीं कर सकते, फिर भी पश्चिमीय आदर्श तो हमारे लिए नितान्त हानिकारक हैं। भगवान् भारत की भूखी जनता को सुखी जीवन निर्वाह करने का सामर्थ्य दे, जिससे कि ये निर्धन भारतवासी पशु जीवन से ऊपर उठकर मनुष्य की भाँति तो रह सकें।

शंकरसहाय सक्सेना

* * *

मृत मृग-शावक

(१)

जिसके कोमल अंगों में था,
नवजीवन रस का सञ्चार।
कूद-कूद कर जो था करता,
क्षण-क्षण में स्वातंत्र्य-प्रसार॥
कवि-कल्पना-कुञ्ज-प्रिय जो था,
लीलामय सागर का छोर।
अति सुन्दर आनन्द-धाम था,
मृदु शिशुओं की हृदय-हिलोर॥

(२)

आज वही मृग-शावक करता,
नहीं अहो ! वन-बीच प्रमोद।
तान शान्ति की चादर लम्बी,
सोता हा ! अनन्त की गोद॥
बड़ी-बड़ी आँखों की चितवन,
उसका कैसा भीरु स्वभाव!
पृथ्वीतल पर शर सा धावन,
उपजाता था सुखद प्रभाव॥

(३)

हाय, उन्हें तू ने क्यों छोड़ा,
बन्धन क्या था तुझ पर मीत ?
छुटकारा पाने को बलि दी,
निज तन-धन की हो भय-भीत॥
शोक हुआ खो तुझ-सा प्यारा,
बहती नयनों से जल-धार।
सार मृगी-जीवन का जो था,
प्यासा सुप्त हुआ सुकुमार॥

देहात के काम

असहयोग आन्दोलन के ज़माने से देहात की ओर लोगों का ध्यान गया है। वे गाँवों का महत्व समझने लगे हैं। कितने ही सेवक गाँवों में काम करने लगे हैं और कुछ को अपने कार्य में सफलता भी मिली है। परन्तु बहुतों को असफल रहना पड़ा है।

इसके पहले सुशिक्षितों की दृष्टि देहात की ओर ई ही नहीं थी। पहले तो उनकी नज़र विदेशियों पर गड़ी हुई थी। इंग्लैन्ड की जनता को अनुकूल बनाने और सरकार को परिस्थिति समझाने में ही सारी शक्ति ख़र्च होती थी। बाद में दृष्टिकोण बदला—अपनों की फ़िकर पड़ी। लेकिन केवल शहरों और सुशिक्षितों तक ही वह चिन्ता सीमित रही। शिक्षित जन-समाज में राष्ट्रीय-आकांक्षा पैदा करनी चाहिए, इसी मतलब से सारा आंदोलन खड़ा किया गया था। असहयोग के ज़माने में लोकनेताओं का ध्यान देहात की ओर आकर्षित हुआ। फिर विधायक कार्यक्रम के अवसर पर गाँवों में जाने और वहाँ की जनता की सेवा करने की प्रत्यक्ष प्रेरणा जागृत हुई। आज जो थोड़ी बहुत सफलता दिखाई देती है, वह इसी प्रेरणा का फल है। इतने वर्षों के लम्बे अनुभव के बाद 'तेरा रे ही पास है, पर तू रास्ता भूल गया है' यह बात जँचने लगी। फिर भी काम की आरंभिक अवस्था के कारण कितने ही स्थानों पर ग्राम-सेवा का कार्य असफल ही रहा है।

इसमें कोई आश्चर्य नहीं। प्रारंभ में तो ऐसा होगा ही। इससे निराश होने की आवश्यकता नहीं। न निराश होने जैसी स्थिति ही है। क्योंकि कुछ स्थानों में ग्राम-व्यवस्था का नया कार्य-क्रम सफल भी हुआ है। इसके अतिरिक्त जिन प्रयोगों में असफलता का भास हुआ है, वह तो आभास-मात्र है। पत्थर फोड़ते समय प्रारंभ की कुछ चोटें निरुपयोगी मालूम होती हैं। परन्तु उनका कुछ न कुछ परिणाम तो होता ही है। इस जगह फोड़ा जाने वाला पत्थर देहात की जनता नहीं है, वह तो है शिक्षित जनता का परकीय हृदय।

अब कहीं हमें गांवों में जाने की सूझी है। परंतु गावों में आज भी हम अपने नागरिक ठाठ-बाट से जाना चाहते हैं। इसी कारण हमारा काम जमता नहीं। गाँवों में तो देहाती होकर ही जाना चाहिए। हमारी असफलता का प्रधान कारण यही है।

गाँवों में पहुँचा हुआ शिक्षित मनुष्य अभी तक देहाती नहीं बन सका है—वह तो आज 'परोपकार' की धुन लेकर वहाँ जाता है—वह यह बात भूल जाता है कि गाँवों में जाकर उसे भी बहुत-कुछ सीखना है। देहाती भाइयों के अज्ञान पर उसे तरस आता है। परन्तु खुद अपने अज्ञान का पहाड़ उसे नहीं दीख पड़ता। खुद मुझे क्या करना चाहिए इस बात को भूलकर वह दूसरों से काम लेने के फेर में पड़ जाता है। इस कारण वह उनसे दूर रक्खा रह जाता है।

(१) अपनी शिक्षित-अवस्था की आदतों को भुलाकर हमें गाँवों में जाना चाहिए।

(२) देहाती-भाइयों को कुछ सिखाने की इच्छा रखकर गाँवों में न जाना अच्छा है।

(३) खुद काम में जुट पड़ना चाहिए।

ये तीन महत्त्वपूर्ण बातें सदा हमारे ध्यान में रहनी चाहिएँ।

कई बार देखने में आया है कि अकेला आदमी किसी गाँव में जाकर रहने लगता है और जिस काम को वह अकेला—गाँव वालों की सहायता के बिना कर सकता था, उसे सारे गाँव में हलचल मचा कर भी नहीं कर सकता है। उसे तो अपने काम के पल-पल

का हिसाब रखना चाहिए। गाँव वाले उद्योगी मनुष्य की अधिक क़दर करते हैं। जो शिक्षित मनुष्य देहात में गुरु बनने की इच्छा को छोड़कर रात दिन काम करने को जायगा—अपने काम में मग्न होकर अपने चरित्र की चौकीदारी करेगा वह अपने आप उस गाँव के लिए उपयोगी साबित हो सकेगा। और उसके आसपास मनुष्य इस तरह एकत्र रहेंगे जैसे आकाश में नक्षत्र। हिन्दुस्थान के गाँवों की जनता में कृतज्ञता है, और है गुणों की परीक्षा करने की पूरी-पूरी कुशलता।

ग्राम-संगठन और ग्राम-रचना का काम चारित्र्य बल के बिना असंभव है। गाँवों की जनता मनुष्य के चरित्र की जाँच उसके 'प्राथमिक' सद्गुणों से करती है। यही सच्ची कसौटी है भी। 'प्राथमिक' सद्गुणों से मतलब नीति के मूल-भूत सद्गुणों से है। उदाहरणार्थ आलस्य हीनता, निर्भयता, प्रेम इत्यादि। ऊपर से उपार्जित गुण जैसे वक्तृत्व, विद्वत्ता आदि का उपयोग गाँवों में बहुत कम होता है। देहात में काम करने वाले के हृदय में भक्ति का स्रोत और भाव का भंडार चाहिए। 'प्राथमिक' गुणों में यही श्रेष्ठ है।

परन्तु हम पवित्र-भावनाओं में अभी तल्लीन नहीं हुए हैं। हमारी निष्फलता का सबसे बड़ा कारण यही है। लोगों के अन्ध-विश्वास हममें न हों; परन्तु उनकी बहुमूल्य भावनायें तो हम में होनी ही चाहिएँ। परन्तु वे हम में नहीं रहतीं—हमें तो भजन से दिली नफ़रत होती है। ईश्वर का नाम लेते ही हमारे हृदय में भावना की बाढ़ नहीं आती। देव-धर्म-संत आदि के विषय में अनाड़ी जनता को ठीक ठीक कल्पना नहीं होती है। परन्तु उनके प्रति जो भक्ति-भाव जनता के हृदय में होता है वह सच पूछा जाय तो उन लोगों के हृदय में तो सौगुना अधिक होना चाहिए जिन्हें उनका यथार्थ ज्ञान है। परन्तु हमें तो ईश्वर और साधु-सन्तों का ज़रा भी ज्ञान नहीं रहता—इस बात की कल्पना से भी हम शून्य हैं, अगर कहीं थोड़ी हो तो वह सारी की सारी विपरीत। ऐसी दशा में ह और जनता का हृदयैक्य होना कठिन हो जाता छूआछूत के समान जो विपरीत भावनायें जन धर्म के नाम पर रूढ़ हो गई हैं उन्हें उखाड़कर का प्रयत्न उसी मनुष्य द्वारा सफल होगा, उसी को लिए कोशिश करनी चाहिए, जिसके हृदय में के हृदय की पवित्र-भावनाओं की प्रतिध्वनि हो। की अच्छी भावना जिसमें नहीं है, वह उसकी चित भावनाओं को कैसे दूर कर सकेगा?

लोगों की उचित भावनाओं में एक-रूप सकना जैसे एक दोष है, उसी प्रकार दूसरे लोगों दैहिक परिचय की विशेष आकांक्षा रखने दोष हमारे कार्य में घातक होता है। जैसे-तैसे से खूब अच्छा परिचय हो जाय, इसके भगीरथ में पड़ने से उद्दिष्ट कार्य बिगड़ जाता है। अति-प की इच्छा के कारण लोगों के प्रति हमारे आद भावना शिथिल हो जाती है। लोगों के छोटे-मोटे व्यवहारों में बिना कारण दिलचस्पी लेते रहने से उनकी सेवा नहीं कर पाते। सेवक के लिए तो चय की अपेक्षा प्रेम और आदर अधिक आ हैं। लोगों से कम परिचय रखकर उनके प्रति अधिक बना रहे तो वह सेवक के लिए सदा इष्ट है

परन्तु लोगों से अधिक परिचय होने की श्यकता हमने अच्छे-अच्छे सेवकों के मुँह से सुनी इस विचार के मूल में अहंकार की सत्ता है। को सेवा-वृत्ति की मर्यादा को जान लेनी चाहि हम कोई पारस पत्थर तो हैं नहीं कि किसी का कैसा भी संबन्ध हो, हमारी संगति-मात्र से वह बन जाय। सेवा के कारण लोगों से जितना प हो जाय उतना ही इष्ट है। परन्तु परिचय के को खोज खोजकर प्राप्त करना सेवक के लिए

हीं है। सच्चे सेवक के पास सेवा-काम अपने आप ता आता है, उसे अवसर नहीं खोजना पड़ता। एक ओर शारीरिक परिचय बढ़ावें और दूसरी ओर न में जनता के प्रति अनादर की मात्रा बढ़ाते जावें, वह कभी इष्ट नहीं।

इसके सिवाय हमारा एक और दोष है वह अपने त्यागभाव की स्मृति। हम थोड़ा बहुत त्याग करते हैं परन्तु त्याग का ज्ञान उसकी महत्ता को मिटा देता है। अपने त्याग द्वारा हम किसी पर उपकार नहीं करते। फिर हमारा 'त्याग' शहर में भले ही 'त्याग' माना जाता हो, पर देहात में तो उसकी कोई भारी कीमत नहीं है। देहात में तो बड़े भारी त्याग की जरूरत रहती है। स्वयं गाँवों की जनता मजबूरन् ही सही, बड़े त्याग-पूर्वक रहती है। उसकी तुलना में हमारा त्याग बड़ा नहीं ठहरता और फिर उसकी भी स्मृति हमें रहती है इससे लोक-सेवा अच्छी तरह नहीं हो पाती। इन दोषों को दूर कर देने पर हमारा देहात का काम कभी असफल न होगा।

विनोबा

ओ मतवाले!

ओ सत्ता-मद के मतवाले !
कहता है जिन प्रासादों को तू अपना सुख-सार ।
रक्खा है दीनों के शोणित से उनका आधार ॥
है जिस द्रुत-गामी वाहन पर तुझको इतना मान ।
गूंज रहा है सुन उसमें भी सन्तप्तों का गान ॥
इठलाता है जिसे बता कर अपना अन्नागार ।
उठता है उसके कण कण से कृषकों का उद्गार ॥
जिस भू-सम्पति को कहता है अपनी ही हर बार ।
है उस पर सच पूछो तो इन दीनों का अधिकार ॥

—दिव्य कवि

भारतीय सिक्कों का इतिहास

मानव समाज की सहूलियत और सरलता की दृष्टि से मुद्रा—सिक्का—अपना एक विशेष स्थान रखता है। यह मूल्य का मान, लेनदेन का माध्यम और व्यापारिक उन्नति का आधार है। जिस देश में जितना ही उत्तम सिक्का होगा वह देश उतना ही अधिक समृद्ध उन्नति-शील, व्यवसाय-प्रधान और सभ्य होगा। वर्त्तमान समय में चीन और भारत के सिवा प्रायः संसार के सभी राष्ट्रों में उत्तम-सोने का—सिक्का प्रचलित है। भारत को अपनी परतंत्रता के कुफल-स्वरूप अन्य बातों के साथ, सिक्के के मामले में भी विवश होकर अपने भाग्य को कोसना पड़ता है। इसे अपने गौरांग प्रभु के कारण ही सोने के सिक्के को त्याग कर मजबूरन् चाँदी के सिक्के को अपनाना पड़ा। दस आने की चीज देकर हम से सोलह आने वसूल किये जाते हैं। और इसके समर्थन में यह कहा जाता है कि यह बचत—मुनाफा—भारतीयों ही के हित के लिए है और वह यहीं रहेगा भी। पर वास्तव में वह इंगलैण्ड के लखपतियों को ही करोड़पति बनाने के काम में लगाया जाता है। स्वार्थियों ने अपने लाभ के सामने भारतवर्ष का कुछ भी ख्याल नहीं किया। अपरिमित राशि में रुपये ढालते गये और फल-स्वरूप आज यहाँ वस्तुओं के मूल्य इतने बढ़ गये हैं कि त्राहि-त्राहि मची हुई है। इन्होंने भारतीयों को गुलाम, निर्धन और दरिद्र बनाने के लिए जहाँ और अनेक चालबाज़ियाँ कीं, वहाँ सिक्के-सम्बन्धी गुलामी के तौक़ को भी हमारे गले में डालने से ये बाज़ न आये; हमें पंगु, दब्बू और कुप्पा बना दिया तथा ढूँढ ढूँढ कर, चूस चूस कर भारत के कोने-कोने से सोने की अनन्त राशि ले जाकर लन्दन को कंचनमय बनाने लगे।

आज भारत पर-मुखापेक्षी होने के कारण चाँदी के नकली सिक्के से मजबूरन् अपना काम चला रहा है। पर दुनिया जानती है कि हजारों वर्षों से यहाँ सोने का सिक्का चलता आ रहा था। संसार के वर्तमान सभ्यताभिमानी राष्ट्र जब जंगलों में सियारों की माँद में बनमानुषों की नाँई

रहते थे, जिस समय उन्हें यह भी पता न था कि सिक्का क्या चीज़ है, भारतवर्ष में उस समय भी सोने का सिक्का प्रचलित था। लोग उसे अच्छी तरह व्यवहार में लाकर, लाभान्वित होने एवं अपने रोज़मर्रा के लेनदेन और व्यापार में उसके उपयोग द्वारा सुखमय जीवन व्यतीत करते थे। [*]ऋग्वेद में 'निष्क,' 'रजत,' 'हिरण्य' आदि शब्द अनेक स्थलों पर व्यवहृत हुए हैं और [†]अथर्ववेद में 'निष्क' बहुवचन में आया है, जो स्पष्टतया सिक्के का परिचायक है। इसी प्रकार तैत्तरेय आरण्यक आदि में भी 'हिरण्य' का वर्णन मिलता है। रामायण और महाभारत-काल में विनिमय का काफ़ी विकास हो चुका था और सोने, चाँदी तथा तांबे (अधिकांश में सोने के) के सिक्के प्रचुर परिमाण में प्रचलित पाये जाते थे—मनु के ज़माने में भी सिक्के बनाये जाते थे। सिकन्दर के आक्रमण के पूर्व ईरान को भारत से ही सोने के सिक्कों में राज्य-कर मिलता था। कौटिल्य[‡] ने सिक्कों का वर्णन करते हुए लिखा है कि "टकसाल के अधिकारी को उचित है कि वह ऐसी चाँदी के सिक्के बनावे, जिसमें चार भाग ताँबा और एक माशा, लोहा, टीन अथवा शीशा हो। एक पण, अर्द्ध पण, चतुर्थ पण और अष्ट पण ये सिक्के होंगे। इनके अतिरिक्त चिन्हदारो "सिक्कों" का भी वर्णन है, जिनमें चार भाग चाँदी, ग्यारह भाग ताँबा, एक भाग अन्य कोई धातु रहती थी। ये सिक्के माशक, अर्द्ध माशक, काकनी और अर्द्ध काकनी कहलाते थे। सिक्कों के निरीक्षक को ऐसे नियम बनाने पड़ते थे, जिनकी बदौलत वे विनिमय का माध्यम हो जाते थे और साथ ही कोष में जमा किये जाते थे। कौटिल्य के लेखानुसार उस समय का मुख्य सिक्का 'पण' जान पड़ता है, जो सोने का होता था। सर डब्ल्यू इलियट ने बहुत छानबीन के बाद उक्त 'पण' की कीमत आधुनिक १) (एक रुपया) के बराबर निश्चित की है। नागोद राज्य के भरहुत स्तूप,[=] बोधगया के महाबोधि [*]मन्दिर तथा त्रिपिटक[†] से भारत में सोने सिक्कों का प्रचुर परिमाण में पाया जाना प्रमा होता है। मथुरा की वासवदत्ता[‡] नामक वेश्या 'पुराण' लेकर आत्मविक्रय करती थी। गुप्त-काल सोने का सिक्का प्रचुरता के साथ प्रचलित था। उस के बहुत से सोने के सिक्के मिले हैं और जो देखना इस समय भी लखनऊ म्यूज़ियम (अजायबघर) जाकर देख सकते हैं। भिन्न भिन्न नगरों की खुदाई में भी 'निगम' [+] (व्यापारिक समिति) के सिक्के मिले हैं, वे बात के बोधक हैं कि प्राचीन काल में सिक्का बनाने का सरकार का नहीं बल्कि देश के साहूकारों एवं व्यापारि या व्यापार-समितियों का था—दरअसल यह बात ठीक प्रमाणित हो चुकी है।

यह तो प्राचीनकाल की सुवर्ण-मुद्राओं के सम्बन्ध हुआ। इसके बाद अंग्रेजों के यहाँ आने के समय तक सोने का सिक्का बराबर प्रचलित रहा है, जैसा कि आगे विवरण से मालूम होगा। प्राचीन समय में यह बात नहीं थी, कि केवल सोने ही के सिक्के चलते थे, ब चाँदी, ताँबा आदि अन्य धातुओं के भी सिक्के प्रचलित पर मालूम होता है कि कानूनन् ग्राह्य (Legal tend केवल सुवर्ण-मुद्रा ही थी और चाँदी, ताँबा आदि धातु मुद्रा में छोटे छोटे कामों के लिए 'लाक्षणिक मुद्रा' (To money) के तौर पर चलती थीं, जैसा कि चाहिए भी। भी संभव है कि चाँदी की मुद्रा भी एक निश्चित संख्या कानूनन् ग्राह्य होती रही हों। चाँदी के सिक्कों के के भी अनेक प्रमाण मिलते हैं, जिनमें दो-एक यहाँ जाते हैं। तक्षशिला के राजा अम्भि ने सिकन्दर को चाँ ८० सिक्के दिये थे। ये सिक्के चाँदी के मुहरदार, चपटे

---

[*] ऋग्वेद–२–३३–१०। ८–४–१५।१–१२६–२ आदि

[†] अथर्ववेद ५–१४–३। १९–५७–५। ७–१०४ १। आदि

[‡] कौटिल्य अर्थशास्त्र आधिक अध्याय ३४। प्रक०५२–५३

[=] Cunnigham Stupa of Bharhut P. 48, R. I. A. LVII

[*] Cunnigham mahabodhi P. 13, VIII

[†] त्रिपिटक

[‡] Cunnigham coins of ancient In P. 20.

[+] Rapson's Indian coins P. 3.

वर्गाकार टुकड़े होते थे। श्री रैपसन का मत है कि यह सिक्का सारे हिन्दुस्तान में प्रचलित था। काशगर नगर में जो सिक्के मिले हैं, उन पर एक ओर भारत की प्राकृत भाषा में तथा दूसरी ओर चीनी भाषा में कुछ लिखा है। इसी प्रकार पंजाब में प्राप्त सिक्कों पर भी ब्राह्मी और ग्रीकभाषा में कुछ लिखा पाया जाता है। मौर्य राजाओं के समय का कसकुट का सिक्का भी मिला है; पर उस पर कुछ लिखा नहीं है, (अथवा वह इतना घिस गया है कि कुछ पता ही नहीं चलता) राजा क्रीसस का भी सिक्का बन्नू जिले (सीमा-प्रान्त) में मिला है, जो कि आजकल सद्यः पुष्करिणी गाँव के जमींदार राय श्री मृत्युञ्जय चौधरी के पास है।*इतना विवरण पढ़ने के पश्चात् पाठकों को मालूम हो जायगा कि प्राचीन काल में भारतवर्ष के सिक्के की क्या स्थिति थी और उस समय देश का व्यापार कितना उन्नत था।

मुसलमानों ने हिन्दुस्तान में आकर कई प्रकार के सिक्के प्रचलित किये। इन्होंने सोने के सिक्के का नाम 'दीनार', चाँदी के सिक्कों का नाम 'दिरहम' और तांबे के सिक्के का नाम 'फालूस' रखा। मुसलमानों में अपने नाम का सिक्का चलाना पूर्ण स्वाधीनता और अबाध्य राज्य-सत्ता का चिह्न समझा जाता था, और इसीलिए शहाबुद्दीन ग़ोरी आदि विजेताओं ने अपने अपने नाम के अलग अलग सिक्के चलाये। पर विजय-चिह्न-स्वरूप माने जाने के कारण प्रायः उनसे सिक्के का वास्तविक काम न निकलता था तथा उन्हें और प्रजा को स्थानीय पुराने सिक्के से ही काम चलाना पड़ता था। इन सिक्कों पर शुरू में नागरी लिपि में ही और फिर अरबी लिपि में कुछ लिखा जाता था और एक ओर लक्ष्मी या भारतीय घुड़सवार का तथा दूसरी ओर देहली या स्थानीय शासकों का चित्र रहता था। इन सिक्कों का वजन (सोने का) ९२ ग्रेन और (चाँदी का) १३२ ग्रेन पाया गया है। ये सिक्के गोलाकार हैं। उपर्युक्त 'दीनार' और 'दिरहम' के सम्बन्ध में यह भी कहा जाता है कि ये सिक्के यहाँ नहीं बनते थे, बल्कि अरब ही के बने हुए होते थे। ऐसा होना कुछ असम्भव भी नहीं। ऐसी हालत में मुसलमान राजा विजय-चिह्न-स्वरूप जो सिक्के बनवाते रहे होंगे, संभवतः उनके ये नाम नहीं होते होंगे। इसके बाद देहली वाले सिक्कों का पता चलता है, जिन्हें 'तनकह' कहते थे और जिनका वजन १६८ से १८० ग्रेन तक होता था।

हिन्दू राजत्व-काल के बाद अल्तमश को ही भारत में चाँदी के सिक्कों का प्रवर्तक कह सकते हैं। उसने सोने और तांबे के भी सिक्के बनवाये थे। उसने चाँदी के सिक्कों के जो परिमाण, तौल और शुद्धता निश्चित की, लगभग १०० वर्ष तक वह वैसी ही बनी रही। उसके बनवाये सोने के सिक्के आकार-प्रकार, वजन आदि में 'तनकह' के ही समान थे। उसने ताँबे के जो सिक्के बनवाये वे थोड़े थोड़े मूल्य (नकली सिक्के के तौर पर) के थे और संख्या में बहुत थे। 'तनकह' सोने और चाँदी दोनों ही धातुओं के और तौल में एक तोला होते थे। चाँदी का एक 'तनकह' ५० 'जितल' के बराबर होता था। ['जितल' एक छोटासा ताँबे का सिक्का था, जिसका वजन कोई कोई एक तोला और कोई कोई आजकल के पैसे के इतने (७ माशा) तौल का बतलाते हैं।] अल्तमश का निश्चित किया हुआ मूल्य अलाउद्दीन ख़िलजी के समय तक जारी रहा। पर अलाउद्दीन ने 'तनकह' को (जो चाँदी का था) १८० से १४० ग्रेन का करके उसका नाम 'आदल' रख दिया। 'तनकह' के मूल्य-परिवर्तन का कोई असर न पड़ने पावे इस लिए उसने वस्तुओं का मूल्य निश्चित कर दिया और इस प्रकार उतने ही सिक्के में सभी चीजें पूर्ववत् परिमाण में मिलती रहीं। इस सिक्के का उसके समय तक काफ़ी प्रचार रहा।

भारतीय सिक्कों के इतिहास में अल्तमश के बाद महम्मद तुग़लक का नाम उल्लेखनीय है। इसने तत्कालीन सिक्कों में बहुत-कुछ सुधार किया। इस समय के सिक्कों का हाल इब्न बतूताह और शेख़ मुबारक बिनमुहम्मद अनवार्ता नामक दो मिश्री यात्रियों के यात्रा-विवरण से मिलता है। इनके वर्णन के अनुसार उस समय (१४ वीं सदी—महम्मद तुग़लक का समय) के सिक्कों का मानक्रम इस प्रकार था:—

उस समय के सिक्के		वर्त्तमान काल के
१ कानी	= १ जितल	= १ पैसा
२ कानी	= १ सुल्तानी	= आध आना

---

*Coins of Ancient India P. 3.

३ सुल्तानी = १ शशकानी = डेढ़ आना
४ सुल्तानी = १ अष्टकानी = दो आना
६४ कानी = १ तनकह (१७५ ग्रेन शुद्ध चाँदी =. १) (एक रुपया)
१/४ कानी = १ दमड़ी अर्थात् १ तनकह = २५६ दमड़ी

महम्मद तुग़लक़ ने अलाउद्दीन के 'आदर्ला' सिक्के को भी प्रचलित किया, साथ ही २०० ग्रेन का सोने का 'दीनार' नाम का सिक्का भी चलाया, पर इसका प्रचार बहुत कम हुआ। उसने सोने और चाँदी के सिक्कों का पारस्परिक अनुपात कुछ निश्चय न करके क्रय-विक्रय के साधारण सिद्धान्त पर ही छोड़ दिया, जिससे परस्पर के लेन-देन और वस्तुओं के मूल्य मापने में बड़ी गड़बड़ी होती थी। उस समय सर्वसाधारण में ताँबे का ही सिक्का अधिक प्रचलित था, क्योंकि चाँदी कम पायी जाती थी और लोग सोने का प्रायः ज़ेवर बनवा लेते थे। इन कारणों से मूल्य सदा अस्थिर रहता था। इससे वाणिज्य-व्यवसाय में भी धक्का पहुँचता था। पर, ऐसी अस्थिरता और अनिश्चितता होते हुए भी पता चलता है कि साधारण तौर से उस समय सोने और चाँदी का अनुपात १: ८ और १: १० ही रहता था।

भारतीय सिक्कों के इतिहास में शेरशाह को तीसरा स्थान प्राप्त है। उस समय सिक्कों में बहुत प्रकार की खराबियाँ आ गई थीं और उससे चालाक लोग बेजा फायदा उठाते थे। अस्तु, उसने इन सब बुराइयों को दूर किया, टकसालों में सुधार किये, नये नये सिक्के फिर से बनवाये और तांबे तथा चाँदी एवं चाँदी और सोने का पारस्परिक अनुपात फिर से निश्चय किया। इन सब सुधारों के कारण आगे के मुगल बादशाहों—ख़ासकर, अकबर को जिसने सिक्कों के सम्बन्ध में बहुत-कुछ सुधार किये, बड़ी मदद मिली। शेरशाह के बाद मुग़लों में अकबर का ही नाम सिक्कों के सम्बन्ध में लिया जा सकता है और इस सम्बन्ध में इन दोनों व्यक्तियों का ज़िक्र 'आइनेअकबरी' में मिलता है। आजकल का रुपया, 'रुपये' के नाम से (चाँदी की धातु का) शेरशाह ही ने पहले-पहल १५४२ ई० में चलाया था। शेरशाह का रुपया ११ १/८ माशे का था।

अकबर के समय में शाहंशाही मुहर, राह, आतम जलाली, आदि अनेक वज़न और विभिन्न मूल्य के सोने के सिक्के प्रचलित हुए। इसी प्रकार चाँदी के विभिन्न प्रकार के सिक्के ढाले गये। तांबे के भी सिक्के प्रचलित थे और वे ही विनिमय के मूल साधन माने जाते थे। ये एक रुपये में ४० आते थे। अधेला, पौवा, दमड़ी भी होते थे। उपर्युक्त सोने के 'शाहंशाही' आदि बड़े सिक्कों के सम्बन्ध में ऐसा ज्ञात होता है कि वे तमगे की तरह होते थे और नित्य व्यवहार में न आकर ख़ास मौकों पर जब बड़ी बड़ी रकमें दरकार होती थीं, व्यवहार में आते थे। उस समय तांबे के सिक्के की प्रधानता दीखती है और इस प्रकार सिक्का-चलन की वही थी ऐसा मालूम होता है। क्योंकि सभी सिक्कों मूल्य—दाम [तांबे का सिक्का] के ही रूप में दिया जाता था। तथा मालगुज़ारी और राजकीय व्यय में भी इन्हीं का उपयोग होता था। अकबर के ज़माने की मुद्राप्रणाली से भी ज्ञात होता है कि लोगों से टकसालों में मुद्रा ढलाई खर्च लिया जाता था और वह लगभग ६॥ प्रतिशत था। मुग़लों के समय में सिक्के ढालने का बहुत प्रबन्ध था। सोने के सिक्के आगरे, अहमदाबाद, और बंगाल में तथा चाँदी के सिक्के इनके सिवा १४ स्थानों में और तांबे के सिक्के इन सबों के सिवा अन्य स्थानों में ढाले जाते थे।

अकबर के बाद के मुगल बादशाहों ने सिक्का-चलन कोई परिवर्तन नहीं किया और अकबर के चलाये हुए को ही सबने क़ायम रहने दिया। अकबर के समय में उसके बाद भी मुगल-साम्राज्य का विस्तार सारे भारत में रहा और इस कारण सारे भारतवर्ष में सिक्के भी एक प्रकार के चलने लगे। परन्तु इस प्रकार उन प्रान्तों सिक्कों का, जो मुग़ल-साम्राज्य के विस्तारपूर्व विभिन्न प्रान्तों में प्रचलित थे, अस्तित्व बिलकुल मिट भी नहीं गया मुग़ल साम्राज्य के पतन के बाद फिर भिन्न भिन्न राजा ने अपनी अपनी स्वतंत्र टकसालें खोलीं और अलग अलग अपने सिक्के ढालना आरंभ कर दिया। फल-स्वरूप इसें

लगता है कि अँग्रेज़ी राज्य के श्री गणेश के समय [अठारहवीं सदी में] हिन्दुस्तान के विभिन्न प्रान्तों में ९९४ तरह के सिक्के प्रचलित थे। इनमें १३९ तरह की सोने की मुहरें, ६१ तरह के दक्षिण भारत के सोने के सिक्के 'होन' (इसे 'पैगोडा' भी कहते थे), ५८० प्रकार के चाँदी के रुपये और २१४ क़िस्म के विदेशी सिक्के व्यवहार में आते थे। इस विभिन्नता के कारण सिक्कों का एक वजन और कोई अनुपात निश्चित नहीं हो सकता था। और इस प्रकार औरंगजेब की मृत्यु [१७०७ ई०] से लेकर ईस्ट इन्डिया कम्पनी के रुपया बनने के काल [१८३५ ई०] तक भारतीय सिक्कों का इतिहास महा अंधकारमय एवं असम्बद्ध है और उसके विषय में सिलसिलेवार एवं निश्चित तौर पर कुछ भी नहीं लिखा जा सकता। हाँ, इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि १८३५ ई० के पूर्व सारे भारतवर्ष में सोने और चाँदी के सिक्के खूब प्रचलित थे। ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने १७१७ ई० में बम्बई में, १७४२ ई० में मद्रास में और १७५७ ई० में कलकत्ते में मुगलों से सिक्के बनाने का अधिकार ले लिया। इसके पूर्व अँग्रेज़ों ने १६७० एवं १७५७ ई० में स्वयं कुछ सिक्के बनवाये थे, जिनका प्रचार बहुत कम हुआ और मुगलों से यह अधिकार प्राप्त हो जाने पर अपनी टकसालों में वे मुगल-सिक्के ही बनवाने लगे।

उस समय तीन प्रकार के रुपये प्रचलित थे। एक तो 'सिक्ख रुपया' जो उत्तर भारत और बंगाल में चलता था, दूसरा 'सूरत का रुपया' जो बम्बई प्रेसीडेन्सी में चलता था और तीसरा 'आरकाटी रुपया' जो मद्रास में प्रचलित था। इनके बाद कलकत्ता सिक्का और फर्रुखाबादी सिक्का नाम के दो और प्रकार के सिक्कों का भी उल्लेख पाया जाता है। पर इनके वजन और मूल्य का ठीक ठीक पता नहीं चलता। १८०६ ई० में ईस्ट इन्डिया कम्पनी के कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स ने भारत आदि पूर्वी देशों में एक ही प्रकार का सिक्का चलाने का विचार किया, और मद्रासी सिक्के को चलन से हटा कर नया सिक्का प्रचलित किया। इस नये सिक्के का वज़न १८० ग्रेन था, जिस में $\frac{११}{१२}$ शुद्ध चाँदी थी। इस सिक्के का मूल्य ३॥ अर्थात् $३\frac{१}{२}$ रुपया उस समय दक्षिण भारत में प्रचलित 'पैगोडा' नाम के एक सोने के सिक्के के बराबर होता था। कम्पनी वालों ने १८०६ ई० में भारत तथा अन्य एशियाई उपनिवेशों में एक ही प्रकार का सिक्का चलाने का निश्चय तो किया, पर उस समय यह विचार कारगर न हुआ। अन्त में १८३५ ई० के कानून के अनुसार समस्त भारतवर्ष में एकही प्रकार का चाँदी का ही सिक्का कानूनन् ग्राह्य (Legal tender) कर दिया गया और सोने का सिक्का कानूनन् ग्राह्य न रहा। सोने के सिक्के का मूल्य कानून से निश्चित करने के वजाय, खरीदारों की इच्छा पर छोड़ दिया गया। नयी मोहरें खज़ानों में ली जाती थीं; पर बाज़ार दर के अनुसार। इस समय से जो चाँदी का रुपया चला वह वजन में १८० ग्रेन का बनने लगा। इसमें $\frac{११}{१२}$ शुद्ध चाँदी होती थी। इस समय १) के सिवा २) और ।।) के सिक्के भी कानूनन् ग्राह्य थे। १८३५ ई० में १), ५), १५) और ३५) के अर्थात् चार प्रकार के सिक्के ढाले गये, परन्तु गवर्नमेण्ट की इच्छा यही थी कि १) के सिक्के की ओर ही लोगों का झुकाव बढ़े और अन्त में वही हुआ। ऊपर जिस 'कलकत्ता सिक्का,' का ज़िक्र किया गया है वह १९२ ग्रेन का होता था, बाद को उसका प्रचार बन्द हो गया।

१८३५ ई० से रुपया चलने लग गया तथा सोने के सिक्के का चलना बन्द हो गया; पर १८४१ ई० में गवर्नमेण्ट ने एक कानून द्वारा निश्चय किया कि सोने की मुहर कानूनन् ग्राह्य न होते हुए भी गवर्नमेण्ट के तथा सार्वजनिक ख़ज़ाने में १५) में ले सकते हैं। पर सोने के सिक्के ढाले नहीं गये, जिसके फल-स्वरूप ४-५ वर्षों में ही सोने की मुहर बिलकुल अदृश्य होगई। इसी बीच आष्ट्रेलिया और कैलिफोर्निया (अमेरिका) में सोने की खानें न निकली और सोने की दर कुछ गिरने ही लगी थी कि १८५२ में गवर्नमेण्ट ने अपना १८४१ ई० का कानून रद्द कर दिया। इस प्रकार सोने के सिक्के की चलन बिलकुल बन्द होगई।

इसके बाद १८७३ से १८९३ तक भारत में तथा संसार के अन्यराष्ट्रों में भी सोने चाँदी के मूल्य निर्धारण, द्विधात्वीकरण आदि के सम्बन्ध में बड़ा आन्दोलन चलता रहा। भारत के रुपये की विदेशी विनिमय–सम्बन्धी दर निश्चित करने में महा कशमकश चलता रहा। गवर्नमेण्ट बड़ी उलझन में पड़ी रही। पर सफलतापूर्वक कुछ भी निश्चय न हो सका।

यहाँतक कि भारत के १२००० आदमियों (जिनमें ५००० यूरोपियन भी थे) के हस्ताक्षर कराकर इंगलैण्ड को एक आवेदन-पत्र भी भेजा गया कि भारत में सोने का सिक्का प्रचलित किया जाय, पर कुछ न हुआ। अन्त में १८९२ ई० में हर्शेल कमीशन नियुक्त किया गया और उसकी रिपोर्ट के अनुसार भारत में १८९३ में टकसालें बन्द कर दी गईं, जिससे रुपये की कृत्रिम अभिवृद्धि हुई। गवर्नमेण्ट की इच्छा थी कि रुपये की कीमत बढ़े और इसीलिए रुपये का ढालना यहाँ बन्द भी कर दिया गया; तथा ६ वर्ष बाद १८९९ ई० में रुपये का मूल्य १ शि० २ पेन्स से बढ़कर १ शि० ४ पेन्स हो ही गया। सरकार यही मूल्य निश्चित करना चाहती थी। अब इसके अनुसार १ पौण्ड में पन्द्रह रुपये और १५ रुपये में १ पौण्ड लिया-दिया जाने लगा। यहाँ पर पाठकों को यह भी जान लेना चाहिए कि१८९३ई० से रुपया प्रामाणिक सिक्का (अर्थात् जितना उसका मूल्य हो उसमें की धातु की कीमत भी उतनी ही हो) न रहा और वह एक विचित्र प्रकार का सिक्का हो गया, जो न तो प्रामाणिक सिक्का (Standard coin) कहला सकता है न तो नकली सिक्का (Token coin)।

मुद्राप्रणाली की इस व्यवस्था से सरकार की अपनी विदेशी विनिमय-सम्बन्धी उलझन तो सुलझ गई, पर भारतवर्ष को बड़ा घाटा सहना पड़ा। और इससे देश भर की समस्त चाँदी की कीमत में लगभग ३५ फ़ी-सदी कमी आगई अर्थात् पहले १०० तोले चाँदी के जहाँ १०६ रुपये बन सकते थे, उतने ही के अब केवल ७० बनने लगे। सरकार के इस निर्णय से देश के उद्योग-धन्धे और वाणिज्य-व्यवसाय को भारी धक्का लगा।

सन् १८९८ ई० में मुद्रा-सम्बन्धी जाँच पड़ताल के लिए हेनरी फाउलर की अध्यक्षता में एक दूसरी समिति बैठी और इसके प्रस्तावनुसार १८९९ ई० में सावरिन् भारत का प्रचलित सिक्का बना दिया गया। अगले वर्ष अर्थात् १९०० ई० में भारत के अर्थ-सचिव ने यह घोषणा की कि शीघ्र ही बम्बई में सोने की टकसाल भी खोल दी जायगी। परन्तु विलायत के प्रभुओं को यह भला कैसे मंजूर होता? उन्होंने इसका तीव्र विरोध किया और १९०३ ई० में टकसाल भी खोलने का प्रस्ताव एकदम रद्द होगया। बाद से अबतक बराबर इंगलैण्ड में होम-चार्जेज़, व्यवसाय या अन्य विविध मदों में रकमों को लिए 'कौंसिल बिलों' (सरकारी हुंडियों) का प्रयोग जाता है।

ऊपर यह बतलाया जा चुका है कि वर्तमान रुपये में चाँदी केवल लगभग दस आने ही की है। प्रत्येक रुपये में सरकार को लगभग छः आने का मुनाफ़ा अस्तु, १९०० ई० में विनिमय दर को स्थिर रखने के प्राय से 'गोल्ड स्टैण्डर्ड रिजर्व' (Gold stand Reserve) की स्थापना हुई। भारत के रुपये को का और साथ ही नकली [सिक्का (Weak Mone होने के कारण दूसरे देश वाले उसे नहीं लेते और हमें दूसरे देशों से लेन-देन करते समय रुपयों को बदलकर व्यवहृत करना पड़ता है और चाँदी की कमीबेशी के साथ विनिमय की दर भी सदा घटती- रहती है। इसी कमीबेशी को स्थिर रखने—अर्थात् और पौण्ड का पारस्परिक मूल्य ठीक रखने—के लिए, कोष से काम लिया जाता है। भारत-सचिव के पास में और भारत-सरकार के पास हिन्दुस्तान में एक रहता है। उसके द्वारा हुँडियों का रुपया भुगतान जाता है तथा हुंडियों की बिक्री या रुपया जमा होता है

१९०३ ई० के बाद से समय समय पर भारत में का सिक्का प्रचार करने और टकसाल खोलने के लिए होता रहा। दो-एक बार भारत-सरकार ने इसे स्वीकार कर लिया, पर इंगलैंड के लखपतियों और करोड़पतियों दबाव से भारतीयों को सुवर्ण के सिक्कों के दर्शन का भी प्राप्त नहीं होने दिया गया। पर, गत महासमर के सरकार को स्वयं मुँह की खानी पड़ी। आर्थिक आव ताओं से विवश होकर १९१८ ई० में उसने बम्बई में की टकसाल खोल दी। वह लंदनी टकसाल के अधीन गई। पर युद्ध समाप्त होते न होते अप्रैल १९१९ ई वह फिर बन्द कर दी गई। इस बीच उसमें २१,१०, मोहरें और १२,९५,००० सावरेन ढाले गये।

युद्धकाल में चाँदी की क़ीमत खूब बढ़ती गई।

भारत का माल इंगलैण्ड तो पर्याप्त परिमाण में गया, पर, वहाँ से यहाँ बहुत कम माल आया। साथ ही आवश्यकता नुसार चाँदी न मिलने के प्रभाव से, उसकी क़ीमत बढ़ गई और इस कारण कौंसिल बिलों की दर बढ़ानी पड़ी। यह दर यहाँ तक बढ़ी कि १ अगस्त १९१७ को जिस एक रुपये के बदले में सिर्फ़ १ शि० ५ पे० मिलते थे, १ फरवरी १९२० ई० को उसी एक रुपये के बदले २शि० ८½ पेन्स तक मिलने लगे थे! विनिमय दर की इस गड़बड़ी को देख का सिक्के की समस्या को सुव्यवस्थित करने एवं सुलझाने की दृष्टि से सन् १९१९ ई० में फिर एक करेन्सी-कमेटी नियत की गई। इस कामेटी के सदस्यों में श्रीयुत दलाल के सिवा सभी अंग्रेज़ी सदस्य थे। समिति की जाँच के बाद जो रिपोर्ट प्रकाशित हुई उसमें श्रीयुत दलाल ने अपना मत अलग प्रकट किया, पर सभी अंग्रेज सदस्यों का मत एक रहा। फलतः भारत-सचिव ने श्रीदलाल की बात नहीं मानी और-बहुमत—अंग्रेजों–की सम्मति अंशतः मानी गई। उसके अनुसार सावरेन का कानूनी भाव दस रुपया कर दिया गया और सावरेन तथा अर्द्ध सावरेन के बदले में रुपया देना बन्द कर दिया गया। इनके सिवा कुछ अन्य परिवर्तन भी हुए।

यह कमिटी नियत हुई थी भारतीयों का हित करने के लिए, परन्तु इसने और भी गज बढ़ा दिया और इस प्रकार हमारे भारत के हित-चिन्तकों–अंग्रेजों–ने, भारतीय हित की डींग मारते हुए जो चाहा किया। कोई भी निष्पक्ष व्यक्ति यह स्वीकार किये बिना न रहेगा कि इस परिवर्तन से भारतवर्ष को लाभ की अपेक्षा हानि कहीं अधिक उठानी पड़ी। इसमें सन्देह नहीं कि इंगलैण्ड की वस्तुयें मंगाने में यहाँ के व्यापारियों को कुछ लाभ हुआ, परन्तु मेशीन आदि चीजों के सिवा वहाँ की अन्य बहुत सी चीजों के सस्ता हो जाने से उनकी खपत यहाँ बढ़ गई और फल-स्वरूप देश के उद्योगधन्धों को बहुत धक्का पहुँचा। भारतवर्ष में उद्योग-धन्धों के काफ़ी उन्नत न होने के कारण हम इंग्लैण्ड के सस्ते माल की प्रतियोगिता में अपना माल सस्ता नहीं बेच सकते—उनके साथ ठहर नहीं सकते। इस प्रकार यहाँ वालों को सस्ता माल बनाकर देशी कलाकौशल को उन्नत करने का मौक़ा ही नहीं मिलता। सरकारी पक्ष वाले यह भी कहते हैं कि होमचार्जेज़ के रूप में जो रकम इंग्लैण्ड जाती है, इस परिवर्तन से प्रतिवर्ष उस में १२-१३ करोड़ की बचत हुई, पर उसके बदले यहाँ के सरकारी कोषों में हुंडियों के भुगतान आदि के लिए जो रकमें थीं, उनका मूल्य भी तो घटकर दो-तिहाई मात्र ही रह गया; जिससे एक साथ ही लगभग ४०) करोड़ का नुकसान हो गया; इसे वे क्यों भूल जाते हैं? इसके साथ ही देश के अन्य व्यक्तियों का निजी तौर पर जो घाटा हुआ, सो तो अलग।

भारतवर्ष के उद्योग-धन्धे, वाणिज्य-व्यवसाय को मुद्रा सम्बन्धी कुव्यवस्था और अंग्रेज सरकार की स्वार्थमय नीति के कारण सदा से बहुत धक्का पहुँचता रहा है, जिसके कारण यहाँ वाले कुछ कम क्षुब्ध नहीं रहे। इधर १९१९ वाली करेन्सी कमेटी ने और भी जले पर नमक का काम किया और असन्तोष बढ़ा। भारतवासी चिल्लाते रहे, पर उन्हें खूब टाला गया। किंतु अन्त में जब हमारे प्रभुओं ने देखा कि ये इस बार अपना भूँकना यों ही बन्द न करेंगे तो १९२५ ई० में रायल करेन्सी कमीशन रूपी रोटी का एक टुकड़ा सामने फेंक कर, उनका मुँह बन्द कर दिया गया। पाठकों को मालूम होगा कि भारत के ग़रीबों का लाखों रुपया खर्च करके बड़ी लम्बी-चौड़ी जांच-पड़ताल के बाद १९२६ ई० के अगस्त महीने में कमीशन ने अपनी रिपोर्ट प्रकाशित कर दी। रिपोर्ट में सिफारिश की गई कि भारत में सोने की धातु की चलन हो। दूसरी सिफ़ारिश विनिमय दर के सम्बन्ध में थी कि रुपये की दर १ शि० ४ पे० के बजाय १ शि० ६ पेन्स कर दी जाय और तीसरी सिफारिश करेन्सी और विनिमय का सम्पूर्ण प्रबन्ध सरकार के हाथ से निकाल कर उसका भार (रिज़र्वबैंक) स्टेट बैंक के सुपुर्द करने के सम्बन्ध में थी। इस विषय में रुचि रखने वाले पाठकों को यह भली भांति मालूम हुआ होगा कि उक्त कमेटी के सामने गवाहियां देते हुए अत्यधिक आदमियों ने भारत में सोने के सिक्के के चलन एवं विनिमय दर १ शि० ४ पे० ही रहने देने के लिए कहा था। साथ ही देश के पत्रों और विद्वान लेखकों ने भी इसके लिए काफ़ी आन्दोलन किया। कमीशन के एक मेम्बर श्री पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास ने अपना

मत अलग लिख कर उसीका समर्थन किया। पर, एसेम्बली के मार्च १९२८ ई० के अधिवेशन में ये दोनों प्रस्ताव उपस्थित हुए और वहाँ वही तय हुआ जो हमारी 'हितचिन्तक' सरकार चाहती थी। भारतीय हित और लोकमत की पूर्णतया उपेक्षा की गई। विनिमय दर १ शि० ४ पेन्स रखने का ही प्रस्ताव पास हुआ तथा सोने के सिक्के के चलन का प्रस्ताव सर्वथा ना-मन्जूर कर दिया गया। तीसरी सिफ़ारिश—करेन्सी और विनिमय प्रबन्ध—के सम्बन्ध में 'रिजर्वबैंक' सम्बन्धी प्रस्ताव पिछले साल के एसेम्बली-अधिवेशन में भारतीयों के हित के पक्ष में पास हुआ, पर हमारे प्रभुओं को हिन्दुस्तानियों का कुछ लाभ होना कैसे गवारा हो सकता था? एसेम्बली के गत दिल्ली अधिवेशन में इस संबन्ध में भारत सरकार की ओर से जो चाल चली गई और अन्त में उसका किस प्रकार अन्त हुआ यह सभी जानते हैं। तात्पर्य यह है कि इस कमीशन पर भारतीयों के खून की कमाई के तीन-चार लाख रुपये पानी की तरह तो बहा दिये गये, पर नतीजा कुछ न हुआ। यह है हमारी विवशता, बेवसी और गुलामी की एक मामूली मिसाल। विनिमय दर १ शिलिंग ६ पेन्स कर देने से भारत का जो करोड़ों का नुकसान हुआ और हो रहा है, वह तो अलग ही है। इस सम्बन्ध में पत्र-पत्रिकाओं में बहुत-कुछ लिखा जा चुका है, इसलिए यहाँ अधिक कुछ लिखना व्यर्थ है।

संक्षेप में भारतीय सिक्कों का यही इतिहास है। भारतीय सिक्कों के इतिहास में भारत की कागज़ी मुद्रा [सिक्का] का भी वर्णन होना चाहिए, क्योंकि उसका भी सिक्कों में शुमार है। पर इस विषय के अधिक व्यापक और महत्वपूर्ण होने के कारण स्थानाभाव से उसका वर्णन यहाँ कतई छोड़ ही दे रहा हूं। इसपर स्वतंत्र-रूप से फिर एक लेख पाठकों के सामने उपस्थित किया जायगा।

देवव्रत शास्त्री

---

(१) बिना प्रयत्न के कभी कार्य सिद्धि नहीं होती।
(२) प्रत्येक मनुष्य अपने काम में सावधान रहे।
(३) सावधान चतुर गृहस्थ ही सच्चा परमार्थी हो सकता है।
(४) मूर्ख एकदेशी होता है। चतुर चारों तरफ नजर रखता है।

समर्थ रामदास

ब्रिटिश साम्राज्य की शासन-पद्धति

ब्रिटिश साम्राज्य के राजनैतिक भा.—शा पद्धतियों की दृष्टि से ब्रिटिश साम्राज्य निम्न-लि राजनैतिक भागों में विभक्त किया जा सकता है:—

१—साम्राज्य का मातृ-प्रदेश (Mother untry); इसमें इंगलैंड, वेल्ज, स्काटलैंड, उत्तरी आयर्लैन्ड सम्मिलित हैं।

२—स्वाधीन राज्य; इस श्रेणी में केवल आय फ्री स्टेट (Irish Free state) है।

३—स्वाधीन उपनिवेश; इनमें केनेड़ा, द आफ्रिका का यूनियन, आस्ट्रेलिया, न्यूज़ीलैन्ड और न्यूफ़ाउन्डलैंड है।

४—ब्रिटिश भारत और देशी रियासतें ब्रिटिश भारत में अंशतः उत्तरदायी शासन-प प्रचलित है। देशी रियासतें अपने आन्तरिक प्र में कुछ कुछ स्वतंत्र हैं, परन्तु बाहरी मामलों में स अँग्रेज़ सरकार के अधीन हैं।

५—उपनिवेश विभाग के अधीन भू-भाग; राजकीय उपनिवेश (Crown colonies) सम्मिलित हैं।

६—रक्षित राज्य (Protected Stat उदाहरण के लिए सूडान आदि।

७—आदेश युक्त राज्य (Mandetory ates); इस श्रेणी में ऐसे राज्य हैं जो राष्ट्र-संघ ओर से निर्धारित समय के वास्ते ब्रिटिश सरकार शासन करने के लिए दिये गये है; उदाहरणार्थ पोटेमिया।

८—प्रभाव क्षेत्र (Sphere of Influen ये ऐसे राज्य हैं जो स्वतंत्र है, परन्तु जिनमें ब्रि सरकार का प्रभाव अन्य राज्यों के प्रभाव से

है और जिनमें ब्रिटिश सरकार को कुछ शासन सम्बन्धी अधिकार भी हैं।

९—अन्य राज्य, जो निश्चित रूप से उपर्युक्त किसी एक श्रेणी में नहीं रखे जा सकते।

हम ग्रेट ब्रिटेन और उत्तरी आयलैंड को छोड़कर, ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य भागों की शासन-पद्धति का क्रमशः वर्णन करेंगे। पहले साम्राज्य के स्वतंत्र भागों को लेंगे। इन भागों में से और तो साम्राज्य के उपनिवेश ही हैं, केवल 'आयरिश फ्री स्टेट' ही ऐसा भाग है जो ब्रिटिश साम्राज्य का उपनिवेश नहीं है। इस लेख में हम इसीकी शासन-पद्धति का विवेचन करेंगे।

(१)

आयरिश फ्री स्टेट

प्राक्कथन—पहले ग्रेट ब्रिटेन के साथ ही समस्त आयलैंण्ड का भी शासन होता था और इन दोनों का इकट्ठा नाम 'ग्रेट ब्रिटेन और आयलैंड का संयुक्त राज्य' या संक्षेप में 'ब्रिटिश संयुक्त राज्य' था। कुछ समय से आयलैंड के उत्तरी भाग को छोड़कर, शेष आयलैंड स्वतंत्रता का आन्दोलन कर रहा था। अन्ततः सन् १९२१ ई० में ब्रिटिश पार्लिमैंट ने इसकी स्वतंत्रता स्वीकार कर ली। तब से इसका नाम 'आयरिश फ्री स्टेट' पड़ा है और इसका शासन ग्रेट ब्रिटेन और उत्तरी आयलैंड के शासन से पृथक होने लगा है तथा इसका कोई प्रतिनिधि ब्रिटिश पार्लिमैंट में नहीं जाता।

इस राज्य की शासन-पद्धति की विशेषतायें—आयरिश फ्री स्टेट की शासन-पद्धति की दो विशेषतायें हैं—

(१) आयरिश फ्री स्टेट अपने शासन-पद्धति-सम्बन्धी नियमों में कोई ऐसा परिवर्तन नहीं कर सकती जो सन् १९२१ ई० की संधि की शर्तों के विरुद्ध हो।*

(२) आयरिश फ्री स्टेट की जनता को निम्नलिखित प्रधान अधिकार (Fundamental rights) दिये हुए हैं—

(क) सरकार को सब अधिकार जनता से प्राप्त हैं, उन अधिकारों का उपयोग शासन-पद्धति के नियमों के अनुसार ही किया जायगा।

(ख) पुरुष और स्त्रियों के राजनैतिक अधिकार समान होंगे।

(ग) राष्ट्र-भाषा आयरिश होगी, परन्तु सरकारी काम-काज में अंग्रेजी का भी उपयोग हो सकेगा।

(घ) प्रबन्धकारिणी सभा की स्वीकृति के बिना किसी भी आयरिश नागरिक को कोई उपाधि न दी जायगी।

(च) यदि कोई व्यक्ति कभी गिरफ़्तार किया जाय तो उसे तथा उसके मित्रों को अधिकार होगा कि उसकी गिरफ़्तारी के लिखित कारण पूछें और वे कारण संतोषप्रद हों तो गिरफ़्तार करने वाले व्यक्ति को क़ानून के अनुसार दंड दिलावें।

(छ) किसी नागरिक के रहने के स्थान में कोई व्यक्ति सरकारी लिखित आज्ञा के बिना उसकी इच्छा के विरुद्ध न घुस सकेगा।

(ज) प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक स्वतंत्रता होगी

(झ) प्रत्येक व्यक्ति को भाषण, लेखन की स्वतन्त्रता तथा बिना शस्त्रों के एकत्र होने का अधिकार होगा।

(ट) प्रारम्भिक शिक्षा निश्शुल्क होगी।

(ठ) राज्य की प्राकृतिक संपत्ति विदेशियों को नहीं दी जायगी।

---

* इन शर्तों के अनुसार ही आयरिश फ्री स्टेट इंगलैण्ड से पृथक हुआ है तथा उसकी शासन-पद्धति निश्चित हुई है।

पार्लिमैंट—आयरिश फ्री स्टेट की पार्लिमैंट की दो सभायें हैं:—

(१) सिनेट (Senate)

(२) चेम्बर-आफ़-डिप्टीज़ (Chamber of Deputies)

सिनेट को आयरिश फ्री स्टेट की शासन-पद्धति में वही स्थान प्राप्त है जो इंगलैण्ड की सरदार सभा को वहां की शासन-पद्धति में है। परन्तु सिनेट के सदस्य वंशागत नहीं होते। सदस्यों की संख्या ६० है १५ सदस्यों का चुनाव प्रतिवर्ष होता है। उम्मेदवार वे ही व्यक्ति हो सकते हैं, जिन्होंने राष्ट्र को अपनी सेवा से सम्मानित किया हो या जो राष्ट्रीय जीवन के भिन्न भिन्न भागों में कार्य करने वालों के प्रतिनिधि हों। उम्मेदवारों की आयु कम से कम ३५ वर्ष की होनी चाहिए। उम्मेदवार होने से पहले वे या तो सिनेट द्वारा या चेम्बर-आफ-डिप्टीज़ द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। जितनी जगह सिनेट में खाली होतीं हैं, उम्मेदवारी के लिए उतने ही व्यक्ति चेम्बर द्वारा तथा उनके दुगने व्यक्ति सिनेट द्वारा मनोनीत किये जाते हैं। सिनेट के पुराने सदस्य भी उम्मेदवार हो सकते हैं। सीनेट के सदस्यों के चुनाव के लिए ३० वर्ष से अधिक आयु का प्रत्येक आयरिश व्यक्ति मत दे सकता है। प्रत्येक निर्वाचक को उतने मत देने का अधिकार होता है, जितने स्थान सिनेट में खाली हों।

चेम्बर-आफ-डिप्टीज़ में लगभग डेढ़ सौ सदस्य होते हैं। इसका चुनाव प्रति चौथे वर्ष होता है; चुनाव में उन सब आयरिश व्यक्तियों को मत देने का अधिकार होता है जिनकी आयु २१ वर्ष से अधिक हो। प्रत्येक मताधिकारी उम्मेदवार हो सकता है।

धन-संबन्धी कानूनी मसविदे पर, आयरिश फ्री स्टेट में सिनेट को उतना ही अधिकार है, जितना इंगलैण्ड में सरदार सभा को है। इस प्रकार का मसविदा चेम्बर में स्वीकृत हो जाने पर सिनेट भेजा जाता है और वहाँ से २१ दिन के अ सिनेट के संशोधन-सहित वह चेम्बर में लौटा दि जाता है। ऐसा हो चुकने पर चेम्बर को अधिका कि वह उसे जिस रूप में चाहे, स्वीकृत करे। अ सार्वजनिक क़ानूनी मसविदों को सिनेट अधिक अधिक २७० दिन तक कानून बनने से रो सकती है। इतने समय के बाद वह उसी रूप क़ानून बनता है, जिसमें उसे चेम्बर ने स्वी किया हो।

आयरिश फ्री स्टेट की पार्लिमैंट को अधिक है कि यहां के शासन-पद्धति-सम्बन्धी नियमों आवश्यकतानुसार परिवर्तन करे, शर्त यह है कि न नियम सन् १९२१ ई० की संधि की शर्तों के वि न हों। परिवर्तित नियमों पर आठ वर्ष के निर्वाचकों की राय ली जाने की व्यवस्था है; निर्वाचक उन्हें स्वीकार न करें तो वे नियम समझे जायँगे।

जनता को कानून बनाने का अधिकार—निर्वाचक कोई ऐसा क़ानून बनवाना चाहें जो की पार्लिमैंट ने न बनवाया हो अथवा न बना हो तो कम से कम पचास हजार निर्वाचक लिए पार्लिमैंट को दर्ख्वास्त दे सकते हैं। यदि पा मैंट उसे स्वीकार न करे तो उसपर समस्त निर्वा के मत लिये जाते हैं; यदि निर्वाचक बहुमत से स्वीकार कर लें तो वह क़ानून का रूप धारण लेता है। यदि पचास हज़ार निर्वाचकों की द आने पर, पार्लिमैंट दो वर्ष तक मसविदे पर वि ही न करे तो कम से कम ७५,००० निर्वाचक दर्ख्वास्त देने पर, या तो पार्लिमैंट को उसे स्वी करना होता है या उस पर समस्त निर्वाचकों के ले लिये जाते हैं।

प्रबन्धकारिणी सभा—गवर्नर जनरल और गवर्नर जनरल इंग्लैंड के आयरिश फ्री स्टेट का बादशाह द्वारा नियुक्त होता है। उसे अपने यहाँ की शासन-पद्धति में वही स्थान प्राप्त है जो इंग्लैंड के बादशाह को वहाँ की शासन-पद्धति में है। प्रबन्धकारिणी सभा (मन्त्रिमण्डल) में पाँच से सात तक मन्त्री रहते हैं जो शासन-कार्य के लिए आयरिश फ्री स्टेट की पार्लिमैंट के प्रति उत्तरदायी होते हैं। सका सभापति, प्रधान मन्त्री होता है जो चेम्बर ारा चुना जाता है, गवर्नर जनरल द्वारा नहीं। प्रधान मन्त्री अन्य मन्त्रियों को चुनता है, ये मन्त्री चेम्बर ारा स्वीकृत (Approved) होने चाहिएँ। मन्त्री र्लिमैंट को पूरी आयु तक रहते हैं। मन्त्री सब मिलाकर १२ होते हैं।

दयाशंकर दुबे
भगवानदास केला

विश्व-वैचित्र्य

एक पार खाने तहखाने औ हरमखाने,
पत्तन के झोंपड़े हज़ार एक पार हैं।
एक पार व्यंजन बनति हैं अनेक भाँति,
'प्रेम' बासी तिबासी चौबासी एक पार हैं॥
एक पार मौजैं उड़ावैं औ नचावैं नारि,
नाचि नाचि थाकि हारे देखौ एक पार हैं।
एक पार हाजिर हुजूरी में हजार हुकम,
हाजिर हुज़ूरी में हजार एक पार हैं॥

प्रेमनारायण त्रिपाठी 'प्रेम'

मनस्वी मगनलाल भाई

हिन्दुस्तान टाइम्स में स्वर्गीय मगनलाल भाई की मृत्यु के समाचार पर जब मेरी नजर पड़ी तो मैं सन्न रह गया। सहसा उस समाचार पर विश्वास न हुआ। यही हालत उस प्रत्येक आदमी की हुई होगी जो उनको जानता था और जिसने उनके हँसते हुए-चेहरे और सुगठित नीरोग-शरीर को देखा था। आश्रम में जब यह दुःखद संवाद पहुँचा तो वहाँ का वायु-मंडल एकदम शोकाकुल और स्तब्ध होगया। गान्धीजी ने अपने मौन-व्रत को तोड़ छोटे-बड़ों को धीरज बँधाया। आश्रम के कामों को पूर्ववत जारी रख कर ही मृतात्मा को संतोष पहुँचाने का आग्रह किया। सायंकाल, नियमानुसार, प्रार्थना के समय सब इकट्ठे हुए। पंडितजी—नारायण मोरेश्वर खरे—ने धीर गंभीर सुर से 'अब हम अमर भये न मरेंगे' गाया। छाती पर पत्थर रखकर गान्धीजी ने अपने हृदय की अन्तर्वेदना को हलका करने के लिए कहा "आश्रम का प्राण मगनलाल थे, मैं नहीं।" "उनके तेज से मैं चमका" तुम्हारा आदर्श मगनलाल थे मेरे आदर्श भी वही थे। उनके जैसा सरदार मुझे मिला होता तो जैसी सेवा उन्होंने मेरी की, मैं उनकी न कर सकता।" "मैं मीराबाई के समान जहर के प्याले पी सकता हूँ; अगर कोई मेरे गले में साँप लपेट दे तो मैं उसे भी सह सकता हूँ; परन्तु यह वियोग तो इन सबसे बढ़कर असह्य है। फिर भी मगनलाल के गुण-कीर्तन द्वारा मैंने उनकी मूर्ति को अपने हृदय में छिपा रक्खा है।"

आपका जन्म राजकोट में ता० ५ अगस्त सन् १८८३ ई० के दिन हुआ था। अपने पिता श्री खुशालचन्दजी गान्धी की देख-रेख में रह कर ही आपने राजकोट हाईस्कूल में विद्याभ्यास किया। किशोरावस्था के समाप्त होने के कुछ वर्षों बाद आपका विवाह कर दिया गया। फिर सन् १९०३ में आप व्यापार करने की इच्छा से गान्धीजी के साथ दक्षिण ऑफ्रिका पहुँचे। दूकान करते हुए एक साल भी नहीं बीता था कि आपने गांधीजी की स्वेच्छा-गरीबी की पुकार सुनी। धन और यश का मोह छोड़ कर उसी

समय आप आफ्रिका के फीनिक्स आश्रम में भर्ती हो गये। तब से अन्त तक जिस दृढ़ता के साथ मगनलाल भाई गांधी जी के सिद्धान्तों और आदर्शों को कार्य में परिणत करते रहे, संसार के इतिहास में उसकी उपमा शायद ही मिलेगी। गांधी जी का कहना है कि अगर उन्होंने स्वदेश-सेवा में अपना सर्वस्व होम न दिया होता तो अपनी योग्यताओं और अध्यवसाय के बल पर वे आज व्यापारियों के सिरताज होते। परन्तु ईश्वर तो उन्हें एक सच्चा सेवक भक्त और देशोद्धारक बनाना चाहते थे, फिर मगनलाल भाई व्यापारी क्यों बनने चले? वास्तव में मगनलाल भाई के जीवन की कई बातें ऐसी हैं कि उनका सच्चा ज्ञान वर्तमान भारत के प्रत्येक स्त्री-पुरुष और बालक-बालिका के लिए अत्यंत शिक्षाप्रद है।

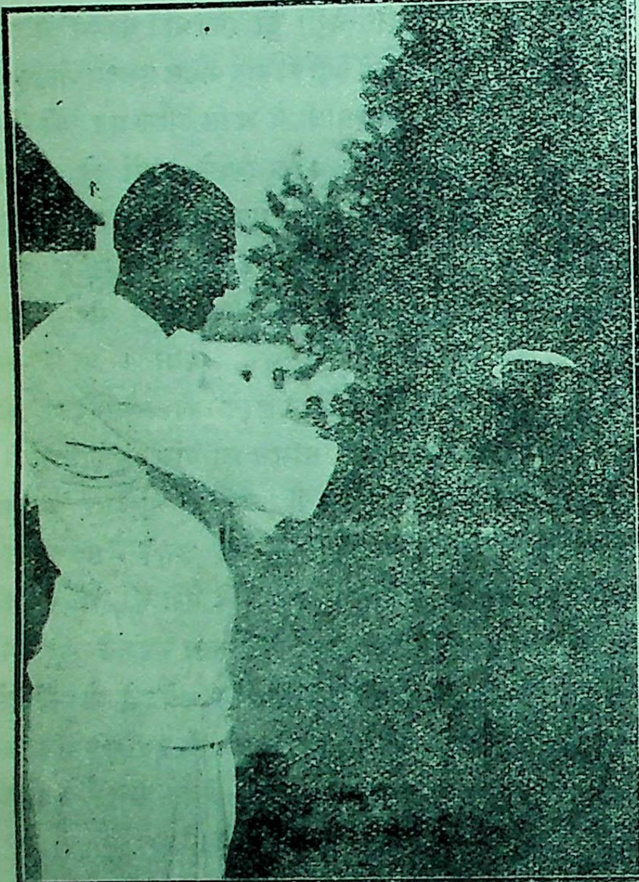

तकली कातते हुए

श्री मगनलाल भाई के जीवन के अनेक पहलू हैं। हमें खेद है कि स्थानाभाव के कारण उनमें से हम विस्तृत वर्णन हम 'त्यागभूमि' के पाठकों के लिए सकते।

स्व० मगनलाल भाई एक सफल पिता तो थे ही, अपनी अद्वितीय गृह व्यवस्था के कारण आपको सफल कहना अधिक उचित होगा। स्वच्छता और पवित्रता के भाव उनकी नस-नस में भर गये थे, उन्हींको अपनी में उन्होंने भली भांति भर दिया था। आपके घर की सुन्दरता और कला-पूर्ण सादगी से मुग्ध होकर गान्धी अपने प्रिय मिहमानों को आपके ही घर पर ठहराते खुद तो घर से विरक्त थे ही। जिह्वाजय के व्रत से घर का भोजन भी आप छोड़ चुके थे।

जिस तरह खुद ज्ञान और संयम की प्राप्ति के अन्तिम समय तक तड़पते रहे उसी तरह अपने लड़कियों को भी देश-सेवा की शिक्षा देने में सदा जागरूक रहे। देश-सेवा के लिए ब्रह्मचर्य को बड़ा ज़रूरी समझते थे और इसी कारण के तीनों बालक अभी तक अविवाहित हैं। अपने भाई केशव के साथ काम करने में, उनके अनेक प्रयोगों सम्मिलित होने में और उन प्रयोगों के लिए तरह-तरह साधन-सामग्री जुटा देने में आपको बड़ा आनन्द और उसमें सफल होने पर अपार हर्ष। स्त्री-शिक्षा के कट्टर हामी थे। और स्त्रियों के आजीवन ब्रह्मचर्य में पूरा-पूरा विश्वास था। देश में परदा प्रथा के कारण की जो दुर्दशा हो रही है उससे आप बड़े दुःखी थे प्रथा को मिटाने के लिए ही आपने अपनी बड़ी पुत्री राधा बहन को विहार प्रान्त में भेजा था। तन, वचन से एक ही बात सिखाने वाली शिक्षा को सच्ची शिक्षा समझते थे। एक बार राधा बहन ने बालिकाओं के साथ विवाह का विरोध करने वाले में भाग लिया था। इस संवाद को सुन कर मगनलाल ने कहा "आज का यह संवाद केवल नाटक का नहीं है? नाटक के पात्र तो अपना काम करके जाते हैं। आप जो बातें राधा से कहला रहे हैं राधा जन्म भर विवाह न करने के लिए बँध

…ही बँधे। परमात्मा उसे इतनी शक्ति दे।"

जिनसे एक बार भी मगन भाई की मुलाकात हुई, वे …हें फिर कभी न भूल सके। उनका व्यक्तित्व ही इतना …ल और प्रभावशाली था कि उन्हें भूलना कठिन होता …ता था। श्री विजयराघवाचार्य केवल एक बार आश्रम में …ये थे, तिस पर भी आप लिखते हैं, "मगन भाई की नम्रता …आश्चर्यजनक थी। इनके जाने से देश को बहुत बड़ी …नि हुई है।" एक दूसरे पारसी सज्जन लिखते हैं "मगन…ल भाई आश्रम थे और आश्रम मगनलाल भाई।" मौ० …हम्मदअली लिखते हैं, "उनका प्रेममय वर्ताव तो ऐसा था …से देख कर आदमी चकित हो जाय।"

इन बातों से स्व० मगनलाल भाई के व्यापक व्यक्तित्व …र प्रेमपूर्ण स्वभाव का ठीक ठीक पता चलता है। श्री महादेव …ाई देसाई लिखते हैं "पाँच वर्ष पहले पिताजी को खोकर …असह्य दुःख मुझे हुआ उससे भी अधिक दुःख मुझे आज …रहा है। पिता के वियोग का दुःख तो गांधीजी की समी…ता के कारण भूला। किंतु पिता की याद दिलाने वाले बड़े …ाई के वियोग का दुःख किस तरह भूल सकूंगा? ××××× …१९१६ में मैं गांधीजी की सेवा में उपस्थित हुआ था। उस …मय मुझ में उनके प्रति भक्ति के सिवा और कोई गुण नहीं …। अपनी इस कमी के कारण मैं मन ही मन बहुत डरता …ता था। आश्रम में भर्ती होने के नियम कट्टर थे। मगन…ल भाई की नियम-पालन की कट्टरता की बातें सुन कर …ा भय और भी बढ़ता था। परन्तु जिस रात मैंने अपनी …री कमजोरियां उन्हें बतलाईं उस रात उन्होंने मेरा सारा …र भगा दिया और लगभग आधी रात तक अपने अमूल्य …नुभवों और साधना-मार्ग के अनेक कष्टों की बातें करते …। थोड़े ही समय में उन्होंने मुझे जीत लिया और मैं …न्हें पूज्य भाव से देखने लगा। पत्रों में भी उन्हें 'पूज्य' …लिखने लगा। परन्तु अपनी अद्वितीय नम्रता के कारण …इस पूज्यभाव के बोझ को न सह सके। तीन साल हुए, …ग्रह करके उन्होंने मुझे 'प्रिय' लिखने के लिए विवश …या। मैं 'प्रिय' लिखने तो लगा, परन्तु उनके लिए मेरा …भाव कई गुना बढ़ गया।"

विनोबा लिखते हैं, "मगनलाल भाई का स्वभाव नारियल के समान था—ऊपर कठोर और भीतर अत्यन्त रस पूर्ण। ×××× उनके मंगलमय जीवन का कारण उनका नारियल जैसा स्वभाव ही था। किन्तु ऐसे मृदु-कठोर स्वभाव के कारण लोग साधकों को समझने में भटक जाते हैं। ××× मगनलाल भाई के साथ यही हुआ। उनके बारे में कई लोगों की गलत धारणा हो गई थी, जिसके कारण उनकी आत्म-परीक्षा और भी बढ़ गई थी।

बारडोली से वल्लभ भाई पटेल ने गान्धीजी को लिखा, "मेरे लिए तो उनका वियोग असह्य हो गया है। इस बार जाते समय जब उन्होंने मेरी आज्ञा माँगी, मैंने इन्कार कर दिया था। क्योंकि मुझे उनकी बड़ी ज़रूरत थी। उनका काम कोई दूसरा कर ही नहीं सकता था। जब उन्होंने शीघ्र लौटने का वचन दिया, तब मैंने लाचार होकर उन्हें जाने दिया। मैं तो अब भी उनके देहान्त की बात पर विश्वास नहीं करता।

मगन भाई का शरीर भीम जैसा था। नियमित व्यायाम और रात-दिन के कठोर परिश्रम ने उसे खूब गठीला और वज्र के समान दृढ़ बना दिया था। परन्तु इधर दो तीन वर्षों से उन पर चारों ओर के काम का इतना अटूट बोझ आ पड़ा था कि वे इसके भार से दबे जाते थे। अपनी जिम्मेदारी के पालन की चिन्ता ने उन्हें व्यग्र कर दिया था। आत्म-परीक्षण और घोर तप द्वारा वे अपने को इस उत्तर-दायित्व के योग्य बना रहे थे। इधर इसी फिकर में उनका नियमित व्यायाम भी छूट गया था। उन्हें तो इस बात की चिन्ता हो रही थी कि वे अधिक से अधिक सहनशील कैसे बनें; चाहे जैसे कठोर-हृदय मनुष्य को जीतने वाली अहिंसा उन्हें कैसे प्राप्त हो? ब्रह्मचर्य पर उन्हें अडग विश्वास था। जब म० गान्धीजी ने 'विवाहित स्त्री-पुरुषों के लिए भी ब्रह्मचर्य ही जीवन का नियम है' इस सिद्धान्त की अपने मित्रों और साथियों में घोषणा की, तब आप उसकी अनुपम सुन्दरता पर मुग्ध हो गये। और अपनी कट्टरता के साथ इस सिद्धान्त को पालने लगे कि सफलता आपके चरणों पर लोटने लगी। अपनी धर्मपत्नी को भी बड़े धैर्य के साथ समझा-बुझाकर इस व्रत-पालन के लिए उन्होंने तैयार कर लिया। आपका ब्रह्मचर्य-पूर्ण गृहस्थ-जीवन आश्रम का

आभूषण था। इस व्रती-जीवन के निर्माण में आपको कितने कष्ट उठाने पड़े इसे तो आप ही बतला सकते थे। आपके जीवन के दो पहलू थे, एक आत्म-परीक्षा और दूसरा पुरुषार्थ-आत्म-परीक्षण की तीव्रता की भांति ही नहीं, वरन् उससे भी अधिक, उग्र उनका पुरुषार्थ था। मानों ये दोनों उनके जीवन-रूपी वस्त्र के ताने-बाने थे। गान्धीजी के सिद्धान्तों को समझने और पालने के प्रयत्न में गान्धीजी के बराबर ही कष्ट उठाने वाला अगर कोई हो सकता है तो वह मगनलाल भाई ही थे।

दक्षिण आफ्रिका के फीनिक्स आश्रम में जिस दक्षता और परिश्रम के साथ आपने काम किया था उससे तो गान्धीजी की आत्म-कथा का कोई पाठक अपरिचित न होगा। वहाँ से भारत लौटने पर आप अपने साथियों के साथ कुछ दिन शान्ति-निकेतन में रहे थे। इस थोड़े से समय में वहाँ के विद्वानों और छात्रों पर मगनलाल भाई की परिश्रम-शीलता, व्यवस्था-शक्ति और कार्य-कुशलता की जो छाप
उसका वर्णन गान्धीजी के हाल के ताजे स्मरणों में
है। इधर गत बारह वर्षों से आपकी सारी शक्ति
आश्रम
के निर्माण,
उन्नति और
सुंदर संग
खर्च हो रही
इन बारह
प्रत्येक
हिसाब वे
सकते थे।
दिनों में
समय के
योग में
तल्लीन हो
कि बड़े स
बजे से ले
के ९-९॥
आप बराब
राम काम में
रहते थे।
समान ही,
से रात तक,
आश्रमवासी
भी आप,
काम करते
चाहते थे।
को, अगर
जल्दी न सो
आधी रा
जाती तो
बराबर चा
बिछौना छोड़ देते थे। अपना सारा काम वे खुद
लेते थे। जबतक स्वस्थ रहे, उन्होंने कभी दूसरों से

मनस्वी मगनलाल भाई

न कराई । आश्रम में जिन दिनों और जगह भंगी काम ता रहता, अपने घर का मैला आप ही साफ़ करते थे । हाँ तक हो सकता अपने कपड़े खुद ही धो लेते थे । वास में रहते हुए भी लोगों को आपकी सेवा करने का हुत कम अवसर मिलता था ।

तन्द्रा और प्रमाद को छोड़ कर आपने आश्रम की खण्ड चौकीदारी कुबूल की थी । चौबीसों घण्टे आश्रम में ह कर, कौन क्या करता है, कौनसी चीज़ आश्रम में आ ती है और कौन नहीं, इस बात की वे ख़बरदारी रखते । आश्रम के नियम-पालन में आपकी उग्र कठोरता के ण बहुत से लोग असन्तुष्ट भी रहते । परन्तु बाद में उन-संतोष की सीमा न रहती । आश्रम में रहने वाले भाई-हनों के दोषों को और लोगों पर प्रकट कर, उन्हें कष्ट हुँचाने की अपेक्षा वे खुद प्रायश्चित्त-स्वरूप उपवास करते र कष्ट सहते थे । उनकी इस अनुपम वृत्ति ने कई आश्रम-सी भाई-बहनों को उबारा है । महात्माजी की चरित्र-निर्माण-कला को अपना कर मगनलाल भाई ने उन्हें आश्रम म्बन्धी बातों में सदा के लिए निश्चित कर दिया था ।

मगनलाल भाई की असाधारण जागरूकता और खण्ड आश्रम-निष्ठा की ज्योति को सदा जागृत रखने का य उनकी अनन्य धार्मिकता को था । धार्मिक साहित्य र संस्कृत के उद्भट विद्वान् न होते हुए भी आपका अपूर्व त्य-प्रेम और भक्ति—एक शब्द में आपकी धर्मप्राणता—ड़े बड़े विद्वानों को भी लजाती थी । गो० तुलसीदासजी रामचरित-मानस के आप परम भक्त थे । हिन्दी के उच्चा-ण में कई दोष रहते हुए भी, आपका रामायण-गान लोगों मन्त्र-मुग्ध कर लेता था । आश्रम में प्रार्थना कराते समय ब जब भजन गाने की आपकी पारी आती तब आप ल दो ही भजन गाया करते थे । श्रीमद् राजचन्द्र का मुल्य अवसर ऐवो क्यारे आवशे' इसे या निष्कुलानन्द 'त्याग न टके रे वैराग्य विना' इस भजन को गाकर मगनलाल भाई कुछ देर के लिए आश्रम के वातावरण को राग्य भावना से भर देते थे । इन प्रिय भजनों में ही आप सारे जीवन का रहस्य छिपा हुआ है । विना वैराग्य का ग आपको पसंद न था । कभी कभी आवेश में आकर आप 'क्यारे थईशुं बाह्यान्तर निर्ग्रन्थ जो' को गाने लगते और इस कोटि तक पहुँचने का सदा प्रयत्न करते रहते थे । आश्रम की प्रातःकाल की प्रार्थना में तो आप कभी गैरहाज़िर न रहे । हाथ-पैरों को ठिठुरा देने वाले जाड़े और मूसलधार पानी में भी बराबर ४ बजे आप प्रार्थना स्थान पर पहुँच जाते थे । अगर कोई आश्रमवासी समय पर न आता तो खुद ही बुलन्द आवाज़ में प्रार्थना करने लग जाते थे । "एकबार सात दिन के उपवास के पश्चात् नेत्रों में आँसू भर के मारानयणानी आलसरे न निरख्या हरिने जरी" गाते हुए आप बिलकुल तल्लीन हो गये थे । अपने अन्त समय में भी मगनलाल भाई राम-नाम का सतत रटन करते रहे थे । और देहान्त के कुछ समय पूर्व से कुमारी राधा बहन ने 'दयामय मंगल मन्दिर खोलो' गा कर आपको शान्ति पूर्वक परमधाम के लिए बिदा किया था ।

अपने बाहरी जीवन में मगनभाई सदा कारीगर और मज़दूर रहे । उनकी कारीगरी और मज़दूरी की छाप आश्रम के मकानों की एक-एक ईंट में, उनके वृक्षों की एक-एक पत्ती में, गोशाला और वस्त्र-शाला में, सारांश आश्रम की प्रत्येक हल-चल में देखी जा सकती है । महात्मा जी कहते हैं, "मगनलाल नहीं रहे, मगर अपने सभी कामों में वे जीवित हैं, जहाँ चाहें उन्हें हम देख सकते हैं ।" अफ्रिकामें प्रेस चलाने और कम्पोज़ करने में आपने बड़ी कुशलता दिखलाई । बागवानी में नाम कमाया । अहमदाबाद में जब शुरू-शुरू 'यंगइंडिया' निकला तब भी आपके ही परिश्रम से उसका पहला अंक प्रकाशित हो सका । अगर वे इसी काम में लगे रहते तो भारत के लोइड—गैरिसन बन जाते । "हिन्दुस्तान लौटने पर आपही की बदौलत साबरमती का आश्रम संयम-नियम की इतनी पुख्ता नींव पर खुल सका था । आश्रम में आतेही अस्पृश्यता की समस्या उनके सामने उपस्थित हुई, वे कुछ देर हिचके, पर उन्होंने अपना हृदय एकदम इतना उदार बना लिया कि सारा संसार उन्हें आपरूप दीखने लगा । असीम प्रेम की महिमा को उन्होंने तत्काल ही पहचान लिया । फिनिक्स आश्रम की अपेक्षा साबरमती आश्रम का औद्योगिक विभाग कहीं भिन्न प्रकार था । यहाँ तो सारे कामों का केन्द्र चर्खा और खादी

बन गये थे। मगनलाल भाई उनकी उन्नति के लिए प्राणों का मोह छोड़ कर जुट पड़े। देखते देखते-देखते आपने बुनना कातना, धुनना, ओटना कपास की खादी बनने तक की सब क्रियायें सीख लीं।"

आश्रम में गोशाला खुली नहीं कि आपने गोपालन सम्बन्धी सारा साहित्य पढ़ डाला। गोरुओं का नाम करण संस्कार किया और उनसे मित्रता बढ़ा ली। जब चर्मालय खुला, तब भी आपकी तत्परता वैसी ही बनी रही। फुरसत मिलते ही आप चमड़े की कमाई के सिद्धान्त भी सीखने वाले थे। इन सारे कामों को वे स्वानुभव की पाठशाला में ही सीखते थे। और कभी कभी देहाती बढ़ई, देहाती बुनकर, किसान, और चरवाहों से मिलकर भी बहुतसी जानने योग्य बातें जानते रहते थे।

इधर तो वर्षों से चर्खे के सुधार और प्रचार में ही वे अपनी सारी बुद्धि और शक्ति लगा रहे थे। उनके अकाल स्वर्गवास से श्री राजगोपालाचार्यजी के शब्दों में—चर्खे पर भारी वज्राघात हुआ है।

'बुनाई शास्त्र' पर आपकी एक खोज–पूर्ण पुस्तक भी प्रकाशित हुई है। इससे मगनलाल भाई की विद्वत्ता, प्रयोग पटुता और साहित्यिक योग्यता का खूब पता चलता है। कारीगरी में कला देखना हो तो पाठक इस पुस्तक को एक बार अवश्य पढ़ें। आपकी भाषा बड़ी जोरदार, सरल और भावों को ठीक-ठीक व्यक्त करने वाली होती थी। उनके अक्षर मोती के दानों के समान सुन्दर, और निष्कलंक होते थे। उनके पत्र सदा अत्यन्त छोटे और काम की बातों से भरे रहते थे।

अगर चर्खे के लिए मगनलाल भाई ने अपना जीवन अर्पण कर दिया था, तो गोपालन की शिक्षा उन्होंने अपने शौक के लिए प्राप्त की थी। कलम चलाने की अपेक्षा फावड़ा और कुदाली लेकर खेत में मजदूरी करना उन्हें ज़्यादा पसन्द था। इस काम में उन्हें असाधारण सुख मिलता था। पशुओं पर उनकी अत्यधिक प्रीति थी। उनकी पाली हुई गायें और बछड़े आज आश्रम की शोभा बढ़ा रहे हैं। अपनी तुलसी, त्रिवेणी आदि प्रिय गायों की उन्हें बड़ी चिन्ता रहती थी। चर्खे के समान ही पशुपालन का प्रचार भी
प्यारा विषय था।

मगनलाल भाई की कारीगरी उनकी मज़दूरी,
परिश्रम उनका ब्रह्मचर्य, उनका गार्हस्थ्य, किंबहुना
सर्वस्व, देश के लिए अर्पित था। गांधी जी के
प्रयोगों को सिद्ध करने में मगनलाल भाई ने जितने
उठाये, संताप सहे और त्याग किया उसको शब्दों द्वारा
करना असम्भव है। अखण्ड साधना के बाद आप
के अनन्य सेवक और अप्रतिम भक्त बन सके थे।
के आश्रम-निवास के दिनों में भी मगनलाल भाई
कई दिनों तक नहीं मिल सकते थे। उन्हें उनसे
फुरसत ही नहीं मिलती थी। गांधीजी के भौतिक
सेवा करने की अपेक्षा उन्हें उनके सिद्धान्तों और
उपासना ज्यादा प्रिय थी।

विनोबा मगनलाल भाई की अनन्य गांधी
कर उन्हें आधुनिक हनूमान कहते हैं। मगन भाई को
यण के पत्रों में भरत और ख़ास कर हनूमान से प्रेम
राम-चरित में जो स्थान हनूमान को प्राप्त है, गांधी
जीवन में मगन भाई भी उसी के अधिकारी हैं।
और मगन भाई एक-हृदय दो-प्राण थे। एक का
अनन्य विश्वास, अखण्ड श्रद्धा, और अटूट प्रेम था।
कहते हैं, "अगर किसी के और मेरे बीच में अन्तर
तो वह मेरे और मगन के बीच। अपने लड़के और
विषय में कुछ सोचते समय हमें यह भय रहता है कि
इन्हें दुःख न हो। परन्तु मगनलाल के बारे में मुझे
भय कभी नहीं हुआ। मेरा विश्वास है कि किसी
दार को मगनलाल से अधिक उत्तम और स्वामिभक्त
नहीं मिला, यह अनुभव-सिद्ध बात है। मेरे
मुझे हमेशा श्रद्धालु, सदाचारी, बुद्धिमान और
सखा या सेवक प्राप्त होते रहे। परन्तु इन सब में
लाल श्रेष्ठ थे। मगनलाल में ज्ञान, भक्ति और कर्म की
सदा बहती रहती थी। उन्होंने अपने ज्ञान और
का कर्म-यज्ञ में आहुति देकर सबों को ज्ञान और
सच्चा स्वरूप बतालाया था। इस तरह उनका
चेतन-ज्ञान-मय होने से उनका जीवन सन्यास की

पहुँच चुका था। मगनलाल ने अपने सर्वस्व का त्याग दिया था। उनके एक भी कार्य में मैंने स्वार्थ नहीं देखा। निःस्वार्थ—निष्काम—कर्म ही सच्चा संन्यास है, इस बात को उन्होंने एक बार नहीं, थोड़े समय तक नहीं, किन्तु अनेक बार, अनेक अवसरों पर और लगातार चौबीस वर्षों तक प्रत्यक्ष उदाहरण द्वारा साबित किया था। मेरी बात को शान्ति-पूर्वक सुनकर उन्होंने गरीबी स्वीकार की और अन्त समय तक उनकी कार्य-धारा बराबर उसी ओर बहती रही।

"अगर जाने या बे जाने इस चित्र में कहीं भी अतिशयोक्ति न हो, तो मैं कह सकता हूँ कि जिस देश में धर्म इस भाँति मूर्तिमन्त हो सकता है वह देश सदा विजयी होगा। अतः मेरी यह इच्छा है कि मगनलाल के जीवन का अभ्यास प्रत्येक देश-सेवक करे और अगर पसन्द आवे तो उनके गुणों का दृढ़ता-पूर्वक अनुकरण भी करे। जो बात मगनलाल के लिए सम्भव थी, वह हरएक प्रयत्नशील मनुष्य के लिए संभव है। सच्चे सिपाही होने के कारण मगनलाल सच्चे सरदार भी हो सके थे।

"इस देश को और आधुनिक संसार को सच्चे सिपाहियों की ज़रूरत है। देश-सेवा, विश्व-सेवा, आत्मज्ञान और ईश्वर-दर्शन, जुदी जुदी बातें नहीं है, ये तो एक ही वस्तु के जुदे जुदे रूप हैं। इस बात को मगनलाल ने अपने जीवन में खूब पहचान लिया था और दूसरों को भी इसकी पहचान करादी थी। जिन्हें जिज्ञासा होवे उनके जीवन का अभ्यास कर अनुभव प्राप्त करें।"

"सिपाही"

अ० भा० चर्खा संघ की काउन्सिल ने अपनी १२ ता० की बैठक में यह प्रस्ताव स्वीकार किया है:—

"यह काउन्सिल निश्चय करती है कि स्व० श्रीयुत मगनलाल गांधी की स्मृति में एक खादी-संग्रहालय बनाया जाय। उसके लिए एक लाख रुपयों की अपील की जाय। काउन्सिल यह निश्चय आगे चल कर करेगी कि यह स्मारक कहां पर बनाया जाय तथा उसकी व्यवस्था किस प्रकार हो।"

पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों के चित्र

पाश्चात्यों के संसर्ग से हम भारत-वासियों पर जो अनेक परिणाम हुए हैं उनमें एक यह भी है कि छापाखानों के प्रचार के कारण अनेक पत्र-पत्रिकायें और पुस्तकें हमारे देश में भी छपने लगी हैं, और पाश्चात्य साहित्य के सदृश हमारे यहाँ भी वे सचित्र छपती हैं। इतना ही नहीं, किन्तु हमारे यहाँ विज्ञापन भी सचित्र छपते हैं। ये सारी बातें हमने पाश्चात्यों से ली है, इस कारण उनके गुणदोष भी पूरे-पूरे पाश्चात्य हैं। पत्र-पत्रिकाओं अथवा पुस्तकों का सचित्र रहना अवश्यमेव लाभकारी है, पर इस विषय में बहुत कम लोगों ने यह विचार किया है कि उनके चित्र किस प्रकार के रहें, किन लेखों और पुस्तकों में चित्र रहें और किन में न रहें। साधारण पाठक भी बहुत कम सोचते हैं कि किन चित्रों से वास्तव में लाभ होता है और किन से नहीं। वे तो चित्र देखना चाहते हैं, उनसे कुछ लाभ है या नहीं इस ओर उनका ध्यान ही नहीं रहता। फल यह हो रहा है कि 'सचित्र' पत्र-पत्रिकायें और पुस्तकें अधिक बिकती हैं, 'त्रि-चित्र' यानी बिना चित्र का साहित्य कम बिकता है। इसलिए आजकल चित्रों का जो दुरुपयोग हो रहा है उसके विरुद्ध आवाज उठाना प्रत्येक सच्चे समाज-सेवी का कर्तव्य है।

जहाँ तक हमें मालूम है, यूरोप में चित्रों का उपयोग पहले-पहल पाठशालाओं की पुस्तकों में हुआ था। इससे पाठकगण यह समझ सकते हैं कि चित्रों का उपयोग पुस्तकों की बातें समझाने के लिए ही पहले-पहल किया गया था। इनके अलावा जो चित्रादि बनते वे घरों की शोभा बढ़ाने के लिए होते थे। इस दूसरे उपयोग से हमें कुछ वास्ता नहीं है। इसलिए उनके सम्बन्ध में हम कुछ विशेष न कहेंगे। हम केवल सामयिक पत्र-पत्रिका और पुस्तकों के चित्रों के सम्बन्ध में विचार करना चाहते हैं। साहित्य में चित्रों का उपयोग पहले-पहल जिस हेतु से होना शुरू हुआ, वह

ध्यान में रखने के लायक है। कई बातें ऐसी होती हैं कि जिनका शब्दों से कितना भी वर्णन किया जाय तो भी उसकी कल्पना पाठकों को नहीं हो सकती और यह तो स्पष्ट है कि किसी वस्तु या दृश्य का चित्र अपने मस्तिष्क में बने सिवा वह आत्मगत नहीं हो सकता। कागज़ आदि पर उस वस्तु का चित्र रहने से उस वस्तु का रूप हम शीघ्र जान सकते हैं। इसलिए जहाँ कहीं शब्दों से काफी या बिलकुल काम नहीं चलता, वहीं चित्रों का देना परमावश्यक है। यही नहीं, किन्तु किसी वस्तु या दृश्य का हम वर्णन देने लगें तो शायद कई पृष्ठ लग जावें और फिर भी उसका पूरा चित्र हमारे मस्तिष्क में नहीं बन सकता, ऐसे स्थानों पर चित्र दे देने से पाठक और लेखक दोनों के समय और श्रम की बचत होती है और लेखक या शिक्षक का हेतु बहुत शीघ्र और उत्तम रीति से सिद्ध हो जाता है। चित्र देने के हेतु से चित्र देना ठीक नहीं है, चित्रों से उनका उपरिनिर्दिष्ट हेतु सिद्ध होना चाहिए। उनसे यदि किसी बात को समझाने-समझने में सहायता नहीं मिलती है तो वे नितान्त अनावश्यक हैं।

अब पाठगण यह देखें कि ऊपर बताई कसौटी में आजकल के प्रकाशित होने वाले कितने चित्र ठहर सकते हैं? उनको देखकर आप इस परिणाम पर अवश्य पहुँचेंगे कि आजकल के सैकड़ों चित्र 'अनावश्यक' हैं, क्योंकि उनसे किसी बात को समझने समझाने में कोई सहायता नहीं मिलती। इतना ही नहीं किन्तु कई चित्र इस हेतु के विरुद्ध कार्य करते हैं। शाब्दिक वर्णन में सभी बातें स्पष्ट और परिपूर्ण रीति से नहीं बताई जाती। परन्तु चित्रकार को तो अपना चित्र पूर्ण करना ही पड़ता है, वह उसे अधूरा रख नहीं सकता। कभी-कभी तो लेखक एक-दो शब्दों में ही अपना वर्णन समाप्त कर देता है। उससे इतने अधिक चित्र बन सकते हैं कि कोई भी चित्र वर्णन की दृष्टि से सच्चा नहीं कहा जा सकता। ऐसी अवस्था में चित्रों का न बनना ही अच्छा है। हाँ, ऐसे स्थानों में तब ही चित्र देना चाहिए कि जब चित्र में वर्णित बातें तो आजावें पर उसकी अन्य बातें वर्णित विषय से या उसके काल से असंगत न हों। इस दृष्टि से देखा जाय तो यह स्वीकार करना होगा कि आजकल जो सचित्र कहानियां छपती हैं अथवा जो अनेक सचित्र उपन्यास अथवा पौराणिक—कथात्मक ग्रंथादि उनके बहुतेरे चित्र अनावश्यक, भ्रमपूर्ण और अनैति रहते हैं। जहाँ चित्रों का उपयोग होना चाहिए वहाँ उपयोग नहीं होता पर जहाँ चित्रों की आवश्यकता अथवा सच्चे चित्रों के देने की संभावना नहीं वहाँ पृष्ट पर चित्र दिये जाते हैं। इस कालव्यय, श्रमव्यय द्रव्यव्यय को रोकना आवश्यक है।

यदि यह भी मान लिया जाय कि कई कथा-क के कई चित्र अनैतिहासिक या वेष-भूषा आदि की झूठे नहीं रहते। उनमें चित्रकार का मुख्य हेतु कथा नियों में वर्णित मानवी मनोभावनाओं का चित्रीकर है। तो इसपर हमारा कहना है कि जितने चित्र कथा-कहानियों में देखते हैं वे वर्णित मनोभावना दिग्दर्शक नहीं रहते, वे केवल चित्रों की उच्छृंखल आ कता की पूर्ति के लिए दिये जाते हैं। वे इसलिए दिये हैं कि लोग यह कहें कि इस पत्र या पत्रिका की कथा नियाँ सचित्र छपती हैं। साधारण पाठक भी केवल बात की ओर विशेष झुक जाते हैं कि अमुक पत्र-पत्रि चित्र छपते हैं, फिर भले ही वे उन चित्रों को बारीकी देखें और उनका मतलब भी न समझें! मनोभावना चित्रीकरण करना अच्छा है, पर वह होना चाहिए और साथ ही इस तरह कि जिससे उसमें वर्णित काल और देश के विरुद्ध कोई बात न हो।

आजकल यह कहने की एक "फैशन" चल पड़ी है हम अमुक चित्र, काव्य, मूर्ति या ऐसी अन्य वस्तु क दृष्टि से बनाते हैं, उनके बनाने में हमारा एक ही और वह है कला, अन्य कुछ भी नहीं। जैसा सब मानते हैं, वैसा हम भी मानते हैं कि चित्रों का एक महत्वपूर्ण हेतु कला ज़रूर है। परन्तु कला में भी भावनाओं या कल्पनाओं का अथवा भौतिक प्रकृति का दृश्य रहता है, इसके बिना कला कैसे हो सकती है तो नहीं जानते। अन्य कोई जानते हों तो बतावें। पत्रों में जो रंगीन चित्र छपा करते हैं उनका मु कला ही होता है, पर हम नहीं जानते कि सैकड़ों बार भी अपने हेतु में सफल होते हैं या नहीं।

हां, एक बुराई आजकल के चित्रों में बहुत-कुछ सर्व सामान्य रीति से देख पड़ती है। वह यह है कि सैंकड़ा निन्यानवे चित्र स्त्रियों के रहते हैं और इनमें से निन्न्यानवे सैंकड़ा चित्रों में स्त्रियों के अंग-प्रत्यंग, विशेष कर स्तन दिखलाये जाते हैं। हमें आश्चर्य तो इस बात का है कि जिस जमाने में स्त्रियाँ पुरुषों के बराबर ही अधिकार नहीं परन्तु उनपर भी अधिकार पाने का प्रयत्न करने लगी हैं उस जमाने में वे अपनी जाति का यह अपमान, यह दुर्दशा होते देख कर कुछ भी नहीं चिढ़तीं! क्या स्त्रियाँ यह पसन्द करती हैं कि उनकी जाति के चित्रों में शरीर के अंग-प्रत्यंग, और विशेष कर स्तन, अवश्य दिखलाये रहें? सम्पादक लोग तो इसपर विचार करते ही नहीं। उन्हें तो टके सीधे करने हैं! लोक-सेवा का आडम्बर रचकर नवयुवकों को वे अनीति के मार्ग में कितनी शीघ्रता से ढकेलते जाते हैं इसका कदाचित् उन्हें पता नहीं है, अथवा है भी तो उन्हें इससे क्या? उनके पत्र या पत्रिकाओं के ग्राहकगण तो बढ़ते हैं। लोगों को जो बात पसंद है वही वे छापेंगे। लोगों को उससे हानि मालूम पड़े तो वे भले ही उसपर दृष्टि न डालें! क्या सम्पादक किसी से कहने को जाते हैं कि आप स्त्रियों के अमुक चित्रों पर अवश्य मनन कीजिए और अपनी कामवासना को बढ़ाइए! वे तो 'कला' के पुजारी हैं, इसी नाते वे स्त्रियों के अंगप्रत्यंग दिखलाया करते हैं। परन्तु सम्पादक महाशयो, आपसे मेरा नम्र निवेदन है कि केवल कानून की चंगुल से बचने से आपका काम न चलेगा। आप पर बहुत भारी जिम्मेदारी है। लोक-शिक्षा का बड़ा भारी बोझ आपके शिर पर है। जिस प्रकार "लैला मजनू" के किस्से छाप-छाप कर आप लोगों की साहित्य-रुचि को गलत मार्ग में लेजा रहे हैं उसी प्रकार स्त्रियों के अंग-प्रत्यंग के चित्रों को बारबार दिखलाकर आप नवयुवकों की कामवासना को उत्तेजित करते हैं। जिनका विवाह हो चुका है, उन्होंने तो अपनी स्त्री का अंग-प्रत्यंग अवश्य देखा ही है। इसलिए उन्हें चित्र में ये चीजें दिखाने से कोई लाभ नहीं। पर जिन्होंने युवतियों के अंग-प्रत्यंग नहीं देखे हैं उन्हें चित्र में भी दिखलाना हानिकारक है। क्योंकि युवक उन्हें देख देख कर न जाने कितनी बातें सोचा-विचारा करते हैं। इस प्रकार उनकी तरल कल्पना को उत्तेजित करना अत्यन्त हानिकारक है। कुछ पत्रिकाओं या पुस्तकों में स्तनों के ऊपर एक पतलासा और छोटा सा आच्छादन दिखला दिया जाता है, अन्यथा कमर के ऊपर का भाग नग्न ही रहता है। ये चित्र वास्तविकता से बहुत दूर रहते हैं। हम जानना चाहते हैं कि ऐसा कौन सा सभ्य समाज है कि जहाँ स्त्रियाँ इस प्रकार रहती हैं? कुछ पुस्तकों में, यहाँ तक कि पौराणिक ग्रन्थों में, स्त्रियों के चारों ओर एक ऐसा बहुत ही महीन वस्त्र दिखला दिया जाता है कि उससे शरीर का सब भाग साफ़-साफ़ देख पड़े। जैसा ऊपर हम कह चुके हैं, यह अनैतिहासिक है। हम जानना चाहते है कि उन चित्रों में जिस प्रकार का परिच्छद दिखलाया जाता है वैसा किस ग्रन्थ में वर्णित है? वैसा विचित्र परिच्छद होने की बात भारत में प्राचीन-काल में बिलकुल संभव नहीं है। हाँ, आज कल वेश्यायें और कहीं-कहीं कुछ शौकीन स्त्रियाँ बहुत पतला वस्त्र पहनने लगी हैं। पर उनके सम्बन्ध में भी यह कहा जा सकता है कि छाती पर पतले ही वस्त्र क्यों न हो, पर कोई दूसरा वस्त्र अवश्य रहता है और कमर के भाग में वही पतला वस्त्र दुहरा तिहरा हो जाता है। इस कारण गुप्त भाग स्पष्ट देख नहीं पड़ते। परन्तु कुछ प्रकाशकों की पुस्तकों के चित्रों में स्त्रियों के परिच्छेद ऐसे बेहूदे ढँग से दिखलाये जाते हैं कि मानों वे पतले काँच के ही बने हों। इस प्रकार नवयुवकों की गुप्त वासनाओं को उत्तेजित करके वे अपने ग्रन्थों, पुस्तकों, पत्रों और पत्रिकाओं की बिक्री बढ़ाते हैं और धनी बनते हैं। भला इनसे क्या लोक-सेवा हो सकती है? इनके विरुद्ध जितना आन्दोलन किया जाय उतना थोड़ा ही होगा। प्राचीन भारत का भ्रान्त चित्र दिखला कर वे इतिहास के गले पर छुरी चलाते हैं और काम-वासना को उत्तेजित करने वाले चित्र छाप कर नवयुवकों को अनीति के पङ्क में फेंकते जाते हैं।

जो बात हमने पत्र-पत्रिका और पुस्तकों के चित्रों के विषय में कही है, वही बात विज्ञापनों को भी लागू होती है। आज-कल विज्ञापन भी सचित्र छपने लगे हैं और उनमें से कई में स्त्रियों के चित्र रहते हैं। सुगन्धित तेलों के चित्रों में सुंदर बाल वाली अर्धनग्न स्त्री दिखलाना आजकल

परमावश्यक समझा जाता है । वे यह बतलाते हैं कि स्त्रियाँ ही बालों में तेल लगाती हैं, पुरुष इस काम के लिए तेलों का उपयोग करते ही नहीं । परन्तु क्या हम विज्ञापनदाताओं से यह पूछ सकते हैं कि आज-कल बाबू लोग बढ़ रहे हैं या नहीं ? वे लोग बड़े-बड़े 'बाल रखने' लगे हैं या नहीं, और इसके लिए वे आप लोगों से तेल खरीदते हैं या नहीं ? फिर आप उनके चित्र क्यों नहीं देते, स्त्रियों के ही चित्र क्यों देते हैं ? स्त्रियों ने आप लोगों का क्या अपराध किया है ? यह अन्याय उनके साथ क्यों ?

उपरिलिखित विचार पढ़ कर कोई हमसे पूछेंगे कि क्या कला की दृष्टि से भी चित्र नहीं हो सकते । इसपर हमारा उत्तर यह है कि हाँ, कला की दृष्टि से भी चित्र हो सकते हैं । परन्तु उनके सम्बन्ध में दो बातें याद रखनी चाहिए । एक तो उनमें कला होनी चाहिए-केवल कला का व्यर्थ आभास न रहे । दूसरी बात यह है कि उनका प्रदर्शन ऐसे ही स्थानों में हो कि जहाँ नव-युवकों की दृष्टि बार-बार न पड़े । यदि दो शर्तें पाली जायँ तो पहला यह परिणाम होगा कि केवल स्त्रियों के ही चित्र न बनेंगे और छपेंगे, पुरुषों को भी उनमें स्थान मिलेगा । दूसरा परिणाम यह होगा कि वे वास्तविक अधिक रहेंगे, काल्पनिक यानी झूठे कम । तीसरा परिणाम यह होगा कि स्त्रियों के चित्रों का जो बुरा परिणाम हो रहा है, वह बंद हो जावेगा । काल्पनिक और आकर्षक चित्रों का बनाना बुरा नहीं, पर जो बात अपवादरूप से ही क्यों न हो पर वास्तविक नहीं है उसे दिखलाने में विशेष लाभ नहीं है । यदि आकर्षक और काल्पनिक चित्र ही छापने हों तो वे केवल अपवादरूप से ही । सामान्यचित्र सामान्य 'सत्य' संसार के ही रहें, काल्पनिक संसार के नहीं ।

आशा है, विचारवान् पाठक और संपादक ऊपर लिखे विचार पढ़ कर तदनुसार कार्य करने का प्रयत्न करेंगे और मुझे इस धृष्टता के लिए क्षमा करेंगे ।

गोपाल दामोदर तामस्कर

सोवियट रूस

दस साल हुए, संसार में एक नवीन शक्ति जन्म लिया था । उसका आरम्भ नन्हे उद्गम के समान छोटा था । आज वह एक प्रबल सत्ता रूप में संसार के महान् से महान् साम्राज्यों को अपने से कंपा रही है । साम्राज्य-वादियों को पद-पद पर यह होती रहती है कि कहीं इसमें सोवियट रूस की कोई तो नहीं ?

आखिर यह है क्या ? एक निरंकुश शासक के अत्याचारों की प्रतिक्रिया । प्रजा के पुण्य प्रकोप का फल, प्रजा-सत्ता का सबसे अधिक परिष्कृत रूप और युग का अरुणोदय ।

राजसत्ता और साम्राज्यवाद की आधी दुनिया को चीज़ पहले-पहल तो अटपटी ही मालूम हुई । पर अब गलतफहमी के बादलों और कुहरों में से अपना रास्ता करती हुई अपना विमल बिम्ब संसार को दिखाने गई है ।

और इसका कारण है लोक-कल्याण की भावना । वर्तमान सरकार प्रजा-हित के लिए शासन करना है । उसे साम्राज्य बढ़ाने की हविस नहीं है । इसके प्रमाण सोवियाट रूस ने सब से प ले अपने अधीन दूसरी जाति और राष्ट्रों को पूर्ण स्वाधीनता दे दी । पूर्व के राष्ट्रों से ऐसी उदार सुलहें कीं जिनके कारण यूरोप और अमेरिका दूसरे राष्ट्रों को लज्जा के मारे अपना सर झुकाना चीन में उसे जो खास रिआयतें प्राप्त थीं उन्हें उसने छोड़ दिया और ज़ार के ज़माने में ईरान से जो अन्याय-पूर्वक छीने गये थे उनको भी उसने लौटा सच तो यह है कि स्वार्थियों के झुण्ड में रूस का द्वेष सद्गुणों और सत्कार्यों के कारण हो रहा है ।

आज बोलशेविज़्म की निन्दा का कोई अवसर ही नहीं जाने दिया जाता । जिस शासन की इतनी बुराई जाती है वह सचमुच पृथ्वी पर का नरक होना चाहिए देखिए श्री लुई फिल किन शब्दों में रूस की आंतरिक का चित्र 'नेशन' पत्र में खींचते हैं:—

"इस देश की उन्नति के विषय में कोई इनकार नहीं जा सकता। आज पहले की अपेक्षा लोग कहीं अच्छे कपड़े पहने देखने में आते हैं। गाड़ियों और मोटरों की संख्या और उनमें जाने आने वालों की संख्या बढ़ गई है। नये और अच्छे अच्छे होटलों की और उनमें खाना खाने वालों की संख्या बढ़ गई है। हर साल बनने वाले मकानात की तादाद भी बढ़ गई। सड़कें और दफ्तरों की इमारतें अधिक अच्छी हो गई। बच्चों के चहरों पर तेज, शरीर में माँस और शक्ति का दर्शन होने लगा। सारे रूस में पहले की अपेक्षा बहुत कम, केवल कुछ हजार भिखारी, हैं।"

और वास्तव में रूस के किसान और मजूर अब अधिक सुखी हो गये हैं। अब उनको काम कम करना पड़ता है और तनख्वाह अधिक मिलती है। वे दो पैसे की बचत भी करने लग गये हैं। महायुद्ध के पहले की अपेक्षा उनकी आय सैकड़ा बत्तीस बढ़ गई है। काम का समय घट कर दिन में केवल छः घंटे कर दिया गया है। अगर महायुद्ध के पहले साधारण आय १०० मानी जाय तो सारी जनता की आय

१९२५-२६ में	१२८½ हो गई थी
१९२६-२७	१३८ ,,

केवल मजूरों की

१९२५-२६ में	१४९·१ हो गई थी
१९२६-२७ ,,	१६७ तक बढ़ गई

इन वर्षों में औद्योगिक प्रगति इस तरह हुई। सन् १९१३ (महायुद्ध के पहले) की उपज अगर १०० मान ली जाय तो १९२६-२७ यों थी—

कोयला १०५, तेल १०९·७, कपड़ा १०९, लोहा ७०, धातुएँ ७६, घोड़े ८२, गायें ११२, बैल ११८

हमें स्मरण रखना चाहिए कि सोवियट रूस का यह कार्य-काल दो विभागों में बाँटा जा सकता है। १९१७ से २२ तक का समय सत्ता प्राप्त करने, गृहयुद्ध, और आर्थिक बरबादी काल था और १९२३-१९२७ तक का समय पुनः संगठन में लगा है। अभी बोलशेविकों को बहुत-कुछ करना बाकी है। उनके मार्गों में कठिनाइयाँ जरूर हैं; परन्तु उन्हें उज्ज्वल भविष्य की आशा भी है।

इस महान् क्रान्ति से पहले रूस में शिक्षा की बड़ी अव्यवस्था थी। स्कूल पादरी की अधीनता में था। धनिक किसान और पुलिस की उसपर कड़ी देख-भाल थी। शिक्षक सदा संदेह की नजर से देखा जाता। पाठशाला में प्रार्थनायें और धार्मिक शिक्षा ही होती रही। पाठ्य पुस्तकों में धर्मान्धता के पाठ होते थे। इतिहास गुलामी के रंग से रंगे और खुशामद से भरे होते थे।

लोकसत्ता ने अपने हाथों में स्कूलों का संचालन लेते ही सबसे पहले पादरी साहब को धता बताई और स्कूल में धार्मिक शिक्षा तो बन्द ही कर दी। नयी पाठ्य पुस्तकों की रचना की और मई १९१८ में लड़कियों और लड़कों की साथ-साथ शिक्षा का कानून बनाया।

ज़ार के जमाने में नीचे लिखे प्रान्तों में इस प्रकार पाठशालायें थीं। शिक्षा रूसी भाषा में होती थी—

	ज़ार के समय	अब
तातारिया	६९	१५०० स्वभाषा के द्वारा
कामिया	११	३५० शिक्षा दी जाती है

एक बार कॅरेलियन लोगों ने एक शिष्ट-मंडल भेज कर अधिकारियों से स्वभाषा द्वारा शिक्षा देने वाले स्कूल खोलने के लिए प्रार्थना की, उनका यह साहस राजद्रोह समझा गया और शिष्ट-मण्डल गिरफ्तार कर लिया गया। अब कॅरेलियनों को प्रजासत्ताक राज्य दे दिया गया है। उनके यहां स्वभाषा द्वारा शिक्षा देने वाली पाठशालाओं की संख्या ४५० है। ७० पठनालय हैं और २२७ पाठकों के संघ हैं।

पाठशाला में शिक्षा आरम्भ होने के पहले बच्चों को प्रारम्भिक शिक्षा देने के लिए बालमन्दिर खोले जाते हैं। यहाँ माताओं को शिशु-पालन की शिक्षा दी जाती है। जार के जमाने में बालमन्दिर शायद ही कहीं देखे जाते थे। १९२३ में केवल ४७५ ऐसे बालमंदिर थे। १९२६ में ४८०० हो गये, आज केवल देहात में १००८० बालमंदिर चल रहे हैं। मिलों वाले शहरों में प्रत्येक कारखाने में एक-एक बालमंदिर है।

छोटे-छोटे बालकों के पालन और शिक्षा के लिए इन बालमंदिरों (Nurseries) के अतिरिक्त रूस में एक और संस्था है। उसे प्लेटफार्म कहते हैं। इसका उपयोग गर्मी के

दिनों में किया जाता है । बच्चों को खुली हवा में खेलने और खाने-पीने की सुविधा इनमें होती है । आज-कल इनकी संख्या वहाँ तेज़ो से बढ़ रही है । १९२४ में इनकी संख्या ३८० थी १९२५ में १५०० हो गई और १९२६ में २००० तक पहुँच गई ।

समझदार अपढ़ आदमियों के लिए अलग पाठशालायें हैं । उनकी संख्या भी हज़ारों से हैं । करीब ५०००००० मनुष्य इनमें शिक्षा पा चुके हैं । झोंपड़ों में पठनालय खोले गये हैं, लोगों को पढ़ने के लिए गाड़ों पर किताबें ले जा कर दी जाती हैं । रेडियो सेटर और सफ़री सिनेमा भी महत्वपूर्ण काम कर रहे हैं ।

रेड आर्मी (फौज) के अंदर १५०७ ग्रन्थालय, ७१९ शिक्षा संस्थायें और ४७००० पाठक संघ हैं । बोलशेविक सिपाही मनुष्यों की हत्या करने वाला पशु नहीं होता बल्कि एक संस्कारवान तेजस्वी वीर होता है । फौजी नौकरी छोड़ने पर वह अपने गाँव की संस्कृति को ऊँचा उठाने वाले सेवक का काम करता है ।

सोवियट रूस की पाठशालाओं में कोरी पुस्तकी विद्या नहीं पढ़ाई जाती । क्लर्क और मास्टर पैदा करने वाली मशीनें वे नहीं होंती । उनमें बच्चों के प्रत्यक्ष फायदे की बातें सिखाई जाती हैं । ऐसी बातों का असल ज्ञान दिया जाता है जिस से बालक स्वतन्त्रता-पूर्वक अपना पेट भर सके । प्रत्येक विद्यार्थी को अपने वर्ण (जाति) से सम्बन्ध रखने वाली शिक्षा दी जाती है । बच्चों को शारीरिक दण्ड नहीं दिया जाता ।

बच्चों को आज्ञापालन और स्वाभाविक नियम पालन का गुण सिखाया जाता है । पाठशाला के विद्यार्थी बालमन्दिरों के संचालन और अपढ़ आदमियों की पढ़ाई में भी सहायता करते हैं । वे समाचारपत्र और पुस्तकें बाँटते हैं, नगर की स्वच्छता की देख-भाल करते हैं । और खेती तथा पशु-पालन के नवीन मार्गों का प्रचार करते हैं । निश्चित समय पर पाठशालाओं में प्रदर्शिनियां होती हैं, पाठकों की विज्ञापन सभायें होती हैं जिनमें बालक की पढ़ाई की जाँच पाठक करते हैं ।

वैजनाथ महोदय

हृदय की फुलझड़ी

ईर्ष्या

अरी ओ ईर्ष्या ! तेरा सत्यानाश हो । तू मनु के हृदय की शत्रु है ।

ईर्ष्या महा भयंकर चीज़ है । वह जिस घ रहती है, उसीको जलाती है ।

किसी भी बेवफाई का शिकार होना निःस सबसे बड़ा दुःख है । पर ईर्ष्या उसका पालन पो करने वाली धाय है ।

मर्दित माला की तरह यदि किसीने तुझे नज़ उतार दिया तो ऐ दिल तू दुखी क्यों होता है? तू हो कि उसने तुझे इतना प्यार किया था ।

ऐ शैतान की बच्ची ! तू प्रेम के पीछे क्यों रहती है ? इसलिए कि यह ईश्वरीय दूत शान्ति अधिक देर तक कहीं ठहरने न पाए ।

लोग अपने घर में तो आग नहीं लगाते फि अपने दिल में क्रोध और ईर्ष्या को स्थान क्यों देते

हमारा प्रतिद्वंदी हमारे प्रेम का पात्र है । काम हमें प्रिय है उसीको तो पूरा करने का उसने उठाया है ।

ईर्ष्या गहरी लगन की द्योतक है । पर उसमें जलन है वह अहम्मन्यता की बच्ची है ।

ईर्ष्या मनुष्य को सजग रखने के लिए पैदा है और उसके कांटे इतने न चुभें यदि उसे संयम लपेट कर रक्खा जाय ।

ईर्ष्या से जलने वाले के लिए कहीं भी नहीं है । ईश्वर ! तू मुझे इस आफ़त से बचा ।

हमारा प्रतिद्वन्द्वी यदि आगे बढ़ गया है तो हर्ष के साथ उसे बधाई दें । हमारा प्यारा यदि निकला तो हम जलें क्यों ? क्या वही दुःख नहीं है जो हम ईर्ष्या के दुःखों का आह्वान करें !

क्षेमानन्द 'राह

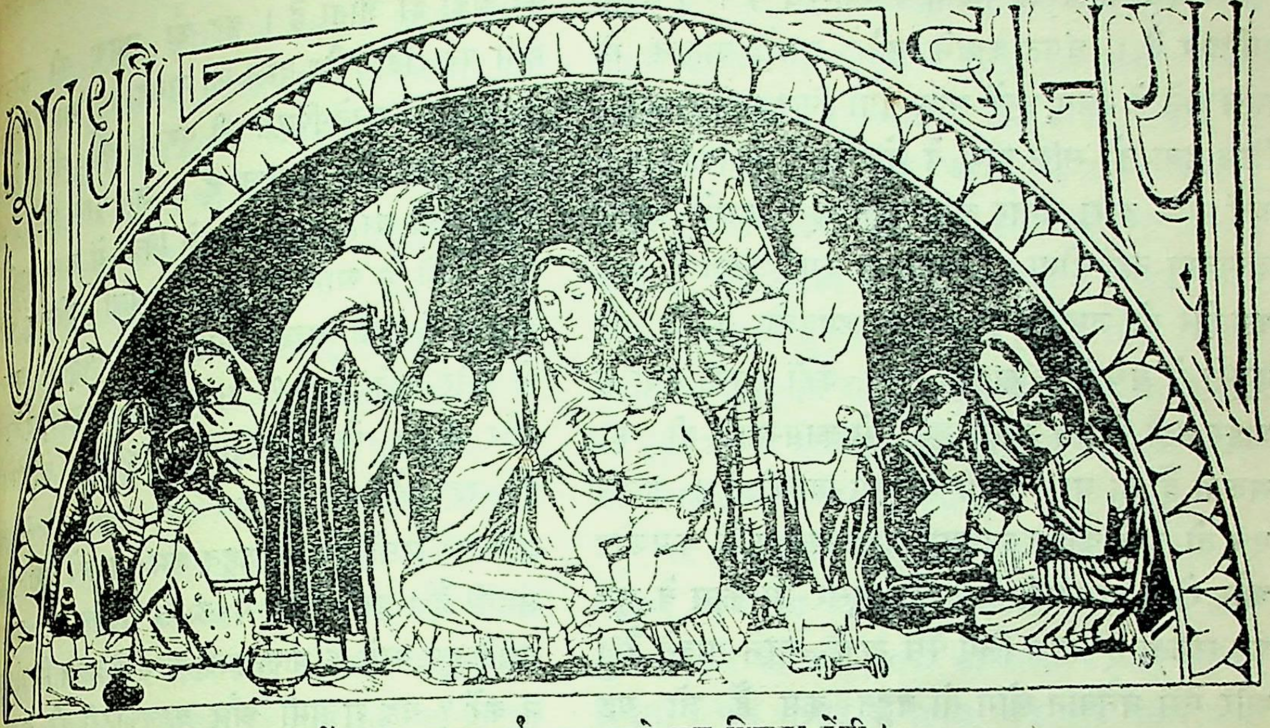

"हम जाग उठीं, सब समझ गईं, अब करके कुछ दिखला देंगी।
हाँ, विश्व-गगन में भारत को, फिर एक बार चमका देंगी॥"

अञ्जलि

मातृभूमि की सेवा में,

माता! मैं इन चरणों में, कुछ सुमन चढ़ाने लाया हूँ।
तेरी सौम्य मूर्ति की सेवा, करने को अकुलाया हूँ॥
पुष्पाञ्जली प्रेम की तेरे, अर्पण करने आया हूँ।
दूर देश से जननी! तेरे, दर्शन करने धाया हूँ॥
माता! कर दो क्षमा धृष्टता,
पूरण कर दो हृदय-चही।
हो प्रसन्न, स्वीकार करो
अंजलि, मेरा अनुरोध यही॥

अवन्तविहारी माथुर

परदे को फाड़ फेंको

यह हमारे और पाठक-पाठिकाओं के लिए दुर्दैव की बात है कि अबतक भी हमें परदे की बुराइयां दिखानी पड़ती हैं। स्त्रियों और पुरुषों में प्रत्येक देश में और प्रत्येक काल में एक हद तक परदा रहना ज़रूरी है और वह रहेगा भी। पर इस परदे के लिए मर्यादा अथवा लाज का नाम ज्यादा अच्छा होगा। उसके लिए घूंघट काढ़ने, बुर्क़ा ओढ़ने या ऊपर से चादर डाल कर इधर-उधर घूमना जरूरी नहीं है। जैसे और तमाम अच्छी-अच्छी बातें बुरा रूप धारण कर लेती हैं उसी प्रकार इस स्त्री-जाति की मर्यादा अथवा लाज ने भी अपना रूप बदल दिया है और इस समय समाज में अनेकों बुराइयां फैलाने का साधन यह हो रही है।

सबसे पहले यह स्त्रियों के स्वास्थ्य के लिए बहुत हानिकर है। घूंघट काढ़ने और बुर्क़ा ओढ़ने से सांस लेने के लिए उन्हें साफ़ हवा मिल नहीं सकती। जिस हवा को सांस द्वारा वे छोड़ती हैं उसीको फिर उन्हें सांस द्वारा भीतर लेना पड़ता है। इसमें काफ़ी प्राणवायु नहीं होता। स्त्रियों का दम घुटता है। वे कमज़ोर हो जाती हैं। अपने आपको दूसरों की नज़रों से बचाने के ख़याल से वे कहीं खुली हवा में बाहर नहीं निकल सकतीं, न ऐसे काम-काज ही कर सकती हैं जो घर-गिरस्ती के लिए ज़रूरी है। इससे एक तो उन्हें काफ़ी व्यायाम नहीं मिलता, वे कमज़ोर और रोगी हो जाती हैं। और दूसरे जो काम वे खुद कर सकती हैं उनके लिए पैसे ख़र्च करने पड़ते हैं। और ऐसे धनवान लोग तो बहुत कम हैं जो यह सारा ख़र्च बर्दाश्त कर सकें। इसलिए या तो पुरुषों के ऊपर वे काम आन पड़ते हैं या पैसे हो ख़र्च करने पड़े तो घर की ग़रीबी बढ़ती है। फिर बाहर से जो पुरुष या स्त्रियां काम करने के लिए रक्खे जाते हैं वे सच्चे और सदाचारी होते ही हैं, ऐसा नहीं कहा जा सकता। काम-काज भी उतना अच्छा नहीं हो सकता जितना घर के आदमी से होता है। अगर नौकर-नौकरानी चोर हुए तो ग़रीबी और भी बढ़ती है और चरित्रहीन हुए तो एक नयी बुराई हमारे घर के अन्दर घुसने का डर बना रहता है। रक्षा करना हमारे लिए बड़ा कठिन होता है।

यह कुप्रथा उन जातियों में और भी ख़तरनाक होती है जिनमें औरतें औरतों से परदा करती हैं। राजपूताने में यह बीमारी बड़े भयंकर रूप में है। यहां पर तो बहू-सास का और देवरानी-जेठानी का भी परदा होता है। सारा काम इशारों से होता है। देवरानी जेठानी का और सास बहू का आपस में बोलना घोर अविनय समझा जाता है। घर मानों भूतों का अड्डा हो जाता है। बहू को नमक की ज होने पर रोटी और दाल की जगह पर साग मि है। घर में चलते-फिरते भी पुरुषों को सीटी दे लाइनक्लियर मांगना पड़ता है। जब पुरुष आते हैं स्त्रियां उसी तरह अपने-अपने बिलों में भाग जाती जैसे बिल्ली के आने पर चूहे। भला दरिद्रता औ बीमारियां ऐसी अच्छी जगह अपना अड्डा न जम तो और जावें कहां? राजपूताना आलस्य, दरिद्र और इनसे पैदा होनेवाली बुराइयों का लीलास्थ हो रहा है।

पर ऐसी क़ैद को बहुत कम आत्मायें खुशी-खु सहती हैं। इस हालत में ऊपरी शरीर को ढा रखते हुए परदे के प्राण हरण करने के प्रयत्न स्त्रियां न करें? यह गुलामी और कालकोठरी की सज़ा कबतक सहें? ताज़ी हवा के ख़याल से महीन ओ नियों की ज़रूरत मालूम होने लगी। पर इसमें बुराई बढ़ गई। ताज़ी हवा के साथ-साथ बा दुनिया की रोशनी परदे में घुसने लग गई। प एक क़िला बन गया, जहां, के लोग अपने शत्रु मित्रों की पहचान करके उन्हें क़िले में स्थान लग गये।

अब तक परदानशीन स्त्रियों के लिए पुरुष पुरुषों के लिए स्त्रियां अदृश्य थीं। परन्तु महीन होते ही स्त्रियों के लिए पुरुष अथवा बा दुनिया खुली हो गई। घूंघट के अन्दर से इच्छित चीज़ों को बेखटके देखने की सुविधा लिए होगई। और महीन कपड़े के अन्दर से शरीर का आकार भी कुछ-कुछ दीखने के पर पुरुषों का ध्यान उनकी तरफ़ अधिक खिंचने ल

क़िले के अन्दर बैठ कर हम अपने शत्रुओं बेखटके बाण चलाते हैं और कभी-कभी ऐसा में ख़ामख़्वाह आनन्द भी आता है। इसी नियम

अनुसार परदा-नशीन औरतों में बेखटके और बेरोक बाहरी दुनिया को देखने की निर्लज्जता आ जाती है। यह तो प्राय: सभी लोगों का अनुभव है कि परदा-नशीन औरतों की अपेक्षा उन औरतों की आंखों में अधिक लज्जा और मर्यादा होती है जिनमें परदे का रिवाज़ नहीं होता।

हम स्वाधीनता चाहते हैं, परन्तु अंग्रेज़ सरकार हमें रोकती है। लो० तिलक और महात्मा गाँधी से पहले लोग खुलेआम यह कहने से हिचकते थे कि हमें स्वराज्य चाहिए। इसलिए एक क्रान्तिकारीदल की उत्पत्ति हुई। वह दबे-छिपे अधिकारियों की आँख बचा कर स्वाधीनता की चेष्टा करने लगा और लोगों को इसके लिए तैयार करने लगा। उसी तरह बाहरी दुनिया की स्वतन्त्र हल-चल को देख कर बहू-बेटियों को भी अगर खुली हवा का लाभ उठाने की इच्छा हो तो इसमें कौन बुरी बात है ? इसलिए जब वे देखती हैं कि हमारे घर के लोग हमें यह स्वतन्त्रता नहीं देना चाहते तो उनके सामने तो वे परदे में रहती हैं और जब ये लोग नहीं होते तब परदा छोड़ कर वे दूसरी औरतों की तरह काम-काज करना चाहती हैं।

दिन में जब घर के सारे मर्द अपने काम-काज से बाहर चले जाते हैं और वहाँ औरतें ही औरतें रहती हैं, तब सन्नाटा देख कर फेरी वाले अपनी खेल-खिलौनों की घूमती दूकानें लेकर निकलते हैं, ख़ोमचे वाले चीनी की चूड़ियां लेकर आते हैं। तरह-तरह के तेल और साबुन वाले अपना माल बेचने और काम करने की फ़िराक़ में निकलते हैं। काच की देशी-विदेशी चूड़ियों और कांच के बर्तन वाले आते हैं। गर्मी के दिनों में मलाई के बरफ़ वाले भी निकल पड़ते हैं।

आस-पास की जवान-बूढ़ी औरतें एक जगह इकट्ठी होकर फेरी वाले को पुकारती हैं। उससे सौदा करती हैं। बच्चों के लिए खेल-खिलौने ख़रीदती हैं। जवान बहू-बेटियां भी उनकी आड़ में खड़ी होकर देखती रहती हैं। धीरे-धीरे वे ढीठ होकर सामने भी आ जाती हैं, और ख़ुद चीज़ों को पसन्द-नापसंद करती हैं। धीरे-धीरे फेरी वाले से उनकी पहचान हो जाती है, वह उनका मकान देख लेता है। कभी-कभी उधर से गुज़रते हुए वह आवाज़ लगा कर अपनी चीज़ों का विज्ञापन भी कर देता है। घर में हमेशा तो बूढ़ी औरतें होती ही नहीं, इसलिए यही उसे पुकार कर ज़रूरी चीज़ें ख़रीद लेती हैं।

पर हमेशा घर में ही बैठे रहने के कारण इन बेचारी स्त्रियों को व्यवहार-ज्ञान नहीं होता। वे भले-बुरे आदमी को और गुण्डों की चालों को नहीं पहचान सकतीं। ऐसे सन्नाटे के समय यदि कोई उनसे अनुचित छेड़-छाड़ करता है तो उसे डांटने की हिम्मत उनमें नहीं होती। लज्जा और बदनामी का ख़याल करके वे चुपचाप रहती हैं। बुराई बढ़ती जाती है। और एक आध दिन जब किसी निर्घृण पाप की ख़बर हमारे कानों पहुँचती है तो हम सिहर उठते हैं।

और पाप का रास्ता भी ऐसा आसान और मोहक होता है कि बेचारी इन निर्दोष स्त्रियों को जब तक वे बहुत दूर तक नहीं निकल जातीं अपनी फिसलाहट का पता तक नहीं लगता। सास-ससुर के पीछे, जेठानी और अन्य बड़ी बूढ़ी औरतों की पीठ पीछे, नई-नई बहुयें निर्दोष भाव से अपने नौकर तथा दूसरे नीची श्रेणी के स्त्री-पुरुषों से बात-चीत करके किसी तरह स्वाधीनता का अनुभव करने की कोशिश करती हैं। ऐसे समय उनपर वह कृत्रिम नियंत्रण नहीं होता, जो सास-ससुर के सामने होता है। वे ज़रा निःसंकोच हो जाती हैं, हंसती हैं, थोड़ा बहुत मज़ाक़ भी हो जाता है। और एक गहरे पतन की बुनियाद पड़

जाती है। अपनी शक्ति पर हद से ज्यादा विश्वास करने वाले वीर पुरुष शत्रु पर हद से ज्यादा दया करने की डींग हांकते हैं, पर अनेकों बार खुद वे ही फंस जाते हैं। इसी भाव से कई बार स्त्रियां अपरिचित आदमियों, नौकरों और फेरी वालों से बातें करने लग जाती हैं। पर उन्हें बहुत सावधान रहना चाहिए; उन्हें कभी अपरिचित स्त्री-पुरुषों से हंसी-मज़ाक़ नहीं करनी चाहिए। "औरत की जात हँसी की फँसी" इस कहावत में बहुत सत्यांश है।

जिस समाज में परदे की कुप्रथा है उसमें निश्चित रूप से व्यभिचार की बुराई अधिक होती है। और इसका कारण प्रकट है। जहां स्वाधीनता का रास्ता खुला नहीं है वहां उसे हासिल करने के लिए टेढ़े-मेढ़े रास्तों को आदमी खोजता है। यह करते हुए अज्ञान औरतें फिसल पड़ें, कुमार्ग में लग जायं, तो आश्चर्य नहीं।

परन्तु वैसे भी परदा अन्धकार है। अन्धकार में पाप को खूब अवकाश मिल जाता है। परदे की ओट में कितनी ही जगह घोर से घोर पाप होते देखे गये हैं। इसके उदाहरण सैकड़ों और हज़ारों मिल सकते हैं। प्रत्येक पाठक अपने आस-पास के समाज की हालत को देख कर सावधान हो जायँ।

"कथाहि खलु पापानामल मश्रेयसे"—पापों की कथा और उदाहरण पेश करना भी पाप को बढ़ाना है। महाकवि माघ का यह वचन इस विषय में सब से अधिक चरितार्थ होता है।

परदे के कारण हम अपने घर के लोगों से ही अपरिचित रहते हैं। आज अगर सीता-हरण हो तो जटायु तो क्या प्रत्यक्ष दशरथ भी अपनी बहू को न पहचान सकें—फिर उसे छुड़ाना तो बहुत दूर की बात है।

पर परदे को छोड़ने के मानी यह नहीं कि मर्यादा और लाज को छोड़ दिया जाय। स्त्री-दाक्षिण्य तलाक़ दे दिया जाय। स्त्री-पुरुषों में और बड़े-बूढ़ों साथ दाक्षिण्य और मर्यादा तो अवश्य रहनी चाहि सिर्फ़ उस बुर्क़ा ओढ़ने और घूंघट काढ़ने की घृ प्रथा को छोड़ देने की ज़रूरत है। सास-बहू देवरानी-जेठानी में उतनी ही स्वाधीनतापूर्वक व्यव होना चाहिए, जितना मा-बेटी और दो बहनों होता है। घर के इन रिश्तों में स्वाभाविकता सादगी आते ही बाहर के लोगों के साथ जै व्यवहार करना चाहिए वह अपने आप स्वाभावि जायगा। उचित स्वाधीनता स्त्रियों को मिलते ही उन आंखों में तेजस्विता और व्यवहार आदर उत्पन्न क वाला हो जायगा। तब किसी पर-पुरुष को उ अनुचित छेड़छाड़ करने की हिम्मत न होगी औ वे अपने सतीत्व और सन्मान को अक्षुण्ण रख सकें।

वैजनाथ महोदय

"वही उत्तम सहधर्मिणी है, जो अपने धर्म और की रक्षा करती है और प्रेम-पूर्वक अपने पति की आरा करती है।"

"चहारदीवारी के अन्दर परदे के साथ रहने से लाभ? स्त्री के धर्म का सर्वोत्तम रक्षक उसका इन्द्रि निग्रह है।"

"स्त्री अपने सतीत्व की शक्ति से सुरक्षित हो, दुनिया में उससे बढ़कर शानदार चीज़ और क्या है?"

"देखो, जिन लोगों में लज्जा की सुकोमल भावना है अपने को बेइज़्ज़ती से बचाने के लिए अपनी जान दे देंगे और प्राणों पर आ बनने पर भी लज्जा को त्यागेंगे।"

—ऋषि तिरुव

मेरी स्पिरीडोनोवा

स्वतन्त्रता की परीक्षा में उत्तीर्ण देशों में जो वीर आत्मायें प्रातःस्मरणीय समझी जाती हैं, उनमें कितनी ही इस वसुधा पर स्त्री-रूप में अवतीर्ण हुई थीं। विशेष कर रूस के आधुनिक इतिहास के सैकड़ों पृष्ठ ऐसे ही रमणी-रत्नों की गुण-गाथा और स्मारक कहे जा सकते हैं। रूस में देश की वेदी पर अपने आपको बलिदान कर देने वाली कितनी ही वीर महिलायें हुई हैं, और यह निर्णय करना असंभव है कि किसके त्याग का मूल्य या महत्त्व क्या था। इन्हींमें से एक मेरी स्पिरीडोनोवा की पवित्र स्मृति में कुछ पंक्तियां स्वतंत्रता केप्रेमियों की भेंट की जाती हैं, जो आशा है भारत की आज की दशा में हमारे लिए स्फूर्तिदायक होंगी।

आज से लगभग चौबीस वर्ष पहले की बात है। रूस के तंबोफ़-प्रांत में उत्पीड़ित प्रजा ने जगह-जगह बगावत कर दी। उस प्रांत के शासक लुजेनोवस्की ने बाग़ियों को सबक़ सिखाने के लिए उनपर धावा बोल दिया और अपने क़ज़्ज़ाक़ सिपाहियों को मनमानी करने की आज़ादी दे दी, हज़ारों किसान क़त्ल कर दिये गये और हज़ारों जेल या यन्त्रणागार में पहुँचा दिये गये। ज़ार के सिपाहियों को दिन-दहाड़े लूटमार या अबलाओं पर बलात्कार करते रोकने वाला कोई न था। जब विद्रोहियों की संस्था ने किसी अन्य उपाय से इस अत्याचार और अन्याय का प्रतीकार होते न देखा, तब उसने अपने विशेष अधिवेशन में निश्चय किया कि जिस मनुष्य की आज्ञा से इतनी ज़ोर-ज़बरदस्ती और ख़ून-ख़राबी हो रही है, उसीके रक्त से प्रजा की प्रतिशोध-पिपासा मिटाकर कुछ अंश में यह उत्पात रोका जाय।

मेरी स्पिरीडोनोवा तम्बोफ़ की क्रांतिकारी समिति के सदस्यों में थी और इस समय उसकी अवस्था प्रायः बीस वर्ष की थी। चार पांच साल पहले वह एक बार जेल हो आई थी और पुलिस के रजिस्टर में उसका नाम दर्ज था। ज्यों ही समिति ने प्रस्ताव द्वारा अपना निश्चय प्रकट किया, यह वीर बाला आनन्द से उछल उठी और बोली कि 'प्रस्ताव को कार्य-रूप देने का भार मैं अपने ऊपर लेती हूँ—आप सब इस विषय में निश्चिन्त रहें।'

१९०६ ई० के प्रारम्भ में पुलिस को समिति के प्रस्ताव और स्पिरीडोनोवा के संकल्प की ख़बर हो गई। पर इससे पहले ही वह एकाएक लापता हो गई थी और लाख चेष्टा करने पर भी पुलिस उसका अनुसंधान न पा सकी। वास्तव में स्पिरीडोनोवा तम्बोफ़ में ही थी—उसने सिर्फ़ अपना भेष इस ख़ूबी से बदल दिया था और इतनी सावधानी से रहती थी कि ख़ुफ़िया विभाग वाले भी यह भेद न पा सके कि वह कहाँ थी और क्या कर रही थी?

पर लुजेनोवस्की के रक्षक भी इस बात से आगाह कर दिये गये थे कि क्रांतिकारी उनके मालिक के ख़ून के प्यासे हो रहे हैं, इसलिए स्पिरीडोनोवा को बहुत चेष्टा करने पर भी वह मौक़ा न मिला, जिसकी वह दिन-रात तलाश में थी। फिर भी वह निराश या हतोत्साह होनेवाली न थी और एक के बाद एक उपायों की आज़माइश करती ही रही। कुछ ही समय बाद लुजेनोवस्की अपने दौरे पर निकला और स्पिरीडोनोवा यह सोचकर उसके पीछे हो ली कि शायद सफ़र में उसे अपना संकल्प पूरा करने का अवसर मिल जाय। कई रोज़ तक वह इधर-उधर घूमती रही, या यों कहना चाहिए कि लुजेनोवस्की का पीछा करती रही; पर उसके पास न फटक सकी। १६ जनवरी १९०६ को वह थर्ड क्लास का टिकट लेकर, ज़रदेव का स्टेशन पर, किसी ट्रेन की

प्रतीक्षा कर रही थी। संयोगवश लुजेनोवस्की उसी ट्रेन से सदलबल बोरीसोग्लिब्रूक नामक स्थान को जा रहा था और ज्योंही स्पिरीडोनोवा को यह बात मालूम हुई, वह थर्ड की जगह सैकण्ड का टिकट ले कर, लुजेनोवस्की के पासवाले डब्बे में सवार हो गई। बोरीसोग्लिब्रूक पहुँचते ही, वह झट बाहर निकलकर ट्रेन की सीढ़ी पर खड़ी हो गई और एक ख़ास स्कूल में शिक्षा पाने वाली बालिका की सी वेष-भूषा बनाये, प्लैटफार्म का दृश्य देखने लगी। क़ज्ज़ाक़ सिपाही और शरीर-रक्षक सबको वहाँ से हटा रहे थे और लुजेनोवस्की की आँखों के सामने डंडेबाज़ी कर रहे थे। जब सारा प्लैटफ़ार्म मुसाफ़िरों से ख़ाली हो गया तब शासक महोदय ट्रेन से उतरे और सिपाहियों की दो क़तारों के बीच आगे बढ़े। पर मुश्किल से दस क़दम चल पाये थे कि रिवाल्वर की आवाज़ हुई और लुजेनोवस्की की छाती छेदती हुई गोली पार हो गई। उसके गिरते ही स्पिरीडोनोवा ट्रेन से कूदकर उसके पास पहुँच गई और सबके सामने उस पर तीन और गोलियाँ चलाकर उसे पेट और छातीमें बेतरह घायल कर दिया। यह सारा काम उसने इतनी फ़ुर्ती से किया कि लुजेनोवस्की के रक्षक या स्टेशन के मुलाज़िम चौथी फ़ैर होने तक अपना होश भी न सम्हाल सके और एक दूसरे का मुँह देखते रह गये! इसके बाद स्पिरीडोनोवा ने पाँचवीं गोली से अपना अन्त कर देना चाहा, पर उसकी इच्छा पूरी न हो सकी। एक क़ज्ज़ाक़ अफ़सर ने झट उसके हाथ से रिवाल्वर छीन लिया और उसके बालों को पकड़ कर ऐसा झटका दिया कि वह पथरीले प्लैटफ़ार्म पर गिर पड़ी। फिर चारों ओर से इतनी मार पड़ी कि थोड़ी ही देर में वह बिलकुल बेहोश हो गई। लुजेनोवस्की के सिपाही उसे मारते-मारते थक गये, तब उसके पैर पकड़ कर घसीटते हुए स्टेशन के बाहर ले गये और बेहोशी की हालत में ही उसे शहर की कोतवाली पहुँचाया। यद्यपि वह उस समय किसी भी प्रश्न उत्तर न दे सकती थी, और अधमरी सी हो रही फिर भी वह अस्पताल न भेजी जाकर कालको में बन्द कर दी गई और सेवा-शुश्रूषा तो दूर दण्ड के विचार से, उन अफ़सरों की दृष्टि में, कुछ बाकी था उसकी पूर्ति की जाने लगी।

मेरी स्पिरीडोनोवा के चरित्र-लेखक ने इस प्र में लिखा है कि कालकोठरी में वह बिलकुल नंगी दी गई और पुलिस वाले उसे इसी हालत में फ़ुट की तरह ठुकराने लगे। थोड़ी देर बाद उसपर ख़ास तरह की चाबुक की मार पड़ने लगी जब इससे भी उन्हें संतोष न हुआ तब उसके श को जगह-जगह जला दिया और चमड़ा नोच डा इस समय उसकी जो अवस्था थी उसकी कल्पना से आँखों में आँसू भर आते हैं। पर दृढ़ता की स्पिरीडोनोवा ने फिर भी पुलिस वालों को कोई बात न बताई, जिससे उन्हें और क्रांतिकारियों का चलता या इस आंदोलन को दबाने में कुछ भी सहा पहुँचती। स्पिरीडोनोवा की एक आँख फूट सी थी और बाक़ी शरीर के घावों का ठिकाना न फिर भी पुलिस वाले कृतकार्य न हुए और स्पिरि नोवा से मतलब की एक भी बात न कहला सके उधर तब तक लुजेनोस्की की मृत्यु हो चुकी थी।

कुछ समय बाद स्पिरीडोनोवा तम्बोफ़ पहुँ गई और फौजी अदालत द्वारा उसके अपराध विचार हुआ। पन्द्रह-सोलह रोज़ वह तम्बोफ़ जेल में रही, और उसकी माँ के बहुत लिखा- करने पर एक दिन उससे जेल में मिलने की इजा मिली। अपनी प्राणाधार 'मरूसिया' की हृदयवि देखकर वह स्तम्भित हो गई। क्या दारुण दृश्य उसकी लाड़ली के अंग-अंग में पट्टी या पुलिस

ई थी और जान पड़ता था कि जीवन-ज्योति उससे विदा हो चुकी है। थोड़ी देर तक उसकी माँ उसके कमरे के दर्वाजे पर चुपचाप खड़ी रही, फिर उसके पास जाकर उसे एकटक देखने लगी। आँखों से आँसुओं की धारा बह रही थी। जो अफ़सर उसके साथ आया था, वह यह सुनने के लिए झुक गया कि माँ-बेटी में क्या बातचीत होती है। पर, दोनों में, किसी के मुँह से एक शब्द न निकला?

स्पिरीडोनोवा इस समय बेहोश न थी और उसने थोड़ी देर बाद टूटे-फूटे शब्दों में अपनी माँ से कहा:--

“मैं बड़े आनन्द से मरूँगी। मुझे दुःख है तो यही कि मैं अपनी जान आप न ले सकी और इन नीच बर्बरों के हाथ में जीते जी पड़ गई।”

फ़ौजी अदालत ने बन्द कमरे में स्पिरीडोनोवा का विचार किया। तब तक वह कुछ स्वस्थ हो चली थी। उसके बैरिस्टर के दर्ख्वास्त करने पर अदालत ने इस बात की इजाज़त दी कि उसके घावों की डॉक्टरों द्वारा परीक्षा कराई जाय। उन डाक्टरों के इजहार से पुलिस के कर्मचारियों तथा लुजेनोवस्की के सिपाहियों की पाशविकता और नृशंसता पर ऐसा प्रकाश पड़ा कि सरकार से सम्बन्ध रखने वाले सभी लोगों का सिर लज्जा से झुक गया—यद्यपि यह आशा दुराशामात्र थी कि ऐसे मामले में अभियुक्त के साथ किञ्चिन्मात्र भी न्याय हो सकेगा।

विचारपति ने प्रश्न किया, ‘तुम्हें अपने अन्तिम वक्तव्य के तौर पर कुछ कहना है?’ इसपर स्पिरीडोनोवा ने बड़ी निर्भीकता से कहा—

‘सज्जनो! इस देश में आप चाहे जिधर दृष्टि डालें, आपको सुखी और सन्तुष्ट प्रजा कहीं न मिलेगी। जो इस समय ग़रीबों को सता रहे हैं और जिनकी जीत का डंका बज रहा है, वास्तव में वे भी सुखी नहीं हैं। उनकी सुख-शान्ति में बाधा डालने वाला उनका यह ज्ञान या विश्वास है कि उनकी यह विजय थोड़ी देर के लिए है और जो इस समय बंधे हुए या दबे हुए हैं, उनकी हालत बराबर ऐसी ही न रहेगी। जो आज अन्याय और अत्याचार की चक्की में पिस रहे हैं, उनका भी समय फिरेगा और वे रोना-धोना बन्द कर अपनी एकता के लिए किसी और उपाय का अवलम्बन करेंगे। अपने लिए मुझे कोई डर या चिन्ता नहीं है। बड़ी से बड़ी सज़ा आप मुझे मौत की दे सकते हैं; पर जो तकलीफ़ मैं झेल चुकी हूँ, उसके आगे मौत भी कोई चीज़ नहीं है। आप मेरा यह निश्चय नष्ट नहीं कर सकते कि एक समय वह भी आवेगा, जब सब लोग स्वतन्त्रता का सुख उपभोग करेंगे—जब सत्य और न्याय का राज्य होगा—जब समानता, स्वतंत्रता और विश्वबन्धुत्व के भाव मनुष्य-जाति के प्रकृत जीवन में स्थान पायेंगे। ऐसे सुन्दर भविष्य के निर्म्माण के लिए वैयक्तिक जीवन का त्याग कर देना—इससे अधिक सुखकर कार्य्य और क्या हो सकता है? मुझे और कुछ कहना नहीं है।”

बड़ी कठिनता से स्पिरीडोनोवा इतना बोल सकी, खाँसी उसे चैन नहीं लेने देती थी—और जब वह खाँसती, तब कुछ खून बाहर निकल पड़ता था। उसकी दशा उस समय कैसी दयनीय हो रही थी, इसका अनुमान पाठक-पाठिकायें इस घटना से कर सकती हैं। स्पिरीडोनोवा की शिनाख़्त करने के लिए एक क्लर्क लाया गया, जो किसी समय उसके साथ एक ही दफ़्तर में काम करता था। पर बड़ी देर तक उसको देखते रहने पर भी वह उसे न पहचान सका। अन्त में उसने कहा—“नहीं, यह मेरी स्पिरीडोनोवा हर्गिज़ नहीं हो सकती। यह कोई और ही स्त्री है।”

स्पिरीडोनोवा के बैरिस्टर मो० तेस्लेको ने उसकी ओर से बड़ी ज़ोरदार वक्तृता दी थी। जेकोफ प्रीलु-

कर की पुस्तक में, जिसके आधार पर यह लेख लिखा गया है, वह अंशतः उद्धृत है। हम उससे कुछ अवतरण नीचे देते हैं—

"अगर आप अपने हृदय से पूछें तो वह यही कहेगा कि स्पिरीडोनोवा कोई व्यक्ति नहीं है; बल्कि रूस की वह समष्टि है, जिसपर अत्याचार का बोझ लदा हुआ है। वर्षों से हमारा देश ज़ोरोज़ुल्म और खून-ख़राबी का रंग-मंच हो रहा है। बिजली, तार, टेलीफ़ोन, एक से एक आश्चर्यजनक चीज़ निकली—पर, हमारे तो लिए तो, सब के सब केवल इस देश की दुरवस्था के दारुण समाचार पहुँचाने वाले साधन हैं। हमारे देश के अख़बार—सच पूछिए तो—स्याही से नहीं छपते बल्कि उन शहीदों के खून से छपते हैं, जो देश की वेदी पर रोज़ ही बलिदान हो रहे हैं। स्पिरीडोनोवा ने लुजेनोवस्की के प्राण लेने का संकल्प क्यों किया, यह आप उसीके शब्दों में सुन चुके हैं। उसने कहा है कि 'जब इनकी ज़्यादती होने लगी और प्रजा के अधिकार पददलित होने लगे तब मैंने मन ही मन कहा कि मेरे जीवित रहने को धिक्कार है। जब मैंने देखा कि एक किसान अपनी यन्त्रणाओं के कारण विक्षिप्त हो गया और एक बालिका ने क़ज़्ज़ाक़ सिपाहियों के बलात्कार करने पर लज्जा से डूब कर अपने प्राण दे दिये, तब मैंने कहा कि मुझे अपने प्राणों से भले ही हाथ धोना पड़े, पर मैं इस दुष्ट लुजेनोवस्की को ज़िन्दा रहने न दूँगी।'

"पर मैं फिर कहता हूँ कि स्पिरीडोनोवा ने जो कुछ किया, रूस की ओर से किया। आज न्यायान्याय के निर्णय के लिए आपके सन्मुख केवल स्पिरीडोनोवा ही नहीं बल्कि उसीकी तरह सताई गई सारी निर्दोष प्रजा उपस्थित है। रूस में जो अशान्ति फैली हुई है उसका कारण राजा-प्रजा के बीच प्रेम या सद्भाव का अभाव है। आप इस विपन्न बालिका की रक्षा कर देश में शान्ति-संस्थापना का श्री कर सकते हैं। हमारी प्रार्थना है कि आप इसके दोष का विचार करते समय इन बातों का ध्यान र और अपने निर्णय द्वारा जले पर नमक न छिड़के

पर न्यायाधीशों के पास तो पहले ही सरकार आदेश पहुँच चुका था कि उन्हें क्या फ़ैसला सु होगा और वे इस मामले में अपनी स्वतंत्र बुद्धि विवेक से कर ही क्या सकते थे! स्पिरीडोनोवा लिए प्राणदण्ड की आज्ञा हुई और इसके उसके विचार के अभिनय का अन्तिम परदा गिरा

रूस में इस निर्णय की सर्वत्र घोर निन्दा गई और पत्रों में इस बात के लिए ज़ोर-शोर आन्दोलन किया गया कि स्पिरीडोनोवा को मा पीटने वालों को उचित दण्ड मिले। साथ ही देशों में भी उससे सहानुभूति प्रकट करने के सभायें हुईं और प्राण-दण्ड की आज्ञा का प्रति किया गया। फ़्रान्स के बहुत से प्रतिष्ठित वि तथा राजनीतिज्ञों के हस्ताक्षर-सहित एक प्रतिवाद ज़ार के पास भेजा गया। हस्ताक्षर करने वालों प्रसिद्ध औपन्यासिक अनातोले फ़्रान्स भी थे। प्रतिवादों का फल यह हुआ कि रूस की सरका प्राण-दण्ड के बजाय आजीवन कारावास की कर दी और यद्यपि उस समय आशा न थी स्पिरीडोनोवा क्षय-रोग से बच सकेगी; तथापि समय बाद उसने स्वास्थ्य लाभ कर लिया और के "काले पानी" का अनुभव प्राप्त करने और प्रकार मर मिटने के लिए साइबीरिया नामक में पहुँचा दी गई।

उसके निर्वासन के समय देश भर में ख मच गई। स्पेशल ट्रेन से वह और क़ैदियों के निर्दिष्ट स्थान पर पहुँचाई गई। रास्ते में जहां ट्रेन ठहरी, वहां के निवासियों ने प्लैटफ़ार्म पर

होकर उसका स्वागत किया और क्रान्तिकारियों की सफलता की शुभ कामना प्रकट की। जब स्पिरीडोनोवा और उसके साथी साइबीरिया के उस क़ैदखाने में पहुँचे, जहां उन्हें अपना शेष जीवन बिताना था, तब वहां के पुराने क़ैदियों की ओर से स्वागत की तैयारी देख कर वे सब के सब बड़े आश्चर्य में पड़ गये। क़ैदखाने की, फूलों और बग़ावती झंडों से, अपूर्व सजावट की गई थी और झुण्ड के झुण्ड क़ैदी इनके स्वागत में हर्षध्वनि कर रहे थे। अगर यह पूछा जाय कि अधिकारियों ने यह सब क्योंकर होने दिया, तो इसका उत्तर यही हो सकता है कि ये क़ैदी साधारण श्रेणी के न थे और इनके चरित्रबल के आगे जेल के अफ़सरों की कठोरता भी सिर झुका लेती थी। पर कुछ ही दिन बाद मेरी स्पिरीडोनोवा तथा अन्य पाँच स्त्री-क़ैदी यहाँ से हटा कर दूसरे स्थान में पहुँचाये गये। दस रोज़ तक उन्हें लगातार बर्फ़ से ढकी ज़मीन पर सर्दी से ठिठुरते हुए चलना पड़ा और जब ये मंज़िल तय करके निर्दिष्ट कारागार में पहुँचीं तब उसकी भयंकरता देख कर ये समझ गईं कि इन्हें हटाने का उद्देश क्या था!

उधर रूस में जब प्रतिवादों या प्रस्तावों का कोई फल न हुआ और मेरी स्पिरीडोनोवा के साथ दुर्व्यवहार करने वालों से सरकार ने जवाब तक तलब न किया, तब क्रान्तिकारीदल ने उनमें दो-तीन बड़े पदाधिकारियों को भी उसी लोक में पहुँचा दिया, जहाँ लुजेनोवस्की पहले ही प्रस्थान कर चुका था।

पारसनाथसिंह

कामना

(१)

छवि का बस आभास-मात्र यदि
पाऊँ मन-मन्दिर में;
निकल पड़ूँ झट घर से बाहर,
ढूँढूँ बन-बन गिर में;

(२)

तेरी प्रेम–गली का प्यारे!
करूँ सदा मैं फेरा;
निसि भर तन्मयता में तेरी—
जग कर करूँ सबेरा!!

(३)

कोलाहल–पूरित जगती को—
शान्त बना दूँ तप से;
तुझे बुला लूँ शान्ति–सदन में—
प्रणव–मन्त्र के जप से;

(४)

जगज्जाल तज, करूँ एक ही,—
वह भी, तेरी सेवा;
पार करूँ संसार–जलधि को,
लगे एक ही खेवा।

(५)

केवल यह अभिलाषा मन में,
आशा–पूर्ण हृदय में—
किसी भाँति हो दर्शन तेरा—
अस्ति–अस्त में, उदय में;

(६)

प्राण–वायु जब निकले; सन्मुख—
मूर्त्ति खड़ी हो तेरी;
जिह्वा पर 'विह्वल' तू ही हो—
यही कामना मेरी!!

"विह्वल"

श्री सीताजी

(२)

पति के प्रति प्रेम

सीताजी ने अपने चरित्र द्वारा लोगों को यह बात प्रत्यक्ष करके दिखा दी कि स्त्रियाँ जितनी ही अधिक कोमल होती हैं, समय पड़ने पर वे उससे भी अधिक कठोर बन जाती हैं—वे अपने कर्तव्य के सामने धन, जन, संसारी भोग यहाँ तक कि अपने प्राणों को भी कुछ नहीं समझती हैं। जो पति की ज़रा सी चुटकी के आघात से ही 'सी!' करने लग जाती हैं, वे आवश्यकता पड़ने पर दहकती हुई चिता पर हँसते-हँसते चढ़ जाती हैं। उनका प्राण पति के साथ है, पति के दर्शन ही उनके लिए परमात्मा के दर्शन हैं; पति के सुख में ही उनका सुख है। सारांश कि पति ही उनका सर्वस्व है।

रामचन्द्रजी अपनी माताजी से कह रहे हैं कि मुझे पिता ने १४ वर्ष के लिए बनवास दिया है। घर के एक कोने में खड़ी हुई सीताजी सभी बातों को सुन रही हैं। अब वह सोचती हैं, मुझे क्या करना चाहिए? मैं भला पति के बिना यहाँ रह भी सकूँगी क्या? यह विचार आते ही वह अधीर सी हो जाती हैं—उनसे अब कोने में खड़ा नहीं रहा जाता। झट ही प्रकट हो जाती हैं और आकर कौशल्याजी के पास बैठ जाती हैं। वहाँ बैठकर वह सोचती हैं—

चलन चहत बन जीवन नाथू, केहि सुकृती सन होइहि साथू।
की तनु प्राण कि केवल प्राना, विधि करतब कछु जाइ न जाना।
चारु चरण नख लेखति धरणी, नूपुर मुखर मधुर कवि वरणी।

सिवाय पैरों के नखों से पृथ्वी कुरेदने के और वह कह ही क्या सकती थीं? माता के सन्मुख पति से कैसे कहें कि मुझे भी साथ ले चलो? हृ यह भाव उठता था, किन्तु वाणी उसे व्यक्त करने असमर्थ थी। जब हृदय के भाव ने देखा कि तो ऐसे कठिन समय में जवाब दे गई, अब करना चाहिए। यह सोचकर वह कण्ठ को छोड़ आँखों के पास गया और आँखों को उसकी विवशता पर दया आ गई। उन्होंने इसे रास्ता दिया। आँखों से रास्ता पाकर हृदय का भाव हुआ और वह पानी बन कर बहने लगा—

मंजु विलोचन मोचति वारी, बोली देखि राम मह

कौशल्याजी पर ही तो उस भाव को करना था, वह उसे समझ गईं और उन्होंने चन्द्रजी और सीताजी के दुभाषिये का काम दिया। रामचन्द्रजी ने उन्हें सब कुछ समझा आदमी को अपने पक्ष में करने के दो ही उत्तम और करारे शस्त्र हैं, एक तो लोभ और भय। पहले तो रामचन्द्रजी ने सासु-सुसर की का लोभ दिया और कहा—'मैं भी जल्दी ही कर आ जाऊँगा, समय जाते क्या देर लगती है जब देखा कि यह शस्त्र तो व्यर्थ हुआ, इसका पर कुछ भी असर नहीं हुआ। तब आप उन्हें के भयंकर दुःख बताने लगे। बन में बड़े-बड़े हैं। धूप, छाँह, गर्मी, शीत, जाड़ा सभी का करना होगा; रस्ता बड़ा बेढब है; कोई बनी हुई तो है ही नहीं, कँकरीली-पथरीली ज़मीन है स्थान-स्थान पर काँटे और गोखरू पड़े हुए हैं। होकर नंगे पैर चलना होगा, बड़े-बड़े नदी-ना जिनमें अथाह जल है। भालु, बाघ, रीछ, सिंह साँप जहाँ तहाँ घूमते रहते हैं। तुम्हारी तो बा क्या है, वहाँ धीरज का भी धीरज भाग जाता और फिर देखो

भूमि शयन, वल्कल वसन, अशन कंद फल मूल।

तुम यदि कहो, कि मैं तो फल-फूल खाकर वल्कल के वस्त्रों को पहन कर पृथ्वी पर ही पड़ रहा करूँगी सो भी बात नहीं है। वे भी रोज थोड़े ही मिलेंगे—

कि सदा सब दिन मिलहिं, समय समय अनुकूल।

कभी छटे-छमाहे मिल गये तो मिल गये, नहीं तो भूखा ही सोना पड़ेगा। फिर वहाँ जान की भी खैर नहीं। बड़े-बड़े राक्षस जंगलों में घूमते रहते हैं, जो मनुष्यों ही का आहार करते हैं। वे बड़े दुष्ट होते हैं, उनकी सूरत देख कर ही डर लगता है। तुम ऐसी आफ़त में पड़ कर क्या करोगी? देखो, जो बड़े लोगों की बात को नहीं मानते अन्त में उन्हें पछताना पड़ता है, अतः तुम यहीं रह कर सास-ससुर की सेवा करो।

सीताजी चुपचाप सुनती रहीं। उन्होंने रामचन्द्रजी की बातों का खंडन नहीं किया। उन्होंने यह नहीं कहा कि वन में इतने कष्ट नहीं होंगे, तुमने बढ़ा-चढ़ा कर कहे हैं। सेर का सौ मन कर दिया है। सभी बातों का समर्थन करती हुई अन्त में वह तो अधीर हो कर यही कहती हैं—

प्राणनाथ करुणा यतन, सुंदर सुखद सुजान।
तुम बिनु रघुकुल कुमुद विधु, सुरपुर नरक समान।

मुझे सुख चाहिये। मैं केवल सुख की भूखी हूँ। पर सांसारिक पदार्थों में सुख नहीं, उनका उपयोग मैं इसलिए कर रही हूँ, कि जिससे तुम सुखी हो। मुझे तो तुम्हारे साथ में सुख है। नरक में भी यदि तुम्हारा साथ हो तो मुझे कोई कष्ट नहीं हो सकता। सिंह, व्याघ्र, वल्कल के वस्त्र, ये सब तो गौण वस्तुयें हैं, मुख्य तो तुम्हारा साथ ही है—

खग मृग हरि जन नगर वन, वल्कल विमल दुकूल।
नाथ साथ सुर सदन सम, पर्णशाल सुख मूल।

तुम्हारे बिना मुझे संसार में सुख कहाँ? स्त्री पति के बिना रह ही कैसे सकती है?

प्राणनाथ तुम बिनु जग माहीं, मो कहँ सुखद कतहुँ कोउ नाहीं।
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी, तैसेहि नाथ पुरुष बिनु नारी।

यदि तुम अपनी अवधि-पर्यन्त मुझे अवध में ही रखना चाहते हो तो संभवतया मैं तो मान भी जाऊँगी, परन्तु प्राण नहीं मानने के—वे तो तुम्हारे साथ निश्चय ही चले जायँगे—

राखिय अवध जो अवधि लगि, रहत जानि अहिं प्रान।
दीन-बन्धु सुन्दर सुखद, शील सनेह निधान।

इसका नाम है, अनन्यता। सचमुच इसीलिए शास्त्रकारों ने स्त्री को अर्धाङ्गिनी कहा है। आधा अंग चाहे आधे अंग के बिना रह भी जाय किन्तु सच्ची पतिव्रता अपने पति के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकती। संसार के जितने कष्ट हैं वे सब पति के एक क्षण के वियोग के सन्मुख तुच्छ से प्रतीत होते हैं। सीताजी कहती हैं—

प्रभु वियोग लवलेश समाना, सब मिलि होहिं न कृपा निधाना।

सीताजी इस बात के स्मरण मात्र से ही कि रामचन्द्रजी मुझे साथ न ले जायँगे—मूर्छित हो गईं। जब रामचन्द्रजी ने समझ लिया कि सीताजी अपनी हठ ही रक्खेंगी, अपनी हठ के पीछे वह प्राणों को भी त्याग सकती हैं, तब उन्होंने उन्हें साथ चलने की अनुमति दे दी।

× × ×

रामचन्द्रजी मृगवेषधारी मारीच के पीछे गये और बाद में लक्ष्मणजी भी उनकी सहायता के निमित्त उनके पास चले गये। इतने में रावण आ कर सीताजी से भिक्षा माँगता है। अतिथि-सेवा-परायणा सीताजी साधु वेषधारी रावण के लिए कन्द-मूल-फल लाती हैं। जब उसने बँधी भिक्षा ग्रहण करने में अपनी

असम्मति प्रकट की तो सीताजी झट परिधि को पार करके बाहर निकल आती हैं। सीताजी के बाहर निकलते ही रावण ने अपना असली रूप दिखाया। सीताजी ने राक्षस राज रावण का नाम तो पहले ही से सुन रक्खा था, उसके बल-पराक्रम और पौरुष की भी अनेकों गाथायें सीताजी के सुनने में आई थीं। अतएव वह सहसा रावण का नाम सुनते ही पहले तो कुछ भयभीत हुईं। किन्तु थोड़ी ही देर में साहस करके वह उसे डाँटने लगीं। सीताजी का साहस तो देखिए। ऐसे प्रबल पराक्रमी रावण को किस निर्भीकता के साथ वह खरी-खरी सुना रही हैं। पहले तो उसे ही डराना चाहती हैं, कहती हैं—अरे नीच खड़ा तो रह! देख, वह रामचन्द्रजी आ रहे हैं, अरे पगले, क्या तू मुझे पाने की इच्छा रखता है? तेरी ऐसी अनधिकार चेष्टा!!

वायस करि चह खगपति समता, सिंधु समान होइ किमि सरिता।
खरकि होइ सुर धेनु समाना, जाहु भवन निज सुनु अज्ञाना।

रावण जब इनकी धमकी में नहीं आया और इन्हें आकाश-मार्ग से लेकर चलने लगा, तो ये दुःखी होकर विलाप करने लगीं। दुःखी अपने लिए नहीं हुईं, उन्हें कष्टों का तनिक भी भय नहीं था। किन्तु महान् दुःख तो उन्हें इस बात से हुआ कि वह रामचन्द्रजी से पृथक् हो रही हैं। भला एक पति-परायणा पत्नी के लिए इससे प्रबल चीज और क्या हो सकती है? रामचन्द्रजी का स्मरण करके वह विलाप करने लगीं। उन्हें अपने शरीर का कुछ भी होश नहीं रहा। अरे राम, मैं रामचन्द्रजी से प्रथक् की जा रही हूं। यह विचार आते ही वह दहाड़ बाँध कर जोर-जोर से रुदन करने लगीं। इनके विलाप के शब्दों से भी रामचन्द्रजी के प्रति इनकी प्रगाढ़ श्रद्धाभक्ति प्रकट होती है—

हा! जगदीश देव रघुराया, केहि अपराध बिसारेहु
आरति हरण शरण सुख दायक, हा! रघुकुल सरोज दिन

सीताजी के इस करुण विलाप को सुन कर के सभी जीव रुदन करने लगे।

× × ×

पर-सुख-असहिष्णु रावण ने सीताजी को से अलग कर दिया है, उसने उन्हें पंचवटी अपने यहाँ ला कर एक अशोकवाटिका में रख है। पानी में से प्रथक् करने पर मछली की जो होती है, ठीक वैसी ही बल्कि उससे भी दुर्दशा सीताजी की हो रही है। जिनका चारु सदा शरद शर्वरी के चन्द्रमा की भाँति खिला था, जो भ्रमरी बन कर सर्वदा श्रीरामचन्द्रजी की माधुरी का रसास्वादन करती रहती थीं, जो होने और खिन्न होने का नाम तक न जानतीं वही सीताजी आज राम-विरह-रूपी सागर में रीत्या डूबी हुई हैं। आशा की तनिक सी कोर ने डूबने से बचा रक्खा है। यद्यपि उनका शरीर यहाँ है, परन्तु मन सदा श्रीरामचन्द्रजी के चरणों हो लगा हुआ है। हा! उनकी ऐसी दशा को कर हनुमानजी परमदुःखी हुए। हनुमानजी ने को रात्रि के समय कैसी दशा में देखा—

कृश तनु शीश जटा इक वेणी, जपति हृदय रघुपति गुण
निजपद नयन दिये मन, राम चरण महँ लीन
परमदुखी भा पवन सुत, निरखि जानकी दीन

दुःखी होने की बात ही थी। भला ऐसी सु राजकुमारी को इस भयानक विपत्ति में देख कर का पाषाणहृदय होगा, जो फटने को उताव होता हो?

× × ×

रामचन्द्रजी के विरह में सीताजी ने आहार, आदि सभी शारीरिक सुखों का त्याग कर रक्खा

उन्हें न दिन में भूख की चिन्ता और न रात्रि में नींद की इच्छा। अहर्निशि रामचन्द्रजी का ही स्मरण, उनके दर्शनों की इच्छा रह-रह कर हृदय में शूल पैदा करती है, विकलता में वह राम-दर्शनों की लालसा के कारण अधीर हो उठती हैं। इतने ही में हनुमानजी ने अशोक के वृक्ष के ऊपर से मुद्रिका डाली। राम-नाम जैसे सुन्दर शब्दों से अंकित ऐसी उस मनोहर मुद्रिका को देख कर सीताजी परम-प्रसन्न हुईं। रामचन्द्रजी की अंगूठी को देख कर उस समय उन्हें उतना ही आनन्द हुआ, जितना कि पहले उन्हें रामचन्द्रजी के दर्शनों से होता था। जब उन्होंने वृक्ष पर बैठे हुए हनुमानजी के मुख से श्रीरामचन्द्रजी की कथा सुनी, तब तो उनकी प्रसन्नता की सीमा ही न रही। हनुमानजी को देख कर पहिले तो उन्होंने कुछ शंका की, पर पीछे उनकी बात सुन कर इस बात का पूरा विश्वास हो गया, कि यह श्रीरामचन्द्रजी का दूत है, तब तो वह आँखों में आँसू भर कर बड़े ही प्रेम के साथ कहने लगीं—

बूड़त विरह जलधि हनुमाना, भयहु तात मोकहँ जलयाना।

रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजी का कुशल समाचार पूछने के अनन्तर वह हृदय के अन्तस्तल में छमे हुए श्रीरामचन्द्रजी के प्रगाढ़ प्रेम को यों प्रकट करती हैं—

कोमल चित कृपालु रघुराई, कपि केहि हेतु धरी निठुराई।

रामचन्द्रजी की भी ऐसी ही दशा हो रही होगी। उनकी बात सुनने के ही निमित्त वह अधीर हो कर प्रेम के साथ पवनकुमार से पूछतीं हैं—

सहज बानि सेवक सुखदायक, कबहुँ कि मुहिं सुमिरत रघुनायक।
कबहुँ नयन मम शीतल ताता, हो इहिं निरखि श्याम मृदु गाता।

रामचन्द्रजी के सुन्दर स्वरूप का स्मरण आते ही सीताजी के नेत्रों से अविरल अश्रुपात होने लगा। देखते ही देखने वह रामचन्द्रजी के विरह में बेसुध हो गईं। उनका कंठ भर आया, आँसू रोकने से भी नहीं रुकते थे। हा नाथ! मुझे इस प्रकार भूल गये, ऐसा कह कर वह मूर्छित हो गईं।

× × ×

अशोक बाटिका में सीताजी किस लगन के साथ रामचन्द्रजी का दिन-रात ध्यान करती हैं, इसका वर्णन हनुमानजी ने रघुनाथजी के सामने बहुत ही युक्ति-युक्त किया है—

नाम पाहरू दिवस निशि, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद यंत्रिका, प्राण जाहिं केहि बाट॥

हनुमानजी ने सीताजी का जो संदेशा श्रीरामचन्द्रजी से कहा है, उससे उनके परमपुनीत प्रेम का पूर्णरीत्या परिचय प्राप्त होता है। सीताजी रामचन्द्रजी के पास संदेश भेजती हैं कि कृपानिधान, मेरा ऐसा कौनसा अपराध था, कि मुझे इतने दिनों के लिए बिसार दिया? मुझे तो कोई अपराध याद नहीं आता; किन्तु हाँ मैंने एक बड़ा भारी अपराध किया है, सचमुच में मैं घोर अपराधिनी हूँ। जिस समय मैं रघुनाथजी से पृथक् की गई

अवगुण एक मोर मैं जाना, बिछुरत प्राण न कीन्ह पयाना।
नाथ! सो नयनन्ह कर अपराधा, निसरत प्राण करहिं हठि बाधा॥
विरह अनल तनु तूल समीरा, श्वास जरै क्षण माँह शरीरा।
नयन स्रवैं जल निज हित लागी, जरै न पाव देह विरहागी॥
निमिष निमिष करुणायतन, जाहिं कल्प शत बीति।
बेगि चलिय प्रभु आनिये, भुज बल खल दल जीति॥

❀ ❀ ❀

पतिव्रत

स्त्रियों के लिए योग, तप, जप, पूजा, पाठ सभी कुछ वर्जित है। ये सभी क्रियायें पातिव्रत के सामने तुच्छ होजाती हैं। एक सच्ची पतिव्रता अपने पातिव्रत के प्रभाव से क्या नहीं कर सकती? पुराणों में ऐसे अनेक उदाहरण मिलेंगे कि पतिव्रताओं ने अपने

पातिव्रत के प्रभाव से वे-वे कार्य किये हैं, कि जो योगी के लिए भी कठिन ही नहीं किन्तु दुस्साध्य हैं। भगवान् को भी पतिव्रता का श्राप अंगीकार करना पड़ा।

अनसूयाजी ने सीताजी को उपदेश देते हुए चार प्रकार की पतिव्रता बताई हैं। उत्तम, मध्यम, नीच और लघु। इस प्रकार पतिव्रताओं के चार भेद हैं। सुनिए—

उत्तम के अस बस मन माहीं. सपनेहु आन पुरुष जग नाहीं।
मध्यम परपति देखहिं कैसे, भ्राता पिता पुत्र निज जैसे॥
धर्म विचारि समुझि कुल रहहीं, सो निकृष्ट तिय श्रुति अस कहहीं।
बिनु अवसर भयते रह जोई, जानेहु अधम नारि जग सोई॥

इन चारों प्रकार की पतिव्रताओं में से सीताजी को हम सब से उच्च उत्तम पतिव्रता कह सकते हैं। जंगल के कष्टों की कुछ भी पर्वाह न कर के इन्होंने मरना तो मंजूर किया किन्तु पति के बिना घर में रहने को यह राज़ी नहीं हुई।

* * *

रावण अशोक बाटिका में इन्हें समझाने आता है, नाना प्रकार के प्रलोभन देता है, भाँति-भाँति के भय दिखाता है, परन्तु उससे सम्मत होना तो अलग रहा, वे उसकी बात तक नहीं सुनतीं और उसे उसके मुँह पर ही खूब खरी खोटी सुनाती हैं। पर-पुरुष से सांसारिक बातें करना पतिव्रता के लिए वर्जित हैं, अतः रावण की बातों का वह सीधा उत्तर नहीं देतीं, किन्तु बीच में तृण रखकर उसे ही मध्यस्थ बनाकर—उसके ही द्वारा अपने भावों को व्यक्त कर रहीं हैं—

तृण धरि ओट कहति वैदेही, सुमिरि अवधि पति परम सनेही।

* * *

हनुमानजी सीता के पास जाते हैं। सीता जब उन्हें पहचान लेती हैं, तो उनका पुत्र की भाँति आदर करती हैं। हनुमानजी तो उन्हें जगज्जननी तो ही थे, उनके हृदय में सीता जी के लिए किसी भाव स्वप्न में भी नहीं थे, इस बात को सीता जानती थीं। फिर भी उन्होंने हनुमान जी का तक नहीं किया। दूर से ही उनकी बातें सुनीं।

* * *

जब रामचन्द्रजी ने रावण को पराजित कर और सीताजी उनके पास आईं तो रामचन्द्र लोक-दिखावे के लिए और लोगों को पतिव्रत प्रभाव जनाने के लिए उनसे कुछ दुर्वचन कहे। पतिव्रता सीताजी इन वचनों से रत्ती भर भी लित नहीं हुईं। कारण कि उन्हें अपने ऊपर विश्वास था, वह समझती थीं कि मैं निष्कलंक पाप ने मुझे स्पर्श तक नहीं किया। "साँच को कहाँ?" वह हँसते-हँसते धधकती हुई अग्नि में कर गईं और खरे सोने की भाँति ज्यों की शुद्ध होकर निकलीं। उस समय उपस्थित लो पतिव्रत का प्रभाव समझा। सभी के मुख से है! धन्य है!; शब्द अपने आप ही निकल उस समय देवता मारे, खुशी के पुष्पों की वर्षा लगे। आकाश में भाँति-भाँति के बाजे बजने अप्सरायें सीताजी के गुणों को गाती हुई नृत्य लगीं। अग्नि देव ने साक्षात् प्रकट होकर श्रीरा को समर्पित किया—

तब अनल भूसुर रूप कर गहि सत्य श्री श्रुति विदि
जिमि क्षीर सागर इंदिरा रामहिं समर्पी आ
सोइ राम वाम विभाग राजति रुचिर अति शोभा
नव नील नीरज निकट मानहुँ कनक पंकज की

* * *

'मानस, के स्त्री-पात्रों में से सीताजी का परम आदर्श है। यद्यपि कौशल्याजी, सुमित्रा मंदोदरी का चरित्र भी बहुत ही अद्भुत,

अनुपम और अनुकरणीय है, किन्तु इन सब में हम सीताजी को ही सर्व श्रेष्ठ समझते हैं। इसका कारण यह है कि अन्य देवियों का चरित्र तो मानस में प्रसंगानुसार मिलता है और वह भी बहुत थोड़ा। यद्यपि उनका जितना भी मिलता है, वह परम आदर्श कहा जा सकता है; किन्तु इतने ही से उनके सम्पूर्ण जीवन का अनुमान होना ज़रा कठिन है। परन्तु सीताजी को तो हम बाल्य काल से देखते हैं, उनका विवाह हमारे सामने होता है, वह अपने शीलस्वभाव और गुणों के कारण हमारे सामने पुरजन-परिजन तथा पति की अत्यंत प्यारी बनती हैं।

पहले तो हम उन्हें राज प्रासादों में श्री रामचन्द्रजी के साथ राजमहिषी की भांति आनन्द और विलास करते देखते हैं। वहाँ उन्हें सर्वदा प्रसन्न देखते हैं। फिर उन्हीं सीताजी को वल्कल वसन पहने, ऋषिपत्नियों का सा रूप बनाये, अपने पति के साथ जंगल-जंगल और पर्वत-पर्वत की खाक छानते पाते हैं। फिर भी हम उनके चेहरे को मलिन नहीं पाते, इस अवस्था में भी वह हमें परम सन्तुष्ट दीख पड़ती हैं। पति के सहवास के सुख के सामने वह बन के असह्य कष्टों की कुछ भी पर्वाह नहीं करती हैं और बड़ी खुशी के साथ वर्षा, गर्मी और शीत को सहन करती हुई नंगे पैरों कँकरीली और पथरीली ज़मीन पर बिना किसी विपत्ति के घूमती हैं।

जब उन्हें अपने पति से अलग कर दिया जाता है, तो उस अवस्था में भी हम उन्हें निरंन्तर राम-चरणों में ही लवलीन पाते हैं। पापी पर-पुरुष की पीड़ा-प्रताड़ना और भर्त्सना उन्हें अपने निश्चित पथ से अणुमात्र भी विचलित नहीं कर सकती हैं। वह उन्हें बड़ी तत्परता और निर्भीकता के साथ सहन करती हैं और अपने धर्म के सामने प्राणों की कुछ भी पर्वाह नहीं करतीं। अन्त में इतने पर भी जब रामचन्द्रजी उनकी पवित्रता में शंका करते हैं, तो दहकती हुई अग्नि में प्रवेश करके वह अपनी पवित्रता का यथार्थ परिचय देती हैं।

सीताजी के चरित्र में एक स्थान को छोड़ कर और कहीं भी कोई दोष अथवा कुछ कहने योग्य बात नहीं मिलती। जब रामचन्द्रजी छद्म-वेश-धारी मारीच के पीछेगये और जब उन्होंने उसके बाण मारा तो वह चिल्लाया। सीताजी ने समझा, रामचन्द्रजी के ऊपर कोई विपत्ति आगई है; अतः उन्होंने लक्ष्मणजी से उनकी सहायता के लिए जाने को कहा। परन्तु लक्ष्मणजी को तो इस बात का पूरा भरोसा था कि रामचन्द्रजी के ऊपर कोई विपत्ति आ ही नहीं सकती, अतः उन्होंने जाने से इन्कार किया और कहा कि रामचन्द्रजी मुझे यहाँ तुम्हारी रक्षा के निमित्त नियुक्त कर गये हैं, और ऐसी स्थिति में मेरा वहाँ जाना ही ठीक नहीं हैं। इस पर सीताजी ने लक्ष्मणजी के प्रति कुछ मर्म वचन कहे हैं। सीता जैसी सती साध्वी के लिए अपने देवर के प्रति मर्म वचनों का कहना कहाँ तक उचित था? पर, यहाँ हम यह भी कह सकते हैं कि उस समय सीताजी की एकमात्र इच्छा रामचन्द्रजी की रक्षा करवाने ही की थी, उस समय वह रामचन्द्रजी की रक्षा के निमित्त इतनी व्याकुल हो उठी थीं, कि उन्हें विवश होकर अपने पति-प्रेम की प्रगाढ़ता में—ऐसे वाक्य कहने पड़े। फिर भी मर्म वचनों का दोष न लगने पर भी उनपर लक्ष्मणजी के प्रति अविश्वास का दोष तो दूर होता ही नहीं है। क्या लक्ष्मणजी रामचन्द्रजी का इतना ध्यान नहीं रखते थे? क्या लक्ष्मणजी रामचन्द्रजी को प्राणों से भी अधिक प्यार नहीं करते थे? क्या सीताजी इस बात से अनभिज्ञ थीं? यदि नहीं, तो फिर उन्होंने मर्म वचन क्यों कहे? इसे दैव ही जाने। दैव की गति प्रबल होती है। हम सांसारिक क्षुद्र प्राणी

इसका समाधान इस प्रकार ही कर सकते हैं कि उस समय असली सीताजी तो अग्नि में प्रवेश कर गई थीं, यह बात तो सीताजी के प्रतिबिंब ने कही। असली सीताजी के माथे यह दोष नहीं मढ़ा जा सकता। ख़ैर, कुछ भी हो। इसमें संदेह नहीं कि सीताजी का चरित्र संसार की सभी स्त्रियों के लिए आदर्श, अनुकरणीय, पूजनीय, वन्दनीय, माननीय, और विचारणीय है। आज हमारे देश की मातायें यदि सीताजी का आदर्श सन्मुख रख कर अपने जीवन को बिताने का विचार करलें, तो चारों ओर फैली हुई यह अशान्ति बहुत अंशों में दूर हो सकती है। सीताजी के सम्बन्ध में हम क्षुद्र, अधम, पामर प्राणी कह ही क्या सकते हैं! हम उन्हें संसार की किस वस्तु के समान बता कर उनके गुणों का बखान कर सकते हैं! कवि ने सीताजी के सम्बन्ध में ठीक ही कहा है—

सिय शोभा नहिं जाइ बखानी, जगदंबिका रूप गुण खानी ।
उपमा सकल मोहिं लघु लागी, प्राकृत नारि अंग अनुरागी ॥
जो पटतरिय तीय सम सीया, जग असि युवति कहाँ कमनीया।
सीय वरणि तेहि उपमा देही, को कवि कहइ अयश को लेही ?

प्रभुदत्त शर्मा

कुछ ना-समझ लोग सीता के दुःखमय जीवन का ख़याल कर उसे अभागिनी समझते हैं। असाधारण पतिभक्ति, सुशीलता, शान्ति, क्षमा, सहनशीलता, इत्यादि गुणों के कारण जो महिला समस्त भारतवर्ष में आदर्श महिला के तौर पर पूजी जाती है क्या वह अभागिनी हो सकती है? पतित युग के आदर्श भी तो पतित हो जाते हैं? सत्य, चरित्र-रक्षा, और सिद्धान्तनिष्ठा के लिए कष्ट सहने में जो आनन्द और अलौकिकता है उसकी कल्पना भी गुलामी के कीड़ों को कैसे हो सकती है?

कला

कला आनन्द की जननी भी है और प्र भी! बात एक आश्चर्य-जनक प्रहे के समान है, पर है सर्वथा सत्य। आनन्दाधि आत्मा से उस कला का जन्म होता है, जि सौन्दर्य से दूसरों के हृदय आनन्दातिरेक से हो जाते हैं। उस कला का वास चाहे कवि की में हो, चित्रकार के चित्र में हो, अथवा गायक गीत में हो, वह सदा सर्वदा आनन्द-दायिनी है।

राजा सुबोध संगीत के प्रेमी थे। अनेक सं चार्य उनके यहाँ आश्रित थे। अपनी-अपनी कला प्रदर्शन करने वाले गायकों का वहाँ मेला सा रहता। लोग तो यहाँ तक कहते, राजा सुबोध राज-दरबार इन्द्र का अखाड़ा है, जहाँ अमर युव अपने हृदय की वीणा को झंकृत कर निस्सीम सान्निध्य में आनन्दित होकर नाचती हैं, कूदत और गाती हैं।

एक दिन राजा आखेट में गये! शिका खोज में वह रास्ता भूल गये, साथियों से वह हो गये। साथियों को ढूँढ़ने के लिए इधर-उधर कते-भटकते राजा थक गये। राजा का घोड़ा बहुत अधिक थक गया था। विश्राम के अति और कोई उपाय न रह गया। पास ही एक स्रोत से जल-पान कर के राजा एक आम वृक्ष के हरे बिछौने पर लेट गये। घोड़ा भी घास चरने थके हुए नेत्र मूंदना ही चाहते थे कि कानों के से वह उन्मीलित ही रहे। आम्र मंजरी के एक कोयल मधुरालाप कर रही थी। कोय हृदय स्पर्शी गान ने राजा को बेसुध सा बना नव विकसित वसंत के सौन्दर्य-दर्शन से आल कोयल की कोमल वाणी से राजा सुबोध के

याले को छलाछल भरने वाली कला का जन्म हुआ। राजा को इस आनन्दातिरेक ने आत्मविसुध बना दिया। कोयल की एक-एक कोमल स्वर-लहरी राजा के कर्णकुहरों से आकर आलिंगन करती। उस आनन्द-पुलक अवस्था में राजा को अपने दरबार के गायकों के ताल–स्वर भी याद आ रहे थे। किसी अज्ञात प्रेरणा से राजा सुबोध उन दोनों की तुलना में लीन हो गये। अकस्मात् घोड़ों की टाप सुनाई दी। कोयल का संगीत समाप्त हो गया—उस समी- ी। कोयल का संगीत समाप्त हो गया—उस समी-थ निर्दय कोलाहल के द्वारा अज्ञात के साथ उसका वह संबंध विच्छिन्न हो गयां।

अस्त होते हुए सूर्य की किरणें शैल-शिखरों का आलिंगन करके बिदा हो रही थीं। भगवान् भास्कर अपने विश्रामस्थल को लौट गये, राजा अपनी राज-ानी को! राजा को आज आखेट में कुछ नहीं मिला, पर उन्हें इसकी चिंता न थी। उन्होंने तो आज एक अमूल्य रत्न प्राप्त किया था और वह था ला के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान।

दूसरे दिन प्रातःकाल, जब बालसूर्य की किरणें ाजा के शयनालय में प्रवेश कर रही थीं, कुछ गवैये ाजा को प्रसन्न करने के लिए प्रभातियाँ सुनाने आये। र, वे ज्यों के त्यों लौटा दिये गये! संगीत-प्रेमी ाजा के द्वारा ऐसा तिरस्कार उन्हें नया मालूम हुआ, र संगीतालय के स्थान में चिड़ियाघर बनाने ी राजाज्ञा ने तो उन्हें आश्चर्यचकित बना दिया।

बहुत थोड़े समय में चिड़िया घर बन गया। ब प्रकार के पक्षी उसमें एकत्रित किये गये। नमें कोयल भी थी।

चिड़ियाघर तैयार होजाने के दूसरे दिन प्रभात ी सुखमय बेला में राजा। अपने प्रासाद की खिड़की ड़े चिड़ियाघर की ओर देख रहे थे, उनके कान कोयल की मधुर संगीत-सुधा का रसास्वादन करने के लिए आतुर हो रहे थे। कोयल की ध्वनि सुनाई दी, परन्तु उसका वह आनन्द पारतंत्र्य के दुःख में विलीन होगया था। कर्णमधुर स्वर आज कर्णकटु सिद्ध हुआ। कोयल के इस गान का जन्म आनन्दमय हृदय से नहीं हुआ था, उसमें कला का वास कैसे होता? बंदी कभी आनन्दित नहीं हो सकता।

राजा तो वैसी ही कर्णमधुर ध्वनि सुनने के लिए उत्सुक थे। आखेट के मिस वह फिर एक बार उसी वन-प्रदेश में पहुँचे। कोयल का वही गान सुनाई दिया; वे ही कोमल और मधुर स्वर लहरियाँ वायु के साथ क्रीड़ा कर रही थीं। उस स्वर्गीय आनन्द का उपभोग करके राजधानी में लौट आने पर राजा ने चिड़ियाघर को तोड़ कर सब पक्षियों को छोड़ देने की आज्ञा दी। दो दिन पहले इतने परिश्रम और प्रेम से निर्मित संग्रहालय के संबंध में ऐसी आज्ञा सुन कर राज-दरबारियों को चिन्ता हुई कि कहीं राजा पागल तो नहीं होगये! परन्तु उस समय तो वे आश्चर्यचकित होगये, जब उन्होंने बनवास के निमित्त जंगल में एक कुटीर के निर्माण की राजाज्ञा सुनी!

कुटिया बन गई। राजकुमार को शासन-भार सौंप दिया गया। राजपरिवार और पारिवारिक सुख-संभोग की सब लालसाओं को त्याग कर राजा सुबोध वन-प्रदेश के उस एकांत शांत स्थान में वास करने के लिए चले गये!

पहले-पहल जब वह वहाँ गये थे, उन्हें मालूम भी न था कि कला क्या है? दूसरी बार आये तो उन्हें कला का आंशिक ज्ञान था। परन्तु इस बार तो वह कला के पूर्ण ज्ञाता बनकर आये। कोयल के उन थोड़े से मधुर स्वरों में कितना जादू भरा था!

सौन्दर्य और आनन्द का घनिष्ठ संबंध है!

जहाँ सौन्दर्य है वहीं आनन्द है। कला में सौन्दर्य है, उस विराट् स्वरूप कलाकार की कृति तो सर्वांग-सुन्दर है ही ! जो वस्तु आनन्दप्रद नहीं वह भार-स्वरूप है। उस अज्ञात की यह रचना तो यत्र-तत्र-सर्वत्र, अपने सौन्दर्य के कारण, आनन्ददायिनी है। कृति के द्वारा कलाकार से सम्बन्ध स्थापित कर लेने वाला धन्य है।

राजा सुबोध ने अपने जीवन का शेष भाग प्रकृति के इसी कलापूरित क्रीड़ाक्षेत्र में व्यतीत किया। पक्षियों के कलरव में उन्हें कला का संदेश सुनाई दिया। किसी अज्ञात चित्रकार की तूलिका से चित्रित प्रकृति-सुन्दरी के सौन्दर्य में उन्होंने साक्षात् कला के दर्शन किये। कलाके ज्ञान का विकसित स्वरूप क्या था ? कला में कलाकार के दर्शन करना और उनकी एकता को पहचान लेना।

कुटीर के बाहर प्रांगण में पदार्पण करते ही सुबोध का मन नाच उठता। हिमगिरि के चरणों में खड़े होकर शैल-शिखर और अस्त अथवा उदय होते सूर्य की लालिमा के आलिंगन का सौन्दर्य देखकर वह आनन्दातिरेक से आत्मविसुध होजाते। सरिता के कूल पर बैठकर जब वह उसके अनिंद्य और वन्दनीय सौन्दर्य को देखते, रवि-रश्मियों को उसकी तरंगों के साथ अठखेलियाँ करते हुए देखते, तो वह उस कौतुक-कार को अपने सामने खड़ा पाते !

प्रकृति के साथ उनका सम्बन्ध दिन प्रति दिन घनिष्ठ होता जाता था; बन के पत्ते-पत्ते से, धरती-तल के कण-कण से, सरिता की एक-एक बूँद से और नभ के वक्षस्थल को सुशोभित करने वाले प्रत्येक उड़गन से उनकी मैत्री स्थापित हो रही थी। जगत् उनके लिए बन्धन-स्वरूप होता जा रहा था। अब वह परतंत्र नहीं, स्वतंत्र थे; उनकी स्वतंत्रता बहुमूल्य थी !

सरिता-तट पर चट्टानों के बीच में जन्मे एकाकी सुमन का सौरभ केवल उनकी घ्राणेन्द्रि ही जागृत नहीं करता, परन्तु उनकी ज्ञानेन्द्रि भी जागृत कर देता। नैत्रद्वय उस सुमन के सौ में उस रचयिता का स्वरूप देखते। नदी के नि नीर में स्नान करके वह केवल अपने तन को ही नहीं करते, परन्तु अपने मन को भी ! प्रकृति के ऐसा नाता जोड़ कर, उसे 'भूतेषु भूतेषु विचि वे अलौकिक आनन्द उपलब्ध किया करते !

ब्राह्म मुहूर्त्त का समय था। नभ की पटरी दैदीप्यमान अक्षरों में कोई कुछ लिख रहा था। तारों अस्तोदय उस अज्ञात लिपि के अक्षरों का बनना-बि ड़ना था। सुबोध सरिता-तट पर बैठे इस लिपि पढ़ रहे थे। उन अस्पष्ट अक्षर-नक्षत्रों में उन्हें लेखक का स्वरूप दिखाई दे रहा था। नभ पर लिए एक कलापूर्ण चित्रपट था, जिसमें कलाका अवलोकन किया जा सकता है। वह ध्यानस्थ हो इस दृश्य को देखने में लीन थे। यही उनका भ पूजन था।

शान्त नदी में उत्पन्न लहरों ने उनके ध्यान भंग कर दिया। एक परम रूपवती युवती न स्नान करके लौट रही थी। उसके भीगे वस्त्रों उसका सौन्दर्य स्पष्ट रूप से व्यक्त हो रहा सुबोध एकटक उसकी ओर देखने लगे। उनकी से निर्भर अश्रुपात होने लगा। अनजान में युवती पास से निकली, पर सहसा एक त्यागी विरक्त को अपनी ओर इस प्रकार देखते देखकर उसने पूर्वक कहा—'देव ! आप तो संन्यासी हैं ?'

युवती का व्यंग सुबोध के कानों का द्वार खटा कर ही रह गया। युवती को समीप आते कर सुबोध ने सरलचित्त से कहा—'देवि ! रचना करने वाला कितना सुन्दर होगा ?'

सुबोध के आकर्षण का कारण उस रमणी का सौन्दर्य नहीं था, उनकी आँखें तो उसके द्वारा उस सुन्दर कलाकार के सौन्दर्य को देख रही थीं, जिसने ऐसी नयनाभिराम मूर्ति निर्मित्त की ! युवती अपने व्यंग के उत्तर के बदले में उनके विशाल हृदय की ऐसी स्वाभाविक बात सुनकर, आश्चर्यचकित दृष्टि से उनकी ओर देखती हुई, आगे बढ़ गई ।

सुबोध ने प्रकृति के निगूढ़ रहस्यों का अध्ययन कर, उसके सौन्दर्य-दर्शन में आत्म-विस्मृति का सुख अनुभव कर, अपनी शारीरिक चेष्टाओं पर विजय प्राप्त करली थी । आज रमणी-सौन्दर्य को भी इस रूप देखकर उन्होंने अपने मन पर अपूर्व विजय प्राप्त कर ली ! अब वह पूर्ण स्वतंत्र थे—मुक्त थे !

श्रीगोपाल नेवटिया

विवाह का उद्देश्य

मनुष्य-जीवन में विवाह का पवित्र संस्कार अपना एक ख़ास स्थान रखता है । जिन लोगों ने भारतवर्ष के प्राचीन इतिहास को ध्यान से पढ़ा है, उन्हें मालूम होगा कि प्राचीन भारत में विवाह कितने महत्व और गौरव का संस्कार था । प्रातःस्मरणीय महाराजा श्री रामचन्द्रजी का एक-पत्नीव्रत वाला गार्हस्थ्य-जीवन इस बात का एक जीता-जागता नमूना है । 'अज' का अपनी प्राणप्रिय पत्नी इन्दुमति के वियोग में किया हुआ विलाप कितना हृदय-विदारक और मर्म-भेदी है, इसे सहृदय लोग ही जान सकते हैं । ऐसे एक नहीं, कई ऊँचे उदाहरणों के रहते राजा दशरथ की ३६५ या ३६० रानियों और श्रीकृष्ण की सोलह सहस्र पटरानियों की कथायें हमारे इतिहास में कब और कैसे जुड़ गईं, इसका कोई ठीक-ठीक पता नहीं लगता ।

जब हम विवाह को एक अत्यन्त पवित्र संस्कार मान लेते हैं, तब उसमें विषय-वासना की तृप्ति और शारीरिक सौन्दर्य-पान की लालसा के लिए कोई जगह नहीं रह जाती; वह तो एक आत्मा का दूसरी के साथ जन्म-जन्मान्तरों का एक ऐसा पवित्र सम्बन्ध हो जाता है कि जिसकी उपमा नहीं मिलती । इस सम्बन्ध को हम आध्यात्मिक सम्बन्ध कह कर अपना मतलब निकाल सकते हैं । विवाह-सम्बन्ध का सच्चा सुख उसकी आध्यात्मिकता ही में है ।

परन्तु समय के परिवर्तन के साथ-साथ मनुष्यों के विचारों और आदर्शों में भी परिवर्तन हुआ करते हैं । विवाह इस बात का अपवाद नहीं है । जैसे-जैसे समय बदलता गया, लोगों की शिक्षा-दीक्षा में कुप्रबन्ध होता गया, वैसे-वैसे उनकी आध्यात्मिकता भी छिपती तथा नष्ट होती गई—और अब तो ऐसा समय आ गया है कि मनुष्य में आध्यात्मिकता के महत्व को जानना तो कहाँ, उसके मतलब को समझने तक की योग्यता नहीं रही है । अब तो षड्विकारों के पंजे में फँस कर वह इतना लोभी, कामी और मदान्ध हो गया है कि उसे अपने भले-बुरे का भी ज्ञान नहीं रहा ! आध्यात्मिकता को कोसों दूर छोड़कर, अब वह फ़ानी दुनिया के ऐशो-आराम के पीछे पागल बना हुआ है । 'यह खाऊँ, वह खाऊँ' वाली मसल हो रही है । एक चीज़ को पा लेने पर दूसरी के लिए उसकी जान निकलने लगती है । संतोष, ?—हाँ, संतोष तो वह जानता ही नहीं कि किस बला का नाम है ! मदलोलुप भौंरे की तरह इस फूल से उस फूल पर और उसपर से किसी तीसरे फूल पर बैठकर उसके क्षणिक सम्मिलन में वह जैसे-जैसे अपनी भटकी हुई प्यास बुझाना चाहता है, वह अधिकाधिक बढ़ती जाती है—जैसे घी की आहुति डालने पर अग्नि बढ़ती है ! संसार की पल भर में मिटने वाली

चीज़ों के पीछे पागल होने वाली इस आजकल की दुनियां का भविष्य में क्या हाल होगा ? ईश्वर ही जानें!

जिस तरह आजकल का मनुष्य दुनिया की और-और चीज़ों में घड़ी भर के सुख की खोज कर रहा है, उसी तरह अपने जीवन के साथी के चुनाव में भी वह इसी सुख को अधिक महत्व देने पर तुला हुआ है। इने-गिने अपवादों को छोड़कर दुनिया के अधिकांश स्थानों में मनुष्य का यही हाल है। अगर यों कहा जाय कि इस लहर को बहाने में यूरोप के दर्शनशास्त्र का, वहाँ के रीति-रिवाज़ों और विश्वासों का, बाहरी दुनिया पर ख़ासा असर पड़ा है, तो असंगत न होगा। मुसलमानी और अँग्रेज़ी राज्य के पहले के हिन्दू भारत में विवाह का जो महत्व था, वह धीरे-धीरे दूसरी संस्कृतियों के प्रभाव में पड़ कर किस तरह कमज़ोर हो गया, इसे बतलाने की यहाँ कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। इस बीसवीं शताब्दि के भारत में हिन्दू स्त्रियों की मनुष्य के संगी-साथी और अर्धांगिनी की दृष्टि से कितनी क़दर होती है, यह किसी से छिपा नहीं है। कहाँ तो भगवान् श्रीराम का सीताजी के लिए 'इयं गेहे लक्ष्मी इयममृतवर्ति नयनयोः' यह कथन और कहाँ आजकल के बाबुओं और अधिकांश पढ़े-लिखों का अपनी पत्नियों के लिए 'पैर की जूती' 'ग़ुलाम' आदि कुत्सित शब्दों का प्रयोग !! और साथ ही साथ पशुओं से भी गया-बीता कठोरतर शासन !!! कहाँ मनु भगवान् का "यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः" यह एक दम ऊपर उठाने वाला पवित्र कथन, और कहाँ प्रसंगोपात्त कहते हुए गो० तुलसीदासजी के 'ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी, ये सब ताड़न के अधिकारी' इस कथन को लेकर नारी-समाज पर भयंकर अत्याचार करने वाले नर-पिशाचों का नंगा नाच !!

जो स्त्री-रूप में देवियाँ हैं, लक्ष्मी और पार्वती के समान पूज्य और वन्दनीया है, उन्हीं
बहनों, पत्नियों और पुत्रियों के साथ आज,
भारत में, जैसा अत्याचार, जैसी मनमानी
रही है, उसे देख-सुन कर भला किस पाषाण
की आँखों से ख़ून के आंसू न बहने लगेंगे ?

अपनी दुष्ट वासना की तृप्ति के लिए
वर्ग मातृ-जाति पर दिन दहाड़े आज जो
कर रहा है, बहु-विवाह, बेजोड़ विवाह, वृद्ध-
और बलात्कार द्वारा जिस तरह अपनी
को तृप्त कर रहा है, उससे बाज़ आकर—
चिढ़कर, संतप्त होकर नवयुग के नौजवान
और दार्शनिकों का ख़ून खौलने लग गया है। वे
सारे नारकीय अत्याचार के ख़िलाफ़ अपनी
बुलन्द करने की कोशिश में लग चुके हैं।
का प्रयत्न इसी दिशा में हो रहा है।

काउन्ट हरमेन कीसरलिंग आजकल
यूरोपीय प्रवास में महत्व-पूर्ण सामाजिक
व्याख्यान देकर, लोगों में अपने विचारों का
कर रहे हैं। हाल ही में आपने अपनी "Boo
Marriage" नामक पुस्तक प्रकाशित की है,
थोड़े ही समय में सारे यूरोप में काफ़ी प्रसिद्धि
करली है। उक्त पुस्तक में प्रकाशित विवाह
कुछ उद्गारों का सार–मात्र हम यहाँ देते हैं।

आपकी पुस्तक का आदर्श वाक्य है—
जन्म से एक-पत्नीव्रत है।' आप विश्वास दिलाते हैं
कि दुनिया की कोई भी ताक़त संसार से एक
व्रत को नष्ट नहीं कर सकती। एक पत्नी-व्रत
एक पति-व्रत ही संसार-चक्र के दो ध्रुव हैं।
विषय-सुख के लिए किसी साथी को ढूँढ लेने
तो स्थिरता है, न आदर्शवाद है, और न संसार
प्राचीन इतिहास तथा उसके भावी विकास का
है। आपके मत में विवाह का पवित्र बंधन एक

नियम से बंधा हुआ है कि उसे कोई तोड़ ही नहीं सकता। आदर्श भले ही बदल जाय, पर नियम नहीं टूट सकता। रूस की स्त्रियों ने सरल विवाह और सरल तलाक की जो प्रथा ईजाद की है, उसपर आपका विश्वास नहीं है; वह असफल हो चुकी है और रूसी महिलायें फिर अपने पुराने रास्ते पर आ रही हैं। अमेरिका के नवयुवक और नवयुवतियों को आपने यह कह रक्खा है कि 'क्षणिक सुख के लिए किया गया संबन्ध सच्चा विवाह-संबन्ध नहीं है। कोई भी विवाह-पद्धति, जिसके बल पर आदमी कई विवाह कर सकता है, जाति की आध्यात्मिकता की दृष्टि से उतनी ही घातक है, जितनी कि बोलशेविकों की नीति, सम्मत वह विवाह-प्रीति, जो एक घण्टे से ज्यादा नहीं टिकती।'

वर्तमान संसार की इस कठिन समस्या को सुलझाने के लिए आप किसी विवाह-विधान की सिफ़ारिश नहीं करते। आप तो लोगों में आध्यात्मिक जागृति और व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी को बढ़ाने की बात पर खूब ज़ोर देते हैं। मनुष्य का यह धर्म ही उसे पशुओं की श्रेणी से अलग हटाता है। सब से सरल उपाय यही है कि लोग अपनी ज़िम्मेदारी को ख़ूब ग़ौर से समझने लगें।

व्यावहारिकता के लिहाज़ से आप इन बातों पर अधिक ज़ोर देते हैं—

"विवाह की उम्र बढ़ाई जाय। शीघ्र ही विवाह करना कठिन कर दिया जाय। पशुवृत्ति की तृप्ति के मार्ग में हम चरित्र को उन्नत करने वाली रुकावटें खड़ी करदें। वे ही लोग विवाह कर सकें, जो बालिग़ हों, भले-बुरे का विचार करने योग्य हों, और अपनी जवाबदेही को समझते हों। कोई भी स्त्री या पुरुष तब तक विवाह न करे, जब तक एक-दूसरे के स्वभाव से पूरा और अच्छा परिचय न हो जाय। अगर स्त्री या पुरुष संतोष-पूर्वक अकेला रह सकता है, तो उसे विवाह न करना चाहिए। विवाह करने पर वह अपनी उन्नति ही कर सकेगा—कठिनता से कर सकेगा।

"चरित्र-निर्माण के पहले विवाह हो जाने का जिन-जिन देशों में रिवाज़ है, उन-उन देशों के स्त्री-पुरुषों की वह बाढ़ रुक जाती है, जो केवल अविवाहित दशा में ही हो सकती है। आजकल की भयंकर सामाजिक अशक्ति और घोर दुःख इसी का परिणाम है।

"सबसे पहले विवाह के तत्त्वों पर विचार करो। मनुष्य के चरित्र-निर्माण में उनका असर होता ही है। जब तक आदमी इस बात को दूरन्देशी से देख न ले और इसके परिणाम को भलीभांति समझ न ले, वह अपने जीवनभर के साथी को सफ़लता से नहीं चुन सकता। (बड़ी उम्र में विवाह की यह ज़ोरदार दलील है)

"विवाह कोई स्वर्गीय सुख नहीं है। कभी-कभी लोग उससे बड़ी-बड़ी आशायें रखते हैं। सब से अच्छा विवाह वह है, जिसमें पति-पत्नी दोनों की सब तरह की उन्नति बिना बाधा के होती रहे। अगर दोनों समानभाव से उन्नत नहीं होते हैं तो तत्त्व की दृष्टि से वह विवाह भूल है।

"कुछ लोग यह दावा करते हैं कि बाल-विवाह स्वास्थ्य के लिए लाभकारक है। परन्तु स्वास्थ्य ही तो दुनिया में सब कुछ नहीं है। हम पशु तो हैं नहीं। स्वास्थ्य, सफ़ाई, सुख—ये पुरुष या स्त्री के जीवन के ध्येय नहीं हैं। उनके जीवन का सार तो उनकी आन्तरिक उन्नति में है। सच्चा विवाह इस उन्नति में सहायक होता है। झूठा, मार्ग में रोड़े अटकाता है।

"तलाक की प्रथा 'फिसल पड़े की हर गंगा' का दूसरा नाम है। ज़िम्मेदारी के ख़याल का अभाव ही इसका मूल कारण है। यह पतन का एक सस्ता,

अचूक और सरल मार्ग है।" 'तलाक़ के कटु अनुभवों से मनुष्य शिक्षा ग्रहण कर आध्यात्मिक हो जाता है,' इस कथन पर आपका रंच मात्र विश्वास नहीं है। आप कहते हैं—"भयंकर विपत्ति हमें उबार लेती है, उदार दुःख हमें उन्नत बनाते हैं। परन्तु एक घृणित वस्तु हमें गिराती है—बस एक दम गिरा देती है। तलाक-प्रथा घृणित है, भयंकर है, बाजारू है, व्यभिचार को सस्ता करती है। मैं फिर-फिर कहता हूँ कि इसके समान पतित करने वाली चीज़ दुनिया में मैंने नहीं देखी। अगर स्त्री-पुरुष तलाक़ के बाद भी बिना चोट खाये सुख से रह सकें, तो मैं कहूँगा कि उनके आत्मा ही नहीं है; एक ही आदमी का कई बार विवाह करना और तलाक देना मेरे लिए, हाय, कितना भयंकर है! ऐसा व्यक्ति पशु है, राक्षस है।

"तलाक़-प्रथा को एकदम रोक दो, यही इसका सरल हल है। दो गम्भीर व्यक्ति ही वर्षों के त्याग और तप के बाद विवाह कर सकें, ऐसी प्रथा चला दो। अगर लड़के-लड़कियों को बचपन से विवाह का सच्चा आदर्श बतला दिया जाय और उसकी गम्भीर जिम्मेदारी उन्हें समझा दी जाय, तो वे कभी ऐसी भयंकर ग़ल्तियां न करेंगे।"

स्वयं काउन्ट कीसरलिंग एक सुखी पति और दो बालकों के सफल पिता हैं। अपने वैवाहिक जीवन के आरम्भ से वह प्रतिदिन प्रेम की सच्ची झांकी का गम्भीरतापूर्वक दर्शन और मनन करते रहे हैं।

"विवाह प्रेम-पदार्थ रहे या जीवन की सुविधा का साधन ?" इस का उत्तर देते हुए अपने एक मित्र से उन्होंने कहा था—

"प्रेम ही विवाह का न्याय्य कारण है। कई लोग ऐसे हैं जो क्षणिक विकारों के वश विवाह कर लेते हैं, अथवा घर जमाने या ऐसी ही किसी घृणित तुच्छ इच्छा के वश। विवाह का आधार तो होना चाहिए, निष्काम शुद्ध प्रेम !"

भारतवर्ष के कितने शिक्षित और अशिक्षि
में आज ऐसे पवित्र ध्येय को सामने रख कर वि
किये जाते हैं ? ज़रा अपने हृदय टटोल कर दे
तो ? क्या महात्मा गांधी के इन ३५ वर्षों के
जागते उदाहरण से हम विवाह के संबंध में
सीख नहीं ले सकते ? राम और बुद्ध तो दूर
अगर महात्माजी का ही सबक़ हम पढ़ लें, तो दु
का सच्चा सुख और अटूट संपत्ति हमारी हो
रहने लगे।

ईश्वर हमें बल और बुद्धि दे कि हम इस आ
तक उठने में सफल-प्रयत्न हों।

काशीनाथ नारायण त्रिवे

संतति-निग्रह

दुःख के साथ कहना पड़ता है कि बाल-ब्रह्म
और संतति-निग्रह के आदि-पुरुष भीष्मपितामह
संतान भी ब्रह्मचर्य को हानिकारक मान कर यू
की नक़ल करने जा रही है ! संतति-निग्रह के उ
और साधनों के बारे में भी भारतीयों के तीन दल
गये हैं। प्रथम दल वह है, जो सन्तति-निग्रह के
स्वाभाविक संयम या ब्रह्मचर्य ही को सर्वोत्कृष्ट मा
है और सब कुछ सहन करके भी इसके पीछे पड़ा हु
है। दूसरा दल वह है, जो स्वाभाविक संयम को उ
वस्तु मानता तो है परन्तु जब मनुष्य से ब्रह्मचर्य
निभे तो कृत्रिम उपायों द्वारा संतान-वृद्धि रोकने
सलाह देता है। अथवा, दूसरे शब्दों में, ज़रासी क
नाई पड़ते ही कृत्रिम साधनों की शरण ले सकता
तीसरा दल वह है, जो ब्रह्मचर्य को स्वास्थ्य के
हानिकारक बताता है और कृत्रिम उपायों को
सन्तान-वृद्धि रोकने का उत्तम साधन बताता है।

प्रथम साधन में कठिनाइयाँ बहुत हैं । परन्तु सी काम के कठिन होने के कारण मनुष्य उसको ड़ तो नहीं देता । ब्रह्मचर्य की महत्ता पर अनेक स्तकें लिखी जा चुकी हैं । मुझे यहाँ ब्रह्मचर्य की हत्ता लिखने की आवश्यकता नहीं है—क्योंकि, से प्रत्येक भारतवासी जानता है । परन्तु इतना कह कता हूँ कि ब्रह्मचर्य अपने गहन भाव में भी कठिन ी है, नितान्त असम्भव नहीं है । हमारे यहाँ तो सके अनेक प्रमाण हैं । कितने ही बाल-ब्रह्मचारी हो ये हैं । उदाहरणार्थ भीष्म, हनूमान, परशुराम इत्यादि । रन्तु नई रोशनी के नवयुवक कह उठेंगे कि हम इन क़िस्सों पर विश्वास नहीं करते । अच्छी बात है, मत रिए । अभी हाल के उदाहरणों को तो मानिएगा ? कहिए स्वामी दयानन्द सरस्वती तो बाल-ब्रह्मचारी ? परमहंस रामकृष्ण बालब्रह्मचारी थे ? पर बाल-ह्मचारी की शारदामणि कैसी ? परन्तु उन्हीं शार-मणि के पति का शरीर प्रगाढ़ निद्रा में सोते हुए ी स्त्री के स्पर्श-मात्र से संकुचित हो कर धनुषाकार जाता था । अभी अध्यापक राममूर्ति ब्रह्मचर्य के कृष्ट वाटिका के सर्वोत्तम फल वर्तमान हैं ।

पाठक यों न घबराइए कि हम बाल-ब्रह्मचारी ा हैं नहीं, अब ब्रह्मचर्य रखने से क्या लाभ ? नहीं । था—

मरणं बिन्दु पातेनं, जीवनं बिन्दु धारणात् ।
तस्मादति प्रयत्नेन, कुरुते बिन्दु धारणम् ॥
सिद्धे बिन्दौ महारत्ने किं न सिद्धयन्ति भूतले ।

(शिव-संहिता)

भाव यह है कि वीर्य धारण करना जीवन और र्य-क्षय होना ही मृत्यु है, इसलिए कोशिश करके ह्मचारी बनना चाहिए और वीर्य का संचय करने ले के लिए संसार में कोई कार्य करना असम्भव नहीं है । अंग्रेजी में कहा है— It is never too late to mend (सुधार करने के लिए कभी देर नहीं है) । ब्रह्मचर्य के लाभ शारीरिक और सामाजिक ही नहीं हैं, परन्तु यह पारलौकिक फल भी देता है । यथा—'यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति' (गी० ८, ११.) (मोक्ष प्राप्त करने की इच्छा वाले ब्रह्मचर्य धारण करते हैं ।) तो जब यह मार्ग कल्याणकारी है, तो अवश्य इसपर चलना चाहिए । मेरा तो विश्वास है कि कल्याणकारी मार्ग पर आचरण करने से केवल लाभ ही लाभ है । क्या हुआ यदि आप ब्रह्मचर्य के शिखर पर न पहुँचे ? आपको कुछ न कुछ लाभ अवश्य होगा । देखिए, भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं—

"पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
नहि कल्याण कृत्कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति ।

(गीता, ६. ४०)

अर्थात्, हे पार्थ ! क्या इस लोक में क्या परलोक में, ऐसे पुरुषों का कभी विनाश होता ही नहीं; क्योंकि, हे तात, कल्याणकारक कर्म करने वाले पुरुष की कभी दुर्गति नहीं हो सकती ।

अब दूसरे दल को लीजिए । इन लोगों का कहना है कि सर्व-साधारण के लिए एक संतान पैदा करके ब्रह्मचारी बन जाना संभव नहीं है । उदाहरण के लिए भारत की विधवाओं का दृष्टांत देते हैं । एक पुस्तक-कार ने Practical & Theoratical (व्यावहारिक और सैद्धान्तिक) की दुहाई देकर बहुत कुछ लिख मारा है । उन्होंने विधवाओं को कृत्रिम निरोध के उपाय व्यवहार में लाने का आदेश किया है । मैं नहीं समझता कि लेखक महोदय का विचार विधवाओं से गुप्त व्यभिचार कराने का है या उनको सन्मार्ग पर आरूढ़ करने का । यदि वे अपने को न रोक सकें, और ब्रह्मचर्य न निभा सकें तो उनके लिए गुप्त व्यभिचार की अपेक्षा तो शादी कर लेना ही अच्छा होगा । कुछ महाशय कहेंगे कि तब संतान-

वृद्धि कैसे रुके ? तो क्या यही आवश्यक है कि शादी होतें ही स्त्रियाँ बच्चा पैदा करने की मशीन बना ली जायँ ? यहाँ पर गांधीजी के अमूल्य शब्द उद्धृत करना उपयुक्त होगा—

A Society that has alredy become enervated through a variety of causes will become still more enervated by the adoption of artificial methods. Those men, therefore, who are light-heartedly advocating artificial methods cannot do better than study the subject afresh, stay their injurious activity and popularise Brahmacharya both for the married and the unmarried. That is the only noble and straight method of Birth-control.*

अथात्, एक समाज, जो अनेक कारणों से दुर्दशाग्रस्त है, कृत्रिम साधनों का उपयोग करके और भी दुर्दशाग्रस्त हो जावेगा। इसलिए जो लोग कृत्रिम साधनों का वे समर्थन कर रहे हैं उनको चाहिए कि इस विषय का त्रे फिर से मनन करें, अपना क्षतिपूर्ण कार्यक्रम रोकें और विवाहित और अविवाहित दोनों के लिए ब्रह्मचर्य का प्रचार करें। सन्तान-निग्रह का यही भव्य और सीधा रास्ता है।

और क्या कहें, हमारे एक लेखक ने कृत्रिम उपायों के उपयोग पर एक पुस्तक ही लिख डाली है और एक सुन्दर पुस्तक को उसमें उस पुस्तक के उपलब्ध होने का पता बतला कर कलंकित कर डाला है।

× × ×

Let those who are eager to see the births regulated explore the lawful means devised by the ancients and try to find out how they can be revived.*

अर्थात्, संतति-निग्रह के इच्छुकों को प्राचि बताये हुए उपयुक्त नियमों को ढूँढ़ निकालना और उनके प्रचार के उपाय सोचना चाहिए।

× × ×

गाँधीजी कहते हैं—'मैंने गम्भीरतम विचार भी यही तय किया है कि कम से कम भारत के कृत्रिम निरोधों की किसी भी दशा में आवश्य नहीं है। जो भारत के लिए उनका उपयोग लाभ बताते हैं वे या तो भारत को जानते ही नहीं भारतीय दशा को तुच्छ समझते हैं।'

यह कहना कि सर्व-साधारण के लिए ब्र संभव नहीं है, युक्ति-संगत नहीं प्रतीत होता। विषय में तो गांधीजी स्वयं एक आदर्श हैं। अपनी पत्नी से राय लेकर ब्रह्मचर्य धारण कर है। अभी हाल की लंका की एक घटना उद्धृत योग्य है। वहाँ पर एक दिन एक यूरोपियन के पूछने पर गांधीजी ने कहा–'हाँ, वह मेरी मा दूसरे दिन सुबह सभा में श्रीमती गांधी को न लोगों ने पूछना शुरू किया कि 'माता क्यों नहीं गांधीजी ने कहा—"रात को एक महाशय भूलसे गांधी को मेरी माता समझ गये, परन्तु मेरे लिए उनके लिए भी यह केवल क्षम्य भूल ही नहीं है, एक आदरणीय भूल है। क्योंकि हम दोनों से यह पिछले कई सालों से मेरी स्त्री नहीं लगभग ४० वर्ष पूर्व मैं अनाथ हो गया और ३० वर्ष से उन्होंने मेरी माता का भार लिया वह मेरी माता, दाई, रसोइया, और बरतन करने वाली और ऐसे ही और काम करने वाली यदि इस समय वह मेरे साथ मेरी प्रतिष्ठा में लेने आतीं तो मैं दिन भर भूखा रहता और मेरे और आराम की ओर कोई ध्यान न देता। लिए हम लोगों ने संधि करली है कि प्रतिष्ठा

---

* Young India, 12-3-25.

गी और कष्ट उनका रहेगा।” साधारण पाठकों यह ध्यान रखना चाहिए कि यह भी आदमी । क्या मैं आशा करूँ कि मेरे पाठकों में अधिकांश बात को मानकर इसपर आचरण करेंगे ?

अब तीसरे दल को लीजिए। इसके लाभों को दि विचार पूर्वक लिखने लगें तो एक पोथा बनजाय। क नहीं अनेक पुस्तकें पाश्चात्य विद्वानों ने इस विषय र और कृत्रिम निरोध के लाभों पर लिख डाली हैं। भों को तो ‘त्यागभूमि’ के पिछले एक अंश में होदयजी ने गिनाही दिया है, मुझे लिखने की आव-कता नहीं। फिर भी सर्व-साधारण की जानकारी लिए कुछ तो अवश्य लिखूंगा।

पहले-पहल ये लोग कहते हैं कि इन्द्रिय–निरोध स्वास्थ्य को हानि होती है। हमारे ऋषियों ने तो नेक प्रमाण इस दावे के विरुद्ध दिये हैं और सब ग उनको जानते भी हैं, इसलिए उनको लिखने की वश्यकता नहीं। इनके विरुद्ध कुछ पाश्चात्य विद्वानों मत देने की इच्छा करता है।

ट्यूवेगन विश्वविद्यालय के अध्यापक श्री आस्टर-न लिखते हैं—

The sexual instinct is not so blindly ll-powerful that it cannot be controlled nd even subjugated entirely, by moral trength and reason. ××× He (young an and woman) must know that robust ealth and ever renewed vigour will e the reward of this voluntary sacrifice.

अर्थात्, कामाग्नि ऐसी सर्वशक्तिमान नहीं है कि यह नैतिक शक्ति और विचार द्वारा पूर्ण रूप से-बस में आ सके (नवयुवक और युवतियों को जानना चाहिए कि इस आत्मबलिदान का फल हृष्ट-पुष्ट शरीर और उत्साह-पूर्ण शक्ति है)।

दूसरी अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य परिषद् का सर्व-सम्मति से पास किया हुआ प्रस्ताव (II General Congress of the International Congress of Sanitary at Brussels in 1902, present 102 members.) इस प्रकार है:—

Young men must above all be taught that chastity and cotinence are not only not harmful but also that these virtues are among those to be most earnestly recommended from the purely medical and hygienic standpoint.

अर्थात, नवयुवकों को सर्वप्रथम यह सिखाना चाहिए कि शुद्धता और इन्द्रिय-निरोध केवल क्षति-रहित है और यह भी कि वैद्यक और आरोग्य-शास्त्र की दृष्टि से यह उन गुणों में से है जो मनुष्य के लिए आवश्यक बताया जाता है।

क्रिश्चेनिया विश्वविद्यालय के आयुर्वेदिक विभाग की सर्वसम्मति द्वारा स्वीकृत घोषणा है—

(Unanimous declaration of the Medical Faculty of Christania University).

The assertion that chaste life will be prejuducial to health rests, according to our unanimous experiance, on no foundation. We have no knowledge of any harm resulting from a pure and moral life.

अर्थात, हम सब लोगों को अनुभव द्वारा सिद्ध हो चुका है कि “शुद्ध जीवन स्वास्थ्य के लिए हानिकर है” यह कहना वेबुनियाद है। हम लोगों को इस बात का कुछ भी ज्ञान नहीं है कि शुद्ध और नैतिक जीवन व्यतीत करने से कोई क्षति है।

यह प्रमाणित हो गया है कि ब्रह्मचर्य स्वास्थ्य

के लिए हानिकर नहीं है। अब एक पश्चिमी विद्वान् की राय कृत्रिम निरोध (Artificial check) के बारे में देखिए।

श्री देयर कहते हैं—"यह (कृत्रिम निरोध) इन्द्रिय-निग्रह के विवेक-पूर्ण आशय को हटा देता है और विवाह के पश्चात् इस विलासिता की सीमा इच्छा कम होने पर या अवस्था अधिक होने पर ही निर्धारित होती है × × × इससे अव्यवस्थित गड़बड़ और निष्फल विवाह होते हैं जो नये विज्ञान, समाजनीति और राजनीति की दृष्टि से भी भयानक परिणाम से भरे हुए हैं। × × × इतना कहना पर्याप्त है कि गर्भ-निरोध से वैवाहिक सम्बन्ध और उसके नियमातीत विलासिता का मार्ग सरल हो जाता है और व्यक्तिगत और राष्ट्रगत विपत्ति आये बिना न रहेगी।

तिसपर भी यह पाशविक इच्छा कहीं कम होती है? यह तो भोग से और बढ़ती ही है। यथा—

न जातु कामः कामानांमुपभोगेन शाम्यति ।
हविषा कृष्णवर्त्मैव भूयएवाभिवर्धते ॥

(मनु० २ । ६४ । म० भा० अ० ७५ । ४६)

अर्थात्, सुखों के उपभोग से विषय-वासना की तृप्ति तो होती ही नहीं किन्तु विषय-वासना दिनों दिन उसी प्रकार बढ़ती जाती है, जैसे अग्नि की ज़्वाला हवन-पदार्थ से बढ़ती है।

तीसरे दल के जितने फ़ायदे हैं, उनसे कई गुना ज़्यादा ब्रह्मचर्य द्वारा सन्तति-निग्रह करने से होंगे। और ब्रह्मचर्य द्वारा सन्तति-निग्रह करना सम्भव है। और फिर ऐसे सन्तति-निग्रह से लाभ ही क्या? जब कि संसार के शुद्ध जीवन (Chastity) और सदाचार का लोप ही हो जावेगा। शुद्ध जीवन की प्रशंसा में मिल्टन कहता है—

So dear to heaven is chastity.
That when a Soul is found sincer
Thousand liveried angels hackey

अर्थात्, एक पवित्र आत्मा की सेवा सहस्र दूत किया करते हैं।' शुद्ध जीवन व्यतीत मन अपने स्थान पर और अपने ही अंदर स्व नरक निर्माण कर सकता है। यथा :—

'ब्रह्मचर्येणतपसा देवा मृत्युमुपा हरन्'

(ब्रह्मचर्य से देवताओं ने मृत्यु पर विजय कर लिया) इसलिए संतति-निग्रह के लिए ब्र ही सबसे श्रेयस्कर मार्ग है। नवयुवकों का काम का प्रचार करना है।

If evry one looks for his own mation How very easy to reforma

अर्थात्, अपना-अपना सुधार सब करने लगें राष्ट्र को सुधारना कितना सरल हो जायगा। अ नवयुवकों का कर्तव्य स्वयं ब्रह्मचारी बन कर ब्र का प्रचार करना है। पाठकवर्ग यदि अपने और कुटुम्ब के प्रत्येक स्त्री-पुरुष का ध्यान इस की ओर दिला सकें और ब्रह्मचर्य की महत्ता ब उनको सन्मार्ग पर ला सकें, तो देश का कितना कार हो सकता है! सचमुच वे ही माता के ऋ मुक्त होंगे। क्या हुआ यदि वे विवाहित हैं; विव के लिए गांधीजी का आदर्श अच्छा है।

जो लोग इस विषय को और पढ़ना चाह उनके लिए निम्नलिखित पुस्तकें और लेख उ सिद्ध होंगे—

पुस्तकें

१. आदर्श ब्रह्मचर्य (हिन्दी); गीता-प्रेस (गोरख

२. ब्रह्मचर्याश्रम (उर्दू); भारत लिटरेचर क लाहोर।

३. ब्रह्मचर्य ही जीवन है (हिन्दी); पता ठीक
ूम नहीं है, पर प्रयाग के पुस्तक-विक्रताओं से
ा हो सकती है।

लेख

गांधीजी के 'ंग इण्डिया' के लेख (1)
owards moral Bankruptsy (in
ll chapters) (2) In confidence, Oct.
, 20. (3) Birth control, March 12, 25,
) Some arguement, 2nd April 25 con-
ered (5) Truth Brahmacharya. Feb.
. 26. (6) On Brahmacharya April 29-
26. 'नवजीवन के २५ मई सन् २४ के और २६
वरी २६ के अंक में भी कुछ लिखा गया है। महोद-
ी के कथनानुसार गांधीजी ने भी कोई नई पुस्तक
यम और विलास' नाम की लिखी है। *

शिवप्रसादसिंह विश्वेन

ख़बर है कि काठियावाड़ की लीम्बड़ी रियासत में नीचे
सुधार करने पर विचार हो रहा है—

(१) मृत पुरुष की अर्थी के साथ कोई स्त्री-पुरुष
वे।

(२) अन्त्येष्टि क्रिया रियासत की आज्ञा लिये बिना
न करे।

(३) लड़के-लड़कियों का विवाह क्रमशः १७ और १३
की उम्र में हो।

---

* टॉल्स्टॉय के The Relation of the saxes का
ुवाद (स्त्री और पुरुष) भी इस विषय में बड़ी उपयोगी
क है।

'संयम और विलास' महात्माजी के उपर्युक्त लेखों का
क रूप में संग्रह है। अंग्रेज़ी में इस पुस्तक का नाम Self
ntrol Vs. Self Indulgence है। हिन्दी अनुवाद
ी पुस्तक रूप में प्रकाशित नहीं हुआ है। सं०

रूसी बहनों की प्रगति

साम्राज्यवादियों ने रूस को एक हव्वा-सा बना रक्खा है। उनकी ऐजेन्सियों से उसकी जो भी ख़बरें आती हैं, वे हरएक कुछ ऐसे रंग में रंगी होती हैं कि हम एकाएक चौंक उठते और भय, कुतूहल एवं आशंका की दृष्टि से ताकने लगते हैं। लेकिन, जो वहाँ होकर आये हैं अथवा जिन्होंने वहाँ की परिस्थिति का विशेष अध्ययन किया है, उनका कहना है कि, वस्तुतः बात ऐसी नहीं है। अक्तूबर १९१७ की महाक्रांति से पहले, ज़ार के समय, जो रूस था, आज वह उससे कहीं अधिक उन्नत, समृद्ध और सुव्यवस्थित हो गया है। रूसी बहनों ने तो निश्चय ही ख़ूब प्रगति की है।

अलेक्जेंडर राकोवस्की का कहना तो यह है कि "अक्तूबर (१९१७) की रूसी महाक्रांति के बाद के इन दस वर्षों में यहाँ स्त्रियों के दर्जे में बड़ा भारी परिवर्तन हुआ है। ज़ारशाही के समय तो मुल्की या राजनैतिक जीवन में उनका कोई भाग न था; किन्तु आधुनिक रूस में तो वे अपनी यूरोपीय अथवा संसार के किसी भी दूसरे देश की बहनों से आगे बढ़ी हुई हैं।"

इसमें शक भी क्या ? आज तो रूस में स्त्रियों की सर्वतोमुखी प्रगति ही चहुँओर दृष्टिगोचर हो रही है। घर या बाहर का कोई ऐसा क्षेत्र नहीं कि जिसमें उन्होंने पदार्पण न कर रक्खा हो।

पुरुष और स्त्री का दर्जा वहाँ बराबर का है। स्त्रियों को क़ानूनन पुरुषों की पूर्ण समानता प्राप्त है। घर में वे कुटुंबियों की मातहत नहीं हैं। विवाह और कुटुंब सम्बन्धी जनवरी १९१७ के नये क़ानून के मुताबिक 'सरकार और समाज के हित एवं पति-पत्नी तथा

बालक के वैयक्तिक और भौतिक हितों की सुरक्षा के उद्देश से विवाहों की रजिस्टरी कराना आवश्यक है। मुक्त-विवाह (Civil marriage) का आम रिवाज है; धार्मिक विवाह निजू बात मानी जाती है, और उसका निर्णय व्यक्तियों पर ही निर्भर है। विवाह की औसत आयु १८ वर्ष है। विवाह के बाद भी स्त्री अपना व्यक्तित्व रख सकती है। पुरुष-स्त्री दोनों इस बात के लिए स्वतन्त्र हैं कि कौन किसके नाम पर अपने नाम बदल ले अथवा न भी बदले। विवाह से पहले की अपनी-अपनी सम्पत्ति भी दोनों की अलग-अलग ही रहती है और कौटुम्बिक संपत्ति के शासन का दोनों को समानाधिकार है। क़ानूनन् कोई एक दूसरे की संपत्ति को हज़म नहीं कर सकता। इसी प्रकार समाज और शासन में भी उन्हें समानाधिकार प्राप्त है। पुरुषों ही के समान वे मत भी दे सकती हैं और पदाधिकारिणी भी हो सकती हैं।

अपने शासन-प्रबन्ध में रूसी बहनें पुरुषों के समान ही भाग ले रही हैं। शहर और क़स्बों की सोवियट संस्थाओं के सदस्यों में १५ सैकड़ा स्त्रियां हैं। यही नहीं, सोवियट कांग्रेसों में प्रतिनिधि-रूप में भी वे शामिल होती हैं और सार्वजनिक हित के कामों--ख़ास कर शिक्षा तथा जन-सेवा के विभागों में--वे कमिश्नरों के रूप में भी कार्य करती हैं। और तो और, सैनिक विभाग में भी उनका प्रवेश है। जनरल स्टाफ़ स्कूल से उच्च सैनिक-शिक्षा प्राप्त करके वे ऊँचे फ़ौजी पदों तथा दूसरे देशों की राजदूती का भी काम करती हैं। अलेक्ज़ेण्डर कोलनटाई नामक महिला नारवे और मेक्सिको में सफलता-पूर्वक दूत का काम कर चुकी हैं।

लेनिन ने कहा था—"श्रमजीवी और कृषिकारों के प्रजातंत्र में प्रत्येक नागरिक को सुशिक्षित होना चाहिए, और सुशिक्षित भी ऐसा कि राज्य के हितों को वह समझ सके और उनकी रक्षा कर सके इसके अनुसार स्थानिक सोवियटों में ही राजनैतिक शिक्षा का आरम्भ हो जाता है; स्त्रियां वाद-विवाद में ही नहीं, बल्कि गाँव या के शासन-प्रबन्ध में भी भाग लेने लगती हैं। चूँकि वहाँ हरएक स्त्री को समय-समय पर अपने का ब्योरा देना होता है, इसलिए वहाँ से वे राज जीवन की आदी हो जाती हैं। अलावा इसके जनिक न्यायालयों में भी न्यायाधीश और श्रम हलचलों की पंच के रूप में वे काम करती हैं।

उद्योग-धन्धों में भी उनका काफ़ी भाग रूस में सन् १८७० से पहले बड़े पैमाने पर तैयार होना शुरू हुआ था और तभी से रूसी पुरुषों के साथ-साथ इसमें भागीदार हो रही १८९७ की मर्दुमशुमारी के मुताबिक रूस के धन्धों में ५५ लाख तो पुरुष काम करते थे १५ लाख स्त्रियां काम करती थीं। श्रमी- १९१३ की रिपोर्ट से पता चलता है कि उस जितने व्यक्ति फ़ैक्टरियों में काम करते थे उनमें प्रति सैकड़ा स्त्रियां थीं। यूरोपीय महासमर के स्त्री-कार्यकर्ताओं का औसत और बढ़ गया। में रूस के श्रमियों में उनका भाग ४०.२ प्रति होगया और तब से बराबर बढ़ रहा है। प्राची के कुल ३८ में से ३१ प्रान्तों में ४२.८ १९१८ में ही पहुँच चुका था।

अक्तूबर की महाक्रान्ति के बाद तो में भी ख़ूब तरक्की हुई है। ज़ारशाही में तो क़ानूनी थे और इसलिए उनका अस्तित्व गुप्त पर १९२५ में इन श्रमीसंघों में कुल ६६, सदस्य थे। इनमें से स्त्रियाँ कितनी थीं? १६,८ —कुल का २५.५ प्रति सैकड़ा! बुनाई के मजूरों में ५३.९ प्रति सैकड़ा स्त्रियां थीं; कपड़ा

में ५७.५ प्रति सैकड़ा थीं, और क्लर्कों में ३८ प्रति सैकड़ा थीं। इसी वर्ष जर्मनी, फ्रांस और ग्रेटब्रिटेन के श्रमी-संघों के सदस्यों में स्त्रियों की संख्या थी कुल का केवल २१.८.१०.३ और १५.१ प्रति सैकड़ा ! कितना अन्तर है !!

ग़रीब और मध्यम श्रेणी के कृषकों के संघटन में भी स्त्रियां अच्छा भाग लेती हैं। और कृषि-कार्य-कर्ताओं के संघों के सदस्यों में $\frac{१}{७}$ भाग उन्हींका है। सहोद्योग समितियां वहां खूब प्रगति पर हैं और उनमें स्त्रियों का खूब भाग है। उनके चौथाई अधिकारी तो स्त्रियां ही हैं। कोई स्त्री एक छोटे से पद से कार्य आरम्भ करती है और धीरे-धीरे सर्वोच्च पद को प्राप्त कर लेती है।

इन्हीं सब बातों का यह परिणाम है कि शैशव और प्रसव संबंधी क़ानूनों में स्त्रियों के हितों का पूरा ख़याल रहता है और इस दृष्टि से रूस किसी भी दूसरे देश से बढ़ा हुआ है। तलाक़ देना वहाँ बहुत सरल है। परन्तु बच्चों पर ऐसी बातों का कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ने दिया जाता। वैध और अवैध सब बालकों को वहाँ एकसमान माना जाता और समान-रूप से ही दोनों की रक्षा की जाती है। तलाक़ के बाद भी पिता बच्चों के पालन-पोषण और शिक्षा के लिए ज़िम्मेदार होता है, बशर्ते कि उसका पता हो और उसकी शादी की रजिस्टरी हुई हो।

इस प्रकार आज रूसी बहनें भूमण्डल के सब देशों से आगे बढ़ रही हैं। और यह सब हुआ कैसे? राकोवस्की के कथनानुसार अपनी सामाजिक और राजनैतिक समानता के लिए स्त्रियों ने अपनी समितियां संगठित कीं, जिनका उद्देश्य व्याख्यानों और वाचनालयों द्वारा स्त्रियों में से अज्ञान का नाश करना था। गत कुछ वर्षों में पाँच लाख से अधिक स्त्रियों ने लिखना-पढ़ना सीखा है और उसके साथ-साथ राजनैतिक शिक्षा भी प्राप्त की है। फ़ैक्टरी और कारख़ानों के साथ-साथ उनकी शिक्षा के लिए तरह-तरह के स्कूल भी जगह-जगह मौजूद हैं, जिनमें सब राष्ट्रीयता वाली स्त्रियां पढ़-लिख सकती हैं। हाल में तो बहुत सी स्त्रियां वकील, डॉक्टर, एंजिनीयर आदि होकर निकली हैं। उधर साम्यवादी दल की स्थानिक समितियों के स्त्री-विभाग स्त्रियों संबंधी क़ानूनों के पालन और स्त्री-बच्चों की पूरी-पूरी रक्षा के लिए सदैव सतर्क और प्रयत्न-शील रहते हैं। और ये विभाग न केवल अपने दल ही में बल्कि बाहर की स्त्री-मजूरों के संघटन में भी बड़ी मुस्तैदी दिखा रहे हैं। रूस के पूर्वीय भाग में तो इनकी तत्परता खूब बढ़ी हुई है, जहाँ कि महा-क्रांति से पहले स्त्रियां अपने पतियों की बिलकुल दासी थीं। इस महाक्रान्ति से रूस के यूरोपीय भाग में तो स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ ही, लेकिन मध्यएशिया की सोवियट प्रजातन्त्र में स्त्री-पुरुष की समानता घोषित हो जाने पर तो सारे में हलचल मच गई है। असम्भव नहीं कि एशिया पर भी इसका गहरा प्रभाव पड़ेगा।

हमारा देश भी एशिया ही में है, और हम भी प्रगति-पथ पर चलने के इच्छुक हैं। अतः रूसी बहनों की इस प्रगति से हमें स्फूर्ति प्राप्त करनी चाहिए। क्या हमारी बहनें ऐसा करेंगी?

एक भारतीय

सोवियट राज्यों (रूस) की जन-संख्या में एक-सौ से अधिक भिन्न-भिन्न जातियों का सम्मिश्रण है। इन जातियों में कितनों की भाषा भी अलग हैं। फिर भी सोवियट शासन में जन-संख्या के अन्दर १.६ फ़ी सदी की वृद्धि हुई है। और शिक्षा का यह हाल है कि सन् १९२० में हज़ार पुरुषों पीछे ६१७ पढ़े लिखे थे और स्त्रियों में हज़ार पीछे ३३६ पढ़ी-लिखी थीं।

स्फुट प्रसंग

समाज और स्त्रियां

एक फ्रेञ्च आदर्शवादी का कहना है कि किसी देश या समाज की उन्नति-अवनति का पता इसीसे लगता है, जैसी कि वहाँ पर स्त्रियों की सामाजिक और राजनैतिक दशा होती है। यह नियम चाहे अनिवार्य न हो; फिर भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि यह एकदम ग़लत भी नहीं—वस्तुतः इसमें बहुत कुछ सचाई है । और इसमें ज़रा भी सन्देह नहीं कि आज हमारी जो हीन दशा है, उसका सब नहीं तो एक कारण स्त्रियों के प्रति हमारा व्यवहार भी अवश्य है ।

इसमें शक नहीं कि गार्हस्थ्य शान्ति के लिए पुरुष और स्त्री इन दो वर्गों में से किसी एक वर्ग को दूसरे एक वर्ग के थोड़ा-बहुत अधीन ज़रूर रहना पड़ेगा । लेकिन इसका यह मतलब नहीं, जैसा कि आज हो रहा है । जहाँ यह सब परस्पर के प्रेम-सहानुभूति और श्रद्धा-भक्ति का सौदा होना चाहिए, वहाँ आज तो 'पैदायशी हक़' के नाम पर यह मात्र ज़बर्दस्ती और बाध्यता का अवाञ्छनीय रूप धारण किये हुए है ! आज तो हम पुरुषों ने स्त्रियों को अपनी क्रीत-दासी मान रक्खा है—ऐसा मालूम पड़ता है, मानों उनके अपने लिए नहीं बल्कि हम पुरुषों के लिए ही उनका अस्तित्व है !

सुभाष बाबू की घोषणा

नवीन भारत यह सब देखकर क्षुब्ध हो उठा है । वह चाहता है कि अबतक जो हुआ सो हुआ, लेकिन अब तो ऐसी स्थिति कदापि न रहे । इसीलिए महात्माजी, लालाजी जैसे हमारे देश-पूज्य नेता आज स्त्रियों की दशा के सुधार पर ध्यान दे रहे हैं । तरुण बंगाल के होनहार नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस ने तो इस बात को और भी स्पष्ट किया है, जब कि महाराष्ट्र-परिषद् के अध्यक्ष पद से उन्होंने कहा—"समाज के अन्दर स्त्रियों का स्थान उच्च होना चाहिए और सार्वजनिक कार्यों में वे भी अधिक से अधिक और पूरी होशियारी के साथ भाग ले सकें, इसके लिए उन्हें शिक्षा दी जानी चाहिए ।"

सुभाष बाबू पश्चिम के अन्ध-अनुकरण के पक्षपाती हों, यह बात भी नहीं । वह तो कहते हैं—

‘ मैं यह नहीं चाहता कि भारतीय महिलायें अश
यूरोप और अमेरिका की स्त्रियों का अनुकरण करें।
कमीज़ों और छटे हुए बालों से मुझे ज़रा-भी प्रेम नहीं ।
विपरीत इसके, मेरा तो पूर्ण विश्वास है कि, भारतीय
का आन्दोलन हमारे राष्ट्रीय आदर्शों एवं परम्परागत
का पालन करते हुए अपना एक निराला मार्ग स्थिर करे

❀ ❀ ❀ किसी राष्ट्र के आधे भाग के लिए
असम्भव है कि अपने दूसरे आधे भाग की सहानुभूति
सहायता के बग़ैर वह स्वतंत्रता प्राप्त करले। प्रत्येक
में, स्वयं इंगलैण्ड के मज़दूर-दल में, स्त्री-संस्थाओं ने
सेवा की है। हमारे देश के भिन्न-भिन्न भागों में भी स्त्रियों
अनेक राजनैतिक संस्थायें हैं सही—पर, मैं यह कहने
साहस करता हूँ कि, सार्वदेशिक राजनैतिक आन्दोलन
के लिए अभी उनमें काफ़ी गुंजाइश है। स्त्रियों द्वारा
सञ्चालित संस्थाओं का सबसे प्रथम कर्तव्य तो यह
चाहिए कि स्त्रियों में वे राजनैतिक आन्दोलन का प्रसार
और भारतीय राष्ट्रसभा (कांग्रेस) की सहायक हों।
संस्थायें स्त्रियों में बड़ी फुर्ती से सामाजिक, बौद्धिक
नैतिक सुधार कर सकती हैं । बग़ैर ऐसी संगठित
के स्वदेशी और बहिष्कार जैसे महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमों में
पाना भी संभव नहीं । सच तो यह है कि हमारी
और बहनों के अन्दर के राष्ट्रीय भाव न केवल प्रत्यक्ष
हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन में ही सहायक होंगे बल्कि
रूप से हमारी राष्ट्रीय प्रगति की बाधाओं को भी
देंगे ।”

तथास्तु ! हमारे भाई-बहन सुभाष बाबू की बातों
ध्यान दें, तो क्या अच्छा !

विधवा-विवाह

वैधव्य बुरा नहीं, बशर्ते कि बलात् न हो।
आज तो बलात् वैधव्य ही दृष्टि गोचर होता है। यही
है कि आज विधवा-विवाह और भी आवश्यक हो गया
क्योंकि बलात्कार आम तौर पर संयम का रूप धारण
करता; और, उस दशा में, अच्छाई के बजाय इससे
की ही संभावना रहती है । यही आज हो भी रहा है।

विधवायें संयम-धर्म को कठिन समझती हों, उन्हें ज़ब्रन पुनर्विवाह से रोकने से समाज में सदाचार की रक्षा होगी, यह नहीं कहा जा सकता। क्योंकि आजकल विधवाओं में जितना दुराचार फैला हुआ है, वह किसी से छिपा नहीं है। अभी हमने उस दिन एक नौजवान विधवा की कहानी सुनी। वह अपने आपको संयम का पालन करने में बहुत असमर्थ पाती है, पर सम्बन्धी पुनर्विवाह नहीं करने देते। फलतः अपने देवर से उसका गुप्त सम्बन्ध हो गया और अब वह गर्भवती है। ज़ाहिरा वह अब भी विधवा है; पर जो जान गये हैं, वे उसकी थू-थू करते हैं। ऐसी ही और भी घटनायें सुनने में आती रहती हैं। बताइए, यह स्थिति अच्छी है या पुनर्विवाह करके शान्तिपूर्ण गृहस्थी बनना अच्छा है ?

रही शास्त्रों की बात। सो, हर बात में शास्त्रों की आज्ञा की अपेक्षा करना हमेशा फ़ायदेमन्द नहीं होता। अपनी बुद्धि से भी हर बात को सोचने की आदत हमें ज़रूर डालनी चाहिए। शास्त्र धर्म-पालन के लिए ही तो है। भला वह धर्म कैसा, जिससे पाप बढ़ता हो और समाज पतित होता हो ? इस तरह विवेक-बुद्धि को लेकर यदि हम शास्त्रों को देखेंगे तो वे हमें उचित सलाह ही देंगे। किसी विषय में यदि हमें शास्त्राधार न मिले तो यह शास्त्रों में नहीं है, यह कह कर चुप नहीं बैठना चाहिए। अपनी विवेक-बुद्धि पर विश्वास करके हमें कूद पड़ना चाहिए।

कुछ समय पूर्व काशी के 'आज' में श्री हरिप्रसाद पालधि महाशय के इस विषय पर लेख प्रकाशित हुए थे। उन्होंने विभिन्न पुराणों, मनुस्मृति और महाभारत के श्लोक उद्धृत करके यह सिद्ध किया है कि विधवा-विवाह शास्त्र-सम्मत है। जिन्हें इच्छा हो वे गत ७ व ८ दिसम्बर के 'आज' में इन लेखों को पढ़ सकते हैं और शास्त्रों को भी देख सकते हैं। परन्तु कोई शास्त्रों का नाम सामने रख करके किसी महत्वपूर्ण प्रश्न को न टाले। इस प्रकार अब तो यह बाधा भी सहसा सामने नहीं आती। अब भी यदि हम इसमें न-नु-नच करते रहें, तो यह दुर्भाग्य की बात है।

परदा और बहुपत्नीत्व

ये दो कुप्रथायें भी हमारे समाज को बड़ा खोखला कर रही हैं। आम तौर पर कहा यह जाता है कि ये प्रथायें मुसलमानों की सौग़ात हैं। कई मुसलमान भी इस बात को मानते हैं। उनका कहना है, इनका आधार बुराई से बचने के (Preventive) सिद्धान्त पर है। पर उस दिन कलकत्ते में, मुसलमानों की एक सभा के अध्यक्ष-पद से बोलते हुए, श्री एस. एम. ए. समद ने ज़ोरों से इस बात का विरोध किया। उन्होंने कहा—

शुद्धता और सदाचार से परदे का कोई सरोकार नहीं है। सतीत्व तो स्त्रियों में वैसा होना चाहिए, जो कि भारतीय नारीत्व की विशेषता है। सती-प्रथा की निर्दयता की हम कितनी ही बुराई करें, पर एक बात नज़र-अन्दाज़ नहीं की जा सकती; वह है भारतीय स्त्री की वह कवित्वमय भक्ति और वफ़ादारी, जिससे प्रेरित होकर पति की मृत्यु के बाद ही वह इस भावना के साथ अपने प्राणों का भी उत्सर्ग कर देती थी कि "जहाँ मेरा साथी है, मैं भी वहीं रहूँगी।" इस्लाम में न तो परदे का आदेश है, और न सिर्फ़ मुसलमानों ही तक यह परिमित है। रहा बहुपत्नीत्व, सो पवित्र क़ुरान बहुपत्नीत्व की इजाज़त देता है, इसलिए हम एक से ज़्यादा शादी करेंगे; यह कहना पाप है। अगर आप क़ुरान पढ़ें तो तुरन्त यह पता चल जायगा कि क़ुरान में बहुपत्नीत्व के बारे में क्या कहा है। उसमें इस सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, उसका तो स्पष्ट अर्थ यह है कि हमारा फ़र्ज़ है कि जब तक कोई असाधारण परिस्थिति उत्पन्न न हो हमें एक से अधिक पत्नी न रखनी चाहिए।

जो हो, यह निश्चय है कि ये प्रथायें फ़ायदेमन्द नहीं, उल्टे हानिकर हैं। और इसलिए समाज इनसे जितनी जल्दी मुक्त हो, उतना ही अच्छा।

मुसलमान बहनों की जागृति

हर्ष की बात है कि हमारी मुसलमान बहनें भी दिनों-दिन जागृत हो रही हैं। पिछले दिनों भोपाल में स्त्रियों की कला-प्रदर्शिनी हुई ही थी। हाल में बीजापुर कन्या-शाला की प्रधानाध्यापिका के सभापतित्व में हुबली में कर्नाटक की मुसलमान स्त्रियों की परिषद् हुई है। शिक्षा में कर्नाटक भारत का बहुत पिछड़ा हुआ प्रान्त है और मुसलमान स्त्रियों के सम्मिलन का यहाँ यह सबसे पहला अवसर है। यह

सब बताते हुए अध्यक्षा ने कहा कि भारत में सिर्फ़ १ प्रतिशत स्त्रियां शिक्षित हैं। मुसलमान स्त्रियों में तो यह तादाद और भी कम है। फ़ी ५००० स्त्रियों में सिर्फ़ १ स्त्री शिक्षित है। शिक्षा के लाभ बताते हुए उन्होंने कहा कि मातायें तो शिक्षिता होनी ही चाहिएँ। इससे स्वास्थ्य, आरोग्य और सफ़ाई में ही नहीं, बल्कि शिशु-वर्धन में भी उन्हें मदद मिलेगी, जो कि स्त्रियों का मुख्य कर्तव्य है। उन्होंने परदे की निन्दा की और घर में व्यायाम करने पर ज़ोर दिया।

बहनों का साहस

बारडोली सत्याग्रह में अब सरकार ने पठानों की सहायता से स्त्रियों पर भी ज़बर्दस्ती करना शुरू किया है। उस दिन सौ० मणिबहन को, उनके पति की अनुपस्थिति में, खूब सताया गया। बाहर का दर्वाज़ा बन्द था, इसलिए पठान घर के पिछले हिस्से से दीवार लांघ कर घुसा। मणिबहन दर्वाज़ा बन्द कर रही थीं, पठान ने धक्का देकर उसे खोल दिया। मणिबहन उस धक्के से गिर पड़ीं, फिर भी वह उन्हें बाहर घसीट ले गया और घर की तलाशी लेकर ज़ब्ती की। इसपर सत्याग्रहियों, ख़ासकर स्त्रियों में बड़ा जोश छाया है। उस दिन श्रीमती भक्तिबा के सभापतित्व में उन्होंने अपनी सभा करके इस कृत्य की घोर निन्दा की और सौ० मणिबहन को ऐसे समय धैर्य और शांति रखने के लिए अभिनन्दन किया। कई स्त्रियों के जोशीले भाषण हुए, जिनमें स्त्रियों से अपील की गई कि वे अपने कृत्यों से यह सिद्ध करदें कि वे अबला नहीं किन्तु सबला हैं। कुमारी मणिबहन ने कहा—'बहनो, तुम राजपूतनी बनो और जेल जा-जाकर बारडोली को चमका दो।' उधर एक वृद्धा ने, जिसे ज़ायदाद-ज़ब्ती का नोटिस मिला था, अपनी यह प्रतिज्ञा ज़ाहिर की है—

"मैं जो तय कर चुकी हूँ, उससे टल नहीं सकती। मेरे लिए ज़मीन के एक टुकड़े से प्रतिज्ञा का मूल्य कहीं अधिक है। अगर मेरी ज़मीन नीलाम हो जायगी तो मैं महात्माजी के चर्ख़े से गुज़र कर लूंगी। जेल का मुझे बिलकुल भय नहीं है।"

इस प्रकार सरकार के मदान्ध और क्रूर व्यवहार से हमारा भगिनी-समाज क्षुब्ध हो उठा है। क्या ही अच्छा हो कि बहन-भाइयों की यह प्रतिज्ञा दृढ़ साबित हो इस अन्याय का अन्त करके ही दम लें!

संयुक्त प्रान्त में स्त्री-शिक्षा

संयुक्त प्रान्त की शिक्षा-विषयक पञ्चवार्षिक हाल ही प्रकाशित हुई है। इससे मालूम पड़ता है १९२६-२७ में वहाँ पर स्त्रियों के लिए सब मिला १९८४ शिक्षणालय थे और ८१२८५ लड़कियाँ रही थीं। पाँच वर्ष के इस अरसे में सबसे महत्वपूर्ण यह है कि मुसलमान और अछूत जाति की लड़कियों संख्या बढ़ी है। मुसलमान लड़कियों की संख्या बढ़ी है और अछूत लड़कियों की संख्या १९२१-२२ में ४६४ थी वहाँ २२२[illegible] होगई। शिक्षकों की संख्या से बढ़ कर ३३४० हो गई है। इनमें ट्रेंड १९२२ में ५२५ थे वहां १९२७ में ७५० हो गये। कालेज की पानेवालियों की संख्या ३८ रही, मिडल और वालियों की १२३९ से बढ़ कर २०४५ हो गई। श्रेणीवालियों की संख्या इन पाँच वर्षों में दूनी पर उनमें हिन्दू व ईसाई ही ज्यादा हैं—मुसलमान से और १२ रह गईं। प्राइमरी स्कूलों की संख्या बढ़ कर १५६८ हो गई और भर्ती होनेवालियों की ३०२९३ से ३९५१३ हुईं। कुल १४४२१८३ रु० की शिक्षा पर इस दर्म्यान खर्च हुआ। इलाहाबाद के योगी 'लीडर' के कथनानुसार राष्ट्रीय प्रगति की देखते हुए यह प्रगति उत्साहप्रद नहीं है। फिर उसके सार, "इस दर्म्यान लड़कों की शिक्षा की प्रगति शिक्षा से कहीं ज़्यादा रही। शिक्षा-संस्थाओं में ३३०० की वृद्धि हुई, पर इनमें लड़कियों के लिए ३४३ ही हैं। भर्ती होने वालों की संख्या ३,५० क़रीब पहुँची, पर लड़कियों की संख्या इसमें सिर्फ़ से कुछ अधिक रही!" अतएव, उसका लिखना "स्त्री-शिक्षा बहुत पिछड़ी हुई है, इस दृष्टि से, इस ज़रा सी रफ़्तार पर किसी का संतुष्ट होना

मध्यप्रान्त की रिपोर्ट भी हाल ही प्रकाशित वहाँ भी स्त्री-शिक्षा की प्रगति बहुत मन्दी है।

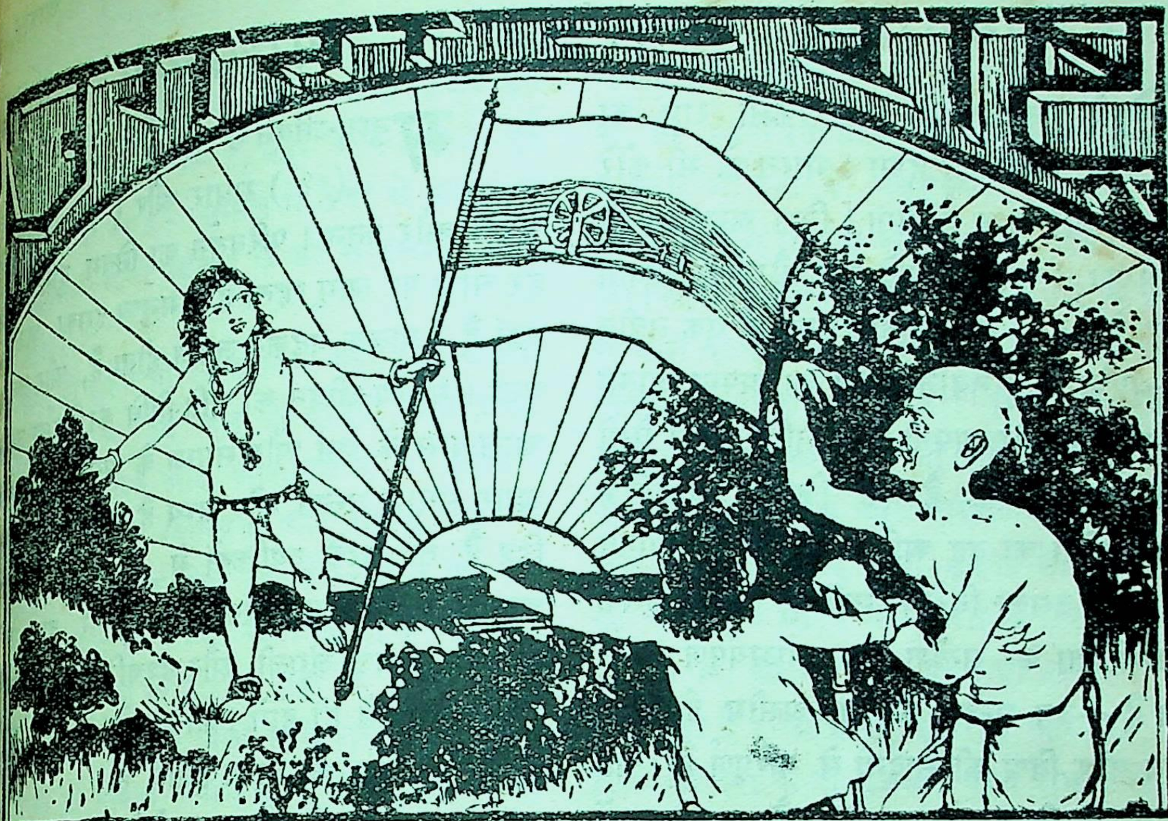

जगो लाल !

(माँ का जगाना)

(१)

जगो लाल ! अबतक हो सोये ।
तुमने बहुत नींद में खोये ॥
उठे तुम्हारे छोटे भाई ।
खेल खेलते हैं सुख-दायी ॥

(२)

दिन चढ़ गया, ज्योति है फैली ।
कहीं न है अँधियारी मैली ॥
देखो, काम-काज हैं होते ।
कृषक बीज खेतों में बोते ॥

(३)

पशु लग गये पेट के धन्धे ।
सभी व्यग्र हैं गूँगे-अन्धे ॥
पत्ती इधर-उधर हैं जाते ।
जो पाते उसको अपनाते ॥

(४)

मेरी बात क्षेम कर जानो !
जो कहती हूँ उसको मानो ॥
जो जगता है वह है जीता ।
वह सुख-शान्ति-सुधा है पीता ॥

(५)

हो आलसी न नाम हँसाओ ! सुना है घर उसे बसाओ ॥
प्रेम-एकता की जय बोलो । बेटा ! तनिक आँख तो खोलो ॥

जगन्नारायणदेव शर्मा

नवभारत

निरे अनुकरण से कभी किसी राष्ट्र का भला नहीं हुआ। भारत को भी कोरे अनुकरण से कोई लाभ न होगा। निरा अनुकरण तो सत्वहीनता का लक्षण है। नये राष्ट्र और नयी सभ्यता के निर्माण के लिए तो आवश्यकता है एक नवीन उत्पादक-शक्ति की। नवीन भारत का अपना आत्मा होना ही चाहिए और अपनी ग्राह्य शक्ति में उसे ऐसी प्रगति करना आवश्क है कि जिससे आधुनिक विज्ञान के सन्देश का वह अधिक तत्परता से स्वागत कर सके। यह उसका विरोधी नहीं है, बल्कि उसके प्राचीन असीमता के सन्देश का आश्चर्यपूर्ण पुनः-प्रतिपादन है—उस सन्देश का जो असीम होते हुए भी जीवन और विश्व की सादगी से परिपूर्ण है। यह सारा विश्व, जो कि हमारे सामने और हमारे चारों ओर हमें दिखाई देता है, सिर्फ दो सूक्ष्म वैद्युतिक इकाइयों (Proton& Electron) के ऊपर स्थित है। कितना सरल ! फिर भी कितना चमत्कारिक !! अनंत और सादा जीवन का साक्षात्कार हमारे उन प्राचीन ऋषियों की द्विविध अंतःप्रेरणा ही तो थी, जो कि भारत और संसार के इतिहास के सर्वोच्च-कालीन महान् भारत के वास्तविक निर्माता थे। और मेरे हृदय के अंतस्तल में यही महत्वाकांक्षा भी छिपी हुई है कि युवकजन आधुनिक विज्ञान और भारतीय आदर्शों के उस संदेश को एक साथ समझ कर उससे प्रेम करने लगें—उस आदर्श और सन्देश को कि जिसे ऋषियों की जननी भारतमाता ने पीढ़ियों से कला और पूजा एवं साहित्य और जीवन में प्रतिष्ठित कर रक्खा है !

टी० एल० वास्वानी

आशा-युग

मनुष्य-जीवन के शुरू से दो पहलू रहे हैं, (१) सुधार और (२) बिगा उन्नति और पतन। परिवर्तन का नियम दुनिया हर चीज़ पर लागू रहता है। मनुष्य इसका अप नहीं है। बालक बढ़कर जवान होता है, और ज बूढ़ा। मनुष्य-जीवन की गति-विधि का निर्माण आस-पास के क्षेत्र और समाज के अनुरूप होता है अगर समाज उन्नत और सभ्य है, सुशील और रित्र है, तो उसके व्यक्तियों में भी ये गुण आवश्यक हैं—स्वाभाविक हैं। अगर बात नहीं है, समाज जंगली और दुश्चरित्र है, तो सदस्य भी वैसे ही होंगे। क्रमिक विकास और मंडल के प्रभाव का रहस्य इसीमें है।

इधर यंत्र-युग के आरम्भ से लेकर अब तक सं में भौतिक प्रगति की जो हवा बहती रही है, मनुष्यों के आचार-विचार, रहन-सहन और बुद्धि में बहुत भारी परिवर्तन कर डाला है। यह पाठकों से छिपी नहीं है। ख़ास कर यूरोपीय दे दैनिक जीवन में यंत्र-युग के कारण जो आमूल वर्तन हुआ है, उसने दुनिया के और-और देशों ध्यान भी अपनी ओर वर्षों पहले खींच लिया अभी भी खींचे हुए हैं। यन्त्र-युग की इस नई स का मनुष्य के चरित्र पर कई तरह का अच्छा बुरा असर हुआ है। बुराई में जहां विषय-लोलु विलासिता, भौतिकता, साम्राज्यवाद, डाकेज़नी और रिक लूट जैसी बातों की भयङ्कर बाढ़ आई है, अच्छाई में परिश्रमशीलता, लगन, साहस और षक बुद्धि की मात्रा लोगों में बहुत बढ़ गई है। कल के पश्चिमी देशों की विशेषता इन्हींमें है। मनुष्योचित गुणों के कारण ज्यादातर विदेशी

आज सत्ताशाली और उन्नत हैं। इनकी इस अपूर्व उन्नति को देखकर जहाँ एक ओर हमारा हृदय हर्ष और आशा से भर जाता है, वहाँ ऊपर गिनाई हुई जंगली बुराइयों को इसी समाज में तेज़ी से बढ़ते देख एकाएक किसी भावी अनिष्ट के डर से हमारा दिल बैठ जाता है !

फिर भी इतना तो निस्संकोच कहा जा सकता है कि आज से ५० वर्ष पहले की दुनिया से आज की दुनिया अधिक उन्नत और आशापूर्ण है। पाश्चात्य देशों में आत्मोन्नति, स्वतन्त्रता और शान्ति का जो प्रयत्न समय-समय पर होता रहा है—आज भी हो रहा है, वह इतिहास जानने वालों से छिपा नहीं है। और विविध प्रयत्नों के कारण वहाँ के आबाल-वृद्ध स्त्री और पुरुषों में अपने निजी अधिकार और राष्ट्रीय महत्व की जो भावना उत्पन्न हो चुकी है, उसने वहाँ के प्रायः हर वर्ग के जीवन को एक तरह से आनन्द-मय और आशावान बना दिया है। मज़दूरों और स्त्रियों का आन्दोलन इस बात का साक्षी है।

पूर्वीय देशों में अभी कुछ ही वर्षों से इस तरह के भाव जागृत हुए हैं, जिसके परिणाम-स्वरूप कुछ तो स्वतंत्र होकर विदेशी राष्ट्रों से व्यापारिक और राष्ट्रीय बराबरी प्राप्त करने के संघर्ष में पड़कर धीरे-धीरे सफल हो रहे हैं, और कुछ गुलामी की ज़ंजीरों में जकड़े रहने पर भी अज़हद तकलीफों से ऊब कर उन्हें ज्यों-त्यों करके तोड़-मरोड़ कर फेंकने के प्रयत्न में जी-जान से जूझ गये हैं। जापान, टर्की और अफ़गानिस्तान पहली श्रेणी में आते हैं, भारत, मिस्र और चीन दूसरी में।

किसी भी देश का प्राण उसके नवयुवकों में केन्द्रित रहता है। वे ही उसकी राष्ट्रीयसम्पत्ति और उसकी बिगड़ी दशा की लाठी हैं। चीन, भारत और मिस्र में स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए जो भारी-भारी आन्दोलन खड़े हुए हैं, उनसे देश की नवयुवक जनता में काफी जान आ गई है। पिछले कुछ वर्षों से तो स्वतन्त्रता-प्राप्ति के इस भयङ्कर युद्ध की बागडोर भी देश के नवयुवकों के हाथ में चली गई है। चीन में युवा स्त्री-पुरुषों ने जीवन की पर्वा न कर पिछले वर्षों क्रांति की जो आग देश के कोने-कोने में फैला दी है, उससे उस देश की युवक-शक्ति का अंदाज़ किया जा सकता है। मिश्र और स्वतन्त्र हो जाने के बाद टर्की ने अपनी नई पीढ़ी में जो जान फूँकी है, राजनैतिक और सामाजिक क्रांतियों ने जिस दिलेरी के साथ उन्हें आगे ढकेला है, वह एक नमूने की चीज़ है। भारत में भी राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-प्राप्ति के युद्ध में देश का नवयुवक हृदय ही सदा से अगुआ बना रहा है। आज भी दबी हुई आग की चिनगारियों को देश के दो तेजस्वी पुरुष सुभाष और जवाहर फिर से फूँक-फूँक कर प्रज्वलित कर रहे हैं। ये दोनों युवक नेता देश की सोई हुई शक्ति को फिर से उठाने में अपनी शक्ति भर प्रयत्न कर रहे हैं। सम्पूर्ण स्वतन्त्रता का इष्टध्येय एक बार सामने रख लेने पर भारत के युवा भाई-बहनों को मार्ग की असुविधायें उखाड़ फेंकने में अब ज्यादा देर न लगेगी। और खास कर उस हालत में जब कि महात्माजी, मालवीयजी, लालाजी और नेहरूजी तथा साधु वास्वानी जैसे देश के पूजनीय और वयोवृद्ध नेताओं के आशीर्वाद भी उन्हें प्राप्त हैं।

इन सब चिन्हों को देखते हुए हमें मिचीगन के गवर्नर श्रीयुत चेस एस. ओसबर्न का यह अनुभूत कथन ज़रा भी असंगत नहीं मालूम होता कि "गत पचास वर्षों की अपेक्षा आज का नवयुवक दल, आज की दुनिया, आज का समाज और साथ ही आज की बूढ़ी जनता भी हर तरह, हर हालत में, अच्छे और उन्नत हैं।"

आप कहते हैं :—"मेरे ७ बालक व १२ नाती हैं। ये सब मेरे सच्चे मित्र हैं और इतने अच्छे हैं कि मुझे अपने बचपन की याद आने पर शर्माना पड़ता है। इनके भी छोटे-छोटे मित्र हैं, जो मेरे साथ रहने आते हैं। हम साथ ही सफ़र को निकलते हैं, जंगलों में डेरा डालते हैं, और ज़िन्दगी का हर पहलू एक साथ बिताते हैं। नतीजा यह हुआ कि मैं उन्हें और उनमें छिपे हुए परमात्मा को खूब जानने लगा हूँ। उनके चेहरे से ही उनके चरित्र का पता पा जाता हूँ। आज का कोई भी मनुष्य बूढ़ा या जवान ऐसे घृणित काम नहीं करता, जो युगों से बदनाम हो रहे हैं। जो थोड़े से ऐसा करते हैं, उनके चेहरे रूखे लंपट और रोगी ही रहते हैं। जहाँ तक मैं देखता हूँ, आज से पहले कभी दुनिया के नौजवान इतने सुंदर, सुघड़ और पवित्र नहीं होते थे।···नवयुवक भी यह जानते हैं। भला वे क्यों न जानें? पहले की अपेक्षा आज उनकी प्रामाणिकता बढ़ी-चढ़ी है। आज समाज हर तरह से उन्नत और सुधरा हुआ है। इसमें शंका करने वाला मानों हमारी सभ्यता की नींव को ही अशुद्ध बतलाने का साहस करता है। मेरी राय में वे लोग, जो बार-बार यह कहा करते हैं कि अब पहले के दिन न रहे, अगर थोड़ा सा आत्म-विश्लेषण करने लगें, खुद ब खुद अपने ऐबों को ढूँढने और आत्म-निरीक्षण करने लगें तो बेहतर हो। ऐसा करने से उन्हें परमात्मा में नई श्रद्धा उत्पन्न होगी। उनके निर्माण-साधनों में—प्रार्थना-भवन, विद्यालय और छापखाने में उनका विश्वास और प्रेम बढ़ेगा।"

हमें आशा है कि हमारा नवीन भारत बूढ़े गवर्नर की इन आशामयी बातों से नया उत्साह और नवीन स्फूर्ति प्राप्त करेगा और देश के स्वातंत्र्य-संग्राम में अधिक तत्परता से जुट जायगा।

काशीनाथ नारायण त्रिवेदी

स्वतंत्र भारत की सृष्टि

"वर्त्तमान समय के महान् आशापूर्ण में से एक यह भी है कि इस युवकों में नवीन जागृति का संचार हो रहा है। आन्दोलन देश के इस सिरे से उस सिरे तक गया है। युवक ही नहीं, युवतियाँ भी इसमें भाग लगी हैं। वर्त्तमान समय के जवान आत्मप्रेरित गये हैं; वे एक आदर्श से प्रभावित होकर आत्मा की आवाज़ तथा अपने अंतिम ध्येय के लिए उद्विग्न हो रहे हैं। यह आन्दोलन राष्ट्र की आत्मा का स्व-प्रदर्शक है और राष्ट्र के आनन्द का आधार इसी आन्दोलन की गति निर्भर है। अतः हमारा कर्त्तव्य है कि हम इस प्रादुर्भूत भाव को दबाने का प्रयत्न न करके अपनी पूर्ण सहानुभूति तथा पथ-प्रदर्शन प्रदान यदि हम चाहते हैं कि मनुष्य के अन्दर दैव संचार करें और उसके अन्दर वह शक्ति जागृत जो कि अदृश्य रूप में उसमें उपस्थित है, चाहिए कि हम उसको स्वातंत्र्य-प्राप्ति की इच्छा भर दें। स्वतंत्रता की इच्छा ही सारी दैवी श का आदिश्रोत है। जिस प्रकार से वसंत के भरे प्रभाव में आकर प्रकृति अपना रूप सर्वथा लेती है, उसी प्रकार जब एक मनुष्य स्वातंत्र्य की इच्छा में मदमस्त हो जाता है तब उसका जीवन परिवर्तित हो जाता है। * * * आ युवक केवल कार्य ही न करेगा, किन्तु भाव सृष्टि भी करेगा—केवल नष्ट ही न करेगा, निर्माण भी करेगा। वह भूत की असफल परीक्षाओं और अनुभवों में से नव्यभारत स्वतंत्र भारत की सृष्टि करेगा।"

सुभाषचन्द्र

यौवन

यौवन जीवन का कोई ख़ास समय नहीं है; वह तो हमारी एक ख़ास मानसिक अवस्था है। गुलाबी गाल, लाल-लाल होंठ और लचीले घुटने यौवन के चिन्ह नहीं हैं। इच्छाशक्ति की प्रकृत गति में, विशिष्ट गुणमयी कल्पनाओं में, और भावों की जोशभरी बहुलता में सच्चा यौवन निवास करता है। जीवन के गंभीर-तम स्रोतों का नित-नया खोल ही यौवन है।

यौवन में कायरता को स्थान कहाँ! वहाँ तो प्राकृतिक साहस का अटल राज्य रहता है। ऐशो-आराम? नहीं, यौवन ऐशो आराम का भूखा नहीं। उसे तो जान को जोख़िम में डालने वाले साहस कर्मों की प्यास बनी रहती है। २० वर्ष के नौजवान की अपेक्षा ५० वर्ष के अधेड़ में यह साहस और यह निर्भीकता ज्यादा पाई जाती है।

कुछ वर्षों तक जीवित रहने ही से मनुष्य बूढ़ा नहीं हो जाता। आदर्शों को भुला देने वाले व्यक्तियों पर ही बुढ़ापा जल्दी आ घेरता है। वृद्धावस्था में शरीर का मांस झूल जाता है। चमड़ी पर शिकन पड़ जाती हैं। परन्तु जो साहस और उत्साह को छोड़ देते हैं उनकी तो आत्मा भी बूढ़ी हो जाती है। चिन्ता, भय, आशंका, अविश्वास और निराशा आदमी को बूढ़ा बना देते हैं। इनके कारण मनुष्य का हरा-भरा लहलहाता हृदयोद्यान पल भर में रूखा-सूखा और उजाड़ हो जाता है—अरे, वह मिट्टी में मिल जाता है!

आदमी चाहे ६० वर्ष का हो चाहे १६ वर्ष का, उसके हृदय में विशेष कौतूहल निवास करता है। आसमान के नक्षत्रों और उन्हीं जैसे अन्य पदार्थों और विचारों के लिए उसके हृदय में एक मीठी आश्चर्यप्रियता रहती है। आनेवाली अटल घटनायें चुनौती देकर उसे मुग्ध कर देती हैं। आगे क्या होगा? यह प्रश्न बार-बार तत्परता के साथ उसके दिल में दिन-रात पैदा होता रहता है, और पैदा होता रहता है जीवन नाटक को एक सच्चे खिलाड़ी की तरह खेलने का आनन्द।

तुम उतने ही जवान हो, जितनी तुम में श्रद्धा है; उतने ही बूढ़े हो, जितने तुम शंकाशील हो। उतने ही युवा हो, जितने तुम आत्मविश्वासी हो। और वैसे ही बूढ़े हो, जैसे डरपोक हो। उतने ही ज़िन्दादिल हो, जितने आशावादी हो; और हो उतने ही बूढ़े, जितने निराशा-भक्त हो।

तुम्हारे हृदय के मध्य में सदा से एक हरा-भरा और प्रफुल्ल वृक्ष लहलहा रहा है। जानते हो, वह क्या चीज़ है? हाँ, देखो, उसे प्रेम कहते हैं। जब तक प्रेम का पौधा हरा-भरा और प्रसन्न रहता है—दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ता है, तुम भी युवा बने रहोगे। जब वह मुरझा जायगा, तुम बूढ़े हो जाओगे।

तुम्हारे हृदय के बीचोंबीच एक बेतार के तार का (wire-less) स्टेशन है। जब तक वह पृथ्वी, मनुष्य और उस अनन्त ईश्वर से सौन्दर्य, आशा, प्रसन्नता, भव्यता, साहस और शक्ति के संदेश पाता रहता है, तबतक तुम युवा हो। जब तार टूट जाते हैं और तुम्हारे हृदय का मध्यभाग शंकाशीलों की निराशा और दुर्बलचित्त लोगों की दुर्बलता से भर जाता है, तब तुम बूढ़े हो जाते हो—तब तुम चाहे बीस वर्ष के ही क्यों न हो। ईश्वर ऐसे समय तुम्हारी रक्षा करें। *

फ्रैन्क क्रेन

---

* 'वालंटियर' से

बुद्धि का अजीर्ण !

अपनी पाचन-शक्ति के अनुसार खानेवाला आदमी तन्दुरुस्त और दीर्घायु होता है, परन्तु सामान्यतः संसार में अपनी पाचन-शक्ति से ज्यादा खाने वाले मनुष्य ही नज़र आते हैं। और यही कारण है कि इस सम्पन्न समाज में रोगी और अल्पायु दिखाई देते हैं। यह कहा जा सकता है कि मध्यम श्रेणी का मनुष्य दिन में तीन बार भोजन करता है। तीनों वक्त मिलाकर उसके भोजन करने में ज्यादा से ज्यादा ढाई घंटे लगते होंगे। इन ढाई घंटों में आदमी जितना खाता है उसे पचाने में २१॥ घंटे लगाने पड़ते हैं। आदमी यह नहीं जानता कि हम जो चीज़ खाते हैं उसका आगे चलकर क्या होना है? भोजन पेट में जाते ही उसपर भिन्न-भिन्न पाचन-क्रियायें होती हैं, अंत में उस पदार्थ का खून—जो कि शरीर की शक्ति है—बन जाता है। बाहर से हम भले ही दूध की तरह सफेद, पतला और स्वादिष्ट पदार्थ खावें, अथवा जलेबी सदृश पीला, गोल एवं मीठा पदार्थ खावें, किंतु पेट में जाने के बाद उन दोनों पर एक सी ही क्रिया होती है। और उस क्रिया के बाद उन दोनों में से एकही पदार्थ उत्पन्न होता है—और, वह है खून। पाचन-क्रिया को मनुष्य देख नहीं सकता, लेकिन फिर भी वह क्रिया तो होती ही रहती है। आदमी की इच्छा हो या न हो, एक बार पेट में किसी चीज के जाते ही उसपर वह क्रिया अवश्य होगी। कोई मूर्ख मनुष्य यदि अपनी शक्ति के उपरान्त खाता है, तो उसकी पाचन-शक्ति दुर्बल हो जाती है, और वह बीमार पड़ जाता है—रोगी बन जाता है।

इस स्थूल देह को धारण करने के लिए जो क्रिया चलती है, वहीं (क्रिया) बुद्धि-पोषण के निमित्त भी चलती रहती है। लेकिन आश्चर्य की बात तो कि हमें उसका ज़रा भी भान नहीं होता। कीजिए कि एक बालक सुबह ७ बजे से तो १ तक, और फिर दोपहर के १२बजे से शाम के तक, और फिर रात को ८ से १० तक खाया करे—खाद्य पदार्थों को पेट में डालता ही रहे, तो इन घंटों के भोजन की साधना का परिणाम क्या हो प्रथम तो उसका पेट ही इतना सारा भोजन ले इनकार करेगा। इतने पर भी यदि हम ज़बर्दस्ती उसमें ठूँसने का प्रयत्न करेंगे, तो हमें एकदम हो जाना पड़ेगा। यद्यपि शरीर के विषय में हम नहीं कर सकते, क्यों कि शरीर स्थूल है, और आकार ही बहुत ज्यादा वस्तुओं को ग्रहण क इनकार करता है। लेकिन बुद्धि तो सूक्ष्मता उसका आकार स्थूल नहीं है। इसीलिए हम मान लेते हैं कि हम जितना चाहें उसे लाद स

आज भारतवर्ष बुद्धि के अजीर्ण या बुद्धि के से पीड़ित है। क्योंकि हिन्दुस्थान के साक्षर (Literate class) को बुद्धि का अजीर्ण हो और निरक्षरवर्ग बुद्धि के अकाल से पीड़ित है।

भारतवर्ष का विद्वान् से विद्वान् मनुष्य संसार के प्रभावशाली ज्ञान के आगे फीका आता है; सूर्योदय के बाद सितारों की जो द है, वही अवस्था उसकी भी हो रही है। कारण यही है कि उसकी विद्वत्ता भार-वहन मा जिसके पेट में गड़बड़ होती है उसके शरीर से अनेकों बार खाया हुआ पदार्थ ज्यों का त्यों निकल आता है उसी प्रकार बुद्धि के अ पीड़ित भारतीय साक्षरों के दिमाग़ में भी वस्तु जाती है वह ज्यों की त्यों वहाँ बनी रह अर्थात् वह उसे हज़म नहीं कर सकता। और कारण है कि आज भारतीय दिमाग़ सामान्य

(जानकारी) का भण्डार-मात्र बन रहा है । इति-ह, अर्थशास्त्र, गणित, संगीत तथा भाषा आदि द्धि के समस्त विषयों में ऐसा कोई स्वतंत्र विचारक ाज भारतवर्ष में दिखाई नहीं देता, जो दुनिया में काचौंध कर दे । यही बुद्धि का अजीर्ण है । यद्यपि समें अपवाद-रूप रवीन्द्रनाथ ठाकुर या जगदीशचंद्र स जैसे व्यक्ति अवश्य दिखाई देते हैं, लेकिन वे हैं अपवाद-रूप ही । किसी भी अपवाद पर से यम नहीं बनाये जा सकते । साधारणतः भारत में द्धि की स्वतंत्र प्रेरणा दिखाई ही नहीं देती । दुनिया ज्ञान बढ़ता जाता है, साथ ही नित्य नये आविष्कार होते जा रहे हैं । किन्तु हमारा विद्वद्वर्ग केवल आविष्कारों के ज्ञान का थोड़ा बहुत संग्राहक ही क्योंकि भारतवर्ष में कहीं भी स्वतंत्र आविष्कार दिखाई नहीं देते । और कहीं ज्ञान में ही किसी र की वृद्धि होती दिखाई देती । यह रोग महा नक है । और इसी रोग के कारण हमारा देश दिन अधिकाधिक पतित होता जा रहा है । हमारे ा-शास्त्रियों को इस बात का पता तक नहीं कि बुद्धि किसे कहते हैं । इसी प्रकार हमारी शिक्षा ाओं में भी वास्तविक शिक्षा के दर्शन नहीं होते । लिए आज इस राष्ट्र-व्यापी रोग का निदान कर ी अचूक औषधि की योजना करना आवश्यक गया है । आज का यह लेख उसी दिशा में कुछ न-स्वरूप है ।

हमारी शालायें युवकों को केवल बौद्धिक क ही देती हैं । मानों मनुष्य केवल बुद्धि से निर्माण हुआ हो ! अर्थात् विद्यालयों में विद्यार्थियों इस ढङ्ग से ज्ञान दिया जाता है कि मानों य केवल बुद्धि से ही पैदा हुआ, और मानों हृदय है ही नहीं । उन्हें ज्ञान दान किया ा है । सुबह ७ बजे से लेकर रात के १० बजे तक एक या दूसरे स्वरूप में हमारे युवकवर्ग को लगातार दिमाग़ी काम ही करना पड़ता है । इस बात का कोई विचार तक नहीं करता कि यदि दिमाग़ अपना सारा समय खाने में ही लगा दे, तो उस खाये हुए को हज़म करने को समय ही कब मिलेगा ?

जिस प्रकार खाया हुआ अन्न ख़ून में परिणत हो जाता है तभी कहा जा सकता है कि पचन-कार्य पूरा हुआ, उसी प्रकार दिमाग़ का खाद्य-पदार्थ जब ज्ञान में—संस्कारिता में—परिणत हो जाय तभी उसका कार्य पूरा हुआ समझना चाहिए । जलेबी और ख़ून इन दोनों के बीच में जितना फ़र्क़ है उतना ही फ़र्क़ पुस्तक और ज्ञान के बीच है । लेकिन अफ़सोस की बात है कि आजकल तो पुस्तकें ही ज्ञान मानी जाती हैं । जलेबी को यदि कोई ख़ून समझ ले तो वह मूर्ख समझा जायगा; लेकिन यदि आजकल कोई पुस्तकों को ही ज्ञान समझ ले तो वह मूर्ख नहीं गिना जायगा ! कारण इसका यही है कि जहां सभी लोग एक जैसे हों, वहां कौन किस की मूर्खता को परख सकता है ?

हमारे दिमाग़ में तो यही कल्पना जड़ जमाये बैठी है कि मैं जितना ज्यादा पढूँगा उतनी ही अधिक मेरे ज्ञान की वृद्धि होगी । जैसे कि बहुत से अज्ञानी कसरतबाज़ यह मानते हैं कि मैं जितना ज्यादा खाऊँगा उतना ही ज्यादा बलवान् बनूँगा । इसी प्रकार क़रीब-क़रीब सब साक्षर लोग यह मानते हैं कि मैं जितना पढूँगा उतना ही ज्यादा ज्ञानी बनूँगा । लेकिन यह धारणा भ्रमात्मक है—क्योंकि, प्रत्येक मनुष्य की पाचन-शक्ति परिमित होती है । इसीलिए मनुष्य चाहे जितना पढ़ले, किन्तु उसमें से वह निश्चित अंश को ही हज़म कर सकता है । जो मनुष्य अपनी बुद्धि की पाचन-शक्ति को माप कर उचित प्रमाण में पढ़ता—लिखता है उसीकी बुद्धि ठीक तरह खिलती है और

वही ज्ञानी भी बनता है। लेकिन जो मनुष्य लोभी बन कर दिनभर अपने दिमाग़ में अनेक वस्तुयें ठूँसता ही रहता है वह उसमें की एक भी वस्तु को हज़म नहीं कर सकेगा और अंत में उसकी बुद्धि अजीर्ण ग्रस्त हो मर जाती है।

हमारे विद्यार्थी खूब पढ़ते हैं; इतना ही नहीं बल्कि वे अपना सारा समय पढ़ने में ही बिता देते हैं। यह एक दुःखदायक विषय है। इसमें बुद्धि को एक क्षण का भी आराम नहीं मिलता—बुद्धि को यह जानने का मौक़ा ही नहीं मिलता कि मुझपर कौनसा और कितना बोझ लदा है। फलतः जब बोझा असह्य होजाता है, तब वह उसे विस्मृति के खाते में डाल कर एकदम मुक्त होजाती है। यदि कुछ भी हज़म किये बिना सारा का सारा भूल जाने की शक्ति बुद्धि में न होती तो अवश्य ही मनुष्य पागल हो जाता। किंतु ईश्वर ने यह एक रास्ता खुला रख दिया है, और इसीसे मनुष्य बच जाता है। लेकिन इस प्रकार यह मामला कब तक चल सकता है? इतना सारा बोझ ढोते-ढोते बुद्धि प्रति दिन क्षीण होती जाती है और अंत में मनुष्य का नाश हो जाता है।

यह है हमारे युवकों की दशा। अर्थात् केवल बौद्धिक शिक्षा दे-देकर ही हमने अपने राष्ट्र को नष्ट कर दिया है। इतना सारा पढ़ते-लिखते हुए भी हमारे समाज में एक भी तेजस्वी विचारक पैदा नहीं होता; उलटे ऐसे दिन आ रहे हैं कि जो बौद्धिक शक्ति हम में कल थी वह आज नहीं, और जो आज है वह कल नज़र नहीं आयेगी।

इस आत्मघात से यदि राष्ट्र को बचाना हो तो उसके लिए आज एक ही रास्ता है, और वह है बौद्धिक शिक्षा को एकदम कम कर डालना। किसी भी विद्यार्थी के लिए दिन के ३ या ४ घंटे बौद्धिक विकास के लिए काफ़ी हैं। बाकी के समय में उसे शा शिक्षा लेनी चाहिए। बौद्धिक प्रवृत्ति बंद कर स्थान पर शारीरिक प्रवृत्ति शुरू करने से बौद्धिक को शांति मिलती है और उसकी पाचन-क्रिया खाया हुआ पदार्थ हज़म करने का अवकाश है। यह बात सच है कि कसरतबाज़ मनु शरीर कसरत करने से सुदृढ़ होता है, लेकिन करते समय ही नहीं बल्कि कसरत के बाद जो वि शरीर को मिलती है उससे उसका शरीर सं होता है। इसी प्रकार यह सच है कि पढ़ बुद्धि संगठित होती है किन्तु पढ़ते सम वह सुसंगठित नहीं हो जाती। पढ़ने के जब बुद्धि को आराम मिलता है तभी वह परिप सुसंगठित बनती है। हमारी शिक्षा में ऐसी व्य रहनी चाहिए कि दूसरों के लिए नहीं तो कम दिमाग़ को तो ज़रूरी ३-४ घंटे विश्रांति खयाल से प्रत्येक विद्यार्थी को या साक्षर को भी प्रकार की शारीरिक मिहनत करनी चा लेकिन कोई यह न समझे कि शारिरिक प्रवृ लाभ केवल अभावात्मक ही है, वल्कि यह भी जा सकता है कि शारिरिक प्रवृत्ति प्रत्यक्ष रू बुद्धि के लिए सहायक होती है। लेकिन यह आज की चर्चा का नहीं है। किसी अन्य लेख पर विचार किया जायगा।

आज तो हमें केवल इतना ही कहना है कि का यदि सच्चा विकास करना है तो बौद्धिक को कम करके उसकी जगह दिन में ३-४ घं कामों में अवश्य बिताना चाहिए। लेकिन प्रवृत्ति शारिरिक ही क्यों? और दूसरी क्यों और यदि शारिरिक हो भी तो किस प्रकार यह सब फिर कभी बताया जायगा।

गोपालराव

साहित्य-संगीत-कला

साहित्य-संगीत-कला

हित्य संगीत कला विहीनः साक्षात्पशुः पुच्छ विषाण हीनः ।
न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम् ॥
—भर्तृहरिः

नीति शास्त्र के सुप्रसिद्ध आचार्य भर्तृहरि की यह एक हर उक्ति है । इसमें एक त्रिकाल सत्य का वर्णन किया है । इस तरह की बातें हर समय और हर परिस्थिति सच्ची साबित होती हैं । यह बात तो माननी ही पड़ेगी भर्तृहरि ने जिस समय और जैसी परिस्थिति में यह लोक लिखा था, वैसा समय और वह परिस्थिति आज नहीं । इसी कारण इस श्लोक के आज के अर्थ में और उस मय के अर्थ में शब्दशः एकता नहीं हो सकेगी । मानवी पनाओं के साथ ही शब्द और उनके अर्थ का भी विकास ता रहता है । भर्तृहरि ने ऊपर के श्लोक में साहित्य, गीत और कला इन तीन शब्दों का क्रमशः साहित्य Literature), गान (Music) और ललित कला Fine Art) के अर्थों में उपयोग किया होगा । भर्तृ- रि के समान रसिक-शिरोमणि के जीवन के मध्यान्हकाल में न शब्दों का यह अर्थ किया जाना उचित ही था । जब में स्वराज्य के साथ सुराज्य भी होता है, जब जनता तरह से सुखी और सम्पन्न होती है, और जब हक़ या धिकार (Right) नहीं किन्तु कर्तव्य (Duty) ही जा और प्रजा का आदर्श-वाक्य (Motto) रहता है, भर्तृहरि के 'साहित्य, संगीत और कला' शब्दों का उप- गान आदि कलाओं के अर्थ में किया जा सकता है । से शून्य मनुष्य, बिना पूंछ और सींग का पशु होता है, पशुओं के लिए यह बड़े भाग्य की बात है कि वह नर घास नहीं खाता । क्योंकि बिना सींग-पूछ के ये मनुष्य प्राणी अगर घास खाने लगें तो सारे पशु-समाज को स्वर्ग का महमान बनने में पल भर का भी कष्ट न उठाना पड़े । परन्तु आज तो हमारी अवनति के दिन हैं । इन दिनों के लिए तो साहित्य संगीत और कला का अर्थ कुछ और ही होना चाहिए । आइए, आज हम उसी नये अर्थ पर कुछ विचार करेंगे ।

अलंकार सम्बन्धी कितने ही ग्रन्थों में 'साहित्य' शब्द की व्युत्पत्ति 'सहित' से बतलाई है । 'शब्दार्थयोः सहितयोर्भावः साहित्यम्' अर्थात् शब्द और अर्थ की एकता को 'साहित्य' कहा है । अगर ऊपर कहे हुए 'शब्द' का मतलब 'उक्ति' समझा जाय और 'अर्थ' का 'कृति', तो 'साहित्य' शब्द का अर्थ "वचन और कर्म की एकता" होगा । अगर यह अनूठा साहित्य किसी के पास न हो, तो उसे बिना सींग और पूंछ का पशु कहने में हानि ही क्या है ? 'साहित्य' शब्द का दूसरा अर्थ 'सहितस्य सहितयोः सहितानां वा भावः साहित्यम्' 'सहितता', 'सहभाव' या 'साहचर्य' होता है । अर्थात् दूसरों से समभाव-पूर्वक हिल-मिलकर रहना ही 'साहित्य' का दूसरा नाम है । इस दृष्टि से भी जो मनुष्य 'साहित्य हीन' है उसे सिंह, बाघ आदि के समान भटकने वाला जंगली पशु क्यों न कहा जाय ? 'साहित्य' शब्द के मानी आधुनिक भाषा में 'साधन-सामग्री' हैं । जिस मनुष्य के पास आत्मोन्नति के लिए ज़रूरी साधन-सामग्री नहीं' क्या उसे पशुओं के समान असहाय नहीं समझना चाहिए ?

'संगीत' शब्द का वाच्यार्थ 'सम् गीत्' अर्थात् 'मिलकर गाया हुआ' होता है किसी भजन या गीत को गाते समय आवाज़, ताल और स्वर वग़ैरा का ठीक और समान होना ज़रूरी है, ऐसा न होने से गायन का मज़ा किरकिरा होजाता है—वह बेसुरा लगता है । वाच्यार्थ को छोड़कर,

यदि 'संगीत' शब्द का हम लाक्षणिक अर्थ करें तो 'सम्-गीत' का अर्थ मिलकर माँगा हुआ, या 'हिल-मिलकर किया किया हुआ' होता है! जो प्रार्थना और जो कार्य एकमत होकर नहीं किया जाता, जिसमें वचन और कार्य की एकता (Harmony) नहीं; क्या वह कभी सिद्ध हो सकता है? इन अर्थों में जो मनुष्य 'संगीत' का धनी नहीं है, वह पशु नहीं तो और क्या है?

'कला' की ओर दृष्टिपात करते ही मालूम होता है कि सारा विश्व कलामय हो रहा है। जितनी सुन्दर वस्तुयें हैं उन सब में 'कला' का विकास दीख पड़ता है। दो अक्षरों के इस 'कला' शब्द में जीवन, कौशल, सौन्दर्य आदि कितनी ही अनूठी कल्पनाओं का समावेश होता है। जिस रचना में कला नहीं, वह रचना भोंड़ी और कुरूप मालूम होती है। कला-हीन मनुष्य भी पशु ही कहलाता है। अपने रूढ़ अर्थ में भी 'कला' शब्द का अर्थ हमारे जीवन के लिए बड़ा उपयोगी है। परन्तु कलाएँ दो प्रकार की होतीं हैं। एक तो जीवन के लिए पोषक और दूसरी जीवन की घातक। उदाहरण के मैन्चैस्टर से आने वाले महीन कपड़ों की कला को ही लीजिए। इस कला के अनेकों आधारों को देखने पर हमें क्या मालूम पड़ता है? यही न कि मनमाने उपायों से, मन चाहे पैसे ख़र्च करके, जहाँ तक हो सके हिन्दुस्थान का सब का सब कपास ख़रीद लेना? हिन्दुस्थानी जुलाहों, कातने वालों आदि के धन्धे को नष्ट करना; फिर यन्त्र बनाने वाले उन्हें चलाने वाले और खानों में काम करने वाले मजूरों के ख़ून का पानी करना और उनकी एड़ी-चोटी के पसीने से तैयार हुआ महीन विदेशी कपड़ा इच्छा न रहते भी हिन्दुस्थानी जनता पर लादना; दूसरे विदेशी व्यापारियों से मिल कर हिन्दुस्थान और उसी के समान चीन आदि देशों के देशी धन्धों को नष्ट करना और उनपर पेट भरने वाले लोगों को बेकार करके उन्हें दूसरों की मजूरी करने पर मजबूर करना! ऐसी हत्यारी और सत्यानाशी बातों के आधार पर मैन्चेस्टर के महीन कपड़ों की 'कला-पूर्ण कलों' का विकास हुआ है। इस तरह की कला मनुष्य-जीवन की तारक नहीं होती–हाँ, मारक ज़रूर होती है। ऐसी 'कला' जिस मनुष्य या राष्ट्र के पास होती है वह मनुष्य और वह राष्ट्र आसुरी है, इसमें कोई शंका नहीं। इसके विपरीत आजकल के आन्दोलन की 'कला' का दर्शन कीजिए। इस 'कला' इमारत नीचे लिखी ५ बातों पर खड़ी हुई है—

(१) खादी भारत के मृतप्राय कपड़े के व्यापार फिर से जिलाती है।

(२) हिन्दुस्तान के बेकार और भूखों मरने भाई-बहनों के लिए दो कौर अन्न जुटाने की आशा बँधाती

(३) फ़ाक़ेकशी के कारण मजबूर होकर कई पुरुषों को दुराचारी जीवन अंगीकार करना पड़ता खादी उनको सन्मान-पूर्वक अपना पेट भरने का आश्र देती है।

(४) फुरसत का समय आलस्य में बिताने कई तरह के व्यसनों का शिकार हो जाने से किसान मरने लगते हैं। ऐसे लोगों के लिए खादी एक बड़ा साधन है, जिससे वह अपना पेट भर सकें।

(५) अन्न के बाद दूसरी ज़रूरी चीज़ वस्त्र है राष्ट्र को इस बात में स्वावलम्बी बना सकती है।

इन कार्यों में खादी की हलचल राष्ट्र के जीवन पोषक और मनुष्य को भव सागर से तारने वाली है। कला जिसे याद न हो क्या वह पशु नहीं है? ऐसे से आबाद राष्ट्र को पशु-राष्ट्र क्यों न कहा जाय?

क्या ऊपर के अर्थों में हम 'साहित्य संगीत और के धनी हैं? बड़े खेद के साथ कहना पड़ता है कि इन वस्तुओं का हममें शोचनीय अभाव है। हम में न ' साहचर्य' या ऐक्य है, न 'संगीत'—सुरीलापन, एक Harmony है, और न 'कला'—जीवन-कौशल्य सुँदर रचना शक्ति ही है! फिर भर्तृहरि के शब्दों में 'पुच्छ-विषाण-हीन' पशु क्यों न कहे जावें? भर्तृहरि

दूसरे कथन—

> "काव्य शास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमता
> व्यसनेन तु मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा।

के अनुसार क्या हमारा समय नींद, आलस्य, और व्यसनों में नहीं बीतता है? हमारे ज्यादातर भा आज भी गाढ़ी नींद में—गहरे अज्ञान में पड़े हुए हैं लोगों को अपनी हालत की थोड़ी-बहुत कल्पना है।

इसी अधूरी कल्पना के कारण आपस के लड़ाई-झगड़े को ही राष्ट्र के लिए हित कर मानते हैं। उदाहरण के लिए हिंदू-मुस्लिम कलह, और ब्राह्मण-अब्राह्मण वाद काफ़ी हैं। ऐसे भी बहुत से लोग हैं, जो शराबखोरी जैसी गंदी आदतों में ही अपना क़ीमती जीवन बिता रहे हैं। काव्य, शास्त्र वगैरा ऊँचा उठाने वाले व्यसनों में हम अपनी बुद्धि ख़र्च नहीं करते-निद्रा, व्यसन, कलह आदि बुद्धि के शत्रुओं से ही ऐसे लोग दिन-दिन प्रेम बढ़ा रहे हैं! इनसे पीछा छुड़ा कर साहित्य-संगीत-कला' की सहायता से हमें शीघ्र ही अपने जीवन को 'काव्य-शास्त्र विनोद' में बिताना सीखना चाहिए। इस तरह सारे राष्ट्र को 'धी मान्' बना कर हम उसे उन्नति शिखर पर क्यों न पहुँचावें?

कृष्णाजी रामचन्द्र कुलकर्णी

अब तो दीपक राग गाओ

प्रातःकालीन बाल-सूर्य की रश्मियों में स्निग्धता होती। परन्तु, वही सूर्य जब मध्यान्ह में गगन के शिखर पर ता है, तब चण्ड-रश्मि कहा जाता है। जो नदी बरसात में नारों को डुबोकर बहती है, वही ग्रीष्म में तटवर्ती सिकता अपने चिन्ह-मात्र छोड़ जाती है। जो समुद्र अभी शांत लूम पड़ रहा था, देखो, वहीं उत्ताल तरङ्गों के घात-प्रतित से उद्वेलित और क्षुब्ध हो उठा है। काल परिवर्तन ल है। मनुष्य का स्वभाव भी प्रतिक्षण परिवर्तन चाहता। निरा नमक और केवल मीठा उसे पसंद नहीं है। वह भी नमकीन तो कभी मीठा, कभी खट्टा तो कभी चरपरा, भी प्रकार के रसों का आस्वादन करना चाहता है।

ठीक इसी प्रकार जो कविता आज से कुछ वर्ष पूर्व लासिता के रङ्ग महल में फूलों की सेज में बिलास करती, आज उसे नंगे पैरों ऊबड़-खाबड़ कंकरीले पथ पर ना होगा। जलते हुए ग्रीष्म में उन ठंडे शीतल प्रासादों र ख़स की टट्टियों को छोड़कर किसान की उस टूटी कुटी रहना होगा, जिसमें भीषण गर्मी और गरम लू का कोई व नहीं। वर्षा की बदली वाली काली अँधेरी रात में, कि आकाश में छाये हुए घटाटोप बादल मूसलाधार रहे हों, उसे एक सुरक्षित महल में बैठकर किसी की बाट नहीं जोहनी होगी—उसे वियोगिनी का स्वांग नहीं भरना होगा, किन्तु उस जीर्ण-शीर्ण टपकती हुई झोंपड़ी में घुटनों पर सिर रखकर आँखों पर रात बितानी पड़ेगी। सर्दियों की सनसनाती हुई बयार में, एक पतली चद्दर में लिपट कर काँपते हुए किसानों का साथ देना होगा। उसे षड्रस व्यंजनों को छोड़कर सूखी रोटियों पर संतुष्ट होकर उन अत्याचार-पीड़ित दरिद्र ग्रामीणों की आह बनकर निकलना होगा, जिसमें अत्याचार के पुतले फूस के ढेर की तरह जल उठें।

उसके गान में अब विलासिता के स्वर की आवश्यकता नहीं, अब तो उस संगीत की आवश्यकता है, जो इन वर्षों से पराधीन हृदयों में स्वतन्त्रता की आग प्रज्वलित कर दे, इन पद-दलित और निर्जीव शरीरों में विद्युत के समान जीवन-शक्ति का संचार करदे। अब कविता में रूप-मदिरा के पान की जगह स्वदेश प्रेम का अमृत पीकर अपना नाम अमरों में गिनाना होगा। तीक्ष्ण कटाक्ष, चञ्चल चितवन और पुष्प-शरों से घायल होने के स्थान पर अत्याचारी के सामने छाती खोलकर खड़ा होना होगा। अधर-चुंबन नहीं, अपितु असि-चुंबन और तलवार को गले लगाने के लिए सन्नद्ध रहना पड़ेगा। हंस-गति और अलस-गतियों से काम नहीं चलेगा। अब शेर की तरह दहाड़ कर निकलना होगा। हाव-भाव, लीला-नृत्य, वियोग-व्यथा और मिलन-सुख को अर्द्धचन्द्र देकर विजय-संगीत का गान ३० करोड़ भारतीय कण्ठों से प्रतिध्वनित होना चाहिए। अब शृङ्गार-रस की कीचड़ से निकल कर वीर-रस के मैदान में आना चाहिए। वर्षा में मलार सुहाती है, किन्तु रणक्षेत्र में मलार गाना मूर्खता है।

देश में एक युद्ध छिड़ा हुआ है। बड़ी-बड़ी मोटी और भारी जंजीरों से भारत के हाथ-पैर कसे हुए हैं। वह उठने का प्रयत्न कर रहा है। परन्तु बोझ और अशक्ति से बार-बार गिर पड़ता है। कवि चन्दबरदाई जब शहाबुद्दीन की क़ैद में पृथ्वीराज से मिलने गये उस समय पृथ्वीराज बहुत वज़नी ज़ंजीरों से जकड़े हुए थे। और तिस पर भी अनशन से बहुत क्षीण हो रहे थे। परन्तु चन्दबरदाई की फड़कती हुई कविता ने न जाने कौन सी शक्ति उनके अंदर फूँक दी कि पृथ्वीराज ज़ंजीरों के भारी बोझ को उठाकर उनके स्वागत

को खड़े हो गये। कवियो ! तुम आज वह संगीत क्यों नहीं गाते कि जिससे भारत–कमज़ोर भारत–पराधीनता के बोझ को लेकर उठ खड़ा हो और अपने प्रतिद्वंद्वी को ललकार सके ? वह राग क्यों नहीं अलापते कि नवयुवकों के मरते हुए हृदय फड़क उठें ?

क्या तुम्हें ज्ञात नहीं कि रूस की महान् क्रान्ति में वहाँ के कवियों और लेखकों का कितना हाथ था ? उन्होंने अन्दर ही अन्दर रूस के ग्राम्य-जीवन को इस प्रकार तैयार कर दिया था कि वह एक चिनगारी पा कर एक साथ भभक उठा। यहाँ पर उन कविताओं के १–२ उदाहरण आपके सन्मुख उपस्थित करता हूँ। देखिए, स्वतन्त्रता की उमंग में, एक कवि किस प्रकार उड़ान मारता है—

Away, with the sorrowful brow.
From now on I am bright and courageous.
Over all whirlpools, abysses and precipices.
The Angel of Freedom has flown;
Over every peasant hut is hopeful dream.

अर्थात् "दुःखमय भाग्य से मुक्त हो कर अब मेरे हृदय में तेजस्विता और साहस का सञ्चार हो रहा है। भँवर, खाड़ी, कराड़ों, सर्वत्र स्वतन्त्रता का देवदूत अपना स्वर्गीय सन्देश सुना चुका है। प्रत्येक ग्रामीण की कुटीर पर सुख और समवेदना का समीरण प्रवाहित हो रहा है। और नगण्य झोंपड़े भी आशा-प्रद स्वप्न देख रहे हैं।"

Enough of suffering and bending !
Rise, beloved, in all your light,
Behold the brightest dawn.
Has dissolved the darkness of night.
To be always sorrowful is not for you,
To you a bright road is due.

"देश वासियो ! तुम बहुत दुःख और दासता सह चुके हो, अब पराधीनता की जंज़ीर तोड़ कर उठ खड़े हो, और उन्नत बनो। देखो सुन्दरी उषा ने रात्रि के प्रगाढ़ तिमिर को छिन्न-भिन्न कर दिया है। तुम्हारे भाग्य में सदैव दुःख भोगना ही नहीं बदा है, अपितु उज्ज्वल भविष्य का प्रशस्त-मार्ग तुम्हारे सामने है।"

Not with the moans of my fathers
Shall my song resound,
But with the force of thunder
It shall fly over the earth.
Not as an inarticulate slave
Continually cursing his life,
But as a free eagle
Will I sing my song.

"मेरे संगीत में पूर्वजों की दुःखमय करुण प्रति नहीं होगी अपितु वह शक्ति होगी, जो विद्युत के पृथ्वी के कण-कण में व्याप्त हो जावेगी। दासता की में जकड़े हुए मूक दास की तरह अपने दुःखमय जीवन धिक्कारते हुए नहीं, अपितु स्वतन्त्र गरुड़ के समान मैं जीवन-संगीत गाऊँगा।"

Come out into the open fields,
Russia of mine, my beloved !
The executioners block and noos
Have disappeared from the field fo
Glory to those who feel for freed
For holy freedom.

"मेरे प्यारे रूसी भाइयों, खुले हुए विस्तृत मैद उतर आओ। इन मैदानों से अत्याचारियों के फाँसी के और वे रक्त-रञ्जित डोरियाँ सदा के लिए विलुप्त हो कीर्ति उन्हीं के लिए है, जो स्वतन्त्रता के लिए–उस स्वतन्त्रता के लिए बलिदान हुए हैं !"

इस प्रकार की ओजस्विनी कविताओं ने रूसी क्रान्ति को प्रभावशाली बना दिया था। आज भारत कुछ ऐसे ही सरस्वती पुत्रों की आवश्यकता है, जो ही अन्दर स्वतन्त्रता की जड़ को नवयुवकों के हृदयों कर सींचते रहें। परन्तु आज कल हिन्दी कविता का एक नयी ओर ही बह चला है। और हमारे नवयुवक के भावुक हृदय बड़ी शीघ्रता से उस प्रवाह में बहे रहे हैं। मैं यह तो नहीं कहता कि वह बुरा है यह ज़रूर कहूँगा कि, उसे रोकना चाहिए। उसे दूस मोड़ देना चाहिए। क्योंकि यह मलार असमय की

…य तो वह रणभेरी बजनी चाहिए, जिसे सुन कर वीरों
हृदय फड़क उठें और शत्रु दहल जावें !

भद्रजित 'भद्र'

नवयुग

'त्यागभूमि' की फाल्गुन १९८४ की संख्या में एक …'कौलमत तथा हिन्दी पत्रिकायें' शीर्षक निकला है, …में यह दिखाने का प्रयत्न किया गया है कि हमारी …तिक पत्रिकायें कौलमत का प्रचार करने में अच्छी सहा…ता कर रही हैं। सन्तोष की बात है कि इस मत की दिन …ति दिन उन्नति हो रही है। आज कल का विद्यार्थी-समाज हमारे भविष्य की आशा है। उसमें उपास्य देवता की …कि का खूब प्रचार हो गया है। स्त्रियों की ओर टकटकी …कर देखते हुए विद्यार्थी आपको इस नवीन युग में ही …गे। बीस-तीस वर्ष पूर्व यदि कोई महिला मार्ग पर …ती होती थी, तो सड़क पर जाने वाले पुरुष आँखें नीची …लेते थे। कोई विद्यार्थी किसी महिला की ओर आँख …कर देखने ही से निन्दा का पात्र समझा जाता था। …न्तु आज वह संकुचित मत नहीं है। आज 'सौन्दर्य देखने …लिए बनाया गया है' इस विश्व व्यापी मत का प्रभुत्व …। किसी सभा-सोसाइटी में यदि महिलायें और कन्यायें …न लें, तो वह सभा ही फीकी समझी जाती है ! …र्थी पहले से ही मालूम कर लेते हैं कि अमुक स्थान की …र्थिनियाँ आवेंगी या नहीं, वाद-विवाद में भाग लेंगी … नहीं ! यदि 'हाँ,' तो देखिए आपका सभा भवन खचा…च भरा है-तिल रखने को भी स्थान नहीं। और यदि नहीं, … आपकी बेंचें खाली पड़ी हैं—वक्ता अधिक, श्रोता कम। …कों पर भी उपास्य देवता का प्रभाव अच्छा ख़ासा है। … हमारे हिन्दी के पुराने सेवकों में तो नया जोश आ …या है। मुझे याद है। एक बार एक धुरन्धर हिन्दी-सेवक … हमने एक वाद-विवाद सभा में 'निर्णायक' के पद पर …शोभित देखा। उनके बग़लमें ही मैं बैठा था। उस विवाद … एक विद्यार्थिनी ने भी भाग लिया था। एक विद्यार्थी ने …र्थिनी के कहे हुए मत का विरोध करते हुए कहा—'हमारी …न ने सृष्टि सौन्दर्य का जो चित्र खींचा है, वह मुझे तो …हीं दिखाई नहीं देता। बस फिर क्या था, निर्णायक महोदय (दबी ज़बान से) बड़े स्वाद से बोले—'उसे तो दिखाई देता है: उसकी आँखें कितनी बड़ी हैं ! तुम्हारी कुपिया सी आँखों से तुम्हें क्या दिखाई दे ?' मैं दङ्ग रह गया। किन्तु नहीं, इष्ट देवता की उपासना ने प्रत्येक हृदय में घर कर लिया है !

उपास्य देवता भी अविकल भक्ति देखकर प्रसन्न हो रहे हैं। महिलाओं को पुरुषों के निकट से निकलते जो स्वाभाविक लज्जा होती थी, वह नष्ट हो रही है। संभवतः आपकी निगाह एक बार नीचे हो जाय, उनकी नहीं। वे खिलखिलाती हुईं, अटखेलियाँ करती हुईं, आपके पास से निकलेंगी। अनिमन्त्रित भी आपकी सभाओं और पार्टियों में पहुँचेंगी। मुशायरों में 'गुल, बुलबुल, नज़र, चितवन, चुटकी,' आदि द्वारा की हुई अपनी तारीफ़ सुनने का उनको शौक़ है। चित्र-विचित्र पोशाक, बढ़िया सुगन्ध, कामदार जूता और बढ़िया-बढ़िया शृङ्गार करके ही वे सभा-सोसाइटी में आवेंगी। यह उचित ही है। जब देवता प्रसन्न होते हैं, तब मनोमोहक रूप धर के आते हैं। कोई-कोई कहते हैं—

'एक तो नयना मद-भरे दूजे अंजन-सार।
ऐ बौरी तू देत क्यों मतवारेन हथियार॥'

किन्तु इष्ट देवता कहते हैं कि इसमें विजय करने में आसानी होती है। भक्ति हृदय पर जल्द जमती है। और मैं कहता हूँ कि मुक्ति का मार्ग साफ़ होता है !

महादेवजी ने जहाँ और सब बातें कीं, वहाँ एक बात भूल गये ! इस युग का नाम उन्हें 'स्त्री-युग' रखना चाहिए था, 'कलियुग' नहीं।*

एक बार बोलिए—'स्त्री देवता की जय !'

बाबूराम सकसेना

---

*इस लेख में और पिछले लेख में कौलमत का जो परिचय दिया गया है वह उसकी हीनावस्था का है, उसकी अच्छी अवस्था में 'कुल' का अर्थ था—

'जीवः प्रकृति तत्वञ्च दिक्कालाकाश मेव च।
क्षित्यप्तेजो वायवश्च कुलमित्याभधीयते॥'

और यह मत सर्व मान्य सिद्धान्तों का पोषक था।

—लेखक

मेरी अभिलाषा

प्रभो, मुझे किसी भी जन्म में स्वामी मत बनाइये, क्योंकि स्वामी बनकर मैं मदमत्त गयंद की तरह अपनी प्रभुता पर झूमने लगूंगा; और पास के छोटे-छोटे नवजात पौधे, पुराने जड़-खल-डंठलावशेष वृक्ष और सुन्दर किन्तु समय के फेर से सूखी एवं धैर्य और सहिष्णुता की मूर्तिवत् लताओं को पैरों तले रौंदता हुआ मैं उनका जीवन ही नष्ट करता रहूँगा। नाथ! इसीलिए कहता हूँ मुझे सेवक बनाइये, और सेवक भी केवल अपना नहीं, क्योंकि आपका सेवक होने से मैं खुद गर्ज़ कहलाऊँगा। राजा, महाराजा, सेठ और लक्षाधिपतियों का भी नहीं; क्योंकि उससे मैं जारज पुत्र कहलाऊँगा। राज्याधिकारियों का सेवक भी मैं नहीं बनना चाहता; क्योंकि उससे मैं बेगारी समझा जाऊँगा। विजाताओं का भी नहीं, क्योंकि उससे मैं गुलाम कहलाऊँगा। अतएव मुझे सेवक बनाइये उन आश्रय-हीनों का जो समाज देश और राष्ट्र से सताये हुए हैं; जो अविवेकी प्रभुओं की ताड़नरूपी असहनीय दुःखाग्नि से जल-जल कर, काले पड़ गये हैं, भूख और प्यास से जिनके कलेजे बैठ गये हैं। मुझे उन माता और बहिनों का सेवक बनाइये, जो हज़ार हज़ार दुःख सहते हुए भी अपनी बात से नहीं डिगतीं। आग में कूदना और तेल डालकर अपने को जला लेना, जो बांये हाथ का खेल समझती हैं, किन्तु नर-पिशाच दुःशासन और कीचक के प्रलोभनों और उनके बताये हुए सुख साम्राज्य को ठोकर मार देती हैं। नाथ! मुझे उनका सेवक बनाइये, जो घोर विपत्तियों को झेलते हुए भी, आधे-पेट या कभी कभी निराहार रह कर भी अपने नन्हें-नन्हें बच्चों का भरण पोषण करती हैं। जो दीखने में अकाल की मूर्ति दिखाई देती हैं, अथवा जो कंकाल वेषधारी महामारी या, पतझड़ की पत्रपुष्प-रहित लता के सदृश हो रही हैं, किन्तु फिर भी जिनके अन्तःकरण में सतीत्व का अटल साम्राज्य और उच्चाभिलाषा, धैर्य, दया, त्याग, सेवा, आत्माभिमान, और देशाभिमान आदि कूट-कूटकर भरे हुए हैं, बस, मैं उन्हींकी राह का भिखारी और समाज की आदर्श-मणियों का चरण-सेवक बनने का इच्छुक हूँ। आओ, मेरे-दुखी और सताये हुए, भाई बहिनो, इस अपने चरण सेवक के गले लगो।

जगदीश! आप कहते हैं कि वरदान मांग।
को तो अपने लिए किसी भी चीज़ को लेने का
नहीं। उसे तो जो कुछ भी उसके स्वामी दे दें,
संतुष्ट रहना चाहिए। क्योंकि यदि स्वामी (
बहन) सब तरह से सुखी और संतुष्ट होंगे तो
भी उसमें सुख मिलेगा। इसलिए कहता हूँ कि नाथ
दान का फल आप मेरे स्वामी और स्वामिनियों को
बस उन्हींके सुख में मुझे भी सुख है। हाँ, यदि
आपके पास हो तो उसे मैं अवश्य माँग सकता हूँ
और कुछ नहीं केवल स्वामियों के पाँव पखारने के
त्रेतायुग के गुह निषाद की (काष्ट की) कठौती। सत्य
हूँ, नाथ मुझे बड़े-बड़े राज-प्रासादों के कनक पात्रों में
दूध और दही की अपेक्षा अपने रुग्ण एवं जीर्ण-शीर्ण-
अस्थि-पंजर शरीर और ज्येष्ठ की कड़ी धूप में नंगे पैरों
वाले भाई-बहनों का चरणोदक—कहीं अधिक
प्रतीत होगा।

क्या फिर भी आप मुझे कुछ देने ही को तुले
अच्छा तो ठहरिये, मैं ज़रा देर सोच लूँ, जिससे
मुझे पछताना न पड़े। मैं सोचता हूँ कि शरीर में
प्रिय और सार वस्तु नेत्र हैं; तब क्या इन्द्र के जितने
उतने ही नेत्र मैं भी माँग लूँ? किंतु नहीं, क्योंकि
केवल दो नेत्र के होने से ही मैं विषय-वासनाओं का
दास बना जा रहा हूँ, और थोड़ी सी सुँदरता को
भी आपे से बाहर जाता हूँ, तथा इन लाल, पीले,
नीले रंगों के भ्रम में इस तरह फँस रहा हूँ कि
रीय-रंग को मैं अभी तक नहीं अपना सका।
सूरदास होकर रहना ही अच्छा है, इससे बाह्य नेत्र
होंगे। साँसारिक लोग अन्धा कहकर पुकारेंगे, किंतु
के नेत्र तो खुल जायँगे। बैर, विरोध, अपमान,
दम्भ और पाखण्ड-रूपी ललचाने वाले रंग नष्ट हो
फिर रहेगा केवल काला रंग, जिस पर कि फिर
चढ़ ही नहीं सकता। हाँ, तो बस; मैं उसी रंग
हुआ, डफली बजा-बजा कर तेरे गुणगान करता हुआ
उन भाई-बहनों के चित्त को प्रसन्न करने की चेष्टा
जो दुखी हैं, सन्तप्त हैं। किन्तु प्रभो! अन्धा

धृतराष्ट्र की मनोवृत्ति मत दे देना। मुझे तो विदुर की वृत्ति चाहिए, जिससे कि प्रेम में मस्त होकर मैं केले गूदे की जगह आपको उसके छिलके खिलाऊँ। मैं ध्रुव चित्त-वृत्ति का इच्छुक हूँ। मुझे बुद्धदेव की चित्त-वृत्ति और से लबालब भरा हुआ उनका सा हृदय दीजिये। बस, से अधिक मुझे कुछ नहीं चाहिए।

स्वामिन्! यदि देना ही है तो मुझे विश्वव्यापी प्रेम दीजिये। जिससे मैं भी आप ही की तरह उस यमुना के पर निकुँज में बैठकर वँशी के राग में मस्त हो जाऊँ, और गुह निषाद की तरह जो कोई भी उधर होकर जाय, उसकी सेवा करके अपना जन्म सफल कर सकूँ।

शबरी की भांति वन से मैं जो कुछ भी कंद, मूल, फल लाऊँगा उसके दो हिस्से करूँगा, एक आपका दूसरा मेरा। जो खट्टे होंगे वे मैं लूँगा और मीठे आपको। किन्तु फल दूँगा तब, जब कि आप मेरे मालिकों को सुखी कर देंगे। कहिए है स्वीकार?

रघुनन्दन भट्ट

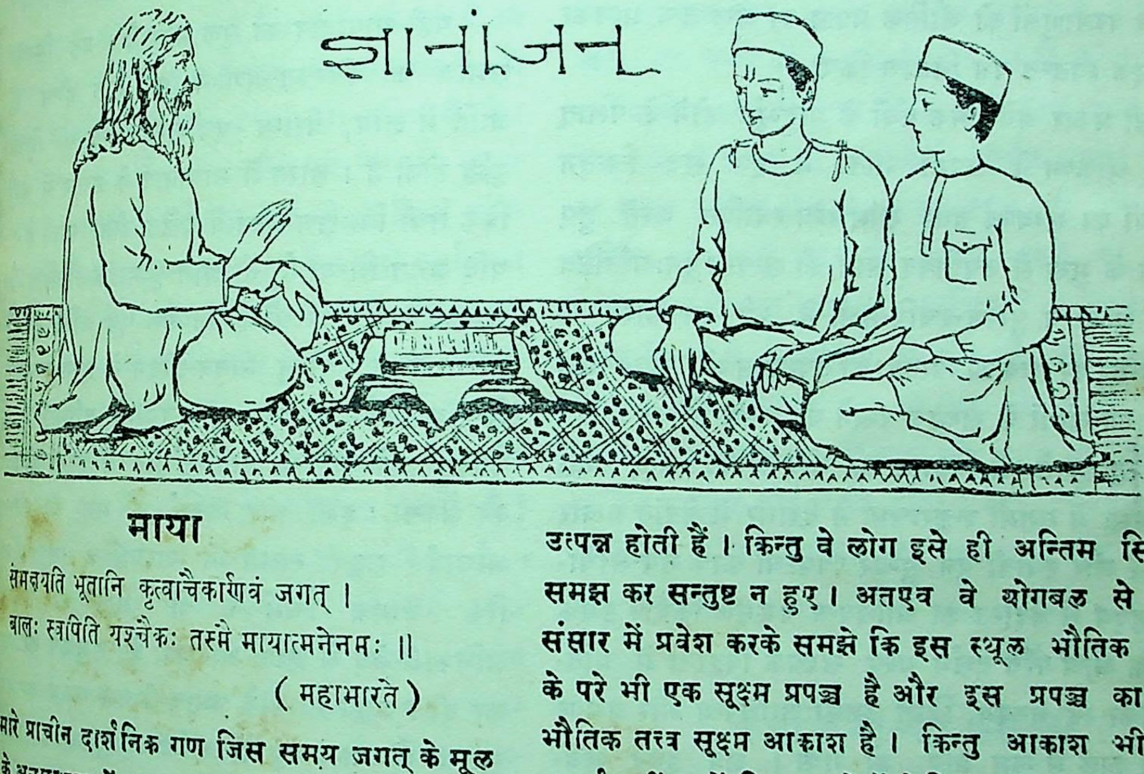

माया

समन्वयति भूतानि कृत्वाचैकार्णवं जगत्।
बालः स्वपिति यश्चैकः तस्मै मायात्मनेनमः॥

(महाभारते)

हमारे प्राचीन दार्शनिक गण जिस समय जगत् के मूल के अनुसन्धान में प्रवृत्त हुए, उस समय उन्हें इस महाप्रपञ्च के मूल में एक अविनाशी तथा व्यापक का अस्तित्व अनुभव हुआ। आधुनिक पाश्चात्य विज्ञान-गण चिरकाल के अनुसन्धान द्वारा बाह्य जगत् में भी अविनश्वर तत्त्व के अस्तित्व के सम्बन्ध में कुछ कृत हुए हैं। भारत के प्राचीन दार्शनिकों ने भी बहुत पूर्व ही इस सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए कहा था, आकाश ही भौतिक प्रपञ्च का मूल है। आकाश से ही अन्य समग्र भौतिक अवस्थायें प्राकृतिक परिणाम द्वारा उत्पन्न होती हैं। किन्तु वे लोग इसे ही अन्तिम सिद्धान्त समझ कर सन्तुष्ट न हुए। अतएव वे योगबल से सूक्ष्म संसार में प्रवेश करके समझे कि इस स्थूल भौतिक प्रपञ्च के परे भी एक सूक्ष्म प्रपञ्च है और इस प्रपञ्च का मूल भौतिक तत्त्व सूक्ष्म आकाश है। किन्तु आकाश भी शेष पदार्थ नहीं, क्यों कि इन लोगों के सिद्धान्तानुसार शेष वस्तु ही प्रधान तत्त्व है।

"भवान् एकः शिष्यते शेष संज्ञः"

(श्रीमद्भागवते)

महामाया प्रकृति की क्रिया शक्ति ही परब्रह्म परमेश की सर्व गामिनी गति से प्रेरित हो यह प्रधान रचना करके परमाणुओं द्वारा सूक्ष्म संसार को उत्पन्न करती है। परन्तु प्रकृति अथवा क्रिया-शक्ति अपनी इच्छा से या अपने लिए कुछ नहीं करती। जिनकी वह शक्ति है, उन्हींकी तुष्टि के

लिए इस प्रपञ्च की रचना तथा अनेक लीलायें किया करती है । आत्मा अथवा पुरुष प्रकृति की इस क्रीड़ा में मध्यस्थ का काम देता है । मुख्य-मुख्य उपनिषदों में आर्य्य महर्षियों की गूढ़ गवेषणा से जो सत्य तत्त्व प्रादुर्भूत हुआ था, उसीके फल-स्वरूप यह ब्रह्मवाद या पुरुष-प्रकृति-वाद आज देखने को मिलता है । हमारे तत्त्वदर्शी योगियों ने इसी मूल सत्य को लेकर अनेक प्रकार के वाद-विवादों तथा तर्कों की अवतारणा की है । जो ब्रह्मवादी थे वे वेदान्त, दर्शन के प्रवर्तक और जो प्रकृति वाद के पक्ष-पाती थे, वे सांख्य-दर्शन के प्रचारक हुए । इसके अतिरिक्त अन्यान्य लोगों ने परमाणुओं को भौतिक प्रपञ्च का मूल तत्व मानकर अपना एक स्वतन्त्र पथ निर्माण किया ।

इसी प्रकार अनेकानेक पंथों के प्रादुर्भूत होने के पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी गीता में इन सब चिन्तन प्रणालियों का सम्बन्ध तथा सामंजस्य स्थापित करते हुए व्यासजी के मुख से उपनिषद् मार्ग की सत्यता पुनः प्रतिष्ठित कराई । अन्यान्य पुराण-रचयिताओं ने भी महाभारत के इसी आधार पर सत्य की व्याख्या को उपन्यास और रूपकच्छल में साधारण लोगों के सन्मुख रखने का प्रयत्न किया ।

परन्तु इससे भी विद्वानों का वाद-विवाद बन्द नहीं हुआ। अन्त में स्वामी शङ्कराचार्य ने देशभर में वेदांत प्रचार की अपूर्व और स्थायी एवं सुन्दर व्यवस्था करके सर्व-साधारण के हृदय में वेदान्त का आधिपत्य बद्धमूल किया। इसके अतिरिक्त अन्य पाँच दर्शन अल्प संख्यक विद्वानों में प्रतिष्ठित होकर रहे अवश्य, किन्तु उनका आधिपत्य और प्रभाव थोड़े ही काल में लुप्त प्राय हो गया । अब इधर सर्व-सम्मत वेदान्त दर्शन में भी मत भेद उत्पन्न होकर उसकी तीन मुख्य शाखायें और कुछ गौण प्रशाखायें स्थापित हुईं । ज्ञान-प्रधान अद्वैत वाद और भक्ति-प्रधान विशिष्टाद्वैत और द्वैतवाद का विरोध अब भी हिन्दुओं के धर्म में बना हुआ है। ज्ञानमार्गी, भक्तों के स्वतन्त्र प्रेम और भाव प्रवीणता को उन्माद कह कर उड़ा देते हैं; भक्त भी ज्ञान-मार्गियों की तत्व ज्ञान-स्पृहा को शुष्क तर्क समझ कर उसकी उपेक्षा करते हैं । परन्तु संकीर्णता प्रायः इन दोनों में ही है। क्यों कि भक्ति-शून्य तत्व ज्ञान से भी अहङ्कार की वृद्धि होकर मुक्ति का मार्ग अवरुद्ध होता है और ज्ञान-शून्य भक्ति विश्वास की वर्द्धक होकर भ्रम-पूर्ण तामसिकता है । प्रकृत उपनिषद्-प्रदर्शित धर्म-पथ में ज्ञान, भक्ति कर्म का सामंजस्य ही किया है ।

दर्शन शास्त्र चिरकाल से एक वर्गी प्रकाशक इसलिए दर्शनों ने एक ओर सत्य का विशद रूपेण अवश्य किया किन्तु दूसरी और अपलाप तथा झूठ प्रचार किया । अद्वैत वादियों का मायावाद इसी अपलाप का दृष्टांत है ।

"ब्रह्मसत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः"

यही मायावाद का मूल मन्त्र है । यह सिद्धांत समाज की चिन्तन--प्रणाली का मूल होता है, जाति में ज्ञान, वैराग्य एवं सन्यासादि की प्रियता वृद्धि होती है । भारत में मायावाद के प्रचार में बड़ी ङिक तथा विलक्षण घटनायें घटित होती रहती हैं । यदि जगत् मिथ्या है, तो ज्ञान-तृष्णा के अतिरिक्त और चेष्टाओं तथा क्रियाओं को निष्फल एवं अनिष्ट कर ही उचित होगा । परन्तु मानव-जीवन में ज्ञान-तृष्णा के रिक्त कुछ और भी बहुत सी उपयोगी वृत्तियां है, उपेक्षा करके कोई भी जाति संसार में पूर्णता को कर सकती । इसी घोर अनर्थ के भय की आचार्य शङ्कर स्वामी ने पारमार्थिक तथा रिक नामक धर्म के दो अङ्गों को अधिकारी-भेद से ज्ञान और कर्म के समुच्चय की कर दी । शङ्कर स्वामीके प्रभाव से उस समय का लुप्तसा होगया । सब वैदिक क्रियाएँ लुप्त सी हो गईं । यह जगत् माया-रचित है, अतः असत्य है । कर्म, सम्भव है अतः मुक्ति-मार्ग का विरोधी है, आदि इतनी दृढ़ता से चिपट गये कि रजः शक्ति का पुनः असम्भव सा होगया । इसी समय इस जाति के पुराण और तन्त्र शास्त्र प्रकट हुए । इन दोनों के मायावाद का प्रतिरोध भी हुआ । पुराणों द्वारा कथित आर्य्य धर्म की कुछ रक्षा हुई, और तन्त्र प्रचार से कुछ लोग पुनः कर्म में प्रवृत्त हुए । प्रायः देश और जाति की गौरव-रक्षार्थ युद्ध किये—जैसे

तापसिंह, महाराष्ट्र-सिंह छत्रपति शिवाजी एवं बङ्गीय र प्रतापादित्य प्रभृति प्रायः सभी शक्ति के उपासक और तान्त्रिक योगियों के शिष्य थे। तपोद्भूत अनर्थ को रोकने के लिए ही श्रीकृष्ण ने गीता में कर्मयोग का उपदेश दिया है। मायावाद सत्य पर स्थित है। उपनिषदों में भी श्वर को परम मायावी कहा है। क्योंकि ईश्वर अपनी माया रा जगत् की सृष्टि करता है। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने हा है—

"दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।"

क अनिर्वचनीय ब्रह्म ही जगत् का मूल सत्य है, बाक़ी यह ब प्रपञ्च उसकी अभिव्यक्ति-मात्र है। यदि ब्रह्म एक है, तो ह बहुत्व उत्पन्न कहाँ से हुआ? यदि ब्रह्म सनातन है, तो ह किसमें प्रतिष्ठित है? आदि प्रश्न उठना अनिवार्य है। ह्म यदि एकमात्र सत्य है, तो उसीसे यह भेद और बहुत्व ी उत्पत्ति है; ब्रह्म ही में प्रतिष्ठित ब्रह्म की ही किसी अनिर्वचनीय शक्ति से यह सब उत्पन्न हुआ है। यही उपनिषदों ा उत्तर है। इस शक्ति को कहीं तो मायावी की माया, हीं पुरुष की अधिष्ठात्री प्रकृति तथा कहीं ईश्वर की विद्या-विद्या-मयी इच्छाशक्ति कहा है। परन्तु तार्किकों का मन ससे शान्त न हुआ। आख़िर यह माया क्या है? और हाँसे उत्पन्न हुई है? किस में प्रतिष्ठित रहती है? ीमच्छंकराचार्य स्वामी ने इसका उत्तर दिया है। नका कहना है कि माया क्या है, सो नहीं कहा ा सकता, यह एक अनिर्वचनीय पदार्थ अर्थात् ाणी से परे है। माया उत्पन्न नहीं होती, यह चिरल से है, और नहीं भी है। परन्तु इससे भी सन्तोषनक उत्तर न मिलने से भ्रम दूर नहीं होता। इस तर्क से द्वितीय ब्रह्म में एक सनातन और अनिर्वचनीय वस्तु पित हो गई, परन्तु एकत्व की रक्षा न हुई।

शङ्कर स्वामी की युक्तियों से उपनिषदों की युक्तियाँ हुत उत्कृष्ट हैं। भगवान् की प्रकृति जगत् का मूल है, इसी कृति का नाम सच्चिदानन्द की सत्-चित्-आनन्दमयी शक्ति । परमात्मा की इच्छा शक्तिमयी है। इसी इच्छा द्वारा क से बहुत और अभेद से भेद उत्पन्न होता है। परमार्थ ी दृष्टि से ब्रह्म सत्य और मायोद्भूत होने से जगत् मिथ्या है। कारण यह है कि जगत् ब्रह्म ही से उत्पन्न होकर उसीमें लीन हो जाता है। देश-काल ही में प्रपञ्च का अस्तित्व है, उसका अस्तित्व ब्रह्म की देश कालातीत अवस्था में नहीं। ब्रह्म में प्रपञ्च युक्त देश काल हैं, किन्तु ब्रह्म उसमें नहीं। जगत् ब्रह्म से ही उत्पन्न और ब्रह्म में ही वर्त्तमान है। सनातन ब्रह्म में नाशवान् जगत् की कल्पना है, और वहीं ब्रह्म की विद्या-अविद्या मयी शक्ति से परिचालित हो कर जगत् स्थित रहता है। जिस प्रकार मनुष्य की कल्पना देश-काल को पा कर सत्य हो जाती है, ठीक उसी प्रकार जिसे हम अनृत नहीं, किन्तु सत्य का विलोम मात्र कहते है, वस्तुतः यदि देखा जाय तो सब सत्य अर्थात् ब्रह्म का प्रतिरूप है, झूठ कुछ भी नहीं। हम जगत् को असत्य कहने के कदापि अधिकारी नहीं। क्योंकि देश काल में जगत् मिथ्या नहीं वरन् सत्य है। जब देश काल से पृथक हो कर ब्रह्म में विलीन अर्थात् मुक्त होने का समय आवेगा उस समय हम जगत् को मिथ्या कह सकेंगे। और तभी जगत् को मिथ्या कहने का अविकार ईश्वर-प्रदत्त समझा जायगा। अनधिकारी के यह कहने से कि जगत् मिथ्या है, मिथ्याचार की वृद्धि और धर्म का पतन ही होगा। हमारे लिए तो ब्रह्म को सत्य और जगत् को मिथ्या कहने की अपेक्षा, ब्रह्म को सत्य और जगत् को ब्रह्म कहना अधिक उपयुक्त और अच्छा होगा। यही उपनिषदों का सत्य उपदेश है। "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" बस इसी सत्य पर आर्य-धर्म स्थित है।

जी एस० विशारद

तेजस्विनी का वक्तव्य

मातंगेश्वर एक कूटनीतिज्ञ किन्तु महत्वाकांक्षी राजा है। वह अपने पड़ौसी राजा कंदर्प को जीतना चाहता है। पहले-पहल राजा को नीतिभ्रष्ट और पतित करने के लिए सौदामिनी नामक एक वेश्या को वह राजा के पास भेजता है। कंदर्प इसके जाल में फंस जाता है। तब सौदामिनी मंत्रि-मंडल से सांठ-गांठ करके मातंगेश्वर को कदम्ब देश के राजा कंदर्प पर चढ़ाई करने के लिए निमन्त्रित करती है। इस सारे षड्यंत्र का हाल कदम्ब की एक स्वातंत्र्यभक्ता तेजस्विनी नामक कुमारी पर प्रकट हो जाता है। वह इस षड्यंत्र का विरोध

करती है । राष्ट्रध्वजा की रक्षा के लिए अपने प्राणों पर खेलती है, कंदर्प को समझाती है, पर स्त्री-लंपट कंदर्प पर इसका कोई असर नहीं होता। कंदर्प राज्य-त्याग कर देता है, तेजस्विनी बलवा कर देती है । उसपर न्यायालय से राजद्रोह के अभियोग में मामला चलाया जा रहा है । तेजस्विनी ने अपना वक्तव्य यों सुनाया :—

माननीय न्यायाधीश और न्यायसभा के सदस्यों, राजद्रोह का अभियोग लगाकर मैं आप लोगों के सन्मुख खड़ी की गई हूँ। इस अभियोग की पुष्टि में मेरे कई आक्षेपयोग्य कामों का लंबा चिट्ठा भी आप लोगों को पढ़कर सुना दिया गया है । इन सब कामों के लिए मैं अपनेको शुरू से ज़िम्मेदार समझती हूँ । और उन्हें किसी भी हालत में अस्वीकार करने को तैयार नहीं हूँ । इसलिए अब आपके सामने केवल यही सवाल रह जाता है कि मेरे ये काम शुद्ध न्याय की दृष्टि से राजद्रोहात्मक हैं या नहीं ? मेरे प्रतिपक्षी तो उन्हें राजद्रोहात्मक समझते हैं; परन्तु मुझे उनमें राजद्रोह का लवलेश भी नहीं दिखाई देता । यही नहीं बल्कि मेरा तो यह भी कहना है कि मेरे तो सारे काम पूरी-पूरी राजनिष्ठा से भरे हुए हैं । केवल राजा का नाम रख लेने भर से कहीं कोई राजा नहीं हो जाता । कहीं गुलाब के चित्रों से सुगन्धि फूट-फूट कर बाहर नहीं फैलती । सिंह के पुतलों से कहीं जंगल गरजते हैं ? अथवा नौका का नाम ले देने भर से कहीं हम इस पार से उस पार नहीं पहुँच जाते । इसी प्रकार राजा के नाम की केवल पटिया अपने सिर पर लगा लेने से मनुष्य के शरीर में राजतेज का प्रादुर्भाव नहीं होता । न्यायसभा के सन्माननीय सदस्यो, मैं चाहती हूँ कि सबसे पहले मैं इसी बात की ओर आपका ध्यान आकर्षित करूँ । जिसका द्रोह करने के कारण मुझपर राजद्रोह का अपराध लगाया जा रहा है वह मूर्ख-व्यक्ति खुद भले ही अपने आपको राजा समझे, परन्तु वस्तुतः वह राजा नहीं है—यही नहीं बल्कि राजा की पवित्र पदवी को धारण करने के लिए वह तिलमात्र भी योग्य नहीं ।

इस मूर्ख, नालायक़, भोंदू ने कुछ दिन पहले मातंगेश्वर से एक अत्यन्त दुष्ट और नीचता-पूर्ण संधि की है । इस सन्धि के द्वारा उसने इस देश की राज-सत्ता, राज्य-लक्ष्मी, राज-सिंहासन, राज-मुकुट, राजध्वजा मतलब यह कि सब कुछ मातंगेश्वर को समर्पण करके सारे राष्ट्र को की नदी में ढकेल दिया । और खुद अब राज्यहीन और विमुख होकर बैठा है । यह सन्धि कदम्ब की राज राष्ट्र-स्वातंत्र्य को मिट्टी में मिलाने वाली है और जब उसने प्रजापक्ष को बिना पूछे ही वह राज- राष्ट्र की स्वतन्त्रता के लिए महान विघातक सुलह गुप्त रीति से विचार किया तब मैंने संधि होने के उसके बाद भी कंदर्प का ज़ोरों से विरोध किया करती हूँ, और अगर हो सका तो जब तक इस प्राण हैं बराबर करती रहूँगी ।

मेरे इस शास्त्र-सम्मत विरोध को प्रतिपक्षी कहते हैं ! सच पूछा जाय तो राजा केवल प्रजा का करने वाला उसका सर्वश्रेष्ठ अधिकारी है। उसका तो यही धर्म और अधिकार है कि वह मरते अपनी प्रजा की रक्षा-पालन करता रहे । उसे यह कदापि नहीं कि वह प्रजा को बेच दे या दूसरे के उसकी स्वतंत्रता का बलिदान दे दे । वह फिर ही कैसे सकता है ? अगर शत्रुओं के कारण वह या राष्ट्र की रक्षा करने में असमर्थ है, तो उसे अधिकारों का मोह छोड़ कर राज सिंहासन और प्रजा को सौंप कर अपनी ज़िम्मेदारी से बरी हो जाना प्रजा की सम्पूर्ण सम्मति प्राप्त किये बिना किसी भी वह अपनी प्रजा की स्वतंत्रता को दूसरों के हाथ नहीं सकता । सुलह होने के पहले मैंने कंदर्प से यह बात थी और बार-बार मैंने उससे विनय-पूर्वक यह सम कि वह अपने अधिकारों का दुरुपयोग न करे । पर मेरी बात क्यों सुनने चला ? वह तो देशद्रोही, और विश्वासघाती मंत्रि-मण्डल के जाल में फँसा हुआ जो मातंगों की रिश्वत पर गुलछर्रें उड़ा रहा था । [लय में मंत्रि-मंडल का यह घोर अपमान है, बद अनादर है, इत्यादि का कोलाहल]

हाँ, इसमें मंत्रि-मंडल की बदनामी, अपमान अनादर भी ज़रूर है । और मैं जान-बूझ कर यह कर रही हूँ । हमारे राष्ट्र का सत्यानाश करने वाले

अर सुलह मंत्रि-मंडल की दुष्ट सलाह का ही परिणाम । मुझे निश्चय हो गया है कि इस षड्यंत्र को सफल करने लिए मातंगेश्वर ने अपना पैसा पानी की तरह बहाया है, की घूस दी गई है। और मौक़ा पड़ने पर मैं इस बात सप्रमाण सिद्ध करने के लिए भी तैयार हूँ। अगर मंत्रि-ल की हिम्मत हो तो वह सामने आवे और इस राज-के अभियोग के साथ-साथ मुझपर अपनी बेइज्जती का दमा भी चलावे। मैं इसके लिए ख़ूब तैयार हूं। इस , मैं मंत्रि-मंडल को साफ़-साफ़ कह देना चाहती हूँ अपने भाषण में जहाँ कहीं मौक़ा आवेगा मैं मंत्रिमंडल बराबर "मातंगों के माल पर पली हुई देशद्रोही चंडाल-ड़ी" के नाम से ही याद करूँगी। न्यायाधीश महोदय न्याय-सभा के सदस्यो जब मैंने देखा कि कंदर्प मेरी ती, मेरी प्रार्थना, तथा मेरे सच्चे प्रेम भरे आग्रह को बर ठुकराता जा रहा है, और कदम्बों के परम्परागत र शत्रु मातंगेश्वर के चरणों पर ,अपना और अपने राष्ट्र का अर्पण करने पर तुल गया है, तब मुझे अपना कर्त्त-स्पष्ट दीख पड़ा। मैंने अपने परमप्रिय राष्ट्र देवता की क्षा के नाते कंदर्प का विरोध करना अपना कर्तव्य सा। अगर मैंने किसी का विरोध किया है तो वह कंदर्प किसी राजा का नहीं। और तिसपर भी राजद्रोह के योग में दोषी ठहरा कर मैं आपके सामने इसलिए खड़ी गई हूँ कि मुझे आप कड़ी सज़ा से दंडित करें। सज्जनो, मैं सचमुच ही राज-द्रोहिणी होती तो भला मैं लोगों क्यों यह कहती फिरती कि षडयंत्र और उनके गुप्त वासघात से सावधान रहो और अपनी राजसत्ता चक्र से बचाओ? अगर मैं सचमुच राजद्रोह करने पर तुल होती तो क्यों मैं अपने देशभाइयों को यह कहती हुई ाती कि अपने राज सिंहासन को शत्रु के पापी पैरों के से कलंकित होने से बचाओ? उन्हें सावधान और ध्यारूढ़ करने के लिए क्यों मैं आकाश-पाताल एक कर ती और यह उद्योग करती? अगर राजद्रोह ही मुझे होता, तो कदम्बों के राष्ट्रीय झंडे को अपमान से बचाने लिए मैं अपना जीवन भला क्यों ख़तरे में डालती? ी-भरा साहस ही क्यों करती? मेरी समझ में नहीं आता कि राजसत्ता, राज-सिंहासन और राष्ट्रीय झंडे की रक्षा के लिए-खुद कटिबद्ध होना और दूसरों को तैयार होने के लिए उपदेश देना राजद्रोह है कैसे? राज्यसिंहासन, राजदण्ड, और राष्ट्रीय-ध्वजा राजसत्ता के आभूषण हैं, किन्तु स्वयं राजसत्ता तो राजा की साक्षात् जीवन-कला है। जिसमें वही नहीं वहां राजा का अस्तित्व ही नहीं रहता। राजसत्ता के अभाव में किसीको राजा कहना 'राजा' शब्द की हत्या और भाषा का ख़ून है। यही नहीं बल्कि यह तो सत्य की अक्षम्य तोड़-मरोड़ है। प्राणवायु के बिना जीवन और पानी के अभाव में जिस तरह तालाब व्यर्थ होता है उसी तरह सत्ता के अभाव में राजा शब्द का प्रयोग एकदम व्यर्थ है। सत्ता खो चुकने पर या उसे छोड़ देने पर राजा का राजत्व ही नहीं रह जाता। जिस तरह प्राणहीन शरीर मिट्टी बन जाता है, उसी तरह सत्ता हीन राजा निरा मिट्टी का पुतला है। कन्दर्प तो उसी क्षण से मिट्टी का होगया जब से उसने अपना राज्य शत्रु के हाथों बेंच दिया। अब तो उसके शरीर में राजापन का लेश भी शेष नहीं। इसलिए ऐसे सत्ताहीन, राज्यहीन, राजैश्वर्यहीन मिट्टी के पुतले के विरोध या उसके प्रति शत्रुता को भी राजद्रोह कहना संसार की ही नहीं किन्तु स्वयं परमात्मा की आंखों में भी धूल झोंकने का मूर्ख प्रयत्न करना है। न्यायाधीश महाराज और न्यायसभा के सदस्यो, फिर भी यदि आप इस राजसत्ताहीन कंदर्प को राजा मान लें और उसके विरोध को राजद्रोह समझें तो भी आप मुझे दोषी सिद्ध नहीं कर सकते। क्योंकि मैंने तो सत्ताविहीन कंदर्प का भी कभी विरोध नहीं किया है। मैं तो उसे केवल उसके हित की ही बातें कहती रही हूँ। क्या राजा से यह कहना कि "तुम अपना राजत्व क़ायम रक्खो और अब तक तुम जिस तरह राजा थे वैसे ही आगे भी बने रहो" राजद्रोह है? अथवा क्या प्रजा से यह कहना राजद्रोह है कि "तुम्हारा राजा शत्रुओं की ग़ुलामी करना चाहता है—बल्कि ग़ुलाम होगया है, उसे ग़ुलामी से छुड़ाकर फिर सच्चा राजा बनाओ"? जो लोग अपने राजा को दूसरों का ग़ुलाम बनाते हैं वे राजद्रोही हैं, अथवा वे जो ऐसे अभागे असहाय आदमी को ग़ुलामी के नरक से उबार कर फिर से राज्यसिंहासन पर बैठाते हैं या बैठाने की कोशिश कर रहे हैं? अगर यह कन्दर्प

अपने राज्य की रक्षा के लिए कुछ हिम्मत करता तो उसके राजत्व की रक्षा के लिए मैं-खुद अपने को रणक्षेत्र में समर्पण कर देती। और अपने देशभाइयों से भी ऐसा करने के लिए उपदेश करती। यही नहीं, अगर आज भी कन्दर्प इन ग़ुलामी की ज़ंजीरों को तोड़ कर अपने राजत्व की रक्षा के लिए कटिबद्ध हो जाय, तो उसके लिए मैं अपना सब कुछ होम देने के लिए तैयार हूँ। यह बात नहीं है कि मैं कन्दर्प से घृणा करती हूं—घृणा तो मुझे ग़ुलाम कन्दर्प से है, राजा कन्दर्प को तो अब भी दिल से चाहती हूँ; अगर मैंने किसी का द्रोह किया भी है तो ग़ुलामी का स्वागत करने वाले उस ग़ुलाम कंदर्प का किया है न कि राजा कन्दर्प का। महाराज कन्दर्प की तो मैं अब भी प्रजा हूँ—उसकी सेविका हूँ, और उसके लिए युद्ध-क्षेत्र में अपने प्राणों की आहुति देने को मैं आज भी तैयार हूँ। माननीय न्यायधीश और न्यायसभा के सदस्य सज्जनो, राजा का परमपवित्र नाम धारण करने वाली व्यक्ति और राजा शब्द के असली तात्त्विक अर्थ के बीच जो महान् अन्तर है, इस मामले का विचार करते समय आप उस पर जरूर ग़ौर कीजिएगा। राज-पदवी को धारण करनेवाली व्यक्ति बारबार बदलती रहती है, परन्तु राजा शब्द से व्यक्त होने वाला भाव कभी नहीं बदलता। वह तो शाश्वत है। इसी भावना के कारण राजा नामधारी व्यक्ति संसार में श्रेष्ठ माना जाता है। परन्तु ऐसे विचित्र राजद्रोह के मामले में जहां व्यक्ति और तत्व में विरोध उत्पन्न हो गया हो आप लोगों को परिवर्तनशील वस्तु की अपेक्षा स्थायी-शाश्वत भाव को ही अधिक महत्त्व देना चाहिए। आज यह प्रश्न नहीं कि किसी एक आदमी को न्याय देने का नहीं है। आज तो एक सर्वश्रेष्ठ दिव्य सिद्धांत की हमें स्थापना करनी है। इसी सिद्धांत और उसकी स्थापना पर आज आपके राष्ट्र का भविष्य निर्भर है। कंदर्प नामक व्यक्ति विशेष का पक्षपात करके अगर आप राजतत्व को ठुकरा देंगे, उसका अपमान करेंगे, तो स्वदेश के पैरों में दासता की ज़ंजीरें बाँधने का महापाप आपको निश्चित रूप से लगेगा। व्यक्तिनिष्ठा को महत्त्व देने और तत्वनिष्ठा को छोड़ने के कारण ही आज तक कितने ही राष्ट्रों का सत्यानाश हो चुका है—संसार में आज उनका नाम-निशान भी नहीं रहा। सज्जनो, आप विद्वान हैं, विचारशील हैं, इतिहास, समाजशास्त्र और क़ानून के अच्छे हैं। साथ ही आपके अन्दर उज्ज्वल न्याय-निष्ठा और स्वातंत्र्य-प्रेम भी सदा जागृत है। नराधम अपने प्राणों बचाने के लिए शत्रु-सिंहासन के सन्मुख आप लोगों राजसत्ता की बलि चढ़ाता है; आपकी वैभवपूर्ण लक्ष्मी को शत्रु के चरणों पर ढकेलता है। ऐसे द्रोह को भी अगर आप लोग सचमुच राजद्रोह समझें तो मैं स्वीकार करती हूँ कि यह अपराध मैंने किया है सौ बार किया है। तब आप इस अभियोग में दोषी कर शौक़ से मुझे सूली पर चढ़ा सकते हैं। मैं ख़ुशी फांसी के तख़्ते पर चढ़ जाऊँगी। जिस सिंहासन के आपके पूर्वजों ने उसके मस्तक पर समर-देवता को करने के लिए गत दो-तीन पुश्तों से अपने अमृततुल्य की धारायें बहाई हैं, उसी परम-पवित्र सिंहासन को परम्परागत कट्टर दुश्मनों के पापी चरणों से भ्रष्ट करवाने उद्योग करने वाले महापापी की करतूतों को असफल के लिए उसका विरोध करना राजद्रोह हो—अपनी त्मा से पूछकर कहिए—यदि वह राजद्रोह है तो कदं सिंहासन के स्वामी-भक्त सरदारो, मैं ज़रूर-ज़रूर राजद्रोह की अपराधिनी हूँ; आप मुझे दोषी ठहरा से हाथी के पैरों-तले कुचल डालने की आज्ञा दीजि बड़े आनन्द के साथ उस सज़ा को सह लूँगी। मैं इसी निश्चय से इस कर्तव्य-क्षेत्र में कूदी अपने कामों के भयंकर से भयंकर परिणामों को साथ सहलूँ। इसलिए अगर आप मुझे प्राणदंड तो मुझे कोई कष्ट न होगा। आप लोगों से मेरी अन्तिम प्रार्थना है कि जिस पुण्यभूमि में आपने जन्म है उसके विनाश में शत्रुओं का हाथ बटा कर कहीं पुश्तों के शाप अपने सिर पर मत लेना। कदम्बों की सभा तो स्वातंत्र्य लक्ष्मी का क्रीड़ास्थल है। प्र स्वतंत्रता को सुरक्षित रखना ही इस न्याय- उज्ज्वल व्रत रहा है। मैं आप लोगों से दया की नहीं मांगती, न अपने प्राणों की रक्षा ही चाहती हूँ। आपसे सिर्फ़ न्याय चाहती हूँ, और चाहती हूँ ऐसा जिसका आधार स्वाधीनता का परमोच्च और उदार

यही मेरी अन्तिम अभिलाषा है । परमात्मा आपको मेरे लिए ऐसा बल दें कि जिसमें आप मुझे वह न्याय दे सकें !

('रणदुंदुभि से')

युग-निर्माण

बुद्धदेव का संदेश

बुद्ध-जयंति (जो गत ४ मई को की गई) नवयुवकों लिए एक सर्वश्रेष्ठ उत्सव-तिथि है । राष्ट्र के नवयुवकों के यह शुभ दिन अनन्त कल्याणकारी हो !

बहुत वर्ष हुए, श्री कर्न ने बुद्धदेव को 'सूर्य का काल्प- (A Sun-Myth) अवतार' सिद्ध करने की चेष्टा की । परन्तु डा॰ थॉमस के हाल के बुद्ध-चरित्र से इस दांत का करारा खंडन होता है । शाक्य मुनि कहीं प्राचीनों कल्पना की उपज थोड़े ही हैं, वह तो एक ऐतिहासिक महा- हैं । मानव-जाति के विभूति-मंदिर की वह तो एक भव्य महान मूर्ति हैं । और हैं प्राचीन विज्ञान के सर्वश्रेष्ठ क ।

आधे पूर्व को उन्होंने नवजीवन से जगमगा दिया है । पावन मूर्ति और दिव्य संदेश पूर्व और पश्चिम के मनुष्यों के हृदयों में अधिष्ठित है । बुद्धदेव के जीवन उनके उपदेशों ने एक नवीन वायुमण्डल तैयार कर दिया हिन्दूधर्म नवीन रूप धारण करके पुनः भारत में र्ण हुआ । और अहिंसा-धर्म के पुनः प्रतिपादन के में बुद्ध-धर्म ने वैष्णव धर्म के अन्दर पुनः जन्म किया ।

अपने गुरुदेव को अन्तिम श्वास लेते देख कर आनंद की आंखों से बरबस आंसू की धारा बहने लगी । उन्होंने अनिरुद्धसिंह से कहा, "अनिरुद्ध ! तथागत तो चल बसे ।" परन्तु अनिरुद्ध ने उत्तर दिया, "नहीं, आनन्द, तथागत गये नहीं । वह तो केवल परम-चैतन्य में मिल गये हैं ।"

परम-चैतन्य-स्वरूप महात्मा बुद्ध ! हमारे प्राचीन इतिहास के चौथे दिव्य पुरुष ! पहले तीन राम, कृष्ण और महावीर थे । उन्हीं की कोटि में बुद्ध भी जा मिले । तबसे जैसे-जैसे शताब्दियां बीतती गईं बुद्धदेव लोगों के जीवन में ओत-प्रोत हो रहे हैं । आज उनकी ज्योति से बड़े-बड़े राष्ट्र जगमगा रहे हैं ।

पूर्व-उपनिषद्-काल में महर्षि याज्ञवल्क्य एक महान् विभूति होगये हैं । वह आत्म-विज्ञान के सच्चे द्रष्टा थे । उत्तर-उपनिषद्-काल की महान् विभूति तथागत-गौतम बुद्ध थे । वह भी एक महर्षि और विश्व-व्यापी परमतत्व के द्रष्टा थे । वह कोरे सुधारक ही नहीं थे । वह महर्षि थे और थे एक महान् योगी, जिन्हें ज्ञान और सिद्धि की दसों शक्तियाँ प्राप्त थीं ।

एक राजा अपने राज-वैभव को ठुकरा कर भिखारी बन गया और मानव-जाति के लिए आशा का नवीन संदेश सुनाता हुआ वह बन-बन और गाँव-गाँव घूमा । लोग दुःख और अज्ञान में निमग्न थे । जरा और मृत्यु के भय से काँप रहे थे और संसार और पुनर्जन्म के द्वन्द्वों से आन्दोलित हो रहे थे । यह राजकुमार उनके लिए संजीवन संदेश लेकर

आया। इसने अपने आपको आत्मा का वैद्य ज़ाहिर किया।

आपको सुनकर आश्चर्य होगा कि बुद्ध एक कुशल धनुर्धर और वज्रकाय पुरुष थे। वह कला-प्रवीण थे। यति और भोगी दोनों के जीवन के वह विरोधी थे। उन्होंने मध्यम मार्ग का उपदेश दिया। उन्होंने लोगों को बतलाया कि स्वास्थ्य का मार्ग ही पवित्र मार्ग है।

तथागत बुद्ध ने चार सत्यों पर अधिक ज़ोर दिया था। वह उन्हें 'आर्य सत्य' कहते थे। इनका सम्बन्ध अविद्या, संस्कार, नाम-रूप और तृष्णा आदि से है। ये चारों दुःख और विपत्ति के मूल कारण हैं। एक द्रष्टा की नज़र से वह मनुष्य के मनोभावों को पहचान लेते थे और मानव-जाति के सच्चे प्रेमी की उत्कटता उनके अंदर थी। वह नहीं चाहते थे कि मनुष्य-समाज अपना बहुमूल्य समय थोथे धार्मिक तर्क-वितर्कों में बितावे। उन्होंने अपने उपदेशों में धर्म-विश्वास की अपेक्षा चरित्र को कहीं अधिक महत्त्व दिया है। नाम-रूप, मन्त्र-तन्त्र, रीति-रिवाज, धार्मिक विश्वास और सिद्धान्तों की जरूरत नहीं थी, ज़रूरत है सिर्फ जीवन के उन उदात्त आठ प्रकारों के ज्ञान की। और भगवान बुद्ध ने यही अपने भिक्खुओं से कहा —'इस" पर विश्वास करने के लिए मैंने तुम्हें इसलिए नहीं कहा कि तुम उसे मुझसे सुन रहे हो बल्कि इसलिए कि वह तुम्हारी अंतरात्मा की आवाज़ भी है। और एक बार इसका विश्वास हो जाने पर तुम्हें उसपर अमल करना चाहिए और खूब ज़ोरों से अमल करना चाहिए। बुद्धदेव ने 'त्रिवृत्त मार्ग' सिद्धान्त में निष्काम कर्म पर खूब ज़ोर दिया है। बलिदान से चरित्र खिल उठता है। और बुद्ध के लिए बलिदान रूखा स्वार्थत्याग नहीं था। वह तो उनके लिए सच्चिदानन्दमय आत्मसाक्षात्कार था। और दूसरों की रक्षा के लिए भभकती हुई ज्वालाओं में कूद पड़ना उतना ही आनन्ददायक काम था, जितना एक हँस के लिए कमल-दल से लहलहाते सरोवर में कूद पड़ना है। दीन, पतित और पथ-भ्रष्ट लोगों के लिए तथागत ने महान् त्याग और अपूर्व प्रेम का जीवन बिताया था। उन्होंने नाई और कोढ़ियों को कष्ट से उबारा था। वह जाति से च्युत स्त्रियों के साथ बैठकर भोजन करते थे। अपने पिता के राजमहल के सुखों को उन्होंने केवल ग़रीबों से भाई-चारा जोड़ने के लिए, जै तरह ठुकरा दिया था। उनके विश्व-बन्धुत्व की वि गोद में केवल मनुष्य ही नहीं पशु-पक्षी तक विश्राम थे। क्या पशु भी हमारा भाई नहीं है?

उनका आदर्श जाति और सम्प्रदायों की चहारदी को पार कर गया था। उनका आदर्श तिहेरा था—बुद्ध आ धर्म आदर्श और संघ आदर्श यही उनके तीन आदर्श वह कहते थे कि हरएक मनुष्य को बुद्धावस्था प्राप्त क चाहिए। उन्होंने कभी स्वप्न में भी केवल अपने आ बुद्धश्रेष्ठ नहीं समझा। मनुष्य मात्र एक बुद्ध होने की क्ष रखता है। इस शिक्षा में कितना ज़बर्दस्त आश्वासन है? उन्होंने सदाचार को ही सद्धर्म का मार्ग बताया। उन्हों ने धार्मिक विधि-विधान और कर्मकाण्ड पर कभी ज़ोर न दिया। वह तो उदात्त पवित्र जीवन को ही सब कुछ सम थे। उनके संघादर्श के मानी थे विश्व बन्धुत्व। मैं अपने प्रा कालीन ध्यान और ईशस्तवन में उस सुन्दर बौद्ध प्रार्थना भी गाता हूँ, जिसमें यह त्रिविध आदर्श ग्रथित है।

(१) बुद्धं शरणं गच्छामि।
(२) संघं शरणं गच्छामि।
(३) धर्मं शरणं गच्छामि।

बुद्ध ने कहा, 'मनुष्य बनो'। ये शब्द उनके संदेश के मह पूर्ण पहलू की ओर हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। वह ह हमें स्वावलम्बन और आत्माभिमान का पाठ पढ़ाता है। ह इसलिए दुखी हैं कि मूढ विश्वासों और मुर्दा प्रथाओं पालन करने में वे अपनी शक्ति बरबाद करते हैं। तथागत ने कहा, "किसी और का सहारा मत लो—अपने पैरों पर हो जाओ।" शाक्य मुनि के जन्म से कई सदियों पहले वैदिक ऋषि-मुनियों ने गाया था, "अपनी दिव्यता का करो।" और महा-समाधि लेने के पहले बुद्धदेव ने आनन्द से कहा, "आनन्द, दूसरे किसी की शरण न अपनी आत्मा का ही आश्रय लो। सत्य को इस तरह रहा, जैसे कोई दीपक को पकड़ता है और आगे बढ़ते जा और यही आध्यात्मिक पुरुषार्थ वाला अनूठा संदेश व भारत को आशा का संदेश है—उस नवभारत के लिए आज चारों ओर भटक रहा हैं, प्रतिदिन एक दुर्बल

निकल कर दूसरी के पंजे में फंस रहा है। क्यों कि बिना स्वाभिमान के आध्यात्मिकता कहाँ ? अतः आत्माभिमानी बनो ! राष्ट्रों का निर्माण खुद अपने किये होता है ।

टी० एल० वास्वानी

विश्व-दर्शन

चीन और जापान

जापान की प्रसिद्ध रूस-विजय के समय थियोडोर रूज़वल्ट ने अन्तर्राष्ट्रीय स्थितिकी आलोचना करते हुए कहा था कि अमेरिका की खोज से भूमध्य-सागर का महत्व काल (Mediteranian Era) नष्ट हो चुका है । अटलाण्टिक सागर का समय (Atlantic Era) अपनी चरम उन्नति पर है और शीघ्र ही सारे संसार की राजनीति पर वह प्रभाव डालेगा। प्रशान्त महासागर का काल (Pacific Era) अभी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में है जो जल्दी ही सब से अधिक महत्वपूर्ण हो जायगा। अमेरिका के भूतपूर्व राष्ट्रपति का यह कथन आज बहुत अंश में ठीक सिद्ध हो रहा है। सुदूरपूर्वीय प्रदेशों की महत्ता मुख्यतः चार घटनाओं— १९०४-५ का मंचूरिया का युद्ध, १९११ की चीनी क्रांति, १९१४ का यूरोपीय महायुद्ध और १९१७ की रूस की क्रांति के कारण वस्तुतः बढ़ गई है । इन घटनाओं से चीन, जापान और रूस में एक नवीन सम्बन्ध स्थापित हो गया है और एक नवीन परिस्थिति पैदा हो गई है । परन्तु यहां हम अन्य देशों की कथाओं को छोड़ कर केवल चीन की अवस्था पर ही विचार करेंगे ।

बहुत समय से चीन के विषय में कोई विशेष समाचार नहीं मिले थे। जो मिलते भी हैं वे कहाँ तक सत्य होते हैं, नहीं कहा सकता । फिर भी जो समाचार मिले हैं, उन से मालूम होता है कि चीन का वातावरण इस बार बहुत ज़ोर से क्षुब्ध और अशान्त हो उठा है, जिसके शीघ्र ही शान्त होने की कोई संभावना नहीं दीखती । वैसे ही गृह युद्ध के कारण चीन का वातावरण पहले ही अशान्त था, परन्तु अब जापान के बीच में पड़ने से स्थिति बहुत भयंकर होगई है ।

हमने त्यागभूमि के किसी पिछले अंक में जापान की-नीति पर लिखते हुए बताया था कि अब वह एशियायी राष्ट्रों से सहानुभूति रखने लग गया है । वह यूरोपीय राष्ट्रों, विशेषतः अमेरिका और इङ्गलैण्ड की कूटनीति से सतर्क होगया है और एशियायी राष्ट्रों के संघ बनाने की तैयारी में है । उसने कई बार विदेशों के पंजों से चीन को बचाया है । परन्तु अब नये आये हुए समाचारों से मालूम हुआ कि जापान आज चीन का मित्र नहीं, उसका शत्रु है । जब चीन की राष्ट्रीय सेना उत्तरी चीन पर विजय करते हुए सिनानफू पहुँची, तो वहां की लूटमार में कुछ जापानियों को भी जन-धन की हानि उठानी पड़ी । क्रान्ति और युद्धों के समय यह कुछ स्वाभाविक बात है । बस, जापान की सरकार आपे से बाहर हो उठी और सारा युद्ध-विभाग विदेशी झगड़ों, तथा पारस्परिक कलह से क्षीण चीन को तबाह करने के लिए उद्यत हो गया, जापान के फ़ौजी जहाज़ों ने चीन के बन्दरगाहों को

घेर लिया और जापान की सुसज्जित सेनायें चीन आने लगीं। सिनानफू वगैरा स्थानों पर जापानियों ने राष्ट्रीय दल के साथ बहुत घमासान लड़ाई की। पहले से ही दुर्बल चीनी न ठहर सके और जापानियों ने वहां के सिपाहियों तथा नागरिकों पर निर्दयता-पूर्वक अत्याचार किये। शान्तुंग प्रांत में २६००० सैनिकों ने पहुँच कर चीनी कमिश्नर के नाक-कान काट दिये हैं, परराष्ट्र सचिव के दफ़्तर पर गोलाबारी की तथा सैकड़ों चीनियों की हत्या कर उस प्रांत पर अधिकार कर लिया। जापानियों के हवाई जहाज़ों ने भी काफ़ी तादाद में पहुँच कर चीनियों पर बम के गोले फेंक कर सैकड़ों चीनियों को मार दिया। हम यहाँ युद्ध की सब घटनाओं को लिखना व्यर्थ समझते हुए यही लिखकर आगे चलते हैं कि जापानियों ने चीनियों को क्रूरतापूर्वक मारा और उन्होंने तरह-तरह के अत्याचार किये।

जापान की सरकार ने इस युद्ध के संबन्ध में अपना एक वक्तव्य प्रकाशित किया है, जिसमें चीन से युद्ध करने के कारणों को बताते हुए लिखा है—जापान सरकार ने सिनानफू में जापानियों के जान-माल की रक्षा के लिए सेना भेजी। वहाँ जितनी सेना है, उतनी जापानियों की रक्षा के लिए पर्याप्त नहीं है। शांतुंग रेलवे के मार्ग की रक्षा करना और उसे निर्विघ्न करना है। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये सब कारण बाहरी लोगों को कहने के लिए हैं, वस्तुतः इनमें कोई सार नहीं। सच्चा कारण कोई दूसरा है।

कुछ समय पूर्व चीन के राष्ट्रीयदल ने बहुत प्रगति की थी। उसका संगठन बहुत दृढ़ हो गया था और उत्तरीय चीन में उसकी विजय पर विजय होती जा रही थी कि इतने में जापान ने चीन पर आक्रमण किया। जापान को राष्ट्रीयदल की यह उन्नति सह्य न थी, क्योंकि राष्ट्रीयदल के चीन पर प्रभाव का स्पष्ट अर्थ यह है कि विदेशियों को चीन में अपने विलास-क्षेत्र बनाने का मौका न मिलेगा। दूसरे साम्राज्यवादी देशों की तरह जापान ने भी चीन में कई प्रभावक्षेत्र स्थापित कर रक्खे हैं। वह चीन के आपसी झगड़े से लाभ उठाकर चीन में अपना पैर और भी मज़बूती से जमा लेना चाहता है। मंचूरिया में जापान की शक्ति प्रधान है और शांटुंग तो उसके कब्ज़े में है ही। उसके हाथ में कोरिया है, पोर्ट आर्थर है, मंचूरिया की रेलें हैं और गत यूरोपीय युद्ध से उसके कियाचौ प्रदेश भी आ गया है। अब वह सरलता से के रास्ते पर अधिकार कर सकता है। जापान जानता है राष्ट्रीयदल की विजय से ये प्रभावक्षेत्र उसके हाथ रहेंगे। अभी राष्ट्रीयदल ने अंग्रेज़ों से हैंको की उन्हें वहा से निकाल दिया। यही डर जापान को भी वह उन प्रदेशों को छोड़ना नहीं चाहता। युद्ध के जापान ने कहा था कि युद्ध समाप्त होने पर कियाचौ प्रदेश चीन को वापस दे देंगे; परन्तु जिस समय परिषद् में चीन ने उन प्रदेशों के लौटाने का प्रश्न जापान ने किसी तरह का वादा करने से इन्कार कर उस समय इंग्लैंड और फ्रांस ने भी जापान का साथ चीन के राष्ट्रीयदल को दबाने के लिए ही जापान ने आक्रमण किया है। वह इसके लिए बहुत समय से कर रहा था। अब छोटा सा बहाना मिलते ही उसने शुरू करदी।

हां, इस लड़ाई का एक और भी कारण बताया है। जापान का शासनसूत्र वहां के सेइयुकाई नामक दार दल के हाथ है। इस दल का विरोधी मिनसेइटो उदार दल है। वर्तमान सरकार के प्रति वहाँ की काफ़ी विरोधभाव फैला हुआ है। अभी वहां की पार्लि वर्तमान सरकार के प्रति अविश्वास प्रकट करने का पेश होने वाला था। शासक दल ने लोगों का ध्यान तरफ़ से हटा कर दूसरी ओर खींचने के लिए ही छेड़ दिया है। बहुत संभव है, यह कारण ठीक हो।

इधर एक और बात हुई। चीन के उत्तरी दल के पति चांगसोलिन ने, राष्ट्रीयदल को दबाने का अच्छा देख कर जापान को सहायता देने की बात चलाई जापान ने सहायता लेने से इनकार कर दिया। प्रसन्न होकर उसने राष्ट्रीयदल से मेल कर लिया उसने पारस्परिक युद्ध को बन्द करने की घोषणा कर यह भी चीन के लिए अच्छा हुआ। राष्ट्रीय चीन ने संघ का ध्यान जापान की इस अनुचित कार्रवाई की खींचा। राष्ट्रसंघ ने इसका जो उत्तर दिया, उससे मनोवृत्ति का पता लगता है। राष्ट्रीय सरकार राष्ट्र

सदस्य नहीं है, इसलिए नियमानुसार उसकी प्रार्थना पर ध्यान नहीं दिया जा सकता। पेकिंग की उत्तरी सरकार तो संघ की सदस्य थी न? फिर क्यों इसपर विचार नहीं किया गया? राष्ट्रसंघ के लुटेरे सदस्य चीन की पर्वाह क्यों करने लगे। इङ्गलैण्ड की तो जापान के कार्य से पूर्ण सहानुभूति है, जैसा कि सर आस्टिन चैम्बरलेन के भाषण से पता लगता है। भले ही जापान की सरकार इस समय चीन पर चढ़ाई करने में अपना हित देखे, परन्तु यह है उसके लिए घातक। इससे उसके एशियायी राष्ट्रों का संघ बनाने का प्रयत्न मिट्टी में मिल गया। अब एशियायी राष्ट्रों में उनके प्रति क्या भाव पैदा हो गया है, यह लिखने की आवश्यकता नहीं। यूरोप विशेषतः इंग्लैंड तो यही चाहता था कि एशियायी संघ न बने, उसने जापान को चीन में लड़ने दिया। यदि उसे यह युद्ध अभीष्ट न होता, तो जापान को इतना साहस कभी न होता। जापान ने ऐसा करके वस्तुतः सारे एशिया से शत्रुता पैदा करली है।

नये आये हुए समाचारों से ज्ञात होता है कि अब चीन का राष्ट्रीयदल विजय पर विजय करता हुआ उत्तरीय चीन की ओर बड़ी तेज़ी से बढ़ रहा है। राष्ट्रीयदल की यह विजय चीन के सौभाग्य का चिन्ह है।

इस मास चीन के इस संघर्ष के बाद अफ़ग़ानिस्तान की राजनैतिक प्रगति महत्त्वपूर्ण घटना है।

अफ़ग़ानिस्तान और अंग्रेज़

एशिया के राष्ट्रों में आजकल कुछ ही दिनों में यदि किसी राष्ट्र ने सारे संसार का ध्यान अपनी ओर खींच लिया है तो वह अफ़ग़ानिस्तान है। अफ़ग़ानिस्तान के अमीर अमानुल्लाख़ां महत्त्वाकांक्षी, कुशल प्रबन्धकर्त्ता, दूरदर्शी और चाणाक्ष राजनीतिज्ञ हैं। आज उसकी प्रत्येक चेष्टा को सम्पूर्ण राष्ट्र बड़े ध्यान से देख रहे हैं। अफ़ग़ानिस्तान की सारी प्रगति का रुख़ आजकल किस तरफ़ है, यदि हम इसे एक वाक्य में कहना चाहें, तो कहेंगे कि इंग्लैंड का विरोध करना ही इसका उद्देश्य है। अमीर ने राजगद्दी पर बैठते ही १३ अप्रैल को घोषणा की की अफ़ग़ानिस्तान को बाहर और भीतर पूर्ण रूप से स्वतन्त्र होना चाहिए। इस बाहरी स्वतन्त्रता का अर्थ इंग्लैंड के पंजे से छूटना ही था। कुछ समय बाद अफ़ग़ानिस्तान इंग्लैंड की परराष्ट्र विषयक पराधीनता से मुक्त भी हो गया। उसके बाद अमीर अफ़ग़ानिस्तान को उन्नत करने के लिए जितना प्रयत्न किया, वह लिखने का यह स्थान नहीं। अमीर की यूरोप-यात्रा राजनैतिक दृष्टि से बहुत महत्त्व रखती है, यह हम पिछले अंकों में दिखा चुके हैं। हमने किसी अंक में यह भी कहा था अंग्रेज़ अमीर की रूस-यात्रा को बन्द करना चाहते हैं। इसके लिए उन्होंने क्या-क्या उपाय किये, यह हम नहीं कह सकते। जब अमीर रूस जाने वाले थे, तभी अफ़ग़ानिस्तान में बलवे के समाचार सुनाई दिये थे और यह भी सुना था कि अमीर यात्रा से वापस लौट आवेंगे। हमारा अनुमान है कि यह भी बहुत संभवतः अंग्रेज़ों का कूट प्रयत्न था। अमीर ने अंग्रेज़ों की अनिच्छा व उनके विरोध का कोई ख़याल न कर रूस की यात्रा की। आजकल वह रूस में है। वहाँ उनका बहुत स्वागत किया जा रहा है। अमीर भी वहाँ बहुत प्रसन्न हुए हैं। इंग्लैंड और अमरीका की बड़ी-बड़ी तेल की कंपनियों में जो परस्पर प्रतिस्पर्धा चल रही है, वह दोनों देशों में वैमनस्य को बढ़ाने में पर्याप्त कारण सिद्ध हुई है। इस झगड़े में भी अमीर ने इंग्लैंड का पक्ष न लेकर अमेरिका को ही अपने तेल के स्थानों का ठेका दिया है। इन बातों से अंग्रेज़ों की चिंता बहुत बढ़ गई है और वे भारत की पश्चिमी सीमा पर युद्ध की तैयारियां कर रहे हैं। कई नये-नये क़िले बन रहे हैं और बने हुए क़िलों का विस्तार किया जा रहा है। वज़ीरिस्तान के रजमक नामक क़िले को इतना बढ़ा दिया गया है कि उसमें १२००० आदमियों का मोर्चा लग सके। रोन नदी पर भी भारी छावनी डाली गई है। यह भी ख़बर है कि लाहौर, दिल्ली आदि स्थानों से साठ हज़ार आदमियों की भर्ती हो रही है। कुछ सेनायें वज़ीरिस्तान की ओर रवाना भी हो चुकी हैं। हवाई ज़हाज़ों का बड़ा भारी संग्रह हो रहा है। मोटरों के लिए बड़ी तेज़ी से सड़कें बन रही हैं। इन सब तैयारियों को अफ़ग़ानिस्तान के राजनीतिज्ञ बहुत आशंका की दृष्टि से देख रहे हैं। कुछ लोगों का कहना है कि ये तैयारियां अफ़ग़ानिस्तान के लिए नहीं, रूस के लिए हैं, तो भी अफ़ग़ानिस्तान का डर दूर नहीं होता। १९१४ में जिस

प्रकार जर्मनी ने इंग्लैण्ड से लड़ने के लिए बेचारे बेलजियम को नष्ट कर दिया था, उसी प्रकार अंग्रेज़ अफ़गानिस्तान को बलि चढ़ा देंगे। परन्तु हम इससे इतना डरने का कोई कारण नहीं देखते। इङ्गलैण्ड की आजकल जो अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति है, उसको देखते हुए हमारा यह अनुमान है कि इंग्लैण्ड युद्ध के लिए तैयार नहीं होगा। इङ्गलैण्ड की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर हम किसी आगामी अंक में विस्तृत लेख लिख कर बतावेंगे कि उसकी स्थिति आजकल अच्छी नहीं है।

अंग्रेज़ और ईरान की संधि

अंग्रेज़ों ने भारतवर्ष में ही नहीं, दूसरे देशों में भी, जो उनके अधीन नहीं हैं, अपनी ताक़त के बल पर विशेष रियायतें ले रक्खी हैं। ईरान में भी इस प्रकार के अनुचित अधिकार ले लिये थे, परन्तु अब ईरान के शासक रज़ाख़ाँ, जो बड़े महत्वाकांक्षी हैं, इस अन्याय को नष्ट करने पर तुल गये हैं। उन्होंने इङ्गलैण्ड से यह विशेषाधिकार छीनने का प्रयत्न किया। इसके लिए उन्होंने इङ्गलैण्ड से केवल सविनय प्रार्थना नहीं की, बल्कि उसे धमकाया भी। अंग्रेज़ों ने ईरान पर से होकर हवाई जहाज़ों के गुज़रने के लिए रास्ता माँगा, ईरान ने इन्कार कर दिया। इन्कार करके ही न रह गया, बल्कि वही रास्ता उसने अंग्रेज़ों के शत्रु रूस को दे दिया। अब अंग्रेज़ क्या करते? उन्हें अपने विशेषाधिकार वापस लेने पड़े और ईरान उनके पंजे से बिलकुल छूट गया। अब नई सन्धि के अनुसार ईरान में रहने वाले अंग्रेज़ों का न्याय अंग्रेज़ नहीं करेंगे। ईरान के ही न्यायालय अंग्रेज़ों का भी न्याय करेंगे। हाँ, उन्होंने अपने क़ानून को कुछ उदार अवश्य कर दिया है। अब ईरान ने भी रूस से सलाह ले कर इङ्गलैण्ड को भी कुछ व्यापारिक सुविधायें दे दी हैं और हवाई जहाज़ों के लिए रास्ता देने पर उद्यत हैं। इस रास्ते के मिलने पर इङ्गलैण्ड से भारत आने तक का सब से छोटा रास्ता हो जायगा।

इंगलैण्ड और मिस्र

ईरान शक्तिशाली था, अङ्गरेज़ों को दबना पड़ा; परन्तु मिस्र ग़रीब था, उसे अंग्रेज़ों ने दबा दिया। वहाँ की पार्लमेंट में इस आशय का बिल पेश हुआ कि जनता को तिक विषयों की चर्चा करने की पूरी स्वाधीनता दी जाय। अँग्रेज़ों के कान खड़े हो गये, मिस्री सरकार को मिली कि ऐसा बिल पास करना अच्छा न होगा। और देने के लिए छः जंगी जहाज़ भी भेज दिये गये। मिस्र गया। कारण यह था कि अंग्रेज़ों को डर था कि को राजनैतिक चर्चा करने का अधिकार मिलने से में उनके विरुद्ध आन्दोलन खड़ा हो जायगा। अंग्रेज़ों कूटनीतियों का भण्डा न फूटे। अंग्रेज़ों की मनोवृत्ति का सबसे उत्तम उदाहरण है।

एशिया की राजनीति को छोड़ कर यूरोप की राज घटनाओं पर भी कुछ नज़र डालनी चाहिए। इन घटनाओं

रूमानिया में क्रांति का प्रयत्न

एक विशेष स्थान रखता है। रूमानिया का शासन वस्तुतः वहाँ के राजा के हाथ में नहीं, परन्तु वहां के दारों के हाथ में है। ज़मींदारों में भी वहाँ दो दल हैं, परस्पर लड़ते रहते हैं। जब जो दल ज़ोर पकड़ जाता राजा को अपने हाथ की कठपुतली बना कर देश का कार्य अपने हाथ में ले लेता है। अभी कुछ समय हुआ रूमानिया के भूतपूर्व राजा के देहान्त के समय वहां के राज कैरोल पेरिस में थे। वहां उन्होंने एक विदेशी कन्या विवाह कर लिया, इसपर रूमानिया के शक्तिशाली ज़मीं के उदार दल ने उनसे राज्य का अधिकार लेकर उनके भाई को, जिसकी आयु उस समय सिर्फ़ ढाई वर्ष की राजा बना दिया! इस अवसर पर रूमानिया की प्रजा अपने शिशु राजा को खिलौनों के उपहार दिये थे। यु कैरोल को विदेश की कन्या से विवाह करने के कारण धिकार से वंचित रहना पड़ा और वह दूसरे देशों में घूमते रहे। कुछेक राजनीतिज्ञों का अनुमान है कि वह से फिर राज्यप्राप्ति के लिए गुप्त प्रयत्न कर रहे हैं।

इधर रूमानिया की प्रजा उदारदल की सरकार बहुत तंग आ गई थी। उसमें शनैः-शनैः असन्तोष जा रहा था, जिसके परिणामस्वरूप अलबेजूलिया स्थान पर ढाई लाख किसानों ने एकत्र होकर मन्त्री- को त्यागपत्र देने के बाधित करने का प्रस्ताव पास

वहाँ की किसान जनता प्रस्ताव पास करके ही नहीं रही । तीस हज़ार किसान रूमानिया की राजधानी बुख़ारेस्ट पर हमला करने के लिए चल भी पड़े, किन्तु अधिकारियों ने उनको समझा-बुझा कर वापस भेज दिया । परन्तु यह असन्तोष यहीं समाप्त नहीं हुआ । किसान सम्मेलन ने अपने को राष्ट्रसभा में परिवर्तित कर लिया और वह वहाँ के शासन-सूत्र को हाथ में लेने की कोशिश कर रहा है ।

किसानों की इस क्रांति से कैरोले का कोई सम्बन्ध है या नहीं, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता । परन्तु उपर्युक्त घटना के बाद ही इंग्लैण्ड के स्वराष्ट्र-विभाग और परराष्ट्र-विभाग के अधिकारियों ने परस्पर सलाह कर युवराज कैरोले को, जो इंग्लैण्ड में ही ठहरे हुए थे, वहाँ से शीघ्र चले जाने को कहा है । बहुत सम्भव है युवराज कैरोल का इस क्रान्ति में कोई हाथ हो ।

बलकान राष्ट्रों की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति विशेष महत्व की है, इसलिए सभी देश उनकी प्रत्येक चेष्टा को बड़े ध्यान से देखते हैं । इङ्गलैण्ड रूमानिया की इस क्रान्ति को नहीं चाहता, यह उसके कैरोल को निकालने से सिद्ध हो चुका है । अन्य देशों की मनोवृत्ति क्या है, यह अभी मालूम नहीं हो सकता ।

कृष्ण

देश-दर्शन

भारत का अशान्त वातावरण (१)

महात्मा गाँधी के असहयोग-आन्दोलन से भारतवर्ष को स्वराज्य मिला हो या नहीं, परन्तु उससे भारत की साधारण जनता में जागृति अवश्य आ गई है । वे अब अपने अधिकारों को समझने लगे हैं और उनकी रक्षा के लिए प्रयत्न भी काफ़ी करने लगे हैं । यह जागृति बहुत स्थायी रूप से हुई है । इसका प्रभाव आज हमें भारत में चारों ओर दीख रहा है । स्थान-स्थान पर सत्याग्रह और हड़तालें हो रही हैं । कानपुर में पुलिस के अतिरिक्त कर के विरोध में सत्याग्रह काफ़ी समय से प्रारंभ हो चुका है । सैकड़ों नागरिकों ने कर देने से इनकार कर दिया है। पुलिस उनके घरों में से कुर्की के लिए सामान उठा रही है और यह कहने की आवश्यकता नहीं कि पुलिस आवश्यकता से बहुत अधिक सामान उठा रही है । श्रीयुत गणेशशंकरजी विद्यार्थी के नेतृत्व में यह आन्दोलन भी काफ़ी ज़ोर पकड़ रहा है । आशा है कानपुर के नागरिक सफलता अवश्य प्राप्त करेंगे । अलीबाग़ में ज़मीन का कर कम करने के लिए ग़रीब लोग कोशिश कर रहे हैं । ज़िला टिनेवली में कामान यूनियन बोर्ड से वहाँ के नागरिकों का संघर्ष चल रहा है । पटुआखाली का सत्याग्रह अभी बन्द नहीं हुआ । देहरादून में भी अतिरिक्त पुलिस कर के विरुद्ध सत्याग्रह करने की तय्यारी हो रही है । बम्बई, लिलुआ, शोलापुर, और जमशेदपुर में मज़दूरों की ज़बरदस्त हड़ताल और बारडोली में किसानों का सत्याग्रह, जिसके सम्बन्ध में आगे लिखा जायगा, बहुत महत्व के आन्दोलन हैं । यह सब उन्नति के लक्षण हैं । चाहे इन आन्दोलनों में सफलता मिले या न मिले, जनता को अपनी शक्ति, अपने कर्तव्य और अधिकारों का ज्ञान अच्छी तरह हो जायगा । लाखों लोगों को मालूम हो जायगा कि विदेशी शासन कितना दुःखदायी है । उसे नष्ट करने में ही हमारा कल्याण है । इसके लिए हमें संगठन आदि करना चाहिए । हम भारतवर्ष की वर्तमान अशान्त स्थिति से बहुत सन्तुष्ट हैं; क्योंकि अशान्ति का वातावरण किसी स्थिर शांति को लाने वाला होता है ।

मजदूरों की व्यापक हड़ताल

इस मास की भारतवर्ष की सबसे बड़ी महत्वपूर्ण घटना मज़दूरों की देशव्यापी हड़ताल है। अबसे पहले यदि किसीको मज़दूरों की जागृति व संगठन में कुछ सन्देह भी था, तो इस हड़ताल से वह नहीं रहा। अब मज़दूरों की हड़ताल ने वह विकट और उग्र रूप धारण कर लिया है, जिसको सुलझाना कठिन ही नहीं, असम्भव सा कार्य हो गया है। बम्बई की एकआध को छोड़कर सब मिलें बन्द हो गई हैं; बहुत सी मिलें तो एक मास से भी अधिक काल से बन्द हैं। मिल-मालिक भी इस बार अपना संगठन कर मज़दूरों की बात न मानने पर तुले हुए हैं। अब तक वे ज़रा न झुके। परन्तु मज़दूरों के उत्साह में इससे कोई कमी नहीं हुई। यह हड़ताल का आन्दोलन केवल बम्बई तक ही सीमित नहीं है, लिलुआ के रेलवे के कारख़ाने, शोलापुर और जमशेदपुर तक के मज़दूरों पर इसका प्रभाव पड़ा है। बम्बई में ही जी० आई० पी० रेलवे के मज़दूरों ने भी हड़ताल करने का निश्चय कर लिया है। बम्बई कारपोरेशन के कर्मचारी भी हड़ताल करने पर तुले हुए दीखते हैं। मज़दूर नेता इस हड़ताल को सफल करने के लिए पिकेटिंग और मज़दूरों को गाँवों में भेजने का प्रयत्न कर रहे हैं। पिकेटिंग करते हुए कहीं-कहीं आपस में मारपीट भी हो गई है। ७५ हज़ार के क़रीब मज़दूर अपने गाँवों में भी चले गये हैं। मज़दूर नेता अवशिष्ट मज़दूरों को भी घर भेज रहे हैं। सारांश यह कि पूंजीपतियों और मज़दूरों का पारस्परिक संघर्ष बहुत भयंकरता से बढ़ रहा है। भारत की अँग्रेज़ी सरकार स्वयं पूंजीपतियों की सरकार है। वह तो पूंजीपतियों का समर्थन करेगी ही। मज़दूरों के साथ उसका व्यवहार कितना बुरा है, यह बामनगाछी की घटना से स्पष्ट हो चुका है।

इस हड़ताल के समय मज़दूरों को रुपये की कितनी आवश्यकता है, यह बताने की कोई ज़रूरत नहीं। मज़दूर-संघ को भारतवर्ष से कुछ रुपया सहायता के रूप में मिला है। इंग्लैंड के श्रमिक संघों ने कुछ रुपया सहायतार्थ भेजा है। रूस के श्रमिक संघ ने भी २५००० रुपये के क़रीब सहायता के लिए भेजे हैं। श्रीयुत एण्डरूज़ और श्री बेसेंट ने इस सहायता के लेने का विरोध किया है और है कि रूस से यह रुपया नहीं लेना चाहिए, क्योंकि ख़ून से रंगा हुआ है। रूस ने यह रुपया भारत के पतियों और मज़दूरों में कलह कराने के लिए ही भेजा हम इस विचार से सहमत नहीं हैं। रूस के मज़दूर संसार के मज़दूरों से बहुत सहानुभूति रखते हैं। रुपया लेने में यदि हर्ज है, तो इंग्लैंड के श्रमिक सं रुपया क्यों लिया जाय? अंग्रेज़ों का रुपया कितना है, यह उनके भारत तथा चीन आदि पर किये गये रंजित अत्याचारों से स्पष्ट है। 'फ़ारवर्ड' के समाचार मालूम हुआ है कि इंग्लैंड का मज़दूर दल इस सम कोशिश कर रहा है कि भारतीय मज़दूरों को सहायता उनको वहां के राष्ट्रीय नेताओं तथा पूँजीपतियों के करलें। इसके लिए उन्होंने रुपया भो इकट्ठा करना कर दिया है। हमें इस समाचार पर अविश्वास करने कोई कारण नहीं दीखता। हमारा यह पूर्ण विश्वास है भारतीयों को अंग्रेज़ों से किसी भी प्रकार का विशेषतः संबन्ध नहीं रखना चाहिए। ब्रिटिश मज़दूर दल भा मज़दूरों को सहायता देकर राष्ट्रीय आंदोलन से विमुख दें, यह हमारे लिए बहुत घातक होगा। अंग्रेज़ मज़दूर यह आशा करना कि वे भारतीय मज़दूरों को सच्चे हि दृष्टि से सहायता देंगे, भूल है। अभी कुछ दिन हुए, नेताओं ने एक सभा में राष्ट्रीय नेताओं का ध्यान अपनी खींचते हुए कहा था कि मज़दूर समस्या के इतने भयंकर हुए भी उन्हें शासन-विधान आदि बनाने में अपना ख़राब नहीं करना चाहिए। वस्तुतः यह बात है भी कोई भी राष्ट्रीय आंदोलन बिना जनता को साथ लिये नहीं चलाया जा सकता, यह भी निश्चित बात है। सहानुभूति को प्राप्त करने के लिए राष्ट्रीय नेताओं को दुःख में पूरा भाग लेना चाहिए, नहीं तो संभव है अंग्रेज़ मज़दूर दल अपनी नीति में सफल हो जाय। की प्रांतीय कांग्रेस कमिटी ने मज़दूरों की सहायतार्थ हज़ार रुपया देकर बहुत अच्छा कार्य किया है। राष्ट्रीय का आवश्यक कर्त्तव्य है कि वे इस प्रश्न की ओर विशेष

इसका दूसरा भी कारण है। यह समय भारतीय राष्ट्र निर्माण का काल है। इस समय जो चेष्टायें (Activities) होंगी, उनका प्रभाव हमारे मन पर स्थिर रूप से होगा, जो पीछे से जाकर भारतीय राष्ट्र का चरित्र (Characteristic) बन जायेगा। यदि हमने आज मज़दूर-पूँजीपति संघर्ष को शांत करने की चेष्टा न की, तो स्वतन्त्र भारतीय राष्ट्र में यह संघर्ष एक बहुत विकट रूप धारण कर लेगा, जो हमारी उन्नति में बहुत बाधक होगा। आशा है कि राष्ट्र के नेता इस प्रश्न की महत्ता समझते हुए इस तरफ़ ध्यान देंगे

कृष्ण

बारडोली का सत्याग्रह

वीर बारडोली ने अन्यायपूर्ण लगान-वृद्धि के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाकर गत ३॥ महीनों से सत्याग्रह-संग्राम शुरू कर रक्खा है। क्रमशः इस आन्दोलन ने कितना ज़ोर पकड़ा है, यह समाचारपत्रों के पाठकों से छिपा नहीं है। स्वाभिमान और न्याय की रक्षा के लिए पशुबल के सन्मुख किस तरह लड़ा जाय, यह पाठ देश को बारडोली के वीरों ख़ूब सीखने को मिलेगा।

बात यह है कि बम्बई-सरकार ने बारडोली ताल्लुक़े में कुछ महीने पहले बन्दोबस्त का काम नये सिरे से शुरू किया था, जिसके आधार पर बारडोली की कृषक जनता पर ३० साल के लिए नया लगान लगाया जाने वाला था। ताल्लुक़े के बन्दोबस्त अफ़सर ने पटेल-पटवारियों की मदद से और पुराने विवरण के आधार पर एक नया विवरण तैयार किया और उसमें यह सिद्ध करने की चेष्टा की गई कि बारडोली ताल्लुक़े में आबादी की बढ़ती के साथ-साथ लोगों की साम्पत्तिक अवस्था भी सुधरी है। यह सिद्ध करते हुए उसने यह प्रस्ताव किया कि लगान की दर में ३०.५९ प्रति शतक वृद्धि की जाय। बन्दोबस्त कमिश्नर ने इसे कुछ घटा कर २९.३ सैकड़ा बढ़ाने की सिफ़ारिश कर गवर्नर के पास भेज दिया। प्रान्तीय कौंसिल ने कुछ और भी घटा कर लगान की वृद्धि को २१.९७ सैकड़ा तक घटाने का निश्चय किया। करोड़ों कर्ज़ में डूबी हुई दीन-हीन प्रजा, जिसकी आर्थिक अवस्था में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ है, इस अन्यायपूर्ण लगान-वृद्धि का समाचार सुनकर व्याकुल हो उठी। कौंसिल के कुछ राष्ट्रीय प्रतिनिधियों ने इस अनुचित कर वृद्धि को दूर करने की भरसक कोशिश की, परन्तु कोई परिणाम न निकला। अन्त में निराश होकर उन्होंने जनता से कहा कि अब हम बिलकुल असमर्थ हैं, हमारे किये कुछ न हो सकेगा। अच्छा हो यदि आप श्री वल्लभभाई पटेल से मिलें और उनसे इस विषय में सलाह करके अपना कार्यक्रम ठहरावें।

तदनुसार ताल्लुक़े के कई ज़िम्मेदार व्यक्ति उनके पास अपनी पुकार लेकर पहुँचे, और उनसे नेतृत्व की प्रार्थना की। उन्होंने पहले तो इन लोगों के नैतिक साहस और नैतिक दृढ़ता की ख़ूब कड़ी जाँच की। सरकार की पाशविक शक्ति और जनता की असहायता की ओर उनका ध्यान खींचा। सरकार के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने का क्या परिणाम होगा, इस पर बार-बार विचार करने को कहा। और इस तरह जब उन्हें पूरा-पूरा विश्वास हो गया कि जनता और उसके नेता अन्याय के ख़िलाफ़ अपनी आवाज़ उठाने को हर तरह तैयार हैं तब उन्होंने ता० ४ फरवरी के दिन सब गाँवों के प्रतिनिधियों को बुलाया। ७९ गाँवों के प्रतिनिधि आये। जनता भी अच्छी संख्या में उपस्थित हुई। ज़िम्मेदार लोकनेता और धनी-मानी ज़मींदार तथा सेठ-साहूकार भी इसमें सम्मिलित हुए। लोगों ने सत्याग्रह के लिए हर तरह अपनी मुस्तैदी प्रकट की। इस महत्वपूर्ण समस्या पर विचार करने के लिए ७ दिन की अवधि और बढ़ा दी गई। ता० ६ फ़रवरी के दिन श्री वल्लभभाई ने गवर्नर के पास इस आश्रय का पत्र भेजा कि बारडोली ताल्लुक़े की जनता पर २२ टके लगान बढ़ाना अन्याय है। इस अन्याय के प्रतिकार के लिए जनता अब तक प्रत्येक वैध साधनों का उपयोग करके निराश हो चुकी है। अब ताल्लुक़े की जनता इस बात पर तुल गई है कि लगान न दिया जाय। और सरकार के विरुद्ध सत्याग्रह-संग्राम छेड़ा जाय। इस तरह का कोई संग्राम शुरू करने के पहले एक लोक प्रतिनिधि के नाते मैं आपसे यही प्रार्थना करता हूँ कि सरकार लगान-वृद्धि के इस मामले में जनता से समझौता करने के लिए कोई निष्पक्ष पंच निश्चित करे और पंच जो निर्णय करें उसे दोनों पक्ष स्वीकार करें। सरकार ने इस पत्र के उत्तर में काफ़ी

लापर्वाही से काम लिया। ता० १२ फ़रवरी तक कोई निश्चित उत्तर न मिलने पर बारडोली के काश्तकारों की परिषद् ने श्री वल्लभभाई पटेल के नेतृत्व में सत्याग्रह की घोषणा कर दी और इस लिखित आशय का प्रस्ताव पास किया—

"अभी लगान में जो वृद्धि हुई है, वह अनुचित, अन्याय और अत्याचारपूर्ण है। अतएव जब तक यह बढ़ती दूर न हो अथवा निष्पक्ष पंचायत द्वारा जांच न कराई जाय, तब तक सरकारी ख़ज़ाने में हम एक पाई भी नहीं देंगे। अगर सरकार हमारे इस कार्य से असन्तुष्ट होकर ज़ब्ती, ख़ालसा वग़ैरा उपायों द्वारा हमें कष्ट पहुँचाने और दबाने का प्रयत्न करेगी तो हम उसे शान्तिपूर्वक सहन करेंगे।

"अगर सरकार मामूली लगान वसूल करना स्वीकार करेगी तो हम उतना लगान तत्काल चुका देंगे।"

इस प्रस्ताव के बाद तो बारडोली की जनता ने श्री वल्लभ भाई पटेल के आदर्श नेतृत्व में जो कुछ कर दिखाया है तथा जितनी कुछ सफलता प्राप्त की है उसका ख़याल आते ही हृदय हर्ष और अभिमान से फूल उठता है। यों तो यह संग्राम ता० १२ फ़रवरी के दिन से ही छिड़ गया था, परन्तु यह लेख लिखते समय तक बारडोली की वीर जनता की कौतुकभरी वीरतापूर्ण, साहसिक कृतियों के जो समाचार प्रतिदिन प्रकाशित हो रहे हैं उनसे इस सत्याग्रह-संग्राम की महत्ता और वर्तमान भारतीय राजनीति में उसका स्थान भलीभांति निश्चित किया जा सकता है।

सरकार ने अपनी ओर से इस सात्विक संग्राम को असफल करने की कई चेष्टायें की हैं। साम, दाम, दण्ड, भेद, हर तरह की नीति का अवलम्बन किया है। पहले-पहल कुर्की के ऑर्डर निकाले गये। फिर ज़ब्तियाँ शुरू हुईं। गाँव के गाँव ज़ब्त होने लगे। बिना कारण लोगों को सताना शुरू किया गया। अन्याय और मनमानी से काम लेने में कलेक्टर जैसे ज़िम्मेदार हाकिम तक नहीं चूके। इन सब उपायों से भी जब सफल नहीं हुए तो सरकारी-हाकिमों ने अपने कुख्यात दमन अस्त्र का प्रयोग आरम्भ किया। गिरफ़्तारियों के वारण्ट जारी किये गये। सबसे पहला वार भाई श्री रविशंकर व्यास पर किया गया। आप पर बिना इजाज़त घर में प्रवेश करने और सरकारी अफ़सरों के काम में हस्तक्षेप करने का अभियोग लगाया गया। और न्याय के ढोंग के बाद आपको दोनों अभियोगों में मिल कर १० दिन की सख्त सज़ा ठोक दी गई। इसपर महा श्री रविशंकर भाई को बधाई देते हुए लिखा, "आप मा हैं। ❀❀❀ आपको अपने साथियों से पहले जेल जाने ग्य प्राप्त हुआ है। अगर ईश्वर स्थान-परिवर्तन की और आप उदारता-पूर्वक इसे मन्जूर करें तो मैं सह आपका स्थान ग्रहण करना चाहूँगा। आपकी तथा जय हो।" इसके बाद तो आज तक कई सुप्रसिद्ध सेवक नेतागण 'श्रीकृष्ण-जन्मभूमि'—कारागार-के मह चुके हैं। बारडोली के इस सत्याग्रह की विशेषता है बूढ़ों और बच्चों का भी उसमें उत्साह पूर्वक सम्मिलित सरकार की कार्रवाई से असन्तुष्ट होकर बारडोली ने जंगल का बसेरा लिया है। सारा ताल्लुका प्रतिदिन भर के लिए उजाड़ रहता है। सरकारी ज़ब्ती हाकि ज़ब्ती के काम में भयंकर कष्ट उठाना पड़ता है। सरकारी आदमियों की छांह तक नहीं दाबती!

बारडोली ने आज राष्ट्र की सन्मान रक्षा के लि प्रयत्न शुरू किये हैं उन्हें सुन सुन कर हृदय प्रफुल्लि है। जनता का अनुपम संगठन, जातियों का अद्भुत स्परिक प्रेम, लोगों की सिद्धान्तप्रियता, और धर्म न्याय की रक्षा के लिए स्त्री-पुरुषों का अनुपम त बलिदान और उत्साह सब कुछ भव्य है, दिव्य है, और उन्मादक है! जो बारडोली-सत्याग्रह अभी तक चर्चा का विषय था अब उसे सार्वदेशिक महत्व मि देश की टकटकी उधर लगी हुई है। श्री आर्थिक सहायता वाली अपील पर देश के धनी कुछ दे सकें अवश्य दें। और इस राष्ट्र-यज्ञ में कर पुण्य लूटें।

महात्माजी की आशीष और श्री वल्लभ भाई के न केवल बारडोली किन्तु सारे राष्ट्र के भाग्य का यह अनूठा संग्राम खूब सफल हो! महात्माजी के "बारडोली अपनी प्रतिज्ञा का पालन कर अपने वल्लभभाई को, गुजरात को और हिन्दुस्थान को

नावे," यही हमारी उस परमेश से बार-बार और हार्दिक र्थना है।

"सिपाही"

र्वदल सम्मेलन

बम्बई में जिस सम्मेलन की बहुत प्रतीक्षा थी, वह र्वदल सम्मेलन समाप्त हो गया। इस अवसर पर सबसे धिक हर्ष की बात यह हुई कि देश के सभी दलों—कांग्रेस, सहयोगी दल, नरमदल, होमरूल दल, हिन्दू सभा, लमलीग और अब्राह्मणदल के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। मेलन के पहले श्रीयुत बेलवी के कथन से यह भय ज़रूर न्न हो गया था कि शायद नरमदल के प्रतिनिधि इसमें म्मिलित न हों, परन्तु श्रीयुत चिन्तामणि और डा० सप्रू दूरदर्शिता ने वह स्थिति न होने दी।

इस सम्मेलन के सामने दो कार्य थे—भावी भारत का सन-विधान बनाना और हिंदू-मुस्लिम समस्या का हल ना। प्रारम्भ में श्रीमती बेसेंट ने भावी भारतीय शासन-वस्था बनाने के लिए पं० मोतीलाल नेहरू की अध्यक्षता एक कमिटी बनाने का प्रस्ताव पेश किया। श्रीयुत विजय वाचार्य ने यह संशोधन पेश किया कि कमिटी केवल ांतों का ही निर्णय करे। प्रस्तावक ने इसे स्वीकार कर या। कुछ और भी संशोधन पेश हुए, परन्तु अन्त में बहुमति से उपरिलिखित आशय का प्रस्ताव पास हो गया। सदस्यों ने हिन्दू-मुसलमान हितों की रक्षा के प्रश्न की ध्यान दिलाया। इतनी कार्यवाही के बाद सम्मेलन स्त तक के लिए स्थगित हो गया। सम्मेलन ने हिन्दू-लिम समस्या को हल करने की तरफ़ कोई ध्यान नहीं । सिंध-विच्छेद कमिटी के प्रधान सर पुरुषोत्तमदास ने भेजा था कि कमिटी की कोई रिपोर्ट प्रकाशित नहीं हो ी, क्योंकि इसके सदस्यों में भारी मतभेद है। इसी तरह म्प्रदायिक चुनाव पर भी कोई विचार नहीं किया गया।

वस्तुतः ये दोनों प्रश्न हैं भी बहुत विकट तथा कठिन। हमारी यह दृढ़ सम्मति है कि अभी इन दोनों प्रश्नों का निपटारा करने का समय नहीं आया। शासन-विधान बनाने की तो अभी कोई आवश्यकता ही नहीं। आज के बनाये शासन-विधान ही स्वतन्त्र भारत स्वीकृत करेगा, यह कहना कठिन है। स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय भारतवर्ष जिस राजनैतिक अवस्था में से गुज़र रहा होगा, उसीका भावी विधान पर अधिकतर प्रभाव पड़ेगा, यह निश्चित है। इसके बनाने में फिर गहरे मतभेद पैदा होने के कारण एकता न रहेगी। फिर साइमन कमीशन की रिपोर्ट के उत्तरस्वरूप अपनी भी एक मांग बना कर पेश करना व्यर्थ है। यह निश्चित है कि इंग्लैंड की सरकार वह स्वीकार करने पर कभी राज़ी न होगी। फिर क्यों इस समय अपनी शक्ति और समय को व्यर्थ खोया जाय, जब कि विदेशी वस्तु-बहिष्कार, बारडोली-सत्याग्रह, मज़दूरों की हड़ताल आदि महत्त्वपूर्ण आंदोलन हो रहे हैं? ये तीनों ही आन्दोलन पर्याप्त शक्ति और पर्याप्त उत्साह की अपेक्षा करते हैं। साइमन-कमीशन का वास्तविक उत्तर बारडोली-सत्याग्रह और विदेशी वस्तु-बहिष्कार में रक्खा है। एक अंग्रेज़ अर्थशास्त्री के कथनानुसार भारतीयों के विदेशी वस्तु बहिष्कार के कारण इंग्लैंड में धोतियों की तीस मिलें बंद हो गई हैं। यदि पूरे ज़ोर से इसी काम को ले लें तो साइमन-कमीशन का सच्चा उत्तर देने में हम समर्थ हो जावें। महात्मा गांधी, श्री सुभाषचन्द्र बसु और जवाहरलाल नेहरू इस तरफ़ बहुत ध्यान दे रहे हैं, जिससे आशा होती है कि यह आंदोलन सफल होगा। मुसलमानों के दुराग्रह के कारण हिन्दू-मुस्लिम समस्या का हल करना आज कांग्रेस की शक्ति के बाहर हो गया है। इसलिए हमारा विचार है कि इस प्रश्न को स्वयं समय के लिए छोड़कर उपर्युक्त आंदोलन पर ही ज़ोर दिया जाय।

कृष्ण

* * *

जनता का स्वराज्य

खादी क्या है और क्या नहीं है ?

१. चर्खा कातना बरबादी को काम और लक्ष्मी में बदल देना है।

२. अकाल या दुर्भिक्ष के दिनों में चर्खे को दिनभर का धन्धा बना कर ख़ासा फ़ायदा उठाया जा सकता है।

३. रात-दिन विदेशों की ओर बहने वाले धन-प्रवाह को चर्खा रोक सकता है।

४. चर्खा मनुष्य के जीवन की एक सबसे ज़रूरी वस्तु वस्त्र पैदा करता है, इसलिए उसके लिए सबसे विशाल से विशाल बाज़ार तैयार रहता है।

५. चर्खा चलाना सीखना बहुत आसान है। सब स्त्री, पुरुष, बालक, बूढ़े और अपाहिज तक उसे सीख सकते हैं, और उससे लाभ उठा सकते हैं।

६. खादी देश के किसी सचमुच अधिक लाभदायक धन्धे की जगह नहीं लेना चाहती, उसका काम तो फ़ुरसत के घण्टों और बेकार महीनों का सदुपयोग करना है।

७. चर्खा देहाती भाइयों के इस ख़याल को मिटा देगा कि हम लाचार हैं, क्या करें ? वह उनके आलस्य को भी दूर कर देगा और देहात में उत्साह और उद्योगशीलता को जिला देगा।

क्या खादी लाभदायक है ?

१०-१० मील की दूरी से कातने वाले हमारी डिपो तक दौड़े आते हैं। क्यों ?

इसीलिए कि चर्खे से उन्हें जो विशेष आमदनी होती है वह उनके लिए बहुमूल्य है।

एक किसान-कुटुम्ब, जिसके घर में एक चर्खा है, अपनी आमदनी में १२ से लगा कर २८ सैकड़े तक की वृद्धि कर लेता है। आपको चर्खे से होने वाली आमदनी के पैसे भले ही न कुछ मालूम होते हों, परन्तु किसानों की थोड़ी सी आय में कताई के दाम बढ़ा पहुँचाते हैं।

कुछ अनुभूत अंक देखिए—

गाँव का नाम	चर्खों की संख्या	चर्खे से वार्षिक आमदनी	कातने वालों की खादी और अन्य मदों से वार्षिक आय
		रु०	रु०
ऊप्पलायम	२५	४६०	३३६०
सेम्ब्रमपलायम	२९	४५०	३०६५
चित्तलन्दूर	२५	३०५	२१५०
कोमारपलायम	६०	१३९८	९००९
पपमपलायम	६८	१२०५	५१२०
वेलमपलायम	२५	४०१	१४९०

चक्रवर्ती राजगोपा

चर्खा राजा और तकली रानी

हमारे दिन अभी फिरे नहीं थे, आलस्य ने अपना घर नहीं बना पाया था, ऐसे समय चर्खा की रंगभूमि पर सर्वशक्तिमान् सूत्रधार था और त का मनोरंजन करने के लिए थई-थई नाचने वाली इस भव्य युग का दर्शन करानेवाले कई चि साहित्य में अंकित हैं। आइए ऐसे ही तीन चित्रों अवलोकन करें।

'पिंड निर्युक्ति' नामक एक जैनशास्त्र है, उसमें को गृहस्थों के यहां से किन किन दशाओं में पिंड ग्रहण करना उचित है और किन-किन दशाओं में इस विषय के सूक्ष्म से सूक्ष्म नियम मिलते हैं। सिले में एक ऐसे प्रसंग की कल्पना की गई है

ी सूत कात रही है और उसका लड़का कुछ खाने को ंग रहा है।

काचित्कर्त्तनं कुर्व्वती भोजनं याचमानं बालंप्रति वदति

ी ने बालक से कहा,

कंतामि ताव पेलुं तो ते देहामि पुत्त मा रोव ॥३५॥

कृणन्मि तावदिदं पेलुं सूत-पूणिकां ततः
पश्चात्ते तुभ्यं दास्यामीति मा रोदीः।

'देख इस हाथ की पूनी को कात लूँ तब तुझे खाने को ी, रोवे मत।'

जो पाठक कातना नहीं जानते, वे कदाचित् यह प्रश्न करें अरे यह माता कैसी। क्या बच्चे को खाना दे कर फिर पूनी नहीं हो सकती? परन्तु जिस तरह कोई मनोरंजक ानी पढ़ते समय उसे समाप्त किये बिना बीच में छोड़ने जी नहीं चाहता, वही हाल पूनी का भी होता है। कातना जानता है उसे अधिक समझाने की जरूरत नहीं। अथवा संभवतः यह कोई विधवा स्त्री हो जो र्खा कात कर अपने बालक का पालन-पोषण करती हो।

* * *

सरे दो चित्र बौद्धशास्त्र के हैं। धम्मपदट्ठ कथामें(१६-१) स्थान पर कहा गया है कि श्रावस्ती के एक कुटुम्ब में ता-पिता का एक एकलौता लड़का था। इसलिए ावतः इस लड़के पर माता-पिता का असीम प्रेम था। दिन माता पिता ने (कुछ) भिक्षुओं को भोजन के लिए मन्त्रित किया। उनसे धार्मिक कथायें सुन कर नवयुवक प्रव्रज्या (सन्यास) लेने की इच्छा हुई। उसने माता-ा से आज्ञा मांगी परन्तु उनका कोमल हृदय इस बात कैसे स्वीकार करता? नवयुवक ने माँ-बाप की आँखें बचा भाग जाने की ठानी। अतः जब पिता कहीं बाहर जाते 'माँ' को लड़के का ध्यान रखने को कह जाते और जब ता बाहर जाती तो पिता से पुत्र की देख-भाल रखने को जाती। कुछ दिन बीते, एक दिन पिता बाहर जाने लगे पुत्र-रक्षा के लिए उत्सुक माता घर के दरवाज़े की की एक ओर पीठ लगा कर और दूसरी ओर तक ैला कर बैठ गई। और बैठे-बैठे चर्खा कातने लगी।

अथस्स एक दिवसं पितरि बहिगते माता पुत्तं रक्खिस्सामीति एकं द्वारबाहं निस्साय एकं पादेहि उप्पीलेत्वा छमाय निसिण्णा सुत्तं कन्तति।

फिर भी भोली माता को भुलावे में डाल कर निष्ठुर पुत्र तो आखिर चुपके से भाग ही गया। अस्तु। कथा को अधिक लम्बाना उचित नहीं। सूत कातते-कातते अपने प्राणोपम पुत्र की रक्षा करती हुई जननी के चरणों में बार-बार प्रणाम करके हमें आगे बढ़ जाना चाहिए।

* * *

धम्मपदट्ठकथा (१८-२) में एक और कहानी है। एक भिक्षुक था। उसे किसी श्रावक ने आठ हाथ लम्बी खूब मोटी खादी का थान भिक्षा में दिया। जब भिक्षु अपने गांव में आया तो उसने अपनी बड़ी बहन को संभाल कर रखने के लिए वह थान दे दिया। खादी के उस थान को देखकर बहन ने सोचा कि इतना मोटा कपड़ा तो मेरे भाई के शरीर में चुभेगा। भला इतना मोटा कपड़ा उसे कैसे अच्छा लगेगा?" और तत्काल ही एक तेज़ छुरी से बहिन ने उस थान के टुकड़े टुकड़े कर डाले। ऊखल में कूटा। पींजन से पींजा, साफ किया, और फिर उसका महीन सूत कातकर उसे बुना।

सा न मे एस साटको भातु अनुच्छविको ति तिखिणाय वासिया छिन्दित्वा हीरहीरं कत्वा उदुक्खले कोट्टेत्वा, पिंजेत्वा, पोथेत्वा, वट्टेत्वा सुखुम सुत्तं कन्तित्वा साटकं वायापेसि।

कुछ दिन बाद भिक्षु ने वस्त्र को सिलाने का प्रबंध किया और बहन से वह थान वापिस मांगा, तिस पर बहन ने ९ हाथ लम्बा महीन कपड़े का थान निकाल कर अपने छोटे भाई के हाथ पर रख दिया। भिक्षु ने उसे हाथ में लिया, फैलाया और कहा—

"मम साटको थूलो अट्ठहत्थो। अयं सुखुमो नवहत्थो। नायं मम साटको। तुम्हाकं एस। न मे इमिना अत्थो। तमेव मे देथाति।"

अर्थात् मेरा कपड़ा मोटा और आठ हाथ लंबा था। यह तो महीन और नौ हाथ है। यह मेरा नहीं, तुम्हारा होगा। मुझे यह नहीं चाहिए। मुझे तो मेरा कपड़ा ही लौटा दो।"

बहन ने बहुत कुछ कहा कि यह कपड़ा तुम्हारा ही है परन्तु भाई ने उसकी एक भी नहीं सुनी। फिर तो बहन को सारा हाल उसे सुनाना पड़ा। जब भिक्षु ने सारा हाल सुना तब जा कर कहीं वह कपड़ा लिया।

इस तरह मोटे कपड़े का महीन कपड़ा बन सकता है या नहीं यह तो इस शास्त्र के विशेषज्ञ ही जानें। आज तो हमें विशेषज्ञ से इस बात की जाँच पड़ताल करने की कोई जरूरत नहीं है। क्योंकि बहन के प्रेम-भण्डार से भी यदि 'अशक्य' या 'असम्भव' शब्द निकलने लगें तो सारी पृथ्वी उसी क्षण रसातल को चली जाय।

वालजीभाई देसाई

खादी माहात्म्य

(छप्पय)

शुद्ध स्वदेशी धर्म नीति की सुन्दर सीढ़ी।
सत्य-एकता-प्रेम कोटि की है पटु पीढ़ी॥
जातीयता-स्वराज्य-मार्ग दिखलाने वाली।
भारतीय सौभाग्य भाल की सुंदर लाली॥
चक्र सुदर्शन वंश की,
उज्ज्वलता विस्तारिणी।
'खादी' है संसार में,
दीन-दरिद्रता हारिणी॥

'कवि-पु

नीर-क्षीर-विवेक

[समालोचना के लिए प्रत्येक पस्तक की दो प्रतियां आना आवश्यक है। एक प्रति आने पर आलो न हो सकेगी। प्रत्येक पुस्तक का साहित्य-सत्कार तो उसी अंक में हो जाया करेगा— आलोचना, यदि हुई तो, सुविधानुसार बाद में होगी।]

पुराणमत पर्यालोचन

लेखक—श्रीयुत रामदेवजी, आचार्य, गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी और पं० जयदेवजी विद्यालंकार। प्रकाशक—मुख्याधिष्ठाता, गुरुकुल कांगड़ी, ज़ि० बिजनौर। आकार रायल अठपेजी, पृष्ठ संख्या ५३६; मूल्य ३) रु०।

पुराणों के विवेचन पर हिन्दी-साहित्य में इससे उत्कृष्ट और बृहत् ग्रन्थ हमारे देखने में नहीं आया। इसके लेखकों का सम्मति है कि पुराण ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं, धार्मिक दृष्टि से वे हिन्दू-समाज के आदर्श ग्रन्थ नहीं हैं। महाभारत-काल में भारतवर्ष कितना पतित हो गया था, यह महाभारत के वर्णन से पता लगता है। इसके प्रथम अध्याय में प्राचीन काल और महाभारत-काल की सामाजिक तुलना क पिछले काल के सामाजिक पतन को अच्छी तरह दि गया है। परस्पर द्वेष, राज्यलिप्सा, दुराचार आदि फैल रही थीं। स्त्री-समाज की स्थिति बहुत बुरी हो थी, द्रौपदी जुए में हार दी गई, सुभद्रा और द्रौपदी कुलीन स्त्रियां भी शराब पीती थीं, उनके साथ बहुत बुरा होता था, यहाँ तक कि श्रीकृष्ण से मह कर्ण को पाण्डवों की ओर मिलने के लिए प्रलोभन कहा कि द्रौपदी भी तेरे हिस्से में आजायगी। कै और घृणित है यह भाव! इसी तरह की अन्य बु का दिग्दर्शन करा कर लेखकों ने यह दिखाने का प्र है कि ऐसे बुरे महाभारत-काल के बाद ही पुराण

इसलिए यह स्वाभाविक था कि महाभारत-काल की अनाचार-न्य बातों का प्रवेश पुराणों में पूर्णतया हो। इसी तरह बहुत से धार्मिक सिद्धांत भी, जो वस्तुतः बहुत विकृत रूप में हो चुके थे, महाभारत से ही पुराणों में लिये गये हैं। मूर्तिपूजा, तीर्थपूजा, यज्ञों में पशुबलि, जन्मानुसार वर्णव्यवस्था, मांस-भक्षण आदि सिद्धांत लेखकों की सम्मति में महाभारत से ही लिये गये हैं। वेदों या प्राचीन धर्मग्रन्थों में इनका उल्लेख नहीं मिलता।

इसके अनन्तर पाँचवें और छठे अध्याय में वेदों, ब्राह्मणों, उपनिषदों से बहुत से प्रमाण देकर यह दिखाने का यत्न किया गया है कि प्राचीन शास्त्र एकदेवतावाद (Monotheism) को ही मानते थे। उनके अनुसार क ईश्वर ही के, भिन्न-भिन्न शक्तियों के कारण, बहुत से नाम हैं। सातवें अध्याय में यूरोप के वेद-विशारद विद्वानों की तद्विषयक सम्मतियों की आलोचना की है और आठवें अध्याय पुराणों के बहुदेवतावाद (Polytheism) पर लिखते ए उन देवताओं का उत्पत्ति-क्रम लिखा है। विष्णु, ब्रह्मा और रुद्र की उत्पत्ति की पौराणिक कथायें, उनके मूल रहस्य और उनके प्राचीन स्वरूप पर वेद, ब्राह्मण और उपनिषदादि प्रमाण देते हुए बहुत उत्तम रीति से विचार किया गया है। इसमें उन्होंने यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि वस्तुतः तीनों देव पृथक्-पृथक् न होकर एक परमात्मा की ही तीन क्तियाँ हैं।

करीब सवा दो सौ पृष्ठ की इस लम्बी भूमिका के बाद राण शब्द का अर्थ क्या है, पुराण क्या है, इत्यादि विषयों र विवेचना करते हुए वर्तमान पुराणों की उत्पत्ति पर और विचार किया है। तदनन्तर क्रमशः एक-एक पुराण को र योग्यता-पूर्वक उसका विषय-परिचय कराते हुए ल-स्थल पर पौराणिक दन्त-कथाओं को खण्डनात्मक स्तृत आलोचना की गई है। स्थल-स्थल पर प्रमाण भी ये गये हैं। इस विषय में विदेशीय साहित्य से भी पूरी हायता ली गई है। सब पुराणों की इस प्रकार की समा-लोचना क़रीब डेढ़ सौ पृष्ठों में समाप्त हुई है। इस भाग से ठक को पुराणों के सम्पूर्ण विषय का साधारण ज्ञान हो ता है। इसलिए खण्डनात्मक दृष्टि से न सही, पुराणों का विषय जानने के लिए भी यह उपयोगी भाग है।

चौदह से उन्नीस तक के अध्यायों में मूर्तिपूजा, अवतार-वाद, मृतक-श्राद्ध, जन्मानुसार वर्णव्यवस्था, तीर्थपूजा आदि पौराणिक सिद्धांतों की खण्डनात्मक आलोचना की गई है। अवतारवाद की डार्विन के विकासवाद के दृष्टिकोण से भी व्याख्या की गई है, जो मनोरंजक तथा मननीय है; परन्तु लेखकों ने इसे स्वीकार नहीं किया। बीसवें अध्याय में यह बतलाया गया है कि यद्यपि पुराणों में वैदिक सिद्धांतों की बहुत अवहेलना की गई है, तथापि पुराणों के कर्त्ता उनकी बिलकुल उपेक्षा न कर सके। स्थान-स्थान पर पुराणों में एकेश्वरवाद, मूर्तिपूजा की निन्दा, स्त्री-शिक्षा, नियोग-समर्थन, पशु-हिंसा-विरोध आदि बातों के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। इक्कीसवें अध्याय में पुराणों में वर्णित देवताओं की उत्पत्ति की अश्लील घृणित तथा भ्रष्ट कथायें देकर पुराणों की अप्रामाणिकता तथा भ्रष्टता का परिचय दिया गया है। देवमंडल में उपस्थित स्त्रियों को देखकर कृष्ण का वीर्यपात और उससे विष्णु की उत्पत्ति, कृष्ण की रासलीला, मुनियों का गोपी बन कर कृष्ण से भोग, ब्रह्मा का कन्यागमन, शंकर-पार्वती की अश्लील भोग-कथा, चन्द्र का बृहस्पति की स्त्री से व्यभिचार, अहल्या से देवराज इन्द्र का व्यभिचार, पाराशर आदि ऋषियों का पापमय जीवन इत्यादि कथाओं को पढ़ते ही पुराणों से घृणा होने लगती है। बाईसवें अध्याय में पुराणों की कुछ असम्भव गप्पों का निर्देश कर उनकी अप्रामाणिकता का परिचय दिया गया है। इतने विवेचन के बाद प्रमाणों का लेखक कौन था? इस विषय पर विचार किया गया है। ग्रन्थकारों की सम्मति है कि ऐसे परस्पर-विरुद्ध, वेदविरोधी, असम्बद्ध और अश्लील पुराणों के कर्ता महर्षि वेदव्यास नहीं हो सकते। उन्होंने वेदों का व्यास किया, इतिहास का व्यास किया, साथ ही संभवतः उन्होंने पुराणों का भी व्यास किया हो, परन्तु ये अठारह पुराण उनके बनाये हुए नहीं। लेखकों की सम्मति में प्राचीन पुराण वे ही भाग हैं, जिनमें सृष्टि की प्रलय, उत्पत्ति आदि का विषद वर्णन है। सायणाचार्य का भी यही मत है। ये अठारह पुराण तो पीछे भिन्न-भिन्न साम्प्रदायिक आचार्यों ने लिखे। ऐतिहासिक युक्तियों से भी यह सिद्ध किया गया है कि

पुराणों के कर्त्ता वेदव्यास नहीं। उनमें बहुत सी ऐसी बातें हैं, जो महाभारत-काल से पीछे हुई हैं। यह विषय बहुत ही मनोरंजक है। बोपदेव आदि पिछले विद्वानों ने ही पुराण को बनाया है। अन्तिम चौबीसवें अध्याय में पुराणों में सच्चे वैज्ञानिक सिद्धांतों की विद्यमानता दिखाते हुए लिखा है कि पुराणों में अश्लील और असंभव बातें होते हुए भी सब कुछ त्याज्य नहीं है। उनमें स्थान-स्थान पर नाना विद्याओं का विकास है। इतिहास कहते-कहते उपदेश, परम्परा, ज्योतिष, वैद्यक, वृक्षायुर्वेद, सर्पायुर्वेद, अश्वविद्या, साहित्य, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र, कर्मकाण्ड, देवता स्तुति मन्त्रशास्त्र आदि सभी का ऐसा पचमेल बनाया है कि पुराणों में यह नहीं है, ऐसा कहना कठिन है। वस्तुतः है भी यही, पुराणों को विश्वकोश (Encyclopaedia) कहना असंगत नहीं है।

इस ग्रन्थ में ऐतिहासिक खोजों तथा मतों का कोई आश्रय नहीं लिया गया। वस्तुतः यह लेखकों का उद्देश्य भी नहीं। उन्होंने केवल धार्मिक दृष्टि से ही इस ग्रन्थ को लिखा है और इसी दृष्टि से इस ग्रन्थ को पढ़ना चाहिए। पौराणिक मतों की आलोचना करते-करते कहीं-कहीं इसकी भाषा तीव्र भी हो गई है, जिससे ऋषियों तथा महापुरुषों को बदनाम करने की चेष्टा देख कर उनके मानसिक उद्वेग का पता लगता है। ग्रन्थ उपयोगी तथा धर्मप्रेमी शिक्षितों के लिए पठनीय है। यदि काग़ज़ और छपाई की ओर कुछ अधिक ध्यान दिया जाता तो अधिक अच्छा होता।

कृष्ण

हिन्दी रेलवे टाइम टेबुल

अँग्रेज़ी में भारत की विभिन्न रेलों का टाइम टेबुल निकलता है। उसी ढँग पर हिन्दी में भी यह साहस किया गया है। प्रयत्न प्रशंसनीय है और हम देखते हैं, इसमें बहुत कुछ सफलता भी मिली है। अँग्रेज़ी न जानने वालों के लिए यह बड़ी उपयोगी है। रेलों के समय के अलावा रेलवे सम्बन्धी कई ज्ञातव्य बातें भी इसमें दी गई हैं, जिनसे यात्री अच्छा लाभ उठा सकते हैं। प्रस्तुत टाइम टेबुल अप्रैल १९२८ का है। रेलों के नक़शे और विज्ञापनों के ३२ पृष्ठों के अलावा इसमें २०८ पृष्ठ रेलों के समय के हैं। ॥) इसका मूल्य है और प्रकाशक है—पुस्तक-भवन, काशी। को इस प्रयत्न के लिए बधाई। आशा है, हि इसको अपना कर इसके प्रकाशक का उत्साह बढ़ावें

शिशु

यह छोटे साइज़ का मासिकपत्र, पिछले १२ प्रयाग से निकल रहा है। पं० सुदर्शनाचार्य बी० इसके सम्पादक हैं और २) रु० इसका वार्षिक मूल्य हर महीने तरह-तरह के मनोरंजक चित्रों और गद्य-प कलों, कहानियों, पहेलियों आदि से सजकर यह आत थोड़ा पढ़े-लिखे बालक इसे देख-पढ़ कर बड़े खुश हों मनोरंजक के साथ ही शिक्षाप्रद बातें भी इससे बाल पहुँचती हैं। जनवरी में, इस बार, इसने अपना भी निकाला था। और वह बालकों के लिए अवश्य अच्छी चीज़ थी। बालकों को इसे अपनाना चाहिए।

बाल-सखा

यह भी बालकों का ही पत्र है। श्रीयुत श्री इसके सम्पादक हैं और प्रयाग के इण्डियन प्रेस से लता है। क्वार्टर-फुल्सकेप साइज़ है और वार्षिक मूल रु० है। यह भी बालकों के लिए एक अच्छा सचित्र पत्र है। पिछले दिनों इसका भी एक विशेषांक निक वह काफ़ी मोटा और उपयोगी एवं मनोरंजक भरपूर था। यह 'शिशु' से कुछ गम्भीर है।

खिलौना

यह पत्र बिलकुल छोटे बालकों के काम का है। शिक्षा-विभागों से स्वीकृत हो जाने के कारण थोड़े में इसने अपनी नींव अच्छी जमाली है। छपाई, कार्टून आदि सब अच्छे हैं। चुटकले, गोरख-धन्धे बच्चों के काम के होते हैं। पं० रामजीलाल शर्मा इस दक हैं और २) रु० इसका वार्षिक मूल्य है। पता है— हिन्दी-प्रेस, प्रयाग।

साहित्य-सत्कार

१. वीर मराठे—लेखक—पं० भीमसेन विद्यालंकार। प्राप्ति-स्थान, गुरुकुल-पुस्तक-भण्डार, गुरुकुल कांगड़ी, ज़िला बिजनौर। पृष्ठ-संख्या २१२, मूल्य १) रु०

२. खादी का आर्थिक महत्व—लेखक—श्रीयुत राजेन्द्रप्रसाद। प्रकाशक—श्री आसूदामल टेकचन्द गिदवाणी, विद्यालय-प्रेस, वृन्दावन। पृष्ठ-संख्या २०, मूल्य =)

३. उत्सर्ग—रचयिता—व्यथित-हृदय 'सुमन'। प्रकाशक—श्री राजनारायणसिंह बघेल, छावनी गोपीगंज (बनारस स्टेट)। पृष्ठ-संख्या ३०, मूल्य ।)

४. दान वयवस्था—लेखक—पं० वृद्धिचन्द्र गुप्त। प्रकाशक—श्री चन्दूलाल वर्मा 'चन्द्र' भिवानी। पृष्ठ-संख्या १२, मूल्य लिखा नहीं।

५. धात्री-कर्म-प्रकाश—लेखक—पंडित शिवचन्द्र वैद्यराज कविरत्न। प्रकाशक—पं० इन्द्रदत्त शर्मा, आयुर्वेद प्रचारक कम्पनी, हरिद्वार। पृष्ठ-संख्या १६०, मू० ॥।)

जैनमित्र-मण्डल, दिल्ली का इतिहास और कार्य विवरण (१९१५ से १९२७ तक)—प्रेषक मंत्री।

७. मेरी आशा (उपन्यास)—लेखक—श्री शिवरामदास गुप्त। प्रकाशक—उपन्यास-बहार आफ़िस, काशी। पृष्ठ-संख्या १४०, मूल्य १) रु०

७. The Bagh Caves—लेखक—सर जॉन मारशल, श्री एम० बी० गर्दे, डॉ० जे० पी० एच० वोगल, श्री ई० बी० हावेल, डॉ० जेम्स एच० कजिन्स। प्रकाशक—इण्डिया सोसायटी, ३ विक्टोरिया स्ट्रीट, लण्डन, एस० डब्लू० १। प्राप्ति-स्थान—आर्कियोलॉजिकल डिपार्टमेण्ट, ग्वालियर। मू० ४०) रु०

विविध

"मृगपक्षिशास्त्रम्"

भारतवर्ष की अत्यन्त पुरातन सभ्यता को क्या प्राच्य तथा पश्चात्य सभी देशनिवासी एक मत से स्वीकार करते हैं। प्राचीन भारत का वाङ्मय कितना व्यापक था, यह हमें प्राचीन हस्तलिखित संस्कृत ग्रन्थों की खोज करने से जान पड़ता है। भारतवासियों के प्राचीन वाङ्मय में काव्य, नाटक, व्याकरण, कोष, दर्शन, धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति, इतिहास, स्थापत्य, संगीत, प्रतिमाशास्त्र, ज्योतिष, गणित, आयुर्वेद आदि मुख्य विषयों पर ही नहीं, किन्तु धनुर्वेद, कामशास्त्र, हस्तिशास्त्र आदि कई अन्य छोटे बड़े विषयों पर अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थ हमें आज भी उपलब्ध होते हैं। पशु-विज्ञान पर प्राचीन भारतीयों ने बहुत कुछ लिखा था। आयुर्वेद में पशुचिकित्सा पर बहुत से ग्रन्थ लिखे गये थे, जिनका पता हमें आज भी चलता है। 'गोवैद्यशास्त्र', पालकाप्य-कृत 'गजचिकित्सा', जयदत्त-कृत 'अश्व-चिकित्सा', नकुल-रचित 'शालिहोत्रशास्त्र' तथा गण-प्रणीत 'अश्वयुर्वेद' के नाम उदाहरण रूप से पेश किये जाते हैं। इसी तरह १९१० ई० में कलकत्ते की बंगाल एशियाटिक सोसाइटी ने रुद्रदेव-प्रणित "श्यैनिकशास्त्र" नामक श्येन द्वारा होने वाले आखेट संबंधी ग्रन्थ को प्रकाशित किया था।

कुछ दिन हुए हमें मद्रास प्रान्त के पुरातत्वज्ञ पण्डित वी. विजयराघवाचार्यजी की तरफ़ से एक सूचना मिली, जिसमें उन्होंने लिखा है कि उन्हें तेरहवीं शताब्दि के जैन विद्वान् हंसदेव-रचित "मृगपक्षिशास्त्रम्" नामक एक अलभ्य संस्कृत ग्रन्थ प्राप्त हुआ है, जिसमें पशुपक्षियों आदि का

बहुत ही विशद तथा वैज्ञानिक वर्णन मिलता है। यह ग्रन्थ प्राणिशास्त्रज्ञों के लिए एक बिल्कुल नई एवं विशेष उपयोगी चीज़ है। 'त्यागभूमि' के पाठकों को निम्न पंक्तियों में हम इस ग्रन्थ की कुछ बातों का अत्यन्त संक्षिप्त परिचय कराते हैं। ग्रन्थ के प्रारम्भिक अध्यायों में सिंहों का विस्तृत वर्णन है, फिर व्याघ्र, गैंडे, हाथी, घोड़े आदि अन्य जन्तुओं का। ग्रंथकार की वर्णन-शैली बतलाने के लिये हम यहाँ सिंह सम्बन्धी वर्णन को संक्षिप्त रूप से लिखते हैं।

सिंह का सामान्य रूप से वर्णन करते हुए लिखा है कि सिंह छः प्रकार के होते हैं—सिंह, मृगेन्द्र, पंचास्य, हर्यक्ष, केसरी और हरि। इनमें से कुछ घने जंगलों में और कुछ पहाड़ों में रहते हैं।※ उनमें रंग, गुण और क्रिया का भेद होता है। उनमें प्रकृतिदत्त अपार बल होता है। छठे अथवा सातवें वर्ष में वर्षाकाल में उनका कामोद्दीपन होता है। वे प्रायः झाड़ियों अथवा गुफ़ाओं में संभोग करते हैं। गर्भ-धारण के अनन्तर सिंहनी का आहार कम हो जाता है-और प्रति दिन उसकी थकान एवं तन्द्रा में वृद्धि होने लगती है। धूप और प्रचंड पवन में वह बाहर नहीं निकल सकती। नौ से बारह मास तक उसे गर्भ धारण करना होता है। प्रायः ग्रीष्मारंभ अथवा वसन्त के अन्त में उसका प्रसव-काल होता है। एक बार प्रसूति होने में तीन से पाँच तक बच्चे उत्पन्न होते हैं। यदि शीतकाल में यह प्रसूता हो तो बच्चे कमज़ोर होते हैं। तीन अथवा चार महीने के हो जाने पर वे गर्जने लग जाते, हरिनों को पकड़ लेते, हाथि चढ़ जाते और अन्य पशुओं को डराते रहते हैं। हरि पशुओं का कोमल मांस खाने की उन्हें बड़ी रुचि रह दूसरे अथवा तीसरे वर्ष में उनका यौवन प्रस्फुटि है। भूख के समय उनका क्रोध बढ़ जाता है और सिं को तो वे माता के दूध के साथ पीते हैं। अब ६ प्रक सिंहों का भी थोड़ा-सा हाल सुन लीजिये—

सिंह—सिंह के लंबी पूँछ, कुछ छोटा क़द और हरी रंग होता है! उसका सारा बदन कोमल बा ढका रहता है। वे पीछे की तरफ़ कुछ सफेद और गर्द घने रहते हैं। सिंह बदन के बड़े मज़बूत और भागने में से तेज होते हैं। भूख लगने पर वे अत्यन्त भयंक यौवन-काल में विशेष कामुक होते हैं। वे प्रायः गुफ़ा रहते और प्रसन्न होने पर पूँछ हिलाया करते हैं।

मृगेन्द्र—ये विशाल काय होते और इनके गर्दन लंबे बाल रहते हैं। हरिन आदि पशुओं को पकड़ते, हाथियों के लिए विशेष लालायित रहते हैं। रेतीले झाड़ी वाले स्थानों में घूमने का इन्हें शौक होता है। काल में कामोत्पादन होता है। शरीर से वे सदा स्वस हैं किन्तु इन्हें निद्रा कम आती है। इनमें क्रोध की कम रहती है, परन्तु शान्त प्रकृति होते हुए भी इन्हें प बहुत कठिन है। इनके शरीर पर भिन्न-भिन्न रंग के देख पड़ते हैं।

पंचास्य—इनका वर्ण सफेद-सा और पूँछ छोटी है। लंबाई में दो से तीन हाथ और बदन पर घने होते, परन्तु लंबे जबड़ों के कारण वे बड़े भयानक पड़ते हैं। उनकी चाल में हमेशा थोड़ी बहुत उछल होती रहती है। देखते समय वे अपने पलक घुमाते हैं। उनके छोटे मुँह पर लंबी-लंबी मूँछे होती हैं।

हर्यक्ष—ये बड़े मजबूत, अत्यन्त भयंकर एवं निर्दय होते हैं। इनके शरीर पर छोटी-छोटी धारियाँ हैं। रंग सफेद और भूरे का मिश्रण रहता और पूं रंग की होती है। प्रचंड एवं भयोत्पादक गर्जन करते ये वन में विचरण करते हैं। नींद इन्हें थोड़ी आती और समय बदन पसीजता रहता है। बचपन में ये हाथ

※पाठकों की जानकारी के लिए हम यहाँ कुछ श्लोक मूल ग्रंथ से उद्धृत कर देते हैं—

सिंहास्तु षड्विधा लोके गिरि काननवासिनः।
गुणवर्ण क्रिया भेदाज्जायन्ते दृढविक्रमाः॥ ३५॥
महारण्य गुहा कुंजस्थली वासमुपेयुषाम्।
गर्जत्पर्जन्यकाले तु तेषां कामो मदोत्कटः॥ ३६॥
सिंहीं विलोक्य स्मृत्वा वा तेषां कामगतिः कला।
षड्वर्षे सप्तमे वर्षे सा पूर्णेति निगद्यते॥ ३७॥
शान्ताश्चलित वालास्ते-सुमुखाः सुखचारिणः।
सिंहीसमीपभाजस्तां लालयेयुर्मनोहरम्॥ ३८॥

प्रथम श्रेणी, सिंहगुणादिनिर्णयम्

लटकाते और हमेशा पूँछ उठाये रखते हैं। छाया में पड़े रहना इन्हें बहुत पसन्द है।

केसरी—ये सदैव गुहावासी और रक्तवर्ण होते हैं। इनकी जीभ साधारणतया, और यौवन में विशेष, लाल होती है और इन्हें भोजन की इच्छा कम रहती है। हाथियों के मारने का इनको शौक़ होता है, और हाथी की चिंघाड़ सुनकर तो ये विकराल रूप धारण कर लेते हैं। इनकी चाल बहुत तेज़ होती और जीभ पर सदा झाग आते रहते हैं।

हरि—ये क़द के बहुत छोटे और रक्तश्वेत वर्ण के होते हैं। इनके थोड़ा क्रोध और छोटे बाल होते हैं। ये दिन में ने से डरते और चंद्रिका को पसंद करते हैं। यौवनकाल में ये सिंहनी से कदापि अलग नहीं रहते। इनको भूख कम, किन्तु प्यास अधिक लगती है। अधिकांश समय ये वृक्षों की छाया में सोते रहते हैं। इनका गर्जन गंभीर और ज़ोरदार होता है। ये सदा दिशाओं तथा इंद्रधनुष की ओर देखते रहते हैं। शरीर से अति बलिष्ठ होने पर भी इनकी प्रकृति शान्त एवं गंभीर होती है।

संभव है, इनके सिवा संसार में नाना प्रकार के और भी कई सिंह हों जिनके वर्ण, गुण और क्रियाओं में भिन्नता पाई जाय।

सिंहनियाँ प्रायः सिंहों से क़द में छोटी होती हैं, और उनके चेहरे पर सिंह की भांति मूँछे नहीं देख पड़तीं। इसी प्रकार उनकी गर्दन पर बाल नहीं होते, परन्तु सिंहों की अपेक्षा वे कुछ अधिक सुन्दर होती हैं। उनके पंजे भी छोटे होते और आवाज़ अधिक कर्णप्रिय प्रतीत होती है। अपने जीवन में वे एक अथवा दो बार बच्चे देती हैं।

दस वर्ष की अवस्था के अनन्तर सिंह-सिंहनी पशुओं को विशेष हानि नहीं पहुँचाते। फिर वे वृद्ध होने लगते हैं, जिसके साथ-साथ उनकी तेज़ी, भूख और कामोत्पत्ति में भी क्षीणता आ जाती है। फिर वे गुफाओं अथवा वृक्षों की सघन छाया में विश्राम करते रहते हैं। उनकी आयु २० वर्ष तक होती है।

फन्दे द्वारा वे आसानी से पकड़े जा सकते हैं। उनके बच्चों को भी बाल्यकाल (एक से तीन वर्ष) में पकड़ना आसान होता है। राजा लोग उन्हें पाल कर बाग़-बगीचों में रखते हैं, और मांस खिला कर उनका पोषण किया जाता है। कृत्रिम हाथी और हरिण उनके सामने खड़े कर देने से वे सहज ही पकड़ में आ जाते हैं। अपनी नस्ल और क्रियाओं के कारण वे 'राजस उत्तम' कहलाते हैं।

इसके अनन्तर ग्रन्थकर्त्ता हंसदेव ने व्याघ्र, वृक, भालू, गैंडा, हाथी, घोड़ा, ऊँट, गधा, गाय, बैल, भैंस, बकरी, हरिण, गीदड़, बंदर, बिल्ली, चूहा, कुत्ता, ख़रगोश आदि पशुओं और हंस, बाज़, गिद्ध, सारस, कौआ, उल्लू, तोता, कोयल, कबूतर, मुर्ग़ा, चिड़िया, बगुला आदि नाना प्रकार के पक्षियों का विस्तृत विवरण दिया है। उसमें उनकी क़िस्में, वर्ण, युवाकाल, योग्य अवस्था, उनकी प्रकृति, नस्ल, आयु तथा उनके भोजन सम्बन्धी विषयों पर प्रकाश डाला गया है। हाथी का मुख्य भोजन गन्ना बतलाया गया है। हाथी की उम्र सब से बड़ी—१०० वर्ष—बतलाई गई है। और चूहे तथा ख़रगोश की सबसे छोटी—डेढ़ वर्ष। इस तरह उक्त पुस्तक में भारतीय प्राणिशास्त्र-सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य बातों का समावेश हुआ है।

इस पुस्तक के सम्बन्ध में विशेष जानने की इच्छा वाले पाठक पंडित श्री विजयराधवाचार्यजी पुरातत्त्वज्ञ, तिरुपति (मद्रास प्रांत) से पत्र-व्यवहार करें। यह पुस्तक उन्हींसे प्राप्त हो सकती है।

रामेश्वर गौरीशंकर ओझा

अछूतों में कुछ ठोस काम

भारतवर्षीय अछूतोद्धार कमिटी देहली की जो रिपोर्ट हमारे पास आई है उसके आधार पर हम उसके कार्य्य का ब्योरा प्रकाशित कर रहे हैं। इस कमिटी के आधीन मेरठ, मुज़फ़्फ़रनगर, अलीगढ़, आगरा, उझानी, लखनऊ, झांसी, बनारस, बरहज, और अमरोहा आदि स्थानों में सब मिला कर दस केन्द्र हैं। कमिटी दलित व नामधारी अछूत भाइयों की सामाजिक, आर्थिक तथा शिक्षा सम्बन्धी उन्नति के लिए विविध उपायों द्वारा सतत् प्रयत्न कर रही है। बड़ी प्रसन्नता की बात तो यह है कि देश की अन्य देशोपकारी संस्थाओं की भांति इसका कार्य शहरों तक ही सीमित नहीं रहा, वरन् इसके उद्योगी कार्यकर्त्ताओं ने उक्त प्रांत के तीनसौ चौबीस गाँवों में जाकर अपनी लगन का परिचय दिया है। कमिटी के प्रचार विभाग की ओर से ११, १२ जनवरी को बनारस

केन्द्र की घोसी और चंदौसी तहसीलों में, गाजीपुर ज़िले के रेवतीपुर नामक स्थान में, सहारनपुर ज़िले के सरसावा नामक स्थान में अछूतोद्धार सम्मेलन तथा सभायें हुईं। मेरठ में, पूज्य लाला लाजपतरायजी के सभापतित्व में प्रांतीय अछूतोद्धार सम्मेलन भी बड़े समारोह से मनाया गया। बड़े संतोष और आशा की बात यह हुई कि उस सम्मेलन में सब वर्णों के लोगों ने पूरी-पूरी सहायता दी और सम्मेलन का लगभग एक सहस्र का व्यय भी स्थानीय सज्जनों द्वारा ही दिया गया। जबलपुर में डा० मुंजे के सभापतित्व में अखिल भारतीय अछूतोद्धार सम्मेलन मनाया गया। झांसी में मध्य-भारतीय अछूतोद्धार सम्मेलन भी बड़ी सफलता पूर्वक मनाया गया था। २२ मार्च से २८ मार्च तक युक्त-प्रान्त भर में कमेटी के केन्द्रों की ओर से अछूतोद्धार सप्ताह मनाने में बड़ा प्रयत्न किया गया। बनारस तथा आगरे के केन्द्रों को इस कार्य में बड़ी सफलता मिली।

प्रचार-कार्य्य के अतिरिक्त कमिटी ने कुछ ठोस काम भी किये हैं। कमिटी के दस केन्द्रों द्वारा संचालित ४७ अछूत पाठशालायें भी चल रही हैं। इनमें से १६ रात्रि पाठशाला भी हैं। इन पाठशालाओं में १३०० बालक शिक्षा पा रहे हैं। शिक्षा तो निःशुल्क दी ही जाती है; पर साथ ही बहुत से निर्धन विद्यार्थियों को किताबें, कलम, स्याही व काग़ज़ आदि पढ़ने की सामग्री भी मुफ़्त दी जाती है। पाठशालाओं में प्रत्येक वर्ग के बालक पढ़ते हैं। मेरठ में अछूत छात्रों के लिए एक कुमार आश्रम भी है; इसमें २० विद्यार्थी वास करते हैं। इनमें से आधे से अधिक बालकों को तो भोजन भी दिया जाता है। शिक्षा के सम्बन्ध में कमिटी की प्रायः यह नीति रही है कि कमिटी द्वारा संचालित स्कूलों की पढ़ाई समाप्त करने के बाद विद्यार्थियों को म्युनिसिपैलिटी तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के स्कूलों में भर्ती कराया जाय, जिससे कि शिक्षा प्रचार के साथ-साथ अछूतपन की कुप्रथा भी नष्ट होती जाय। इस नीति के अनुसार भिन्न-भिन्न स्थानों में कमिटी अबतक ५०० विद्यार्थियों को डिस्ट्रिक्ट बोर्ड तथा म्युनिसिपैलिटी के स्कूलों में भर्ती करा चुकी है। बनारस तथा गोरखपुर के केन्द्र के ७ विद्यार्थियों को कमिटी २) से ५) रुपये मासिक तक की छात्रवृत्ति भी देती है।

शाब्दिक शिक्षा के अतिरिक्त कमिटी का ध्यान दूस की ओर भी है। अभी हाल ही में बरहज में एक वस्त्रा भी खोला गया, जहाँ पर कपड़ा बुनना सिखाया जाता। इस वस्त्रालय में अब तक ३०० गज़ शुद्ध खादी तैयार हुई। इस केन्द्र की ओर से तीन चर्मकार नवयुवकों को तथा तीन को मोची का काम भी सिखाया जाता है। झां झांसी तथा अलीगढ़ केन्द्रों की ओर से बेंत चर्मकारों तथा भंगियों आदि को सिखाया गया है, जि उन्हें काफ़ी आमदनी हो रही है। बरहज में एक औषधा भी है, जहाँ से इसी जनवरी मास से लेकर मार्च तक २००० ग़रीब रोगी मुफ़्त लाभ उठा चुके हैं। अछूतों शारीरिक उन्नति की ओर भी ध्यान दिया जा रहा है। समय झांसी केन्द्र की ओर से दो व्यायामशालायें चल हैं, जिनमें चर्मकार नवयुवक कसरत किया करते हैं।

अछूतों को समय-समय पर आर्थिक सहायता दी गई है। लखनऊ के गरीब चर्मकारों को भोज बारात उत्सवों के अवसर पर काम आने वाले बरतन भांडे के कोई चारसौ रुपया दिया गया तथा मेरठ में जाटवों के लिए दो सौ रुपये दिये गये।

अछूतों की आर्थिक दशा सुधारने के लिए सहकारी की स्थापना भी की जा रही है। अलीगढ़ और बनारस में चार सहकारी बैंक चल रहे हैं। कमिटी ने गत तीन मा धर्म-प्रचार का भी कार्य किया है। १९ नामकरण, ५ मु २ विवाह और कई मृतक संस्कार कराये। आगरे में जाटवों को ईसाइयों के फन्दे से बचाया गया। गोर ज़िले में चर्मकारों के लिए ३ कुए खुलवाये गये।

यह कार्य तो देहली की अछूतोद्धार सभा द्वारा परन्तु जीवन और जागृति के इस युग में अछूतोद्धार कार्य्य प्रायः हर जगह हो रहे हैं। इस बीच में अ भी देहरादून के चौधरी बिहारीलालजी के सभापतित्व एक अछूतोद्धार सम्मेलन हुआ था। इसी प्रकार यह आन्दो यदि कुछ समय तक जारी रहा और कार्यकर्ता विघ्न-बा के होते हुए भी डटे रहे, तो वह समय निकट ही है, ज देश के पवित्र सिर से अछूतपन की यह कलंक-कालिमा कुल धुल जायगी।

सम्पादकीय

जयन्तियों की धूम

मनुष्य की बुद्धि का चाहे कितना ही विकास हो जाय, तर्क शक्ति कितनी ही पराकाष्ठा को पहुँच जाय, कृतज्ञता के भाव का लोप होना मुझे तो असम्भव मालूम होता है। कृतज्ञता ही वीर-पूजा की जड़ है। जब मनुष्य यह देखता है कि यह शख़्स हमारे लिए कष्ट सह कर भी निःस्वार्थ-भाव से हित के काम करता रहता है तब उसके प्रति आदर का भाव मन में पैदा होना स्वाभाविक है। वीर-पूजा के द्वारा हम केवल अपने उपकार-कर्ताओं के प्रति अपनी कृतज्ञता ही नहीं प्रकट करते, बल्कि उनके अनेक सद्गुणों और सत्शक्तियों को स्मरण कर उन्हें प्राप्त करने की प्रेरणा भी पाते हैं। रामनवमी, कृष्ण जन्माष्टमी, शिवजयन्ती, प्रतापजयन्ती का उत्सव मनाना वीर-पूजा ही का एक स्वरूप है। यों तो मनुष्य पग-पग पर दूसरे का हित करता है और दूसरे का एहसानमन्द होता है, परन्तु सारे समाज और राष्ट्र की पूजा के अधिकारी केवल वे ही महानुभाव हो सकते हैं, जिन्होंने सारे समाज और राष्ट्र की अलौकिक सेवा की हो और उनके सामने ऊँचा आदर्श उपस्थित कर दिया हो। भारत में राष्ट्रीयता के भावों के फैलने के पहले राम, कृष्णादि वीरों की पूजा धार्मिक रूप में हुआ करती थी। राष्ट्रीयता की लहर के आरम्भ में लोकनायक के रूप में गणपति के और स्वराज्य-संस्थापक के रूप में शिवाजी महाराज के उत्सव शुरू हुए। इसके बाद तो जयन्तियों का तांता बंध गया। गुरु गोविंद, प्रताप, दुर्गादास, बाजीराव, अहल्याबाई, लक्ष्मीबाई की जयन्तियों का आविष्कार हुआ। गीता-जयन्ती भी चली। मध्यभारत में मल्हाराव होल्कर, महादजी सिन्धिया, माधवराव सिन्धियां इनकी जयन्तियां भी चल निकलीं। अभी ग्वालियर में महाराष्ट्र-साहित्य-सम्मेलन के अवसर पर एक उत्साही और ज़िम्मेवार मित्र ने, मित्रों के सामने, यह प्रस्ताव उपस्थित किया कि कम से कम हर मराठी राज्य में उसके संस्थापक की जयन्ती मनाई जाय और एक राज्य में जब जयन्ती हो तो दूसरे सब मराठी राज्य के लोग उसमें सहयोग दें। प्रस्ताव का मूल उद्देश्य तो यह कि शुरू में कम से कम मराठी रियासत के लोग तो इस निमित्त एकत्र और संगठित हो सकें। उद्देश्य की अच्छाई पर तो कोई क्या कह सकता है, पर जयन्तियों की यह संख्या-वृद्धि मुझे तो कुछ जंच नहीं रही है। फिर जिन लोगों ने केवल राज्यवृद्धि के लिए लड़ाइयां लड़ी हों और राज्य स्थापन किये हों उनकी जयन्तियां मुझे अनावश्यक मालूम होती हैं। मेरी राय में सारे भारत में अब स्वर्गीय विभूतियों में केवल तीन जयन्तियाँ काफ़ी हैं—शिव-जयन्ती, प्रताप जयन्ती, और लोकमान्य-जयन्ती। और स्त्रियों में अहिल्यादेवी, महारानी लक्ष्मीबाई! बस, ये पांच राष्ट्रीय उत्सव और त्यौहार हों। और इनके मनाने की विधि केवल व्याख्यानबाज़ी नहीं, बल्कि देश-सेवा का कोई अमली काम हो। केवल परिपाटी को क़ायम रखने के लिए नहीं बल्कि लोगों को जीवन देने के लिए वह मनाई जाय। वह एक-दो दिन का खिलवाड़ न हो बल्कि वर्ष भर का व्रत हो। यदि इस संजीदगी और विवेक के साथ हम जयन्तियां मनायेंगे तो थोड़ी शक्ति, थोड़ा समय, थोड़ा द्रव्य, व्यय करके भी हम अधिक से अधिक सफलता प्राप्त करेंगे। प्रान्तीयता तथा संकुचितता को छोड़ कर हमें दिन-दिन राष्ट्रीयता के भावों में अपनेको सराबोर करना चाहिए और उस दिन की राह उत्सुकता से देखनी चाहिए कि हमारी राष्ट्रीयता, महाराष्ट्रीयता— विश्वकुटुंबता—के रूप में परिणत हो। ज्यों-ज्यों दिन जायँगे प्रांतीयता और संकुचितता हमें अपनी क्षुद्रता नज़र आने लगेगी। और हम हिन्दू और मुसलमान की भाषा में नहीं, बल्कि हिन्दुस्थानी की भाषा में बोलेंगे और बतेंगे।

ह० उ०

प्रताप-जयन्ती

अभी तक जो समाचार मिले हैं, उनसे मालूम होता है कि २२ मई ज्येष्ठ शुक्ल ३ को देश के प्रायः सभी मुख्य नगरों में प्रताप-जयन्ती किसी न किसी रूप में मनाई गई। राजस्थान के भाइयों ने भी जगह-जगह एकत्रित होकर उस दिन महाराणा प्रताप की पावन स्मृति के चरणों में प्रेम-पूर्वक अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। ग्वालियर, इन्दौर, करोली, अजमेर,ब्यावर आदि नगरों में जहां जयन्ती मनाई गई,वहाँ गोविंदगढ़,जयपुर और पुष्कर जैसे छोटे-छोटे क़स्बों में भी उत्साही भक्तों ने प्रताप की यथा-शक्ति पूजा करके अपने को सन्मानित और पवित्र बनाया। बड़ौदा पहली जून को समारोह के साथ प्रताप-जयन्ती मनाने का आयोजन कर रहा है।

उदयपुर महाराणा प्रताप के गौरवशाली समुज्वल वंश का केन्द्र है। वह इस समय वीर-भूमि मेवाड़ की राजधानी है। वहाँ महाराणा प्रताप की स्मृति और भक्ति-प्रदर्शन के रूप में प्रताप-सभा नाम की एक संस्था है, जो कई वर्ष पूर्व राज्य के कुछ उत्साही और प्रतिष्ठित सज्जनों द्वारा स्थापित की गई थी। उक्त सभा के द्वारा गत वर्ष की भांति इस वर्ष भी दो दिन तक उत्साह और आनन्द के साथ प्रताप-जयन्ती मनाई गई। मेवाड़ के अधिकारियों से पिछले साल जब प्रार्थना की गई थी तो उन्होंने आधे दिन की छुट्टी दी थी, पर अब सदा के लिए प्रताप का जन्म-दिन मेवाड़ राज्य भर के लिए छुट्टी और उत्सव का दिन गिना जायगा। इस सहृदयता और दूरदर्शिता के लिए मेवाड़ के राज्याधिकारी धन्यवाद के पात्र हैं। इस वर्ष मुझे आशा थी कि उदयपुर बहुत ही अधिक समारोह के साथ जयन्ती मनायेगा, किंतु समय थोड़ा हो जाने के कारण पूर्ण सफलता न मिल सकी। फिर भी जयन्ती ख़ूब रही।

पहले दिन प्रातःकाल हवन,चित्र-पूजन और ब्रह्मचारियों को भोजन कराया गया। शाम को एक विस्तृत मैदान में सुसज्जित शामियाने के पास उदयपुर-निवासियों की कुँ० महेन्द्रसिंहजी राणावत के सभापतित्व में बृहत् सभा हुई। पं० ईश्वरदत्तजी का भाषण ख़ूब जोशीला था। पं० प्रकाशचन्द्रजी के भजन तो वीर-रस से जनता के हृदयों को प्लावित कर रहे थे। दूसरे दिन कुँ० मोहनसिंहजी मेहता का शाली भाषण हुआ, जो स्पष्टवादिता से पूर्ण था। बताया कि अब केवल पूर्वजों का गुण-गान करते काम न चलेगा। हमें सोचना चाहिए कि प्रताप आज यहाँ होते तो वर्तमान परिस्थिति को देखकर वह क्या बस यही हमें भी करने के लिए तैयार हो जाना ताकि आज यदि वह चेटक पर चढ़े हुए हमारे सामने हों तो हम उनका साथ देने में समर्थ हों। बा० हुकम ने भी ख़ूब जली-कटी सुनाई, जिसे लोगों ने पसंद कि उन्होंने अधिकारियों तथा प्रतिष्ठित लोगों को चेता कि तुम अपने जीवन को सादा बनाओ, ताकि तुम्हारी भड़क को देखकर दूसरे लोग प्रलोभन में पड़कर अ न करें। ग़र्ज़ेकि उदयपुर की जयन्ती सफल रही। पर को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि एक बात में चि उदयपुर से भी आगे बढ़ गया। वहाँ जलूस भी नि गया। चित्तौड़ के सहृदय हाकिम कुँ० जसवन्तसिंह इसके लिए बधाई।

इस वर्ष तो जो कुछ हुआ अच्छा हुआ, पर अगले लिए ख़ासी तैयारी करनी चाहिए। अब प्रताप-ज मनाई तो सारे देश में जाती है, इसलिए अब स गया है कि एक केन्द्र-स्थल निश्चित किया जाय, जिध स्त देश के उत्साही भक्तों की दृष्टि को केन्द्रित कि सके। इसके लिए उदयपुर अथवा चित्तौड़ से बढ़कर कौन स्थान होगा? चित्तौड़ में पर्याप्त साधन न सकेंगे, इसलिए उदयपुर ही ठीक रहेगा। इस उदयपुर के कार्यकर्ता लोगों पर भारी ज़िम्मेवारी इसमें सन्देह नहीं। पर वीर-भूमि में पैदा होने का प्राप्त करने के कारण उनपर जो एक पवित्र उत्तर आता है, उसको वे अपनी वीर-प्रसिद्ध धीरता और के साथ निबाहेंगे, इसकी मुझे आशा है। मेरा यह निवेदन है कि राज्य और प्रजा-वर्ग मिलकर अगले निम्नलिखित बातों का आयोजन करें, जिससे सारे एक सुन्दर, स्वादिष्ट और स्थायी प्रभाव पड़े बिना न

(१) राज्यवंश तथा प्रजावर्ग के सहृदय भक्त व्रत रक्खें और दान दें।

(२) एक शानदार जलूस निकाला जाय, जिसमें राज्य की ओर से सारा लवाज़मा दिया जाय। प्रजा के साथ अधिकारीवर्ग भी शामिल रहें।

(३) श्रीमान महाराणा साहब उस दिन आम दर्बार करें और अपने विश्ववंद्य, अनन्य गौरव-शाली पूर्वज के प्रति प्रेम-पूर्वक श्रद्धाञ्जलि अर्पित करें।

(४) शक्ति-सूचक खेलों का प्रदर्शन हो।

(५) बाहर से आये हुए प्रताप-भक्तों और नगर के स्त्री-पुरुषों की सम्मिलित सभा हो, जिसमें श्रीमान् मेवाड़ाधिपति अपना शुभ-सन्देश भेजने की कृपा करें और श्री महाराजकुमार साहब अपनी उपस्थिति से लोगों को उत्साहित करें।

पिछले वर्ष हल्दीघाटी पर प्रताप-मेले की आयोजना करने का तथा चेटकारूढ़ प्रताप-मूर्ति की स्थापना का प्रस्ताव पास हुआ था, पर वह अभी तक कार्य-रूप में परिणत न हो सका। अब अगली जयन्ती तक तो यह काम हो ही जाना चाहिए। समस्त देश के सहृदय भक्तों के सहयोग की इसमें ज़रूरत है। मेवाड़ में जन्म धारण करने का गौरव रखने वाले प्रत्येक व्यक्ति का इस सम्बन्ध में ज़बर्दस्त उत्तरदायित्व है—फिर चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष और चाहे छोटे से छोटा हो या बड़े से बड़ा। गोवर्धन-पर्वत का सारा भार भले ही भगवान् कृष्ण अकेले ही अपनी अंगुली पर उठा लें, पर प्रेम के मतवाले ग्वाल-बालों को सहारा दिये बिना भला चैन क्यों पड़ने लगा? देश में प्रताप के आदर्श के पुजारी अब कम नहीं हैं। वे मूर्ति बनाने में तो सहायता देंगे ही और साथ ही देश के कोने-कोने से बड़ी संख्या में प्रताप के नाम पर लगाये हुए मेले में सम्मिलित होने के लिए प्रेम में पगे हुए सिर के बल दौड़ते हुए चले आयेंगे।

क्षेमानन्द 'राहत'

स्वराज्य--विधान का प्रश्न

यों तो साइमन-कमीशन की नियुक्ति के पहले से ही देश के कई राजनैतिक नेता इस बात को चाहने लगे थे कि स्वराज्य का एक विधान बना लिया जाय, जिससे लोगों की यह ठीक-ठीक धारणा हो जाय कि स्वराज्य क्या चीज़ है और स्वराज्य में शासन--प्रबंध कैसा होगा। भारत की राजनैतिक अवस्था को और सर्व-साधारण के स्वतंत्रता-प्रेम को यदि एक कड़े समालोचक की दृष्टि से देखा जाय तो यह नहीं कह सकते कि पूरा स्वराज्य तो दूर अभी औपनिवेशिक स्वराज्य प्राप्त करने योग्य बल, त्याग और संगठन-शक्ति का भी परिचय वह दे पाया है, और इसलिए प्रत्यक्ष स्वराज्य अभी दूर है। ऐसी अवस्था में मेरी राय में अभी से स्वराज्य-विधान के प्रश्न को खड़ा करना और उसमें देश के बड़े-बड़े लोगों का दिमाग़ और शक्ति लगाना मुझे तो अप्रासंगिक मालूम पड़ता है। और जब भारतीय स्वराज्य-विधान संबंधी कठिनाइयों, ख़ास कर हिन्दू और मुसलमानों के निर्वाचन-संबंधी उलझनों और झगड़ों पर ध्यान जाता है, तब मुंह से हठात् यह निकल पड़ता है कि रोटी तो ठीक अभी आटा भी घर नहीं आया है और हम इस बात के लिए आपस में झगड़ रहे हैं कि रोटी का कितना हिस्सा किस तरह बाँटा जायगा, जिसका परिणाम यह होता है कि आटा लाने में जो ध्यान और शक्ति लगनी चाहिए वह रोटी के टुकड़ों की लड़ाई में बरबाद हो रही है। स्वराज्य--विधान बनाने के प्रयत्न अब तक हुए हैं, उनमें जैसी-जैसी उलझनें और कठिनाइयां पैदा हुई हैं उन्हें देखते हुए तो ऐसा मालूम होता है कि अभी देश के मन की स्थिति इस योग्य नहीं है कि वह संतोषजनक और एक-मत से सर्वोत्तम शासन-विधान बना सके। फिर भी जब कि राष्ट्रीय महासभा के अधिकांश नेताओं ने, ख़ासकर साइमन-कमीशन को लक्ष्य करके, इस बात की आवश्यकता समझी है कि स्वराज्य-विधान का मसविदा तैयार कर लिया जाय तो कम से कम इससे इतना लाभ अवश्य होगा कि एक तो अंग्रेज़ों को यह कहने का अवसर न मिलेगा कि स्वराज्य की मांग के संबंध में तुम्हीं लोग ख़ुद एक-मत नहीं हो, अब हम किस तरह कोई निर्णय कर दें; दूसरा लाभ यह होगा कि शासन-विधान संबंधी छोटी-बड़ी बातों की चर्चा होते रहने से जन-साधारण को उसका ज्ञान होता रहेगा। दो-तीन महीने पहले देहली में सर्व-दल परिषद् के अधिवेशन में स्वराज्य-विधान का मसविदा तैयार किया गया था, पर उसमें ख़ास

कर दो बातों का निपटारा न हो पाया था। मुसलमानों की दो मांगें कितने ही हिन्दू नेताओं को अनुचित मालूम होती हैं। एक तो सिंध का बम्बई प्रांत से पृथक् कर दिया जाना और दूसरे जिन प्रांतों में मुसलमानों का बहुमत है उनमें भी मुसलमान प्रतिनिधियों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक रहे। अतएव इस बात का निर्णय करने के लिए कि सिंध यदि प्रथक् कर दिया जाय तो एक अलग प्रांत का ख़र्चा वह बर्दाश्त कर सकता है या नहीं तथा जहां-जहां बहुमत है वहां विशेषाधिकार दिया जाय या नहीं, दो अलग-अलग कमिटियां बनाई गई थीं और उनका निर्णय अभी बम्बई वाले अधिवेशन में पेश होने वाला था; परन्तु किसी न किसी कारण से ऐसा न हो पाया और बम्बई-बैठक में फिर एक नई कमिटी, जिसमें कि प्रायः सब विचार के प्रतिनिधि हैं, बनाई गई। उसके ज़िम्मे यह काम हुआ कि वह स्वराज्य-विधान के मूलभूत सिद्धान्तों का निर्णय करे। आगामी अगस्त में फिर सर्वदल परिषद् की बैठक होगी और उसमें इस कमिटी की रिपोर्ट पर विचार किया जायगा।

यहां ये प्रश्न सहज ही उठते हैं कि हमारे स्वराज्य का स्वरूप क्या होगा, उसमें लोगों के क्या-क्या अधिकार होंगे, न्याय, रक्षा और शिक्षा की कैसी व्यवस्था होगी, प्रतिनिधि कौन और कैसे होंगे व कौन और कैसे लोग उन्हें चुनेंगे? प्रांतों का बटवारा किस तरह होगा, राज्य-भाषा कौनसी होगी? देशी राज्यों के राजा और प्रजा को उसमें क्या और कैसा स्थान होगा, दूसरे देशों से उनका क्या और कैसा संबंध रहेगा? अबतक इनमें से कई विषयों पर कई लोगों का काफी मतभेद है। मेरी नम्र सम्मति में स्वराज्य-विधान नीचे लिखे सिद्धांतों के अनुसार बनाया जाना चाहिए—

१. यह मानकर चलें कि असली सत्ता लोगों की है और लोगों ने उसका एक अंश अपने प्रतिनिधि-मंडल को दिया है, जो कि सरकार कहलाता है।

२. विधान का स्वरूप ऐसा होना चाहिए, जिससे लोग आंतरिक बातों में अधिकाधिक स्वतन्त्रता का अनुभव करें, जिसके फल-स्वरूप वे अधिकाधिक सुखी और उन्नत हों। सब जाति, धर्म, श्रेणी और प्रांत के लोगों को अपनी उन्नति और सुख की सुविधा समान-रूप से रहे, इस बात की पूरी चिंता रक्खी जाय।

३. यदि शासक-मंडल प्रजा के सुख और सार्व संबन्धी आकांक्षाओं की अवहेलना करता हुआ पाया तो लोगों का स्पष्ट अधिकार होना चाहिए कि उस को बदलकर दूसरे प्रतिनिधियों का मंडल बना दें।

स्वराज्य-संबन्धी अन्य बातों के विषय में मेरा इस प्रकार है—

१. स्वराज्य के मानी हैं पूर्ण स्वतन्त्रता। यदि ब्रि गवर्नमेंट चाहे तो हमारी रज़ामंदी से हम ब्रिटिश साम्रा में बराबरी के अंग बनकर रहेंगे, अन्यथा अपनेको स्वाधीन मानेंगे। भारत अब ब्रिटिश साम्राज्य का प्रजा बनकर नहीं रहेगा, एक कुटुम्बी बनके रह सकता है।

२. प्रतिनिधि-मंडल में चुनाव की कसौटी सम्पत्ति प्रभुत्व नहीं बल्कि सार्वजनिक सेवा, त्याग और संयम हो

३. शासन-पद्धति ऐसी हो, जिसमें हर प्रांत भीतरी में स्वतन्त्र हो और सार्वदेशिक सरकार का शासन कम से कम हो।

४. सार्वदेशिक सरकार का चुनाव सीधा लोगों के न हो, यह वर्त्तमान अवस्था में अधिक वांछनीय है। स्वराज्य-शासन का घटक माना जाय। ग्राम-सभा के का अधिकार प्रत्येक वयस्क स्त्री-पुरुष को रहे।

५. कुछ कठिनाइयों के होते हुए भी प्रांतों की भाषा के अनुसार हो।

६. राष्ट्र और राज्य की भाषा हिन्दुस्थानी हो, प्रांत प्रांतिक भाषायें हों। अंतर्राष्ट्रीय भाषा स्वभावतः अंग्रेज़ी

७. न्याय और शिक्षा-विभाग सरकार की अधीनता में

८. देशी राज्य क़ायम तो रहें; पर दूसरे प्रांतों की वे भीतरी बातों में स्वाधीन रहें। राजा, राजा के रूप में बल्कि प्रजा के प्रतिनिधि के रूप में शासन-व्यवस्था करें

हमें उत्सुकता-पूर्वक राह देखनी चाहिए कि हमारे लोग इस विषय में क्या निर्णय करते हैं।

मजूर और मालिक

व्यापार और उद्योग-धन्धों का मूल यदि देखा जाय इनके वर्तमान स्वरूप से बहुत भिन्न मालूम होता है।

चीज़ यदि कहीं पैदा नहीं होती है और उसकी वहाँ निहायत ज़रूरत है तो उसे वहाँ पहुँचाना और उसके लिए आवश्यक पारिश्रमिक लेना व्यापार का असली स्वरूप है। इसी प्रकार कच्चे माल से पक्का माल बना कर आवश्यक स्थानों को भेजना उद्योग-धन्धों का मूल है। दोनों में जो मुनाफ़ा लिया जाता है वह वास्तव में मिहनताना है और उसका आधार है उसकी तैयारी या लाने-लेजाने में लगने वाला खर्च तथा बेंचने वाले के निर्वाह के लिए आवश्यक द्रव्य की मात्रा। पर अब उसका आधार हो गया है ख़रीदने वाले की ग़रज़। यदि उसे ग़रज़ है तो झक मारकर महँगे भाव से चीज़ ख़रीदेगा। आवश्यकता पूरी करने का पवित्र भाव निकल गया और उसकी ग़रज़ से ज़्यादा से ज़्यादा फ़ायदा उठाने का मलिन भाव आ गया। आज इस दुनिया में इस मलिन भाव ने आसुरी रूप धारण कर लिया है और दुनिया मालिक और मजूर दो वर्गों में बँट गई है। जबतक एक व्यापारी थोड़ी मात्रा में व्यापार करता था, छोटे-छोटे घरेलू उद्योग-धन्धे चलते थे, तब तक जो नफ़ा मिलता था वह बहुत जगह बँट जाता था—इससे आपस में ईर्ष्या और अनुचित प्रतिस्पर्धा नहीं होती थी। बड़े पैमाने पर केन्द्रित रूप में जब व्यापार और उद्योग होने लगा तो मुनाफ़ा थोड़े लोगों के घर में अधिक जाने लगा और मालिक एवं मजूर एक दूसरे के विरोधीदल से बनने लगे। मालिक चाहने लगे, मजूर से अधिक से अधिक काम लिया जाय और थोड़े से थोड़ी मजूरी दी जाय। इधर मजूर मजूरी ज़्यादा, काम केघण्टे कम और मुनाफ़े में भी हिस्सा माँगने लगे। पारस्परिक कर्तव्य और सेवा का भाव निकलने लगा और अपने-अपने फ़ायदे पर दृष्टि जमने लगी। इसीका फल है ये बड़ी-बड़ी मजूरों की हड़तालें, दोनों की परेशानी और आर्थिक हानि। परस्पर सहयोग और सहायता के भाव के बदले 'ताक़त की आज़माइश' का सवाल पैदा हो जाता है। यदि मजूरों के पास काफ़ी बचत हो, अच्छा संगठन हो, मालिकों को काफ़ी नुक़सान पहुँचाने की शक्ति हो, तो उनकी जीत हो जाती है, उनका फ़ायदा हो जाता है; और यदि मालिकों के पास नुक़सान उठाने के लिए काफ़ी रुपया और कारख़ाने को टूट जाने देने की हिम्मत हुई, तो उनकी पौबारह हो जाती है। हिन्दुस्थान में आये दिन हड़तालों के समाचार आते रहते हैं। यह निर्विवाद है कि कारख़ाने यदि चल सकते हैं तो पूंजी और श्रम अर्थात् मालिक और मज़दूर के सहयोग से ही चल सकते हैं। अतएव क्या कोई ऐसा स्थायी उपाय नहीं ढूँढा जा सकता, जिससे इन आये दिन के झगड़ों का अन्त हो जाय? मेरी राय में मजूरों की अपेक्षा मालिकों के हाथ में यह उपाय अधिक है। वे ख़ुद-ब-ख़ुद यदि मुनाफ़े का लोभ छोड़कर, ब्याज-मात्र पर सन्तोष मानकर, शेष नफ़ा मजूरों के और देश के हित में लगाते रहें, तो यह कटुता बहुत-कुछ कम हो सकती है। ऐसा करने से न केवल कारख़ानों की उन्नति होगी और मजूर और मालिक दोनों को सुख होगा बल्कि हर्टशार्न जैसों की ज़हरीली चोटों से भी मालिक लोग बच जायँगे। हर्टशार्न साहब के इस वार का ज़ोरों से प्रतीकार किया जा रहा है। मालिकों की प्रातिनिधिक संस्थाओं ने तो उन्हें लथेड़ा ही है; पर यहाँ की ट्रेड यूनियन कांग्रेस के मंत्री श्री जोशी और लाला लाजपतरायजी तक ने उन्हें बुरी तरह फटकारा है। श्री सकलातवाला को कोसते हुए हर्टशार्न साहब ने हिन्दुस्थानी मालिकों को दुनिया में सबसे बुरे मालिक-मजूरों को सताने वाले-कह दिया है और ताता का नाम ख़ास तौर पर लिया है। हर्टशार्न साहब पार्लमेंट में मज़दूर-दल के प्रतिनिधि हैं और साइमन-कमीशन के मेम्बर हैं। अपने देश के मालिकों को वह हिन्दुस्थान के मालिकों से अच्छा समझते हैं। समझते रहें। हम यह तो कैसे कह सकते हैं कि हिन्दुस्थान के सभी मालिक दूध के धुले हुए हैं; पर इतना अवश्य कह सकते हैं कि हिन्दुस्थान के मज़दूरों के प्रति हमसे अधिक सहानुभूति उन्हें नहीं हो सकती। एक ओर सर लेस्ली स्काट साहब ने भारतीय नरेशों को हिन्दुस्थान के नेताओं से लड़ा मारने की तरकीब निकाली है, दूसरी ओर हर्टशार्न साहब यहाँ के मालिकों और मज़दूरों में और भिड़न्त करा देने की तैयारी शायद कर रहे हैं। साइमन-कमीशन के फिर से यहाँ आने के पहले ऐसे शुभ कार्यों की बुनियाद यहाँ पड़ जाना ब्रिटिश साम्राज्य के लिए अच्छा ही है। देशी नरेश और पूँजीपतियों को भगवान् ने सद्बुद्धि दी हो, तो वे इन समस्याओं पर विचार करें!

बहिष्कार और मिल-मालिक

गया हुआ और गँवाया हुआ राज्य बिना युद्ध के नहीं मिलता, यह बात एक बच्चा भी समझ सकता है। भारत की राजनीति का एक मामूली विद्यार्थी भी यह भली भांति जानता है कि भारत निकट-भविष्य में तोप-बन्दूक़ से लड़ाई लड़ कर अंग्रेज़ों से स्वराज्य नहीं छीन सकता। सब लोग इस बात को एकस्वर से कहते हैं कि आज तो बिना हथियार की लड़ाई ही लड़ी जा सकती है और अधिकांश लोग इस बात को मानते हैं कि वह लड़ाई असहयोग के सिवा दूसरी नहीं हो सकती, जिसमें कि कर न देना भी शामिल है। कर बन्द कर देना असहयोग का सबसे तीव्र और रामबाण अस्त्र है। और जिन्हें सुसंगठित और सफल संग्राम की कुछ भी कल्पना है और देश की वर्त्तमान असंगठित अवस्था का थोड़ा भी यदि ज्ञान है वे जानते हैं कि कर न देने के अस्त्र का प्रयोग सामूहिक रूप से करने की अवस्था अभी देश की नहीं हुई है। इससे घट कर सिर्फ़ एक ही उपाय देश के हाथ में है, जो एक ओर हमारे स्वराज्य-प्राप्ति के निश्चय को प्रकट करता है, दूसरी ओर अंग्रेज़ों के दिल पर हमारे निश्चय का सिक्का जमाता है, और तीसरी ओर देश में नवीन चेतना और राष्ट्रीय संगठन को सुदृढ़ बनाता है। वह है विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार। धारा-सभाओं में वाग्युद्ध करना भी कुछ नेताओं की राय में एक शस्त्र है और वे स्वयं इस बात को मानते हैं कि थोड़ी सी हद के आगे वह बेकार है।

इस बहिष्कार के पक्ष और विपक्ष में दो तीन प्रकार के लोग हैं। पक्ष में दो दल हैं। एक कहता है कि सारे विदेशी कपड़ों का बहिष्कार किया जाय, दूसरा कहता है सिर्फ़ अंग्रेज़ी माल का ही बहिष्कार किया जाय। विपक्ष में नरम-दल के लोग अधिक हैं, जो यह कहते हैं कि कपड़े का बहिष्कार असम्भव है, इतना ही नहीं, इससे उल्टी देश की आर्थिक हानि है। परन्तु देश का बहु-जन-समाज बहिष्कार की उपयोगिता को मानता है, सिर्फ़ प्रश्न यही है कि विदेशी कपड़ा रोका किस तरह जाय और उसकी जगह स्वदेशी कपड़ा बनाया और फैलाया किस तरह जाय? महात्माजी के कथनानुसार यदि लोगों को खादी पहनाने का ज़िम्मा देश के दूसरे
नेता लोग ले लें, तो अकेली खादी के द्वारा वे
कपड़े को रोक देने की आशा रखते हैं। पर
ष्कार को जल्दी सफल बनाने और मिल-मालिकों को
देश-भक्ति का सच्चा प्रमाण देने का अवसर देने
उन्होंने कहा है कि अच्छा, यदि मिल-मालिक मिल
बनाना छोड़ दें और भाव की हद बांधने का ठहराव
तो खादी और मिल के बने कपड़े के सहयोग से
सफल कर लिया जाय। अहमदाबाद के मिल वाले तो
पर बहुत कुछ राज़ी हो गये। बम्बई वाले उन्हें
आशा नहीं दिलाते। लालाजी तो इस बात पर इतने
गये हैं कि उन्होंने 'पीपुल' (People) में बम्बई की
कपड़े को विलायती कपड़ा समझ कर इसका बहिष्का
की सलाह दी है। बम्बई के मिल-मालिकों की इस
जनक उदासीनता पर उनको बड़ा दुःख है। बंबई
यह देश-भक्ति-हीन मनोवृत्ति इस इलज़ाम को पुष्ट
कि मिल-मालिक देश-भक्तों की उत्पन्न की हुई स्वदेशी
ना से लाभ उठाने को तो आगे बढ़ जाते हैं; पर जब
पुकार उनतक जाती है तब वे उसे ठण्डे दिल से
हैं। हाँ, सभी मिल-मालिक इस श्रेणी के नहीं हैं।
तो महात्माजी को यहाँ तक लिख दिया है कि
होगी और मुझे जँच जायगा तो मिलों को स्वराज्य
होम दूंगा। लालाजी ने मिल-मालिकों के विलायती
पहनने पर भी तीव्र आक्षेप किया है और वह बहुत
जो ख़ुद अपनी मिलों के कपड़े का प्रचार करना
उन्हें किसी तरह उचित नहीं है कि वे दूसरी जगह
सोभी विलायती कपड़ा इस्तैमाल करें। मिल-मालि
छोड़ दें और यदि देश के दूसरे नेता और नवयुव
बहिष्कार के झण्डे को हाथ में ले लें, तो भी आन्दोलन तो
ही उठेगा—सिर्फ़ इतनी बात रह जायगी कि
मालिकों ने अपने स्वार्थ के आगे देश की माँग को
समझा।

अजमेर की समस्या

सरसरी तौर पर भी यदि कोई राजपूताना और
भारत में इधर-उधर दौड़ जाय तो उसे दिन-दिन
जागृति के लक्षण दिखाई दिये बिना न रहेंगे। अजमेर

तीन महीने के अन्दर ही अन्दर कई बातें ऐसी हो चुकी हैं, जिससे जान पड़ता है कि सोया हुआ अजमेर फिर जाग रहा है। हिंदू-सभा के निमंत्रण पर डॉ० मुंजे, लाला लाजपतराय यहां पधारे और अपने भाषणों से अजमेर की हिन्दू जनता को लाभ पहुँचाया। आर्य-समाज के उत्सव पर का हाल पाठक पढ़ ही चुके हैं। अछूत-सम्मेलन भी पिछले दिनों यहां हुआ और उस दिन प्रताप-जयन्ती भी मनाई गई। स्थानीय म्युनिसिपैलिटी के कार्य के सुधार की ओर भी कुछ सज्जनों का ध्यान गया है और वे संगठितरूप से कुछ काम करना चाहते हैं। पिछले दिनों स्थानीय गर्ल्स स्कूल की हड़ताल के कारण काफ़ी हलचल रही। इधर राजपूताना-मध्यभारत-सभा का फिर जीर्णोद्धार हुआ है। और हाल ही कुछ बात पर रेलवे के हिन्दू-मुसलमान कर्मचारी और मजदूरों में दंगा होगया। इन सब बातों को दूर से देखते हुए भी कोई सहज ही कह सकता है कि अजमेर में जीवन है। यदि कमी है तो संगठन की है। अजमेर में, दुःख की बात है कि, छोटे-बड़े कई दल हैं और वे प्रायः एक-दूसरे से मिल कर काम नहीं करते। कई बार तो परस्पर-विरोध से इनकी शक्ति नष्ट होती रहती है। इसलिए किसी भी कार्यकर्ता के लिए अजमेर में सेवा करना बड़ा कठिन हो जाता है। उस दिन एक भाई से अजमेर के सार्वजनिक जीवन के सम्बन्ध में बहुत बातें हुईं। और भी मित्रों से समय-समय पर बातें हुआ करती हैं। कई मित्र मुझसे इस बात से असंतुष्ट हैं कि मैं अजमेर के सार्वजनिक जीवन में दिलचस्पी नहीं लेता। उनकी शिकायत एक तरह से सच है, परन्तु यह मेरा विश्वास दिन-दिन दृढ़ होता जा रहा है कि अजमेर का सार्वजनिक जीवन तब तक संगठित नहीं हो सकता, जब तक अजमेर कोई पुण्य-श्लोक पुरुष पैदा नहीं करता। जो व्यक्ति आस-पास की क्षुद्रताओं से और मलीनताओं से ऊपर उठ जायगा वही अजमेर की सच्ची सेवा कर सकता है, और यहाँ के बिखरे हुए जल को एकत्र करके उसमें नव-संगठन का जीवन डाल सकता है। यदि अपना-अपना काम करने और दूसरे के काम में बिना भारी कारण उपस्थित किए, केवल व्यक्तिगत कारणों से, बाधा डालने की प्रवृत्ति भी हम बंद कर दें, तो भी बहुत-कुछ सुधार हो सकता है। उस दिन एक मित्र ने मध्यभारत-राजपूताना-सभा के बारे में मुझसे बात-चीत की। इसका उद्देश्य है राजस्थान के देशी राज्यों में काम करना। मैंने पूछा, जब कि राजस्थान-सेवा-संघ एक संस्था ऐसे कामों के लिए हुई है तो फिर उसी उद्देश्य से दूसरी संस्था खड़ी करने की क्या आवश्यकता है? उन्होंने कहा—उनकी नीति और कार्य-प्रणाली हमें देशी राज्यों के लिए हितकर नहीं मालूम होती, इसलिए हम अपनी नीति के अनुसार काम करने के लिए एक संस्था चाहते हैं। मैंने कहा—नीति और कार्य-प्रणाली में तो हमारा भी मतभेद है; परन्तु यदि यह संस्था केवल उनका विरोध करने के लिए खड़ी की जाती हो, तो इससे कोई फल न निकलेगा—यदि कोई ठोस काम करने की और उसके लिए जीने और मरने की तैयारी संस्था वालों ने करली हो, तो यह संस्था कुछ काम कर जायगी। यदि आप अपने कार्य के द्वारा यह दिखा देंगे कि आपकी प्रणाली से अधिक काम हो सकता है तो सेवा-संघ वाले, यदि वे कार्यार्थी पुरुष हैं, अवश्य अपनी नीति और कार्य-प्रणाली पर विचार करेंगे। आगे बातचीत में मित्र ने कहा कि अजमेर के तो जल-वायु में ही ईर्षा-द्वेष बढ़ाने का धर्म है। मैं इतना श्रद्धाहीन तो नहीं हो सकता; पर इतना अवश्य मानता हूँ कि अजमेर की समस्या है विकट। उस दिन एक दूसरे मित्र ने कहा 'भाई, अजमेर में कुछ ज़्यादा काम करना चाहिए, बाहर वाले जब अजमेर के बारे में उलहना देते हैं तो शर्मिन्दा होना पड़ता है।' मैंने कहा—मैं तो सीधी बात कह दिया करता हूँ, मुझमें इतनी योग्यता नहीं कि अजमेर की अभीष्ट सेवा कर सकूँ। उन्होंने कहा—लेकिन मैं क्या कहूँ? मैंने कहा—'हां, सुयोग्य पुरुष ऐसा कैसे कह सकते हैं।' वह हंस पड़े। फिर मैंने कहा—मैंने तो शुरू से यह निश्चय करके अजमेर में पांव रक्खा था कि यहां के स्थानीय मामलों में न पड़ूँगा। अनुभव साबित करता जाता है कि मेरा निर्णय ठीक था। मुझे इस बात का दुःख तो अवश्य है कि जिस नगर में रहता हूँ और जहां प्रायः सब दलों के मित्रों की थोड़ी-बहुत कृपा बनी रहती है, वहां की कुछ भी सेवा मुझसे नहीं हो रही है। परन्तु केवल इच्छा से सेवा नहीं हो सकती। उसके लिए भारी पुण्य भी चाहिए। जिस दिन

अजमेर के भाई यह समझ लेंगे कि आपस का ईर्ष्या-द्वेष अजमेर के सार्वजनिक जीवन को पनपने नहीं देता है तो उस दिन एक मामूली आदमी भी बड़ा साबित होगा।

चित्र-दर्शन

चित्रों के सम्बन्ध में--

'त्याग-भूमि' चित्रों के संबन्ध में भी एक निश्चित सिद्धान्त सामने रखकर कर्त्तव्यक्षेत्र में आई है। उन्हीं सिद्धांतों के अनुकूल चलने का भरसक प्रयत्न किया जा रहा है। इस संबन्ध में जो भावनायें पत्रिका के कार्यकर्ताओं के मन में हैं उनसे अपरिचित होने के कारण पत्रिका के कुछ प्रेमी बन्धु उसमें प्रकाशित चित्रों की आलोचना किया करते हैं। आवश्यक समझ कर आज उन्हींके प्रति ये पंक्तियाँ लिखी जा रही हैं।

हिन्दी-संसार में आजकल जैसे चित्र प्रकाशित हो रहे हैं, उनके अवलोकन से अभ्यस्त हमारे पाठकों के लिए 'त्यागभूमि' का आदर्श निःसंदेह रूखा प्रतीत हुआ होगा। "कौलमत" के प्रेमी महानुभाव तो अपनी रुचि के अनुकूल इस पत्रिका में चित्र देखना चाहेंगे तो उन्हें हतोत्साह ही होना पड़ेगा; परन्तु जो व्यक्ति 'त्यागभूमि' में प्रकाशित चित्रों को कला की दृष्टि से उनका मूल्य आंके बिना केवल साधारण दृष्टि से उन्हें देखकर बुरा ठहरा देते हैं, उनसे हमें इतना ही कहना है कि वह कला नहीं जिससे हमारे अधम विचार जाग रहे हों। कला तो मनुष्य के सात्विक भावों को जगाने और पुष्ट करने के लिए निर्माण की गई भविष्य-द्रष्टा की एक अभिनव सृष्टि है। वह भविष्यद्रष्टा चित्रकार है। चित्रकार और कवि संसार में एक ही उद्देश को लेकर आते हैं, परन्तु उनके साधनमात्र ही भिन्न होते हैं। कवि जिन भावों को वाणी द्वारा व्यक्त करते हैं, चित्रकार उन्हींको अपनी कलाद्वारा प्रकट करते हैं। जो कवि केवल सुन्दर-सुन्दर शब्दों
कर देता है, उसकी अपेक्षा उस कवि की कविता कहीं
हृदयग्राही होती है, जिसमें भाव-सौंदर्य हो। एक
कवि को शब्द-सौष्ठव में जिस प्रकार कष्ट नहीं उठाना
उसी प्रकार एक कुशल चित्रकार को भी रूप-रेखाओं के
करने में कोई कठिनाई प्रतीत नहीं होती। जिस प्रकार
कलाकार है उसी प्रकार चित्रकार भी। जो वास्तविक
कार है वह किसी व्यक्ति-विशेष को चित्र चित्रित नहीं
वह चित्रित करता है भाव-विशेष! चित्र की उन रेखा
रेखाओं से उस भाव-विशेष को पहचान लेना कला
काम है। 'त्यागभूमि' में प्रायः चित्र इसी भावना को
प्रकाशित होते हैं। कुछ चित्र प्राचीन चित्रकला का
देने की दृष्टि से भी प्रकाशित किये जायं तो अनुचित

परन्तु लोग कला की आत्मा का ठीक-ठीक तरह से
त्कार कर सकें, इसलिए यह आवश्यक है कि उनके
इस विषय का साहित्य भी रक्खा जाय। हम अपने
विद मित्रों से इस सम्बन्ध में कुछ लेख लिखाने की
कर रहे हैं। उस कला-सम्बन्धी साहित्य के पढ़ लेने
पाठक, हमें आशा है, उन कलाकृतियों से अधिक
ज्ञान और आनन्द लाभ कर सकेंगे। हम "त्यागभूमि
प्रेमी पाठकों में से कला का साक्षात्कार कर चुके
सज्जनों से भी अनुरोध करते हैं कि वे 'त्यागभूमि' द्वारा
के जन्म और कार्य्य को समझाने वाले साहित्य को
सामने अवश्य रक्खें।

चित्र-सं

पार्श्व-भूमिका

कितने ही लोगों का खयाल है कि चित्र और काव्य में ऐसे-ऐसे ऊँचे भाव होने चाहिएँ कि दिल फड़क उठे। पर न ऊँचे-ऊँचे भावों के मानी क्या हैं? यह कि भव्य भवन हो, सुनहरा रत्नजटित सिंहासन हो, चमकीला मुकुट हो, दरबार लगा हुआ हो। दरबार के कोने-कोने से राजसी ठाट-ाट और शान का दृश्य दिख रहा हो। ऐसा चित्र हो। कोई कहता है, "देखो इस पत्रिका का मुख-पृष्ठ कैसा है? मानों ुष्यन्त या उसका कोई समानधर्म भाई अपनी भावी प्रिय-मा से कह रहा है—अरी भीरु, जिससे ठुकराये जाने का तुझे य है वही तेरी प्राप्ति के लिए कैसा अधीर हो रहा है। ज़रा ख तो।

अयं सते तिष्ठति संगमोत्सुको।
विशंकसे भीरु यतोवधीरणाम् ॥"

यह जीवन-रस है। यह रस-राज है। और संसार का मेरु-दण्ड है। इसीकी कील पर संसार-चक्र घूम रहा है। पादकों और चित्रकारो, इसी रस-राज की गुण गाथा गाओ। सरा दल अभी तैयार हुआ है। वह कहता है, बस त्र केवल वीर-रस-प्रधान हों। बढ़िया घोड़ा, पानीदार लवार और ऐसा बांका वीर हो कि उसे देखते ही भुजा ड़क उठें, तलवार म्यान के भीतर खनखना उठे। राज-वार और प्रणयी जनों के चित्र किसी काम के नहीं होते। न्हें फेंक दो, जला दो। महाराणा प्रताप, छत्रपति, शिवाजी, गोविंदसिंह, प्रह्लाद, ध्रुव, पद्मिनी जैसे चित्र हों।

यह दल उन दोनों की अपेक्षा कहीं अधिक समझदार। एक में बालमनोवृत्ति है। वह राजा-रानी के जीवन में अद्भुतता देखता है। दूसरा भगवान् (?) कामदेव का क है। सारे संसार को नर-नारी-मय देखता है। और सरे के चित्त में अपनी जातीयता और राष्ट्रीयता के भाव गरि हैं। यह हमारे पुण्योदय का चिन्ह है, जो हमें राष्ट्र यह शुभ भाव देखने को आज मिल रहा है।

पर मैं देखता हूँ इस भावना को भी परिपक्व होने की त है। जीवन को युद्ध की उपमा दी जा सकती है, न्तु समग्र जीवन युद्धमय (शब्दशः) नहीं कहा जा कता। वह तो एक असाधारण अवस्था है। जबतक सारा जीवन सुव्यवस्थित नहीं हो जाता केवल भावावेश से किसी युद्ध में विजय नहीं मिल सकती। इसलिए समाज के प्रत्येक अंग को सुव्यवस्थित करने वाले चित्रों का देना भी परम आवश्यक है। उस वीर का जीवन भी दुःखद होगा जिसकी गृहिणी सुगृहिणी न हो, जिसका भाई भरत सा न हो और जिसका पिता कबीर अथवा गुरु गोविन्द सा न हो। पारिवारिक और सामाजिक जीवन की यह पार्श्व भूमिका जितनी अच्छी होती है उतना चित्र खिल उठता है।

सती पार्वती

आज हम ऐसे ही दो चित्र पाठकों की भेंट करते हैं। भारत अबतक महालक्ष्मी, महासरस्वती और महाकाली के रूप में शक्ति की पूजा करता आया है। पर आज महाकाली ने उसके लिए दूसरा ही परिष्कृत अवतार धारण किया है। वह काली शंकर को ठुकराकर अपनी रक्त-पिपासा शमन करती थी। यह सिंहवाहिनी अम्बा शंकर की सेवा करने के लिए त्रिशूल लेकर निकल पड़ी है। अहा! यह मातृमूर्ति कितनी मनोहर है!

मसज़िद में

और उसी भाल-चंद्र की उपासना के लिए यह बूढ़ा लकड़ी लिये मसज़िद को जा रहा है। उसकी दाढ़ी में अनुभव की शिष्टता है और पीठ पर वृद्धावस्था का बोझ। मानों ये दोनों उसे दानापन दे रहे हैं। मसज़िद एकान्त में किसी क़िले की दीवाल के सहारे बनी हुई मालूम होती है। उसकी निर्जनता शान्ति-प्रिय बूढ़े का मानों स्वागत कर रही है। नमाज और प्रार्थना निष्प्राण जीवन में पुनः आशा और बल का संचार कर देती है और इस विश्व को रहने योग्य बना देती है। इसीलिए तो यह वृद्धों का सहारा है। यदि मनुष्य युवावस्था से ही इस संजीवनी का सच्चे हृदय से पान करने लग जाय तो यह संसार कितना सुखमय हो? धार्मिकता का आडम्बर छोड़कर कब हम इस बूढ़े की तरह सच्चे भक्तिभाव से प्रार्थना करना और नमाज पढ़ने की कला सीखेंगे?

वै० म०

लेखक लोग ध्यान से पढ़ें।

पांच-पांच सौ रुपियों के दो पुरस्कार

१—*महाराणा प्रताप का जीवनचरित्र*

२—*ग्राम-संगठन*

पहला पुरस्कार उन सज्जन को दिया जायगा जो हमारे पास महाराणा प्रताप का खोजपूर्ण, स्फूर्ति जनक, और प्रामाण्य जीवनचरित्र लिखकर भेजेंगे। पुरस्कार उसी निबन्ध पर दिया जायगा जो हमारे पास आने वाले निबन्धों में ऐतिहासिक और साहित्यिक दृष्टि से सर्व श्रेष्ठ होगा।

दूसरा पुरस्कार उन सज्जन को दिया जायगा जो "भारत में ग्राम-संगठन" पर सर्वोत्कृष्ट निबन्ध लिख कर भेजेंगे। भारत की प्राचीन ग्राम संगठन की प्रथा एवं संसार के भिन्न भिन्न देशों में प्रचलित ग्राम संगठन की रीतियों का अध्ययन करके ऐसी विधि को जनता के सामने रखना जो भारत की वर्तमान अवस्था को देखते हुए सब से अधिक लाभदायक हो। वह भारत का ही हो या किसी अन्य देश की हो या अनेकों विधियों का समन्वय हो। ग्राम संस्था के भिन्न-भिन्न अंगों एवं ग्रामों के पारस्परिक सम्बन्ध पर भी विचार होना जरूरी है। प्रत्येक निबन्ध की पृष्ठ-संख्या ४०० हो।

निबन्धों के परीक्षकों के नाम बाद में सूचित किये जावेंगे। निबन्ध इस वर्ष के अन्त तक मण्डल में इस पते पर पहुँच जाने चाहिए।

सम्पादक—सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर.

प्रोत्साहन

(५)

श्री मावलीप्रसाद श्रीवास्तव, रायपुर

"त्यागभूमि" प्रकाशित कर आपने हिंदी-संसार को नम्रता के साथ, परन्तु दृढ़ता-पूर्वक, एक नया पदार्थ-पाठ दिया है; अपने संपादक-बन्धुओं को सुरुचि और साहित्यिक प्रतिष्ठा का, नवयुवक लेखकों को त्याग, सादगी, पवित्र सौंदर्य-प्रेम, वीरता-पूर्ण भावुकता और व्यावहारिक आदर्शवाद के द्वारा मातृ-पूजा करने का, और जिन सज्जनों की मातृभाषा हिन्दी नहीं है उन्हें हिन्दी की सरलता, योग्यता तथा सर्वाङ्ग-सुंदरता पर एक बार फिर विश्वास रखने

साहित्य और व्यवसाय का जिस अंश संबन्ध है, उस अंश तक, मेरा विश्वास है कि मेर का सस्ता-साहित्य-मंडल "त्यागभूमि" को कर व्यावसायिक हिन्दी-संसार की वर्त्तमान के विरुद्ध सत्याग्रह कर रहा है।

पत्रिका उच्चकोटि की और सर्वथा अपनाने है। ऐसी उत्तम पत्रिका प्रकाशित करने के आपको बधाई है।

श्री वियोगी हरि, पन्ना

"त्यागभूमि" की समता किस पत्र-पत्रिका करूँ ? 'त्यागभूमि' त्यागभूमि ही है। 'प्रभा' के आज कहीं ऐसी विशुद्ध राष्ट्रीय पत्रिका का हुआ है। संपादन की दृष्टि से तो सचमुच 'त्याग भूमि' अद्वितीय है। इसके आदर्शों पर क्या बड़े ही खरे, ऊँचे और दिव्य हैं। वीर और करुण के साहित्य को आपकी पत्रिका उत्तेजन देगी, संदेह नहीं। राहतजी के गद्य-काव्य के टुकड़े तो अन्तस्थल को बेध डालते हैं। 'त्यागभूमि' की हृदय से उत्तरोत्तर उन्नति चाहता हूँ।

श्री एन.सी. मेहता, आई.सी. एस., कलक्टर, आज

पत्रिका बड़ी सुसंपादित है। इसके लिए अन्तःकरण से आपको धन्यवाद देता हूँ। हिन्दी जो मासिकपत्र सबसे सुसम्पादित हैं, मेरी राय 'त्यागभूमि' उन सब से बढ़ कर नहीं तो उनमें एक अवश्य है। इसके प्रत्येक अंक में आधु भारत के मस्तिष्कों में हलचल मचाने वाले भि भिन्न विषयों के सुन्दर लेखों की अच्छी विवि रहती है।

स्वामी चिदात्मानन्द, देहरादून

'त्यागभूमि' की प्रति मिली। देखकर आ हुआ। ऐसी उच्च कोटि की पत्रिका आप केवल में ही ग्राहकों को देते हैं! आशा करता हूँ कि हिन्दी के प्रेमी आदर से अपनायेंगे।

'सस्ती-साहित्य-माला' के दूसरे वर्ष में प्रकाशित ग्रन्थ

(१) तामिल-वेद अथवा त्रिक्कुरल

अनुवादक—श्रीक्षेमानन्द राहत; भूमिका-लेखक—श्रीचक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

दक्षिण के अछूत ऋषि महात्मा तिरुवल्लुवर के इन अमृतमय उपदेशों का तामिल देश में वेदों के समान आदर है। "त्रिकुरल एक गद्यकाव्य है। यह विवेक, शुभ संस्कार और मानव प्रकृति के व्यावहारिक ज्ञान की खान है। कला की दृष्टि से संसार के साहित्य में इसका स्थान ऊंचा है।" (भूमिका से) संसार की प्राय: सभी भाषाओं में इसका अनुवाद हो गया है। पृष्ठ २४८ मू. ||=)

(२) स्त्री और पुरुष

लेखक महात्मा टॉलस्टॉय

भोग विलास को जीवन का सुख मानकर उसके स्वर्गीय रस के स्वप्न देखने वाले भाई बहनों के लिए यह ग्रन्थ सुन्दर ज्ञानांजन है। विकारों के गुलाम बने हुए भाई बहनों को यह ग्रन्थ उनके उद्धार का शुभ सन्देश सुनावेगा और विषय-विकार से मुक्त होने की इच्छा रखने वाले मुमुक्षु भाइयों के लिये यह सच्चे साथी का काम देगा। स्त्री पुरुषों के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में महात्मा टॉलस्टाय के दिव्य विचार सचमुच क्रान्ति कर देने वाले हैं। प्रत्येक गृहस्थ को यह ग्रन्थ पढ़कर जरूर लाभ उठाना चाहिए। पृष्ठ संख्या ६० मूल्य केवल |=)

(३) हाथ की कताई-बुनाई

अनुवादक—श्रीयुत रामदासजी गौड़ एम० ए०

यह उस निबन्ध का भाषान्तर है, जिस पर कि मूल-लेखकों को महात्मा गांधी जी ने १०००) नाम दिया है। इसमें वेद-काल से लेकर आज तक के समय का हाथ से कातने और बुनने का तिहास, उसकी उन्नति तथा अंग्रेज़ी काल में कैसे-कैसे भीषण अत्याचारों से उस पर कुठाराघात हुआ आदि बातें खूब विस्तार से समझाई गई हैं। अब उसकी उन्नति कैसे हो सकती है, मिल के कपड़ों के ामने खद्दर का व्यवसाय कैसे टिक सकता है और उसकी उन्नति कैसे हो सकती है, कातने और बुनने के काम से कुटुम्ब-निर्वाह कैसे हो सकता है आदि प्राय: सभी बातों की व्यावहारिक रूप से विवेचना की ई है। पृष्ठ संख्या २६७ मूल्य ||=)

(४) चीन की आवाज़

एक सहृदय अंग्रेज़ के शब्दों में पूर्वी और पश्चिमी सभ्यता क यह सुन्दर तुलना बड़ी ही प्रभावो-पादक है। इंग्लैण्ड क साम्राज्य लोलुपता, तथा ईसाई धर्म के प्रचार-रहस्य, आदि पर लेखक की टीकायें ढ़ने लायक हैं। चन के स्वातंत्र्य-युद्ध को समझने की इच्छा रखने वालों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी हिये। पृष्ठ संख्या १३० मूल्य |–)

पता—सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर

(पीछे देखिए)

(५) हमारे ज़माने की गुलामी (महात्मा टाल्स्टाय)

संसार की साम्राज्यलोलुप सरकारों का यथार्थ स्वरूप इसे पढ़ कर जानिए। पृष्ठ १००, मूल

(६) भारत के स्त्री-रत्न (दूसरा भाग) पृष्ठ ३३० मूल्य ।।।-)

(७) द० आफ्रिका का सत्याग्रह (दूसरा भाग) पृष्ठ २२८ मूल्य

(८) जीवन-साहित्य (दूसरा भाग) पृष्ठ २०० मूल्य ।।)

इन तीनें पुस्तकों के प्रथम भाग प्रथम वर्ष में निकल चुके हैं। जिनका मूल्य क्रमशः १), ।।।) और ।।) है।

इस प्रकार उपरोक्त ८ पुस्तकें १६६६ पृष्ठों की दूसरे वर्ष में निकली हैं। तीस वर्ष के ग्राहक बनने से दूसरे वर्ष की और पहिले वर्ष की सब पुस्तकें लागत मू में (पोनी कीमत में) मिलेंगी।

सस्ती-प्रकीर्ण-माला के दूसरे वर्ष के प्रकाशित ग्रंथ

(१) (२) यूरोप का सम्पूर्ण इतिहास (दूसरा व तीसरा भाग

लेखक—श्री रामकिशोर शर्म्मा, बी० ए०, विशारद

इसका पहला भाग प्रकीर्ण माला के प्रथम वर्ष में प्रकाशित हुआ था। पृष्ठ ३६६ और मूल्य ।।/ जो सज्जन इन दोनों भागों को मंगावें वे प्रथम भाग को भी जरूर मंगा लें नहीं तो ग्रंथ अधूरा रहे

इस ग्रंथ में शुरू से लेकर सन् २६ तक का समस्त यूरोप का इतिहास है। यूरोप का इतिह स्वाधीनता का इतिहास है। जागृत जातियों की प्रगति का इतिहास है और पश्चिमी सभ्यता के विकास पाठक्रम है। यदि भारत के युवक स्वराज्य चाहते हैं तो वे इस विविध घटना और परम उपयोगी शिक्षा से भरे यूरोप के इतिहास को अवश्य पढ़ लें। पृष्ठ-संख्या दोनों भागों की ४६७; मूल्य केवल १॥)

(३) ब्रह्मचर्य-विज्ञान

लेखक—पं० जगन्नारायणदेव शर्मा 'साहित्य-शास्त्री'

भूमिका लेखक—पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे, सम्पादक "श्री कृष्णसंदेश"

"इसमें लेखक ने ब्रह्मचर्य की महिमा और विधि के विषय में बहुत अच्छा संग्रह किया है जो स साधारण तथा विद्यार्थी युवकों के लिए बहुत ही उपकारक होगा। प्राचीन ग्रन्थों से जो अवतरण दिये हैं बहुत ही स्फूर्तिदायक और समय पर काम देने वाले हैं। इसमें सभी विचारणीय विषयों का समावेश जिससे पुस्तकसबके लिए बड़े काम की हुई है। ऐसी पुस्तकों का देश में जितना प्रचार हो, उतना अच्छा पृष्ठ-संख्या ३७४, मूल्य केवल ।।।-) हरएक गृहस्थ को एक प्रति अपने पास रखनी चाहिए।

(४) अनोखा उपन्यास पृष्ठ ४७४ मूल्य १।=) (५) गोरों का प्रभु

(पृष्ठ २७४) मूल्य ।।।=) इस प्रकार इस दूसरे वर्ष में पाँच पुस्तकें १५८७ पृष्ठों की निकली हैं। ती वर्ष के ग्राहक होने से पिछले दोनों वर्षों की पुस्तकें लागत मूल्य (पौने मूल्य) में मिलेंगी।

६) भेजकर दोनों मालाओं के वार्षिक ग्राहक बन जाइये

सस्ती, उत्तम, नई पुस्तकें

(१) **तिलक-चरित्र** (ले० श्री केलकर महोदय) मूल्य ४) (इससे बढ़ कर प्रामाणिक लोकमान्य का जीवन-चरित्र नहीं लिखा जा सकता)।

(२) **आरोग्य-मन्दिर** (संकलनकर्ता—प्रवासीलाल वर्म्मा) मूल्य २) स्वास्थ्य विषय पर यह बड़ी ही उत्तम पुस्तक है। पूज्य मालवीयजी ने आशीर्वाद दिया है कि 'यह पुस्तक खूब बिकेगी'। मूल्य २)

(३) **हिन्दी रेलवे टाइमटेबल** (नक्शे सहित) मूल्य ।।) इसमें सारे भारतवर्ष की रेलों का आने जाने का समय, किराया आदि दिया हुआ है। अंग्रेजी में इसी तरह के टाइमटेबुल का मूल्य १।।) है। वर्तमान समय की यह तीसरी संख्या है।

(४) **श्रीवाल्मीकीय रामायण** (मूल संस्कृत हिन्दी अनुवाद सहित) अनुवादक—साहित्याचार्य पं० चन्द्रशेखर शास्त्री,—

(१) **बालकाण्ड** [पृष्ठ ३८४] मू० ।।।), (२) **अयोध्याकाण्ड** [पृष्ठ ७६८] मू० १।।), (३) **अरण्यकाण्ड** [पृष्ठ ४१६] मू० ।।।-)

गीताप्रेस की सस्ती प्रामाणिक गीताएं

(१) **गीता** (सटीक) गुटका साइज पृष्ठ ३५६ सचित्र मूल्य =)।।

(२) **गीता** (मोटा टाइप) पृष्ठ ५६५ साइज़ बहुत बड़ा, अन्वय, शब्दार्थ टीका सहित सजिल्द, सचित्र मूल्य १।)

(३) **गीता भाषा** (मोटा टाइप) मूल्य ।)

(४) **गीता विष्णु सहस्रनाम** मूल्य =)

(५) **स्त्रीधर्म प्रश्नोत्तरी** मूल्य =)

प्रचारकों की आवश्यकता

जो भाई कमीशन पर काम करना चाहें, वे हमसे पत्रव्यवहार करें, त्यागभूमि व मण्डल के प्रचार कार्य्य में कमीशन का तो लाभ है ही, साथ ही साहित्य-सेवा का भी सुअवसर प्राप्त होता है।

पता—सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर

नीचे लिखे ग्रन्थ प्रकाशित हो गये हैं

पुस्तकों का विषय उनकी पृष्ठ संख्या और मूल्य पर विचार कीजिए

अन्य प्रकाशक प्रायः १०० पृष्ठों की पुस्तक के लगभग ॥) या ॥=) मूल्य रखते हैं

पर मंडल इतने ही पृष्ठों का मूल्य केवल ।) रखता है

म० गांधीजी की आत्म-कथा पृष्ठ ४१६ का मूल्य तो केवल ॥=) रखा गया है

(१) भारत के स्त्री-रत्न (दूसरा भाग) पृष्ठ ३३० मूल्य ॥-)

प्रथम भाग पृष्ठ ४१० मूल्य १) पहले छप चुका है। दोनों भागों में प्राचीन भा रत की पतिव्रता, वीर, विदुषी भक्त कोई ६० स्त्रियों की जीवनी है।

(२) द० आफ्रिका का सत्याग्रह (उत्तरार्ध-दूसरा भा पृष्ठ २२८ मूल्य

प्रथम भाग (पूर्वार्द्ध) पृष्ठ २७२ मूल्य ॥।) पहले छप चुका है। लेखक हैं म० गांधी।

(३) जीवन-साहित्य (दूसरा भाग) पृष्ठ संख्या २०० मूल्य

आचार्य कालेलकर के लेखों का यह संग्रह है। प्र० भाग पृष्ठ २१८ मूल्य ॥) भी छप चुका

(४) गोरों का प्रभुत्व (रामचन्द्र वर्मा) पृष्ठ २७४ मूल्य ॥

(५) अनोखा (विक्टरह्यूगो का क्रांतिकारी उपन्यास) पृष्ठ ४७४ मूल्य १

(६) आत्म-कथा (ले० महात्मा गांधी) पृष्ठ ४१६ मूल्य केवल ॥

इसका लागत मूल्य ॥ऽ) है। पर प्रचार के लिए मूल्य लागत से भी कम ॥=) रखा है

(७) सामाजिक कुरीतियां (टाल्स्टाय) पृष्ठ २८० मूल्य ॥

नोट—(१) प्रथम तीन पुस्तकें सस्ती-साहित्य-माला (अब इसका नाम राष्ट्र-निर्माण माला र है) के दूसरे वर्ष की शेष पुस्तकें हैं और चौथी और पांचवीं पुस्तक सस्ती-प्रकीर्ण के दूसरे वर्ष (अब इसका नाम राष्ट्र-जागृति-माला रक्खा है) की शेष पुस्तकें हैं

(२) छठी पुस्तक आत्म-कथा राष्ट्र-निर्माण माला की तृतीय वर्ष की पहली पुस्तक है सातवीं पुस्तक राष्ट्र-जागृति-माला के तृतीय वर्ष की पहली पुस्तक है।

(३) वार्षिक ग्राहकों को ये पुस्तकें पौनी कीमत में पड़ेंगी। ग्राहक बनने के नियम अन्दर

पता—सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर

मुद्रक और प्रकाशक—जीतमल लूणिया, सस्ता-साहित्य प्रेस, अजमेर

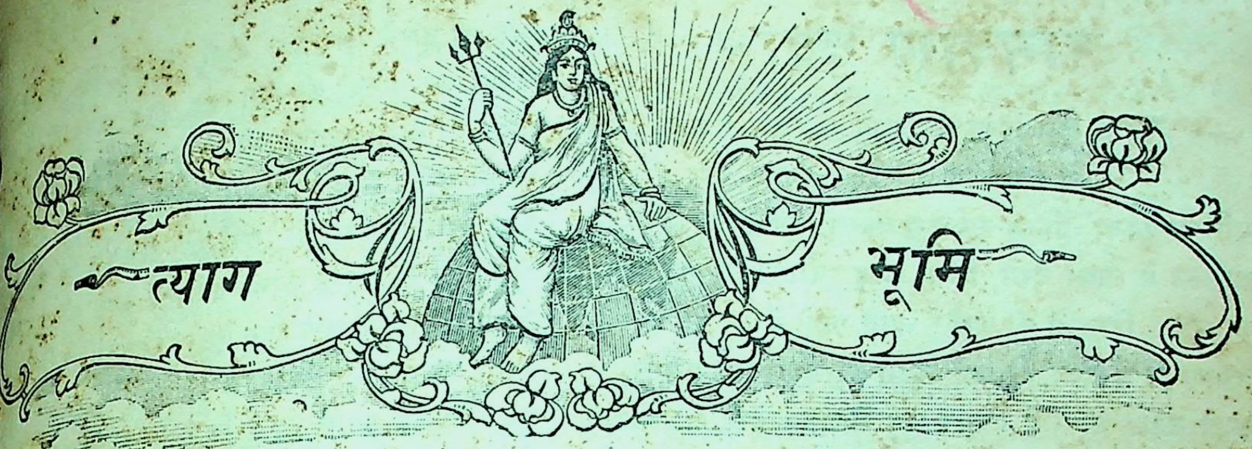

(जीवन, जागृति, बल और बलिदान की पत्रिका)

आत्म-समर्पण होत जहँ, जहँ विशुभ्र बलिदान ।
मर मिटबे की साध जहँ, तहँ हैं श्रीभगवान् ॥

वर्ष १
खण्ड २

सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर।
श्रावण संवत् १९८५

अंश ४
पूर्ण अंश १०

अधर में

अरे यह राग भरा वैराग !
त्याग त्याग क्या करता है तू, गर्व त्याग का त्याग ।
वैरी से क्या डरता, वह तो, है हित-साधन मीत ।
बचता है तो अपने ही से, जान छुड़ा कर भाग ।
त्यागी वीर समझ कर निज को, हाय, रहा है फूल ।
किन्तु उधर लिप्सायें मन में खेल रही हैं फाग ।
डूबे, ऐ नौसिखिए नाविक, कहीं न तू मझधार ।
निद्रा का भय नहीं, मगर इस अध-जागृति से जाग ।
सम्भव है हाँ, बनते-बनते, बन जाये यह पाक ।
मनःपात्र में किन्तु अभी तो उफन रहे हैं झाग ।

क्षेमानन्द 'राहत'

रामबाण दवा

उस दिन हिन्दू महासभा के एक प्रसिद्ध नेता ने एक मित्र से कहा—"आप क्या 'हिन्दू-मुस्लिम-एकता'-'हिन्दू-मुस्लिम-एकता' रटते हैं ? ज़रा आसाम में जाकर देखो, किस तरह बंगाल से मुसलमान जा-जाकर हिन्दुओं की ज़मीनें अपने कब्ज़े में कर रहे हैं; और बंगाल ही में देखो, कितनी स्त्रियाँ हर माह गुण्डे मुसलमानों द्वारा उड़ाई जाती हैं। आप खुद चल कर देखें, तो आपकी आँखें खुल जायँ—आप तो घर में बैठे-बैठे विचार करते और आसमान में उड़ते रहते हैं। मैं स्वराज्य और राष्ट्रीयता का विरोधी नहीं; पर जहाँ हिन्दुओं पर ऐसा ज़ोरोज़ुल्म किया जाता हो, और मुसलमान अपनी अनुचित माँगों पर भी इतना ज़ोर देते हों, तहाँ मैं इतना ही चाहता हूँ कि हम उनसे दब कर उनकी बातों को न मानें। ...." ये बातें उन मृदुल-हृदय मित्र के शुद्ध अंतःकरण में तीर सी जाकर चुभ गईं। नेता महाशय के चले जाने के बाद उन्होंने विकल होकर कहा—"मैं मुसलमानों की और सब बातों को दरगुज़र कर सकता हूँ; पर स्त्रियों को उड़ाने की इस बात पर तो मेरा ख़ून उबल उठता है! कहिए, आप इसका इलाज क्या बताते हैं ? देश में इस समय तीन दल हैं—असहयोगी, स्वराजी और हिन्दू-सभावादी। असहयोगी तो इसमें हिन्दुओं का ही दोष बता कर चुप रह जाते हैं; स्वराजी भी इसपर ध्यान नहीं देते; सिर्फ़ हिन्दू-सभा वालों ने इसका उपाय निकाला है। वह चाहे कुछ अंश में सदोष हो; पर पहले दोनों दल के लोग हिन्दू-सभा वालों को कोसने के अलावा इस बुराई का कोई निर्दोष उपाय भी तो नहीं बताते! आप ही कहिए, ऐसी दशा में हम हिन्दू-सभा वालों का साथ न दें तो क्या करें ?"

मैंने कहा—"हाँ, इस स्त्रियों को उड़ाने की बात से तो मेरा भी दिल दहल उठता है। पर मैं भी इसमें दोष तो हमारा—हिन्दुओं का ही मानता हूँ। बंगाल में मैं देख रहा हूँ कि स्त्रियों और लड़कियों की पर्वाह बहुत कम की जाती है। उनके साथ इस तरह का बर्ताव होते देख कर बंगालियों के हृदय को चोट नहीं पहुँचती। इसलिए सबसे पहली बात तो इसके लिए यह होनी चाहिए कि बंगालि अपनी बहू-बेटियों की रक्षा का भाव प्रबल हो-
प्राणों की बाज़ी लगाकर भी उनकी रक्षा को सर्वोपरि
मानने लगें। यदि केवल मर मिटने का रास्ता इन्हें
बहुत मुश्किल हो, तो गुंडों को ठोंक-पीट कर भी
स्त्रियों की रक्षा उन्हें करनी चाहिए। कायर की तरह
बैठ कर चुपचाप आये दिन ऐसी दुर्घटनाओं का शिका
रहना सर्वथा लज्जास्पद है।

"दूसरा उपाय यह है कि ऐसा स्वयंसेवक-दल
जाय, जो स्त्रियों को गुण्डों के हाथों से बचावे और
संस्थायें खड़ी की जायँ, जहाँ उन स्त्रियों के खान-पान
रक्षा-शिक्षा का, उद्योग-धंधे सिखाने का समुचित प्रबंध
अक्सर विधवायें ही ऐसे अत्याचारों का शिकार होते
जाती हैं। इसलिए

"तीसरा उपाय यह होना चाहिए कि विधवा
विवाह को प्रोत्साहन दिया जाय। घर में हम विधवा
साथ अच्छा सलूक करें, उन्हें तप और त्याग की देवी
उनकी ज़रूरतों का पूरा ध्यान रक्खें।

"और सबसे रामबाण दवा तो मेरी राय में
यह है कि हिन्दू-मुसलमानों के साथ ब्याह-शादी
शुरू कर दें। आज यह बात बेतुकी और 'अ-धार्मिक
ही मानी जाय; पर यही इसका कारगर इलाज है।
तो यह है कि हम अभी 'हिन्दू' और 'मुसलमान' की
सोचते हैं—हिंदुस्थानी की भाषा में नहीं—इसीसे जब
हिंदू-स्त्रियों पर बलात्कार करता है तब हमारे दिल को
चोट नहीं पहुँचती, जितनी मुसलमानों के अत्याचार से
है। वास्तव में देखा जाय तो पड़ौसी दुष्ट से घर का दुष्ट
अधिक ख़तरनाक होता है; पर अपने धर्म, जाति
संस्कृति की संकुचित व्याख्या करके हम अपने
आपत्तियाँ मोल ले लेते हैं। मुझे तो यह स्पष्ट दीख
कि अब दुनिया में धर्म, जाति और संस्कृति की ये
दीवारें क़ायम नहीं रह सकतीं; ये टूटेंगी, और दुनि
भिन्न-भिन्न जातियों के सम्पर्क और मिश्रण से नई
जाति और विश्व-संस्कृति बनेगी। अतएव यदि
मुसलमानों, पारसियों, ईसाइयों आदि में परस्पर

ही होने लगें, तो यह संख्या-वृद्धि का जोश अपने र ठण्डा पड़ जायगा और उसके निमित्त होने वाले ये त्याचार और आन्दोलन भी ढीले पड़ जावेंगे।"

इसपर मित्र महोदय ने कहा—"हाँ, यह बात तो ठीक लूम होती है; पर अभी मेरा दिल यहाँ तक तैयार नहीं ता। बात यह है कि मुसलमानों की संस्कृति में जब तक की सुधार न हो तब तक उनके दूषित रक्त का प्रवेश न्दुओं में न होना वाञ्छनीय है।"

मैंने कहा—"अव्वल तो मनुष्य-जाति के इतिहास में ब तक ऐसे मिश्रणों से ही जातियाँ बनती चली आई हैं र आज का हिन्दू-समाज न जाने कितनी विदेशी जातियों मिश्रण का परिणाम है, और दूसरे मुसलमानों में कौनसी सी बात है, जो हिन्दुओं के किसी न किसी समूह में नहीं ई जाती? मांसाहारी तो प्रायः ¾ हिन्दू-जातियाँ हैं, शराब न्दुओं की अपेक्षा मुसलमान कम ही पीते हैं। विलासिता जपूतों में क्या कम है? हाँ, एक बात है, मुसलमानों का -मांस खाना मुझे भी बड़ा असह्य मालूम होता है और रे उनकी आदतें गन्दी होती हैं। पर गो-मांस तो अंग्रेज़ से ज़्यादा खाते हैं, और गंदगी हिन्दुओं की कई जातियों में म नहीं रहती है। फिर भी इसे मिटाने के लिए हम उद्योग र सकते हैं। जैसे अछूतों के सुधार को हम अपना कर्तव्य मझते हैं, इसी तरह पड़ौसी के नाते, अथवा अपने हित र लाभ के ही ख़याल से, हम मुस्लिम संस्कृति के रिष्कार के काम को अपने हाथ में लें। इससे हिन्दू जाति र सारे देश, दोनों को लाभ होगा।"

विश्व की गति और धर्म का रहस्य न समझने के रण आज तक हमने अपनेको हिन्दू मुसलमान आदि ओं में बाँट रक्खा है और रोटी के टुकड़ों के लिए हम कुत्ते-ल्ली की तरह आपस में लड़ कर, एक दूसरे की बुराई के, दोनों की हानि कर रहे हैं और अपनी गुलामी की ीर को दिन-दिन मज़बूत करते जा रहे हैं। हिन्दू महा-भा के काम को यदि इस दृष्टि से देखें तो हठात् कहना ता है कि उसकी और मुस्लिम लीग की कार्रवाइयों से की गुलामी की उम्र अधिक ही बढ़ी है, कम ज़रा भी नहीं । पर जब हम अपने को हिन्दू और मुस्लिम जाति में बाँट कर विचार करते हैं, तो कहना पड़ता है कि हिन्दू-सभा के आन्दोलन से हिन्दुओं की आन्तरिक संकीर्णता को गहरी ठेस पहुँचती है। अब भी यदि हिन्दू महासभा विधवा-विवाह, अनाथरक्षा, अस्पृश्यता-निवारण, मन्दिरों, मठों और महन्तों के सुधार पर कमर कस ले, तो हिन्दू-जाति की बड़ी सेवा उसके हाथ से हो।

मैं जानता हूँ, कई हिन्दू-भाई इन विचारों को अभी पसंद न करेंगे। पर मैं कहता हूँ कि आगे चल कर उन्हें ये बातें माननी और करनी पड़ेंगी। आशा है, विचारशील पाठक इन पर तटस्थ भाव से विचार करेंगे। जिन्हें इन विचारों पर आपत्ति हो वे, यदि आवश्यक समझें तो, मुझे लिख सकते हैं, मैं यथामति उनका समाधान करने की चेष्टा करूँगा।

हरिभाऊ उपाध्याय

अद्भुत झन्कार

(१)

भर दो ऐसी शक्ति प्रभो! तुम,
माँ का कर पावें कल्यान!
दर्प भंग कर रिपु-दल का हम,
रख पावें सञ्चित अभिमान!!

(२)

द्वेष-भाव ईर्ष्या को तज कर,
मिल जावें कर शुभ सन्मान।
फहरा कर यह विजय-पताका,
हिल-मिल गावें सुखमय गान!!

(३)

झनक उठे हों उस क्षण प्रभुवर,
माता के हृत-तन्त्री तार!
स्वतन्त्रता के मद में माती,
आती हो अद्भुत झन्कार!!

बांकेबिहारीलाल भटनागर "कृष्ण"

देश-भक्ति पाप !

(१)

१९०७ के नवम्बर में मैं ब्रह्मा से वापस आया। १९०८ के शुरू में मैंने क़हत में इमदाद देने का काम शुरू किया और क़रीबन एक लाख रुपया जमा करके युक्तप्रान्त और राजपूताने में बाँटा। सितम्बर १९०८ में मैं इंग्लिस्तान रवाना हुआ। जब मैं वहां पहुँचा, उस समय (प्रसिद्ध भारतीय क्रांतिकारी) श्यामजी कृष्ण वर्मा का इंडिया हाउस ख़ूब रौनक़ पर था। और हिन्दुस्थान के बहुत से इनक़लाबपसन्द (क्रान्तिकारी) वहां रहते थे। बैरिस्टर सावरकर भी वहीं रहते थे। यह वहाँ रहने वाले हिन्दुस्थानी विद्यार्थियों के नेता थे। जब मैं स्टेशन पर पहुँचा, तो सावरकरजी बहुत से हिन्दुस्थानियों को लेकर मेरे स्वागत को आये और स्टेशन पर बड़ी धूम-धाम से मेरा स्वागत किया। मेरा लड़का प्यारेकृष्ण उस वक़्त विलायत में था, वह मुझसे एक महीने पहले वहाँ पहुँच गया था। उसने मेरे ठहरने के लिए कमरे का इन्तज़ाम किया हुआ था; मगर सावरकरजी मुझे सीधा 'इंडिया हाउस' ले गये। वहाँ बहुत से हिन्दुस्थानियों ने मिल कर खाना खाया और कुछ तक़रीरें आदि भी कीं। रात को मैं वहाँ से अपने ठहरने के स्थान पर चला आया। कुछ दिनों मैं उस मकान में रहा, जो मेरे लड़के ने मेरे लिए तजवीज किया था। उसके बाद हम पिता-पुत्र हैमस्टड में एक मकान लेकर रहने लगे। जिन दिनों मैं वहाँ रहता था, मैंने ग़ौर किया कि, एक यूरोपियन हर वक़्त मेरे पीछे रहता था। मैंने उसे कई बार पीछा करते हुए देखा। एक रोज मैं हजामत कराने के लिए एक 'सैलून' में दाख़िल हुआ, वह यूरोपियन मेरे पीछे था। वह दूकान के बाहर बैठ गया। जब मैं हजामत करा कर निकला, तो वह फिर मेरे हो लिया। इसी तरह मैं कई रोज़ उसे अपना करते देखता रहा। एक रोज़ मुझे अपने हिन्दुस्थानी मित्र से, जो लण्डन के अस्पताल में रहते थे, मिलने के लिए जाना जब मैं वहाँ जा रहा था, मैंने देखा कि, मेरे वही यूरोपियन जासूस था। मैंने अस्पताल में कर अपने मित्र को यह कहानी सुनाई और, मामले की जाँच-पड़ताल करने के लिए, उन्हें साथ लिया। थोड़ी दूर पैदल आकर हम एक में सवार हो गये। वह यूरोपियन जासूस भी साथ बस में सवार हुआ। हम बस से उतर चेयरिंग क्रास के रेलवे स्टेशन में दाख़िल हुए जासूस भी हमारे पीछे था। जब हम गाड़ी सवार हुए तो वह भी सवार हो गया। वेस्टमि स्टेशन पर जाकर हम उतर गये; वह भी उतर जब गाड़ी चलने लगी, हम फिर सवार होगये, भी झट से गाड़ी पर सवार हो गया। मुझे उस पार्लमेंट के मेम्बर श्री मैकार्नस के यहाँ चाय जाना था। हम दोनों कैसिटन स्टेशन पर उतर वह भी हमारे साथ उतर पड़ा। थोड़ी दूर चल कर वापस होकर उस यूरोपियन से पूछा कि तुम पीछा क्यों करते हो और कौन हो? उस ऐसी भाषा में बात की, जिसे हम दोनों न जान और पागल सा बन गया! आख़िर मैंने अपने कहा कि तुम जाओ, मैं मैकार्नस के घर जाता हूँ, ज़िक्र करूँगा। श्री मैकार्नस उस वक़्त नम्बर १ पेरिवर स्कैयर में रहते थे। जब मैं उस दाख़िल हुआ, तो वह यूरोपियन मेरे पीछे था। मकान में घुस कर मैकार्नस साहब से कहा कि मेरे एक जासूस है, आइए आपको दिखाऊँ। साथ बाहर निकले और चौक के कोने तक

मगर इस अर्से में वह यूरोपियन जासूस ग़ायब होगया। अगले रोज़ मैकार्नस ने पार्लमेन्ट में भारतमंत्री मोर्ले साहब से पूछा कि 'यह क्या बात है?' मोर्ले ने जवाब दिया कि 'मुझे इसका कोई इल्म नहीं और मैंने कोई जासूस लाजपतराय के पीछे नहीं छोड़ा; फिर भी अपने आफ़िस से दर्याफ़्त करूंगा।' आफ़िस से दर्याफ़्त करके उन्होंने मैकार्नस को जवाब दिया कि इण्डिया आफ़िस ने कोई ज़ासूस नहीं छोड़ा, यह कार्यवाही होम आफ़िस की होगी। उस समय होम आफ़िस के मुखिया वज़ीर अन्दरूनी मि० ग्लैडस्टन थे, जो बड़े ग्लैडस्टन के लड़के थे। और बाद में यह दक्षिण आफ्रिका के गवर्नर भी रहे। मैकार्नस साहब इनके पास गये तो इन्होंने कहा कि मैं इसे रोक दूँगा। चुनांचे अगले दिन से वह जासूस ज़ाहिराना तौर पर मेरे पीछे से हटा दिया गया। लेकिन इंग्लिस्तान से वापसी के वक्त वह मुझे बन्दरगाह कैले पर मिला और हँस कर मुझे कहने लगा कि 'अब तो आपके पीछे कोई नहीं है?' यही नहीं बल्कि इस घटना के बाद भी मुझे कई बार इंग्लिस्तान में इस बात का सन्देह हुआ कि हिन्दुस्थानी और यूरोपियन जासूस मेरे पीछे रहते हैं। १९१४ में हमने यानी मैंने और मेरे साथ रहने वाले साथियों ने एक हिन्दुस्थानी नौजवान की दावत की। यह नौजवान बड़ी शान-शौक़त से रहता था और बहुत बढ़-चढ़ कर बातें करता था और अपने आपको बड़ा पक्का क़ौमपरस्त दिखाता था। बाद में पक्के तौर पर मालूम हुआ कि वह भी जासूस था, जिसे इण्डिया आफ़िस ने हिन्दुस्थानी विद्यार्थियों की जासूसी करने को छोड़ा हुआ था। ग़र्ज़े कि मुझे अपनी ज़िन्दगी में बहुतबार जासूसों से वास्ता पड़ा है। बहुत दफ़ा तो मुझे इस बात का ज्ञान भी नहीं हुआ कि मेरे पोछे कौन जासूसी करता है!

(२)

श्रीमती बेसेण्ट ने हाल में ही यह शिकायत की है कि उनकी चिट्ठियां डाकख़ाने में खोली जाती हैं। मगर श्रीमती बेसेण्ट को यह मालूम होना चाहिए कि यह कार्यवाही बहुत मुद्दत से हिन्दुस्थान में होती है। बहुत से हिन्दुस्थानियों की चिट्ठियां खोली जाती हैं। लेजिस्लेटिव असेम्बली में दीवान चमनलाल ने कई बार इस विषय के प्रश्न किये हैं। एकबार उन्होंने मेरा नाम लेकर भी यह बात कही थी कि मेरी चिट्ठियां खोली जाती हैं। सरकार की तरफ़ से कभी साफ़ जवाब नहीं दिया गया। और सिर्फ़ यह कह कर टालने का प्रयत्न किया गया कि मेम्बर साहब को जो इत्तला मिली है वह दुरुस्त नहीं। मैंने एक बार सर अलेक्ज़ण्डर मुडीमैन से पूछा कि मेरी चिट्ठियाँ क्यों खोली जाती हैं? उन्होंने हँस कर टाल दिया। लेकिन कई राजनैतिक मुक़द्दमों में यह बात ज़ाहिर हो गई कि बहुत से आदमियों की चिट्ठियां खोली जाती हैं। बाज़ तो उन्हें कभी दी ही नहीं जातीं। बाज़ का फ़ोटो लेकर चिट्ठियां फिर दुबारा बन्द करके जिसके नाम की हों उसे पहुँचा दी जाती हैं। बाज़ बिना फ़ोटो लिए ही बाँट दी जाती हैं। चन्द महीने हुए मैंने एक रोज़ अपनी विलायती डाक में देखा कि मेरी चिट्ठियाँ खोली गईं; कुछ चिट्ठियां मुझे सुबह मिलीं, कुछ शाम को, कुछ अगले रोज़, और कुछ कई रोज़ बाद मिलीं! यह ज़िक्र पिछले छः महीने के अन्दर-अन्दर का है। मैंने डाकविभाग को शिकायत की। वहां से साफ़ जवाब मिल गया कि चिट्ठियां खोली नहीं जातीं, और देर में मिलने का जो जवाब मिला वह संतोषजनक नहीं था। मैंने मामले को वहीं ख़तम कर दिया। इस साल जनवरी के महीने में मैं अपने अस्पताल के लिए चन्दा जमा करने एक रोज़ हिसार गया और अपने पुराने अज़ीज़ ला० जयदेव के मकान पर ठहरा। पुलिस वाले मेरी

तलाश में पहले पं० ठाकुरदास भार्गव के मकान पर गये और फिर ला० जयदेव के मकान पर आये और दोनों जगह उन्होंने मेरे मुतल्लिक़ बहुत सवाल पूछे। मैंने दिल्ली आकर होममेम्बर को एक चिट्ठी लिखी। उसमें इस बात की शिकायत की कि पुलिस मेरी निगरानी करती है। मेरी चिट्ठियां खोली जाती हैं; रेल के सफ़र में मेरे टिकट का नम्बर बज़रिया तार अगले स्टेशनों पर भेजा जाता है। मुझे साफ़-साफ़ बतलाया जाय कि ऐसा होता है या नहीं और अगर होता है तो क्यों? होम मेम्बर ने तहक़ीकात करके जवाब दिया कि आपकी शिकायत दुरुस्त है और आगे के लिए मैंने हुक्म जारी कर दिया है कि पुलिस आपकी निगरानी न करे। मैंने अपनी चिट्ठी का यह जवाब होम मेम्बर से तहरीरी माँगा, ताकि मैं इसे अख़बारों में छपा दूँ। मगर जवाब पाने के बाद मैंने उसका कोई ज़िक्र नहीं किया। अब श्रीमती बेसेण्ट की शिकायत पढ़ कर ख़याल आया कि अपनी यह रामकहानी भी प्रकाशित करदूँ।

असल बात यह है कि कोई विदेशी सरकार खुले तौर पर ईमानदारी से उन लोगों के साथ सलूक नहीं कर सकती, जिन्हें वह अपना दुशमन समझती है। चाहे लोग पूर्ण स्वतन्त्रता मांगें, चाहे औपनिवेशिक स्वराज्य, इस बात की कुछ पर्वाह नहीं, वह तो हरएक ऐसे आदमी की निगरानी रखती है, जो जनता पर किसी क़िस्म का प्रभाव रखता हो। उसकी चिट्ठियाँ भी खोलती है और और तरह से भी उसका पीछा करती है। चिट्ठियाँ निहायत होशियारी से खोली जाती हैं और निहायत होशियारी से बन्द कर दी जाती हैं, फिर भी कई बार साफ़ तौर पर इस बात का पता लग जाता है कि चिट्ठियाँ खोली गई हैं। मेरे साथ चालीस बरस से यही बात होती आई है। इसी लिए मुझे अब इन बातों पर गुस्सा नहीं आता। मैंने कभी ऐसी कार्यवाही नहीं की, जिसे खुले तौर पर करने में मुझे ज़रा भी शर्म या डर हो। मुझ पर हिन्दुस्थानी भाइयों का ऐसा विश्वास कि वे मुझे अपने भेद बतला देते रहे हैं। मैंने कई बार इत्तला दी है कि वे मेरे साथ पत्र-व्य करने में सावधान रहें। श्रीमती बेसेण्ट का इंग्लिस्तान में ज़ोर है, लेकिन हमारा वहां है? हमें तो इन्ही लोगों से सरोकार है; और जब इनकी हकूमत है, जो कुछ ये करते हैं, हमें स पड़ता। मगर इसके ये मानी नहीं कि इससे ह दिल पर चोट नहीं लगती। ऐसे मुल्कों में जि पराया राज्य है, देशभक्ति और जाति-भक्ति जुर्म एक अंग्रेज़ ने एक किताब में एक कहानी लिखी है। एक फ़ौजी अफ़सर से पूछा कि 'तुमने फ़लाने आ को क्यों क़ैद किया? वह तो बड़ा नेक और ध आदमी है, और लोगों की ख़िदमत करता है।' साफ़ तौर पर जवाब दिया कि 'इसी वास्ते तो हमारे लिए सबसे ज्यादा ख़तरनाक है। जो स महात्मा गांधी जैसे अहिंसक आदमी को ६ सा लिए जेल भेज सकती है, उससे हम और किस के नरम सलूक की उम्मीद कर सकते हैं यह सलूक तो तब तक रहेगा, जब तक में स्वराज्य स्थापित नहीं होता। इसके मानी नहीं कि हमें बावेला नहीं करना चा पर इसके यह मानी हैं कि हमें इस प्रकार की का से डरकर अपना काम न छोड़ देना चाहिए। हमारा हिसाब साफ़ है और हम कोई का खुफ़िया नहीं करते, तो सरकार हमारा क्या बि सकती है? और बिगाड़ना भी हो तो, बेशक बिगा जो शख़्स इस कांटेदार रास्ते पर पड़ता है, वह जान-माल को हथेली पर रख कर ऐसा करता है हमेशा दुःखों के लिए तैयार रहता है। इसपर भी

तियात करना ज़रूरी है। खामखां ग़ैरज़रूरी तौर र अपने आपको मुसीबत में डालना और इस तरह देश-सेवा के काम से महरूम हो जाना कोई दानाई का काम नहीं।

लाजपतराय

आधुनिक प्रजातन्त्र का असली रूप

उस दिन इंग्लैण्ड के वर्त्तमान प्रधानसचिव बाल्डविन साहब ने निर्वाचन संबन्धी अपने एक भाषण में अपने पक्ष द्वारा किये गये काम वर्णन करते हुए कहा था, "We have made he world safe for democracy"। विभिन्न श्चात्य राजनितिज्ञ और मुसाहिब भी अपने आपको जातन्त्र के मंत्र-द्रष्टा ऋषि कहलवाते हैं। यही हीं, वे तो यह भी दावा करते हैं कि पश्चिमी वायु-हल में लहलहाने वाला यह प्रजातन्त्र का पौदा की गरम हवा में निश्चित रूप से कुम्हला जायगा। नका तो खयाल है कि पूर्वी देशों में अगर कोई ासन-पद्धति फ़ायदेमन्द हो सकती है तो वह है Benevolent Despotism (हितकर अनियंत्रितता)। तः आइए, हम देखें कि जिस प्रजातन्त्र के पक्ष में श्चिम में ज़ोरों से आवाज़ उठाई जा रही है, उसका सली स्वरूप क्या है ?

पश्चिम के ख़ास-ख़ास राष्ट्रों पर नज़र डालने पर देखते हैं कि वहाँ या तो प्रतिनिधि लोकसत्ता-क शासन-पद्धति प्रचलित है या मर्यादित राजसत्ता। स और इंग्लैण्ड को इनके उदाहरण के बतौर पेश या जा सकता है। शासन-शास्त्रज्ञों का कहना है कि देशों की शासन-पद्धति का विश्लेषण करने से श्चिमी प्रजातन्त्रवाद के सारे अंगोंपांगों का ठीक-ठीक रूप प्रकट हो सकता है। इंग्लैण्ड के राजनीतिज्ञ तो यहाँ तक कहते हैं कि प्रजातन्त्रवाद की उत्पत्ति, स्थिति और दिन-दिन बढ़ती हुई प्रगति इंग्लैंड में ही हुई है, होती है और भविष्य में भी होगी। अंग्रेज़ राजनीतिज्ञ इस बात को बड़े अभिमान और प्रसन्नतापूर्वक प्रकट करते रहते हैं कि ब्रिटिश पार्लमेन्ट ही तमाम लोकसभाओं की जननी है। इंग्लैंड की इस गर्वोक्ति की अगर हम परीक्षा करेंगे तो आधुनिक प्रजातन्त्रवाद का सच्चा स्वरूप अपने आप बड़े अच्छे ढंग से प्रकट हो जायगा।

प्रजातन्त्र की सर्वसंग्राहक परिभाषा बनाना भले ही कुछ कठिन मालूम हो, तोभी हम यह कह सकते हैं कि प्रजातन्त्र लोगों का वह शासन है जो लोगों के द्वारा, लोककल्याण के लिए किया जाता है (Government of the people, by the people, and in the interest of the people)। यह एक साध्य है और सब लोगों द्वारा सब प्रश्नों पर निर्णायक मत प्राप्त करके तदनुसार राज्य-प्रबन्ध करना व्यवहार में क़रीब-क़रीब अशक्य होने के कारण लोकप्रतिनिधित्व की प्रथा सब राष्ट्रों में आजकल इस साध्य के साधन के बतौर प्रचलित हैं। लोगों से सीधे राज्य-प्रबन्ध न करवा कर उनमें से जो विद्या में, व्यापार में, या दूसरे गुणों में श्रेष्ठ होते हैं उनके हाथ में राज्य-व्यवस्था के सूत्रों को सौंपना ही लोकप्रतिनिधि राज्य-प्रबंध कलहाता है। सब के सब लोगों को इस तरह अपने-अपने प्रतिनिधि चुनने देने का परिणाम भी अच्छा नहीं होता, इसलिए तथा इसी प्रकार के और किसी ख़याल से मताधिकार (Franchise) भी प्रायः प्रत्येक राष्ट्र में मर्यादित ही रक्खा जाता है। मज़दूरों को मताधिकार मिले अभी ज़्यादा समय नहीं हुआ। स्त्रियों को तो अभी-अभी मताधिकार और निर्वाचन संबन्धी

सहूलियतें मिलने लगी हैं। आज भी कितने ही भले आदमियों को इस अधिकार की पात्रता के विषय में शंका बनी हुई है। इस प्रकार मर्यादित लोगों द्वारा चुने हुए ५००–६०० लोगों द्वारा राज्य-प्रबन्ध होना भी अशक्य प्रतीत होने के कारण इन ५००–६०० लोगों में से भी ख़ास-ख़ास लोग अर्थात् बहुमत वाले पक्ष के नेता तथा प्रभावशाली लोगों का एक छोटा सा मन्त्रि-मण्डल (Cabinet) बना दिया जाता है और राज्य की बागडोर उसके हाथों में सौंप दी जाती है। पर इस मन्त्रि-मंडल की कल्पना के साथ ही विभिन्न पक्ष और उपपक्ष, उनकी पारस्परिक स्पर्धा, जुदे-जुदे कार्यक्रम, अपनी भावी नीति को क़ायम करने वाली घोषणाओं आदि की कल्पना भी सभी देशों में पाई जाती है। इस तरह चुने हुए लोगों द्वारा कहीं अक्षम्य जल्दबाजी अथवा अविचार के कारण कोई क़ानून कहीं पास न हो जाय इसलिए इन लोक-प्रतिनिधियों की सभा (House of commons अथवा Representatives) पर एक तरह का हितकर दबाव (a wholesome check) बनाये रखने के लिए बड़े लोगों की एक सभा (House of Lords, Senate आदि) क़ायम की जाती है। इस सभा में ज़मींदार, सरदार, मुख्य-मुख्य व्यापारी आदि बड़े-बड़े प्रतिनिधि रहते हैं। इंग्लैंड में कल-परसों तक इस सभा के हाथ में एक बहुत बड़ी प्रतिबन्धक सत्ता थी, परन्तु उनकी इस रुकावट को मिटाने के लिए और इस बड़ी सभा की रचना में सुधार करने की मन्शा से एक नया नियम बनाया गया। उसके द्वारा इस सभा की सत्ता को छीन लिया गया और ख़ासकर आर्थिक मामलों में उसके सारे अधिकार दबा दिये गये। अतः अब प्रधान तथा सारी सत्ता लोकप्रतिनिधि-सभा के ही हाथों में है। स्विटज़रलैण्ड के समान कितने ही देशों में महत्व के प्रश्नों पर सारी जनता का मत लिया जाता है। इस मत-प्रदर्शन को R sentation कहते हैं। इसके अतिरिक्त समान निधित्व Proportional R ferendum वालों के अधिकारों की रक्षा आदि कई जुदे-जुदे को योजना भी की गई है। स्थूलतः प्रजातंत्र का यही स्वरूप है। अब हमें यह देखना है कि तंत्र की इस ठठरी में प्रजातंत्रवाद का उसकी आत्मा कहाँ है? ख़ास इंग्लैण्ड में के बाहरी भभके से लोग कितने सन्तुष्ट हैं? संतुष्ट होते तो एक के बाद एक मजदूरों की क्यों होतीं? मज़दूरी बढ़ाने और काम के कम करने के लिए मज़दूर वर्ग को हमेशा क्यों पड़ता है? नित्य नये क़ानून बना कर मज़दूरों क्यों ग़ज़ब ढाहा जाता? रूसी साम्य (Communists) के मत को इंग्लैण्ड में रह करने वाला मनुष्य शत्रु क्यों समझा जाता और पर कड़ी निगाह क्यों रक्खी जाती? भाई वाला जैसे स्वातंत्र्य-प्रेमी और सब की में विश्वास रख कर उसे बढ़ावा देने वाले सभा के सामान्य सभासद को भारत लौटने के पासपोर्ट क्यों नहीं दिया गया? (अपूर्ण)

कृष्णाजी रामचन्द्र

मन में

वह मानव देह निरर्थक जो,
परतन्त्र रही निज जीवन में
पशु-तुल्य उसे समझो जिसका,
नित ध्यान रहे मन-रंजन में
जिस पामर को न व्यथा दिखती,
निज बन्धु जनों कृत क्रन्दन में
वह दानव है जिसके न उठे,
करुणामय भाव कभी मन में

पूर्णचन्द्र टुंकलिया

महात्माजी का स्वराज्य

बम्बई के दंगे तो समाप्त हो ही चुके थे, परन्तु उन्होंने महात्माजी के इस निश्चय को और भी अधिक दृढ़ कर दिया कि भारत के राजनैतिक जीवन को प्रगतिशील बनाने के लिए देश में सबसे पहले अहिंसा का व्यापक प्रचार होना बहुत ज़रूरी है। जहाँ तक जनता में अहिंसात्मक आन्दोलन के प्रचार से सम्बन्ध है, हमारे कार्यकर्त्ताओं को अपने प्रयत्नों में आवश्यकता से कहीं कम सफलता प्राप्त हुई है। स्वयं कार्यकर्त्ता ही अहिंसा की आत्मा को भलीभाँति नहीं समझ पाये थे। महात्माजी ने तो अपने सामने अहिंसात्मक आन्दोलन की पुकार को देश-व्यापी बनाने का आदर्श रक्खा था और उनका विश्वास था कि अगर यह पुकार देश भर के कार्यकर्त्ताओं तक पहुँच जाय, तो निस्सन्देह जनता की ओर से इसका योग्य उत्तर मिलेगा। यहाँ यह तो स्पष्ट ही था कि देश के हिंसा-प्रिय लोगों में अहिंसा-प्रेम जागृत करने के लिए कार्यकर्त्ता-गण उसी हद तक सफल हो सकते थे, जिस हद तक कि वे स्वयं अहिंसा-प्रेम की आत्मा में घुस कर अपना व्यवहार अहिंसात्मक बना चुके थे। दूसरे उनका कहना यह भी था कि अहिंसा-प्रेम का उपदेश केवल मौखिक ही न रहे। केवल ज़बानी उपदेशों के बल पर अहिंसात्मक आन्दोलन अपने आस-पास शान्ति-पूर्ण वातावरण स्थिर नहीं रख सकता। अगर सारे कार्यकर्त्ता अपने दैनिक जीवन में अहिंसा की मूल आत्मा का चारों ओर प्रचार करें, और अपने प्रत्यक्ष व्यवहार द्वारा प्राणिमात्र के लिए अपनी सदिच्छा प्रकट कर सकें, तो देश के कोने-कोने में अनेकता के बदले एकता और कलह के बदले शान्ति सहज ही स्थापित हो सकती है।

हिन्दू-मुसलिम ऐक्य पर विचार करते हुए महात्माज़ी ने यह महसूस किया कि इस मसले को हल करने में भी अहिंसा का प्रयोग ही हितकर होगा। पारस्परिक घृणा और द्वेष-भाव को, जो हिन्दू-मुसलिम वैमनस्य के मूल कारण हैं और जो देश में समय-समय पर भयंकर और व्यापक होते रहे हैं, मिटाने के लिए आत्म-संयम और अहिंसात्मक व्यवहार की बड़ी ज़रूरत है। क्योंकि वे तो इसे एक स्वयं-सिद्ध सिद्धान्त मानते हैं कि जब तक हिन्दू और मुसलमान एक दूसरे को अपना शत्रु समझते रहेंगे तब तक अपनी कमज़ोरी और बेबसी के कारण वे बराबर राज्य-कर्त्ताओं की शरण लेते और उनके हस्तक्षेप को स्वीकार करते रहेंगे। इस तरह सरकार इन लोगों को बारी-बारी से दबाती रहेगी और कभी एक की तो कभी दूसरे की मदद से अपना उल्लू भी सीधा करती रहेगी।

देश के जातीय वैमनस्य को मिटाने के लिए विदेशी नौकरशाही की इस दस्तन्दाज़ी के सवाल को कुछ देर के लिए एक ओर रख कर महात्माजी आगे बढ़ना चाहेंगे। मान लीजिए, महात्माजी कहेंगे कि हमारे पारस्परिक कलह और द्वेष-भाव से बेजा फ़ायदा उठाने वाली कोई परायी सरकार देश में नहीं है। तिस पर भी हमारे आपस के झगड़े-टंटे वैसे ही बने ही रहे, तो अधिक समय तक इस भयंकर भेद-भाव को रखते हुए हम अपनी स्वतंत्रता को अछूत रख सकेंगे या नहीं, यह एक सवाल बना रहता है। यह बहुत कुछ संभव है कि हमारी कमज़ोरी और जातीय कलह-प्रियता के कारण, स्वेच्छा से न भी हो, हम किसी न किसी विदेशी सत्ता के शिकार ज़रूर बन जायँगे।

महात्माजी थोड़ा और भी आगे बढ़ेंगे और कहेंगे, मान लिया कि हम किसी परकीय-सरकार के शिकार

न बने तो भी आम-जनता के लिए तब तक स्वराज्य क़ायम नहीं हो सकता, जब तक कि हमारे आपस के लड़ाई-झगड़े और द्वेष-भाव मिट न जाँय और हम सब एक होकर अहिंसा के सर्व शक्तिमान झंडे के नीचे खड़े न हो जायँ। क्योंकि हिन्दुस्थान की सीमा के भीतर ही ऐसे कई शक्तिशाली बनने की इच्छा करने लगे वाले लोग हैं, जो अपनी ताकत बढ़ाना और राज्य क़ायम करना चाहेंगे और हमारे आपस के लड़ाई-झगड़ों और द्वेष-भाव से फ़ायदा उठा कर देश में वैमनस्य का वातावरण उत्पन्न करके अपना मतलब भी साधेंगे। अगर ये लोग अपना राज्य क़ायम करने में कामयाब हुए, तो क्या यह माना जा सकेगा कि वे इतिहास का एक नया पृष्ठ पलटेंगे और अपनी स्वार्थ-सिद्धि के लिए देश के फूले-फले करोड़ों लोगों पर दमन और अत्याचार का कुचक्र चलाने से बाज़ आवेंगे ?

अतः यह स्पष्ट है कि प्रश्न केवल वर्तमान विदेशी सरकार के पंजे से छूटने और भविष्य में परायी जातियों के आक्रमण से बचने का ही नहीं है। सवाल तो यह है कि देश के जन-साधारण के लिए यह कैसे संभव होगा कि वे अवसर आने पर अपने को देश के अधिक ताक़त वाले वर्गों के शासन और दमन से सुरक्षित रख सकें ? क्योंकि, एक ओर तो अहिंसात्मक बातों से नाम-मात्र का भी सम्बन्ध न रहने और जनता पर निर्भयता-पूर्वक स्व-शासन के क़ायम हो जाने से ये वर्ग आम जनता को लूटने, दबाने और उसपर अत्याचार करने के लिए अपनी शक्ति का दुरुपयोग करेंगे और दूसरी ओर पीड़ित प्रजा भी स्वभावतः पशुबल द्वारा देशी शासक वर्ग की सत्ता को जड़-मूल से उतार फेंकने का प्रयत्न करेगी।

किन्तु महात्माजी कहते हैं कि हम अहिंसात्मक-आन्दोलन की लहर को देश के कोने-कोने में पहुँचा सकेंगे, अगर अहिंसा के प्रचार के लिए देश के एक बड़ी संख्या में शुद्ध भाव से सराबोर होकर करने को तैयार हो जायँ। अतः उनके अनुसार देश की सबसे बड़ी ज़रूरत यह है कि आन्दोलन के लिए कार्यकर्त्ताओं की एक ऐसी खड़ी करें, जो देश में अहिंसा के प्रचार के लिए से काम करे। और महात्माजी इस बात की करते हैं कि जिस परिणाम में अहिंसा हमारे का मार्ग-दर्शक सिद्धान्त बनती जायगी उसी परि में लोगों की वह भावना बढ़ेगी, जिसके द्वारा वे पर शासन करने की अपेक्षा उसकी सेवा करना पसन्द करेंगे।

इस प्रकार अहिंसात्मक उपदेश को हृद स्वीकार कर लेने से शासन-तृष्णा और स्वार्थ की कुभावना के मूल पर अपने आप ही कुठा होता है और उसके बदले देश के असंख्य ग़रीब बहनों की सेवा करने की इच्छा उत्पन्न होती है। जो लोग जन-साधारण की सेवा के इच्छुक हैं लोकमत को शिक्षित करने तथा उसे एक नये पर ले जाने की महत्वाकांक्षा रखते हैं, उन्हें हिं मार्ग को छोड़ कर अहिंसा की शरण लेनी चा यह शिक्षित लोक-मत ही सारी जनता का सच्चा है। इसे शासकवर्गों की इच्छा और उनके भिन्न समझना चाहिए। यह तो एक मानी हुई है कि जो लोग लोकमत या प्रजामत को देना नहीं चाहते किन्तु उलटे अपनी इच्छा को पर लादना चाहते हैं, प्रजामत को अपनी इ आगे गुलाम और निर्बल बनाने की फ़िक्र में उन्हें बरबस हिंसा का सहारा लेना पड़ेगा। महात्माजी के कथनानुसार सच्चा स्वराज्य उसी स्थापित हो सकेगा, जब सत्ता शुद्ध लोकमत के संचालित होगी।

इसी लिए महात्माजी की दृष्टि में प्रधानतःस्वराज्य का विदेशी शासन के नाश से कोई सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि विदेशी शासन के बदले देश की ही कोई जबर्दस्त शक्ति अपना अधिकार स्थापित कर सकती है—विदेशी सत्ता के बदले देशी नौकरशाही का अधिकार क़ायम हो सकता है। अतः अहिंसात्मक असहयोग को प्रारंभ करने में महात्माजी का मूल उद्देश स्वेच्छाचारी देशी या विदेशी वर्ग या वर्ग-समूहों के स्थान पर लोकमत को सिंहासनारूढ़ कराना था, जिससे स्वेच्छाचारी शासन लोकमत का अनुयायी और मातहत बन जाय। अर्थात् अत्याचारी विदेशी शक्ति का अन्त करना, उसका नाश करना, अथवा अंग्रेजों को देश से बाहर निकाल देना ही महात्माजी का मुख्य उद्देश नहीं है। सबसे बड़ी जरूरत तो इस बात की है कि वर्तमान नौकरशाही देश के लोकमत के अधीन हो जाय। क्योंकि हमें तो सदा के लिए देश की राजनैतिक सत्ता के उन हथकंडों और जनता की आर्थिक लूट के उन साधनों को नष्ट-भ्रष्ट कर देने की जरूरत है, जिनके कारण आज लोकमत निर्दयता-पूर्वक कुचला जाता है और जगह-जगह अपमानित किया जाता है। इस दृष्टि से विचार करने पर इस मामले में जातीय वैमनस्य का कोई सवाल ही खड़ा नहीं होता।

देश में अहिंसा का जितना सुदृढ़ वायुमंडल तैयार होगा, उतनी ही दृढ़ता के साथ देश के विभिन्न वर्गों में एकता तथा शान्ति का स्वराज्य उत्पन्न, विस्तारित और स्थापित किया जा सकेगा। जितनी ही अधिक एकता और शान्ति होगी, हिन्दुस्थान के संयुक्त लोकमत की प्रतिष्ठा और शक्ति उतनी ही बढ़ेगी। अर्थात् ऐसी दशा में लोकमत अपनी शक्ति का सिक्का जमा सकेगा और भारतीय जनता यह जान जायगी कि अत्याचारी सत्ता से आत्मसंरक्षण किस तरह किया जाय। फलतः वर्तमान नौकरशाही के चारों ओर फैला हुआ हिंसा-पूर्ण वातावरण धीरे-धीरे, अपने आप ही नष्ट होता जायगा और भारत के संयुक्त लोकमत की शक्ति के द्वारा, इस बदली हुई परिस्थिति में, सरकार को अपनी निरंकुश सत्ता के सिंहासन से उतर कर जनता के मत के अनुकूल बनना पड़ेगा। इस तरह विदेशी नौकरशाही की निरंकुश इच्छा के स्थान पर राष्ट्रीय रूप में अहिंसात्मक नीति का आरम्भ और अवलम्बन लोकमत को उत्पन्न करेगा और उसे सिंहासनारूढ़ भी करा देगा। नौकरशाही की यह निरंकुश इच्छा जबर्दस्ती और हिंसा पर आधार रखती है। सुदूर भविष्य में अहिंसा की राष्ट्रीय नीति के द्वारा नौकरशाही को लोकमत के अधीन किया जा सकेगा और शान्ति तथा अहिंसा के सुदृढ़ स्तम्भों पर जनता के सुरक्षित स्वराज्य की इमारत खड़ी की जा सकेगी।

अब इस चित्र का दूसरा पहलू देखिए। अगर अहिंसात्मक नीति हिन्दुस्थान की राष्ट्र-नीति नहीं बनी तो उसका परिणाम यह होगा कि परकीय लूटखोर शासकों के विरुद्ध देश में दुश्मनी और द्वेष की मात्रा दिन पर दिन दृढ़ता और भयंकरता के साथ बढ़ती जायगी। कल्पना कीजिए कि इस भयंकर रोष का अन्तिम परिणाम नौकरशाही के विरुद्ध एक संगठित बलवा हो, और वह सफल भी हो। इस सफलता का नतीजा क्या होगा? उत्तर पहले ही दिया जा चुका है। यह तो हम देख ही चुके हैं कि वर्तमान नौकरशाही के नाश के मानी देश में सच्चे स्वराज्य की स्थापना नहीं है। अर्थात् वह स्वराज्य क़ायम नहीं हो सकेगा, जिसमें वर्तमान पीड़ित प्रजा की आवाज हमारे देश का लोकमत ही सर्वेसर्वा होगा और जिसमें स्वदेशी वर्ग या वर्गों का कोई अत्याचार शेष नहीं रह सकेगा। जो देश देशी अधिकारियों के द्वारा शासित हैं, जिनमें विदेशी सत्ता का प्रवेश नहीं है,

वहाँ हम क्या देखते हैं ? क्या वहाँ की जनता को शासक-वर्ग के विरुद्ध अपनी आवाज़ उठाने में आकाश-पाताल एक नहीं करना पड़ता ? स्वतन्त्र कहे जाने वाले सारे देशों में शासन की बागडोर आज भी केवल उन मुट्ठीभर शासक लोगों के हाथ में है, जो अधिकांश में पूँजीपतियों से खूब हिले-मिले रहते हैं । भूतकालीन इतिहास और वर्तमान काल की घटनाओं के आधार पर यह सिद्धान्त स्थापित किया जा सकता है कि स्वतन्त्र कहे जाने वाले राष्ट्रों में देशी शासकवर्गों ने प्रजातन्त्र के नाम पर साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के स्वार्थ के लिए जनता को दबा रक्खा है । स्वतन्त्र राष्ट्रों के देशी शासन में लोकमत की इस दुर्दशा को देख कर हमें अपने सच्चे भारतीय स्वराज्य-प्राप्ति के प्रयत्नों में विशेष जागरूक होना चाहिए । क्योंकि अकेले विदेशी शासन के नाश के दो ही परिणाम तो हो सकते हैं—(१) जनता जहाँ की तहाँ बनी रहे, या (२) उसकी दशा और भी बदतर हो जाय । अतः अगर सुसंगठित हिंसात्मक साधनों द्वारा देश की परकीय सत्ता को खदेड़ कर हमने सीमा-बाहर कर भी दिया, तो यह कोई निश्चित नहीं है कि देश का समस्त लोकमत अपना स्वाभाविक स्थान प्राप्त कर ही लेगा । वर्ग-विशेष की सेनाओं द्वारा या अन्यथा हिंसा का अवलम्बन करने पर यदि देश को स्वाधीनता मिल भीगई, तो इसबात का कोई प्रमाण नहीं है कि अबसे आगे देश में लोकमत का ही सर्वे-सर्वा प्राधान्य रहेगा। अर्थात् हिंसा को राष्ट्र-नीति बना लेने से भारतीय जनता देश के लूटखोर शासक-वर्गों के पंजों से मुक्त न हो सकेगी । अतः महात्माजी इस निश्चित परिणाम पर पहुँचते हैं कि भारतीय जनता के मत को तभी प्रधानता मिलेगी, और देश में लोकमत का स्वराज्य तभी क़ायम हो सकेगा, जब कि सारा राष्ट्र अहिंसात्मक असहयोग को अपनी राष्ट्र-नीति मानने लगेगा और उसी तरह अहिंसात्मक साधनों तथा कार्यों देश में संगठित और ठोंस काम करना आरम्भ देगा ।

कृष्णदास

जीवन और शिक्षण

आज-कल की शिक्षा-प्रणाली विचित्र इसके कारण हमारा जीवन दो हि में बँट जाता है । जीवन के पहले पंद्रह-बीस तो मनुष्य जीने के झगड़े में ही न पड़े, केवल ग्रहण करता रहे और फिर शिक्षा को ताक में कर मरते-दम तक उदर-पूर्त्ति में लगा रहे ।

यह ढंग तो क़ुदरत की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ हाथ-भर का बालक साढ़े-तीन हाथ का कैसे बन है, यह न तो उसके ख़याल में आता है और न दू के ही । शरीर प्रति-दिन बढ़ता जाता है । यह धीरे-धीरे थोड़ी-थोड़ी मात्रा में होती रहती है । लिए किसीको उसका ख़याल तक नहीं होता । कभी नहीं होता कि आज रात को सोने के पहले बालक दो फ़ुट का हो और सबेरे उठने पर वह फ़ुट का हो जाय । आज-कल की शिक्षा में विशेषता है कि फ़ला वर्ष के आख़िरी दिन तक यदि मनुष्य जीवन और जीविका के विषय में तरह ग़ैर-ज़िम्मेदार बना रहे तो काम चल सकता नहीं, बल्कि तब तक ग़ैर-ज़िम्मेदार रहना भी चा पर अगले साल का पहला दिन उगते ही उसे ज़िम्मेदारी अपने सिर उठाने को तैयार हो चाहिए । सम्पूर्ण ग़ैर-ज़िम्मेदारी के अन्दर, से एक सम्पूर्ण ज़िम्मेदारी में कूदना मानों हनुमान- लगाना है । ऐसी उड़ान उड़ने के प्रयत्न में हाथ-पाँव टूटें भी, तो उसमें आश्चर्य क्या ?

योगेश्वर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को कुरुक्षेत्र में भगगीता सुनाई । भगवद्गीता पहले पढ़ा कर फिर न्हें लड़ाई के मैदान में नहीं भेजा था ! इसी कारण ता को वह हज़म भी कर सके। पढ़ाई, जीवन-कलह ी तैयारी कही जाती है पर उसे वास्तविक जीवन हम एकदम अछूत रखना चाहते हैं । नतीजा यह ता है कि ऐसे ज्ञान से जीवन के बजाय मरण की यारी ज्यादा जल्दी होती है !

बीस बरस का एक उत्साही नवयुवक पढ़ाई में त है। वह कई तरह के हवाई किले बाँधता है— त्रपति शिवाजी की तरह मैं भी अपनी मातृभूमि सेवा करूँगा, वाल्मीकि के समान कवि बनूँगा, टन के समान नई-नई बातों की खोज करूँगा ।" तरह एक दो नहीं, कई कल्पनायें, उसके दिमाग़ चक्कर काटती रहती हैं । ऐसी कल्पना करने वाले इने-गिने ही भाग्यशाली होते हैं पर हम उन्हींकी लें। इन कल्पनाओं का परिणाम क्या होता है ? रासा पेट,पर उसके लिए कितनी खट पट ! पेट का वाल सामने आते ही आदमी गाय बन जाता है । सपने में भी ख़याल नहीं था कि गृहस्थी की म्मेदारी किस चिड़िया का नाम है, पर एकाएक म्मेदारी का पहाड़ उसके सामने खड़ा हो जाता है। समय वह क्या करे ? करे क्या ? पेट के लिए र भटकने वाला शिवाजी, हृदय को पानी-पानी देने वाले दुःखों की कथा गाने वाला वाल्मीकि र कभी नौकरी तो कभी औरत, कभी लड़कियों के वर तो कभी घर और अन्त में स्मशान की खोज ने वाला न्यूटन, वह बनता है और अपनी उच्चतम ना का समाधान कर लेता है । यह है उस हनुन-उड़ान का परिणाम ।

'क्यों भाई ! आप आगे क्या करेंगे ?' एक ट्रिक के विद्यार्थी से पूछा गया ।

'आगे क्या ? आगे कालेज में जावेंगे, और क्या ?'

'हाँ, कॉलेज में तो जाना ठीक है, पर सवाल यही है कि उसके बाद आप क्या करेंगे ?'

'हाँ, सवाल तो है, पर अभी से उसकी चिंता क्यों ? आगे देखा जायगा ।'

तीन साल बाद उस विद्यार्थी से फिर वही सवाल पूछा गया ।

'अभी तक कुछ ठीक निश्चय नहीं हुआ ।'

'ठीक निश्चय नहीं हुआ । इसके मानी ? बैठ कर कभी सोचा भी था ?'

'नहीं साहब, सोचा ही नहीं, सोचूं क्या ? कुछ समझ नहीं पड़ता । फिर अभी तो डेढ़ साल की देर है, 'आगे देखा जायगा ।'

तीन साल पहले भी यही "आगे देखा जायगा ।" शब्द कहे गये थे, आज भी वही । परन्तु पहले की आवाज़ में आज़ादी की झलक थी, आज के उत्तर में चिन्ता की छाया साफ़ दीख रही थी ।

डेढ़ वर्ष बाद फिर उसी मनुष्य ने उस विद्यार्थी से, जो आज गृहस्थ हैं, वही सवाल पूछा ! अब तो चेहरे पर चिंता के कारण हवाइयाँ उड़ रहीं थीं । आवाज़ में आज़ादी का कोसों पता नहीं था । 'ततः किं, ततः किं ततः किं, ततः किं ? का सनातन सवाल शंकराचार्य की भाँति, आज उसके दिमाग़ में भी ज़ोरों से चक्कर काट रहा था । पर उत्तर सूझता नहीं ।

आज की मौत को कल पर टालते-टालते एक दिन ऐसा भी आता है, जब मरना पड़ता है इस दुर्देव का सामना उन्हें नहीं करना पड़ता, जो मरने के पहले ही तैयार रहते हैं—जो अपनी मौत को अपनी आँखों देखते रहते हैं, जो पहले ही मौत को अनुभव कर लेते हैं, उनके पास मौत फटकती तक नहीं ।

परन्तु जो पहले से मौत का अनुभव लेने से डरते हैं, हिम्मत हार जाते हैं, उनकी छाती पर मौत मूंग दलने लगती है। अंधे को अपने सामने वाले खम्भ का पता तभी लगता है, जब उसका सिर उससे टकरा जाता है। आँख वाले को वह खंभा पहले से दिखता है, इसी कारण उसे टक्कर नहीं खानी पड़ती।

जीवन की जिम्मेदारी का मतलब एकदम मौत नहीं है। और मौत है भी कहां ऐसी भयंकर चीज़? अनुभव की कमी ही इस डर का मूल है। वास्तव में जीवन और मरण तो दोनों बड़े आनन्द-दायक होने चाहिएँ। क्योंकि वे तो हमें अपने परम प्रिय पिता परमेश्वर से प्राप्त हुए हैं। भगवान् ने ज़िन्दगी को दुःख पूर्ण नहीं बनाया है। पर सवाल यह है कि हम उसे कैसे बिता रहे हैं? दुनिया में ऐसा कौनसा पिता है, जो अपने लड़कों की ज़िन्दगी को आफ़तों से भरी हुई देखना चाहे? फिर ईश्वर के प्रेम और उसकी करुणा की कहीं सीमा भी है? वह अपने लाड़ले बालकों के लिए सुखमय जीवन चाहेगा या कष्टमय? कल्पना की क्या ज़रूरत प्रत्यक्ष ही देखिए न? हमें जिस बात की जितनी ज्यादा ज़रूरत रहती है, परमात्मा ने उसे उतनी ही सुलभ कर रक्खा है। पानी की अपेक्षा हवा ज्यादा ज़रूरी है इसीलिए परमेश्वर ने उसे पानी से अधिक सुलभ बनाया है। जहाँ नाक है वहाँ हवा भी मौजूद है! पानी से अन्न की ज़रूरत कम रहती है, अतएव पानी की अपेक्षा अन्न ज्यादा कष्ट से मिलता है। 'आत्मा' का महत्व सब से अधिक जानकर परमात्मा ने हरएक को एक एक आत्मा हमेशा के लिए दे डाली है। परमात्मा ने हमारे लिए कैसा प्रेम-पूर्ण प्रबन्ध कर रक्खा है इसका विचार न करके अगर हम आभूषण जैसी निकम्मी चीज़ें इकट्ठी करके अपनी जड़ता का परिचय दें तो इसमें दोष हमारी जड़ता का है, परमेश्वर का नहीं।

जीवन की ज़िम्मेदारी कोई भयंकर चीज़
है। वह तो बड़े मज़े की बात है। लेकिन यह
हो, जब हम ईश्वर की जीवन-सम्बन्धी इस
योजना को ध्यान में रखकर ऐरी-गैरी इच्छाओं
दमन करने लगें। जीवन जिस तरह आनन्द
उसी तरह शिक्षा-पूर्ण भी है। जिसने जीवन
ज़िम्मेदारियों को भुला दिया, वह अपनी सारी
पर पानी फेर चुका, यही समझना चाहिए।
भाई ऐसा सोचते हैं कि अगर बचपन ही से
को ज़िन्दगी की ज़िम्मेदारियों का भान रहा तो
जीवन कुम्हला जायगा। परन्तु अगर जीवन
जिम्मेदारी के ख़याल से जीवन मुरझाने लगे, तो
कहना पड़ेगा कि जीवन नाम की यह वस्तु किसी
प्रकार संरक्षणीय नहीं है। आज तो इस तरह
बातें बड़े-बड़े शिक्षण-शास्त्रियों तक के मुँह से
जाती हैं। हमारी समझ में इसका कारण जीवन
बारे में उनकी दुष्ट भावना ही है। जीवन
वे 'कलह' समझे बैठे हैं। 'इसॉप नी
माने हुए 'अ-रसिक' परन्तु मर्मज्ञ मुर्गे से शिक्षा
कर जौ के दाने को अपेक्षा मोती को अपनाना
दिया जाय तो 'जीवन-कलह' नष्ट हो कर
एक साथ काम करने की भावना पैदा हो
'बन्दर के हाथ में मोतियों की माला' की
जिसने बनाई उसने आदमियों की आदमीयत
न करके सचमुच ही उनके पुरखाओं के बारे में
के मत को ही साबित किया है। परन्तु '
हाथ में मोतियों की माला' वाली कहावत
वालों ने अपने मनुष्यत्व की रक्षा ज़रूर की

जीवन अगर सचमुच ही ख़ौफ़नाक
'कलह' है, तो बालकों को उसमें मत घुसने दो
ही उसकी फ़िक्र करो। परन्तु यदि वह उपयो
है, तो बच्चों को भी उसमें ज़रूर भाग

सकी शिक्षा का इससे अच्छा तरीका ही नहीं है । गवद्गीता जिस तरह कुरुक्षेत्र में सुनाई गई, शिक्षा भी उसी तरह जीवन-क्षेत्र में ही दिया जाना चाहिए— दे सकते हैं । 'दे सकते हैं' कहना ठीक नहीं वह वहीं मिल सकेगी' कहना चाहिए ।

काम करते हुए अर्जुन के सामने एक सवाल खड़ा हुआ, उसका जवाब देने के लिए भगवद्गीता नी। इसीका नाम शिक्षा है। लड़के को खेत में काम करने दो। काम करने में अगर कोई कठिनाई खड़ी हो, तो उसे हल करने के लिए सृष्टि-शास्त्र, पदार्थ विज्ञान या दूसरी ज़रूरी बातों का प्रमाण दे कर साबित करो। सच्ची शिक्षा यही है। बालक को रोटी बनाने दो। बनाते समय, अगर ज़रूरत हो तो उसे रसायन-शास्त्र की बातें बतलाओ। परन्तु ख्याल रहे कि शिक्षा उसे अनायास मिले। त-दिन के काम करने वाले आदमी को भी शिक्षा मिलती ही है। विद्यार्थी को भी ऐसी ही शिक्षा जानी चाहिए। अन्तर केवल इतना ही रहे कि सके आस-पास ज़रूरत के मुताबिक रास्ता बतलाने वाले लोग हमेशा बने रहें। ये लोग भी शिक्षक' के नाते नियुक्त न किये जाँय। वे भी जीवन यापन करते रहें जैसे दुनियाँ के मामूली लोग करते हैं। फ़र्क़ इतना होना चाहिए कि शिक्षक' कहलाने वालों का जीवन विचार-मय हो, और समय पड़ने पर वे अपने विचारों को बालकों तक पहुँचाने की योग्यता रखते हों। 'शिक्षक' नाम का कोई जुदा धन्धा अनावश्यक है। 'विद्यार्थी' नामधारी मनुष्य-श्रेणी से परे का कोई जीव हमें नहीं चाहिए। क्या करते हो ? पूछने पर 'सीखता हूँ' पढ़ता हूँ' या 'पढ़ाता हूँ' के ढंग का उत्तर भी हमें नहीं चाहिए। 'खेती करता हूँ' 'कपड़े बुनता हूँ' इस प्रकार के 'औद्योगिक' कहिए या 'व्यापारिक' परन्तु जीवन को लागू होने वाले जवाब मिलने चाहिए। उदाहरण के तौर पर श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण और गुरु विश्वामित्र, को ही क्यों न लें ? विश्वामित्र यज्ञ कर रहे थे। उसकी रक्षा के लिए उन्होंने दशरथ से उनके लड़के माँगे। उसी काम के लिए दशरथ ने अपने लड़कों को उन्हें सौंपा। जाते समय हम यज्ञ-रक्षा के 'काम' के लिए जाते हैं, ऐसी उत्तरदायित्व पूर्ण भावना उनके हृदय में विद्यमान थी। इससे उन्हें अपूर्व शिक्षा प्राप्त हुई। अगर कोई पूछे कि राम-लक्ष्मण ने क्या किया, तो कहा जायगा कि उन्होंने 'यज्ञ की रक्षा की।' उसकी 'शिक्षा प्राप्त की' यह बात नहीं, परन्तु 'शिक्षा प्राप्त' हुई, यह बात भूली नहीं जा सकती, माननी पड़ती है।

शिक्षा कर्त्तव्य-कर्म का एक सहज फल है। जो अपना कर्त्तव्य करता रहता है, उसे जाने-अजाने शिक्षा मिलती ही रहती है। छोटे बालकों को भी शिक्षा इसी तरह मिलनी चाहिए। औरों को वह ठोकर खाते-खाते मिलती है। छोटे बालकों में ठोकरें खाने की उतनी शक्ति न रहने के कारण उन्हें अधिक कष्ट न हो ऐसा वायु-मण्डल उनके चारों तरफ पैदा करना चाहिए। वे धीरे-धीरे अपने पैरों पर खड़े होने लगें, ऐसी इच्छा और ऐसा ही प्रबन्ध होना चाहिए। 'शिक्षा' एक तरह का फल है, और 'मा फलेषु कदाचन' की मर्यादा इस फल को भी बाँध लेती है। 'शिक्षा के लिए कोई काम करना,' एक सकाम कर्म हुआ। उसमें 'इदमद्य मया लब्धं' आज मुझे यह मिला, 'इदं प्राप्स्ये'—कल मैं उसे भी ले लूँगा, इत्यादि वासनायें आ ही जाती हैं। इसलिए इस 'शिक्षा के मोह से' छूटना चाहिए। जो इस मोह को छोड़ देता है, वही अच्छी से अच्छी शिक्षा प्राप्त करता है। माँ, बीमार हैं। उनकी सेवा करने से मुझे बहुत कुछ शिक्षा मिल सकेगी। परन्तु इस शिक्षा के लोभ से माताजी

की सेवा न करके 'उनकी सेवा करना मेरा कर्त्तव्य है' इस दृष्टि से उसे करना चाहिए। अथवा माताजी रुग्ण हैं और उनकी सेवा करने से मेरा दूसरी ओर जिसे मैं शिक्षा कहता हूँ—नाश हो रहा है, इस डर से उनकी सेवा न करने से काम न चलेगा।

ज़िन्दगी के लिए सब से पहले, उस मिहनत को की जो हमारे जीवन के लिए अत्यावश्यक है, शिक्षा-प्रणाली में जगह मिलनी चाहिए, ऐसा स्वीकार करने वाले कुछ शिक्षण-शास्त्री यह कहते हैं कि इस परिश्रम को भी 'शिक्षा' की दृष्टि से ही स्थान दिया जाय, पेट भरने की दृष्टि से नहीं। 'पेट पालने' का जो दुहेरा मतलब आज प्रचलित है, उससे घबड़ा कर ऐसी बात कही जाती है। और यहाँ तक यह ठीक भी है। पर मनुष्य को पेट देने में ईश्वर का कोई ख़ास हेतु है। अगर आदमी ईमानदारी से 'पेट भरना' सीखले तो समाज के कई दुःख और पाप अपने आप मिट जायँ। इसी भाव से मनुजी ने 'योऽर्थ-शुचिः—जो आर्थिक दृष्टि से पवित्र है, वही पवित्र माना जाय-जैसी यथार्थ बात कही है। 'सर्वेषामविरोधेन' किस तरह ज़िन्दा रहें, इस शिक्षा में सब तरह की शिक्षा का समावेश हो जाता है। बिना लड़ाई-झगड़े के जीवन-यात्रा पार करना मनुष्य का पहला कर्त्तव्य है। इसी कर्त्तव्य-पालन से उसकी आध्यात्मिक उन्नति होगी। इसी लिए शास्त्रकारों ने शरीर-यात्रा को सफल बनाने के लिए फिर किये जाने वाले कठिन परिश्रम को ही 'यज्ञ' कहा है। 'उदर-भरण नोहे जाणिजे यज्ञ कर्म' वामन पण्डित की यह उक्ति प्रसिद्ध है। 'मैं जीवन-निर्वाह के लिए परिश्रम करता हूँ'—यह भावना अच्छी है। शरीर-यात्रा से अपने साढ़े तीन हाथ शरीर की यात्रा नहीं समझना चाहिए। 'समाज-शरीर की यात्रा' अर्थात् मेरी शरीर-यात्रा, ऐसा उदार अर्थ हर एक मनुष्य के दिल में समा जाना चाहिए। मेरी जीवन-यात्रा, अर्थात् समाज और परमेश्व सेवा यह सभी करण दिल में ठस जाना इस तरह की परमेश्वरी सेवा में अपने शरी खपा डालना मेरा कर्तव्य कर्म है, यह बात ह को समझ लेना चाहिए।

ऐसी शिक्षा एक छोटे से बालक के लि ज़रूरी है। उसे उसकी योग्यता के अनुसार कलह में भाग लेने का अवसर मिलना चाहिए जाना चाहिए। और जीवन को केन्द्र बना कर चारों ओर सब तरह की शिक्षा की चहार बना लेनी चाहिए।

इस तरह हमारे जीवन के दो भाग न होने से एक दम संसार का बोझा सिर पर पड़ जाने अशान्ति फैल जाती है, वह न फैल सकेगी। चुपचाप शिक्षा मिलती रहेगी। परन्तु 'शिक्षा नहीं चिपट पायगा और निष्काम कर्म करने पड़ेगी सो लाभ में।

विनो

तेरा शृंगार

आशा की बिखरी लड़ियों में,मिल धीरे धीरे
तेरे आँगन में सकुचाता, आया है यह प्या
नई-नई है सूर्य-लालिमा, नये-नये उष
नया-नया कलरव अलियों का, नये-नये उर
नई-नई है विटप-वल्लियाँ, नई-नई कुसुम
नये-नये सुरभित उपवन हैं, नई-नई कोमल
आज वसन्ती वेश प्रकृति का, छिटकाता फि
पर, क्यों सूना-सा लगता है, माँ, तेरा सुन्दर

सीताराम वर्मा "

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी

यह संस्था समस्त संसार में अपने जोड़ की एक है। इसके उद्देश्य, स्थिति, रीति, नीति, संचालन, पाठ-विधि, विद्यार्थियों के रहन सहन, आचार-विचार, दिनचर्या आदि सभी बातें अपना एक अनोखापन लिये हुए हैं। अभी तक जितनी अन्य संस्थायें—क्या राष्ट्रीय और क्या राजकीय—भारतवर्ष में हैं, उन सबके उद्देश्यों से गुरुकुल-विश्वविद्यालय का उद्देश्य इतना भिन्न है कि साधारणतया उसकी कल्पना भी नहीं हो सकती। यदि राजकीय संस्थाओं, स्कूल-कॉलेजों को बनाने में सरकार का उद्देश्य भारतीय सभ्यता का यूरोपियन सभ्यता के घातक प्रभाव से नाश करके हों के निर्लेप मस्तिष्कों को भाषा, भाव और दिनचर्या तक में दास बना लेने का है, तो इसके विपरीत गुरुकुल-विश्वविद्यालय का उद्देश्य 'प्राचीन आर्य सभ्यता कों जागृत करके, देश की कुरीतियों और कुप्रथाओं से दूर करके, उनमें ब्रह्मचर्य, चरित्र और शील के बल को क्रियात्मक रूप से उत्पन्न करके, उसको अपनी निजी दुरवस्थाओं और ैशिक दुष्प्रभावों के बंधनों से मुक्त करके, उसमें धर्म, राज्य, सामाजिक और वैयक्तिक जीवन में स्वच्छन्द, स्वतन्त्र और तपस्यामय जीवन को उत्पन्न करना है।

मुसलमानों की आततायी नीति और छूआछूत, बाल-विवाह, वृद्ध-विवाह आदि सामाजिक कुरीतियों ने हिन्दुओं को मरणोन्मुख कर ही दिया था। इसपर मद्य-मांस-सेवन और फ़ैशन से पूर्ण ईसाइयत के आघात ने आर्य संसार का सर्वथा लोप कर देने के आसार दिखाये। महर्षि दयानन्द के करुणा-पूर्ण हृदय ने आर्य जाति को घोर संकट से मुक्त करने के लिए जहाँ विशुद्ध प्राचीन वैदिक धर्म की घोषणा की, वहां स्वराज्य की घोषणा और प्राचीन ब्रह्मचर्य-साधना-पूर्वक गुरुकुल-शिक्षा का सिंहनाद भी किया। आर्य संस्कृति के उस महान नेता ने दास बनाने वाले सरकारी शिक्षणालयों के दुष्प्रभावों को रोकने और स्वयं शक्तिशाली बनने के लिए तपस्या से बल-साधन करने के अर्थ 'गुरुकुल-शिक्षा' को ही मुख्य साधन रूप से जनता के सामने रक्खा।

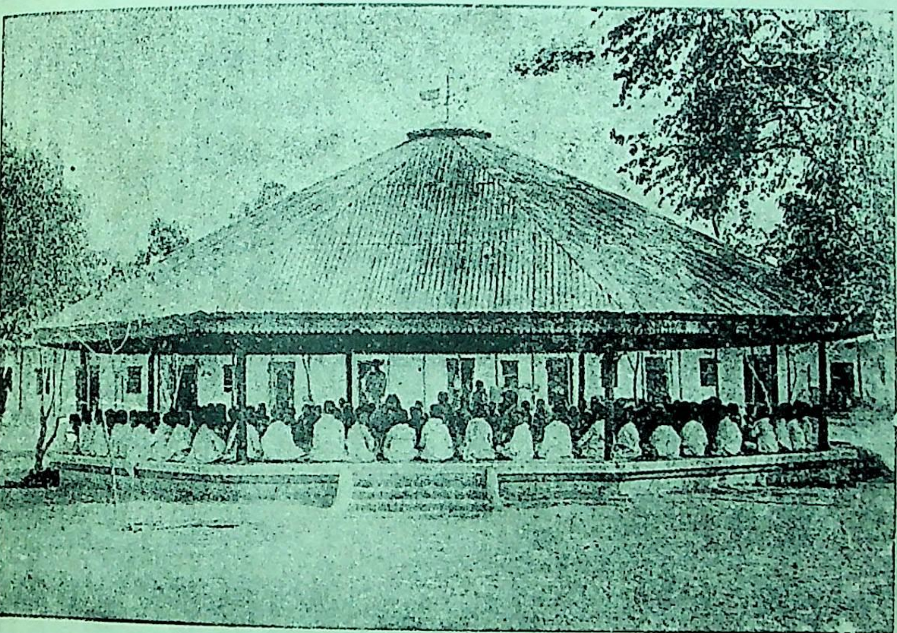

गुरुकुल की यज्ञशाला

उस योगी के दिये प्रकाश की एक प्रखर किरण देश के स्वर्गीय नेता स्वामी श्रद्धानन्दजी के हृदय में अपना गहरा असर कर गई। बस उसको गुरुकुल बनाने की अहर्निश धुन लगगई। इस लगन ने उस महात्मा को एक दृढ़ व्रत धारण कराया। 'गुरुकुल' की साधारण योजना तैयार करके उन्होंने पंजाब की आर्य-प्रतिनिधि सभा के सामने पेश की, और प्रतिनिधि सभा ने भारतीय संस्कृति के सच्चे उपासक, सच्चरित्र, प्राचीन साहित्य विशेषतः वेद के धुरन्धर विद्वान् और देश के निःस्वार्थ तपस्वी और त्यागी सेवक उत्पन्न करने के लिए उस योजना को स्वीकार कर लिया। महात्मा मुंशीराम जी (स्वामी श्रद्धानन्द) ने अपनी वकालत से किनाराकशी

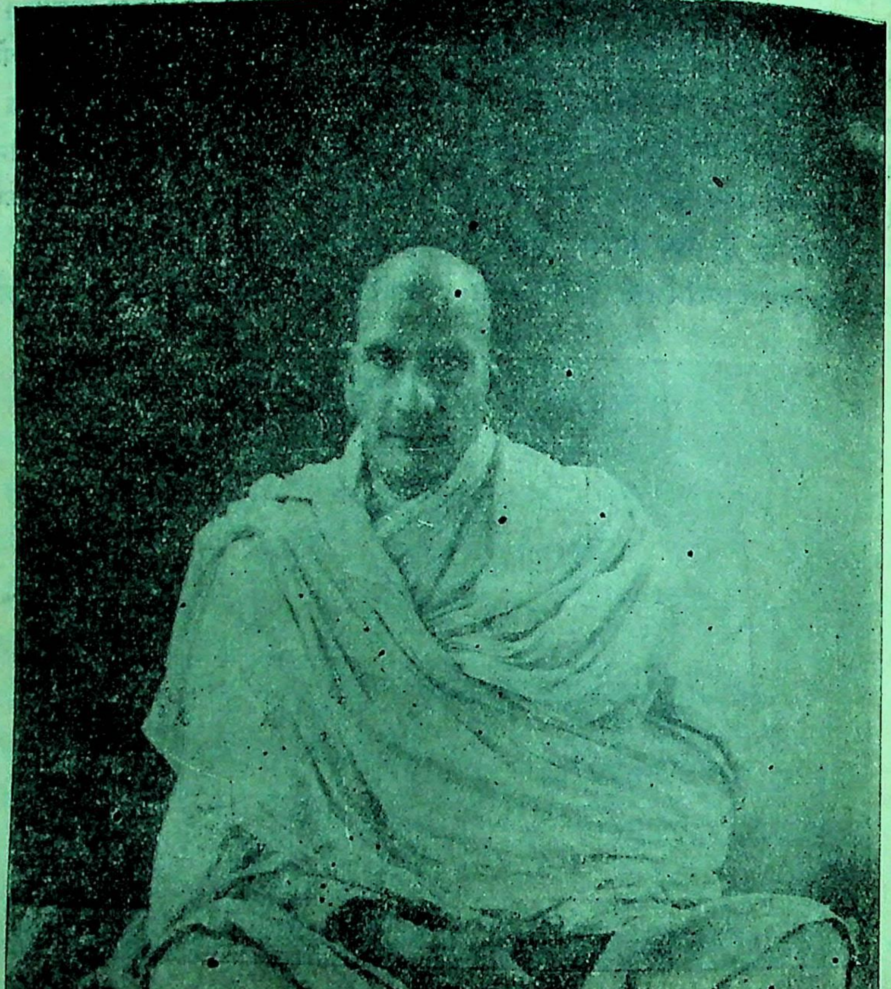

गुरुकुल के संस्थापक
(स्वर्गीय स्वामी श्रद्धानन्दजी)

उसी समय अपना घर छोड़ दिया और प्रतिज्ञा की ना ३० सहस्र रुपया एकत्र किए घर न लौटूंगा। ढ़-प्रतिज्ञ आत्मा ने अनवरत परिश्रम करते हुए पंजाब, प्रांत में भ्रमण करके उतना द्रव्य एकत्र कर लिया और सहायकों को साथ लेकर हरद्वार के पर्वतों में गुरुकुल लिए स्थान की खोज में निकल पड़े। उनके हृदय में न वैदिक सभ्यता के क ऋषियों-महर्षियों घर किये हुए थे। भी अपने गुरुकुला- को हिमाचल की घाटियों में बसाकर से गौतम, कणाद समान युग-परिवर्त्ती महर्षि तथा देश जाति के निर्भीक उत्पन्न करने की में थे। इन महान् से प्रेरित होकर कुल के लिए हरद्वार उत्तर के पर्वतों में ने कितने ही स्थान । अन्त में कांगड़ी के अधिपति दान- महात्मा मुन्शी अमर जी ने सात्विक से प्रेरित होकर २४ रुपये और कांगड़ी तथा उसके साथ की १२०० बीघे भूमि दान देकर इस पुण्य कार्य में बंटाया। यहीं हिमाचल के आंचल और पवित्र की गोद में आज से २६ वर्ष पूर्व उस महात्मा ने फूस की झोंपड़ी डालकर गुरुकुला- नींव डाली। जालन्धर में स्थापित वैदिका- और गुजरांवाला गुरुकुल के केवल २७ छात्र सबसे प्रथम उस घने जंगल की झोंपड़ियों में लाये गये। उस समय गुरुकुल-भूमि का दृश्य बड़ा भयानक था। जंगली झाड़ियों, पेड़ों और सरपत के जंगलों से समस्त जंगल व्याप्त था। वन के भयंकर जानवर शेर, चीता, हाथी और रीछ, सूअर आदि पहाड़ों से बराबर उतर आते थे। साँपों और बिच्छुओं की कमी न थी। इन सब भय-बाधाओं के होते हुए भी गुरुकुलाश्रम स्थापित हो गया और पंजाब तथा संयुक्तप्रान्त में विशेष रूप से और अन्य प्रान्तों में सामान्य रूप से गुरुकुल-शिक्षा-प्रणाली का आन्दोलन होने लगा। प्रायः सभी प्रान्तों से प्राच्य संस्कृति के प्रेमी माता-पिता अपने बालकों को गुरुकुल में प्रविष्ट कराने के लिए लाने लगे। प्रथम स्थापना के अवसर पर ही यज्ञवेदी में ५२ ब्रह्मचारियों का उपनयन वेदारम्भ संस्कार हुआ। प्रति वर्ष बराबर ब्रह्मचारियों की संख्या बढ़ती गई। ६, ७ वर्षों के बाद ही अनुभव होने लगा कि गुरुकुल-शिक्षा का जनता ने स्वागत किया है। क्योंकि प्रवेश के अवसर पर गुरुकुल में अधिक छात्र प्रविष्ट होने के लिए आने लगे। यहाँ तक कि सैकड़ों माँ-बाप अपने बालकों को निराश होकर लौटा ले जाते थे; क्योंकि गुरुकुल के अधिकारी लोग सबको प्रविष्ट करने में असमर्थ थे। इसके बाद भिन्न-भिन्न स्थानों में शाखायें खोलने का विचार हुआ—मुलतान, कुरुक्षेत्र में शाखायें खोली गई और

गुरुकुल के निर्भीक ब्रह्मचारी
(हाकी खेलने के डंडों से चीते को मार डाला)

कुछ वर्षों बाद झझ्झर और इन्द्रप्रस्थ आदि में भी शाखायें खोली गईं। आज गुरुकुल की सात शाखायें भारतवर्ष के भिन्न-भिन्न स्थानों पर खुल चुकी हैं, जिनमें क़रीब एक हज़ार विद्यार्थी पढ़ते हैं। अब पूर्वीय आफ्रिका में भी एक शाखा खोलने का विचार हो रहा है।

गुरुकुल का जीवन

नगरों के दूषित वातावरण से बहुत दूर पर प्रकृति की स्वच्छ, निर्विकार, प्रभावोत्पादक, स्वच्छन्दतामय गोद में गुरुकुल के ब्रह्मचारियों का ब्रह्मचर्य धारण करके विद्योपार्जन करने के व्रत में दीक्षित होना कुछ अभिप्राय रखता है। ६ वर्ष से ८ वर्ष तक के बालकों को ही गुरुकुल में प्रविष्ट किया जाय; उसे नंगे पैर, नंगे सिर, रख कर कठोर तख़्तों पर सुलाने और सादे वस्त्र पहन कर सादा अन्न खाकर ब्रह्मचारी रहकर कम से कम १६ वर्ष तक घर के समस्त प्रेम-पाश के बन्धनों की उपेक्षा करके तपोमय जीवन व्यतीत करने में कोई रहस्य है। गुरुकुल के ब्रह्मचारियों के दैनिक जीवन की कल्पना करना बहुत ही कठिन है। नित्य प्रातःकाल, खूब तड़के, सूर्योदय से बहुत पूर्व, ४ बजे उठना, उठते ही वेदमन्त्रों से ईश्वर-स्तुति करके तुरन्त शौचादि से निवृत्त हो कर प्रतिदिन प्रातःकाल की स्वच्छ वायु में व्यायाम करना, और फिर प्रातः शीतल जल से बारहों मास स्नान करना, श्रद्धा-पूर्वक नित्य प्रातः सायं सन्ध्या-वन्दन और अग्निहोत्र करना, और नियम से ९ बजे रात्रि को प्रार्थना-मन्त्रों का पाठ करके सो जाना, बारहों मास गर्मी, सर्दी, वर्षा आदि किसी भी ऋतु की अपने नित्य-कर्मों के पालन में पर्वा न

करना, नंगे सिर और नंगे पैर बारहों मास समानभा
रहना, कठोर-शय्या, तख़्त, या भूमि पर सोना आदि तपोम
जीवन के साथ-साथ प्रतिसप्ताह भयंकर जंगलों से भरे पर्व
की घाटियों में विचरना और प्रबल वेग से बहती हुई
धाराओं में तैरना, और प्राकृतिक जीवन के सभी संकटों
अपनेको सुअभ्यस्त करना, यह गुरुकुल के जीवन का क्रिया
त्मक रूप है। इसको चाहे जब वहाँ जा कर देखा जा सक
है। ऐसा तपस्या-मय जीवन अभी तक गुरुकुलों के अति
अन्य किसी भी सरकारी या ग़ैर-सरकारी छात्रालय में
रूप से देखने को भी नहीं मिल सकता।

गुरुकुल शहरों से बहुत दूर घने जंगल में स्थित
परन्तु इससे यह न समझना चाहिए कि यहाँ के विद्या
समाज और
से पृथक् र
हैं। देश
जाति की से
तो इस सं
का प्रधान ल
है। ये
यहाँ के वि
र्थियों के दिलों
कूट-कूट
भरे हुए हैं
दक्षिण आफ्रि
के सत्याग्रह में पहले-पहल गुरुकुल के ही विद्यार्थियों ने मज़
करके महात्मा गाँधीजी के पास सहायता भेजी थी। इ
बाद भी समय-समय पर ब्रह्मचारियों ने दूध-घी छोड़
या उपवास करके तिलक-स्वराज्य फ़ण्ड, मलाबार पीड़ि
फ़ण्ड, गुजरात अकाल-फ़ण्ड आदि में सैकड़ों रुपया भेजा है
गढ़वाल के भयंकर अकाल के समय तो उन्होंने अश्र
कार्य किया। गुरुकुल के आस-पास के गाँवों में फूस
झोंपड़ों में बहुत बार आग लग जाती है। उस समय ब्रह्म
बड़े उत्साह और साहस के साथ ग्राम की सम्पत्ति तथा
बूढ़े और उनके गाय, बैल आदि पशुओं की रक्षा करते
ऐसे अवसर गुरुकुल के जीवन में बहुत आये हैं।

गुरुकुल के ब्रह्मचारियों द्वारा बनाया गया गंगा का बांध

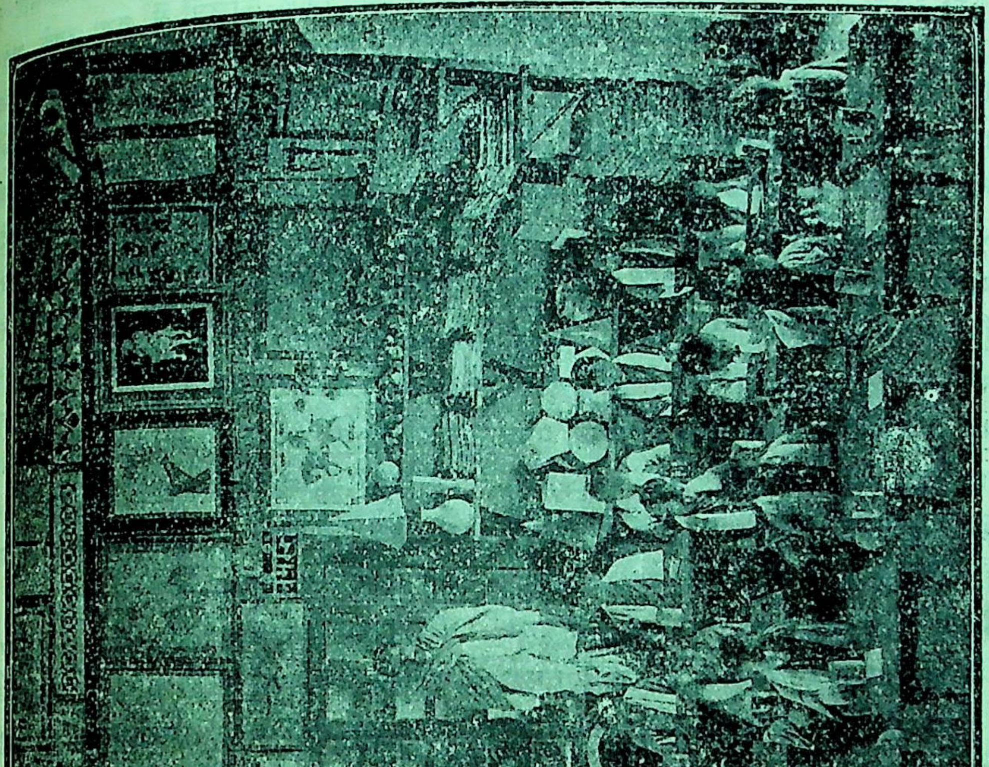

गुरुकुल की चित्रशाला

गुरुकुल-जीवन की सबसे बड़ी विशेषता वहाँ का सदाचार-मय जीवन है। योग्य अधिष्ठाता चौबीस घंटे ब्रह्मचारियों के साथ रह कर उनकी प्रत्येक चेष्टा और क्रिया का निरीक्षण करते हैं। ऐसा निरन्तर सत्संग, और सुव्यवस्थित निरीक्षण भी सिवाय गुरुकुलाश्रमों के अन्य छात्रालयों में देखने को नहीं मिल सकेगा। एक साथ एक पोशाक में रहते हुए ग़रीब और लखपति का बालक दोनों समान भाव से एक आसन पर बैठते-उठते खाते और पीते हैं। उनमें कभी आर्थिक विषमता के विचार ही उत्पन्न नहीं होते और न इस कारण कभी कलह ही उत्पन्न होती है। भोजनशाला में ३०० विद्यार्थियों का प्रतिदिन एक पंक्ति में बैठ कर भोजन करना, ऊँच-नीच का विचार न रखना और "समानी प्रपा सहवो अन्न भागः!" इस वैदिक आदर्श का व्यावहारिक सत्य परिपालन केवल गुरुकुल में ही आप नित्य देख सकते हैं। यही सच्चा साम्यवाद है। देश के नेताओं का अब बड़ा ज़ोर अस्पृश्यता को दूर करके अछूतोद्धार करने पर लगा हुआ है परन्तु गुरुकुल में अस्पृश्यता का नितान्त अभाव है। कई जन्म के अस्पृश्य विद्यार्थी वहाँ पढ़ते हैं। इस प्रकार से गुरुकुल के ब्रह्मचारी परस्पर प्रेम से रहते हुए अपने आदर्शों का अभ्यास करते हैं। इस प्रेममय जीवन से गुरुकुल के ब्रह्मचारियों में पारस्परिक सेवा का एक अद्भुत भाव पाया जाता है। रोगियों की सेवा के लिए गुरुकुल के ब्रह्मचारी ही रात-दिन जाग-जाग कर अपना कर्त्तव्य पालन करते हैं। गुरुकुल के इस पारिवारिक प्रेममय जीवन ने गुरुकुल को सचमुच आचार्य प्रजापति का ऐसा विशाल परिवार बना दिया है, अन्य छात्रालयों या शिक्षालयों में तो जिसकी कल्पना करना भी कठिन है। यह आश्रम–जीवन गुरुकुल की बहुत बड़ी विशेषता है। विद्यार्थियों के रहन-सहन, भोजन, कपड़े, पुस्तकें तथा अन्य सब आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए गुरुकुल के अधिकारी ही उत्तरदायी हैं। इन सब ख़र्चों के लिए माता-पिता से शुल्क लिया जाता है। पहली पांच श्रेणियों तक १५) रु० मासिक, पांचवीं से दसवीं तक २०) रु० और महाविद्यालय में २५) रु० मासिक लिया जाता है, जो आजकल की महंगाई को देखते हुए बहुत अधिक नहीं है। माता-पिता शुल्क देकर हर तरह से निश्चिन्त हो जाते हैं। शिक्षा निःशुल्क ही दी जाती है।

पदाधिकार का प्रलोभन देने वाले और गुलाम पैदा
करने वाले स्कूल-कॉलेजों में तथा उनके अनुकरण में
नागरिक स्कूलों में राष्ट्रीय शिक्षा का सर्वथा अभाव है।
सरकारी स्कूलों का उद्देश्य ही नौकरी और
आदि था। परन्तु अब उस सरकारी शिक्षा का परि
ऐसा घातक सिद्ध हुआ है कि देश के नवयुवकों को सिवा
नौकरी के दूसरा कोई रास्ता ही नज़र नहीं आता। वे तु
से तुच्छ नौकरी पर ही अपना जीवन-सर्वस्व अर्पण कर
हैं। परन्तु राष्ट्र के स्वराज्याकांक्षी नेताओं ने इस दुष्प्र
को बहुत काल पश्चात् सरकार की घातक आसुरी नीति
टक्कर खा खा कर और स्वराज्य-आन्दोलन में ब्रिटिश शास
की ठोकरें खा-खा कर अनुभव किया; और उन्होंने इस प्र
में सरकार के साथ असहयोग का आन्दोलन उठाकर शि
क्षेत्र में भी असहयोग करने के लिए राष्ट्रीय शिक्षणा
और राष्ट्रीय विद्या-पीठों की स्थापना की। परन्तु महा
मुन्शीराम ने आज से २६ साल पूर्व ही राष्ट्रीय शिक्षा
महत्त्व को भली भाँति समझ लिया था। गुरुकुल को
समाज और धर्म के सेवक तैयार करने थे, उसे राज
सेवक और राजा के वेतन भोगी ग़ुलाम एवं जी हुज़ूर
साहब पैदा नहीं करने थे; अतः गुरुकुल के प्रवर्त्तक ने
कारी सहायता को ठुकरा दिया और जनता से दान-स्व
में प्राप्त पवित्र सहायता को भारी महत्त्व दिया। वास्त
राष्ट्रीय शिक्षा का उद्देश्य होना भी यही चाहिए। इसी
कई-बार सरकारी सहायता को स्वीकार नहीं किया
और न उसे पाठ विधि-आदि में हस्तक्षेप करने दिया
इस स्वतन्त्र-राष्ट्रीय शिक्षा के वितरण में गुरुकुल ने
२६ वर्ष बड़ी सफलता से व्यतीत किये हैं। और इतने
जीवन में गुरुकुल ने उन बड़ी-बड़ी समस्याओं को सरल
दिया है, जिनको अभीतक हिन्दू–विश्वविद्यालय और अन्य
विद्यापीठ भी सरल नहीं कर सके हैं।

गुरुकुल में शिक्षा का माध्यम हिन्दी है। स्कूलों
अंग्रेज़ी भाषा ने छात्रों के दिमाग़ गुलाम बना दिये
अंग्रेज़ी का माध्यम होना मनो-विज्ञान के सिद्धान्तों के
प्रतिकूल है। आज भारतीय नेता यह समझ रहे हैं

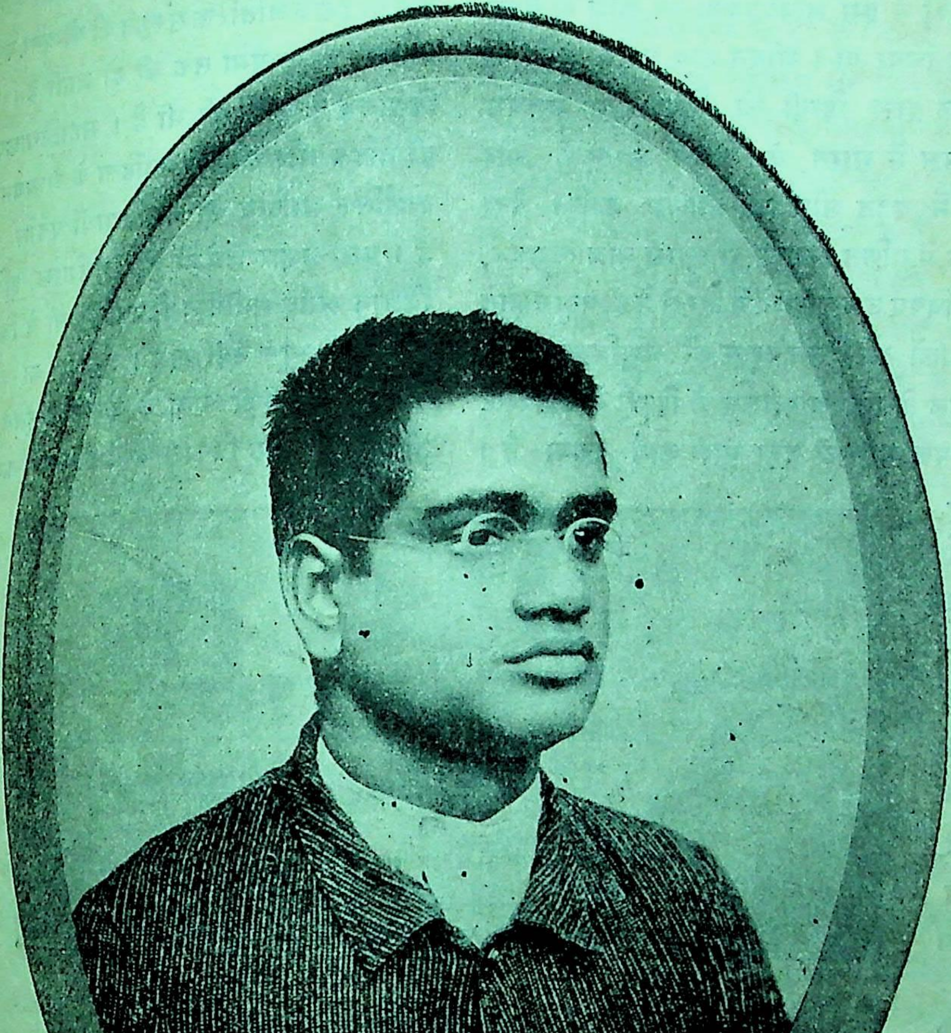

आचार्य रामदेवजी

शिक्षा का माध्यम हिन्दी होना चाहिए । स्कूलों में भी शनैः-शनैः हिन्दी को अधिक स्थान दिया जा रहा है। प्रन्तु गुरुकुल के संचालकों ने इस आवश्यकता को आज से बहुत पहले से ही समझ लिया था । श्रीयुत टी० एल० वास्वानी ने कहा था—गुरुकुल द्वारा हिन्दी को शिक्षा का माध्यम बना देना मेरी समझ में भारत के शिक्षा सम्बन्धी और सामाजिक जीवन में बहुत शीघ्र एक मौलिक क्रान्ति पैदा कर देगा । गुरुकुल में गणित, विज्ञान, इतिसास, पाश्चात्यदर्शन, रसायन आदि सब विषय उच्च कक्षाओं में हिन्दी में ही पढ़ाये जाते हैं। पढ़ने-पढ़ाने वालों को किसी प्रकार की असुविधा प्रतीत नहीं होती । गुरुकुल के इस आन्दोलन ने हिन्दी के उच्च कोटि के साहित्य को उत्पन्न करने में बड़ा भारी कार्य किया है। विज्ञान के 'भौतिकी' 'रसायन' एवं 'गुणात्मक विश्लेषण आदि कई वैज्ञानिक ग्रन्थ भाषा में प्रकाशित किये गये हैं । अध्यापक महेशचरणसिंह जी रचित 'वनस्पति शास्त्र' के तीनों भाग गुरुकुल के हिन्दी-प्रेम का फल हैं । पारिभाषिक (Technique) शब्दों को भी हिन्दी में करने की तरफ़ गुरुकुल ने काफ़ी ध्यान दिया है । माध्यम हिन्दी होने से उनके मस्तिष्कों की अधिक शक्ति ज्ञान की अधिक मात्रा ग्रहण करने में लगती है और अस्वाभविक विदेशी भाषा के रटने और उसमें दिमाग़ खपाने में नहीं लगती । साथ ही इसके उनको अपने पढ़े विषय पर स्वतन्त्रता-पूर्वक तर्क करने का भी पर्याप्त अवसर मिलता है । इसका फल यह हुआ है कि जितने समय में सरकारी स्कूल का क्षात्र मैट्रिक पास करता है उतने समय में गुरुकुल का ब्रह्मचारी मैट्रिक तक के आवश्यक और वैकल्पिक समस्त विषयों को समाप्त कर लेता है।

रसायन, भौतिक विज्ञान में उसकी योग्यता एफ़० एस० सी०
तक होती है और इतिहास में विचार स्वतन्त्र और राष्ट्रीय
होते हैं। इस के अतिरिक्त संस्कृत की योग्यता पञ्जाब के शास्त्री एवं
बनारस की मध्यमा तक की हो जाती है। यही दशा मह
विद्यालय के छात्रों की भी है । महाविद्यालय के ४ वर्षों
ही वैदिक और लौकिक साहित्य के अध्ययन के साथ-सा
दार्शनिक साहित्य का भी विद्यार्थी पर्याप्त अध्ययन कर ले
हैं । इसी प्रकार अंग्रेज़ी और अर्थशास्त्र, इतिहास, राजनीति
विज्ञान आदि मनोनीत विषयों में भी वे किसी भी सरका
कॉलेज से न्यून नहीं रहते । अंग्रेज़ी का वातावरण न हो
से वे चाहे अंग्रेज़ी भाषा के बोलने में इतने अभ्यस्त न
तो भी मानसिक विकास में वे किसी से कम नहीं । गुरुकु
का विद्यालय
अंग्रेज़ी
अपने कॉले
में लिए वि
विषय का
ए० होकर
साथ ही वै
और लौ
साहित्य
पूर्णज्ञाता
है । संक्षेप
हम यह नि

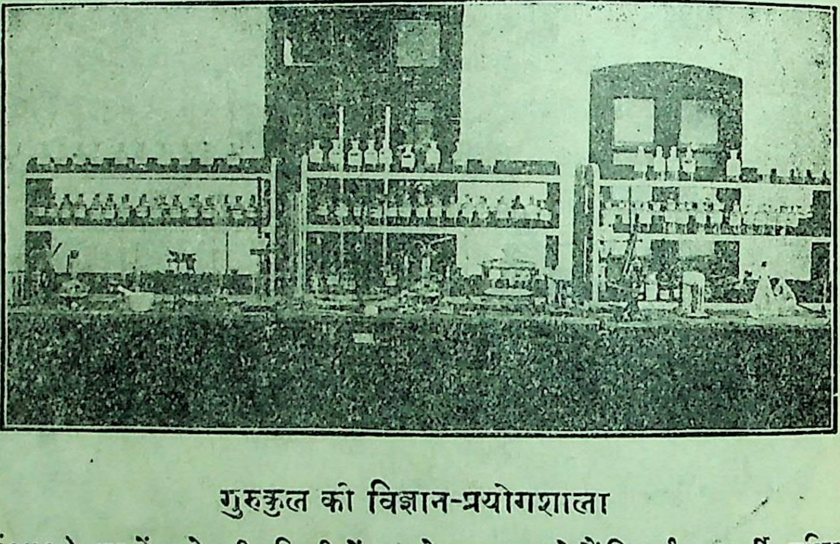

गुरुकुल की विज्ञान-प्रयोगशाला

कोच कह सकते हैं कि वर्तमान पूर्वी—पश्चिमी सभ्यताकी दृ
अपने को स्वतन्त्र भाव से रखकर जीवन-निर्वाह करने-
शुशिक्षित आर्य नागरिक उत्पन्न करने में गुरुकुल विश्ववि
सबसे अधिक सफल हुआ है । वैदेशिक शासन में जब
कि राष्ट्रीय शिक्षणालयों के छात्रों को यह सरकार रो
नहीं देती, अपने व्यवसायों के अतिरिक्त देशी व्यवसायों
चलने नहीं देती, तब तक गुरुकुल-विश्वविद्यालय के स्ना
का 'आर्थिक' मूल्य चाहे जनता न समझे, परन्तु जो
गुरुकुल उत्पन्न कर रहा है उसकी देश को आवश्य
अवश्य है ।

वर्तमान प्रगति

गुरुकुल-विश्वविद्यालय की वर्तमान प्रगति बड़ी व्या- …है। आजकल इस विश्व विद्यालय में तीन महाविद्यालय …त हैं—साधारण महाविद्यालय (Arts College), …महाविद्यालय, और आयुर्वेद महाविद्यालय। और …ल्प महाविद्यालय की भी योजना हो रही है। तीनों कालेजों की पढ़ाई चार साल की है, इन चार …लों के बाद भी कोई विद्यार्थी गुरुकुल में दो वर्ष अधिक …कर विद्यावाचस्पति की परीक्षा दे सकता है। वेद कॉलेज …दिक साहित्य, प्राच्य दर्शन, और संस्कृत साहित्य पर …क ज़ोर दिया जाता है, परन्तु इसके साथ-साथ पाश्चात्य …, रसायन (कैमिस्ट्री), इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, …आदि विषयों में से भी विद्यार्थी को एक विषय चुनना …ता है। इस कॉलेज में सब धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन …ाया जाता है। दूसरे आर्ट कॉलेज में वेद, प्राच्यदर्शन, …और हिन्दी के साथ-साथ अँग्रेज़ी साहित्य भी पढ़ाया …ता है। उपर्युक्त विषयों में से भी कोई एक विषय लेना …ता है। अर्थशास्त्र का पाठ्यक्रम विशेष ध्यान देने योग्य …दूसरे कॉलेजों में पाश्चात्य अर्थशास्त्र को ही मुख्यता दी …ती है, परन्तु उसके नियम भारत में बिलकुल लागू नहीं …। भारतीय अर्थशास्त्र की भित्ति का आधार दूसरा ही …यहाँ आर्थिक इकाई शहर नहीं, गाँव है। गुरुकुल में …शास्त्र के पाठ्यक्रम का उद्देश्य सिद्धान्तों के ज्ञान से पूर्व …का क्रियात्मक ज्ञान कराना है। इसलिए वहाँ उसमें …ों की आर्थिक व्यवस्था, पंचायत, ग्राम का लेन-देन, …िक जीवन, भारतीय कृषकों और मज़दूरों की सम- …ओं पर अधिक ध्यान दिया जाता है। इसके क्रियात्मक …के लिए विद्यार्थियों को ग्रामों में ले जाया जाता है। …सम्बन्धी समस्या के ज्ञान के लिए उन्हें किन्हीं मिलों …जाने का प्रबन्ध करने का भी विचार हो रहा है। आयुर्वेद महाविद्यालय में प्राच्य चिकित्साशास्त्र के …साथ पाश्चात्य चिकित्सा का भी आवश्यक परिज्ञान …या जाता है। शवच्छेद (disaction) आदि का भी …प्रबन्ध है। विद्यार्थी आस-पास के ग्रामों में जाकर क्रियात्मक अनुभव भी पाते हैं। विद्यार्थियों की अनुभव-वृद्धि के लिए यहाँ एक फ़ार्मेसी भी स्थापित कर रक्खी है, जिसमें विद्यार्थी दवाइयाँ तय्यार करते हैं। फ़ार्मेसी की सारी आय आयुर्वेद महाविद्यालय को ही दी जाती है। रसायन के विद्यार्थी व्यावसायिक रसायन भी पढ़ते हैं, इनको समय-समय पर ज्ञान वृद्धि के लिए देश के कारख़ानों का भी निरीक्षण कराने को बाहर ले जाया जाता है। इस समय इन तीनों महाविद्यालयों में २० अध्यापक हैं।

श्रीयुत आचार्य रामदेवजी गुरुकुल विश्वविद्यालय को बहुत अधिक उपयोगी तथा विस्तृत करने के लिए प्रयत्नशील हैं। उनका प्रयत्न इस बात की ओर है कि गुरुकुल भारतवर्ष की तमाम राष्ट्रीय और सामाजिक चेष्टाओं का केन्द्र बन जाय। वह गुरुकुल को स्वतंत्र भारतीय राष्ट्र के चरित्र-निर्माण का विद्यालय बनाना चाहते हैं। अभी वह शिल्पविद्यालय, कृषिविद्यालय आदि कई कालेज खोलने का विचार कर रहे हैं। इसी तरह आर्ट कालेज में विदेशों की भिन्न-भिन्न भाषायें पढ़ाने का प्रबन्ध भी शीघ्र किया जायगा।

इस प्रकार महाविद्यालय विभाग में उच्चकोटि के ग्रन्थों के पठन-पाठन के अतिरिक्त क्रियात्मक रूप में बुद्धिशक्ति के स्वच्छन्द विकास के लिए और भी कई उपयोगी साधन प्रस्तुत किये जाते हैं; जैसे प्रतिवर्ष ब्रह्मचारियों की सरस्वती-यात्रा होती है; इसमें वे ऐतिहासिक प्राचीन स्थानों, पर्वतीय प्रान्तों और अन्यान्य आवश्यक विद्योपयोगी स्थलों पर भ्रमण करते और ज्ञान प्राप्त करते हैं। गुरुकुल पार्लमेंट में, जो प्रतिवर्ष होती है, देश की सुव्यवस्था के लिए उत्तम विधान (बिल) प्रस्तुत करके, उनपर विवाद करने का अभिनय करके ब्रह्मचारी स्वच्छन्द रीति से अपनी बुद्धि का विकास करते हैं। इसमें उन्हें बाहर की राज्य-पद्धतियों का भी अच्छा ज्ञान हो जाता है।

इसके अतिरिक्त ब्रह्मचारियों की अपनी कई सभायें और परिषदें हैं। जैसे साहित्य-परिषद्, वाग्वर्धिनी सभा, संस्कृतोत्साहिनी, और कॉलेज यूनियन आदि। इन सभाओं के मासिक और साप्ताहिक अधिवेशनों में ब्रह्मचारी अपनी लेखनकला और वक्तृत्वशक्ति की वृद्धि करते हैं। इनका संचालन स्वयं ब्रह्मचारी ही करते हैं। इन सभाओं के अपने मासिक

मुखपत्र हैं, जिनको प्रतिमास ब्रह्मचारी ही चित्रों, लेखों, कविताओं से सुसज्जित करके प्रकाशित करते हैं । इससे विद्यार्थियों को पत्र-सम्पादन कला की भी अच्छी शिक्षा प्राप्त होती है । वार्षिक लम्बे अवकाशों में तो दैनिक पत्र भी निकलने लगते हैं । गुरुकुल के छोटे से राज्य की यह पत्र भी एक अपूर्व शोभा हैं ! इनसे ब्रह्मचारियों के सामाजिक और राष्ट्रीय जीवन की क्रियाशील प्रगति का परिचय मिलता है।

यदि किसी विश्वविद्यालय की सफलता की कसौटी उसके स्नातकों पर निर्भर है, तब गुरुकुल सबसे अधिक सफल विश्वविद्यालय कहा जा सकता है । इस समय तक इसके दो सौ के क़रीब स्नातक निकल चुके हैं, जो भिन्न-भिन्न कार्यों द्वारा भारत की सेवा कर रहे हैं। प्रति पांच स्नातकों में से एक स्नातक लेखक है, जो अपने लेखों तथा पुस्तकों द्वारा हिन्दी साहित्य की सेवा कर रहा है । बहुत से स्नातक विदेशों में उच्च शिक्षा प्राप्त कर आये हैं । गुरुकुल ने वेद के अनेक विद्वान् पैदा किये हैं । राष्ट्रीय कार्य में भी बहुत से स्नातक प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं । आर्यसमाज के क्षेत्र में भी कम स्नातक काम नहीं कर रहे । ८९ प्रति शतक स्नातक सार्वजनिक कार्य कर रहे हैं । फिर भी आजीविका के प्रश्न को हल करने के लिए अधिकारी शिल्प-विद्यालय की तैयारी कर रहे हैं ।

कुछ वर्ष पूर्व गंगा की भयंकर बाढ़ से गुरुकुल को बहुत हानि पहुँची थी । इसलिए पंजाब प्रतिनिधि सभा ने विचार किया कि गुरुकुल का स्थान-परिवर्तन करके कनखल और ज्वालापुर के बीच में गंगा की नहर के किनारे स्थापित किया जाय यह स्थान भी बहुत रमणीक हैं । इसके लिए गुरुकुल को लाखों रुपये की आवश्यकता है । इसकी अपनी शक्ति के अनुसार पूर्ति करना प्रत्येक भारतीय का कर्तव्य है । गुरुकुल अपने धार्मिक, सामाजिक, राष्ट्रीय, और आध्यात्मिक तपोमय शिक्षा की एकमात्र अनोखी संस्था है । भारतवर्ष की प्रायः सब प्रकार की आवश्यकतायें गुरुकुल से पूर्ण हो सकती हैं । इसलिए हमारा यह कर्तव्य है कि हम वहां अपने लड़कों को भेजें; और जो धनी हैं, वे धन से भी सहायता दें।

जयदेव विद्यालङ्कार

यूरोप में साम्यवाद

(१)

सृष्टि के क्रम-विकास का इतिहास बतलाता है मानव-स्वभाव बहुत प्रगतिशील है। अधिक समय तक एक ही दशा में नहीं रह सकता। मान मस्तिष्क अपने सुख और अपनी सुविधा के लिए कोई कोई नई बात ढूँढ ही निकालता है । प्राचीन काल के शा कला, संगीत, वाद्य आदि का आधुनिक रूप कुछ और है । दोनों में ज़मीन-आसमान का अन्तर है। नित्य नई ची का आविष्कार होता रहा है । शासन-प्रणालियाँ तो दुनि में न जाने कितनी चलीं और कितनी मिट गईं । एकतं वाद, श्रेरतीतंत्रवाद और प्रजातन्त्रवाद आदि कितने ही 'वा विश्व के रंग-मञ्च पर आये और लुप्त हो गये, अथवा नये रूप में फिर से प्रचलित हो गये। परन्तु अब भी मान मस्तिष्क स्थिर नहीं, वह तो अभी बहुत कुछ ढूँढ निका में व्यग्र है ।

इसमें कोई शक नहीं कि दुनिया में नई-नई मशी कई घातक यन्त्रों, गैसों और सुख-समृद्धि बढ़ाने वाले नये आविष्कारों या साधनों का जन्म हो रहा है। पर इसमें भी कोई शक नहीं कि, इस उन्नति की घुड़-दौड़ साथ ही संसार में कलह-अशान्ति की भी वृद्धि हो रही जिसके फल-स्वरूप बहुत से नये आन्दोलन भी चल पड़े हैं इंग्लैण्ड, फ्रान्स, अमेरिका, जर्मनी आदि पाश्चात्य देशों ऐसे आन्दोलनों में से आज-कल साम्यवाद के आन्दोलन बड़ा ज़ोर है । यह साम्यवाद क्या है ? इसके सम्बन्ध कुछ चर्चा हम 'त्यागभूमि' के पाठकों के सन्मुख चाहते हैं ।

साम्यवाद का अर्थ

इंग्लैण्ड के मज़दूरदल के नेता और भूतपूर्व प्रधान श्री रेम्ज़े मैकडोनल्ड के शब्दों में "साम्यवाद एक सामाजिक संघटन के लिए प्रयत्न करने की बात कहता ज़ो भूमि, औद्योगिक पूंजी आदि उन आर्थिक साधनों

रखता हो, जो सुरक्षित रूप से व्यक्तियों के हाथ में छोड़े जा सकते ।" साम्यवाद राजनैतिक और आर्थिक यों सुलझाने के लिए पारस्परिक सहायता का एक है। इसका उद्देश है मौजूदा सामाजिक ढाँचे में परिकरना। मानव स्वतन्त्रता का विस्तार करने के लिए एक के रूप में साम्यवाद इस परिवर्तन को उचित ठहराता साम्यवाद की सोशलिज़्म, कम्यूनिज़्म, निहलिज़्म, विज़्म आदि अनेक शाखा-प्रशाखायें हैं । किन्तु, हमने लेख में साम्यवाद को मज़दूर-संघवाद और सोशलिज़्म र्थ ही में प्रयुक्त किया है ।

वर्तमान अवस्था बड़ी भयावह है । पाश्चात्य सभ्यता, नी की सुख-समृद्धि और बिजली की रोशनी को देखबाहर के लोग यह समझते हैं कि यूरोप में भूतल पर है। वहाँ लोग ग़रीबी से भूखों नहीं मरते । साधारण अन्याय और ज़ुल्म की चक्की में नहीं पिसते । किसी में तो बाहर वालों का यह विचार ठीक भी है, किन्तु या नहीं । श्री मेलकाक, बूथ और राउनट्री आदि अर्थ-शास्त्रियों ने यूरोपीय देशों की दुर्दशा पर बड़ा प्रकाश डाला है । उनका कहना है कि इन देशों में -धन्धों के विस्तार के साथ साथ साधारण जनता में तोष की आग भी फैल रही है । लोग इतना कमा नहीं कि वे अपने परिवार का निर्वाह कर सकें । बीमारी अभाव में लोग आर्थिक कष्ट से बड़ी मुसीबतें झेलते हैं । की समस्या दिन पर दिन जटिल होती जाती है । से काम करने पर भी लोगों को पर्याप्त आमदनी नहीं , इससे उनमें ग़रीबी बढ़ रही है । उद्योग-धन्धों के साथ और व्यापारवाद का सङ्घर्षण हो रहा है । पूँजीपति कम मज़दूरी देकर मज़दूरों से अधिक से अधिक लेना चाहते हैं । और मज़दूर, पूरी मज़दूरी और आर्थिक सुविधाओं के लिए, रात-दिन पूँजीपतियों से ते हैं। वर्तमान प्रणाली ने पूँजीपतियों और साधारण यों में बड़ा भेद-भाव पैदा कर दिया है । इसी कारण वाद के आन्दोलन का जन्म हुआ है । इस आन्दोलन र, मज़दूर और किसानों को आश्रय मिल रहा है । साम्राज्यवादी इस आन्दोलन को 'हौआ' कह रहे हैं ।

आन्दोलन की उत्पत्ति

सांम्यवाद एक प्रवृत्ति है, अपौरुषेय सिद्धान्त नहीं । इसी कारण समय-समय पर इसकी व्याख्या अधिकाधिक व्यापक और सुधरे हुए ढँग से की जाती रही है । आदर्श एक ही है, किन्तु उसकी ओर जाने की दिशायें बदलती रही हैं ।

साम्यवाद (Socialism) शब्द सबसे पहले इंग्लैण्ड में सन् १८३५ ई० में व्यवहार में लाया गया था । उस समय वहाँ प्रसिद्ध साम्यवादी ओवेन और उसके कामों की चर्चा हो रही थी। रीबॉद नाम के एक फ़रासीसी ने सेंटसाइमन और फ़ाउरियर के सिद्धान्तों की व्याख्या करते समय यह शब्द इस्तेमाल किया था । उस समय केवल समाज के पुनः संघटन के सिद्धान्तों का प्रचार करने के लिए यह शब्द व्यवहार में लाया गया था । इसमें तब राजनीति की गन्ध भी नहीं थी । यह केवल सामाजिक संघटन का नैतिक आन्दोलन था ; उसमें भाग लेने वाले 'साम्यवादी आदर्शवादी' (Utopists) कहे जाते थे । इसके बाद मार्क्स एंजिल्स ने लोगों के अधिकारों की चर्चा करके इस आन्दोलन में राजनीति का समावेश किया । तब उन्होंने 'कम्युनिस्ट' (Communist) शब्द की रचना की ।

अब हम क्रमशः भिन्न-भिन्न देशों की साम्यवाद-आन्दोलन की प्रगति और उसकी दिशा पर संक्षिप्त विचार करेंगे ।

फ्रान्स

फ़्रांस की राजक्रांति ने संसार को आशावाद का एक अपूर्व संदेश दिया । इससे पहले वहाँ लोग लिखना, बोलना और आंदोलन करना नहीं जानते थे । इस राज्य-क्रांति ने लोगों को सब काम सिखा दिये । यह समय भूतल पर वसन्तागमन का समय था । उस ज़माने में लोगों को समाज-संघटन करने या कोई आंदोलन खड़ा करने का अनुभव न था । उन दिनों सेंट साइमन नाम के एक व्यक्ति की चर्चा सब जगह सुनी जाती थी । वह सचमुच अपने समय का अद्भुत व्यक्ति था । ४३ वर्ष की उम्र में उसने साम्यवाद पर लिखना शुरू किया, और ८ वर्ष यानी अपनी मृत्यु के समय तक वह मानव-जाति की स्वतन्त्रता की प्राप्ति के साधनों का ढाँचा तैयार करता रहा । उसमें संगटन करने की शक्ति थी ।

उसने अनुभव किया कि समाज की वर्तमान विश्रृंखलता, जो कि ज़मींदारी पद्धति की ओर अग्रसर हो रही है और जिसके कारण व्यापारवाद के आसार अभी से पैदा हो गये हैं, बड़ी घातक है। उसका कहना था कि विज्ञान वेत्ताओं को उद्योग-धंधों की व्यवस्था इस प्रकार सुचारु रूप से करनी चाहिए, जिससे समस्त मानव-समाज का हित हो। सेंटसाइमन ने अपनी अन्तिम कृति The new christianity (नई ईसाइयत) नाम के ग्रन्थ में सामाजिक धर्म के मौलिक सिद्धांत बतलाते हुए कहा है कि मानवीयता बन्धुत्व की तरह है, इसलिए इन्सान को भाई-चारे से काम करना चाहिए। तत्कालीन आर्थिक समस्याओं के संबन्ध में श्री साइमन का स्पष्ट विचार यह था कि जो संपत्ति बड़ी तादाद में जमा की जा रही है, उसके जमा करने वाले उससे स्वार्थ-सिद्धि कर रहे हैं। यही ग़रीबी का मुख्यकारण है, और समाज का यह नैतिक दायित्व है कि अपनी सारी शक्ति लगाकर ग़रीबी का अन्त करे। इस प्रकार नैतिक और आर्थिक सिद्धांतों का सम्मिश्रण ही सेंटसाइमन का साम्यवाद था। उसके जीवन-काल में इन विचारों के अनुयायी बहुत थोड़े थे, परन्तु अपने पीछे वह एक सुदृढ़ सिद्धांत छोड़ गया।

कुछ समय के बाद सेंट साइमन के साम्यवाद (Saint-simonian socialism) की एक शाखा 'कोमटिज़्म' (Comtism) के नाम से खुली; और बाद में इसकी एक शाखा और निकली, जिसकी प्रगति आधुनिक साम्यवाद की ओर होने लगी। इस अन्तिम शाखा के फल-स्वरूप कुछ उत्साही, योग्य और शिक्षित लोगों के एक ऐसे समुदाय का जन्म हुआ, जो एक सामूहिक कोष से अपना काम चलाता था। इस समुदाय से भी कुछ नये विचार प्रकाश में आये। इसके हाथों में समाज-संघटन का विचार और भी परिष्कृत हुआ तथा उसे ऐतिहासिक स्थायित्व मिला। इस समुदाय के जन्म से पूर्व फ़रासीसी समाज में अराजकता की धूम थी। लड़ाई-दंगे और स्वार्थ-संघर्षण से समाज अस्त-व्यस्त दशा में था। उस समय इसने (नये समुदाय ने) छोटी-छोटी जातियों में परस्पर सहानुभूति और सहयोग के भावों का सञ्चार किया, एवं उसमें धार्मिकता की पुट देकर लोगों के हृदयों में नवीन स्फूर्ति पैदा की। सेंट साइमन के विचारों का संपूर्ण यूरोप पर बड़ा प्रभाव पड़ा। उससे उस युग के सामाजिक आन्दोलन में बिलकुल नई जान पड़ी। सेंट साइमन के पहले फ़ाउरियर ने तत्कालीन समाज को उन्नत बनाने के लिए अपने विचार लिपिबद्ध किये थे। किन्तु यह सेंट साइमन के आकर्षक विचारों का ही प्रभाव था कि जिससे किसी न किसी रूपमें फ़ाउरियर का मत जीवित रहा।

फ़ाउरियर ने एक छोटे संघ को शासन-व्यवस्था को जन्म दिया था। उस व्यवस्था को उसने संघ-शासन-प्रणाली (Phalanstery) के नाम से पुकारा है। फाउरियर प्रजातन्त्रवादी था। उसकी चलाई हुई 'फालेन्स्टरी (Phalanstery) की शासन-प्रणाली में संघवाद रूप में प्रजातन्त्र के सिद्धांतों का समावेश था। किंतु, उस समय, वह प्रणाली समाज में प्रचलित न हो सकी। जीवन के अन्तिम समय में फाउरियर ने १० वर्ष तक बड़े धैर्य साथ इस बात का इन्तज़ार किया कि कुछ ईमानदार धनी लोग रुपया जुटा दें, तो इसकी योजना कार्य-रूप में परिणत हो जाय। उसकी योजना पर वाद-विवाद हुए, और बहुत से लोगों ने उसे अमल में लाने के लिए आवश्यक सहायता भी दी। फ़ाउरियर के विचारों के आधार पर पत्र प्रकाशित किया गया, और उसको शासन-व्यवस्था योजना के सहारे प्रयोग किये जाने लगे। सन् १८३७ ६५ वर्ष की उम्र में फ़ाउरियर का देहान्त हो गया। प्रकार फ्रांस की राज्य-क्रान्ति के सामाजिक सिद्धान्तों ख़ाका फ़ाउरियर के, तथा कुछ अंश तक सेंट साइमन दिमाग़ से बाहर निकल कर प्रकाश में आया।

अब फ़्रान्स में दो प्रकार की शासन-प्रणालियाँ प्र में आचुकी थीं। एक तो सेंट साइमन की कुछ योग्य बुद्धिमान लोगों की केन्द्रस्थ शासन-प्रणाली, तथा दू फ़ाउरियर की उत्तरदायी सङ्घवाद शासन-प्रणाली। दोनों सत्यता थी, आगे बढ़ने के लिए स्पष्ट मार्ग दिखाया था और दोनों ही में ग़रीबी की समस्या को हल कर लिए उपाय बतलाये गये थे। इस समय जन-सा बड़ी अस्त-व्यस्त दशा में था। एक ओर प्रजा की लहर लोगों के दिमाग़ों से टकरा रही थी, तो दूसरी व्यापार-वाद की हवा के झोंके लोगों को परेशान कर रहे

१८३१ में एक उबाल आया, उसमें ल्योन्स के मज़दूरों आवाज़ बुलन्द की—"Live working or die ting"—अर्थात् काम करते हुए जियो, या लड़ते हुए ियो। जिस प्रकार एक गडरिया अपनी भेड़ों को किसी से नीचे उतार कर एक बाड़े में बन्द करता है, ठीक प्रकार समय की प्रगति लोगों को एक आन्दोलन में करने के लिए इकट्ठा करने लगी।

ंट साइमन के साम्यवाद के सिद्धान्तों का धीरे-धीरे स हुआ, और आगे चल कर क्रान्तिकारी आदर्शों के ने वाले साम्यवादियों का एक ज़बर्दस्त दल बन गया। सन् १८४८ ई० में और बाद में सन् १८७१ ई० में ोलन की आग भड़की; किन्तु वह सेना के ज़ोर से दी गई। सन् १८४८ के आन्दोलन का जन्म-दाता नाम का व्यक्ति था, और सन् ७१ के आन्दोलन न्म-दात्री जनता थी। पेरिस पर साम्यवादियों का ार था। 'कम्यून' नाम की संस्था उनकी प्रातिनिधिक थी। साम्यवादियों ने पेरिस पर जिस भलमनसी शान्ति से शासन किया, वैसा कोई सैनिक शासन भी हो सकता था। पर 'कम्यून' की सामयिक लहर के फ़्रान्स में साम्यवादी–आन्दोलन को बड़ी कठिनाइयों ोकर गुज़रना पड़ा। अधिकारियों ने साम्यवादियों को ने और उन्हें तितर-बितर कर देने के लिए कोई बात न रक्खी। उसमें उन्हें सफलता मिली और कुछ समय लिए साम्यवाद का आन्दोलन दब गया।

जब जूल्स ग्वैस्डी (Jules Guesde) नाम का वादी निर्वासन से लौट कर जिनेवा आया, तब उसने वाद का काम करने के लिए सन् १८७७ में एल. इगे-(L. Egalite)नाम की संस्था क़ायय की, और वह स्वयं ों में शामिल होकर मार्क्स के सिद्धान्तों का प्रचार लगा। सन् १८७८ में लियोन्स की मज़दूर-सङ्घ-कांग्रेस प्रस्ताव पास कर निश्चय किया गया कि अगले वर्ष समें अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूरों का एक सम्मेलन किया जाय। समय सम्मेलन किया गया, परन्तु, अधिकारियों ने उसे कर दिया। इससे फ़्रान्स में साम्यवाद को और भी मिला। बड़ी तेज़ी से उक्त मज़दूर सङ्घ के सदस्य बढ़ने लगे। १८७९ ई० में मज़दूर प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन मार्सेलीज़ में हुआ, उसमें मज़दूर-सङ्घ का नाम सोशलिस्ट लेबर-कांग्रेस रख दिया गया। वैसे तो यह कांग्रेस क्रान्तिकारी सिद्धान्तों का समर्थन करती थी; किन्तु इसने अपना जो कार्यक्रम पास किया, वह ग्वैस्डी (Guesde) और लफ़र्ग (Lefargue) द्वारा तैयार किया गया था। यह लफ़र्ग प्रसिद्ध साम्यवादी कार्ल मार्क्स के दामाद थे। अगले वर्ष सोशलिस्टों और पुराने ख़याल के ट्रेड यूनियनिस्टों में झगड़ा हो गया। इससे दोनों दल कमज़ोर हो गये। १८८१ ई० के चुनाव में आन्दोलन की कमज़ोरी स्पष्ट मालूम हो गई। एक दल एक बात कहता था, तो दूसरा दल उसकी मुख़ालिफ़त करता था। नेताओं में ख़ूब चल रही थी। एक दल साम्यवादी सुधारों के द्वारा साम्यवाद के आदर्श तक पहुँचने का पक्षपाती था। इस दल का नेता पाल ब्रौसी था, जो पेरिस का मेयर भी था। दूसरा दल उन लोगों का था, जिन्होंने आकस्मिक क्रान्ति कर डाली थी। इसका नेता जूल्स ग्वैस्डी था। वास्तव में बात यह है कि दल-बन्दी के होते हुए भी मार्क्स का मत एक चट्टान की तरह था, जिसपर गिर कर दल-बन्दी टुकड़े-टुकड़े हो गई। दल-बन्दी का ज़ोर कुछ कम हुआ, तो पार्लमेंट के विरोध में एक दल खड़ा हो गया। इसके बाद आम मजूर-संघ (General Federation of Labour) नाम की संस्था की स्थापना हुई। इस संस्था ने फ़्रान्स के मज़दूरों की दशा सुधारने में बड़ा काम किया। दिन पर दिन साम्यवाद के आन्दोलन की व्यापकता बढ़ती गई। १८८७ ई० के चेम्बर के चुनाव में जनता को पहली बार विजय मिली। १८९३ ई० में राज-सभा (Chamber of Deputies) के चुनाव में ४० साम्यवादी मेम्बर चुने गये। सन् १९०९ तक तो फ़्रान्स की पार्लमेंट में साम्यवादियों का बहुत प्रभाव हो गया था, उसीकी बदौलत एक साम्यवादी ब्रिआन्द ही प्रधान मन्त्री बन गये। राज-सभा के चुनाव में साम्यवादियों को सन् १८९३ में ९०००००, १९०६ मे ११२०००० और १९१० में १४००००० मत मिले। इन संस्थाओं से फ़्रान्स की भूमि में साम्यवाद की अमर लता के अधिकाधिक व्यापक रूप से फैलने का पता चलता है।

सुरेन्द्र शर्मा

आचार्य ध्रुव

भारतवर्ष के गुजरात प्रान्त में समय-समय पर अनेक नर-रत्न उत्पन्न हुए हैं। महात्मा गाँधी तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती जैसे संसार-प्रसिद्ध महापुरुषों ने अपने जन्म से इसी भूमि को अलंकृत किया। काका कालेलकर जैसे विचारक और न्हानालाल दलपतराम के समान भावुक कवि आज भी इस देश के गौरव को बढ़ा रहे हैं। काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय के आचार्य आनंदशंकर बापूभाई ध्रुव भी इसी गुजरात के वर्तमान रत्नों में से एक हैं।

श्रीयुत आनंदशंकरजी का जन्म विक्रम-संमत् १९२५ के माघ मास में अहमदाबाद के एक नागर-कुल में हुआ था। आपके पिता का नाम बापूभाई था। धनाढ्य पिता के एकमात्र पुत्र होने से इनका बाल्यकाल सम्पन्नता की सुखद छाया में व्यतीत हुआ। बहुत अर्से तक बापूभाई काठियावाड़-एजेंसी के दफ़्तरदार रहे; तत्पश्चात् बड़ौदा राज्य की रेज़िडेन्सी में राज्य की तरफ़ से प्रतिनिधि नियुक्त हुए। वह स्वयं चरित्रवान् एवं धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे, इसीसे उनके सुपुत्र के जीवन पर आरम्भ से ही उत्तमोत्तम संस्कारों की छाप पड़ने लगी। बाल्यावस्था समाप्त होने पर धनिकों के पुत्र प्रायः विद्याभ्यास में अधिक उन्नति नहीं करते, क्योंकि अपने पूर्वजों की अतुल संपत्ति पर उनकी दृष्टि रहने से, उन्हें धन-संचय की चिन्ता नहीं सताती; परन्तु ध्रुवजी के विषय में यह नहीं कहा जा सकता। "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" के अनुसार इनमें धीरे-धीरे अन्तर्हित प्रतिभा का प्रादुर्भाव होने लगा और यह बुद्धिमान विद्यार्थियों में गिने जाने लगे।

ध्रुवजी का विद्यारम्भ गाँव की एक पाठशाला में हुआ। फिर गुजराती-पाठशाला में भर्ती होकर इन्होंने अँग्रेज़ी स्कूल में प्रवेश किया। वहाँ आपने अपनी कुशाग्र बुद्धि एवं उत्तम ज्ञान से अपने शिक्षकों को पूर्णतया संतुष्ट कर दिया था, और उत्तम विद्यार्थी होने के कारण नियमित आयु से पूर्व ही आपने मैट्रिक्युलेशन की परीक्षा पास कर ली। आपका संस्कृत का ज्ञान भी बहुत ही उत्कृष्ट माना जाता था। जब आप विद्याभ्यास करते थे, उन दिनों, मिथिलापुरी के एक विद्वान् शास्त्रीजी अहमदाबाद पधारे। उक्त शास्त्रीजी के सहवास से आपकी संस्कृत की योग्यता में विशेष वृद्धि हुई। अहमदाबाद के गुजरात-कॉलेज में प्रविष्ट होने के अनंतर आपने वहाँ के तत्कालीन संस्कृताध्यापक श्री काथवटे से भली-भांति प्रीति-संपादन कर ली। अध्यापक काथवटे आपके संस्कृत-संबंधी ज्ञान की बहुत प्रशंसा किया करते थे। इसी तरह कॉलेज के आचार्य (प्रिंसिपल) श्री जमशेदजी अरदेशर दलाल भी आपकी अँग्रेज़ी की योग्यता से ख़ूब सन्तुष्ट थे। कुछ दिनों में ध्रुवजी उक्त दोनों अध्यापकों के प्रिय शिष्य बन गये। बी० ए० की प्रथमवर्षीय परीक्षा में किसी कारण असफल हो जाने पर आचार्य दलाल ने इन्हें ख़ास विद्यार्थी जान कर बी० ए० की दोनों वर्ष की परीक्षा में एक साथ बैठने की आज्ञा दे दी और दूसरे वर्ष आप दोनों परीक्षाओं में उत्तीर्ण हो गये। बी० ए० पास कर आपने एम० ए० और एल-एल० बी० दोनों परीक्षाओं में भी सफलता प्राप्त की। एम० ए० की उपाधि तो अहमदाबाद-निवासी नागरों में आपने ही पहले-पहल ई० स० १८९१ में प्राप्त की थी।

जब ध्रुवजी गुजरात-कॉलेज में विद्याभ्यास कर रहे थे, उस समय, अध्यापक काथवटे छुट्टी पर जाने वाले थे; इसलिए, उनके स्थान पर, किसी को नियुक्त करने का प्रश्न उपस्थित हुआ। इस सम्बन्ध में उक्त अध्यापक महोदय से सम्मति ली गई, तो उन्होंने तत्क्षण हमारे चरितनायक का नाम लिया। किन्तु, आपकी पढ़ाई अभी समाप्त नहीं हुई थी। इसलिए उस समय, कई लोगों का ख़याल था कि धनाढ्य होने के कारण सेवा स्वीकार करने को आप तैयार न होंगे। किन्तु भावी के मार्ग अगम्य होते हैं। मनुष्य नहीं जानता कि होनहार उसे किन-किन उलटे-सीधे मार्गों द्वारा दुःखद अथवा सुखद परिणाम पर पहुँचायगा। कविवर भवभूति ने बिलकुल सच कहा है—'प्रायः शुभं च विदधात्यशुभं च जन्तोः सर्वंकषा भगवती भवितव्यतैव'। उन दिनों गुजरात-कॉलेज का प्रबन्ध एक बोर्ड (समिति) के अधीन था। बोर्ड के कुछ सदस्य आपके पिताजी से भली भाँति परिचित थे। इन लोगों ने बापूभाई से इस सम्बन्ध में बातचीत की और, कुछ दिनों के लिए आवश्यकता होने के

ता, यही निश्चय हुआ कि आपको ही अध्यापन-कार्य पा जाय। अस्तु अध्यापक काथवटे स्थायी पद पर कार्य नहीं कर रहे थे। अब संस्कृताध्यापक का स्थान ख़ाली हुआ, तो जगह-ह से अर्ज़ियाँ मँगवाई गईं। अच्छे-अच्छे संस्कृतज्ञ विद्वानों ने आवेदन-पत्र भेजे थे, परन्तु कुछ ही दिनों में ध्रुवजी के ज्ञान तथा शिक्षण-शैली से विद्यार्थी इतने सन्तुष्ट हो गये थे कि बोर्ड के स्यों ने आपको ही स पद पर नियुक्त करना चित समझा। आरंभ में ध्रुवजी ने वह पद स्वीकार न किया, किन्तु हुत-कुछ कहने-सुनने पर न्त में आप उस कार्य के लिए राज़ी हो गये और प्रिंसिपल तक गुजरात-कॉलेज के संस्कृताध्यापक रहे। इस कॉलेज में आप वल संस्कृत ही नहीं ढ़ाते थे, किन्तु समय-समय पर अंग्रेज़ी, न्याय, दर्शन आदि के भी अध्यापक रह चुके हैं। फिर आप वहाँ के आचार्य नियुक्त हुए। पाश्चात्य एवं त्य तत्त्वज्ञान विषयक आपकी योग्यता के संबंध में कुछ कहना ही सूर्य को क दिखाना है। उक्त कॉलेज का प्रबंध सरकार के हाथ में चले के कुछ समय बाद आप बंबई के सुप्रसिद्ध एल्फ़िन्स्टन कॉलेज में संस्कृताध्यापक नियुक्त हुए। इस अर्से में आप ई० एस० भी हो गये थे। इसके बाद, आज से अनुमान वर्ष पूर्व, काशी-हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए एक विद्वान् एवं कार्यदक्ष आचार्य की नियुक्ति का प्रश्न उपस्थित हुआ। विश्वविद्यालय के प्राण पूज्यपाद मालवीयजी ने इस संबंध में महात्माजी तथा सर ललूभाई को पत्र लिख कर पूछा। इन दोनों महानुभावों ने स्वतंत्र रूप से आपका ही नाम मालवीयजी को सूचित किया। मालवीयजी ने दोनों सज्जनों की सम्मति को स्वीकार कर आपको नियुक्त कर दिया, जहाँ आप अबतक कार्य कर रहे हैं और विश्वविद्यालय में आचार्य नाम से प्रसिद्ध हैं।

आचार्य आनन्दशंकर बापूभाई ध्रुव

केवल अध्यापक अथवा आचार्य के रूप में ही ध्रुवजी का जीवन उज्ज्वल एवं यशस्वी नहीं है; किन्तु आपके लिखे हुए अनेक ग्रंथ भी अत्यन्त उपयोगी, ज्ञानपूर्ण एवं उत्तम हैं, और आपकी उच्च कोटि की साहित्य-सेवा का परिचय देते हैं। ईस्वी, सन् १८९७ में 'सुदर्शन' मासिकपत्र के आदि संपादक श्री मणिलाल नभुभाई द्विवेदी का देहावसान होने पर ध्रुवजी ने उसका संपादन-भार अपने ऊपर लेकर मित्र-धर्म का पालन किया। यह पत्र आपके संपादकत्व में ४–५ वर्ष चलकर बंद हो गया। इसके अनंतर १९०२ ई० में आपने 'वसन्त' नामक गुजराती मासिकपत्र निकालना आरंभ किया और उसका संपादन भी कई वर्ष तक आपही करते रहे। 'वसंत' का जन्म हुए आज २५ वर्ष हो गये हैं। इसने गुजरात के मासिक-साहित्य में उच्च स्थान प्राप्त कर लिया है। बीसवीं शताब्दि के आरंभ में गुजराती का मासिक-साहित्य कुछ शुष्क हो गया था, परन्तु 'वसन्त' ने जन्म लेकर उसमें नवजीवन का संचार किया और ज्ञान एवं रस की

सहायता से उसे नवीन शोभा द्वारा पल्लवित किया । गंभीर एवं विद्वत्तापूर्ण विषयों का किस प्रकार प्रतिपादन करना चाहिए, इस संबंध में गुजराती-पाठकों को 'वसन्त' की ओर से बहुत कुछ शिक्षा मिली है । ऐसा कोई महत्वपूर्ण विषय नहीं है, जिसपर 'वसन्त' के पृष्ठों में विचार न किया हो । 'वसन्त' ने अपनी उन्नति गुजराती के लेखकों की पूर्ण सहानुभूति से की है, और उसके साथ भाषा का गौरव, पाठ्य-विषय की शिष्टता, विचारों की उच्चता और विद्वत्ता की सम्पत्ति उसने गुजराती-पाठकों के सन्मुख प्रस्तुत की है ।

जिन दिनों 'वसन्त' का जन्म हुआ, उस समय, अंग्रेज़ी शिक्षा-प्राप्त गुजराती जनता अपनी मातृभाषा में लिखने और गुर्जर-साहित्य के अध्ययन करने को उपेक्षा की दृष्टि से देखती थी; यहाँ तक कि सामान्य बातचीत तथा पत्र-व्यवहार में भी अंग्रेज़ी का ही उपयोग होता था । परन्तु वास्तव में, यह प्रवृत्ति देश के लिए अनिष्टकर थी । सर चार्ल्स वुड ने भारतीय शिक्षा के संबंध में जो ख़रीता भेजा था, उसमें ऐसी आशा प्रकट की थी कि आधुनिक शिक्षा-प्राप्त भारतीय अपने पाश्चात्य ज्ञान और विद्या के लाभ को मातृभाषा के द्वारा अपने अन्य भाइयों तक पहुँचावेंगे; किन्तु उनकी यह आशा निष्फल सिद्ध हुई । इसीलिए इस विषय में लिखते समय मातृभाषा की इस अवज्ञा को सर जेम्स पील ने 'स्वदेशाभिमान की कमी' कहा था । सन् १९०२ में 'वसंत' का संपादन ग्रहण करते समय प्रथमांक में ध्रुवजी ने लिखा था कि सर जेम्स पील के इन 'हृदयबेधक' शब्दों में बहुत कुछ सत्य है । आपकी ही उत्तेजना से अनेक ग्रेज्युएट विभिन्न क्षेत्रों में प्राप्त अपने अनुभव तथा ज्ञान का प्रचार 'वसन्त' के द्वारा गुजराती जनता में करने लगे । गुजराती-साहित्य में आज लेखकों की जैसी संख्या है और जितनी विविधता तथा नवीनता देख पड़ती है, उसमें 'वसन्त' तथा उसके प्रतिभाशाली सम्पादक ध्रुवजी का बहुत-कुछ हाथ रहा है ।

जब 'वसन्त' की स्थापना हुई थी, उस समय, गुजराती के सामयिक पत्रों में विज्ञान-विषयक चर्चा नहीं के बराबर थी । 'वसन्त' ने इस विषय की ओर पूर्ण ध्यान दिया और ध्रुवजी की देख-रेख में उसके प्रत्येक अंक में विज्ञान-सम्बन्धी सामग्री रहने लगी । पाठकों को स्मरण रखना चाहिए कि यह आज से पचीस वर्ष पूर्व की बात है । फिर तो विज्ञान के संबंध में 'वसन्त' को अपना मार्गदर्शक बनाकर अन्य पत्र भी इस प्रवृत्ति का अनुकरण करने लगे ।

'वसन्त' ऐसा पत्र नहीं, जो किसी ख़ास तरह के विचारों का जनता में प्रचार करने के लिए निकाला गया हो, अथवा जिसका जन्म किसी विशेष उद्देश्य की सिद्धि के लिए हुआ हो । उस समय गुजरात में इतने अधिक सामयिक पत्र नहीं थे । 'बुद्धिप्रकाश' एक हद तक उन्नति कर चुका था । 'ज्ञानसुधा' भी एक ख़ास विचार के लोगों की पत्रिका मानी जाती थी । तात्पर्य यह कि उस समय एक सार्वजनिक पत्र की बड़ी आवश्यकता थी, जिसे अनेक मित्रों के अनुरोध से ध्रुवजी ने 'वसंत' के प्रकाशन-द्वारा पूर्ण की ।

इतना सब होते हुए भी 'वसन्त' की वास्तविक विशिष्टता गुर्जर-साहित्य में सुरुचिपूर्ण वातावरण उत्पन्न करने में है । इसका मुख्य आधार ध्रुवजी का समर्थ एवं प्रतिभाशाली व्यक्तित्व ही है । 'रिव्यू ऑफ़ रिव्यूज़' तथा 'नेशन' की महत्ता अधिकांश में स्टेड और मेसिंगहाम के ही कारण है । 'मैंचेस्टर गार्डियन' तथा 'हिब्बर्ट जर्नल' का आकर्षण उनके संपादक स्कॉट और जैक्स के नाम पर बहुत-कुछ निर्भर है । हमारे भारत में भी 'माडर्न रिव्यू' पर उसके संपादक रामानंद चट्टोपाध्याय के व्यक्तित्व की प्रबल छाप देख पड़ती है । इसी तरह 'वसन्त' में प्रकाशित आचार्य ध्रुव के विद्वत्तापूर्ण गंभीर एवं मौलिक लेखों में उनका व्यक्तित्व स्पष्टतया प्रतिबिंबित होता है । आपकी विवेचनापूर्ण टिप्पणियाँ 'ईवनिंग स्टैंडर्ड' में नियमित रूप से प्रकाशित होने वाले सेंट पॉल के डीन डाक्टर इंज के लेखों अथवा 'हिब्बर्ट जर्नल' के सुयोग्य संपादक एल. पी. जैक्स की विचार-धारा का स्मरण कराती हैं । आपका 'आपणो धर्म' शीर्षक लेख तो इतना विचारपूर्ण और माननीय है कि यदि वह अंग्रेज़ी में प्रकाशित होता तो पश्चात्य जगत् में ध्रुवजी की प्रकाण्ड दार्शनिक बिद्वत्ता का सिक्का जम ज्ञाता ।

गुजरात-कॉलेज का प्रबन्ध सरकार के हाथ में चले जाने पर आपके सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि 'वसंत' को

कर दिया जाय, अथवा उसकी स्थापना के समय निश्चित किये हुए उसके विशाल कार्यक्षेत्र को परिमित बनाकर—उसमें राजनैतिक चर्चा बंद कर—उसे साहित्य धर्म, अथवा तत्त्वज्ञान-विषयक एक पत्र के रूप में चलाते रहना चाहिए। इस वैकल्पिक प्रश्न से यही अभिप्रेत था कि या तो 'वसंत' का अन्त ही हो जाय अथवा वह अपंग बनकर जीवन बितावे। ध्रुवजी को जान पड़ा कि वर्तमान सार्वजनिक जीवन के अनेक अंगों में राजनीति का एक विशेष स्थान है; अतः उसे छोड़ देने पर 'वसंत' का जीवन ही एक तरह से लुप्त हो जायगा। आप बड़े असमंजस में पड़ गये। आचार्यजी ने एक स्थान पर लिखा है, "ईश्वर ने मुझे जो बड़े-से-बड़ा सुख दिया है, वह मेरे मित्रों का है।" इस दुविधा में आपके मित्र सर रमणभाई ने तुरंत 'वसन्त' का सम्पादन-भार अपने ऊपर लेकर आपको निश्चिंत कर दिया। ध्रुवजी ने 'पुनरत्र हरिः ओम्' शीर्षक से 'वसंत' में इस बात का उल्लेख बड़े मार्मिक शब्दों में किया है। सर रमणभाई के सम्पादक रहते समय भी आप यथावकाश लेख लिखकर 'वसन्त' की सेवा करते रहे।

आपकी अनेक नवयुवकोपयोगी एवं दार्शनिक कृतियाँ गुर्जर-साहित्य की श्रीवृद्धि कर रही हैं। आपकी 'हिन्दू-धर्म की बालपोथी' तथा 'नीति-शिक्षा' आदि कुछ पुस्तकों के हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हुए हैं। 'बाम्बे संस्कृत सीरीज़' तथा 'गायकवाड़ ओरिएंटल सीरीज़' में भी आपने कुछ ग्रन्थों का सम्पादन किया है। 'वसन्त' ने अपने जीवन के २५ वर्ष समाप्त होने पर गत २६ दिसंबर को अपनी रजतजयंती का उत्सव मनाया था। इस अवसर पर गुजरात-पत्रकार-मण्डल तथा गुर्जर-साहित्य-सभा ने ध्रुवजी की दीर्घकालीन गुर्जर-साहित्य-सेवा के प्रति अपनी गुण-ग्राहकता प्रकट करने के लिए एक स्मारक ग्रंथ (Commemoration volume) प्रकाशित करने का आयोजन किया। अनेक विद्या-प्रेमी गुजरातियों ने इस शुभ-कार्य में आर्थिक सहायता दी, और उक्त रजत-जयन्ती के अवसर पर क़रीब ५०० पृष्ठ का एक सर्वाङ्गसुन्दर, सचित्र एवं सजिल्द 'वसन्त-रजत-महोत्सव-स्मारक ग्रन्थ' प्रकाशित किया गया। इसमें आचार्यजी के भिन्न-भिन्न अवस्था के बहुत से चित्र तथा उनकी संक्षिप्त जीवनी के अतिरिक्त अनेक भारतीय और यूरोपियन विद्वानों द्वारा विविध विषयों पर ६७ शोधपूर्ण एवं महत्वशाली लेख लिखे गये हैं। इस ग्रन्थ को हम एक प्रकार से 'वसन्त' का विशेषांक कह सकते हैं। हिन्दी में आज तक किसी सामयिक पत्र की जयन्ती पर इतना बृहद्, सुन्दर एवं उपयोगी स्मारक-ग्रन्थ प्रकाशित नहीं हुआ। 'वसन्त' के आदि सञ्चालक तथा संपादक ध्रुवजी को ही समर्पित किया जाने के कारण वह ग्रन्थ उनकी साहित्य-सेवाओं तथा विमल कीर्ति का एक अमर स्मारक बन गया है। हमें यह लिखते दुःख होता है कि हिन्दी-प्रेमियों ने अपने वयोवृद्ध साहित्यिकों की बहुमूल्य सेवाओं के प्रति अपनी यथेष्ट गुणज्ञता प्रकट कर अब तक किसी को ऐसा सन्मान प्रदान नहीं किया,जैसा सन्मान गुजरातवासियों ने 'वसन्त' के लब्धप्रतिष्ठ संपादक का किया है। खेद है, अपनी वैसी कृतज्ञता हिन्दी-भाषी जनता बीस वर्ष तक 'सरस्वती' का सफलता-पूर्वक सम्पादन करने वाले साहित्य-महारथी श्रद्धेय द्विवेदीजी के प्रति भी न कर सकी।

आपका गृह-जीवन आरम्भ से ही सादा एवं विद्या-व्यसनी रहा है; कुटुम्ब-जीवन भी ममतापूर्ण और स्नेहार्द्र है। अवकाश का सारा समय आप पुस्तकावलोकन में बिताते हैं, फिर भी आपकी कुटुंब-वत्सलता में किसी प्रकार कमी नहीं देख पड़ती। ३४ वर्ष की अवस्था में आपकी सहधर्मिणी का अवसान हुआ, तब से आज तक—दुःखी माता की आपका विवाह कराने की उत्कट इच्छा होते हुए भी—आप ब्रह्मचर्यपूर्वक जीवन व्यतीत कर रहे हैं। आपकी मातृभक्ति भी आदर्श है। एक बार आपकी माताजी दो वर्ष तक बीमार रहीं, उन दिनों अपने आवश्यक कार्यों से समय निकालकर आप मातृ-सेवा में अहर्निश संलग्न रहते थे। इस तरह पाठक जान जायेंगे कि आपका गृह-जीवन भी, साहित्य-सेवा की भांति, नाना सद्गुणों से पूर्ण है। आपके दो पुत्र हैं, उनमें से एक कालेज में अध्यापक हैं।

जिन दिनों आप हिन्दू-विश्वविद्यालय के सेंट्रल हिंदू कालेज के आचार्य होकर बनारस गये, उस समय किसी कारण विश्वविद्यालय का वातावरण कुछ अशांतिपूर्ण था; किंतु आपके आगमन के साथ ही साथ विश्वविद्यालय में सर्वत्र शांति एवं सद्भाव का एक युग उत्पन्न हो गया।

बंबई-विश्वविद्यालय के अनुभव तथा अपने उदार हृदय और सरल प्रकृति के कारण कुछ ही दिनों में आप सब अधिकारियों के विश्वासपात्र बन गये और शीघ्र ही आपकी पदवृद्धि भी हो गई। उपाध्यक्ष (वाइस-चांसलर) तथा विश्वविद्यालय की सर्वप्रधान कार्यकारिणी समिति (कोर्ट) ने आपके कार्य-संचालन की इतनी प्रशंसा की कि दूसरे ही वर्ष आपको प्रो-वाइस-चांसलर का मोननीय पद प्रदान किया गया, और अब तक आप उसी पद पर कार्य कर रहे हैं। विश्वविद्यालय की जितनी समितियाँ-उपसमितियाँ हैं उनमें सभापति की हैसियत से आप जो विचार प्रकट करते हैं, वे बड़े ही योग्य, चातुर्यमय एवं बुद्धिमत्तापूर्ण होते हैं। कई भारतीय विश्वविद्यालयों की उच्च कक्षाओं के आप परीक्षक होते हैं। युक्त-प्रान्त के इंटरमीडियट बोर्ड तथा इंटर-यूनिवर्सिटी बोर्ड में आप हिन्दू-विश्वविद्यालय की ओर से प्रतिनिधि हैं। प्रयाग-विश्वविद्यालय में भी आप पाठ्य-समिति के सदस्य हैं। हिन्दू-विश्वविद्यालय की फ़ैकल्टी आफ़ आर्ट्स के आप 'डीन' हैं।

आपकी साहित्य-सेवा वास्तव में अप्रतिम, आदरणीय तथा अनुकरणीय है। आपके विस्तृत अध्ययन तथा अगाध पांडित्य के विषय में जो कहा जाय थोड़ा है। आप न केवल संस्कृत, अंग्रेज़ी और गुज़राती साहित्य के ही प्रकांड पंडित हैं; किन्तु इतिहास, अर्थशास्त्र, राजनीति, प्राच्य एवं पाश्चात्य दर्शन तथा भारतीय संस्कृति आदि विषयों में भी आपका अध्ययन बड़ा ही गम्भीर एवं प्रशंसनीय है। दर्शन-शास्त्र तो आपका सबसे अधिक प्रिय विषय है। विविध विषयों का अध्ययन करते रहने पर भी आप हिन्दी से प्रेम रखते हैं, यह उल्लेखनीय बात है। आपकी मुखाकृति देखते ही ऐसा भास होता है, मानों सरस्वती आपके मुखमण्डल पर विराजमान हो। सन् १९२६ में काशी में अखिल भारतवर्षीय दर्शन-कांग्रेस हुई थी, उसके भारतीय दर्शन-विभाग के सभापति का पद आपने ही सुशोभित किया था। अध्यक्ष-पद से दिया हुआ आपका भाषण आदि से अंत तक आपके अगाध ज्ञान, पारगामी विद्वत्ता और चिरकालीन मनन का उत्कृष्ट नमूना था और सुनते समय श्रोतागण मंत्रमुग्ध-से रह गये थे।

जिन विद्यार्थियों ने आचार्यजी के पास बैठकर गीता का अध्ययन किया है, वही जानते हैं कि आपके मुख से गीतामृत सुनने में कैसा अभूतपूर्व आनन्द मिलता है। इन पंक्तियों के लेखक को भी यह सुअवसर प्राप्त हुआ है। आपके गुजराती-प्रेम के बारे में हम पहले ही बहुत कुछ लिख चुके हैं। उच्च अंग्रेज़ी शिक्षा-प्राप्त हिन्दी-भाषियों को आपके मातृ-भाषा-प्रेम से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। हर्ष की बात है कि गुजरातवासियों ने नड़ियाद में आगामी अक्तूबर मास में होने वाली नवम गुर्जर-साहित्य-परिषद् का सभापति आचार्यजी को ही चुन कर अपनें आपको सन्मानित किया है। अध्ययन से आपको इतना प्रेम है कि इस सम्बन्ध में कुछ कहना ही वृथा है। यदि कोई नई पुस्तक मिल गई तो आपको सब कुछ मिल गया। फिर कुछ समय के लिए आप सब बातों से निश्चिन्त हो जाते हैं। खेलों में आपको क्रिकेट बहुत पसन्द है। इसीसे, विश्वविद्यालय में प्रतिवर्ष ध्रुव-क्रिकेट-टूर्नामेंट हुआ करता है।

स्वभाव के धर्मनिष्ठ सनातनी होते हुए भी आपके विचारों में संकीर्णता का लेशमात्र नहीं है। उदार विचारों के कारण आपको गत वर्ष गुरुकुल कांगड़ी की रजत-जयन्ती के अवसर पर सर्व-धर्म-सम्मेलन का सभापति चुना गया था। प्राचीन भारतीय सभ्यता के आप बड़े हामी हैं, परन्तु पाश्चात्य विज्ञान के भी किसी प्रकार विरोधी नहीं हैं। विज्ञान के प्रशंसक होते हुए भी प्राच्य तत्त्वज्ञान में आपकी विशेष श्रद्धा है। उस दिन हिंदू विश्वविद्यालय में विज्ञान की आधुनिक उन्नति पर भाषण देते हुए एक वक्ता ने विज्ञान को सातवें आसमान पर चढ़ा दिया था, उस समय कुछ शब्दों में आपने कहा—"But my friends, y must rememember that men does not li by bread alone" अर्थात् मेरे मित्रो, आपको स्मरण रखना चाहिए कि मनुष्य केवल रोटी से नहीं जीता—उसकी उन्नति के लिए आध्यात्मिक भोजन की भी परमावश्यकता है।

प्राचीन भारत के गुरुकुलों में भी गुरू अथवा अध्यापक के अतिरिक्त चरित्र-निर्माण की शिक्षा देने के लिए एक अध्यापक विशेष रहता था, जिसे आचार्य कहते थे। आचार्य की परिभाषा देते हुए प्राचीन ग्रंथों में लिखा है—

आचिनोति हि शास्त्रार्थान् धर्मानाचरयत्यपि ।
शिष्यैः स्वयं चाचरति यः स आचार्य उच्यते ॥

आचार्य के ये सभी लक्षण ध्रुवजी में यथावत् देख पड़ते हैं। विद्यार्थियों के सामने आप सदैव सरल जीवन और उच्च विचार (Plain living and high thinking) का आदर्श रखते हैं। आपकी वेशभूषा बड़ी सादी एवं प्रभावोत्पादक है। आप सदा गुजराती पगड़ी, कोट और धोती धारण करते हैं। आपकी प्रकृति बड़ी सरल और मिलनसार है। अभिमान तो आपको छू तक नहीं गया है। विद्यार्थियों को किसी भी प्रकार की सहायता देने में आप कोई बात उठा नहीं रखते।

महात्माजी में आपकी बड़ी श्रद्धा है। आपमें हम पूर्वी और पश्चिमी संस्कृति का एक सुन्दर सम्मिश्रण देखते हैं, इसीसे कट्टर सनातनी तथा सुधारक वर्ग दोनों ही आपसे समान रूप से प्रसन्न रहते हैं। प्रत्येक धर्म अथवा संप्रदाय के अच्छे अंश को आप सहर्ष स्वीकार करते हैं। वसंत-रजत महोत्सव-स्मारक ग्रन्थ के लिए देशपूज्य महात्माजी ने जो संदेश भेजा, उसमें उन्होंने बड़े सुंदर शब्दों में लिखा है, "आनन्दशंकर भाई समाज-सुधारक और सनातनी के बीच एक सुंदर पुल हैं। उसपर चलकर हम एक-दूसरे से मिल सकते हैं। भारत-भूषण मालवीयजी को हमने आनन्दशङ्कर भाई प्रदान किये हैं, इससे अच्छी और कोई भेंट न हो सकती थी। वह प्राचीन और अर्वाचीन का ठीक मेल साध रहे हैं।"

संसार में कोई विशेष तेजस्वी होता है, तो किसी को हम अनुभव-समृद्ध पाते हैं, परन्तु आपके व्यक्तित्व में अद्वितीय वाक्समृद्धि, उत्कृष्ट संस्कृति तथा उच्चकोटि की विचारधारा दृष्टिगोचर होती है। बिलकुल विरोधी तत्त्वों का आपके जीवन में समन्वय हुआ है, और विरोधी तत्त्वों का यह समन्वय ही आपके विशाल हृदय तथा उच्च संस्कारमय जीवन का एक प्रबल प्रमाण है। गुजरात के साहित्याकाश में आज अनेक नक्षत्र चमक रहे हैं, परन्तु उनमें आप ध्रुवतारे के समान हैं, जिसकी ज्योति सदा स्थिर, पवित्र एवं स्फूर्तिदायक होती है। 'सत्यं, शिवं, सुंदरम्' का प्रतिबिंब आपके व्यक्तित्व से स्पष्टतया देख पड़ता है।

आचार्यजी एक प्रखर विद्वान्, उत्तम अध्यापक, समर्थ लेखक, गंभीर वक्ता, लब्धप्रतिष्ठ सम्पादक, धर्मनिष्ठ सज्जन, आदर्श पिता, विनोदी मित्र, और कुटुंबवत्सल गृहस्थ हैं। अन्त में जगदीश्वर से यही प्रार्थना है कि हिन्दू जाति, हिन्दू-विश्व-विद्यालय तथा भारतीय साहित्य का आपके द्वारा चिरकाल तक हितसाधन होता रहे।

रामेश्वर गौरीशंकर ओझा

ब्रिटिश साम्राज्य की शासन-पद्धति

स्वतन्त्र उपनिवेशों का शासन

प्राक्कथन—इस लेख में हम ब्रिटिश साम्राज्य के स्वतन्त्र उपनिवेशों की शासन-पद्धति बतलायेंगे। पहले यह जान लेना आवश्यक है कि उपनिवेश किसे कहते हैं। जब किसी राज्य के आदमी किसी दूसरे देश में युद्ध, कृषि, व्यापार आदि के निमित्त जा कर वहाँ स्थायी रूप से रहने लग जाते हैं, और अपनी मातृभूमि को छोड़ कर किसी अन्य राज्य की अधीनता स्वीकार नहीं करते, तो वह देश उस राज्य का उपनिवेश कहलाता है। अन्यान्य राज्यों में इंग्लैण्ड के उपनिवेशों की संख्या सबसे बढ़ कर है। इन उपनिवेशों में से निम्नलिखित अपने शासन-प्रबन्ध के लिए इङ्गलैण्ड के अधीन नहीं हैं, अर्थात् स्वाधीन हैं—

(क) कनाडा
(ख) दक्षिण आफ़्रिका
(ग) आस्ट्रेलिया
(घ) न्यूज़ीलैंड
(ङ) न्यूफ़ाउन्डलैंड

अब हम इनकी शासन-पद्धति का क्रमशः वर्णन करते हैं। पहले कनाडा ही को लीजिए।

कनाडा का शासन

पार्लमेन्ट—कनाडा की पार्लमेन्ट की दो सभायें हैं:—(१) सिनेट[1] और (२) प्रतिनिधि[2] सभा। सिनेट के सदस्यों की संख्या ९६ है। ये सदस्य, कनाडा की सरकार की सिफ़ारिश पर बादशाह द्वारा नामज़द किये जाते हैं—बशर्ते कि उनकी आयु तीस वर्ष से अधिक हो, वे विदेशी न हों, और उनके पास कम से कम ४,००० डालर (१२,००० रुपये) की जायदाद हो।

प्रतिनिधि-सभा के सदस्यों की संख्या २३५ है। इस सभा की आयु ४ वर्ष की होती है; और यहाँ प्रत्येक बालिग़ स्त्री-पुरुष को चुनाव में मत देने का अधिकार है।

धन-सम्बन्धी क़ानूनी मसविदों पर विचार प्रतिनिधि-सभा में ही आरम्भ हो सकता है।

गवर्नर-जनरल और प्रबन्धकारिणी सभा—कनाडा का गवर्नर-जनरल इङ्गलैण्ड के बादशाह द्वारा नियत किया जाता है। वह सब कार्य प्रबन्धकारिणी सभा के परामर्श के अनुसार इस सभा में १८ मन्त्री होते हैं, जो अपने शासन-कार्य के लिए प्रतिनिधि-सभा के प्रति उत्तरदायी रहते हैं।

प्रान्तीय शासन—कनाडा में ९ प्रान्त हैं। प्रत्येक प्रान्त में एक-एक लेफ़्टेनेन्ट गवर्नर रहता है। वह कनाडा के गवर्नर-जनरल द्वारा, प्रबन्धकारिणी सभा के परामर्शानुसार, नियुक्त किया जाता है। सात प्रांतों में एक-एक, और दो प्रान्तों में दो-दो, व्यवस्थापक सभायें हैं। प्रान्तीय मन्त्री-दल, अपने शासन-कार्य के लिए, प्रान्तीय व्यवस्थापक सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं। प्रान्तीय सरकारें उन्हीं अधिकारों का उपयोग कर सकती हैं, जो उन्हें कनाडा की केन्द्रीय सरकार द्वारा प्राप्त हैं।

शासन-पद्धति की विशेषतायें—कनाडा की शासन-पद्धति की मुख्य विशेषतायें निम्न लिखित हैं:—

(१) केन्द्रीय सरकार प्रान्तों की व्यवस्थापक परिषदों द्वारा स्वीकृत क़ानूनी मसविदों को रद्द कर सकती है।

(२) कनाडा की पार्लमेन्ट शासन-पद्धति सम्बन्धी नियमों में परिवर्तन नहीं कर सकती। ऐसा परिवर्तन इङ्गलैण्ड की पार्लमेन्ट ही कर सकती है।

(३) बड़ी-बड़ी अदालतों के न्यायाधीश नियत करने का अधिकार केन्द्रीय सरकार को है।

(४) प्रान्तों के लेफ़्टेनेन्ट-गवर्नर, गवर्नर-जनरल द्वारा, प्रबन्धकारिणी सभा के परामर्शानुसार नियुक्त किये जाते हैं।

दक्षिण आफ्रिका के यूनियन का शासन

पार्लमेन्ट—दक्षिण आफ़्रिका के यूनियन की पार्लमेन्ट में दो सभायें हैं—(१) सिनेट और (२) प्रतिनिधि सभा। सिनेट में ४० सदस्य हैं—८ गवर्नर-जनरल द्वारा नामज़द होते हैं और ३२ प्रतिनिधि-सभा द्वारा निर्वाचित किये जाते हैं। सिनेट की आयु १० वर्ष की होती है। यूरोपियन ब्रिटिश प्रजा के व्यक्ति ही इसके सदस्य हो सकते हैं। सिनेट की सदस्यता के उम्मीदवार की आयु कम से कम तीस वर्ष होनी चाहिए और उसके पास कम से कम ५०० पौंड की जायदाद भी होनी चाहिए।

प्रतिनिधि-सभा के सदस्यों की संख्या १३४ होती है। इस सभा की आयु पाँच वर्ष निर्धारित की गई है। सभा के प्रत्येक सदस्य को राजभक्ति की शपथ लेनी

---

(1) Senate.

(2) House of Representatives.

होती है। यहाँ प्रत्येक बालिग़ स्त्री-पुरुष को चुनाव मत देने का अधिकार है।

धन-सम्बन्धी क़ानूनी मसविदों पर विचार प्रतिनिधि सभा में ही आरम्भ हो सकता है। यदि कोई क़ानूनी मसविदा प्रतिनिधि सभा में दो बार स्वीकृत हो जाय और सिनेट उसे अस्वीकार कर दे तो गवर्नर-जनरल उसे दोनों सभाओं की संयुक्त बैठक में उपस्थित करता है और उसमें जैसा निश्चय हो, उसके अनुसार क़ानून बनता है।

गवर्नर-जनरल और प्रबन्धकारिणी सभा—यहाँ का गवर्नर-जनरल बादशाह द्वारा नियत होता है और वह शासन-कार्य प्रबन्धकारिणी सभा की सलाह से करता है। इस सभा में दस मंत्री होते हैं। मंत्री-मंडल शासन कार्य के लिए प्रतिनिधि-सभा के प्रति उत्तरदायी होता है।

प्रान्तीय शासन—इस यूनियन में चार प्रान्त हैं। प्रत्येक प्रान्त में एक शासक, एक व्यवस्थापक परिषद् और एक प्रबन्धकारिणी सभा होती है। शासक को 'एडमिनिस्ट्रेटर' (Administator) कहते हैं, वह गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त होता है। व्यवस्थापक परिषद की आयु तीन वर्ष की होती है। प्रान्तीय प्रबन्धकारिणी सभा में चार मंत्री होते हैं, जो अपने शासन-कार्य के लिए व्यवस्थापक परिषद् के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

आस्ट्रेलिया का शासन

पार्लमेण्ट—आस्ट्रेलिया की पार्लमेण्ट की दो सभायें हैं—(१) सिनेट और (२) प्रतिनिधि सभा। सिनेट में आस्ट्रेलिया की छः रियासतों में से प्रत्येक के छः-छः; इस प्रकार कुल ३६ सदस्य होते हैं। ये छः वर्ष के लिए चुने जाते हैं; परन्तु, प्रत्येक प्रान्त के आधे सदस्यों का, प्रति तीसरे वर्ष नया चुनाव होता है। उम्मीदवार ये सब व्यक्ति हो सकते हैं, जो इंगलैंड के बादशाह की प्रजा हों और बालिग़ हों।

प्रतिनिधि सभा में लगभग ७५ सदस्य होते हैं। इस उपनिवेश में मूल निवासियों (Natives) को छोड़ कर, शेष सब बालिग़ स्त्री-पुरुषों को चुनाव में मत देने का अधिकार है।

यदि प्रतिनिधि-सभा दो बार किसी क़ानूनी मसविदे को स्वीकार कर ले और सिनेट उसे अस्वीकार कर दे, तो गवर्नर-जनरल दोनों सभाओं को भंग कर सकता है। इस दशा में नया निर्वाचन होगा। यदि इसके बाद नयी प्रतिनिधि-सभा पुनः उसी क़ानूनी मसविदे को स्वीकार करे, और सिनेट उसे अस्वीकार करे तो दोनों सभाओं की संयुक्त बैठक होती है और उसके निर्णय के अनुसार क़ानून बनता है।

यहाँ की पार्लमेण्ट शासन-पद्धति सम्बन्धी नियमों में परिवर्तन कर सकती है, परन्तु यदि शासन-पद्धति सम्बन्धी किसी क़ानूनी मसविदे को कोई सभा दो बार स्वीकार कर दे और दूसरी सभा उसे अस्वीकार कर दे तो गवर्नर-जनरल उस क़ानूनी मसविदे के सम्बन्ध में निर्वाचकों की राय ले सकता है। यदि उनका बहुमत उसके पक्ष में हो, तो वह क़ानून बन जायगा।

धन-सम्बन्धी क़ानूनी मसविदों का विचार प्रतिनिधि सभा में ही आरम्भ हो सकता है।

गवर्नर-जनरल और प्रबन्धकारिणी सभा—गवर्नर-जनरल इंगलैण्ड के बादशाह द्वारा नियत होता है। वह प्रबन्धकारिणी सभा की सलाह से काम करता है। प्रबन्धकारिणी सभा में नौ मंत्री होते हैं, जो अपने शासन-कार्य के लिए प्रतिनिधि-सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

प्रान्तीय शासन—इस उपनिवेश में छः प्रान्त हैं। प्रत्येक प्रान्त में, इंगलैंड के बादशाह द्वारा

नियुक्त, एक-एक गवर्नर होता है। गवर्नर, गवर्नर-जनरल के अधीन नहीं होते। प्रत्येक प्रान्त में दो-दो व्यवस्थापक-सभायें होती हैं, जिन्हें अपने-अपने प्रान्त के लिए क़ानून बनाने तथा टैक्स लगाने का अधिकार है। चुनाव में, प्रत्येक बालिग़ स्त्री-पुरुष को मताधिकार प्राप्त है।

शासन-पद्धति की विशेषतायें—

(१) पार्लमेण्ट की दोनों सभाओं के लिए प्रत्येक बालिग़ स्त्री-पुरुष को मताधिकार प्राप्त है।

(२) प्रान्तों के गवर्नर इंगलैण्ड के बादशाह द्वारा नियुक्त किये जाते हैं परन्तु वे आष्ट्रेलिया की केन्द्रीय सरकार के अधीन नहीं हैं।

(३) केन्द्रीय सरकार को वे ही अधिकार प्राप्त हैं, जो उसे क़ानून द्वारा दिये गये हैं, शेष सब अधिकार प्रान्तीय सरकारों को दिये गये हैं।

(४) प्रबन्धकारिणी सभा पूर्णतः प्रतिनिधि सभा के प्रति उत्तरदायी है।

(५) शासन-पद्धति आष्ट्रेलिया की पार्लमेंट के बहुमत से अथवा उसकी एक ही सभा के बहुमत से सुगमता-पूर्वक बदली जा सकती है।

न्यूज़ीलैंड का शासन

पार्लमण्ट—यहां की पार्लमेंट में दो सभायें हैं—(१) व्यवस्थापक-परिषद् (Legislative Council) और (२) व्यवस्थापक सभा (Legislative Assembly) व्यवस्थापक परिषद् में ४३ सदस्य हैं। तीन माओरी *सदस्य गवर्नर-जनरल द्वारा नियुक्त होते हैं; शेष सदस्यों का चुनाव प्रति सातवें वर्ष होता है। उम्मीदवार होने के लिए जायदाद का होना आवश्यक नहीं है।

व्यवस्थापक सभा में ८० सदस्य होते हैं, जो सर्व-साधारण द्वारा तीन-तीन वर्ष के लिए चुने जाते हैं। इनमें चार माओरी सदस्य होते हैं। स्त्रियाँ भी सदस्य हो सकती हैं।

जब पार्लमेण्ट की दोनों सभाओं में किसी क़ानूनी मसविदे के सम्बन्ध में मत-भेद हो, तो दोनों सभाओं की संयुक्त बैठक की जाती है।

गवर्नर-जनरल और प्रबन्धकारिणी सभा—यहाँ का गवर्नर-जनरल इंगलैंड के बादशाह द्वारा नियुक्त किया जाता है। वह सब शासन-कार्य प्रबन्धकारिणी सभा की सलाह से करता है। इस सभा में १२ मंत्री होते हैं, जो अपने शासन-कार्य के लिए प्रतिनिधी सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

न्यूफ़ाउन्डलैन्ड का शासन

पार्लमेन्ट—यहाँ की पार्लमेंट में दो सभायें हैं—(१) व्यवस्थापक परिषद् और (२) व्यवस्थापक सभा। व्यवस्थापक परिषद् में २४ से अधिक सदस्य नहीं होते। सदस्यों की नियुक्ति गवर्नर द्वारा की जाती है।

व्यवस्थापक सभा में ३६ प्रतिनिधि होते हैं, जो सर्व-साधारण द्वारा चार वर्ष के लिए चुने जाते हैं। मताधिकार प्रत्येक बालिग़ पुरुष को प्राप्त है, स्त्रियों को नहीं है।

गवर्नर और प्रबन्ध-कारिणी सभा—यहाँ का गवर्नर इंगलैंड के बादशाह द्वारा नियुक्त किया जाता है। वह प्रबंध-कारिणी सभा की सलाह से शासन-कार्य्य करता है। प्रबंध-कारिणी सभा में ९ मन्त्री होते हैं, जो अपने शासन-कार्य के लिए प्रतिनिधी सभा के प्रति उत्तरदायी होते हैं।

उत्तरदायी शासन-पद्धति

ब्रिटिश-साम्राज्य के स्वतन्त्र भागों की शासन-पद्धति का वर्णन किया जा चुका है। भिन्न-भिन्न भा

---

*न्यूज़ीलैंड के मूल निवासी माओरी (Maori) कहलाते हैं।

की शासन-पद्धति में कुछ-कुछ बातों में भेद होते हुए बहुत कुछ समानतायें हैं, जिनमें से मुख्य निम्न-लिखित हैं—

प्रत्येक भाग में दो-दो व्यवस्थापक संस्थायें हैं। व सम्बन्धी क़ानूनी मसविदों के सम्बन्ध में प्रायः र्वाधिकार प्रतिनिधि-सभा को होता है। मन्त्री-डल इसी सभा के प्रति उत्तरदायी होता है।

(१) इन भागों में एक विशेष प्रकार की शासन-द्धति प्रचलित है, उसे उत्तरदायी शासन-पद्धति हते हैं। इसकी मुख्य बातें ये हैं—

(क) शासन सम्बन्धी सब कार्य इंगलैण्ड के शाह द्वारा नियुक्त गवर्नर-जनरल (या गवर्नर) रा किये जाते हैं। यह व्यवस्थापक-मण्डल के प्रति रदाता नहीं होता, इसलिए यह उसके द्वारा हटाया नहीं जा सकता।

(२) उसके कार्य मन्त्रियों के परामर्श से और के ही उत्तरदायित्व पर किये जाते हैं। मन्त्री नाम-त्र से उसके द्वारा, परन्तु वास्तव में प्रजा-प्रतिनिधियों रा, और साधारणतः व्यवस्थापक मण्डल के सदस्यों से चुने जाते हैं।

(३) इस प्रकार प्रजा-प्रतिनिधि अपने र्वाचित मन्त्रियों द्वारा देश का वास्तविक शासन रने वाले होते हैं।

(४) जब प्रतिनिधि-सभा का इन मन्त्रियों पर श्वास नहीं रहता, ये (यदि व्यवस्थापक मंडल को ग नहीं करते) त्यागपत्र दे देते हैं, और उनके न पर नये मन्त्री चुने जाते हैं।

(५) इस प्रकार प्रबन्धक और व्यवस्थापक क्ति उस दल के हाथ में रहती है, जिसका निधि-सभा में बहुमत हो।

(६) व्यवस्थापक-मंडल और मन्त्री-मंडल अपनी विवादग्रस्त बातों को, न्याय-विभाग के संमुख रक्खे बिना ही, परस्पर में तय कर लेते हैं।

साम्राज्य के स्वतंत्र भाग और इंगलैंड—अपने अपने आन्तरिक प्रबन्ध संबंधी बातों में ब्रिटिश साम्राज्य के स्वतंत्र भाग बहुत समय से स्वतंत्रता-पूर्वक कार्य करते आये हैं। हाँ, जिन बातों का संबंध साम्राज्य के दूसरे स्वतंत्र या परतंत्र भाग से अथवा साम्राज्य के बाहर किसी अन्य देश से होता था, उसका निश्चय, अब से कुछ वर्ष पूर्व तक, ब्रिटिश सरकार किया करती थी। परन्तु अब कुछ समय से उनमें भी ब्रिटिश साम्राज्य के स्वतंत्र भाग बहुत कुछ स्वतंत्रता-पूर्वक कार्य करने लगे हैं। इस विषय में समय-समय पर साम्राज्य-परिषद् में विचार होता है।

साम्राज्य-परिषद्—इस परिषद् के सदस्य इंगलैंड का प्रधान मंत्री, मंत्री-मण्डल के कुछ सदस्य, साम्राज्य के स्वतंत्र भागों के मंत्री, अन्य भागों की ओर से ब्रिटिश सरकार का उपनिवेश-मंत्री, तथा भारतवर्ष की ओर से भारत-मंत्री होते हैं। इसका सभापति इंगलैण्ड का प्रधान मंत्री होता है। इसका अधिवेशन प्रति तीसरे वर्ष होता है। इसके स्वीकृत प्रस्ताव केवल परामर्श के रूप में होते हैं, वे विरुद्ध मत रखने वालों पर वाध्य नहीं होते।

साम्राज्य में स्वतंत्र भागों का स्थान—साम्राज्य-परिषद् का पिछला अधिवेशन सन १९२६ ई० में हुआ था। उसमें यह बहुत स्पष्ट कर दिया गया है कि साम्राज्य के स्वतंत्र भागों का परस्पर में तथा अन्य भागों से क्या सम्बन्ध रहना चाहिए। उस अधिवेशन में सर्व-सम्मति से उनके विषय में यह निश्चय हुआ है—

ये ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वराज्यभोगी भाग हैं। इन सब का स्थान समान है। आन्तरिक

अथवा बाहरी विषयों में कोई एक दूसरे के अधीन नहीं है। बादशाह के प्रति राज-भक्ति रख कर सब एकसम्मेलन-सूत्र में बँधे हैं और ब्रिटिश कामनवेल्थ (British Commonwealth) के सदस्यों की हैसियत से स्वतन्त्रता-पूर्वक सम्बन्धित हैं। प्रत्येक भाग अब स्वयं ही अपने भाग्य का निर्माता है। किसी भाग पर दूसरे भाग का दबाव नहीं है। प्रत्येक भाग यह स्वतः निश्चय करता है कि वह कहाँ तक दूसरे भागों से सहयोग करेगा।

गवर्नर-जनरल का स्थान—इन भागों में इनके गवर्नर-जनरलों का वही स्थान है, जो बादशाह का इङ्गलैण्ड की शासन-पद्धति में है। वे बादशाह के प्रतिनिधि हैं, न कि इङ्गलैण्ड की सरकार या उसके किसी भाग के। अब स्वतन्त्र भागों की सरकारों का जो पत्र-व्यवहार ब्रिटिश सरकार से होता है वह उनके प्रधान मन्त्रियों द्वारा होता है, न कि गवर्नर-जनरल द्वारा। हां, गवर्नर-जनरल को मुख्य-मुख्य सरकारी काग़ज़ों की प्रतिलिपि (नक़ल) भेज दी जाती है। उसे प्रबन्धकारिणी सभा के निश्चयों की सूचना उसी प्रकार दी जाती है, जैसे इङ्गलैण्ड के बादशाह को वहाँ के मन्त्री-मंडल के निश्चय की सूचना दी जाती है।

क़ानूनी मसविदों सम्बन्धी बादशाह के अधिकार—साम्राज्य के किसी स्वतन्त्र भाग की पार्लमेण्ट से स्वीकृत किसी क़ानूनी मसविदे को बादशाह केवल वहां के प्रधान मन्त्री की सलाह से ही रद्द कर सकता है, न कि इङ्गलैण्ड के प्रधान मन्त्री की सलाह से। किसी स्वतन्त्र भाग की पार्लमेण्ट यदि कोई ऐसा क़ानूनी मसविदा स्वीकार करना चाहे, जिससे दूसरे स्वतन्त्र भाग की हानि हो, तो उक्त दोनों भागों के मन्त्री परस्पर में परामर्श कर लेंगे। इङ्गलैण्ड की सरकार को, बीच में, हस्तक्षेप करने की आवश्यकता न होगी।

विदेशों से सम्बन्ध—प्रत्येक स्वतन्त्र भाग को यह अधिकार है कि वह किसी अन्य देश से किसी विषय की संधि का पत्र-व्यवहार कर सके, और ऐसा करते समय जिस-जिस स्वतन्त्र भाग से उसका संबंध हो, उसे भी सूचित कर दे। यदि कोई मत-भेद न हो तो बादशाह के नाम से उक्त भागों की ओर से संधि हो जायगी। उस संधि का सम्बन्ध उनही भागों से होगा, जिनकी ओर से वह संधि हुई है। इसी प्रकार यदि ब्रिटिश सरकार कोई सन्धि करे तो वह सब स्वतन्त्र भागों पर लागू न होगी, जब तक कि वहाँ की सरकारें भी उस संधि पर अपनी स्वीकृति न दे दें।

विदेश-नीति के सम्बन्ध में साम्राज्य परिषद् में यह निश्चय हुआ है कि इसका अधिकांश उत्तरदायित्व अभी कुछ समय तक इङ्गलैण्ड की सरकार पर रहना चाहिए, परन्तु इसमें यह ध्यान रक्खा जायगा कि कोई स्वतन्त्र भाग अपनी सरकार की स्वीकृति के बिना किसी नीति को मानने के लिए वाध्य न होगा।

दयाशंकर दुबे
भगवानदास केला

व्यथित प्रार्थी

दीनता हमारी दीन-बन्धु देखते क्या नहीं ?
दुःख में पड़े हो दास आपके बचाइए
कहे ' कवि पुष्कर ' कलंक लगता है तुम्हें,
नीच नाच नाच चुके और न नचाइए।
द्रौपदी की लाज क्या रखी थी तुमने ही कभी ?
याचना बड़ी है हुई व्यर्थ न यचाइए।
क्रूर कलिकाल से डरे हो क्या हमारे प्रभो,
आत्म-वञ्चना का मान अब तो लचाइए।

जगन्नारायणदेव शर्मा 'कवि पुष्कर'

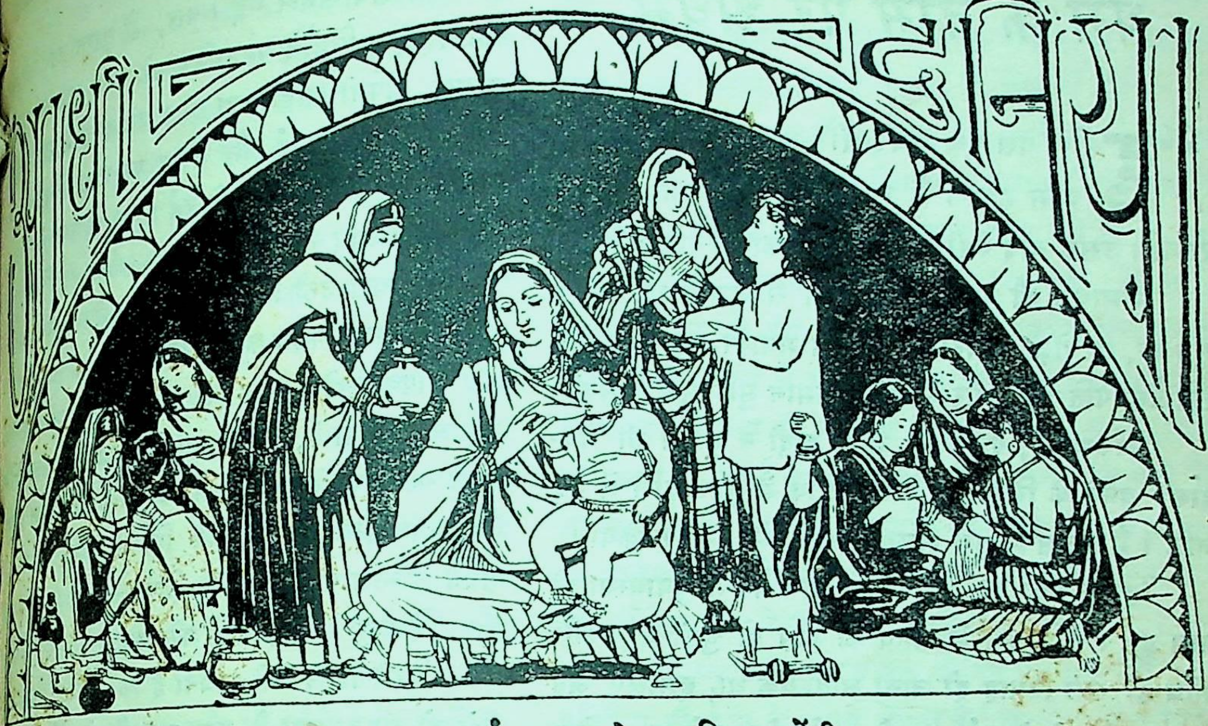

"हम जाग उठीं, सब समझ गईं, अब करके कुछ दिखला देंगी ।
हाँ, विश्व-गगन में भारत को, फिर एक बार चमका देंगी ॥"

आशे !

जग की ज्वाला में जब जल कर,
लेता हूँ मैं लम्बी साँस ।
करुण कहानी से भर जाता,
मेरे जीवन का इतिहास ॥
उमड़-घुमड़ नैराश्य निशा में,
घोर घटा है छा जाती ।
आँसू की अविरल धारायें,
वर्षा सी हैं बरसाती ॥
अन्धकारमय मन मन्दिर में,
मच जाता है हाहाकार ।
मर्मस्थल के अन्तस्तल में,
उठता है दुख का हुङ्कार ॥
विद्युत सी तब चमक-चमक कर,
फैलाती हो तुम आलोक ।
मन्द-मन्द मुसका-मुसका कर,
हरती हो तुम मेरा शोक ॥
होता अन्तर्ध्यान तुरत ही,
मन-मन्दिर का तम विस्तार ।
मधुर स्वरों में बज उठते हैं,
मेरी हृत्तन्त्री के तार ॥

नन्दकिशोरलाल मुख़्तार "किशोर"

धर्म के नाम पर अधर्म

(१)

"दुर्भाग्य वश एक 'देवदासी'–माता के उदर से मेरा जन्म हुआ। मैं १० वर्ष की हुई, तभी मेरी माँ मर गई। उसके बाद मेरी दादी ने मेरा लालन-पालन किया।

"रामायण की कथा मैं बड़े चाव से सुनती थी। उसे सुन कर, हर रोज़, मैं परमेश्वर से यही मनाया करती कि मुझे राम जैसा पति मिले और सीता के समान मुझे सुख प्राप्त हो।

"अकस्मात्, एक दिन, मेरी दादी ने मुझसे भी 'देवदासी' बनने के लिए कहा, जिससे कि मैं वेश्यावृत्ति में पड़ जाऊं। मैंने उसकी बुरी सलाह मानने से इन्कार किया।

"इसके बाद १३ वर्ष की हो जाने पर मैं युवावस्था को प्राप्त हुई। चूँकि अब मैं स्त्रीत्व को प्राप्त हो चुकी थी, और शीघ्र ही मेरा विवाह हो जाना आवश्यक था; इसलिए अब फिर उसने मुझे देवार्पण करने अर्थात् देवता के साथ मेरा विवाह कर देने के लिए कहा। इस बार भी मैंने इन्कार किया। मैंने उसे बहुतेरा समझाया। मैंने उससे कहा कि विवाह के पवित्र उद्देश्य से तो मैं एक कुत्ते के साथ भी विवाह कर सकती हूँ; पर देववासी के तौर पर वेश्या तो नहीं ही बनूँगी।

"तब मेरे नाते-रिश्तेदारों ने इसके लिए मुझपर ज़बर्दस्ती की। ७ दिन तक मुझे भूखों मरना पड़ा, और इसी प्रकार एक महीना बीत गया! लेकिन फिर भी मैं अपनी बात पर दृढ़ रही; यहाँ तक कि आत्महत्या कर डालने तक की धमकी दे दी। लेकिन, आह, नतीजा कुछ न निकला!

"एक दिन एक श्रीमान् मेरी दादी के पास आया। खूब देर तक मेरी दादी के साथ उसकी बातें होती रहीं। मुझे जिज्ञासा हुई; पर, दादी के मुँह से निकलते हुए सिर्फ़ ये शब्द मैं सुन पाई–'उसे (यानी मुझे) नींद आ जाय, बस, फिर जैसे तुम चाहो उसके साथ भोग करना!"

"मैं सहम उठी। फ़िक्र के मारे नींद ग़ायब हो गई, चुपचाप जागती हुई ही मैं पड़ी रही। आधी रात होने पर दादी मुझे देखने आई। मैं चुपचाप पड़ी रही। मुझे सोती समझ कर वह वापिस चली गई।

"मैं सब समझ गई। बस, मैं तुरन्त उठ बैठी और अपनी जगह बिछौने पर तकिए को लम्बा रख कर ऊपर से उसपर अपनी साड़ी उढ़ा दी। यह करके मैं झटपट कोठरी के बाहर निकल आई और अन्दर का दृश्य देखने के लिए खिड़की के बाहर छिप खड़ी हुई। वह श्रीमान अन्दर घुसा और कामोन्माद में, जोश के साथ, तकिए से चिपट गया।

"मैं थर्रा उठी। २००) रु० का ज़ेवर अपने साथ ले मर्दानी पोशाक पहन कर, चुपचाप मैं घर से निकल भागी।"

शंपकावली नामक एक १३ वर्षीय मद्रासी कुमारी की यह आत्म-कथा है, जिसने अपनी पवित्रता की रक्षा के लिए अभी गत वर्ष ही अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया! आह! कैसी दशा होगी उसकी, जब कि आत्महत्या को जाते हुए अपने अन्तिम पत्र में उसने लिखा—

"हे प्रभु! देवदासियों को बचा!

"परमेश्वर से मेरी प्रार्थना है कि भगवन्, इस समय मुझे जो सहना पड़ा है, उस दुःख में से मेरे जैसी दूसरी बहनों को तो उबार! उन्हें विवाहित जीवन बिताने दे। अपनी पवित्रता को क़ायम रखने के लिए मैंने अपना घर तक छोड़ दिया है; फिर भी कहीं दुनिया मुझे दोष दे, इसलिए मैंने निश्चय किया है कि इस ज़िंदगी से मुक्त हो जाऊँ।........

"मेरा यह पत्र लोगों की नज़रों से गुज़रेगा, उससे पहले ही मैं इस दुनिया को छोड़ कर दूसरे लोक में जा पहुँचूंगी। इस अन्त-समय अपने जन्मदाता प्रभु से मैं यही नम्र-याचना करती हूँ कि वह मेरी बहनों को इस कलंकपूर्ण 'देवदासी' की प्रथा से बचावें।"

कितनी करुण! कितनी रोमांचकारी!! और कितनी शर्मनाक!!! फिर भी, अफ़सोस, भोग और विलास के गर्ज़ी हम स्वार्थी जीवों को इसका पूरा पता तक नहीं—इस पर दर्द और इसे दूर करने की चिन्ता तो फिर दूर की बात!

(२)

देवदासी! देव+दासी=देवता की दासी। और, देवता कौन? मनुष्येतर—वे दिव्य महापुरुष, जो सदाचार और संयम आदि मानव गुणों को पहुँच ही न चुके हों बल्कि आध्यात्मिक रूप में उनसे भी आगे बढ़ कर देवत्व को

चुके हों, जो इन सब सद्‌गुणों को अपने व्यवहार में मान्य कर चुके हों और जिनके लिए अ-संयम एवं दुराचार की तो कल्पना भी कल्पनातीत हो । क्षुद्र-मानव की अपेक्षा ऐसे देवों की दासी होना, फिर संसार में जिन देवों का अस्तित्व भी नहीं कि जिससे दुराचार या अ-संयम की ज़रा लेश-मात्र सम्भावना भी हो सके, कुछ कम सौभाग्य की बात नहीं । वह तो, सच तो, प्रमाणमत्र हुआ मानवी दुराचार और अ-संयम—पतन और व्यभिचार—विषय-भोग और आसक्ति से ऊपर उठ जाने का; पवित्रता और संयम के परिपालन का; और, अन्ततः विश्व के परम आध्यात्मिक लक्ष्य ईश्वर की समानता—उसके साक्षात्कार को—अपने मोक्ष को प्राप्त करने की दिशा में प्रयत्न और पदार्पण करने का । यह तो ज़ाहिर होता है संसार और सांसारिक विषय-भोगों से विरक्ति और ईश्वर से भक्ति को ।

यही वस्तुतः इसका रहस्य है। डॉ० बेसेण्ट के शब्दों में, "प्राचीन हिन्दू मन्दिरों में शुद्ध श्रद्धालु भक्तिनों की जमात रहा करती थी । रोज़ पूजा के लिए जो लोग मन्दिर आते, दूसरे धर्माचार्यों की भांति, वे भी उनमें धर्म-प्रचार किया करती थीं । उन दिनों इनकी बड़ी इज़्ज़त-आबरू थी, और इनकी ज़रूरतों व सहूलियतों पर बड़ा ध्यान रक्खा जाता था । देवों और मन्दिर के भक्तों की धार्मिक सेवा में अपना समय बितातीं, जैसा कि 'दासी' शब्द से अपने-आप ज़ाहिर होता है, और देवताओं के जलूसों में सादा-से-सादा संन्यासी-वेश धारण करके अवसरानुकूल पुण्यस्तुति गाती हुई वे शरीक होती थीं । यही देवदासियों की मूलोत्पत्ति और यही उनका इतिहास है ।"

× × ×

परन्तु, आज ?—

कलियुग ने हमारा अधःपात किया; और, उस अधःपात के साथ, हमारी अच्छी से अच्छी और धार्मिक प्रथाओं ने भी अपना स्वरूप बदल दिया ! यहाँ तक कि एक ओर तो हम आप-आप उसका कड़वा नतीजा भुगत रहे हैं, दूसरी ओर विदेशी अनुभवहीन छोकरे-छोकरियाँ तक उसपर हमारी खिल्लियाँ उड़ाते हैं—और, इससे भी बढ़ कर, उसके कारण, हमें अपने देश के स्व-शासन के ही अयोग्य ठहरा रहे हैं !!

कुप्रसिद्ध अमेरिकन कुमारी मेयो, शैतान की तरह बद-नाम अपनी 'मदर इन्डिया' पुस्तक में, लिखती हैं :—

"देश के कुछ भागों में, ख़ास कर उड़ीसा और मद्रास प्रान्त में, हिन्दुओं में यह एक रिवाज़ है कि माता-पिता देवताओं से कुछ वर मांगने के लिए यह मन्नत मान लेते हैं कि यदि हमारी अगली सन्तान कन्या हुई तो हम उसे देवता के चरणों में भेंट कर देंगे । कभी-कभी कोई विशेष सुन्दर बच्ची, जिसे किसी कारण से घर में रखना उचित नहीं समझा जाता है, मन्दिर में चढ़ा दी जाती है ! यह छोटी-सी बच्ची मंदिर की स्त्रियों के सुपुर्द कर दी जाती है । ये स्त्रियाँ भी वही हैं, जो स्वयं चढ़ाई जाती हैं—अर्थात् देवदासी । ये उस बच्ची को नाचना-गाना सिखाती हैं । प्रायः पाँच वर्ष की उम्र में वह पुरोहित की वेश्या बन जाती है ।

"यदि वह अधिक उम्र तक जीवित रह गई, तो फिर प्रतिदिन की पूजा के समय देवता के सन्मुख नाचने-गाने का काम करती है । मन्दिर के आस-पास के मकानों में उन पुरुष-यात्रियों के लिए, जो मन्दिर के दर्शन के लिए आकर वहाँ ठहरते हैं, वे सदैव कुछ दामों पर व्यवहार के लिए मिल सकती हैं । वे सुन्दर वस्त्र पहनती हैं और कभी-कभी देवताओं के आभूषण भी उन्हें पहना दिये जाते हैं । जब तक कि उनका सौन्दर्य ढल नहीं जाता, वे यही काम करती रहती हैं । उसके बाद जिस देवता के मन्दिर में वे रह चुकी हैं उसका चिह्न-विशेष उनपर गोद दिया जाता है और उन्हें थोड़ा-सा ख़र्च देकर खुले फिरने के लिए छोड़ दिया जाता है । भीख माँग कर अपना जीविकोपार्जन करना इसके बाद उनका विशेष अधिकार समझा जाता है । इन लड़कियों के माता-पिता कितने ही धनाढ्य, उच्च पद के और उच्च जाति के क्यों न हों, इस तरह अपनी लड़की को निकाल देने के कारण समाज में बिलकुल अनादर के पात्र नहीं समझे जाते ! माना जाता है कि माँ-बाप का ऐसा करना सर्वथा आदरणीय है । इस तरह की लड़कियों की एक अलग जाति बन गई है, इन्हें 'देवदासी' अर्थात् 'देवताओं की वेश्यायें' कहा जाता है ! हर मन्दिर के साथ इनका होना आवश्यक है ।"

निस्संदेह, यह वर्णन अतिरंजित है । बड़ी धारा-सभा

के सदस्य श्रीयुत सी० एस० रंगा अय्यर अपनी पुस्तक 'फ़ादर इण्डिया इसपर लिखते हैं :—

"हम यह मानते हैं कि भारत में देवदासियाँ हैं। पर भारत में वेश्याओं की एक पृथक जाति है। उनमें कुलीन और धनी घर की लड़कियाँ नहीं होतीं। उनकी मातायें भी वेश्या ही होती हैं। उनका यह पैदायशी पेशा है। वेश्यायें ख़ान्दानों से आकर वेश्यावृत्ति अख़्तियार नहीं करतीं।

"छोटी-छोटी लड़कियाँ मंदिरों में वेश्याओं की तरह शिक्षा पाकर भी, धर्म के भाव से, बड़ी होने पर वेश्यावृत्ति नहीं करतीं। वे किसी एक आदमी से शादी कर लेती हैं। भारतवर्ष की वेश्यायें भी पवित्र होती हैं। वे ईश्वर से डरती हैं। अमेरिकनों के तलाक की बाबत पढ़ कर यह समझा जा सकता है कि स्त्री-पुरुषों के प्रेम के अस्तित्व का रूप कितना भयानक है; किन्तु देवदासियां, जो केवल एक ही व्यक्ति से संबन्ध रखती हैं, दूसरे के पास नहीं जातीं, जब तक कि वह पहला व्यक्ति जीवित रहता है।"

लाला लाजपतराय भी मिस मेयो की बातों को अतिरंजित बताते हैं, जब कि अपनी नव-प्रकाशित 'अनहेपी इण्डिया' पुस्तक में वह लिखते हैं:—

"... यह स्मरण होना चाहिए कि दक्षिण प्रांत के सिवा और कहीं इसका अस्तित्व नहीं है; और मिस मेयो का 'देश के कुछ भाग' लिखना नितान्त भ्रामक है। दक्षिणी प्रांत में भी मलाबार जैसे बड़े-बड़े ऐसे भाग हैं कि जहां कोई इसे जानता तक नहीं। और यह कथन तो प्रत्यक्ष ही एक बड़ी भारी अतिशयोक्ति है कि '५वर्ष की उम्र से ही वह पुरोहित की वेश्या बन जाती है'।"

लालाजी ने इस संबन्ध में सर जेम्स फ्रेज़र की 'गोल्डन बो' किताब से भी एक लम्बा उद्धरण दिया है, जिससे इस प्रथा पर बहुत कुछ प्रकाश पड़ता है। उसके अनुसार, "तामिल मंदिरों में मंदिर की सेवा के लिए चढ़ाई हुई नाचने-गाने वाली लड़कियाँ देवदासियाँ अर्थात् देवताओं की सेविकायें कहलाती हैं; परन्तु साधारण बोल-चाल में उन्हें वेश्या कहा जाता है। दक्षिण भारत के किसी भी अच्छे मन्दिर में इन पवित्र नारियों का जत्था रहता है। इनका ख़ास काम है सुबह-शाम मन्दिर में नाचना, देवता पर चँवर करना, जलूसों में देवता के सामने नाचना-गाना और कुम्भार्ती लेकर चलना। गर्भवती मातायें आसानी से बच्चा पैदा होने के लिए अक्सर यह मन्नत मनांती हैं कि अगर लड़की हुई तो उसे देवता की सेवा के लिए अर्पण कर देंगी। मद्रास प्रात के तिरुकुल्लिकुंद्रम नामक एक छोटे से कस्बे में तो हरेक परिवार की बड़ी लड़की मन्दिर की सेविका बनती है। इस प्रकार देवार्पण की जाने वाली बालिकाओं का देवदासी का काम शुरू करने से पहले, रस्म के तौर पर, देव-प्रतिमा या तलवार के साथ विवाह होता है, जिससे प्रकट होता है कि अक्सर वे देव-पत्नियां मानी जाती हैं।"

इस लेखक ने उनके उज्ज्वलपक्ष पर भी दृष्टिपात किया है। उनके मूल को तो अच्छा बताया ही है, साथ ही आजकल की 'नर्स' या 'सिस्टर' सेविकाओं के समकक्ष भी उन्हें माना है। देवता से विवाह की भावना को ऊँचा बताया है। उसके कथनानुसार इसका मूल है साधारण कौटुम्बिक जीवन का परित्याग कर देव-सेवा में लीन होना। इसमें शक नहीं कि यह भी एक पहलू अवश्य है, और हमारी समक्ष में अं भी है। परंतु सवाल मूल का नहीं, सवाल तो उनकी आज स्थिति का है। और इस विषयमें हमें अवश्यही श्रीमती डा० मुथु लक्ष्मी रेड्डी के कथन को प्रामाण्य मानना होगा। वह उस प्रांत की रहने वाली ही नहीं बल्कि मद्रास-कौंसिल की सम्मा सदस्य भी हैं और स्त्रियोद्धार—ख़ास कर इस देवदासी-प्रथा के विरुद्ध पिछले कई सालों से अनवरत् प्रयत्न कररही हैं। 'बॉम्बे क्रॉनिकल' के गत कांग्रेसाङ्क में उन्होंने लिखा था:—

"दासी शब्द का मूल अर्थ चाहे जो हो, आज तो व्य वहार में उसके मानी व्यभिचारिणी के होते हैं। दक्षिण भारत जो भाई-बहन इन देवदासियों के रीति-रिवाज़ से भली भाँ परिचित हैं, उन्हें मेरे इस कथन से सहमत होना ही पड़ेगा इस प्रथा का सबसे अधिक दयनीय, घृणित और क्रान्तिक पहलू बालिकाओं को उनकी बिलकुल अबोध अवस्था से व्यभिचार की शिक्षा देना है। एक महिला ने क्या ही ठी कहा है, 'मोम का वह टुकड़ा, वह नन्हीं-सी, कोमल, निर्दो बालिका अपने जीवन के आरम्भ ही में एक ऐसी शक्ति हाथों सौंप दी जाती है, जो स्वभाव से दुष्ट होती है।' इ निर्दोष बालिकाओं को, जिनमें दत्तक और औरस दोनों शा

हैं, बचपन ही से गाना-बजाना और नाचना आदि सब कलायें सिखलाई जाती हैं, जिन्हें सीख कर वे दुराचारिणियाँ बन जाती हैं। लोगों को अपने हाव-भाव से आकर्षित करने लगती हैं। समावर्तन संस्कार (?) के बाद वे देवालयों में प्रविष्ट होती हैं और नाम-मात्र के तलवार (Dagger) या देव-प्रतिमा के साथ उनकी विवाह-विधि का प्रहसन कर दिया जाता है। इसके कारण वे वैदिक रीति से अपना विवाह कर गार्हस्थ्य जीवन बिताने से जन्म वंचित रहती हैं। इस तरह जन्म भर के लिए उन्हें स्वच्छंद विहार करने का—व्यभिचारपूर्ण जीवन बिताने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। आजकल १८ वर्ष से कम उम्र की कुमार बालिकाओं का जीवित बलिदान (Dedication) क़ानूनन मना है, अतः कन्याओं के माता-पिता या अभिभावक कन्या का उक्त संस्कार १८ वर्षों के बाद करके दक्षता और सफलता के साथ इस क़ानून से अपना बचाव कर लेते हैं। यहाँ आप अधिकार-पूर्वक यह प्रश्न कर सकते हैं कि १८ वर्ष के बाद तो कन्यायें बालिग़ हो जाती हैं, अतः उन्हें अपने भावी जीवन और भाग्य का निर्णय करने में बिलकुल स्वतंत्र होना चाहिए। परन्तु मैं हिन्दू-जनता को विश्वास दिलाना चाहती हूँ कि ये कुमरिकायें बड़ी असहाय अवस्था में होती हैं, उन्हें बचपन से व्यभिचार को अपना जातीय धर्म समझने की शिक्षा दी जाती है। अपने अज्ञान और अन्धविश्वास के कारण ये भोली बहनें गार्हस्थ्य जीवन का पवित्र पथ ग्रहण करने से सदा हिचकती हैं; उन्हें डर इस बातका बना रहता है कि कहीं गृहिणी बनजाने पर परमात्मा का कोप उन्हें भस्म न कर डाले। बचपन की अबोध और कोमल अवस्था ही से इस तरह के भद्दे और शर्मनाक वायुमंडल में रहने के कारण इन बहनों की मनोवृत्ति ठीक वैसी ही बन जाती है। अतः जब वे अपनी अवस्था को प्राप्त होती हैं तब भी उन्हें इसी पापपूर्ण जीवन में सुख का अनुभव होता है। ऐसी दशा में इन बहनों से किसी दूसरी बातकी आशा ही कैसे की जाय?" इस प्रकार "कहे जाने वाले धार्मिक रिवाज़ों के झूठे बहानों पर लाखों निर्दोष बालिकाओं को अनीति के इस भयंकर गड्ढे में होम दिया जाता है और हमारे धर्माचार्य बने हुए लोग ख़ामोशी के साथ इन्हें देखा करते हैं।"

कहाँ तक कहें, ला० लाजपतराय के लेखानुसार—और शायद कुछ समय पूर्व महात्माजी ने भी ऐसा ही कहा था—"दक्षिण भारत के कुछ मन्दिरों को तो उनके पुजारियों ने बिलकुल व्यभिचार के अड्डे—वेश्यालय—ही बना रक्खा है।" और इसीलिए, मिस मेयो के आक्षेपों का जवाब देते हुए भी, उनके अन्तःकरण से सहसा यह निकल पड़ा है, "देवदासियों की यह प्रथा राक्षसी है; और हरेक दक्षिण भारतवासी को इसके लिए शर्म से गड़ जाना चाहिए।"

सचमुच यह न केवल धर्म ही नहीं; बल्कि स्पष्टतया धर्म के नाम पर अधर्म है। पुण्य के नाम पर पाप का बवंडर है। मनुष्य की मनुष्यता को नष्ट कर उसे साक्षात् राक्षस की कोटि में ले जाने का घृण्य प्रयत्न है। सवाल यह नहीं है कि दुनिया के किसी कोने में इससे भी बढ़कर पतित कोई दृश्य या क्रिया मौजूद है या नहीं? हाँ, इससे हमें मतलब नहीं। सवाल सीधा-सादा यह है कि इससे हमें नुक़सान हो रहा है या नहीं? हमारी मानवता और हमारे सद्गुणों को यह नष्ट कर रही है? या नहीं? और हमारी नैतिक, मानसिक एवं शारीरिक शक्ति को इससे क्षति पहुँच रही है या नहीं? और, अफ़सोस, इन सभी दृष्टियों से हम इसे एक महा नीच, घृण्य, पतित और इसलिए तत्काल त्याज्य प्रथा मानने को बाध्य होते हैं। ओ मनुष्य! बता तो सही, भला तू कब तक इस 'राक्षसी' प्रथा से अपना मान-मर्दन करवाता रहेगा? उठ! उठ खड़ा हो! और, इसके अस्तित्व-नाश के लिए प्रयत्नशील हो जा!

मुकुटबिहारी वर्मा

"सर्व-साधारण में यह भ्रमपूर्ण धारणा घर कर गई है कि यह भयंकर अनीति धर्म-सम्मत है। मंदिर के ट्रस्टी लोग अपने हठ और दुराग्रह से इसे और पुष्ट कर रहे हैं। कोयम्बटूर के 'सेनगुणतर महाजन-संघ' ने इस प्रथा को नष्ट करने का प्रयत्न किया था, पर इसीकारण वह सफल न हुआ। फिर भी, मैं कहती हूँ, हिन्दू-जाति को जागृत होकर अपने अन्दर जड़ जमाये हुई इस भयंकर बुराई को नष्ट करना ही चाहिए।"

—डॉ० रेड्डी

स्त्रियां कैसी बनें ?

वही शिक्षा सफल समझी जाती है, जो विद्यार्थी की प्रकृति के अनुकूल हो—स्वभाव जिसका अनुमोदन करता हो। कम बोलने वाले विद्यार्थी को वकालत पढ़ाना अथवा कमज़ोर और डरपोक लड़के को सेना-विभाग के लिए शिक्षा देना उतना ही मूर्खतापूर्ण और हानिप्रद है, जितना किसी मिर्गी के रोगी से जहाज़ पर नौकरी कराना। परन्तु माँ-बाप अपने बच्चों को सांसारिक सफलता के लालच से प्रायः ऐसी शिक्षा देते हैं, जो उनके स्वभाव के बिलकुल ही विपरीत है।

यही बात आजकल लड़कियों की शिक्षा की है। कितने ही लोग गृहस्थी के रथ को चला लेने के ज्ञान-मात्र को पर्य्याप्त समझते हैं, उनकी कन्या की शिक्षा रोटी पका लेने और कपड़े सी लेने पर ही समाप्त होजाती है। दूसरी ओर वे लोग हैं, जो लड़कियों के लिए भी वही शिक्षा उचित समझते हैं, जो लड़कों के लिए। उनके लिए लड़कियों और लड़कों की शिक्षा में कोई अन्तर नहीं। उनके लिए बैरिस्टरी या अध्यापकी ही स्त्री-जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य है। परन्तु दोनों ही पक्ष के लोग अपने बच्चों की शिक्षा प्रारम्भ करते समय उसका भलीभाँति विश्लेषण नहीं करते।

स्त्रियाँ न तो पशुओं की भाँति दासता करने ही के लिए बनाई गई हैं, और न धनोपार्जन में पुरुषों से प्रतिद्वंद्विता करने के लिए ही। स्त्री और पुरुष भिन्न-भिन्न प्रकृति के प्राणी हैं। दोनों के सहयोग से ही संसार रूपी शकट चल रहा है। जीवन छुई-मुई का पौदा हो जाता, यदि पुरुष की भुजाओं में रक्षा करने की शक्ति न होती। इसी प्रकार संसार एक हत्या-स्थल होगया होता, यदि नारी के हृदय में करुणा का अक्षय स्रोत न बहता होता। मेरे भाई मुझे क्षमा करें, परन्तु इस अखंड सत्य में किसी को आपत्ति न होनी चाहिए कि यह नारी-जाति की निःस्वार्थ सेवा ही है, जिससे अब तक संसार का अस्तित्व बना हुआ है। जिस दिन स्त्रियाँ अपने दया और परमार्थ, सेवा और त्याग के भावों को छोड़ कर पुरुषों की स्नेहहीन प्रकृति को अपना लेंगी, उस दिन यह संसार भेड़ियों का संसार हो जायगा। सेवा-धर्म कठिन है, और इसके लिए स्त्रियों ने ही जन्म लिया है। स्त्रियों की प्राकृतिक भावनायें ही त्याग-मयी होती हैं।

यों तो स्त्रियाँ स्वभावतः, जो कुछ बन पड़ता है सेवा करती ही हैं, और उनसे बलात् सेवा ली ही जाती है; परन्तु शिक्षा ऐसी होनी चाहिए, जो ईश्वर-दत्त गुणों को चमका दे—जो सोने के लिए सुहागा हो। सच्ची शिक्षा वह है, जो शिक्षार्थी को उसकी रुचि के अनुसार अग्रसर करे। सच्ची स्त्री-शिक्षा वह है, जो स्त्रियों को सेवक और त्यागी के सर्व्वोच्च पद पर पहुँचा दे; जो शिक्षा उन्हें सेवा और त्याग की देवी बना सके, उसीको मैं स्त्री-शिक्षा कहती हूँ।

कन्याओं को सेवा-धर्म का महत्व सिखाना चाहिए। उन्हें भूगोल से दृष्टान्त लेकर समझाना चाहिए कि बड़प्पन की निशानी नम्रता और सेवा है। बड़े वृक्ष वही होते हैं, जो नमे रहते हैं और फल तथा छाया देते हैं। उन्हीं बादलों का स्वागत किया जाता है, जो झुके हुए तथा जल-प्रद होते हैं। प्राणि-मात्र को अपनी गोद में स्थान देने के कारण ही पृथ्वी को माता कहा है। प्रकृति के प्रत्येक विभाग से उदाहरण लेकर उन्हें वे सेवायें समझानी चाहिएँ, जो प्रकृति जगत की कर रही है। इतिहास से उन्हें यह सिखलाना चाहिए कि किस प्रकार समाज के तुच्छ सेवक संसार के मुकुट-मणि बन गये हैं। बड़े-बड़े शक्तिशाली राजा

ब तक अपनेको जनता का सेवक समझते रहे, तक उनका आदर रहा; जहाँ उन्होंने प्रजा को ना दास समझा, प्रजा ने उन्हें तख़्त से खींच कर ं मिला दिया। विज्ञान से छोटे-छोटे अणु की या महत्ता है और बड़े से बड़े नक्षत्र की क्या सेवा है, यह समझाना चाहिए। ये सब बातें उनके मस्तिष्क र प्रारम्भ से ही कहानियों और किंडागार्डन के रीक़े से जमा देनी चाहिएँ।

इसके बाद प्रयोग का स्थान आता है। हम किस र समाज की सेवा कर सकती हैं, यह उनको झाना चाहिए। उन्हें बतलाना चाहिए कि कौनसी वायें पुरुषों के करने की हैं और कौनसी स्त्रियों को नी चाहिएँ। जो काम पुरुष कर सकते हैं, उनको न्हीं पर छोड़ देना उचित होगा। पुरुष सैनिक, दूर, लेखक, व्याख्याता और नेता बन सकते हैं; न्तु प्रेम-मयी पत्नी और वात्सल्यवती माता नहीं न सकते। परमेश्वर ने उन्हें वैसा बनाया ही नहीं। सकता है कि पुरुषों के कुछ काम स्त्रियाँ कर लें। न्तु यह अनधिकार चेष्टा होगी। एक के काम छीन र दूसरे को नहीं दिये जा सकते। मनुष्य-समाज ुमक्खियों का छत्ता नहीं है, जिसमें से पुरुष या ी-जाति निकाल कर बाहर की जा सके। यदि याँ धनोपार्जन के क्षेत्र में उतर पड़े, तो पुरुषों की ारी बढ़ जायगी; और यह समाज के लिए हानिरक है। मैं कहती हूँ, स्त्री-जाति ने अपनी सेवायें भी बेची नहीं हैं, दान की हैं। निःस्वार्थ सेवा या न स्त्री-जाति का गुण है। और (charity begins home) दान अपने ही घर से आरम्भ होता है।

अपने कुटुम्ब के सदस्यों की सेवा करना हमारा ला कर्त्तव्य होना चाहिए। खाना बनाने के लिए ोइया, यदि हमारी परिस्थिति आज्ञा दे तो, रक्खा सकता है; परन्तु उसके बनाये हुए भोजन में वह अपनापन, प्रेम और सद्भाव कहाँ? सेवा औषध है, परन्तु सद्इच्छा उसको अमृत बना देती है। औषध मोल मिल सकती है; परन्तु अमृत अमूल्य है, जो केवल प्रेम से प्राप्त होता है। औषध का सेवन रोगी करते हैं, अमृत का देवता। प्यारी पाठिकाओ! क्या अपने कुटम्बियों को औषध देना चाहोगी, जब कि उन्हें अमृत दे सकती हो? यहाँ यह बताने की आवश्यकता नहीं कि भोजन, वस्त्र तथा गृहस्थी की दूसरी बातों में देश-ऋतु की अनुकूलता और सफ़ाई का ध्यान रखना कितना ज़रूरी है। क्या वेतन के लालची नौकर से इन बातों का ध्यान रखने की आशा की जा सकती है? एक बाहरी आदमी, एक नौकर, क्या समझ सकता है कि परिवार के अमुक व्यक्ति को अमुक ऋतु में अमुक वस्तु लाभदायक है अथवा हानिकारक? ये बातें घर की औरतें ही जानती हैं। कन्याओं की शिक्षा का एक अंग यह भी है कि उन्हें नित्य काम में आने वाली वस्तुओं का उपयोग, हानि, लाभ बताया जाय। स्वादिष्ट व्यंजनों का बनाना, सुन्दर वस्त्रों का सीना, तथा क़सीदा इत्यादि का जानना लड़कियों के लिए सर्वप्रथम बात है। बहू-बेटियों की प्रशंसा तभी है, जब वे चने की रोटियों में वह स्वाद उत्पन्न कर दें, जो पकवान में भी न हो—गज़ी-गाढ़े के ऐसे वस्त्र सियें, जिनके आगे रेशम और मख़मल भी मात हों।

इसके बाद, रोगी की शुश्रूषा पर ध्यान दीजिए। कुछ नुसख़ों और प्रारम्भिक उपचार (First aid) का ज्ञान होना अत्यावश्यक है। नसें मलने की चिकित्सा भारतवर्ष की विशेषता है, यह विद्या अब लुप्त होती जा रही है, महिलाओं को इसकी रक्षा करनी चाहिए। और शीघ्र ही इसे सीखना चाहिए। साथ ही इसके प्रसूता की सेवा, शिशु-रक्षा और धात्री के कर्त्तव्य की शिक्षा भी स्त्रियों के लिए महत्वपूर्ण है।

शिशु-पालन और बालकों की शिक्षा ऐसे विषय हैं, जिनसे आज अधिकांश मातायें अनभिज्ञ हैं; और भारतवर्ष के ह्रास के कारणों में से यह भी एक है। घर का प्रबन्ध तो सर्व-प्रधान है। अमेरिका की एक कन्या-पाठशाला केवल इसी विषय के शिक्षण के लिए है, जहाँ झाड़ू देना और बिस्तर बिछाना तक सिखाया जाता है। पर इसके लिए शिक्षा से अधिक अनुभव की आवश्यकता है।

बस, कौटुम्बिक सेवा के लिए इतना ही थोड़े में बहुत समझना चाहिए। परन्तु मनुष्य के कर्तव्य का अन्त घर की परिधि में ही नहीं हो जाता, उसका कुछ भाग समाज के लिए भी है। समाज हमारी सेवाओं का भूखा है। हज़ारों दीन-दुखियों को विपत्ति की लहरों में चपेटें खाते देख कर क्या हमारा हृदय द्रवित न होगा? क्या लाखों भाग्यहीनों को रोते देख कर हमारी आँखों से एक भी पवित्र बूँद न टपकेगी? क्या हम असंख्य प्राणियों को कुत्ते की मौत मरते हुए देख कर मुँह फेर कर चली जायँगी? समाज कराह रहा है; हमारा सहानुभूतिपूर्ण आशीर्वाद उसे शान्ति देगा, हमारा स्नेहमय हाथ उसके घावों को चंगा करेगा, और हमारे लक्ष्मी-भंडार की एक चुटकी उसकी दरिद्रता को भगा देगी। क्या हम रोगियों और अनाथों को वस्त्र नहीं दे सकतीं? क्षुधार्त्त को एक रोटी नहीं दे सकतीं? पीड़ितों के लिए परमात्मा से प्रार्थना नहीं कर सकतीं? हम सेवा के जीव हैं, और सेवा से ही हमारा उद्धार होगा।

परन्तु, सेवा का अर्थ दासता नहीं है। सेवा मुक्ति है, और दासता बन्धन। दुःखियों की हम परिचारिका बनें, परन्तु अत्याचारियों के लिए सिंहनी। भगवन्, हमें शक्ति दो! अन्याय के दमन में हम सदा तत्पर रहें। सेवा करें, परन्तु स्वतंत्रता और स्वावलम्बन को हाथ से न जाने दें।

बस, एक बात और कह कर इस लेख को समाप्त करूँगी। वह है स्त्रियों के कला और साहित्य के अध्ययन के विषय में। महिलायें ईश्वर की कृति श्र सर्वोत्तम उदाहरण हैं—कला का सर्वोच्च आदर्श हैं। प्रकृति ने उनके अंग-अंग कलामय बनाये हैं। कला की सेवा उनसे अधिक और कौन कर सकेगा! पुरुषों का स्वभाव शुष्क और गद्य-पूर्ण होता है। उनको कवि, गायक और चित्रकार बनने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है। किन्तु रमणियों की प्रकृति स्निग्ध एवं गद्यमय है। वे जन्मतः ही कलावि होती हैं। अपनी अन्तर्हित शक्तियों को प्रकाशित करने के लिए उनको पवन-तनय की नांई केवल स्मरण दिलाने की आवश्यकता है। चित्रकला और संगीत थकान में विश्राम, निराशा में आशा और कष्ट में शान्ति देने वाले हैं। कला को कन्याओं की शिक्षा में मुख्य स्थान होना चाहिए। अलबत्ता साहित्य-सेवा में भी वे पुरुषों से पीछे न रहें। अवश्य ही उन्हें समय कम मिलता है, परन्तु उनकी मस्तिष्कशक्ति पुरुषों से दुगुनी तीव्र होती है। हमारे सन्मुख प्राचीन और अर्वाचीन विदुषियों के आदर्श उपस्थित हैं। उनसे ज्ञात होता है कि स्त्रियाँ अध्ययन के क्षेत्र में भी पुरुषों से कभी पीछे नहीं रहीं। और, उनके साहित्य-प्रेमी होने से गृह-जीवन के आदर्शों में कोई क्षति नहीं होती।

ब्रह्मावतीदेवी भटनागर

"गृहस्थ अनाथों का नाथ, ग़रीबों का सहायक और निराश्रित मृतकों का मित्र है।"

"जिस घर में स्नेह और प्रेम का निवास है, जिसमें ध का साम्राज्य है, वह सम्पूर्णतः सन्तुष्ट रहता है—उस सब उद्देश्य सफल होते हैं।"

—ऋषि तिरुवल्लुवर

जीवन में सौंदर्य का मूल्य

एक स्त्री के लिए सुंदरता क्या है ? विलासिता की सामग्री या आवश्यकता ? क्या एक सुंदर लड़की सीधी-सादी लड़की की अपेक्षा सुगमता के साथ अपनी संसार-यात्रा तय कर सकती है ? क्या उसकी सुंदरता उसका मार्ग साफ़ करेगी, लोग उसकी सुंदरता के कारण उसका आदर करेंगे, उससे मित्रता करेंगे, उससे प्रेम करेंगे, और व्यापारिक[*] सफलता उसके चरणों पर लोटेगी ? ये प्रश्न हैं, जो आजकल यूरोप और अमेरिका के समाजों में वाद-विवाद का विषय बन रहे हैं । समाज के नेता और सौंदर्य-शास्त्र के विशेषज्ञों में इस विषय पर एक गहरा मतभेद चल रहा है कि समाज में व्यक्तिगत सफलता के लिए सुंदरता जादू का सा काम करती है या नहीं ! कुछ हृष्ट-पुष्ट और सुंदर युवतियों में ऐसी प्रवृत्ति पाई जाती है कि वे पुरुष-समाज में ऐसे हाव-भाव और ठाट-बाट के साथ आती हैं और ऐसी कोशिश करती हैं कि प्रत्येक आदमी का ध्यान उनकी ओर खिंचे और वह उनमें दिलचस्पी ले । उनकी यह इच्छा व आशा रहती है कि प्रत्येक पुरुष उनसे आकर मिले ।

अभी हाल ही में जस्टिस हम्फ्रेज़ का इस विषय पर जो वक्तव्य प्रकाशित हुआ है, उससे तो वहाँ के समाज में एक प्रकार की खलबली मच गई है । उनका अनुभव है कि जो रूपवती नहीं थीं ऐसी भी अनेक स्त्रियों ने समाज में सफलता व आदर प्राप्त किये हैं । उनका कहना है कि मैं इस बात से पूर्णतया सहमत हूँ कि सुंदरता चाहे और सब कुछ हो, परन्तु वह व्यक्तिगत सफलता के लिए एक आवश्यकता तो हर्गिज़ नहीं है । सुंदरता का प्रत्येक व्यक्ति पर असर तो अवश्य पड़ता है, परन्तु बुद्धि और मिलने-जुलने के ढंग के बिना वह किसी भी काम की चीज़ नहीं हैं । संसार के इतिहास में ऐसा समय कभी नहीं आया, जब कि स्त्रियों ने अपने कपड़ों की सजावट तथा अपनेको अधिक सुंदर और आकर्षक बनाने में इतना समय लगाया हो, जितना कि वे आजकल लगाती हैं । इसमें तो कोई शक नहीं कि पहले की अपेक्षा आजकल सुंदर स्त्रियाँ अधिक हैं; क्योंकि वर्त्तमान समय में पुरुष अपने लिबास और अपने ठाट-बाट में बहुत ही कम धन और समय व्यय करते हैं, जब कि स्त्रियों के तो घंटों के घंटों सुंदरता की खोज में—अपनेको सुन्दर और आकर्षक बनाने में—नित्य प्रति लग जाते हैं । सुंदरता के लिए इस दौड़-धूप का फल क्या निकला है ? सुंदर बनने के उन्माद ने उनके स्वभाव में एक मस्ती पैदा कर दी है । अपने ऊपर वे अत्यधिक समय नष्ट करती हैं और सदा अपने रूप-रंग की चिंता में डूबी रहती हैं । उनके सिर का एक बाल भी इधर से उधर न होने पावे; उनके चेहरे पर हर घड़ी पाउडर लगा ही रहे । इसी की चिंता में उनके सारे विचार का विषय वे स्वयं ही बन जाती हैं, यहाँ तक कि इस प्रकार वे समाज में अरुचिकर तक बन जाती हैं । अपनेको खूबसूरत और नाजुक बनाने में जो इतना परिश्रम करती हैं, उसके कारण मिज़ाज में चिड़चिड़ापन आ जाता है । इसका अवश्यम्भावी परिणाम यह होता है कि उनके सम्पर्क में जो कोई भी आता है, उसीको वे भार-रूप प्रतीत होने लगती हैं । इसी कारण जहाँ तक मैंने देखा है समाज उन स्त्रियों को अधिक चाहता है, जो इस बात की पर्वा नहीं करतीं कि वे कैसी दिखाई देती हैं । सैकड़ों स्त्रियाँ इस समय ऐसी मौजूद हैं, जो कि निरी कुरूपा हैं परन्तु उन्होंने समाज में आश्चर्य-जनक सफलता प्राप्त की है । लोगों ने उनकी तारीफ

---

[*] यूरोप और अमेरिका में स्त्रियाँ व्यापार भी करती हैं ।

की है, समाज ने उनका आदर किया है, और अच्छे-भले लोगों ने उनसे विवाह कर अपनेको धन्य समझा है। मेरी एक मित्र हैं, जो काफ़ी सुंदर हैं; पर वह कभी इस बात की चिंता नहीं करतीं कि वह सुंदर और आकर्षक दिखाई दें। कपड़ों की सजावट में वह कभी अधिक समय बरबाद नहीं करतीं, उनके चेहरे पर कभी पाउडर दिखाई न देगा। संक्षेप में वह अपनी सुन्दरता और रूप-रङ्ग की कभी चिंता नहीं करतीं। फलतः उनके पास इतना समय है कि वह दूसरों के लिए सोचें-विचारें और यही कारण है कि उनके सारे मित्र उनका बड़ा आदर करते हैं।

मेरा तो अपना ख़याल यह है कि पुरुष अब कोरी सुन्दरता से ऊबने लग गये हैं; कारण कि उन्होंने अब कोरी सुन्दरता का खोखलापन अच्छी तरह देख लिया है। आदमी के लिए वह स्त्री संसार में सबसे कष्ट देने वाली चीज़ों में से है, जो रास्ता चलते सदा इस बात की चिन्ता ही में निमग्न रहती है कि कहीं शीशा मिल जाय तो उसमें अपनी सुन्दरता की एक झलक देख ले! सुन्दर बनने की सामग्री इकट्ठा करने और उसीकी चिन्ता में लगे रहने से स्त्रियों में से बुद्धिमत्तापूर्ण बात-चीत करने की योग्यता का लोप होता जा रहा है। सचमुच मेरा तो यह विश्वास है कि चकाचौंध करने वाले रूप वाली लड़की के बजाय एक बुद्धिमान सीधी-सादी लड़की आसानी से वर प्राप्त कर सकती है। चौंधिया देने वाले रूप वाली लड़की को आदमी प्रीति प्राप्त करने (कोर्टशिप) के लिए तो खुशी से ले जायँगे; परन्तु उससे शादी करना बहुत कम चाहेंगे। वास्तव में बात तो यह है कि सीधी-सादी लड़की को अपना स्वभाव और चरित्र ऐसा बनाना पड़ता है कि जिससे वह समाज में उच्चतम स्थान प्राप्त कर सके। उसके चरित्र और स्वभाव के गुणों को देख कर लोग उसकी कुरूपता की ओर ध्यान नहीं देते। यही कारण है कि सीधी-सादी लड़-
कियाँ समाज में रूपवतियों से बाज़ी मार ले जाती
हैं। यदि वास्तव में देखा जाय तो हर समय चका-
चौंध में डालने वाली सुन्दरता को देखते-देखते आद
के लिए सुन्दरता के प्रति कोई विशेष आकर्षण न
रह जाता। दूसरे शब्दों में वह रंग-रूप के लिए अं
हो जाता है। अमेरिका की प्रत्येक सुन्दर लड़
"होलीवुड" नाम के स्थान को भेज दी जाती है
वहाँ पर आप एक क़दम भी चकाचौंध में डाल
वाली सुंदरता को देखे बिना नहीं चल सकते। ज
मैं वहाँ पर था, तो नित्य प्रति रूप की उन खानों
देखते-देखते थोड़े ही दिनों में मैं ऐसा हो गया
मेरे लिए यह समझ सकना कठिन था कि मेरे सा
से जाने वाली लड़की सुन्दर है अथवा नहीं। थो
ही दिनों में मैं तो सुन्दरता से इतना ऊब गया
मेरे हृदय में यह प्रबल इच्छा पैदा हो गई कि
कोई कुरूपा लड़की देखने को मिल जाय। सुन्द
कोई बुरी चीज़ नहीं है। वह तो ईश्वर की देन है
परन्तु मुश्किल यह है कि रूपवती लड़की को तो
घमंड सा रहता है कि उसकी सुन्दर दृष्टि ही
संसार के संघर्ष से पार कर देगी, उसे किसी
दूसरी चीज़ की आवश्यकता नहीं है। हर एक
के लिए वह अपनी सुन्दरता पर ही भरोसा करें
परन्तु थोड़े ही समय में उसका यह भ्रम बुरी तर
दूर हो जाता है और उसे बड़ी निराशा होता है।

संसार में प्रवेश करने के लिए रूप एक
अच्छी चीज़ है। अच्छी शकल-सूरत सदा आ
णीय होती है। परन्तु उससे संसार में तब तक स
लता नहीं मिल सकती, जब तक कि उसके साथ
पवित्र चरित्र न हो। कारण कि सुंदरता से
आदमी का पेट थोड़े ही दिनों में भर जाता है।
ही समय बाद उसके प्रति उसके हृदय में कोई वि

कर्षण नहीं रह जाता। परन्तु उच्चतम चरित्र तो आदर का पात्र रहता है। हम सुन्दरता के विरोधी नहीं हैं। हम यह नहीं चाहते कि स्त्रियाँ जान-बूझ कर कुरूपा रहें, गन्दी रहें। हमारा कहना तो यह है कि सुन्दरता की दौड़-धूप में जो वे अपने चरित्र की पर्वा नहीं करतीं, यह उनकी भूल है। और इसी कारण उनका जीवन हमेशा सुख-मय नहीं होता। लेकिन दूसरी ओर सीधी-सादी लड़कियाँ गुणों का संग्रह करती हैं और वे जीवन-यात्रा में उनकी अपेक्षा कहीं सफल रहती हैं। ❀

शिवचरणलाल शर्मा

विभिन्न विचार

ऐ स्त्री-जाति! सृष्टि के आरम्भ से ही तुझ पर अन्याय पर अन्याय होते आ रहे हैं। कवियों, चित्रकारों, गायकों तथा लेखकों ने न जाने तुझे क्या का क्या बना दिया है। तुझे मातृत्व के उच्च सिंहासन से च्युत करके उन्होंने पुरुष के लिए कुतूहल की वस्तु व खिलौना बना दिया है!

स्त्री का सबसे बड़ा अपमान जो पुरुषों की ओर से किया जा सकता था, वह उनको स्वर्ण-रत्नों से आभूषित करके व सुंदर कपड़े पहना कर तितली बना रखना है, जिससे कि वे जीवन-संग्राम में कोई भाग न ले सकें। सचमुच मूर्ख स्त्रियों ने अपनी महानता, समानता तथा स्वतन्त्रता को कितने क्षुद्र दामों पर पुरुषों के हाथ बेच डाला है!

नये कपड़े, नये बूट, नये फ़ैशन ग्रहण करने में मनुष्य नहीं झिझकते; परन्तु नये विचारों का ग्रहण करना बड़ा बोझल काम है। बूढ़े माता-पिता अपने नवयुवक पुत्र के आधुनिक फ़ैशनों को सहन कर सकते हैं, परन्तु उनके नये विचारों पर आगबबूला हो उठते हैं!

प्रकृति ने प्रत्येक नर-नारी, छोटे-बड़े, धनी-कंगाल की खोपड़ी में तथा मस्तिष्क में सोचने की शक्ति दी है। प्रकृति-माता का उद्देश्य तो प्रत्येक व्यक्ति से सोच-विचार करवा कर अपना जीवन-मार्ग निश्चित करना है। यदि यह न होता, तो सोचने का काम करने के लिए केवल घर के बड़े-बूढ़े, प्रपितामह या नानी को ही बुद्धि दी जाती, शेष सब खोपड़ियाँ ख़ाली तथा खोखली रख दी जातीं। इसी में तो विचार-स्वातंत्र्य तथा क्रांति के बीज पाये जाते हैं।

भविष्य का भव्य भवन बनाने के लिए पुराने खण्डहरों में से जो अच्छी, ठोस तथा मज़बूत ईंटें मिल सकती हैं, वे बेशक ले लो; परन्तु खण्डहर के पास बैठ कर उसके विशाल भूत पूर्व गौरव पर अश्रुपात करना व खंडहरों की लीपापोती में धन तथा शक्ति का ख़र्च करना बुद्धिमत्ता से दूर है।

'क्रान्ति' शब्द से भयभीत होने वाले शायद गणित से कोरे ही प्रतीत होते हैं। करोड़ों मनुष्यों का ऐतिहासिक काल से हज़ारों वर्षों में जितना रक्त-शोषण हुआ है, व हो रहा है, क्रान्ति से तो उसका शतांश व सहस्रांश भी रक्त प्रवाह नहीं होता।

क्रान्ति तो सर्जन के ऑपरेशन (चीराफाड़ी) की तरह अंतिम साधन है। यदि ख़ून साफ़ करने वाले काढ़े से या पुलटिस से फोड़ा फट जावे, तो अच्छा है। यदि नहीं, तो डॉक्टर का चाकू ही गन्दे मवाद को निकाल देगा। यदि चाकू न लगने दिया गया, तो फोड़ा सारे शरीर पर फैल जायगा।

छबीलदास

---

* 'लीडर' के एक लेख का भावानुवाद

बैरागी

(१)

हृदय में वेदना के एक भयंकर उफान के साथ, धीरे-धीरे, वह घर लौट आया। उसकी गति में चंचलता नहीं थी; उसकी आँखों में प्रसन्नता का प्रकाश नहीं था; और, उसके चेहरे पर सन्तोष की मधुर ज्योति भी नहीं थी। कितने ही दिनों बाद घर लौटे हुए अपने प्यारे बेटे को उसके बाप ने देखा, घर वालों ने देखा; मगर, उसकी उस गंभीर विषएणता का, जीवन-व्यापी विषाद का, कारण पूछने की आवश्यकता किसीने न समझी। सभी ने उससे बात-चीत की, सभी ने उससे कुशल-क्षेम पूछा, सभी ने उसकी उदासीनता की एक हास्यास्पद कल्पना की, और इतने ही से उन लोगों ने अपने कर्त्तव्य की इति समझी। परन्तु माता का हृदय सारे संसार के हृदय से बिलकुल ही भिन्न होता है। सारे विश्व की दया, भावुकता की खान, संसार भर का प्रेम, दुनिया की माया, यदि किसी एक स्थान पर और एक ही चीज में देखना हो, तो किसी माँ का हृदय देखो। अस्तु, अनिल की माँ ने जब अपने बेटे को इस प्रकार दुःखित-चित्त देखा, तो उसका हृदय अपने बेटे की व्यथा से ऐसा द्रवित हुआ कि वह अपनेको न सम्हाल सकी। अविश्वास के एक मौन आघात से उसके प्राण काँप उठे उसने पहले ही वाक्य में पूछा–"अबकी बार खाने में तूने खूब कञ्जूसी की है, क्यों अनिल ?"

माता के इस भोले प्रश्न से अनिल के विषाद-मय अधरों पर क्षण भर के लिए हास्य की एक सूखी सी रेखा दीख पड़ी। हाय ! उसे क्या मालूम कि उसका प्यारा बेटा आज नारकीय अग्नि की लपटों में इस प्रकार जल रहा है ! सरलतापूर्ण अपनी बड़ी-बड़ी आँखें माता के चरणों पर झुकाता हुआ अनिल बोला—"तुमसे अलग रह कर तुम्हारा अनिल भोज भी कर सकता है, इसका विश्वास इस जीवन मे तुम्हें दिला सकूँगा, यह संभव नहीं है माँ ! फिर, इ बातों को लेकर तुमसे झगड़ना मैं फ़िजूल समझता हूँ।"

अनिल की बुढ़िया माता गद्गद हो गई। आह, मेरा प्यारा बेटा ! इतना बड़ा हो गया, मगर, मालूम होता है, जैसे अभी गोद का बच्चा ही है ! कैसे प्यार की बोली बोलता है, कैसे भोलेपन से बात-चीत करता है ! बुढ़िया माँ के हृदय में यह आनन्द छिपाने का स्थान कहाँ था। ईश्वर क्या सभी को ऐसा बेटा देते हैं !

"मैं कहती हूँ बेटा,"—कुछ देर चुप रह कर बुढ़िया ने कहा—"तू इतना दुबला हो गया है ! अभी तेरी उम्र ही क्या है ? बुड्ढों की सी हालत बना रक्खी है। छाती का एक-एक हाड़ दिखाई दे रहा है। यह सब क्या यों ही होता है, बेटा ?"

अपने प्रश्न का उत्तर माँगती हुई दृष्टि बुढ़िया ने अनिल की ओर दखा, किन्तु, बिना कु उत्तर दिये ही, अनिल अपनी कोठरी की ओर च गया। माता के इस प्रश्न का भला वह क्या उत्त देता ?

(२)

अनिल ने जिस साल काशी के हिन्दू-विश्वविद्यालय में प्रवेश किया, उसी साल, उसकी शादी हु थी। युवावस्था में आदमी अनेक स्वप्न देखता है और हृदय में अनेक महत्वाकांक्षायें पैदा होती हैं रूपवती स्त्री का मिलना प्रायः सभी युवकों की इच्छा होती है। परन्तु सबकी यह इच्छा पूरी नहीं होती अनिल भाग्यवान था, उसकी इच्छा पूरी हुई। विवा के बाद बहू घर में आई। विवाहोत्सव की धूम-धाम के बीच, एक दिन, अनिल के साथ उसकी स्त्री का परिचय हुआ।

कॉलेज खुलने पर जब उसे घर से काशी जाना

हुआ, तो, उसके हृदय में एक कसक हुई ! किसी आकर्षण से खिंच कर उसका हृदय वहीं रहने के लिए उसको बाध्य करने लगा। थोड़े ही समय के अंदर कला से उसका बहुत अधिक प्रेम हो गया था। उसके हृदय में प्रेम का एक ज्वार उठा था, एक प्रबल लहर आई थी; उसका रोकना उसकी शक्ति से बाहर था। वह उसमें बह गया।

हृदय की कसक को हृदय में ही छिपा कर खिन्न-चित्त हो उसे एक दिन सन्ध्या-समय काशी के लिए प्रस्थान करना पड़ा। चलते समय उसके हृदय में जो दर्द हुआ था, उसने समझा—कला से बहुत दूर जाने पर—वह अनेक अँशों में कम हो जायगा। किन्तु समझने के अनुसार ही प्रत्येक कार्य होता नहीं। अनिल के हृदय का दर्द कम तो न हो सका, उलटे, अनेक अंशों में बढ़ता ही गया। अनिल ने देखा कि वियोग के दिन सुख की वे घड़ियाँ नहीं हैं, जो देखते-ही-देखते बीत जाती हैं।

मानव-जीवन में अनेक ऐसी घटनायें होती हैं, जिनका अर्थ हम नहीं समझ सकते। एक रोग होता है, जो दवा करने से और भी बढ़ता है। यह रोग मन का है। जब हम हृदय की बागडोर को कस कर उसे शान्त करना चाहते हैं, उस समय, वह चंचल पक्षी की तरह जी छोड़ कर भागना चाहता है। हृदय की इस प्रवृत्ति का कारण तो हम नहीं समझ सकते। पर अनिल के हृदय की दशा भी कुछ ऐसी ही हुई। वह कला को भूल कर पढ़ने-लिखने की जितनी ही चेष्टा करने लगा, उतना ही उसका हृदय कला के लिए बेचैन होने लगा। बढ़ते-बढ़ते उसकी बेचेनी पागलपन की हद तक पहुँच गई थी। अनेक बार, उसका पागलपन मित्रों के लिए हंसने-हंसाने का ख़ासा तमाशा हो जाता था।

अभी बहुत दिन नहीं बीते थे, उसने दूसरी बार कला को देखा भी नहीं था, कि सहसा एक दिन उसके घर से तार आया। यह तार नहीं था, विपत्ति का पहाड़ था, जो यकायक उसके सिर पर गिर पड़ा और जिसके बोझ से वह दब गया। यह तार कला की बीमारी का था। अनिल उसे पढ़ते ही जमीन पर गिर पड़ा, मानों उसे कोई काठ मार गया हो।

बवंडर-सा दौड़ा-दौड़ा वह घर आया। कला के गोरे-गोरे हाथों को अपने हाथों में लेकर, उसकी बिखरी अलकों से भरे मस्तक को अपनी गोदी में रख कर, अपने आँसुओं के जल से कला के मुँह की समस्त विषाद-कालिमा को धो डाला।

दोपहर की नीरसता-पूर्ण निस्तब्धता में कला ने अनिल को अपने पास बुलाया। उसने कहा—"प्राण, एक बात कहती हूँ। रोना मत, दुःख भी मत करना। मैं आज बच न सकूँगी ! मेरे पुण्य का शेष हो चुका है, अधिक समय तक तुम्हारे साथ रहने का भाग्य लेकर नहीं आई थी। पर, एक बात है। बचन दो, मेरी बात स्वीकार करोगे ?"

"नहीं कला !" अनिल की आँखों से आँसुओं की धारा आप ही आप बह चली। रुँधे हुए कण्ठ से उसने कहा—"नहीं कला ! ऐसी बात मत कहो ! तुम्हारे बिना मैं कैसे जी सकूँगा ?"

कला के सूखे अधरों पर विषाद की मुस्कुराहट दिखाई दी। उस मुस्कुराहट में मृत्यु की वेदना भी थी और संसार का अविश्वास भी। वह बोली—"मेरे जीवन ! तुमने अभी दुनिया नहीं देखी है। इसीसे बालकों की सी बातें करते हो। बोलो, मेरी बात मानोगे ?"

"क्यों न मानूँगा, कला !" अनिल ने कहा—"भला वह कौनसी बात है, जिसे मैं न मानूँ ? तुम्हारे लिए अपना रक्त और मांस तक मैं ख़ुशी-ख़ुशी दे दूँगा, कला ! अविश्वास न करो, मैं झूठ नहीं कहता।"

"नहीं मेरे देवता !" कला फिर हँसी । उसने कहा—"उसकी कोई आवश्यकता नहीं है। इस समय तुम्हारे रक्त-मांस की आवश्यकता नहीं है । आज तुमसे अपने प्राणों की बात कहूँगी । अभी तुम्हारी कुछ भी उम्र नहीं हुई। मेरे मरते ही, झुण्ड के झुण्ड बेटियों के बाप तुम्हारा विवाह करने के लिए तीर्थ-स्थान के पण्डों की तरह तुम्हें घेर लेंगे । उन्हें बेटी व्याहनी है, हिन्दू-समाज में आजकल योग्य बर मुश्किल से मिलते हैं। ऐसी अवस्था में उन्हें धर्म-अधर्म का ज्ञान न रहना स्वाभाविक होता है। किन्तु, मेरे प्राण ! तुम वैसी परिस्थिति में न रहोगे । तुम पर किसी प्रकार का दायित्व न रहेगा, अपने समाज की लज्जाजनक स्थिति से भी तुम अपरिचित नहीं हो । तुम्हारे देश में विधवाओं की एक बड़ी संख्या पतन की जिस नरकीय ज्वाला में भस्म हो रही है, उससे भी तुम अनभिज्ञ नहीं हो । ऐसी अवस्था में मेरे जीवन ! क्या तुम एक विधुर विधवाओं की तपस्या के साथ, उनकी गरम आहों के साथ, अपने को मिला कर, अपना आदर्श जीवन न बिता सकोगे ? यह कार्य उतना सुकर नहीं है—मैं जानती हूँ—पर कोशिश करना । कौन कह सकता है, तुम अपनी तपस्या का वरदान न पाओगे ? अपनी कोशिश में सफलता न प्राप्त कर सकोगे ? किन्तु, संयोग से यदि ऐसा न भी हो सके, विवाह करने के लिए तुम्हें वाध्य ही होना पड़े, तो किसी विधवा से शादी करके, नाथ, उसके जीवन की ज्वाला के साथ तुम भी जल जाना ! बोलो, मेरी बात स्वीकार करते हो ?"

स्वीकार करता हूँ कला !" अनिल ने भर्राती हुई आवाज़ से कहा—"जीवन में कभी यह बात न भूलूँगा । तुम निश्चिन्त रहो ।"

"अब, मेरे सर्वस्व !" कला ने कहा—"मैं सुख से मर सकूँगी । जीवन में मुझे किसी बात का दुःख नहीं रहा। आज मृत्यु के समय भी मैं सुख की अथाह लहरों में तैर रही हूँ ।"

कला चुप हो गई।। अनिल ने देखा, धीरे-धीरे उसका शरीर शिथिल होता जा रहा है । देखते ही देखते, कला के प्राण-पखेरू उड़ गये ! अनेक चेष्टा करने पर भी, अनिल उसे न बचा सका। मृत्यु से बढ़ कर ज़बरदस्त कौन है ?

छाती पर पत्थर धर कर—हृदय कड़ा करके—अनिल ने चिता में आग लगाई। वह धाँय-धाँय कर के जल उठी । कौन कह सकता है कि अनिल के हृदय में उससे भी अधिक भयंकर, उससे भी अधि प्रचण्ड, और साँय-साँय करती हुई चिता नहीं ज रही थी ?

(३)

मानवी प्रकृतियों की गति भी बड़ी विचित्र होती है कला की मृत्यु के पहले अनिल इस बात की कल्प भी न कर सका था कि उसके बिना वह क्षण भी जीवित रह सकेगा। पर जब वह शव-दाह क के लौटा, तो उसकी धीरता और विकार-हीन मु मण्डल देख कर लोग अवाक् रह गये ! उस आँखों से आँसू का एक बूँद भी नहीं गिरा। शा वे सब समाप्त हो चुके थे, उसके आँसुओं का भण्ड खाली हो चुका था। मगर उसके हृदय में जो ज्वा धधक रही थी, उसे क्या आँसूओं की सहस्र धा भी बुझा सकती थीं ?

अनिल एक दिन बिना कुछ कहे-सुने ही घर चल पड़ा । स्टेशन पर पहुँचने पर उसे मालूम हु कि वह काशी जाना चाहता है। अपने इस आकस्मि आगमन से उसे भी अत्यन्त विस्मय हुआ। वह न समझ सका कि घर से चलते समय उसने अ जाने की बात किसी से कही क्यों नहीं !

काशी पहुँच कर अनिल ने पढ़ने में चित्त लगा

र्म की ओर उसकी कभी प्रवृत्ति नहीं थी; किन्तु, स समय आश्चर्य-जनक परिवर्तन दीख पड़ा। वह लाहार करने लगा, उपवास रहने लगा, और गीता का पाठ भी उसका नित्य-कर्म हो गया। भगवान तिलक के 'गीता-रहस्य' से उसे बड़ी शान्ति मिलती थी। स प्रकार स्वाध्याय, वृत, उपवास तथा तपश्चर्या का वन व्यतीत करते-करते अनिल कॉलेज में 'बैरागी' नाम से मशहूर हो गया।

परन्तु, धर्म और तपश्चर्य्या का जीवन-व्यतीत रते रहने पर भी, शान्ति प्राप्त न हो सकी। साधना राख से उसने स्मृति की चिनगारी को छिपा अव-श्य लिया था; पर, बीच-बीच में, अशान्ति की वायु से फूँक कर सुलगाने की चेष्टा किया ही करती थी। भी-कभी तो वह इतनी सुलग उठती थी कि शान्ति ने के लिए वह पागल हो उठता था।

इसी समय संयोग से उसके एक ग्रामवासी मित्र ने उसे अपने यहाँ निमन्त्रित किया। अनिल एक से अधिक बार उस गांव में जा चुका था। वह प्रकृति का एक प्यारा प्रदेश था। अनिल उस स्थान को बहुत सन्द करता था। गाँव के नीचे बहने वाली पतली दी के तट पर बैठ कर कितनी ही बार अनिल और सके मित्र जीवन ने उस पार के स्वप्निल दृश्यों को निमेष नयनों से देखा है; कितनी ही बार उन दोनों ने तैर कर, उस पार जा कर, बनैले बैरों को छीन-ट कर खाया है। कितनी ही बार तट की हरी-हरी चरने वाली गायों को ले कर दोनों ने कितने लवाड़ किये हैं, इसकी याद करके अनिल के हृदय क गुद-गुदी पैदा हुई। कला की मृत्यु के बाद पहली बार वह आज हँस पड़ा।

निमन्त्रण स्वीकार करके एक दिन वह अपने के यहाँ उपस्थित हो गया।

(४)

सन्ध्या होने में उस समय अधिक देर न थी। नदी के दोनों किनारे हरे-हरे वृक्षों की डालियों पर जंगली चिड़ियाँ फुदकने लगी थीं। नदी के कल-कल छल-छल के बीच में अनिल की नाव हरपुर के घाट आ लगी। माँझी ने डाँड छोड़ दिया। अनिल नाव पर से कूद पड़ा।

पर, यह क्या! वह तट पर न आकर तट के गदले जल में गिर पड़ा। कपड़े रंग गये। शर्म से उसने कपड़े झाड़ लिये। इसी समय किसी अल्हड़ कंठ की मुक्त हँसी सुनकर उसने चारों ओर देखा। जो कुछ देखा, उससे वह अपनेको भूल गया। तट पर एक चौदह वर्ष की भोली-भाली बालिका जल भरने आई थी। भरा हुआ घड़ा कमर पर लेकर ज्यों ही वह चलने को तैयार हुई, अनिल का गिरना देख कर सहसा हँस पड़ी। अनिल ने देखा, बालिका शैशव पार करके यौवन के संधिस्थल में पहुँच गई है। वह साधारण सुन्दरी नहीं थी। न जाने किस अदृश्य आकर्षण से वह बालिका की ओर खिंच गया। अनिल को अपनी ओर आता देख कर बालिका भी ठिठक गई। उसने घूंघट कुछ खींच लिया।

बालिका के समीप जाकर रुकती आवाज़ में में अनिल ने पुकारा—"किशोरी!"

अनिल यह नहीं जानता था कि जिस संबोधन से वह बालिका को संबोधित कर रहा है वह उसका नाम है, किन्तु, एक अपरिचित परदेशी के मुँह से अपना नाम सुन कर किशोरी को आश्चर्य हुआ। हरिणी की सी चंचल अपनी विस्मय-विस्मित आँखों से उसने अनिल की ओर देखा! बोली—"कहिए!"

"जीवनचन्द्र का मकान"—अनिल ने प्रश्न किया—"तुम्हें मालूम है कहाँ है?"

जीवन का मकान अनिल ने नहीं देखा था, यह

बात न थी; किन्तु, जब बालिका से बातचीत आरंभ कर दी है, तो कुछ न कुछ बोलना ही होगा। अनिल को घबराहट में दूसरा कोई प्रश्न सूझा ही नहीं।

"हाँ!" बालिका ने संकोच-हीन स्वर में उत्तर दिया—"हाँ, उन्हें कौन नहीं जानता! वह देखिए, वह जो पक्का मकान दीख पड़ता है, वह उन्हीं का है।"

बालिका उत्तर देकर जाने लगी। दो-चार पग आगे बढ़कर वह सहसा रुक गई। बोली—"बाबू, आप को मेरा नाम कैसे मालूम हो गया?"

"नाम!" आश्चर्य से अनिल ने कहा—"कहाँ? मुझे कहां मालूम हुआ है?"

"तब," —बालिका बोली—"आपने मेरा नाम लेकर मुझे पुकारा कैसे?

"आह!" अनिल कहने लगा—क्या तुम्हारा नाम किशोरी है? तब यह बात अब मुझे मालूम हुई। तुम्हारा नाम जान कर मैंने नहीं पुकारा था।"

अनिल के उत्तर से बालिका कुछ लज्जित हुई। क्यों उसने यह बात अनिल से पूछी? तब तो, उसने स्वयं ही अपना नाम एक अपरिचित युवक को बता दिया। न जाने वह मन-ही-मन क्या सोचता होगा। बालिका चली गई। अनिल एकटक उसकी ओर देखता रहा!

जीवन के यहाँ पहुँच कर भी वह बालिका को भूल न सका। एक ही दृष्टि में वह अनिल के हृदय पर एक अमिट रेखा छोड़ गई थी। हाय! शान्ति की खोज में यहाँ आ कर वह अशान्ति के किस दल-दल में फँस गया!

अनिल को कला की याद आई। कला की याद के साथ उसे अपनी प्रतिज्ञा भी अचानक ही स्मरण हुई। वह एक ही शर्त पर जी सकता था, और वह शर्त थी विधवा-विवाह। इधर अचानक ही उसका हृदय किशोरी की ओर आकर्षित हो गया था। परन्तु यदि किशोरी विधवा न हुई, तो उसके बिना कैसे वह जी सकेगा?

जीने की बात याद आते ही उसे कला की वह सूखी हँसी याद आई, जो अपनेसे प्रतिज्ञा कराते समय मृत्यु-शय्या पर उसने उसके अधरों पर देखी थी।

कई दिन बीत चुके थे। अनिल का चित्त उचाट खा रहा था। वह रात-दिन उदास रहता; भोजन में रुचि पहले ही से नहीं थी, अब और अरुचि हो गई। विक्षिप्त-की-सी अवस्था में पड़ा रहता था। सन्ध्या के समय—उस दिन से—वह रोज़ नदी के किनारे जाया करता था; मगर, किशोरी के दर्शन कभी नहीं हुए।

अन्त में यह बात जीवन से छिप न सकी। एक दिन एकान्त में जीवन ने अनिल से पूछा—"अनिल भाई! तुम्हारी यह क्या दशा है? सच-सच मुझसे कहो, तुम ऐसे क्यों हुए जाते हो?"

उस दिन अनिल छिपा न सका; छिपाने की शायद उसकी इच्छा ही न हुई। कला की मृत्यु और अपनी प्रतिज्ञा की बात एक-एक करके वह सब सुना गया।

अनिल की सारी दास्तान सुन कर जीवन ने कहा—"तब फिर? फिर तुमने किसीको प्यार कर डालने की बेवकूफ़ी की है क्या?"

अनिल यह बात अस्वीकार न कर सका।

"वह कहाँ की लक्ष्मी है भाई," जीवन ने पूछा—"जिसने तुम्हारे हृदय पर अधिकार कर लिया है?"

"यहीं की।" गंभीरता-पूर्वक अनिल ने उत्तर दिया।

"यहीं की?" जीवन आश्चर्य से उछल पड़ा—"कहते क्या हो अनिल? वह कौन है?"

"एक अपरूपरूपसी,"—अनिल ने कहा—"नाम है किशोरी। जैसा नाम, वैसा ही रूप!"

"किशोरी?" जीवन ने पूछा।"

"किन्तु अनिल,—" जीवन का मुख विषण्ण हो

गया। उसने कहा—“वह तो विधवा है भाई !”

“विधवा ? सच ??” अपनी आँखों में अविश्वास भर कर अनिल ने जीवन की ओर देखा। बोला—“भाई, कला के सन्मुख मैं इसी प्रतिज्ञा में बँधा हुआ था। तुमने मुझे उबार लिया, मेरे जीवन !”

“किन्तु अनिल !” जीवन ने कहा—“केवल इतनी ही बात पर मत नाचने लगो। वह खत्री की लड़की है। तुम ब्राह्मण हो कर कैसे उससे शादी करोगे ?”

कुछ देर के लिए अनिल गंभीर चिन्ता-सागर में डूब गया। सोच कर बोला—“भाई, प्रेम ही धर्म है, प्रेम ही ईश्वर है, और सौन्दर्य की सच्ची अनुभूति ही प्रेम है। मैं उससे शादी करूँगा।”

“खूब सोच-विचार लो,” जीवन ने कहा—“जिसमें पीछे पछताना न पड़े। यह लड़कों का खेल नहीं, जीवन की विकट समस्या है।”

“मुझे कुछ सोचना नहीं है !” अनिल ने कहा—“मैं अपना मत स्थिर कर चुका हूँ।”

“किन्तु तुम्हारे घर वाले तुम्हें यह शादी करने की आज्ञा देंगे ?”

“शादी घर वालों को नहीं मुझे करनी है।”

“किन्तु ललड़ी के पिता तो ऐसी शादी के लिएं किसी प्रकार राज़ी न किये जा सकोगे। जब तक तुम घर वालों की अनुमति न प्राप्त कर सकोगे, लड़की के पिता भी शादी करने के लिए तैयार न होंगे। तुम पहले यही उपाय करो कि घरवाले तो राज़ी हो जायँ।”

“कोशिश करूंगा। यदि संयोग से उन्हें राजी न कर सका तो ....।”

(५)

अनिल की बुढ़िया माता अपने बेटे को संन्यासी की सूरत में देख कर शान्त न रह सकी। एक दिन सन्ध्या के समय वह अनिल के कमरे में जा कर बैठ गई। बोली—“अनिल, तुझे मेरी शपथ है। भैया, सच बता, दिन-दिन तू गला क्यों जाता है ?

थोड़ी देर तक आगा-पीछा करके अनिल ने अपने जी की बात कह ही दी—“माँ ! मैं शादी करना चाहता हूँ।”

“सच ?” बुढ़िया आसमान से गिरी—“सच बेटा ? बूढ़ी माँ से हँसी तो नहीं करता ?”

“नहीं माँ,—अनिल ने कहा—सचमुच ही मैं विवाह करना चाहता हूँ।”

“तो इसके लिए अनिल,”—बुढ़िया का गला आनन्द से भर आया—“इतनी चिन्ता करने, इस तरह शरीर सुखाने की क्या जरूरत है ? तुम्हारे विवाह के लिए तो कितने ही आदमी ज़ोर लगाये हुए हैं।”

“लेकिन माँ,”—अनिल ने कहा—“मैंने एक लड़की पसन्द की है। यदि शादी करनी होगी, तो उसीसे करूँगा !”

“पसन्द की है !” बुढ़िया को बहुत अधिक आश्चर्य न हुआ, क्योंकि, उसने सुन रक्खा था कि आजकल पढ़-लिख कर विवाह-शादी जैसे आवश्यक विषयों में लड़के किसी दूसरे को हस्तक्षेप करने देना नहीं चाहते। फिर भी, कुछ आश्चर्य से उसने कहा—“पसन्द की है तो वह कौन है, कहां की रहने वाली है, उसकी उम्र क्या है ?”

माता की घबराहट। देख कर अनिल हँसा। बोला—“तुम्हारे इतने प्रश्नों का एकसाथ उत्तर कैसे दूँ माँ ? मगर वह विधवा है।”

“विधवा !” बुढ़िया दो कदम पीछे हट गई, जैसे उसके पैरों के नीचे फुंकारता हुआ काला साँप पड़ गया हो ! बोली—“विधवा ! कहते क्या हो बेटा ? राम, राम !!”

“इतना ही नहीं है माँ !” अनिल ने कहा—“वह जाति की भी नहीं है, खत्री की लड़की है। बड़ी सुशीला, बड़ी सुन्दर, जैसे साक्षात् देवी हो।”

"तुम पागल हो बेटा !" बुढ़िया ने कहा—"अजात से विवाह करोगे ? धरम छोड़ोगे ? पढ़-लिख कर ऐसी बातें करते हो ? छिः छिः !"

"मैं पूछता हूँ माँ !" अनिल ने कहा—"ईश्वर की सृष्टि में भी कोई जात-अजात होता है, ऊँच-नीच होता है ? यह तो अपने अहंकार का परिणाम है माँ! उस ईश्वर के लिए सभी एक हैं; सभी समान हैं; न कोई छोटा, न कोई बड़ा। और, मनुष्य का हृदय भी तो कुछ चीज़ है माँ ? क्या उसका कोई मूल्य नहीं है ?"

"एक बात पूछूँ माँ ?"

"कहो ?"

"तुम मुझे चाहती हो या जाति को ?"

माता का हृदय विचलित हो गया। वह स्थिर न रह सकी। बोली—"बेटा, तुम्हें !"

"सच कहती हो माँ ! मेरे लिए जाति छोड़ोगी ?"

"......................"

"बोलो !"

"ऐसा भी कहते हैं, बेटा ! ये क्या अच्छी बातें हैं ?"

"तब कहो, तुम समाज के भय से मुझे छोड़ सकती हो ! किन्तु, ये क्या बुरी बातें हैं माँ ? मैं क्या पाप करने जा रहा हूँ ? तुम्हारे समाज में क्या नहीं होता ? बाल-विवाह होता है, छोटे-छोटे बच्चों के गले जवान बहुयें पड़ती हैं, और उन दोनों ही का सर्वनाश होता है। यहीं तक इसकी हद नहीं है। क़ब्र में पैर लटकाये हुए बूढ़े तक दस-बारह वर्ष की अबोध बालिकाओं से अपना जीवन सार्थक करना चाहते हैं ! तुमसे कुछ छिपा नहीं है। तुम ही सच-सच कहो, क्या यह अधर्म का काम है ?"

अनिल की बातें माता के जी में बैठ गईं। उसने कहा—"अच्छा बेटा ! तू खुश रह। तेरे लिए मैं सब करूँगी।"

"जाति छोड़ोगी ?"

"हाँ।"

"समाज ?"

"हाँ।"

"धरम का ढोंग ?"

"हाँ।"

"अच्छा तो माँ ! अब मैं प्रसन्न हूँ ! तुम मनुष्य ही नहीं देवता हो। तुम्हारे समान यदि सभी मातायें हो जायँ माँ ! तो न जाने कितने ही अभागे युवक-युवतियों का जीवन मृत्यु के अन्धकारमय अतीत में न छिप जाय।"

(६)

अनिल के पिता ने लाल-लाल आँखें करके पूछा—"अनिल यह सब क्या सुनता हूँ ?"

"क्या ?" अनिल ने शान्त स्वर में कहा।

"क्या ?" कड़ककर पिता ने कहा—"क्या यही तुम विधवा से, अजात से, विवाह करना चाहते हो!"

"....................!"

"बोलो ! चुप क्यों हो ? यह सच है ?"

"हाँ।"

"तुम विधवा से शादी करोगे ?"

"हाँ।"

"अजात से ?"

"हाँ।"

"क्या तुम्हारी जाति में कोई योग्य लड़की है ? तुम्हारे लिए क्वाँरी लड़कियाँ नहीं मिलतीं ?"

"किन्तु हिन्दू-समाज में विधवाओं का विवा नहीं होता ?"

"तो ?"

"तो मैं शादी कैसे कर सकूँगा ?"

"मतलब ?"

"यही कि पति के मरने पर यदि उसकी विधवा शादी नहीं कर सकती, तो पत्नी के मरने पर विधुर पति दूसरी शादी कैसे करेगा ?

"ऐसा होता है।"

"यह तो अन्याय है।"

"यह तो अन्याय है।" मैं तुम्हारा धर्म-शास्त्र नहीं सुनना चाहता। पूछता क्या तुम्हें ब्राह्मण के वंश में सुन्दर लड़कियाँ न मिलेंगी ? आखिर तुम उस विधवा के किस रूप-गुण पर अपनी जाति छोड़ने को तैयार हो ?"

अनिल के हृदय में आघात लगा ! हाय, पिता, तुम्हें मालूम है कि किस रूप-गुण पर वह उन्मत्त हो है ! सुन्दरता ही प्रेम की ठेकेदार है ? हृदय का भी मूल्य नहीं है।

"बोलो, चुप क्यों हो ?"

"मैं क्या उत्तर दूँ !"

"तो बाबू, हमारे यहां यह अनीति न निभ सकेगी। तुम्हारे लिए मैं जाति और समाज के सामने सिर न झुकाऊँगा। तुमने अपनी माँ को भी पट्टी पढ़ा दी है; मगर, याद रक्खो, हमारे घर में यह सब न हो सकेगा। तुम्हें मैं अपना बेटा नहीं समझता। तुम जो चाहो कर सकते हो; पर, याद रहे, तुमसे मेरा कोई संबन्ध न रह सकेगा।"

पिता की बातें सुनकर, हृदय की वेदना से, अनिल मूर्च्छित हो गया। वह सिर झुका कर धीरे-धीरे घर लौट आया। हाय, पाषाण-हृदय अंधपरंपरा ! पुत्र के हृदय की सुकुमार वृत्तियों को मसलते हृदय में कुछ भी न हुआ ?

× × ×

दूसरे दिन अनिल की कोठरी सूनी पड़ी थी। उस सरस-हृदय वैरागी को, इस जीवन में, फिर कोई न देख सका।

'मुक्त'

धन्य मृत्यु !

दिन भर के कठिन परिश्रम में अपने दुःख को दबा कर आखिर नदी-तट वाले वृक्ष के नीचे मैं अपने बिछौने पर पड़ी थी। रात दिव्य और सुन्दर थी। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। पास ही नदी अपनी मन्द गति से बह रही थी। वृक्ष भी शान्ति का अनुभव कर रहे थे। ऊपर आकाश में तारे टिमटिमा रहे थे। और पश्चिमी क्षितिज पर द्वितीया का चाँद जल्दी ही डूबने की तैयारी कर रहा था।

मैं सोचने लगी, "क्या यह भी सच हो सकता है ? क्या सचमुच ही मगनलाल भाई चल दिये ? इस बात पर विश्वास कैसे किया जाय ? क्या चारों ओर घूमती हुई उनकी सुपरिचित मूर्ति फिर देखने को न मिलेगी ? उनकी मीठी-मीठी बातें अब हमें सुनने को न मिलेंगी ? मैं तो किसी भी हालत में इस बात पर विश्वास नहीं कर सकती। मेरा दिल इस संवाद को स्वीकार ही नहीं सकता।"

मेरी विचार-धारा यों बहने लगी। दिन भर दबा हुआ शोक का आवेग फिर से प्रबल हो उठा।

दूसरे ही क्षण मेरा आवेग शान्त हो गया। रात्रि की दिव्य शांति भङ्ग हुई। उसमें से आवाज आने लगी। मैं स्तब्ध होकर सुनने लगी। सिर पर फैले हुए नीम के स्थिर पत्ते कहते थे—

"यह क्या ? ये आँसू क्यों ? अबोध-बालिके ! जो बात अनहोनी है, असत्य है, उसे कदापि तू नहीं मान सकती। तेरे हृदय में उसके लिए कोई स्थान ही नहीं हो सकता। तू इसे क्यों भूल जाती है ? मगनलाल गये नहीं हैं। यह हो ही कैसे सकता है ? उलटे वह तो आश्रम के और भी निकट आकर रहने लगे

हैं। पहले वह शरीरी होकर आते-जाते थे। पर अब तो उनको स्वतंत्र आत्मा आश्रम के कोने-कोने में व्याप्त हो गई है।

"आश्रम के निर्माण में उन्होंने अपना सर्वस्व होम दिया था। तू जिधर देखेगी उधर उनकी बुद्धि, उनका प्रेम, उनकी आत्मा, तुझे शान्तिपूर्वक फिरती नज़र आवेगी। अरे! हमें ही तू कहाँ से देख पाती? मगनलाल ही तो हमें यहाँ लाये थे।"

मन्द-मन्द चाँदनी में चमकते हुए पास वाले घर ने समर्थन किया—

"ठीक तो है, मुझे और मेरे सारे भाई-बन्धुओं को मगनलालजी ने ही बनाया था। हमारी दीवारों, फ़र्शों, और छतों में सर्वदा तुम उन्हें देख सकोगी।"

पास ही खड़े हुए फूलों के वृक्ष बोल उठे—

"और हम? हम तो उनके बड़े प्यारे थे।"

आश्रम की सड़कों से चुप न रहा गया—

"हमें क्यों भूले जाती हो? उन्होंने तो पहले-पहल अपने मस्तिष्क में हमें रेखान्वित किया था। उनके बनाये मार्ग को छोड़ कर आज आश्रम में चल ही कौन सकता है?"

मैंने सब कुछ सुना, बार-बार सुना, और धीरे-धीरे मेरे हृदय में इस महान् सत्य की ज्योति जगने लगी। तथापि, मर्मभेदी विचार तो रोके नहीं रुक सके—

"काम कैसे होगा? बापू (गांधीजी) क्या करेंगे? उनके काम की क्या हालत होगी? हे भगवन्! हमारे ऊपर ऐसा कठोर वज्रपात क्यों?"

पश्चिम में अस्त होते हुए मलीन चन्द्र की ओर निराशा-भरी नजर से देखा। वह हँसा, मानों मेरी ही हंसी करता हो! अस्त होते हुए उस सुनहरी चंद्र ने मुझसे पूछा—

"दुनिया के एक छोर से इस दूसरे छोर तक किस शक्ति के कारण खिंची चली आई?"

"यह तू क्या पूछता है? ईश्वरी काम में श्रद्धा ही तो मुझे यहाँ लाई है।" मैंने कहा।

"तू कहती है कि तुझे उसमें श्रद्धा है, क्यों?"

"हां, ठीक तो है।"

"तू उसे ईश्वरीय काम कहती है, अर्थात् उसमें ईश्वर का अस्तित्व मानती है, न?"

"हां, मैं मानती हूँ।"

"तो सोचकर देख ले कि तेरा दुःख कितना अविचार-पूर्ण और अनहोना है। क्या ईश्वर अपने काम में बाधा पड़ते देख सकेगा? वह जानता है कि जिस काम को वह प्रिय समझता है, उसे पूरा करने का सर्वोत्तम मार्ग क्या है। वह तो यह जानता है कि मगनलाल भले थे, पवित्र थे, सत्यपरायण थे, अत अपने महान् काम के लिए उचित बलिदान थे। उन की मृत्यु धन्य थी और उसमें से अनन्त स्फूर्ति और पवित्रता का स्रोत फूट निकलेगा। इसे भी वह जानता है। अतः यदि तुझे ईश्वर में सच्ची आस्था है, तो वह तुझे इस अवसर पर उबारेगा ही।"

सर्वत्र शांति छा गई। चारों ओर शांति का साम्राज्य फैल गया। निंद्रादेवी अपने विशाल पंखों को फड़फड़ाती हुई मेरे चारों ओर मंडराने लगी। वह कहने लगी—

"बस करो। अब तो तू मेरी शरण आ। कल सबेरे जब तू जागेगी तब तुझपर आज की सारी बातों का रहस्य प्रकट हो जायगा।"

निद्रादेवी का यह भविष्य कथन बिलकुल ठीक साबित हुआ। *

मीराबहन (मिस स्लेड

---

[*] श्री मगनलालजी गांधी की मृत्यु पर।

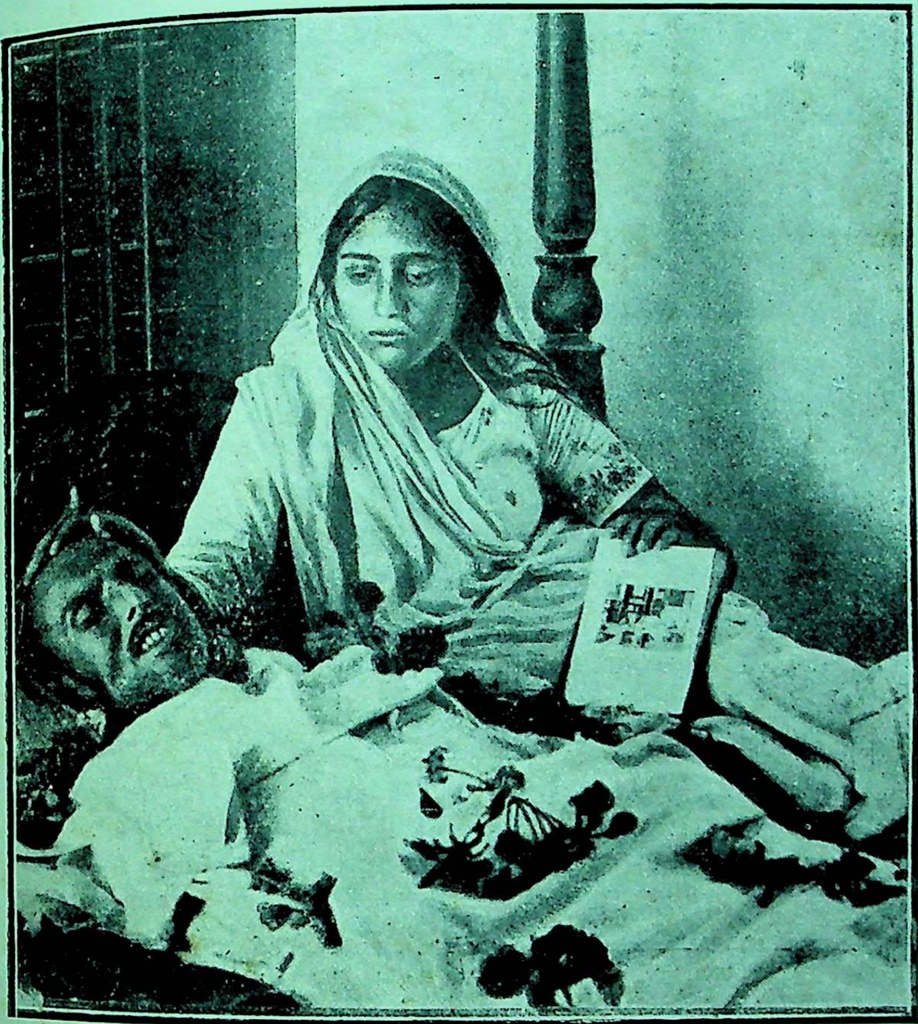

प्राणोत्क्रमण

स्वर्गीय मगनलाल गांधी और उनकी पुत्री कुमारी राधा बहन.

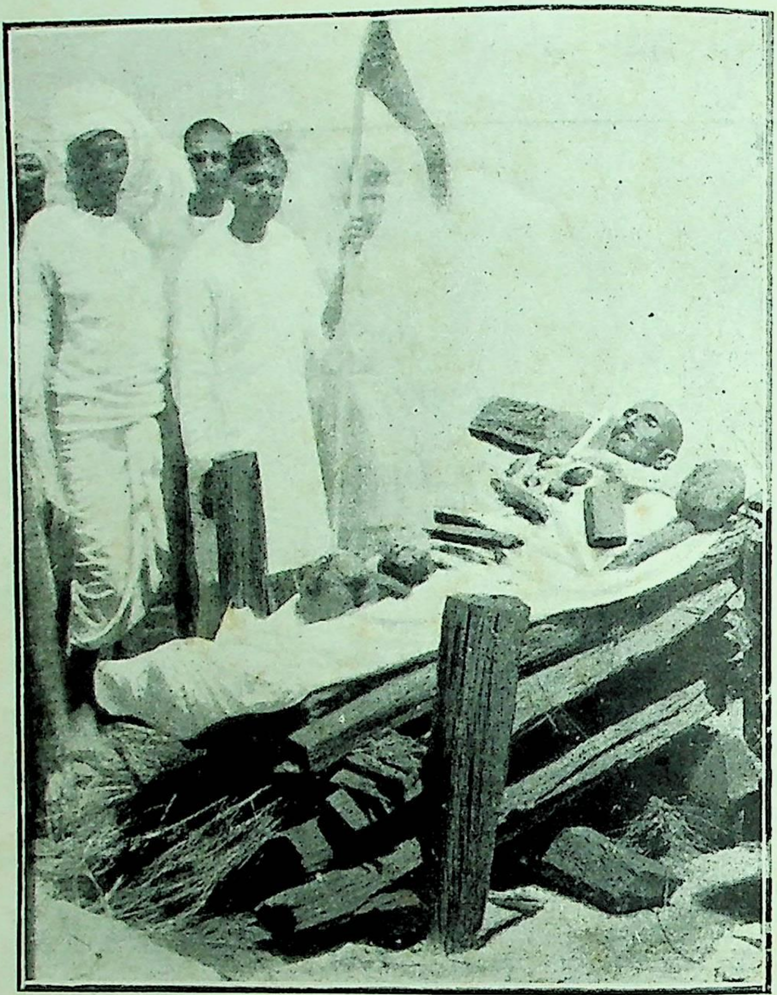

स्वर्गीय मगनलाल भाई गांधी के अन्तिम दर्शन

मगनलाल भाई के जीवन की कुंजी उनके अनवरत परिश्रम और सूर्यनारायण के समान उनकी नियमितता में है। इसी कारण उनका जीवन सूर्य के समान तेजस्वी था। इस तेज की आभा से उनकी आँखें सदा चमका करती थीं। मलिनता और अंधकार में सूर्यनारायण के समान प्रवेश कर उसे नष्ट भ्रष्ट तथा छिन्न-भिन्न करने की शक्ति भी उन्हें इसी कारण प्राप्त हुई थी। उनका जीवन-सूर्य हमारे लिए सदा प्राणदाता बना रहे !

महादेव देसाई

स्त्री क्या है ?

ग्रीष्मऋतु की सुन्दर खिली हुई चाँदनी में, एक सरोवर के किनारे बैठ कर, मेरे एक मित्र ने अपने जीवन की ये बातें मुझसे कही थीं—"एक साधारण गृहस्थ के घर में मैंने जन्म लिया है। सत्रह-अठारह वर्ष की अवस्था में मेरा विवाह एक ऐसी कन्या से हुआ, जिसे मैंने विवाह के पहले कभी न देखा था। न उसके विषय में कभी सुना ही था कि उसका रूप-रंग कैसा है, समझ-बूझ कैसी है, वह कुछ पढ़ी-लिखी भी है या नहीं? जैसे लोग-गाय बैल को बेच देते हैं, वैसे ही हम दोनों के पिताओं ने, बिना हम में से किसी की सम्मति लिये ही, हमें एक दूसरे के सुपुर्द कर दिया था। वह कैसी भीषण पराधीनता थी! अब सोचता हूँ तो रोंयें खड़े हो जाते हैं। जिसके साथ मुझे एक इस-दुर्लभ मनुष्य-जीवन बिताना है, वह कैसी है,—यह पूछना मानों मेरे लिए एक भयानक अपराध था!

विवाह के बाद स्त्री मेरे घर आई। मैं जानता ही न था कि पति किसे कहते हैं। मैं तो उस बेचारी के लिए एक पशु था। शायद वह भी यही समझती रही होगी कि पशु-प्रवृत्ति की पूर्ति के लिए ही मेरे साथ उसका विवाह किया गया है। हाय! कैसी भयानक प्रवञ्चना थी!

मैंने तो कुछ लिख-पढ़ लिया था। पर वह निरी गँवारिन थी। रूप-रंग भी कुछ ऐसा-वैसा ही था। शोभा-शृंगार की तो उसे शिक्षा ही नहीं मिली थी। मैं भी नहीं जानता था कि उससे विषय-भोग के सिवा और भी कोई सुख प्राप्त किया जा सकता है या नहीं?

पूर्व जन्म के संस्कार से मेरे हृदय में देश-भ्रमण करने की इच्छा हुई। मैंने खूब भ्रमण किया। तरह-तरह के स्त्री-पुरुष देखे। स्त्री पुरुषों के प्रेम और कलह की कितनी ही झूठी और सच्ची कहानियाँ सुनीं। मन में ऐसी लालसायें प्रतिदिन उठा करती थीं कि ऐसी कहानियाँ मुझपर भी घटतीं! स्त्रियों को अपने पतियों से कलोल करते देख कर मैं कलेजा मसोस कर रह जाता और सोचता कि ऐसी आनंदमयी स्त्री कहीं मेरी भी होती! इस प्रकार अपने भाग्य और विधाता को कोसते हुए मेरे कई वर्ष बीत गये। एकबार मैंने सोचा कि मेरी स्त्री पढ़-लिख ले तो शायद मेरे लिए कुछ अधिक मनोरञ्जक हो जाय। मैंने स्त्री से कहा—तुम कुछ पढ़ लो। स्त्री ने कहा—मुझे पढ़ना-लिखना न आवेगा। फिर मैंने आग्रह नहीं किया।

देश-भ्रमण करते-करते जितना ही मेरा अनुभव बढ़ने लगा, उतना ही मैं अपनी स्त्री से दूर होता गया, विवाह के बाद बीस वर्ष तक मैं उसे पुरुष की जागी हुई पशु-प्रवृत्ति को सुला देने वाली दवा ही समझता रहा। मन बहलाने के लिए मैंने साहित्य का अध्ययन प्रारंभ किया। पर उसने तो अग्नि में और भी आहुति डाल दी। काव्य-ग्रन्थों में मुझे तरह-तरह की नायिकायें मिलीं। उनके नख-शिख और हाव-भाव का मनोहर वर्णन पढ़ कर अपनी स्त्री के लिए जो रहा-सहा प्रेम था वह भी कोसों दूर भाग गया। कविता से मेरी अशान्ति और भी बढ़ गई। बिहारी का कोई रसीला दोहा या देव का कोई चुभता हुआ कबित्त पढ़ता तो तबीअत फड़कने के बदले और कुढ़ उठती कि हाय! इन दोहों या कबित्तों में मेरे और मेरी स्त्री के जीवन की झलक क्यों नहीं मिलती?

मैं घूम-घाम कर दूसरे-चौथे महीने घर आता, पर स्त्री में कुछ परिवर्तन न पाता। न वह पूछती कि 'तुम अब तक कहाँ थे? कैसे थे?', और न वह यही प्रकट कर सकती थी कि मेरे आने से उसे कुछ प्रसन्नता हुई है या नहीं। धीरे-धीरे मेरी विरक्ति बढ़ने लगी। पर-स्त्री से हँसने-बोलने की प्रवृत्ति तो

मेरी लड़कपन से ही न थी। बड़े होने पर तो मुझे ऐसे कामों से ही नहीं, ऐसे काम करने वालों से भी आन्तरिक घृणा हो गई।

अब मन को किधर लगाता? सोचा कि आओ कुछ देश-सेवा करें। देश-सेवा में मन कम लगा, तो सोचा कि आओ बाक़ी उम्र ईश्वर-चिन्तन में बिता दें। यह भावना मन में उठी ही थी कि संस्कृत के किसी प्राचीन कवि का एक श्लोक आँखों के आगे आ गया, जिसका भावार्थ यह था कि या तो संसार में सुन्दरी स्त्री का सहवास मिले या ईश्वर की भक्ति और सत्संग। जिन्हें दो में से एक भी नहीं मिला, संसार में उनका जन्म व्यर्थ है। मैंने सोचा कि स्त्री-सुख से तो मैं वंचित ही हूँ, अब उम्र क्यों व्यर्थ जाने दूँ, आओ, घर-बार छोड कर शेष आयु ईश्वर की शरण में बिता दूँ!

यह धारणा कई वर्षों से बलवती होती जा रही थी; पर स्त्री को कुछ पता नहीं था। वह घर-गृहस्थी के कामों में रात-दिन लगी रहती थी। मानों इसी काम के लिए वह आई थी। विवाह के ८-१० वर्ष बाद एक दिन उसने मुझसे कहा था कि "अब तुम घर रहा करो। बहुत दौड़-धूप चुके, अब घर छोड़ कर न जाओ।" बस, इसके सिवा न उसने कभी कपड़ा माँगा, न गहना। मैं भी उसकी अबोधता पर दया करने लगा। न मैंने कभी उसे एक भी कटु शब्द कहा, न मारा, न पीटा, और न कभी अधिक देर तक उसके पास ही बैठा।

विवाह के पन्द्रह-बीस वर्ष बाद पति कहलाने योग्य हुआ, संसार को देख-सुन कर, पुस्तकें पढ़कर मैं उस सीमा पर पहुँचा, जहाँ से मैं यह निर्णय कर सकने योग्य हुआ कि पति किसे कहते हैं? और स्त्री से विषय-भोग के सिवा संसार में और क्या-क्या सुख प्राप्त किये जा सकते हैं? अब मैं सोचता हूँ कि क्या ही अच्छा होता कि मेरा विवाह इस उम्र में होता। अब मैं पति कहलाने योग्य हुआ! कभी-कभी मैं यह सोचता हूँ कि ज्ञान ही मेरे लिए दुःख का मू है। मैं मूर्ख ही रहता तो उसी स्त्री के साथ मेरा जीव सुख से कट जाता। सुख के अनेक प्रकारों को जा कर, पर उसे न पाकर, अब मैं दुःख ही भोग रहा हूँ। इसी तरह के विचारों में आयु मेरा साथ छोड़ चली जा रही थी। एकाएक होनहार का एक ऐस चक्कर लगा कि मैं एक ऐसे व्यक्ति के पास जा पड़ा, जो मुझसे कहीं अधिक संसार के अनुभवी औ पति-पत्नी के रहस्य से परिचित हैं। उनसे मे मित्रता हुई। हम लोगों ने निष्कपट भाव से अपन अपना हृदय खोलकर एक दूसरे के सामने रक्खा अपनी भलाई-बुराई सब एक दूसरे को विदित क दी गई, जिससे कभी मन में अंतर पड़ने की संभावना न रहे।

किसी समय वह बहुत ही सुखी थे, जब उन सुन्दरी, सुशीला और मृदु-भाषिणी स्त्री जीवित थी राजवंश में जन्म लेने के कारण पती-पत्नी के कर्त की शिक्षा उनको सहज में ही प्राप्त हुई थी। इस स्त्री का सुख उन्होंने भरपूर उठाया। एकाएक वे बीमार हुई और कई बच्चों को छोड़ कर परलो सिधारी। युवावस्था में पतिप्राणा पत्नी का वियो उनके लिए असह्य हो उठा। पर गंभीर, विचारवा और अपनी सच्चरित्रता के लिए यशस्वी होने के कार कई वर्षों तक उन्होंने अपनेको खूब सम्हाला। उन कुटुम्बी और मित्र उन्हें फिर विवाह करने के लि बार-बार कहा करते थे; पर वह इस सिद्धांत पर अ थे कि पहली स्त्री से बच्चे मौजूद हैं, दूसरा विवा नहीं करूँगा। मैं भी उनको विवाह न करने की सम्मति दिया करता था।

इस प्रकार कई वर्ष बीत गये। इस वर्ष प्री

में मुझे १०-१५ दिन उनके पास रहने का अवसर मिला। उनके मकान की छत पर हम दोनों रात सोया करते थे। रात में मैं प्रायः उनको कुछ व्यथित सा पाता था। वह छत पर इधर-उधर करते और मन को थामने के लिए कुछ गुन भी करते थे। मैंने सोचा—इनके मानस में पीड़ा है, जो इन्हें चैन नहीं लेने देती। मैं पूछ । वह कहने लगे—मुझे एक स्त्री की आवश्य है। विषय-भोग के लिए नहीं, बल्कि एक मित्र तरह मेरे प्रत्येक काम में सहयोग देने के लिए। र के दुःख-दावानल से जब मैं व्याकुल हो उठता ब मुझे एक शीतल छाया चाहिए।

मैंने कहा—कामुक पुरुषों की सी आपकी दशा कर मुझे आश्चर्य होता है।

उन्होंने कहा—मैं काम-वासना से व्यथित होकर नहीं कह रहा हूँ। काम-वासना की तृप्ति तो अनेक ओं से हो सकती है। पर स्त्री काम-वासना की के लिए ही नहीं बनी है। वह पुरुष की एक संगिनी है, जिसके बिना जीवन में पूर्णता ही आती।

मैंने कहा—मेरी तरह जीवन बिताइए।

उन्होंने कहा—तुम्हारा जीवन आदर्श नहीं कहा सकता। स्त्री से तुम्हारी विरक्ति स्वाभाविक नहीं तुम ऊँचे चढ़ आये, पर अपनी स्त्री को साथ लाये, उसे बहुत दूर छोड़ दिया। अब उसे अपने तक लाने का साहस तुममें नहीं है। इससे उसकी आशा ही छोड़ दी है। तुम्हारा कोई आ नहीं, कोई लक्ष्य नहीं; और यदि आदर्श हो भी, हाँ तक पहुँचने के लिए कोई सीढ़ी नहीं।

मैं चुपचाप सुनने लगा। थोड़ा ठहर कर फिर लगे—तुम बड़े स्वार्थी हो। स्वयं शिक्षा प्राप्त घूम-फिर कर दुनिया देखते हो। विषय-भोग न सही, पर और सब तरह सुख उठाते हो। क्या तुम्हारा कर्त्तव्य नहीं था कि अपनी जीवन-सहचरी के लिए भी उसमें से कुछ देते?

मैंने कहा—आपकी बातें मैं बड़े ध्यान से पी रहा हूँ। पर अब मैं एक मार्ग पर बहुत दूर निकल आया, लौट नहीं सकता। और मैं आपसे भी यही कहूँगा कि राम का सा जीवन बिताइए।

उन्होंने कहा—मैं नहीं बिता सकता। मेरे लिए दो ही मार्ग हैं, या तो मैं व्यभिचार करूँ या पुनर्विवाह। व्यभिचार अपराध है, इससे पुनर्विवाह करने का ही निश्चय कर रहा हूँ।

मैंने हँस कर मज़ाक़ के ढंग पर कहा—आप मेरे मित्र हैं, मेरे दुःख-सुख के साथी हैं। कहिए तो मैं भी एक विवाह और कर लूँ!

उन्होंने कहा—तुम्हारी वर्तमान स्त्री कभी इसे पसंद न करेगी। तुम उसपर अत्याचार क्यों करोगे?

दूसरे दिन मैं घर गया। मैं समझता था कि मेरी निपट गंवार स्त्री सामाजिक प्रश्नों से बिलकुल अनभिज्ञ होगी। रुचि न रहते हुए भी मैंने उसके साथ शयनागार में बैठ कर बातों की छेड़-छाड़ शुरू कर दी।

मैंने कहा—मैं तो एक विवाह और करने जा रहा हूँ।

स्त्री ने बिना कुछ आश्चर्य या विक्षोभ प्रकट किये शांति से कहा—अवश्य कर लो। तुम बाहर रहते हो, मैं तो तुम्हारी कुछ सेवा कर नहीं सकती। वह तुम्हारे साथ रहेगी। इससे तुम सुखी होगे।

मैंने कहा—पर तुम्हें तो दुःख होगा।

स्त्री ने तत्काल कहा—मुझे क्या दुःख होगा। मैं तुम्हारे और उसके बीच में पड़ूँगी ही नहीं, तो मुझे क्या दुःख होगा?

मैं सोचने लगा—इसने तो मुझे परास्त कर दिया। यदि यह ग्रेजुएट होती, तो कहती—'जी हां,

मजाल है कि आप दूसरी शादी कर लें। घर में, मुहल्ले में, अख़बारों में ऐसा हल्ला मचाऊँगी कि आप रो दीजिएगा।' ख़ैर, थोड़ा ठहर कर, मैं फिर पूछ बैठा—मैं चाहता हूँ कि अब शेष जीवन संयम से रह कर बिताऊँ, अर्थात् ब्रह्मचर्य से रहूँ। तुम्हारी क्या राय है ?

स्त्री ने कहा—तुम्हीं हारोगे। मुझसे क्या पूछते हो ? तुम छेड़छाड़ न करो, तो मैं कभी तुम्हारी इच्छा ही न करूँ।

मैं सोचने लगा, यदि यह स्त्री कहीं आजकल की शिक्षा पाई हुई होती तो कहती 'तुम मूर्ख हो। जब तक जवानी है, शरीर में बल है, खूब भोग-विलास करो। यह शरीर फिर मिले या न मिले, क्या ठिकाना ? खाओ, पिओ, और मौज उड़ाओ। यही संसार में आने का फल है। तुम यदि संयम से रहने लगो तो मेरा तो निबाह नहीं होगा। मैं तो संयम से नहीं रह सकती।'

कुछ ठहर कर मैंने फिर पूछा—मेरा इरादा है कि घर-गृहस्थी छोड़ दूँ और कुछ देश का काम करूँ।

स्त्री चुप रही।

मैंने फिर ज़रा ज़ोर से दुहराया। वह फिर भी चुप रही। मैंने पूछा--तुमने कुछ कहा नहीं ?

स्त्री ने कहा—मैं क्या कहूँ। तुम जिस तरह सुखी रहो, उसीमें मुझे सुख है।

उसका यह उत्तर मेरे हृदय के अंतस्तल में जा धँसा। मैं सोचने लगा, ऐसा सुन्दर उत्तर देना इसे किसने सिखाया ? मैंने पूछा—तब तुम क्या करोगी ?

स्त्री ने कहा—घर छोड़ कर जाते समय तुम मेरे लिए कुछ कह भी तो जाओगे ? मैं वही करूँगी।

स्त्री ने मुझे विलकुल परास्त कर दिया। मैंने अंत में यह बात और पूछी—तुमने मुझसे कभी कुछ माँगा नहीं। क्या तुम्हें किसी गहने या कपड़े का शौक़ नहीं ?

स्त्री ने कहा—एक बाँर मागा था, नहीं मिला तो फिर क्या माँगती ?

मुझे याद ही नहीं पड़ता था कि मेरी स्त्री ने क मुझसे कुछ माँगा हो। मैंने कहा--तुमने मुझसे क कुछ नहीं माँगा।

स्त्री ने कहा—माँगा क्यों नहीं ? मैंने तुमसे क था कि अब बहुत दौड़-धूप चुके; अब बाहर न जाओ घर ही रहो। क्या मैंने नहीं कहा था ?

अरे! इतनी पुरानी बात! आज तक यह उसे प्रकार पकड़े हुए है, जैसे कल की है! अब मैंने सम कि स्त्रियों को अपनी बात का कैसा हठ होता है। स्त्री को मैं असभ्य और अशिक्षित समझता था, ऐसी नपी-तुली बातें होंगी, इसका मुझे स्व भी विश्वास न था। मानों स्त्री-पुरुष के प्रत्येक पर वह पहले से हो विचार कर चुकी है, प्रत्येक प्रश्न का उत्तर उसके पास तैयार है। मैं बात पर पछताने लगा कि मैंने इससे वर्षों तक इस प्रकार की बातें क्यों न कीं, जिससे इसकी ओर आकर्षित होता, इसे भी प्यार क और कुछ सुख पहुँचा सकता! अपने पश्चात्ताप साथ ही मैं इस निर्णय पर भी पहुँचा कि स्त्रि पुरुषों के लिए एक गूढ समस्या हैं!

इस घटना के बाद अब भी मैं नहीं जानत स्त्री क्या है ?"

इतना कह कर मेरे मित्र चुप हो गये। इस विचार में पड़ गया कि स्त्री क्या है ?

रामनरेश त्रि

आज की रूसी बहनें

ज़ारशाही के ज़माने में रूसी स्त्रियों की जो अब्तर हालत थी, वह वर्णनातीत है। शासन की बुराइयाँ तो थीं ही, पर साथ ही सामाजिक अनेक कुरीतियाँ और शिक्षा का एकान्त अभाव भी उनकी दुर्दशा के कारण थे। इसमें सन्देह नहीं कि उस समय भी कुछ स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी और शिक्षिता होती थीं; पर उनकी संख्या अँगुलियों पर गिनी जा सकती थी, और बहुधा वे केवल अमीर-उमरावों के घरानों की ही होती थीं। साधारण स्त्रियों का शिक्षित होना और ज़रा अच्छी तरह से रहना तो उस ज़माने में एक भयंकर जुर्म करना था! उस समय की स्त्रियों की दशा का अनुमान अकेले इस बात से किया जा सकता है कि रूस के याकुटस्क नामक प्रान्त में—जिसका क्षेत्रफल वर्त्तमान जर्मनी का सात गुणा है—स्त्रियाँ आम तौर से बेची जाती थीं। उनकी क़ीमत मामूली तौर पर ५० पौण्ड मक्खन, ३५ पौण्ड आटा आदि अन्न और ३ रूबल* (सिक्का) होती थी। वहाँ ९६ प्रति शत स्त्रियाँ ख़ानाबदोश होतीं और उन्हें स्वयं अपने परिवार में कोई अधिकार (वारिसाना हक़) प्राप्त न होता था। वे अपने ही घर में गुलाम थीं। लड़कियों के माता-पिता और दूसरे रिश्तेदार इस बात के लिए अधीर हो उठते थे कि कब लड़की बड़ी होगी और कब उसे बेच कर द्रव्य प्राप्त करेंगे, हालाँ कि उनकी बिक्री के द्रव्य की तादाद बहुत ही कम होती थी। लड़कियाँ जब तक माता-पिता के घर रहतीं, उनसे कस के काम लिया जाता। उन्हें शोचनीय और अस्वास्थ्यकर हालत में रक्खा जाता, उन्हें खिलाने-पिलाने में अत्यन्त कंजूसी की जाती, और जानवरों के साथ ही उन्हें भी रहना पड़ता था। फिर, ससुराल जाने पर, वे पति की क्रीतदासी बन कर रहतीं। इस प्रकार उनका जीवन पशुओं से भी बदतर हालत में बीतता था। फलस्वरूप उन्हें तपेदिक आदि अनेक प्रकार की बीमारियाँ होतीं और वे पुरुषों की अपेक्षा दूनी से भी अधिक तादाद में मरती थीं। इनके सिवा अज्ञान और अशिक्षा का तो उन दिनों वहाँ अखण्ड साम्राज्य ही था। इन सब कारणों से स्त्रियों की हालत अत्यन्त दयनीय हो गई थी।

पर, यह अन्धेर कितने दिनों तक चल सकता था? जनता को इस बुरी अवस्था में रहना अब और अधिक दिन तक सह्य नहीं हो सका। फलस्वरूप राज्य-क्रान्ति हुई और पुरुषों के साथ स्त्रियों के भी भाग्य खुल गये। क्रान्ति के बाद साम्यवादी सरकार की स्थापना हुई और उसने स्त्रियों तथा पुरुषों के समान अधिकारों की घोषणा कर दी। उनके दर्मियान शिक्षा-प्रचार, राजनैतिक जागृति आदि का कार्य आरंभ हो गया। स्त्रियाँ भी स्वतंत्रता के शीतल, सुगन्धिमय एवं सुहावने समीर-स्पर्श से विमुग्ध हो जाग उठीं; और, अपनी कमज़ोरियों को दूर करने में, जी-जान से जुट गईं। इनकी प्रतिनिधि-संस्थायें स्थापित हुईं और वे शिक्षा-प्रचार तथा आर्थिक कठिनाइयों को दूर करने के संबंध में कार्य करने लगीं। ये संस्थायें शहरों और मजदूरों की स्त्रियों में ही नहीं बल्कि देहातों में तथा किसानों की स्त्रियों के बीच भी स्थापित हुईं। इन संस्थाओं द्वारा दैनिक जीवन में काम आने वाले विभिन्न विषयों की शिक्षा दी जाती है। इस जागृति और शिक्षा-प्रचार आदि का फल यह हो रहा है कि स्त्रियाँ अब न केवल राजनैतिक कार्यों में बड़ी दिलचस्पी लेने लगी हैं, बल्कि अपने सब प्रकार के हक़ों की रक्षा और कर्त्तव्यों के पालन का भी ध्यान रखती हैं। १९२६ ई०

---

* १ रूबल लगभग सवा दो रुपये या ३ शिलिंग के बराबर होता है।

में देहात की ३० प्रतिशत और शहरों की ५१ प्रतिशत स्त्रियों ने शासन संबंधी चुनाव में भाग लिया था।

स्त्रियों की साधारण हालत

यहां की स्त्रियाँ अधिकतर दफ़्तरों और दूकानों में काम करती हैं। उनमें स्वतन्त्रता, स्वावलंबन, आत्म-विश्वास और दृढ़ता की मात्रा बहुत अधिक होती है। उनको देखने से दर्शकों के दिल पर यही असर पड़ता है कि वे सब तरह से निश्चिन्त और सुखी हैं, उनको किसी बात की परेशानी नहीं है। शिक्षा का प्रचार इनके बीच बड़ी तीव्र गति से हो रहा है। इनकी कई सस्ती, अच्छी और आकर्षक पत्र-पत्रिकायें निकलती हैं और निर्धन स्त्रियों को सम्पन्न स्त्रियाँ बड़ी उदारता के साथ अपने पैसे से ख़रीद कर वे पत्र-पत्रिकायें देतीं और उन्हें लाभ पहुँचाती हैं। यूरोप के अन्य देश वाले उसे भले ही न मानें, परन्तु रूसी स्त्रियाँ अन्य यूरोपीय देशों (ख़ास कर इङ्गलैण्ड, फ़्रांस, जर्मनी) की अपेक्षा अधिक शीलवती, अधिक गंभीर और अधिक सभ्य होती हैं। फ़्रांस या इंगलैण्ड के समान यहाँ की स्त्रियों में विषय-भोग की वासना अधिक नहीं पाई जाती। यहाँ पर सिनेमा में स्त्रियों की नंगी या अर्धनग्न तस्वीरों या थियेटरों में नंगी या अर्धनग्न स्त्रियाँ शायद ही कहीं दिखाई पड़ेंगी। तात्पर्य यह है कि यह देश पश्चिमी सभ्यता की पाशविकता की छाप से बहुत हद तक अभी बचा हुआ है। पर यह बात ठीक है कि यहाँ की स्त्रियों को इतनी स्वतन्त्रता दे दी गई है, जिससे बहुत लोगों को यह भय बना रहता है कि कहीं वे इस स्वतन्त्रता का दुरुपयोग न करने लगें।

विवाह और तलाक़

नई शासन-पद्धति में विवाह संबन्धी क़ानून में परिवर्तन हुआ है, जिससे स्त्रियों का दर्जा और भी बढ़ गया है। अब वहाँ पर विवाह करना और तलाक देना—दोनों ही बातें बहुत आसान हो गई हैं। जिन्हें शादी करनी होती है, वे (स्त्री और पुरुष) 'जस्टिस आफ़ दी पीस' (रजिस्ट्रार) के पास जाकर अप शादी की इच्छा प्रकट करके हस्ताक्षर करते हैं; औ हस्ताक्षर के बाद ही शादी क़ानूनन सही मान ली जा है। पुरानी प्रथा के अनुसार कोई गिर्जाघर में जाक शादी करना चाहे तो कर सकता है; पर वह शा क़ानूनन जायज नहीं समझी जाती। किन्हीं ऐसे और पुरुष का, जिन्होंने सरकारी रजिस्ट्रार के पा जाकर शादी के सम्बन्ध में हस्ताक्षर न किये हों औ न गिर्जाघर ही में शादी की हो, परस्पर पति औ पत्नी का सा संबन्ध रह सकता है, पर उनकी संता के भरण-पोषण के लिए सरकार की ओर से सहाय नहीं दी जाती। तलाक देने के लिए भी रजिस्ट्रार पास जाकर अपनी इच्छा प्रकट करनी पड़ती है औ केवल स्त्री या केवल पुरुष की इच्छा से उसकी स्वीकृ हो जाती है। अगर उक्त दम्पती की कोई संतान न होती, तब तो तलाक़ में कोई झंझट नहीं रहता; प अगर कोई संतान हुई, तो तलाक के पूर्व उस दंप में से किसी भी एक को अपनी संतति (चाहे व लड़का हो या लड़की) को अपने साथ रखने का भा स्वीकार करना पड़ता है। माता ही साधारणत अपने बच्चों को अपने साथ रख लेती है। ऐ हालत में अगर एक ही बच्चा है तो पिता को अप आय का एक तृतीयांश उसके पालन-पोषण के लि देना पड़ता है और अगर एक से अधिक संतान हु तो उसे अपनी आय का आधा भाग दे देना पड़ता है बच्चे की १८ वर्ष की उम्र तक ही यह रक़म दे पड़ती है। अगर कोई पुरुष अपनी स्त्री और बच्चे छोड़ कर भाग जाय, तो सरकार उसका पता लगवा है और उससे उसके बच्चे का हिसाब दिलवाती है अगर कोई व्यक्ति (पुरुष) अपनी आय की तादा

जावे तो तलाकशुदा स्त्री को उस पुरुष पर मुक़दमा चलाने का अधिकार होता है और स्त्री की जीत होने पर उस पुरुष को छः मास की क़ैद तथा ५००) रुपये जुर्माने की सज़ा दी जाती है।

श्रमिक स्त्रियाँ

सोवियट रूस की तो सारी जनता ही श्रमिक जनता है। वहां छोटे-बड़े; पूँजीपति-दरिद्र आदि का कोई भेदभाव नहीं है। साधारण सी बात से लेकर बड़ी-बड़ी बातों तक में सबको समान अधिकार प्राप्त हैं। सभी मेहनत करते और अपने मेहनताने से जीवन-निर्वाह करते हैं। वहाँ इन दिनों एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, जो दिन भर मूछों पर ताव देता बैठा रहे और मुफ्त में मक्खन-रबड़ी खावे। तात्पर्य यह है कि वहाँ के सभी आदमी—पुरुष भी और स्त्रियां भी—श्रमिक हैं, इसीलिए वहां का राज्य श्रमिकों (मज़दूरों) का राज्य कहलाता है। इस मज़दूर सरकार ने यों तो सभी पुरुष और स्त्रियों के लिए अनेक सहूलियतें कर रक्खी हैं, पर कारख़ाने आदि में काम करके अपना जीवन-निर्वाह करने वाली श्रमिक स्त्रियों की सुविधाओं का उसने और भी अधिक ध्यान रक्खा है। कारख़ानों में पुरुष और स्त्रियां एक साथ काम करती हैं; इसलिए ज़िला और प्रान्तीय सोवियट (पंचायत-सभा) के लिए वे दोनों ही मिल कर प्रलिनिधि चुनते हैं और फिर वहां से जो प्रतिनिधि चुने जाते हैं वे 'यूनियन काँग्रेस ऑफ़ सोवियट' (सोवियट की सर्वोपरि केन्द्रस्थ सभा) में जाते हैं। इस प्रकार उन्हें (स्त्रियों को) पूरी-पूरी सहूलियत और अधिकार दिया गया है कि वे शासन के उच्च से उच्च पद को प्राप्त कर सकें।

कारख़ाने में काम करने वाली स्त्रियों के लिए यह क़ानून बना हुआ है कि जो स्त्री गर्भवती हो, उससे रात में अथवा निश्चित समय* से अधिक (ओवर-टाइम) काम हर्गिज़ न लिया जाय। साथ ही सिवा किसी ख़ास परिस्थिति के उनसे ज़मीन के अन्दर का काम कदापि नहीं लिया जाता† और न कभी उन्हें किसी स्वास्थ्यकर काम में लगाया जाता है। दिमाग़ी काम करने वाली स्त्रियाँ जब गर्भवती होती हैं, तो उन्हें प्रसव के डेढ़ मास पूर्व से डेढ़ मास बाद तक तथा शारीरिक काम करने वाली स्त्रियों को दो मास पहले से दो मास बाद तक की पूरी सवेतन छुट्टी दी जाती है। इतना ही ही नहीं, बल्कि बच्चे के जन्म के ९ महीने बाद तक उनकी माताओं को उनकी साधारण तनख्वाह के अलावा प्रतिमास ९ रुबल कारख़ाने की ओर से और दिये जाते हैं, जिससे कि वे दूध आदि का समुचित प्रबन्ध कर सकें। साथ ही इस बीच में उन्हें प्रत्येक तीन घंटे पर कुछ देर के लिए अपने बच्चे को देखने-भालने, दूध पिलाने आदि के निमित्त जाने की भी आज़ादी रहती है।

बच्चों का पालन-पोषण

अन्य देशों की साधारण स्त्रियों के समान ही रूस में भी घर के काम-काज और बच्चों के लालन-पालन के साथ अपनी उदर-पूर्ति के लिए भी अधिकाँश स्त्रियों को उद्योग करना पड़ता था, जिससे स्वभावतः उनके तथा उनकी सन्तानों के स्वास्थ्य पर बड़ा घातक असर होता था। इस बुराई को दूर करने के लिए भी रूस की वर्तमान सरकार ने यत्न किया है। जिन कारख़ानों में स्त्रियाँ भी काम करती हैं, उनमें शिशु-गृह और किन्डरगार्टन नामक दो प्रकार

---

* १—रूस में (क़ानून के अनुसार) प्रति दिन ७ घंटे काम करवाने का नियम है।

† २—हिन्दुस्तान में केवल कोयले की खानों में ६०,००० स्त्रियाँ ज़मीन के अन्दर काम करती हैं।

की संस्थायें होती हैं। कारखानों में काम करने वाली स्त्रियों के बच्चे उनके काम के समय इन्हींमें रख दिये जाते हैं। शिशुगृह में दो मास से लेकर साढ़े तीन वर्ष तक के बच्चे और किन्डरगार्टन में साढ़े तीन साल से आठ साल तक के बच्चे रहते हैं। मातायें कारखाने में काम करने के लिए जाते वक्त अपने बच्चों को इन गृहों में रख जाती हैं और कारखानों से लौटते वक्त उन्हें ले लेती हैं। प्रतिदिन सवेरे इन गृहों में बच्चों के आते ही उनके घर के कपड़े उतार लेते हैं और उन्हें नहला-धुला कर वहाँ के कपड़े पहना दिये जाते हैं। और इस बीच उन्हें नियत समय पर खिलाया-पिलाया जाता है, खेलाया जाता अथवा खेलना सिखलाया जाता है, हवा खिलाई जाती है, और नियमित समय पर उन्हें सुला भी दिया जाता है। अगर उनमें कोई बीमार हुआ तो योग्य डॉक्टर के द्वारा बड़ी सावधानी के साथ उसकी चिकित्सा भी कराई जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि जब तक मातायें अपने काम पर रहती हैं, तब तक उन्हें अपने बच्चों की चिन्ता करने की ज़रा भी आवश्यकता नहीं रहती। और तारीफ़ तो यह है कि इन सब सेवा-शुश्रुषाओं के लिए उन माताओं को एक पैसा भी नहीं देना पड़ता। क्योंकि कारखाने की तरफ़ से बच्चों के लिए ऐसा प्रबन्ध किया जाना अनिवार्य है। इन शिशु-गृहों की संख्या भी अच्छी बढ़ रही है। जनवरी १९२६ ई० में ऐसे स्थायी शिशु-गृहों की संख्या ७३९ और अस्थायी शिशु-गृहों की संख्या ४१०१ थी। गर्मी के दिनों में किन्डरगार्टन शालायें बन्द रहती हैं और उन दिनों के लिए अगर मातायें चाहें तो अपने बच्चों को बिना कुछ खर्चा दिये—चूँकि खर्चा कारखाने की ओर से दिया जाता है—देहात की ठण्डी जगहों में भेज सकती हैं।

कारखानों की स्त्रियों के सिवा अन्य स्त्रियों को भी अधिक से अधिक ऐसी ही सुविधायें देने की कोशिश बराबर जारी हैं। ऐसे सैकड़ों क्लब हैं, जिनके साथ 'शिशु-गृह' बने हुए हैं। वहाँ स्त्रियाँ जाती हैं और अपने बच्चों को शिशु-शाला की दक्ष धायों के हाथ में छोड़ कर क्लब में निर्द्वन्दता और निश्चिन्तता-पूर्वक पढ़ती-लिखती एवं आमोद-प्रमोद करती हैं। स्त्रियों और बच्चों के लिए बहुत से अस्पताल और प्रयोगशालायें भी सरकार की ओर से खोली गई हैं। इनके सिवा माताओं को उनकी बीमारी आदि के संबन्ध में सलाह देने वाले ५८५ और बच्चों के लिए ३८१ दफ्तर खुले हुए हैं। शहर की ९५ प्रतिशत से भी अधिक स्त्रियाँ प्रयोगशाला में ही जाकर बच्चे जनती हैं। वहां पर इसका बड़ा सुंदर और आराम-देह प्रबन्ध रहता है। फलस्वरूप प्रसूतिकाल में मरने वाली माताओं तथा बच्चों की मृत्यु-संख्या बहुत कम हो गई है। स्त्रियों को बच्चों के संबन्ध में इससे भी बढ़ कर एक और 'स्वतन्त्रता' प्राप्त है। अगर कोई गर्भवती स्त्री किन्हीं घरेलू बातों के कारण, अथवा अपनी आर्थिक परिस्थिति और स्वास्थ्य आदि के कारण यह समझे कि उसके मौजूदा बच्चों से अधिक का भरण-पोषण वह समुचित रीति से नहीं कर सकेगी, तो उसे यह अधिकार होता है कि सरकार द्वारा नियुक्त बोर्ड के सामने जाकर वह अपनी हालत बतला दे, और गर्भ से मुक्त होने की इच्छा प्रकट करे। अगर बोर्ड उसके द्वारा दिये गये कारणों को माकूल समझे तो वह अपनी आज्ञा के साथ उसे किसी प्रयोगशाला के दक्ष सर्जन के पास भेज देगा। वहाँ आपरेशन (चीरफाड़) द्वारा उसका गर्भ निकाल लिया जायगा और वह स्त्री अपने भावी बच्चे के बोझ से मुक्त हो जायगी। दुनिया के अन्य सभ्य देशों में यह कार्रवाई जुर्म मानी जाती है; पर रूस की बात ही निराली है!

जो हो, यह हो सकता है कि इन सभी बातों से सहमत न हों—हो भी नहीं सकते; फिर भी यह मानना ही पड़ेगा कि इन थोड़े से दिनों में रूसी ने अपनी स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन किया और आज की रूसी बहनें, अपनी अन्य यूरोपीय से किसी भी बात में पीछे नहीं हैं। भारतीय बहनें अपनी संस्कृति का विचार रखते हुए, उनसे बहुत स्फूर्ति प्राप्त कर सकती हैं।

देवव्रत शास्त्री

माँ के उद्गार

(१)

चुहल रहे हैं, चहक रहे हैं, प्यारे-प्यारे,
छोटे-छोटे बच्चे बैठे, चिड़िया का सा जोड़ा।
ऐसे लाल किसके हैं, मेरे हीरे, मेरे पन्ने,
मुझको क्या है दौलत! चाँदी-सोने का तोड़ा?
ये तो नर-नारायण हैं, हमें जाँचने आये,
जो भी वारें इनपर, सब कुछ है थोड़ा।
ये दुनिया की आशा, ये होनहार के मालिक,
ये बस बने रहें, इनपै जग को छोड़ा।

(२)

उपवन जीवन का मेरा महक रहा है,
बुरी निगाह से न देखो, फल हैं ये कच्चे।
बिन बोले ये चहकें, अनमोले ये दमकें,
जग-सागर की मैं सीपी हूँ, ये मोती सच्चे।
चन्दा-सूरज ये, साहस किसका इन्हें ग्रसे,
प्रेम के पारस ये, कर दें खोटों को अच्छे।
बना कर शिशुवेश, प्रभु का लेके संदेश,
हमें सुनाने आये, देवलोक से ये बच्चे।

गोपालस्वरूप भटनागर

स्फुट प्रसंग

स्त्री-धर्म

पूना की बसन्त व्याख्यानमाला के सिलसिले में स्त्री-धर्म पर भाषण देते हुए श्रीमती सौ० लक्ष्मीबाई अभ्यंकर ने कहा—"स्त्री-धर्म के मानी स्त्रियों के कर्त्तव्य-कर्म हैं। लोकमान्य ने कर्त्तव्य को ही धर्म माना है। अपने कर्त्तव्यों का ठीक-ठीक पालन करने के लिए स्त्रियों को उचित शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। आजकल हमारे लिए मराठी हिन्दी और अंग्रेज़ी भाषाओं का ज्ञान आवश्यक है। डाकघर आदि कई ज़रूरी और व्यवहार के लिए उपयोगी संस्थाओं का सारा काम अंग्रेजी भाषा में होता है। अतः जिन बहनों को अंग्रेज़ी भाषा का ज्ञान नहीं होता, उन्हें कई कठिनाइयों में से गुज़रना पड़ता है। साधारणतया मैट्रिक अथवा आचार्य कर्वे के महिला-विश्वविद्यालय की 'गृहीतागमा' तक की पढ़ाई स्त्रियों के लिए आवश्यक है। शिक्षित स्त्रियों के पथभ्रष्ट होने की बात पर सहसा विश्वास नहीं किया जा सकता। जब पौराणिक और ऐतिहासिक काल की अनेक स्त्रियाँ शिक्षित होते हुए भी सुशीला और साधवी रह सकी थीं तो वर्तमान काल की शिक्षिताओं के लिए यही बात असंभव क्यों मानी जाय? पुस्तकीय ज्ञान के साथ ही साथ स्त्रियों को स्वास्थ्य-रक्षा, आयुर्वेद, क़ानून आदि शास्त्रों का भी ज्ञान होना चाहिए। अगर लड़कियों को घर पर उत्तम सदाचारपूर्ण शिक्षण मिलता रहे तो पुस्तकीय ज्ञान से उनपर किसी प्रकार बुरा प्रभाव पड़ने की बहुत कम संभावना रहती है। पहले ज़माने में तो हमारी पूर्वजों ने पुरुषों के साथ रहकर सब तरह के काम किये थे। समर्थ रामदास स्वामी ने अपने शिष्य-समुदाय में वेणूबाई के समान स्त्रियों को शिष्यत्व का सम्मान प्रदान कर समाज में स्त्रियों की योग्यता को भलीभांति सिद्ध किया है। द्रौपदी, जीजाबाई, सईबाई के समान राज-काज निपुण स्त्रियाँ, झाँसी की महारानी लक्ष्मीबाई सी वीरांगनायें संसार में स्त्री-धर्म की जीती-जागती प्रतिमायें हैं। चांगुणा और पन्नादाई के समान स्त्रियों ने गृहस्थधर्म और प्रजा-धर्म को मातृधर्म से भी अधिक महत्व दिया और संसार में अपनी

कर्तृत्वशक्ति को सदा के लिए अमर बना दिया। प्राचीन काल में जब हमारी मातृजाति ऐसे ऐसे रत्न पैदा कर सकी थी तो क्या आज भी योग्य शिक्षा द्वारा हम ऐसे स्त्री-रत्न पैदा नहीं कर सकती हैं?"

सभा समाप्ति के पहले सौ० द्रविड़ ने कहा—"ईश्वर ने स्त्री और पुरुष के लिए अलग-अलग काम दे रक्खे हैं। पुरुषों को घर से बाहर काम करने की जो स्वतंत्रता प्राप्त है उसका कारण स्त्रियों की वह उदारता है, जिसके वश वे घर में रह कर बाल-बच्चों का लालन-पालन करतीं और गृह-व्यवस्था में दिन-रात लगी रहती हैं। पुरुषों को चाहिए कि वे अपनी गृहस्थी में स्त्रियों के महत्व को समझें और उदारतापूर्वक उनसे बराबरी का व्यवहार करें।"

का०

सुधार की कसौटी

हमारे एक उत्साही युवक मित्र ने, जिनके यहाँ परदे का रिवाज़ है, अपनी धर्मपत्नी का परदा अपने कुछ मित्रों में उठा दिया और अपने साथ खुले-मुँह हवाख़ोरी को ले जाने लगे। उनके बूढ़े पिताजी को यह बात नागवार हुई। हमारे मित्र दुविधा में पड़ गये। परदा उठा देने के लिए जितना आगे क़दम बढ़ा चुके थे, उससे पीछे हटना अपनी कमज़ोरी समझते थे और इधर बूढ़े पिताजी को नाराज़ करने में भी उनके पुत्र-भाव की स्निग्धता सकुचाती थी।

इस विषय पर जब बहस छिड़ी तो व्यावहारिक समझदारी ने यह प्रश्न उपस्थित किया कि सुधार की कसौटी क्या है और सुधार किस हद तक करना चाहिए? और इस मामले में पिताजी को प्रसन्न रखने के लिए यदि आवश्यक हो तो किस हद तक पीछे हटना चाहिए? यह एक ऐसी उलझन है, जो विविध रूप में प्रत्येक सुधारेच्छु के सामने आया करती है। मेरा मत इस सम्बन्ध में यह है कि सुधार उसीको कहना चाहिए, जो समाज के हित को प्रधान मान कर किया गया हो—जो अपने सुख, सुविधा और ऐश-आराम के लिए न हो। यदि कोई परदे को इस विचार से तोड़ता है कि यह एक भयंकर प्रथा है, इसके अन्दर अनेक कुकर्म छिपे रहते हैं, यह स्त्री-जाति की उन्नति का प्रथम शत्रु है, और लोग यदि इसके तोड़ने की हिम्मत न दिखाते तो तो मैं ही आगे बढ़ कर अपने घर से इस प्रथा को तोड़ दूँ और इसके लिए घर के बड़े-बूढ़ों, कुटुम्बियों और समाज के लोगों का रोष प्रसन्नता-पूर्वक सहन कर लूँ, तो यह अवश्य सुधार है, सर्वथा प्रशंसा करने और उत्साह देने योग्य है। और इसमें सहसा पीछे हटने की गुंजायश नहीं रह जाती। पर यदि परदा इस ख़याल से तोड़ा गया हो कि साहब और मेम की तरह हम भी सैर करने जाया करेंगे, यह भी एक आनन्द है—हम इससे क्यों वंचित रहें? तो मेरी राय में एक तो यह सुधार का सच्चा भाव नहीं है, और दूसरे एक पुत्र के लिए अपने ऐसे आनन्द से बढ़ कर आनन्द की बात होनी चाहिए अपने बूढ़े माता-पिता की प्रसन्नता, हालाँकि इस दृष्टान्त में जहाँ तक मैंने समझा है सुधार का ही भाव शुरू से आख़िर तक रहा है। आशा है, हमारे सुधारेच्छु भाई इस मर्यादा को ध्यान में रक्खेंगे तो उन्हें सहसा पीछे हटने की बारी न आयेगी और उन्हें सच्चे सुधार का श्रेय मिलेगा।

ह० उ०

परदे के विरुद्ध आन्दोलन

बिहार में परदे के विरुद्ध एक आंदोलन पिछले दिनों शुरू हुआ है। गया ज़िले के बा० रामनन्दनसिंह उसके कारण बने हैं। वह महात्माजी के सत्याग्रह-आश्रम में रहते हैं। उन्होंने अपनी पत्नी श्रीमती राजकिशोरी देवी को अपने पास बुलवाना चाहा; पर उनके श्वसुर ने, जो एक ज़मींदार और परदा-प्रथा के पक्षपाती हैं, इसलिए इसमें बाधा डाली कि आश्रम में परदा नहीं होता और स्त्रियों को आज़ादी मिलती है। इसपर बा० रामनन्दनसिंह ने महात्मा जी से सहायता माँगी। उन्होंने श्री मगनलाल भाई की पुत्री कुमारी राधाबहन और स्व० दलगिरीबहादुर की लड़की को वहाँ भेजा और कहा कि वहाँ वे परदे के विरुद्ध ज़ोरदार आंदोलन करें तथा राजकिशोरी को लि और वा लावें। कुमारी राधाबहन इसीलिए बिहार गईं और इस आंदोलन में व्यस्त थीं, कि इसी बीच श्री मगनलाल भाई भी वहाँ पहुँचे और वहीं वे शांत भी हो गये। इसके बाद राधाबहन तो आश्रम लौट आई हैं; पर कि

नेताओं ने इस आंदोलन को उठा लिया मालूम होता है। ब्रजकिशोरप्रसाद और भूतपूर्व मिनिस्टर सर गणेश- उसके मुखिया हैं। ज़ोरों से काम हो रहा है। बा० किशोर ने तो ८ जुलाई को इस प्रथा को तोड़ने के प्रथम र्शन-स्वरूप प्रांत भर में जगह-जगह स्त्री-पुरुषों की म्मिलित सभायें करने की भी अपील निकाली है। ऐसा पड़ता है कि बिहार का समस्त युवक-समाज इसके तैयार हो रहा है। समस्त महिला-वर्ग उत्सुकतापूर्वक के परिणाम की प्रतीक्षा करेगा, यह स्वाभाविक ही है।

शाबाश बहनो!

बारडोली के सत्याग्रह के साथ-साथ अधिकारियों की दतियाँ भी बढ़ रही हैं। पठानों के द्वारा बहनों पर अत्याचार होने की ख़बरें अब और ज़्यादा आने लगी हैं। ज़ब्ती के उन्हें तङ्ग करते हैं। उनसे कोई सरोकार न होने पर किवाड़ तोड़-तोड़ कर अन्दर घुसने और उन्हें बाहर घसीट लाने तक के समाचार आ रहे हैं, जिसमें कभी-कभी तो यों के कपड़े भी अस्त-व्यस्त हो जाते हैं। यही नहीं, कुओं लों पर अकेले-दुकेले जाने वाली स्त्रियों को उनके रास्ते में बैठे या खड़े होकर तङ्ग किया जाता है। और एक बहन को तो एक पठान उस दिन झाड़ी में ही घसीटे लिये जाता था। हम मानते हैं कि हमारे भाई-बहन इन बातों पर भी शान्ति और धीरज दिखा रहे हैं। परन्तु सरकारी पक्ष की यह नीचता ही नहीं बल्कि महानीचता है। किसी भी श या समाज में स्त्रियों पर अत्याचार शर्मनाक ही नहीं पाप माना जाता है। फिर ब्रिटिस सरकार तो सभ्य-शिरोमणि होने का दावा करती है। पर हम देखते हैं कि वह इन नों के अत्याचारों की तरफ़ अपनी आँखें बन्द किये हुए है। बम्बई के गवर्नर तो कहते हैं कि पठानों का बर्ताव बढ़िया (Excellent) रहा है! क्या ख़ूब!!

ल-विवाह और सनातनधर्म महासभा

श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' लिखते हैं:—

"सनातन-धर्म महासभा (प्रयाग) के अधिवेशन में प्रस्तावों की मुद्रित सूची देखने को मिली। उसके प्रस्ताव संख्या ७ में लिखा है—'कन्याओं का विवाह उनका बारहवाँ वर्ष प्रारम्भ होने से पहले कदापि न किया जाय।' इसके आगे प्रस्ताव संख्या १० में लिखा है—'यह सभा बाल-विवाह की प्रथा को अत्यन्त हानिकारक समझती है, और इसके दूर करने का उपाय कर रही है, तथापि हिन्दुओं में विवाह एक अटूट धार्मिक सम्बन्ध होने के कारण, भारतीय व्यवस्थापक सभा में उपस्थित 'शारदा बिल' के अन्तर्गत १२ वर्ष की अवस्था के पहले के विवाह को क़ानूनी तौर पर अवैध ठहराये जाने के कारण, उस बिल का प्रबल विरोध करती है।' ये दोनों प्रस्ताव परस्पर-विरुद्ध हैं। मैं नहीं समझता कि जब महासभा १२ वें वर्ष में कन्या के विवाह का 'उपदेश' दे रही है, तो ठीक उसी आशय के प्रस्ताव का "प्रबल विरोध" क्या अर्थ रखता है! मैं यह मानता हूँ कि धार्मिक क़ानूनी हस्तक्षेप अनुचित ही नहीं अपमानजनक भी है, पर लाचारी का इलाज? रहा यह कि महासभा इसे दूर करने का प्रयत्न कर रही है, सो यह कोई आसान काम नहीं है कि 'दूर' कहते ही दूर हो जाय। तन-मन से लग जाने पर भी इसे दूर करने में बरसों लगेंगे और इस प्रथा के विषय में एक दिन की भी उपेक्षा करना अनेक होनहार जीवन विनष्ट करना है। इसके अतिरिक्त महासभा कोई शासक-संस्था नहीं है कि धर्म समझ कर या लोभवश अपनी ५ वर्ष की कन्या के विवाह के लिए प्रस्तुत जन को हठात् रोक सके। ऐसी अवस्था में क़ानूनी सहायता लेना किसी भी दृष्टि से अनुचित नहीं है। उदाहरणार्थ, द्विज के लिए शिखा-सूत्र धारण करना धार्मिक कर्तव्य है, पर आज स्थान-स्थान पर इसकी उपेक्षा हो रही है। ऐसी दशा में यदि महामना मालवीयजी बड़ी धारा-सभा में इसकी अनिवार्यता का—शिखा-सूत्र न धारने पर दण्ड-दान का—प्रस्ताव करें, तो उक्त प्रस्ताव के पक्षपाती क्या उसका विरोध करेंगे? यदि नहीं, तो उक्त प्रस्ताव का क्या मूल्य है? बिना कारण विरोध करने से विरोध निष्प्रभाव हो जाता है। आक्षेपादि भावों से नहीं, एक कट्टर सनातनी की हैसियत से ये पंक्तियाँ लिखी गई हैं। क्या प्रस्तावक या अनुमोदकों में से कोई महोदय ध्यान देंगे?"

आशा है सनातनी भाई समझदारी के साथ इन पंक्तियों पर विचार करेंगे।

शिक्षा और स्त्रियाँ

शिक्षा-क्षेत्र में हमारी भारतीय बहनें इन दिनों अच्छी तरक्क़ी कर रही हैं। हाल में परीक्षाओं के जो नतीजे ज़ाहिर हुए हैं, इस दृष्टि से, वे बड़े उत्साहप्रद हैं। कुमारी शीला राय प्रयाग-विश्वविद्यालय की एम० एस-सी० परीक्षा में, रसायन विषय में, सर्व-प्रथम उत्तीर्ण हुई हैं। उधर बहन श्यामकुमारी नेहरू ने इसी विश्वविद्यालय से एल-एल० बी० की फ़ाइनल परीक्षा में सर्व-प्रथम नम्बर प्राप्त किया है। कुमारी नेहरू सर तेजबहादुर सप्रू की देखरेख में इसी वर्ष इलाहाबाद-हाइकोर्ट में वकालत का अभ्यास भी शुरू करने वाली हैं। और भी कई बहनें अच्छे नम्बरों में पास हुई हैं और उनकी संख्या भी इस बार अपेक्षाकृत अधिक प्रतीत होती है। बधाई! पर, एक बात। आज भी अनेक बहनें, जिनकी संख्या इन कुछ से कई गुणी ज़्यादा है, वही अशिक्षादि के अन्धकार में ग्रस्त हैं! उनके उत्थानार्थ काम करने की आज भी पहले ही के समान ज़रूरत है। अतः क्या वे अपनी इन बहनों से यह आशा करें कि ये उनके उद्धारार्थ भी कुछ कार्य करेंगी? हमें आशा है, हमारी ये बहनें इसपर सहानुभूति और प्रेम के साथ विचार करेंगी।

एक मुसलिम स्त्री की सफलता

पटने का सहयोगी 'देश' लिखता है—"श्रीमती फ़र्रुख़ सुलतान सकिना बेगम कलकत्ते के मोहदुल इसलाम साहब की दूसरी लड़की हैं और अभी हाल में कलकत्ता-विश्वविद्यालय की 'इण्टरमीडियट इन ला' परीक्षा में नामवरी के साथ उत्तीर्ण हुई हैं। बंगाल प्रांत में उनका नम्बर दूसरा आया है। उन्होंने घर ही में अंग्रेज़ तथा फ्रेंच गवर्नेसों के द्वारा शिक्षा पाई है। मैट्रिक के बाद वह डायोसेसन कालेज से बी. ए. की परीक्षा में अंग्रेज़ी में फ़र्स्टक्लास आनर्स के साथ उत्तीर्ण हुईं। एम. ए. का इम्तिहान उन्होंने प्राइवेट विद्यार्थिनी की हैसियत से फ़ारसी और अरबी लेकर दिया। उनका नम्बर पहला आया और उन्हें स्वर्ण-पदक मिला।" इतना ही नहीं, उसीके लेखानुसार, "वह परिश्रमी अवैतनिक काम करने वाली हैं और शम्सिया ज़नाना मदरसे की अवैतनिक प्रिंसिपल हैं तथा अन्य शिक्षा संबन्धी संस्थाओं सहायता भी किया करती हैं।" परन्तु "लोगों को जानक बड़ा आश्चर्य होगा कि वह अब भी परदे में रहती हैं औ क़ानून का अभ्यास भी उन्होंने परदे में रहकर ही किया है।" यह बात बड़ी विचित्र है। इतनी शिक्षा प्राप्त करके हमारी बहन ने परदे को नहीं छोड़ा, इसके दो ही कारण सकते हैं—या तो वह इसकी बुराइयों से वाक़िफ़ नहीं अथ पीढ़ियों से चली आई परम्परा को तोड़ने का साहस अ उनमें नहीं आया है। पहला कारण तो शायद उनपर ला न हो, दूसरा ही सम्भव है। अगर हमारा यह अनुमा ठीक है, तो हमें कहना चाहिए, यह उनकी कमज़ोरी है; औ कमज़ोरी का समर्थन किया जा नहीं सकता। अच्छा हो यदि इस सम्बन्ध में बजाय कमज़ोरी के वह अपनी दृढ़ का परिचय दें। क्या वह ऐसा करेंगी?

लाहोर में महिला-विश्वविद्यालय

लाहोर में कुछ हिन्दू-दानियों की सहायता से ब दिनों से महिला-शाला जारी थी और अच्छी तरह चल थी। अब, गत १ जून को वह महिला विश्वविद्यालय दिया गया है। ला० हरकिशनलाल ने उसका उद्घा संस्कार किया और महात्मा हंसराज उसके मूल प्रवर्तक आशा है, पंजाबी बहनें इसका खूब उपयोग करेंगी उनकी शिक्षा-वृद्धि में यह बड़ा सहायक होगा। दानी प्रबंधक इस सत्कार्य के लिए धन्यवाद के पात्र हैं। प त्मा उनकी वृत्ति को सदा ऐसी ही बनाये रहें।

विचित्र प्रथा

श्री ब्राइस नामक एक यूरोपियन ने हाल में उत्तर दक्षिण तक आफ़्रिका का भ्रमण करके बताया है कि मनुष्यों की कुछ विचित्र जातियाँ हैं। एक जाति विधवायें अपने पति की लाश को खा डालती हैं! मामले में युगेण्डा प्रान्त की दो स्त्रियाँ एक जेल में सज़ा भुगत रही हैं। खूब!

मंगल क्रान्ति की तैय्यारी कीजिए

चारों ओर से आवाज आ रही है कि हिन्दी सामयिक साहित्य में और युवकों की जीवन तथा कला विषयक अभिरुचि में 'त्यागभूमि' विनय पूर्वक किन्तु निश्चित रूप से क्रान्ति करती जा रही है। 'त्यागभूमि' के लेख, टिप्पणियों, कविताओं और चित्रों के चुनाव का यह सब से बढ़िया प्रमाणपत्र है।

नवयुग के इस क्रान्तिमय संदेश को घर घर में पहुँचाने के खयाल से ही इस

१२०, पृष्ठ २ रंगीन और अनेकों सादे किन्तु सुरुचि सम्पन्न

और दिल को ऊँचे उठाने वाले चित्रों सहित और विज्ञापन रहित मासिक पत्रिका का मूल्य

लागत से भी कम ४) वार्षिक रखा गया है

स्त्रियों के लिये और नवयुवकों के लिये खास तौर से अलग स्तम्भ हैं

'त्यागभूमि' जैसी पत्रिका को स्वावलम्बी बनाने के लिये

२०००० ग्राहकों की आवश्यकता है

क्या यह असम्भव है?

बिलकुल नहीं। इंगलैंड, संयुक्त राज्य (अमेरिका), जापान, जर्मनी आदि देशों में बीसियों ऐसे पत्र हैं जिनकी ग्राहक संख्या लाखों पर चली गई हैं। इनमें से प्रत्येक देश की जन-संख्या भारत से चौथाई भी नहीं। फिर भारत में इतने ग्राहक क्यों नहीं हो सकते?

यदि इस अपील को पढ़ने वाले प्रत्येक पाठक

एक एक ग्राहक बना देने का निश्चय कर लें (जो कि बिलकुल आसान बात है) तो एक ही मास में २०००० ग्राहक बन सकते हैं। प्रति वर्ष हज़ारों रुपयों की घटी उठाकर, विज्ञापनों की दूषित आय से अपने को अलग रख के और लागत से भी कम मूल्य में अपनी संख्याएँ पहुँचा कर 'त्यागभूमि' अपने त्याग का परिचय दे ही रही है

सहृदय और देशभक्त सज्जनो, अब आपकी बारी है

आशा है केवल एक एक ग्राहक बना देने की हमारी यह अपील व्यर्थ न जायगी

(पीछे देखिए)

'त्यागभूमि' के उद्देश्य

१—त्यागभूमि केवल बुद्धि की भूख बुझाने नहीं आई है। देश के कोने-कोने में और समाज के अंग-अंग में गहरी और स्पृहणीय उथल-पुथल मचाने की धुन इसे सवार है।

२—त्यागभूमि मनुष्यता और स्वांधीनता को एक ही वस्तु मानती है। वह उस राज्यप्रणाली को सर्वश्रेष्ठ मामती है जिसमें प्रजा के सच्चे प्रतिनिधि प्रजा के हित के लिए प्रजा की सुव्यवस्था करें।

३—त्यागभूमि मानती है कि सत्य मनुष्य का परम साध्य और अहिंसा उसकी परम नीति है। फलतः त्यागभूमि की ति खुली, सीधी और मधुर होगी।

४—त्यागभूमि असत्य, अन्याय, अत्याचार और असमानता की प्रबल विरोधिनी है।

५—सामाजिक कुरीतियों और दुर्बलताओं की यह दुश्मन है। समाज-सुधार में वह सदा आगे रहेगी।

६—किसानों, मजूरों को तो वह अपने स्वजन समझती है और स्त्रियों एवं अछूतों के उद्धार को अपना परम कर्त्तव्य। इसकी सेवा करने में वह अपने बस कोई बात उठा न रक्खेगी।

७—शहरों की अपेक्षा गाँव उसके हृदय के अधिक नज़दीक हैं। गाँवों को ऊपर उठाने और शहरों को बुराइयों से छुड़ाने का यह यत्न करेगी।

८—दुर्व्यसनों, अश्लीलता तथा कामुकता के बढ़ाने वाले चित्रों, विज्ञापनों एवं पुस्तकों का यह विरोध करेगी। त्यागभूमि स्वयं कोई बाहरी विज्ञापन नहीं छापती।

९—त्यागभूमि खादी और चर्खे को भारत का युगधर्म मानती है और अपने जीवन का पवित्र व्रत।

संक्षेप में—लोकरुचि की अंधी आराधना नहीं उसका सहेतुक उन्नयन त्यागभूमि का जीवनोद्देश है।

'त्यागभूमि' के ग्राहक आपको क्यों होना चाहिए!

ज़रा ख़याल कीजिए

१—सब से पहले और केवल मूल्य ही को देखा जाय तो और पत्रिकाओं के हिसाब से 'त्यागभूमि' का मूल्य कम से कम ६) या ६॥) रक्खा जाना चाहिए था जैसा कि इतने ही पृष्ठों की अन्य पत्रिकाओं का है। पर त्यागभूमि का मूल्य तो डाक व्यय सहित केवल वार्षिक ४) ही है।

२—'त्यागभूमि' गंदे और लुभावने विज्ञापनों में आपको नहीं लुभाती। एक मासिक पत्रिका के लिए विज्ञापनों की आमदनी कम नहीं होती। फिर भी पाठकों के हित के ख़याल से त्यागभूमि अपने आपको इस दूषित आय से अछूती रखना चाहती है। इससे पाठक और उनका धन भी धूर्त विज्ञापनबाज़ों के चंगुल से बचता है, और वे अपनी शक्ति, समय और द्रव्य कहीं अच्छे कामों में लगा सकते हैं। पाठक देखेंगे कि त्यागभूमि के इस त्याग को देखते हुए अपनी घटी को पूरी करने के लिए उसे अपना वार्षिक चन्दा अन्य पत्रिकाओं से भी अधिक रखना चाहिए था।

३—परन्तु त्यागभूमि का उद्देश साहित्य का व्यवसाय करना नहीं है। वह कष्ट सहकर भी पाठकों की सेवा करने के लिए आई है।

अतएव पाठक त्यागभूमि से तभी अधिक से अधिक सेवा ले सकेंगे जब वे अधिक से अधिक संख्या में उसके ग्राहक बनकर व बनाकर उसके जीवन-संघर्ष को सौम्य करने में सहायक होंगे।

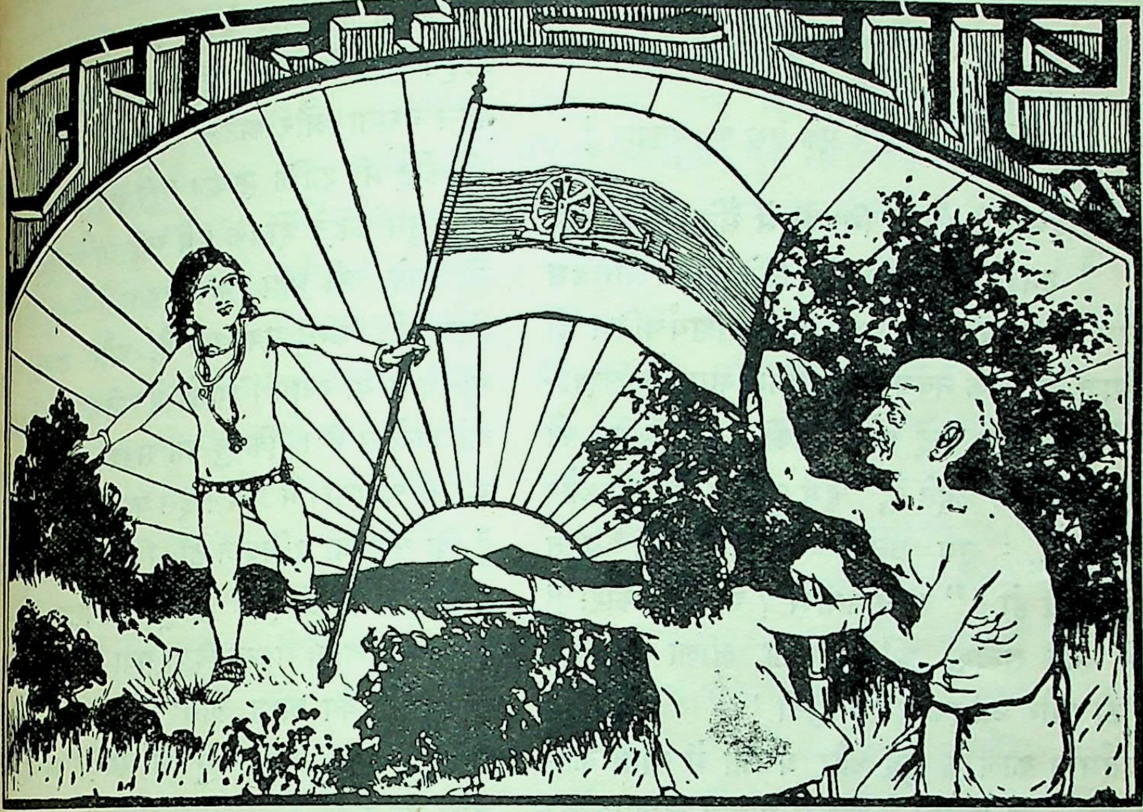

सुख-स्वप्न

किरण-माला की लेकर डोर,
फँसाकर शशि का वर्तुल पात्र,
न-सागर से रस की धार
खींचता मैं छोटा सा बाल।
हाँ हूँ खड़ा, किधर है विश्व ?
नहीं कुछ ज्ञात, न है कुछ चाह।
हौले से अम्बर बीच,
पवन-लहरी पर मैं असवार।
हूँ उधर जहाँ द्युतिमान
चतुर्दिक् छाया उज्वल हास।
तारों से निश्चल नेत्र—
किरीटा और कुण्डली मौन—
लिए तुम कर में कंचन-पात्र—
चले आते हो कौन अजान ?
पकड़ अब कर में कैरव कौन—
खड़े छाया से मेरे तीर ?
अरे फिर और सजाकर रूप,
मधुर बंशी ओठों पर साध।
दिखाई देते हो तुम कौन ?
नहीं, कुछ नहीं, इन्द्र का जाल।
अनोखे जादूगर का खेल,
अरे माया का मोहक रूप,
दिखाता कौन स्वप्न में आन !!

'प्रियहंस'

राष्ट्र-यज्ञ

[साधु टी० एल० वास्वानी के एक लेख का अनुवाद]

पश्चिम के ईसाई गिरजों में मैंने कृष्ण और उनकी गीता पर भाषण दिये और वे लोग इस प्रेमावतार के सौंदर्य और ज्ञान पर आश्चर्यचकित हो गये। आज भारत के नवयुवक वर्तमान समय के लड़ाई-झगड़ों में फँस कर उन्हें और उनकी महान् आज्ञा को भूल रहे हैं। एक कहते हैं, "हमें फ़ुरसत नहीं," और दूसरे कहते हैं, "तुम उनकी प्रशंसा के पुल बहुत ज्यादा बाँधते हो।" बहुत ज्यादा ? आश्चर्य! काश !! मुझ में उनके सन्देश और उनकी लीला के गायन करने की और अधिक शक्ति होती !

वर्तमान काल के युद्ध और प्रयत्नों में गीता कहाँ तक उपयोगी हो सकती है, यह मैं बताना चाहता हूँ। यद्यपि गीता बहुत प्राचीन ग्रन्थ है, किन्तु हमारे इतिहास के इस कठिन समय में भी हमारे लिए उसका अतुल महत्व है। इस बात का मैंने बारंबार अनुभव किया है कि वर्तमान युग के लिए गीता अत्यन्त महत्वपूर्ण है। लोग समझेंगे कि मैं अपने कथन में बहुत अत्युक्ति करता हूँ। कुछ लोग कहेंगे कि कृष्ण ने उसका उपदेश ५००० वर्ष पहले किया था; किन्तु मैं कहता हूँ कि आज भी वह उसका उपदेश कर रहे हैं। उनके अन्दर जो एक आदर्श जीवन था, वह आज भी जीवित है। कृष्ण की गणना मृत पुरुषों में नहीं हो सकती, और न उन्होंने भारत ही को छोड़ा है, ऐसा मेरा विश्वास है। ऋषियों और देवताओं ने हमारे देश को नहीं छोड़ा है, वे भी इसी तरह नहीं छोड़ सकते। मैं स्वातंत्र्य-संग्राम की सफलता में विश्वास करता हूँ, और उसका यही कारण है, क्योंकि मेरा विश्वास है कि कृष्ण, ऋषि तथा देवता हमारे संग्राम में पीछे से सहायता दे रहे हैं। यदि केवल यही विश्वास हम लोगों में जागृत रहे, तो हम राष्ट्रीय आन्दोलन में शुद्ध हृदय, गहन नम्रता और अटल श्रद्धा से—जिसे कि सरका की कोई भी शक्ति कुचल नहीं सकती—डटे रहेंगे।

तुम कहते हो कि हमें स्वराज्य चाहिए। मनुष्य जो चाहे उसे प्राप्त कर सकता है—यह शास्त्रों शिक्षा है; किन्तु एक शर्त है, और उसका नाम बलिदान या त्याग। शास्त्रों में अनेक प्रकार के बलिदा का उल्लेख है। किन्तु उन सबका वर्णन मैं यहाँ करना चाहता। मैं केवल इस बात पर ज़ोर देना चाह हूँ कि यज्ञ या बलिदान ही किसी भी वस्तु को करने की शक्ति है। हिन्दू जीवनशास्त्र में त्याग हर जगह बहुत महत्व दिया गया है। मैं जानता हूँ उस शास्त्र को आज लोग अधिक आदर नहीं किन्तु उसका दोष प्रभु के सन्देश को नहीं, हमीं पर है।

प्रत्येक विद्यार्थी, प्रत्येक गृहस्थ और प्रत्येक ब्रा को नित्य यज्ञ करना आवश्यक है; किन्तु हम कौ यज्ञ करें और कौनसा बलिदान चढ़ावें, यह प्रश्न से नवयुवक पूछते हैं। वे पूछते हैं कि स्वराज्य-संग्राम शक्तिशाली बनाने के लिए हम कौनसा बलिदान हमारे पास न तो धन है, न संपत्ति है, और न है; फिर हम देश के इतिहास के इस कठिन सम कौनसा बलिदान कर सकते हैं ? ऐसे युवकों गीता यह उत्तर देती है—

पत्रं पुष्पं फलं तोयं योमे भक्त्या प्रयच्छति।
तद भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥

हमारे देश में पत्रं-पुष्पं-फलं इन चीज़ों के प्राचीन समय में कोई क़ीमत नहीं देनी पड़ती सड़कों के दोनों तट फलदार वृक्षों से भरे रहते दूध, दही, अन्न और फल बहुत थोड़े दामों में जाते थे। किन्तु आज हरएक चीज़ की बहुत

त देनी पड़ती है। किसी-किसी को तो दो आने र शीशी में थोड़ा सा पानी मिलता है, और फल साधारण आदमियों को दुर्लभ ही है। श्लोक का र्य यह है कि कितनी भी तुच्छ वस्तु क्यों न हो, क्ति से अर्पण की जानी चाहिए। इसमें तुच्छ वस्तुओं छोटी-छोटी चीज़ों का उल्लेख है, बड़ी-बड़ी वस्तुओं आवश्यकता नहीं। तुम्हारे लाखों-करोड़ों रुपये, हारे लंबे-चौड़े संगठन, तुम्हारे अनेकों सभा-समाज, हारे लंबे-चौड़े जलूस, इन सब बातों की कृष्ण को रत नहीं है। तुम्हारा गला फाड़ कर जय-जयकार ना व शोर-गुल मचाना, यह सब उन्हें नहीं चाहिए। तुम्हारे धन और ज्ञान की भी ज़रूरत नहीं है। बर तुम्हारे इकट्ठे किये हुए इस किताबी ज्ञान का मूल्य है? ज्ञान-सागर के तट पर वह एक सा ढेला-मात्र है। अलेक्ज़ेण्डर वान हंबोल्ड lexander Van Humbold) ७६ वर्ष की स्था तक केवल ज्ञानार्जन ही करता रहा, ७६ वर्ष अवस्था में लेखन-कार्य शुरू किया, और ९० वर्ष अवस्था में परलोकगामी हुआ। उसने एक विशाल लिखा। किन्तु उस उन्नतिशील ज्ञान-भंडार की नों में इस पुस्तक में भरा हुआ ज्ञान क्या चीज़ ? प्रचुर संपत्ति या प्रकांड पांडित्य की भी प्रभु को श्यकता नहीं, उसे तो छोटी-छोटी तुच्छ से तुच्छ, रण से साधारण वस्तुओं के यज्ञ की आवश्यकता पौराणिक कथा के अनुसार पृथ्वी पर अवतरित के पहले भगवान् गोकुल में रहते थे। और वह कैसे रहते थे? एक मामूली ग्वाले के समान। जब व्रज-वनिता गोकुल में उनसे मिलीं, तब क्या रीदार कपड़े पहने थे? पुराणों में हम पढ़ते हैं वह प्रभु के चरण-कमल छूने के लिए एक में से निकलीं और पत्तों से सुसज्जित की और जब राधा उनसे रुष्ट होकर गाली दे रही थीं, तब कृष्ण ने कितनी नम्रता बतलाई? राधा ने कहा, 'निकल जाओ मेरे घर से!' पर वह एक शब्द भी न बोले। देवताओं के नायक होकर भी कृष्ण चुप रहे। और जब भारत अत्याचार से पीड़ित था, तब वह किस नम्र वेष में पृथ्वी पर अवतरित हुए? वह एक विनम्र वेष में यहां आये; वह कारावास में उत्पन्न हुए, वह सीधे किसानों के बीच मिलकर रहे, सीधे-सादे गीत गाते रहे, और अर्जुन तब तक उनमें अवतरित हुए अनन्त आदर्श को अनुभव नहीं कर सका, जब तक उन्होंने अर्जुन को उस विश्व-रूप के दर्शन नहीं कराये, जिसका वर्णन गीता में बड़े घन-विचारों और बड़े सुन्दर शब्दों में किया गया है। मेरी समझ में गीता की ये पंक्तियाँ विश्व-साहित्य की सर्वश्रेष्ठ पंक्तियों में स्थान पा सकती हैं। कृष्ण ने छोटी-छोटी वस्तुओं के यज्ञ का आदेश दिया। वह हमसे *भक्ति की भेंट* चाहते हैं, *शक्ति की नहीं*; और जो कुछ भी भक्ति विनम्र हृदय और पावन प्रेम के द्वारा अर्पित की जाती है, वही यज्ञ हो जाता है।

स्वराज्य प्राप्त करने के लिए यज्ञ ही की आवश्यकता है, हाथ-पैर जोड़ने और प्रार्थना करने की राजनीति से हमें कुछ भी नहीं मिला। मैं ऐसी राजनीति को रोज़गारी राजनीति कहता हूँ। आँख बंद कर कभी एक नीति ग्रहण करने और कभी दूसरी ग्रहण करने से हमें कुछ लाभ न होगा। मैं ऐसी राजनीति को कर्मकांड की राजनीति कहता हूँ। हमें स्वतन्त्र चित्रों की पूजा द्वारा यज्ञ करने की आवश्यकता है। जिससे विचार और भाषण की स्वाधीनता को बाधा पहुँचती है, उससे स्वराज्य को भी बाधा पहुँचेगी। यदि स्वराज्य-संग्राम का अर्थ स्वातंत्र्य-संग्राम नहीं है—व्यक्तिगत, सामाजिक, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय, साम्पत्तिक, आर्थिक, धार्मिक स्वाधीनता नहीं है—तो वह कुछ भी नहीं है। यदि हम वर्त्तमान आंदो-

लन से राग-द्वेष, अहङ्कार, असहनशीलता, अपमान और पर-निंदा को निकाल दें, तो यह आन्दोलन यज्ञ-स्वरूप हो जाय । यज्ञ करने, बलिदान कर सकने की शक्ति ही किसी वस्तु को प्राप्त करने की शक्ति है । संसार के राष्ट्रों ने हिंसा और युद्ध को ही स्वाधीनता प्राप्त करने का साधन समझ रक्खा है; उन्होंने अपनी जल और थल सेनाओं को शक्तिशाली बनाया है । किंतु सैनिकवाद या युद्धवाद से संसार की समस्या हल नहीं हुई । संसार के राष्ट्रों ने विश्वास किया है कि खड्ग-प्रहार ही स्वाधीनता का साधन है; किंतु मैंने बारंबार कहा है कि रक्तप्लावन का पथ स्वाधीनता का प्रशस्त पथ नहीं है, *बलिदान का मार्ग ही स्वाधीनता का एकमात्र मार्ग है*, बलिदान-मार्ग ही के द्वारा भारतवर्ष संसार की समस्या को हल करेगा । तलवार उठाने वाले तलवार ही के साथ नष्ट होते हैं ।

(अपूर्ण)

ब्योहार राजेन्द्रसिंह

भारत के हर एक प्रान्त में शारीरिक सुधार के लिए एक नई क्रान्ति की आवश्यकता है । शरीर-निर्माण ही राष्ट्र-निर्माण है ।'''आधुनिक भारत की उन्नति के लिए लोगों में भौतिक पदार्थों और शारीरिक तत्वों के लिए एक नया आदर और नया दृष्टि कोण उत्पन्न किया जाना चाहिए । ऐ नौ जवानो ! याद रक्खो कि तुम्हारे शरीर आत्मा के पवित्र मन्दिर हैं । उन्हें शुद्ध और सुदृढ़ रक्खो । 'तोता रटन्त' पर आवश्यकता से अधिक ज़ोर देने वाली वर्त्तमान शिक्षा-पद्धति के कारण देश के छात्रों की शारीरिक शक्तियाँ तेज़ी से क्षीण हो रही हैं । खेल-कूद, साफ़ हवा, और ब्रह्मचर्य पर अधिक ज़ोर देना सूर्य को दीपक दिखाना है । परीक्षाओं की अपेक्षा खेल-कूद ज्यादा महत्व के हैं । अतः देश के नवयुवकों को मेरा यही संदेश है—अपनी इस जर्जर और गंभीर घावों के खून से चुहचुहाती मातृ भूमि की सहायता के लिए ऐ नौ जवानों ! तुम सादगी से रहना सीखो । पहलवान बनो, वीर बनो, और धैर्यशाली बनो !"

—साधु वास्वानी

मिश्र का महात्मा

[श्री हालकेन के 'दी व्हाइट प्रॉफ़ेट' उपन्यास से संकलित]

(१)

"अल-अज़हर विद्यालय के उल्माओं ने सरकारी आज्ञ की अवहेलना की है । उनका नेता इस्माइल अमीर मुझसे मिला था । उसने कुछ बातों की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया था । परन्तु, उसकी बातों से तो, यही मालूम पड़ है कि वह मिश्र देश का एक बड़ा भारी शत्रु है !"

मिश्र के ब्रिटिश शासक की इस बात के उत्तर में उसके एक सहयोगी सेनापति गोरडन ने आश्चर्य-चकित हो क कहा—"शत्रु !"

"हाँ, शत्रु ! क्योंकि वह अधिकारियों और जनता सैनिक विभाग से अलग रहने के लिए इस कारण कहता कि युद्ध अधार्मिक है, देश और समाज के लिए, वर्त्तमा परिस्थिति में सर्वथा अहितकर है ।"

"ठीक तो है !"

"सुनो भी ! वह मिश्र-वासियों को कहता है कि ज ईश्वर की और शासक-वर्ग की आज्ञाओं में विरोध दिख दे, वहाँ ईश्वर की आज्ञा मानो ! यह तो प्रत्येक व्यक्ति स्वच्छन्द बना देना है, मानों सरकार कुछ है ही नहीं !

"यही नहीं, वह तो स्पष्ट कहता है कि मिश्र अब बिलकुल स्वतंत्र देश होगा । वह तो खुल्लमखुल्ला राष्ट्रीय की पुकार मचाये हुए है, जिसका स्पष्ट अर्थ है नील नदी तट पर इंग्लैण्ड के प्रभुत्व का अंत !"

गोरडन ने कुछ उत्तर देने का प्रयास किया, पर क्रोधित जनरल ने अधीरता से कहा—"मैं तुमसे तर्क न करना चाहता । इस्माइल बड़ा चालबाज़ है । धार्मिक और राष्ट्रीयता के नाम पर वह उथल-पुथल मचा देना चा है—बर्बरता का साम्राज्य स्थापित करना चाहता है।"

"इस्माइल अमीर ने आपसे किस बात की चर्चा की गोरडन से दबी ज़बान से पूछा ।

"उसने कहा कि हम अल-अज़हर को तोड़ देने अपनी आज्ञायें वापिस ले लें, अर्थात् सरकार के विरुद्ध

त्र करने के साधन को जीवित रहने दें। यह कभी नहीं हो सकता, गोरडन! किसी भी हालत में नहीं हो सकता!"

क्रोध से आपे के बाहर होने के कारण ब्रिटिश शासक ने थोड़ी देर ठहर कर फिर कहा—

"गोरडन! सब तैयारी हो चुकी है। शहर कोतवाल तुम्हें तुम्हारे क्वार्टर से समय पर बुला लेगा—और उसके बुलाने पर तुमको सैनिकों का एक रेजिमेंट—सुना, सशस्त्र रेजिमेंट—पैदल सिपाहियों की एक इन्फेंटरी लेकर अल-अज़हर विद्यालय चले जाना होगा—विद्यालय को घेर लेना होगा—और ? और तुम्हें आज्ञा है कि विद्यालयों के छात्रों और अध्यापकों को निकाल बाहर करने के लिए अस्त्र-शस्त्र का भी उपयोग कर सकोगे। चाहे जिस बात का सहारा लेना पड़े—सुना ? चाहे जिस तरह हो, तुम्हें सरकारी हुक्म का पालन करना होगा!"

जनरल की ऐसी उत्तेजनापूर्ण आज्ञा सुन कर गोरडन ने बड़े भारी संयम के साथ कहा—"दुःख है कि मैं नृशंसतापूर्ण यह काम न कर सकूँगा। यदि यह काम आवश्यक ही है, तो इसके लिए किसी दूसरे व्यक्ति को नियुक्त कीजिए।"

"यह हो नहीं सकता। तुम्हें ही यह काम करना होगा, तुम्हीं इसके लिए उपयुक्त हो।"

"आप जो चाहें सो करें, कोर्टमार्शल करें अथवा फांसी। मैं यह राक्षसी कृत्य नहीं करूँगा। ईश्वर साक्षी है, मैं ऐसा नहीं कर सकता। मैं सैनिक हूँ, इसका मुझे गर्व है, परन्तु मुझे इस गौरव से वंचित……"

"सरकार का नमक खाकर तुम आड़े वक़्त पर इस प्रकार धोखा दोगे? ऐसा मुझे ख़याल न था! यदि तुम सरकार के साथ विश्वासघात ही करना चाहते हो, तो अपना त्याग-पत्र दे सकते हो। परन्तु अभी तो तुम मेरे सैनिक हो, मैं तुम्हें आज्ञा दे चुका हूँ, तुम्हें उसका पालन करना होगा! यह मेरी सबसे अधिक रिआयत तुम्हारे साथ है।"

गोरडन के मन में भारी संग्राम हो रहा था, उसने दृढ़ता-पूर्वक कहा—"मुझे कहते दुःख होता है कि मैं आपकी इस आज्ञा का पालन करने से मजबूर हूँ। आप मुझे अल-अज़हर के विद्यार्थी और अध्यापकों को निकाल देने की ही आज्ञा नहीं दे रहे हैं, बल्कि सैकड़ों, नहीं-नहीं हज़ारों के ख़ून से मेरे और मेरे सैनिकों के हाथ रँगने को भी कहते हैं।"

"दुष्ट! कैसी बेहूदा बात है!" जनरल ने घृणा से कहा—"ये कायर मिश्रवासी सैनिकों के आगे ठहरेंगे? बंदूक़ देखते ही चिड़ियों की तरह उड़ जावेंगे! अगर ठहरे भी, तो यह दोष उनका ही होगा! सोचो, समझो, मेरी आज्ञा का पालन करो!"

"मैंने सोच लिया, और समझ लिया! मुझे दुःख है कि मैं आपकी आज्ञा का अब भी विरोध करता हूँ। यदि आपको इस काम में सहायता दूँगा, तो वह मेरे लिए और भी अधिक दुःख की बात होगी। इस काम से निरीह प्रजा के ख़ून की नदियाँ बह जायँगी, सारा देश रो उठेगा—अशांत हो जायगा, भारत में—यूरोप में—अमेरिका में सर्वत्र इंगलैंड का मान मर्दित हो जायगा। घायलों और मृतकों के बिलखते स्त्री-बच्चों की आहें इंगलैंड के सिंहासन को ही नहीं, आकाश को भी हिला देंगी! इस प्रकार हम अपनी जड़ अपने आप ही काटेंगे और फिर इस कलंक का टीका किसके सिर लगेगा? आप ज़रा सोचें तो!"

युवक गोरडन की इतनी दृढ़ता-पूर्ण बातें सुनकर जनरल थोड़ा विचलित हुआ, उसने कुछ शांत होकर कहा—"यदि तुम्हारा ऐसा ही कहना है, तो मैं इस आज्ञा को एक शर्त्त पर वापिस ले सकता हूँ। तुम्हें इस्माइल को—सारे षड्यंत्र की जड़ को—बिना विलम्ब देश से बाहर कर देना होगा।"

"यह भी सम्भव नहीं। मिश्रवासी इस्माइल को महात्मा मानते हैं। उसके साथ अत्याचार करना सारे देश के साथ, उनके धर्म के साथ, अत्याचार करना होगा। उनकी दृष्टि में ऐसा काम मानवता के प्रति, ईश्वर के प्रति, अपराध करना होगा।"

"यह सब ठीक हो सकता है; पर हम सैनिक हैं, हमें इन बातों पर सैनिक की दृष्टि से ही विचार करना होगा। बिना किसी वाद-विवाद के मैं पूछना चाहता हूँ कि तुम मेरी आज्ञा पालन करने के लिए तैयार हो या नहीं?"

"यह तो जघन्य पाप होगा।"

"पाप अथवा पुण्य, इससे तुम्हें क्या मतलब? क्या तुम मेरी आज्ञा का पालन नहीं करोगे?"

"यह मेरी आत्मा के विरुद्ध होगा।"

"प्रश्न तुम्हारी आत्मा का नहीं है। प्रश्न है सम्राट् के खाये नमक को हलाल करने का और मेरी आज्ञा-पालन का।"

"जब मैंने सैनिक की दीक्षा ग्रहण की थी, तब क्या मैंने अपने मनुष्य के अधिकारों को भी बेच दिया था?"

"अपने अधिकारों की चर्चा मत करो। याद रक्खो, सबसे पहले तुम सैनिक हो।"

"हाँ, मैं सैनिक हूँ; पर उससे भी पहले मैं मनुष्य हूँ।"

जनरल का क्रोध निस्सीम हो गया। गोरडन को इस प्रकार प्रतिवाद करते देख कर जनरल ने आवेश में उसके सैनिक के चिन्ह छीन लिये, उसे सब प्रकार से अपमानित किया। परन्तु, धीर-वीर गोरडन ने दृढ़तापूर्वक कहा—

"एक अनुचित आज्ञा का पालन नहीं हो सकता। यह आज्ञा सर्वथा अनुचित है, अन्यायपूर्ण है। आप मुझे हत्या करने को कह रहे हैं—हत्या करने को! जनरल! गोरडन एक सच्चा सैनिक है, वह ऐसा नहीं कर सकता!"

एक सच्चे सैनिक की भांति इतने ऊँचे पद को भी तृणवत् समझ, जाते-जाते गोरडन ने फिर कहा—"जनरल! याद रखिएगा, एक दिन ऐसा भी आवेगा, जिस दिन ये सब घटनायें मेरे से भी अधिक आपके लिए आत्म-संताप-प्रद होंगी।"

(२)

"मारो! उस पाजी छोकरे को!" अल-अज़हर के आगे एकत्रित सेना के स्थानापन्न सेनापति ने क्रोध से कांपते हुए कहा। दूसरे ही क्षण कई बन्दूकें एक साथ ऊँची हुईं, गोलियां दगीं, और विद्यालय की ऊँची दीवार से एक कोमल बालक का मृतशरीर रास्ते में आ कर धड़ाम से गिर पड़ा! सेनापति लाश को फैंक देने का हुक्म दे ही रहा था कि एक चीत्कार सुनाई दी और दूसरे ही क्षण सैनिकों को संसार की सबसे अधिक शक्तिशालिनि मातृदेवी को रास्ता देना पड़ा। क्रोध और दुःख से व्यथित माता अपने मृत-पुत्र के पास खड़ी दिखाई दी।

उस देवी ने अपना काला घूँघट हटा दिया था। पुत्र के शव को गोद में ले छाती से लगा वह फूट-फूट कर रोने लगी। इधर अत्याचार-पीड़ित निर्दोष माता का करुण-क्रंदन हो रहा था, उधर सैनिकगण अल-अज़हर विद्यालय के विशाल प्रांगण में घुस रहे थे। पांच हज़ार विद्यार्थी और अध्यापक शांति-पूर्वक विद्यालय में डटे हुए थे। वे अपना कर्तव्य-पथ निश्चित कर चुके थे। घोड़ों की टापों और सैनिकों के शस्त्रों की आवाज़ों के बीच फिर वह करुण-क्रंदन सुनाई दिया—"ओह! मेरा बेटा! हाय अली! तू मर गया! नहीं, मरा नहीं, अली! तुझे इन दुष्टों ने मार डाला? ओ! मेरे इकलौते बेटे! अब मेरा कौन है? बेटा! आ, फिर आजा! अली! अली!!"

विद्यार्थियों और अध्यापकों को तलवार के ज़ोर पर विद्यालय से निकाल बाहर कर देने की आज्ञा हो चुकी थी। भीषण नर-हत्या-काण्ड हो रहा था। रोती हुई माता के लिए भी सेनापति आज्ञा दे ही रहा था—"उठाओ! इसे चिल्लाने............"। अकस्मात् वीर गोरडन वहाँ आ पहुँचा।

न जाने किस अज्ञात प्रेरणा से वह वहाँ आ पहुँचा था। यह बीभत्स काण्ड उससे न देखा गया। स्थानापन्न सेनापति पर वह शेर की भांति झपटा। घोड़े से नीचे घसीट कर उसने उसे ज़मीन पर पटक दिया। अपने पहले सेनापति को यों इस प्रकार देख कर सारे सैनिक किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गये—ज्यों के त्यों खड़े रह गये! दूसरे ही क्षण मिश्रवासियों की एक भीड़ न जाने किधर से आई। गोरडन को सन्मानपूर्वक हाथों-हाथ न जाने वे लोग किधर ले गये। गोरडन भी आश्चर्यचकित हो गया था।

❀ ❀ ❀

जो होना था सो हो गया। एक सुकुमार बालक की बलि से एक भीषण हत्या-काण्ड प्रारम्भ हुआ। सैकड़ों विद्यार्थी और अध्यापक मारे गये! सर्वत्र सन्नाटा छा गया। मिश्र पर अंग्रेज़ों के शासन-काल में एक ऐसी नृशंस और बीभत्स दुर्घटना घटी।

हज़ारों मिश्री सुलतान हसन की मसजिद में एकत्र हो रहे थे। मृत व्यक्तियों के शव मसजिद के प्रांगण में रक्खे हुए थे। इमामों ने मृत व्यक्तियों की शांति के लिए प्रार्थना पढ़ कर उच्च स्वर से कहा—"अपनी साक्षी दो, इन वीरों की

के लिए हुई है!" हज़ारों वाणियों से एक साथ आवाज़ —"ईमान के लिए ! ईमान के लिए !!"

क़ुरान की आयतें बोलते हुए सूरदासों के समुदाय के शवों को उठाते हरे और लाल कपड़े पहने चिंताग्रस्त मुल्लियों की एक लम्बी श्रेणी थी । उनके पीछे क़यामत वर्णन का गीत गाते हुए विद्यार्थी चल रहे थे । सैकड़ों और भी धार्मिक गीत गाते हुए मृत वीरों की श्मशान-यात्रा में सम्मिलित थे। मृतकों के सम्बन्धियों के रोते-बिलखते समुदाय के पीछे अपने हज़ारों अनुयायियों के साथ धीर और शांत इस्माइल अमीर धीरे-धीरे चल रहा था ।

एक विशाल जन-समुदाय उन मृत वीरों के सन्मान में एकत्र हो रहा था ! स्त्री-पुरुष, अमीर-ग़रीब, छोटे-बड़े, एक बड़े भारी श्रोत की भांति चले जा रहे थे; उनकी चाल गंभीर और धीमी थी । चेहरों पर हृदय-भेदी शोक स्पष्ट दिखाई दे रहा था। किसीकी आँखों से एक-दो आँसू कभी-कभी टपक पड़ते थे, उस समय प्रतीत होता था कि उसकी आन्तरिक वेदना बही जा रही है। परन्तु जिनकी आँखें सूखी थीं, उनका दुःख भयंकर था; कारण कि उनके दुःख को बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं था । इस प्रकार यह जुलूस शहर की सड़कों और गलियों में घूमता हुआ श्मशान में पहुँचा ।

रात्रि शान्त थी । विशाल रेगिस्तान बादलों से अनाच्छादित चाँद के नीचे पड़ा सो रहा था, उसके इस ओर का वह जन-श्रोत रुक गया । मृत व्यक्तियों के शव दफ़नाने की क्रिया जब समाप्त की गई, तब कुरान की यह आयत सुनाई दे रही थी—"ओ अल्लाह ! खुदा के सिवाय किसमें बल है, किसमें शक्ति है ? खुदा ! हम तेरे बन्दे हैं और तेरे पास एक न एक दिन लौटेंगे ही । "

दुःखी जनों को, अल-अज़हर के शिक्षक और अन्य मुल्ला सान्त्वना दे रहे थे । चाँद के प्रकाश के नीचे दुःख और शोक से पीड़ित इस भीड़ का वह दृश्य कितना हृदय-विदारक था ! मुर्झाये हुए चेहरे को नीचे किये इस्माइल अमीर बड़ी गंभीरता से कह रहा था——

"हमारे जीवन में यह एक रात आई है, भाइयो ! हमारा मार्ग निर्जन सा हो रहा है। हममें शोक छाया हुआ है । क़ब्रों में अब शान्ति से सोये हुए इन वीरों से ईर्ष्या होती है ! ये सब हम लोगों के आगे चल बसे ! उन्हें शांति मिले ! हम सबको शान्ति मिले ! यह देखो, यहाँ एक देवी है; इसने अपने पति को खो दिया है ! यह यहाँ एक माता है, जिसका पुत्र चल बसा ! ओह ! इसके हृदय में कितना घोर संताप भरा हुआ है ।"

" हाय मैं ग़रीबिन ! ओह ! मेरे ग़रीब बच्चे ! ओह ! सारे दुःखी ग़रीबो !" चिल्लाती हुई वह दीन दुःखिया माता आकर इस्माइल के चरणों पर गिर गई ! शोक और विषाद का समुद्र सा उमड़ आया ! उसे शांत करते हुए इस्माइल अमीर ने उच्च स्वर से कहा—" ओ ! खुदा के बन्दो ! धर्म हमारा प्राण है । पश्चिम से आकर ये विदेशी हमारा धर्म और देश छीनना चाहते हैं । हमें इनसे अपने धर्म और देश की रक्षा के लिए प्राणप्रण से कटिबद्ध हो जाना चाहिए । हमें अपनी आत्मा की तलवार इस राक्षसी भक्षक के सामने उठानी चाहिए । मनुष्य बनो, गुलाम नहीं ! ज़िन्दा बनो, मुर्दे नहीं ! यूरोप के लिए पैसा पैदा करने की मशीन ही न बने रहो ! खुदा के बन्दे बन कर झोंपड़ी में रहना भी अच्छा है, किसी के गुलाम—सो भी अत्याचारपूर्ण शक्ति के गुलाम–बन कर महल में रहना भी किस काम का ? चलो! मनुष्य के शासन को लात मार कर उस सर्वशक्तिमान के शासन की इस पृथ्वी पर स्थापना करें !

लोगों का जोश बढ़ रहा था, इस्माइल ने थोड़ी देर ठहर कर फिर कहा—"मुझे आपमें से ऐसे सौ भाइयों की ज़रूरत है, जो घर-घर परमात्मा का संदेश पहुँचा दें, अत्याचारियों की अत्याचार-गाथायें सुना कर उनकी आँखें खोल दें । हमारे मुहम्मदसाहब एक गुलाम की भांति मक्का से निकाले गये थे, परन्तु वह वहाँ लौटे एक विजेता की भाँति । आज हम काहरा नगर से अपमानित करके निकाले गये हैं, परन्तु यदि कभी ज़िन्दा लौटेंगे तो पूर्ण गौरव के साथ ही ।"

अपने नेता की इतनी उत्साहभरी बातें सुन कर सब ने उच्च स्वर से पुकारा—"अवश्य, अवश्य ! खुदा के नाम पर अवश्य !"

"मुझे दूसरे के प्राण लेने वाले सैनिकों की ज़रूरत नहीं है; मुझे ज़रूरत है उन तपस्वी वीरों की, जो अत्याचारी

निरंकुशता के सामने न झुकें और अपने प्राणों की आहुति दे दें। देशबान्धवों के हित के लिए अपनी बलि देने वालों का पुरस्कार क्या उस सैनिक से कम होगा, जो रण-क्षेत्र में मृत्यु पाता है? मुझे युवकों की, वीरों की, ज़रूरत है। विपत्तियों का पहाड़ हमारे सामने है। विपत्ति और भय ही नहीं, मृत्यु का भी हमें सामना करना होगा। आप सब समुद्रतट की बालू के समान पवित्र हैं, पर उसकी भांति कहीं आप निरुद्देश न पड़े रह जायँ। मुझे साधु-संतों की आवश्यकता नहीं है। मुझे तो पाप और अत्याचार-ग्रसित व्यक्तियों की आवश्यकता है। क्या आप पाप-पीड़ा से ग्रसित हैं? जीवन की गति क्या आपके लिए रुक गई है? क्या आप इसी अवस्था में मृत्यु के अन्धकार में लीन होने की तैयारी चुपचाप नहीं कर रहे? क्या आपका पश्चात्ताप गंभीर है? आत्मा की कटुता में क्या आप किसी सत्पथ की प्राप्ति के लिए परमात्मा से प्रार्थना कर रहे हैं? यदि हाँ, तो भाइयो! आओ! पवित्रता आकर आपका पद-चुम्बन करेगी। एक महान् यात्रा आपके सन्मुख है, जिसमें आपके सारे पाप छूट जावेंगे।"

"अल्लाह! अल्लाह!!" करते हुए सैकड़ों युवक आगे बढ़ आये! इतने अधिक युवकों में से सौ को छाँटने का काम अल-अज़हर के अध्यापकों ने किया। सभी युवक देश और धर्म की सेवा में आत्मोत्सर्ग करने के लिए उत्सुक हो रहे थे।

चाँद का प्रकाश मंद पड़ने लगा था। प्रभात की सुखमय बेला क्षितिज पर धीरे-धीरे पदार्पण करती हुई आ रही थी। ऐसे समय में इस्माइल ने उन त्यागी वीरों को सम्बोधित करते हुए कहा—"तुम लोगों ने आज परमात्मा के दूत का महत्वपूर्ण कार्य अपने ऊपर लिया है। जहाँ तक पहुँच-सको, उसका संदेश सुना दो! तुम सरकार के शत्रु नहीं; परन्तु जहाँ सरकार और परमात्मा के फ़रमान में फ़र्क़ दिखाई दे; वहां सरकार के बजाय परमात्मा की आज्ञा पालन करने की बात घर-घर पहुँचा दो!

"तुम उस परमात्मा के सैनिक हो। तुम्हें तुम्हारे प्रयत्न की सफलता के लिए अस्त्र-शस्त्र की आवश्यकता नहीं। क्या तुम तलवार के बल पर विजय की आशा करते हो? तो, पीछे हट जाओ! यह काम तुम्हारा नहीं। क्या तुम अंग्रेज़ों को मिश्र से निकाल बाहर करना चाहते हो? सुलतान को स्थापित करना चाहते हो? कोई राज्य अथवा साम्राज्य स्थापित करना चाहते हो? तो, जाओ घर लौट जाओ! यह काम तुम्हारा नहीं। तुम्हें केवल एक शत्रु को बाहर करना है, और वह है अत्याचार-कुतंत्र! केवल एक सुलतान को तुम स्थापित करोगे, और वह होगा परम पिता परमात्मा!"

उस रात का कार्य समाप्त होने को आया! विदेशी शासकों के अत्याचार ने सोये हुए मिश्र-वासियों को जगा दिया।

श्रीगोपाल नेवटिया

युवकों के प्रति

"प्यारे नौ जवानो, अपनी ज़रूरतों को कम करो। अनेक छोटी-मोटी विदेशी वस्तुओं के उपयोग से देश में विदेशी व्यापार की जड़ खूब ज़ोर पकड़ चुकी है। इसी कारण आज हमारा देश इतना दीन और निर्धन है—दिन ब दिन हमारी निर्धनता बढ़ रही है।

शक्ति और स्वास्थ्य को बढ़ाना अपना शारीरिक कर्त्तव्य समझो। आर्थिक कर्तव्य-पालन के लिए स्वदेशी वस्त्रों को पहनने का संकल्प करो। और हिन्दुस्थान के स्वातंत्र्य-युद्ध में हाथ बँटा कर अपना आध्यात्मिक कर्त्तव्य पूरा करो।

अगर पराक्रमी, यशस्वी और वीरता-पूर्ण जीवन बिताना ही तुम्हारी महत्वाकांक्षा हो, तो हिन्दुस्थान को स्वाधीन करने के लिए अपनी समस्त शक्तियों को केन्द्रित करना सीखो।

अपने हृदयों में निरन्तर स्वतंत्र-भारत का ध्यान करते रहो और अपनी सबसे क़ीमती वस्तु भी राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए अर्पण कर दो। ए भारतमाता के सपूत नौजवानो! पुरुषत्व के सम्पूर्ण विकास के लिए, अपनी बेदाग़ बहादुरी के और कीर्ति को बढ़ाने के लिए, इससे अधिक साफ़ रास्ता और कोई नहीं है!"

—श्रीप्रकाश

साहित्य-संगीत-कला

गौरव-गीत

हम्मीरदेव का गीत

"त्यागभूमि का मुकुट, राजस्थान की उज्ज्वल मणि, ाड़ का गौरव—चित्तौड़ म्लेच्छों के अधिकार में चला ा। अधर्मियों ने उसके विशाल भवनों को नष्ट कर दिया, वमन्दिरों को अपवित्र कर दिया, और हमारे प्यारे भाइयों पीस डाला। आर्य-कुल-कलङ्क-क्षत्रिय-यश-नाशक मालदेव विश्वासघात किया। वह विधर्मियों से मिल गया। लतान ने, उसके विश्वासघात के पुरस्कार में, उसे चित्तौड़ शासक बना दिया। हाय! चित्तौड़ का पूर्व-गौरव नष्ट या! कौन उसकी रक्षा करेगा? कौन नीच मालदेव र उसके अत्याचारी राजकुमार जेसा से राजस्थानियों का त्राण करेगा? कौन आर्यों की पवित्र भूमि से गौ-देव-द्रोही म्लेच्छों को निकाल बाहर करेगा? वीरो! चिन्ता करते हो? सिसोदिया वंश-संस्थापक, "विषम-घाटी चानन"* राणा हम्मीरदेव के रहते किसका साहस है कि राजस्थान को पद-दलित करे? कौन ऐसा माई का लाल कि पवित्र आर्य-धर्म पर आघात करे? किसमें इतनी शक्ति कि चित्तौड़ के दीप्त गौरव को धुँधला करे? वह देखो, कायर देव मुँह छिपाये भागा जा रहा है! वह देखो, पापी प्राण बचाने के लिए सिर पर पैर रख कर अन्धाधुन्ध रहा है! चित्तौड़ पर नर-सिंह हम्मीर का अधिकार हो । दुर्ग पर उनका झण्डा फहराने लगा।

"वीरो! रण-केसरी हम्मीर चित्तौड़ का मान-सम्भ्रम टा लाये। अब उसे कौन छीन सकता है? किसका साहस कि उसकी ओर बङ्किम भ्रू से देख तो ले? दिल्लीश्वर तक तो मुँह की खा गया। दुष्ट जेसा के बहकाने से वह चित्तौड़ पर चढ़ आया, परन्तु हम्मीर की तलवार के सामने कौन ठहरा है? उस दिन सिंगोली के रणस्थल में हम्मीरदेव ने रण-चण्डी को यवनों के रक्त से तृप्त कर दिया। असंख्य यवनों को मार कर उन्होंने अपरिमित कीर्ति सम्पादित की। स्वयं दिल्लीश्वर बन्दी हुआ। अतुल धन और विपुल पृथ्वी देने पर उसने अपना छुटकारा पाया। वीरो! सिसोदिया वंश-संस्थापक, "विषम-घाटी-पंचानन" राणा हम्मीर ने उसे ऐसी शिक्षा दी कि फिर उसने चित्तौड़ की ओर आँख उठाने का साहस ही न किया।

"वीरो! हम्मीरदेव के यश से समस्त मेवाड़, समस्त राजस्थान, समस्त आर्यावर्त जगमगा रहा है। उनके वीरत्व की धाक समस्त भारत में व्याप्त है। लड़ाकू भीलों के राजा राघव ने उनका लोहा मान लिया। चेलाख्यपुर* की रण-स्थली और पाह्लनपुर† के जले खण्डहर हम्मीरदेव का विजय-गीत उच्चःस्वर से गा रहे हैं। इला‡ दुर्ग-वासियों से पूछो, तो वे हम्मीर के शौर्य्य की कथा सुनावेंगे कि किस साहस से राणा हम्मीर ने राजा जैत्रकर्ण को पछाड़ा था। बूँदी के मीनों से पूछो कि हम्मीर देव की तलवार कैसी है? वे तुम्हें उसकी काट बतावेंगे। मारवाड़, जयपुर, ग्वालियर और चंदेरी के नरेशों से पूछो। वे तुम्हें कहेंगे कि आर्य्यों का एकमात्र रक्षक है राणा हम्मीर। आबू, सीकरी, कालपी और रायसेनाधिपतियों से पूछो—'हिन्दुओं का सम्राट कौन?' और वे तुम्हें एक स्वर में कहेंगे—सिसोदिया-वंश-संस्थापक, 'विषम-घाटी-पंचानन', राणा हम्मीर देव!"

बालकृष्ण बलदुवा

---

* विकट आक्रमणों में सिंह के समान।

* जीलवाड़ा। † पालनपुर। ‡ ईडर।

हिन्दी कविता का भावी आदर्श

मानव-प्रकृति के अन्तर्गत स्वभाव से दो प्रकार की भावनायें रहती हैं। एक जिगीषा की और दूसरी तन्मयता की।

जिगीषा की भावना के वशवर्ती होकर मनुष्य विश्व-प्रकृति के मुग्ध और विस्मयकारी नाना प्रकार के दृश्यों के अन्तर्रहस्य को जानने के लिए व्याकुल हो उठता है। वह प्रकृति के विस्मयागार के कपाटों को खोल देने के लिए शक्ति भर प्रयत्न करता है। लीलामयी प्रकृति के अद्भुत कारनामों को देखकर वह आश्चर्यान्वित और पुलकित तो अवश्य होता है, पर उनमें तल्लीन नहीं होता। वह उनके अस्तित्व के सन्मुख अपने अस्तित्व को मिटाना नहीं चाहता, बल्कि इन सब चमत्कारपूर्ण दृश्यों पर भी वह अपनी बुद्धि की सत्ता क़ायम रखता है।

दूसरी भावना तन्मयता की है। इसमें रहने वाला मनुष्य प्रकृति के रहस्यों की खोज नहीं करना चाहता। प्रत्युत् उसी आनन्द और विस्मय में अपने आपको सराबोर कर देता है। वह स्वयं आनन्द और विस्मय के इस सागर में तल्लीन हो जाता है। और उसीके अन्तर्गत अपने और विश्व के वास्तविक रूप का नित्य नवीन दर्शन करता है।

पहली भावना से विज्ञान की उत्पत्ति होती है, दूसरी से कविता की। पहली भावना मस्तिष्क से उत्पन्न होती है, दूसरी का जन्मस्थान हृदय है। विज्ञान का सम्बन्ध बाह्य जगत् से अधिक रहता है, कविता अन्तर्जगत् में विशेष रमण करती है। वैज्ञानिक सिद्धांत के जगत् में भ्रमण करता है, कवि का क्रीड़ा-क्षेत्र कल्पना का जगत् है। विज्ञान वस्तु के मूल स्वरूप को संसार के सन्मुख लाता है, कवि उसके परिष्कृत और सुंदर स्वरूप को विश्व के आगे रखता है।

पहली भावना कारणवाद के मार्ग से होती हुई सत्य के समीप पहुँचती है। दूसरी भावना आनन्दवाद के मार्ग से हो कर सत्य में जा मिलती है। मार्ग भिन्न-भिन्न होने पर भी दोनों का लक्ष्य एक ही है। संसार को दोनों ही की आवश्यकता है। और दोनों ही मनुष्य-प्रकृति के अन्तर्गत अमर रूप से मौजूद रहती हैं। जब जिगीषा की भावना का प्राधान्य मनुष्य-समाज में समष्टि रूप से रहता है तब संसार का पलड़ा विज्ञान की ओर झुका हुआ रहता है। इसी प्रकार तन्मय की भावना का प्राधान्य होने पर जगत् कविता-कामिनी की ओर आकर्षित होता है।

मनुष्य प्रकृति के अंदर रहने वाली स्वाभाविक विकृ के अनुसार इन भावनाओं में भी विकृति उत्पन्न होती र है। इस विकृति से संसार का बड़ा अनिष्ट होता है। विज्ञा वाद के विकृति मय प्राबल्य से समाज में अशुद्ध नास्तिक को और कवित्ववाद के उन्मत्त अनुकरण से अंध-श्रद्धा की उत्पत्ति हो जाती है।

कविता का स्वरूप

कविता के स्वरूप का निर्णय करते हुए सुप्रसिद्ध स लोचक मैथ्यू आर्नाल्ड कहते हैं :—

> Poetry is at bottom a criticism Life. The greatness of a poet lies in powerful and beautiful application ideas to life × × × × × Poetry is noth less than the most perfect speach of m in which he comes nearest to being a to utter the truth.

अर्थात्–कविता यथार्थ में मानव-जीवन का सूक्ष्म वि षण है। कवि की महत्ता इसीमें है कि वह विचारों बड़ी कुशलता से जीवन के उपयुक्त बना दे......जब म सत्य को सबसे श्रेष्ठ भाषा में प्रकट करता है तब वही कविता हो जाती है।

जगत् स्वभाव से अपूर्ण पदार्थ है। और मनुष्य जीवन में पूर्णता प्राप्त करना चाहता है। यह पूर्णता उसे प्र जगत् में उपलब्ध नहीं होती। क्योंकि प्रत्यक्ष जगत् का सौन् उसका सङ्गीत और उसका व्यवहार सभी अपूर्ण और नश्व इस अपूर्ण और नश्वर जगत् से घबरा कर मनुष्य पूर्ण प्राप्ति के लिए छटपटाता है। जब वह पूर्णत्व उसे प्रत्य प्राप्त नहीं होता तब वह कल्पना का आश्रय लेता है। कल्पना के अन्तर्गत अपनी इच्छा के अनुरूप एक स्व जगत् की रचना करता है। उसकी कल्पना की छत्र में एक देश या एक जाति ही नहीं प्रत्युत् सारा विश्व रहता है। विश्व में नित्य-प्रति होने वाले सुख और दु

कोलाहल, जन्म और मृत्यु के दारुण दृश्य, अमीरी और गरीबी के भीषण चक्र तथा हँसी और हाहाकार की मर्मभेदी ओं के प्रति उसकी कविता की प्रत्येक में पंक्ति गहरी र्वेदना के उच्छ्वास छूटते रहते हैं । वह जगत् को इस सुन्दर स्थान से हटाकर कल्पना के सुन्दर राज्य में रख देना चाहता है । यही कविता का वास्तविक उद्देश्य है । इस श्य की पूर्ति के निमित्त जिस स्वरूप की अवतारणा होती है वही कविता का वास्तविक स्वरूप है ।

कविता देश और काल के प्रभाव से अबाधित रहती है। उसके बाहरी स्वरूप पर देश और काल का अव प्रभावश्य पड़ता है, पर उसका अन्तर्जगत् इन बन्धनों से बिलकुल मुक्त रहता है। भिन्न-भिन्न देशों के महा-कवियों ने जिन भिन्न-भिन्न चरित्रों की अवतारणा की है उनका बाहरी रूप कदापि एक नहीं हो सकता। शेक्सपियर की मिराण्डा कालिदास की शकुन्तला नहीं हो सकती और न भवभूति की सीता होमर की हेलेन हो सकती है। इसी प्रकार काल-भेद के अनुसार वाल्मीकि की सीता और तुलसीदास की सीता में भी गहरा भेद हो सकता है। फिर भी यह निश्चय है कि मानवीय प्रकृति और जीवन-समस्या का जो निश्चय वाल्मीकि ने अपनी सीता के द्वारा और कालिदास ने अपनी शकुन्तला के द्वारा किया है वही होमर ने हेलेन के द्वारा और शेक्सपियर ने मिराण्डा के द्वारा किया है। सभी ने अपनी-अपनी कृतियों को पराकाष्ठा तक पहुँचा दिया है और उस स्थान पर जाकर, जहां पर देश और काल के बन्धन नहीं हैं, सभी एकाकार हो गये हैं । अस्तु।

कविता के रूप दो प्रकार के होते हैं । कुछ कवितायें ऐसी होती हैं जिनका सम्बन्ध कवि के व्यक्तित्व से [illegible] रहता है । प्रत्येक काल और प्रत्येक परिस्थिति में कवि की ही सम्पत्ति रहती हैं । ऐसी कविताओं में कवि अपनी प्रतिभा और निजी अनुभवों के द्वारा मानव-जाति के भावों को अभिव्यक्त कर देता है । पर कुछ कवितायें ऐसी भी होतीं हैं, जिनमें विश्वात्मा संचरण करती हैं । इस प्रकार की कवितायें बहुत ही ऊँची श्रेणी की होती हैं । इस प्रकार की कविता करने वाले कवि विश्व-कवि कहलाते हैं । वाल्मीकि, व्यास, होमर और वर्जिल इसी श्रेणी के कवि हैं ।

हिन्दी कविता

ऊपर हम कविता की उत्पत्ति, स्वरूप और विकास का संक्षिप्त में निरूपण कर आये हैं । अब हमें इसी कसौटी पर हिन्दी कविता के इतिहास को परख कर देखना है । हमें देखना है कि हिन्दी कविता का भूत-कालीन आदर्श क्या रहा है एवं वर्तमान में उसका क्या स्वरूप है, तथा इन दोनों आदर्शों में गुण-दोष क्या हैं ? इन बातों का निश्चय करने के पश्चात् ही हम उसके भावी आदर्श को निश्चित करने में सफल हो सकेंगे ।

यदि हम साधारणतया हिन्दी कविता के प्राचीन और नवीन आदर्शों के विभाग करना चाहें तो हम उसको छः विभागों में विभक्त कर सकते हैं—(१) वीर-भावना प्रधान, (२) अध्यात्म-भावना प्रधान, (३) भक्ति-रस प्रधान, (४) शृंगार-रस प्रधान, (५) दैशिक-भावना प्रधान और (६) जातीय-भावना प्रधान । इनमें से प्रथम चार प्राचीन और अन्तिम दो अर्वाचीन हैं ।

वीर-रस-प्रधान कविताओं में चन्द का (कई लोगों के मतानुसार आगे जाकर भूषण का भी) आसन ऊँचा है । अध्यात्म-प्रधान कविताओं में कबीर साहब की तूती बोलती है। भक्ति-रस-प्रधान कविताओं में सूर और तुलसी का बोल-बाला है। इसी प्रकार शृङ्गार-प्रधान काल पर देव और बिहारी का साम्राज्य है ।

मतलब यह कि हिन्दी भाषा का काल शुरू से अन्त तक एक निश्चित मर्यादा के बन्धन में बँधा हुआ रहा है। उसका क्षेत्र एक निश्चित आदर्श की परिधि में परिमित रहा है। इसका फल यह हुआ कि इसमें प्रतिभा और महा-प्रतिभा-सम्पन्न कवि तो अनेक हुए, पर विश्व-कवि शायद एक भी न हो सका । इसमें सन्देह नहीं कि यदि काव्य का एक निश्चित आदर्श इन लोगों के सन्मुख न होता तो इनमें से बहुतों का नाम विश्व-कवियों की श्रेणी में लिखा जाता । संस्कृत में भी समय-समय पर भिन्न-भिन्न प्रकार के काव्यादर्श निश्चित रहे हैं, पर उसमें कई कवि ऐसे हुए हैं, जिन्होंने उस आदर्श की तनिक भी चिन्ता नहीं की । उन्होंने स्वयं काव्य के नवीन आदर्श की सृष्टि कर डाली। काव्य का निश्चित आदर्श उनकी

स्वाभाविकता में रञ्चमात्र विघ्न न डाल सका। वे अपनी उन्नत प्रतिभा के बल से आदर्श धोरण की मर्यादा को लांघ कर विश्व-कवियों में सम्मिलित हो ही गये। वाल्मीकि और व्यास तथा कालिदास इसी श्रेणी के कवि हैं।

अब हम बहुत संक्षेप में यह देखना चाहते हैं कि हिन्दी काव्यों के अन्तर्गत यह रुचि-परिवर्तन क्रमशः कैसे और क्यों हुआ?

ऐसा मालूम होता है कि तेरहवीं शताब्दि में भारत के क्षत्रिय समुदाय में वीरता के साथ-साथ विलासिता की विषमय भावनाओं का प्राबल्य होने लग गया था। पृथ्वीराज के व्यक्तिगत चरित्र के विषय में जो किम्बदन्तियाँ प्रचलित हैं उनसे हमारे इस अनुमान की सहज ही पुष्टि होती है। विलासिता के प्राबल्य से वीरत्व में शैथिल्य आने लग गया था और वह दुर्दान्त घड़ी शीघ्र ही आने वाली थी, जिसमें हिन्दू-समाज का क़िला तीन-तेरह होने वाला था। कवि तो हमेशा भविष्य-दर्शी होता है। चन्द को भी यह भविष्य हाहाकार करता हुआ दिखलाई दे रहा था। वह इस अनिवार्य्य पतन को अनुभव कर रहा था, फिर भी उसने स्वाभाविक रूप से उस अनिवार्य्य घड़ी को पीछे हटाने का शक्ति भर प्रयत्न किया। उसने काव्य के द्वारा समाज में वीर-रस का प्रचार करने की ख़ूब चेष्टा की। उसकी भाषा से और उसके भावों से सहज ही वीर रस का संचार हो आता है। फिर भी उसके काव्य में आनन्द मय भूत, क्रान्तिमय वर्त्तमान और निराशामय भविष्य के प्रति डाले हुए शीतल उच्छ्वास स्थान स्थान पर देखने को मिलते हैं। निराशामय भविष्य को देख कर कवि रोया है—जी भर कर रोया है, और अन्त में थक कर वैरागी बन गया है। उसके इस संयम और वैराग्य में, करुणा और शांत-रस के सोते बह गये हैं। फिर भी यह कहना ही पड़ेगा कि चन्द कवि इतने बढ़कर भी आदर्श की मर्यादा से बाहर नहीं जा सके हैं। यदि वे वास्तविक विश्व-कवि होते, तो जिस प्रकार वाल्मीकि रामचन्द्र को राह पर ले आये थे उसी प्रकार वे भी गुमराह पृथ्वीराज को अपनी राह पर ले आते। और समाज के आदर्श को ही बदल देते। और यह काम स्वाभाविक रूप से होता रहता। पर चन्द कोशीश करके भी पृथ्वीराज को नहीं पलट सके और उनके द्वारा समाज का आदर्श एक इंच भी इधर से उधर नहीं हुआ। प्रस्तुत
स्वयं ही शुरू से अन्त तक पृथ्वीराज और समाज के आदर्शों
से दबे हुए मालूम होते हैं। उन्होंने अपनी कविता में
कमाल ज़रूर दिखलाया है, फिर भी शायद कोई यह नहीं
कह सकता कि वह विश्व-कवि थे।

मतलब यह कि चन्द बरदाई आदि के काव्यों ने समाज के वीर-रस को कुछ उत्तेजना चाहे दी हो, पर पतन के रास्ते पर जाती हुई समाज की गति को वे न रोक सके। उनकी कविताओं के रहते हुए भी क्षत्रिय-समाज की ग पतन के मार्ग पर बढ़ती ही गई।

इधर तो यह हो रहा था, उधर भारत के धर्माच जनता को बलात् ऐहिक जगत् से खींचकर पारलौकि जगत् की ओर ले जाने का प्रयत्न कर रहे थे। अप्रत्यक्ष प्राधान्य देकर वे प्रत्यक्ष का स्पष्ट अपमान करते थे। फल हुआ कि अप्रत्यक्ष के फेर में पड़ कर मनुष्य-समाज अपने ऐ कर्त्तव्यों से उदासीन होकर अकर्मण्य और आलसी हो गया।

इस दुर्बल स्थिति के विरुद्ध वल्लभाचार्य्य ने एक ब बड़ा आन्दोलन मचाया। इस आन्दोलन की विशेषता उल्लेख करते हुए एक लेखक लिखते हैं कि इस धार्मि आन्दोलन की विशेषता यह थी कि प्रकृति का ध्वंस न क उसकी अभिव्यक्ति को अध्यात्मिकता की ओर ले ज चाहिए। स्वभाव की उपेक्षा करके किसी अचिन्तनीय भा आदर्श के अनुसन्धान में व्यग्र रहने से उसका विपरीत प्रतिफल होता है। विषय को छोड़कर विषयी को पक की चेष्टा करना, मनुष्य को छोड़ कर मनुष्यत्व का करना, और इन्द्रियों को छोड़कर रस ग्रहण करना विडम्ब मात्र है। इस आन्दोलन का परिणाम यह हुआ कि के धर्माचार्यों ने जिन पारलौकिक बन्धनों से लोगों को रक्खा था वे शिथिल हो गये।

इस शिथिलता को दूर कर आध्यात्मिक भावनाओं केन्द्रीभूत करने के लिए आध्यात्म काल का जन्म हुआ। काल में बहुत से अच्छे अच्छे कवि हुए, पर इन सबमें प्रा कवीर साहब का ही है। उनके शब्दों में जादू और बिजली दौड़ती है। उनकी कवितायें, सुनने वाले की

ती को झनझना देती है। सबसे बड़ी विशेषता उनमें यह कि कल्पना के जगत् में रमण करते हुए भी वह सत्य और निकता से कहीं भी अधिक दूर नहीं हुए हैं। हमारे ष्ठ से वह विश्वास-युग के नहीं प्रत्युत् बुद्धि-युग के कवि। संसार के इतिहास में उनका स्थान बहुत ऊँचा है। होंने विज्ञान के साथ कवित्व को मिला देने का बड़ा ही न प्रयत्न किया था। पर खण्डन-मंडन के झगड़ों में पड़कर वह र्शनिक विभाग में अधिक बढ़ गयेथे। सच पूछा जाय तो वह और साहब कवि की अपेक्षा दार्शनिक ही अधिक थे। वह म से विचारक होकर ही पैदा हुए थे; कवि होकर नहीं। हाँ, उन्होंने अपने दर्शन-सिद्धांतों को अधिक मधुर करने के फिर अपनी प्रतिभा के बल से कवित्व-शक्ति भी प्राप्त कर ली थी, वह चाहते तो इसमें बिलकुल स्वाभाविक रूप से मिल जाते पर उन्हें ऐसा करना शायद इष्ट न था; क्योंकि सा करने में अपने सामयिक दर्शन-सिद्धान्तों से दूर चले ने की उन्हें आशङ्का रही होगी। यही कारण है कि विश्व-दार्शनिकों में तो उन्होंने अपना आसन बना लिया पर विश्वकवियों में शायद वह न बना सके।

चन्द्रराज भंडारी,

बनावटी नाम

एक मित्र लिखते हैं कि "इधर कई दिनों से हिंदी-समाचारपत्रों में लेखक का बनावटी नाम देने की प्रथा जोरों से चल पड़ी है। पत्र-सम्पादक के सिवा और कोई उसके नाम से परिचित नहीं रहता। चाहे पत्र राजनैतिकहों, धार्मिक हों, या सामाजिक हों। इनमें से एक भी इन गुमनाम लेखकों की कृतियों से अछूता नहीं रहता। इस घातक नीति के विरुद्ध अभी तक लेखकों ने कोई लेख नहीं लिखे। आशा है, आप इस विषय पर एक उत्तम युक्ति-युक्त लेख लिख कर उसपर पर्याप्त प्रकाश डालेंगे।"

इस प्रश्न पर हमें मराठी-साहित्य-संसार के प्रसिद्ध विद्वान् और विचारक श्री श्रीपादकृष्ण कोल्हटकर-लिखित एक साहित्यिक उपन्यास के संवाद की याद हो आई। उपर्युक्त प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर उस संवाद में पाठकों को मिल सकेगा। हाँ उसकी प्रस्तावना स्वरूप, चार शब्द लिख देना ज़रूरी है।

श्रीयुत हरिहरराव नासिक से प्रकाशित होने वाले "प्रकाश" नामक साप्ताहिक सामाजिक पत्र के एक युवक, सिद्धहस्त, सफल और तेजस्वी सम्पादक थे। "प्रकाश" द्वारा उनकी कीर्ति-कौमुदी सारे महाराष्ट्र में व्याप्त हो रही थी। लोगों को हरिहरराव के लेखों और टिप्पणियों से एक अभूतपूर्व आनंद मिलता था। प्रति सप्ताह आबाल-वृद्ध, शिक्षित-समुदाय उनके 'प्रकाश' की राह बड़ी उत्सुकता से देखा करता था।

उनके पास सम्पादनकला का अध्ययन करने के लिए एक ऊँची शिक्षा पाई हुई कुमारिका आई। कुछ दिन के अध्ययन के बाद इस कुमारिका ने 'हमारा प्यारा जयंत" नामक एक कविता की रचना करके संपादक महाशय को दिखाई। उस कविता का परीक्षण करते हुए सम्पादक महाशय ने काव्य और कविता का बड़ा सुन्दर विवेचन किया। उसे भी हम कभी पाठकों की सेवा में उपस्थित करेंगे। परन्तु यहाँ प्रश्न तो यह था कि कविता किसके नाम से प्रकाशित की जाय। लेखिका का यह पहला ही प्रयत्न था। संपादक महाशय ने सुझाया कि वह किसी उपनाम से कविता छपा सकती है। इस स्थान पर उपनाम के प्रयोग की आलोचना करते हुए उन दोनों का जो संवाद हुआ वह इस प्रकार है। इस संवाद में "कौंतेय" उपनाम धारी एक विख्यात लेखक का भी ज़िक्र आया है। संपादक महाशय इनसे कुछ चिड़े हुए थे। उसका कारण हम नहीं बतावेंगे। संवाद यों है:—

श्री हरिहर राव ने कहा—"मनुष्य स्वभाव में यह कैसी विचित्र बात है कि बिना नाम वाला ख़ानगी पत्र पाकर तो लोग उसके अज्ञात लेखक से घृणा करने लगते हैं, परंतु वे ही दूसरी ओर के किसी कल्पित-झूठे-नाम से अपने लेख प्रकाशित कराने वाले लेखक (संपादकजी का रुख कौंतेय की ओर था) को बड़े आदर की दृष्टि से देखते हैं।

शिष्या ने कहा—"जो बात 'कौंतेय' के लेखों के लिए मानी जाती है क्या वही मेरी कविता के संबंध में घटित नहीं होती? तब तो मुझे भी बनावटी नाम से कोई लेख नहीं लिखना चाहिए।"

"तुम्हारी गणना अभी नवीन लेखकों में है। तुम्हारे कल्पित नाम की जड़ में आत्म-विश्वास का अभाव और यह

डर है कि रसज्ञ जनता मेरी कृति का किस तरह स्वागत करेगी। पर लगातार दस वर्षों तक लोक-प्रियता का मन-माना रस पान करने वाले वृद्धकवि को भी कहीं मुग्धा बाला की सी भीरुता और सङ्कोच शोभा देता है ?"

"परंतु इस गोपनवृत्ति की जड़ में तो दोनों कारण हो सकते हैं न—लज्जाशीलता भी और लोकप्रियता अथवा आत्म प्रसिद्धि से विरक्ति भी ?"

"हां तो, क्या कहना है उनकी विरक्ति को ? बड़े साधु पुरुष ही तो ठहरे ! इतने लंबे समय तक अपने रहस्य का दक्षतापूर्वक रक्षण करने में मुझे तो सिवा स्वार्थीपन के और कोई उनका तो हेतु दिखाई नहीं देता।

"नहीं यह तो बिलकुल ग़लत है। इसमें उन विचारे का भला क्या स्वार्थ साधन होगा ?"

"तुम्हें अभी लेखन-व्यवसाय का अनुभव नहीं है, इसी कारण तुम ऐसी बातें कर रही हो। इन पर्दानशीन लेखकों को उनकी इस गुप्तता से कई लाभ होते हैं। प्रत्येक लेखक को उसके लेख के कारण एक प्रकार के बंधन में बँधना पड़ता है। एक लेख में लिखे आशय के विरुद्ध वह दूसरे लेख अपने नाम से नहीं लिख सकता। न अपने मुँह से उसके विरुद्ध कुछ कह ही सकता है। लेखक अपने लेख में प्रतिपादित तत्त्वों के प्रतिकूल आचरण भी नहीं कर सकता। लेकिन कल्पित नाम से लिखने वाला लेखक अपने असली और बनावटी नाम के कारण संसार की दृष्टि में दो स्वतन्त्र व्यक्तियों के रूप में घूमा करता है। अतः एक नाम से लिखे गये उद्गारों और लेखों द्वारा किये गये आचरण पर दूसरे नाम से प्रकाशित होने वाले उद्गार, लेख और आचरण, द्वारा किसी तरह का नियंत्रण नहीं बैठता। सच्चे नाम से जिस बात का वह लेख या व्याख्यान आदि के द्वारा मंडन करता है, कल्पित नाम से वह उसी का खंडन खुशी-खुशी कर सकता है। कल्पित नाम की ओट में जिन उदात्त तत्त्वों का वह प्रति-पादन करे प्रकट नाम से उन्हीं के विरुद्ध व्यवहार करने में उसे कोई हिचकिचाहट नहीं होती। एक लेख में वह बनावटी नाम से दहेज की कुप्रथा का तीव्र विरोध कर सकता है ? तो दूसरे या असली नाम से उसी कुप्रथा का समर्थन करने वाला लेख भी लिख सकता है ! यही नहीं, बल्कि खुलेआम दहेज़ पाने के लिए हाथ पसारते हुए भी वह नहीं लजाता। इसी प्रकार एक ओर बनावटी नाम की ओट में सरकार के कार्यों की तीव्र आलोचना करना और दूसरी ओर सच्चे नाम से उसी सरकार का गुण गान करके एकाध पदवी प्राप्त कर लेना उसके लिए कोई कठिन या अशक्य बात नहीं है। मामूली लेखक पर अपने लेखन, भाषण और आचरण में एकता बनाये रखने की जो ज़िम्मेदारी रहती है वह कल्पित नाम के लेखक पर नहीं होती; यही ऐसे लेखक को होने वाला पहला लाभ है। पहले प्रकार के लेखक को समालोचकों से सदा भयभीत रहना पड़ता है, किन्तु दूसरे प्रकार के लेखक को इस तरह का कोई डर नहीं रहता। यह दूसरा लाभ है। वह कल्पित नाम की ओट में अपने शत्रु पर चाहे जैसे तीव्र आक्षेप कर सकता है, परन्तु उनके बदले में उसे अपने सच्चे नाम पर कलंक लगने के खतरे में पड़ने का कोई डर नहीं रहता। वह दूसरों के नाम पर जितनी चाहे कालिमा लगा सकता है, पर अपने व्यक्तित्व को ऐसे खतरे में डालने से कायर की तरह डरता रहता है। अतः ऐसा लेखक अपनी ज़िम्मेदारी के बारे में ज़रूरत से ज़्यादा लापरवाह रहने लगता है और दूसरों की इज्ज़त को फुटबॉल के समान जब चाहे तब मनमाने ढंग पर ठुकराता रहता है—उसकी मनमानी ख़बर लेता रहता है। कई देशों में तो इसी कारण ऐसा कानून भी बना दिया गया है कि कोई कल्पित या बनावटी नामों से लेख वगैरा न लिखे।

"इन चोर लेखकों को अपनी इस चोरी से एक और लाभ होता है। अरेबियन नाइट्स (आरब्योपन्यास) में हारूँनलरशीद ख़लीफ़ा को ख़ुफ़िया तौर पर घूमते हुए अपने विषय में रिआया का सच्चा मत सुनने को मिल जाता था। इसी प्रकार इन लेखकों को भी निःसंकोच हो दूसरों से अपनी प्रशंसा सुनने का सुख-सौभाग्य भी प्राप्त होता है। इस तरह की प्रशंसा उनके सामने होती है तो भी वह अप्रत्यक्ष प्रशंसा ही समझी जाती है। चोरी से सुनने वाला मनुष्य साधारणतया अपनी निंदा ही सुनता है। ये गुप्त लेखक इस नियम के अपवाद होते हैं। अगर वे अपने असली नाम से लेख वग़ैरा लिखते तो उनके आसपास खुशामदी टट्टुओं का जमघट

लगाता और आत्म-स्तुति को सुनते-सुनते उनके कान ऊब परन्तु इस स्तुति के असली महत्व को वे जानते हैं। इसलिए उन्हें रंचमात्र भी सुख नहीं मिलता। इसके विपरीत नाम की ओट में बैठे-बैठे जब वे अपने किसी लेख पर पाठक को ज़रासा मुसकराते हुए पाते हैं अथवा करुण-रसात्मक लेख को पढ़ते समय पाठकों की आँखों आँसू टपकता हुआ देख लेते हैं तो उससे सुहाती बातें करने वालों के हर्ष और शोक के आवेगों को देखने की अपेक्षा सौगुना अधिक आनन्द है। इस तरह अपने असली नाम से लेख लिखने वाले तो कीर्ति-जनित कष्ट और असुविधायें उठानी पड़ती हैं, इन बनावटी नाम वालों को तो केवल आनन्द ही मिलता है। कल्पित नाम की ओट में छिपने वाले के लेखों को उनकी गुप्तता के कारण आवश्यकता से महत्व दिया जाने लगता है--यह चौथा लाभ है। बात प्रकट में उपेक्षणीय प्रतीत होती है वही किसी रह- से सम्बन्धित होने पर लोगों का ध्यान अधिक आकर्षित है। एक उदाहरण लीजिए। एक युवती लज्जावश अपना कर एक तरफ़ खड़ी हो जाती है। वह कैसी मनो- मालूम होती है? परन्तु जब वह बुर्क़ा ओढ़ है, तब तो उसकी आकर्षकता बेहद बढ़ जाती है। खोलकर राह से जाने वाली सुन्दरी की अपेक्षा पर्दा- रमणी की ओर लोगों की आँखें शतधा अधिक कुतूहल साथ आकर्षित होती हैं। यही नहीं, बुर्क़े वाली का बद- चेहरा भी उन्हें खुले सौन्दर्य की अपेक्षा अधिक सुन्दर देता है। वास्तविक सौन्दर्य कितना ही मनोरम और क्यों न हो, वह काल्पनिक सौन्दर्य की बराबरी कभी कर सकता। बुर्क़ा अवगुंठित आनन को छिपाते हुए भी तेज से प्रेक्षकों की आँखों मे चकाचौंध पैदा कर देता इसका कारण प्रेक्षकों की कल्पकता है। वे अपने कल्पना- चित्र का आरोप बुर्क़े के अंधेरे में छिपे हुए मुख पर है। यही हालत उन लेखकों की होती है, जो बनावटी की ओट में छिपे बैठे रहते हैं। जो लेख रद्दी की में फेंकने के लायक़ होते हैं वे बनावटी नाम के पाठकों की नज़र में महत्व के जँचने लगते हैं। केवल पाठकों की जिज्ञासा द्वारा योग्यता का मुलम्मा चढ़ाये गये इन महत्वशून्य लेखों का कर्त्ता कौन है, इस बात की खोज करने में कई पाठक प्रवृत्त हो जाते हैं। इस प्रयत्न में यह लोग जितने असफल होते हैं इनकी दृष्टि में ऐसे नकली लेखक का महत्व उतना ही अधिक बढ़ जाता है।

लोग नहीं सोचते कि बुर्क़ा ओढ़ने वाली व्यक्ति ने अपने मुँह को क्यों छिपा रक्खा है,- लोगों की नज़र न लग जाय, इसलिए या उनकी बदसूरती को देखकर उन्हें घृणा न हो इसलिए? बनावटी नाम धारण करने वालों का भी यही हाल है। पाठक यह सोचने का कष्ट नहीं करते कि लेखक ने अपने महत्व को बढ़ाने के लिए ऐसा नाम धारण कर रक्खा है या उसे छिपाने के लिए।"

"कलाकान्त"

रे पुजारी !

तू इसी लिए अपने शरीर की शुद्धि करता है न, कि तू उस पवित्रतम की पूजा करना चाहता है! और इसी लिए ऊनी और रेशमी वस्त्र धारण करता है न, कि तेरे पास अपवित्रता फटकने न पावे! परन्तु मन की शुद्धि के लिए तूने क्या उपाय किया है? कुछ याद है?

तू ये ताम्रपात्र और चाँदी के पात्र उसकी पूजा के लिए ही सँजो रहा है न! परन्तु, रे ढोंगी! जितना तू बाह्य-शुद्धि का ध्यान रखता है, उसका शतांश भी आन्तरिक शुद्धि के लिए नहीं रखता। क्या तू हृदय पर हाथ रखकर कह सकता है कि पूजा-पात्र माँजने के पहले तूने अपने मन को भी माँज लिया है?

ख़बरदार! उस जल को स्पर्श मत करना। वह जल पवित्र है, निर्मल है, शुद्ध है और सुगन्धित है। उसकी पूजा के सर्वथा योग्य है। परन्तु तूने उसे छुआ नहीं कि वह अपवित्र हुआ। जा, पहले अपनी शुद्धि कर, फिर इसे छूना।

पाखंडी! चंदन घिसकर क्या करेगा? तेरा यह गंध उसे स्वीकार नहीं है। तूने उसे गंदा कर दिया है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष, कपट, छल, दम्भ आदि गंदे

पदार्थों की दूषित वायु से छू जाने के कारण यह अब उसके काम का नहीं रहा।

क्या तू उसका आह्वान करेगा? पागल है, मूर्ख है, पहले किसी एक साधारण महाराजा ही को अपने घर बुलाकर देख! कितनी तैयारी करनी पड़ेगी। उसके योग्य स्थान बनाना पड़ेगा। उसको बुलाने के लिए कई दिन पहले रात-दिन तैयारियों में लगना होगा। तो क्या तू उस अखिल ब्रह्मांड के निर्माता जगदीश्वर का आह्वान करने में भूल नहीं कर रहा है? क्या उसके लिए स्थान साफ़-सुथरा है?

क्या तू उसे अपने हृदय-सिंहासन पर बिठाना चाहता है? तो क्या वहाँ की तू शुद्धि कर चुका? देख, कहीं कोई तेरा दुश्मन वहाँ न बैठा हो, नहीं तो वह उस जगह को गंदी बना देगा। तू अपने काम, क्रोधादि छः शत्रुओं को तो जानता है न? एक भी अन्दर रह गया कि बस, तू पछताता ही रह जावेगा।

वह देख, उसके अनंत सिर, अनंत हाथ अनन्त उरुस्थल, और अनन्त चरण हैं। जा, छू ले! यदि पवित्र हो तो स्पर्श कर! दौड़, नहीं तो पछतावेगा! वे जाते हैं! उस विराट् के चरण तेरे आगे हैं, फिर—"किं कर्त्तव्य विमूढ" की भाँति खड़ा किसका मुँह ताकता है?

क्या "पद्भ्याम् शूद्रोऽअजायत" को भूलता है? क्या यह श्रुति केवल बोलने के लिए ही है? मूर्ख! ढोंगी! पाखण्डी! तदनुकूल आचरण क्यों नहीं करता? अब चरण छूने में क्यों झिझकता है? पकड़ ले, मत छोड़! अगर यह समय गँवा दिया तो तुझसा मूर्ख और पाखण्डी पुजारी दूसरा कोई न होगा।

गणेशदत्त शर्मा

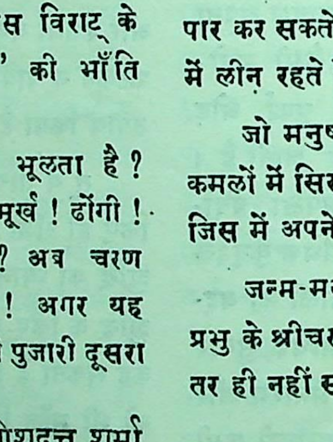

"यदि तुम सर्वज्ञ परमेश्वर के श्रीचरणों की पूजा नहीं करते हो, तो तुम्हारी यह सारी विद्वत्ता किस काम की!

जो मनुष्य, हृदय-कमल के अधिवासी श्रीभगवान् के पवित्र चरणों की शरण लेता है, वह संसार में बहुत समय तक जीवित रहेगा।

धन्य है वह मनुष्य, जो आदि पुरुष के पादारविन्द में रत रहता है—जो न किसी से प्रेम करता है, और न घृणा। उसे कभी कोई दुःख नहीं होता।

देखो; जो मनुष्य प्रभु के गुणों का उत्साह-पूर्वक गान करते हैं, उन्हें अपने भले-बुरे कर्मों का दुःखप्रद फल नहीं भोगना पड़ता।

जो लोग उस परमजितेन्द्रिय पुरुष के दिखाये धर्म मार्ग का अनुसरण करते हैं, वे दीर्घजीवी होंगे।

केवल वही लोग दुःखों से बच सकते हैं, जो उस अ तीय पुरुष की शरण में आते हैं।

धन-वैभव और इन्द्रिय सुख के तूफ़ानी समुद्र को व पार कर सकते हैं कि जो उस धर्म-सिन्धु मुनीश्वर के चर में लीन रहते हैं।

जो मनुष्य अष्ट गुणों से अभिभूत परब्रह्म के च कमलों में सिर नहीं झुकाता, वह उस इन्द्रिय के समान जिस में अपने गुण को ग्रहण करने की शक्ति नहीं है।

जन्म-मरण के समुद्र को वही पार कर सकते हैं कि प्रभु के श्रीचरणों की शरण में आ जाते हैं, दूसरे लोग उस तर ही नहीं सकते।"

—ऋषि तिरुवल्लु

पहला सुख

तम्बाकू

सन् १४९२ के नवम्बर महीने में कोलम्बस ने क्यूबा की तलाश में अपने दो मल्लाह भेजे। उन लोगों ने स आकर उसे कई आश्चर्यजनक बातें सुनाईं उन आश्चर्य-क बातों में से तम्बाकू का व्यवहार भी एक था। उन ने कोलम्बस से कहा—'क्यूबा के जंगली मनुष्य कुछ पत्ते करके मरोड़ते हैं और मरोड़े हुए पत्तों का एक सिरा ह में रखते हैं तथा दूसरे सिरे पर आग लगा कर नाक र मुँह से धुँआ छोड़ते हैं!" तम्बाकू के इस्तैमाल का पहला दृष्य था, जिसे सभ्य जाति ने देखा।

तम्बाकू का व्यवहार असभ्य जातियों से पहलेपहल रिका के यूरोपियन यात्रियों ने सीखा फिर इसका प्रचार रोप में हुआ। जहांगीर के समय में यूरोपवासियों से इस-वहार भारतीयों ने सीखा।

ऐसा जान पड़ता है कि सन् १४९४ में कोलम्बस ने रिका के जंगलियों को तम्बाकू सूंघते भी देखा था। रूस पेन नामक एक फ़कीर ने, जो कौलम्बस के साथ था, है—'ये पत्तियों का चूर्ण करते और सूराख़दार लकड़ी रा उसे सांस के साथ खींचते हैं। लकड़ी का सिरा क के भीतर और दूसरा चूर्ण पर रखते हैं।"

सन् १५०३ में जब स्पेन वाले पारागाय के तट पर चे तब वहा के निवासी उनका सामना करने के लिए ढोल ने, पानी फेंकने, पत्तियाँ चबाने, पत्तियों का पीक स्पेन ों पर फेंकने लगे। ये पत्तियां तम्बाकू की थी। तम्बाकू ने से उनका यह उद्देश्य था कि उसका जहरीला रस ओं को अन्धा कर दे। आरंभ में लोग विपक्षियों का करने के लिए तम्बाकू खाते और बारूद की तरह उसका ग करते थे।

पाठक! यदि आप तम्बाकू खाते-पीते या सूंघते हैं तो खाने, पीने या सूंघने के पहले थोड़े ठहर जाइये और विचारिये कि जिसे जंगली असभ्य लोग तक घातक पदार्थ समझते थे उससे हमारा क्या भला हो सकता है?

तम्बाकू में नाकटाइन नामक ज़हर होता है जो सूखी पत्तियों को भट्टी पर चढ़ाकर निकाला जा सकता है। आधा सेर तम्बाकू का ज़हर ३०० आदमियों को मार डालने के लिए काफ़ी होता है। एक सिगार का विष यदि एक बार ही पिया जाय तो दो मनुष्यों के प्राण लेने के लिए काफ़ी है। एक बूँद नाकटाइन सारे कमरे की वायु को दूषित कर देगा। तम्बाकू से जीवहत्या के लिए एक प्रकार का विष तैयार किया जा सकता है। साठ वर्ष से ऊपर हुए काउन्ट वोकर में अपने साले की हत्या करने के लिए तम्बाकू का तैल इस्तेमाल किया था।

तम्बाकू का विष इतना तेज़ होता है कि त्वचा के ऊपर गीली पत्तियों का लेप लगाने से ही भयानक लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। यदि सिगार खोल डाला जाय और उसकी पत्तियों का पेट पर लेप किया जाय तो जी मचलाने लगेगा। क़ै करने के लिए यह तरकीब निकाली गई थी। डरपोक सिपाही बीमार बनने की गरज़ से अपनी बाँह के नीचे तम्बाकू की पत्तियां दबाए हुए पाये गए हैं। जिस चीज़ का ऊपरी लेप इतना भयानक है उस चीज का धुँआ या रस कैसा विषैला होगा यह आप खुद समझ सकते हैं। तम्बाकू के धुँए में नाकटाइन के अतिरिक्त प्रूसिक ऐसिड् कारवोनिक ऐसिड आदि अन्य विष भी पाये जाते हैं।

उड़ने वाला विष सांस के द्वारा शरीर में जितनी जल्दी प्रवेश कर सकता है उतनी जल्दी और किसी रास्ते से नहीं। कारण यह है कि फेफड़ों के आस-पास एक ऐसी कोमल त्वचा (mucous membrane) होती है जो गैसों

(gases) को जल्दी जल्दी ग्रहण करती रहती है । प्रत्येक तीसरे मिनट शरीर का रक्त शुद्ध होने के लिए फेफड़ों में आता है। इससे फेफडों की उस कोमल त्वचा में तम्बाकू का विष पहुँचते ही वह रक्त में मिल कर तीन मिनट के भीतर ही सारे शरीर को विषैला कर देता है। खाने और सूंघने के समय जब तम्बाकू का सम्पर्क उस कोमल त्वचा (mucous membrane) के साथ होता है तब उसके विषमय द्रव्य का शोषण मामूली त्वचा पर किये गये लेप से भी अधिक जल्दी होने लगता है ।

कमरे के फ़र्श पर एक बूंद नाकटाइन गिरा देना कमरे की समस्त वायु को विषमय कर देने के लिए काफ़ी है । तम्बाकू पीने से, केवल पीने वाले का ही स्वास्थ्य नहीं बिगड़ता वरन् पास बैठे हुए लोगों के स्वास्थ्य को भी उससे धक्का पहुँचता है । क्योंकि तम्बाकू का ज़हरीला धुँआ हवा में मिलकर उनके शरीर में भी पहुँचता रहता है ।

पहले-पहल तम्बाकू खाने से जी मचलाने लगता और सिर में चक्कर आने लगते हैं। तम्बाकू के ज़हरीलेपन का यह एक अच्छा सबूत है। शरीर में तम्बाकू का विष अधिक मात्रा में पहुँच जाने से जी मचलाने लगता है, दस्त आते हैं, शरीर में पीलापन दौड़ जाता है, आंखें निकल आती है, शरीर शिथिल हो जाता है, हृदय उचित रीति से काम नहीं करता और सांस लेने में बाधा होती हैं । जो लोग तम्बाकू के आदी नहीं हैं उनपर कम मात्रा में ही ये प्रभाव दिखाई पड़ेंगे ।

अभी तक किसी ने तम्बाकू पीना सीखते हुए लड़के के हृदय को चीर कर परीक्षा नहीं की है, परन्तु छोटे जीवों के शरीरों में यन्त्रों द्वारा तम्बाकू पहुंचा कर उनकी परीक्षा की गई है। परीक्षा में मस्तिष्क पीला और रक्त-शून्य पाया गया, आमाशय में उभरे हुए लाल धब्बे हो रहे थे, रक्त बहुत पतला था, और फेफड़े पीले पड़ गये थे। दिल में रक्त जमा हो गया था और वह बहुत ही धीरे-धीरे काम कर रहा था, और कमज़ोरी से कांप रहा था। जिन बालकों की शरीर-वृद्धि हो,रही हो। तम्बाकू सिगरेट या सिगार पीना उनके लिए बहुत ही हानिप्रद है। तम्बाकू पीने वाले लड़के ठिंगने रह जाते हैं तथा उनका शरीर विकास को प्राप्त नहीं होता ।

बहुधा यह आपत्ति की जाती है कि यदि तम्बाकू ऐसा है प्रबल विष है तो उसका व्यवहार करने वाले सभी मनुष्य मर क्यों नहीं जाते ? इसका उत्तर यह है कि एक तो शरीर में ऐसा गुण है कि वह परिस्थिति के अनुकूल बन जाता है। इस कारण वह बड़े भयानक विष भी बरदाश्त कर सकता है। दूसरे, तम्बाकू का व्यवहार थोड़ी मात्रा में किया जाता है। वस्तुतः तम्बाकू खाने वाले तम्बाकू के ही विष से मरते हैं। हाँ, विष को अपना पूरा प्रभाव दिखाने में थोड़ा समय ज़रूर लगता है । (अपूर्ण)

श्रीनिवास शर्मा

पौष्टिक भोजन के ज़रूरी तत्त्व

पौष्टिक भोजन के बारे में अभी तक बड़े-बड़े डाक्टरों और वैज्ञानिकों में मत-भेद बना हुआ है। आजकल विटा-मिन का ख़ुराक में रहना ज़रूरी बतलाने वाले विद्वानों का दल ज़ोरदार हो रहा है । 'विटामिन' हमारे खाने की चीज़ों में रहने वाला एक ऐसा तत्त्व है, जिसे बिजली की धारा के समान हम अपनी आँखों से देख नहीं सकते । मशीनों द्वारा एकदम साफ़ किये हुए चावल को पकाकर खाने से एक तरह का 'बेरी-बेरी' नामक रोग होता है, यह बात तो हर तरह से सत्य सिद्ध हो चुकी है । अगर आदमी के शरीर में 'विटामिन' नामक यह तत्त्व न रहे तो वह शीघ्र ही कमज़ोर हो जायगा; दिन ब दिन नये-नये रोगों का शिकार बन थोड़े ही समय में वह नर से नर-कंकाल बन जायगा।

सूर्य की गरमी में प्राणीमात्र के जीवन का आधार रहता है। सूर्य के प्रखर तेज़ का केवल २०,००,००० अंश पृथ्वी सहन कर सकती है। इसी तेज़ के सहारे ख़ास फूलों, फलों, पत्तियों और वनस्पतियों के जीवन की क्रिया-प्रतिक्रिया होती रहती है—वे बढ़ते, फूलते, फलते और लाते रहते हैं । और प्राणी-मात्र इन्हीं वनस्पतियों से पाकर अपना गुज़र-बसर करते हैं ।

'विटामिन' चार तरह का होता है। 'अ' नामक 'विटामिन' मछली के तेल, मक्खन, ताज़ा दूध, मलाई और घी†

---

† वेजीटेबल या वनस्पति-घी में यह विटामिन नहीं रह अतः शरीर को ताक़त पहुँचाने में वह बेकाम है।

गर्मी से मिलता है। इनके खाने से मनुष्य का शरीर चिकना-स्निग्ध रहता है, बढ़ता है, शरीर क्षीण कम होता है और रोग छूने नहीं पाता।

'ब' नामक विटामिन अनाज, सूखे मेवों, बीजों–मग्ज़, आदि में होता है। मोटरगाड़ी के पेट्रोल गैस को सुलगाने के लिए जिस तरह बिजली के तार की ज़रूरत रहती है, उसी तरह शरीर से काम लेते समय यह विटामिन उपयोगी सिद्ध हुआ है। यह विटामिन गेहूँ के आटे में (मैदा में नहीं), दलिये में, चावल की ललाई में बहुतायत से पाया जाता है।

विटामिन 'क' नीबू, टमाटर हरा चना, अरहर आदि और सोडा डाले बिना पकाई हुई गोभी तथा ताज़ा फलों में होता है। किसी ख़तरे से बचने के लिए जिस तरह लोग मोटर का बीमा करा लेते हैं, उसी तरह आने वाली बीमारी से बचने के लिए इस तरह का विटामिन रामबाण है।

ऊपर कहे हुए तीनों तरह के 'विटामिन' बिना औटाये ताज़ा दूध में, आलू, दाल, टमाटर, आदि में होते हैं। मैदा, वनस्पति-घी, तेल, मुरब्बा, गुड़, बिलकुल साफ़ चावल और बहुत दिन के बासी फलों आदि में किसी क़िस्म का कोई विटामिन नहीं रहता। अतः खुराक की दृष्टि से इनकी कोई क़ीमत नहीं है।

शरीर की क्षति को पूरा करने के लिए थोड़े प्रोटीन—बीज का सफेद भाग या अण्डे की सफेदी का तत्त्व—और थोड़ी चर्बी ज़रूरी है। छोटे बच्चों की बढ़ती के लिए यह आवश्यक है। दूध और मलाई में ये तत्त्व मिलते हैं। वनस्पति-प्रोटीन सारे गेहूँ के आटे में, और मटर आदि में होता है। चिकनाई, ताज़ा दूध और ताज़ा मक्खन में भी यह तत्त्व पाया जाता है।

खाने की चीज़ों के ऊपर बताये गुणों को एक बार जान लेने पर अगर हमारे भाई-बहन अपने आहार को इस तरह नियमित बनाने का प्रयत्न करें तो उन्हें शरीर–संबन्धी शिकायत करने का शायद मौक़ा ही न मिले।

'अ' 'ब' और 'क' विटामिन के बाद 'इ'* विटामिन जो हमारे शरीर के लिए ज़रूरी है। 'उ' विटामिन केवल सूर्य की गर्मी से मिलता है। सूर्य की गर्मी के हमारे शरीर पर पड़ने से एक ख़ास रासायनिक क्रिया होने लगती है, जिससे यह विटामिन पैदा होता है। दुधारू गाय और अन्य पशु सूर्य की गर्मी में फिरते रहते हैं; फलस्वरूप उनमें 'उ'‡ विटामिन पैदा होता है. और उनके दूध के उपयोग से इसका फ़ायदा हम भी उठा लेते हैं। मक्खन में भी यह विटामिन पाया जाता है। सूर्य-ताप के जिस तत्त्व से 'उ' विटामिन तैयार होता है, उसे हेम्पस्टेड की 'नैशनल इंस्टिट्यूट आफ़ मेडिकल रिसर्च' ने "अर्गोस्टेरोल" (Ergosterol) नाम दिया है। यह तत्व प्रयोगशाला में बना लिया जाता है और सूर्य की अल्ट्रा वायोलेट किरणों में से निकाल कर यह दवा के रूप में बेचा जाता है। गर्भवती स्त्रियों को इस विटामिन की ख़ास ज़रूरत रहती है।

'झोलीवाला'

हमारी बाढ़

साधारणतः जन्म के समय बच्चा १९॥ इंच लम्बा होता है, और अपने जीवन के पहले वर्ष में ९ इंच बढ़ता है। यदि बालक की बाढ़ का यही प्रमाण ७० वर्ष तक क़ायम रहे, तो वह एक ६४ फ़ीट ऊंचा राक्षस ही हो जाय। पर वस्तुतः यह प्रमाण पहले वर्ष के बाद बड़ी आश्चर्यकारक रीति से कम होने लगता है। जीवन के १-२ वर्ष के अनुमान बच्चे की बाढ़ ३-३॥ इंच होती है, और तीसरे वर्ष २॥ इंच होती है। इसके बाद १३ वर्ष तक साधारणतः १॥ इंच के हिसाब से प्रति वर्ष बढ़ता है। १६ वर्ष के बाद

---

*'इ' नामक पांचवें विटामिन का पता अभी थोड़े दिन पहले ही लगा है।

‡अगर 'इ' विटामिन मनुष्य के शरीर में कम मात्रा में रहे तो वह दुबला होने लगता है। अनाथालयों के ज़्यादातर बालक इसी किस्म के होते हैं; क्योंकि उनके जन्म के पहले उनकी माताओं को सूर्य-प्रकाश में खूब रहने को नहीं मिलता।

*सूर्य की अल्ट्रा वायोलेट किरणों के प्रभाव से ही यह विटामिन तैयार होता है। जीवन-शक्ति को बढ़ाने वाली ये किरणें सादे कांच में से नहीं गुज़र सकतीं; अतः जीवन की दृष्टि से कांच की क़ीमत उसके जैसी ही न कुछ है। अल्ट्रा वायोलेट सूर्य की बैंगनी किरणें पारदर्शक हो सकें, ऐसे कांच भी बन चुके हैं।

बाढ़ का प्रमाण घटना शुरू होता है; १७ वें वर्ष में बालक १। इंच और १८ वें में १ इंच बढ़ता है, और १९ में पौन इंच तथा २० में आधा इंच ही बढ़ता है ।

प्रायः २५ वर्ष के पहले मनुष्य अपनी पूर्ण ऊंचाई नहीं प्राप्त करता । लेकिन उसकी बाढ़ इसके पहले ५ वर्षों में एक पंचमांश इंच प्रतिवर्ष के हिसाब से ही होती है । पूरे बढ़े और अच्छे गठीले आदमी की ऊंचाई उसके पैर की लंबाई से पौने सात गुणा अधिक होती है । स्त्रियों की उनके पैर से छः गुनी होती है । लड़के और लड़कियों के शरीर की बाढ़ अलग-अलग प्रमाण से होती है । लड़के की टंगड़ी तीन वर्ष में दूनी और बारह वर्ष में तिगुनी हो जाती है । १० वर्ष की उम्र से पहले पैर की लंबाई सिर की लंबाई से कम होती है, १० वर्ष की उम्र में समान, और उसके बाद पैरकी लंबाई सिर से बढ़ जाती है । लड़कों की अधिक बाढ़ का समय प्रायः १६-१७ वर्ष होता है । इसका मतलब यह कि इनका वज़न इस वर्ष में खूब बढ़ता है । लड़की में यह वृद्धि ख़ास कर १४ वें वर्ष में होती है ।

लड़कियां पूरी ऊंचाई प्रायः १६ वें वर्ष में और पूरा वज़न २०वें वर्ष में पा लेती हैं । लड़कों की वृद्धि धीरे-धीरे होती है ।

जन्म से ११ वर्ष तक लड़के लड़कियों से सशक्त होते हैं । बाद में १७ वर्ष तक लड़कियाँ ज़्यादा सशक्त होती हैं । लेकिन फिर उसके बाद लड़के ही सशक्त होते हैं ।

नवम्बर से अप्रैल तक बालक ऊंचाई में बहुत कम वृद्धि करते हैं, अप्रैल से जुलाई तक ऊंचाई में वृद्धि करते हैं, जुलाई से नवम्बर तक वज़न में वृद्धि करते हैं । और बाल (केश) का जीवन साधारणतः ६ वर्ष का होता है—बाद में गिरजाता है; यदि बाल न गिरें और सदा बढ़ते ही जायँ, तो सत्तरवें वर्ष में स्त्री के बाल की लंबाई ३८ फ़ीट हो जायगी । भौंहें भी बढ़ती हैं, किंतु ज़्यादा रोज़ नहीं टिकतीं । वे प्रायः ४-५ महीने टिक कर ही गिर जाती हैं । उनकी बाढ़ प्रायः $\frac{१}{३०}$ इंच प्रति सप्ताह के हिसाब से होती है । नख की वृद्धि कपास से बहुत जल्दी होती है । अंगुली के नाखून ४ महीने में ही पूर्ण रूप से नहीं आ सकते । मनुष्य का दिमाग़ जन्म के समय ९ से १० औंस तक होता है, लेकिन पूर्ण रूप से वृद्धि पाये हुए आदमी का दिमाग़ क़रीब-क़रीब तीन पौंड १ औंस और औरत २ पौंड १० औंस होता है ।

भानुदास शा

स्वास्थ्य के दस आदेश

[खंडवा के 'कर्मवीर' मे 'हेल्थ एण्ड एफ़ीशिएन्सी से' स्वस्थ रहने के दस आदेश-मंत्र दिये हैं :—]

(१) मन को स्वच्छ रक्खो । स्वस्थ मन से ही शरीर बनता है ।

(२) रोज़ नहाया करो । शरीर के छिद्रों को और स्वच्छ रक्खो ।

(३) प्रत्येक रात को कम से कम आठ घंटे अवश्य सोओ।

(४) रोज़ कम से कम १५ मिनट तक व्यायाम अवश्य कर लिया करो ।

(५) रोज़ एक घंटे तक खुली हवा में अवश्य और तेज़ क़दमों से घूमो, सुस्त चाल से नहीं ।

(६) भोजन को खूब चबा कर खाओ । ज़्यादा खाओ । (अगर क़ब्ज़ रहता हो, तो) सोकर उठने पर प्याला गरम पानो पियो । यही क्रम सोने के पूर्व भी

(७) भोजन के पूर्व बिना प्रमाद के तीन बार श्वासोच्छ्वास अवश्य कर लेना चाहिए ।

(८) कार्य करते समय रक्त-संचालन में बाधा वाले वस्त्रों को कभी न पहनो ।

(९) अपनी इच्छा-शक्ति को वश में रखने की सीखो । अपने मन से अपने शरीर को वश में रक्खो।

(१०) स्मरण रहे कि अच्छा रहना, स्वास्थ्य- व्यायाम, और इच्छा-शक्ति, तुम्हारे स्वाथ्य को स्फूर्ति- बनाये रख सकते हैं । स्वास्थ्य ही सुख है, और सुख ही जीवन

मैं शराब का सेवन कभी नहीं करता ।

तमाखू तथा मांस का स्पर्श नहीं करता ।

तेज़ मसाले तथा खट्टे अचार आदि कभी नहीं खाता

तमोगुणी आचार-विचारों को मैंने बालपन से तिलांजलि दे रक्खी है ।

मैं प्रति दिन खुली हवा में घूमता हूँ ।

—स्व० दादाभाई

नीर-क्षीर-विवेक

[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आना आवश्यक है। एक प्रति आने पर आलोचना न हो सकेगी। प्रत्येक पुस्तक का साहित्य-सत्कार तो उसी अंक में हो जाया करेगा—आलोचना, यदि हुई तो, सुविधानुसार बाद में होगी।]

हिन्दू

लेखक—श्री मैथिलीशरण गुप्त। प्रकाशक——साहित्य-सदन चिरगांव, (झांसी)। पृष्ठ संख्या ३३३। आकार सुपररायल ३२ पेजी। मूल्य १)

'हिन्दू' नामक छोटे से गुटके के ग्रन्थकार श्री मैथिलीशरण गुप्त हिन्दी कवियों में से वर्त्तमान लब्धप्रतिष्ठ, जीवित-जागृत कवि हैं। जो लोग साहित्य–ग्रन्थों को केवल अपनी वासना-लोलुप रसना से श्रृङ्गार, वीर और करुण रस के चसके लेने के लिए पढ़ते और उसी में अपने रस को परिपूर्ण कृतकृत्य हुआ मानते हैं, उनके लिए तो श्री मैथिलीशरणजी की यह कवितामय 'हिन्दू' कृति प्रायः नीरस और व्यर्थ प्रतीत होगी। क्योंकि 'हिन्दू' कोई रसीली कथा-कौतुक की कविता नहीं है। हमने इस पुस्तक के 'श्री' से 'ओ३म्' तक का पाठ किया। हमने उसमें भी वही वस्तु प्राप्त की, जो लेखक ने स्वयं भूमिका में लिख दी है—"न तो इनमें आख्यानमूलक रामायण आदि महा–काव्यों का अनुकरण है, और न बिहारी-सतसई आदि कोष-काव्यों का। हम्मीरहठ आदि खण्ड–काव्य और कविप्रिया एवं काव्य–निर्णय आदि रीति-ग्रन्थों की श्रेणी में भी यह नहीं रक्खी जा सकती। (भू० पृ० ३२) सारांश, काव्यों की पंक्ति में बैठने का इन्हें कोई अधिकार नहीं।" तो फिर यह 'हिन्दू' कविता क्या है? गुप्तजी के शब्दों में यह पुस्तक 'भगवद्गीता के समान एक आदर्श पर अवलम्बित', बढ़ी हुई कवि-कल्पना है। परन्तु हमें इससे भी कुछ अधिक कहना है। इसमें सन्देह नहीं कि श्री मैथिलीशरणजी सिद्धहस्त और सुअभ्यस्त कवि हैं। उन की लेखनी से छन्दोबद्ध विचारों का गुँथ-गुँथ कर निकलना कोई आश्चर्य-जनक बात नहीं। और केवल कवि की लेखनी मात्र से वाक्यों और पदों का गुँथ-गुँथ कर निकल आना रचना को कविता नाम दे देने में कारण नहीं हो सकता। तो भी सहृदय लेखनी से और भी विशेष ओज-पूर्वक लिखी गई यह पुस्तक कवि की प्रतिभा के विकास का एक अनोखा नमूना है। लगन से पढ़बे वाले के लिए यह दो घण्टे का पारायण-मात्र है, परन्तु इतने समय में ही 'गुप्तजी' पाठक को भारतीय-उन्नति पर्वतों के कितने ही शिखरों पर चढ़ा-चढ़ा कर बार-बार खोहों-कन्दराओं मे उतार देते और नाना प्रकार के भावों से पूर्ण सरस मन्द-मन्द पवनों का आस्वादन भी करा देते हैं।

इसके अतिरिक्त सबसे अधिक विशेष बात हमने यह पाई है कि हिन्दू जाति के उन्नति और गौरवपूर्ण दृश्यों के साथ-साथ हिन्दू जाति के अछूतपन के अधःपतन के दृश्यों को भी दर्शाया है और रूढ़ियों पर मरनेवाले कूढ़मग्ज़ों को बड़ी युक्तिपूर्ण रीति से सुधार के मार्ग पर लाने का प्रयत्न किया है। सम्भव है कि गुप्तजी के धार्मिक सिद्धान्त-विषयक निजू विचारों से बहुतों की सहमति न भी हो, तो भी जो व्यापक-भाव समस्त पुस्तक में है उसकी हम प्रशंसा किये बिना नहीं रह सकते। एक और विशेष बात जो हमने गुप्तजी की लेखनी में पाई, वह 'आर्यत्व' का प्रेम है। इस पुस्तक पर हम महर्षि दयानन्द के विचारों की गहरी छाप पाते हैं। 'आर्य' शब्द, आर्य सभ्यता और 'आर्य' होने के गौरव को अनुभव करके कवि वर्त्तमान की साम्प्रदायिक रूढ़ियों से सर्वथा ऊपर हो गया

है। प्रायः कवि ने हिन्दुओं को बीसियों जगह 'आर्य' शब्द से ही सम्बोधित किया है। जैसे—

'याद करो अपने को आर्य ! सत्य करो सपने को आर्य!'
(पृ० ६)

महाराष्ट्र संस्थापन कार्य, किया तुम्हीं ने था कल आर्य !
(पृ० १७)

हम सब हिन्दू हम सब आर्य
और विश्व को आर्य बना लें यही हमारा कार्य !
(पृ० २३३) इत्यादि।

गुप्तजी ने पुस्तक 'श्री' 'श्रीगणेशाय नमः' से प्रारम्भ करके 'हरिः ओ३म्' पर समाप्त की है, परिशिष्ट गीतों में 'राम कृष्ण', 'हर-हर महादेव', 'भगवती भवानी', 'महावीर की जय' आदि हिन्दू देवों की प्रशस्तियाँ भी रक्खी हैं और साथ ही बड़ी मर्मज्ञता से लिख दिया है—

'उड़े ओ३म् का झण्डा एक,जुड़ें जहां हम सब सविवेक।'
(पृ० ३३१)

इसके अतिरिक्त हम गुप्तजी के कई भ्रामक-स्थलों का भी उल्लेख करते हैं। आप लिखते हैं—'न तो श्रेष्ठ है सब प्राचीन, और निकृष्ट न सभी नवीन। (पृ० २५८) यहाँ गुप्तजी ने 'पुराणमित्येत्र नसाधु सर्वं न चापि सर्वं नव मित्यवद्यम्' इस कालिदास की उक्ति का अनुवाद किया है। परन्तु क्या कदाचित चौका को गुप्तजी ने प्राचीन और हेय समझा है और मेज़ कुर्सी के डिनर को नवीन कह कर उसे चलाने की सम्मति दी है? आपने वर्णों के उपभेद मेट कर कच्ची-पक्की के भेद को भी मेटने का उत्तम विचार रक्खा है; परन्तु तो भी आप व्याकरण के आचार्य पाणिनी के पारिभाषिक शब्दों का श्लेष लगा कर 'सवर्ण सन्धि' तक ही आ अटक गये।

गुप्तजी ने शास्त्रों की इस पुस्तक में बड़ी गत बनाई है। आप लिखते हैं—

'शास्त्र अखिल अर्थों के मूल,व्याख्या है बिजबुद्ध्यनुकूल।
जो करना हो कर लो सिद्ध, वह हो चाहे स्वयं निषिद्ध।
शास्त्र तुम्हारे लिए अशेष, बनो न तुम उनके बलिमेष।
जितने भी हैं शास्त्र ग्रन्थ, दिखलाते हैं केवल पन्थ।'
(पृ० २४६)

यदि शास्त्रों को इसी प्रकार पन्थग्रन्थ या भवानी थैला या मोम की नाक मानना था, तो सचमुच हिन्दू शास्त्रों की बड़ी दुर्दशा है। आपकी सम्मति में शास्त्र युक्ति विरुद्ध हैं, क्योंकि, कविजी के शब्दों में,—

'किस मुँह से शास्त्रों की ओट,लेकर सहें युक्ति की चोट!

अच्छा होता कि गुप्तजी यहाँ 'शास्त्र' शब्द न कह 'ढोंग-शास्त्र' कहते।

कई स्थानों पर गुप्तजी हिन्दू जाति को रूढ़ि से निशा चाहते और उसके लिए बड़े बड़े तर्क लगाते हैं; परन्तु स्थानों पर गुप्तजी का तर्क शिलाओं में टकरा कर हो जाता हैं। आप लिखते हैं—

'रामकृष्ण के पावन नाम, गंगा तुलसी सालगराम।
किन पतितों को सोचो मित्र, कर सकते हैं नहीं पवित्र।'

एक यह आक्षेप पाठकों का सदा बना रहेगा सामान्यतः भाषा की दृष्टि से यह पुस्तक अतिसरल होनी चाहिए थी, परन्तु गुप्तजी ने अपनी कविता में के क्लिष्ट शब्दों से भाषा को कुछ कृत्रिम बना दिया है। होता कि उनको सरल रूप में रक्खा जाता। गुप्तजी ने कविता में कहीं कहीं हास्यरस का भी उत्तम नमूना दि है। पुस्तक अधिकांश में उपादेय है, परन्तु गीता के पथ-प्रदर्शक तत्त्वज्ञान-पूर्ण दीपक-ग्रन्थ बनने के लिए इस 'हिन्दू' को बहुतसे जन्म लेने की आवश्यकता है।

जयदेव विद्यालं

त्रिपथगा

लेखक-श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त। प्रकाशक-साहित्य चिरगांव(झांसी) पृष्ठ-संख्या १७५। कागज़-छपाई उ०

गुप्तजी उन प्राचीन कविरत्नों में से हैं जिनकी द्वारा हिंदी के काव्य-जगत् में नवीन भाव, भाषा और का अविर्भाव हुआ है। जिन दिनों सर्व प्रथम "भारत-भारती" प्रकाशित हुई, तब हिन्दी-संसार में धूम मचगई थी। उसी समय से हम बराबर देख रहे आप अतीत-भारत के गौरव की याद दिलाते हुए उस आदर्श तक पहुँचने के लिए भारतीय जनता को धन का संदेश सुनाते आये हैं। "दंडिनः पदूलालि

आपकी रचनाओं में स्थान-स्थान पर उक्ति का चमत्कार एवं माधुर्य परिलक्षित होता है। 'त्रिपथगा' में आपने अपने उसी ढंग पर बक-संहार तथा पाण्डवों के अज्ञातवास के समय बन में कौरवों के जाने और गंधर्वों द्वारा बांध लिये जाने पर पाण्डवों के प्रयत्न से छुटकारा पाने (वन-वैभव) एवं विराट् पुरी में पाण्डव-पत्नी द्रौपदी के सैरन्ध्री (दासी) रूप में जयद्रथ द्वारा अपमानित होने तथा अंत में महाबली भीम द्वारा उस पापात्मा का वध किये जाने विषयक तीन-पद्य-कथानकों का संग्रह किया है। ये तीनों "सरस्वती" में निकल भी चुके हैं। कथायें पुरातन होने पर भी वर्णनशैली इतनी मनोरम और आकर्षक है कि बिना दो-तीन बार पढ़े जी नहीं भरता। इसी प्रकार इनमें नीति के उपदेशों की झलक भी स्थान-स्थान पर देखने को मिलती हैं। यथा, बक-संहार में—

"पर मरण क्या उसका भला,—
तुष-तुल्य जो धीरे जला ?
उसकी अपेक्षा भभक जाना ठीक है।
है तेज तो उसमें तनिक,
चकचौंध होती है क्षणिक !"

इसी प्रकार "वन-वैभव" में युधिष्ठिर के मुख से कहलाया है—

क्रूर कौरव अन्यायी हैं,
हमारे फिर भी भाई हैं,—
जहां तक है आपस की आँच, वहाँ तक वे सौ हैं हम पाँच।
किंतु यदि करे दूसरा जाँच, गिने तो हमें एक-सौ-पाँच ॥

ऐसेही विराट नरेश मत्स्यराज को सम्बोधन करके सैरन्ध्री कहती है:—

"तुम में यदि सामर्थ्य नहीं है अब शासन का,
तो क्यों करते नहीं त्याग तुम राजासन का ?
करने में यदि दमन दुर्जनों का डरते हो,
तो छूकर क्यों राजदंड दूषित करते हो ?
ऐसे निजपद का स्वांग भी, भलीभांति चलता नहीं;
अधिकार-रहित इस छत्र का, भार तुम्हें खलता नहीं ?"

सारांश, यह कृति गुप्तजी की अन्य कृतियों की ही तरह पठनीय एवं समादरणीय हुई है। तीनों कथायें अलग अलग भी छह-छह आने में मिलती हैं। मूल्य कुछ अधिक रखा गया है।

ब्रह्मचर्य-साधन

लेखक—श्रीस्वामी निगमानन्दजी सरस्वती, श्री दक्षिण बंगाल सारस्वत मठ, हाली शहर (चौबीस पर्गना) बंगाल से प्रकाशित। पृष्ठ संख्या ९४। मूल्य ।।) आने।

यद्यपि ब्रह्मचर्य-पालन की आवश्यकता और उसका महत्व भारतवासियों के लिए कोई नया विषय नहीं है; किंतु इस समय देश और समाज की परिस्थिति में ऐसी कुछ विकृति उत्पन्न हो गई है कि किसी भी सामाजिक या धार्मिक नियम का समुचित रूप से पालन नहीं होता। इसी कारण मानव-समाज की शारीरिक और मानसिक स्थिति प्रति दिन शोचनीय होती जा रही है। ऐसी दशा में ब्रह्मचर्य-पालन के लिए कोरी व्याख्यानबाज़ी से उतना लाभ नहीं पहुँच सकता, जितना कि इस विषय के व्यावहारिक उपायों का जन-साधारण में प्रचार करने से। इसीलिए इन दिनों हिन्दी-संसार में कुछ मनस्वी लेखकों ने ब्रह्मचर्य पर नये ढंग से प्रकाश डालने वाला साहित्य निर्माण करना आरंभ किया है। किंतु प्रस्तुत पुस्तक इस विषय के साहित्य में अपना विशेष स्थान रखती है; क्योंकि यह एक योगी महात्मा द्वारा लिखी गई है। योग-विद्या सीखने के लिए ब्रह्मचर्य का पालन अनिवार्य होता है; अतएव इसमें जो कुछ लिखा गया है, वह सब व्यावहारिक एवं अनुभव-सिद्ध विषय है। इसी कारण एतद्विषयक अन्य पुस्तकों से इस पुस्तक का महत्व अधिक प्रतीत होता है। पुस्तक तीन अध्यायों में विभक्त है। प्रथम अध्याय नियम-पालन का है। इसमें ब्रह्मचर्य की आवश्यकता और उपयोगिता प्रतिपादन करते हुए वे सब अनुभव-सिद्ध नियम बतलाये गये हैं जिनके अनुसार दिनचर्या रखने और आहार-विहार का सेवन करने से मनुष्य ब्रह्मचारी रह सकता है। इसके बाद दूसरा अध्याय साधन-प्रणाली शीर्षक है। इसमें उन शास्त्रीय-सिद्धान्तों का विवेचन किया गया है जो समय-समय पर मनुष्य के व्यवहार में आते रहते हैं, और उन अवसरों पर ब्रह्मचर्य-व्रत की रक्षा के लिए किन किन बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। तीसरा अध्याय 'स्वास्थ्य-रक्षा-विधि शीर्षक' है। क्योंकि पहले दो अध्यायों में प्रधानतः

ब्रह्मचारियों (विद्यार्थियों) को लक्ष्य करके सब बातें लिखी गई हैं; अतएव इस अंतिम अध्याय में गृहस्थियों के लिए आवश्यक ब्रह्मचर्य-पालन के नियम बतलाये गये हैं। किंतु अंतिम अध्याय को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि इससे ब्रह्मचर्य का पालन होने की अपेक्षा कामुकता की ही ओर मनुष्य की चित्तवृत्ति अधिक झुकेगी। अच्छा होता यदि यह दूसरे ढंग पर लिखा जाता ? इस प्रकार यद्यपि यह पुस्तक मनुष्यमात्र के लिए उपयोगी सिद्ध होगी; किंतु साथ ही इसमें जहाँ कई स्थानों पर मांस-भक्षण को ब्रह्मचर्य के लिए बाधक बतलाया गया है, वहीं अन्तिम अध्याय में ऋतुचर्या की व्याख्या करते हुए कहीं मांस का रस, तो कहीं कबूतर का या बकरे का मांस वीर्यवर्धक औषधि के रूप में सेवन करने की सलाह भी दी गई है, यह बात हमारी समझ में नहीं आई।

गो० उ०

चांद का (पत्राङ्क)

सम्पादक श्री पं० नन्दकिशोरजी तिवारी बी०ए०,दि फाइन आर्ट प्रिंटिंग काटेज इलाहबाद, से प्रकाशित पृष्ठ संख्या १६० मूल्य १) रुपया

हिन्दी के उच्चकोटि के मासिक-पत्रों में सबसे अधिक और नये-नये ढंग पर विशेषाङ्क निकालना 'चाँद' की एक प्रधान विशेषता है। प्रस्तुत विशेषाङ्क में अपने नामानुसार पत्रों द्वारा ही प्रत्येक विषय का विवेचन किया गया है। पहले लेख 'पत्र-साहित्य का प्रारंभिक विकास' में हिन्दी या संस्कृत साहित्य को अछूता छोड़ देना,एक प्रकार से संपादक के पर-भाषा-प्रेम का ही परिचय देता है। 'नवीन' जी के काव्यमय पत्र और उत्तर अपने ढंग के अनूठे हुए हैं। सौत, कुल-मर्यादा और पत्र-पुष्प, यही कहानियाँ हमें विशेष सुन्दर प्रतीत हुईं। अन्य कहानियाँ ज़बर्दस्ती की ठूंस-ठांस जान पड़ती हैं। दर्शननगर का दृश्य, हिन्दू लॉ में स्त्रियों का साम्पत्तिक अधिकार, बालक-बालिकाओं की शिक्षा और तुलसीदास विषयक लेख इतने अधिक विवेचनात्मक हो गये हैं कि पढ़ते-पढ़ते जी ऊबने लगता है। हिय-हार, उलहना, व्यथित प्रेयसी को, और विधवा का अपनी सखी को पत्र—ये पद्यात्मक रचनायें भावपूर्ण हैं। एक-एक पंक्ति छोड़ पढ़ने पर द्विअर्थी भाव प्रकट करने वाले पत्र भी लेखकों के परिश्रम के परिचायक हैं। इस अंक में मुख-पृष्ठ के चि सहित पाँच रंगीन चित्र हैं। किन्तु उनमें नल-दमयंती के चित्र अत्यंत साधारण हैं। शकुंतला-पत्र-लेखन नामक चि अवश्य कुछ भावपूर्ण है। मुख-पृष्ठ पर का चित्र सामान्यतःअच्छा है। सांराश,इस अंक में बहुत कुछ साम ऐसी है जो उपयोगी कही सकती है; और इस दृष्टि से अंक उच्च-शिक्षा प्राप्त महिलाओं के काम का होगा। काग़ छपाई आदि सब बढ़िया है। इसके लिए संपादक संचालक बधाई के पात्र हैं।

स्पष्टता

साहित्य-सत्कार

श्री राधेश्याम पुस्कालय, बरेली, के कुछ नाटक

१ वीर अभिमन्यु--ले० श्री राधेश्याम कथावाचक मू०
२ परमभक्त प्रह्लाद „ „ „
३ परिवर्त्तन „ „ „
४ मशरकी हूर „ „ „
५ श्रवण कुमार „ „ „
६ उषा-अनिरुद्ध „ „ „

१ विधवोद्वाहमीमांसा—लेखक और प्रकाशक बदरीदत्त जोशी, प्रेमाश्रम, ताड़ीखेत (रानीखे पृष्ठ-संख्या २८८। मू० १)

२ माधवविलास—(ग्वालियर के राजकवि महा महादजी सिन्धे उर्फ़ पाटिलबाबा आलीजा बहादुर मराठी कविता)—संशोधक व, संपादक व प्रकाशक भास्कर रामचन्द्र भालेराव 'कविदास' उबारीदार (मालवा) पृष्ठ–संख्या १६ + १३९ सजिल्द। मूल्य लिखा

४ बेञ्जमिन फ्रैंकलिन—अनु०—श्री लक्ष्मी माथुर। प्रकाशक—मध्यभारत हिन्दी-साहित्य इन्दौर (मध्यभारत) मिलने का पता—साहित्य झालरापाटन सिटी। मूल्य २॥) रु० सजिल्द ३)

विश्व-दर्शन

अमेरिका का विश्व-शांति का प्रस्ताव

पाठकों को याद होगा कि हमने 'त्यागभूमि' के किसी अंक में अमेरिका के संधि के प्रस्तावों का उल्लेख करते हुए वहां के राष्ट्र-सचिव श्रीयुत किलौग के संधि के प्रस्ताव का ज़िक्र किया था और लिखा था कि अमेरिका सब देशों मे युद्ध को घृणित और अनियमित स्वीकार करने की संधि करना चाहता है। वहीं हमने यह भी बताया था कि फ्रांस उसकी इस योजना को मानने को तैयार नहीं है। आज हम पाठकों को यह बताने का प्रयत्न करेंगे कि उसके लिए क्या-क्या प्रयत्न किये गये और उसका संसार की अन्तर्राष्ट्रीय नीति पर क्या प्रभाव पड़ा।

अमेरिका के प्रस्ताव की मुख्य धारायें ये हैं—

१. सन्धि करने वाले देश अपनी सम्माननीय जनता के नाम पर गंभीरतापूर्वक यह घोषणा करते हैं कि वे अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का निर्णय करने के लिए युद्ध के उपाय को अनुचित दृष्टि से देखते हैं और पारस्परिक सम्बन्ध में राष्ट्रीय नीति के रूप में (as an instrument of national policy) युद्ध की नीति परित्याग करते हैं।

२. सन्धि करने वाले देश इस बात पर सहमत हैं कि किसी भी प्रकार के विवादों या झगड़ों का, जो आपस में होते हों, निर्णय करने में शान्त उपायों के अतिरिक्त दूसरे उपाय नहीं बर्ते जावेंगे।

अमेरिका के राष्ट्र-सचिव श्रीयुत किलौग ने सन्धि का यह प्रस्ताव इंग्लैण्ड, फ्रांस, इटली, जर्मनी और जापान की सरकारों के पास भेजा। भिन्न-भिन्न देशों की सरकारों ने इसका भिन्न-भिन्न प्रकार से स्वागत किया। जर्मनी ने इस प्रस्ताव पर सबसे पहले हस्ताक्षर कर दिये। जर्मनी की इस स्वीकृति से यह प्रस्ताव अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति में महत्व की चीज़ होगया। जर्मनी ने इस प्रस्ताव पर सबसे पहले हस्ताक्षर किये हैं, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। इस सम्बन्ध में विचार करता हुआ न्यूयार्क का 'वर्ल्ड' लिखता है कि "यह स्वाभाविक है कि जर्मनी इस प्रस्ताव को सबसे पूर्व स्वीकार करे। फ्रांस की तरह उसके पास न तो सुविशाल सैनिक शक्ति है, न इंग्लैण्ड की तरह उसके पास उपनिवेश हैं, और न इटली की तरह वह साम्राज्य-स्थापना का स्वप्न देखता है। किलौग का प्रस्ताव स्वीकार करने से वह किसी ऐसी चीज़ को नहीं छोड़ता, जिसे वह पहले छोड़ न चुका हो।······शस्त्र हीन और सैनिक शक्तियों के बीच घिरा हुआ जर्मनी अपनी अभिलाषाओं की पूर्ति के लिए युद्ध के विचार को पहले ही छोड़ चुका है। उसका विचार है कि उसका उक्त प्रस्ताव पर हस्ताक्षर करना यूरोप में उसकी अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति को अधिक दृढ़ कर देगा।" वस्तुतः है भी यही बात, वह गत युद्ध के कारण इतना निर्बल होगया है कि अब युद्ध करना उसे अभीष्ट नहीं है।

इटली और जापान भी अमेरिका के प्रस्ताव से सहमत ही होंगे, ऐसा दीखता है। इटली तो अमेरिका की आर्थिक सदिच्छा (Financial goodwill) पर ही निर्भर है, वह कैसे अमेरिका के प्रस्ताव को ठुकरा सकता है ? परन्तु हस्ताक्षर करने से मुसोलिनी की महत्त्वाकांक्षा में कोई बाधा नहीं आयगी, यह वह जानता है, क्योंकि इस प्रस्ताव का क्रियात्मक मूल्य कुछ नहीं है। बहुत समय तक विचार करने के बाद इंग्लैण्ड ने भी अमेरिका को स्वीकृति का वचन

दे दिया है। हाँ स्वीकृत करने से पूर्व उसने किलौग से यह व्याख्या जान ली है कि आत्म-रक्षा के लिए युद्ध की रुकावट इसमें नहीं है। जब तक इंग्लैंड ने इसे स्वीकृत नहीं किया था, तब तक अमेरिका के प्रस्ताव ने बहुत अधिक महत्त्व प्राप्त नहीं किया था। इंग्लैंड ने यह प्रस्ताव क्यों स्वीकार किया, इसमें कई रहस्य हैं—इंग्लैंड और अमेरिका में मनोमालिन्य पैदा हो चुका है और इसमें इंग्लैंड को ही अधिक भय है। 'रिव्यू आफ़ रिव्यूज़' के संपादक श्रीयुत विकहम स्टीड लिखते हैं कि "आगामी कुछ वर्षों में इंग्लैंड को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा, जिनका सुलझना हमारे और अमेरिका के पारस्परिक संबन्ध पर निर्भर है। १९३१ में जेनेवा की सामुद्रिक परिषद् के कारण उत्पन्न हुई असंतोषजनक स्थिति का सामना करना पड़ेगा। यदि उस समय तक अमेरिका से हमारा अच्छा सम्बन्ध न हुआ तो वहाँ की 'बिग नेवी पार्टी' (जो सामुद्रिक शक्ति के बढ़ाने के पक्ष में है) के कारण सामुद्रिक प्रतिस्पर्धा अवश्यम्भावी है और इस प्रतिस्पर्धा की आड़ में सामुद्रिक नियम (Maritime law) या समुद्रों की स्वतन्त्रता (The Freedom of the seas) के प्रश्न के रूप में एक नया आंदोलन खड़ा हो जायगा। इसी तरह युद्ध की क्षतिपूर्ति तथा ऋण संबन्धी प्रश्न भी उपस्थित हो जायंगे, जिनसे अमेरिका और इंग्लैंड में परस्पर वैमनस्य उत्पन्न होगा। आज इंग्लैंड चाहता है कि अमेरिका किसी तरह राष्ट्रसंघ में विशेष रुचि लेने लगे। इस प्रस्ताव के स्वीकृत होने के बाद ये सब कठिनतायें किसी अंश तक दूर हो जायँगी।"

वस्तुत: है भी यह ठीक। अमेरिका का उठाया हुआ समुद्रों की स्वतन्त्रता का प्रश्न इंग्लैंड को भयभीत कर रहा हैं। इंग्लैंड के लैफ़्टिनंट कमांडर कैनवर्दी और जार्ज यंग ने इस प्रश्न पर विचार करते हुए लिखा है कि समुद्रों पर अधिकार रखने के लिए या तो इंग्लैंड को अमेरिका से युद्ध ठानना पड़ेगा या दोनों राष्ट्रों को समुद्रों की स्वतंत्रता की गारण्टी देनी होगी। पहली अवस्था में या तो हमें शांतिपूर्वक युद्ध से हट जाना पड़ेगा, जैसा कि हमने डचों को हराया था, या हमें युद्ध करना पड़ेगा। इसी की संभावना अधिक है। इसलिए सबसे अच्छा यह है कि इस समय हमें अमेरिका का उक्त प्रस्ताव स्वीकार कर लेना चाहिए। एक अंग्रेज़ राजनीतिज्ञ ने कहा था कि संसार में केवल दो ही जातियों–अमेरिका और अंग्रेज़ों के लिए ही जगह है। इन सब बातों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि अंग्रेज़ों ने अमेरिका से भयभीत होकर ही यह प्रस्ताव स्वीकृत किया है।

परन्तु अभी तक फ़्रांस उसी बात पर तुला हुआ है। हम 'त्यागभूमि' के पूर्वोक्त अंक में लिख चुके हैं कि फ़्रांस के वैदेशिक मन्त्री श्रीयुत ब्रियान्द ने उक्त प्रस्ताव का विरोध किया था। इसके विरोध में कहते हैं कि केवल पांच-छः बड़े राष्ट्रों के सन्धि कर देने से पूर्ण शान्ति स्थापित नहीं हो सकती। छोटे-छोटे राष्ट्रों को भी बुलाना आवश्यक है। यदि युद्ध को बन्द ही करना हो तो यह सभी राष्ट्रों पर लागू होनी चाहिए। आधे यूरोप और आधे एशिया में व्याप्त रूस से तो इस विषय में पूछा ही नहीं गया। इस प्रस्ताव से आत्म-रक्षार्थ भी युद्ध करने का अधिकार नहीं रह जाता। सबसे बड़ी बात यह कि आज तक जो सन्धियां भिन्न-भिन्न राष्ट्रों में राष्ट्रसंघ की रू से या स्वतन्त्र तौर पर हो चुकी हैं उनका इस प्रस्ताव से भंग होता है। वे सन्धियां भी स्वीकृत की जानी चाहिएँ। वस्तुतः बात यह है कि फ़्रांस ने जैकोस्लो किया, जुगोस्लेविया और रूमानिया आदि से इस आशय की सन्धि की हुई है कि यदि उनमें से किसी पर कोई अन्य राष्ट्र आक्रमण करे तो फ़्रांस उनकी सहायता करेगा और यदि फ़्रांस पर कोई देश आक्रमण करे, तो वे देश फ़्रांस की मदद करेंगे। उपर्युक्त प्रस्ताव स्वीकृत करने से उनकी उपर्युक्त सन्धियां टूट जावेंगी। श्री ब्रियान्द ने यह भी कहा है कि यदि उक्त प्रस्ताव को स्वीकृत करने वाला कोई भी राष्ट्र इसके विपरीत आचरण करे तो अन्य सब राष्ट्रों को भी प्रस्ताव के बन्धन से मुक्त कर देना चाहिए।

इस तरह फ़्रांस ने अमेरिका का प्रस्ताव स्वीकृत नहीं किया। श्रीयुत किलौग ने आक्षेपों का उत्तर देते हुए कहा कि आत्म-रक्षार्थ युद्ध करने के अधिकार से यह प्रस्ताव किसी को वञ्चित नहीं करता और न किसी राष्ट्र के प्रस्ताव को भंग करता है। राष्ट्रसंघ पर युद्ध करने के अधिकार से ही वंचित करता है। राष्ट्रसंघ का सदस्य होता हुआ भी यदि फ़्रांस अमेरिका से सब प्रकार के युद्धों को छोड़ने की संधि करने में कोई हानि नहीं समझ

संघके कई सदस्यों के परस्पर उक्त आशय की संधि करने में कोई हानि नहीं है। फ़्रांस की तरफ़ से इसका संतोषप्रद उत्तर न मिलने पर अधिक प्रतीक्षा न कर किलौग ने उक्त प्रस्ताव इंग्लैण्ड जर्मनी, इटली और जापान के पास भेज दिया। फ़्रांस ने इसे अपना अपमान समझा और वहां के पत्रों का वातावरण क्षुब्ध होगया। इस रोष के कारण फ़्रांस के प्रधान मन्त्री श्री पोआंकारे जल्दबाज़ी में एक अदूरदर्शिता-पूर्ण कार्य कर बैठे। उन्होंने भी अमेरिका के मुक़ाबले एक शान्तियोजना बना कर इटली, इंग्लैण्ड, जर्मनी, जापान और अमेरिका के पास भेज दी। इस योजना में अमेरिका की योजना से यही भेद था कि इसमें वर्तमान सन्धियों की उपेक्षा नहीं की गई थी और आत्मरक्षार्थ युद्ध करने का अधिकार खुले शब्दों में दिया गया था। इसी तरह एक राष्ट्र के संधि तोड़ने पर और राष्ट्रों को भी स्वतन्त्र होने का अधिकार दिया गया है!

उक्त योजना में युद्ध की सम्भावना रक्खी गई है। इसका स्वागत किसी देश ने नहीं किया। यहाँ तक कि फ़्रांस के कई अख़बारों ने भी इस जल्दबाज़ी को अनुचित समझा। लन्दन के 'टाइम्स' ने लिखा कि फ़्रांस यूरोप में सबसे अधिक दूरदर्शी है। दूरदर्शिता उसका बड़ा भारी गुण है। परन्तु यही उसका दोष भी है।

वस्तुतः श्रीयुत किलौग भी फ़्रांस की योजना से सहमत हैं, जैसा कि उनके प्रस्ताव की व्याख्या से पता लगता है, परन्तु उस आशय के शब्द उसमें रखने को तैयार नहीं। दोनों में अधिक भेद भी नहीं है। बहुत सम्भव है कि फ़्रांस अपने को अकेला पाकर इस योजना पर हस्ताक्षर कर दे। गत वर्ष के राष्ट्रसंघ के इस आशय के प्रस्ताव से कि आक्रमणात्मक सब युद्ध बन्द कर दिये जायें और विवाद के निर्णय के लिए शान्तियुक्त उपायों को काम में लाया जाय, अमेरिकन प्रस्ताव में अधिक भेद नहीं है।

'रिव्यू आफ़् रिव्यूज़' के सम्पादक किलौग के प्रस्ताव में निम्नलिखित लाभ देखते हैं—(१) यह प्रस्ताव राष्ट्रों के दिलों से युद्ध का विचार दूर करता है। (२) इसकी स्वीकृति से यूरोप और अमेरिका में अच्छा सम्बन्ध स्थापित कर देगी। (३) अमेरिका का यह भाव दूर हो जायगा कि यूरोप रक्त-प्रिय है। (४) युद्ध की क्षतिपूर्ति के तरीक़ों में अमेरिका कुछ रियायत करेगा। (५) सामुद्रिक प्रतिस्पर्धा बन्द हो जायगी। इत्यादि

परन्तु क्या उपर्युक्त प्रयत्नों से संसार में शान्ति स्थापित हो सकती है? दूरदर्शी राजनीतिज्ञ इन प्रयत्नों को कोई महत्व नहीं देते। उनकी दृष्टि में ये प्रयत्न निष्फल हैं; क्योंकि शान्ति की बातें करते हुए भी उन देशों के दिल साफ़ नहीं। श्रीयुत एच. एन. ब्रेल्सफ़ोर्ड ने लिखा है कि इस प्रस्ताव के प्रस्तावक श्रीयुत किलौग इसकी योजना बनाते समय अमेरिका के जंगी जहाज़ों के निकारागुआ पर चढ़ाई करने का समर्थन कर रहे थे। किलौग की अपनी सरकार अपने क्रूज़रों की संख्या तेज़ी से बढ़ा रही है। इधर आत्मरक्षा के बहाने जो युद्ध का अधिकार दिया गया है, उसकी पोल खोलते हुए वही आगे लिखते हैं कि आत्मरक्षा क्या है—अपने न्याय्य स्वार्थ (जिसे वह न्याय्य समझता हो) की रक्षा करना ही आत्मरक्षा है। अमेरिका एक दूसरी अन्तःसामुद्रिक नहर के रास्ते की रक्षा, जो कि उसका स्वार्थ है, के लिए निकारागुआ में सेना भेज रहा है। अमेरिका का रुपया भिन्न-भिन्न देशों में लगा हुआ है, अपने रुपये की रक्षा के बहाने वह युद्ध कर सकता है। इसी बहाने अंग्रेज़ मिश्र पर, संयुक्तराष्ट्र मध्य अमेरिका पर, जापान चीन और मंचूरिया पर अधिकार कर सकता है। दूसरी धारा पर विचार करते हुए वही आगे लिखते हैं कि इसमें विवाद-निर्णय का कोई निश्चित उपाय नहीं बताया गया है।

वस्तुतः यदि शान्ति स्थापित करनी है, तो युद्ध की नीति को छोड़ने न छोड़ने का विचार छोड़ कर युद्ध के वास्तविक कारणों पर विचार करना चाहिए। महत्वाकांक्षा, सारे संसार का रुपया लूट कर अपने को समृद्ध करने की इच्छा ही इन युद्धों का वास्तविक कारण है। संसार के अच्छे उपजाऊ और खनिबहुल देशों के लिए ही युद्ध होते हैं। इसीलिए आज निर्बल राष्ट्रों को सताया जा रहा है। उनको पूर्ण स्वतन्त्र कर देना और निर्बलों के अधिकारों की रक्षा करना ही संधि का सच्चा प्रयत्न है।

इस शान्ति के प्रहसन में एक बात बहुत विचित्र हुई कि भारतीय सरकार ने भी भारत की ओर से इस प्रस्ताव

से सहानुभूति दिखाई है। क्या इससे भारत को अपनी स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए, यदि युद्ध आवश्यक हुआ, तो युद्ध करने का अधिकार नहीं है ?

रूस की हवाई शक्ति

वर्तमान अशान्त स्थिति में जब इङ्गलैएड रूस को नष्ट करने के लिए तरह-तरह के मंसूबे बांध रहा है, रूस के लिए भी अपनी सैनिक शक्ति बढ़ाना अनिवार्य हो गया है। कुछ वर्षों से उसने हवाई जहाज़ों की ताक़त को बढ़ाने के लिए बहुत वेग से प्रयत्न किया है। उसने हवाई मशीनों के कल-पुर्ज़े बहुत तादाद में जर्मनी, हालैण्ड और इटली से ख़रीदे हैं। उसने अपने हवाई रास्तों को बहुत बढ़ा लिया है।

नई हवाई शक्ति बढ़ाने के लिए एक निश्चित राशि सोवियट सरकार देती है और शेष धन वहां की जनता देती है। वहां श्रीयुत एम० रिकौफ़ की अध्यक्षता में हवाई जहाज़ी बेड़े के मित्रों की सभा (The Society of Freinds of the Air Fleet) स्थापित हुई है। इसके सदस्य काफ़ी मात्रा में चन्दा देते हैं। गत वर्ष के अन्त में इसके सदस्य २०,००,००० थे। इसकी शाखायें सम्पूर्ण रूस में फैली हुई हैं। जनता को वहां यह अनुभव कराया जाता है कि हवाई बेड़ा उनकी अपनी मिलकियत है, इसलिए वह इसके लिए धन भी देती है। उसने १,२०,००,००० से अधिक रुपये दे भी दिये हैं। इस सभा की ओर से भी बहुत से जहाज़ बनते हैं।

वस्तुतः लन्दन से एमस्टर्डन, बर्लिन, मास्को, किव, उडेसा और काकेशस तक का सम्पूर्ण हवाई रास्ता (Acrial system) रूस और जर्मनी की कम्पनियों के अधीन हैं। काकेशस से बाकू और वहां से तेहरान तक का रास्ता भी रूस की हवाई कम्पनी के हाथ में है। १९२२ के फ़रवरी में फ़ारस की सरकार ने रूस की जंकर कम्पनी को पांच साल तक अपनी हवाई डाक के लेजाने का ठेका दिया है। इसी कम्पनी ने तुर्किस्ताक में ताशकन्द से व्येरनी तक का मार्ग ले लिया है और बुखारा खीवा के बीच में जहाज़ चलाती है। रूस ने अभी १२हवाई जहाज़ अफ़ग़ानिस्तान को दिये हैं, जिनके कर्मचारी अधिकतर रूसी और ज़र्मन है। शेरपुर, जलालाबाद, कन्दहार, हैबक और चरिकार में हवाई
स्थापित किये गये हैं। इन पर रूस और जर्मनी का
देख कर अंग्रेज़ सरकार बहुत चिन्तित हो रही है।

गतवर्ष उपर्युक्त मित्रसभा ने मास्को से पेकिंग तक
हवाई रास्ता तैयार कर लिया है। बहुत संभव है कि
साइबीरिया पार कर मंगोलिया, मंचूरिया और
तक हवाई रास्ते बनवावे।

यह प्रक्रम केवल व्यापारिक उन्नति के लिए हो,
असंभव है। इन रास्तों और हवाई जहाज़ों से युद्ध
अवसर पर बड़ी भारी सहायता मिलेगी, यह निश्चित है।

अफ़ग़ानिस्तान पर अंग्रेज़

अमीर अफ़ग़ानिस्तान की महत्त्वपूर्ण यात्रा समाप्त
को है। इस यात्रा के महत्त्व तथा विशेष राजनैतिक
नाओं पर हम इस स्तंभ में कई बार लिख चुके हैं। रूस
वह टर्की होते हुए फ़ारस पहुँचे। टर्की और फ़ारस की
कारों से भी उन्होंने व्यापारिक और राजनैतिक
स्थापित की हैं। यदि अमीर की इस संपूर्ण यात्रा से
को भय उत्पन्न हुआ है, तो इंग्लैंड को। इस यात्रा
द्वारा अफ़ग़ानिस्तान की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति बहुत
बढ़ गई है, इसमें सन्देह नहीं। अमीर ने सब देशों में
कर अपनी स्थिति और महत्त्व को भी पहचान लिया है
इटली, जर्मनी, रूस, टर्की और फ़ारस से विशेष मित्रता
संबन्ध स्थापित किये हैं। अफ़ग़ानिस्तान को किस
उन्नत किया जाय और उसमें किस देश से क्या
मिल सकती है,इसका अमीर ने पूरा ख़याल रक्खा है।
का अभिप्राय यह कि अमीर की यह यात्रा राजनैतिक
से बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुई है। उसकी इतनी उन्नति
कर ही अंग्रेज़ उसे दबाने की कोशिश में हैं और
वे सीमांत प्रांत में सैनिक तैयारियां कर रहे हैं,
निर्देश हम गतांक में कर चुके हैं। नवीन आये हुए
से पता लगा है कि ये तैयारियाँ उससे बहुत
जिनका हमने निर्देश किया था। अफ़ग़ान सीमा पर
क़िलेबन्दियों की तैयारियाँ हो रही हैं। पहला अड्डा
में है, जहाँ २५००० सैनिक, तीन हवाई दस्ते और

की सामग्री विद्यमान है। एक सहायक अड्डा कोहाट में है, जहाँ दस हज़ार सैनिक तथा एक हवाई दस्ता मौजूद है। अड्डा रज़मक में है, जहाँ २५००० सुव्यवस्थित सेना नात है। यहाँ से ग़ज़नी के अफ़ग़ान सैनिक अड्डे में जा सकता है और अन्तिम अड्डा क्वेटा में है। यहाँ र का एक बड़ा हवाई जहाज़ों का अड्डा है। इसके रिक्त रावलपिंडी में और २५,०० सैनिक रक्खे गये हैं। लाख सैनिक और भी रक्खे जावेंगे।

हमने गतांक में यह भी लिखा था कि इससे अफ़ग़ानिस्तान के डरने का कोई कारण नहीं है। अफ़ानिस्तग़ान सहायता के लिए टर्की और फ़ारस के अतिरिक्त शक्ति- रूस है, जो अपनी सैनिक शक्ति—विशेषतः हवाई सेना बढ़ाने की वेग से तैयारी कर रहा है। इन सब शक्तियों सहायता पाकर अफ़ग़ानिस्तान के पास काफ़ी ताक़त हो गी। फिर भारतवर्ष—राष्ट्रीय भारत तथा मुस्लिम भारत तरफ़ से अंग्रेज़ों के सामने काफ़ी बाधायें आवेंगी। इस- अंग्रेज़ अफ़गानिस्तान को दबाना जितना सरल सम- हैं, उतना सरल नहीं है। तथापि युद्ध होना अवश्यं- है और शीघ्र ही हमें भारत के सीमान्त पर लड़ाई के मंडराते हुए दीखेंगे।

क्या इस सुअवसर से भारत के राष्ट्रीय नेता कुछ लाभ ने की कोशिश करेंगे ?

न की स्वतन्त्रता

इस मास का सबसे अधिक हर्षप्रद समाचार है चीन ट्रीय दल का पेकिंग पर अधिकार। चांगसोलिन और दल पहले ही उसे छोड़ कर मञ्चूरिया चला गया था। राष्ट्रीय दल का वहां बिना रक्त-पात के अधिकार हो। राष्ट्रीय दल ने सबसे पहले विज्ञप्ति निकाल करविदेशी से यह प्रार्थना की है कि चीन विदेशी राष्ट्रों से सहयोग के लिए सदा तैयार है। वह उनकी मित्रवत् ना से लाभ भी उठायगा। किन्तु आपस में किसी की ग़लतफ़हमी न हो, इसलिए यह आवश्यक है कि सेनायें चीन से बुला ली जावें। इस विज्ञप्ति में यह भी या है कि विदेशी सेनाओं के विदेशियों की रक्षा के बहाने चीन में रहने का परिणाम यह होगा कि चीन यह घोषित कर दे कि विदेशियों का चीन में आना मना है। अब सब सन्धियां नयेरूप से समानता और परस्पर सन्मान की दृष्टि से की जावेगी।

इस विज्ञप्ति का अबतक किसी राष्ट्र ने कोई उत्तर नहीं दिया। बहुत संभव है कि इंग्लैण्ड और जापान दोनों इस विज्ञप्ति को स्वीकार करने से इन्कार कर दें और फिर युद्ध प्रारम्भ हो जाय। यह तो निश्चित सा है कि ये दोनों देश कभी स्वेच्छा से विदेशी सेनायें हटाने पर तैयार न होंगे। चीन ने राष्ट्रीय स्वातंत्र्य पाने के लिए बहुत बाधाओं को दूर किया है, अब उसे केवल बाहरी आक्रमण को नष्ट करना है। हमारा विश्वास है कि चीन इस बाधा पर भी विजय प्राप्त करेगा।

राष्ट्रीयदल ने पेकिंग से नानकिंग में चीन की राजधानी स्थपित की है, क्योंकि वहां राष्ट्रीय दल का प्रभाव अधिक है। इससे चीन की सारी क्रियाओं का केन्द्र नानकिंग हो जायगा। अस्तु।

यह तो निश्चित है कि केवल इस विजय से चीन स्वतन्त्र नहीं होगया और न वहां का शासन शान्तिमय तथा सुव्यवस्थित हो जायगा! बहुत संभव है विदेशी शक्तियां वहां की जनता को राष्ट्रीय सरकार के विरुद्ध द्रोह करने के लिए उभाड़े, ऐसी अवस्था में राष्ट्रीय सरकार को दमन की नीति अख्तियार करनी पड़े। यह भी सम्भव है कि विदेशी शक्तियां चांगसोलिन को ही फिर से उत्साहित करें अथवा वर्तमान राष्ट्रीय दल के नेताओं में से किसी को प्रलोभन देकर अलग करलें। ऐसी अवस्था में चीन के सामने फिर वही बाधायें उपस्थित हो जायंगी। इस समय सबसे अधिक आवश्यक कार्य यह है कि चीन के नेता देश के वैध शासन की स्थापना करें और देश में शान्ति स्थापित करने का यत्न करें। यह मुमकिन है कि आज की अवस्था में लोकतन्त्र के आदर्श सिद्धान्तों का पालन न कर कुछ काल के लिए किसी योग्य व्यक्ति को शासक बना दिया जाय, क्योंकि ऐसे अवसरों पर प्रजातंत्र के लिए काम करना कुछ कठिन ही होता है।

कृष्ण

देश दर्शन

सामान्य वातावरण

देश का वातावरण इस मास पहले से भी अधिक क्षुब्ध और अशान्त है। अभी तक कोई सत्याग्रह बन्द नहीं हुआ। सभी जारी हैं। कानपुर में अतिरिक्त कर न देने का सत्याग्रह ज़ोरों पर है। पटुआखाली का सत्याग्रह जारी है। बारडोली-सत्याग्रह की गम्भीरता बढ़ गई है। मज़दूरों की हड़ताल भी शान्त नहीं हुई। मालवीयजी बम्बई में पूंजीपतियों और मज़दूरों में समझौता कराने के लिए गये थे। उन्होंने कुछ प्रयत्न किया भी। उससे आशा हो चली थी कि अब यह पारस्परिक संग्राम शान्त हो जायगा। कुछ ऐसे समाचार भी मिले थे कि मिल-मालिक समझौता करने के लिए तैयार हैं, परन्तु अब तक कुछ हुआ नहीं। सारी परिस्थिति वैसी ही अशान्त है। कानपुर की एल्गिन मिल के मज़दूरों ने भी हड़ताल की थी, पर अब सन्मानयुक्त समझौता हो गया है। इसी तरह जमशेदपुर में भी कोई शान्ति नहीं। अब तो ऐसा मालूम पड़ता है कि मज़दूरों ने यह निश्चय कर लिया है कि अब एक बार तो पूंजीपतियों को परास्त कर छोड़ेंगे। कारख़ाने के मालिक भी अपनी हठ पर दृढ़ हैं। परस्पर कोई समझौता न होने से देश को करोड़ों रूपयों का नुक़सान हो रहा है। कारख़ानों के इस तरह बंद हो जाने के कारण विदेशी कारख़ानों को अपना माल यहाँ भेजने का सुअवसर मिल गया है। पता नहीं, यह कशमकश कब समाप्त होगी और इसका क्या परिणाम निकलेगा।

इस वर्ष की ईद भी रक्त-पात से खाली नहीं गई। सोफ़्ता, मलिकपुर आदि कई स्थानों पर दंगे हो गये। कई स्थानों पर तो पुलिस और जनता का झगड़ा हुआ और दो एक स्थानों पर हिन्दू-मुस्लिम। परन्तु यह संतोष की बात है कि वे ज्यादा ख़तरनाक नहीं हुए और न उनमें इतनी मारकाट हुई जितनी पुलिस ने जनता पर गोलियाँ चलाई।

इनके अलावा देश में साइमन-कमीशन के बहिष् व सहयोग की फिर चर्चा चली है। सरकार की ओर निरन्तर प्रयत्न होरहा है कि कमीशन के लिए प्राप्त किया जाय। संयुक्तप्रान्त के मन्त्री श्री रायराजेश्वर और ठा० राजेन्द्रसिंह ने जनता की इच्छानुसार साइ कमीशन से सहयोग करने से इन्कार कर दिया था। इसी उन्हें गवर्नर की आज्ञा से मन्त्रिपद से इस्तीफ़ा देना है। उन्होंने आत्मसन्मानपूर्वक अपने इस्तीफ़े दे जो स्वीकृत हो चुके हैं। इधर पञ्जाब कौंसिल ने साइ कमीशन की सहायता देने के लिए एक कमिटी बनाई पञ्जाब के गवर्नर उसके सदस्यों को सरकारी रिपोर्ट के लिए बाधित कर रहे हैं, जिसकी पोल 'पायोनियर' ने दी। इसी तररह और भी कई प्रयत्न हो रहे हैं, परन्तु मुख्य कण्ट्री लीग (Country league) का है। देश के शत्रुओं, राजभक्तों, जी हजूरों, धनी पुरुषों ने मिलकर उक्त नाम की सभा स्थापित की है। नीति दिखाने के लिए दो तीन अंग्रेज़ भी इसके सदस् इसका मुख्य उद्देश्य साइमन-कमीशन से सहयोग कर श्रीयुत मोतीलाल नेहरू ने इसके विषय में कहा है कि एक बड़ा फ़ायदा हो जायगा कि हमें देश के शत्रुओं की सूची मिल जायगी। कांग्रेस को साइमन-कमीशन के बहि के आन्दोलन पर विशेष ज़ोर देना चाहिए।

महामना मालवीय जी की एक विज्ञप्ति पर भी ध्यान खिंचा है। वह १९३० के भीतर भारत में स्वरा पूर्ण उत्तरदायी शासन का अधिकार पाने के सम्ब भारत में एक व्यापक आन्दोलन करने की नयी तैयार कर रहे हैं। इसका उद्देश्य भारत का आर्थिक करना है। मालवीय जी का कहना है, कि उनकी यो १९३० तक स्वराज्य लिया जा सकता है। हम उक्त की बहुत उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे हैं।

र बारडोली

ताङ्क में पाठक बारडोली-सत्याग्रह के सम्बन्ध में बात जान चुके हैं कि सत्याग्रह किन-किन परिस्थितियों मजबूरी में पड़ कर शुरू किया गया था। 'त्यागभूमि' के प्रकाशन के बाद से बारडोली-सत्याग्रह का रूप अधिक भीषण और विषम बन गया है। मदान्ध नौकरशाही पहले से अधिक निरन्तर अत्याचारी और क्रूर बन गई है। उसकी पाशविकता, बर्बरता और पतन का इससे नंगा चित्र बारडोली में इससे पूर्व नहीं देखा गया था। बम्बई प्रान्त की व्यवस्थापिका सभा के अनेक सदस्यों ने सरकार का ध्यान इस ओर आकर्षित किया और इस बात की कोशिश की कि मामला सुलझ जाय, सरकार एक निष्पक्ष जांच कमिटी नियुक्त करदे और वास्तविक स्थिति को जान ले, परन्तु हठी सरकार ने उनकी इस सादी और निर्दोष मांग को भी उनकी अनधिकार चेष्टा समझी। इसके विरोध-स्वरूप बम्बई व्यवस्थापिका सभा के अनेक स्वाभिमानी और न्याय-प्रिय सदस्यों ने इस्तीफ़ा दे दिया। सिंध के मीर मुहम्मद बलूच ने भी अपनी कौंसिल की मेम्बरी से इस्तीफ़ा दे दिया है। वह प्रयत्न कर रहे हैं कि अन्य मुसलमान सदस्य भी त्यागपत्र दे दें। बारडोली के ६९ पटेल तथा १३ पटवारियों ने त्यागपत्र दे दिया है। बारडोली के किसानों पर इस समय जो अत्याचार हो रहा है उन्हें पढ़ कर रोमांच हो आता हैं। पांच-पांच रुपये के लिए उनका पचासों रुपयों का माल जप्त कर लिया जाता है। घर के कपड़े-लत्ते, बरतन तथा मवेशी आदि सब कुछ, जो हाथ पड़ता है, छीन लिया जाता है, उनकी ज़मीनें, जायदाद तथा सम्पत्ति सब छीन ली जा रही है। लोग इन सब अत्याचारों को बड़ी धीरता और वीरता के साथ सह रहे हैं। ज़प्ती और दमन के निकृष्ट कार्य में सरकार को भले आदमियों की सहायता नहीं मिली। अतः उसने पठान गुण्डों को तैनात कर रक्खा है। ये पठान गुण्डे वे हैं जिनको बम्बई से निकालने तथा वहां पर उनके गुण्डेपन को कम करने के लिए बम्बई-सरकार को एक "गुण्डा क़ानून" बनाना पड़ा था! ये लोग वहां पर जैसी बेहयाई तथा नीचता से पेश आ रहे हैं उसे सुन कर खून खौलने लगता है? ये लोग स्त्रियों को घरों में से घसीटते हैं, रास्ते में, सड़क पर, स्त्रियों की ओर मुंह करके पेशाब करने बैठ जाते हैं, कुँए पर पानी भरती हुई स्त्रियों के बीच में नंगे खड़े हो जाते हैं, राह चलती लड़कियों को छेड़ते हैं! यह सब कुछ हो रहा है, हिंसात्मक बनाने के लिए हर प्रकार की उत्तेजना मिल रही है, परन्तु फिर भी लोग शान्त है! वे सच्चे लड़ाके धीर-वीर

श्रीयुत चिम्मनलालजी चिनाय

वैश्य सूरत के रहने वाले हैं, आप बारडोली क़स्बे में के प्रमुख प्रबन्धक थे, इसी अपराध में आपको तथा २० दिन की सख्त सज़ा हुई है। सन् १९२३ आपको दो साल की सख्त सज़ा का दण्ड हुआ था।

सैनिक हैं। वे इस बात को जानते हैं कि यदि हम उत्तेजित हो गये और कहीं कुछ कर बैठे तो सरकार को शान्ति और व्यवस्था के नाम पर अपनी हिन्सात्मक पशुवृति का प्रदर्शन करने का मौक़ा मिल जायगा। रक्त की नदियां बह जायँगी। और इस प्रकार भय और आतंक का साम्राज्य स्थापित करके सरकार इस शान्तिपूर्ण धर्मयुद्ध का अन्त कर देगी। बारडोली के विवेकशील और दूरदर्शी किसान सरकार की मन्शा को समझते हैं, इसीलिए, अपनी इज़्ज़त पर हमला होते हुए देख कर भी वे बदले या हिंसा की भावना से प्ररित नहीं होते। वे जानते हैं कि बारडोली का सत्याग्रह-संग्राम सारे देश का संग्राम है, उसकी जीत और हार सारे देश की हार-जीत है। यही कारण है, देश की भलाई की यही भावना है, जो उत्तेजना मिलने पर भी शान्त बनाये हुए है। धन्य है संयम, धन्य है साहस, और धन्य है यह देश-प्रेम जिसके लिए आदमी अपनी इज़्ज़त पर होते हुए निकृष्टतम प्रहारों को इस धैर्य के साथ सह लेता है!

सीधी ओर तपस्वी रविशंकरजी हैं, इन्हें पांच मास और दस दिन की सज़ा हुई है।

आजकल हिन्दू-मुस्लिम कलह का युग है। सरकार ने उससे लाभ उठाने में भी कोई कसर नहीं रक्खी। हिन्दुओं को मुसलमानों के विरुद्ध उभाड़ने के लिए ही ये पठान गुण्डे यहां पर तैयार किये हैं। अन्यथा सरकार की इतनी फ़ौज और पुलिस कहां गई! यदि देशी फ़ौज और पुलिस से यह काम लेना उचित नहीं था तो सरकार ने फ़ौजी गोरों को क्यों नहीं भेजा? परन्तु गोरों के भेजने से तो उस उद्देश्य की पूर्ति कैसे होती! लेकिन जिस प्रकार लोगों को हिंसा के लिए उत्तेजि करने में सरकार की हा हुई उसी प्रकार हिन्दुओं को मुसलमानों के विरुद्ध उभाड़ने में भी हुई। बार डोली के हिन्दू-मुसलमा सगे भाई और स सैनिकों की भांति कं से कंधा मिला कर लड़ाई को लड़ रहे हैं

युद्ध की बढ़ती भीषणता और सरका बढ़ती हुई बर्बरता ने के अन्दर एक देश हलचल पैदा कर दी गत १२ जून को दे में बारडोली-दिवस या गया, बम्बई में हड़ताल भी हुई। रा अनसारी और मह गांधी ने जनता से के लिए अपील की देश के हर कोने से स्वयं सेवकों ने सत्य के नेता श्री वल्लभ पटेल से बारडोली कर सत्याग्रह करने की अनुमति मांगी है। चारों ग़रीब-अमीर सभी सत्याग्रह के लिए आर्थिक 'सहायता रहे हैं। बड़ी व्यवस्थापिका सभा के सभापति श्री विट्ठल पटेल ने एक हज़ार रुपया मासिक सत्याग्रह की सहायता तब तक देने का निश्चय किया है जब तक कि

सभी सत्याग्रह के लिए आर्थिक सहायता भेज रहे
व्यवस्थापिका सभा के सभापति श्री विट्ठलभाई
ने एक हज़ार मासिक रुपया सत्याग्रह की सहायता के
तब तक देने का निश्चय किया है जब तक कि सत्याग्रह
रहे। पूज्य ला० लाजपतराय ने पांच सौ रुपये की
सत्याग्रह के लिए भेजी है। इस प्रकार अब तक एक
से अधिक की रक़म सत्याग्रह की सहायतार्थ पहुँच चुकी
अभी हाल ही में बम्बई-कौंसिल के सदस्य श्री० मुंशी ने
के गवर्नर साहब से समझौते के लिए पत्र-
ार किया।
महोदय।
में अपनी
चिन्ता
परेशानी
करते
लेकिन वह
यह हैं
सत्या-
कर दें
लगान देने
उनकी
उनकी
पर
होगी।
मानी हैं
ों की
और न्याय पूर्ण मांग के सामने झुकना सरकार
अपमान समझती है। परन्तु वह है घबराई
डा० अन्सारी ने "सेनापति गांधी" को तार
है कि देहली बारडोली के साथ है। सुना है कि आव-
पड़ने पर महात्माजी सत्याग्रह का नेतृत्व ग्रहण
लिए तैयार हैं। इस सत्याग्रह का असर अन्य प्रान्तीय
पर भी पड़ा है। पंजाब के कुछ भाग के किसानों
मारी जाने के कारण सरकार से प्रार्थना की कि
लगान माफ़ कर दिया जाय। पहले तो सरकार ने कुछ आना-कानी करनी चाही, परन्तु लोगों ने सत्याग्रह की धमकी दी। इसलिए सरकार ने वहाँ का लगान माफ़ कर दिया। ठीक ऐसी ही घटना अभी हाल ही में बंगाल में भी घटी है। सरकार यह नहीं चाहती कि ऐसे विकट समय में देश भर में सत्याग्रह शुरू हो जाय। परन्तु वह चाहे या न चाहे, आग तो सुलग ही गई है और सारे देश के किसान बारडोली के सत्याग्रह की ओर टकटकी लगाये देख रहे हैं। वे उसकी हर प्रकार से सहायता करने का प्रयत्न कर रहे हैं। अनेक लोगों को आशंका है कि कहीं यही आग अवध के किसानों में भी न प्रज्वलित हो उठे।

(बाईं ओर से दाहिनी ओर) श्रीयुत शिवानन्द जी और श्री अमृतलाल जी जिन्हें नौ-नौ मास की सख्त कैद हुई है। श्री सन्मुखलाल जी जिन्हें ६ माह की सख्त कैद हुई हैं। ये तीनों सज्जन वालादे के वैश्य जाति के कार्यकर्ता हैं। सबसे अन्त वाले सुप्रसिद्ध साहूकार हैं। अन्य दोनों सज्जन काठियावाड़ के कार्यकर्त्ता हैं।

इधर आगरा प्रान्त के अनेक ज़िलों में फ़सल मारी जाने के कारण किसानों की स्थिति बड़ी दयनीय हो गई है। लाख प्रार्थना करने पर भी उनसे सरकार ने लगान वसूल कर ही लिया! आजकल युक्त-प्रान्त के अनेक ज़िलों में बन्दोबस्त हो रहा है। सदा की भांति बन्दोबस्त में लगान बढ़ाया जा रहा है। इसके लिए वे आन्दोलन कर रहे हैं। मध्यप्रांत में कई ज़िलों में फ़सल बिलकुल मारी गई थी। किसानों ने सरकार से अनेक बार प्रार्थना की, परन्तु पहले सरकार बिलकुल न झुकी। अन्त में वहाँ के किसान बारडोली का अनुकरण करने का निश्चय करने लगे। बारडोली के सत्याग्रह के देशव्यापी सत्याग्रह न बन जाने के भय से मध्यप्रान्तीय सरकार ने चुपचाप चार लाख से अधिक रुपये का लगान छोड़ दिया।

बारडोली-सत्याग्रह की विकरालता और दृढ़ता को देख कर सरकार चाहती है कि किसी प्रकार समझौता हो जाय, परन्तु समझौते की बात वह अपने मुँह से कहना नहीं चाहती। बम्बई के व्यापारी मण्डल का डेपुटेशन बम्बई सरकार पर समझौते के लिए दबाव डाल रहा है। इधर श्री मुन्शी की अध्यक्षता में धारासभा के नरमदल के कुछ नेताओं ने बारडोली की स्थिति की जाँच शुरू कर दी है और सरकारी नौकरों तथा अधिकारियों को भी अपना पक्ष रखने के लिए निमंत्रित किया है। भारत-सेवक-सतिमि की ओर से पं० हृदयनाथजी कुंजरू तथा श्री वझे बारडोली की स्थिति की जांच करने के लिए नियुक्त किये गये हैं। यह देख कर सरकार हक्की-बक्की सी रह गई है। अब तक तो उसे यह भ्रम था कि सिर्फ़ असहयोगी लोग ही इसमें योगदान कर रहे हैं। परन्तु सदा सरकार का साथ देने वाले लोगों को भी बारडोली के किसानों की मुसीबतों की ओर झुकता हुआ देख कर सरकार अपनी वास्तविक स्थिति समझ रही है। बारडोली-सत्याग्रह के नेता श्री० पटेल ने किसानों की ओरसे सम्मानयुक्त समझौते के लिए अपनी सम्म प्रकट कर दी है। अच्छा हो यदि सरकार अपने मानापमान मिथ्या ख़्याल छोड़ कर समझौता कर ले अन्यथा इस तो सहयोगी भी सरकार से असहयोग करेंगे। कौंसिल जिन मेम्बरों ने बारडोली का पक्ष लेते हुए अपनी मेम्बरी इस्तीफ़ा दिया था, कहा जाता है कि, वे बिना विरोध चुने जा रहे हैं। आज (२७ जून) समाचार आया है कि ६ ने और इस्तीफ़े दे दिये। अब तक जिन पटेलों ने इस्तीफ़े थे उनको कमिश्नर ने मिलने के लिए बुलाया था, उन्होंने सरकार की इच्छा पूरी करने से इन्कार कर दि आगे चलकर क्या होगा इसकी राह बड़ी उत्सुक देखी जा रही है।

उपर्युक्त तीनों सत्याग्रहियों का जेल जाते समय सन्मान

भग्नावशेष

खण्डहरों की रक्षा और आदर

बटलर-कमिटी के विषय में पहले-पहल वाइसराय के काठियावाड़ के दौरे के समय भनक सुनाई दी थी। अगर ठीक तरह से याद है, तो नवानगर के जामसाहब ने देशी नरेशों के पक्ष को लेकर कहा था—चूँकि ब्रिटिश भारत में साइमन-कमीशन सुधारों की जाँच करने के लिए आ रहा इसलिए हमारे सन्धि, सुलह, अधिकार, सन्मान आदि के बारे में भी फिर से विचार हो जाना ज़रूरी है। वाइसराय फ़ौरन जवाब दिया—अवश्य, आपके सन्मान इत्यादि के बारे में विचार होना अत्यन्त आवश्यक है। और उसी समय उन्होंने बटलर-कमिटी की नियुक्ति की घोषणा कर दी। नरेन्द्र-समुदाय को यह आश्वासन पा कर संतोष हुआ।

उसके बाद कमिटी आई और उसने कन्याकुमारी से काश्मीर तक सारे देश में घूम-घाम कर अपनी रिपोर्ट के लिए आवश्यक सामग्री एकत्र कर ली। अब वह अपनी रिपोर्ट तैयार करने में लगी हुई है। किन्तु नरेशों ने सोचा, क्या पता, यह कमिटी अपनी रिपोर्ट में क्या-क्या सिफ़ारिश करे। अतः उन्होंने बेहद फ़ीस देकर अपनी तरफ़ से एक वकील नियत किया और साम्राज्य-सरकार के सामने अपनी तरफ़ से पेश करने के लिए एक योजना बनवाई। वकील का नाम है लेसली स्कॉट। उन्होंने जो योजना बनाई है, वह पिछले दिनों अनेक हिन्दी-अंग्रेज़ी अख़बारों में प्रकाशित हुई है। आजकल सारे देश में वह चर्चा का विषय हो रही है।

योजना का प्रधान उद्देश है देश में "जिन राजनैतिक आर्थिक अधिकारों का उपभोग करने के नरेश वास्तविक अधिकारी हैं उनकी रक्षा की जाय और साधन-सम्पत्ति के विकास सुशासन की प्रगति करने के प्रयत्नों में उन्हें सुविधायें दी जायें।" इत्यादि।

सर लेसली स्कॉट इस उद्देश की पूर्ति के लिए नीचे लिखी तीन बिलकुल नवीन संस्थायें बनाने की सिफ़ारिश करते हैं—

(१) वाइसराय-युक्त भारतीय राज्य-परिषद् (Viceroy in Indian states' Council)।

(२) संयुक्त-परिषद् (The Union Council) अर्थात् पारस्परिक मामलों के निर्णयार्थ भारतीय राज्य-परिषद् और गवर्नर-जनरल की परिषद् (Council) की सम्मिलित बैठक।

(३) संयुक्त-प्रधान न्यायालय (Union Supreme Court)।

भारतीय राज्य-परिषद् में नीचे लिखे अनुसार सात सभ्य होंगे—

१. वाइसराय (अध्यक्ष)।

२. दो ऐसे अंग्रेज़, जिनका भारत से कभी कोई सम्बन्ध न रहा हो।

३. नरेशों के तीन प्रतिनिधि।

४. एक राजनैतिक विभाग का अधिकारी।

वाइसराय और भारतीय राज्य-परिषद् के प्रत्येक सदस्य को नरेशों और सामन्तों के क़ानूनी अधिकार, सत्ता और प्रतिष्ठा सहित राज्यों की रक्षा करने की पवित्र प्रतिज्ञा लेनी पड़ेगी। नरेन्द्र-मण्डल की स्थायी समिति को भी यह अपनी बैठकों में सम्मिलित करेगी।

संयुक्त-परिषद् का काम है फ़ौज और विदेशों सम्बन्धी ऐसे मामलों में देशी नरेश तथा ब्रिटिश भारत दोनों के हितों पर विचार करके और जहां वे एक दूसरे के विरोधी दिखाई दें वहां उनका समन्वय करके उनकी रक्षा-वृद्धि करना।

संयुक्त-प्रधान न्यायालय देशी नरेशों के आपसी तथा ब्रिटिश भारत, देशी नरेशों और साम्राज्य सरकार के

बीच के मामलों का निर्णय करेगा। इसमें एक प्रधान न्यायाधीश (Chief justice) और ग्रेट ब्रिटेन के सर्व-श्रेष्ठ आदमियों में से दो जज नियुक्त किये जावेंगे।

देशी नरेश अपनी सत्ता और सुख के लोभ से इस समय बड़े ही घातक चक्र में पड़े हुए हैं। वे चाहते हैं कि उनकी सत्ता और शान अक्षुण्ण ही न रहे बल्कि कुछ और बढ़े। किन्तु ब्रिटिश भारत में दिन ब दिन अंग्रेज़ी सरकार के प्रति असंतोष की जो आग भभकती जा रही है और संसार में अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति जितनी तेज़ी से बदली जा रही है उसे देखते हुए उनके चित्त में यह सन्देह नहीं रहा है कि अब भारत शीघ्र ही स्वराज्य प्राप्त कर लेगा। और उनके मन में यह प्रश्न उठता है कि जब शासन परिवर्तन होगा तब हमारी अवस्था क्या होगी? वे जानते हैं कि स्वराज्य-शासन में तो प्रजासत्ताक शासनप्रणाली होगी। तब इनको उसकी अधीनता में एक महान राष्ट्र के अंग बन कर रहना होगा। इधर इस सुधार की हवा से अपने प्रजाजनों को भी सुरक्षित रख सकने में उन्हें संदेह है। देशी राज्यों की प्रजा में शिक्षा और प्रजासत्ता के भावों का संचार होते ही वह रोके नहीं रुकेगी। उस समय देशी नरेशों की यह शान, यह विषय-विलास, यह धन की बरबादी कैसे चल सकती है? इन सब बातों को सोच कर देशी नरेशों ने अपनी स्थिति सम्हाले रखने की ग़रज़ से यह उचित समझा कि अपना सम्बन्ध सीधे साम्राज्य सरकार से जोड़ लें। और स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में कम से कम ब्रिटिश भारत से भिन्न अपना अस्तित्व क़ायम कर लें।

इधर साम्राज्य-सरकार भी इस बात को साफ़ तौर से जानती है कि कभी न कभी भारतीय शासन उसके हाथ से अवश्य जायगा और भारत स्वराज्य का उपभोग करेगा। सत्ता उसके हाथों से धीरे-धीरे जाने ही को है। इस अवस्था में उसे किसी सहारे की बड़ी भारी ज़रूरत है। देशी नरेश इस समय सरकार को कुछ सहारा दे सकते हैं। वह देशी राज्यों की रक्षा करने की ज़िम्मेदारी (प्रतिज्ञा द्वारा) अपने सिर पर लेने के बहाने भारत में अपनी सत्ता के क़िलों को मज़बूत कर रही है। क्योंकि इनकी रक्षा के बहाने वह भारत की फ़ौज तथा वैदेशिक व्यापार आदि कई बातों पर अपना अंकुश रख सकेगी। और यदि सैना जैसे महत्वपूर्ण विभा पर अंग्रेज़ों का ही अधिकार बना रहा तो भारत की श्रे महत्त्वपूर्ण राजनैतिक उन्नति नहीं हो सकती। इस त ब्रिटिश भारत और अपने प्रजाजनों को छोड़ कर साम्रा सरकार की शरण लेने वाली नरेशों की नीति पहले देश लिए और अंत में खुद उनके लिए भी अत्यन्त घातक क्योंकि यह निश्चित है कि अंग्रेज़ी सत्ता के पैर ब्रिटिश भा से उखड़ते ही वह देशी राज्यों के शरीर में अपने पंजे भी गहरे घुसाने की कोशिश करेगी। और निश्चित रूप वहाँ का सारा शासन-प्रबन्ध अपने हाथों में ले लेगी। देशी नरेशों की दशा बड़ी दयनीय होगी। अपने प्रजाज को साथ में न ले कर तथा साम्राज्य-सत्ता से सीधे सम्ब जोड़ कर वे लोकसत्ता को अपनी तरफ़ से उदासीन तो ही रहे हैं, उधर साम्राज्य सरकार भी जब उन्हें निगलने ल तब न तो उससे लड़ने की शक्ति उनमें बची रहेगी और उनकी पुकार पर दौड़ आने की किसी की इच्छा हो देशी नरेशों की भावी स्थिति का यह चित्र और दयनीय है!

पर नरेशों की सारी ही कार्यवाही आश्चर्यजनक है। लिए हितकर योजना बनाने के लिए भी उन्हें सर ल स्कॉट जैसा अंग्रेज़ ही मिला! और उसने योजना भी बनाई है? शब्दाडम्बर को छोड़ कर उसके असली ल को देखते हुए हमें पता नहीं चलता कि वह उनके हितों क्या रक्षा करेगी? सेना वग़ैरा रखने के अधिकार का पता तक नहीं! नाम मात्र के लिए जो तीन संस्थायें ब उनमें देशी नरेशों के पक्ष के लोगों की संख्या भी कम

	नरेशों के आदमी	सरक
भारतीय राज्य-परिषद्	३	१
प्रधान न्यायालय	...	२
संयुक्त राज्य-परिषद्	इसमें भी बहुमत स पक्ष का है।	

जहाँ नरेशों के और सरकार के हितों में विरोध वहाँ ये विदेशी अधिकारी अपने स्वदेश के लाभ का करेंगे या इन नरेशों के हित का? इसके तो मानी हैं का प्रभुत्व!

पर हमें मालूम हुआ है कि स्वयं राजाओं में भी इस ना पर मतभेद है। सर रामस्वामी अय्यर कहते हैं—

"मैं यह स्पष्टरूप से कह सकता हूँ कि जिन रियासतों सा सम्बन्ध रहा है और बम्बई आदि में जिन नरेशों से सलाह की है वे—अर्थात् बड़ौदा, मैसूर और कोचीन वाले कुछ राजपूताने के और मध्यभारत तथा उड़ीसा के ने ही रजवाड़े—योजना के मुख्य अंश के स्पष्टत: विरोधी । यह सही है, जैसा कि पटियाला नरेश ने कहा है, कि प्रकार से सभी रजवाड़े मुख्य विषय में एकमत हैं, अर्थात् चाहते हैं कि अपने राज्य का भीतरी प्रबन्ध बहुत अच्छा , ब्रिटिश भारत से सम्बन्ध रखने वाले मामलों में सम्मि- भाव से सहयोग करें और आधुनिक शासन-प्रणाली पर दृष्टि रखते हुए संयुक्त संघटन करें। मगर ऊपर लिखे नहीं तो अधिकांश रजवाड़ों की राय है कि योजना में उपाय बताया गया है वह इन उद्देशों की पूर्ति के लिए नहीं है। इसके सिवा वह न तो व्यावहारिक होगा न शासन-प्रणाली की साधारण उन्नति में ही सहायक ।"

पण्डित मोतीलाल नेहरू ने भी कहा है—

"बटलर-कमिटी का उद्देश ब्रिटिश भारत और देशी ों के बीच एक दुर्भेद्य दीवार खड़ी कर देना है।

"ब्रिटिश मन्त्रि-मण्डल के स्थान पर अगर मैं होऊँ, तो चूँगा—'आओ ब्रिटिश भारत को हम साइमन-कमीशन विवाद के चक्कर में लगाये रक्खें और इधर ब्रिटिश भारत देशी नरेशों के बीच एक दुर्भेद्य दीवार खड़ी करके दोनों अपना मुहताज बनावें। नरेश राजनैतिक अदूरदर्शिता रण ब्रिटिश भारत की राजनैतिक प्रगति को देख कर ही चौंकेंगे और ऐसे हर प्रस्ताव को खुशी-खुशी स्वीकार गे, जिसमें उन्हें अपनी सत्ता, प्रतिष्ठा और भीतरी नता की रक्षा का आश्वासन दिखाई देगा। और बटलर- टी की सिफ़ारिशों और प्रस्तावों को स्वीकार करते ही विवादग्रस्त सवाल भी अपने आप हल हो जावेगा कि नरेश भारत-सरकार से सम्बद्ध हैं या साम्राज्य सरकार । यह सम्भव नहीं कि साइमन-कमीशन ऐसी सिफ़ारिश करे जिससे ब्रिटिश भारत औपनिवेशिक स्वराज्य के कुछ भी निकट पहुँचे। परन्तु निस्सन्देह उसके लिए माँग तो ऐसी ज़ोरों की है कि उसे मारने के लिए कोई तेज़ हथियार हमारे हाथों में होना ज़रूरी है। और इसके लिए यह अच्छा उपाय है कि नरेशों को तो नाममात्र के लिए स्वतन्त्र राजत्व का अधिकार दे दिया जाय और इस जाँच कमिटी की सिफ़ारिशों के अनुसार ग्रेट-ब्रिटेन इन नरेशों से ऐसी सन्धि आदि कर ले, जिससे इन नरेशों की रक्षा के लिए ब्रिटेन को फ़ौज तथा अन्य महत्वपूर्ण विभागों को अपने हाथों में बनाये रखना अनिवार्य हो। अगर यह हो सका तब तो भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य मिलना असंभव हो जायगा।'

"इस दलील में एक दोष है। भारत के भावी शासन का विचार करते समय चार पक्षों का ख़याल रखना ज़रूरी है। अंग्रेज़ी सरकार, ब्रिटिश भारत की जनता, देशी नरेश और उनकी प्रजा। परन्तु इस सारी योजना में देशी राज्यों के करोड़ों प्रजाजनों को बिलकुल भुलाया जा रहा है। अपने प्रजाजनों को नरेश तो केवल "क़ानून के राज्य" का रूखा आश्वासन दे रहे हैं। पर आजकल तो जहाँ लोकसत्ता नहीं वहाँ क़ानून का राज्य ही नहीं। आजकल रियासतों की जो दशा है वहाँ तो राजा की ही मनमानी-घरजानी होती है। क्या देशी नरेश यह आशा करते हैं कि उनके प्रजाजन, जिनके दिल में वही महत्वाकांक्षायें हैं जो कि ब्रिटिश भारत की जनता में हैं, इस परिस्थिति से संतुष्ट रह कर चुप-चाप बैठे रहेंगे? और क्या ब्रिटिश भारत की जनता भी रियासतों में रहने वाले अपने भाइयों की दुर्दशा को चुपचाप देखती रहेगी और यह बर्दाश्त करेगी कि वे इन नामधारी नरेशों द्वारा बुरी तरह से शासित होते रहें? यह नीति कुछ समय के लिए ही काम दे सकती है; परन्तु आगे चल कर इससे सभी पक्षों को बड़ी बुरी हालत में यह डाल देगी। यह तो एक भीषणतम संघर्ष का श्रीगणेश करेगी।"

पण्डितजी का यह कहना बिलकुल यथार्थ है कि "देशी नरेशों की प्रजा और ब्रिटिश भारत की जनता के हित एक हैं। दोनों एक नाव के मुसाफ़िर हैं। वे डूबेंगे तो एक साथ और तिरेंगे तो एक साथ। एक को पीछे छोड़ कर दूसरा किसी हालत में आगे नहीं बढ़ सकता।"

इस प्रकार यह निश्चित है कि दोनों को साथ-साथ चलना होगा। देशी नरेश अब यह आशा छोड़ दें कि इस मनमाने शासन से उनकी प्रजा सन्तुष्ट हो जायगी।

देशी नरेश यह भी स्मरण रक्खें कि उन्हें भारत में ही रहना है। ब्रिटिश भारत को तथा अपने प्रजाजनों के सद्भाव और सहानुभूति को अपने साथ में बनाये रखने में ही उनका कल्याण है। अपनी ही शान-शौक़त का ख़याल रख कर, केवल ऊपरी दिल से कोरी सहानुभूति दिखा कर, देश से अलग हो जाने का असर कभी अच्छा नहीं हो सकता। ग़ैर तो ग़ैर हैं ही, पर वे अपनोंको भी ग़ैर बनाने की ग़लती कर रहे हैं। अतः यदि वे अपनोंको अपना बनाये रक्खेंगे तो अपने आपको इतना मज़बूत और सुरक्षित कर लेंगे कि साम्राज्य सरकार को भी उनसे सोच-सम्हल कर पेश आना होगा।

बटलर-समिति का खुलासा

अख़बारों में कई ऐसी बातें प्रकट हो रही हैं, जिनसे बहुत सी ग़लतफ़हमी फैलने का अंदेशा है। इस ख़याल से बटलर-समिति ने नीचे लिखा खुलासा प्रकट किया है—

"मार्च के आरम्भ में जाँच समिति ने २३५ देशी राज्यों को पत्र भेजे थे। उसके उत्तर में नरेन्द्र-मण्डल के १०८ सदस्य राज्यों में से ३२ राज्यों ने यह उत्तर दिया है कि वे अलहदा-अलहदा जवाब नहीं भेजेंगे, बल्कि नरेन्द्र-मण्डल की स्थायी समिति की तरफ़ से सर लेसली स्कॉट उनके पक्ष को समिति के सामने पेश करेंगे। इन ३२ राज्यों में से काश्मीर, भोपाल पटियाला, टोंक, बून्दी और भरतपुर मुख्य हैं। बीस राज्यों ने अलहदा जवाब भेजे हैं। इनमें हैदराबाद, मैसूर, त्रावणकोर, जोधपुर और कोल्हापुर हैं। अन्य १२७ राज्यों को अपनी तरफ़ से १२ प्रतिनिधि नरेश भेजने का अधिकार है। इनमें से २१ राज्यों ने यह इच्छा ज़ाहिर की है कि उनका मामला नरेन्द्र-मण्डल की स्थायी समिति को सौंप दिया जाय। १२ राज्यों ने व्यक्तिगत प्रतिनिधि भेजने की बात कही हैं। १५० राज्यों ने जवाब नहीं दिये हैं।"

बटलर-समिति क्या करेगी?

एक अंग्रेज़ी समाचारपत्र का संवाददाता लिखता है— "देशी राज्यों के साथ किये गये इक़रारनामों और संधि की जाँच के लिए नियुक्त बटलर-समिती को ब्रिटिश भार में देशी राज्यों का क्या स्थान रहेगा इस संबन्ध में अप अभिप्राय प्रकट करने का कोई अधिकार नहीं है। दू बटलर-समिति ने अपनी जाँच गुप्त रूप से की है। उसं देशी राज्यों की प्रजा को ज़रा भी भाग नहीं लेने दिया ग है। कारण स्पष्ट ही है; जिन शर्तों पर इस समिति का संग हुआ है, वे स्वभावतः प्रजा को समिति की कार्यवाही से दू रखती हैं। सर हारकोर्ट बटलर भारत के देशी राजाओं के साथ मित्रता का संबन्ध रखते हैं। यह मित्रता देशी राज की समस्याओं को सुलझाने में उनकी बड़ी सहायता करेगी यह समीप हर पहलू से जाँच करने के बाद अप विवरण भारत-सरकार के सामने उपस्थित करेगी। परन्तु इस पहले नरेन्द्र-मण्डल की कार्य-समितिके सदस्य, जिनमें काश्मी अलवर, पटियाला, बीकानेर, नवानगर और भोपाल के रा हैं, लंदन में समिति के साथ उन प्रश्नों पर विचार करें जिनपर अब तक विचार नहीं हो पाया है। अतः इ हो जाने के बाद भी साइमन-कमीशन देशी राज्यों के प्र को अछूता छोड़ देगा, यह मानना भूल है। बटलर-समि के विवरण को पढ़ लेने के बाद सर जॉन साइमन समिति के सदस्यों के साथ उसके सम्बन्ध में परा करेंगे। इसपर से यह अनुमान किया जा सकता है ब्रिटिश भारत और देशी राज्यों के पारस्परिक सम्बन्ध सच्चा निपटारा तो बटलर-समिति नहीं, साइमन-कमी ही करेगा।"

हमें पता नहीं कि इस समाचारपत्र पर कहाँ विश्वास किया जाय। तथापि सबसे सुरक्षित मार्ग तो है कि साइमन-कमीशन आगे जो कुछ भी करे, बटलर-स की कार्यवाही द्वारा भारत के राजनैतिक वायु-मण्डल प बुरा असर पड़ रहा है, उसे दूर करना सर्वथा इष्ट है।

वें०

सम्पादकीय

कंट्री लीग' की तह में

जिसने दो बातें अच्छी तरह समझ ली हैं, वह अंग्रेज़ों सफलता-पूर्वक युद्ध कर सकता है-(१) ये भेद-नीति आचार्य और फूट डालने में सिद्धहस्त हैं, (२) बिना ल देखे ये झुकते नहीं। साइमन-कमीशन का फल क्या निकलेगा, यह उन्होंने पहले से ही तय सा कर रक्खा है। न्दर की बातों से पता चलता है कि वे प्रत्येक प्रांत में दो म्बर अर्थात् कौंसिलें बना देना चाहते हैं और उनकी ना इस तरह करना चाहते हैं कि जिससे धनियों, मींदारों, रईसों आदि अंग्रेज़ों के ख़ुशामदियों या से दबकर रहने वालों के मत की प्रधानता रहे— लिस को छोड़कर प्रायः सभी महकमे हिन्दुस्थानी मंत्रियों सुपुर्द कर दिये जाँय। इस उद्देश की पूर्ति के लिए प्रांतों संगठन भी किया जा रहा है और ऐसी तज़वीज की जा ही है कि इसी आशय की गवाहियाँ कमीशन में गुज़रें, कि उनके आधार पर वही बात कर दी जाय, जो कि मीशन वालों ने पहले ही से तय कर रक्खी है। 'कंट्रीलीग' सी संगठन का परिणाम है। इसमें अंग्रेज़, हिंदू और सलमान धनियों, ज़मींदारों, राजा-रईसों का बोल-बाला है र इसका उद्देश और नीति इन शब्दों में प्रकट की गई है—

"(१) भारत में क्रमशः उत्तरदायी शासन प्राप्त रना; (२) प्रांतों में व्यवस्थापकों की द्वितीय सभा पित करना; (३) प्रांतों में सहज शासन-प्रणाली चलाना;) संप्रदायों को अलग-अलग निर्वाचनाधिकार दिलाना;) व्यापारी, ज़मींदार, किसान, अवसर-प्राप्त सैनिक र श्रमजीवियों को अपने अधिक प्रतिनिधि कौंसिलों में ने की सुविधा करा देना; (६) भिन्न-भिन्न कौंसिलों के लिए युक्त उम्मीदवारों को सहायता करना; (७) ऐसे न की सहायता करना जो औद्योगिक उन्नति और कृषकों की आर्थिक उन्नति के समर्थक हों; (८) अल्पसंख्यकों के स्वार्थों का उपयुक्त संरक्षण करना; (९) एक ऐसी अखिल-भारतीय संस्था बनाना जो उन लोगों की ओर से राजनैतिक कार्य करे जिनका देश में स्थिर स्वार्थ है; (१०) उन प्रचलित संस्थाओं को उत्तेजन देना और मिलाना जो इन उद्देशों के पक्ष में हों; (११) समय-समय पर उपस्थित होनेवाले महत्व के सार्वजनिक प्रश्नों पर लोगों की ओर से मत प्रकाश करना; (१२) विशेष कर लीग के सदस्यों का मत स्थिर कर के शाही कमीशन के सन्मुख उपस्थित करना।"

यह न सिर्फ़ राजनैतिक आंदोलन करने वालों और धनी-ज़मींदारों में फूट डालने का प्रयत्न है, बल्कि हिंदुओं और मुसलमानों को भी अलहदा रखने का उद्योग है, एवं अछूतों, मज़दूरों, किसानों आदि को बरग़लाने और जुल देने की घृणित चेष्टा भी है। यह कह कर कि स्वराज्य में हानि-लाभ तो सिर्फ़ 'कंट्री लीग' बनाने वालों का ही है, यह जताया गया है कि दूसरे लोगों का अस्तित्व ही मानों व्यर्थ है। जातिगत प्रतिनिधित्व को अंगीकार करके राष्ट्रीय महासभा के हिन्दू-मुस्लिम-एकता संबन्धी प्रयत्नों को असफल बनाने का उद्योग किया गया है। अछूतों, मजूरों और किसानों के हित की दुहाइयाँ देकर अपनेको ही देश का सच्चा और बड़ा हितैषी साबित करने की चेष्टा की है। दरभंगा महाराज और राय बद्रीदासजी गोयनका से कोई पूछे तो कि कभी वे मजूरों की किसी हड़ताल के नेता आज तक बने हैं? या अछूतों को अपने ग़ालीचे और दीवानख़ाने की रेशमी कुर्सियाँ पर बिठलाया है, या किसानों के किसी आंदोलन में आज तक कभी कुछ योग दिया है? अंग्रेज़ों की इस चालबाज़ी और भारतवासियों की इस मूर्खता और स्वार्थ-वृत्ति को देख कर किसे दुःख और क्षोभ न होगा? बंगाल के नेता श्री सेन गुप्त ने कहा है कि मीरज़ाफ़रों ने मिल कर यह 'कंट्रीलीग' बनाई है। पं० मोतीलालजी नेहरू कहते हैं, देश-द्रोहियों की

सूची यह एक ही जगह बिना महनत किये मिल गई है। लालाजी कहते हैं, सावधान! यह विदेशियों की भेद-नीति और प्रेरणा का फल है—यह कांग्रेस के पूर्ण स्वतन्त्रता के प्रस्ताव का जवाब है। मुझे तो इस बात में कोई संदेह नहीं है, साइमन-कमीशन का फल प्रकट होने के पहले तक हमें चकमा देने और हममें फूट डालने की जो-जो तदबीरें न की जायँ, कम हैं। हमारी बुद्धिमानी इसी बात में है कि हम उनके किसी जाल में अपनेको न फँसने दें।

इन्दौर दरबार और 'कर्मवीर'

१९ जून को इन्दौर दरबार ने 'कर्मवीर' के संपादक महोदय को पत्र लिखा है—"आपका पत्र पिछले कुछ समय से स्टेट के विरुद्ध आग भड़का रहा है। उसने स्वच्छन्दता से कैबिनेट और स्टेट के कतिपय उच्च ऑफ़िसरों के विरुद्ध असत्य और शरारत से ओत-प्रोत ख़बरें प्रकाशित की हैं। ऐसी ख़बरें प्रकाशित करने वाले व्यक्ति की प्रति सप्ताह की टीका-टिप्पणियाँ इस दर्जे की तो हो ही रही हैं, जिनपर फ़ौजदारी की नालिश भी अदालत में दायर की जा सकती है; परन्तु हमारी यह (अदालती) दिशा संभवतः अप्रत्यक्ष रूप से आपके पत्र का प्रचार बढ़ा दे, और चूंकि हमारे पास (आपपर) प्रभाव डालने वाला अन्य साधन भी मौजूद है, इसलिए हिज़ हाइनेस की सरकार ने आपके पत्र को रियासत में बन्द कर देना ही निश्चित समझा है। फिर भी आपको अपनी ग़लती सुधारने का अवसर दिया जाता है। आप स्टेट में लगातार भ्रान्ति-पूर्ण सनसनी फैलाने वाली ख़बरें प्रकाशित किया करते हैं। इससे स्टेट की प्रजा में अनुचित उत्तेजना फैलती है, और वह हिज़ हाइनेस की सरकार के प्रति अप्रीति की भावना जमाती है। अतः, मुझे यह कहने की इजाज़त दी गई है कि, यदि इस पत्र के प्राप्त होने के एक सप्ताह के अन्दर आप अपनी स्टेट-सम्बन्धी आलोचना के प्रकाशन के लिए बिला शर्त क्षमा-याचना कर लें और उसे अपने पत्र में प्रकाशित भी कर दें, तथा भविष्य में ऐसी ग़ैरज़िम्मेवारी और शरारत से भरे लेख प्रकाशित न करने का विश्वास दे दें तो हम पत्र की बन्दी का आर्डर जारी न करेंगे।"

इस चिट्ठी की भाषा मुझे अच्छी नहीं लगी। इसमें सत्ता की, दूसरों को क्षुद्र समझने की बू आती है। यह अधिक गौरव-पूर्ण और शालीनता से युक्त भाषा में लिखी जा सकती थी। 'कर्मवीर' का जवाब भी काफ़ी लम्बा और जोशीला है, जो दरबार की चिट्ठी की प्रतिक्रिया मालूम होती है। मुझे खेद है कि प्रायः निरन्तर यात्रा में रहने के कारण मैं 'कर्मवीर' के उन समाचारों और टीका-टिप्पणियों को सिलसिले से और ध्यान पूर्वक नहीं पढ़ पाया हूँ, इसलिए उनके सम्बन्ध में कोई राय देना कठिन है; पर इतना तो मैं उन्हें बिना देखे ही कह देना चाहता हूँ कि मुझे इन्दौर दरबार की इस कार्रवाई से बड़ा दुःख हुआ। लेखन-स्वातंत्र्य के इस युग में जो राज्य अख़बारों को इस तरह अपने यहाँ आने से रोकते हैं वे अपनी न्यायशीलता और प्रतिष्ठा की वृद्धि नहीं कर सकते। इन्दौर दरबार ने यदि 'कर्मवीर' की बातों पर शान्ति के साथ विचार करके उनकी सचाई की छान-बीन कर ली हो और वे बातें असत्य पाई गई हों, तो एक तो इसकी सूचना उसी समय संपादकजी को देनी चाहिए थी, दूसरे इस चिट्ठी में इस बात का जिक्र होना चाहिए था। यदि ऐसा न किया गया हो और बहुतेरे अधि-कारियों की इसी मनोवृत्ति का यह परिणाम हो कि एक बात सच हो या झूठ, हमारे ख़िलाफ़ लिखी ही क्यों गई तो मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है कि यह अच्छा नहीं हुआ। और इंदौर दरबार की यह दलील कि अदालती कार्र-रवाई करने से आपके पत्र का प्रचार बढ़ेगा—इसलिए सं… रियासत में बंद कर देना ही निश्चित समझा है, मेरी समझ में नहीं आई। इंदौर दरबार की अपनी तथा रियासत की रक्षा की चिंता का यथोचित ध्यान रखते हुए भी मैं … कह देना चाहता हूँ कि ऐसी दशा में अदालत में नालिश करना ही सबसे अधिक न्यायोचित होता।

'कर्मवीर'-संपादक ने अपने उत्तर में यह … है कि 'इंदौर दरबार की ये सारी बातें एक… हैं और उन्हींकी तरह हम भी यह कह सकते हैं… लिखी गई समस्त बातें अक्षरशः सत्य हैं। एकाध … को छोडकर इंदौर-दरबार ने आज तक इनका … प्रतिवाद नहीं भेजा।' किसी निष्पक्ष न्यायालय … जब तक इस बात का फ़ैसला नहीं हो जाता तब तक 'क…

और संपादक के इस कथन के बल की कैसे उपेक्षा की जा सकती है कि "संभव है न्यायालय के सन्मुख कुछ ऐसी बातें प्रकट होतीं जो इंदौर मंत्रि-मंडल के लिए असुविधा-जनक होतीं। शायद इसीलिए मंत्रि-मंडल के विद्वानों ने यह मार्ग ग्रहण किया हो।" 'कर्मवीर' दो ही दशाओं में दोषी माना जा सकता है—(१) या तो इंदौर-दरबार ने प्रति-वाद भेजे हों और उसने न प्रकाशित किये हों या (२) न्यायालय में उसकी प्रकाशित बातें झूठी साबित हों। इनके अभाव में इंदौर-दरबार की इस कार्रवाई को न्याय-संगत कहना कठिन है। प्रवेश-निषेध राज्य के हाथ में आख़िरी शस्त्र है। मेरा ख़याल है कि 'कर्मवीर' के मामले में अदालती कार्रवाई करने के पहले उसका उपयोग करना अनुचित हुआ और दरबार का यह ख़याल कि 'कर्मवीर' के रियासत में बंद कर देने से वैसी ख़बरें छपना या फैलना बंद होजायगा, ग़लत है। यदि वे बातें सचमुच असत्य हैं और दरबार ने ख़ूब छानबीन कर ली है, तो न्यायालय के सामने अपना मामला रख देना उसका एकमात्र राजमार्ग है। मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है कि यह दवा मर्ज़ को अधिक बढ़ाकर छोड़ेगी। दमन सत्य की रक्षा या प्रजा के हित का साधन कभी नहीं हो सकता। 'कर्मवीर' का निषेध दमन का ही एक रूप है। इंदौर के मंत्रि-मण्डल के प्रधान अधिकारियों से, जिनकी सज्जनता पर मेरा विश्वास है, ऐसी कार्रवाई की अपेक्षा नहीं की जा सकती थी। अब तक यदि बंदी का हुक्म निकल भी चुका हो तो भी न्याय की रक्षा के लिए यह उचित होगा कि खुली अदालत में 'कर्मवीर' पर मामला चला कर उसे अपनी सफ़ाई का पूरा-पूरा मौक़ा दिया जाय। अन्यथा तटस्थ लोगों की भी सहानुभूति इस मामले में 'कर्मवीर' की ओर ही रहना विशेष संभवनीय है।

मुज़फ़्फ़रपुर के सम्मेलन

मुज़फ़्फ़रपुर में शीघ्र ही हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और सम्पादक-सम्मेलन आदि के अधिवेशन होने की तैयारियाँ हो रही हैं। हि० सा० सम्मेलन के वर्तमान कार्य प्रबंध के संबंध में काफ़ी चर्चा हो रही है, जिसके कारण साहित्य-सम्मेलन के मनोनीत सभापति पं० पद्मसिंहजी शर्मा ने एक पत्र हिन्दी-प्रेमियों को भेजा है कि वे अपनी उपस्थिति से सम्मेलन के कार्य को यशस्वी बनाने में सहायक हों। आशा है, प्रत्येक सहृदय और सेवोत्सुक हिन्दी-प्रेमी शर्माजी की पुकार पर मुज़फ़्फ़रपुर दौड़ पड़ेगा।

संपादक बने रहने के कारण इस समय मुज़फ़्फ़रपुर पहुँच जाना मेरा भी कर्तव्य था। विशेष कर इस अवस्था में, जबकि स्वागत-समिति ने मुझे सम्पादक-सम्मेलन का सभापति चुनने की कृपा करके अधिक सेवा करने का सुअवसर दिया था; पर मुझे अत्यन्त खेद है कि न तो मैं सम्मेलन में ही सम्मिलित हो सका और न स्वागत-समिति की आज्ञा को ही शिरोधार्य करने का सौभाग्य प्राप्त कर सका। बात यह है कि यद्यपि हिन्दी-सेवा से मैं अबतक विमुख नहीं रहा हूँ, तथापि जबसे मैं राष्ट्रीय सेवा में थोड़ा-बहुत लग गया हूँ साहित्य-सेवा से मेरा संबंध बहुत कुछ टूट रहा है। इसी कारण शर्मिंदा हूँ कि हि० सा० सम्मेलन की स्थायी समिति का सदस्य चुने जाते हुए भी मैं सम्मेलन की कुछ भी सेवा न कर सका। मेरी यह धारणा हो रही है कि जिस काम से स्वराज्य जल्दी नज़दीक आ जाय वही पहले करना चाहिए। इस कारण, अपनी समझ के अनुसार, खादी, अछूतोद्धार, राष्ट्रीय शिक्षा आदि बातें मुझे साहित्य-सेवा की तरफ़ से हटा कर अपनी ओर खींच रही हैं। ऐसी दशा में यदि सम्मेलन की सेवा के लिए मेरा उत्साह न बढ़ता हो तो, मैं समझता हूँ, वह क्षम्य है। दूसरे इधर मेरा स्वास्थ्य काफ़ी गिर चुका है, ऐसी दशा में नये कामों का भार लेना अपने तथा काम दोनों के साथ अन्याय करना है। तीसरे प्रौढ़, वृद्ध, अनुभवी, लब्धप्रतिष्ठ संपादक—सम्मेलन से प्रायः विरक्त हैं और दूसरे संपादक बन्धु डँट कर निश्चित रूप से काम करने की उत्सुकता रखते हुए नहीं दिखाई देते। मुझ जैसे लालची मज़दूर का उत्साह अधिवेशन से बढ़ना मुझे कठिन मालूम होता है। फिर सम्पादक-सम्मेलन के कार्य की दिशा अभी तक मेरी समझ में पूरे तौर पर नहीं आई है। साहित्य-समेलन के जीवन में पुनरुत्थान की बड़ी आवश्यकता है, यह तो दिन-दिन स्पष्ट हो रहा है। पिछली किसी संख्या में मैंने इस बात की ओर निर्देश भी किया था; परन्तु श्री रामनाथलाल 'सुमन' के इन शब्दों में वह बहुत अच्छी तरह प्रदर्शित हो जाता है—

१—भारतीय साहित्य के व्यक्तित्व (इनडिविजुएलटी) की रक्षा और विकास का ध्यान रखते हुए " साहित्य " शब्द के विश्वव्यापी अर्थ के अनुकूल हिंदी-साहित्य की गति-विधि एवं रूप के संबंध में क्रियात्मक आंदोलन करना ।

२—हिन्दी में हमारा जो प्राचीन साहित्य है, उसके प्रति उचित आदर, सम्मान और गौरव रखते हुए भी अपनी भाषा और अपने साहित्य को वर्तमान काल के भावों को पूर्ण रूप से ग्रहण एवं व्यक्त करने योग्य बनाना ।

३—संसार के विभिन्न साहित्यों के अध्ययन को साधारणतः और भारतीय साहित्य और संस्कृति-संबंधी अध्ययन को विशेष रूप से उत्तेजन देना। समन्वय बुद्धि को विकसित करने एवं सच्ची और गम्भीर तुलनात्मक आलोचनाओं के प्रचार का प्रयत्न करना ।

४—" हिंदी " शब्द की तात्त्विक ध्वनि ('स्पिरिट') के अनुकूल उसके साहित्य को भारतीय आकांक्षाओं और भारतीय आत्मा की अभिव्यक्ति के योग्य बनाना और विश्वा-रमवाद के अनुकूल उसे विश्वसाहित्य के व्यापक भावों को व्यक्त करने के योग्य बनाना ।

संपादक-सम्मेलन का कार्य तब तक सुचारु और सुसंगठित रूप से न चल सकेगा, जब तक कोई एक संपादक-बंधु उसे अपना काम न बना लेगा । संपादन-व्यवसाय में अभी इतनी बातों की बड़ी त्रुटि और विशृंखलता पाई जाती है—

(१) पत्र-व्यवसाय की उच्चता और गौरव की तरफ़ से कुछ संपादकों का ध्यान हट रहा है—कुरुचि और अश्लीलता में शिष्ट-सम्मत जो दोष है, वह उन्हें दोष नहीं दिखाई पड़ता।

(२) निकृष्ट साधनों से पत्र का प्रचार बढ़ाना, पोल खोलने की बदनामी करने की धमकी देकर रुपया प्राप्त करना, अथवा रुपया मिल जाने पर रुख़ बदल देना, रुपया लेकर पक्ष समर्थन करना, ये बुराइयाँ हिन्दी-सम्पादन व्यवसाय को गिरा रही हैं ।

(३) संपादन-कार्य बहुत सस्ता हो गया है । जो भी चटपटा-चरपरा लिखने लगा, धूल उड़ाने की विद्या जहाँ सीख ली, कि संपादक के आसन पर जा डटे । इससे संपादकों की लेखनी और मत का प्रभाव कम होता जा रहा है ।

(४) विचार के स्थान पर विकार का प्राबल्य हो रहा है । गंभीरता की जगह छिछोरपन ले रहा है । सैकड़ों हि पत्रों में सिर्फ़ दो ही चार ऐसे संपादक हैं, जिनके विचारों का मान होता हैं । यह कितने बड़े दुःख की बात है।

इन बुराइयों की ओर ध्यान जाना परम आवश्यक है। चाहे साहित्य-सम्मेलन स्वयं इस प्रश्न को हाथ में ले, चा संपादक-सम्मेलन पर छोड़े, पर इसकी उपेक्षा किसी त क्षम्य नहीं। ज्ञान और बल देने के बजाय कितने ही पत्र आज गंदगी और कलह पर जी रहे हैं, यह कितने दुर्दैव की बात है ! 'सम्मेलन-पत्रिका' को इसमें पूरी-पूरी दिलचस् लेनी चाहिए । इसके अतिरिक्त सम्मेलन ने जैसे साहित्य के कितनी परीक्षायें रक्खी हैं, उसी तरह संपादन-व्यवसाय के लिए भी कुछ परीक्षायें नियत होनी चाहिएँ और पाठ्य-क्र बनना चाहिए, जिससे सम्मेलन का उपाधि-प्राप्त व्यक्ति संपादक बन सके। सम्मेलन से दूर रहकर ये पंक्तियाँ लिख शोभा तो नहीं देता; परन्तु संपादकीय कर्त्तव्य कैसे पि छोड़ने लगा ? अस्तु । आशा है, विचारशील हिन्दी-स इन पंक्तियों पर विचार करेंगे ।

पत्र-व्यवसाय का पतन

पत्र-व्यवसाय (Journalism) का ए उद्देश हो सकता है- समाचारों और सद्विचारों का प्र दूसरी भाषा में कहें तो ज्ञान-प्रचार। इस काम में पड़ने व व्यक्ति सर्व-साधारण से तो उच्च कोटि का अवश्य ही हो चाहिए । वह ऐसा होना चाहिए, जो स्वयं विद्वान्, बहुश्र सदाचारशील, सत्याग्रही, सहृदय, निर्भय और विवेकशी हो । जहां तक हिन्दी पत्र-व्यवसाय से संबंध है, पवित्र व्यवसाय में ऐसे ऐसे लोग भी घुस पड़े जो महज़ व्यापारी हैं, भारी विज्ञापनबाज़ हैं, झूठे-सच्चे और भली-बुरी चीज़ों के विज्ञापन के ब अपना व्यापार चलाना चाहते हैं। इनसे भी निकृष्ट के कुछ लोग हैं, जो लोगों की पोल खोलकर, गंदी छाप कर, उनकी निन्दा और बदनामी करने की धमकी पैसा ऐंठने की कोशिश में रहते हैं । ऐसे लोगों की से पत्र-व्यवसाय लोगों की नज़र से दिन-दिन गिरता रहा है । इसे एक तरह का गुण्डादल ही कहना

दिनों तो पत्र-संसार में ऐसी गुण्डाशाही चल रही है ख कर बड़ा दुःख होता है और कई जगह नीचा सिर पड़ता है। कुछ इने-गिने सुयोग्य संपादकों को यह व्यवसाय, खेद के साथ कहना पड़ता है कि, धिकारी लोगों के हाथ में चला जा रहा है। महज़ सनी फैलाना, गंदी, घृणित और कुरुचिपूर्ण चटपटी नियाँ, चित्र छापना ही उन्होंने पत्र-व्यवसाय मान लिया। भिन्न-भिन्न श्रेणी के कई लोगों ने हम पत्र-व्यवसायियों ऐसी शिकायतें मुझसे की हैं और हममें से भी कई इस बात को अनुभव कर रहे हैं। इस कारण इन कठोर ों के लिए पत्र-व्यवसायी बन्धु मुझे क्षमा करें। ये याँ केवल इस व्यवसाय की पवित्रता की रक्षा के अपने दिल को कड़ा करके बड़ी अनिच्छा के साथ रहा हूँ। जो संपादक स्वयं शराब की बोतलें चढ़ाते ग पीते हों, व्यभिचार को बुरा न समझते हों, डरा-कर पैसा ऐंठते हों, जिनका न कोई निश्चित सिद्धान्त नीति हो—जैसा हवा का रुख़ देखा, रंग बदल दिया—याँ देना और ज़हर उगलना ही जिनका दूसरा व बन गया हो, भला बताइए, वे किस मुँह से लोगों हित और ज्ञान की बातें कह सकते हैं, और उनसे लोगों क्या कल्याण-साधन हो सकता है ? अब समय आ गया कि सर्व-साधारण लोग भी इस अख़बारी गुण्डाशाही के अपनी आवाज़ उठावें।

कत्ते का जीवन

इधर कोई १५ दिन मुझे कलकत्ते में रहने का अवसर। यहाँ का राजनैतिक जीवन शिथिल है और दलबंदि-से ख़ाली नहीं है। सुभाष बाबू का नवयुवकों पर अच्छा है; उनके व्यक्तित्व के प्रति, उनके शील-चारित्र्य के में, यों प्रायः सबके मन में मान और आदर के भाव ते हैं; परन्तु वह अभी सब-श्रेणी के लोगों पर अपनी ता, ठोस काम की क्षमता और प्रौढ़ता का सिक्का जमा पाये हैं। जेल से छूटकर आने वाले नज़रबंदों ने के नाम से एक अलग दल बनाया है, यह बाबू से असंतुष्ट है। फिर भी बंगाल के राजनैतिक वाताकाश में सुभाषबाबू ही एक उदीयमान और उज्ज्वल तारे से चमक रहे हैं। उनके आते ही शसमल-सेन गुप्त-विवाद तो समाप्त हो गया है।

कांग्रेस की तैयारियाँ हो रही हैं। प्रदर्शिनी में केवल खादी ही रक्खी जाय या विदेशी और मिल का कपड़ा भी? इसपर यहाँ खूब चक-चक हो रही है। स्वराजी केवल खद्दर नहीं चाहते। ऐसा मालूम होता है कि अबकी कांग्रेस में खद्दर की शर्त उठ जाय तो आश्चर्य नहीं। यदि ऐसा हुआ तो मानना होगा कि कांग्रेस जनता का तिरस्कार और उसके हित की उपेक्षा कर रही है। देखना चाहिए, क्या होता है!

बंगालियों और मारवाड़ियों का जीवन मिलता नहीं है। बंगालियों का मांस-मछली भोजन मारवाड़ियों का सामाजिक मेल नहीं होने देता। मारवाड़ियों की प्रवृत्ति व्यापार-प्रधान और बंगालियों की साहित्य-प्रधान होने के कारण भी दोनों एक दूसरे के नज़दीक नहीं आ पाते हैं।

मारवाड़ियों के सामाजिक जगत् में पिछले दिनों 'गोविंद भवन' के काण्ड को लेकर बहुत हलचल रही। मारवाड़ी पुरुषों की मूर्खता और स्त्रियों के भोलेपन का यह बड़ा दुःखद चित्र है। ब्राह्मणों के गुरुडम को मिटाने के भ्रम से यह उससे निकृष्ट गुरुडम फैला, जिसका परिणाम हुआ महा दुराचार में। आशा है, इस दुर्घटना से मारवाड़ियों की धार्मिक भावना शुद्ध होगी और वे यह अच्छी तरह समझ लेंगे कि दुराचार कभी धर्म और भक्ति नहीं हो सकती।

सुधारक और सनातनी दो दल यहाँ मारवाड़ियों में हैं। मुझे दोनों दल के कुछ नेताओं से मिलने का अवसर मिला। दोनों में कटुता पाई गई। यह दोष है। अगले अंक में इसपर रुचिकर प्रकाश डालने की चेष्टा करूँगा।

मैं जब यहाँ आया तो 'समाचारपत्रों की गंदगी' की बातों से वातावरण क्षुब्ध हो रहा था। यहाँ के दो तीन पत्रों के नाम गंदगी फैलाने वाले पत्रों में लिये जा रहे हैं। एक संपादक महाशय ने अपने पक्ष का समर्थन इस तरह किया—'हम गंदी बातें न छापें तो लोग अख़बार पढ़ते नहीं। कम से कम हम अपना पेट आप भर लेते हैं—किसी के सामने हाथ नहीं फैलाते'। एक मित्र ने इसका उत्तर

दिया—'वेश्या भी यह दावा कर सकती है; पर इससे वह समाज से सहायता पाने की अधिकारिणी तो अपनेको नहीं समझ सकती।' एक दूसरे संपादक भाई ने कहा—'हम गंदगी फैलाते नहीं, सिर्फ़ दिखाते हैं।' इसका उत्तर एक मित्र ने दिया—'तो पहले वे अपने ही घर से क्यों न शुरुआत करें?' ये उदाहरण यहाँ की मनोवृत्ति दिखलाने के लिए दिये हैं—अपने विचार अगले अंक में प्रकाशित करने की आशा रखता हूँ।

इस यात्रा में मैंने यहाँ की कई संस्थाओं और कारख़ानों को भी देखा है, जिनपर अपना वक्तव्य, समय और स्थान के अभाव में, अगले अंश पर ही छोड़ना उचित है।

देहात के दुःख

क़स्बे और शहर के लोगों को देहात के लोगों के दुःखों का बहुत कम पता होता है। अज्ञान, अशिक्षा, अंधविश्वास, दरिद्रता की तो नुमाइश देहात को समझना चाहिए। सफ़ाई के उसूल और फ़ायदे उनको मालूम नहीं, हिसाब-किताब वे जानते नहीं, क़ानून-क़ायदे की वाक़फ़ियत नहीं, घर के पीछे ही खाद के लिए गोबर इकट्ठा करना, घर के आसपास ही टट्टी बैठ जाना, दर्वाज़े पर और रास्ते में ही पेशाब करना, मैले-कुचैले कपड़े पहनना, इसमें उनको कोई बुराई नहीं देख पड़ती। बनिये-महाजन, पुलिस और चुंगी के सिपाही या गाँव का पटवारी उनको उलटा-सीधा समझा कर या डरा-धमका कर चाहे जिस हिसाब और दस्तावेज़ पर दस्तख़त करा लें, वे गऊ बनकर कर देते हैं। जंत्र-मंत्र, टोना-टोटका, ग्रह-नक्षत्र, भूत-प्रेत, स्वर्ग-नरक आदि कितनी ही थोथी और मिथ्या बातों का डर बता कर पाखंडी उन्हें ठग ले जाते हैं। बेगार में वे औरतों और बच्चों सहित बँधे-बँधे फिरते हैं। काठ और हवालात में तो उनका पाँव मानों दिया ही रहता है। ब्याह-शादी और मृत्यु के अवसर पर अनापशनाप ख़र्च करके जाति जिमाना और मन माने ब्याज पर क़र्ज़ से लदे रहना उनका स्वाभाविक जीवन हो गया है। छाछ, प्याज़, लहसन की चटनी से रूखी-सूखी जौ, बाजरा की राब और ज्वार-मकई की मोटी रोटी उनके छप्पन भोग हैं। दूध उनकी गाय-भैंसें हम शहर वालों के लिए देती हैं। घी उनके यहाँ ठाकुरजी को
बताने की वस्तु है। एक देहाती से मैंने पूछा—तुमने
कभी खाई है? उसने कहा—महाराज, जब किसी बड़े
चला जाता हूँ तो एक-आध पैसे की जलेबी बच्चों के लिए
आता हूँ। मेहमान जब आते हैं तब यदि उन्हें गुड़ का
दलिया खिला दिया तो उसकी बड़ी ख़ातर-तवाज़ें हो
बच्चे भी गुड़ तभी खाते हैं। शकर की मिठाई तो बड़े
में ही हम आँखों से देखते हैं। कपड़ा उनके बदन पर
ढँकने भर को होता है। बिहार में तो स्त्रियों के पास एक
दूसरी धोती नहीं होती कि जिसे पहन के वे नहा लें
दूसरी को धो कर सुखा सकें।

अज्ञान और भोलेपन का यह हाल कि एक
दूसरे से पूछता है—'क्यों जी, गेहूँ तो हम लोग भी
सकते हैं, ये राजा लोग क्या खाते होंगे?' दूसरे
जवाब दिया—'वाह इतनी बात भी नहीं जानता,
मख़मल खाते हैं मख़मल!' उसने फिर पूछा—'हाँ
तो भला बताओ, घी तो हम लोग भी खा लेते
बड़े लोग क्या खाते होंगे?' उसने कहा—'अरे
वे इत्र खाते हैं इत्र!' पुलिस का, राज में ले जाने का
दिखा कर आप उन्हें खूब लूट सकते हैं। धर्म-कर्म की
डींगें हाँक कर तिलक-छापा लगा कर उन्हें मूंड सकते
कोई गहरी बीमारी हो जाय तो अंट-शंट जड़ी-बूटी
दागने के अलावा मृत्यु ही उनका अंतिम कारगर
होता है।

सहृदय पाठको, ज़रा इस चित्र की करुण
देखो तो! क्षण भर के लिए अपनेको उनकी हालत में
कर उनके दुःखों का अनुभव तो करो! आपके अंदर से
चीख़ निकल पड़ेगी। और ये वे देहाती हैं जिनकी
मेहनत से उपजाये अनाज को खाकर हम जीते और
करते हैं, जिनके प्रेम से कष्ट-पूर्वक पाले पशुओं के दूध-
खा पीकर हम मुटाते हैं, और जिनके दिये लगान में से
द्रव्य से बने बड़े-बड़े शिक्षालयों में शिक्षा प्राप्त कर हम
धुरंधर आचार्य, प्रकाण्ड पण्डित और विश्व-विख्यात
वेत्ता बनते हैं। उन्हींकी दी हुई सत्ता को पाकर
प्रभु भी बन बैठते हैं। और उनके दुःखों की ओर

ना ध्यान जाता है ? इसे हम कृतघ्नता नहीं तो और कहें ? फिर याद रखना चाहिए कि हमारे देश में ८० सदी इन्हींकी संख्या है। इनकी उपेक्षा करके, भारत के भर शिक्षित लोगों, आप कैसे स्वराज्य पा सकते हो और कैसे टिका सकते हो ? अपने अन्नदाता और जीवन-दाता को अपने ऐश-आराम का शिकार कब तक बनाते रहोगे ? उनके दुःखों पर अपनेको न्यौछावर कर देने के लिए कब तुम्हारा हृदय तड़पने लगेगा ?

ग्राम-संगठन की कुञ्जी

स्वराज्य की लड़ाई अब तक प्रधानतः शहरों से मिले सैनिकों--कार्य-कर्त्ताओं के बल पर चलती रही है। इनमें मध्य वर्ग के लोगों की अधिकता रही है। ऊँची श्रेणी के धनी और रईस, इसी प्रकार साधारण श्रेणी के—जनता-वर्ग के लोग इसमें बहुत कम रहे हैं। अब आगे उच्चवर्ग के धनी और रईस लोगों में से अधिक स्वयं-सेवक मिलने की आशा कम है और उनके संगठित बल का लाभ भी स्वराज्य-आंदोलन को कम ही मिलेगा; क्योंकि एक तो स्वराज्य का पथ दिन-दिन अधिकाधिक कष्टकर होता जा रहा है और दूसरे ऐसे-ऐसे आदर्श लोगों के सामने उपस्थित हो रहे हैं जिनसे धनी और सरदार लोगों की असीम धन-प्रभुता को रुकावट होगी। इन आदर्शों को प्रकट करने से उनका हृदय परिवर्तन हो जाय तो बात दूसरी है। ऐसी अवस्था में अब एक ही क्षेत्र बाक़ी रहा है, जहां से स्वराज्य-संग्राम के लिए काफ़ी सामग्री मिल सकती है; और सच पूछा जाय तो स्वराज्य का सच्चा काम उन्हीं-से मिलने वाला है। वह है हमारा ग्राम। इसलिए अब चारों तरफ़ से ग्राम-संगठन की आवाज़ बुलन्द हो रही है। यह हुई ग्राम-संगठन की स्वराज्य दृष्टि। ग्राम-संगठन की ग्राम निर्माण दृष्टि भी है और वह है ग्राम-जीवन सुखी और समृद्ध किस प्रकार हो ? यह निर्विवाद सिद्ध है कि बिना स्वाधीन हुए गाम-जीवन सुखी और समृद्ध नहीं हो सकता, पर साथ ही यह भी सच है कि हमारे ग्राम जब तक सुसंगठित न हों तब तक स्वधीनता की आशा दुराशा-मात्र है। इसलिए अभी ग्राम-संगठन की ग्राम-निर्माण दृष्टि पीछे रह जाती है और स्वराज्य दृष्टि वेग के साथ आगे आजाती है।

अब सवाल उठता है कि स्वराज्य-दृष्टि से ग्राम-संगठन हो किस तरह। इसमें सबसे बड़ी कमी तो कार्यकर्त्ताओं की है। शहर में बसे और पले हुए शहर के संस्कारों से लदे हुए लोगों के लिए गाँववासियों के बीच बसना एक बड़ा बोझ हो जाता है। यदि कार्यकर्त्ता तैयार हुए तो किस तरह काम शुरू करें, यह प्रश्न आ खड़ा होता है। गाँवों में जाते ही गाँवों की कई और अपरिचित समस्यायें सामने आती हैं और कार्यकर्त्ता दुविधा में पड़ जाता है कि पहले क्या करूं और किस को हाथ में लूं ! इधर राजस्थान के कुछ देशी राज्यों के ग्रामों में खादी-कार्य करते हुए ग्राम-कार्य का जो अनुभव हम लोगों को हुआ है उससे हम लोग इस नतीजे पर पहुँचे हैं कि एक कार्यकर्त्ता को कई कामों में न पड़ना चाहिए और अपना काम और काम का क्षेत्र जल्दी-जल्दी नहीं बदलना चाहिए। हमारा यह अनुभव दृढ़ होता जाता है कि खादी-कार्य ग्राम-प्रवेश का और गाँवों के लोगों में हिल-मिल जाने का सबसे सरल, सस्ता और पवित्र साधन है, और ग्राम-संगठन का सबसे मज़बूत सहारा है। इसलिए कार्य-कर्त्ता और समस्याओं में उलझने के पहले सिर्फ़ खादी-कार्य में पड़े। कमसे कम पांच वर्ष तक एक केन्द्र में खादी-कार्य जम जाने पर कार्य-कर्त्ता या तो दूसरे केन्द्र को हाथ में ले या दूसरे किसी काम में दिलचस्पी ले खादी के साथ-साथ यदि कार्यकर्त्ता को समय, शक्ति और सुविधा हो तो ग्रामवासियों की सामाजिक सेवा में दिलचस्पी ले रोगियों की सेवा-सुश्रूषा और दवा-दरपन की सुविधा करता रहे तथा कथा-पुराण के द्वारा नीति, सदाचार, धर्म और ज्ञान के सिद्धान्त की बातें एवं स्वच्छता, परस्पर सद्भाव और एकता, निर्भयता और कुरीति-निवारण आदि बातें उन्हें समझावे। सामाजिक झगड़ों, दल-बन्दियों और राजनैतिक आन्दोलनों में कार्यकर्त्ता को एकदम न उलझ जाना चाहिए। एक केन्द्र में चार-पांच वर्ष सफलता और एकनिष्ठा-पूर्वक काम करने के बाद तथा ग्रामवासियों का विश्वास-पात्र बन जाने के बाद ही कार्यकर्त्ता को सेवा-क्षेत्र से आगे बढ़कर सामाजिक या राजनैतिक आंदोलन में पड़ने का साहस करना चाहिए। फिर भी उसे उन आंदोलनों का अगुआ तो हर्गिज़ न होना चाहिए। गांव के लोग अगुआ बनने के लिए तैयार हो गये हों तो फिर उनके

पीछे रहकर उनकी मदद भले ही करें। उनको इस बात की पूरी सावधानी रखनी चाहिए कि वह गांव के बनिये-महाजन, राज्य के हाकिम, पंचायत के मुखिया, मन्दिरों के महन्त, इनके हाथ का खिलौना न बन जाय। अछूतों का सवाल गांव में शहरों से ज़्यादा टेढ़ा होता है। जब तक ग्रामवासियों की मनोभूमिका काफ़ी तैयार न कर ली जाय तब तक अछूतोद्धार के उग्र आंदोलन का परिणाम शायद अच्छा न हो। गांव की सफ़ाई, पशु-पालन, खाद और गांव की बीमारियों की मोटी-मोटी बातों का ज्ञान कार्य-कर्त्ता को अवश्य होना चाहिए। शहर के दुर्व्यसन और शौक़ की चीज़ जहां तक हो देहात में कम ले जायँ। कार्य कर्त्ता का जीवन गांव वालों के जीवन से मिलता-जुलता रहे। खादी का काम जम जाने पर कार्य-कर्त्ता पाठशाला और वाचनालय की ओर ध्यान दे सकता है। मुझे विश्वास है कि इस प्रकार और इतनी तैयारी से यदि हम ग्राम-प्रवेश करेंगे तो ग्राम-संगठन की कुँजी हमारे हाथ लग जायगी।

सच्ची शुद्धि

शुद्धि-आन्दोलन ज़ोरों के साथ चल रहा है। कितने मुसलमान, आधे-मुसलमान और ईसाई शुद्ध होकर हिन्दू हुए, यह उतनी महत्त्व की बात नहीं है जितनी यह कि हिन्दू-समाज ने दूसरे धर्म और समाज के लोगों के लिए सदियों से बन्द अपना दर्वाज़ा खोल दिया है। आज एक पुराने विचार का बूढ़ा ब्राह्मण भी शुद्धि को अच्छा समझने लगा है। उनकी मनोवृत्ति के इस परिवर्तन का जितना श्रेय शुद्धि वालों को दिया जाय, कम है। पर अभी तक शुद्धि जिस तरह की जा रही है उससे हिन्दू-जाति की रक्षा का प्रश्न हल नहीं हो सकता। शुद्धि-आन्दोलन ने आने का दर्वाज़ा तो खोल दिया है, पर जाने का रास्ता बन्द नहीं किया है। मुसलमानों और ईसाइयों की जो इतनी भारी तादाद यहाँ देखी जाती है और कहते हैं कि दिन-दिन हिन्दू समाज से लोग दूसरे धर्मों में जा रहे हैं उसका असली कारण यह नहीं कि हमारे यहाँ वे वापस नहीं आ पाते थे; बल्कि यह है कि हम अपनी सामाजिक बुराइयों के कारण उन्हें अपना समाज छोड़ने पर मजबूर कर देते हैं। अन्न-वस्त्र से दुखी, दुर्व्यवहार से ऊबी, पति की उत्सुक, विधवायें, पेट के लिए दर-दर मारे फिरने वाले अनाथ बच्चे, कुत्ते की तरह दुरदुराये जाने वाले अछूत और नीची जाति के लोग ये हैं हमारे हिन्दुस्थानी ईसाई और नौमुसिलम देशभाई। जिन लोगों में न धर्म के ऊँचे आदर्शों का प्रेम है, न जिन्हें समाज में औरों के बराबरी की सुख-सुविधा मिलती है वे बाहर न जायँगे तो होगा क्या? जो लोग अब भी इतनी जिल्लतें सहते हुए हिन्दू-समाज में बने हुए हैं उनकी बड़ी मिहरबानी ही समझना चाहिए। और उन लोगों की और बड़ी मिहरबानी समझना चाहिए, जिन्होंने अबतक उन्हें मुसलमान या ईसाई बना नहीं डाला है। मेरा तो यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि जब तक नीची जातियों को ऊँची जाति वाले बराबरी की इज़्ज़त न देंगे, उनकी आमदनी का अच्छा ज़रिया न कर देंगे, उनके साथ खान-पान और ब्याह-शादी का संबंध न बढ़ावेंगे, तब तक चाहे हजार शुद्धि के आन्दोलन किये जायँ हिन्दू-जाजि की संख्या घटे बिना रह नहीं सकती। यदि एक अछूत कल मुसलमान बनकर एक नवाब के दस्तरख़्वान पर खाना खा सकता है, यदि एक रात का भिखारी कल ईसाई होकर पढ़-लिख जाता है और अच्छी बीबी से शादी कर के समाज में प्रतिष्ठित हो जाता है, यदि एक विधवा मुसलमान या ईसाई होकर अब अपने के साथ पति के सुख को पा सकती है, तो कौन ऐसा मूर्ख होगा जो महज़ इसलिए कि हिन्दू जाति में उसकी पैदाइश है, हिन्दू जाति में बना रहने में अपना फ़ायदा सोचेगा! अतएव मेरी राय में वे भाई जो हिन्दू-जाति की संख्या की रक्षा के बहुत उत्सुक हैं, औरों को हिन्दू जाति में मिलाने की अपेक्षा हिन्दू-जाति के बांध में जो अनेक छेद हो गये हैं उन्हें बन्द करनें की तरफ़ ज़्यादा ध्यान दें तो सच्चा लाभ होगा, और यही मेरी राय में अब सच्ची शुद्धि है।

जरूरी काम

मुझसे जब कोई भाई सावल करते हैं कि मैं क्या काम करूँ, तो मैं उत्तर दिया करता हूँ—वह जिससे स्वराज्य नज़दीक आवे। एक मित्र ने पूछा—विधवा-विवाह, गो-रक्षा और अस्पृश्यता-निवारग इनमें से मुझे किस काम में पहले

चाहिए ! मैंने उत्तर दिया—जिससे स्वराज्य नज़दीक आता हो । उन्होंने कहा कि मुझे तो तीनों स्वराज्य के लिए सहायक मालूम होते हैं । मैंने कहा—इनमें ऐसा कौन सा काम है जिसके बिना स्वराज्य रुक सकता है ? वह सोच में पड़ गये । मैंने कहा—विधवा-विवाह यदि दस बरस न भी हो तो उसका स्वराज्य के आने-जाने पर ख़ास असर नहीं हो सकता । उससे अधिक हुआ तो ज़िन जातियों में बाल-विवाह होता है, पर विधवा-विवाह बंद है, उनमें भीतरी बुराइयाँ और दस साल तक बंद न होंगी और इससे शारीरिक और नैतिक दृष्टि से उन जातियों का कुछ और पतन हो जायगा । परन्तु आते हुए स्वराज्य को रोक रखने का ऐसा सामर्थ्य इस बुराई में नहीं । यदि स्वराज्य आ रहा हो तो ब्राह्मण वैश्यों के यहाँ की बाल-विधवायें डेपूटेशन लेकर नहीं जायगीं कि चूँकि हमें विवाह की सुविधा नहीं दी गई, इसलिए इनको स्वराज्य मत दो । इसी तरह यदि गो-रक्षा और दस-पांच बरस और आगे धकेल दी गई तो गायें या उनके अभिभावक किसान इस बात की शिकायत लेकर नहीं पहुँचेंगे कि स्वराज्य आने पर ये लोग हमको कुचल डालेंगे । अंग्रेज़ बहादुर ! हमको तो आपके राज्य में सब तरह अमनचैन है । उलटा गायें तो अंग्रेज़ों के राज्य में बहुत कट रही हैं और किसान भी काफ़ी तबाह हो रहे हैं । पर यदि अछूतों को हमने अपने में नहीं मिलाया तो वे ज़रूर इस बात का आंदोलन करेंगे और कर रहे हैं कि इन कम्बख़्तों ने हमें सदियों से कुत्ते-बिल्ली से भी बदतर बना रक्खा है । आज आपके राज्य में तो हमें पढ़ने-लिखने वग़ैरा की सुविधा हुई है; मगर इनका स्वराज्य होने पर तो ये हमें कहीं का न रहने देंगे । और ७ करोड़ अछूत भाइयों की यह आवाज़ कौन कह सकता है कि पुर-असर नहीं है ? इसलिए विधवा-विवाह व गो-रक्षा से ज़रूरी काम है अछूतोद्धार ।

मैंने कहा—सबसे पहले काम का चुनाव करने में स्वराज्य की दृष्टि प्रधान रखनी चाहिए, फिर अपनी रुचि देखना चाहिए । यदि वह काम चार-छः आना भी अपनी रुचि के अनुकूल हो तो अपनी रुचि को स्वराज्य की आवश्यकता के अनुकूल बना लेना चाहिए । इसके बाद सवाल आता है योग्यता का । यदि आठ आना भी योग्यता अपने अन्दर पाते हों, तो उस काम में पड़ जाना चाहिए । और साथ ही पूरी योग्यता प्राप्त करने की चेष्टा करते रहना चाहिए । जब तक पूरी योग्यता नहीं आ जाती तब तक उस विषय और काम के जानकार लोगों की राय को प्रधानता देनी चाहिए । और सबसे बढ़कर बात यह है कि एक बार काम में पड़ जाने पर, जब तक यह न मालूम हो कि यह तो अच्छे काम के भ्रम से बुरे काम में पड़ गये, या अपनी अयोग्यता के कारण संस्था या काम को गहरा धक्का लग रहा है, तबतक उसे छोड़ न बैठना चाहिए । इसके अतिरिक्त एक काम को स्वीकार करके तबतक अधूरा न छोड़ना चाहिए, जबतक दूसरे योग्य व्यक्ति उस काम के लिए खोज न लावें या तैयार न कर दें । आशा है, यह बातचीत अन्य कार्यकर्त्ता भाइयों के लिए भी लाभप्रद साबित होगी ।

ह० उ०

स्वर्गीय गोपबन्धु दास

१७ जून को उड़ीसा के एकमात्र नेता श्री गोपबंधुदास का स्वर्गवास हो गया ! गोपबंधुदास भारत-माता के एक सर्वश्रेष्ठ रत्न थे। उड़ीसा के तो मानों वह प्राण थे। 'जननी-जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' की भावना को उन्होंने अपने जीवन में प्रत्यक्ष कर दिया था । जिस भूमि में वह जन्मे और पले, वह (उड़ीसा) दुर्भिक्ष का जीता-जागता चित्र है । इसी कारण ग़रीबी और रोग सदा ही वहाँ अपनी छावनी डाले रहते हैं । अज्ञान-अविद्या का तो वह घर ही है । इस भूमि में रहने वाले भाई-बहनों की इन सब बातों से कैसी भीषण दशा है, इतनी दूर बैठे हम तो उसकी कल्पना भी शायद ही कर सकें। मातृभूमि भक्त गोपबंधुदास का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ और इस दुःस्थिति को दूर करना ही उन्होंने अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया। इसके लिए उन्होंने क्या नहीं किया ? दैवी या मानुषी कोई भी दुर्घटना हो—चाहे अकाल की मार हो, या बाढ़ का प्रकोप, अथवा सरकारी अन्याय, गोप-बन्धु अपनी आश्वासन-पूर्ण अमृतमयी वाणी और प्रेम-पूर्ण उपकार के साथ पीड़ितों की सहायता

के लिए सबसे पहले उपस्थित होते और उनके संकट-निवारण का अपने भरसक कोई भी प्रयत्न बाक़ी न छोड़ते थे। यही नहीं, उनका चरित्र निष्कलङ्क और दृढ़ था, और स्वावलम्बन की भावना से प्रेरित होकर ही सरकार से स्वतंत्र एक विद्यालय उन्होंने सत्यवादी स्थान में खोला था, जो उड़ीसा में राष्ट्रीय-कार्यकर्ताओं का केन्द्र रहा है। असहयोग के ज़माने में कौंसिल की सदस्यता और वकालत छोड़ कर तन-मन से वह राष्ट्रीय कार्य में लग गये थे और गत वर्ष तो उन्होंने और भी ज़बर्दस्त त्याग किया। ला० लाजपतराय के लोक-सेवक-संघ के आजीवन सदस्य हो कर अपने प्रसिद्ध उड़िया पत्र 'समाज' तथा उसके प्रेस को भी उसे दे डाला; यही नहीं बल्कि अपनी ५० हज़ार की जायदाद भी कामों में ख़र्च करने के लिए ट्रस्ट के सुपुर्द कर दी! इस समय वह इसी लोक-सेवक-संघ के उपप्रधान थे ग़रीबी तथा बाढ़ से पीड़ित उड़ीसा को आर्थिक पहुँचाने के लिए खादी को उपयोगी साधन बनाने योजना तैयार कर रहे थे। इसमें सन्देह नहीं कि अवसान से भारत ग़रीब हो गया है और उड़ीसा तो समय के लिए मानों प्राण-शून्य ही हो गया! उनकी पुत्रियां ही नहीं बल्कि सारा उड़ीसा आज उनके लिए रो है। परमात्मा उनकी आत्मा को सद्गति दें और उड़ीसा क्षति पूर्ति करें, यही कामना है।

मु

चित्र-दर्शन

१

वह था एक करुण-कोमल हृदय राजपुत्र का महातप! उसकी आत्मा में एक ध्वनि गूंज रही थी—"इस संसार का दुःख कैसे दूर हो?"

वह अप्रतिम योग था। एक-एक करके दिन बीतने लगे। तपस्या का तेज चारों ओर फैल गया। अंधकारमयी शक्तियाँ घबराईं। एक-एक शक्ति अपनी पूरी ताक़त लगाकर तपस्वी पर आक्रमण करने लगी। तपस्वी का बाल न बांका हुआ। स्वयं मार अपनी सेना को लेकर आया! तपस्वी अपने ध्यान में अटल रहा।

विश्व में एक नवीन शक्ति का उदय हुआ। उस उत्सव का दृश्य अपूर्व था।

परन्तु उस भावुक बाला सुजाता को तब तक कैसे संतोष हो सकता था। जब तक कि वह अप्रतिम योगी अपने इस दीर्घ अनशन व्रत के बाद कुछ भोजन न कर ले?

बुद्धत्व की प्राप्ति के समाचार पाते ही वह दौड़ी गई और कुछ थोड़े से फल-फूल जल वग़ैरा ले कर आई।

२

इस चित्र को देखकर के हम पुरुषों का सिर झुकजाना चाहिए। इस वृद्ध अवस्था में यह परिश्रम कल के अकर्मण्य पुरुषों को इस उद्यम की प्रति मूर्ति माता के चित्र से एक सबक मिल सकता है।

बड़ी प्रसन्नता की बात है कि हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं पाठकों में बड़ी तेज़ी से रुचि-परिवर्तन हो रहा है। स्त्रियों के चित्रों के ख़िलाफ़ जो आंदोलन चल पड़ा है इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। एक सुविचारी मित्र ने हमें "ज्ञानदीप" और सती पार्वती नामक चित्रों पर भी दिया है। हम उन्हें सिर्फ़ यही कह देना चाहते हैं कि के फ़लां अंग का खुला रहना और फलां अंग का ढका उतना हानिकर नहीं। असल बात तो यह है कि चित्र त्तेजक न होना चाहिए। वह हृदय को ऊँचा उठाने वाला ज्ञानदीप और सती पार्वती की अपेक्षा यह चित्र शायद अधिक अश्लील समझा जाना चाहिए। परन्तु इस नग्नता में भी वह गौरव भर दिया है कि हमारा आदर-पूर्वक इस उद्यम-जननी के चरणों में झुक

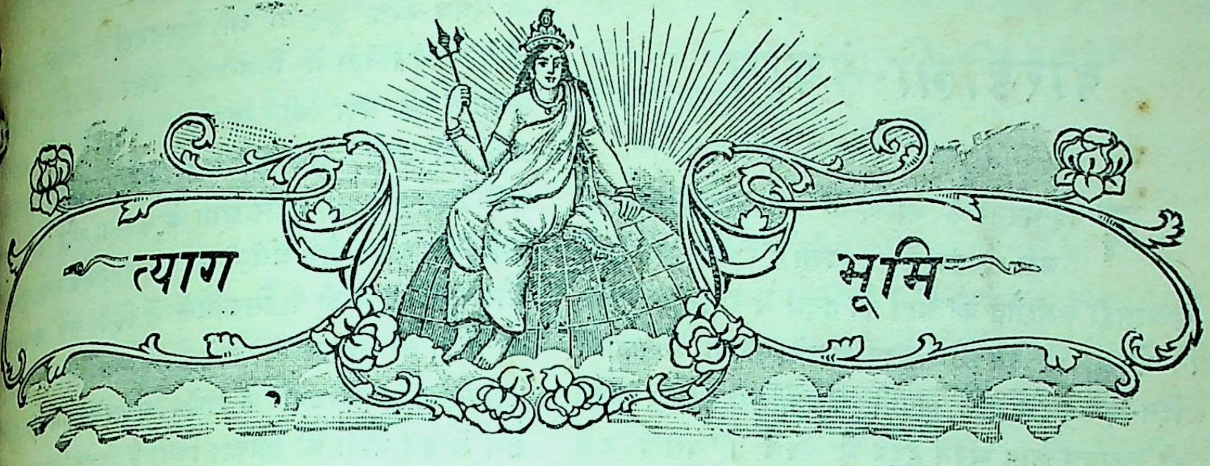

(जीवन, जागृति, बल और बलिदान की पत्रिका)

आत्म-समर्पण होत जहँ, जहँ विशुभ्र बलिदान ।
मर मिटवे की साध जहँ, तहँ हैं श्रीभगवान् ॥

र्ष १
ण्ड २

सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर।
अधिक श्रावण संवत् १९८५

अंश ५
पूर्ण अंश ११

मेरा दीपक

कैसे बुझे यह दीपक मेरा !
सारी रात जागते बीती होने लगा सवेरा ।

बड़े प्रेम से इसे सँजोया कर उद्योग घनेरा ।
प्रभु-दर्शन तो हुए नहीं, हाँ हृदय-पीर ने घेरा ॥

बाहर रिम-झिम ज्योति बरसती भीतर अगम अँधेरा ।
अलभ अमूल्य स्नेह जला कर व्यर्थ प्रकाश बखेरा ॥

क्षेमानन्द 'राहत'

बारडोली-संग्राम

बम्बई-गवर्नर के भाषण ने बारडोली-संग्राम को उस अवस्था में ला रक्खा है, जिसमें बारडोली के सत्याग्रही समझौते की बात को हृदय में स्थान न देकर अपने संगठन को दिन-दिन सुदृढ़ बनाने, अपनी प्रतिज्ञाओं पर दिन-दिन अटल रहने, अपनी कमज़ोरियों को दूर करने का ही एकमात्र भाव अपने हृदय में रक्खें। यद्यपि उक्त ज़ोरदार भाषण में भी दुनिया को परख चुकने वाले और राजनैतिक लड़ाइयों के अनुभवी लोग सरकार की कमज़ोरियों को और समझौते के लिए खुली रक्खी गई गलियों को साफ़ साफ़ देख सकते हैं, तथापि सदा सजग व सावधान सत्याग्रही तो विपक्षी की कमज़ोरियों को नहीं, बल्कि अपने व अपने दिल की ताक़त व मज़बूती का ध्यान रखता है और उसीके बल पर विजय प्राप्त करने की अभिलाषा रखता है। यदि प्रतिपक्षी के हृदय का पलटा होकर, शुद्ध भाव से, वह समझौते के लिए हाथ आगे बढ़ाता है, तो वह भी नम्र होकर उसके सामने जाता है; परन्तु यदि प्रतिपक्षी अन्याय ही पर अड़ा रहता है, तो वह सर्वस्व निछावर करके भी न्याय व सत्य की रक्षा करता है। हृदय के पलटे व शुद्ध भाव की परीक्षा यह है कि विपक्षी दिल खोल कर अपने अन्याय व भूल को स्वीकार करे, और उसके परिमार्जन का उद्योग इस तरह करे, कि जिससे अन्याय का शिकार होने वाले लोगों को सन्तोष हो। दूसरे शब्दों में, वह उनकी माँगों को स्वीकार कर ले। बारडोली के सत्याग्रही इसी दुधारी तलवार पर चल रहे हैं। उनके सुयोग्य नेता श्री वल्लभभाई पटेल ने शुरू से ही समझौते के हरएक अवसर का स्वागत किया है। सूरत में समझौते की जो शर्तें दोनों ओर से पेश की गई थीं, वे पाठकों को अन्यत्र मिलेंगी। उनसे पाठक भलीभाँति जान लेंगे कि सरकार किस तरह बढ़े हुए लगान की शर्त पर अड़कर कोरी टर्र का परिचय दे रही है और लोगों के लिए वह रक़म दे देना किस तरह प्रतिज्ञा-भंग का और अपनी बात को आप ही काट डालने का सवाल है। पर समझौते का प्रयत्न करते हुए भी श्री वल्लभभाई ने अपनी सजगता और सावधानता में तिल-मात्र कसर न होने दी है। किसानों के पक्ष की न्याय्यता को तो अकेले सत्याग्रही ही नहीं, असहयोगी ही नहीं, कांग्रेस वाले ही नहीं, नरमदल वाले, धारासभा के सदस्य, और 'पायनीयर' तथा 'स्टेट्समैन' जैसे अंग्रेज़ी पत्रकार भी स्वीकार कर चुके हैं, और कुर्की व ज़ब्ती के सिलसिले में किये गये अत्याचारों की निंदा तो तटस्थ कहलाने वाले लोगों ने भी की है। 'टाइम्स आफ़ इण्डिया' के विशेष संवाददाता ने भी दूसरे ढंग से इन बातों को स्वीकार किया है। इसलिए इस बात में तो अब किसी को कोई संदेह नहीं रह गया है कि बारडोली के किसान सर्वथा न्याय-पथ पर हैं और सरकार या तो अन्याय को देख नहीं रही है, या देखकर भी अपनी सत्ता की प्रतिष्ठा के ख़याल से और बारडोली की विजय से अपनी सत्ता को गहरा धक्का पहुँचने की आशंका से वह न्याय करने में हिचकिचाती है। परन्तु वह इस त्रिकालाबाधित सिद्धांत को भूल जाती है कि जय तो सदा सत्य की ही होती है। सत्य में तो ऐसा स्वयंसिद्ध स्वाभाविक आकर्षण व बल होता है कि सत्य-शोधक व सत्य-पालक खुशी-खुशी अपनेको उसपर न्यौछावर कर देता है। वह सत्याग्रही नहीं जो सत्य की रक्षा के लिए अपने को असमर्थ पाता हो। मिट्टी में मिल जाने पर भी सत्याग्रही का सत्य-प्रेम और सत्य-भक्ति बढ़ती जाती है। सत्य स्वयं ही सुरक्षित होता है। इसका अर्थ यह है कि जिसने सत्य को पा लिया है, जो सत्य से परिपूर्ण है, वह सदा अपनेको सुरक्षित समझता है और उसके निमित्त आये हुए संकटों को आनंद से सहन करना और मृत्यु तक को सस्नेह गले लगाना उसका स्वाभाविक कर्त्तव्य हो जाता है। इसका यह भी अर्थ है कि सत्य और रक्षा ये समानार्थवाची हैं, दो चीज़ें नहीं। जो सत्याग्रही है, उसमें अपनी रक्षा की शक्ति अवश्य ही है। यही कारण है कि बारडोली के निहत्थे किसान अपने अन्दर इतने बल का अनुभव कर रहे हैं और बम्बई की शस्त्रसज्जित सरकार लोगों को निर्बल जँच रही है।

परन्तु अभी तो बारडोली के किसानों के गले में विजय ने माला नहीं डाली है। हाँ, उन्हें तथा लोगों को

विजय पर विश्वास अवश्य है; क्योंकि वे सत्य और न्याय के अनुयायी हैं। अब तक उन्होंने जिस आत्म त्याग, संयम, संगठन और बल का परिचय दिया है, जिसने खुद सरकार को भी चका-चौंध में डाल दिया है, वह इस बात को प्रमाणित करता है, इस बात की झलक दिखाता है, कि विजय अमृत-कलश हाथ में लेकर उनकी ओर दौड़ी आ रही है। परन्तु अभी तक वे एक-दूसरे से दूर हैं--दोनों एक जीव नहीं हो पाये हैं। इसका कारण है, अभी बारडोली वालों ने अपने सत्य और न्याय की पूरी क़ीमत भी तो कहाँ चुका दी है? अभी तो कुछ लोगों की ही ज़मीनें ज़ब्त हुई हैं, कुछ ही लोगों के मवेशी नीलाम हुए हैं, चार-छः लोग ही जेल गये हैं—अभी सारा बारडोली ताल्लुक़ा जेलख़ाना कहाँ बन गया है! अभी तो वहाँ स्त्री-पुरुष आज़ादी से घूमते फिरते हैं, अभी तो उनके खेतों में फ़सलें लहरा रही हैं, पशु चरते और रमते हैं, पेड़ हरे-भरे खड़े हैं और उनपर चिड़ियाँ चहकती हैं। अभी तो बारडोली गुजरात का गुलज़ार चमन बना हुआ है। श्मशान कहाँ बन गया है,—जहाँ कि उल्लू बोलते हों, मुर्दों की राख के ढेर लगे हों, सत्याग्रही वीरों के, शहीदों के निर्दोष खून से ज़मीन लाल व तर हो गई हो और गिद्ध उनकी लाशों की ओर ललचाई हुई टकटकी बाँधे बैठे हों? यद्यपि बम्बई के लाट साहब ने भारत के बड़े लाट और भारत मन्त्री की अर्थात् सारे ब्रिटिश साम्राज्य की पूरी शक्ति के साथ, बारडोली पर प्रलय के काले बादल उमड़ाने की धमकी दी है, और उसके द्वारा बारडोली के सत्याग्रहियों को अपने—सत्य, अपनी प्रतिज्ञा, अपने आत्म-सन्मान की रक्षा की पूरी क़ीमत देने के लिए चेतावनी व अवसर देना चाहा है तथापि जब तक वह अवसर प्रत्यक्ष न आ जाय और वे पूरी क़ीमत न चुकायें तब तक विजय, निश्चित होते हुए भी, दूर है। पर पूरी क़ीमत उन्हें उसी अवस्था में चुकानी होगी, जब सरकार बिलकुल पशुता और राक्षसता का क्रूर व नग्न रूप वहाँ दिखावे। कई लोगों का ख़याल है कि इस सरकार के पाप का घड़ा भर चुका है, भारत में स्वराज्य का सुदिन शीघ्र आने वाला है, भारतवर्ष में स्वाधीनता के अमृत की धारा बहने वाली है और ब्रिटिश साम्राज्य से कूट-नीति का हलाहल निकलना मानव-जाति के हित के लिए आवश्यक है, इसलिए यह सरकार तो ग़लती पर ग़लती करेगी ही, और उसके फलस्वरूप बारडोली का बलिदान सारे देश में जीवन की आग फैला देगा।

यह सच भी हो सकता है; पर यह तो हुआ इस संग्राम का उज्वल पक्ष; यह तो हुई एक आशावादी और श्रद्धावान की सृष्टि। अब शंकाशील और भुक्तभोगियों की बात का भी विचार करलें। क्या बारडोली के किसान अन्त तक अहिंसात्मक बने रहेंगे? क्या वे छाती तानकर गोलियाँ खा लेंगे? अपनी ज़मीन ज़ायदाद सब को बरबाद कर देना सबके लिए सम्भव न होगा। क्या वे सरकार के दमन से दब और डर नहीं जायँगे? क्या उनका संगठन अन्त तक दृढ़ बना रहेगा? श्री वल्लभभाई के गिरफ़्तार हो जाने पर तो महात्माजी सम्हाल लेंगे; पर महात्माजी पकड़े गये तो कौन सम्हालेगा? किसी सुयोग्य नेता के अभाव मे संगठन का बल बिखर न जायगा? जब तक सरकारी दमन ज़ोर-शोर के साथ शुरू नहीं हुआ है तब तक भले ही ये बड़ी-बड़ी बातें सुन लीजिए आदि, आशंकायें अपनेको अधिक व्यावहारिक कहने वाले बुद्धिमान उठाया करते हैं। इन सब बातों के सविस्तार विचार के लिए इस लेख में स्थान नहीं। इस संग्राम का बुरे से बुरा अन्त यह हो सकता है कि बारडोली के किसान अपनी प्रतिज्ञाओं को तोड़ दें, अपने आत्म-सन्मान को खो कर भय अथवा लालच के शिकार होकर सरकार के सामने घुटने टेक दें!! तो भी क्या हुआ, क्या इससे दुनिया इस नतीजे पर पहुँचेगी कि बारडोली वाले अन्याय पर थे, और सरकार न्याय पर? नहीं—बारडोली का वह विफल संग्राम भी लोगों के दिलों पर यह असर छोड़ जायगा कि सरकार अन्यायी और राक्षसी है और बारडोली के लोग कमज़ोर साबित हुए। इससे सरकार के प्रति लोगों के मन में घृणा और अप्रीति के भाव और दृढ़ होंगे, तथा लोगों के प्रति सहानुभूति के भाव बढ़ेंगे। आगे चल कर इससे लोगों का ही हित होगा और सरकार का अहित। क्योंकि कोई सरकार इसलिए किसी पर राज्य नहीं कर रही है कि उसके पास लोगों को कुचल डालने के आसुरी शस्त्रास्त्र हैं, बल्कि इसलिए कि लोगों का नैतिक बल उसके साथ है। सरकार ज्यों-ज्यों अन्याय व अत्याचार करती जाती है त्यों-त्यों लोगों का नैतिक आश्रय उससे हटता

जाता है और एक दिन आता है जब वह देखते-देखते धड़ाम से गिर पड़ती है।

पर यदि लोग अन्त तक शांतिमय और अटल बने रहेंगे, जैसे कि लक्षण दिखाई पड़ते हैं कि बने रहेंगे, तो इससे भारत को अद्भुत लाभ होगा। लोगों का ध्यान इस ओर अधिकाधिक खिंचेगा कि जहाँ कहीं भी बन्दोबस्त होता है लगान घटता नहीं बढ़ता ही है और किसान पिसते ही जाते हैं। इससे सरकार की लगान नीति के दोष स्पष्ट नज़र आ जायेंगे और किसानों के संगठन की नींव पड़ जायगी। देश-सेवकों का ध्यान उच्च और मध्यम श्रेणी की अपेक्षा ग़रीबों और जनता की समस्याओं की ओर जायगा, जो कि भारत का सब से ज्वलन्त प्रश्न है। भारत को इस बात का पदार्थ-पाठ मिल जायगा कि एक व्यक्ति ही नहीं बल्कि एक समूह और समाज भी अहिंसात्मक युद्ध—सविनय अवज्ञा—सफलता के साथ कर सकता है। यह प्रयोग भारतवर्ष के इतिहास में तो अपना एक ही स्थान रक्खेगा; परन्तु संसार के इतिहास में भी एक उच्च पद प्राप्त करेगा। यह इस बात को दिखलावेगा कि वही सेनानायक सफल होता है जो अपनी माँग को इतनी छोटी बना कर रखता है कि तटस्थ लोग भी, और विपक्षी लोगों के साथ सहानुभूति रखने वाले न्याय-निष्ठ भी उसे न्याय-युक्त समझें, जो अपनी बात को साफ़-सीधी कहे, खुली लड़ाई लड़े, बड़े गौरवयुक्त समझौते के लिए सदा तैयार रहे, प्रतिपक्षी को ख्वामख्वाह परेशान न करे, लोभ में पड़ कर अपनी माँग और युद्ध की मर्यादा को न बढ़ावे, टेढ़े और कुत्सित उपायों से काम न ले, नियमबद्धता और सीधापन जिसका पहला और आख़िरी वाक्य हो। बारडोली ने अब तक इतना भी चमत्कार दिखाया है उसका रहस्य यही है। इस विजय से देश को जो-जो लाभ होने वाले हैं वे अभूतपूर्व-से होंगे। इसलिए प्रत्येक देशहितैषी, व दीनहितैषी का यह कर्तव्य है कि वह इस संग्राम की बातों से पूरी दिलचस्पी ले, और इसकी सफलता के लिए तन, मन, धन से उद्योग करे।

हरिभाऊ उपाध्याय

सैनिक गीत

(१)

सैनिक, बढ़े चले जाओ!
देश-प्रेम में मत्त गान तुम जन्म-भूमि का गाओ।
भारत का कण-कण जग जावे।
हो सचेत ब्रह्मास्त्र उठावे।
अत्याचार पूर्ण-नभ-मण्डल सुन कर तव हुङ्कार
लगे काँपने, कड़-कड़ करके टूट जायँ सब द्वार
उस अन्याय-दुर्ग का कोट।
सह पावे न तुम्हारी चोट।
अपनी खोदी खाँई में ढह जावे! अन्दर घुस जाओ
सैनिक, बढ़े चले जाओ

(२)

सैनिक, बढ़े चले जाओ!
दृढ़ता, साहस और धैर्य्य से आगे पैर बढ़ाओ।
बोलो एक साथ इक लय हो,
जननी जन्म-भूमि की जय हो!
गौरव, ज्योति जग रही जिनमें तुम हो वही शक्ति-संत
इस स्वतंत्रता की वेदी पर जाओ हो जाओ, बलिदा
तुम विजयी भारत-संतान।
दिया तुम्हें माँ ने वरदान।
आन रखो तुम, मान रखो तुम, और सपूत कहा
सैनिक, बढ़े चले जा

(३)

सैनिक, बढ़े चले जाओ!
होना विमुख कभी न ध्येय से यदि ठोकर भी खा
हाँ! निरुत्साह तुम होगे क्यों?
फिर पन्थ हार बैठोगे क्यों?
पर्वतीय-नद जिस प्रकार ढोकों से खा-खा कर ठो
बहता है द्विगुणित प्रवाह से उद्धत उच्छृङ्खल हो

निकले मुख से कभी न आह !
दुःख उदधि हो क्यों न अथाह ।
स्थिर बहते हुए काल में अमर कीर्ति तुम कर जाओ !
सैनिक, बढ़े चले जाओ !

(४)

सैनिक, बढ़े चले जाओ !
आशामय प्रशस्त इस पथ से उन्नति को अपनाओ ।
अन्धकार भगता जाता है ।
विश्व सकल जगता जाता है ।
पूर्व दिशा के उषा लोक में उच्च हिमालय के ऊपर ।
आता है सुवर्ण-पङ्खों से आने को भारत-भूपर ।
वह स्वतंत्रता का शुभ-दूत !
लावेगा सुख-पूर्ण मुहूर्त्त ।
फिर स्वाधीन वायु-मण्डल में अपनी ध्वजा उड़ाओ ।
सैनिक, बढ़े चले जाओ !

भद्रजित् "भद्र"

देशभक्ति का कठिन मार्ग

जो देश अपनी स्वाभाविक स्वतंत्रता की अवस्था में होते हैं उनमें सब से बड़े लाभ की बात यह होती है कि देश की भलाई का रास्ता और लोगों की अपनी वैयक्तिक भलाई का स्ता दोनों एक ही ओर को जाते हैं । दूसरे शब्दों जो कोई मनुष्य रण-क्षेत्र में या विद्या-वृद्धि के दान में, अथवा धन का उपार्जन करने में बड़ाई सिल करता है, वह उसके साथ-साथ अपने देश और जाति को भी एक क़दम आगे ले जाता है । इव आदि जिन बड़े-बड़े अँग्रेज़ों ने हिन्दुस्थान को त करने का काम किया, जहाँ वे स्वयं छोटी-टी अवस्था से उठ कर बड़े धनवान और प्रतिष्ठित न गये, वहां उन्होंने अपने देश तथा जाति की भी बड़ी भारी सेवा की । इसके विपरीत जो देश अपनी स्वतंत्रता खो कर भारत के समान पराधीन हो जाता है उसमें बड़ा दुःख और कठिनाई इस कारण से पैदा होती है कि उसके अंदर मनुष्य का अपने स्वार्थ का रास्ता और देश की भलाई का रास्ता परस्पर विरोधी हो जाते हैं । उसमें जो कोई मनुष्य देश तथा जाति की भलाई का काम करना चाहता है उसे न केवल अपना सांसारिक लाभ छोड़ना पड़ता है प्रत्युत उसे भारी कष्टों का सामना करना पड़ता है । इस उलटी राजनैतिक अवस्था में जो मनुष्य सरकार के घर में किसी कारण से मान और प्रतिष्ठा प्राप्त करता है, यह कहना बड़ा कठिन है कि वह अपने देश और जाति की वास्तविक भलाई में तनिक भी सहायता कर रहा है । इस कसौटी को सामने रखने से हमारे बड़े-बड़े माननीय नेता और राज-मंत्री, जिनका काम राजा और प्रजा दोनों को ख़ुश करना रहा है, देशभक्तों की सूची से निकल जाते हैं । सच्चा देशभक्त तो वही हो सकता है जिसने अपना जीवन ग़रीबी और कष्ट में गुज़ारा हो, न कि वह जो सरकारी प्रबन्ध-द्वारा हज़ारों-लाखों रुपया कमाता रहे और अपनी आयु के अंत के दो-चार वर्ष इन से प्रथक् हो कर देशभक्तों की पंक्ति में बैठ अपना मान और प्रतिष्ठा बढ़ा ले ।

एक और नियम यह है कि मनुष्य स्वभावतः एक स्वार्थ-परायण प्राणी है । अपना स्वार्थ ही मनुष्य से जी-जान के साथ काम कराता है । हम सब, कोई दूकानदार बन कर, कोई वकील बन कर, कोई सिपाही बन कर अपने पेट के लिए उस बाज़ीगर की तरह सब प्रकार के करतब करते हैं, जो रस्सी पर चढ़ कर अपने अँगूठे के बल नाचा करता है सूली पर चढ़ कर उलटा लटक जाता है और इस पेट की ओर हाथ से इशारा करके जताता है कि 'सब

इसकी ख़ातिर कर रहा हूँ ।' मनुष्य केवल एक स्वार्थी पशु ही रहता, यदि प्रकृति इसे विवेक-शक्ति न देती। इस विवेक से मनुष्य को पता लगता है कि यदि उसे अन्य मनुष्यों के साथ मिल कर सामाजिक अवस्था में जीवित रहना है, तो उसे अपना स्वार्थ छोड़ कर समस्त समाज के हित का ध्यान रखना होगा। विवेक ही यह बताता है कि यदि वह समाज, जिसमें मनुष्य रहता है, किसी रोग, दुःख अथवा पराधीनता के गड़हे में गिर जायगा तो वह स्वयं भी अमन-चैन से जीता न रह सकेगा । इसलिए उसका अपना स्वार्थ भी इसीमें है कि वह जाति की भलाई को अपना मुख्य आदर्श मान ले ।

यद्यपि यह विवेक बड़ा सीधा-सादा है, तो भी हज़ारों मनुष्यों में कोई एक-आध ही निकलता है, जिसके मन में इस प्रकार का विचार उत्पन्न होता है। कथाओं में, मंदिरों में, स्कूलों तथा कालेजों में लोगों और लड़कों को निस्स्वार्थ सेवा की शिक्षा दी जाती है; लेकिन इनमें से विरला ही कोई होता है, जो इस शिक्षा को ग्रहण करके इसपर आचरण करता है। अब हम यह मान लेते हैं कि सारे देश में ऐसे लोगों की एक श्रेणी है, जो यौवन-काल में विचार करने के पश्चात् यह निश्चय करते हैं, कि वे अपने जीवन में देश तथा जाति की निस्स्वार्थ सेवा करेंगे । आगे हमें यह देखना है कि इन अल्प-संख्यक लोगों के सामने क्या-क्या कठिनाइयाँ आती हैं, जिनके कारण वे अपनी प्रतिज्ञा भंग कर देते हैं या उनमें बहुत शिथिलता आ जाती है ।

यौवन-काल में मनुष्य को संसार के बल का पूरा ज्ञान नहीं होता । न उसे गृहस्थ की ज़रूरतों का पता होता है, न सामाजिक मान-अपमान की अधिक पर्वाह होती है । इस अवस्था में नवयुवक बड़े घमण्ड से कहता है कि 'संसार को अपने पाँव-तले रौंद दूंगा, मुझे कोई सांसारिक शक्ति दबा नहीं सकती।' पर संसार की माया चुप-चाप खड़ी उसकी ओर देख है और मन-ही-मन कहती है—'देखो भाई, इत घमण्ड मत करो ! तुम्हारे जैसे सैकड़ों-हज़ारों मनुष्य मैंने देखे; जब वे मेरे रगड़े में आये तो बच न निकले ।' दो-चार साल बाद उस युवक का हो जाता है, और गृहस्थ की आवश्यकतायें एक करके उसे दबाने लग जाती हैं। भाई-बन्धु सब मित्र दिखाई देते हैं, जब कुछ पास में होता है अन्दर से आवाज़ आती है—'अरे मूर्ख, यह क्या रहा है, जब कि तेरे पास कुछ नहीं, तू खाने-पीने लिए दूसरों के अधीन है ? ऐसा रहेगा तो न अपना बनायेगा, न कुछ देश का कर सकेगा।' दिन बेचारा इस आवाज़ को दबाने का यत्न है। परन्तु कब तक ऐसा करेगा ? अन्त में भेड़ तरह सिर नीचे डाल देता है और दुनिया के चल पड़ता है । इस श्रेणी के सहस्रों मनुष्यों कोई विरला ही ऐसे सत्चरित्र वाला होता है माया की इस शक्ति का मुक़ाबला करते हुए जगह पर खड़ा रहता है। साधारण लोगों में से कोई विचारशील होते हैं, ऐसे ही विचारशील म में से कोई कोई ही ऐसा चरित्रवान् होता है।

एक क़दम आगे चलिए । देशभक्ति के मा बड़े कांटे हैं । अभी तक तो हमारे युवक ने उस की न किसी कठिनाई को देखा, न किसी मुसीब सामना किया । जब सचमुच उसने इस रा पाँव रक्खा तो तत्काल ही विरोधियों की ओर से होने लगा । उसके विरोधी कई प्रकार के साध उसे दबाने लगते हैं; विरोधी तो परे रहे, उसके में से ही कई ईर्ष्या-द्वेष से भरे हुए उसके जाते हैं । विरोधी दल के कई मनुष्य ऊपर से वेष में रास्ते में रोड़ा अटकाते हैं । थोड़ी देर में

कोई बखेड़ा खड़ा हो ही जाता है, चारों ओर से उसे घेर लेते हैं। तब उसके हृदय में अपने प्राणों के लिए भय उत्पन्न होता है और भीरुता, जिसका ले उसे कभी ध्यान भी न हुआ था, आ कर उसे र लेती है। बहुतेरे लोग धन का त्याग कर सकते हैं, मान का भी त्याग कर सकते हैं; लेकिन वे स्वभाव ऐसे कायर होते हैं कि संग्राम, संकट या युद्ध के य में हिम्मत हार बैठते हैं और उन्हें ठीक रास्ते सुध-बुध नहीं रहती। अमन और शान्ति के य अपने त्याग-द्वारा वे लोगों के नेता बन सकते हैं; न शत्रु-दल के सामने खड़े होकर जिस साहस र वीरता की ज़रूरत होती है, वह उनमें न होने अपने साथियों के विनाश का कारण बन जाते हैं। अपना अनुभव बताता हूँ; अपने मुक़दमे में मैंने ऐसे मनुष्यों को देखा, जिनके हृदय में देश-भक्ति आग जलती थी—जिन्होंने अपना सब कुछ देश लिए क़ुर्बान कर दिया था परन्तु ज्योंही वे पुलिस के में पड़े और उन्हें अपनी जान बचाने का प्रलोभन या गया, त्योंही उन्होंने अपने सब साथियों को ड़वा कर न सिर्फ़ अपने आन्दोलन को मिटा दिया, ल्कि स्वतन्त्रता की लहर को कहीं दूर पीछे डाल या। इसी प्रकार आर्यसमाज में कई ऐसे लोग थे, शुद्ध देशभक्ति की बातें करते थे; परन्तु जब र ने थोड़ा-सा दबाव डाला, तो उन्हें अपनी सब ली बातें भूल गईं। हाल की बात है कि जब मानों ने हिन्दू कार्यकर्त्ताओं पर आक्रमण किये उनको मार डालने की धमकियाँ दीं, तो कई मियों ने चुप-चाप हिन्दू-संगठन के आन्दोलन को दिया। जान का भय एक बड़ी कम- है, जो हमको संघर्षण के समय काम के अयोग्य बना देती है। और, जब यह नेता में पाई जाय, तो उसका नेतृत्व अपने समाज या संस्था के लिए बहुत हानिकारक होता है। हमारे अपने अंदर ऐसे नेता मौजूद हैं, जिन्होंने शांति-काल में अपने त्याग और निस्वार्थ कार्य के द्वारा लोगों के हृदय पर अपना प्रभाव जमा लिया; लेकिन ज्यों ही संघर्षण का समय आया, वे डर गये और सबको ग़लत रास्ते पर चला कर जाति को इतनी भारी हानि पहुँचाई, जितना भारी उनका प्रभाव था। जान का डर विचार-शक्ति को ऐसा बना देता है कि गिराने वाली नीति बड़ी बुद्धिमत्ता की बात दिखाई देती है।

ऊपर वर्णन की गई कमज़ोरियों के अतिरिक्त जिस बात से हमारे कार्य में सबसे बड़ा संकट उत्पन्न होता है, वह हमारी समझ और विचार की भूल है। मनुष्य हृदय से देश का हित चाहने वाला हो, देश के लिए वह अपने स्वार्थ का त्याग करने को तैयार हो, उसमें इतना चारित्र हो कि वह संसार की सब विरोधी शक्तियों का मुक़ाबला कर सके, उसके अन्दर इतनी निर्भयता हो कि संकट आने पर भी उसका साहस बना रहे—ये सब उत्तम गुण, जो मनुष्यों में बहुत ही कम मिलते हैं, मौजूद होने पर भी मनुष्य अपनी उलटी समझ के कारण अपने तथा दूसरों के लिए विनाशकारी परिणाम पैदा कर लेता है। अपनी या अपने शत्रु की शक्ति का ग़लत अंदाज़ा लगाना भी इसी उलटी समझ में सम्मिलित है। दूसरे का मुक़ाबला करने के लिए हम किसी बड़े कार्य को आरंभ करते हैं, अपने साथियों को जोश दिला कर उनको सब तरह का त्याग करने पर तैयार करते हैं, अपनी सारी सेना को इकट्ठा करके रणभूमि की ओर चल पड़ते हैं। हमसे सिर्फ़ इतनी चूक हो जाती है कि हम मार्ग के लिए ख़ूराक का कोई प्रबंध नहीं करते। परिणाम यह होता है कि एक-दो दिन भूखी रह कर हमारी सारी सेना भूख से नष्ट हो

जाती है और हमारा सारा किया-कराया उद्योग मिट्टी में मिल जाता है। ऐसे ही मान लो, हम अपनी सेना को लेकर चल पड़े, बाक़ी सामान भी साथ ले लिया, परंतु हमने यह ख़याल न किया कि रास्ते में एक नाला भी आता है और न उसे पार करने का कोई इन्तज़ाम किया। परिणाम-स्वरूप नाले पर पहुँच कर हमारे अंदर खलबली मच जाती है। शत्रु हमपर आ पड़ता है, और हमें नष्ट-भ्रष्ट कर देता है। इस प्रकार एक छोटी-सी भूल से हमारा सारा बना-बनाया काम निष्फल हो जाता है। प्रकृति का हृदय बड़ा सख़्त है; उसके नियम बड़े कठोर हैं। एक भूल, चाहे वह कितनी ही छोटी हो, आदमी की जान ले लेती है, सारी-की-सारी फ़ौज को नष्ट कर देती है—सारे देश और जाति की सत्ता को संकट में डाल देती है। प्रकृति यह नहीं देखती कि यह बच्चा है, नासमझी के कारण नदी में गिर पड़ा है, इसलिए इसे बचा लेना चाहिए; न वह यही देखती है कि अमुक जाति बड़ी सीधी-सादी और किसी को दुःख न देने वाली है, इसने शत्रु की चाल या धोखेबाज़ी का ख़याल नहीं किया, इसलिए इस भूल को क्षमा करके इसे विनाश से बचा लेना चाहिए और यदि इसे भूल का दंड भी देना ही हो तो क्यों न इस छोटी-सी भूल के लिए थोड़ासा दण्ड दे दिया जाय!

जिन लोगों ने भारत में "ग़दर" मचाया, उनसे बढ़कर विदेशी राज्य का विरोधी कौन हो सकता है? उन्होंने एक बड़े भारी राज्य को पलटने का यत्न किया। थोड़ी देर के लिए हिंदू-मुसलमानों को मिलने के साधन भी निकल आये और ग़दर चलाने वालों ने सारे देश के अंदर एक बड़े भारी षड्यंत्र का जाल बिछा दिया। ग़दर का जो भयानक परिणाम निकला, आज हम उसे जानते हैं कि इतने बड़े त्याग के होते हुए इस ग़दर के कारण उसी विदेशी राज्य की जड़ें, जिसे वे उखेड़ना चाहते थे, ऐसी गहरी और सुदृ होगई कि अब उनके हिलाने का कोई उपाय दिखाई नहीं देता। वह आन्दोलन तो असफल हुआ, लेकि उसके बाद विदेशी शासक ऐसे होशियार और चौकन्ने हो गये कि पत्ता हिलने ही लगता है कि वे रोकने का इंतज़ाम कर लेते हैं।

हमें इन अनुभवों से लाभ उठा कर अब यह निश्चय कर लेना चाहिए कि हम जो काम उठावें उसे ख़ूब सोच-समझ कर और पूरी तैयारी के साथ हाथ में लें, जिससे फिसलने की—पीछे हटने की कम से कम सम्भावना रहे। इस समय देश के अन्दर एक नई लहर चल रही है, देश के युवकों में पूर्ण स्वतन्त्रता की भावना का प्राबल्य होता जा रहा है, कुछ नेता ऐसे भी हैं जो उन्नति के नाम पर रूस के बोल्शेविज्म को ही यहाँ ले आना चाहते हैं। मैं उनसे केवल इतना ही निवेदन करना चाहता हूँ कि एक गि हुए देश को उठाना महाकठिन काम है; गिरते हु को सम्हालना भी बहुत कठिन है; परंतु सदियों से नीचे पड़े हुए देश को फिर ऊपर लाने के लिए वे सब गुण अति आवश्यक हैं, जिनका मैंने वर्णन किया है।

भाई परमान

"अत्याचारी लोग सत्य के इन सैनिकों को तंग सकते हैं, देश-निकाला दे सकते हैं, फाँसी पर लटका सकते हैं, पर स्वतन्त्रता का नाश नहीं कर सकते। आवश्यक नहीं है कि पल्टनें स्वाधीनता की रक्षा करें, और मह इसकी घोषणा करें।…केवल एक व्यक्ति स्वतन्त्रता रक्षा करके सिद्ध कर सकता है कि मनुष्य से कोई इसे नहीं कर सकता।"

—टेरेन्स मैक

आदर्श वीरता
(Chivalry)

Who is the happy warrior ! who is he
That every man in arms should wish to be.

मध्यकालीन यूरोप में आदर्श वीरता (Chivalry) एक अद्भुत संस्था थी। स्तुत लेख में उसी संस्था के स्वरूप तथा सिद्धांतों ा संक्षेप में पर्य्यालोचन किया जायगा। 'शिवेलरी' ब्द में इतने भावों का सम्मिश्रण है कि इसका हिंदी ि किसी एक शब्द में अनुवाद करना कठिन है। 'आदर्श वीरता' भी ठीक अनुवाद नहीं कहा जा कता, तथापि हम इसी शब्द से 'शिवेलरी' का केत करेंगे और क्रमशः उसके अर्थ, सिद्धांत, मध्य-ालीन स्वरूप, वर्तमान शिक्षा से सम्बन्ध और युद्ध प्रभाव—इन उपविभागों में प्रस्तुत विषय का क्षिप्त विवेचन करेंगे।

आदर्श वीरता (Chivalry) का अर्थ

मध्यकाल में आदर्श वीरता समाज की वह स्था थी, जो मनुष्य को उस जीवन के बिताने की ा देती थी कि जो न तो असभ्य या जंगली हो, और टस्थ या निर्वेदमय हो। अर्थात् इस सामाजिक न-प्रकार में, व्यक्ति संसार में रहकर वीरता के आदर्शों से दीक्षित किया जाता था, जिनसे उसका ार-विहार सर्वथा नियमित और सेवा ही मुख्य होता था। कमज़ोर की सहायता करना, स्त्रियों ा', अपने से बड़ों का सन्मान करना इत्यादि संस्था के प्रधान तत्त्व थे। एक वीर सामन्त ight) के लड़के के जीवन का सबसे बड़ा उद्देश्य होता था कि वह भी किसी दिन अपने पिता तरह 'वीर' हो। बारह या तेरह साल की उम्र से एक लड़का अपने घर से माता-पिता की आज्ञा लेकर बिदा होता और किसी ड्यूक, नाइट या राजा की नौकरी में भर्त्ती हो जाता। इस अवस्था में उसका मुख्य कर्त्तव्य यही होता था कि वह अपने स्वामी के भोजन के समय मेज़ के पास खड़ा रहता। उसके सोने के समय शिविर की पहरेदारी करता। एक बालक इन कामों के करने में बड़ा गौरव समझता। वह उसके सबसे अधिक अभिमान का अवसर होता, जब उसका स्वामी उसे बुला कर उससे दो-चार बातें कर लेता। बालक के हृदय में सबसे बड़ी सान्त्वना यही होती कि वह भी एक दिन, अपने स्वामी की तरह, अच्छे क़ीमती घोड़ों पर सवार होगा, उसकी कमर में भी एक चमकती तलवार लटकती होगी, उसके साथ भी बहुत से सेवक (Pages) होंगे। उसे यह स्मरण कर सब तकलीफ़ें भूल जातीं कि उसका स्वामी भी एक दिन उसकी तरह मामूली नौकर था, उसने भी ऐसे छोटे कर्त्तव्यों का पालन किया था, जिनका पालन वह स्वयं कर रहा है। संक्षेप में, एक आदर्श वीर बनने के लिए, उन सब मंज़िलों को तय करना होता था, जिनके तय करने के बाद ही प्रतीक्षित ध्येय की प्राप्ति हो सकती थी।

आदर्श वीरता के सिद्धान्त

अतएव सेवा ही आदर्श वीरता का सबसे प्रथम सिद्धान्त था। फिर चाहे वह सेवा किसी भी प्रकार की क्यों न हो, कभी नीच नहीं समझी जाती थी। एक बालक को वीर की उच्च पदवी प्राप्त करने के लिए रोटी परोसना, घुड़साल का प्रबन्ध करना, कैम्प की पहरेदारी करना, इत्यादि सब कर्त्तव्य पूरे करने होते थे। मध्यकाल में स्वामी के साथ नाचना, घुड़दौड़ करना, शिकार करना, आदि ऊँचे काम समझे जाते थे, परन्तु इनका अधिकार भी तभी प्राप्त होता था, जब

अन्य निम्न कामों में बालक उत्तीर्ण हो चुका हो। इंग्लैण्ड के युवराज 'ब्लैक प्रिन्स' (Black Prince) को फ़ान्स के राजा जॉन के सन्मुख घुटने टेक कर हाथ धुलाना और पूरा आतिथ्य-सत्कार करना पड़ा था। जब १३५६ ई० में अंग्रेज़ों और फ्रेंच लोगों में पोर्टियर की प्रसिद्ध लड़ाई हुई, तब विजय प्राप्त करने के बाद भी ब्लैक प्रिन्स ने जिस आदर्श वीरता का परिचय दिया वह इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णाक्षरों में लिखने योग्य है। ब्लैक प्रिन्स वीरता का—सच्ची वीरता का—पुतला था। युद्ध समाप्त होने पर फ्रेंच लोगों से उसने वह व्यवहार किया, जिससे फ्रेंच स्वयं लज्जित हुए। केवल इतना ही नहीं कि उनके किसी व्यक्ति को उसने क़ैद नहीं किया, बल्कि उनके माल पर भी कोई क़ब्ज़ा नहीं किया—यद्यपि युद्ध के नियमों के अनुसार उसपर उसका पूरा अधिकार था। इसके अतिरिक्त सब फ्रेंच लोगों को बुला कर खान-पान का निमन्त्रण दिया, और स्वयं यथाविधि फ़्रांस के राजा की सेवा की। यह सेवा का आदर्श था।

कमज़ोर की सहायता करना आदर्श वीरता का दूसरा सिद्धान्त था। एक नाइट—सच्चा वीर—असहाय को देखते ही यथाशक्ति सहायता करने को प्रस्तुत हो जाता था। उस समय जाति, वर्ण या देश का कोई विचार नहीं किया जाता था। विशेषतः महिलाओं के प्रति आदर्श वीर के हृदय में सच्चे, पवित्र श्रद्धा के भाव होते थे। अपनी आँखों से एक अबला पर अत्याचार होते देखना उसके लिए पाप था। वह स्वयं भी कभी किसी महिला पर कोई प्रहार न करता, और उन लोगों के समुदाय पर भी कोई प्रहार न करता, जिनमें एक भी महिला विद्यमान हो।

रोबिनहुड का जीवन इस प्रसंग में उद्धरणीय है। वह मध्यकाल में जंगलों में रहा करता और उस रास्ते से गुज़रते हुए धनी पथिकों को लूटा करता था। और उस लूट के माल से उन लोगों की सहायता क था, जो निर्धन और असहाय होते थे। उसने अप मृत्यु तक इस नियम का पालन किया कि वह स्त्री पर प्रहार न करता और उस समुदाय पर प्रहार न करता जिसमें कोई स्त्री विद्यमान हो। उस मृत्यु भी एक विश्वासघाती स्त्री के द्वारा हुई थी, पर उसने मरते दम तक अपने साथियों से यही प्रार्थ की, कि वे उसकी मृत्यु का बदला उस अबला से लें। निम्नलिखित शब्द रोबिनहुड के ही हैं—

I never hurt a woman in all my
Nor men in their company.
I never hurt maid in all my
Nor at mine end shall it be.

आदर्श वीरता का तीसरा तत्त्व अपने सं भ्रातृत्व (Brotherhood) में अभिमान या अनुभव करना था। एक नाइट दूसरे नाइट को भाई समझता था, आवश्यकता पड़ने पर एक की सहायता करना उनका परमधर्म था। सब अपनी स्थिति का अभिमान करते थे। नाइट उनके जीवन की सबसे बड़े महत्व की बात थी। राजा लोग भी—जिनके हाथ में नाइट होता था—स्वयं नाइट बनना चाहते और किसी शिरोमणि से इस पद को प्राप्त करने में अपना मानते थे। फ़्रांस के राजा ने लार्ड आफ़ (Lord of Bayard) के हाथों से नाइट सन्मान ग्रहण किया। बेयर्ड ने भी अपने रा तलवार और ढाल की साक्षी रख करके, (वीरत्व) की दीक्षा से दीक्षित किया। आदर्श बनने का यह सच्चा अभिमान मध्यकालीन के इतिहास में जगह-जगह प्रकाशित होता है अधिक उदाहरण उद्धृत करने की आवश्यकता

मध्यकालीन स्वरूप

"What a virtue is chivalry, even in a e!" इन शब्दों से हेनरी न्यूबोल्ट ने इंग्लैण्ड के शेर रिचर्ड (Richard the Lion) की वीरता विवेचन किया है। जेरुसलम में ईसाईयों पर दीन की ज्यादतियों का हाल सुन कर रिचर्ड ने ११८९ ई० में धर्मयुद्ध (Crusade) करने का विचार , और फ्रांस के राजा फ़िलिप की सहायता से (Acre) पर तुर्क लोगों को पराजित किया और सलम पर चढ़ाई की। जेरुसलम में रिचर्ड को सफलता प्राप्त नहीं हुई, लड़ाई में जब रिचर्ड घोड़ा और सारथी मारे गये, तब सफ़ादीन ने—सलादीन का भाई था—अपनी तरफ़ से एक घोड़ा सारथी, रिचर्ड के पास यह कहलवा कर भिज- कि रिचर्ड को इनकी ज़रूरत है, वह इनको कार करे, परमात्मा की कृपा से विजयी हो तो इन्हें पीछे व पिस कर दे। रिचर्ड ने अपने शत्रु इस उदारता, इस वीरता (Chivalry) का सहर्ष अभिवादन किया, और राजा की भेंट को स्वीकार । वास्तव में वीरता जीवन का वह उदात्त तत्त्व जिससे मनुष्य देवता हो जाता है। अतएव हमारे तीय इतिहास में संग्राम में मरे हुए क्षत्रिय के लिए वा प्राप्स्यसि स्वर्गम्) निश्चित स्वर्गलाभ है।

भारतीय नीतिशास्त्रों में भी धर्मयुद्ध और व्यूह- नामों से युद्ध के दो प्रकार बतलाये गये हैं। हम लम्बी विवेचना में नहीं जाना चाहते। इतना भी नहीं है। परन्तु इतना स्पष्ट कर देना होगा कि धर्मयुद्धों में कुछ निश्चित नियम थे, जिनके अनुसार ही युद्ध किया जाता था। भी असहायों, निर्बलों, स्त्रियों, आदि पर प्रहार नहीं किया जाता था। युद्ध की समाप्ति सब बैरियों को मुक्त कर दिया जाता था, और पूर्णशान्ति से रात्रि का समय व्यतीत किया जाता। कभी-कभी तो पक्ष-विपक्ष के दलों में परस्पर प्रीतिभोज भी होते, तथा अन्य सामाजिक त्योहार भी मनाये जाते। इस सम्बन्ध में शान्तिपर्व का निम्न उद्धरण, प्रस्तुत विषय पर प्रकाश डालने में, पर्य्याप्त सहायक होगा—

महाभारत में कौरव-पांडवों की निम्नलिखित अभिसन्धि है—

ततस्ते समयं चक्रुः कुरु पांडव सोमकाः।
धर्मान् संस्थापयामासुः, युद्धानि भरतर्षभ॥
निवृत्ते विहिते युद्धे, स्यात् प्रीतिर्नः परस्परम्।
यथापरं यथायोग्यं, न च स्याच्छलनं पुनः॥
वाचा युद्धे प्रवृत्तानां, वागेव प्रतियोधनम्।
निष्क्रांता पृतना मध्यान्न हन्तव्या कदाचन॥
रथी च रथिना योध्यो गजेन गजधूगतिः।
अश्वेनाश्वः पदातिभ्यः, पादातेनैव भारत॥
न सूतेषु न धुर्य्येषु, न च शस्त्रोपजीविषु।
न भेरी शंख वादेष प्रहर्त्तव्यं कथञ्चन॥

गौतम ने भी युद्ध के ऐसे ही नियमों की स्थापना की है। उनका कथन है—

"युद्ध में उनको मत मारो, जिनके घोड़े मारे गये हों या खो गये हों, जो शस्त्र विहीन हो गये हों, जो तुम्हारे सन्मुख हाथ जोड़कर खड़े हो जायँ, जो अपने शिर के बाल खोले हुए भागते जावें, जो मुख मोड़कर अर्थात् पीठ दिखाकर बैठ जावें, जो भागकर पर्वतों-वृक्षों पर चढ़ जावें, जो दूत हों और यह कह दें कि हम ब्राह्मण या गौ हैं।"

मनुस्मृति में भी इसी आशय के नियमों का उल्लेख है।

हम फिर मध्यकालीन यूरोप की तरफ़ आते हैं। फ्रांस के राजा सेंट लुई ने जब टर्की के सुलतान पर चढ़ाई की, और उससे हार गया। तब उसने सुलतान

को अपनी मुक्ति प्रतिज्ञा (Ransom) स्वयं दी, जो ५,००,००० लिवर थी। इस राशि में सुलतान की ग़लती से १,००,००० लिवर कम गिने गये, तो लुई ने स्वयं उस ग़लती को सुझाया और पूरी-पूरी रक़म को अदा किया—जो कि सुलतान को दी जानी थी। सुलतान ने भी विजयी होकर न केवल फ्रेंच लोगों के साथ उदार व्यवहार किया, वरन् उनके राजा की भी मुक्त कंठ से प्रशंसा की।

इन लड़ाइयों के सिवाय मध्यकालीन यूरोप की वीरता का एक और पक्ष भी है जिसका वर्णन करना आवश्यक है। वह पक्ष टूर्नामेंट का है। मध्यकाल में इसकी बड़ी प्रधानता थी। सब महत्वाकांक्षी नवयुवक इनकी प्रतीक्षा करते और इनमें हिस्सा लेकर यशोलाभ करना चाहते थे। १३८९ ई० के टूर्नामेंटों का पूरा ऐतिहासिक विवरण 'दी क्रानिकल आफ़ फ्रिज़र्ट' (The Chronicle of Froissart) में उपलब्ध होता है। फ्रांस के तीन नवयुवक डिरोये, बुसीकाँ और सेम्पी संसार के समस्त वीरों (Knights) को टूर्नामेंट के लिए सेंट इंगलवर्ट स्थान में ललकारते हैं और उन्हें भालों द्वारा लड़ाई करने का चैलेंज देते हैं। इस टूर्नामेण्ट में इंग्लैंड के बहुत से वीर उपस्थित होते हैं, और एक-एक करके फ्रांस के उन वीरों का मुक़ाबला करते हैं। खेल के निर्णायक नियत होते हैं, और वे किसी योद्धा को तीन से अधिक प्रहार करने की आज्ञा नहीं देते। जो योद्धा बड़े वेग, फुर्ती और चतुरता से चोट करता है, उसकी सब प्रशंसा करते हैं; जो प्रतिपक्षी चोटों से कभी अपने घोड़े से न गिरे, उसे विजयी या सफल वीर उद्घोषित किया जाता है। इन्हीं टूर्नामेंटों में महत्वाकांक्षी नवयुवकों को यश प्राप्त करने का अवसर मिलता, और यहीं पर उनको, अपनी वीरता के बल से, कई सुंदर स्त्रियों के प्रेम-भाजन होने का और विवाह का—मौक़ा मिलता।

वर्तमान शिक्षा से सम्बन्ध

मध्यकालीन आदर्श वीरता की संस्था के न होने के बाद, उसके पुनर्निर्माण के लिए, विलियम वीक हम ने सबसे प्रथम प्रयत्न किया। उसने अपने सम्प्रदाय का आदर्श वाक्य 'सदाचार मनुष्य को बनाता है।' (Manners makyeth man) रखा। इसी संप्रदाय के अनुकरण में आजकल के ईटन और हेरो के सार्वजनिक विद्यालय (Public school) बने। इ वर्तमान विद्यालयों में आदर्श वीरता की संस्था से शारीरिक विज्ञान का तत्त्व ग्रहण किया गया, और अन्य धार्मिक विद्यालयों से पुस्तक-शिक्षण का भा ग्रहण किया गया। अभिप्राय यह कि इन नवीन शिक्षणालयों में केवल किताबों के पढ़ाने, लेटिन भाष का अभ्यास कराने, या केवल व्याकरण के पण्डि पैदा करने पर ही ज़ोर नहीं दिया गया, प्रत्युत पुस्तक शिक्षण के साथ-साथ विद्यार्थियों की शारीरिक उन्न की तरफ़ भी पर्याप्त ध्यान दिया गया। इंग्लैंड क एक नवशिक्षित युवक अब केवल सूखे भाषा-विज्ञा या दर्शनशास्त्र का ही पण्डित नहीं, परन्तु साथ ह वह युद्ध-विद्या से भी परिचित है।

इस समय प्रायः सभी देशों में बालचर-शिक्ष (Scouting) का प्रबन्ध किया जाता है। विद्यालयों विद्यार्थियों को प्रतिदिन सेवा, सहिष्णुता आदि पाठ पढ़ाये जाते हैं। यह सब मध्यकालीन संस्थ आदर्श वीरता के अवशेष मात्र हैं। वाटर्लू की लड़ा से पूर्व तक यह समझा जाता था कि विद्यार्थियों खेलों में रुचि पैदा करना उनके आचार-निर्माण पूर्णतया सहायक होगा। परन्तु पीछे जाकर—विशेष बोयर युद्ध (Boar war) के दिनों—यह अनुभव कि गया कि खेल के मैदान में भाग-दौड़ कर लेने से अव हाकी-फुटबाल खेल लेने से वह शिक्षा उपलब्ध न

ही जो एक भावी नागरिक को प्राप्त होनी चाहिए। व विश्व-विद्यालयों में सैनिक-शिक्षण का प्रबन्ध किया गया। इस समय प्रायः सभी देशों में, मिलिशिया (Militia) नाम से ऐसी सुरक्षित शक्ति हर-क्ति विद्यमान रहती है, जो किसी अवसर पर सहा-यक हो सकती है। निस्सन्देह यदि खेलों को कुछ उपयोगी बनाना है तो न केवल क्रिकेट की गेंद का फेंकना सिखाना चाहिए, अपितु बम्ब के गोले चलाने का भी अभ्यास कराना चाहिए। इसी प्रकार केवल घोड़ों की दौड़ से सन्तोष न करना चाहिए, परन्तु साथ ही सशस्त्र मोटरकारों के चलाने का ज्ञान भी प्राप्त करना चाहिए। तभी विद्यार्थी-जीवन में सच्चे नागरिक बनने की शिक्षा को ग्रहण किया जा सकता है।

इस बात को दुहराने की आवश्यकता नहीं कि सैनिक शिक्षा न केवल जातीय जीवन को पूर्ण बनाती, परन्तु प्रचलित भिन्न-भिन्न शिक्षा पद्धतियों की त्रुटियों को भी दूर कर देती है। इससे विद्यार्थी की समस्त अन्तर्हित शक्तियों का विकास होता है और उसकी नैसर्गिक प्रवृत्तियों का प्रकाश होता है। मध्य-कालीन आदर्श-वीरता का पूर्ण स्वरूप शायद आज-कल जगत् के लिए उपयोगी न हो—परन्तु उस संस्था के मुख्य-मुख्य सिद्धान्तों का नवीन रूप में ग्रहण सर्वथा लाभकर ही होगा। अतएव वर्त्तमान शिक्षा में मध्यकालीन आदर्शों का परिष्कृत रूप हमें दृष्टिगोचर होता है।

युद्ध पर प्रभाव

आदर्श-वीरता के परिष्कृत स्वरूप को पुनर्जीवित करने का यह अभिप्राय कदापि नहीं कि संसार में लड़ाइयों की संख्या की वृद्धि की जाय। परन्तु इनको कम करने के लिए ही उक्त संस्था के नियमों का पुनर्निर्माण करना चाहिए। सम्भवतः एक शान्तिप्रिय (Pacifict) व्यक्ति विश्वास नहीं कर सकता कि आदर्श-वीरता लड़ाइयों को बढ़ाने के पक्ष में नहीं है। वह साम्राज्य वृद्धि के पक्ष में भी नहीं। परन्तु जब तक मानव प्रकृति कमज़ोर है, जब तक संसार पूर्णता की पराकाष्ठा को प्राप्त नहीं कर लेता, तब तक यही सम्भव है कि लड़ाई के कारणों को यथासम्भव कम किया जाय, और लड़ाइयों को अधिक से अधिक मानुषिक बनाया जाय। यह सर्वथा असम्भव नहीं कि लड़ाई करते हुए भी शत्रु प्रेमभाव से एक दूसरे को देखें, स्नेह की दृष्टि से एक दूसरे से व्यवहार करें। घृणा के वे जघन्य गीत, जो प्रतिपक्षियों के दलों में सुनाई देते हैं, तभी कम हो सकते हैं जब कि उपर्युक्त आदर्शों को फिर से जीवन का अङ्ग बना लिया जाय।

गत महासमर के दिनों में जर्मनी के कोने-कोने में इंग्लैण्ड के विरुद्ध घृणागीत गाया जाता था, जिसका किसी कवि ने अंग्रेज़ी में इस तरह उल्था किया है:—

We will never forego our hate
We have all but a single hate
We love as one, we hate as one.
We have one foe and one alone—
England.

इन्हीं कुत्सित भावों को निरुत्साहित करने से और मानवीय उदात्त भावों को जागृत करने से ही युद्धों की कमी हो सकती है। गत दक्षिण आफ्रिका के युद्ध में इन्हीं भावों को पुनर्जागृत करने के लिए एक ऐसी संस्था का संगठन किया गया था, जिसके मुख्य नियम ये थे—(१) इसके सदस्य परस्पर भ्रातृत्व के सम्बन्ध में आबद्ध रहेंगे। (२) वे सदा शिष्टाचार की मर्यादा के अनुकूल क्षमाशील होंगे और

केवल उन्हीं लड़ाइयों में भाग लेंगे, जो न्यायानुमोदित हों। (३) प्रत्येक सदस्य युद्ध में घृणा-विहीनता के, मृत्यु में निर्भयता के, पराजय में सन्तोष के और विजय में नम्रता के भावों को प्रकाशित करेगा। (५) प्रत्येक सदस्य का यह विशेष कर्त्तव्य होगा कि वह निर्बल, निस्सहाय और पीड़ित व्यक्तियों की सहायता और सेवा करे। विशेषतः स्त्रियों तथा पराजित शत्रुओं के हितों की रक्षा करना उसका परमधर्म होगा।

इन उच्च आदर्शों को हम मध्यकालीन निर्दिष्ट संस्था का परिष्कृत स्वरूप कह सकते हैं। आदर्श वीरता का मुख्य उद्देश्य यही था कि वीरता के—न कि कायरता के—सच्चे सिद्धान्तों को जीवन में क्रियात्मक रूप दिया जाय। यदि उस संस्था के सिद्धान्तों को वर्त्तमान नवीन अवस्थाओं के अनुकूल परिवर्त्तित किया जाय और उनकी सहायता से जातियों की प्रवृत्तियों में उदात्तता के तत्त्वों का प्रवेश किया जाय तो संसार के अशान्त तथा विक्षोभमय वातावरण में फिर से शान्ति, सरलता तथा स्वर्गीयता की सुनहली झलक दिखाई दे सकती है। ये आदर्श असम्भव नहीं। इनका क्रियात्मक स्वरूप मध्यकालीन इतिहास में विद्यमान है—और अवश्य भविष्य के किसी निकट या दूरवर्त्ती समय में फिर से इनका प्रकाश हो सकता है।

इन्द्र विद्यालङ्कार

"अगर कोई आदमी ऐसी मौत मर सके कि जिसे देख कर उसके सरदार की आँख से आँसू निकल पड़ें तो भीख माँग कर और खुशामद करके भी ऐसी मौत को हासिल करना चाहिए।"

—ऋषि तिरुवल्लुवर

मनोव्यथा*

हरित तलहटी में गिरिवर की
समतल निर्झर-ध्वनित धरा पर।
छाया में अति सघन द्रुमों की
बैठ विशद हरिताभ शिला पर॥
जाता हूँ मैं भूल जगत को
बार-बार अनिमेष देख कर।
रूपगर्विता प्राण-प्रिया के
यौवन-मद-विह्वल दृग सुन्दर॥

किन्तु उसी क्षण क्षुदा-निपीड़ित
शिशुओं के क्रन्दन से कातर।
कहीं जीविका की तलाश में
गये हुए प्रियतम के पथ पर॥
लगे हुये, निज दीन देश के
अगणित नेत्र आँसुओं से तर।
आ जाते हैं दौड़ सामने
ले जाते हैं सब उमंग हर॥

जाता हूँ मैं जल-बिहार को
तरणी में तरुणी को ले कर।
मैं खेता हूँ वह गाती है
बैठ सामने मनोमुग्धकर॥
लहरा उठता है भूतल पर
विस्तृत यह सुखमा का सागर।
लय हो जाता हूँ मैं उसकी
लय में विश्व-विलास भूल कर॥

किन्तु उसी क्षण वे दुखिया गण
जिनके कुम्हलाये अधरों पर।

---

* 'स्वप्न' नामक अप्रकाशित काव्य से।

हास्य किसी दिन खेल न पाया
अथवा जिनके गिरे पड़े, घर ।।
तेल बिना दीपक-दर्शन से
वंचित रहे एक जीवन भर ।
अपना दृश्य दिखा कर मेरा
ले जाते हैं हर्ष छीन कर ।।

मेरे कंधे को कपोल से
दाब, विमल दर्पण के सम्मुख ।
घण्टों प्रेम भरी आँखों से
देखा करती है मेरा मुख ।
चश्मे के सन्निकट अकेले
मैं आँखों में उसकी वह छबि ।
देखा करता हूँ; इस सुख का
वर्णन क्या कर सकता है कवि ।।

किंतु उसी क्षण वह गरीबिनी
अति विषादमय जिसके मुँह पर ।
धुने हुए छप्पर की भीषण
चिन्ता के हैं घिरे वारिधर ।।
जिसका नहीं सहारा कोई
आ जाती है दृग के भीतर ।
मेरा हर्ष चला जाता है
एक आह के साथ निकल कर ।।

लंबे सीधे सघन इकट्ठे
विविध विटप-अवली से शोभित ।।
चिड़ियों की चहचह से जाग्रत
झरनों से दिन रात निनादित ।।
पर्वत की उपत्यका में है
कितना सुख कितना आकर्षण ।
शांति स्वस्थता बाँट रहा है
सतत जहाँ का एक-एक क्षण ।।

वहीं कहीं दूर्वा-दल-शोभित
कोमल समतल विशद धरा पर ।
कस्तूरी मृग ने चर चर कर
जिसको है कर दिया बराबर ।
बैठ प्रिया की मधुर गिरा में
उसके अन्तस्तल का सुंदर ।
चित्र देखकर मैं करता हूँ
उस पर निज सर्वस्व निछावर ।।

किन्तु उसी क्षण वह जनता जो
स्वाभिमान-गत पशुवत संतत ।
अत्याचार सहन करती है
बिना किये प्रतिवाद मूकवत ।।
आ जाती है दृग के आगे
रह जाता हूँ मन मसोसकर ।
कैसे उसका मुँह बनकर मैं
लूँ उसकी सब मनोव्यथा हर ।।

मैं हूँ, यह एकांत जगह है,
जाग्रत नहीं एक भी है रव ।
दृग मूँदे बैठा हूँ मानो
मेरे लिए सो रहा है भव ।।
सुनी हुई पहले की उसके
नूपुर की ध्वनि श्रवण-सुखद अति ।
गूँज रही है मन में अब भी
छूट नहीं सकती है संगति ।।

निर्मल नीरव निशीथिनी हो,
निद्रावश हो जब समस्त जग ।
चन्द्रकला में नहा रहे हों
चारों ओर तुषार-धवल नग ।।
जब केवल रह जाय श्रवण में
अपने एक हृदय की धड़कन ।

तब उर-अन्तर-वासी हरि की
पद-गति क्यों न श्रवण करता मन ?॥

दुख से दग्ध, ताप से पीड़ित
चिंता से मूर्च्छित, मन से कृश ।
श्रम से शिथिल, मृत्यु से शंकित
विभ्रम वश कर पान विषय-विष ॥
जग-प्रपंच की घोर दुपहरी
में रे पथिक प्यास से विह्वल !
भक्ति-नदी में क्यों न नहा कर
कर लेता है जीवन-शीतल ॥

पर्वत शिखरों का हिम गल कर
जल बन कर नालों में आकर ।
छोटे बड़े चीकने अगणित
शिला-समूहों से टकराकर ॥
गिरता, उठता, फेन बहाता
करता अति कोलाहल 'हरहर' ।
वीर बाहिनी की गति से वह
बहता रहता है निशि-वासर ॥

मानों जलदों के शिशुगण, दल
बाँध खेलते हुए परस्पर ।
अति उतावलेपन से चल कर
गोल पत्थरों पर गिर-गिर कर ॥
उठते फूल फेंकते हँसते
तथा मनाते हुए महोत्सव ।
सागर से मिलने जाते हैं
पथ में करते हुए महारव ॥

इनका बाल-विनोद देखते
हुए किसी तीरस्थ शिला पर ।
सतत सुगंधित देवदारु की
छाया में सानन्द बैठ कर ॥
सिर धर हरि के पद-पद्मों पर
करके जीवन-सुमन समर्पण ।
बना नहीं सकता क्या कोई
अपने को आनन्द-निकेतन ॥

पर हरि के पद-पद्म कहाँ हैं ?
क्या सरिता के सुन्दर तट पर ?।
नहीं, निराशा नाच रही है
जहाँ भयानक भूरि भेस धर॥
निस्सहाय निरुपाय जहाँ हैं
बैठे चिन्ता-मग्न दीन जन ।
उनके मध्य खड़े हरि के
पद-पंकज के मिलते हैं दर्शन॥

इसी तरह की अमित कल्पना
के प्रवाह में मैं निसिवासर ।
बहता रहता हूँ विमोह-वश
नहीं पहुँचता कहीं तीर पर ॥
रात दिवस की बूंदों द्वारा
तन-घट से परिमित यौवन-जल।
है निकला जा रहा निरन्तर
यह रुक सकता नहीं एक पल॥

भोग नहीं सकता हूँ गृह-सुख
भूल नहीं सकता हूँ पर-दुख।
अकर्मण्यता से डरता हूँ
जाता हूँ जब हरि के सम्मुख॥
जीवन का उपयोग न निश्चित
कर पाया दुबिधा-वश अब तक।
यौवन विफल जा रहा है यह
जैसे शून्य-सदन में दीपक ॥

भोग रहा हूँ ज्ञान-दण्ड मैं
चित्त हो रहा है अति चंचल ।
है यह मेरे पूर्व जन्म के
किसी विचित्र पाप का प्रतिफल ॥
मुझको शिक्षा मिली न होती
क्यों होता प्रतिभा का अभिनय ।
बढ़ी न होती परिधि ज्ञान की
जग से हुआ न होता परिचय ॥

देश, समाज, मनुष्य जाति के
कष्टों का करता क्यों संचय ।
मैं निश्चिंत प्रकृत सुख का तब
भली भांति लेता रस निश्चय ॥
सदा दूसरों के सुख-दुख की
निष्फल चर्चा में रत रह कर ।
कवि का सा कुत्सित जीवन मैं
क्यों व्यतीत करता हे ईश्वर ?

रामनरेश त्रिपाठी

धर्म

धर्म न मन्दिर में है, न मस्जिद में और न वह है रजाघर में । वह तो है मनुष्य के अपने पास और वास रता है उसके हृदय में । किस मनुष्य के मन में कितना र्म-भाव है, इसका माप तो उसका सिरजनहार आदिम ही कर सकता है । क्योंकि उसका भी तो वहीं वास जहाँ धर्म का । मैं चोटी से एँड़ी तक खादी पहनूँ, मित्रों मिलूँ, लम्बी-लम्बी नमस्ते, प्रणाम करूँ, दो क़दम आगे ढूँ, सुन्दर स्त्री को देख कर मेरा मन ऐसा फड़फड़ाने लगे उड़ते परिन्द के पर। भला मेरी इस मनोइच्छा को कौन सकता है ? केवल वह मालिक ही न । इसलिए मैं ता हूँ धर्म हृदय का और केवल हृदय का विषय है ।

श्री विष्णुचरण रज

महात्मा गांधी

[उनका धार्मिक और आध्यात्मिक जीवन]

(१)

जो लोग आश्रम (सत्याग्रह-आश्रम, साबरमती) की सबेरे और शाम की प्रार्थनाओं में अब तक प्रेम और भक्ति पूर्वक भाग लेते रहे हैं, वे महात्माजी के धार्मिक जीवन की भित्ति को सम्पूर्णतया न सही, कुछ अंशों में तो अवश्य ही समझने लगे होंगे । आश्रम की प्रार्थनाओं से दुहरी ध्वनि निकलती है । पहली ध्वनि आश्रम-वासियों को सच्चा, सात्विक काम करने के लिए, जोर देकर, प्रेरित करती है । किन्तु निरे काम का—फिर वह कितना ही निस्स्वार्थ क्यों न हो, परिणाम क्या ? वस्तुतः इन पवित्र कार्यों का अन्तिम ध्येय, उनका आध्यात्मिक लक्ष्य क्या होना चाहिए ? यही प्रश्न है जो एक समस्या के रूप में सब मुमुक्षुओं के सन्मुख खड़ा रहता है । अतः आश्रम की प्रार्थनाओं में एक और ध्वनि होती है, वह बतलाती है कि सच्चा सात्विक काम मनुष्य के कर्म बन्धन को शिथिल करता है और अन्ततोगत्वा आत्मा को प्रकृति के बन्धन से छुड़ा कर उसे मुक्त बना देता है; तात्पर्य वह आत्मा को भव-बन्धन से छुड़ा देता है । वहाँ पवित्र कार्यों की सच्ची आध्यात्मिक-महत्ता पर इसी तरह ज़ोर दिया जाता है और सच्चे धार्मिक जीवन के निर्माण में ये कार्य ही उसके आधार स्वरूप होते हैं ।

परन्तु जो मनुष्य धार्मिक जीवन बिताने की चिन्ता में व्यस्त है उसके सामने यह समस्या खड़ी रहती है कि वह अपने कार्यों को बुराइयों और गन्दगी से किस तरह अछूता रक्खे । क्योंकि मनुष्य, सच्चा धार्मिक जीवन बिताने के बदले एक ऐसा मार्ग भी गृहण कर सकता है जिसमें अपने दैनिक विचारों और कार्यों में अपवित्र और सकाम रहते हुए भी वह अपनी बुद्धि के द्वारा धार्मिक सिद्धान्तों और नियमों पर दिन रात केवल वाद-विवाद और विचार-विमर्श ही करता रहे । ऐसे मनुष्य के जीवन में सच्ची धार्मिकता का उदय कभी हो

नहीं सकता—सच्ची धार्मिकता तो उससे कोसों दूर ही रहेगी। अतः सबसे अधिक महत्व की बात तो यह है कि मनुष्य उन कामों से सदा दूर ही रहे जो अनिश्चित और साथ ही केवल कठोर परिश्रम वाले हों। काम को इस ढंग से करना चाहिए कि वह (काम) भावी बन्धन का कारण न बन जाय। अच्छे और बुरे कामों की पहचान करने की शिक्षा तो हरएक कार्यकर्त्ता को आरम्भ ही से दी जानी चाहिए—उसे यह जान लेना चाहिए कि कौनसे काम उसके जीवन को बन्धनों की ओर ले जाते हैं और कौनसे कार्य उसे ऐसे जीवन से उबारने या ऊपर उठाने में सहायक होंगे।

महात्मा गाँधी इस आत्मिक स्वतन्त्रता की ओर ले जाने वाले कर्म-क्षेत्र के एक वीर योद्धा हैं। दुनियाँ के हज़ारों दूसरे झंझटों में वे चाहे जितना ही क्यों न फँस जायँ, उनका आध्यात्मिक आदर्शवाद सदा उनके साथ ही बना रहता है। यह केवल उनकी असाधारण आत्म-शक्ति का ही परिणाम है कि वे अपने आपको इन झंझटों के दूषित परिणामों और प्रलोभनों से सुरक्षित रख सकते हैं। यह अकेले उन्हीं का काम है कि वे अपने निश्चित मार्ग पर इतनी असाधारण दृढ़ता, आलौकिक समता और आन्तरिक आत्म-जागृति की अद्वितीय शक्ति के साथ सदा बढ़ते जाते हैं, चाहे उन्हें दुनिया का कोई साथी न मिले। इसी शक्ति के बल पर किसी समय वे देश के राजनैतिक कार्य को धार्मिक वातावरण तक उठाने में सफल हो सके थे। उनकी राजनीति में छल, कपट, दुष्टता अथवा कूटनीतिज्ञता का लेश भी नहीं रहता। उसमें किसी व्यक्ति, जाति या सम्प्रदाय के स्वार्थों की सिद्धि के लिए राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त करने अथवा उनकी स्वार्थपूर्ण सत्ता, प्रतिष्ठा और सम्पत्ति को बढ़ाने में मदद देने की दृष्टि का पूरा पूरा अभाव होता है। उनके राजनैतिक प्रयत्नों का अन्तिम ध्येय तो केवल यही है कि देश की जनता में एक दूसरे की निस्स्वार्थ सेवा और कर्तव्य के पवित्र भाव जाग्रत और उन्नत हों तथा जाति और संप्रदाय का भेद-भाव दूर हो जाय। राजकीय सत्ता को अंग्रेज़ों के हाथों से छीन कर अपने हाथों में ले लेना ही महात्माजी की दृष्टि में सच्चे स्वराज्य की प्राप्ति नहीं है। वे इतने ही से कभी सन्तुष्ट नहीं हो सकते। क्योंकि जब एक जाति या दल विशेष के लोग अपने पुरुषार्थ द्वारा परायी सत्ता को अपने हाथों में ले लेंगे, तब संभवतः वे भी अपने आपको सर्वश्रेष्ठ समझने और जनसाधारण पर अपने अत्याचारपूर्ण निरंकुश शासन का प्रयोग करने लगेंगे। ऐसे समय में अकेले महात्माजी ही सबसे पहले इस अत्याचारी सत्ता का विरोध करेंगे और उसको अधिकारच्युत करने के लिए प्रयत्नशील बने रहेंगे। स्वयं अपने लिए महात्माजी न तो धन के भूखे हैं और न कीर्ति तथा सत्ता या अधिकार ही के। दरिद्रता से पीड़ित भारत को देख-देख कर महात्माजी का हृदय निरन्तर व्याकुल होता रहता है। भारत को ऐसी दयनीय स्थिति में रखने वाली वर्तमान सरकार को सुधारने या उसका करने के लिए महात्माजी अपनी सारी शक्तियों से जी मिहनत कर रहे हैं। यही कारण है कि उनके सारे काम पवित्र, आध्यात्मिक और सात्विक होते हैं और इसी राजनीति भी उनके धार्मिक जीवन की अनुचरी बन चुकी

महात्माजी अपने प्रत्येक कार्य को आध्यात्मिक की कसौटी पर चढ़ाकर परखने के आदी हो चुके हैं। अध्यात्म-शक्ति के बल पर वे अपने प्रत्येक काम को जीवन का एक प्रगतिशील (Dynamic) साधन बना हैं। यह उनका एक विशिष्ट गुण है कि सौ में से मामलों में वे अपने ध्येय के असली रूप को अच्छी पहचान लेते हैं। विशेष-विशेष कामों को उनकी आध्या कता की दृष्टि से तौलते समय उन्हें सच और झूँठ, शुद्ध अशुद्ध की सूक्ष्म जाँच करनी पड़ती है। दुनिया में उसके साधारण कामों को करते हुए भी कर्त्तव्य और के सँकड़े मार्ग पर दृढ़ता के साथ आरूढ़ रहना बड़ा कठिन काम है। अपने निजी रुचि-वैचित्र्य, विषय नाओं की दुर्दमनीयता और व्यक्तिगत लालसाओं को करने की चिंता के कारण सत्य को परखने की हमारी धुँधली हो जाती है, अतः जब हम अपने कामों की आध्यात्मिक-महत्ता को निश्चित करने का प्रयत्न करते हैं उसमें गड़बड़ा जाते हैं। यही कारण है कि आध्यात्मिक के कितने ही इच्छुक आरम्भ के कुछ दिनों तक एकांत व्यतीत करते हैं किन्तु महात्माजी को यह मार्ग पसंद नहीं है। कुछ समय पहले महात्माजी के एक

के आध्यात्मिक-समाधि या एकता के लिए थोड़े दिनों एकांत वास किया था, उन दिनों महात्माजी ने मुझसे कहा था कि यह एकांतवास अच्छा नहीं है। उन्होंने कहा कि इस तरह दुनिया से दूर रहकर हम थोड़े ही समय के लिए सांसारिक प्रलोभनों से सुरक्षित रह सकते हैं। अतः उनके मत से ज़रूरत तो इस बात की है कि हम उन प्रलोभनों तथा प्रभावों से हमेशा लड़ते रहें और धीरे-धीरे उन्हें जीतने के लिए पर्याप्त शक्ति का संग्रह करते रहें। जब तक यह नहीं हो जाता हमारी अवस्था सुरक्षित नहीं रह सकती। अन्त में इस सिद्धान्त का संक्षेप करते हुए उन्होंने कहा कि बवंडर से भयंकर तूफानी समुद्र में भी हमें अपने दिल और दिमाग़ को शांत तथा स्थिर रखने की शक्ति धीरे-धीरे प्राप्त करनी चाहिए।

एक दिन फिर से महात्माजी ने मुझे गीता के नीचे लिखे श्लोक सुनाये और कहा "मेरी समझ में नहीं आता कि इस ...न के अनुसार बाहर के कामों में फँसे रहने पर भी मनुष्य ...र ही भीतर परमात्म-स्मरण क्यों नहीं कर सकता।"

"नैव किंचित्करोमीति युक्तो मन्येत तत्ववित्।
पश्यन् शृण्वन् स्पृशन् जिघ्रन्नश्नन् गच्छन् स्वपन् श्वसन्॥
प्रलपन् विसृजन् गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्त्तन्त इति धारयन्॥"

गीता अ० ५ श्लोक ८–९

भावार्थ—"योगयुक्त तत्ववेत्ता पुरुष को समझना चाहिए कि "मैं कुछ भी नहीं करता, और देखने में, सुनने में, स्पर्श करने में, खाने में, सूँघने में, चलने में, सोने में, साँस लेने-छोड़ने में, बोलने में, विसर्जन करने में, लेने में, आँखों के पलक खोलने और बंद करने में भी, ऐसी बुद्धि रख कर व्यवहार करे कि (केवल) इन्द्रियाँ अपने अपने विषयों में वर्तती हैं।"

इस तरह महात्माजी के सामने धार्मिक जीवन का एक ...न स्वरूप खड़ा रहता है, जिसमें कर्म ही पूजन का रूप ...न कर लेता है। यही, पूजक को धीरे-धीरे अधिक से अधिक आत्म-शुद्धि की ओर अग्रसर करता है और अन्ततोगत्वा आत्मा को देह के बंधनों से एकदम मुक्त कर देता है; दूसरे शब्दों में उसे असीम-शांति प्राप्त करा देता है। वे कहा करते थे कि हमें अपना काम पंजाब एक्सप्रेस जैसी शक्ति और उत्साह के साथ करना चाहिए, परन्तु उसे करते समय हमें अपने दिल और दिमाग़ को स्थिर (Balanced) रखना चाहिए, और ज़रूरत पड़ते ही सांसारिक झँझटों से अपने आपको मुक्त कर लेने की योग्यता भी हममें होनी चाहिए। दूसरे शब्दों में अपनी आत्मा को शांत और निर्दोष रखते हुए हमें दृढ़ता और अविचलता पूर्वक आत्म-स्वामित्व की भावना को सुरक्षित रखना चाहिए। जिस काम को करते समय मनुष्य अपनी मानसिक शांति और स्थिरता खो बैठे, उत्तेजित, क्रुद्ध या चंचल हो जाय, वह काम महात्माजी के मतानुसार सच्चा अथवा सात्विक काम नहीं है। क्योंकि उसे करते समय मनुष्य आत्म-स्वामित्व की भावना को भूल जाता है, उस काम की आध्यात्मिकता नष्ट हो जाती है और वह कर्त्ता के लिए बंधन तथा आपत्ति का कारण हो जाता है। जिन्होंने|महात्माजी के जीवनचरित्र और उनके अनेक कार्यों के समाचार पढ़े हैं तथा उनके लेखों का शांतिपूर्वक मनन किया है उनसे वे अनेक घटनायें छिपी नहीं हैं जिन में महात्मा जी ने अपने असाधारण धैर्य से काम लिया है। चारों ओर की घोर अव्यवस्था और उलझनों के बीच रहकर भी विचित्र-मनोधैर्य-पूर्वक अपने आपको शांत, प्रसन्न और गंभीर बनाये रहना अकेले महात्माजी का ही काम है। इसके बाद तो मुझे महात्माजी के अधिक निकट रहकर उनकी दैनिक चर्या का विशेष अध्ययन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। इस अध्ययन के काल में मुझे उनकी उक्त असाधारण शक्ति के कई स्पष्ट और प्रत्यक्ष प्रमाण मिले थे। असहयोग आंदोलन के तूफानी दिनों में भी, जब देश का राजनैतिक वायु-मंडल अत्यंत क्षुब्ध, उत्तेजित और धुँधला हो रहा था, महात्माजी अपने नित्य नियमानुसार पूर्ण शांतभाव से यंग इंडिया और नवजीवन का संपादन करते थे और दोनों साप्ताहिक पत्रों को अपने ही लेखों द्वारा भर कर उन्हें प्रकाशित करवाते थे। फिर उन दिनों उनके पास प्रतिदिन देश के कोने-कोने से इतनी बड़ी संख्या में पत्र और तार आते थे कि उनका अंदाज़ लगाना यदि असंभव नहीं तो कठिन अवश्य है। ये सब पत्र ज़रूरी

होते थे, अतः महात्माजी को उनका प्रत्युत्तर शीघ्र ही भेजना या भिजवाना पड़ता था। यह सब होते हुए भी मैंने उन्हें हमेशा शांत, प्रसन्न और गंभीर ही देखा। जिन्होंने इस तरह चारों ओर के कोलाहल, और शोरगुल हर्षध्वनि और जय-जय कार के बीच महात्माजी को शांतभाव से एक बार भी काम करते—अपने साप्ताहिक पत्रों के लिए लेख आदि लिखते हुए नहीं देखा है वे ऊपर की बातों पर एकाएक विश्वास नहीं कर सकेंगे।

महात्माजी एक महापुरुष हैं, यह बात उनके चरित्र की असाधारण विशेषताओं के कारण सूर्य-प्रकाश के समान स्पष्ट है। तिस पर भी, अब तक वे अपनी आत्मा को संसार के बन्धनों से और उसकी क्षणिक अथवा ससीम-स्थिति (Finite-existence) से मुक्त करने में सफल नहीं हुए हैं। दूसरे शब्दों में वे अभी तक पूर्णतया 'मुक्त' नहीं हो पाये हैं। उन्होंने इस बात को स्वयं कई बार स्वीकार किया है और अपने लेखों में दुहराया भी है। एक-बार आश्रम में, बात-चीत करते हुए उन्होंने मुझसे कहा था—" जब मैं किसी दिन बैठ कर, मुक्ति प्राप्त करने की इच्छा से, सम्पूर्ण समाधि लगाऊँगा, तब, जब तक मुझे मोक्ष-प्राप्ति न होगी मैं अपने आसन से नहीं उठूँगा। " महात्माजी की आत्मिक-एकाग्रता, उनके आत्म-संयम और मन तथा शरीर पर उनके अद्वितीय स्वामित्व को देखते हुए अध्यात्मिक योग्यता सम्बन्धी उनके उक्त कथन को मैं बिना किसी हिच-किचाहट के मान सकता हूँ। कई तरह की सुख और सुविधा पर लात मारने वाले और इन्द्रियों की उद्दाम वासनाओं की तृप्ति तथा उपभोग से, कठोर संयम द्वारा, विरत रहने वाले लोग तो इस दुनिया में ढूँढ़ने से मिल ही जाते हैं, परन्तु बहुधा यह देखने में आता है कि इस त्याग का उनके चारित्र्य पर कुछ-नहीं के बराबर प्रभाव पड़ता है। दूसरे शब्दों में वे चरित्र की दृष्टि से उतने उन्नत नहीं होते। इस त्याग के कारण, विनम्र, सुशील, और आत्म-विस्मृति-शील (self effacing) होने के बदले वे उलटे ज़रूरत से ज्यादा मग़रूर, हठी और अपने आपको प्रधानता देने वाले (self assertive) हो जाते हैं। दुनिया के कुछ सुखों का त्याग करने पर भी अत्यधिक आत्माभिमानी बन कर वे उस त्याग की पूर्त्ति कर लिया करते हैं। महात्म जी का त्याग इन सब से परे, ऊँचा और भिन्न है। मेर तो यह विश्वास है कि मनुष्य को सांसारिक बन्धनों मे फँसाने वाली कई वाह्य और आन्तरिक वस्तुओं क महात्माजी के जीवन पर थोड़ा भी प्रभाव नहीं है। उनके सामाजिक जीवन (Public-life) की एक उज्ज्व विशेषता पर इस कथन से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। देश और विदेश के असंख्य हृदयों पर महात्माजी के व्यक्ति की जो अमिट छाप पड़ चुकी है; दुनिया की दृष्टि में उनकी शक्ति, प्रतिष्ठा, नाम और यश की जो महिमा बनी हुई है देश और विदेश की सात्विक-सम्पत्ति पर उनका जो प्रभुत क़ायम हो चुका है, उन सबके होते हुए भी उनके स्व में अथवा व्यवहार में मिथ्या आत्माभिमान या गर्व छू तक नहीं गया है। आत्मा को शुद्ध और निर्लेप बन की इस प्रक्रिया में साधक को कितने कष्ट उठाने पड़ते हैं कैसा घोर युद्ध करना पड़ता है, इस बात का अनुभ केवल वे ही कर सकते हैं जिन्होंने स्वयं इस दिशा में कु प्रयत्न किया है। नाम, यश, सम्पत्ति और सत्ता आदि मद से अपने आपको मुक्त और विरक्त करना कोई साधा-रण बात नहीं है। (अपूर्ण)

कृष्णदा

अत्याचारी के प्रति

कर प्रदीप्त मुख, अमित करों से, झाड़ेगा सूरज अं
गरज-गरज कर चढ़ आएँगे, सिर पर बादल विकट अ
अब न सहूँगी निठुर! मूक बन, तेरे सारे अत्या
गिरा गिरा गिरि-शिखर भयंकर, पवन करेगा कठिन प्र
हिल जायेगा परम-पिता का,
आसन सुन मम करुण पुकार।
खोज-खोज कर थक जाएगा,
पाएगा न मुझे संसार॥

सुमंगलप्रकाश

वर्ण-व्यवस्था

वर्तमान जगत् की एक भारी समस्या

आज संसार भर में हलचल है—अशान्ति है, भारत भी इसके प्रभाव से खाली नहीं। जगत् में नई-नई शक्तियाँ जन्म ले रही हैं, कभी एक सत्ता-एक शासन की सब देशों में धूम थी, आज प्रायः सर्वत्र प्रजातंत्रवाद का ज़ोर है; लोग तो प्रजातन्त्र से भी सन्तुष्ट नहीं, आज साम्यवाद का युग है, धनिकता और निर्धनता, राज-शक्ति और अधीनता यह द्वन्द्व लोगों को अखरते हैं। आर्थिक, राजनीतिक यहाँ तक कि धार्मिक और घरेलू क्षेत्रों में भी लोग समानता चाहने लगे हैं। पिछले दिनों की एक घटना है, विलायत में बालकों का एक सम्मेलन हुआ, उसमें जो प्रस्ताव स्वीकृत हुए उनमें एक यह था कि हमारे पिताओं को कोई अधिकार नहीं कि वह हमें किसी प्रकार का हुक्म दिया करें। और न हमारे अध्यापकों को यह अधिकार है कि वह पाठादि याद न होने पर हमें बैंचों पर खड़े होने आदि के दण्ड दिया करें, इस घटना से हवा का रुख मालूम हो सकता है। साम्यवाद के अतिरिक्त एक और शक्ति संसार में प्रकट हो चुकी है जिसका नाम है बोल्शेविज़्म।

इस शक्ति के विरुद्ध अंग्रेज़ और अमेरिकन पूँजीपति और साम्राज्यवादी कितनी ही बातें गढ़ कर उसे बदनाम करें परन्तु इससे उसकी प्रगति रुकेगी नहीं। आज संसार में अशान्ति भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट हो रही है और यह बोल्शेविज़्म भी उसका एक अन्यतम रूप है। अतः इससे किसी प्रकार बिगड़ने की कोई आवश्यकता नहीं। यह अशान्ति अस्वाभाविक या सर्वथा आकस्मिक भी नहीं। विचारशील इस आँधी के लक्षण बहुत पहले से देख रहे थे।

इसी प्रकार राज्य सत्ताओं की ओर से जो-जो अमानुषिक अत्याचार प्रजाजनों पर हुए उसीकी प्रतिक्रिया आज प्रजातन्त्रवाद, साम्यवाद और बोल्शेविज्म के रूप में दिखाई देती है, और यह संघर्ष अब सर्वथा बन्द हो गए हों सो बात नहीं है। हमारा देश अभी तक इस छूत से बहुत कुछ बचा हुआ था; परन्तु पूँजीपतियों-श्रमिकों का विवाद अब यहाँ भी ज़ोर पकड़ रहा है। आये दिन की हड़तालें इसी का परिणाम हैं। इस प्रकार संसार एक महाक्रांति के मुख में है और बड़े से बड़ा बुद्धिमान् पुरुष भी कह नहीं सकता कि कल क्या होने वाला है ?

परन्तु एक बात बिलकुल स्पष्ट है, दुनिया भोगवाद की ओर जा रही है, पश्चिमीय देशों का श्रमी-आन्दोलन जीवन के आवश्यक पदार्थों की प्राप्ति के निमित्त से उतना नहीं जितना अमीरों से उनके भोग छीनने के उद्देश्य से है। हमारे जो नेता यूरोप हो आए हैं वे बताते हैं कि वहाँ के ग़रीब लोग यहाँ के धनवानों से कहीं अच्छी अवस्था में हैं। तब यह सारा झगड़ा अधिकाधिक धन और सांसारिक सुख प्राप्ति के लिये है। दूसरी ओर जहाँ राजशक्तियों और प्रजाशक्तियों में संघर्ष है वहाँ उसका प्रधान उद्देश्य शक्ति की प्राप्ति है। एक तीसरी समस्या भारत में विद्यमान है, यहाँ ब्राह्मण-अब्राह्मण का भेद-भाव, ८४४ जातियाँ-उपजातियाँ बड़ी भारी अशान्ति का मूल है, प्रत्येक जाति ब्राह्मण या क्षत्रिय बनने के प्रयत्न में लगी है। यहाँ प्रश्न क्या है ? यहाँ प्रश्न मान-सम्मान का है।

धन, शक्ति और मान ये तीन बातें हैं जिनके लिए आधुनिक जगत लड़ रहा है। साम्राज्यवादी देशों और जातियों में भी इन्हीं तीन बातों के लिए ठनी रहती है। यह चीज़ें स्वतः बुरी हैं या झगड़े का कारण हैं, ऐसा कोई नहीं कह सकता। प्राचीन काल में कहा जाता है जितने युद्ध होते थे वह ज़र (धन), ज़मीन (भूमि) और ज़न (स्त्री) के लिए होते थे, परन्तु आज इनका स्थान उपर्युक्त तीन वस्तुओं ने ले लिया है। प्रत्येक व्यक्ति और समष्टि आज अधिक दौलत, अधिक इज़्ज़त और अधिक ताक़त प्राप्त करने का उद्योग कर रही है, इसी उद्योग में संघर्ष है—अशान्ति है।

तब फिर होना क्या चाहिये ? हम ऊपर कह चुके हैं कि इनमें से कोई भी साधन स्वतः बुरा नहीं, बुरा है इनका इकट्ठा होना। इनके विभाजन में ही संसार का कल्याण है। आज कलह क्यों है ? इसीलिए कि धनवान् की ही प्रतिष्ठा है और धनवानों ही के पास सारी शक्ति है। आज संसार से

सरस्वती और सदाचार की देवी की पूजा उठ गई है और लक्ष्मी का सर्वत्र पूजन हो रहा है, इसी अवस्था को लक्ष्य में रख कर किसी दिलजले संस्कृत कवि ने कहा था—

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः। स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयन्ते॥

धन के कारण तो ऐतिहासिक काल में सदा ही लड़ाइयां लड़ी जाती रही हैं, आज भी वही सनातन लड़ाई चल रही है। हमारे विचार से तो यदि इन तीनों साधनों को अलग-अलग कर दिया जाय तभी विश्व में शान्ति स्थापित हो सकती है। आज-कल के राष्ट्र-संघों से यह कार्य कदापि नहीं हो सकता, इस समय सब सत्ता वैश्यों में केन्द्रित है, पश्चिमीय राष्ट्र एक प्रकार से सभी वैश्य राष्ट्र बने हुए हैं, वैश्यों के पास दौलत, ताक़त और इज्ज़त तीनों इकट्ठी हो रही हैं, यही सारी ख़राबी की जड़ है।

अब इनका विभाजन कैसे किया जाय, इसके लिए इतिहास में केवल एक पद्धति का उल्लेख है। उसका तत्त्व यह था कि जिन लोगों के हाथ में शक्ति हो उनके पास न धन हो और न प्रतिष्ठा, जो दौलत को भोगने वाले हैं वह न शक्ति का उपयोग कर सकें और न सारी प्रतिष्ठा उनके हाथ में आ जाय। तीसरी ओर जिनके पास मान-धन हो उनके पास न हो सांसारिक विभूति न शस्त्र-शक्ति। इस पद्धति का दूसरा नाम है वैदिक वर्णव्यवस्था।

कई लोग इस नाम से ही चौंक उठेंगे, उनका तो कोई इलाज नहीं, परन्तु जो लोग गम्भीरतापूर्वक किसी विषय पर निष्पक्ष हो कर विचार कर सकते हैं उनसे हमारा कहना है कि जगत् की वर्तमान अशान्ति का कोई दूसरा उपाय समझ में नहीं आता। आज-कल जितने और उपाय किये जा रहे हैं वह अंधेरे में हाथ-पैर मारने के सिवाय और कुछ नहीं हैं, वह परीक्षण-मात्र हैं, निरुद्देश्य प्रयत्न हैं—निर्लक्ष्य बाण हैं। कोई लक्ष्य पर जा बैठा तो ठीक; नहीं तो हरिहर। वर्ण-व्यवस्था शब्द बहुत बदनाम हो चुका है, इसे हम खूब जानते हैं। विशेष करके दक्षिण में दलित जातियों के भाई इससे बहुत तंग हैं। आज-कल के नवशिक्षित, जिनकी प्रकृति में कुछ क्रान्ति का भाव है वह वर्णव्यवस्था से बहुत चिढ़े हुए हैं, परन्तु हमारा निवेदन है कि वर्णव्यवस्था स्वयं बुरी नहीं, वर्णव्यवस्था तो श्रम विभाग के नियमों पर आश्रि है और श्रम-विभाग कहीं भी बुरा नहीं माना जाता। वर्ण शब्द में अद्भुत लचक है। वर्ण अक्षर को कहते हैं, यह एक से दूसरा बदल जाता है, व्याकरण का सन्धि-नियम सारा इसी नियम का विस्तार है। वर्ण रंग को भी कहते हैं और यह जगत्प्रसिद्ध सचाई है कि रंग भी एक दूसरे संसर्ग से बदल जाते हैं, नीले और पीले रंग को मिला दो हरा रंग बन जाता है। जाति-परक वर्ण तो आर्य जाति इतिहास में बदलते ही रहते हैं। जहाँ वसिष्ठ, विश्वामित्र के ऊँचे उठने के उदाहरण हैं वहाँ असमंजा, रावण आदि नीचे गिरने के उदाहरण भी हैं और वेद तो इस विषय बहुत ही उदार है। एक स्थान पर वेद उपदेश करता है तुम कवि हो सकते हो, तुम्हारा भाई तन्तुवाय (जुलाहा) सकता है, तुम्हारे परिवार में कोई दूसरा वैद्य सकता है—

कारुरहं ततोभिषगुपलप्रक्षिणीनना। नानाधियो वसूय ऽनुगा इव तस्थिमेन्द्रायेन्दो परिस्रव॥ ऋ० ९।११२।३

वेद में पितृयज्ञ तो है ही, महापितृयज्ञ का विधान पाया जाता है। उन महापितरों में पाठक आश्च करेंगे कि शिल्पी लोगों की महापितृ संज्ञा हो कर उनके सत्का का आदेश है। अतः वैदिक वर्णव्यवस्था से एकदम चौं की आवश्यकता नहीं।

कम्यूनिज्म और बोल्शेविज्म का मूल सिद्धान्त है जो श्रमी लोग हैं उनको कष्ट में रखकर केवल अपने ध जन-बल के आधार पर किसी को मौज उड़ाने का अधि नहीं। किसी हद तक यह बात ठीक है, विलासी जीवन सदा सर्वदा निषेध ही होना चाहिये। संसार भोग-स्थ के स्थान पर कर्तव्य भूमि है, परन्तु जब वह समानता सिद्धांत को बहुत दूर ले जाते हैं तो बुरे परिणाम स्पष्ट से सामने आजाते हैं। सब से बड़ा दोष इस पद्धति में कि मनुष्य की योग्यता और प्रतिभा के लिये बहुत कम रह जाता है। कदाचित् यही कारण है कि रूस के सत्तात्मक राज्य के पीछे प्रतिभाशाली विद्वानों की कमी गई है, लेनिन और ट्रोट्स्की के नाम अभी तक जीवित परन्तु वह केवल साम्यवाद के प्रचारकों के रूप में,

र्वाचीन सुधारकों के रूप में। इनके मुकाबले में टॉल्स्टाय अधिक ऊंचे दर्जे के व्यक्ति हुए हैं, मैचनीकाफ सरीखे निकों का तो वहाँ प्रायः इस समय अभाव ही ड़ता है। फिर दूसरा आक्षेप इस साम्यवाद र यह आता है कि उस पद्धति में प्रेरिकाशक्ति (Initiative) का नाश हो जाता है। जब सब कुछ ष्ट्र का ही हो जाना है तो मुझे क्या आवश्यकता पड़ी कि मैं अधिक परिश्रम उठाऊँ या नये-नये आविष्कार करूँ स समय तो, यदि एक शब्द के प्रयोग के लिए लेखक को मा किया जाय, रूस के वर्त्तमान शासन को शूद्र-राज्य का नाम दिया जा सकता है। तीसरे ऐसे राष्ट्र में विशेष पारिक उन्नति नहीं हो सकती, क्योंकि व्यापार का पूँजी के साथ सीधा संबन्ध है, और साम्यवाद से लेकर बोल्शेविज्म तक पूँजी के विरुद्ध एक पक्षपात सा पाया जाता है। इतिहास यह बतलाता है कि जहाँ पूँजी के विरुद्ध वाद का प्रचार किया गया वहाँ उसके फल स्वरूप या तो च्छंदता का राज्य हो गया, या ईसाई जगत् की नाईं एक तिक्रिया सी उठ खड़ी हुई। दूसरी ओर हमारा साधारण निक अनुभव हमें यह शिक्षा देता है कि जो काम व्यक्तिसाहस (private enterprise) से होते हैं वह जों और राष्ट्रों द्वारा उतनी उत्तमता से नहीं हो सकते। का कारण यह है कि उस व्यक्ति को अपने कार्य में रुचि ती है और उसका (stake) होता है। एक चौथी बात ई है, वह यह है कि साम्यवाद क्या और कम्यूनिज़्म या विज़्म क्या? यह सब पद्धतियाँ धर्म की जड़ों को काटती और मनुष्यों को धर्म से विमुख कर देती हैं; यही आज में हो भी रहा है। हमारे देश में भी जो नवयुवक के यज्ञीय बंधनों में बँधना नहीं चाहते उन्हें यह वाद प्रिय लगते हैं।

केवल साम्यवाद ही नहीं, परन्तु संसार की वर्त्तमान पद्धतियाँ भी दोष रहित नहीं हैं। उनसे भी सामाजिक स्थापित नहीं हो सकती। साम्यवाद की उत्पत्ति हुई, इसी लिए कि वे बहुत दोष पूर्ण थीं। सापेक्ष दृष्टि से पद्धतियों की भी संक्षिप्त आलोचना इस समय चाहिए।

अनियमित राजसत्ता (Absolute monarchy) को लीजिये। आज तो इस विषय में प्रायः सभी विद्वान् सहमत हैं कि ऐसी राजसत्ता मनुष्य समाज के लिये भारी शाप है! आज तो इसका युग चला सा गया है। जहां-जहां ऐसी राजसत्ता थी वहां-वहां से हमारे देखते-देखते वह नष्ट होती जाती रही है। अतः इस संबन्ध में विशेष चर्चा करने की आवश्यकता नहीं।

इस समय संसार के प्रायः सभी सभ्य कहलाने वाले राष्ट्र प्रजातन्त्र राष्ट्र हैं। अमेरिका, स्पेन और फ्रांस यह तीन सबसे पुराने प्रजातन्त्र हैं, परन्तु विगत यूरोपीय महासमर के बाद इनकी संख्या में बहुत वृद्धि हुई है। सबसे पहला देश जिसने इस पद्धति का अनुभव लिया, वह रूस था। फिर पोलैण्ड की बारी आई। धीरे-धीरे आयरलैंड, टर्की, यूनान आदि देश यूरोप में और चीन तथा फ़ारिस एशिया में हमारी आँखों के सामने प्रजातन्त्र हो गये हैं। इन विविध प्रजातन्त्र राष्ट्रों में भी परस्पर कुछ-कुछ भेद हैं, परन्तु सबके विषय में इतना निःसंकोच कहा जा सकता है कि यह प्रणाली भी आदर्श प्रणाली सिद्ध नहीं हुई। और बातों को जाने दीजिए, इन देशों की नैतिक अवस्था भी उन्नत नहीं हुई। कई प्रतिष्ठित लेखकों ने इस बात पर प्रकाश डाला है कि जिन देशों में समस्त प्रजा को मताधिकार प्राप्त है वहाँ भी शक्ति धनवानों के हाथ में ही रहती है। राष्ट्र के चुनाव के समय जो-जो उपद्रव और ओछी कार्यवाहियाँ होती हैं, उनके विवरण पढ़कर चित्त दहल जाता है। धन के ज़ोर पर जनता के मत ख़रीद लिए जाते हैं। अनन्त धन-राशि व्यय कर अख़बारों द्वारा जनता के दिमाग़ को पराधीन कर दिया जाता है। जो लोग गत महासमर की कूटनीतियों तथा पूर्व की संधियों से परिचित हैं, वे यह भलीभांति जानते हैंकि प्रजातन्त्र में प्रजा वस्तुतः कितना कम भाग 'क्रियात्मक रूप से' लेती है। गत महासमर जैसा संहारक कार्य केवल कुछ पूँजीपतियों के कारण किया गया था। आज भी युद्धों की जो संभावना है, उसका कारण कुछ पूँजीपतियों का स्वार्थ ही है। क्या यही प्रजातन्त्र है ?

एक बात और भी है, एक मनुष्य का अत्याचार सहन हो जाता है, परन्तु जहाँ जाति की जाति अत्याचार पर तुल ज़ाय वहाँ परमेश्वर ही रक्षक होता है। और यह कोई अनहोनी

बात नहीं, प्रायः प्रत्येक प्रजातन्त्र के हाथ ऐसे रक्त से रंजित हैं। यह भी इतिहास में देखा गया है कि प्रजातन्त्र में यह भी आवश्यक नहीं कि किसी एक व्यक्ति का अधिकार बढ़ कर चरम सीमा तक न पहुँच जाय। इंग्लैंड में क्रॉमवेल का प्रजातन्त्र, फ्रांस में नैपोलियन का प्रजातन्त्र, वर्त्तमान समय में अध्यक्ष विलसन का अमेरिकन प्रजातन्त्र, यह सब इस रोग के उदाहरण हैं। इस समय हमारे कान प्रजातन्त्र के विरुद्ध कुछ सुनने को उद्यत नहीं, परन्तु जो लोग दूर तक विचारते हैं उन्हें ऐसा प्रतीत हो रहा है कि संसार इस पद्धति से भी ऊब जायगा। साम्यवाद की समालोचना हम ऊपर लिख चुके हैं।

इन विविध प्रणालियों की इस संक्षिप्त आलोचना के पश्चात् हम नियमित राज्य-सत्ता (Limited monarchy) का विचार करते हैं, इसका एक दृश्य इंग्लैंड में दिखाई दे रहा है; वहाँ राजा तो है परन्तु उसके अधिकार इतने सीमित कर दिये गए हैं कि प्रजा को हानि पहुँचा नहीं सकता, इंग्लैण्ड की शासन प्रणाली में बहुत दोष हैं परन्तु वहां एक बात बड़े महत्त्व की है, वह यह है कि अंग्रेज़ों की उस भूमि में क्रान्तियों के बीज अधिक फलते फूलते नहीं, वर्त्तमान विधान को चलते हुए वहाँ काफ़ी समय बीत चुका है परन्तु समय के साथ उसमें स्थिरता आती जाती है। जो लोग साम्यवाद की बाढ़ वहाँ बढ़ते हुए देख रहे थे उनके लिये पार्लियामेंट का पिछला चुनाव वज्रपात सा सिद्ध हुआ। श्रमी वर्ग ने बड़ी-बड़ी व्यापक हड़तालें कीं परन्तु देश की साधारण जनता ने सरकार का साथ दिया, और हड़तालें स्वयमेव टूट गईं। इस नियमित शासन-सत्ता में भी उपर्युक्त दोष—धनिकों के हाथ में शासन सूत्र का होना—पूरे रूप से विद्यमान है। नैपोलियन अंग्रेज़ों को बनियों की जाति कहा करता था। इंग्लैण्ड के राज्य-प्रबन्ध को हम वैश्य-राज्य कह सकते हैं। जिस अनुपात से वहाँ वैश्यों का प्राधान्य है, उसी अनुपात से वहाँ अशान्ति है और नैतिक पतन भी है, यह बात वहाँ के विचारक और लेखक स्वीकार भी करते हैं।

नियमित शासन-सत्ता के दृष्टान्त प्राचीन भारत के इतिहास में बहुत पाए जाते हैं, ऐसे कई उदाहरण मिल चुके हैं, जिनसे सिद्ध होता है कि प्राचीन भारत में राजा चुने जाने की प्रथा विद्यमान थी और समय पड़ने पर गद्दी से उतार भी दिया जाता था।

भारत की इस नियमित शासन-सत्ता में दोष कम थे, क्योंकि इसका आधार वर्ण-व्यवस्था की भित्ति था। इस शासन-व्यवस्था में राजा को अधिकार, वैश्य धन और ब्राह्मणों को मान दिया जाता था।

राजा के साथ प्रजा की वास्तविक बागडोर मंत्रियों के हाथ में रहती थी। ब्राह्मणों का आदर्श यह कि एक समय से अधिक का भोजन तक अपने पास रख सकते थे। वेद में ब्राह्मण को मनुष्य समाज के भाग से उपमा दी गई है, और यह प्रत्यक्ष है कि मुख सदा नंगा रहता है। ब्राह्मण निर्धनता को निमन्त्रण दे भारतीय इतिहास में वसिष्ठ, चाणक्य आदि के उदाहरण हैं, जो निरीह रहकर बड़े-बड़े चक्रवर्त्ती राजाओं के मंत्री रहे थोड़े से फेर-फार के साथ यही के यही शब्द रामायण दशरथ के राज्य के सम्बन्ध में आते हैं। इसका कारण आगे बतलाया है कि जिस राज्य के सिर पर वसिष्ठ ब्राह्मणों की छत्र-छाया हो वहाँ कोई उपद्रव क्योंकर हो है? यह बात ठीक ही है। जिन्हें संसार में कोई स्वार्थ वह अन्याय कैसे कर सकते हैं? विलसन जैसे ऊँचे सि वाले लोग भी अपने आदर्शों में सफल नहीं होते।

राज्याभिषेक के अवसर पर ब्राह्मण पुरोहित रा पीठ पर दण्ड से चोट करता था, जिससे उसे यह कराया जाता था कि ब्राह्मण उसे किसी भी अनुचित का करने पर दण्ड दे सकते हैं। परन्तु ब्राह्मण भी राजा का करता था। इसी तरह उक्त अवसर पर चारों वर्णों के निधि अभिषेच्य व्यक्ति को राजा स्वीकृत करते थे। त राजा हो सकता था। इस तरह प्राचीन सामाजिक में चारों वर्णों का बहुत उत्तम समन्वय किया गया ब्राह्मणों को सांसारिक प्रतिस्पर्धा में फँसने की आव ही नहीं थी। क्षत्रिय भी रुपया कमाने के लिए संघर्ष में नहीं पड़ते थे। उन्हें राज्य की सर्वविध रक्षा थी। वैश्य कृषि, व्यापार और व्यवसाय द्वारा रुपया थे। उन्हीं पर राज्य के पालन का भार था। आजीविका का प्रश्न वही हल करते थे, ऐसा करना

कर्तव्य था । राज्य के कोष भी उन्हींपर लगे हुए से भरा जाता था । शूद्रों का भी समाज में नीच स्थान था । राज्याभिषेक के अवसर पर शूद्रों के प्रतिनिधि भी थे। महाभाष्य से पता लगता है कि मृतप और चाण्डाल सिवा अन्य शूद्रों को पञ्चयज्ञ करने का अधिकार था। में चारों वर्णों की शरीर के चार अंगों से उपमा देकर समान आवश्यकता बताई है ।

भारत की प्राचीन सफल शासन-व्यवस्था का एक प्रमाण यह है कि लगभग दो अरब (?) वर्ष के जीवन में केवल एक क्रांति हुई और वह महाभारत का युद्ध था। निर्विवाद है कि उस समय वर्ण-व्यवस्था बिगड़ चुकी सिद्धान्त-रूप से तो वह उस समय भी गुणकर्मपरक जाती थी, परन्तु व्यवहार में कर्णादि से जन्म के पर घृणा का व्यवहार किया जाता था । केवल कृष्ण, आदि उस प्राचीन झलक को अपने अन्दर लिये चले थे। जब वर्णों की वैज्ञानिक और बुद्धि-परक व्यवस्था हो गई, तभी भारी क्रान्ति हुई, जिसकी लपेट में सारा आ गया ।

इस प्रकार यदि गम्भीरता से विचार किया जाय तो वर्णव्यवस्था सर्वथा निर्दोष सिद्ध होती है । नियमित के साथ यदि वैदिक वर्ण-व्यवस्था का मेल हो जाय इस मेल से वह आदर्श व्यवस्था उत्पन्न हो जाती है वर्णन छान्दोग्योपनिषद् और रामायण में पाया है और जिसकी कुछ थोड़ी सी छाया मैगेस्थनीज़ तक लेखों में मिलती है । इससे न नैतिक पतन होता है और राष्ट्र में अशान्ति होती है, विषमता का तो कोई सवाल नहीं होता ।

यह है वर्तमान संसार की एक भारी समस्या का हल । भी भारत में इसी वर्ण-व्यवस्था की आवश्यकता है । के साम्यवाद, समाजवाद और बोलशेविज़्म का अनुकरने की आवश्यकता नहीं । वे यहां की मिट्टी में नहीं सकते। यहां तो यहीं की प्राचीन प्रथा को फिर करने की ज़रूरत है ।

परमानन्द

यूरोप में साम्यवाद

(२)

इटली

फ्रांस की अपेक्षा इटली अधिक अराजक और क्रांतिकारी रहा है । और जब तक मध्य-स्थिति के तथा दूसरे पेशेवर लोगों ने साम्यवाद के आंदोलन में खुलकर भाग नहीं लिया, तब तक, इटली के मज़दूरों में अराजकता की बदौलत बड़ी ख़ून-ख़राबी होती रही । सन् १८९१ में मिलन के एक प्रसिद्ध वकील ने वकालत को लात मारकर खेती का काम शुरू किया, और क़ानून की किताबों को बालाय-ताक़ रखकर हल हाथ में लिया । उस समय तक इटली के साम्यवाद को अन्य यूरोपीय देशों के साम्यवाद की स्थिति में लाने के लिए अधिक प्रयत्न नहीं किया गया था । वहाँ के प्रसिद्ध अधिकारी क्रिस्पी ने जनता पर दमन-चक्र चलाने के लिए बिस्मार्क की पद्धति का अनुकरण किया, इससे आंदोलन की प्रगति को और भी बल मिला । इटली की राजनैतिक दशा बहुत गिरी हुई थी। आंदोलनकारियों में दो दल थे । एक राजनैतिक और दूसरा अराजकतावादी। पहले दल में प्रसिद्ध विद्वान, विज्ञान-वेत्ता, डाक्टर और अध्यापक थे। सरकार और साम्यवादियों के संघर्षण के फल-स्वरूप एक विराट हड़ताल हुई । सन् १९०३ में हड़ताल का रूप बड़ा भयंकर हो गया, और वह उपद्रव मार-काट और ख़ून-ख़राबी में परिणत हो गया। इस उपद्रव के तूफ़ान ने साम्यवाद-आंदोलन की आग में ईंधन का काम किया । इस समय नेताओं में परस्पर मन-मुटाव हो गया और वे एक-दूसरे का छिद्रान्वेषण करने लगे। इस कारण यहाँ का साम्यवादी दल अपनी दशा सुधारने में प्रायः असमर्थ हो गया। उसमें तीन बड़े दल बन गये । पहला दल सुधारवादियों का, जो ठीक दिशा में काम करते हुए किसी भी दल का साथ देने को तैयार था । दूसरा दल 'सिंडीकलिस्ट' लोगों का था । उस दल के लोग मज़दूरों के संघटन की आवश्यकता पर अधिक ज़ोर देते थे, और पार्लमेंट के कार्यों का विरोध करने के लिए अराजकों से भी आगे बढ़ जाते थे।

तीसरा दल उन लोगों का था, जो उक्त दोनों के बीच बैठकर कभी एक तरफ़ और कभी दूसरी तरफ़ मिल जाता था, और सदा दोनों दलों की एकता का राग अलापा करता था। इटली का साम्यवाद-आंदोलन आज से क़रीब १५ वर्ष पहले इस प्रकार की दल-बंदी के दल-दल से होकर गुज़र रहा था।

बेल्जियम

साम्यवाद-आंदोलन बेल्जियम में इटली की तरह छिन्न-भिन्न अवस्था में नहीं रहा। बल्कि, वहाँ, शुरू से ही आंदोलन की दशा अधिक व्यवस्थित थी। सहयोग-समितियों से उसे सहायता मिलती थी। सहयोग-समितियों की प्रणाली यहाँ दुनिया भर में सबसे अच्छी थी। अधिक से अधिक मज़दूर आंदोलन में भाग लेते थे, यही उसकी सफलता का मुख्य कारण था। मज़दूरों के नेतृत्व की बागडोर महामना वाण्डर वेल्डी (Vandervelde) के हाथ में थी। वह चतुर और दूरदर्शी नेता थे। आरम्भ में यहाँ अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर-संघ का बड़ा व्यापक और ज़बरदस्त संघटन था। परन्तु आगे चलकर वह टूट गया, और इससे बेल्जियम के साम्यवाद-आंदोलन को बड़ा धक्का लगा। फिर भी आंदोलन की प्रगति नई दिशा पकड़ती गई, और सन् १८८५ में बेल्जियम लेबर पार्टी के नाम से साम्यवादियों की एक बड़ी पार्टी बन गई। यह दल इंग्लैंड की ब्रिटिश लेबर पार्टी से कुछ साम्य रखता था। इसने अपने आपको 'सोशलिस्ट' के नाम से पुकारे जाने से इंकार कर दिया, हालांकि इसके सिद्धांत बिलकुल 'सोशलिस्ट' लोगों के से थे। यह नई लेबर पार्टी विशुद्ध मज़दूर संस्था थी। इसमें वे आदमी शामिल थे, जो मज़दूरों की आर्थिक उन्नति तथा उनकी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए प्रयत्न करते थे। बेल्जियम के साम्यवाद-आंदोलन के संबन्ध में वाण्डरवेल्डी ने लिखा है—"From the English, it adopted self-help and free association principally political tactics and fundamental doctrines which were for the first-time expounded in the Communist Menifesto; and from the French, it took its idealist tendencies, its integral conception of Socialism considered as the continuation of revolutiona philosophy and as a new religion continuing and fulfilling Christianity." अर्थात्, "अंग्रेज़ों से (आंदोलन ने) स्वावलंबन और मुख्यतः सहयोग-संघ के में स्वतंत्र संस्था बनाना सीखा, जर्मन लोगों से इसने नैतिक हथकंडे और वे मौलिक-सिद्धांत, जो पहले 'कम्युनिस्ट विज्ञप्ति' में प्रकट किये गये हैं, ग्रहण किये; फ़रासीसियों से इसने आदर्श प्रवृत्तियाँ प्राप्त कीं; और किया साम्यवाद का वह पूरा विचार, जो क्रांतिकारी के तारतम्य और ईसाइयत के आदर्श को पूरा करते तथा जीवित रखते हुए एक नवीन मत की तरह प्रकाश में हो।" बेल्जियम का साम्यवाद-आंदोलन अधिकांश व्यावहारिक था। उसने सर्व-साधारण के लिए मताधि प्राप्त करने के लिए सरकार का विरोध करने में बहुधा लिब का साथ दिया। यह साम्यवाद-आंदोलन ही का प्र था कि बेल्जियम में प्रजा-सत्ता के अनुसार चुनाव-प्र न होने पर भी अनुदार सरकार को मुँह की खानी थी। पहलेपहल साम्यवादी दल ने सन् १८९४ में यम के शासन में प्रतिनिधित्व प्राप्त किया और सरकार को घुटने टेक देने पड़े।

अमेरिका और अन्य देश

संसार में साम्यवाद-आन्दोलन के फैलने का एक कारण यूरोप में राजनैतिक उथल-पुथल का होना है। फ़्रांस, इटली आदि देशों के साथ ही इस भयंकर ने रूस, स्पेन, पुर्तगाल तथा अन्य छोटे-छोटे यूरोपीय में भी धीरे-धीरे अपने पैर फैलाये।

फ़िनलैंड की पार्लमेंट के सन् १९१० के चुनाव ८७ साम्यवादी चुने गये थे। यूरोप के उत्तरी प्रदे साम्यवादी बहुत शक्तिशाली और सङ्घटित हैं, और पा में उनका काफ़ी प्रतिनिधित्व रहता है। आस्ट्रिया में जाति-गत झगड़े बहुत रहते थे। परन्तु, सन् १९०६ से, से जनता को मताधिकार मिला है, लड़ाई-झगड़े कुछ कम हो गये हैं। सन् १९०६ में जनता के वहाँ की पार्लमेंट में पहुँचे और एक लाख मत मिले। १८८८ से स्विट्ज़लैंण्ड में सामाजिक प्रजासत्तावा

Social Democratic Party) क़ायम है । परन्तु, यह कुछ होते हुए भी, यह देश दमनकारी क़ानूनों और पूर्ण राजनैतिक कृतियों के लिए बदनाम रहा है । जापान किसी भी पश्चिमी आन्दोलन के प्रभाव से वञ्चित हीं है। सन् १९०१ से यहाँ पर साम्यवादी दल मौजूद है । ह दल मार्क्स के सिद्धान्तों का कट्टर अनुयायी है । आन्दो न के आरंभ में अधिकारियों ने अनेक साम्यवादी नेताओं र बड़े-बड़े संगीन जुर्मों के लिए मुक़दमे चलाये, और उन्हें कड़ी सजायें दीं, तथा कईएक को फांसी पर भी लटका या। राजनैतिक हथकंडों से काम लेने में जापान ने अपने रु रूस का प्रत्यक्ष रूप से अनुकरण किया ।

अर्जेण्टाइन, और चिली में भी साम्यवादी संस्थायें हैं, और वे अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी कांग्रेसों में बराबर अपने तिनिधि भेजती रहती हैं ।

आस्ट्रेलिया में लेबर और सोशलिष्ट नाम के दल बन हैं। पहला दल कट्टर साम्यवाद का पोषक है और सरा मार्क्स के सिद्धांतों का प्रचार करता है । न्यूज़ीलैंड वास्तव में साम्यवादी दल नहीं है, किंतु वहाँ के मुख्य सेडोन ने साम्यवाद के नाम पर नरम नीति चला रक्खी है। दक्षिण अफ्रिका में भी किसानों और मज़दूरों के हितों के लिए साम्यवाद-आंदोलन ज़ोर पकड़ता जा रहा है। कनाडा में भी एक साम्यवादी दल है, जो मार्क्स के सिद्धान्तों का कट्टर प्रतिपादक है । इसका प्रतिनिधित्व वहाँ कौंसिल में भी रहता है । मध्य और पूर्वी कनाडा की मि में भी साम्यवाद का बीज पहुँच गया है । वहाँ का वादी दल इंग्लैण्ड की लेबर और इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी तरह पर है। आन्दोलन की हवा से अलबर्टा भी अछूता बचा। वहाँ की नई पार्लमेंट के चुनाव में केवल एक वादी मेम्बर चुना गया ।

अमेरिका की नई भूमि से आकर्षित हो कर पहले-पहल वादी (Utopists) लोग वहाँ पहुँचे । वे लोग वहाँ शासन-व्यवस्था (Phalanstery) की नींव डालना थे। किन्तु थोड़े ही समय में वे एक-एक करके इस से चल बसे, और इस देश के सार्वजनिक तथा राज- कार्यों के रूप में उन्होंने कोई उल्लेखनीय चिह्न नहीं छोड़ा। उसके बाद यूरोप से निर्वासित होकर बहुतसे साम्यवादी अमेरिका में जा बसे । सन् १८७० ई० से अमेरिका के विभिन्न स्थानों में अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी सङ्घ की अनेक शाखायें खुल गईं । यह ऐतिहासिक संस्था जब यूरोप में नष्ट हो गई, तब इसके सदर मुक़ाम सन् १८७२ ई० में अटलांटिक महासागर के इस पार अमेरिका में आ गये। इसके ४ वर्ष बाद एक राष्ट्रीय आन्दोलन सङ्गटित करने का आयोजन किया गया । उसके फलस्वरूप सन् १८७७ में सोशलिस्ट लेबर पार्टी नाम की संस्था बनाई गई । कई वर्ष तक इसका आन्दोलन जारी रहा । परन्तु आगे चल कर, इसके कार्य-कर्त्ताओं में मत-भेद हो गया । इस संस्था के विरोध में दो-एक और दल भी बन गये । सन् १८८५ में शिकागो में अनेक अराजकों पर मुक़दमा चलाया गया, और उन्हें फाँसी दे दी गई । सन् १८७७ में "सोशल डेमोक्रेसी ऑफ़ अमेरिका" नाम की संस्था के जन्म से अमेरिका के साम्यवाद-आन्दोलन में नई जान पड़ गई । सन् १९०१ में यह संस्था साम्यवादी मज़दूर पार्टी में मिल गई । इन संस्थाओं का संचालन बड़े दूरदर्शी और विचारशील पुरुष करते हैं । श्रमी-संघों (Trade unions) तथा अन्य संस्थाओं को "अमेरिकन फ़ेडरेशन ऑफ लेबर" नाम के विराट मज़दूर संघ के द्वारा एक सूत्र में बांधने का प्रयत्न किया जा रहा है। इस प्रकार यहाँ साम्यवाद-आन्दोलन की प्रगति दिनों-दिन तेज़ होती जा रही है । इसमें विदेशी आन्दोलन कर्ताओं से काफ़ी सहायता मिली है । सन् १९१० तक तो साम्यवाद ने अमेरिका की प्रत्येक रियासत में अड्डा जमा लिया था । उस समय चुनाव में साम्यवादियों को ७ लाख वोट मिले और उन्होंने वाशिङ्गटन में प्रातिनिधिक व्यवस्थापिका सभा में प्रथम स्थान प्राप्त किया ।

इंग्लैंड

इंग्लैंड के राष्ट्रीय और साम्यवादी आन्दोलन के क्रमविकास का पता लगाने के लिए १८ वीं शताब्दी के इतिहास पर सरसरी नज़र डालनी पड़ेगी । आरंभ में अनेक स्थानों में कुछ राजनैतिक संस्थाओं का जन्म हुआ । उन संस्थाओं द्वारा चलाये गये राजनैतिक आन्दोलन में, स्पष्टतः एक सामा-

जिक दिशा भी रही है। भूमि को राष्ट्रीय रूप देने तथा आधुनिक मशीनों के प्रभाव से जो दुष्परिणाम होते हैं, उनके सम्बन्ध में अनेक आवश्यक बातें पहले थाँमस स्पेंस (Thomas Spence) ने प्रकाशित कीं, और उसके अनुयायियों ने उन बातों का जोरों से समर्थन किया। रावर्ट ओवेन (Robert Owen) ने भी इन विचारों का पक्ष लिया। ओवेन के जीवन में भी वही विशेषतायें थीं, जो सेंट साइमन, और फाउरियर के जीवन में थीं। उसका जन्म १७७१ में हुआ। प्रारंभ से ही वह बड़ा समझदार था। सन् १८०० से उसने न्यूलेनार्क मिल्स का प्रबन्ध अपने हाथ में लिया। उसने इस बात को लेकर ज़ोरदार आन्दोलन किया कि जिन लोगों की आर्थिक दशा गिरी हुई है, उनकी सरकार को सहायता करनी चाहिए। सन् १८१७ में उसने पार्लमेंट की कमिटी के सामने एक दरख़्वास्त पेश की। इसमें 'ग़रीब क़ानून' (Poor Law) पर विचार करते हुए कहा था कि समाज पर आर्थिक सङ्कट का कारण मनुष्य और मशीन की प्रतिद्वन्द्विता है, और इसको दूर करने का एकमात्र इलाज यही है कि माल पैदा करने के साधनों को पारस्परिक सहयोग के सिद्धान्त से काम में लाया जाय, और उनको जनता के हित की दृष्टि से अधिकार में रक्खा जाय। सन् १८२५ के बाद उसने सामाजिक हित के लिए सहयोग-समिति, मज़दूर-भण्डार आदि की अनेक योजनायें बनाईं। यह ठीक है कि ओवेन के साम्यवादी प्रयोगों को अधिक सफलता नहीं मिली, किन्तु इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि उसके विचारों से अँग्रेज़ समाज की गति-विधि एकदम बदल गई। उसके विचारों का स्पष्ट आदर्श यह था कि शासन-व्यवस्था निर्बलों की रक्षा के लिए होती है। इंग्लैंड का फ़ैक्टरी क़ानून, सहोद्योग-आन्दोलन, सार्वजनिक शिक्षा-विस्तार, मज़दूर-संघ आदि सुधारों की बातें ओवेन के साम्यवादी विचारों के फल हैं। उसके विचारों का पहला परिणाम था 'चार्टिज़्म' (Chartism) आन्दोलन। इस आन्दोलन का मन्तव्य था कि आर्थिक समस्या एक राष्ट्रीय समस्या है और यह राष्ट्रीय साधनों से ही हल की जा सकती है। भूमि-सुधार, शिक्षा-सुधार, फ़ैक्टरी में मज़दूरों के काम का समय घटाना, कारख़ानों और सम्मिलित उद्योग-धन्धों का नियंत्रण आदि उद्देश्यों को लेकर ही चार्टिज़्म का आन्दोलन चला था। ओवेन के बाद इंग्लैंड में गाडविन, थाँमसन, हाड, ओलिव्री, हौजस्किन आदि अनेक साम्यवादी लेखक हो गये हैं। उन्होंने अपने ग्रन्थों में समाज की आर्थिक ग्रन्थियों को सुलझाने के लिए अनेक आवश्यक बातों पर प्रकाश डाला है। उनका दावा है कि माल की सारी पैदाइश पर मज़दूरों का अधिकार है। सन् १८७९ ई० में हेनरी जार्ज की "उन्नति और निर्धनता" (Progress and Poverty) नाम की पुस्तक प्रकाशित हुई। इसने सामाजिक प्रश्नों के सम्बन्ध में मज़दूरों और साधारण जनता के मन पर बहुत प्रभाव डाला। फल-स्वरूप ग़रीबी के सवाल ने एक सार्वजनिक समस्या का रूप धारण कर लिया। वह अब व्यक्तिगत सवाल न रह गया।

साम्यवाद-आन्दोलन दिन-दिन ज़ोर पकड़ने लगा। राजनैतिक मैदान में काम करने वाली 'रेडिकल पार्टी' कर दी गई। सन् १८८२ में, लिबरल सरकार की आज्ञा अलेक्ज़ेंड्रिया (Alexandria) के सामने, गरजती हुई अंग्रेज़ तोपों ने इंग्लैंड की 'रेडिकल क्लब' तथा संस्थाओं पर गोले बरसा कर उसी प्रकार संहार किया जिस प्रकार उन्होंने मिस्र में किया था। इस प्रयत्न से आन्दोलन की आग और भी भड़की। शीघ्र ही 'डेमोक्रेटिक फ़ेडरेशन' नाम की एक नई संस्था का जन्म हुआ। वह भूमि थी, जहाँ कार्ल मार्क्स के विचार फले-फूले। कार्ल मार्क्स के एक पटु शिष्य श्री हिण्डमान इस नये के नेता बने। थोड़े ही दिन बाद इस पार्टी का नाम कर 'सोशल डेमोक्रेटिक फ़ेडरेशन' रक्खा गया। इसके साम्यवाद का प्रचार शुरू हुआ। किन्तु कुछ ही महीनों पारस्परिक कलह से इस दल में फूट पड़ गई, और लिस्ट लीग' नाम की एक पार्टी और बन गई। फ़ेडरेशन 'मार्क्स' के विचारों का अनुयायी था, और 'लीग' विचारों का प्रतिपादन करती थी। आगे चलकर लीग गई, किन्तु, 'फ़ेडरेशन' का काम जारी रहा। सन् ई० में फ़ेडरेशन की ओर से पार्लमेंट की सदस्यता के तीन उम्मीदवार खड़े किये गये। परन्तु उन्हें सफलता मिली। आगे चलकर 'फ़ेडरेशन' की सार्वजनिक

म करने के लिऐ एक क्षेत्र मिल गया। मज़दूर संघों के दिन पर दिन साम्यवादी बनने लगे। ट्रेड यूनियन ों में नये और पुराने विचारों के लोगों का ख़ूब र्षण होता था। नये विचार वाले दक़ियानूसी पुराने विचार के संरक्षण का जुआ अधिक दिनों तक अपनी गर्दन पर नहीं रखना चाहते थे। सन् १८८९ की जहाज़ी हड़ताल में मज़दूरों को पूरी सफलता मिली। ट्रफलगार की मुठभेड़ों से लोगों में ख़ूब उभाड़ पैदा हुआ। इसी जोश में नये संघवाद (New Unionism) की घोषणा की गई। देश भर में बहुत से मज़दूर-दल बन गये।

सन् १८९२ में ग्लासगो ट्रेड यूनियन कांग्रेस की बैठक हुई। इसके निश्चय के अनुसार सन् १८९३ के शुरू में मज़दूर दलों और साम्यवादी पार्टियों के प्रतिनिधि ब्रेडफोर्ड में इकट्ठे किये गये। उसके बाद श्री केयर हार्डी के नेतृत्व में 'इंडिपेंडेंट लेबर-पार्टी' का काम प्रारंभ किया गया। इसका उद्देश्य साम्यवाद के सिद्धान्तों का प्रचार करना था। इसने ओवेन के आदर्शों पर समस्त साम्यवादी शक्तियों का संघटन करने का प्रयत्न किया, और मत-भेद तथा पुराने अन्ध-विश्वासों के दुर्ग को गिरा दिया। इसने लोगों से राजनैतिक कामों में दिलचस्पी लेने की अपील की। इस दल के सतत प्रयत्न से साम्यवाद का बहुत प्रचार हुआ। इसने उदार और अनुदार दलों को संघर्षण के लिए चुनौती देकर अनेक चुनावों में विजय प्राप्त की। सन् १८९२ के चुनाव में श्री हार्डी साउथ वेस्टहाम की ओर से सदस्य चुन लिये गये। इसके बाद नये दल ने कई बार चुनाव में विजय प्राप्त की। श्रमिक दल की इस प्रकार की सफलता से ब्रिटेन के राजनीतिज्ञों में एक ख़ासा परिवर्तन हो गया।

साम्यवाद जब तक केवल सिद्धान्तों के रूप में रहेगा, तब तक अधिक व्यापक नहीं हो सकता। इसको सर्वव्यापी बनाने के लिए इसे क्रियात्मक आन्दोलन का रूप देना आवश्यक है। इसे आन्दोलन का रूप देने के लिए दो बातें बहुत ज़रूरी हैं। एक तो संघटित शक्तियों को केन्द्रीभूत किया जाय, दूसरे मज़दूर जनता का विश्वास प्राप्त किया जाय। 'सोशल डेमोक्रेटिक फ़ेडरेशन' ने इन दोनों बातों में उपेक्षा की, और 'इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी ने इन बातों की तनिक भी उपेक्षा नहीं की। इससे इन दोनों संस्थाओं के भाग्य का जो परिणाम हुआ, वह राजनीति के विद्यार्थियों के लिए महत्वपूर्ण चीज़ है।

सन्१८९९ के बाद इंग्लैंड के मेमोरियल हाल में विभिन्न साम्यवादी और मज़दूर संस्थाओं के क़रीब १२९ प्रतिनिधि इस बात पर विचार करने लिए इकट्ठे हुए कि राजनैतिक गुत्थियों को सुलझाने के लिए सब दलों को कैसे मिलाया जाय। इसका फल यह हुआ कि मज़दूर दल अधिक व्यवस्थित और संघटित रूप से काम करने लगे। इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी को अन्य सब मज़दूर दल हर प्रकार से सहायता देते थे। धीरे-धीरे जनता पर इसकी धाक जमती जाती थी। सन् १९०६ में इस पार्टी के संरक्षण में ३० मज़दूर सदस्य पार्लमेंट में चुने गये। सन् १९१० में तो मज़दूर सदस्यों की संख्या ४० तक पहुँच गई। इससे आगे तो वह समय भी आ गया जब कि शासन की बागडोर बिलकुल मज़दूरों के हाथ में आ गई। इसके बाद के चुनाव में अनुदार-दल ने जिनोवीफ़ के जाली पत्र आदि बना कर जिस कुटिल नीति से मज़दूर-दल को परास्त किया, वह बताने की आवश्यता नहीं।

सुरेंद्र शर्मा

आशंका

कोकिल की भांति आज गाती है अनूठे गीत,
यौवन-वसन्त गये भी वह क्या गावेगी ?
पुष्प की भांति मुसकाती है जो प्रमुदित हो,
दुःख के तुषार में क्या वह मुसकावेगी ?
थिरक रही है तितली-सी जो 'कुसुमाकर'
कुदिनों के आये वह क्या पग उठावेगी ?
आज जो स्वर्ग-सुख मुझको दिखला है रही,
क्या वह सदा ही मुझे दिन ये दिखावेगी ?

देवीप्रसाद गुप्त (कुसुमाकर)

आधुनिक प्रजातंत्र का असली रूप

(गतांक का शेष)

पिछले अंक में हम दिखला चुके हैं कि इंग्लैण्ड में भी आधुनिक प्रजातन्त्र का रूप संतोष-जनक नहीं है। फिर भारतवर्ष, मिस्र आदि पराधीन देशों का तो कहना ही क्या ? इंग्लैण्ड प्रजातन्त्र की जन्मभूमि के नाम से प्रसिद्ध है। पर क्या ब्रिटिश लोक-सभा में भारत के तीस करोड़ लोगों का एक भी प्रतिनिधि है ? और वहाँ मिस्र के प्रतिनिधि भी कितने हैं ? प्रतिनिधियों की बात को थोड़ी देर के लिए भूल भी जायँ, तो भी जब इंग्लैण्ड की सुप्रसिद्ध लोकसभा में भारत सम्बन्धी कोई चर्चा छिड़ती है तब उसमें कितने सभासद हाज़िर रहते हैं ? जो उपस्थित रहते भी हैं, उनमें से कितने लोग जागते रहते हैं ? और जागते भी हैं तो उनमें से कितनों को भारतीय मामलों में बिलकुल मामूली जानकारी भी रहती है ? इंग्लैण्ड के जगत्‌विख्यात क्रान्तिकारी विचारक श्री जॉर्ज बर्नार्ड-शा ने अपने (John Bull's other Island आदि) नाटकों की प्रस्तावना में इंग्लैण्ड और भारतवर्ष के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में जो वाक्य लिखे हैं, वे वस्तुस्थिति को बड़े बढ़िया ढंग से प्रकट करते हैं, उदाहरणार्थ, "जब दो भारतीयों के बीच कुछ निपटारा करना होता है तब भारत में एक अंग्रेज प्रत्यक्ष न्यायदेवता की मूर्ति बन जाता है। वह कहता है कि तुम्हारे धार्मिक झगड़ों में मैं निष्पक्ष हूँ, क्योंकि मैं दोनों में से एक धर्म को भी नहीं मानता। तुम्हारे सामाजिक रिवाज तथा मान्यताओं के विषय में भी उदासीन हूँ। क्योंकि वे हमारे रिवाजों और मान्यताओं से भिन्न और अ हीन हैं। अन्त में मैं तुम्हारे स्वार्थों के विषय में भी निष्पक्ष हूँ। इसका कारण यह है कि वे दोनों मेरे स्वार्थ से एकसा विरोध रखते हैं। मेरा स्वार्थ तो इसमें है कि मैं तुम दोनों को ऐसा कमज़ोर बनाये रक्खूँ, जिससे तुम मेरे ख़िलाफ़ अपनी अँगुली तक न उठा सको। और फिर तुम्हारा धन चूस-चूस कर अपने तथा अपने देशभाइयों को, जो तुम्हारे ऊपर शासन करते हैं, बड़ी-बड़ी तनख़्वाहें और पेन्शनें दे सकूँ। इसके बदले में तुम्हें एक ऐसी सरकार के सुशासन का लाभ मिलता है, जो दो हिन्दुस्थानियों के बीच तो संपूर्ण न्याय से काम लेती है पर जो दिन-रात इस प्रयास में लगी रहती है कि जहाँ इंग्लैण्ड और भारत के स्वार्थ का प्रश्न उपस्थित होता है वहाँ भारत के साथ सम्पूर्ण अन्याय होता रहे।"

इन उद्‌गारों की सचाई और मार्मिकता उस समय और भी साफ़ हो जाती है, जब हम जालियाँवाला बाग़ के हत्याकाण्ड के मुख्य अपराधी को (an error of judgement के थोथे बहाने पर) निर्दोष क़रार देकर मुक्त किया हुआ पाते हैं। पूर्वोक्त प्रस्तावना में ही ई० सन् १९०६ में मिस्र के डेनश्वाई (Denshawai) गाँव में किये गये अत्याचार के विषय में शॉ महोदय के नीचे लिखे व्यङ्ग पढ़ने योग्य हैं—

"कबूतरों को पालने वाला एक मिस्र निवासी किसान, जो अंग्रेज़ों को शिकार खेलने से मना करता है, जो अंग्रेज़ अधिकारियों और सभ्य अंग्रेज गृहस्थों को कबूतरों का शिकार करते देख उन्हें धमकाता है और मौके बेमौक़े इन अधिकारियों को अपनी जो दार लाठी से ठोक-पीट भी देता है, निस्संदेह बड़ा है। उस दीखने में सत्तर किंतु वस्तुतः ६० वर्ष के

अपराधी को फ़ौजदारी दण्डधारा के अनुसार केवल कोड़ों की सजा देना ही पर्याप्त नहीं था—क्योंकि कारावास के कष्टों को मुश्किल से पाँच वर्षों तक सहने के पहले ही वह दूसरे लोक का अधिवासी बन चुका होता ! इसी कारण हसन फ़ाँसी पर लटका दिया गया। किंतु उसके कुटुम्ब को शिक्षा देने के लिए वह उसके घर के ठीक सामने फाँसी के तख्ते पर चढ़ाया गया, जिसमें उसकी पत्नी, बच्चे और नाती-पोते भी उसके घर की छत पर बैठे-बैठे मौत को अपनी आँखों देख सकें-उसका मज़ा लूट सकें।"

शॉमहोदय ने ऐसी ही और भी कई चुभती हुई बातें लिखी हैं। इस घटना पर विचार करते हुए लार्ड क्रोमर ने मिस्री-न्यायविधान के अनुसार इसे न्याय्य (Just) और आवश्यक (Necessary) कहा है ! मिस्टर जार्ज बर्नार्ड शॉ फिर लिखते है—"सन् १९०६ में लार्ड क्रोमर कोड़ों की कठोर सजा को न्याय्य और आवश्यक क़रार देते हैं। और इस सज़ा को अमल में लाने के तरीक़ों से सशंक होने की बिलकुल जरूरत नहीं समझते। उनका—लार्ड क्रोमर का-कहना है कि मैंने अपने जीवन के लगभग तीस वर्षों तक मिस्र की जनता को सदाचारी और सम्पन्न बनाने में जीतोड़ मिहनत की है। अपने इस सत्कार्य में मुझे कई योग्य अधिकारियों से बराबर सहायता मिलती रही है। मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि उनमें से हर एक मेरे ही समान भूतदया के भावों से प्रेरित होकर मेरी सहायता के लिए तैयार रहता था।" श्री शॉ कहते हैं—"संभव है कि मिस्र-वासी लार्ड महोदय के इन विचारों को पढ़कर एकबारगी चौंक उठें। अगर लार्ड महोदय के शासन-काल के पिछले तीस वर्षों की कार्यवाही का परिणाम उपरोक्त दनशावाई की बर्बरतापूर्ण घटना है तो दूसरे तीस वर्षों के बाद इसी भूतदया के भावों से प्रेरित शासन की छत्र-छाया में मिस्री लोग कितने सदाचारी और उन्नत हो सकेंगे ?" मिस्र के संबन्ध में श्री शा ने जो प्रश्न पूछा है, भारत के जालियाँवाला बाग़ के सम्बन्ध में भी (भारत-सरकार से) यही प्रश्न पूछा जा सकता है।

ऊपर जो थोड़े से लंबे-लंबे उद्धरण दिये गये हैं उनका उद्देश्य तो यही है कि प्रजातन्त्र के सुप्रसिद्ध पुरस्कर्त्ता के नाते इंग्लैंड जैसे राष्ट्र का भीतरी स्वरूप क्या है, इसे पाठक भलीभांति जान जायँ। जनता के जीवन के लिए, उसकी सुख-सुविधा के लिए, और उसके साथ न्याय करने में यदि प्रजातन्त्र का दम भरने वाले राष्ट्र की यह नीति है, तो भी बाल्डविन यह किस बिरते पर कहते हैं कि 'प्रजातन्त्र के लिए ही हमने सारी दुनिया को सुरक्षित कर रक्खा है।' ऐसे राष्ट्र को 'प्रजातन्त्र राष्ट्र' कैसे कहा जाय ? फ्रांस, अमेरिका आदि राष्ट्रों की भी वही हालत है, जो ऊपर हम इंग्लैंड की बतला आये हैं। समोआ (Samaon) लोगों के संबन्ध में अमेरिका ने जिस नीति से काम लिया है, वह प्रजातन्त्र के तत्त्वों का कौनसा रूप है, यह विचारणीय है।

अतः यह सिद्ध होता है कि ऊपर से प्रजातन्त्र-वादी होते हुए भी पाश्चात्य राष्ट्र अपनी असलियत में एक अपूर्व 'साम्राज्यवाद' के अनुयायी हैं—स्वयं बड़े विचित्र 'साम्राज्यवादी' हैं। आइए, हम इसी पर थोड़ा विचार करें।

आज-कल के प्रत्येक प्रबल एवं स्वतंत्र राष्ट्र की यह महत्वाकांक्षा रहती है कि दुनिया का सबसे अधिक भाग उसके अधिकार में हो, सारी दुनिया में उसकी हुकूमत फैली रहे, दुनिया भर के लोग सम्राट् के नाते उसके पैरों की धूल अपने सिर चढ़ावें, समान-बल राष्ट्रों में उसे सर्वाधिक सन्मान मिले, संसार की राजनीति के तार उसकी इच्छा-अनिच्छा की एक-एक

तरंग पर हिलते रहें। निस्सन्देह केवल महत्वाकांक्षा की दृष्टि से इसमें कोई दोष नहीं है। अपनी योग्यता के बल पर यदि कोई राष्ट्र इतना प्रभावशाली और उन्नत हो जाय तो इसमें बुराई भी क्या है? उलटे इस तरह की सफलता तो उसका भूषण बन जाती है। परन्तु इन पश्चिमी राष्ट्रों की साम्राज्य-लिप्सा साम्राज्य-स्थापना के पूर्व प्रयत्नों से कहीं भिन्न स्वरूप की होती है। पहले के पौर्वात्य राजा राज्याभिषेक के बाद ही दिग्विजय के लिए निकल पड़ते थे। वे दूसरे राजाओं पर अपना राजकीय प्रभुत्व स्थापित करते और खुद सम्राट् बनते थे। परन्तु यह करते हुए भी विजित राज्यों की स्वतन्त्रता को छीन लेना, उन्हें एकदम परतन्त्र बना डालना, सब तरह से उनके जीवन-रक्त को चूस डालना, संक्षेप में, नाममात्र के लिए उन्हें जीवित रख कर उनका सब कुछ छीन लेने की आधुनिक, सुशिक्षित, पश्चिमी राष्ट्रों की नीति उन्हें बिलकुल मालूम नहीं थी। वे तो विनित राज्यों से अपनी हुकूमत क़बूल करवाते थे, अपनी राजसभा में उन्हें उपस्थित देखना चाहते थे, उनसे उचित वार्षिक कर प्राप्त करते थे, और लड़ाई के अवसर पर उनकी सहायता पा कर सन्तुष्ट हो जाया करते थे। दूसरे मामलों में विजित राजाओं को, उनकी ओर से, सम्पूर्ण स्वतंत्रता और बराबरी का सन्मान प्राप्त था। "तुम्हारी रक्षा के लिए तुम्हारे ही ख़र्चे से हम अपनी फौज तुम्हारे यहाँ रखते हैं" यह विचित्र युक्ति—आधुनिक सम्राट्शाही के इस एकदम नये आविष्कार की पूर्वीय सम्राटों के अशिक्षित दिमाग़ में कभी कल्पना भी नहीं उठी थी! साथ ही पहले के भारतीय क्षत्रिय सम्राटों का साम्राज्य-विस्तार केवल उच्च क्षत्रियत्व की प्रतिष्ठा के लिए—उसके उज्ज्वल यश की लालसा-पूर्ति के लिए ही होता था। इसी साम्राज्य लालसा से प्रेरित होकर ग्रीक, सिकन्दर और दूसरे जगज्जेताओं ने दूसरे देशों पर चढ़ाई की होगी। उन चढ़ाइयों और उनके परिणाम को देख कर हम इसी नतीजे पर पहुँचते हैं। भिन्न-भिन्न मुसलमा विजेताओं ने समय-समय पर जो चढ़ाइयाँ कीं कुछ तो धर्मोन्माद के कारण थीं और कुछ द्रव्यप्रा की आशा से। मनमानी लूट करने और थोड़े लोगों को भ्रष्ट करने के बाद वे स्वदेश को लौट थे। जो थोड़े से विजित देश में रहते भी, वे वहीं निवासी बन कर अकसर वहाँ के मूल निवासियों हिल-मिल जाते थे। हूणों के समान कितनी विदेशी जातियों ने तो जैन, बौद्ध आदि धर्मों स्वीकार करके हिन्दू-धर्म में अपने आपको एक मिला दिया, ऐसा जान पड़ता है। परन्तु आजकल साम्राज्यशाही का कुछ ढंग ही निराला है। नीचे के अन्तरङ्ग के असली रूप की जो विवेचना जायगी, उससे यह और भी स्पष्ट हो जायगा।

पन्द्रहवीं शताब्दि में पाश्चात्य देशों की दृष्टि (?) भारतवर्ष की ओर पुनः आकर्षित हुई पोर्तुगीज़, डच, फ्रांसीसी और अंग्रेज़ लोग धीरे व्यापार के बहाने देश में इकट्ठा होने ल इनमें से डच लोगों का विचार केवल व्यापार-मू ही था। साम्राज्य-स्थापना की उथल-पुथल के न तो उनके पास ज़रूरी साधन ही थे और न पीठ पर कोई मददगार ही था। अतः पाश्चात्य की चढ़ाई की इस घुड़दौड़ में डच लोगों को ही प्रयत्न में पिछड़ना पड़ा। भारतवर्ष में तो उनके अस्तित्व का निशान तक नहीं मिलता। पोर्तु ने अपनी सत्ता क़ायम करने का प्रयत्न किया, परन्तु इस प्रयत्न में अत्याचार के धर्म-प्रसार करने का जीतोड़ प्रयत्न जुड़ जाने दूसरे शब्दों में धर्म-प्रसार के लिए ही राज्य करने की उनकी नीति के कारण पोर्तुगीज भला

चिरस्थाई कैसे हो सकते ? आज भी भारतवर्ष में कहीं उनका अस्तित्व है वहां पर राजकीय होने की न्ता वे धार्मिक ही अधिक हैं। भारत में पोर्तुगीज़ लोगों ईसाई गिरजाघर, ईसाई धर्मोपदेशक और भारतीय ईसाई-समाज जितनी बड़ी संख्या में तैयार किए हैं, ने किसी भी दूसरे ईसाई राष्ट्र ने नहीं किये । भारत में पोर्तुगीज़ों के राजकीय प्रभुत्व की क्षणिकता का एक यह भी कारण हो सकता है । तीसरे, देश में अच्छी तरह जमने के पहले ही उन्हें मराठों की शाली सत्ता से जूझना पड़ा। इसने उनके अस्तित्व को और भी नहीं-सा कर दिया । उधर, पोर्तुगीज़ और डच लोगों की ग़लतियों से फ्रांसीसी और अंग्रेज़ लोगों ने खूब लाभ उठाया । किसी समय भारत में फ्रांसीसियों के ही सर्वेसर्वा होने के रंग-ढ़ंग दीखते थे। परन्तु अंग्रेज़ों के सौभाग्य से और फ्रांसीसियों के दुर्भाग्य से फ्रांस वालों का सेनापति अयोग्य निकला; डुप्ले (Dupleix) जैसे चतुर फ्रांसीसी सेनानी को फ्रांस वापिस बुला लिया गया । भारत में फ्रांसीसियों की पराजय और अंग्रेज़ों की विजय का यही कारण हुआ। इस बीच मुग़ल और मराठे कमज़ोर हो चुके थे। अंग्रेज़ों ने आकर उन्हें लगभग नाम-शेष कर दिया और भारत में अपना प्रभुत्व स्थापित किया । आगे चलकर, अंग्रेज़ों को सिक्ख, गुरखा आदि लड़ाकू जातियों से बराबरी की लड़ाइयाँ लड़नी तो पड़ीं, परन्तु आखिर जीत अंग्रेज़ों की ही हुई–जिससे इस जाति के पैर भारत में और मजबूती से जम गये ।

अब हमें यह देखना है कि सभी पाश्चात्य राष्ट्रों –खासकर अंग्रेज़ों ने– भारतवर्ष में अपना राज्य किस तरह क़ायम किया । अंग्रेज़ लोग पहले तो एक हाथ में चमकीली-मोहक-चीज़ें और दूसरे में तराज़ू लेकर इस देश में आये । इन चीज़ों की ओट में उनकी तलवार छिपी हुई थी । अपने माल के मोह में फँसाकर यदि तराज़ू से लाभ न उठा सके तो कभी-कभी तलवार से भी काम लेने के लिये तराज़ू वाले तैयार रहते थे । कभी नम्रता से तो कभी मीठी-मीठी बातें करके, कभी मोहक चीज़ें भेंट देकर, तो कभी राजनीतिक-दाँव खेलकर, कभी परस्पर भेद डालकर, तो कभी धमकी देकर, ये अंग्रेज़ व्यापारी, व्यापार के लिए सुविधायें प्राप्त करते थे । फिर धीरे-धीरे व्यापार की दृढ़ता के लिए कोठियाँ, कोठियों की रक्षा के लिए किले और सेना तथा व्यापार का हिसाब-किताब रखने के लिए नौकर-चाकर आदि का जमाव होने लगा । व्यापार की बढ़ती के साथ ही साथ ये लोग अपने व्यापार के क्षेत्र को भी बढ़ाने लगे। देश को जीतने और उसे अपने अधिकार में लाने के लिए इन्हें अपनी सेना और गोला बारूद का सैनिक सामान भी बढ़ाना पड़ा । नौकरों की संख्या भी बढ़ी । इस तरह देश का बहुत-सा भाग अधीन हो जाने और फौजी तैयारी के काफी संगीन हो जाने पर इन लोगों के शरीर में एक तरह की चुल-बुलाहट का छूटना बिलकुल स्वाभाविक ही था। ऐसी दशा में, इस 'व्यापारशाही' के भीतरी रहस्य को न जानने वाले मुग़ल और मराठे आपस में लड़ रहे थे । इन दोनों की राजनीति में पड़कर अंग्रेज़ व्यापारी, एक मध्यस्थ के नाते, इनका सारा राज्य, सारी स्वतन्त्रता और सब कुछ चुपचाप गप कर गये ! दो बिल्लियों के बीच में पड़कर बन्दर ने जिस तरह अपना स्वार्थ साधा–इन नामधारी अंग्रेज़ व्यापारियों ने भी वही किया । व्यापारशाही, साम्राज्यशाही में बदल गई । परन्तु श्री तुकाराम महाराज के 'देह स्वभाव जाई ना' कथनानुसार इस साम्राज्यशाही का सच्चा स्वरूप कई बार अनजाने भी प्रकट हो जाता है । नीचे लिखे उदाहरणों से यह बात भली भांति सिद्ध हो जायगी ।

ऊपर के विवेचन से साम्राज्यशाही का सच्चा

स्वरूप पाठकों के ध्यान में आया ही होगा, परन्तु विषय को अधिक स्पष्ट कर देने के लिए **रूपक** की भाषा में उसका वर्णन इस तरह किया जा सकता है—मान लीजिए कि साम्राज्यशाही के बाहरी रूप या आकार का नाम प्रजातंत्र है—प्रजातन्त्र का चोगा पहन कर ही साम्राज्यशाही दुनिया में अपना काम करती रहती है। जिस तत्व पर साम्राज्यशाही का निर्माण हुआ है वह पशुबल है। इस साम्राज्यशाही का हृदय, या प्राण अथवा आत्मा वैश्यशाही या व्यापार है। राजनीतिज्ञ सरदारों और सभासदों का वर्ग ही इसका मस्तिष्क है–जिसमें भारत के 'टाइम्स' 'इंग्लिशमैन' 'स्टेट्समैन' आदि पत्र संपादकों की गिनती भी की जा सकती है। साम्राज्यशाही की भुजायें उसका सैन्य बल है। और इसके पैर हैं, देश की नौकरशाही। कभी-कभी—जैसे चीन में—धर्म-प्रसार का बुर्क़ा पहनकर भी यह साम्राज्यशाही अपने इन विविध अंग-प्रत्यंगों का आविष्कार किया करती है।

साम्राज्यशाही के लिए व्यापार एक अत्यन्त अनिवार्य विषय है। नीचे के अनेक उदाहरण इसके स्पष्ट प्रमाण हैं। (१) मैञ्चेस्टर और लंकाशायर के व्यापारी, पूँजीपति, और मजदूर आपस में हिल मिल कर—अमेरिकन व्यापारियों को भी अपने गुट में मिलाकर भारत के बाजार को–जो उनका प्रधान ग्राहक है–अपने बनाये हुए माल से, मन माने ढँग से, पाट देने का प्रयत्न करते रहते हैं। इस प्रयत्न के सिलसिले में भारत के किसानों को समृद्ध बनाने के ढोंग से, उनमें अपना माल अधिक तादाद में खपाने के लोभ से, उन्होंने भारत-सरकार को कृषि-कमीशन की नियुक्ति के लिए बाध्य किया। (२) भारतीय वस्त्र-व्यवसाय की रक्षा के लिए सहायता चाहने वाले मिल-मालिकों की मदद पर दौड़ पड़ने का ढोंग रच कर भारत-सरकार ने बाहर से आने वाले कपड़े पर कर बढ़ाने के बदले विदेशों से आने वाले महीन सूत पर औ यंत्रों पर कर बढ़ाया। (३) बर्मा-आइल-कम्पनी प ब्रिटिश-टेरिफ-बोर्ड का कोई न्याय्य अधिकार न है, फिर भी इस ब्रिटिश व्यापारी मंडल की रक्षा लिए 'दूसरे महत्व के प्रश्नों को एक ओर छोड़ क भारत-सरकार ने ताबड़तोब टेरिफ-बोर्ड को मद्रा पहुँचा दिया—पीछे से दूसरे प्रश्नों की उपेक्षा आक्षेप लगाकर भारतीय-व्यापारी-संघ चिल्लाता रहा तो क्या? (४) यही सरकार खड्गपुर औ लिलुआ के मज़दूरों की हड़ताल को बन्द करने लिए पुलीस और फौज इकट्ठा करती है, तथा उ लोगों पर गोली चलवाती है। (५) खादी जैसे नि किन्तु होनहार वस्त्र-व्यवसाय को देश में थोड़ी उ करते देख कर मैञ्चेस्टर और लंकाशायर के ल सशंक हो जाते हैं और उसे दबाने के हेतु छोटे व्यापारियों का एक बृहत् संघ बनाने के प्रयत्न में ज जाते हैं। अपने अमेरिकन भाइयों को भी ऐसे स साथ में लेना वे नहीं भूलते! इन लोगों की करतू के एक दो नहीं ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा सकते

अपने देश के व्यापार के लिए लॉर्ड सभा सदस्य, पुलिस अधिकारी, नौकरशाही के पुर्जे आ सब के सब किस तरह घुल-मिल जाते हैं इसे अच् तरह समझने के लिए भारत में साइमन-बहिष् का उदाहरण ही काफ़ी है। देश ने जब साइ कमीशन का बहिष्कार करने का निश्चय किया उस बहिष्कार-आन्दोलन को दबाने के लिए नौकरशा ने क्या-क्या नहीं किया? बाल्डविन, बर्कनहेड, वि टन आदि लार्डों ने उपहास तिरस्कार और धमकि का सहारा लिया; पुलिस अधिकारियों ने म कलकत्ता, लाहौर और बम्बई आदि बड़े-बड़े श में जनता पर आक्रमण किये; नौकरशाही ने १४ धारा का प्रयोग करके जुलूस आदि को कानूनन नाजा

र दिया; गवर्नर आदि बड़े अधिकारियों ने अपने-ने राजकीय विभागों के अधिकारियों को, लोक-मत निरादर करके, साइमन कमीशन के सामने वाही देने के लिए सप्रमाण तैयार रहने का हुक्म दिया; टिश व्यापारियोंने स्वयं गवाही देने के उद्देश से पने मंडल कायम किये और उनकी साहायता के लिये इकठ्ठा किया; 'टाइम्स' जैसे समाचार पत्रों ने ई तरह से साइमन कमीशन के गुण गाना और हिष्कार-वादियों का उपहास, तिरस्कार तथा खुशामद रना शुरू कर दिया। इधर सर साइमन ने भी अपने धुर भाषणों और लेखों द्वारा केवल एक ही उद्देश्य की पूर्ति की; दूसरे शब्दों में उन्होंने भी साइमन मीशन की प्रशंसा का राग आलापना शुरू किया और बहिष्कारवादियों का निषेध करने में निर्लज्जता की पराकाष्ठा कर दी !

श्री बर्नार्ड शॉ ने पूर्वोक्त प्रस्तावना में इस साम्राज्य-शाही को परस्पर प्रशंसक अंग्रेजी दल (English utual Admiration Society) कहा है जिसे ग्रेज, संघ या साम्राज्य कहते हैं। और नीचे लिखी चना देकर उन्हें ख़तरे से आगाह किया है—"उसे ग्लैंड को) अपने साम्राज्य की देख भाल करने दो; योंकि जबतक वह उसे संयुक्त संघ (Federation) रूप देकर उसकी प्रजाकीय सत्ता को सुदृढ़ और क्षित नहीं बनाता तब तक संसार की स्वतन्त्र जातियों से कोई स्वेच्छा-पूर्वक उससे मिलने को नहीं लल-यगा। उलटे जो लोग उसके आधिपत्य से मुक्त ना चाहेंगे उनके लिए उसका शासन, खास करके, जी-अत्याचार का रूप धारण कर लेगा। इस कुश अत्याचार का परिणाम अँग्रेज कर-दाताओं बहुत बुरा पड़ेगा—उनको इतनी बड़ी आर्थिक नि उठानी पड़ेगी कि उसके मुकाबले में भीषण त्याचारों से पीड़ित विजितों की स्वातंत्र्य-हानि कुछ नहीं के बराबर होगी ! जो राजनीति, सिपाहियों की सहायता के बिना सफलता-पूर्वक अमल में नहीं लाई जा सकती वह चिरस्थायी कैसे होगी?"* इंग्लैण्ड को उन्होंने इन शब्दों में सावधान किया है। क्या हमारे भारतीय भाई इन शब्दों से कुछ शिक्षा ग्रहण न करेंगे? इस बलाढ्य साम्राज्यशाही से जूझने के लिए—झूठे प्रजातंत्र के बदले सच्चा-प्रजातंत्र कायम करने के लिए—भारत के लिए सच्चा 'स्वराज्य' प्राप्त करने के लिए—ब्रिटिश सिंह की बराबरी पर खड़े रहने के लिए—पशु बल के बदले आध्यात्मिक बल की रक्षा एवं वृद्धि के लिए, नौकरशाही के 'फौलादी ढाँचे से' माँटेग्यू के शब्दों में 'काष्ठवत् कठोर राज्य-व्यवस्था के फंदे से' बाहर निकलने के लिए—संक्षेप में भारत के सब दलों के लोगों को स्वराज्य-आन्दोलन में सम्मिलित करके देश को एकदम स्वतंत्र और स्वावलम्बी बनाने के लिए, क्या महात्माजी का बताया हुआ विधायक कार्यक्रम और विशेषतया खादी आन्दोलन एवं खादी प्रचार का काम ही सब से अच्छा और अचूक उपाय नहीं है? इस उपाय से पूरा-पूरा लाभ उठा कर भारत देश में सम्पूर्ण-स्वतंत्र-प्रजातंत्र की स्थापना में सफल होओ !

कृष्णाजी रामचंद्र कुलकर्णी

"उन लोगों की प्रार्थना, जिनकी जिह्वा तो अमृतमय हैं किन्तु हृदय में विष भरा हुआ है, कभी नहीं सुनी जाती अतएव जो ईश्वर से प्रार्थना करते हों या करना चाहें, पहले अपना हृदय स्वच्छ करें।"

—महात्मा गांधी

"किसी समय में, और कहीं भी घृणा, घृणा से नष्ट नहीं होती। वह केवल प्रेम है जिससे घृणा का नाश होता है।"

—धम्मपद

---

* Preface for Potiticians Page XXXVIII-XXXIX, 'John Bull's other Island, etc.

स्वर्गीय पं० गोपबन्धुदास

मनुष्य-जीवन के लिए संसार बाहरी प्रलोभनों और प्रभावों की एक रंगभूमि है। स्वभावत: अपूर्ण मनुष्य को और भी अधिक असहाय तथा दूषित बनाने के लिए ये दो उपकरण काफ़ी हैं। जन-साधारण इन उपकरणों—प्रलोभन और प्रभाव—से बचकर अपने आपको इनसे ऊपर उठाने में असफल होते हैं। उनके लिए एक सफल और सुंदर मनुष्य बनना कठिन ही नहीं वरन् असंभव हो जाता है। फिर मनुष्यों में 'बेताज के बादशाह' बनने और देश के करोड़ों हृदयों पर अपने लिए प्रेम-पूर्ण एकाधिकार प्राप्त करने की तो बात ही क्या ? परन्तु स्वर्गीय गोपबंधुदास ऐसे साधारण पुरुषों में नहीं थे। वे एक असाधारण शक्तिशाली महापुरुष थे और यही कारण था कि उनका सारा का सारा जीवन महापुरुषोचित कार्यों के करने और वैसे ही ध्येयों की ओर बढ़ने में बीता। श्री० पी० सी० राय के शब्दों में 'वे उत्कल प्रांत के अलौकिक रत्न-कोष थे—उसके वे मणि थे।' जिन्होंने गोपबन्धु की जीवनी को ध्यान से पढ़ा है वे आचार्य राय के इस कथन से सहमत हुए बिना न रहेंगे।

पण्डितजी का जन्म स्वांद नामक ग्राम के एक साधारणत: संपन्न ब्राह्मण कुल में हुआ था। यह गांव साखीगोपाल से पूर्व ५ मील की दूरी पर वार्गवी नदी के किनारे बसा हुआ है।

गोपबन्धु के पितामह, श्री० भगवानदास जी, सरलादेवी के अनन्य भक्त थे। इस देवी की आराधना में उन्होंने अपने आपको बलिदान कर दिया था।

श्री भगवानदासजी के दो लड़के थे। पहले दीनबन्धु और दूसरे दैतरी। दीनबन्धु तो अपने युवा पुत्र के अकाल मरण से दुःखी होकर आजन्म के लिए सन्यासी हो गये। श्री० दैतरी ने एक के एक चार विवाह किये। दूसरी पत्नी से उन्हें श्री० नारायणदासजी हुए थे। तीसरी पत्नी श्रीमती स्व मयीदेवी से १२ 'कन्या' १२८४ तदनुसार आक्टो १८७७ के दिन गोपबन्धु का जन्म हुआ। बाल गोपबन्धु को असहाय छोड़कर श्री० स्वर्णमयीदे परलोक सिधार गईं।

श्री० दैतरी उन दिनों मुख्तार थे। पुरी के भीतरी हिस्सों में उस समय तक नये ढंग की पढ़ा का कोई प्रबंध नहीं था। श्री० दैतरी ने अपने बाल पुत्रों की शिक्षा के लिए गांव में ही एक प्रारंभि पाठशाला खोली। ७-८ वर्ष तक बालक गोपबंधु इ पाठशाला में पढ़ते रहे। बचपन से ही गोपबन्धु में श्रीकृष्ण-भक्ति की भावना प्रबल थी। वे बहुधा बड़ी तल्लीनता के साथ श्रीमद्भागवत् के श्लोकों का उड़ि पद्यानुवाद गाया करते थे। गोप बाबू स्वयं भी क कवि थे। बचपन ही से वे कविता करने लगे थे। पाठशाला में पढ़ते समय कभी-कभी वे पद्य-रच भी किया करते और उसे ताड़-पत्र पर लिख लेते थे। मिडिल वर्नाक्यूलर परीक्षा में उत्तीर्ण होने के ब गोपबन्धु पुरी के गवर्नमेंट हाईस्कूल में भरती हु वे अपने समय के एक आदर्श और अत्यधिक गु तथा सफल विद्यार्थी थे। मदरसे के सब सार्वज कामों में वे बड़े उत्साह से भाग लिया करते थे।

हाईस्कूल के दिनों में ही गोपबन्धु का परि पुरी के मुख्तार श्री० रामचंद्रदास गुप्त के साथ हो गया वे एक पक्के देशभक्त थे और प्रान्त में उनके सौजन्य व्यक्तित्व की उस समय खासी धूम थी। गोप के लिए उनका परिचय मित्र-गुरु और पथ-प्र का काम देने लगा। इन्हीं से गोपबन्धु ने स एवं दृढ़तापूर्वक सामाजिक कार्यों में भाग लेना और यह इन्हीं की प्रेरणाका फल था कि पंडित

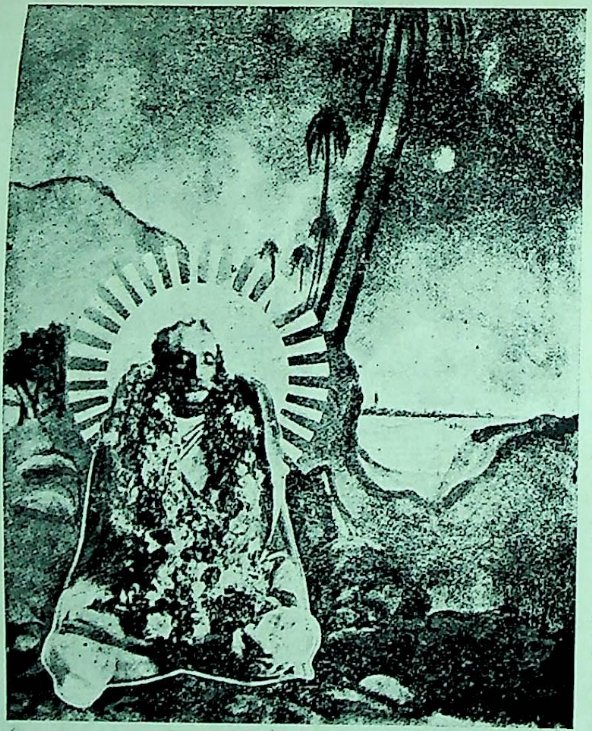

लोकमान्य तिलक
(अंतिम दर्शन)

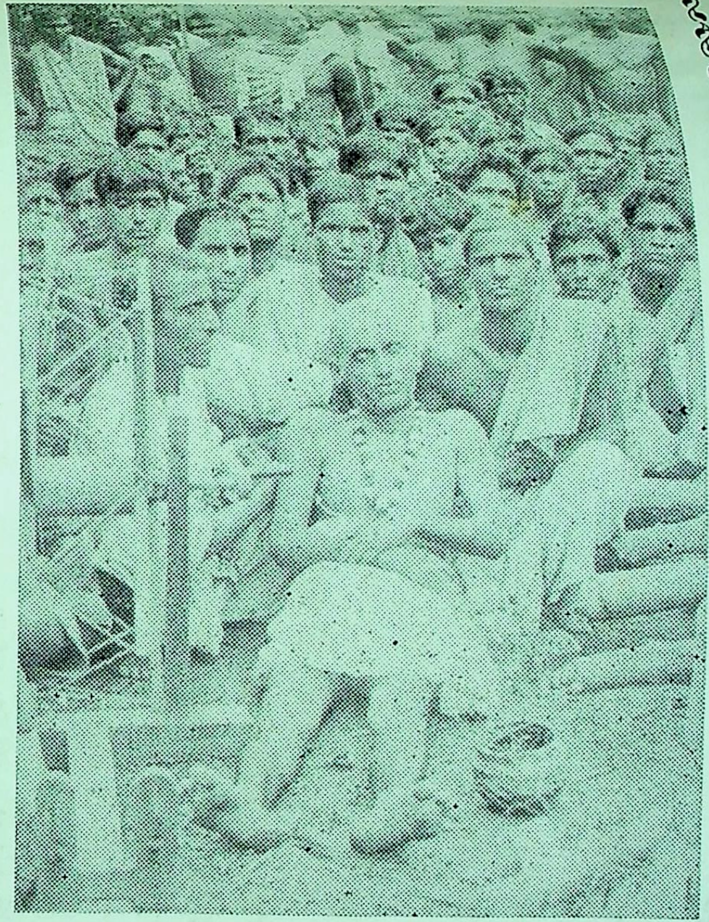

श्री गोपबन्धु दास
(अंतिम दर्शन)

न्धु ने अपने समस्त जीवन को देश-हित के र्यों में बड़ी तत्परता के साथ खपा दिया।

रेवेन्शॉ-कॉलेज-कटक से पंडित गोपबन्धु ने बी० ए० परीक्षा पास की। और सन् १९०६ में कलकत्ता से के बी० एल० परीक्षा में उत्तीर्ण हुए। इसी साल उनके श्रद्धाभाजन गुरु श्री रामचंद्र मुख्तार का देहान्त होगया।

सन् १९०२ में गोपबन्धु ने आजन्म समाज सेवा के व्रती कुछ नवयुवकों का एक संघ स्थापित किया था। जिनमें विशेष उल्लेखनीय श्री हरिहरदास, पंडित नीलकण्ठ, श्री गोदावरीश, स्व० कृपासिन्धु और श्री० लिंगराज हैं।

बी० एल० होते ही गोपबंधु ने उड़ीसा के एक छोटे राज्य-नीलगिरि-में अँग्रेज़ी हाई-स्कूल का संगठन किया। इस हाई-स्कूल की स्थापना के बाद वे वकालत करने लगे। १९०७ के बंगाल-स्वदेशी आन्दोलन में गोपबंधु ने खूब काम किया था। सन्यासी के वेश में, अपने कुछ युवक मित्रों के साथ उन्होंने पुरी जिले के भीतरी भागों में भ्रमण किया और वहाँ की जनता में स्वदेशी-व्रत तथा बन्दे मातरम्-आन्दोलन के विषय में उपदेशों द्वारा, अच्छी जाग्रति उत्पन्न की।

सन् १९०८ की भयंकर बाढ़ के दिनों में कटक जिले के जयपुर और केन्द्रपाड़ा तालुकों की जनता की सहायता के लिए गोपबन्धु ने युवक-उत्कल-संघ (Young Utkal Association) का संगठन किया और स्वयं सेवकों की सहायता से बाढ़ पीड़ित विभागों में जनता की खूब सेवा की। उनके इस अनवरत घोर परिश्रम के फल-स्वरूप जनता की दृष्टि में वे पूज्य गिने जाने लगे। लोगों में उनके प्रति आदर और श्रद्धा के भाव बढ़ गये।

दो वर्ष तक अँग्रेज़ी अदालत में काम करने के बाद सन् १९०९ में गोपबन्धु मयूरभंज के तत्कालीन महाराजा श्री रामचन्द्र भंजदेव की अदालत में सरकारी वकील का काम करने लगे। ३ वर्ष तक आप मयूरभंज रियासत के सरकारी वकील और उसकी राज्य-सभा (State Council) के सदस्य रहे।

सन १९१२ में उन्होंने अपने सत्यवादी 'मुक्त-वायु' (Open air) स्कूल की पहले पहल स्थापना की। बाद में मयूरभंज के महाराजा की अकाल मृत्यु के कारण वे कटक लौट आये तथा ब्रिटिश-भारत की अदालतों में वकालत करने लगे। सत्य-वादी-संस्था को अपनी उपस्थिति से अधिक सहायता पहुँचाने की इच्छा से वे पुरी में आकर रहने लगे। उन दिनों वे वहाँ के एक सफल वकील थे। सन् १९१७ में वे बिहार उड़ीसा की व्यवस्थापक सभा के सदस्य चुने गये। इस सामाजिक उत्तरदायित्व को अच्छी तरह सम्हालने की कर्त्तव्य-बुद्धि ने उनसे अदालत छुड़वाई। अब से आगे सत्यवादी ही उनका घर और आश्रम बना।

२८ वर्ष की उम्र में उन्हें पत्नी वियोग सहना पड़ा। तब से अन्त समय तक वे बराबर विधुर-ब्रह्मचारी बने रहे।

१९१७ की उत्कल-संघ परिषद् के सभापति पद से गोपबन्धु ने एक महत्वपूर्ण भाषण दिया और सरकार तथा जनता के सामने एक ठोस कार्यक्रम रक्खा जिसमें छिन्न-विच्छिन्न उड़ीसा प्रान्त को एक करने की बात मुख्य थी।

उन दिनों की व्यवस्थापिका सभा के आप एक सफल सदस्य थे। खुली हवा में पाठशालाओं को स्थापित करने की पद्धति का आपने प्रान्त में पहली बार प्रचार किया। उड़ीसा तट के नमक-उद्योग को फिर से जिलाने के लिए वे बड़ी बहादुरी तथा योग्यता-पूर्वक सरकार से लड़े।

गोपबाबू अपनी मातृभाषा उड़िया के अच्छे

व्याख्याता थे। उनके भाषण में जनता को मंत्रमुग्ध कर लेने की असाधारण शक्ति थी। उनके प्रेम और स्वातंत्र्य के संदेश वाले भाषण निस्सन्देह बड़े अनूठे और असर करने वाले होते थे।

सत्यवादी उनके जीवन की एक चिरस्मरणीय किंबहुना अमर कृति है। इस संस्था ने गोपबाबू के जीवनकाल में कई सुप्रसिद्ध व्यक्तियों तथा अधिकारियों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया था। बिहार-उड़ीसा के उस समय के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सेर एडवर्ड गेट, सर आशुतोष मुकर्जी, सर देवप्रसाद सर्वाधिकारी, इंग्लैंड के डाक्टर लॅन्कास्टर आदि अनेक प्रमुख व्यक्तियों ने सत्यवादी का निरीक्षण कर पंडितजी के प्रयत्नों की सराहना की थी।

१९१८ के भीषण पुरी-अकाल में गोपबाबू का गांधीजी से प्रथम परिचिय हुआ था। अकाल पीड़ितों की सहायता के लिए गोपबन्धु ने कौंसिल में भी बड़ी वीरता एवं दृढ़ता के साथ एक आन्दोलन खड़ा किया था। उससे प्रभावित हो कर उस समय के लेफ्टिनेन्ट गवर्नर सर एडवर्ड गेट स्वयं इन स्थानों में घूमे और गोपबन्धु से कहा "गोपबन्धु, मुझे खेद है कि वस्तुतः जो काम होना चाहिए वह नहीं हो रहा है।" इतनी सहानुभूति मिलने पर भी गोपबाबू गवर्नमेन्ट से कोई ठोस एवं सक्रिय सहायता न पा सके। उनकी निराशा का ठिकाना नहीं रहा। तब गवर्नमेंट की ओर से सत्यवादी को मिलने वाली लगभग २० हजार की सहायता को गोपबाबू ने यौंही ठुकरा दिया। वे कहा करते "उन अस्थिपंजर अकालपीड़ित भाइयों की याद आते ही सरकार से सहयोग करने की बात पर मेरा सिर मारे लज्जा से नीचे झुक जाता है।"

सन् १९२० में गांधीजी ने देश में असहयोग आन्दोलन का शंख फूंका। गोपबाबू वर्षों से कांग्रेस-भक्त तो थे ही। महात्माजी का कार्यक्रम उन्हें सोलहों आने जँच गया। अपने सब साथियों और सत्यवा संस्था के साथ वे इस आन्दोलन में सम्मिलित हो गये। कांग्रेस के आदेशानुसार सरकारी विश्व-विद्याल से सत्यवादी का नाता तोड़ दिया गया। गोपबन्धु ने अपने सहयोगियों की सहायता से सारे उड़ीसा में जगह-जगह स्वराज्याश्रम और महासभा-समिति स्थापित कीं।

उड़ीसा प्रान्त की शिकायतों को जनता तक पहुँचाने और जनता को शिक्षित बनाने की इच्छा से गोपबाबू ने सन् १९१८ में 'समाज' पत्र की स्थाप की। 'समाज' उड़ीसा का एकमात्र प्रभावशाली राष्ट्रीय पत्र रहा है। प्रान्त में इसका प्रचार भी कम नहीं है गोपबन्धु अन्तिम समय तक इस पत्र का सम्पाद बड़ी योग्यता तथा निर्भीकता-पूर्वक करते रहे। स १९२२ की 'कनिका' दुर्घटना इस बात का स्पष्ट प्रमा है। कनिका के निर्दोष और असहाय किसानों प बिना कारण गोली चलाई गई थी। गोपबाबू ने अपने पत्र में इस दुर्घटना के विस्तृत समाचा छापने शुरू किये। वे पुलिस के इस भीष हत्याकाण्ड की जाँच पड़ताल करने के लि कटिबद्ध हो चुके थे। अधिकारियों ने गोपबाबू को बाहर रहने देना ठीक नहीं समझा। वे कई माम में क्रिमिनल–लॉ–अमेन्डमेन्ट–एक्ट के अनुस कानूनन (?) दोषी ठहराये गये। मामला चलने प जब अधिकारियों को यह पता चला कि इस केस आगे बढ़ने पर कटक की पुलिस के काले कारना का भण्डाफोड़ हो जायगा तो उन्होंने चट इस माम को जहाँ का तहाँ दबा देना चाहा। किसानों की ओर बहुत प्रयत्न किया गया कि सरकार उनकी गवाही और मामले की जाँच करे पर सब व्यर्थ हुआ। इ गोपबाबू ने भी अदालत में अपने को निर्दोष सिद्ध क के लिए कोई प्रयत्न नहीं किया। नजरबन्दी की हा

जब उन्होंने सुना कि सरकार इस हत्याकांड के ले को दबा देना चाहती है तब वे फूट-फूट कर रोने थे उन्होंने उस समय कहा था—"इन निर्दोष और सहाय लोगों पर जो अत्याचार हो रहे हैं, उसे रमात्मा क्यों इस तरह चुपचाप सहन कर रहा है?" स मामले में पंडित गोपबन्धु को दो साल की सादी कैद ई थी। मई १९२४ में मुक्त होने पर जनता ने उनका अपूर्व स्वागत किया।

सन् १९२३ में परिडतजी को देश-भक्त लाला लाजपतरायजी के साथ काम करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। उनकी सहयोगिता में परिडतजी ने विधवा- और अछूतोद्धार के कार्य को हाथ में लिया। वरी १९२६ में वे लालाजी की जन-सेवक समिति सदस्य बने। सन् १९२५ में पुरी और कटक के लों की एक और बाढ़ में उन्होंने लोगों की बड़ी हायता की। गोप बाबू का चर्खा और खादी आंदोन में अटूट विश्वास था। उड़ीसा की निर्धन और काल पीड़ित जनता के आर्थिक संकट को दूर करने लिए तो वे चर्खे को रामबाण समझते थे।

सन् १९२७ की बैतरणी बाढ़ बड़ी ही भयंकर थी। सने सारी जनता को हर तरह निर्धन और असहाय र दिया था। गोप बाबू उसी समय पीड़ित भाइयों मदद के लिए पहुँचे। उनकी सहायता के काम भलीभाँति संगठित किया—जो आज भी बराबर रहा है।

पंडित गोपबन्धुदास अपने ढँग के एक अद्वि- , शान्त और अनभिमानी कार्यकर्त्ता थे। नाम यश की चाह से वे कोसों दूर भागते थे। देहान्त का उनका कोई 'फोटो' ही नहीं मिलता। पवित्र म सेवा ही उनके जीवन का एक मात्र लक्ष्य । वेश, भूषा, और रहन-सहन में वे एकदम थे। अछूतों के लिए उनके कोमल करुण अन्तस्तल में अगाध प्रेम था। अपने गरीब भाइयों और अछूतों के विषय में बात-चीत करते करते वे रो पड़ते थे। वे एक ऊँचे दर्जे के विचारक, कवि और सुशिक्षित साहित्य-रसिक भी थे। 'समाज' के सम्पादन के साथ-साथ वे 'सत्यवादी' मासिक का भी सम्पादन करते रहते थे। 'उड़िया' भाषा के तो वे एक निर्माणकर्त्ता ही थे। उनकी लेखन-शैली सादी, सरस, विचार पूर्ण, ओजस्वी और उदात्त होती थी। उनके उड़िया-काव्य ग्रन्थ उड़िया-साहित्य के भूषण हैं।

गत मार्च १९२८ ई० में वे जनसेवक समिति के वार्षिक अधिवेशन में सम्मिलित होने लाहोर गये। इस बार वे समिति के उपसभापति चुने गये। वहाँ से लौटने पर पंडितजी को विषमज्वर ने आ घेरा। आश्रम में कई दिनों तक रुग्ण रहने के पश्चात् वे स्वस्थ हुए थे। डाक्टरों ने उन्हें पूर्ण विश्राम लेने की सलाह दी थी। परन्तु उनको उनके असंख्य कर्त्तव्यों के उत्तरदायित्व से हलका कौन करता? बाढ़-पीड़ितों की सहायता, चरखे का संगठन, 'समाज' का संपादन, और बड़े भाई श्री० नारायणदासजी की अकाल मृत्यु के कारण उनके कुटुम्ब का भरण पोषण, आदि कार्यों के अकेले आधार तो हमारे चरित-नायक गोप बाबू ही थे।

इधर ये चिंतायें उन पर सवार थीं हीं इतने में कलकत्ते के उड़िया मजदूरों की करुण पुकार आ पहुँची। उन्होंने लिखा—"आपके अभाव में हमारा श्रमिक-संघटन कमजोर हो रहा है। आज तक आप हमारे रक्षक और पथ-प्रदर्शक थे। क्या अब इस कष्ट और संताप के समय यहाँ आकर हमारी सहायता न करेंगे?" दीनबन्धु गोप बाबू इस करुण प्रार्थना को कैसे टाल सकते थे? वे ठीक समय पर, भागे हुए, कलकत्ता पहुँचे। मजदूर भाइयों के घर 'उनकी गंदगी में' रहे। उन्हें धीरज और उपदेश दिया।

उनके काम को संगठित करा के वापस लौटे। विषम-ज्वर ने फिर पलटा खाया। कुल तीन-चार दिन ही गोपबन्धु पीड़ित रहे। परन्तु इन अन्तिम दिनों में भी उन्होंने 'समाज' का संपादन नहीं छोड़ा। इन दिनों वे बहुत अशक्त हो रहे थे। दिन-दिन सारी शक्तियाँ साथ छोड़ने लगीं। डाक्टरों ने कहा—"गोप बाबू हाथ से जा रहे हैं।" १३ जून को उन्होंने अपने डाक्टर से कहा "डाक्टर बाबू मुझे अपनी बीमारी के दिनों में कभी रुलाई नहीं आती। पर आज मुझे एक पद याद आ रहा है—"हा, विशाल संसार सागर में, इस टूटी नैया को मैं कब तक खेता रहूँगा भगवन् ?' इस पद के याद आते ही मेरी आंखों में आँसू आगये। डाक्टर बाबू आप ठीक कहते हैं— मैं अशक्त हो रहा हूँ।" १६ जून की रात को १ बजे ज़ोरों से साँस चलने लगा। सिविल सर्जन ने परीक्षा करके कहा—"रोगी बराबर कमज़ोर हो रहा है। फिर भी वह इतना प्रसन्न और शांत है, यही आश्चर्य है। निस्सन्देह इनका मस्तिष्क असाधारण शक्तिशाली है।" ११ बजे दिन को उनकी नाड़ी छूटने लगी। ऐसे समय उन्होंने अपने सब सहयोगियों को बुलाया। और बोल-बोलकर अंग्रेजी में पूरी वसीयत लिखाई। धार्मिक कामों के लिए उन्होंने अपनी कौटुम्बिक संपत्ति की व्यवस्था करदी। कुटुम्ब के आश्रितों के लिए सुन्दर प्रबन्ध किया। पत्र और छापाखाना की संपत्ति को जन-सेवक-समिति के हाथ सौंपा, जिससे वह उड़ीसा के सामाजिक, राजनैतिक और शैक्षणिक उत्थान में अच्छी तरह काम कर सके। अपनी परमप्रिय संस्था सत्यवादी का प्रबन्ध भी उन्होंने इसी समिति के हाथों सौंपा और अपनी निजी संपत्ति का दो-तिहाई हिस्सा सत्यवादी की भावी व्यवस्था के लिए सुरक्षित रखवा गये। कार्यकर्ताओं की नियुक्ति की। और अन्त में अपने मित्रों और सहयोगियों से उत्साह पूर्वक काम करते रहने की प्रार्थना करते हुए वे ईश्वर स्मरण में तल्लीन हो गये। प्रार्थना करते- ही १७ जून की सायंकाल के ७ बज कर २५मिनिट दीनबन्धु पंडित गोपबन्धुदास अपनी दो सारे उड़ीसा प्रान्त और दुःखिनी भारत माता रोती छोड़कर सदा के लिए इस लोक से विदा

महात्माजी ने इस दुःख-संवाद को सुन कर "उड़ीसा का एक श्रेष्ठतम उदार सुपुत्र चल बसा लालाजी ने दीर्घनिश्वास छोड़ कर कहा "ऐसे सुपुत्र को खो कर भारत-माता अधिक निर्धन हो है। जन-सेवक-समिति एक ऐसे श्रेष्ठ नेता को खो है जिसके सद्गुणों की क़दर करना उसने प्रारम्भ ही किया था।" महात्माजी के शब्दों को कर हम कह सकते हैं "यद्यपि गोपबाबू सशरीर लोगों में आज विद्यमान नहीं हैं; तथापि उनकी हम में सर्वत्र व्याप्त है। गोपबाबू की धन्य- उड़ीसा और देश के कार्यकर्ताओं की मार्गदर्शिका हो

हम भी परमेश्वर से पण्डित गोपबन्धुदास स्वर्गीय आत्मा के लिए चिरन्तन शान्ति की से प्रार्थना करते हुए यही उत्कट इच्छा रखते हैं देश के कल्याण के लिए महात्माजी के ये उद्गार ही सफल हों।

काशीनाथ नारायण

तभी

देश-जाति पर, निज पूर्वज पर जब कि गर्व करना
अपने स्वत्व-निमित्त अभय हो जब सहर्ष मरना
लगें समझने जभी मृत्यु-सम, पारतन्त्र्य को
दीन-हीन हालत पर जब हो उठें क्षुब्ध अतिशय
भारत-माँ के अतुल कष्ट का अनुभव जभी करेंगे
करने को, उद्धार तभी निज हो कटिबद्ध डटेंगे

राजाराम

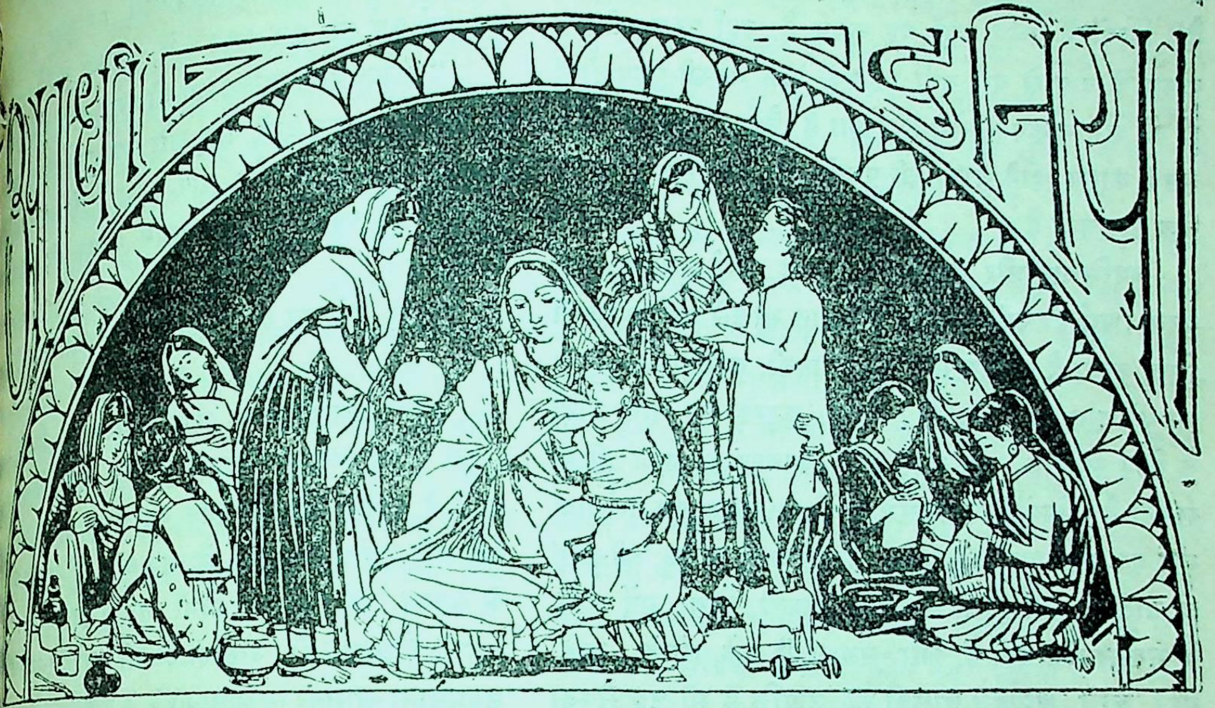

"हम जाग उठीं, सब समझ गईं, अब करके कुछ दिखला देंगी ।
हाँ, विश्व-गगन में भारत को, फिर एक बार चमका देंगी ॥"

कर्मवीर कर्वे का संदेश

राजस्थानी बहनों के प्रति

राष्ट्रोन्नति के कामों में स्त्रियों की मदद की त ज़रूरत है, इसलिए सुशिक्षित स्त्रियों को हिए कि स्त्रियों में विद्याप्रचार करने के काम में नी शक्ति अधिक से अधिक ख़र्च करें । स्थान तथा इतर हिन्दी-भाषी बहनों को, विनती रूप में, यही मेरा सन्देश है !

धोराडो केशव कर्वे

अधर्म कैसे मिटे ?

(१)

देवदासी की प्रथा के द्वारा किस प्रकार धर्म के नाम पर अधर्म हो रहा है, यह अब ऐसी बात नहीं कि जिसे कोई जानता न हो । श्रीमती म्युथ्युलक्ष्मी रेड्डी के लेखानुसार, "स्त्री शिक्षा के अभाव के कारण हिन्दू समाज ऐसे अनर्थों को जड़-मूल से दूर करने के लिए तैयार नहीं होता, यह शोचनीय है । स्त्रियों के एक बड़े भाग की ऐसी पतितावस्था से हिन्दुओं की नैतिक, धार्मिक और सामाजिक स्थिति अधम होती जाती है । अनेक सुखी घर, इसके कारण, दुःखी बन रहे हैं । लोगों का मन लुभाने के लिए ही इन जवान औरतों का निर्माण हुआ हो, ऐसा जान पड़ता है; और, इससे, समाज की गन्दगी बढ़ती जाती है ।"

देवदासियों के रूप में स्त्रियों को तो इसके कारण तरह-तरह के कष्ट और सन्ताप एवं असुविधाओं का सामना करना

ही पड़ता है, पर पुरुषों का भी इससे बड़ा नुक़्सान हो रहा है। स्त्रियों के लिए जहाँ यह कलङ्क है, वहाँ पुरुष भी इस कलङ्क के दोष से बरी नहीं। इसका फल भी स्त्री-पुरुष दोनों ही को समान रूप से भोगना पड़ता है। नैतिक पतन ही नहीं, इसके कारण होने वाला स्त्री-पुरुषों का शारीरिक ह्रास भी कुछ कम नहीं है।

व्यभिचार और व्यसन का कोई धर्म समर्थन नहीं करता। धर्म ही क्यों, आधुनिक विज्ञान भी इसे हानिकारक ही सिद्ध करता है। विषय-भोग की ज़्यादती, लगातार अ-संयम का परिणाम तो किसी भी व्यक्ति, कुटुम्ब या भावी पीढ़ी के लिए स्वास्थ्य और बल रूपी आनन्द का नाश ही हो सकता है। स्त्रियों में जहाँ इससे ५० से ७५ सैकड़ा तक गर्भस्राव, गर्भ का इधर-उधर हो जाना, बाँझपन आदि अनेक 'स्त्री-रोग' हो जाते हैं, तहाँ पुरुषों में लक़वा, तिल्ली, जिगर, गुर्दे आदि के भयङ्कर रोग होते हैं, और समाज में लूले, लंगड़े, काने, बहरे, अन्धे, अपाहज बालकों की उत्पत्ति में भी ५० सैकड़ा कारण यही होता है। फिर देवदासियाँ किसी एकही जाति की नहीं होतीं, हिन्दुओं की भिन्न-भिन्न जातियों से वे भर्त्ती की जाती हैं। यही नहीं, उनका संख्या-बल क़ायम रखने के लिए यह भी प्रथा पड़ी हुई है कि जब कोई दासी निकम्मी-बाँझ हो जाय, जैसा कि उसके पेशे को देखते हुए बिलकुल स्वाभाविक और अनिर्वाय है, तब वह किसी दूसरी कन्या को मोल लेकर अपनी स्थानापन्न और वारिस बना दे। इसीलिए श्रीमती रेड्डी का कहना है—

“ हिन्दू जनता का ध्यान मैं इस बात पर आकर्षित करना चाहती हूँ कि यद्यपि यह प्रथा दक्षिणभारतीय हिन्दुओं के कुछ फ़िरक़ों ही में प्रचलित है, तथापि समस्त हिन्दू-समाज के सदाचार, स्वास्थ्य और सुख पर इसका असर हो रहा है; और इसलिए जातिगत रूप को छोड़ कर यह एक राष्ट्रीय महत्व और विचार का विषय बन जाती है।”

इसीलिए जो सच्चे सुधारक हैं, वे इसे दूर करने में प्रयत्नशील हैं। आज कोई भी समझदार व्यक्ति ऐसा नहीं, जो इस प्रथा का समर्थन करता हो। इसके मूल को चाहे कुछ लोग बुरा न समझते हों, पर वर्तमान स्वरूप का तो—सनातनी या आधुनिक—कोई पक्ष ले ही नहीं सकता। यहाँ तक कि महाकट्टर पूज्य मालवीयजी महाराज भी आज १६ वर्ष पूर्व ही, सन् १९१२ में, यह कह चुके हैं—

“ अल्पवयस्क बालिकाओं को ऐसी जगह अर्पण कि जहाँ मजबूरन उन्हें पाप और लज्जापूर्ण जीवन ही पड़े, ऐसा अधर्म और पाप है कि, मुझे आशा है, का कोई भी व्यक्ति उसके समर्थन में एक भी प्रमाण दे सकता।”

परन्तु, इसे दूर करने के लिए हमने किया क्या?

(२)

लाला लाजपतराय अपनी पुस्तक में लिखते हैं— “इस दूषित प्रथा को उठाने के लिए सुधारकों का जारी है। और, विश्वास-पूर्वक यह आशा की जा सक कि, यदि सरकार पक्षपात से काम न ले तो मद्रास-कौं के सदस्य इसे अधिक दिनों तक न रहने देंगे।” मद्रास-कौंसिल की उत्साही उद्योगी महिला-सदस्य उपप्रधाना श्रीमती म्युथ्युलक्ष्मी रे ी ने बताया है कि ही नहीं बल्कि बहुत पहले से, सन् १८६८ से, इसके क़ानून बनवाने का आन्दोलन किया जा रहा है। १९० में भारत-सरकार को व्यभिचार के लिए उड़ाई या जाने वाली लड़कियों के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय सन्धि पर हस्ताक्षर करना पड़ा था। नागपुर के डा० हरिसिंह ने, जो स्त्रियों के हितों-स्वार्थों के लिए अदम्य उत्साह साथ अनवरत प्रयत्न करते रहते हैं, इस अवसर पर दासियों की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया और उसने इस सम्बन्ध में मद्रास-सरकार को लिखा था। इसके बाद, १९१२ में, सर मानकजी दादा मुधोलकर और मडगे ने क्रमशः तीन बिल इस सम्बन्ध पेश किये। इसे उठाने के पक्ष में मत भी बहुत से मिले थे; परन्तु यह कह कर कि बचाई जाने वाली लड़कियों आश्रय देने वाले हिन्दू-गृह कहाँ हैं, सरकार ने इसे छोड़ दिया! मद्रास-सरकार ने भी, कहा जाता भारत-सरकार को कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दि जो हो, बिल खटाई में पड़ ही गया। हाँ, १९२२ में म्बली में डा० गौड़ ने इसके लिए फिर से प्रयत्न कि बड़े प्रमाणों और अँकों से युक्त भाषण उन्होंने अपने

र्तन में दिया; परन्तु परिणाम तब भी न निकला ! र की ओर से, तत्कालीन क़ानून-सदस्य डा० सप्रू के कहा गया कि ऐसे प्रस्ताव को अमली रूप देने में सब-से बड़ी कठिनाई यह है कि बचाई जाने वाली स्त्रियों के लिए को घर कहाँ मिलेंगे ? परन्तु श्रीमती रेड्डी का कुछ-ुछ प्रयत्न इसके बाद भी जारी रहा है और मद्रास-कौंसिल में देवोत्तर सम्पत्ति-विधान (Religious Endowment Act) पेश होने के समय भी उन्होंने उसमें दासियों के हित की कुछ बातें समाविष्ट कराने का—ों और वक्तृताओं द्वारा—बड़ा प्रयत्न किया था। यहीं नहीं, रे सुधारेच्छु भी इसके लिए, अपने-अपने ढँग पर, कुछ-कुछ प्रयत्न कर ही रहे हैं, यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता इनमें किसका प्रयत्न ठीक दिशा में है और किसका ठीक शा में नहीं है। अस्तु।

(३)

इसमें शक नहीं कि क़ानून बन जाय तो, वर्त्तमान ति में, इसे उठाने का वह सबसे अधिक बाअसर प्रयत्न गा। परन्तु सामाजिक मामलों में बात-बात पर क़ानूनी नों की ही नीति के हम क़ायल नहीं हैं। फिर बालि-ओं के सहवास, समर्पण आदि की आयु निश्चित कर देने त्र से कोई विशेष लाभ भी हमें होता दिखाई नहीं देता। ली लाभ तो तभी हो सकता है, इस प्रथा का उन्मूलन तभी सम्भव है, जबकि उन मन्दिरों का ही सुधार किया जाय—उन मन्दिरों का कि जो कहने के लिए धर्म-न होते हुए भी ऐसे कर्मों को सह ही नहीं रहे बल्कि प्रोत्साहन देकर, सच पूछो तो, इसीका उन्होंने अपने-अड्डा ही बना रक्खा है ! इन्हीं सब बातों की दृष्टि से तो भी दक्षिण भारत की यात्रा के समय महात्माजी ने लिखा कि वहाँ के कुछ मन्दिरों में तो देवता के बदले वास्तव शैतान का निवास है ! हमें मालूम है कि महात्माजी के कथन पर कई बड़े-बड़े सुशिक्षित भा दहल उठे थे; इसके साथ ही हम यह भी जानते हैं कि एक विद्वान् स्य ने असेम्बली में, सहवास-बिल का विरोध करते हुए, दलील भी पेश की थी कि इससे (सहवास-बिल से) रास की वेश्याओं (देवदासियों) को नुक़सान पहुँचेगा (क्योंकि जाति के हिन्दू उनसे विवाह नहीं करते) ! अतएव, जहाँ तक हम समझते हैं, महात्माजी का कथन ज़रा भी अत्युक्तिपूर्ण नहीं हो सकता—न्यूनोक्ति चाहे हो। इसलिए देवदासी-प्रथा के क़ानूनी निषेध के साथ-साथ मन्दिरों के सुधार के लिए भी हमें कटिबद्ध होना चाहिए।

शिक्षा का अभाव भी इस कुप्रथा को बरक़रार रखने का एक ज़बर्दस्त कारण है, और उसकी उपेक्षा अवाञ्छनीय है। सुशिक्षा-प्राप्त स्त्री-पुरुष ऐसा हेय कर्म करेंगे, इसमें सन्देह है। फिर सुशिक्षा पाकर देवदासियाँ अपने आप भी अपने इस कृत्य से न लज्जित होंगी ? हमें स्मरण रखना चाहिए, देवदासियाँ वेश्या नहीं हैं—परिस्थितियों ने उन्हें वेश्या का कर्म करने पर मजबूर कर रक्खा है, नहीं तो वेश्याओं की अपनी जाति या श्रेणी तो उनसे बिलकुल भिन्न और पृथक् है। विवाहित जीवन व्यतीत करने का उन्हें मौक़ा और सुविधा मिले तो कौन कह सकता है कि उनमें से अधिकांश बड़ी ख़ुशी और सन्तोष के साथ उसी तरह उसे न बितायेंगी, जैसे कि भले घरों की गृहस्थनें बिताती हैं ? सुना तो यहाँ तक जाता है कि आज की अवनत दशा में भी इनमें से किसी को यदि कोई विश्वस्त, भला और सच्चा प्रेमी मिल जाता है तो वह अपना सतीत्व सिवा उसके और सब से अक्षुण्ण रखती है—अपनेको एकमात्र उसीकी दासी, सहचरी या पत्नी मान कर सन्तुष्ट रहती है। अतएव शिक्षा—सुज्ञान—का इनमें प्रवेश और प्रचार इस प्रथा को उठाने के लिए आवश्यक है।

सरकार की ओर से समय-समय यह जो कहा जाता है कि बचाई हुई देवदासियों को आश्रय कौन देगा, इसमें कोई तथ्य नहीं—यह कोरी बहानेबाज़ी और टालमटूल का ढंग है। मद्रास में ऐसे बहुतेरे 'घर' हैं, जो अनाथ, अपाहज, भूले-भटके, यहाँ तक कि वेश्याओं से बचाई हुई बालिकाओं तक को आश्रय देते हैं; क्या वे इन्हें भी आश्रय न देंगे ?

एक बात और—और, यही सबसे महत्त्वपूर्ण है। श्रीमती रेड्डी का कहना है कि जो ज़मीन उन्हें मन्दिर की तरफ़ से मिली हुई है वह उनके लिए स्थायी करके उन्हें मन्दिर की सेवा से मुक्त कर दिया जाय। आज की स्थिति तो यह है कि प्रत्येक देवदासी को, मन्दिर की सेवा के लिए,

कुछ ज़मीन मिली हुई है। यह ज़मीन उसकी वंशपरम्परागत है। जब तक वह बाँझ-निकम्मी नहीं होती तब तक तो वह, उसके बदले, मन्दिर की सेवा करती ही रहती है; परंतु इसके बाद इस ज़मीन को अपने ही निमित्त रखने के लिए किसी ग़रीब-सुन्दर बालिका को मोल लेकर, अपने बदले, अपने उत्तराधिकारी के रूप में, उसे देवार्पण करके देवदासी बनाना पड़ता है। यह ठीक है कि इसमें अज्ञानजन्य यह भ्रान्त धारणा भी होती है कि जिसने इस प्रथा को जारी न रक्खा उसपर परमात्मा का क़हर पड़ेगा; परन्तु मुख्य कारण तो ग़रीबी—गुज़ारे का साधन ज़मीन छिनने का भय ही प्रतीत होता है। और इसका सर्वोत्तम उपाय वही है, जो कि ऊपर बताया गया, कि मन्दिर के दासीपन से मुक्त करके उसके लिए उन्हें जो ज़मीन मिली हुई है उसे उन्हींकी सम्पत्ति बना दिया जाय--बिना किसी मुआवज़े के भाव के। ऐसा करने से उनमें से अधिकांश इस स्थिति को ज़रूर ही बदल डालेंगी, यह निश्चयसा है। मैसोर आदि कुछ रियासतों में ऐसा हुआ भी है। भारत-सरकार इस विषय में उनसे सबक़ ले सकती है, यदि वह वस्तुतः इसे दूर करने के लिए तैयार हो।

सारांश यह है कि इस अधर्म या कुप्रथा को यदि हम सचमुच उठाना चाहते हैं, तो हमें सर्व-साधारण ख़ास कर इसमें ग्रस्त देवदासी बहनों में इसके विरुद्ध ऐसी तीव्र भावना और प्रवृत्ति बद्धमूल करनी पड़ेगी कि जिससे अपनी वर्तमान शर्मनाक और दयनीय स्थिति में फिर वे क्षण भर के लिए भी न रह सकें। इसके लिए दो बातें होनी चाहिएँ- इसके विरुद्ध वातावरण पैदा करने के लिए प्रचार और शिक्षा-प्रसार किया जाय, और ऊपर लिखे अनुसार आर्थिक दृष्टि से उन्हें निश्चिन्त कर दिया जाय। मन्दिरों का सुधार अत्यावश्यक है। ऐसे मन्दिरों के प्रति तो सर्व-साधारण में ऐसे भाव बद्धमूल होने चाहिएँ कि जिससे उनमें जाते हुए वे वैसे ही शर्मायें, जैसे कि वेश्यालयों में जाते हुए शर्माते हैं। जब तक ऐसा न होगा, कम या अधिक मात्रा में, यह भयङ्करता और अधमता जारी ही रहेगी। क्योंकि प्रत्यक्ष अधर्म या बुरे काम को करते हुए, तो उसे पाप समझ कर, आदमी कुछ सङ्कोच अवश्य करता है; परन्तु धर्म के आवरण में छिपे अधर्म को तो वह सर्व-साधारण की आँखों
धूल झोंकते हुए स्वच्छन्दता-पूर्वक न भोगता रहता
अतएव, हमारी नम्र-सम्मति में, इसके लिए तीन
अत्यावश्यक हैं--

१. सबसे पहले स्त्रियों—ख़ास कर देवदासियों
सुशिक्षा और प्रचार के द्वारा इस तथा ऐसी ही अन्य
के विरुद्ध तीव्र भावना और प्रवृत्ति बद्धमूल की जाय।

२. देवदासियों की वर्त्तमान मिलकियत--ज़मीन
को, मठाधिकारियों के स्वेच्छया अथवा क़ानूनन, अभी
जिस के पास हो उसीकी स्थायी बना दिया जाय। मन्दि
सेवा का बन्धन उठाकर देवदासियों को मुक्त कर दिया

३. मन्दिरों को सुधारा जाय। पाप प्रसारक
सब बातें नष्ट करके संयम और पवित्रता-पूर्ण आध्यात्मि
का वातावरण मन्दिरों में उत्पन्न किया जाय।

ऐसा होने पर, हमें आशा है, यह कुप्रथा क्रमशः घ
हुई कालान्तर में बिलकुल नेस्तनाबूद हो जायगी और
संसार भी हमारा मख़ौल न कर सकेगा। रहा यह कि
करे कौन ? सरकार बीच में पड़ कर क़ानून द्वारा ऐसा
यही अधिकांश का मत है। वर्तमान स्थिति में सबसे आ
और बाअसर अतएव सर्वोत्तम उपाय है भी यही।
सरकार ईमानदारी से काम ले, धार्मिक मामलों में हस्त
न करने के थोथे बहाने का अवलम्ब न ले, और सती-
की भांति इसके लिए भी प्रतिबन्धक क़ानून बना दे,
मैसोर की भांति वह भी इस दिशा में अच्छा काम
सकती है। पर यदि ऐसा करने में वह हीला-हवाला,
ढाल करे, जैसा कि वह अभी तक करती आ रही है,
इसकी ज़िम्मेवारी लोक-प्रतिनिधियों एवं सार्वजनिक का
कर्ताओं पर और भी अधिक आ पड़ती है। उनका फ़
कि अपने ही बूते पर वे इसके लिए उठ खड़े हों और
लगन, तत्परता एवं सतर्कता से इसके लिए काम क
विजय-श्री उनके सामने आ खड़ी होने के लिए बा
यह उपाय सर्वोत्तम ही नहीं, रामबाण और चिरस्थायी भी

मुकुटबिहारी वर्मा

स्त्री-हितैषी कर्वे

महाराष्ट्र का पूना शहर स्वर्गीय लोकमान्य तिलक के कारण काफ़ी मशहूर हो
ना है। इसी पूमा शहर से ५ मील के फ़ासले पर
गणें बुदुक'
म का एक छोटा
व है। इस गाँव
हद पर पहले
क छोटीसी झों-
ड़ी थी। इसी
पड़ी में पहले-
त, सन् १९००
में, कर्वे साहब
२-३ विधवाओं
शिक्षा देना
किया। रहने
झोंपड़ी, रुपया
बिलकुल
ओं, मददगार
कोई नहीं और
मत विरुद्ध।
विचित्र परि-
ति में कर्वे
ब ने जिस
-शिक्षा के)
को शुरू
था, वह आज
बढ़ गया
कि पहले की
ड़ी के पास अनेक बड़ी-बड़ी इमारतें खड़ी हो
है (यद्यपि कुतूहल के लिए उस झोंपड़ी को भी अभी तक सुरक्षित रक्खा है), १७० लड़कियाँ यहाँ रहकर शिक्षा प्राप्त करती हैं, कोष एक लाख तक पहुँच गया है, १५ आजन्म सेवक-सेविकायें इस काम के लिए हो गये हैं, २९-३० वेतनभोगी नौकर और शिक्षक हैं, लगभग १२-१३ एकड़ ज़मीन में शाक-भाजीके बाग़ हैं, बालिकाओं के खेलनेको क्रीड़ांगन हैं और शिक्षक-शिक्षिकाओं के लिए सिलसिलेवार मकान बने हुए हैं। हिंगणें से ३ मील एरंडवन गाँव में २९-३० एकड़ ज़मीन पर डेढ़ लाख रुपये की लागत से कालेज की एक भव्य इमारत बनी है और कालेज की छात्राओं के रहने के लिए ४० हज़ार रुपये की लागत का विशाल छात्रावास है। यहीं भारतवर्षीय महिलाविद्यापीठ का दफ़्तर है। इस विद्यापीठ का स्थायी कोष १४-१५ लाख का है और चंदे आदि से लगभग पच्चीस हज़ार रुपये की वार्षिक

अध्यापक धोंडो केशव कर्वे

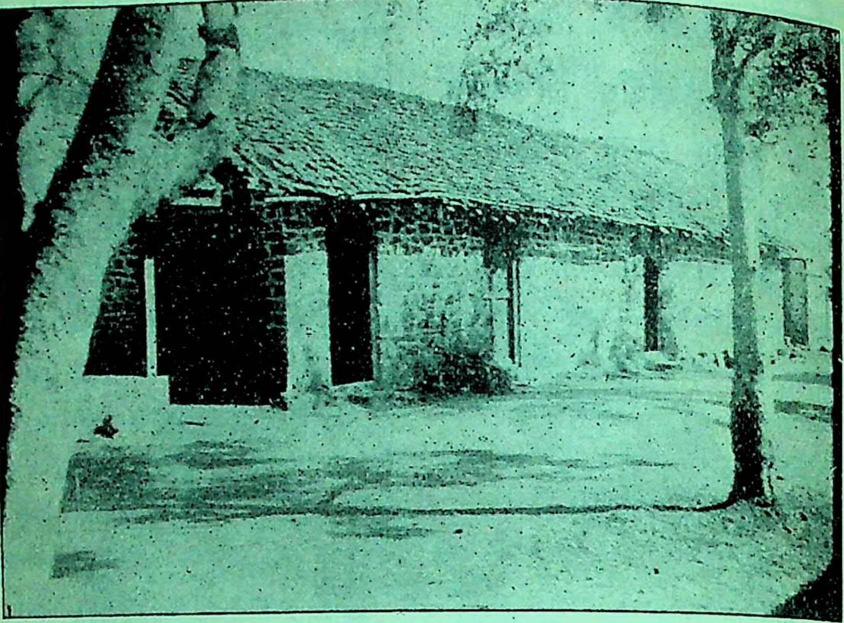

हिंगणे की झोंपड़ी

आय होती है। विद्यापीठ की ओर से पूना शहर में ६०हज़ार की भव्य इमारत के अन्दर लड़कियों के लिए अंग्रेज़ी हाइस्कूल जारी है और दूसरे कई शहरों में भी ऐसी ही कन्याशालायें खोलकर उन्हें हर तरह की सहायता दी जाती है। और यह सब हुआ है अकेले अध्यापक कर्वे के तपोबल से। सन् १९०० की झोंपड़ी के दृश्य के बाद वहीं १९२४ का कॉलेज दृष्टिगोचर होता है। इससे यह पता चल जाता है कि अध्यापक कर्वे के कार्य में कहाँ से कहाँ तक प्रगति हुई है। पर यह सब तो स्थूल दृष्टि से हुआ, सूक्ष्म दृष्टि से देखें तो स्त्रियों की मानसिक प्रवृत्ति एवं उनकी समस्त मनोरचना में अध्यापक कर्वे ने एक तरह से क्रांति ही कर दी है। जिन्होंने ऐसी क्रांति कर दी वह अध्यापक कर्वे कौन और कहाँ के हैं?

१८ अप्रैल १८५८ ई० को मुरुड़ के निकटवर्त्ती शेरवली नामक गाँव में अध्यापक धोंडो केशव कर्वे का जन्म हुआ था। इनकी शिक्षा मुरुड़ में हुई। इनका कुटुम्ब बड़ा ख़ानदानी था। जिस समय इनका जन्म हुआ, उस समय उसपर दारिद्र का प्रकोप था। मगर इनके मा-बाप स्वाभिमानी और उद्योगी थे; इस लिए बाल्यावस्था से ही स्वातन्त्र्य, स्वाभिमान और उद्योगशीलता इनमें घर कर गई। परीक्षा पास करने के लिए शि बुद्धि की ज़रूर होती है वह इन्में मौजूद थी, प ग़रीबी के कार इन्हें अनेक कठि नाइयाँ उठा पड़ीं। उन स बातों का ज़ि करने की ज़रूर नहीं, सिर्फ़ य ध्यान रखना च हिए कि औ कोई मामूली आदमी ऐसी परिस्थिति में होता तो वह मैट्रिक परीक्षा भी पास न कर सकता—क़लमघिस करके कहीं बैठ रहा होता। परन्तु कर्वे साधार पुरुष न थे, उन्होंने इसके लिए हर तरह उद्योग किया और स्वयं पढ़ते हुए भी दूसरों पढ़ाकर (ट्यूशन करके) अपनी कालेज की प पूरी की। यह एक इसी बात से मालूम हो सक है कि इनकी लगन कितनी ज़बर्दस्त है। कि किसी महीने तो उन्हें अपनी कालेज की प के साथ-साथ सात-सात आठ-आठ ट्यूशन भी क पड़ते थे!

कालेज की पढ़ाई पूरी हो जाने पर, अर्थात ए० पास करके, बम्बई के एक हाईस्कूल में शिक्षक नियुक्त हुए। कुछ समय बाद स्वर्गीय गो कृष्ण गोखले से उनका परिचय हुआ। वह गुणों पर मुग्ध हो गये और फ़र्ग्यूसन कालेज में ग का अध्यापक मुक़र्रिर कर इन्हें पूना बुला लि वहाँ, एक-दो वर्ष में ही, यह उनकी 'डेक्कन

सर विट्ठलदास ठाकरसी

आकर्षित हुआ और इसके लिए उन्होंने 'मुरुड़-फंड' की स्थापना की। इसके द्वारा धन-संग्रह करके वह उसका उचित उपयोग करना चाहते थे। अब तो इससे भी बड़े-बड़े फण्डों से उनका काम पड़ता है और उससे कहीं महत्व के कामों की ओर अब उनका लक्ष्य रहता है; पर सार्वजनिक कामों का उनका पहला अनुभव यही था। इसके बाद सार्वजनिक दृष्टि से उन्होंने जो महत्व का काम किया वह है उनका विधवा-विवाह। सन् १८९१ में उनकी पहली पत्नी का देहांत हुआ। तब उनके सगे-संबन्धी दूसरा विवाह करनेके लिए उनसे आग्रह करने लगे। इस पर उन्होंने कहा—"मैं विवाह करूँगा तो विधवा से करूँगा। अब मैं ३३-३४ वर्ष का हो गया हूँ, ऐसी हालत में किसी कुमारी से अपना विवाह करना मुझे पाप मालूम होता है। अलावा इसके मैं विधवा-विवाह की प्रथा भी क़ायम करना चाहता हूँ। इसलिए हो सके तो विधवा से विवाह करूँ, नहीं तो विधुर ही बना रहूँ, यह मेरा संकल्प है।" १८९३ में इनके पुनर्विवाह का निश्चय हुआ और वह हो भी गया; परंतु उसके कारण बहुत से सगे-संबन्धियों के दिल को चोट पहुँची। हिचकिचाहट तो कर्वे के माँ-बाप को भी हुई; परन्तु कर्वे अपने सिद्धांत का पक्का है, यह

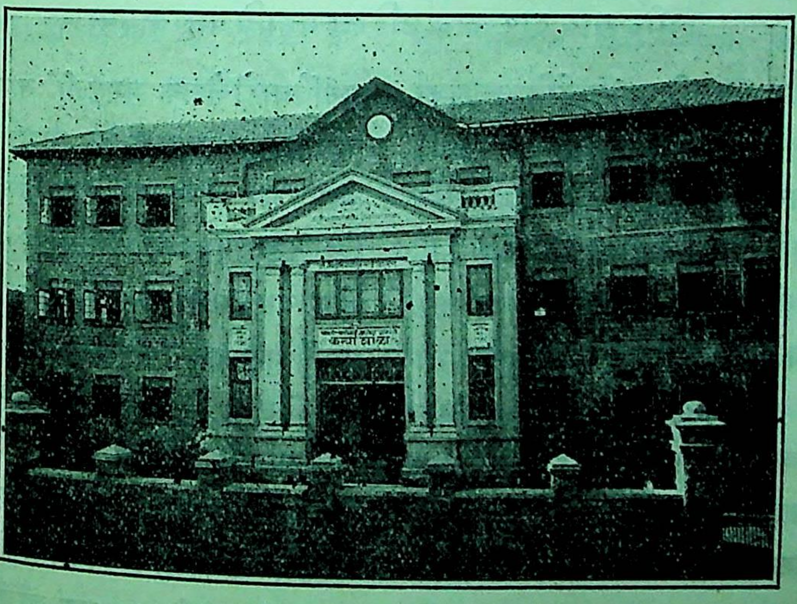

पूना की श्रीमती नाथीबाई दामोदर ठाकरसी कन्या-शाला
(विट्ठल राघोबा लाण्डे की इमारत)

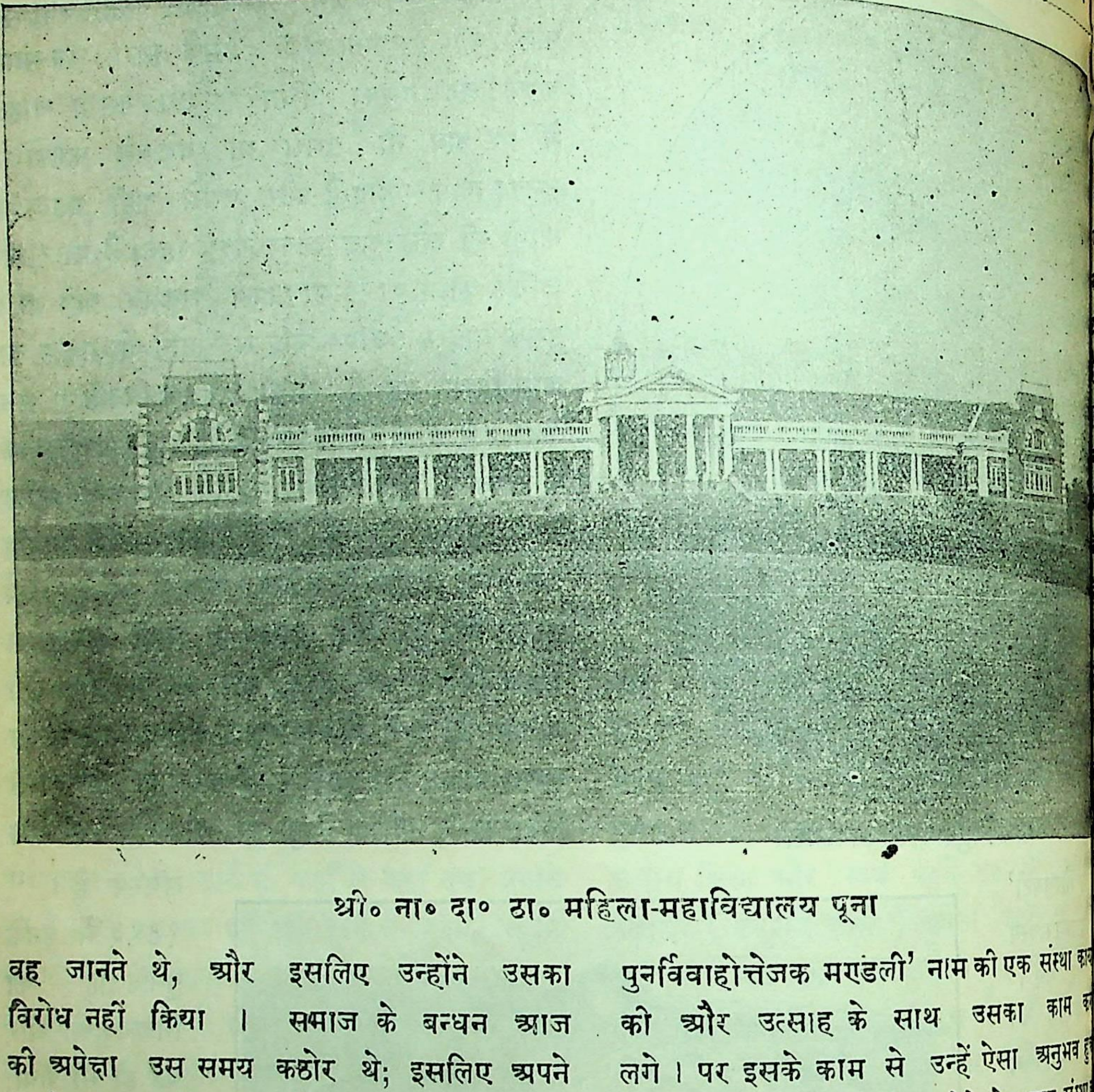

श्री० ना० दा० ठा० महिला-महाविद्यालय पूना

वह जानते थे, और इसलिए उन्होंने उसका विरोध नहीं किया। समाज के बन्धन आज की अपेक्षा उस समय कठोर थे; इसलिए अपने पुत्र के पास आने-जाने और खाने-पीने में उन्हें समाज से चोरी करनी पड़ती थी; लेकिन इसका कोई उपाय न था। कर्वे से पहले पूना में एक भी विधवा-विवाह नहीं हुआ था। १८७४ में एक विधवा-विवाह हुआ बताते हैं सही, पर वह बात ग़लत है। पूना का पहला विधवा-विवाह तो वही है, जो १८९३ ई० में आनन्दीबाई कर्वे के साथ अध्यापक कर्वे का हुआ। अस्तु।

विवाह के बाद शीघ्र ही उन्होंने 'विधवा पुनर्विवाहोत्तेजक मण्डली' नाम की एक संस्था का की और उत्साह के साथ उसका काम क लगे। पर इसके काम से उन्हें ऐसा अनुभव हु कि विधवा-विवाह को उत्तेजन देने के बजाय संस्था ध्येय यह रक्खा जाय कि जिस किसी विधवा के म पुनर्विवाह करने की इच्छा हो उसके मार्ग की रु हटायी जाय, तो अच्छा होगा। ऐसा मर्यादित ध्येय र से जन-समाज में फैली हुई ग़लत फ़हमी कम हो यह सोच कर उन्होंने उसका नाम 'विधवा-विवाहोत्ते मण्डल' के बजाय 'विधवा-विवाह-प्रतिबन्ध-नि मण्डल' कर दिया। यह लम्बा जरूर था पर फ़हमी की गुंजाइश इसमें न थी। धीरे-धीरे

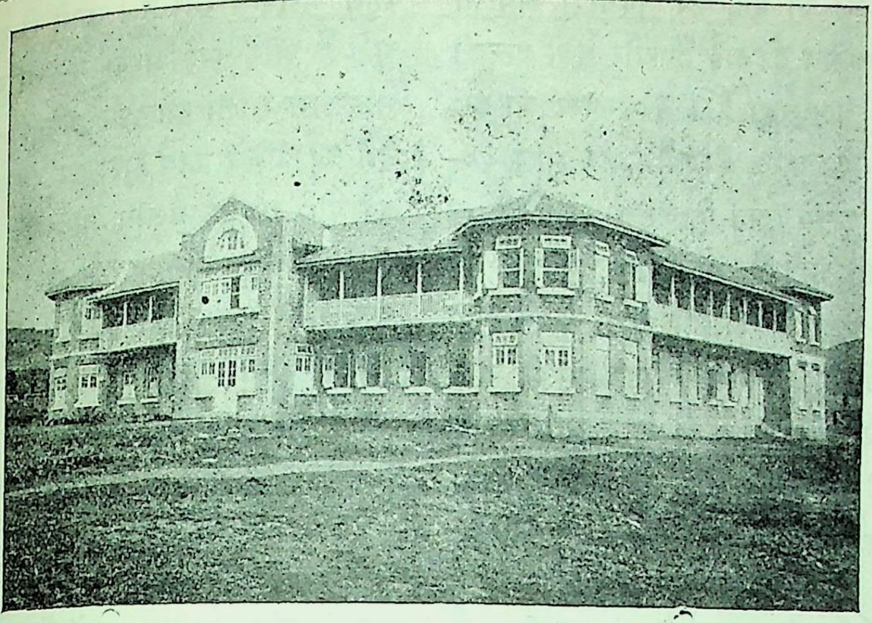

महिला-महाविद्यालय का खटाऊ मकनजी छात्रावास

ऐसा अनुभव
ा कि जब
क विधवाओं
ो शिक्षा न दी
ायगी तब तक
ह आपत्ति मि-
ना संभव नहीं
। अतः उन्होंने
स तरफ़ अपना
ान लगाया
र १८९६ में
धवाओं। के
ए एक छोटा
छात्रावास
र एक स्कूल उन्होंने खोला। १९०० में पूना
ेग के कारण इस छात्रावास और शाला
स्थान परिवर्तन करना पड़ा। पूना से ४–५ ही
ल पर हिंगणें गाँव है, गोखले नामक
के एक मित्र वहाँ पर रहते थे। उन्होंने अपनी
ह में से एक छोटीसी झोंपड़ी कर्वे की शाला को
और आस-पास की ७–८ एकड़ ज़मीन भी उन्हें
ं। जैसा कि पहले लिखा जा चुका, यह झोंपड़ी
ज भी हिंगणें में मौजूद है। आजकल वहाँ बहुत
आदमी रहते हैं और उसके आस-पास छात्रावास,
, पुस्तकालय आदि की बड़ी-बड़ी इमारतें खड़ी
हैं। हिंगणें से शाला का काम चलाना सुविधाजनक
ा। कालेज के काम की वजह से कर्वे साहब को
ो वहाँ जाना-आना पड़ता था। लोगों की सहानु-
न थी, उलटे ग़लतफ़हमी फैली हुई थी। धन भी
ुत अपूर्ण था। ऐसी विचित्र स्थिति थी।
साहब ने लोकापवाद की ज़रा भी पर्वाह न
ते हुए बड़ी हिम्मत और लगन के साथ अपना काम जारी रक्खा। फलतः धीरे-धीरे वह लोकप्रिय भी होने लगा।

इस 'अनाथ बालिकाश्रम' में विधवाओं को तो मुफ़्त शिक्षा दी जाती थी, पर कुमारियों की शिक्षा की व्यवस्था न थी। कर्वे ने सोचा कि विधवाओं के समान कुमारियों की शिक्षा की भी आवश्यकता है। अतः उनके लिए हिंगणें में ही 'महिला विद्यालय' की स्थापना की गई। इसके कुछ ही पहले वह 'निष्काम कर्म-मठ' नाम की एक संस्था खोल चुके थे, जिसका कि ध्येय था निष्काम कर्म—वेतन आदि कुछ नहीं, बस गुज़र-बसर के लिए जितनी ज़रूरत हो वही दिया जाय, भेदभाव का नाम नहीं, सबके अधिकार एकसे, इस तरह के नियमों का पालन करते हुए देश-सेवा का हर तरह का काम करने का कुछ स्त्री-पुरुषों ने निश्चय किया था। 'महिला विद्यालय' भी अध्यापक कर्वे के प्रोत्साहन पर इन्हीं लोगों ने स्थापित किया था। परन्तु शीघ्र ही अध्यापक कर्वे को यह मालूम पड़ गया कि 'निष्काम कर्म-मठ' का ध्येय कितना ही श्रेष्ठ हो मगर व्यवहार में ऐसे ध्येय की संस्था का चलाना कठिन है। इसी बीच महिला-विद्यालय और अनाथ बालिकाश्रम में भी कुछ खींचातानी शुरू हो गई। तब कर्वे साहब ने दूरन्देशी से विचार

करके दोनों संस्थाओं को एक कर दिया। अब तो दोनों बिलकुल एकजीव हो गई हैं और बड़ी अच्छी तरह उनका काम चल रहा है। १० लाख का इस संस्था का एण्डाउमेण्ट फ़ण्ड है और हर साल ६०-६५ विधवाओं को इसमें मुफ़्त शिक्षा दी जाती है। न केवल कोई फ़ीस ही नहीं है, बल्कि भोजन-व्यय भी नहीं लिया जाता। इसके अलावा लगभग सौ ऐसी विद्यार्थिनियां पढ़ती हैं, जो अपना ख़र्च अपने आप बर्दाश्त करती हैं। लगभग २५०००) रु० इस संस्था का वार्षिक व्यय है। इसपर से मोटे तौर पर इस संस्था के कार्य का अनुमान किया जा सकता है। लेकिन सच्चे अनुमान के लिए तो इसका प्रत्यक्ष अवलोकन ही करना चाहिए।

इस विश्वविद्यालय से अभी तक लगभग ५० छात्रायें ग्रेजुएट हो चुकी हैं और लोकमत उनके बहुत अनुकूल रहा है। उनमें से कुछ के विवाह चुके हैं और कुछ अध्यापन-कार्य कर रही हैं। ने अलग शाला खोलकर अपनी बहनों को देने का पवित्र कार्य शुरू कर रक्खा है। इन ग्रेजुए को बी० ए० के बजाय जी० ए० (Graduate Arts) कहा जाता है। संस्कृत में इन्हें 'गृहीतागम कहते हैं। विश्वविद्यालय ने अपना कालेज रक्खा है और दूसरे कालेजों को संलग्न (Affiliat कर रक्खा है। पूना में इस विद्यापीठ की तरफ़ एक कन्या-शाला (Girls' High School) है। हिंगणें, मालवण, सितारा, सांगली, बम्बई, बड़ौदा, अहमदाबाद, भावनगर इत्यादि स्थानों इससे सम्बद्ध कन्याशालायें हैं, जिन्हें विद्यापीठ ओर से सहायता (Grant) दी जाती है। सन् १९ में स्वर्गीय सर विट्ठलदास ठाकरसी ने इस विद्या

हला-महाविद्यालय के अध्यापक और छात्रायें

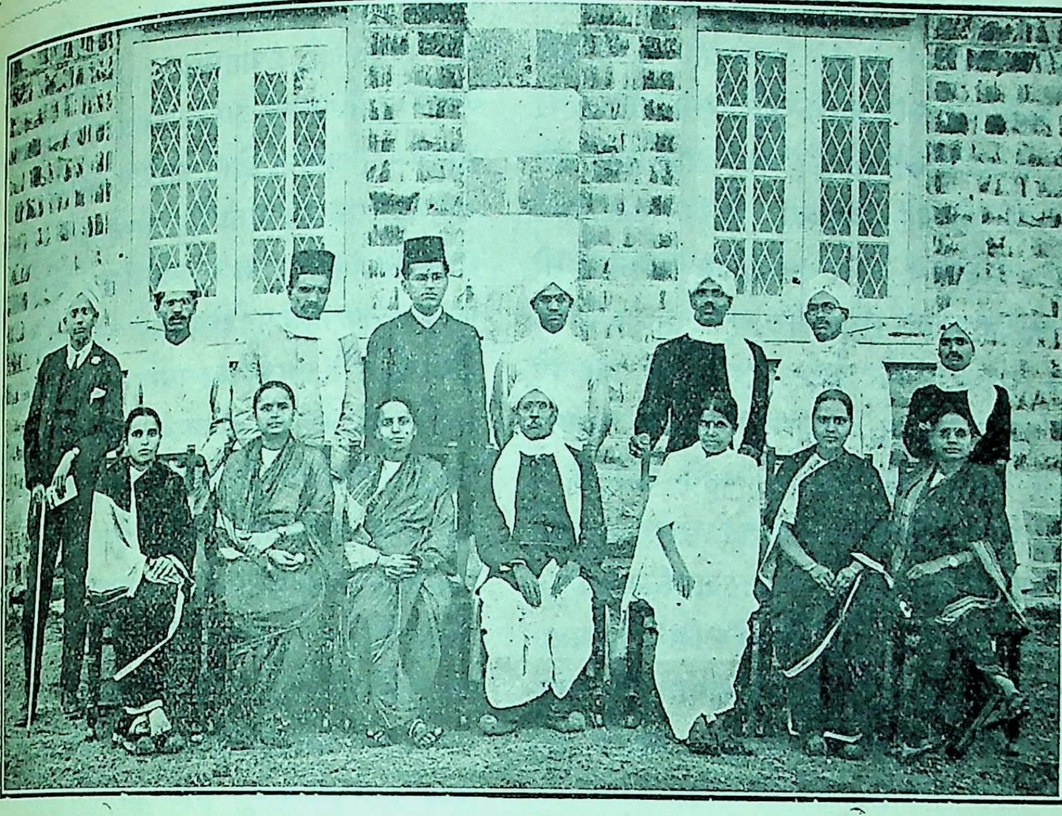

हिंगणें के हिन्दू विधवा-गृह के आजीवन सदस्य

१५ लाख रुपये का दान दिया था। इस रक़म ५२००० रु० व्याज आता है और लगभग २० ार रुपया हर साल कर्वे सा० को मिल जाते हैं। प्रकार यह सब मिलकर कुल ७०-७५ हज़ार इस विद्यापीठ की वार्षिक आय है।

विद्यापीठ का कार्य एक 'सिनेट' के द्वारा होता हर साल चन्दा देने वाली स्त्रियों के चुने हुए प्रतिनिधि, कुछ ग्रेजुएट सदस्याओं के प्रतिनिधि, सामान्य शुल्कदाताओं के प्रतिनिधि, विद्यापीठ से द्ध कालेज के प्रिंसिपल, स्वर्गीय सर विट्ठलदास सी के कुटुम्ब के कुछ प्रतिनिधि, संबद्ध संस्थाओं निर्वाचित प्रतिनिधि, और इन सब प्रतिनिधियों मिलकर चुने हुए कुछ प्रतिनिधि—इन सबकी र सिनेट-सभा होती है। राष्ट्रीय दृष्टि से लोक- क कारोबार का यह प्रकार अत्यन्त महत्वपूर्ण है। एक तरह से यह स्वराज्य ही है, ऐसा कई लोग कहते हैं; इसका तात्पर्य बड़ा मननीय है, पर यहाँ उसका विस्तार करने की जरूरत नहीं। अस्तु।

अध्यापक कर्वे कर्मवीर के नाम से मशहूर हैं; परंतु उन्होंने अपना जो 'आत्मवृत्त' लिखा है, उससे सिद्ध होता है कि वाङ्मय की दृष्टि से भी वह योग्य और कुशल हैं। सच तो यह है कि अगर हम यह कहें तो भी कोई अतिशयोक्ति न होगी कि ऐसा 'आत्मवृत्त' मराठी भाषा में दूसरा कोई नहीं है। इस पुस्तक का हिन्दी अनुवाद जब होगा तो उससे हिन्दी के एक अभाव की पूर्ति होगी, इसमें जरा भी शक नहीं।

कर्वे साहब की जो कीर्ति है वह उनकी हिंगणें अनाथ बालिकाश्रम संस्था और महिला विद्यापीठ के संस्थापक के रूप में है। पर प्रस्तुत लेखक जो उन्हें महात्मा समझता है, वह उनकी इस क्रिया-

शीलता के कारण नहीं। इसमें शक नहीं कि उनकी यह कारगुज़ारी बहुत बड़ी है, किम्बहुना अलौकिक हैं; परन्तु अलौकिक कार्य करने वाले सभी लोगों में अलौकिक पवित्रता भी होवेही, यह बात नहीं है। अध्यापक कर्वे की यह विशेषता है कि अलौकिक सामर्थ्य के साथ-साथ उनमें अलौकिक पवित्रता भी है। उनका चरित्र इतना शुद्ध और स्फूर्ति-दायक है कि महाराष्ट्र के श्रद्धाहीन और कठोर हृदय वाले बड़े-बड़े चिकित्सक तक उनकी गणना अत्यन्त आदरणीय और पूज्य व्यक्तियों में करने लगे हैं। महाराष्ट्रियों ने शुरुआत में कर्वे को छलने में कमी नहीं की, पर उनकी तपस्या के कारण निन्दकों का मुँह बन्द हो गया है। यहाँ तक कि जिन्हें विधवा-विवाह पसन्द नहीं, जो विधवा-विवाह के पक्षपाती नहीं हैं, वे भी उन्हें वन्दनीय मानते हैं। इसका कारण यही है कि उनका चरित्र अत्यन्त शु और उज्ज्वल है। महाराष्ट्र ही क्यों भारत भर में जो ५-१० भूषणास्पद व्यक्ति आज मौजूद हैं उनमें ही क साहब की गणना होनी चाहिए। गत १८ अप्रैल को उन्हें ७१ वाँ वर्ष लगा है। इसके उपलक्ष्य में हिंगणे महोत्सव किया गया था और १५ हज़ार रुपये एक करके उनके नाम पर विधवाओं को छात्रवृत्तियाँ निश्चि की गई हैं। उनकी रहन-सहन ऐसी नियंत्रित औ संयमपूर्ण है कि जिसके कारण अभी भी उन तन्दुरुस्ती अच्छी है। वह रोज़ बिला नाग़ा ७-८ मी की पैदल हवाख़ोरी करते हैं। उनकी तन्दुरु बिलकुल पहले जैसी ही तो अच्छी नहीं है, लेकि उनके अनन्य उत्साह आदि को देखकर ऐसा मा पड़ता है कि हमें अभी अनेकानेक वर्षों तक उन वर्षगांठ मनाने का सुअवसर प्राप्त होगा। तथास्तु

वामन मल्हार जो

मौनालाप

इसी कक्ष में, यही लेखनी लेकर इसी प्रकार
बैठा मैं कविता लिखने को जानें कितनी बार।

यहीं इसी पाषाण-पट्ट पर खोल हृदय का द्वार
खेली मेरी काव्य-कल्पना निर्भय, निरलंकार।

मेरी काव्य-कल्पना ही-सी, धीरे-से चुपचाप
जब-तब तू अज्ञातभाव से आकर अपने आप।

पीछे खड़ी हुई कुछ क्षण तक, रह नीरव निस्पन्द
हँस पड़ती थी पकड़ चोर-सा खिल-खिल कर सानन्द।

पीछे मुड़कर, तुझे देखकर, देखूँ फिर इस ओर
छिप जाता था हृदय-गुहा में कहीं मानसी चोर।

उसी तरह इस उसी ठौर फिर बैठा हूँ मैं आज,
कौन देखता है यह, क्या-क्या बदल गये हैं साज।

आ न सकेगी किन्तु आज तू उसी भांति साह्लाद
लिखने तुझे नहीं देती बस, आकर तेरी याद।

तो फिर उस तेरी स्मृति से ही करके मौनालाप
आज और कुछ नहीं लिखूँगा रुककर अपने आप।

सियारामशरण गुप्त

परदा-विरोधी आन्दोलन

प्रतिक्रिया एक स्वाभाविक नियम है। अन्धेरे के बाद उजाला और उजाले के बाद न्धेरा हुआ ही करता है। कोई बात जब अति पर हुँच जाती है और कृत्रिमता के साथ मिल जाती है ब मानों उसी प्रकार वह अपने अन्तसामीप्य की चना देती है, जैसे कि तैल-समाप्ति पर दीये की लौ ा टिमटिमाना दीये के बुझने का द्योतक होता है। मारे यहाँ शील और चारित्र्य के नाम पर परदे ने जो त्रिम रूप धारण कर रक्खा है, वह भी अपनी अति र पहुँच चुकने के कारण, मालूम होता है अब यहाँ कूच करने ही को है।

बिहार चाहे बहुत समृद्ध और प्रतिभाशाली प्रान्त हो; परन्तु राजेन्द्र और ब्रजकिशोर जैसे सच्चे कार्य-र्ता और गणेशदत्तसिंह जैसे पुरुष-रत्न पैदा करने ा गौरव उसे प्राप्त है। यही कारण है कि अपनी न और देश-भक्ति में आज वह किसी भी दूसरे न से पीछे नहीं और महात्मा गाँधी की सेवा का ौभाग्य भी वह प्राप्त कर चुका है। और हर बार, र आन्दोलन में, विजय-श्री उसके साथ ही रही है। ो बिहार ने, इस बार, परदे के विरुद्ध आन्दोलन या है।

इस आन्दोलन की शुरुआत, महात्माजी के लेखा-ार, जरा विचित्र है। दरभंगा जिले के रघुनाथपुर ं में रहनेवाले श्री रामनन्दन मिश्र इसके कारण बने रामनन्दन मिश्र एक उत्साही नवयुवक हैं। अभी वर्ष (१९२७) तक काशी-विद्यापीठ में वह अध्ययन ते थे और पारसाल से ही महात्माजी के सत्याग्रह-श्रम में रहने लगे थे। कुछ दिनों तक आश्रम में ने के बाद उन्होंने चाहा कि उनकी पत्नी श्रीमती किशोरीदेवी भी आश्रम के वातावरण का लाभ उठायें। उधर इस बीच एक बार जब वह बिहार गये तो परदे की कृत्रिम कड़ाई देख कर उन्हें बड़ा क्षोभ हुआ और उनके युवक हृदय में यह प्रबल प्रेरणा उत्पन्न हुई कि कम से कम अपनी पत्नी को तो इस बुराई से हटा ही लिया जाय। फलतः महात्माजी की स्वीकृति लेकर उन्होंने अपनी पत्नी को आश्रम में लाना चाहा। लेकिन ?—उनके माता-पिता तो ठहरे वही पुराने विचारों वाले। वे इसके लिए तैयार न हुए और रामनन्दनजी को अपनी पत्नी की शिक्षा के लिए स्वर्गीय मगनलाल भाई गाँधी की पुत्री कुमारी राधाबहन और स्व० दलबहादुरगिरि की कन्या दुर्गादेवी को वहीं ले जाना पड़ा। इस बीच राजकिशोरीदेवी ससुराल से अपने मायके चली गईं और उनके माता-पिता ने उन्हें आश्रम भेजने से एकदम इन्कार कर दिया। युवक रामनन्दन और आश्रम की उक्त दोनों बहनों को यह दशा देख बड़ा क्षोभ हुआ और उन्होंने न केवल राजकिशोरी को आश्रम ले जाने का दृढ़-निश्चय कर लिया; बल्कि बिहार से इस प्रथा को उठाने के लिए आन्दोलन करने का भी उन्होंने निश्चय किया। बस, फिर क्या था, महात्माजी का आशीर्वाद और ज़रूरत के वक्त सहायता का आश्वासन पाकर, उन्होंने अपने कार्य का आरम्भ कर दिया।

इन बहनों ने बड़ी बहादुरी के साथ अनेक कठिनाइयों का सामना किया। उधर कलकत्ते से लौटते हुए मगनलाल भाई, महात्माजी के आदेश पर, इनसे मिलने और इन्हें सभी कठिनाइयों से लड़ने के लिए साहस तथा उत्साह देने को बिहार ठहर गये। संयोग-वश जिस गाँव में राधाबहन काम करती थीं वहीं वह बीमार पड़े और फिर पटना में आकर, बिहार में ही, उनका देहांत हो गया!

मगनलाल भाई के देहांत का इस आंदोलन पर बड़ा प्रभाव पड़ा। रामनन्दन मिश्र ही नहीं बल्कि

बिहार के प्रायः सभी प्रगतिशील कार्यकर्ताओं के हृदयों में यह बात चुभ गई । हवन में घृताहुति का काम हुआ । रामनन्दन मिश्र तो एकदम अपनी पत्नी को ले ही आये और राधाबहन के साथ उन्हें आश्रम भेज दिया; पर और लोग भी अब तो इस आंदोलन में शामिल हो गये हैं । बिहार के कार्यकर्ताओं ने इसे आन का सवाल बना लिया और ब्रजकिशोर बाबू अपनी इस अवस्था में भी इसका नेतृत्व करने के लिए ऐसे उत्साह के साथ अग्रसर हो गये, जैसे कोई युवक । बिहार के हृदय, वहाँ के स्वशासन-विभाग के मन्त्री, बा० गणेशदत्तसिह ने भी इसके प्रति अपनी सहानुभूति प्रदर्शित की । फलतः गत २० मई को बिहार के नेताओं ने मिलकर सम्बन्ध में परामर्श किया उसमें निश्चय हुआ कि परदे उठाने के लिए एक आं निकाली जाय और ८ जुला को प्रांत भर में इसके स्त्री-पुरुषों की सम्मिलित सभा हों । इसी मन्त्रणा में स्त्री-शि के लिए एक ऐसा महिला-आश्र खोलने का भी निश्चय हुआ जिसमें स्त्रियों को भारत सभ्यता के अनुसार रहन-सह और साधारण हिन्दी, संस्कृ सिलाई, क़सीदा, संगीत, इ हास, भूगोल आदि की शि दी जाय तथा सादगी परिश्रमशीलता के द्वारा समाज और देश की यो सेविका बनने के उपयुक्त बनाया जाय ।

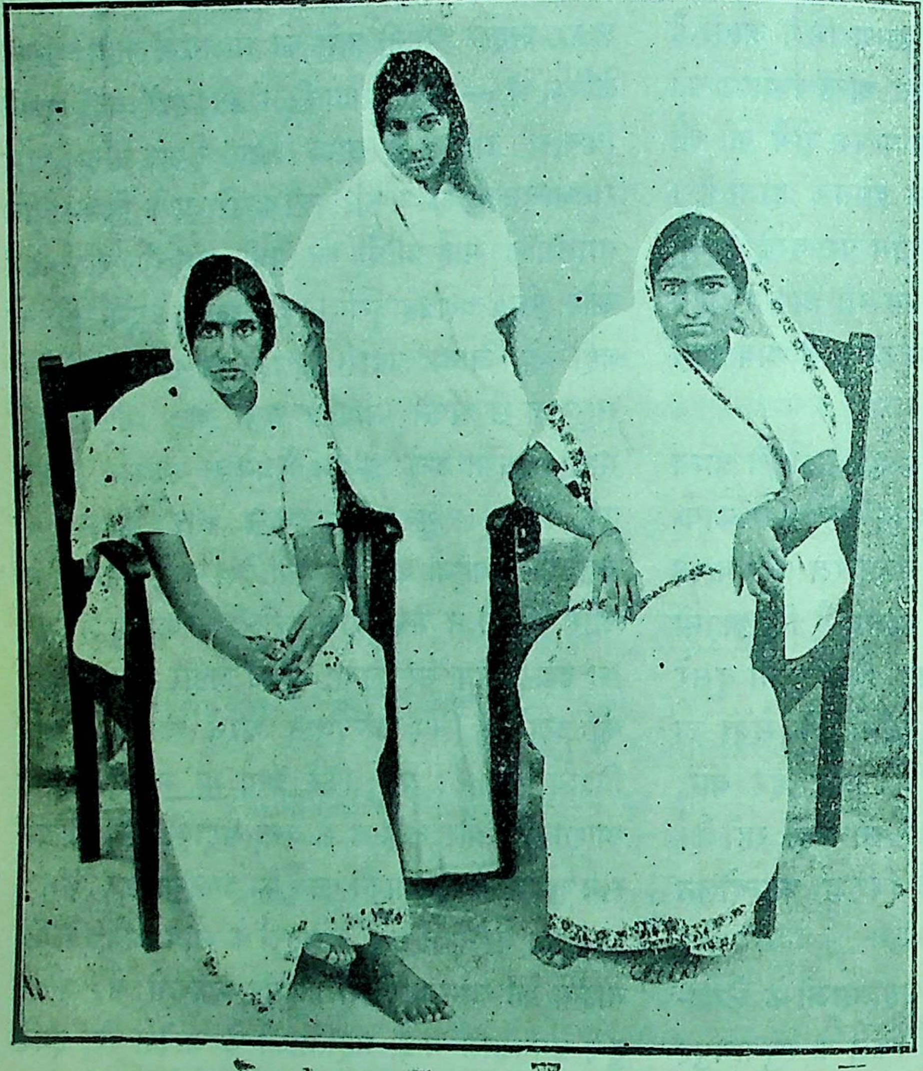

बाईं ओर से—(१) कुमारी राधाबहन, (२) कुमारी दुर्गादेवी, (३) श्रीमती राजकिशोरीदेवी ।

इस निश्चय के अनु बिहार के लगभग दोसौ ष्ठित स्त्री-पुरुषों की ओर एक लम्बी अपील प्रका हुई, जिसमें कहा गया—

“(परदा-प्रथा के कारण) हमारा आधा पक्षाघात से पीड़ित अंग के समान क्रियाशून्य हो है । हमारी स्त्रियां परदे में बंद रहने के कारण

और स्वच्छ वायु से वंचित होकर नाना प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो रही हैं। डाक्टरों का अनुमान है कि स्त्रियों में जो यक्ष्मा की वृद्धि ज़ोरों से हो रही है उसका प्रधान कारण परदा ही है। क्योंकि, परदे के अन्दर अस्वास्थ्यकर परिस्थिति में न तो उन्हें पूरा प्रकाश और खुली हवा ही मिलती है और न वहाँ व्यायाम का ही प्रबन्ध रहता है। अपनी अर्धाङ्गिनियों के साथ इस प्रकार का मनुष्यताहीन व्यवहार बड़ा ही लज्जाजनक है। बिना इस प्रथा को दूर किये हमारा पूर्ण उद्धार असंभव है। अतः आवश्यक है कि परदे की प्रथा शीघ्र हटाई जाय और महाराष्ट्र, कर्नाटक, गुजरात, मद्रास आदि स्थानों की स्त्रियों के समान हमारी स्त्रियां भी स्वतंत्र और विशुद्ध वायु में विचरण करके निर्भीक और स्वावलंबिनी बनें। मगर, साथ ही, उनका रहन-सहन पश्चिमी ढंग का न होकर भारतीय ढंग का और सादा हो।"

इस अपील पर हस्ताक्षर करने वालों में और लोगों के साथ बाबू ब्रजकिशोरप्रसाद, बाबू अनुग्रहनारायणसिंह, बाबू जगतनारायणलाल, बाबू फूलदेवसहाय वर्मा आदि बिहार के अनेक प्रतिष्ठित पुरुष और उनकी स्त्रियाँ शामिल हुईं। और इसी अपील में उक्त महिला-आश्रम खोलने और ८ जुलाई को परदा तोड़ने के प्रथम प्रदर्शन-स्वरूप जगह-जगह स्त्री-पुरुषों की सम्मिलित सभायें करने की भी प्रार्थना की गई।

अपील बहरे कानों पहुँची हो, सो बात नहीं। ८ जुलाई ने बता दिया है कि बिहार के स्त्री-पुरुष अपने नेताओं के प्रति अकृतज्ञ नहीं हैं। इस दिन पानी बरस रहा था; फिर भी पटना, मुज़फ़्फ़रपुर, छपरा, आरा दरभंगा आदि में स्त्री-पुरुषों ने जिस उत्साह के साथ सम्मिलित सभायें कीं, वह प्रशंसनीय है। इन सभाओं में परदे को छोड़ने की घोषणा करते और अन्य बहनों से भी ऐसा ही करने की प्रार्थना की गई। साथ ही प्रांतभर में महिला-समितियाँ खोलने और पटना में स्त्रियों के लिए उपर्युक्त प्रकार का एक आदर्श आश्रम स्थापित करने का भी इनमें निश्चय हुआ और इस आंदोलन को बढ़ाने तथा आश्रम के लिए वहीं चार हज़ार रुपये के वचन भी मिल गये।

इस प्रकार कम से कम बिहार में इस आन्दोलन ने अपनी नींव कर ली है और ऐसा मालूम पड़ता है कि यदि यही गति रही तो हमारी बिहारी बहनें शीघ्र ही इस दिशा में गुजराती, मराठी आदि बहनों का मुक़ाबला करने लगेंगी। ऐसा हो भी क्यों न, जब कि विश्ववंद्य महात्मा गाँधी का आशीर्वाद तथा बा० पुरुषोत्तमदास टण्डन तथा तपस्विनी पार्वतीदेवी जैसी आत्माओं का प्रोत्साहन उनके साथ है? फिर उनके नेता हैं ब्रजकिशोर बाबू, जिनके बारे में महात्माजी का यह कहना है—"वह बिहार के पुराने मँजे हुए सैनिक हैं, जिनकी वीरता की परीक्षा अनेक बार हो चुकी है। मैं नहीं जानता कि उन्होंने कभी किसी आन्दोलन का नेतृत्व किया हो और फिर वह यों ही मर जाने दिया गया हो।" अलावा इसके इस आन्दोलन में एक बात और भी ध्यान देने योग्य है। वह यह है कि इसमें आधुनिक उच्छृंखलता या यूरोपीयकरण की प्रवृत्ति नहीं बल्कि भारतीय आदर्शों पर इसे उठाया गया है और उच्छृंखलता की बुराई से बचने के लिए जगह-जगह सावधानी की सूचना है। निस्सन्देह यह प्रवृत्ति वाञ्छनीय है। हमें आशा है कि न केवल बिहारी बहनों को ही यह आन्दोलन इस कुप्रथा से मुक्त करेगा, बल्कि बिहार के बाद युक्तप्रान्त और राजस्थान की बहनों में भी इसके बदौलत प्रकाश की रश्मियाँ प्रस्फुटित होंगी।

युवक-हृदय

मुग़लकाल में विधवा-विवाह

विधवाओं के पुनर्विवाह के विरोधी, पुनर्विवाह के विरुद्ध, एक दलील यह भी दिया करते हैं कि पहले ज़माने में हमारे यहाँ ऐसा नहीं होता था। और यह उनकी बड़ी ज़बर्दस्त दलील मानी जाती है। शास्त्रों की दुहाइयाँ भी इस सम्बन्ध में दी जाती हैं। परन्तु, वस्तुतः, क्या यह ठीक है?

शास्त्रों की बात का विरोध तो 'आज' (काशी) के एक अंक में ※ श्री पालिधी महोदय कर ही चुके हैं। उन्होंने बताया है कि विधवा-विवाह शास्त्र-विरुद्ध नहीं बल्कि शास्त्र-सम्मत है। इधर मराठी-भाषा के एक पत्र में श्री म० माटे ने खोज करके यह बताया है कि मुग़लकाल में हमारे यहाँ पुनर्विवाह की प्रथा प्रचलित थी। कुल १०७ जातियों में से, उनकी तालिकानुसार, इतनी जातियों में पुनर्विवाह होता था—(१) अहीर, (२) आँध, (३) आरेकाट, (४) बंजारे, (५) बलाई, (६) बेडर, (७) भड़भूंजे, (८) भामी, (९) भण्डारी, (१०) भाट, (११) भावसार, (१२) भील, (१३) भोई, (१४) बुरुण्ड, (१५) धोबी, (१६) चंभू, (१७) दर्ज़ी, (१८) दस्ती, (१९) देवांग, (२०) धनगर, (२१) ढोर, (२२) कोल्हाटी, (२३) दूरकाल, (२४) गुवाली, (२५) गोलल, (२६) गोंड, (२७) गोंधली, (२८) गोपाल, (२९) गौंडाल, (३०) हाटकर, (३१) जिनगर, (३२) जोगी, (३३) जोशी (मराठे), (३४) कची, (३५) कहार, (३६) कलाल, (३७) कप्पू, (३८) काँसार, (३९) खत्री (ब्राह्मण), (४०) कोली, (४१) कुम्हार, (४२) कुसम, (४३) लालबेंगी, (४४) लिंगायत, (४
लोधी, (४६) लोणारी, (४७) मडिग, (४८) मह
(४९) मल्ल, (५०) माली, (५१) माँग, (५२) मांग
(नाई), (५३) माँग (गरी), (५४) कुनबी (मराठे),
(५५) मारवाड़ी दर्ज़ी, (५६) मारवाड़ी सुनार, (५
लखेरा, (५८) तेलगू भिक्षू, (५९) मोची, (६
मोड़ी वाडू, (६१) मुनूर, (६२) मुन्नसी, (६
ओतरी, (६४) पद्मसाली, (६५) पांगूल (६
पारधी, (६७) पेट, (६८) पिसकुंतल, (६९) साल
(७०) संन्यासी, (७१) फुलारी सुनार, (७२) तेल
(७३) तेली-सान, (७४) उघरगवंडी, (७५) बजा
(७६) धीवर, (७७) जंगम, (७८) जोधपुरे (ब्राह्मण
(७९) नाई, (८०) कतिये, (८१) खटीक। यह ठी
है कि ब्राह्मण, कायस्थ, जैन आदि कुछ ऊँची क
जाने वाली जातियों में इसका आम रिवाज न
पर ये थोड़े से लोग ही सारा राष्ट्र (भारतवर्ष)
है, दूसरी जातियाँ भी राष्ट्र में शामिल हैं और
का विशेष भाग है। और, वे इस विषय में पहले
से अग्रसर हैं। ऐसी दशा में आगे से सुधारकों
सामने यह दलील न आया करे, यही ठीक है।

सूर्यनारायण

"प्राचीन ग्रन्थों में ऐसे बहुत से प्रमाण हैं, जि
पौराणिक काल में विधवा-विवाह का प्रचलित होना
होता है। स्मृतिकार 'विष्णु' कहते हैं कि जिस स्त्री
दूसरी बार विवाह होता है, वह 'पुनर्भू' कहलाती है।
वल्क्य कहते हैं कि 'क्षता और अक्षता दोनों का
संस्कार होना चाहिए।' और आधुनिक समय के स्मृ
पराशर भी ऐसी स्त्री के पुनर्विवाह की आज्ञा दे
"जिसका पति मर गया हो, जाति से बहिष्कृत हो गया
या योगी बन गया हो।"

— स्व सर० रमेशचन्द्र

※ 'आज'; ता० ९, १० फ़रवरी, १९२८ ई०।

सन्देह

(१)

वसंत और मनोहर में बचपन से घनिष्टता है। प्रारंभिक पाठशाला के दिनों से लेकर अबतक ये दोनों सच्चे मित्र बने रहे। सगे भाइयों के लिए भी इनकी तरह हिलमिल कर रहना शायद कठिन होगा। परन्तु ये दोनों मित्र दो भिन्न व्यवसायों में पड़ कर भी एक साथ रहते थे। वसंत बाबू एल-एल० बी० पास वकील थे और मनोहर बाबू एल० एम० एस० पास डाक्टर थे। दोनों ने एक ही गांव में प्रेक्टिस शुरू की और एक ही घर में सकुटुम्ब रहने लगे। सौभाग्य से दोनों की पत्नियां सुशील थीं। वसन्त बाबू की मालती और मनोहर बाबू की मनोरमा दोनों समान उम्र की कुलीन लड़कियाँ थीं। रंग-रूप और देखने-सुनने में भी अच्छी थीं। दोनों की अच्छी तरह निभ भी जाती थी। एक दूसरी से हिलमिल कर प्रेमपूर्वक वे अपना घरेलू काम-काज किया करती थीं। एक झाड़ना-बुहारना करती, तो दूसरी चूल्हा जला देती। एक चाय के लिए पानी गरम रखती, तो दूसरी चाय के प्यालों को साफ़ करके जमा देती। अगर एक बरतन माँजती, तो दूसरी उन्हें धो डालने को तैयार रहती। इस प्रकार शुरू-शुरू के कुछ दिन बड़े आनन्द से बीते। परन्तु जैसे-जैसे दिन बीतते और परिचय बढ़ता गया, दोनों के स्वभाव में अन्तर दीखने लगा। जहाँ मनोरमा नित नई पसन्द करती, कोई भी नया काम करने को सदा रहती, वहाँ मालती एकदम चुप्पी साधे रहती। मनोरमा वाचाल थी; मालती मूक। मनोरमा राग-द्वेष उसके चेहरे पर प्रतिबिम्बित होने लगता, मालती सदा गम्भीर बनी रहती। इन बातों से दोनों स्वभाव का भेद झलकने लगा। उधर इस कुटुम्ब के पुरुषों—वसन्त और मनोहर बाबू—के स्वभाव में भी अन्तर था। जहाँ एक ओर डाक्टर बाबू शान्त, गम्भीर और सरल स्वभाव के थे, वहाँ वकील बाबू हँसोड़ और वाचाल थे। मनोहर बाबू का ज्यादातर समय उनके अपने धंधे में बीतता था। अपवाद के लिए वह दोपहर को जब घर पर रहते, तब या तो कुछ देर लेटे रहते या अख़बार पढ़ा करते थे। इधर मनोरमा इस बात के लिए उत्सुक रहती कि वकील बाबू की गैरहाज़री में पतिदेव के साथ बैठ कर उनसे इधर-उधर की बातें करूँ, कुछ पढ़ूँ-पढ़ाऊँ और इस तरह आमोद-प्रमोद में समय बिताऊँ। मनोरमा ऊपरी चमक-दमक और टीम-टाम ज्यादा पसन्द करती थी, अतः वह अपने कमरे को प्रतिदिन नये-नये ढंग से सजाने में लगी रहती। वह दिल में सोचती कि कभी न कभी तो यह जरूर ही "यह किसने सजाया ?", "बड़ा सुन्दर दीखता है" आदि उत्साह को बढ़ाने वाली बातें कहेंगे; परन्तु सब व्यर्थ हो जाता। मनोहर बाबू की सब बातें पहले से ही निश्चित होती थीं। इसके विपरीत वसन्त बाबू स्वभाव से ही नवीनता-प्रिय थे। थोड़ी भी नवीनता और अनूठी सजावट देखते ही वह उसकी तारीफ़ करने लगते। दूसरी जगह, अपनी देखी हुई, नई-नई बातों का वर्णन करने लगते। परन्तु दुर्दैव से मालती को ऐसी बातें न रुचती थीं। जब मित्र-मण्डली चाय-पानी के लिए आती तब मनोरमा तो नई-नई चीजें बना कर बड़ी सज-धज के साथ आये हुए मित्रों को परोसती, परन्तु मालती अलग ही अपनी ढाई चावल की खिचड़ी पकाती रहती। मित्रों को बिदा करके वसन्त बाबू जब घर में आते और भोजन करने बैठते तो दोपहर की बातों को याद करके मनोरमा की खूब तारीफ़ करने लगते। मनोहर बाबू से न रहा जाता, वह कहते, "कौन बड़ी बात है ? दोनों में से किसी एक

को तो करना ही था, उसने किया तो क्या हुआ ? वह नहीं होती तो क्या मालती भाभी न करतीं ?" इसी प्रकार की बातें हुआ करतीं। मनोरमा अपने मन में सोचती कि पतिदेव मेरी बातों पर कौतुक प्रकट करना नहीं चाहते, ऐसी चर्चा ही उन्हें पसन्द नहीं है। अगर दूसरा किसी तरह प्रशंसा करता है, तो वह भी उन्हें असह्य हो जाती है। ऐसे विचारों के जाल में फँस कर अन्त में वह कहने लगती, 'मेरा पति-योग भी, अच्छा नहीं है। पिता के घर सौतेली मा कभी तारीफ़ नहीं करती। उत्साह बढ़े तो कैसे ? अगर पिताजी कभी प्यार करके मुझे होशियार कहते, अच्छा कह कर मेरा उत्साह बढ़ाते, तो माताजी का तिरस्कार दूना हो जाता। समझती थी कि विवाह होने पर सुख मिलेगा, परन्तु वह भी भाग्य में नहीं लिखा है। यह तो बड़े विचित्र प्राणी हैं, इन्हें किसी बात की ज़रूरत ही नहीं मालूम होती। फिर मैं ही क्यों जान दूँ !' इन विचारों के कारण वह हमेशा गाल फुलाये रहती। मनोहर बाबू तो शांत आदमी थे, उन्हें क्या पड़ी थी जो कभी क्रोध करें। सबेरे उठ कर अस्पताल चले जाते। दोपहर को देर से आकर भोजन करते और फिर पाँच बजे चाय पीकर जो बाहर निकलते तो रात को ८-८॥ बजे वापस लौटते।

(२)

इस तरह दिन बीते जा रहे थे कि एकाएक महायुद्ध शुरू हो गया—ज़ोरों से युद्ध की तैयारियाँ होने लगीं। माँ-बाप सरकार की वात्सल्यपूर्ण छाती से प्रजा-स्नेह का प्रेम-दुग्ध बहने लगा ! इधर जनता में भी साम्राज्य-सरकार की सहायता करने की प्रेम-पूर्ण स्फूर्ति उत्पन्न हुई। विभिन्न तरीक़ों से सरकार को मदद दी जाने लगी। कई लोग अपनी खोई हुई वीरता को फिर से बुलाने का प्रयत्न करने लगे। ऐसे लोगों में हमारे मनोहर बाबू भी थे। आपने डाक्टरी कमीशन के लिए अपनी माँग पेश की। सरकार उन्हें चुन लिया। और शीघ्र ही काम करने की और स्थान की सूचना भी इन्हें मिल गई। अब वालों के प्रबन्ध की फ़िक्र पड़ी। प्रबन्ध तो ही क्या था ? इनके सगे-सम्बन्धियों में तो कोई ही नहीं। पत्नी के पिता के घर कुछ लोग ज़रूर इन्होंने उन्हें मिलने के लिए बुलाया और को साथ लिवा ले जाने का प्रस्ताव किया। बाबू के एक बड़ी बहन—जीजी—थीं। उनका इन पर समान प्रेम था। वह भी इनसे मिलने आई अब सवाल यह था कि मनोरमा कहाँ रहे ? "मैं रहा हूँ, मेरे बाद पत्नी कहाँ रहेगी ?" इन विचारों मनोहर बाबू चिंतित रहने लगे; मनोरमा की बुन तो चल ही रही थी। पति-पत्नी की इस पर कभी गरमागरम बहस भी हो जाती परन्तु नतीजा न निकलता। अंत में बिदा की तैयारियाँ होने दिन समीप आ गये। सब लोगों से भेंट-वार्ता हो गया, इष्ट-मित्रों ने दावतें उड़ाईं। परन्तु के रहने का प्रश्न ज्यों का त्यों बना रहा। धीरे प्रस्थान की घड़ी आ पहुँची। पति-वियोग आघात नहीं पहुँचाता ? मनोरमा की आँखें रोते लाल हो गईं। उसने पति के कल्याण के लिए देवताओं की मन्नतें मानीं। मनोहर बाबू का छूटा, वह भराये हुए करुण शब्दों में विनम्र कहने लगे, "तुम ख़र्च की फ़िक्र मत करना। तुम्हें सुख मिले वहीं रहना। मा का स्वभाव अब की बार कोमल हो जायगा। पिताजी तो हैं ही।" इतने ही में वसंत बाबू काम से भीतर आये और बोले "तुम व्यर्थ की क्यों करते हो ? तुम्हारे चले जाने पर भी यह उनका ही रहेगा न ? वह चाहें यहाँ रहेंगी, चाहें पिता के घर चली जायँगी। तुम तो अपना प्रबन्ध

छु । रवाना होने का समय आ पहुँचा । मनोरमा, लती और जीजी दरवाज़े पर आईं । "जीजी जाता हूँ । भाभी जाऊँ न ? इसे सम्हालना । मैंने पिताजी को पत्र भेज दिया है, आज या कल कोई न कोई आ ही जायगा । अच्छा आज्ञा है न ?" ये बातें ली की ओर देखते हुए मनोहर बाबू ने कहीं । नका हृदय भरा आ रहा था । बड़ी कठिनाई से घर से बाहर निकल कर वह चट आगे बढ़ गये । अभी तक जो आँसू रुके हुए थे, एकाएक उमड़ पड़े । उधर अपना हृदय हलका करमे के लिए मनोरमा सोयी अपने कमरे में चली गई और पलंग पर पड़ रही । मनोरमा के हृदय का बोझ हलका करने और सान्त्वना देने के लिए मालती और जीजी भी उसके पीछे-पीछे आईं । दो दिन बाद पीहर से आदमी आ या । "अभी से जाकर क्या करेंगी ?" कह कर संत बाबू और मालती ने उसे वापस लौटा दिया । जीजी ससुराल चली गईं । इनकी दिनचर्या का आरंभ हुआ । मनोरमा को अच्छा लगे, उनका समय आनन्द से बीते, इस बात की वसन्त बाबू ज़्यादा बरदारी रखने लगे । वह तरह-तरह की पुस्तकें और समाचारपत्र उन्हें ला दिया करते । भोजन करते मय इधर-उधर की बातें करते, नई-नई ख़बरें नाते । इससे मनोरमा के दिन अच्छी तरह कटने गे । मालती भी इस बात की ख़बर रखती कि किसी रह मनोरमा को कष्ट न पहुँचे । इन सब बातों का ल कुछ और ही हुआ । मनोरमा का मन अब म में न लगता । पतिदेव का जो कुछ काम करना ता था, वह भी न रहा । अब तो केवल वकील बू थे; घर उनका, गृहस्थी उनकी । मालती अब लकिन हैं । मनोरमा को क्या ग़रज़ जो फालतू बातों लिए चिन्ता करे ? सबेरे उठ कर इधर-उधर का ड़ा-बहुत काम कभी किया तो किया अन्यथा झट मनोरंजन के बहाने किताब हाथ में लेकर बैठ जातीं । सायंकाल के समय, वसंत बाबू घर कब आवेंगे, चाय-पानी के समय कौन-कौन सी नई बातें सुनावेंगे, इन्हीं बातों की उसे चाह लगी रहती । जहाँ कुछ मज़ेदार बात शुरू हुई कि स्वभावतः वाचाल मनोरमा बातें करने में मग्न हो जाती । आगे-पीछे की उसे कुछ सुध न रहती । मालती बेचारी, क्या करती ? चुपचाप बैठी रहती । इस तरफ़ इन दोनों का ध्यान ही नहीं जाता था, मालती भी इनके बीच पड़ना पसन्द न करती थी । इन गप्प गोष्ठियों के परिणाम-स्वरूप मनोरमा के लिए वसन्त बाबू नई-नई किताबें लाने लगे । मनोरमा उन्हें पढ़ती । जो बातें समझ में न आतीं, उन्हें वसन्त बाबू से उनके घर आने पर पूछती—इसीमें इन दोनों का बहुत सा समय बीतने लगा । वसंत बाबू के इस बोलने-चालने, उठने-बैठने, हास्य-विनोद आदि किसी भी काम में मालती कुछ भाग नहीं ले सकती थी । अब मनोरमा को अपनी शिक्षा की कमी खटकने लगी । उसने इस कमी की पूर्ति का निश्चय किया । पत्र द्वारा पतिदेव से सम्मति मँगाई और वसंत बाबू पर भी अपनी इच्छा प्रकट की । मनोहर बाबू ने लिखा, "फ़ुरसत का समय इस तरह के कामों में बिताना अच्छा है ।" और वसन्त बाबू भी राज़ी हो गये । मनोरमा ने पढ़ाई शुरू कर दी । दोपहर को तो अपना पाठ तैयार करती और रात को वसंत बाबू से पूछ-पूछ कर ग़लतियाँ दुरुस्त कर लेती । इस तरह पठन-पाठन और बात-चीत में बहुत रात बीत जाती । मालती के हृदय पर इन बातों की बुरी छाप पड़ने लगी । सतत् सहवास के कारण मनोरमा की टीका-टिप्पणी, उसकी तर्क-वितर्क शक्ति और पढ़ने की लगन ने वसन्त बाबू को धीरे-धीरे उस-की ओर आकर्षित किया । अतः मालती की पूछ कुछ कम होने लगी । कहीं कुछ सभा इत्यादि हो तो वसन्त

बाबू भाभी मनोरमा से चलने के लिए आग्रह करते, पर मालती से मन समझाने के लिए पूछ भर लेते थे। मालती के इन्कार करने की देर थी कि ये दोनों चल देते। कुछ दिनों बाद पूछना भी बंद हो गया। एक-दो बार मालती ने जब असन्तोष प्रकट किया तो मीठे शब्दों में समझाने की जगह वसन्त बाबू "तू दुष्ट है, तुझे किसी का सुख अच्छा नहीं लगता।" इन शब्दों में उसका अनादर करने लगे। इसपर मालती ने बोलना ही बंद कर दिया। पर अब इस व्यवहार की चर्चा अड़ोस-पड़ोस में होने लगी। जब कभी कोई वकील बाबू से मिलने आता, तो मनोरमा को कुर्सी पर बैठी हुई देखता। और मालती की आहट तक किसी के कान में न पहुँचती। बुराई को खोज-खोज कर प्रकट करने वाली दुनिया ने इन्हें भी अपनी टीका-टिप्पणी का शिकार बनाया। मनोरमा समझने लगी कि इस हवा को पैदा करने वाली मालती है। कुछ ऐसी ही छाप वसन्त बाबू के दिल पर भी पड़ी। नतीजा यह हुआ कि पति-पत्नी का विरोध बढ़ने लगा। इसी अवसर पर जीजी भी मिलने के लिए आई थीं। उन्होंने भी इस लीला को खूब आँखें खोलकर देखा और देखकर सन्ताप प्रकट किया। एक बार मालती की बीमारी की चर्चा भी उन्होंने वसन्त बाबू के सामने उठाई। परन्तु पहले के अनुराग के स्थान पर उन्हें उनकी बात-चीत में क्रोध की मात्रा अधिक दीख पड़ी। मनोरमा भी अब पहले की तरह इनमें बैठने-उठने, बात-चीत करने या गप्पें लगाने में शामिल नहीं होती थी। एक-दो बार जीजी ने कहा—"भाभी, जब तक मैं यहाँ हूँ, क्या चार दिन इधर-उधर घूमने-फिरने न चलोगी? रात-दिन घर में बैठे-बैठे तो अब जी ऊब गया है।" इसपर मनोरमा ने जवाब दिया—"औरतों में बैठकर लोगों के लेने-देने की फ़जूल बातें करना मुझे पसन्द नहीं। मुझे तो अपना घर ही अच्छा लगता है। तुम कहीं जाना चाहो तो जाओ न जीजी!" यह सुनकर जीजी बेचारी चुप होजातीं। अन्त में इस हालत से घबराकर मालती अपने नैहर चली गई। पर वहाँ कब तक रहती? बाबूजी उसपर इतने मुग्ध (?) थे कि एक बार 'चले-आओ' का सन्देशा-पत्र-भेजकर, मानों हमेशा के लिए से मुक्त हो गये थे। मालती के नैहर चले जाने कुछ दिनों बाद मनोरमा भी अपने पिता के घर गई। परन्तु मनोरमा का वहाँ पुरुषों की भांति, हाथ-पैर हिलाये, बैठे रहना उसकी सौतेली माँ बिलकुल पसन्द नहीं था। दामाद विदेश गये हैं, न आने वाली लड़की आज घर आई है। फिर वह मनोरमा से बोलती नहीं थीं। उसके लिए मन में प्रेम, अपनापन और निष्कपट भाव पैदा नहीं होता था। मालती फिर ससुराल लौट आई वहाँ पहुँचते ही वसन्त बाबू ने मनोरमा को लिख "मालती अकेली है, उसे साथी चाहिए।" डूबते तिनके का सहारा मिला। मनोरमा वसन्त बाबू पास रवाना हो गई। फिर से वही पुरानी दिन शुरू हो गई। उसमें कोई अन्तर न पड़ा। मा इस बात की जी तोड़ कोशिश करने लगी कि वस बाबू उसे प्यार करने लगें, उसके हिस्से का प्रेम प्राप्त हो। परन्तु सब व्यर्थ हुआ। मनोरमा के ज्यों-ज्यों परिचय बढ़ता गया, वसन्त बाबू की पर घना आवरण पड़ता गया। दूसरी ओर मनो भी अपने परदेशगत पति को धीरे-धीरे भूलने लगी उनकी तन्दुरुस्ती के लिए व्रत, उपवास आदि भी छोड़ बैठी। ऐसे समय एकाएक डाक्टर बाबू एक मित्र का पत्र उसे मिला। उसमें पत्र न का कारण बताते हुए लिखा था कि मनोहर बाबू एकाएक नौकरी छोड़कर न जाने

चले गये हैं, कुछ पता नहीं चलता । जाते समय यह लिख गये हैं कि “मुझे ढूँढने का कोई व्यर्थ प्रयत्न न रें ।” इस पत्र को पाकर लोग अभी हाय-हाय कर रहे थे कि इतने ही में मनोरमा और वसन्त बाबू के नाम भी दो पत्र आ पहुँचे । उन पत्रों में लिखा था, “मैं इस संसार से ऊब गया हूँ । हिंदुस्थान और विदेश दोनों जगह के अनुभव ने मुझे हर तरह निराश किया है । मेरे मन में शांति और स्थिरता नहीं है । अकेले स्वार्थ और ऐहिक सुख के लिए लोग जो खट-ट करते रहते हैं, उसे देखकर जी घबराने लगता है। अब मुझे बड़े मौक़े से एक सच्चे मार्ग दर्शक मिल गये । उनकी देख-भाल में मैं परमात्मचिंतन में लगा हता हूँ । अध्यात्मज्ञान की प्राप्ति के लिए मैं व्यग्र उठा हूँ । इसीलिए सब कुछ छोड़कर मैं जा रहा । मुझे ढूँढने की कोशिश मत करना । हाँ,मनोरमा ह सुनकर अवश्य दुःखी होगी । पर मैं उसके लिए चित प्रबंध कर चुका हूँ । सुखैश्वर्य न भी मिले, दूसरों मुँह ताकने को उसे ज़रूरत नहीं पड़ेगी; वह न्तोषपूर्वक अपना जीवन बिता सकेगी । अच्छा हो गर वह भी अपने जीवन को परमार्थचिंतन में गाने लगे । यदि उसे यह पसन्द न हो तो वह पनी इच्छानुसार जहाँ चाहे सुख से रहे । मैं तो ससे क्षमा चाहता हूँ ।” पत्र पढ़कर दोनों के दिल क्या असर हुआ, वे ही जानें । मालती तो अप-न की तरह इस समाचार को सुनकर काँप गई । के पिता का एक पत्र भी उसे मिला । उसका ही कुछ उत्तर दे दिया गया। मनोरमा यहीं रही । कल वसन्त बाबू की प्रैक्टिस खूब चल निकली । लक्ष्मीदेवी भी उनपर प्रसन्न थीं । जनता में नका अच्छा आदर-सत्कार होने लगा था ।गाँव कोई नया आदमी आता-जाता तो इनसे एक बार र मिलता । हर तरह के सार्वजनिक कामों में ये उदारतापूर्वक सहायता करते । परिवार भी खूब बढ़ गया । उत्तमता की दृष्टि से अनूठा भी हो गया । कमी केवल एक बात की रह गई । वसन्त बाबू पर यद्यपि बाह्यलक्ष्मी प्रसन्न थी और यद्यपि उनका सौभाग्य-सूर्य खूब तेज़ी से चमक रहा था, तथापि गृहलक्ष्मी सदा असन्तुष्ट ही रहने लगी और दिन-दिन क्षीण भी होने लगी—तात्पर्य, मालती सदा बीमार रहने लगी थी । रोटी खाई नहीं जाती थी । सारे शरीर में सदा दर्द बना रहता था। अनमनी-सी रहती और कभी-कभी बुख़ार भी आ जाता । पर इस अभागिनी के लिए घर में किसीको चिंता नहीं थी । होती भी किसे ? घर में पहले ही इने-गिने आदमी रहते थे । तिसपर भी वसन्त बाबू तो उससे बहुत कम बोलते थे । कभी बोलने का अवसर आता भी तो मुहर्रिर से कहकर सब काम करवा लेते । आये-गये का बहाना लेकर बोलने का मौक़ा भी नहीं आता था । मनोरमा इस अवसर के लिए पहले से तैयार रहती । किसी को भोजन के लिए या चाय-पानी के लिए बुलाना हो तो मनोरमा ही उन्हें बुलाती । मालती और मनोरमा भी एक दूसरे से न बोलतीं । और बोले बिना काम रुक जाता तो ‘खाने को चलो, पानी दो,’ इस तरह एक-दूसरे से परस्पर बोल लेती थीं । इससे आगे कुछ नहीं । इसमें भी मनोरमा को कोई ज्यादा रुकावट नहीं मालूम होती । वह तो कुछ न कुछ पढ़ती रहती । वसन्त बाबू से बातें किया करती । अगर दिल उचट ही जाता तो कभी वायु-सेवन के बहाने और कभी व्याख्यान सुनने के बहाने बाहर निकल जाती । इधर मालती का घर से बाहर निकलना भी कम हो गया था। इसका एक कारण यह था कि बाहर जाने पर यहां उसके पास भी मिलने के लिए स्त्रियाँ आतीं । परन्तु इस तरह आने-जाने वाली स्त्रियों से मनोरमा दिल

खोल कर मिलती नहीं थी, उनसे मन ही मन द्वेष करती थी। इधर मालती जब दूसरी बहनों के यहाँ जाती तब औरतों की सी बातें होने लगतीं—औरतें ही तो ठहरीं! जहाँ एक छेड़ कर कहे, "क्योंजो देवरानी नहीं आई ?" तहाँ, दूसरी झट कह उठती, "नाने भी दो!" इतने में तीसरी बड़े करुण शब्दों में कहने लगती, "क्या कहूँ बहन, ऐसी सुन्दर स्त्री और ऐसा भोला-भाला पति!" वाक्य पूरा होने के पहले ही पहली स्त्री कह उठती, "अजी, रहने भी दो, मनोरमा को इस बात का कुछ दुःख-दर्द थोड़े ही है ! लोक-लाज न रहे, न सही, मन में कसक तो रहनी ही चाहिए। मनोहर बाबू तो बेचारे एक बार गये सो गये ही !" इस तरह की अनेक बातों से घबरा कर मालती मन ही मन पछता कर कहती—'मैं कहाँ आगई ?' वसन्त बाबू को जब ये बातें मालूम होतीं तो वह क्रोध के मारे पागल हो जाते। पत्नी को निगल जाने को तैयार हो जाते। पहले जिस पत्नी की ओर से वे बेख़बर रहते थे, अब उससे द्वेष करने लगे! उससे उन्हें दिली नफ़रत हो गई। कभी-कभी मनोरमा 'मालती बहन को मेरे कारण दुःख होता है, मुझे अपने पिता के घर क्यों नहीं भेज देते ?' आदि बातें कह कर घर जाने का अभिनय रचती। सुनते ही वसन्त बाबू भीतर जा कर पत्नी से एकान्त में कहते, "तुम उसे क्यों सताती हो जी? मालूम नहीं विचारी कितनी असहाय और दुःखिनी है। व्यर्थ ही उससे द्वेष करके क्या फल पाओगी ? भला लोगों में बिना कारण हमें बदनाम क्यों करती हो ? तुम्हें शक किस बात का है ? मालूम तो हो ! हमारे चाल-चलन की अगर तुम्हें शंका है तो प्रमाण देकर सिद्ध क्यों नहीं करतीं ? इस तरह दूर ही दूर से द्वेष की आग क्यों भड़काती हो ?" ऐसी एक दो नहीं, क्रोध में आ कर वसन्त बाबू न जाने कितनी बातें कह जाते।

मनोरमा को नैहर जाने की कोई दिली ख्वाहि
तो रहती ही नहीं थी। इस अभिनय के बाद कु
दिन तक घर में शान्ति रहती। ऐसी दशा में मा
की बीमारी की फ़िक्र करता ही कौन ? वह
बिस्तर बिछा कर पड़ रहती। एक बार डाक्टर
बुला कर बीमारी की जाँच भी करवाई। डाक्टर सा
ने दवा दी, परन्तु लाभ कुछ न हुआ। इसी मौके
जीजी के घर वाले कार्यवश यहाँ आ पहुँचे।
दिन तक वे अपने साले के मिहमान रहे। वे भी
घर के व्यवहार को देख कर चकराये। वसन्त
ने इनसे दिल खोल कर बातें ही नहीं कीं। वह
के घर पर आये हैं, अपने यहाँ के मिहमान हैं,
'इनके लिए यह, करो वह करो' आदि बातें करते
इन्होंने इस दम्पती को कभी नहीं देखा। न कभी ए
में इन्हें बोलते हुए, एक दूसरे को कनखियों से देखते
किंवा परस्पर हँसते हुए ही देखा। चुपचाप
काम होता रहता। बहनोई बड़े चकित हुए। वह
विषय में अधिक ख़बरदारी से जाँच करने
मनोरमा और वसंत बाबू का आपस का व्य
देख कर उन्हें दुःख हुआ। पर रिश्तेदारी में कुछ
नीच कहें भी कैसे ? बिदा होते समय उन्हें मा
से मिल कर जाना उचित मालूम हुआ। अतः
रसोईघर के दरवाज़े तक गये। वसन्त बाबू साथ
थे। दरवाज़े के पास खड़े रहकर उन्होंने कहा—
जाता हूँ, कुछ सन्देशा कहना है क्या ?" सु
मालती कुछ आगे बढ़ आई और कहने ल
"सन्देशा तो कुछ नहीं है, ज़रा उन्हें ही भेज दी
न ! बहुत दिन हुए आई नहीं।" यह सुनकर व
बाबू को भी सभ्यतावश कहना पड़ा ! "जीजी
कुछ दिनों के लिए भेजिएगा। इस बार उन्हें
बहुत दिन हो गये हैं। जाते ही उन्हें रवाना
दीजिए। कहिए तो आदमी साथ कर दूँ ?" बह

ही भेज देने का वचन देना पड़ा। पहले जीजी हर वें महीने आती रहती थीं। परन्तु इधर वसन्त बाबू का स्वभाव कुछ विचित्र-सा हो गया था; इसी कारण अब उनकी नज़र में अपनों के सिवा कोई ख़ास स्थान नहीं रह गया था। पत्नी की सिफ़ारिश करने के कारण वह जीजी से अभी तक अप्रसन्न ही थे। परन्तु कुछ तो खून का मोह और कुछ लोक-लाज दोनों ने मिलकर उन्हें जीजी को बुलाने के लिए बाध्य किया। (अपूर्ण)

(सौ०) गिरिजाबाई केलकर

ईरान की स्त्रियाँ

ईरान हमारे एशिया महाद्वीप का ही एक खण्ड है। भारत के पश्चिम अफ़ग़ानिस्तान-बिलोचिस्तान से परे, तुर्किस्तान व कास्पियनसागर के दक्षिण, मेसोपोटामिया व कुर्दिस्तान से पूर्व, तथा ओमन व फ़ारस की खाड़ी के उत्तर में यह स्थित है। ६२८००० वर्गमील इसका क्षेत्रफल है और एक करोड़ जन-संख्या है। जो पारसी भाई-बहन हमारे साथ रहते-रहते बिलकुल हमारे देश-वासी ही बन गये हैं, उनकी मूल-मातृभूमि यही देश है। पहले यह पारसियों का ही देश था और ज़रतुश्त यहाँ का धर्म था। परन्तु बाद में मुसलमानों का आक्रमण हुआ और उन्होंने पारसियों को हरा दिया। तबसे अपने धर्म की रक्षा के लिए उनमें से अधिकांश भारतवर्ष चले आये और यहीं रहने लगे; और ईरान में मुसलमानी राज्य एवं मुसलमान धर्म स्थापित हो गया। शिया और सुन्नी यहाँ के मुसलमानों के ज़बर्दस्त भाग हैं और यहाँ की मुख्य-मुख्य जातियों की मोटी संख्या इस प्रकार है—शिया मुसलमान ५०००००; सुन्नी मुसलमान ८५००००; आर्मीनियन ५००००; यहूदी ४००००; नेस्टोरियन ३००००; पारसी १००००। सन् १९०६ तक यहाँ एकतंत्र शासन था, शहंशाह ही सब कुछ था; परन्तु अब यहाँ प्रजातंत्र राज्य है और रज़ाशाह पहलवी इस समय यहाँ का राष्ट्रपति एवं सर्वेसर्वा है। राष्ट्रीयता में इस समय यह दूसरे किसी भी एशियाई देश से कम नहीं है। परन्तु, हमें देखना यह है, यहाँ की स्त्रियों का क्या हाल है?

स्त्रियों की स्थिति यहाँ पर अभी बहुत कुछ वैसी ही है, जैसी कि पहले थी। पुराने बन्धनों ने अभी उन्हें छोड़ नहीं दिया है। बुर्क़ा अभी भी आम तौर पर जारी है—उत्तरी भाग में वह चेहरे पर नक़ाब लगाने के रूप में प्रचलित है। विवाह का ढँग भी वही पुराना है। बाल-विवाहों का अभी भी बाहुल्य है—१२-१३ वर्ष तो विवाह की बहुत प्रचलित उम्र है। यही नहीं, बहुविवाह का भी आम रिवाज है; और शिया मुसलमानों में, जिनकी कि यहाँ बहुत अधिक संख्या है, मुतिया या अस्थायी विवाह की प्रथा भी खूब प्रचलित है। मजूरी का यह हाल है कि ५-५ बरस के बच्चे भी मजूरी करते हैं! और वह भी कुछ यों ही नहीं; बल्कि १२-१२ घण्टों तक करघे आदि पर असुविधापूर्ण स्थिति में बैठकर कार्पेट बुनने आदि के काम उन्हें करने पड़ते हैं, जिससे कि लड़के-लड़की दोनों के स्वास्थ्य की गहरी हानि होती है—लड़कियों की गर्भ-धारण शक्ति को तो इससे ख़ास तौर पर सख़्त नुक़सान पहुँचता है। ऐसी दशा में नये ढँग की आज़ादी और प्रगति की तो गुंजाइश ही कहाँ? सन् १९०९ में एक 'तबरीज़' अख़बार में 'स्त्रियों की मुक्ति' पर एक लेख निकला था। उस-पर इतनी खलबली मची कि लेखक को अपने प्राणों के ही लाले पड़ गये; और अपनी प्राण-रक्षा के लिए उसे सरकार का आश्रय लेना पड़ा!

परन्तु, एक कहावत है, "ख़रबूज़े को देख कर ख़रबूज़ा रंग बदलता है।" टर्की, मिस्र इत्यादि अपने सजातीय (मुसलमान) देशों की रफ़्तार का ईरान पर भी प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। वह भी अब चौंक उठा है; और झिझक परन्तु उत्सुकता के साथ इस दिशा में उसकी टकटकी लग गई है।

ईरान में पश्चिमीकरण का प्रारम्भ तो, 'न्यू एज इनसाइक्लोपीडिया' के अनुसार, सन् १८४९ में ही हो गया था; परन्तु स्त्री-स्वातंत्र्य के भावों की उस समय तक शायद कोई चर्चा न उठी थी, जब तक कि 'स्त्रियों की मुक्ति' वाला लेख प्रकाशित न हुआ। स्त्री-स्वातंत्र्य के भावों और आन्दोलन के श्रीगणेश का श्रेय तो सन् १९०९ में प्रकाशित उस लेख को ही है, और सचमुच तभी से वहाँ की स्त्रियाँ इस दिशा में पदार्पण करने का कुछ प्रयत्न भी करने लगी हैं—फिर वह प्रयत्न चाहे कितना अल्प ही क्यों न हो। उस लेख से मचने वाली खलबली से एक ओर जहाँ लेखक को अपनी प्राण-रक्षा की फ़िक्र करनी पड़ी, वहाँ दूसरी ओर इस सम्बन्ध में कुछ विचार क्रान्ति हुई और एक नवीन जागृति ने जन्म लिया। नये विचारों और नयी प्रगति के प्रति सर्वसाधारण में जो घोर असहिष्णुता थी, इसी समय से, वह क्रमशः कम होने लग गई। कुछ लोगों में बुर्क़े को नष्ट करने की भावना का भी उदय हुआ। कई मर्द पुलिस की सहायता से स्कूल जाने वाली लड़कियों से बुर्क़ा छुड़वाने की चेष्टा भी करने लगे हैं। उधर ईरानी नौजवानों में, प्रगतिशील राष्ट्रों को देख-देख कर, अलग ही इसके विरुद्ध प्रबल भाव बढ़ और फैल रहे हैं। ऐसा मालूम पड़ता है कि वहाँ पर इसके विरुद्ध शीघ्र ही कोई क़ानून बन जायगा।

बाल-विवाह की बुराइयों पर ईरानी भाई-बहन ध्यान देने लगे हैं। डाक्टरों का ध्यान इस ओर सब से अधिक है। पश्चिम के अनुभव से अब वे इसकी बुराइयों को बख़ूबी समझने लगे हैं और इसके ख़तरों से उन्होंने सरकार को सूचित कर दिया है। ईरानी स्त्रियों ने भी इसके लिए अपना एक छोटा समाज संगठित किया है। इसकी सदस्याओं की यह प्रतिज्ञा है कि १६ वर्ष की उम्र होने से पहले अपनी-अपनी लड़कियों के विवाह वे न करेंगी।

मजूरी करने वाले बालकों के लिए, राष्ट्र-संघ की सहायता से, सन् १९२२ में नये क़ानून बने हैं। इनके अनुसार कारख़ानों में काम करनेवाले लड़के-लड़कियों की उम्र का औसत ८ और १० वर्ष होना आवश्यक है। यही नहीं, १४ वर्ष से कम अवस्था वाले किसी भी लड़के-लड़की से प्रतिदिन ८ घण्टे से अधिक काम लेने और जो कमउम्र लड़के-लड़की कार्पेट आदि बुनने का काम करते हों उनके लिए स्वास्थ्यकर परिस्थिति एवं सुविधापूर्ण बैठक की व्यवस्था करने का भी इन क़ानूनों में आदेश है।

शिक्षा में आज भी यहाँ की स्त्रियों का औसत .०३ प्रति सैकड़ा से अधिक नहीं है। हाँ, प्रयत्न इस दिशा में भी हो ज़रूर रहा है। फलस्वरूप हाल में सरकार ने बहुत-सी कन्या-शालायें खोली भी हैं—कई तो अकेले इस्फ़ाहन नगर ही में हैं। पर बाहरी धंधों में अभी तक सिर्फ़ अध्यापकी का ही काम उनके लिए पूरी तरह खुला हुआ है।

हाँ, बहाई स्त्रियों ने इस दिशा में अच्छी तरक्की कर ली है। बहाई-आन्दोलन ईरान की ही उपज है। इसके अनुयायी स्त्री-पुरुष की समानता के हामी हैं। फलतः इनकी स्त्रियाँ आज़ादी के साथ पुरुषों से मिलती-जुलती और उनमें हिलती-मिलती हैं। और चूंकि फौज व दूसरे सरकारी महकमों में इसका काफ़ी भाग है, इसलिए समस्त ईरान की स्त्रियों की आज़ादी पर उनका असर पड़ रहा है। 'ज़हन' नाम का इनका

स्त्रियों का एक पत्र भी निकलता है। ईरान के स्त्री-स्वातंत्र्य-आन्दोलन का यह प्रतिनिधि है और इसकी सम्पादिका इंग्लैंड व अमेरिका का भ्रमण करके वहाँ की आज़ाद स्त्रियों के जीवन को भलीभाँति देख चुकी हैं। अलावा इसके 'हब्दुल मातिन' नाम का कोई पत्र है, जिसकी उप-सम्पादिका कुमारी एफ़० एस० मुअय्यदज़ादा एम० ए० हैं। इन्होंने अफ़ग़ानिस्तान की महारानी सूरिया के हाल के यूरोप-भ्रमण के समय उनके नाम एक खुली चिट्ठी लिख कर पूर्वीय ख़ास कर भारत, ईरान, टर्की, अफ़ग़ानिस्तान, तुर्किस्तान और सम्भव हो तो चीन व जापान की भी स्त्रियों का एक संगठन या सङ्घ बनाने की प्रार्थना की थी। यही नहीं, 'एशियाटिक रिव्यू' के एक लेख के अनुसार, इस वर्ष तो दो बार ईरानी स्त्रियाँ सार्वजनिक प्रदर्शन भी कर चुकी हैं।

इस प्रकार कुछ तो बहाई-आंदोलन और कुछ टर्की, मिस्र आदि सजातीय राष्ट्रों पर हुए पश्चिमी प्रभाव के क्रांतिकारी परिणाम के असर से ईरान के निवासियों में भी, जो कि 'प्रधानतः कृषिकार और चरवाहे' हैं, आज आधुनिक नवजीवन आ रहा है। पश्चिमी सभ्यता का असर दिन-दिन बढ़ रहा है और दूसरे मुसलमान देशों की भांति ईरान की स्त्रियाँ भी झिझक और शिथिलता परन्तु हार्दिक लगन के साथ उसका स्वागत करने के लिए हाथ बढ़ा रही हैं। यदि यही गति जारी रही तो इसमें संदेह नहीं कि वे भी कालांतर में शीघ्र ही टर्की व मिस्र की नाईं पश्चिमी देशों की स्त्रियों का मुक़ाबला करने लगेंगी। परमात्मा उन्हें सफलता दें—परन्तु, क्या ही अच्छा हो कि वे इस रफ़ार में पश्चिमी बहनों के गुणों ही का अनुकरण करें, उनके धूम्र-मद्य-पान आदि अवगुणों को मात्र न अपनायें। क्या वे ऐसा करेंगी ?

एक भारतीय

गर्भवती के लिए कुछ नियम

गर्भस्थिति के पश्चात् स्त्री के शरीर में बड़ा परिवर्तन होना आरम्भ हो जाता है। यह समय स्त्री के जीवन-काल में बड़ा नाज़ुक समय समझा जाता है। परन्तु बहुधा स्त्रियाँ इस काल को बड़ी असावधानी से व्यतीत करती हैं। अतः नीचे कुछ नियम दिये जाते हैं, जिनपर चलने से होने वाली अनेक त्रुटियों से छुटकारा मिल सकता है—

(१) गर्भवती को सादा, हलका और जल्दी पचने वाला भोजन करना चाहिए।

(२) पीने का पानी साफ़ होना चाहिए। अधिक ठंडा भी न हो। चाय, काफ़ी, भंग और अन्य नशीली तथा तेज़ वस्तुओं से यथाशक्ति बचना चाहिए।

(३) गर्भवती को नित्य प्रति एक बार तो अवश्य शौच जाना चाहिए। यदि कभी क़ब्ज़ हो जाय, तो किसी औषधि का अवश्य सेवन करना चाहिए। १ औंस शुद्ध अरंडी का तेल अथवा १ से २ ड्राम पल्व ग्लीसराईज़ा कम्पाउन्ड को दूध के साथ खा लेना उपयुक्त होगा।

(४) प्रत्येक दिन मूत्र भली प्रकार आना चाहिए—यदि कुछ काल तक मूत्र कम आने लगे, अथवा उसकी रंगत में कोई परिवर्तन प्रतीत हो, तो किसी डाक्टर से उसकी अवश्य जाँच करा लेनी चाहिए।

(५) प्रत्येक दिवस स्नानादि करना आवश्यक है—परन्तु, रोग की अवस्था में स्नान करना आवश्यक नहीं। यह ध्यान रहे कि जल न तो अत्यन्त गर्म हो और न अत्यन्त ठण्डा हो।

(६) यदि सम्भव हो तो बाह्य जननेन्द्रियों को नित्य प्रति गर्म पानी से धोना चाहिए।

(७) मुलायम, शुद्ध और हलके वस्त्रों का ही प्रयोग करना उचित है। शरीर के किसी भाग पर, विशेषतया कमर के चारों ओर, किसी प्रकार की सख़्त डोरी अथवा पेटी इत्यादि का उपयोग न करना चाहिए।

(८) गर्भावस्था के अंतिम ३-४ मास में यदि उदर को किसी कोमल चौड़ी पेटी के द्वारा सम्हाल रक्खा जा सके, तो कुछ हानि नहीं।

(९) प्रत्येक दिवस बाहर किसी उद्यान इत्यादि में टहलना लाभदायक है।

(१०) किसी प्रकार का कड़ा परिश्रम न करना चाहिए—जैसे भारी बोझ उठाना, बहुत काल तक खड़ा रहना, बार-बार चढ़ना-उतरना, अथवा दूर तक टहलना।

(११) नियमानुसार तो गर्भ-स्थिति के पश्चात् ही सम्भोग बन्द कर देना चाहिए, परन्तु गर्भावस्था के अंतिम ३-४ मास में तो यह क्रिया किसी दशा में भी न करनी चाहिए। ऐसा करना माता, पिता और बालक तीनों के लिए हानिकारक होता है।

(१२) मन को यथाशक्ति शांत और पवित्र रखना चाहिए। लड़ना-झगड़ना, व्यर्थ रोदन करना, और क्रोध ऐसी अवस्था में अत्यन्त हानिकारक होते हैं।

(१३) यदि स्त्री प्रथम बार गर्भवती हुई है तो उसके स्तन के मुखों (Nipples) को ध्यान-पूर्वक देखना चाहिए कि अधिक दबे हुए तो नहीं हैं। यदि यह दशा हो तो स्त्री को उन्हें कोमलता के साथ दिन में ३-४ बार खींचना चाहिए। इसके अतिरिक्त गर्भावस्था के अंतिम ३ मास में उन्हें मैथिलेटेड स्प्रिट से १-२ बार नित्य प्रति धोना चाहिए। ऐसा करने से उनके ऊपर की त्वचा कड़ी हो जाती है और नवजात शिशु दूध पीते समय अधिक कष्ट नहीं देता।

रामनाथ वर्मा

देवि !

संसार तुम्हें पहचान कर भी नहीं पहचा
ता। तुम्हें पूजनीया मानते हुए भी,
की ही दृष्टि से देखता है। तुम्हरी सहस्र-सहस्र
गरिमा की स्तुति करते हुए भी, उसकी जिह्वा तुम्हें
लिए कड़वी रहती है। जानती हो क्यों? तुम्हें
हृदय में अपने आपका अभिमान नहीं। संसार
अभिमानियों का ही लोहा मानता है—चाहे
क्षणिक ही क्यों न हो। पर देवि! तुम संसार की
ताओं से अपने स्निग्ध, मधुर, कोमल गुणों को
छोड़ देना। संसार जब-जब भव-आतप से जल
है, तब-तब तुम्हारे ही सद्गुणों की शीतल छाया
उसे विश्राम मिला है। यदि वह कृतघ्न हो जाय
तुम अपने कर्त्तव्य से क्यों चूको?

तुम्हें सदा से ही उपेक्षा और यंत्रणा मिली है
किंतु, तुम तो आदिकाल से ही वही अनंत क्षमा
लोक-कल्याणी हो। इसी दैवी गुण ने तुम्हारा सात्वि
शृंगार करके, तुम्हें देवी बना दिया है।

ओ विश्व-जननी आदिशक्ति! आज तुम
अपने-आपको पहचानो। अनादिकाल से जिन मह
गुणों ने तुम्हें पूजनीया बनाया है, देखो, वे न
होने पावें। सृष्टि की न-जाने कितनी लम्बी उम्र
गई, किंतु तुम्हारी वह महत्ता भूले नहीं भूलती।

तुम रति के रूप में सौंदर्य की रानी हो; लक्ष्मी
रूप में संसार की मंगलमयी पूँजी हो; शारदा के
कल्याणी वाणी हो; दुर्गा के रूप में दुर्गति नाशिनी
और वात्सल्यमयी अन्नपूर्णा के रूप में अनंत जीवन
हो! इस प्रकार "सत्यं-शिवं-सुंदरं" की प्रत्यक्ष
तो तुम्हीं हो। तुम्हारे रहते भी संसार में अशुभ
छा जाय, हाहाकार मच जाय,—यह कैसी अनहोनी

आज संसार के जीवन-संग्राम में घोर वैषम्य धधक रहा सृष्टि की हरियाली झुलस रही है, अपने चारों त्राहि-त्राहि मची है। अपने जीवन-संग्राम में संसार तुम्हें यथार्थतः सहचरी न बना सका, उसीका यह फल है। किंतु करुणामयी देवि ! इस दुर्दशा को देखने के लिए क्या तुम सजल आँखें न खोलोगी ? ओ लक्ष्मी! ओ शारदे ! ओ दुर्गा ! ओ अन्नपूर्णे ! जागो—अपने इसी रूप में जागो ! संसार के नीरस जीवन में अपने उसी पूर्व व्यक्तित्व से माधुर्य ढुलका दो !

श्री शांतिप्रिय द्विवेदी

विचार-लहरी

(एक मित्र के पत्र से)

प्रिये,

हमारे समाज का वर्त्तमान स्वरूप बड़ा ही विचित्र हो गया है। धर्म और अधर्म, नीति और अनीति की बड़ी विकट गुत्थमगुत्थी हो गई है। हम सब अज्ञान के अंधेरे में टटोल रहे हैं; कहीं धर्म को अधर्म समझ रहे हैं, और कहीं अधर्म को धर्म । कई बार अनीति को नीति और नीति को अनीति समझते हैं।

इस समय ऐसे दृढ़ और ज्ञाता पुरुषों की आवश्यकता है, जो इस जटिलता को सुलझाकर ठीक नीति का अवलंबन कर सकें। मैंने भी अब निश्चय किया है कि धीरे-धीरे इस काम में लगना चाहिए। मैं चाहता हूँ कि जिसे करने में कोई अनीति न देखूँ, जिसे करने में अगर नीति का अवलंबन तथा कुछ समाज का फ़ायदा भी होता हो, तो उसे ज़रूर करूँ—समाज के डर से अपनी तथा अपने प्रिय जनों की उन्नति में समाज की रूढ़ि को बाधक न होने दूँ। मैं चाहता हूँ कि अगर हमें जीवन की मंज़िल गौरव—ग़रीबों के पैसे लूटकर अपनी तोंद बढ़ा के नहीं बल्कि अपने और उनके उद्धार के लिए उनकी सेवा करते हुए—तय करने की इच्छा हो, तो तुम्हें भी इसी तरह धर्म और नीति के कार्यों में निर्भय हो जाना चाहिए।

क्या मैं तुमसे यह पूछूँ कि अब तुम खादी पहनती हो या नहीं ? चर्ख़ा नियम से कातती हो या नहीं ? अपनी माता और बहनों को खादी का महत्व समझाती हो या नहीं ? अगर यह सब करती हो, तब तो तुम अपनी देश-माता के प्रति कुछ सेवा कर रही हो; अन्यथा, कहना होगा कि, अपना समय यों ही गँवा रही हो।

अज्ञान की नींद में बहुत सो लिये। अंग्रेज़ों को अपने घर का धन ख़ूब लुटा दिया और ग़रीबों को हमने भी ख़ूब लूटा। इसीलिए हम आज पराधीनता में पड़े हैं। हमने धन-दौलत के लोभ से अपनी अंतरात्मा को बहुत दबाया, उसपर बहुत अत्याचार किया। अब हमें उसका प्रायश्चित करना चाहिए। देश को अंग्रेज़ी राज्य से मुक्त करना चाहिए। स्त्रियों को अब केवल यह न समझना चाहिए कि हमारा काम तो रोटी पकाना है। इस समय हम इस हालत में पहुँच गये हैं कि स्त्रियों को भी देश के उद्धार के लिए दौड़ पड़ना चाहिए। उनके बिना हमारा आधा संग्राम सूना रहेगा। चर्ख़ा जो स्वराज्य का क़िला सर करने की तोप है, वह स्त्रियों ही के हाथ में है। वे यहाँ से चुपचाप चर्ख़ा कातकर ठेठ विलायत में अंग्रेज़ों की अक़्ल ठिकाने ला सकती हैं। अतएव इस समय भारत की हरएक सच्ची पुत्री का कर्त्तव्य है कि वह नियम से चर्ख़ा काते। जो चर्ख़ा काते वही भोजन करे। जो चर्ख़ा कातने को नीचा समझती हैं, वे भारत के कल्याण को नहीं समझतीं।

मुझे पता नहीं, तुम वहाँ किस तरह अपना जीवन बिताती हो। देवी, यह हमारी जवानी है।

परमात्मा ने हमारे शरीर में हमारे देशभाइयों की सेवा करने के लिए ख़ूब ख़ून और शक्ति दी है। इस समय उसकी सेवा करके अपने दिल की सब मुराद पूरी करलें। अभी कलकत्ता की 'अमृत बाज़ार पत्रिका' नामक एक पत्रिका के संपादक बाबू मोतीलाल घोष स्वर्गवासी हो गये। मृत्यु के समय उनकी अवस्था ७७ साल की थी। बड़े देश-भक्त थे। भारत में अख़बार निकालने में सबसे पुराने और सबसे अनुभवी वही थे। देशमाता की सेवा उन्होंने लगातार ५० साल तक की थी। देश आज उनकी मृत्यु पर रो रहा है। तथापि मरते समय उनके भी यही वाक्य थे—"मैं अपनी मातृभूमि की कुछ भी सेवा न कर सका।" उसके पीछे वह बूढ़े हुए, फ़क़ीर हो गये, और मर भी गये; तथापि, इतनी सेवा भी उन्हें कम मालूम हुई। फिर हमें इतनी सेवा न करनी चाहिए?

हमें तो परमात्मा को इसलिए धन्यवाद देना चाहिए कि उसने हमें भारत के पुनरुद्धार के समय जन्म दिया। सच्ची सेवा का समय यही है। अधीर होने से काम नहीं चलेगा। जो शौक़ के लिए इस आंदोलन में शरीक़ हुए हैं, वे ही अधीर होते हैं। हम स्वराज्य लेकर ही दम ले सकते हैं, उसके सिवा नहीं। फ़िर वह चाहे एक साथ हो, या जीवन ही उसमें क्यों न बीत जाय!

क्या तुम इन बातों पर अमल करोगी?

तुम्हारा जीवन-साथी—

"शिक्षित स्त्रियों को परदा दूर करना चाहिए और वयःप्राप्त विधवा तथा कुमारिकाओं को निर्भय होकर राजनैतिक जीवन में प्रवेश करना चाहिए। जगत की देवियाँ अपने समानाधिकार के लिए झगड़ रही हैं। मैं भारत में भी अपनी बहनों को उतनी ही धीरता और बहादुरी से बढ़ते हुए देखना चाहता हूँ।"

—सर शंकरन नायर

स्फुट प्रसंग

ब्रिटेन में समान-मताधिकार

इंग्लैण्ड में बहुत दिनों से यह प्रयत्न हो रहा था।
पुरुषों ही के समान स्त्रियों को भी पार्लमेण्ट का मताधि
मिल जाय। स्त्री-स्वातंत्र्यवादिनियों (Suffragists)
दल बड़े उग्र रूप में इसके लिए प्रयत्नशील था, अनेक
भी उनके समर्थक हो गये थे, और पिछले दिनों क़ानून
रूप में वह पार्लमेण्ट में पेश भी हो गया था। अब, ८ जु
को, लन्दन से रूटर ने ख़बर भेजी है कि वह दर्जे
सब श्रेणियों में पास हो गया है और उसपर सम्राट्
अपनी स्वीकृति दे दी है। इस प्रकार जिस समान-
धिकार के लिए ब्रिटिश महिलायें इतने दिनों से लड़ रही
अन्त में, वह उन्हें मिल गया। इसके लिए ब्रिटिश बहनों
हार्दिक बधाई!

अफ़ग़ानिस्तान की प्रगति

अफ़ग़ानिस्तान के अमीर और रानी विदेश यात्रा
अफ़ग़ानिस्तान में नवजीवन का प्रारम्भ हो गया।
प्रवास से आकर उन्होंने अपने अनुभवों को कार्य-रूप
आरम्भ कर दिया है। मुसलमानों में परदा कितना
हुआ है, यह सब जानते हैं। पर रानी सूरिया ने यूरोप
उसे तिलांजली दे डाली। और, खुशी की बात है कि,
ग़ानिस्तान पहुँच कर वहाँ उन्होंने न केवल अपना
क्रम नहीं बदला, बल्कि वहाँ की अपनी बहनों को भी
बन्धन-मुक्त कर दिया है। उस दिन एक सार्वजनिक
में बिना परदे के, पुरुषों के बीच, वह उपस्थित हुई
और परदा तोड़ने का सरकारी हुक्म भी निकल गया है।

इस संबन्धी एक घटना बड़ी मज़ेदार है। रानी
परदा देखकर कुछ मुल्ला लोग अमीर की ख़िदमत में
थे और धर्म की रक्षा के नाम पर उनसे परदा न छुड़ाने
प्रार्थना की। अमीर ने उनसे पूछा—'गाँवों में परदे का
हाल है?" इसपर वे चुप रह गये और बोले-'वहाँ
ग़रीबी है, स्त्रियों को काम भी करना होता है, वहाँ

हाँ!' इसपर अमीर ने कहा कि जब वे परदा न करते भी चरित्रहीन नहीं तो शहर वाले ही ऐसा क्यों करें ? इए, पहले आप गांवों में परदा कराइए; फिर यहाँ आना। खिसियाकर चुपचाप चले गये ।

इस प्रकार हमारे पड़ोसी कट्टर मुसलमान देश अफ़ग़ा- स्तान ने अपने यहाँ से परदे की प्रथा को तिलांजलि दे दी और बड़े वेग से आधुनिक सुधारों की ओर अग्रसर हो रहा है। हमें आशा है, भारत की मुसलमान बहनें उसकी प्रगति से सबक़ लेंगी ।

भारतीय महिलाओं की विजय

इन्हीं दिनों भारतीय महिलाओं ने भी एक ज़बर्दस्त सफलता प्राप्त की है। बिहार में उठे परदा-आन्दोलन ने अपना सुफल दिखलाया है। जैसी कि घोषणा हुई थी, जुलाई को प्रान्त भर में परदा तोड़ कर स्त्री-पुरुषों की सम्मिलित सभायें हुईं--और, कहना चाहिए, बड़ी सफलता साथ हुईं। पानी बरस रहा था, नेताओं के मन में शङ्का छा रही थी, सर्व-साधारण में अविश्वास था; फिर सभाओं में ख़ासी उपस्थिति रही--उपस्थिति भी कि बड़े-बड़े घरानों की परदानशीन औरतें भी अच्छी संख्या में शामिल हुईं। और उन्होंने जो निश्चय किया, वह पटना की सभा के निम्न प्रस्तावों से प्रकट है--

"१. (क) स्त्री और पुरुष पटने की इस सभा में इकट्ठे कर घोषणा करते हैं कि हम लोग आज से परदे के गन्दे रिवाज को हटा रहे हैं जिससे देश, समाज और ख़ास कर स्त्रियों की हालत हर तरह से ख़राब हो चुकी है और दिन दिन ख़राब हो रही है।

(ख) साथ ही हम लोग उन बहनों और भाइयों से अनुरोध करते हैं, जो अभी तक मिथ्या संकोच में पड़े हुए हैं, कि जितनी जल्दी हो सके इस कुप्रथा को अपने घर से हटा देश में शिक्षा और स्वास्थ्य की वृद्धि करें ।

(ग) परदा हटाने वाली बहनों तथा भाइयों का ध्यान के महाराष्ट्र, कर्णाटक, गुजरात, मद्रास आदि प्रान्तों भारतीय सभ्यता के आधार पर प्रचलित प्रथा की ओर खींचा जाता है और उनसे अनुरोध किया जाता है कि अपनी वेशभूषा में सरलता और सादगी रखते हुए परिवार के भीतर ससुर, पतोहू आदि के बीच जो अन्दरूनी परदा है उसको तथा बाहरी परदे को हटावें ।

२. परदा-प्रथा को हटाने के लिए तथा स्त्रियों की शिक्षा और सुधार के लिए प्रान्त में एक प्रान्तीय समिति क़ायम की जाय । और हर ज़िले, सब-डिवीज़न, थाने और ग्राम में सहायक समितियां स्थापित की जायँ ।

३. परदा-प्रथा को हटाने के लिए स्त्रियों की सब प्रकार की शिक्षा के प्रबन्ध के लिए तथा परस्पर विचार-विनिमय के लिए प्रान्त भर में हर ज़िले, सब-डिवीज़न, थाने और ग्राम में महिला-समितियां क़ायम की जायँ ।

४. स्त्रियों की उन्नति के लिए प्रान्त भर में जगह-जगह महिला-आश्रम खोले जायँ, जिनमें निवास करने वाली महिलाओं और कन्याओं को कुछ समय तक ऐसी शिक्षा दी जाय, जिससे उनका जीवन सादा और परिश्रमशील बने तथा धात्रीशिक्षा, शिशुपालन, सीना-पिरोना आदि गृहकार्य में प्रवीणता प्राप्त करके आदर्श गृहिणी बनने के साथ-साथ साहित्य, संगीत, घरेलू अर्थशास्त्र, हस्तकौशल, इतिहास, भूगोल आदि उपयोगी विषयों का आरम्भिक ज्ञान प्राप्त करके वे देशसेविकायें बनें ।"

बिहार के प्रायः सभी सर्वमान्य नेता इसके समर्थक हैं। राष्ट्रीय नेता बा० ब्रजकिशोरप्रसाद और प्रान्तीय स्वशासन विभाग के मन्त्री सर गणेशदत्तसिंह तथा दूसरे सब नेता भी इसके साथ हैं। राजेन्द्र बाबू यहाँ नहीं हैं, पर उन्होंने लन्दन से ही अपनी सहानुभूति भेजी है, और अपने घर की स्त्रियों को इसमें शरीक होने का आदेश किया है । इस प्रकार बिहार इस दिशा में एकदम क्रान्तिकारी परिवर्तन कर रहा है । कुछ लोग इसपर सशंक हुए हैं । कलकत्ते के 'फ़ारवर्ड' में एक वकील साहब ने लिखा है कि परदा तो ज़रूर दूर होना चाहिए, पर क्रमशः--और शिक्षा की वृद्धि करते हुए। नहीं तो, उनका कहना है, लाभ के साथ इससे कुछ नैतिक हानि भी होने की सम्भावना है । इसमें शक नहीं कि उनका यह कहना ग़ैरवाजिब नहीं; क्योंकि बहुत दिनों तक क़ायम रही हुई स्थिति दिमाग़ और वृत्ति को भी कमज़ोर बना देती है। परन्तु जब हम देखते हैं कि इस बात पर

आन्दोलन के अगुओं का पहले ही से बहुत ध्यान है और मौक़े-मौक़े उन्होंने इस तरफ़ ध्यान आकर्षित किया है, तब भयभीत होने की कोई ख़ास ज़रूरत नहीं मालूम होती। अस्तु, आशा है, बिहारी बहन-भाइयों का यह साहस दूसरे प्रान्तों के बहन-भाइयों के लिए भी मार्ग-दर्शक होगा।

क़ानूनों के द्वारा सुधार

भारतीय धारा-सभा का अधिवेशन निकट आ रहा है। कौन-कौन से प्रस्तावों और विधानों पर उसमें विचार होगा, इसके अनुमान लगाये जा रहे हैं। स्त्रियों सम्बन्धी सुधारों में, जो बातें सबसे ज़्यादा ध्यान आकर्षित कर रही हैं, उनमें सबसे प्रथम श्री हरविलास सारडा का

बालविवाह-निषेध बिल

है। इसपर विचार करने के लिए जो सिलेक्ट कमिटी बैठी थी, उसने अपनी रिपोर्ट प्रकाशित कर दी है। उसने विवाह के लिए लड़के व लड़की की उम्र क्रमशः १८ और १४ वर्ष तय की है। माननीय मालवीयजी का दूसरे सदस्यों से मत-भेद है; वह लड़की की विवाह-वय १२ वर्ष रखना चाहते हैं। ख़ैर, एक सिफ़ारिश उसने यह की है कि इसे फ़ौजदारी क़ानून बनाया जाय, जिससे जाति-विशेष के लिए मर्यादित न रहकर इसका अमल सार्वदेशिक हो। और सज़ा के लिए उसकी यह सिफ़ारिश है कि बजाय उन लड़के-लड़कियों के उन अभिभावकों ही को सज़ा दी जाय, जो ऐसे नाजायज़ विवाह करायें या कराने में उत्तेजना देवें। इस प्रकार इसने एक नया और पहले से भी अच्छा रूप धारण किया है और आशा की जाती है कि इस बार के अधिवेशन में इसपर कोई न कोई अन्तिम निर्णय ज़रूर हो जायगा।

सहवास-वय विधान

दूसरा सुधार है, जिसकी इन दिनों चर्चा है। डा० हरिसिंह गौड़ इसके प्रस्तावक हैं और श्रीयुत मोरोपन्त जोशी की अध्यक्षता में एक सिलेक्ट कमिटी इस सम्बन्ध में जाँच कर रही है। इस सम्बन्धी पुराने और सन् १९२५ के संशोधित विधान की जाँच करके यह मालूम करना उसका काम है कि उनमें सुधार की ज़रूरत है या नहीं। यदि सुधार की ज़रूरत मालूम पड़ी तो यह सिफ़ारिश भी करनी होगी कि क़ानून का भंग होने पर विवाहित और अवि दशा में क्या सज़ा रक्खी जानी चाहिए। सहवास के इस बिल में विवाहितों के लिए १३-१४ वर्ष और हितों के लिए १४ से १६ वर्ष रक्खी गई है। इसके कमिटी ने एक प्रश्नावली निकाली है, जिसमें पूछा गया वर्तमान विधान बदलने की ज़रूरत क्यों है? १३ सहवास-वय १४ वर्ष मुक़र्रिर कर दिये जाने के बाद क्या तुम्हारे यहाँ बलात्कार और लड़कियों का जारी है? लड़कियों के युवावस्था प्राप्त करने की वय क्या है? क्या तुम्हारे यहाँ १३ वर्ष से पहले समुदाय में सहवास होता है? इत्यादि। ३० शिमला में इसकी बैठक होगी। सारडाजी के बाल बिल से कहीं लोगों को यह भ्रम न हो जाय कि ज पास हो रहा है तो फिर इसकी क्या ज़रूरत, इसके सिलेक्ट-कमिटी की ओर से एक विज्ञप्ति निकाली उसमें कहा गया है कि बाल विवाह-बिल पास हो ज भी सहवास-विधान तो अलग ही रहेगा और इसलि कारण इसकी उपेक्षा न की जानी चाहिए।

तलाक का बिल

भी डा० हरिसिंह गौड़ ने ही रक्खा है। इसकी इस प्रकार है—

इस क़ानून का नाम 'हिन्दू विवाह-विच्छेद होगा। तमाम हिन्दुओं पर यह लागू होगा और ब्रिटिश भारत में इसका अमल होगा।

(क) पति नपुंसक हो, (ख) शरीर व म निर्बल-पागल हो, अथवा (ग) कोढ़ी हो, तो हि अपने विवाह-सम्बन्ध को नाजायज़ ठहरवा सकें अपने पति को तलाक दे सकेगी।

आजकल इसकी विशेष चर्चा है। इसके शास्त्रों के प्रमाण संग्रह करके यह सिद्ध करने का रहा है कि हमारे यहाँ पहले भी यह प्रथा जारी की महिलाओं ने ज़ोरों के साथ इसका समर्थन जब कि दूसरी कई जगहों से विरोध की ध्वनि भी उधर सहयोगी 'अभ्युदय' (प्रयाग) ने एक

इसपर सावधानी और सतर्कता से विचार करने की दी है।

इस प्रकार समाज-सुधार के कई विधान क़ानून बनने बाट जोह रहे हैं। नहीं कह सकते इनमें किस-किसको ता मिलेगी, कौन आगे को टलेगा, और कौन व्यर्थ जा- । पर इसमें सन्देह नहीं कि इनकी वजह से स्त्री-हितों दिशा में एक खलबली और दिलचस्पी लोगों में ज़रूर । और सर्वसाधारण में स्त्रियों के प्रश्न पर दिलचस्पी होना किसी न किसी रूप में अभी या भविष्य में अच्छा साबित होगा।

त्रियों के साम्पत्तिक अधिकार

कई लोगों की यह शिकायत है कि भारत में पुरुषों ही सब साम्पत्तिक अधिकार प्राप्त हैं। स्त्रियों को नहीं। मरता है तो उसका वारिस प्रायः पुरुष ही होता है। ऐसे लोगों को आजकल इस दिशा में जो प्रयत्न हो रहे उनसे अवश्य प्रसन्नता होगी।

सामान्यतः दो प्रयत्न इस समय हमारे सामने हैं। के श्री हरविलास सारडा ने बड़ी धारा-सभा में बाल-विवाह निषेध बिल के अलावा, एक और बिल करने का निश्चय किया है। आपका मत है कि संयुक्त रिवारों में पति की मृत्यु के बाद विधवा स्त्री को कुछ नहीं ता, जिसके कारण हिन्दू-विधवाओं को बड़ी कठिनाइयों सामना करना पड़ता है। अतएव आपके इस नये बिल उद्देश्य है हिन्दू विधवाओं के विरासत के हक़ों की रक्षा। दूसरी ओर, 'सैनिक' के लेखानुसार, हिन्दू स्त्रियों के कारों की संशोधित धारा के नाम से नागपुर के एडवो- श्री डी० डबल्यू० आठवले तथा पूना के श्री एन० बी० ने अखिल भारतीय क़ानूनी खोज संस्था की ओर से बड़ी महत्व-पूर्ण धारा तैयार की है, जिसे पास करके य स्त्रियों के जन्मसिद्ध हक़ों की रक्षा की जायगी। धारा के अनुसार पिता के मरने पर, पिता या माता के पुत्र का संपत्ति पर पूरा अधिकार न हो जायगा; बल्कि सिर्फ़ एक-चौथाई का स्वामी होगा, बाकी हक़ विधवा गा; उसके बाद कन्या को, कन्या के न होने पर कन्या के पुत्र को मिलेगा—यदि दोनों न हुए तब पुत्र या दत्तक पुत्र को मिलेगा। अभी तो, वर्त्तमान क़ानून के अनुसार, संयुक्त परिवार में रहने वाला अपने हिस्से में से अपनी स्त्री, पुत्री, भगिनी के लिए एक ख़ास हिस्से की वसीयत नहीं लिख सकता। इस धारा के अनुसार वह ऐसा कर सकेगा। इसमें सबसे महत्व-पूर्ण बात यह है कि केवल स्त्री होने के कारण कोई स्त्री संपत्ति की उत्तराधिकारिणी होने से वंचित नहीं हो सकेगी। बराबर रिश्ते में होने पर—जैसे बहन-भाई—कन्या या स्त्री पुरुष का आधा हिस्सा पावेगी; यानी भाई दो भाग तो बहन एक भाग। मिताक्षरा क़ानून जो भी कहे, पुत्र के न होने पर विधवा ही पति की संपत्ति की पूर्ण स्वामिनी होगी।

आशा है, हमारी बहनों को इन प्रयत्नों से प्रसन्नता होगी और दिलचस्पी के साथ वे इनकी गति-विधि पर ध्यान रक्खेंगी।

मताधिकार की दिशा में

मताधिकार की दिशा में भारत बढ़ तो रहा है, पर कई बहनें उसे काफ़ी नहीं समझतीं। श्रीमती मायादेवी नामक एक बहन ने हाल ही एक लेख 'हिन्दुस्थान टाइम्स' में लिखा है। उनका कहना है कि कौंसिलों के लिए उम्मीदवार होने का मौजूदा वातावरण स्त्रियों के लिए विशेष उपयुक्त नहीं है। स्त्रियों की मौजूदा हालत के मुताबिक चुनाव का कोई सरल पर प्रभावशाली उपाय निकालना ज़रूरी है। और इसके लिए उनकी यह सूचना है कि स्त्रियों का पृथक् निर्वाचन और प्रतिनिधित्व हो और वह स्त्रियों के द्वारा और स्त्रियों के लिए ही हो। शुरुआत के लिए, उनका कहना है कि, परीक्षण के तौर पर प्रान्त के प्रत्येक डिवीज़न का एक-एक स्थान और चुनाव स्त्रियों के लिए पृथक् कर दिया जाय। यही क्रम स्थानिक स्वशासन संस्थाओं में होना चाहिए। ग़ैरसरकारी मेम्बरों को नामज़द करने की प्रथा की आप सिद्धान्ततः विरोधी हैं और स्त्रियों के लिए कौंसिल की सदस्यता को रक्षित रखने को आप राजनैतिक शिक्षा के सिद्धान्त का विघातक मानती हैं। जातिगत चुनाव का भी आपने विरोध किया है और सदस्यता के लिए उम्मीदवार स्त्री के

गुणों में इस बात पर आपका विशेष ज़ोर है कि वह सब जातियों की विश्वासपात्र हो ।

काश्मीर में बाल-विवाह-निषेध

काश्मीर राज्य में हाल में ही एक नया विधान स्वीकृत हुआ है । इसके अनुसार अब वहाँ उस वक्त तक किसी लड़के-लड़की का विवाह न हो सकेगा, जब तक कि वे क्रमशः १८ और १४ वर्ष की उम्र के न हो जावेंगे । यही नहीं, बल्कि १८ वर्ष की उम्र प्राप्त किया हुआ आदमी भी यदि किसी छोटी लड़की से विवाह करेगा तो उसे और उसके साथ ही ऐसा विवाह कराने वाले या जान-बूझ कर उसमें मदद या प्रोत्साहन देने वाले को भी क़ैद या जुर्माना अथवा दोनों प्रकार की सज़ा दी जायगी । इसमें क़ैद एक साल तक की सादी और जुर्माना १०००) रु० तक होगा । आगे चलकर विधान में यह भी कहा गया है कि जो आदमी ५० वर्ष की उम्र हो जाने के बाद किसी अल्पायु लड़की से शादी करेगा उसे ४ साल की क़ैद या २०००) रु० तक जुर्माना अथवा क़ैद और जुर्माना दोनों की सज़ा दी जायगी ।

इसमें शक नहीं कि इस विधान के द्वारा काश्मीर राज्य ने सुधार की दिशा में पग बढ़ाया है । ब्रिटिश भारत में हम देखते हैं कि सारडा महाशय का बाल-विवाह-निषेध बिल अभी सिलेक्ट कमिटी की ही खटाई में पड़ा है और काश्मीर ने यह विधान पास करके बाल-विवाह पर प्रतिबन्ध लगा भी दिया । कोटा, भरतपुर आदि कुछ रियासतें और भी पहले बाल-विवाह के विरुद्ध हुक्म निकाल चुकी हैं । अब भी अगर ब्रिटिश भारत सारडाजी के बिल को न अपनाये तो उसके लिए यह शर्म की बात होगी ।

दिल्ली में नारी-जागृति

दिल्ली में भारतीय महिला-परिषद् के अधिवेशन से स्त्रियों में जागृति की एक नयी लहर उठी है । 'सरस्वती-क्लब' नाम से वहाँ की स्त्रियों ने अपना एक क्लब खोला है, जिसका उद्देश्य है स्त्रियों की शिक्षा और स्वास्थ्य-विषयक प्रगति । इसमें स्त्रियों के लिए बेडमिण्टन आदि हलके और मनोरंजक खेलों का प्रबन्ध होगा, जिससे उनके स्वास्थ्य को लाभ पहुँचेगा, और मानसिक प्रगति के लिए विभिन्न वि पर वादविवाद तथा व्याख्यानादि हुआ करेंगे। उधर म्यु सिपैलिटी की शिक्षा-समिति ने वयस्क स्त्रियों के लिए ऐसा स्कूल खोलने का विचार किया है कि जिसमें उनके के काम-धन्धों के अतिरिक्त भाषा के साथ-साथ सीने-पि स्वास्थ्य-सफ़ाई और सेवा-शुश्रूषा की भी उन्हें शिक्ष जायगी । इसके अलावा मुसलमान स्त्रियों की विशेष के लिए भी कुछ मुसलमान बहनें बड़ा प्रयत्न कर रही इन सब प्रयत्नों में दिल्ली की स्त्रियाँ सफल हुईं तो, शक नहीं कि, उनकी सफलता से दूसरे शहरों की स्त्रि लाभ उठायेंगी । भगवान् उन्हें सफलता दें ।

खानों की स्त्री-मजदूर

एक विज्ञप्ति द्वारा सरकार ने अपना यह इरादा ज़ किया है कि खानों के अन्दर स्त्रियों की मजूरी करने की को वह उठाना चाहती है । कोयले व नमक की खान को सरकारी रियायतें प्राप्त हैं उनमें स्त्री-नजूरों की क्रमशः कम होती हुई १९३९ की पहली अप्रैल तक बि समाप्त हो जायगी । और दूसरी तमाम खानों में पहली अप्रैल से स्त्रियों से मजूरी लेना बन्द कर जायगा । धन्यवाद !

पदक की सूचना

श्रीयुत सूर्यनारायण व्यास लिखते हैं—

"जो लेखिका 'मालवे में स्त्रियों की दशा' और वीय स्त्रियों की उन्नति के साधन' विषयों पर सर्वोत्त लिखेंगी उन्हें मैं, अपनी स्वर्गीया पत्नी श्रीमती कम के स्मरणार्थ, एक-एक 'कमला-पदक' भेंट करूँगा। रौप्य होंगे, और उनके साथ एक-एक प्रति महात्मा गाँ 'आत्म-कथा' की भी दी जायगी। पर लेखिका का माल होना अनिवार्य है। लेख की उत्तमता के निर्णायक 'त्यागभूमि' के संपादकद्वय, श्री वैजनाथ महोदय और गोपीवल्लभ उपाध्याय । 'त्यागभूमि' के द्वितीय वर्ष के में इसका निर्णय होगा ।"

आशा है, मालव-निवासी लेखिका बहनें इ समुचित ध्यान देंगी।

मंगल क्रान्ति की तैय्यारी कीजिए

चारों ओर से आवाज आ रही है कि हिन्दी सामयिक साहित्य में और युवकों की जीवन तथा कला विषयक अभिरुचि 'त्यागभूमि' विनय पूर्वक किन्तु निश्चित रूप से क्रान्ति करती जा रही है। 'त्यागभूमि' के लेख, टिप्पणियों, कविताओं और चित्रों के चुनाव का यह सब से बढ़िया प्रमाणपत्र है।

नवयुग के इस क्रान्तिमय संदेश को घर घर में पहुँचाने के खयाल से ही इस

१२०, पृष्ठ २ रंगीन और अनेकों सादे किन्तु सुरुचि सम्पन्न

और दिल को ऊँचे उठाने वाले चित्रों सहित और विज्ञापन रहित मासिक पत्रिका का मूल्य

लागत से भी कम ४) वार्षिक रखा गया है

स्त्रियों के लिये और नवयुवकों के लिये ख़ास तौर से अलग स्तम्भ हैं

'त्यागभूमि' जैसी पत्रिका को स्वावलम्बी बनाने के लिये

२०००० ग्राहकों की आवश्यकता है

क्या यह असम्भव है ?

बिलकुल नहीं। इंगलैंड, संयुक्त राज्य (अमेरिका), जापान, जर्मनी आदि देशों में बीसियों ऐसे पत्र हैं जिनकी ग्राहक संख्या लाखों पर चली गई हैं। इनमें से प्रत्येक देश की जन-संख्या भारत से चौथाई भी नहीं। फिर भारत में इतने ग्राहक क्यों नहीं हो सकते ?

यदि इस अपील को पढ़ने वाले प्रत्येक पाठक

एक एक ग्राहक बना देने का निश्चय कर लें (जो कि बिलकुल आसान बात है) तो एक ही मास में २०००० ग्राहक बन सकते हैं। प्रति वर्ष हज़ारों रुपयों की घटी उठाकर, विज्ञापनों की दूषित आय से अपने को अलग रख के और लागत से भी कम मूल्य में अपनी संख्याएं पहुँचा कर 'त्यागभूमि' अपने त्याग का परिचय दे ही रही है

सहृदय और देशभक्त सज्जनो, अब आपकी बारी है

आशा है केवल एक एक ग्राहक बना देने की हमारी यह अपील व्यर्थ न जायगी

(पीछे देखिए)

'त्यागभूमि' के उद्देश्य

१—त्यागभूमि केवल बुद्धि की भूख बुझाने नहीं आई है। देश के कोने-कोने में और समाज के अंग-अंग में गहरी और स्पृहणीय उथल-पुथल मचाने की धुन इसे सवार है।

२—त्यागभूमि मनुष्यता और स्वाधीनता को एक ही वस्तु मानती है। वह उस राज्यप्रणाली को सर्वश्रेष्ठ मानती है जिसमें प्रजा के सच्चे प्रतिनिधि प्रजा के हित के लिए प्रजा की सुव्यवस्था करें।

३—त्यागभूमि मानती है कि सत्य मनुष्य का परम साध्य और अहिंसा उसकी परम नीति है। फलतः त्यागभूमि की नीति खुली, सीधी और मधुर होगी।

४—त्यागभूमि असत्य, अन्याय, अत्याचार और असमानता की प्रबल विरोधिनी है।

५—सामाजिक कुरीतियों और दुर्बलताओं की यह दुश्मन है। समाज-सुधार में वह सदा आगे रहेगी।

६—किसानों, मजूरों को तो वह अपने स्वजन समझती है और स्त्रियों एवं अछूतों के उद्धार को अपना परम कर्त्तव्य। इसकी सेवा करने में वह अपने बस कोई बात उठा न रक्खेगी।

७—शहरों की अपेक्षा गाँव उसके हृदय के अधिक नज़दीक हैं। गाँवों को ऊपर उठाने और शहरों को बुराइयों से छुड़ाने का यह यत्न करेगी।

८—दुर्व्यसनों, अश्लीलता तथा कामुकता के बढ़ाने वाले चित्रों, विज्ञापनों एवं पुस्तकों का यह विरोध करेगी। त्यागभूमि स्वयं कोई बाहरी विज्ञापन नहीं छापती।

९—त्यागभूमि खादी और चर्खे को भारत का युगधर्म मानती है और अपने जीवन का पवित्र व्रत।

संक्षेप में—लोकरुचि की अंधी आराधना नहीं उसका सहेतुक उन्नयन त्यागभूमि का जीवनोद्देश है।

'त्यागभूमि' के ग्राहक आपको क्यों होना चाहिए!

ज़रा ख़याल कीजिए

१—सब से पहले और केवल मूल्य ही को देखा जाय तो और पत्रिकाओं के हिसाब से 'त्यागभूमि' का मूल्य कम से कम ६) या ६॥) रक्खा जाना चाहिए था जैसा कि इतने ही पृष्ठों की अन्य पत्रिकाओं का है। पर त्यागभूमि का मूल्य तो डाक व्यय सहित केवल वार्षिक ४) ही है।

२—'त्यागभूमि' गंदे और लुभावने विज्ञापनों में आपको नहीं लुभाती। एक मासिक पत्रिका के लिए विज्ञापनों की आमदनी कम नहीं होती। फिर भी पाठकों के हित के ख़याल से त्यागभूमि अपने आपको इस दूषित आय से अछूती रखना चाहती है। इससे पाठक और उनका धन भी धूर्त विज्ञापनबाजों के चंगुल से बचता है, और वे अपनी शक्ति, समय और द्रव्य कहीं अच्छे कामों में लगा सकते हैं। पाठक देखेंगे कि त्यागभूमि के इस त्याग को देखते हुए अपनी घटी को पूरी करने के लिए उसे अपना वार्षिक चन्दा अन्य पत्रिकाओं से भी अधिक रखना चाहिए था।

३—परन्तु त्यागभूमि का उद्देश साहित्य का व्यवसाय करना नहीं है। वह कष्ट सहकर भी पाठकों की सेवा करने के लिए आई है।

अतएव पाठक त्यागभूमि से तभी अधिक से अधिक सेवा ले सकेंगे जब वे अधिक से अधिक संख्या में उसके ग्राहक बनकर व बनाकर उसके जीवन-संघर्ष को सौम्य करने में सहायक होंगे।

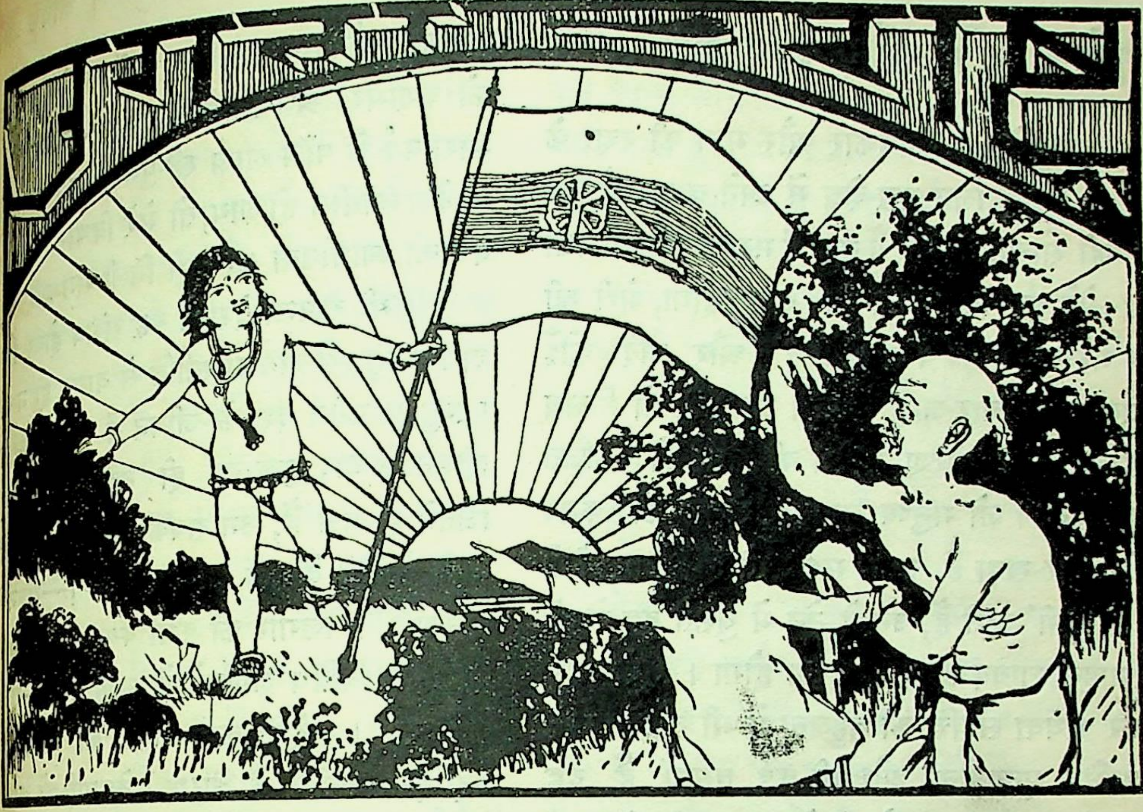

नव युवकों से—

(१)

की प्यारी लकुटी हो, दीन हृदय के जीवन-धन।
भूमि हित कर देते हो, अपना सर्वस भी अर्पण।
-विहीन तुम्हारा होता, निर्मल मन-मानस का त्याग।
श्वासों तक रटते हो, अपना वह युवकोचित राग।

(२)

कितना सुन्दर हो जाता है—अहा! आन पर मर जाना,
शुभ स्वदेश के लिये समर्पित अपना जीवन कर जाना।
जीवन-हीन दुःखी जीवों में नव जीवन का भर जाना,
कई करोड़ों के हृदयों में, उज्वल स्मृति का धर जाना।

(३)

मातृभूमि की तुम आशा हो, नवयुवकों! आगे आओ,
शुभ स्वराज्य-चर्खा-खादी का पावन मन्त्र सुना जाओ।
सदियों से पिछड़ स्वदेश को, एक बार आगे लाओ,
जिससे 'रामराज्य' भारत में इस दुर्दिन में फिर पाओ।

चतुर्वेदी रामचन्द्र शर्मा 'विद्यार्थी'

विद्यार्थी और राजनीति

स्वदेश के अधिकार और मान की रक्षा के लिए युद्ध-क्षेत्र में जाने वाला सैनिक यह नहीं सोचता है कि 'मैं युद्ध में मर जाऊँगा तो क्या होगा—मेरे वृद्ध माता-पिता का क्या होगा, मेरी स्त्री और मेरे बच्चों का क्या होगा ?' और यदि कोई सैनिक इस विचार-जाल में फँस जाता है, तो निश्चय समझिए, उसके कारण स्वदेश की सेना को पराजित होना पड़ेगा। जो मनुष्य जान पर खेलने को कमर बाँधे तैयार खड़ा है, उससे सब डरते हैं। जिन लोगों को 'काबुली' कहते हैं, उनको ट्रेन में घुसते हुए रोकने का साहस शायद ही कोई करता होगा। भूखे-प्यासे रहकर अथवा संपत्ति की बहुलता में भी जीवित रहने से अधिक मूल्यवान् और भी कई वस्तुयें हैं, यह समझ लेना आवश्यक है। घोर मानहानि, देश की पराधीनता आदि को चुपचाप सहते हुए प्राणों का मोह रखना पाप है।

जब मैं यह देखता हूँ कि देश के कई सुशिक्षित और अनुभवी पुरुष भी व्यक्तियों के जीवन को देश के कार्य की अपेक्षा अधिक महत्व देते हैं, तो मुझे निराशा होती है और एक प्रकार से उनपर तरस आता है। असहयोग-आंदोलन के समय जिन विद्यार्थियों ने स्कूल या कालेज छोड़ दिये, उनके 'कैरियर' (जीवन) खराब कर देने का दोष गाँधीजी पर लगाने वालों की कमी नहीं है। समझ में नहीं आता, 'कैरियर' क्या होता है ! मनुष्य के जीवन-मरण के विषय में विस्मयकारक खोज करने वाले भारतवर्ष में, कुछ व्यक्तियों का, जीवन-काल में से कुछ समय पराधीनता को पाश को दृढ़तर बनाने वाली शिक्षा से हटकर देश-सेवा में लग जाना अपने आपको देश के नेता समझने वालों को भी अखरता है—यह देखकर मर्मवेदना हुए बिना नहीं रहती। अहिंस
को क्षणभर अलग रख कर यह कल्पना करें
भारतवर्ष के पाँच लाख स्त्री-पुरुषों का रक्तपात हो
भी देश स्वाधीन हो जाय, तो मेरे विचार से तो भार
वर्ष को स्वाधीनता सस्ती ही मिली समझनी चाहि

किसी स्वतन्त्र देश में यह संभव होगा कि
अथवा बहुत से लोग राजनीति से वास्ता ही न रखें
परन्तु पराधीन देश के जीवन में तो राजनीति
छोड़ने के बाद कुछ रह ही नहीं जाता। वहाँ
जितने ही प्रश्न हैं, उन सबका सीधा संबन्ध रा
नीति से है। देश में दारिद्र्य क्यों ?—राजनीति
कारण। रोज़गार की कमी क्यों ?—राजनीति
कारण। विविध जातियों में कलह क्यों ?—राज
के कारण। स्वदेशी कला-कौशल को प्रोत्साहन
नहीं ?—राजनीति के कारण। देशवासियों का दे
अपमान क्यों ?—वही राजनीति के कारण। यहाँ
कहना होगा कि हमारी राजनीति के हम मा
बन जावें, तो हमारे बहुत से सामाजिक प्रश्न भी
हो जायँ। विदेशी कहते हैं—'भारतीयो, तुम स
जिक दृष्टि से पिछड़े हुए हो, इसलिए स्वाधीनत
योग्य तुम नहीं हो।' हम कहते हैं—'भाइयो, ह
स्वाधीनता के मालिक तुम बन बैठे हो, इसलिए स
जिक दृष्टि से हम तुम्हें पिछड़े हुए दिखाई दे
अथवा कुछ पिछड़ भी गये हैं।'

विद्यार्थियों के संबन्ध में जब राजनीति श
बोला जाता है, तो इसका अर्थ क्या है? के
विद्यार्थी लेजिस्लेटिव असेंबली या कहीं की म्युनि
पैलिटी की मेम्बरी की उम्मीदवारी तो करते न
विद्यार्थियों की राजनीति तो यही है कि आ
की परिस्थिति से संबन्ध रखने वाली बातों से अ
आपको परिचित करना—उनपर विचार कर
किसी स्टेशन पर से महात्मा गांधीजी, माल

ादि निकलें' तो उन्हें देखने को चले जाना, उनका ीं पर व्याख्यान हो तो उसे सुनने को चले जाना; के जीवनचरित्र पढ़ लेना; स्वदेशी वस्त्र पहना, ीटोपी लगाना, और इस बात के मर्म को सम- ा कि हमारा देश पराधीन है; और इरादा करना देश की स्वाधीनता के लिए कुछ हमें भी करना । यह सब कुछ राजनीति है, जिससे, हमारे कुछ नुभवी पुरुष कहते हैं, विद्यार्थियों को दूर रहना हिए। 'यङ्ग इण्डिया', 'पीपुल', 'माडर्न रिव्यू' ादि को पढ़ना और 'अमृत बाज़ार पत्रिका', 'स्वराज्य', िव्यून' आदि में से इधर-उधर की घटनाओं के ाचार पढ़ लेनां भी, कहते हैं, 'राजनीति' है। इसराय की सवारी देखना, किसी सरकारी कर्म- ारी के अभिनन्दन की सभा में जाना, 'पायनियर' र 'टाइम्स आफ इंडिया' पढ़ना और लङ्काशायर बने हुए कपड़ों के कोट-पतलून पहनकर टाई-हैट ाना-यह सब कुछ राजनीति नहीं है !

आजकल की शिक्षा-पद्धति का खंडन तो सभी ते हैं। विदेशी भाषा की प्रधानता से प्रभावित ना, विदेशियों की करतूतों की विरदावली को ना, अक्रियात्मक बातों के पढ़ने में आजकल के ुष्य की आयु के आधे भाग को बिगाड़ देना और में संसार में किसी भी कार्य की योग्यता से रह जाना, भारतीय संस्कृति को भुला देना, ीर को अस्थिचर्मावशेष बना डालना—यही तो जकल की शिक्षा है ! फिर शासन करने वाले तो ो ही, परन्तु देशवासी भी यह कहें कि कहीं इन ार्थियों को राजनीति की हवा न लग जाय ! ा पता नहीं है कि ये भारतीय विद्यार्थी संसार ीवित रहकर करेंगे क्या ? और एक हज़ार एक के दिमाग़ में भरेंगी तो यह बात वे क्यों नहीं ों और जानेंगे कि उन्हें अपने देश और समाज के लिए भी कुछ करना है ? राजभक्ति के पाठ पढ़ना और बाद में राजभक्ति के भाव से राज सेवा करते हुए जीवन-लीला समाप्त करना—यही ध्येय भारतीय नवयुवकों के लिए पर्याप्त समझा जा रहा है। कितने अफ़सोस की बात है !!

जिस विचार-स्वातन्त्र्य से बौद्धिक विकास होता है, वह तो यहाँ के सम्पादकों और नेताओं को ही सुलभ नहीं है, फिर विद्यार्थियों को पूर्ण रूप से नियन्त्रण में रखना तो उनके लिए स्वयंसिद्ध होगा ही ! जब कुछ लोग यह कहते हैं—विद्यार्थियों का राजनीति में क्रियात्मक भाग (active participation) नहीं होना चाहिए, तो इस क्रियात्मक भाग का कुछ भी अर्थ मेरी समझ में नहीं आता। यहाँ तो चर्चा करना ही पाप है, क्रियात्मक भाग की तो कथा ही और है। परन्तु जब अवसर आवे, जब विद्यार्थियों के आगे पाँव बढ़ाने की आवश्यकता हो, तो कोई कारण नहीं मालूम होता कि विद्यार्थी क्यों न राजनैतिक मामलों में भाग लें ? इंग्लैण्ड में संभवतः यह आवश्यकता नहीं है कि किसी एक या दूसरे दल के समर्थन के लिए विद्यार्थियों को कुछ करना चाहिए। मजूर दल की जीत हो या किसी दूसरे दल की—इस बात से कोई ख़ास सरोकार रखना इंग्लैण्ड के विद्यार्थियों के लिए चाहे आवश्यक न हो; परन्तु भारतवर्ष की पराधीनता तो अवश्य चिरस्थायिनी हो जायगी, यदि विद्यार्थियों की कालेज छोड़ देने के समय तक राजनैतिक विषयों में कुछ अभिरुचि नहीं बनी। इस देश की दशा तो आजकल वैसी ही है, जैसी और देशों में युद्ध के समय होती है—यहाँ पर राजनीति में भाग लेने के कारण विद्यार्थियों के विद्योपार्जन में हानि हो जायगी, उनके 'कैरियर' नष्ट हो जायँगे, यह विचार बड़ी भारी अदूरदर्शिता का है; क्योंकि, भारतीयों का विद्यालाभ और 'कैरियर' का

लोभ भी देश की पराधीनता के जाल की कम से कम दो डोरियाँ हैं। यों तो सभी राष्ट्रों में व्यक्तियों के हानि-लाभ का गौण स्थान होता है; परन्तु भारतवर्ष जैसे परतन्त्र राष्ट्र में सभी देशवासी रणक्षेत्र के सैनिक हैं, इसलिए उसके सामने निज के हानि-लाभ का विचार आना ही नहीं चाहिए। रही साहित्य आदि की उन्नति की बात, सो साहित्य आदि सब कुछ प्रतीक्षा कर सकते हैं। अफ़ग़ानिस्तान ने जीवन के अन्य क्षेत्रों में कौन सी उन्नति कर ली है? तथापि अफ़ग़ानिस्तान का सर्वत्र भारतवर्ष से अधिक सन्मान है—अथवा, सच तो यह है कि, भारतवर्ष की तो कोई स्थिति ही नहीं है। अब स्वाधीन होने के कारण अफ़ग़ानिस्तान चारों ओर उन्नति कर सकता है। भारतवर्ष को और सब विचार छोड़ कर एक ही प्रश्न—पराधीनता को हल करने की चिन्ता करनी चाहिए। इसीलिए इस देश की राजनीति ऐसी है, जिसके सिवाय और कुछ आगे आ नहीं सकता, जिसमें स्त्री-पुरुष, वृद्ध-नवयुवक, गृही-विद्यार्थी, सब को व्याप्त हो जाना चाहिए।

लन्दन के 'इण्डियन स्टुडेण्ट्स यूनियन एण्ड होस्टल' के वार्षिक अधिवेशन के अवसर पर दिये हुए अपने अभिभाषण में एक स्थल पर सुप्रसिद्ध शिक्षा-महारथी सर माइकेल सैडलर ने जो कुछ कहा है, उसका सारानुवाद देखिए—

"राजनीति का (मनुष्य के) जीवन पर बड़ा असर है। इसलिए जो शिक्षा-केन्द्र किशोर बालक और बालिकाओं को जीवन के लिए तय्यार करते हैं, वे अपने आपको "राजनीति से अलग नहीं रख सकते। सारे विश्वविद्यालय सदा से ही राजनैतिक शास्त्रार्थ के घटनास्थल रहे हैं।...........अण्डर ग्रेजुएट-काल में राजनीति पर विचार करना और राजनीति की चर्चा करना उन मनुष्यों के शिक्षण का अङ्ग शताब्दियों से रहा है, जिनका अपने देश सार्वजनिक मामलों में आगे बढ़कर भाग लेने विचार रहा है...............।"

और भारतवर्ष में तो प्रत्येक देशवासी के लि आवश्यक है कि वह देश के सार्वजनिक मामलों आगे बढ़ कर भाग ले। फिर भला विद्यार्थी ही कै उससे अछूते रह सकते हैं? वही तो और भी इ पीड़ित देश के आशा-भरोसा हैं।

हीरालाल शा

स्फुट विचार

जब तक धनी पूंजीपति, शक्तिमान लोग किस मज़दूरों तथा श्रमजीवियों की कमाई को लूटते हैं, उसका नाम सभ्यता, राज्य-व्यवस्था, शांति उन्नति रक्खा जाता है। परन्तु यदि कोई अभागा दूर व किसान आँखें खोलकर लूट का सिलसिला करने का यत्न करता है, तो उसका नाम शांति- अराजकता, असभ्यता और विद्रोह र जाता है।

लाहौर की ठण्डी सड़क पर प्रातः वायु-सेव लिए जाते हुए मुझे एक तीतर वाला मिला करता खाली पिंजरा उसके हाथ में होता है और तीतर से ३०-४० गज़ की दूरी पर उसके पीछे दौड़ता आता है। चकित होकर मैंने पूछा-'क्यों यह तीतर उड़कर भाग क्यों नहीं जाता?' मिला -'इस अभागे का प्रेम तो पिंजरे की तीलि हो गया है। मेरी तरफ़ से खुला छोड़ देने प यह पक्षी अवसर से लाभ नहीं उठाता।'

छबील

राष्ट्र-यज्ञ

(शेषांश)

हमारे देश में नौकरशाही बड़ी प्रबल है। तुम कहते हो कि वह तुम्हारे राष्ट्रीय आदर्श बाधक होती है। उस सरकारी बाधा के विरोध में अपने आपको बलिदान कर देना चाहिए। हमारी अवश्य होगी। देश की सेवा में सहर्ष सर्वस्व समर्पण कर देने से, मेरा विश्वास है, ऐसी नैतिक शक्ति उत्पन्न होगी, जो कि राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए प्रधान शर्त है। हमसे किस वस्तु की मांगी जाती है? पत्रं, पुष्पं, फलं, तोयं। किन्तु, सब हमें भक्तिपूर्वक अर्पण करना चाहिए। इस समय देश-माता के चरणों पर हम कौनसा "पत्र" अर्पण कर सकते हैं? प्रत्येक इंच स्वदेशी वस्त्र और स्वदेशी वस्त्र का प्रत्येक धागा मेरी समझ में वह "पत्र" है, जो कि प्रभु को प्रिय होगा; क्योंकि, प्रत्येक टुकड़े और धागों से भारत के भूखे भगवानों की सेवा होगी। क्योंकि, वे भगवान के अनेक रूप—अनन्त प्रतिमायें हैं। भूखे-दुखी दीन-दरिद्र पर दया करना ही दीनानाथ भगवान कृष्ण की भक्ति करना है। जब की प्रत्येक सन्तान स्वेच्छा से स्वदेशी का समादर करके राष्ट्र-यज्ञ में आहुति देगी, तब हमें समझना चाहिए कि स्वाधीनता का सुप्रभात समीप ही है—उसके पूर्व नहीं।

श्लोक में फिर जल-यज्ञ का उल्लेख है। सिन्ध एक बहुत सुन्दर प्रथा है कि गर्मी के दिनों में बड़े-बड़े घड़ों में पानी भर कर जगह-जगह रक्खा जाता है। इन प्याउओं से हज़ारों यात्रियों को प्रति दिन पानी पिलाया जाता है। धनी लोग इनका ख़र्च उठाते और उससे पुण्य अर्जन करने में विश्वास करते है। प्यासे को पानी पिलाना पुण्य है। बहुतसे लोग रुपया-पैसा ख़र्च करने में असमर्थ हैं, किन्तु, वे दीनों को प्रेम का पानी तो पिला सकते हैं। दया-रूपी जल का तो दान दे सकते हैं? दीनों के साथ भाई-चारे का बर्ताव करना ही इस जल-दान करने का असली तात्पर्य है। दीनों के साथ भ्रातृभाव रखने से ही स्वराज्य का दिन समीप आ सकता है। लेकिन, आज जैसी स्थिति है उसे देख कर, यह नहीं कहा जा सकता कि हमने भारत के दीन-दरिद्रों के साथ अपनी एकता स्थापित करली है।

इसके बाद श्लोक में पुष्प-यज्ञ की चर्चा है। हिन्दुओं के यहाँ पूजा के समय देवताओं को पुष्पांजलि चढ़ाई जाती है। हम इस राष्ट्र-यज्ञ में मातृभूमि के चरणों पर किन पुष्पों की अंजलि अर्पण कर सकते हैं? एक माता 'मेरा बेटा! मेरा बेटा!' कह कर रो रही थी और कह रही थी—वे दुष्ट मुझ से छीन कर ले गये, वह देश-सेवा के लिए जेल में ठूँस दिया गया, और मैं यहाँ बैठी रोती हूँ। मैंने उससे कहा—'हाँ, वह फूल तुम्हारे उद्यान से छीन लिया गया है; किन्तु वह पैरोंतले नहीं कुचला गया। तुम्हारा प्रेम-पुष्प कृष्ण के पदपद्मों पर अर्पित किया गया है।' पता नहीं कि आज कितने माता-पिता अपनी सन्तानों को देश-सेवा के लिए शिक्षित करने को तैयार हैं! कोरिया देश का स्वातंत्र्य-संग्राम शहीद बालक-बालिकाओं के रक्त से रंजित है। पर भारत में आज कितने बालक-बालिकायें ऐसे हैं, जिनके माता-पिता उन्हें स्वातंत्र्य-संग्राम में बलिदान करने के लिए प्रस्तुत हैं?

फिर फल का यज्ञ है। जीवन का फल क्या है? आदर्श के लिए कष्ट-सहन। सुख की इच्छा, विलासिता या यश-प्राप्ति जीवन का फल नहीं है। जीवन का फल है, तपस्या। आज श्रीकृष्ण देश के लिए तपस्या चाहते हैं। हमारे राष्ट्रीय रण के अन्तर-हृदय में यह तपस्या की भावना जिस परिमाण में होगी, उसी

परिमाण में हमें स्वराज्य-प्राप्ति होगी। मुझे दुःख है कि अन्य स्थानों के समान इस आन्दोलन में भी असंतोष, असहिष्णुता घृणा और राग-द्वेष का अंश मौजूद है। यदि हमारा संग्राम इस तपस्या की भावना से प्रेरित हो, तो हमारे लिए क्या पाना असंभव है? सिक्खों के गुरु श्री अर्जुनदेव के विषय में कथा है कि बादशाह ने उनपर अनेक अमानुषिक अत्याचार किये। वह गरम लोहे के तवों पर बिठाये गये। उनके शरीर पर जलती हुई लाल बालुका फेंकी गई। किन्तु यह सब किस अपाध के लिए? उनका अपराध यही था कि वह समानता के सिद्धान्त में विश्वास करते थे और जनता को जनार्दन का रूप जान कर प्यार करते थे। वह कारागार में बन्द किये गये। उनकी हज़रत नामक एक बड़े भारी मुसलमान फ़क़ीर से मित्रता थी। हज़रत के अनेकानेक अनुयायी थे। वह गुरुदेव से कारागार में मिले और उनसे कहा—मैं तुम्हें बाहुबल से अथवा पंजाब में विप्लव कराके मुक्त करना चाहता हूँ। किन्तु, गुरु ने उनसे कहा—मेरा कष्ट-सहन भले के लिए है; मेरे कष्ट का बदला लेने की आवश्यकता नहीं। जितना ही अधिक मैं कष्ट सहन करूंगा, उतना ही मेरा धर्म फैलेगा। मैं लोगों को क़ानून भंग करने के लिए उत्साहित न करूंगा। लोगों को चहिए कि इस अत्याचार का विरोध अपने ईश्वर के रूप में करें। इस प्रकार अर्जुनदेव ने तपस्या की भावना और तप करने की शक्ति का ज्वलन्त आदर्श बताया। और वह सिख राष्ट्र के निर्माणकर्ता सिद्ध हुए।

आधुनिक नीतिशास्त्र के अनेक पश्चिमी उपदेशकों ने कहा है कि श्रेय ही सुख है; किन्तु, गीता का उपदेश है कि त्याग ही श्रेय है। त्याग ही श्रेय है—यह शिक्षा निराशा-वादिनी नहीं है, किन्तु उसके अन्दर एक गहन आशावादिता निहित है। क्योंकि सहर्ष स्वार्थत्याग या आत्म-समर्पण ही सच्चा त्याग है और यदि भारत की उच्च श्रेणियों तथा जनसाधारण में इस संघर्ष अथवा स्वार्थत्याग की भावना का पुनर्जन्म हो जाय, तो भारत अपनी प्राचीन प्रतिज्ञा को पुनः प्रकाशित कर सकेगा। भारत संसार के राष्ट्रों के सन्मुख यह सिद्ध कर सकेगा कि स्वाधीनता रक्तपात, हिंसा, या युद्ध के बिना किस प्रकार जीती जा सकती है!

ब्योहार राजेन्द्रसिं

मिश्र का महात्मा

(३)

समस्त मिश्र देश में आन्दोलन की एक सी बह गई। यत्र-तत्र-सर्वत्र विदेशी शास के अत्याचार की गाथायें सुनाई देने लगीं। इतने समय में, जिसमें इतने विराट आन्दोलन की संभा का अनुमान भी किया जाना कठिन है, इसमाइल और वीर गोरडन के नेतृत्व में मिश्र का राजनैतिक आन्दो जड़ पकड़ने लगा। सारा देश एक साथ उस कुशास मुक्त होने के लिए आतुर हो उठा। शांत और वैध त से सारा मिश्र देश धीरे-धीरे ब्रिटिश-शासन से संबंध विच्छेद करने लगा। विजय के सूर्य का प्रकाश दिशा में दिखाई पड़ने लगा।

इस्माइल अमीर की आज्ञा से एक विशाल यात्रा तैयारी की गई। अल-अज़हर के निर्वासित विद्यार्थी, पक तथा स्वयं-सेवकों की देख-रेख में हज़ारों मिश्र-वा ने काहरा की यात्रा आरंभ की। काहरा से प्रयाण समय इस्माइल ने जो दृढ़ निश्चय किया था, उसे करने की ये तैयारियाँ थीं। वह आत्म-सन्मान और के साथ काहरा में प्रवेश करना चाहता था। हज़ारों स्वदेश-बांधवों ने उसका साथ दिया।

उस देश-व्यापी आन्दोलन को कुचल डालने के इस्माइल की चेष्टाओं को असफल बनाने के लिए, शासकों ने अनेक प्रयत्न किये; पर वे सब के सब निष्फल गये! उनके ज़ोर-ज़ुल्म से उलटी आग बढ़ी, जिसमें

नाश हुआ । मिश्र के बालक, वृद्ध, युवा, नर, नारी, ों के मन पर देश-प्रेम की छाप बैठ गई । उस देश-प्रेम दूर करके अपना आतंक जमाये रखना ब्रिटिश शासकों लिए अब असंभव हो गया ।

काहरा में अपार जन-समुदाय के साथ प्रवेश करने का समीप आ गया ।

सूर्य उदय हो रहा था, उसके प्रखर प्रकाश में वह दृश्य लौकिक था । तूफ़ानी समुद्र के जहाज़ों के पालों की भांति विशाल जन-सागर में झण्डे फहरा रहे थे । काहरा की गली उन यात्रियों का स्वागत करने के लिए सजी हुई । झरोखे-झरोखे में काहरा-वासी नारियाँ फूलों को अपने आँचल में लिये उनका स्वागत करने के लिए उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रही थीं । अपने नेता की माँग पर-सेवा के लिए घर-बार छोड़ कर कर्तव्य-क्षेत्र में कूद पड़ने वीरों के परिजन रास्तों पर टकटकी लगाये खड़े थे । के बाद हर्ष का यह प्रकाश लाखों नर-नारियों में स्पष्ट दिखाई दे रहा था ।

आज का दिन मिश्र-वासियों और अमीर इस्माइल के विजय का दिन था । इस प्रकार नगर-प्रवेश पर अनेक करके भी कोई प्रतिबंध न रख सकना सरकार की का लक्षण था । अल-अज़हर का द्वार अवरोध करके धर्म के प्रवाह के उद्गम-स्थान को ध्वंस करने वाले शासन की आज पराजय हो गई ! यह लाखों मिश्र-यों का सम्मिलित सत्याग्रह था, उसे कौन पददलित सकता था ? खुदा के बन्दे आज सगर्व अपनी जन्मभूमि लौट रहे थे । मुहम्मद साहब निर्वासन के बाद विजेता भांति जिस प्रकार मक्का को लौटे, उसी प्रकार आज वासियों के साथ इस्माइल भी काहरा में प्रवेश कर था । वर्ष के वर्ष बीत जाते हैं, उसके बाद पुरानी घटफिर से घट जाती हैं ! कहते हैं, इतिहास अपने आप पुनरावृत्ति करता है ।

इस्लाम की जय-ध्वनि से आकाश गूंज रहा था । जब इस्माइल दिखाई दिया, तो हर्ष-ध्वनि का कुछ वारापार न रहा ! लोग बड़ी आतुरता से उसकी प्रतीक्षा कर थे । वह सबसे पीछे आ रहा था और हो सकता तो इस सन्मान का बोझ न उठा सकने के कारण शायद वह अपने आपको उससे अलग रख लेता । वह तो खुदा का एक बंदा मात्र है, यह विजय उसी परमात्मा की है । परमात्मा के स्वरूप में वह काहरा में प्रवेश कर रहा है ? नहीं, यह तो उसके लिए लज्जा की बात है ।

एकत्र जन-समुदाय सोच रहा था कि इस्माइल काहरा में एक विजयी सम्राट् की भाँति, स्वर्ण और रत्न-जटित वेश-भूषा से अलंकृत, बड़े ठाट-बाट से प्रवेश करेगा । परन्तु, उसे देख कर तो उनके आश्चर्य का ठिकाना ही न रहा । वह सीधे-सादे कपड़े पहने, नत-मस्तक, पैदल चला आ रहा था !

यात्रियों का वह विशाल समुदाय अल-अज़हर विद्यालय के भवन में तथा काहरा-निवासियों के घरों में टिक गया । दूसरे दिन अल-अज़हर के विस्तृत प्रांगण में लाखों नर-नारी एकत्र हुए । प्रांगण के उस सिरे पर की खुली मसज़िद में, क़िबले के आगे नत-मस्तक होकर, विद्यालय के प्रधान अध्यापक ने ईश्वर-प्रार्थना की । प्रार्थना के अंत में "अल्लाह ! अल्लाह !!" का भैरव नाद सुनाई दिया । थोड़ी देर की निस्तब्धता में लोगों की उत्सुकता स्पष्ट दिखाई दी । क़िबले के आगे प्रणाम करके जन-समुदाय का हृदय-देव आगे बढ़ता हुआ दिखाई दिया । वक्ता के स्थान पर आने पर, उसके चेहरे पर सूर्य का प्रकाश पड़ रहा था । लोगों को पहली बार उसका चेहरा साफ़ दिखाई दिया । सर्वत्र शांति स्थापित हो गई । उसके दर्शन से ही लोगों में उत्साह आ गया, उसके भाषण ने उन्हें पूर्ण उत्साहित कर दिया ।

इस्माइल अमीर के भाषण से श्रोता इतने अधिक प्रभावान्वित हुए थे कि सभी कह रहे थे कि उसने आज से पहले कभी इतना हृदय को विचलित कर देने वाला भाषण नहीं दिया । बहुत ही मंद स्वर से आरंभ करते हुए उसने कहा कि मानवता के उन्नति-पथ में परमात्मा ने आज उन्हें एक नये स्थान पर लाकर खड़ा कर दिया है । वर्षों के घात-प्रतिघात को सहन करके मिश्र पुनः जीवन के लक्षण दिखा रहा है । संसार के सन्मुख ईश्वर ने उनके मुख उज्ज्वल कर दिये हैं । उस परमात्मा की यह इच्छा थी कि यह प्राचीन राष्ट्र चिरजीवि हो ।

"आमीन ! आमीन !!" के कर्णभेदी रव को शान्त करने के लिए अपना हाथ ऊँचा करके उसने लोगों को जीवन की कठिनाइयों को बताते हुए सत्पथ पर चलने का उपदेश दिया, और कहा कि अपने ऊपर किसी को अत्याचार करने देना ईश्वर की आज्ञा न मानना है। इसके मानी हुए, अपने ऊपर खुदाई क़हर को बुलाना। अतः ईश्वर की आज्ञा मान कर पृथ्वी पर केवल उसीकी सत्ता को स्थापित करो।

"परन्तु, वह समय समीप है।" इस्माइल ने ऊँचे स्वर से कहा, "हममें से बहुत से, जो यहाँ उपस्थित हैं, उस अवसर की साक्षी देंगे।"

"मालिक ! मालिक !! तुम भी ?"—एक आवाज़ आई।

इस्माइल थोड़ी देर के लिए ठहर गया। दूसरे ही क्षण उसने कुछ चिन्ताजनक शब्दों में कहा—

"नहीं, नहीं, मेरी ये शारीरिक आँखें वह दृश्य नहीं देख सकेंगी।"

एक साथ सैकड़ों व्यक्तियों ने प्रेमपूर्ण विरोध करते हुए कहा—"ईश्वर ऐसा न करे ! ईश्वर ऐसा न करे !"

"ईश्वर की आज्ञा हो चुकी है," इस्माइल ने कहा, "मैं आप लोगों के बीच से आज अलग होता हूँ। मैं अपना काम समाप्त कर चुका। मिश्र में ईश्वर की इच्छा पूरी हो चुकी। अतः हमारे मार्ग अब अलग-अलग होते हैं। आप लोग अब मुझे फिर न देखेंगे।"

विरोध-सूचक शब्द फिर सुनाई दिये। सबने एक साथ इस्माइल से आग्रह किया कि वह उन लोगों के बीच में रहे और उनका पथ-प्रदर्शक बना रहे।

"मेरा काम हो चुका है," उसने कहा, "मेरी तुच्छ शक्तियों के अनुसार, जो परमात्मा ने मुझे प्रदान की थीं, मैं अपना काम कर चुका।"

"नहीं, नहीं"—सैंकड़ों व्यक्तियों ने चिल्ला कर कहा।

जनता का मन खूब उद्वेलित हो रहा था ! "अल्लाह ! अल्लाह !!" करते हुए सब नतमस्तक होकर झुक गये !

धीमी और शान्त प्रार्थना के आरम्भ होने पर जनता ने सिर उठाया। वक्ता का स्थान खाली था। इस्माइल अमीर चला गया था !

श्रीगोपाल नेवटिया

शूली पर

(१)

हृदय में धधक रही थी आग, देखकर अनय-नीति की
कमर कस, पढ़ा समर का पाठ, हो गये कुछ योद्धा
नया था हृदय, नया था जोश, नये भावों की उठी
नये ही साधन सब जुट गये,छिड़ गया नवजीवन का

(२)

विहँसते सेनापति ने कहा—बढ़ो आगे को मेरे
आत्म-बलि देकर जीतो समर, रह गई मंजिल थोड़ी
हुआ सेनापति का निर्देश, बढ़ गये सुभट एक पर
लिया रिपु से लोहा भरपूर, रखी निज विमलधर्म की

(३)

मर मिटे मुदित सहस्रों वीर, पालकर सैनिक धर्म
रह गये आहत हृदय अनेक, बने रिपु के बन्दी
कटेगा सेनापति का शीश, हुआ रिपु-दल का यह
व्यथित हो उठे अनेकों हृदय, अभी क्या होगा हे

(४)

खिला सेनापति का मुख कमल, हर्ष का उमड़ा
विहँस कर गर्ज उठा नरसिंह, "खड़ा हूँ मरने को
"न होगा युद्ध हमारा बंद, आत्म-बलि ही में है
और है मातृ भूमि के लिए, शीश देने में तनिक न

(५)

"चढ़ा देगी अक्षत से शीश, देश की कोटि-कोटि
बुझा लेगी रण-चंडी प्यास, जगाकर जीवन-ज्योति
क्रूरता ठिठकी सी रह गई, देख सेनापति की
खिंचा शूली का फंदा निडर, हुआ अवसान महा

(६)

जिन्होंने दिया हृदय का रक्त, कौन थे वे मतवाले
काटने बंधन जो थे चले, मातृ-भू के करने
देश के योद्धा थे नरसिंह, त्याग था जिनका
वही थे लोहा लेने चले, शत्रु से करने देश

(७)

अरे, वह आज़ादी की लता, खड़ी जो रक्त-बीज पर
पनप जायेगी निश्चय कभी, फलेगा सुरतरु सुखद
बह चलेगी स्वातंत्र्य-बयार, देश का होगा
मिटेगा ऊँच-नीच का भेद, रहेंगे सब के स्वत्व

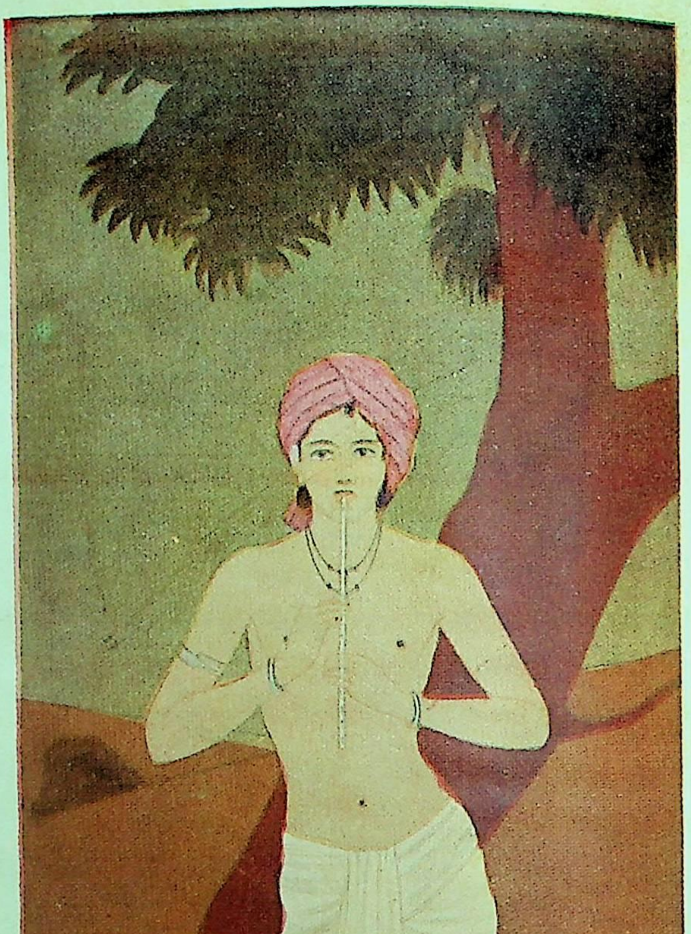

बंसीवाला

Lakshmi Art, Bombay, 8.

साहित्य-संगीत-कला

कविता में दुःखवाद

संस्कृत-साहित्य में दुखान्त कविताएँ दूषित समझी ती हैं। नाटकों में भी इस बात का विशेष ध्यान रहता है वह दुखान्त न हो। संस्कृत-साहित्य में दुःखवाद कभी न्तिम लक्ष्य नहीं माना जाता। हम लोगों को यह भी कार करना पड़ेगा कि हिन्दी पर संस्कृत-साहित्य का बहुत क प्रभाव पड़ा है अतएव हिन्दी के अधिक लेखक भी वाद से घृणा करते हैं। अभी हाल ही में श्री पं० पद्मसिंहजी ने "सुधा" में दुःखान्त कविता के विरुद्ध एक छोटासा छपवाया है। इसी विषय पर अनेक और हिन्दी के कों ने भी लिखा है और दुःखान्त कविता की खूब निन्दा है। २६ मई सन् १९२८ के 'कर्मवीर' में भी किसी एक न ने लिखा है:—"धर्मशास्त्रों में शरीर, ईश्वर का पवित्र न्दिर समझा जाता है। इसकी रक्षा और इसका लालन-न ईश्वरोपासना के ही भीतर समझना चाहिए। जो र की पवित्र भूमि को स्वयं अपने हाथों वीरान बनाते हैं त्म-हत्या करते हैं) वे धर्म की अदालत में गुनहगार समझे ते हैं। पाश्चात्य जगत्, जो नारकीय जीवन की बीभत्सता दिन अपनी आँखों देखता है, अपने हाथों ही अपना करने में बड़ी दिलचस्पी दिखा रहा है। कोई विद्यार्थी र आत्म-हत्या कर लेता है कि वह स्कूल या कॉलेज समय पर नहीं पहुँच सका, कोई लड़की इसलिए अपने पिस्तौल चला लेती है कि गाड़ी चूक गई। ऐसे चार प्रतिदिन पत्रों में मिला करते हैं। इस मानसिक न्ति का कारण खोजने के लिए हम जब उसके साहित्य ओर एक विश्लेषणात्मक दृष्टि डालते हैं तो हमें पता है कि उनके नाटकों और उपन्यासों का अन्तिम पृष्ठ से रंजित है। दर्शकों और पाठकों के हृदय में 'हत्या' रोज की साधारण घटना के रूप में अङ्कित हो जाती है। नाटकों और उपन्यासों में बहुधा दिखाया जाता है कि पात्र ने ज़रासी मानसिक उत्तेजना से विवश हो कर अपनी जान अपने हाथों ले ली! जो दृश्य बार-बार हमारी कल्पना द्वारा मस्तिष्क में ग्रहण कर लिए जाते हैं, वे, एक प्रकार से हम में अपने प्रति रागात्मिका प्रवृत्ति जगा देते हैं। हम भी पात्रों की तरह ज़रासे आवेग के वशीभूत होकर भीषणकाण्ड करने में प्रवृत्त हो जाते हैं!

हमारे पूर्वीय आचार्य मनोविज्ञान के बड़े सूक्ष्म पण्डित थे। उन्होंने साहित्य में दुःखवाद को अपना अन्तिम लक्ष्य नहीं बनाया। दर्शकों और पाठकों के मन पर आखिरी परिणाम उल्लास और उत्साह की सुनहली रेख से लिख दिया जाता है। इसका यह आशय नहीं है कि हमारे देश में आत्म-हत्या होती ही नहीं। हमारे कहने का तात्पर्य यही है कि पाश्चात्य देशों से आत्म-हत्या की संख्या हमारे यहाँ अल्प ही है। डाक्टरों का कथन है कि मन को बारबार जिस तरह के संकेतों से परिचित रक्खा जायगा, उसी तरह की भावना को वह अपने भीतर परिपुष्ट करता जायगा। अतः जब पाश्चात्य साहित्य, हत्या और दुःखवाद को ही अपना आदर्श मान कर जनता के सम्मुख रहता है, तब यदि हम वहाँ के देशों में ऐसी अशान्ति से भरे मानसिक उन्माद को देखते हैं तो इसमें आश्चर्य की कौनसी बात है? इन हत्याओं और खून-ख़राबियों का एक मात्र स्वाभाविक उपाय यही है कि देशों में स्वस्थ साहित्य का निर्माण हो जो पाठकों को मानसिक शान्ति और सुख की ओर बरबस खींच सके।"

इसी तरह के और भी अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। परन्तु यहाँ पर इतना ही लिखना पर्याप्त होगा। इसमें सन्देह नहीं कि हिन्दी में भी अब ऐसी कविताएँ लिखी जा रही हैं जो दुःखान्त कही जा सकती हैं और जिनमें दुःख

की महिमा भी गाई जाती हैं। अब हिन्दी वालों ने भी दुखान्त उपन्यासों का लिखना प्रारंभ कर दिया है। परन्तु अभी तक ऐसे लेखकों की संख्या बहुत कम है। दुःखान्त कविता के उदाहरण के रूप में मैं श्री सुमित्रानन्दनजी पंत की की निम्नलिखित कविता 'ग्रंथि' से उद्धृत करता हूँ—

आह ! यह किसका अन्धेरा भाग्य है ?
प्रलय-छाया-सा, अनन्त-विषाद-सा !
कौन मेरे वेदना के विपिन में
पागलों-सा यह अभय है घूमता !
हृदय ! यह क्या दग्ध तेरा चित्र है ?
धूम ही है शेष अब जिसमें रहा !
इस पवित्र-दुकूल से तू दैव का
वदन ढकने के लिए क्यों व्यग्र है ?
विज्ञवाचक ! और भी उपकरण हैं
शेष मेरे पास दुःख का इस समय;
किन्तु मैं सब भांति सुख-सम्पन्न हूँ
वेदना के इस मनोहर-विपिन में।
पतन के नीले-अधर पर भाग्य का
जो निठुर-उपहास मैंने आपको
आज दिखलाया, उसे किसकी दया
कर सकी है मन्द ? क्या लोकेश की ?
कुटिल भावी के अँधेरे कूप में
और कितने हैं अभी आँसू छिपे।
छलकती आँखें उन्हें प्रिय ! फिर कभी
भेट देंगी कर-कमल में आपके।

जिन लोगों ने श्रीमती महादेवी वर्मा की कविताओं को ध्यान से पढ़ा है वे मुझसे इस विषय में अवश्य ही सहमत होंगे कि उनकी कविता दुःख प्रधान ही होती है। इससे स्पष्ट है कि हिन्दी में भी अब कुछ लोग दुःखवाद की ओर अग्रसर हो रहे हैं।

(२)

इस सम्बन्ध में यूनान-देश के प्रसिद्ध विद्वान् एरिस्टोटल के मत का उल्लेख करना आवश्यक जान पड़ता है। वह कविता में दुःखवाद का बड़ा पक्षपाती था। उसका विचार था कि कविता तथा साहित्य का सर्व-श्रेष्ठ अंश अवश्य ही दुःखात्मक होगा। वह कहा करता था कि कविता की दृष्टि सर्व-श्रेष्ठ, आचार की दृष्टि से सर्वोच्च तथा व्यावहारिक से अत्यन्त अधिक लाभदायक कविता को अवश्य ही दुःखां होना चाहिए। एरिस्टोटल ने काव्य-कला पर एक प्रसि ग्रन्थ लिखा है। उसमें उसने इन सब बातों खूब अच्छी तरह से विचार किया है। वह कहता है– "दुःखांत कविता मन में करुणा तथा भय का संचार कर है और इस प्रकार यह मस्तिष्क को पवित्र कर देती है। इतना ही नहीं, दुःखान्त कविता हम लोगों की वासनाओं उचित सम्बन्ध स्थापित करती है और हम लोगों के हृदय आनन्द का संचार करती है।" वास्तव में एरिस्टोटल ने जगह दुःखांत कविता की बड़ी प्रशंसा की है। एरिस्टो दुःखांत कविता से आनन्द की प्राप्ति मानता है। विचार किया जाय तो भौतिक-जगत् में भी इसी प्रकार एक सिद्धांत माना जाता है। मीठा के हटाने के लिए का ही प्रयोग होना चाहिए। होमियोपैथी की सारी धियाँ इसी सिद्धांत पर बनाई जाती हैं और उनसे लाभ होता है। यदि भाँग के नशे को उतारना हो तो इसमें का ही प्रयोग किया जाता है। होमियोपैथी में औषधि विष, खट्टे की औषधि खट्टा और पीड़ा की पीड़ा है। इसीलिए उसमें रोग और औषधि, दोनों एक ही होता है। हमारे यहाँ इस सिद्धांत को यों कहा 'विषस्य विषमौषधम्'। यदि इसी सिद्धांत का साहित्य में भी करें तो स्पष्ट ही है कि दुःख की औषधि दुःख ही है अर्थात् दुःखांत-साहित्य से दुःख का जायगा। इसी कारण पाश्चात्यदेश के अधिक दुःखांत साहित्य को प्रायः उद्धृत करते हैं, गौरव की से देखते हैं। सिसरो, प्लूटार्च ने कई स्थानों पर साहित्य का उल्लेख किया है। स्वयं सन्त पॉल ने अपने धर्म-ग्रंथ में यूरिपिडेस (Euripides) नामक कवि कविता को उद्धृत किया है और यूरिपिडेस कविता में वाद का पक्षपाती था।

पाश्चात्य-देश के लोग दुःखांत कविता को बड़े की वस्तु समझते हैं और इसीलिए सब लोग दुःखांत

करने का प्रयत्न करते हैं । यदि डायोनिसियस नामक व्यक्ति की गणना दुःखांत-साहित्य के उत्पन्न करने वाले पुरुषों में हुई होती तो यह अपने को धन्य मानता। अगस्ट—स सीज़र को कौन नहीं जानता । उसने भी एक दुःखांत-साहित्य (Ajax) का लिखना प्रारम्भ कर दिया था । परन्तु उसे वह पूरा नहीं कर सका । पाश्चात्यदेश में सेनेका (Seneca) नामक एक प्रसिद्ध दार्शनिक होगया है। सेनेका की कई दुःखांत कविताओं का एक संग्रह भी है। कुछ लोगों का विचार है कि इस प्रसिद्ध दार्शनिक ने ही इन सब पुस्तकों को लिखा। परन्तु कुछ लोग कहते हैं कि दार्शनिक सेनेका ने 'सेनेका' नामक संग्रह की सर्वश्रेष्ठ, दुःखांत-कविताओं को ही लिखा था, सबको नहीं। ग्रीगरी नाज़िअँजन(Gregory Naziauzen) ने भी एक दुःखांत ग्रंथ लिखा है । इसका नाम है "ईसा का कष्ट" (Christ Suffering) । ग्रीगरी पाश्चात्य-देश का एक बहुत ही अधिक प्रसिद्ध विद्वान् है । वह पादरी था और अपनी पवित्रता तथा ईसा की भक्ति के लिए प्रसिद्ध था । यूनानदेश में एचिलस (Aeschylus) सोफोक्लिस (Sophocles) और यूरीपिडेस (Euripides) ये तीनों अत्यन्तप्रसिद्ध दुखांत लेखक हुए हैं । कुछ समालोचकों का विचार है कि आज तक कोई भी दुःखांत लेखक इनकी समानता नहीं कर सका, इनके बढ़ने की बात कौन कहे । परन्तु कुछ लोगों का विचार इनके विरुद्ध है। कुछ लोग समझते हैं कि शेक्सपियर दुःखांत लेखों में इनसे भी आगे बढ़ गया है ।

अंग्रेज़ी साहित्यके दुःखान्त लेखकों की संख्या बहुत अधिक है। कदाचित् अंग्रेजी-साहित्य का सब से पहला दुःखान्त तथा पाँच अंकों का नाटक "सैकविल्ले" (Sack Ville) का "फेरे" और 'पेरे' है। ये सन् १५६२ ई० में लिखे गये थे और इनपर 'सेनेका' का काफ़ी प्रभाव पड़ा है। इसके बाद तो अंग्रेज़ी-साहित्य में पाँच अंकों के दुःखान्त नाटक लिखने की प्रथा-सी चलगई । तब से आजतक अनेक दुःखान्त लेखक हो गये हैं । इन सबों का उल्लेख करने से इस लेख का आकार बहुत बढ़ जायगा । तथापि मारलोवे और शेक्सपियर का नाम लेना आवश्यक है । मारलोवे (Marlowe) का ऐतिहासिक तथा दुःखान्त नाटक 'एडवर्ड द्वितीय' बहुत प्रसिद्ध है । मिल्टन ने भी दुःखान्त कविता की है । बायरन भी दुःखान्त कविता तथा नाटक में सिद्ध-हस्त था । टॉम्स हार्डी को मरे अभी एक वर्ष भी नहीं हुआ। यह अपने समय का संसार भर में सर्व श्रेष्ठ उपन्यास लेखक माना जाता था । इसने भी दुःखान्त उपन्यास लिखे हैं । इस प्रकार स्पष्ट है कि सारा अँग्रेज़ी-साहित्य ही दुःखान्त कविता से भरा पड़ा है ।

(३)

इन सब बातों से स्पष्ट है कि पूर्व, साहित्य में दुःखवाद नहीं चाहता और पश्चिम, साहित्य में दुःखवाद को सर्व-श्रेष्ठ समझता है । अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि वास्तव में क्या होना चाहिए । एक प्रकार से यह प्रश्न मनोविज्ञान का है । हम लोगों को परीक्षा द्वारा जाँच करनी चाहिए कि दुःखान्त और सुखान्त कविताओं का मनुष्यों के ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है और तब उस प्रभाव के अनुकूल किसी एक बात का निश्चय करना चाहिए । इसके अतिरिक्त यह दार्शनिक प्रश्न भी है । यदि संसार भर के दार्शनिकों के विचारों का इस संबंध में विश्लेषण किया जाय तो पता चलेगा कि संसार में दुःखवादी और सुखवादी दोनों ही प्रकार के दार्शनिक पाए जाते हैं । शोपेनहार दुःखवादी है और उसने गणित की सहायता से सिद्ध कर दिया है कि संसार में सुख की अपेक्षा दुःख की मात्रा ही अधिक है । भारतीय दार्शनिकों में अधिक दुःखवादी हैं । इस प्रकार संसार भर के दार्शनिकों में दुःखवादियों की संख्या ही अधिक है । अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि सुख और दुःख ये दोनों मनुष्य की दो भिन्न-भिन्न प्रवृत्तियाँ हैं अथवा सुख का अभाव ही दुःख या दुःख का अभाव ही सुख है? अथवा यों कहिएः— "सुख और दुःख ये दोनों स्वतंत्र पदार्थ हैं अथवा इनमें से एक ही स्वतंत्र पदार्थ है और दूसरा इसका अभाव है । यदि एक ही स्वतंत्र-पदार्थ है तो वह सुख है अथवा दुःख ?" सन्यास-मार्ग के मानने वालों का सिद्धान्त है कि इस संसार में दुःख-ही दुःख है और सुख कोई स्वतंत्र वस्तु नहीं है । अवधूत गीता, अष्टावक्र गीता तथा बृहदारण्यक उपनिषद् में इसी मत का समर्थन किया गया है । जैन तथा बौद्ध धर्म में भी ऐसा ही कुछ कहा गया है। परन्तु कुछ भारतीय दार्श-

निक सुख और दुःख की परिभाषा देकर ही छोड़ देते हैं और इस उलझन में नहीं फँसते कि सुख अथवा दुःख में से कौन मौलिक (स्वतंत्र) है और कौन दूसरे का अभाव। उदाहरण के लिए हम नैय्यायिकों को ही ले सकते हैं। उन्होंने लिखा है:—'अनुकूल वेदनीयं सुखं'; 'प्रतिकूल वेदनीयं दुःखं ।' अर्थात् अनुकूल वेदना ही सुख और प्रतिकूल वेदना ही दुःख है। महर्षि कपिलाचार्य ने भी साङ्ख्य सूत्रवृत्ति के प्रारंभ में कहा है:—

अथ त्रिविध दुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्त पुरुषार्थः ॥१॥

अर्थात् तीनों प्रकार के दुःखों–(१) शारीरिक (२) आधिभौतिक और (३) आधिदैविक की अत्यन्त निवृत्ति को अत्यन्त पुरुषार्थ कहते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि कपिल ऋषि किसी एक को प्रधान नहीं मानते हैं तथापि उनका ग्रन्थ ही दुःख की निवृत्ति के लिए लिखा गया है।

पतञ्जलि ऋषि ने भी दुःख के विषय में कई स्थानों पर लिखा है। उनका "हेयंदुःखमनागतम्" सूत्र खूब प्रसिद्ध है। वैशेषिक दर्शन में तो दुःख का अनेक स्थानों पर वर्णन है। प्रशस्तदेवजी ने भी अपनी व्याख्या में सुख तथा दुःख की चर्चा की है। परन्तु वैशेषिक दर्शन तथा प्रशस्तदेवजी की व्याख्या में सुख और दुःख दोनों स्वतंत्र माने गये हैं। यदि इन सब दार्शनिक सिद्धांतों को साहित्य के मैदान में ले जाँय तो कई बातें पैदा हो जाती हैं। कविता इस संसार की वस्तु है और इस संसार में दुःख की मात्रा (कुछ दार्शनिकों के अनुसार) ही अधिक है। इसलिए यदि कवितामें दुःखवाद का अस्तित्व पाया जाय तो कोई हानि नहीं हैं। यदि वास्तव में इस संसार में दुःख की मात्रा ही अधिक है तो कविता में केवल सुखवाद का प्रचार करना अस्वाभाविक है। यदि संसार में सुख और दुःख दोनों स्वतन्त्र हैं तो कविता में दुःख ही का वर्णन करना चाहिए क्योंकि ऐसा करना अधिक वास्तविक होगा। यदि इस संसार में केवल सुखही सुख है तो कविता में भी सुख का ही वर्णन होना चाहिए इत्यादि। अब यह प्रश्न उत्पन्न होता है:—"मानलो कि संसार में दुःख-ही दुःख है तो भी कविता में एक आदर्श स्थापित करने के लिए केवल सुख का ही वर्णन करना क्यों न्याय-संगत नहीं है? कविता में आदर्श स्थापित करना चाहिए अथवा वास्तविकता ? आदर्श और वास्तविकता में से एक को प्रधानता से क्या लाभ अथवा हानि है?"

(४)

श्री विश्वनाथ कविराज ने साहित्य दर्पण में रस ब्रह्मानन्द सहोदर माना है और स्वयं उन्होंने प्रश्न कि है–'यदि आनन्दमय को ही रस माना जाय, तो करुण, भ नक और बीभत्स आदि रस नहीं कहला सकते क्योंकि तो दुःखमय होते हैं?' इस प्रश्न का उत्तर श्री विश्वनाथ क राज ने स्वयं दिया है:—

करुणादावपि रसे जायते यत्परं सुखम्।
सचेतसामनुभवः प्रमाणं तत्र केवलम् ॥

अर्थात् करुण आदि रसों में भी परम आनन्द मि है। इसमें केवल सहृदयों का अनुभव ही प्रमाण है। इस बात को पुष्ट करने के लिए श्री विश्वनाथजी कहते हैं—

किंच तेषु यदा दुःखं न कोऽपि स्यात्तदुन्मुखः।

अर्थात् यदि करुण, भयानक तथा वीभत्स रसों में होता तो इन रसों से संवंध रखने वाले ग्रन्थों को पढ़ता ही नहीं। श्री विश्वनाथ कविराज का यह सर्वथा सत्य है। पतञ्जलि ऋषि ने भी लिखा है:—"सु नुशायी रागः।" "दुःखानुशायी द्वेषः।" अर्थात् सुख से प्रेम दुःख से द्वेष उत्पन्न होता है। इसके बाद भी श्री वि नाथजी कविराज तरह तरह से इसी बात को सिद्ध कर कि करुणादिक रसों में आनन्द ही आनन्द मिलता दुःख नहीं।

यदि हम लोग कविराजजी की इस बात को म तो यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि फिर दुःखान्त का अभिप्राय है? यदि वास्तव में किसी विशेष कविता के में करुण-रस हो तो फिर आप उसे दुःखान्त क्यों क क्योंकि उसमें भी आनन्द ही मिलता है। श्री विश्व कविराज की उक्त व्याख्या और दुःखान्त कविता में कैसे बैठ सकती है? ये दोनों विचार परस्पर भाई-भा तरह एक स्थान पर कैसे बैठ सकते हैं? यदि किसी में रस ही न हो तो दूसरी बात है परन्तु जब उसमें र

श्री विश्वनाथजी के अनुसार उसमें आनन्द ही मिलेगा। दशा में हम उसे दुःखान्त कैसे कह सकते हैं ? बहुत लोग दुःखान्त का अर्थ मार काट तथा हत्या आदि मानते हैं परन्तु वास्तव में ऐसी बात नहीं है। जब कोई दुःखान्त-कृति सुन्दर न लगे तब तक वह वास्त- दुःखान्त कही ही नहीं जा सकती और जब कोई दुःखांत सुन्दर होगी तो उसमें आनन्द भी अवश्य ही आयेगा उसीसे कल्याण भी होगा क्योंकि सत्य, शिव और सुन्दर एक प्रकार से एक ही हैं। महात्मा गांधी ने भी एक लिखा था:—"सत्य ही सुन्दर है।" यही बात ' भी कहता है--"Truth is beauty and beauty is truth" अर्थात् सत्य ही सुन्दर और सुन्दर ही है। सत्य, शिव और सुन्दर भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण से जाने पर भिन्न-भिन्न मालूम होते हैं परन्तु वास्तव में काल और देश में ये सब एक ही सिद्धान्त की तीन एँ हैं। हम लोगों की चेतनता के व्यापार निम्नलिखित भागों में बाँटे जा सकते हैं:—(१) ज्ञान सम्बन्धी स्मृति, कल्पना आदि। (२) भाव सम्बन्धी जैसे प्रेम, दुःख आदि। और (३) क्रिया सम्बन्धी जैसे प्रयत्न, आदि। जब हम लोग चेतना के व्यापार को तीन में विभाजित करते हैं तब हम लोगों का अभिप्राय यह होता कि ये एक दूसरे से सर्वथा पृथक हैं क्योंकि ये ही व्यापार हमारे जीवन में सम्मिलित रूप में ही आते मान लो कि मैं एक दुःखी मनुष्य को देखता हूँ। मेरे में उसकी सहायता करने का विचार उठ खड़ा होता है मैं उसे पैसे देता हूँ। इस काम में चेतना के तीनों सम्मिलित हैं। दुःखी को देख कर उसके दुःख का , तब उसके दुःख हटाने का विचार और उसके बाद अर्थात् पैसे का देना। इस प्रकार इस काम में चेतना के व्यापार—ज्ञान, भाव और क्रिया—सम्मिलित हैं। संसार सब मनुष्यों में ये व्यापार पाये जाते हैं। जिसमें ज्ञान प्रबल हो जाता है वह सत्य का, जिसमें भाव का प्रबल हो जाता है वह सुन्दरता का और जिसमें क्रिया प्रबल होता है वह कर्म का प्रेमी तथा अधिक पक्ष- हो जाता है। जब हम देखते हैं कि महात्मा गांधी सत्य के अधिक प्रेमी हैं तो इसका यही अभिप्राय निकलता है उनमें ज्ञान का अंश अधिक बढ़ गया है। जब हम देखते हैं लोकमान्य तिलक कर्म के अधिक प्रेमी थे तो इसका अभिप्राय यही है कि उनमें क्रिया का अंश अधिक था। जब हम देखते हैं कि वर्ड्सवर्थ सुन्दरता का अधिक प्रेमी था, तब हम यह समझते हैं कि उसमें भाव की अधिकता थी। परन्तु यदि ये तीनों सत्पुरुष हों तो एक के सत्य, दूसरे के कर्म और तीसरे की सुन्दरता में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए। अतएव एक के 'सत्य', दूसरे के 'शिव' और तीसरे के 'सुन्दर' में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए क्योंकि 'सत्य', 'शिव' और 'सुन्दर' एक ही पदार्थ की भिन्न-भिन्न तीन दशाएँ हैं। इसलिए जो दुःखान्त कविता सुन्दर होगी, उसीमें आनन्द (सत्य) मिलना चाहिए और उसीसे कल्याण भी (शिव) होना चाहिए।

अवध उपाध्याय

अनन्त की ओर

गरजता सागर, तम है घोर,
घटा घिर आई, सूना तीर।
अँधेरी सी रजनी में पार,
बुलाते हो कैसे बेपीर ?

नहीं है तरिणी, कर्णाधार
अपरिचित है वह तेरा देश।
साथ है मेरे निर्मम देव,
एक बस तेरा ही संदेश।

हाथ में लेकर जर्जर बीन,
इन्हीं बिखरे तारों को जोर।
लिए कैसे पीड़ा का भार,
देव आऊँ अनन्त की ओर ?

महादेवी वर्मा

सोवियट रूस में साहित्यिक प्रगति

रूस में जब से 'सोवियट' राज्य-पद्धति का आरम्भ हो गया है, तब से बराबर वहाँ साहित्य का प्रचार बढ़ता जा रहा है। महायुद्ध के पूर्व वह सब से पीछे था, सन् १९१२ में पुरानी और नवीन पुस्तकों की संख्या १३,३५,६१,९९६ थी, पर वही संख्या सन् १९२५ में बढ़कर २४,२०,३५,८०४ हो गई। साहित्य की इस प्रगति में 'मास्को' और 'लेनिनग्राड' का नाम सब से प्रथम लिया जायगा। सारे रूस में जितनी पुस्तकें प्रकाशित हुईं उनमें आधी अकेले 'मास्को' ने ही प्रकाशित की हैं और एक चौथाई लेनिन ग्रॉड में तथा शेष चौथाई सारे रूस में प्रकाशित हुई हैं।

सन् १९२५ में प्रकाशित की गई पुस्तकों में समाज शास्त्र पर प्रतिशत ४५, शास्त्रीय अन्वेषण-विषयक प्रतिशत २१, उपन्यास प्रतिशत ११, रसायनशास्त्र प्रतिशत ६ तथा विविध विषय की प्रतिशत १६ पुस्तकें प्रकाशित हुईं। अकेले इसी वर्ष प्रकाशित पुस्तकों में प्रतिशत ९४ पुस्तकें मौलिक लिखी गईं, और ६ पुस्तकें अनुवादित हुई हैं। सन् १९२३ से लगा कर १९२६ पर्यन्त निम्नलिखित तालिका के अनुसार अख़बारों का प्रचार हुआ—

सन्	अख़बार संख्या	ग्राहक संख्या
१९२३	४०७	१५३२९१०
१९२४	४९४	२२८८०८०
१९२५	५७९	६९५६०९८
१९२६	५९२	८२९१८२०

सिर्फ किसानों के लिए निकलने वाले 'किसान' पत्र के मार्च १९२४ में ६०,००० ग्राहक थे, और अप्रेल तथा मई इन दो महीनों में बढ़ कर २,००,००० हो गए। इसी प्रकार 'दीन' नामक पत्र के ग्राहक एप्रिल सन् १९२३ में ४९,००० थे, पर १९२४ के मई मास तक बढ़कर ५५,००० हो गए।

सोवियट यूनियन के राजकीय विभाग द्वारा सन १९२५ के अन्त में प्रकाशित होने वाले पत्रों की संख्या इस प्रकार है—

पत्र-विषय	पत्र संख्या	ग्राहक सं
कृषि	१३१	१९,१२,
राष्ट्रीय	१९०	९,२८,
मजूर	५८	१२,७६,
रेड-आर्मी	१५	९३,
यंगकम्युनिष्ट	५३	४,७१,
ट्रेडयूनियन	१७	८,७०,
विविध	१३५	२७,२५,

इन अंकों से स्पष्ट है कि नये शासन में रूस, सा क्षेत्र में भी बड़ी तेज़ी से उन्नति कर रहा है।

सूर्यनारायण

गौरव-गीत

(७)

राणा कुम्भा का गीत

"राणा मोकल को चाचा, मेरा और महपा ने डाला। मेवाड़ अस्तव्यस्त हो गया। हत्यारों ने रा उपद्रव प्रारम्भ कर दिया। कौन उनसे राज्य की रक्षा क कौन उनसे सिसोदिया-वंश-भूषण राणा मोकल की का प्रतिशोध लेगा? कौन उनके स्वच्छन्द अत्याचा रोकने में समर्थ होगा?" वीरों! "हिन्दू सुरत्राण," दिया वंशावतंश, वीर-शिरोमणि महाराणा कुम्भा के किसका साहस कि मेवाड़ को ध्वंस करे; कौन ऐसा लाल कि जिसे राज-हत्या का प्रायश्चित न करना पड़े देखो! चाचा और मेरा के शव महाराणा के पैरों के लोट रहे हैं? वह देखो! प्राण बचाने को महपा भागा जा रहा है। राणा कुम्भा ने अत्याचारियों के मेवाड़ को मुक्त किया। उनका वीरत्व मेवाड़ करने लगा।

"वीरों! राणा कुम्भा मेवाड़ के शासक हुए। में शान्ति की वंशी बजने लगी। मेवाड़ में सुख का भण्डार फट पड़ा। उनकी अजेय असि मेवाड़ की र लगी। अब कौन मेवाड़ की सुख शान्ति पर वक्र-दृ का विचार कर अपने प्राण खोयेगा? अब कौन स्व

ड़ विजय करने का विचार करेगा ? महाराणा कुम्भा के घातों को सहने का किस वीर में कलेजा है । महपा के ने में आकर मूर्ख महमूद मेवाड़ पर चढ़ाई कर बैठा । पुर में महाराणा की अतुलित शक्तिशालिनी चमूने मालवे सुलतान को ऐसी करारी हार दी कि महमूदने भाग कर मांडल में शरण ली । परन्तु महाराणा कुम्भा को छोड़कर कौन की नींद सोया है ? वह देखो ! राणाजी सुलतान को कर चित्तौड़ ले आये । बहुत दिनों सुलतान बंदी गृह सड़ता रहा । अन्त में राणाजी ने दयाकर उसे छोड़ दिया । मस्तक महमूद मालवे लौटा और इस हार का बदला पर कटिबद्ध हुआ । चार बार उसने आक्रमण किया, प्रत्येक बार कुम्भा की तलवार ने ऐसी काट की कि तान को भागना तक कठिन हो गया । कुंभलगढ़, मांडल- और रणथंभोर की युद्ध-स्थलियाँ अब तक यवनों के रक्त लाल हैं । वे पुकार-पुकार कर कुंभा के शौर्य को प्रकट रही हैं ।

"वीरो राणा ने मालवे के सुलतान के छक्के छुड़ा दिये । वह अकेले आक्रमण करने का साहस न कर सका । ने गुजरात के सुलतान को उकसाया । दोनों की सम्मि- सैन्य ने मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया । परन्तु उससे होता है ? कुंभा की शक्ति का किसने पार पाया है ? देखो दोनों सुलतान भागे जा रहे हैं । मेवाड़ यवनों से क्षित हो गया है । राणा कुंभकर्ण ने म्लेच्छों को ऐसा कौशल दिखाया कि उन्होंने मेवाड़ की ओर आंख ना ही छोड़ दिया ।

"वीरो ! राणा कुंभा ही के कारण मेवाड़ राजस्थान- मणि माना जाने लगा । राणाजी की अजेय असि ने , सिरोही, बूँदी, और हाड़ावटी को मेवाड़-साम्राज्य के बना दिये । राणाजी की मार के सामने यवन नागौर छोड़ । राणाजी ने नारदीयनगर और धान्यनगर पर अधिकार शोध्यानगरी और हम्मीरपुर, जनकाचूल औरा गिरिपुर पुर) के नरेशों ने घुटने टेक दिये । चम्पावती और ❀आ- , †मलारण्यपुर और ‡विशालनगर के खण्डहर अबतक जी के क्रोध का परिणाम बता रहे हैं । ÷ सिंहपुर, कोटड़ा तथा वायसपुर के युद्ध क्षेत्र अब तक राणाजी का कीर्ति-गान कर रहे हैं । वीरों ! महाराणा कुम्भकर्ण ने अपने असीम शौर्य से समस्त भारत में मेवाड़ की धाक बाँध दी । गुजरात तथा दिल्ली के यवन-नरेशों ने मेवाड़पति को "हिन्दू-सुरत्राण" विशेषण से विभूषित कर मेवाड़ के प्रति सम्मान प्रदर्शित किया ।

"वीरों ! राणाजी के कीर्ति-स्तम्भ उनका कीर्ति-गान कर रहे हैं । कुम्भलगढ़ और अचलदुर्ग अपने निर्माता के विपुल ऐश्वर्य का परिचय दे रहे हैं । कुम्भस्वामी और आदिवाराह के सुन्दर, विशाल देवगृह राणाजी के धर्म्म-प्रेम का ज्वलन्त प्रदर्शन कर रहे हैं । वीरों ! राणाजी के ग्रन्थ उनके विपुल पाण्डित्य का परिचय दे रहे हैं । निपुण-वीणा-वादन और अभिनव भरताचार्य्य विशेषण उनके साहित्य-प्रेम का निदर्शन कर रहे हैं । वीरों ! ऐसे सर्वगुण-सम्पन्न राणाजी हमारे पूर्वज हैं, यह विचार कर अभिमान करो, उनके पद चिन्हों का अनुकरण करो और अपने को उनका वंशज सिद्ध करो ।"

बालकृष्ण बलदुवा

पागल की मुक्ति !

(१)

पागल को तुमने मुक्त किया,
पैरों की कड़ियाँ आज खोल ।
नीरव नेत्रों से, चकित चित्त—
वह देख रहा आनन अमोल ।

(२)

थम गये अश्रु बस, आँखों में,
रह गई किसी की लाज शान ।
उस व्यक्त और अव्यक्त बीच,
था शेष किसी का प्राणदान ।

(३)

क्यों रूठे ? कैसे रीझ गए ?
अन्तस्तल में है चोट कहीं ।
तुम स्वयंमेव हा ! दूर हुए—
कोई आँखों की ओट नहीं !

रामसेवक त्रिपाठी

❀ आम्बर, † मलारण, ‡ वीसलनगर, ÷ सीहोर ।

पागल

सवेरे का समय था। पूर्व दिशा में लाली छाई हुई थी। सूर्य की किरणें धीरे-धीरे निकल कर अँधेरे को भगा रही थीं। पहाड़ी-नदी पूर्ण वेग से बहती चली जा रही थी। किनारे के पेड़ से पत्ते टूट-टूट कर नदी में गिरते और धारा के फेर में पड़कर साथ ही बहते चले जा रहे थे।

पागल अपनी पर्णकुटी से निकला और अपने गाने में मग्न नदी के किनारे-किनारे चल दिया। नदी की धारा में वेग था; एक कमल पर सूर्य की किरणें पड़ रही थीं। धारा का ज़ोर लगा और कमल बह गया। पागल नदी में कूद पड़ा और नदी को चीरता हुआ कमल के फूल को निकाल लाया।

लोग नदी में नहा-नहाकर आते थे। मन्दिर के सामने मेला-सा लगा हुआ था। मालीगण अपनी-अपनी फूलों की डालियाँ सजाये बैठे थे। कोई फूल ख़रीद रहा था; कोई जल का लोटा लिये ही मन्दिर की सीढ़ियों पर चढ़ रहा था। पागल भी अपना फूल लिए एक जगह खड़ा भीड़ की ओर टकटकी लगाये देख रहा था। एक चार वर्ष का बालक भी अपनी माँ की अँगुली पकड़े नाचता-कूदता इधर-उधर कौतूहल पूर्वक ताकता, इधर ही आ रहा था। बालक ने पागल का फूल देखा; बोल उठा—"माँ ऐसा फूल लूँगा।" पागल ने फूल लड़के के हाथ में दे दिया और वापिस लौट चला।

* * *

ग्रहण का दिन था। नदी पर भीड़ लगी हुई थी। कोई स्नान कर रहा था। कोई सूर्य को अर्घ दे रहा था। एक तरफ़ तैल की मालिश हो रही थी। कुछ लड़के इधर तैर रहे थे। कभी-कभी जब छींटे उछलते थे तो पंडा लड़कों को डांट देता था और फिर किसी दाता के गौ दान का संकल्प कराने में संलग्न हो जाता था। पागल भी एक पेड़ पर चढ़ा-चढ़ा बड़े ध्यान से इधर देख रहा था। हठात् कोई चिल्ला उठा "गया! गया! गया! वह धारा में पड़ गया।" पागल पेड़ पर से उछलकर नदी में कूद पड़ा और बहते हुए लड़के की कमर पकड़कर बाहर निकाल लाया। यह वही बालक था। किन्तु लड़के का शरीर नीला पड़ गया था। पागल होकर खड़ा हुआ और अपनी कुटी की तरफ़ चल पड़ा।

* * *

"आग लगी! आग लगी।" सारा गाँव उठा। सब अपने घर से निकलकर दौड़ पड़े। वेग से सूखे पत्तों की कुटी को भस्म कर रहे थे। सामने हँस-हँसकर नाच रहा था। फूस की छत जल पड़ी। पागल ने एक ठहाका लगाया और जंगल ओर भाग गया।

'प्रला

क्यों?

तुम आज आये हो? आह, जब सर्वस्व लुट गया!

अरे, कुछ देर पहिले क्यों न आए? मैंने तो स्वागत के लिए बड़े साज सजाये थे। विशाल अट्टालिकाएँ केवल तुम्हारे स्वागत के लिए गई थीं। ऊँचे सभामण्डप, विस्तृत प्राङ्गण, रत्नखचित सुवर्ण-सिंहासन ....तो क्या यह स्वप्न था?''''......उफ़ कैसा! ले गए, छीन ले गए। कल वे उस सन के चरणों को चूम रहे थे, आज सिंहासन उनके को चूम रहा है। हाय! काल की कैसी कुटिल गति है।

तुम आज आये हो! आह, जब सर्वस्व लु

क्या कहते हो? तुम विलास की गन्दी लोटने वाले नारकी कीड़े नहीं हो? सो तो भाई, मैं ही जानता था। अरे, यह तो बाहरी स्वरूप है—हाँ, बाहरी। भीतर का संसार देखोगे तो सिहर उठोगे, चौंधिया जायेंगी। इन कृत्रिम आँखों में वह शक्ति उस दैवी प्रकाश को देख सकें! उसके एक-एक अणु का रहस्य छिपा हुआ है, एक परमाणु में परमात्मा वैभव अन्तर्हित है। तुम उसे क्या जानो, तुम उसे क्या

तुम आज आये हो? आह, जब सर्वस्व लुट

शान्तिप्रसाद व

नीर-क्षीर-विवेक

[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आना आवश्यक है। एक प्रति आने पर आलोचना न हो सकेगी। प्रत्येक पुस्तक का साहित्य-सत्कार तो उसी अंक में हो जाया करेगा—आलोचना, यदि हुई तो, सुविधानुसार बाद में होगी।]

परिचय

संकलयिता—श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी। प्रकाशक—साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी)। चौदह छायावादी कवियों का परिचय और उनकी ५८ कविताओं का संग्रह। पृष्ठ-संख्या १८४, मूल्य १)

कविता के दो स्कूल हैं। दोनों ही का उद्गम हृदय है, और दोनों ही का लक्ष्य है आनन्द। परन्तु हैं दोनों स्रोत अलग-अलग। एक स्कूल (Classical) के विचारानुसार किसी भी भाव को, किसी भी बात को, चुने हुए शब्दों में, गिने हुए अक्षरों में, और नपी-तुली मात्राओं में कह देना ही कविता है। नियम ही उसका जीवन है और रूढ़ि ही उसकी शक्ति। यहाँ आँखों को खञ्जन और नाक को तोता कहना पड़ेगा। यति और गति की चहारदीवारी से बाहर क़दम रखना यहाँ अपराध समझा जाता है। यहाँ प्रत्येक बात सोच विचार कर कही जाती है। वर्षों सरस्वती की आराधना करने पर कभी एकआध बिन्दु मिलता है। दूसरा स्कूल कहता है कि "अनाहूत एवं स्वयमागत शब्दों द्वारा काव्यानन्द का निर्देश करना ही कविता है। इस निर्देश की कोई निर्दिष्ट शैली नहीं हो सकती; हृदय में वेदना चाहिए, वह स्वयं अपनी अभिव्यक्ति का मार्ग ढूँढ लेती है।" इस स्कूल का नाम छायावादी (Romantic-!-) है। क्योंकि इस मत से कविता "शरीर नहीं आत्मा है, छायावान् नहीं छाया है, डील डौल नहीं लावण्य है।" छायावादी कवि "बन्धनमय छन्दों की छोटी राह छोड़ कर" स्वच्छन्द उड़ान उड़ता है। वह मदिरा बनाता नहीं, किन्तु स्वयं उसके मद में छका रहता है। वह कविता से कहता है—

"प्याला—रस कोई दो— भर कर
अपने ही हाथों से मुझे पिला जा।"

एक बात और है, प्रथम स्कूल का कवि बाह्य-जगत् को जैसा देखता है वैसा ही वर्णन कर देना अपना कर्तव्य समझता है, भीतर प्रवेश करने का अपने आपको अधिकारी नहीं समझता। वहाँ शृङ्गारमयी विलास-रजनी की कथा है, युद्ध-प्राङ्गण का रौद्र वर्णन है; परन्तु ऐसा विदित होता है, मानों कवि ने दूर खड़े होकर फोटो ले लिया हो। दूसरी ओर छायावादी कवि इन दृश्यों का उसपर क्या असर पड़ता है, यह बताता है, बाह्य और अन्तर्जगत् का क्या सम्बन्ध है, यही खोजता है। वह कहता है—

"अन्तर्जग की करुण कहानी-
कहना मुझको आता,
यह बहिरंग जगत मेरी—
आँखों को तनिक न भाता।"

बस, वह अपने "प्राणाधार, सनेहागार" की खोज में—"अन्वेषण में"—कूक उठता है। "इस कूक में निखिल संसृति की व्यथा है, करुणा है, कसक है, सहानुभूति है, और स्नेह है।" यह कूक भले ही बाह्येन्द्रियों को आनन्द न दे, किन्तु हृदय में एक ज़ख़्म कर देगी, और उसी ज़ख़्म में तो असीम आनन्द है। 'ज़ख़्मे जिगर रिस-रिस के अच्छे न हों' तभी तो मज़ा है। "अग्नि के स्पर्श में जितनी ज्वाला है उतनी उसके दर्शन में नहीं, इसी तरह उसके (कवि के) उद्गारों में जितनी मार्मिकता है उतनी उसके सुन लेने में नहीं।"

ऐसे ही कतिपय छायावादी कवियों के उद्गारों का इस

'परिचय' में संकलन किया गया है। प्रत्येक कवि के कविता-संग्रह से पहले उसका गद्य-काव्यमय परिचय है। द्विवेदीजी ने कवि की अन्तरात्मा में प्रवेश करके उसका परिचय प्राप्त करने में कमाल किया है। देखिए—

"रजनी के चञ्चल अञ्चल में नीरव नभ का विकल विलाप,
विक्षिप्तावस्था में तूफ़ानों का हाहाकार प्रलाप !
संघर्षण ! उन्मत्त उदधि का गिरि शिखरों से गहन मिलाप,
पल-पल में डर कर पीछे हट कर हम सब उठते हैं काँप।
गरज-घुमड़ कर प्रलय-नाद में जलधर भी देते हैं ताल;
'नाविक! नाविक।'कहा किसी ने, 'नाविक! क्या करता है काल!"

इस कविता के रचयिता—श्री भगवतीचरणजी वर्मा—का परिचय आपने यों दिया है—"उसका अन्तस्तल आक्रान्त जगत का एक विशाल दर्पण है। उसमें प्रतिविम्ब देखिए—अथाह सागर लहरा रहा है और उसके तट पर दूर तक फैला हुआ उत्तप्त मरुस्थल है। उफ़!" श्री सियारामशरण गुप्त के परिचय से एक वाक्य सुनिए—"उसकी आत्मा एक वीणा है।...आप उसे बजाइए—आपकी लय जिस रागिनी, जिस कल्पना, जिस भावना,—जिस दुनिया का जो अन्तर्क्षेत्र तैयार करेगी—वही,—वह है।"

हम द्विवेदीजी को इस नयी चीज़ के लिए धन्यवाद और बधाई देते हैं—धन्यवाद ऐसे सुन्दर संग्रह के लिए, बधाई ऐसे भावुक परिचय के लिए।

क्या हम आशा करें कि द्विवेदीजी इसी ढंग का एक और संग्रह प्रकाशित करावेंगे? क्योंकि प्रस्तुत पुस्तक में छायावाद के सभी सुकवियों के परिचय नहीं आये हैं। श्री रायकृष्णदासजी, श्री मैथिलीशरण गुप्त, श्रीमती महादेवी वर्मा इत्यादि अनेक कवियों के परिचय छूट गये हैं।

गो० स्व० भटनागर

क्षत्रिय वंश प्रदीप

द्वितीय भाग तथा नौमुसलिम जाति-निर्णय। लेखक—पं० छोटेलाल शर्मा। मिलने का पता—मैनेजर, वर्णव्यवस्था-मण्डल, फुलेरा (जयपुर)। आकार डिमाई अठपेजी, पृष्ठ संख्या लगभग ४५०, और मूल्य २॥)

इस पुस्तक के लिखने का मुख्य उद्देश्य हिन्दुओं को यह बताना है कि आज की नौमुसलिम जातियाँ पहले हिन्दू ही थीं। आज भी बहुत सी जातियों के रीति-रिवाज, चाल-ढाल हिन्दुओं से अधिक मिलते हैं। लेखक का यह विश्वा है कि वर्तमान सात करोड़ मुसलमानों में से केवल एक अरब के असली निवासी हैं। आगे लेखक ने यह दिखाने प्रयत्न किया है कि बहुत से हिन्दू, मुसलमान शासकों के अत्या-चार और हिन्दुओं की मूर्खता से, मुसलमान बन गये। बात की पुष्टि के लिए बहुत से प्रमाण भी दिये गये हैं। बहुत से हिन्दू लोभ व लालच के वश में आकर मुसल बन गये। परन्तु इन नौमुसलिमों के आचार-विचार हिन्दु के से ही हैं, इसलिए लेखक ने इन्हें हिंदुओं में सम्मिलित की सम्मति देते हुए कई ऐतिहासिक प्रमाण देकर दिखा है कि प्राचीन काल में भी शुद्धि होती थी, यह कोई चीज़ नहीं। हिंदू-समाज में तो शुद्धि के इतने सरल हैं कि वैसे कहीं नहीं मिलेंगे। गंगा-स्नान, राम और कृष्ण स्मरण, गायत्री का जाप, ब्राह्मण के चरणामृत-पान आदि पतित मनुष्य शुद्ध हो सकता है। स्थान-स्थान पर लेखक प्रमाण देने में संकोच नहीं किया।

इसके आगे विद्वान् लेखक ने बहुत सी वर्तमान जाति को क्रमशः लेकर उनकी उत्पत्ति की दन्तकथायें, उनके उनके मुसलमान बनने का कारण, उनकी वर्तमान संख्या निवासस्थान और हिंदुओं से मिलते हुए रीति-रिवाज बहुत सी बातों पर विचार किया है, जो पढ़ने योग्य इसी प्रसंग में दलित हिंदू जातियों की उत्पत्ति आदि संबन्ध में भी विचार कर उन्हें द्विज सिद्ध किया गया यह विवेचन साढ़े तीन सौ से अधिक पृष्ठों में समाप्त है। फिर भी लेखक के कथनानुसार अभी बहुत सी जाति का विवेचन स्थानाभाव से नहीं दिया गया। लेखक का परिश्रम वस्तुतः बहुत स्तुत्य और प्रशंसनीय है। इस के पढ़ने से हिंदुओं की आँखें खुल जाती हैं कि हमने ही द्विज भाइयों को किस तरह नीचे गिरा दिया। भले लेखक की दी हुई दन्तकथायें प्रामाणिक नहीं हैं, फिर उनके प्रचलन से यह तो अवश्य सिद्ध होता है कि ये जातियाँ, जिनमें से अधिकतर मुसलमान हो गई हैं, द्विज ही थीं।

पुस्तक का यदि संपादन एक योग्य विद्वान् करता,

महत्व बहुत अधिक बढ़ जाता। भाषा की ऐसी भद्दी-भूलें रह गई हैं कि कई स्थलों पर पुस्तक छोड़ देने को करता है। प्रूफ़ की अशुद्धियों की तो बात ही नहीं। पुस्तक दो स्थानों पर छपने के कारण बीच के साठ पृष्ठ छपे ही नहीं। हमें आशा है कि इसके द्वितीय संस्करण में एक योग्य विद्वान् द्वारा इसको संपादित कराया जायगा, जिससे इसका रंग और भी अधिक परिष्कृत और महत्त्वपूर्ण हो जायगा।

कृष्णा

मित्रता

लेखक और प्रकाशक—श्री प्रतापमल नाहटा, भोमासर (बीकानेर)। संपादक और प्रकाशक—पं० लक्ष्मणनारायण, ग्रंथ-प्रकाशक, ७।१ प्यारी मोहन लेन, कलकत्ता। छपाई-सफ़ाई साधारण। पृष्ठ-संख्या ६०, मूल्य ।=)

हिंदी में ऐसी पुस्तक की आवश्यकता थी। सदाचार विषयक पुस्तकों में मित्रता पर छोटे-छोटे निबन्ध तो अवश्य दिये रहते हैं, परन्तु इस विषय पर स्वतन्त्र पुस्तक कदाचित् यह पहली ही है लिखने का ढंग अच्छा है। मित्र-प्रेम की कथाओं ने पुस्तक को रोचक बना दिया है, साथ ही इस विषय पर प्राच्य एवं पाश्चात्य तत्त्ववेत्ताओं के विचार और पाठक को काफ़ी सामग्री दे सकते हैं। नाहटाजी अवश्य ही बधाई के पात्र हैं। परन्तु चित्रों के संबन्ध में कुछ आपत्ति है। कृष्ण-सुदामा वाला चित्र तो बड़ा भद्दा और कलाशून्य बना है। उस चित्र को न देने से पुस्तक की शोभा कुछ कम न होती। लेख-सूची का अभाव भी खटकता है।

भटनागर

‘दलितान्त्यजादीनां स्पर्श-व्यवस्था’ (संस्कृत)

लेखक—पं० दुःखमोचन शर्मा। प्रकाशक—श्री दुर्गाप्रसाद, दुर्गा प्रेस, अजमेर। पृष्ठ संख्या २४।

इस पुस्तक का विषय नाम से ही स्पष्ट है। लेखक पं० दुःखमोचन शर्मा संस्कृत के अच्छे विद्वान् हैं। वह दलित जाति का स्पर्श शास्त्र-सङ्गत समझते हैं। इसके प्रमाण में उन्होंने कई स्मृति और पुराणों के प्रमाण भी पेश किये हैं। ‘अस्सलायन सुत्त’ नामक बौद्ध ग्रन्थ में भी लिखा है कि बुद्ध ने बहुत से ‘श्वपच’ और ‘चाण्डालों’ को बौद्ध-भिक्षु बनाया था। इसी प्रकार भागवत के “भक्तिः पुनाति मत्संस्थान् श्वपचान्” आदि श्लोक से भी सिद्ध होता है कि दलितों को अस्पृश्य मानना शास्त्र-सङ्गत कदापि नहीं है। ऐसे अनेक प्रमाणों से लेखक ने इस छुआ-छूत-प्रथा को अमित निन्दनीय सिद्ध किया है। पण्डितजी ने इसके लिखने में काफ़ी परिश्रम किया है, जिसके लिए वह धन्यवाद के पात्र हैं। दुःखमोचन पण्डितजी वास्तव में दलित-दुःखमोचन हैं। अच्छा होता, यदि यह पुस्तक सर्व-साधारण के लाभार्थ हिंदी भाषा में लिखी गई होती। मूल्य लिखा नहीं है।

‘सूर्य’

आर्द्रा

लेखक—श्री सियारामशरण गुप्त। प्रकाशक—साहित्य-सदन, चिरगांव (झांसी)। पृ० सं० १४४, मूल्य १)

इसमें श्री सियारामशरणजी की १३ पद्य-रचनाओं का संग्रह है, जिनमें से कितनी ही समय-समय पर हिंदी की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी है। ‘त्याग-भूमि’ के पाठक भी इसमें से “खादी की चादर” और “वन्दी” शीर्षक रचनायें पढ़ चुके हैं। प्रायः ये सभी कृतियाँ किन्हीं ख़ास घटनाओं को लक्ष्य करके लिखी गई हैं, और वर्णनशैली इतनी सजीव, सरस एवं सुन्दर है कि बार-बार पढ़ने पर भी तृप्ति नहीं होती। अधिकांश रचनायें करुणरस-प्रधान हैं। पढ़ने वालों को स्थान-स्थान पर यही जान पड़ता है कि इन्हीं घटनाओं को प्रत्यक्ष देखने पर उस चमत्कार का अनुभव नहीं होता, जो कि उन्हें इस रूप में पढ़ने पर होता है। “एक फूल की चाह,” “चोर” “नृशंस” “डाक्टर,” “अब ऐसा न करूँगी” आदि रचनायें विशेष हृदयग्राही हैं। वैसे हूक, डाकू और अबोध में भी कम माधुर्य नहीं है। पुस्तक एक सजीव हृदय का जीता-जागता चित्र है, जो आजकल के नवीन कवियों के लिए पथ-प्रदर्शक का काम दे सकती है।

गो० उ०

बाल-साहित्य-माला (गुजराती)

१. गणपति बापा
२. चेलैया
३. "उभुं हतुं, उभुं हतुं"
४. हजामड़ी
५. कबाट
६. बालको नो बीरबल (१)

उक्त छहों पुस्तिकायें भावनगर (काठियावाड़) के दक्षिणामूर्ति प्रकाशन-मन्दिर की बाल-साहित्य-माला के पुष्प हैं। इनके लेखक श्री गिजूभाई बाल-साहित्य के सिद्धहस्त लेखक हैं। सभी पुस्तकें रोचक, सरल और शिक्षाप्रद हैं। गणपति बापा, हजामड़ी और "उभुं हतुं, उभुं हतुं" हमें बहुत पसन्द आईं। साइज़ और भाषा भी बालकों के उपयुक्त ही है। हिन्दी वाले भी इस ढंग को अपनायें तो अच्छा हो।

विविध

मूंज की चटाई

श्री मोहनलाल ज्वालाप्रसाद एण्ड संस, कासगंज, ने आसन के बराबर दो मूँज की चटाइयाँ भेजी हैं। चटाइयाँ आसन व पायदान के काम के लिए उपयोगी हैं। इस देशी धन्धे को उत्तेजन मिलना चाहिए।

चित्र

गुजराती सस्तुं साहित्य (अहमदाबाद)ने ओंकार और द्रौपदी-चीरहरण के दीवार पर टांगने के लायक़ दो चित्र भेजे हैं। चित्र अच्छे हैं।

मुकुट

पत्र-पत्रिका

१. किसान (मासिक)—संपादक—श्री सुखसंपत्तिराय भंडारी। प्रकाशन-स्थान—इंदौर। वा० मू० ३)

२. हिन्दुस्थान (साप्ताहिक)—सम्पादक—भाई अब्दुलगनी। प्रकाशन-स्थान—जबलपुर। वार्षिक मूल्य ३)

साहित्य-सत्कार

१ आर्योदय—लेखक—श्री विश्वबन्धु शास्त्री, आर्य दयानन्द ब्राह्म महाविद्यालय, लाहौर। पृष्ठ-संख्या २००, पक्की जिल्द। मूल्य १), स्थिर ग्राहकों से ॥-)

२. ज्ञान सूर्य प्रकाश अर्थात् बीजगणित रायसाहब सेठ मदनगोपाल माहेश्वरी पेड़ीवाल, मु० लका के पुत्रों सूरज, चानन, गौरी, जेसू ने निर्माण सूरजमल चानणमल, न्यूक्लोथ मार्केट, देहली द्वारा प्रका कराया। पृष्ठ-संख्या ३००, मूल्य ॥=)

३. सूर्यकिरण-चिकित्सा—लेखक व प्रकाशक श्री गोविन्द बापूजी टोंगी। मिलने का पता—श्री पुरु जयराम देशकर, मैनेजर सूर्यकिरण चिकित्सालय, पृष्ठ-संख्या २००, मूल्य १॥)

४. मेघ महोदय-वर्षप्रबोध—अनुवादक व प्रकाशक—पं० भगवानदास जैन, सेठिया जैन प्रिण्टिङ्ग बीकानेर (राजपूताना)-पृष्ठ-संख्या ५१२, पक्की जि मूल्य ४)

५. कर्म-शिक्षा—लेखक—श्री रामलोचन 'कण्टक'। प्रकाशक—हिन्दी-साहित्य-कार्यालय, सराय, ज़ि० दरभंगा। पृष्ठ-संख्या ६१, मूल्य ।)

६. ब्रह्मचर्य-शिक्षा—लेखक व प्रकाशक पृष्ठसंख्या १२८, मूल्य ॥=)

७. विचार-कुसुमाञ्जलि—लेखक व प्रकाशक— बदरीदत्त जोशी, काशीपुर। पृष्ठ संख्या १३०, मूल्य

८. चरित्र-शिक्षा—लेखक व प्रकाशक वही। संख्या १५०, मू० ॥=)

९. शिक्षा-रत्नावलि—लेखक—पं० श्रीहरि प्रकाशक—बाबू वासुदेवप्रसाद, जयपुर। पृष्ठ-संख्या

१०. उदर-प्रशस्ति—लेखक व प्रकाशक पृष्ठसंख्या ५०।

११. सत्यनाम—रचयिता—बाबा मथुरादास प्रकाशक—श्रीरमाविलास पुस्तकालय, अज़मतगढ़ ज़ि० आज़मगढ़। पृष्ठ-संख्या ८८, मू० ≡)॥

१२ दान-विचार—लेखक—श्री भगवान शर्मा । पोस्ट ठीकरी, ज़ि० धार । पृष्ठ-संख्या ४७, मू० ।)

१३. जैनों के तीन रत्न—(बंगला से अनूदित)—अनुवादक—पं० रामचरित उपाध्याय । प्रकाशक—श्री आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसायटी, अम्बाला शहर । पृष्ठ-संख्या १४, मू० -)॥

१४. जैनों के दैनिक षट्कर्म—अनुवादक, प्रकाशक वही । पृष्ठ-संख्या १६, मू० =)

१५. दो ठग मित्र—रचयिता श्री धीरजमलजी वत । प्रकाशक—असीधारा साहित्य-प्रचारक कार्यालय, ड़ी (राजपूताना) । पृष्ठःसंख्या १६, मूल्य -)

१७. महाभारत (राधेश्याम के ढंग पर)

भाग १ भीष्म-प्रतिज्ञा	मूल्य ।)
,, २ पाण्डवों का जन्म	,, ।)
,, ३ पाण्डवों की अस्त्रशिक्षा	,, ।-)
,, ४ पाण्डवों पर अत्याचार	,, ।-)

रचयिता—श्री श्रीलाल खत्री । प्रकाशक—पं० हरीराम शर्मा । मिलने का पता—महाभारत-पुस्तकालय, अजमेर ।

१८. मेघदूत—अनुवादक—पं० केशवप्रसाद मिश्र । प्रकाशक—साहित्य सदन, चिरगाँव । (झांसी) । पृष्ठ-संख्या २१ मू० ।)

१९. संलाप—रचयिता—राय कृष्णदासजी । प्रकाशक वही । पृष्ठ-संख्या ६०, मू० ।=)

२०. भावुक—रचयिता वही । प्रकाशक—भारती-भण्डार, बनारस सिटी । पृष्ठ-संख्या ६०, मू० ॥)

२१. Nritanjali (An Introduction to Hindu Dancing)—लेखिका--श्रीमती रागिणीदेवी । प्रकाशक—हैरिजी, गाविड़, ओरियण्टल पब्लिशर्स, न्यूयार्क (अमेरिका) । सुन्दर सजिल्द, सचित्र, पृष्ठ-संख्या ८४ । मू० १½ डालर ।

जनता का स्वराज्य

सच्ची और झूठी औद्योगिकता

अर्थशास्त्र की दृष्टि से खद्दर की उपयोगिता में आज-कल उच्च-शिक्षा प्राप्त विचारशील लोगों का एक बड़ा भाग विश्वास नहीं करता। जहाँ कहीं खद्दर का प्रश्न सामने आता विदेशी कपड़े की स्पर्धा प्रतिस्पर्धा और खादी आन्दोलन ता का जिक्र करके खद्दर की आर्थिक उपयोगिता और की अंतिम सफलता में अपना अविश्वास प्रकट करते इस विषय में सिद्धान्तों के थोथे ज्ञान की अपेक्षा अनुभव-जनित पक्की जानकारी ही अधिक लाभदायक और कमी को दूर करने वाली सिद्ध हुई है।

अभी कुछ दिन पहले श्री० राजगोपालाचार्य ने पूने के शील शिक्षितों की एक सभा में 'खद्दर के अर्थशास्त्र' पर कुछ मनन करने योग्य बातें कहीं थीं। जिनका सार 'त्यागभूमि' के पाठकों के लिए नीचे दिया जाता है।

"जमीन में गड़े हुए और लखपतियों के खजाने में भरे हुए धन को मैं राष्ट्रीय सम्पत्ति नहीं मानता। राष्ट्रीय सम्पत्ति तो वह धन है जो लाखों आदमियों में बराबर बँटा हुआ हो।

"सम्पत्ति पैदा करने के बाद उसे सबमें बाँट नहीं सकते। लोग इस बात के लिए राजी ही नहीं होंगे। मगर आप ऐसा धन ज़रूर पैदा कर सकते हैं, जो पैदा होने के साथ ही साथ लोगों में बँटता जाय। खादी के काम में इसी तरीक़े से धन पैदा किया जा रहा है।

"हम चाहते हैं कि वस्त्र-व्यवसाय और खेती हिन्दुस्तान की प्राचीन विरासत समझी जायँ और उनपर लाखों आद-

मियों का हक़ रहे । ये दोनों धंधे प्राचीन हैं । हर किसी के लिए सरल और सम्भव हैं । हम उद्योग धन्धों का विरोध नहीं करते । आप उन्हें ईमानदारी से पेट भरने के योग्य बनाइये । नये-नये उद्योग धन्धों का आविष्कार कीजिए, उनका संगठन कीजिए । मगर कोशिश ऐसी हो कि वस्त्र-व्यवसाय और खेती पर यंत्र-बल के व्यवसायी आक्रमण न कर सकें । इनपर तो सबका अधिकार होना चाहिए, एक-दो का नहीं । पूँजीपति अगर चाहें तो वे खुशी-खुशी अपने ख़ास व्यवसाय खड़े कर लेवें । मगर खेती और वस्त्र-व्यवसाय को तो संयुक्त संपत्ति मान कर उन्हें अछूता छोड़ दें, क्योंकि हमारे ग़रीब देशबन्धुओं को अकेले इन्हीं का सहारा है ।

"देहाती भाइयों और ग़रीबों को मिलों में भेजने की दलील निःसार है । इस समय देश में जो व्यापक हड़तालें जारी हैं, उनसे मिल मज़दूरों की स्थिति का, उनकी असहायता का पता अच्छी तरह लग जाता है । मज़दूरी कम होने से वे अपना पेट तो भर सकते ही नहीं, न कुछ कमाई में से बचत ही कर सकते हैं । हाँ, आलस्य, शराबख़ोरी, जुएबाजी, दुराचार आदि गन्दी आदतें वे जरूर सीख जाते हैं । देहात के किसान-स्त्री-पुरुषों में ये बातें आज भी नहीं के बराबर हैं । वे अधिकांश में नम्र, मिहनती, भले आदमी, अधभूखे, और अपढ़ होते हैं, फिर भी उनमें वह संस्कृति है जिस पर हर कोई राष्ट्र गर्व कर सकता है । ऐसे निर्दोष भाइयों को पाप के रास्ते पर ले जाना देश के कल्याण का काम नहीं, कुछ और ही है ।

"बरसों के अटूट प्रयत्नों और असंख्य धन-व्यय के बाद भी देश की कपड़े की मिलों और प्रेसों में कुल चार-लाख आदमी काम पा सके हैं । बाकी के २० करोड़ या २,००० लाख बाहर बेकारी में दिन काट रहे हैं । इधर चर्खे ने केवल चार साल के प्रयत्न के बाद २०,००,००० की पूँजी से १ लाख आदमियों को घर बैठे सहायक धंधा दिया है । यद्यपि अखिल भारतीय चर्खा-संघ का यह काम वटवृक्ष के बीज के समान देखने में छोटा है तथापि समय आने पर—और वह तेजी से आ ही रहा है—यही एक विशालकाय वटवृक्ष के समान हो जायगा और सारे भारतवर्ष में फैल जायगा । लाखों करोड़ों ग़रीबों को निरन्तर इसीसे सहायता मिलने लगेगी । मिलें, इतनी तादाद में नहीं बढ़ाई सकतीं ।"

बिहार में खादी की मांग बढ़ रही है

अखील-भारतीय चरखा संघ की बिहार-शाखा के मंत्री "देश" में लिखते हैं—"हमारे प्रांत में खादी की मांग बढ़ चली है । जितनी मांग है उतनी उपज नहीं होने से की सारी मांग की पूर्ति नहीं हो पाती; समस्या जटिल जा रही है । जहाँ प्रारंभ में केवल कुर्तों के लिए खादी की होती थी वहाँ अब तो सिर से पैरतक के सारे कपड़ों की ज़ोरों से बढ़ रही है । खास कर धोतियों की मांग बहुत बढ़ गई है । खादी की धोतियाँ थोड़ी मँहगी होते हु टिकाऊ होने के कारण लोगों को सस्ती मालूम होती हैं वे बराबर धोतियों की मांग कर रहे हैं ।"

मंत्री जी का कहना है कि-खादी की इस मांग को करने के लिए एजन्ट श्री राजेन्द्रप्रसाद की सलाह के मुता इस वर्ष अपनी वर्तमान पूंजी से ३,००,०००) की उत्पत्ति और प्रायः ३६०,०००) की बिक्री की योजना की थी । परन्तु शाखा की चलती पूंजी में जितने रुपये लगे हैं वे लगभग सब—जैसी कि आशा की जाती वसूल नहीं हो पाये । प्रायः २५,००० अटके पड़े हैं । कारण उत्पत्ति की प्रगति कम हो गयी । इस विषय में जी की जनता से कुछ विचारणीय शिकायत हैं । वे क "कुछ सार्वजानिक कार्यकर्ता तो ऐसे भी मिले हैं डालते हैं कि क्यों तकाज़ा करते हो क्या तुम्हारे घर के हैं ? लोगों ने चर्खा संघ को काफी रुपया दिया है । के रुपये हम दोचार बरस में किसी समय अदा पचावेंगे नहीं ।" वाह क्या खूब है । इस दलील में अज्ञान, भ्रम अदूर-दर्शिता और परायापन है, देखें । क्या इन सज्जनों से हम नम्रतापूर्वक यह सकते हैं कि अगर इसी तरह सार्वजनिक कामों में -दो चार-चार वर्षों की ढिलाई करते रहे तो, इस चर्खा लन और स्वराज्य-संग्राम का मतलब ही क्या रहा ! तो आग लग रही है और आप कहते हैं 'अजी रहने आज नहीं कल ही बुझा देंगे कौन नुकसान हुआ जाता है !

हमें आशा है कि मंत्री जी को इस बार वसूली में खूब …वी होगी। और जैसा कि वे अनुमान करते हैं …र तक सचमुच ही वे ३,००,०००, की उत्पत्ति दिखला …। हम चाहते हैं कि बिहार के सार्वजनिक कार्यकर्त्ता …ी वर्तमान बारीक परिस्थिति का अध्ययन करें और …के अनुकूल वातावरण से लाभ उठाने में, और जनता …ग पहुँचाने में किसी प्रकार भी दूसरे प्रांतों से पीछे न …। बंगाल में श्री सुभाष बाबू का विदेशी-वस्त्र का बहिष्कार …ोलन जोर पकड़ता जा रहा है। क्या बिहार की राष्ट्र …खादीप्रेमी जनता इस अवसर पर पीछे रहना पसन्द करेगी?

महाराष्ट्र में खादी सम्मेलन

तिलक-स्मारक-मन्दिर पूना में महाराष्ट्र खादीसंघ का …क सम्मेलन गत ता० १३ और १४ मई को सानन्द …न हुआ। इस सम्मेलन में दूर-दूर के ज़िलों के बहुत …दी-प्रेमी सज्जन इकट्ठे हुए थे। श्री० शं० श्री० देव …लन के सभापति थे। उन्होंने अपने भाषण में कहा— …राष्ट्र में खादी का तनिक भी विरोध नहीं यह बात …त सिद्ध है। प्रान्तिक परिषद् ने भी अपने स्वदेशी के …व में खादी पर विशेष ज़ोर दिया है। सिर से पैर तक …ी पहनने वाला व्यक्ति ही संघ का सभासद हो सकता …स्वराज्य-प्राप्ति तक खादी का व्रत पालने वालों की बड़ी …वश्यकता है। हजार बारह सौ लोगों ने अपने हस्ताक्षर …भेजे भी हैं। जिनमें ७२८ एक दम खद्दरधारी हैं और …धोती के सिवाय और सब कपड़े खादी के पहनते हैं। …गत वर्ष महाराष्ट्र में २ लाख रुपयों की खादी बिकी। …र प्रति वर्ष २५,०००) रुपयों का खद्दर अधिक बिक …—उसकी माँग बराबर बढ़ती जा रही है। खादी …के लिए सारे महाराष्ट्र प्रान्त को ८-९ भागों में बाँट …जाय, और साल भर तक ऐसा प्रयत्न हो कि जिससे …के आखिर तक कम से कम ५,००० पूरे खद्दरधारी …हो सकें तो अच्छा होगा। बालकों के लिए एक …ला खोलना ज़रूरी है। इससे खद्दर के कार्य में उनकी …ढ़ेगी।”

श्री० बाबूराव गोखले ने विदेशी-वस्त्र बहिष्कार की योजना को उत्साह पूर्वक चलाने की बात का समर्थन किया। राजनैतिक दृष्टि से बहिष्कार की भारी आवश्यकता है इसीपर आपने अधिक ज़ोर दिया और खद्दर को सोलह आना स्वदेशी बतलाया।

श्री० वा० वि० दास्ताने ने कहा—“१९२५ में अखिल भारतवर्षीय चर्खा संघ स्थापित हुआ। १९२६ के अन्त में महाराष्ट्र में १५,०००) की खादी तैयार हुई और डेढ़ लाख की बिक्री। सन् १९२६-२७ में अठारह हज़ार की खादी बनी और एक लाख बहत्तर हज़ार की बिक्री। महाराष्ट्र में खादी उत्पत्ति के चार महत्व पूर्ण केन्द्र हैं। जिनमें हर तरह की खादी तैयार की जाती है—सावली, किन्हीं, चान्दा, और चोपड़ा। चान्दा केन्द्र के महार लोगों में खादी के कार्य का खासा प्रचार हो गया है। सारे महाराष्ट्र भर में कुल २५ वस्त्र भंडार और १३ उत्पत्ति केन्द्र हैं।

कोंकण प्रान्त में खादी के लिए उत्तम क्षेत्र है। श्री० अण्णासाहब पटवर्धन के मतानुसार “कोंकण के लोग निर्धन हैं और उनका बहुत समय बेकारी में बीतता है। इस प्रान्त में सांवतवाड़ी का ठिकाना खादी कार्य के लिए बड़ा उपयोगी है।” हर्ष की बात है कि सांवतवाड़ी सरकार ने खादी के काम को अपने हाथ में लेकर जनता को बेकारी से बचाने का प्रयत्न शुरू कर दिया है।

श्री दीक्षित महोदय ने मराठी-शालाओं में कताई बुनाई के पाठ्यक्रम की अपनी एक योजना उपस्थित की और उस पर उपस्थित सज्जनों के मत मांगे। इस विषय पर अंतिम निर्णय क्या हुआ इसका हमें ठीक-ठीक पता नहीं चला है। हमें आशा है कि श्री-दीक्षित की यह उपयोगी योजना स्वीकृत हो जायगी। जिससे महाराष्ट्र प्रांत के बालकों को किताबी-शिक्षण के साथ ही साथ वस्त्र-स्वावलंबन का पाठ भी मिलता रहेगा।

ऊपर के विवरणों से हमारे पाठकों को खादी-आंदोलन की राष्ट्रीय उपयोगिता और आर्थिक महत्ता का पता चलेगा। देश के कोने-कोने में खादी-आंदोलन का संदेश पहुँचाना और सारे राष्ट्र में खादी केन्द्रों की जड़ जमाना ही आज का युग-धर्म है। खादी स्वराज्य है और स्वराज्य खादी है; इसी ध्येय को सामने रखकर देश-भक्तों को जनता के स्वराज्य-यज्ञ

में अपना-अपना हिस्सा देने के लिए तैयार हो जाना चाहिए तभी जनता सच्चा स्वाज्य प्राप्त कर सकेगी ।

क्या देश में खद्दर की प्रगति बढ़ रही है?

अखिल भारत चर्खा-संघ ने अपना दूसरा वार्षिक विवरण निकाला है । विवरण ३१ पृष्ठों में समाप्त हुआ है और परिशिष्ट २४ पृष्ठों में। कुल २० लाख रुपये की पूँजी से यह बड़ा राष्ट्रीय उद्योग चल रहा है । रिपोर्ट से पता चलता है कि खादी ने कितनी प्रगति की है । जहाँ १९२५-२६ ई० में कुल २३,७६,६७०) रुपये की खादी बनी थी वहाँ १९२६-२७ में कुल २४,०६,३७०) रुपये की बनी और बिक्री भी कुल २८,९९,१४३) से बढ़कर ३३,४८,७९४) पर पहुँच गई । पिछली रिपोर्ट में कतवैयों की संख्या ५०,००० बतलाई गई थी, इस बार यह बढ़कर ८३,३३९ हो गई । बुनकरों की संख्या ५,१९३ है । संघ की शाखाओं के ज़रिये पिछले साल १,५०० गाँवों में खादी का काम होता था । इस साल यह काम २,३८१ गाँवों में चल रहा है । पिछली बार भी कतवैयों और गाँवों की संख्या कम ही बतलाई गई थी । इस बार भी दर असल (वास्तविक) संख्याएँ, दी हुई संख्याओं से अधिक होंगी । खादी के १७७ उत्पत्ति केन्द्र हैं, जिनमें ६२ संघ के, ४१ संघ से सहायता प्राप्त और ७४ स्वतन्त्र हैं। २०४ दूकानें हैं जिनमें ११५ संघ की, ४३ सहायता प्राप्त और ४६ स्वतन्त्र हैं। संघ के तथा सहायता प्राप्त संस्थाओं के अधीन कुल मिलाकर ७४८ कार्यकर्त्ता हैं । इनमें स्वतंत्र संस्थाओं में काम करने वालों की तादाद शामिल नहीं है । सूत की उन्नति के बारे में रिपोर्ट में लिखा है कि शुरू में ६ से १० तक अंक का सूत तैयार होता था और अब अधिकांश सूत १५ अंक तक का होता है । थोड़ा सा सूत २५ अंक तक का भी मिलता है। अजमेर में काम शुरू करने के समय ४ से ५ अंक का ही सूत मिलता था । अब वह बढ़कर १० से १३ तक पहुँच गया है । औसत दर्जे के सूत में उन्नति के अलावा बहुत से प्रांतों में ऊँचे अंक का बहुत सूत निकलने लगा है । तामिल नाडू में इस ऊँचे अंक के सूत का कपड़ा ७,२५,५२६) का बनाया गया । मगर आज सबसे महीन खादी बनाने में तो आंध्र ही बाज़ी मारे हुए है । यह भी संतोष की बात है कि कपड़े की किस्म में सुधार होने के साथ साथ दर बराबर घटती गई है। शिक्षा-विभाग के
कामों का सब से महत्वपूर्ण विभाग कार्यकर्ताओं
खादी बनाने की सभी क्रियायें सिखलाने के लिए
पाठशाला चलाना है। यह योजना भी सफल हो रही है।
विभाग में ३३ विद्यार्थी ख़ादी के काम की शिक्षा पा रहे

इसके अलावा गत वर्ष के अन्त तक महात्माजी ने
प्रान्तों में (बिहार, महाराष्ट्र, कर्नाटक, तामिलनाड, केरल,
भ्रमण किया उन प्रांतों में लोगों की प्रवृत्ति खादी की
बढ़ी है; लोग खादी आंदोलन के वास्तविक रूप और मह
समझने लगे हैं। इस संबन्ध में उनकी जो भ्रम और
रहा करती थी वह भी दूर हुई है। छोटे बड़े सब लोग
से सहानुभूति रखने लगे है । राजनीतिक क्षेत्र में
वाले सज्जन भी खादी के बारे में एक मत हो रहे हैं,
इस दौरे में ठीक तरह प्रमाणित हो गई है। दौरे
हुए महात्माजी कई देशी राज्यों के महमान बने थे
राज्यों के मालिकों ने जिस श्रद्धापूर्वक महात्माजी के
संदेश को सुना वह भारतभर के समस्त राजाओं के
केवल अनुकरणीय ही नहीं व्यवहार्य भी है। हर्ष की
कि मैसोर, सांवतवाड़ी आदि की सरकारों ने अपने
खादी-प्रचार और खादी-संगठन का एक नया विभाग
दिया है और ग़रीबों की बेकारी के प्रश्न को हल
लिए इस विभाग की तरक्की पर ख़ूब ध्यान दिया
है । इधर कुछ सार्वजनिक कार्य-कर्त्ताओं के उत्साह और
श्रम के फल-स्वरूप मध्यभारत के ग्वालियर राज्य
अपनी पाठशालाओं में कताई शुरू कर दी है। उज्जैन
'खादी-प्रचार-संघ' भी खुल चुका है । राज्य में
उत्पत्ति और बिक्री के केन्द्रों को शीघ्र ही कायम
बात पर विचार हो रहा है । उज्जैन में तो एक
खुल भी चुका है ।

इधर खादी के कार्य में एक नये और उपयोगी
कोण से काम शुरू किया गया है । व्यापारिक
अतिरिक्त अब खादी-केन्द्रों में से कुछ में वस्त्र-
और स्वेच्छा कताई के उद्देश से भी काम होने लगा है
वहाँ सफलता भी ख़ूब रही है । स्वेच्छा कताई और
स्वावलंबन का काम शुरू-शुरू उन्हीं केन्द्रों में

है जहाँ के लोगों की आर्थिक स्थिति तुलनात्मक दृष्टि अच्छी है। राजस्थान के बिजोलिया प्रदेश में कताई ने उत्तम प्रगति की है। कुल १२,००० की दी में से ६,१५० आदमी अपने हाथ-कते सूत का पहनते हैं। बारडोली तालुके की रानीपरज प्रजा में यह तेज़ी से चल रहा है। पंजाब के कुछ केन्द्रों में हाथ-कते के बदले बनी-बनाई खादी बेचने का प्रबन्ध कर रक्खा इस साल कुल ६२,११६ गज़ खादी सूत के बदले में गई।

खेद का विषय है कि राष्ट्रोद्धार में चर्ख़ा और खादी महत्व जानते हुए भी अखिल-भारत चर्ख़ा-संघ के सदस्यों संख्या नगण्य है। इस साल तो वह और भी घट गई है। संघ के तीनों प्रकार (अ,ब और बालवर्ग) के सदस्यों की जहाँ १९२५-२६ में क्रमशः ३४७२, ९४२ और थी वहाँ १९२६-२७ में वह केवल २,१०५, ३४० २६४ ही रह गई है। बालवर्ग में जो तरक्की हुई है, ई प्रजा में खादी की प्रीति की द्योतक है । रिपोर्ट में गया है कि इस साल सदस्य बढ़ाने के लिए कोई ख़ास कार्य नहीं किया गया। कुछ प्रान्त अगले साल सदस्य-संख्या बढ़ाने का विचार कर रहे हैं।

हमें आशा है कि देश के सभी प्रान्त अपने-अपने में चर्ख़ा-संघ की सदस्य-संख्या को बढ़ाने का ख़ूब प्रयत्न और जनता भी उनके इस राष्ट्रीय-यज्ञ में उत्साह-पूर्वक लेगी। ईश्वर करे, खादी का यह पुण्य-कार्य देश में दिन-रात-चौगुना बढ़े और देश की ग़रीब जनता के कंधे से का कठोर जूआ जलदी ही हट जाये।

त्रिवेदी

वलम्बन पद्धति

एक आदमी को वर्ष में औसतन बारह वर्गगज़ कपड़ा ए। यदि एक कुटुम्ब में औसतन पाँच आदमी हों तो ६० वर्गगज़ कपड़ा चाहिए। इस कपड़े के लिए से अधिक ६०×११०० (ताने के तार) ×२ गज नी के तार) = १,३२,००० गज़ सूत चाहिए। इसे में अधिक से अधिक ३०० गज़ फी घंटे की चाल से घंटे चाहिएँ। इसमें लगभग १९ सेर रुई लगेगी, जिसे और पूनी बनाने में लगभग ७६ घंटे लगेंगे। इस तरह कुल (४४०+७६ + ३००=) ८१६ घंटे होते हैं। अब अगर फ़ी कुटुम्ब ढाई आदमी रोज़ काम करें तो ८१६ ÷ २$\frac{१}{२}$= लगभग ३२६$\frac{१}{२}$ घंटे प्रति मनुष्य का वाषक औसत पड़ता है।

अगर देश के किसानों और खेती पर आधार रखने वाले मज़दूरों की संख्या बीस करोड़ समझ ली जाय, उन्हें शिक्षा और सुविधायें दी जाँय, तो वे सब रोटी की ही तरह कपड़ा भी अपने घर पर बना लेंगे। और अगर एक आदमी के १२ गज़ कपड़े की क़ीमत ५) मानी जाय तो बीस करोड़ आदमी खुशी-खुशी एक अरब रुपयों की खादी प्रति वर्ष तैयार कर लेंगे। इस तरह हम लेन-देन, विदेशों से स्पर्द्धा और उत्पत्ति आदि के अनर्थों से बच जायँगे।

जेठालाल गोविंदजी

संकट का कारण

देश के उन पांच करोड़ कुटुम्बों के लिए जो केवल कृषि पर ही अपना गुज़र-बसर करते हैं किसी न किसी सहायक धंधे की बड़ी भारी ज़रूरत है।

"केवल सवा दो एकड़ ज़मीन की खेती करनेवाले किसी आदमी को सालभर में अपेक्षाकृत बहुत थोड़े दिनों तक काम मिलता है।" (बंगाल—मनुष्य गणना का विवरण १९२१)

"पंजाब के पुरुष किसान साल भर तक जो कुछ काम करते हैं उसका औसत लगाने से मालूम हुआ है कि साल भर में वे केवल १५० दिन की पूरी मज़दूरी पाते हैं। (श्री कालवर्ट)

"खेती-जिसमें हिन्दुस्थान की आबादी का बहुत बड़ा भाग लगा हुआ है—देश के कृषकों आदि को लगातार साल भर तक पूरी मजदूरी नहीं देती।

"हमारे यहां खेती के मानी हैं, दो बार की बोआई, दो बार की फ़सल कटाई, समय-समय की निंदाई, और तीन बार की सिंचाई। इसके बाद तो किसान वर्ष का लगभग आधा समय सुस्ती में बिताते हैं।"

(मध्यप्रान्त-मनुष्यगणना १९२१)

फिर क्या आप को दिन-दिन बढ़नेवाली देश की दरिद्रता—उसकी कर्ज़दारी और उसके जीवन-कलह को देख कर आश्चर्य होता है ?

राजगोपालाचार्य

विश्वदर्शन

एशिया, स्वतन्त्रता की लहरों में—

एक लहर एशिया की आत्मा को भिगो रही है; एक तूफान आ रहा है, जो आज एशिया में और कल यूरोप में फैलकर तांडव करेगा । आज से हज़ारों वर्ष पूर्व जिस राष्ट्र ने दुनिया को सभ्यता का संदेश दिया था उसकी बेड़ियाँ कट गई हैं । ४० करोड वीर बच्चों का चीन आज गर्दन उठा कर गर्व भरे नेत्रों से पश्चिम के क्रूर और रक्त-पिपासु राष्ट्रों की ओर देख रहा है । उसकी इस दृष्टि का मर्म कौन समझेगा ? वह लहर जो सोवियट रूस से वर्षों पूर्व चली थी, दो धाराओं में फूटकर टर्की, ईरान और अफ़ग़ानिस्तान को एक ओर, और तुर्किस्तान एवं चीन को दूसरी ओर जगा गयी । उसकी हरहराहट में जो संदेश था, जो आकर्षण था, जो विष था, उसकी उपेक्षा 'असभ्य' टर्की से लेकर 'अफ़ीमची' चीन तक कोई न कर सका । और देखने वाले देख रहे हैं कि आज सारा एशिया संघटित होकर यूरोप की प्रतिस्पर्द्धा में खड़ा होने की तैयारी कर रहा है ।

चीन के संबन्ध में इधर जो समाचार आये हैं उनमें साम्राज्यवादी राष्ट्रों की नृशंसता के बड़े ही क्रूर नमूने मिलते हैं । स्वार्थी शक्तियों ने चीन के मामले में दुनिया को कैसा धोखा दे रक्खा था ! रूटर ने ब्रिटेन, अमेरिका और जापान की निर्दोष सरलता का ढिंढोरा पीटने में हद कर दी थी; पर अब मालूम हुआ—और राजनैतिक गति-विधि के पारखियों से पहले भी छिपा न था कि किस प्रकार घूस दे देकर गृहयुद्ध की आग में चीनियों का हाड़-मांस और अंतःकरण जलाया जा रहा था । उस घूसख़ोर जापान के पिट्ठू चांग-सो-लिन के मरते ही सब समाप्त हो गया । अपने अपूर्व आत्मत्याग और लगन से राष्ट्रीय चीन ने दुनिया के इन गुंडे राष्ट्रों के मुँह पर ऐसा थप्पड़ मारा है, जो उन्हें बहुत दिन तक याद रहेगा । आज सब विदेशी 'वि सुविधा' प्राप्त राष्ट्रों के राजदूत राष्ट्रीय चीन के अर्ध्य प्रदान करने को उत्सुक हैं । चीन ने घुड़ककर दिया है कि पुरानी हो या नई, सब तरह की संधियाँ से तोड़ दी गईं, अब पूर्ण समानता का सिद्धांत मान बराबर की संधियाँ फिर से की जायँगी और विदेशियों विशेष कर लिया जायगा तथा वे चीनी क़ानूनों को को बाध्य किये जायँगे । कल तक यह चीन की हि समझी जाती थी; पर आज, उसके स्वतन्त्र होते ही, सिर झुकाकर उसकी बातें मानने की उत्कंठा प्रकट की यह है स्वतन्त्रता का जादू !

पर चीन, स्वतन्त्र होकर भी, अपने युद्ध की नहीं समझता । वर्षों के युद्ध के बाद आज सफलता कर वह सुस्ताने, विश्राम करने नहीं बैठा वरन् राष्ट्र-नि के कार्य में जी-जान से लग गया है । जापान के अत्या तथा गृहयुद्धों की भयानक विभीषिका के कारण इत्यादि प्रांत उजड़ से रहे थे, प्रजा भूखों मर रही थी, देश छोड़कर भागे जा रहे थे । अब देश की उपज नई सड़कें बनाकर अन्तर्प्रान्तीय व्यापारिक सुविधायें करने तथा घरेलू उद्योगों को उत्तेजन देने का कार्य हो गया है । जहाँ अभी तक चीन में तीन सरकारें थीं, एक सरकार का नियंत्रण है । मंचूरिया तक ने रा शासन-व्यवस्था की अधीनता स्वीकार कर ली है, पीछे की ख़बर है कि जापान उसे धमकाने की कोशि रहा है ।

टर्की ने और भी आगे पैर बढ़ाया है । स्त्रियों की त्रता, सामाजिक कुरीतियों एवं कट्टरता के उपक विनाश एवं अनेक नूतन वैज्ञानिक एवं राजनैतिक पद्धतियों के ग्रहण द्वारा वह यूरोपीय राष्ट्रों की प्रति

पथ पर दौड़ रहा है। ईरान भी बढ़ता जा रहा है। ग़ानिस्तान में तो उसके योग्य शासक अमीर अमानुल्ला-ने एक नया जीवन भर दिया है। उनकी यूरोप-यात्रा उनकी अपनी मातृभूमि के लिए लाभदायक सिद्ध हुई वहाँ उससे एशिया का बड़ा उपकार-साधन हुआ है। भारत भी इस छोटे पड़ौसी ने एक उद्वेग-सा उत्पन्न कर दिया है। मिश्र, टर्की, ईरान, रूस और अफ़ग़ानिस्तान में जो गृति हुई है उससे स्वार्थलोलुप यूरोपीय राष्ट्र शंकित हो रहे हैं। स्वतंत्रता की यह वेदना इन्हीं देशों तक सीमित नहीं, र मलय द्वीपसमूह में भी—जिसका ज्ञान बहुत कम गों को होगा—चिनगारियाँ फैल रही हैं। जावा और त्रा करवटें ले रहे हैं। युवक जाग रहे हैं और प्राण देकर मातृभूमि को स्वतंत्र राष्ट्रों की पंक्ति में बैठा देखने को उता-वले हैं। डच सरकार इन पाँच करोड़ मलय लोगों को कुचल अपने चरणों में रखने को कटिबद्ध है। वह युवकों के त्र्य प्रयत्नों को निर्मूल कर डालने के लिए जैसे अमानु-षिक अत्याचार कर रही है, उसे देख कर मनुष्यता का कलेजा काँप जायगा। पर लहर रुकती नहीं दिखायी देती। लैण्ड में शिक्षा-प्राप्ति तथा अन्य उद्देश्यों से रहने वाले विद्यार्थियों तक में आग फैल गई है। उन्होंने सहानुभूति ने वाले कुछ डचों को मिलाकर 'परहिमपोयनाँ इण्डोने-शिया' (Perhimpoenan Indonesia) नामक संस्था भी खोल रक्खी है। इस संस्था द्वारा वे मातृभूमि को स्वाधीन करने की तैयारी करने में लगे हुए हैं। इस संस्था से 'इण्डो-नेशिया मेरडेका' (Indonesia Meredeka अर्थात् तंत्र इण्डोनेशिया) नामक पत्र भी डच—और मलय दोनों भाषाओं में—निकलता है। पुलीस ने गत वर्ष इस संस्था के सब मलय विद्यार्थियों को गिरफ़्तार कर लिया था। उन-पर झूठा मुक़दमा चलाया गया। इनके सम्बन्धियों पर देश में दबाव डाला गया कि वे उनसे सम्बन्ध तोड़ दें और के निर्वाह के लिए रुपये न भेजें। इनमें जो सरकारी नौकरी में थे वा पेंशन पा रहे थे, उनको भी इसी प्रकार सताया गया और पिता-पुत्र वृद्ध-युवक में भेद डालने की श की गयी। पुलीस द्वारा युवकों को सब तरह से तंग किया गया; पर, यह आग, जो इन सौदाइयों को मतवाला बना रही थी, ऐसी न थी जो बुझ जाती।❀ फलस्वरूप आज इस भूखण्ड में भी स्वतंत्रता के लिए तुमुल संघर्ष जारी है। और एक युवक विद्यार्थी के शब्दों में उसका यह देश भी एक दिन स्वतंत्र होकर रहेगा।†

इस लहर के फैलने के साथ-साथ, एशिया अपने सब अँगों को मिलाकर—संघटित होकर, एक साथ संसार के सामने खड़ा होने की कोशिश भी कर रहा है। एशियाई राष्ट्रसंघ के निर्माण के लक्षण दिन-दिन अधिकाधिक स्पष्ट होते जाते हैं। अभी उस दिन अमीर अमानुल्ला के भाई अफ़ग़ानिस्तान के राजदूत जनरल अलीअहमदख़ाँ ने—जो मिश्र से संधि करने गये थे—मिश्र के अधिकारियों के समक्ष भाषण देते हुए कहा—

"सम्पूर्ण प्राच्य भूखण्ड में जो जागृति दिखाई दे रही है, पारस्परिक भाई-चारे और आन्तरिक बंधन की जो कड़ियाँ बनती जा रही हैं, वे केवल अवसर—'चान्स'— का परिणाम नहीं हैं। ये तारूस के पर्वतों से लेबनन के सेदारों तक, पामीर की ऊँची चोटियों पर, अफ़ग़ानिस्तान के मैदानों में, अरब की मरुस्थलियों तथा मेसोपोटामिया, ईरान, भारत, चीन, साइबेरिया एवं जापान के भूखण्डों पर फैलती जा रही हैं। इसमें कोई गूढ़तत्व, रहस्यमय संदेश निहित है। ×××× पाश्चात्य राष्ट्रसंघ के सदस्य राष्ट्रों ने विश्वशांति की समस्या को हल करने में बड़ी उपेक्षा से काम

❀ गिरफ़्तार अभियुक्त विद्यार्थियों के नेता मुहम्मद हता ने डच अदालत में कहा था—
"××××|× as we could not be legally prosecuted, other and immoral means were employed to strike at us. Members of our families in Indonesia were threatened with dismissal from the Government service, if they continue to send money to their sons, who remained members of the Perhimpoenan Indonesia."

†"As with all other peoples, a day will dawn when the Indonesians will take their place among free peoples,"

लिया है । × × क्या हमारे लिए यह आशा करना बहुत अधिक होगा कि एशिया के नवजाग्रत प्राच्य राष्ट्रों का समूह इस मानवीय आदर्श को निकट-भविष्य में पूरा करने के लिए उठ खड़ा होगा ?”

आज विश्व में जो सांस्कृतिक संघर्ष चल रहा है उसमें भाग लेने और विश्व के सामने एक आदर्श पेश करने के लिए एशिया के प्राण उतावले हो रहे हैं । क्या दुनिया को अमरता का संदेश देने वाला आज का अभागा भारत इस पुकार को सुनकर अपने पैरों की बेड़ियाँ काटने की चेष्टा करेगा ?

'सुमन'

विश्व-शान्ति का प्रस्ताव

गतांक में हमने इस विषय पर लिखते हुए बताया था कि राष्ट्रों की आधुनिक चर्चा का यह मुख्य विषय है। वहीं हमने यह आशा भी दिलाई थी कि बहुत संभवतः फ्रांस इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लेगा । नये आये हुए समाचारों से मालूम हुआ कि फ्रांस भी हस्ताक्षर करने को तैयार होगया है । इंग्लैण्ड और जर्मनी तो इस प्रस्ताव को स्वीकार कर ही चुके हैं । पोलैण्ड और इटली के साथ ही जापान, कनाडा, ज़ैकोस्लेवेकिया, और स्विट्ज़रलैण्ड ने भी अमेरिका के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया है । इस तरह संसार के बड़े-बड़े राष्ट्रों ने इस प्रस्ताव को मान लिया है; परन्तु इस प्रयत्न की निरूपयोगिता तो हम गतांक में लिख चुके हैं । इंग्लैण्ड ने आत्म-रक्षा की व्याख्या जान कर ही दस्तख़त किये हैं । इटली तो जन-संख्या और सैनिक शक्ति बढ़ाने में लगा हुआ है । मुसोलिनी कहता है कि इटली इतने वायुयान बनावेगा कि उसके पंखों से सूर्य भी छिप जायगा । फ्रांस अटलाण्टिक और भूमध्यसागर के जंगी बेड़ों की तैयारी कर रहा है । अपनी सेनाओं में वह उत्तरी अफ्रिका के हबशियों को भर्ती कर रहा है । 'हैडबे' पत्र का संवाददाता लिखता है कि फ्रांस अपनी पूर्वी सीमा से लेकर भूमध्यसागर के तट तक भूमि के भीतर ही भीतर लोहे की ऐसी मज़बूत दीवार कल-पुर्ज़ों सहित बना रहा है कि वह किसी भी समय शत्रु के आक्रमण से फ्रांस की रक्षा कर सके । यह सब तय्यारियां किस बात की सूचक हैं, किसी से छिपा नहीं । फिर भी शान्ति के प्रस्ताव को राष्ट्र स्वीकार कर रहे हैं। किलौग के पास फ्रांस ने जो स्वीकृ सूचक उत्तर भेजा है उससे फ्रांस की आन्तरिक इच्छा होजाती है । उसमें लिखा है कि फ्रांस को इस बात प्रसन्नता है कि इन प्रस्तावों से फ्रांस की वे ज़िम्मेवारि नष्ट नहीं होतीं, जो उसने अबतक संधियों के द्वारा राष्ट्रों से की हैं । क्या इससे स्पष्ट नहीं होता कि वह श्यकता पड़ने पर अपने मित्रराष्ट्रों की रक्षा के युद्ध करेगा ?

वस्तुतः यह सारा प्रयत्न संसार के निर्बल राष्ट्रों आंखों में धूल झोंकने के लिए है ।

इटली में असन्तोष की आग

आष्ट्रिया के प्रसिद्ध विद्वान लेखक एल्गिविर में प्रचलित निरंकुश मुसोलिनी के शासन-विधान पर विचार प्रकट करते हुए लेख का प्रारंभ इस प्रकार करते हैं “विचित्र नाम वाली गलियों के शहर रोम में एक शेर मुख की गली [Via Bocca di Leone] है। आजकल बहुत अधिक इटली-निवासी प्रत्येक गली जिसमें वे चल रहे होते हैं, शेर के मुख की गली करते हैं; क्योंकि न जाने किस क्षण में उनपर शेर पंजा (मुसोलिनी का दमनचक्र) आ पड़े ।”

बहुत अंश तक यह कथन बिलकुल ठीक है। निरं और स्वेच्छाचारी मुसोलिनी दिन-रात इटली में प्रजा दमन करमे का कोई न कोई उपाय सोचता रहता उसके नवीन शासन-विधान के प्रचलित होने की का परिचय हम 'त्यागभूमि' के आठवें अंश में दे चुके इस नवीन शासन-विधान द्वारा उसने प्रजा के अधिकार छीन लिये हैं । गणसंस्थायें, जिन्हें मुसोलिनी सरकार देशहितैषी समझती है, पार्लमेंट के लिए उम्मीदवार चुनेंगी। फ़ासिस्ट महासभा (Fascist Council) उनमें से तथा कुछ अपने मनोनीत मिलाकर कुल चार सौ सभ्यों को चुनेगी। इन चार सौ की सूची में से इटली की जनता अपने प्रतिनिधि

ी । इस पार्लमेंट का काम किसी प्रस्ताव को स्वी- या अस्वीकृत करना नहीं होगा, परंतु इसका कार्य सरकार से सहयोग होगा । इस तरह मुसोलिनी ने ता को बिलकुल नष्ट कर दिया है । केवल प्रजा के कार ही नहीं छीने गये, परन्तु इटली का राजा विक्टर नुअल तृतीय भी मुसोलिनी के हाथों की कठपुतली बन है । उसने इस नवीन शासन-विधान पर गत १७ मई स्ताक्षर कर दिये ।

इटली की जनता, जो पर्याप्त समय से मुसोलिनी के हो रही थी, इस शासन-विधान के कारण बहुत न और क्षुब्ध हो गई है । ई० स० १८४८ में सैवोय-राजा चार्ल्स अल्बर्ट ने इटली की प्रजा से इस शासन- को प्रचलित करने की प्रतिज्ञा की थी । वर्तमान ने भी राज्याभिषेक के समय इसी शासन-विधान में र्तन न करने की प्रतिज्ञा की थी । अब उसके नवीन न-विधान पर हस्ताक्षर करने से इटली की जनता राजा हुत रुष्ट हो गई है । वर्तमान पार्लमेंट में छयालीस ों ने अपने को ख़तरे में डालते हुए भी इस नवीन शासन-का बड़े ज़ोरों से विरोध किया, जिनमें से अलवर्टिनी, ति और सिसि आदि मुख्य हैं । राजा के विरुद्ध भी ोलन चल पड़ा है । जब राजा ने जनता के साथ की पनी प्रतिज्ञा को तोड़ दिया, तो प्रजा भी उसके किये गये वचनों को पालने के लिए, उसकी आज्ञाओं लने के लिए, बद्ध नहीं रही । यह जनता की मुख्य युक्ति भूतपूर्व प्रधानमन्त्री निटि (Nitti) और काउण्ट , जो राजा का एक निकट-सम्बधी है, इस आन्दो-में मुख्य भाग ले रहे हैं । सीनोर निटि ने तो अपनी मा में यहां तक कह दिया है कि इटली का शासन-विधान नष्ट हो चुका है, इसलिए संसार के राष्ट्रों को यह सूचित कर देना चाहिए कि मुसोलिनी आने वाली सरकार आज से लिये गये सरकारी नये और सन्धियों के प्रतिपालन के लिए ज़िम्मेवार न रहेगी । सरकार जो कुछ भी करेगी, वह सब एक अनियमित कार्रवाई समझी जावेगी ।

सी तरह विक्टर इमैन्युअल तृतीय के सबम्न्धी श्रीयुत फोर्जा ने भी घोषणा की है कि उसे यह गर्व है कि इटली की जनता स्वतन्त्रता में अपना विश्वास रखती है । उसे विश्वास है कि भविष्य में शीघ्र ही इटली की जनता इन हिंसा-पूर्ण अत्याचारों से स्वतन्त्र हो जायगी ।

इसी तरह इटली के दूसरे प्रमुख नेता भी वर्तमान सरकार का बड़े ज़ोरों से विरोध कर रहे हैं । मुसोलिनी की हत्या के लिए भी बाज़ारों में बहुत नोटिस लगाये गये हैं । इन सबसे ज्ञात होता हैं कि इटली में भी कोई बड़ा परिवर्तन होने वाला है ।

लङ्का में शासन-सुधार

लङ्का भी भारतवर्ष की तरह अंग्रेज़ों के अधीन राज्य है, उपनिवेश नहीं । इसका शासन भी भारत की तरह इंग्लैण्ड के राजा कर रहे हैं । वहां की शासन-व्यवस्था यद्यपि भारत की व्यवस्था से भिन्न है, तथापि लङ्का-निवासियों के लिए वह उतनी ही असन्तोषप्रद है, जितनी हमारे लिए यहां की व्यवस्था । इसलिए यह स्वाभाविक था कि भारत की तरह लङ्का में भी उस शासन का बहुत विरोध किया जाता । अंग्रेज़ी सरकार ने साइमन-कमीशन की तरह वहां भी लार्ड डीनोमोर की अध्यक्षता में एक कमीशन बिठाया । केवल एक भेद रहा कि लङ्का ने उसका बहिष्कार नहीं किया । उस कमीशन ने अभी अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की है । उसने यह मान लिया है कि लंका-निवासी अभी इतने योग्य नहीं कि उन्हें पूर्ण या औपनिवेशिक स्वराज्य दिया जा सके । इसलिए वर्तमान शासन में ही कुछ सुधार करने चाहिएँ । रिपोर्ट का सारांश यह है—

वर्तमान व्यवस्थापिका सभा के स्थान पर एक स्टेट-कौंसिल हो, जिसमें ६५ निर्वाचित सदस्य हों, कुछ मनोनीत सदस्य हों और ३ सरकारी पदाधिकारी हों । इसमें ग़ैर-सरकारी सदस्यों की संख्या ही अधिक रहेगी । इसके ऊपर शासन-विभाग के तौर पर एक मन्त्रिमण्डल होगा, जिसमें दस मन्त्री होंगे । प्रत्येक के पास एक-एक शासन-विभाग होगा । इनमें से सात मन्त्री स्टेट कौंसिल द्वारा चुने जावेंगे। शेष तीन को सरकार चुनेगी । सम्भवतः ये तीन मन्त्री न्यायसचिव, अर्थसचिव और वैदेशिक सचिव होंगे । गव-

नर को बहुत से अधिकार दिये गये हैं। वह स्टेट कौंसिल या मन्त्रिमण्डल से किसी भी स्वीकृत प्रस्ताव या व्यवस्था को पुनर्विचार के लिए स्टेट कौंसिल में भेज सकता है, बदल सकता है, और रद कर सकता है।

निर्वाचन में मत देने का अधिकार प्रत्येक बालिग़ पुरुष को और तीस वर्ष से ऊपर की प्रत्येक स्त्री को दिया जायगा। निर्वाचन के विषय में सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह कही गई है कि निर्वाचन जातिप्रतिनिधित्व के आधार पर न हो। इसे बिलकुल उठा दिया जाय। कमीशन ने इसकी बुराइयों पर विचार करते हुए लिखा है कि जातिगत चुनाव का लङ्का-निवासियों की सामाजिक व्यवस्था पर अत्यन्त घातक परिणाम हुआ है। इसके कारण लंका में रहने वाली जातियों और धर्मों की परस्पर मुठभेड़ होती रहती है और इसका परिणाम यह होता है कि इस झगड़े में राष्ट्रीय हित का किसी को ध्यान नहीं रहता।

यह रिपोर्ट कहां तक लंकावासियों को सन्तोष दे सकेगी, यह कहना कठिन है। मुख्य तीन विभाग अपने हाथ में रख लेने के बाद बाक़ी कुछ रह ही नहीं जाता। यही विभाग तो किसी राष्ट्र की स्वतंत्रता के प्रमाण हैं। फिर गवर्नर को जो ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त होगा, सब अधिकार देकर सब सुधारों को अन्यथा सिद्ध कर दिया गया है। मताधिकार की व्यापकता और जातिगत प्रतिनिधित्व की प्रथा का उन्मूलन ये दोनों बातें बहुत अच्छी हुई हैं, जिनके लिए कमीशन प्रशंसा का पात्र है।

इस रिपोर्ट का भारतीय दृष्टि से भी एक महत्व है कि हमें अंग्रेज़ों के झुकाव का कुछ पता लग गया है। साइमन-कमीशन की रिपोर्ट क्या होगी, इसका कुछ अनुमान किया जा सकता है। शिमले में इस बात की चर्चा है कि भारतीय सरकार भी साइमन-कमीशन के द्वारा यही पद्धति चाहती है। प्रान्तों में इसी प्रकार की शासन-पद्धति प्रचलित होगी और वहां के गवर्नरों को इसी प्रकार के अधिकार दिये जावेंगे। इस पद्धति को पूर्ण प्रांतीय स्वतंत्रता (Full Provincial Autonomy) कहा जायगा। परंतु कहते हैं, इसके बदले में केन्द्रीय सरकार में असेंबली को जो अधिकार हैं, उनमें कमी कर दी जायगी। मताधिकार की व्यापकता और जातिगत प्रतिनिधित्व की प्रथा का उन्मू दो बातें ऐसी हैं, जिन्हें सुन कर भारतीय सरकार का वरण कुछ क्षुब्धसा हो गया है। यहां तो इनकी आशा सी है।

मध्ययूरोप में अशांति के चिन्ह

यूरोप में उच्छृंखल शासन बढ़ रहा है। मुसो इटली में, प्राइमो-द-रेवेरा स्पेन में, ब्रैटिनो रूमा में जिस प्रकार का अनियंत्रित शासन चला रहे हैं, अन्त होना एक दिन अनिवार्य है। जनता में असंतो चिनगारियाँ जल रही हैं और कहा नहीं जा सकता कि दिन ज्वालामुखी फट पड़ेगा। जुगोस्लेविया और रूमानि किसानों ने सिर उठाया है। रूमानिया में श्री मेनू (Ma की अध्यक्षता में उनका एक बड़ा दल संघटित भी हो है। इसमें लगभग दो लाख सदस्य हैं। हाल में ही ' जूलिया' नामक स्थान में इनका एक बड़ा सम्मेलन था। स्पेन में तो इस एक वर्ग के अंदर शासन- उलटने के प्रयत्न भी कई बार हो चुके हैं। पैरी के 'इको द पैरी, (Ecko de Paris) ने अपने २० जु अंक में ऐसे ही एक नये षड्यंत्र का विवरण प्रकाशित है। यह षडयंत्र बार्सिलोना की सीमा पर स्पेन के अलफेन्सो की हत्या करने के लिए किया गया था। समय के पूर्व ही पुलिस द्वारा रहस्योद्घाटन हो जाने इन क्रांतिकारियों की चेष्टा सफल नहीं हुई। लिस्ब तार है कि पोर्च्युगल में भी क्रांति द्वारा शासन- बदल डालने का प्रयत्न किया गया था, पर असफल इटली में मुसोलिनी की हत्या की चेष्टा अनेक बार चुकी है। कई यूरोपीय राष्ट्रों में मनोमालिन्य बढ़ ग आपस में भीतर ही भीतर चक्र-चक्र चल रही है। इ बातों से मालूम होता है कि मध्ययूरोप में अशांति के एकत्र हो रहे हैं। जनता का असन्तोष बढ़ता जा कब क्या हो जायगा, यह कहना कठिन है।

क्या मिश्र में क्रांति होगी?

मिश्र के सम्राट् फुआद ने एक फ़रमान नि तीन वर्ष के लिए मिश्री पार्लमेण्ट का अंत कर दि

ना मिश्र के आधुनिक इतिहास में बेजोड़ है; किन्तु होना अनिवार्य था, यह अवस्था बहुत दिनों तक नहीं सकती थी। या तो मिश्र की सरकार अपने आन्तरिक वैदेशिक मामलों में पूर्णतः स्वतन्त्र हो या वह ग्रेट-र और जनता दोनों के सामने उत्तरदायी रहे। अभी तक दूसरी अवस्था में रहा है और इस अवस्था में रह कर निर्माण का कार्य असम्भव है। यह झगड़ा वर्षों से चला रहा है। पिछले निर्वाचन में स्व० जगलूलपाशा अपने नी वफ़्दियों के साथ अत्यधिक संख्या में चुने गये थे। अनुकूल मंत्रिमण्डल का संघटन करने का अधिकार उन्हींको र ब्रिटेन को यह कैसे सहन होता? वह तो जानता था राष्ट्रीयता के इस पुजारी के प्राधान्य में उसकी नीचता पाँव न फैला सकेगी। उसने सम्राट् फुआद के सामने र दिया कि जगलूलपाशा के नियन्त्रण में सर-का संघटन ब्रिटेन सहन न कर सकेगा। झगड़ा उत्पन्न इसलिए जगलूलपाशा ने त्याग करना ही उचित और वह अदलीपाशा के पक्ष में प्रधानमन्त्रित्व से ले। अदलीपाशा ने नरम और गरम दल का एक मंत्रिमण्डल बनाया। एक ओर ब्रिटेन के और दूसरी जगलूल-दल के प्रभाव में उसकी बुरी हालत हुई। की असफलता के बाद सरवतपाशा ने प्रधान का पद किया। वह ब्रिटेन के मित्र के रूप में प्रसिद्ध थे। ने दोनों राष्ट्रों के बीच बंधुभावस्थापन की चेष्टा भी र ब्रिटेन के क्रूर व्यवहारों के कारण अब (१९२७ में) पहले के (१९२२ के) सरवतपाशा न रह गये थे। वृद्ध की देशभक्ति ने उनके हृदय को भी प्रभावित था। विगतवर्ष किंग फुआद इंग्लैण्ड गये थे तो सरवत-उनके साथ ही थे। सम्राट् की प्रेरणा से उन्होंने श्री न के साथ एक संधि की। इस सन्धि का पता जब पार्लमेंट को लगा तो उसने कठोर तीव्र शब्दों में उस-निन्दा की। फलस्वरूप सरवतपाशा को पदत्याग करना और नहसपाशा ने शासन की बागडोर हाथ में ली। बेचारे की भी 'दो मुल्लाओं के बीच मुर्गी हराम'-सी हुई। इधर पार्लमेंट में राष्ट्रीय दल का बहुमत था और उधर इंग्लैण्ड का फ़ौलादी पंजा गर्दन मापे हुए था। इधर मिश्री पार्लमेण्ट में दो बिल पेश थे, जिनमें एक सार्वजनिक सभाओं की स्वतंत्रता के सम्बन्ध में था और दूसरा सेना के संघटन के बारे में। यदि ये बिल पास हो जाते और सैनिक संघटन का कार्य हो जाता तथा सार्वजनिक सभाओं का क़ानून बन जाता तो ब्रिटेन की उच्छृंखलता का अंत बहुत निकट आ जाता। अतएव उसने स्पष्ट रूप से कह दिया कि इन बिलों को उठा लो और सदैव के लिए उठा लो। इस मुठमर्दी और अत्याचार का कोई ठिकाना है! ऐसी अवस्था में नहसपाशा को पदत्याग करना पड़ा। वर्तमान प्रधानमंत्री मुहम्मद महमूदपाशा की भी यही हालत होती, पर इसी बीच सम्राट् फुआद ने तीन वर्ष के लिए पार्लमेण्ट ही तोड़ दी।

प्रसिद्ध जर्मन पत्र 'फ्रैंकफ़र्टज़ीतुंग' में एक लेखक ने लिखा है कि इस अनहोनी घटना के बाद देखना है कि मिश्र, भारत इत्यादि की भाँति, ब्रिटेन का गुलाम बन कर रहता है या अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर उस अवस्था में ब्रिटेन द्वारा होने वाले अत्याचारों को सहने के लिए तैयार होता है। जिन मिश्रियों ने टर्की जैसे छोटे देश को उठ कर स्वतंत्र होते देखा है उनके लिए गुलामी के जुए को वहन करना दुराशामात्र है। अतएव बहुत संभव है कि निकट-भविष्य में संसार को स्वतंत्रता के संग्राम का एक और दृश्य देखने को मिलेगा। अलेक्ज़ेंड्रिया के तारों से पता चलता है कि जनता उत्तेजित हो रही है। नित्य पुलिस के साथ मारपीट हो जाती है। राष्ट्रीय वफ़्द-दल ने एक विज्ञप्ति निकाल कर सरकार के राष्ट्रीयता-विघातक कार्य की निंदा की है। इस विज्ञप्ति में भावी संघर्ष की आशंका भी प्रकट की गई है। उत्तेजना बढ़ती जा रही है और यदि मिश्र ने स्वतंत्र होने का ही निश्चय किया तो उसे एक ओर अपनी सरकार के और दूसरी ओर ब्रिटेन के अत्याचारों की चक्की में पिसना पड़ेगा। भगवान् मिश्रवासियों को इस पराधीन परिस्थिति से शीघ्र मुक्त करें!

'सुमन'

देश-दर्शन

पटुआखाली-सत्याग्रह की विजय

आज से क़रीब दो वर्ष पूर्व पटुआखाली में श्रीयुत सतीन्द्रनाथ सेन के नेतृत्व में कुछ हिन्दू नागरिकों ने नागरिकता के अधिकार की रक्षा के लिए मसज़िदों के आगे बाजा बजाने का सत्याग्रह किया था। सार्वजनिक मार्गों पर प्रत्येक नागरिक को अपने दुःख या हर्ष प्रकट करने का अधिकार है, इस सिद्धान्त की रक्षा के लिए यह सत्याग्रह प्ररम्भ किया गया था। लगभग दो वर्ष तक यह स ग्रह चला, इसमें सैकड़ों क़ैद हुए, सत्याग्रहियों को आपत्तियां झेलनी पड़ीं, परन्तु वे अपने आग्रह पर डटे हिन्दू-सभा के बड़े-बड़े अधिकारियों या हिन्दू-हित का लेकर गत निर्वाचन में खड़े होने वालों ने इस तरफ़ विशेष सहायता नहीं दी, फिर भी तपस्वी सतीन्द्र व्यक्तिगत प्रभाव तथा आदर्श तपस्या के कारण यह स जारी रहा। बीच-बीच में कई बार समझौते के प्रयत्न और आशा हुई कि सत्याग्रह की विजय होगी, सफलता नहीं हुई। अब समाचार मिला है कि बा के ज़िला मजिस्ट्रेट की अध्यक्षता में ज़िले के प्रधान हिन्दू, मुसलमान और ईसाई नेताओं की एक सभा जिसमें तीनों धर्मों के नेताओं ने यह स्वीकार कर लि कि हिन्दुओं को, जब वे चाहें, बाजे के साथ मसजि सामने अपना जलूस ले जाने का अधिकार है। इस नि सत्याग्रह समाप्त हो गया। शायद यह पहला उदाह कि नागरिकों के अधिकार की रक्षा के लिए मुसलमा सरकार के विरोध में किया गया यह सत्याग्रह इतनी लता के साथ समाप्त हुआ है। हमें आशा करनी च कि अन्य स्थानों के मुसलमान नेता इस निर्णय का करेंगे।

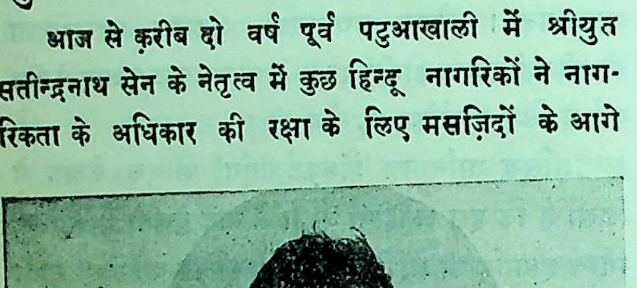

पटुआखली-सत्याग्रह के विजयी नेता

श्रीयुत सतीन्द्रनाथ सेन

मज़दूर-आन्दोलन की प्रगति

इस सत्याग्रह की समाप्ति के साथ-साथ लिलुआ आसनसोल की हड़तालें भी समाप्त हो गईं। ईस्ट इ रेलवे के एजेंट ने मज़दूरों को यह विश्वास दिलाया उनके कार्य प्रारंभ कर देने पर उनकी शिकायतों पर

किया जायगा। इस आश्वासन के मिलने पर मज़दूरों करना प्रारंभ कर दिया है, परन्तु अधिकारियों ने तक हड़तालियों की माँग पर कोई ध्यान नहीं दिया। बम्बई की हड़ताल में कोई परिवर्तन नहीं हुआ। के एक नेता श्री निम्बकर को पुलिस ने गिरफ्तार कर उन-मुकद्दमा दायर किया है, जिसका फ़ैसला अभी तक हुआ। बम्बई कारपोरेशन के कतिपय सदस्यों ने बार हड़तालियों को सहायता देने का प्रस्ताव पेश किया, हर बार पूंजीपतियों के अधिक मत होने के कारण अस्वीकृत हुआ। इस अवस्था को देख कर हड़तालियों की सहायतार्थ एक मेयर-कोष खोला गया है, उसमें विक्टर सासून, सर फ़ज़लभाई करीमभाई व राज प्रताप-आदि ने पर्याप्त मात्रा में चन्दा दिया है। अभी तक अपनी मांगों पर दृढ़ हैं। उनका कहना है कि जब पुरानी दर से वेतन नहीं मिलेगा, हड़ताल बन्द न होगी। मज़दूर अपनी बात पर एकमत हैं। परन्तु मिल-में मतभेद उत्पन्न हो गये हैं। सर मनमोहनदास तथा अन्य कई मिल मालिक पहली दर पर मिल को तैयार हैं, परन्तु दूसरे बड़े-बड़े मिल-मालिक इस-लिए तैयार नहीं। सर मनमोहनदास आदि मिलों के के लिए बहुत प्रयत्न कर रहे हैं। सुना गया है कि शीघ्र समझौता न हुआ तो वे अपनी मिलें पुरानी दर खोल देंगे। श्रीयुत जोशी समझौते के लिए बहुत प्रयत्न रहे हैं। महात्मा गांधी ने भी उन्हें इस विकट स्थिति विचार करने के लिए अहमदाबाद बुलाया है। बहुत है कि कुछ समझौता हो जाय, क्योंकि कई मिल-इस हड़ताल से तंग आ गये हैं।

जमशेदपुर की हड़ताल भी जारी है। यद्यपि कुछ मज़-ने काम पर जाना प्रारंभ कर दिया है, फिर भी हड़ताली संख्या में मौजूद हैं। काम पर जाने वाले मज़दूरों के लिए पिकेटिंग जारी है। स्त्रियां भी पिकेटिंग हैं।

इंडियन रेलवे की हड़ताल अभी तक जारी है। के श्रमिक संघ ने रेलवे एजेंट से कहा था लि यदि मांग पर ध्यान न दिया, तो वे सार्वत्रिक हड़ताल कर देंगे। रेलवे एजेंट ने उलटा उन्हें ही डाट कर कहा कि वह ऐसी धमकी से नहीं डरता। सार्वत्रिक हड़ताल से उन्हें ही नुकसान होगा। इसपर मज़दूरों ने बीस जुलाई के प्रारंभ होते ही आधी रात को हड़ताल प्रारंभ कर दी। स्टेशनों के निम्न कर्मचारी भी हड़ताल में सम्मिलित हुए हैं। वे केवल हड़ताल करके ही शांत नहीं रहे, रेलों के चलने में तरह-तरह की बाधायें भी उपस्थित करने लगे हैं। पटरियों पर पत्थर आदि रख कर, पटरियां तोड़ कर, इञ्जिन पर चढ़ कर उसकी आग आदि निकाल कर, तथा अन्य प्रकारों से बाधायें उपस्थित कर रहे हैं। प्रायः सब गाड़ियां उपर्युक्त कारणों से तथा कर्मचारियों के न मिलने से ८, १० घंटे तक लेट हो रही हैं। किलन, तिरुचेकुर, शेकुरा, तूतिकोरन, टिनेवली तथा मानियाची आदि से ऐसी हड़तालों की ख़बरें आई हैं। रेलवे-एजेंट हैरान है। कई स्थानों पर पुलिस ने गोलियां भी चलाई हैं, जिनसे कई मज़दूर मारे गये हैं।

कलकत्ते के पास बौरिया की फ़ोर्ट ग्लौस्टर जूट मिल कम्पनी की एक मिल में एक छोटी सी बात पर पुलिस से झगड़ा होगया। पुलिस ने गोलियां चलाईं। २६ मज़दूर घायल हुए, जिनमें से ३-४ की अवस्था अधिक शोचनीय है।

वस्तुतः मज़दूरों की समस्या देश में बहुत अधिक विकट रूप धारण कर रही है। भारत के राष्ट्रीय नेताओं को इस तरफ़ विशेष ध्यान देना चाहिए। हम किसी पिछले अंक में पाठकों को यह बता चुके हैं कि इंग्लैण्ड का श्रमिकसंघ भारतीय मज़दूरों को रुपये आदि का प्रलोभन देकर यहां की राष्ट्रीय प्रगति से दूर रखना चाहता है। अब 'फ़ारवर्ड' में प्रकाशित श्रीमती एग्नेस के एक लेख से मालूम हुआ है कि कुछ समय पूर्व यहां दो जर्मन मज़दूर इसी उद्देश्य से आये थे। उन्होंने श्रमी भारत (Toiling India) नामक पुस्तक में भारतीय मज़दूरों की दुर्दशा का चित्र खींचते हुए यूरोप के सर्वराष्ट्रीय श्रमी-संघटन (एम्स्टर्डम इन्टरनेशनल) में सम्मिलित होने की सलाह दी है। श्रीमती एग्नेस कहती हैं कि यह वही संस्था है, जिसने १९१४ में यूरोपीय युद्ध का समर्थन किया था। राष्ट्र-संघ की यह आर्थिक भुजा है। भारत की पराधीनता इसका भी मुख्य उद्देश्य है। वास्तविक बात यह है कि अब मज़दूरों का युग है। प्रत्येक राष्ट्र

दूसरे राष्ट्रों की मज़दूरों को अपनी तरफ़ बना रखना चाहता है। प्रायः सारे एशिया के मज़दूरों की सहानुभूति **रूस** के मज़दूरों के साथ है और **रूस** भी इसके लिए बहुत प्रयत्न कर रहा है। यूरोप का उपर्युक्त श्रमीसंघ चाहता है कि भारतीय मज़दूरों का उसकी तरफ़ अधिक झुकाव हो। भारतीय नेताओं को मज़दूर-समस्या को हाथ में लेना चाहिए और यूरोप की इन सब कूटनीतियों से रक्षा करते हुए इस बात का प्रयत्न करना चाहिए की मज़दूर यहां की राष्ट्रीय शक्ति का एक प्रधान अंग बनें।

कृष्ण

कृषि-कमीशन का माया जाल

सन् १९२६ के मध्य में, भारत के एकमात्र आधार, खेती के उद्योग-धन्धे की उन्नति के उपाय बताने के लिए लार्ड लिनलिथगो नाम के अँग्रेज़ ज़मींदार की अध्यक्षता में, पाँच अँग्रेज़ों और पाँच हिन्दुस्थानियों का एक 'शाही कमीशन, नियत किया गया था। इस कमीशन ने, दो वर्ष की लम्बी अवधि के बाद, गत २८ जून को अपना विवरण प्रकाशित किया है। विवरण २१ अध्यायों में समाप्त हुआ है। लगभग १०,००० पृष्ठों की गवाहियों, ७०० पृष्ठों के विवरण और १०० पृष्ठों के परिशिष्ट में कमीशन ने जिन बातों का उल्लेख किया है वे इस प्रकार हैं—

(१) देश में खेती-बाड़ी सम्बन्धी वैज्ञानिक खोज के लिए ३९ आदमियों की एक "रिसर्चकौंसिल" बनाई जाय, ५० लाख रुपया उसे एक मुश्त दे दिया जाय और चालू खर्च के लिए उसे अलग धन मिलता रहे। देश के बड़े-बड़े प्रान्तों में इस कौंसिल की शाखायें स्थापित की जायँ और वे तरह-तरह की फसलों, दुग्धालय (Dairy) पशु-पालन तथा पशु-चिकित्सा सम्बन्धी बातों की खोज करें और किसानों में उनका ज्ञान फैलावें। (२) नई-नई खादों का उपयोग किया जाय। खली, गोबर, हड्डी आदि की खाद का बहुत अधिक प्रचार हो। खेती में नये ढँग का अधिक प्रयोग हो। किसानों में अच्छे बीजों का खूब प्रचार किया जाय। खेती की मशीनों और औज़ारों, कुएँ खोदने और पानी उठाने की कलों का चलन बढ़ाया जाय और खेती के औजारों पर से रेल का किराया घटाया जाय। (३) उन्नत कृषि के नमूने दिखाने के लिए
जगह प्रदर्शन और मेले किये जायँ, सिनेमा दिखाये
और इस काम के लिए विशेष अधिकारी नियुक्त किये
(४) आबपाशी के लिए. कुओं से खूब काम लिया
नहर के पानी को बाँटने के लिए नहर की पंचायतें
जिनमें किसान भी रहें। कुओं, बाँध, झरनों आदि से
उठाने की शिक्षा किसानों को दी जाय। (५) देश की
जनता में, ख़ास कर, उनकी लड़कियों और स्त्रियों में
का खूब प्रचार किया जाय, जिससे, वे नये ढँगों के
समझ सकें, उनसे लाभ उठा सकें। देश की उच्च-
पाठ्यक्रम में भी देहाती जीवन की ज़रूरी बातों को
दिया जाय। (६) पशु-पालन और पशु-चिकित्सा की
विशेष रूप से ध्यान दिया जाय। पशु-चिकित्सा के
देश भर में, ४०० सर्जन और ७,५०० सहायक
नियत किये जायँ। (७) ऋण के बदले किसानों की
जब्त न की जाय—इस आशय का एक क़ानून बने।
को गिरवी रखने के लिए सहकारी बैंकों की सृष्टि की
उनकी संख्या बढ़ाई जाय। देश की बढ़ी हुई आबादी
२० लाख आदमियों को ब्रिटिश-गायना में बसाहट के
भेजा जाय। (८) देश के किसान, वर्ष में ३-४
बेकार रहते हैं, इस समय उन्हें खेती के औज़ारों को
और ठीक करने का काम सिखाया जाय। बाँस से
बनाने, बढ़ई-गिरी, तेल पेरने, कपड़ा बुनने, रस्सी
रेशम के कीड़े पालने, मिट्टी के बर्तन बनाने और लाख
रने के काम की सलाह भी कमीशन ने दी है।

इनके अतिरिक्त कमीशन का यह भी कहना है कि
बतलाये हुए क्रम से शिक्षा देने के लिए देश के
समुदाय से सहायता ली जाय। इस तरह कुल
कमीशन के विवरण में एक ही बात पर अधिक ज़ोर
गया है, वह है किसानों को शिक्षित करना और उन्हें
कर काम करने के लाभ बतलाना।

ऊपर हमने कमीशन की जिन सूचनाओं का
किया है उनसे देश के कृषकों को तत्काल कोई
आशा तो बिलकुल नहीं है। अतः इस दृष्टि से इस
कमीशन' के आने जाने और जाँच करने में, देश के

गाढ़ी कमाई के ३० लाख रुपयों का योंही बरबाद हो एक खटकने वाली बात है। हाँ, इस कमीशन ने यदि बात स्पष्ट कर दी है 'तो वह यही कि भारतवर्ष में कृषि उन्नति के लिए सरकार की जिम्मेवारी बहुत बड़ी है। यों देश के किसान अपनी उन्नति के लिए आप ही ज़िम्मेवार फिर भी विदेशी सरकार के शासन में, उनकी उन्नति के में, जो असंख्य रुकावटें आये दिन खड़ी होती रही हैं आज भी खड़ी की जा रही हैं उनको हटा लेने और के लिए उत्तम साधनों तथा अनुकूल अवस्थाओं को पैदा का प्रथम और मूल उत्तरदायित्व सरकार पर है। परन्तु कार तो जान-बूझ कर इस विषय में सदा से उदासीन काष्ठवत् रही है। हमें आशा नहीं कि कमीशन की इन शों का, देश के लिए, कोई अच्छा असर सरकार की नीति पर पड़ेगा। क्योंकि जहाँ व्यापारिक स्वार्थ और प्रतिष्ठा की रक्षा ही प्रधान मानी जाती है वहाँ देश के नों की भलाई और उनकी सुख-सुविधा पर कोई विचार क्यों करेगा ?

कमीशन ने अपनी रिपोर्ट में एक जगह कहा है—"यदि के सदियों से गिरे हुए कृषि-उद्योग की गतिहीनता को ना है, उसे उन्नत बनाना है, तो यह अत्यन्त आवश्यक कि सरकार के अधीन जितने भी साधन हैं सबके सब सुधार और ग्राम-उन्नति के काम में लगा दिये जायँ। सच तो यह है कि जिन सरकारी विभागों का कार्य ग्रामीण से थोड़ा भी परोक्ष या अपरोक्ष सम्बन्ध रखता है वे विभाग एक साथ मिल कर संगठित और स्थायी रूप से ओर प्रयत्न करें।"

परन्तु हमें डर है कि वर्त्तमान सरकार, कमीशन की इस र्य और आवश्यक सिफारिश को भी कार्यरूप में न करने का सत्साहस नहीं करेगी। हमें तो प्रस्तावित कौन्सिल" के भावी कार्यों से भी कोई तथ्य निकलता दीखता है। उसके संगठन की योजना पढ़ कर हँसी है। जिस कौन्सिल के ३२ सदस्यों में केवल ५ ग़ैर-री हों वह कौन्सिल देश-हित के लिए क्या ख़ाक करेगी ?

कृषि-कमीशन के विवरण को देश के कृषकों की वास्तविक दुःखद परिस्थिति से एकदम अछूता रक्खा गया है। देश की सच्ची परिस्थिति को पहचानने में कमीशन जहाँ कुछ सफल हुआ है वहाँ उसके सुधार के उपायों को बतलाने में उसने उल्टे मुँह की खाई है। विवरण में किसानों की बेकारी, उनकी कुख्यात और दर्दनाक कर्ज़दारी, ज़मीन का छोटे-छोटे हिस्सों बँटा रहना, ढोरों की बढ़ती हुई कमी और दुर्बलता, फ़सल को हेर-फेर कर बोने की आवश्यकता और उत्पन्न माल को सस्ते से सस्ते में बाज़ार तक पहुँचाने की सुविधा आदि देश-हित के लिए अनिवार्य रूप से आवश्यक बातों का कमीशन के विवरण में कहीं उल्लेख तक नहीं है! फिर इस दुःखद परिस्थिति से देश को उबारने के लिए उचित सूचनायें उसमें से मिल ही कैसे सकती हैं ? देश की सरकार को तो संसार के सम्मुख अपनी प्रजा-प्रियता का एक प्रहसन भर करके दिखाना था। यही कारण था जिससे आरम्भ ही में कमीशन के अधिकारों और कार्यक्षेत्र को एक निश्चित सीमा की जंजीर में जकड़ दिया गया था!

ऐसी दशा में, हमारी राय में, देश का कोई भी विचारशील व्यक्ति न तो कमीशन से ही सन्तुष्ट हो सका है और न उसकी सिफारिशों ने ही उसपर कुछ असर किया है। देश तो कृषि-सम्बन्धी ज्ञान में इस विवरण के प्रकाशित हो जाने के बाद भी जहाँ का तहाँ ही रहा है। फिर, ऐसे थोथे अधारों पर देश की दीन-हीन कृषक जनता के लाखों रुपये प्रतिवर्ष, विदेशी-नौसिखिये कृषि-स्नातकों का पेट पालने के लिए खर्च करने (स्वार्थी सरकार के दबाव के कारण) से बढ़ कर देश का और दुर्भाग्य ही क्या हो सकता है ?

हमारी राय में देश के सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं, स्वयंसेवकों, विद्यार्थियों और प्रभावशाली नेताओं के लिए ग्राम-सुधार आदि ठोस कामों को प्रारम्भ करने की इससे बढ़ कर सुवर्ण-सन्धि नहीं हो सकती। निकट भविष्य में, डण्डों के बल पर, जनता के जो लाखों रुपये देश की नौकरशाही के खज़ाने में पहुँचने वाले हैं, उन्हें अभी से देश-हित के कामों के लिए हमें सुरक्षित रख लेना चाहिए। अगर इन रुपयों से महात्माजी के खादी-कार्य, राष्ट्रीय-शिक्षा, ग्राम-सङ्गठन, अछूतोद्धार आदि विधायक, उपयोगी और स्व-राज्य-प्राप्ति में सहायक कार्यों में मदद पहुँचाई जाय; लालाजी की जन-

सेवक-समिति के कार्यक्षेत्र को अधिक विस्तृत किया जाय; अ० कर्वे के महिला-विद्यापीठ का अर्थ-कोष भरा जाय और इसी तरह के अन्य राष्ट्र-हितकारी कार्यों में इन रुपयों द्वारा जीवनी-शक्ति का संचार किया जाय, तो निस्सन्देह हम स्वराज्य के बहुत समीप पहुँच सकेंगे । देखें, देश के नेता और धनी-मानी सज्जन इस विषय में क्या करते हैं ? कृषि-कमीशन ने तो पहाड़ खोद कर चुहिया निकाली है, इस सन्देह नहीं ! परन्तु हमें दृढ़ आशा है कि कमीशन की असफलता देश में एक नया जीवन फूँकेगी । और शीघ्र छोटे-बड़े सब, विधायक कार्यों द्वारा, देश का सच्चा हित-सा करने में लग जायँगे । तथास्तु !

त्रिवे

विविध

मुज़फ्फ़रपुर-सम्मेलन के अनुभव

इस बार जैसी परिस्थिति थी—जैसा वातावरण था, उससे मित्रों को आशंकायें हो रही थीं कि मुज़फ्फरपुर-सम्मेलन हो सकेगा या नहीं; किंतु सम्मेलन में द्विधापूर्ण, धड़कते हृदय से माता की पूजा के समारोह में एकत्र होने वाले मित्रों की यह निराशा, आशातीत उत्साह और सफलता के प्रवाह में बह गयी । कुछ तो मुज़फ्फ़रपुर के भाइयों से निकट का सम्बंध होने और उनका आग्रह अमान्य करने की क्षमता से हीन होने के कारण और कुछ कुतूहलवश कतिपय मित्रों के साथ २५ जून को मैं भी मुज़फ्फ़रपुर पहुँच गया था । भारतीय इतिहास में सबसे गौरवपूर्ण पन्नों के रचयिता बिहार के अंचल में अपने भाइयों के साथ बैठकर मैंने सोचा—"कितना निर्मल, कितना सीधा-सादा है यह प्रान्त ! यहां भी झगड़े उठ खड़े हुए !! हिंदी के एकमात्र इस प्रांत में अर्चना के सम्बन्ध में विरोध कैसा ?" पर जब गुत्थियाँ खुलीं, जब मशहूर किये गये 'दो दलों' के मित्रों से मिला, तो मालूम हुआ विरोध नहीं, पूजा की विधि में मतभेद मात्र है, जो माँ की भक्ति से उद्वेलित हृदयों की पारस्परिक प्रतियोगिता का स्वाभाविक परिणाम है ।

स्वागत-समिति के कार्यकर्ताओं में उत्साह था । भारी समारोह होने पर जैसे परमोत्साही बालकों में एक प्रकार का आश्चर्य—एक प्रकार का विश्रृंखल पर जीव आन्दोलन देख पड़ता है, वैसा ही यहाँ भी दिखायी प बिहार तो काम करना जानता है, स्कीम बनाना नहीं। रास्ता दिखाने वाला होना चाहिए—उसका सर्वस्व नि है । यह सब विरोध न जाने कहाँ होता, यदि बिहार तपस्वी—वह पतला-दुबला राजेन्द्र उस दिन विदे होता ! उसका अभाव कितना खटकता था—इसे उसे ने वाले ही समझ सकते हैं !

इस बार का सम्मेलन संघर्ष, विद्रोह, असंयम अधिकार को समझने एवं अपनाने की बढ़ती हुई भाव शक्ति-संचय का सम्मेलन था । युवकों और उनके णीय वयोवृद्ध साहित्यसेवियों के दो परस्पर विरोधी न्तों का संघर्ष हुआ । इस अखाड़े में धर्मयुद्ध नहीं युवकों की ओर से उच्छृंखलतायें हुईं, और वृद्धों की से ज़्यादतियाँ । युवकों में उत्साह था—यौवन का था, वे कभी-कभी बहक जाते थे; पर वृद्ध साहित्यसे बहुत संकुचित, बहुत अनुदार हो रहे थे । युवकों में असंतोष था उसे आत्मदमन द्वारा वे दबा न सके, अच्छा नहीं कहा जा सकता; पर आदर्शवाद को युवक हृदय के जोश और विद्रोही प्रवृत्ति पर ध्यान कहा जा सकता है कि ऐसी बातें वांछनीय तो नहीं है साधारण, दुर्बल मनुष्य की दुनिया में स्वाभावि

में कुछ संयम होता और वृद्धों में कुछ गंभीरता होती इतनी कटुता न दीख पड़ती। अस्तु; जो हुआ, अच्छा ही इस बार मातृ-मंदिर के नये पुजारी, जो 'अछूत' से हे थे, मंदिर में प्रविष्ट हुए और शक्ति एवं अधिकार के पूजा के अधिकारी बने।

अनुमान से, केवल २०० प्रतिनिधियों की आशा गयी थी; किंतु, एकाएक संख्या में ज्वार आ गया। ५०० प्रतिनिधि, आशातीत संख्या! भारत के कोने-से आने वाले भाइयों का ऐसा उत्साह—संख्या एवं दोनों के लिहाज़ से—इंदौर-सम्मेलन के अतिरिक्त उसके और पीछे अन्यत्र कहीं नहीं दीख पड़ा था।

मुज़फ़्फ़रपुर-सम्मेलन के सभापति

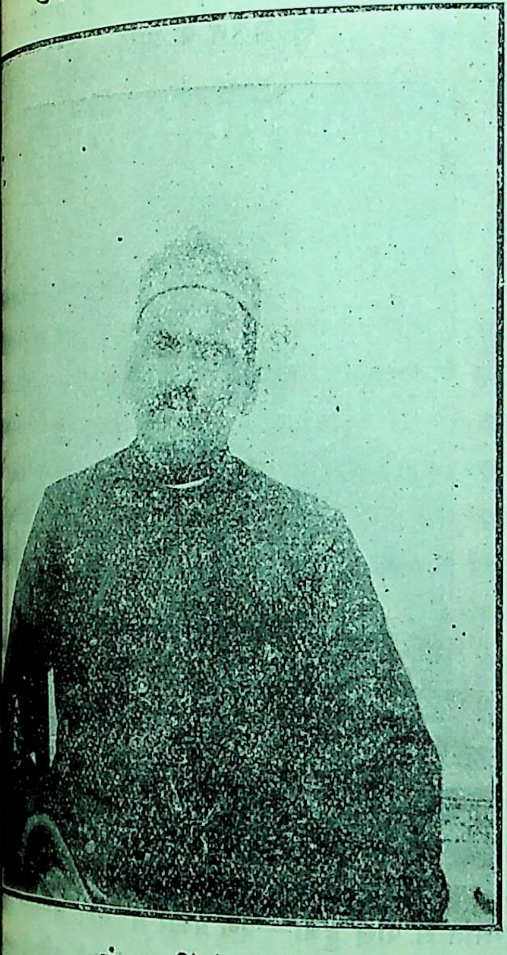

पं० पद्मसिंह शर्मा

पहले दिन जब सम्मेलन के मंच से, भारतीय हिंदी कवि-सम्मेलन के स्वागत मंत्री—बिहार के गर्व की चीज़, भाई मनोरंजनप्रसादसिंह (एम० ए०) ने आगत सज्जनों का स्वागत करते हुए, काँपते गले से गाया

स्वागत है आज तुम्हारा, माता के भव्य भवन में।
वैशाली के आँगन में, सीता के स्नेह-सदन में।
स्वागत है० ॥

तो इतने प्रतिनिधियों और शतशः दर्शकों का हृदय स्नेह से काँपने लगा। एक समा बँध गया। स्नेह का एक निराकार बन्धन, मानों सबके हृदयों को एक स्थान में गूँथने का उपक्रम कर रहा हो। मुझे स्मरण नहीं कि इतना सुंदर, इतना अपनापन-बोधक, इतना ममत्व लिये हुए कोई स्वागतगान किसी सम्मेलन में गाया गया हो।

स्वागताध्यक्ष के भाषण में नम्रता, सहृदयता और दीनता, शुरू से अंत तक बिखरी हुई थी—विद्वत्ता का भले ही कुछ अभाव रहा हो—फिर ऐसे समय नम्रता, विद्वत्ता से कहीं अधिक मोहक होती है। सम्मेलन के सभापति आदरणीय पं० पद्मसिंह शर्मा का भाषण सोलह आने साहित्यिक भाषण था। शर्माजी ने हिंदी-साहित्य-क्षेत्र में बढ़ती हुई 'उच्छृंखलता' का नग्न चित्र खींचा था। कितना अच्छा होता, यदि यह भाषण एकांगी न होकर सहानुभूतिमय हृदय के अन्वेषण का एक विवरण होता! नये कवियों की 'वीणा' में सदैव बेसुरा स्वर ही नहीं निकलता, साहित्योपवन के नूतन पल्लवों ने सौंदर्य, माधुरी और सुरुचि के सुवास का संदेश भी दिया है। कविता कोई हो, कविता होनी चाहिए। किसी एक प्रकार की कविता को लेकर उसका कल्पित दोषान्वेषण उचित नहीं, गुण-दोष-समीक्षा ही विद्वानों का धर्म है। इसके अभाव के कारण ही युवक और वृद्ध सभी प्रकार के लोगों को शर्माजी के भाषण से असंतोष ही अधिक हुआ और यह असंतोष आदरणीय 'हरिऔध' जी के भाषण तथा भाई बालकृष्ण के ('संक्रांतियुग और उसका साहित्य संबंधी') भाषणों और मेरे तथा मित्रवर कृष्णदेवप्रसादजी गौड़ के लेखों से व्यक्त भी हो गया।

इन सब बातों के होते हुए भी यह कहना पड़ेगा कि शर्माजी गुणग्राही, सीधे और नम्र सज्जन हैं। ऐसा जान पड़ता है कि उन्होंने जो कुछ कहा वह नये स्कूल के कवियों

की रचनाओं से अपरिचित होने के कारण ही कहा और जब उन्हें अपनी ग़लती मालूम हुई तो अपने अंतिम भाषण में उन्होंने स्पष्टीकरण भी कर दिया। यह भी कहा कि 'मैं छायावाद या नये प्रकार की अच्छी कविताओं का भक्त हूँ, मेरा विरोध केवल अण्टसण्ट लिखने वालों से है।' जो ग़लतफ़हमी फैली थी वह शर्माजी के इस अंतिम भाषण से बहुत अंशों में शांत हो गई। पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने इस ग़लतफ़हमी के दूर करने में सहायता की। दूसरे दिन पं० पद्मसिंहजी और पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी जब हम लोगों के डेरे पर आये तो इन आदरणीय सज्जनों और विशेषतः शर्माजी की मधुर बातचीत में सारी कटुता, सारा मनोमालिन्य बह गया।

मंगलाप्रसाद पारितोषिक के सम्बन्ध में कई वर्षों से जनता में जो असंतोष चला आ रहा था, उसे दूर करने के लिए, हम लोगों ने उचित समझा कि निर्णायकों का चुनाव अधिक सुन्दर हो। इसी दृष्टि से, अनेक मित्रों की राय से मैंने विषय-निर्वाचिनी में संशोधन रक्खा। अभी तक स्थायी समिति द्वारा नियुक्त ५ सज्जनों की पारितोषिक समिति केवल २ के 'कोरम'—कार्यक्षम संख्या से ५ निर्णायक चुन लिया करती थी। पक्षपात हुआ या नहीं, यह एक भिन्न प्रश्न है, पर यह नियम सदोष था। यह उचित समझा गया कि स्थायी समिति ही निर्णायक चुने। जब विषय-समिति में यह प्रस्ताव रक्खा गया तो पुराने सज्जनों द्वारा इस परमवैध संशोधन पर भी आपत्ति की गयी। अंत में (recommendatory) प्रस्ताव के रूप में वह बिना विरोध' विषय समिति और साधारण अधिवेशन दोनों से पास हो गया।

दूसरा महत्वपूर्ण प्रस्ताव जो सम्मेलन ने पास किया, बिहार में सरकार की कृपा से उठ खड़े हुए हिन्दी-उर्दू के नये झगड़े के सम्बन्ध में था। साइमन-कमीशन के आगमन ने हमारी कितनी कड़ियाँ तोड़ दी हैं! जहाँ बिहार में हिन्दू-मुसलमान भाषा का भेदभाव त्याग कर हिन्दी को अपना रहे थे—जो प्रांत सम्पूर्ण भारत में एकमात्र शुद्ध हिन्दी प्रान्त था, हमारे दुर्भाग्य से, हमारे शासकों की कृपा से वहाँ भी एक नया झगड़ा उठ खड़ा हुआ। हिन्दी को इस प्रकार उसके आसन से गिराने का प्रयत्न निन्दनीय है और हो की बात है कि इस सम्बन्ध में जितना ज़ोरदार विरो संभव था, सम्मेलन के मंच से किया गया। इस विषय प बिहार के प्रायः सभी प्रतिष्ठित हिन्दी-प्रेमी और कौंसिल-बिहार के पुराने वृद्ध योद्धा रायबहादुर द्वारकानाथ से ले युवक-हृदय राजा चंद्रेश्वर नारायणसिंह एम० ए० तक-बोले। भाषणों में स्वराजियों की अनुपस्थिति के सम्बन्ध असंतोष भी प्रकट किया गया; पर अंत में प्रस्ताव स सम्मति से पास हुआ—एक प्रकार से यही सम्मेलन मुख्य प्रस्ताव था। नियम-संशोधन-सम्बन्धी कतिपय प्रस्ताव भी पास हुए।

सम्मेलन के प्राण

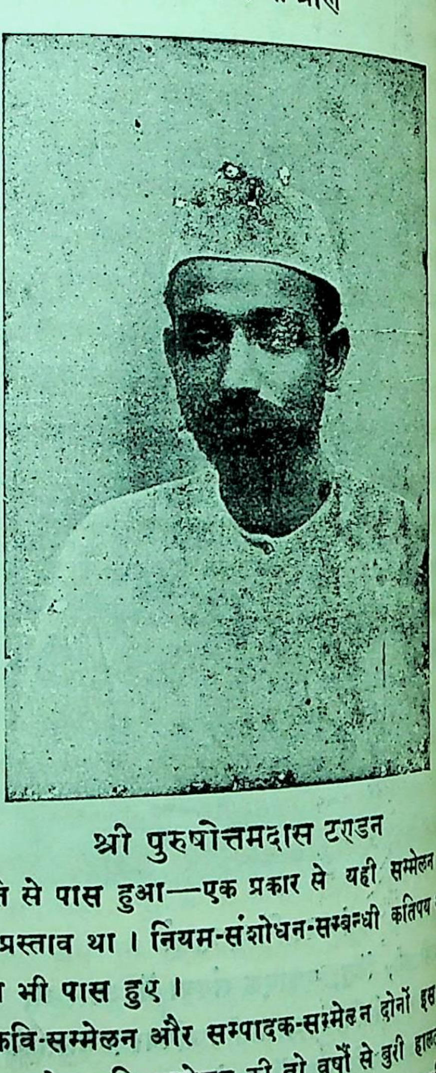

श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन

कवि-सम्मेलन और सम्पादक-सम्मेलन दोनों इस असफल रहे। कवि-सम्मेलन की तो वर्षों से बुरी हालत रही है। अण्टसण्ट तुकबंदियाँ पढ़ी जाती हैं, समस्या-पू में दम नहीं—परकटी कल्पना तड़पती रहती है। भारत महान् देश की राष्ट्र-भाषा के गौरवमय पद पर अव

का भारतीय कवि-सम्मेलन ऐसा दीन-हीन हो, इसे का मस्तक लज्जा से झुक जाता है। एक मुशायरा और एक कवि-सम्मेलन। कितना अंतर है—एक में हलका पड़ता है, भाषा पर कवि का अधिकार और की मार्मिकता ओत-प्रोत होती है और दूसरी ओर कल्पना, बँधे हुए विचार, अस्वाभाविक उक्तियाँ को मिलती हैं। इस बार भी ऐसा ही हुआ। श्रोता पीट कर इन कवियों को बनाते और कविराम यह मगन हुए जाते कि 'वाह, क्या क़द्र हो रही हैं।' उच्छृंखल बिहारी श्रोता ने तो उसी प्रांत के किसी कवि घुँघरू प्रदान करने की घोषणा भी कर दी !

सम्मेलन में आये हुए साहित्यिक व्यक्तियों में, प्रभाव से, टण्डनजी का नाम सबसे पहले आता है। उनके से, प्रणाली से चाहे किसी का मतभेद भी हो, पर शालीनता, नम्रता, प्रबंध-पटुता, प्रभाव और नेकनी- के सब क़ायल थे। सम्मेलन में यदि किसी पर सब के—सब दलों के लोगों का विश्वास था, तो वह थे। उनका त्याग, उनका अपनापन का भाव, प्रसन्न-मुख, उनका शांत भाव, उनकी नम्रता, सब जवाब थीं—सारे विरोध को शांत करने के लिए थी। कटु विरोध और प्रहारों के बीच भी उनका देखने लायक़ था। वे न होते तो इस बार के निर्विघ्न समाप्त होने में संदेह था।

भारतेंदु बाबू के समय की एक जीवित स्मृति के रूप उस मस्त ज़माने के साहित्य-सेवियों में बच रहे शिवनंदनसहाय को पहली बार इस सम्मेलन में देखा। लम्बी सफ़ेद दाढ़ी, वह सोटा, वह सवा दो हाथ का क़द ! इस दुनिया में एकाएक पहुँच कर उन्हें हैरत थी। वह मस्तों का ज़माना देखे हुए, इस समय के से घबरा से रहे थे !

श्रद्धेय सभापति महोदय का भोलापन, आदरणीय की कविता की गम्भीर आलोचना, श्री बनारसी- चतुर्वेदी की झुँझलाहट, पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी सम्मेलन-प्रेमियों का चिरपरिचित मसखरापन देखने की थीं। पं० लक्ष्मीधर वाजपेयी का भोला हृदय मज़ेदार था। भाई बालकृष्ण के विषय में मेरी क़लम से कुछ लिखे जाने का अर्थ, पूर्व-परिचय के कारण, शायद पक्षपात समझा जाय। अपने अंतर और समाज दोनों के सामने वह कवि हैं !

इस बार सम्मेलन में छोटे-बड़े साहित्य-सेवियों का जमघट था। बड़ा आनन्द आया। जिस मन्त्रि-मण्डल का इतना विरोध था, वह बदल दिया गया। पुराने नये मन्त्रियों में एक का भी चुनाव नहीं हुआ। लोग मन्त्रि-मण्डल से इतना नाराज़ थे किसी ने उसे धन्यवाद देने की सभ्यता का भी पालन नहीं किया। अस्तु।

यह सब तो हुआ—पर स्थायी-समिति और नवीन मन्त्रि-मण्डल के सदस्यों को अब कुछ करके दिखाना चाहिए ज़बानी जमा-खर्च से काम न चलेगा !

श्रीरामनाथलाल 'सुमन'

उद्योगी हेनरी फ़ोर्ड

इनका जन्म अमेरिका के अंतर्गत मिचिगान नामक एक ग्राम में, एक साधारण कृषक परिवार में, २३ जुलाई सन् १८६३ ई० में हुआ था। शैशव-काल में फ़ोर्ड अन्य कृषक बालकों के साथ गाँव ही की पाठशाला में पढ़ते और पाठशाला से अवकाश पाने पर अपने पिता के साथ ग्रीष्मकाल की प्रखर धूप में भी खेत में काम करते थे। फ़ोर्ड के पिता की एक छोटी-सी दूकान भी थी, जिसमें बालक हेनरी अपने मन के अनुसार लकड़ी चीर-फाड़ कर कुछ न कुछ बनाया करता था।

१६ वर्ष की अवस्था में फ़ोर्ड मिस्त्री का काम सीखने के लिए अपने गाँव से कुछ दूर पर एक अन्य ग्राम में गये। सारा दिन बढ़ई का काम करते और रात में एक घड़ीसाज़ के यहाँ घड़ी की मरम्मत का काम सीखते। इस प्रकार लगातार ८ वर्ष तक अति परिश्रम और चतुरता से काम करके फ़ोर्ड ने भविष्य के लिए अपनेको उपयुक्त बनाया।

२४ वर्ष की अवस्था में फ़ोर्ड के पिता ने उन्हें घर बुला लिया एवं काम करने के लिए लगभग ४० एकड़ भूमि का एक बग़ीचा दिया, जिसमें बड़े-बड़े वृक्षादि लगे थे। उद्यमी फ़ोर्ड ने शीघ्र ही उस बग़ीचे में एक लकड़ी चीरने की कल की स्थापना की और बढ़ई का काम करना आरंभ

कर दिया। इसी वर्ष आपका विवाह भी हुआ। विवाह हो जाने पर आपने कारख़ाने से कुछ लकड़ी की पटरी ले एक छोटा घर तैयार किया और उसीमें सपत्नीक रहने लगे। हेनरी का हृदय सदा किसी अजनबी चीज़ की खोज में व्यस्त रहता था।

उन्होंने अपनी छोटी दूकान को इसी बग़ीचे में ला रक्खा और एक भाफ से चलने वाली गाड़ी तैयार करने की धुन में निमग्न हुए। इस स्टीमकार को तैयार करने में उनके सामने अनेक विघ्न-बाधायें आईं; कितने बायलर (Boilers) भी नष्ट हुए, और बहुत हानि भी उठानी पड़ी, पर स्टीमकार का एंजिन तैयार न हो सका। इस प्रकार आपका पहला उद्योग व्यर्थ हुआ। पर इस असफलता पर आप घबराये नहीं, बल्कि दूने उत्साह से अपने इच्छित उद्यम में सफलता प्राप्त करने के लिए लग गये।

२ वर्ष बाद उद्यमी फ़ोर्ड निकट के एक लालटेन के कारख़ाने में ४५ डालर मासिक वेतन पर एंजीनीयर नियुक्त हुए। फ़ोर्ड ने अपनी कार्य-कुशलता और दूरदर्शिता के प्रभाव से बहुत ही शीघ्र कारख़ाने के मालिक को संतुष्ट कर लिया, जिसका फल यह हुआ कि आपका वेतन ४५ डालर से १२५ डालर हो गया।

हेनरी फ़ोर्ड ने ७ वर्ष तक इस कारख़ानेमें काम किया। इन सात वर्षों में आप केवल कारख़ाने ही के कामों में नहीं लगे रहे बल्कि अपने बग़ीचे के काम के साथ-साथ एक पक्का घर भी बना लिया। कारख़ाने में काम करने से जो समय बचता उस समय में अपना अविष्कार सम्बन्धी काम भी सदा करते रहते थे। इस प्रकार आपके अनेक दिनों की साधना के फलस्वरूप आपकी प्रथम आविष्कृत पेट्रोल-गाड़ी तैयार होने लगी। यह गाड़ी दो सिलेन्डर-युक्त है तथा इसकी चाल २५-३० मील प्रति घंटा है। अभीतक यह नवाविष्कृत गाड़ी अपनी पहली दशा में मौजूद है।

महाशय फ़ोर्ड अपनी इस सफलता से बड़े प्रसन्न हुए; पर धनाभाव के कारण अपनी आविष्कृत वस्तु का विस्तृत रूप से प्रचार करने में असमर्थ हुए। निदान कतिपय अमेरिकन धनकुबेरों ने मिलकर हेनरी फोर्ड की अध्यक्षता में एक कम्पनी खोली। इस कम्पनी ने बहुत सी गाड़ियाँ तैयार भी कीं। किन्तु फिर कम्पनी के मालिकों और फोर्ड से कुछ अनबन हो गई। तब आप इस कार से अलग हो सन् १९०१ ई० में एक दूसरी मोटर गा तैयार करने लग गये। इस कार्य में आपको पूर्ण सफ सन् १९०२ ई० में प्राप्त हुई। सन् १९०३ ई० में वर्त फ़ोर्ड-कम्पनी स्थापित हुई, जिसमें आप चौथाई के हिस्से हुए। आपकी नियुक्ति उपाध्यक्ष और फ़ैक्टरी-मैनेजर के पर हुई। किन्तु आप सदा इसी चिन्ता में डूबे रहते कि तक इस कारख़ाने पर पूर्ण अधिकार नहीं होता, तब तक मन के अनुसार काम नहीं होगा। निदान आप कम्पनी अपना पूर्ण अधिकार जमाने का प्रयत्न करने लगे। कई तक अनवरत चेष्टा करते रहने पर आप कारख़ाने के से अधिक हिस्से के मालिक बन बैठे। सन १९१९ ई आपका पुत्र एडसेल आपके पूर्व पद पर नियुक्त हुआ। में अमेरिका के क़ानून के अनुसार कम्पनी का मू १ लाख से १० करोड़ डालर हुआ, जो अभी तक इसी धन से चल रहा है। फ़ोर्ड मोटर कम्पनी की पहली सन् १९०३ ई० में बाहर हुई और उसी साल के मास से बाज़ार में बिक रही है।

फ़ोर्ड जब अपने इस कार्य्य में पूर्ण सफलता प्राप्त कर तब आपको मोटर-रेस की गाड़ी तैयार करने की धुन स हुई। प्रथम रेस-गाड़ी तैयार कर चुकने पर, आपने स्वयं चला कर देश-विदेश में विजय लाभ प्राप्त करना कर दिया, जिसका फल यह हुआ कि आपकी ख्याति गाड़ी की बिक्री दिन-दूनी और रात-चौगुनी होने ल अब तो जिस रेस में फ़ोर्ड का नाम नहीं होता उस रे लोग दिलचस्पी के साथ भाग नहीं लेते। सन् १९० में महाशय फ़ोर्ड ने, वालटीमूर नामक स्थान की शीत प्रधान जगह में, एक मील प्रति मिनट के हिसा गाड़ी चला कर दिखला दिया है। सच है, उद्योग से नहीं हो सकता?

> "उद्योगिनं पुरुष सिंह मुपैति लक्ष्मी,
> दैवेन देयमितिकापुरुषा वदन्ति।
> दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या,
> यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्रदोषः॥"

पाण्डेय देवेन्द्रनारायण

सम्पादकीय

ह दिन !

वह दिन, वह १ अगस्त भूलता नहीं। दिन कितनी ता से जाते हैं! आठ वर्ष बीत गये; किन्तु वह घड़ी, का वह द्वंद्व भुलाये नहीं भूलता। स्वराज्य-संग्राम के वीर योद्धा की सांघातिक बीमारी की बात सुनकर कितने बेचैन थे? जिनके यहाँ टेलीफ़ोन थे, वे घंटी और झट दौड़ पड़ते; समाचारपत्रों के ग्राहक, डाकिये पदध्वनि की प्रतीक्षा में घंटों बिता देते। लोगों के मनमें उत्कंठा तांडव कर रही थी, जो अपना स्पष्ट रूप प्रकट ना नहीं चाहती। लोग धड़कते हृदय से पत्र खोलते थे। ऐसे ही वातावरण में एक दिन विनाश की बिजली उठी। सब स्वाहा हो गया। लोकमान्य, शरीर छोड़ न जाने किस अदृश्य में अन्तर्धान हो गये!

इस समाचार ने कितने ही लोगों को पागल कर दिया। कितने रोये थे, उस दिन! कितनों के घरों में चूल्हे जले। मानों वह राष्ट्र की जनता के शरीर में—प्राण में गया था। उसे खोकर सब खोये-से हो रहे थे।

जब चारों ओर अंधकार था, लोग जानते न थे कि स्व- क्या बला है, जब एक कट्टर देशभक्त सरकार के विरुद्ध कहते समय अपने चारों ओर देख लिया करता था कहीं कोई आदमी सुन तो नहीं रहा है, तब लोकमान्य राष्ट्र को कर्मयोग की दीक्षा दी थी, तब उन्होंने, विश्व के भाग पर ज़बर्दस्ती आधिपत्य करने वाली सरकार की शक्ति को चैलेंज करके कहा था—"स्वराज्य हमारा सिद्ध अधिकार है और हम उसे लेंगे।" इस एक वाक्य में कितना आत्म-विश्वास, राष्ट्रीय आत्मा की कैसी पूर्ण व्यक्ति है। ऋषि बंकिम के 'बंदेमातरम्' की भाँति ही वाक्य ने भी जनता के मन का सारा भय, सम्पूर्ण तिमिर छिन्न करने में बड़ा काम किया है।

उनका चौड़ा ललाट, गंभीर वाणी, उद्भट पाण्डित्य, विपत्तियों की आँधी में पर्वत के समान उनकी अटलता, राजनीतिज्ञता, सब अद्भुत थी। वह भारत जैसे गुलाम महादेश के नेता होने योग्य थे। उन्होंने न केवल हमारी राजनैतिक गुलामी पर आघात किया वरन् बौद्धिक दासता में भी बेचैनी उत्पन्न कर दी थी। उनके वेद-काल-निर्णय तथा 'आर्यों की आदिभूमि' सम्बंधी खोजों के पूर्व, यूरोपीय विद्वान् भारतीयों के मस्तिष्क की श्रेष्ठता स्वीकार करने से इन्कार करते थे। उनकी इन खोजों ने भारतीय मस्तिष्क को जगत् के सामने बड़े गौरव-पूर्ण रूप में उपस्थित किया और आज, यद्यपि उनकी कई ऐतिहासिक धारणाओं का सफल खण्डन किया जा चुका है, उनकी असाधारण मेधा-शक्ति के सब क़ायल हैं।

लोकमान्य में अद्भुत कार्य-शक्ति थी। वह जब कोई काम उठाते तो उसमें अपने प्राणों की सारी विभूतियाँ खपा देते थे। आठ-आठ घंटे बिना हिले-डुले बराबर लेख लिखते उन्हें लोगों ने देखा है।

अंग्रेज़ों की कूटनीतिज्ञता को लोकमान्य खूब समझते थे। उनके मन में सरकार की रक्तशोषणी नीति पर घृणा, हृदय में जनता की दुर्दशा और ग़ुलामी पर करुणा और छाती में इस गुलामी के विनाश में अपने को खपा देने का बल था। वह उन चंद लोगों में से थे, जो राजनीति के सब रहस्यों को समझने की शक्ति रखते हैं। भारत की स्वतंत्रता उनका आरम्भिक और अंतिम उद्देश्य था। इसके लिए वह सब कुछ भूल जाते थे। उन्होंने अपने लेखों और भाषणों द्वारा सरकार की काली करतूतों का ऐसा भंडाफोड़ किया, ऐसे नाकों चने चबवाये कि उसे बाध्य होकर साम्राज्यवाद के अन्तिम अस्त्र बल-प्रयोग से काम लेना पड़ा। वे कारा-गार में बंद कर दिये गये; पर स्वतन्त्रता का पक्षी, जंगल की मुक्त वायु का स्वाद कैसे भूल जाता? नज़रबन्दी और कारा-

वास के इन दिनों को उन्होंने उन ग्रंथों के प्रणयन में में लगाया, जो एक जीवित देश की प्रतिभा के द्योतक थे और जिन्होंने दुनिया की आंखें भारतीय ज्ञानान्वेषण और प्रतिभा की ओर आकर्षित कीं।

ऐसा महापुरुष, देश को स्वराज्य के गुरुमंत्र से दीक्षित करने वाला तपस्वी, जब एक दिन अपनी सारी लौकिक विभूति समेट कर, देखते-देखते महाशून्य में आँखों के ओझल हो गया, तो भारत का हृदय तड़प उठा। राष्ट्र के कलेजे में इस आकस्मिक अभाव ने एक ऐसी ठेस पहुँचाई कि सारा वातावरण क्षुब्ध हो गया। आज भी देश लोकमान्य के गन्तव्यस्थल पर पहुँचने के लिए तड़प रहा है!

× × ×

लोग कहते हैं कि 'महान् पुरुषों की मृत्यु भी महान् होती है।' यह भी प्रसिद्ध है कि प्रलय में ही सृष्टि, विनाश में ही निर्माण का बीजारोपण होता है। लोकमान्य गये किंतु जाते हुए भी भारत को सतत् जागरूक रखने की व्यवस्था कर गये। उनकी मृत्यु ने नये जीवन को जन्म दिया। उनकी चिताभस्म में राष्ट्रात्मा की जाग्रति का जो बीजारोपण हुआ था, वह आधुनिक विश्व के आदर्श तपस्वी गांधी के हाथों सिंचित होकर पौधे के रूप में परिणत हो चुका है। जिस दिन लोकमान्य की मृत्यु हुई उसी दिन भारत के राजनैतिक महाकाश में एक आध्यात्मिक प्रयोग का आरम्भ हुआ। एक महापुरुष का प्रयाण और दूसरे का आगमन! विश्व के इतिहास में यह एक अपूर्व घटना है।

* * *

आज राष्ट्रयज्ञ के उस होता, स्वतन्त्रता के उस उपासक की वर्षी है। आज उसकी याद कर कौन रोना न चाहेगा? किसके हृदय में इतना बल है कि वह राष्ट्र के हृदय में लोहे की कीलों से अंकित उस दिन की, जब चौपाटी के बालुकण एक महाज्वाला में जल उठे थे, याद करके आँसू सम्भाल सके?

पर रोने का समय कहाँ है? युद्ध में आत्मीय का महाप्रस्थान, रोने की नहीं, अट्टहास करने की चीज़ है, दिल को कुचलकर, भावों को पददलित कर, कलेजे पर पत्थर रखकर हँसते मुख से आगे बढ़ने की वस्तु है। लोकमान्य ने राष्ट्र को यही संदेश दिया था। उस दिन उनकी चिताभस्म से आवाज़ निकली थी। जब तक अभिलषित वस्तु न जाये, जीवन का विश्राम और सुस्ताना कैसा?

क्या उस आवाज़ को राष्ट्र का हृदय आज सुनेगा!

आख़िरी चेतावनी ?

बम्बई के गवर्नर साहब को बम्बई-धारा सभा अपनी आरम्भिक वक्तृता मामूली प्रथा का उल्लंघन बारडोली-प्रकरण के ही कारण देनी पड़ी है। अपने अन्तिम वर्ष में उन्हें एक अद्भुत समस्या का सामना पड़ा है; और खेद के साथ कहना पड़ता है कि उनकी झौते की बातों ने उनके लिए जो थोड़ा-बहुत सहानुभूति वातावरण तैयार किया था वह उनकी धमकियों ने नष्ट दिया। उनके कथन का सार यह है कि 'मैं बारडोली लगान-वृद्धि की फिर से जाँच करने के लिए एक पूर्ण कमिटी बना देने को तैयार हूँ—पर पहले पुराना लगान कर दिया जाय और बढ़ा हुआ लगान बतौर अमानत जमा करा दिया जाय। यदि बारडोली वाले केवल चाहते हैं तो मैं तो निष्पक्ष कमिटी बिठाने को तैयार यदि सवाल यह हो कि बारडोली में सरकार की हुकूमत या एक्के-दुक्के नागरिक की, तो मेरी सरकार, भारतीय और स्टेट सेक्रेटरी की सारी शक्ति सरकार की सत्ता में लगा दी जायगी और किसी बात की रक्खी जायगी। बारडोली का सत्याग्रह क़ानून को बिठा देने का आन्दोलन है। सरकार ने सूरत में जो दो शर्तें पेश की हैं वे समझौते की आधार-स्वरूप नहीं सरकार का निर्णय है और बारडोली के प्रतिनिधियों, आज से १४ दिन में आप इस निर्णय का ठीक-ठीक न दोगे तो सरकार जो कुछ उचित समझेगी, कर

लाट साहब ने अपने भाषण में बारडोली की गम्भीर स्थिति का सारा दोष लोक-नेताओं पर मढ़ने की चेष्टा की है, जो कि उनकी परम्परा के अनुकूल ही है। अब एकाएक धारासभा के सदस्यों के सामने तमंचा दिया है कि 'लो, करो फ़ैसला! नहीं तो यह लो

धारासभा के सदस्य बहुत बिगड़ उठे हैं, जो कि कूल स्वाभाविक है। किसान बेचारे चिल्लाते चिल्लाते गये, जब किसी ने सुनवाही न की तब उन्होंने वल्लभभाई को न्यौता दिया और उन्होंने भी पहले सरकार से खानगी लिखा-पढ़ी की। जब सरकार ने उन्हें उल्टा अपमानजनक भेजा, तब जा कर सत्याग्रह का शंख फूंका गया। फिर गवर्नर साहब 'उल्टा चोर कोतवाल को डांटें' की कहावत चरितार्थ कर रहे हैं, और बाद को बारडोली में जब्ती के सिलसिले में क़ानून के अमलदरामद के नाम पर जो-जो किये गये उन्हें लाट साहब बड़ी आसानी से पी ही । पर इन ऊपरी झगड़ों की बातों को छोड़ दें और समझौते की बातों पर विचार करें तो इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि लाट साहब चाहे जितना गर्जन-तर्जन करें, उन्होंने सत्याग्रहियों की सबसे बड़ी बात चुपके से मान ली है और वह है तंत्र जाँच कमिटी बनाना। रह गई थी बढ़े हुए लगान को कराने की बात सो, बम्बई में एक सर गंगाराम—श्रीयुत रामचन्द्र भट्ट, बारडोली के एक ज़मींदार—यह लगान करा देने के लिए आगे बढ़े हैं। सत्याग्रहियों को सुना, इसपर कोई आपत्ति नहीं है, और होनी भी क्यों चाहिए? तो इस बात के लिए प्रतिज्ञा से बँधे हुए हैं कि वे स्वयं हुआ लगान तब तक न देंगे जब तक स्वतंत्र जाँच मिटी कायम हो कर कोई फैसला न कर दे। यदि वे नी तरफ से किसी को जमा करने के लिए खड़ा करते तब और बात थी, और वे अपनी प्रतिज्ञा पर क़ायम रहते हुए कर भी कैसे सकते थे? अब रही श्री वल्लभभाई की शर्तें, जैसे सत्याग्रही कैदियों को छोड़ना, जिनकी ज़मीनें हुई हैं उन्हें उनका वापिस मिलना, नीलाम किये गये शियों का मुआवजा दिया जाना तथा इस्तीफा देने वाले चारियों आदि को अपने स्थान पर फिर से नियुक्त करना, दि। पर जब कि सरकार ने सबसे बड़ी बात—निष्पक्ष टी की—मान ली है, और दूसरी बात—बढ़े हुए लगान रास्ता भी खुल गया है, तब मैं नहीं समझता कि इन री शर्तों को मान लेने में उसे कोई दिक्कत होनी चाहिए। तो उसके स्वार्थ की दृष्टि से भी अच्छी बात है। यदि चाहती हो कि किसान और तलाटी आदि के भाव सरकार के प्रति अच्छे हो जायँ तो उसे इन शर्तों का उत्साह के साथ स्वागत करना चाहिए।

गवर्नर साहब के इस भय का, कि बारडोली का आंदोलन 'क़ानून को ताक़ पर रख देने का आंदोलन है', जवाब तो कई बार साफ़ शब्दों में दिया जा चुका है कि बारडोलीवाले महज़ अपने लगान-वृद्धि संबन्धी अन्याय के लिए लड़ रहेहैं, यह कोई स्वराज्य के असहयोग या सविनय अवज्ञा का युद्ध नहीं है—हाँ, इससे अप्रत्यक्ष रूप में उसे लाभ अवश्य पहुँचेगा और इसमें उन्हीं शांतिमय साधनों से काम लिया गया है, जिनसे स्वराज्य के असहयोग आंदोलन में लिया गया था और फिर लिया जा सकता है। फिर भी कितने दुःख की बात है कि ऐसे शांतिपूर्ण लोगों का संयम-युक्त आंदोलन ठण्डे दिल से क़ानून को विध्वंस करने वाला आंदोलन बताया जाय। बारडोली वाले अन्य तमाम क़ानूनों और सरकारी हुक्मों का पालन नम्रता और धीरज के साथ कर रहे हैं, सिर्फ बढ़े हुए लगान को न देने की प्रतिज्ञा उन्होंने की है—पुराने लगान को तो देने के लिए श्री वल्लभभाई ने रज़ामन्दी ज़ाहिर कर ही दी है। अस्तु।

ऐसी अवस्था में बंबई के लाट साहब की इस गर्जना का मूल्य कोरे गाल बजाने से बढ़कर नहीं है। हां, इसमें यह आशय हो सकता है कि कहीं लोग यह न समझ लें कि सरकार दब गई, झुक गई! पर असलियत कहीं शब्दाडंबर से छिप सकती है? और इसमें शर्म की बात कौनसी है? अन्याय का परिमार्जन करना तो शर्म की नहीं शोभा की बात है। अतएव मुझे तो इस गर्जन-तर्जन में कोई सार दिखाई नहीं देता। अब तक की परिस्थिति तो समझौते के अनुकूल ही बन रही है—आगे जो ईश्वर को मंजूर हो।

पुनश्च—श्री वल्लभभाई पटेल ने एक महत्वपूर्ण बात की ओर लोगों का ध्यान आकर्षित किया है। गवर्नर साहब ने जिस पूर्ण निष्पक्ष कमिटी की बात कही है वह वही है जिसकी रूप-रेखा उन्होंने सूरत के प्रस्तावों में बताई है। वह तो एक ऐसी कमिटी है जिसके प्रधान रेविन्यू आफीसर होंगे और उनकी सहायता कोई न्याय-विभाग के अधिकारी करेंगे। वे ख़ास-ख़ास बातों की जाँच कर लेंगे। श्री वल्लभ-

भाई को इस कमिटी से कैसे सन्तोष हो सकता है? उन्होंने तो पूर्ण निष्पक्ष कमिटी की माँग की है, जो क़ानून-लगान के सिद्धांत की चाहे जाँच न करे, पर उन सिद्धांतों के अमलदरामद में हुई भूलों की जाँच अवश्य करे और उसके सदस्य ऐसे सज्जन हों जिन पर बारडोली वालों का विश्वास हो–फिर चाहे वे सरकारी हों, चाहे ग़ैर-सरकारी। यदि गवर्नर साहब की पूर्ण निष्पक्ष कमिटी का यही रूप है—तब तो कहना होगा कि 'पूर्ण निष्पक्ष' शब्द धोखा मात्र है और समझौते का रास्ता उतना सुगम नहीं हुआ है, जितना कि ऊपर बताया गया है। नये समाचारों से यह भी मालूम होता है कि बम्बई धारासभा में जो सूरत ज़िले के प्रतिनिधि हैं वे समझौते की नई शर्तें बना रहे हैं।

इन्दौर कहां जा रहा है?

पाठकों को जान कर दुःख होगा कि इन्दौर-दरबार ने 'कर्मवीर' के साथ ही, खण्डवे से हाल ही में प्रकाशित 'मालव-बन्धु' का भी अपने राज्य में आना रोक दिया है, जिसके फल-स्वरूप 'मालव-बन्धु' का तो जीवन ही समाप्त हो गया है। 'मालव-बन्धु' मालवे का, कड़ी आलोचना करने वाला प्रथम ही पत्र था और उसके इतने शीघ्र अन्त को देख कर मुझ जैसे 'मालवी' को हार्दिक व्यथा पहुँची है। इसका कारण यह नहीं है कि 'मालव-बन्धु' की सभी बातें निर्दोष और समर्थनीय होती थीं, बल्कि यह कि वह मालवे का था। अब मैंने उसके कितने ही अंक देख लिये हैं, उनकी आलोचनाओं की भाषा शिष्टता की दृष्टि से कहीं कहीं आपत्ति-जनक पाई जाती है; पर जब तक यह साबित नहीं हो जाता कि उसकी बातें असत्य हैं तब तक वह किसी उदार और प्रगतिशील राज्य में प्रवेश-निषेध का पात्र न समझा जाना चाहिए था। और तब तक मेरी सहानुभूति निस्सन्देह 'मालव-बन्धु' और 'कर्मवीर' की ओर रहेगी।

इसके बाद एक और समाचार मिला है, जिस पर तो मेरी अक्ल हैरान हो रही है और एक मित्र ने ठीक लिखा है कि "आप जैसी ठण्डी प्रकृति के स्वाभिमानी व्यक्ति भी ऐसी निरंकुशता पर लानत भेजेंगे।" इन्दौर के लीगल रिमेम्ब्रन्सर साहब ने प्रकाशित किया है कि "अगर कर्मवीर-सम्पादक इन्दौर रियासत में किसी के पास अखबार भेजेंगे तो 'हुल्लकरी' में पाये जाने पर गिरफ्तार किये जायँगे।" इस घोषणा के तो एक-एक अक्षर में बदले की कुत्सित भा भरी हुई है, जिसे देख कर सचमुच इन्दौर के इन का पण्डित की मनोवृत्ति पर आश्चर्य और दुःख होता है और में प्रश्न उठता है कि इन्दौर आखिर कहाँ जा रहा है! ऐ द्वेष-पूर्ण घोषणा तो ब्रिटिश इलाके में भी सहसा न निकलती है।

मेरी पहली टिप्पणी को पढ़कर एक ज़िम्मेवार सज्जन मित्र ने शासकवर्ग का पक्ष भी मेरे सामने उपस्थि करने की कृपा की है। उनका कहना है—

(१) 'कर्मवीर' में छपी इन्दौर की चिट्ठियों में आक्रमण हुए हैं, झूठी निन्दा और बदनामी की गई है। उनमें लगाये गये इल्ज़ाम घृणास्पद और की गई टिप्पणि अनुचित और अन्यायपूर्ण हैं। उनके होते हुए किसी सरकार के लिए काम करना असंभव है।

(२) इन्दौर के वर्त्तमान मंत्रि-मंडल ने कुछ काम ज़रूर ऐसे अच्छे किये हैं जिन्हें उसके कड़े और प्रति आलोचक भी स्वीकार करते हैं। कम से कम उनका उल्लेख अच्छे शब्दों में 'कर्मवीर' में होना चाहिए था।

उन्होंने मुझे इस बात का भी उलाहना दिया है मैंने बिना 'कर्मवीर' के उन अंकों को देखे ही अपनी टिप् लिखी है। अदालत में अपना मामला रख देने की मेरी के औचित्य को स्वीकार करते हुए वे इस बात की ओर ध्यान आकर्षित करते हैं कि वर्त्तमान क़ानून के अनु खण्डवे की अदालत में राज्य को अपना दावा पेश क पड़ता और बहैसियत रियासत के वह ब्रिटिश गवर्नमेंट किसी अदालत में एक फरीक के तौर पर उपस्थित नहीं सकता। ऐसी दशा में वे यह सूचित करते हैं 'कर्मवीर' इन्दौर राज्य की अदालत में अपनी सफाई देने का मौक़ा दिलाया जाय तो कैसा?

मुझे खेद है कि इस टिप्पणी के लिखने तक मैं 'कर्म के २७ अप्रैल, १९ मई, २ से २३ जून तक के अंकों को देख सका। उनमें इन्दौर के भिन्न-भिन्न अधिकारियों के, कर श्री बापना साहब और उनके मंत्रिमण्डल के कार्यों

और आलोचना की गई है। जहाँ तक उन बातों की और वस्तुस्थिति से संबन्ध है, मैं तब तक अपनी कैसे दे सकता हूँ जब तक कि दोनों पक्षों की बातें ने न आ जायँ। पर यदि वे सब सत्य हैं और ज्यों की वर्णित की गई हैं तो भयंकर हैं। जहाँ तक आलोचना भाषा और ध्वनि से संबन्ध है, मेरा ख़याल होता है कि अधिक शिष्ट, सुरुचिपूर्ण भाषा में और भी शालीनता के लिखी जा सकती थीं। चिट्ठियों की ध्वनि से ऐसा भी होने लगता है कि लेखक एक तरफ़ा क्यों लिख रहा है। वे चिट्ठियाँ तो संवाददाताओं की हैं, संपादकों की टिप्प- नहीं हैं। जहाँ तक नीयत से संबन्ध है मेरे दिल पर नहीं पड़ी कि वे महज़ श्रीबापना साहब अथवा उनके मण्डल को लोगों की दृष्टि में गिराने की नीयत से लिखी हैं; क्योंकि इसी तरह की कड़ी और चुभती हुई भाषा में उज्जैन समाचार भी मैंने पढ़े हैं। मैंने जहाँ तक 'कर्मवीर' को है, वह एक निस्पृह निर्भीक और कड़ा आलोचक है। वह ब्रिटिश सरकार को छोड़ता है, न हिन्दुस्तानी मंत्रियों शिकायत करता है, न देशी राज्य के अधिकारियों का लिहाज़ा रखता है। यह ठीक है कि कड़वी बातें सदा सहन नहीं होतीं—अधिकारियों की मनोवृत्ति तो भी उनको कम सहन करती है—फिर भी यदि इस से किसी के साथ अन्याय होता हो तो न्याय के लिए खुली ही हुई हैं। हाँ, यदि 'कर्मवीर' में छपी बातें असत्य हों तो 'कर्मवीर' कम से कम मेरी दृष्टि में दोषी हो जाता है—फिर भी 'कर्मवीर' में अब तक दरबार की ओर से प्रतिवाद नहीं भेजे गये, इस दोष न्दौर-दरबार नहीं बच सकता।

हाँ, मित्र की दूसरी बात में अधिक बल है। और मैं हूँ कि यदि 'कर्मवीर' के सुयोग्य संपादकों का ध्यान इस तरफ न गया हो तो अब अवश्य चला जायगा। न्दौर की अदालत में मामला चलवाने की बात के में तो 'कर्मवीर' की तरफ से यह कहा जा सकता है कि रूप से इन्दौर के राज्याधिकारी मानहानि की नालिश की अदालत में क्यों न करें?

न्त में मैं इतना ही कहना चाहता हूँ कि 'कर्मवीर, और 'मालव-बन्धु का थोड़ा दोष मान भी लिया जाय तो भी इन्दौर दरबार ने आपे से बाहर होकर एकाएक उन पर जो भारी प्रहार किये हैं उनके आगे वह छिप जाता है और इन्दौर दरबार के किये कुछ अच्छे कामों को याद रखते हुए भी अन्त तक 'कर्मवीर' और 'मालव-बन्धु' के साथ सहानुभूति बनी रहती है।

अपूर्व और अनुकरणीय

श्रद्धेय श्री जमनालालजी बजाज भारत के उन कर्मवीरों में हैं जो कहते कम हैं करते ज़्यादा हैं, जो कहते हैं वही करते हैं और करने को तैयार रहते हैं। मैं ज्यों-ज्यों उनके निकट सम्पर्क में आता जाता हूँ त्यों-त्यों उनके संबंध में महात्माजी का यह कथन बड़ा ही अध्ययन-पूर्ण मालूम होता जाता है—'जिन्होंने सेवा-धर्म का स्वीकार किया है उनको जमनालालजी के जीवन में बहुत बातें अनुकरणीय प्रतीत होंगी।' श्रीमान् जमनालालजी के अथक प्रयत्न से हाल ही में उनके वर्धास्थित श्री लक्ष्मीनारायण के मन्दिर के ट्रस्टियों ने एक प्रस्ताव द्वारा मन्दिर अछूतों के लिए खोल दिया है; जिसके समारोह का रोचक और ज्ञान-प्रद वर्णन और आचार्य विनोबा का सुन्दर प्रवचन एक मित्र ने भेजने की कृपा की है, जिसे स्थानाभाव से, अगले अंक में, प्रकाशित करने की चेष्टा की जायगी। जहाँ तक मुझे पता है अस्पृश्यता-निवारण के सिलसिले में यह पहला ही उद्योग सेठ साहब की तरफ से हुआ है। सत्ताहीन और पराधीन भारत में, फिर हिन्दू जैसी अनेक अन्ध-विश्वासों से पूर्ण शिथिल जाति में सामाजिक और धार्मिक सुधार करना कितना कष्टकर और कठिन है, इसका ज़रा भी ज्ञान जिन्हें है वे जमनालालजी को इस सत्साहस के लिए भूरि-भूरि धन्यवाद दिये बिना नहीं रह सकते। आचार्य विनोबा के शब्दों में जमनालालजी ने 'माता को अपनी बिछुड़ी हुई सन्तान से मिला देने का पुण्य प्राप्त किया है।' ऐसे प्रकृत सुधारक हिन्दू-समाज के गर्व और गौरव हैं। परमात्मा इन्हें चिरंजीव करें और इनके आदर्श से हम जैसे हजारों जीव अनुप्राणित हों।

'विशाल भारत' का कार्य-क्षेत्र

त्यागभूमि के एक पिछले अंश में 'विशाल भारत' का स्वागत किया गया है। उसमें उसके 'कार्यक्षेत्र' के संबंध में मैंने अपने अनुमानों का भी ज़िक्र किया है। उसके संबंध में भाई बनारसीदासजी लिखते हैं—

"विशाल भारत" के उद्देशों का जिक्र प्रथम अंक में कर दिया गया है और उन्हीं को लक्ष्य में रख कर 'विशाल भारत' की सेवा कर रहा हूँ। 'एशियाई संघ' की बात को मैं too much ambitious समझता हूँ। मेरे लिए २१ लाख आदमियों का 'विशाल भारत' ही बहुत काफ़ी बड़ा है; बल्कि एक उपनिवेश ही पर्याप्त से भी अधिक है। पर यदि मेरी इच्छानुसार केवल प्रवासी भाइयों का पत्र 'विशाल भारत' को बना दिया जाय तो इसमें बहुत कठिनाइयाँ होंगी। इसी कारण अन्य विषय भी रक्खे गये हैं। यदि आप प्रथम अंक में वर्णित उद्देशों से और मेरे लेखों के चुनाव से मिलान करेंगे तो आपको ज्ञात हो जायगा कि 'विशाल भारत' का एक क्षेत्र है, यद्यपि वह बहुत विस्तृत है और मेरी दृष्टि और ज्ञान की सीमा बहुत संकुचित।"

'विशाल भारत' के प्रथमांक में वर्णित नीति संक्षेप में इस प्रकार है—(१) जातीय विद्वेष को न बढ़ने देना (२) विभिन्न प्रांतों के साहित्य, संगीत, कला, शिक्षा, विज्ञान संबंधी उद्योगों को हिंदी जनता के सन्मुख लाना (३) जावा, सुमात्रा आदि प्राचीन और फिजी, मारिशस आदि आधुनिक विशाल-भारत के सम्बन्ध में ज्ञान फैलाने और उनके साथ मातृभूमि के सम्बन्ध को दृढ़ करने का प्रयत्न करना (४) ग्राम-निवासियों के हित के लिए उद्योग करना (५) साहित्य-सेवियों और कवियों की स्मृति-रक्षा के लिए काम करना (६) भारतीय युवक आन्दोलन का समर्थन करना और माताओं, बहनों तथा मातृभूमि के छोटे से छोटे सेवकों की सेवा और सन्मान करना।

आशा है, इस विवरण से पाठकों को 'विशाल भारत' के कार्य क्षेत्र की सही और निश्चित दिशा मालूम हो जायगी। भाई बनारसीदासजी ने इस बात की ओर मेरा ध्यान आकर्षित किया, इसके लिए मैं उनका कृतज्ञ हूँ।

मीरा बहन का लेख

पिछले अंश में पू० मगनलालजी भाई पर श्री मीरा बहन का एक सुन्दर लेख प्रकाशित हुआ है। सत्याग्रहाश्रम साबरमती के विद्यार्थियों के हस्तलि मासिक पत्र 'मधपुडा' के लिए लिखा गया था और से एक आदरणीय मित्र के द्वारा हमें प्राप्त हुआ था। श्री मीरा बहन आश्रम में अपने आध्यात्मिक जीवन की में अपना समय लगाया करती हैं और सार्वजनिक नहीं लिखा करती हैं। अपने पत्र में वे लिखती हैं कि लेख आश्रम की सीमा तक परिचित रहने के लिए था। ही एक संपादक को मैंने इन्कार लिखा है और आज यह लेख छपा हुआ देख कर, मुझे उनके सामने स्पष्ट करना पड़ेगा। ऐसी दशा में इस घटना से मीरा बहन कष्ट होना और दुःख पहुँचना स्वाभाविक है। उनके देख कर मुझे भी खेद हो रहा है। पर, आशा है, कि इस टिप्पणी को पढ़ कर हमारे संपादक बन्धु उन्हें लेख लिए पत्रादि लिखने का विचार छोड़ देंगे और उनकी में किसी प्रकार का विघ्न न डालने की कृपा करेंगे।

स्पष्टीकरण

'त्यागभूमि' खण्ड २ अंश १ के 'स्वगत' नामक में एक स्वगत इस प्रकार है -

"जिसे समय पर खाना खाने की सुध रहती है, कभी बीमार नहीं पड़ता, जिसका वजन घटता नहीं, जिसे दूध फल खाने को पैसे मिल जाते हैं, जो साफ़ कपड़े तरतीब से पहनता है, जिसे हास्यविनोद के लिए मिल जाता है, वह कैसा देश भक्त ? जिसे रात-दिन सच्ची चिन्ता रहती है, उसे भला इन बातों के लिए रह सकता है !!"

थोड़ा ही सूक्ष्म विचार करने से मालूम हो जाय देशभक्त की यह व्याख्या वास्तव में एक मज़ाक है पूछिए तो इसमें उन अव्यवस्थित-चित्त देशभक्तों पर किया गया है, जो न समय पर ढँग से खाना खाते हैं कीब से कपड़े पहनते हैं, और जो अव्यवस्थितता, अनि

स्वच्छंदता ही को देशभक्ति का लक्षण मान बैठे हैं। कई मित्रों ने इस विनोद को गम्भीर भाव में ग्रहण मुझे उलहना दिया है कि मैंने यह क्या देशभक्त की ला लिख मारी है। मैंने तो यह समझा था कि गंभीर तों के बीच में इस व्यङ्ग्य का स्वाद पाठकों को खूब गा; और वाक्य के अन्त में आश्चर्य-सूचक चिन्ह भी मैंने इसी उद्देश से दिया था कि पाठक इसे ग़ौर से पढ़ें और इसके सूक्ष्म विनोद को समझें। पर मुझे दुःख है कि कई मित्रों ने इसका भाव कुछ का कुछ समझ लिया है। आशा है, इस स्पष्टी-करण से उनको सन्तोष होगा तथा दूसरे पाठक ग़लतफ़हमी से बच जायँगे।

हृ० उ०

चित्र-दर्शन

नेता

भला इस जंगली युवक को कौन नेता कहेगा ?

स्वराज्य आन्दोलन के सूट-बूट धारी मध्ययुगीन नेता लक्षणों को अगर छोड दें तो गांधीयुग के आधुनिक नेता भी तो कोई चिन्ह इसमें नहीं दिखाई देते ? कहाँ है खद्दर विशुभ्र कुरता, और अंगरेज़ी काट के बाल वाले सिर पर दार गांधी टोपी ? वह लम्बी धोती, सोने की चमकीली वॉच और जेब में रोल्ड-गोल्ड की क्लिपदार फाउण्टनपेन ? नेतागिरी के अगर कोई चिन्ह इसमें है तो सिर्फ़ तीन। क पर फहराने वाला वह चक्रधर तिरंगा झण्डा, पैर में ढीली चट्टी और अपरिपक्व बुद्धि वाला अकेला एक यायी। इनमें से झण्डे की बात तो नगण्य है। क्योंकि -सत्याग्रह की विजय के दिन से हमने सार्वजनिक न से उसे विदा दे रक्खी है। हाँ, सालभर में सिर्फ दो-चार दिन तक महासभा के अवसर पर, भारत की जातियों के आराध्य देव नाग देवता की भांति, हम की पूजा ज़रूर करते हैं। अब बताइए, यह नेता कैसा ? इसके हाथ में तो एक कुल्हाड़ी है, सिर पर जटा है, ऊँची धोती है, मुँह पर मूँछ की रेखा तक नहीं और वक्षस्थल पर एक घाव है।

संक्षेप में नेता की यह कल्पना बड़ी अटपटी है। पर मुझे तो मालूम होता है जब हम भारत में इस तरह के नेता देखेंगे वह दिन हमारे लिए धन्य होगा। इस चित्र में कल्पना और वास्तविकता का समन्वय हुआ है। नेता का आवश्यक लक्षण सूटबूट, गांधी टोपी, रिस्टवॉच इत्यादि नहीं है। नेता का प्राण है उसका साहस, दृढ़ता, तपस्या और आशावादिता। अपने दाहिने हाथ में प्रयत्नवाद की तेज कुल्हाडी लेकर वह लोक-सेवा की दुर्गम पहाड़ियों पर मार्ग बनाने के लिए अकेला निकल पड़ा है। वक्षस्थल में कटु अनुभवों का घाव ताजा है, उसमें से खून बहता है फिर भी उसकी कर्तव्यनिष्ठा इतनी दुर्बल नहीं कि उसे बिस्तर पर लिटा दे। इस दृढ़ता, साहस और तेज को देख कर यदि प्रत्यक्ष काल भी कन्ना काट कर उसे मार्ग दे दे तो कौन आश्चर्य की बात है ? उसका जटामुकुट और सीध-सादी वेश-भूषा उसकी तपस्या के प्रतीक हैं। वह निश्चल दृष्टि और दीर्घ नासिका उसके दृढ़ निश्चय के लक्षण हैं। उसे घूम कर यह देखने की परवाह नहीं कि मैं अकेला हूँ या अनुयायियों का कोई झुण्ड भी

मेरे पीछे आ रहा है। और ऐसे दुर्गम स्थान पर कोई झुण्ड के झुण्ड अनुयायियों की आशा कैसे कर सकता है? मार्ग बनाने वाले तो इने-गिने ही होते हैं। हाँ, मार्ग के बन जाने पर अवश्य ही सैकड़ों बलकि हज़ारों और लाखों लोग जयनाद करते हुए उस रास्ते चल पड़ते हैं ।

सायंकाल की अरुणिमा पश्चिमाकाश को कुंकुमित कर रही है। सारा वन प्रदेश उस क्षण-स्थाई अरुणिमा में नहा रहा है। सामने कठिन, विषम, दुर्गम, कँटीला और गहन पर्वतीय प्रदेश है और है काली कलूटी रात। न जाने यह वीर किस समय से चला है पर अब भी उसके पदक्रम में वही निश्चय और उत्साह है। यह है उसकी आशावादिता। क्या वह दिन हमारे लिए धन्य नहीं होगा जब नेतृत्व के पथिक शहरों में व्यक्तिगत महत्त्व प्राप्ति की आकांक्षाओं को छोड़ कर प्रयत्नवाद की कुल्हाड़ी ले कर देश-सेवा के गहन-वन में नवीन मार्ग बनाने के लिए निकल पड़ेंगे और महासभा के वार्षिक अधिवेशन के समय साल भर में केवल एक बार नहीं बल्कि जहाँ कहीं हम भूले-भटके निकल जावेंगे, गाँव में या जंगल में, हमें नवीन भारत का यही चक्रधर तिरंगा झण्डा फहराता हुआ दिखाई देगा और दिखाई देगा—उसके नीचे काम करने वाले दृढ़व्रत तपस्वी सेवकों का झुण्ड जिन्होंने अपने आपको अपने अंगीकृत कार्य के पीछे भुला दिया है? धन्य होगा वह दिन जब भारत के नेता शहरों में नहीं भारत के प्रत्येक गाँव में पैदा होंगे।

बन्सीवाला

बन्सीवाले का नाम सुनते ही हमारी आँखों के सामने गोपनायक मनमोहन कृष्ण की मूर्ति खड़ी हो जाती है। पर आज चित्रकार ने हमारे सामने यह किसे लाकर खड़ा कर दिया है? यहां न तो वह सांवली सलोनी मूर्ति है और न वह पीताम्बर। न कहीं मोर-मुकुट है, और न दूर दूर तक ग्वाल-बालों का कहीं पता है। यहां तो खड़ा है इस वृक्ष के सहारे भोली-भाली आँखों वाला एक युवक और उसके पीछे गो पहाड़ियां।

अरे यह तो हमारे जीवन की पार्श्व भूमिका है। कृत्रिम जीवन ने हमारी आखों को हर जगह भव्य ढूंढने का आदी बना दिया है। अकिंचनता हमारे लिए कोई र्षण नहीं रखती। उसे हम दुःख की स्थूल मूर्ति समझते हैं। यदि सचमुच ऐसा ही होता तो इस संसार की कितनी वस्था होती? अपने चारों तरफ हम दुःख का खौलता सागर पाते। और उसमें विचरने वाले भीषण जल के भयंकर विषैले फूत्कारों से हम जल जाते। पर धन्यवा उस परमपिता को जिसने हमारे अन्दर अपनी अमर एक ज्योति जगादी है जो अन्धेरे में उजाला कर के मनुष्य सान्त्वना-मय बना देती है। यह उसी की कृपा है कि कैद की सजा पाने वाला एक कैदी भी अपनी मजदूरी के दंड को भुगतते हुए किसी मनोहर की तानें गुन-गुना सकता है, एक पुत्रशोक माता या पिता अपने दुःख को भूल कर बालकों निर्दोष क्रीड़ा में लवलीन हो जाता है, एक निर्धन भी जिसे यह पता तक नहीं कि कल मैं क्या खाऊंगा आपको भूलकर अलगोजा बजाते हुए निश्चिन्त भाव से शाह की तरह क्षणभर खड़ा रह सकता है और अपने गोजे की मस्त और संक्रामक प्रसन्नतामय तानों से को गुँजा सकता है।

सचमुच हमारे अंदर एक आध्यात्मिक "रेडि जो हमारे जीवन के भग्नकणों की मरम्मत करके उनमें नवीन प्राण उत्पन्न करता रहता है। अगर ऐसा न हो क्या यह क्षणभंगुर मानवमूर्ति शैतान की दुःख शोकमय की चपेटों से कभी की टूटकर मिट्टी में नहीं मिल गई

हे मानवता! अपने इस अमर ख़ज़ाने की रक्षा

यह सुन्दर चित्र हमें राजामुन्द्री की प्रसिद्ध 'रा आर्ट गेलरी' से प्राप्त हुआ है।

वै० महोदय

'सस्ती-साहित्य-माला' के दूसरे वर्ष में प्रकाशित ग्रन्थ

(१) तामिल-वेद अथवा त्रिक्कुरल

अनुवादक—श्रीक्षेमानन्द राहत; भूमिका-लेखक—श्रीचक्रवर्ती राजगोपालाचार्य

दक्षिण के अछूत ऋषि महात्मा तिरुवल्लुवर के इन अमृतमय उपदेशों का तामिल देश में वेदों के मान आदर है। "त्रिकुरल एक गद्यकाव्य है। यह विवेक, शुभ संस्कार और मानव प्रकृति के व्यावहारिक ज्ञान की खान है। कला की दृष्टि से संसार के साहित्य में इसका स्थान ऊंचा है।" (भूमिका से) संसार की प्रायः सभी भाषाओं में इसका अनुवाद हो गया है। पृष्ठ २४८ मू. ॥=)

(२) स्त्री और पुरुष

लेखक महात्मा टॉलस्टॉय

भोग विलास को जीवन का सुख मानकर उसके स्वर्गीय रस के स्वप्न देखने वाले भाई बहनों के लिए यह ग्रन्थ सुन्दर ज्ञानांजन है। विकारों के गुलाम बने हुए भाई बहनों को यह ग्रन्थ उनके उद्धार का शुभ सन्देश सुनावेगा और विषय-विकार से मुक्त होने की इच्छा रखने वाले मुमुक्षु भाइयों के लिये यह सच्चे साथी का काम देगा। स्त्री पुरुषों के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में महात्मा टॉल्स्टाय के दिव्य विचार सचमुच क्रान्ति कर देने वाले हैं। प्रत्येक गृहस्थ को यह ग्रन्थ पढ़कर जरूर लाभ उठाना चाहिए। पृष्ठ संख्या १६० मूल्य केवल ।=)

(३) हाथ की कताई-बुनाई

अनुवादक—श्रीयुत रामदासजी गौड़ एम० ए०

यह उस निबन्ध का भाषान्तर है, जिस पर कि मूल-लेखकों को महात्मा गांधी जी ने १०००) इनाम दिया है। इसमें वेद-काल से लेकर आज तक के समय का हाथ से कातने और बुनने का इतिहास, उसकी उन्नति तथा अंग्रेज़ी काल में कैसे-कैसे भीषण अत्याचारों से उस पर कुठाराघात हुआ आदि बातें खूब विस्तार से समझाई गई हैं। अब उसकी उन्नति कैसे हो सकती है, मिल के कपड़ों के सामने खद्दर का व्यवसाय कैसे टिक सकता है और उसकी उन्नति कैसे हो सकती है, कातने और बुनने के काम से कुटुम्ब-निर्वाह कैसे हो सकता है आदि प्रायः सभी बातों की व्यावहारिक रूप से विवेचना की गई है। पृष्ठ संख्या २६७ मूल्य ॥=)

(४) चीन की आवाज़

एक सहृदय अंग्रेज़ के शब्दों में पूर्वी और पश्चिमी सभ्यता की यह सुन्दर तुलना बड़ी ही प्रभावोत्पादक है। इंग्लैण्ड क साम्राज्य लोलुपता, तथा ईसाई धर्म के प्रचार-रहस्य, आदि पर लेखक की टीकायें पढ़ने लायक हैं। चन के स्वातंत्र्य-युद्ध को समझने की इच्छा रखने वालों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। पृष्ठ संख्या १३० मूल्य ।–)

पता—सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर

(पीछे देखिए)

(५) हमारे ज़माने की गुलामी (महात्मा टाल्स्टाय)

संसार की साम्राज्यलोलुप सरकारों का यथार्थ स्वरूप इसे पढ़ कर जानिए । पृष्ठ १००, मूल्य

(६) भारत के स्त्री-रत्न (दूसरा भाग) पृष्ठ ३३० मूल्य ।।।-)

(७) द० आफ्रिका का सत्याग्रह (दूसरा भाग) पृष्ठ २२८ मूल्य

(८) जीवन-साहित्य (दूसरा भाग) पृष्ठ २०० मूल्य ।।)

इन तीनों पुस्तकों के प्रथम भाग प्रथम वर्ष में निकल चुके हैं । जिनका मूल्य क्रमशः १), ।।।) और ।।)

इस प्रकार उपरोक्त ८ पुस्तकें १६६९ पृष्ठों की दूसरे वर्ष में निकली हैं । ती
वर्ष के ग्राहक बनने से दूसरे वर्ष की और पहिले वर्ष की सब पुस्तकें लागत मू
में (पोनी कीमत में) मिलेंगी ।

सस्ती-प्रकीर्ण-माला के दूसरे वर्ष के प्रकाशित ग्रंथ

(१) (२) यूरोप का सम्पूर्ण इतिहास (दूसरा व तीसरा भाग

लेखक—श्री रामकिशोर शर्म्मा, बी० ए०, विशारद

इसका पहला भाग प्रकीर्ण माला के प्रथम वर्ष में प्रकाशित हुआ था। पृष्ठ ३६६ और मूल्य ।।।
जो सज्जन इन दोनों भागों को मंगावें वे प्रथम भाग को भी ज़रूर मंगा लें नहीं तो ग्रंथ अधूरा रहेगा

इस ग्रंथ में शुरू से लेकर सन् २६ तक का समस्त यूरोप का इतिहास है । यूरोप का इतिहास स्वाधीनता का इतिहास है । जागृत जातियों की प्रगति का इतिहास है और पश्चिमी सभ्यता के विकास का पाठक्रम है । यदि भारत के युवक स्वराज्य चाहते हैं तो वे इस विविध घटना और परम उपयोगी शिक्षा से भरे यूरोप के इतिहास को अवश्य पढ़ लें । पृष्ठ-संख्या दोनों भागों की ४६७, मूल्य केवल १=)

(३) ब्रह्मचर्य-विज्ञान

लेखक—पं० जगन्नारायणदेव शर्मा 'साहित्य-शास्त्री'

भूमिका लेखक—पं० लक्ष्मणनारायण गर्दे, सम्पादक "श्री कृष्णसंदेश"

"इसमें लेखक ने ब्रह्मचर्य की महिमा और विधि के विषय में बहुत अच्छा संग्रह किया है जो सर्व साधारण तथा विद्यार्थी युवकों के लिए बहुत ही उपकारक होगा । प्राचीन ग्रन्थों से जो अवतरण दिये हैं वे बहुत ही स्फूर्तिदायक और समय पर काम देने वाले हैं । इसमें सभी विचारणीय विषयों का समावेश है जिससे पुस्तकसबके लिए बड़े काम की हुई है। ऐसी पुस्तकों का देश में जितना प्रचार हो, उतना अच्छा है पृष्ठ-संख्या ३७४, मूल्य केवल ।।।-) हरएक गृहस्थ को एक प्रति अपने पास रखनी चाहिए।

(४) अनोखा उपन्यास पृष्ठ ४७४ मूल्य १।=) **(५) गोरों का प्रभुत्व** (पृष्ठ २७४) मूल्य ।।।=) इस प्रकार इस दूसरे वर्ष में पाँच पुस्तकें १५८७ पृष्ठों की निकली हैं । तीसरे वर्ष के ग्राहक होने से पिछले दोनों वर्षों की पुस्तकें लागत मूल्य (पौने मूल्य) में मिलेंगी ।

१) प्रवेश फ़ीस और ८) वार्षिक मूल्य कुल ९) भेज कर वार्षिक ग्राहक बन जाइये

नीचे लिखी सब पुस्तकें आधी कीमत में मिलेंगी

किसी की एक, किसी की दो ऐसी ही प्रतियां हमारे पास बची हैं इसलिए जल्दी आर्डर भेज दें
अन्यथा समाप्त होनेपर हम इस रिआयत में न भेज सकेंगे

नवयुवकोपयोगी

वयुवको स्वाधीन बनो	।।)
ोल्शेविज़्म [भू० ले० बाबू भगवानदास एम० ए०]	१।=)
ातृभाषा	।।)
द्ध नामावली	।।)
तरेखा देखने की विधि	=)
न्दुओं पर वज्राघात	=)

जीवन चरित्र

ार्ड किचनर	१)
ांधीजी की जीवनी	।)
ांधीजी कौन हैं ?	।।–)
ी दर्शन [बड़ी जीवनी]	१)
मनी के विधाता	।)
० तिलक	।।)
क जीवनादर्श	=)
ात्मा पीपाजी	।=)
ानीदयालजी	।)
मोतीलाल नहरू	।।।)
टिन लूथर	।=)
ादेवगोविंद रानाडे	=)।।
नमोहन मालवीय	।)
ा राममोहनराय	–)।।
पतराय.	।।)
तंत्रता के प्रेमी सिनफ़िनर	।)
गांधीजी की जीवनी	≡)

कविता

विता की झनकार	।।)
य कविता	१।।)
सुधा दर्पण	।)
्त प्रह्लाद	।–)

प्रेम पुष्पांजली	।–)
प्रेमधारा	।≡)
पद्य कुसुमांजली	।।।)
प्रवास कुसुमावली	।=)
बम्ब के गोले	।।)
श्रीकृष्ण चरित्र	=)।।
भव्य भारत	।–)
भारत गीतांजली	≡)
भारतीय तरंग	।)
मुसाफ़िर भजनावली	=)।।
रंगीला चर्खा	।–)
राष्ट्रीय मंत्र	।।)
राष्ट्रीय गीत	≡)
राष्ट्रभारती	।।)
राष्ट्रीय वाणी	।)
राष्ट्रीय झनकार	।।)
विधवा	।।)
विनय तरंगिणी	=)
वीणा झनकार	।=)
शिशुलोरी	=)।।
विपंची	।)
श्रृंगार तिलक	–)।।
श्रद्धानंद वियोगांजली	।।=)
स्त्री ज्ञानप्रकाश [प्रथम भाग]	।)
[दूसरा भाग]	।)
[तीसरा भाग]	।)
स्त्री संगीत पुष्पमाला	।=)
सामाजिक चित्रदर्पण	=)
संगीत सागर	≡)।।
स्त्री गीतसार	।=)
सदाये भारत	।=)

इतिहास

आयर्लैंड की राज्यक्रान्ति	।–)
इंग्लैंड का इतिहास	१)
दिल्ली अथवा इंद्रप्रस्थ	।।)
बीसवीं सदी का महाभारत	।।।)
सिवनी सरोजनी	।=)
हमारे देश की प्राचीन उन्नति	।।)
खादी का इतिहास	।।=)

राष्ट्रीय

आयर्लैंड में होमरूल	।।–)
कानून भंग	।।)
किसानों का अधिकार	।)।।
किसानों पर अत्याचार	।–)
कौन्सिल की मेंबरी	।)
गांधीजी का अभियोग	।)
गांधीजी का बयान	।।)
चम्पारन में महात्मा गांधी	।।)
जेलयात्रा और संदेश	।।)
डायरशाही	।।)
देशी राज्य दर्शन	१।।)
नवीन भारत	१।।)
पंजाब का नर हत्याकाण्ड	।।।≡)
भारतमाता का संदेश	।।)
भारतवर्ष के लिए स्वराज्य	।=)
भारतीय किसान	≡)।।
भारतीय जेल	।।)
भारतीय नवयुवकों को राष्ट्रीय संदेश	।।।)
राष्ट्रीय आन्दोलन	१।।)
स्वराज्य-दर्शन	।=)
स्वराज्य सोपान	१)

नीचे लिखी सब पुस्तकें आधी कीमत में मिलेंगी

स्वराज्य और हमारी योग्यता	।)
हंगरी में असहयोग	=)।।
हम असहयोग क्यों करें ?	।।)
हिन्द स्वराज्य	।।)
हिन्दू जाति का ह्रास	-)

धार्मिक

नियोग मीमांसा	१।।)
" सजिल्द	१।।।)
ब्रह्मयज्ञ	।।=)
संस्कार चन्द्रिका	४)

स्त्रियोपयोगी

सती अंजनादेवी	।।=)
अनन्तमती	।।।=)
कुलकमला	।।।=)
श्रीमती निवेदिता	।-)
द्रौपदी और सत्यभामा	≡)
बालाविनोद	।=)
भारत की क्षत्राणी	।=)
सच्ची देवियां	।।।)
महिला कर्तव्य	।=)
माता	।।।)
वनिता विलास	।-)
वीर महिलाओं के संदेश	=)।।
सच्चीस्त्रियां	।।।)
सती सावित्री	।)

उपन्यास

अ[illegible] सन्यासी	=)।।
खरा [illegible]	१)
खद्दर की आत्मकथा	।।)
खद्दर प्रतिभा	।।।)
गंगोत्तरी	।।।)
चरित्र चित्रण	१।।)
जयविजय	।।)
जयमाला	।=)
जहर का प्याला	१)
जीवन ज्योति	१।)
तरंग	।।=)
तरुण तपस्विनी	।।=)
दुर्गा	।=)
निहिलिस्ट रहस्य	१)
परीक्षा गुरु	१)
पुनरुत्थान	।।।=)
पूना में हलचल	।।)
पौराणिक गाथा	।-)
प्रोत्साहन	।।-)
प्रेम प्रभाकर [टाल्स्टाय]	१।।)
बोल्शेविकों की करतूत	।।=)
भारत सम्राट् परीक्षित	१।)
भरतमिलाप	।=)
राजनैतिक षडयंत्र	२।।)
तपस्वी भरत	।-)
भेदभरी सुंदरी	।।।=)
मदन विलाप	।।)
माधव माधवी	१।)
सोना रानी	=)
बच्चों के लिए सोने का चांद	।)
हेर फेर	।।।)
हामर गाथा	१)

नाटक

अज्ञातबास	।।।=)
अत्याचार का अन्त	।।।)
अत्याचार का परिणाम	।।।-)

काशी विश्वनाथ
किरणमयी
कृष्णावतार
भक्तिविजय
भूत खेलन ओझा
मान वसन्ती
मैना सुंदरी
रामराज्य वियोग नाटक
रामलीला
रामायण
सुनहर खंजरी
संयोगिता हरण

नीचे लिखी सब पु
चौथाई मूल्य में

असहयोग दर्शन
हिंदुस्थान का राष्ट्रीय झंडा
अकालियों का आदर्श सत्याग्रह
देशबन्धु सी० आर० दास
(ले० बाबू संपूर्णानन्द बी० ए
नागपुर की कांग्रेस
असहयोग और भारत के नेत
अहमदाबाद की कांग्रेस
चरखा और स्वराज्य
चम्पारन की जांच
भारत को स्वाधीनता का संदेश
भारत बीती
सत्याग्रह जांच कमेटक रि।
स्वदेशी और स्वराज्य
संसार व्यापी असहयोग
स्वदेशी पर महात्मागांधी
स्वदेशीधर्म

मिलने का पताः--सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर

पोनी कीमत वाली पुस्तकों की सूची आठवें अंक में छपी थी उस अंक में देख लें।

वह अंक न हो तो अलग छपा हुआ सूचीपत्र मंगा लें

सस्ती, उत्तम, नई पुस्तकें

(१) **तिलक-चरित्र** (ले० श्री केलकर महोदय) मूल्य ४) (इससे बढ़ कर प्रामाणिक लोकमान्य का जीवन-चरित्र नहीं लिखा जा सकता)।

(२) **आरोग्य-मन्दिर** (संकलनकर्ता—प्रवासीलाल वर्म्मा) मूल्य २) स्वास्थ्य विषय पर यह बड़ी ही उत्तम पुस्तक है। पूज्य मालवीयजी ने आशीर्वाद दिया है कि 'यह पुस्तक खूब बिकेगी'। मूल्य २)

(३) **पौराणिक कथाएं**—इसमें भिन्न भिन्न पुराणों से संकलित प्राचीन भारत के महापुरुषों तथा सती देवियों के जीवन की विशेष विशेष घटनाओं का वर्णन है। एक तरफ मूल संस्कृत और उसके सामने दूसरी तरफ भाषानुवाद बड़ा रोचक है। बढ़िया कागज़ पर छपी हुई ८२५ पृष्ठों की सजिल्द पुस्तक का मूल्य केवल २॥=)

(४) **कविता कौमुदी** प्रथम भाग ३), दूसरा भाग ३), तीसरा भाग ३), चौथा भाग ३)

(५) **श्रीबाल्मीकीय रामायण** (मूल संस्कृत हिन्दी अनुवाद सहित) अनुवादक—साहित्याचार्य पं० चन्द्रशेखर शास्त्री,—

(१) बालकाण्ड [पृष्ठ ३८४] मू० ॥।), (२) अयोध्याकाण्ड [पृष्ठ ७६८] मू० ३॥।), (३) अरण्यकाण्ड [पृष्ठ ४१६] मू० ॥।-)

गीताप्रेस की सस्ती प्रामाणिक गीताऐं

(१) **गीता** (सटीक) गुटका साइज़ पृष्ठ ३५६ सचित्र मूल्य =)॥

(२) **गीता** (मोटा टाइप) पृष्ठ ५६५ साइज़ बहुत बड़ा, अन्वय, शब्दार्थ टीका सहित सजिल्द, सचित्र मूल्य १।) **गीता भाषा** (मोटा टाइप) मूल्य।)

(३) **गीता विष्णु सहस्रनाम** मूल्य =)

(४) **स्त्रीधर्म प्रश्नोत्तरी** मूल्य =)

प्रचारकों की आवश्यकता

जो भाई कमीशन पर काम करना चाहें, वे हमसे पत्रव्यवहार करें, त्यागभूमि व मण्डल के प्रचार कार्य्य में कमीशन का तो लाभ है ही, साथ ही साहित्य-सेवा का भी सुअवसर प्राप्त होता है।

पता—सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर

नीचे लिखे ग्रन्थ प्रकाशित हो गये हैं

पुस्तकों का विषय उनकी पृष्ठ संख्या और मूल्य पर विचार कीजिए

अन्य प्रकाशक प्रायः १०० पृष्ठों की पुस्तक के लगभग ॥) या ॥=) मूल्य रखते हैं

पर मंडल इतने ही पृष्ठों का मूल्य केवल ।) रखता है

म० गांधीजी की आत्म-कथा पृष्ठ ४१६ का मूल्य तो केवल ॥=) रखा गया है

(१) भारत के स्त्री-रत्न (दूसरा भाग) पृष्ठ ३३० मूल्य ॥।-)

प्रथम भाग पृष्ठ ४१० मूल्य १) पहले छप चुका है। दोनों भागों में प्राचीन भारत की पतिव्रता, वीर, विदुषी भक्त कोई ६० स्त्रियों की जीवनी हैं।

(२) द० आफ्रिका का सत्याग्रह (उत्तरार्ध-दूसरा भाग) पृष्ठ २२८ मूल्य ॥

प्रथम भाग (पूर्वाद्ध) पृष्ठ २७२ मूल्य ॥।) पहले छप चुका है। लेखक हैं म० गांधी।

(३) जीवन-साहित्य (दूसरा भाग) पृष्ठ संख्या २०० मूल्य ॥

आचार्य कालेलकर के लेखों का यह संग्रह है। प्र० भाग पृष्ठ २१८ मूल्य ॥) भी छप चुका

(४) गोरों का प्रभुत्व (रामचन्द्र वर्मा) पृष्ठ २७४ मूल्य ॥=

(५) अनोखा (विक्टरह्यूगो का क्रांतिकारी उपन्यास) पृष्ठ ४७४ मूल्य १।=

(६) आत्म-कथा (ले० महात्मा गांधी) पृष्ठ ४१६ मूल्य केवल ॥=

इसका लागत मूल्य ॥≥) है। पर प्रचार के लिए मूल्य लागत से भी कम ॥=) रखा है

(७) सामाजिक कुरीतियां (टाल्स्टाय) पृष्ठ २८० मूल्य ॥=

नोट—(१) प्रथम तीन पुस्तकें सस्ती-साहित्य-माला (अब इसका नाम राष्ट्र-निर्माण माला रख है) के दूसरे वर्ष की शेष पुस्तकें हैं और चौथी और पांचवीं पुस्तक सस्ती-प्रकीर्ण मा के दूसरे वर्ष (अब इसका नाम राष्ट्र-जागृति-माला रक्खा हैं) की शेष पुस्तकें हैं।

(२) छठी पुस्तक आत्म-कथा राष्ट्र-निर्माण माला की तृतीय वर्ष की पहली पुस्तक है सातवीं पुस्तक राष्ट्र-जागृति-माला के तृतीय वर्ष की पहली पुस्तक है।

(३) वार्षिक ग्राहकों को ये पुस्तकें पौनी कीमत में पड़ेंगी। ग्राहक बनने के नियम अन्दर छपे

पता—सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर.

मुद्रक और प्रकाशक—जीतमल लूणिया, सस्ता-साहित्य प्रेस, अजमेर

र्ष २
कार्तिक १९८५
अंश २

त्यागभूमि

मूल्य ४)
मूल्य २॥)

संपादक

हरिभाऊ उपाध्याय

एक संख्या का ।)
विदेशों के लिए ५)

सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर, से प्रकाशित

पाठकों को आवश्यक सूचना

'त्यागभूमि' के शुरू व अन्त में विज्ञापनों के कुछ पृष्ट रहते हैं, उन्हें ग्राहक ज़रूर पढ़ लिया करें। ग्राहकों के सम्बन्ध की कई सूचनायें उन में छपी रहती हैं। मंडल से जो नई नई सस्ती पुस्तकें निकलती हैं, उनका हाल भी रहता है। इसी तरह कवर के भी सब पृष्ठ देख लिया करें।

प्रचारकों की आवश्यकता

जो भाई कमीशन पर काम करना चाहें, वे हम से पत्र-व्यवहार करें। त्यागभूमि व मंडल के प्रचार कार्य्य में कमीशन का तो लाभ है ही, साथ ही देश सेवा का भी सुअवसर प्राप्त होता है।

सर्व साधारण को सूचना

(१) हमारे यहां वेतन लेकर काम करने वाले तथा कमीशन पर काम करने वाले, इस तरह दो प्रकार के एजेन्ट नियुक्त होते हैं। जो भी एजन्ट नियुक्त होते हैं उनका नाम त्यागभूमि में प्रकाशित कर दिया जाता है। इसी तरह उनके अलग होने की सूचना भी प्रकाशित कर दी जाती है।

(२) एजन्टों के नाम लिखते समय यह भी लिख दिया जाता है कि इन्हें ग्राहकों से पेशगी रुपया लेने का अधिकार है या नहीं। जो सज्जन बिना हमारी सूचना के किसी एजन्ट को पेशगी दे देंगे, उसका जुम्मेवार मंडल न होगा।

(३) एजन्टों के जरिए जो महाशय ग्राहक बनते हैं और उन्हें प्रवेश फ़ीस या कुछ रकम पेशगी भी दे देते हैं उन्हें चाहिए कि यदि १५ दिन के भीतर एजेन्टों को दिए हुए रुपयों की पक्की रसीद मंडल से न मिले तो कच्ची रसीद का नम्बर तथा तारीख और रुपिये पाने वाले का नाम हमारे यहां लिख भेजें।

एजराटों को सूचना

(१) एजराट महाशय प्रवेश फ़ीस तथा पेशगी जो कुछ ग्राहकों से लें, आर्डर फार्म के साथ मनी आर्डर द्वारा मंडल को भेज दें। मनीआर्डर का खर्च मंडल देगा। बग़ैर रुपया **आये हुए आर्डर की कार्रवाई नहीं की जायगी।**

(२) एजराटों का कमीशन हर महीने हिसाब करके उन्हें भेज दिया जायगा।

प्रोत्साहन

(प्रथमाङ्क पर सम्मतियाँ)

बाबूराम सक्सेना एम० ए० (अध्यापक, प्रयाग-विश्वविद्यालय)

“जिन आदर्शों को ‘त्यागभूमि’ कार्य में परिणत करने आशाजनक प्रयत्न कर रही है, उन्हीं से इस दुःखी देश उद्धार हो सकता है। × × × हिंद-साहित्य सुरुचि-प्रतिपादक विषय उपस्थित करने का बहुत-सा श्रेय पत्रिका को है।”

ध्यापक बदरीनाथ भट्ट बी० ए०, लखनऊ

‘त्यागभूमि’ का आश्विन का अङ्क मिला। देखकर बड़ी न्नता हुई। हिंसा-मूलक प्रतियोगिता के दलदल में न सकर यह पत्रिका अपने ढँग पर ऐसी अच्छी तरह चली रही है, यह सभी सच्चे हिंदी-सेवकों के लिए प्रसन्नता बात है।”

सत्यव्रत सिद्धांतालंकार, मसूरी

“आश्विन मास की ‘त्यागभूमि’ मिली। आप जैसा साहित्य इस पत्रिका द्वारा उत्पन्न कर रहे हैं, उसकी दी-जगत् में अत्यधिक आवश्यकता है। पिछले कुछ वर्षों टाइटिल पेज के तिरंगे चित्रों, गन्दी तस्वीरों और अश्लील ज्ञापनों की, हिंदी-संसार में बाढ़-सी आ गई थी। मैं ता था, यह सेवा है या संहार? ऐसे ही समय आपकी का ने जन्म लिया है। इसमें कुरुचि ढूँढ़ने को भी नहीं ती—पहले पन्ने से लेकर अन्तिम पन्ने तक सुरुचि ही चि दिखाई दे रही हैं। मैं तो यह चाहता हूँ, जिस र चटक-मटक के अनुकरण में सैकड़ों पत्र-पत्रिकायें -साहित्य की आत्मा को तड़पा रही हैं, उसी प्रकार भूमि’ के अनुकरण में पत्र-पत्रिकायें हिंदी-साहित्य में भर जायँ कि सर्व-साधारण की रुचि को ही बदल । जिन आदर्शों को लेकर आपकी पत्रिका चल रही है न हैं, परन्तु ऊँचे हैं और चूँकि ऊँचे हैं, इसलिए उनके होते हुए भी आपका सफ़ल होना निश्चित है। इस के लिए मेरी बधाई स्वीकार कीजिए।”

सियारामशरण गुप्त, चिरगाँव (झाँसी)

गभूमि’ हिंदी के लिए गौरव की चीज़ है। उसकी हृदय को बहुत ऊँचा उठा ले जाने वाली है। यदि यह पत्रिका प्रकाशित न होती, तो हिंदी-जगत् का वह स्थान रिक्त ही रहता जिस पर यह अधिष्ठित है। हिन्दी-भाषा-भाषी इसका आदर करके अपने को ही आदरणीय बनावेंगे।”

प्रिंसपल बालकृष्ण एम० ए०, पी-एच० डी०, कोल्हापुर

“I am glad to receive a copy of the ‘त्यागभूमि’ and am glad to see that it is a promising monthly with a very good get-up, interesting illustrations and readable articles.”

श्री बालकृष्ण शर्मा ‘नवीन’, स० सम्पादक ‘प्रताप’

“द्वितीय वर्ष का प्रथमांक बहुत ही सुन्दर रहा।”

श्री मोहनलाल महतो ‘वियोगी’, गया

“आश्विन का अंक मिला। बड़ा सुन्दर है। श्रीमती महादेवी वर्मा की कविता और तुर्की साहित्य लेख मुझे ख़ूब पसन्द आये।”

श्री शुकदेव प्रसाद तिवारी ‘वीरात्मा’, स० संपादक ‘कर्मवीर’

“नया अंक मिल गया। सामग्री का चयन बहुत सुन्दर हुआ है।”

श्री प्रभुशंकर महता बी० ए०, एल०एल-बी, नायब सूबा, भिण्ड (ग्वालियर)

“ ‘त्यागभूमि’ को मैं बड़े चाव से पढ़ता हूँ। मेरे मुसीबत के दिनों में इसने मुझे बड़ी भारी स्फूर्ति प्रदान की है। मेरी समझ में इससे बढ़िया सात्विक भावों से भरी हुई दूसरी पत्रिका हिंदी-संसार में तो नहीं है।”

श्री गोपाल दामोदर तामसकर एम० ए०

“जब से ‘त्यागभूमि’ का प्रकाशन होने लगा है, तब से मैं इस पत्रिका को बराबर पढ़ता रहा हूँ। जैसा सब ने ही एक स्वर से स्वीकार किया है, इस पत्रिका में कुछ नवीनता, कुछ विशेषता, कुछ मौलिकता है और यह अपने ढंग की हिन्दी में एक ही पत्रिका है। चौदह-पन्द्रह साल पहले जब साहित्य सेवा के विचार मेरे मन में उठा करते

थे, तब मैं यह सोचा करता था कि जो कुछ लिखा जाय और जो कुछ छापा जाय वह लोक-हित की दृष्टि से ही हो, उसमें यथेष्ट शिक्षा भरी रहे । हिन्दी की पत्रिकाओं में मनोरंजन की ही सामग्री अधिक देखकर मुझे दुःख होता था। मेरे प्रिय मित्र श्री० हरिभाऊजी के सम्पादकत्व में छपी हुई 'त्यागभूमि' देखकर मुझे अत्यन्त हर्ष हुआ । राष्ट्रीय भावनाओं और आकांक्षाओं की परिपोषक पत्रिकायें हिंदी में कम हैं । एक सम्पादक से मैंने जब इस विषय पर विवाद किया तो उन्होंने कहा कि लोग पत्र-पत्रिकायें मनोरंजन के लिए पढ़ा करते हैं, ज्ञानोपार्जन के लिए नहीं, इसलिए मनोरंजन की सामग्री ही हमें विशेष छापनी पड़ती है । इस पर मुझे चुप हो जाना पड़ा और इस सम्बन्ध के अपने विचारों को दबा देना पड़ा । ऐसी अवस्था में अपनी कल्पना का मूर्तिमान् रूप देखकर किसे हर्ष न होगा? 'त्यागभूमि' में ऐसा कोई लेख नहीं जो लोगों को कुछ-न-कुछ शिक्षा न देता हो । विचार सदैव शुद्ध, ऊँचे, नपे-तुले और राष्ट्र-हित-पोषक होते हैं । मैं तो इससे भी ऊँचे दर्जे की पत्रिका देखना चाहूँगा पर जब यह ख्याल आता है कि 'त्यागभूमि' के अब तक तीन हज़ार ग्राहक भी न बने तो ऊँचे दर्जे की पत्रिका को पढ़ने वाले कहाँ से दिखेंगे, तब यही कहना पड़ता है कि हिंदी की पत्रिकाओं का वर्तमान आदर्श 'त्यागभूमि' से ऊँचा बनाने में कोई लाभ नहीं । गरिष्ठ भोजन देना तो सरल है, पर उसका स्वीकार करने वाले और पचानेवाले भी तो चाहिएँ! बड़े ही खेद की बात है कि जिस भारतवर्ष में पन्द्रह करोड़ लोग हिन्दी बोलते या समझते हों, वहाँ दशा यह है कि अच्छी पत्रिका को तीन-चार हज़ार ग्राहक नहीं मिलते और अच्छी पुस्तक की एक हज़ार प्रतियों के बिकने में कई वर्ष लग जाते हैं । इसके लिए हमारी ग़रीबी तो कुछ अंश में ज़िम्मेदार है ही, पर कुछ अंश में विद्या-प्रेम का अभाव भी ज़िम्मेदार है । मेरे अनुरोध से कुछ होना है नहीं, पर मैं यह कहे बिना नहीं रह सकता कि जिस किसी में देश-सेवा की भावना थोड़ी भी विद्यमान हो उसे 'त्यागभूमि' का पठन और मनन अवश्य करना चाहिए । लोगों को यह स्मरण रखना चाहिए कि कार्य का पूर्व स्वरूप विचार ही होता है, शरीर के के समान उसे भी पौष्टिक भोजन की आवश्यकता है, और मनोरंजक चाय-काफ़ी से शरीर का पोषण नहीं हो ज्ञान-शरीर के पोषण के लिए ज्ञान-दुग्ध ही पीना हो मैं सब से अनुरोध करता हूँ कि कृपया मेरे कथन पर वि करने का कष्ट अवश्य उठावें और यदि मेरा कथन ठीक तो 'त्यागभूमि' के ग्राहक बढ़ाने का प्रयत्न सब करें । जिस दिन यह सुनूँगा कि इस पत्रिका के हज़ार ग्राहक हो गये उस दिन मैं यह समझूँगा कि हि भाषियों में राष्ट्रीय भाव और ज्ञान-प्रेम विद्यमान है। सस्ती और इससे अधिक राष्ट्रीय भाव-परिपोषक प हिन्दी में अन्य है ही नहीं । ऐसी पत्रिका की ग्राहक-सं से हिन्दी-प्रेमियों की मनःस्थिति मालूम होती मेरी दृष्टि से इस पत्रिका में एक और बात भली देख है । इसी पत्रिका में छपे अपने एक लेख में मैंने कल की पत्र-पत्रिकाओं में छपने वाले चित्रों पर आक्षेप किया था । हर्ष की बात है कि श्री० हरिभाऊ अपनी पत्रिका को इस आक्षेप से बचाने का प्रयत्न किया है । यह सब जानते ही हैं कि इस पत्रिका में के छोड़कर अन्य किसी के विज्ञापन नहीं छपते । उचित नहीं समझता । यदि कोई संपादक यह समझ कि विज्ञापनों से सदा बुराई होती है तो यह उसकी है । जिस प्रकार कारख़ानेदार और वस्तु के उपयोग वाले लोगों के बीच दूकानदारों की एक बिचली कड़ी श्यक होती है, उसी प्रकार आज के संसार में पत्र-पत्रि में विज्ञापन छापना आवश्यक है। गन्दे विज्ञापन अवश्य न छापे जायँ । कुछ विज्ञापनों से लोगों को धोखा हो पर यह तो जगत का नियम ही है कि "सर्वारम्भाः धूमेनाग्निरिवावृताः ।" भोजन से भी अनेक विकार हो इसलिए कोई भोजन करना नहीं छोड़ देता । इसलि समझ कर जो सम्पादक या प्रकाशक अपनी पत्रि विज्ञापन छापते हैं, वे दोष के भागी नहीं हैं । जो बाज़ी से बचना चाहते हैं वे काफ़ी पूछताछ कर लें यदि धोखा खाया तो जिस पत्रिका में वह विज्ञापन उसी में उसकी पोल भी खोलें ताकि अन्य कोई पु न खाय । इस रीति से झूठे विज्ञापन छपना बन्द हो जायगा । आशा है कि 'त्यागभूमि' के मेरे कथन पर विचार करेंगे ।

विषय-सूची

पृष्ठ

प्यार (कविता)—[श्री जयशंकर 'प्रसाद' ... १४५
रावी से कुमारी तक (२)—[लाला लाजपतराय ... १४६
इतिहास में सत्याग्रह—[श्री कृष्णदास ... १४८
आवेदन (कविता) श्री गोपालशरण सिंह ... १५१
आर्यभवन—[श्री सी० एफ़० एण्डरूज़ ... १५२
बृहत्तर भारत (२)—[डा० बिजनराज चटर्जी, पी०-एच० डी०, डी० लिट् ... १५६
सुकवि और कुकवि (कविता)—[श्री बदरीनाथ भट्ट, बी० ए० ... १५७
देश बनाम विश्व—[श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़, एम० ए०, एल० टी० ... १५८
लहरें चीर : विजया मना—[श्री माखनलाल चतुर्वेदी ... १६१
विस्मृता उर्म्मिला (प्रथम सर्ग)—[श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' ... १६२
देश में क्रान्ति क्यों होगी ?—[श्री सुरेन्द्र शर्मा ... १६६
पंखड़ियाँ—[श्री 'विजय' ... १६९
रूसी किसान और ज़मीन—[श्री जवाहरलाल नेहरू ... १७०
बेदख़ली (कहानी)—[श्री विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक ... १७४
आदर्श त्याग (कविता)—[श्री 'एक कवि-हृदय' ... १७८
औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व भारत के उद्योग-धन्धों एवं मज़दूरों की अवस्था—[श्री श्यामाचरण १७९
श्री काशी-विद्यापीठ—[श्री देवव्रत शास्त्री ... १८४
आधी दुनिया— ... १९५
  १. मातृ-बन्दना (कविता)—[श्री ब्रह्मदत्त मिश्र ... १९५
  २. शिक्षा-समस्या—[मुकुटबिहारी वर्मा ... १९५
  ३. स्त्री-शिक्षा—[श्री हीरालाल शास्त्री, बी० ए०; श्री त्र्यम्बक दामोदर पुस्तके, बी० ए० एल-एल० बी० (उज्जैन) ... १९८
  ४. चिता-भस्म (कहानी)—[श्री प्रफुल्लचंद्र ओझा 'मुक्त' ... २००
  ५. दुर्गा-पूजा : संघ-शक्ति—[श्री जीवानन्द शर्मा काव्यतीर्थ ... २०५
  ६. फ़ेनी गैरिज़न विलार्ड—[श्री 'एक भारतीय' ... २०७
  ७. स्त्रियों की क़लम से (धर्म का हृदय क्या है ?)—[श्री केसरबाई ... २०८
  ८. स्फुट प्रसंग—[स्त्रियों का आदर्श; स्त्रियों का राजनैतिक सम्मेलन; अफ़ग़ानिस्थान में सह-शिक्षा, मिश्र का तलाक-विधान... २०९

१९. उगता राष्ट्र— ... ...
५ ५ १. स्वाधीनता—[श्री पूर्णचन्द्रदास ... २११
२. शक्ति—[श्री टी० एल० वास्वानी ... २११
३. देश के लिए (कहानी)—[श्री भद्राजित 'भद्र' ... २१२
४. निराशा के पथ में—[श्री जोगेंद्रकृष्ण कौल ... २१६
५. उद्योगी हरि गोविन्द गोविल—[श्री रामलाल वाजपेयी, अमेरिका ... २१७
२०. साहित्य-संगीत-कला— ... ...
१. अनुरोध (कविता)—[श्री 'वीरात्मा' ... २२१
२. बाट (कविता)—[श्री रामनारायण विद्यार्थी ... २२१
३. जगत् के साहित्य (३) स्पेनी साहित्य—[श्री रामनाथलाल 'सुमन' ... २२२
४. साहित्य की दुनिया में—[चीन के समाचार-पत्र; कला का पुरस्कार; प्रगतिशील हिन्दी-साहित्य ... २३१
५. कणिकायें—[श्री 'विजय' ... २३४
२१. युग-निर्माण— ... ...
१. टाल्सटाय और तरुण भारत—[श्री ए० एल० वास्वानी ... २३४
२२. ज्ञानाञ्जन ... ...
१. गीता की अपूर्वता—[श्री कृष्णजी रामचन्द्र कुलकर्णी, एम० ए० ... २३८
२३. नीर-क्षीर-विवेक—[मारवाड़ राज्य का इतिहास; बेञ्जमिन फ्रैंकलिन का जीवन-चरित्र; साहित्य-सत्कार
२४. विश्व-दर्शन—[संसार का आशामय भविष्य; फ्रांस और इंग्लैण्ड का समझौता; चीन का नया शासन-विधान; अफ़ग़ानिस्तान की प्रगति ...
२५. देश-दर्शन—[प्रान्तीय सम्मेलनों की धूम; स्वतन्त्र-भारत-संघ; बम्बई की हड़ताल समाप्त; साइमन-कमीशन
२६. जनता का स्वराज्य— ... ...
१. खादी-गीत—[श्री सोहनलाल द्विवेदी, बी० ए० ... २५२
२. टिप्पणियाँ—राजस्थान में वस्त्र-स्वावलम्बन का प्रयोग (ह० उ०); राजस्थान में खादी की प्रगति; खादी सम्बन्धी कुछ सवाल-जवाब; सार्वजनिक संस्थाओं में खादी; रजवाड़ों में खादी; विदेशी कमीशन और वस्त्र-बहिष्कार (त्रिवेदी) २५२
२७. स्व-गत—(ह० उ०) ... ...
२८. सम्पादकीय—हिंसा और अहिंसा की समस्या; सेवा वा असेवा ?; अहिंसा वीरों का धर्म है; साइमन-कमीशन और हम; क्रान्ति कैसे होगी ?; भूगोल की आर्थिक दुरवस्था ...
२९. चित्र-दर्शन— ... ...

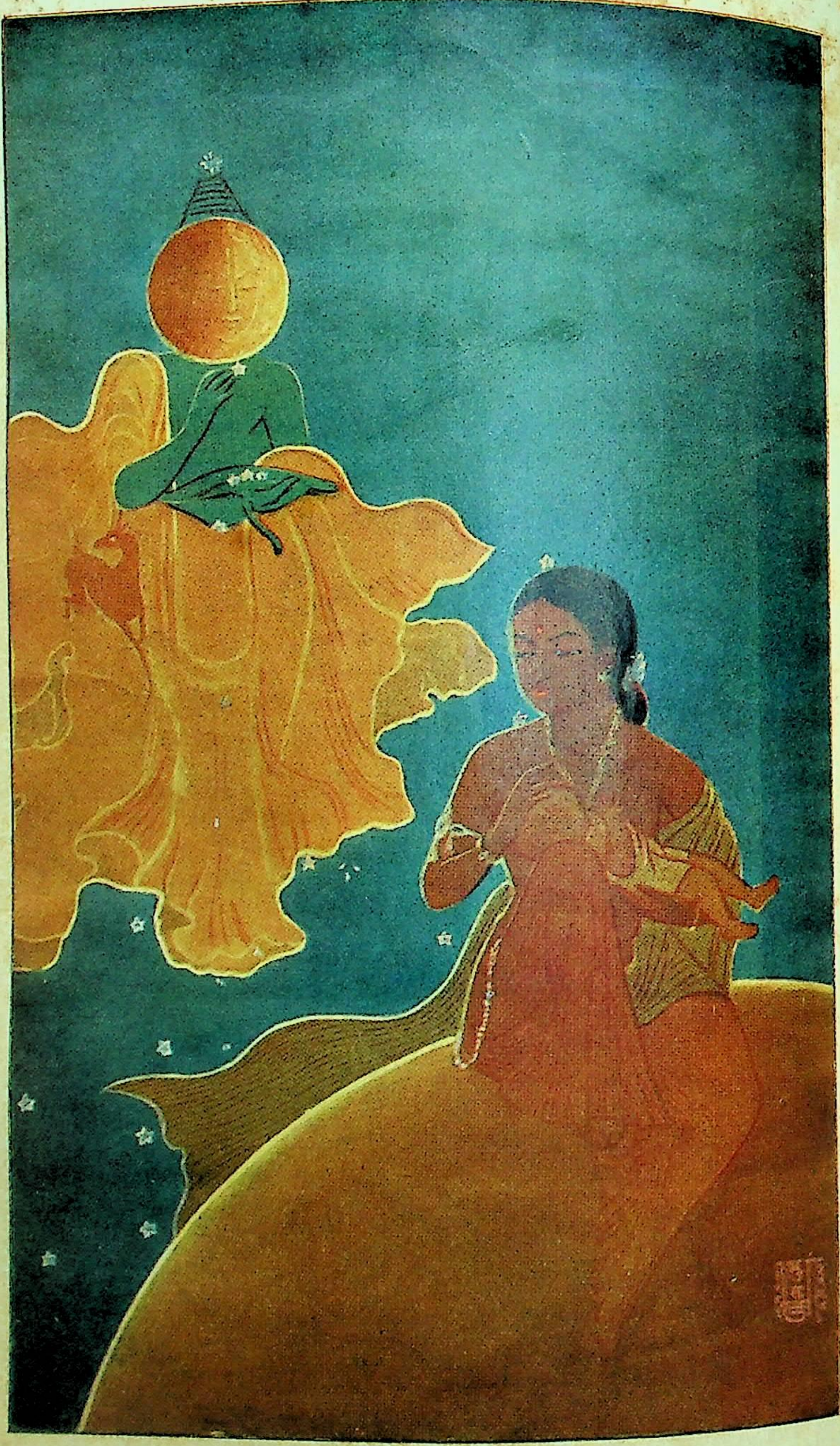

त्यागभूमि * * * * रजनी

MURARI ART PRESS, DELHI.

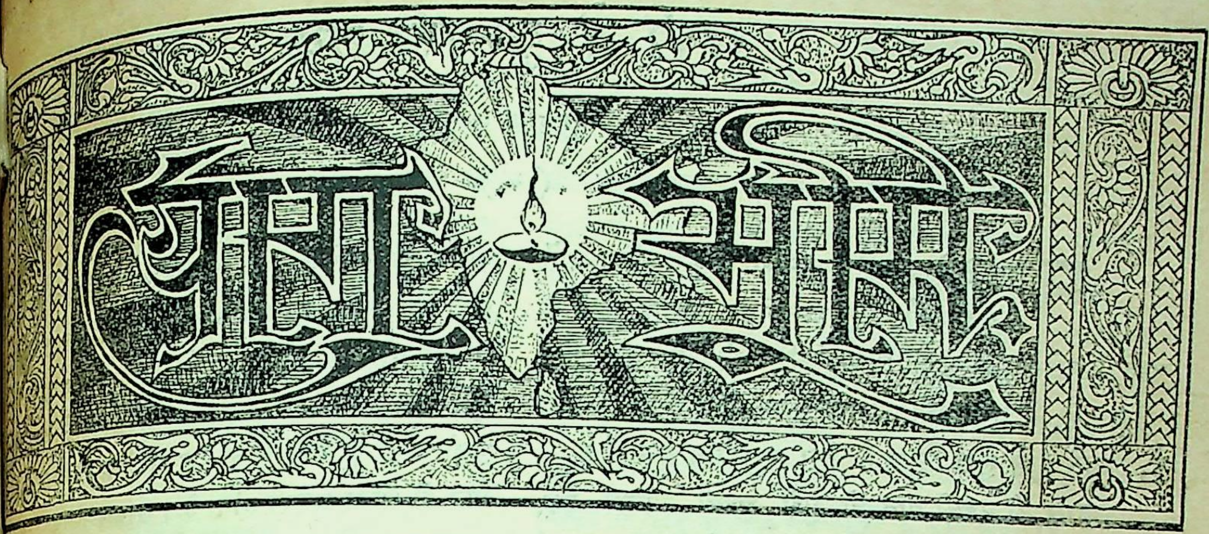

(जीवन, जागृति, बल और बलिदान की पत्रिका)

आत्म-समर्पण होत जहँ, जहँ विशुभ्र बलिदान ।
मर मिटवे की साध जहँ, तहँ हैं श्रीभगवान ॥

सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर।
कार्तिक संवत् १९८५

अंश २
पूर्ण अंश १४

प्यार

सम्हाले कोई कैसे प्यार ?
मचल मचल उठता है चंचल,
भर लाता है आंखों में जल,
बिछ्लन कर चलता है उसपर—
लिये व्यथा का भार ।

सिसिक-सिसिक उठता है मन में—
किस सुहाग के अपनेपन में ?
'छुई-मुई'-सा होता, हँसता—
कितना है सुकुमार !

जयशंकर 'प्रसाद'

रावी से कुमारी तक

['त्यागभूमि' के लिए]

(२)

मद्रास के हिन्दू-धर्म के सम्बन्ध में कुछ अप्रिय बातें कहने और उन हालतों का बयान करने के पहले जिन्होंने मुझे दुःखी किया और मेरे दिल को चोट पहुँचाई है, मैं उन बातों का बयान कर देना ठीक समझता हूँ, जिनसे मुझे सुख मिला है—मेरा मनोरंजन हुआ है।

मद्रास की पहली बात जो मुझे अच्छी मालूम हुई, वहाँ के छोटे-बड़े, ऊँच-नीच सब तरह के लोगों की सफ़ाई है। पंजाब से—जो इस संबन्ध में बड़ा गुनहगार है—रवाना होकर जब मैं मद्रास और मलाबार पहुँचा तो वहाँ के जीवन में सफ़ाई की प्रधानता ने मुझ पर काफ़ी असर डाला। मद्रास ख़ासकर एक हिन्दू-प्रांत है और बुद्धकाल के बाद के हिन्दू-आदर्शों को प्रायः पूरी तरह ज़िंदा रखने में अकेला वही कामयाब हुआ है। आदमियों की अपनी जिस्मानी पवित्रता और घर-गृहस्थी की सफ़ाई की परम्परा जिस हद तक मद्रास में आज भी क़ायम है, शायद देशभर में वैसी और कहीं नहीं है। इसमें शक नहीं कि आबोहवा ने भी इस प्रान्त की रहन-सहन पर अपना असर डाला है, फिर भी अकेली आबोहवा लोगों में सफ़ाई की इतनी ऊँची भावना पैदा नहीं कर सकती जितने ऊँचे और सुन्दर रूप में आज वह वहाँ मौजूद है।

पोशाक की सादगी

मद्रासियों की पोशाक में कमाल दर्जे की सादगी होती है। बस, एक धोती और एक कुर्ता किसी भी सभ्य आदमी की पोशाक के लिए काफ़ी हैं। कुछ लोग कोट पहनते हैं। लेकिन वहाँ के जीवन में उसे आम-चलन नहीं कह सकते; वह अपवाद-सा है। कई ऐसे लोग भी वहाँ मिलते हैं, जो कुर्ते की ज़रूरत तक महसूस नहीं करते। अकेली धोती ही सब काम के लिए काफ़ी होती है। यह धोती बहुत ज्यादा साफ़ होती है और उत्तरी भारत के ब्राह्मण रसोइयों, श्रीमन्त बनियों या खत्रियों की धोती से कहीं साफ़ और रहती है। लोग हर रोज़ अपनी धोतियों को धोते और कर पहनते हैं। मद्रास हाईकोर्ट के एक ब्राह्मण ने मुझसे कहा था कि अगर कोई आदमी सवेरे बिना धुली धोती छू लेता है तो वह अपवित्र हो जाती है और फिर से धोना ज़रूरी होता है। साधारण मद्रासी अ-ब्राह्मण, पतित या अ-पतित सिर पर कुछ नहीं पहनते एक अजीब बात है कि ऐसे प्रान्त में जहाँ ८५ के में सूरज की गर्मी हद दर्जे की होती है, लोग आम नंगे सर रहें। फिर भी मद्रास प्रान्त की वस्तु-स्थिति ऐसी ही है। मेरे ख़याल में भारत के सब प्रान्तों में मद्रास प्रान्त ही ऐसा है जहाँ लोग नाम-मात्र के अंग्रेज़ी रंग ढंग में रँगे हैं। मुझे यहाँ बहुत थोड़े दीख पड़े जो पायजामा या पतलून पहनते लगाते हों।

मेरा यह विश्वास है कि मध्यम श्रेणी के मद्रासी और संभवतः कई उच्च और धनी जाति के सियों का जीवन बहुत सादा है। फ़र्श को हर तरह के वट के सामान (फर्नीचर) से शून्य रखना और पर उसे बराबर धोते रहना वहाँ के जीवन का एक है। उनके पहनने के कपड़े इने-गिने और भोजन सादा होता है। मैंने बड़े-बड़े धनी मद्रासियों को पत्तों पर भोजन करते और उन्हीं पर मिहमानों को करते देखा है। मद्रासी घरों में ताँबा-पीतल या बहुत थोड़े बरतन मिलते हैं। थालियों या रकाबियों कहीं पता ही नहीं होता हाँ, कुछ गिलास और पाये जाते हैं। इससे नौकरों और घर की औरतों कुछ मेहनत बच जाती है। उनका भोजन तो बिलकुल ही पसन्द नहीं। भात और तरह-तरह की उनका ख़ास भोजन है और फिर ये भारत भर

ही ढंग से बनाये जाते हैं। उनका खाने का मुझे क्षमा किया जाय, इतना भद्दा है कि मैं उससे करता हूँ। मेरे ख़याल से मद्रास के समाज-विधा- ने पंक्ति-भोज की समस्या पर तो कभी विचार तक किया। फिर भी मानना चाहिए कि देश-काल के अनु- लोगों के खान-पान के तरीक़े जुदा-जुदा पाये जाते हैं। लोग चारपाई या खटिया बहुत कम काम में लाते वह तो ख़ासकर चटाइयों का देश है। चारपाई, खटिया बढ़िया बिछौने तो अभी बिलकुल ताज़े ज़माने की उपज जान पड़ते हैं।

बेहद साफ़

मद्रासी घरों और मद्रासी स्त्री-पुरुषों की सर्व-सामान्य स्वच्छता एक ऐसी चीज़ है जिसकी तारीफ़ किये मैं रह नहीं सकता। साधारणतया सब पंजाबी और कर विलायत से लौटे हुए पंजाबी, मद्रासी स्वच्छता की ठीक कल्पना नहीं कर सकते। सैकड़ों सूट्स या वस्त्रों सैकड़ों नौकरों के होते भी विलायत से लौटे हुए सच्चे अर्थ में कभी साफ़-स्वच्छ नहीं रह सकते। एक मद्रासी की जिस्मानी सफ़ाई किसी भी यूरोपियन बढ़कर ठहरती है। कोई भी आदमी जो ज़रूरत से कपड़ों से लदा रहता और ख़ूब सजे-सजाये घरों में करता है, कभी साफ़ नहीं रह सकता। मद्रासी न कपड़ों से लदे ही रहते हैं और न भारी फर्नीचर से कमरों में रहते हैं। यही सबब है कि वे सच्चे अर्थ में रह सकते और रहते हैं। स्वच्छता की दृष्टि से विचारते हर-तरह मद्रासियों की तुलना जापानियों से कर हूँ। शायद वह दुनिया भर में सबसे अधिक साफ़ वाले लोग हैं। उनका रहन-सहन भी बहुत ज्यादा है। वे न तो क़ीमती और भारी कपड़े ही पहनते हैं ख़ूब सजाये घरों में रहते ही हैं।

अछूत भी ऐसे हों

सबसे अधिक आश्चर्य तो मुझे अछूत कहे जाने वालों स्वच्छ जीवन देखकर हुआ। ब्रिटिश मलाबार के पालघाट नगर में मैंने दो दिन बिताये। दोनों दिन का सवेरे का समय मैंने छोटे-बड़े हर दर्जे के अछूतों की झोपड़ियाँ देखने में लगाया। पहले मैं एक चेरुमा गाँव में गया और फिर वाड़ुगा गाँव में। ये दोनों जातियाँ अछूत कही जाती हैं और पुराने ख़यालों के मुताबिक आम सड़कों पर चलने का इन्हें अधिकार नहीं होता; उच्च हिन्दू कहलाने वालों से बहुत दूर रहकर इन्हें चलना पड़ता है। मैं इनके झोपड़ों के भीतर गया और वहाँ की सफ़ाई देखकर दंग रह गया। मुझे यह भी स्पष्ट कर देना चाहिए कि मेरा वहाँ जाना एकदम इत्तफ़ाक़िया (आकस्मिक) था। दूसरे दिन सवेरे मैं एरझवों और नयादियों के घरों तक गया। एरझव शूद्रों में सबसे ऊँची जाति के माने जाते हैं, इनमें शिक्षित पुरुषों की संख्या भी बहुत ज्यादा है। मुझे श्री पी० एस० शंकरम् से मालूम हुआ था कि इस जाति में पढ़े-लिखों की तादाद ५० फी सैकड़ा तक पहुँच चुकी है। मैंने देखा कि इनके पक्के सुडौल मकान भीतर से बहुत ही साफ़ थे और उनमें 'फर्नीचर' जैसी कोई चीज़ नहीं थी। मैं विश्वास-पूर्वक कह सकता हूँ कि उनकी फ़र्श पर पड़ी हुई आलपीन को कोई भी सहज ही ढूँढ़ सकता है। मुझे उनके स्त्री-बच्चों की पोशाक चेरुमा और वाड़ुगा लोगों के स्त्री-बच्चों से कुछ अच्छी जान पड़ी, यद्यपि वह सादी और तादाद में कम थी।

बड़े खेद की बात है कि यह लोग अछूत या अपवित्र समझे जाते हैं और इन्हें आम सड़कों पर चलने-फिरने और मन्दिरों में जाने का हक़ नहीं है। इनकी शिक्षा और आर्थिक योग्यता को देखते हुए इन जैसे स्वच्छ और साफ़ रहने वाले लोग दुनिया में शायद ही कहीं मिलें। फिर भी धर्म और समाज का अंधानुशासन इतना कड़ा हो चुका है कि यह लोग न केवल अछूत ही समझे जाते हैं बल्कि अगम्य और अस्पृश्य भी। इनकी छाया तक से लोग परहेज़ करते और उसके पड़ जाने पर नहाते हैं। मेरे साथी का कहना था कि अब यह दंभ मिट-सा रहा है। क्या सचमुच वह मिट रहा है? जिस दिन मैं पालघाट की एक सार्वजनिक सभा में भाषण कर रहा था, मैंने देखा कि पास ही चेरुमा लोग कोई उत्सव मना रहे थे। वे एक ख़ास हद तक आ सकते थे, उससे आगे नहीं। जिस रास्ते से वह आये थे

वह एक कच्ची सड़क-सी थी। कुछ दूर उस पार आम सड़कें थीं, जिस पर शायद डरके सबब, वे नहीं जाते थे।

तर्क-शून्यता की सीमा

इसी नगर में अन्त्यजों की एक दूसरी जाति रहती है जो झाडू देने और मैला उठाने का काम करती है। इस जाति के लोग सब सड़कों पर आ-जा सकते और पवित्र-से-पवित्र ब्राह्मण के घर का काम कर सकते हैं। समाज की अन्धी रूढ़ि में तर्क का कोई स्थान नहीं। सचमुच तर्क-हीनता की हद हो जाती है जब एक शिक्षित, स्वच्छ और साफ़ पोशाक वाला 'थीया' अस्पृश्य समझा जाता और एक 'टूट' या भंगी रास्ते पर आने-जाने के तमाम हक़ों का हक़दार माना जाता है।

तुलनात्मक दृष्टि से देखते हुए यह कहना पड़ता है कि मद्रास में शिक्षा एक ऊँची हद तक पहुँच गई है। सा रणतया छोटे-छोटे क़स्बों और नगरों में अंग्रेज़ी बोलने उसमें किये गये भाषणों को समझने वाले लोगों की सं अच्छी तादाद में है। मद्रास की स्त्रियों में शिक्षा का देश भर में सबसे अधिक है। मद्रासी, पैदाइशी वक्ता हैं। वे अंग्रेज़ी और देशी भाषा बड़ी तेज़ी के साथ बोल मलायलम या एरनाक्यूलम भाषाओं में व्याख्यान देने की तादाद तो बहुत बड़ी और ग़ैर-मामूली है।

इस प्रान्त में राजनैतिक जागृति भी बहुत ऊँचाई पहुँच गई है। लेकिन आर्थिक असहायता और सम मत-भेद ने इसे किसी काम का नहीं रक्खा है—लगभग बना दिया है।

लाजपत राय

इतिहास में सत्याग्रह

['त्यागभूमि' के लिए]

(१)

समष्टि रूप से विचार करते हुए यह कहा जा सकता है कि गांधीजी का व्यापक व्यक्तित्व ही वह साधन था जिसके कारण हमारे देश के राजनैतिक क्षेत्र में और उसके धर्म, समाज, राजनीति, अर्थशास्त्र, शिक्षा आदि समस्त अंगोपांगों में भारतीय आदर्शों और सिद्धांतों को लेकर सुधार-युग का पदार्पण हुआ है। लेकिन अगर हम थोड़े गंभीर हो जायँ और भारत की प्रगति में गाँधीजी की ठोस, विशिष्ट तथा मौलिक सेवाओं और उनके विविध योगदान के सच्चे आधार को प्रतिदिन की घटनाओं की उलझन से बाहर निकालकर देखने की चेष्टा करें, तो इस सम्बन्ध में दो बातें मुख्य जँचतीं और हमारे ध्यान को विशेष रूप से आकर्षित करती हैं। पहली बात, चर्खा और खादी का सर्वान्तःकरण-पूर्वक समर्थन है और दूसरी बात है गाँधीजी का वह प्रयोग, जिसमें उन्होंने अहिंसात्मक सत्याग्रह के शस्त्र को—जो केवल राजनीति की दृष्टि से निर्बल लोगों का शस्त्र है—बलशाली शासकों के विरुद्ध प्रयुक्त कि और यद्यपि इन दोनों बातों का कार्य-क्षेत्र इस सम भारत की सीमाओं तक ही परिमित है, तथापि यह है कि देश में इनकी सफलता, सारे संसार की रा और अर्थनीति में आघात-प्रतिघातों की एक दीर्घकाल लहर पैदा करके ही रहेगी। दूसरे शब्दों में यों जा सकता है कि अगर भारतवर्ष अपने सत्याग्रह प्रयोग में सफल हुआ, और पाश्चात्य राष्ट्रों को—जो दिन फौजी साधनों से लैस रहते और युद्ध की विविध का निरन्तर अनुभव करते रहते हैं—उसकी मौलिक का परिदर्शन करा सका तो संभव है कि वे भी इ को ग्रहण करना उचित समझें, और राष्ट्रीय तथा राष्ट्रीय झगड़ों का एक निष्पक्ष न्यायकर्त्ता की भाँति करने की उसकी नैमित्तिक शक्ति को जाँचने लगें।

इसमें सन्देह नहीं कि चर्खा और खादी का मुख्यतः देश की उस आर्थिक विपत्ति से है—जो

ल जन-समूह में चारों ओर बुरी तरह फैली हुई है। के ५ लाख से भी अधिक गाँवों में यह सारी विपद्ग्रस्त ता बसी हुई है। और भारतवर्ष की वर्तमान आर्थिक स्थिति में चर्ख़ा और खादी ही वे उपाय हैं जो देश की आपत्तियों की एक रामबाण दवा बन सकते हैं। पाश्चात्य दुनिया के पूँजीपतियों का इस समय विचित्र है; आर्थिक सत्ता के पूँजीपतियों के हाथों में चली जाने कारण जहाँ एक ओर मज़दूरों की स्वार्थ-हानि हो रही है चूसे जा रहे हैं, वहाँ दूसरी ओर उत्पत्ति का प्रमाण वश्यकता से अधिक हो रहा है। परिणाम-स्वरूप आर्थिक-ाव-क्षेत्र को विस्तृत बनाने के प्रयत्नों में बाढ़ आने लगी जिसका एकमात्र उद्देश्य है, संसार की कमज़ोर जातियों सर्वस्व स्वार्थ की हानि, उनका निर्दय-मर्दन !

इस आर्थिक लूट का परिणाम विश्वव्यापी भूखमरी है। ोगी राष्ट्र-विश्व के नये-नये निर्जन प्रदेशों को खोज निका-े और नये बाज़ारों पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने के ए एक दूसरे से कटुतापूर्ण स्पर्द्धा करने लगे हैं; युद्ध और सम्बन्धी अफ़वाहें गरम होने लगती हैं। यह और इसी ह की दूसरी अनेक बातों के कारण विश्व-जीवन के साथ राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय जीवन की समस्यायें अत्यधिक , जटिल और बहुरंगी होती जा रही हैं—हो गई हैं। सम्बन्ध में सब से अधिक दुःख की बात यह है कि तरह की परिस्थिति के कारण पाश्चात्य जगत् का जीवन न्त अ-सुरक्षित, समता-विहीन और चंचल हो गया है। पता नहीं कि इसी कारण किस दिन विश्व भर में प्रलय के उठकर बरसने लग जायँ। यह ठीक है कि कितने ही य पाश्चात्य सज्जन इस ख़तरे की आशंका से परिचित और वहाँ उसके प्रतीकारार्थ कई उपायों का प्रस्ताव जा रहा है, उन पर वाद विवाद होता रहता है और क संभव होता है परिस्थिति की अनुकूलता के अनुसार कार्य-रूप में परिणत भी किया जाता है। फिर भी क्षितिज पर ख़तरे के बादल अधिकाधिक घिर रहे हैं, की डोर दिन-दिन कमज़ोर हो रही है, अतः किसी आश्चर्य न होगा, अगर किसी दिन घटनाक्रम और राष्ट्रों की पारस्परिक द्वेष-बुद्धि एवं स्वार्थ-हानि के संघर्ष से पूँजीपतियों और साम्राज्यवादियों के आर्थिक संघटन का सारा प्रासाद, बात की बात में, भयंकर चीत्कार और भीषण अर्राहट के साथ ज़मीन पर बिछ जाय। यह स्पष्ट है कि इस समय पश्चिम को अपने आर्थिक सम्बन्धों, शक्तियों और स्रोतों को एक बार फिर से संघटित करने की ज़रूरत है। लेकिन अगर भारतवर्ष पश्चिमी औद्योगिकता के कठोर बन्धनों से मुक्त हो जाय, उसके बन्दरगाह पश्चिमी आधिपत्य से त्राण पा जायँ, तो अपनी परम्परागत प्रवृत्तियों के कारण वह लोगों के जीवन को स्थायी और व्यवस्थित बनाने में अपनी प्रभुता को सफलता-पूर्वक सिद्ध कर सकेगा—आज भी पथ-भ्रष्ट पाश्चात्य जगत् को वह एक सुन्दर-सा मार्ग बतला सकेगा। क्योंकि अगर किसी समय भारतवर्ष में चर्खे का प्रयोग सफल हुआ तो यही भारत उक्त जगत् को व्यावहारिक अर्थशास्त्र का पदार्थ-पाठ भी बड़ी सुगमता से सिखला सकेगा और लोग उस समय विवश होकर चर्खे को अपनायेंगे। ऐसी दशा में वर्तमान कट्टर-से-कट्टर अर्थशास्त्रियों का चर्ख़ा-आन्दोलन के विरुद्ध खड़ा होना, उसकी खिल्ली उड़ाना, एकदम निरर्थक सिद्ध हो जायगा। क्योंकि व्यापक दृष्टि से देखते हुए यह कहा जा सकता है कि जहाँ चर्खे का सन्देश यन्त्र-शक्ति को विकेन्द्रित-विलग करने का सन्देश है वहाँ खादी, औद्योगिक उत्पत्ति और वितरण (Distribution) के केन्द्रों को दूर-दूर फैलाने का सन्देश देती है। प्रस्तुत लेख में इस विषय पर अधिक विचार करने का मेरा संकल्प नहीं है।*

---

* जो लोग चर्खे की दूर-दूर तक फैलने वाली व्यापकता का अनुभव नहीं कर सकते वे उसे भूल सकते हैं, उसका तिरस्कार कर सकते हैं और उसे एकदम जंगली तथा रूढ़-यन्त्र की उपमा भी दे सकते हैं। पर इसमें सन्देह नहीं कि देश में चर्ख़ा प्रत्यक्ष उदाहरणों और अकाट्य तर्क के सहारे दिन-दिन उन्नति कर रहा है। श्री० रिचार्ड बी० ग्रेग की 'खद्दर का अर्थशास्त्र' (इस पुस्तक का हिन्दी-संस्करण सस्ता-मण्डल अजमेर से शीघ्र ही प्रकाशित होगा।) नामक पुस्तक—जो हाल ही अंग्रेज़ी में प्रकाशित हुई है—लोगों की कई बुद्धि-सम्मत शंकाओं का समाधान कर सकेगी। उसके

(२)

जिस ससैन्य युद्ध-पद्धति के कारण सारी दुनिया इस समय त्राहि-त्राहि पुकार रही है, महात्माजी का आदर्श सत्याग्रह उसी का स्थानापन्न विधान है। यह कहा जा सकता है कि यद्यपि इतिहास में इस बात का कहीं उल्लेख नहीं मिलता कि किसी शासन करने वाली सत्ता के हाथों से उसकी राजकीय शक्ति या राजनैतिक स्वतन्त्रता उन लोगों ने छीन ली हो जिन्होंने ऐसी सत्ता का विरोध केवल अहिंसात्मक या वैध-प्रथा द्वारा किया हो, तथापि अपने रूप में यह वैध-विरोध की प्रथा न तो एकदम नयी ही है और न ऐतिहासिक प्रमाणों से खाली ही। क्योंकि किसी समय रोमन साम्राज्य से लोहा लेते और झगड़ते समय, प्राचीन ख्रिष्ट-पंथियों को इसी नीति का सहारा लेना पड़ा था और अपने इसी अजेय विरोध में वे इतने सफल हुए कि जो ख्रिष्ट-संप्रदाय पहले संकुचित, अस्थिर एवं विचित्र सिद्धान्तों वाला था उसे उन्होंने उन्नत और प्रभावशाली बना डाला। जिस दिन से ईसाई धर्म ने सिंहासनासीन राज-सत्ता के विरुद्ध संघटित अहिंसात्मक विरोध की आवाज़ उठायी, उसी दिन से इतिहास-प्रसिद्ध रोमन साम्राज्य की भव्यता और उसकी सत्ता क्रमशः विस्मृति के गर्त्त में विलीन होने लगी और दूसरी तरफ़ ईसाई धर्म—फिर उसका वर्तमान आध्यात्मिक प्रभाव शासनारूढ़ सैनिक सत्ता के कारण चाहे जितना कम क्यों न हो गया हो—संसार की कितनी ही मुमुक्षु आत्माओं की शान्ति तथा उनके जीवन और प्रकाश का स्रोत बनता गया। भयंकर दण्ड-विधान, अत्याचार और निरंकुशता पर ईसाई-धर्म की यह शानदार विजय सदा के लिए इतिहास की एक अमर घटना बन कर रहेगी और चेतन की जड़ पर एव अदम्य किन्तु विनम्र इच्छाशक्ति की, संघटित उद्धतता, गर्व और बर्बरता पर की यह विजय इतिहास के पृष्ठों में चमकते हुए सुवर्णाक्षरों में लिखी रहेगी।

जाति-रूप में ईसाइयों के कष्ट का आरम्भ सम्राट् नीरो के रोम-साम्राज्य से होता है, उस समय के समसामयिक इतिहास लेखक टेसीटस की कई कृतियों में इन कष्टों का वर्णन अब भी सुरक्षित है। इन कष्टों की बहुल और भयंकरता उस ज़माने के ऐतिहासिक वर्णनों की प्रस घटना बन गई थी और इसी कारण नीरो का नाम भी इत बदनाम हो चुका था कि उसके जैसा क्रूरकर्मा व्यक्ति संसा के इतिहास में खोजे नहीं मिलता। टेसीटस के वर्णनों से पता चलता है कि उस ज़माने में ईसाइयों का जाति विशे के रूप में कोई समाजिक पद, महत्त्व या अधिकार नहीं था बहुधा जन-साधारण इन लोगों को हेय समझते और इनका तिरस्कार करते थे। लेकिन नीरो के अत्याचार का एक सुफ भी फला; वह इस तरह कि जहाँ उसके अत्याचार के का ईसाइयों के सत्य की—उनके ईमान की परीक्षा होती थी वहाँ उसके कारण उनके धर्म के प्रचार में वृद्धि भी होती उन दिनों प्रजा के सामने इन लोगों के उदाहरण प्रति आते थे और अपने धर्म के कारण सम्राट् की सरकार हाथों इन्हें जिन असह्य कष्टों का सामना करना पड़ता था ही कष्ट, प्रजा के हृदय में इनके प्रति सहृदयता और सहा भूति उपजाया करते तथा इस तरह लोगों के हृदय से इन प्रति तिरस्कार-भावना मिटती थी। ईसाइयों के कष्टों इस सुफल का वर्णन करते हुए टेसीटस कहता है—"इस शक नहीं कि ईसाइयों को कड़े-से-कड़े दण्ड मि थे, फिर भी प्रजा की घृणा तो दया में बदल चुकी और वह केवल इसलिए कि प्रजा समझने लगी थी कि ग़रीब दुखियों का बलिदान, कल्याण की भावना नहीं किन्तु एक ईर्ष्यालु अत्याचारी की निर्दयता का णाम है।" ❀

नीरो के राज्य-काल से आरम्भ हो कर ईसाइयों की राज्य-छलना अन्य सम्राटों के राज्य में भी क़ायम रही। इतना ही था कि किसी सम्राट् के ज़माने में उसकी और तरंग के अनुसार यह कष्ट कभी भीषणतर हो जा तो कभी सौम्य। इस तरह आख़िर वह ज़माना भी आ

लेखक ने इस विषय का गहरा वैज्ञानिक अध्ययन किया है और आधुनिक विज्ञान के तत्वों पर ही उन्होंने इस पुस्तक के विषय का विवेचन किया है। —लेखक

❀गिबन्स रोम—प्रकाशक—फ्रेडरीक टाम ऐन्ड क १८६४; खण्ड १. पृष्ठ ३६२.

सम्राट् डायोक्लिशन (Diocletian) के राज्य में, ईसा की तीसरी शताब्दि के उत्तरार्द्ध में, रोमन लोगों ने 'घोर अन्ध-विश्वास' के नाम से परिचित ख्रिष्ट-धर्म को समूल नष्ट करने का अन्तिम उद्योग किया था। एक शाही फ़रमान के द्वारा सम्राट् ने तमाम ईसाई गिरजाघरों और उनके पवित्र धर्म-ग्रन्थों को नष्ट कर डालने की घोषणा की। गृह-सभाओं द्वारा सामाजिक प्रार्थना के लिए एकत्र होना जुर्म क़रार दिया गया—जिसकी सज़ा मृत्यु ही हो सकती थी। ईसाई पूजा-घरों की तमाम सम्पत्ति ज़ब्त कर ली गईं। ईसाइयों को राजकीय अधिकारियों की जगह से हटा दिया गया। सम्मान और सत्ता की सारी जगहें उनसे छीन ली गईं। क़ानून की मर्यादा में इन लोगों की रक्षा का समावेश नहीं हो सकता था और कोई भी ईसाई-गुलाम मताधिकार का अधिकारी न था।

इस शाही फ़रमान की घोषणा और प्रसार का, जहाँ तक ईसाइयों से सम्बन्ध था, परिणाम बहुत ही भयंकर हुआ। मृत्युदण्ड और कैद, झुण्ड-के-झुण्ड लोगों का बेरहमी से भरा कत्लेआम आदि बातें उन दिनों की साधारण घटनायें बन गईं। छः साल जैसी लम्बी अवधि तक रोमन साम्राज्य में इस फ़रमान की आज्ञाओं का पालन होता रहा, जिसके परिणाम-स्वरूप ईसाई-संसार में भीषण हाहाकार और तहलका मच गया था, फिर भी लोगों की खीष्ट-भावना अदम्य ही बनी रही। इस बीच डायोक्लीशन ने राज्य की बागडोर (उपसम्राट्) सीज़र गैलीरियस के हाथों सौंप कर खुद अवसर प्राप्त किया। गैलीरियस को भी छः वर्षों की कठिन मेहनत, थकाने वाली चिन्ता, उद्विग्नता और रुग्णता के बाद विवश हो कर सन्धि का प्रस्ताव करना पड़ा। ईसाइयों की इस विजय के बाद शीघ्र ही सम्राट् कान्सटनटाइन ने खीष्ट-धर्म की दीक्षा ली और ईसाई-धर्म को रोम का राज्य-धर्म उद्घोषित किया।

रोम-साम्राज्य में राज-धर्म के सिंहासन पर ईसाई-धर्म का आरोहण, इस धर्म के लिए, एक दृष्टि से, शाश्वतमंगल और कल्याण का कारण न हो सका। क्योंकि बाद में ईसाई-धर्म अपनी पवित्रता, विनम्रता, प्रेम, बुराई का विरोध आदि भावनाओं की रक्षा न कर सका। इसी दृष्टि से उसका राज-धर्म होना असफल हुआ। क्योंकि इस राजधर्म-पद के कारण यद्यपि वह सम्पूर्णतया रोम के मूर्तिपूजक धर्म में मिल नहीं गया, तथापि अपनी आध्यात्मिक-भावना और आश्चर्यकारी आदर्शवाद की बहुत कुछ घटी का कारण बन गया। जहाँ पहले—इस धर्म के प्रारंभिक काल में, धर्म-रक्षा, आत्म-स्वातन्त्र्य और विनम्र धर्म-विश्वास की भावना से लोग हँसते-हँसते अपना खून बहाने को तैयार रहते, वहाँ बाद में यही धर्म लोगों के दमन और अत्याचार का यन्त्र बन गया, दूसरे शब्दों में यही धर्म लोगों की आत्म-स्वातन्त्र्य और आत्म-विश्वास की भावना को कुचल डालने का भीषण साधन बन गया। यहाँ, भौतिक सत्ता से मिले हुए धर्म की विस्तृत सचाई या झूठेपन पर विचार करने का मेरा उद्देश्य नहीं है। मुझे तो केवल यही दिखलाना था कि किस तरह पुराने ज़माने में एक समय शान्त, अहिंसात्मक वैध-विरोध ने एक शक्तिशाली साम्राज्य पर विजय पाई थी, साथ ही मुझे यह भी बतलाना था कि भौतिक सत्ता प्राप्त करने के प्रयत्नों में भी इस तरह की शान्त-नीति ऐतिहासिक प्रमाणों और उदाहरणों से ख़ाली नहीं है।

कृष्णदास

आवेदन

डूब रहे प्राण पाप-ताप के पयोनिधि में,
देर न लगाओ इन्हें शीघ्र ही उबार लो।
कर रहा मोह-कंस मनमें उपद्रव है,
शान्ति है न जीवन में तनिक निहार लो।
चित्त में हुई है धर्म-भाव की अतीव ग्लानि,
बढ़ रहा दम्भ नेक यह तो विचार लो।
क्या कहें ब्रजेश! हम तुमसे विशेष और,
आओ उर-देश में हमारे अवतार लो॥

गोपालशरण सिंह

आर्यभवन

['त्यागभूमि' के लिए]

विलायत जाने वाले भारतीयों के सामने सदा से एक बड़ी विकट समस्या खड़ी रही है—वह है, उनके वहाँ रहने का सवाल और अपने धार्मिक सिद्धान्तों के अनुसार शाकाहार की व्यवस्था ।

अब तक यह समस्या बड़ी ही विकट बनी रही और जो भारतीय अब तक विलायत आये हैं, इस समस्या के कारण उन्हें बड़ी कठिनाइयों और असुविधाओं का सामना करना पड़ा है । अपने सिद्धान्तों के उपयुक्त भोजन पाने की कठिनाई इन सब के मूल में थी ।

महात्मा गाँधी ने अपनी आत्म-कथा में इस विषय पर काफ़ी प्रकाश डाला है । स्वयं उन्हें अपने सिद्धान्त की रक्षा के लिए कठिन-से-कठिन असुविधाओं का स्वागत करना पड़ा था । उनके बाद भी जो लोग विलायत पहुँचे हैं, उन्हें भी ऐसे ही—बल्कि इससे भी अधिक—कष्टों का सामना करना पड़ा है । यह सच है कि पहले की अपेक्षा इस समय इंग्लैण्ड में शाकाहारी भोजनालयों की संख्या ज्यादा है, लेकिन शायद ही कोई ऐसा भोजन-गृह हो, जहाँ शाक-भोजियों के लिए स्वच्छता और सुघड़तापूर्वक बनाया हुआ भोजन मिलता हो । अगर किसी भोजनालय में शुद्ध शाकाहार मिलने की आशा से स्थान सुरक्षित करवा लिये जाते हैं, तो भोजन इतना अरुचिकर एवं स्वादहीन मिलता है कि उससे तत्काल ही स्वास्थ्य को हानि पहुँचने लगती है । कई ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं कि जिनमें घर से आते समय तो लोगों के अपने सिद्धान्त अत्यन्त कट्टर थे, लेकिन इधर पश्चिमी देशों में वैसे अनुकूल भोजन को प्रायः दुष्प्राप्य पा कर उन्हें विवशता-पूर्वक अपने सिद्धान्तों से विचलित होना पड़ा है । इस परिवर्तन का कारण, उनका अपने सिद्धान्तों में विश्वास का अभाव नहीं बल्कि पूर्व-विश्वासों को सुरक्षित रख सकने में कठिनाइयों की अधिकता ही है ।

सौभाग्य से, श्री० घनश्यामदास बिड़ला १९२७ ई० में इंग्लैण्ड आये और उनके मनमें अपने प्रवासी देश-भाइयों के शुद्ध शाकाहार सन्बन्धी कष्टों को यथाशक्ति कम की इच्छा उत्पन्न हुई । उन्होंने देखा कि उनके लण्डन में रह कर उन उपयुक्त सुविधाओं को प्राप्त नहीं सकते जो शुद्ध शाकभोजियों के सिद्धान्त का प्राण अतएव इसी वर्ष, इंग्लैण्ड से लौटने के पहले ही, श्री० ने लण्डन के किसी स्वास्थ्यप्रद मुहल्ले में एक मकान लेने का उपक्रम किया । इस मकान में भारतीय की भोजन-व्यवस्था का समुचित प्रबन्ध करवाना ही लक्ष्य था । और केवल वही इस व्यवस्था से लाभ सकते थे जो श्री० बिड़ला की भांति शुद्ध शाकाहारी, अथवा मद्य-पान से घृणा करने वाले हों ।

श्री० घनश्यामदास बिड़ला के साथ ही श्री० रामगो मोहता का हाथ भी इस योजना के मूल में रहा है। दोनों मित्रों ने, जो आपस में रिश्तेदार भी हैं, मिलकर बेलसाइज़ पार्क लण्डन में एक मकान, मय उसकी के ख़रीदा और "आर्यभवन" के नाम से उसकी का भार ट्रस्टियों के एक संघ के हाथों सौंप दिया । संघ के सदस्यों में श्री० बिड़ला, श्री० रामगोपाल मो वर्धा के सेठ जमनालाल बजाज और सर अतुल चटर्जी

इस कार्य के लिए अकेले श्री० रामगोपाल मोहत ५०,०००) दिये हैं । शेष लगभग १०,००० पौण्ड की स्वयं श्री० घनश्यामदास बिड़ला ने दी है ।

गत वर्ष जिनेवा की दसवीं अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर सभा में मिल-मालिकों के प्रतिनिधि की हैसियत से बिड़ला ने इंग्लैण्ड की यात्रा की थी । उसी समय और बाद भी, उनकी उक्त योजना को कार्य-रूप में परिणत क सारा श्रेय श्री० कस्तूरमल बांठिया और श्री० देवीप्रसाद को है । इन्होंने उक्त योजना के सूक्ष्म-से-सूक्ष्म पहलू पर ध्यान दिया और श्री० बिड़ला की इच्छा पूर्ण करने में समय, उत्साह और शक्ति का अधिकांश ख़र्च किया है । विषय में ये स्वयं श्री० बिड़ला से परामर्श करते थे

तो न केवल उक्त भवन निवास-योग्य ही हो गया है दिन-प्रति-दिन प्रवासी भाई और व्यापारी आदि उसमें संख्या में रहने लगे हैं और बिना किसी रुकावट के हिन्दू की तरह वे अपने धार्मिक सिद्धान्तों का पालन और इंग्लैण्ड में रह कर सुखपूर्वक अपने-अपने काम में रहते हैं।

इस भवन में अपने मित्रों के साथ रहने और उसके में भाग लेने सुविधा पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ और यदि सच जाय तो इसके , लगातार क- र परिश्रम करने भी मैं सशक्त प्रसन्न रह सका —रहता हूं। जब मैं लण्डन से हो कहीं गया हूं या ठहरा हूँ, एक तिथि के नाते आर्य में ठहरने की सुख-सुविधा ली है और वहाँ कर मुझे हर तरह ही घर में रहने आनन्द प्राप्त है। अतः केवल तथ्य की दृष्टि से नहीं बल्कि अपने अनुभवों की बुनियाद पर मैं, लण्डन में, आर्यभवन की उपयोगिता पर ये बातें लिखने में समर्थ हुआ राय में इस भवन द्वारा श्री० घनश्यामदास बिड़ला इच्छायें फूली-फली हैं।

'आर्यभवन' का उद्घाटनोत्सव

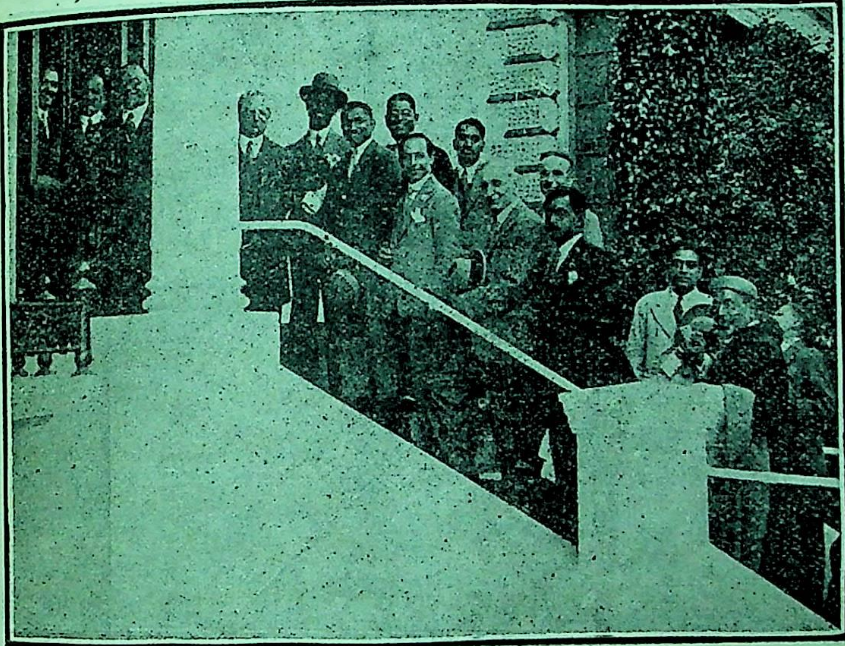

सर अतुल चटर्जी आर्यभवन का उद्घाटन कर रहे हैं

[बायीं ओर से खड़े हुए, श्री के० एम० बांठिया, श्री देवीप्रसाद खेतान, सर अतुल चटर्जी, श्री एस० एल० पोलक, श्री षण्मुखम् चेट्टी, श्री लालचन्द हीराचन्द, श्री सुब्बू, श्री देवीप्रसादसिंह, श्री एस० एन० मल्लिक इत्यादि]

अपनी योजना को सार्थक बनाने के लिए श्री० बिड़ला सज्जनों की एक समिति बना दी है—श्री० एस० एल० पोलक (प्रधान), श्रीमती एन० सी० सेन (उपप्रधान), श्री० के० बी० मावलनकर, श्री० आर० जे० उद्वानी, डॉ० आर० पी० परांजपे, श्री० एस० एन० मल्लिक, श्री० के० पी० कोतवाल, डॉ० के० पार्डी, श्री० कस्तूरमल बांठिया (मन्त्री) । यह समिति सदा नियमपूर्वक अपने अधिवेशन करती और संस्था को यथासाध्य सफल बनाने एवं संस्थापकों की इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए बड़ी तत्परता से काम कर रही है। अभी आर्यभवन में दस मेहमानों के आतिथ्य का समुचित प्रबन्ध किया जाता है और उनकी इच्छानुसार हर तरहकी सुविधाओं की व्यवस्था कर दी जातीहै। इच्छा प्रकट करने पर आगन्तुक सज्जनों के लिए भी इसी तरह का प्रबन्ध किया जाता है। मेहमानों के पूजन-अर्चन के लिए आर्यभवन के पार्श्व भाग की ज़मीन में एक छोटा-सा देवालय बनाने का विचार हो रहा है और इस सम्बन्ध में आज्ञा प्राप्त करने के लिए स्थानीय अधिकारियों से बात-चीत शुरू हो चुकी है। भवन में रहने वाले अधिवासियों और प्रवासियों के लिए जो नियम हैं वे बहुत सीधे और सरल हैं । पहले दो नियम भवन के सिद्धान्तों का उल्लेख करते हैं—जो किसी भी हालत में अन्यथा नहीं हो सकते ।

१—'आर्यभवन' एक पूर्ण शाकाहारी संस्था है । इसमें अण्डों और मछलियों तक का सर्वथा निषेध है।

२—इस संस्था की परिधि में, मदिरा तथा ऐसे ही

अन्य मादक द्रव्यों का प्रवेश सर्वथा बन्द है।

तीसरे नियम द्वारा ट्रस्टियों की राय से स्थापित, प्रबन्ध-समिति को ही संस्था के संचालन और प्रबन्ध का सम्पूर्ण अधिकार सौंपा गया है। इस समिति को ट्रस्टियों की सलाह से अपनी सदस्य-संख्या बढ़ाने का अधिकार भी है।

कुछ दूसरे नियम हैं जिनके अनुसार ख़ासकर विलायत-यात्री भारतीयों को ही भवन में रहने का अवसर दिया जायगा। हाँ, स्थान रहने पर कुछ विद्यार्थी भी ठहराये जा सकते हैं, केवल उन्हीं शर्तों पर और उतने ही समय के लिए जो समिति द्वारा नियत किया गया हो। साधारणतया प्रबन्ध-समिति की विशेष आज्ञा के अभाव में, प्रवासी भारतीय चार महीने से अधिक समय तक भवन में न रह सकेंगे। इसी कारण नियमावलि में यह उल्लेख है कि ऐसे प्रवासी विलायत पहुँचने के दो महीने पहले ही भवन में स्थान-प्राप्ति के लिए भवन के अवैतनिक मंत्री श्री० के० एम० बांठिया ३०, बेलसाइज़ पार्क, एन० डब्ल्यू० ३ के पते पर अपना प्रार्थना पत्र भेज दें।

'आर्यभवन' का उद्घाटनोत्सव

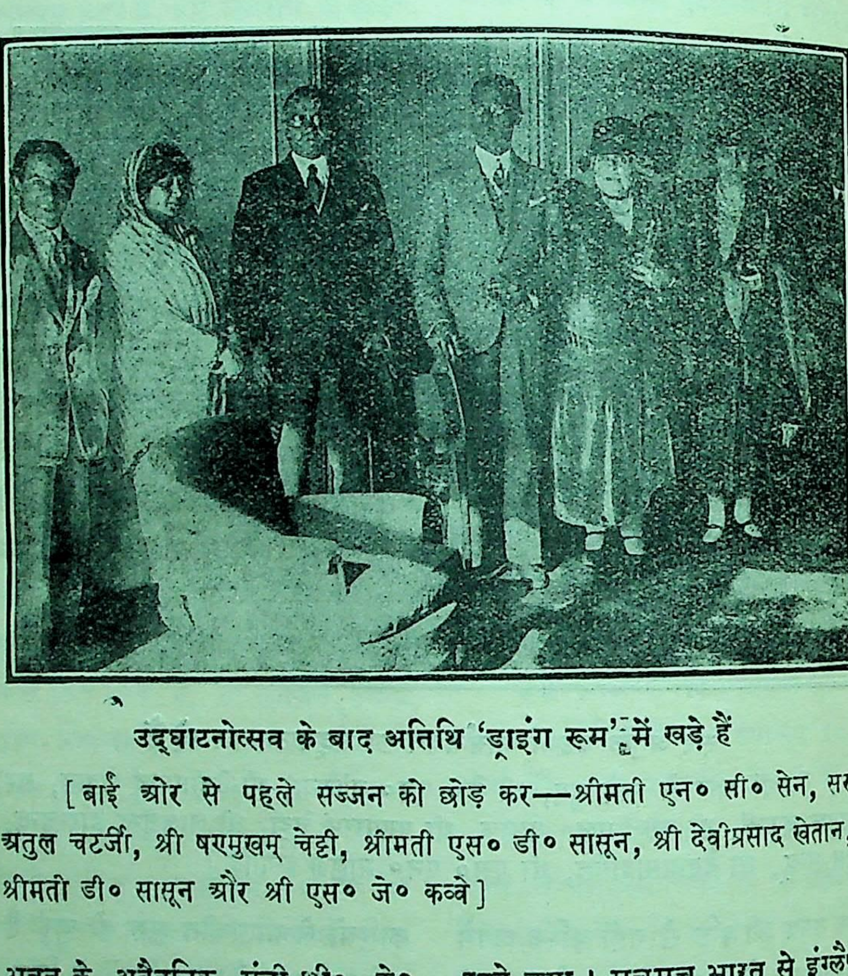

उद्घाटनोत्सव के बाद अतिथि 'ड्राइंग रूम' में खड़े हैं

[बाईं ओर से पहले सज्जन को छोड़ कर—श्रीमती एन० सी० सेन, सर अतुल चटर्जी, श्री षण्मुखम् चेट्टी, श्रीमती एस० डी० सासून, श्री देवीप्रसाद खेतान, श्रीमती डी० सासून और श्री एस० जे० कव्वे]

आर्यभवन का उद्घाटन समारंभ गत जून १९२८ की २५ तारीख़ को किया गया था। भारत के हाई कमिश्नर श्री अतुल चटर्जी ने संस्थापक के नाम पर उस दिन भवन का उद्घाटन अपने हाथों किया था। उद्घाटन सम्बन्धी चित्र इस लेख के साथ छापे जा रहे हैं जो पाठकों के उन भाइयों के लिए, जिन्होंने पत्रों में उक्त भवन के टन तथा उसके उद्देश्य के समाचार पढ़े हैं, मनोरंजक होंगे

वह दिन अत्यन्त मनोरम और स्फूर्तिदायक था समारंभ की सफलता भी वैसी ही थी। श्री० खेतान अपने भाषण में, मेहमानों की ओर से सर अतुल चटर्जी उनकी उपस्थिति के लिए धन्यवाद दिया और भारत ओर से उन के कार्य का स्वागत किया भारत से आकर बस गये प्रवासी भारत के हित के लिए सचेष्ट रहते लण्डनके अंग्रेज़ी में इस समारं पर्याप्त चर्चा थी। अपने महीनों के के बाद मेरी भी इस भवन उपयोगिता का बढ़ने लगा; ही भारत इसकी उपयो का परिचय पहुं के लिए मैं रहने लगा। सचमुच भारत से इंगलैण्ड जाने वालों के भवन की स्थापना एक ज़बर्दस्त सुविधा हो गई है इसके कारण विदेश में भी, हरएक भारतीय अपने शा कट्टर सिद्धान्तों तथा संयम-नियमादि का बख़ूबी कर सकता है।

मैं इन भाइयों को विश्वास दिला सकता हूँ कि में अच्छा, सादा और पवित्र भोजन देने के लिए हर

खबरदारी रक्खी जाती है। भोजन शुद्ध शाकाहारी ता है और यथासंभव भारतीय ढंग से तैयार किया जाता जिससे भारतीय अपने स्वाद के अनुकूल, रुचिपूर्वक उसे कर सकें। भोजन में तरकारी, कढ़ी, दाल आदि सब होती हैं। प्रत्येक बार के भोजन में पूरी और भात के प्रचुर परिमाण में फल खाने को दिये जाते हैं जिससे का भोजन बहुत स्वास्थ्यप्रद बन जाता है।

'आर्य-भवन' की इस नयी उत्तरदायित्व पूर्ण योजना का लाभ यह भी है कि यह मकान लण्डन की बस्ती के ऐसे भाग में है जो वहाँ के सबसे ऊँचे भागों में एक अतः टेम्स-तट के निचले प्रदेशों की तुलना में वहाँ या तुषारपात का सदा अभाव ही रहता है। साथ आर्यभवन की इमारत एक ऐसे स्थान पर बनी हुई है मोटर और बड़ी-बड़ी मोटरलॉरियों की आमद-रफ्त नहीं के बराबर रहती है और इस दृष्टि से लण्डन की सड़कों की तुलना में आर्यभवन वाला भाग बहुत ही और कोलाहल-शून्य रहता है। और भी एक बात है। की प्रायः सूर्य-प्रकाश से हीन भूमि में वहाँ के बस्ती-क्षेत्रों की अपेक्षा आर्यभवन की ऊँचाई पर हुई इमारत कहीं अधिक सूर्य-प्रकाश से युक्त रहती है। के लिए मैं कहता हूँ कि एक दिन शहर में जाने मैंने बेलसाइज़ पार्क तक तो लण्डन की बस्ती में घना छाया हुआ देखा और ऊपर आर्यभवन के आस-पास पर देखा तो छाया के बदले सूर्य-प्रकाश जगमगा था। ज़मीन-तले की रेलवे को दृष्टि में रखते हुए भवन स्थिति निःसन्देह बड़ी सुविधा-जनक है 'मेट्रोपालिटन' स्विस् कॉटेज और हेस्टीड ट्यूब के बेलसाइज़ पार्क इन दो के बीचों-बीच यह इमारत खड़ी हुई है। इन में किसी भी स्टेशन से शहर तक जाना अत्यन्त सहज है और पार्क से चेरिंग-क्रॉस तक जाने में, ट्यूब में, १५ से अधिक समय नहीं लगता। यहाँ से ठीक इतने ही समय में बैंक और प्रासाद भवन (Mansion House) तक भी पहुँच सकते हैं।

भारतीय प्रवासियों के लिए की गई इस सुविधा की, उपयुक्त शब्दों में, प्रशंसा करना कठिन है। यहाँ ऐसे स्थान की इतनी आवश्यकता थी कि वह अब तक क्यों न बन सका था यही आश्चर्य है। लेकिन चूँकि अब उस आवश्यकता की पूर्ति हो चुकी है और बड़ी अच्छी तरह हो चुकी है, यह आशा करना व्यर्थ न होगा कि लोग इससे उचित लाभ उठायेंगे, इसका उपयोग करेंगे। यह भी बहुत संभव है कि इसी सिद्धान्त के अनुसार वर्तमान भवन के आस पास तथा शहर में दूसरे स्थानों पर भी ऐसे भवनों की योजना की जाय जिससे वे लोग भी लाभ उठा सकें जो स्थान की कमी के कारण आर्यभवन को सुविधाओं से वंचित रहते हैं।

मैं संस्थापकों के साथ-साथ भवन के अवैतनिक मंत्री श्री० कस्तूरमल बांठिया—जो संस्थापकों की इच्छाओं को इतनी अच्छी तरह कार्य में परिणत करने के लिए अथक परिश्रम कर रहे हैं—को, और श्रीमती पोलक तथा श्री० पोलक को उनकी विविध बहुमूल्य सहायता के लिए हार्दिक बधाई देता और उनकी कल्याण-कामना करता हूँ। जितने थोड़े समय में भवन को अच्छी तरह सजाकर सब तरह से उपयोगी और रहने योग्य बनाया गया है, वह विशेष उल्लेखनीय है। यहाँ यह लिखते हुए और भी हर्ष होता है कि भवन में रहने वाले सदस्यों में परस्पर सद्भावना, सहानुभूति तथा सहयोग के भाव सम्पूर्णतया जागृत रहते हैं और यही कारण है कि उसके व्यवस्था-कार्य में अबतक किसी तरह की रुकावट नहीं पड़ी है। इस मधुर प्रबन्ध का श्रेय प्रधानतया श्री० कस्तूरमल बांठिया के अथक परिश्रम को है।

सी० एफ० एण्डरूज़ (लण्डन)

बृहत्तर भारत

['त्यागभूमि' के लिए]

(२)

अब हम अपने पाठकों को कम्बोडिया (कम्बोज) और जावा के कुछ शिलालेखों के नमूनों से परिचित करावेंगे। अब तक के प्राप्त समस्त शिलालेखों से राजा भववर्मन ही कम्बोडिया का सर्वप्रथम राजा ठहरता है। उसके राज्यकाल के ठीक-ठीक सन-सम्वत् का हमें पता नहीं, क्योंकि हमारे प्राचीन शिलालेखों में तिथियों का उल्लेख कहीं नहीं मिलता। लेकिन उसके उत्तराधिकारियों के काल के आधार पर और चीनी इतिहास की साक्षियों के बल पर हम उसको ईस्वी सन् की छठी शताब्दि अथवा लगभग ५५० ईस्वी का राजा मान सकते हैं। अब हम उसके राज्यकाल से सम्बन्ध रखने वाले एक लम्बे शिलालेख के पूर्वार्द्ध की चर्चा करेंगे। यह शिलालेख दक्षिण-भारत की पल्लव लिपि में एक पाषाण-खण्ड पर खुदा है। यह पाषाण-खण्ड कम्बोडिया के हान-ची नामक स्थान के एक भग्न-प्राय विशाल देवालय के निकट मिला था।

"उस गंगाधर चन्द्रशेखर की जय हो, जिसके सिर पर लहराती गंगा की वेगवती धारायें उमा की टेढ़ी भौंहों से डर कर शान्त होतीं और भगवान् शंकर के गले का कण्ठहार बनती हैं। महाराजा भववर्मन संसार के शासकों के सम्राट् थे। वह अजेय और महान् थे और थे मेरु के समान उन्नत एवं उदात्त। उन्होंने अपने जन्म से 'सोम'-वंश को अलंकृत किया था। समुद्र की प्रशान्त लहरों में प्रतिबिम्बित होने वाले चन्द्र-प्रकाश की भांति वह स्वयं तेजोमय थे। रणक्षेत्र में उनका पराक्रम भी इसी भांति चमका करता था। जब उन्होंने असन्तोष्य, सूक्ष्म और मानवी शक्ति के बन्धनों से परे वाले अपने अन्तः-शत्रुओं को—अपनी छहों को—जीत लिया था तब बाह्यशत्रुओं की तो ही क्या ?......शरत्काल के आरम्भ में जब समस्त ऐश्वर्यों से युक्त हो, दिग्विजय के लिए करते, तब सूर्य-तेज को भी लज्जित करने वाले पराक्रम के सामने शत्रुओं का ठहरना जाता था। उनकी सेना के पद-स्पर्श से उड़ी हुई शत्रु-ललनाओं के उन कपोलों पर चन्दन-भस्म भांति जा बैठती जिनकी सारी शोभा शोकाश्रु- में एक साथ ही धुल गई थी......उनके में एल (पुरुरवस्) का राजवंश अपने में व्यक्त हुआ था और उनके पराक्रमों के उनकी ख्याति विश्व-सीमा का अतिक्रमण कर आसमुद्र-वसुन्धरा को एक बार बाहुबल जीतकर अपने राज्यकाल में उन्होंने उसे सौम्य क्षमा द्वारा पुनः पराजित किया था। में नतमस्तक होने वाले राजमुकुटों की किरणों से यद्यपि उनके पद-नख अधिक हो जाते थे फिर भी उनके विशुभ्र हृदय में की हलकी सी रेखा तक न प्रकट होती थी......

इस शिलालेख के अन्तिम भाग में एक सामन्त का उल्लेख है जिसने भद्रेश्वर के की प्राण-प्रतिष्ठा की और इस घटना की प्रस्तुत शिलालेख तैयार करवाया। "उसने (के स्वामी ने) देव-सम्पत्ति के निमित्त पशु, पृथ्वी, सुवर्ण आदि का मुक्तहस्त से दान देवता के यती—पुजारी ही इस (मन्दिर) के

ी हो सकते हैं। दाता के उत्तराधिकारी इस देवो- सम्पत्ति का उपभोग नहीं कर सकते क्योंकि ें उस पर कोई अधिकार नहीं है……"†

छठी शताब्दि के इस शिलालेख—जिसे फरा- सी-भूतत्त्वविदों ने सुदूर इण्डोचीन में जाकर खोज र खोद निकाला है—की भाषा की तुलना, पाठक लिदास के रघुवंश के चतुर्थ सर्ग में वर्णित रघु- विजय से करके देखें, कितना सूक्ष्म अनुकरण है!

बोर्नियो और जावा में हमें इससे भी पुराने संस्कृत-शिलालेख प्राप्त हुए हैं। इनकी लिपि भी ण-भारत की पल्लव-लिपि जैसी ही है। प्राचीनतम वा-शिलालेखों से जो वर्तमान बटेविया के निकट के श्चिमी जावा में मिले हैं. हमें पता चलता है कि ईस्वी ४५० के लगभग पूर्ण-वर्मन नामक एक राजा की रुमा' नामकी राजधानी, द्वीप के इसी प्रदेश में थी। का एक शिलालेख नदी-तोर की एक चट्टान पर दा हुआ है। उसमें केवल चार पंक्तियाँ हैं और के ऊपरी भाग में दो पद-चिन्ह भी खुदे हुए हैं— क्तिशाली, पृथ्वीपति 'तारुमा' नगर के अधिपति मान पूर्णवर्मन के ये दो पद-चिन्ह हैं जिनकी लना विष्णु के पद-चिन्हों से की जा सकती है।"

इसी पूर्णवर्मन के एक दूसरे शिलालेख में चंद्र- गा और गोमती नामक दो नहरों के निर्माण का ख मिलता है। इन नामों का उत्तरी-भारत की दियों के नामों से जो साम्य है वह देखने योग्य है। सी राजा के एक तीसरे शिलालेख पर इसके हाथियों द-चिन्ह पत्थर पर खुदे हुए हैं और उनकी ना ऐरावत के पद-चिन्हों से की गई है।

बिजनराज चटर्जी
(पी०-एच०डी०, डी० लिट्)

---

† ये उद्धरण लेखक की अपनी 'भारतीय संस्कृति का या पर प्रभाव' पुस्तक पृष्ठ ४१-४३ से लिये गये हैं।

सुकवि और कुकवि

सुकवि

दशा दयनीय देख दलित स्वदेश की जो
शब्दरूपी आँसू सदा दुखी हो बहाते हैं,
धर्मध्वजी ढोंगियों के वृथा पुष्ट गढ़ों को जो
शब्द रूपी गोले मार निर्भय ढहाते हैं,
दुराचार-मूलक कुरीतियों के शव को जो
हँस-हँस कर शब्द-गंगा में बहाते हैं,
वही बुद्धिमान, वही साहस-निधान
वही आचरणवान सच्चे कवि कहलाते हैं।

कुकवि

(१)

भूख की जगी है ज्वाला देश में भयानक,
तू नायिका के चित्र खींच किसे दिखलाता है?
अरे मूढ़ कवि, तेरी बुद्धि को लगा है भूत—
शान्ति सरसाने को जो आग बरसाता है!
निज सुता, सुतवधू आदि की तो कर याद
दूसरों की बहू-बेटियों को क्यों लजाता है?
चाहता मिटाना तू समाज की पवित्रता को
काव्य को पढ़ा के दुराचार को बढ़ाता है!

(२)

गुजर स्वकीया की भी कठिन हुई है आज,
तुझे परकीया नायिकाओं से ही रति है!
हुआ है शरीर जीर्ण-शीर्ण आधि-व्याधियों से
तो भी विषयों में अति रत तेरी मति है!
कविता-कुल्हाड़ी से समाज-तरु-शाखा को तू
उसी पर खड़ा पहुँचाता आप क्षति है!
भले आदमी न पूछें एक कौड़ी को भी तुझे
तेरे अनुरूप बस यही तेरी गति है।

बदरीनाथ भट्ट

देश बनाम विश्व

"यह हमारा देश है," कैसी सुन्दर कल्पना है! कैसा सुन्दर आदर्श है! अहमन्यता का पवित्र और सात्विक भाव है। वीरों ने इसी भाव से प्रेरित होकर अपने प्यारे-प्राण देश की वेदी पर वलिदान कर दिये हैं। इसी मन्त्र से मुग्ध होकर सहृदय धनिकों ने जन्म-जन्म की जुटाई सम्पत्ति देश के अर्पण कर दी है। इसी एक वाक्य की मर्यादा पालन करने के लिए वीरात्माओं ने अपना जीवन-काल काल-कोठरियों में सड़-सड़कर, असह्य वेदनायें सहकर समाप्त किया है। त्याग की बड़ी ऊँची सीढ़ी है। सच्चे त्यागी देश के लिए धन-धान्य, घर-परिवार सब छोड़ देते हैं।

पर मनुष्य स्वार्थ का पुतला है! हृदय की सूक्ष्म-से-सूक्ष्म तथा पवित्र से पवित्र भावनाओं में स्वार्थ की रेखा छिपी रहती है। स्वार्थी प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति इसी दुर्बलता की आड़ में अपना खेल खेलते हैं। इसी कमज़ोरी का फ़ायदा उठाते हैं और परिणाम यह होता है कि यह सुन्दरभावना संकुचित होकर मनुष्य के हृदय को द्वेष, दम्भ तथा घृणा से भर देती है। जहाँ अपनी ज्योत्सना का प्रकाश छिटका कर दूसरों को ज्योतिर्मय बनाना था; वहाँ अपना प्रकाश इसलिए छिपा लिया जाता है कि दूसरे अन्धकार में रहें। ज्यों-ज्यों संसार की आयु बढ़ती जाती है, ज्ञान-विज्ञान की वृद्धि होती जाती है, हृदय और मस्तिष्क का विकास होना चाहिए, सीमा का विच्छेद होना चाहिए, 'मेरा' का लोप और 'हमारा' की जड़ जमनी चाहिए। पर संसार की प्रगति उलटी होती मालूम पड़ रही है। इसमें सन्देह नहीं कि यह प्रतिक्रिया क्षणिक है; अधिक दिनों तक नहीं रह सकती। बुझते दीपक की झिलमिलाहट है, प्रातःकाल के दीपक का प्रकाश है।

संसार के प्रभात में जब समाज के जीवन का आरम्भ नहीं हुआ था, मनुष्य को अपने से काम था। अपने लिए वह पेड़ों में खोंडरे अथवा पृथ्वी में माँद खोदता था। दूसरे व्यक्ति की उपस्थिति उसे असह्य थी। वह अपने भोजन में दूसरे को सम्मिलित नहीं कर सकता था। उसका स्वार्थ-रत था। जब मनुष्य के साथ एक स्त्री भी है उसके स्वार्थ का केन्द्र बदल गया। वह स्वयं दुःख सकता, पर अपनी सहगामिनी के सुख का ध्यान रख पुत्र हुए। परिवार बढ़ा। अब वह औरों के लिए त्या सकता था। अब उसे अपनी चिन्ता कम रहने लगी। वार से कुटुम्ब वा छोटी-छोटी टोलियाँ बनीं, ग्राम आपस में कारोबार, व्यवहार तथा सम्बन्ध बढ़ते गये। दूसरे पर अधिकाधिक निर्भर होते गये। इस प्रकार की सीमा ज्यों-ज्यों बढ़ती गई, मनुष्य का कार्य-क्षे बढ़ता गया। उसकी रुचि, अपने में से हटकर और-औरों पर भी पहुँची। कोई काल था कि अपने-अपने की रक्षा के लिए वहाँ के निवासीगण सेना इकट्ठी कर और एक ग्राम वाले दूसरे युद्ध करते थे। जब उनके की वृद्धि हुई, उनके हृदय का विकास, हुआ सारा अपना हो गया। देश की रक्षा उनका ध्येय हो यद्यपि मानव-इतिहास के प्रत्येक काल में प्रत्येक प्र प्राणी पाये जाते हैं—स्वार्थी, अपने ही लाभ में लाभ वाले, अपने शरीर की ही रक्षा करने वाले, अपना ही पालने वाले इस समय भी संसार में पाये जाते हैं—पर लोगों की संख्या बढ़ गयी है जिनके सम्मुख देश की आ कता प्रमुख है; जो अपने को देश के समक्ष हेय समझते

संसार के मध्यकालिक इतिहास में स्वदेश-प्रेम भावना उच्च शिखर पर पहुँच गयी थी। प्रत्येक देश अपने देश के लिए, उसके स्वत्व तथा आत्माभिमान रक्षा के लिए दूसरे देशों से युद्ध ठानता था। हमारे अपनी जाति, धर्म, तथा मर्यादा की रक्षा के लिए स्मरणीय शिवाजी, वीर-केसरी राणा प्रताप प्रभृति त्माओं ने कष्ट सहकर अनेक युद्ध किये, संघटन किया जहाँ तक बन पड़ा सात्विक भाव से देशकी सेवा हमारे देशमें तो अन्य देश वाले घुस आये थे, इसलिए करना पड़ा पर जो देश स्वतंत्र थे उन्हें भी अपने दे

के लिए तत्पर रहना पड़ा। अपने देशकी रक्षा प्रत्येक का धर्म है। वह उसकी मिट्टी से पला है। उसके में उसी भूमि के कण प्रवाहित होते हैं। अपनी जान उसे बचाना दूसरों से पादाक्रान्त न होने देना, अपने प्रत्येक रेणु में भक्ति और श्रद्धा का भाव होना, अपने की चाल-ढाल, आचार व्यवहार के लिए मरमिटना यह वासियों के जीवन का कर्तव्य होना चाहिये।

पर इस निर्दोष भावना की स्वच्छ और सरल धारा स्वार्थ-लोलुप नेताओं और संसार की उचित प्रगति में डालने वाले समाजों ने संकुचित और गंदी नालियों पूर्वक बहाने का प्रयत्न किया और अपने प्रयत्नों में सफल भी हुआ। देश-प्रेम का अर्थ यह निकाला कि दूसरे देशों की स्वतंत्रता पर कुल्हाड़ी चलाई जाय। रक्षा का यह उपाय खोजा गया कि निस्सहाय और जातियों की स्वाधीनता अपहरण की जाय। अपने सामग्री न मिलती हो तो धनी परन्तु बलहीन देशों लूट लो।

विभिन्न देशों में व्यापार होना स्वाभाविक है। संसार प्राणी का कार्य इसी भरोसे चलता है। पर यह से हो सकता है, किसी को दबा कर धमका कर नहीं। पर ऐसा ही हुआ। विज्ञान से इसमें ली गयी। वीरों ने अपनी जानें खोकर समुद्र जहाजों का निर्माण किया कि संसार और छोटा हो संसार के सुदूर देशों के मनुष्य भी आपस में कम सभ्य अधिक सभ्य जातियों से सभ्यता ग्रहण पर इन उपकारों से साम्राज्य स्थापित करने में सहा-ली गयी। इसी प्रकार सारे वैज्ञानिक आविष्कारों संसार में शान्ति और प्रेम स्थापित करने के स्थान पर लूट और डकैती का काम लिया गया। झूठी देशभक्ति नाम पर, स्वतंत्रता की रक्षा के बहाने, देशाभिमान और गौरव बढ़ाने का स्वांग रचकर, दूसरी जातियां नष्ट की गयीं और दूसरे देश पैरों तले रौंदे गये। अपने वासियों को यह सब्ज़ बाग़ दिखलाया गया कि तुम्हारी की जा रही है। अपने यहाँ के मज़दूरों को यह बत-गया कि व्यापारिक उन्नति से तुम्हें मजदूरी अधिक मिलेगी। इसी प्रकार से अनेक रूपक बांधकर, भोली भाली जनता को मूर्ख बनाकर, झूठे चित्र रचकर, देश-प्रेम और देश-भक्ति के नाम पर धोका दिया गया।

जिस प्रकार सभी कालों में स्वार्थियों की एक संख्या होती है इसी प्रकार सभी कालों में शान्ति-प्रिय, उदार और विशाल-हृदय महात्माओं का भी अस्तित्व होता है। अनेक बार इस बात का प्रयत्न हुआ कि युद्ध रोका जाय, संसार में भाई-चारे का भाव फैलाया जाय पर अभी तक सभी प्रयत्न निष्फल हुए। युद्ध की भेरी के आगे शान्ति की वंशी न बज सकी। परन्तु समय में परिवर्तन हो गया। अब लोग समझने लगे कि जिस स्वर्ग का स्वप्न दिखलाया गया था वह केवल रवि-कर-नीर था। बनावटी देश-प्रेम का जो भयानक परिणाम हुआ है, वह संसार के नेत्रों के सामने ताण्डव कर रहा है। हिन्दू-मुसलमान की लड़ाई, ब्राह्मण-अब्राह्मण का संघर्ष, पूँजी-पतियों और श्रम-जीवियों के बीच खींचातानी, काले-गोरों का द्वेष, सब इसी झूठी देशभक्ति के फल हैं। पूर्वी खतरों (Yellow peril) का जो आतंक युरोपियन जातियों के हृदयमें बैठा है वह उस अत्याचारकी प्रतिक्रिया है जो युरोपियन जातियों ने चीन के प्रति किया है। दार्शनिकों और विद्वानों ने समझ लिया है कि जिस रूप से ये लोग, जिनके हाथों राष्ट्रों की बागडोर है, चल रहे हैं अनुचित है। उससे संसार नरक ही बनेगा। आपस में एक दूसरे के प्रति अविश्वास है और ऊपर से शान्ति रखने के लेकचर झाड़े जाते हैं। एक ओर हवाई जहाज़ और ड्रेडनाट ढल रहे हैं; दूसरी ओर केलाग पैक्ट बन रहा है। यह संसार को, जन साधारण को धोका देना है। बहुत संभव है कि इन राष्ट्रों में कुछ ऐसे भी हों जो सचमुच शांति का प्रयत्न करना चाहते हों, पर बलवती जातियों के सामने उनकी कोई सुन नहीं सकता। हाँ, एक बात अवश्य है, और वह यह कि मनुष्य-समाज अब इन नीतियों का घोर विरोध करने लगा है। मनुष्य समझता है कि वह मनुष्य का भाई है। शान्ति-संघ बन रहे हैं, और युद्ध के विरुद्ध संघटन हो रहे हैं। गान्धी और टैगोर, रोमें रोलाँ और सण्डरलैण्ड ऐसे दूत शान्ति का सन्देश संसार के कोने कोने में भेज रहे हैं।

यह तो निश्चय है कि संसार को शान्ति और भ्रातृभाव का संदेश देने में, उन्हें फैलाने और उनका प्रचार करने में भारत ही प्रधान स्थान ग्रहण कर सकता है। पाश्चात्य देशों की सभ्यता का आधार जड़वाद और पाशविक बल है। यद्यपि ईसाई धर्म को मानने वाले युरोप में अधिक हैं, पर वे ईसाई धर्म के अनुकूल नहीं चल रहे हैं, ईसाई धर्म उनके अनुकूल चल रहा है। फिर भी यह अच्छे भविष्य का चिन्ह है कि वहां भी ऐसे व्यक्तियों का उदय हो रहा है जिनका हृदय इतना विशाल है कि वे अपने देश के आगे भी देख सकते हैं।

हमारा यह कर्त्तव्य होना चाहिये कि हम उन शक्तियों का आह्वान करें जिनसे संसार के सब देशों की प्रगति एक साथ शान्ति की ओर हो। 'जिओ और जीने दो' (Live and let live) यही मनुष्य के जीवन का तथा राष्ट्रों का सिद्धान्त होना चाहिये। अपनी स्वतंत्रता की रक्षा हो पर दूसरे की स्वाधीनता पर हाथ न फैलाया जाय। जाति-गत झगड़े दूर करने का ज़ोरों के साथ प्रयत्न होना चाहिए।

भारत ऐसे देश में ये बातें कुछ लोगों को कदाचित खटकें। जो देश स्वयं दूसरों के हाथों की कठपुतली हो, जो अपने आप एक मुट्ठी दाने के लिए तरसता हो, जो बलहीन हो, अपमान किये जाने पर बोल भी न सकता हो उसके मुँह से ऐसी बातें निकलना कुछ लोगों को शायद बेतुकी और असामयिक मालूम होंगी। पर बात ऐसी नहीं है। जेल में भी मनुष्य सत्य बोल सकता है और निर्धन व्यक्ति भी सच्ची राह बतला सकता है। हम पराधीन हैं पर ऐसा न हो कि स्वाधीनता लेने के प्रयत्न में हम भी अन्य देशों की भांति उच्च सिद्धान्तों को भूल जायँ और अनीति और अनाचार फैलायें। हम संघटन कर रहे हैं; वीरता और शक्ति की उपासना कर रहे हैं। जब हम परतन्त्रता की श्रृंखला तोड़ देंगे, स्वाधीनता की तरंगों में उछलने लगेंगे, संभव है मद में बेहोश हो जायँ, सारी शिक्षा भूल जायँ। अनेक देशों में ऐसा ही हुआ है। इसलिए हमारा ध्येय विश्व में शान्ति, विश्व में स्वाधीनता का साम्राज्य स्थापित करने का होना चाहिए।

वह स्वतंत्रता जो दूसरों का अस्तित्व मिटाने के हो, संसार के लिए भयानक है। जो स्थिति भारतव है, रोटी और टुकड़े के लिए एक दूसरे के प्रति जो अ और अविश्वास फैला है, उससे बड़ा भय मालूम होना हमें जान बूझ कर ऐसी शिक्षा दी गयी है कि एक दू प्रति प्रेम न हो। यह अवस्था सदा तो रह नहीं सक जितनी जल्दी संभव हो ऐसे भ्रमपूर्ण भावों का मूलो होना चाहिए। हमें समझना चाहिए कि हमारी स्व संसार में शांति और मनुष्य समाज में प्रेम स्थापि के लिए सीढ़ी मात्र है। इसके अतिरिक्त इसका को नहीं है, और न होना चाहिए। अपनी रक्षा करना मनु स्वभाव है, त्याग इसका ध्येय होना चाहिए। नपुंस त्याग का कोई मूल्य नहीं होता पर शक्ति-सम्पन्न हो वह एक स्वर्गीय कृति हो जाती है। इसलिए भा इस समय का उद्देश्य तो स्वतंत्र होना है ही पर यह स्वातंत्र्य के अर्थ (terms) में होना चाहिये। संसा श्रृंखला में भारत एक कड़ी है। इसे कमज़ोर तो होना नहीं। कड़ियाँ सब समान होती हैं। सबकी बराबरी यह विश्व में, इस संसार में, सभ्यता और प्रेम क करे। बुद्ध की अहिंसा और प्राणी मात्र से प्रेम की इसी देश के दिव्य प्रकाश की एक किरण थी, ईसा के भाव का उपदेश इसी एशिया की एक धारा का था। हमारा यह कर्तव्य है कि हृदय को विशाल अपने देश में जो संकुचित रिवाज हैं, जो संकुचित हैं, उनका नाश करें। हिन्दू, मुसलमान, अछूत और सब एक होकर संसार के सम्मुख जातिगत युद्ध के में घोषणा करें। संसार की आँखें हमारी ओर हैं। स्वतंत्र होते तो यह कार्य न हो सकता। हमारे समता और भ्रातृत्व नहीं हैं। पर अब इधर भी रहा है। इसकी गति और बढ़नी चाहिये। संसार कलह से पीड़ित होकर विश्व में शान्ति फैलाने उत्सुक है। यदि भारतवर्ष अपनी स्थिति ठीक वह संसार का नेता होगा।

कृष्णदेव प्रसाद गौड़
(एम० ए०, एल० टी०,

लहरें चीर : विजया मना

परायेपन के इस पारावार में, क्या, अपने अस्ति-त्व को डूबने से बचाये रहना, और आराध्य तट तक हुँचाना है? यदि हाँ, तो लोहे की दीवारें सागर के तरल क्षस्थल पर दौड़ाना, और पानी में आग लगाना सीखिए या अपने दुर्भाग्य को दो टुकड़े कर देना है? तो ठिए, सागरों और महासागरों का आमन्त्रण स्वी-र कीजिए। दुर्भाग्य, समुद्र की लहरों में जा छुपा है; हरें काटते चलिए, बेडियाँ और दुर्भाग्य दोनों टते चलेंगे।

व्याख्यान, लेख, और कविताओं से यह न होगा। ल्लाह चाहिए। वह अज्ञान न हो, लहरें उसे निगल यँगी; वह अल्हड़ न हो, लहरें उसे खिलवाड़ बना गी; वह कसा हुआ हो, वे उस पर क़ुर्बान जायँ-गी;—नीचे रत्नों से भरा हुआ समुद्र-गर्भ और ऊपर क्षत्रों तक का राज्य, वे अपने प्रियतम पर वार देंगी। बसूरत युवा, पतवार हाथ में ले। यही तेरी भा है।

बेटियाँ कहें, उन्हें मल्लाह, सेनानी पति चाहिए; टे कहें, उन्हें जहाज़ के कम्पास पर बैठ, दिशा-दर्शन राने वाली प्राणों की यथार्थ ईश्वरी चाहिए।

यदि देश के सीमोल्लंघन की यह तैयारी न हुई, ो बोये हुए ज्वारे ऊगकर किसका मुँह देखेंगे; घट-पासना का घट, किसके बल-रत्नों से भरे जाने की य करेगा, और यह नन्दा-दीपक किस कुल-भूषण ी आरती उतारेगा?

जंग लगी हुई तलवार से नीबू काटने, और उस र सिन्दूर लगाने वाले कायर! अस्तित्व के जहाज़ ो कठिनाइयों के सागर की तरंगों पर तैरा दे, और ाह बनने के लिए आगे बढ़। ब्राह्मण! तू समुद्र-पूजन को चल; क्षत्रिय! तू लहरों को काटने उठ; वैश्य! तू समुद्र पार से लक्ष्मी को लौटा, और शूद्र! तू अपने ब्रह्म-कर्म से समस्त शरणागतों की रक्षा कर। खोये हुए वे दिन ढूँढ़, जिसे अफ़ीमची चीनी ढूँढ़ लाये, अमानुल्लाह ढूँढ़ लाया, और कमालपाशा भी। तेरे जिन कंधों से गंगा और जमना आईं, जिन कंधों से ग़ोरी और ग़ज़नवी आये, अरे! क्या उन कंधों से सागर की लहरें चीरने का सन्देश नहीं आता? इतना गतिवान? ऐसा ताज़ा? कान तो कन्धों से सदा काना-फूसी करते रहते हैं!

× × ×

और पकान्न? जीभ की गुलामी सिखाने के लिए कोई शास्त्र क्यों चाहिए? जीभ के बल, कुछ मीठे पर, और कुछ प्राण बचाने के प्रस्तावों पर, ठहर लेंगे। नट के लिए यह सब आसान है। तरुण! तेरे लिए नहीं।

× × ×

आजकल लोग सिर के बल चलना सीख रहे हैं,—सीख भी गये हैं। किन्तु जो खेतों, खलिहानों, और कारख़ानों में आदमी की तरह पैरों के बल चलते हैं, जो रण-क्षेत्रों में रक्षा के लिए हाथों के बल चलते और जो विश्व के व्यापार के रूप में, बड़ी तोंद से पेट के बल जीवन की दौड़ दौड़ते हैं—ऐसों को देश में कौन पूछता है? यहाँ तो चोरी सीना-ज़ोरी, देश-भक्ति, देश-घातकता, गालियाँ और धर्मोपदेश, कलह और कविता का ज़ोर है; सिर के बल दौड़ने वालों का क्या! हम क्या आदमी की तरह, खेतों और रण-खेतों के काम के बन सकेंगे[*]?

माखनलाल चतुर्वेदी

---

[*] एक तरुण लेखक के लिए लिखी पंक्तियों में से कुछ अंश।

विस्मृता उर्म्मिला

(प्रथम सर्ग)

[गतांक से आगे]

जनकपुर-प्रवेश

(१)

धीरे, रम्ये, जनक नगरी, सौख्य सम्पत्ति धाम,
तेरे वासी सतत रत हैं ईश सेवाभिराम।
कोई दृग्गोचर नर नहीं हो रहा दुष्ट वाम;
शान्ते, तेरी सुभग धवला देहली में प्रणाम ॥

(२)

आ पैठी तू चकितमति, हे चित्त की वृत्ति मेरी,
खोई-सी क्यों इधर फिर भी दर्शनौत्सुक्य प्रेरी ?
खोलो आँखें, मुदित मन हो, पुण्य शोभा घनेरी—
देखो; होवे हृदय-तल की भावना पूर्ण तेरी।

(३)

प्राचीरों के सुदृढ़ गढ़ को विज्ञ कारीगरों ने—
रक्खा है क्यों विलग पुर से, शिल्पविद्याधरों ने ?
क्यों छोड़ा है नगर, गढ़, के बीच सुस्थान खाली ?
कैसी वीथी-परिधि यह है वेदियों से संभाली ?

(४)

ब्रह्म-ज्ञानी जनकपुर की शुद्ध-सी मेखला है ?
या नारी की मृदुलकटि की धर्म की शृँखला है ?
किंवा माला जनक-यश की शुभ्र पुष्पोंमयी है ?
या लोगों के विमल हिय से गान-धारा बही है ?

(५)

मन्त्रोच्चारी सु-पट पहने, ब्राह्मणों की कतारें—
प्रातः सायं पुर परिक्रमा को यहाँ पाँव धारें।
रम्या वीथी यह मुदमयी "मङ्गलावीथि" नामा—
दुःख-क्लेशोद्भव भव-व्यथा मेटती है अकामा ॥

(६)

क्यों जाते हैं प्रतिदिन सभी पौर ये घूमने को।
क्यों जाते हैं नगर भर की धूल को चूमने को।
ये संकेताक्षर कठिन हैं गूढ़ भावों भरे हैं।
सीधी साधी यह परिक्रमा मूढ़ता के परे है।

(७)

आकृष्टा हो जिस नियम से भू सदा घूमती है-
संलग्ना हो जिस नियम से डालियाँ झूमती हैं-
गूढ़-ज्ञानी जनकपुर में हैं वही देखते ये,-
विश्वों की हैं द्रुत परिक्रमा-शृंखला पेखते ये

(८)

प्राची से, जो सुपथ, नृप का पश्चिमान्त-प्रदेश-
बाँधे है, ज्यों ललित दुलही प्रेम की गाँठ
शोभा में है अमित, वह है 'राजमार्ग' प्रसिद्ध,-
व्यापारी के सकल जिससे कार्य-व्यापार सिद्ध

(९)

सींचा जाता नित जल कणों से सदा राजमार्ग
मीठी मीठी कलित कलिका-गंध से पूर्ण मा
क्या ही शोभामय यह पुरी है विदेही अनंग-
मानो भू में अहह प्रकटी आन आकाश गंगा

(१०)

भारी भारी अतुल रथ से मार्ग है खूब पू
धीरे धीरे शकट चलते हैं किये भूमि चू
हस्त्यश्वों के विकट रव से गूँजती हैं अटा
शस्त्रास्त्रों की खर. चमक है याकि विद्युच्छटा

(११)

इन्द्रद्वारात् प्रसृत पथ है उत्तरीया दिशा
फैला यों ज्यों स्वरित रव हो मूर्छिता-सी निशा

देखो है "वामन सुपथ" की शान्त शोभा अखण्ड,
शिल्पी का है यह सुखद-सा शान्तिदा कीर्त्ति-दण्ड ।।

(१२)

स्योद्यानोमय यह पुरी शोभती यों अनूपा,
मानो कोई नवल तरुणी मोद मुग्धा सरूपा—
क्रीड़ोत्कण्ठामय चपलता की हठीली लरी-सी—
फूलों वाली हरित लतिका से सजी वल्लरी-सी ।।

(१३)

धीरे धीरे पवन बहती, गुल्म औ पुष्प नाना—
उद्ग्रीवी हो तरणिवर को चाहते हैं बुलाना ।
स्निग्धच्छायामय जगह से—नीड़ से—बोलते हैं—
पक्षी बैठे—मुखरित अहो माधुरी घोलते हैं ।।

(१४)

ले आये हैं सकल जग की स्नेह की ये पिटारी,
आ बैठे हैं जनकपुर की वाटिका में विहारी;
क्यों जाता है पथिक अब तू दूसरी ठौर? आ, रे—
सारे त्रेतायुग मधुर की माधुरी है यहाँ रे !

(१५)

डाली डाली मधुर स्वर से गूँजती है निराली;
मूर्च्छापूर्णाऽकुल झपकती आँख में है सुलाली ।
सद्यःस्नाता सदृश, टहनी, बिन्दुओं से भरी है,
मानो धीरा अचल वसुधा अर्घ्य लेके खड़ी है ।।

(१६)

तुष्टा हृष्टा जब चहकतीं पक्षियों की कतारें—
तो एकाकी झनक उठतीं कल्पना की सितारें ।
सारे वासी इस नगर के नादिता-गान-धारा—
की तानों में मुदित करते पुण्य सुस्नान प्यारा ।।

(१७)

क्यारी क्यारी मधुरस भरी यों सुहाती सलौनी,-
ज्यों होली के नवल दिन में रंजिता रंग लौनी—
श्रान्ता कान्ता, मधुरस भरी हो सुहाती सुरम्या ।
भू की भव्या सरस सुषमा स्पष्ट होती अगम्या ।।

(१८)

कुञ्जों कुञ्जों किरण-कर से, रीझ के अंशुमाली—
पा जाते हैं सुमृदुल जुही की वही ओष्ट-जाली;
फूली फूली विपिन भर में डोलती है चमेली,
मानो मुग्धा, श्वसुर-गृह में, आगई प्रेम बेली ।

(१९)

न्यारी न्यारी गुनगुन मयी तान झंकार पूरे—
ऐंठे से ये अलिगण सभी गान झंकार पूरे—
उन्मत्तों के सदृश फिरते बाग में लुब्ध यों हैं,
मानों योगी विरति-रस में लीन सम्मुग्ध ज्यों है ।

(२०)

चौड़े-चौड़े, सुखदगृह से, बाग़ में स्थान हैं ये—
मानों धारे थकित नरके शान्त-से प्राण हैं ये ।
माली माला ग्रथित करते हैं यहाँ मोहनी-सी,
स्नेहाकृष्टा विमल नवल ग्रीव में सोहनी-सी ।

(२१)

स्वच्छा वापी, विपुल जल से, प्रेम की गाँठ जोड़े,—
उत्पीड़ा से जनित भव की भ्रान्ति को दूर छोड़े,—
बैठी यों है जनकपुर की प्रीति से रीति जोड़े,
जैसी कोई अविचल सती नेह का वस्त्र ओढ़े ।

(२२)

आ जाती हैं पुरजन प्रिया नेह में ये पगी-सी,
गोरी बांहें अमल सुपटावेष्टिता हैं ठगी-सी;
मानों कोई लचक लतिका भक्ति के भाव धारे ।
पुष्पाविष्टा मुदित मन हो नाचती कुँज द्वारे ।।

(२३)

प्रातः सायं पुरजन यहाँ, भक्ति से वन्दना को,—
शान्तिः सेवी शमन करते चंचला स्पन्दना को—
आते हैं; ज्यों विकल बछड़े गाय के, रज्जु तोड़े—
दौड़े आते भव विभव का व्याधि सम्बन्ध छोड़े ।

(२४)

ये वापी, ये कमल सर, ये रम्य से कूप नाना,
कल्लोलों से कलित करते ग्राम्य के रूप नाना;

मानों सारी जनक नगरी प्रेम की जल्पना को
पानी द्वारा गदित करती कारुणी कल्पना को।

(२५)

ये देखो हैं जनकपुर की उच्च अट्टालिकायें;
शिल्प्यार्यों की स्वकर ग्रथिता ये बड़ी मालिकायें।
आंखें देखें इस विभव की आर्य आभा सलौनी।
मानी, रत्नारत, प्रिय, गुणी भूप की कीर्त्ति-छौनी।

(२६)

आर्यों के ये सुखदगृह हैं स्वच्छता के सुधाम;
स्निग्धा मन्दा सतत बहती वायु है अष्टयाम,
चौड़े वातायन सुभग से, झाँकते अंशुमाली,
चन्द्र-ज्योत्सना कलित कलिका डाल जाती निराली।

(२७)

पूता वेदी चतुर कर ने प्रांगणों में गढ़ी है—
मानों याञ्चा नत शिर किये हाथ जोड़े खड़ी है।
प्रार्थी नारीनर जब यहाँ बैठते आस पास,
नक्षत्रों का तब प्रकट हो दीखता भव्य रास।

(२८)

सामाजीय-प्रगति-रथ के जो यहाँ सारथी हैं—
पुण्यश्लोका गहन जिनकी पुण्यदा भारती है—
वे हैं सु-ब्राह्मण दृढ़व्रती धर्मधारी तपस्वी
योगाभ्यासी, विगत-कामा, तत्त्वदर्शी मनस्वी।

(२९)

लम्बे लम्बे सबल भुज से देश स्वातन्त्र्य प्यारा—
रक्खे हैं जो अभय बनके सींच हृद्-रक्त धारा।
वीरो में हैं मुकुटमणि वे क्षत्रियों के सु-भुण्ड,
छेत्ता हैं वे प्रखर असि से दस्युओं के नृ-मुण्ड।

(३०)

धन्वाधारी यदपि, फिर भी हैं न ये क्रूर दुष्ट,
धारे हैं ये निज हृदय में पूर्ण निर्लोभ तुष्ट,
सौम्यानिष्ठा इस दृढ़ सुहृदंश से यों बही है—
पाषाणों को, कलित सरणी, तोड़ के ज्यों गई है।

(३१)

व्यापारी हैं, कृषक वर हैं, वैश्य ये द्रव्य वाले,
लक्ष्मीसेवी, सकल जग के बाग़ को हैं संभाले।
ले ले आते शकट भरके दूर से वस्तु सारी
ज्यों फूलों से मधु, भ्रमर हैं खींचते हो सुखा

(३२)

ये वे हैं जो सतत रत हैं—पूज्य-सेवी बने हैं,
वृक्षों-पुष्पों सदृश नित सेवा रसों में सने हैं
देते हैं ये सकल जग को गूढ शिक्षा सुरम्य:
सेवा धर्मः परम गहनो योगिनामप्य गम्यः

(३३)

उत्फुल्ला हैं मृदुरस सनी हैं गृह स्वामिनी ये,
आर्य्या-भू का अमल धन हैं मञ्जुसी भामिनी
उत्संगों में सतत अपने देश की कीर्त्तिला
बैठाये ये नित कर रही हैं घरों में स्वराज

(३४)

सौन्दर्यों के अमिय-वन के आम्र की कोकि
कर्त्तव्यों के कठिन स्वर में तान को हैं मिलाये
वीरों के हृत्सर विमल की हैं निराली तरंगें,
वेदों के सुस्वर क्वणित की हैं अनूठी मृदं

(३५)

हो जाता है नगर इनके भी मुखों से प्रति
छा जाती है सुखद सुषमा, दूर होता अ
छाई मानों जनक पुर में ये नभो तारिकायें
आई हैं ये गलित करुणा से युता दारिकायें

(३६)

मातायें हो मुदित शिशु के खेल को जोहती हैं
मीठी मीठी सरस बतियाँ चित्त को मोहती
बाल-क्रीड़ा-मय भवन हैं सौख्य सौंदर्य-सि
आर्य्यों के हैं सदन शिरसा बाल शोभाभि

(३७)

शिक्षा पाते सु-गुरुकुल में देश के ये कुमा
कैसा छाया सघन घन-सा शिक्षकों का दु

गुर्वाणी की यह बह रही वत्सला प्रीतिधार—
ज्ञानाकांक्षी पुर नगर के बाल आये अपार ।

(३८)

ऋग्वेदीय स्वरित रव से पूर्ण है सु-प्रदेश
वेदाङ्गों के जटिल विषयों की कथा है विशेष
विद्यार्थी की स्फुटित रसना संस्कृता हो रही है,
ग्रन्थों की सुदृढ़ अथवा शृंखला खो रही है

(३९)

बैठे हैं यों गुरुजन यहाँ ब्रह्मचर्याश्रमों में;
छाई हो ज्यों जल-घन-घटा रामगिर्य्याश्रमों में ।
छोटे छोटे विमल बटु हैं चातकों की कतारें—
बूँदों बूँदों शमन करती प्यास हैं ज्ञान धारे ।

(४०)

आओ देखें अब जनक के राज्य के सूत्र नाना ।
ताके हैं जो जनपद महा—रूप धारे विताना ।
राज-प्रासाद निकट महा मन्त्रणागार दिव्य,
सामन्तों से, विबुध जन से हो रहा पूर्ण भव्य ।

(४१)

श्रीमान् मन्त्री गण सकल हैं कार्य में पूर्ण दक्ष—
निस्वार्थी हैं सतत रखते राज्य सेवा समक्ष;
धर्म-प्राणा सबल जनता की मनोकामनायें ।
होतीं पूरी सकल सुप्रजा की मनोभावनायें ।।

(४२)

तेजस्वी से सुजन पद का युद्ध सेना विभाग—
जैसा तीव्र प्रखरतम है मूर्त्ति-मान्-सा निदाघ—
जो वैरी के सजल सर को सोखता है नितान्त,
आर्यों का है विमल धवला कीर्ति का मंजुकान्त ।

(४३)

हैं अध्यक्ष प्रमुख इसके विग्रहों में यशस्वी—
धारे हैं वे सचिव-पद को, धीर हैं वे मनस्वी ।
युद्धों में वे सतत रखते धर्म को हैं समक्ष,
'जै' की मधुर ध्वनि हो पक्ष में या विपक्ष ।

(४४)

मन्त्री संज्ञा परिचित किये है जिन्हें, वीतराग,—
हैं धारे जो निपुण कर में सन्धिवाला विभाग,–
वे ये मन्त्री सचिव वर के संग यों सोहते हैं;
जैसे सन्ध्या जल-कण, शिरस्त्राण को मोहते हैं ।

(४५)

साम्राज्यान्तर्गत विषय को देखते हैं अमात्य,
औदीच्यों की सकल सुविधा, ग्राम्य ये दक्षिणात्य--
पौर्वात्यों के नगर वन औ पश्चिमी वीथियाँ ये,
सारी बातें, द्रुत सुलझतीं गूढ़-सी गुत्थियाँ ये ।

(४६)

राज्य-श्री को निरत चित से गोवते हैं सुमन्त्र,—
निस्वार्थी हैं नित यह चलाते अहो राजतन्त्र—
मानो विश्वम्भर सजग हो पोषते हैं सुविश्व—
श्री लक्ष्मी से सतत नित संतोषते हैं सुविश्व ।

(४७)

त्रेता की है परम महती कीर्त्ति-गाथा अपार;
जावेगी तू कब तक कहाँ कल्पने हे ! असार,
भूली भूली अब तक फिरी है कहाँ से कहाँ तू ?
क्यों आई थी इस नगर में ? डोलती क्यों यहाँ तू ?

(४८)

तूने मुग्धे अब तक न खोजा निज स्वामिनी को,
ए री बौरी हृदय-नभ में क्यों भरा यामिनी को ?
मारी मारी न फिर अब तू चंचले, आ, चलें री—
राज-प्रासाद मधुमय के अञ्चले आ, चलें री ।

(४९)

ऊँचे ऊँचे शिखरवर ये शोभते हैं निराले;
या सोने के शुभ कलश हैं चाँदनी में सुढाले;
सिंह द्वारे सजकर खड़े अस्त्रधारी सुवीर—
क्षत्राणी के सजग-सुत ये युद्ध के शूर वीर;

(५०)

शिल्पी का हाँ यह महल है चातुरी का निशान,
आर्य्यावर्त्तीय सुचतुरता का अनोखा वितान;

भोगों का सम्पुट यह बना नेह का नव्य हार;
योगी की है यह गिरि गुहा ज्ञान का पुण्य द्वार।

(५१)

जीवन्मुक्त प्रखर नृप के योग की तीव्र धारा—
स्नेहाविष्टा यह बह रही यों अनूठी अपारा—
ज्यों सूखे से तरुवर महाऽश्वत्थ की एक डाली -
पत्राविष्टा नवल ऋतु में झूमती हो निराली !

(५२)

ऐसी पुण्या मधु-सुरभि में कल्पने जायगी तू,
तेरी आशा नवल लतिका हाँ हरी पायगी तू,
माला गूँथे मत सुमन की;—साज कैसे सजेंगे।
पावेगी जो मृदु चरण तो फूल तेरे लजेंगे।

× × × ×

प्यारे चरण मङ्गल करण
आ रही है कल्पना मेरी तुम्हारे शरण
प्यारे चरण मङ्गल करण

(क्रमशः)

—"नव

देश में क्रान्ति क्यों होगी ?

इधर साइमन-कमीशन के बहिष्कार और बारडोली-सत्याग्रह-संग्राम की विजय से देश की राजनैतिक प्रगति में एक नया कम्पन पैदा हुआ है। इस समय देश के वे लोग भी जो नौकरशाही की मशीन के पुर्जे रह चुके हैं, सीधे वार की नीति की दाद दे रहे हैं। कुछ लोगों के अतिरिक्त, देश भर ने एक स्वर से साइमन-कमीशन का बाहिष्कार किया है। चारो ओर से बारडोली के सत्याग्रह-संग्राम की विजय पर हर्ष-ध्वनि हो रही है। भारत-सरकार के भूतपूर्व लॉ मेम्बर डाक्टर सप्रू और युक्त-प्रान्त के भूतपूर्व मिनिस्टर श्री चिन्तामणि तक ने बारडोली-युद्ध को न्यायोचित ठहरा कर उसका समर्थन किया है। सचमुच बारडोली की यह विजय इस देश के इतिहास की एक चीज़ होगी। इस विजय में इस पराधीन देश के लिए वह सञ्जीवन-सन्देश निहित है, जिस के सहारे यह फिर से स्वाधीन होकर दुनिया में अपना मस्तक ऊँचा कर सकेगा।

इस देश के शासक अपनी अलग उधेड़-बुन में हैं। उनका साइमन-कमीशन इस देश का भाग्य-निर्णय करने का 'अपनाकाम' करने के लिए फिर आगया है। कमीशन क्या करेगा, इसका अन्दाज़ लगाना बहुत आसान है। जो लोग अंग्रेज़ी शासन की पिछली डेढ़ सौ वर्षों की गति-विधि का अध्ययन कर चुके हैं, वे, तथा देश के अन्य समझदार इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि साइमन का चक्र एक ढकोसला है। यह कुछ करेगा-धरेगा सुधारों के रूप में दो-चार टुकड़े डाल कर देश के बन्दरों की तरह लड़ा देना कमीशन के लिए बहुत बात है। अब तक इस देश में कितने ही रॉयल आ चुके हैं। परन्तु, उन सब ने क्या किया ? क्या कमीशन से देश को विशेष लाभ हुआ ? लाभ की कमीशनों के सफ़र-ख़र्च में देश का जो लाखों दिया गया उससे और हानि ही हुई।

शासकों की राजनीति ख़ुद एक मायाजाल है बड़े लोग इसके भुलावे में पड़ जाते हैं। इस देश के देश के भले के नाम पर, कभी यहाँ मार्ले-मिण्टो स्कीम हैं, कभी मांटेगू-चेम्सफ़ोर्ड स्कीम। जब एक स्कीम सिद्ध होती है तब तुरन्त ही नई स्कीम बन देश को चिरकाल तक ग़ुलाम बनाये रखने का बढ़िया नुसख़ा है। न लोग इस मायाजाल से और न वे अपनी ग़ुलामी की जंजीर तोड़ कर देवी के दर्शन कर सकेंगे। यदि लोग ज्यादा तो देश के विधाता किसी तरह कुछ दे-दिला

होंगी । मतलब यह है कि शासक लोग अपना वश चलते देश के लोगों को अंग्रेज़ी शासन के माया-जाल से पार होने देंगी ।

परन्तु, दुनिया में परिवर्तन की वायु सनसना रही है। भविष्य में परिवर्तन की यह वायु एक बड़ी प्रबल के रूपमें परिणत होने को है। पराधीन भारत इस धी की लहर से अछूता न रह सकेगा। तब शासकों का जाल कुछ काम न करेगा। वह निकम्मा साबित होगा। कि इस देश के लोग दिन पर दिन जागृत हो रहे हैं। कमीशन के सुधारों के रूप में दान की तरह दिये कुछ टुकड़े उन्हें अपने मुख्य लक्ष्य से विचलित नहीं सकते।

सन् १९२४ में स्वराजी नेता पण्डित मोतीलाल नेहरू बड़ी धारा-सभा में जो माँग पेश की थी, वह इस के लोगों की कम-से-कम माँग थी। आज देश के सर्व म्मेलन ने स्वराज-शासन-विधान का एक मसौदा या है।*

परन्तु, प्रश्न यह है कि क्या इस देश के भाग्य-विधाता प्रकार 'राजनैतिक अधिकार और शासन की ज़िम्मेदारी ड के लोगों के हाथ से इस देश के लोगों के हाथ में को तैयार हैं?' क्या सचमुच इस विधान के अनुसार तमान द्वैध शासन की ऐसी 'दोगली प्रणाली' (Hybrid em) का अन्त कर देने के लिए तैयार हैं? यदि नहीं, तो इस देश के लोग क्या करें? यह प्रश्न है, जो इस के राजनीतिज्ञों तथा राष्ट्रीय जीवन के कर्णधारों और हारिक रूप से देश की राजनीति में भाग लेने वालों करना है। देश इस प्रश्न को कैसे हल करेगा, यह आने वाला समय बतावेगा।

जो लोग अत्यन्त गर्म विचार रखते हैं, और जिन्होंने जान हथेली पर रख कर देश में पूर्ण स्वतंत्रता न करने का, असिधाराव्रत ले रक्खा है वे सर्व-दल न के काग़ज़ी विधान से, या औपनिवेशिक स्वराज्य के मसौदे से सन्तुष्ट नहीं हो सकते। देशकी राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस ने देश के सामने पूर्ण स्वतंत्रता का आदर्श रक्खा है। देश का बहुमत इसके साथ है। ऐसी दशा में यह निश्चय है कि देश केवल औपनिवेशिक स्वराज्य से सन्तुष्ट नहीं हो सकता। किन्तु औपनिवेशिक स्वराज्य को लेकर आगे कदम बढ़ाने में भी कोई हानि नहीं, इसलिए शायद इस प्रश्न पर गरम और नरम सभी दलों के लोग अन्त तक एक बने रहें। वैसे पं० जवाहरलाल नेहरू के द्वारा 'स्वाधीनता-संघ' की स्थापना तो हो ही गई है और श्री सुभास बोस तथा श्री श्रीनिवास आयंगर भी औपनिवेशिक स्वराज्य के ध्येय के विरुद्ध ज़ोरों से स्वाधीनता का आन्दोलन कर रहे हैं। अस्तु।

उत्तरदायी शासन की माँग पर बड़ी धारा सभा में तथा समय-समय पर विभिन्न प्रान्तीय कौंसिलों में शासकों का जो ढंग रहा है, उससे स्पष्ट है कि शासकों का औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग को स्वीकार कर लेना आसान नहीं है। बारडोली के सत्याग्रह के समय इस देश से हजारों मील दूर बैठे हुए सहकारी भारत मंत्री अर्लविण्टरटन महाशय ने आन्दोलन को कुचल डालने एवं शान्ति और व्यवस्था के नाम पर आन्दोलन-कारियों को हर तरह से पीस डालने की कैसी धमकी दी थी? उस में मदोन्मत्त सत्ताधारियों की निरंकुशता और एकतंत्र शासन के उपहास-जनक त्रास की कैसी कारुणिक झलक थी! सच तो यह है कि जिनके हाथों में सत्ता है, जो सबल हैं, हिन्दुस्थान ऐसे विशाल देश के शासक हैं, वे इस देश की प्रजा के सहयोग से देश पर शासन नहीं कर रहे हैं। उन्हें अपनी शक्ति का गर्व है। उन्हें अपनी संघटित और सुव्यवस्थित पल्टन, जंगी जहाजों, और बड़े-बड़े लड़ाकू हवाई जहाज़ों पर भरोसा है। इसीसे वे कौंसिलों में जनता के प्रतिनिधियों की बात-बात में अवहेलना करते हैं। कौंसिलों का खिलवाड़ तो उन्होंने इस देश के पढ़े लिखे लोगों को अपने मायाजाल में फँसाये रखने लिए रचा है। यह बात महात्मा गान्धी प्रारम्भ से ही कहते आ रहे हैं। किन्तु, अब कौंसिलों में स्वराजियों के संघर्ष से यह बात प्रत्यक्ष हो गई है। नहीं तो, जब देश के प्रतिनिधियों ने साइमन कमीशन के बहि-

---

* इसका परिचय यथासमय 'त्यागभूमि' में निकल है। (देखिए, प्रथम वर्ष का १२ वाँ अंश)। संपादक

ष्कार का प्रस्ताव पास कर दिया, और उसका सफ़र-खर्च नामंजूर कर दिया, फिर इस देश की सरकार ने उनकी बात को क्यों ठुकरा दिया ? और जब देश भर में साइमन-कमीशन का पूरा बहिष्कार हो चुका है, फिर भी, कमीशन अपना काम क्यों कर रहा है ? इसीलिए न, कि वे शासक हैं और हम शासित ? वे संघर्ष की दृष्टि से शक्तिशाली हैं, और हम अशक्त। हम उनसे लड़ाई नहीं लड़ सकते; इसलिए देश के शासक हमारी पर्वाह नहीं करेंगे। हम चारों ओर से सायमन-कमीशन का बहिष्कार भले ही करें, किन्तु वे इस दलित देश के भले के नाम पर सायमन-कमीशन से अपना काम करावेंगे, और हमारी अयोग्यता का ढिंढोरा पीट कर दुनिया को धोखा देंगे ! खूब !

अनेक योद्धाओं के बलिदान, और तिलक, दास, गान्धी ऐसे युग-प्रवर्तक नेताओं की ज्वलन्त कृतियों से, आज इस देश में इतना राजनैतिक जीवन है कि साधारण आदमी तक देश की हीन दशा से दुःखी हैं, और फिर, शासकों के ज़ुल्म-ज्यादतियों से भरे कारनामों ने देश के मामूली आदमियों तक को विवश कर दिया है, इस बात के लिए कि वे यथाशक्ति वर्तमान शासन को मशीन से सङ्घर्ष करें, और करोड़ों दीन-दलित प्राणियों को उस दमन की भट्टी से बचाने का यत्न करें, जिसमें वे आज भुने जा रहे हैं। वर्तमान शासन-यंत्र का एक छोटे-से-छोटा पुर्ज़ा यदि देश की ग़रीब जनता पर ज़ुल्म करता है, तो नीचे से उपर तक सारी मशीन उसकी तरफ़दारी करती है और उस अन्याय और जुल्म पर पर्दा डालने का भरसक प्रयत्न करती है, जिसके कि ग़रीब आदमी शिकार होते हैं। एक मामूली थानेदार देहात के हज़ारों आदमियों पर जुल्म करता है, और जब, अदालत में किसी तरह उन जुल्मों पर प्रकाश डालकर इन्साफ़ की प्रार्थना की जाती है, तब कहा जाता है कि जुल्म हुए ही नहीं। यदि किसी तरह छोटी अदालत के फ़ैसले पर हाईकोर्ट में अपील की जाती है, और हाईकोर्ट मामले की पेचीदगी अनुभव कर-के उस थानेदार की कलुषित कृतियों की जांच के लिए हुक्म दे देता है, तो भी होता कुछ नहीं। कौंसिल में इस मामले को लेकर चिल्ला-पुकार मचाई जाती है, तब गवर्नर साहब तक अपने तानाशाही ढंग से उस थानेदार की हिमायत करते नज़र आते हैं। हाईकोर्ट अपने फ़ैसले तक वापस ले है, और उस थानेदार का बाल तक बाँका नहीं होता, ख़िलाफ़ सैकड़ों ही देहातियों की शिकायत है। यह जिसमें वर्तमान शासन का चक्र काम कर रहा है।

वर्तमान शासन-चक्र में इस प्रकार का अंधे है ? दिन-दहाड़े इस प्रकार की ज्यादतियाँ क्यों होतीं आदि प्रश्नों का जवाब देश के बने हुए भाग्य-विधा को तैयार नहीं। स्वराजी लोग सरकारी धांधली की करते हुए कौंसिल-भवन छोड़ कर भले ही चले आवें, काले कारनामों की निन्दा में सरकार पर लानत का पेश करने की इजाज़त उन्हें नहीं दी जा सकती। ऊपर सरकार लानत का प्रस्ताव करने की इजाज़त क्यों देगी ? आज इस निकम्मे द्वैध शासन में गवर्न उसकी कार्यकारिणी कौंसिल जनता के निर्वाचित सामने उत्तरदायी नहीं है। इसलिए सरकारी पुर्जों की क्रूर कृतियों पर कोई नियंत्रण निरंकुशता और स्वेच्छाचारिता का अखण्ड रा इस देश के 'खुदाई ठेकेदार' स्वच्छन्दता से जो वही करते हैं।

इस दशा में संघर्ष अनिवार्य्य है। शासकों और के बीच बड़ा भारी संघर्ष होगा। उसकी ज़िम्मेदारी पर होगी। इसलिए कि डेढ़ सौ वर्ष के अंग्रेज़ी राज देश की जनता बहुत तबाह हो गई है। करोड़ों को पेट-भर अन्न नहीं मिलता। रेल और क़ानून की के कारण इस देश के राज-प्रसादों से लेकर किसानों ड़ियों तक में गोरे व्यापारियों की सत्ता है। इस देश इतने पंगु हो गये हैं कि अपना शरीर ढाँपने तक विदेशियों का मुँह ताकते हैं। रेल, तार का प्रचलन देश के धन-धान्य का शोषण कर, इंग्लैण्ड को समृ बना देने के लिए ही किया गया है। को स्वीकार करते हुए, श्रीमती बेसेण्ट ने हाल ही अपने एक भाषण में कहा था कि भारत के निवासी में सब से ज्यादा गरीब हैं। इस देश के ६० फ़ी को मामूली से भी कम खाना मिलता है। इस अर्थ यह है कि देश के आधे से भी अधिक

नहीं कर पाते। केवल वर्तमान शासन ही देश की इस दशा के लिए ज़िम्मेदार है। क्या देश के वर्तमान अपनी उस 'खुदाई ठेकेदारों' की ज़िम्मेदारी से तरह भी बरी हो सकते हैं, जिसके कारण यह देश दलित और परावलम्बी हो गया? असल बात यह अंग्रेज़ों का पहला काम सब उपनिवेशों, ख़ास कर स्थान, में यह रहा है कि यहाँ के बाज़ारों में इंग्लैण्ड अधिक-से-अधिक माल की खपत का प्रबन्ध करें। फिर उनके इस ढंग से कोई देश तबाह क्यों न हो जाय। वर्तमान शासन प्रत्येक दशा में अपना लाभ देखता है। दूषित नीति और शासन-यंत्र के पुर्ज़ों के कारनामों से जनता का सर्वनाश होता है, ख्याल कौन करता है? यही कारण है कि अब गिरे लोगों में भी उठने का भाव पैदा हो रहा है। पराधीन भी अब स्वतंत्रता की सुरभित समीर के आनन्द में मस्त होकर झूम उठने के लिए तड़प उठा है। उसकी इस चेतना में, उसकी इस बेक़रारी में, देश के उत्थान की, आशा की एक नई किरण झलकती है।

इस देश के करोड़ों प्राणी दुनिया में इन्सान की तरह ज़िन्दा रहने के लिए उठेंगे। उनका उठना सत्ताधारियों को अखरेगा। इसके फल-स्वरूप संघर्ष होगा। सशस्त्र एवं शक्तिशाली शासकों और निहत्थी एवं निर्बल जनता का मुक़ाबला होगा। निर्बलों के उस असीम बल के अधार पर जिसका अनुभव और प्रयोग डेढ़ पसली के एक लँगोटी-धारी तपस्वी ने किया है, समस्त देश में मदोन्मत्त सत्ता-धारियों से लड़ाई लड़ी जायगी। उस लड़ाई के रूप में देश के रण-प्राङ्गण में एक ऐसी महाक्रान्ति की ज्वाला धधकेगी, जो वर्तमान शासन और उसके भाग्य-विधाताओं की निरंकुश सत्ता को भस्मीभूत कर देगी।

सुरेन्द्र शर्मा

पंखड़ियां

आकाश के तारे चुनकर प्रसूनमाला बनाऊँ समुद्र का गम्भीर गीत तेरे लिए गाऊँ? की सुन्दरता तेरे पाद-पंकजों में अर्पण करूँ प्रभाकर की दिव्य प्रभा का दीपक तेरे सम्मुख हे देव! तेरी अर्चना के लिए मैं क्या भेंट धरूँ?

× × ×

मैंने आज हृदय-यज्ञ का प्रारम्भ किया है। इस में जीवन की कटुता और अज्ञान की आहुतियाँ हूँ। जगत् के सब बैर आदि इसमें भस्म करता परन्तु, हे प्रभो! यज्ञ कराने वाला कोई आचार्य मिलता। उस पद के लिए हे देव, तू किसको है?

× × ×

रात्रि के समय आकाश-गंगा में यह कौन नहा है? किसके प्रभाव का तेज हृदय में गिर रहा किसके आदेश से यह नक्षत्रमाला घूम रही है?

जहाँ-जहाँ जीवन में व्यर्थ बकवाद है वहाँ-वहाँ चारित्र्य की कमी है। तो फिर मैं मौन की साधना क्यों न कर लूँ?

× × ×

सागर से भी अधिक गम्भीर तथा कुसुमों से भी कोमल और मनोहर तेरी मूर्ति का जब मैं शान्त और शीतल निशा में तारों के मन्द-मन्द प्रकाश में देखता हूँ—तब हृदय में जो आनन्द आता है उसे किसके आगे जाकर कहूँ?

× × ×

लोग मुझको आलसी कहते हैं। पर उनको क्या पता है कि सम्पूर्ण दिवस तुझे स्मरण करने में ही मेरा यह मानस व्यग्र रहा करता है।

"विजय"

रूसी किसान और ज़मीन

['त्यागभूमि' के लिए]

सोवियट यूनियन में मास्को का अपना प्रधान स्थान है। वह रूस को नियंत्रित करता और दुनिया के दूसरे देशों पर भी अपनी छाया डालता है। लेकिन मास्को, लेनिनग्राड आदि नगर ग्रामों के सागर में इने गिने द्वीप जैसे हैं। क्योंकि भारत की भाँति रूस भी ग्रामीण और कृषक देश है। उसकी आबादी का ८० प्रति सैकड़ा देहात में रहता और उसकी कार्यशील जनता के ७५ प्रतिशत आदमी खेती के काम में लगे रहते हैं।

देश को औद्योगिक बनाने के लिए कितने ही उद्योग किये गये हैं; अनेक साधनों का उपयोग होता रहा है, फिर भी अभी बहुत दिनों तक रूस का कृषि-प्रधान देश बने रहना निश्चित है। अतः रूस को समझने के लिए हमें उसके गावों की ओर जाना और वहाँ के किसान को काम करते देखना चाहिए। सोवियट शासन के हानि-लाभ का अन्दाज़ लगाने के लिए हमें उस परिवर्त्तन पर ध्यान देना पड़ेगा जो क्रांति के बाद रूस के किसानों में आज दिखाई दे रहा है।

किन्तु, देश की विशालता इस तरह की खोज को कठिनतर बना देती है। परिस्थितियाँ बहुरंगी हैं; जो बात मास्को के निकटवर्ती ग्रामों के सम्बन्ध में सच है वह उसके सुदूरवर्ती गावों के लिए नितान्त असत्य भी हो सकती है। कोई एक-दो साल पहले रूस में एक समाचार छपा था, जिससे मालूम हुआ कि साइबेरिया के जंगलों में खोजी पर्यटकों की एक टुकड़ी को एकाएक १,५०० लोगों की ऐसी बस्ती का पता चला था जो शेष दुनिया से एकदम अलग,-सम्बन्ध-हीन से हो गये थे। उन्हें न तो महायुद्ध का कुछ पता था और न रूस की राज्य-क्रान्ति का ही कुछ ज्ञान था। वे ज़ार को ही अपना राजा माने बैठे थे। यद्यपि यह संवाद लेनिनग्राड के एक समाचार पत्र में प्रकाशित हुआ था तथापि इस पर एकाएक विश्वास नहीं होता। किन्तु चाहे यह कल्पित हो वा अत्युक्ति-पूर्ण हो, इससे हमें सोवियट-यूनियन की परिस्थिति की विभिन्नता का थोड़ा बहुत पता अवश्य चलता है।

यह तो दुनिया जानती है कि रूस में कुछ काल तक गुलामी की प्रथा का अस्तित्व था। गुलामों को मुक्त करने वाले अन्तिम घोषणा-पत्र पर सन् १८६ छाप है। इस समय तक रूस की कुल छः करोड़ से लगभग ५ करोड़ स्त्री-पुरुष एक-न-एक तरह के थे। इनमें से कुछ तो राज्य-भूमि पर, कुछ राज ज़मींदारी पर और कुछ साधारण ज़मींदारों के यहाँ करते थे। गुलामी के दिनों में, रूस में, मालिकों को पर हर तरह का क़ानूनी अधिकार प्राप्त था; वे उनसे काम ले सकते थे और कोड़ों, तथा घूसों से उन्हें सज़ा क्षमता रखते थे। मालिक, आज्ञा न मानने वाले गु साइबेरिया में निर्वासित भी कर सकता था।

गुलामों के उद्धार के बाद भी कष्टों से विशे न मिली। उनके पास प्रायः ज़मीन थोड़ी ही होती वह भी अच्छी नहीं; गाँव का गाँव पुराने ज़मींदा चुकाये जाने वाले ज़मीन के दाम वा लगान के बोझ रहता। ज़मीन ख़रीदने के लिए सरकार लोगों को देती थी; फिर भी बोझ बना ही रहा। इस नये सबसे अधिक लाभ तो ज़मींदारों का ही हुआ तो उन्हें रुपये नक़द मिलने लगे; दूसरे उनकी सब मिट गईं।

इसके बाद शीघ्र ही, देहात में क्रान्तिकारी का आरम्भ किया गया परन्तु लोगों ने जैसा चा इसे नहीं अपनाया। भारत की भांति ही, रूस का भी स्वतन्त्रता के अनिश्चित विचारों को न तो और न उनकी दाद ही दे सका। उसे तो अच्छी थोड़ा लगान और अत्याचारों से रक्षा की ज़रूरत यही चाहता था। इस काल के प्रसिद्ध रूसी उप की कहानियों से हमें पता चलता है कि किस तरह किसान, युवा क्रान्तिकारियों में अविश्वास रख सन्देह की दृष्टि से देखते, और कभी-कभी पकड़ कर के हवाले तक कर देते थे।

रूस-जापान युद्ध के बाद किसान, एकदम विद्रोहोन्मुख ठे और अनेक स्थानों पर अशांति एवं अव्यवस्था का क जम गया। उनका का दमन किया गया, लेकिन वे दबाये न जा सके और उन्होंने 'किसान-संघ' नामक स्था संघटित कर ली और 'ज़मीन पर काम करने वाले ज़मीन के मालिक हैं' की आवाज़ के साथ अधिकार-प्राप्ति लिए प्रयत्न करने लगे।

अपने इस संघटन में किसानों को गावों की प्राचीन थाओं—'मीरों'—से खूब सहायता मिली। ये 'मीर' ऊँचे तंत्र के सिद्धान्तों पर स्थापित पंचायतें थीं; जो बहुधा ट रूप में अपने अधिवेशन करतीं और ग्राम की स्थानीय स्याओं पर विचार करती थीं। कभी-कभी इनकी अपनी म्मिलित ज़मीन होती थी जिसे ये बाँट दिया करती थीं। मीरों की प्रथा उठ जाने के बाद 'ज़ेम्सटिओस' नामक क संघटित और नियमित (Formal) स्थानीय याएँ भी बनीं। चूँकि इनमें चुने जाने और इनके चुनाव ट देने के लिए उम्मीदवार और मतदाता के पास जाय-का होना एक आवश्यक शर्त थी अतएव इसका फल हुआ कि इनमें भी ज़मींदारों का ही प्रभाव विशेष। कार्य और परिस्थिति की दृष्टि से इनकी तुलना हम के वर्तमान ज़िला बोर्डों से कर सकते हैं।

युद्ध से किसानों को गहरी चोट पहुँची। सेना ने अच्छे आदमी हड़प लिये और कहा जाता है कि उन लाख आदमी युद्ध में मारे गये या घायल हुए। ने और बिना जुते पड़े रहे और जहाँ लोगों ने वर्षों के के बाद घने जंगलों को काट-काट कर जगह निकाली वहाँ फिर जंगल खड़े हो गये और पीढ़ियों की मेहनत पानी फिर गया। जनता में विचित्र शक्तियाँ फैलने लोग 'शान्ति और ज़मीन' के लिए अपनी आवाज़ ज़ोर से बुलन्द करने लगे और नगर-निवासियों ने न्ति एवं ज़मीन' के साथ 'रोटी' को और भी जोड़ दिया। क्रान्ति के आरंभिक दिनों में किसान, बोल्शेविकों से रहे। लेकिन किसान-जनता की मदद के अभाव शेविज़म की हार निश्चित थी। आख़िर लेनिन ने किसान जनता को अपनी ओर मिला लिया। लेकिन इसके पहले ही किसानों ने कानून को अपने हाथ में ले लिया था, ज़मींदारों की छीन ज़मीन ली थी और खुद उस ज़मीन के मालिक बन बैठे थे।

इसके बाद ही विदेशी रुपयों और गोला बारूद की सहायता से कुछ स्वार्थी व्यक्तियों के समूह ने सोवियट सरकार पर हमला कर देश में गृह-कलह फैला दिया। यह किसानों की कठिनतम परीक्षा का समय था। कठोर कष्ट-सहन और घोर परिश्रम के बाद प्राप्त ज़मीन के फिर छिन जाने के भय से रूसी किसान सोवियट सरकार के झण्डे के नीचे एकत्र हो गये और सच पूछिए तो इन्हीं लोगों की मदद पाकर सोवियट सरकार विजयी हुई। लेकिन युद्ध के बाद ही देश में भयंकर अकाल और महामारी फैल गई। इन्हीं भीषण, नाशकारी दृश्यों की भित्ति पर देश को फिर से संघटित करने का सच्चा काम शुरू हुआ।

सोवियट सरकार की प्रारंभिक आज्ञायें ज़मीन के राष्ट्रीयकरण के सम्बन्ध में थीं। किसी भी तरह ज़मीन "न तो ख़रीदी, बेची और केराये पर उठाई जा सकती थी और न ज़मानत के रूप में बन्धक रखी अथवा छीनी जा सकती थी।" "लिंग-भेद का ख्याल न रखते हुए ज़मीन के उपभोग का अधिकार सरकार के उन सब नागरिकों को दिया जाता है जो या तो खुद अपने कुटुम्बों की सहायता से ज़मीन पर काम करना चाहते हैं, या किसी संघ अथवा समिति में शामिल होकर। जब तक वे इस तरह काम करने में समर्थ हैं तभी तक उन्हें यह अधिकार भी प्राप्त है। दूसरों से केराये पर मज़दूरी कराना ग़ैर-क़ानूनी है।" इस तरह किसानों को ज़मीन मिल गई; ज़मीन पर के कर्ज़ से वे मुक्त हुए और ज़मींदारों को वार्षिक लगान देने से छूटे। कुछ बड़े भू-भाग सरकार ने खुद ले लिए और उन्हें आदर्श-खेतों (मॉडल फार्म) का रूप दिया। किसानों में ज़मीन का बँटवारा करने का कार्य ग्राम-संस्थाओं (Communes) को सौंपा गया।

ग्राम-संस्थाओं के ज़मीन पर अधिकार की पुरानी प्रथा ने ज़मीन के राष्ट्रीयकरण में अधिक सहायता की, उसे सरलतर बना दिया। अक्सर यह होता था कि किसान खेतों से बहुत दूर रहते थे, अतः फ़सल के दिनों में काम करने के लिए उन्हें खेतों पर आना पड़ता था। गर्मी के दिनों में स्त्रियाँ

भी खेतों के काम में हाथ बँटाती हैं। जाड़े के दिनों में वे घर पर रहकर कताई बुनाई, और सिलाई आदि के कामों में लगी रहती हैं।

शुरू-शुरू की सरकारी आज्ञाओं ने ज़मीन के उपभोग को, हस्तान्तरित करने के अधिकार से हीन क़रार दिया था। फिर भी ग़ैर-क़ानूनी तौर से ज़मीन केराये पर देने की चाल चल पड़ी। इस प्रथा का परिणाम यह हुआ कि १९२२ ई० में यह क़ानून बदल दिया गया और एक निश्चित लघु समय के लिए ज़मीन को केराये पर उठाना विहित बन गया। केराये की मज़दूरी ग़ैर-क़ानूनी बनी रही। इससे भी लोगों के कष्टों का पूर्णतः अन्त न हुआ, क्योंकि अधिकांश कुटुम्बों के पास अपने घोड़े या दूसरे जानवर न थे, जिससे वे काम ले सकें। अतः १९२६ ई० में एक और सुधार किया गया। ज़मीन को केराये पर—लगान पर—देने का समय बढ़ा दिया गया और कुछ ख़ास-ख़ास शर्तों पर ऐसी ज़मीन पर मज़दूरी से काम लेना भी विहित हो गया। शर्तें ये थीं—लगान पर दिये जाने वाले सब पट्टे स्थानीय अधिकारियों के यहाँ रजिस्टर्ड होने चाहिएँ। लगानदार के कुटुम्ब के सब काम करने वाले सदस्यों को ली हुई ज़मीन पर काम करना चाहिए—हाँ, अपनी मदद के लिए वे मज़दूर रख सकते हैं। भोजन और वासस्थान (Lodging) की दृष्टि से मज़दूरों के साथ कुटुम्ब के आदमियों के समान ही व्यवहार होना चाहिए। ज़मीन को लगान पर उठाने और मज़दूर रखने के सम्बन्ध में और भी कई शर्तें हैं।

किसान, सरकार को केवल एक कर देता है और वह कर कृषक-कर (Agriculturul tax) है। इसकी व्यवस्था इस तरह की गई है की धनी किसान को न केवल अनुपात ज्यादा देना पड़ता है बल्कि उसके लिए बढ़ती हुई कर की दर का नियम भी लागू होता है। दूसरी ओर ग़रीब किसानों का एक बड़ा भाग कर के बोझ से सर्वथा मुक्त कर दिया गया है क्योंकि उनकी आय बहुत थोड़ी और उनका रहन-सहन बहुत ही हलके दर्जे का है; कर के द्वारा इस 'थोड़े में थोड़ा' करना ठीक नहीं समझा गया। इस तरह ये लोग ज़मीन का उपभोग बिना कुछ दिये ही करते हैं। गत वर्ष तक कर-मुक्त लोगों की संख्या कृषि-योग्य खेतों की एक चौथाई के बराबर थी। क्रान्ति के दसवें वार्षिक अवसर पर सरकार ने इस छूट में १० प्रतिशत और की घोषणा की है। साथ ही एक प्रस्ताव द्वारा ग़रीब के वृद्ध किसानों को सरकार की ओर से पेन्शन बात भी कही गई थी।

रूस आर्थिक दृष्टि से बहुत ग़रीब है और उसे कृषि-सुधार एवं औद्योगिक विस्तार के लिए जितनी ज़रूरत है उतनी किसी चीज़ की नहीं। इस पैसे की माँग के रहते हुए भी कर-मुक्ति (Tax-exem की तादाद में वृद्धि करना निःसन्देह आश्चर्य-कारक है। १९२६ में साम्यवादी-दल की महासभा ने किस केवल कर-दाता मानने से इन्कार कर दिया था। कहना था कि अत्यधिक कर और फुटकर चीज़ों के कारण गाँवों की उत्पादन-शक्ति का अनिवार्य ह्रास उसकी उन्नति रुकेगी और कृषि-योग्य वस्तुयें घटेंगी।

सन् १९२४-२५ ई० में प्रत्येक किसान-कुटुम्ब को १४.२ रूबल कर देना पड़ता था; १९२५-२६ में रूबल और १९२६-२७ में ११.९ हो गया। ÷ कर जोतने-बोने योग्य ज़मीन का क्षेत्रफल होता है। कु आदमियों की संख्या के अनुसार कर का परिमाण ज्यादा होता है। कर की दृष्टि से खेती के मवेशी इकाई के अंग माने जाते हैं। कर का विभाजन—उस याँ—असमान या विषम है। उदाहरणार्थ १५ तक की आय पर ४¾ प्रति सैकड़ा; २०० रूबल प्र० सै०; ३०० रूबल तक ५¾ प्र० सै०; ४०० ८ प्र० सै०; ६०० रूबल तक १०½ प्र० सै० और ऊपर की आय पर १४ प्रति सैकड़ा कर वसू जाता है।

कृषि-कर का अधिकांश भाग स्थानीय ज़रूरतों में ख़र्च होता है। १९२५-२६ में इस कर से ५० लाख रूबल की आय हुई थी। इसमें से प्रायः रूबल स्थानीय कामों में ख़र्च हुए थे। इस

÷ १० रूबल लगभग एक पौण्ड (एक रुपये साढ़े नौ आने के बराबर होता है।)

कर का उपयोग राष्ट्रीय और स्थानीय दोनों बजट (आय-व्यय के आनुमानिक चिट्ठे) में होता है। एक बड़ी मज़ेदार बात यह है कि देश के बहुत से गाँव अपनी ज़रूरतें पूरी करने के लिए स्वेच्छा-कर (Voluntary taxes) उगाहते हैं। यह स्वेच्छा-कर कभी-कभी कृषि-कर के ३५ प्रतिशत के बराबर होजाता है। कहा जाता है, एक बार तो वह कृषि-कर के ७० प्रतिशत के बराबर होगया था।

क्रान्ति के बाद, शीघ्र ही, ग्राम्य-पंचायतों की संख्या बहुत अधिक बढ़ गई। मज़दूरों ने एकसाथ रहने और ज़मीन पर काम करने के लिए अपने संघटित वर्ग बना लिये। कई धार्मिक वर्गों ने भी यही किया। किन्तु इन संघटनों में मूलतः सफल होते हुए भी तफ़सील की साधारण बातों में संघर्ष के कारण यह आन्दोलन गिर गया, असफल हुआ। धीरे-धीरे इसका स्थान 'आर्टेल' ने ले लिया। यह ऐसे किसानों की एक संस्था थी, जो अपने साधनों को इकट्ठा कर ज़मीन के किसी एक हिस्से पर संयुक्त खेती करते थे। इसके बाद ज़मीन के उपयोग के लिए सहकार के दूसरे तरीक़े अपनाये गये, जो 'संघ' (या 'कलेक्टिव्स') कहलाते हैं।

खेती की इस संघमय पद्धति का सबसे बड़ा फ़ायदा, उन मशीन, ट्रैक्टर आदि चीज़ों का कृषि-कार्य में उपयोग है, जिनका उपयोग व्यक्तिगत रूप से किसी भी किसान की सामर्थ्य के सर्वथा परे है। ट्रैक्टर तो वर्तमान रूस के लिए देवता हो रहा है; इसीके कारण लोग कृषि-कार्य में बड़े पैमाने पर सहयोग से काम कर रहे हैं।

कृषक-बैंकों और साख-समितियों का संघटन बड़े पैमाने पर किया गया है और किसानों को साख पर रुपया प्राप्त करने के लिए कई तरह की सुविधायें प्राप्त हैं। १९२६ ई० में इन समितियों के ४२ लाख से भी अधिक सदस्य थे। इन समितियों के द्वारा सरकार की ओर से कृषकों को पूंजी या बीज के रूप में क़र्ज़ देकर अथवा मशीन के दाम चुका कर सहायता दी जाती है। ख़रीददारों की तथा कृषि से सम्बंध रखने वाली अन्य प्रकार की सहकार-समितियों की संख्या भी बहुत बढ़ी है।

सोवियट सरकार लोगों को, देश के घनी बस्ती-क्षेत्रों से उठकर कम बस्ती वाले क्षेत्रों में सकुटुम्ब बस जाने के लिए हर तरह की सुविधा दे रही है। दूसरे स्थानों पर जा बसने वालों के लिए सरकार रेलवे केराया और यात्रा-ख़र्च की सुविधायें करती, उन्हें क़र्ज़ देती और थोड़े समय के लिए उन्हें कृषि-कर से मुक्त करके भी सहायता पहुँचाती है।

रूस में पहले किसी समय घरू उद्योग-धन्धे बड़ी उन्नति पर थे और लाखों स्त्री-पुरुष उनमें लगे रहते थे। युद्ध के दिनों में और उसके बाद इनकी संख्या बहुत कुछ घट गई थी, लेकिन अब फिर बढ़ रही है। इनकी बढ़ती में हर तरह का प्रोत्साहन दिया जा रहा है और जो कर इस तरह की उन्नति में बाधक थे वे, हटा दिये गये हैं। घरू-धन्धे, ख़ास कर जाड़े के दिनों में बड़े उपयोगी सिद्ध होते हैं क्योंकि उस समय कृषकों को बहुत थोड़ा काम रहता है। इस तरह कपड़े, जूते, टीन के बरतन, लकड़ी की चीज़ें और ऐसी अन्य अनेक वस्तुयें हाथों या सरल यन्त्रों से घर पर बनाई जाती हैं।

इसके सिवा कृषकों की अपनी कई संस्थायें और संघटित आन्दोलन हैं। कृषकों के अपने समाचार-पत्र होते हैं; उनके अपने उत्सव, शिक्षा एवं साहित्य संस्थायें तथा स्वास्थ्य-भवन होते हैं; उनके अपने पुस्तकालय, वाचनालय और महिला मण्डल या (क्लब) होते हैं। अशिक्षा को मिटाने वाली और परस्पर-सहायक, समितियाँ देश-भर में हर जगह मिलती हैं। नवयुवकों के संघटनों ('पायोनियर' और 'कोमसोमोल') का भी यही हाल है।

रूस के ग्रामों की अर्थ-नीति में बड़े-बड़े परिवर्तन हो गये हैं और गिरजाघर अपने पहले के ऊँचे पद से वंचित हो गया है। फिर भी वह कई तरह के आंदोलनों एवं कार्यों का केन्द्र बना हुआ है और चर्च की छुट्टियों को लोग बड़े उल्लास के साथ मनाते हैं। 'सभ्य-विवाह' (Civil marriage) सरलता-पूर्वक किये जा सकते हैं, फिर भी अब तक विवाह के दिनों में गिरजाघरों में ही विवाहार्थियों की भीड़ लगी रहती है।

धीरे-धीरे ही क्यों न हो गिरजाघर अपने पद की प्रतिष्ठा से, 'नरोड्नी डेम', प्रजा-गृह या पंचायत-घरों द्वारा,

हटाया जा रहा है और अब साधारणतया उसमें पुस्तकालय, वाचनालय, क्लब, पढ़ाई के वर्ग या नाटक घर रहने लगे हैं। इनमें एक ओर लाल कपड़े से अच्छादित लेनिन का चित्र भी रहता है।

जवाहरलाल नेहरू

बेदख़ली

[देहाती जीवन के चित्र]

(१)

सुन्दरपुर ग्राम के ज़मींदार का कारिन्दा डेरे * में बैठा हुआ था। उसके समीप गाँव का पटवारी तथा चार पाँच कृषक बैठे थे। सामने कुछ दूरी पर दो पासी मोटे लठ लिये हुए बैठे थे।

हठात् कारिन्दा ने एक पासी से कहा—मुनुवा, दूध आगया ?

मुनुवा बोला—कह आया हूँ मालिक ! अभी आ जायगा।

कारिन्दा—कितन दूध आयेगा ?

मुनुवा—आपने पाँच सेर कहा था। वही कह आया हूँ।

कारिन्दा—किसके यहाँ से आवेगा ?

मुनुवा—बसन्त अहीर के यहाँ से।

कारिन्दा चुप हो गया और अपने सामने रक्खे हुए काग़ज-पत्र उलटने लगा।

कुछ देर तक काग़ज-पत्र उलटने के पश्चात् उसने एक कृषक से कहा—तुम्हारे ऊपर ख़रीफ़ के दस रुपये बक़ाया हैं।

कृषक बोला—हाँ मालिक, हैं।

कारिन्दा—तो सब मिलाकर पैंतालीस रुपये हुए। पैंतीस इस फ़सल के और दस बक़ाया।

कृषक ने टेंट से पैंतालीस रुपये निकाल कर कारिन्दा के सम्मुख रख दिये। कारिन्दा ने पूछा—कितने हैं ?

कृषक—पैंतालीस।

कारिन्दा—दस रुपये बक़ाया रह गये थे, उनक महीने का ब्याज भी तो लाओ।

कृषक—अरे मालिक! अब ब्याज-उयाज न माँगो। की कुछ हुआ नहीं। इतने भी न जाने कैसे दिये हैं।

कारिन्दा—ब्याज तो ज़रूर देना पड़ेगा।

कृषक—नहीं सरकार, इस दफ़े ब्याज की माफ़ी जब होता था तब ब्याज दे देते थे; अब की कुछ हुआ इससे कहते हैं। (एक दूसरे कृषक से) जानकी पन्द्रह बीघा में दस बीघा गेहूँ बोये थे और पाँच बेझरा। सो एक बीस मन तो गेहूँ हुए और आठ बेझरा। बताओ इसमें क्या अपने खाने को रक्खें, महाजन का बीज दें और क्या लगान दें। और अपने बाल बच्चों के लिए कपड़े बनवाने हैं सो अलग। कहो कुछ अरहर हो गई, नहीं तो बस राम से ही पड़ता।

जानकी काका गम्भीरता-पूर्वक सिर हिला कर बोले फ़सल तो अब की बड़ी गड़बड़ हुई, इसमें तो कोई नहीं है। डेढ़मनी बीघा से किसी के अधिक नहीं जिनके दोमनी बीघा हो गया उसे बड़ा भागवान इन्हीं खेतों में पँचमनी, छःमनी बीघा हुआ करता समय की बात है भइया!

कारिन्दा बोला—यह हम क्या जानें। जब होता है तो हमें तो दे नहीं देते।

कृषक—अरे मालिक, आपको देने लायक हम कहाँ तो खुद ही आप की रोटी खाते हैं।

कारिन्दा—ख़ैर, इन बातों से काम न चलेगा। निकालो।

---

* जो ज़मींदार गाँव में नहीं रहते उनके लिए गाँव में एक मकान रहता है। जब कभी जमींदार या उनका कोई कर्मचारी गाँव में आता है तो इसी मकान में ठहरता है। इस मकान को 'डेरा' (या छावनी) कहते हैं।

कृषक—नहीं मालिक, इस दफ़े ब्याज की माफ़ी दो।

कारिन्दा—यह कदापि नहीं होगा। ख़रीफ़ में हमने पने पास से ये दस रुपये जमा किये थे, सो हम तो ब्याज ड़ेंगे नहीं। किसी दूसरे को उधार देते तो ब्याज मिलता कि नहीं ?

कृषक—हाँ मिलता क्यों नहीं ?

कारिन्दा—तो बस फिर ?

जानकी काका बोल उठे—देओ ब्याज देओ। इन्होंने पने मालिकों को तुम्हारे दस रुपये पास से दिये थे, तो ह बेचारे घाटा क्यों सहैं ?

कृषक—हमारे मालिक हैं, हम इनके जियाये जीते हैं। समें घाटे की कौन बात है।

कारिन्दा—देखो जी हमें वहुत काम है, यह टिल्लेनसीवी ची नहीं। झटपट ब्याज निकालो।

कारिंदे की तीव्र दृष्टि देखकर कृषक म्लान मुख होकर ला—तो कितना ब्याज हुआ ?

कारिन्दा—एकन्नी रुपये के हिसाब से छः महीने के ने चार रुपये हुए।

कृषक—अरे सरकार इस दफ़े अधन्नी का ब्याज लगा ो। भगवान जानते हैं, अब की बड़ी तंगी है।

कारिन्दा—तुम बड़े झमेलिये मालूम होते हो जी। त बात में मीन-मेष निकालते हो। निकालो झटपट पौने र रुपये और एक रुपया हमारे नज़राने का पौने पाँच कालो।

कृषक ने देखा कि अधिक कुछ कहने से सम्भव है रिन्दा साहब नाराज़ हो जाँय अतएव उसने चुपचाप टेंट ाँच रुपये निकाल कर कारिन्दे के सम्मुख फेंक दिये। रिन्दा साहब ने चार आने वापिस करके कहा—मैं खरा दमी हूँ, मुझे खरा व्यवहार अच्छा लगता है।

कृषक ने कहा—ये पाँच रुपये बचा रक्खे थे। सोचा कुछ कपड़ा ले आवेंगे, वाल बच्चों को थोड़ा कपड़ा बन गा। हम इन्हीं फटे-पुरानों में काट देंगे। सो भगवान मर्ज़ी नहीं है तो न सही।

यह कहते कहते कृषक के नेत्रों में आँसू छलछला ये।

कारिन्दा बोला—पठानों से लेना।

कृषक—अरे मालिक ! चाहे नंगा बैठा रहे पर पठानों से कभी न ले। एक तो एक रुपये की चीज़ के चार लेते हैं और बखत पर न देओ तो बेआबरू कर डालते हैं, भगवान बचावे।

इसी समय बसन्त अहीर गगरी में दूध लाया। कारिन्दे ने पूछा—कितना दूध लाया ?

बसन्त—पाँच सेर का हुकुम हुआ था।

कारिन्दा—काहे का दूध है ?

बसन्त—सब गबड़ा है मालिक। तीन सेर तो भैंसका है और सेरभर के अन्दाज गाय का होगा और सेर ही भर बकरी का।

कारिन्दा—हैं ! इसमें बकरी का दूध मिला दिया ?

बसन्त—क्या करें मालिक गाय-भैंस का कहाँ से लावें ? तीन सेर भैंस देती है, सो सब दे दिया। सेर भर गाय देती है, सो दे दिया। आपका गुड़ैत बोला कि पाँच सेर देना पड़ेगा, सो इसी मारे सेर भर बकरी का गबड़ दिया।

कारिन्दा—मुनुवा इस साले को एक बीस जूते लगाओ। इसने हमें समझा क्या है ? हम बकरी का दूध पीते हैं ? हम शहर में तो बकरी का दूध पीते नहीं, यहाँ देहात में आकर बकरी का दूध पियेंगे ! साले ने अपने लिए गाय-भैंस का रख लिया होगा, हमें बकरी का दे दिया।

बसंत—अरे मालिक ऐसा न कहो। अपने ख़ातिर एक बूँद रक्खा हो तो गाय के खून के बराबर है। लड़के-बच्चे रोते रह गये, उन्हें तक तो एक बूँद दिया नहीं।

जानकी काका बोल उठे—इसके यहाँ इतना ही होता है मालिक ! झूठ नहीं बोल रहा है। हमारी जानी हुई बात है।

कारिन्दा—ख़ैर, अब की दफ़ा तो छोड़े देते हैं। आइन्दा कभी ऐसी हरकत मत करना। हमें बकरी के से नफ़रत है।

इतना कहकर कारिन्दा साहब ने अपने रसोइये से कहा—महाराज, इसकी रबड़ी बना डालो। पीने के काम का तो यह रहा नहीं। बकरी का दूध मिला हुआ है। मुनुवा !

मुनुवा बोला—सरकार !

कारिन्दा—जाओ किसी के यहाँ से सेर भर गाय का ताज़ा दूध लाओ । इस समय तो पीने के लिए चाहिए । सबेरे का समय है ।

मुनुवा ने अपने पास बैठे हुए दूसरे पासी से कहा—लल्लू, तुम चले जाओ ।

लल्लू—किसके यहाँ जाऊँ ?

मनुवा—अहीर टोले में चले जाओ । जिसके यहाँ हो, ले जाओ ।

लल्लू उठकर चलने लगा । उसी समय कारिंदा साहब ने कहा—अरे हाँ, खूब याद आया । ज़रा गंगाचरण महाराज को बुला लाना । सीधी तरह आवें तो आवें, नहीं घसीट लाना । (उपस्थित लोगों की ओर देखकर) गंगाचरण महाराज के ऊपर साल भर की बाक़ी लगी हुई है । उसका ब्याज अलग है । सब मिलकर कोई डेढ़ सौ रुपये हैं । महराज देते नहीं हैं । मैं ब्राह्मण समझ कर अभी तक टालता गया । अब इस दफ़े महाराज न देंगे तो बेदख़ली हो जायगी ।

एक कृषक बोल उठा—उनके पास कुछ है नहीं । उन्हें बेदख़ल कर दो । उनकी ज़मीन बहुत सस्ती है । बत्तीस बीघे ज़मीन छियानवे रुपये में जोते हुए हैं । उन्हें बेदख़ल कर देओ तो वही ज़मीन चार रुपये बीघा में बड़े मज़े में उठ जाय । बत्तीस रुपया साल का मुनाफ़ा हो ।

कारिंदा—कौन ? हम उसे पाँच रुपये बीघे से कम में देंगे नहीं ? मामूली ज़मीन थोड़े ही है ।

पटवारी साहब बोल उठे—पाँच रुपये बीघे पर तो लोग इस समय लेने को तैयार हैं । आप जब कहिए, उठा दूँ ।

कारिन्दा—हाँ हाँ, उठानी ही पड़ेगी । गंगाचरण महाराज रुपये दे नहीं सकेंगे ।

जानकी काका बोले—उनके पास कुछ है नहीं । पार साल उन्होंने बिटिया का ब्याह किया तभी से उनका फेर बिगड़ गया ।

कारिन्दा—वह खुद तो जोतते बोते नहीं ?

जानकी—नहीं शिकमी उठाये हुए हैं । जोतें बोवें कैसे । मजूरों से जुतावें बुवावें तो उन्हें मजूरी देने को नहीं । आप ब्राह्मण आदमी ठहरे—अपने हाथ से जोतने बो सकते । चार पाँच बीघे ज़मीन रख छोड़ी है सो वह अ बँटाई पर दे देते हैं । बाक़ी लगान पर दिये हुए हैं ।

कारिन्दा—किस हिसाब से दिये हुए हैं ?

जानकी—पाँच रुपये बीघे पर ।

कारिन्दा—यह कहो ! तब फिर हम भी पाँच बीघे पर उसे उठा सकते हैं ।

पटवारी—बड़ी आसानी से ।

कारिन्दा—अच्छी बात है । तब तो महाराज अवश्य बेदख़ल करना पड़ेगा ।

(२)

थोड़ी देर में ललुआ पासी महाराज गंगाचरण को लिये हुए आया । महाराज गंगाचरण प्रौढ़ अवस्था आदमी थे । बहुत सरल स्वभाव तथा सज्जन थे । पास ३२ बीघा मौरूसी भूमि थी । पहले तो वह अधिकांश मज़दूरों से जुतवा-बुवा लेते थे । परन्तु ए हुआ उन्हें अपनी कन्या का विवाह करना उनकी पूँजी विवाह में व्यय हो गई । मज़दूरों को लिए तथा बीज इत्यादि ख़रीदने के लिये उनके पास नहीं रहा । लोगों ने ऋण लेने की सलाह दी । पर गं महाराज ऋण लेना एक पाप समझते थे । इस कारण अपनी २८ बीघा भूमि तो लगान पर उठा दी । उन्हें छप्पन रुपये वार्षिक की आय होजाती थी । चा भूमि एक कृषक को अधबँटाई में दिये हुए थे । उस अपनी एक भैंस तथा एक गाय के लिए चारा मिल था और थोड़ा अनाज भी मिल जाता था । कुछ, कथा-वथा कहकर तथा दानपुण्य से मिल जाता था प्रकार वह बड़े कष्ट से किसी तरह अपना जीवन-नि रहे थे । उनके परिवार में इस समय एक आठ कन्या, एक दस वर्ष का पुत्र, उनकी पत्नी त माता थीं ।

इस समय गंगाचरण महाराज गाढ़े की ए मिर्जई पहने हुए थे । वह चुप-चाप आकर कारिन्दे के सम्मुख बैठ गये ।

कारिन्दा साहब ने कहा—गंगाचरण महाराज! आप के र सालभर का लगान चढ़ गया है। कहिए, अब आप कहते हैं ?

गंगाचरण महाराज बोले—आप मालिक हैं; हम आप ह ही क्या सकते हैं ?

कारिन्दा—कहना सुनना यही है कि रुपये लाओ !

गंगाचरण—रुपये तो इस समय सरकार, हमारे पास हीं।

कारिन्दा—आप तो ज़मीन उठाये हुए हैं ?

गंगाचरण—हाँ २८बीघा ज़मीन पारसाल उठा दीथी।

कारिंदा—उसका लगान तो मिला होगा ? वह ाँ गया ?

गंगाचरण—जिसे उठाई थी उससे सालभर का लगान ी ले लिया था। वह, और घर में जो कुछ था वह, मिलाकर लड़की के व्याह में लगा दिया ।

कारिंदा—तो यह कहिए, आप सब पेशगी हो चाटे हैं।

गंगाचरण—कुछ पेट में तो धर नहीं लिया, लड़की के में लगा दिया।

कारिंदा—बड़ा अच्छा किया परन्तु अब क्या होगा ? भी तक तो किसी न किसी तरह टालता आया, पर मेरे वस की बात नहीं। अब आप सब रुपया चुकता , नहीं तो बेदख़ल हो जायँगे।

गंगाचरण—अरे सरकार बेदख़ली न करना, नहीं तो बच्चे भूखों मर जायँगे। उसी ज़मीन से हमारी ता है।

कारिंदा—आख़िर बेदख़ली न करायँगे तो करेंगे क्या ? रुपया किसी तरह वसूल ही करेंगे।

गंगाचरण—आपका रुपया गले बराबर है। सो उसके हम उपाय कर रहे हैं।

कारिंदा—क्या उपाय कर रहे हो ?

गंगाचरण—उपाय यही कि जोड़-बटोर कर देंगे। आपका साल भर का लगान है, अब आपका लगान आ। सालभर के छियानवे रुपये हम थोड़ा-थोड़ा दे देंगे।

कारिंदा—और उनका ब्याज नहीं दोगे ?

गंगाचरण—अब ब्याज-ब्याज न लगाओ। ब्याज देने का बूता हम में नहीं है। समझ लेना कि लड़की के व्याह में इतना सहारा आपने भी कर दिया।

कारिंदा—लीजिए और सुनिए !

गंगाचरण—सुनें क्या ? मालिक हो, इतनी सहायता करो।

कारिंदा—मैं मालिक काहे को हूँ भाई ! मालिक तो कोई दूसरा ही है।

गंगाचरण—हम तो आप को ही जानते हैं। यहाँ भी अधिकार आप का ही है। क्यों भाई जानकी कहते क्यों नहीं ?

जानकी—ठीक; इसमें झूँठ क्या है ?

कारिंदा—मुझको जितना अधिकार है, उतना मैं कर सकता हूँ। मुझको यह अधिकार था कि साल-छः महीने टाल ले जाऊँ, सो मैंने किया। अब मेरे किये कुछ हो नहीं सकता। आपको रुपये देने पड़ेंगे और ब्याज भी ज़रूर ही देना पड़ेगा।

गंगाचरण—अरे सरकार! ब्याज का ठिकाना यहाँ कहाँ?

कारिंदा—नहीं है तो जाने दो। हमें क्या ? बेदख़ल हो जाइयेगा।

गंगाचरण—ऐसी ख़फ़गी ?

कारिंदा—आप तो ग़ज़ब करते हैं महाराज ! मैं कौन हूँ जो मेरी ख़फ़गी और खुशी हो ? जिनकी आप रियाया हैं, मैं उसका नौकर हूँ। जो आपका मालिक है वही मेरा भी है। मैं उनका नमक खाता हूँ, इसलिए जिसमें उनका फ़ायदा होगा वही करूँगा।

गंगाचरण—तो मालिक को समझा दीजिएगा।

कारिंदा—मैं समझा तो सब कुछ दूँगा, पर वह मानेंगे तब न।

गंगाचरण—आप कहेंगे तो मानेंगे क्यों नहीं ?

कारिंदा—क्यों मानेंगे ? क्या वह मेरे नौकर हैं ? मालिक मालिक ही है।

गंगाचरण—खैर आप कहिएगा तो; न मानेंगे तो देखा जायगा। जब तक आप हैं, मेरा कुछ बिगड़ नहीं सकता। अच्छा तो अब ज़रा हुकुम दीजिये—आज ज़रा बाजार जाना

है। रुपया हम कौड़ी-कौड़ी दे देंगे, इससे निश्चिन्त रहना। ख़ाली आपकी दया बनी रहे।

कारिंदा—दया ईश्वर की चाहिए, हम क़ाहे में हैं।

गंगाचरण—हाँ, ईश्वर तो मुख्य है।

गंगाचरण महाराज बिदा हो गये। उनके जाने के पश्चात् कारिंदा उपस्थित लोगों से बोला—महाराज बेदख़ल हो जायँगे, बचेंगे नहीं।

एक कृषक—कहते थे, उपाय कर रहे हैं। उपाय क्या करेंगे? कौन इनके यहाँ छप्पर फटेगा। खेती भी तो नहीं करते जो यही समझ में आता कि फ़सल बन गई तो चुकता कर देंगे। इन्हें क्या? इन्हें तो बँधे टके मिलेंगे। सो जितना मिलता है वह खाने भर को ही नहीं होता।

एक व्यक्ति बोल उठा—खेती क्यों नहीं करते? चार बीघा बँटाई पर जो दिये हुए हैं।

कृषक—हाँ, सो चार बीघा में सोने की खान निकल आवे तो चाहे भले ही रुपये अदा हो जाँय—ख़ाली अनाज से तो हो चुके। चार बीघे की तो बिसात ही क्या?

इसके बाद अन्य सब लोग उठकर चले गये, केवल कारिन्दा, पटवारी तथा एक वह कृषक जो गंगाचरण का विरोधी था, रह गये। उस कृषक ने कहा—मालिक, आप जो हमें महाराज वाली ज़मीन दिला दें तो बड़ी दया हो जाय।

कारिन्दा—लगान क्या दोगे?

कृषक—चार रुपये बीघा।

कारिन्दा—अच्छे रहे! पाँच रुपये देने वाले तो न कितने हैं; तुम चार लिये फिरते हो।

कृषक—चार रुपये में दिला दो तो कुछ आपका भी हो जायगा।

कारिन्दा—बोलो, क्या दोगे?

कृषक—पचास रुपये!

कारिन्दा—कम हैं।

कृषक—कम नहीं हैं, सरकार।

पटवारी बोल उठा—ऐसी ज़मीन गाँव भर में यह भी जानते हो? ज़रा उलट-पलट दिया जाय तो ज़मीन छः-सात रुपये में उठ सकती है।

कृषक—अच्छा तो दस रुपये और ले लेना।

कारिन्दा—पूरा सैकड़ा देओ तब तो हम कुछ नहीं हमारा क्या बिगड़ता है। एक ग़रीब ब्राह्मण क्यों छीनें?

कृषक—सौ तो हमारे किये नहीं हो सकता।

कारिन्दा—नहीं हो सकता तो जाने दो।

पटवारी ने कहा—पहले आप बेदख़ल तो यह तो नाच कूदकर सैकड़ा देंगे। यह न देंगे तो इ ही भाई मुँह फैलाये बैठे हैं वे सौ छोड़ सवा सौ

[असम

विश्वम्भरनाथ शर्मा

आदर्श त्याग

इनसे पूछो तो क्या कहते हैं ये छोटे दाने।
"पर-हित-निरत तनिक भी मेरे कभी न पाँव पिराने।
वर्षा, धूप, ठण्ड कितनी है मैंने अब तक झेली।
पर न कभी उफ़ कहा हमारी कैसी विकट पहेली।
जीवन की अमूल्य घड़ियों को, परहित-बलिवेदी पर।
न्यौछावर कर उपजा लेता हूँ, अनेक निज सहचर।
अथवा जग की जलन–शान्ति–हित निज सजीवता खोकर।
मिल जाता हूँ उस अनन्त में, फिर उसका ही होकर।

× × ×

छोटे-से दाने की है यह कैसी कलित कहानी।
हाथ कलेजे पर रखकर सोचो तो हे अभिमानी!

'एक कवि-हृद

औद्योगिक क्रान्ति के पूर्व भारत के उद्योग-धन्धों एवं मज़दूरों की अवस्था

द्योगिक क्रान्ति का काल

अठारहवीं शताब्दि के अन्त से लेकर उन्नीसवीं शताब्दि के मध्य तक का काल उद्योग-धन्धों की क्रान्ति का युग है। इसी काल में यूरोपीय देशों में उद्योग-धन्धों में, मशीनों के आविष्कार से क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए। जो देश अपने हार की वस्तुओं के लिए दूसरे देशों का मुंह ताका करता वही दूसरे देशों को तैयार माल भेजकर माला-माल लगा और इसके विरुद्ध जो देश इसके पूर्व दूसरे देशों अपना माल भेजकर धनी बन रहे थे, वे दूसरे देशों से ख़रीद-ख़रीद कर दरिद्र होने लगे। ग्रामों के स्थान पर ों की स्थापना हुई। लोग दो श्रेणियों, पूँजीपति एवं मज़- में विभक्त हो गये। इसी समय से संसार में व्यापारिक आरम्भ होगया।

समय का रतवर्ष

दैववशात् उस समय भारतवर्ष में मुग़ल साम्राज्य का ह्रास हो रहा था, और यहाँ अंग्रेज़ व्यापारी, पुर्तगाली, डच, फ्रेञ्च आदि अन्य यूरोपीय व्यापारियों को हटाकर दिन प्रतिदिन अपनी व्यापार-वृद्धि के साथ साथ राज्य की वृद्धि भी हे थे। औद्योगिक क्रान्ति का आरम्भ पहले-पहल इंग्लै- में ही होने के कारण वह व्यापारिक क्षेत्र में भी उस अत्यन्त द्रुतगति से आगे बढ़ रहा था, और उस भारतवर्ष के उसके सम्पर्क में रहने के कारण उसके परिवर्तन का प्रभाव यहाँ भी तत्काल पड़ने लगा, ीरे-धीरे यहाँ के उद्योग-धन्धों की अवस्था इतनी बदल जो भारतवर्ष प्रतिवर्ष करोड़ों का माल विदेशों में माला-माल होता था, वही आज अरबों का माल ों से मंगाकर दिन-प्रति-दिन दरिद्र बनता जा रहा है। पि भारतवर्ष के उद्योग-धन्धों के परिवर्तन की गति इतनी तीव्र नहीं थी कि उसे वास्तविक रूप में क्रान्ति की उपाधि दी जा सके, तथापि अपेक्षा-कृत अल्प काल में यहाँ के उद्योग-धन्धों में जो उथल-पुथल और परिवर्तन हो गये हैं, उन्हें देखते हुए उसे क्रान्ति कहना असङ्गत न होगा।

भारत में औद्योगिक क्रान्ति की गति

इस क्रान्ति-युग के परिवर्तन को ठीक-ठीक समझने के लिए उसके पहले के उद्योग-धन्धों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है।

भारतवर्ष प्रारम्भ से ही कृषि-प्रधान देश रहा है। अतः इसमें उद्योग-प्रधान देशों की भांति लोग नगरों में एकत्र न रह कर सारे देश में, छोटे-छोटे ग्रामों में, बिखरे हुए हैं। इस कारण सम्पूर्ण भारतवर्ष के विषय में किसी भी प्रकार का वास्तविक अध्ययन ग्रामों के द्वारा ही किया जा सकता है।

यहां के ग्रामों की विशेषता

भारतवर्ष के ग्रामों की यह विशेषता है कि प्रायः गत १३०० वर्षों से (हर्ष-साम्राज्य के अधःपतन के बाद से) भारतवर्ष के राजनैतिक संघटन में--विशेष कर मुसलमानों का आक्रमण प्रारम्भ होने के बाद से—समय-समय पर जो विप्लव होते रहे हैं, उससे प्रभावित न हो कर उन्होंने अपना संघटन ज्यों-का-त्यों सुरक्षित रक्खा। यहाँ के ग्रामों की यह विशेषता बनाये रखने में एक बात जो उसके लिए मुख्य सहायक हुई, यह है कि यहाँ के ग्राम अपनी आवश्यकता की वस्तुओं के लिए किसी दूसरे के मुहताज नहीं रहते थे।

प्रत्येक ग्राम में अन्न की खेती तो होती ही थी। साथ ही साथ तेल के लिए तेलहन, और वस्त्र के लिए रूई की खेती भी की जाती थी। प्रत्येक ग्राम में बढ़ई, तेली, नाई, धोबी, चमार, लोहार, डोम, जुलाहे, लोनिया आदि होते थे, जो

गाँव की आवश्यकताओं की सामग्री तैयार करते थे। यदि किसी ग्राम में इनमें से किन्हीं पेशे वालों का अभाव होता था तो वह उसकी पूर्ति पास वाले ग्राम से कर लेता था। साथ ही साथ प्रत्येक गांव में बनिये की एक छोटी-मोटी दूकान भी अवश्य होती थी, जो नमक, तम्बाकू, गुड़ आदि ऐसी चीज़ें बेचा करता था, जो प्रत्येक ग्राम में उत्पन्न नहीं होतीं। साथ ही ये बनिये सूद पर रुपया एवं अन्न आदि क़र्ज भी दिया करते थे। ब्याज का दर साधारणतः २५ फ़ी सदी से ५० फ़ी सदी तक होता था। विशेष अवसरों पर १०० प्र० श० भी हो जाता था।[1]

इन बनियों के अतिरिक्त बञ्जारे लोग टट्टुओं पर, बैलों पर, नमक, तम्बाकू अथवा अन्य कोई पदार्थ लेकर गाँव-गाँव घूमा करते थे। एक स्थान से दूसरे स्थान माल ले जाने का काम भी यही करते थे।

प्रति सप्ताह एक या दो दिन १०-१५ ग्रामों में से एक या दो ग्रामों में हाट लगा करता था, जिसमें ग्रामीण-जन अपनी उत्पत्ति की बचत ले जाकर बदले में अपने उपभोग की दूसरी आवश्यक वस्तु लाते थे। ग्रामों की बहुत कुछ यही दशा अब भी विद्यमान है।

मज़दूर

मज़दूरी की दृष्टि से उस समय के मजदूरों के दो विभाग किये जा सकते हैं। एक तेली, जुलाहे, सुनार आदि जो अपने कार्य के अनुसार मज़दूरी पाते थे। जैसे तेली जितना तेल पेरता था उसकी पेराई उसी के अनुपात से दी जाती थी। इसी प्रकार जुलाहों को भी कपड़े की बुनाई उसके बुनने के कार्य के अनुसार ही दी जाती थी। दूसरे प्रकार के मजदूर वे थे, जिनकी वार्षिक मज़दूरी एक प्रकार से बन्धी हुई थी। इस श्रेणी में नाई, धोबी, बढ़ई, लोहार, डोम, कुम्हार आदि रक्खे जा सकते हैं। इनकी मज़दूरी गाँव के प्रत्येक घर की वार्षिक उत्पत्ति के अनुसार निश्चित थी, और अकाल अथवा सुकाल में उत्पत्ति के अनुसार घटती बढ़ती भी थी। इसके अतिरिक्त, जन्म, मृत्यु, उपनयन, विवाह, आदि अवसरों पर इन लोगों का एक दस्तूर-सा बन्धा था, जिनमें इन्हें आदि मिलते थे। इनके अतिरिक्त प्रत्येक गाँव में गाँव चौकीदार अथवा ग्राम्य-रक्षक होता था, जो रात को में पहरा दिया करता था। और इसके बदले में लोग अपनी वार्षिक उत्पत्ति के अनुसार अन्न आदि देते थे।

मजदूरों की विशेषता

उपर्युक्त इन सभी मज़दूरों की विशेषता यह थी ये किसी व्यक्ति-विशेष के नौकर नहीं थे। प्रथम प्रकार मज़दूर तो किसी समय भी करने अथवा न करने के लिए थे ही, दूसरे प्रकार के मज़दूर किसी व्यक्ति-विशेष के नौकर न होने के कारण बहुत स्वतन्त्र थे। वे सम्पूर्ण गाँव के सेवक थे और सम्पूर्ण उनका पोषक था।

इसके अतिरिक्त कुछ मज़दूर ऐसे भी होते थे, जो एक घर के ही सेवक होते थे। इस प्रकार के मज़दूरों में वाहे, चरवाहे, कहार, आदि मुख्य थे। चरवाहे १०-२० घर अथवा गाँव भरके जानवरों को एक चराने ले जाते थे।

प्रायः इन घरेलू मज़दूरों को एवं उपर्युक्त प्रकार के मज़दूरों को ज़मीदारों एवं धनी किसानों माफ़ी अर्थात् बे-लगान की ज़मीन के रूप में भी मिलती थी।

मजदूर संघटन,
पंचायत

उस समय के मज़दूरों में आजकल के मज़दूर संघों की भांति पञ्चायतें होती थीं। ये पञ्चायतें प्रत्येक पेशे वालों की भिन्न भिन्न होती थीं। इन पंचायतों में केवल आर्थिक प्रश्न ही नहीं, अन्य प्रकार के प्रश्न भी होते थे। नगरों में मज़दूरी भी इन्हीं पंचायतों द्वारा तय होती। साथ ही पंचायतें अपने सदस्यों के व्यक्तिगत जीवन पर भी रखती थीं और आचरण-सम्बन्धी दोषों पर दण्ड तक करती थीं।

उपर्युक्त सभी प्रकार के मज़दूर वंशपरम्परा थे। इस कारण हड़ताल आदि का भय नहीं था। गाँवों में श्रम-विभाग की विशेष उन्नति नहीं हुई

---

[1] The Economic Transition in India. Theodore Morison. P. 77-78. Rate of interest Deora Hisab and Duna Hisab.

पेशे वाला अपने पेशे के साथ-साथ खेती भी करता था। बनिया, दुकान, वर्त्तमान बैंकों विभाग की कमी का बहुत कुछ काम, लेन-देन, गिरवी रखना आदि खेती के साथ साथ था। प्रत्येक किसान के घर में चर्खा चलाना, रस्सी एवं अन्य इसी प्रकार के छोटे-मोटे कार्य भी हो थे।

की अनाव-श्यकता।

ग्रामों के लेन-देन में मुद्रा की आवश्यकता बहुत कम थी। प्रायः सभी लेन-देन अनाज, वस्त्र आदि एक दूसरी वस्तु के बदले ही होता था। ज़मींदारों को लगान भी प्रायः उपजी हुई वस्तुओं में ही दिया जाता था। केवल सरकारी लगान के लिए ही की आवश्यकता होती थी ?[1]

समय के अनुकूल संघटन

उस समय की परिस्थिति के लिए इसी प्रकार के संघ- की आवश्यकता भी थी। मुगल साम्राज्य के कमजोर हो जाने पर सारे देश में एक प्रकार से अराजकता का साम्राज्य हो गया। पिण्डारी एवं अन्य लुटेरे स्थान-स्थान पर लूट-मार करते फिरते थे। राजा एवं सर- परस्पर लड़ते थे। पं० पी० एन० पिल्लई लिखते हैं कि समय जिस व्यक्ति में भी इतनी शक्ति थी कि वह की वस्तु छीन सके, वह अपनी जीविका के लिए प्रकार के धन्धे की खोज नहीं करता था[2]। ऐसी दशा दूर-दूर का व्यापार सुसाध्य नहीं था।

दूर-दूर का व्यापार अधिक न हो सकने का एक यह कारण था कि उस समय आज कल की भांति पक्की न थीं। १८४८ ई० के पूर्व ग्रैण्ड ट्रङ्क रोड के अतिरिक्त और पक्की कहने योग्य सड़क न थी[3]। दक्षिण में तो पक्की बिलकुल थीं ही नहीं। उत्तर में वर्षा ऋतु में बैल के द्वारा व्यापार होता था, किन्तु दक्षिण में उस समय गाड़ी एक अज्ञात वस्तु थी[1]। इस कारण सारे देश के किसी न किसी भाग में प्रायः अकाल रहा करता था। भारत में ऐसे अकालों का उल्लेख बहुत प्राचीन काल से पाया जाता है। जातकों में भी अकाल का उल्लेख है। इस काल में यह दशा थी कि जहाँ किसी समय एक बाज़ार में ४ रुपये मन बाजरा था, वहाँ उससे केवल ३० मील अन्तर पर उसी समय वह १॥ रुपये मन के भाव से पाया जाता था।[2]

लूट-मार एवं राज्य के कर्मचारियों के अत्याचार के भय से प्रायः कृषक उतना ही उत्पन्न करते थे जितना कि एक फ़सल से दूसरे फ़सल तक के लिए पर्याप्त हो। इस कारण किसी वर्ष अकाल पड़ने पर उन्हें बहुत कष्ट का सामना करना पड़ता था, और उसका फल यह होता था कि एक ही स्थान पर जो अनाज अकाल पड़ने पर १ रुपये का १० सेर मिलता था[3], वही उसके दो वर्ष बाद वहाँ ३० सेर की दर से मिलता था।

व्यापार प्रायः नदी के मार्ग से ही सम्भव था। नहरें❀ भी अधिक नहीं थीं, जिन से व्यापार हो सके।

उस समय के नगर प्रायः चार प्रकार के थे। अधिकतर नगर नदियों के तट पर होते थे। उत्तर भारत में अधिकतर व्यापार नदियों के द्वारा ही होने के कारण मुख्य व्यापारी नगर नदियों के किनारे ही होते थे। प्रयाग, मिर्ज़ापुर इस प्रकार के नगरों के बहुत अच्छे उदाहरण हैं। दूसरे प्रकार के नगर वे थे जो राजा अथवा राज्याधिकारियों के निवास स्थान होने के कारण प्रसिद्ध थे। उन्हीं के कारण वहाँ भिन्न भिन्न पेशे के लोग जाकर बसते थे। कला-कौशल को राज्य की सहायता मिलने के कारण इन्हीं स्थानों पर अच्छे

Industrial Commission Report 1916-18 P. 2.

Economic condition in India, Pillai P. 12.

The Economic Transition in India. Theodore Morrison.

1. Economic condition in India, Pillai.
2. The Economic Transition in India, Theodore Morrison.
3. Industrial Evolution of India. D. R. Gadgil.

❀उत्तर भारत की बात तो नहीं मालूम पर दक्षिण भारत में पर्याप्त नहरों, सरोवरों और 'रिज़र्वायर्स' के होने का प्रमणा इतिहास में कई स्थानों पर मिलता है। बर्क ने अपने 'इम्पीच-मेण्ट' में केवल कर्नाटक या तंजौर में दस हज़ार सुरक्षित जल-कुण्डों के होने का उल्लेख किया है। 'त्या०भू०'—सम्पादक

अच्छे कारीगर भी जाकर बस जाते थे । लखनऊ, दिल्ली आदि इसी प्रकार के नगर थे । तीसरे प्रकार के नगर वे थे जो तीर्थ अथवा यात्रा के स्थान होने के कारण प्रसिद्ध थे । बनारस, गया, आदि ऐसे नगरों के उदाहरण हैं । इनके अतिरिक्त एक प्रकार के नगर और भी थे जो अपने किसी उद्योग-धन्धे की विशेषता के कारण प्रसिद्ध थे । अहमदाबाद, अमृतसर, कालीकट आदि ऐसे ही नगर थे ।

कारखाना

उद्योग-धन्धों के केन्द्र उपर्युक्त नगर ही थे। देशी तथा विदेशी व्यापार भी इन्हीं नगरों के द्वारा होता था । उद्योग-धन्धे बहुत-कुछ राज्य अथवा धनियों के संरक्षण में होते थे । कारख़ानों की प्रथा भी प्रचलित थी । जिनमें एक पूँजीपति अथवा मालिक होता था वह सभी चीज़ें जुटा देता था और कारीगर अपना काम करके केवल मज़दूरी पाते थे । बहुधा एक चतुर कारीगर अपने अन्तर्गत कुछ अर्ध-शिक्षित अथवा नौसिखुओं को रखकर काम कराता था और जब वह बहुत वृद्ध हो जाता अथवा मर जाता तब उसका स्थान उसके शिष्यों में से जो सबसे चतुर होता वह ग्रहण करता था ।

उद्योग-धंधों पर अकाल का प्रभाव

नगरों में अकाल के समय बहुधा जन-संख्या बढ़ जाया करती थी । इसका कारण यह था कि ग्रामों में कार्य की कमी होने के कारण मज़दूर पेशे के लोग नगरों में आ जाते थे । किन्तु नगरों के उद्योग-धन्धों की अवस्था अकाल के समय और भी ख़राब हो जाती थी। उन दिनों उपज कम होने के कारण लोग अधिकतर कला-कौशल की वस्तुओं को नहीं ख़रीदते थे,इस कारण नगर का व्यापार भी मन्दा पड़ जाता था । ग्राम में तो बटवारे की प्रथा होने के कारण मज़दूरों को उत्पत्ति के अनुसार कुछ न कुछ मिल भी जाता था किन्तु नगर के मज़दूरों को कभी-कभी कुछ भी न मिलने से बहुत ही कष्ट उठाना पड़ता था ।

भारत के उद्योग-धन्धे

इतना होने पर भी भारत के व्यापार एवं उद्योग-धन्धे खूब उन्नति पर थे । विशेष-विशेष स्थानों पर विशेष वस्तुओं की उत्पत्ति होती थी, और वहाँ से सम्पूर्ण देश में तथा विदेशों में भी भेजी जाती थी ।

ढाका का मलमल सम्पूर्ण देश में तथा विदेशों में
था । इसकी बहुत प्रसिद्धि थी । ढाका के अतिरिक्त
शान्तिपुर, चन्द्रनगर, जालन्धर, लुधियाना, अहम
गुण्टूर, कालीकट का वस्त्र देश तथा विदेशों में जाता
वस्त्र की उत्पत्ति के लिए हावड़ा राधानगर,
पालमा, बर्दवान, दीनापुर, मऊ, टाण्डा, हुशियारपुर,
याला, यवला, अहमदनगर, शोलापुर, खानदेश,
आसन्दी, करांची, हैदराबाद, शिकारपुर, उरपाडा,
गुण्टा, रायपुर, नेल्लोर और कावल्ली भी प्रसिद्ध स्थान
दरी आगरा और अलीगढ़ को, फ़र्श बीरभूम के और
मिर्ज़ापुर के प्रसिद्ध थे। सिल्क, गरद, कोरा, तसर
आसाम, मिदनापुर, राजशाही, मुर्शिदाबाद, मुल्तान,
भागलपुर, पटियाला, अमृतसर, अहमदाबाद, सूरत,
बिलासपुर, सम्भलपुर एवं कालंदगी के प्रसिद्ध थे।
सर और लुधियाना का शाल बहुत प्रसिद्ध था। ऊनी
पहाड़ी प्रान्तों में बहुत गर्म व मजबूत बनते थे।
काम दिल्ली, लखनऊ, बनारस, ढाका, अहमदाबाद,
बाद (सिन्ध), विजगापट्टम और चीका कोल में
अच्छा होता था। बर्तन बनारस, मिर्ज़ापुर, लखनऊ,
बाद, अहमदाबाद, नासिक, पूना, हैदराबाद, मदुरा,
तीसपुर में अच्छे बनते थे । सोने-चाँदी का काम
ढाका, लखनऊ, दिल्ली, त्रिचनापली और विजयनगर में
होता था । चटाई तथा शीतलपाटी, बाकरगंज और
से सारे देश में जाती थी। क़लई का काम
बहुत अच्छा होता था ।

इनके अतिरिक्त देश के भिन्न-भिन्न प्रान्तों में
प्रकार के और भी अनेक उद्योग-धन्धे प्रचलित थे।
पर खुदाई का काम एवं पत्थर का काम, आदि अनेक
धन्धे उस समय उन्नति पर थे ?

भारतवर्ष में लोहे का काम भी खूब होता था।

---

1. Handbook of Indian Products T. N. Mu
and Economic History of British
Ramesh Dutta.

की लोहे की चीज़ें विदेश भी जाती थीं[1] ।

लोहा

भारतवर्ष में तलवार बहुत अच्छी बनती थी । दमिश्क की प्रसिद्ध तलवारें यहीं बनती थीं । ठियावाड़ में जहाज़ बनता था । दिल्ली में कुतुबमीनार स जो भारतवर्ष का बना हुआ एक प्राचीन लौह स्त- है, वैसा कुछ दिन पूर्व तक पश्चात्य देशों के बड़े-से-बड़े ख़ाने में भी ढाला जाना सम्भव नहीं था । यहाँ लोहे बड़ी बड़ी तोपें भी बनती थीं ।

खानें

भारतवर्ष में जल एवं स्थल दोनों प्रकार की खानों से खनिज पदार्थ निकाले जाते थे । बहुत प्राचीन काल में भी खानों की देख-रेख के लिए आकरा- स नामक राज्य कर्मचारी नियुक्त किये जाने का उल्लेख ा जाता है । सोना, अबरख़ नमक आदि चीज़ें स्थल की नों से एवं सीप, मोती, नमक आदि समुद्र और झीलों निकाली जाती थीं ।

कुछ लोगों का कहना है कि अंग्रेज़ों के आने के पूर्व हाँ लोहा निकालने का काम नहीं होता था । यह कथन त्य है । श्री० पी० टी० श्रीनिवास आयङ्गर अपनी 'हिस्ट्री व इण्डिया' में लिखते हैं कि यहाँ के लिए जितने लोहे आवश्यकता होती थी वह सब यहीं की खानों से काला जाता था[2] । कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र में भी अच्छे , कच्चे लोहे की पहचान तथा उसे शुद्ध करने की विधि दी है । यह भी यहाँ से कच्चा लोहा निकलने का प्रमाण है*।

इस प्रकार १८ वीं शताब्दि में भारत के उद्योग-धन्धे खूब उन्नति पर थे ।

मिश्रित पूँजी
(साझा)

यद्यपि वर्तमान काल की भाँति अनेक हिस्से वाली कम्पनियों का उस समय अभाव था, तथापि थोड़े से हिस्सेदारों की मिश्रित पूँजी द्वारा स्थापित व्यापार यहाँ होते थे ।

नोट, चेक, एवं बैंक ड्राफ्ट का बहुत-कुछ काम हुंडी द्वारा लिया जाता था ।

विदेशी व्यापार

भारत में विदेश व्यापार भी खूब होता था । बेबिलोन से भारत का व्यापारिक सम्बन्ध ईसा के बहुत पूर्व का है । सन् १६८८ के इंगलैण्ड की क्रान्ति के बाद जब मेरी अपने पति के साथ इंगलैण्ड आई तब वह यहाँ के रंगीन केलिको को इतना पसन्द करती थी कि उसकी देखा-देखी उसे पहनने का वहाँ इतना रिवाज चल पड़ा कि आगे चल कर १७००, १७२१ और उसके बाद भी पार्लमेण्ट को उसे क़ानून द्वारा रोकने का प्रयत्न करना पड़ा ।[1] भारत का विदेश से व्यापारिक सम्बन्ध १८ वीं तथा १९ वीं शताब्दि तक उत्तरोत्तर बढ़ता ही गया, उस समय भारतवर्ष विदेशी व्यापार द्वारा खूब मालामाल होगया था । बाहर से सोना चाँदी भारत में आता था ओर यहाँ से तैयार, माल एवं मसाला आदि कच्चा सामान विदेश को जाता था ।

क्रान्ति का उलटा
प्रभाव

यद्यपि अंग्रेज़ों के आने के बाद से भारत का विदेश से व्यापारिक सम्बन्ध और भी बढ़ गया, परन्तु विपरीत गति से । इंग्लैण्ड की औद्योगिक क्रान्ति के प्रभाव से यहाँ की औद्योगिक अवस्था दिन-प्रति-दिन अवनत ही होती गई । पश्चात्य देशों की उन्नति एवं भारत की अव-नति दोनों पर ही औद्योगिक क्रान्ति का प्रभाव है ।

श्यामाचरण

Essays on Indian Economics. Ranade.

History of India. P. T. Shrinivas Iyenger.

* ख्यूड़ा की प्रसिद्ध खान से सिखों के समय से ही नमक कलता था । चाँदी की खानें यहां ज़रूर थोड़ी थीं । मेवाड़ जावर की चाँदी की खान थी, जिससे कई सदियों तक दी निकलती रही । सोने की अधिक खानें थीं; जिससे ने और चांदी के मूल्य में अनुपात १ और ८ का था, जो हर से चांदी आने के कारण बढ़ता गया । कई नदियों की से भी सोना निकाला जाता था; हिराडाटस ने भी भार- तों के नदियों से सुवर्ण-संग्रह का उल्लेख किया है—संपा० ।

1. Ruin of Indian trade and industries. B.D. Basu.

श्री काशी विद्यापीठ

विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते ॥

यजुर्वेद ४० अध्याय

स्थापना

आजकल भारतवर्ष में अंग्रेज़ी शिक्षा-प्रणाली में जो दूषण हैं, उसके द्वारा देश के नवयुवकों का जिस प्रकार शारीरिक तथा मानसिक ह्रास हो रहा है, तथा इस शिक्षा-प्रणाली के फल-स्वरूप उनमें दिनोंदिन जो भयंकर बेकारी फैलती जा रही है, देश का प्रत्येक विचारशील देशभक्त और शिक्षाप्रेमी व्यक्ति इसे भली-भांति महसूस करता है। काशी के सुप्रसिद्ध दार्शनिक श्री भगवानदासजी और प्रख्यात दानी बाबू शिवप्रसादजी अन्य देशभक्तों के मनमें ये बातें बहुत दिनों से मार रही थीं। वे सोच रहे थे कि एक ऐसी शिक्षा स्थापित हो, जो सरकार से पूर्ण स्वतन्त्र हो— शिक्षा-विभाग के नियमों की वह पावन्द न हो। प्रकार की ऊँची-से-ऊँची शिक्षा मातृभाषा के देव नागरी लिपि के द्वारा दी जाय, और मस्तिष्क की के साथ-साथ हृदय और हाथ की शिक्षा भी दी ज्ञान-संचय के साथ सद्भाव सच्चरित्रता और

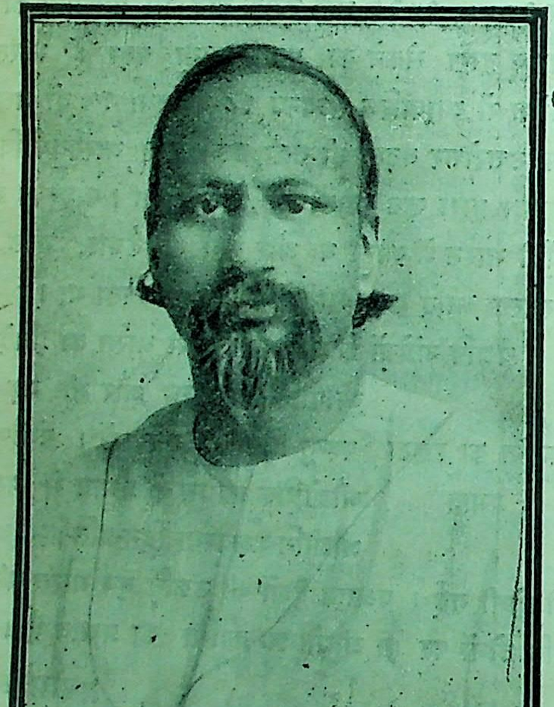

श्रीभगवानदास

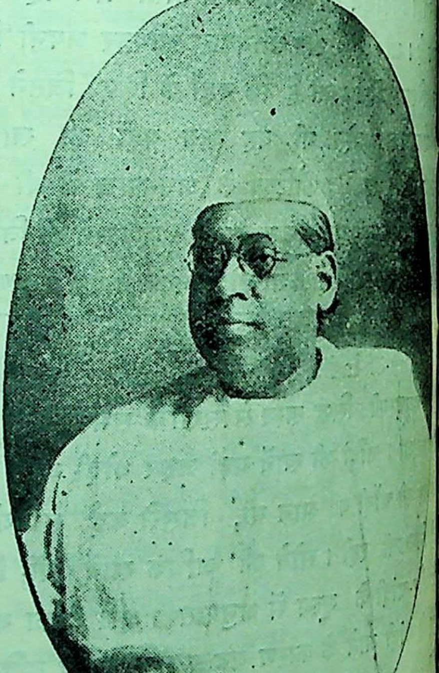

श्रीशिवप्रसाद गुप्त

शिक्षा का भी प्रबन्ध हो, जिससे भारतीय सभ्यता की ति हो, और शिक्षा-प्राप्ति के बाद स्नातक (ग्रेजुएट) ता-पूर्वक जीविका-निर्वाह करने में समर्थ हो सकें।

ईश्वर की कृपा से १९२० ई० में कलकत्ते की स्पेशल ने सरकार से असहयोग करने का प्रस्ताव पास और उसके अनुसार सरकारी अथवा अर्द्ध-सरकारी कालेजों में पढ़ना-पढ़ाना अनुचित ठहराया गया। देश में एक अजीब जागृति, विचित्र जोश और प्रशंस- साहस पैदा हो गया। उक्त महानुभावों को अपने

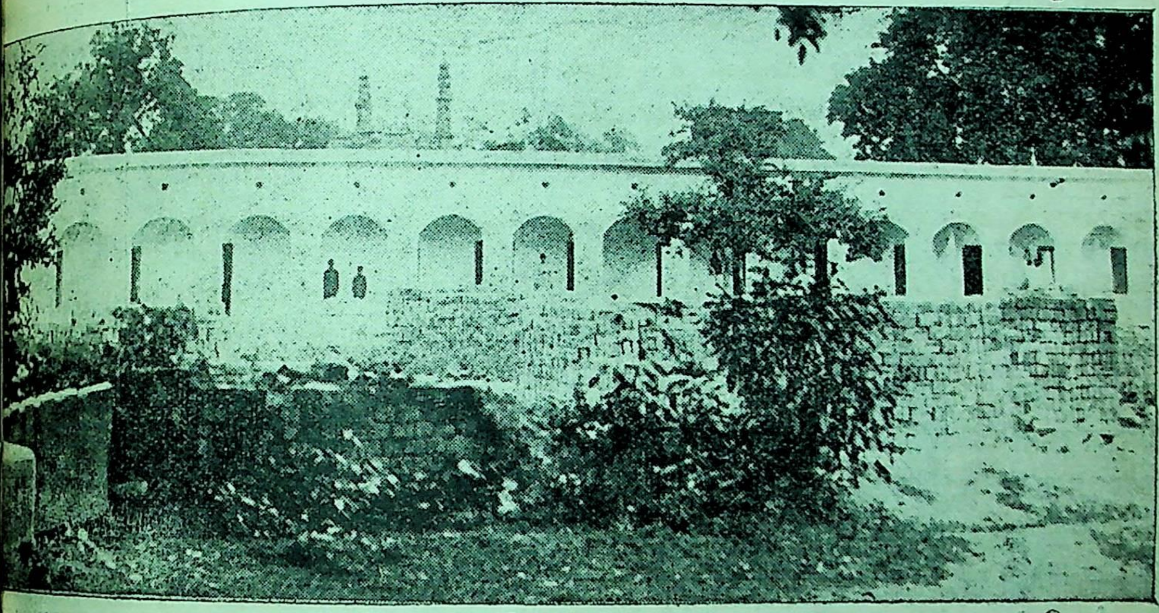

विद्यालय भवन

ों को अमली रूप देने का सुअवसर इस प्रकार उपलब्ध हो गया।

गपुर-कॉंग्रेस के बाद, जनवरी १९२१ ई० में महा- न्धी ने आचार्य भगवानदासजी को पत्र लिखा कि, में शीघ्र ही एक राष्ट्रीय महाविद्यालय खुलना चाहिए। त्र को पाकर उन्होंने बाबू शिवप्रसादजी गुप्त आदि मित्रों से परामर्श किया। फलस्वरूप राष्ट्रीय महा खोलने का निश्चय हुआ और २८ माघ सं० १९७७ (१० फ़रवरी १९२१ ई०) को महात्मा गान्धी ने पुनीत हाथों से विद्यापीठ का उद्‍घाटन किया।

प्रबन्ध-कार्य

श्रावण सं० १९८४ वि० में विद्यापीठ की नियमावली तथा उसके उद्देश्यों की रजिस्ट्री कराके वह एक रजिस्टर्ड संस्था (Corporate Institution) बना दी गई। इसके अनुसार विद्यापीठ का सब नैष्ठिक अधिकार एक निरीक्षक सभा के हाथ में दे दिया गया है। निरीक्षक सभा विद्यापीठ की सर्वोपरि सभा है। इसके सदस्य संयुक्तप्रान्त के अलावा और स्थानों के भी राष्ट्रीय शिक्षा-प्रेमी एवं विद्वान् सज्जन हैं। साथ ही अब उसमें विद्यापीठ के स्नातकों के भी ५ प्रतिनिधि रखने का निश्चय हुआ है।

विद्यापीठ की दूसरी सभा 'प्रबन्ध-समिति' है जो निरीक्षक सभा के आदेशानुसार विद्यापीठ के सब कार्यों का प्रबन्ध करती है। विद्यापीठ सम्बन्धी सब आर्थिक बातें प्रबन्धसमिति के ही हाथ में है। शिक्षा तथा पाठ्य-क्रम सम्बन्धी सब बातों का अधिकार विद्यापीठ की तीसरी समिति 'शिक्षा-परिषद्' के अधीन है। ये तीनों संस्थायें दूसरे विश्व-विद्यालयों के 'कोर्ट' 'सीनेट' और 'सिन्डिकेट' के समान हैं।

विद्यापीठ के अपने ही यहाँ शिक्षा देने की दृष्टि से,

तीन विभाग—विद्यालय, पाठशाला, और शिल्प-शाला—हैं तथा शिक्षा-प्रचार की दृष्टि से उसका एक प्रकाशन-विभाग है। इनके सम्बन्ध में नीचे अलग-अलग लिखा जा रहा है।

विद्यालय-विभाग

विद्यालय (कालेज) का पाठ्य-क्रम चार वर्षों का रक्खा गया है। प्रथम वर्ष हिन्दी, संस्कृत तथा अंग्रेज़ी का अध्ययन अनिवार्य रूप से करना पड़ता है। इनके अतिरिक्त अर्थ-शास्त्र, शरीर-रचना तथा शरीर-विज्ञान और भारतवर्ष की आर्थिक, धार्मिक एवं सामाजिक स्थिति पर साधारण व्याख्यान दिये जाते हैं, जिससे सब विद्यार्थियों को इन विषयों का साधारण ज्ञान प्राप्त हो जाता है। शेष तीन वर्षों में अंग्रेज़ी अनिवार्य रूप से, तथा (क) दर्शन (ख) इतिहास, अर्थशास्त्र और राजनीतिशास्त्र एवं (ग) प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति—इन वैकल्पिक विषयों में से कोई एक विषय लेना पड़ता है। द्वितीय वर्ष में हिन्दी सब विद्यार्थियों को तथा संस्कृत केवल उन विद्यार्थियों को जो दर्शन और भारतीय संस्कृति लेना चाहते हैं, पढ़नी होती है। अन्तिम वर्ष में विद्यार्थी को उस वैकल्पिक विषय से सम्बध रखने वाले किसी विषय पर, जिसे उसने लिया हो, एक बड़ा निबन्ध लिखकर उसमें उत्तीर्ण होना पड़ता है। प्रत्येक वर्ष की परीक्षा में उत्तीर्ण होने पर उसके ऊपर की परीक्षा में सम्मिलित होने की अनुमति मिलती है।

पाठशाला भवन

विद्यापीठ की 'विशारद' अथवा किसी शिक्षा- की मैट्रिक अथवा उसकी समकक्ष परीक्षा में उत्तीर्ण हो ही विद्यार्थी विद्यालय में प्रवेश कर सकता है। विद्या किसी भी विभाग में पढ़ाई का कोई शुल्क नहीं लिया विद्यालय-विभाग में निर्धन, योग्य और सदाचारी विद्या को १०) मासिक छात्रवृत्ति भी मिलती है। विद्या विद्यालय-विभाग का उपरोक्त पाठ्यक्रम दूसरे विश्ववि के एम० ए० के बराबर है। विद्यपीठ के विद्यालय-वि से उत्तीर्ण को 'शास्त्री' उपाधि दी है। विद्याल इस समय ल ३५ विद्यार्थी

पाठशाला विभाग

विद्या पाठशाला (हाईस्कूल) कालेजिएट के समान इसमें लगभ विद्यार्थी हैं। पाँचवीं कक्षा से लेकर दसवीं कक्षा तक की होती है। 'विशारद' परीक्षा पास होने वा 'विशारद' की उपाधि दी जाती है। इसे पास वालों को गणित, संस्कृत, विज्ञान, भूगोल और सरकारी स्कूलों के मैट्रिक के बराबर ज्ञान होता है, प और इतिहास में उससे भी अधिक योग्यता प्राप्त हो है। राष्ट्रीयता के भाव दृढ़ करने के लिए प्राचीन पद्धति, इतिहास, राजनीति और भारतीय मर्यादा पर ध्यान दिया जाता है। इन विषयों के अतिरिक्त शास्त्र, शासन-पद्धति, स्वास्थ्यरक्षा तथा शरीर-रच भी पढ़ाया जाता है। असमर्थ और योग्य छात्रों को

भी दी जाती है । विद्यार्थियों के सदाचार और नियत जीवन व्यतीत करने पर विशेष ध्यान रक्खा जाता है। र्थियों की वक्तृत्वशक्ति बढ़ाने और संघटित रूप से करने की योग्यता पैदा करने की दृष्टि से पाठशाला के र्थियों की एक 'कुमार-सभा' है । इसके द्वारा विद्यार्थी दी और अंग्रेजी में बहस करते हैं तथा 'आदर्श कुमार' क एक हस्तलिखित पाक्षिक पत्र भी निकालते हैं ।

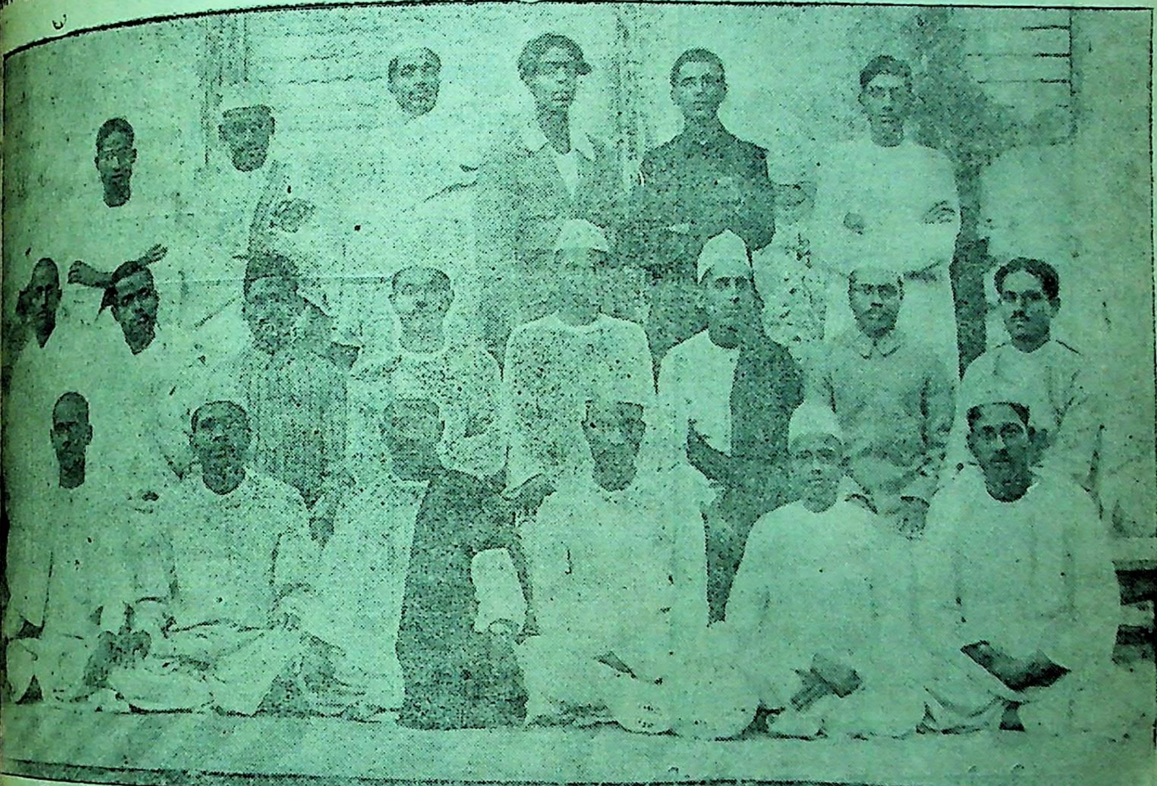

विद्यालय के विद्यार्थियों का एक समूह

शिल्प-विभाग

विद्यार्थियों में स्वतन्त्र जीवन निर्वाह करने और शिल्प के प्रति प्रेम पैदा करने की दृष्टि से यह विभाग खोला है। पहले इसके अधीन खद्दर, दरी, निवाड़, आदि बुनने, सूत कातने, साबुन बनाने, रँगाई करने, बेंत की पलंग आदि बुनने, बढ़ईगिरी सीखकर लकड़ी का ने, कपड़ा सीने आदि के अनेक काम सिखाये जाते थे, पर किन्हीं कारणों से और सब विभागों को बन्द कर देना पड़ा । इस समय यहाँ बढ़ईगिरी और सिलाई के ही काम शेष रह गये हैं और विद्यार्थी इन कलाओं की शिक्षा प्राप्त करते हैं ।

प्रकाशन-विभाग

हिन्दी की सुप्रसिद्ध 'ज्ञानमण्डल' ग्रन्थमाला अब विद्यापीठ के प्रकाशन-विभाग के अधीन आ गई है और विद्यापीठ अपने इस प्रकाशन विभाग द्वारा हिन्दी में विभिन्न विषयों की उत्तमोत्तम पुस्तकें लिखवाकर प्रकाशित करने का यत्न कर रहा है । प्रकाशन-विभाग के द्वारा पिछले महीने से 'विद्यापीठ' नाम की एक त्रैमासिक पत्रिका भी निकलने लगी है, जिसमें ऐसे गम्भीर, विद्वत्तापूर्ण और श्रेष्ठ लेख रहते हैं, जो हिन्दी के स्थायी साहित्य में महत्व-पूर्ण स्थान प्राप्त करेंगे । श्री भगवानदासजी और श्री नरेन्द्रदेवजी इसके सम्पादक हैं ।

अध्यक्ष

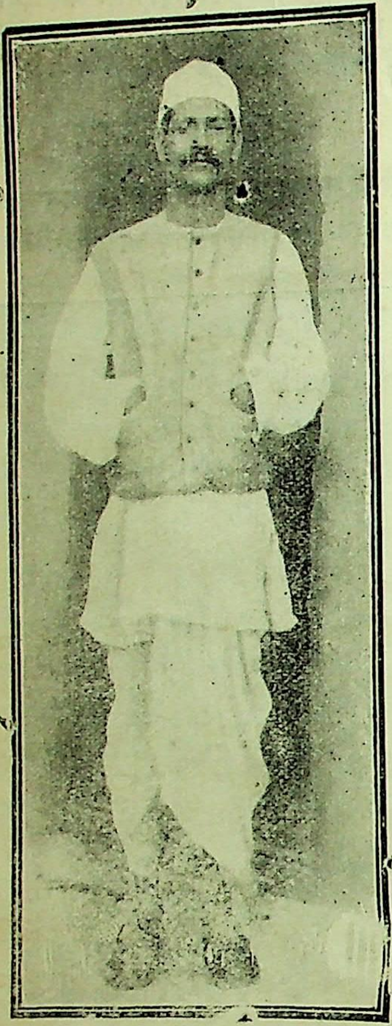

श्री नरेन्द्रदेव एम० ए०, एल०एल० बी०

विद्यार्थी-परिषद्

विद्यालय (कालेज) के विद्यार्थियों की एक संस्था 'विद्यार्थी-परिषद्' है। इसके सदस्य न केवल विद्यार्थी ही, बल्कि विद्यापीठ के अध्यापक भी होते हैं। इसके द्वारा हिन्दी में एक हस्त-लिखित 'विद्यापीठ' नामक पाक्षिक पत्र निकाला जाता है। इसके अन्तर्गत दो विभाग-से हैं—शिक्षा और सेवा। विद्यापीठ में जो भी उत्सव आदि मनाये जाते हैं, उनका प्रबन्ध-भार 'विद्यार्थी-परिषद्' के ही ऊपर रहता है।

छात्रावास

विद्यापीठ के विद्यालय और पाठशाला दोनों विभागों के विद्यार्थियों के लिए छात्रावास में रहने का पर्याप्त प्रबन्ध किया गया है। छात्रावास में रहने के लिए कोई शुल्क नहीं लिया जाता। साथ ही छात्रावास में रहने वाले विद्यार्थियों की रुग्णावस्था में औषधि और सेवा-शुश्रूषा का सारा ख़र्च विद्यापीठ की ही ओर से दिया जाता है। प्रत्येक विद्यार्थी को चौकी, आलमारी, रैक आदि प्रदान किया जाता है। विद्यालय-विभाग के विद्यार्थी छात्रावास में रहते हुए १ मासिक में ख़र्च चला लेते हैं। इसी प्रकार पाठशाला छात्रावास में रहने वाले विद्यार्थियों का भी १२-१३ रुपये

राजनीति शास्त्राध्यापक

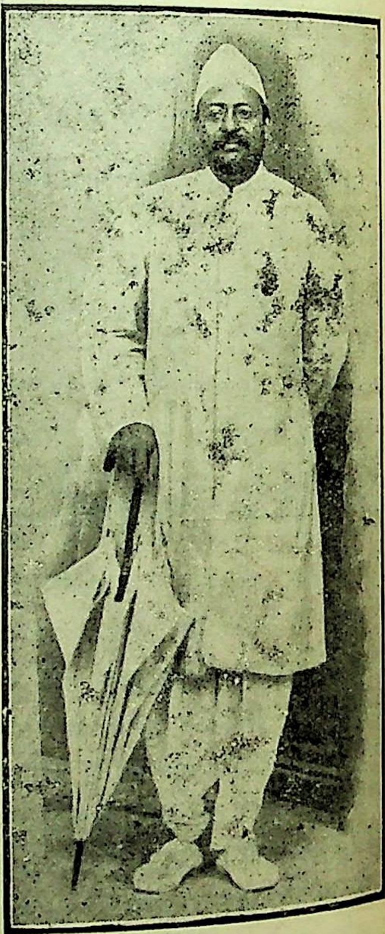

श्री श्रीप्रकाश बार एट-ला

में काम चल जाता है। विद्यापीठ के प्रत्येक विद्यार्थी सूत कातना, व्यायाम करना और सहभोज में होना अनिवार्य है।

हाँ के छात्रावास की सब से अच्छी बात अध्यापकों विद्यार्थियों का पारस्परिक प्रेम-पूर्वक रहना है। में कुछ अध्यापक भी रहते हैं जो विद्यार्थियों बड़े प्रेम से मिलते तथा एक परिवार का-सा सुख करते हैं। वे अपने आदर्श चरित्र द्वारा तथा समय पर उनसे बातें करके उन्हें हर प्रकार से देने का यत्न करते हैं। यहाँ के अध्यापकों और के जीवन से पवित्रता और सरलता, वेषभूषा से और सादगी, तथा उनके आचरण और व्यवहार से एवं निष्कपटता टपकती है। यहाँ पर नियमों किसी भय से नहीं, बल्कि कर्त्तव्य समझ कर साथ किया जाता है। यहाँ का प्रत्येक विद्यार्थी स्वावलम्बी बनने का प्रयत्न करता है। विद्यापीठ का वायुमण्डल और परिस्थिति ही कुछ ऐसी है कि वहां उसे आप ही स्वावलम्बन की शिक्षा व्यावहारिक रूप में मिल जाती है। यहाँ के छात्र सदा प्रत्येक काम को अपने हाथों करने को न केवल तैयार ही रहते हैं, बल्कि करते भी हैं और अपने हाथ से कोई भी काम करना बुरा नहीं समझते। विद्यालय के लगभग सभी विद्यार्थी और पाठशाला के तीन चौथाई छात्र छात्रावास में ही रहते हैं।

पाश्चात्य दर्शन के अध्यापक

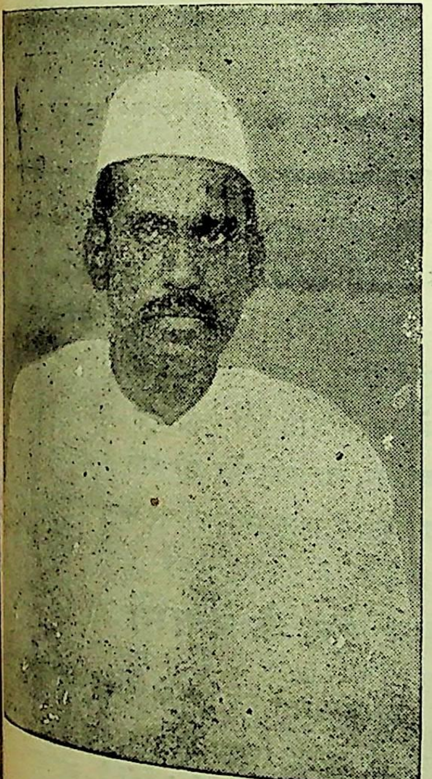

श्री सम्पूर्णानन्दजी एम० एल० सी०

पुस्तकालय

श्री शिवप्रसादजी गुप्त ने लगभग दस हज़ार पुस्तकों का अपना बृहत् पुस्तकालय भी विद्यापीठ को प्रदान कर दिया है। पर इन के रखने के लिए अच्छा मकान न होने के कारण ये सभी पुस्तकें अभी विद्यापीठ में लाई नहीं गई हैं। अभी लगभग ढाई हज़ार पुस्तकें वहां से मँगा ली गई हैं और शेष मकान बनते ही आजायेंगी। इसके सिवा विद्यापीठ ने अलग से भी लगभग डेढ़ हज़ार पुस्तकें ख़रीदी हैं। पुस्तकालय के साथ-साथ एक वाचनालय भी है, जिसमें हिंदी और अंग्रेजी के अनेक देशी और विदेशी दैनिक, साप्ताहिक एवं मासिक पत्र आते हैं।

इमारत

बनारस छावनी स्टेशन से बिलकुल निकट ही ३३,९००) में कई एकड़ ज़मीन खरीद ली गई है। इस स्थान से लगी हुई जो मुख्य सड़क स्टेशन से आती है, उसका नाम म्युनिसिपैलिटी ने 'विद्यापीठ रोड' रख दिया है। इस निजी ज़मीन में विद्यापीठ की ओर से दो इमारतें बनाई गई हैं, जिन में से एक में पढ़ाई होती है और पुस्तकालय तथा दफ्तर है, और दूसरी में विद्यालय का छात्रावास।

पाठशाला तथा उसका छात्रावास विद्यालय-भवन से थोड़ी ही दूर पर एक केराये के मकान में स्थित है। दोनों स्थान काफ़ी लम्बे-चौड़े तथा बिलकुल खुले हुए हैं। इनके अन्दर कुछ खेत, बहुत से फलों के पेड़ और फुलवारी हैं।

बैंक

विद्यापीठ के विद्यार्थियों ने 'कमला-कोष' नाम का एक बैंक खोल रक्खा है। इस बैंक का उद्देश्य है विद्या-

र्थियों को उनकी कठिनाइयों के समय मदद देना। पर यह मदद दान के रूप में नहीं, बल्कि क़र्ज़ के रूप दी जाती है। प्रत्येक संस्था में कुछ ऐसे विद्यार्थी होते हैं, जिन्हें रुपयों का प्रायः अभाव बना रहता है और कुछ ऐसे होते हैं, जिनके पास काफ़ी रुपये होते हैं। अस्तु; विद्यापीठ के बैंक को चलाने के लिए ऐसा प्रबन्ध किया गया है कि जिन विद्यार्थियों के पास जो भी रुपया घर से या कहीं से आवे, वे उन्हें अपने पास वा पोष्ट आफ़िस-बैंक में जमा न करके, विद्यापीठ के 'कमला-कोष' में जमा कर दिया करें। इससे यह होता है कि जमा करने वालों का तो कोई नुक़सान नहीं होता—क्योंकि उन्हें जिस समय ज़रूरत पड़ती है, बैंक रुपये देता है—और आर्थिक कठिनाई में पड़े हुए विद्यार्थियों का मज़े में काम चल जाता है। रुपये जमा करने वालों को कोई मुनाफ़ा नहीं दिया जाता, पर क़र्ज़ लेने वालों से नाम मात्र का सूद लिया जाता है। इसकी ओर से विद्यापीठ में ही विद्यापीठ के लोगों की सहूलियत के लिए एक पोस्ट आफ़िस भी खोला गया है, जहाँ कार्ड, लिफ़ाफ़े, आदि मिला करते हैं। इस प्रकार विद्यापीठ के इस बैंक के द्वारा विद्यार्थी एक दूसरे को वांछनीय सहायता और सेवा करने के साथ-साथ बैंकिंग की साधारण और व्यावहारिक शिक्षा भी प्राप्त कर लेते हैं।

समावर्तन संस्कार और शिक्षा-सम्मेलन

अभी तक विद्यापीठ के पांच समावर्त्तन संस्कार (कनवोकेशन) हो चुके हैं। इनमें क्रमशः आचार्य राजेन्द्र प्रसादजी, आचार्य गिड़वानीजी तथा आचार्य चिन्तामणि विनायक वैद्य* के दीक्षान्त अभिभाषण हुए हैं। विद्यापीठ ने सन् १९२३ ई० में एक राष्ट्रीय शिक्षा-सम्मेलन का भी आयोजन किया था। यह सम्मेलन २३ फ़रवरी १९२३ से लेकर ६ मार्च १९२३ तक होता रहा। इसमें तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ पूना, नैशनल मेडिकल कालेज बम्बई, गुजरात विद्यापीठ अहमदाबाद, तिलक क़ौमी विद्यालय हैदराबाद, पंजाब क़ौमी विद्यापीठ लाहौर, प्रेम महाविद्यालय वृंदावन, नेशनल मुस्लिम यूनीवर्सिटी अलीगढ़, बिहार विद्या पटना, काशी विद्यापीठ बनारस आदि राष्ट्रीय संस्थाओं २८ प्रतिनिधियों ने भाग लिया था। इसमें राष्ट्रीय शि को उन्नति, प्रचार, उससे लाभ आदि कई महत्वपूर्ण प्रश्नों विचार हुआ। इस सम्मेलन की रिपोर्ट प्रकाशित होगई सम्मेलन ने प्रति वर्ष ऐसा एक सम्मेलन करने का नि किया था, पर बड़े खेद की बात है कि उसके बाद से तक कोई ऐसा सम्मेलन फिर कहीं न हुआ!

अर्थशास्त्र के अध्यापक

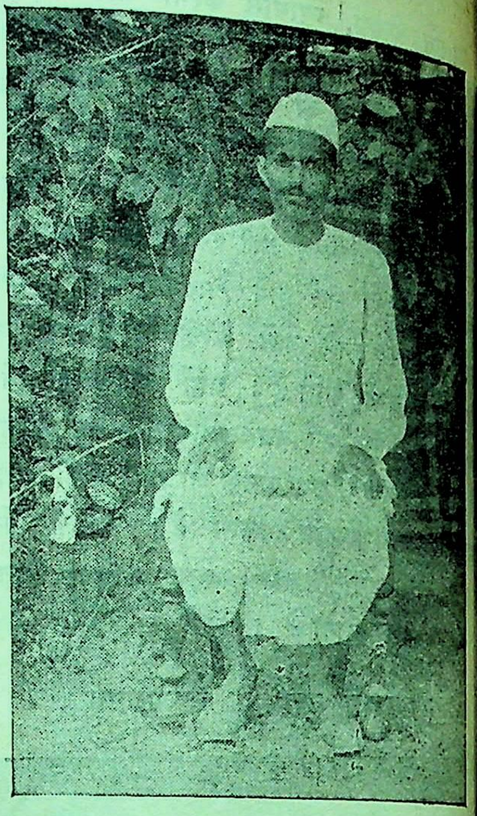

श्री रामशरण एम० ए०, एल०एल० बी०

देश के नेताओं का निरीक्षण

समय-समय पर देश के कतिपय विद्वान्, नेता, गण्यमान व्यक्ति विद्यापीठ में आते ही रहते हैं। और कदा विभिन्न विषय के विशेषज्ञों के व्याख्यानों की भी वस्था की जाती है। अबतक विद्यापीठ को महात्मा गा

---

* प्रथम और पांचवें कनवोकेशन के अवसर पर आचार्य भगवानदासजी ने ही दीक्षान्त भाषण किया था। —लेखक

अंग्रेजी साहित्य के अध्यापक

ी योगेश्वर चट्टोपाध्याय एम० एस-सी०

पतराय, आचार्य प्रफुल्लचन्द्रराय, कवि सम्राट् नाथ ठाकुर, आदि महानुभाव देख चुके हैं।

ध्यापक-मण्डल तथा अधिकारि-वर्ग

पीठ के अधिकारियों में सर्व प्रथम आचार्य देवजी का नाम उल्लेखनीय हैं। आप की विद्वत्ता हिन्दुस्थान में बल्कि समस्त संसार में प्रसिद्ध हैं शास्त्र के ज्ञान की दृष्टि से तो हिन्दुस्थान एक अद्वितीय महापुरुष हैं। शिक्षा के विषय आप के जैसे अनुभवी विद्वान् हिन्दुस्थान में बहुत मिलेंगे। विद्यापीठ की स्थापना के बाद से तक आप विद्यापीठ के अध्यक्ष (प्रिन्सपल) सुशोभित कर उसे गौरवान्वित करते रहे। कुछ दिन हुए आपने वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश किया और बनारस छोड़ 'विश्राम' चुनार में रहने लगे। अब विद्यापीठ के कुलपति (चांसलर) आप ही हैं और चुनार में रहते हुए भी सदा विद्यापीठ की उन्नति और उसके हित की बातें बतलाते रहते एवं विद्यापीठ के सभी प्रमुख उत्सवों तथा सभा-समितियों में शामिल होते हैं। थोड़े में, आप विद्यापीठ के आधार-स्तम्भ और मार्ग-प्रदर्शक हैं। विद्यापीठ के मंत्री दानवीर श्रीयुत शिवप्रसादजी गुप्त हैं। यह आप की ही देशभक्ति, उदारता और कृपा का फल है कि बनारस में विद्यापीठ जैसी एक उत्कृष्ट लोकोपकारी संस्था स्थापित है। आपने राष्ट्रीय शिक्षा-प्रचार के लिए दस लाख का स्थायी दान देकर अपनी देश-भक्ति का न केवल पर्याप्त परिचय ही दिया है, बल्कि विद्यापीठ और राष्ट्रीय शिक्षा-प्रेमियों को सदा के लिए ऋणी बना लिया है। आप की उदारता, राष्ट्रीय शिक्षा-प्रेम, निःस्वार्थ सेवा-भावना और त्याग सर्वथा प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय हैं।

विद्यापीठ के अध्यक्ष आचार्य नरेन्द्रदेवजी वस्तुतः उसकी आत्मा हैं। आपने विद्यापीठ के लिए अपना जीवन ही समर्पित कर दिया है। आप जिस धुन, जिस प्रेम, जिस लगन और जिस निःस्वार्थभाव से विद्यापीठ की सेवा कर रहे हैं, उसे देखकर किसी भी विश्वविद्यालय के अध्यक्ष को ईर्ष्या होगी! आप जैसी उत्कृष्ट योग्यता, विद्वत्ता और अनुभव के व्यक्ति को अध्यक्ष बनाने का विद्यापीठ को अभिमान है। भारतवर्ष के प्राचीन तथा अर्वाचीन इतिहास के आप बड़े ही धुरन्धर विद्वान् हैं। प्राचीन भारत के इतिहास में भी बौद्ध-काल के इतिहास पर तो आपका ऐसा गम्भीर अध्ययन, इतना अधिक प्रवेश और इतनी अधिक विज्ञता है कि मुझे सन्देह है कि इस विषय का ज्ञाता हिन्दुस्तान में आपसे बढ़कर और भी कोई है या नहीं? आप हिन्दी, और अंग्रेज़ी, उर्दू और संस्कृत के जिस प्रकार उत्कृष्ट विद्वान् हैं, उसी प्रकार पाली और प्राकृत के पूरे पण्डित। पर यह सब होते हुए भी अपनी विद्वत्ता का अभिमान आपको छू तक नहीं गया है। आप का एकदम सरल और सीधा-सादा जीवन देखकर कोई भी यह अनुमान नहीं कर सकता कि आप किसी

विश्वविद्यालय के अध्यक्ष और इतने बड़े भारी विद्वान् हैं। विद्यापीठ के उपाध्यक्ष श्रीयुत श्रीप्रकाशजी विद्यापीठ की सेवा जिस निःस्वार्थ भाव से कर रहे हैं, वह सर्वथा प्रशंसनीय है। आप क़ानून, विधान, और राजनीति-शास्त्र के प्रसिद्ध विद्वान् हैं और विद्यापीठ में इन्हीं विषयों को पढ़ाते हैं। यह विद्यापीठ के कार्य में अपना बहुत अधिक समय देते तथा विद्यापीठ को अपने जीवन का एक मुख्य कार्य बनाना चाहते हैं। आपके जैसे परिश्रमी, मिलनसार, व्यवहार-कुशल, प्रसन्नचित्त और सावधान व्यक्ति बहुत कम ही मिलेंगे। अर्थशास्त्र के अध्यापक श्री रामशरणजी अपने विषय के अच्छे पण्डित हैं। पर इससे भी अधिक महत्वपूर्ण तो आपका आदर्श चरित्र है। आपके जैसे आदर्श, व्यावहारिक, सादे, सच्चे और त्यागी व्यक्ति बहुत ही कम मिलेंगे। आप विद्यापीठ के एक-एक विद्यार्थी को अच्छी तरह जानते, उनका पूरा ख़्याल रखते, उनसे बराबर मिलते रहते और हर प्रकार से उन्हें शिक्षा देते रहते हैं। आपका जीवन इतना नियमित, व्यावहारिक, संयत और श्रेष्ठ है कि वही एक श्रेष्ठ शिक्षणालय का काम करता रहता है। अंग्रेज़ी और दर्शन के अध्यापक श्रीयुत योगेश्वर चट्टोपाध्याय भी जिस प्रकार अपने विषय के पण्डित हैं, उसी प्रकार अपनी निस्पृहता, सादगी और त्यागमय जीवन के लिए प्रसिद्ध हैं। विद्यार्थियों के लिए आपकी बातें ऐसी उपयोगी, उत्साह-वर्द्धक तथा साहस दिलाने वाली होती हैं कि उनमें सदा जीवन और जागृति की उथल-पुथल मची रहती है। आप में एक ऐसा तेज है कि लोग उससे अभिभूत हो जाते हैं। हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत सम्पूर्णानन्द जी पाश्चात्य दर्शन और अन्तर्राष्ट्रीय विधान पढ़ाते हैं। पर आप एकमात्र दर्शन वा अन्तर्राष्ट्रीय विधान के ही विद्वान् नहीं, बल्कि विज्ञान, अंग्रेज़ी और इतिहास में भी पर्याप्त योग्यता रखते हैं। श्रीयुत बीरबलसिंह जी विद्यापीठ के रजिस्ट्रार हैं, साथ ही आप यूरोप का इतिहास भी पढ़ाते हैं। विद्यापीठ की स्थापना से आज तक बराबर आप उसकी सेवा करते आ रहे हैं। आपका सीधापन और नम्रता प्रशंसनीय है। विद्यालय के अन्य प्रमुख अध्यापकों में प्राच्य-दर्शन के अध्यापक पं० गोपालप्रसादजी शास्त्री, दर्शन-केसरी, पं० रुद्रदेवजी वेदाचार्य और श्री मु
लाल जी श्रीवास्तव के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

विद्यापीठ के स्नातक

असहयोग के बाद उसकी जो प्रतिक्रिया शुरू हुई,
का सामना करते हुए भी विद्यापीठ केवल पाँच
में ४२ स्नातक अपने यहाँ से तैयार कर देश
दे चुका, यह उसके लिए कम सन्तोष की बात नहीं
साथ ही यह भी बड़े सन्तोष की बात है कि विद्यापीठ
प्रायः सभी स्नातक (शास्त्री) देश के कामों में लो
जीवकोपार्जन कर रहे हैं। असहयोग के ज़माने में दे
जितने लोगों ने स्वार्थ-त्याग किया, उनमें विद्यार्थियों
त्याग सबसे बड़ा समझा जायगा। और उनमें भी वे अ
योगी विद्यार्थी जो माता-पिता के क्रोध-पात्र बनने
कारण अनेक कठिनाइयों को सहते हुए भी चार-चार, पांच-

पीटस्थविर

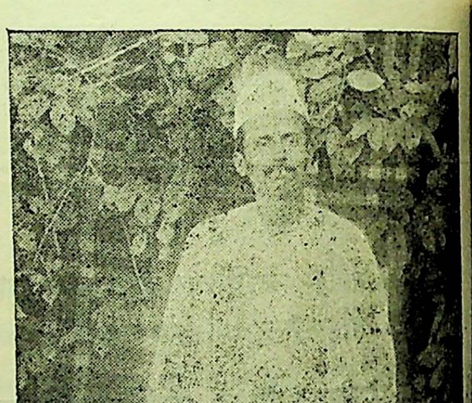

श्री बीरबलसिंह बी० ए०

अपने व्रत पर दृढ़ रह कर राष्ट्रीय विद्यालयों में देश की सेवा के योग्य तैयार करते रहे, सर्वथा के पात्र समझे जायँगे। विद्यापीठ को उन्हें ऐसी का श्रेय प्राप्त है कि आज वे भले ही अधिक कमा सकें, पर देश के लिए मर मिटना जानते हैं। शिक्षा का यही महत्व और राष्ट्रीय विद्यालयों की ता है।

पीठ से उत्तीर्ण ४२ शास्त्रियों में ४ शास्त्री इस पीठ ही में अध्यापन-कार्य कर रहे हैं। ५ शास्त्री तरायजी की 'लोक-सेवक-समिति' के आजीवन हैं; जिनमें दो मेरठ और मुजफ़्फ़रनगर में अछूतो- कार्य, एक कानपुर में वहां की मज़दूर सभा के प्रधान सियत से मज़दूरों के संघटन का कार्य, और दो लाहौर साइटी की ओर से अन्य कार्य कर रहे हैं। ६ शास्त्री और अंग्रेज़ी के प्रमुख राष्ट्रीय पत्रों में सम्पादन-कार्य कर रहे हैं। तीन शास्त्री अखिल भारतीय चर्ख़ा-संघ के अधीन खद्दर-प्रचार का कार्य कर रहे हैं। ५ शास्त्री विभिन्न स्थानों के राष्ट्रीय उच्च विद्यालयों के प्रधानाध्यापक और इन्सपेक्टर का कार्य कर रहे हैं। एक शास्त्री जर्मनी जाने के विचार से 'शान्ति निकेतन' में जर्मन और बौद्ध धर्म का विशेष अध्ययन कर रहे हैं। एक शास्त्री बिहार में परदा-प्रथा के विरुद्ध ज़बर्दस्त आन्दोलन के पीछे पड़े हुए हैं। एक शास्त्री ताता कम्पनी जमशेदपुर में एक विभाग के असिस्टेन्ट सुपरिन्टेन्डेन्ट हैं। इनके सिवा कई शास्त्री अपने गाँवों में घर के कामों के साथ-साथ ग्राम-संघटन का कार्य करते, कुछ बड़े पैमाने पर खेती करते, और कुछ अन्य सामाजिक कामों में लगे हुए हैं। कुछ शास्त्री अभी ख़ाली भी हैं, जो शीघ्र ही किसी-न-किसी काम में लग जायँगे। उपरोक्त विवरण को पढ़ने से पाठकों को पता लग जायगा कि विद्यापीठ के स्नातक किस प्रकार देश के विभिन्न क्षेत्रों में काम कर रहे हैं। इन शास्त्रियों में कइयों ने विद्यापीठ से निकलने के बाद के बहुत थोड़े समय में ही अपने चरित्रबल, योग्यता और कार्यपटुता का इतना अच्छा परिचय दिया है कि भविष्य में उनसे बहुत बड़े-बड़े कार्यों की आशा होने लगी है।

प्राच्य-दर्शन के अध्यापक

पं० गोपालप्रसाद शास्त्री

विद्यापीठ की आय

विद्यापीठ को चलाने के लिए उसकी सर्व-प्रधान आय 'श्री हरिप्रसाद शिक्षानिधि' के सूद की रक़म है, जो लगभग पाँच हज़ार रुपये मासिक है। इससे ही सब ख़र्चों के बाद लगभग अस्सी हज़ार रुपये ख़र्च करके ज़मीन ख़रीदी गई है और दो अच्छी-अच्छी इमारतें भी बनवा ली गई हैं। इसके सिवा बनारस के श्री दामोदर जी जोशी शुरू से ही विद्यापीठ को १२००) वार्षिक देते आ रहे हैं और श्री भगवानदासजी के यहाँ से भी कुछ नियमित सहायता मिलती रहती है। साथ ही मौक़े बमौक़े ये लोग विद्यापीठ की कुछ यों भी सहायता करते हैं। विद्यापीठ में अधिक से अधिक किसी अध्यापक को डेढ़ सौ रुपया मासिक पुरस्कार दिया जाता है। विद्यापीठ के उपाध्यक्ष श्री श्रीप्रकाश बिलकुल अवैतनिक रूप से शुरू से ही विद्यापीठ की सेवा कर रहे हैं।

कुछ फुटकर बातें

विद्यापीठ ने अपना कार्यक्षेत्र अपने विद्यालय और पाठशाला तक ही महदूद न रख कर और अधिक विस्तृत कर रक्खा है। पिछले वर्ष से उसकी ओर से विभिन्न महत्वपूर्ण विषयों पर सार्वजनिक व्याख्यानों द्वारा सर्वसाधारण को भी लाभ पहुँचाया जा रहा है। पिछले वर्ष आचार्य नरेन्द्रदेव, श्री श्रीप्रकाशजी, श्री वीरबलसिंह, श्री रुद्रदेव और श्री मुकुन्दीलाल के क्रमशः बौद्धकालिक भारत, राजनीति-शास्त्र, यूरोपीय इतिहास, वैदिक सभ्यता और हिन्दी पर महत्वपूर्ण व्याख्यान हुए थे।

विद्यापीठ के अध्यापक तथा विद्यार्थी सदा बड़े उत्साह और उमंग के साथ बनारस के प्रत्येक सामाजिक तथा राजनैतिक—ख़ास कर राजनैतिक कार्यों में भाग लेते रहते हैं। कांग्रेस के मेम्बर बनाने, खद्दर-प्रचार, ग्रहण आदि अवसरों पर यात्रियों की सेवा आदि काम विद्यापीठ के विद्यार्थी बराबर करते हैं। समय-समय पर अध्यापक तथा विद्यार्थी सारनाथ, नालन्द, राजगिरि आदि ऐतिहासिक स्थानों की यात्रा भी करते हैं, जिससे न केवल उनका मनोरंजन ही होता है, बल्कि विद्यार्थियों को बहुत सी साधारण ज्ञान की एवं ऐतिहासिक बातें मालूम होजाती हैं। समय-समय पर विद्यापीठ में मनोरंजन के लिए गायन-वादन, कवि-सम्मेलन और नाटक भी होते हैं। होली के अवसर पर यहां जो आनन्दोत्सव मनाया जाता है, वह तो बड़ा ही सुन्दर और मनोहर होता है। उसमें अध्यापक लोग भी अपने सुन्दर-सुन्दर गाने बड़े मुग्धकारी ढंग से सुनाते हैं। सहभोज तो विद्यापीठ की एक ख़ास बात होगई है। विद्यापीठ के वार्षिकोत्सव और उपाधि-वितरणोत्सव (कनवोकेशन) के अवसर पर प्रतिवर्ष बड़े-बड़े सहभोज होते हैं। श्रीयुत शिवप्रसादजी ने लगभग १५ हज़ार रुपये ख़र्च करके संगमरमर पत्थर पर हिन्दुस्थान का एक मानचित्र बनवाया है। यह चित्र भारतीय शिल्पकारों के ही हाथों बनाया गया है। इसमें हिन्दुस्थान के सभी पहाड़, नदियाँ, झरने आदि सुचारु-रूपेण दिखलाये गये हैं। इस चित्र को रखने के लिए आप विद्यापीठ के पास ही एक भारतमाता का मन्दिर बनवा रहे हैं। पारसाल इस मन्दिर की पड़ गई और अब शीघ्र ही वह तैयार भी हो जायगा। मन्दिर में किसी भी वर्ण वा जाति के व्यक्ति को का निषेध न होगा, पर मन्दिर में प्रवेश करते वक्त को जूता निकाल देना पड़ेगा।

संस्कृत के अध्यापक

पं० रुद्रदेव वेदाचार्य

उपसंहार

विद्यापीठ अपने साधारण साधनों से देश-सेवकों को सब प्रकार के राष्ट्रीय कामों के लिए तैयार सार्वजनिक हित के लिए पुस्तकें प्रकाशित करके, सुलभ व्याख्यानों का प्रबन्ध करके देश की उन्नति के यथा-साध्य प्रयत्न करता आरहा है। इसे अपने इस में कहांतक सफलता मिली है, यह आज प्रत्येक व्य सामने साक्षात् प्रकट है।

देवव्रत शा

मातृ-वन्दना

तेरी मृदुल मनोहर मूरत,
करती शिशुगण के हिय मोद।
सकल सौख्य दाता दुख-त्राता,
है यह तेरी प्यारी गोद!
निर्धन को सम्पति है तूही,
आशहीन की है तू आश,
तू ही उपजाती भावों को,
भरती उर में विमल प्रकाश!
ललना का आभूषण तू है,
सत्य स्नेह की तू आधार,
है तू सुखद मञ्जु ऊषा-सी,
गाथाओं की है तू सार!
सुखमय गोदी में बिठलाकर,
ताप सभी का हर माता!
सरस-सुकवि-निर्मल-मानस में,
भव्य भावना भर माता!

ब्रह्मदत्त मिश्र

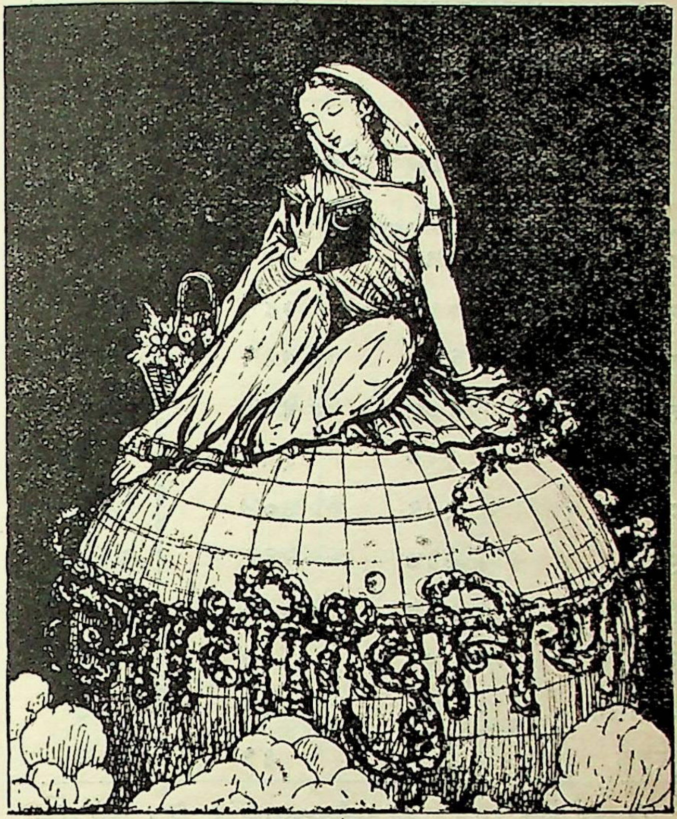

शिक्षा-समस्या

(१)

श्री सुब्बैया कामठ, अपनी 'सेन्सस ऑफ़ इण्डिया' नामक पुस्तक में, लिखते हैं—

रत की कुल आबादी में प्रत्येक सहस्र (१०००) ों में सिर्फ़ ५९ ऐसे शिक्षित हैं कि जो साधारण लिख-पढ़ सकते हैं, और, स्त्री-पुरुषों में इस साक्ष- विभाजन बड़ा असमान है। जहाँ प्रति सहस्र पुरुषों ुरुष लिखपढ़ सकते हैं, वहाँ स्त्रियाँ प्रतिसहस्र ० ही ऐसी स्थिति को पहुँचने का कोई दावा कर है। विभिन्न प्रान्तों में तो यह प्रगति निश्चय ही मान है, जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है—

प्रति सहस्र में साक्षरों की संख्या

प्रान्त या राज्य	साक्षर व्यक्ति	पुरुष	स्त्री
ब्रिटिश भारत	६२	११०	११
आसाम	४७	८६	६
बंगाल	७७	१४०	११
बिहार	३९	७६	४
बम्बई	६९	१२०	१४
ब्रह्मा	२२२	३७६	६१
मध्यप्रान्त	३३	६२	३
मद्रास	७५	१३८	१३
पंजाब	३७	६३	६
संयुक्तप्रान्त	३४	६१	५
बड़ौदा	१०१	१७५	२१
हैदराबाद	२८	५१	४
मैसोर	६३	११२	१३
त्रावणकोर	१५०	२४८	५०

विभिन्न धर्मावलम्बियों में प्रतिसहस्र पीछे साक्षर स्त्री-पुरुषों की संख्यायें वह इस प्रकार बतलाते हैं—

धर्म	साक्षर व्यक्ति	पुरुष	स्त्री
समस्त धर्मावम्बी	५९	१०६	१०
ज़रतुश्त (पारसी)	७११	७८२	६३७
ब्रह्मसमाजी	६९६	७३९	६४८
जैन	२७५	४९५	४०
आर्यसमाजी	२६०	३९४	९२
बौद्ध	२२९	४०५	५८
ईसाई	२१७	२९३	१३९
सिख	६७	१०६	१४
हिन्दू	५५	१०१	८
मुसलमान	३८	६९	४
नास्तिक	६	११	१

ये अङ्क सन् १९११ की मर्दुमशुमारी के हैं। नये अंक (सन् १९२८ में प्रकाशित श्री पी० टी० चन्द्र के 'इण्डियन साइक्लोपीडिया' के अनुसार) इस प्रकार हैं—

प्रति सहस्र में साक्षरों की संख्या

प्रान्त या राज्य	साक्षर व्यक्ति	पुरुष	स्त्री
भारत	८२	१३९	२१
आसाम	७२	१२४	१४
बिलोचिस्थान	४७	७६	७
बड़ौदा	१४७	२४०	४७
बंगाल	१०४	१८१	२१
बिहार-उड़ीसा	५१	९६	६
बम्बई	९५	१५७	२७
ब्रह्मा	३१७	५१०	११२
मध्यप्रान्त-बरार	४९	८७	९
कोचीन	२१४	३१७	११५
हैदराबाद	३३	५७	८
काश्मीर	२६	४६	३
मद्रास	९८	१७३	२४
मैसोर	८४	१४३	२१
सीमाप्रान्त	[illegible]०	८०	१०
पंजाब-दिल्ली	५६	७६	१
त्रावणकोर	२७९	३८०	१७३
संयुक्तप्रान्त	४२	७३	७

धर्मानुसार (प्रतिसहस्र)

धर्म	पुरुष	स्त्री
ज़रतुश्त	७८९	६१२
जैन	५१४	७६
बौद्ध	४८४	६६
ईसाई	३०९	१८०
हिन्दू	११५	१४
सिख	९४	१४
मुसलमान	८१	७

इसके अनुसार "समस्त भारतवर्ष में प्रत्येक १०० क्तियों में सिर्फ़ १४ लिख-पढ़ सकते हैं। पुरुषों में १४ शत साक्षर हैं, और स्त्रियाँ प्रति सैकड़ा २ साक्षर हैं।"

'टाइम्स' की 'ईयर बुक' (१९२७) के अनु "भारत में चिट्ठी लिख-पढ़ सकने वाले शिक्षितों की है २२,६००,०० । इनमें से ५ वर्ष से कम-उम्र ब यदि छोड़ दें तो कुल जन-संख्या में, इससे, शिक्षितों का सत पड़ता है ७५ प्रति सहस्र। ५ वर्ष से अधिक वाले पुरुष तो प्रति सहस्र १३९ साक्षर हैं, और स्त्रियाँ सहस्र २ साक्षर हैं। × × × हिन्दुओं में प्रत्ये व्यक्तियों पीछे १ व्यक्ति शिक्षित है; इसमें पुरुषों का पात ८ में १ है, और स्त्रियों का ६३ में १ है। .. मानों में पुरुष प्रत्येक १ पीछे और स्त्रियां प्रत्येक पीछे १ के हिसाब से लिख-पढ़ सकते हैं।"

सन् १९१९-२० से १९२४-२ तक के वर्षों में में स्त्री-शिक्षा की जो गति रही, उसका अनुमान तालिका से लगाया जा सकता है—

	१९१९-२०	१९२०-२१	१९२१-२२	१९२२-२३	१९२३-२४	१९२४-२५
(वर्गमील)	१०८८८०७	१०७८८६१	१०९१२२९	१०९२६१ (?)	१०९२६३८	१०९१३४७
संख्या	२४४०२०१००	२४४८३४६१६	२४७०९७६५१	२४७१०३८८७	२४७१०७३४१	२४७०९१५०६
	११९२७२२९५	११६३४०८०५	१२०१९५५३१	१२०१८५[illegible]३४	१२०१८७५०५	१२०१८३३१०
संस्थायें	१२	१२	१५	१४	१४	१६
कालेज	२०३	१९८	२०८	२३०	२३७	२३६
स्कूल स्कूल	२१७५९	२२४६१	२२६३५	२२९२०	२३५८२	२४६७७
छात्र में	१०२४	११५३	१२६३	१४८७	१६२२	१८०७
में	३४०६३	३३९१५	३६६९८	४०६५२	४४१७०	४७३९०
स्कूलों में	११७६५३३	१२१०७५४	११९८५५०	१२२०४९५	१२६४८१४	१३२४००२
संख्या छात्राओं प्रतिसैकड़ा	१.१	१.१	-१.१२	१.१४	१.१९	१.२४

शिक्षा के विस्तृत ब्यौरे के लिए सन् १२९५ के
देखिए—

	संस्थायें	विद्यार्थिनियाँ
संस्थायें)		
कालेज	१६	१२००
,,	७	१७३
	२३६	४३६९३
स्कूल	२६८	७९०५१
,,	२४६७७	८५५३३७
,,	३०१	११००३
संस्थायें	२५७५	५५२९८

बाद सन् १९२६-२७ में ('India in 1926-
नुसार) "भारत की कुल १२ करोड़ स्त्रियों में
अर्थात् कुल संख्या के दसवें हिस्से से कुछ अधिक,
पा रही थीं—१४ लाख प्रारम्भिक शालाओं
हज़ार से कुछ ज्यादा विश्वविद्यालय के महाविद्यालयों में। लड़कियों की शिक्षा-संस्थाओं (स्कूल-कालेजों) की संख्या १९२४ में जहाँ २७४३५ थी, वहाँ १९२५ में वह २८५५४ हुई, और १९२६ में २९८४६ हो गई।"

उक्त रिपोर्ट के लेखक, भारत के सरकारी प्रकाशन विभाग के अध्यक्ष, कोटमैन साहब की राय में "स्पष्टतया यह प्रगति उत्साहप्रद है।" और इसका कारण वह बतलाते हैं, "लोगों की दिन-ब-दिन बढ़ती जानेवाली जागृति पुरानी रूढ़ियों को तोड़ने की ओर उन्हें प्रेरित कर रही है। स्वयं स्त्रियाँ भी अपनी माँ-दादियों की परम्परागत असाक्षरता से कम सन्तुष्ट मालूम होती हैं।" इसी कारण, उनके शब्दों में, "स्त्री-शिक्षा तथा प्रारम्भिक शालाओं में लड़के-लड़कियों की साथ-साथ पढ़ाई (Co-education) लोकप्रिय होती जा रही है; स्त्रियों के स्कूल-कालेजों में वृद्धि हो रही है; शारीरिक शिक्षा, खेल-कूद एवं अक्षर-ज्ञान की शिक्षा के लिए स्त्रियों को प्रोत्साहन दिया जा रहा है; और, शायद इस सबसे बढ़ कर बात यह है कि, इस सुदिशा में ख़ूब आन्दोलन जारी है।"

मुकुटबिहारी वर्मा

स्त्री-शिक्षा

(१)

स्त्रियों की शिक्षा के विषय में आजकल बहुत कहा और लिखा जाता है। स्त्रियों के स्वातन्त्र्य की आवाज़भी चारों ओर सुनने में आती है। स्त्रियों के साथ बड़ी सहानुभूति दिखाई जा रही है—और, यहाँ तक स्पष्ट कहा जा रहा है कि पुरुषों की एक जाति ने स्त्रियों की दूसरी जाति के साथ बड़ा अन्याय किया है। विचार करने से वर्तमान युग जाति-कलह का युग मालूम पड़ता है और दूसरे वर्गों के साथ-साथ स्त्री–वर्ग और पुरुष–वर्ग में भी परस्पर संघर्ष का सा वातावरण दिखाई दे रहा है।

आज कल भारतवर्ष में स्त्री-समाज की दशा कई प्रकार से शोचनीय है—और वे प्रकार तो सभी के जाने हुए हैं। परन्तु मैं यह मानने को तैयार नहीं हूँ कि पुरुष-जाति ने जान-बूझ कर स्त्री-जाति पर अन्याय किया है। किसी जगह तो यह भी लिखा हुआ देखा था कि शास्त्रों और नियमों की रचना बहुधा पुरुषों ने ही की है, इसलिए उन्होंने सब कुछ अपने ही अनुकूल बना लिया ! इस प्रकार की बातों पर मुझे कुछ भी श्रद्धा नहीं होती है। यदि किसी पुरुष-विशेष ने किसी स्त्री-विशेष पर अत्याचार किया होगा, तो किसी स्त्री-विशेष ने पुरुष-विशेष के साथ भी अति की होगी। मूर्ख से मूर्ख जो पुरुष हैं, वे भी मेरी समझ में तो अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार स्त्रियों के साथ श्रद्धा व्यवहार करते आये हैं—और आज पर्दे और भारी आभूषणों की प्रथाओं के मूल में कैसी भी मूर्खता समझी जावे, पुरुष स्त्रियों के साथ अन्याय करने के अभिप्राय से उनपर पर्दा और आभूषण लादे हों, यह बात तो नहीं जँचती है।

स्त्री और पुरुष दोनों के शरीर की रचना
स्वाभाविक भेद है और यह भी जान पड़ता है कि
दोनों के कार्य का विभाग भी स्वभावतः ही हो
है। सृष्टि की रचना बन्द कर देना हो तब तो बा
ही दूसरी है--बाक़ी यदि सन्तानोत्पत्ति कर
सामान्यतः आवश्यक और उचित समझा जाय
तो सन्तान के पालन-पोषण का कार्य स्त्रियों
लिए बड़े मार्के का है। सामान्यतया स्त्रियों का का
क्षेत्र घर ही मान लिया जाय, तो फिर स्त्रियों को कै
शिक्षा दी जाय, यह बताना विशेष कठिनाई
कार्य नहीं है। जो बालिकायें यावज्जीवन ब्रह्मचारिणि
रहना चाहती हों, जिन्हें सन्तानोत्पत्ति नहीं कर
हो, वे चाहे जितनी उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकती
और चाहे जिस क्षेत्र में कार्य कर सकती हैं। पर
प्रश्न यह है कि सर्वसाधारण स्त्रियों के लिए शि
का ध्येय क्या रक्खा जाय ?

मेरे सामने यह प्रश्न विशेष रूप से इसलि
आता है कि मुझको बच्चों के पालन-पोषण
अन्य गृहस्थी के कार्यों का सार्वजनिक कार्यों
विरोध स्पष्ट मालूम पड़ रहा है। सभी स्त्रियों
पुरुषों जैसी शिक्षा दी जाय और वही क्रम
वही ध्येय रक्खा जाय, यह बात मेरा सन्तोष
कर सक रही है। आजकल के स्कूल–कालेजों
शिक्षा प्राप्त करके स्त्रियाँ घर के कार्यों के लिए
उपयुक्त होंगी, वास्तव में मुझको यह सन्देह
और साधारणतया सब परिवारों के लिए यह सं
ही नहीं होगा कि स्त्रियाँ ख़ुद के घर का काम
करें और उस काम के लिए सेवक या सेवि
रख ली जायँ। अभी कुछ दिन पहले ही बहु
अंग्रेज बालकों को हिन्दुस्थानी दाइयों के साथ

मते हुए मैंने देखा तो मुझे ख़याल हुआ, इन ओं की मातायें भी कहीं बाहर सैर करने को गी। एक ओर स्त्रियाँ शिक्षित होती जायँ और ओर स्त्रियों में से ही दाइयों का वर्ग बनता वह बात भारतवर्ष के लिए तो निभती हुई कम से कम जँचती हुई नहीं दिखाई देती। स्त्रियाँ घर के भीतर गृहस्थी का काम करें और बच्चों का पालन-पोषण करें, और स्त्रियों को मों की पर्याप्त शिक्षा दिलाने का समुचित हो, पर्दा आदि हानिकर प्रथायें उठा दी जायँ, स्त्रियाँ जो गृहस्थाश्रम में जाना ही न चाहती हों उच्च शिक्षा प्राप्त करें, तो क्या इसमें स्त्रियों अन्याय होगा ? क्या स्त्री-पुरुषों के समाना होने से यह तात्पर्य है कि जैसे शिक्षा प्राप्त आदि का पुरुषों का अधिकार है वैसे ही को हो जाय—जो योग्य पुरुष—स्त्री होंगे वे बढ़ जायेंगे और अयोग्य स्त्री-पुरुष दोनों ही रह जायेंगे ?

आजकल की शिक्षा-पद्धति ने तो पुरुषों के ही अनेक समस्यायें खड़ी कर रक्खी हैं। इस में पुरुष ही जीवन-संग्राम के योग्य नहीं बन । उसी पद्धति में स्त्रियाँ जाकर योग्य होंगी, यह द ही है।

संभव है, इसी प्रकार तर्क-वितर्क दूसरे विचारकों में भी उठ रहे हों। इनको लिखने से मेरा यह है कि जिन सज्जनों ने इस विषय में विचार सर्वथा निश्चय कर लिये हैं वे 'त्याग- में लिखने की कृपा करें। इस विषय में थोड़ा विनिमय कर लेना कुछ समय से मुझको मालूम हो रहा है।

हीरालाल शास्त्री

---

(२)

यह विषय बहुत विस्तृत है और बड़े-बड़े विद्वानों ने शास्त्रीय रीति से इसपर अपने विचार प्रकट किये हैं। आधुनिक शिक्षा-पद्धति के दोष और उसको जारी रखने का कारण अब सब की समझ में आ चुका है। पुरुषवर्ग की बनिस्बत स्त्री-वर्ग के हाथ में देश का भविष्य विशेषतः निर्भर है, अतः आधुनिक शिक्षा-प्रणाली की बुराइयों से उन्हें बचाना हमारे लिए परम आवश्यक है। साक्षरता और सुसंस्कृतता दोनों,पुरुष हो,या स्त्री,सबके लिए आवश्यक हैं। आक्षेप यदि है तो उसके लिए जो साधन व रीति अख़्त्यार की जाती है, उसपर है। ग्वालियर राज्य में 'कन्या-धर्म-वर्धिनी सभा' नाम की संस्था स्त्री-शिक्षा का बहुत-कुछ कार्य कर रही है। उसका एक सदस्य होने के कारण, मुझे उसके कार्य का थोड़ा-बहुत परिचय होता रहता है। अंग्रेज़ी शासन-प्रणाली की नक़ल ही क़रीब-क़रीब सभी रियासतों में की जाती है। लेकिन नक़ल करते हुए भी इस विपरीत परिस्थिति में हमें थोड़ा-बहुत अपनापन रखने की चेष्टा करनी चाहिए। कई लोगों का यह आक्षेप है कि हममें पुराण-प्रियता (पुराने ही पुराने की धुन) बहुत है। बुरी बातें पुरानी हैं, इस वजह से ही हम उन्हें अपनावें, यह कदापि नहीं कहा जा सकता। लेकिन मैं तो समझता हूँ कि इस विपरीत स्थिति में पुराण-प्रियता के कारण ही हमारा वैशिष्ट्य थोड़ा-बहुत क़ायम रह सका है। गतभर्तृका स्त्री जैसे अपने स्त्री-धन को बहुत फ़िक्र के साथ सम्हालती है, वैसे ही पराधीन देश अपनी पुरानी संस्कृति को इस पुराण-प्रियता के साधन से ही सम्हाल सकता है। इसमें स्वाभिमान की ज्योति है। उस ज्योति को हम न बुझा दें, इसकी फ़िक्र ज़रूर रखनी चाहिए।

अंग्रेजी राज्य होने पर हममें शिक्षा ज्यादा बढ़ी, इस बात की अप्रामाणिकता अब सबको मालूम हो चुकी है। यही स्त्री-शिक्षा के बाबत भी कहा जा सकता है। पुराण, रामायण, महाभारत आदि कथाओं द्वारा जो शिक्षा हमारी स्त्रियों को पहले मिलती थी, वैसी शिक्षा अब नहीं मिलती; इसको कई लोग मान रहे हैं। आधुनिक शिक्षा से परावलंबित्व व स्वाभिमानशून्यता हममें बढ़ गई, यह निर्विवाद है। शिक्षा का उद्देश है सच्चरित्रता; और वह धार्मिकता की नींव पर ही उठ सकती है। हमारी उस शुद्ध परम्परा को छोड़ स्वाभिमान की ज्योति नष्ट करने वाली, अर्थात् हर तरह अहितकर, इस आधुनिक शिक्षा-प्रणाली को कम से कम स्त्रियों में तो हमें शीघ्र बन्द कर देना चाहिए। सीता और सावित्री आदि देवियों का आदर्श क़ायम रखना, द्रौपदी या जीजाबाई की व्यावहारिकता बढ़ाना, आलस्य व निरुपयोगिता दूर करना—अर्थात् फिर से सूत कातने के काम को उनमें जारी करना, यह हमारा उद्देश होना चाहिए।

अध्यापकवर्ग, कथा-पुराण कहने वाले तथा साधु-बैरागी हमारी परम्परा क़ायम रखने के साधन थे। लेकिन जिन्हें हम अच्छा साधन बतला चुके, उन्हींमें पहले हमको काम करने की ज़रूरत है। एक तरफ़ इन साधनों की मूढ़ता और दूसरी तरफ़ आधुनिक शिक्षा की अश्रद्धा व फ़ैशन का "इन्द्र-जाल"—इससे देश को कैसे बचाया जावे? यह एक जटिल समस्या है। लेकिन "निर्बल के बल राम" यह महात्मा गांधी का सुन्दर मन्त्र हमें बहुत कुछ बल दे सकता है। खादी जैसा सरल साधन जितना हम ज्यादा अपनावेंगे, ऊपर बतलाये हुए सब वर्गों में स्वाभिमान और स्वदेशाभिमान की उतनी ही ज्योति वृद्धिंगत होगी और हमारा स्त्री-वर्ग उद्योगशील बन कर इष्ट साध्य को पा सकेगा। उसके बाद ही धार्मिक व सामाजिक सुधारों की दिशा में हमें यश मिल सकता है। यदि पुरुषवर्ग खादी का ही वस्त्र पहनें तो स्त्रियों पर उसका ज़रूर असर पड़ेगा। फ़ैशन का भूत भाग कर सामान्य जनता के प्रति हमारे दुर्व्यवहार रुक जायेंगे। दांभिकता दू होने से श्रद्धा का ज़ोर बढ़ेगा। केवल बुद्धि-बल प ज़ोर देकर हम काफ़ी नुक़सान उठा चुके हैं। उद्योगशीलता और श्रद्धा के बग़ैर बुद्धिबल पंगु साबित हो चुका है। अतः यदि हमें स्त्री-शिक्षा चाहिए तो व इसी प्रकार होनी आवश्यक है।

त्र्यम्बक दामोदर पुस्तके

चिता-भस्म

(क)

"बादलों के देश में यह नगारे कैसे बज रहे दीदी?" पूर्णिमा ने पूछा। उसकी आँखों में हृ की वेदना झलक रही थी। ओठों पर विषाद गम्भीर कालिमा थी।

नैना ने उसकी ओर देखा। खिड़की के पा ही, कार्पेट पर, वह बैठी हुई थी। उसने दे पूर्णिमा की आँखों में जो कातरता है, वह हृदय जली हुई कामनाओं का भस्मावशेष के अति और कुछ नहीं है। पूर्णिमा के हृदय की व नैना से छिपी न रह सकी। उसकी आँखें छलछ आईं। बोली—"यह नगारे नहीं हैं पूर्णा, बादलों हृदय का हाहाकार है। तड़प रहा है। वे भी दु से दुखिया हैं। बरस चुके हैं; गरज रहे हैं। आ का जल सूख जाने पर हृदय ही रोया करता और वह रुलाई कितनी करुणापूर्ण होती है—कि मर्मभेदिनी!"

ना ने आसमान की ओर देखा । उसकी हानुभूति थी, और थी वेदना की पीड़ा । स्वर में, धीरे-धीरे, वह बोल उठी— धरणी पर बरस पड़ते हो, मेघ ! मानों, वन का कोई मूल्य ही नहीं, कोई उपयोग ! आः ! अभागे काले बादल !"

की वह एक सन्ध्या थी, सूनी और अपना जल पृथ्वी पर छिड़क कर भारहीन आसमान में टहल रहे थे । पश्चिम-क्षितिज में छिपे हुए सूर्य, अपने अरुण-किरणों से, जहाँ-तहाँ उगे हुए ताराओं की माला । अपने स्वर में यौवन का उन्माद भर याँ गा रही थीं । और, पूर्णिमा अपनी आँखों से चुपचाप प्रकृति की यह क्रीड़ा ही थी ।

देखती थी; और, तब तक देखती ही गई, सन्ध्या के घने अन्धकार ने उसकी देखने शून्य न कर दी । जब सुन्दरी निशा ने अन्धकार की काली चादर ओढ़ा दी, में अनार के दाने-से तारे बिखर गये, और धुंधला चन्द्रमा प्रकाशित हो उठा, तो खिड़की से उठ खड़ी हुई । शरीर में उसके था, वाणी में उदासी । नैना के कन्धे पर उसने पूछा—"सचमुच ही क्या बाबू जी ले लिया है दीदी ?"

हाँ बहन !"—गंभीरता से नैना ने सिर । बोली—"उनका सारा जीवन दुःखों और की लड़ाई में बीता है । प्रारब्ध की चोट अब उनमें सहने की शक्ति न रह गई उन्होंने सोचा था, तुम्हें सुखी देख कर वह सारा दुःख भूल सकेंगे । सुखी हो सकेंगे । हौसले से तुम्हें पाला, बड़े उत्साह से तुम्हारी शादी की । पर, हाय रे भाग्य ! वहाँ भी उसने साथ न दिया । न जाने किस कु-साइत में तुम्हारा पैर इस घर में पड़ा । तुम भी सुखी न हो सकीं । उनकी रही-सही आशा का कच्चा धागा भी टूट गया । उनके कलेजे में मरुभूमि की ज्वाला धधक उठी । हाँ, इसीसे, वह सन्यासी ही गये हैं । उनके असफल जीवन का और उपयोग ही क्या हो सकता था बहन ?"

"दीदी !" भर्राई हुई आवाज़ में पूर्णिमा ने पुकारा ।

"हाँ, पूर्णा !"

"मैं अपना भारमय जीवन लेकर कब तक जीती रहूँगी ?"

"यह क्या कहती हो बहन ! ऐसा भी कहते हैं ?"

"नहीं दीदी, जीने की हौंस अब जी में नहीं है ।"

नैना ने देखा, पूर्णिमा की आँखों से आँसुओं का झरना बह चला है । अपनी गोद में उसे खींच कर नैना ने आँचल से आँसू पोंछ दिये ।

(ख)

उस घर में विद्रोह की वैसी ही आग लहक उठी थी, जैसी फ़ान्स में राज्य-क्रान्ति की । एक भाई दूसरे का गला काट लेना चाहता था; दूसरा जीते-जी उसे निगल जाने को तैयार था । उनमें ख़ून की प्यास थी; और, वे ख़ून पीते भी थे । नैना और पूर्णिमा इसी घर की बहू थीं—जेठानी-देवरानी ।

शीतल और अनल दोनों भाइयों का नाम था; और, वे अपने नामों के शब्दार्थ को ठीक-ठीक चरितार्थ करते थे । बड़ा भाई शीतल, अनल के हज़ार उत्पात-उत्पीड़नों को, चुपचाप सह लेता और अपने प्यारे भाई को हृदय से क्षमा भी कर दिया करता था । जीवन प्रेम और ममता में बीत जाय, यह

उसकी आन्तरिक इच्छा थी। यही उसका स्वभाव था।

अनल का स्वभाव अनल का-सा ही उग्र और दाहक था। उसके हृदय में द्वेष और हिंसा की आग सदा धू-धू करके जला करती थी। कार्य और वाणी दोनों से ही वह शीतल को जलाया करता था। बात की चोट हृदय पर कुछ ऐसी-वैसी नहीं लगती; शीतल भी तलमला उठता था; पर, भाई का लड़कपन समझ कर, वह बराबर उसे क्षमा करता आया था।

अनल नैना के हृदय को भी वाक्य-बाणों से कुछ कम न बींधता था! नैना मन ही मन रोती; जब पीड़ा असह्य हो जाती, तब, पति से कहा करती थी। पति से कहने का उसका मतलब यह नहीं होता था कि वह अनल की शिकायत कर रही है और उससे बदला लेना चाहती है; किन्तु हृदय की पीड़ा का भार हलका करने के लिए ही वह अपना दुःख उसपर प्रकट करती थी। अपने जी की कचट किसी पर प्रकाशित करने से मन का भार बहुत-कुछ हलका हो जाता है। भारत की अबला स्त्रियों का पति के सिवा और है भी कौन ऐसा, जिससे अपने जी की बात वे खोल कर कह सकें?

जहाँ दोनों भाइयों में इतनी अनबन और शत्रुता थी, वहाँ दोनों बहुओं—नैना और पूर्णिमा—में जान-जान की ममता और सौहार्द्र था। यह बात अनल को अच्छी न लगती। पूर्णिमा को उसने कई बार इसी लिए बुरी तरह मारा-पीटा भी; मगर, पूर्णिमा का प्यार इससे कम न होसका। वह नैना की ओर और भी आकर्षित होती गई। अन्त में अनल ने उससे बोलना छोड़ दिया। बोलता भी तो गाली और डण्डों के ज़रिये। उसके दुर्व्यवहार की सामा न रही। बेचारी पूर्णिमा सारा दुःख चुपचाप सहती गई।

❀ ❀ ❀

सन्ध्या के समय अनल गुस्से में भरा
आया। आते ही बोला—"भैया, यह सब
सुनता हूँ?"

"क्या?" शीतल ने स्वाभाविक सरलता से

"क्या!" ज़रा तेज़ होकर अनल ने
"आप पूछते हैं, 'क्या?'। सारे गाँव में मेरी
शिकायत आप क्यों करते फिरते हैं? मैं
कह देता हूँ, इस तरह अधिक दिन निभ न स
आखि़र मैं कब तक यह ज्यादती सहता रहूँगा।

शीतल अवाक् रह गया। उससे कुछ उत्त
न बन पड़ा। चुपचाप अनल का मुँह ताकने ल

अनल झोंक में कहता गया—"यदि आप
देख न सकते हों, तो, भैया, आप हमारा
अलग कर दीजिए। मैं कुत्ते का-सा घिनौना
किस कारण बिताऊँ?"

अनल और भी न जाने क्या-क्या बोल
बड़ी देर तक शीतल चुपचाप सब सुनता रहा
अन्त में उसे भी क्रोध आ गया। बातों ही
झगड़ा अधिक बढ़ गया। क्रोध के आवेश में
ने शीतल को एक पत्थर उठा कर मारा। पत्थर
में लगा। खून की धार बह चली। अनल घबरा
वहाँ से हट गया।

मगर, फिर भी बँटवारा न हुआ। भाइयों
इस लड़ाई को अभी और फलना-फूलना था।

(ग)

पूर्णिमा की पीड़ा बढ़ती गई। जीवन में
कभी सुख का मुँह नहीं देखा। अन्त में निरा
काले बादलों ने उसके जीवन के आकाश को
लिया। काल की धरणी पर वह अपने प्राणों
जल बरसाने के लिए तैयार थी।

पीड़ा थी 'कालिक पेन'। इस भयंकर

रोग से उसका जीवन संशयापन्न हो गया। में उसे कोई आपत्ति भी न थी; क्योंकि, वेदना का अन्त, जीवन के अन्त के और कुछ नहीं होता।

पीड़ा बढ़ती ही गई; मगर न किसी ने इस-ध्यान देने की ज़रूरत समझी, न दिया। जी-जान से उसकी सेवा-सुश्रूषा करती त को सोना उसने छोड़ दिया। भोजन से करने लगी। रात-रात भर जागकर वह की सम्हाल किया करती थी। दवाइयाँ भी नैना ने बहुत सी कीं; मगर, कोई दवा । मानों उस रोग की सभी दवाइयाँ पूर्णिमा निष्फल थीं; व्यर्थ, बे-असर! इस तरह ती ही रही, रोग बढ़ता ही रहा।

से ही पूर्णिमा बहुत बेचैन थी। उसे होता था, मानों आज का दिन ही उसके अन्तिम दिन है; आज की संध्या ही की अन्तिम संध्या। प्रातःकाल के मन्द-मधुर स्पर्श के पुलक-कम्पन से जब सुमनों का सिहर उठा, और जब उषा ने अपने कोमल-करों से प्राची का अरुण-राग-रंजित सुवर्ण-दिया, उसी समय, नैना को पूर्णिमा ने । बोली—“दीदी, आज जीवन के नाटक का होगा।” उसके अधरों पर तृप्ति की नहीं, सी मुस्कराहट थी, वाणी में पीड़ा की व्यथा।

ने पूर्णिमा की बात सुनी। उसके उदास ओर देखा। शंकित स्वर में बोली—“यह ती हो, पूर्णा?.तुम अच्छी हो जाओगी।”

नहीं दीदी, यह झूठा आश्वासन किस सुख के को दूँ? मैं आज बचूँगी नहीं।” उसकी ली आईं। शायद, मन-ही-मन, वह कुछ थी।

नैना ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

“दीदी!” पूर्णिमा ने फिर पुकारा।

“हाँ, पूर्णा!”

“एक बात कहती हूँ।”

“कहो।”

“अन्तिम बार आज ‘उन्हें’ देखने की इच्छा होती है। एक तार दिलवा दोगी?”

“क्यों नहीं!” नैना ने कहा। वह सोचने लगी कि जिसने पूर्णिमा जैसी सुन्दरी और गुणवती स्त्री का इस प्रकार अनादर किया, तरह-तरह से उसे तंग किया, यहाँ तक कि उसका संसर्ग भी छोड़ दिया, उसके प्रति भी पूर्णिमा के मन में अब तक अगाध प्रेम और ममता भरी हुई है! हाय रे नारी का हृदय!!

तार दे दिया गया, मगर, सन्ध्या तक भी कोई न आया। सन्ध्या की अन्तिम गाड़ी भी जब आई और छूट गई, तो पूर्णिमा की निराशा का पार न रहा। सामना होने पर, पूर्णिमा ने कहा—“वहाँ से कोई आया नहीं, दीदी?”

“नहीं।”

“तार दिया गया था?”

“हाँ।”

“फिर भी कोई नहीं आया?

“नहीं।”

“अच्छा।” पूर्णिमा चुप हो गई। उसके हृदय में उस समय प्रलय का बवण्डर उत्पात कर रहा था। मन-ही-मन उसने कहा—“किस पाप से मेरे प्रारब्ध में इतना दुःख लिखा था, विधाता?”

रात किसी न किसी तरह कट गई। दूसरे दिन सबेरे फिर पूर्णिमा ने कहा—“दीदी!”

“कहो, पूर्णा!”

“अब ‘वह’ न आवेंगे? देख न सकूँगी?”

“आवेंगे क्यों न बहन! मैं रघुबीर को भेज देती

हूँ। वह, अपने साथ ही उन्हें लेता आवेगा।"

नैना की बात सुन कर पूर्णिमा ने सन्तोष की साँस ली। फिर, करवट बदल कर, सो रही। उसी समय रघुबीर चला गया।

रघुबीर को भेज कर दोनों बहनें प्रतीक्षा करने लगीं। क्रम से, दोपहर हुआ, संध्या हुई; मगर, अनल न आया। समय बीत जाने पर, अधीर होकर, पूर्णिमा ने फिर पूछा—"आज भी 'वह' नहीं आये, दीदी ?"

"नहीं ?"

"रघुबीर भी नहीं लौटा ?"

"ना।"

पूर्णिमा कुछ बोली नहीं, रोई भी नहीं। उसकी आँखों का आँसू सूख चुका था, वाणी मूक हो गई थी। मुँह पर उसके न वेदना का कोई चिन्ह था, न प्रसन्नता और तृप्ति का। मुर्दे की-सी निर्जीवता और उदासी क्रीड़ा कर रही थी। सहसा, उसके मुँह से, अस्फुट स्वर में, यह बात निकल गई—"हे ईश्वर ! मरने पर भी 'वह' मेरा मुँह न देख पावें !"

नैना ने यह बात सुनी। उसके कातर प्राण रो उठे। हा अभागिनी ! तेरी अन्तिम इच्छा भी न पूरी हो सकी ?

× × ×

ज्यों-ज्यों सन्ध्या का अन्धकार गाढ़ा होता गया, त्यों-ही-त्यों पूर्णिमा की दशा सुधरने लगी। नैना की खुशी का ठिकाना न था। पर, पूर्णिमा मन ही-मन हंस रही थी। दीदी कितने भ्रम, कितने अन्धकार में हैं !

रात एक पहर बीत गई होगी। पूर्णिमा की चीख़ सुन कर नैना दौड़ आई। देखा, यंत्रणा से वह बिछौने पर छटपटा रही है। बेचारी नैना घबरा गई। इस समय वह किसे बुलावे, किसे दिखावे-सुनावे।

"मेरी नाड़ी छूट रही है, दीदी !" क्षीण स्वर में पूर्णिमा ने कहा।

नैना ने टटोल कर देखा, नाड़ी सचमुच छूट थी। हाथ-पैर ठण्डे हो रहे थे। आँखें पथराने थीं। उपचार व्यर्थ समझ कर नैना चुपचाप कुछ देखने के लिए तैयार हो गई। आर्तस्वर वह अबलों के सहायक ईश्वर को पुकारने लगी।

"सभी लोग सुखी हों,"—पूर्णिमा ने दम हुए कहा—"मेरी तरह दुखिया कोई न हो। पर इतनी विपत्ति और वेदना का पहाड़ न भहरा ईश्वर, यही मेरी अन्तिम कामना है। पूरी कर शिव, शिव, शिव !" वह चुप हो गई। नैना ने सदा के लिए चुप होकर उसके प्राण किसी सुन्दर अज्ञात-देश की ओर चले गये हैं।

रात भर शव को लेकर वह बैठी रही। काल पड़ोसी लाश श्मशान ले गये। चिता में लगा दी गई। वह धक्-धक् करके जल उठी।

नैना के प्राण हाहाकार कर रहे थे। वह पर लोट कर रो पड़ी। उस समय गगन की ने भी, शायद, आँसुओं की दो-चार बूँदे गिरा

लौटते समय, लोगों ने देखा, पागल-सा आदमी श्मशान की ओर दौड़ा जा रहा है। मालूम हुआ, वह अनल था।

(घ)

गोधूलि की धूमिल बेला में—रोज़ सन्ध्या एक दुर्बल और मलिन मनुष्य श्मशान की किया करता था। उसके बग़ल में एक फटे छोटी पोटली थी, जिसे कृपण के धन-सा वह अपने हृदय में छिपाये रहता था। वह पूर्णि चिता का भस्म था।

लोग उसे देखते और प्रेत समझ कर भय करते थे। ईश्वर जानें, वह अनल ही था, या, पश्चात्ताप की सजीव मूर्त्ति !

—प्रफुल्लचन्द्र ओझा

दुर्गा-पूजा : संघ-शक्ति

बड़े से बड़े प्राणी से छोटे प्राणी तक—हाथी से चिउँटी तक—सभी शक्ति प्राप्त करना ते हैं। और उसके लिए नाना प्रकार से प्रयत्न ते हैं। सभी प्राणी शक्तिशाली होकर एक दूसरे दबाने का प्रयत्न कर रहे हैं। देवासुर-संग्राम में देवता असुर दोनों अमृत इसलिए लेना चाहते थे कि उसे वे शक्तिशाली हो जायँ और अपनी विपत्तियों को नष्ट हैं। अमृत लेने के लिए दोनों आपस में लड़ने लगे। दोनों में लड़ाई चलती रही। अन्त में देवताओं ने से अमृत को अपने हाथ में किया और असुरों को नीचा या। फिर बराबर देवता और असुरों में ख़ूनी भाव । एक दूसरे के ख़ून से तलवार रंगते रहे। बहुत समय जब असुरों ने देवताओं का नाकों-दम कर दिया, वे स्वर्ग पर चढ़ाई कर उन्हें मारने-पीटने लगे, तथा तपस्या और माया (Hypocracy) के बल से ओं के छक्के छुड़ाने लगे, तो देवताओं ने सोचा कि एक जीव, एक भाव, एक मानस के हो जायँ, तब कहीं से लोहा ले सकेंगे और उन्हें परास्त कर सकेंगे। , विष्णु और रुद्र ने भी इस उपाय को पसन्द किया। , सब देव मिल गये और उन्होंने सम्मिलिल शक्ति की—

अतुलं तत्र तत्तेजः सर्वदेवशरीरजम् ।
एकस्थं तदभून्नारीव्याप्तलोकत्रयं त्विषा ॥
ततः समस्तदेवानां तेजोराशिसमुद्भवाम् ।
तां विलोक्य मुदं प्रायुरमरा माहिषार्दिताः ॥
अन्यैरपि सुरैर्देवीभूषणैरायुधैस्तथा ।
सम्मानिता ननादोच्चैः साट्टहासं मुहुर्मुहुः ॥
तस्या नादेन घोरेण कृत्स्नमापूरितं नभः ।
अमायतातिमहता प्रतिशब्दो महानभूत् ॥
चुक्षुभुः सकला लोकाः समुद्राश्च चकम्पिरे ।
चचाल वसुधा चेलुः सकलाश्च महीधराः ॥
जयेति देवाश्च मुदा तामूचुः सिंहवाहिनीम् ॥

अर्थात्, सभी देवताओं ने मिल कर सर्वदल सम्मेलन किया। सबका एक मत, एक उद्देश्य हो जाने पर सबके तेज से एक शक्ति उत्पन्न हुई। बिखरी हुई शक्ति एक हो गई। यह शक्तिदेवी संसार-भर में व्याप्त हो गई। दुनिया के सभी देशों पर उसकी धाक जम गई। जो देवता महिषासुर से उत्पीड़ित थे, दबे हुए थे, उनकी एक भी नहीं चलती थी; आज अपनी इस सम्मिलित शक्ति को देख कर वे मारे ख़ुशी के उछल पड़े। फिर उतने ही से दम नहीं लिया। सब अपनी-अपनी संचित संपत्ति को उसके हाथ सौंपने लगे। ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र, वरुण, कुबेर, अग्नि इत्यादि सभी देवता अपने अस्त्र-शस्त्र, जो भी कुछ घर में था, सब इकट्ठा करके देने लगे। शंख, कमान, घोड़े, हाथी, घंटा, वज्र इत्यादि सभी सामग्री बात की बात में इकट्ठी हो गई—देव-शक्ति जो लुप्त थी, आज बारबार हँसने लगी। घोर शब्द करती हुई वह शक्ति उत्पन्न हो गई। देवताओं के गगनभेदी हर्ष और उल्लास भरे शब्द से आकाश गूँज उठा, समुद्र अस्थिर हो गया, पृथ्वी काँप उठी, पर्वत हिल गये। संसार के लोगों ने जब सुना, तो सभी थर्रा उठे। देवताओं की मण्डली से जय-घोष की प्रतिध्वनि बारबार चारों ओर से आ-आकर दुगुनी कोलाहल-ध्वनि होने लगी।

उसी हँसती हुई शक्ति ने महिषासुर की छाती पर भाले की चोट की और उसके उष्ण रक्त से मातृभूमि की साड़ी रंगी। उसकी जीभ खींच कर अन्याय और अधर्म की याद दिलाई।

यह है हिन्दुओं की दुर्गा की उत्पत्ति की कथा, जिसका वर्णन मार्कण्डेय ऋषि ने बड़ी ओजस्विनी भाषा में किया है। उन्होंने दुर्गोत्पत्ति की भूमिका में—दुर्गा सप्तसती के प्रथम अध्याय में—लिखा है कि सुरथ नाम का राजा योग्यता-पूर्वक प्रजा का पालन करता था। कुछ दिनों के बाद जंगलियों ने उसका राज्य छीन कर उसे राज्य से निकाल दिया। वह जंगल में भटकता हुआ वैशम्पायन ऋषि के पास जा पहुँचा। उसके साथ एक वैश्य भी था। उन दोनों ने ऋषि से पूछा, हमें अपना अधिकार या स्वराज्य कैसे मिलेगा? तब ऋषि ने दुर्गाजी की उत्पत्ति बताई और वही युक्ति स्वराज्य पाने की ठहराई।

अब ज़रा हिन्दुओं की वर्तमान दुर्गापूजा देखिए। आजकल दुर्गा की मूर्त्ति के सामने लाखों बकरों और भैंसों के गले काटे जाते हैं। उन्हें माला पहना कर जौ खिलाते हुए मौत के घाट उतारते और 'माँ दुर्गा' कह कर चिल्लाते हैं। इस कार्य को हम बलिदान कहते हैं। वस्तुतः बलिदान इससे बहुत भिन्न है। राजा बलि का दान वास्तव में बलिदान था। (बलिवत् दानम् बलिदानम्)। आज भारतमाता को करोड़ों नवयुवकों की आवश्यकता है, जो भारत की बलिवेदी पर आकर सच्चे बलिदान का आदर्श दिखावें। निरीह ग़रीब बकरे को चबाने या मद्य-मांस खाने से मनुष्य शाक्त नहीं कहा जाता, बल्कि खड्गधारिणी, महाकाली, पुस्तकधारिणी, महासरस्वती और धन-सम्पत्तिधारिणी महालक्ष्मी के आराधना करनेवाले ही शाक्त कहे जा सकते हैं। अर्थात्, भारत जब तक हाथ में तलवार लेने, ज्ञान-विज्ञान की विद्या पढ़ने और ऐश्वर्य्यशाली होने के योग्य नहीं होगा, तबतक शाक्त नहीं हो सकता।

हमारा तो यह विश्वास है कि दुर्गा के साथ बग़ल में बच्चा दबाये और हाथ में खड्ग लिये हुए जोगिनियाँ जैसे दीख पड़ती हैं, उसी भांति जब तक भारत के करोड़ों देवताओं के साथ हमारी मातायें देश-रक्षा के लिए बग़ल में बच्चे दबा कर हाथ में खड्ग ले बाहर नहीं निकलेंगी। तब तक भारत सच्चा शाक्त कहा ही नहीं जा सकता। इसका मतलब यह है कि जब भारत के वीर पुरुष रणक्षेत्र से थक जाते थे, तब भारतीय मातायें—वीरकन्यायें और वीर पत्नियां—बग़ल में नवजात शिशुओं को दबाये हुए भी खड्ग लेकर रणक्षेत्र में उतर आती थीं। उनके प्रबल हाथों में खड्ग देख कर रणचण्डी खिलखिला कर हंस पड़ती थी। वहां ही वस्तुतः दुर्गापूजा या शक्तिपूजा होती थी, मारू बाजे और वीरगाथा में शक्ति-पूजा होती थी। हम निकम्मे-नामर्द क्या शक्ति-पूजा करेंगे? अपने भाइयों पर ख़ूनी खंजर उठानेवाले, पश्चिमी माया में फंसनेवाले, आतताइयों का साथ देनेवाले, धूर्तों और धोखेबाजों के चरण चूमनेवाले हम क्या शक्ति पूजा करेंगे? ढकोसलेबाज़. बकरों और भैंसों की कमज़ोर गर्दन पर तलवार चमकानेवाले, सच्ची बलिवेदी को देख कर भागनेवाले हम शाक्त नहीं हो सकते। शक्तिपूजा बहुत महँगा सौदा है। शाक्त है यूरोप, शाक्त है जापान, शाक्त है टर्की, शाक्त-धर्म में दीक्षित हुआ है चीन, और शक्तिपूजा की तैयारी कर रहा है अफ़ग़ानिस्थान!

हम चाहते हैं कि बलिदान हो, शक्ति-पूजा हो, तब लोह के टुकड़े हाथ को कड़ा करना होगा, कमज़ोरी और काहिलपने की ओढ़नी को फाड़ फेंकना होगा, कमज़ोरों की गर्दन पर से ख़ूनी पञ्जा हटा लेना होगा। वैशम्पायन ऋषि की बताई हुई देवताओं की संघशक्ति से, त्यागमूर्ति के निर्भीक मूर्ति से, अपने सभी विभूतियुक्त हाथों से, शक्ति-पू करनी होगी। तब हम शक्ति-पूजा के अधिकारी हो सकते हैं।

जापान में जब दुर्गादेवी (क़िलाबन्दी की शक्ति) की पूजा की तैयारी हुई, तो छोटे-मोटे सभी राजा-रईस अप अधिकार छोड़कर एक झंडे के नीचे आ खड़े हुए। रूस से लड़ाई होने के समय वहाँ की सौभाग्यवती माताओं ने अपनी चोटियां काटकर रस्से बनाने के लिए देदीं। जह के साथ डूबने के लिए दस आदमी की जगह दोसौ त्यागि ने ख़ून से हस्ताक्षर कर दरख़ास्त दी कि, हम देश के लि बलिदान होंगे। सैकड़ों पुत्रवती मातायें देश के लिए बलि दान होते हुए अपने पुत्रों को देखकर अपनी कोख को पवित्र समझने लगीं। तब कहीं दुर्गादेवी प्रसन्न हुई। रण चण्डिका हँस पड़ी और जापान प्रबल रूस की छाती सवार हो बैठा—उसका नाम भी महा-शक्तिशाली राष्ट्रों सूची में दर्ज होगया।

यूरोप के आबाल-वृद्ध-वनिता शक्ति-पूजा के लिए चैन हैं। बालक-बालिकायें अपने पुट्ठे मज़बूत करने के लि नाना प्रकार की कसरतें करते, तोप-बन्दूक़ चलाना सीख क़वायद करना सीखते, सभा में दुर्गा की ही मूर्ति देख उसीका ध्यान करते, उपासना करते हैं, तब वे संसार सिर ऊंचा कर चलतीं, सच्ची शक्ति की पूजा करती हैं।

हमारे देश में ढकोसलेबाज़ी है। दुर्गा के झंडे के दलित जातियां आने ही नहीं पातीं, स्त्रियों का पुरुषों साथ पूजा का अधिकार ही नहीं है, हिन्दू-मुसलमानों बीच पक्की दीवार खड़ी कर दी गई है। तब क्या श पूजा होगी? ख़ाक! तब क्या दुर्गा की आराधना होगी! क्या महाकाली, महासरस्वती और महालक्ष्मी की आराध

! मूर्ति खड़ी कर लो, दो-चार दस-बीस संस्कृत के पढ़ लो, बाजा बजा लो, गा लो, फूल-पत्ती बिखेर लो, खें बन्द कर लो, पर दुर्गा प्रसन्न नहीं होगी। स्वप्न में भी तुम्हारे यहां नहीं आवेगी। दधीचि बाबा के समान पुरुष अपनी हड्डी तक से न नहीं करेंगे और स्त्रियां देवकी की तरह अपने सात बलिदान अपनी आंखों नहीं देखेंगी, तब तक क्ति का आकाशवाणी नहीं होगी। यदि हम सब ऐसा गें, तो हम यह महामन्त्र पढ़ने लायक़ हो जायेंगे—

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीवशुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता॥

जय दुर्गे!

जीवानन्द शर्मा

फ़ेनी गैरिज़न विलार्ड

गत ५ जुलाई को अमेरिका में एक ऐसी महिला का देहावसान हो गया, जो न केवल एक पुरुष की पुत्री होने के कारण प्रसिद्ध हैं बल्कि जीवन और व्यवहार से भी जिन्होंने अपनेको सुप्रसिद्ध की उपयुक्त पुत्री सिद्ध कर दिया है। गुलामों गैरिज़न को आज कौन शिक्षित नहीं जानता?* महान् और परोपकारी उनका जीवन था, उसीकी उनकी पुत्री श्रीमती फ़ेनी गैरिज़न विलार्ड के जीवन खाई देती है।

सम्बर १८४४ ई० की १४ वीं तारीख़ को मैसेचुसेट्स नगरमें फ़ेनी गैरिज़न का जन्म हुआ था। गैरिज़न अपने प्राणों की भी पर्वाह न करते हुए अदम्य साथ जब गुलामों के उद्धार के लिए प्रयत्नशील का वह बाल्यकाल था। जॉन ब्राउन, सेमुएल मे, फ़िलिप्स, जार्ज थाम्सन, तथा अंग्रेज़ आन्दोलक लीडिया, मेरी चाइल्ड्स इत्यादि सुप्रसिद्ध दासता-विरोधी नेता गैरिज़न के यहाँ प्रायः आते और विभिन्न समस्याओं पर घण्टों वाद किया करते थे। फ़ेनी भी उनके सम्पर्क में खूब आई और स्वभावतः उसपर उनकी बड़ी छाप पड़ी। बाल्यकाल के ये संस्कार फ़ेनी में ऐसे पड़े कि वह भी ऐसी ही हुई और अन्त तक उन्होंने इसे अपने प्रभाव में रक्खा।

अपनी बाल्यावस्था से ही, अपनी वय और योग्यता के अनुसार, फ़ेनी ने अपने पिता के साहस और स्वतन्त्रता के कार्य में श्रद्धा एवं उत्साह के साथ योग-दान करना शुरू कर दिया। गैरिज़न 'लिबरेटर' नाम का एक साप्ताहिक पत्र निकालते थे, जो गुलामी की प्रथा उठा देने के लिए तो बड़े ज़ोरों के साथ आन्दोलन करता ही था, साथ ही स्त्रियों के अधिकारों, शान्ति और मादक-निषेध का भी वह प्रबल समर्थक था। फ़ेनी उसके प्रूफ़ पढ़ने के रूप में अपने पिता की सहायता करने लगी।

अमेरिकन गृह-युद्ध के समय, हेनरी विलार्ड नाम के एक व्यक्ति से फ़ेनी का विवाह हुआ। यह महाशय उस समय 'न्यूयार्क ट्रिब्यून' नामक पत्र के एक सामरिक सम्वाददाता थे; पर, बाद में उनका भाग्य चमका। 'नार्थर्न पेसिफ़िक रेलरोड' के वह अध्यक्ष हुए और फिर विशाल रेलरोड का निर्माण तथा ट्रान्समिसिपि प्रान्त का विस्तार करके उन्होंने खूब ख्याति पाई।

फ़ेनी ने विवाह के बाद ज़ोरों से स्त्री-स्वातन्त्र्य का आंदोलन उठाया। धारासभा तथा दूसरी संस्थाओं में इन्होंने खूब कीर्ति पाई। इनकी लगन तो खरी थी ही, वक्तृत्वशक्ति और सौंदर्य के संयोग से मानों सोने में सुगन्ध हो गई। इन्हें इसमें खूब सफलता मिली। तदुपरांत 'स्त्रियों का शांति-संघ' स्थापित करके यह विश्वव्यापी शांति की प्रयत्नशील हुईं और इसके लिए १९२१ में स्त्रियों के अन्तर्राष्ट्रीय शांति-संघ के सम्मेलन में प्रतिनिधि-रूप में भी शरीक हुईं। यही नहीं, स्त्री-शिक्षा के लिए भी इन्होंने खूब प्रयत्न किया। न्यूयार्क के बर्नार्ड कालेज की स्थापना में इनका बड़ा हाथ था और कई साल तक कुस्तुन्तुनिया में स्थापित स्त्रियों के अमेरिकन कालेज की डाइरेक्टर व ट्रस्टी भी यह रहीं। अख़बार से तो इन्हें बाल्यावस्था से ही काम पड़ा था। बड़ी होने

---

* स जीवन देखिए, 'त्यागभूमि'; खण्ड २, अंश २।

पर, १८८१ से १९१७ तक, 'न्यूयार्क ईवनिंग पोस्ट' और 'नेशन' की मालिक भी रहीं। अलावा इसके २५ वर्ष तक 'न्यूयार्क डायट किचन एसोसियेशन' की अध्यक्ष और ४८ वर्ष तक उसकी व्यवस्थापिका भी रहीं। कई अस्पतालों, इन्फ़र्मरी आदि के निर्माण में भी इन्होंने काफ़ी मदद दी थी। और, भारतीयों को यह जानकर प्रसन्नता होगी कि, भारतीय स्वतंत्रता के आन्दोलन में भी यह सहानुभूति के साथ दिलचस्पी लेती थीं, जिसके लिए आज भी न्यूयार्क के हिन्दू इन्हें याद करते हैं। इनके जो दो पुत्र हैं, वे भी दोनों दो पत्रों के सम्पादक हैं और इन्हीं गुणों से ओत-प्रोत हैं। 'नेशन'-सम्पादक श्री ओस्वाल विलार्ड गैरिज़न की प्रशंसा में तो ला० लाजपतराय अपने प्रसिद्ध पत्र 'पीपुल' में एक सुन्दर लेख भी लिख चुके हैं।

सचमुच वह दिन मनहूस था, जब इनका प्राणान्त हुआ! पर ८३ वर्ष की इनकी उम्र हम भारतीयों के लिए तो बहुत ही कही जायगी, जब कि हमारी आयु का औसत है सिर्फ़ २४.७ वर्ष। जो हो, न्यूयार्क के 'हेरल्ड ट्रिब्यून' का कहना है—'उनके पास जो कुछ था, उसे उन्होंने बिना किसी मुआवज़े के और बगैर थके हुए दूसरों को दे डाला। निस्सन्देह, अनेक अच्छे कामों में सजीव भागीदार और निःस्वार्थ नागरिकता के आदर्श के रूप में वह सदैव स्मरण की जाती रहेंगी।' तथास्तु! हम भी उन्हें अपनी श्रद्धाञ्जलियाँ अर्पित करते हैं।*

'एक भारतीय'

"अगर हम किसी राष्ट्र की राजनैतिक और नैतिक स्थिति जानना चाहें, तो हमें मालूम करना चाहिए कि उसमें स्त्रियों की क्या स्थिति है। जीवन के समस्त अंगों पर उनका प्रभाव पड़ता है। पत्नी!—माँ!—इन दो चमत्कारिक शब्दों में मनुष्य के आनन्द का मधुरतम स्रोत समाविष्ट है।"

—एमी मार्टिन

स्त्रियों की क़लम से—

धर्म का हृदय क्या है?

धर्म के हृदय को जानने या समझने के लिए मनुष्य का दृष्टान्त लेना ठीक होगा। मनुष्य में मुख्य स्थान हृदय का है। हृदय जितना शुद्ध, जितना बलशाली और जितना कार्यकारी होगा, उतना ही मनुष्य-जीवन शुद्ध, बलशाली और कार्यसाधक होगा। इसी तरह धर्म भी बाह्य-आन्तर अनेक रूपों का मिश्रण है। अनेक मनुष्य धर्म के जुदा-जुदा बाह रूप लेकर प्रवृत्ति करते हुए दिखाई देते हैं; फिर भी वे सब प्रामाणिक नहीं, उदार नहीं, उलटे और सब की तरह वे भी अनेक दोषों से पूर्ण होते हैं। इसके विपरीत ऐसे भी मनुष्य देखे जाते हैं, जिनमें धर्म का बाहरी रूप कोई भी नहीं होता; फिर भी वे ईमानदार, शान्त और उदार होते हैं। इससे यह सिद्ध है कि ईमानदारी, शान्ति और उदारता का सम्बन्ध किसी बाहरी रूप से नहीं है; उसका अनिवार्य सम्बन्ध किसी और ही चीज़ से है। वह चीज़ क्या है? वह चीज़ अन्तर में वर्तमान होती है, और उसका नाम है अहिंसा तथा अनेकान्त दृष्टि। जहां ये नहीं हैं, वहां धर्म के सैकड़ों बाहरी रूप होने पर ईमानदारी आदि गुण नहीं हो सकते। इसलिए धर्म का हृदय मात्र अहिंसावृत्ति और अनेकान्त दृष्टि है। जितने परिमाण में ये दो वृत्तियाँ शुद्ध, सबल और कार्यसाधक होंगी उतने ही परिमाण में जीवन शु सबल और कार्यसाधक होगा। अतएव धर्म आरम्भ यदि करना हो, तो हमें इन्हीं दो वृत्तियों जागृत करना चाहिए।

केसरबाई

× × ×

---

* श्रीमती रागिनीदेवी के लेख के आधार पर

स्फुट प्रसंग

ओं का आदर्श

जागृति की लहर में प्रत्येक प्रायः पश्चिम
ओर मुँह करता है । वह आँख मूँदकर
अपनाने, उसका अनुकरण करने का प्रयत्न
। हमारे युवक भाई तो ऐसा कर ही रहे थे, तरुण
अब ज़ोरों के साथ ऐसा ही कर रही हैं। ऐसे समय
पं० रामावतार शर्मा एम० ए० के द्वारा,
और अर्वाचीन एवं प्राच्य और पाश्चात्य का
है, "भारतीय स्त्रियों का आदर्श" बताया
ही स्वागत-योग्य है । उस दिन पटना में,
की अध्यक्षता में, महिलाओं के सामने
पर भाषण करते हुए उन्होंने कहा—प्राचीन
हमारी देवियों ने नाना गुणों में वह आदर्श उप-
है, जिसके मुक़ाबले आज की पाश्चात्य नारियों
नगण्य है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल में ऋषि-
का कथन है, 'मैं ही ब्रह्मा हूँ और मैं ही पृथ्वी
की सृष्टिकारिणी हूँ।' उपनिषद-काल की स्त्रियों
और शिक्षा के प्रति प्रगाढ़ प्रेम था। उन दिनों की
की भूखी और बलवती थीं। आज की स्त्रियों
से हृष्ट-पुष्ट एवं ज्ञानवती बनना चाहिए।
अपनी शक्ति को महसूस करें तो ओत्म-रक्षा के
समर्थ हैं। विद्या-प्राप्ति का सुयोग स्त्रियों को
भी ज़्यादा है—क्योंकि, पुरुष तो प्रायः जीविको-
लिए पढ़ते हैं, पर स्त्रियाँ ज्ञान के लिए विद्यार्जन
है। आपके सामने सीता का आदर्श है और
शक्ति का एक अंश हैं। आपको सद्विचार
सन्मार्ग पर चलना चाहिए, भले ही लोग कुछ
। हमारे समाज में विवाह आदि के बारे में जो
प्रचलित हैं उन्हें आप नष्ट कर डालिए।
है, हमारी बहनें इसपर गम्भीरता से विचार

स्त्रियों का राजनैतिक सम्मेलन

अभी तक स्त्री-परिषदों और स्त्रियों के शिक्षा-सम्मेलनों की ख़बरें तो सुनी जाती थीं, इस बार उनका एक राजनैतिक सम्मेलन भी हुआ है। दिल्ली प्रान्तिक परिषद् के अधिवेशन के साथ मेरठ में, १२ अक्तूबर को यह अधिवेशन हुआ। स्वागताध्यक्षा श्रीमती सुशीलादेवी ने भारत के स्वातंत्र्य-युद्ध (सन् १८५७) का वर्णन करके कहा कि अगर हम सब संयुक्त हो जायँ तो विजय निश्चित है। शिक्षिता स्त्रियों की अल्प संख्या पर खेद प्रकट करते हुए पर्दे की प्रथा तोड़ने पर उन्होंने ज़ोर दिया। प्रतिनिधियों से उन्होंने केवल स्वदेशी वस्तुओं का इस्तैमाल और विदेशी का बहिष्कार करने की प्रार्थना की। सभानेत्री तपस्विनी पार्वतीदेवीजी ने अपने मौखिक भाषण में घोषणा की कि भारतीय स्त्रियों को दो जनों से लड़ना है—ब्रिटिश सरकार और भारतीय पुरुष-वर्ग। भारतीय पुरुषों का व्यवहार स्त्रियों के साथ बड़ा कठोर और लज्जापूर्ण है। इसीके फलस्वरूप दक्षिण आफ़्रिका में वे अछूत माने जाते हैं और संसार की नज़रों में गुलाम बने हुए हैं। पर्दा दूर होना चाहिए और कन्या-शालाओं की संख्या कई गुनी बढ़ जानी चाहिए। स्त्रियों को प्रतिदिन तीन घण्टा चर्ख़ा अवश्य कातना चाहिए। विवाह-वय लड़कियों के लिए १८ और लड़कों के लिए २६ होनी चाहिए। प्रस्तावों में भारत के लिए पूर्ण स्वाधीनता की माँग की गई, साइमन-कमीशन के पूर्ण बहिष्कार का निश्चय हुआ, पर्दा-प्रथा दूर करने का निश्चय हुआ, कन्याओं के लिए अनिवार्य निःशुल्क शिक्षा की माँग की गई, और वीर खडगबहादुरसिंह के प्रति सहानुभूति प्रकट की गई। विवाह-वय लड़कियों के लिए १८ और लड़कों के लिए २५ वर्ष रखने का निश्चय हुआ है। इस प्रकार हमारी बहनें राजनैतिक क्षेत्र में क़दम बढ़ा रही हैं, देश की राजगीति पर इसका प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी है। हमें आशा करनी चाहिए कि इसका असर देश के लिए शुभ ही होगा। हाँ, एक बात को पढ़कर तो हमसे हँसे बिना न रहा गया। स्वागताध्यक्षा श्रीमती सुशीला देवी ने यूरोपीय महायुद्ध के समय की भारतीय स्त्रियों की सेवाओं

का उल्लेख किया, इस बिना पर कि उन्होंने अपने पुत्रों व भाइयों को लड़ने के लिए भेजा था ! भारतीय स्त्रियों की इस सूझ पर बधाई !

अफ़ग़ानिस्थान में सह-शिक्षा

अमीर अमानुल्लाह बड़ी तेज़ी से आगे बढ़ रहे हैं। पर्दे के ख़िलाफ़ महारानी सोर्या ज़ोरों से प्रयत्न कर ही रही हैं; 'लीडर' के शब्दों में कहें तो उन्होंने इसके ख़िलाफ़ 'जहाद' की घोषणा कर दी है। स्त्री-शिक्षा पर भी बहुत ज़ोर दिया जा रहा है। अभी हाल में लड़कों के साथ-साथ तरुण अफ़ग़ान लड़कियों का एक दस्ता भी, भारत के रास्ते, शिक्षा-प्राप्ति के लिए टर्की गया है। यही नहीं, काबुल में एक नया हुक्म और हुआ है। इसके अनुसार वहाँ ६ से १६ वर्ष तक की उम्र में लड़के-लड़कियों की शिक्षा न केवल अनिवार्य बल्कि एक ही जगह होने की व्यवस्था की गई है। इसका मतलब यह है कि १६ वर्ष तक की वय के लिए वहाँ सह-शिक्षा (Co-education) का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया है। देखना चाहिए, इसका परिणाम अफ़ग़ानिस्थान की परिस्थिति पर कैसा होता है।

अमीर अमानुल्लाह और महारानी सोर्या
(आधुनिक वेष में)

मिस्र का तलाक-विधान

मिस्र की राष्ट्रसभा ने कुछ समय पूर्व तलाक के नियम बनाने के लिए एक कमिटी बनाई थी। 'पायनी के अनुसार उसने सिफ़ारिश की है कि एक स्त्री के कोई आदमी दूसरा ब्याह न करे। अगर कोई ब्याह क तो पहले महक्मा श से स्वीकृति लेवे, उस चाल-चलन अच्छा और अपनी दूसरी अन्य स्त्रियों को भी पहली स्त्री के समान रख सकने के योग्य शराबी पति तलाक दे सकता। इसी प्र तिहरे तलाक पर की शपथ से उत्पन्न त भी नाजायज़ है। आदमी अपनी हुई स्त्री को फिर गृहण कर सकता है। तिहरे तलाक की में सिर्फ़ कुरान बताई हुई दशाओं ऐसा हो सकता कोई भी तलाक उस तक जायज़ नहीं जायगा, जब त दोनों के मेल के प्रयत्न असफल महक्मा शरिया से स्वीकृति न हो अगर पति बिना कारणों के एक तक घर से बाहर पत्नी उसे तलाक दे सकती है।

स्वाधीनता

वैन यानी विप्लव और युवा विप्लववादी । संघबल, और मृत्यु: त्रिविध साधनों एकमात्र इसी जीवन-क्रम सरण करने के लिए मैं को पुकारता हूँ......मैं उन को प्रणाम करता हूँ, जिन्हों- राष्ट्र और जाति के भेद- वालायताक-रख कर किसी- महत्कार्य की पूर्ति में अपने की आहुति दे डाली है ।

× × ×

सेनानी युवक ! जाओ !!

के पत्थरों में, मस्जिद की नमाज़ में, और शून्याकाश में, गांव-गांव, घर- धीनता को गगनभेदी ध्वनि गुंजा दो । ही तुम्हारी आँखों की ज्वाला हो, देह रक्त हो, और हो कण्ठ का पांचजन्य । राजसूय यज्ञ के लिए दिग्विजय करने धीनता का घोड़ा छोड़ दो । मन्दिरों-मस्जिदों में की पताका फहरा दो । स्वातंत्र्य-नाद गुंजा धीनता के इस प्रलय यज्ञ में अपने धन, जन की बलि देदो । युवको ! जाओ, विलम्ब और स्वाधीनता के लिए मर मिटो । संसार तुम्हारी खोज करने को निकले, तो तुम ही पथ पर मिलो ।

× × ×

! स्वाधीनता—हाँ, स्वाधीनता; बस, यही न्तिम सन्देश है ! ❀

पूर्णचन्द्रदास

युवक-सम्मेलन के सभापति-पद से

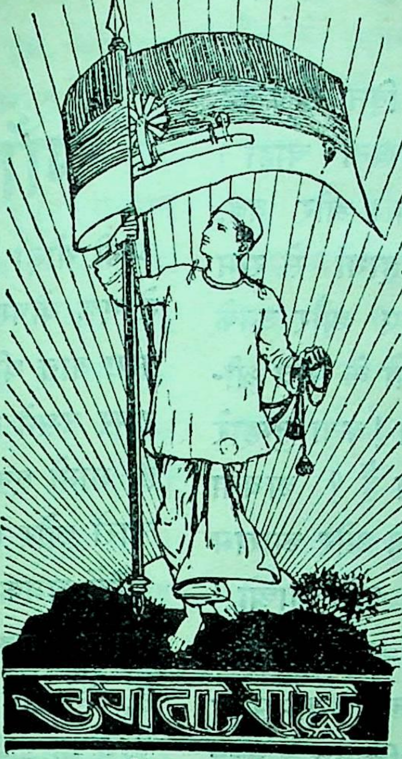

शक्ति

सभा-सम्मेलनों और क़ाग़ज़ी प्रस्तावों से कुछ अधिक की जरूरत है । भाषणों और भावनाओं से कुछ अधिक ! शक्ति आवश्यक है । बिना शक्ति के किसी भी राष्ट्र ने स्वतंत्रता नहीं पाई है । 'हिंसा' शक्ति का एक रूप हो सकती है, पर भारत का साधन हिंसा नहीं होगा । भारत की आत्मा के साथ हिंसा का तादात्म्य नहीं होगा । और मानवता को भी हिंसा से कोई मदद नहीं मिलेगी । आन्तरिक शक्ति ही वह चीज़ है, जो भारत को स्वतंत्र होने के योग्य बनायगी । आज इस शक्ति में हमारे वातावरण और हमारे व्यवहार से तात्कालिक बाधा पड़ रही है । हमें नवीन बन जाना आवश्यक है । दीर्घकाल की खोई हुई स्वतंत्रता को पाने के लिए हमें अपनेआपको बदल डालना चाहिए । देश को इस समय रूपान्तर की भावना से परिपूर्ण तरुण स्त्री-पुरुषों की ही आवश्यकता है । भारत की आशा उसके युवक-आन्दोलन में है । यह आन्दोलन भारत की अमर परम्परा—उसकी आत्म-बुद्धि—और उसकी अर्वाचीन भावनाओं की गंभीर योग्यताओं के ठीक अनुकूल होना चाहिए । हमारे ऋषियों की प्रज्ञता और आधुनिक विज्ञान के परस्पर संयोग से ही नवीन भारत का जन्म होगा ।

बलवान ही सफल होता है । और तुम उतने ही बलवान बनोगे, जितने कि तुम सादा होगे और ग़रीबों की सेवा करोगे । उनके अन्दर एक जबर्दस्त शक्ति बन्द पड़ी हुई है । जाओ, उनके पास जाओ; उन चमारों, ढेड़ों, भंगियों, अछूतों, और दलितों के साथ

हिलो-मिलो ! बस, देश में एक नई शक्ति का अवतरण होगा।

एक पुरानी कथा है। राम एक दिन खेल रहे थे। कुछ देर के बाद पिता ने उन्हें देखना चाहा। माँ ने आवाज़ देकर राम को बुलाया। और तब, कवि के शब्दों में, कीचड़ में सने हुए हाथों से राम मुस्कराते हुए आये। राम मुस्कराते हुए और उनके हाथ कीचड़ में सने हुए—यही ग़रीबों के मित्र श्रीराम की सुन्दर आकृति है ! नौजवानो ! क्या तुम्हारे हाथ सन रहे हैं ? कीचड़ में लथपथ हैं ? अथवा तुम पश्चिम के क्षणिक फ़लालैनी फ़ैशन और आराम में मस्त हो ? ओ ! जाओ, ग़रीबों के पास जाओ ! नम्रता के साथ उनके पास जाओ और उनसे कहो—'तुम हमारे हो !' उन्हें अपने समाज में वापस ले आओ—उस समाज में, जो जाति के अभिमान में मस्त होकर कमज़ोर हो चुका है और ऋषि-काल के महान् आदर्शों के विपरीत रीति-रिवाजों और आदतों से जिसकी जीवनी-शक्ति नष्ट हो गई है। ग़रीबों के साथ रहकर अपनेमें एक नई शक्ति पैदा करो और तब अपने समाज का निर्माण करो। न सिर्फ़ अपने अकेले के लिए बल्कि नवीन एशिया के लिए, नवीन संस्कृति के लिए, और नवीन मानवता के लिए, अपने राष्ट्र में भ्रातृत्व की स्थापना करो। ज्ञान और तपस्या से, भारतीय आदर्शों के प्रति प्रेम से, और इस प्राचीन महान् राष्ट्र के महान् सौभाग्य के विश्वास से, तुम इसका निर्माण करो, ओ ! अपने देश की सेवा के लिए उत्सुक नौजवानो ! भविष्य के लिए अपने राष्ट्र के सौभाग्य का निर्माण करो !

टी० एल० वास्वानी

देश के लिए

(१)

गाँव के दूसरे छोर से अब भी ढोल गम्भीर शब्द सुनाई पड़ रहा अभी थोड़ी देर पहले इस चौराहे पर कुछ सिपा ने एक घोषणा सुनाई है। पता नहीं, उस घोष क्या बात थी। हाँ, इतना स्पष्ट है, सुनने वालों ऊपर उसने बड़ा असर किया है। ऐसा प्रतीत है, मानों एक विद्युत-धारा इधर से उधर दौड़ ग चारों ओर एक प्रकार की उत्तेजना है। युवकों आँखें चमक उठी हैं। उनके सिर गर्व से उन्नत गये हैं। एक दूसरे की ओर भावमयी दृष्टि से दे हैं, जैसे सब एकही बात का अनुमोदन कर रहे हों "हम भी जायँगे," "हम भी जायँगे"। बुड्ढों की और क्षीण दृष्टि वाली आँखों में एक ज्योति आ है। वे एक बार सामने दूर क्षितिज तक खड़े और हरी-हरी खेती से सुहाती जापानी भूमि ओर देखते हैं, फिर अपने जीर्ण झुर्री पड़े हुए जोड़ों वाले शरीर की ओर, और एक दीर्घ नि के साथ उनके नेत्रों से मुर्झाये हुए गालों पर ग गरम आँसुओं की बूँदें टपक पड़ती हैं। एकाएक अ जराजीर्ण देह की समग्र शक्ति को एकबार ए करके लाठी के सहारे जोश में उठ खड़े होते बच्चों के बाल्य-सुलभ-सारल्य से युक्त सुन्दर मुखों भी थोड़ी देर के लिए गम्भीरता का भाव आ है। वे एकटक, कुछ सोचते हुए, पिताओं के व और दृढ़तामय चेहरों की ओर देख रहे हैं। उ आँखों में चपलता-मिश्रित उत्साह और आतुरता

एक रोटीवाले की दूकान पर एक झुण्ड खड़ा एक अर्द्ध-वृद्ध व्यक्ति ने हाथ में तलवार तोलते अपनी बाहुओं की ओर देखकर, कहा—"अभी

तलवार पकड़ने के लिए पर्याप्त शक्ति है।" फिर, ...खड़े हुए युवक की ओर देखते हुए, बोला—...ी, तुम देखते हो, मैं बुड्ढा हूँ ? परन्तु, मेरा मन बुड्ढा नहीं है। अपनी जन्मभूमि के प्रति मेरा ...तना ही अटल और सत्य है।" बुड्ढा गद्गद ...से उमङ्ग में बोलता जा रहा था। संध्या के प्रकाश और गाँव की झोंपड़ियों से उठे हुए ...दूर के दृश्य एक-एक करके वृद्ध के मस्तिष्क ...ुव दिनों की बातों की स्मृतियों के समान होते जा रहे थे। आस-पास की झोंपड़ियाँ ...हुई अस्पष्ट छाया के समान हो रही थीं। ...ुन्धले प्रकाश में भी वृद्ध के मुख पर उत्तेजना ...तीत होती थी। उसका स्वर क्रमशः तेज़ हो ...था। वह कहता गया—

"आज जन्मभूमि को हमारी आवश्यकता है। ...से आज तक हमें जिसने अपनी गोद में ...ता है, और मरने के बाद भी जो हमारी धूल ...अपने अंचल में बाँधकर छाती से लगाकर ...ी, सुख-दुःख में, चिन्ता और विपत्ति में, आव...ा पड़ने पर जिसे हमने पुकारा है, आज उसे ...मारी आवश्यकता है। जापान के अन्न से बना ...का हरएक कण उसीका है और उसीके काम ...ना चाहिए।"

...वृद्ध का स्वर कुछ-कुछ काँप रहा था। दूकान पर ...हुई अंगीठी के दहकते हुए अंगारों का लाल-लाल ...वृद्ध के मुख पर पड़ रहा था, जिससे उसके ...र सैनिक दृढ़ता देखी जा सकती थी।

"...ऐं!" अभी थोड़ी देर पहले आये हुए एक ...ुक ने कहा, "क्या बात है ?"

...में से कोई दृढ़ स्वर में बोला—"तुम्हें ...ं? आज एक घोषणा हुई है। रूसी भेड़िये, ...सान पर, खूनी आँखों से घूरते हुए गुर्रा रहे हैं। जन्मभूमि ने अपने पुत्रों को स्मरण किया है। जिनको अपनी जन्मभूमि से प्रेम है, वे उसकी पुण्य सेवा के लिए अपने नाम सैनिकों में जाकर लिखावें। आज उसे उनकी आवश्यकता है।"

उस भीड़ में से बहुत लोगों का मिला हुआ कुछ धीमा-धीमा-सा शब्द सुनाई पड़ने लगा। इसी समय दूर से बहुत मन्द घोषणा का ढम-ढम शब्द हवा के झोके के साथ आया और दूर अनन्त में जाकर विलीन हो गया।

(२)

प्रातःकाल होगया था। सूरज अभी-अभी निकला था। जिस प्रकार एक चतुर चित्रकार पर्दे के सम-पृष्ठ पर पेन्सिल की नोक से पहाड़, पेड़, नदी, नाले, पुष्पित घाटी के बीच में कल-कल करके बहने वाली तरंगति नदी, उसके तट पर बसी हुई लता-वेष्टित सुन्दर झोंपड़ियां आदि अंकित करके और सुन्दर रंग देकर जीवित-जागृत दृश्य बना देता है, उसी प्रकार झोंपड़ियाँ, गाँव के चारों ओर हँसती हुई खेती, नदी इत्यादि सब दृश्य एक-एक करके उषा के प्रकाश से प्रकट हो गये थे। बालसूर्य की सुनहरी किरणें नदी की उठती हुई तरंगों से झिलमिला-झिलमिला कर खेल रही थीं और पेड़ों की हरी-हरी पत्तियों में सुनहरे रंग की गोट लगाकर स्वर्गीय दृश्य उपस्थित कर रही थीं। ठण्डी हवा बह रही थी। दृश्य बड़ा सुहावना था। ग्रामवासियों के जगने का धीमा-धीमा शब्द हो रहा था। एक वृद्धा स्त्री अपनी झोंपड़ी से बाहर निकली। दूर के एक लाइन में मिले हुए पेड़ों से लेकर उसके अपने पैर के नीचे की हरियाली तक हरएक दृश्य उसपर मोहनी मन्त्र पढ़ रहा था। वृद्धा बड़ी देर से एकटक देख रही थी। पीछे से झोंपड़ी में से निकल कर एक १९ वर्ष के लड़के ने वृद्धा का हाथ पकड़ कर पूछा—

"माँ, क्या देख रही हो ?"

वृद्धा—बेटा, जो इस तुम्हारी माँ की भी माँ है, उसे देख रही हूँ ।

लड़का—क्या माँ ?

वृद्धा—सामने देखो । क्या दिखाई पड़ता है ?

लड़का—हरे-हरे खेत, उनके बीच में चमकती सोने की लकीर-सी वह छोटी नदी, उसके आगे छोटी हरी-हरी पहाड़ियाँ, उसके दो अंगुल ऊपर चमकते सोने के कटोरे-सा सूरज और नीला आकाश ।

वृद्धा—कैसा दृश्य है ?

लड़का—बड़ा सुन्दर, माँ ! जैसे दुनिया-भर की सुन्दरता यहीं सजा कर रख दी गई हो !

वृद्धा—यही तुम्हारी माँ है ! ग़ौर से देखो । तुम्हारे अंगों में इसीकी धूल लगी है । यह जो अन्न खाते हो, जिससे बना हुआ यह रक्त तुम्हारे शरीर की रग-रग में दौड़ रहा है, यह जो मीठा अमृत-सा पानी पीते हो, यह पृथ्वी जिसपर तुम इस समय खड़े हुए हो, बैठते-सोते और चलते-फिरते हो, और यह मनोहर दृश्य जो तुमपर प्रेम का मन्त्र पढ़ रहा है, जानते हो, यह तुम्हें कहाँ से प्राप्त होता है और कहाँ पर है ?

लड़का—इस पृथ्वी से ।

वृद्धा—यह पृथ्वी कहाँ की है ?

लड़का—जापान की ।

वृद्धा—यही तुम्हारी माँ है, बेटा ! और ग़ौर से देखो ।

लड़का—हाँ, माँ ! यह भी हमारी माँ है ।

वृद्धा—नहीं-नहीं । "यह भी" नहीं । यही तुम्हारी माँ है और "मैं भी" तुम्हारी माँ हूँ । मान लो, यदि कोई तुम्हारी इस माँ के इस हरे अञ्चल को उघाड़ना चाहे—इस रम्य दृश्य को नष्ट-भ्रष्ट करना चाहे—तुम्हारी इस माँ की छाती पर अपने पैने भालों को गाड़ कर अत्याचार करना चाहे, तो

लड़का—मेरे सबल हाथ उसे रोकने को आ
बढ़ेंगे ।

वृद्धा—शाबाश, बेटा, शाबाश ! तुम्हारा कर्त
होगा कि तुम अपने प्राणों से अपनी माता के श
को ढक कर शत्रु के वार को अपनी छाती पर लो

लड़का—हाँ, माँ, मेरा यही कर्तव्य होग

वृद्धा—तुम्हारा यही कर्तव्य होगा । और
इससे भी अधिक और कुछ हो सके, तो वह भी
तुमने कल की घोषणा सुनी है, बेटा ?

लड़का—सुनी है, माँ !

वृद्धा—तब क्या सोच रहे हो, बेटा ? जाओ
गाँव के उधर बाग़ में कप्तान का कैम्प लगा है ।
जाकर मातृभू की दिव्य सेवा में अपने श्रद्धा
कर्त्तव्य के फूल चढ़ाओ । बेटा, अपनी इस माता
भी माता की मर्यादा को अक्षय बनाने के
अपना नाम सैनिकों में लिखाओ । आज तुम्हारी
को तुम्हारी आवश्यकता है ।

लड़का—माँ, मैं अवश्य जाऊँगा । लो,
चला.........

(३)

"माँ ! माँ ! दर्वाज़ा खोलो, माँ !"

शाम हो गई थी, परन्तु अभी अँधेरा नहीं
था । लड़का दर्वाज़े पर आकर खड़ा हुआ । घर
द्वार बन्द था । वह थोड़ी देर कुछ चिन्तित-सा
की ललाई की ओर देखता रहा । उसके मुख
प्रसन्नता नहीं थी । उसके जूते धूल में भरे हुए
फिर दर्वाज़े पर हाथ रख कर उसने पुकारा—"
माँ ! दर्वाज़ा खोलो, माँ !"

उसकी आवाज़ भर्राई हुई थी । जब माँ ने
दर्वाज़ा खोला, उसका हृदय ज़ोरों से धड़क रहा
वह सोच रहा था, माता पूछेगी तो मैं क्या

खोलकर चली। उसने अभी पुत्र के को अच्छी तरह नहीं देखा था। वह जब आगे- रही थी, उसके मुख पर प्रसन्नता झलक ी। एक प्रकार का गर्व उसकी आँखों में था। पीछे-पीछे आँगन में आकर स्टूल पर बैठ माँ ने पूछा—"नाम लिखा दिया, बेटा ?"

लड़का थोड़ी देर चुप रहा। फिर सिर नीचा हुए बोला—"उन्होंने नहीं लिखा, माँ !"

भोजन बनाने में लगी थी। उसने चौंक कर —"क्या ?"

लड़का—उन्होंने नहीं लिखा, माँ !

ाता—क्यों ? क्या हुआ ?

लड़का—माँ ! मैं यहाँ से गया, रास्ते में और कई थी मिले, वे भी वहीं जा रहे थे। वहाँ पर जाकर बड़ी भीड़ थी, हर एक बारी-बारी से जाता था। र के बाद मेरा भी नम्बर आया। माँ, मैं सन्न हो रहा था। अफ़सर के सामने ले गया। उन्होंने मेरा नाम पूछा। मैंने नाम । बोले, बड़ा सुन्दर नाम है। मेरी पीठ पर ने हाथ रख कर और कमर में लटकती तल- की ओर देखते हुए बोले, 'इस वेश में तुम कैसे मालूम होते हो। तुम अपने देश के लिए अपना त्सर्ग कर सकोगे ?' मैंने कहा, 'बड़ी प्रसन्नता से।' उन्होंने कहा, 'ओह ! मेरे प्यारे बच्चे, तुम नहीं जानते कि तुम्हें अपने माता-पिता- का और स्वयं अपने जीवन का मोह छोड़ ड़ेगा। तुम बड़े भोले हो। क्या तुम्हारा यह हृदय युद्ध-क्षेत्र में तोपों और बन्दूक़ों की मे और तलवारों की चमक और झन्कार न जायगा ? यह भी हो सकता है कि फिर माता-पिता का दर्शन न कर सको !' माँ, गर्व से फूल उठी। मैंने उत्तर दिया, 'महाशय, मैं यह सब जानता हूँ। मेरी माता को छोड़ कर, मेरे घर में, और कोई नहीं है। मैं अपनी माता को प्यार करता हूँ अवश्य, परन्तु उससे कहीं अधिक मुझे अपनी माता जन्मभूमि—अपने जापान—से प्यार करना सिखाया गया है। तोप और बन्दूक़ें सचमुच भयावह हैं, परन्तु उनसे मुझे भय नहीं; क्योंकि, मैं तो माता के प्रेम का अभेद्य कवच पहने हूँ। फिर मुझे डर किसका !' उन्होंने मुझे अपने और पास खींच लिया और मेरे सिर पर हाथ रख कर बोले, 'वीर बालक, मैं तुमसे बड़ा प्रसन्न हूँ। परन्तु तुम युद्ध में नहीं जा सकते !' माँ ! जैसे किसी ऊँचे पहाड़ पर चढ़ते हुए, शिखर के समीप पहुँच कर, मेरे पैर फिसल गये हों, और मैं नीचे गिर पड़ा होऊँ। मुझे ऐसा ही मालूम पड़ा। मैंने पूछा, क्यों ? इसपर उन्होंने कहा, 'क्योंकि तुम्हारे घर पर अकेली तुम्हारी वृद्धा माता ही है। यदि तुम युद्ध में चले जाओगे तो उसकी सेवा कौन करेगा ?' मैं चुप हो गया। उन्होंने अपनी कमर से यह कटार खोल कर मेरे बाँध दी। और प्यार से बोले, 'तुम अपने घर जाओ !'

थोड़ी देर तक वृद्धा के मुख पर गहरी चिन्ता के भाव अंकित रहे। मानों वह घने जंगल में रास्ता भूल कर भटक रही हो। परन्तु अकस्मात् प्रसन्नता से उसकी आँखें चमक उठीं। जैसे अँधेरे में भटकते बटोही को दूर पर वृक्षों की झुरमुट के बीच से टिमटिमाता हुआ प्रकाश दिखाई पड़ा हो। वह बोली—

"बेटा, मैं तुम्हारे रास्ते में कण्टक हुई। अच्छा तुम कुछ चिन्ता मत करो। कल तुम अवश्य अपना नाम सैनिकों में लिखा सकोगे।"

यह कह कर वह बड़ी तन्मयता के साथ भोजन बनाने लगी। लड़का माता के इन शब्दों का गूढ़ तात्पर्य समझने में असमर्थ था।

× × ×

माता ने आज बड़ी लगन से और बड़ा स्वादिष्ट भोजन बनाया। मानों अपने सारे जीवन का प्यार, जो कि वह अपने एकलौते पुत्र के प्रति रखती थी, उसने उसमें मिला दिया हो! पश्चात्, बड़े प्रेम से पुत्र को खिलाया। भोजनोपरान्त, थोड़ी देर में, लड़का सो गया। परन्तु, माता को नींद न आई।

(४)

"क्यों, वीर बालक, आज फिर यहाँ किस लिए आये हो?"

"सैनिकों में नाम लिखाने।"

"तुम्हारे सैनिक बन जाने पर तुम्हारी वृद्धा माता की सेवा कौन करेगा?"

युवक ने अपनी जेब से एक लिफ़ाफ़ा निकाल कर अफ़सर के सन्मुख मेज़ पर रख दिया। अफ़सर ने लिफ़ाफ़ा उठाया। उसपर उसीका पता लिखा हुआ था। उसने काँपते हाथों से लिफ़ाफ़ा खोला, उसमें लिखा था—

महाशय,

जिस समय मैंने सुना कि आपने केवल इसीलिए कि मेरे पुत्र के सैनिक बन जाने पर मेरी सेवा कौन करेगा, उसको देश के प्रति अपना कर्तव्य पालन करने और उस अक्षय पुण्य का भागी होने से रोका है, मैंने अपने आपको संसार में सबसे अधिक दुर्भागिनी समझा। बुढ़ापे से जर्जरित मेरा शरीर मेरे पुत्र के देश-सेवा के मार्ग में रुकावट डाल रहा है। अर्थात्, मैं अपने देश की वैरिन हूँ! क्या यह मेरा कम दुर्भाग्य है? इसलिए इससे पहले कि मैं अपने देश के लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शत्रु प्रमाणित होऊँ, अपने देश के साथ विश्वासघात करूँ, यह अच्छा है कि मैं अपने ऐसे जीवन का ही अन्त कर डालूँ।

अब आपको, मेरे पुत्र को, अथवा संसार को मेरे जीवन के सुख-दुःख की चिन्ता नहीं करनी पड़ेगी। क्योंकि, मैं ऐसी जगह पहुँच जाऊँगी, जहाँ संसार का कोई दुःख, बड़ी से बड़ी आपत्ति, कोई चिंता मेरे शरीर का स्पर्श तक नहीं कर सकेगी।

मैं अपने पुत्र को देश के अर्पण करती हुई, अपने पु और प्यारी जन्मभूमि से, सदा के लिए विदा होती हूँ।

आपकी—

सौभाग्यवती माता

× × ×

पत्र समाप्त हुआ। अफ़सर का मुख गम्भीर रहा था। उसने युवक के मुख की ओर देखते कहा—"धन्य हो वीर माता! धन्य हो वीर पु जापान अवश्य ही विजयी होगा।" युवक को पास बुलाकर और पीठ पर हाथ फेरते हुए पास क्लर्क से वह बोला, "इसका नाम लिखो।" और उ नाम लिख लिया। युवक के मुख पर प्रसन्नता थी।

भद्रजित '

निराशा के पथ में—

क्या पूछते हो?........'यह क्या है?' तो सुनो, और अच्छी तरह से सुनो—यह मेरे सु तथा पवित्र भावों की राख है! मैंने सोचा था, इन्हीं हाथों से भारत-माता के बन्धन को दूँगा......आँसू पोंछ कर उन आँखों में मुस्क भर दूँगा............अपने भाइयों को, सन्मार्ग लेजाऊँगा और फूट के काँटे उखाड़ कर फेंक यह देखो! मेरे इन सुन्दर भावों की यह पड़ी है!! जानते हो, क्यों? यह अपने पूछो, देशवासियों से पूछो, और अपने परमात्म पूछो।......और फिर, देखो इस राख पर! मेरे भावों की इस राख पर!!!

जोगेन्द्रकृष्ण कौ

श्री हरि गोविन्द गोविल

(अमेरिका के भारतीय प्रकाशक)

भारतवर्ष के लिए यह एक बड़ी स्फूर्तिप्रद बात है कि उसकी सन्तान ऊँचे और जन्मसिद्ध श्रद्धा को लेकर विदेशों में और वहाँ भारत के सन्देश को सुना-सुना कर की राय को भारतीय स्वतंत्रता के अनुकूल

श्री हरि गोविन्द गोविल

है। सचमुच राष्ट्रीय स्वाधीनता की प्राप्ति और चिर-प्रतिष्ठा का एकमात्र आधार देश और उनकी शक्ति ही है।

रि गोविन्द गोविल न्यूयार्क (अमेरिका) से होनेवाले 'ओरिएण्टल मैगज़ीन' के प्रधान और अमेरिका के एक होनहार भारतीय हैं। अमेरिका में आपकी 'फ़र्म' का नाम गोविल इनकारपोरेटेड, ओरिएण्टल प्रकाशक, बिल्डिंग, न्यूयार्क शहर' है। आप भारतमाता की उन इनी-गिनी सन्तानों में से हैं, जो भारतीय संस्कृति में पल कर, प्राच्य और पाश्चात्य संस्कृति के ऊँचे आदर्शों को गृहण करके, अपने देश की सभ्यता का न्याय्य अभिमान रखते और प्राचीन पूर्व के ऊँचे-से-ऊँचे आध्यात्मिक आदर्शों का अर्वाचीन पाश्चात्य सभ्यता की ऊँची-से-ऊँची वैज्ञानिक सफलता से सुखद संश्लेषण करने के लिए रात-दिन परिश्रम करते रहते हैं। ऐसे सुप्रसिद्ध देशबन्धुओं की जीवन-चर्चा सदा हमारी राष्ट्रमाता के अभिमान और आनन्द का कारण होगी।

अमेरिका का स्वावलम्बन-आदर्श

हरि गोविन्द गोविल का जन्म बीकानेर में हुआ था। बनारस में आपने शिक्षा पाई और सन् १९२० ई० में आप अमेरिका पहुँचे। आपके हृदय में आरंभ ही से जन-सेवी अमेरिका-वासियों की वह भावना विद्यमान थी, जिसके कारण अपनी बढ़ती जवानी के प्रारम्भिक दिनों में वे खेतों पर घोर परिश्रम करते, गली-गली घूमकर समाचारपत्र बेच कर या और भी इसी तरह की दूसरी मज़दूरी करके अपनी उदर-पूर्त्ति का प्रबन्ध करते हैं। अमेरिका-वासी, अब्राहम लिंकन के चरित्र की चर्चा बड़े आदर और अभिमान के साथ करते हैं। रेल की पटरियाँ काटना-छेदना (Rail-splitting), मनिहारी की दूकान पर तोल-जोख का काम करना, और ऐसे ही अन्य अनेक कार्यों में अब्राहम ने अपने जीवन के प्रारंभिक वर्ष बिताये थे। अवसर पाकर यही अब्राहम अमेरिका के इतिहास में एक सुप्रसिद्ध और सर्वप्रिय राष्ट्रपति बना।

हेनरी फ़ोर्ड की भी आरम्भ में यही दशा थी, लेकिन आज वह विश्व का सबसे बड़ा धनी है। प्रसिद्ध उड़ाका चार्ल्स लिण्डबर्ग मुँह में सोने का चम्मच लेकर नहीं पैदा हुआ था। अगर अमेरिका के कुछ भाई उसे आर्थिक सहायता न देते तो अट-

लाण्टिक महासागर के पार जाने में जो अद्वितीय सफलता उसे मिली, वह शायद न मिलती। इस तरह के खतरे से भरे साहसिक काम के लिए आर्थिक सहायता पा जाना कोई ऐसी-वैसी बात नहीं है। इसमें शक नहीं कि लिण्डबर्ग अत्यधिक कुशल और अनुभवी व्यक्ति है; लेकिन साथ ही अगर उसमें दृढ़ संकल्प और निश्चित लगन की भावना न होती, जिनके कारण मनुष्य में आत्मविश्वास बढ़ता है, तो उसके उक्त गुणों का शायद ही कुछ उपयोग हो पाता। केवल चार्ल्स के लगन-भरे स्वभाव को परख कर ही धन-पतियों की थैलियाँ उसके लिए खुल गई थीं, उसके जीतने की बहुत थोड़ी आशा के रहते हुए भी उन्होंने अपना द्रव्य जोखों में डाल दिया था।

अमेरिका-प्रवासी भारतीय विद्यार्थी भी अमेरिका-वासियों की इस विजयी वृत्ति को, प्रायः नितान्त निराशाजनक परिस्थिति में रहते हुए भी, जल्दी से अपना लेते हैं। इन भारतीय विद्यार्थियों में से कुछ ने तो अमेरिका की भूमि पर बहुत थोड़े रुपयों के साथ पैर रक्खा था। उन्होंने तश्तरियाँ धोना शुरू किया, भोजन परोसने का काम किया, और इसी तरह की अन्य मज़दूरी करके कालेज की पढ़ाई का ख़र्च निकाला और जैसे-तैसे खा-पीकर अपने दिन बिताये। मज़दूरी करने के कारण कोई उनसे घृणा नहीं करता। उलटे यह ज़रूर देखा गया है कि स्वावलम्बन के कारण कालेज के अध्यापक उनका उपयुक्त आदर करते और काम दिलाने के लिए उनकी सहायता करने में सुख मानते हैं।

हरि गोविल से भेंट

एक दिन मैं न्यूयार्क शहर के हिन्दू-भोजनालय में बैठा हुआ कुछ विद्यार्थी मित्रों से, जो सम्मिलित भोजन के लिए अक्सर उस समय वहाँ एकत्र हुआ करते थे, गपशप कर रहा था। उस समय किसी
अभ्यागत का आगमन हम सबके सुख और म
विनोद का कारण बन जाता था।

जब श्री गोविल भीतर आये, तो हम स
ध्यान उनकी ओर आकर्षित हुआ। वह कहाँ
आये ? किस उद्देश्य से आये ? कितना रुपया
लेकर आये ? आदि कुछ प्रश्न थे, जिनके उत्तर
उनसे आशा की गई।

हरि हमारे साथ बैठ गये और तत्काल ही भो
की ओर अपनी दृष्टि गड़ाकर, खाना खाते हुए,
हमसे अपने कार्यक्रम की बातें कहने लगे। 'मैसे
सेट्स इन्स्टीट्यूट ऑफ़ टेकनालाजी' में इलेक्ट्रि
इंजीनियरिंग की शिक्षा पाने के उद्देश्य से वह भा
से अमेरिका आये थे। उन्होंने प्रमाणपत्रों के
अपना आवेदनपत्र पहले ही भेज दिया था।
रुपये का प्रश्न उठा, तो हमें मालूम हुआ कि
समय उनके पास अमेरिकन सिक्के में दो सेण्ट
दो अंग्रेज़ी पेनी के अतिरिक्त और कुछ न था।
हमने पूछा, 'इस तरह बिना पैसे के कालेज में
कर किस तरह पढ़ सकोगे ?' तब उन्होंने हमें विश्
दिलाते हुए उत्तर दिया कि मज़दूरी द्वारा रुपया
कर वह पढ़ने की आशा रखते हैं।

उनकी दृढ़ लगन देखकर मैं प्रसन्न हुआ,
कुछ मित्रों के साथ एक कमरे में रहने के लिए
से कहा और सवेरे जल्दी उठकर अख़बारों में
शित आवश्यकताओं में से अपने योग्य कोई
ढूँढ लेने की बात कही। स्वर्गीय श्री बी०
दास ने उन्हें श्रीगणेश के लिए ५ डालर दिये
हरि हमारे पास से उठकर चल दिये।

कुछ समय बाद जब मैं इनसे लाला ला
राय द्वारा संस्थापित "इंडिया इन्फ़ॉरमेशन ब्यूरो
कार्यालय में फिर मिला, तब इन्होंने १५ शि
प्रति सप्ताह पर फ़ोटोग्राफ़िक फ़िल्मों को 'डेवेलप'

के मिलने की बात मुझसे कही। कुछ समय न्यूयार्क शहर के कालेज में भर्ती हो गये।

मार्ग-व्यय की समस्या

हममें गाढ़ी मित्रता हो गई थी, अतः एक हरि से पूछा कि निर्धन की हालत में वह किस तरह आ पहुँचे।

ने उत्तर देते हुए कहा—"मैं बनारस हिन्दू-विद्यालय का एक विद्यार्थी था। छात्रवृत्ति के ही मैं वहाँ भर्ती हो सका था। मेरे माता-पिता ग़रीब थे—माता ने मुझे प्रारम्भिक शिक्षा की ग़रज़ से अपने आभूषण तक बन्धक वर्षों से मैं अमेरिका में आकर पढ़ने के स्वप्न रहा था। महायुद्ध की समाप्ति के बाद ही मैं-से प्रस्थान कर देने का दृढ़ निश्चय कर था। आख़िर १९२० ई० में मुझे कतिपय मारवाड़ी दानियों से थोड़ी आर्थिक सहा-गई, कुछेक सौ रुपये मिले। देने वालों में दियाबन्धु, श्री बिड़लाबन्धु और बनारस शिवप्रसाद गुप्त के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। अपनी यात्रा का टिकट कटाने बम्बई लेकिन, वहाँ जाने पर, मालूम हुआ कि, दूसरे टिकट तो महीनों पहले ही ख़तम हो चुके आख़िर निराश होकर मैंने बम्बई से मार्सलीज़ पहले दर्जे का टिकट ख़रीदा और केवल रुपयों के बल पर विदेश-यात्रा के लिए ।

मेरे साथ जहाज़ की केबिन में तीन हिन्दू और थे। इनमें से बम्बई के एक व्यापारी से भाई जैसा प्रेम करने लगे। उन्होंने मुझ-गन्तव्यस्थान की ओर यात्रा के हेतु की बात जब उन्हें मालूम हुआ कि मार्सलीज़ में मेरे चार रुपये थे, तब उन्होंने मुझे अपने साथ होटल चलने के लिए आमन्त्रित किया। मैं गया, और एक दिन-रात उनका महमान रहा। तब मेरी सच्ची महत्वाकाँक्षा का परिचय पाकर उन्होंने मेरे नाम लन्दन का टिकट ख़रीद दिया, मुझे जेब-ख़र्च के लिए दो पौण्ड ऊपर से दिये, और प्रेमपूर्वक बिदा किया।

"लन्दन पहुँचने पर मैं कुछ भारतीय विद्यार्थियों से मिला। जब उन्हें मेरी निर्धनता का पता चला और मज़दूरी करने की मेरी इच्छा उनपर प्रकट हुई, तो वे मुस्कराये और मुझपर हँसने लगे। सौभाग्य से इन लोगों में श्री महादेवसिंह (पी० एच० डी०) नामक एक पंजाबी युवा भी वहाँ उपस्थित थे। अमेरिका में कृषि-विषयक पढ़ाई समाप्त कर इस समय वह भारत-यात्रा की तैयारी में थे। उन भाई का दृष्टिकोण कुछ और था—और, वह मेरे अनुकूल था। उन्होंने अमेरिका जाने के मूल विचारों को न छोड़ने का मुझसे अनुरोध किया और मेरे हौसले को बढ़ाया।

उदार भारतीय दानी

"लन्दन में रहते हुए मुझे कोई काम न मिल सका, मेरी जेब तेज़ी से ख़ाली होने लगी। इसी समय मैंने सुना कि श्री अम्बालाल साराभाई नामक एक धनी मिल-मालिक इस समय लन्दन में हैं। मैं उनके पास गया। उन्होंने बड़ी उदारता-पूर्वक मेरा स्वागत-सत्कार किया। श्री अम्बालाल साराभाई के अत्यन्त धनी होने के कारण कई भारतीय विद्यार्थी उनके पास आर्थिक सहायता के लिए पहुँचते रहते थे। इनमें से कई ने उन्हें ठगा भी था। इसीसे इस समय भारतीय विद्यार्थियों की सहायता करने में वह पहले से अधिक सतर्क रहने लगे थे। उन्होंने मुझसे अपने चरित्र और अपनी प्रामाणिकता के कुछ प्रतिष्ठित प्रमाण माँगे और उनकी प्राप्ति पर मुझे सहायता

देने की बात कही। मैं हताश हो गया। लन्दन में किसी भी प्रभावशाली व्यक्ति से मेरा परिचय न था। पर, एकाएक मुझे याद आई कि मेरे पास आचार्य श्री आनन्दशंकर जी ध्रुव का अच्छा-सा प्रमाण-पत्र है और श्री साराभाई श्री आचार्यजी को भलीभांति जानते ही थे। इसी बीच मैंने एक सुप्रसिद्ध अंग्रेज़ महिला से भी परिचय बढ़ा लिया था, उन देवी का मुझपर अगाध प्रेम था, और उनसे प्रमाणपत्र पाने में मुझे विशेष कठिनाई नहीं हुई। प्रार्थना करने पर मेरी सिफ़ारिश के लिए उन्होंने बड़ी तत्परता प्रकट की। सौभाग्य से श्री साराभाई इन्हें भी अच्छी तरह जानते थे।

"श्री साराभाई को मेरी प्रकृत इच्छाओं की सचाई में विश्वास हो गया। उन्होंने मेरी इच्छा पूरी की—मुझे संयुक्तराज्य अमेरिका के लिए तीसरे दर्जे का टिकट ख़रीद दिया। मेरी ख़ुशी का पार न था। बस, फिर क्या था, पहले जहाज़ से मैं अमेरिका के लिए रवाना होगया। इस जहाज़ पर मुझे दो सम्पन्न भारतीय विद्यार्थी मिले, जो संयुक्तराज्य (अमेरिका) के किसी कालेज में भर्ती होना चाहते थे। जब उन्हें मेरी निर्धनता का परिचय मिला, तो वे मुझे कहने लगे कि कम-से-कम ५० डालर की रक़म के बिना मैं अमेरिका की भूमि पर पैर न रख सकूँगा। मेरी चिन्ता बढ़ गई। घण्टों इसी चिन्ता में, इन्हीं बातों की उधेड़-बुन में, लगा रहा। सोचता था, कहीं इतने कठोर संघर्ष और मेहनत के बाद बीच ही से लौटा न दिया जाऊँ। आख़िर मैंने अपने साथी भाइयों से ५० डालर उधार देने की बात कही, जिससे बन्दरगाह पर जाँच में मैं सफल हो सकूँ। मैंने उन्हें विश्वास दिलाया कि वहाँ की जाँच से मुक्त होते ही मैं उनकी रक़म वहीं उन्हें लौटा दूंगा। उन्हें मुझसे कोई ख़ास सहानुभूति तो थी नहीं, अतः आख़िर तक वे मेरी बात पर राज़ी न हुए
लेकिन जब समय आ ही गया, तो मेरी सहाय
करने को तैयार हो गये। उन्होंने मुझे प
बन्द लिफ़ाफ़ा दिया और जाँच के समाप्त होते ही
लौटा देने की बात कही। मेरे हृदय का बहुत
बोझ हलका हो गया, मैं उस सारी कार्यवाही
जल्दी-से-जल्दी समाप्त करने के लिए उत्सुक हो ग
अधिकारियों ने मेरे प्रमाणपत्रों को सन्तोषज
पाकर मुझे शहर में जाने की अनुमति दे दी। इ
सम्बन्धी मेरी हैसियत को जाँचने का उन्होंने उप
तक न किया। प्रवेशाधिकारियों की जाँच से छ
ही मैंने अपने मित्रों को बड़ी कृतज्ञता-पूर्वक धन्य
देते हुए वह लिफ़ाफ़ा लौटा दिया—यद्यपि उ
भीतर क्या था, इसे खोलकर बताने का मुझे मौ
ही न मिला। न किसी ने पूछा ही। मुझे आ
होता है, जब मैं विचारता हूँ कि उस लिफ़ाफ़े
उतनी रक़म थी भी अथवा उन मित्रों ने
साथ हृदय-हीन मज़ाक़ करने की ठानी थी! अ
कुछ भी हो, मुझे तो दैव की शक्ति पर पूर्ण विश्व
है—मैं दैव-वादी हूँ।

अमेरिका पहुँचा

"जिस समय मैंने अमेरिका की भूमि पर
रक्खा, अपने लक्ष्य की प्राप्ति का स्मरण कर मेरे
का ठिकाना न रहा। उस समय मैंने सोचा
अब मैं एक नये और साहसी जीवन के प्रवेश
पर आकर खड़ा हूँ। मेरे मित्रों ने रात अपने
होटल में बिताने का मुझसे आग्रह किया और
नम्रतापूर्वक उसे मान लिया। दूसरे दिन सवेरे मैं
देशबन्धुओं से मिलने की आशा से हिन्दू-भो
लय में गया और सौभाग्य से मुझे वहाँ कुछ
मिले भी।"

(अपूर्ण

रामलाल वाजपेयी (अमेरिका

साहित्य-संगीत-कला

अनुरोध

मत बाँधो मतवाले ! मुझको ले ममता की कड़ियाँ ।
कहीं हृदय मेरा रोता है गिन गिन धड़कन–घड़ियाँ !
करता था जी की ज्वालायें ठण्डी जल-जल 'कोई' !
निरख न पाया किन आँखों से बरसीं आँसू-झड़ियाँ ।

× × ×

बहे जहाँ शीतल फव्वारे वे हरियाले भाग—
बनकर ज्वालामुखी आज क्यों उगल रहे हैं आग ?
ठहर सकूँगा इस कुटिया में कब तक हरे ! झुलसते ।
देख रहा छन-छन आँखों से जीवन-सुमन मुरझते ।

× × ×

स्मृति के जागृत सपने में, तू अरे निठुर, मिलने दे ।
रुद्ध कण्ठ की निःश्वासों को बढ़ने दे—चलने दे ॥

'वीरात्मा'

बाट

मिर-गर्विता थी वह रात,
थे तारागण निपट मलीन ।
न्द्रामय जग था उस काल,
मैं भी थी उनमें तल्लीन ।

कभी सोचती, कभी टहलती
कभी बैठकर ओट कपाट ।
हर्षित-व्यथित-तृषित नेत्रों से
फिर-फिर देख रही थी बाट ॥

रामनारायण विद्यार्थी

जगत् के साहित्य

(३)

*स्पेनी साहित्य

स्पेन यूरोप का एक विचित्र देश है। उसका प्रवाह, उसकी धारा, उसकी एकान्तिकता, उसका सीधा-सादा जीवन, बीसवीं शताब्दि के यूरोप से स्वरैक्य नहीं रखते; इस वैज्ञानिक युग में भी स्पेन, विश्व के अन्तराल में सर्वग्राही वेग से बहने वाली धारा के तट पर खड़ा है—कभी अपने सादे, अकृत्रिम, सन्तोषमय जीवन की ओर देखता है और कभी संघर्षों के बीच सब को मिलाकर एक कर देने वाले प्रवाह को आश्चर्य के साथ देखता है।

इस प्रकृति के कारण ही समस्त यूरोपीय साहित्यों के समूह के बीच स्पेन के साहित्य का एक भिन्न व्यक्तित्व दिखाई पड़ता है। 'रोमांस' के प्रति उसमें अत्यधिक झुकाव है; अतीत गाथा के प्रति उसमें अत्यधिक स्नेह है और दुनिया से अलग सन्तोषमय जीवन व्यतीत करने का उसमें एक जीवित भाव है।

भाषा

भारतीय साहित्य की भाँति स्पेन का साहित्य भी कई स्वतंत्र भाषाओं के साहित्यों का समूह है। जैसे भारत में हिन्दी, बंगला, गुजराती, मराठी, उर्दू, तामिल आदि कई प्रधान भाषायें और प्रत्येक का एक स्वतंत्र सुविकसित साहित्य है, उसी प्रकार भौगोलिक परिस्थितियों द्वारा कई भिन्न प्रान्तों में बँट जाने एवं अनेक प्रकार के राजनैतिक प्रभावों के कारण स्पेन की भी कई स्वतंत्र भाषायें बन गई हैं; उनका साहित्य भी एक सीमा तक स्वतंत्र है, अतएव 'स्पेनी साहित्य' शब्द से किसी विशेष भाषा के साहित्य का नहीं, वरन् स्पेन देश के साहित्य का अर्थ समझना चाहिए।

यों तो भारत की भांति ही स्पेन में अनेक बोलियाँ प्रचलित हैं पर इनमें तीन मुख्य हैं—

(१) कैटेलेनेश या कटाला (अंग्रेज़ी में कैटेलन)।
(२) कैस्टेलानो (अंग्रेज़ी में कैस्टीलियन)।
(३) पोर्च्युगेई-गैलेगो (अंग्रेज़ी में पोर्च्युगीज़-गैलीशियन

और इनमें भी कैस्टेलानो अथवा कैस्टीलियन के बोल और समझने वाले सबसे अधिक हैं। इसे 'स्पेन की हिन्दी' समझना चाहिए।

कटाला, फ़्रांस से मिले हुए स्पेन के पूर्वोत्तर सीमाप्रा एवं पूर्वी समुद्र-तट के कतिपय प्रान्तों कटाला या कैटेलन भाषा है। सम्पूर्ण जन-संख्या का के षष्ठमांश (अर्थात् लगभग पैंतीस ला आदमी) इसे बोलता है। सच पूछिए तो यह दक्षिण फ्रांस प्राचीन 'रोमाँस'-भाषा 'लैंग-द ओ' से निकल कर स्वतंत्र पूर्वक विकसित हुई एक भाषा है। इस निष्कर्ष का सम भाषा-विज्ञान की खोजों के अतिरिक्त इस बात से भी हो है कि फ़्रांस के दो-एक दक्षिणी प्रान्तों (रूज़ीलों और सार में आज भी यह बोली जाती है। नवीं से लेकर तेरह शताब्दि के मध्य तक राजनैतिक कारणों से इस भाषा प्रचार खूब बढ़ा किन्तु पीछे कैस्टेलानो वा कैस्टीलियन भा भाषियों का प्रभाव बढ़ जाने के कारण इसकी वह स्वतन्त्र एवं तीव्र गति दब गई और पहले की अपेक्षा इसका प्र भी घट गया।*

पिछली खोजों से यह भी ज्ञात हुआ है कि 'कटाला' से जो भाषा बारहवीं-तेरहवीं शताब्दियों में पुकारी जाती वह वस्तुतः गाँवों की भाषा थी और उसमें साधारणतः ही लिखा जाता था। प्रारम्भिक पद्य की भाषा का नाम 'लेमोज़ी' मिलता है। 'लेमोज़ी' के अनेक शब्द, मुहा और रूप 'प्रावेंकल' भाषा से लिये गये थे। पीछे यह 'लेमो ही कटाला बोलने वालों की साहित्यिक भाषा बन गई

---

*स्पेनी से मेरा तात्पर्य 'स्पेनिश' से है।— लेखक

* देखिए 'Das Catalanische' (ग्रोबर की प्रसि पुस्तक Grundriss der romainischen Philologie.)

तब उसी में लिखा जाने लगा । वर्तमान समय में शब्द से प्राचीन कटाला अथवा सुसंस्कृत साहित्यिक ही अर्थ लिया जाता है । बोली जाने वाली भाषा लोना को छोड़ अन्यत्र कहीं आज कटाला नाम से नहीं जाती । प्रान्तों के नाम पर कहीं वेलेन्शिया, और कहीं मेनाक़ीं नाम से पुकारी जाती है । मध्य और दक्षिण के अधिकांश प्रान्तों में यही बोली बोली जाती है और सच पूछिए तो जैसे 'हिन्दुस्थानी' भाषा से हिन्दी का अर्थ लिया जाता है उसी प्रकार 'कैस्टेलानो' शब्द स्पेनी भाषा के लिए भी प्रयुक्त हो है। चौदहवीं शताब्दि से लेकर आज तक स्पेन में भाषा का प्रभुत्व और प्रधानता है तथा सोलहवीं के बाद अमेरिका आदि देशों में जो उपनिवेश स्पेन-ने बसाये, उनकी भाषा भी 'कैस्टेलानो' ही है। देश चौथाई अर्थात् सवा करोड़ से भी अधिक आदमियों भाषा है। स्पेन का अधिकांश साहित्य इसी भाषा त है। यह स्पेन की राष्ट्र-भाषा है ।

बात को प्रायः सब विद्वान मानते हैं कि कैस्टेलानो स्पेन की प्राचीन ग्रामीण लैटिन की स्वतन्त्रता-पूर्वक हुई एक शाखा है । 'पोर्च्युगेई–गैलेगो' को हम शाखा कह सकते हैं । इन दोनों शाखाओं का उद्गम री रोमाँस' वा प्राचीन स्पेन में प्रचलित ग्रामीण भाषा है । जिस प्रकार इटैलिया वा इटैलियन, आज लैटिना से एक भिन्न भाषा बन गई है; जैसे हिंदी भाषाओं ने संस्कृत से जन्म लेकर भी स्वतन्त्र कर लिया है, वैसे ही कैस्टेलानो भी रोमन से स्वतन्त्र विकसित भाषा बन गई है । परन्तु आज रोमन के तद्भव और तत्सम शब्द इतने अधिक इटैलियन के अतिरिक्त शायद ही और किसी भाषा ।

कि ऊपर लिख चुके हैं, स्पेन की लैटिन की यह दूसरी शाखा है । यह भाषा पोर्च्युगाल और गैलीशिया की भाषाओं के मिलने से बनी है । पोर्च्युगेई और गैलेगो दोनों ही साहित्यिक भाषायें रही हैं और पहली तो आज भी पोर्च्युगाल की प्रधान भाषा है । किन्तु पिछली शताब्दियों में गैलीशिया के राजनैतिक शक्ति से हीन हो जाने के कारण उनकी भाषा पर पोर्च्युगेई का प्रभाव बढ़ता गया और आज की गैलेगो तो वस्तुतः पोर्च्युगेई का ही, कतिपय परिवर्तनों के साथ निर्मित, एक रूप है । इसीलिए इसे स्वतन्त्र नाम न देकर पोर्च्युगेई-गैलेगो नाम से पुकारते हैं । पोर्च्युगल से मिले हुए स्पेन के उत्तर-पश्चिम सीमा-प्रान्तों के निवासियों की यह भाषा है और इसके बोलने वालों की संख्या पंद्रह-बीस लाख से अधिक नहीं है । साहित्य की दृष्टि से भी इसका कोई महत्व नहीं ।

साहित्य

ऊपर यह लिखा जा चुका है कि स्पेन की इन भाषाओं में से अन्तिम का कोई 'साहित्य' नहीं, अतः उसे यहाँ छोड़ देना ही उचित है । शेष दोनों भाषाओं में कटाला का जो साहित्य है, उसमें ऐसा अंश बहुत कम है जो स्पेन की अपनी चीज़ कही जा सके । जिस प्रकार इस भाषा का रूप एकदम विदेशी है उसी प्रकार उसके साहित्य पर भी दक्षिण-फ्रांस के साहित्य की छाप है । इसलिए अधिकांश लेखक स्पेनी साहित्य का वर्णन करते समय इसे छोड़ जाते हैं । पाश्चात्य विद्वान तो 'स्पेनिश' साहित्य से केवल कैस्टेलानो भाषा के साहित्य का अर्थ ग्रहण करते हैं किन्तु स्पेन के साहित्य पर विशद और व्यापक दृष्टि से विचार करते समय कटाला-साहित्य के सम्बन्ध में भी कुछ लिखना उचित होगा।

कटाला–साहित्य

मध्ययुगीन साहित्य

तेरहवीं शताब्दि के मध्य भाग तक का जो कटाला–साहित्य है उसे 'प्रावेंकल'-साहित्य का ही एक अंग कहना उचित होगा । पूर्वोत्तर स्पेन के निवासियों की भाषा हो, उस काल में *'प्रावेंक'के ग्यारहवीं शताब्दि के गीति-काव्य-रचयिता कवियों (Troubadour) की भाषा थी । गुइलाँ द बर्गदाँ, रैमों विडला बेसलू, गुइलाँ द सर्वेरा, सर्वेरी द गेरोना इत्यादि मध्यकालिक कटाला-कवि एक प्रकार से प्रावेंक-कवि ही थे ।

---

* प्रावेंक —फ्रांस का एक प्राचीन प्रान्त था । दक्षिण-पूर्व कोने के फ़रासीसी ज़िले ।

इनकी भाषा प्राचीन फ़्रांस में बोली जाने वाली 'रोमाँस' की †'लैंग द ओ' (Langue d'Oc) नामक बोली थी। चौदहवीं शताब्दि में कटाला भाषा का स्वतन्त्र विकास आरम्भ हुआ। रेमों लुल की कवितायें इस काल की 'प्रावेंकल'-मय कटाला के प्राचीनतम उदाहरणों में गिनी जा सकती हैं। इस कवि की 'निराशा' (Lo desconort) नामक कविता बड़ी सुन्दर हुई है। यह कविता उपर्युक्त प्रकार की खिचड़ी भाषा का एक अच्छा उदाहरण पेश करती है। गठन तो स्वतन्त्र हो चला है पर शब्द और रूप फ़रासीसी ही हैं। मुन्तनर इस बात के लिए प्रसिद्ध है कि उसने अपने समय की बोलचाल में ही अपनी गद्य-पुस्तकें लिखी हैं पर वह भी जब पद्य लिखने बैठता है तो 'प्रावेंक' के गीति-काव्यों की भाषा का ही अनुकरण करता है। इस प्रकार चौदहवीं शताब्दि के अन्त तक जो कुछ कटाला-साहित्य आज उपलब्ध है, उसमें न तो कोई मौलिकता है, न वह महत्वपूर्ण ही है। गद्य-ग्रंथ तो दो-एक काम के भी लिखे गये पर पद्य का अधिकांश भाग ऐसा था, जिसे कविता नाम से पुकारना 'कविता' की हँसी करना है।

पन्द्रवीं शताब्दि कटाला-कविता का सुवर्ण-काल कही जाती है। इस काल में इसे राजकीय संरक्षण भी प्राप्त हुआ।

काव्य की उन्नति और अन्त

जोम मार्श, गोर्डी द सेंट, जॉन द मैसडोविली, पेरी टोरेला और आज़ा मार्श इत्यादि कवियों के काव्यों ने एक नई प्रणाली की सृष्टि की। इस स्कूल ने अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व का निर्माण किया; जो छंद अभी तक प्रचलित न थे, उनका ग्रहण करके और भाषा को अधिक सरल एवं स्वतन्त्र बनाकर काव्य में नूतन प्राण प्रवाहित करने की चेष्टा की। आज़ा मार्श निःसन्देह एक उत्तम कवि था और उसकी कवितायें कटाला—काव्योपवन की परम सुन्दर कलियाँ हैं। 'जोम रोग' नामक एक दूसरा बड़ा कवि भी इस काल में हुआ है। इसने स्त्रियों पर कतिपय व्यंगपूर्ण कवितायें लिखी हैं। इसके बाद ही राजनैतिक कारणों से कटाला-साहित्य का ह्रास शुरू हुआ और बहुत शीघ्र कैस्टेलानो वा कैस्टीलियन ने उसका स्थान भी ग्रहण लिया। सोलहवीं शताब्दि के मध्यांश में कटाला-कविता एक प्रकार से, समाप्ति हो गई।

कटाला गद्य

कटाला भाषा में गद्य-लेखन का आरम्भ तेर शताब्दि के अन्तिमांश से होता है। आरम्भिक स में प्रायः ऐतिहासिक घटनाओं के वि (क्रानिकल्स) ही गद्य में लिखे ग ये विवरण कटाला-गद्य के सुन्दर उ रणों में गिने जाते हैं। लुल ने पौराणिक धर्म-कथा, सदा तथा राजनीति का एक बड़ा कोश तैयार किया तथा और कई महत्वपूर्ण पुस्तकें लिखीं। पन्द्रहवीं शताब्दि में वि भाषाओं से अनेक महत्वपूर्ण पुस्तकों के अनुवाद किये तथा इतिहास लिखने की ओर विशेष ध्यान दिया ग बर्नेट मेगी का 'स्वप्न' (Lo Sompni) एक सुन्दर है। इसमें दान्ते तथा इटली का प्रभाव स्पष्ट है। बोइस तथा पेरी टामिश ने ऐतिहासिक ढंग पर कई पु लिखीं। जोहेनो मार्टोरेल पन्द्रहवीं शताब्दि का एक और प्रसिद्ध गद्य-लेखक हुआ है।

ऊपर लिख आये हैं कि राजनैतिक कारणों से पन्द्र शताब्दि के मध्यांश में कटाला-कविता की समाप्ति हो ग जब भाषा के संस्कारक न रहे तो गद्य में भी उन्नति की कैसे संभावना की जा सकती थी? दिन-पर-दिन ही होता गया। सोलहवीं, सत्रहवीं और अठारहवीं ब्दियों में माइकेल कार्बोनेल, फ़्रांसिस्का तरफ़ा, बीतर और विसेण्ट गर्शिया इत्यादि बहुत थोड़े पैदा हुए।

उन्नीसवीं शताब्दि के आरम्भ में एक बार कुछ ने कटाला-साहित्य के पुनरुज्जीवन का प्रयत्न किया। एक नये 'स्कूल' की सृष्टि हुई। साहित्य के अ और विकास के लिए कई संस्थायें स्थापित हुईं। खूब लन किया गया। मैरिनो आगिलो, थियोडोर लारेण्टो, जैसिण्टो वर्दगुए (१८४५–१९०२) ने बड़ी सुन्दर प्रवाहपूर्ण कवितायें लिखी हैं। जोन मेरागल की कवि एपले मेसरे के गीति-काव्यों, नार्सिस ओलर एवं से के उपन्यासों एवं एंगेल गुइमेरा के नाटकों में एक

---

† आठवीं से ग्यारहवीं शताब्दि तक दक्षिण फ्रांस में इस भाषा का खूब दौर-दौरा रहा।

उच्छ्वास और नूतन प्रवाह दिखलाई पड़ता है । कई सुन्दर कवि अपने हृदय के भावों से इसका रहे हैं। पर इतना होते हुए भी इनकी हालत प्रभाव साहित्य-जगत् में वैसा ही है, जैस आज के व्रजभाषा में ही कविता करते जाने वाले है। जब सम्पूर्ण संसार साहित्य में केन्द्रोन्मुखी कर रहा है, भविष्य में इस भाषा के आन्दो- के पथ पर दूर तक अग्रसर हो सकेंगे, इस संभावना नहीं की जा सकती ।

कैस्टेलानो साहित्य

साहित्य

साहित्य वस्तुतः ईस्वी सन् के दो सौ वर्ष होता है, जब स्पेन रोमनों के अधीन हुआ। किन्तु आठवीं शताब्दि तक स्पेन के कवि प्रायः लैटिन में ही लिखते थे। वही उस समय यूरोप के मध्य और दक्षिणी प्रधान भाषा हो रही थी। सेनेका, लूसन, मार्शल आदि महान् लेखकों और कवियों ने जो लैटिन में ही लिखा। रोमन-साम्राज्य के विध्वंस स्पेन में साहित्य-सेवा प्रधानतः अरबों तक ही थी। कई सौ वर्षों तक स्पेन की बागडोर इस हाथ में रही और उसने इस देश के धर्म, संस्कृति, रहन-सहन और साहित्य को बड़ी दूर तक प्रभा- । अरबों के शासन-काल में शिक्षा और साहित्य- अच्छी रही। अरबी और ग्रीक से अनेक दार्शनिक वैज्ञानिक ग्रन्थों के अनुवाद किये गये ।

साहित्य
आरंभ

भाषा का जो साहित्य आज उपलब्ध है और जिसे साधारणतः 'स्पेनिश साहित्य' के नाम से पुकारते हैं, उसका आरंभ बारहवीं शताब्दि से होता है। कैस्टेलानो भाषा की सबसे प्राचीन प्राप्य पुस्तक ('मैगी राजा का रहस्य') का समय ११५० ई० के लगभग माना है। पुस्तक के होते हुए भी इस साहित्य का आरंभ वीर-गाथाओं और काव्यों से होता है, जो स्पेन के साहित्य की जान हैं। लगभग आठ सौ वर्षों तक अरबों के शासन और संघर्ष में रहने के कारण स्पेनी कवियों और लेखकों को इस सम्बन्ध में पर्याप्त सामग्री प्राप्त होती रही। अपने प्रथम लेख (अरबी साहित्य) में मैं लिख चुका हूँ कि अरबों में संगीत के प्रति बड़ा आकर्षण था। शताब्दियों तक साथ रहने के कारण स्पेन-वासियों में भी इस गुण का आना स्वाभाविक था। संगीत से कविता का बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध है अतएव संगीत की प्रवृत्ति ने कविता के विकास में बड़ी सहायता की।

ग्राम्यगीतों का ख़ज़ाना

कैस्टेलानो साहित्य के आरम्भिक दिनों में और उसके भी पहले स्पेन में मधुर और लोक-प्रिय गीतों का इतना बाहुल्य था कि इस देश के निवासियों की स्वाभाविक सगीतमयता देखकर आश्चर्य-चकित होना पड़ता है। एक अंग्रेज़ी लेखक ने ('पोएम ऑव सिड' नामक पुस्तक की भूमिका में) लिखा है कि यद्यपि सभी यूरोपीय देशों के प्राचीन साहित्य में ग्राम्य-गीतों का संग्रह दीख पड़ता है पर 'स्पेन के पास प्राचीन लोक-प्रिय कविताओं का जैसा ज़ख़ीरा है, वैसा यूरोप के किसी राष्ट्र के पास नहीं है।*

प्रसार का एक कारण

इन ग्राम्य-गीतों और कविताओं के अत्यधिक प्रसार का एक प्रधान कारण उनकी निर्माण-विधि की आश्चर्य-जनक सरलता है। उनकी भाषा में व्रजभाषा की भांति ही लचक है और छन्द इतने सरल हैं कि साधारण आदमी भी उन्हें बिना किसी असुविधा के लिख सकता है।

इनकी प्राचीनता

इन गुमनाम गीतों के रचना-काल का निर्णय करना अत्यन्त कठिन कार्य है। क्योंकि ये शताब्दियों से श्रुति के द्वारा एक-दूसरे तक पहुँचते रहे हैं। हाँ, यह कहा जा सकता है कि प्रायः सभी वर्तमान यूरोपीय भाषाओं के प्राचीन गीतों की अपेक्षा स्पेन के गीत, अधिक पुराने और अधिक-

---

* "× × × But no nation of Europe, however, can boast of so large a body of ancient popular poems as Spain."

मोहक हैं।❀ इन गीतों में वीर और परिश्रमी कृषकों एवं ग्राम वासियों के हृदय की जो स्रोतस्विनी प्रवाहित हुई है, वह बड़ी मधुर है।

इन गीतों में जो वीर गाथायें वर्णित हैं, उनके नायकों का पिछले काल के साहित्य पर भी बड़ा प्रभाव पड़ा है।

इनके नायकों की साहित्य पर छाप

स्पेन की कविता वीर-कथाओं से भरी हुई है और इसीलिए विश्व-मूलक प्रवृत्ति एवं भाव की अपेक्षा उसमें राष्ट्र-मूलक भाव अधिक हैं। ग्यारहवीं शताब्दि में 'सिड'† नामक एक बड़ा वीर सरदार स्पेन में हुआ। इसने ‡वेलेंशिया पर १०९४ ई० में अधिकार कर लिया था और अनेक युद्धों में बड़ी वीरता दिखाई थी। १०९९ ई० में इसकी मृत्यु हो गई। इसकी वीरता की कथाओं और शौर्य-पूर्ण घटनाओं ने कवियों और चारणों को खूब प्रभावित किया।

वीर-काव्य

सच पूछिए तो सारे स्पेन को इस वीर की कृतियों में संजीवन का सन्देश मिल रहा था; साहित्य उससे सूना कैसे रहता? साधारण ग्रामीण भाषा में 'सिड' पर दो सुन्दर काव्य लिखे गये। ये अब पूरे-पूरे तो नहीं मिलते पर जो भी भाग प्राप्य है, वह खूब है। इनमें 'सिड-काव्य' (Poema del Cid) अधिक पुराना है। इसकी भाषा, इसका गठन बतला रहा है कि यह बारहवीं शताब्दि में लिखा गया होगा। बहुतों की सम्मति में यह स्पेनिश भाषा का सर्वोत्तम रत्न है।❀ सिड सम्बन्धी दूसरा काव्य (Cr-onica rimada del Cid) प्रायः दो सौ वर्ष अर्थात् चौदहवीं शताब्दि में बना होगा।† इन दोनों विशेषतः पहले काव्य में ओज, वर्णन-वैभव एवं कल्प बड़े सुन्दर उदाहरण मिलते हैं।

'सिड' की भाँति ही अन्य अनेक वीरों और ना को लेकर कई काव्य लिखे गये। इनमें कुछ तो आज मि हैं और अधिकांश नष्ट हो गये।

इस प्रकार |कैस्टेलानो साहित्य का—और वि उसकी कविता का आरंभ‡राष्ट्र और पौराणिकता के में सुरक्षित वीर-गाथाओं से होता है। बारहवीं शता बीतते-बीतते इस वीर-काव्य पर धार्मिकता और कता का रंग चढ़ जाता है। 'गनज़ालो द वर्सियो' इस की कविता का एक प्रसिद्ध कवि हुआ है। बहुत से की सम्मति में यह स्पेनिश भाषा का सर्व-प्रथम कवि इसने स्पेन के कई संतों की काव्य में जीवनियाँ तथा भक्तिमय कवितायें लिखी हैं। अधिकांश कवितायें चतुष्पदी में लिखी गई हैं जिस के अंत के तुक एक इस तरह की समतुकान्त चतुष्पदी ‡ (curso ri porla quaderna via) में आगे पन्द्रहवीं शता सिकन्दर और अपोलोनियस पर भी दो काव्य लिखे

तेहरवीं शताब्दि में फ़रासीसी भाषा से सेण्ट जीवनी का पद्यानुवाद हुआ। लैटिन और फ्रेंच से और

❀ अनेक स्पेनी काव्यों के अंग्रेजी अनुवादक और स्पेनिश साहित्य के पण्डित श्री लाकहार्ट स्पेनिश गीतों (Ballads) के सम्बन्ध में लिखते हैं—

> "Spanish ballads form by far the oldest as well as largest collection of popular poetry × × × that is to be found in the literature of any European nation whatever."

† 'सिड' दरस्तुतः अरबी शब्द 'सैयद' का अपभ्रंश और यूरोपीय रंग में रँगा रूप है। इस वीर योद्धा का पूरा नाम 'राडरिगो डायज़ द बीवर' था।

‡ स्पेन के पूर्वी समुद्र-तट का एक प्रान्त।

❀ "Poem of the Cid is the most ancie by some esteemed the most beautiful work in the Spanish language-"

Poem

† अंग्रेजी में इसके जो अनुवाद हुए हैं उनमें का गद्यानुवाद संक्षिप्त होने पर भी बहुत पूर्ण और सुन्द है। लण्डन की 'चार्ल्स नाइट' कम्पनी ने इसे पह १८४५ ई० में प्रकाशित किया था।

‡ यहाँ भी फ्रेंच कविता के अनुकरण की चेष्टा दी है। आरंभिक (बाहरवीं शताब्दि की) फ्रेंच कविता में की चतुष्पादियों का बाहुल्य है।

पुस्तकों और काव्यों के अनुवाद हुए। 'शरीर और आत्मा की बहस' का आधार निश्चय ही लैटिन है। कैस्टेलानो का सबसे प्राचीन प्राप्य गीति-काव्य ('La feita d' amor') भी तेरहवीं शताब्दि में ही

अलफँसो-दशम साहित्य का बड़ा प्रेमी था। संरक्षण और सहायता में कई महत्त्वपूर्ण गद्य-ग्रंथ लिखे गये। उसकी आज्ञा से जो महान घटना-ग्रंथ (Cronica General) संग्रहीत हुआ, वह उस समय का ध्यान एक बहुत साहसपूर्ण और सफल प्रयत्न कहा जा है। इस ग्रंथ के प्रधानतः दो खण्ड हैं। पहले में नाम La General e grant historia है) सृष्टि से लेकर ईस्वी सन् के आरंभकाल तक का संसार है और दूसरे भाग को, जैसा कि उसके नाम Cronica o Historia de Espana=स्पेन का और गाथा) से ही प्रकट है, हम स्पेन का तेरहवीं के मध्य तक का इतिहास कह सकते हैं।

शताब्दि
की कविता

चौदहवीं शताब्दि में मध्यकालिक कैस्टेलानो साहित्य का लौकिक कवि ज्वान रूज़ हुआ। इसने अपनी कविता में प्रेम और रमणी के हृदय-हारी चित्र खींचे हैं। प्रेम की सफलता और उसकी पवित्रकारी प्रवृत्ति पर इस कवि का दृढ़ मालूम पड़ता है। उसका कहना है कि शारीरिक (loco amor) को दिव्य स्वर्गीय प्रेम में बदला जा है और यही प्रेमी के प्रेम की आदर्श परणति है। शताब्दि में डान जुएन मैनुएल, पेरो लोपे द आयला और भी कई अच्छे कवि हुए। इस काल की कल्पना पर भी 'रोमांस'—वीरता, प्रेम, त्याग इत्यादि—का अत्यधिक प्रभाव दिखाई पड़ता है।

गद्य

कविता के साथ ही गद्य-ग्रंथों के लिखने की ओर भी खूब ध्यान दिया गया। इस शताब्दि में भी, अलफँसो दशम के संरक्षण में बने पूर्वोल्लिखित इतिहास की भाँति, स्पेन के और भी कई इतिहास बने। वीरता की कई पुस्तकें लिखी गईं।

पन्द्रहवीं और सोलहवीं
शताब्दियों का साहित्य

ऊपर कहीं लिखा जा चुका है कि पन्द्रहवीं शताब्दि से लेकर सत्रहवीं शताब्दि तक का समय स्पेनिश साहित्य का स्वर्णकाल है। पन्द्रहवीं शताब्दि के आरंभ में मार्क़िज़ इनरीक द विलेना, मार्क़िज़ सैण्टिलाना, जुएन मेना, गुज़मैन इत्यादि कई साधारण कवि हुए। ये जान द्वितीय (१४०६—५४) के दरबार के कवि थे। बास्कन और गर्किलासो इस शताब्दि के प्रथमार्द्ध के दो प्रसिद्ध गीति-काव्यकार हुए हैं। इस समय इटली से चली हुई युगांतर ('रिनैसाँ') की लहर यूरोप के सभी पश्चिमी देशों को भिगो रही थी। प्रत्येक क्षेत्र में नूतन कल्पनाओं और नूतन विधियों का जन्म हो रहा था। इस काल के कई कैस्टेलानो कवियों की कविता पर इटैलियन कवियों—विशेषतः दान्ते का प्रभाव दीख पड़ता है। उसके अनुकरण में रूपक-काव्य लिखने की ओर भी खूब ध्यान दिया गया। डोगो द मेण्डोज़ा ने कई सुन्दर काव्य एवं इतिहास लिखे।* पोर्चुगल के

काव्य

मोण्टेमेयर ने ('Diana' नामक) एक अच्छी प्रेम-कथा लिखी। फर्नेण्डो द हेरेरा की कवितायें बड़ी मादक हैं।† लुई द लियों ने ऐसी मधुर गीति-कवितायें लिखी हैं कि पढ़ते-पढ़ते हृदय एक स्वर्गीय नशे से पूर्ण हो जाता है।

सरवेण्टस, (Cervantes), जो स्पेनिश भाषा

---

* अरबी से सिंदबाद का अनुवाद (Libro de los os e asayamientos de las mugeres नाम से) अरस्तू और सुकरात से सम्बन्ध रखने वाली कई पुस्तकें लिखी गईं।

* लिवरपुल विश्वविद्यालय के स्पेनिश के अध्यापक श्री जेम्स फिज़मूरिस—केली की पुस्तक 'Chapters on Spanish Literature" देखिए। † देखिए 'न्यू एज इनसाइक्लोपीडिया—भाग ६, पृष्ठ ३५१

का सर्वोत्तम रचनाकार माना जाता है, इसी काल में हुआ। उसका समय १५४७ से १६१६ ई० तक माना जाता है। उसकी कविताओं ने समस्त यूरोप में ख्याति प्राप्त की। इस काल में नाटकों और उपन्यासों की भी खूब वृद्धि हुई।

नाटक

कई अच्छे इतिहास भी लिखे गये; गीति-काव्यों का खूब प्रचार रहा। लोप द रूडा और बर्थेलमो नारो ने रंगमंच के लिए इटैलियन प्रहसनों के आधार पर कई प्रहसन लिखे। सिड तथा अन्य राष्ट्रीय नायकों के वीर-चरित लेकर नाटक लिखे गये। सर्वेण्टस् के नाटकों का तो क्या पूछना था? बरमूदाज़, क्रिस्तोबल तथा लुपर्शियो ल्यूनार्डो द अर्गेनज़ोला आदि लेखकों ने दुःखान्त नाटकों के ढेर लगा दिये। सर्वेण्ट्स का 'न्यूमैंशिया' उच्च कोटि के दुःखान्त नाटक का एक सुंदर उदाहरण है। आरम्भ के नाटकों में रंगमंच और अभिनय की सुविधाओं का ख्याल कम रखा जाता था। अभिनय की ओर विशेष रुचि जागृत होने से नाटकों को खेलने योग्य बनाने की चेष्टा की जाने लगी। पहले प्रायः पांच अंक के नाटक लिखे जाते थे, जिहें खेलना कठिन काम था, अतएव जुएन द कूवा ने चार अंक के नाटकों का क्रम चलाया। पीछे फ्रांसिस्को द अवेण्डानो ने तीन अंक के नाटक लिखे। ये अभिनय के लिए अधिक उपयोगी समझे गये अतएव तीन अंक के नाटकों का ही क्रम चला।※

उपन्यासों की बाढ़

उपन्यासों के लिखने की ओर भी खूब ध्यान दिया गया। मोण्टमेयर, सर्वेण्ट्स, लोप द वेगा, सोनाज़ारो, मेटो अलमाँ तथा फ्रांसिस्को द उबेदा की कृतियाँ इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं।

१६०० से १८०० तक का साहित्य

कवि

सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में, साहित्य की सर्वाङ्गीन उन्नति होती रही। गीति-काव्य की तो सत्रहवीं शताब्दि में हद ही गई। गंगोरा, क्लेवेडो, मेण्डेज़ वाल्डे, डीगो गोनज़ाले (१७३३-९४), जोज़े इगलेशिया द कासा (१७४८-९१), लीण्ड्रो और फर्नैण्डेज़ मोरेटिन इत्यादि
प्रसिद्ध कवि इन दो सौ वर्षों में हुए। गंगोरा की भा
बहुत साफ़ और सुलझी हुई है।

उपन्यासकार और नाटक-लेखक

उपन्यासों और नाटकों का क्रम भी चलता र
मार्टिनिज़ इस्पिनेल के उपन्यास बहुत प्रसिद्ध हुए। उस
एक उपन्यास (Marcos de
bregon) की गणना तो सत्रहवीं श
ब्दि की सर्वोत्तम पुस्तकों में होती
एलेंसो जेरोनिमो द सैला बार्बो
फ्रांसिस्को सैण्टो, तिरजो द मोलिना, मिरेज़ द माण्ट
मैरिया ज़ाये, गिनेज़ हिता तथा सर्वेण्ट्स इत्यादि इस
के प्रसिद्ध उपन्यासकार हुए हैं। सर्वेण्ट्स के सर्वोत्तम
न्यास 'डान कीहोटे' ※ की ख्याति आज तक बनी है।
न्यासकारों के अतिरिक्त इन दो शताब्दियों में अनेक
नाटक-लेखक भी हुए।

इन्होंने धार्मिक और सांसारिक सब तरह के ना
लिखे हैं। इन नाटक-लेखकों में लोप फ़ेलिक्स द वेगा का
का नाम सबसे पहले आता है। वह इस समय के आचा
में एक हैं। बहुतों ने उसकी नक़ल की। लोप द
का नाम अमर है। इसने लगभग दो हज़ार छोटे-मोटे ना
लिखे हैं। अन्य लेखकों में गैस्पर ओनोर द आग्लार, फ्रां
स्को टॉरेगा, गिलें द कैस्ट्रो, तिरसो द मोलिना (
कोटि का नाटककार) और पेड्रो काल्डेरों द ला
इत्यादि बहुत प्रसिद्ध हैं। इनमें अंतिम दो का नाम
काल के साहित्य में अमर रहेगा। पेड्रो काल्डेरों का
दार्शनिक नाटक (La Vid cs sueno) बहुत उच्च
का हुआ है। इसमें वह बहुत गहराई में दिखाई पड़ता

अन्य गद्य-लेखक

इन दो-ढाई सौ वर्षों में पत्र-साहित्य, इतिहास, द
और रहस्यवादमय ग्रन्थों के प्रणयन का कार्य भी खूब हु
शुद्ध इतिहास-कला के विकास की
ध्यान दिया गया। अभी तक के इ
हास केवल पौराणिक गाथाओं के ढंग

※देखिए रोमांस भाषाओं के (Collegi de Franceके) प्रोफेसर अल्फ्रेड मोरेल-फेशिओ का लेख (ब्रिटानिका भाग २५, एकादश संस्करण ५८० पृष्ठ)

※ अंग्रेज़ और अन्य यूरोपियन ग़लती से इस श
(Quixote) का उच्चारण 'क्विक्जट' या 'क्वि
करते हैं। ये अशुद्ध हैं।

थे। अब तथ्यातथ्य-निर्णय द्वारा इस ओर विशेष ई। जुएन द मैरियाना ने स्पेन का जो इतिहास toria de Espana) लिखा, उसके सम्बन्ध में अल्फ्रेड मोरेल फैशियो ने लिखा है कि उसके जैसा , सुव्यवस्थित और विचारपूर्ण ग्रन्थ मध्यकाल के साहित्य में एक भी नहीं है। कार्लो कोलमा, बर्ना- मेण्डोज़ा, फ्रांसिस्को वडूंगो तथा बर्थेलमो द इत्यादि कई लेखक इस काल के प्रसिद्ध इतिहास- समझे जाते हैं। बर्थेलमो केसे ने 'भारत का इति- (Historia de las Indias) लिखा है। पत्रों के भी घटनाओं के विवरण लिखने की विधि खूब ज़ोरों गी।

र्शनिक ग्रन्थों की ओर उतना ध्यान नहीं दिया गया। चारकों ने कुछ लिखा वह लैटिन में ही लिखा। जन- की भाषा में उच्च दार्शनिक तथ्यों का निरूपण श्रेय तो केवल रहस्यवादी लेखकों को है। सोलहवीं के लुई द ग्रैण्डा, लुई द लियों, तेरेसा द जीसस प्रसिद्ध लेखकों ने इस ओर कुछ काम किया था। शताब्दि में सदाचार—सम्बन्धी रचनाओं का कुछ अवश्य लिखा गया। बालज़र ग्रेशियन इस प्रकार का एक प्रसिद्ध लेखक हुआ है।

हवीं शताब्दि के अन्तिम भाग में साहित्य की गति सुस्ती आती दिखाई पड़ती है। इस काल में भावों पर ध्यान न देकर भाषा के सौंदर्य पर अधिक ध्यान दिया गया।

साहित्य-सभा

१७१४ ई० में, स्पेनिश भाषा को बनाने और उसकी शुद्धता की रक्षा करने के लिए फ्रांसें' की नक़ल पर एक साहित्यिक सभा (La Academia Espanola) का संघटन हुआ। ने स्पेनिश भाषा का एक सुन्दर कोश छः भागों किया और कैस्टेलानो भाषा का एक व्याकरण कराया। इस काल में कई महान् लेखकों का उदय इग्नेशियो द लुज़ान का 'काव्य शास्त्र' (Poetica) नीय पुस्तक है। बेनिटो फेजू ने प्रायः प्रत्येक शास्त्रीय एवं वैज्ञानिक विषय का संकलन किया। ग्रेगोरियो मयाना सिस्कर (१६९९-१७८१) ने पुराने लेखकों और कवियों की कृतियों के सुन्दर सुसम्पादित संस्करण प्रकाशित किये। और भी अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर पुस्तकें लिखी गईं।

आधुनिक काल

उन्नीसवीं शताब्दि का प्रथमांश स्पेन के इतिहास में अपना एक ख़ास स्थान रखता है। नेपोलियन ने स्पेन पर अधिकार कर लिया था और जनता उसके विरुद्ध अपने देश की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए लड़ रही थी। १८०८ से १८१४ तक स्वतंत्रता का युद्ध बड़े ज़ोरों से चलता रहा। अन्त में स्पेन स्वतंत्र हुआ। इस काल में लोगों में स्वतंत्रता की भावनायें खूब फैलीं। साहित्य में नया जीवन आया—यद्यपि फ्रेंच लेखकों और कवियों का अनुकरण जारी रहा। क्विण्टाना ने सुन्दर देशभक्ति-पूर्ण कवितायें लिखीं। १८३० के लगभग रीवास का ड्यूक प्रथम एक बड़ा 'रोमैण्टिक' कवि हुआ। इसमें स्पेनिश प्रतिभा का अपूर्व विकास हुआ था। इस्पोरेनसेडा ने बायरन के अनुकरण पर उच्च कोटि के काव्य लिखे। ज़ोरिला की शैली अपने रंग में एक ही है। ब्रेटों द हेरोरा ने लगभग एक सौ नाटक और प्रहसन लिखे। मैरियानो जोज़ द् लारा एक गम्भीर गद्य-लेखक हुआ है। उसकी शैली साफ़, भाषा सुलझी हुई एवं मुहाविरेदार और भाव ऊँचे हैं। इस्तेवनेज़ काल्डरों के भी कतिपय व्यंग्य-ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। अलबर्टो लिस्टा (१७७५-१८४८) इस समय के सर्वश्रेष्ठ समालोचकों में से एक था। आगस्टिन डूरन ने प्राचीन कैस्टेलानो साहित्य के उद्धार के लिए बड़ा परिश्रम किया।

पुराना और नया

१८३० ई० के लगभग स्पेन के साहित्य-क्षेत्र में एक नवीन स्कूल की सृष्टि हुई। साहित्य के प्राण में नये संदेश गूँजे, उसकी बाटिका में मंद मलयज ने चहलक़दमी शुरू की। पुराने लोगों ने नये स्कूल का विरोध किया, जैसा सर्वत्र होता आया है पर 'नवीन' लेखकों का प्रभाव बढ़ता गया और अंत में उनकी विजय हुई। पुराने लेखक फ्रेंच विधियों के अन्ध भक्त हो रहे थे; नवीन लेखकों ने स्वदेशीय साहित्य के व्यक्तित्व के विकास पर भी ज़ोर दिया। १८४०

से १८६८ तक के काल में नवीन स्कूल के रचनाकारों ने पर्याप्त शक्ति प्राप्त कर ली।

नाटक

वेंचोरा द ला वेगा (१८०७-१८६५), आर्लियानो फर्नेण्डेज़ ज़ुइरा ओरबे (१८१६—९४) तथा कैम्पोमर इत्यादि उन्नीसवीं शताब्दि के प्रसिद्ध नाटककार हुए हैं परन्तु इस शताब्दि का सब से प्रसिद्ध नाटककार तो इकेगेरी (Jose Echegarry) हुआ है । इसका जन्म १८३३ ई० में हुआ था और १४ सितम्बर १९१६ को उसकी मृत्यु हुई । इसने उच्च कोटि के अनेक नाटक लिखे, जिनमें १०-१२ के अनुवाद भी यूरोपीय भाषाओं में हो चुके हैं । १९०४ ई० में इस नाटककार को नोबेल-पुरस्कार भी मिला था । फ्रांस के अनेक लेखक इसे 'द्वितीय विक्टर ह्यूगो' कहते थे ।

कविता

नूने द आर्क के देशभक्ति पूर्ण गानों ने बड़ा काम किया; वे खूब लोक-प्रिय हुए । इमीलियो पेरे फेरेरी और जोज़े वेलार्डे ने इस कवि का अनुकरण किया । क्वेरोल और फेडेरिको बालार्ट (१८३१-१९०५) ने क्रमशः करुण और हास्य-रस की सुन्दर कवितायें लिखी हैं । बालार्ट ने अंतिम समय में टेनीसन के 'स्मृति में' (In Memorium) की भांति एक बड़ा ही करुण-काव्य (Dolores) लिखा । इस कवि की सफलता पर लोग आश्चर्य चकित रह गये क्योंकि जन्म भर तो उसने हास्य-रस लिखा था । जोकिन मेरिया बर्ट्रीना नामक एक बड़ा ही करुण और निराशावादी कवि भी इस शताब्दि में हुआ है । विसेण्ट मेडीना तथा मेरिया गेलाँ भी बहुत प्रसिद्ध हुए। गेलाँ केवल अपनी 'अल अमा' कविता के कारण स्पेन के साहित्य में अमर रहेगा । आधुनिक स्पेनिश कविता में इसके जोड़ की दूसरी रचना नहीं मिलती ।

उपन्यासकार

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्धकाल में स्पेन में कई महान् उपन्यासकार हुए है । फर्नेन केवालेरो ने अपने उपन्यासों में अपनी जातीय संस्कृति को प्रधानता दी । इस लेखिका ने खूब कीर्ति पाई । जोज़े मेरिया द पेरेडा, स्पेन के आधुनिक प्रत्यक्षवादी औपन्यासिक 'स्कूल' का पिता माना जाता है । *गेल्डो इस शैली का एक बहुत प्रसिद्ध लेखक हुआ है। उपन्यासों के अतिरिक्त इस काल में इतिहास और समा लोचना-ग्रन्थों के प्रणयन की ओर भी ध्यान दिया गया।

वर्तमान काल

उन्नीसवीं शताब्दि के अतिमांश तक स्पेन का साहि देश की सीमा में ही आबद्ध रहा; अब जब कि दुनि मिलकर एक हो जाने के लिए छटपटा रही है, स्पेनिश साहि भी नवीन ज्योति से जगमगाने लगा है । वर्तमान का लेखकों की सूची में ब्लैस्को इबनेज़ और जैसिण्टो बेने दो ऐसे लेखकों के नाम आते हैं जिनसे अनेक भार पाठक भी परिचित हैं । उनकी पुस्तकों के अनुवाद प्र सभी उन्नत भाषाओं में हो गये हैं । 'कमरा' (La Barra इबनेज़ का सर्वोत्तम उपन्यास है । इसमें स्पेन के प्रा जीवन और उसकी अनेक जटिल समस्याओं का बड़ा सु निरूपण हुआ है । पहली ही दृष्टि में जो बात इबने मनमें आ जाती थी, उसे ही वह लिखता था । एक उसने प्रसिद्ध स्पेनिश विचारक 'उनामूनो' से बात-चीत में था—"No, no me interesa aquello que no impresiona en una primera mirada." "जिसे मैं पहली दृष्टि में देखता हूँ उसी में मेरा मनो होता है।" इसीलिए बहुतेरे समालोचक इबनेज़ को क की अपेक्षा 'इम्प्रेशनिस्ट' ही अधिक मानते थे। दुःख की कि विगत जनवरी महीने में इस महान् लेखक का देहांत हो

दूसरा संसार-प्रसिद्ध और जीवित लेखक जेसिण्टो विण्टी है । इस महान नाटककार को १९२२ ई० में नो पुरस्कार भी मिल चुका है । 'सत्य', 'घण्टे भर का 'शाहज़ादियों का विद्यालय' और 'वासना-पुष्प' इसके नाटकों में हैं । इनके अनुवाद प्रायः सभी प्रधान भा में हो चुके हैं । प्रसिद्ध लेखक श्री जान गैरट अण्डर कथनानुसार वेनविण्टी बहुत उच्च कोटिका आदर्श लेखक है । †

---

* देखिए 'नाइण्टीन्थ सेन्चुरी ऐण्ड आफ्टर' (१९२५) में वाल्टर स्टार्की का लेख ।

†Benavente is an idealist of the highest

र्तमान समय में स्पेनिश साहित्य बड़ी तेज़ी से उन्नति ता है। बहुत बड़ी संख्या में समाचार पत्र और मासिक निकलने लगे हैं। इनके द्वारा त्र और मासिक पाठकों की खूब वृद्धि हो रही है और ज्ञान का क्षेत्र बढ़ रहा है। दैनिक में 'ए० बी० सी०' का सब से अधिक प्रचार है। लेखकों में बड़े बड़े लोग हैं। लगभग दो लाख ग्राहक र्डिओं' (राष्ट्र), 'एल सिगलो फ़्यूचरो' (आगामी ी), सोशलिस्टा (साम्यवादी), 'ला ओज़' (आवाज़) एलसोल' (सूर्य) अन्य प्रधान दैनिकों में हैं। कों एवं त्रैमासिकों में 'आर्ट इस्पेनोल' (स्पेनी कला) मुन्डो' (नयी दुनिया), तथा 'चित्रमय दर्शन' मुख्य न्तिम मासिक की ग्राहक संख्या लाखों तक है। जीवित लेखकों में से कुछ का संक्षिप्त परिचय नीचे जाता है।

सिस्को अलोंसो कोर्टे—कोमल शैली का कवि समालोचक। जन्म १८७५ ई०।

अलवरे क्विण्टेरो'—दो भाई हैं जो इस उपनाम लिखते हैं। प्रहसन लिखने में बे-जोड़ हैं।

डोल्फ़ो बोनिल्ला सैन मार्टिन—महान विचारक साहित्य और दर्शन का पण्डित एवं लेखक। जन्म— ई०।

नुएल बार्थोलमो कोसिओ—मानवतावादी तथा —समालोचक। जन्म—१८५८ ई०।

मीलिओ मोरी—नाटक के इतिहास का विशेषज्ञ।

एनरीक डाज़ कैनेडा—समालोचक और कवि। और हृदय की माधुरी से कवितायें भरी हैं। शैली रल है। जन्म—१८७९ ई०।

कॉचा इस्पिना—सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक चित्रण करने प्रसिद्ध उपन्यास-लेखिका।

सिण्टो-ग्राऊ—शक्तिशाली नाटककार। विदेशों प्रसिद्ध है।

रैमों मेनेण्डेज़ पाडल—'रोमांस' भाषा-विज्ञान के ख्यात आचार्य। स्पेन की सर्वप्रधान साहित्य-सभा al Academia Espanola) के संचालक।

ब्रील मीरो—अत्यन्त प्रतिभाशाली और मौलिक उपन्यासकार।

जोज़े ओर्टेगा गेसेट—वर्तमान स्पेन के बौद्धिक नेता। दर्शन एवं समालोचना के प्रसिद्ध लेखक।

माइगुएल द उनामूनो—सम्पूर्ण स्पेनिश-भाषी जनता पर प्रभाव रखने वाले एक महान रहस्यवादी लेखक और दार्शनिक। उपन्यास, काव्य, नाटक और समालोचना ग्रंथ भी लिखकर यशस्वी हुए हैं।

रैमों वैले-इन्क्लाँ—वर्तमान कवियों में सबसे अधिक संगीतमय कवि हैं। बड़ी मधुर कवितायें लिखते हैं। गद्य भी उच्चकोटि का होता है।

ये तथा अन्य लेखक मातृभाषा का भंडार भरने और भारती की रसमय उपासना की सिद्धि में जी-जान से लगे हुए हैं। राजकीय स्पेनिश साहित्य-सभा, कला और विज्ञान की राजकीय-सभा (Real Academia de ciencias y artes) तथा अन्य सभाओं द्वारा साहित्य एवं कला की बड़ी सेवा हो रही है। यदि प्रगति यही रही तो आशा है कि बहुत शीघ्र विश्व के साहित्य में स्पेनिश साहित्य को बहुत महत्वपूर्ण स्थान मिल जायगा।

श्री रामनाथलाल 'सुमन'

साहित्य की दुनिया में—

चीन के समाचार पत्र

वर्तमान जीवन में समाचारपत्र ('प्रेस') का स्थान अनिवार्यतः महत्वपूर्ण है। जनता में जागृति फैलाने और विश्व से राष्ट्र, समाज और व्यक्ति का सम्बन्ध स्थापित करने का वह एक मुख्य साधन है। चीन में भी जब स्वतन्त्रता का आन्दोलन शुरू हुआ तो समाचारपत्रों की संख्या में ज्वार आना स्वाभाविक था। मुद्रणयन्त्र और समाचारपत्र के जन्मदाता चीन के सम्बन्ध में पाश्चात्यों ने जान बूझकर जो भ्रम फैला रक्खे थे और अभी तक फैला रक्खे हैं, उनके कारण साधारण जनता अभी तक यही सोचती थी कि रेलों तथा यातायात की अन्य सुविधाओं की कमी के कारण वहाँ पत्रों के लिए विशेष क्षेत्र नहीं है। पर इधर इस सम्बन्ध में जो

कुछ मालूम हुआ है, उससे यह भ्रम एकदम दूर हो जाता है। पेकिंग विश्वविद्यालय के अध्यापक श्री वर्नन नैश ने अभी कुछ महीने पहले न्यूयार्क के 'सम्पादक और प्रकाशक' (Editor and Publisher) पत्र में चीनी पत्रों के सम्बन्ध में एक लेख छपवाया था। उसके आधार पर कुछ बातें यहाँ दी जा रही हैं।

प्रायः सभी बड़े चीनी नगरों से दो-तीन समाचारपत्र प्रकाशित होते हैं और इनमें शायद ही किसी को घाटा हो। चीनी पत्रों का रूप-रंग अंग्रेज़ी और अमेरिकन पत्रों जैसा ही होता है। प्रायः सब बड़े और गम्भीर पत्र सवेरे निकलते हैं। शाम को निकलनेवाले पत्रों में चुटकले, कहानियाँ, हास्यरस-पूर्ण लेख और कार्टून इत्यादि मनोरंजक सामग्री अधिक रहती है। प्रधान पत्रों ने तो एकदम पाश्चात्य पत्रों की नक़ल की है। पेकिंग से 'च-एन-पो' नामक प्रातःकाल प्रकाशित होने वाला प्रसिद्ध दैनिक निकलता है। 'च-एन-पो' का अर्थ 'सुबह की डाक' है। यह शब्द लण्डन के प्रसिद्ध दैनिक 'मार्निंग पोस्ट' की याद दिलाता है।

चीनी जनता पर समाचारपत्रों का अत्यधिक प्रभाव है और यह देश के क्रान्तिकाल में स्वाभाविक भी है। सच्ची बातें जानने की विशेष सुविधायें न होने के कारण चीनी समाचारपत्र समाचार देते समय 'ऐसा कहा या सुना जाता है' शब्द अवश्य लगाते हैं।

अधिकांश पत्रों में देशभक्ति का अविश्रान्त स्रोत उमड़ता दिखाई पड़ता है। आज चीनी-जीवन के सब क्षेत्रों में तीव्र गति से परिवर्तन हो रहा है। चीनी लिपि की जटिलता के कारण जो निरक्षरता और अशिक्षा बढ़ी हुई थी, वह उसके सरल एवं संक्षिप्त कर दिये जाने के कारण घट रही है और शिक्षित आदमियों की सख्या में वृद्धि होने के कारण समाचारपत्रों का प्रचार भी बहुत बढ़ गया है।

यह ठीक है कि अभी इन पत्रों में बहुत त्रुटियाँ हैं पर नूतन राष्ट्रीय सरकार जिस तेज़ी से देश के संघटन और पुनरुद्धार में लगी हुई है, उससे आशा होती है कि ये त्रुटियाँ बहुत शीघ्र दूर हो जायँगी।

❀ ❀ ❀

कला का पुरस्कार

पिछले अंक में 'विषपान' शीर्षक एक सुन्दर और पूर्ण चित्र प्रकाशित हुआ है। इसके चित्रकार श्री लसिंह की कूँची में जैसी अनुभूति है, हृदय में वैसी प्रवणता भी है। वह कला को चित्रित करने की अनुभव अधिक करते हैं—कला की उपासना की यही त्तम विधि भी है। इन पंक्तियों के लेखक ने इस चित्र प्रकाशन और पुरस्कारादि के सन्बन्ध में जब चित्रकार लिखा तो उन्होंने जो उत्तर दिया था उसमें अन्तर अनुभूति और कला एवं सौंदर्य की ऐसी सुंदर व्याख्या है कि उसे यहाँ उद्धृत करना उचित जान पड़ता है—

"× × × कलाकार का उद्देश्य सौन्दर्य की पासना ही है और यही उसकी इष्ट साधना भी है। माता के एक त्यागी योगेश्वर का कहना है कि सौन् ही आनंद है और आनंद ही जीवन है। इसीलिए कला अपनी साधना की सिद्धि के मंगल-मुहूर्त में देखता है योगिराजों का जो 'सत्य' है और उपासकों का जो है, वही मेरा 'सुन्दर' है। उस समय कलाविद् भावों पुष्पाञ्जलि लेकर, आनन्द का अर्घ्य लेकर, वाणी की लेकर, 'सुन्दर' के श्रीचरण-तलों में आत्माञ्जलि देता अपनी इस सिद्धि के मंगल-मुहूर्त में विश्व को पुण्य-पथ अग्रसर होने के लिए आह्वान करता है। सहसा विश्व दिव्य चक्षुओं के सम्मुख सौन्दर्य का प्रमोदवन ला है। और उस प्रमोद-वन के सुरभित सुमनों की सुगन्ध उसका मन-मानस आनन्द की तरंग-मालाओं से हिल्लोलि होने लगता है। कलाकार 'सुन्दर' के श्री पाद-पद्मों में समर्पण करता है। सौन्दर्य का यही पुण्य-प्रताप है, सौन्दर्य यही प्रकाशमयी दिव्य शक्ति है और साथ ही कलाकार का यही यथार्थ पुरस्कार है, उसकी कला की यही न्योछावर है। और जिसने कल्पना-कानन के कुसुमों चयन करके अपने कौशल-रहित करों से इस भाव-माला गूँथा है, वह न तो योगी है, न कवि, और न चित्रकार परन्तु इतना होते हुए भी उसने इस विश्व-मंदिर कला-काञ्चन-पीठ पर आसीन भगवती रस-भारती के

चरणों में (एक निर्गन्ध पुष्प) समर्पित करने हस किया है, इसी साहस को यदि कोई भग- मंदिर का भावुक पुजारी प्रोत्साहन दे तो उसी को अपना सर्वश्रेष्ठ तथा सच्चा पुरस्कार

❀ ❀ ❀

हिन्दी-साहित्य

के बाद सम्पूर्ण दुनिया में 'अनेक से एक' हो उत्कण्ठा, जो वेदना जागृत हुई है, उसने विशेषतः कविता के अञ्चल को सब से अधिक है। आज हमारे प्राणों में एक आन्तरिक स्वर गूँज नूतन संदेश, एक रहस्यमय भावना फैल रही है। उन्नत साहित्य की आजकल की कवितायें देखिए; हृदय वही, पागलपन, वही मानव-मानव को, मिलाकर एक कर देने के लिए विकल, करुणा दिखाई देगा। मुझे प्रसन्नता होती है कि की आत्मा भी इस महान मानवी सत्य के मानवता के अमल अमृत से सरस और अमर हो को ये बातें समझ में नहीं आतीं, आचार्य जाते हैं, पर वे यह नहीं सोचते कि सौन्दर्य की की है? विश्व के महान आंदोलनों का समझ सका है? आदि-कवि के ओठों द्वारा हुआ जो अमृत पहली बार एकाएक बाहर था, उसने किस शास्त्रीय जटिलता के सागर किया था?

हिन्दी के 'नवीन' कवियों के प्राणों में अज्ञात संगीत गूँज रहा है, उसने काव्य की भौतिक इस अल्प समय में क्या हमें कुछ कम दिया है? में पिछले अंकों में अनेक रत्नों की चर्चा की जा

पता चला है कि ग्वालियर के श्री 'मिलिन्द' एक करुण-काव्य लिख रहे हैं। 'प्रताप' के प्रकाश 'सुख-स्वप्न' काव्य के लगभग ३०० चुके हैं। प्रयाग के श्री गिरिजादत्त शुक्ल —क्रन्दन' काव्य लिख रहे हैं। श्री हरिकृष्ण विजयवर्गीय 'प्रेमी' ने 'आँखों में' नामक एक काव्य लिखा है। इसे मैंने देखा है, इसमें सूक्तियाँ भी हैं और आशा है कि पुराने आदमियों को वे सन्तुष्ट कर सकेंगी।

नवीन स्कूल के सबसे चमकदार रत्न 'प्रसाद' जी की कई पुस्तकें तैयार हो रही हैं। 'स्कंदगुप्त' नाटक हाल में निकला है। 'कामना' की चर्चा की जा चुकी है। 'कंकाल' (उपन्यास) पूरा हो चला है। 'आकाश-दीप' नाम से आख्यायिकाओं का एक संग्रह शीघ्र ही प्रकाशित होनेवाला है। चन्द्रगुप्त मौर्य पर नवीन खोजों का आधार लेकर उन्होंने एक बड़ा ही सुन्दर नाटक लिखा है। 'मेरु'-सम्बन्धी उनकी खोज जारी है और उसका भी कुछ परिणाम निकलने की शीघ्र आशा है।

'अन्तर्जगत' के भावुक कवि और अशोकादि नाटकों के लेखक श्री लक्ष्मीनारायण मिश्र, 'सन्यासी' नामक एक नाटक लिख रहे हैं। 'मीठी चुटकी' वाले श्री भगवतीप्रसाद वाजपेयी ने 'मुसकान' और 'अनाथ पत्नी', दो उपन्यास लिखे हैं। पहला स्वयं छपा रहे हैं और दूसरा संभवतः 'चाँद' कार्यालय से निकलेगा। इनमें पहले का प्लाट, सम्मेलन से लौटते समय वाजपेयीजी ने मुझे सुनाया था—उसमें समाज की एक गूढ़ समस्या पर प्रकाश डालने की चेष्टा की गई है। मुझे आशा है, उपन्यास सुन्दर होगा। 'मधुपर्क' नाम से इनकी कहानियों का एक संग्रह भी गंगा-पुस्तक-माला से प्रकाशित होने वाला है।

ऐतिहासिक विषयों पर गम्भीर पुस्तकें लिखने का प्रयत्न भी जारी है। श्री सत्यकेतु विद्यालंकार ने 'मौर्य साम्राज्य का इतिहास' लिखा है। यह बहुत शीघ्र प्रकाशित हो जायगा। श्री जयचन्द्र विद्यालंकार भारत का इतिहास और आचार्य रामदेवजी अपने 'भारतीय इतिहास' का तीसरा खण्ड तैयार कर रहे हैं। श्रीइन्द्र विद्यावाचस्पति 'मुग़ल-राज्य के उत्थान-पतन' पर एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिख रहे हैं। प्रसिद्ध इतिहासज्ञ महामहोपाध्याय श्री गौरीशंकर हीराचन्द ओझा ने 'राणा प्रताप' पर एक छोटी पर गवेषणापूर्ण पुस्तक प्रकाशित की है।

इधर पत्र-जगत् में भी उन्नति हुई है। काशी विद्यापीठ

से मनीषी-प्रवर भगवानदासजी और आचार्य नरेन्द्रदेवजी के सम्पादकत्व में त्रैमासिक 'विद्यापीठ' निकलने लगा है। इसे देखकर आशा होती है कि भविष्य में यह हिन्दी का 'विश्व-भारती' बन जायगा। प्रयाग से 'भारतेन्दु' नामक एक नया मासिक निकला है। इसके सम्पादक हैं श्री ज्योतिःप्रसाद मिश्र 'निर्मल'। प्रथमाङ्क देख कर इसके उज्ज्वल भविष्य की कल्पना की जा सकती है। लाहौर से टण्डनजी 'स्वाधीन भारत' नामक एक साप्ताहिक पत्र निकालने की कोशिश कर रहे हैं।

इन सब बातों से क्या यह विदित नहीं होता कि हिंदी साहित्य बड़ी तेज़ी से आगे बढ़ता जा रहा है और जो आचार्य निराशा के अंधेरे में स्वेच्छापूर्वक भटक रहे हैं, वे भूले पथिक हैं ?

श्री रामनाथ लाल 'सुमन'

[नोट—प्रत्येक अंक में प्रगति की ऐसी संक्षिप्त सूचनायें देने का प्रबन्ध किया गया है। आशा है मेरे स्नेही मित्र और कृपालु लेखकगण अपनी महत्वपूर्ण अप्रकाशित रचनाओं के सम्बन्ध में समय-समय पर सूचित करते रहेंगे। 'सुमन']

कणिकायें

हज़ारों दिवसों में से एक ही दिन मुझे याद है, प्रकाश का और प्रेम का।

* * *

जब रोना होता है तब मैं एकान्त की खोज करता हूँ और हँसना होता है तब मित्रों की।

* * *

समुद्र के तीर पर ही तेरे पैर का रव क्यों सुनाई देता है ? तू सर्वत्र है, इसलिए सुनाई पड़ता है, अथवा अन्यत्र तू कहीं नहीं है इसलिए ?

* * *

कीर्त्ति की कौमुदी आये अथवा अपयश का अँधेरा आये, मित्र निंदा करें या मूर्ख बखान करें, कोई चिन्ता नहीं। जब तक कल्पना की रानी हँसती है, तबतक मेरा प्याला लबालब भरा है-मुझे किसी की जरूरत क्यों हो ?

'विजय'

टाल्सटाय और तरुण भार

एक पुस्तक है, जो रूस में प्रकाशित हु
अंग्रेज़ी में उसका उलथा भी हो चुक
मेरी राय में तरुण भारत के लिए यह पुस्तक मह
और उपयोगी सिद्ध होगी। रूस के क्रान्तिकारी श्री
इस पुस्तक के रचियता हैं। लिओ टाल्स्टाय की श्री गो
'स्मृतियों' का इस पुस्तक में उल्लेख है। श्री गोर्की
टाल्सटाय के भक्त न थे; अतः इस पुस्तक में उन्हों
कुछ लिखा है, एक समालोचक के दृष्टि-विन्दु से लिख
सच्ची समालोचना का तात्पर्य दोषान्वेषण नहीं है,
समालोचना के मानी तो विश्लेषण और वि
हैं। श्री बनार्ड शा के कथनानुसार 'समालोचक का
श्रेष्ठ कर्त्तव्य मनुष्य की घोषणा करना है'। श्री गो
अपनी 'स्मृतियों' में टालसटाय की 'घोषणा' की है।
कहना है कि विश्व में टाल्सटाय के सिवा कोई दूसरा
नहीं है (था), जो विभूति (Genius) संज्ञा के योग्य हो
टाल्स्टाय को हर दृष्टि से महान् बतलाते हैं। श्री
कहते हैं, "टालसटाय में एक ऐसी विशेषता है, जो मुझे
के सामने इस तरह ज़ोर से चिल्लाने को विवश कर
मुझे प्रेरणा करती है कि देखो, दुनिया के इस
को देखो, यह अद्भुत है और अमर है। क्योंकि, मेरी

दुनिया भर की मनुष्य-जाति का एक ही 'मनुष्य' है मैं अपनी मातृभूमि के एक सर्व-श्रेष्ठ महापुरुष के पड़ा हूँ। मैं सदा के लिए उसका स्वागत करता मनुष्य, देखो, मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ!" आगे श्री गोर्की फिर कहते हैं—"नास्तिक होते हुए भी किसी अज्ञात-कारण-वश, खूब सावधान होकर लेकिन करते उन्हें देखा और देख कर सोचा—यह मनुष्य परमात्मा-जैसा (God-like) है।" टाल्स्टाय की एवं आध्यात्मिक बातों पर गोर्की का उनसे मत-था, लेकिन कलाकार टाल्स्टाय के प्रति गोर्की के हृदय श्रद्धा थी। कला, वेदान्त और धर्म के बीच का आर्य-ज्ञान के अनुकूल नहीं है। भारत का —उसकी फ़िलासफ़ी तो प्रत्यक्ष दर्शन पर अवल-ऋषि के समान ही उसके यति और कलाकार भी थे, और भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार न तो धर्म वेदान्त ही उस अनन्त के अनुभव या प्रत्यक्ष दर्शन अपनी कोई हस्ती रखते हैं। टाल्स्टाय एक महान् तो थे ही, साथ ही वह एक महान् ज्ञानोपदेशक उत्तम आदर्श के संदेश-वाहक भी थे। किसी कारण न हो, श्री गोर्की टाल्स्टाय की अगाध आदर-बुद्धि विश्वास को समझ नहीं पाये थे। हाँ, टाल्स्टाय के वह एक महान् कलाकार का हृदय से आदर करते के रूप में एक सौन्दर्योपासक विभूति को पूजते गोर्की ने एक स्थल पर अपने और टाल्स्टाय के वार्तालाप का बड़ा ही सरस-सुन्दर वर्णन किया है। लिखते हैं, "एक समय यह रूसी ऋषि ताड़वृक्ष की नंगी जड़ों पर स्वान्तः-सुखाय लेटे-लेटे भूरी-भूरी पर चहल-पहल करने वाली कतिपय चींटियों को निहार रहे थे, एकाएक उन्होंने मुझसे पूछा—ऐसे मानो मुझपर चोट कर रहे हों—'तुम ईश्वर के क्यों नहीं मानते?'

उत्तर दिया—मुझे उसमें विश्वास नहीं है।" उन्होंने कहा—यह ठीक नहीं है। स्वभावतः तुम के अस्तित्व में विश्वास रखने वाले हो, उसके क़दम भी आगे नहीं बढ़ सकते। किसी-न-किसी दिन तुम ख़ुद इस बात को महसूस करोगे। तुम्हारा अविश्वास उस दुराग्रह का परिणाम है, जो कई तरह की चोटों और दुःखों के कारण तुममें पैदा हो गया है। जिस रूप में तुम दुनिया को देखना चाहते हो वह वैसी तो है नहीं। कुछ लोग हैं, जो केवल संकोच या भीरुता-वश विश्वास नहीं रखते। अक्सर युवा व्यक्तियों में इसी भाव का प्राधान्य रहता है; वे किसी स्त्री की अपने हृदय से पूजा करते हैं, लेकिन केवल इस भय से वे उसे प्रकट नहीं करते कि कहीं उनकी आराध्यदेवी उन्हें न समझ सकी तो दुःख होगा। इन युवाओं में साहस का अभाव-सा रहता है। प्रेम के समान श्रद्धा के लिए भी साहस और उत्साह की ज़रूरत होती है। मनुष्य को बार-बार अपने मन से कहना चाहिए, 'मैं विश्वास रखता हूँ', 'मुझ में श्रद्धा है', बस बेड़ा पार—सारी बातें, सब उलझनें सूर्य-प्रकाश के समान स्पष्ट हो जायँगी। अश्रद्धालु व्यक्ति प्रेम भी नहीं कर सकता……ऐसे आदमियों की आत्मा नितान्त अनुर्वरा—ऊसर—होती है, वे वंध्या-जीवन बिताते हैं। यह हितकर नहीं है। लेकिन तुम, तुम तो जन्म से श्रद्धालु हो, अब बीच ही में अपनी

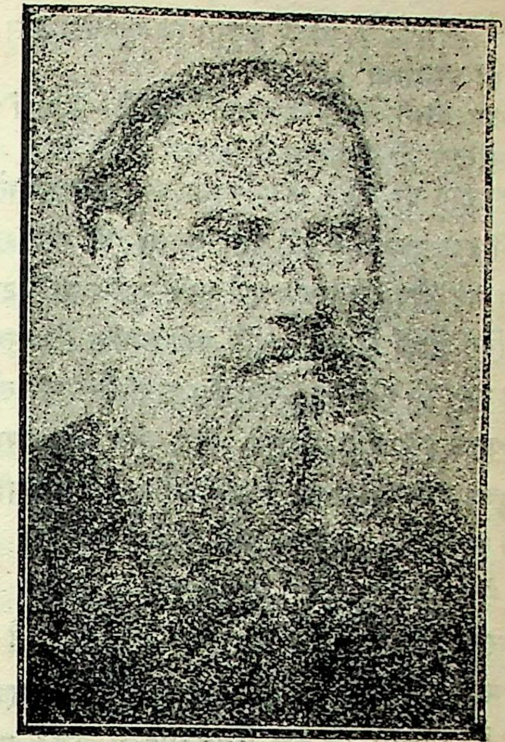

टाल्सटाय

प्रवंचना करना तुम्हें उचित नहीं है। अच्छा है, अगर सौन्दर्य ही तुम्हारा आराध्य है, तो मैं कहूँगा कि सर्वश्रेष्ठ और सम्पूर्ण सौन्दर्य ही परमात्मा है।"

देखिए, कैसी मार्के की बात कही है—सर्वश्रेष्ठ और सम्पूण सौन्दर्य ही परमात्मा है!

टाल्सटाय पर लोग अकर्मण्यता का दोष लगाते हैं। गोर्की की इस पुस्तक से हमें पता चलता है कि समालोचकों का यह दोषारोपण भ्रम-पूर्ण था—ग़लत था। टाल्स्टाय ने एक दिन गोर्की से कहा—"मैं नहीं मानता कि पतन या अवनति नाम की कोई चीज़ यहाँ है। इटली-निवासी लोम्ब्रोस ने पहलेपहल इसे ढूँढ़ा; उसके बाद तोते की तरह चैं-चैं करता हुआ नारडन्न नामक यहूदी आया और इसी तरह की बातें करने लगा।" दुःख और आँसुओं से भरी दुनिया के बीच से पतन या अवनति के अस्तित्व में नितान्त अश्रद्धा प्रकट करना, कितनी महान् श्रद्धा का परिचायक है? मेरी राय में जहाँ तक वेदान्त का अनुभव-जन्य सिद्धान्तों से सम्बन्ध है, टाल्स्टाय का उक्त कथन साहसी श्रद्धा पर एक अच्छी-सी टिप्पणी है।

इतनी गंभीर श्रद्धा रखने वाला व्यक्ति ही देश-भक्त बन सकता है। वह अपने राष्ट्र का विश्वास करता और उसकी हरएक बात राष्ट्रीयता से ओत-प्रोत रहती है। टाल्सटाय को लक्ष्य कर गोर्की कहते हैं—"वह किसानों पर प्रेम करते थे, उनकी बातों को सुन-सुन कर ज्ञान-प्राप्ति की उन्हें सदा इच्छा बनी रहती थी; जीवन की समस्या पर जब-जब प्रकाश डालने की ज़रूरत होती, वह किसानों की ओर आशा लगाये रहते थे। वह कहा करते थे कि धीरे-धारे इन लोगों के प्रति मेरा प्रेम, मेरी अनुरक्ति बढ़ने लगी; जैसे-जैसे मैं इनके जीवन का अध्ययन करने लगा, इनके जीवित और मृत पुरुषों के बारे में पढ़ने और सुनने लगा, वैसे-वैसे इनके प्रति मेरी चाह बढ़ती गई और इनके जैसा जीवन बिताना मुझे सरल प्रतीत होने लगा। लगातार दो बरस तक मैं इन लोगों के साथ रहा और फिर तो अपने धनी और शिक्षित लोगों के वातावरण में रहने वालों का जीवन न केवल मेरे लिए घृण्य और अखरने वाला हो गया बल्कि उसकी सारी विशेषतायें फीकी पड़ गईं—वह निरर्थक हो गया। हमारे कार्य, हमारे तर्क, वितर्क हमारा विज्ञान और हमारी कला, सब-के-सब मेरे सामने एक नये रूप में उप स्थित हुए। इस तरह अपने जीवन के सन्देश को सी सादे किसानों के प्रयत्नों, महत्वाकांक्षाओं और जीवन-सं में से पाकर टाल्स्टाय इस नतीजे पर पहुँचे कि शिक्षा नाम पर जो कुछ आज हो रहा है उसका अधिकांश नि योगी, निरर्थक और राष्ट्रीय जीवन की वृद्धि में नि बाधक है। ग़रीब, भोले-भाले किसानों के जीवन से शि लेकर टाल्सटाय ने सीखा कि मानव-जाति की सभ्यता उसके विकास की आशा उसके जीवन की सादगी में रेल-प्रथा से उन्हें घृणा-सी हो गई थी, अतः बहुधा दूर-दू पैदल चल कर ही वह अपने घर पर (मास्को) करते थे। जब कभी वह रेल-गाड़ी से यात्रा करते, कृषकों सम्पर्क की भावना के कारण, सदा तीसरे दर्जे का टिक थे। टाल्सटाय इन लोगों पर प्रेम करते थे; यही कारण कि वह इन लोगों के अन्धविश्वासों के शिकार नहीं हो वह देश-भक्त थे और इसी कारण गोर्की के शब्दों में मत, की वह सदा घोर उपेक्षा करते रहे—उससे उदा रहे।' किसी देशभक्त का विरक्त जीवन|बिताना रह ख़ाली नहीं होता। वह एकान्त में बैठकर अपने अन्त में अपनी जाति की आत्मा से अपना स्वरैक्य करता है—उससे दिन-दिन अन्तःघनिष्टता बढ़ाता रहता है। दशा में देश की सेवा करते हुए वह किसी की निन्दा पर ध्यान नहीं देता। हमारी गीता के गायक ने भी को इसी विरक्त-भाव का उपदेश किया था—आर्यवर्त रक्षा के लिए उसे जगाया और तैयार तो किया, लेकिन कर्मों के फलाफल की बात पर ध्यान न देने पर ज़ोर देकर उसमें पहले से ही वैराग्य भर दिया था। सेवा का मार्ग अक्सर न तो प्रसिद्धि का मार्ग रहा है, न सदा सफलता का ही।

टाल्सटाय ने एक ऐसी बात सिखाई, जो मूलतः और ऐतिहासिक दृष्टि से पूर्व की उपज है। मैं विश्वास कह सकता हूँ कि उनकी वह शिक्षा हमारे वर्तमान स्वा संग्राम के लिए एकदम अनमोल महत्व की चीज़ है। की वह शिक्षा अहिंसा की शिक्षा है। रूस उसे नहीं सका, यूरोप ने उसे अब तक नहीं समझ पाया है; टाल्स

मयी अ-कर्मण्यता के उपदेश को गोर्की कर्मण्यता सा कहते हैं। सदाचार और आध्यात्म की शक्ति से विरोध करने से अधिक अच्छी कर्मण्यता क्या होगी? इसे साम्राज्य-विरोधिनी शिक्षा (Anti-stateism) हैं; सचमुच यह शिक्षा एकतन्त्र और द्वैध शासन की विरो- (Anti-autocratic और Anti-bureaucratic) ती है।

राई के अ-विरोध का यह तरीक़ा उसकी रोक का कारक साधन है, बशर्ते कि लोग उसके सच्चे रूप हण करें और अपनी शिथिलता तथा अन्याय में अनु- उसे सुलभ कवच न बनावें। यूरोप में जिस दिन सन का राजदण्ड कैथोलिक चर्चवालों के हाथ से छिन तबसे लेकर आज तक हिंसा ही एकमात्र उसका रहा है। तब भी यूरोप वालों को युद्ध से रक्षा का र्ग नहीं मिल रहा है। मेरा विश्वास है कि भौतिक र पर बढ़ाई जाने वाली शक्तियाँ किसी दिन अवश्य त्म हो जायँगी; लेकिन मन, मस्तिष्क और सदाचार ति पर सुरक्षित शक्तियाँ संसार में दिन-दिन अपना बढ़ायेंगी और आख़िर तलवार को आत्मा के आगे त होना पड़ेगा।

र्की ने एक जगह टालसटाय की मृत्युभावना का उल्लेख है। टालसटाय खुद मौत के सम्बन्ध में खूब विचार और स्वयं कहा करते थे कि "अगर आदमी विचार जानता है तो दूसरी बातों के विचार को छोड़ कर वह अपनी मौत के सम्बन्ध में सदा कुछ-न-कुछ ही करता है। जितने तत्त्वज्ञ वेदान्ती हो गये हैं, सब- ही दशा थी। जहाँ मृत्यु है, वहाँ सत्य या सत्यों का ही क्या रह जाता है?" सचमुच सत्य क्या होंगे, वन का आनन्द क्षणिक हो? अगर मौत ही सब अन्तिम अन्त या विनाश हो तो, संसार-भर के ला, सभ्यता आदि में मनोरंजन ही क्या रह ? शरीर के निष्प्राण होने के बाद शीघ्र ही अगर वन भी मुझ से विलग हो जाय, तो दुनिया में मेरे मेरी भावनाओं और महत्वाकांक्षाओं का मूल्य ही जायगा? 'शाश्वत की इस समस्या' पर विचार करते हुए टालसटाय को एकाएक सत्य की अनुभूति होती है, उनके लिए जीवन सार्थक बन जाता है, इसलिए कि उनका जीवन मूलजीवन या आदि-चैतन्य का प्रतिबिम्ब है और वह आदि-चैतन्य मृत्यु के सर्वथा परे है। आदि या चैतन्य जीवन का निषेध, उनकी दृष्टि में, हमारे मनुष्य-जीवन की सारी आशाओं, आकांक्षाओं और संघर्षों का विरोधात्मक निषेध है। देहधारी मनुष्य तो चिदात्मा की सम्पूर्णता का एक साधन-मात्र है। मनुष्य-देह के द्वारा ही आदमी देवता और देवता से परमात्मा बन जाता है। अतः अन्त में टाल्स्टाय ने यही कहा, 'श्रद्धा जीवन है और उसका अभाव मृत्यु'।

राष्ट्रीय भारत के स्वाधीनता-युग के निर्माता तरुणो! सावधान होओ, और अपनी डायरी में नोट कर लो कि भारत के गीता-गायक की 'श्रद्धामयोऽयं पुरुषः यो यच्छ्रद्धः स एव सः' घोषणा का संसार के सारे महापुरुषों ने एकस्वर से प्रतिपादन किया है! याद रक्खो कि हमारी पराधीन भारतमाता की स्वाधीनता का सारा रहस्य, सारी शक्ति, स्वाधीन होने की हमारी अटूट और अनन्य श्रद्धा में है। देश की स्वाधीनता में अटल श्रद्धा ही हमारा ध्येय, वही हमारा जीवन, और वही हमारा सर्वस्व होना चाहिए।

भारत की दीर्घ-कालिक दयनीय पराधीनता का अगर कोई कारण हो सकता है तो वह भारतीयों की अपनी स्वाधीनता, स्वतन्त्रता और स्वराज्य में अश्रद्धा ही है।

अतः, आओ, सतयुगी भारत के राम-राज्य की बची हुई सन्तान! गांधी, तिलक, रवीन्द्र, अरविन्द और बोस के समसामयिक तरुणो! आओ, और देश की स्वाधीनता के निर्माण में अपनी-अपनी श्रद्धाञ्जलि देकर देश की स्वतन्त्रता में अपना अटल विश्वास व्यक्त करो। जगत् के समस्त राष्ट्र तन्द्रा छोड़ कर उठ बैठे हैं, सारा विश्व स्वाधीनता की लहरों में स्नान कर रहा है, क्या हम अब भी पूर्ववत् गुलाम बने रहेंगे?

नहीं, श्रद्धा के अवतार श्रीकृष्ण के भक्तो! उनके अनुयायिओ! नहीं, संसार तुम्हारी ओर आशा-भरी दृष्टि से देख रहा है। उठो, और नूतन उत्साह के साथ नये युग-निर्माण के नवीन सन्देश को बिजली-सी चपलता के साथ सारे विश्व में फैला दो! "योयच्छ्रद्धः स एव सः!"

टी० एल० वास्वानी

ज्ञानांजन

गीता की अपूर्वता

संस्कृत साहित्य में तो गीता अपूर्व ग्रन्थ है ही संसार के साहित्य में भी उसे अपूर्व प्रतिष्ठा प्राप्त हुई है और हमें आशा है कि भविष्य में भी गीता सर्वत्र इसी तरह प्रतिष्ठा प्राप्त करती रहेगी—यह अलौकिक ग्रन्थ इस योग्य है भी। बाहर से देखो या उसके भीतर घुसकर उसमें अवगाहन करो, गीता हर हालत में नितान्त रमणीय ही प्रतीत होगी। किसी संस्कृत कवि का 'क्षणेक्षणे यन्नवतां विधत्ते तदेव रूपं रमणीयतायाः' (जो पल-पल में नवीनता धारण करे वही रमणीयता है) यह उद्गार मानों गीता की रमणीयता को लक्ष्य करके ही कहा गया है। संसार की भिन्न-भिन्न भाषाओं में गीता को लेकर इतने विशाल साहित्य का निर्माण हुआ है कि साधारण आदमी के लिए यह कल्पना भी कठिन होती है कि इससे अधिक कोई क्या और किस तरह लिख सकेगा। लेकिन जो ग्रन्थ, ग्रन्थराज—या ग्रन्थ-रत्न कहलाता है उसमें कुछ ऐसी अपूर्वता रहती है कि उसके नये-नये पाठकों को उसमें से हमेशा एक-न-एक तरह का नूतन प्रकाश मिलता ही रहता है। और इसी कारण हम गीता को 'ग्रंथराज' कहने में अत्युक्ति नहीं करते। प्रस्तुत लेख में हम गीता-महोदधि के अगाध अन्तरंग में अवगाहन न कर केवल उसके ऊपर-ऊपर के स्वरूप पर दृष्टिपात करेंगे और इस तरह हमारी दृष्टि की सीमा में गीता की जितनी रमणीयता समा सकेगी, उसी को अपने पाठकों के सम्मुख रखने की चेष्टा करेंगे।

हम पहले ही यह कह देना ठीक समझते हैं कि गीता की अनेक-विध अपूर्वता के कारण साधारण दृष्टि तो चकि हो ही जाती है अतः उसकी अनेक-विधता के विस्तार की ओर न बढ़ते हुए जितना हमारी मर्यादा में आ सके उसी का उल्लेख हम यहाँ करेंगे।

पहली बार देखते ही हमें गीता की अपूर्वता के दर्श उसकी पार्श्व-भूमिका (Back ground) में होते हैं हीरा स्वभावतः तेजस्वी होता है लेकिन जिस समय व किसी सुवर्ण-मुकुट में जड़ा जाता है उसकी अपूर्वता औ उसका तेज फूट-फूट कर चारों ओर बिखरने लगते हैं। इ भाँति गीता भी अपने गान के अद्भुत अवसर के कार अत्यन्त तेजोमयी बन गई है। महाभारत (ग्रन्थ) पं वेद माना जाता है। इसी पंचम वेद के भीष्मपर्व में श्रीकृ ने गीता कही है। अवसर और स्थल देखिए, कैसा अद् है—धर्मक्षेत्र-कुरुक्षेत्र के मैदान में एक ओर लड़ाई के सा सज रहे हैं और दूसरी ओर कृष्ण गीता का गान क हैं। संसार के साहित्य में शायद ही कोई ऐसा ग्रंथ जिसमें मानव-जीवन के तत्त्वज्ञान का गान ऐसे भी अवसर पर किया हुआ मिले। फिर इस गीता के गा और श्रावक (श्रोता) की जोड़ी भी कितनी अनूठी है जिस ग्रन्थ के गायक, प्रत्यक्ष भगवान् योगेश्वर श्रीकृष्ण औ श्रोता क्षत्रियावतंस किन्तु विषण्ण-मन वीरवर अर्जुन उसकी अलौकिकता और अनुपमता में किसे सन्देह सकता है ?

दूसरे, गीता की शिक्षा प्रश्नोत्तर किंवा संवाद-रूप है, अतः गीता में निरी तात्त्विक आलोचना की नीरस और शुष्कता फटकने तक नहीं पाई है। गुरु-शिष्य शै आत्मीयता, मित्रों का विश्रम्भ (Confidence), आ की निकटता, भक्ति तथा सहृदयता का स्रोत आदि गुणों कारण गीता एक सुन्दर प्रश्नोत्तरी और संवादात्मक त विवेचन करने वाली दिव्य रचना हो पड़ी है। इन गुणों

गीता प्लेटो (Plato) के प्रसिद्ध संवादों (Dialo-) से भी बाज़ी मार ले गई है ।

गीता की तीसरी विशेषता यह है कि उसका संवाद ठोर गद्य में न होकर प्रसाद, ओज आदि गुणों से सुन्दर-सरल काव्य में है । साधारणतया तत्त्वज्ञान गहन विषय प्रौढ़-गद्य में ही लिखे मिलते हैं—इसका तत्त्वज्ञान की तर्क-प्रधान विचार-प्रणाली । ऐसे तर्क-विषय का भावनामय काव्य में समावेश, अत्यन्त है। जहाँ कहीं ऐसे विषय का पद्यमय विवेचन मिलता वहाँ बहुधा वह पद्य भाग नीरस रहता है। परन्तु में कुछ ऐसी अनन्य-साधारणता है कि उसमें गद्य कविता के साथ-ही-साथ काव्य के प्रसाद आदि गुण भी हैं—ओत-प्रोत हैं । काव्यमय होने के कारण गीता सहजस्फूर्त (spontaneous) भी है । पाश्चात्य समालोचकों की दृष्टि में वही काव्य उत्तम आता है जिसमें सुभाषितों की प्रधानता हो । उनकी पर शेक्सपियर, मिल्टन, पोप, और टेनीसन आदि कवियों की कविता ठीक उतरती है और इसीलिए साहित्य में उसकी गणना उत्कृष्ट काव्य में होती है । कसौटी पर अगर हम गीता को भी परखें तो निश्चय भी एक उत्कृष्ट काव्य-ग्रन्थ ठहरेगी । इसका कारण गीता में जहाँ-तहाँ अनेक संक्षिप्त और सारगर्भ पद-बिखरे पड़े हैं—उनमें प्रसाद है और ओज भी है । कृष्ण की अधिकार-पूर्ण वाणी से निकले हुए ये पद रत्न विश्व-साहित्य में एकदम विरल, अनूठे और हैं। गीता का चाहे जो अध्याय खोलकर पढ़ डालिए आपको दो-चार सुभाषित तो मिल ही जायँगे। कितने भाषित तो ऐसे हैं कि उन्हें हम विश्व के आश्वासनार्थ विज्ञापन कह सकते हैं। उदाहरण लीजिए—

यदा-यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृतां ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे ॥
सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि माशुचः ॥

गीता का वेदान्त-ग्रन्थ माना जाना उसकी चौथी अपूर्वता है । वेदोपनिषद् का वेदान्त और श्री शंकराचार्य आदि का वेदान्त इन दोनों के बीच में, सोने के मणि जैसा बीचों-बीच छेद करके गीता-शास्त्र तैयार हुआ है । अतः उपनिषदों की स्वैर और अनेक-विध कल्पना के उच्च पर्वत-शृंग पर से गिरने वाले तत्त्वज्ञान के अनिबन्ध प्रवाह और शंकराचार्य के सुघड़, सुदृढ़ एवं सुन्दर तत्त्वज्ञान की प्रचण्डपूर के मध्य-भाग में बहने वाला गीता का प्रवाह गंगा के उस त्रिपथगामी शान्त, रम्य पात्र के समान है जो स्वर्ग से निकल कर ठीक पाताल तक पहुँच जाता है । छन्द (Metres) की दृष्टि से भी गीता के छन्द वेदोपनिषदादि की शिथिल छन्द-रचना और कालिदासादि की नियमबद्ध छन्दोरचना के बीच की चीज़ ठहरते हैं । भाषा, व्याकरण आदि की दृष्टि से भी गीता इनके बीच की चीज़ पाई जाती है । अतः हमें यह कहते संकोच न होना चाहिए कि गीता में व्यवहृत भाषा, छन्द एवं व्याकरण आदि उसके वेदान्त-शास्त्र के मध्य-भाग में सुशोभित होने के सर्वथा योग्य हैं ।

गीता की पांचवीं अपूर्वता भी है—गीता पढ़ते समय उसके विद्यार्थी की कल्पना को कई अद्भुत-रम्य स्थलों का प्रवास करने की अभिसन्धि मिलती है—कभी वह अपने को धृतराष्ट्र और संजय के सम्मुख कौरव-राज के प्रासाद में बैठा पाता है तो कभी कुरुक्षेत्र की दोनों सेनाओं के बीच खड़ा; कभी अरण्यवासी, ब्रह्मपरायण, उपनिषत्कार ऋषियों की संगति का सुख लूटता है तो कभी 'अव्यक्ताव्यक्त चेतस्क' वसिष्ठ-वामदेवादि के समागम का रस-पान करता है; कभी भक्ति-पुरस्सर, 'पत्रं-पुष्पं-फलं-तोयं' देने वाले सगुणोपासक भक्त के दर्शन करता है तो कभी कर्मयोगी जनकराज की मिथिला, विदुर की झोंपड़ी, पतंजली के योगाश्रम, कपिल महामुनि के सांख्यतत्त्वालय और जैमिनि के कर्मठयोग-गृह में विचरता है; कभी 'वासुदेवः सर्वम्' कहने वाले महात्मा की छाया में निवास करता है तो कभी 'ईश्वरोऽहं अहं भोगी' में श्रद्धा रखने वाले चार्वाक के भोग-गृह में प्रवेश करता है और कभी 'पाप-योनि' कहे जाने वाले स्त्री-वैश्य-शूद्रादि भक्त शिरोमणियों के प्रेममय सहवास में रहता है। इस तरह कल्पना-शक्ति द्वारा कई स्थानों की यात्रा करता हुआ गीता वा-

चक स्वर्ग-मृत्यु-पाताल में रहने वाली ईश्वरी-विभूतियों के सम्मुख पहुँच जाता है। स्वर्गवासी, देव, रुद्र, आदित्य आदि विभूतियों के उसकी आँखों के सामने आते-न-आते ही पातालनिवासी यक्ष, राक्षस, नाग आदि विभूतियाँ उसे दीखने लगती हैं और ताबड़तोड़ पृथिवी पर के श्रेष्ठ-श्रेष्ठ मनुष्य उसकी आँखों में तैरने लगते तथा नक्षत्र, महीनों आदि की उत्तमोत्तम विभूतियाँ चल-चित्र-पट के चित्रों की भांति उसके नेत्रों के सम्मुख नाचने लगती हैं।

गीता की छठी एवं विश्व-साहित्य में अद्वितीय अपूर्वता है उसका विश्व-रूप दर्शन। यह दर्शन इतना विचित्र, कौतुकमय और भीत्युत्पादक है कि इसकी भव्यता और मन तथा वाणी की अगोचरता के कारण यह जैसे मानवी-नेत्रों को वैसे ही दिव्य नेत्रों को भी भयभीत और आश्चर्य-चकित कर डालने वाला हुआ है। गीता का यह उदात्ततम (Sublimest) अंश है। इस विश्व-रूप के दर्शन अर्जुन को और व्यास कृपा के कारण संजय को छोड़ और किसी भी व्यक्ति को नहीं हुए हैं—यह बात श्रीकृष्ण ने खुद अर्जुन से कही है—'यन्मेत्वदन्येन न दृष्ट पूर्वम्'। इस दृश्य के दर्शन-मात्र से अर्जुन की भीति की सीमा न रही। स्वयं संजय को भी 'तच्च संस्मृत्य-संस्मृत्य रूपमत्यद्भुतं हरेः। विस्मयो मे महान् राजन् हृष्यामि च मुहुर्मुहुः॥" इन शब्दों में उसकी अद्भुतता स्वीकार करनी पड़ी है। इस विश्व-रूप-दर्शन के वर्णन को पढ़कर और मनश्चक्षु द्वारा उसकी अल्प-सी कल्पना करके ही हम झमेले में पड़ते इतना और विमूढ़ बन जाते हैं। वह दृश्य ही इतना अद्भुत, रम्य और रोमहर्षण है। इसीलिए हम ऊपर कह आए हैं कि विश्व-रूप-दर्शन, गीता की सर्वश्रेष्ठ अपूर्वता है।

इस अपूर्वता से निकट सम्बन्ध रखने वाली गीता की सातवीं अपूर्वता उसका सर्व-संग्राहकत्व है। 'गीता-स्तुति' के रचयिता कवि ने गीता के इस स्वरूप को प्रकट करने वाला मार्मिक और अन्वर्थक यह श्लोक—

> 'सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपाल नन्दनः।
> पार्थो वत्सः सुधी र्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत् ॥

बनाया है जिसका अर्थ इस प्रकार है—सारे उपनिषद् मानों गायें हैं, उन्हें दुहने वाला गोपाल-नन्दन (अहीरों को आनन्दित करने वाला अथवा अहीर का पुत्र) है, गीता-रूपी अमृत ही गोपाल-नन्दन का दुहा हुआ वह दूध है जिसे पीने वाला वत्स—बछड़ा है बुद्धिमान अर्जु गीता की अपूर्वता का यह आलंकारिक वर्णन है। इसे सीधी-सादी भाषा में यों कह सकते हैं कि गी का उपदेश सारे उपनिषदों का अमृत-मधुर एवं संग्र णीय सार है। एक बात है—'उपनिषद्' शब्द क निरा वाच्यार्थ ग्रहण करने से काम न चलेगा। आर्यतत्त्व ज्ञा में जिन-जिन दर्शन-शास्त्रों का समावेश होता है उन स दर्शनों का हमें इस अर्थ में लक्षणा से समावेश करना चाहि प्राचीन तत्त्वज्ञान के विस्तार में जितना अंश उत्कृष्ट है उतना सुव्यवस्थित ढंग से एकत्र करके और उसमें अप अपूर्वता को छुपे ढंग से जोड़ कर श्रीकृष्ण ने कौशल-पूर्व गीता को मनुष्य-जीवन का एक सुन्दर और अनुपम तत्त्वज्ञान बना दिया है। श्रीकृष्ण ने यह काम इतने रहस्य-म ढंग से किया है कि प्रत्येक पंथ के आचार्य को गीता में अप ही तत्त्वज्ञान का विवेचन—प्रतिपादन-मिलता है। इ समक्ष पर भिन्न-भिन्न आचार्यों ने गीता पर एक-एक भा लिख डाला है; आज भी अनेक तत्त्वज्ञ लिखते जा रहे हैं औ इसमें सन्देह नहीं कि भाष्य-लेखन की यह परम्परा भवि में भी बनी रहेगी। गीता की इस सार—संग्राहक वृ (Ecclecticism) ने बड़े-बड़े दिग्गज पण्डितों को भ्र में डाल दिया है। स्व० न्यायमूर्ति तैलंग जैसे श्रेष्ठ विद्वा भी इसी भ्रम-वश अपनी पूर्व के पवित्रग्रंथ ('Sacred Boo of the East') नामक ग्रंथमाला के अनुवाद की प्रस्ताव में गीता को 'विविध मतों का अव्यवस्थित बोझ' कह डा है। लेकिन हमारे मत में चार्वाक दर्शन से लगाकर शंक चार्य के अद्वैत पर्यन्त जितने महत्त्वपूर्ण दर्शन, संस्कृत-तत्त्व ज्ञान में अन्तर्भूत होते हैं (जैसे, चार्वाक, कपिल सांख्य, पातञ्जल-योग, पूर्व मीमांसा, उत्तरमीमांसा, आदि) उ सबका उपयुक्त उपयोग करके, उन्हें अपने तत्त्वज्ञा सूत्र में पिरो कर और ज्ञान, कर्म और भक्ति के ती अञ्चलों को परस्पर बटकर भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता-रूप अपने जीवन का सार—अपना सूत्रमय "तत्त्वज्ञान—अ

से सारे जगत् के, हाथों सौंप दिया है।* की आठवीं अपूर्वता जीवात्मा और परमात्मा के सम्बन्ध में अभिव्यक्त हुई है। इस अपूर्वता का की सर्व-संग्राहक बुद्धि ही में सन्निहित है। गीता जिस प्रकार एकात्मा अथवा एक-रूप-धारी है वह विश्वात्मा, विश्व-रूप-धारी और अ-रूप-धारी, कार भी है। इस त्रिमूर्ति में पूर्ण एक्य है— in Trinity है, और इस अद्वैत तत्व का त्रिमूर्ति-स्वरूप (Trinity in unity) है। भगवान् श्रीकृष्ण मानव रूप-धारी एकात्मरूप हैं, वही अर्जुन की प्रार्थना पर विश्वात्मरूप हैं और फिर वही, तेरहवें अध्याय के वर्णन कार, उपनिषदों के निर्गुण-निराकार पर- भी सिद्ध होते हैं। मानव-रूप में (अर्थात् रूप-धारी श्रीकृष्ण-रूप में) इन परमात्मा का जीव- र्जुन—से, मित्र, गुरु-शिष्य, देव-भक्त, और चिर- परिचय के कारण अन्तरंग सुहृद् का सम्बन्ध है। मानवरूप का त्याग करके योगमाया के कारण रूप धारण करते ही यही सम्बन्ध आदर, आश्चर्य इन तीन भावनाओं से व्याप्त हो जाता है। और त्मक निर्गुण-निराकार परमात्मा के वर्णन में सब भावनाओं के साथ समग्र लय होजाता तीन सम्बन्धों का अलग-अलग वर्णन करते हुए पुरुषवाची सर्वनामों का प्रयोग किया गया है; कार के सम्बन्ध में प्रथम-द्वितीय पुरुष का प्रयोग है—'सर्व धर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥' 'मया येन वाऽपि हे कृष्ण, हे यादव हे सखेति, आदि—; जीव और ईश्वर इनका कुछेक दूर का सम्बन्ध तीसरे पुरुष में व्यक्त किया है—ईश्वरः सर्व भूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्व भूतानि यंत्रा रूढ़ानि मायया॥ तमेव शरणं गच्छ सर्व भावेन भारत। तत्प्रसादात्परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छसि। विराट् स्वरूप के अवसर पर पुनः प्रथम-द्वितीय पुरुष की भाषा है—'कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धो··· ·····························।' 'तेनैव रूपेण चतुर्भुजेन सहस्रबाहो भव विश्वमूर्ते।' 'को भवानुग्ररूपो' आदि देखिए।* निर्गुण-निराकार के वर्णन में तो सम्पूर्ण अद्वैत ही का प्रधान्य होने के कारण द्वैत-वाची सम्बन्ध की कल्पना ही नष्ट हो गई है। अतः नपुंसक-लिंगी तृतीयपुरुष-वाचक सर्वनाम का ही प्रयोग मिलता है। इस सम्बन्ध में 'सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरो मुखम्। सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्यतिष्ठति॥ सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्। असक्तं सर्वभृच्चैव निर्गुणं गुण भोक्तृ च॥ बहिरन्तश्च भूतानामचरं चरमेव च। सूक्ष्मत्वात्तदविज्ञेयं दूरस्थं चान्तिके च तत्।' आदि द्रष्टव्य हैं।

सारांश मिल्टन ने जिस भाँति अपने 'Paradise lost' में अति-मानुष (Superhuman) वस्तुओं का वर्णन किया है उसी प्रकार गीता भी असम्बोध्य, 'अधृष्य' और 'अभिगम्य' है। कृष्ण, कृष्ण कौन है? वह तो हमारे घर का है, हमारा मित्र है, हमारे हँसी मज़ाक का अधिकारी—'सहपांशुक्रीड़िततया'—हमारा लँगोटिया दोस्त है; इस तरह की विचारणा करते-करते दूसरे ही क्षण हमें, मालूम होता है कि हमारा यह बाल-मित्र, विश्वरूप-धारी विश्वात्मा और सारे विश्व को निगल जाने वाला काल-पुरुष है, और इस सत्य की प्रतीति होते ही हम तत्क्षण आश्चर्य-विमूढ़ बन जाते हैं। फिर विराट्स्वरूप के दर्शन से भीति का अतिरेक होकर जब हम उससे दूर भागने का यत्न करते हैं तभी हमें पुनः यह प्रतीति भी होती है कि वह विराट्-

---

* इन विभिन्न दर्शनों का उपयोग गीता में किस गया है, गीता के अपूर्व तत्त्वज्ञान से उनका किस भाँति जोड़ा गया है आदि बातें स्वतन्त्र विचारणीय हैं अतः इन पर यहाँ अधिक न किसी दूसरे लेख में प्रकाश डालने की चेष्टा —लेखक

* यहाँ की भाषा पहले जैसी प्रेममय नहीं है, आदर-आश्चर्य-भीति के कारण दूरी-भाव छोड़ना पड़ा है, अतः प्रथम द्वितीय पुरुषकी भाषा का पुनः प्रयोग किया है। —लेखक

स्वरूपी कालात्मा बचपन से हमारा चतुर्भुजरूप-धारी लँगोटिया दोस्त है। हमारा चतुर्भुज-धारी बाल-मित्र ही विश्व-रूप-धारी कालात्मा भी है यह जानते ही दूसरे ही क्षण हमें उपनिषदों के 'तत्पदवाच्य' परब्रह्म का ज्ञान और उसकी प्रतीति होने लगती है। परमात्मा-सम्बन्धी इस तरह की अद्भुत, रम्य एवं प्रीतिप्रद कल्पना और तद्वत् ही जीवात्मा से उसका सम्बन्ध, ढूँढने पर भी क्वचित् ही कहीं मिल सके।

गीता की नवीं अपूर्वता है उसकी दूसरे धर्मों के सम्बन्ध में सहिष्णुता। गीता का यह सुप्रसिद्ध श्लोक—'येऽप्यन्यदेवता-भक्ता यजन्ते श्रद्धयान्विताः। तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधि पूर्वकम् ॥' उस की इस अपूर्वता का द्योतक है। दूसरे देवताओं की भक्ति करने वाले को भी श्रीकृष्ण ही उनकी इच्छानुसार फल देते हैं, इस कथन से अप्रत्यक्षरीत्या ही क्यों न हो, उक्त अर्थ ही सिद्ध होता है। 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज। अहंत्वा सर्व पापेभ्यो मोक्षयिष्यामि ॥' आदि कथन से भी 'दूसरे धर्म वालों को मोक्ष नहीं मिलेगा, मेरी ओर आने वाले ही मोक्ष पासकेंगे' इस तरह का कोई आग्रह प्रकट नहीं होता। भगवान् का हेतु तो केवल यही है कि दूसरे किसी भी मार्ग की उलझन में न पड़कर भक्त को ईश्वर की ही शरण लेनी चाहिए जिससे ईश्वर द्वारा उसका उद्धार हो सके।

गीता की दसवीं अपूर्वता उसकी अपनी शिक्षाओं में है। ज्ञान, कर्म और भक्ति, स्वरूपतः भिन्न होते हुए भी वस्तुतः ये तीनों एकरूप ही हैं, अतः इन विभिन्न मार्गों के प्रवर्त्तक लोगों का अपने-अपने पथ या मार्ग को ही उत्कृष्ट बतलाने का प्रयत्न गीता-सम्मत प्रयत्न नहीं है। गीता में तो ज्ञानी, कर्मयोगी और भक्त तीनों ही परस्पर एक-दूसरे के अ-विरोधी माने गये हैं, यही नहीं किन्तु इन तीनों में से किसी एक का वर्णन दूसरे पर भी ठीक उसी तरह लागू होता है; कहीं-कहीं तो ज्ञानी, कर्मयोगी और भक्त तीनों को एक-रूप ही माना गया है। उदाहरण लीजि

'योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना।
श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः ॥'
'तेषां ज्ञानी नित्ययुक्तो एकभक्तिर्विशिष्यते।'
'अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभं पार्थ, नित्य युक्तस्य योगिनः ॥'

ऐसे एक नहीं अनेक श्लोकों से बराबर इसी की ध्वनी निकलती है।

अपूर्वता से ओत-प्रोत भरे हुए गीता--महासागर चुन-चुनकर ऊपर, कुछ रत्नों का एक हार बनाने की चे है। समुद्र के 'रत्नाकर'—रत्नों की खान-होते हु संग्राहक की अंजली का आकार छोटा-सा होने के उसमें रत्न आ ही कितने सकते हैं? अतः जितने अं समा सके वही हार-रूप में ऊपर दिये हैं। आर्य-त में गीता का स्थान निस्सन्देह अपूर्व है। वेद, उ आदि ग्रन्थ अत्यन्त पवित्र-अस्पृश्य-होने के कारण सा जनता के लिए उनका स्पर्श दुर्लभ ही नहीं कठिन होने अतः स्पृश्य लोगों के समान ही भोले-भाले अस्पृश्य के हितार्थ भगवान् ने गीता की रचना करके इस मोक्ष को उनके लिए भव-सागर के किनारे बाँध रक्खा है। काल में श्री ज्ञानेश्वर, तुकाराम अथवा श्री तुलसीदास ग्रंथों की जो महिमा है, उनका जो 'मिशन' है, वही और वही 'मिशन' गीता का अपने ज़माने में था, निर्विवाद है।

छिद्रों (दोषों) से बिद्ध इन दश रत्नों में से प्रवणता का सूत्र पिरोया गया है, अतः यह दश रत्न-हार भगवान् श्रीष्कृण को प्यारा लगेगा ही; इसी से उस जन्मदाता के पुण्यपावन चरणों में इसे कर आज यहीं विश्राम करता हूँ।

कृष्णाजी रामचन्द्र कु

लोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आना आवश्यक है। एक प्रति आने पर आलोचना न हो सकेगी। प्रत्येक पुस्तक का साहित्य-सत्कार तो उसी अंक में हो जाया करेगा—आलोचना, यदि हुई तो, सुविधानुसार बाद में होगी।]

ाड़ राज्य का इतिहास

चित्र) लेखक—
ग्दीशसिंह गहलोत।
—हिन्दी-साहित्य-
जोधपुर (मारवाड़)
१९२५, मूल्य २।।)
संस्करण ३।।)

व हिन्दी-साहित्य की जितनी इतिहास की रही है, उतनी शायद किसी दूसरे विषय नहीं। प्रस्तुत पुस्तक भी उसी का एक उदाहरण पुस्तक के लेखक ने पहले भी इतिहास-सम्बन्धी छोटी पुस्तकें लिखी हैं। लेखक ने इस पुस्तक के में विशेष परिश्रम किया है।

म में मारवाड़ राज्य का भूगोल दिया गया है, मारवाड़ की भूगोल-सम्बन्धी प्रायः सभी बातों— विस्तार, नदी, पर्वत, नाले, कुएँ, तालाब, झीलें, जल- , मुख्य पैदावार, जंगली पशु-पक्षी, राज्य-विभाग —का ज्ञान हो जाता है। फिर जोधपुर राज्य पद्धति और राज्य-प्रबन्ध के भिन्न-भिन्न महकमों इतिहास देते हुए, उनकी वर्तमान स्थिति बताई दनन्तर जोधपुर नगर और उसके दर्शनीय स्थानों वर्णन है, जो ४० पृष्ठों में समाप्त हुआ है।

वें पृष्ठ से जोधपुर राज्य का इतिहास प्रारम्भ हुआ बहुत संक्षेप से मारवाड़ का प्राचीन इतिहास न किया गया है, जो आवश्यकता से अधिक गया है। इसी तरह राठोड़ों का प्राचीन परिचय अपने कथन की पुष्टि में प्रमाण बहुत थोड़े दिये गये हैं, जिनसे पाठक को कई संदिग्ध बातों पर स्वयं विचार करनेकी सुविधा नहीं मिलती। राठोड़ और गहरवार (जयचंद के वंशज) एक हैं, राठोड़ सूर्यवंशी हैं आदि कई बातें अब तक ऐतिहासिकों के लिए विवादास्पद हैं। इनके सम्बन्ध में अपना सप्रमाण मत रखना आवश्यक है। इसी तरह जयचंद के वर्णन में पृथ्वीराज रासो में उल्लिखित जयचन्द द्वारा शहाबुद्दीन गोरी को बुलाया जाना अब ऐतिहासिक सत्य नहीं रहा। पृथ्वीराज रासो इतिहास के लिए प्रामाणिक ग्रन्थ नहीं है। इस सम्बन्ध में अधिक जाँचकर पहले ही लिखा जाता तो अच्छा होता। यद्यपि लेखक ने ग्रन्थ के पिछले भाग में इस आशय के कुछ वाक्य लिखे हैं; तथापि अभी इस असत्य को जो पृथ्वीराज रासो के कारण इतना व्याप्त हो गया है, दूर करने के लिए अधिक परिश्रम की आवश्यकता है। साधारणतः जोधपुर का प्राचीन इतिहास अच्छा है, यद्यपि अभी उसमें और भी अधिक पुरातत्व-अनुसंधान से काम लेने की आवश्यकता थी। बहुधा ख्यातों पर आश्रित रहने से कई ऐतिहासिक सत्य छिप जाते हैं। जोधा के बाद तो लेखक ने प्रायः प्रत्येक राजा की जन्मपत्री भी देने का प्रयत्न किया है जिससे इतिहास कुछ अधिक स्पष्ट और सरल हो गया है। परन्तु कई स्थलों पर लेखक ने कई घटनाओं को स्थान ही नहीं दिया। अजीतसिंह से बहादुर शाह ने जोधपुर छीन लिया था और वह जयपुर के राजा जयसिंह के साथ बादशाह के पीछे राज्य-प्राप्ति की आशा में नर्मदा तक गया था, परन्तु सफलता की संभावना न देखकर दोनों महाराणा के पास सहायता की प्रार्थना के

लिए आये थे। इसका उल्लेख श्रीयुत इरविन ने अपने Later Mangols में किया है, परन्तु प्रस्तुत पुस्तक में इस महत्वपूर्ण घटना का कहीं पता ही नहीं है। इसी तरह कई अन्य आवश्यक घटनायें नहीं लिखी गईं, यद्यपि उनकी संख्या थोड़ी है। इस तरह कुल इतिहास क़रीब दो सौ पृष्ठों में दिया गया है। यदि वर्तमानकालिक इतिहास को अधिक संक्षिप्त कर प्राचीन या मध्यकालिक इतिहास को कुछ अधिक विस्तृत लिखा जाता, तो अधिक उपयोगी होता। वर्तमानकालिक इतिहास में बहुत-सी ऐसी बातें आ गई हैं, जो निरर्थक और अनावश्यक हैं। राजवंश के अन्त में एक राज-वंशावली देकर मारवाड़ राज्य के भिन्न-भिन्न परगनों, जागीरों और सरदारों का संक्षिप्त इतिहास दिया गया है, जिससे पुस्तक की उपयोगिता बहुत बढ़ गई है। इसके बाद राज्य के भिन्न-भिन्न करों और बन्दोबस्त का संक्षिप्त परिचय देकर यहाँ के पशुधन, उपज, दुर्भिक्ष, भोजन, पहिनाव, मनुष्य-गणना, धर्म, जाति, राजपूतों के सामाजिक रीति-रिवाज, शिक्षा, साहित्य, त्यौहार, अख़बार, क़ानून, स्वास्थ्य, जंगल, रेलवे, उद्योग-धन्धे, पेशे, व्यापार, आय-व्यय आदि का संक्षेप में विवरण दिया है। अंग्रेज़ी सरकार से जितने अहदनामे हुए, उनकी नक़ल दी गई है। फिर बारह परिशिष्टों में क़ानून-कायदों की सूची, मुकद्दमेबाज़ी, शिक्षा, जेल, सिरोपावों का वर्गीकरण, वर्णव्यवस्था, बाल-विवाह, मारवाड़ की कहावतें, मारवाड़ के पोलिटिकल अफ़सरों की संख्या आदि का संक्षिप्त वर्णन लिख कर तेरहवें परिशिष्ट में दूसरे राठोड़ राज्यों—आलीराजपुर, ईडर, किशनगढ़, बीकानेर, सीतामऊ, रामपुर, खीमसापुर आदि कई राज्यों का भी संक्षिप्त इतिहास देने का प्रयत्न किया गया है, जिससे पुस्तक का मूल्य बहुत बढ़ गया है।

हमने जितने मारवाड़ के इतिहास देखे, उनमें यह सबसे उत्कृष्ट है। प्रायः सभी ज्ञातव्य बातों का इसमें अच्छा संग्रह किया गया है, जिससे पुस्तक मनोरंजक और बहुत उपयोगी हो गई है। भिन्न-भिन्न जातियों के वर्णन तथा जन-साधारण का सामाजिक जीवन विस्तार से दिया गया है। वस्तुतः कोई इतिहास केवल राजकीय घटनाओं से पूर्ण नहीं कहा जा सकता। उसमें सामाजिक जीवन को भी उतना ही ज़रूरी स्थान मिलना चाहिए। ले स्थल-स्थल पर मारवाड़ी कहावतें भी बहुत-सी दी हैं, जि तत्कालीन जनता की मनोवृत्ति का परिचय मिलता है। इतिहास केवल वर्णनात्मक ही नहीं, आलोचनात्मक भी लेखक ने राजपूतों की सामाजिक कुरीतियों का निरूप उनके दूर करने के उपाय भी बता दिये हैं, यद्यपि ऐसे कुछ बढ़ जाने से कभी-कभी यह पुस्तक इतिहास न हो उपदेश-पुस्तक मालूम होने लगती है, परन्तु राज इतिहास के साथ ही यह कड़वी घुट्टी पिलाने से कु दूर हो सकती हैं, यह सोच कर लेखक का यह दोष है। लेखक की निर्भीकता और राष्ट्रीयता इसीसे मालूम है कि उसने कहीं-कहीं वर्तमान शासन की भी आलोच है और राष्ट्रीय आन्दोलन से सहानुभूति दिखाई है, आशा रियासत के आदमी से कठिन थी। करीव १५ के देने से पुस्तक की उपयोगिता बहुत बढ़ गई है, इसमें कई अनावश्यक चित्रों का समावेश हो गया संक्षेप में कहें तो पुस्तक की उपयोगिता बढ़ाने में ले कोई कसर नहीं छोड़ी। परन्तु यदि पुस्तक को अध्या प्रकरणों में बांट कर संपादित किया जाता और सब को यथा-अध्याय रखा जाता, तो पुस्तक और भी अ जाती। आशा है कि पुस्तक के आगामी संस्करण में ये त्रुटियाँ दूर हो जायँगी। अन्त में हम राजपूताने के इ के विद्यार्थियों से अनुरोध करते हैं कि वे इस पुस्त अवश्य पढ़ें।

बेञ्जामिन फ्रैंकलिन का जीवन-चरि

मूल लेखक—श्री गोविन्दभाई हाथीभाई देसाई। प्रकाश वादक-श्री लक्ष्मीसहाय माथुर, विशारद। प्रकाश मध्यभारत-हिन्दी-साहित्य-समिति, इन्दौर। पृष्ठ-संख्या मूल्य २॥)

हिन्दी-साहित्य में अच्छे, विस्तृत तथा उप जीवन-चरित्रों का कुछ अभाव-सा नज़र आता है औ कभी-कभी बुरी तरह खटकता है। हर्ष का विषय कुछ हिन्दी-हितैषियों का ध्यान इस ओर आकर्षित हु प्रस्तुत प्रयत्न इसी का परिणाम है। यह एक

का अनुवाद है। लिखने का ढंग रोचक है। भाषा …ल है। और विषय की तो बात ही क्या? संसार में …हुत कम लोग होते हैं, जिनका जीवन अनुकरणीय … ऐसे इने-गिने लोगों में बेन्ज़ामिन फ्रैंकलिन भी एक … उनके जीवन की प्रायः तमाम घटनाओं को इस … में लाने का प्रयत्न किया गया है। मनुष्य किस …उन्नति के पथ पर आरूढ़ होकर मार्ग की विघ्न-बाधाओं …अपने पुरुषार्थ से हटाकर आगे की ओर अग्रसर होता …और किस प्रकार वह अन्त में संसार का एक महान् …बन जाता है, यह सब इस जीवन-चरित्र से अच्छी …प्रकट होता है। अपने जीवन को उन्नत बनाने के …प्रयत्नशील नवयुवक भाइयों को हम इस पुस्तक के …प्रकरण (स्वाध्याय) को पढ़ने की विशेष रूप …सिफ़ारिश करते हैं। अपने समय का किस तरह सदु… करना चाहिए, अपने दुर्गुणों को किस तरह दूर …चाहिए, और उन पर किस तरह विजय प्राप्त करनी …, आदि बातें इसमें उन्हें मिलेंगी। छपाई-सफ़ाई …है।

मा० उ०

साहित्य-सत्कार

गुजराती

१. जातक कथाओ—लेखक—श्री हरिभाई त्रिवेदी। …—श्री दक्षिणामूर्त्ति-प्रकाशन-मन्दिर, भावनगर …) । पृष्ठ सं० १३२, मूल्य ॥)

२. हिंदुधर्म नी आख्यायिकाओ—लेखक—श्री …प्रसाद कालिदास भट। प्रकाशक—वही। पृ० सं० …, मूल्य ॥)

३. बाल-साहित्य-माला की पुस्तकें—गोपीचंद, … नाटकों, हंस अने हंसा, तिरंदाज, गामडामां मळजो, … प्रवासो, मारा गोठीया, जरा हसो, क्यांथी, आव्या, … राक्षस, रूपसिंह अने रामसिंह, टपालनी पेटी, …, चींडिया खानुं, महासभाओ, कहावतो नो मूळ, …, आफ्रिका सांभर्युं,—लेखक—श्री गिजुभाई। …—श्री० गिजुभाई, और श्री ताराबेन। प्रकाशक— …। पृ० सं० ४०-५०; प्रत्येक का मूल्य -)॥

४. श्री छोटम नी वाणी—सम्पादक अने प्रकाशक—श्री भिक्षु अखण्डानन्द। प्रकाशन-स्थान—सस्तुं-साहित्य-वर्धक कार्यालय, अहमदाबाद। पृ० सं० ४१५, मूल्य १॥)

५. वीर वल्लभभाई (सचित्र)—लेखक—श्री० महादेव हरिभाई देसाई। प्रकाशक—प्रस्थान-कार्यालय अहमदाबाद। पृ० सं० ६२, मूल्य =)॥

हिन्दी

६. सच्ची आवाज़—लेखक—एक सेवक। प्रकाशक—भारतधर्म राष्ट्रीय ग्रन्थमाला, देहली। पृ० सं० २०४, मूल्य ॥=)

७. स्कन्दगुप्त (नाटक)—लेखक—श्री जयशंकर 'प्रसाद'। प्रकाशक—श्री भारतीय भण्डार बनारस-सिटी। पृ० सं० २४६, मूल्य २॥)

८. भौगोलिक कहानियाँ—लेखक—श्री जगपति चतुर्वेदी। प्रकाशक—श्री रामदयाल अग्रवाल, कटरा अलाहाबाद। पृ० सं० ८६, मूल्य ॥)

९. अरिथमेटिक बहीखाता—लेखक—श्री सागरमल अग्रवाल और श्री रामकुमार अग्रवाल। प्रकाशक—श्री गुप्त-ब्रदर्स मरड़ी, धनोरा। पृ० सं० ७२, मूल्य ।)

१०. गन्धर्व (पद्य)—लेखक—श्री महावीरप्रसाद चौधरी 'विभूति'। प्रकाशक—श्री रामकेवल शर्मा, सद्ग्रंथ प्रचारक कार्यालय, आरोपुर, नौबतपुर (पटना) पृ० सं० ४५, मूल्य ।-)

पत्र-पत्रिकायें

११. नारायण (मासिक)—सम्पादक—श्री नरोत्तम व्यास। प्रकाशन-स्थान—१५१, मछुआ बाज़ार, कलकत्ता। पृ० सं० ४०, वा० मू० २।)

१२. नवयुग (मासिक)—सम्पादक—श्री सत्यदेव विद्यालङ्कार। प्रकाशन-स्थान—मोहता हाउस २९, स्ट्रैण्डरोड, कलकत्ता। पृ० सं० ६४, वा० मू० ४)

१३. विद्यापीठ (त्रैमासिक)—सम्पादक—श्री आचार्य भगवानदास और श्री नरेन्द्रदेवजी। प्रकाशन स्थान—ज्ञान-मण्डल, काशी। पृ० सं० १२०, वार्षिक मूल्य ४)

१४. भारतेन्दु (मासिक)—सम्पादक—श्री ज्योतिप्रसाद मिश्र 'निर्मल'। प्रकाशन-स्थान—शिक्षा-सदन कटरा, प्रयाग। पृ० सं० १०४, वा० मूल्य ५)

संसार का आशामय भविष्य ?

'दि रिव्यू ऑफ़ रिव्यूज़' के सितम्बर-अक्तूबर के अंक में श्रीयुत विकहम स्टीड लिखते हैं—

"जब कि संसार पारस्परिक ईर्ष्या, द्वेष और असन्तोष से पूर्ण है, तब एक क्षण के लिए यह विचार (संसार का शान्तिमय भविष्य) एक काल्पनिक और हवाई ख़याल के सिवा कुछ नहीं दीखता। चीन की गड़बड़ी अभी ठीक नहीं हुई, भारतवर्ष में बोलशेविक आन्दोलन एक नई विपत्ति लाने के प्रयत्न में है, लिथुआनिया राष्ट्र-संघ और पोलैण्ड का मुक़ाबला करना चाहता है, हँगरी अभी तक रूमानिया के साथ उलझा हुआ है, जर्मनी राइनलैण्ड ख़ाली कराने और आस्ट्रिया जर्मनी का संघ बनाने की कोशिश में है, और दक्षिणी स्लैव ऐसी क्रान्ति करने पर तुले हुए हैं, कि मालूम होता है कि अब सर्ब, क्रोट और स्लोवन लोगों का एक संघटित राज्य रहेगा ही नहीं।"

इसके आगे फिर वह लिखते हैं—

"तथापि यदि हम इसे बिलकुल ठीक दृष्टि से देखें तो ये सब तथा ऐसे अन्य उदाहरण विस्तृत अन्तर्राष्ट्रीय बन में कुछ अकेले वृक्ष से दिखाई देते हैं। ये स्वयं जंगल नहीं हैं, और न ये निश्चित रूप से बढ़ेंगे ही। संसार के विचारशील नागरिकों को चाहिए कि वे सम्पूर्ण वन को गम्भीरता से देखें। यद्यपि यूरोप इस समाप्त होने वाले दशक में, जिसे हम शान्ति का काल कहते हैं, बहुत आगे बढ़ गया है, तथापि वह अभी परिवर्तनशील अवस्था में है। आगामी दश वर्षों में भावी यूरोप का ख़ाका बन जायगा और आने वाली सदी के लिए यूरोपीय सभ्यता का स्वरू निश्चित हो जायगा। इसकी तो कल्पना भी नहीं की जा सकती कि संसार के इतने छोटे और घने बसे हुए भाग में जातियाँ अकेले रहना पसन्द करें और ऊँची-ऊँची व्यापारि दीवारों, पासपोर्ट के बन्धनों और यातायात की बाधा एवं व्यापार के बाधक साधनों के द्वारा अपने पड़ोसियों से अलग रहें। जब तक जंगली पड़ोसियों से अपनी र करना ही सरकार और जनता का मुख्य कर्तव्य था, तब त यह स्वाभाविक था कि सुरक्षा की तरफ़ इतना ध्यान दि जाय। परन्तु जब इस रक्षा का अर्थ युद्धोपयोगी साम के पैदा करने के लिए व्यावसायिक स्रोतों की रक्षा कर हो गया, तब यह भी आवश्यक हो गया कि कर-दाताओं आयात पर कर लगाकर अथवा सहायता देकर उन व्य सायों के रक्षा की प्रार्थना की जाय। इसलिए, शान्ति प्रस्ताव का प्रेरक भाव बहुत अधिक बढ़ रहा है और आ जाकर वर्तमान स्थिति बिलकुल असह्य हो जायगी। जाति आने जाने की अधिक स्वतन्त्रता, व्यापार की बहुत स्व न्त्रता और परस्पर सहयोग की अधिक माँग करें चाहे तो इसका परिणाम यह हो कि 'यूरोप के संयुक्त (United States of Europe) बनने की ओर ल का ध्यान खिंचे या फिर राष्ट्रों के समूहों के संघ-रूप में जाय यह अभी से कोई नहीं कह सकता।"

उपर्युक्त लम्बे अवतरण से पाठक जान गये होंगे श्रीयुत विकहम स्टीड किस आशामय भविष्य का वि कर रहे हैं। वे गत युद्ध के बाद के इन दश सालों शान्ति-काल मान रहे हैं और यह स्वप्न देख रहे हैं कि अब युद्ध-काल गया और शान्ति का साम्राज्य स्थापित गया। उनकी दृष्टि में चीन, भारत, लिथुआनि पोलैण्ड, हंगरी और रूमानिया आदि के झगड़े बहुत उपेक्षणीय हैं। वे संसार की राजनीति पर कोई प्रभाव डाल सकेंगे। यदि उनकी स्थिति अधिक भयंकर भी हो जिसकी संभावना नहीं है, तो भी वे संसार को वि हानि नहीं पहुँचा सकेंगे, क्योंकि वे अकेले हैं।

हम बहुत अधिक प्रसन्न होते, यदि वस्तुतः यही स्थिति । परन्तु ऐसी स्थिति है नहीं । हमें आश्चर्य तो तब है, जब हम यह देखते हैं कि उपर्युक्त पंक्तियाँ श्रीयुत स्टीड जैसे प्रामाणिक अन्तर्राष्ट्रीय नीति के विशेषज्ञ खनी से लिखी गई हैं ।

ह संसार की विकट स्थिति से अपरिचित हों, यह बात हम इसी पत्र के कई अंकों में भावी युद्ध की संभावना ार कर चुके हैं । इंग्लैण्ड के सेनापति कैनवर्दी और ऐतिहासिक वैल्स की युद्ध की संभावना की सम्मति हम इसी पत्र में दे चुके हैं ।

स्तुतः संसार की स्थिति बहुत भयंकर है । किलौग तावों से संसार में शान्ति न होगी । निकट-भविष्य में श्यम्भावी है । केवल उपरिलिखित देशों की स्थिति नीय नहीं, परन्तु इंग्लैंड और अमेरिका का वैमनस्य, की महत्त्वाकांक्षायें, जापान और इंग्लैण्ड की पूर्व में र्धा आदि बहुतसी बातें हैं, जो संसार की शान्ति-भंग कारण होंगी । इस सम्बन्ध में हम 'त्यागभूमि' के में विस्तार से लिख चुके हैं, इसलिए यहाँ दुहराने की कता नहीं ।

न्त में हम श्रीयुत स्टीड की एक बात की आलोचना बिना नहीं रह सकते । उन्होंने उपर्युक्त देशों की स्थिति नीय कहा है, जो ठीक नहीं है । हम गतांक में बता हैं कि बलकान-राष्ट्रों की स्थिति ऐसी है कि उनमें छोटी-गारी उड़ने से सारे यूरोप में आग लग सकती है । र्मनी, फ्रांस और इटली बलकान-राष्ट्रों की स्थिति से ठाने के लिए अवसर की प्रतीक्षा कर रहे हैं । भारत-की जागृति को श्रीयुत स्टीड ने बोलशेविक आन्दोलन है, इससे उनकी मनोवृत्ति का पता लग सकता है । ार शस्त्रास्त्रों की तैयारी कर और ऊपर से शान्ति लाप कर दूसरों की आँखों में धूल झोंकने का र्थ ही जायगा ।

ांस और इंग्लैण्ड का समझौता

ांक में हमने विश्व-शान्ति के प्रस्ताव की निरुपयो-ाते हुए फ्रांस और इंग्लैण्ड में परस्पर एक सन्धि का निर्देश किया था। आज हम उसके सम्बन्ध में कुछ अधिक परिचय देना चाहते हैं।

वाशिंगटन की निःशस्त्री-करण परिषद् में, जो १९२१-२२ में हुई थी, और मार्च १९२७ की जिनेवा की परिषद् में जंगी जहाज़ों की सीमा नियत नहीं की जा सकी थी। राष्ट्र-संघ ने उस समय एक निःशस्त्री-करण उपसमिति नियत की थी। उस समय फ्रांस और इंग्लैण्ड इस प्रश्न पर एक-मत न हो सके थे। फ्रांस कहता था कि सब तरह के छोटे-बड़े जहाज़ का वज़न जोड़ लो और यह निश्चित कर लो कि इतने टन से अधिक की जलसेना न रहने पावे। इंग्लैण्ड कहता था कि प्रत्येक प्रकार के जहाज़ का अलग-अलग हिसाब करो और फिर यह तय करो कि हर प्रकार के जंगी जहाज़ कितनी संख्या में बनाये जायँ। यह झगड़ा दोनों में बहुत समय तक चलता रहा। अब १७ मास के बाद दोनों ने एक समझौता किया है। फ्रांस ने छः इञ्ची तोप वाले क्रूज़रों और छः सौ टन तक की पनडुब्बियों को छोड़ कर अन्य जंगी जहाज़ों को सीमित करना मान लिया है। इंग्लैण्ड ने फ्रांस की इस रियायत के बदले यह मान लिया है कि फ्रांस जितनी चाहे स्थलसेना रख सकता है। दोनों देशों ने एक दूसरे को विपत्ति के समय जहाज़ों द्वारा सहायता पहुँचाने का भी समझौता किया है।

इस समझौते से अमेरिका बुरी तरह बिगड़ा है। वस्तुतः बात है भी ऐसी ही। इस समझौते से जंगी जहाज़ों की सीमा किसी तरह नियत न होगी। युद्ध के समय सभी व्यापारिक जहाज़ छः इञ्ची तोप वाले बनाये जा सकेंगे। अमेरिका का कहना है कि उक्त समझौते में उन्हीं जहाज़ों की संख्या नियत की गई है, जिनकी उसे अधिक आवश्यकता है। फ्रांस और इंग्लैण्ड के राजनीतिज्ञ इसे केवल पारिभाषिक विवाद (technical despute) कह कर दूसरे देशों का ध्यान इधर से हटाना चाहते हैं, परन्तु इससे कोई लाभ नहीं होगा। अमेरिका के दिल में उनके प्रति एक गहरा सन्देह पैदा हो गया है और वहाँ के पत्र इंग्लैण्ड पर बुरी तरह बिगड़ रहे हैं। इस सन्देह के उत्तर में उसने रूस से राजनैतिक संधि करने की भी धमकी दी है। राष्ट्रपति कूलिज ने तो यह भी कह दिया है कि यदि यह संधि रद

नहीं कर दी जाती, तो वह दस हज़ार टन के क्रूज़रों का निर्माण जो स्थगित हो गया था, फिर करना प्रारम्भ कर देगा । वास्तव में फ्रांस और इंग्लैण्ड ने यह संधि करके बड़ी भारी भूल की है । 'रिव्यू आव् रिव्यूज़' के सम्पादक ने भी इसे बड़ी भारी भूल समझा है ।

चीन का नया शासन-विधान

एशिया जितने वेग से उन्नति कर रहा है, उतने वेग से यूरोप नहीं । एशिया के प्रगतिशील राष्ट्रों में चीन का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है । उसकी जागृति तथा उन्नति के सम्बन्ध में 'त्यागभूमि' के पिछले अंकों में बहुत-कुछ लिखा जा चुका है । अब जो नये समाचार मालूम हुए हैं, उनसे पता चलता है कि एक नवीन शासन-विधान बनाया गया है, जिसके अनुसार वहाँ की सरकार पाँच विभागों—न्याय, शासन, व्यवस्थापक, परीक्षा (सरकारी कर्मचारियों की योग्यता की परीक्षा करने वाला) और नियन्त्रण (जवाब तलब करने और हिसाब-किताब जानने वाला)—में विभक्त की गई है । चांग-काई-शेक चीन के राष्ट्रपति नियत हुए हैं । राष्ट्रपति ही शासन और सेना का सर्वोच्च अधिकारी होगा ।

नवीन चीन अपनी सामुद्रिक शक्ति को उन्नत करने के प्रश्न पर भी गम्भीरता से विचार कर रहा है । नई सरकार साजशियान-शान में जंगी जहाज़ों का सबसे बड़ा केन्द्र बनाने और वहाँ नवीन पद्धति का सैनिक विद्यालय स्थापित करने का विचार कर रही है । यह भी सुना गया है कि पुराने २४ जहाज़ों को रद कर नये ढंग के इतने ही जहाज़ बनाये जायँगे । सरकार अपने कई स्थानों को सुदृढ़ भी कर रही है । यह सब करने के लिए वह क़र्ज़ा लेने का विचार कर रही है । सेना के पुनः संगठन पर भी विचार हो रहा है । जनता की मानसिक उन्नति के लिए भी बहुत प्रयत्न किया जा रहा है । जुआ खेलना और वेश्या-वृत्ति करना बिलकुल बन्द कर दिया गया है । चण्डू, अफ़ीम आदि की खेती भी बन्द की गई है ।

अफ़ग़ानिस्तान की प्रगति

अफ़गानिस्तान के अमीर अमानुल्लाहख़ां जिस वेग से अफ़ग़ानिस्तान को ऊपर लिये जा रहे हैं, उसे देखकर आश्चर्य होता है । उन्होंने अपने यहाँ नये सुधार ज़ोरों से शुरू दिये हैं । उन्होंने पहले शेर अहमदख़ाँ को मन्त्रिमण्डल बना के लिए कहा था, परन्तु उसमें इसके असमर्थ होने अमीर ने स्वयं इस कार्य को अपने हाथ में लिया है । सदीक़ख़ाँ परराष्ट्र-सचिव और महम्मदवलीख़ाँ स्थायी नियुक्त किये गये हैं । अभी अमीर ने एक भाषण देते म्यूनिसिपैलिटी-क़ानून, न्याय में सुधार-सम्बन्धी सार्वजनिक पुस्तकालयों की स्थापना, ६ से १६ वर्ष तक लड़के-लड़कियों को एक साथ ही अनिवार्य शिक्षा देने, में यूरोपीय पोशाक प्रचलित करने और कारख़ाने खोलने के सम्बन्ध में घोषणा की है ।

बहुत से अफ़गान विद्यार्थी विदेशों में भिन्न-भिन्न की शिक्षा प्राप्त करने के लिए जा रहे हैं । टर्की और की सरकारों ने तो यह भी वादा किया है कि विद्यार्थियों को वह अपने ख़र्च से शिक्षा देंगी ।

किसी देश की राष्ट्रीय उन्नति में कट्टर धर्मान्धता अधिक बाधक है । अमीर अमानुल्लाह ने इस बात बहुत अच्छी तरह समझ लिया है । नये आये हुए से मालूम होता है कि उन्होंने धर्मान्ध मुल्लाओं को करना और फांसी देना प्रारम्भ किया है । हज़रत अब्दुर्रहमान तथा उनके साथियों को फांसी चढ़वा क्योंकि वे अमीर के नवीन सुधारों का विरोध तथा धर्म की कट्टरता का उपदेश देकर जनता को उत्तेजित थे । रावलपिण्डी में, १९१९ की अंग्रेज़-अफ़ग़ान पर, अफ़ग़ानिस्तान की ओर से हस्ताक्षर करने वाले अहमदअप्पीजान और स्व० अमीर हबीबुल्ला के इनायतुल्ला भी किसी अपराध में गिरफ्तार किये बहुत संभव है कि इनका अमीर के विरुद्ध किसी में हाथ हो ।

इस तरह भारत का पड़ौसी अफ़ग़ानिस्तान बहुत वेग से उन्नति कर रहा है । हमें उसकी इस प्रगति से बहुत-कुछ सीखना चाहिए ।

देश दर्शन

...ीय सम्मेलनों की धूम

...मास भी भारतवर्ष के लिए विशेष महत्त्व का रहा। ...मास में राजनैतिक चहलपहल बहुत अधिक रही। ...में राष्ट्रीय भावना का अधिकाधिक प्रचार हुआ। ...तंत्रता के भाव का तो बहुत अधिक प्रचार हुआ। ...युक्तप्रान्त पञ्जाब और देहली में प्रान्तीय राजनैतिक ...नों की धूम रही। इन सभी में पूर्ण स्वतंत्रता के ...स्वीकृत किये गये, नेहरू रिपोर्ट का समर्थन किया ...साइमन-कमीशन के बहिष्कार और उसके सह...ियों की निन्दा के प्रस्ताव स्वीकृत किये गये। इन ...नों से भारत के लोकमत के जागृत होने में बहुत ...सहायता मिली है। इनकी कार्रवाइयों ...से जनता की रुचि और अभिलाषा का स्पष्ट ज्ञान ...है। अब वह औपनिवेशिक स्वराज्य का नाम भी ...ना चाहती। इस भाव के उत्पन्न करने का श्रेय ...श्रीयुत जवाहरलाल नेहरू को है। पूर्ण स्वतंत्रता ...रिपोर्ट के एक साथ समर्थन से एक भय होरहा ...कलकत्ते में आगामी काँग्रेस में पूर्ण स्वतंत्रता और ...िक स्वराज्य के प्रश्न को लेकर कहीं दो दल न ...। काँग्रेस का उद्देश्य पूर्ण स्वतंत्रता है और नेहरू ...के अनुसार औपनिवेशिक स्वराज्य की मांग की गई है। यह बहुत संभव था कि कोई सज्जन कांग्रेस का ध्येय बदलने का प्रस्ताव कर देते या कोई पूर्ण-स्वतंत्रतावादी नेहरू कमेटी का विरोध करते। परन्तु श्रीयुत अंसारी ने दिल्ली प्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन में, जो मेरठ में हुआ, स्वयं मद्रास की कांग्रेस में स्वीकृत पूर्ण स्वतन्त्रता के प्रस्ताव को पेश कर स्थिति सुलझा दी है। उनके कथन का सार यह है कि कांग्रेस का ध्येय पूर्ण स्वतन्त्रता है, परन्तु इससे नेहरूकमेटी की रिपोर्ट का विरोध आवश्यक नहीं हो जाता। नेहरू रिपोर्ट केवल कांग्रेस की मांग नहीं है, वह सब दलों की संयुक्त मांग है।

स्वतंत्र-भारत-संघ

श्रीयुत जवाहरलाल नेहरू ने लखनऊ-सम्मेलन के अवसर पर जिस 'स्वतन्त्र-भारत-संघ' की नींव डाली थी, अब उसकी शाखायें कई प्रान्तों में खुल गई हैं और खुलती जा रही हैं। बंगाल की शाखा का उद्देश्य और कार्य-क्रम भी निश्चित हो गया है। संघ का यह मन्तव्य है कि केवल राजनैतिक प्रजातन्त्र से ही भारत स्वतन्त्र न होगा, परन्तु सामाजिक और आर्थिक प्रजातन्त्र की भी उतनी ही आवश्यकता है। राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक इन तीनों गुलामियों से पीड़ित भारत को यह अनुभव करना चाहिए कि तीनों विषमताओं से मुक्ति पाना ही सच्ची स्वतन्त्रता है। इसलिए संघ ने निम्नलिखित कार्यक्रम बनाया है—

१—आर्थिक विषमता दूर करना, धन को समान रूप से बाँटना, सबको समान अवसर देना और सबकी रहन-सहन उन्नत करना।

२—कारख़ानों द्वारा उत्पत्ति के सिद्धान्त पर विश्वास करते हुए भी घरेलू धन्धों को उत्साहित करना। मुख्य व्यवसायों तथा रेल जहाज़ आदि के राष्ट्रीयकरण की ओर ध्यान देना, व्यापार के लाभ में मज़दूरों को हिस्सा देने की प्रथा चलाना, पूँजीपतियों और मज़दूरों के झगड़ों को निष्पक्ष पंचायत द्वारा निबटाना, व्यक्तिगत सम्पत्ति को क़ानून द्वारा परिमित करना, सहयोग-समितियों की स्थापना और मज़दूरोपयोगी आन्दोलन करना।

३—ज़मीन की मालगुज़ारी को समान रूप से निश्चित करना तथा ज़मींदारी की प्रथा नष्ट करना।

४—जात-पाँत, अस्पृश्यता का अन्त करना और अन्तर्जातीय विवाह तथा भोजन का प्रचार करना।

५—स्त्रियों की उन्नति के लिए परदा-प्रथा उठा देना, अनिवार्य शिक्षा, शारीरिक उन्नति तथा स्त्री-पुरुषों के समान अधिकार देना।

६—बहु-विवाह रोकना, वैवाहिक अवस्था का निश्चय करना, दहेज की प्रथा को सर्वथा उठा देना।

७—मौरूसी पुरोहितों तथा गुरुओं का अन्त।

८—भारत की पूर्ण राजनैतिक स्वतन्त्रता के लिए प्रयत्न करना।

संघ के उपर्युक्त कार्यक्रम को पढ़ने से इस नवीन आन्दोलन की प्रगति का पूरा ज्ञान हो जाता है। संघ के कार्यक्रम पर रूस के क्रान्तिकारी विचारों का स्पष्ट प्रभाव दीखता है। यह संघ भी भारत में साम्यवाद का प्रचार करना चाहता है, इसमें सन्देह नहीं। परन्तु साम्यवाद तब तक भारत में फैल नहीं सकता जब तक अंग्रेजी सरकार है। संघ का बहुत-सा कार्य-क्रम ऐसा है, जो भारत में साम्यवादी सरकार के बनने के बाद क्रिया में आ सकता है, और अभी यह निश्चय नहीं कि स्वतन्त्र भारत किस शासन-पद्धति या सिद्धान्त को अपनावेगा। इसलिए हमारा यह दृढ़ विश्वास है कि अभी आर्थिक साम्यवाद के प्रश्न को कार्य-क्रम में निर्दिष्ट रूप में न लेकर वहीं तक लेना चाहिए, जहाँ तक कि वह आज की अवस्था में संभव हो।

बम्बई की हड़ताल समाप्त

इस वर्ष मज़दूरों की प्रगति के इतिहास में बम्बई की हड़ताल बहुत अधिक मुख्य घटना थी। वह गत मास में समाप्त होगई। गत ४ अक्तूबर को पूंजीपतियों और मज़दूरों के प्रतिनिधियों ने सर गुलामहुसेन हिदायतुल्ला की अध्यक्षता में बात-चीत की। बहुत कुछ वाद-विवाद के पीछे यह निश्चय हुआ कि आठ तारीख से हड़ताल बन्द कर दी जाय, और जबतक सरकार द्वारा नियुक्त तीन सज्जनों की समिति कोई निश्चित निर्णय न कर देगी, तबतक मार्च १९२७ के अनुसार वेतन मिलेगा और उन मिलों में, जहां दो क का नियम है, मार्च १९२८ के अनुसार वेतन मिलेगा। स कारी कमेटी यह विचार करेगी कि मिल-मालिकों के व हुए मज़दूरों को मेहनताना देने, उनकी छुट्टी और बर स्तगी, मज़दूरी आदि के सम्बन्ध के नियम और मज़दूरों १७ मांगें कहां तक ठीक हैं। दोनों पक्षों ने उक्त क के निर्णय को स्वीकार करना मान लिया है।

इसी निर्णय के अनुसार गत आठ अक्तूबर को बम्बई मिलें खुल गईं। परन्तु इसी समय सैसूनग्रूप की सब मि में मज़दूरों ने दो तीन करघों पर काम करने से इ कर दिया। शनैः-शनैः बहुत-से मज़दूरों ने हड़ताल कर दो ही दिन में सैसूनग्रूप की १५ मिलें बन्द हो गईं। स्थिति और भी भयंकर हो जाती यदि मज़दूर नेता इ सँभालते। उन्होंने मज़दूरों से कहा कि, यदि तुम्हारी स्वीकृत न की गईं, तो फिर मई में हड़ताल कराई जाय इस पर मज़दूरों ने फिर काम करना प्रारंभ कर दिया। तरह यह लम्बी हड़ताल समाप्त हुई।

दूसरी बार सैसूनग्रूप की मिलें बन्द होने पर सर वि सैसून ने जो विचार प्रकट किये, उनसे पूंजीपतियों का कोण मालूम हो जाता है। उन्होंने कहा—"आजकल भार मज़दूरों का सवाल अधिकाधिक राजनैतिक रंग पकड़ रहा है। लेजिस्लेटिव असेम्बली में बोलशेविक विरोधी केवल इसी कारण नामंजूर हो गया। तो भी आशा है सरकार इसे अगले अधिवेशन में फिर पेश करेगी। की मिलों को विदेशी मिलों का तो मुक़ाबला कर पड़ता है, और हिन्दुस्तान की मिलों का भी मुक़ाबला पड़ता है, क्योंकि इन मिलों में मज़दूरी सस्ती है और रुई आदि पर रेल-भाड़ा भी कम देना पड़ता है।

"इस समय दुनिया में कपड़े की मिलें ज़रूरत से हो गयी हैं, इसलिए बाज़ार में मुकाबला बड़ा ज़बरद जापान की मिलें इसी कारण कम घण्टे काम कर रही अमरीका में अभी ६ महीने तक हड़ताल हो चुकी। मज़दूरी ५ प्रति सैकड़ा कम हो गई है। दुनिया के बाज़ार में कपड़े का स्टाक भरा पड़ा है। हम अपने ऊपर के ख़र्च बेहद कम कर चुके हैं। अ

चालू रखना हो तो दो ही रास्ते हैं—या तो मज़- ना, या आदमी कम कर के बन्दोबस्त चुस्त कर देना। मुझे खुद पसंद नहीं है। इसलिए मज़दूरों को दूसरे रास्ते पर चलने में कोई उज्र नहीं करना ।"

सन्देह नहीं कि उक्त कथन में बम्बई की मिलों हालत कही गई है, वह बहुत हद तक ठीक है, परन्तु वहां के मज़दूरों पर ही मार क्यों मारी जाय? में सरकार की व्यापार-घातिनी नीति का घोर- करना चाहिए। फिर इसी सम्बन्ध में सासून ने को राजनैतिक कह कर जो इसका विरोध करना , वह ठीक नहीं है। यह प्रश्न विशुद्ध आर्थिक है डिस्प्यूट्स बिल का मुख्य उद्देश्य हड़ताल आदि को मज़दूर-आन्दोलन को कुचलने का था। उसका न्याय के नाम पर होना ही चाहिए था।

मन-कमीशन

मास की सबसे अधिक मुख्य और महत्त्वपूर्ण घटना कमीशन का यहाँ आना। गत १२ अक्टूबर को कमीशन ने भारत में प्रवेश किया। इसका स्वागत जनता झण्डे लेकर 'साइमन, हमें तुम्हारी आवश्यकता नहीं वापस लौट जाओ' इत्यादि के नारे लगा कर किया। रात की गाड़ी से ही बम्बई से पूना आ गया। वहां ने बहुत विराट रूप में बहिष्कार का प्रदर्शन किया। में हड़ताल रही। बड़ा भारी जुलूस निकला। बाद जहाँ जहाँ साइमन कमीशन जायगा, उसका करने की पूरी चेष्टा हो रही है।

में साइमन-कमीशन ने अपना कार्य भी प्रारम्भ है, कुछ गवाहियां भी ली हैं, जिनमें बम्बई-सरकार सेक्रेटरी दर्नर की गवाही विशेष महत्त्व की है। सरकार की ओर से साम्प्रदायिक निर्वाचन का किया है। सर गुलामहुसैन हिदायतुल्ला ने जो बम्बई सरकार के जनरल मेम्बर हैं, अपनी गवाही एकान्त और बन्द कमरे में दी। सम्भवतः उन्होंने बम्बई सरकार का विरोध कर साम्प्रदायिकता का समर्थन किया होगा, इसीलिए यह गवाही बन्द कमरे में हुई।

इन गवाहियों तथा साइमन-सहयोगी भारतीय समितियों के सदस्य जिस ढंग से गवाहों द्वारा अपनी ही बात कहलाने का प्रयत्न कर रहे हैं, वह निन्दनीय है। इससे यह मालूम होता है कि जातिगत झगड़ों ने देश को कितना गिरा दिया है और जो सदस्य भारत के नाम पर, प्रजा की सम्मति लिये बिना ही, वाइसराय द्वारा नामज़द किये गये हैं, वे जनता के प्रतिनिधि बनने वा कहलाने योग्य नहीं हैं।

उपर्युक्त बातों से कमीशन के बहिष्कार की आवश्यकता और बढ़ गई है। आत्म-निर्भरता का सिद्धान्त न मानने वालों को भी इन बातों से भारी ठेस पहुँची है, जो निश्चय ही एक शुभ चिन्ह है।

साइमन-कमीशन के कार्य के प्रारम्भ में ही एक बात विशेष महत्त्व की हुई कि साइमन-सहयोगी भारतीय कमेटियों में, जो विभिन्न कौंसिलों ने तथा वाइसराय ने नियत की थीं, और कमीशन में परस्पर अविश्वास उत्पन्न हो गया। साइमन ने भारतीय कमेटियों को यह पहले ही सूचित कर दिया था कि जहाँ तक हो सके, वे चुप-चाप सुनते ही रहें और प्रश्नादि कर अधिक समय न लगावें। यदि कोई प्रश्न भी करना हो, तो अच्छा हो कि वे प्रधान को बता दें। उसने यह भी कहा कि कमीशन का मुख्य कार्य यह है कि १९१९ के सुधार कहां तक कार्यान्वित और सफल हुए। भविष्य के लिए नये प्रस्ताव तो गौण कार्य हैं। इन दोनों बातों से भारतीय सदस्यों में असन्तोष उत्पन्न हो गया है। फिर पूना में सबसे पहले दिन स्टेशन पर सर शंकरन नायर को, जो भारतीय सहयोग-समिति के प्रधान हैं, नहीं जाने दिया। इससे भी असन्तोष बढ़ गया था। अभी तो प्रारम्भ हुआ है, आगे देखिए क्या-क्या गुल खिलते हैं।

कृष्ण

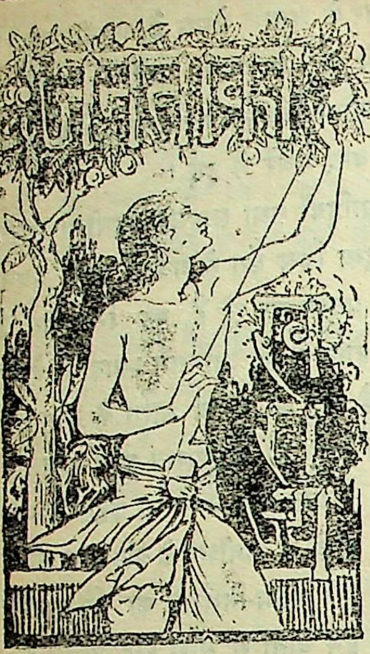

खादी-गीत

अगर है देश प्रेम ठाना ।
पहन लो खादी का बाना ॥
है स्वदेश-उद्धार हित, यह अमोघ हथियार ।
सैनिक बन इसको गहो, होवे बेड़ा पार ।
अगर है स्वतंत्रता लाना ।
पहन लो खादी का बाना ॥
स्वतन्त्रता के यज्ञ में, पहन यही पोशाक ।
कितने ही निज देश-हित, वीर हो गये ख़ाक ।
अगर बलि-वेदी पर जाना ।
पहन लो खादी का बाना ॥
जहाँ 'अहिंसा'-'क्रूरता', का जारी है जंग ।
खादी लाती है वहाँ, नित्य निराला रंग ।
अगर है विजय तुम्हें पाना ।
पहन लो खादी का बाना ॥

सोहनलाल द्विवेदी

राजस्थान में वस्त्र-स्वावलंबन का प्रयोग

नीमच (मध्य भारत) से ६६ मील की दूरी प
बिजोलिया नामका एक ठिकाना (मेवाड़ में) है, जिस
आबादी लगभग १२ हज़ार है और आय ५० ह
से ऊपर है । कोई ८ बरस पहले वहाँ श्री पथिक जी
नेतृत्व में किसानों ने भारी सत्याग्रह किया था, जिसके
स्वरूप उनके कई अबवाब कम करके ठिकाने को उनके
समझौता करना पड़ा था । तभी से वहाँ किसानों
(धाकड-जाति के लोगों की) पञ्चायत संघटित रूपसे
है, और अब भी, स्थिति के बहुत-कुछ बदल जाने पर
पञ्चायत का अधिवेशन हर सोमवार को बिला नाग़ा
है और कोई २००-२५० किसानों के प्रतिनिधि एकत्र
रहते हैं । इस पञ्चायत ने एक प्रस्ताव यह भी पास कि
था कि प्रत्येक धाकड स्त्री-पुरुष को खादी पहनना चाहि
परन्तु समुचित ज्ञान और व्यवस्था के अभाव में खादी
के लिए आनंद और सुख देने वाली वस्तु होने के ब
बोझ-रूप हो रही थी कि श्री रामनारायण जी चौधरी
प्रेरणा से श्री जेठालाल भाई वहाँ जा पहुँचे और उन्हों
किसानों को अपने कपड़े आप तैयार कर लेने की प्रेरणा
और साथ ही पिंजाई, सूत-सुधराई तथा बुनाई, रं
और छपाई की विविध क्रियाओं का ज्ञान उन्हें करा
उन्होंने तथा उनके साथियों ने न दिन देखा न रात,
जाड़ा देखा न गर्मी न बरसात,-न भूख देखी न प्या
भूत की तरह काम किया, जिसका सुन्दर फल यह हुआ
आज कम से कम ६,००० से ऊपर धाकड़ों के यहाँ ख
रोटी की तरह घर की चीज़ हो गई है । लगभग ८० हज़ा
कपड़ा बाहर से आना बन्द हो गया है । वहाँ के पिछले
साल के कार्य का सुन्दर, आशा और जीवन-प्रद व
'हिन्दी नवजीवन' (ता० २७ सितम्बर) में छपा
उसे पाठक अवश्य पढ़ लें ।

सितम्बर के दूसरे और तीसरे सप्ताह मुझे बिजोलि
रहने का और वहाँ के खादी-कार्य के अध्ययन तथा निरी
करने का सु-अवसर मिला । मैंने देखा कि श्री जेठाला
भाई तो अपने ढंग के एक ही खादी-पागल हैं । वह

शक्ति हैं। सचमुच पागल-जैसे दिखाई देने वाले की खूबी उसके निकट रहने पर ही जानी जा है। मुझे वहाँ का काम देखकर बड़ा सन्तोष हुआ। सत्याग्रहाश्रम साबरमती से श्रीमती मीरा-अपना धनुष-बाण या वीणा (पींजन) लिए वहाँ थीं। उन्हें भी वहाँ के काम से बड़ा हर्ष हुआ। अपने जीवन में किसानों को खुद पींजते, बुनते स्त्रियों को छपाई का काम करते देखने का यह सुखद दृश्य था। उन्होंने अपनी पींजन के द्वारा बढ़िया पींजकर दिखाया जिसे किसानों के लड़के-ने बड़े चाव से देखा।

कोई १५ किसानों के बयान लिये, जिनसे मालूम (१०-२५) से लेकर (५०-२००) साल तक की बचत में ही खादी तैयार कर लेने से हुई है। फिर और आनन्द की बात यह है कि इतना करते हुए काम को बिलकुल हानि नहीं पहुँची है। दो फ़सलें भी बाज-बाज धाकड़ के घर तो अपनी ज़रूरत से कपड़ा भी तैयार हो जाता है। कई ऐसे किसान कपड़े के लिए एक पैसा भी नहीं ख़र्च करना घर का कपास और घर ही में सब क्रियायें करके तैयार कर लेते हैं। शंका-शील अर्थ-शास्त्रियों के लिए का दृश्य एक भारी पदार्थ-पाठ है।

दिनों हम वहाँ थे, किसानों के काम के दिन थे। कमी के कारण वे आबपाशी कर रहे थे फिर भी लाल जी के उद्योग से बास की बात में ८००-स्त्री-पुरुषों की सभा हो गई। यहाँ से वहाँ तक की और घर की खादी पहनने वाले आनन्द-मग्न स्त्री-पुरुषों का समुदाय हम लोगों ने पहली ही आँखों से देखा। श्रीमती मीरा बहन ने इसके बधाई दी और अपना हर्ष प्रकट किया। उज्जैन ने, जो १० मील पैदल दौड़ कर बिजौलिया कहा अपने चालीस साल के जीवन में ऐसा मैंने नहीं देखा। खादी के लिए अब किस ज़रूरत रही! नीमच के बूढ़े चोरड़िया के दिन भी सिंगोली से १४ मील बिजोलिया पैदल दौड़े गये और किसानों को बधाई देकर तथा मोसर इत्यादि में फ़ज़ूलख़र्ची न करने की सलाह देकर अपनी यात्रा सफल की। राजस्थान चर्खा-संघ के उत्साही मन्त्री श्री देशपाण्डे तो गद्‌गद् हो गये और कहा कि मुझे तो विश्वास नहीं होता था कि सचमुच इतना काम मेरे गुरुबन्धु जेठालाल ने कर दिखाया होगा।

अभी बिजोलिया में ६,००० लोग और बाकी हैं जिनके घरों में खादी का पूरा प्रवेश नहीं हो पाया है। दूसरे पिंजाई, कताई, बुनाई आदि अभी तो, किसानों की मौजूदा स्थिति और और आवश्यकता को ध्यान में रख कर उन्हें सिखाई गई है। अब श्री जेठालालजी भाई इस बात का भी उद्योग करने वाले हैं कि ये क्रियायें किसान शास्त्रीय रीति से सीख लें, जिससे सूत एक-सा और पक्का हो जाय और कपड़ा और भी बढ़िया बनने लगे। मुझे विश्वास है कि जेठालाल भाई इसमें अवश्य और शीघ्र सफल होंगे।

ह० उ०

राजस्थान में खादी की प्रगति

राजस्थान-चर्खा-संघ के मन्त्रीजी ने कुछ दिन हुए वर्ष भर के कार्य का संक्षिप्त विवरण प्रकाशित किया है जिससे राजस्थान के खादी-कार्य का भविष्य आशामय दीखता है। मार्च सन् १९२६ में संघ ने राजस्थान में नियमित काम शुरू किया था, जिसके फल-स्वरूप अब सैकड़ों बुनकर चर्ख़े का सूत काम में लाने लगे हैं। पहले वे मिल और चर्ख़े के मिश्रित सूत से कपड़ा बनाते थे। राजस्थान में संघ की ओर से ५ उत्पत्ति-केन्द्र और ३ बिक्री-केन्द्र स्थापित हैं। जिनमें अमरसर, गोविन्दगढ़, वासा और मनोहरपुर के उत्पत्ति-केन्द्र, जयपुर राज्य में और बोरावड़, जोधपुर में है। बिक्री के केन्द्र जयपुर, सीकर और अजमेर में हैं। उत्पत्ति और बिक्री के अंकों को देखने से प्रगति स्पष्ट मालूम होती है; जहाँ १९२६ ई० में ६७,१९४) की खादी पैदा हुई वहाँ १९२७ ई० में १,३१,४८०) की और जहाँ १९२६ में केवल ४६,९७८) की खादी बिकी थी वहाँ १९२७ में १,२८,२८७) की खादी बिकी।

लगभग सब तरह के ५,५०० कार्यकर्त्ताओं द्वारा ८० गाँवों में खादी का काम हो रहा है। रेज़ी की जगह राजस्थान अब

तरह-तरह के सुन्दर कपड़े, धोतियाँ, खेस और हनीकौम तौलिये बनाने लगा है। =) प्रति रुपया खादी की कीमत भी घटाई गई है।

राजस्थान के बिजोलिया ठिकाने का हाल पाठक ऊपर पढ़ ही चुके हैं। वस्त्र-स्वावलम्बन का यही काम उदयपुर राज्य के रिंगस और उसके आस-पास के गाँवों में भी शुरू किया गया है। सफलता भी मिल रही है।

करौली में मदन-खादी कुटीर द्वारा भी खादी की उत्पत्ति और बिक्री का काम हो रहा है।

संघ के कार्यकर्त्ता अछूतों के सुधार के लिए भी प्रयत्नशील रहते हैं। ४ पाठशालाओं में १०० अछूत बालक पढ़ रहे हैं। गाँव के लोगों को संघ की ओर से और भी कई तरह की सहायता दी जाती है।

मन्त्रीजी का कहना है कि राजस्थान में खादी की उत्पत्ति तो खूब और सस्ती हो सकती है लेकिन उपयुक्त बिक्री के अभाव में ज्यादा माल तैयार नहीं करवाया जा सकता। अगर राजस्थानी भाई-बहन खादी को आश्रय दें तो संघ के कार्य में अधिक बल आवे।

हमें आशा है, राजस्थान और देश के अन्य प्रान्त चरख़ा-संघ के कार्य को अपनायेंगे। क्या उनमें इतनी भी ममता नहीं है? ग़रीब भाइयों के कार्य्य से थोड़ी भी सहानुभूति नहीं है?

खादी सम्बन्धी कुछ सवाल-जवाब

१—सवाल—खादी क्यों पहनी जाय?

जवाब—(१) इसलिए कि वह शुद्ध स्वदेशी है।

(२) उसके कारण भारत के करोड़ों बेकार लोगों को काम मिलता है।

(३) देश के पढ़े-लिखे और धनवान लोगों का अज्ञान ग़रीब भाइयों से प्रेम का सम्बन्ध स्थापित होता है

(४) ग्राम-संघटन और राष्ट्र-संघटन होता है।

२—स०—खादी ही शुद्ध स्वदेशी क्यों है?

ज०—मिलों के यन्त्र—कलपुर्जे—विदेशी होते हैं, बहुत सी पूँजी विदेशी होती है और मालिक भी प्रायः विदेशी ही। वे अपना लाभ विदेशों में और विदेशी वस्तुओं के व्यवहार में ख़र्च करते हैं। खादी पर किये हुए ख़र्चे की पाई-पाई देश में ही रहती है। अगर ५) रुपयों की खा ख़रीदी जाय तो उसकी क़ीमत का बँटवारा लोगों में इ तरह होगा—

	रु०-आ०-पा०
कपास की क़ीमत	१-१३-६
कतवैये का वेतन	१- ३-०
बुनकर का वेतन	१- ८-०
कार्यकर्ताओं का वेतन	०- ४-९
फुटकर	०- ३-९
कुल	५- ०-०

३—स०—खादी कितनी पैदा होती है?

ज०—गत सात-आठ वर्षों में ही खादी का जीर्णो हुआ है, लेकिन इस थोड़े समय में भी उसकी पैदा बराबर बढ़ती रही है। देखिए—

वर्ष	उत्पत्ति (रुपयों में)
१९२०	× × ×
१९२३	९, ४९, ३८४
१९२४	१९, ०३, ०३४
१९२५	२०, ८७, ००३
१९२६	२३, ४५, ६१४
१९२७	२४, ०६, ३७०

४—स०—खादी द्वारा ग्राम-संघटन और राष्ट्र-सं किस तरह होता है?

उ०—आज अखिल भारतवर्षीय चर्ख़ा-संघ की देख में लगभग ९०,००० कतवैये काम कर रहे हैं और क २,००० गाँव संघटित हो गये हैं।

५—स०—खादी से स्वराज्य कैसे मिलेगा?

ज०—बारडोली का इतिहास इसका उत्तर है। खा के कारण ही वहाँ सुशिक्षित देश-सेवक और किसानों संघटन हो सका, जिसके आगे अंग्रेज़ सरकार को झुकना प और ब्रिटिश सत्ता पंगु और बल-हीन बनी तथा रा राज्य स्थापित हुआ।

६—स०—मँहगी खादी ही क्यों ख़रीदी जाय?

ज०—उसे अपना धर्म समझकर। भिखमंगों

की अपेक्षा बेकारों को जीविकार्थ काम देना श्रेष्ठ धर्म है ।

पर देश-नेताओं की राय

१–उस दिन हिन्दू-विश्वविद्यालय में खादी-भण्डार करते हुए महामना मालवीय जी ने वहाँ के से कहा था—

का वस्त्र पहनना बड़े पुण्य का काम है । अगर देश में अपने पहनने के लिए काफ़ी कपड़ा तैयार तो हमारे देश की ग़रीबी दूर हो जायगी ।''

डितजी ने बताया कि "जब मैं इंट्रेन्स में पढ़ता था मैं अपने देश का वस्त्र पहनने लगा हूं । उस उम्र सोलह बरस की थी । लेकिन जब से महा- जी ने खादी का आन्दोलन शुरू किया तब से मेरा खादी पर भी गया और अब मैं प्रायः खादी का ही पहनता हूँ ।

मैं चाहता हूँ कि विश्वविद्यालय के सब विद्यार्थी भी नें । खद्दर में पवित्रता है, देशभक्ति है, सादगी है ई है । खद्दर पहनने से मनपर उसका बड़ा अच्छा ता है । खद्दर पहनना धर्म की बात है । सब से वह है कि आप सब लोग शुद्ध खद्दर ही पहनें । खद्दर न पहनें तो स्वदेशी वस्त्र ज़रूर पहनें । विदेशी तो आप पूर्ण त्याग करें । मैं सब के शरीर पर या कम-से-कम स्वदेशी वस्त्र देखना चाहता हूँ ।''

२–देहली प्रान्तीय परिषद् के अवसर पर ता० १३ के दिन खादी प्रदर्शनी खोलते हुए राष्ट्रपति अन्सारी ने देश-वासियों से इन शब्दों में अपील —"इस समय देश को शौक़ीनी से बचकर सादगी से ने की अत्यन्त आवश्यकता है । खद्दर पोशाक सब से बढ़िया कपड़ा है । देश में उसका प्रचार राष्ट्र की आर्थिक अवस्था बहुत-कुछ सुधर सकती देश-वासियों को उसे पूर्ण रूप से अपनाना

निक-संस्थाओं में खादी

के कुष्ठ-आश्रम ने रोगियों की पोशाक के लिए है ।

मध्यप्रान्त की दुर्ग और बामेत्रा म्यूनिसिपैलिटियों ने अपने नौकरों के लिए खादी की पोशाक बनवाई है । करांची म्यूनिसिपैलिटी तो गत तीन वर्षों से अपने नौकरों के लिए खादी की पोशाक़ बनाती आ रही है ।

बम्बई म्यूनिसिपैलिटी के निरीक्षण में काम करने वाले किंग एडवर्ड अस्पताल के कई विभागों में खादी ही काम में लाई जाती है ।

रजवाड़ों में खादी

साँगली और विजय नगर की रानियाँ और आवागढ़ तथा औंध के राजा साहब अपने खुद के उपयोग के लिए धड़ाधड़ खादी ख़रीद रहे हैं ।

विदेशी कमीशन और वस्त्र-बहिष्कार—

का आन्दोलन देश में खूब ज़ोर पकड़ रहा है । बंगाल में श्री सुभाष बाबू के नेतृत्व में विदेशी वस्त्र के बहिष्कार के लिए ख़ासा आन्दोलन खड़ा हो चुका है । पूना, बम्बई और अखिल महाराष्ट्र भी खादी की उपयोगिता को समझकर और विदेशी वस्त्र के बहिष्कार-कार्य में जी-जान से भिड़ गया है । महाराष्ट्र के नवयुवक इस सम्बन्ध में खूब परिश्रम कर रहे हैं । संयुक्त-प्रान्त में पण्डित जवाहरलाल नेहरू सम्पूर्ण स्वातंत्र्य और विदेशी वस्त्र-बहिष्कार तथा खादी-प्रचार के लिए निरन्तर आन्दोलन कर रहे हैं । मद्रास प्रान्त के कई देशी राज्यों और ज़िलों में खादी की प्रगति वेग से हो रही है । बिहार में भी खादी का भविष्य आशा-जनक प्रतीत हो रहा है । हर्ष की बात तो यह है कि अब कई ज़िम्मेदार देश-नेताओं का ध्यान ग्राम-संघटन और ग्रामों में राजनैतिक जागृति की ओर स्थायी रूप से आकर्षित हो रहा है । यह देश के सौभाग्य का चिन्ह है ।

हमारी राय में, भारतवर्ष की वर्तमान परिस्थिति में खादी-कार्य से बढ़कर ग्राम-संघटन में सहायता पहुँचाने वाला और उसे आसान बनाने वाला दूसरा कोई ज़रिया नहीं है । अच्छा हो, देश-वासी, ख़ासकर हमारे तरुण भाई, इस रहस्य को शीघ्र ही समझें और उसे मूर्त्त रूप देने लगें ।

त्रिवेदी

स्व-गत

संयम और स्वतन्त्रता जिस तरह एक ही सिक्के के दो बाज़ू हैं, उसी प्रकार नम्रता और निर्भयता भी एक ही चीज़ के दो रूप हैं।

* * *

स्वतन्त्रता में जिस प्रकार अपने अधिकारों की रक्षा की प्रतिज्ञा है और संयम में दूसरे के अधिकारों की रक्षा का आश्वासन, उसी प्रकार निर्भयता में स्वयं किसी से न डरने की प्रतिज्ञा और नम्रता में किसी को न डराने का आश्वासन है।

* * *

दब्बू और ज़ाहिल यों एक-दूसरे के विपरीत गुण रखने वाले मालूम होते हैं, पर असल में दोनों का पिण्ड एक ही है। जाहिल अपने से बड़े जाहिल के सामने दब्बू बन जाता है और दब्बू अपने से दबने वाले के लिए जाहिल बन जाता है।

* * *

जो किसी को डराता नहीं वास्तव में वही किसी से डरता नहीं है। जो औरों को डरा सकता है वह ज़रूर दूसरों से डर सकता है।

* * *

जबतक हमारा मन सरस और नीरस, सुन्दर और अ-सुन्दर वस्तुओं में भेद करता रहता है तबतक सूक्ष्म ब्रह्मचर्य का पालन असम्भव है। और यदि सूक्ष्म पालन की उपेक्षा की गई तो वह स्थूल की उपेक्षा किये के बराबर हो है।

* * *

जीवन मुख्य है या शास्त्र? जीवन मुख्य है या कला? जीवन मुख्य है या सत्ता? जीवन मुख्य है या धन?

* * *

यदि जीवन ही मुख्य है और दूसरी बातें गौण अथवा उसके साधन हैं तो फिर आज हम शास्त्र, कला, सत्ता और धन आदि को जीवन का गला घोंटते हुए क्यों रहे हैं?

* * *

ऐसा जान पड़ता है, जीवन का रस चूस-चूस कर ये चौकीदार स्वयं मालिक बन बैठे हैं और उसे अपना हाथ क़ैदी बना डाला है। पेशवा जिस प्रकार शिवाजी राज के राज्य को हड़प गये और सिन्धिया, हुल्कर पेशवाओं को ताक़ पर रख दिया, उसी प्रकार शास्त्र, सत्ता, धन आदि जीवन को पद-भ्रष्ट करके स्वयं ही अपने क्षेत्रों में राजा बन बैठे हैं!!

❀ ❀ ❀

जीवन मर रहा है, रो रहा है; शास्त्रियों को खाल निकालने से फ़ुरसत नहीं; ज़ीवन चूल्हे में हमारे शास्त्रों का पालन होना चाहिए; काव्य-कथा की स्वकीयाओं और परकीयाओं की मजलिस में राज करने तो हमें जाना ही चाहिए; सत्ता की धौंस हमें ही चाहिए; धन को झुक कर प्रणाम करना ही चाहिए

❀ ❀ ❀

जो अपनी ग़लती को खुद ही देखकर सुधार ले और उसका प्रायश्चित्त कर लेता है वह साधु है; जो बताने पर मान लेता है और खेद प्रकाशित करता सज्जन-सद्गृहस्थ है; जो ग़लती मालूम होने पर करता है वह नर-पशु है; जो सही और ग़लत का नहीं कर पाता या जो ग़लत को सही और सही को मानता है, वह पशु है।

❀ ❀ ❀

व्याकरण भाषा का चौकीदार है, पति नहीं। वह पर हुक्म नहीं चला सकता; उसका काम है सिर्फ़ समय भाषा की रक्षा करना और आमतौर पर उसकी में रहना।

ह०

घर का हाल

ों से अनुरोध

भूमि के शुरू व अन्त के पृष्ठों में विज्ञापनों के हते हैं। इन में मंडल से प्रकाशित पुस्तकों की अलावा ग्राहकों के सम्बन्ध की कई लाभदायक भी रहती हैं। अतएव प्रत्येक अंक के इन पृष्ठों को लिया करें।

संगठन' पर पुस्तक

अंकों में 'ग्राम-संगठन' पर सर्वोत्तम पुस्तक लेखक महाशय को ५००) पुरस्कार देने की काशित हुई थी। हर्ष की बात है कि श्री रामदास एम. ए. ने यह पुस्तक लिखना शुरू कर दी है। कोई महाशय इसके लिए प्रयत्न न करें।

एजन्ट

) वैतनिक एजन्ट श्री अनन्तराम वर्म्मा मंडल से अब ो गये हैं।

न कमीशन पर काम करते हैं:—

) श्री वैजनाथ त्रिवेदी (बम्बई प्रान्त में)
) श्री अशर्फी झा (बिहार में)
) श्री स्वामी हरिहरानंदजी (बिहार में)
) हिन्द-भवन लाहोर (पंजाब में)
) वैनी प्रसादजी जिज्ञासु, कनखल

नत में रुपिये जमा हैं

लिखित महाशयों के हमारे यहां रुपिये जमा हैं। सूचना हमारे पास नहीं आई है कि इन रुपियों किया जाय। कृपया इस संबन्ध में शीघ्र सूचना नुग्रहीत करें।

तिप्रसादसिंहजी, श्रीनिवास आश्रम, मुंगेर की पुस्तकों के लिए) ता० २८-५-२८

रामजी चौबे, हवेली हैदरकुली दिल्ली ता० -२८ वास्ते ब्रह्मचर्य विज्ञान और सभ्यता,

री दयालजी C/o नाथूरामजी मथुराप्रसादजी क्लोथमार्केट दिल्ली

४॥।-)॥	नेतरामजी goods clerk रेवाड़ी
४।)	यति जतनलालजी मंत्री "महावीर पुस्तकालय" जैन मंदिर, रायपुर
१॥)	रतनलालजी भटनागर, बगदाद
५≡)	हुक्मीचन्दजी सुराणा उदयपुरवाले धूधड़का स्टेशन दलौदा जि० मन्दसौर
५)	हजारीमलजी लालचंदजी बैजाम बाजार, हैदराबाद (दक्खिन)
२।)	डी० जे० बुकडिपो जोधपुर
४॥=)	हरवंशसिंहजी राठौर, 1/7 R. R. हैदराबाद (दक्खिन)
५)	अंदारजी गंगाजी कमीशन एजेंट गंगोदर

मंडल की पुस्तकें मिलने के पते

(१) हिन्दी-भवन होस्पीटल रोड, लाहोर
(२) उषा पुस्तक-भंडार, दहली
(३) नेशनल बुकडिपो, दहली
(४) हिंदी पुस्तक एजन्सी, बनारस सिटी
(५) भारत-जीवन पुस्तकालय, बनारस सिटी
(६) पुस्तक-भवन, बनारस सिटी
(७) गंगापुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ
(८) हिन्दी मंदिर, प्रयाग
(९) साहित्यभवन लिमिटेड, प्रयाग
(१०) हिन्दी साहित्य कार्यालय, लहरियासराय
(११) हिंदी पुस्तक एजन्सी (२०३ हरिसन रोड) कलकत्ता
(१२) चांद बुकडिपो (१९५-१ हरिसन रोड) कलकत्ता
(१३) कलकत्ता पुस्तक भण्डार (१७१ ए हरिसनरोड) कलकत्ता
(१४) हिन्दी साहित्य एजन्सी, मुरादपुर, पटना
(१५) साहित्य-रत्न भंडार, आगरा
(१६) पाराषर पुस्तक-भंडार, आगरा
(१७) गिरिधारी लालजी मिश्र, इटावा (यू० पी०)
(१८) डी. जे. बुकडिपो, जोधपुर
(१९) सुखसंचारक कम्पनी मथुरा
(२०) हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, बम्बई

पुस्तकों का विषय, उनकी पृष्ठ संख्या और मूल्य पर विचार कीजिए

अन्य प्रकाशक प्रायः १०० पृष्ठों की पुस्तक के लगभग ।।) या ।।=) मूल्य रखते हैं

पर मंडल इतने ही पृष्ठों का मूल्य केवल ।) रखता है

श्रीरामचरित्र

लेखक—महाराष्ट्र के प्रसिद्ध इतिहासकार रा०ब०श्री०चिन्तामणि विनायक वैद्य एम० ए०

श्री मद्वाल्मीकीय रामायण आदि प्राचीन ग्रन्थों के आधार पर बड़ी ही रोचक शैली में यह ग्रन्थ लिखा गया है। अन्त में एक खोजपूर्ण निबन्ध भी है जिसमें तत्कालीन भारतवर्ष का ऐतिहासिक दृष्टि से अवलोकन किया गया है। पृष्ठ ४४० मूल्य १।)

भारत के स्त्रीरत्न

प्रथम भाग—पृष्ठ ४१० मूल्य १)

दूसरा भाग—पृष्ठ ३३० मू० ।।।-)

दोनों भागों में प्राचीन भारत की पतिव्रता बीर विदुषी भक्त कोई ९१ स्त्रियों की जीवनी है।

हमारे ज़माने की गुलामी

यदि आप अपने देश को गुलामी से छुड़ाने का उपाय जानना चाहते हैं तो इस पुस्तक को जरूर पढ़िये। मूल्य ।)

गोरों का प्रभुत्व

लेखक—बा० रामचन्द्र वर्मा

विषय नाम से ही प्रकट है। प्रत्येक भारतवासी को इसे पढ़ना चाहिए। पृष्ठ सं० २७४ मू०।।।=)

आत्म-कथा

लेखक— महात्मा गाँधी

इस समय लोक प्रसिद्ध महात्मा गाँधी अपनी जो आत्म-कथा अपने गुजराती साप्ताहिक-पत्र 'नवजीवन' में लिखते रहे हैं, वह भारत की प्रायः सभी भाषाओं में ही नहीं वरन् विदेशी भाषाओं में भी अनुवादित हो कर प्रकाशित हो रही है। पुस्तक का इससे अधिक परिचय देना व्यर्थ है। यदि आप महात्माजी के आदर्श-जीवन का रहस्य जानना चाहते हैं तो इस पुस्तक को अवश्य पढ़िए। पृष्ठ ४१६, पर प्रचार के लिए मूल्य लागत से भी कम अर्थात् केवल ।।=) रखा गया है।

अन्य उपयोगी पुस्तकें

आत्मोपदेश	मू०	।)
स्वाधीनता के सिद्धान्त	,,	।।)
दिव्यजीवन	,,	।=)
शिवाजी की योग्यता	,,	।=)
चीन की आवाज	,,	।-)
क्या करें ? टाल्स्टाय	,,	।।=)
द० अ० का सत्याग्रह	,,	१।)
कर्मयोग	,,	।=)
तरंगित हृदय	,,	।≡)
घरों की सफ़ाई	,,	।)
आश्रम हरिणी	,,	।)

ब्रह्मचर्य-विज्ञान

इस पुस्तक में लेखक ने ब्रह्मचर्य की महिमा और विधि के विषय में बहुत अच्छा संग्रह किया है जो सर्व साधारण और विद्यार्थी युवकों के लिये बहुत ही उपकारक है। प्राचीन ग्रन्थों के बहुत ही स्फूर्ति दायक और समय पर काम देने वाले अवतरण दिये हैं। सभी विचारणीय विषयों का समावेश है। हरेक गृहस्थ को अपने पास रखनी चाहिए। पृष्ठ ३७४, मू० ।।।-)

सामाजिक कुरीतियां

लेखक—महात्मा टालसटाय

टालसटाय के लेखों ने और ग्रन्थों ने रूस और यूरोप के पढ़े लिखे लोगों में महान् क्रान्ति उत्पन्न कर दी है। यह भी वैसी ही पुस्तक है। पृष्ठ २८० मूल्य ।।=)

हाथ की कताई बुनाई

अनु० रामदास गौड़ एम० ए०

यह वही पुस्तक है जिस पर लेखकों को एक हजार रुपिया इनाम मिला था। पृष्ठ सं० २६७ मू० ।।

अनोखा

अनु० ठा० लक्ष्मणसिंह बी० ए०

फ्रांस के प्रसिद्ध क्रान्तिकारी लेखक विक्टरह्यूगो का प्रसिद्ध उपन्यास। पृष्ठ सं० ४७४ मू० १।

मिलने का पता—सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर

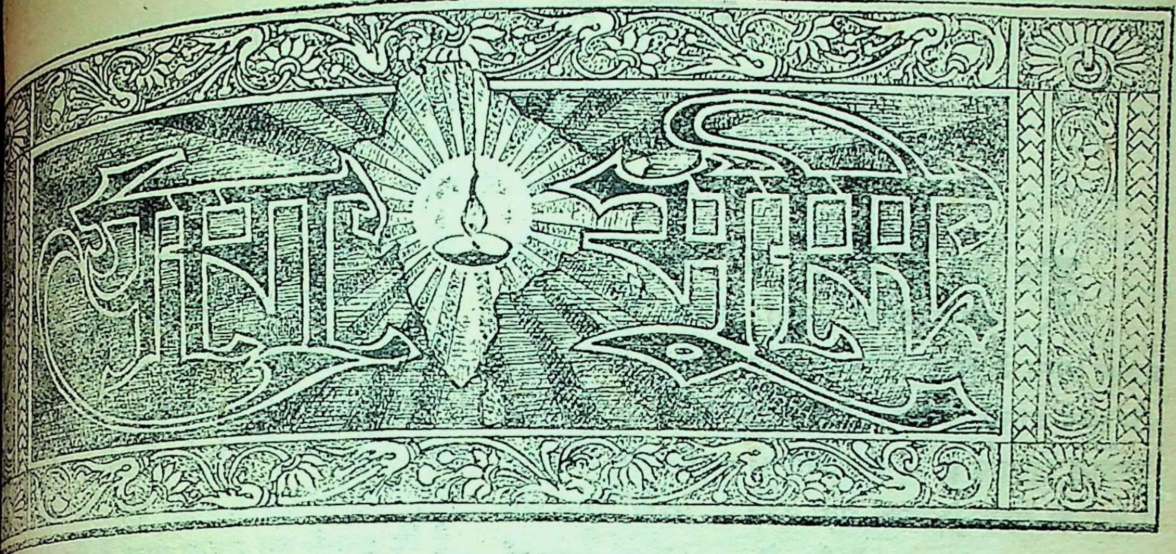

(जीवन, जागृति, बल और बलिदान की पत्रिका)

आत्म-समर्पण होत जहँ, जहँ विशुभ्र बलिदान ।
मर मिटवे की साध जहँ, तहँ हैं श्रीभगवान ॥

सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर ।
मार्गशीर्ष संवत् १९८५

अंश ३
पूर्ण अंश १५

मुझसे क़रीब था

मुझमें समाया मैं तो जान भी न पाया तुझे,
कैसे कहूँ तेरा छिप जाना ही अजीब था ।
तेरा ही निशान बेनिशान कहते थे लोग,
तेरा क्या मकान ऐसा वतन ग़रीब था ।
सबमें तूही था, सब वस्तुओं से भिन्न भी था,
सबके ख़यालों में सभी का तू हबीब था ।
घूमता फिरा मैं तुझे देखने को हृदयेश,
तू तो यहां मेरे पास मुझसे क़रीब था ।

रामाधीनलाल खरे

रावी से कुमारी तक

['त्यागभूमि' के लिए]

(३)

इस लेख में मैं एक ऐसे विषय पर अपने ख़याल ज़ाहिर करना चाहता हूँ, जिसपर मद्रास प्रान्त में ख़ासा वाद-विवाद छिड़ सकता है। मद्रास मद्रास प्रान्त में ख़ासा वाद-विवाद छिड़ सकता है। मद्रास और अन्य प्रान्तों के अपने देशभाइयों को मैं साहस-पूर्वक विश्वास दिलाता हूँ कि इन बातों को कहते समय मेरे दिल में देश की अच्छी-से-अच्छी सेवा करने के उम्दा भाव और ज़ोरदार लगन काम कर रही है। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि आज का मद्रास प्रान्त ख़ास तौर पर एक हिन्दू-प्रान्त है और किसी भी अ-हिन्दू संस्कृति का उसपर बहुत थोड़ा असर पड़ा है। सैकड़ों वर्षों से वहाँ ईसाई और मुसलमान रह रहे हैं और कई तरह से बड़ी सरगर्मी के साथ अपना-अपना प्रचार-कार्य कर रहे हैं। पिछले दिनों दोनों जातियों को इस प्रान्त पर काफ़ी राजकीय प्रभुत्व प्राप्त था। आज भी उनका प्रभाव किसी क़दर कम नहीं है।

दक्षिण का ईसाई-धर्म

भारतीय ईसाइयों की आबादी का एक बड़ा भाग मद्रास में रहता है। उनकी तादाद के मुक़ाबले में उनकी शिक्षा और आर्थिक दशा का प्रभाव बड़ा अ-सम है। अगर मैं भूलता नहीं हूँ, तो, अकेले केड से १२ मील दूर त्रावणकोर के नागरगैल नगर में कैथोलिक, सीरियन, प्रोटेस्टेन्ट आदि कम-से-कम २७ मिशन एक ही साथ काम कर रहे हैं। उनके अपने कालेज, स्कूल, कारख़ाने और फ़ैक्टरियाँ हैं। ज़मीन और इमारतों के रूप में वे विशाल सम्पत्ति के मालिक हैं। सारा नगर एक प्रभावशाली और समृद्ध ईसाई उपनिवेश के रूप में बसा हुआ है, जहाँ लोग सम्पूर्ण धार्मिक, आर्थिक और राजनैतिक स्वातन्त्र्य का सुख लूटते हैं। मद्रास के ईसाइयों में ज्यादातर संख्या उन्हीं हिन्दू लोगों की है, जो ईसाई बन गये हैं। इनमें भी ज्यादा तादाद नीच जाति या जातिहीन हिन्दुओं की है। इनमें से अधिकांश, ईसाई हो जाने पर भी, अन्तर्विवाह और अन्तर्भोज के मा पुराने जाति-बन्धनों से बँधे हुऐ हैं। मैंने तो यह था कि गिरजाघरों तक में जातिवार जगहें सुरक्षित जाती हैं। इस तरह ईसाइयों ने इन लोगों को पूजा के देव और देव-मन्दिरों की भी सुविधा कर दी है; हि इतनी सुविधा न दे सके। इससे यह तो साफ़ ज है कि कम-से-कम मद्रास प्रान्त में जितनी छाप हि की ईसाई-धर्म पर पड़ी है उतनी ईसाई-धर्म की हि पर नहीं। मद्रास के ज्यादातर ईसाइयों के भी मनोवृत्ति काम करती है, जो बहुतेरे हिन्दुओं के भीतर कारण धार्मिक और सामाजिक मामलों में विचार-आचार-स्वातन्त्र्य और व्यवहार-स्वातन्त्र्य विषयक अनिष्ट हो रहा है।

दक्षिण के हिन्दू और द्राविड़ संस्

मद्रास के मुसलमानों की बात दूसरी है। उन एक पौरुषेय (Virile) जाति है, जो अरबी और तीय रक्त के संयोग से बनी है। अब वे सब एक हिल-मिल गये हैं। मद्रास के मुसलमान, उत्तर-मुसलमानों से भिन्न, धनी व्यापारी हैं।

मद्रास में हिन्दुओं की आबादी ही ज्यादा जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, शिक्षा और योग्यता की दृष्टि से, सारे भारत में उनका स्थान उनका हिन्दू-धर्म दक्षिण-भारत का एक ख़ास प्रकार है। यह कहा जाता है कि अधिकांश मद्रासी ऐसे जिनमें आर्य-रक्त का बहुत थोड़ा हिस्सा पाया उत्तर-भारत के मूल आर्यों की संस्कृति, उनका-सा वैसे भाव भी इनमें कम-से-कम पाये जाते हैं।

सारा प्रान्त भाषा के अनुसार चार जुदे-जुदे बँटा हुआ है; तेलुगु, तामिल, मलायालम, और

भाषा और साहित्य में संस्कृत के कई शब्द सुनने हैं, लेकिन इन भाषाओं का संस्कृत से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं है । दक्षिण का हिन्दू-धर्म और हिन्दू-संस्कृति ख़ासकर द्राविड़ी है, आर्य नहीं । संस्कृति का प्रभाव उसपर नहीं के बराबर ।

संस्कृत संस्कृति की पवित्रता

भी मद्रास भारत के प्रान्तों में सबसे अधिक है । देश के संस्कृत-पंडितों में मद्रासियों का ऊँचा है । वे संस्कृत शब्दों का उच्चारण और सही-सही, नियमित और वैज्ञानिक ढंग से करते साहित्य—ख़ासकर उसका वैदिक-विभाग—इस मद्रासियों का बहुत क़र्ज़दार है । मद्रास ने ही अपने दिमाग़ में सुरक्षित रक्खा था, और कंठपाठ के पीढ़ी से दूसरी कई पीढ़ियों तक वेद मात्राओं, उच्चारण, स्वर आदि के साथ अपने में जैसे के तैसे बने रहे । वेदों की सुरक्षा का यह सिलसिला दुनिया के साहित्य के इतिहास में एक मद्रास में ही भारत के तीन सबसे बड़े धर्म-गुरु वेदान्तियों का, भारतीय इतिहास के मध्यकाल हुआ । इनमें से हरएक ने भारत के पौराणिक हिन्दू- अपने-अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप डाली है । शंकर का जन्म त्रावणकोर में हुआ था और वह थे । दूसरे दो रामानुज और माधव संस्कृत के विद्वान् और सुलेखक थे, और अपने इन्हीं गुणों लोगों ने उन्हें आचार्य की पदवी से सन्मानित ।

आर्य-धर्म से भटकना

बौद्धधर्म को भारत से उठा देने का श्रेय या मद्रास के हिन्दुओं को है । इससे यह साफ़ ज़ाहिर कि मद्रास का हिन्दू-धर्म ख़ासकर बौद्धकाल के बाद धर्म है । इसने मूर्ति-पूजक बौद्ध-धर्म के कई रीति-रूढ़ियों और विशेषताओं को अंगीकार किया और उलट-पलट कर अपना वेदान्त उसकी जगह प्रतिष्ठित कर दिया । यह बदला हुआ वेदान्त-धर्म वेदों और उपनिषदों की शिक्षा का समुच्चय था—उसीके आधार पर बना था । फिर भी दोनों के बुद्धिवाद और व्यवहार में कितना फ़र्क़ है ! मद्रास में हिन्दूधर्म के नेताओं और उसके जन्मदाताओं ने वेदों और सूत्रों में कही हुई जाति-प्रथा को आश्रय नहीं दिया था । वैदिक जातियों में से उन्होंने केवल दो को माना था—ब्राह्मण और शूद्र । इस प्रथा में चातुर्वर्ण की मूल-प्रथा का अस्तित्व ही भुला दिया गया और केवल द्विज और अ-द्विज पर ही ज़्यादा ज़ोर दिया गया था । इसमें शक नहीं कि उत्तर के आर्यों ने ब्राह्मणों को सबसे ऊँचा और अधिकार वाला स्थान दिया था, लेकिन ब्राह्मण और शूद्र के बीच की खाई को उन्होंने क्षत्रिय और वैश्यों को बीच में डालकर पाट-सा दिया था । यह बीच-बचाव वाली जातियाँ उन कई सुविधाओं, अधिकारों और रिआयतों का फ़ायदा उठाती हैं, जो शूद्रों के लिए दुर्लभ थे । उत्तर में दूसरे और तीसरे वर्ण के लोगों में और ब्राह्मणों में बहुत-कुछ समानता है । वे यज्ञोपवीत पहनते, वेद-पाठ करते, गायत्री जपते, और यज्ञ-यागादि कर सकते हैं ।

दक्षिण का ब्राह्मण-धर्म

उत्तर वालों ने जहाँ बुद्धि और धर्म के क्षेत्र में ब्राह्मणों की प्रभुता स्वीकार की, वहाँ आर्थिक क्षेत्र में उन्हें दूसरों का मुहताज बना दिया । अपनी जाति में रह कर कोई भी ब्राह्मण न तो ज़मीन का मालिक बन सकता था, न खेती कर सकता था, और न किसी दूसरे धन्धे में पड़ सकता था । अगर वह इनमें से कुछ भी करता, तो उसे अपनी जाति खोनी पड़ती थी । लेकिन दक्षिण-भारत में ब्राह्मणों ने बुद्धि, धर्म और धन आदि सब तरह की प्रभुता को अपने हाथों में केन्द्रित कर लिया । अगर सच पूछा जाय तो, इस दृष्टि से, ब्राह्मणों और शूद्रों में कोई ख़ास फ़र्क़ न था । उस समय जब राज्य-शक्ति अ-ब्राह्मणों के हाथों सौंपी गई, तब भी राज्य-संचालन और राज्यनीति की सच्ची ताक़त तो ब्राह्मणों की ही चीज़ थी । इस तरह ब्राह्मण आध्यात्मिक और भौतिक शक्ति के मालिक बन गये और अपने स्वामित्व को इतना महान् बनाते गये कि फ़्यूडल

(Feudal) यूरोप को छोड़ कर और कहीं भी वैसी सत्ता के अस्तित्त्व का आभास नहीं मिलता। दक्षिण का ब्राह्मण एक असाधारण पुरुष बन गया और उसकी जाति असाधारण पुरुषों की एक जाति बन गई। जो क़ायदे और नियम अ-ब्राह्मणों के भाग्य का फ़ैसला करते थे, वही ब्राह्मणों के सम्बन्ध में चुप रहते थे। किसीका ब्राह्मण-कुल में जन्म लेना ही उसके श्रेष्ठत्व के लिए काफ़ी था; वह अपने ऊँचे आसन से व्यवस्था और नीति का संचालन बड़ी मौज से, मन चाहे ढंग पर, कर सकता था।

दक्षिण का सर्वाधिकारी शासन

मुझे यह शक हो रहा है कि दक्षिण के ब्राह्मणों ने अपने हाथों मनुस्मृति में कई फेर-बदल किये हैं, जिससे वे ब्राह्मण के भेदों को उचित सिद्ध कर सकें। मेरा ख़याल है, आजकल की प्रचलित मनुस्मृति दक्षिण में बनी है। वह योग्य और सूक्ष्मदर्शी विद्वानों की सुन्दर रचना है। सारे मुसलमान ज़माने में और कम-से-कम शंकराचार्य के बाद से तो हिन्दू-धर्म, हिन्दू-वेदान्त और हिन्दू-पुराणों का नेतृत्व दक्षिण के ही हाथों में रहा है। उस ज़माने का सारा हिन्दू-साहित्य—क्या न्याय, क्या पुराण, और क्या वेदान्त—दक्षिण के प्रभाव से प्रभावित है। वर्त्तमान मनुस्मृति में ब्राह्मणों की ऊँची प्रतिष्ठा का संभवतः यही मूल कारण है।

मुझसे कहा गया था कि मलाबार के नाम्बुद्री दक्षिण के ब्राह्मणों में श्रेष्ठ हैं। वे जहाँ दक्षिण की कीर्त्ति के कारण हैं, वहीं उसके लिए अभिशाप-रूप भी हैं। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि आचार्य शंकर नाम्बुद्री थे। रामानुज और माधव दोनों ही शंकर के उपदेशों और उनकी प्रामाणिकता-प्रतिष्ठा के विरोधी थे। मुझे शक है कि ख़ुद शंकर ने जगत्-गुरु की प्रथा को चलाया हो। लेकिन यह सच है कि इस नाम के चारों मठपति उनके अनुयायी हैं और यह माना जाता है कि उन्हीं (शंकर) से मठपतियों की प्रतिष्ठा भी है। मेरे विचार से शंकर ने ही पहले-पहल दण्डी संन्यासियों की प्रथा चलाई, जिन्हें आज भी भारत के साधुओं में ऊँचे-से-ऊँचा सन्मान दिया जाता है।

जाति-भेद की सांकल

नाम्बुद्रियों में संस्कृत सीखने और जीवन को ' रखने का उत्साह-जीवट ख़ूब है और पीढ़ियों से जैसे तैसा बना हुआ है। इसका नतीजा यह हुआ है कि लोग न तो उन्हां छू सकते हैं और न उनके पास हो जा हैं। इस दृष्टि से मद्रास का हिन्दू-धर्म एक ही है।

भारत के दूसरे भागों में अछूत तो हैं; लेकिन के वे लोग नहीं है, जिनकी छाया से छूत फैलती है और अगम्य (Unapproachable) कहाते हैं। मद्रा ब्राह्मण किसी अ-ब्राह्मण के सामने भोजन नहीं करते- नहीं सकते। मुझे इस बात का ठीक-ठीक पता नहीं लेकिन इतना मुझे विश्वस्त सूत्र से मालूम हुआ है वहाँ के रेल्वेस्टेशनों पर जो हिन्दू-उपहार-गृह हैं ब्राह्मणों के लिए कुछ स्थान वा कमरे अलग रहते हैं। ब्राह्मण, किसी अब्राह्मण के हाथ का बनाया भोजन खाना तो दूर, उसे छू तक नहीं सकते। अपने अछूतों जैसा व्यवहार होते देख कर दक्षिण के अ अन्त्यजों के साथ वैसा ही व्यवहार करते और अन्त्यज आपस में ही इस तरह के भेद-भाव रखते हैं। भेद की यह सांकल कितनी कुटिल और कुत्सित है!

नाम्बुद्रियों की आर्थिक प्रभुता

कम-से-कम मलाबार में तो किसी समय नाम्बु सारी ज़मीन के मालिक थे। वे अपनेको 'जेन्मी' या के जन्म-सिद्ध मालिक मानते थे। लोगों का विश्वा कि वहाँ की ज़मीन समुद्र से लौटा ली गई थी और राम ने उसे ब्राह्मणों को दे डाला था। अब भी ज़्या ज़मीन के मालिक ब्राह्मण ही हैं। मुझे मालूम नहीं मद्रास के और हिस्सों में भी यही हालत है या नहीं। उत्तर और पश्चिमी भारत से यहाँ का रंग-ढंग कितना है? इसी तरह नाम्बुद्री धन की डोर को भी अपने में थामे हुए हैं। अंग्रेज़ों के आने से पहले यहाँ के कि ब्राह्मणों के, आज्ञाकारी ग़ुलाम-से थे। लेकिन ब्राह्मण साथ दया और उदारता का बर्ताव रखते थे। कि अपनी ज़मीन से कभी हटाये नहीं जाते थे। उल्टे

पीढ़ियों तक एक ही ज़मीन जोता-बोया करते अंग्रेज़ों ने सम्पत्ति और ठेके के अपने विचारों में लाना शुरू किया, हालत बहुत-कुछ बदल गई किसानों को उससे नुक़सान पहुँचा है। लेकिन तो आज भी धर्मगुरु और ज़मींदार बने हुए हैं। मुझसे कहा था कि एरनाक्यूलम में 'जेन्मी' असामियों पर अपनी सामाजिक प्रभुता का प्रयोग और उन्हें अपनी रक्षा के उपायों से वंचित रखते सरकारी विवरण में भी मैंने इस विषय का लम्बा पढ़ा है। ये बातें मैं उदाहरण के तौर पर लिख रहा पता चलता है कि किस तरह मलाबार के ब्राह्मण अपनी विशाल सत्ता और श्रेष्ठता को संगठित, और जैसी-की-तैसी बनाये हुए हैं।

नाम्बुद्री-नायर अनाचार

मलाबार के नाम्बुद्रियों की कुछ ख़ास रीति-रस्में हैं, और दूसरों में भेद पैदा करती हैं। नाम्बुद्रियों में का सबसे बड़ा आदमी ही शादी कर सकता है; घर सदस्य नायर स्त्रियों के साथ बिना विवाह किये नाजायज़ सम्बन्ध जोड़ लेते हैं। इनके संयोग के की पुरुषों पर कोई नैतिक ज़िम्मेदारा नहीं रहती। मैं जान पाया हूँ, नायर स्त्रियाँ नाम्बुद्रियों के सदस्यों के साथ इस तरह अपना सम्बन्ध जोड़ने में समझती हैं। मुझे तो यह भी कहा गया था कि अविवाहित राजकुमारियों के लिए भी लागू होती तक इसका प्रचार है। मलाबार के नायरों की जाति का ही प्रभुत्व रहता है। वही घर की मालकिन और की अधिकारिणी रहती है। एक नायर पुरुष की का अधिकारी उसका भाञ्जा होता है। लेकिन अगर विवाह-क़ानून के मुताबिक उसके विवाह की हो गई है तो ऐसी हालत में वह अपनी कमाई हुई अपने बच्चों को दे सकता है। मुझे यहाँ विवाह या से ताल्लुक़ रखने वाले क़ानून की चर्चा नहीं करना तो नाम्बुद्रियों की अपनी अनोखी हालत पर ही किया है।

ब्राह्मण-अब्राह्मण-वाद

पश्चिम की सभ्यता के संसर्ग में आने के समय दक्षिण का धार्मिक और सामाजिक वातावरण इस तरह का था। अब तो बहुत-कुछ फेर-बदल हो गया है और दिन-दिन होता जा रहा है। लेकिन जब हम देखते हैं कि दक्षिण-भारत यूरोपीय और ईसाई संस्कृति के प्रभुत्व में अधिक-से-अधिक रहा है तब सामाजिक और धार्मिक विषयों में वहाँ के निवासियों की मनोवृत्ति में जो तरक़्क़ी हुई दीखती है वह आशाजनक नहीं मालूम होती। यह तो साफ़ है कि अंग्रेज़ और ईसाई शिक्षा-संस्थाओं ने मद्रास-वासियों के लिए जो सुविधायें पैदा करदी थीं, उनका पहला फ़ायदा ब्राह्मणों ने उठाया और इसी कारण स्वभावतः आज उनके हाथों में ज्यादा राजनैतिक अधिकार हैं। यह अधिकार और ब्राह्मणों द्वारा सामाजिक मामलों में किये असद्व्यवहार की तीखी वेदना दक्षिण के ब्राह्मण-अब्राह्मण-कलह की मूल कुंजी है। अपने वर्तमान रूप में यह कलह और प्रान्त के सार्वजनिक जीवन में इसके कारण फैले हुए दुर्भाव, राष्ट्र-हित की दृष्टि से, बहुत ही शर्मनाक और हानिकर हैं। ब्राह्मणों की संख्या थोड़ी है और आर्थिक जीवन में वे अ-ब्राह्मणों की दया पर निर्भर हैं। इस कलह का अन्त चाहे जो हो, एक बात बिलकुल ठीक है; वह यह कि जब तक मद्रास के हिन्दू-धर्म में—उसके जीवन और उसकी भावना में—युक्ति-युक्त काया-पलट नहीं होता है, स्वराज्य के मार्ग में हमारी प्रगति ज़रूर ही बहुत धीमी होगी। मैं सर सी० पी० रामस्वामी ऐयर के इस कथन की प्रतीक्षा नहीं करता कि स्वराज्य के मिलते ही इच्छित फेर-बदल सहज हो जायँगे या स्वराज्य ही इनका एकमात्र रामबाण उपाय है। कौन दावे के साथ यह कह सकता है कि जब तक सामाजिक न्याय—समानता—का वातावरण नहीं फैलता, समाज का मज़बूत संघटन नहीं होता, लोग ख़ुद संगठित होकर, त्याग करके इस कार्य में मदद नहीं देते, और अस्थिर अन्याय्य पदों की प्रतिष्ठा को छोड़ नहीं देते, स्वराज्य जल्दी ही मिल जायगा ? वह समाज जिसमें दल-के-दल—नहीं, ज़्यादातर लोग रात-दिन सामाजिक अत्याचार की चक्की में पिसते

रहते हैं, कभी राजनैतिक अधिकारों को पाने की लड़ाई में मिल कर आगे नहीं बढ़ सकता। ख़ासकर ऐसी हालत में जब कि उसके अच्छे सपूत दुश्मन की छावनी में मिलने और उसे अपनी बुद्धि तथा अपने निर्णयों से लाभ उठा देने के लिए उधार खाये रहते हैं और इस तरह उस हौसले को बढ़ाने में मददगार होते हैं!

इतिहास में सत्याग्रह

['त्यागभूमि' के लिए]

(३)

प्राचीनकाल के सताये हुए ईसाइयों ने रोम की साम्राज्य-सत्ता के विरुद्ध जो शान्ति-पूर्ण लड़ाई ठानी थी, उसमें उनका कोई राजनैतिक हेतु न था। फिर भी यह तो निर्विवाद है कि मुख्यतः धार्मिक होते हुए भी यह लड़ाई एक प्रतिष्ठित साम्राज्य के क़ानून और शासन के विरोध में छेड़ी गई थी। अतः यह तो स्पष्ट है कि जब कोई साम्राज्य जनता की आत्मा और विश्वास की स्वतन्त्रता को कुचलने पर केवल इसलिए उतारू हो जाता है कि वह क़ानून द्वारा समर्थित साम्राज्य की व्यवस्था के विरुद्ध या उसे पलट देने वाली है, तब साम्राज्य को दृष्टि में रखते हुए इस प्रकार की लड़ाई विशेषतः राजनैतिक लड़ाई बन जाती है। आज ही की भांति उस समय भी, जब रोम का गारुडीय झण्डा अपने विजयोल्लास में उस समय की जानी हुई सारी दुनिया पर फहराता था, साम्राज्य की सत्ता सर्वोपरि थी। क्योंकि साम्राज्य का स्वार्थ और उसकी संरक्षा का महत्व धर्म की आत्मा के स्वार्थ और उसकी संरक्षा से कहीं बढ़कर था। इस तरह वर्तमान संसार के सारे सुप्रसिद्ध देशों में युद्ध का शुद्ध आत्मिक विरोध, फिर वह कितना ही निष्क्रिय क्यों न हो, गैरक़ानूनी ही समझा जाता है। क्योंकि साम्राज्य खुद एक तरह का सम्प्रदाय-सा बन गया है और हर तरह उसकी रक्षा करना अनिवार्य हो पड़ा है।

अतः इससे इतनी बात तो ज़रूर साफ़ हो जाती है कि चाहे प्राचीन काल में हो, चाहे इस बीसवीं शताब्दि में, धर्म उतना ही राजनैतिक विषय बन सकता है, जितने कि राजनीति से प्रत्यक्ष सम्बन्ध रखने वाले दूसरे विषय। विशुद्ध सांसारिक राजनीति के विषयों में इस प्रथा प्रयोग इसके उदयकाल की दूसरी मंज़िल का द्योतक शान्तिपूर्ण या वैध राजनैतिक विरोध की इस प्रथा के दाता श्री हेनरी थोरो थे। आप अमेरिका के मेसेच्युसे स्थान के एक सुप्रसिद्ध लेखक और वेदान्ती थे। इस प्रथा लिए सुप्रसिद्ध सविनय अवज्ञा (Civil-Disobedienc वाक्य का पहला प्रयोग भी आप ही ने किया था और उन्नीसवीं शताब्दि के मध्य में इसी शीर्षक से आपने निबन्ध लिखा, जो बड़ा लोक-प्रिय हुआ था। श्री थोरो जिस 'विरोध' की कल्पना की थी, वह व्यक्तिगत विरो का एक प्रकार मात्र था; उन्होंने अपने निबन्ध युक्तियुक्त दलीलों से यह सिद्ध किया है कि किन-कि परिस्थितियों में साम्राज्य का विरोध करना क़ानून सम्मान करने वाली देश की रिआया का कर्तव्य-कर्म जाता है। उन्होंने इस विरोध की प्रथा को पूर्णतः अथवा शान्तिपूर्ण बनाने के उपायों का भी अपने निबन्ध अच्छा विवेचन किया है। अपने खोजे हुए इस सिद्धान्त सामूहिक रूप में प्रयोग कर देखने का अवसर श्री थोरो नहीं मिला था। हाँ, अपने व्यक्तिगत जीवन में उन्होंने सविनय अवज्ञा या सत्याग्रह के सिद्धान्त का प्रयोग किया था। बात यह थी कि उस ज़माने में मेसेच्युसेट्स गुलामी की प्रथा का प्रचलन काफ़ी था। इस प्रथा के विरो में अपना सात्त्विक रोष प्रकट करते हुए उन्होंने राज्य अपने हिस्से का कर देने से इंकार कर दिया था, जिसके स्वरूप उन्हें थोड़े समय के लिए कारागार में भी रहना

पहले ही कह चुके हैं कि श्री थोरो के ज़माने में चुसेट्स में गुलामी की प्रथा जीवित थी, लोगों ने इस घोर प्रयत्न किया कि राज्य अपनी ओर से इस को क़तई बन्द कर दे। इस प्रथा के विरोध में प्रचण्ड मत तैयार करने का भी उन्होंने प्रयत्न किया। परन्तु के कुछ ख़ास निश्चित स्वार्थों के कारण लोगों के सारे बेकार हुए। हाँ, राज्य के विरोध में सशस्त्र विद्रोह का मार्ग गुलामी के विरोधियों के लिए खुला था; इन लोगों की संख्या बहुत थोड़ी थी और जिस का ज़िक्र हो रहा है, उस समय तो और भी नगण्य-थी। इतिहास के विद्यार्थियों से यह छिपा नहीं है आगे चलकर लोगों ने इस उपाय का अवलंबन भी लिया जिसका परिणाम अमेरिका का वह सुप्रसिद्ध मुक्ति-युद्ध ar of liberation) हुआ, जिसमें गुलामों को न-मुक्त करने का प्रयत्न काम कर रहा था। लेकिन श्री के सामने तो एक दूसरी ही समस्या खड़ी थी; राज्य-अनुमोदित गुलामी की प्रथा का विरोध करने के लिए किसी शान्तिपूर्ण उपाय की तलाश में थे, दूसरे उनकी भी कोशिश थी कि यह शान्तिपूर्ण उपाय ऐसा होना हिए कि जिससे लोग व्यक्तिगत रूप में भी उसका ग कर सकें। ऐसी परिस्थिति में उन्होंने सविनय ज्ञा, शान्तिपूर्ण विरोध या सत्याग्रह की अपनी आवाज़ बुलंद किया था।

उनकी राय में जब किसी राज्य की शासन-धारा किसी न्यायपूर्ण क़ानून-द्वारा दूषित बना दी जाती है तब हरएक नागरिक का यह कर्तव्य कभी नहीं है कि वह उसे ले, उसमें अपनी स्वीकृति प्रकट करे, या उसे मानते उसमें सुधार करने का प्रयत्न करे, बल्कि उसका कर्तव्य है कि वह उस क़ानून का उल्लंघन करे—उसे न माने, इस तरह उसके प्रति अपना विरोध प्रकट करे। जिस को उन्होंने अपने सविनय अवज्ञा शीर्षक निबन्ध में स्वयं है, उन्हींके शब्दों में वह इस प्रकार है—"अन्याय क़ानूनों का अस्तित्व सिद्ध है; क्या हम उन्हें शिरोधार्य सन्तोष मानें, या उन्हें सुधारने का प्रयत्न करें, अथवा हमें सफलता न मिले हम उन्हें मानते रहें, या हम तत्काल ही उनका उल्लंघन करें—उन्हें न मानें?" श्री थोरो ने इस प्रश्न का जिस सफ़ाई और ज़ोरदार दलीलों के साथ उत्तर दिया है, और जैसी दृढ़ता के साथ अपने उत्तर का समर्थन किया है, उसे पढ़कर बरबस पाठक के मुँह से 'धन्य-धन्य!' निकल पड़ता है। श्री थोरो का वह उत्तर है—एक सच्चे नागरिक का तो यह कर्तव्य है कि वह ऐसे क़ानूनों का तत्काल उल्लंघन करे और राज्य की सच्ची सेवा का भागी बने। उनके मतानुसार अन्यायभरे क़ानूनों के लिए सच्चे नागरिक नहीं बल्कि राज्य स्वयं ज़िम्मेदार है और उसीका यह मुख्य कर्तव्य भी है कि वह लोगों के विरोध की पहले ही संभावना कर ले, अपने मन्तव्यों को सुधारे, तथा राज्य की चतुर किन्तु अल्प-संख्यक प्रजा की क़द्र करे। अगर यह कहा जाता है कि चाहे जैसे अन्यायपूर्ण राजकीय क़ानून का व्यक्तिगत विरोध राज्य जैसी संघटित संस्था के अधिकार और प्रतिष्ठा की अवगणना कर उसे हानि पहुँचाता है, तो इसके उत्तर में श्री थोरो का ज़ोरदार कथन है कि बुराई को स्वीकार कर लेना व्यक्ति और राज्य दोनों की दृष्टि से एक कुत्सित बुराई है; उस हालत में और भी अधिक, जब यह बुराई असह्य होती है और राज्य उसे मिटाने से इंकार कर देता है। ऐसी दशा में सच्चे नागरिक का कर्तव्य तो यही होना चाहिए कि वह अन्यायपूर्ण क़ानून का विरोध करे और अपने-आप राज्य-द्वारा क़ैद या सज़ा का पात्र बन जाय। व्यक्ति और राज्य दोनों के लिए यही हितकर है। क्योंकि, श्री थोरो के शब्दों में, "जिस राज्य में लोग अनुचित दण्ड पाते या अनुचित रूप से क़ैद किये जाते हैं उस राज्य के सच्चे, न्यायशील नागरिकों का उपयुक्त स्थान तो कारागार ही है।" और आज "मेसेच्युसेट्स की स्वतन्त्रतर और आशावादी आत्माओं का योग्य स्थान तो उसके जेलख़ानों में ही है; उनका राज्य की अपनी धाराओं के अनुसार निष्कासित होना या क़ैद किया जाना ही उचित है।" नागरिकों के अपने प्रयत्नों द्वारा राज्य को सीधे रास्ते पर लाने की बात पर भी उन्होंने दृष्टिपात किया है। जब राज्य की बुराइयाँ बढ़ जाती हैं, असह्य हो जाती हैं, तब लोगों द्वारा उसके विरोध में क्रान्ति किये जाने के नैतिक अधिकार का वह ज़ोरों से समर्थन करते हैं। लेकिन प्रश्न तो यह था कि

इस तरह की क्रान्ति नैतिक नियमों और साधनों के अनुकूल कैसे बने ? ख़ास-ख़ास परिस्थितियों में राज्य के विरुद्ध विद्रोह करने के अधिकार की बात तो बिलकुल साफ़ है। क्योंकि स्वयं श्री थोरो ने ऐसी क्रान्ति का इन शब्दों में समर्थन किया है—"सब मनुष्य क्रान्ति के अधिकार का समर्थन करते हैं; अर्थात् वे इस बात को क़बूल करते हैं कि जब किसी राज्य का अत्याचार या उसकी अनुपयोगिता बहुत बढ़ जाय, वह असह्य हो जाय, तो उससे असहयोग व उसका विरोध करना उचित तथा अधिकारपूर्ण है।"

श्री थोरो अपनी दलीलों पर अधिक सूक्ष्म विचार करते हुए कहते हैं—"राज्य एक विशाल यंत्र के समान है और व्यक्ति उसके प्रधान अंग या अवयव हैं। अगर राज्य की जनता का विभाजन राज्य के प्रति उनकी सेवाओं के अनुसार किया जाय, तो जनता का अधिकांश यंत्र की तरह अपना शरीर खपा कर राज्य की सेवा करता दीखेगा, लोग राज्य की स्थायी सेना के सदस्य बनेंगे, नागरिक सैन्य में भर्ती होंगे, तथा जेलर और सिपाही का काम स्वीकार करेंगे। एक दूसरे प्रकार के लोग भी हैं, जो बुद्धि-द्वारा राज्य की सेवा करते हैं।' इनमें धारासभा के सदस्य, वकील, राजनीतिज्ञ, मंत्री, पदाधिकारी आदि का नाम लिया जा सकता है। श्री थोरो का कहना है कि ये लोग अक़सर नैतिक विवेचन नहीं करते; अतः "इच्छा न रहते हुए भी इनके द्वारा शैतान की देववत् सेवा होना संभव है।" इन लोगों के सिवा एक तीसरी तरह के लोग और भी होते हैं, जो संख्या में बहुत थोड़े होते हुए भी अपनी सद्विवेक-बुद्धि द्वारा राज्य की सेवा करते हैं, लेकिन अपने इसी गुण के कारण बहुधा वे लोग राज्य के शत्रु माने जाते हैं। ऐसे लोगों में वीरों, देशभक्तों, शहीदों और सुधारकों आदि की गणना की जाती है। आगे चल कर श्री थोरो कहते हैं कि अगर राज्य का अत्याचार इतना बढ़ जाय कि तुम्हें भी उसका साधन बन कर दूसरों पर अन्याय करना पड़े, तो "राज्य के ऐसे अत्याचारी क़ानून को तोड़ो; अपना जीवन ऐसा बना डालो कि उससे राज्यतंत्र के कल-पुर्ज़ों में प्रति-संघर्ष पैदा हो और वे बेकाम हो जायँ।" क्योंकि, "मुझे तो किसी भी तरह यह देखना है कि जिस बुराई से मैं घृणा करता हूँ उसीका मैं सहायक अंग न बन जाऊँ।" दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि व्यक्तिद्वारा राज्य का विरोध केवल मौखिक विरोध या शिष्टाचारपूर्ण असन्तो या अस्वीकृति तक ही न रह जाय, लेकिन अन्यायपूर्ण क़ानू का प्रत्यक्ष उल्लंघन कर उसे सक्रिय रूप दिया जाना चाहि 'प्रत्यक्ष क्रिया' का यह विचार श्री थोरो की सविनय अव सम्बन्धी विचार-धारा का मूल मौलिक विचार है।

श्री थोरो के सविनय अवज्ञा सिद्धान्त के विश्लेषण पता चलता है कि उन्होंने "सविनय अवज्ञा" की दो निश्चि मंज़िलों का विचार किया था। पहली मंज़िल तो यह कि सरकार के साथ सहयोग न किया जाय, स्वयं थोरो शब्दों में, "सरकार के कामों में भागीदार न बना जाय।" वह सब नागरिकों से ज़ोर देकर "राज्य से अपना हर तर का सम्बन्ध छोड़ देने" की बात कहते हैं। विरोध की दूसरी मंज़िल कर देने से इन्कार करना है, यह मंज़िल पहली फलित परिणाम है। स्वयं थोरो के कथनानुसार प्रत्ये नागरिक को "अपने-अपने कर चुकाने से इन्कार कर चाहिए," "राज्य कोष में अपना हिस्सा जमा करने से वि रहना चाहिए।"

श्री थोरो का यह मत था कि जो लोग मेसेच्युसेट्स में प्रचलित गुलामी की प्रथा को बुरी समझते हुए भी उ बनाये रखने के लिए राज्य के बनाये नियमों और आज्ञाओं का पालन करते या राज्य से सहयोग करते हैं वे दास-प्रथा का अधिक-से-अधिक बुद्धिपूर्वक समर्थन करने वाले और सुधार के मार्ग के भयंकर विघ्न-रूप हैं—"मैं बिलकुल निस्संकोच होकर कहता हूँ कि जो लोग अपनेको सुधारक या दास-प्रथा के विरोधी मानते हैं वे मेसेच्युसेट्स की सरकार से—क्या व्यक्तिगत और क्या साम्पत्तिक—सब तरह का सम्बन्ध तत्काल और हमेशा के लिए त्याग दें, उसका समर्थन न करें। और एक भी बहुमत प्राप्त करने की आशा में अधिकार के सम्मुख सत्य को न भूलें। मेरी राय में अगर ईश्वर उनके पक्ष में है तो बस है, और उन्हें किसी दूसरे मत की प्रतीक्षा न करनी चाहिए। और भी एक बात है; जो आदमी अपने पड़ौसियों से अधिक सत्य का सेवक है, वह अपने-आप में एक मत अधिक रखता है।"

१९८५

—“मैं यह अच्छी तरह जानता हूँ कि अगर एक सौ, या केवल दस आदमी, हाँ, ऐसे दस आदमी नाम मैं विश्वासपूर्वक ले सकूँ, या फिर एक ही आदमी मेसेच्युसेट्स में गुलामों को रखना उन्हें अपने कारबार में स्थान देने से इन्कार करदे, परिणामस्वरूप देश के जेलख़ाने में बन्द रहना स्वीकार तो मैं यह कह सकता हूँ कि अमेरिका से ग़ुलामी आरंभ कितना अल्प है, इस बात की पर्वा न चाहिए; देखना तो यह है कि जो कुछ किया जाय वह हो और अच्छा हो। लेकिन जिसे हम अपना मिशन हैं, उसके सम्बन्ध में केवल बातें बनाना ही हमें प्रिय है।”

तथा ऐसे ही दूसरे शब्दों में श्री थोरो ने मेसेच्युसेट्स कों को “राज्य से अपना सम्बन्ध-विच्छेद” कर लेने सलाह दी थी और फिर “राज्य-कोष में अपना हिस्सा देने से उन्हें मना किया था।”

श्री थोरो के मतानुसार अगर “शान्तिपूर्ण क्रान्ति” संभव है, किसी दशा में उसकी कल्पना की जा सकती केवल एक ही उपाय द्वारा, और वह यही कि राज्य अधिकांश लोग अपना-अपना कर देने से इन्कार कर दें। राज्य के लिए यह कभी संभव नहीं है कि वह अपने नागरिकों की दीर्घकालिक और न्यायपूर्ण माँग अधिक समय तक रोके रहे और ख़ास कर उस दशा में नागरिक अपने विरोध पर डटे रह कर जेल जाने को हो जाते हैं राज्य का निश्चय टिक नहीं सकता। इस श्री थोरो की राय में, राज्य को सुधारने में प्रजा का विरोध बहुत अधिक बलशाली और परिणामकारक होगा। वह कहते हैं—“अगर तरणोपाय यही है कि सारे सच्चे नागरिक जेलों में ठूँस दिये जायँ, या तो बन्द कर दिया जाय, या गुलामी उठा दी जाय तो अपना कर्त्तव्य निश्चित करने में नहीं हिचकेगा। इस साल हज़ार आदमी अपना कर न चुकायें तो परिणाम भीषण या खूनी न होगा, लेकिन अगर हैं तो इसमें शक नहीं कि वे राज्य को निर्दोष लोगों बहाने और उनपर भीषण अत्याचार करने के योग्य बनाने में प्रोत्साहित करते हैं। तथ्यत: अगर ‘मंगल क्रान्ति’ संभव है तो यही उसकी परिभाषा हो सकती है।” इससे यह तो स्पष्ट होता है कि श्री थोरो की “सविनय अवज्ञा-योजना” का निर्माण आत्म-त्याग की शक्ति द्वारा ‘मंगल क्रान्ति’ की तैयारी करने की योजना थी, इसी लक्ष्य को लेकर वह बनाई गई थी।

गाँधीजी की सत्याग्रह-प्रथा ने सविनय अवज्ञा के क्षेत्र में एक क़दम और आगे बढ़ाया है। दक्षिण आफ्रिका में निष्क्रिय प्रतिरोध (Passive Resistance) प्रथा से इस नये सिद्धान्त को अलग करने के लिए उन्होंने ‘सत्याग्रह’ शब्द बनाया। जिस समय उन्होंने ‘सत्याग्रह’ को खोज निकाला वह दक्षिण आफ्रिका के भारतीय प्रवासियों के सुधार सम्बन्धी आन्दोलन के श्रीगणेश का विचार कर रहे थे। सत्याग्रह (मूलतः सत्य + आग्रह= सत्य का हठ, उसे पकड़े रहना) बड़ा व्यापक शब्द है। इसमें उन सब अर्थों की हलचलों का समावेश हो जाता है, जो सत्य और अहिंसा के सिद्धान्त पर टिकी होती हैं। उन्होंने ‘निष्क्रियप्रतिरोध’ वाक्य को इसलिए छोड़ दिया कि उसमें आख़िरी उपाय के रूप में शस्त्र या हिंसा के आश्रय के त्याग की कहीं शर्त न थी। अहिंसा के इस प्रश्न पर श्री थोरो और गाँधी जी के विचार साधारणतः एक हैं। फिर असहयोग अर्थात् स्वेच्छा से राज्य की सेवाओं में सहयोग देने से इन्कार करने की दृष्टि से भी इन दोनों के मत समान हैं। तीसरी बात है, राज्य-कोष में कर न देना, इस सम्बन्ध में श्री थोरो और गांधीजी एकमत हैं। फिर भी, जैसा कि मैं पहले कह चुका हूँ, सत्याग्रह की कल्पना सविनय अवज्ञा की कल्पना से ख़ास बढ़कर है और उससे बहुत कुछ विभिन्न भी है। गांधीजी की सत्याग्रह-कल्पना क्या है और उन्होंने उसे किस रूप में कितना परिष्कृत किया है, प्रस्तुत लेख में इन बातों पर विस्तृत विचार करने का स्थान नहीं है। केवल इतना और कहकर इस लेख को समाप्त करूँगा कि आक्रमणकारी सविनय अवज्ञा-प्रथा की भांति गांधीजी की कल्पना का सत्याग्रह केवल विध्वंसक ही नहीं है, बल्कि उसका अपना निर्मायक अथवा संरक्षक पहलू भी है—सत्याग्रह के कार्यक्रम में इस (निर्मायक) पहलू का बहुत महत्त्वपूर्ण भाग है, वह सत्या-

ग्रह के विध्वंसक पहलू के सक्रिय संचालन में बहुत अधिक सहायता पहुँचाता है। और विध्वंसक पहलू की दृष्टि से भी गांधीजी द्वारा परिष्कृत सविनय अवज्ञा की कई ऐसी क्रमिक सीढ़ियाँ हैं, जो न तो कभी श्री थोरो के दृष्टिक्षेत्र में आई थीं और न प्राचीन ईसाइयों के ही।

आख़िर एक बात और है। गांधीजी की अहिंसा की कल्पना केवल निषेधात्मक नहीं है अर्थात् उसमें केवल हिंसा का अभाव-मात्र नहीं है। वह अहिंसा की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि संसार में घृणा हिंसा के रूप में प्रकट होती है, लेकिन सच्ची सविनय अवज्ञा के मूल में तो प्रतिपक्षी को जीत लेने की भावना काम करती रहती है। गांधीजी के मतानुसार, घृणा और हिंसा का उद्देश तो यह है कि
डालकर प्रतिपक्षी को अपने अधिकार में लाया जाय,
अहिंसक सत्याग्रह का ध्येय तो 'परिवर्त्तन' है,
नियम के सक्रिय प्रयोग द्वारा प्रतिपक्षी के हृदय को
डालना है। अतः गांधीजी की राय में अहिंसक
डरपोक, निर्बल, या कमज़ोर का शस्त्र नहीं बल्कि
से अधिक शक्तिशाली का हथियार है। इस सिद्धान्त
सम्पूर्ण ज्ञान, इसकी प्रतिष्ठा और इससे निकलने वाले
सहज परिणामों का विवेचन करना इस लेख का
नहीं है, अतः इसे मैं यहीं समाप्त करता हूँ।

कृष्ण

शान्ति

मुझे ले चलो वहाँ जहाँ हो, पूर्ण शान्ति-मय सुख का राज।
साम्यवाद का पाठ पढ़ रहा, होकर जहाँ प्रशान्त समाज॥

प्रकृति-प्रदत्त-परम निधियों के,
सभी जहाँ अधिकारी हों।
कोई न हो किसी का अनुचर,
सब स्वच्छन्द विहारी हों॥
परवशता के फन्दे में पड़,
जीना जहाँ हराम न हो।
काम, काम हो मगर जहाँ पर,
आत्म-हनन का काम न हो॥
दीनों के शोणित के प्यासे,
नर-पशु जहाँ न खलते हों।
निरपराधियों के सर पर यों,
जहाँ न आरे चलते हों॥
जहाँ न क्रूरों का शासन हो,
जड़वत् जहाँ समाज न हो।
देश-द्रोही विभीषणों के,
जहाँ कि सिर पर ताज न हो॥

बहता जहाँ स्वतन्त्र समीरण,
उन्नत पथ हों खुले हुए।
सुख-दुःख के सब सम-अधिकारी,
स्वत्व सभी के तुले हुए॥
ओः कायरता है यह भी तो,
मैं अब कहीं न जाऊँगा।
मातृ-भूमि-वन्दिनी, मुक्त हो—
मैं, कपूत कहलाऊँगा॥
मिले अकेले स्वर्ग अगर तो,
वह भी है मंजूर नहीं।
अपने देश-बन्धुओं से अब,
जाऊँगा मैं दूर नहीं॥
गाऊँगा मैं गुण स्वदेश के,
घर-घर अलख जगाऊँगा।
होंगे बन्धन मुक्त बन्धु जब,
'श्याम' तभी सुख पाऊँगा॥

कन्हैयालाल निगम 'श्या

सभ्यताओं की मुठभेड़

जब कोई विदेशी राष्ट्र किसी देश पर विजय प्राप्त करता है, अथवा व्यापार या प्रचार में किसी 'राष्ट्र' पर आक्रमण करता है, तब उसका उसकी संस्कृति पर निर्भर रहता है। यदि विजेता ता दलित राष्ट्र की सभ्यता से उच्च है, तो उसकी विजय संभव है। पर यदि वह सभ्यता में नीचा हो की वह विजय क्षणिक ही होगी। उदाहरणार्थ गॉथ जातियों ने दुर्बल रोम के राज्य पर आक्रमण दबा लिया। पर जंगली और असभ्य होने के अन्त में उन्होंने रोमन सभ्यता स्वीकार कर ली और अधिकांश इटालियन बन गये। इसके विपरीत तों पर रोम ने राज्य किया उन्हें रूमी बना कर ही दरअसल स्थायी विजय सभ्यता और संस्कृति की है, सेना की नहीं। सैनिक या शारीरिक देश-विजय क्षणभंगुर और कमज़ोर रहेगी, पर अपनी सभ्यता के से जो विजय प्राप्त होती है वह सदा के लिए अपना उस देश पर छोड़ जाती है। इस सिद्धान्त के उदा- से इतिहास भरा पड़ा है। भारतवर्ष पर आज कम-से- हज़ार वर्षों से विदेशियों के लगातार आक्रमण हो पर इस सभ्यता के क़िले ने उसे हमेशा बचाया अधिकांश विदेशियों को हज़्म कर लिया।

सभ्यता की इस विजय का यह अर्थ न समझना कि एक विजेता परन्तु कम सभ्य देश का दूसरे किसी प्रकार का असर नहीं होता या किसी सभ्यता को दूसरी संस्कृति से कोई नया सबक़ नहीं मिला चाहिए। सब देशों को एक दूसरे से शिक्षा और रहेगी; पर स्वामी रामतीर्थ के शब्दों में एक दूसरे के कला-हुनर और अच्छे गुण जज्ब कर लेकिन अपना अस्तित्व क़ायम रक्खा। पौधा बाहर से है, लेकिन खुद खाद नहीं बन जाता।

और एशिया का संग्राम हज़ारों वर्षों से चला है और इसमें अधिकांश एशिया की ही विजय हुई है। लेकिन गत दो-तीन शताब्दियों से, जबसे विज्ञान का इस संसार में प्रचार हुआ, यूरोप दुनिया पर राज्य कर रहा है। वैज्ञानिक आविष्कार अधिकतर यूरोप और अमेरिका ही में हुए और विज्ञान ने अपनी उन्नति वहीं की। इसी कारण सारे संसार के आर्थिक सूत्र उसीके हाथ में है। अधिकांश देश उसके उपनिवेश या गुलाम बने हुए हैं। इस राजनैतिक और आर्थिक बंधन से यूरोपीय सभ्यता, भाषा, भेष तथा आचार-विचार को सर्वत्र आदर्श मानने की ओर स्वभावतः प्रवृत्ति हो रही है।

एशिया में सबसे पहले जापान ने यूरोपीय सभ्यता को अपनाना शुरू किया। रूस के साथ युद्ध के अनुभव से जापानियों को यह मालूम हुआ कि पश्चिमी सभ्यता को अपनाने से ही हम उनके बराबर हो सकते हैं। उन्होंने बड़े वेग से परिवर्त्तन करना आरंभ किया और उसका फल हम आज देख रहे हैं कि जापान दुनिया की बड़ी ताक़तों में गिना जा रहा है।

इसके बाद गत महासमर के पश्चात् टर्की में मुस्तफ़ा कमालपाशा ने देश को स्वतन्त्र करके यूरोपीय सभ्यता का प्रचार करना राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक समझा। टर्की की राजनैतिक तथा सामाजिक व्यवस्था में पूर्ण रूप से क्रान्ति हुई, यहाँ तक कि वहाँ यूरोपीय लिपि और भेष धारण करना अनिवार्य कर दिया गया। इसमें कोई संदेह नहीं कि टर्की इस समय एशिया के अत्यन्त उन्नतिशील देशों में से एक है।

टर्की की देखादेखी अफ़ग़ानिस्तान में भी इस क्रान्ति की आँच पहुँची। अमीर अमानुल्लाख़ां ने इस वर्ष सारे यूरोप में यात्रा करके नया अनुभव प्राप्त किया और वह भी शायद इसी नतीजे पर पहुँचे हैं। जहाँ तक दिखाई दे रहा है, अफ़ग़ानिस्तान टर्की का अनुकरण करना चाहता है। ईरान यद्यपि इस समय ऐसी हालत में नहीं है तब भी इस प्रकार के दो देशों के बीच रहकर उसमें परिवर्तन न होना असम्भव-सा जान पड़ता है।

तुर्किस्तान आदि प्रदेशों में, सोवियट रूस के अन्तर्गत होने के कारण, इस प्रकार की क्रान्ति पहले ही हो चुकी है। और अभी तक कुछ पुराण मतवादियों (Conservative) का विरोध रहते हुए भी वे आगे बढ़ रहे हैं। रहे भारतवर्ष और चीन। जावा, सुमात्रा, इंडोचायना इत्यादि एशियायी द्वीपों का हम यहाँ उल्लेख नहीं करते, क्योंकि उनके बारे में काफ़ी जानकारी नहीं प्राप्त होती। यहाँ हमने केवल एशिया के प्रमुख राष्ट्रों का उल्लेख किया है। प्रश्न यह उठता है कि क्या इन देशों का सब बातों में पश्चिम का अनुकरण अन्त में कल्याणकारक होगा और क्या भारत को इन्हींके अनुसार कार्य करना चाहिए।

उपर्युक्त कथन के अनुसार इस संग्राम का उद्गम बहुत पुराना है और कई शताब्दियों से यूरोप ही जीत रहा है। पहले यूरोपीय सभ्यता केवल मध्य और पश्चिमी यूरोप तक ही मर्यादित थी, लेकिन धीरे-धीरे उसने एशिया में पैर पसारना शुरू किया। उसके पूर्वीय आक्रमण से बालकन द्वीप भी नहीं बचा। वर्तमान यूरोप का यह भाग पहले एशियायी सभ्यता के अन्तर्गत था। उत्तर में पीटर दि ग्रेट के समय से रूस ने यूरोपीय सभ्यता को अपनाना आरम्भ किया। उस प्रसिद्ध सम्राट् ने अपने दण्ड के भय से सब प्राचीन प्रथायें तोड़ कर सर्वत्र यूरोपीय आचार-विचार प्रचलित किये। पर्दा, दाढ़ी इत्यादि क़ानून से हटवाये गये। एक शताब्दि में ही रूस यूरोप में सम्मिलित होगया। बोलशेविक राज्य के उद्भव के पश्चात् कुछ यूरोपीय राष्ट्रों ने यह शोर मचाने की कोशिश की कि रूस का हृदय कभी यूरोपीय नहीं हुआ और समय पाते ही उसके एशियापन ने ज़ोर पकड़ा। अब वह सोवियट राज्य है। अस्तु।

यही बात बालकन द्वीपों की हुई। बालकन द्वीपों के बाद रूसी सभ्यता का आक्रमण होना और टर्की का उस सभ्यता के द्वारा प्रभावित होना स्वाभाविक था।

उपर्युक्त वक्तव्य पढ़कर शायद कोई यह पूछ बैठे कि क्या अपने देश की उन्नति के मार्ग में कंटक-रूप प्रथाओं को हटाना आवश्यक नहीं है? इसका उत्तर साफ़ है कि ऐसी प्रथाओं को अवश्य हटाना चाहिए, परन्तु उनको हटाने में और सर्वथा यूरोप का अनुकरण करने में भेद है। इस बात का भी दो पहलुओं से विचार करना होगा। जो देश तन्त्र हैं और जिन्हें यूरोप के राष्ट्रों से मुठभेड़ होने की का है, तथा जो गुलाम हैं और दासत्व से मुक्त होना हैं। वर्तमान समय राष्ट्रसंघर्ष का है। एक महायुद्ध हो है और दूसरे की आशंका है। युद्ध में जो देश एक दूसरे विरुद्ध लड़े उनके अतिरिक्त सारे संसार के बारे में यदि ज़रा सोचें तो दिखाई देगा कि एशिया अधिकांश यूरोप चंगुल में फँसा हुआ है। यूरोप के देशों ने अपना बनाये रखने के लिए अपनी सभ्यता का प्रचार करना सबसे उत्तम और अनुभव-सिद्ध मार्ग समझा। यूरो सभ्यता का अविरत प्रचार, जिसे दांभिक यूरोपीय 'जंगली देशों' को सभ्य बनाना कहते हैं, केवल एक ही से हो रहा है और वह उद्देश है राजनैतिक प्रभुत्व पित करना।

पादरी धर्म का प्रचार उतना नहीं करता, जि ईसाई (अर्थात् पश्चिमी) सभ्यता और ईसाई श्रेष्ठता यह दिखलाने की कोशिश की जाती है कि तुम्हारे कोई सभ्यता नहीं है, तुम जंगली हो और यूरोपीय विचारों के अनुकरण से कुछ-न-कुछ सुधार अवश्य जायगा। मिशनरी पादरी अपना अधिकांश समय व्यय करते हैं। क्या आवश्यकता थी कि किसी मनुष्य ईसाई बनाते समय यूरोपीय पोशाक पहनाई जाय यूरोपीय भाषा सिखाई जाय? हम भारतवर्ष में ही हैं कि ईसाई होने पर मनुष्य केवल धर्म ही नहीं, भाषा, सभ्यता और आचार-विचार भी बदल दे वास्तव में इन सब कृत्यों का उद्देश्य राष्ट्रीय आत्म को मिटाना है, धर्म का प्रचार नहीं। यहाँ ईसाई हो मनुष्य अपने देश बन्धुओं से सब प्रकार से अलग हो है, वह राष्ट्र की उन्नति की भी पर्वाह नहीं करता। विचार में अब वह राष्ट्र का एक अंग नहीं है। य मिशनरियों का हुआ। इनके अलावा दूसरे पश्चि सब प्रकार से इसी उद्देश्य की पूर्ति में जान-बूझकर अनजाने लगे हुए हैं। इतिहासज्ञ यह दिखलाने का करते हैं कि पूर्वीय देशों में सभ्यता नहीं थी, न है। काल में भी इनके यहाँ जो उन्नति हुई वह यूनान या

...तों के कारण हुई । यात्रा-वर्णन में, सिनेमा में, ...ों, और पाठ्य-पुस्तकों में इस बात को सैकड़ों बार ...ा जाता है । मिस मेयो की 'मदर इंडिया' भी एक ...ा है इसी प्रयत्न का अंश है । अभी कुछ दिन हुए कि ...ों कुछ अमेरिकन मिशनरियों को स्कूलों में ईसाई- ...की शिक्षा देने के कारण दण्ड दिया । इस दंड का ...वहाँ की सरकार ने स्पष्ट बतलाया कि हम यह ...ह सकते कि कोई विदेशी हमारे यहाँ इस प्रकार की ...ा है, जिससे देश-द्रोह फैलने की आशंका हो । मिश- ...ों के इस उद्योग का फल आज एशिया में कई राष्ट्र चख ...है । सबसे प्रसिद्ध उदाहरण चीन और भारतवर्ष का है । ...न युग राजनीति का युग है । इसमें सभी कार्य राज- ...उद्देश्य से किये जाते हैं । इसलिए यदि पूर्वकाल में ...प्रकार के सभ्यता के आक्रमण से राष्ट्र को विदेशियों ...आशंका रहती थी तो आजकल उससे भी अधिक रहनी ...ए । १९ वीं शताब्दि के अन्त में जब जापान पश्चि- ...आचार-विचारों पर मुग्ध हुआ था, जापानी युवकों ...इच्छा हुई कि हम यूरोपीय महिलाओं से विवाह करें, ...कि उस सभ्यता के गुण हममें आ जायँ । इस सम्बन्ध ...विख्यात मनोवैज्ञानिक और समाज-शास्त्रज्ञ हर्बर्ट स्पेन्सर ...राय माँगी गई । उनका उत्तर ध्यान में रखने योग्य है । ...उन्होंने जवाब दिया कि आपका देश इस समय कमज़ोर है । ...रोपीय सभ्यता एशिया पर प्रभुत्व कर रही है । ऐसे ...यूरोपीय स्त्रियों से शादी करना राष्ट्रीय दृष्टि से बड़ी ...हानि होगी । यदि आप अपने राष्ट्र का अस्तित्व मज़बूत ...पर क़ायम रखना चाहते हैं तो इस तरह का विवाह ...हानिकर होगा । यूरोपीय महिलायें अपनी सभ्यता की ...अपने साथ लावेंगी, जिसका राष्ट्रीय जीवन पर बुरा असर ...पड़ेगा । यही एक बात नहीं है । आचार-विचार, संस्कृति ...पद्धति के परिवर्तन से मनुष्य के देश-प्रेम में भी फ़र्क़ ...पड़ता है । उसके अभाव में मनुष्य का आत्माभिमान, ...स्वाभिमान और अपने अस्तित्व के विषय में अगम्य ...विश्वास नष्ट हो जाता है । इसके अनेक उदाहरण हम ...देख सकते हैं ।

...भारतवर्ष में यूरोपीय या ईसाई सभ्यता से संघर्ष एक शताब्दि-पूर्व ही हुआ । राजनैतिक प्रभुत्व के कारण प्रभु की संस्कृति दास लोगों को श्रेष्ठ मालूम होती है । १९ वीं शताब्दि के आरम्भ में शिक्षित लोगों में अपनी संस्कृति के प्रति घृणा और यूरोपीय सभ्यता के लिए बड़ा प्रेम और आदर प्रचलित था । पाश्चात्य शिक्षा के नये जोश में लोगों ने सब अंधाधुंध तोड़ना-फोड़ना शुरू किया । हिन्दू-समाज की क्रान्ति के लिए अनेक आंदोलन प्रचलित किये गये । उस समय शिक्षित लोग हिंदुस्थानी कहलाने में भी शरमाते थे । ऐसा मालूम हो रहा था कि यदि यही रफ़्तार रही तो शीघ्र ही भारत के लोग इंग्लैंड का केवल अनुकरण करने में मग्न हो जायँगे । और यह ध्यान में रखना चाहिए कि नक़ल में मूल की अच्छाई शायद ही कभी आती हो, पर बुराई अवश्य ही आती है । लेकिन देश का सौभाग्य था कि ऋषि दयानन्द सरस्वती, राजा राममोहनराय, महादेव गोविन्द रानडे, विष्णु शास्त्री इत्यादि कई ऐसे महापुरुष उत्पन्न हुए, जिन्होंने लोगों के मन में आत्मविश्वास और स्वाभिमान का भाव जागृत किया और शिक्षित जन-समुदाय को सिद्ध कर दिखलाया कि भारतीय संस्कृति भी उत्तम है, और हम पश्चिम से किसी हालत में हीन नहीं है । इसका राष्ट्रीय जीवन पर बड़ा ही अच्छा प्रभाव पड़ा और वर्तमान राष्ट्र-जागृति के आन्दोलन का उद्गम यहीं से होता है ।

आरम्भ में ब्रिटिश सरकार ने खुल्लम-खुल्ला मिशनरी लोगों को सहायता तथा उत्तेजना देना शुरू किया था । परन्तु सन् १८०५ के लगभग इसी कारण से वेलोर में सिपाहियों का एक विद्रोह हुआ । इस विद्रोह से ब्रिटिश सरकार ज़रा सावधान हुई और बहुत वाद-विवाद के बाद सार्वजनिक रूप से मिशनरियों की सहायता बन्द की गई । इसके बाद ब्रिटिश सरकार ने गुप्त-रूप से या दूसरों के द्वारा मिशनरियों की सहायता की । यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि वर्तमान सरकार धर्म के बारे में पक्षपात-हीन नहीं है । भारत की आय का लाखों रुपया अंग्रेज़ चर्च के ख़र्च के लिए दिया जाता है और सरकार की ओर से बिशप और चैपलेन नियुक्त होते हैं ।

चीन की भी अवस्था ऐसी ही है, यद्यपि वहाँ के बहुत से ईसाईयों ने यूरोप में जाकर शिक्षा से लाभ उठाया और

अपनी स्वतन्त्रता के लिए पश्चिमी राष्ट्रों से युद्ध किया । एशिया के स्वतन्त्र राष्ट्रों की अवस्था यद्यपि भारत से कहीं अच्छी है तथापि उनको भी सभ्यता के इस उत्पात ही ने परेशान किया। उदाहरणार्थ, टर्की की कमज़ोरी का एक मुख्य कारण वहां की ईसाई आरमीनियन जनता थी, जो हमेशा यूरोपीय राष्ट्रों से मिलकर विद्रोह खड़ा करती थी और जिसकी सहायता के बहाने यूरोपीय राष्ट्र टर्की की राज्यव्यवस्था में मनमाना दखल दिया करते थे।

इन सब बातों को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि टर्की आदि राष्ट्रों की अवस्था भारत से तथा अन्य गुलाम राष्ट्रों से कहीं अच्छी है और उनको इस सभ्यता के संग्राम की ओर वहीं तक ध्यान देना पड़ता है, जहां तक उसका राजनीति पर असर पड़ता है, तथापि उनका हर बात में यूरोप का अनुकरण करना हितकर नहीं है। हो सकता है कि यह समाज में 'तीव्र' आन्दोलन उत्पन्न करने की दृष्टि से किया गया हो, परन्तु उसके लिए सर्वथा यूरोप के पीछे चलने की कोई आवश्यकता नहीं है। विशेषतः जब हम यह स्पष्टरूप से देख रहे हैं कि इस सभ्यता के प्रचार के बहाने दूसरे राष्ट्रों की स्वतन्त्रता पर कुठाराघात किया जाता है, ऐसी सभ्यता का जी तोड़कर विरोध ही होना चाहिए।

यह पढ़कर पाठकों की शायद ऐसी धारणा हो जाय कि हम पुरानी दक़ियानूसी बातों को क़ायम रखना चाहते हैं। कदापि नहीं। हम चाहते हैं कि हमारे राष्ट्र में, नवीन सम में, क्रान्ति हो, शक्ति प्रदीप्त हो, नवजीवन आ जाय। ह जानते हैं कि यूरोप में अनेकों उत्तम गुण तथा शास्त्र हैं और उनको अवश्य अपनाना चाहिए। यहां हमारा अभिप्र केवल यह है कि यूरोप के गुण और ज्ञान हमें उनकी अं नक़ल करने से नहीं प्राप्त होंगे। ज़रूरत पड़ने पर ह उनकी हर बात लेना चाहिए, पर उसे अपने शरीर में ज कर लेना होगा, हज़्म करना होगा। यह उनके आच भेषादि की 'कापी' करने से नहीं आ सकता।

जब तक अन्तर्राष्ट्रीयत्व एक व्यवहार्य व्यवस्था क़ानून नहीं बन जाता, और राष्ट्रों को दूसरों के आक्रमण भिड़कर अपना अस्तित्व क़ायम रखना आवश्यक होता तब तक यही नीति श्रेयस्कर और कल्याणकारी होगी।

बालकृष्ण विश्वनाथ केसकर

समष्टिवाद

हिंदी भाषा में नये-नये विषयों पर साहित्य निकल रहा है, इसलिए बड़ी शीघ्रता से स्वभावतः बहुत से नये-नये शब्द भी भाषा में जोड़े जा रहे हैं। बहुत से नवीन शब्दों का भाषा में आना तो अच्छा है। इससे भाषा अमीर बनेगी, परन्तु प्रत्येक मनुष्य को यदि बिना रोक-टोक भाषा में शब्द मिला देने का अधिकार रहा, अथवा लोग यदि इसी स्वच्छन्दता और अविचार से नये-नये शब्द हिन्दी में मिलाते रहे, जैसे कि आज मिला रहे हैं, तो एक दिन अवश्य ही हिन्दी के कोष में ऐसे बहुत से अनुचित और अर्थहीन शब्द भर जायँगे, जिनको फिर भाषा में से निकाल देना असम्भव ही होगा। जो शब्द एकबार भाषा में प्रयुक्त होने लगता है, उसको फिर निकाल देना असम्भव हो जाता है। लेखकों को चाहिए कि वे खूब सोच-विचारकर और हो सके विद्वान् मित्रों से सलाह लेकर ही नये शब्दों का प्र करें। कम-से-कम पारिभाषिक शब्दों की रचना तो वि षज्ञों के हाथ में छोड़ देनी चाहिए। अस्तु।

हमें यहाँ तो केवल इतना ही कहना है कि जिस सा जिक व्यवस्था या संगठन को अंग्रेज़ी में सोशलिज़्म हैं, उसे हिन्दी और कई भारतीय भाषाओं में साम्यवाद नाम से पुकारा जाने लगा है। पूँजीपतियों का असंख्य और साम्राज्यवादी राष्ट्रों का सारा बल वैसे ही बेचारे सो लिज़्म को सारे संसार में बदनाम करने का प्रयत्न कर रहा है हमने भी सोशलिज़्म को साम्यवाद का नाम देकर बिना स बूझे उसे बदनाम करने में एक प्रकार से हाथ बँटाया है "जिन वस्तुओं की समाज को आवश्यकता होती है

पैदा करने और बाँटने के ज़रिये पर समाज का ही कार हो और समाज ही इन सारी क्रियाओं का संचा- और प्रबन्ध करे।" यह सोशलिज़्म की आम तौर पर की हुई परिभाषा है। "सामाजिक आवश्यकताओं करने और बाँटने के ज़रियों पर सामाजिक अधिकार प्रबन्ध" रखनेवाली सामाजिक व्यवस्था को वाद, समूहवाद, समाजवाद कुछ भी कहिए परन्तु वाद तो कहना अनुचित ही है। परन्तु जो हमें सर्वो- ँचता है वह 'समष्टिवाद' है। यह शब्द हिन्दी में ज़्म के लिए भी प्रयोग में लाया जाने लगा है। यह दूसरी भूल हो रही है।

सोशलिज़्म और कम्यूनिज़्म में अन्तर

जिन वस्तुओं की समाज को आवश्यकता होती है पैदा करने, बनाने और बाँटने के ज़रियों पर समाज अधिकार होना और उनके बनाने, पैदा करने और बाँटने समाज द्वारा ही संचालन और प्रबन्ध होना सोशलिज़्म समष्टिवाद कहलाता है। यह हम को केवल एक ऐसा न्त बतलाता है, जिसके अनुसार समाज का संगठन से रोटी-दाल के मामले में समाज सुखी रह सकता कौन से ऐसे उपाय हैं जिनके द्वारा समाज समष्टिवाद सिद्धान्तों पर संगठित होजाय इस बात से और इसके न्तों से कुछ सम्बन्ध नहीं। कम्यूनिज़्म सिद्धान्त के उपाय का भी समावेश कर देता है। कम्यूनिज़्म के सार समष्टिवाद के सिद्धान्तों पर समाज का संगठन का केवल एक ही उपाय है और वह है उथल-पुथल देने वाली एक ऐसी सामाजिक क्रान्ति, जिसमें पुरानी हुई सामाजिक व्यवस्थता चरचरा कर गिर पड़े और मज़दूरी करने वाले लोगों के हाथ में समाज के संग- की पूर्ण सत्ता आ जाय, जिससे कि वह समष्टिवाद के न्तों पर समाज का पुनर्निर्माण कर सकें। अस्तु। सम- के सिद्धान्तों के साथ क्रान्तिकारी उपायों में भी रखने वाले लोगों को हम कम्यूनिस्ट कह सकते हैं समष्टिवाद के सिद्धान्तों में विश्वास रखने वाले परन्तु कारी उपायों में विश्वास न रखने वाले वैध आन्दोलन अथवा श्रमीसंघ आदि आन्दोलनों का सहारा लेने वाले लोगों को हम समष्टिवादी कह सकते हैं। हिन्दी में कम्यूनिज़्म को 'वर्ग-वाद', 'श्रेणी-वाद,' 'कक्षावाद' इत्यादि में से कोई नाम देना उपयुक्त होगा और सोशलिज़्म को 'समष्टिवाद'। पर क्रान्तिमय श्रेणीवाद अस्थायी वस्तु है क्योंकि क्रान्ति स्वयं प्रसव-वेदना की तरह नवयुग को जन्म देकर नष्ट हो जाने वाली अस्थायी सामाजिक स्थिति है। समष्टिवाद का मूल-आर्थिक-सिद्धान्त स्थायी वस्तु है।

समष्टिवाद का मूल सिद्धान्त

समाज के लिए आवश्यक वस्तुओं—अर्थशास्त्रीय भाषा में कहें तो—समाज के लिए आवश्यक सम्पत्ति का उत्पन्न करने और बाँटने के ज़रियों पर सामाजिक अधिकार और उनका प्रजासत्तात्मक संचालन और प्रबन्ध समष्टिवाद का मूल सिद्धान्त है। इस परिभाषा में सम्पत्ति का ज़िक्र आता है इसलिए हमें यह भी समझ लेने की ज़रूरत है कि,

सम्पत्ति है क्या?

प्रायः लोग समझते हैं कि सम्पत्ति रुपया है। परन्तु वास्तव में रुपया सम्पत्ति नहीं है। भोजन की सामग्री, मकान, कपड़ा, गाड़ी, जहाज़, किताबें, खेत इत्यादि सम्पत्ति हैं। सारी सम्पत्ति के नाम गिनाना असम्भव है। इतना कहना पर्याप्त होगा कि 'जिस चीज़ की लोगों को आवश्यकता होती है और जिसका वह प्रयोग करते हैं वह सम्पत्ति है।' हम जो कुछ खाते और पहिनते हैं वह सब सम्पत्ति है। जिस क़लम से यह लेख लिखा जा रहा है वह और जिस कागज़ पर लिखा जा रहा है वह कागज़ भी सम्पत्ति है। दूसरा प्रश्न यह उठा है कि,

सम्पत्ति आती कहां से है?

सभी जानते हैं कि सम्पत्ति अपने आप नहीं बन जाती। हमारे भोजन की सामग्री, पहनने के कपड़े, रहने के घर, सभी को बनाने की, पैदा करने की, अथवा उत्पन्न करने की आवश्यकता होती है। घर और कपड़ा सम्पत्ति है। घर बनाना और कपड़ा बुनना उस सम्पत्ति को पैदा करने के ज़रिये हैं। सम्पत्ति पैदा करना सरल काम नहीं है, पूरा

गोरखधन्धा है । मान लीजिए आपको खाने के लिए रोटी की ज़रूरत है । आप कहेंगे कि रोटी बनाली और खा ली । बस सीधी सरल बात ! इसमें कौनसा गोरखधन्धा है ? परन्तु वास्तव में बात इतनी सरल नहीं है, जितनी देखने से लगती है । रोटी बनाने के लिए आटा चाहिए । आटा पीसने के लिए गेहूं चाहिए, चक्की चाहिए, पीसनेवाला चाहिए । गेहूं पैदा करने के लिए किसान, खेत, हल, वर्षा, बीज इत्यादि चाहिए । बनाने के लिए पत्थरतराश, बढ़ई और लुहार चाहिए । हल और चक्की बनाने वाले बढ़ई और लुहार के औज़ार बनाने वाले कारीगर चाहिएँ । फिर भी खाना पकाने के बरतन और उन बरतनों के बनाने की क्रियाओं का गोरखधन्धा रह ही जाता है । इस प्रकार एक छोटी-सी सम्पत्ति—रोटी—पैदा करने में हमने देखा कि कितने लोगों के परिश्रम के संयोग और सहकार की आवश्यकता होती है । सच तो यों है कि छोटी-से-छोटी सम्पत्ति के पैदा करने में लगभग सारे समाज की ही सहायता लेनी पड़ती है । किसी एक विशेष सम्पत्ति के पैदा करने में सारे समाज की सहायता न भी लेना पड़े तो भी यह सिद्धान्त तो अटल ही रहता है कि समाज के सदस्यों के पास जो कुछ सम्पत्ति होती है, वह समाज के संयुक्त परिश्रम के फलस्वरूप होती है । सम्पत्ति समाज के संयुक्त परिश्रम का परिणाम है । उन सब लोगों के परिश्रम का परिणाम, जो समाज में रहकर किसी-न-किसी प्रकार का परिश्रम करते हैं । हां, किसान के लिए यह समझ लेना कुछ कठिन अवश्य है कि वह 'त्यागभूमि' के संपादन में या लेखक को लेख लिखने में सहायता देता है। परन्तु यदि किसान ने अनाज पैदा न किया होता तो बेचारे 'त्यागभूमि' के सम्पादक और इस लेख के लेखक महाशय हल-बैल लिये हुए किसी ग्राम में खेत जोत रहे होते । क्योंकि पेट में जब चूहे लोटते हों तो दिमाग़ काम नहीं कर सकता । यदि किसान ने कपास न पैदा की होती तो जुलाहा कपड़े कहांसे बुनता और यदि जुलाहे ने कपड़े न बुने होते तो किसान को नंगा ही रहना पड़ता । यह बात बिलकुल ही स्पष्ट है कि कोई एक व्यक्ति अपने लिए आवश्यक सारी वस्तुयें—सम्पत्ति—केवल अपने ही परिश्रम से उत्पन्न नहीं कर सकता । छोटी-से-छोटी वस्तुओं के लिए भी प्रत्येक व्यक्ति को समाज के अन्य बहुत से अथवा यों कहिए कि सारे समाज के ही परिश्रम और यता पर निर्भर रहना पड़ता है । 'त्यागभूमि' के को उनके कार्य में किसान सहायता करता है । 'त्यागभूमि' के सम्पादक सजग रखते हैं । जुलाहे के किसान उसे मदद करता है और जुलाहा किसान के में उसे मदद करता है । इसलिए समष्टिवादियों का है कि सारी सम्पत्ति समाज उत्पन्न करता है ।

सम्पत्ति तो समाज उत्पन्न करता है, परन्तु उसके करने के साधनों पर व्यक्तिगत अधिकार है। सौ दोसौ पूर्व, जब कि कलें और कारख़ाने नहीं थे, मेहनत करने वाले कारीगर अपने पेशे के लिए ज़रूरी औज़ार पास रखते थे । कल-कारख़ानों के चल जाने पर के सम्पत्ति उत्पन्न करने के साधन, उनके छोटे औज़ार हो गये । बड़ी-बड़ी मशीनें ख़रीद कर कारख़ाने चलाना आदमियों की सामर्थ्य के बाहर है, इसलिए मशीनों के ही सम्पत्ति उत्पन्न करने के साधनों पर उन का अधिकार होगया, जो केवल सम्पत्ति उत्पन्न साधनों पर अपना अधिकार जमा लेने के कारणही ख़ानों में मज़दूरों की मेहनत से उत्पन्न की हुई का बड़ा भाग स्वयं लेने लगे । सम्पत्ति समाज के परिश्रम से उत्पन्न होती है, परन्तु इस उत्पन्न क्रिया से फ़ायदा थोड़े से लोग उठाते हैं । पूँजीपति व्यापार समय तक करते हैं, जब तक कि मुनाफ़ा मिलता

मुनाफ़ा क्या चीज़ है ?

पूंजीपतियों का मुनाफ़ा कहां से आता है ? खानों में से लोहा निकाला, मज़दूरों ने उस लोहे से तैयार कीं, मज़दूरों ने ही खानों में से खोद-खोदकर निकाला, जिसके बल पर मशीनें चलती हैं । मज़दूर शीन चलाते हैं और मज़दूर ही वह कच्चा माल पैदा हैं, जिनसे मशीनों द्वारा भिन्न-भिन्न पदार्थ बनाये परन्तु इस प्रकार मज़दूरों की उत्पन्न की हुई सम्पत्ति लोग लेते हैं, जिनका केवल मशीनों पर अधिकार है । लीजिए कि एक कारख़ाने में १,००,०००) रु०

हुआ। एक लाख में से ३०,०००) रु० मशीनों और इत्यादि में ख़र्च हुआ; ३५,०००) रु० मज़दूरों को में दे दिया। शेष ३५,०००) रु० का माल कारख़ाने ने ले लिया।

? तो कहा जायगा कि मशीन का मालिक कार- है, इसलिए उसे यह ३५,०००) रु० अपने घर लेने का अधिकार है। इसपर हमारा यह कहना है किसी चीज़ का केवल मालिक होने से उस चीज़ का जाता है? मशीन को बनाने वाले और चलाने मज़दूर हैं। उन्होंने कच्चे लोहे को मशीन का देकर लोहे का मूल्य बढ़ाया है। उन्होंने ही मशीन मशीन में जान डाली है। मशीन के मालिक का पर केवल अधिकार होने से, मशीन अथवा मशीन सहायता से उत्पन्न होने वाले पदार्थों का कौनसा गया है? यदि मशीन का मालिक न होता तो क्या मज़दूर, कच्चा माल और कारख़ाने का मैनेजर सब कारख़ाना नहीं चला सकते थे? क्या ऐसी दशा ने में कुछ कम माल पैदा होता? बाज़-बाज़ कार- के मालिक नाबालिग़ होते हैं या साधारण श्रेणी के —कामकाज की उन्हें वाक़िफ़यत नहीं होती, न वे कामकाज देखते ही हैं। घड़ी भर के लिए मान कि इनका सम्बन्ध कारख़ाने से न हो तो इससे क्या से पैदा होनेवाले माल में कुछ ख़राबी आ जायगी? अपने कारख़ानों का स्वयं प्रबन्ध करते हैं उनको करने के लिए मैनेजर का वेतन मिल सकता है। और चीज़ है, मुनाफ़ा और।

लेने वाले वे लोग होते हैं जो केवल मशीनों अधिकार होने के कारण से मुनाफ़ा पाते हैं। ने केवल मशीन, कच्चे माल और मज़दूरों— का मैनेजर भी श्रमजीवी मज़दूरों में ही आ जाता प्रकार से चलाये जायँ तो ऊपर के दृष्टांत में जो रुपया कारख़ाने के मालिक को ही मिलता है में बँट जाया करे। हम समझते हैं कि पाठकों समझने में कुछ भी कठिनता नहीं रही होगी हम मुनाफ़ा समझते आ रहे हैं, वह श्रमजीवियों की मज़दूरी में से बचाया हुआ धन है। इसी मुनाफ़े की बदौलत क़रीब १५० बड़े-बड़े धनिकों के हाथ में इंग्लैण्ड की सारी सत्ता है। जैसा यह लोग चाहते हैं वैसा ही पार्लमेंट से करा लेते हैं। अपने स्वार्थ के लिए कभी अपने देश को दूसरे देश से लड़ा देते हैं, जिनमें बेचारे ग़रीबों की जानें जाती हैं; कभी छोटे-छोटे देशों पर अपना व्यापार बढ़ाने के लिए चढ़ाइयाँ करते हैं। अमेरिका की सरकारी रिपोर्टों से पता चलता है कि अमेरिका के राष्ट्र की ६० फ़ी सदी संपत्ति दो फ़ी सदी आदमियों के हाथ में है; ३५ फ़ी सदी ८फ़ी सदी के हाथ में है; शेष ५ फ़ी सदी सम्पत्ति बचे हुए ९० फ़ी सदी मनुष्यों के हाथ में है। ऐसी अवस्था में राष्ट्र की सारी शक्ति दो फ़ी सदी या अधिक से अधिक—यदि ३५ फ़ी सदी संपत्ति रखने वाले ८ फ़ी सदी मनुष्य भी मिला दिये-जायँ तो दस फ़ी सदी मनुष्यों के हाथ में आ जाती है। प्रजा-सत्तात्मक राज्य तो केवल नाम के लिए रह जाता है। जिधर ये राष्ट्र की लगाम अपने हाथ में रखने वाले थोड़े से पूँजीपति राष्ट्र की लगाम मोड़ देते हैं, देश को उधर ही जाना पड़ता है। संपत्ति पैदा करने वाले श्रमजीवियों को रोटियों के लाले पड़े रहते हैं। वे एक सप्ताह यदि बीमार पड़ जायँ, तो फिर भूखों मरने के सिवा और कोई चारा नहीं रहता। सम्पत्ति पैदा करने के साधन अथवा ज़रियों पर केवल अधिकार रखने वाले धन का मनमाना दुरुपयोग करते हैं।

हम यहां पर ज़मींदारों और किसानों का प्रश्न नहीं उठाते। क्योंकि वह हमारे देश की सबसे महत्वपूर्ण समस्या है, इसलिए उसकी चर्चा के लिए एक अलग ही लेख चाहिए। परन्तु जो दशा मज़दूरों की है उससे कहीं गिरी-गुज़री अभागे किसानों की है। समष्टिवाद का सिद्धान्त ज़मींदारों और किसानों के लिए भी वैसा ही लागू होता है, जैसा मालिकों और मज़दूरों के लिए। कारख़ानों में सम्पत्ति पैदा करने के साधन मशीनें होती हैं, तो अनाज पैदा करने के साधन ज़मीन-खेत होते हैं। जिस प्रकार कारख़ानों के मालिक बिना पैर हिलाये केवल मशीनों पर अधिकार होने के कारण मज़दूरी की बचत को ले लेते हैं उसी प्रकार जमींदार लोग ज़मीन पर केवल अधिकार-भर प्राप्त कर लेने

से किसानों की मेहनत से उत्पन्न की हुई सम्पत्ति का बहुत बड़ा भाग अपने पास रख लेते हैं।

इसी अन्याययुक्त परिस्थिति से उत्पन्न, श्रमजीवियों की दरिद्रता को मिटाने के लिए ही समष्टिवाद का जन्म हुआ हैं। समष्टिवाद के सिद्धान्त के अनुसार समाज के लिए आवश्यक सम्पति उत्पन्न करने के साधनों—ज़रियों—और उस सम्पत्ति को प्रजा में बांटने के साधनों पर समाज का अधिकार और प्रजा-सत्तात्मक संचालन और प्रबन्ध होने से श्रमजीवियों के श्रम का फल उन्हें ही मिलेगा। समष्टिवाद के पास इस परिस्थिति को लाने के दो मार्ग हैं। एक तो यह कि क़ानून पास करके ज़मींदारों की ज़मीन और कारख़ाने वालों के कारख़ाने ज़ब्त कर लिये जायँ और उनपर राष्ट्र का अधिकार हो जाय। दूसरा यह की बाप के मरने पर बेटे को जागीर मिलते समय पूंजीपतियों की जागीरों पर १०० फ़ी सदी कर लगाया जाय, जिससे लगभग तीस-चालीस वर्ष में उनके हाथ से सम्पत्ति निकल कर समाज के हाथ में आ जायगी। प्रत्येक देश में राष्ट्र के लिए आवश्यक वस्तुओं को किसी भी व्यक्ति से ले लेने का अधिकार सरकार को रहता ही है। रेल और नल निकालने के लिए ज़रूरत पड़ने पर हमारे देश में ही सरकार मालिकों की बिना मर्ज़ी के ज़मीन ज़ब्त कर लेती है इसपर यह कहा जा सकता है कि पूंजीपतियों ने इन साधनों को ख़रीदकर प्राप्त किया है। तो इसपर समष्टिवादी कहते हैं कि भाई, जिस धन पर वास्तव में आपका अधिकार नहीं था, उसीके बल पर न आपने ये चीज़ें ख़रीदी हैं? ऐसी दशा में उन्हें ज़ब्त कर लेने का अधिकार समाज-सरकार को है।

समष्टिवादियों का गरम-दल——वर्गवादी अथवा श्रेणी
कुछ भी कहिए——कहता है कि भाई, क़ानून से काम नहीं चले
श्रमजीवियों को क्रान्ति करके सम्पत्ति उत्पन्न करने के
धनों पर अधिकार जमा लेना चाहिए। अमीरों ने बहुत
राज्य किया है। और जब हम ऐसी परिस्थिति लाने
प्रयत्न करेंगे, जिसमें बिना परिश्रम किये कोई न खा
तो वे अपने सारे धन-बल का प्रयोग हमारे विरुद्ध करें
इसलिए हमें अपने आदर्श के अनुसार समाज की पु
करने के लिए इसके अतिरिक्त और कोई उपाय न
क्रान्ति करके बल-पूर्वक कुछ समय के लिए श्रमजीवि
राज्य स्थापित कर लें—ऐसा राज्य कि जिसमें श्रम
के अतिरिक्त और किसी की भी बात न सुनी जाय।

एक बात विशेष कर ध्यान देने योग्य है कि सम
यह हर्गिज़ नहीं कहते कि किसी को कुछ धन न
रखने का अधिकार नहीं है। एक आदमी अपना
बनाकर रह सकता है, थोड़ी बहुत धन-सम्पति बैंक
में रख सकता है। कहना केवल इतना ही है कि को
ऐसी सम्पत्ति को, जिसके द्वारा वह समाज के अन्य
यों पर अपना अधिकार कर सके, नहीं रख सकता।
कहना है कि बड़े-से-बड़े आदमी को भी किसी आ
गुलाम बनाने का अधिकार नहीं है। बड़े-से-बड़ा
भी संसार की इतनी सेवा नहीं कर सकता कि उ
मनुष्यों के जीवन पर अधिकार दे दिया जाय।
आवश्यक सम्पत्ति व्यक्तियों के पास रहे, परन्तु स
लिए आवश्यक सम्पत्ति पर समाज का ही अधिक
चाहिए।

चन्द्रभाल

प्रेम-लता

रहती तुम्हारी मूर्ति मन में समाई सदा,
रहती तुम्हारी छवि लोचनों में छाई है।
मैं हूँ धन्य मुझको बड़ाई इतनी जो मिली,
खलती न नेक भी तुम्हारी निठुराई है।

सींच कर अपने विलोचन के वारि से ही,
मैंने यह प्रेम-लता सुख से ब
तोड़ सकता है कौन इस लतिका को कभी,
यह तो तुम्हारे नाथ! हाथ की ल

गोपालशरण

अन्तर्राष्ट्रीय मजूर-परिषद्

['त्यागभूमि' के लिए]

अन्तर्राष्ट्रीय मजूर-परिषद् बड़ी शीघ्रता के साथ श्रमजीवियों और पूंजीपतियों के पारस्परिक को ठीक रखने एवं तत्सम्बन्धी विभिन्न देशों की ओं का स्वरैक्य करने वाला मुख्य संघटन बन रहा है। के देश अन्तर्राष्ट्रीय मजूर-परिषद् के कार्य को गम्भीर देख रहे हैं। भारत की आर्थिक परिस्थिति पर भी इसके ों का बड़ा असर पड़ता है। फिर भी दुःख के साथ पड़ता है कि हमारे देशवासियों ने इस परिषद् के और कार्य को अभी तक भली भांति नहीं समझा है।

ह भली भांति प्रकट है कि अन्तर्राष्ट्रीय मजूर-परिषद् का एक अभिन्न अंग है। यूरोपीय महासमर के संसार में शान्ति-स्थापना के लिए वर्सैलीज़ में जो हुई थी, उसके १३ वें भाग में इसका विधान मिलता सकी भूमिका में यह लिखा है कि चूँकि राष्ट्रसंघ का उद्देश्य विश्वव्यापी शान्ति की स्थापना है, वह इस बात को स्वीकार करता है कि ऐसी शान्ति केवल तभी स्थापित हो सकती है, जब कि सामाजिक न्याय पर उसका आधार हो।

भूमिका में आगे लिखा है:—

"और चूँकि श्रमजीवियों की ऐसी स्थिति है कि बहुत से लोगों को अन्याय, सख्ती और तंगी की बड़ी असन्तोष-प्रद परिस्थिति में रहना पड़ता है कि जिससे संसार की शान्ति और सुख ख़तरे में हैं, इसलिए इन बातों में अत्यन्त शीघ्र सुधार होना आवश्यक है—जैसे, उदाहरण के लिए, कार्य के दिन एवं सप्ताह की अधिक-से-अधिक मर्यादा की स्थापना, मजूरों के आने-जाने के बारे में नियम बनाना, बेकारी की रुकावट करना, निर्वाह-योग्य पर्याप्त रोज़ी की व्यवस्था होना, मजूर को अपना काम करते हुए पहुँचने वाली चोट और उससे होने वाले रोग या बीमारी से उसकी रक्षा करना, बच्चों, युवाओं और स्त्रियों की रक्षा करना,

अन्तर्राष्ट्रीय मजूर-परिषद्—प्रारम्भ दिवस, देशों के प्रतिनिधि अ, आदि क्रम से बैठे हैं

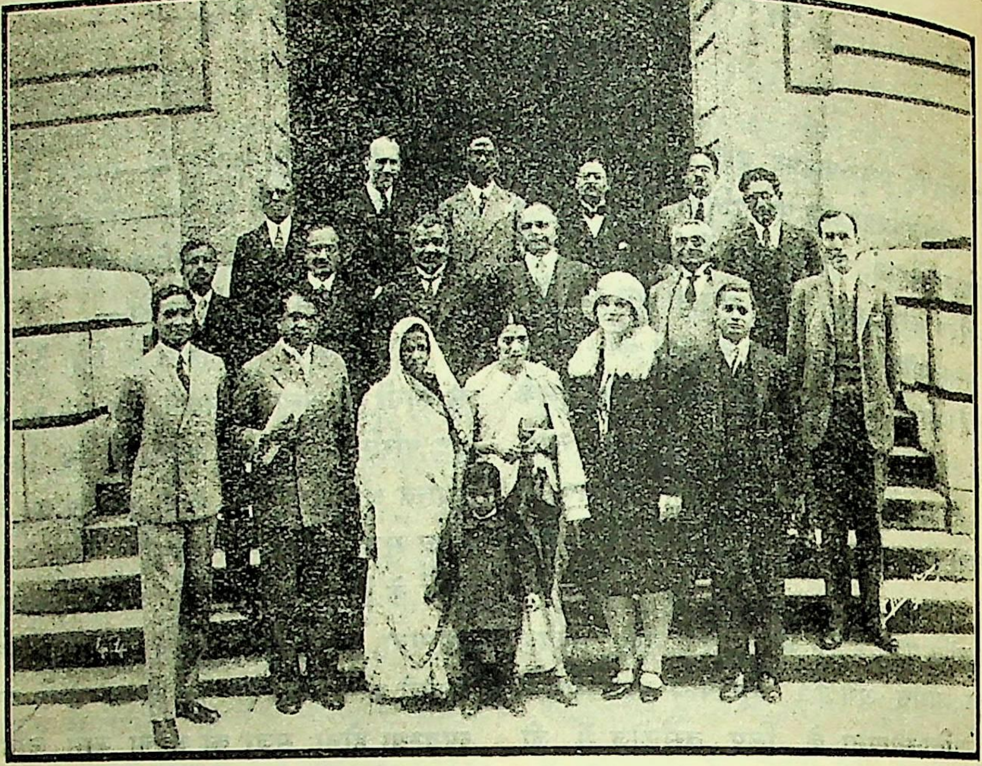

अन्तर्राष्ट्रीय मजूर-परिषद् (१९२८),—जेनेवा में, भारत के प्रतिनिधि

बुढ़ापे के और दुर्घटना के समय के लिए सहायता का इन्तज़ाम करना, अपने देश से बाहर के देशों में मजूरी के लिए जाने वाले मजूरों के हितों की रक्षा करना, संघ-स्वातन्त्र्य के सिद्धान्त का माना जाना, शास्त्रीय तथा उद्योग-धंधों सम्बन्धी शिक्षा एवं दूसरे साधनों का संगठन करना आदि के सम्बन्ध में नियम बन जाना ज़रूरी है ।

साथ ही चूँकि किसी भी राष्ट्र का मज़दूरों के साथ ऐसा मानवोचित व्यवहार करने में असफल होना उन दूसरे राष्ट्रों के मार्ग में बाधक है, जो अपने-अपने देशों में इन दशाओं को सुधारना चाहते हैं ।

इसलिए सन्धि करने वाले महान् राष्ट्र, न्याय और मानवता के भावों और साथ ही विश्वव्यापी चिरस्थायी शान्ति की इच्छा से प्रेरित होकर, नीचे लिखी बातों को स्वीकार करते हैं ।"

इसके फल-स्वरूप भूमिका में बताये हुए उद्देश्यों की सिद्धि के लिए, एक स्थायी संघटन बना । वही संघटन अन्तर्राष्ट्रीय मजूर-परिषद् के नाम से प्रसिद्ध है, जिसके प्रबन्ध-सभा (Governing body) द्वारा नियन्त्रि अन्तर्राष्ट्रीय श्रमी-कार्यालय सम्बद्ध है । राष्ट्र-संघके जो सदस्य हैं, वही इस संस्था के भी मूल-सदस्य हैं । भार राष्ट्र-संघ का एक मूल-सदस्य है, और फलतः इस का भी ।

अन्तर्राष्ट्रीय मजूर-परिषद् को उसका प्रत्येक अर्थात् प्रत्येक देश, अपने चार प्रतिनिधि भेज सकता इनमें से दो तो सरकारी प्रतिनिधि होते हैं, और क्रमशः प्रत्येक देश के मालिकों तथा मजूरों के । प्रतिनिधि के साथ उसके सलाहकार भी होते हैं, संख्या अधिवेशन के कार्यक्रम (Agenda) की मद के लिए दो से ज्यादा नहीं हो सकती । जब कि ऐसे प्रश्न पर परिषद् में विचार होने वाला हो, असर ख़ास तौर पर स्त्रियों पर पड़ता हो, तो प्रतिनिधि कम-से-कम एक सलाहकार का स्त्री होना आवश्यक

री प्रतिनिधियों और उनके सलाहकारों को नामज़द भार प्रत्येक देश की सरकार ने लिया है और संघटनों की सहमति से—जो कि अपने-अपने मालिकों एवं मजूरों की अत्यन्त प्रातिनिधिक संस्थायें चुनाव होता है, बशर्ते कि ऐसे संघटन मौजूद हों। बता देना चाहिए कि 'औद्योगिक' शब्द का अर्थ रक्खा गया है। उदाहरणार्थ, हेग के अन्त- नायालय ने यह स्पष्ट स्वीकार कर लिया है कि धी विषय भी इसमें आ जाते हैं। अलावा इसके मजूर-परिषद् ने कई बार ऐसे नियम (Con-), सिफ़ारिश और प्रस्ताव स्वीकृत किये हैं कि असर व्यापारिक श्रमजीवियों पर भी पड़ता है। यह निस्सन्देह है कि 'औद्योगिक' शब्द में कारीगरी, कृषि-सम्बन्धी और व्यापारिक जैसे सब धन्धे हैं। सलाहकारों की प्रतिष्ठा और अधिकार भी बड़े अच्छे होते हैं। वे समिति के सदस्य हो सकते हैं और, उस प्रतिनिधि की अनुमति से, समस्त परिषद् के वाद-विवाद में भी वे भाग ले सकते हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय मजूर-परिषद् का अधिवेशन साधारणतः वर्ष में एक बार, जेनेवा में, होता है। परन्तु १९२६ में उसके दो अधिवेशन हुए, एक तो समान्य विषयों के विचारार्थ और दूसरा विशेषतः सामुद्रिक विषयों के विचारार्थ।

वर्सेलीज़-संधि की ४०५ वीं धारा कहती है कि परिषद् के कार्यक्रम की किसी मद के बारे में प्रस्ताव ले लिए जाने का निश्चय हो जाने के बाद इस बात का निश्चय करना परिषद् के आधीन है कि वे प्रस्ताव

(अ) राष्ट्रीय क़ानून द्वारा अथवा किसी दूसरे प्रकार से अमल में लाये जाने की दृष्टि से सिफ़ारिश के तौर पर सदस्यों के सामने विचारार्थ प्रस्तुत किये जायँ, या

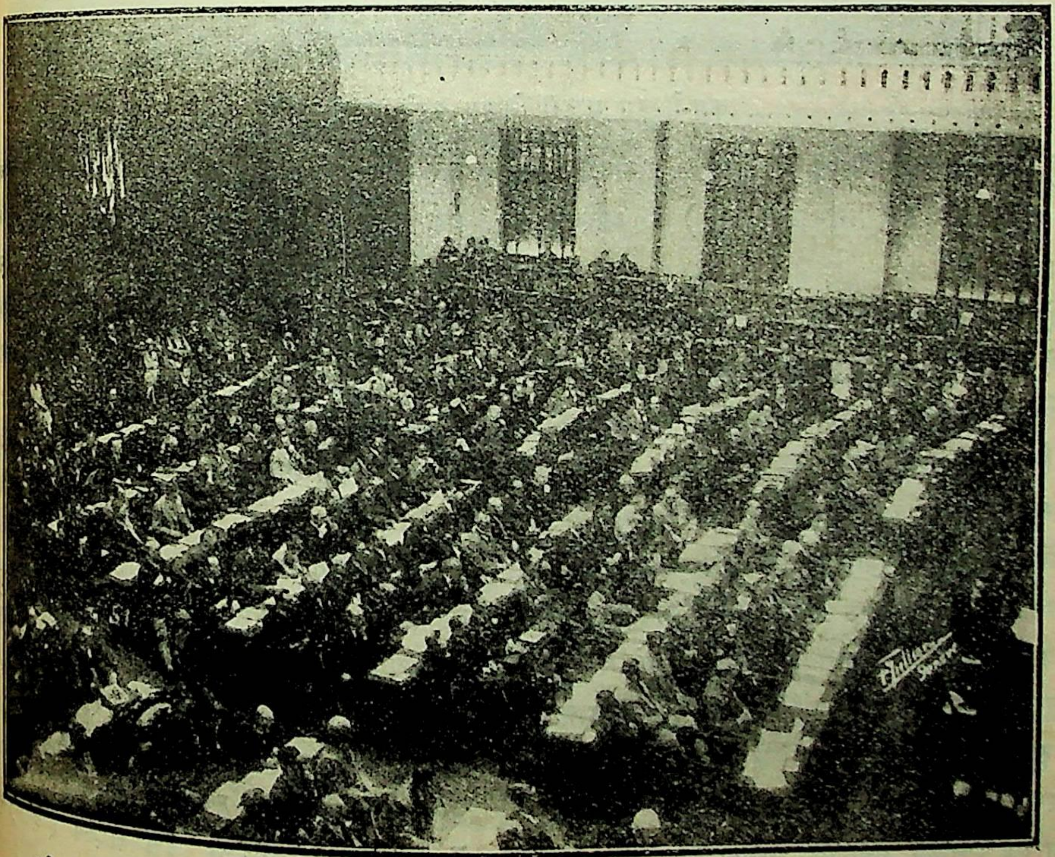

परिषद में भाषणों के अनुवाद उसी समय होते रहते हैं और टेलीफ़ोन से सुना दिये जाते हैं

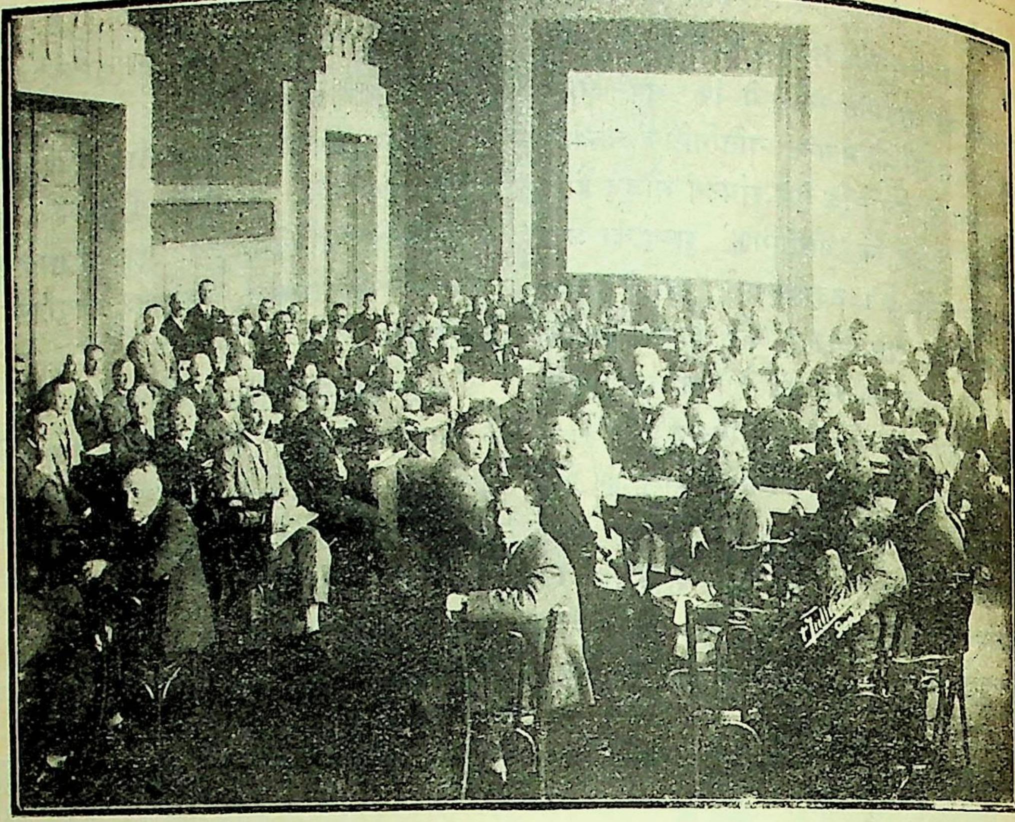

कम-से-कम मजूरी निश्चय करने वाली कमिटी

(ब) सदस्यों की स्वीकृति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय नियमों या प्रतिज्ञाओं (Convention) के मस्विदे के रूप में पेश किये जाएँ ।

इन दो में से किसी भी दशा में सिफ़ारिश या प्रतिज्ञा के मस्विदे के रूप में परिषद्-द्वारा अन्तिम बार स्वीकृत होने के लिए उपस्थित सदस्यों के दो-तिहाई मतों का ज़ोर होना आवश्यक है । आगे उसमें यह भी कहा गया है कि आम तौर पर लागू होनेवाली किसी सिफ़ारिश या प्रतिज्ञा के मस्विदे के बनाने में परिषद् उन देशों का भी पूरा ख़याल रक्खेगी, जिनमें आबहवा, औद्योगिक संघटन की अपूर्ण प्रगति, अथवा अन्य विशेष परिस्थितियों के कारण औद्योगिक स्थितियां वस्तुतः भिन्न हों, और हो सके तो ऐसे उपाय या परिवर्तन सुझायेगी कि जो उसकी समझ में ऐसे देशों के लिए आवश्यक हों ।

इसका यह मतलब नहीं कि प्रत्येक देश इस परिषद् द्वारा स्वीकृत सिफ़ारिशों और नियमों के अनुसार काम करे ही । प्रत्येक देश की सरकार ने जो बात स्वीका
वह केवल यही कि ज्यादा से ज्यादा परिषद् के अ
की समाप्ति से एक वर्ष के दर्मियान वह इस सिफ़ारि
प्रतिज्ञा के मसविदे को उस सत्ता या उन अधिकारि
सामने पेश करेगी, जो क़ानून बनाने अथवा दूसरा
अमल में लाने के उपयुक्त पात्र हैं । यदि असाधारण स्थि
के कारण एक वर्ष के अन्दर ऐसा करना उसके लिए अ
हो तो सबसे जल्दी व्यावहारिक मौक़े पर, और परि
अधिवेशन की समाप्ति से १८ मास से ज्यादा का सम
वह किसी भी हालत में न लगावेगी । यह साफ़ तौ
कहा गया है कि यदि किसी सिफ़ारिश को कार्य-रूप में
कराने के लिए कोई क़ानूनी या दूसरा उपाय न अ
किया जाय, अथवा प्रतिज्ञा के मस्विदे को उस स
उन अधिकारियों की स्वीकृति न मिले कि जिनके अ
में यह बात है, तो फिर उस सदस्य (देश) पर
कोई भार नहीं रहेगा ।

रिशों और प्रतिज्ञाओं के अलावा प्रतिनिधि या अपने प्रस्ताव भी परिषद् में पेश कर सकते हैं, के आरम्भ होने की तारीख़ से कम-से-कम एक पूर्व उनकी सूचना दे देना आवश्यक है।

में भिन्न-भिन्न देशों के प्रतिनिधि आते हैं और फ़्रेंच भाषा में उसका काम होता है। प्रतिनिधि किसी भाषा में भी बोल सकते हैं, उनकी बातों उलथा इन भाषाओं में होने की व्यवस्था है। और स्पेन अपनी भाषाओं को परिषद् की भाषा मन- क़रीब सफल हो चुके हैं। प्रत्येक वक्तृता का अंग्रेज़ी और फ़्रेंच इन दो भाषाओं में ज़रूर उलथा जाता है। परिषद् में बड़े दक्ष अनुवादक हैं और वे सही-सही एवं शीघ्रता के साथ अपना काम करते हैं। प्रथा थी कि कोई भाषण होने के बाद तुरंत ही उलथा किया जाता था। परन्तु अब इन अनुवादकों विलक्षण शक्ति प्राप्त कर ली है कि १९२८ में साथ- उलथा होने की पद्धति अख़्त्यार की गई और उसमें को सफलता भी मिली। पद्धति यह है। मान लो कि कोई वक्तृता जर्मन भाषा में दी गई, तो दो दुभाषिये या अनुवादक साथ-साथ वक्ता की बातें सुनते और उसकी वक्तृता का उलथा करते जाते हैं और वह टेलीफ़ोन के ज़र्ये प्रतिनिधि तक पहुँचाया जाता है। टेलीफ़ोन प्रत्येक प्रतिनिधि की बैठक पर लगे हुए हैं। इस पद्धति के फल-स्वरूप परिषद् का काम समाप्त होने में कम-से-कम चार दिन की बचत ज़रूर हो गई।

परिषद् का काम आरम्भ होते ही, सबसे पहले, सभापति का चुनाव होता है; उसके बाद एक निर्वाचन-समिति नियुक्त की जाती है। इसके बाद तुरन्त निर्वाचन-समिति की बैठक होती है, जो परिषद् के कार्यक्रम में लिखित भिन्न-भिन्न कामों के सम्बन्ध में नियुक्त की जानेवाली समितियों की संख्या का निश्चय करती है। इसके बाद कार्य-निर्वाह के लिए स्वयं परिषद् भिन्न-भिन्न समितियों में बँट जाती है। परिषद् का अत्यन्त महत्वपूर्ण काम इन समितियों में ही होता है। विभिन्न समितियों के चुनाव परिषद् की पहली बैठक के सामने तो केवल नियमों की पाबन्दी के लिए होते हैं; क्योंकि भिन्न-भिन्न समुदाय—जैसे, सरकारी समुदाय,

पूँजीपतियों का समुदाय

पूँजीपतियों का समुदाय, और मज़ूरों का समुदाय—अलग-अलग मिलते हैं और प्रत्येक समुदाय भिन्न-भिन्न समितियों के अपने-अपने प्रतिनिधि नियुक्त करते हैं। फिर इन समुदायों के भी निजी (Non-official) संघटन होते हैं, जो परिषद्-सम्बन्धी काम करते हैं, और जब कोई समुदाय बाज़ाब्ता (Officially) मिलता है तो वह प्रायः उन बातों पर अपनी मुहर लगा देता है, जो कि निजी तौर पर उन संस्थाओं में तय हो चुकी हों । उदाहरण के लिए, पूँजीपतियों के हितों की रक्षा के लिए उन्होंने 'औद्योगिक पूँजीपतियोंका अन्तर्राष्ट्रीय संघटन' नाम का एक संघटन स्थापित किया है, जिसका प्रधान कार्यालय ब्रुसेल्स में है। विभिन्न देशों के मालिकों के संघटन इस अन्तर्राष्ट्रीय संघटन का ख़र्चा बर्दाश्त करते हैं, और पूरे वर्ष-भर अन्तर्राष्ट्रीय मज़ूर-परिषद् की प्रबन्ध-सभा के निकट-संपर्क में यह अपना काम करता है। भारतीय व्यापारी-संघों का संगठन (The Federation of Indian Chambers of Commerce) १९२८ ई० में इस संघटन का एक सदस्य हो गया है, जिसे कभी 'आई० ओ० आई० ई०' (I. O. I. E.) और कभी 'ब्रुसेल्स संघटन' कहा जाता है। प्रबन्ध-सभा जो भी कुछ करती है, उससे यह संघटन अपने सदस्यों को ठीक तौर पर परिचित रखता है; प्रबन्ध-सभा में पूँजीपतियों के जो प्रतिनिधि हैं उनके वहाँ प्रकाशित किये जाने वाले विचारों पर अपना प्रभाव डालता है; और अन्तर्राष्ट्रीय मज़ूर-परिषद् में मालिक-समुदाय द्वारा किये जाने वाले काम

सिलसिला बाँधता है। यह निजी संघटन भी अपने

उतनी ही शास्त्रीय (Technical) समितियों में नि

कर लेता है, जितनी कि परिषद् द्वारा नियुक्त होती हैं।

श्री देवीप्रसाद खेतान, भारतीय पूंजीपतियों के प्रतिनिधि और इस लेख के लेखक, (सपरिवार)

इस प्रकार परिषद् के कार्य-काल के समय प्रत्येक
निधि के लिए तीन एकसाँ चश्मे बहते हैं; उदाहरण
लिए, मालिकों का प्रति
अपनेको निजी संघटन,
कारो समुदाय और स
परिषद् तीनों की समिति
पाता है। परिषद् में
वाला नया आदमी कई
तक परिषद् और उसके
गों की उलझी हुई एवं
चित कार्यवाही और
के गोरखधन्धे को समझ
अपनेको असमर्थ पाता
इसीलिए कई देशों ने
वर्षों से उन्हीं व्यक्तियों
हर बार प्रतिनिधि बना
भेजने का क्रम अख़्तियार
रक्खा है; और यही देश
अपना काम कर जाते
भारत यदि गम्भीरता से
राष्ट्रीय मज़ूर-परिषद् के
को उठाना चाहता है तो
भी यही ढंग अख़्तियार
पड़ेगा।

अन्तर्राष्ट्रीय मज़ूर-परि
जो काम करती है वह
रोचक ढंग का है, हालां कि प्रतिनिधियों को उसके लिए
परिश्रम से कार्य करना पड़ता है। इससे प्रतिनिधियों
संसार के विविध देशों के चुने हुए मनुष्यों के संपर्क
आने का मौक़ा मिलता है। दावत और जल-पान के अ
अवसरों पर वे एक दूसरे को निमंत्रित करते हैं, इससे

रे के निकट सामाजिक सम्पर्क में आते हैं। ऐसी और ऐसे जल-पान मानों परिषद् के आवश्यक से ही हो गये हैं। वहाँ हर शख्स दूसरों से जान-करना चाहता है और जान-पहचान होने पर में बड़ी मित्रता हो जाती है।

अन्तर्राष्ट्रीय मजूर-परिषद् के १९२८ ई० के अधिवेशन बात अंतिम निर्णय के लिए पेश हुई थी कि कारख़ानों रों की कम-से-कम मजूरी की सीमा निश्चित कर दी इसपर एक प्रतिज्ञा (Convention) और दो सिफ़ारिशें स्वीकृत हुईं। प्रतिज्ञा की पहली धारा में लिखा है:—

"अन्तर्राष्ट्रीय मजूर-परिषद् का प्रत्येक सदस्य जो इस ज्ञा को स्वीकृत करता है, ऐसी व्यवस्था करना और उसे रखना अंगीकार करता है कि जिसके द्वारा उन मजूरों री की दर कम-से-कम निश्चित की जा सके, जो कई न्धों या व्यवसायों की शाखाओं (और ख़ास कर घरू व्यवसाय) में काम करने वाले हैं और जिनमें आपस के ठहराव से अथवा अन्य किसी प्रकार से का कोई अच्छा और पक्का नियम नहीं है, और मजूरी कम है।

इस 'प्रतिज्ञा' के कार्य-निर्वाह के लिए 'व्यवसायों' शब्द गरी और वाणिज्य भी शामिल हैं।"

दूसरी धारा इस प्रकार है:—

"इस प्रतिज्ञा को मंजूर करने वाला प्रत्येक सदस्य इस में स्वतन्त्र रहेगा कि व्यवसाय अथवा उस व्यवसाय शाखा के मजूरों और मालिकों के संघटनों से, परामर्श के इस बात का निर्णय करे कि किन व्यवसायों या व्यवसायों की शाखाओं में, और ख़ास कर किन घरू व्यवसायों व्यवसायों के भागों में, पहली धारा में वर्णित कम-से-निश्चय की हुई मजूरी की दर लागू होगी।"

इस प्रतिज्ञा के संबंध में भारत-सरकार ने अपना रूख़ तटस्थ रक्खा। उसके प्रतिनिधियों ने किसी भी अपना मत नहीं दिया। भारत-सरकार की ओर से यह कहा गया कि उसने अभी यह निश्चय नहीं किया कि वह इस प्रतिज्ञा को मंजूर कर सकेगी या नहीं। वह समिति नियुक्त करके इस बात की पूरी जाँच करायगी कि यह प्रतिज्ञा भारतीय परिस्थितियों में व्यवहृत की जा सकती है या नहीं—ख़ास कर इस बात की दृष्टि से कि यद्यपि बड़ी धारा-सभा को इस संबंधी विधान स्वीकृत करने का अधिकार है, परन्तु जहाँ तक शासन से संबंध है, प्रान्तीय सरकारों को इसे अमल में लाना होगा; क्योंकि उद्योग एक हस्तान्तरित विषय है।

दूसरा प्रश्न जो परिषद् के सामने प्रारम्भिक बहस के लिए आया, औद्योगिक दुर्घटनाओं के अवरोध का था। इसपर परिषद् ने विभिन्न सरकारों के पास एक प्रश्नावली भेजने का निश्चय किया; जब उनके जवाब आजायँगे तो आशा है कि अगले साल यह बात अन्तिम निर्णय के लिए पेश की जायगी।

इन दो प्रश्नों के अलावा, और भी बहुत-से प्रस्ताव परिषद् में स्वीकृत हुए। प्रस्तावों पर पहले प्रबन्ध-सभा में विचार किया जाता है कि परिषद् में उन्हें और आगे बढ़ाना चाहिए या नहीं।

एक बात परिषद् में सबका ध्यान आकर्षित किये बिना नहीं रहती। वह है परिषद् पर मजूरों के प्रतिनिधियों का ज़बर्दस्त प्रभाव—परिषद् में मजूरों के प्रतिनिधियों का काम सबसे सहल है। उन्हें सिर्फ़ माँगें पेश करनी होती हैं और मानवता के भाव और लिहाज़ से अवश्य ही उन्हें पुष्टि मिल जाती है। सरकारी प्रतिनिधि मजूरों के प्रतिनिधियों की पुष्टि करते हुए दिखाई देते थे और सब इस बात को मानते थे कि सरकारी प्रतिनिधियों का ऐसा व्यवहार प्रधानतः सब देशों की राजनीति में मजूरों के बढ़ते जाने वाले प्रभाव का परिणाम है। मालिकों के प्रतिनिधि साधारणतः अपनेको कुछ विचित्र स्थिति में पाते हैं। वे मजूरों की मदद करना चाहते हैं; पर उन्हें अपने मन में गम्भीरता के साथ अपने उद्योगों को जीवित एवं लाभप्रद रखने में होनेवाली कठिनाइयों और रुकावटों पर भी ध्यान रखना पड़ता है। ऐसी परिस्थितियों में बड़ी दिलचस्पी के साथ यह बात देखी जाती थी कि तमाम प्रतिनिधि किस प्रकार मानवता के भावों से परिपूरित हो अपने मतभेदों को मिटाने और ऐसे किसी निर्णय पर पहुँचने के लिए लालायित थे, जो व्यवहारिक हो और जिसे सब समुदाय के प्रतिनिधि स्वीकार भी कर सकें।

देवीप्रसाद खेतान

इंग्लैराड का स्थानीय शासन

"स्वाधीन राष्ट्रों की शक्ति नागरिकों की स्थानीय समितियों पर निर्भर होती है। कोई राष्ट्र स्वतन्त्र शासन की पद्धति स्थापित कर सकता है, परन्तु नगर-संस्थाओं की भावनाओं के बिना उसमें स्वतन्त्रता की भावना नहीं हो सकती।"

—डी. टोकविल

प्राक्कथन—प्रत्येक देश में कुछ कार्य ऐसे होते हैं, जिन्हें केन्द्रीय या प्रान्तीय सरकार सुभीते से नहीं कर सकती। इन कार्यों को स्थानीय संस्थाओं द्वारा कराना अच्छा होता है। ये संस्थायें उन्हें स्थानीय परिस्थिति तथा आवश्यकताओं के अनुसार अच्छी तरह सम्पादन कर सकती हैं। इन संस्थाओं में बोर्ड या कमिटी महत्वपूर्ण विषयों का निर्णय करती हैं, और साधारण नीति निर्धारित करती हैं। ब्यौरेवार बातों का प्रबन्ध करने के लिए भिन्न-भिन्न उप-समितियों को विविध विषय सौंपे जाते हैं। ये उप-समितियां बोर्ड या कमिटी के निरीक्षण में अपना कर्तव्य-पालन करती हैं।

बोर्ड या कमिटी तथा उप-समितियों के निर्णयों को अमल में लाने के लिए कुछ स्थायी कर्मचारी होते हैं, जो उनकी आज्ञा या आदेश के अनुसार काम करते हैं। ये कर्मचारी भिन्न-भिन्न परिस्थिति तथा आवश्यकताओं के अनुसार भिन्न-भिन्न तथा कुछ कम-ज़्यादा हो सकते हैं।

स्थानीय प्रबन्ध के विचार से इंग्लैंड के भाग—स्थानीय कार्यों के सुसम्पादन के लिए इंग्लैण्ड कुछ 'काउण्टियों' (Counties) में विभक्त है। कुछ बड़े-बड़े शहर भी काउन्टी मान लिये गये हैं, उन्हें 'काउन्टी-बरो' (County borough) कहते हैं। प्रत्येक काउन्टी में शासन-कार्य करने के लिए एक काउन्टी-कौंसिल होती है। प्रत्येक काउन्टी ग्राम्य ज़िलों (Rural Districts) और शहरी ज़िलों (Urban Districts) तथा म्युनिसिपल-बरों में विभक्त है। प्रत्येक शहरी ज़िले में ज़िला-कौंसिल और म्युनिसिपल-बरों में म्युनिसिपल कौंसिल है। ग्राम्य ज़िले 'पेरिशों' (Parishes) में विभक्त हैं। पेरिश एक बड़ा ग्राम या कुछ भागों का समूह होता है। पेरि
पेरिश-कौंसिल होती है।

इन सब संस्थाओं के संगठन, अधिकार इत्या
संक्षिप्त परिचय देने के लिए पहले काउन्टी-कौंसि
सम्बन्ध में लिखते हैं।

काउन्टी-कौंसिल : संगठन—काउन्टी-कौंसि
सभापति, एल्डरमेन (Alderman) और साधारण
होते हैं। काउन्टी में प्रत्येक ज़िले से एक या अधिक
रण सदस्य प्रति तीसरे वर्ष चुने जाते हैं; एल्डरमेन
सदस्यों द्वारा छः वर्ष के लिए चुने जाते हैं, परन्तु
का चुनाव तीसरे वर्ष हो जाता है। कुल एल्डरमे
संख्या साधारण सदस्यों की एक-तिहाई होती है।
सदस्यों की संख्या काउन्टी के विस्तार पर निर्भर
२८ से १४० तक होती है। सभापति कौंसिल द्वा
जाता है।

कौंसिल के लिए ऐसा व्यक्ति उम्मेदवार नहीं हो
जो उसका वैतनिक कर्मचारी हो, या जिसने उस
कौंसिल से किसी कार्य का ठेका ले रक्खा हो। कौं
सदस्य बनने के लिए अयोग्यतायें वही हैं, जो ब्रिटि
मेण्ट का सदस्य बनने के लिए हैं; परन्तु सरदार (
भी इसके सदस्य हो सकते हैं। निर्वाचन-अधिकार
पुरुषों तथा स्त्रियों को है, जो चुनाव के समय छः
काउन्टी में रह चुके हों।

कार्य—काउन्टी-कौंसिल ज़िला-कौंसिलों के
निरीक्षण करती है, और उनके जिस काम में
उसका सम्पादन करती है। यह बड़ी सड़कों और
मरम्मत करवाती है, किसानों को छोटे-छोटे खेत दि
प्रबन्ध करती है, काउन्टी की पुलिस का नियंत्रण
मातृ-कर्तव्य और बच्चों की सुरक्षा-सम्बन्धी नि
पालन कराती है। यह काउन्टी में प्रारम्भिक शि
उत्तरदायी है और उच्च शिक्षा के लिए सहायता
यह अस्पतालों, सुधार-गृहों और पागलख़ानों का

करती है। यह नाचघर, थियेटरों, गायन-गृह लाइसैन्स देती है।

निम्नलिखित विषयों के क़ानून को अमल में लाती की छूत की बीमारी, नाशक कृमि, जंगली पशु, भाप, स्फोटक पदार्थ, नदियों की गन्दगी आदि। कौंसिल अपने कर्मचारियों को स्वयं नियत है। यह अपनी काउन्टी की सुव्यवस्था के लिए उपनियम बनाती है, और उन्हें भंग करने वालों कर सकती है। यह एक निर्धारित सीमा तक सकती है, इसके करों को 'काउन्टी-रेट' कहते हैं। तिरिक्त उसे अपना कार्य सम्पादन करने के लिए जुर्माने से भी हो जाती है। परन्तु आय का मुख्य रक़म है, जो इंग्लैण्ड की सरकार द्वारा उसे ख़ास-के लिए मिलती है। कौंसिल का हिसाब एक निरीक्षक द्वारा जांचा जाता है।

ला-कौंसिल—प्रत्येक ज़िला कौंसिल के सदस्य के लिए चुने जाते हैं, परन्तु एक-तिहाई सदस्यों प्रति तीसरे वर्ष होता है। जो सदस्य छः मास किसी विशेष कारण, कौंसिल की बैठक से रहता है, उसकी जगह ख़ाली हो जाती है। सदस्यों द्वारा चुना जाता है। स्वास्थ्य-विभाग के कौंसिल की बैठक में, आमंत्रित किये जाने पर, सकते हैं।

धिकार और कर्त्तव्य—ज़िला-कौंसिल के मुख्य —यह ज़िले की गलियों, बाज़ारों, और नालियों की ती है। सड़कों पर पानी छिड़कवाती है, मकानों और कूड़ा हटवाती है, स्वच्छ पानी का प्रबन्ध हानिकर खाद्य पदार्थों को फिंकवाती है। यह को छोड़कर, अन्य सड़कों को बनवाती तथा करवाती है।

की बीमारियों को रोकने के लिए इसे विशेष हैं। यह गाड़ियों, सरायों, और मातृगृह सैंस भी देती है। यह मेलों का प्रबन्ध करती आदि का काम करने का समय निर्धारित

ज़िला-कौंसिल का बहुत-सा कार्य कमिटियों द्वारा होता है, जिनमें ऐसे सदस्य भी होते हैं, जो कौंसिल के सदस्य नहीं होते।

नगर की ज़िला-कौंसिलों के विशेष अधिकार ये हैं:—ये स्नानागार और कपड़े धोने के स्थानों का प्रबन्ध करती हैं। कहीं आग लग जाय तो उसे बुझाने के लिए पानी का प्रबन्ध करना इनका आवश्यक कर्तव्य है। ये कसाईख़ाने बनवातीं तथा रजिस्टर में उनका उल्लेख करती हैं। ये ट्रामवे तथा छोटी लाइन की रेलें बनवाती और चलाती हैं। ये पुस्तकालय, अजायबघर, सार्वजनिक उद्यान आदि बनवाती हैं।

आय-व्यय—ज़िला-कौंसिलों की कुछ आमदनी फ़ीस और जुर्माने से हो जाती है, और उनकी शेष आय वह रक़म है, जो ब्रिटिश सरकार से उन्हें काउण्टी-कौंसिल द्वारा प्राप्त होती है।

नगर की ज़िला-कौंसिल को निर्धारित कर वसूल करने का अधिकार है। ग्राम्य ज़िला-कौंसिलों को ख़र्च उस फ़ण्ड से चलता है, जो भिन्न-भिन्न पेरिशों से वसूल किये हुए 'दरिद्र-रक्षा-कर' (Poor rates) के एकत्र होने से बनता है।

म्युनिसिपल कौंसिल—म्युनिसिपल कौंसिल उन बड़े-बड़े शहरों में होती हैं, जो काउन्टी-कौंसिलों के अधिकार में नहीं हैं। इनमें 'मेयर', 'एल्डरमेन' और साधारण सदस्य होते हैं। सदस्य तीन वर्ष के लिए चुने जाते हैं, परन्तु तृतीयांश सदस्यों का चुनाव प्रति वर्ष सितम्बर की पहली तारीख़ को होता है। म्युनिसिपल कौंसिलों के निर्वाचकों की योग्यता वही होती है, जो काउण्टी-कौंसिलों के निर्वाचक की।

'एल्डरमेन' साधारण मनुष्यों द्वारा चुने जाते हैं। उनकी संख्या साधारण सदस्यों की संख्या की एक-तिहाई रहती है। ये छः वर्ष के लिए चुने जाते हैं, पर आधे एल्डरमेनों का चुनाव प्रति तीसरे वर्ष होता है।

मेयर, कौन्सिल द्वारा, एक साल के लिए चुना जाता है। उसका अगले साल निर्वाचन हो सकता है। वह कौंसिल का सभापति होता है। वह म्युनिसिपल-बरो की ओर से आतिथ्य-सत्कार का कार्य करता है। वह कौन्सिल की

सब कमिटियों का सदस्य रहता है, और 'बरो' की न्यायाधीश-समिति का सभापति होता है।

यदि बिना विशेष कारण के मेयर दो मास तक, और ऐल्डरमेन या साधारण सदस्य छः मास तक अपने 'बरों' से अनुपस्थित रहे तो उनका स्थान खाली हो जाता है।

अधिकार—यदि कोई 'बरो' काउण्टी भी हो, तो उसकी कौन्सिल को वह सब अधिकार होते हैं, जो काउण्टी-कौंसिल के होते हैं। सब कौंसिलें 'बरों' के लिए उपनियम बना सकती हैं। ये अपनी 'बरों' की जायदाद का प्रबन्ध करती हैं। जिन 'बरों' में दस हजार से अधिक जन-संख्या है, वे प्रारम्भिक शिक्षा के लिए उत्तरदायी होती हैं। यह 'बरो' जानवरों की छूत-सम्बन्धी बीमारियों, नाशक कृमियों, तौल-माप और खाद्य पदार्थों के विक्रय-सम्बन्धी क़ानूनों को अमल में लाती हैं। जिन 'बरों' की जन-संख्या बीस हजार से अधिक है, वे पुलिस का भी प्रबन्ध कर सकती हैं।

आय-व्यय—इनकी आय के साधन ये हैं—फ़ीस, जायदाद की आमदनी, विशेष कार्यों के लिए ब्रिटिश सरकार से प्राप्त धन और 'बरों' के कर। 'बरों' के दो आय-व्यय-निरीक्षक तो निर्वाचकों द्वारा चुने जाते हैं और एक कौंसिल के सदस्यों में से मेयर द्वारा नामज़द किया जाता है।

पेरिश—ग्राम्य ज़िलों में कुछ बड़े ग्राम या छोटे ग्रामों के समूह हैं, उन्हें पेरिश कहते हैं। प्रत्येक पेरिश में एक-एक पेरिश-पंचायत (Parish meeting) होती है। उसमें वे सब व्यक्ति रहते हैं, जिनका नाम ज़िला-कौन्सिल, काउण्टी-कौन्सिल, या इंग्लैण्ड की प्रतिनिधि-सभा के निर्वाचकों में दर्ज हो। जिन पेरिशों में पेरिश-कौंसिल नहीं होती उनमें सब कार्य पंचायत द्वारा ही होता है। सालभर में पंचायत की कम-से-कम दो बैठक अवश्य होनी चाहिएँ।

पेरिश-कौन्सिल में सभापति और पाँच से पन्द्रह तक सदस्य रहते हैं। ये तीन वर्ष के लिए पेरिश-पंचायत द्वारा अप्रैल की पन्द्रहवीं तारीख़ को चुने जाते हैं। इस चुनाव में निर्वाचक अपना मत भिन्न-भिन्न उम्मेदवारों के पक्ष में हाथ उठा कर देते हैं। परन्तु सभापति या पांच निर्वाचक चाहें तो निर्वाचन-पत्र द्वारा लिखित मत भी लिया जा सकता है। यदि बिना किसी विशेष कारण के कौंसिल का सदस्य उसकी बैठक से छः मास से अधिक समय तक अनुपस्थि रहे तो उसका स्थान ख़ाली हो जाता है।

पेरिश-कौंसिल के कार्य—पेरिश-कौन्सिल ज मृत्यु तथा ब्याह-शादियों का लेखा रखती है और किसा को भूमि दिलाने कर प्रबन्ध करती है। पेरिश-पंचायत अनुमति से यह निम्नलिखित कार्य भी कर सकती है गाँव में रोशनी, पहरा देना, और श्मशान, स्नानागार, बुझाने के एँजिन, मनोरंजन-स्थान आदि का प्रबन्ध कर

दरिद्र-रक्षा-कर से जो आय होती है, उसमें से पौण्ड छः पैन्स तक पेरिश-कौन्सिल अपने लिए ख़र्च सकती है। यदि कोई ग्राम्य ज़िला-कौन्सिल अपने क में असावधानी करे, तो पेरिश-कौन्सिल और पेरिश-पं इस बात की शिकायत काउण्टी-कौंसिल से कर सकती

दरिद्र-रक्षा-नियम-समिति(Poor law uni ग़रीबों और अपाहिजों को सहायता पहुँचाने के लिए पेरिशों की यूनियन या समिति स्थापित की गई हैं। में भी ऐसी समितियों की स्थापना हुई है। 'दरिद्र नियम सन्बन्धी सब काम उक्त समिति की एक करती है, उसे संरक्षक बोर्ड (Board of Guardia कहते हैं।

ग्राम्य ज़िलों में इस संस्था के सदस्य वही व्यक्ति हैं, जो 'यूनियन' की पेरिशों से ज़िला-कौन्सिलों के सदस्य चुने गये हैं। ग्रामों के 'यूनियनों' में संरक्षक के सदस्यों का चुनाव अलग होता है। इनमें कि संख्या प्रायः अधिक रहती है। प्रत्येक बोर्ड अपने स और उप-सभापति का चुनाव स्वयं करता है, और उ सदस्यों के चुनाव का भी अधिकार होता है। बोर्ड वर्ष के लिए चुना जाता है, परन्तु उसके तृतीयांश का चुनाव प्रति वर्ष होता है।

संरक्षक बोर्ड का प्रधान कार्य दरिद्र लोगों की यता करना अर्थात् उन्हें भोजन-वस्त्र देना तथा चि सम्बन्धी सहायता पहुँचाना और मृतकों को गाड़ने प्रबन्ध करना है। यह दरिद्रों के लिए काम की सु करता है, दरिद्रालयों और अपाहिजख़ानों का करता है। आवश्यकता होने पर प्रत्येक नागरिक इ

करने की दरख़्वास्त दे सकता है। बोर्ड द्वारा नियुक्त ज़िटरों (निरीक्षकों) तथा अन्य कर्मचारियों का है कि उस दरख़्वास्त की आवश्यक जाँच करें, और रत हो तो तत्काल सहायता का प्रबन्ध करें। को सहायता पहुँचाने का कार्य संरक्षक-बोर्ड को सरकार के स्वास्थ्य-विभाग की आज्ञाओं के अनुसार होता है, और इस विभाग द्वारा नियुक्त इंस्पेक्टरों की बैठक में उपस्थित होने का अधिकार है। बोर्ड का मुख्य साधन दरिद्र-रक्षा-कर है।

लन्दन का स्थानीय शासन—इंग्लैंड की राजधानी स्थानीय शासन की दृष्टि से एक पृथक् ही काउण्टी सका स्थानीय शासन दो संस्थाओं द्वारा होता है—न्दन-कारपोरेशन और (२) लन्दन-काउण्टी-कौंसिल। कारपोरेशन का कार्य-क्षेत्र प्राचीन लन्दन शहर है, और लन्दन-काउण्टी-कौंसिल का कार्य-क्षेत्र है उसके बाहर नया बसा हुआ लन्दन शहर। लन्दन-कारपोरेशन का कार्य लार्ड मेयर, एल्डरमेन और साधारण सदस्यों द्वारा होता है। लन्दन-काउण्टी-कौंसिल नवीन लन्दन शहर की समस्त (अट्ठाईस) काउण्टी-कौंसिलों के ऊपर है। इसका संगठन तथा अधिकार इंग्लैंड की अन्य काउण्टी-कौंसिलों के समान होता है। इसे लन्दन-कारपोरेशन पर भी कुछ अधिकार प्राप्त हैं।

एक प्रसिद्ध विद्वान् के कथनानुसार इंग्लैंड की विविध प्रकार की स्वाधीनता का प्रधान कारण उसकी स्थानीय संस्थाओं की स्वतन्त्रता ही है।

दयाशंकर दुबे,
भगवानदास केला

विस्मृता उर्म्मिला

दूसरा सर्ग

प्रासाद-प्रांगण में

(१)

झुन, रुन-झुन नन्हीं-नन्हीं पैजनियां झङ्कारें,—
रिङ्गण की प्राङ्गण में फैल रही गुँजारें;
किलक मधुस्रोत बहाती हैं विदेह की ललियाँ,
पवन में चिटखीं हैं छोटी-छोटी दो कलियाँ॥

(२)

मुकुल जनक-रानी की हैं जीवन-प्रतिछाया;
मिथिलेश-हृदय की ये हैं दोनों माया;
और उर्म्मिला ये, पीयूष सरस के कण हैं;
प्रणय के पंचम-स्वर में उद्गीरित गायन हैं॥

(३)

दृशा मति मुग्धाओं की आओ छवि अवलोकें;
प्यारे चरण-चिह्न को चूमें इन विमलों के;
मधुरी-मधुरी विश्व-मोहिनी बतियाँ इनकी सुनलें;
हास-पुष्प कीर्णित हैं आओ इन फूलों को चुनलें॥

(४)

काले-काले लम्बे-लम्बे, केश-कलाप घने-से—
उड़-उड़ कर समीर से खेल रहे हैं प्रेम-सने से—
मानों गन्ध-लुब्ध सर्पों के कृष्णझुण्ड मतवाले—
नाच रहे हैं लोट-पोट हो सुन्दर प्रातःकाले॥

(५)

तरल तरङ्गित चिकुर-जाल यह कोमल और विरल है,—
तन्तु-नाभ के सूत्र-जालसा अतिशय मृदुल चपल है;
एक-एक कुन्तल की यह बारीकी किसने पेखी?
ज्यामितिज्ञ की मनःकल्पना-रेखा जिसने देखी!

(६)

पास-पास विष्टरासीन जब ये दोनों होती हैं—
शुक्ति-सम्पुटों में तब भासित होते दो मोती हैं;
किंवा जनक-भवन में नभ से मिथुन-राशि आई हो;
अथवा दामिनी की दो किरणें पास-पास छाई हों॥

(७)

जब दोनों वेणियां परस्पर, उड़कर, जुट पाती हैं—
तब कृष्णा यमुना की दो धारायें गुँथ जाती हैं;
या दो कुन निशायें अलिंगन करतीं लुब्धा हो;—
या दो परछांही हैं भुजभर भेंट रहीं मुग्धा हो॥

(८)

सौम्य ललाट शुभ्रता में शुचिता है खेल रही यों—
श्वेत कमल पत्रों में अमल शुभ्रता खेल रही ज्यों;
भाल-देश के ऊर्ध्वभाग में केशवर्त्तुला रेखा—
शोभित हैं ज्यों सान्ध्य क्षितिज में अन्धकार की लेखा !

(९)

जब उन्नत ललाट पर अलकावलियां उड़ आती हैं—
तब मानों केशों में आँख-मिचौनी छिड़ जाती है;
केश-पुंज-वेष्टित ललाट ऐसे शोभित होते हैं—
ज्यों ऊषा की गोदी में बिहाग के स्वर सोते हैं॥

(१०)

ये चारों चापल्यमयी आँखें दौड़ी फिरती हैं,—
मानों गिर्योत्सङ्गों से चपला नदियां गिरती हैं;
बाल-क्रीड़ा के निश्छल भावों की अविरल धारा—
बह-बह कर जीवन के दुख को कर देती है न्यारा॥

(११)

भाली-सी ये चार अँखड़ियाँ डोल रहीं आँगन में,
फूली-फूली आनन्दित फिरती हैं इस प्राङ्गण में,
मानों वेदों की श्रुतियाँ हैं श्रवण छोड़ कर आई,—
अथवा चतुष्कामनाओं ने अपनी छटा दिखाई॥

(१२)

जनक-प्रिया के मातृ-हृदय की ये आँखें लाड़िलियाँ—
भक्ति-प्रेम के यज्ञकुण्ड की हैं घृत आहुति-पलियाँ;
श्यामा खचित भ्रूलताओं ने नयनों को जकड़ा है—
चंचलता के मन में मानों मोहन-पाश पड़ा है!

(१३)

आँखों के द्वारे कुछ-कुछ है कृष्ण-लोम की शोभा-
पक्ष्म में मानों समार्जनियाँ बन आईं निर्लोभा;
पलकें जब-जब झपती हैं तब मानों दो-दो तारे,
बार-बार मेघावृत्त होकर चमक रहे हैं न्यारे॥

(१४)

लम्बी-सी सुडौल नासा में मुक्ता लटक रहे हैं;
अधर-लालिमा से रंजित ये मोती मटक रहे हैं;
मानों मानसरोवर-तीरे राजहंस-हंसिनियाँ
मुदित पान करती हैं सुन्दर मुक्त प्रेम की कणियाँ॥

(१५)

इस जोड़ी के अधरों पे लालिमा विराज रही यों-
प्राची के मस्तक पर कुंकुम-बिन्दी भ्राज रही ज्यों;
ओष्ठ-चतुष्टय पतले-पतले शोभित यों होते हैं-
मानों दशन-मोतियों को ढाँपे सन्त्री सोते हैं॥

(१६)

जब विकसित होती हैं दाँतों की ये शुभ्र अवलियाँ-
तब उद्यानों में शरमा जाती हैं वे नवकलियाँ;
हास-पाश जब फैलाती हैं ये दोनों सुकुमारी-
तब अशक्त-सी बँध जाती विदेह वैराग्य-खुमारी॥

(१७)

कौन यहाँ से चला जायगा भवसागर तरने को?
कौन अगस्त्य सोख सकता है इस छोटे झरने को!
किसका है सामर्थ्य करे जो उल्लंघन यह सीमा!
कहाँ छुपा है विरति राग वह जो न पड़ेगा धीमा!

(१८)

के कुण्डल-द्वय और उर्म्मिला की वह नथनी—
पिता की दूर फेंक देगी विराग की कफ़नी !
विश्व के पितृ-हृदय को मोहित कर सकती है,
वत्सलता है जो पत्थर लोहित कर सकती है।।

(१९)

खेल में शिर दोनों हिल जाते हैं मुदमय हो,
चारों कुण्डल हिलते हैं—ज्यों मछली गुणमय हो—
तड़प कर प्रकट किया करती है निज व्याकुलता !
कहीं देखी है ऐसी शोभामयी विपुलता ?

(२०)

गोल इन गालों की अरुणाई है कमनीया;
रचयिता के प्रमोद की गेंदें हैं रमणीया;
बैठी है इनमें शतपत्री की सब पाटलता—
थिला की राज्ञी के हृत्तल की सारी कोमलता ।

(२१)

मधुरी मुसक्यान छबीली, मुख पर छाजाती है—
मृदु गण्ड-तरङ्ग अनोखी छटा दिखा जाती है ।
छोटे सुअमृत-कूपों की दुर्गम गहराई है—
देश से हँसी अमिय घट भरने को आई है ।।

(२२)

गोरी छोटी-छोटी बाहें झूम रही हैं;
शावक-मण्डली उन्हें मोहित हो चूम रही हैं;
का ये कण्ठहार हैं चारों भुज-वल्लरियाँ;
देव ने रीझ सुनयना को दी हैं ये लरियाँ ।।

(२३)

श्री उर्म्मिला बहन के डाल गले में बहियाँ,—
हो बोली, मानों बरसी नव रस की फुहियाँ;
बहन उर्म्मिले, तुम हो मेरी अच्छी रानी,
सुनाओ तुम मुझको अच्छीसी एक कहानी ।।”

(२४)

“सीता जीजी, पहले तुम्हीं कहो कुछ नई कहानी;
देखो मैं बैठी हूँ आँख मींचकर बनकर ज्ञानी—
जैसे तात बैठते हैं सुनने वेदों की गाथा,—
वैसे ही बैठी हूँ सुनने आज तुम्हारी बाता ।।”

(२५)

यों कह कर उर्म्मिला ध्यान-मग्ना-सी बैठ गई जब,—
सारी बाल-चपलता मानों हो एकत्र गई तब—
और चुनौती देने लगी गँभीर भावनाओं को,—
ध्यानी के उन्नत ललाट की धीर सांत्वनाओं को ।।

(२६)

हँस-हँस झकझोरने लगी उसको सीता सुकुमारी;
और अचल-सी बैठी रही कनिष्ठा जनक-दुलारी;
“सीता जीजी,” आँखों को मूँदे ही मूँदे बोली—
“कथा कह रही हो कि खेलती हो तुम मुझसे होली ।।”

(२७)

चुटकी से उसके गालों को सीता ने तब थामा,
वचनावलियाँ उच्चारित कीं उसने ये अभिरामा,
“खोलो आँख उर्म्मिले, तुमपर जाऊँ मैं बलिहारी,
सन्ध्या करने को तो मैंने कहा नहीं था प्यारी ?

(२८)

“एक कहानी के बदले यह सन्ध्या क्यों करती हो?
ऐरी ढीठ क्यों न मेरी बातें मन में धरती हो ?”
सुन सीता के वचन उर्म्मिला ने निज आँखें खोलीं;
मानों छोटी-सी हरिणी ने खोलीं आँखें भोली ।।

(२९)

बड़े चाव से सीता उससे बोली प्यार-पगी-सी,
मानों रह-रह कर जाग्रत होती है लगन लगी-सी;
“बहन उर्म्मिले, चलो खेलने चलें अन्तरुपवन में,
माँ के लिए फूल तोड़ेंगी हम-तुम उस उपवन में।।”

(३०)

“जीजी, मा उन सब फूलों के हार गूँथ डालेंगी;
तात-चरण को माला देंगी वे निज व्रत पालेंगी;
एक बात मुझको बतला दो मेरी जीजी रानी—
तात-चरण आते हैं तब क्यों हँसती माँ कल्याणी?

(३१)

“मुसका कर माँ अपनी माला क्यों उनको देती हैं?
फिर उनमें से एक माँगकर आप पहन लेती हैं ?
एक बार मैंने माँ से यह बात पूछ जब ली थी,
तब बस उनने जल्दी से मेरी चुम्मी ले ली थी ॥

(३२)

“किन्तु चूमकर, सुनो, बात मुझको ज़रा न बतलाई;
मुझसे कहा, अनोखी है री तेरी यह पगलाई;
इसमें क्या पागलपन है री जीजी तुम्हीं बता दो?
माँ की इन करतूतों का मुझको तुम हाल जता दो!”

(३३)

सीता यह सुन उठी खिल-खिला मानों बिखरे मोती;
खिसक गई मस्तक से छोटी-सी वह शुभ्रा धोती;
“सुन प्यारी ऊर्म्मिले, मुझे ये बातें ज्ञात नहीं हैं,
माता ने मुझको भी तो ये बातें नहीं कही हैं ॥”

(३४)

यों आपस में बातें करती चलदीं दोनों बहने,
रूप-रङ्ग में हैं समान, ये विदेह-गृह के गहने,
उपवन में दोनों बहनों की जब आ बैठी जोड़ी,
तब फूलों में होने लगी परस्पर होड़ा-होड़ी ॥

(३५)

कहने लगा गुलाब—“गुलाबीपन यह तो मेरा है,”
सरका कमल—“नेत्र-विस्फारण बस यह तो मेरा है!”
जुही चहकने लगी–“अहो कोमलता यह किसकी है
पारिजात बोला–“स्वर्णीया रेखा यह जिसकी है

(३६)

पक्षीगण में भी बाज़ी लग गई अतीव अनू
शुक-सारिकादि विहंगावलियां आपस में सब
“मेरा है यह रव”–यों कह सारिका हुई मतवा
“यह चापल्य,–बतादे तूही रे उपवन के माली–

(३७)

यों कह खञ्जन लगा फुदकने पत्तों डाली-डा
पिक बोला–“मैंने ही तो यह कण्ठ-ध्वनि है ढाली
सारे उपवन में, वृक्षों से, चहके वृन्द विहग
स्वागत-सूचक जय-ध्वनि निकली कण्ठों से सब ख

(३८)

एक-एक डाली का फूल किये था अर्पण मन
इन कर-कमलों में देने को उत्सुक था निज तन
प्रतिकुञ्जों से यही भावना-मयी तान उठती
आत्म-निवेदन की मुदमयी गानधारा लुटती

(३९)

उड़ आते निर्भीक खंजनों के वे दल चंचल
बैठे-बैठे कन्धों पर प्रकटाते प्रेम अचल
कभी उर्म्मिला की नासिका देख शर्माता शुक
सीता के नयनों से खञ्जन को होता कुछ दुख

(४०)

दोनों पर्य्यङ्कों पर बैठ गई इस मृदु उपवन
मानों लावण्यों की जोड़ी उदित हुई कानन
सीताभुज-वेष्टिता उर्म्मिलाऽविष्टा सीता भुज
एक दूसरी से शोभित होती थीं दोनों

(क्रमशः)

बृहत्तर भारत

['त्यागभूमि' के लिए]

(३)

(कम्बोडिया और श्रीविजय का चीनियों और अरबों-लिखित वर्णन)

ईशानवर्मन राजा के विषय में, जो कि भववर्मन का भतीजा था और जिसने ईसवी सन् की शताब्दी के पूर्वार्ध में राज्य किया था, चीनियों ने लिखा है उससे कम्बोडिया में जीवन किस प्रकार इसका मनोरंजक वृत्तान्त मालूम होता है। उस राजधानी ईशानपुर में थी, जिसमें २०,००० थे। इसके सिवा तीन और बड़े नगर थे। बीच शहर विशाल भवन था, जिसमें राज-दरबार भरता था। चारी जब आते तो सिंहासन की सीढ़ियों के पास सिर टिकाते थे और जब राजा आज्ञा देता, ऊपर राजकाज की बातें तय करने, राज-सिंहासन के चारों गोलाकार बैठ जाते। भवन के द्वार पर एक सहस्र कवच पहने और बल्लम लिये खड़े रहते थे।

बालों का जूड़ा-सा बाँधते और बालियां पहनते दाहिने हाथ को पवित्र और बायें हाथ को अपवित्र थे। दतौन से दांत साफ़ करते, प्रातःकाल ही स्नान धर्म-ग्रन्थ पढ़ते, प्रार्थना करते और फिर नहाते थे। दूसरी बार स्नान करने के पश्चात् भोजन करते, साफ़ करते और एक बार फिर प्रार्थना करते थे। में मक्खन, मलाई, शक्कर, चावल और ज्वार का प्रयोग करते थे।

विवाह के समय दुलहिन को केवल जामा भेजा जाता और वधू के कुटुम्बी-जन विवाह के एक सप्ताह कहीं आना-जाना बन्द कर देते थे और सप्ताह अपने घरों में दिन-रात दीपक जलाते थे। विवाह जायदाद में से अपना हिस्सा लेकर अपना घर कर रहता था।

मृत्यु के अन्तिम-संस्कार के समय सम्बन्धी-जन बौद्ध पुरोहितों के साथ जमा होते और एक जलूस में भजन गाते चलते थे। धनवानों के मृत-शरीर चन्दन आदि सुगन्धित लकड़ियों की चिता में जलाये जाते और उनकी राख सोने-चाँदी के बर्तनों में रक्खी जाती थी।

कम्बोडिया में मकानों के द्वार पूर्व की ओर रहते और लोग बैठते समय उधर ही मुँह रखते थे। अतिथि को सुपारी, कपूर और सुगन्धित वस्तुयें देकर सत्कार करने का रिवाज था। कम्बोडिया में कोई खुले आम शराब नहीं पीता था। राजा के पास लड़ाई के लिए पाँच हज़ार सिखाये हुए हाथी थे। सबसे अधिक बलवान् हाथियों को खाने के लिए माँस दिया जाता था।

कम्बुज (कम्बोडिया) का आठवीं शताब्दी का इतिहास प्रायः सूना है, क्योंकि उस समय के बहुत थोड़े शिलालेख मिलते हैं। तो भी अरब-लेखक कम्बुज पर श्रीविजय के एक नाविक आक्रमण का वर्णन करते हैं। श्रीविजय बहुत समय से सुमात्रा में एक बलवान् समुद्री राज्य था और अरबी व्यापारी वहाँ पर व्यापार के लिए जाया करते थे। वे राज्य को सरबुज या ज़ाबज और वहाँ के शासक को महाराज कहते थे। अरब का सुलेमान नामक एक व्यापारी, जिसने भारत और चीन की यात्रा की थी और जिसने ८५१ ईसवी में अपने वर्णन लिखे हैं,—ज़ाबज (श्री-विजय) और ख्मेर (कम्बोडिया का स्थानिक नाम) के परस्पर सम्बन्धों का इस प्रकार वर्णन करता है—"ज़ाबज का राजा महाराज कहलाता है। वह बहुत से द्वीपों पर राज्य करता है। ख़ज़ाञ्ची प्रति दिन प्रातःकाल राजा के पास एक सोने की ईंट लाता और उसीके सामने महल के पास के तालाब में फेंक देता था। राजा के जीवन-काल में कोई उन ईंटों को नहीं छू सकता था। जब वह मर जाता तो उसका उत्तराधिकारी उन्हें निकलवाता और गिनने और तौलने के बाद शाही अफ़सरों और ग़रीबों में

वितीर्ण कर देता था। ईंटों की तादाद राज्य के क़ाग़ज़ों में लिख ली जाती और राजा का यश उतना ही अधिक या कम समझा जाता था जितनी कि ईंटें वह अपने पीछे छोड़ जाता।”

इसके पश्चात् सुलेमान ख़्मेर का वर्णन करता है:—“ख़्मेर वह देश है जहाँ से ख़्मेर नाम की अगर (धूप) का निर्यात होता है। ....ख़्मेर से अधिक जन-संख्या वाला राज्य कोई नहीं है। हर क़िस्म की शराब और हर प्रकार का व्यभिचार और दुराचार मना था। सारे राज्य में कोई दुराचारी न मिलता था।”

इसके बाद ख़्मेर के एक उद्दण्ड राजा की आख्यायिका लिखता है। एक दिन ज़ावज के महाराज के ऐश्वर्य और बल के समाचार सुनकर ख़्मेर के युवक राजा ने अपने मंत्री से कहा कि मैं एक थाली में उस महाराज का सिर अपने सामने देखना चाहता हूँ। मंत्री ने अपने युवा स्वामी से अधिक दूरदर्शी बनने का निवेदन किया, लेकिन उस अविचारी राजा ने वही बात अपने सब दरबारियों से कही। फिर क्या देर थी, समाचार चारों ओर फैल गया और अन्त में ज़ावज (श्रीविजय) के महाराज के कानों तक भी पहुँचा। वह एक उत्साही और साहसी राजा था। उस ने तुरंत एक हज़ार जहाज़ तैयार करने का हुक्म दिया लोगों को यह जतलाया कि वह अतने राज्य के द्वीपों दौरा करने जाना चाहता है। ख़्मेर के राजा को तब इस बात का सन्देह न हुआ, जब तक कि महाराज धानी को जानेवाली नदी तक नहीं पहुँच गया, और फ़ौज महल के पास नहीं उतार दी। बस, उसी क्षण क़ैद कर लिया गया और महाराज ने घोषणा कर अन्य किसी भी व्यक्ति पर किसी क़िस्म की कोई न की जायगी। फिर उसने राजा का सिर कटवा और वज़ीर से उसका उत्तराधिकारी नियुक्त करने कह कर वापिस लौट गया। ख़्मेर से न तो ख़ुद उसने लिया और न किसी को लेने दिया..........। समाचार भारत के राजाओं और चीन-सम्राट् के कानों पहुँचा तो ज़ावज के महाराज की इज़्ज़त उनकी बहुत अधिक हो गई।

विजनराज

प्राचीन भारतीय उपनिवेश

[‘त्यागभूमि’ के लिए]

(१)

भारत के गौरवपूर्ण प्राचीन इतिहास का उपनिवेश-विषयक भाग अभी तक बहुत-कुछ अज्ञात ही है। भारत के किसी प्राचीन इतिहास-विषयक ग्रन्थ को देखिए। आज भारत की ‘आ समुद्रात्तु वै पूर्वादासमुद्रात् पश्चिमात्’ और ‘आसेतु हिमाचल’ जो सीमा मानी जाती है, उसी मर्यादित देश का और वहीं के राजा-प्रजाओं का वर्णन मिलेगा। पर क्या इन स्वाभाविक मर्यादाओं के बाहर भी भारतीयों ने अपना विजय-वैजयन्ती नहीं फहराई थी? इसी प्रश्न का उत्तर इस छोटी-सी लेखमाला में देने का विचार है।

पूर्वी गोलार्द्ध की अन्तिम पूर्व-सीमा चीनी समुद्र है। इस चीनी समुद्र और मेकाँग नामक नदी से समान परन्तु दोनों के बीच में, एक पर्वतश्रेणी है। इस पर्वत और चीनी समुद्र के बीच के उत्तर-अक्षांश १० से १८ तक जो प्रदेश है, वह एक समय भारतीयों का निवेश था। ईसा की दूसरी सदी से लेकर ग्यारहवीं तक के कई शिलालेख इस स्थान में प्राप्त हुए हैं। संस्कृतज्ञ पंडितों ने खोज कर उन्हें प्रकाशित किया है वे |सब फ्रेंच भाषा में हैं और इसी कारण भारतीयों को अज्ञात-से ही हैं। अपवाद-मात्र, हाल शिलालेखशास्त्र तथा संस्कृत भाषा से चिरपरिचित पर भी, ढाका-विश्वविद्यालय के इतिहासाध्यापक

ने एक पुस्तक प्रकाशित की है। उसका नाम है ।आप और भी तीन पुस्तकें अन्य तीन उपनिवेशों लिखने वाले हैं । शिलालेखों के आधार पर इसी उपनिवेश का संक्षिप्त इतिहास में प्रथम इस लेख में ता हूँ।

उपनिवेश का नाम चम्पा क्यों पड़ा ? यहाँ के निवासी 'चम्' जाति के थे । इनकी रक्षा करने को पहले 'चम्पा' नाम दिया गया और विस्तार-साथ सारा उपनिवेश 'चम्पा देश' कहलाने लगा। के कोंकण भाग से इस प्रदेश का बहुत-कुछ साम्य है। और पर्वत के बीच उत्तर-दक्षिण फैली हुई यह एक गई है। पर्वत-श्रेणी की शाखायें कहीं-कहीं समुद्र से मिलती हैं, तो कहीं-कहीं ७० मील तक की चौड़ाई रह जाती है। इन भिन्न-भिन्न भागों में परस्पर व्यवका-मार्ग से ही अधिक होता था और भारतीयों ने मार्ग से आकर यह उपनिवेश बसाया था।

सबसे प्राचीन शिलालेख जो यहाँ पर मिला है, वह के मतानुसार ईसा की दूसरी सदी का है। इस लेख से जान पड़ता है कि 'श्री मारराज' नामक राजा ने यहाँ राज्य स्थापित किया। चीनी लोगों के लिखे ऐतिहासिक ग्रंथों से भी यही सिद्ध होता है। ग्रंथों में ऐसा उल्लेख है कि १७८ ई० में चम् में कुछ नूतन चैतन्य उत्पन्न हुआ और उन्होंने राज्य स्थापित किया। बाद के शिलालेखों में जहाँ राज, राजाधिराज इत्यादि शब्द मिलते हैं, वहाँ इस लेख में केवल 'श्री मारराज' शब्द मिलता है। इससे राज्य का छोटा होना सिद्ध होता है। पर यह राज्य वंश में अधिक दिन न चला। उक्त लेख श्री मारराज के का है। इस राजा के शिलालेख पर से अनुमान जा सकता है कि यह बौद्ध था। इसे भाई या लड़का कोई न होने से इसने अपना समस्त धन दान कर था। इसी बात को लक्ष्य में रखकर शिलालेख पर है—

लोकस्यास्य गतागति विमृशता सिहासनाध्यासिना ।
त्रे भ्रातरि नान्यके स्वसखिषू ने छन्दनावाभिषु ॥
यर्त्किचिद्रजतं सुवर्णमपिवा स स्थावरं जंगमं ।
कोष्ठागारक वर्धितं प्रियहिते सर्वं विसृष्टं मया ॥"

मारवंश के बाद एक शतक का इतिहास अज्ञात है। ईसा की चौथी सदी में फिर से चम् लोगों ने अपना सिर उठाया और इस समय के इनके नेता 'भद्रवर्मा' थे। आपने एक शिवालय बनवाकर 'भद्रेश्वर' नामक महादेव की स्थापना की। जब तक वहाँ हिन्दुओं का राज्य रहा, तब तक यही 'शंभुभद्रेश' इन राजाओं के कुलदेव रहे। आपके सुराज्य से आपका नाम 'धर्म महाराज श्री भद्रेश्वर वर्मा' प्रसिद्ध हुआ। आपने भद्रेश्वर का देवालय और उसके आसपास की कुछ ज़मीन अलग बचाकर भद्रेश्वर की पूजा के सहायतार्थ दान की थी। उक्त स्थान तीन ओर पहाड़ से घिरा था और उसके चौथी ओर नदी थी। शिलालेख में इसकी सीमा दी हुई है—'पूर्वेण सुलह पर्वतः । दक्षिणेन महापर्वतः । पश्चिमेन कुचोक पर्वतः । उत्तरेण महानदी ।' इसी ने चम्पापुरी बसाई।

पर धर्म्म महाराज भद्रेश्वर के वंश में भी यह राज्य-लक्ष्मी न रही। राजा होने पर भी अपनी मातृभूमि से इतनी दूर आकर रहना कुछ कठिन ही था। जहाँ अपने बहुत से लोग नहीं हैं, वहां आनन्द से रहना सहज नहीं है। जान पड़ता है कि ये राजा लोग वृद्धावस्था में अपनी मातृभूमि में लौट आते थे और फिर चम्पा नगरी राजा की उपस्थिति से शून्य हो जाती थी। भद्रेश्वर के बाद गंगाराज नामक 'नृपगुण प्रख्यात वीर्य श्रुतिः' हुए। आप चतुराननपुर (ब्रह्मपुरी) के रहने वाले थे। अपने कुछ ब्राह्मणों को भी वहाँ बुलाया था। पर अन्त में 'गंगाजी के दर्शन के सुख को बड़ा भारी समझ कर वह राज्य छोड़ गंगाजी चले गये'। पर जाने के पहले आप राज्य की कुछ व्यवस्था कर गये थे। मनोरथ वर्म्मा को आप राजा बना गये थे। मनोरथ वर्म्मा बड़े कीर्तिशाली हुए। इन्होंने अपनी घेवती (लड़की की लड़की) का विवाह एक ब्राह्मण से किया था। और इसी ब्रह्म-क्षत्रिय संयोग से उत्पन्न रुद्रवर्म्मा आपके पश्चात् चम्पापुराधीश हुए। इनके राज्य में 'कलियुग होते हुए भी धर्म मानों कृतयुग में रहता था।' परन्तु इन्हींके राज्य में शंभु भद्रेश्वर के देवालय में एक दिन आग लग

गई और सारा मंदिर जलकर भस्म हो गया।

शंभुवर्म्मा आपके दत्तक पुत्र थे। शंभुवर्म्मा महाराज ने फिर से शंभुभद्रेश की स्थापना की, मंदिर बनवाया, और कुछ ज़मीन अधिक दान की। इस राजवंश के इतिहास में औरस पुत्र इन्हीं राजा के हुआ। इस पुत्र का नाम कंदर्प धर्मा था। चम्पा नरेशों में कंदर्प धर्मा बड़े प्रभावशाली राजा हुए। आपने चीनी सम्राट् की फ़ौज को भी परास्त किया और चम्पा देश के वैभव को खूब बढ़ाया। एक कवि आपके राज्य का वर्णन इस तरह करता है—

‘प्रजा यः स्वैधर्मैर्व्यसनराहितः पातिसुतवत्
न तत्रास्त्याशा मे’ कलिरिति समुत्सेक विमुखः।
तदीये स्तेजोभि विंधुत विरसः क्वाप्यपगतो
निदाघा सह्यांशोदिनकृत इव ध्वान्त निवहः॥

आपके कई शिलालेख पाये जाते हैं। आपका इतना पूज्य माना गया कि आपके पश्चात् आपकी काओं की भी पूजा होने लगी।

(अपूर्ण)

हरि रामचन्द्र दिवेकर (पि

हर्ष-कालीन भारत

(सामाजिक स्थिति)

मुसलमानों के भारत में शासन स्थापित करने से पूर्व के छः सौ सालों के भारतीय इतिहास में सबसे अधिक उन्नत काल राजा हर्ष का समय, अर्थात् छठीं-सातवीं शताब्दी, था। इन छः सौ सालों के इतिहास में यह समय ही सबसे अधिक प्रकाशित और स्पष्ट हो चुका है। हर्ष-कालीन इतिहास को जानने के लिए पर्याप्त सामग्री भी उपलब्ध हो चुकी है। ह्यूनत्सांग और इत्सिंग के यात्रा-विवरण, बाण-कृत हर्षचरित और तत्कालीन स्मृतियां तथा काव्य आदि हमें उस समय का वृत्तान्त जानने में बहुत सहायता देते हैं। केवल राजनैतिक दृष्टि से ही इस काल का महत्व नहीं है, सामाजिक दृष्टि से भी इसका महत्व बहुत अधिक है। वस्तुतः केवल राजनैतिक घटनाओं को ही इतिहास समझना भूल है। आजकल अध्यापक फ्रीमैन का यह सिद्धान्त कि मनुष्य की राजनैतिक घटनाओं का नाम ही इतिहास है (History is the sience of man in his character as a poitical being) नहीं माना जाता। मनुष्य केवल राजनैतिक जीव ही नहीं वह सामाजिक जीव भी है। वस्तुतः किन्हीं जातियों या देशों के सामाजिक जीवन या सामाजिक प्रगति का वर्णन ही सच्चा इतिहास है। हमारे इस कथन का यह अभिप्राय नहीं कि राजनीति इतिहास नहीं है, परन्तु अनावश्यक महत्त्व दिया जा रहा है। अस्तु। इस हम हर्ष-कालीन सामाजिक स्थिति पर ही संक्षेप से करेंगे।

प्राचीन भारत के सामाजिक जीवन की सबसे संस्थायें वर्ण-व्यवस्था और और आश्रम-व्यवस्था है। दोनों के दृढ़ आधार पर बहुत प्राचीन काल से हिन्दू का भवन खड़ा है, जो अनन्त बाधाओं के होते हुए भी टूट सका। हर्ष-काल में इन दोनों संस्थाओं का सुसंगठित रूप में विद्यमान था। यद्यपि बौद्धों और के समानतावाद के प्रचार के कारण ये दोनों संस्थायें आदर्श और व्यापक रूप में नहीं रही थीं, तथापि के पुनरभ्युदय के साथ-साथ इनकी भी फिर उन्नति हर्ष का समकालीन चीनी यात्री ह्यूनत्सांग अपने विवरण में चारों वर्णों का उल्लेख करते हुए लिखता “भारत में चार क्रमागत श्रेणियां हैं। प्रथम श्रेणी या पवित्र रहने वालों (Purely livings) की है अपने सिद्धान्तों के अनुसार आचरण करते हैं और संस्कारागत पवित्रता की दृढ़ रूप से रक्षा करते हुए पूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं। दूसरी श्रेणी क्षत्रियों

की जाति है। यह वर्ग कई पीढ़ियों से राज्य करता है और इसके राज्य करने के उद्देश्य उपकार और है। तीसरा वर्ण वैश्यों या व्यापारियों का है, जो द्रव्य-द्वारा तुरन्त या भविष्य में लाभ उठाते हैं। चौथा द्रों या कृषकों का है। ये हल चलाते, बीज बोते और करते हैं।"[1]

वर्णन से पता लगता है कि मनुस्मृति आदि के कृषि वैश्यों का कार्य न रहकर शूद्रों का काम होगया समय के आसपास बनी हुई स्मृतियों के अध्ययन भी मालूम होता है कि केवल कृषि-कार्य ही नहीं, बहुत से पेशे—विशेषतः हाथ से करने के काम—के हाथ से निकलकर शूद्रों के हाथ में चले गये थे। कारण यही जान पड़ता है कि उन दिनों हाथ के को तुच्छ दृष्टि से देखा जाने लगा था। परन्तु यह क्यों चल पड़ी, यह हम नहीं कह सकते। श्रीयुत वैद्य के कथनानुसार जैनियों और बौद्धों के अहिं-के कारण कृषि को भयंकर पाप समझा जाने लगा कि इसमें हज़ारों कृमियों और कीटाणुओं की हत्या का भय था।[2]

बौद्धों और जैनियों की भी बहुत बड़ी श्रेणियां विद्यमान यद्यपि ये दोनों धर्म उन्नति नहीं कर रहे थे, फिर भी भी नहीं हुए थे। इनके अनुयायियों की संख्या अधिक थी। उत्तर भारत में बौद्धों और दक्षिणी-भारत में जैनियों का काफ़ी ज़ोर था। बहुत से प्रान्तीय इनके अनुयायी थे। इनके धार्मिक सिद्धान्त और रिवाज भी तत्कालीन समाज पर पर्याप्त प्रभाव हुए थे। इनके अतिरिक्त तत्कालीन समाज में साधुओं, भिक्षुओं और यतियों का एक बड़ा भारी समुदाय जो उस समय के समाज में विशेष महत्व रखता था। साधु अनेक प्रकार के थे, जो हिन्दू-धर्म के भिन्न-भिन्न के अनुयायी थे और अपने-अपने सम्प्रदाय के तपस्या करते तथा भीख मांगकर गुज़ारा करते थे। बहुत-से साधु अपने निश्चित स्थानों पर बैठे हुए ध्यान-समाधि करते थे, जिनके पास भक्त लोग उपदेश आदि सुनने आया करते थे। बहुत-से साधु शहरों व गांवों में घूम-घूमकर लोगों को उपदेश एवं शिक्षा दिया करते थे। यही हाल बौद्ध भिक्षुओं और जैन साधुओं का भी था। वे अपने मठों या उपाश्रयों में रहते थे। साधारणतः लोगों के जीवन को नैतिक एवं धार्मिक बनाने में इन साधुओं, यतियों और भिक्षुकों का बड़ा भारी भाग था।

उस समय तक हिन्दुओं के उपर्युक्त चार वर्णों की भिन्न-भिन्न उपजातियां बन गई हों, ऐसा नहीं पाया जाता। चारों वर्णों में परस्पर-सम्बन्ध बहुत अच्छा था। सवर्ण विवाह श्रेष्ठ होने पर भी अन्य वर्णों से विवाह करना धर्मशास्त्र के विपरीत न समझा जाता था। उच्च वर्ण के लोग भी अपने से नीचे वर्ण की कन्या से विवाह करते थे। यद्यपि स्मृतिकार याज्ञवल्क्य ने द्विजों के शूद्र-कन्या से विवाह करने का निषेध किया है,[1] तथापि ऐसे विवाह हर्ष-काल में होते थे। बाण ने शूद्र स्त्री से पैदा हुए ब्राह्मण के पारशव पुत्र का उल्लेख किया है। इस प्रकार के अनुलोम विवाह के बहुत-से उदाहरण दिये जा सकते हैं। ये पारस्परिक विवाह-सम्बन्ध शनैःशनैः कम होते गये और अपने-अपने वर्णों में हो गये। जब विवाहों में कोई जाति-बन्धन न था, तो खान-पान में कैसे होता? उस समयके पीछे बनी हुई व्यास स्मृति के

> "नापितान्वयमित्रार्द्ध सीरिणो दासगोपकाः ।
> शूद्राणा मप्यमीषां तु भुक्त्वान्नं नैव दुष्यति ॥"

श्लोक से ज्ञात होता है कि उस समय तक नाई, किसान, धोबी, ग्वाले आदि के हाथ से खाने-पीने में कोई दोष नहीं समझा जाता था। आज-कल की छूत-छात की नाशक प्रथा पीछे प्रचलित हुई है। इससे यह न समझ लेना चाहिए कि उन दिनों अस्पृश्यता थी ही नहीं। ह्वेनत्सांग लिखता है कि इन चारों वर्णों के अतिरिक्त अन्त्यज थे,

---

[1] वाटर्स आन युवनच्वांग; जि० १, पृ० १६८ ।

[2] हिस्ट्री आफ़ मीडिएवल इण्डिया; जि० २, पृ० १५२।

[1] यदुच्यते द्विजातीनां शूद्राद्दारोपसंग्रहः ।
नैतन्मम मतं यस्मात्तत्रायं जायते स्वयम् ॥ ५६
आचाराध्याय, प्रकरण ३ ।

जो अस्पृश्य माने जाते थे। कसाई, धीवर, भंगी, जल्लाद, और चाण्डाल एक विशेष चिन्ह द्वारा जाने जाते थे। वे शहरों से बाहर रहते और गाँवों में आते समय एक ओर होकर चलते थे।[1] अस्पृश्यता का यह रूप आज की अस्पृश्यता से कहीं अच्छा था।

वर्ण-व्यवस्था की तरह आश्रम-व्यवस्था भी शिथिल हो चुकी थी। इस शिथिलता का मुख्य कारण भी जैनियों और बौद्धों का प्रचार था। जैनियों ने केवल दो आश्रमों—वानप्रस्थ और संन्यास—तथा बौद्धों ने केवल संन्यासाश्रम का प्रचार किया। फिर भी हिन्दू-धर्म के पुनरभ्युदय के साथ इस संस्था की भी उन्नति हुई। इन चार आश्रमों में एक द्विज का जीवन विभक्त है। ब्रह्मचर्याश्रम में वह शिक्षा प्राप्त करता था, भिन्न-भिन्न विषयों का स्वाध्याय करता था। उस समय भारत में शिक्षा का प्रचार बहुत अधिक था। साधारण ब्राह्मणों के घर ही छोटे-छोटे शिक्षणालय होते थे, जहाँ नगरों और गाँवों के छोटे-छोटे बच्चे पढ़ा करते थे। बौद्धों के मठों, जैन यतियों के उपाश्रयों और हिन्दू साधुओं के मन्दिरों में भी शिक्षणालय होते थे, जहाँ पर्याप्त विद्यार्थी-मण्डली आकर पढ़ती थी। यही नहीं, हर्ष के समय तो आज के बड़े-बड़े विद्यालयों से मुक़ाबला करने वाले विश्व-विद्यालय भी थे। इनमें नालन्द, तक्षशिला, विक्रमशील आदि मुख्य हैं। इनके विषय में बहुत-कुछ लिखा जा चुका है, इसलिए यहाँ इनकी महत्ता के विषय में लिखना पाठकों का कालक्षेप होगा। श्रीयुत राधाकुमुद मुकर्जी ने चीनी यात्रियों के विवरणों से हिसाब लगाया है कि उन दिनों भारत में ५,००० मठ (बौद्धों के) और २,१२,३२० विद्यार्थी थे।[2] विद्यार्थियों का जीवन तपस्यामय होता था।

ब्रह्मचर्य के बाद गृहस्थाश्रम में प्रवेश होता था। यह आश्रम सांसारिक और भौतिक सुख भोगने के लिए था। इसपर हम आगे विचार करेंगे। वानप्रस्थी और संन्यासी, समाज के धार्मिक और नैतिक-जीवन के शिक्षक थे। उनका जीवन अधिकतर धार्मिक ही रहता था, जैसा हम ऊपर लिख आये हैं। वे भिन्न-भिन्न धार्मिक सम्प्रदायों के अनु या प्रचारक होते थे। उस समय के धार्मिक जीवन देखने के लिए उन्हींका जीवन देखना चाहिए। दिग्विजय का प्रणेता आनन्दगिरि तत्कालीन धार्मिक का विवेचन करता हुआ लिखता है—

केचिच्चन्द्र पराः परे कुजपराः केचित्तु मन्दाश्रिता।
केचित्कालपराः परे पितृपराः, केचित्तु नागेशनाः॥
केचित्तार्थपराश्च सिद्धनिचयं, सेवन्ति केचिद्द्विया।
केचिद्गन्धर्व साध्यादीन् भूतवेतालगाः परे॥
एवं नाना प्रभेदानां नृणां वृत्तिर्यथेप्सिताः।
केचित् स्ववृत्तिं वेदार्थैः प्रतिपाद्यां समूचिरे॥
केचिद्धर्मैरियं मुक्तिरिति जल्पं समास्थिताः।
अन्योऽन्य मत्सरग्रस्ताः परस्परं जयैषिणः॥
निजेच्छा कृतिभंगेषु धारयन्ति समान्विताः॥

इससे तत्कालीन धार्मिक स्थिति का बहुत-कुछ होता है। बहुत-से देवताओं की पूजा प्रचलित हो चुकी महादेव, विष्णु, ब्रह्मा, सूर्य, चन्द्र, गणेश, आदि की होती थी। भूत, बेताल आदि की सिद्धि का प्रयत्न भी जाता था। इस सिद्धि की प्राप्ति के लिए पशु-बलि नर-बलि तक की क्रूर प्रथा और कृत्य आदि के विद्यमान के प्रमाण मिलते हैं। हर्ष-चरित में बाण एक ऐसे का उल्लेख करता है। हर्ष के कुछ समय बाद मालती-माधव में भी अघोर घंट-द्वारा मालती को लिए ले जाये जाने का उल्लेख है। ऐसे और भी कई पेश किये जा सकते हैं। वाममार्ग का भी प्रचार था। इधर बौद्ध और जैन-धर्म का भी बहुत प्रचार था, बौद्ध, जैन, और ब्राह्मण-धर्म में पारस्परिक द्वेष नहीं हमें उस समय की आश्चर्यजनक धार्मिक सहिष्णु उदाहरण मिलते हैं। एक ही कुटुम्ब में एक व्यक्ति तो दूसरा जैन, और तीसरा हिन्दू। पिता यदि हिन् तो पुत्र बौद्ध।[1]

आजकल कतिपय यूरोपीय विद्वानों के लि

---

[1] वाटर्स आन युवनच्वांग; जि० १, पृ० १४७।

[2] हर्ष (अंग्रेजी ; पृ० १२४-२५।

[1] चिं० वि० वैद्य; हिस्ट्री आफ़ मीडिएवल हि जि० 1, पृ० १०१।

१९८५]

धारण में यह भ्रम-सा फैल गया है कि प्राचीन काल में केवल अध्यात्मिक जीवन बिताते थे। भारतीय आत्मा और परमात्मा के एकत्व या अनेकत्व, ईश्वर त्व या अभाव, आदि समस्याओं को सुलझाने में यापन करते थे। प्राणायाम, धारणा, ध्यान और आदि ही उनके जीवन के कार्य थे। यह नहीं तो, और नीरस व्याकरण की फक्किकाओं के चिन्तन, सूत्रों ों और मात्राओं की अनावश्यकता पर विचार और कठिन शब्दों की सिद्धि आदि में अपना जीवन कृत- समझते थे। बहुत अधिक करना हुआ तो यज्ञ-यागादि जीवन लगा दिया। वे भौतिक आनन्द तथा सृष्टि प्रकृति के आनन्दों से बिलकुल वंचित रहते थे। उनका शुष्क और नीरस रहता था। उनके जीवन में उस आनन्द का आभास भी न था, जो आजकल पाश्चा- ों में अनुभव किया जाता है।

स्तुतः ये सब विचार ठीक नहीं हैं। प्राचीन भारतीयों तिक जीवन भी उतना ही उन्नत और आनन्दप्रद ना उनका आध्यात्मिक जीवन। इसका समन्वय ी आश्रम-व्यवस्था में है, जिनके अनुसार गृहस्थ में क कार्य करके वानप्रस्थ और संन्यास में आध्यात्मिक का विधान है।

र्ष-कालीन भारत का भौतिक जीवन बहुत उन्नत था। गृहस्थ, जीवन के सभी भोगों को भोगते थे। में मकान अच्छे, विशाल और हवादार बनते थे, जैसा लीन काव्यों से पाया जाता है। सम्पन्न पुरुषों के भोजनागार, शयनागार, विश्रामगृह, और अतिथि- ादि अलग-अलग बनते थे। दुमंज़िले और तिमंज़िले तक का वर्णन मिलता है। लोगों के मन-बहलाव के टकघरों, संगीतशालाओं, चित्रशालाओं आदि की रहती थी। भास, कालिदास आदि के उत्तम-उत्तम का विकास हो चुका था, जिनसे तत्कालीन उत्कृष्ट परिचय मिलता है। त्यौहार सामाजिक जीवन का भाग थे। बहुत से पर्वों तथा अन्य त्यौहारों पर करते थे। वर्षाऋतु में जल-विहार बहुत होता था। लोग छोटी-छोटी नौकाओं पर बैठकर जल-विहार करते थे। इसी ऋतु में डोलोत्सव भी होता था। होली के त्यौहार पर पिचकारी (धारा-यन्त्र) का प्रयोग भी होता था[१]। बड़े-बड़े मेले व्यापारिक दृष्टि से बहुत महत्त्व के थे। इनमें काफ़ी तादाद में ख़रीद-फ़रोख़्त होती थी। आज भी ऐसे मेले भारत-भर में होते हैं। सम्पन्न लोग पक्षियों को पालते तथा पशु-पक्षियों में परस्पर लड़ाई कराते थे। सवारी के लिए घोड़े, हाथी, रथों और पालकियों का उपयोग होता था। बड़ी-बड़ी नदियों और समुद्रों में जहाज़ों से यात्रा होती थी। समुद्र-यात्रा का बहुत अधिक प्रचलन था। विनोद के लिए शतरंज, चौपड़ आदि मनोरञ्जन के खेल भी खेले जाते थे। जुए का भी उस समय कम प्रचार नहीं था। सम्पन्न पुरुष वेश्या भी रखते थे। बाण ने कई स्थानों पर इनका उल्लेख किया है। राजा और क्षत्रिय लोग शिकार के बहुत शौक़ीन थे। जंगली लोग तो शिकार पर ही गुज़ारा करते थे। उन दिनों जादू-टोनों पर जनता विश्वास करती थी। अनेक प्रकार के वहमों का साधारण लोगों में प्रचार था। बाण ने हर्ष-चरित तथा कादम्बरी में बहुत-से जादू-टोनों का वर्णन किया है। जनता की आर्थिक अवस्था अच्छी थी। कृषि, शिल्प, व्यापार और व्यवसाय बहुत बढ़े हुए थे।

भारत में उन दिनों वस्त्र भी उत्तमोत्तम बनते व पहने जाते थे। ह्यूनत्सांग ने लिखा है कि भारतीयों के वस्त्र सिले हुए नहीं होते थे,[२] परन्तु यह ठीक नहीं है। वैदिक साहित्य में स्पष्टतः कपड़ों के सीने के प्रमाण मिलते हैं, जिससे सिद्ध होता है कि हमारे यहाँ बहुत प्राचीन काल से सीने की कला ज्ञात थी। स्त्रियाँ जहाँ साड़ी पहनती थीं, वहाँ लहँगे का भी रिवाज प्रचलित था, ऐसा कई प्राचीन चित्रों से ज्ञात होता है। इसी तरह अजन्ता के एक चित्र से पाया जाता है कि स्त्रियाँ छींट वाले कपड़े भी पहनती थीं। दक्षिण में गर्मी होने के कारण दो धोतियों से काम चलाया जाता था। धोतियों में सुन्दर किनारी भी होती थी, जैसे कि अजमेर-म्यूज़ियम में रक्खी हुई एक मूर्ति से पाया जाता है। कपड़े केवल कपास के नहीं होते थे। ह्यूनत्सांग ने रुई,

---

[१] रत्नावली नाटिका; अंक १, श्लोक ११।

[२] वाटर्स आन युवनच्वांग; जि० १, पृ० १४।

रेशम तथा ऊन के कपड़ों का उल्लेख किया है। इसी तरह बाण ने हर्ष-चरित में अत्यन्त महीन (निःश्वासहार्यैः, स्पर्शानुमेयैः, निर्मोकनिभैः) तथा रंगीन कपड़ों का वर्णन किया है।

इसी तरह गहने भी बहुत प्राचीन काल से प्रचलित थे। बहुत प्राचीन मूर्तियों के देखने से उस समय के विविध गहनों का ज्ञान होता है। रत्नहार, कर्ण-कुण्डल, भुजबन्ध आदि नाना प्रकार के आभूषण उस समय पहने जाते थे। केवल स्त्रियाँ ही नहीं, पुरुष भी बहुमूल्य आभूषण पहनते थे। ह्यूनत्सांग ने भी इसका उल्लेख किया है।[1]

भारतीयों के भोजन और रहन-सहन में शुद्धि और सफ़ाई को केवल सामाजिक रूप न देकर धार्मिक रूप दे दिया गया है। स्नानादि हिन्दुओं के धार्मिक कर्तव्य हैं। यही कारण है कि आज भी ग़रीब हिन्दू, भले ही नये और साफ़ कपड़े न पहन सकें, स्नान नित्य करते हैं। सफ़ाई के इसी विचार के कारण कार्तिक आदि महीनों में स्नान को बहुत महत्व दिया गया है। भोजन में भी सफ़ाई पर बहुत ध्यान दिया जाता था। ह्यूनत्सांग ने लिखा है—"भारतीय स्वयं पवित्र रहते हैं, दूसरों के दबाव के कारण नहीं। भोजन से पहले वे नहाते हैं। उच्छिष्ट भोजन किसीको नहीं खिलाया जाता। भोजन के बर्तन एक के बाद दूसरे को नहीं दिये जाते। मिट्टी और लकड़ी के बर्तन केवल एक बार ही प्रयुक्त होते हैं। सोने-चाँदी और ताँबे के बर्तन अच्छी तरह साफ़ किये जाते हैं।"[2] वस्तुतः यह शुद्धि या सफ़ाई ही बढ़ते-बढ़ते छूत-छात और चौका-सम्बन्धी नियमों में परिवर्तित हो गई। बौद्ध और जैन-धर्म के प्रचार के कारण यद्यपि लोगों में मांस-भक्षण की रुचि उतने अधिक रूप से न रही थी, तथापि मांस-भक्षण का प्रचलन पर्याप्त रूप से था। क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र भेड़-बकरी का मांस खाते थे। ब्राह्मणों में माँस का प्रचार कम था। दक्षिण भारत में जैनधर्म का अधिक प्रचार होने के कारण, उत्तरी भारत की अपेक्षा, मांस का रिवाज कम था। ब्राह्मण शराब नहीं पीते थे। क्षत्रियों में मद्यपान का प्रचलन थोड़ा-बहुत अवश्य विद्यमान था।

यद्यपि स्मृतिकार मनु ने आठ प्रकार के—ब्राह्म, दै आर्ष, प्राजापत्य, आसुर, गांधर्व, राक्षस और पैशाच— विवाह बताये हैं; तथापि वे सभी प्रचलित हों, सम्भव नहीं मालूम होता। याज्ञवल्क्य ने प्रथम विवाहों को करने योग्य बताया है। हरीतस्मृति में केवल ब्राह्मविवाह को ही उचित लिखा है। इससे अनु होता है कि प्रथम चार प्रकार के विवाह ही अधिक प्रच होंगे। राजाओं, धनाढ्यों और कुलीन घरों में बहुवि भी होता था।

उस समय तक बाल-विवाह की प्रथा प्रारम्भ नहीं थी। राज्यश्री का विवाह परिपक्व अवस्था में हुआ था ऐसी किंवदन्ती है कि बाण का विवाह मयूर की बहन साथ बड़ी अवस्था में हुआ था। श्रीयुत् चिन्तामणि विना वैद्य के कथनानुसार हर्ष के कुछ समय बाद बाल-वि होने प्रारम्भ हो गये थे और इसका कारण यह था बालिग़ लड़कियों को भी बौद्ध भिक्षु होने की आज्ञा थी अविवाहित लड़कियाँ बौद्ध न हो जाँय, इस आशंक बौद्ध-द्वेषी ब्राह्मणों ने छोटी आयु में ही विवाह की डाल दी थी।[1] परन्तु हमारी सम्मति में यह विचार नहीं है। इसकी पुष्टि के लिए कुछ अधिक पुष्ट प्रमाणों आवश्यकता है। हर्ष के समय से बहुत पूर्व बौद्धों में यान सम्प्रदाय जारी हो चुका था, जिसके अनुसार भी बौद्ध हो सकते थे। इसलिए बौद्ध न होने देने के विवाह शीघ्र करना कोई अधिक संगत मालूम नहीं हो फिर उस समय धार्मिक सहिष्णुता बहुत अधिक इसलिए बौद्ध-द्वेषी ब्राह्मणों का ऐसे घातक नियम भी कोई तर्क-संगत नहीं मालूम होता। वस्तुतः मुसलमा आने के बाद ही बाल-विवाह की प्रथा का प्रचार हुआ हो

विधवा-विवाह उस समय प्रचलित था या नहीं, निश्चय रूप से नहीं कहा जा सकता। याज्ञवल्क्यस्मृ ऐसे विवाह का उल्लेख अवश्य है।[2] पराशर-स्मृति

---

[1] वाटर्स आन युवनच्वांग, जि० १, पृ० ५१।

[2] वही, जि० १, पृ० १५२।

[1] हिस्ट्री आफ़ मीडिएवल इण्डिया; जि० २, पृ० १

[2] अक्षतायां क्षतायां वा जातः पौनर्भवः स्मृतः।। व्यवहाराध्याय, क्षय-विभाग. प्रकरण ८।

सस्ता-मण्डल-अजमेर से

स्ती, सुन्दर और उपयोगी पुस्तकें मंगा कर उनसे लाभ उठाइए

परिवारों में पठन-पाठन का व्यसन नहीं है, सचमुच वे बड़े ही अभागे हैं।" स्वा० रामतीर्थ

गागोविन्दसिंह

—श्री० चण्डीचरनसेन

इण्डिया कम्पनी के अधि- और उनके कारिन्दों की करतूतें और देश की विनाशो- स्वाधीनता को बचाने के लिए आत्माओं की वीर गाथा- उपन्यास के रूप में वर्णन, १८० मूल्य ॥=)

लवार की करतूत

—महात्मा टालसटाय

स पुस्तक में शराब पीने के णाम बड़ी सुन्दर रीति से रूप में दिखलाये गये हैं। मूल्य –)॥।

जीवन-साहित्य

गाँधी के सत्याग्रह आ- के प्रसिद्ध विचारक और लेखक कालेलकर के धार्मिक, सामा- और राजनैतिक विषयों पर और मननीय लेख। प्रथम ष्ठ २१८, मूल्य ॥), दूसरा ष्ठ २००, मूल्य ॥)

आदर्श जीवन

को अपना जीवन किस व्यतीत करना चाहिये, यही पुस्तक का मुख्य विषय है। मूल्य ॥–)

यूरोप का इतिहास

तीन भाग

लेखक—श्री० रामकिशोर शर्मा
बी० ए० विशारद

इस ग्रन्थ में शुरू से लेकर अब तक का समस्त यूरोप का इतिहास है। यूरोप का इतिहास स्वाधीनता का इतिहास है। जागृत जातियों की प्रगति का इतिहास है और पश्चिमी जातियों के विकास का पाठक्रम है। यदि भारत के युवक स्वराज्य चाहते हैं तो वे इस विविधघटना और परम-उपयोगी शिक्षाओं से भरे हुए यूरोप के इतिहास को अवश्य पढ़ लें। पृष्ठ तीनों भागों के ८३२, मूल्य केवल २)

स्त्री और पुरुष

भोगविलास को सुख मान कर उसके स्वर्गीय रस के स्वप्न देखने वाले भाई-बहनों के लिए यह ग्रन्थ सुन्दर ज्ञानांजन है। स्त्री पुरुषों के पारस्परिक सम्बन्ध के विषय में महात्मा टालसटाय के दिव्य विचार सचमुच क्रान्ति कर देने वाले हैं। प्रत्येक गृहस्थ को यह किताब पढ़ कर अवश्य लाभ उठाना चाहिये। पृष्ठ १५४, मूल्य ।=)

तामिलवेद

यह तामिल भाषा के ग्रन्थ 'त्रिक्कुरल' का भाषानुवाद है। इस पुस्तक के अमृतमय उपदेशों का तामिल (दक्षिण) देश में वेदों के समान आदर है। नरेशों, राजनीतिज्ञों तथा राजसंचालकों के बड़े काम की चीज़ है, विद्यार्थियों तथा मित्रों के लिये अत्यन्त उपयोगी उपहार है। पृष्ठ २४८, मूल्य ॥=)

कन्या-शिक्षा

सास, ससुर आदि कुटुम्बियों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करना चाहिये, वर की व्यवस्था कैसी करनी चाहिये आदि बातें कथा रूप में बतलाई गई हैं। पृष्ठ ९५, मू० ।)

व्यवहारिक सभ्यता

यह पुस्तक, बालक युवा, पुरुष, स्त्री सभी को उपयोगी है। परस्पर बड़ों व छोटों के प्रति तथा संसार में किस प्रकार व्यवहार करना चाहिये, ऐसे ही अनेक उपयोगी उपदेश भरे हुए हैं। पृष्ठ १०८, मूल्य ।)॥

स्वामीजी का बलिदान

लेखक—पं० हरिभाऊ उपाध्याय

हिन्दु-मुसलिम समस्या किस प्रकार सुलझ सकती है, यही इस पुस्तक का मुख्य विषय है। पृष्ठ १२५, मूल्य ।–)

खादी-भंडार बोरावड़ में नीचे लिखी चीज़ें मिलती है

कम्बल

१—कम्बल	काली सफेद चौखानेदार	गज ३ × ५८ इंच	दर १२॥)
२—कम्बल	कथई चौकड़ीदार	"	" १२॥)
३— "	सफेद काली चौकड़ीदार	"	" ११॥)
४— "	सफेद कथई पट्टेदार	"	" ११॥)
५— "	हरी गुलाबी चौखानेदार	३ गज × ६० इंच	" १२)
६— "	हरी गुलाबी " "	३ गज × ५४ इंच	" ९॥)
७— "	कथई चौकड़ीदार	३ गज × ५४ इंच	" ९।)

ऊनी कोटिंग

१—कोटिंग	छोटी लहरदार थान	गज १२ × ३० इंच	दर २।-)
२— "	बड़ी " "	" "	" २।)
३— "	बिनालहरदार "	गज १२ × ३० इंच	" २।-)
४— "	सफेद काली चौकड़ीदार कथई चौकड़ीदार	१२ × ३०	" २।)
५— "	कथई बढ़िया थान (औवरकोट का कपड़ा) थान	१२ × ३०	" २।=)
६— "	काला-नीला-मूंगिया रंग	" "	" २।-)
७— "	हलकी जात पूरा थान	१२ × ३०	" २=
८— "	बारीक कोटिंग (सरज)	१२ × ३०	" ३)

सूती चेक

१— "	कोटिंग पूरा थान	गज १२ × ३० इंच	दर १), ॥।≥), ॥।-)
२ "	सूती खेसले	गज ३ × ५० इंच	दर ३॥)

नोट—इसके अलावा ऊनी रंगीन रूमाल, लोइयाँ, सूती पलंगपोश, दरियाँ, आसन, सूती रेजी गाढ़ा, धोती, आदि भी हमारे यहां मिल सकते हैं।

माल मंगाने के नियम

(१) माल नकद दामों पर या वी० पी० द्वारा ही भेजा जावेगा। (२) वी० पी० द्वारा माल मंगानेवालों को २० सैकड़ा पेशगी भेजनी होगी। (३) पेकिंग खर्च आदि अलावा लगेगा। (४) एक हज़ार से ऊपर माल मँगाने को खास सुविधा दी जावेगी। इस बारे में हम से पत्र व्यवहार करें।

पता—व्यवस्थापक चरखा-संघ
खादी-भंडार पो० बोरावड़ (मारवा

ीचे लिखी पुस्तकें फिर से छप गई हैं

(१) **आत्मकथा** (प्रथम खण्ड) लेखक—**महात्मा गाँधी**। इसका प्रथम स्करण तीन हजार का छपा था जो कि हाथों हाथ अति शीघ्र बिक गया। अब यह दूसरा संस्करण कर तैयार हुआ है। जो भाई मँगाना चाहें, शीघ्र आर्डर भेजदें। पृष्ठ संख्या ४१६ मूल्य लागत केवल ॥=)

(२) **स्वामीजी** (श्रद्धानंदजी) **का बलिदान और हमारा कर्त्तव्य**—ले० पं० भाऊ उपाध्याय। इसका पहल संस्करण भी अति शीघ्र समाप्त हो गया था। अधिक मांग आने के ण यह दूसरा संस्करण छपाया है। मूल्य केवल ।-)

(३) **कन्या शिक्षा** (द्वितीयावृत्ति) कन्याओं के लिए बड़ी उपयोगी पुस्तक केवल ।)

(४) **व्यावहारिक सभ्यता** (तृतीयावृत्ति) मूल्य केवल ।)॥

शीघ्र प्रकाशित होने वाली पुस्तकें

(१) **खद्दर का सम्पत्ति शास्त्र** (मि० ग्रेग लिखित) अनु० पं० रामदासजी एम. ए.

(२) **अन्धेरे में उजाला** (टालस्टाय का उत्कृष्ट नाटक) अनु. श्री क्षेमानंद राहत

(३) **शैतान की लकड़ी** (सचित्र) लेखक—श्रीवैजनाथ महोदय बी. ए.

(४) **समाज-विज्ञान**—लेखक—श्री चन्द्रराज भण्डारी

(५) **विजयी बारडोली** (सचित्र) लेखक—श्री बैजनाथ महोदय बी. ए.

* * *

ुरू हो गया शुरू हो गया शुरू हो गया

यागभूमि' का दूसरा वर्ष शुरू होगया

भारतवर्ष में यह सबसे सस्ती उच्च कोटि की मासिक पत्रिका है। इसमें मास १२० पृष्ठ रहते हैं पर इस के पहले अंक में लगभग १५० पृष्ठ र अनेक चित्र हैं। यदि आप इस पत्रिका के ग्राहक बनना चाहते हैं, तो इस के ले अंक से ही ग्राहक बनिए ताकि वर्ष भर की पूरी फाइल आपके पास रहे। में ग्राहक होने से फिर यह अंक नहीं मिल सकेगा। अपने इष्ट मित्रों को सूचना दे दें।

आजही ४) मनी आर्डर से भेज दीजिए।

पता—सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर

तीसरे अंक के कुछ लेखक और कवि

१—लाला लाजपत राय
२—काका कालेलकर
३—श्री कृष्णदास
४—डाक्टर बिजनराज चटर्जी
५—श्री विश्वंभरनाथ शर्मा कौशिक
६—श्री देवीप्रसाद खेतान
७—श्री हरि रामचन्द्र दिवेकर
८— बाबा राघवदास
९—श्री रामनरेश त्रिपाठी
१०—श्री रामलाल वाजपेयी (अमेरिका)
११—श्री दयाशंकर दुबे एम० ए०, एल० एल० बी०
और श्री भगवानदास केला
१२—श्री रामशरण एम० ए०, एल० एल० बी०
१३—श्री संतराम बी० ए०
१४—श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
१५—श्री गोपालशरण सिंह
१६—श्री कृष्णानंद गुप्त

इत्यादि।

मुद्रक और प्रकाशक—जीतमल लूणिया सस्ता-साहित्य प्रेस, अजमेर

नहीं कहा जा सकता, फिर भी उसके वर्णन से स्थिति का कुछ अनुमान किया जा सकता है। लिखा है कि पति के मर जाने, साधु बन जाने, हो जाने, नपुंसक हो जाने या पतित हो जाने की स्त्री पुनर्विवाह कर सकती है।[1] इसी तरह कई स्मृतियों में भी इसका उल्लेख मिलता है, जिनसे होता है कि हर्ष के समय में विधवा-विवाह का तो कुछ-न-कुछ प्रचार अवश्य था। सर्व-साधारण विवाह अधिकतर प्रचलित नहीं था। ह्यूनत्सांग ने है कि विधवा स्त्री दूसरी बार विवाह नहीं कर सकती शनैः विधवा-विवाह की प्रथा कम होती गई और छोटी जातियों में ही रह गई।

समाज में स्त्रियों का क्या स्थान है, यह उस उन्नति की कसौटी है। भारतवर्ष में स्त्रियों का बहुत प्राचीन काल से होता था। उसे अर्धाङ्गिनी दिया गया था। कोई यज्ञ तबतक पूर्ण सफल नहीं था, जबतक कि उसमें स्त्री सम्मिलित न हो। में भी स्त्रियों का सम्मान होता था। उनकी शिक्षा विशेष ध्यान दिया जाता था। हर्ष की बहन राज्य श्री सिद्धान्तों की शिक्षा देने के लिए दिवाकर मित्र विद्वान् नियुक्त किया गया था। हर्ष की रत्नावली के चित्र, संगीत वाद्यादि में निपुण होने का उल्लेख सी स्त्रियाँ बौद्ध भिक्षुकी होती थीं, जो निस्सन्देह सिद्धान्तों से परिचित होंगी। मण्डन मिश्र की स्त्री का में शंकराचार्य को परास्त करना प्रसिद्ध ही है। नाटकों से पाया जाता है कि उस समय संस्कृत नहीं पढ़ाई जाती थी। सभी शूद्र और प्राकृत में ही बोलते हुए मिलते हैं। इससे यह है कि स्त्रियों की अवनति प्रारंभ हो गई थी। पर्दे का बहुत अधिक प्रचार न था। राजाओं की में भी आती थीं, जैसा कि ह्यूनत्सांग के बाला- और हूणमिहिरकुल के मिलाप के वर्णन से मालूम होता है।[1] राज्यश्री तो ह्यूनत्सांग से स्वयं मिली थी। राजा की सेविकायें प्रायः सभी स्थानों पर उनके साथ जाती थीं। इन बातों को देखकर यह न समझ लेना चाहिए कि इन दिनों पर्दा था ही नहीं। बाण ने कादम्बरी में पर्दे का उल्लेख किया है,[2] जिससे प्रतीत होता है कि उन दिनों पर्दे की प्रथा का भी प्रचार अवश्य था, यद्यपि था बहुत कम। स्त्रियों की राजनैतिक स्थिति भी मानी जाती थी। उन्हें भी जायदाद दी जाती थी। स्त्रियों का भी सम्पत्ति पर अधिकार होता था।

तत्कालीन प्रजा के राजनैतिक अधिकार भी थे। साधारण नागरिक—स्त्री-नागरिक भी—अपनी इच्छानुसार धर्म-परिवर्तन में स्वतन्त्र था। राज्य का यह कर्तव्य था कि वह प्रजा के जानोमाल की रक्षा करे। साधारण प्रजा का प्रायः प्रत्येक कार्य ग्रामीण पंचायतों-द्वारा होता था। वे ही अपने-अपने ग्राम के आर्थिक, शिक्षा-सम्बन्धी, राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक प्रश्नों का निपटारा करती थीं। न्याय-संबंधी विवाद भी पंचायतों में पेश होते थे। प्रान्तीय और केन्द्रीय सरकार की ओर से भी स्थान-स्थान पर न्यायालय होते थे, जहाँ प्रजा अपने अधिकारों तथा अन्य प्रश्नों के लिए निर्णयार्थ जाती थी। न्याय-संबन्धी क़ानून बहुत ही उत्तम तथा परिष्कृत थे, जैसा कि तत्कालीन स्मृतियों से पाया जाता है। शासन-व्यवस्था आदि के भी बहुत ऊँचे नियम थे।

आश्चर्य है कि हिन्दू-समाज की इतनी राजनैतिक और सामाजिक उन्नति होते हुए भी दास-प्रथा जैसी घृणित प्रथा भी उस समय विद्यमान थी। इसका प्रचलन बहुत समय से था। मनुस्मृति और याज्ञवल्क्य-स्मृति में, जिसका निर्माण-काल बहुत संभवतः छठी सदी है, इस प्रथा का वर्णन मिलता है। याज्ञवल्क्य-स्मृति के टीकाकार ने, जो हर्ष के करीब छः सौ साल बाद हुआ था, उसकी टीका करते हुए

शे मृते प्रव्रजिते क्लीबेच पतिते पतौ ।
पतिरन्यो विधीयते ॥

१. वाटर्स आन युवनच्वांग; जि० १, पृ० २८८-८९।

२. सातु तदाकर्ण्य किंचिदात्मपाणिनैवोत्सारितावरण सिचयाञ्चला (पृ० ५७२)
शक्रगोपकालो ह्लितरागेणांशुकेन रचितावगुण्ठनया (पृ० १९२) निर्णयसागर-संस्करण

एक स्मृति से पन्द्रह प्रकार के दासों का वर्णन उद्धृत किया है।[1] यह नहीं कहा जा सकता कि वह स्मृति किस काल में बनी, परन्तु यह अनुमान किया जा सकता है कि उसमें वर्णित स्थिति हर्ष-काल से भिन्न न होगी। दास कई प्रकार के होते थे। दहेज में प्राप्त, युद्ध में पकड़े हुए, जुए में जीते हुए, ख़रीदे गये, घर की दासी से उत्पन्न, अमानत के तौर पर रक्खा हुआ और वंश-परम्परागत आदि कई प्रकार के दास होते थे। याज्ञवल्क्य और विज्ञानेश्वर के इस वर्णन से मालूम होता है कि दास-प्रथा उस समय बहुत व्यवस्थित रूप में विद्यमान थी। दासों के परिश्रम से कमाये हुए धन पर दासों का कोई अधिकार नहीं होता था।

दासों के लिए भिन्न-भिन्न नियम बने हुए थे, जिनसे दास-प्रथा को अधिक उदार बनाने का यत्न किया गया था। इन्हें परिवार के एक सभ्य की तरह रक्खा जाता था। इनपर वे अत्चार नहीं होते थे, जिनका वर्णन हम यूरोपीय दास-प्रथा के इतिहास में पाते हैं। इसी कारण किसी भी विदेशी यात्री का ध्यान इस प्रथा की ओर आकर्षित नहीं हुआ। किसी ने इसका उल्लेख भी नहीं किया, जब कि उन्होंने अन्य छोटी-छोटी बातों तक का निर्देश किया है।

इस कलंकित दास-प्रथा के अतिरिक्त सती-प्रथा भी उस समय विद्यमान थी। हर्ष की माता के आग में जल मरने और राज्यश्री के आग में कूदने को तैयार होने का वर्णन बाण ने हर्ष-चरित में किया है। छठी सदी के एक शिलालेख से भानुगुप्त के सेनापति गोपराज की स्त्री के सती होने का उदाहरण मिलता है। मनुस्मृति को छोड़कर अन्य प्रायः सभी स्मृतियों में स्त्री के सहगमन का उल्लेख मिलता है। परन्तु इससे यह न समझ लेना चाहिए कि उस समय सती-प्रथा उतने ही अधिक और क्रूर रूप में विद्यमान थी, जितनी कि १७-१८ वीं सदी में। वि का सती होना उस समय आवश्यक नहीं था। विधवा लिए संययपूर्वक जीवन व्यतीत करने का उपदेश स्मृतियों ने दिया है।[1] यही नहीं, विधवा-विवाह उल्लेख कई स्मृतियों में मिलता है। फिर सती न कोई बड़ा पाप न था। चिताभ्रष्ट (सहगमन करते न जले वह) स्त्री का प्रायश्चित्त केवल प्राजापत्य और ब्राह्मणों को भोजन कराने मात्र से हो जाता था।[2] सती-प्रथा पीछे जाकर बढ़ती गई।

हमने यहाँ बहुत संक्षेप से हर्ष-कालीन स्थिति का वर्णन किया है। परन्तु इसी वर्णन से जान सकेंगे कि उस समय की सामाजिक अवस्था अधिक उन्नत और उत्तम थी। यदि हर्ष-काल से भी सामाजिक स्थिति का अध्ययन किया जाय, तब ऐसी ही उन्नत स्थिति ज्ञात होगी। दास-प्रथा और प्रथा होते हुए भी उनका रूप अधिक भयंकर और था। उस समय की देश की वास्तविक स्थिति लिए तत्कालीन आर्थिक और राजनैतिक स्थिति का आवश्यक है, जिनपर हम फिर कभी प्रकाश यत्न करेंगे।

कृष्णचंद्र वि

---

[1] पन्द्रह प्रकार के दास निम्न लिखित हैं—गृहजात, क्रीत, लब्ध, दायादुपागत, अनाकालमृत, स्वामिना-आहित, ऋणान्मोक्षित, युद्धप्राप्त, पणेजित, तवाहमित्युपगत, प्रव्रज्यावसित, कृत, भक्तदास, वडवाहृत, और आत्मनः विक्रेता। (याज्ञवल्क्य स्मृति, पृ० २४६—निर्णयसागर-संस्करण।

---

[1] कामन्तु क्षपणेद्देहं पुण्यमूल फलैः शुभैः।
न तु नामापि गृह्णीयात्पत्यौ प्रेते परस्य तु।
आसीता मरणक्षान्ता नियता ब्रह्मचारिणी।
यो धर्म एक पत्नीनां काङ्क्षन्ती तमनुत्तमम्।
(मनुस्मृति; अ

मृते भर्तरि वा नारी ब्रह्मचर्यं व्यवस्थिता।
साम्टता लभते स्वर्गं यथाते ब्रह्मचारिणः।
(पराशरस्मृति; चतुर्थ

मृते भर्तरि ब्रह्मचर्यं तदन्तरोहणं वा।
(विष्णुस्मृति; २५ अध्याय,

[2] चिताभ्रष्टा तु या नारी ऋतुभ्रष्टा च
प्राजापत्येन शुध्येत ब्राह्मणान् भोजयेत्
(अत्रिस्मृति)

बेदख़ली

[देहाती जीवन के चित्र]

(२)

मास व्यतीत हो गये ।

गाचरण महाराज अपने उन खेतों में, जिन्हें वह र दिये हुए थे, घूम रहे थे । वह एक व्यक्ति से कह —अबकी तो खेती का उठान अच्छा है ।

व्यक्ति बोला—उठान अच्छा होने से क्या होता है, तो सदा ही अच्छा होता है । जाड़े-पाले से बचकर आवे तो जानें ।

गाचरण—पानी तो अच्छा हो रहा है ।

व्यक्ति—हाँ, अभी तक तो सब अच्छा हो रहा है । रहे तब तो कुछ आशा हो जायगी ।

गाचरण—यह खेत बहुत अच्छा लगा है ।

व्यक्ति—पाँस नहीं दी गई है ? इस बार जितनी सब इन्हीं खेतों में डाली है ।

गाचरण—पारसाल से हम भी फिर खेती करावेंगे ।

व्यक्ति—बैल-वैल तो सब बेच डाले, खेती कहाँ से [illegible] ।

गाचरण—बैलों ही की तो चिन्ता है; बैल मिल जायँ काम चल निकले । क्या करें भइया, बिटिया के में हम उजड़ गये । इसके पहले पिता मरे, उनके में बहुत रुपया लगा । उसके बाद ही बिटिया का रना पड़ा ।

व्यक्ति—जबसे आपके यहाँ चोरी हुई तबसे काम बिगड़ता ही चला गया ।

गाचरण—ठीक कहते हो । तबसे छूत ऐसी लग है ।

सी समय एक व्यक्ति ने पुकारा—गंगाचरण ज, हो !

गाचरण—क्या है ?

यह चपरासी तुम्हें पूछता है ।"

गाचरण—क्यों ?

सम्मन है ।"

सम्मन का नाम सुनकर गंगाचरण का कलेजा धड़कने लगा । शीघ्रतापूर्वक चपरासी के पास पहुँचे । चपरासी ने सम्मन दिखाया, सम्मन देखकर गंगाचरण महाराज को ज्ञात हुआ कि ज़मींदार ने बेदख़ली की नालिश कर दी है । उन्होंने चुपचाप हस्ताक्षर करके|सम्मन ले लिया ।

चपरासी के चले जाने के पश्चात् उसी कृषक ने, जिससे वह बातें कर रहे थे, पूछा—काहे का सम्मन है ?

गंगाचरण—ज़मींदार ने बेदख़ली की है ।

कृषक—अच्छा !

गंगाचरण—क्या कहें, इतना कहा-सुना फिर भी नालिश कर ही दी ।

कृषक—वह कारिन्दा बड़ा हरामज़ादा है । है तो जाति का ठाकुर, पर पूरा चमार है ।

एक दूसरा व्यक्ति, जो खेत में काम कर रहा था, बोल उठा—कारिन्दा क्या करे, गाँववाले भी तो उपराचढ़ी लगाये हुए हैं । हमने सुना है कि गाँव के कई आदमी महाराज के खेत लेने की ताक में हैं । उन्होंने ज़ोर लगाया होगा, तभी बेदख़ली कराई गई ।

गंगाचरण—हाँ भाई, संसार में सभी तरह के मनुष्य हैं ।

कृषक—हमारी समझ में आप सीधे मालिक के पास जाओ, वह ज़रूर कुछ रियायत करेंगे ।

गंगाचरण—हाँ, ऐसा ही करना पड़ेगा ।

कृषक—कौन तारीख़ पड़ी है ?

गंगाचरण—चौबीस तारीख़ पड़ी है । आज कौन-सी तारीख़ है—पन्द्रह है—नौ रोज़ और हैं ।

कृषक—तो अभी समय है, आप मालिक के पास जाओ ।

गंगाचरण—आज ही जाते हैं ।

× × ×

गंगाचरण महाराज ज़मींदार से बोले—मालिक, हम बड़े ग़रीब ब्राह्मण हैं । आपके गाँव में पड़े हरि-भजन करते हैं । आपकी जो बत्तीस बीघा ज़मीन है वही हमारी जीविका है । यदि आप बेदख़ल कर देंगे तो हम दाने-दाने को मुहताज हो जायँगे ।

ज़मींदार साहब ने कारिन्दे की ओर देखा। कारिन्दा बोल उठा—सालभर का लगान और उसका ब्याज इनके ऊपर है। ज़मीन यह पाँच रुपये बीघे पर शिकमी उठाये हुए हैं।

ज़मींदार—यह क्या देते हैं?

कारिन्दा—तीन रुपये बीघा।

ज़मींदार—बड़ा फ़र्क़ है।

कारिन्दा—जी हाँ, उधर तो दो रुपये बीघे का मुनाफ़ा खायँ, इधर हमारा लगान न दें। सो यह तो होशियार ठहरे और हम बेवकूफ़!

गंगाचरण—अरे साहब, लगान पर तो हमने अभी सालभर से उठाये हैं; इसके पहले तो हम खुद ही खेती कराते थे। पर इधर हमारा काम बिगड़ गया। पहले चोरी हो गई; उसमें जो कुछ जोड़ी हुई पूँजी थी, निकल गई। फिर पिता का देहान्त हुआ। इसके बाद लड़की का ब्याह करना पड़ा। इन सब कारणों से हमारा खेल बिगड़ गया। अब इस समय हमारी स्त्री के शरीर पर एक गहना तक नहीं है। इसीसे लगान पिछड़ गया, नहीं तो हम सबसे पहले लगान जमा करते थे।

ज़मींदार—ख़ैर, आप हमारा लगान और ब्याज जमा कर दीजिए। हम आपकी बेदख़ली न करावेंगे।

गंगाचरण—धर्मावतार, लगान होता तो हम पहले ही न जमा कर देते। यह नौबत ही क्यों आती। लगान ही तो नहीं है।

ज़मींदार—नहीं है, तो हम विवश हैं।

गंगाचरण—नहीं सरकार, ऐसा न करो। आप लोग सैकड़ों रुपये ग़रीबों को दे डालते हो, शौक़ में ख़र्च कर देते हो। जानो, यह सौ रुपये भी दान कर दिये। हम यह नहीं कहते कि हम देंगे नहीं। देंगे ज़रूर; पर थोड़ा-थोड़ा करके दे देंगे। एकदम से हमारे किये नहीं होगा। इतनी ही रियायत चाहते हैं।

ज़मींदार—महाराज, बिना रुपये जमा कराये हम कुछ नहीं कर सकते।

गंगाचरण—मालिक, बेमौत मर जाऊँगा।

ज़मींदार—तो इसका हम क्या करें!

गंगाचरण—आप सब कुछ कर सकते हैं। भगवान् ने आपको समर्थ बनाया है। एक ब्राह्मण का सर्वनाश करने से आपका कोई बड़ा भारी लाभ न होगा।

ज़मींदार—ज़मींदारी में इन बातों पर ध्यान नहीं दिया जाता। ऐसा सोचें तो फिर ज़मींदारी कर चुके।

कारिन्दा—जितनी अपनी समाई होती है उतना ही प्रतिपाल किया जाता है। अपना घर लुटाकर कोई प्रतिपालन नहीं करता।

गंगाचरण महाराज क्रुद्ध होकर बोले—आप क्यों बीच में टांग अड़ाते हैं? हम मालिक से कहते हैं, बोलते आप हैं!

कारिन्दा—अच्छी बात है, न बोलूंगा।

गंगाचरण—यह सब आग आप ही की लगाई हुई है, ठाकुरसाहब! हमारे मालिक ऐसे नहीं हैं जो इतने निर्दयी हो जावें! आपने न जाने क्या उलटा-सीधा समझा दिया है।

ज़मींदार—यह आपकी भूल है, महाराज! यह बेचारे क्या समझावेंगे। मैं क्या अपना बनता-बिगड़ता नहीं समझता हूँ?

गंगाचरण—सौ-सवासौ रुपल्ली में आपका कुछ नहीं बिगड़ता, सरकार!

ज़मींदार—हाँ, परन्तु चलन तो बिगड़ता है। और लोग जब यह देखेंगे कि गंगाचरण महाराज साफ़ बच गये तो वे भी इसी तरह लगान न देंगे।

गंगाचरण महाराज ने बहुत प्रार्थना की, पर ज़मींदार साहब न पसीजे वरन् उठकर चले गये।

(४)

गंगाचरण महाराज लौट आये। रास्ते भर उन्हें आगे भविष्य की चिन्ता रही। ज़मीन निकल जायगी तो क्या होगा? बाल-बच्चे भूखों मर जायँगे। ज़मींदार इतने बड़े आदमी हैं—इनके लिए सौ-दोसौ कौन बड़ी बात थी; हमारे जीवन-मरण का प्रश्न है। हमारे पास इतनी प्रभुता होती तो हम सौ-दोसौ क्या हज़ार-दो हज़ार छोड़ देते। हा! इस कलिकाल में दया-धर्म बिलकुल उठ गया।

इसी प्रकार की बातें सोचते हुए महाराज गाँव लौटे। उस दिन महाराज ने भोजन नहीं किया। रात-भर पड़े आकाश-पाताल सोचते रहे। प्रातःकाल होते ही उन्होंने निश्चय किया कि हो न हो किसी से ऋण ले लें। इसके

उस दिन बड़ा प्रयास किया; पर उन्हें किसी भी न दिया। लोगों ने सोचा—"इनसे ले क्या के पास है क्या ?" जिन्हें महाराज से सहानुभूति योग्य न थे कि इतने रुपये दे सकते। इससे को घोर कष्ट हुआ। उन्होंने सोचा—जो काम किया,—वह काम तक करने को प्रस्तुत हुए; पर हुआ! विपद्काल में कोई साथ नहीं देता। में वह उस व्यक्ति के पास पहुँचे, जो उनकी कमी लिये हुए था। गंगाचरण ने उनसे कहा—ज़मीन तो अब जाती है। ज़मींदार बिना अपने मानेंगे नहीं।

—यह तो बड़ा ग़ज़ब है, पंडित महाराज! बाप-ज़मीन छिनी जाती है।

नेत्रों को अश्रुपूरित करके बोले—क्या बतावें कुछ समझ में नहीं आता। हमारी रोटी तो आज-ज़मीन से है। इसके चले जाने पर फिर क्या होगा?

को महाराज के अश्रुपूर्ण नेत्र देखकर बड़ा दुःख उसने कहा—क्या कहें, जब इतने बड़े ज़मींदार को हुई तो और किसे कहा जाय!

—आजकल के ज़मींदार तो चमार हैं। पड़ा हुआ पैसा उठा लें।

—वह ठकुरवा सब कर रहा है। हमने सुना आदमी से उसके सौ रुपये पटवारी की मार्फ़त हैं। आपकी ज़मीन उसी आदमी को दी जायगी।

महाराज व्यथित होकर बोले—तो फिर क्या ! घर में कोई ऐसी वस्तु नहीं है, जिसे बेचकर हो सकें। जनम-भर किसी से उधार नहीं माँगा, दिन-भर यह भी करके देखा। कोई उधार देने नहीं। सबने बहाना कर दिया।

—बिगड़े समय का साथी कोई नहीं होता, ! हमें आसों (इस वर्ष) बिटिया का ब्याह करना हमीं कुछ करते।

—कुछ कर सको तो करो, तुम्हारा भी इस काम है।

—लाभ की तो हमें महाराज इतनी चिन्ता नहीं पास ज़मीन की कमी नहीं है। जितना हमसे हो सकता है उतनी ज़मीन हमारे पास है। आपकी जीविका इसीसे है, यही सोचकर कहते थे कि कुछ हो जाता तो अच्छा ही था।

गंगाचरण—तुम चाहो तो हो सकता है।

लछमन—बड़ा कठिन है, महाराज! इस समय हमारे पास रुपया नहीं है। जब था तब आपसे इन्कार नहीं किया। बिटिया के ब्याह में आपने साल-भर का लगान पेशगी माँगा, हमने तुरन्त दे दिया।

गंगाचरण—हाँ, सो तो तुमने दिया था। ऐसे ही अब भी कुछ कर दो तो बड़ा उपकार हो।

लछमन—झूठ बात कहो कह दें; पर इस समय हमारे किये कुछ नहीं हो सकता।

अब गंगाचरण महाराज बिलकुल हताश हो गये। २४ तारीख़ में अब केवल दो दिन शेष रह गये थे। महाराज का खाना-पीना छूट गया। दिन-रात पड़े-पड़े यही सोचा करते थे कि अब क्या होगा? भूमि चले जाने पर बाल-बच्चों का पालन-पोषण कहाँ से होगा? छः-सात दिन की चिन्ता में ही बेचारे आधे रह गये।

२३ तारीख़ की शाम को लछमन की स्त्री ने उससे आकर कहा—आज महाराज के घर में रोना-पीटना पड़ा है। कल तारीख़ है।

लछमन—हाँ, कल २४ तारीख़ है। कल उनका मुक़दमा होगा।

स्त्री—महाराज अलग पड़े रो रहे हैं। मेहरी अलग रो रही है। चूल्हा नहीं जला।

लछमन—क्या बतावें, ऐसे भले आदमी को भगवान् ने ऐसा दुःख दे दिया। कुछ समझ में नहीं आता। हमें तो उनपर बड़ी दया आती है।

स्त्री—तो अपना कुछ बस है?

लछमन—रुपये तो हमारे पास डेढ़सौ के लगभग धरे हैं; पर बिटिया का ब्याह करना है।

स्त्री—हाँ, बिटिया का ब्याह थोड़े ही रुक सकता है।

लछमन—सोई तो कहा।

स्त्री—जाओ ज़रा देख आओ, समझा-बुझा आओ।

लछमन गंगाचरण महाराज के घर पर पहुँचा। देखा, घर में दीपक तक नहीं जला।

लछमन ने पुकारा—पण्डित महाराज !

गंगाचरण महाराज चौपाल में पड़े थे। उन्होंने कहा—कौन है, लछमन ? आओ भय्या।

लछमन उनके निकट पहुँचा और बोला—कैसे पड़े हो ? आज दिया नहीं जला ?

गंगाचरण—दिया कौन जलावे भय्या, सब पड़े रो रहे हैं।

गंगाचरण महाराज का कण्ठ-स्वर ऐसा था, मानों महीने-भर के बीमार हों।

लछमन ने कहा—रोने-धोने से होगा क्या ?

गंगाचरण—यह हम समझते हैं, भय्या ! पर चित्त मानता है ? बाप-दादों की वस्तु हाथ से चली जा रही है। जीविका का द्वार बन्द हुआ जा रहा है। ऐसी दशा में चित्त शान्त कैसे रह सकता है ? कलेजा नुचा आता है लछमन ! हाय ! हम क्या करेंगे ? हमारे छोटे-छोटे बच्चे क्या खाकर जियेंगे ? भगवान्, तुम कहाँ हो, हमने तुम्हारा कौन अपराध किया, जो ऐसा कठोर दण्ड दे रहे हो ?

यह कहकर महाराज चीत्कार करके रोने लगे।

लछमन का गला भी भर आया। वह चुपचाप महाराज का करुण-क्रन्दन सुनता रहा। अन्त में, उससे जब न देखा गया तब, वह चुपचाप वहाँ से चला आया।

घर आकर उसने अपनी स्त्री से कहा—महाराज का हाल तो बड़ा ख़राब है। और बात भी ऐसी ही है। छोटे बच्चे, मां, स्त्री, पाँच-छः खाने वाले, कैसे गुज़ारा होगा ? अभी बेचारे जौ-बाजरा खाकर, फटा-पुराना पहनकर, बसर कर रहे हैं, फिर क्या होगा ?

स्त्री—भगवान् ऐसा दुःख बैरी पर भी न डाले !

लछमन—हमारा गाँव दो कौड़ी का है। हम ऐसे दस-पाँच आदमी मौजूद हैं, जो सौ-दोसौ रुपये दे सकते हैं, पर कोई नहीं फटकता। जब महाराज का समय अच्छा था तब वह सबकी सहायता करते थे। उनपर समय पड़ा तो सब अलग हो गये। हमारा तो मन ऐसा होता है कि तुम बिटिया का ब्याह दस साल टाल दो। महाराज को रुपये दे दो।

स्त्री—अरे नहीं, बिरादरी में बड़ी बदनामी होगी। सब पक्का-पोढ़ा हो चुका है।

लछमन—बदनामी हो तो हुआ करे; महाराज का संकट कट जायगा। बिटिया का ब्याह तो फिर भी जायगा; पर महाराज की ज़मीन जो चली गई तो नहीं मिलेगी।

स्त्री—ब्याह तो नहीं टल सकता, बदनामी होगी।

लछमन—टल क्यों नहीं सकता-कोई ज़बर्दस्ती है ? हम इस साल नहीं करते, पारसाल करेंगे। बदनामी होगी, किसी ससुरे की चोरी करते हैं क्या ? हमारी है, इस साल ब्याह नहीं करते।

स्त्री—समझ लो।

लछमन—समझ लिया है। लाओ रुपये निकालो।

+ + +

गंगाचरण महाराज ने रुपये जमा कर दिये। उनकी बच गई। गाँव में कोई नहीं जानता कि महाराज को से रुपये मिले। कोई कहता था–महाराज बड़े बने हुए रुपये धरे बैठे रहे और फैल मचाते रहे; जब कोई न देखा तब रुपये निकाले।

इधर लछमन की कन्या का ब्याह रुक गया। परिणाम यह हुआ कि जहाँ उनकी कन्या का सम्बन्ध था वहाँ से सम्बन्ध टूट गया। उन्होंने कहा—"या तो वर्ष ब्याह करो, नहीं हम दूसरी जगह कर लेंगे।" बेचारे को इसके कारण अनेक बातें सुननी पड़ीं, अनेक वचनों के तीखे बाणों का प्रहार सहना पड़ा। पर सन्तोष था कि यह सब उसे एक शुभ कार्य के बदले सहन करना पड़ रहा है।

पाँच महींने बाद जब ख़रीफ़ की फ़सल तैयार गई, तो एक दिन लछमन ने गंगाचरण से आकर पण्डित महाराज, आपका क़र्ज़ा भगवान् ने अदा कर दि

गंगाचरण महाराज लछमन का तात्पर्य न समझ बोले—समझा नहीं।

लछमन—अबकी आपके खेतों में अनाज फट अठमनी बीघा हुआ है। इतना अनाज आज तक गाँव किसी खेत में नहीं हुआ।

गंगाचरण—भई, तुमने मेरी सहायता की थी; भगवान्
ारी सहायता की ।

लछमन—आपके रुपये अदा हो गये, अब आप उनकी
ता न करना ।

गंगाचरण—भई, वह रुपये तो उधार लिये थे, देने
ड़ेंगे ।

लछमन—अब मैं, रुपये-उपये कुछ नहीं लूँगा । आपका क़र्ज़ा भगवान् ने अदा कर दिया ।

इतना कहकर लछमन चला गया । गंगाचरण महाराज के नेत्रों में आँसू छलछला आये । उन्होंने कहा, ग़रीब के हृदय में भगवान् बसते हैं । इन धनियों से ये कितने अच्छे हैं !

(समाप्त)

विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक

अन्तर्वेदना

किसे सजाऊँ ? कहाँ सजाऊँ ? कैसे दीप जलाऊँ मैं ?
किस सूने में जाकर सुन्दर, अट्टालिका चुराऊँ मैं ?
बच्चों के शिर पर रखने को पाता कहीं न तेल ;
फिर मैं खेल सकूँगा कैसे उस प्रकाश में खेल ?
मेरे लिए किसीके विद्युत-दीपों का जलना कैसा ?
तुच्छ तेल के बदले घी के पीपों का ढलना कैसा ?
इधर सदा रहती है अपनी कुटिया तिमिराच्छन्न ;
मुझ ग़रीब की दुनिया ही है उस दुनिया से भिन्न ।
रोता हूँ अपनी विपदा से फूट-फूट कर जिस दम मैं ;
अन्तर्विदित वेदनाओं को कर पाता हूँ कुछ कम मैं ।
मेरी इस कुटीर का किसको कब होता है ध्यान ?
बड़े लोग आने में अपना समझे हैं अपमान ।
जब हेमन्त ससैन्य यहाँ पर पौष-माघ में आता है ;
घुटना मोड़, तोड़ तन, मम शिशु मरा लोथ हो जाता है ।
जाना नहीं आजतक मैंने, हा ! हा ! सुख का नाम ;
जबसे होश सम्हाला, देखा तबसे ही विधि वाम ।
दिन-भर मरता हूँ, करता हूँ बाबू की बेगारी मैं ;
पेट थामकर सो रहता हूँ, लखकर निशि-अंधियारी मैं ।
इस प्रकार आशा-ललिता पर गिरता विषम तुषार ;
हाथ पसार चले जाते हैं बच्चे यम के द्वार ।

धरीक्षणसिंह 'बर्क'

हमारी अवस्था (व्यंग्य-चित्र)

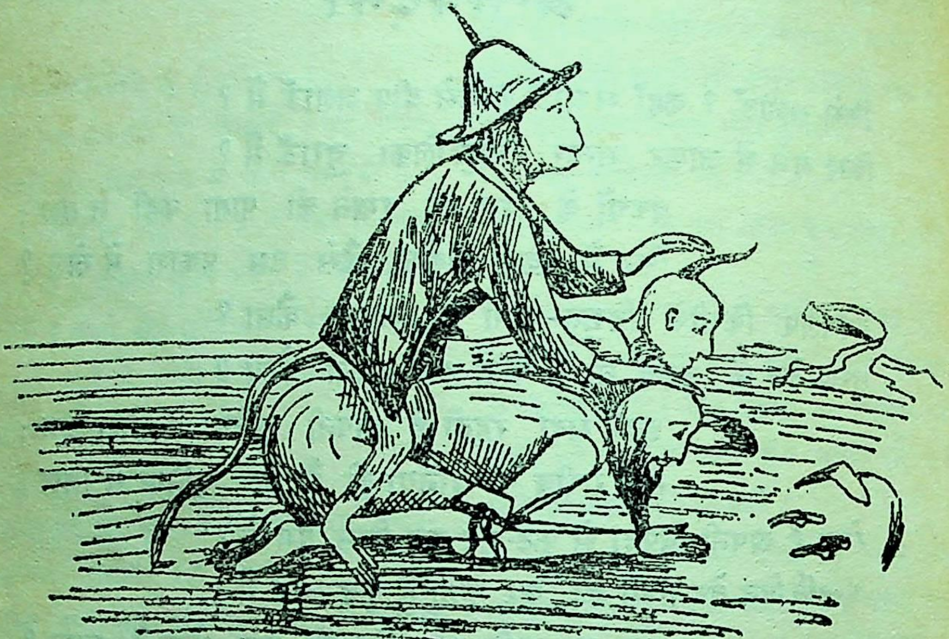

ताक धिनाधिन

[चित्रकार—प्रो० जंगबहादुरसिंह

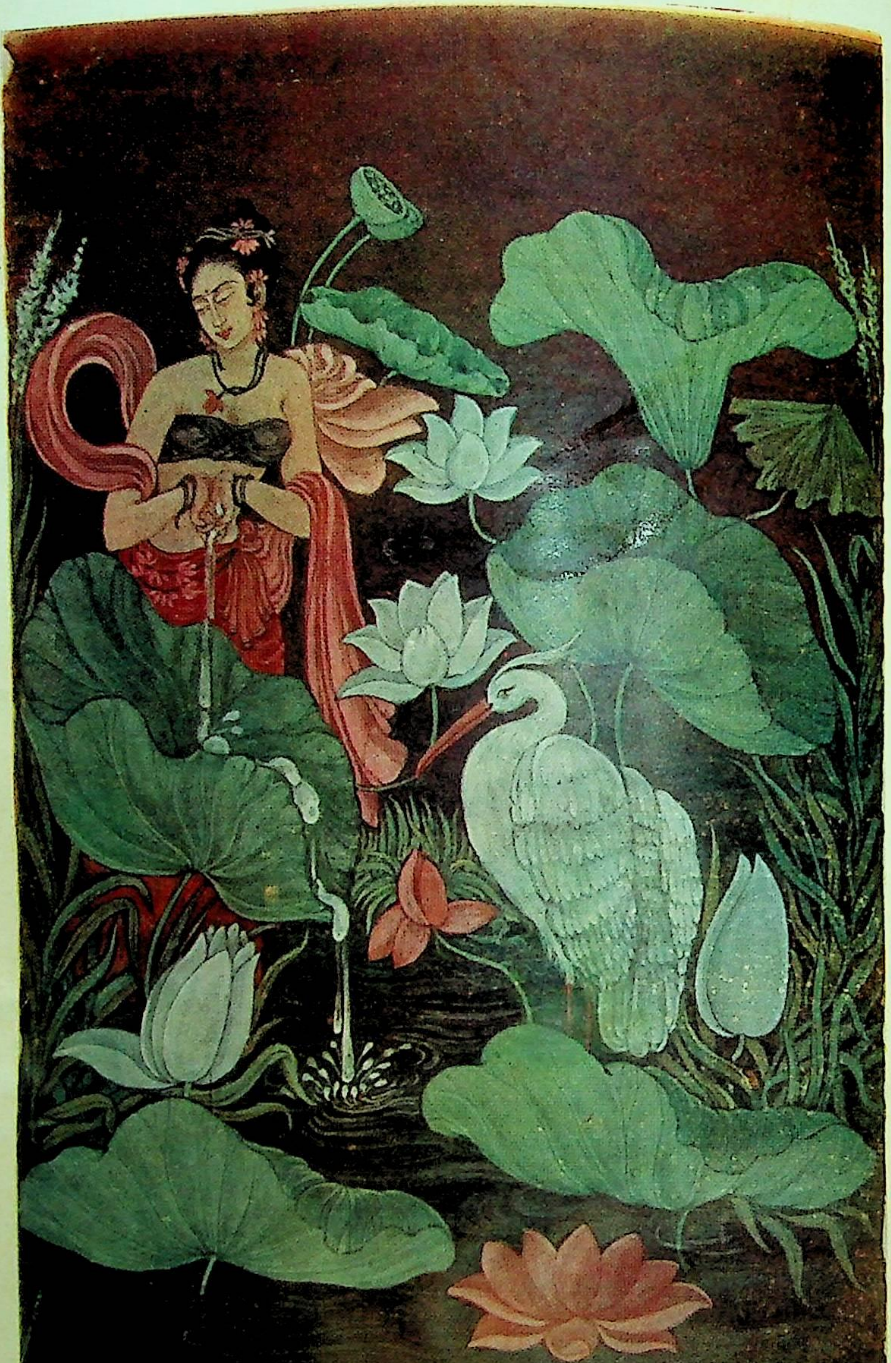

जीवनकी अस्थिरता

[चित्रकार—श्रीरामगोपाल विजयवर्गीय]

“त्यागभूमि”

"हम जाग उठीं, अब समझ गईं, अब करके कुछ दिखला देंगी ।
हाँ, विश्व-गगन में भारत को, फिर एक बार चमका देंगी ॥"

विनय

ंचल होकर नयन न मेरे,
किसी युवक को करें अधीर ।
ुखी करें न किसी का कोमल—
हृदय, प्रभो ! भर-भर कर नीर ॥
ान्ति-हीन दृग देख न मेरे
ले कोई अपना मुँह फेर ।
ाक किसी को क्रूर दृष्टि से,
कर न सकूं कुछ भी अन्धेर ॥
े दूँ यह जीवन अनन्त को—
इस जगती को अपनी देह ।
िकल दृगों से बरसाऊँ मैं,
माँ का प्यार, बहन का स्नेह ॥

सुमंगलप्रकाश शास्त्री

शिक्षा-समस्या

(२)

शिक्षा ! अहा, कितना सुन्दर और सम्मोहक शब्द है यह !

"जिस अंग्रेज़ी शब्द का अर्थ शिक्षा किया जाता है," महात्मा गाँधीजी के लेखानुसार, "उसका मूल अर्थ है 'बाहर खींच लाना'। अर्थात् हमारे अन्दर जो शक्तियाँ छिपी हुई हों उन्हें प्रयत्न-पूर्वक बाहर ले आना ।" उनके स्वर में स्वर मिलाकर कहें तो हम कह सकते हैं—"अमुक वस्तु का हम विकास करते हैं, इसका मतलब यह नहीं कि हम उसकी जाति या गुण ही बदल देते हैं । बल्कि इसका अर्थ तो यह है कि उसमें जो गुण छिपे हुए हैं उन्हें प्रकट करते हैं । इसलिए शिक्षा का अर्थ 'विकास' या 'खिलना' कर सकते हैं ।" आगे वह लिखते हैं—"शिक्षा एक जुदी ही वस्तु है । मनुष्य शरीर, मन और आत्मा इन तीन वस्तुओं से बना प्राणी है । इनमें आत्मा मनुष्य का स्थायी भाग है । शरीर और मन का जो व्यापार उसके लिए होगा, वह शोभा देगा । इसलिए शिक्षा उस वस्तु का नाम हो सकता है, जिसके द्वारा आत्मा की शक्तियाँ प्रकट होती हैं ।" और, "शिक्षा का दूसरा एक यह अर्थ भी हो सकता कि शरीर, मन और आत्मा इन तीनों का जिस साधन

या मार्ग के द्वारा पूरी तरह या ज़्यादा-से-ज़्यादा विकास हो वही शिक्षा है।'' कार्लाइल के कथनानुसार, ''सच्ची शिक्षा वह है जो मस्तिष्क का विकास करता और उसे शिक्षित बनाती है।'' और अध्यापक जनार्दन मिश्र एम० ए० ने तो बड़ी सुन्दरता के साथ उसका सार बतलाया है—''शिक्षा माता है। यह स्वाभाविक पशुता को दबाकर देवत्व प्रदान करती है। दुर्गुणों को दबाकर सद्गुणों का विकास करती है। अच्छी बातों को समझने और उनके अनुसार कार्य करने की क्षमता उत्पन्न करती है।''

सचमुच शिक्षा का बड़ा महत्त्व है। मेरी नम्र-सम्मति में, सफल शिक्षा वही मानी जा सकती है, जो हमारी आन्तर एवं बाह्य (शरीर, मन एवं आत्म-गत) शक्तियों को ऐसी विकसित कर दे कि उसके द्वारा हम न केवल जीवन-संग्राम की विघ्न-बाधाओं का सफलता-पूर्वक मुक़ाबला कर सकें बल्कि अपने निर्दोष एवं आदर्श आचरण-पूर्ण सफल जीवन द्वारा मानव-समुदाय में एक स्फूर्ति भी पैदा कर दें—ऐसी निर्मल और पवित्र पर साहसपूर्ण स्फूर्ति कि जो उन्हें भी उसी प्रकार शिक्षित होने और अपना वैसा ही संस्कृत जीवन बिताने के लिए प्रेरित करे और इस प्रकार हमारी शिक्षा अपने निजी हित या उद्धार के लिए ही काम न आकर समष्टि-रूप में सम्पूर्ण मानव-समुदाय के हित और उद्धार का कल्याण-मय साधन बने। शिक्षा स्वार्थ है, सच्चे 'मैं' (अहंभाव) को विकसित करने का। शिक्षा लालसा है, समस्त मानव-सृष्टि के उद्धार की। शिक्षा प्रवृत्ति है, समस्त मानवबन्धुओं के सुन्दर और निर्बाध सफल जीवन-यापन की। और इसलिए इसका क्रियात्मक रूप या परिणाम है—प्रेम, अहिंसा, सेवा। शिक्षा-सम्पन्न अथवा शिक्षित इसका मूर्त्त-रूप है। उसमें होनी चाहिए इच्छा, महदेच्छा, परमेच्छा, सच्ची और दृढ़ लगन अपने जीवन में इसे क्रियात्मक रूप देने की। शिक्षा का अभिप्राय और परिणाम अप्रेम नहीं, प्रेम है—वह शुद्ध और निर्दोष आत्म-सम विश्व-प्रेम कि जो मानव-मात्र को आत्म-रूप समझ कर उसे स्वयं तो कोई दुःख-पीड़ा पहुँचाने का ख़याल भी न ही करे पर किसी दूसरे द्वारा पहुँचाई जाने वाली या अपने आप उसपर होने वाली दुःख-पीड़ा (हिंसा) को भी उसी प्रकार बिना महसूस किये न रह सके, जैसे स
अपने पर वैसा प्रसंग आने पर वह करता, और यथाश
अधिक-से-अधिक सेवा-द्वारा उसके निवारण के लिए क
बद्ध हो जाय। यही समाज-संगठन का सर्वोत्तम और
से दृढ़ आधार हो सकता है। ऐसा होने पर ही वि
मानव-समाज—को निर्बाध और चिरस्थायी शान्ति प्राप्त
सकती है। और चूँकि शिक्षा मनुष्य अथवा मानव-स
की सम्पूर्णता की दिशा में प्रगति या विकास करने
दूसरा नाम है, इसलिए, हम कहेंगे, यही शिक्षा का
सर्वोत्तम और मूल मंत्र है।

परन्तु, क्या हम इसी दिशा में बढ़ रहे हैं?—

+ + +

संसार के सर्वश्रेष्ठ महापुरुष और महात्मा गाँ
की राय है—''आज-कल जो ज्ञान दिया जाता है, उ
मन का भले ही कुछ विकास होता हो; पर यह कह स
हैं कि शरीर और आत्मा का विकास तो होता ही नहीं
× × × मन के विकास के विषय में भी मुझे स
है। इसलिए कि यद्यपि हम मन को बहुत-से ज्ञान
भण्डार बना लेते हैं, पर इससे यह तो नहीं माना जा स
कि उसका विकास अवश्य ही हुआ है। यह नहीं
सकते कि मन 'खिल' गया।''

''कोरे अक्षर-ज्ञान को,'' महात्माजी लिखते हैं, ''शि
या विकास नहीं कह सकते। भले ही वह ज्ञान हमें ए
ए० बना दे, या संस्कृत का ऐसा पण्डित बना दे
हम किसी भी संस्कृत-शाला में शास्त्री बनकर
दे सकें। उच्च-से-उच्च अक्षर-ज्ञान हमारे विकास अ
शिक्षा का एक उत्कृष्ट साधन भले ही हो, पर वह स
तो शिक्षा हर्गिज़ नहीं है। × × × खिला हु
मन मनुष्य का आवश्यक काम कर देता है। पर, आज
का अक्षर-ज्ञान पाया हुआ मन हमें इधर-उधर भटक
फिरता है।''

कार्लाइल भी कुछ ऐसे ही विचार व्यक्त करता है—
''किसी युवक को ढेर सारी ऐसी निश्चित बातें (Fact
सिखला देना सच्चे अर्थों में उसे शिक्षित बनाना नहीं
कि जिन्हें सीख लेने और याद रख सकने में तो उसे वि

नहीं पड़ता पर न तो वह उन्हें हज़म कर सकता और न कुछ ही। इससे तो उसके दिमाग़ को ज़रा भी नहीं मिलती। अलबत्ता, उसमें जाकर वे जम ज़रूर हैं। पर उस हालत में उनका अपरिपक्व और अजीर्णो- होना स्वाभाविक है। वह एक सम्पन्न (Full) हो सकता है, पर उसकी यह सम्पन्नता एक भरी बोतल के समान है, जो जो-कुछ उसमें पहले भरा था उसे ही उण्डेल दिया करती है—फिर चाहे वह का रस हो या अंगूर का सिरका।" उसके विचारा- "दूसरे लोगों के विचारों का वह एक सुविधापूर्ण तो हो सकता है, उन विचारों को सुरक्षित रखने उसमें पर्याप्त शक्ति भी हो सकती है; लेकिन ऐसे को 'शिक्षित' कहना शिक्षित शब्द का दुरुपयोग है और उसकी देख-भाल में दूसरे लोगों को रखना जाति का दुरुपयोग है। वह राजनैतिक क्षेत्र में कूद है, साहित्य-सागर में डुबकियाँ लेता है, क्रान्ति की में लहराने लगता है; मगर पल-भर के लिए भी उसे मूर्खता का विचार नहीं होता! वह राज-सिंहासनों में मिला देता है, नर-हत्या को अपनी आँखों पसन्द करता है, और देश को जलती दावानल चाहता है; उसे न तो दया आती है, न पश्चात्ताप है। वह तो बोतल के समान ही जड़ है। जो कुछ भरा है, उसे निकाल लीजिए; बस, ख़त्म! फिर रह ही क्या जायगा?"

यूरोप की क्या स्थिति है, यह तो हम नहीं कह सकते। जो भारतवर्ष पहले, हमारे ही नहीं बल्कि फ़ोस्टर नामक एक विदेशी के शब्दों में भी, "निस्सन्देह विशाल विद्या-भवन था, जहाँ से यूरोप की सबसे श्रेष्ठ ओं ने कला, साहित्य और विज्ञान को सीखा था" हमारे भारतवर्ष में तो हमारे अधिकांश 'शिक्षितों' हूबहू यही स्थिति न है?

स्वयं ऐसे शिक्षित और ऐसे वातावरण के अनुभवी जनार्दन मिश्र एम० ए० ने हाल में शिक्षार्थी दशा पर अच्छा प्रकाश डाला है। वह लिखते हैं—"उसे यही सिखलाया गया है कि अंग्रेज़ी में बात कर लेना और ज्यों-त्यों परीक्षा पास कर लेना ही जीवन का सबसे बड़ा धन्धा और चरमलक्ष्य है। उसे यह कभी नहीं कहा गया कि पढ़ने-लिखने का ध्येय पास करना नहीं वरन् जीवन-संग्राम के लिए सुसज्जित होना है। उससे यह नहीं कहा गया कि पास करने से या बाल सँवारने से कोई मनुष्य नहीं बन जाता, वरन् मनुष्योचित गुणों के अनुशीलन से मनुष्यता प्राप्त होती है। उसे यह भी नहीं मालूम है कि चरित्र शब्द का क्या अर्थ है, सत्य का क्या महत्व है, कर्तव्य में क्या पवित्रता है, और अपने तथा दूसरे के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। वह इस बात से बिलकुल अनभिज्ञ है कि अपने जीवन को हम किस साँचे में ढालें, जिससे संसार में मेरा भी कोई स्थान हो। एक अनियंत्रित तथा विशृंखल जीवन बिताने से, संयोगवशात् इधर-उधर ठोकर खाने से, जो बातें किसी भी अशिक्षित के हृदय में आ सकती हैं उतनी ही उसके हृदय में पाई जाती हैं। इतना ही नहीं बल्कि अशिक्षितों की सारी दुर्बलताओं को अपने हृदय में रखकर शिक्षा के पवित्र नाम पर (वह) समाज का एक रोग हो जाता है। दासता उसका धर्म है और 'भिक्षांदेहि' उसका मन्त्र है!"

कितनी शोचनीय दशा है! महात्माजी के स्वर में स्वर मिलाकर कहें तो "यह विकास-हीन शिक्षा-क्रम बिना नींव की इमारत है। अथवा अंग्रेज़ी कहावत का अनुवाद किया जाय तो चूने से पोती क़ब्र के जैसी है, जिसके अन्दर मुर्दा रक्खा हुआ है और जिसे या तो कीड़े-मकोड़े खा गये हैं या खा रहे हैं।"

इस शिक्षा-प्रणाली का श्रीगणेश और परिपोषण करने वाली सरकार भी इसकी निर्दोषिता का दावा नहीं कर सकती, जबकि हम देखते हैं कि स्वयं उसके द्वारा प्रकाशित नाम-मात्र की अर्द्ध-सरकारी रिपोर्ट (Indin in 1926-27) में भी पृष्ठ १४६ पर स्पष्ट लिखा है—"भारतवर्ष की शिक्षण-पद्धति ऐसी है कि जो एकमात्र क्लर्की के धन्धों के उपयुक्त व्यक्ति ही तैयार करती है। औसतन प्रत्येक शिक्षा-प्राप्त भारतीय अपने गुज़ारे के लिए सबसे पहले सरकारी मुलाज़िमत की ओर नज़र डालता है, और उसमें काम-

याब न होने पर किसी नीम-सरकारी या सार्वजनिक संस्था की क्लर्की पर नज़र दौड़ाता है।"

(३)

यह स्थिति शोचनीय ज़रूर है, पर इस पद्धति का परिणाम अस्वाभाविक नहीं। अस्वाभाविक तो इसे कह ही कैसे सकते हैं, जबकि इसकी स्थापना ही इसीलिए हुई है ! और यह तो आज कौन नहीं जानता कि हम भारतीयों को शिक्षित और सुसंस्कृत बनाने के पवित्र उद्देश्य से प्रेरित होकर नहीं बल्कि ब्रिटिश जनता और ब्रिटिश सरकार के अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए ही १८ वीं सदी में इसका आरम्भ हुआ था ?

श्रीमती एग्नेस स्मेडली ने एक जगह कहा है—"जब कभी कोई जाति या राष्ट्र विदेशी शिकंजे में पड़ जाता है, तब यह बात निश्चित-सी समझनी चाहिए कि उस पराजित राष्ट्र की शिक्षा का या तो विजेता-द्वारा ध्वंस कर दिया जाता है, या उसपर इतनी कड़ी देख-भाल रक्खी जाती है कि उसका पनपना दुष्कर हो जाता है। क्योंकि, ज्ञान और परतन्त्रता दोनों साथ-साथ नहीं रह सकते।"

हमारे 'अंग्रेज़ महाप्रभुओं' ने भी इसी नीति से काम लिया। मेकाले साहब ने कहा—"हमें चाहिए कि हम भारत में एक ऐसी जाति पैदा करें, जो वर्ण और रक्त में तो भारतीय हो;पर रुचि, विचार और बुद्धि में अंग्रेज़ हो।" और 'कलकत्ता-गज़ट' (सन् १८१९) में घोषणा हुई—"हम भारतीयों को इस ढंग से शिक्षित करेंगे कि वे हमें हमारे व्यापार और शासन को चलाने में भरसक सहायक-भर हो सकें।"

इसीका यह परिणाम है, जो आज हमारे देश को भुगतान पड़ रहा है। जो इस साँचे में ढलता है, नये-नये फ़ैशन, नई-नई ज़रूरतों और नये-नये उच्छृङ्खल विचारों को लेकर निकलता है। और वे होते क्या हैं !—सब पश्चिमी ढंग के, सब भौतिक, सब कृत्रिम। दिखावट-बनावट का वह मानों पुतला बन जाता है। आचार-विचार में वह 'जंगली काले' लोगों को ठुकराता है; जॉन साहब काका और बुल साहब का वफ़ादार ख़ादिम बनने का वह प्रयत्नपूर्वक ढोंग रचता है। अपने देश की हरएक चीज़, बात-व्यवहार पर नाक-भौं सिकोड़ने में फ़ख़्र समझता है; हर बात में मानों विलायत का बच्चा बनने का वह दम भरता है। हिन्दी को गन्दी और अंग्रेज़ी को गले लगाता है। दूध से परहेज़ करके बिस्कुट-डबलरोटी, काफ़ी और शराब का शौक़ीं बनता रहन-सहन, पोशाक-लिबास, आचार-व्यवहार सब का वह प्रयत्न करता है। सदाचार क्या चीज़ है, इसे महत्व नहीं देता। स्वच्छन्द, अबाध्य, अमर्याद भोग सुख (Eeat, drink and be merry) 'ऋणं पिबेत्' ही उसका जीवनोद्देश्य है—परवाह नहीं देश, या कुटुम्ब रसातल में जाते हैं या क्या होते हैं। 'मैं', स्वार्थ', 'मेरा आराम-सुविधा'—बस, यही उसका लक्ष्य है। खेती-किसानी, लुहारी, सुतारी, सुनारी क़दीमी धन्धे उससे नहीं हो सकते; १०-१५ क्लर्की में भले ही दुःखम-सुखम जीवन बिता देना

शिक्षा हममें नम्रता और सेवा के बजाय अहंकार खुदी का बीजारोपण कर रही है। प्रेम के बजाय तिरस्का दूसरों को अपनेसे छोटा और नीच समझने—के पाप भाव पैदा कर रही है। और अहिंसा के स्थान पर पर-पी बुद्धि-कौशल के बल पर चतुराई-चालाकी से दूसरों के कुचल-दबा लेने अथवा उनके परिश्रम का नाजायज़ स्वयं उठाने—की वृत्ति को आश्रय दे रही है। अधिक बुद्धि किसी दूसरे में हो सकती है, इसे हम मानते। बड़ों का आदर हम नहीं करना चाहते। जो 'बड़ा' होने की हैसियत से कोई हमारे लिए कुछ अन्यथा कहे ! हम किसी की नहीं सुनना चाहते, किसी को रहना है तो हमारे इच्छानुसार ही उसे होगा। 'बड़े' तो तेल में तले जाते हैं। नेता कोई क्या बनेगा ? हम स्वयं आत्म-प्रकाश हैं—प्रकाश-स्वरू रूढ़ि या परम्परा पर कुछ सोचने का हम कष्ट ही उठावें, यदि वह हमारे 'आक़ाओं' के देश और सभ्य नहीं प्रचलित है ? भारत और भारतीय सभ्यता नहीं पश्चिम और पश्चिमी सभ्यता ही संसार का उद्धार यही विद्रोही-भाव शिक्षितों में थोड़े-बहुत परिमाण में हमारे यहाँ घर किये हुए हैं। देश-भक्ति भी, इनमें से करते हैं तो शायद वह भारत की भक्ति से प्रेरित होकर बल्कि इसलिए कि वह इस समय का एक 'फ़ैशन' है।

तीजा यह हो रहा है कि हमारा आत्म-बल घटता है। भारत दिन-ब-दिन संसार की नज़रों में गिरता है। हम हतवीर्य और हत-साहस होते जा रहे हैं। से साहस के काम अब स्वप्न की बातें हो गई हैं। इतनी निराशा छा गई है कि बहुत-से तो यही नहीं करते कि फिर भी कभी भारत अपने पैरों पर होगा—फिर भी कभी अपने यश-गौरव से वह संसार समान कर सकेगा। हमारे शिक्षित लोग ज़बान से कुछ कहा करें, पर अन्दर से उन्हें दुविधा ही रहती सरकार चली जायगी तो हम क्या करेंगे ? आत्मविश्वास नष्ट हो चुका है; कल्पना-शक्ति वैसे ही उधार चली से आँखें चश्मे के बदले रहन रख दी गईं। देश और तबाह होता जा रहा है; पर यहाँ 'मुर्दा दोज़ख़ या बहिश्त को, क़ाज़ी को हलवा-रोटी से काम' हो रहा है। अपने वंशगत धन्धों से घृणा कर हम करी पर आधार करते जा रहे हैं, जिसका यह परि- है कि बेकारी की समस्या दिन-पर-दिन भीषण-से- और व्यापक होती जा रही है। देखिए, कोटमैन लिखते हैं—"जबकि हम भारत की बेकारी का ज़िक्र हैं तो साधारणतः हमारे दिमाग़ में जो बात होती है शिक्षितों की बेकारी; और इसमें लेश-मात्र सन्देह कि यह ऐसी समस्या है, जो प्रतिवर्ष अधिक-से-अधिक होती जा रही है।" (India in 1926-27. 146.) यही नहीं, हमारा गृह-जीवन भी दिन-दिन नीरस, स्नेह-शून्य, स्वार्थ-प्रधान और चिन्त्य होता है। और इन सबका परिणाम कोई बहुत अच्छा हीं आता।

यह ठीक है कि सभी शिक्षितों के बारे में हम यह बात सकते, साथ ही यह न कहना भी बिल्कुल होगा कि हमने उससे थोड़े-बहुत गुण भी ज़रूर हैं, परन्तु सब मिलाकर तो, अपेक्षाकृत, हमारी यही है ?

मुकुटबिहारी वर्मा

आदर्श, नियम और प्रचलित प्रथा

आजकल हिन्दू-समाज की अवनति तथा सुधारकों और उनके विरोधियों के मतभेद का मुख्य कारण आदर्श, नियम और प्रचलित प्रथा में भेद न करना और सुविधा के अनुसार एक को दूसरे की जगह प्रयोग करके अपने पक्ष को सबल बनाने का प्रयत्न करना मालूम होता है। जिस समय किसी प्रचलित प्रथा के सुधार के सम्बन्ध में विचार किया जाता है, उस समय सुधार के विरोधी उस प्रथा के आदर्श स्वरूप को सामने रख कर समाज के सामने उसके आदर्शानुसार न चलने के कारण समाज-क्रान्ति का चित्र खींचने का प्रयत्न करते हैं। उस समय वह भूल-से जाते हैं कि समाज उस प्रथा के केवल आदर्श से ही च्युत नहीं हुआ है बल्कि नियम से ही बहुत नीचा गिर गया है और इसलिए इस समय उस प्रथा के अनुसार चलनेवालों और उसके इस समय प्रचलित रूप में सुधार करने वालों में कौन यदि आदर्शानुसार नहीं तो कम-से-कम उसके नियम के अनुसार चलने का प्रयत्न कर रहा है। यह बात हिन्दू-समाज की प्रायः हर प्रचलित प्रथा के सम्बन्ध में कही जा सकती है।

प्रत्येक प्रथा का एक माना हुआ आदर्श होता है। उसको जहां तक हो सकता है ऊँचा और दिव्य बनाया जाता है। इसलिए, जन-साधारण से यह आशा नहीं की जा सकती कि वे उसके अनुसार चलें। हाँ, समय-समय पर विशेष व्यक्ति उसके अनुसार चलकर उसको व्यावहारिक साबित करते हैं और जन-साधारण को उसके अनुसार चलने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। पर फिर भी सामान्य मनुष्यों का उसके अनुसार चलना कठिन होता है। इसलिए

उस आदर्श से सम्बन्ध रखने वाले ऐसे नियम बना दिये जाते हैं, जिनपर सामान्य पुरुष चल सकते हैं और जिनके अनुसार चलने से समाज व्यवस्थित रह सकता है तथा यह माना जा सकता है कि वह आदर्श के नजदीक पहुँचने का प्रयत्न कर रहा है। लेकिन, प्रायः देखा जाता है कि, समाज के अगुआ सुविधानुसार इन नियमों में परिवर्तन करते रहे हैं। आदर्श को एकसाँ रखते हुए समय और काल के अनुसार नियमों में परिवर्तन किया जा सकता है और इस परिवर्तन से समाज के विकास में बड़ी सहायता मिल सकती है। पर यदि किसी स्थान और समय-विशेष के अनुसार बने नियमों को ही हम आदर्श मानलें और उसमें परिवर्तन करना उतना ही आपत्तिजनक समझें, जैसे आदर्श को बदलना, तो कहा जा सकता है कि समाज उस समय आदर्श और उससे सम्बन्ध रखने वाले नियमों में बहुत दूर हट गया है और प्रचलित प्रथाओं या रूढ़ियों का उपासक हो गया है। ऐसी अवस्था में प्रचलित प्रथा को ही सब-कुछ समझ लिया जाता है; यह विचार करना महापाप समझा जाता है कि उसका असली स्वरूप क्या था और उस स्वरूप और प्रचलित प्रथा में कितना भेद हो गया है, और किस प्रकार स्थान और समय के अनुसार हुए आदर्श तक नहीं तो कम-से-कम उस सम्बन्धी नियम के अनुसार चलने के लिए प्रचलित प्रथा में क्या परिवर्तन किया जाय।

समाज की इस शोचनीय अवस्था का मुख्य कारण, जैसा ऊपर बताया गया है, इन तीन शब्दों—आदर्श, नियम और प्रचलित प्रथा—को ठीक प्रकार न समझना और एक का दूसरे की जगह प्रयोग करना है।

उदाहरण के रूप में यदि हम विधवाओं के सम्बन्ध में ही विचार करें तो मालूम होता है कि
विवाह की तरह विधवा का आदर्श बड़ा ऊँचा रख
गया है, वह पवित्रता और त्याग की मूर्ति सम
गई है, और इसलिए उसके सामने सबके मस
झुक जाते हैं, ऐसा समझा गया है। पर यदि सम
विवाह के आदर्श से ही गिर जाय, और इसी
उसमें पांच वर्ष और उससे कम अवस्था तक
विधवायें लाखों की संख्या में पाई जायँ, तो क्या
प्रचलित प्रथा के अनुसार उन लाखों मासूम ब
के सामने आदर्श विवाह-सम्बन्धी विधवा का
आदर्श रख कर उनसे जीवनभर वैधव्य म
और पग-पग पर उनका तिरस्कार करना आदर्श
पालन करना समझा जा सकता है ? ऐसी हाल
यदि हमारे विवाह में आदर्श या नियम के अनु
न चल सकने के कारण समाज में इतनी अ
बाल-विधवायें हो गई, तो उस समय देश और
के अनुसार कोई ऐसा नियम बना दिया जाय
विधवायें—विशेषकर बाल-विधवायें—यदि चा
उनके अभिभावकों का कर्त्तव्य है कि वे उनका वि
कर दें, या किसी अवस्था तक की विधवायें वि
ही न समझी जायँ और इसलिए उनके अभि
का कर्त्तव्य हो कि वे उनका विवाह दूसरी अ
हित कन्याओं की तरह करदें। तब यह आ
हो जा सकती है कि इस प्रकार के विवाहों
विधवा के आदर्श से समाज गिर रहा है; लेकि
शंका उसी समय ठीक मालूम होती है, जब स
विवाह के आदर्श पर चल रहा हो, और
बाल-विवाह और अनमेल विवाह न हो रहे
लेकिन जब ये दोनों प्रकार के विवाह अधिक
में हो रहे हों, या यह कहना ग़लत न होगा
अधिकतर विवाह इसी प्रकार के हों, तो ऐसी
में उन बाल-विधवाओं के सामने विधवा का
आदर्श रखने की अपेक्षा उनके विवाह-सम्बन्धी

से ही हम समाज को व्यवस्थित रख सकते हैं इसलिए आदर्श के अधिक निकट पहुँचने का कर सकते हैं । सुधारक और उनके विरोधी इस बात में सहमत हैं कि विधवा-विवाह विवाह नहीं है । भेद केवल यह है कि सुधा- अनुभव करते हुए कि जिस देश में पाँच उससे कम की विधवायें दो लाख से ऊपर उन मासूमों से जीवन-भर जबर्दस्ती वैधव्य कराने से कैसे-कैसे दुष्परिणाम हो रहे हैं और किस प्रकार अधोगति की ओर जा रहा है, विवाह-सम्बन्धी नियम बनाने का प्रयत्न करते उनके विरोधी इस बात पर विचार नहीं करते आदर्श से कितना गिर गया है और इस- कितनी बुराइयाँ फैलकर समाज की जड़ ली कर रही हैं, वे आदर्श की दुहाई देकर ति को क़ायम रखने के लिए प्रचलित प्रथा र्थन करते हैं । इनमें कुछ लोग ऐसे मिलते चाहते हैं कि बुराई की जड़—इस उदाहरण वाह के आदर्श से गिरने—को ठीक किया वे चाहते हैं कि विवाह उस आदर्श के अनु- । पर वे उस आदर्श से गिरने के कारण हुई को दूर करने के उपाय पर ठीक प्रकार से हीं करते—या यह कहा जा सकता है कि इलाज करने यानी आगे बढ़ने से हिच- इसका मुख्य कारण तो बुराइयों में छोटी साहस-पूर्वक समाज के कल्याण की दृष्टि ना है । यदि वे ऐसा साहस करें, तो उनमें रकों में कोई अन्तर नहीं रहता । सुधारक विवाह और उसके सम्बन्ध के नियम न कारण समाज की अव्यवस्थित अवस्था और बुराइयाँ इन दोनों को 'बुराई' समझते हैं; पर कल्याण की दृष्टि से विधवा-विवाह-रूपी छोटी बुराई को, उसके न होने देने से होने वाली दूसरी बड़ी बुराइयों की अपेक्षा, स्वीकार करते हैं और उसके सम्बन्ध में नियम बनाने का प्रयत्न करते हैं ।

लेकिन सुधार के विरोधियों में एक दल ऐसों का भी है, जिन्होंने आदर्श में ही भेद कर दिया है और जो किसी समय की प्रचलित प्रथा को ही आदर्श मान बैठे हैं । ये दोनों में कुछ भेद नहीं देखते और इसलिए इनको समझाना असम्भव-सा ही मालूम होता है । अतः इनसे यह भी आशा नहीं की जा सकती कि ये प्रचलित प्रथा को आदर्श के अनुकूल बनाने के लिए किसी नियम के बनाने में सहमत हो सकते हैं । इनका तो विचार करना ही व्यर्थ है ।

इस प्रकार यदि हम अपने विचारों में आदर्श और व्यवहार—प्रचलित प्रथा—में भेद करने लगें, और सुभीते के अनुसार एक को दूसरे की जगह प्रयोग न करें बल्कि समाज के उत्थान की दृष्टि से दोनों का समन्वय किसी विशेष नियम द्वारा करना सीख लें, तो समाजिक सुधारों-सम्बन्धी बहुत-से झगड़े तय हो जायँ और बहुत-कुछ मतभेद, जो इन शब्दों को ठीक न समझने के कारण समाज में फैला हुआ मालूम होता है, दूर हो जाय और सबका भाव समाज को व्यवस्थित करके उसको उन्नत अवस्था में ले जाने का हो, तो बहुत-से असली मतभेद भी समझौते की नीति के अनुसार दूर किये जा सकते हैं ।

रामशरण

'धार्मिक, राजकीय अथवा वैज्ञानिक दलीलें, जो किसी एक स्थान और एक समय में सही मान ली गई हैं. दूसरे स्थान और दूसरे समय में ग़लत हो सकती हैं । लेकिन व्यवहार नीति एक त्रिकाल सत्य है । इससे लोगों को सच्चा सुख प्रेम और शान्ति प्राप्त हो सकती है । " —टाल्स्टाय

भविष्य की स्त्री

जबसे मनुष्य-समाज की सृष्टि हुई है तभी से मनीषी लोग स्त्री-पुरुष-समस्या पर विचार करते आये हैं, और जबतक यह संसार है तबतक विचार करते रहेंगे। इस प्रश्न की महत्ता का एक विशेष कारण है। इसीके ठीक हल पर मानव-समाज की शान्ति और सुख निर्भर हैं।

इतिहास पर दृष्टि डालने से पता लगता है कि अति प्राचीन काल में स्त्री को समाज में पुरुष के समान ही पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। वह चाहे जिससे विवाह कर सकती थी। कई उदाहरण तो ऐसे भी मिलते हैं, जिनसे पता लगता है कि आदि काल में विवाह का भी कोई विशेष बन्धन न था। पशु-जगत् के समान स्त्री-पुरुष स्वेच्छानुसार समागम कर लेते थे। परन्तु धीरे-धीरे उस स्वतन्त्रता का ह्रास होता गया और विवाह की प्रथा चली। यहाँ तक कि होते-होते कालान्तर में पुरुष स्त्री को अपनी भोग-वस्तु और निजी सम्पत्ति समझने लगा। स्त्री अपना पति आप चुनने के जन्मसिद्ध अधिकार से वंचित कर दी गई। उसका काम मनुष्य की काम-लिप्सा को तृप्त करना ही ठहराया गया। इस भोग-वस्तु को अपने ही अधिकार में सुरक्षित रखने के लिए नाना उपाय सोचे जाने लगे। शास्त्रों और स्मृतियों ने 'लूले, लंगड़े, कोढ़ी और पागल' पुरुष के साथ भी आजीवन बँधी रहने का स्त्री को उपदेश दिया। इसके लिए उसे स्वर्ग के सब्ज़ बाग़ दिखलाये गये। क्रूर, कुकर्मी और दुराचारी पति को छोड़ जानेवाली स्त्री को डराने के लिए बहुसंख्यक नरकों की सृष्टि की गई। पुरुष का शासन और अधिकार अक्षुण्ण रखने के लिए स्त्री को ज्ञान-लोक से वंचित कर दिया गया। उससे विद्या-प्राप्ति का अधिकार छीन लिया गया। जैसे बहुमूल्य मणि-मुक्ता को चुराये जाने के भय से छिपाकर रक्खा जाता है, वैसे ही स्त्री को रत समझ कर बुर्क़े और घूँघट में छिपाया जाने लगा। बस, स्त्री की स्वतंत्रता का अन्त हो गया! व स्वाधीन प्राणी न रह कर गाय-भैंस के सदृश प सम्पत्ति बन गई।

स्त्री का शरीर पुरुष से दुर्बल है। पुरुष उसपर अपने पाशविक बल से शासन करता है। इसके अतिरिक्त रोटी कमाने के सभी द्वार स्त्री के लिए बं हैं। उसे पेट भरने के लिए पुरुष का मुहताज हो पड़ता है। इसलिए वह पुरुष की क्रीतदासी बन ग है। नाना कष्ट झेलकर भी उसे पुरुषों की इच्छा के अनुसार अपनेको ढालना पड़ता है। पुरुष मन उससे विरक्त हो जाने से उसे भूखी मर पड़ेगा, इस डर से उसे अपने मन को अप अनुरक्त रखने के लिए नाना प्रकार के हाव- और हार-सिंगार करने पड़ते हैं। इस प्रकार प्रत्ये बात में पुरुष के अधीन और उसकी दया पर नि होने के कारण उसकी स्वतंत्र इच्छा का नाश गया है। उसे प्रत्येक बात—चलना, फिरना, खा पीना, सोना, जागना, हँसना, रोना, प्रेम और घृणा, स अपनी स्वाभाविक इच्छा से नहीं वरन् पुरुष प्रसन्नता के विचार से करनी पड़ती है। युग से बातों का अभ्यास करते आने—अपने स्वाभाविक भ को दबाकर पुरुष की इच्छा के अनुकूल दिख करने पर विवश होने—के कारण उसकी वास्त प्रकृति इतनी दब गई है—इतनी परिवर्तित हो है—कि उसके प्रकृत स्वरूप का पता लगाना समय मुश्किल हो रहा है। स्त्री इस समय जो विनय, स्नेह, सेवा और आत्मोत्सर्ग की सजीव देख पड़ती है वह नारी-आत्मा का वास्तविक स है, यह कहना कठिन है।

कालीन लोगों ने स्त्री की बहुत निन्दा की र कहता है—'नरक रूप द्वारं किम् ? स्त्री' स्त्री नरक का द्वार है। कबीर कहता है— री, [illegible] जल डूब मूआ संसार।' गोस्वामी दास ने नारी को ढोल और पशु के समान न अधिकारी' ठहराया है। सच तो यह है कि ग में जितने भी धर्माचार्य हुए हैं, महर्षि दया- को छोड़कर, सबने नारी-निन्दा में अपने ग्रंथों लांछित किया है।

स्वतन्त्रता-हीन दास मनुष्य सब दुर्गुणों का बन जाता है। निष्कपटता, उदारता, सरलता, व आदि सभी सद्गुण उसका साथ छोड़ देते ही दशा स्त्री की हुई। पर पहले ही परान्न- विद्याहीन और पराधीन स्त्री छल-कपट के अपनी स्वतन्त्रता के लिए और कर ही क्या थी ? इसलिए उसका नाम कपट के लिए हो गया। 'स्त्री चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न कुतो मनुष्यः।' इत्यादि लोकोक्तियों की सृष्टि हुई। रन्तु स्त्रियों के सौभाग्य से, अथवा पुरुषों के से, काल-चक्र अब अपनी दिशा को बदल है। संसार की स्त्री घोर दासता की अवस्था से कर स्वतन्त्रता के वायुमण्डल में आना चाहती इसमें उसको सफलता होगी या नहीं, यह अभी कठिन है। कारण, इसका निर्भर उस मूल्य है, जो वह स्वतन्त्रता के लिए देने को तैयार । पिंजरे में बन्द मैना को मनुष्य दाना-पानी, और फल-फूल खिलाता है। वर्षा-आँधी शिकारी पक्षियों से उसकी रक्षा करता है। में एक स्वतन्त्रता को छोड़कर, मैना को, और सुख प्राप्त हैं। अब यदि वह स्वतन्त्रता चाहे तो पिंजरा छोड़ने के साथ इन सब सुखों का भी करना पड़ेगा। तभी वह स्वतन्त्रता का उपयोग कर सकेगी। यही बात स्त्री की है।

गत बीस वर्षों में स्त्री की स्थिति में बड़ा भारी परिवर्तन हो गया है। भारत में तो पुरुष भी पराधीन दास हैं। इन दासों से स्वतंत्रता का दावा पाने की आशा भारतीय नारी कर ही कैसे सकती थी ? हाँ, पश्चिम में स्त्री ने स्वतन्त्रता का झण्डा फहरा दिया है। उसके स्वतन्त्रता के युद्ध का आरम्भ 'वोट' देने का अधिकार प्राप्त करने के उद्योग के साथ हुआ था। तबसे स्त्री का पग स्वतन्त्रता के पथ पर दिन-पर-दिन आगे ही बढ़ता रहा है। आज हम पश्चिम में हजारों स्त्रियाँ ऐसी पाते हैं, जो अपना पेट पालने के लिए पुरुषों की मुहताज नहीं, जो स्वतन्त्र आजीविका करके स्वाधीन जीवन व्यतीत करती हैं।

पश्चिम में स्त्री की आर्थिक मुक्ति ने उसे स्वाधीन करने में बड़ी सहायता दी है। कल-कारखानों और दफ़्तर-दूकानों में काम करके वह अपनी रोटी आप कमाती है। इन कामों के लिए उसकी माँग भी अधिक है। कारण, वह पुरुष की अपेक्षा सस्ती मज़दूरी पर काम करना स्वीकार कर लेती है। उसके काम में सफ़ाई और फुर्ती भी अधिक है। पुरुष को पहले अपने शारीरिक बल का बड़ा अभिमान था। वह समझता था, स्त्री अपने कमनीय-कोमल कलेवर से अधिक बल का काम नहीं कर सकती। परन्तु अब बिजली की शक्ति ने भारी शारीरिक बल की आवश्यकता ही नहीं रहने दी। एक छोटा-सा बटन दबा देने से बिजली अपने-आप भारी-भारी बोझ उठा कर इधर से उधर रख देती है। कारखानों में अब जिस वस्तु की आवश्यकता है, वह है, फुर्ती, निपुणता और सफ़ाई। सो ये चीजें पुरुष की अपेक्षा स्त्री में कहीं अधिक हैं। जिस समय पुरुष भद्दे पन से कुर्सी पर बैठा मूँछों को ताव दे रहा होता है, उस समय स्त्री की कोमल अँगुलियाँ बड़ी फुर्ती से

मशीन पर दौड़ रही होती हैं। इसलिए कारखानों के मालिक भी पुरुष की अपेक्षा स्त्री-मजदूर को ही अधिक पसंद करते हैं।

स्त्री के इस आर्थिक उद्धार का परिणाम क्या हुआ है ? वह अब घर में बन्द रह कर पुरुष की बाँदी बनी रहना पसन्द नहीं करती। वह भी सिनेमा, नाटक और सैर-सपाटे से अपना मनोरञ्जन करती है। स्त्री को माँ कब बनना चाहिए, इसका निर्णय पहले पुरुष ने अपने अधीन रख छोड़ा था। वह जब चाहता था, स्त्री की इच्छा रहते-न-रहते, उसे माता बना देता था। पर अब आर्थिक दृष्टि से स्वाधीन स्त्री अपनी इच्छा से माता बनती है।

पतिव्रत-धर्म की महिमा का मूल्य भी अब घटता जा रहा है। स्त्री समझती है, ये सब भय मुझे पुरुष की दासी बनाये रखने के लिए ही दिखाये गये हैं। धर्म-शास्त्रों ने भी पुरुष के अधीन होकर इसपर ईश्वरीय छाप लगाने का यत्न किया है। जो बातें यूरोप के प्राचीन स्त्री-समाज में बुरी समझी जाती थीं, वे आर्थिक रूप से युक्त स्त्री की दृष्टि में बुरी नहीं रहीं। वह अब पुरुषों के सदृश चुरुट पीती, वारुणी-स्नान करती, बाल कटवाती, सिर पर टोप और टाँगों में बिरजिस पहन कर घोड़ा दौड़ाती है; और रोटी बनाने, बच्चे पालने, और घर में बैठकर पति की फटी हुई जुर्राबों को रफ़ू करने जैसे अधम और अनुत्पादक कामों का करना नापसंद करती है।

जो बात आज यूरोप और अमेरिका में है, वही कल भारत में होने वाली है। टर्की और अफ़ग़ानिस्थान जैसे कट्टर मुसलमानी देश बुर्क़े और बहुविवाह को छोड़ चुके हैं। स्त्री-स्वातंत्र्य की लहर भारत को भी बड़े वेग से प्लावित करती जा रही है। किसी अंग्रेज़ी कालेज में पढ़ने वाली हिन्दू लड़की और उसकी दादी के रहन-सहन, आचार-विचार, वेष-भाषा में कितना अन्तर है ! प्रति दिन तड़के उठने, चक्की पीसने, चर्खा कातने, गोबर थापने, घर में बैठकर चू फूँकने, बच्चों को नहलाने-धुलाने, पति के पा दबाने, उसके माथे पर बल पड़ा देखकर ही थर- काँप उठने वाली स्त्री दिन-पर-दिन कम होती रही है। सुधारकों की चिल्लाहट के रहते भी उस स्थान दिन-चढ़े उठने, चाय-बिस्कुट खाने, इध खोरी करने, सन्तानोत्पत्ति से घबराने, और बा बात में पति नाम के अभागे प्राणी को डाँट वाली, स्वतन्त्रता-प्रिय दुर्बलकाय लड़की लेती रही है। मनु कहता है, स्त्री कभी स्वतन्त्र न हो बचपन में वह पिता के, जवानी में पति के, बुढ़ापे में पुत्र के अधीन रहे। आधुनिक सुशि लड़की ऐसे धर्म-व्यवस्थापक को पागल समझ उसके धर्म-शास्त्र को जला डालना चाहती है ! गार्ह में प्रवेश करके "पति-परमेश्वर" की आराध द्वारा मरने के बाद मोक्ष-प्राप्ति की अपेक्षा अध्यापिका, नर्स, डाक्टर या वकील बन कर संसार में जीवन-मुक्त होना अच्छा समझती है। अपने समय का मूल्य जानती है। चर्खा कातने वह जितना समय लगायगी, उतने समय में दूसरे काम से, अपनी योग्यता के प्रताप से, अधिक धन कमा सकती है। पुरानी स्त्रियाँ जवा के ढलते ही अपना सारा सौन्दर्य और आकर्षण बैठती थीं। आधुनिक स्त्री 'पोमेड' और 'पा की सहायता से ऐसे मनोहर ढंग से बनाव-चु और शृङ्गार करती है कि चालीस वर्ष की अवस्था भी वह अपनी चारुता से बीस वर्ष की नवो जान पड़ती है।

अब प्रश्न होता है कि इस लहर का परि क्या होगा ? स्त्री-पुरुष का पारस्परिक सम्बन्ध कै होगा ? हमारे पारिवारिक जीवन की क्या

इन प्रश्नों का उत्तर देना सुगम नहीं । इसका करते भी डर-सा लगता है । संभवतः को अपनी विषय-वासनाओं के संबंध में संयम से काम लेना पड़ेगा । जिसे "पारिवारिक कहा जाता है, वह सब नष्ट हो जायगा । नाम की कोई चीज संसार में न रह जायगी । र पुरुष होटलों में खाना खाया करेंगे और -सा जीवन व्यतीत करेंगे । जिस प्रकार इस स्त्रियों पर अत्याचार हो रहा है, उन्हें उनकी के विरुद्ध बूढ़ों और अयोग्यों से व्याह दिया है, वैसा भविष्य में न हो सकेगा । स्त्रियाँ पुरुषों र न होकर अपनी आजीविका आप कमायँगी; पुरुष का उतना ही दबाव सहन करेंगी, जितना करने की उनकी अपनी इच्छा होगी । गर्भ- (Birth control) की विधियों का व्यापक होगा । आत्मोत्सर्ग का भाव नष्ट होकर स्त्री पुरुष अपने-अपने सुख और भोग-विलास की न्ता करेंगे । नारियाँ 'देवी' के स्थान में 'स्त्री' ना अधिक पसंद करेंगी । क्योंकि जब पुरुष स्त्री को देवी कहता है तो उसका भाव यह है कि वह एक ऐसी खिलौना-सी चीज़ है, जो की दौड़-धूप नहीं कर सकती, जिसे संसार र्मी-सर्दी से बचा कर एक सुरक्षित स्थान में रख चाहिए, और पत्र-पुष्प से पूजा कर छोड़नी ।* पुरुष के दिये हुए इस हीनता-सूचक शब्द को वह अपने लिए अपमानजनक समझेगी । जात-पाँत और छूत-छात के ढकोसले उड़ जायँगे और व्याह-शादी में सब पूर्ण स्वतन्त्रता से काम लेंगे ।

सन्तराम

स्त्रियों की क़लम से

पर्दा

हमारे यहां चली हुई घूँघट की प्रथा भी इस समय उतना ही कष्ट दे रही है, जितना व्रण के उपरक्षार देते हैं । शिक्षा के अभाव में विशेष रूप से चलाया हुआ पर्दा भी कारण है । जहाँ पर यह घूँघट है, वहां एक विशेषता यह भी है कि बेचारी कन्याओं को छोटी ही अवस्था में व्याह दिया जाता है । इससे वे माता-पिता के घर से तो शिक्षा के लिए हाथ धो ही बैठती हैं, ससुराल में लाज-शर्म बाधक हो जाती है । फिर जब शिक्षा ही नहीं, तब व्यावहारिक ज्ञान और लोक में प्रवृत्ति होना सर्वथा असम्भव है; और मनुष्यता सम्पादन करना तो कोसों दूर रहता है । फिर तो वही पाशविक जीवन व्यतीत करना पड़ता है । इसलिए इन दोषों का निराकरण आवश्यक है।

माणिकबाई (बम्बई)

---

*हम नहीं कह सकते, भविष्य की स्त्री-सम्बन्धी विद्वान् की यह कल्पना कहाँ तक सत्य होगी । सम्भव है, ऐसा ही हो । परन्तु 'देवी' शब्द को उन्होंने जिस रूप में यहाँ प्रयुक्त किया है, हमारा ख़याल है, वह ठीक नहीं । कम-से-कम हम तो जब किसी स्त्री-विशेष अथवा स्त्रियों के लिए 'देवी' शब्द का प्रयोग करते हैं, तब हमारे मन में उस अथवा उन स्त्रियों के प्रति एक प्रकार के उच्च और पवित्र आदर-श्रद्धा का भाव विद्यमान रहता है । हमारे यहाँ प्रचलित देवी की उपासना और पूजा भी क्या इसीका प्रमाण नहीं है ? —सम्पादक

स्त्रियों की कौंसिल

[स्थान—कवि का शयनागार]

स्त्री—मैं स्त्रियों की कौंसिल बनाने जा रही हूँ।

कवि—क्यों ?

स्त्री—पुरुषों ने हमारे सब अधिकार छीन कर हमें घर की दासी बना रक्खा है। हम अपना अधिकार चाहती हैं।

कवि—दासी तो तुम अपने मुँह से बन रही हो। पुरुष की तो तुम स्वामिनी, हृदय-हारिणी और जन्म-सफल-कारिणी हो। आजकल कुछ पढ़ी-लिखी स्त्रियों का दिमाग़ फिर गया है, वे पुरुषों के समान अधिकार चाहती हैं। यद्यपि समाज में उनको पुरुषों से कहीं अधिक अधिकार पहले ही प्राप्त हैं।

स्त्री—जैसे ?

कवि—जैसे, तुम घर-गृहस्थी के साधारण काम करती हो, जिनमें परिश्रम कम करना पड़ता है। रसोई तो तुमको ही बनानी चाहिए। क्योंकि विधाता का विधान यही है। तुम्हारा हाथ लगते ही भोजन अमृत हो जाता है।

स्त्री—तुम्हें विधाता का यह विधान कैसे मालूम हुआ ?

कवि—मैं सब जानता हूँ। जहाँ न पहुँचे रवि; वहाँ पहुँचे कवि। विधाता ने पुरुषों के साथ पहले ही से अन्याय कर रक्खा है। उसने पुरुषों की अपेक्षा तुमको अधिक रूप दिया है। तुम्हारा शरीर मख़मल-सा मुलायम, आँखें ऐसी कटीली कि—

जिहि दिसि दौरत निर्दयी,
तेरे नैन कजाक।
जिहि दिसि फिरत सनेहिया,
किये गरेबाँ चाक॥

तुम्हारे दाढ़ी-नूँछ नहीं। भला बताओ, पुरुषों की तरह तुम्हारे भी दाढ़ी-मूँछ होतीं, तो क्या संसार में इतनी लड़ाइयाँ कभी लड़ी गई होतीं और करोड़ों पुरुषों की हत्या हुई होती ? दाढ़ी-मूँछ से युक्त तुम्हारे मुँह से तो लोग जटा-युक्त नारियल के हुक्के को अधिक पसंद करते।

स्त्री—तुम मेरा अपमान करते हो !

कवि—अपमान की तो कोई बात मैं नहीं करता मैं विधाता का पक्षपात बतलाता हूँ। तुम्हारे रूप ज्वाला में अब तक पृथ्वी के करोड़ों पुरुष तो पतंगे की जल मरे होंगे। विधाता ने तुमको इतना रूप क्यों दि

स्त्री—इसमें मेरा क्या दोष ?

कवि—मैं तुम्हारा दोष कब कहता हूँ, मैं तो वि के पक्षपात की चर्चा करता हूँ। तुम्हारा रूप-रंग दे पुरुषों ने भी तुम्हारे साथ रियायत की है। भला, पुरुष तुम्हें पेड़ पर चढ़ कर लकड़ी तोड़ने, घास क हल जोतने, ठेला चलाने, झूठ बोलकर धन कमाने कड़ी धूप में सड़क कूटने का काम सौंप कर अपने घर के भीतर, छाया में, सुख से बैठकर बर्तन माँजने, देने, रसोई बनाने और चक्की पीसने का काम ले ले बताओ आज तुम्हारी क्या दशा होती, ऊँची एड़ी के पहन कर ऊँट की तरह मचकती फिरतीं और चश्मा कर बाइसिकिल की तरह आँखें बनाये घूमतीं ?

स्त्री (क्रोध से)—तुम मेरी दिल्लगी उड़ाते हो एक भी पुरुष को कौंसिल में नहीं रहने दूँगी।

कवि—कौंसिल में तुम्हीं सब रहो, मैं इसकी पर्वा करता; पर, पुरुषों के एहसान न भूल जाना।

स्त्री—एहसान कैसे ?

कवि—तुम्हारे जिस रूप ने पुरुष से पुरुष का ग वाया, उसी रूप की वृद्धि के लिए पुरुष अनंत सा में डूब कर, प्राणों का मोह छोड़ कर, मोती निका जिससे तुम्हारे गले का हार बनता है। पृथ्वी का व फाड़ कर पुरुष सोना, चाँदी, हीरा और जवाहिर नि है। करोड़ों जीवों की हत्या करके रेशमी साड़ी तैयार है, जिसे पहनकर तुम तितली की तरह उड़ती फिर लाखों पुरुष-सुनार तुम्हारे लिए गहने गढ़ते और आँखें फोड़ते तथा कमर तोड़ते हैं।

स्त्री—यह तो पुरुषों की मूर्खता है।

कवि—पुरुषों की मूर्खता नहीं है तुम्हारी है। वि ने तुमको ऐसा रूप दिया है कि बड़े-बड़े विश्व सम्राट् तुम्हारे रूप के सामने नतमस्तक हो जाते हैं।

ुम ऐसी मूर्खा हो कि अपनेको कुरूपा समझती हो रूपवती बनने के लिए गहने पहना करती हो !

ी—मैंने कब वहा कि मुझे गहने बनवा दो ?

वि—क्यों झूठ बोलती हो ? मैं जभी भोजन करने ई, तभी तुम प्रति दिन किसी-न-किसी गहने के लिए विनय, क्रोध, धमकी, रूठने, आँसू गिराने आदि का किया करती हो ।

ी—अच्छा, यह एहसान मैं तुम्हारा मानती हूँ ।

वि—और सुनो । सैकड़ों कवियों ने तुम्हारे लिए गान दिया है । बिहारी ने जन्मभर तुम्हारी ही रा की । तुमने ज़रा-सा मुस्करा दिया, बिहारी ने लिख लिया । तुमने ज़रा-सी भौं मटका दी, बिहारी भी लिख लिया । तुम चलते-चलते कहीं रुक गईं, में कंकड़ी धँस जाने से तुमने नाक सिकोड़ ली, ने उसे भी नोट कर लिया । देव ने वृद्धावस्था तक खुशामदें की । मतिराम की मति-गति सब तुममें हो गई । पद्माकर ने तो तुम्हारा साथ तब छोड़ा, न्हें कोढ़ हो गया । यह तो सब मरे हुए कवियों का है, आजकल तो हज़ारों जीवित कवि तुम्हारी खुशा- भगवान् तक को भूल गये हैं । भला, इतने एहसानों हुए, तुमको पुरुषों के सामने नम्रता से सिर ना चाहिए न कि उद्दण्डता और अकृतज्ञता-पूर्वक की वृद्धि चाहना चाहिए ?

ी (हँसकर)—तुमने खूब याद दिलाई । कवियों से ख़ास चिढ़ है । कवि बड़े झूठे और लबार होते हैं ।

वि—जैसे ?

ी—जैसे, उस दिन एक स्थानीय दैनिक पत्र में ये छपीं—

आज बिसमिल का हौसला देखा ।
जाके मक़तल में सर कटा आया ॥

इसे पढ़कर बहुत दुःखी हुई । मैं समझ न सकी अपराध से वह मक़तल (वधागार) में पहुँचे, ी मेरी मित्राणी है । मैं उसे सान्त्वना देने के के घर पहुँची । वह बेचारी सुख से लेटी हुई उप- रही थी । मैंने समझा, इसे ख़बर नहीं कि इसका पति मक़तल में पहुँच गया है । मैंने शोक प्रकट करते हुए दैनिकपत्र का वह अंश उसे दिखलाया । वह खिल-खिलाकर हँस पड़ी और कहने लगी—'बहन, मेरे पति कवि हैं । कवि तो सदा ही झूठ बोला करते हैं ।' मैं बहुत ही अप्रतिभ हुई और अपमान न सहन करके सीधी उसके पति के पास पहुँची, जो म्युनिसिपैलिटी के दफ़्तर में नौकर हैं । वह हज़रत दफ़्तर में बैठे जलपान कर रहे थे । मैंने झुँझला कर कहा—'जनाब' आप तो यहाँ बैठे जलेबियाँ उड़ा रहे हैं, वहाँ अख़बार में छप गया कि आप क़त्ल हो गये !' उन्होंने हँसकर कहा कि यह तो रोज़ का हाल है । मैं और झुँझलाई और सीधी घर चली आई । तबसे मैं कवियों को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखने लगी हूँ ।

कवि—यह तो तुम्हारी समझ का दोष है ।

स्त्री—क्यों नहीं ! झूठ बोलो तुम; लबारी करो तुम; व्यभिचार फैलाओ तुम; कुटनापन करो तुम; युवक-युवतियों को बिगाड़ो तुम; और समझ का दोष हो हमारा ! !

कवि—मैंने क्या व्यभिचार फैलाया ?

स्त्री—सुनो ! तुम्हींने तो लिखा है—

"यहि पाखे पतिव्रत ताखे धरौ ।
+ + +
बावरी जो पै कलंक लग्यो
तो निसंक ह्वै क्यों नहिं अंक लगावति ?"

क्या यह अभिचार को प्रोत्साहन देना नहीं है ? और सुनो—

यदपि हमारो कंत रहत हमेश घर
तदपि तिहारो दुख आनि मोहिं घेरो री ।
प्यारी 'पद्माकर' परोसिन हमारी तुम
याही तें भयो है छीन मोतन घनेरो री ॥
ह्वै है कैसी हाय अब ओर यह भौन लाग्यो
होन लाग्यो भौन भौन भौंरन को फेरो री ॥
सिसिर को अंत आयो प्रगट बसंत आयो,
अंत आयो मेरो पै न आयो कंत तेरो री ॥

क्या तुम पसन्द करते हो कि तुम्हारी स्त्री भी इसी तरह अपनी पड़ोसिन के कंत से अनुराग रक्खे ? फिर तुम ऐसी बातों का प्रचार क्यों करते हो ?

कवि (सकुचाकर)—हाँ, वह अपराध मैं स्वीकार करता हूँ।

स्त्री—यही एक ? सैकड़ों अपराध हैं। सुनते जाओ, तुम कैसे छली हो !

केलि के मंदिर बैठी हुतीं
दुइ प्रेमभरी तहँ प्रीतम आयो।
दोउन सों करिकै मधुरी
बतियाँ अपने ढिग में बिठरायो ॥
"भानु" सुगंध सुँघायबे के मिस
एक के नैन कपूर लगायो।
मींजन जौलौं लगी तबलौं
हँसि दूजी को आपने अंक लगायो ॥

हाय, हाय ! ऐसा छल ! पुरुष के हृदय में सच्चा प्रेम क्या नाम-मात्र को भी नहीं है ?

(कवि नीचे की ओर मुँह लटकाये हुए, चुप !)

स्त्री—और सुनो। नन्हीं-नन्हीं बालिकाओं के साथ भी बलात्कार करने में तुम्हें लज्जा नहीं आती—

खेलन चोर मिहींचनी आजु
गई हुती पाछिले द्योस की नाईं।
आली कहा कहौं एक भई
"मतिराम" नई यह बात तहाँईं ॥
एकहि भौन दुरे इक संगही
अंग सों अंग छुवायो कन्हाई।
कम्प छुट्यो तन स्वेद बढ़्यो
तनु रोम उट्यो अँखियाँ भरि आईं ॥

अपराध तो तुम करते हो, नाम लगा देते हो कन्हाई के ! एक छोटी-सी अविवाहिता कन्या आँख-मिचौनी खेलने गई थी, उसके साथ इस तरह के व्यवहार का अनुमोदन क्या सभ्य-समाज में कभी किया जा सकता है ?

कवि—तुम अनुमोदन की बात करती हो, ऐसे ही कबित्तों के पीछे तो मेरी जीविका चलती है। राज-दरबार से बढ़कर सभ्य-समाज और कहाँ मिलेगा ? ऐसे कबित्त पर तो चारों ओर से वहाँ पुरस्कार की वर्षा होने लगती है। यह साड़ी जो तुम पहने हो, इस सवैया के कहने पर मिली थी—

जात हुती निज गोकुल को
हरि आयो तहाँ लखि कै मग सूना।
तासों कह्यो अकुलाकर यों
अरे सांवरे बावरे तैं हमें छूना ॥
आज धौं कैसी भई सजनी
उत वा बिधि बोल कह्योई कहूँना।
आनि लगायो हिये सों हियो
भरि आयो गरो कहि आयो कछू ना ॥

स्त्री (साड़ी उतार फेंक कर और दूसरी पहन कर)—राम, राम ! यह पाप की कमाई मैं छू भी नहीं सकती। इस तरह भी कोई किसी के धर्म पर डाके डालता है और तुम इसका समर्थन करते हो ? मुझे मत छुओ !

कवि—छुओ, चाहे मत छुओ। पर, एहसानों को याद रखना।

स्त्री—और कौन से एहसानात ?

कवि—देखो, हमने, अर्थात् पुरुषों ने, स्त्रियों के कितने सुन्दर रक्खे हैं ! जैसे, मालती, कुमुदिनी, हेमन ललिता, कामिनी, सुन्दरी, सरला, माधवी, सोहिनी, तारा, किशोरी, प्रभा, इत्यादि। सभी नाम उच्चारण में सुनने में मधुर, और समझने में सुखद हैं।

स्त्री (भौंह मटका कर)—और पुरुषों के नाम !

कवि—धृष्टद्युम्न, इक्ष्वाकु, युधिष्ठिर, धृतराष्ट्र, मार्क क्षपणक, मल्लिनाथ, खड्गमल्ल, क्षोणीन्द्र, हरिश्चन्द्र। नाम ऐसा नहीं, जिसमें दो-चार जगह मुँह न टेढ़ा पड़ता हो। उच्चारण में विषम, सुनने में कटु, और सन में भी भयानक। देखो, पुरुषों ने तुमको कोप और रण पर अधिक अधिकार दे रक्खा है कि नहीं ?

स्त्री—अच्छा, यह मैं मानती हूँ।

कवि—अब गुणों को लो। तुममें कोमलता तुम्हारी वाणी में मिठास है। एक शब्द बोल देती हो, कान में कोई अमृत घोल देता है। तुम्हारे हृदय में प्रेम दिन-भर की मिहनत से चूर थके-माँदे घर आते हैं तुम एक बार प्रेम से देखकर मुस्करा देती हो; बस, से ही सारी थकावट दूर हो जाती है। तुममें

ता है, भोलापन है, लज्जा है, वशीकरण है, और ती कला है।

—और पुरुषों में ?

वि—पुरुषों में युद्ध, विवाद, क्रूरता, अभिमान, छल, चोरी आदि।

—तुम शायद विधाता को कोसते होगे कि नाहक हुए ?

वि—अवश्य। यदि पुरुषों के वश की बात हो तो कितने ही सम्पादक, लेखक और समालोचक किसी सेठ की सेठानी बनने को साग्रह तैयार हैं। कितने और बैरिस्टर किसी माल-गोदाम के बाबू की स्त्री को सहर्ष प्रस्तुत हैं। कितने ही कवि, गायक और किसी ज़मींदार के घर की पुरखिन बनने को हाथ ड़े हैं।

—तुम भी ?

वि—सबसे पहले।

—ख़ैर; मैं तुम्हारी बातों के जाल में नहीं पड़ना। यह तो तुम स्वीकार करते ही हो कि पुरुष बड़े, लड़ाकू, क्रूर और कपटी होते हैं। अतएव, मैं हूँ, इनके हाथ में शासन-सूत्र नहीं रहना चाहिए। स्वभाव-वश वे कभी शान्ति से नहीं रह सकते।

वि—और—

नारि स्वभाव सत्य कवि कहहीं।
अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥
साहस अनृत चपलता माया।
भय अविवेक अशौच अदाया॥

ही प्रमाणित करने के लिए तुम शासन-सूत्र थ में लेना चाहती हो ?

—पुरुष हमेशा स्त्रियों की निंदा किया करते हैं। भी तो पुरुष ही थे।

वि—अच्छी बात है। तुम कौंसिल बनाओ। अपनी और अविवेक के मारे तुम सालभर में एक बात निर्णय न कर सकोगी।

—देख लेना।

(२)

[स्थान—कौन्सिल-चेम्बर]

ज्ञान-गर्विता (सभानेत्री)—बहनो ! आज परम-सौभाग्य का दिवस है कि हमारा वर्षों का आन्दोलन सफल हुआ। मेम्बरी के लिए जितनी बहनें खड़ी हुई थीं, उनमें दो को छोड़कर शेष सब चुन ली गई हैं; यह हमारे आन्दोलन की सफलता और जनता की रुचि का प्रबल प्रमाण है। जो दो पुरुष आये हैं उनका मैं हृदय से स्वागत करती हूँ। उनके द्वारा पुरुषों के मनोभावों का पता हमको लगता रहेगा और हम अपने निर्दिष्ट पथ पर सावधानी से चल सकेंगी। बहनो ! हमको अबला बताकर पुरुषों ने हमें धोखे में डाल रक्खा था। अब हमें दिखला देना चाहिए कि हम अबला नहीं, प्रबला हैं। अभिमानी और कलहप्रिय पुरुष-जाति से देश का शासन-सूत्र छीनकर हमने अपने हाथ में लिया है। अब हमें देश में प्रेम और दया का संचार करना चाहिए। बड़ी (केन्द्रिय) सरकार से हमें अपने प्रांत के लिए एक वर्ष का समय मिला है। एक वर्ष में हमने शासन की योग्यता प्रमाणित कर दी तो हमें चिरस्थायी अधिकार मिल जायगा। इतना ही नहीं, अन्य प्रान्तों में भी स्त्री-शासन का श्रीगणेश किया जायगा। इस भाषण के साथ मैं आज कौंसिल का कार्यारम्भ करती हूँ।

श्रीमती आलस्य-नन्दिनी—मेरा पहला प्रस्ताव यह है कि सब सरकारी नौकरियाँ केवल स्त्रियों को ही दी जायँ।

श्रीमती सुख-में-पली—मैं इसका विरोध करती हूँ। पहरेदारी, साईसी तथा मेहतर का काम पुरुष से ही लिया जाना चाहिए।

श्रीमती आलस्य-नन्दिनी—यही क्यों ? धूप में करने के जितने काम हों, सब पुरुषों से लिए जायँ।

श्रीमती मिर्ज़ापुरी लोटिया—ज़रूर; पुरुष कुछ काम न करेंगे, तो उन्हें निकम्मा बनाने का अपराध हमारी सरकार को लगेगा।

श्रीमती निद्रादेवी—पुरुषों ने स्त्रियों से मनु के समय से आज तक इतना काम लिया है कि अब स्त्रियों को आराम करने की छुट्टी मिलनी चाहिए।

सभानेत्री—यह विवादास्पद विषय तीन सदस्यों की एक

कमिटी के सुपुर्द किया जाता है। कमिटी की रिपोर्ट आने पर इसपर विचार होगा। कमेटी की सदस्यायें श्रीमती सुख-में-पली, श्रीमती मेळा-घुमती और श्रीमती आलस्य-नन्दिनी होंगी।

दूसरा प्रस्ताव

श्रीमती बातूनी—हिन्दी के पुराने ढर्रे के कवि समाज में दुराचार का प्रचार करते हैं; स्त्री-जाति के गोपनीय विषयों का वर्णन खुल्लम-खुल्ला सभाओं में करते हैं; अविवाहिता कन्याओं के साथ व्यभिचार को प्रोत्साहन देते हैं; समाज में विलासिता का प्रचार करके आलस्य, बेकारी, कायरता, और शारीरिक निर्बलता की वृद्धि करते हैं। मेरा प्रस्ताव यह है कि ऐसे कवियों के लिए अलग एक कवि-नगर बसाया जाय, जहाँ वे अकेले रहें।

श्रीमती क्षणप्रभा—अकेले से आपका क्या अभिप्राय है?

श्रीमती बातूनी—अकेले से मेरा मतलब यह है कि कवि-नगर में कवियों के सिवा और कोई न रहने पावे।

श्रीमती विद्युल्लता—स्त्रियाँ रहें या नहीं?

श्रीमती बातूनी—जिन स्त्रियों को कवियों ने इतना बदनाम किया है, जिनके अश्लील से अश्लील कृत्यों को—चरित्रहीनता को—लिख-लिखकर, छपा-छपाकर उन्होंने घर-घर फैलाया है, उनके साथ रहने के लिए कौन-सी कुनारी तैयार है? यह मैं जानना चाहती हूँ।

श्रीमती कलह-प्रिया—मैं 'कुनारी' शब्द पर आपत्ति करती हूँ। मान लीजिए कि कोई 'सुनारी' अपने कवि-पति को सुधारने के लिए कवि-नगर में रहे तो उसे 'कुनारी' क्यों कहना चाहिए? श्रीमती बातूनी यह शब्द वापस लें।

श्रीमती बातूनी—मैं शब्द वापस लेने को तैयार नहीं हूँ। कवियों के साथ किसी 'सुनारी' को रहना ही नहीं चाहिए। जो रहेगी वह अवश्य 'कुनारी' कही जायगी।

श्रीमती ज्वालामुखी—इस कु, सु के झगड़े को जाने दीजिए। मैं इस प्रस्ताव में यह संशोधन पेश करती हूँ कि कवि-नगर में रहनेवाले कवियों को एक-एक भैंस दे दी जाय। कवि लोग अपनी-अपनी भैंसें चरायेंगे, इससे उनको हमारी शिकायतें लिखने का मौक़ा कम मिलेगा। भैंस का दूध पियेंगे, इससे उनकी प्रतिभा भी शिथिल पड़ जायगी और सबसे बड़ा लाभ तो यह है कि भैंस का रंग-रूप दे कर उनमें कविता करने की इच्छा ही उत्पन्न न होगी।

श्रीमती कलह-प्रिया—ज्वालामुखी ने मेरे सांवले और स्थूल शरीर को लक्ष्य करके भैंस शब्द कहा है। इस मुँहझौंसी को इसका मज़ा चखाऊँगी।

श्रीमती ज्वालामुखी—राँड़, पूतखई, कुलटा, तुझे कब भैंस कहा?

श्रीमती कलह-प्रिया—देखो, मेरी चोटी पकड़ खींच रही है!

श्रीमती ज्वालामुखी—इसने मेरे मुँह में एक त मारा!

श्रीमती कलह-प्रिया—इसने मुझे ढकेल दिया!

श्रीमती ज्वालामुखी—इसने मेरी साड़ी फाड़ डा

श्रीमती कलह-प्रिया—इसने दाँत से मेरी अंगुली च

श्रीमती बिड़ालाक्षी—मुझे डर लगता है, मैं भाग

श्रीमती निद्रादेवी—कैसा अच्छा स्वप्न देख रही इन दोनों चुड़ैलों ने सब गड़बड़ कर दिया।

श्रीमती मिर्ज़ापुरी लोटिया—दोनों खूब गुत्थम हो रही हैं। लड़ने दो। चली हैं हुकूमत करने। पुरु चौथाई भी सहनशीलता स्त्रियों में नहीं है। भला, किसी ने सुना है कि कौंसिल में पुरुषों ने कभी ऐसी पाई की थी?

श्रीमती मदालसा—सभानेत्री महोदया! आज बैठक स्थगित कीजिए।

सभानेत्री—बड़े खेद की बात है कि हम लोग बात का विचार नहीं कर सकतीं। मैं कौंसिल अधिवेशन तीन महीने के लिए स्थगित करती हूँ।

(३)

दूसरी बैठक

[स्थान—कौंसिल-चेम्बर]

सभानेत्री—कोरम पूरा न होने से कौंसिल का अधिवेशन स्थगित किया जाता है।

रानी—सदस्याओं के आये हुए पत्रों के खुलासे सुनाती हूँ।

नेत्री—हाँ!

नन्दिनी—बरसात में घर छोड़ने को जी नहीं ता, इससे मैं नहीं आ सकती।

—पहले अधिवेशन में जो अप्रिय काण्ड हुआ इससे कौंसिल से मेरी अरुचि हो गई है।

—मैं कलह-प्रिया के साथ एक सभा में नहीं सकती।

—सावन में हिंडोले की बहार छोड़कर कौंसिल ौन आवे!

—बरसात-भर मैं अपने पिता के घर रहती हूँ।

—मैं कवियों के विरुद्ध प्रान्त-भर में घूम-घूम कर न्दोलन करने जा रही हूँ।

—बरसात में तीर्थों में बड़े-बड़े मेले लगते हैं, में स्त्रियाँ बहुत जाती हैं। मैं मेलों में घूम-घूम कर जाति की वर्तमान दशा का अध्ययन करूँगी। से कौंसिल के इस अधिवेशन में नहीं आ सकती।"

नेत्री—बस करो; मैंने देख लिया कि स्त्रियाँ केवल कर सकती हैं, काम नहीं कर सकतीं।

(४)

तीसरी बैठक

[स्थान—कौंसिल-चेम्बर]

भानेत्री—मुझे बड़ा हर्ष है कि आज कौंसिल की सदस्यायें उपस्थित हैं।

मती विनोदिनी—दो सदस्य भी हैं।

भानेत्री—मैं देख रही हूँ। पर मैं चाहती हूँ कि ये स्यायें होतीं।

क सदस्य—हम लोग पुरुषों के प्रतिनिधि-स्वरूप रह ।

भानेत्री—अब कौंसिल की कार्यवाही प्रारम्भ की । प्रांत के शासक का पत्र मैं कौंसिल के सम्मुख करके आशा करती हूँ कि इसपर पूरा ध्यान दिया । पत्र में उल्लिखित विषय का सारांश यह है कि सीमा-प्रांत पर युद्ध छिड़ गया है। वहां के लिए सैनिक चाहिएँ। अतएव कौंसिल सैनिकों की एक अच्छी संख्या भेजने के लिए प्रचुर धन की माँग स्वीकार करे। देश की रक्षा के लिए जल्दी-से जल्दी कार्यवाही होनी चाहिए।

श्रीमती बातूनी—प्रश्न यह है कि सैनिक स्त्री हों या पुरुष?

श्रीमती नरान्तिका—सेना स्त्रियों की भेजी जाय।

श्रीमती बातूनी—युद्ध की कोई आवश्यकता नहीं। युद्ध करना पशुता है। यह पुरुषों का काम है। स्त्रियों का एक डेपुटेशन सीमा-प्रान्त पर आक्रमण करने वाले शत्रुओं की स्त्रियों के पास भेजा जाय कि वे अपने पतियों को युद्ध करने से रोकें।

एक सदस्य—मैं यह बता देना अपना कर्त्तव्य समझता हूँ कि सीमा-प्रान्त के लोग ऐसे उद्दत हैं कि डेपुटेशन का डेपुटेशन हज़म कर लेंगे और उनकी स्त्रियों को ख़बर भी न लगेगी।

श्रीमती डरपोकनी—मैं तो डेपुटेशन में नहीं जाऊँगी।

सभानेत्री—क्या इसी साहस पर हमने पुरुषों से अधिकार लिया है?

श्रीमती मिर्ज़ापुरी लोटिया—मेरी राय है कि स्त्रियों की एक बड़ी सेना भेजी जाय।

श्रीमती निद्रादेवी—और सेनापती आपको बनाया जाय?

श्रीमती मिर्ज़ापुरी लोटिया—मैं सभापत्नी महोदया का ध्यान निद्रादेवी के अश्लील व्यंग्य की ओर आकर्षित करती हूँ।

सभानेत्री—आप तो स्वयं उसी प्रकार का अपराध कर रही हैं, जिसका प्रतिवाद कर रही हैं।

श्रीमती बातूनी—स्त्रियों की ही सेना भेजी जाय, इसी में स्त्री-जाति का गौरव है। पर वे युद्ध कैसे करेंगी?

दूसरा सदस्य—कटाक्षों से।

सब सदस्यायें (एक स्वर से)—इन दोनों पुरुषों को कौंसिल से निकाल दो। ये स्त्री-जाति का अपमान करते हैं

दोनों (रास्ते में)—अच्छा हुआ कि हम लोग स्वयं

उठकर चले आये, नहीं तो स्त्रियों की हस्त-संचालन क्रिया से हमारी दुर्गती हो जाती।

(५)

[स्थान—कवि का शयनागार]

कवि—कहो, कौंसिल में क्या हुआ ?

स्त्री—एक वर्ष में तीन अधिवेशन हुए। सचमुच एक भी बात का निर्णय हम लोग न कर सकीं। अन्त में प्रान्त के शासक ने सीमा के युद्ध में लड़ने के लिए धन और जनता की सहायता माँगी। लगातार एक महीने तक बैठकें करके भी हम यह निर्णय न कर सकीं कि सेना पुरुषों की जाय या स्त्रियों की। अन्त में बड़ी सरकार ने स्त्रियों की कौंसिल तोड़ देने का हुक्म भेज दिया।

कवि—चलो, छुट्टी हुई !

स्त्री—सचमुच हम लोगों ने नाहक एक झगड़ा सिर पर उठा लिया था।

कवि—मेरी प्यारी हृदयेश्वरी, तुम घर पर ही रहो। कौंसिल में जाकर तुम शुद्ध प्रेम के बदले मिथ्या सहानुभूति प्रकट करना सीखोगी; सत्य के स्थान पर वाक्बल सीखोगी; हृदय की निर्मलता के बदले मनोहर बाह्याडम्बर का ज्ञान प्राप्त करोगी; सेवा-भाव के स्थान में स्पर्द्धा और निन्दा की प्रवृत्ति जाग उठेगी; तुम्हारे नेत्रों में जो माधुर्य है, उसका स्थान धूर्त्तता ले लेगी। मेरी प्रियतमे ! मेरे हृदय की मणि ! तुम मेरी स्वर्ग ऐसी गृहस्थी को नरक न बनाओ। तुम देश की सेवा करना चाहती हो, तो देश को बलिष्ठ, तेजस्वी और शिक्षित संतान प्रदान करो।

स्त्री—और कवियों ने जो हमारी दुर्गति की है, उस सम्बन्ध में तुम्हारी क्या राय है ?

कवि—इस विषय में मैं तुम्हारे पक्ष में हूँ। पर अन्तर इतना है कि उन्होंने द्वेष-वश नहीं किया; मोह और लोभ-वश किया है। इसका दंड वे पा गये कि देश रसातल को चला गया; उनके आश्रयदाता पराधीन और पद-दलित हो गये। अब उनको कोई नहीं पूछता।

रामनरेश त्रिपाठी

स्फुट प्रसंग

महिलाओं का मान

उस दिन एक विद्वान् मित्र से स्त्री-समस्या पर हुईं। बातों के बीच, प्रसंगोपात्त, मित्र बोले—"मैं तो बात को ही नहीं मानता कि पुरुष स्त्रियों पर अत्याचार हैं।" अन्य बातों में हमारा मतैक्य होते हुए भी, मुस्कराकर उनकी इस बात को अस्वीकार किया। सचमुच पुरुष हृदय पर हाथ रखकर, सचाई से, ऐसा सकते हैं ? व्यतिगत रूप से सचमुच कई पुरुष बहुत हैं, यह कोई नहीं कह सकता कि सभी पुरुष स्त्रियों अत्याचार करते हैं, हमारे विद्वान् मित्र भी जरूर ऐसे ही होंगे; परन्तु समष्टिरूप से आज ऐसा कैसे कहा सकता है ? यह भी मैं मान सकता हूँ कि पुरुषों की ज़्यादती, या 'अत्याचार', जान-बूझकर और सोच-समझ (Considered) न होता होगा; परन्तु प्रतिरोध अभाव से ही उनमें यह बात क्यों न आई हो, शुरुआ स्त्रियों के चुपचाप बर्दाश्त कर लेने ही का यह परि स्वरूप क्यों न हो, फिर भी स्त्रियों की समुन्नति और धता में तो यह बाधक ही न हो रहा है ?

× × ×

लायलपुर से एक हृदय-विदारक समाचार आया एक पुरुष ने अपनी स्त्री को इसलिए मार डाला कि बाप बड़ा आदमी होते हुए भी उसकी अधिकाधिक की प्यास को शान्त नहीं करता था और उसने उसे बड़ी नौकरी नहीं दिलवा दी ! उसे तो दौरा जज ने दण्ड दिया ही है, पर पुरुष-भाई ज़रा विचारें कि पुरुष ऐसा कृत्य क्या उनके अपने लिए शोभाजनक है ? है, यह कहा जाय कि यह तो अपवाद-स्वरूप है। निस्स मैं भी इस बात को मानता हूँ; परन्तु, इतनी अधि नहीं तो भी सामान्य व्यवहार में भी आज क्या स्त्रियों के ऊपर इस तरह की थोड़ी-बहुत ज़्यादतियाँ कर रहा है ? कम-से-कम दो-चार उदाहरण तो अधिकांश लोगों के प्रत्यक्ष अनुभव की बात है। कि

बात है यह ! क्या हम पुरुष इसपर गम्भीरता करेंगे ? यह ध्यान रखने की बात है, सच्चा किसी पर ज्यादती करने में नहीं, अपने बस-भर मदद करने में है।

या' !

मैं कार्यवश बम्बई गई थी। वहाँ से अहमदाबाद आई। बाद से हिम्मतनगर जानेवाली सबेरे की गाड़ी के डिब्बे में बैठी। मेरे साथ २।। वर्ष की मेरी छोटी थी। डिब्बे में अन्य स्त्रियाँ भी बैठी हुई थीं, पर के स्टेशन पर वे सब उतर गईं। देहगाँव से गाड़ी होने के बाद राखियाल का स्टेशन आया। राखियाल से गाड़ी आगे चली। जब वह कुछ तेज़ हुई तो, गाड़ी में, रेल्वे का एक आदमी टिकट-कलक्टरों पहने हुए आया और मेरे सामने की बेंचपर या। उसने मुझसे टिकट माँगा, वह मैंने बता दिया। बाद उसने मेरी छोटी बच्ची के हाथ में तीन आने और मुझसे पूछने लगा×××यह कह कर उसने एक निकाल कर मेरे पैरों पर रक्खा। इससे मैं उसकी समझ गई। मैंने उससे कहा कि डिब्बे में से उतर , नहीं तो गार्ड को बुलाती हूँ। तब उसने मेरे मुँह लगाया। मैंने कहा कि तू मेरे भाई के समान है, के लिए तू मुझे मत सता। फिर भी उसने कहा कि साथ 'माया' करना चाहता हूँ ! इतने में स्टेशन आया देख, रुपया वापस लेकर, चलती गाड़ी में जुड़े हुए गार्ड के डिब्बे में चला गया। प्रान्तिज पर एक टिकट-कलक्टर ने मेरा टिकट देखने को । मेरे पास कुछ सामान था, उसकी रसीद के साथ मैंने उसको देखने को दिया। इसके बाद उसने का टिकट माँगा, पर बच्ची २।। वर्ष की होने के मैंने उसका टिकट नहीं लिया था। इसपर टिकट-र ने टिकट और सामान की रसीद को अपनी जेब किया। मैंने कहा कि अगर चार्ज़ लगे तो नगर के स्टेशन पर दे दूँगी पर मेरा टिकट मुझे दे सोनासन के एक मनुष्य ने बीच में पड़कर टिकट दिलाया। इसके बाद मैं दूसरे डिब्बे में चली गई। हिम्मतनगर के स्टेशन पर मेरी माँ मुझे लेने आई, उससे यह बात कहते हुए मैं काँपती-काँपती रो पड़ी। तदुपरान्त हिम्मतनगर के स्टेशनमास्टर से सब बातें कहीं; मुझे सतानेवाला मनुष्य गाड़ी के डिब्बे में छिपा बैठा था, उसे आता देखकर मैंने उसे पहचाना, वह गार्ड था।"

यह आपबीती है ईडर राज्य के हिम्मतनगर गाँव में रहने वाली चम्पा नामक लगभग २७ वर्षीय एक विधवा बहन की, और यह कृत्य हुआ अहमदाबाद प्रान्तिज रेल्वे की चलती गाड़ी में। कितनी करुण और त्वेषोत्पादक यह 'राम-कहानी' है ! एक ओर जहाँ हमारी भारतीय बहनों की बेबसी पर तरस आता है, वहाँ दूसरी ओर रक्षक का ही भक्षक बन जाना क्या डूब मरने की बात नहीं ? गार्ड तो यात्रियों के संरक्षक ही होते हैं न ? ज़नाना डिब्बा उनकी निगरानी ही की दृष्टि से न गार्ड के डिब्बे के क़रीब रहता है, न कि इस प्रकार अकेली-दुकेली स्त्रियों पर अपनी 'माया' चलाने के लिए उनके साथ यह रिआयत की जाती है ? छिः ! क्या रेल्वेवालों के लिए यह शोभाजनक है ?

+ + +

रेल्वे में ऐसी घटनायें यदा-कदा होती रहती हैं। टूण्डला के नीरो और रोहेलो का पाप-कृत्य आज भी स्मृति-पटल से विलुप्त नहीं हुआ है। और भी कई घटनायें याद आ रही हैं। प्रश्न यह है, इनका निस्तार कैसे हो ? जितनी भी ऐसी घटनायें सुनीं, प्रायः पुरुष ही कामान्ध हुए हैं। अतः पुरुष का कामीपन, उसकी विषयान्धता, उसकी लोलुपता, इसका प्रधान कारण है। अगर पुरुष अपने सिर से इस कलंक को मिटा डालें, संयम अख़्त्यार करें, तो ठीक; नहीं स्त्रियाँ स्वयं उठ खड़ी हों, अपनेको और अपनी सुसशक्ति को पहचानें, और दृढ़-मना होकर इसके विरुद्ध जहाद घोषित करदें। देखें, फिर किसकी मजाल, जो उनपर कुदृष्टि भी डाले—कामी में तो साहस ही कहाँ !

औरतों का सौदा !

इस बीसवीं सदी में भला कोई यक़ीन करेगा ? परन्तु, आह ! सचाई को आख़िर छिपाया भी कबतक जा सकता है ? अन्त में रहस्योद्घाटन हुआ ही !

युक्तप्रान्त, मध्यप्रांत, सिन्ध, बंगाल, नैपाल और पंजाब में आज, न-जाने कबसे, धड़ाधड़ औरतों का सौदा हो रहा है । युक्तप्रान्त में स्त्रियों की तादाद ज्यादा है, और नैपाल में स्त्रियाँ सुन्दर बहुत होती हैं; इसलिए इन प्रान्तों से स्त्रियाँ, कुटनियों और कुटनों के द्वारा, उड़ाई जाती हैं और फिर 'क़ालीनों' के नाम पर दिन-दहाड़े उनकी ख़रीद-फ़रोख़्त और आयात-निर्यात का काम होता है । कहा जाता है कि हम क़ालीन का व्यापार करते हैं, और तार में लाल, आसमानी और काला लिखा जाता है; पर असल में वह स्त्रियों का व्यापार होता है, और लाल से खूबसूरत का, आसमानी से असुन्दर का तथा काले से सगाई-शुदा का मतलब होता है ! युक्तप्रान्त की पुलिस ने बड़ी खोज के बाद इस रहस्य का पता लगाया है और अभी उसकी जाँच और जारी है । अमृतसर व मिर्ज़ापुर के बड़े अड्डों का पता लग चुका है, पता नहीं, और भी न-जाने कितने अड्डों का पता लगेगा ।

कितनी शर्मनाक बात है ! प्रश्न यह है, ऐसा सम्भव क्यों है ?

प्रगति-पथ पर

स्त्रियों का प्रश्न दिन-दिन अपना विशेष महत्व ग्रहण कर रहा है । विदेशों में स्त्री-स्वातन्त्र्य की आज गूँज ही नहीं रही, बल्कि उसका उपयोग भी हो रहा है । अमेरिका के राष्ट्रपति का चुनाव अभी होकर चुका है। उसमें स्त्रियों ने जिस ज़ोरों से भाग लिया, वह अपूर्व है । आख़िर उन्होंने हूवर को राष्ट्रपति के पद पर आसीन करा ही दिया । उधर ब्रिटेन में एक महिला मज़दूर दल की उपप्रधान चुनी गई हैं, जो सम्मान किसी स्त्री के लिए सर्वप्रथम है । इधर हमारे एशिया में अफ़ग़ानिस्थान तो प्रगति-पथ पर दौड़ ही रहा है, चीन में भी एक महिला बड़े ऊँचे पद पर चुनी गई हैं । और भारत ?

भारत की स्त्रियाँ भी प्रयत्नशील तो दिखाई पड़ती हैं। आजकल हमारे देश में उनके सम्बन्ध में चहुँमुखी ध्वनि सुनाई पड़ती है। सहवास-वय-समिति ज़ोरों से अपना काम कर रही है । गवाहियों से प्रकट होता है कि सहवास की वय में वृद्धि प्रायः सभी चाहते हैं, और १४ से १६ की उम्र इसके लिए निश्चित करने की ज्यादातर सिफ़ा रिशें हैं । 'हारटोग-कमिटी' शिक्षा-सम्बन्धी जाँच कर है, इसमें भी स्त्रियों की शिक्षा-समस्या पर थोड़ा- प्रकाश पड़ता रहता है । देश की हल-चलों में भी वे दान कर रही हैं । श्रीमती सरोजिनी नायडू देश के मि पर ही विदेश गई हैं । कानपुर में मुसलमानों की एक षद् हाल में हुई थी । उसके सदस्य पूर्ण स्वाधीनता प्रस्ताव पास करते हिचकते थे । एकाएक स्त्रियों ने आ उठाई, अगर तुम ऐसा नहीं करते तो हम पर्दा छोड़ मंच पर आती हैं और प्रस्ताव पास करती हैं । आ प्रस्ताव पास हो गया । उधर लाहौर में अध्यापक मुह शफ़ी भाटी ने 'पर्दे का भविष्य और इस्लाम की शिक्षा' भाषण करते हुए कहा है कि पर्दा आज़ एक राष्ट्रीय हो रहा है । अगर नेहरू रिपोर्ट को व्यावहारिक रूप है, तो, उसके शिक्षा-सम्बन्धी प्रस्ताव की पूर्ति के लिए के प्रश्न का हल होना भी ज़रूरी है । उन्होंने कुरा उद्धरण देकर यह भी सिद्ध किया कि कुरान में पर्दे जैसा आदेश है वैसा आज नहीं हो रहा है—उसमें को अपने कुछ अंगों को ढके रखने का आदेश है, अपने शरीर को ढकने का नहीं । मानवता और भलाई के लिहाज़ से इसका हल होना आवश्यक है । नागपुर में नर्सरी स्कूल खुला है, जिसमें एक रुपया प्रति-सप्ताह पर किसी भी स्त्री के बच्चों की दिनभर रखवाली और सम्हाल की जाती है । स्त्रियों में स्काउटिंग की भी वृद्धि रही है, एक स्त्री ख़ासतौर पर वहाँ से इसकी शिक्षा के इंग्लैण्ड गई है । हैदराबाद में भी स्काउटिंग की वृद्धि हो है । उच्च शिक्षा में भी स्त्रियाँ खूब बढ़ रही हैं । रंगून विद्यालय में १९२७–२८ में एफ़॰ ए॰ की परीक्षा में युवतियाँ बैठीं थीं उनमें से ५५ प्रति सैकड़ा पास हुईं जबकि युवक सिर्फ़ ३४ प्रति सैकड़ा पास हुए । बी॰ ए॰ ८० प्रति सैकड़ा पास हुईं, जबकि युवक सिर्फ़ ४५ सै पास हुए । अन्य क्षेत्रों में भी वे इसी प्रकार क़दम-ब-क़दम मु

अरे सिपाही !

सिपाही ! साहस-प्याला
झोंके से न छलक जावे ।
उत्तम की भव्य-भावना
पानी हो न ढलक जावे ।
पथ के काँटों को तुम
देख न सहसा अकुलाना ।
फूल, सुरभित कर हृत्तल,
! आगे बढ़ते जाना ।
ज्योति न घटने पावे,
ध्येय-सूत्र ना टूट पड़े ।
हिचकना, यदि तेरे—
जीवन की जग में लूट पड़े ।

x × ×

ती में खेल, सभी को, अच्छी तरह परख जाना ।
भूमि के लिए सिपाही ! फिर कुछ करके रख जाना ।

'लहरी'

विवेक-सूत्र

) वक्ता हो, वाचाल नहीं ।
) श्रद्धालु हो, अन्धविश्वासी नहीं ।
) सुथरे हो, शौक़ीन नहीं ।
) विनीत हो, दब्बू नहीं ।
) रसिक हो, विलास-प्रिय नहीं ।
) परीक्षक हो, छिद्रान्वेषी नहीं ।
) आत्माभिमानी हो, अभिमानी नहीं ।
) विनोदी हो, मुँहफट नहीं ।
) लहरी हो, अव्यवस्थित नहीं ।
) आदर्शवादी हो, अक्रियात्मक नहीं ।

हीरालाल शास्त्री

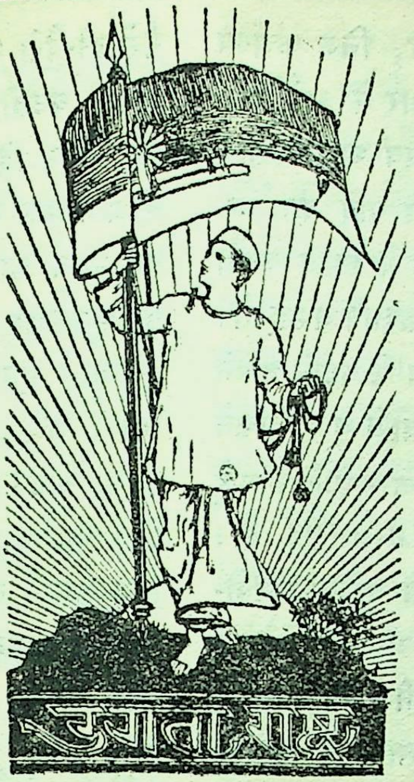

कर्त्तव्य-विचार

जिस कर्म का करना नैतिक, सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से परमावश्यक हो, उसे कर्त्तव्य कहते हैं। मनुष्य अपने जीवन में समय-समय पर कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य दोनों ही प्रकार के कर्म करता रहता है। किसीके जीवन में कर्त्तव्य कर्मों की अधिकता और किसीके जीवन में अकर्त्तव्य कर्मों की बहुलता पाई जाती है। कर्त्तव्य कर्म करते हुए अकर्त्तव्य कर्मों से बचते रहना ही बुद्धिमत्ता एवं महत्ता का लक्षण है। जो मनुष्य जितना ही अधिक कर्त्तव्य-परायण होगा, वह उतना ही अधिक परिश्रमी, उत्साही, सत्य-प्रेमी एवं जगन्नियन्ता जगदीश्वर की किसी विशेष विभूति से अलंकृत होगा। कर्त्तव्य-परायण व्यक्ति के लिए सांसारिक आपदायें तृणवत् तथा विघ्न-बाधायें तूल-खण्ड-तुल्य हैं। कर्त्तव्यशील व्यक्ति जिस कार्य को अपना कर्त्तव्य समझकर अंगीकार कर लेता है, उसे पूर्ण-रूपेण सम्पादित करने के लिए वह अपना तन, मन, धन एवं सम्पूर्ण शक्ति लगा देने को तत्पर हो जाता है। संसार के अनेकानेक दुस्साध्य एवं असंभव प्रतीत होने वाले कार्य भी कर्त्तव्य-परायण पुरुष-पुङ्गवों द्वारा सहज-साध्य एवं संभव प्रमाणित किये जा चुके हैं। इतिहास इस बात का साक्षी है कि आज-तक संसार में सर्व-श्रेष्ठ माने जाने वाले जितने नर-रत्न हो गये हैं, उन सबकी दिगन्तव्यापिनी कीर्त्ति-पताका उनके कर्त्तव्य-दण्ड के ही सहारे लहराती है।

जो महापुरुष भिन्नातिभिन्न अवस्थाओं में अव-

तरित हो, नाना प्रकार के कष्ट सहकर, निज कर्त्तव्य पालन करते रहे हैं, वे ही आज संसार में सर्वशिरोमणि, परमादरणीय, उपास्यदेवोपम एवं अनुकरणीय माने जाते हैं। संसार के महापुरुषों ने यदि कर्त्तव्य-पालन की महत्ता न समझी होती, तो वे आज जनता की दृष्टि में इतने अधिक सम्माननीय कदापि न ठहरते।

जिन व्यक्तियों ने कर्त्तव्य-पालन के बहाने अपने कपट-पूर्ण व्यवहार द्वारा संसार की आँखों में धूल झोंकने का प्रयत्न किया है उनकी "उघरहिं अन्त न होहिं निबाहू कालनेमि जिमि रावण राहू" वाली दशा हुई है।

स्वार्थवश कर्त्तव्यच्युत हो जाने से यूरोप के नेपोलियन बोनापार्ट, बिस्मार्क आदि तथा भारत के कौरव, जयचन्द्र आदि महापुरुष भी आदरणीय न हो सके। वस्तुस्थिति एवं लोक-रुचि की भिन्नता के कारण चाहे कोई किसी कर्त्तव्यहीन व्यक्ति को भी महापुरुष समझने लगे, किन्तु सर्व-साधारण की दृष्टि में वह समादरणीय नहीं हो सकता। मुग़ल सम्राट् अकबर की गणना संसार के महापुरुषों में करना भी एक विचारणीय प्रश्न है। इतिहास के पर्यवेक्षण से ऐसे अनेकानेक महापुरुष-नामधारी किन्तु वास्तव में कपटाचारी, लोक-हित-घाती, स्वार्थी पुरुष जगतीतल के समस्त देशों में पाये जाते हैं।

जिस देश में जितने ही अधिक कर्त्तव्य-परायण नर-रत्न उत्पन्न होते हैं, उसकी उतनी ही अधिक उन्नति होती है। प्राचीन भारत की अपार उन्नति का कारण भी बहुत-कुछ उसके तत्कालीन सुपुत्रों की कर्त्तव्यशीलता ही थी। इस देश का तत्कालीन वातावरण, सामाजिक परिथिति, नैतिक अवस्था और धर्म-संस्कृति इस प्रकार की थीं कि जिनके कारण यहाँ के स्त्री-पुरुषों को कर्त्तव्य-परायण होने में बड़ी सहायता मिलती रहती थी। किन्तु जैसे-जैसे भारत का विदेशियों के साथ अधिकाधिक सम्पर्क होता गया,
वैसे-ही-वैसे यहाँ पर कर्त्तव्य-परायण स्त्री-पुरुषों
संख्या घटती गई तथा कर्त्तव्य-ज्ञान-शून्य स्त्री-पुरु
की संख्या दिन-दुगुनी रात-चौगुनी होती गई। भा
के क्रम-क्रम से वर्तमान हीनावस्था को पहुँच
का मुख्य कारण अधिकांश में उसके पुत्रों की कर्त
पराङ्मुखता के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं
सकता। हमारी तो यही दृढ़ धारणा है कि
आज भी भारतवासी निज कर्त्तव्य-पालन
लिए कटिबद्ध हो जायँ, तो, केवल भौतिक
(Material welfare) को ही सर्वश्रेष्ठ एवं
प्रिय मानने वाले नई सभ्यता के अनन्य उ
पाश्चात्य संस्कृति में पले हुए पुरुषों से परिपूर्ण
काल में भी, उनकी सत्कीर्ति प्राचीन काल की अ
अधिक फैल सकती है। ऐसा करने से एक बार
वे अपनी विजय-वैजयन्ती को फहराते हुए
भारत में ही नहीं किन्तु समस्त भूमण्डल में
डंका बजा सकते हैं। ईश्वरीय विधान और म
कांक्षा से प्रेरित कर्त्तव्य-परायणता के सम्मुख
की समस्त शक्तियाँ पराभव स्वीकार करने को
हो जाती हैं।

देखिए, कर्त्तव्य-पराङ्मुख अर्जुन को महा
योगी श्रीकृष्णचन्द्र ने केवल कर्त्तव्य-परायण
का ही आदेश किया था। यदि भारतवासी—
कर यहाँका श्रीकृष्णोपासक हिन्दू-समाज—
कर्त्तव्य-पराङ्मुखता को त्याग भगवान् श्रीकृ
उपदेशानुसार कर्त्तव्य-परायण हो जायँ, तो
भविष्य में ही वे पूर्ववत् विद्या, कला, वीरता,
के साथ ही साथ वाणिज्य, व्यवसाय और
निक विज्ञान-सदृश प्रकृति का रहस्योद्घाटन करने
विषयों में भी प्रवीणता प्राप्त करके संसार की
अपनेको श्रेष्ठ तथा आदरणीय ठहरा सकते हैं।

एम० जी० काम

गी हरि गोविन्द गोविल

(अमेरिका के भारतीय प्रकाशक)

[शेषांश]

उत्साह और विश्वास दो उत्तम गुण हैं;
युवावस्था की तेजस्विता का सहयोग
ही अजीब-अजीब काम कर सकते हैं। श्री
विल में ये सद्गुण अच्छी मात्रा में हैं; इन्हीं-
पर उन्होंने वर्तमान जटिल यंत्र-युग की भयं-
कठिनाइयों और बर्बर स्पर्द्धापूर्ण औद्योगिक
की मुठभेड़ में से अपने लिए रास्ता निकाल
।

सरी बार मैं उनसे कुछ महीनों बाद मिला।
ने उनसे उनके अभ्यास-क्रम की प्रगति के
में पूछा, तो उत्तर देते हुए उन्होंने मुझे
में डाल दिया। उन्होंने कहा, 'इलेक्ट्रिक
नियर बनने के अपने निश्चय को मैं बदल चुका
र शीघ्र ही कालेज छोड़ने वाला हूँ।' स्वभावतः
सका कारण जानने की इच्छा हुई। मुझे
बतलाते हुए उन्होंने कहा—

“सब बात तो यह है कि मेरे अमेरिका-निवास
दृष्टिकोण को—किसी कारण भी क्यों न हो—
बदल दिया है। भारत में रहते हुए तो, कई
लोगों की भांति, मेरी महत्वाकांक्षा भी विश्व-
की कुछ उपाधियाँ प्राप्त करना-भर थी।
इंजीनियरिंग का विषय चुन लिया, इसकी कोई
वजह नहीं थी—हाँ, इतना जरूर था, उस
ही मुझे ज्यादा पसन्द हुआ था। मैंने इस
तो कभी सावधानता-पूर्वक सोचा ही नहीं
में ऊँची शिक्षा प्राप्त कर एक विशेषज्ञ की हैसियत से भारत लौटूँगा तब मैं किस तरह अपने आपको अपनी योजना के उपयुक्त बना सकूँगा; क्योंकि भारत में तो ऐसी योग्यता के भारतीयों की माँग परिमित ही है। लेकिन अमेरिका आने के बाद तो मैंने इस बात पर खूब गहरा विचार किया है और मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि किसी उपयोगी उद्योग या कला का व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त करना अधिक समीचीन और आर्थिक दृष्टि से मेरे लिए अधिक लाभकारक होगा।

“पिछले कुछ महीनों से मैं एक फैक्टरी में उसके चित्रकार के सहायक की जगह काम कर रहा हूँ। हाल ही मैंने एक संगठन के काम के सम्बन्ध में प्रकाशन-कार्य आरम्भ किया है और मुझे उसमें रस आने लगा है। लोगों से मिलना, सम्मेलनों की योजना करना, और विभिन्न समाचारपत्रों के सम्पादकीय कार्यालयों में जाकर वहाँ के लोगों से परिचय बढ़ाने की ओर मेरी सहज रुचि है। भारत में, अपनी विद्यार्थी-अवस्था के दिनों में, “आश्रम” नामक पत्र का प्रबन्ध मेरे ज़िम्मे था। हम विद्यार्थी-लेखकों में थोड़े काग़ज़ बांट दिया करते, जिनपर वे साफ़-सुन्दर अक्षरों में अपने लेख लिख दिया करते थे। कुछ दूसरे सहयोगी चित्र और तरह-तरह के ख़ाके (डिज़ाइन) तैयार कर देते थे। इस तरह जब सारा संग्रह पूरा हो जाता, हम उसे इस ढंग से सजा देते कि वह एक छोटा किन्तु बड़ा आकर्षक मासिक बन जाता। हमारे मासिक के कुछ लेखों को बड़े सुप्रसिद्ध मासिकपत्रों में स्थान मिलते देख हमें सहज ही अपने आप पर अधिक गर्व होता था। उन दिनों विद्यार्थी-वर्ग की हलचलों में मेरा जितना भाग था, उससे मुझे अधिक सुख मिलता था। शाम के वक़्त साहित्यिक बैठकों और मैजिक-लैंटर्न के व्याख्यानों की योजना करनी मुझे बहुत प्रिय थी।

एक नया उन्नतिशील भविष्य

"अब मैं कॉलेज छोड़ने का निश्चय कर चुका हूँ, क्योंकि मैं देखता हूँ कि इन्जिीयनिरिंग की अपेक्षा साहित्य और कला-विषयक बातों के प्रति मेरा प्रेम अधिक सच्चा और स्थायी है। प्रकाशन-सम्बन्धी बातों में मुझे अब बहुत अधिक रस आने लगा है और इस समय मैं एक मुद्रक के कार्यालय में काम कर रहा हूँ। अब तक मैंने अक्षर जोड़ना और पृष्ठों की आकर्षक छपाई करना सीखा है। मुझे विश्वास है कि इस ओर मेरी प्रगति दिन-दिन अधिक ही होती जायगी।"

जब मैंने अपने कई भारतीय मित्रों के जीवन पर एक दृष्टि डाली तो मुझे पता चला कि श्री गोविल का यह निर्णय सामयिक एवं समुचित है। उदाहरण के लिए श्री 'अ' को हा लीजिए—वह शिल्प-शास्त्र में स्नातक हुए और आखिर आयात-निर्यात के व्यापार में फँस गये। श्री 'ब' जो ऊँची आकांक्षाओं और विशेष योग्यता के साथ भारत लौट गये थे, हमेशा इसी बात पर पछताते रहे कि उन्हें सारी जिन्दगी एक ऐसी जगह पर काम करना पड़ा, जिसका वस्तुतः उनकी विशेष योग्यता से कोई सीधा सम्बन्ध न था। मैं ऐसे कई विद्यार्थियों के नाम ले सकता हूँ, जिन्होंने साहित्य और अन्य ऊँचे विशिष्ट धन्धों में कुछ उपाधियाँ प्राप्त की थीं, लेकिन बाद में उन्हें हर-तरह के व्यापारिक गोरख-धन्धों में भटक जाना पड़ा। इनमें कुछ सफल हुए और शेष बुरी तरह असफल। कई उदाहरणों में यह बात सिद्ध हो चुकी है कि विद्यार्थी कालेज की उपाधियाँ प्राप्त करने के लिए हाथ धोकर पीछे पड़ गये थे; न तो उन्होंने यही सोचा कि अपने निर्णीत धन्धे में उनकी अपनी विशेष योग्यता कितनी है, और न इसी बात पर ध्यान दिया कि ऐसे धन्धों का भारत की विशि
औद्योगिक एवं व्यापारिक समस्याओं से क्या सम्बन
है। एक चतुर कारीगर या व्यापारी बनना उ
पसन्द नहीं था। उन्होंने इस बात की कभी कल्प
भी नहीं कि अमेरिकनों अथवा यूरोपियनों की का
पद्धति और दक्षता का अध्ययन करके हम अ
देश में भी इस तरह के काम के सम्बन्ध में
नई विशेषता अथवा नूतन प्रगतिशील भावना
जन्म दे सकते हैं। उन्होंने तो कल्पना-संसार
अपने आपको फ़ौलादी पुलों, रेल की सड़कों
बड़ी-बड़ी इमारतों का निर्माता अथवा बड़े-बड़े उद्यो
धन्धों एवं योजनाओं का अधिकारी समझना
अधिक पसंद किया। वस्तुस्थिति तो यह है कि
संयुक्तराज्य में बहुत थोड़े ऐसे रासायनिक, शि
आदि विश्वविद्यालयों के स्नातक हैं, जिन्हें
निर्णीत धन्धों में सफलता मिलती हो। डाक्टर
दन्तवैद्य बहुधा सफल या अच्छे रहते हैं, क्योंकि
व्यापार में पड़ जाते हैं; लेकिन अब तो इनकी सं
भी प्रायः बहुत अधिक होती जा रही है।
में शिक्षा-प्राप्त व्यक्तियों की संख्या उनकी
की माँग से कहीं अधिक है।"

कॉलेज की उपाधियाँ भारत की आवश्यकता नहीं

यह तो स्पष्ट है कि इस युवा के लिए कालेज
उपाधियों का महत्व कुछ नहीं-सा था। अब श्री गो
छपाई और प्रकाशन का काम सीखने में दत्तचित
गये थे, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि इस का
उनकी शक्ति और योग्यता का पूरा-पूरा वि
सकेगा। उनका यह भी विश्वास था कि वह सं
राज्य की अद्वितीय मुद्रण-कला की आकर्षकता

—फिर वह थोड़ा ही क्यों न हो—भारत में ही कर सकेंगे।

श्री हरि गोविल एक सर्वोत्तम मुद्रणालय में काम लगे। उन्होंने अक्षर जोड़ने का काम सीखा, आधुनिक मुद्रण-कला के विविध विभागों का निकट से अध्ययन करके उनका सच्चा ज्ञान र लिया। लेकिन केवल उम्मेदवारी करते रहने रा वह अपनी जीविका के लिए काफी द्रव्यो- नहीं कर सकते थे।

तः, कुछ विशेष आय की दृष्टि से, उन्होंने के वक्त गलियों के कोनों पर भारत-सम्बन्धी न देने तथा पुस्तिका-रूप में स्वदेश-सम्बन्धी बेचने का निश्चय किया। दूसरे भारतीय के साथ श्री हरि भी एक छोटे-मोटे वक्ता बन स, सब मिल कर गांधीजी के असहयोग- लन पर—जो उस समय का एक महत्त्व-पूर्ण मनोरंजक विषय था—कोलम्बस-चक्र और के अन्य सार्वजनिक स्थानों में भाषण करने ई लोग इन विलक्षण नौजवानों की बात के लिए इकट्ठे होने लगे। इन खुली सभाओं गोविल की कई लोगों से मैत्री हो गई। इन ने उन्हें स्थानीय कुछ नौजवान कलाकारों के सम्मुख भाषण करने के लिए बुलाया और संघों तथा सांस्कृतिक संस्थाओं से उनका परि- रा दिया।

जीवन में उन्नति

मेरिका के एक सर्वप्रथम चित्रकार और सु- कलाकार श्री अलबर्ट स्टर्नर, श्री गोविल के से आकर्षित हुए और आग्रह करके चित्र के लिए उन्हें अपने सामने बैठाया। उन्होंने के पूरे आकार की तस्वीर तैयार की, जिसका प्रदर्शन इन चित्रकार के अन्य कई चित्रों के साथ न्यूयार्क, फ़िलाडेल्फ़िया, वाशिंग्टन आदि नगरों की अग्रगण्य आर्ट-गैलिरियों में किया गया था।

इन संसर्गों के कारण श्री गोविल के कई अमेरिकन मित्र हो गये। इन मित्रों को भारत की आध्यात्मिक प्रज्ञता के सन्देश से विशेष प्रेम-सा था। इनमें से कुछ ने श्री गोविल से एक ऐसा मासिकपत्र प्रकाशित करने का अनुरोध किया, जिसके द्वारा इन आदर्शों का प्रसार हो सके। इन लोगों के सहयोग से कई लाभप्रद योजनायें काम में लाई गईं, जिनसे थोड़ा रुपया इकट्ठा हो सका। यह रुपया श्री गोविल को उचित व्यय के लिए सौंप दिया गया।

कुछ-कुछ अमेरिका के उस महान् बेन्जामिन, फ्रैंकलिन की भांति—जो अमेरिका के एक अग्रगण्य मुद्रक और 'दी सैटर्डे ईवनिंग पोस्ट' नामक महान् अमेरिकन संस्था के संस्थापक थे—श्री हरि गोविल ने भी ३० शिलिंग में एक पुराना प्रेस ख़रीदा; अपने हाथ से उसे सुधारा और रात में कई-कई घण्टों तक उसपर छपाई के प्रयोग करने लगे।

'ओरिएण्ट' का जन्म

इस तरह उन्होंने पहली बार 'ओरिएण्ट' मैगज़ीन प्रकाशित किया। जब स्थानीय समाचारपत्रों और पाठक जनता ने उसका शानदार स्वागत किया, तो श्री गोविल को परम-सन्तोष हुआ। अपने कलामय उठाव, सुन्दर विषय और पृष्ठ-पृष्ठ में एकसी आदर्श-पूर्ण 'टोन' के कारण इस पत्र की सर्वत्र ख़ूब प्रशंसा रही।

पूर्व की सची ज्ञान-दृष्टि को जनता के सामने रखनेवाला अपने ढंग का एकही पत्र होने के कारण 'ओरिएण्टल' मासिक ने अमेरिका के पत्रों की एक आम कमी को दूर कर दिया और भारत तथा पूर्व की विश्वस्त ख़बरों का प्रचार करने वाले एक मासिक

की आवश्यकता की संतोष-जनक पूर्ति की। श्री हरि गोविल दिन-दिन यह महसूस करने लगे कि पूर्व का उच्च जीवन और विचार, खासकर भारत का जीवन और विचारों की उच्चता, पश्चिमी जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण देन हो सकती है। उनकी सदा से यह उत्कट इच्छा रही है कि वह भारत के बहुमूल्य रत्न-कोषों का, उसकी सुन्दरतर कला और वेदान्त के सौंदर्य का, उसके आदर्शों की महानता का और उसके रीति-रिवाजों के अधिकतर गम्भीर ज्ञान का पश्चिमी दुनिया को परिदर्शन करावें। 'ओरिएण्टल मैगज़ीन' ने दुनिया-भर के सुप्रसिद्ध लेखकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया, और हरएक ने उसके प्रयत्नों की प्रशंसा करके उसे प्रोत्साहित किया।

विश्व-प्रशंसा का विजेता

अमेरिका में श्री गोविल के काम का उल्लेख करते हुए श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर कहते हैं—"मुझे यह देखकर बड़ा हर्ष होता है कि आपके सम्मुख भी वही ध्येय और आदर्श हैं, जो मुझे सबसे अधिक प्रिय हैं और जिनके लिए मैं इतना अधिक परिश्रम कर रहा हूँ।" महान् फ्रांसीसी भूतदयावादी श्री रोम्याँ रोलाँ लिखते हैं—"मुझे आप और आपके मासिक के संपर्क में रहते हुए बड़ा सुख होगा, क्योंकि आप ही की भांति मेरे हृदय में भी पूर्व के महान् विचारकों के प्रति गम्भीर श्रद्धा है।"

कुछ सुप्रसिद्ध अमेरिकन महिलाओं ने—जैसे, श्रीमती सीमियन फोर्ड, कुमारी इवेंजलिन जॉन्सन (अब श्रीमती लियॉपोल्ड स्टोकोस्की), श्रीमती विलार्ड स्ट्रेट-इन आदर्शवादी भारतीय के कामों में बड़े प्रेम से भाग लिया और उदारतापूर्वक इनके मासिकपत्र में इसलिए लेख लिखती रहीं कि पत्र अधिक संख्या में छपे और उसका खूब प्रचार हो।

अब तक श्री गोविल सारा काम अकेले करते थे और जनता द्वारा प्राप्त प्रशंसा और प्रोत्साहन ने उनके उत्साह को और अधिक दिया था। कुछ समय पूर्व, जब श्री गोविल भार जा रहे थे, अमेरिका के एक महान् पुरुष, न्यूया शहर की 'कम्यूनिटी चर्च' के 'मिनिस्टर' पाद जान हेनिस होम्स ने, जो श्री गोविल को काम के कारण ही पहचानते थे, उनकी इन शब्दों अभ्यर्थना की थी—"हरि गोविल एक अपरि नवयुवक के रूप में अमेरिका आये थे। अब अनेक मित्रों और एक अद्वितीय सफल व्यवसाय अपने पीछे छोड़कर भारत लौट रहे हैं। वह आये थे, पश्चिम के लिए पूर्व की सौग़ात (देन) लेते आये थे। अब लौटते समय वह अपने पश्चिम का प्रेम लिये जा रहे हैं। और उनके में वह सौग़ात है, जिसे केवल पवित्रात्मा लो एक बड़ी सभ्यता से दूसरी बड़ी सभ्यता तक ले सकते हैं।"

जबसे श्री हरि गोविल फिर अमेरिका आ उनका एकमात्र लक्ष्य यही रहा है कि वह और भारत के सच्चे संदेश को संसार भर में फै

रामलाल बाजपेयी (

र्गीय डॉ०केशवदेव शास्त्री

डॉक्टर केशवदेव शास्त्री, एम. डी. अब नहीं रहे ! एकान्त गाँव में रक यह समाचार पाकर मेरा कलेजा धक् ह गया । तीसरे पहर तो मैंने उनके स्वास्थ्य-चार जानने के लिए तार दिया था । रात को से जवाब मिला—'तीसरे पहर ही उनका देहान्त चुका था ।' मुझे दुःख है कि अब मैं उनकी उदार कृति न देख पाऊँगा । ओः !

उस अदृश्य हाथ के स्पर्श
और मौन वाणी की ध्वनि
तेरी स्मृति कैसे भूलेगी ?

युवक-आन्दोलन के लिए तो वह शक्ति की एक ार थे ।

भारत-युवक-संघ के अध्यक्ष की हैसियत से होंने भारत के युवकों की अनन्य भाव से सेवा ी थी । संघ के देश-व्यापी केन्द्रों से सम्बद्ध हज़ारों युवक आत्मायें उनकी मृत्यु पर दुःख के ँसू बहायेंगी । अब उनका घर सूना है; उनकी भा-शालिनी पत्नी और पत्नी की बहन के दय सूने हैं; उनके भाई, बहन, सम्बन्धी और मित्रों े हृदय भी अपनी-अपनी हृदयनिधि खोकर सूने हैं । स समाज की उन्होंने एक पीढ़ी तक सेवा की, ह समाज भी सूना है । जिस युवक-संघ को उन्होंने ने प्रेम और त्याग द्वारा सींचा, वह युवक-संघ ी सूना है ।

दो वर्ष से कुछ कम हुए, मैं पहली बार उनसे ार में मिला था । शीघ्र ही मैं उनसे अपने मित्र हृदय भाई की तरह प्रेम करने लगा । प्रेम र सम्मान के वह सर्वथा योग्य थे । उनका मधुर भाव, उनकी सादगी, उनकी विद्वत्ता और दूरदर्शितापूर्ण शिक्षा, उनका प्रेमल स्वभाव, ईश्वर में उनकी श्रद्धा और उनका सेवा-भाव, आदि कई गुण उनमें ऐसे थे, जिनके कारण वह नवयुवकों के प्यारे नेता बन सके थे ।

एक महीने से कुछ ऊपर हुआ, अन्तिम बार मैं उनसे मिला था । वह बीमार थे । उनका शरीर निर्बल हो चुका था, लेकिन उन्होंने कभी अपने कष्टों की शिकायत न की, उन्होंने सब-कुछ चुपचाप वीरतापूर्वक सह लिया । हिमाचल के अंचल में अवस्थित राजपुर के स्वनिर्मित, सुन्दर, प्यारे शक्ति-आश्रम से जब मैं बिदा हुआ, उन्होंने थोड़े प्रेम-भरे शब्दों में मुझसे बातचीत की । बातचीत क्या थी, मानों उनके आत्मसौन्दर्य की जगमगाती चमक थी ।

जब इन प्यारे डॉक्टर की मृत्यु का संवाद घर-घर पहुचेगा, कइयों के हृदय शोक-विकल हो उठेंगे । उनका भौतिक शरीर हमसे छिन गया है; ईश्वर करे, जीवन और मरण, हरहालत में सदा हमारे निकट रहने वाले उस विश्वात्मन् और उसकी विभूतियों में हम उन्हें फिरसे पा जायँ ।

उनके साथ बिताये सुखद दिनों की स्मृति बार-बार मुझे उनका स्मरण कराती है; उनकी दुःखद मृत्यु का विचार मुझे सताता है । हा, इन विचारों का प्रबल वेग ! अस्तु ।

इस समय मैं उस अटल देव के चरणों में प्रणाम करता हूँ और चुपचाप अपने हृदय के कान से इस पवित्र गान का सन्देश सुन रहा हूँ—

Unspeakable is our sorrow !
But Thou O,Lord ! art the Ever-Good.

हमारी वेदना अकथनीय है ! किन्तु, ऐ भगवन् ! तुम नित्य कल्याणस्वरूप हो ! !

टी. एल. वास्वानी

युवकों के विचार

महात्माजी और उनके आक्षेपक

आजकल समाचारपत्रों में महात्मा गाँधी के विषय में बड़ा आन्दोलन मचा हुआ है। ऐरे-गैरे पंचकल्यानी भी नाना प्रकार के कलुषित विशेषणों से उन्हें भूषित कर रहे हैं। 'भारत' के किसी अंक में मैंने यह भी पढ़ा था—"बम्बई में एक सभा हुई थी, उसमें महात्मा गाँधी के लिए बहुत घृणा के प्रस्ताव हुए थे। यहीं तक नहीं उनके नाम के आगे का 'महात्मा' शब्द भी छीन लेने का एक प्रस्ताव सर्व-सम्मति से पास हुआ था...आदि।" मेरा कहना है कि इन सनातन-धर्म का ढोल पीटने वालों से महात्मा गाँधी 'महात्मा' शब्द मांगने गये थे? और यदि माँगने ही नहीं गये थे, तो उनसे छीन लेने का क्या अभिप्राय? मैंने तो जहाँ तक सुना है, साबरमती के सत्याग्रह-आश्रम में रहने वाले सभी लोगों से महात्माजी ने कह दिया था, 'मुझे कोई महात्मा न कहे' और इसके अनुसार उन्हें 'महात्मा' कोई भी नहीं कहता था और न आज ही कहता है। ऐसे मनुष्य के विषय में ऐसी बातें कहना निन्दास्पद ही नहीं, हास्यास्पद भी है। कम-से-कम उन्हें इतना तो अवश्य सोच लेना चाहिए था कि गाँधी-सा व्यक्ति, जिसके जीवन का प्रधान लक्ष्य सत्य और अहिंसा ही है, कुछ सोचकर ही ऐसा काम कर रहा है। महात्माजी ने स्पष्ट रूप से कहा है—"मैं जानता था कि यह काम चालू लोकमत को पसन्द नहीं पड़ सकता। इसमें चालू लोकमत हिंसा ही देखेगा, किन्तु धर्म लोकमत का विचार नहीं करता। मैंने तो यह सीखा है और अनुभव के द्वारा अपने लिए सिद्ध भी किया है कि वही ठीक है जिसमें मैं धर्म देखता हूँ, मुझे उसी का आचरण करना चाहिए। चाहे भले ही उसमें दूसरा कोई अधर्म देखे...।" अब यहाँ पर यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि यह जानते हुए भी महात्माजी ने ऐसा क्यों किया? मेरी समझ में महात्माजी ने अच्छा ही नहीं प्रत्युत बहुत ही अच्छा किया। यदि महात्माजी ऐसा नहीं करते, तो यह उनका एक घोर पतन होता। एक महान् पुरुष एवं सत्यवादी के लिए अपने विचारों की हत्या करना पाप ही नहीं; घोरातिघोर पाप है। उसे य कभी विचार नहीं करना चाहिए कि साधारण जन इसके पक्ष में रहेगी या विपक्ष में।

कमलधारीसिंह विद्यार्थी,
हिन्दी-विद्यापीठ, प्रयाग

दीवाली

"क्यों रे, तुझे क़र्ज़ चुकाना है कि नहीं?"

"सेठजी, आज दीवाली है, आज छोड़ दीजि दो एक रुपये बचा पाया हूँ, अगले महीने आप सात रुपये चुका दूँगा।"

"चल बेईमान कहीं का! यों रोज़-रोज़ टा जाता है। पाँच महीने तो हो गये, अबतक देने नाम नहीं! ला, इधर रख, दो रुपये ही सही। यह कह कर सेठजी ने रुपयों के लिए हाथ पसारा

× × ×

रामदास एक ग़रीब किसान था। सेठजी फ़सल के पहले दस रुपये उधार लिये थे। इस फ़सल अच्छी न हुई, इसलिए चुका न सका आजकल मज़दूरी में आठ-दस रुपये महीना लेता है, और कुछ अनाज रक्खा है, उसीसे घर काम चलाता है। घर में कमानेवाला वह अकेला और खानेवाले सात हैं।

इस बार दीवाली आती देख उसने बड़ी मेह की थी। फल-स्वरूप किसी तरह दो रुपये पाया था। किन्तु बड़ी आरज़ू-मिन्नत के बाद सेठजी को राज़ी न कर सका। और वे दो रुपये उन्होंने छीन लिये।

रामदास के एक लड़का था। उसका मोहन था। अब वह अपने साथियों को गुड़ रेवड़ी खाते देखता, तो माँ के पास आकर रोत

ाँ दीवाली के दिन गुड़ का हलुआ खिलाने व देकर किसी तरह उसे समझा देती थी। हन ने रामदास से पूछा, "बाबा! आज तो ी है न?" और इतने दिनों की चाह आज ने की आशा में हर्ष से नाचने लगा। बेचारा जी मसोस कर रह गया! उसकी एक ी मजदूरी बाक़ी थी, किन्तु दीवाली के वह भी न मिल सकी। दीवाली की रात भूखों बितानी पड़ी! मोहन की साध मोहन के रही।

× × ×

प-राशि चारों ओर चमचमा रही थीं। किसी-के घर के सामने विद्युच्छटा भी लहरा रही शनी के मारे आँखें चौंधिया जाती थीं। र बैठे आतिशबाज़ी का मज़ा लूट रहे थे। धूम्राच्छादित हो रहा था। यह शहर के ईसों का मुहल्ला था। सारे शहर की दीवाली सी मुहल्ले में आ बसी थी।

ाखों की धड़ाधड़ की झड़ी बँधी हुई थी। बम-(गुब्बारों) के मारे कान सन-सनाने लगते थे। की झोंपड़ी इस मुहल्ले के पास ही थी। ोला छत पर जा गिरा, और घास जल उठी। नवानों के शाहज़ादों ने यह देखा, तो मारे के उछल पड़े।

र श्री-कुमारों की आतिशबाज़ी का यह हाल र श्री-युत कमरे में बैठे दीपावली मना रहे जली के झाड़ से कमरा जगमगा रहा था। पर बोतलें ख़ाली हो रही थीं। कमरे की कीयुत हो रही थी। "मैं जीता, वह मारा" ाशों से बीच-बीच में कमरा गूँज उठता था, एकाएक महफ़िल में खलबली मच गई। "पुलिस !" की आवाज़ से सब सिहर उठे। जिसे राह मिली, वह उधर ही भाग निकला। दोएक रुपयों की थैलियाँ तक उठाना भूल गये। दारोग़ाजी की बन आई। मुँह-मांगे दाम मिले। दोनों जेब सोने की मुहरों से भर दी गईं। घर जाकर उन्होंने भी दीपावली मनाई!

× × ×

मोहन एक चारपाई पर पड़ा कराह रहा है। और तो सब किसी तरह भागकर झोंपड़ी से बाहर निकल आये थे, किन्तु वह भीतर ही छूट गया था। आग के घेरे से रामदास ने उसे बड़ी मुश्किल से निकाला तो सही, किन्तु वह झुलस गया था। जीवन की आशा कम थी।

मोहन ने एकबार पुकारकर कहा, "माँ, पानी"! फिर सदा के लिए आंखें बंद कर लीं। घर में कुहराम मच गया। रामदास को तो काठ मार गया। उसका वह इकलौता पुत्र था।

थोड़ी देर बाद मोहन की चिता भभक उठी और दीपावलीकी ज्योति में उसकी ज्योति मिल गई!

सेठों वाले मुहल्ले में अब भी आतिशबाज़ी छोड़ी जा रही थी, एक बम-गोला आकाश में जाकर फूटा, और फूल बर्षा गया।

लक्ष्मीनिवास बिड़ला

कामना

देश-वेश से देह सर्वदा भूषित होवे।
बीते जब तक आयु न दुर्गण दूषित होवे॥
राम-नाम का सुघर मधुर फल रसना लूटे।
मरते हों तो मरें किन्तु निज धर्म न छूटे॥
सहकर दारुण क्लेश भी,
देश प्रेम की भावना।
बनी रहे हृद्धाम में,
है केवल यह कामना॥

'दिव्य' कवि

साहित्य-संगीत-कला

हृदय की प्यास से

अरी, ओरी, अन्तर की प्यास ?
रह गई प्यासी अब भी, और—
गया यह जीवन-सरवर सूख।
प्रलय की क्रीड़ा-सी अविरोध;
बढ़ी ही जाती तेरी भूख।
तनिक लेने भी दे अब साँस;
मुझे; ऐ मेरी प्यारी प्यास !

भीख की भूखी झोली छीन,
मान सच, कुछ भी पायेगी न।
छान सूने मसान की खाक,
हाथ तेरे कुछ आयेगी न।
लालसा का यह करुण विलास,
हटा दे दूर, दुलारी प्यास !

किसी कोने में छिप, चुपचाप,
लगा दुःख की विस्मृति से लाग।
बढ़ा अब और न विपुल अभाव,
नहीं सुलगा अतृप्ति की आग।
जलेगा अपना ही आ
मान कहना, री पगली प

एक सुख पाने में है, और
लुटाने में सुख एक महान;
किन्तु सब से बढ़ कर सुख एक
सुखों के सूनेपन में जान।
पासही तो है पड़ा हु
मुझे दौड़ा न, हठाली प

जनार्दनप्रसाद झा

समर्पण

ठुकरा दे, यह छलक पड़ेगा
जीवन का लघु प्याला।
यौवन-मदिरा पीकर,
क्यों बनता इतना मतवाला।
जीवन के धागों की चादर,
मैंने यहाँ बिछाई।
तेरे चरणों में अर्पित है,
मेरी कठिन कमाई॥

'पगला'

महादेव !

महादेव ! मैंने तुझे कभी देखा नहीं है । केवल तेरा नाम सुना है । तेरे गुणों का वर्णन सुना है । ता को बरसते देखा है । तेरे प्रेम को गंगा-जल की भाँति सब के लिए बहते हुए देखा है, मैंने घूंट पिये ।

इस पावन गंगा-जल को पीकर लोग चले जाते हैं । भूल जाते हैं । कोई यह नहीं सोचता, जहां ही है वह कितना महान् होगा । वह उस धारा को ही देखते हैं, आगे नहीं ।

मैंने जबसे उसके दो घूंट पिये हैं, मैं तेरी खोज में निकल पड़ा हूँ । तेरे चरणों को छूकर मैं भी की भांति पवित्र, और पतित-पावन हो जाऊँगा ।

लेकिन तुझतक पहुँचने के लिए कितने जंगल, कितने पहाड़ पार करने पड़ेंगे ! फिर भी आशा अभिलाषा के पैर मुझे तेरे चरणों तक पहुँचा देंगे ।

मैं फिर लौटूंगा लेकिन गंगा की धार बन कर ।

हरिकृष्ण त्रिजयवर्गीय 'प्रेमी'

कणिकायें

कोई नाम के लिए जीता है, कोई ऐश्वर्य के लिए और कोई स्त्री के लिए जीता है । नीली-नीली ालाओं पर अकारण घूमने के लिए, मैं अकेला ही जीता हूँ ।

❀ ❀ ❀

ऊँचे से ऊँचे शिखर पर बैठने के लिए, मैं एक हजार जीवन खोने को तैयार हूँ परन्तु शर्त इतनी कि वह शिखर ऊँचे से ऊँचा होना चाहिए ।

❀ ❀ ❀

दुनियाँ में सब से अधिक करुण नाटक तो मानव-हृदय में प्रत्येक क्षण होता रहता है ।

❀ ❀ ❀

जब रात्रि गंभीर होती है, और चमकते हुए तारे उसको अधिक गंभीर बना रहे होते हैं, तब में एक ही कल्पनातीत प्रश्न होता है—यह सब किस लिए ?

❀ ❀ ❀

'विजय'

बोध

(१)

जाड़े के दिन थे। कमलाकान्त का पाठशाला से लौटने का समय हो गया था। सुभद्रा आँगन में बैठी उसी की प्रतीक्षा कर रही थी। इतने में बाहर जूतों की खटपट सुनाई पड़ी। "आ गये" कह वह उठकर खड़ी होगई। ओठों पर स्वागत की हँसी फूट पड़ी।

कमलाकान्त भीतर आया। सुभद्रा ने उसे देखते ही कहा—"और चादर कहाँ छोड़ आये?"

"छोड़ नहीं आया।"

"फिर?"

"दे आया हूँ"

"किसे?'

"एक भिखमंगे को।"

सुभद्रा ने अपनी दोनों भौहें मिलाकर कहा—"चलो, तुम तो हमेशा ऐसा ही करते हो। उस दिन न जाने किस लड़के के लिए घर से बनियान ले गये थे, आज भिखमंगे को ऊनी चादर दे आये। एकाध दिन किसी को अपनी कमीज़ और धोती उतार कर और दे दो तो मुझे बड़ी खुशी हो।''

कमलाकान्त बोला—"मेरे पास और कुछ नहीं था। पैसे भी नहीं थे। इसी से चादर दे आया।"

"चलो अच्छा किया।" कह कर सुभद्रा कुड़बुड़ाती हुई भीतर चली गई।

वह कपड़े उतारने लगा, तब तक सुभद्रा उसके लिए थोड़ा सा जल पान ले आई।

(२)

कमलाकान्त ने प्रथम श्रेणी में एम० ए० पास किया था। सो भी गणित में। यदि चाहता तो सहज ही कहीं प्रोफ़ेसर हो जाता। किन्तु पद के लिए प्रयत्न करना तो दूर रहा, उसने कभी इच्छा भी प्रकट नहीं की। झाँसी की अछूत-पाठशाला में एक अँग्रेज़ी शिक्षक की आवश्यकता थी। उसने वही नौकरी कर ली। जगह वैसे चालीस की थी किन्तु पाठशाला की कमिटी ने उसकी योग्यता का ख़याल करके उसे सत्तर रुपया मासिक देना स्वीकार कर लिया। मित्रों कहा—"तुम भी अजब गधा हो। इससे तो कहीं झोंकते तो अच्छा था। आजकल के जमाने में सत्तर से होगा?" कमलाकान्त कहता भाई, "हममें से बहुतों को सात भी नहीं मिलते।"

उसकी इसी प्रकार की बातों से लोग उसे सनकी करते थे। वह बहुत सीधे मिज़ाज का आदमी था। शक्ल देखकर कोई यह नहीं कह सकता था कि वह ए० पास है। खादी का मोटा कुर्त्ता पहनता था, एक छोर खड़िया मिट्टी की सफेदी से रंजित रहता, गणित पढ़ाते समय वह कभी-कभी अपने कुर्ते से झाड़न का काम ले लेता था। नंगे सिर रहता था। बड़े-बड़े थे। किन्तु उनमें तेल महीनों नहीं पड़ता था। मत यह थी कि वे स्वभाव से कुछ चिकने थे! कोट मना उसने बहुत दिनों से छोड़ दिया था। सर्दी से के लिए एक चादर थी, सो उस दिन रास्ते में न जाने का एक अंधा भिखारी मिल गया। हाथ पसार कर लगा "बाबूजी, एक कपड़ा मिल जाय।" कमलाकान्त उसकी दीन दशा न देखी गई। भिखमंगे को चादर कर दे दी। तब से वह चादर भी उसके पास नहीं रास्ता चलते आठ रुपये की चादर एक भिखमंगे को डाली। अपने पति के इस सनकीपन पर सुभद्रा मन ही नाराज हो लेने के सिवा और कर ही क्या सकती थी। कभी इस तरह के प्रसंग आने पर वह उससे तर्क भी बैठती। किन्तु एम० ए० पास पति से बहस करने में की अपेक्षा हार ही की अधिक सम्भावना है, यह सो चुप हो जाती थी।

(३)

उस दिन सूर्य भगवान् भी सर्दी के मारे सबेरे बादलों का लिहाफ़ ओढ़े बैठे थे। कमलाकान्त भोजन पाठशाला के लिए तैयार हुआ। सुभद्रा चौके के भीतर चिल्लाई—

कुछ अपनी भी फ़िक्र है, या सब कुछ ग़रीबों को ही देने का निश्चय किया है। ऐसी तो सर्दी पड़ रही है आप सिर्फ एक कुरती पहन कर पाठशाला जा रहे हैं। पर मेरा शाल पड़ा है, मेहरबानी करके उसे गले में डाल लीजिए।" फिर उसने दासी को पुकार कर कहा…"अरी चली गई। इन्हें वह शाल नहीं मिलेगा। उठा दे।"

दासी ने शाल लाकर दे दिया। कमलाकान्त उसे लेकर पाठशाला पहुँचा। यद्यपि ठंड उसे लग रही थी। पर अपनी सहन शीलता को परीक्षा की कड़ी से कड़ी कसौटी पर कसने की उसे कुछ झक-सी थी।

वर्ग में छोटे-छोटे बालकों को कुर्तों के भीतर सिमटा देखकर उसने शाल एक ओर फेंक दिया।

एक लड़के ने कहा "मास्टर साहब आज तो बड़ी सर्दी है।"

दूसरा बोला "बाहर घाम में चलिए साहब।"

तीसरे ने कहा "आज घाम कहाँ निकला है?"

जिसने यह बात कही थी सर्दी से उसके दाँत बज रहे थे। कमलाकान्त ने उसे अपना शाल देकर कहा "घाम निकला है यहीं बैठो। लो यह कपड़ा ओढ़ लो।"

लड़के ने संकोच किया। कमलाकान्त ने शाल उसके ऊपर डालकर कहा "सर्दी से मरेगा क्या?"

शाल लम्बा था। आस-पास जो लड़के बैठे थे उन्होंने उसे पैरों पर डाल लिया। कमलाकान्त पढ़ाने लगा।

थोड़ी देर बाद जिस लड़के ने घाम में निकलने की कही थी वह बोला—"मास्टर साहब, सर्दी लग रही है।"

कमलाकान्त कुर्सी से उठकर उसके पास गया और उसके मस्तक पर हाथ फेर कर पूछने लगा—"क्यों?"

लड़का काँपते-काँपते बोला—

"जाने क्यों!"

कमलाकान्त ने उसके बदन पर हाथ रक्खा। "ओफ़!" और उसने हाथ हटा लिया। लड़के का शरीर तवे की तरह गरम था। उसे ज्वर चढ़ा था। कमलाकान्त ने पाठशाला के एक नौकर से ताँगा मँगवाया और लड़के को सावधानी से शाल में लपेट कर उसके घर भिजवा दिया।

संध्या को वह घर लौटा। उसके कंधे पर शाल न देखकर सुभद्रा की क्षण भर पहले की मुस्कराहट रोष में बदल गई! उसने कहा "शाल कहाँ डाल आये?"

कमलाकान्त बोला—"डाला कहीं नहीं। वर्ग में एक लड़के को ज्वर चढ़ आया था। वही ओढ़ कर अपने घर गया है।"

सुभद्रा ने नाराज़ होकर कहा "तुम्हें क्या हो गया है। साठ रुपये का पश्मीने का शाल, न जाने किस भंगी के लड़के को दे आये।

"दे नहीं आया। कल आ जायगा।"

"हाँ! हाँ खूब आ जायगा!" कहकर सुभद्रा चुप हो गई।

कमलाकान्त ने कहा—"ऐसी ठंडी हवा चल रही है, तिस पर भी उसे ज्वर था। शाल दे न देता तो और क्या करता।"

"चलिए, रहने दीजिए। कोरी-चमारों के लड़कों को ऐसी ठंड नहीं लगती।" कहकर सुभद्रा उसके सामने से चली गई।

उसे शाल का बड़ा पछतावा होने लगा। उसके पिता उसे काश्मीर से लाये थे। एक तो पिता की दी हुई वस्तु दूसरे कीमती चीज़। सोचने लगी "इन्हें न देती, तो अच्छा था।"

किन्तु शाल के बिना उसे थोड़ा-सा शारीरिक कष्ट भी हुआ। नौकरानी बीमार हो गई थी। इसलिए दूसरे दिन सबेरे घर का सारा काम-काज उसे ही करना पड़ा। कम्बल था। उसे ओढ़ना उसने पसन्द नहीं किया। सर्दी से उसके अंग ठिठुर गये। जब धूप निकली तब कहीं उससे भली प्रकार काम किया गया। कमलाकान्त जब पाठशाला जाने लगा तब उसने कह दिया "मेहरबानी करके मेरे लिए लौटते वक्त एक रैपर लेते आइए।"

पाठशाला में पहुँचकर कमलाकान्त ने लड़के के सम्बन्ध में पूछा। पता चला, उसका ज्वर नहीं उतरा, वह पाठशाला नहीं आयेगा। "तब तो उसे शाल की ज़रूरत पड़ेगी" सोच कर वह पढ़ाने बैठ गया।

संध्या को लौटते समय वह सुभद्रा के लिए बाज़ार से

एक ऊनी चादर ख़रीद लाया। सुभद्रा ने कुछ नहीं कहा। चादर को उलट-पलट कर चार पाई पर रख दिया।

(४)

सात बज गये थे। किन्तु कुहरे के कारण घरों में अब भी कुछ अँधेरा-सा था। सर्दी ऐसी थी कि हाथ रजाई से बाहर नहीं निकाले जाते थे।

दासी अब भी स्वस्थ नहीं हुई थी। अतः आग बनाने के लिए सुभद्रा को स्वयं ही जाना पड़ा। वह अँगीठी के पास बैठी बड़ी देर तक अपने हाथ सेंकती रही। उसकी सर्दी फिर भी न छूटी। अन्त में वह उठी। जाकर घर के किवाड़ खोले। कुछ देर तक सुनसान सड़क की ओर देखती रही। सारा मुहल्ला कुहरे की चादर ओढ़े पड़ा था। फिर उसने इधर-उधर देखने के लिए दरवाज़े के बाहर सिर निकाला। बग़ल में हलवाई की दूकान थी। वह अभी उठता आ रहा था। चिलम पीकर खाँस रहा था। फिर सुभद्रा ने दाहिनी ओर देखा। सहसा चबूतरे पर दीवार के पास एक गठरी-सी पड़ी देख कर वह चौंक पड़ी।

सुभद्रा ने पूछा "कौन है ?"

गठरी कुड़मुड़ाई। तब उसे मालूम हुआ कि वह कोई आदमी है। बदन पर फटी कुर्ती थी और कमर में लँगोटी। सर्दी की वजह से अपने हाथ-पैरों को समेटकर गठरी बना पड़ा था।

सुभद्रा ने फिर पूछा "कौन है ? बोलता क्यों नहीं ?"

गठरी के भीतर से आवाज़ आई, "मैं हूँ, माई जी !" सुभद्रा को ऐसा जान पड़ा मानों वह आवाज़ समाधि के भीतर से आ रही हो।

"तू कौन ?"

"मँगता हूँ, माई जी। ओह, बड़ी सर्दी है ! हाथ पैर टूट रहे हैं।"

सुभद्रा ने पूछा "यहाँ क्यों लेटा है ?"

भिखमंगे ने कहा "रात में उस हलवाई की भटिया के पास पड़ा था, माईजी; किन्तु उसने मारकर भगा दिया।"

भिखमंगे की बात सुनकर सुभद्रा का मन न जाने कैसा हो गया। वह क्षणभर तक वैसी ही खड़ी उसकी ओर देखती रही। कल शाल के अभाव में उसे कैसी मालूम हो रही थी, यह सोचकर मानों वह सर्दी से भी ठिठुर उठी। आज भी वह ऊनी बनियान पहने चादर ओढ़े थी, फिर भी उसके चेहरे का खून मानों जा रहा था।

भिखमंगे ने उसकी ओर देखकर कातर स्वर में "माईजी, कुछ कपड़ा हो तो दे दो। कल से बुख़ार है।"

सुभद्रा ने अपनी आँखें मूंदीं और खोलीं। उससे भिखमंगे का कष्ट नहीं देखा गया, या उसकी पानी से भींग आईं ! अपनी नई चादर भिखमंगे पर कर उसने कहा "लो इसे ओढ़ लो। तब तक धूप आयगी।"

"जय हो माईजी" कहकर भिखमंगे ने भीतर अपने पैर फैलाये। सुभद्रा एक साँस लेकर अंदर चली गई।

कमलाकान्त उस समय शय्या से उठकर अपने का मोटा कम्बल कंधे पर डाल बाहर घूमने तैयारी कर रहा था। सुभद्रा को देखकर कहने लगा गई थीं ?"

"कहीं नहीं।" फिर उसने पति के कंधे पर हाथ कर कहा—"देखो, उस लड़के से वह शाल मत

"क्यों ?"

"तुम कहते थे वह बीमार है।"

कमलाकान्त ने कहा—"हाँ, बीमार ही है।" बोला "और तुम इस तरह, सर्दी क्यों खा रही हो। कहाँ गई ?"

"मुझे सर्दी नहीं लग रही है।" कहकर सुभद्रा बताया कि वह अपनी चादर बाहर चबूतरे पर पड़े एक आदमी को उढ़ा आई है।

"तो उसे दे आईं !"

सुभद्रा अपने विशाल लोचनों से उसको देखती बोली "क्यों ?"

प्रत्युत्तर में कमलाकान्त ने उसका मस्तक चूम लि

उस दिन रविवार था। दो पहर को सात वर्ष के

ने उसके मकान पर आवाज़ लगाई—"मास्टर !" कमलाकान्त बाहर निकल आया। लड़का उसका आया था। कहने लगा, "मास्टर साहब, अपना जिए, बापू बड़े नाराज़ होते थे कि इसे क्यों ले "

कमलाकान्त ने लड़के की ओर देखकर पूछा "तुम्हारा ज्वर उतर गया ?"

"हाँ !"

कमलाकान्त ने कहा "देखो, बापू से कह देना, यह शाल मास्टरनी ने मुझे दे दिया है। समझे।"

कृष्णानन्द गुप्त

तीन करुण काव्य

१

संस्कृत कवियों ने काव्य में नव रसों की कल्पना की है, उनमें भी शृंगार, वीर, और करुण थायी तथा उन्नत होने के कारण मुख्य हैं। इन भी कौन रस श्रेष्ठ हो इस विषय में मतभेद हो है। किन्तु मानव-हृदय के विकास से प्रत्येक युग क देश में जितना साहित्य तैयार हुआ है उसमें त्तम कवित्व करुण रस से ही निःसृत हुआ है। इतना महत्व पूर्ण क्यों हैं ? दुःखगाथायें मनुष्य को क्यों इतना स्पर्श कर जाती हैं ? प्रतिकूल कैसे आनन्द दे सकती है ?

२

के आनन्द की सीमा आत्मौपम्य है। जब हम, विकास के कारण, दूसरों के सुख-दुःखों के साथ ते हैं तब हमें यह भास होने लगता है—यह साक्षा-ने लगता है कि सर्वत्र एक ही आत्मा व्यापक है। अहिंसा अर्थात् प्रेम से उत्पन्न होने के कारण करता हुआ भी संकुचित व्यक्तित्व की सीमा कर विकास का निरुपम आनन्द प्रदान करता है। उन्नति का चिन्ह अहिंसा-मय प्रेम है। और इसी-रस मनुष्य को पशु से देवता बनाने में समर्थ है। है कि प्रत्येक ज़माने ने फिर वह चाहे शान्ति-अथवा अशान्त हो करुण रस की ही क़द्र की है। तो केवल एक करुण रस को ही मानते हैं—

को रसः करुण एव निमित्त भेदा
पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान् ।
आवर्तबुद्बुदतरंगमयान्विकारा—
नम्भो यथा सलिलमेव हि तत्समस्तम् ॥

उत्तररामचरित्, तृ० अं० ४७

३

महर्षि वाल्मीकि का करुणार्द्र हृदय एक 'अकारणाविष्कृत वैरदारुण' बहेलिये का क्रूर कर्म देखकर जल उठा। कारुण्य से प्रकोप को अग्नि उत्पन्न हुई। उस प्रकोप के फल-स्वरूप पश्चात्ताप हुआ। वे शान्त हुए। उनके शान्त होने से 'शाश्वतो समाः' कल्याणकारी रामायण-महाकाव्य दुनिया को मिला। पक्षियों का जोड़ा आनन्द से क्रीड़ा कर रहा है, उनमें से एक को हत्यारे निषाद ने अपने बाण का निशाना बनाया। वह पक्षी नीचे गिर गया। उस दूसरे पक्षी के दुःख की तो सीमा ही न थी। वाल्मीकि से यह सहन नहीं हुआ। उनके मुँह से आर्ष छन्द का बाण निकला—

मा निषाद प्रतिष्ठांत्वमगमः शाश्वती समाः ।
यत्क्रौंच मिथुनादेकं अवधीः काममोहितम् ॥

यह शाप देकर ऋषि पछताये। किसी को शाप देना यह भी तो निषाद कर्म ही न है ? ऋषि ने खूब अनुताप किया। मैत्री, करुणा, मुदिता, और उपेक्षावाले चतुर्वदन ब्रह्मा के उन्हें दर्शन हुए। उनके आशीर्वाद से उनमें रामायण की रचना की स्फूर्ति हुई और संसार पण्डित बना।

वाल्मीकि ने निषाद को शाप नहीं दिया किन्तु हिंसावृत्ति की अप्रतिष्ठा की। अनन्त वर्षों के लिए उसे अप्रतिष्ठित कर दिया और कारुण्य की प्रतिष्ठा की। समभाव का प्रवाह बहा दिया। यह कविता सृष्टि की आद्य रचना कही जाती है।

४

आदि कवि की यह आद्य और हृदय-प्रेरणा हमें भिन्न-भिन्न तीन प्रदेशों के आधुनिक तीन कवियों के छोटे-छोटे काव्यों में फैली हुई दीखती हैं। एक है स्काटलैण्ड का मशहूर कवि बर्न्स, दूसरा है महाराष्ट्र का कवि-कुल-तिलक 'रेवरेण्ड' तिलक और तीसरा है लाठीका राजकवि कलापी। पहले हम कलापी को लें।

५

कोमल भावनाओंवाला कलापी उस कठोर प्रहार को जान-बूझकर मारे हुए बाण का सा रूप नहीं देता—

ते पंखीनी ऊपर पथरो फेंकतां फेंकी दीधो !
छुट्यो तेने अर् र् र् ! पड़ी फाळ हैया महीं तो !

प्रहार चाहे जान-बूझकर किया गया हो या यदृच्छा प्रेरित हो, वह लगेगा ज़रूर।

रे रे ! लाग्यो दिलपर अने श्वास रूंधाई जातां।
नीचे आव्युं तरु उपरथी पांख ढीली थता मां।

यह कोई कहानियों में वर्णित ऋषिकुमार नहीं था, जिसे अपनी तपस्या का प्रभाव देखकर आनन्द हो और न वह पक्षी कोई क्रूर बाज़ या गीध ही था।

में पाळ्युं ते तरफड़ी मरे हस्त माराज थी आ !

पानी छिड़का और उसकी सार-सम्हाल की। समय आने पर क्रूर हाथों द्वारा किया गया वह घाव भर गया। मौत के मुँह में पहुँचा हुआ वह पक्षी वापस आ गया। वह जी गया और अपने अकृत्रिम प्रकृति प्रेम के कारण प्राप्त फल का आनन्द वह अपने मधुर गानों द्वारा व्यक्त करने लगा। लेकिन उसके दिल में यह खयाल तो पत्थर की लकीर हो गया कि मनुष्य पर विश्वास करना भूल है। एक बार मुग्ध भाव से विश्वास किया तो उसका परिणाम यह हुआ। घाव तो भर सकता है पर वह श्रद्धा कैसे रहे ?

रे रे ! श्रद्धा गत थइ पछी कोइ काले न आवे !
लाग्या घा ने विसारी शकवा कांई सामर्थ्य ना छे !"

इस उपदेश की अपेक्षा इसके पहले की पंक्ति अत्यंत निराशा-जनक है और इसीसे वह काव्यपूर्ण है।

आवे व्होये डरी डरी अने इच्छतुं उड़वाने;

असहाय स्थिति, पुराना सम्बन्ध, आसानी से दाना प्राप्त करने का लालच, इन सब से पक्षी अपने पास आ स है लेकिन फिर भी विश्वास कहीं लौट सकता है?

रॉबर्ट बर्न्स के घायल ख़रगोश की कविता वाल्मी के समान पुण्य प्रकोप से ही शुरू होती है। मालूम है, जान बूझकर वाल्मीकि के शब्दों का ही रूपांतर नहीं कर दिया हो ?

Inhuman man ! Curse on thy barbarous
And blasted be thy murder aiming
May never pity soothe thee with a
Nor ever pleasure glad thy cruel he

इतना दारुण शाप दे देने के बाद कवि का हृदय मौत की घड़ियां गिनते ख़रगोश की ओर दौड़ता है। के लगते ही वह ख़रगोश भागा। मौत का शिकार बे यह जानवर इधर-उधर हांफता हुआ कहां जाना होगा ? अपने घर पर बिछौने में गर्मी पाने के लि नहीं ? लेकिन अब गर्मी कैसी ? कलेजे में से निकलता गर्म खून बात की बात में ठंडा हो जायगा और गर्म बिछौने को ठंडी मृत्यु-शय्या बना देगा। शी शील घास उसे सुलाने के लिए लोरियां गाने के अब शोक के गीत गावेगी। आंखें पथराने लगीं; यह सुन्दर हरियाली कैसे देख सकेंगी ?

Go, live, poor wanderer of the wood
fi

The bitter little that of life remains,
No more the thickening brakes and verd
pla

To theo sh॰ll home, or food or pastime
Seek mangled wretch some place of w

No more of rest. but now thy dying
The shuttering rushes whisking o'er
be

The cold earth with thy bloody bosom p

क्रोध और करुणा का कैसा संयोग ? दारुण और दो वृत्तियाँ एक ही प्रसंग से उद्भूत हो हृदय को एक अस्वस्थ कर देती हैं; और जो भाव हृदय में नहीं सकते वे मुँह से निकल कर चार या छः शब्दों में हां को प्रकट कर देते हैं।

And curse the ruffian's aim
And mourn thy hapless fate.

अभागे ख़रगोश की याद दुःखदायी है लेकिन हीं भूलती। इसलिए कवि ने छंदोभंग की पर्वा न अंतिम पंक्ति में पांच के बदले छः पद लिख दिये इस तरह शब्दों के साथ-साथ छंद को भी कारुण्य द्वारा कृतार्थ कर दिया है।

बर्न्स जहाँ क्रोध की धधकती आग से निकल कर के सागर में कूदे, अपने पुण्य प्रकोप को निर्वापा- में बदल दिया और अपने हृदय के एक भाग को प्रकटकर कलापी ने एक ही साथ तीन प्रहारों का चित्र खींचा ध्वनि से जिस प्रकार दो प्रतिध्वनियाँ निकलती हैं एक बिंब के दो प्रतिबिंब दिखलाई देते हैं उसी क्षी को जो चोट लगी वही लौटकर पश्चात्ताप के रूप वाले के हृदय में भी लगी और पक्षी के विश्रम्भ साबित किया। पक्षी के अश्रद्धा-भाजन होने तो सबसे अधिक मर्मान्तक है। यहीं काव्य की है।

(७)

रायण वामन तिलक का काव्य इन दोनों की अपेक्षा क लम्बा और सुन्दर है। उन्होंने तो सारा प्रसंग दिया है। रॉबर्ट बर्न्स ने तो घायल ख़रगोश को पहले घर पहुँचने की व्यर्थ चेष्टा करते देखा। तिलक ने घायल पक्षिणी को मरने से पहले अपने बच्चों विदा लेने के लिए आई हुई देखा और उस अवसर किया।

में ताक़त नहीं। उड़ना चाहती है, पर फिर गिर है। आंखों के सामने अँधेरा छा गया है। कोमल से लगभग सारा खून बह निकला है। मादा को होगया कि अब मौत आगई; देर भी नहीं है। उसका तो संकल्प है कि बची हुई शक्ति हुए क्षणों का उपयोग अपने बच्चों को दर्शन हो। और ईश्वर भी उसके इस सत्य संकल्प करता है।

क्षणोक्षणिं पडे, उठे बळं उडे बापड़ी,
के पथहि येउनि स्तिमित दृष्टिला झांपडी
किती छळलां गळे रुधिर कोमलांगातुनी,
तशीच निज कोटरा परत परतली पक्षिणी.

❀ ❀ ❀

म्हणे निज शिशूं प्रति 'अधिक बोलवेना मला
तुम्हांस अजि अंतिचा कवल एक मीं आणिला;
करा मधुर हा ! चला ! भरवितें तुम्हां एकदां
करो जतन या पुढें प्रभु पिता अनाथा सदा!

"आओ बेटा, अब तो बोला नहीं जाता। अंतिम कौर लेती आई हूँ। फिर तो तुम हो और तुम्हारे सिरजन-हार प्रभु!"

अहा ! मधुर गाउनि रमविलं सकाळीं जनां,
कृतघ्न मज मारितील न च ही मनीं कल्पना !
तुम्हांस्तव मुखीं सुखे धरुनि घास झाड़ावरी,
क्षणैक बसलें न तों शिरत बाण माझ्या उरीं !

हम मनुष्य के आसरे पड़े हैं। उसके खेत का दाना चुगते हैं। सोचा, चलो कुछ रिझावें; यह सोचकर सुबह से मैं गा रही थी। मैं क्या जानूँ कि वह कृतघ्न ऐसा बदला चुकावेगा ? सांझ हुई तुम्हारे लिए अच्छे, बड़े और पुष्ट दाने चोंच में लिये। घर तक आने के पहले एक जगह कुछ क्षण आराम कर रही थी। इतनें में तो बाण लगा और मैं गिर पड़ी।

गिघून नर जातिला रमविण्यांत गेलें वय
म्हणून वधिलें मला ! किती दया ! कसा हा नय !
उदार बहुशूर हा नर खरोखरीं जाहला,
वधून मज पांखरा निरपराध की दुर्बळा.

मैंने अपना सारा जीवन गाकर मनुष्य जाति को प्रसन्न रखने में बिताया। लेकिन इस बहादुर जाति ने उसका कैसा बदला चुकाया ? मुझ जैस. निरपराधिनी को मारकर इस वीर जाति के हाथ क्या लगा ?

इसके बाद का भाग नितांत मधुर है:—

म्हणाल भुलली जगा, विसरली प्रियां लेकरां,
म्हणून अति संकटें उडत परतलें मीं घरा;
नसे लवहि उष्णता नच कुशींत माझ्या शिरा;
स्मरा मज बरोबरीं परि दयाघना ईश्वरा,

मनुष्य तो कृतघ्न ही ठहरा। किन्तु प्रभु के पंखी के हृदय से भी श्रद्धा उठ जाय तो दुनिया का अन्त न

हो जाय ! पक्षिणी सोचने लगी कि यदि मैं घर न गई तो बच्चे समझेंगे कि माँ इस दुनिया के लोभ में फँस गई है। हमारे प्रति का प्रेम अब कम हो गया है। हमें छोड़कर चली गई है। अश्रद्धा का यह ज़हर बच्चों के हृदय को स्पर्श न करे इसीलिए वह असह्य तकलीफ़ उठा कर भी किसी तरह अपने घोंसले पर जा पहुँची। बच्चे अपनी आदत के अनुसार उसकी पाँखों में घुसने लगे। माँ ने कहा—नहीं, बेटा अब नहीं, अब इन पंखों में वह गर्मी कहाँ ? अब तो मुझे और तुम्हें परमात्मा की ही……… इतना बोलते-बोलते बोली बन्द हो गई। लेकिन वाणी की अपेक्षा प्रेम बड़ा है, दीर्घजीवि है, अमर है। माँ ने सोचा अब यदि मैं इसी प्रकार इस घोंसले में और पड़ी रही तो खून बहेगा, घोंसला तर हो जायगा और बच्चों को घोंसले से जो स्वाभाविक गर्मी मिलती है वह भी न मिलेगी। वृक्ष के ऊपर से जिस प्रकार एक सूखा फूल नीचे गिर जाता है उसी प्रकार वह जीवित वाणीवाला फूल स्वेच्छापूर्वक नीचे ढल पड़ा। उसके रम्य पंख मिट्टी में फैल गये। उसकी चोंच खुली रह गई मानों वह दुनिया को प्रेम और बलिदान का सन्देश सुना रही हो, और दुःखित हृदय से अखिल विश्व को देखने के लिए उसका निष्पाप, निष्कलंक और निर्वैर धवल हृदय खुल गया हो ! प्राण के साथ ही साथ श्रम और चिंता भी प्रस्थान कर गई। जो रहा सो तो कवि के काव्य में समा गया।

असो; रुधिर वाहुनि न च भिजो सुशय्यातरी
म्हणून तरुच्या तळीं निजलि ती द्विजा भूवरी
जिवंत बहु बोलकें किति सुरम्य ते उत्पल
नरें धरुनि नाशिलें खचित थोर बुद्धिबल !
मातींत ते पसरले अति रम्य पंख
केलें वरी उदर पांडुर निष्कलंक !
चंचू तशीच उघडी पद लांबवीले,
निष्प्राण देह पडला श्रमही निमालें !*

काका कालेलकर

---

* हस्तलिखित गुजरातीपत्र 'मधपूडो' से।

साहित्य की दुनियां में

दो नोबल-पुरस्कार-विजेता

साहित्य के लिए १९२७ ई० का नोबेल-पुरस्कार
फरासीसी दार्शनिक आँरी बर्गसाँ (Henary Bergso
को और १९२८ ई० का, नार्वेकी प्रसिद्ध लेखिका
ऊँदसे (Sigrid Undset) को उसके
उपन्यास 'मिट्टी का विकास' के लिए मिला है। जो
आधुनिक यूरोपीय साहित्य की दुनिया से परिचित हैं,
ये नाम बहुत पहचाने-से मालूम होंगे। दोनों ने अपने
और रचनाओं द्वारा संसार-व्यापी ख्याति पाई है।

आँरी बर्गसाँ का जन्म १८५९ ई० में हुआ था।
पन से ही साहित्य और विज्ञान दोनों की ओर इनकी
थी पर अन्त में इन्होंने साहित्य को ही अपनाया।
इनके माँ-बाप अंग्रेज़ और ज्यू थे पर फ्रांस में ही पैदा
तथा बस जाने के कारण इन्हें प्रकृतिभूत(Naturalis
फ्रेंच कहना ही ठीक होगा। दर्शन में इनकी विशेष
थी; बहुत दिनों तक अनेक कालेजों में यह इस
अध्यापक रहे। १९१८ ई० में विश्व-विख्यात
सभा 'एकेदमें फ्रौंसे' ने इन्हें अपना सदस्य बनाया।
युद्ध के समय से अध्यापन-कार्य छोड़कर
शान्ति तथा सहकारिता के लिए प्रयत्न करने लगे।
दो वर्ष पहले तक यह जेनेवा की 'बौद्धिक सहयोग
अन्तर्राष्ट्रीय सभा' के अध्यक्ष थे। दर्शन पर इन्होंने
महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं जो समस्त संसार में
जाती हैं। बर्गसाँ ने अपनी रचनाओं द्वारा यद्यपि
महान् क्रियाशील 'स्कूल' को जन्म नहीं दिया पर
क्रान्तिकारिणी व्याख्याओं और नवीन मूलाधारों की
करने वाली 'मैगनम् ओपस' आदि रचनाओं का
यूरोपीय दर्शन के विकास में एक खास स्थान है।
कहीं विश्व-प्रपंच और उसके रहस्य की बड़ी गम्भीर
बर्गसाँ ने की है। शान्ति-प्रसार और बौद्धिक विकास
दृष्टियों से बर्गसाँ को नोबल-पुरस्कार देना उचित हुआ

श्रीमती ऊँदसे का जन्म १८८२ ई० में
किसी नगर में हुआ था। इनके पिता एक बड़े
जिस्ट' थे। ऊँदसे का प्रारंभिक जीवन बड़ी ग़रीबी में

दिनों तक एक छोटे दफ़्तर में क्लर्क का काम करके ड़की को गुज़ारा करना पड़ा था। उस समय कौन था कि आगे चलकर यह ग़रीब लड़की भारती के तले वह स्थान पायेगी, जो दुनिया में बहुत थोड़े को नसीब होता है!

र के दफ़्तर में क्लर्की करते समय ऊँड्से को श्रमिकों तों के नीरस और दलित जीवन का जो कुछ अनु-त हुआ उसका उपयोग उन्होंने अपनी पहली रचना ई०) में किया। १९११ ई० में उनका पहला उपन्यास 'जेनी' निकला, जिससे उन्हें प्रथम श्रेणी कों में स्थान मिल गया।

र्तमान संसार में बहुत थोड़े लेखक ऐसे हैं जो श्रीमती स्त्री-पात्रों के चित्रण और अन्तर के मनोवैज्ञानिक ण में आगे निकल जायँ। वह जब लिखती हैं, तो डूबकर लिखती हैं। मध्यकालिक यूरोप के कथा-र उन्होंने कई ऐतिहासिक उपन्यास भी लिखे हैं। ड़ा ही स्वाभाविक चित्रण किया है। अपने देश के जीवन को उन्होंने सदैव बड़ी सफलता और गहराई क्त किया है और इस बात में ग्रेज़िया द लेड्डा की नोबल-पुरस्कार-विजेत्री) तथा स्वर्गीय थामस से उनकी तुलना की जा सकती है।

नका पिछला उपन्यास 'मिट्टी का विकास' इस बात अच्छा उदाहरण है।

श्रीमती ऊँड्से के निर्वाचन पर हम पुरस्कार के निर्णा-को धन्यवाद देते हैं।

तिशील हिन्दी-साहित्य

मालूम हुआ है कि गया के श्री मोहनलाल महतो जी की कविताओं का एक संग्रह 'धारा' नाम से होता है। इनकी एक और पुस्तक 'मेरे धुँधले चित्र' है। इसमें छोटे-छोटे गद्य-काव्य हैं। 'वियोगी' जी समस्त छोटी कहानियाँ भी लिखी हैं, जिनका संग्रह म से प्रकाशित होने वाला है।

न्यास और कहानी लिखने की ओर लोगों की रुचि क दिखाई पड़ रही है। बहुत से लोग कविता का उपन्यास को अपना रहे हैं। इस विषय में नहीं आता है। 'मीठी-चुटकी' के एक लेखक श्री 'वर्मा' ने 'बड़े बाबू' उपन्यास लिखा है। श्री शंभू-दयाल सक्सेना अपनी अप्रकाशित कहानियों का संग्रह निकलवाने की चेष्टा में हैं। श्री केशवकुमार नामक एक उदीयमान लेखक ने एक सामाजिक उपन्यास लिखा है। हिन्दी के युवक कहानी-लेखक श्री प्रताप नारायण श्री-वास्तव का 'विदा' नामक एक बड़ा उपन्यास हाल में गंगा, पुस्तक-माला कार्यालय से प्रकाशित हुआ है। श्री 'उग्र' 'चुम्बन' नामक नाटक लिखने में व्यस्त हैं। श्री सुमित्रानन्दन के जिस नाटक के सम्बन्ध में पिछले किसी अंक में मैंने सूचना की थी कि वह नवम्बर तक तैयार हो जायगा; वह अभी कुछ देर से पूरा हो सकेगा। अभी बहुत थोड़ा लिखा गया है। इस नाटक का नाम 'परी' है और मैंने इसका कुछ अंश लेखक के मुँह से सुना भी है। इसमें सौंदर्य और उसके रूप की व्याख्या की खोज है। कला एवं सौंदर्य-शास्त्र (Eastbetics) की दृष्टि से यह एक बड़ा सुन्दर नाटक होगा, बशर्ते रचनाकार की स्वाभाविक सुस्ती और उदासीनता उसकी पूर्ति में बाधक न हुई।

अन्य विषयों पर भी पुस्तकें लिखी जा रही हैं। प्रयाग के श्री रामशंकर शुक्ल एम. ए. 'रसाल' अलंकार-शास्त्र पर एक पुस्तक लिख रहे हैं। इनकी कविताओं का एक संग्रह भी अभ्युदय प्रेस से निकलने वाला है। पता लगा है कि छायावाद पर भी दो विद्वान् लेखक कुछ लिख रहे हैं। इन में एक प्रयाग के श्री अवध उपाध्याय हैं और दूसरे 'छाया-वाद' के सम्बन्ध में व्यंग्यमय उक्तियाँ लिख 'हृदय के मधुर भार' उधेड़-बुन करनेवाले काशी के पं० रामचन्द्र शुक्ल हैं। प्रयागकी हिन्दी-साहित्य-गोष्ठी के श्री रघुनाथसिंह स्व० लाला लाजपतराय की 'अनहैपी इण्डिया' का अनुवाद कर रहे हैं, जो इण्डियन प्रेस से 'दुःखी भारत' नाम धारणकर निकलेगा।

क्या इन बातों से यह मालूम नहीं होता कि हिन्दी साहित्य की उन्नति का क्रम ज़ारी है!

रामनाथलाल 'सुमन'

[नोट—प्रत्येक अंक में प्रगति की ऐसी संक्षिप्त सूचनायें देने का प्रबन्ध किया गया है। आशा है मेरे स्नेही मित्र और कृपालु लेखकगण अपनी महत्वपूर्ण अप्रकाशित रचनाओं के सम्बन्ध में समय-समय पर सूचित करते रहेंगे। 'सुमन']

[समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियां आना आवश्यक है। एक प्रति आने पर आलोचना न हो सकेगी । प्रत्येक पुस्तक का साहित्य-सत्कार तो उसी अंक में हो जाया करेगा—आलोचना, यदि हुई तो, सुविधानुसार बाद में होगी ।]

समन्वय

लेखक—बाबू भगवानदासजी एम. ए. । प्रकाशक—भारती-भण्डार, काशी । मूल्य सजिल्द ३) रु० ।

काशी के स्वनाम धन्य दार्शनिक विद्वद्वर बाबू भगवानदासजी से सभी परिचित हैं । आपने अंग्रेज़ी में समाज-शास्त्र तथा मनोविज्ञान पर कई उत्कृष्ट पुस्तकें लिखी हैं, जिनमें से दो-एक के हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हो चुके हैं । प्रस्तुत पुस्तक आप ही के कुछ लेखों और व्याख्यानों का संग्रह है । इन में मुख्यत: गुरुकुल-कांगड़ी तथा हिन्दू-विश्व-विद्यालय, काशी में दिये हुए आपके दीक्षान्त भाषण हैं ।

जैसा कि पुस्तक के नाम से प्रकट है, इसमें वर्तमान समाज तथा परिस्थिति से सम्बन्ध रखनेवाले—राजनीति, धर्मनीति, समाजनीति इत्यादि—प्रायः सभी विषयों पर समुचित प्रकाश डाला गया है, तथा सब नीतियों एवं धर्मों की पारस्परिक अपेक्षा सिद्ध करके एक सार्वभौम सिद्धान्त तथा धर्म का प्रतिपादन किया गया है । पुस्तक दार्शनिक विचारों से परिपूर्ण है, तथा जिज्ञासुओं के मनन करने योग्य है । जो लोग प्राचीन संस्कृति को अवज्ञा की दृष्टि से देखते हैं, उनसे हमारा अनुरोध है कि इस पुस्तक को एकबार आद्योपान्त पढ़ें । उनके अनेक भ्रमों का निवारण हो जायगा तथा उनको पता लगेगा कि संस्कृत ग्रन्थों में कैसे-कैसे रत्न भरे पड़े हैं !

पुस्तक के सभी आख्यान गवेषणा-पूर्ण हैं—गणपति पूजा' तथा 'सब धर्मों की एकता' शीर्षक अध्याय तो हमें बहुत ही युक्तियुक्त सुन्दर प्रतीत हुए । वेदान्त विषय के दक कई स्थल जटिल और गूढ़ हो 'प्रणव की कहानी' अध्याय बहुत दार्शनिक पुस्तक की भाषा परि तथा बोधगम्य है । शैली व्याख्यानात्मक कारण ओजपूर्ण है, तथा जहाँ-तहाँ हास्यरस समावेश हो जाने से पुस्तक की रोचकता कुछ बढ़

हमारा विचार है कि हिन्दी में अपने ढंग पहली ही पुस्तक है । हम इसका हृदय से स्वागत क्योंकि हिन्दी-साहित्य का यह अंग अभी तक अधूरा है। भय यही है कि संस्कृत उद्धरणों के आधि दार्शनिक सिद्धान्तों से रंजित होने के कारण यह सार्वजनिक अभिरुचि के अनुकूल सिद्ध होगी कि पुस्तक के दो-चार पृष्ठ देखकर संभव है पाठक नाक-भौं सिकोड़ने लगें, परन्तु यदि वे इसे पढ़ने का कष्ट उठायँगे, तो अपने ज्ञान में अपने दृष्टि-कोण में परिवर्तन अवश्य पायँगे।

पुस्तक जिज्ञासुओं के काम की है । मूल्य कम होता तथा पुस्तक की छपाई-सफ़ाई इत्यादि पर ध्यान दिया जाता, तो और भी अच्छा था । हमारी तो ऐसी पुस्तकों का मूल्य जान-बूझ कर कम रखना जिससे पाठक और कुछ नहीं तो मूल्य से ही आकृष्ट इन्हें संग्रह करें ।

चन्द्रगुप्त वा
(बी. एस-सी.

भारतवर्ष का इतिहास

(खण्ड १)

—श्री रामदेवजी आचार्य, गुरुकुल विश्व-विद्यालय
प्रकाशक—गुरुकुल, कांगड़ी, जिला बिजनौर (यू०पी)।
अठपेजी, पृष्ठ संख्या ३८०, मू० १॥)

वर्ष अत्यन्त प्राचीन देश है। उसका दीर्घकालीन हुत अधिक विस्तृत है। जब आज का सभ्य ली था, उसे कपड़े पहनने तक की तमीज़ नहीं राष्ट्र की उच्च कल्पनाओं, बहुत गम्भीर अध्यात्म- आश्चर्यप्रद वैज्ञानिक उन्नति को प्राप्त कर चुका यूनान और रोम आदि एक-एक करके उठे और के बाद अस्त हो गये, उन सब देशों के उत्थान वर्ष पूर्व और उनके पतन के बाद भी भारत । भारत का इतिहास कई सदियों का नहीं; कई और हिन्दुओं के कथनानुसार कई लाख सालों अत्यन्त प्राचीन भारत के जीवन में न जाने कितने परिवर्तन हुए और उसके जीवन का एक-एक भाग है। इतने प्राचीन भारत का शृङ्खलाबद्ध और हास नहीं मिलता और मिलने की संभावना भी जा सकती। फिर भी आज जो कुछ उपलब्ध हो और भारतीय इतिहास का जो रूप बन सका है, पाश्चात्य विद्वानों के सतत और स्तुत्य परिश्रम का जिन्होंने केवल अगाध ज्ञान-प्रेम के ख़ातिर भार- हास का पुनरुद्धार किया है। उन्होंने प्राचीन , सिक्कों, विदेशी-यात्रियों के भारत-सम्बन्धी अन्य सामग्री की खोज करके भारतीय इतिहास किया है। इसमें सन्देह नहीं कि बहुत से भार- नों ने भी पाश्चात्य ऐतिहासिकों की पद्धति का करते हुए भारतीय इतिहास-सम्बन्धी बहुत परिश्रम किया है, और उनकी कई खोजों से इतिहास की काया ही पलट गई है। इतिहास का बहुत ही उज्ज्वल और गौरवपूर्ण है।

यह सब होते हुए भी भारतीय इतिहास में कुछ भारी दोष रह गये हैं। और वह उसके मूल में हैं। भारतीय इतिहास के निर्माता विदेशी और विधर्मी विद्वान् हैं। उन्होंने उसको अपने दृष्टिकोण से बतलाया है। वे भारतीय संस्कृति और सभ्यता को, भारतीय विचारशैली को, भारतीय भाषा के मूलतत्त्व को नहीं समझ सके, इसलिए, उन्होंने जगह-जगह अनर्थ कर दिया है। भारतीय इतिहास के मूल में दूसरी बड़ी अशुद्धि यह है कि विदेशी विद्वानों ने डार्विन के विकासवाद को स्वयं-सिद्ध सत्य मान कर भारतीय इतिहास लिखा है। वे यह मानने को तैयार ही नहीं कि विकासवाद का सिद्धांत किसी रूप में असत्य भी हो सकता है और यूनान, रोम से बहुत पूर्व आज के सभ्य संसार से भी अधिक उन्नति हो सकती है। पर मोहँजोदड़ो के आविष्कार ने आज ऐतिहासिकों को ५,०००साल पहले के वर्तमान विकास पर विचार-क्रान्ति करने को बाधित कर दिया है। तीसरी अशुद्धि भारतीय इतिहास के मूल में यह हुई कि विदेशी विद्वान् शासक जाति के हैं। यह सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं कि विजयी जाति पराजित जाति का इतिहास लिखने में पक्षपात करती है तथा सदा उसे असभ्य दिखाया करती है। पर भारतीय विद्वानों ने भी इतिहास लिखते समय पाश्चात्य विद्वानों का ही अनुकरण किया। उनके विचार पाश्चात्य विचारों में ही रंगे गये थे। यद्यपि कुछ भारतीय विद्वानों ने भारतीय इतिहास को शुद्ध करने का प्रयत्न किया है, परन्तु वह बहुत थोड़ा प्रयत्न है। अन्तिम त्रुटि यह हुई कि पाश्चात्य विद्वानों के भारतीय संस्कृति से अपरिचित होने के कारण उन्होंने भारत की केवल राजनैतिक घटनाओं को प्रधानता दी। आज भी भारत में प्रायः जितने इतिहास लिखे जाते हैं, उन सभी में राजनैतिक घटनाओं को मुख्यता दी जाती है, मानों सामाजिक घटनायें भारत में हुई ही नहीं।

यह सब कमियाँ हैं, जो भारतीय इतिहास को पूर्ण नहीं बनने देतीं। यह ठीक है कि अब इन त्रुटियों की ओर भारतीय विद्वानों का ध्यान जाने लगा है, परन्तु अभी इस ओर बहुत अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। यह सन्तोष की बात है कि गुरुकुल-कांगड़ी-विश्वविद्यालय ने इस कमी को किसी अंश में पूर्ण करने का प्रयत्न किया है।

केम्ब्रिज और आक्सफ़ोर्ड आदि यूनिवर्सिटियों की तरह गुरुकुल ने भी भारतीय इतिहास पर प्रामाणिक ग्रन्थमाला निकालना प्रारम्भ किया है। प्रस्तुत दो खंड इसी प्रयत्न के परिणाम हैं। हम यहां पाठकों को उक्त इतिहास का संक्षिप्त परिचय देना चाहते हैं।

प्रथम खण्ड के चार भाग हैं। प्रथम भाग में इतिहास का लक्षण और उसकी आवश्यकता पर संक्षिप्त विचार करके इस प्रश्न को उठाया गया है कि क्या प्राचीन आर्य इतिहास जानते थे? विद्वान् लेखक ने वेद, उपनिषद्-सूत्र तथा काव्य-ग्रन्थों के प्रमाण और युक्तियाँ देकर यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि प्राचीन आर्य इतिहास से पूर्णतया अभिज्ञ थे। यदि प्राचीन आर्य इतिहास में रुचि न रखते तो पुराणों में विस्तृत रूप से इतिहास कैसे मिलता, अबुलफ़ज़ल कैसे बिना प्राचीन सामग्री की सहायता के इतिहास लिख सकता, और कल्हण अपने से पूर्व के ११ इतिहासज्ञों का किस तरह उल्लेख करता? ह्यूनत्सांग क्यों अपने यात्रा-विवरण में भारत के प्रत्येक राज्य में सम्पूर्ण घटनाओं का नीलपत्रिकाओं (Blue books) में विवरण रखने वाले रा पुरुष का नाम लिखता? वस्तुतः प्राचीन आर्य इतिहास लिखते थे, परन्तु मुसलमानों के सैकड़ों अत्याचारों और काल-प्रवाह के चक्र से भारत का अनन्त साहित्य नष्ट हो चुका है; उसी में ऐतिहासिक साहित्य नष्ट हुआ हो, तो कोई आश्चर्य नहीं। इसके बाद तीसरे परिच्छेद में भारतीय इतिहास के निर्माण की सामग्री का विस्तार से विवेचन किया गया है कि अब किस-किस सामग्री से भारतीय इतिहास बन सकता है। चतुर्थ परिच्छेद में एक बहुत ही आवश्यक विषय पर प्रकाश डाला गया है। अबतक जितने पाश्चात्य या भारतीय ऐनिहासिक हुए हैं, उन सभी ने भारत के वैदिक काल की कल्पना कर वेद से ऐतिहासिक घटनाओं का उद्धरण दिया है, परन्तु प्रस्तुत पुस्तक के लेखक एक ओर्य-समाजी विद्वान् हैं। उनका यह दृढ़ विश्वास है कि वेद से इतिहास सिद्ध करना बड़ी भारी भूल है। वेद ऐतिहासिक पुस्तक नहीं, परन्तु अपौरुषेय और सृष्टि के आदि में बने हैं। लेखक ने प्रबल युक्तियों के आधार पर अपना मत सिद्ध करने का प्रयत्न किया है, जिसे पढ़कर कट्टर से कट्टर ऐतिहासिक एक बार ज़रा ठहर कर सोचने लग जाता है कि क्या से इतिहास निकालना बड़ा भारी असत्य तो नहीं यदि यह सिद्ध हो जाय कि वेद वस्तुतः ऐतिहासिक नहीं हैं, तो भारतीय इतिहास में बड़ी उथल-पुथल हो और आज भी यह निश्चित रूप से नहीं कहा सकता कि वेद इतिहास के ग्रन्थ हैं। यदि वस्तुतः वे हासिक होते तो विकासवाद के सिद्धान्तानुसार हज़ारों वर्ष पूर्व बने वेदों में वह आध्यात्मिक, वैज्ञानिक सामाजिक उन्नति की पराकाष्ठा के मन्त्र मिलने असं जिन्हें देखकर आज के विद्वान् भी चकित हो जा लेखक के इस प्रयत्न को धार्मिक अन्ध-विश्वास क टाला नहीं जा सकता। यह प्रश्न वस्तुतः बहुत मह है कि क्या वेद ऐतिहासिक ग्रन्थ हैं? इस प्रश्न प गम्भीरता से विचार करना चाहिए, न कि पाश्चात्य विद्वानों के चक्र में पड़ जाना चाहिए—जिनके विचार बिलकुल दूसरे हैं।

द्वितीय भाग में ब्राह्मण-काल पर विस्तृत विचा गया है। इस ग्रन्थ के लेखक भारतीय गौरव के समर्थक और प्राचीनता के बहुत पक्षपाती हैं। ब्राह्म के संबंध में वे लिखते हैं कि ब्राह्मण-ग्रन्थों के ज्योतिष की अनेक बातों से यह सिद्ध हो गया है कि अनेक स्थल आज से १२,००० वर्ष पूर्व बने हुए हमारा विश्वास है कि ब्राह्मणों की जितनी आलोचना उतने ही वे अधिक प्राचीन सिद्ध होंगे। लेखक पक्ष अभी बहुत अधिक विवादास्पद है, इस प उपर्युक्त चार-पाँच पंक्तियाँ लिखने से ब्राह्मण अत्यन्त सिद्ध नहीं हो जाते। इस मत की पुष्टि के लि प्रमाण और युक्तियों की आवश्यकता थी, जो लेखक दिये हैं। शतपथ में महाभारत-कालीन घटनाओं का स्पष्ट सिद्ध करता है कि वे महाभारत के पीछे बने हैं लेखक ने ब्राह्मण-कालीन भारत की सामाजिक स्थि वर्णन किया है। आज पाश्चात्य विद्वानों के यह सिद्धान्त माना जाने लगा है कि यज्ञों में हिं थी। इसका विरोध करना ऐतिहासिक जगत में

माना जाता है, परन्तु प्रस्तुत पुस्तक के लेखक ने लित और सर्वमान्य बात का बड़े ज़ोर से विरोध है। उन्होंने ब्राह्मण-ग्रन्थों के आधार पर विद्वत्ता-पूर्वक करने का प्रयत्न किया है कि ब्राम्हण-कालीन यज्ञ नहीं होते थे। यज्ञ का पर्यायवाची शब्द 'अध्वर' अहिंसात्मक होने का स्पष्ट प्रमाण है। पाश्चात्य किये हुए ब्राह्मणों के अर्थ अयुक्ति-संगत और हैं। वर्तमान सर्वमान्य सिद्धान्त का विरोध करने के जितने बल की आवश्यकता थी, उतने बल से विरोध ता है और इसलिए कहीं-कहीं यह मालूम होने है कि हम इतिहास नहीं, कोई धर्मग्रन्थ पढ़ रहे हैं।

(अपूर्ण)

कृष्णचन्द्र विद्यालङ्कार

भावुक

—रायकृष्णदासजी। प्रकाशक—भारती-भण्डार, पृ० सं० ६०। मूल्य ॥)

साहब गद्य-काव्य के प्रसिद्ध लेखक हैं। उनकी पद्य देखकर बड़ी प्रसन्नता हुई। इस संग्रह में उनकी कवितायें हैं, जो समय-समय पर 'माधुरी', 'सरस्वती' पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हो चुकी हैं। कवितायें प्रथम श्रेणी की है; परन्तु हमें तो 'स्वेच्छचार' और 'अनायास' बहुत पसन्द आईं।

कविताओं में से ९ कविताओं की ललित स्वर- भी दी गई हैं; स्वरकार मुनीम लक्ष्मणदास जी नियम शिक्षा की अधिकांश पुस्तकों में जो भ्रष्ट के गीत दिये रहते हैं, उनके स्थान पर यदि ऐसी रहें तो कहीं अच्छा हो।

गोपालस्वरूप भटनागर

ग्राम-सुधार

—श्री गिरिवरधर, वकील, समस्तीपुर। प्रकाशक— प्रेस, पटना। पृ० सं० १६२; छपाई—कागज़ मूल्य ॥)

के लेखक ग्राम के निवासी तथा सार्वजनिक कार्य-कर्त्ता हैं। ग्रामों के सुधार के लिए उन्होंने कुछ किया भी है और ग्राम-सुधार की लगन उनके हृदय में दिन-ब-दिन बलवती होती जाती है, ऐसा पता चलता है। ग्राम-सुधार का विषय एक ऐसा विषय है, जिसकी ओर देश और समाज के सेवकों का ध्यान अब आकर्षित होने लगा है; और अनेक समाज-सेवी और देश-भक्त ऐसे हैं जिनके हृदय ग्राम-निवासियों के कष्ट-मय जीवन तथा उनकी मुसीबतों को देख कर विह्वल हो उठे हैं। परन्तु इतना सब-कुछ होने पर भी ग्राम-सुधार की एक निश्चित योजना अभी तक किसी को नहीं सूझी और यदि सूझी भी हो तो उसके अनुसार कहीं काम शुरू नहीं हुआ। पुस्तक की भूमिका पढ़कर हमें यह आशा हुई थी कि इसमें ग्राम-सुधार की कोई अनुभूत कार्य-प्रणाली होगी। परन्तु हमें निराश होना पड़ा। पुस्तक को पढ़कर न तो ग्राम-निवासियों के वास्तविक कष्टप्रद जीवन का ही पता चलता है, और न उनको दूर करने की कोई तरकीब ही मिलती है। हाँ, पुस्तकालय खोलने तथा पंचायत का चुनाव करने की बात अवश्य लिखी है। परन्तु पंचलोग क्या करें, गाँव का क्या और कौन-सा सुधार करें, इसका उल्लेख कहीं नहीं है। धर्म, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह और शंका-समाधान आदि अनेक विषय पुस्तक में ऐसे लिखे हैं, जिनका ग्राम-सुधार से कोई सीधा सम्बन्ध नहीं। इसी प्रकार पर्दा आदि विषय भी अप्रासंगिक हैं। आशा है, लेखक महोदय पुस्तक के दूसरे संस्करण में अनावश्यक बातें निकाल देंगे और ग्राम-सुधार की कोई समुचित योजना प्रस्तुत करेंगे।

शिवचरणलाल शर्मा

हिंदी करीमा

शेख़ सादी फ़ारसी-साहित्य में अपनी कुछ अमर कृतियाँ छोड़ गये हैं। उन्हीं में से एक 'करीमा' है। श्री प्रेमचन्दजी के शब्दों में, यह "फ़ारसी-साहित्य की जितनी सर्व-प्रिय पुस्तक है उतनी कदाचित् और कोई पुस्तक न होगी।" प्रस्तुत पुस्तक उसी फ़ारसी 'करीमा' का खड़ी बोली में शाब्दिक पद्यानुवाद है। अनुवादक श्री इक़बाल वर्मा 'सेहर' मूल की सुन्दरता, पटुता और सर्वग्राहकता को ज्यों-का-त्यों

अभिव्यक्त करने में कहाँ तक सफल हुए हैं; यह तो दोनों भाषाओं का सुविज्ञ कोई कवि ही ठीक बतला सकता है, परन्तु अनुवाद सरल, सुबोध और रोचक तो ज़रूर है। हम यह मानते हैं कि 'करीमा' जैसी नीति और उपदेश की पुस्तक में ऐसी बातें न आतीं तो अच्छा होता—

"लाल रंग वाली मदिरा का सुन्दर स्वर्ण-खचित प्याला।
होता है ऐसा जीवन-प्रद जैसे अधर प्रेमिका का।"
"ऐसी मदिरा हो जीवन-प्रद जो प्रेमिका-अधर की-सी।
ऐसी मदिरा जिसमें द्युति हो उसी प्रेमिका के मुख की।"
"अपने वचन भंग कर देना है स्वभाव महिलाओं का।
....।"

पर आशिक़-माशूक़ और मदिरा के बिना फ़ारसी शायरों की शायरी ही शायद पूर्ण नहीं होती—ऊँचे-से-ऊँचे और पवित्र-से-पवित्र विषय में भी वे बड़ी सुन्दरता के साथ उन्हें कहीं-न-कहीं गूँथ ही देते हैं! अस्तु। पुस्तक सुन्दर उपदेश से परिपूर्ण है। कहीं-कहीं तो भाव इतने सुन्दर हैं कि बार-बार पढ़ने पर भी तबीयत नहीं अघाती! उपमा और अलंकार भी कमाल के हैं। नवयुवक भाइयों को हम ख़ास तौर पर इसके पढ़ने की सिफ़ारिश करेंगे। पुस्तक एण्टिक पेपर पर छपी है और मूल्य है ।-)। मिलने का पता—प्रकाश-पुस्तकालय, कानपुर।

मुकुट

वीणा (अहल्याङ्क)

मध्य-भारत-हिन्दी-साहित्य-समिति, तुकोगंज इन्दौर, गत ११ महीनों से 'वीणा' नामक एक पत्रिका निकाल रही है। इसके सम्पादक हैं हिन्दी के सेवक पंडित अम्बिकाप्रसादजी त्रिपाठी। इन ११ महिनों में श्री त्रिपाठीजी ने 'वीणा' द्वारा मध्य-भारत की हिन्दी जनता की जिन कठिन और असुविधा-जनक परिस्थितियों में जैसी सेवा की है वह हृदय से अनुभव करने और सराहने की चीज़ है। हिन्दी-साहित्य सम्बन्धी व्यापक हलचलों से इन्दौर और वहाँ के साहित्य-सेवी वर्षों से, एक तरह, उदासीन रहे हैं और अत्युक्ति नहीं होगी, अगर यह कहा जाय कि आज भी कई अंशों में उनकी उदासीनता पूर्ववत् ही बनी हुई है। ऐसे स्थान से बाहर के साहित्य-सेवी इष्ट-मित्रों को कष्ट देकर ८० पृष्ठों की 'वीणा' को सजधज के साथ निकालने के लिए त्रिपाठीजी ही चाहिएँ थे।

'वीणा' का श्रावण का अंक 'अहल्याङ्क' के निकला है। हमें कहना होगा कि इन्दौर की साहित्यक को देखते हुए वह इसमें सफल हुई है। यह 'अहल्या मानों स्वर्गीय देवी अहल्याबाई होल्कर के गद्यप उत्कृष्ट जीवन-चरित्र का नमूना है। अहल्याबाई के जीव सम्बन्ध रखने वाली अनेक प्रामाणिक और काव्य-मय के संग्रह के कारण प्रस्तुत 'अहल्याङ्क' हिन्दी-साहि एक संग्रहणीय वस्तु है।

'वीणा' के इन सौ पृष्ठों में कुल चौंतीस लेखकों कवियों की अपने-अपने ढंग की अनूठी गद्य-पद्य और मयी रचनायें हैं। गद्य लेखों में श्री पं० वासुदेव ठाकुर, श्रद्धेय पं० लज्जारामजी मेहता, श्री सा कीबे, श्री अध्यापक ज्वालाप्रसादसिंहजी, श्री वैद्य शास्त्री, श्री अध्यापक पं० रामाज्ञा द्विवेदी की रच देवीजी की जीवनी पर और उनकी शिक्षाओं पर अ प्रकाश डालती हैं।

अहल्याङ्क के पद्यों का चुनाव तो काफ़ी विविध सन्तोष-जनक हुआ है। लगभग सब हिन्दी, मराठी, सं और अंग्रेज़ी पद्यों में देवी अहल्याबाई के पवित्र गु गान समाविष्ट है।

देवी अहल्याबाई के तिरंगे चित्र के साथ 'वीणा इस अंक में देवी का राजप्रासाद, छत्री आदि के चित्र इंदौर के प्रसिद्ध कार्य-कर्ता तथा कुछ लेखक-लेखिकाओं सादे चित्र भी हैं।

प्रस्तुत अंक में यत्र-तत्र छापे की अशुद्धियाँ रह गई हैं और कहीं-कहीं एक-दो लेखों में देवी के जन्म के नाम भ्रम पैदा करने वाले छापे हैं। श्रीमती कुमारी नाबाई उनका जन्म अहमदनगर ज़िले के पास पाथर्डी में होना लिखती हैं, और श्री बाबूराव रावल औरंगाबाद के चोट ग्राम में उनका जन्म होना बतलाते है। कहीं जी की मृत्यु की उम्र ७० वर्ष है और कहीं ६० और ६५। आशा है, त्रिपाठी जी 'वीणा' के किसी अगले अं इस पर प्रकाश डालेंगे।

थोड़ी-सी त्रुटियों के होते हुए भी 'वीणा' का अह- पाठकों के काम की चीज़ है, वह सर्वथा संग्रहणीय णीय है।

की सुन्दर सफलता के लिए हम श्री त्रिपाठीजी और के कार्यकर्त्ताओं को धन्यवाद देते और जनता से करते हैं कि वह मध्य-भारत की इस उदीयमान 'वीणा' को हर तरह अपनाकर इसे चिरजीवी और नावें।

' का बारहवाँ अंक भी सन्तोषजनक निकला है। है, इसका दूसरा वर्ष भी सफलता, उन्नति और लोक- वर्ष रहेगा।

' का वार्षिक मूल्य ५) और इस अंक का ॥।) है।

त्रिवेदी

साहित्य-सत्कार

गुजराती

-भारत ना वीर पुरुषो (भाग १)—प्रका- —सस्तुं-साहित्य-वर्धक-कार्यालय, अहमदाबाद। २८८, मूल्य सजिल्द १)

—बाल-साहित्य-माला की पुस्तकें—शब्द- वाक्यपोथी, चिट्ठीपोथी, नानापाठो, मोटापाठो, नो, घरमां, आंगणानां, शेरीमां, बाळशाळामां, रमवाजइए। लेखक—श्री गिजुभाई। सम्पादक— भाई और श्रीमती ताराबेन। प्रकाशक—दक्षिणा- मन्दिर, भावनगर। पृ० सं० प्रत्येक की ४०; का -)॥

हिन्दी

अफ़लातून की समाज-व्यवस्था—लेखक—श्री दामोदर तामस्कर, एम. ए. एल. टी.। प्रकाशक— विद्यापीठ, ज्ञानमण्डल काशी। पृ० सं० १९५, =)

—भूषण ग्रंथावली (सटीक एवं संशोधित संस्करण)—सम्पादक—श्री रामनरेश त्रिपाठी। —हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग। पृ० सं० २०४, मूल्य १)

क्षेत्र छवि—लेखक—श्री कुँवर राधाकृष्ण तोषनी- प्रकाशक—हिन्दी-उपासक-मण्डल अजमेर। पृ० मूल्य ।=)॥

६—स्वास्थ्य शिक्षा—लेखक और प्रकाशक—श्री दयाशंकर पाठक, मेडलिस्ट जयपुर। पृ० सं० ११०, मू० १)

७—सच्ची आवाज़—लेखक—श्री एक सेवक। प्रकाशक—भारत-धर्म-राष्ट्रीय ग्रन्थमाला, देहली। पृ० सं० १९९, मूल्य ॥=)

८—वायोलिन शिक्षक—लेखक और प्रकाशक—श्री अध्यापक शंकर दत्तात्रय पाठक। प्राप्तिस्थान—अहमदाबाद। पृ० सं० ५७, मूल्य ॥।)

९—भक्त मोरध्वज (नाटक)—लेखक—श्री 'दास' और 'फ़ख'। प्रकाशक—श्री शिवरामदास गुप्त, उपन्यास-बहार-आफिस, काशी। पृ० सं० १०७, मूल्य ॥।)

१०—सती सुकन्या, (उपाख्यान)—लेखक—श्री एक साहित्य-सेवी। प्रकाशक—वही। पृ० सं० ४८, मूल्य ॥)

११—वीर लवकुश (उपाख्यान)—लेखक—श्री 'विमल' जी। प्रकाशक-वही। पृ० सं० ६६, मूल्य ॥)

१२—श्रावक का अहिंसाव्रत—सम्पादक—श्री मुन्नालाल जी शास्त्री। प्रकाशक—श्री श्वे० सा० हितेच्छु श्रावक-मण्डल-रतलाम (मालवा)। पृ० सं० १०४, मू० ॥)॥

पत्र-पत्रिकायें

सुधा (साहित्य संख्या) नं० १-प्रधान सम्पादक—श्री पद्मसिंह शर्मा। सम्पादक—श्री दुलारेलाल भार्गव, श्री रूपनारायण पांडेय और श्री नन्दकिशोर तिवारी। प्रकाशन-स्थान—गंगा-पुस्तक-माला-कार्यालय, लखनऊ। पृ० सं० २५०।

चांद (फाँसी अंक)—इस अंक के सम्पादक—श्री चतुरसेनजी शास्त्री। प्रकाशन-स्थान—फाइन-आर्ट-प्रिंटिंग प्रेस २८, एलगिन-रोड, अलाहाबाद। पृ० सं० ३२४, इस अंक का मूल्य २)

महारथी (राजपूत अंक)—सम्पादक—श्री रामचन्द्र शर्मा बी० ए०। प्रकाशन-स्थान—महारथी-प्रेस, दिल्ली। पृ० सं० २००, इस अंक का मूल्य १), वा० मू० ५॥)

वृद्धि (मासिक)—सम्पादक—डा० आय० एच० बीटी, एम० ए० और श्री पं० दुर्गाप्रसाद। प्रकाशन-स्थान-वृद्धि कार्यालय, पी० ओ० बक्स २३५, सुवा फीजो। पृ० सं० ३५, वा० मू० ३ शिलिंग।

समाज के हाथ-पांव

किसान-मज़दूर युग में राष्ट्र-भाषा

"अभी थोड़े दिन हुए तुर्किस्थान के अध्यक्ष श्री वीरवर कमालपाशा ने अपने राज्य में अरबी लिपिका सर्वथा बहिष्कार और उसके बदले रोमन लिपि का आम प्रचार कर दिया है। अबसे सरकारी कचहरियों में, समाचार पत्रों में, पाठशालओं तथा कालेजों में सारांश तुर्किस्थान के हरएक लेखन सम्बन्धी कार्य में रोमन लिपि प्रयोग किया जायगा। यह भी कहा जा रहा है कि वीरवर कमाल ने अरबी लिपि एकदम भूल जाने के लिए अरबी लिपि में लिखे पुराने पत्रों तथा सरकारी कागज़ों को न देखने का निश्चय किया है।"

उपर्युक्त समाचार में कुछ अतिशयोक्ति भले ही हो पर इस में सन्देह नहीं कि श्री कमाल ने एक महत्वपूर्ण बात लोगों के सम्मुख रक्खी है और वह है, अधिक से अधिक लोगों में सुलभ साधन द्वारा ज्ञान और शिक्षा का प्रचार करना और तद्द्वारा तुर्की-राष्ट्र को संगठित करके उसे उन्नत बनाना। श्री कमाल ने इस कार्य द्वारा अपने सिद्धान्त के लिए बड़ा भारी त्याग किया है।

जन-साधारण की सुविधा और भलाई की दृष्टि से अरबी लिपि का इस प्रकार त्याग करना बहुत बड़ा त्याग है। हम यों कह सकते हैं कि जन-साधारण की सुविधा और भलाई अन्य चीज़ों से श्रेष्ठ है।

अफ़ग़ानिस्थान के श्री अमीर अमानुल्लाखां ने अभी-अभी जो पर्दा प्रथा-तोड़क कार्य किया है उसमें भी यही रहस्य है।

पेकिंग के बदले नानकिंग को स्वतन्त्र चीनी-राष्ट्र की राजधानी बनाने में भी इसी रहस्य का हाथ है।

यदि एशिया के इतने राष्ट्र—जिनमें रूस-बोल्शेविक रूस का भी समावेश अवश्य किया जायगा—जन-सुवि के लिए इतना कर रहे हैं तो क्या उसी एशिया के अ भारत-राष्ट्र जन-सुविधा के लिए कुछ न करेगा?

भारत में अंग्रेज़ी शासन होने के कारण आज किसानों, मज़दूरों और स्त्रियों को हर तरह की सुवि देकर उनकी उन्नति में सहायक नहीं हो सकते, लेकिन थोड़ी सुविधायें सरलता-पूर्वक उन्हें दे सकते हैं वे न हम अपने कर्त्तव्य से च्युत हो रहे हैं। इन सुविधा राष्ट्र-भाषा का प्रचार भी एक है।

आज बम्बई का एक मज़दूर पंजाब के दूसरे म से अपने सुख-दुःख नहीं कह सकता और इसी कारण परस्पर न तो प्रेम है और न सहानुभूति ही। यदि वे समान-रूप से हिन्दी जानने लगें तो बड़ी हो। एक मज़दूर या किसान के लिए अंग्रेज़ी पढ़ना पढ़ाना उतना सरल नहीं है जितना हिन्दी का पढ़ाना।

दूसरी बात यह है कि आज संसार-भर में जो बह रही है अगर वह स्थिर रही तो एक न एक दि स्वतन्त्र अवश्य होंगे। और उस समय हमें इन्हीं कि और मज़दूरों के उद्यमशील प्रतिनिधियों के सम्मिलित ह से राष्ट्र-निर्माण का ठोस काम करना होगा। ऐसी अ में यदि इन्हें अपने विचारों को प्रकट करने के लिए सुलभ भाषा अवगत न होगी तो राष्ट्र कार्य में बड़ी पड़ेगी। अतः अगर हम राष्ट्र निर्माण-के लिए आ राष्ट्र-भाषा का प्रसार अभी से नहीं करते तो उस हमें बड़ी अ-सुविधा होगी, हमारा काम रुक जायगा।

राष्ट्र-भाषा का प्रचार जितना आवश्यक है, भाषा जिनकी मातृभाषा है, उनकी ज़िम्मेदारी भी उ अधिक है।

ष्ट्र-भाषा का सुलभ होना एक बात है, और उस का महत्व लोगों के सम्मुख रख कर उन्हें उसे के लिए उत्साहित और प्रेरित करना दूसरी बात है। सरी बात की पूर्ति का सारा भार उन सज्जनों पर है, हिन्दी जिनकी मातृभाषा है।

न्य प्रान्तों की अपेक्षा हिन्दी भाषा-भाषी प्रान्तों पर का विशेष उत्तरदायित्व है। अभी जब मैं पूज्य जी से उनके आश्रम पर मिला था, उन्होंने मुझ से उत्तरदायित्व की चर्चा की थी।

महात्माजी की बात का स्मरण करते हुए तथा परि- को देखते हुए हिन्दी भाषा-भाषी उत्साही नवयुवकों निवेदन करने की इच्छा-सी होती है कि थोड़े उत्साही इसी एक कार्य के लिए अपना जीवन अर्पण ें।

हां राजनीति, धर्म और शिक्षा आदि क्षेत्रों में आज त्यागवीर दिखाई पड़ते हैं वहाँ क्या हमारी राष्ट्र- —जो भारतीय राष्ट्र को एकबद्ध करने का एकमात्र है और समय आनेपर जो विश्व-भर की भाषा होने रखती है—इन त्यागवीरों से वंचित रहेगी ?

सिन्ध, आसाम, उड़ीसा, बंगाल, बर्मा, मद्रास, कर्ना- आदि प्रान्तों में राष्ट्र-भाषा के प्रसार की अत्यन्त कता है। इनमें भी पूज्य महात्माजी के शब्दों में सिंध, उड़ीसा और आसाम की आवश्यकता बहुत बड़ी मद्रास प्रान्त में तो दक्षिण-भारत-राष्ट्र-भाषा-प्रसार- ति, देशभक्त श्री हरिहर शर्माजी के नेतृत्व में बड़े उत्साह यह कार्य कर रही है।

नवयुवक जो सुशिक्षित तो हैं पर कहीं अपनी नुसार स्थान न मिलने के कारण किंकर्त्तव्य विमूढ़- बैठे हैं यदि यह व्यापक एवं पवित्र कार्य अपने लें तो स्वयं उनका तथा राष्ट्र का बड़ा उप- ।

याग का हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन—जो इस राष्ट्र-कार्य रूप से करने का इच्छुक है—राष्ट्र-भाषा की सेवा सज्जनों से आशा रखता है कि वे इस सम्बन्ध में अपनी राय जाहिर करेंगे। अगर इस तरह के विचार-परामर्श के परिणाम-स्वरूप एक राष्ट्र-भाषा प्रचारक-संघ की स्थापना होजाय तो सम्मेलन इस कार्य को विशिष्ट रीति से पूरा करने की आयोजना कर सकेगा।

प्रस्तुत कार्य महत्व पूर्ण है और समयानुकूल भी। अतः इसका आरंभ जितना शीघ्र किया जाय उतना ही अच्छा होगा। आशा है, देश के विचारक और नवयुवा सेवक इस योजना पर विचार करेंगे और इस पर पर्याप्त प्रकाश डालेंगे।

राघवदास

गाँवों में ग़रीबी

भारतवर्ष के गाँवों में रहने वाले लोग—मुख्यतः काश्तकार और मज़दूर—कितने ग़रीब हैं, यह बात किसी से छिपी नहीं है। भारत की प्रति शत ७६ के लगभग जनता गाँवों में रहती है। और गाँवों में रहने वाले सैकड़ा ९५ लोग प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें खेती पर जीवन-निर्वाह करते हैं। इन लोगों की दैनिक आय बहुत ही कम है; कारण अधिकांश गावों में साल में चार पाँच महीने कोई काम ही नहीं रहता और कुछ गावों में तो साल में छः महीने काश्तकार और मज़दूरों को बेकार बैठे रहना पड़ता है। परिणाम यह होता है कि उनको छः महीने की कमाई पर ही सारा साल बिताना पड़ता है। जिससे कर्ज़ लेकर या भूखों मरकर गुज़र बसर करनी पड़ती है।

मालवा और राजस्थान की हालत देखकर कलेजा मुँह को आता है। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, अल्पवृष्टि आदि के कारण एक न एक ज़िले या राज्य में अकाल बना ही रहता है। इन प्रान्तों में दरिद्रता का अटल साम्राज्य छाया हुआ है। अतएव प्रत्येक देश-हितैषी भारतीय का सर्व-प्रथम कर्त्तव्य है कि वह किसानों और मज़दूर पेशा लोगों की माली हालत सुधारने की कोशिश करे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए शहरों और कस्बों तथा सड़क और रेल के पास वाले मौज़ों में ही काम करने से काम नहीं चल सकेगा। सड़कों और रेल से बहुत दूर घोर दरिद्र और कम आबाद गावों में जाकर काम करना होगा।

मालवा और राजस्थान के अधिकांश गावों में रबी की

फ़सल होती नहीं या बहुत ही कम होती है। इन गावों के काश्तकारों को साल में पाँच छः महीने बेकार बैठना पड़ता है। इसलिए यह ज़रूरी है कि देहातियों को ऐसे काम-धंधे सिखलाये जायँ, जिनके द्वारा वे बेकारी के दिनों में थोड़ा-बहुत कमा सकें। सूत कातना और खादी बुनना ही एक ऐसा उत्तम धन्धा है, जो हरएक गांव में नाम-मात्र की पूँजी से ज़ारी किया जा सकता है और स्त्री-पुरुष और बालक सभी इसे कर सकते हैं। महात्माजी के प्रयत्न से खादी-प्रचार का कार्य ज़ोरों से ज़ारी है। सूत कातने और खादी बुनने के अलावा और भी कई ऐसे धन्धे हैं, जो थोड़ी पूँजी से देहात में चल सकते हैं।

कपड़ों की छपाई, दरी, मोजे, गुलुबन्द, बनियान आदि बनाना; मोम, लकड़ी आदि के खिलौने बनाना; सूत, नरेटी, हड्डी, लकड़ी, सींग, आदि से बटन, कंघा-कंघी वगैरह तैयार करना; लकड़ी के होल्डर, दीयासलाई की डिब्बियाँ, कार्ड-बोर्ड के डिब्बे, टीन के बटन आदि बनाना आदि व्यवसाय देहातों में चल सकते हैं और थोड़े से परिश्रम से देहाती जनता इनको आसानी से सीख भी सकते हैं। कहीं-कहीं सुगंधित तेल, अगरबत्ती, कपड़े धोने का साबुन, कागज़ के लिफ़ाफ़े, लकड़ीके क़लमदान, स्याही-सोख़ के दस्ते आदि बनाने की विशेष सुविधा है।

यहाँ सवाल उठ सकता है कि पूँजी के बिना कैसे काम चल सकेगा और देहात में पूँजी मिलना मुमकिन नहीं है। हमारा निज का अनुभव है कि सच्ची लगन से काम करनेवाला हज़ार पाँच-सौ की पूँजी से बहुत कुछ काम कर सकता है। हम एक ऐसे व्यक्ति को जानते हैं, जिसने सौ की पूँजी से स्लेट पट्टी व पेंसिल बनाने का कार्य आरम्भ किया और दो ही वर्ष में उसका काम अच्छी तरह चल निकला।

देहात में इन व्यवसायों को शुरू कर देने-मात्र से काम नहीं चल सकता है। इनकी जड़ मज़बूती से जमाने के लिए यह भी ज़रूरी है कि तैयार माल की बिक्री का प्रबन्ध किया जाय। धीरे-धीरे स्वदेशी वस्तुओं का प्रचार बढ़ रहा है और इस ओर लोगों की रुचि भी बढ़ती जा रही है। यदि स्वदेशी वस्तु बेंचने के लिए भण्डार खोले जायँ तो माल भली प्रकार बेंचा जा सकता है। हमारा नि
का अनुभव है कि देशी माल शहरों में भरा पड़ा रहता है
और देहात में विदेशी माल-ख़ूब बिकता है। यदि प्रार
में देहात में बिकनेवाला माल ही तैयार किया जाय
भी कोई हानि नहीं। बटन, दरियां, नाड़े, कपड़े धोने
साबुन, सीने का धागा, छपे कपड़े, अगरबत्ती, मोम
लकड़ी के खिलौने, बदन पोंछने के तौलिये आदि
देहात में सस्ते में बन सकतीं और खूब बिक सकती हैं।
तौलिये, अगरबत्ती, बटन, खिलौने, और नाड़े तो शहरों
दूनी तिगुनी क़ीमत पर बेंचे जा सकते हैं। नरेटी, खजूर
गुठली और सीप के बटनों की क़ीमत भी शहरों में
आती है। यदि सहयोग-संस्थाओं द्वारा ख़रीदी बिक्री
जाय तो ज़्यादा फ़ायदा हो सकता है।

इन्दौर रियासत में रामपुरा और खड़ावदा में
सरोते, चाकू, गुप्तियाँ अच्छी बनती हैं, किन्तु माल की
न होने से यह व्यवसाय मृत-प्राय सा हो रहा है। ना
गढ़ में स्लेटें व पेंसिलें बनती हैं। बोलिया, कुकड़ेश्वर
में जाज़में अच्छी होती हैं। ग्वालियर में गुलाना के
अच्छे होते हैं। सारंगपुर, महेश्वर आदि का हाथ का
कपड़ा अपना सानी नहीं रहता। ग्वालियर और इन्दौर
तिजोरियाँ, फ़र्नीचर वग़ैरा भी बनते हैं। राजपूताने में
दाँत और चन्दन की नक्क़ाशी का काम होता है। कहीं
चित्रकारी भी अच्छी होती है। किन्तु भारत का
विदेशी चीज़ों से भरा पड़ा है। और अभी तक लोग वि
यती चीज़ों का इस्तेमाल करने में गौरव समझते हैं।
के दिलों से इस थोथे गौरव को मिटाना होगा।
किशनगढ़, गोदरेज़ आदि देशी साबुन छोड़कर 'प
सोप' का इस्तेमाल खूब होता है। हमारे नेताओं
व्यापारियों को देहात में देशी चीज़ों का प्रचार करने
कोशिश करनी चाहिए। देहात में हर जगह 'सन-लाइट'
मिल सकता है मगर मैसूर का साबुन उज्जैन, सार
मन्दसौर, नीमच, उदयपुर जैसे शहरों तक में नहीं मिल
बिना उद्यम और प्रयत्न के कुछ न हो सकेगा।
देहात में बिक्री का प्रबन्ध न किया जायगा देशी माल
प्रचार होना असम्भव सा है।

शंकरराव जो

संघर्ष और जागृति

सुधार पर भारत-सरकार का ख़र्च !

त में कृषि-काम की आलोचना' (१९२६–२७) पुस्तक में कृषि-विभाग के आय-व्यय के अंक दिये उससे पता चलता है कि भारत में कृषि-सुधार पर सरकार क्या ख़र्च करती है। ई प्रान्त में प्रतिवर्ष खेती पर कुल १६,४२,२००) जाते हैं। भारत-सरकार और प्रान्तीय सरकारें कर कुल १,०३,५०,१७३) कृषि-काम के लिए ती हैं। भारत में ज़मीन की लागत का औसत पता चलता है कि हमारे यहाँ एकड़ पीछे जो या जाता है, उसका पाँच गुना जापान और ८ गुना में होता है। जहाँ भारत में ख़र्च की औसत फ़ी पाई है, वहाँ अमेरिका में वही ६ आना है। फिर बात यह है कि अमेरिका में कृषि पर निर्भर करने प्रतिशत ३० हैं, दूसरे शब्दों में भारत के आधे हैं। भारत की तुलना में जापान में खेती कुछ बर होती है फिर भी जापान-सरकार कृषि-सुधार प्रतिवर्ष ५ करोड़ रुपये ख़र्च करती है, अर्थात् सरकार से ५ गुना अधिक !

न्त्र और परतन्त्र राष्ट्र में यही न फ़र्क है ?

जगह पर बाढ़ें और अकाल

भूमि' के बारहवें अंक में देश में खेती की दशा करते हुए सरकारी रिपोर्ट के आधार पर हमने ने की चेष्टा की थी कि कुछ प्रान्तों को छोड़कर प्रान्तों में पानी न बरसने से खेती का कितना रहा है। तब से अबतक में इस ओर कई परि- हैं। पंजाब में तो पिछले दिनों श्रीनगर और के आसपास ऐसी घनघोर वर्षा हुई कि कई दिनों तार, डाक सब स्थगित रहे। यात्री जहाँ के तहाँ कई लोगों के प्राण संकट में पड़े। नदियों में बाढ़ आई कि कई गाँवों और शहरों को नुक- [illegible]। धन, जन और मवेशी का नाश हुआ तथा खेती बिगड़ गई। इतने पर भी यह सन्तोष की बात है कि इस बाढ़ से जितनी आशंका थी उतना नुकसान नहीं हुआ। बिहार और बंगाल में तो कहीं अतिवृष्टि और तज्जन्य बाढ़ के कारण तो कहीं अनावृष्टि और तज्जन्य दुर्भिक्ष के कारण अब तक लोगों की हालत संकट में है। खेती की हालत आशाजनक नहीं कही जा सकती। धनीमानी सज्जन, सार्वजनिक संस्थायें और कार्यकर्ता बाढ़ एवं अकाल-पीड़ितों के कष्ट-निवारणार्थ तरह-तरह के उद्योग कर रहे हैं लेकिन आख़िर जनता जनता के लिए कितना कर सकती है ? भारत की गरीबी प्रसिद्ध ही है। ऐसी हालत में एक प्रान्त का दूसरे प्रान्त के सारे आर्थिक कष्टों को दूर करना संभव नहीं। प्रान्तीय सरकारें इस सम्बन्ध में बहुत कुछ कर सकती हैं, उन्हें करना चाहिए, लेकिन दुःख के साथ कहना पड़ता है, अबतक उन्होंने जो कुछ किया है वह बहुत थोड़ा और अपर्याप्त है। ग़रीबी के घर उड़ीसा की दशा भी कुछ ऐसी ही है। इधर मद्रास में गत २०–२१ अक्तूबर के दिन घोर वर्षा हुई जिसके फल-स्वरूप कई दिनों तक रेल, तार, और डाक के काम में अव्यवस्था बनी रही। रेल के कई पुल टूट गये। लोगों को अत्यधिक क्षति उठानी पड़ी। ५ आदमी डूब मरे। सैकड़ों मवेशी बह गये। ५०० छोटे-छोटे मकान गिर गये और कई हज़ार का नुकसान हुआ। लोगों को वृक्षों और मकान की छतों पर रहना पड़ा। विजगापट्टम और पूर्व गोदावरी के ज़िलों में इस बाढ़ से जनता की विशेष हानि हुई। तिसपर भी मद्रास-सरकार ने दोनों ज़िलों को क्रमशः १०,०००) और २०,०००) की सहायता देना मंजूर किया था !

इधर संयुक्तप्रान्त में भी इस बार घोर अकाल पड़ने की संभावना थी। परन्तु भगवान् ने लोगों की सुन ली। 'मेह बरस गया और इतना बरस गया कि जिससे रबी की फ़सल मज़े में हो सकेगी, अच्छी हो सकेगी।' फिर भी किसानों के कष्टों का अन्त नहीं हुआ है। किसी को बीज की जरूरत है और किसी को बरत, पुर आदि सामान की। कई लाचार अपने मवेशी बेच चुके हैं। उन्हें बैलों और भैंसों को फिरसे ख़रीदने के लिए रुपये चाहिएँ। जनता को अपने अन्नदाता किसानों की मदद के

लिए दौड़ पड़ना चाहिए था और वह दौड़ भी पड़ी। झांसी के प्रान्तिक सम्मेलन में अकाल–पीड़ितों की सहायता के लिए प्रान्त के सार्वजनिक कार्यकर्ताओं की एक समिति का संगठन हुआ है और उसने अपना काम भी शुरू कर दिया है। प्रान्त की सरकार ने अबतक कुल एक करोड़ १० लाख की तक़ावी बाँटी है। बुन्देलखण्ड में डेढ़ लाख का अनाज़ बाँटा है और रबीवाली किस्त की ३,४४,०००) की मालगुजारी माफ़ और २७,०००) की मुअत्तल कर दी है। अधूरी शारदा नहर से ८० हज़ार एकड़ धान और ईख की सिंचाई की गई है। जंगल से घास कटवाने का हुक्म भी दिया है। लेकिन इतने से सारे प्रान्त की भूख नहीं मिट सकती। सरकार को चाहिए था कि वह जनता की उसके इस कष्ट में दिल खोल कर मदद करती। नहरों के होते भी लोग अपनी ज़रूरतें पूरी नहीं कर सकते। जो थोड़ा-बहुत उपयोग कर पाये हैं, वे सिंचाई के कर के भार से लद गये हैं। मवेशी के लिए काफ़ी तादाद में घास नहीं है। इन सब कष्टों को दूर करने में सरकार की ज़िम्मेदारी बहुत बड़ी है और लोक-नेताओं की भी। एक अपना कर्त्तव्य पाले दूसरे अपना फ़र्ज़ अदा करें, तभी न यह समस्या हल होगी ?

बम्बई प्रान्त में सिन्ध को छोड़ कर और सब जगहों की हालत अगर सन्तोषजनक नहीं तो चिन्ताजनक भी नहीं है। यही बात राजपूताना मध्यप्रान्त, मध्यभारत आदि के सम्बन्ध में कुछ फेर बदल के साथ कही जा सकती है।

संक्षेप में पिछले महीनों देश की कृषि-सम्बन्धी अवस्था का यही चित्र है। यद्यपि यह चित्र नयनानन्दकर नहीं तथापि इसकी भयंकरता में से एक सुफल भी खिला है और वह है, देशभर के किसानों में अपनी अवस्था और अधिकार के विषय में जागृति। पिछले महीनों बम्बई प्रान्त में दो तीन

बारडोलियाँ पैदा हो गईं

जिनका संक्षिप्त परिचय पाठकों के लिए मनोरंजक और शिक्षाप्रद होगा। नासिक ज़िले में बागलाण और मालेगांव नामक दो ताल्लुके हैं। बंदोबस्त-विभाग के अधिकारियों ने यहां भी बहुत अधिक याने ३४ से ४८ प्रति शत लगान-वृद्धि की सिफ़ारिश की है ! इसके फल-स्वरूप दोनों ताल्लुक़ों
जनता बड़ी विकल हो उठी है और उसने
सभायें करके सरकार के इस अन्याय-कार्य का तीव्र
किया है। सारा महाराष्ट्र इन लोगों के साथ है और
के कई ज़िम्मेदार नेता किसानों की सहायता के लिए
हैं। 'टाइम्स' के पन्नों में बागलाण को बारडोली का
संस्करण कहा गया है और जनता के नेताओं को
कारी तथा बाहरी ! किसान हर तरह की क़ानूनी
कर चुके हैं, फिर भी सरकार चुप है और अपने
निश्चय पर क़ायम है। किसान भी लगान-घटती के
अभाव में लगान न जमा करने के लिए तुल गये हैं।
सत्याग्रह छेड़ दिया है। हमें आशा है, इस अन्याय के
में जनता और उसके नेताओं की विजय होगी और
को विवश होकर उसकी बात क़बूल करनी पड़ेगी
जनता बिलकुल शान्त और न्याय्य उपायों से
और लगान न देने का अपना निश्चय क़ायम रक्खे।

दूसरी या तीसरी बारडोली इसी प्रांत के मिरज
जन्मी है। यहां के अधिकारी सरकारी अधिकारियों
दो क़दम आगे बढ़ गये हैं और उन्होंने ठिकाने
पर कहीं ६० तो कहीं ७८ प्रति शत लगान-वृद्धि
रिशें की हैं। गुलाम भारत के अन्नदाताओं की
इससे बढ़कर और क्या उदाहरण होगा ? आख़िर
की भी हद होती है। जनता इस अन्याय को सह
और उसने ठिकाने के अधिपति के पास अपने
धियों का एक डेपुटेशन भेजा। अधिपति ने
मिलना मंजूर न किया। इसपर जिन गांवों में
वसूल करने का काम शीघ्र ही शुरू होनेवाला था
समस्त जनता सहस्त्रों की संख्या में मिरज के लिए
होगई और अधिपति के राजमहल के सामने आकर
डाल दिया। जनता में हर जाति और हर स्थिति के
थे। सब तीन-तीन चार-चार दिन की रोटी अपने
लाये थे। फिर से लगान-वृद्धि की जाँच करने या
का वचन पाकर ही वहाँ से हटने के लिए जनता
हो चुकी थी। जनता के नेताओं ने, जिनमें श्री
पुण्डलीक और श्री जयकर के नाम उल्लेखनीय हैं,

शांत और अहिंसात्मक रहने का एवं हरतरह के ने का उपदेश दिया। दल-की-दल जनता राज-ड्योढ़ी अपनी शिकायतें सुनाने लगी; बड़ी प्रतीक्षा और अनुनय के बाद मिरज ठिकाने के अधिपति साहब ने जनता के प्रतिनिधियों से मिलना स्वीकार और जनता के दृढ़ संकल्प और प्रतिनिधियों के सच्चे का पता पाकर विवश हो उन्हें पीड़ित किन्तु तुले हुए किसानों की बात स्वीकारनी पड़ी। स्वयं बाला साहब ड्योढ़ी तक आये और हज़ारों की उपस्थित जनता के सामने फिर से जाँच करने की की। श्रीबाला साहब ने कहा 'मैं और श्री पुण्डलीक के गांवों में आकर लगान-वृद्धि की जाँच करेंगे तक जाँच पूरी न होगी लगान वसूल नहीं किया ।" जाँच समिति में किसानों के दो प्रतिनिधि और बाला साहब हैं। दोनों प्रतिनिधियों को बरा- जाँच में भाग लेने का अधिकार होता और किसानों विजय बारडोली की विजय से भी बढ़ जाती बाला साहब अपनी प्रतिज्ञा भग न करते। उन्होंने ड्योढ़ी और जनता बाल-बच्चों और स्त्रियों के साथ संख्या में फिर मिरज आ धमकी। उसने विरोध शान्त सत्याग्रह छेड़ दिया। हमें आशा है, जनता और इससे देश के कृषकों को अपने अधिकारों के तत्परता और शान्ति-पूर्वक लड़ने की स्फूर्ति और उसके देश-व्यापी संगठन में बल आवेगा।

बारडोली में

और ग़ैर सरकारी जाँच आरम्भ होगई है। दूसरी ने तो अपनी सिफ़ारिशें भी प्रकट कर दी जाँच के कार्य-क्रम का जो समाचार 'नवजीवन' वह बड़ा ही शिक्षाप्रद व स्फूर्ति-दायक है; बार- के बाद बारडोली तालुक़े की सामाजिक, आर्थिक, और राजनैतिक अवस्था में इतना हुआ है कि सुनकर दंग रह जाना पड़ता है। देश और ख़ास कर देश के सार्वजनिक नेता में बारडोली का अनुकरण करें तो देश भर के किसानों में अपूर्व जीवन, जागृति, बल और बलिदान की भावनायें पैदा हों और देश की स्वाधीनता का मार्ग सरल और निरापद हो गया।

बिहार में पश्चिमी पटना, शिवहर और बेलसण्ड स्थानों के किसान भाइयों ने सम्मेलन और सभायें करके कई उपयोगी और अनुकरणीय प्रस्ताव पास किये हैं, अगर इन प्रस्तावों को अमल में लाया जाय तो अच्छा हो।

काठियावाड़ के भावनगर राज्य की प्रजापरिषद् का वार्षिक सम्मेलन अभी थोड़े दिन पहले होकर चुका है। इस सम्मेलन में राज्य से लगान-वृद्धि की जाँच करवाने की प्रार्थना की गई है और किसानों की हरतरह की उन्नति से सम्बन्ध रखने वाले कई उपयोगी प्रस्ताव और मांगें पास हुई हैं। जिनमें, किसानों को ज़मीन पर पूर्ण अधिकार देने, उन्हें ऋणमुक्त करने, उचित सूद पर ऋण मिलने के लिए सहकारी बैंक खोलने, सामाजिक कुरीतियाँ नष्ट करने, प्राथमिक शिक्षा देने, गाँवों में खेती की शिक्षा का प्रचार करने, पटेलों का वेतन बढ़ाने, हथियार रखने, आरोग्य और ज्ञानवृद्धि के लिए औषधालय तथा पुस्तकालय खोलने, गोचरभूमि छुड़वाने और मवेशी की नस्ल सुधारने आदि के प्रस्ताव मुख्य और विचारणीय हैं।

मज़दूर संसार

उस दिन झांसी के प्रान्तीय सम्मेलन में मज़दूरों की समस्या पर बोलते हुए श्री झाबवाला ने कहा—

"बड़े आश्चर्य की बात है कि खेतों पर अन्न पैदा करनेवाले और मिलों में कपड़े बनानेवाले भूखे और नंगे रहें। और ज़मींदारों तथा मालिकों के भण्डार भरे पूरे! यह अन्याय है और इसका प्रतीकार होना चाहिए। वर्तमान सरकार की शासन-नीति ही अन्यायपूर्ण है। जनता को चाहिए कि मौक़ा मिलते ही वह इस फ़ौलादी चौखट को उलट-पलट दे और ऐसी शासन-पद्धति क़ायम करे जिसमें २८ करोड़ देशभाई सुखपूर्वक रहे सकें। खेद की बात है कि हमारे मज़दूर भाइयों को दुहेरी लड़ाई लड़नी पड़ती है; एक अंग्रेज़ी साम्राज्यवाद से और दूसरी भारतीय पूंजीपतियों से। इसमें शक नहीं कि भारत के मज़दूर सारे संसार को शान्तिपूर्ण स्वतन्त्रता देने योग्य हैं। बम्बई की अभूतपूर्व लम्बी हड़-

ताल इस बात का प्रत्यक्ष उदाहरण है। अगर उन्हें देशवासियों की ओर से थोड़ी भी मदद या प्रोत्साहन मिले तो वे बहुत-कुछ कर सकते हैं। लेकिन खेद है कि देश इस ओर से उदासीन है। सारे भारत के श्रमी-संसार में इस समय भीतर ही भीतर क्रांति की आग सुलग रही है, अतः जो लोग उन्हें दबाना चाहते हैं उन्हें सावधान होकर मज़दूरों को समानता का हक़ दे देना चाहिए। इस समय देश-भर के मज़दूरों का एक प्रजातंत्रात्मक संगठन होना चाहिए। इस संगठन का मुख्य कार्य-क्रम यह रहे—(१) बेगार या ज़बर्दस्ती से मज़दूरी कराने की प्रथा का उन्मूलन, (२) साहूकारों की लूट से रक्षा, (३) ग्राम-पंचायतों का निर्माण, और ज़मींदारों के अत्याचार से सुरक्षा।"

पंडित जवाहरलाल ने कहा—

"कितने ही श्रमजीवी उपर्युक्त भोजन, वस्त्र और गृह नहीं पाते। हमें वृद्धों, मरीजों, गर्भवती स्त्रियों आदि की भी चिंता करनी है। इसका कैसे प्रबन्ध हो सकता है? बिना अति धनी का धन लिये आप यह कदापि नहीं कर सकते। जिनके पास ज़रूरत से ज्यादा है उनसे लेकर उन्हें देना चाहिए जिनके पास ज़रूरत से कम है। ठीक प्रकार से कर का प्रबंध करने से ऐसा किया जा सकता है।

"श्रमजीवियों की शक्ति बढ़ाने के लिए आवश्यक है कि श्रमजीवी-सङ्घ बन सकें। श्रमजीवियों को अपनी उन्नति करने का पूरा अवसर मिलना चाहिए। उचित है कि किसी भी श्रमजीवी से ८ घंटे प्रति दिन से अधिक काम न लिया जाय और हर सप्ताह में १॥ दिन उसे छुट्टी मिले। उसके स्वास्थ्य आदि के लिए भी पूरा प्रबन्ध किया जाय। हमारा कर्त्तव्य है कि हम जन-साधारण की शक्ति बढ़ावें और स्वराज्य के लिए यत्न करें।"

उस दिन राष्ट्रीय महासभा के दिल्लीवाले अधिवेशन में पंडित जी ने देशभर में यत्र-तत्र-सर्वत्र हड़ताल करने वाले मज़दूर भाइयों के प्रति सहानुभूति प्रकट करने और भूख, प्यास तथा कष्ट सहन करके अपने अधिकारों के लिए सरकार और मिल-मालिकों से लड़ने की उनकी शक्ति की प्रशंसा करने के आशय का एक प्रस्ताव पेश किया था और वह बहुमत से पास भी हुआ!

बम्बई के मज़दूर

सन् १९२७ को फैक्टरी रिपोर्ट हाल में प्रकाशि
है। उसे पढ़ने से पता चलता है कि
संतोषजनक है और अहमदाबाद आदि शहरों की
मज़दूरों के हितार्थ कई तरह की सुविधायें करती हैं।
उम्र के लड़के मिलों में भर्ती नहीं किये जाते। मज़
बस्ती की और उनकी ज़िस्मानी सफ़ाई के लिए
प्रबन्ध किया जा रहा है। कुछ कारख़ानों में हवा के
लगाये गये हैं। कुछ हड़तालें भी हुईं। दुर्घटनाओं की
बढ़ी पर गंभीर दुर्घटनायें कम हुईं। मज़दूरों के
स्वतन्त्र मकान और चालें अधिक संख्या में बनाई
अस्पताल भी खोले गये हैं। अहमदाबाद की
में मातृगृह की व्यवस्था है जहाँ बच्चों और गर्भवती
का इलाज विशेष रूप से किया जाता है। अहमदा
आठ मिलों में लड़कों की शिक्षा का प्रबन्ध भी है।
की दो-चार मिलों में छोटी उम्र के बच्चों के लिए भी
शालायें खोली गई हैं।

अभी यह पूर्ण सन्तोषजनक प्रबन्ध नहीं है,
में मज़दूरों की दशा सुधारने के लिए काफ़ी
और हम आशा करते हैं कि अगले वर्षों में ये
की जायँगी।

ऊपर की बातों से पता चलता है कि देश में
का आन्दोलन ज़ोर पकड़ रहा है और एक
संगठन द्वारा वे स्वाधीन और स्वावलम्बी होना
अगर यह ठीक है तो हमारी नम्र सम्मति में मज़दूर
को अपने उद्धार के लिए आप प्रयत्न करना चाहिए।
आवश्यकता और महत्व की बात यह है कि उनमें
प्रचार हो और वे अपना संगठन और नेतृत्व
लायक हो जायँ। आदमी अपना काम स्वयं जिस
और लगन से कर सकता है वैसा दूसरा कोई
सकता। इसलिए अन्य राजनैतिक नेताओं के द्वारा
जीवियों की उन्नति और कष्टों में कमी भले ही हो
भावी समाज में उनका अपना और सर्वोपरि स्थान
सकता जबतक वे स्वयं अपने पैरों पर खड़े
जायँ। सरकार की शरण लेने, केवल नेताओं पर
रखने या पूँजीपतियों की दया की आशा रखने से
मनचाहा हित न हो सकेगा।

सम्पादकीय

युगोस्लेविया का भविष्य

गत यूरोपीय महायुद्ध के परिणाम-स्वरूप जो राष्ट्र बने हैं, उनमें युगोस्लेविया भी एक है। इसे बहुत से छोटे-छोटे प्रान्त मिलाकर बनाया गया है। सबसे पहले १९१८ के नवम्बर में क्रोटिया, स्लैवोनिया, इस्ट्रिया, बोस्निया, हर्ज़िविना और दक्षिणी हंगरी, सर्विया और मांटिनिग्रो आदि के स्लेवों ने इकट्ठे होकर एक कौंसिल की। यहीं से इस राष्ट्र-निर्माण का सूत्रपात हुआ। इसके ठीक दो साल बाद १९२० में उपर्युक्त सब ज़िलों से ४२० प्रतिनिधि चुने गये और युगोस्लेविया की राष्ट्र-सभा बनी। सर्विया का राजा अलैक्ज़ैण्डर ही इस नवीन राष्ट्र का राजा नियत हुआ। उपर्युक्त प्रदेशों के नामों के देखने से स्पष्ट हो जायगा कि इस राष्ट्र का निर्माण 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानुमती ने कुनबा जोड़ा' इस सिद्धांत पर हुआ है। इस राष्ट्र में एक जाति नहीं है, किन्तु तीन जातियाँ—सर्ब, क्रोट और स्लोवन—हैं। जिनकी भिन्न-भिन्न राष्ट्रीयता है। इनमें इन आठ-दस सालों तक इकट्ठा रहने पर भी एक-राष्ट्रीयता का भाव उत्पन्न नहीं हो सका है। तीनों अपनी-अपनी पृथक् सत्ता बनाये रखना चाहते हैं। इसलिए वहाँ की आन्तरिक स्थिति अच्छी नहीं है। क्रोट लोग तो स्वतन्त्रता के लिए बहुत अधिक आन्दोलन कर रहे हैं, उनके आन्दोलन की तीव्रता को देखकर कभी-कभी यह सन्देह होने लगता है कि यह ज़बर्दस्ती बनाया गया राष्ट्र अब टूटा।

यह विरोध वैसे तो कई साल से चल रहा था, इसके बढ़ाने में जो अभी कारण हुआ, वह यह है कि के दबाव में आकर युगोस्लेविया ने नेट्टुनो (Nettuno की सन्धि करके एड्रियाटिक के तट पर के तीस मीलों प्राचीन क्रोट-राज्य का एक भाग है, इटली को उप स्थापना का अधिकार दे दिया है। इसके विरुद्ध क्रोट कुछ समय से आन्दोलन कर रही है। क्रोटजनता के दल के नेता स्टैफन रैडिच (Stefan Raditch इसका बहुत ज़ोरों से विरोध किया। इसी प्रश्न पर बार युगोस्लेविया की पार्लमेण्ट में इतना झगड़ा हो कि सर्ब लोगों ने क्रोट-प्रतिनिधियों पर हमला कर दो सदस्य मर गये और रैडिच घायल हो गया। इस टना से क्रुद्ध होकर रैडिच ने क्रोटिया की राजधानी में 'जेबश' नाम से अपनी पार्लमेण्ट स्थापित की। क्रोट ने विद्रोह कर दिया। बहुत से सरकारी मकान तोड़ पुलिस ने बड़ी क्रूरता से दमन किया। कई मारे गये, से घायल हुए, २०० पकड़े गये और क्रोटिया में शल्लॉ जारी कर दिया। तीन मास पूर्व रैडिच का भी हो गया। क्रोटजनता सर्विया से पृथक् होने की कोशिश कर रही है।

इस स्थिति की चर्चा यूरोप के समाचारपत्रों में अधिक हो रही है। लण्डन के 'मॉर्निङ्ग पोस्ट' ने तो है कि रैडिच की मृत्यु केवल युगोस्लेविया ही नहीं, यूरोप की शान्ति के लिए भी असीम प्रभाव रखती है।

पाठकों को याद रखना चाहिए कि गत युद्ध का पात भी सर्विया से प्रारम्भ हुआ था।

इस नवीन राष्ट्र के निर्माण में इङ्गलैण्ड का बड़ा हाथ था, इसलिए वर्तमान विकट स्थिति से उसे दुःख आवश्यक है। इसी सम्बन्ध में श्रीयुत विकम युगोस्लेविया के राजा अलैक्ज़ण्डर को एक लम्बा पत्र है। हम पाठकों की जानकारी के लिए उसका आशय नीचे देते हैं।

तीनों जातियां बहुत समय पूर्व चौदहवीं सदी में पृथक् पृथक् थीं। तीनों की प्रवृत्तियां भी भिन्न-भिन्न समय पाकर आस्ट्रिया ने क्रोटिया और स्लोवानिया के लिए

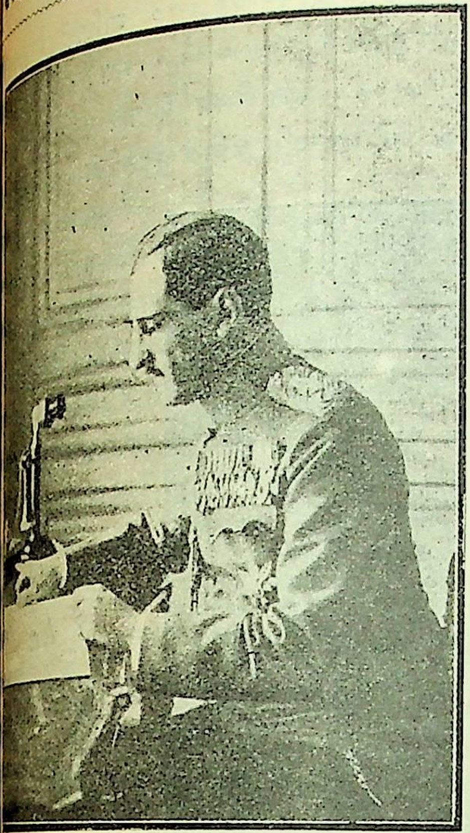

युगोस्लेविया का वर्तमान राजा अलैक्ज़ण्डर

इन जातियों में कोई एकता का भाव न रहा । में आस्ट्रिया हंगरी राज्य के सर्ब और क्रोट लोगों ने एकता का विचार किया । इसके परिणाम-स्वरूप की एक सम्मिलित संस्था भी बन गई । परन्तु उस उन्होंने एक दूसरे के भेदों को दूर करने का यत्न िया, केवल उन्हें ढांप करके ही रह गये । उस र्विया ने इस आन्दोलन में कोई भाग नहीं लिया । मय वह बलगेरिया से व्यापारिक संधि करने के प्रयत्न हुआ था । १९०५ ई० के शीतकाल में वह संधि । इसमें अपनी स्वार्थ-हानि देखकर आस्ट्रिया हंगरी पर बुरी तरह बिगड़ा । सर्विया के साथ की गई तोड़ दी गईं और उसके लिए अपने बाज़ार भी दिये गये । सर्विया ने इससे निराश न होकर ज़ार ढूंढ लिये । इससे आस्ट्रिया में सर्विया के विरुद्ध गये ।

इधर उन दिनों सर्ब और क्रोट लोगों के परस्पर मिलने के आन्दोलन ने बहुत ज़ोर पकड़ लिया । इस आन्दोलन को कुचलने के उद्देश्य से आस्ट्रिया की सरकार ने दोनों में परस्पर फूट डालने के बहुत प्रयत्न किये । उसने इसे तथा दक्षिणी स्लैवों के आन्दोलन को दबाने के लिए भी कई षड्यन्त्र किये, परन्तु उनका परिणाम अच्छा ही हुआ । क्रोट जनता को यह निश्चय हो गया कि आस्ट्रिया हंगरी के शासन में हमारे साथ न्याय न होगा, सर्विया से धार्मिक और राजनैतिक समानता के सिद्धांत पर मिल कर रहना ही अच्छा है । यह प्रवृत्ति शनैः-शनैः बढ़ने लगी । आस्ट्रिया हंगरी की क्रोट, सर्ब और स्लोवन जनता सर्विया को अपना हितैषी समझने लगी । इस अवसर पर आस्ट्रिया की सरकार ने ठीक उसी तरह इस आन्दोलन को सर्विया का बृहत् सर्ब (Pan-serb) आन्दोलन कह कर बदनाम करना शुरू किया, जिस तरह भारतीय सरकार स्वराज्य-आन्दोलन को ब्राह्मण आन्दोलन कहकर अब्राह्मणों को इससे पृथक् रखने की चेष्टा करती है । इस कूटनीति का यद्यपि अभीष्ट फल न हुआ तथापि इससे इस नये आन्दोलन के प्रारम्भ में ही तीनों जातियों में परस्पर विरुद्ध भाव कुछ न कुछ घर ज़रूर कर गये । और वे भाव आज तक भी—एक राष्ट्र में तीनों के आठ-दस साल तक इकट्ठे रहने के बाद भी—दूर नहीं हुए । कुछ सर्ब युगोस्लेविया के नवीन राष्ट्र को बृहत्तर सर्विया (Greater Serbia) कह कर क्रोट जनता के दिल में असन्तोष पैदा कर रहे हैं । यह पारस्परिक विद्वेष यहाँ तक बढ़ा कि युगोस्लेविया की राष्ट्र-सभा (Skupshtina) में दो सदस्यों की हत्या तक हो गई ।

इतना लिखने के बाद श्रीयुत विकम स्टीड ने बड़ी मार्मिक भाषा में युगोस्लेविया की तीनों जातियों को इकट्ठा रहने का उपदेश किया है और लिखा है कि गत यूरोपीय युद्ध में मारे गये वीरों ने अपने रक्त से इस राष्ट्र का निर्माण किया किया है, इसलिए इस राष्ट्र को बचाये रखना उनका कर्त्तव्य है ।

इस पत्र का आशय लिखने से हमारा मुख्य अभिप्राय केवल यूगोस्लेविया के भविष्य को पाठकों के सामने रखना

नहीं है परन्तु उपर्युक्त इतिहास से हम क्या शिक्षा ले सकते हैं, यह दिखाना भी हमारा मुख्य उद्देश्य है। सर्ब और क्रोट लोगों के एकता के प्रयत्न के आन्दोलन में प्रयुक्त की गई आस्ट्रियन सरकार की कूट-नीति का प्रभाव अबतक दूर नहीं हुआ। राष्ट्र-निर्माण के लम्बे काल में जो आन्दोलन अच्छे या बुरे चलते हैं, वे जाति के विशेष चरित्र (Character) को बना देते हैं। आज का काल भारतीय राष्ट्र के निर्माण का काल है, इसलिए हमें सम्हल कर प्रत्येक क़दम रखना होगा; सांप्रदायिकता को जड़ से नष्ट करना होगा। आज के आन्दोलन भावी भारतीय राष्ट्र के चरित्र (Character) को बनावेंगे, यह ख़याल हमें हर समय रखना होगा।

संयुक्त-राष्ट्र के नये राष्ट्रपति

गत ६ नवम्बर को अमेरिका का नया चुनाव हो गया। वर्तमान राष्ट्रपति कूलिज तो इस चुनाव में नहीं खड़े हुए थे। वहाँ के रिपब्लिकन और डैमोक्रेट दल ने क्रमशः श्रीयुत हर्बर्ट हूवर और श्रीयुत ए. स्मिथ को उम्मीदवार खड़ा किया था। रिपब्लिकन दल की विजय हुई। इस चुनाव में क़रीब ३,५०,००,००० व्यक्तियों ने मत दि
जिनमें से क़रीब २,००,००,००० मत हूवरके पक्ष में औ
१,५०,००,००० मत स्मिथ के पक्ष में मिले। आगा
मार्च से, नये राष्ट्रपति श्रीयुत हूवर काम करेंगे, सीने
रिपब्लिक दल
अधिकमत १३ औ
साधारण जन-सभ
८९ होगा। ४
तक श्रीयुत कूलि
काम करेंगे।

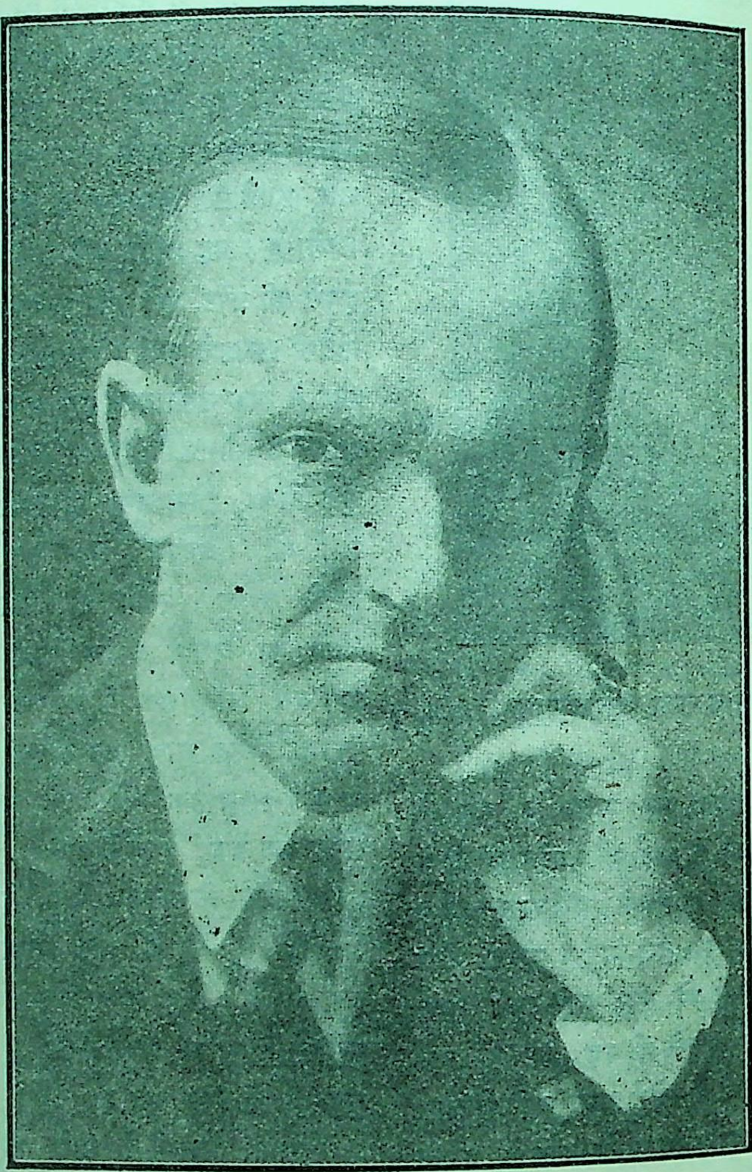

अमेरिका के वर्तमान राष्ट्रपति कूलिज जिनका कार्यकाल ४ मार्च १९२९ को समाप्त होगा

नये राष्ट्रपति
कार्य-नीति क्या हो
इस पर अभी नि
से व निश्चित ह
नहीं कहा जा स
फिर भी चुनाव
दिनों मे दिये
श्रीयुत हूवर के भा
से भावी नीति
बहुत कुछ प्र
पड़ता है। इस स
संयुक्त-राष्ट्र में
समस्यायें उप
है, उनकेसम्बन्ध
उन्होंने अपने वि
प्रकट किये हैं। उ
के आधार पर
कुछ लिखा जाता

श्रीयुत हूवर
पार-संरक्षणनीति
हर के माल-पर
कर लगाने के पक्ष में हैं और श्रमियों से सहानुभूति रखते
उनका विचार है कि अमेरिका में बेकारी को न बढ़ने देने
लिए दूसरे देशों से लोगों को यहाँ नहीं बसने देना चाहि

सम्बन्ध के नियमों को अधिक मनुष्यतापूर्ण बना हिए। इससे यह स्पष्ट है कि हूवर के कार्य-काल में भारतीयों को विशेष सुविधायें न मिलेंगी। शराब अमेरिका में बहुत महत्त्वपूर्ण है। श्रीयुत हूवर विरोध के पक्ष में हैं। वह व्यापार या व्यवसाय में की स्पर्धा में सरकार को खड़ा करने—सरकार के पार-व्यवसाय करने—के पक्ष में नहीं हैं। जल-स्रोतों योगी बनाने के लिए वे विशेष प्रयत्न करना चाहते भाषण में उन्होंने कहा कि समुद्रों के जल की है, यदि वह आर्थिक उपयोग में नहीं आती तो, है। कुछ समय से वहाँ किसानों की समस्या बहुत महत्त्वपूर्ण होगई है। इसके सम्बन्ध में उनके दल कार्यक्रम हैं—१. कृषिजन्य माल पर काफ़ी कर लगाया २. देश में उसके यातायात को कम किया जाय; ३. स्थिर आर्थिक पद्धति पर बाज़ार का पुनः संग- या जाय। इस व्यवस्था भी काफ़ी होगा। विषय में हूवर ने एक में कहा था कि जहा राष्ट्र प्रतिवर्ष ९० विलि- लर ख़र्च करता है वहाँ ो मिलियन इसलिए करना कौनसी बड़ी है, अगर उससे देश की जनसंख्या को भी समृद्धि का पूरा-पूरा मिल जाय? श्रीयुत षि में भी सहयोग- को प्रचलित करना चाहते न्तर्राष्ट्रीय राजनीति के में उन्होंने अधिक । वह किलौग के शांति- से पूर्ण सहमत हैं। वह स्वयं कार्य न ें, कुछ अधिक निश्चित कहना कठिन हो है

कृष्ण

अमेरिका के नये राष्ट्रपति श्री हूवर

सामान्य वातावरण

गत मास की देश की प्रगति को बढ़ाने वाले कोई नये विशेष आंदोलन शुरू नहीं हुए। गत मास साइमन-कमीशन के बहिष्कार और नेहरू-रिपोर्ट की चर्चा सम्पूर्ण भारतीय आन्दोलन के मुख्य विषय रहे हैं। इन्हीं दो प्रश्नों को लेकर आजकल देश कई दलों में विभक्त हो गया है। एक दल साइमन-कमीशन का बहिष्कार करता है, तो दूसरा दल, जिसमें देशद्रोही, सरकारी नौकर, जीहज़ूर, एंग्लो-इण्डियन और अंग्रेज़ अधिक हैं, साइमन-कमीशन से सहयोग करता है। एक ऐसा दल है, जो कमीशन का तो बहिष्कार करना चाहता है, परन्तु नेहरू-रिपोर्ट से सहमत नहीं है। इस दल में मुसलमान अधिक और हिन्दू कम हैं।

दूसरा दल कमीशन के बहिष्कार और नेहरू-रिपोर्ट का समर्थन करता है। इन दो चर्चाओं के अतिरिक्त तीसरी मुख्य चर्चा है पूर्ण स्वाधीनता की। आज का युग भी इसी का युग है। युवक भारत इतना अधीर हो गया है कि अब वह इसके विरुद्ध वृद्ध नेताओं की बात सुनना भी नहीं चाहता। हम यहाँ इन प्रगतियों का पृथक्-पृथक संक्षिप्त परिचय देने का यत्न करेंगे।

इनके सिवा पौराणिक रूढ़ियों के गढ़ काशी में भी कुछ सामाजिक हल-चल होने के समाचार मिले हैं। पं० प्रमथनाथ तर्क-भूषण और मालवीय जी प्रभृति अनेक विद्वान् हिन्दू-धर्म की वर्तमान अवस्था देखकर उसमें और स्मृतियों में सुधार करना चाहते हैं। गत मकर-संक्रांति के समय प्रयाग में अखिल-भारतीय सनातन-धर्म-महासभा का अधिवेशन इसी प्रयत्न का उदाहरण था। परन्तु इससे काशी के पण्डित-समाज में खलबली मच गई और उसने ब्राह्मण-महासभा की आयोजना कर धार्मिक प्रगतियों का विरोध शुरू किया है। इसके लिए बाहर से भी सनातन-धर्म के पण्डित और साम्प्रदायिक आचार्य बुलाये गये थे। इस सभा में न कोई नियम था, न व्यवस्था। केवल सुधार-विरोधी ही बोलने पाये। सबसे अधिक आश्चर्य की बात यह कि इस विशुद्ध धार्मिक (!) सभा ने भी, जिसका राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं, साइमन-कमीशन के स्वागत का प्रस्ताव पास किया है! क्या इससे यह प्रकट नहीं होता कि इसमें कोई रहस्य है?

साइमन-कमीशन की प्रगति (!)

साइमन-कमीशन के पूना-वास का वृत्तान्त हम गतांक में दे चुके हैं। वहां से चलकर वह ता० ३० अकतूबर को लाहोर पहुँचा। गोरे और अन्यथासिद्ध भारतीय सदस्यों के लिए अलग-अलग स्पेशल गाड़ियाँ थीं। लाहोर में भी इसके दो प्रकार के स्वागत की तैयारियाँ थीं। सरकार के स्वागत में धूमधाम नहीं थी। कुछ विशेष सरकारी तथा ग़ैर-सरकारी सज्जन ही स्टेशन पर उपस्थित थे। परन्तु जनता काले झण्डों को लेकर लाला लाजपतराय, रायज़ादा हंसराज, डाक्टर मुहम्मद आलम आदि नेताओं के नेतृत्व में बड़ी धूमधाम से जलूस निकालकर कमीशन का 'स्वागत' स्टेशन की तरफ़ बढ़ी। इस जलूस को आगे न बढ़ने लिए पुलिस स्टेशन के पास कांटेदार तार लगाकर रोके खड़ी होगई। जनता के नेता उसे उल्लंघन करना न समझकर तारों के सिरे पर जहाँ कुछ खुली जगह इसलिए जाकर खड़े होगये कि जनता घुसने प्रयत्न न करे।

पुलिस का नीच आक्रमण

बस इतने में सबने आश्चर्य से देखा कि पुलिस ने पर बिना कोई सूचना किये आक्रमण प्रारंभ कर दिया। गोरे अफ़सरों ने किया और उनकी नक़ल पीछे सिपाहियों ने। लालाजी सबसे आगे थे, इसलिए पर ही लाठियों का प्रथम वार हुआ। वह बहुत अधिक होजाते, यदि डाक्टर सत्यपाल, रायज़ादा हंसराज आदि पर होनेवाले वारों को अपने ऊपर न लेते। इनके अ डाक्टर आलम, लाला बोधराज, डाक्टर गोपीचन्द मौलाना दाऊद ग़ज़नवी पर भी वार हुए। लालाजी के पर चोट के कारण खाल छिल गई और सूजन भी रायज़ादा हंसराज के अंगूठे से खून बहने लगा। अपने पर इतना नीच आक्रमण देखकर भी जनता पूर्ण शान्त र

शाम को फिर जलूस निकला। इस बार मालवी उसके नेता थे। पुलिस ने उस सड़कपर आगे जाने से और दो-तीन मिनट के अन्दर जलूस को तितर-बितर की आज्ञा दी और ऐसा न होने पर उसे ज़बर्दस्ती तोड़ने धमकी भी दी। परन्तु जनता स्थिर रही और पौन घं पुलिस के आक्रमण की प्रतीक्षा कर लौट गई।*

जब पीछे से पुलिस के इस आक्रमण की चर्चा लगी, तब सरकार ने एक झूठी विज्ञप्ति प्रकाशित की कुछ समय बाद एक सरकारी अफ़सर श्रीयुत बॉयड को घटना की जांच के लिए नियुक्त किया। इससे किसी की संभावना नहीं है।

लाहोर में दलितों ने भी एक आवेदनपत्र भेजा,

---

* घोर दुःख है कि यह टिप्पणी लिखने के बाद ला के देहान्त का समाचार मालूम हुआ!

कि सरकार हमारे लिए कहता तो बहुत-कुछ है, पर कुछ नहीं। दलित-प्रतिनिधियों को साइमन-कमीशन भी नहीं दिया गया, जिससे उनमें सरकार के प्रति फैल गया है। कुछ जीहजूर हिन्दुओं, मुसलमानों, अफ़सरों और एंग्लो-इण्डियनों ने कमीशन के गवाहियाँ दीं, जिनके लिखने की यहाँ आवश्यकता है।

लिस के इस आक्रमण से बहिष्कारान्दोलन को बहुत मिली है। सम्पूर्ण भारतीय जनता में नवीन रूप उत्साह पैदा होगया और इस आन्दोलन में जो कुछ आगई थी वह दूर होगई है। दिल्ली की जनता का शानदार बहिष्कार किया है और लखनऊ में के आने के समय के लिए तैयारियां हो । स्व० लालाजी ने एक भाषण में ठीक ही कहा था ठियां ब्रिटिश-शासन के जनाज़े की कीलें हैं।

-रिपोर्ट का समर्थन

शन-बहिष्कार के साथ नेहरू-रिपोर्ट का समर्थन तक ज़रूरी-सा होगया है। गत २८ अक्तूबर को में प्रान्तीय सर्वदल सम्मेलन ने, जो श्रीयुत अणे के में हुआ, सर्व-सम्मति से नेहरू-रिपोर्ट का समर्थन । पंजाब-प्रान्तीय ख़िलाफ़त-कमिटी, सिन्ध-ख़िला- तथा बिहार-प्रान्तीय मुस्लिम-लीग ने भी र्ट का समर्थन किया है। इस सम्बन्ध में उसे क सफलता तब मिली जब कि

ल भारतीय कांग्रेस कमिटी

से स्वीकृत कर लिया। गत तीन नवम्बर को के अखिल-भारतीय कांग्रेस-कमिटी का अधिवेशन सारी की अध्यक्षता में हुआ। लगभग १५० उपस्थित थे। पहले-पहल श्री मगनलाल गाँधी, श्री दास आदि की मृत्यु पर शोक प्रकट करने, लाहोर पर पुलिस के नीच आक्रमण और मद्रास- के भारती-गीत ज़ब्त करने के कारण सरकार की प्रस्ताव पास हुए। इस अधिवेशन का सबसे मुख्य और महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव श्री श्रीनिवास आयंगर ने पेश किया—

"अखिल भारतीय-कांग्रेस कमिटी की बैठक मद्रास-कांग्रेस के पूर्ण स्वतंत्रतावाले प्रस्ताव पर अपना विचार स्थिर रखती है। कमिटी की सम्मति है कि जबतक इंग्लैण्ड से सम्बन्ध-विच्छेद न किया जायगा, तबतक वास्तविक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं हो सकती। यह कमिटी नेहरू-कमिटी की साम्प्रदायिक भेद-भावों को मिटानेवाली सिफ़ारिशों को स्वीकार करती है, और नेहरू-कमिटी को उसके प्रयत्न, देश-प्रेम तथा दूरदर्शिता के लिए साधुवाद देती है तथा पूर्ण स्वतंत्रता के अपने ध्येय को लक्ष्य में रख कर इस रिपोर्ट की सिफ़ारिशों को देश की राजनैतिक प्रगति के लिए एक उत्तम कार्य समझती है और सामान्य रूप से इसकी सिफ़ारिशों को पसन्द करती है।"

इस प्रस्ताव के पूर्ण स्वतंत्रता के प्रश्न पर बहुत विचार हुआ। श्रीमती एनीबेसेण्ट ने पहले तो इसका विरोध किया, परन्तु फिर यह अंश निकाल देने को कहा कि ब्रिटेन से सम्बन्ध-विच्छेद किये बिना सच्ची स्वतंत्रता नहीं मिल सकती। मूल प्रस्ताव के समर्थन में श्री जे. एम. सेन गुप्त, पं० जवाहरलाल नेहरू, स्वामी कुमारानन्द और श्री सत्यमूर्ति तथा श्रीयुत मोतीलाल नेहरू ने भाषण दिये।

सम्मति लेने पर श्रीनिवास आयंगर का उक्त प्रस्ताव पास हो गया। स्व० लाला लाजपतराय और श्रीमती बेसेंट ने किसी तरफ़ मत नहीं दिया।

दूसरे दिन पं० मालवीयजी ने आकर श्री० बेसेंट का संशोधन पेश करने का प्रस्ताव रक्खा, परन्तु सभापति ने उसे अनियमित कह कर पेश नहीं होने दिया। जवाहरलाल नेहरू ने गत हड़तालों में किये गये मज़दूरों के दृढ़ साहस के लिए उनसे सहानुभूति का प्रस्ताव रक्खा। इसके बाद साइमन-कमीशन के बहिष्कार को दृढ़ करने, कांग्रेस-खोज-विभाग स्थापित करने, लन्दन की कांग्रेस-कमिटी को सम्बद्ध करने, साम्राज्य-विरोधी-परिषद् के प्रतिनिधि चुनने का अधिकार मंत्री को देने आदि के प्रस्ताव पास हुए।

इसमें सन्देह नहीं कि उक्त परिषद् में पूर्ण स्वाधीनतावादियों का ज़ोर रहा। पं० मोतीलाल नेहरू ने भी उक्त

प्रस्ताव का समर्थन कर कांग्रेस की स्थिति को गिरने नहीं दिया।

स्वतंत्रता-संघ का संगठन

इन्हीं दिनों वहीं स्वतन्त्रता-संघ की बैठक श्री जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुई। मण्डल का मुख्य उद्देश्य भारत के लिए पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करना तथा सामाजिक, और आर्थिक समानता के आधार पर भारतीय समाज का संगठन करना निश्चय हुआ। इसके सदस्य वही हो सकेंगे, जो कांग्रेस के सदस्य होंगे। एक प्रस्ताव द्वारा साम्राज्य-विरोधी-संघ से इसका सम्बन्ध जोड़ने और उसके अधिवेशन में अपना प्रतिनिधि, भेजने का निश्चय हुआ। देश भर में इस संघ की शाखायें खोलने और सदस्य बढ़ाने के लिए एक अस्थायी समिति बनाई गई। मण्डल का आगामी अधिवेशन कलकत्ते में होगा और वहीं स्थायी कर्मचारियों तथा नियमों का निर्णय होगा।

वह समय दूर नहीं है, जब पूर्ण स्वतंत्रता का आन्दोलन सब आन्दोलनों से अधिक ज़ोर पकड़ेगा और यही एकमात्र आन्दोलन रह जायगा। इसके कार्य-क्रम पर हम इस के आगामी अधिवेशन के बाद अपने विचार प्रकट करेंगे।

यहाँ तक की प्रगति को प्रगति कहा जा सकता है, परन्तु अब दूसरी ओर भी देखिए।

एक दुष्ट मनोवृत्ति

लखनऊ-सम्मेलन के बाद से एक दुष्ट मनोवृत्ति भी पैदा होगई है। बहुत से मुसलमान नेता नेहरू-रिपोर्ट का विरोध कर रहे हैं और साम्प्रदायिकता का प्रचार कर रहे हैं। श्री शौकतअली, मुहम्मद याकूब आदि इस घातक आन्दोलन के नेता हैं। उनकी इस मनोवृत्ति को देखकर कोई समझदार व्यक्ति दुःखित हुए बिना नहीं रह सकता। मुसलमानों ने बहुत अवसरों पर भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन को धक्का लगाया है। हिन्दुओं के उन्हें इतनी रियायतें देने के बाद भी वे अभी तक सन्तुष्ट नहीं हुए। पंजाब, बंगाल, और सिन्ध में बहुमत लेने के बाद भी उनको सन्तोष नहीं हुआ। लखनऊ के समझौते के अनुसार इन्हें युक्तप्रान्त में ३० प्रतिशत प्रतिनिधित्व मिला था, परन्तु अब नेहरू-रिपोर्ट के
अनुसार १५ रह गया है। इसमें कमिटी का कोई कसूर न
लखनऊ में मुसलमानों ने हिन्दुओं को पंजाब और
में अधिक प्रतिनिधित्व दे दिया था। इसीलिए युक्तप्रान्त
उन्हें ३० प्रतिशत प्रतिनिधित्व दिया गया था। परन्तु
जब कि पंजाब और बंगाल में मुसलमानों का बहुम
यह रियायत मांगना व्यर्थ है—तुच्छता है। फिर
रिपोर्ट ने कलकत्ते की मुस्लिम लीग के ६ प्रस्तावों
चार तो स्वीकृत कर लिये हैं और पांचवें (पंजाब
बंगाल में अधिक प्रतिनिधित्व) को उन दोनों प्रां
प्रतिनिधियों ने स्वयं ही नहीं चाहा। सब बालि
मताधिकार मिल जाने पर छठे (बड़ी कौंसिल में
तिहाई निर्वाचित मुसलमान सदस्य) प्रस्ताव की आ
कता ही नहीं। इन अराष्ट्रीय मुसलमानों ने मुस्लिम
को बहकाने के लिए एक मुस्लिम कांफ्रेंस की भी
की है, जिसके सभापति श्रीयुत सर आगाख़ां होंगे।
सम्मति नेहरू-रिपोर्ट के विरुद्ध है। वे उसे मुसलमा
लिए घातक कहते हैं।

संयुक्त प्रान्तीय मुस्लिम सम्मेलन

देश-विद्रोही मुस्लिम मनोवृत्ति का सब से अच्छा
हरण कानपुर में होने वाली संयुक्त प्रान्तीय सर्वदल
परिषद् है। इसके अध्यक्ष थे असहयोग आन्दो
प्रसिद्ध नेता श्रीशौकतअली, जिन्होंने लखनऊ-सम्मे
कहा था कि यदि मैं नेहरू रिपोर्ट के खिलाफ़ कोई
निकालूं तो मेरी ज़बान कट जाय। इस परिषद् की
कार्यवाही का सार है, हिन्दुओं का और नेहरू-रिपोर्ट
विरोध। मौलाना हसरत मोहानी ने, जो अपने
स्वतन्त्रता का समर्थक मानते हैं, अपने भाषण में नेहरू
का इस आधार पर विरोध किया कि उसमें दिल्ली
जिन्ना-प्रस्तावों के मुताबिक सिफ़ारिशें नहीं हुईं और
बलूचिस्तान और सरहदी सूबे को अलग करने के
में भी यह शर्त कर दी गई कि औपनिवेशिक स्वराज्य
होने पर ही वे प्रांत अलग किये जायँ। दिल्ली के म
साहब ने भी अपने भाषण में नेहरू-रिपोर्ट की निन्दा
हुए कहा कि मुसलमान-प्रांतोंको उसने कोई
अधिकार ही नहीं दिये, सब अधिकार केन्द्रीय सर

ते हैं, इसलिए वे प्रांत कुरान के आधार पर विवाह, ह आदि क़ानूनों को नहीं बना सकेंगे । यदि कोई बनायगा भी तो केन्द्रीय सरकार उसे रद करेगी । ल हसन बार-एट-ला, ने मुसलमानों का सम्बोधन हुए कहा कि अगर तुमने अपने अधिकारों की रक्षा ई चेष्टा नहीं की, तो वह दिन दूर नहीं, जब हिन्दु-हिन्दू-मुसलमानों के संयुक्त हिन्दुस्तान के बजाय माता का खंभ' (केवल हिन्दुओं का) रह जायगा। भाषण इसी तरह के थे । उनके प्रत्येक वाक्य में हिन्दू हिन्दू नेता, नेहरू-रिपोर्ट और राष्ट्रीय प्रगति के विरुद्ध उगला गया था ।

से अधिक दुःख तो यह है कि सभापति श्री शौकत- –जो हिन्दू मुस्लिम एकता के कट्टर समर्थक समझे –भी अपने भाषण में वही जहर उगला और सबसे गये । उन्होंने कहा कि नेहरू-रिपोर्ट तो हिन्दू- की सन्तुष्टि के लिए बनाई गई है । फिर उन्होंने ों को ललकारते हुए कहा कि वे साफ़-साफ़ कह दें ना चाहते हैं ? अगर वे लड़ाई चाहते हैं,तो मुसल- सके लिए भी तैयार हैं !

परिषद् में कई प्रस्ताव पास हुए। भारत के शासन- को संयुक्तराष्ट्र अमेरिका की तरह बनाने, प्रान्तों देशी रियासतों को आन्तरिक मामलों में स्वतन्त्र के आशय का प्रस्ताव पास हुआ । एक प्रस्ताव द्वारा ने निश्चित किया कि वर्तमान अवस्था को देखते मुसलमान पृथक् निर्वाचन छोड़ने को तैयार नहीं हैं । प्रस्ताव में मुसलमानों की हित-रक्षा की दृष्टि से लिखित बातों का होना आवश्यक बताया गया—

(१) सब व्यवस्थापिका सभाओं में पृथक् प्रति- के आधार पर मुसलमानों का कम-से-कम एक काफ़ी प्रतिनिधित्व होना चाहिए । (२) प्रान्तीय न्द्रीय शासन के मन्त्रिमण्डल में मुसलमानों की एक तिहाई हो।(३) कोई भी व्यवस्थापिका सभा ऐसा न बनावेगी, जो मुसलमानों के जाती क़ानून के पड़ेगा।(४) मुसलमानों को उर्दू, फ़ारसी और के पढ़ने-पढ़ाने के लिए काफ़ी सुविधायें दी जायँगी। (५) मस्जिदों, दरगाहों, क़ब्रस्तानों, बूचड़खानों (!) या अन्य स्थलों की हमेशा रक्षा की जायगी । (६) मुसलमानों से कोई ऐसी बात न कराई जायगी, जिसके कारण उनके धर्म की हानि हो । (७) मुसलमानों को नौकरियों में काफ़ी हिस्सा दिया जायगा । (८) शिक्षा-विषयक, औद्योगिक, धार्मिक, सामाजिक और धर्मादा-विषयक जो रुपया दिया जायगा, उसमें मुसलमानों का भी काफ़ी हिस्सा होगा । (९) वायसराय को यह हक़ होगा कि वह किसी भी क़ानून को उपर्युक्त धाराओं के प्रतिकूल कहकर उसे रद कर दे । (१०) भारतीय व्यवस्थापिका सभा को ऐसे क़ानून बनाने का हक़ न होगा जिससे शासन-विधान के उन मूलभूत सिद्धान्तों पर प्रहार हो जिनके बल पर अल्प मत वालों की रक्षा निर्भर है । इत्यादि । मौलाना आज़ाद सुभानी ने पूर्ण स्वतन्त्रता का प्रस्ताव पेश किया । पहले तो कुछ सज्जनों ने मुस्लिम हित का विरोधी बताते हुए प्रस्ताव का विरोध किया, परन्तु जब पर्दानशीन स्त्रियों ने यह लिखकर सभापति को दिया कि यदि पुरुषों में इतनी हिम्मत नहीं है, तो हम पर्दे से निकलकर लड़ेंगी, तब प्रस्ताव पास हो गया !

इस सम्मेलन की आलोचना करना व्यर्थ है, क्योंकि उन मुसलमानों से, जो देश-विद्रोह, स्वार्थ और तुच्छता पर कमर कसे बैठे हों, यह आशा करना कि वे समझौता करना चाहते हैं, भूल है । ऊपर की कार्रवाई पढ़ने से स्पष्ट हो जाता है, कि किसी वक्ता ने नेहरू-रिपोर्ट को अच्छी तरह पढ़ा ही नहीं ।

मुसलमानों का राष्टीयदल

परन्तु हर्ष की बात है कि मुसलमानों में एक ऐसा भी दल है, जो इस घातक लहर का घोर विरोध कर रहा है । इनमें डाक्टर अन्सारी, महाराजा महमूदाबाद, श्री रफ़ी अहमद किदवई, श्री यूसफ़ इमाम, श्री तसद्दुद अहमद शेरवानी आदि हैं । पंजाब के मुसलमानों में भी राष्ट्रीयभाव फैल चुके हैं । अब यदि कुछ अधिक ज़ोर से काम लिया जाय, तो बहुत अधिक संभव है कि अराष्ट्रीय मुसलमान कुछ न कर सकें । श्री जिन्ना से आशा थी कि वे यूरोप से

आकर बुरी मनोवृत्ति को दूर कर देंगे, परन्तु उन्होंने अभी तक इस सम्बन्ध में कुछ नहीं किया। वे स्वयं अभी बीच में पड़े हुए हैं।

अभी कुछ दिन हुए लखनऊ में अखिल भारतीय मुस्लिम लीग का अधिवेशन हुआ, जिसमें दबी आवाज़ में नेहरू रिपोर्ट के समर्थन में निम्न-लिखित प्रस्ताव पास किया गया है—

"अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की यह परिषद् नेहरू-कमिटी को मुस्लिम लीग के १९२७ के कलकत्ता-अधिवेशन में स्वीकृत मुसलमानों की माँग को पूरा करने का प्रयत्न करने पर धन्यवाद देती है। और इस रिपोर्ट पर लीग के आगामी कलकत्ता के अधिवेशन में विचार करने के लिए सिफ़ारिश करती है।"

यह तो हुई मुसलमानों की प्रगति, अब हिन्दुओं की गति भी देखिए।

दुःख की बात है कि अराष्ट्रीय मुसलमानों के उपर्युक्त व्यवहार से ही कुछ हिन्दुओं का भी धीरज टूट गया है, और वे भी देश का ख़याल छोड़ कर साम्प्रदायिकता का समर्थन करते हुए नेहरू-रिपोर्ट का विरोध कर रहे हैं। इन में भाई परमानन्द मुख्य हैं। मिलाप आदि कतिपय उर्दू के पत्र भी इस देश-द्रोह में भाग ले रहे हैं, परन्तु ऐसे द्रोही हिन्दू बहुत थोड़े हैं। अधिकांश हिन्दू राष्ट्रीय और देश-भक्त हैं। वे देश-हित की दृष्टि से सांप्रदायिकता को उखाड़ देना चाहते हैं और मुसलमानों से उचित शर्तों पर समझौता करने को हर समय तैयार हैं। परन्तु मुसलमानों की स्वार्थपूर्ण माँगों को, जिनसे सांप्रदायिकता का रोग बढ़ता है, स्वीकार करते-करते अब वे उसके दुष्परिणाम से परिचित हो गये हैं, इसलिए उनकी अन्यायय माँगों को स्वीकृत करने के लिए किसी भी तरह तैयार नहीं। इसका एक उत्तम उदाहरण गत मास इटावा में होने वाली

आगरा प्रान्तीय हिन्दू सभा

थी इसके सभापति थे स्व० लाला लाजपतराय। इसका हाल विस्तार-पूर्वक न लिखकर इतना ही लिखना काफ़ी होगा कि कानपुर की मुस्लिम कांफ्रेंस की दुष्ट मनोवृत्ति के प्र कूल इसमें केवल राष्ट्रीयता की लहर दीखती थी।

कृष्ण

विजय के बाद

विजय के बाद तो आमोद-प्रमोद होता है। परन्तु डोली के किसान इसके विपरीत कर रहे हैं। वे आ प्रमोद नहीं करते। वे शराब, ताड़ी तथा अन्य नशीली छोड़ रहे हैं; मृत्यु-भोज, विवाह-शादी आदि अवसरों होनेवाली फ़िज़ूलख़र्ची को रोक रहे हैं; और देश तथा के स्वास्थ्य एवं अभ्युदय की जड़ में कुठाराघात करने बाल-विवाह जैसी दुष्ट प्रथा के विरुद्ध उन्होंने धर्मयुद्ध दिया है। सरदार वल्लभभाई को मानपत्र अभीतक दि रहे हैं। पर मानपत्र का तो बहाना-मात्र है। प्रत्येक के ख़ास-ख़ास लोग इकट्ठे होते हैं, अपनी कुप्रथा विचार करते हैं, उनमें से एक-एक को लेकर उसे दूर का निश्चय करते हैं और सरदार वल्लभभाई को उन्हें मानपत्र देते हुए उनके सामने अपने निश्चय को प्रतिज्ञा के रूप में प्रकट करते हैं। बारडोली के लेवा और कडवा पाटीदारों में गाँव-गाँव सभायें हो और उपर्युक्त सामाजिक सुधारों की प्रतिज्ञायें की जा बाल-विवाह-निषेधक प्रस्ताव में यह निश्चय किया कि वर और वधू की विवाह-योग्य अवस्था अब से १८ और १४ वर्ष की समझी जाय। जिस जाति में होते ही बच्चों के विवाह कर दिये जाते थे उसमें विवा यह वयस बुरी नहीं कही जा सकती। फिर भी प्रस्ता इस बात की सिफ़ारिश की गई है कि जहाँ तक हो लड़की का विवाह, १६ वर्ष से कम और लड़के का २० कम अवस्था में न हो। यदि किसी कारण लाचार हो विवाह करना ही पड़े तो लड़की को १६ वर्ष से कम तो किसी हालत में पतिगृह को न भेजा जाय।

स्त्रियों में भी काफ़ी जागृति फैल गई है। अब कहीं स्त्रियां इकट्ठी होकर गहने और चाय छोड़ने का लेने लगी हैं। खादी पहना तो अब मामूली बात

उसका पृथक् उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं है। से बड़ी 'क्रांति रानीपरज और दुबला नामक जातियों में हो रही है। सैकड़ों की संख्या में वे शराब की प्रतिज्ञायें कर रहे हैं "मैं श्रीराम का स्मरण करके प्रतिज्ञा करता हूँ कि आज से मैं शराब, ताड़ी अथवा किसी प्रकार की भी नशीली चीज़ का सेवन न करूंगा। अथवा मरण या ऐसे ही अन्य किसी प्रसंग पर वहाँ शराब-ताड़ी का उपयोग नहीं करूंगा और न किसी के यहाँ ऐसे प्रसंग या कार्य में शरीक होऊँगा, इन निषिद्ध चीज़ों का उपयोग होता हो। हे प्रभु, प्रतिज्ञा का पूरा-पूरा पालन करने की शक्ति दो।" न पीने की प्रतिज्ञा के मानी केवल पीना छोड़ नहीं है; उसके मानी हैं उस व्यवसाय में किसी भी सहयोग न दिया जाय। इसके फल-स्वरूप ताड़ी के व्यवसायी और राज्य के तथा सरकारी आब-नाग के अधिकारी बड़े अधीर हो रहे हैं। सूरत के ने शराब-बन्दी के आन्दोलन को ग़ैर-क़ानूनी हुए एक घोषणा निकाली है कि शराब-ताड़ी पीना, प्रत्येक नागरिक के स्वतन्त्र अधिकार की बात है—किसी को हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। मारी सरकार का राजधर्म! कोई यह न भूले कि और ताड़ी पीने के व्यक्तिगत अधिकारों का समर्थन यह सरकार वही है जो भारतीयों के जन्मसिद्ध को अपने पैरों तले कुचल रही है।

बारडोली दूरदर्शी जनता सरकार की इस चाल समझती है। अपना सामाजिक संगठन करके वह शख़्स से दण्ड लेती है, जो समाज का अपराधी उसे समाज में रहना मन्ज़ूर है तो वह दण्ड सरकार को इसमें हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार

प्रकार बारडोली में समाज-सुधार बड़ी तेज़ी से हो उधर सरकार द्वारा नियुक्त जाँच-समिति बारडोली है और १५ नवम्बर से गाँव-गाँव घूम कर उसने शुरू कर दिया है। इसमें रेवेन्यू आफ़िसर श्री और जज श्री मूमफ़ील्ड हैं। बम्बई के सुप्रसिद्ध एडवोकेट श्री भूलाभाई देशाई ने सेवा-भाव से किसानों की पैरवी करना स्वीकार किया है।

वैं० म०

मैसूर-दरबार की उदारता

मैसूर-दरबार ने अभी हाल में दलित जातियों की शिक्षा के लिए ५०,०००) और स्वीकृत किये हैं, जिनमें से अछूत और पिछड़ी हुई जाति के बालकों को उच्च तथा माध्यमिक शिक्षा के लिए छात्र-वृत्तियाँ दी जायँगी। शास्त्रीय एवं औद्योगिक शिक्षा के लिए भी १०,०००) की वृत्ति इसी में से दी जायगी। इस तरह अब से आगे मैसूर-दरबार इस मद में १,६०,०००) रुपये प्रति वर्ष ख़र्च करेगा। गत दश वर्षों के अनुभव से सरकार इस निश्चय पर पहुँची है कि इस सहायता के कारण राज्य की पिछड़ी हुई जनता की ख़ासी उन्नति हुई है। हम मैसूर-दरबार को इस निर्णय पर बधाई देते तथा आशा रखते हैं कि अन्य देशी सरकारें भी मैसूर-दरबार का अनुकरण कर अपने दलित-हित को मूर्त्त रूप देंगी।

त्रिवेदी

स्थानीय हल-चल

इस महीने, कुछ तो विभिन्न सम्मेलनों से और कुछ पुष्कर के प्रसिद्ध मेले के सबब, अजमेर के जीवन में काफ़ी हलचल रही। "राजपूताना महिला-सम्मेलन" चीफ़-कमिश्नर की पत्नी श्रीमती रेनाल्ड्स के सभापतित्व में हुआ। प्रान्तीय शिक्षा-सम्मेलन सरकारी आयोजना थी, पर कार्य-वाही से प्रतीत होता था कि अमल में न सही तो भी कमसे कम मनोवृत्ति में वहाँ भी राष्ट्रीय-जागृति की नूतन भावना का थोड़ा बहुत प्रवेश हो रहा है। भगवान् करे, यह स्थायी हो। इधर २३, २४ नवम्बर को राणपुर के गुजराती पत्र सौराष्ट्र के सम्पादक श्री अमृतलाल सेठ के सभापतित्व में राजपूताना प्रजा-परिषद् का प्रथम सम्मेलन हुआ। इसमें गरमागरम भाषण और प्रस्ताव हुए। उधर पुष्कर में अ० भा० क्षत्रिय महासभा, राजस्थान हिन्दू-सभा और राजपूताना मध्यभारत सभा के अधिवेशन भी होने वाले थे।

मुकुट

चंक्रम्

विवाद-युग

भारत की राजनैतिक प्रगति में वर्तमान काल को हम विवाद-युग भी कह सकते हैं। आये दिन एक-न-एक नया विवाद खड़ा होता है और उसे सुलझाने में आला दिमाग़ों को थक जाना पड़ता है। परिवर्तन-वादी और अपरिवर्तन-वादियों का विवाद ख़तम हुआ नहीं कि स्वराजी और प्रति-सहयोगियों का विवाद बढ़ा। वह पूरा हुआ नहीं था कि स्वराज्य और स्वाधीनता का विवाद सामने आया। वह किसी तरह बुझा तो अब औपनिवेशिक स्वराज्य और स्वाधीनता का विवाद फिर ज़ोर मार रहा है। और हिन्दुओं और मुसलमानों का सबसे बड़ा विवाद तो वैतरणी की तरह खून की धारा अब भी बहा ही रहा है! जब इस दुःखद स्थिति के मूल कारण की ओर मेरी दृष्टि जाती है तो बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि हमें बातें करने और नये-नये विवादों को खड़े करने का जितना शौक़ है उतनी काम करने की उमंग नहीं है। इनमें अधिकांश लोग तो ज़रूर ऐसे हैं, जो बातें करने और परस्पर बुद्धि लड़ाने में प्रवीण हैं, और यही उनके किये हो सकता है; पर कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो सचमुच काम करना चाहते हैं, काम की व्याकुलता और अधीरता ही उन्हें ऐसे विवादों में खींच लाती है; पर मुझे कहना होगा कि जब तक वे अपनी अधीरता और उतावली में नई-नई बौद्धिक समस्यायें खड़ी करते रहेंगे और विवाद में पड़ते रहेंगे तब तक वास्तविक काम उनसे दूर भागता जायगा। एक संस्था बना लेना, उसके नियम-उपनियम बना लेना, अथवा बढ़-बढ़ कर गरमागरम बात की बात में लगे रहने वाले देशभक्तों को उसमें एकत्र कर लेना, कोई भारी काम नहीं है। जबतक जनता के संगठन का, ग्रामों में सोये बल को संग्रह और पुष्ट करने का काम नहीं उठाया जाता और उसमें हमारे बलिदान के उत्सुक युवक-बन्धु कूद नहीं पड़ते, तबतक इन विवादों का अन्त हो कठिन है और न तबतक हमारे नये-नये और बड़े-बड़े में कोई स्थायी प्रभाव ही आ सकता है। मेरी अन्तरा तो बार-बार कहती है कि यदि हम अगले ५-७ बरस कुछ न बोलें और चुपचाप गाँवों में बैठ कर काम करते रहें तो का कुछ बिगाड़ न होगा, उलटे वह चमत्कार नज़र आ जिसकी प्रतीक्षा इतनी उत्सुकता के साथ हम सब क हैं। अपरिवर्तन-वादी चर्ख़ा लेकर गाँवों में घुस गये जम गये तो खादी जैसे क्रांन्तिकारी काम की जड़ जम अलावा एक बारडोली भी दिखा सके। हम स्वराज्य, निवेशिक स्वराज्य, स्वाधीनता, इन नामों और शब्दों खींचातानी में क्यों इतना अमूल्य समय, शक्ति और खर्च करें? क्यों न असली चीज़, उन्हें प्राप्त करने के और संगठन पर ही अपनी सारी शक्ति केन्द्रित क जिसके पास बल होता है वह नामों के विवाद में नहीं प उसका बल अभीष्ट वस्तु को खींच कर सामने ले और लोग कहते और मानते हैं—यह एक काम का है, इसकी बात सुनो। परमात्मा इस अभागे देश में काम के हज़ारों लाल कब पैदा करेगा?

सब से बड़ी शर्त

निर्बलों की, ग़रीबों की, तपस्या अब फूलने-फलने है। भारतवर्ष आदर्श का पुजारी है। उसने क्या रा क्या प्रजा, क्या साहूकार और क्या किसान, दोनों में पुत्र का संबंध रहने की बड़ी उच्च कल्पना समाज के रक्खी थी। इसका अर्थ यह है कि दोनों अपने-अपने और हित पर नहीं, बल्कि एक-दूसरे के हितों पर ध्या और अपने-अपने कर्त्तव्यों का पालन, दूसरे से बदले की न रखते हुए नेकनीयती और ईमानदारी से करें। राज्य, भारत में होने के बाद, पश्चिमी सभ्यता की लहर यहाँ पहुँची और उसने हर एक को अप स्वार्थ साधने की विद्या सिखाई, जिसका कु-फल हम प्रत्यक्ष देख रहे हैं और आगे देखेंगे। आज देश के दो दल या श्रेणी में एक का दूसरे पर शुद्ध विश्वा है। राजनैतिक क्षेत्र में जो समझौते हो रहे हैं वे इ अपने स्वार्थों की रक्षा की अपरिमित चिन्ता के साथ

दूसरे की असुविधा पर ध्यान जाकर उसके साथ ले की बुद्धि का पूरा परिचय नहीं मिलता है। किसी तानी करके हिन्दू-मुसलमान समझौते का रास्ता ते हैं, तो सिख अड़ जाते हैं; और सिख राज़ी हुए, अब्राह्मण या छूत-अछूत का प्रश्न खड़ा हो जाता देशी राजा और प्रजा के बीच आन्दोलन खड़ा हो । मजूरों और मालिकों के झगड़े और हड़तालें तो दिन के मिहमान हो रहे हैं। जहाँ हमारा किसी या झगड़ा हुआ कि हम एक अलग संस्था ते हैं, अलग दल खड़ा करते हैं, अलग अख़बार ते हैं, और आपस में द्वेष फैलाते हैं। ऐसा जान मानों हमने असहयोग के महासिद्धांत को या तो नहीं है, या समझना चाहते नहीं हैं, या उसका ने के लिए आवश्यक सामर्थ्य प्राप्त करने से घबा। एकमात्र ब्रिटिश सरकार को अपना मोर्चा बनाने हमने अपने घर के ही अन्दर, क्षुद्र और अदूरबुद्धि से प्रेरित हो, अनेक परस्पर लड़नेवाले दल खड़े हैं, जिससे कि ब्रिटिश सरकार से लड़ने की तरफ़ स्तविक ध्यान बहुत कम जा रहा है। ब्रिटिश सरसहयोग करने के मानी ही यह हैं कि हमारे आपस सहयोग हो—आपस के झगड़ों और प्रश्नों को सरकार की सहायता के सुलझा लें। परन्तु सेवाभी और व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं का भूत र्थ-साधुता को पुष्ट करता रहता है और राष्ट्रीयता में रोड़ा अटका रहा है। यह विष यहाँ तक फैल कि एक राष्ट्रीय या सार्वजनिक संस्था में दो महत्वाक्तियों का मिलकर काम करना अशक्य-सा हो रहा नित-नये दलों और आपस के झगड़ों के समारों में पड़ते हैं। बातें बघारने और डींगें मारने में हो रहे हैं और शायद समझते हैं कि ज़बानी और वाइयों से स्वराज्य और स्वाधीनता पालतू गाय हमारे पीछे-पीछे दौड़ते चले आवेंगे। इससे हम नतीजे पर पहुँच रहे हैं कि देश जाग तो उठा भी उसे अपनी स्थिति को समझने, अपने रास्ते करने, अपने बल को एकत्र और संगठित करने के लिए बहुत-कुछ करना बाक़ी है। हमारे अन्दर देश-भक्ति का भाव तो आया है; पर अभी शुद्ध सेवा का भाव या आज़ादी की मस्ती पूरी-पूरी नहीं आ पाई है—अपनेको होम देने और झोंक देने की तैयारी तो देश के कुछ नवयुवक लाल दिखाते हुए नज़र आ रहे हैं; पर अपनेको 'खपाने' से अभी हम घबराते हैं, इसका रास्ता हमें मिल नहीं रहा है।

मेरी क्षुद्र बुद्धि के अनुसार पहले हमें देश-सेवा या स्वाधीनता-संग्राम की एक सब से बड़ी शर्त को अच्छी तरह समझ लेना चाहिए। वह यह कि इनमें व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं के लिए क़तई स्थान नहीं है। हाँ, सेवा के योग्य अपने को बनाने के लिए अपने गुणों और शक्तियों को बढ़ाना तो आवश्यक है; परन्तु केवल अपनी महत्ता बढ़ाने की वेदी पर अपने कार्य या संस्था को क़ुरबान कर देना देश-सेवा की विरोधिनी मनोवृत्ति है और इससे देश को आज अपरिमित हानि हो रही है। यदि हम देखें कि दो व्यक्तियों के संघर्ष से कार्य और संस्था को हानि पहुँच रही है। तो सेवा-भाव और स्वाधीनता का प्रेम हमसे तक़ाज़ा करता है कि दो में से एक पीछे हट जायें और दूसरे को आगे बढ़ने का अवसर दें, एवं ख़ुद दूसरा कार्य या दूसरा क्षेत्र स्वीकार कर लें। यदि दोनों वास्तव में योग्य या सेवा-परायण होंगे, तो दोनों अपने-अपने क्षेत्र में चमक उठेंगे और फल-स्वरूप दोनों के हाथों देश की अच्छी सेवा होगी; अन्यथा जो अयोग्य होगा, पाखण्डी होगा, वह अपने आप दुनिया के सामने आ जायगा। अतएव यदि हमें देश-सेवा सचमुच प्यारी है, तो सबसे पहले हमें इस कसौटी पर सौ टंच साबित होना होगा। बिना इसके देश-भक्ति का दावा एक ढकोसला है, एक माया है। सिर्फ़ सरकार के मुक़ाबले में तो अभी हम अपने अधिकारों को जताने और उससे लोहा लेने में अग्रसर होते रहें; पर आपस के झगड़े और प्रश्नों में झुक जाने की वृत्ति से काम लें, और सरकार की शरण तो उसके लिए हर्गिज़ न जावें—इस नियम का पालन जबतक हम अच्छी तरह न करेंगे तबतक न राष्ट्रीय एकता होगी और न स्वराज्य या स्वाधीनता के दर्शन होंगे। आज का चतुर्दिक सामना जबतक एक दिशा में केन्द्रित न होगा तबतक ब्रिटिश सरकार से पार पाना आसान नहीं

है। हमारी धार्मिक, सामाजिक, या राष्ट्रीय त्रुटि अथवा दुर्गुण को दूर करने के लिए हमें आपस में लड़ना पड़े तो यह एक बात है और केवल अपने-अपने स्वार्थों को सिद्ध करने के लिए अथवा व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं की तृप्ति के लिए हमारा एक-दूसरे के खून का प्यासा बन जाना दूसरी बात है। पहली लड़ाई हित-मूलक अतएव प्रेम-मय और परिणाम में सद्भाव-वर्द्धक होगी, और दूसरी स्वार्थ-मूलक अतएव कटुता और विद्वेष-मय। देश की वर्तमान नाजुक स्थिति में, हमारे अन्दर परस्पर कटुता और विद्वेष फैलना उसका गला घोंटने के समान है।

धनी और देश-सेवक

एक देशसेवेच्छु मित्र पूछते हैं—"मैंने आपसे एक बार कहा था कि असल काम तब होगा जब कार्य-कर्ताओं को धनिकों के रुपये की अपेक्षा नहीं रहेगी और आप इस बात के तथ्यांश को स्वीकार करते हुए मालूम हुए थे। मैं अभी तक साम्यवाद के पूरे तत्त्व को नहीं समझ पाया हूँ तथापि मुझको हमारे समाज की वर्त्तमान विषमता असह्य मालूम होती जा रही है। इस विषमता को मिटा देने की बात से और मिल-मालिक धन-कुबेरों का लोप कर देने की बात से आप सहमत हों तब तो धनिकों के रुपये से काम करना उलटे मार्ग पर चलना है, क्योंकि उनसे रुपया लेकर हम उनके रहने की आवश्यकता को स्वीकार करते हैं और उनके बने रहने में सहायता पहुँचाते हैं। + + आपका यह विचार है क्या, कि वर्तमान परिस्थिति में धनिकों के रुपये बिना काम होना असम्भव है इसलिए अभी शुरू-शुरू में उनके रुपये से काम निकाल लेना चाहिए और जब देखेंगे कि उनके रुपये बिना काम चल जायगा तो उनसे किनारा कर लेंगे ? अथवा आपका यह विचार है कि धनिकों का साफ़ तौर से समर्थन नहीं करना चाहिए, परन्तु उनसे रुपया लेकर अपने आदर्श के अनुसार कार्य कर लेना चाहिए ?"

आजकल यह प्रश्न बहुतेरे देश-सेवकों के मन में उठने लगा है। इसलिए इन मित्र को जो उत्तर मैंने भेजा है, वह भी 'त्यागभूमि' में छाप देता हूँ, जिससे संभव है उन्हें अपने विचारों को सुलझाने में कुछ सहायता उत्तर इस प्रकार है—

"मैंने अपने सामने अभी धनी और निर्धन के उतनी तीव्रता से नहीं आने दिया है, जितनी से कि के प्रश्न को अविचल रूप से सामने रक्खा है। स्वराज्य तो धनी-निर्धन, हिन्दू-मुसलमान, सब स्वराज्य-प्राप्ति का उपाय है ब्रिटिश सरकार से अस फलतः हिन्दुस्थानी-मात्र का परस्पर सहयोग। अभी हमारी शक्ति ब्रिटिश-सरकार को सुधारने या में और हिन्दुस्थान में धनी-निर्धन, हिन्दू-मुसलमान, अब्राह्मण, देशी राजा और उनकी प्रजा आदि विवा बढ़ने देने में लगनी चाहिए। जब स्वराज्य अथवा प्राप्त कर लेने की सत्ता हमारे हाथ आ जायगी, धनी-निर्धन या मालिक-मजूर के प्रश्न को अच्छी करने की स्थिति में अपने को पावेंगे। तबतक प्रश्नों में उतना ही रस लें, जितना कि परस्पर के में बाधक न हो।

"आज देश पराधीन है और स्वाधीन होना सब दल और श्रेणी के लोग अपनी-अपनी स्थिति इसमें सहयोग कर रहे हैं। मेरे पास शरीर है, थोड़ी-सी है—मैं उसे अपने देश को चढ़ा रहा हूँ। पास धन है, वे उसे अपनी शक्ति-भर देश के रहे हैं। दोनों के सहयोग से दोनों की अभीष्ट वस्तु की प्राप्ति का उद्योग हो रहा है।

"हिन्दुस्थान में अधिकांश लोग निर्धन हैं। हिन्दुस्थान का स्वराज्य ऐसा ही होना चाहिए, निर्धनों के हित की रक्षा हो। पर यह प्रश्न तो तभी होगा, जब स्वराज्य-संगठन की शक्ति हमारे हाथ जायगी। आज तो हम, अपने स्वराज्य के स्वरूप को में रखकर, धनी लोगों के मन पर ऐसे संस्कार डाल कि वें खुद ब-खुद देश की इस आवश्यकता को लगें और अपने आप निर्धनों के प्रति न्याय और का बर्त्ताव रखने लगें। इधर निर्धनों की परमुखापेक्षि कम करना है और उनमें अनेक प्रकार के सुधार करके अतएव इनको एक दूसरे के ख़िलाफ़ उत्तेजित करके

भली भांति नहीं साध सकते । बल्कि दोनों को और स्थिति का ज्ञान कराके, और यदि किसी किसी को दूसरे से लड़ना पड़ा तो प्रेम और सहा- लड़के, करा सकते हैं। हमारे काम का आधार होना चाहिए—अधिकार की एकांगी पुकार अधिकार की पुकार के साथ कर्त्तव्य का बन्धन से लगा हुआ है; पर उसे हम अक्सर भुला इसलिए अधिकार की मांग ग़ैर-ज़िम्मेदारी का कर लेती है ।

का तत्त्व जो मैं समझ पाया हूँ वह यह है में अपनी उन्नति और सुख के साधन सबके रूप से सुलभ होने चाहिएँ । धन, विद्या या किसीके साथ कोई रियायत न होनी चाहिए, इन कारणों से समाज में कोई विशेष अधिकार । जो जन-समाज की सेवा करेगा—फिर वह हो,सत्ता के द्वारा हो, या विद्या के द्वारा हो— समाज में अपने आप होगा। उसके लिए हमें नियम या प्रणाली की आवश्यकता नहीं है । मुझे प्रिय है। पर सबसे पहले यह तत्त्व हमारे जीवन चाहिए। अपनेसे पिछड़े लोगों की अवस्था देख जीवन उनके अनुकूल बनाने का यत्न करना तब हम अपनेसे अधिक रियायत चाहने वालों या उठाने वालों से कुछ कह सकते हैं और उसका असर हो सकता है एवं तभी हमसे पिछड़े हुए अपना समझ कर हमारा साथ दे सकते हैं— दोनों तरफ़ के नहीं रहेंगे ।

निर्धनों की श्रेणी में हैं। अतएव एक ओर जहाँ सेवा हमारा व्रत होना चाहिए, वहाँ धनियों के न हो, इस बात की ज़िम्मेदारी भी हम पर से आती है। काम करने में यदि हम यह भावना) रक्खेंगे तो धनियों को हमारी बात सुननी बिना वर्ग-कलह के हम सुन्दर क्रान्ति करा

मालिक और मजूर

मालिक और मजूर की समस्या देश में दिन-दिन जटिल होती जा रही है। यह निर्विवाद सिद्ध है कि जबतक देश में बड़े कारख़ाने हैं, या उनकी आवश्यकता रहेगी, तबतक मालिक और मज़दूर भी किसी-न-किसी रूप में रहे बिना नहीं रह सकते। और यदि इन दो दलों का रहना अनिवार्य है, तो यह भी मानी हुई बात है कि उनका आपस में सम्बन्ध सब तरह अच्छा रहना भी परम-आवश्यक है—इसके बिना कारख़ाना एक मिनट अच्छी तरह नहीं चल सकता । यह इसका सबसे अच्छा उपाय है कि मालिक खुद-ब-खुद मजूरों के हितों पर, अपने हित से अधिक, ध्यान रक्खें, अपने मुनाफ़े से अधिक ध्यान उनके लाभ और सुख का रक्खें। इससे मजूरों में अपने आप कार्य-दक्षता और ज़िम्मेदारी का तथा कारख़ाने और मालिकों के प्रति प्रेम का भाव पैदा हुए और बढ़े बिना नहीं रह सकेगा। पर इतना होते हुए भी उनमें आपस में समय-समय पर झगड़ा और टक्कर होना सम्भवनीय है। क्योंकि यह तो मजूरों का, ग़रीबों का युग है; अब कहीं जा कर परमात्मा ने उनकी कुछ सुनी है, तो वे अपना ज़ोर जनाये बिना रहने के नहीं। इधर मालिक भी सब कहाँ इतने देशभक्त, सहृदय और दूरदर्शी हैं कि समय को पहचान कर आगे बढ़ जायँ? ऐसी अवस्था में आपस के झगड़ों का निबटारा करने के लिए एक पंचायत बना लेनी चाहिए। मेरी राय में कांग्रेस सबसे अच्छी पंचायत हो सकती है। अन्यथा मालिक और मजूर मिलकर अपने प्रतिनिधियों की एक पंचायत बना सकते हैं। ऐसा न करके जब दो में से कोई दल, मौजूदा हालत में, सरकार की शरण जाकर उसके दबाव से कोई ऐसा बिल या क़ानून बनाना चाहे, जिससे किसी एक दल के साथ पक्षपात होने की संभावना हो, तो इसे मैं अनुचित समझता हूँ। एक तो इससे सरकार को पूँजीपतियों और मजूरों में फूट डालने का अच्छा अवसर मिलेगा; दूसरे वर्तमान सरकार खुद एक भारी मालिक—पूँजीपति है; इसलिए क़ानून की रचना में, तथा बाद को उसके व्यवहार में, पूँजीपतियों का पक्षपात किये बिना और मजूरों को दबाये बिना रह नहीं सकती। और सरकार

के हाथ में ऐसा हथियार या अवसर देना मैं किसी तरह उचित नहीं समझता। वर्तमान 'ट्रेड डिस्प्यूट बिल' यदि सरकार की अपनी उपज है तो, मेरी राय में, पूँजीपतियों को—कम से कम हिन्दुस्थानी मालिकों को—उसका शिकार होने से बचना चाहिए था। यदि खुद मालिकों की प्रेरणा का यह फल हो, तो इस तरह पूँजीपतियों के द्वारा सरकार की शक्ति और नियंत्रण का बढ़ना देश-हित के लिए हानिकर है। इसी तरह मज़दूरों का संगठन भी महज़ राजनैतिक आन्दोलन के लिए करना अथवा उन्हें उसके निमित्त भड़काते रहना भी मैं पसन्द नहीं करता। मालिकों में जैसे कई महास्वार्थी और 'शायलाक़' हैं, तहाँ मजूरों के नेताओं में स्वार्थ-साधु और अयोग्य पुरुष न हों सो बात नहीं। परन्तु इसमें भी कोई शक नहीं है कि सबल और और निर्बल के मुक़ाबले में, धनी और निर्धन के मुक़ाबले में, सबल और धनी के ही पास दूसरे को दबाने के साधन विपुल होते हैं और दोनों की झगड़ पड़ने की अवस्था में ज्यादा दोषी वही समुदाय माना जाता है, जो धन, बल, विद्या में बढ़ा-चढ़ा हो। जब कि मौजूदा सरकार पर लोगों का विश्वास नहीं रहा है और दिन-दिन कम हो रहा है—मजबूरी से उसे उसका जूआ अपने कंधे पर रखना पड़ रहा है, यह बात जुदी है—तब उसके बल और प्रभाव से कोई ऐसा क़ानून बनवाना। जिसमें खुद उसका भी गहरा स्वार्थ है। मैं भयंकर समझता हूँ, फिर उसकी धाराओं के लिए व्यवस्थापक सभा में लड़ना या उनमें सुधार कराने की चेष्टा करना मुझे तो व्यर्थ मालूम होता है। इसपर यह कहा जा सकता है कि ये तो केवल तत्त्वों और सिद्धान्तों की बातें हैं, व्यवहार में इनसे काम नहीं चल सकता, तो जबतक इस अभागे देश के नसीब में गुलामी बदी है तबतक ऐसे आक्षेपों का सुन लेना भी हम जैसों के नसीब में लिखा हुआ है—यही समझ लेना बेहतर है।

ग़ैर-ज़िम्मेदारी के नमूने

समाचारपत्रों की ग़ैर-ज़िम्मेदारी, खेद है, बढ़ती पर है। यह गुण नहीं दोष है, बल नहीं कमज़ोरी का लक्षण है। महात्मा गांधी किसी शब्द का उच्चारण तक बिना सोचे-समझे नहीं करते; फिर किसी काम को करने के वह कितना सोचते-विचारते होंगे इसका अनुमान सह किया जा सकता है। फिर भी अख़बारों में हाल ही दो ऐसी छपीं कि जिन्हें पढ़ते ही मैंने मित्रों से कह दिया ऐसा हो नहीं सकता, यह ग़लत है। पहली बात तो कि साबरमती के सत्याग्रहाश्रम में अब संयम के कड़े उठा दिये गये और वहाँ अब लोग जो चाहें खा सकेंगे, चाहें रह सकेंगे, और जितने चाहें बाल-बच्चे पैदा कर दूसरी बात यह कि महात्माजी ने कहा, देश में मेरे कोई राष्ट्रीय नेता ही नहीं है। महात्माजी के कान तक बातें पहुँचते ही उन्होंने दोनों का खण्डन किया है बताया है कि ये दोनों समाचार किस तरह निराधार सत्याग्रहाश्रम आदर्श के रूप में रहकर उसकी वाह्य त्तियों के समूह का नाम उद्योग-मन्दिर रखने और को भोजन में हलदी, ज़ीरा ऐसे मामूली मसालों की की छुट्टी के अलावा किसी नियम में कोई परिवर्तन हुआ है।

हमारे संवाददाता और उनपर सारा आधार वाले सम्पादकबन्धु यदि ज्यादा ज़िम्मेदारी और सावधानी से काम लें तो इसमें बुराई नहीं है। उनके बारों की बिक्री चाहे कुछ कम हो, पर प्रभाव और तो अवश्य बढ़ेगी। अण्टशण्ट बातें लिखकर प्रचार की अपेक्षा सच्ची, तथ्य की और आवश्यक बातें लि प्रभाव और प्रतिष्ठा बढ़ाना क्या बुरा है? वे इस भूल जाते हैं कि प्रतिष्ठा और प्रभाव के अभाव में स्थायी बढ़ना असंभव है और महज़ बिक्री पर ही ध्यान रख पत्रकार का जीवन-कार्य नहीं हो सकता—न होना चा

धर्म बनाम शास्त्र

उस दिन जयपुर में दो विद्वान् धर्म-शास्त्रज्ञों से चर्चा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। विधवा विवाह अस्पृश्यता-निवारण, इन दो विषयों पर धर्म-शास्त्र की से बात-चीत चल पड़ी। हमारे सामने जीवन-दृष्टि, दृष्टि या यों कहें कि धर्म-दृष्टि प्रधान थी, उनके सामने दृष्टि। इसलिए स्वभावतः हमारी बातें युक्ति-प्रधान हो

शास्त्र-प्रमाण-प्रधान। हमारे कथन का ज़ोर इस बात कि धर्म का पालन, धर्म की वृद्धि, जीवन की उन्नति प्रधान है और शास्त्र गौण बात है। उनका ज़ोर पर था कि धर्म-शास्त्र का अक्षरशः पालन करके धर्म का पालन और जीवन की उन्नति कर सकते में एक जो वयोवृद्ध थे, व्यावहारिक या सामाजिक बल को बीच-बीच में मान लेते थे; पर दूसरे महा- शास्त्र-शब्दों का आग्रह विशेष था। इस वार्तालाप मैंने यहाँ उनके प्रमाणों या प्रमेयों का खण्डन- करने के लिए नहीं किया है; बल्कि धर्म और शास्त्र के संबंध में जो भाव और विचार मेरे मन में हैं, और जो उस समय विशेष रूप से जागृत हुए, पाठकों तक पहुँचा देने के लिए किया है।

राय में 'धर्म' और 'शास्त्र' दो बिलकुल जुदी बातें मोक्ष का—पूर्ण स्वतन्त्रता का— राजमार्ग है शास्त्र उस मार्ग पर चलने के नियमों का संग्रह है, समय-समय पर बने हैं। अतएव धर्म-शास्त्र धर्म के हैं, न कि धर्म धर्म-शास्त्रों का। दूसरे शब्दों में यों के त्रिकालाबाधित सत्यों—सिद्धांतों को व्यवहार में सम्बन्ध में बनाये गये विधि-विधानों के संग्रह का धर्म-शास्त्र, जिनमें स्मृतियों का समावेश हो जाता यह अर्थ हुआ कि धर्म के मूलभूत सिद्धांत जिस अटल हैं उस अर्थ में शास्त्र के नियम अटल और नीय नहीं हो सकते। जैसे सत्य और अस्तेय का करना पुण्य है, धर्म है—इस आदर्श में परिवर्तन सकता। परन्तु १२ वर्ष के अंदर कन्या का विवाह करना, में तीन दफ़े ही नित्य नहाना, या त्रिपुण्ड्र तिलक , आदि विधि-विधान ऐसे नहीं हैं, जिन्हें समय समाज की आवश्यकता को देख कर अधिकारी नहीं सकता। यदि किसी प्रणाली से, रीति से, से, फिर वह अपने प्रचलन-काल में चाहे कितनी और लाभप्रद क्यों न रही हो, आज सरेदस्त हानि देख रहे हैं—एक मोटी बुद्धि रखने वाला आदमी भी जिस बुराई से काँप उठता है और करने लगता है—उसे न बदलना, केवल इस विचार से कि हमारे प्राचीन शास्त्रकारों के वचन के विरुद्ध पड़ता है, कहाँ तक बुद्धि और युक्ति-संगत है? यदि आगे जन्म-जन्मान्तरों के लिए हमारे शास्त्रकारों ने हमारे लिए सब प्रकार के विधि-विधान बना रक्खे हैं, और वे ब्रह्मा की लकीर की तरह अटल हैं तो फिर परमात्मा ने उसके बाद मनुष्यों के और ख़ास कर एक हिन्दू के दिमाग़ में सारासार-विचार करने की शक्ति क्यों रख छोड़ी है? यह समझ में नहीं आता। और जब परमात्मा ने, गलती से ही सही, वह बुद्धि किसी को दे रक्खी है, और उससे कुरीतियों के कारण होने वाला समाज का दुःख और अधःपतन देखा नहीं जाता, धर्म का प्रत्यक्ष सर्वनाश होता हुआ उसे असह्य लगता है और इसके लिए उसे धर्म-शास्त्र के कुछ वचनों के प्रतिकूल चलना पड़ता है, तो इसका दोषभागी ईश्वर स्वयं है और हमारे धर्म-शास्त्रियों को पहले उसे सज़ा देने की तजवीज़ करनी चाहिए। समझ में नहीं आता कि जीवन-भर विद्यार्जन करने और विद्या-दान देने से जिनकी बुद्धि प्रखर और विद्वत्ता लोकमान्य है, वे इस प्रकार अन्धानुगमन को क्यों और किस प्रकार पसन्द करते हैं और उचित समझते हैं! अपने पूर्वजों और शास्त्रकारों के प्रति हमारा आदर-भाव सदैव रहेगा; पर इसका अर्थ यदि यह हो कि हम उनकी आज्ञाओं का अक्षर-अक्षर पालन करने के लिए अन्धे की तरह बंधे हुए हैं, तो जब तक कोई हमारे दिमाग़ को काटकर उसमें से हमारी भ्रष्ट बुद्धि को, जो सदैव समाज के दुःखों पर ख़ून के आंसू बहाती रहती है और धर्म-वृद्धि के लिए भूखे भिखारी की तरह आतुर और अतृप्त रहती है, काटकर बाहर न फेंक दे, हम इस बात से बराबर इन्कार करते रहेंगे और कहते रहेंगे कि धर्म-शास्त्र की जिन आज्ञाओं के पालन से आज समाज में पाप की वृद्धि हो रही है उनको न मानना हमारा धर्म है और आज इसी तरह धर्म की रक्षा हो सकती है।

देशी राज्य प्रजा-परिषद्

परिषद् के प्रधान मंत्री ने परिषद् की सहायता के लिए एक अपील प्रकाशनार्थ भेजी है, जिसे स्थानाभाव से प्रकाशित करने में असमर्थ हूँ। समाचारपत्रों के पाठकों से यह छिपा नहीं है कि इस परिषद् की ओर से एक प्रतिनिधि-

मण्डल इंग्लैंड में प्रचार कार्य कर रहा है, जिसके फल-स्वरूप, मन्त्रीजी लिखते हैं, देशी नरेशों के प्रतिनिधियों को उनसे समझौते की बातें करने पर मजबूर होना पड़ा है। इस कार्य को अधिक उत्साह-पूर्वक चलाने के लिए परिषद् को आर्थिक सहायता की आवश्यकता है। मैं स्वयं विदेशों में इस प्रकार के प्रचार-कार्य से सहमत नहीं हूँ; परन्तु 'त्यागभूमि' के जो पाठक उससे सहमत हों, उनका कर्तव्य है कि इस समय परिषद् के आर्थिक भार को उठाने में अपना भी हाथ आगे बढ़ावें।

लालाजी, हम लुट गये!

पूज्य लालाजी की मृत्यु के अचानक समाचार सुनकर मानों पाँवों के नीचे से धरती खिसक गई। मानों घड़ों ठंडा पानी किसी ने सिर पर उँडेल दिया। हृदय से वेदना फूटी—हा, लालाजी, हम लुट गये! बूढ़े नेताओं ने यह क्या ठान ली? भारत का मानों एक छत्र टूट गया। भा माता की मानों कमर टूट गई। हे ईश्वर! साइमन- को इतनी बड़ी, ऐसी पवित्र भेंट!!'

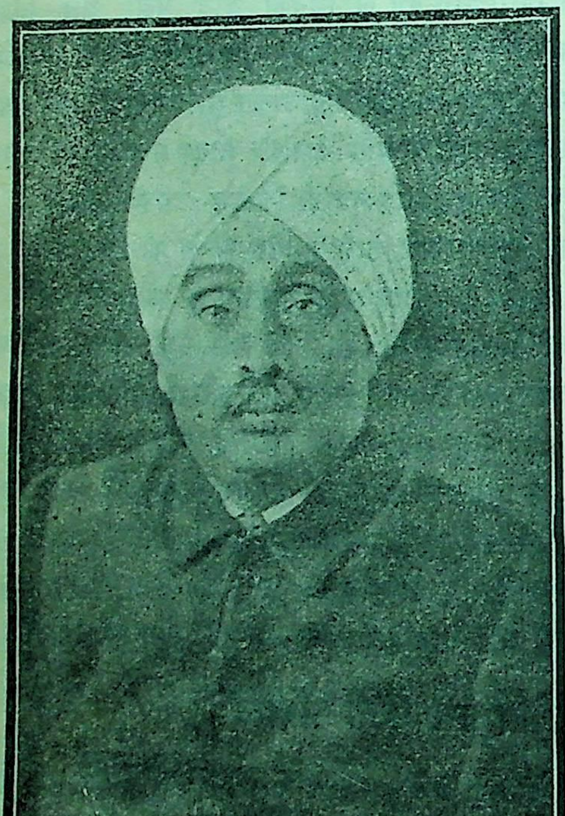

स्व० लाला लाजपतराय

÷ ÷ ÷

लालाजी की मृत्यु के सम्बन्ध में जो अधिकार वक्तव्य उनके पुत्र और डाक्टरों की ओर से प्रकाशित हु उससे जाना जाता है कि ३० अक्तूबर को लाहौर के स्टेशन पर गोरी पुलिस ने अपनी लाठियों से लाहौर के राजा का जो सत्कार किया था उसके कारण लालाजी दिन थकते जाते थे और अन्त को (१७ नवंबर के उनके स्वतन्त्र और मनस्वी प्राण इस पराधीन और आत्म से परिपूर्ण भूमि से ऊबकर चल ही बसे! १ लाख समुदाय ने अपनी आँसुओं की अंजुली से अपने पूज्य के शव को स्मशान में अंतिम अर्घ्य दिया!

पू० लालाजी के गुज़र जाने से इस समय देश की अपार हानि हुई, उसके लिए रोते रहना लालाजी की की दवा नहीं है। लालाजी की तीव्र आँखें, तनी भौंहों के साथ बरसती हुई चिनगारियों से, विश्व देख रही हैं कि मृत्यु को खेल समझने के ज्ञान का यह भारत सूखे आँसू ही बहा रहा है या उनके रहे का स्वराज्य की प्राप्ति—को पूरा करने में जुट पड़ा है! कर्मवीर लालाजी की अन्तिम पूजा क्या कोरे आँसु होकर रह जायगी? आँसू बरसाना हो तो लालाजी की पर नहीं, अपनी असहाय दशा पर बरसाओ— लालाजी क्या रोने की चीज़ हैं?

लालाजी की ज्वलन्त देशभक्ति, सजीव स्वार्थ विवेकपूर्ण राष्ट्रीयता, निरलस समाज-सेवा, विशाल अनु व्यापक जीवन, योद्धा की वृत्ति, स्वतन्त्र स्पष्टवा तीव्र समय-सूचकता, व्यावहारिक बुद्धि, अदम्य मनो किन-किन गुणों का स्मरण करके आज अपने हृदय पवित्र और अनुप्राणित करें? ओफ़! पंजाब के इस बबर की हुङ्कार और टटकार अब सुनने को न मिले तीर जैसे सीधे और खरे लेख अब पढ़ने को कहाँ मिलें 'पीपुल्स सोसायटी' का झण्डा अब कौन इसी

अकड़, और इसी जवाँमर्दी के साथ खड़ा ! ………

देश की नवयुवक और प्रज्वलित आत्मा इन दुःख के कमज़ोरी के उद्गारों को सुनने और बरदाश्त करने के तैयार नहीं है। वह झुँझला कर कहना चाहती है कि जी ने हमारी बढ़ती हुई स्वाधीन आकांक्षाओं के लिए राजनीति का ही नहीं; बल्कि इस भूमि का ही मैदान दिया है—हमारे इस बुजुर्ग ने यदि इस दूरन्देशी आत्म-त्याग का परिचय दिया है, तो मैं भी अपने परमाणुओं को खींचकर उस स्वाधीनता की बलि-पर अपनेको चढ़ने के लिए मचली बैठी हूँ।

लालाजी की चुटीली आत्मा, कसक पर हाथ रखते हुए, मूक अँगुली से उसी अकड़ के साथ संकेत करती है, कोरी बातें मत करो—काम में अपना जीवन खपा दो।

× × ×

'त्यागभूमि' के हृदय के लाला! 'त्यागभूमि' आपको श्रद्धा सहित अन्तिम प्रणाम करती है। जिस सप्ताह में हम, अजमेर-वासी, आपकी सिंह-गर्जना सुनने की आशा लगाये हुए थे, उसी सप्ताह यह लेखनी अपने काले खून से आपकी मृत्यु को कोस रही है—जिस संख्या का आरंभ आपके अग्रलेख से होता है उसीका अन्त आपके चिर-वियोग की वेदना में हो रहा है! उस खिलाड़ी के इन खेलों पर उसे क्या कहें? पुनः एक बार आपकी उज्ज्वल और व्याकुल आत्मा को अन्तिम प्रणाम!

ह० उ०

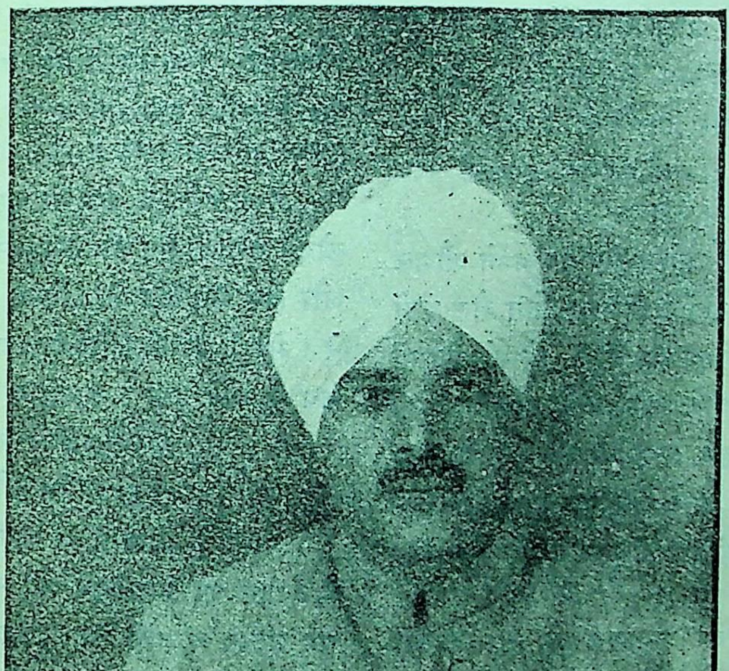

स्व० डॉ० केशवदेव शास्त्री

चित्र-दर्शन

काश्मीर

राजपूताने की मरुभूमि के एक कोने से तपस्विनी कन्या "त्यागभूमि" अपने आँचल में काश्मीर का स्वर्ग छापकर लोगों की तरसती आँखों को अर्पित करती है। आजकल कवियों के व्यथित-हृदय वेदना में इतने मस्त हैं कि वे प्रकृत-भुवन के विभवों की ओर दृष्टि-पात करने का भी अवकाश नहीं पाते। और हमारे अधिकांश चित्रकार भी युवतियों के यौवन और बालाओं के अछूते धन का रसिकों को नंगा-प्रदर्शन करके, सबकी आँखों में विलासिता का विष भर कर अपनी क़लम की कुशलता समझते हैं। भारत के बहुत थोड़े कवि और चित्रकार प्रकृति के प्रेमी हैं। यह चित्र भी, यद्यपि भारत के ही स्वर्ग का एक दृश्य है, फिर भी पश्चिम की एक चितेरी की करामात है।

विश्व के चतुर चितेरे ने भारतभूमि पर अपने कौशल का पूर्ण अभ्यास किया है। यहाँ के हिमाच्छादित शैल-श्रृङ्गों की, पर्वतों से झिरते हुए झर-झर झरनों की, हरे-भरे मैदानों की, जलाशयों की सुषमा पीड़ित से पीड़ित प्राणों में भी आनन्द और संतोष की लहर प्रभावित कर देती है। काश्मीर तो भारत का गौरव, संसार का स्वर्ग, एक नियामत है। उस काश्मीर के अमर यौवन की एक झलक इस चित्र में दिखलाई गई है।

प्राचीन भारत प्रकृति का उपासक था, इस स्वाभाविक सात्विक सौंदर्य का सच्चा और मतवाला भक्त था। किन्तु, अब, गुलामी की हत्यारी घड़ियाँ दो दाने पाने की चिन्ता में ही व्यतीत होजाती हैं। हमारा काश्मीर अपने रजत-आँचल से हमें सांत्वना देने के लिए बुलाया ही करता है, लेकिन हमारी आँखों के आँसू हमें कुछ देखने नहीं देते। हम अपनी तंग कोठरियों के बन्दी हैं।

हमारा वैभव हमें ही अलभ हो रहा है।

यही हमारा अभाग्य है। ऐसे ही अभागों के लिए यह चित्र निमंत्रण देता है, तरसाता है। जी चाहता है, इस स्वर्ग की शीतल छाया में अपने अन्तर की ज्वाला बुझादें;
अवकाश किसे ? हाथ-पैर बँधे हुए हैं। हमारा स्वर्ग
हो गया है।

हिमाच्छादित शैल-शृँगों पर हमारे विगत विभव
राम कहानी लिखी हुई है। हमारे गौरव-गिरि आज
आठ आँसू रो रहे हैं। यह वर्णन का विषय नहीं,
और निहाल होने की चीज़ है।

जीवन की अस्थिरता

"प्रभात का प्यारा और सुहावना समय था।
ने सुनहली तम्बू ताना। विहग-बालिकाओं ने मंगल
गाये। जलाशयों में कमलों ने बाल-रवि के स्पर्श से
खोल दिया। अपना धन भिखारी भ्रमरों को बाँटने

मैं भी अपने यौवन की मतवाली लहरों में,
आँखों से, जलाशय के एक तट पर, जल और
खेलने लगी। मुझे गर्व था कि मेरे यौवन के छाले
सुन्दर और आकर्षक हैं, जैसे ये कमल के फूल।

मैं अञ्जलि में जल भर कर कमल के पत्तों पर
छोड़ने लगी। क्या ही सुन्दर मोती बनते थे! मैं मुग्ध
और हंस ललचाते थे। किन्तु, ये मोती क्षणिक थे,
थे। मेरे हृदय की आँखें खुल गईं। मैं आँखें बन्द कर
भय से काँप उठी। आत्मा ने कहा,

नलिनी-दलगत-सलिलं तरलम्
तद्वत् जीवित मतिशय चपलम्।

पानी के मोतियों का पानी एक क्षण में ही उतर
है। गाल पर के आँसुओं की भाँति, ओस के कणों की
यह जीवन न जाने कब ढुलक पड़े। हाय! सब
बात! पवन का एक हलका-सा झोंका मोतियों-जड़ी
को सूनी कर देता है। हम इसी जीवन पर—अकिञ्चन
पर—इतराते हैं! ओफ़, कैसी भारी भूल है?

लहरें उठती हैं, फिर उसी सागर में मिल
बुलबुले उठते हैं, फिर उसी जल में मिल जाते हैं। यही
जीवन का सारा सार है।

यही तो है असार संसार
सृजन, सिञ्चन, संहार!"

हरिकृष्ण

सस्ती पुस्तकें मिलने का

अन्तिम अवसर

कई महीनों से 'त्यागभूमि' में पुस्तक-भण्डार की पुस्तकें चौथाई, आधी र पौनी कीमत में देने की सूचना प्रकाशित हो रही है। अब तक कई पुस्तकें मास हो चुकी हैं। जिन शेष पुस्तकों की एक-एक दो-दो प्रतियाँ हमारे यहाँ र बची हैं उनकी सूची अन्त में दी हुई है। जिन भाइयों, बहनों व पुस्तका-यों को पुस्तकें मंगाना हो तुरन्त आर्डर भेज दें। जो सज्जन इस सूचना को , वे अपने इष्ट मित्रों को भी कह दें।

व्यवस्थापक, सस्ता-मंडल, अजमेर

'त्यागभूमि' के प्रथम वर्ष की सजिल्द फ़ाइलें

(१) प्रथम अंक से लगाकर १२वें अंक तक की फ़ाइलों की केवल १० प्रतियां हमारे पास बची हैं। अंकों की दो जिल्दें हैं। मूल्य ६)

(२) सातवें अंक से लगाकर १२वें अंक तक सजिल्द फ़ाइल का मूल्य २॥) है। दूसरे अंक कर शेष अंकों की कुछ प्रतियाँ भी हमारे पास मौजूद हैं। **प्रत्येक फुटकर अंक का मूल्य ।=) है।**

जो भाई फ़ाइलें या अङ्क मँगाना चाहें, शीघ्रता करें; अन्यथा समाप्त हो जाने ना मूल्य देने पर भी ये चीज़ें न मिलेंगी।

पता—'त्यागभूमि'-कार्य्यालय, अजमेर

न भाइयों ने सेवा भाव से 'त्यागभूमि' के ग्राहक बनाये हैं उनके नाम सधन्यवाद नीचे लिखे जाते हैं।

नाम व पता	ग्रा० सं०	नाम व पता	ग्रा० सं०
च्छीरामजी खेतान, कलकत्ता	२	श्रीयुत गनपतलालजी, लखनऊ	१
जे० जी० महोदय	१	,, महाराजासाहब, बनेड़ा	३
खनलालजी हेडमास्टर, बड़नगर	२	,, अमरचंदजी मुखत्यार, मैनपुरी	१
मोहनलालजी बड़जात्या, कलकत्ता	१	,, जैनारायणजी व्यास, बगड़ी	१
रधारीलालजी, एलहाबाद	१	,, रामलौटनप्रसादजी, श्रीगंगानगर	१४
वन्तीदेवी जोशी, शिमला	३	,, गणेशदत्तजी शर्मा गौड़, आगर	१
चंदजी मिश्र, मैनपुरी	३	,, देवदूतजी विद्यार्थी, मदरास	४
		,, देवनारायणजी, कानबलू	१

नाम व पता	प्र० सं०	नाम व पता
श्रीयुत चौ० नन्देश्वर ठाकुर, दुर्गागंज	१	श्रीयुत चुन्नीलालजी वनमालीदास, माणसा
,, हरिभाऊजी श्रीधरजी दुबे, सोनकच्छ	१	,, ठा० ईश्वरदानजी, मैंगटिया
,, विष्णुदत्तजी शर्मा, लखनऊ	१	,, के० एल० पटेल, पिण्डरई
,, सरजूप्रसादजी पांडे, सुल्तानपुरऐमा	१	,, दुर्गाप्रसादजी, अजमेर
,, धर्मेन्द्रजी आर्योपदेशक, लाहोर	१	,, अवधबिहारीलालजी बी० ए० आगरा
,, माधोप्रसादजी चौबे, दिल्ली	१	,, तारकेश्वरनाथजी मुख्त्यार, हंडिया
,, द्वारकाप्रसादसिंहजी, मधुपुर	१	,, दीपचन्दजी M. L. C. बेतूल
,, रामलालजी सी० टी०, गोरखपुर	१	,, थानसिंहजी इन्सपेक्टर, कटक
,, महादेवजी पंसारी, जयपुर	१	,, नथमलजी चोरड़िया, नीमच
,, सोहनलालजी शर्मा, पुष्कर	१	,, मंत्री बड़ा बाजार कुमार सभा, कलकत्ता
,, लक्ष्मीनारायणजी हेडमास्टर, अजमेर	१	,, ठा० तिलोकसिंहजी, रोहली
,, टीकारामजी उपाध्याय, हल्दौर	१	,, श्री देवेन्द्रजी, जमशेदपुर
,, बृजनन्दनसिंहजी, दीनापुर कैण्ट	१	श्रीमती मेहताब, सोनकच्छ
,, त्र्यम्बकरावजी मुंशी, सेंधवा	१	श्रीमान् बाबूरामजी ओवरसियर, गणेशपुर
,, उत्सवलालजी तिवारी 'सुमन', आगर	१	,, चौ० दौलतसिंहजी एम. एल. सी. नरसिंहपुर
,, सरस्वतीप्रसादजी, लोहुत	१	,, पन्नालालजी जैन इन्दौर
,, शंकरसहायजी सक्सेना, उदयपुर	२	,, हरिशंकरजी टिकिट कलक्टर, मलाड़
,, नाथूभाई नेमीदास पारख, कालीकट	२	,, शंकरलालजी गुप्त, कानपुर
,, अमरजी शर्मा, बिजोलिया	२	,, नन्हक मोदी, डोमचांच
,, नाथूलालजी कन्हैयालालजी कोकलाखेड़ी	१	,, ईश्वरदास ताराचंद, उखली बाजार
,, श्रीचन्दजी गोलेछा, जयपुर	१	,, कालूरामजी वैद्य, बाँदा
,, शिवटहलजी महत्था, डोमचांच	३	,, पी० डी० श्रीवास्तव, सिमला
,, डा० किशनलालजी बड़ूद	१	,, गणेशीलालजी लावा
,, हरिप्रसादजी हरितवाल, नीमच	२	,, नारायणरावजी गुमाश्ता, सोनकच्छ
,, सिद्धनाथजीपंत, बंगलोर	२	,, गुमनाम, देहरादून
,, नारायणदासजी वैष्णव, नन्दप्रयाग	२	,, जगदेवजी उपाध्याय, बलिया
,, उमानाथजी तिवाड़ी, शाहाबाद	१	,, मैनेजर वैदिक भण्डार, हरिद्वार
,, उल्फतशाह, पीतेपुर	२	,, आत्मानन्दजी हेडमास्टर, गुरुकुल मुल्तान
,, काशीनाथजी त्रिवेदी, अजमेर	१	,, नकुलप्रसादजी, मढ़ी
,, पं० गंगानाथ झा, बनैली	१	,, चिंतामनी पंत, शिमला
,, रामपालसिंहजी, निर्मली	१	,, राजकुमार पाण्डेय शास्त्री, बगहा
,, कल्याणदासजी शर्मा, काचकानगला	२	,, अमोलखरामजी वर्मा, मोतीहारी
,, मा० पन्नालालजी शर्मा, शिवपुरी	१	,, जोरावरमलजी सुराणा, जालना
,, मैनेजर राम एण्ड कम्पनी, गहमर	१	,, रामबहादुरजी, एटा
,, मारुतीराव भोलाजी ओकटे हरई	१	,, हिन्दी साहित्य-सदन, अबोहर

स्तकों का मूल्य नीचे लिखे अनुसार कम कर दिया गया है

पुस्तकों की प्रतियाँ थोड़ी ही हैं। आपका आर्डर आने तक जो मौजूद होंगी, भेज दी जावेंगी

५) रुपयों से ऊपर आर्डर के लिए कुछ पेशगी रुपया भेजना चाहिए

मूल्यवाली पुस्तकें

स्वाधीन बनो	।।)
	१।=)
स्व	।।)
ा देखने की विधि	—)।।
नियम	।।—)
शब्दावली	।—)
विद्यार्थी विनोद	।=)
चिन्तन	।।।=)
राष्ट्रनिर्माण	।।।=)
शासन	।।।=)
राजस्व	।।।=)
समस्या	१)

जीवन चरित्र

कौन हैं ?	।।—)
[बड़ी जीवनी]	१)
य	।=)
के प्रेमी सिनफ़िनर	।)
जी की संक्षिप्त जीवनी	≡)
जी	१)

कविता

की झनकार	।।)
कविता	१।।)
चरित्र	=)।।
तरंग	।)
भजनावली	=)।।
र्चा	।—)
त्र	।।)
णी	।)
	।।)
	।=)

इतिहास

सिवनी सरोजनी	।=)
खादी का इतिहास	।।=)

राष्ट्रीय

किसानों का अधिकार	।)।।
किसानों पर अत्याचार	।—)
गांधीजी का अभियोग	।)
देशी राज्य दर्शन	१।।)
पंजाब का नर हत्याकाण्ड	।।।≡)
भारतमाता का संदेश	।।)
भारतवर्ष के लिए स्वराज्य	।=)
भारतीय किसान	≡)।।
भारतीय जेल	।।)
भारतीय नवयुवकोंको राष्ट्रीय संदेश	।।।)
राष्ट्रीय आन्दोलन	१।।)
हंगरी में असहयोग	=)।।
हम असहयोग क्यों करें ?	।।)
हिन्द स्वराज्य	।-)

स्त्रियोपयोगी

सती अंजनादेवी।।=) कुन्तीदेवी १।।)

अनन्दमती ।।।=) कुलकमला ।।।=)

उपन्यास

गंगोत्तरी	।।।)
भारत सम्राट् परीक्षित	१।)

नाटक

अत्याचार का परिणाम	।।।—)
भक्तिविजय	।।=)
भूतखेलनी ओझा	।।।)
सुनहरी खंजर	।।=)

चौथाई मूल्य वाली पुस्तकें

असहयोग दर्शन	१।)
हिंदुस्थान का राष्ट्रीय झंडा	१)
अकालियों का आदर्श सत्याग्रह	।।)
देशबन्धु दास की जीवनी (ले० बाबू संपूर्णानन्द बी० ए०)	।।)
नागपुर की कांग्रेस	।।।)
भारत को स्वाधीनता का संदेश	१।)
भारत बीती	।।।)

पौनी कीमतवाली पुस्तकें

नवयुवकोपयोगी

अरविंद मंदिर में	।।।)
आर्य गौरव	।।)
इतना तो जानो	।—)
उन्नति	।।=)
कल्याणमयी चिंता	।।)
कर्तव्य	१।।)
गांधीजी के निजी पत्र	।—)
गांधीजी की दिव्यवाणी	=)
गृह शिक्षक	।।।)
जातिभेद	।।।)
जातीय शिक्षा —) राष्ट्रीय शिक्षा	—)
नैतिक जीवन	१)
नीतिधर्म (म० गांधी लिखित)	।)
पुनर्जन्म	१।)
प्रेमपुष्प	।।)
बाल रामकथा	।।।)
ब्रह्मचर्य सोपान	।)
भाव चित्रावली	४)
सचित्र रामायण	२)
सफलता	।।।)
संसार सुख साधन	।≡)
स्वास्थ्य	≡)
सफल गृहस्थ	।।।)

नीचे लिखी सब पुस्तकें पौनी कीमत में मिलेंगी

तरुणभारत (लाजपतराय)	१)
हितकारक	≡)
हिन्दू विवाह	॥≈)

जीवन चरित्र

बा० कुंवरसिंह २) सजिल्द	२॥)
गेरीबालडी	१॥)
आदर्श चरितावली	।≈)
परशुराम	३)
मेजिनी(राधामोहन गोकुलजी)	१॥)
मेवाड़ के महावीर	१।)
सिराजुद्दौला	२)
वीर श्रेष्ठ सावरकर	॥≈)
स्वाधीनता के पुजारी	१।)
सनयाट सेन	।)
सम्राट श्रीहर्ष	॥।)
सम्राट् अशोक	१)
भारत भक्त ऐंड्रूयूज़	२।)
विदेशियों की दृष्टि में म० गांधी	≈)
इटली के विधायक महात्मागण	२।)
जमशेदजी ताता	।)
भक्त प्रह्लाद	॥≈)
प्रेम पुजारी	१)
राजर्षि भीष्म	।)
भगवान महावीर [सजिल्द]	४॥)
भगावानमहावीर[राजसंस्करण]	१०)
महाराष्ट्र नेता रामदास	≈)॥
वैज्ञानिक जीवनी	१)

कविता

अन्योक्ति तरंगिणी	।)
अयोध्या कांड	॥।)
आर्य-सत्संग गुटका	।)
ईश्वरदास	॥)
उपदेश रत्नमाला	≡)॥
कविता कुसुम	।)
कंस वध	।≈)
गांधी गौरव	॥।)
जागृत भारत (पं० माधव शुक्ल)	॥)
तपस्वी तिलक	२)
पद्यपुंज	॥)
पद्य पुष्पांजली	।≈)
पंचों का पोलखाता	।≈)॥
बच्चों के गीत	।–)
भोज प्रबन्ध	॥।)
मातृ वंदना	॥)
संजीवनी	।–)
हिंदू गायन	।–)
त्रिशूल तरंग	॥≈)
हृदय बीणा	॥–)
अनामिका	।≈)
ऊषा	॥=)
उर्वशी चम्पू	≡)
विनयपत्रिका	१॥)
किसान (बा०मैथिलीशरणगुप्त)	।≈)
पत्रावलि (")	।–)
श्रीकृष्ण गायन	१॥)
गीतावली रामायण	॥≈)
बेगारी विलाप	–)
बोध प्रकाशी	।)
राजस्थानी गीत	≈)।
राष्ट्रीय वीणा	॥)
सुमन	१)
पलासी का युद्ध	१॥)
ज्ञानगजरा	≡)
पद्यरत्न प्रभा	।)

इतिहास

ग्रास का इतिहास
फ्रांस की राज्यक्रांति
रूस में युगान्तर
सन् ५७ का गदर
संसार की राज्यक्रांतियां
हिन्दूपाद पादशाही(सावरकर
भारतवर्ष का इतिहास
चीन की राज्यक्रांति
भारतीय आत्मत्याग
यूरोप में बुद्धि-स्वातन्त्र्य
रूस का पुनर्जन्म
वेदोक्त राज्य
वीरोपाख्यान
सुलेमान सौदागर
हुमायूँनामा
हिन्दुस्थान दो भाग
भारत के हिंदू सम्राट्

राष्ट्रीय

कांग्रेस का जन्म
कानूनभंग
पंजाब की वेदना
राष्ट्रीय स्वतन्त्रता
स्वराज्य घोषणा
एशिया निवासियों के प्रति यूरोपियनों का बर्ताव
ओसवाल समाज की वर्तमान स्थिति
जर्मनी की राज्यव्यवस्था
ट्रांसवाल में भारतवासी
देशभक्ति की पुकार(लाजपतरा
देशी करघा

नीचे लिखी सब पुस्तकें पौनी कीमत में मिलेंगी ।

	।।=)
ंदू	।।।-)
त भीषण हत्याकांड	१।।।)
और अंग्रेज़	१।।)
और इंग्लैंड	१।।)
शासन-सुधार	।।)
की पोल	।)
के अनुभव	।=)
सभ्यता का दिवाला	।=)
प्रवेशिका	।=)
पथिक	।-)
	।।)
सोपान	≡)
सिद्धान्त	१।।।)
(भाई परमानंद)	१)
जागृति	१)
और किसान	।।=)
और असहयोग	१।।।)
सेनजी शास्त्री)	
द	२।)
श	।।।)
प्र० भाग	१)
२ भाग	१।।)
३ भाग	२)

तीनों भागों में महात्मा के लेखों का संग्रह है । पृष्ठसंख्या लगभग२४०० कई चित्र हैं । इसतरह पृष्ठ पड़ते हैं । इस पर सैकड़ा कमीशन है)

	।।।)
के संयुक्त राज्य की प्रणाली	१।)

अमेरिका कैसे स्वाधीन हुआ?	।।)
पूर्ण स्वाधीनता का दावा	≡)
मिश्र की स्वाधीनता	२)
वर्तमान एशिया	२)
जातियों को संदेश (पालरिचार्ड)	।।-)
प्रजा के अधिकार	।।)

धार्मिक

अघमर्षण रहस्य (इंडियन प्रेस)	१)
चँवर पुराण	≡)।।
त्रिदेव निरूपण	।-)
राजयोग	।।)
अहिंसा तत्व	।=)
आचार चंद्रिका	।।)
कल्कि पुराण	१।।)
गुरु शिष्य संवाद	।)
गीता पंचरत्न	२)
गीताकी भूमिका(अरविंद घोष)	।।।)
गीता सत्य-योग	१।)
छह ढाला (जैनधर्म की पुस्तक)	≡)
जीवन वेद (केशवचन्द्रसेन)	१)
दिग्विज्ञान	१।।)
परलोक रहस्य	।)
भक्ति का मार्ग	।।)
योग दर्शन	२)
रामायण मूल (मोटा टाइप)	१।।)
रामायण मूल (गुटका)	।।)
बिचार दर्शन	१।)
श्रुतिसंगीतकम् [सचित्र] (वेदों के आदर्श मंत्रों का संग्रह)	।।)
दयानंद तिमिर भास्कर	४)
नित्य कर्म विधि	≡)
नित्य कर्म चंद्रिका	।)

ब्रज भाषा बिलास	२)
ब्रह्मयोग विद्या	१।)
राजयोग	१।।)
वैदिक उपदेशमाला	।।)
योगशास्त्रांगतधर्म	।।)
योगत्रयी	।।)
जीवन मरण रहस्य	।=)

स्त्रियोपयोगी

अंजना सुंदरी	।।)
आदर्श महिला	।।=)
सती उषा	।।)
गुप्त संदेश	।।)
महिला कर्तव्य	।=)
व्याही बहू	।)।।
कुल लक्ष्मी	।।)
गृह धर्म	।।।)
विदुषी गार्गी	।।)
गांधारी	।।।)
गृहणी कर्तव्य	२)
जया (चितौड़ की रजपूतनी)	।-)
नारी धर्म विचार	१।।)
सती पार्वती	।।)
पुत्री शिक्षक	।।)
वनिता विनोद	।।=)
मानवती(राजपूतनी का विवाह)	।-)
रमणी कर्तव्य	।।=)
सती सुचरित्र	१)
स्त्री कर्तव्य शिक्षा	२।)
सती सारंधा	।।=)
सती सीता	।।=)
सती सुनीति	।।।)
शर्मिष्ठा	।।=)
शर्मिष्ठा और देवयानि	।।)
सती अरुन्धती	।।=)

नीचे लिखी सब पुस्तकें पौनी कीमत में मिलेंगी।

नारी नीति	॥=)
स्त्री-जीवन	।-)
सती पद्मनी	॥=)
सती सुकन्या	॥।)
लक्ष्मी चरित्र	१)
सती सुलौचना	१।)
वीर बाला	=)
सती सामर्थ्य	॥।)
महासती वृंदा	१)
स्त्री की चिट्ठी	२)
सती सुलक्षणा	॥)

उपन्यास

अनन्त	≡)
अपराधिनी	१॥)
अनोखी लीला	॥)
अविवाहिता	॥)
अजेयतारा	१॥)
अनाथ सरला	॥।)
अमृत और विष	५)
आलोकलता	१॥=)
आदर्श देशभक्त	१।)
आदर्श बलिदान	।=)
उदय प्रकाश	१।)
उमा सुन्दरी	॥।)
उर्वशी	१)
कर्तव्याघात[मौलिक उपन्यास]	२॥)
कलङ्किनी	१।=)
कपाल कुण्डला (बंकिमचन्द्र)	॥।)
कर्मपथ	२)
कालेज होस्टल	।)
कुसुम संग्रह	१॥)
कृष्णकान्ता आठ भाग	४)
गल्प लहरी	१।)
गल्पांजली	॥।)
चन्द्रधर	॥)
चन्द्रनाथ	॥।)
चित्रशाला	१॥।)
दुरंगी दुनिया	२)
देवकली	।=)
देशोद्धार	१)
दो बहिन	॥)
नव्वाबी के अन्तिम दिन	१।)
नव्वाब नन्दिनी	॥।)
पाप का फल	।≡)
प्रायश्चित	३)
फूलों की डाली	≡)॥
फूलों का हार	॥।)
विलासिनी	१॥)
बलिदान	१)
भारतप्रेमी	॥।)
मनोरमा	२॥)
मंगल प्रभात	५)
मिलन मन्दिर	२॥)
युगल कुसुम	।=)
रजनी (बङ्किमचन्द्र)	॥=)
लवकुश	१॥।)
लीलावती	१॥।)
बनदेवी	॥।)
विमाता	२।)
वीर राजपूत	१)
वीर वीराङ्गना	॥)
वैज्ञानिक कहानियाँ	।)
बंग बिजेता	॥।)
बनमाला	३)
बन्देमातरम्	१॥।)

शान्ति निकेतन
शाही जादूगरनी
शाही पतिपरायणा
शैतान की शैतानी
शैलबाला
सहधर्मिणी
सर्वस्व समर्पण
सर्पिणी
सत्यप्रेम
सप्तसुमन
सरला
सखाराम (बालविवाह)
सुखद सम्मिलन
सरोजबाला
सुहासि
सुभद्रा
सूर्यास्त
सुप्रभात

सूर्यग्रहण-शिवाजी के
को ऐतिहासिक उपन्यास
(अनुवादक बा० रामचन्द्र
मूल्य २॥) सजिल्द

अनुचरी या सहचरी
अधखिला फूल
आदर्श दम्पति
आग की चिनगारी
कादम्बरी
कुमारी
जादू का महल, दो भाग
जादूगर
तीन फूल
देवी या दानवी
भीषण नारी हत्या

नीचे लिखी सब पुस्तकें पौनी कीमत में मिलेंगी।

	॥)
की कन्या.	।।।)
त	१॥)
ंती	२)
र्पण	१)
ा फल	१॥)
न्त	
ता सन्तति (आठभाग)	५)
ता (चार भाग)	३)
ा हार	१)
ाहरण	।।।)
ा गुच्छा	॥-)
क बदला	१।)
ं	३)
न्द्र	१॥=)
ा (तीन भाग)	२।)
रहस्य	३॥)
तूफान	१)
नी (बंकिमचन्द्र)	१)
देवी	॥=)
ना	१।।।)
ना रहस्य	५)
द तीन भाग	१॥)
ारी	१।)
जाल	।=)
परिवर्तन	२)
कुसुम	१।)
नांग	१॥)
की करामात	१॥)
कंटक	२॥)
ान	।=)
री	१॥)
ी	॥)
ना चार भाग	२॥)

सरस्वती चन्द्र	१।।।)
सीधे पंडित	१॥)
सत्यानन्द	१।)
सोने की कंठी	१)
हेमलता [तीन भाग]	२।)

नाटक

सम्राट् अशोक	१॥)
उषांगिनी	१)
कलिमद मर्दन	≡)
गरीब हिन्दुस्थान	१।)
गुलामी का नशा	।≡)
गृहलक्ष्मी	१॥)
छद्मयोगिनी	।)
वीर कुमार छत्रसाल	१॥)
जयन्त	।।।)
भक्त तुलसीदास	॥=)
देश दीपक	।।।)
दोधारी तलवार	॥)
धर्माधर्म युद्ध	।।।)
भक्त ध्रुव	॥)
नल दमयन्ती	।।।)
नवीन भारत	।।।)
नेत्रोन्मिलन	।≡)
प्रफुल्ल	१=)
सत्याग्रही प्रह्लाद	१)
बालविवाह नाटक	≡)
भारत दर्पण	१)
भारत गौरव	१॥)
महेन्द्रकुमार	॥)
मूर्खमण्डली	॥=)
मायावी	॥)
रणबाँकुरा चौहान	१।)
राजारानी	।।।)
महात्मा विदुर	१)
वीर पूजा	१॥)
वीरांगना	॥)
शकुन्तला	।।।)
सिद्धार्थकुमार	१।)
हिन्द	१)
महात्मा ईसा (ले० श्रीबेचन शर्मा 'उग्र')	।।।=)
कलियुग की सती	।।।)
जयाजयन्त १।) सजिल्द	१।।।)
दलजीतसिंह	॥-)
दाग़ी माल	॥)
नाट्य संभव	।=)
नूरजहाँ	१=)
सम्राट परिच्छित नाटक	१।)
फन तमाशबीनी	।=)
प्रबोध चन्द्रोदय	१)
भयंकर भूत	१।)
राई का पर्वत	१।।।)
विद्या सुन्दर	≡)
समय	॥)
सैदेहवस	॥)
स्वामिभक्ति	१।)
हुब्बेवतन	॥)
चित्रांगदा अर्थात् अर्जुन और चित्रांगदा का स्वाभाविक प्रेम (ले० श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर) सचित्र	।=)

विज्ञान व कृषि

ताप	।=)

साहित्य

ईलियड काव्यसार	।=)
तुलसी साहित्य	।।)
प्रवेशिका हिन्दी व्याकरण	१)
बिहार का साहित्य	१।।)
राजकोष	१।)
विद्यापति की पद्यावली	२)
हिंदी पद्य रचना	।)
हिंन्दी लिंग विचार	≡)
करघा कला	।।।)
भारत में रेलपथ	२।)
व्यापारिक पत्र व्यवहार	१=)
[ले.श्री कस्तूरमल बांठिया बी.काम]	
हरफ़नमौला	१)
युद्ध की झलक	।)
युद्ध परिचय	।)
खद्दर शिक्षक	।।)
वृक्ष में जीव हैं	१।।।)
देव और बिहारी	१।।=)
भाषा भूषण	।।।)
रचना विचार प्र० भाग	१)
” दूसरा भाग	१।)
रघुवंशसार	।।=)
राग रामायण	२)
साहित्य संगीत निरूपण	।।=)
हिंदी व्याकरण	३)
हिंदी भाषासार	।।।)
हिंदी रचनाप्रणाली	१)
पद्य प्रसून	१।।)
विज्ञान और आविष्कार	१=)
विज्ञान प्रवेशिका प्र० भाग	।)
विज्ञान प्रवेशिका दूसरा भाग	१)
शुश्रूषा	१)
अभिज्ञान शाकुंतल की प्रस्तावना	।)

बहिष्कृत भारत	।)
Key of Knowledge (Jain Philosophy) (Champatrai M. A.)	मूल्य १०)

भारतीय अर्थशास्त्र २) का १।) में

रेल से माल भेजने के नियम (वाया गुड्स) यह हिन्दी भाषा में बहुत ही उपयोगी पुस्तक निकली है। मू० ३)

पौनी कीमत वाली पुस्तकें समाप्त

पूरी कीमत वाली पुस्तकें

(इन पुस्तकों का मूल्य बहुत ही सस्ता रक्खा गया है)

तिलकचरित्र ले० श्री०केलकर ४)

श्री बाल्मीकीय रामायण—

(मूल संस्कृत हिंदी अनुवाद सहित)

बालकांड (पृष्ठ ३८४)	मू० ।।।)
अयोध्याकांड (पृष्ठ ७६८)	मू० १।।)
अरण्यकांड (पृष्ठ ४१६)	मू० ।।।–)

पौराणिक कथाएँ—

(पृष्ठ ८२५) मू० २।।=)

कविता कौमुदी (प्र० भा०) ३)

दूसरा भाग ३), तीसरा भाग ३)

गीता (सटीक) पृष्ठ ३५६	मू० =।।)
गीता भाषा	।)
गीता विष्णु	=)
स्त्रीधर्म प्रश्नोत्तरी	=)
प्रेमभक्ति प्रकाश	–)
गीतामूल बड़ाटाइप	≡)
गीताविष्णु सजिल्द	=)।।
संध्या	)।।
हरेराम भजन	)।।।

सीताराम भजन

नवयुवकोपयोगी-

उद्यान

नीतिविज्ञान

बाल कथा कहानी

आत्म प्रकाश

विद्यार्थियों का सच्चा मित्र

हिन्दुत्व (सावरकर)

सामर्थ्य, समृद्धि और शान्ति

संजीवन संदेश

जीवन चरित्र

कल्याण मार्ग का पथिक

भारत के महापुरुष (दूसरा भाग)

शिवाजी सजिल्द

कविता

दाग़े जिग़र

तुलसी ग्रंथावली (तीनभाग)

पथिक सजिल्द

पथिक अजिल्द

हारमोनियम पुष्पांजलि

ब्रह्मानन्द भजनमाला

बूढ़े का ब्याह

मेरे फूल

इतिहास

अंग्रेज जाति का इतिहास

तिब्बत में तीन वर्ष

पश्चिमी यूरोप

मराठे और अंग्रेज

राजस्थान का इतिहास प्र.भा.

राष्ट्रीय

दक्षिण आफ्रिका के मेरे अनुभव

राष्ट्रीय आय-व्यय शास्त्र

धार्मिक

अयोध्याकांड

अयोध्याकांड सजिल्द

सब पुस्तकें मिलने का पता:—सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर

१)
सिता ||=)
गार १|)
दर्शन ||=)
दर्पण |≡)
रहस्य |)
धर्म प्रवेशिका

स्त्रीयोपयोगी

ओं पर अत्याचार २||)
लक्ष्मी १|)

जननी और शिशु ||=)
दुलहिन |)
विधवा विवाह १||)

उपन्यास

अधखिली कली २||)
कायाकल्प (प्रेमचंद) ३||)
टामकाका की कुटिया १=)||
प्रेमिका २||)
प्रतिभा १|)

हिन्दी महाभारत (तीनभाग) ३||)
रवीन्द्र कथा कुंज १)
राजपूत जीवन संध्या १||)

नाटक

उलट-फेर (जी०पी०श्रीवास्तव) १|)
जनमेजय का नागयज्ञ ||=)

साहित्य

बिहारी सतसई (सटीक) १|)
विनय पत्रिका २)
शब्दार्थ पारिजात ३)

नश्यामदासजी बिड़ला, सेठ जमनालालजी बजाज आदि द्वारा स्थापित सस्ता-मंडल, अजमेर से प्रकाशित

भारतवर्ष में सब से सस्ती, सचित्र उच्चकोटि की

☞ त्यागभूमि ☜

जीवन, जागृति, बल और बलिदान की मासिक पत्रिका

संपादक—पं० हरिभाऊ उपाध्याय

पृष्ठ संख्या १२०, दो रंगीन और कई सादे चित्र

वार्षिक मूल्य केवल ४)

शुरू हो गया ! शुरू हो गया ! शुरू हो गया !

'त्यागभूमि' का दूसरा वर्ष शुरू हो गया

पहले अंक में लगभग १५० पृष्ठ, कई रंगीन और सादे चित्र हैं। पहले अंक से ही ग्राहक बनिए, ताकि वर्ष भर की फ़ाइल आपके पास रहे। देर में ग्राहक बनने से प्रथम वर्ष के कई ग्राहकों को शुरू के अंक न मिल सके थे।

सूचना—पाठक इस बात को ध्यान में रक्खें कि और पत्र पत्रिकाओं के हिसाब से तो पृष्ठ और चित्रों सहित इस पत्रिका का मूल्य ६) या ६||) रक्खा जाना चाहिए था पर सस्ता मंडल का उद्देश्य तो सस्ते से सस्ते मूल्य में साहित्य का प्रचार करना है इसलिए मूल्य लागत से भी कम रक्खा है। स्त्रियों और बालकों के लिए भी उपयोगी लेख रहते हैं। नमूने की प्रति के लिए ||) के टिकट भेजें।

मंडल से प्रकाशित पुस्तकों का हाल भी देखिये) **व्यवस्थापक 'त्यागभूमि' अजमेर.**

सस्ता-मंडल की सस्ती और उपयोगी पुस्तकें

पुस्तकों का विषय, उनकी पृष्ठ संख्या और मूल्य पर विचार कीजिये

अन्य प्रकाशक प्रायः १०० पृष्ठों की पुस्तक के लगभग ।|) या ।।=) मूल्य रखते हैं

पर मंडल इतने ही पृष्ठों का मूल्य केवल ।) रखता है

म० गांधीजी की आत्म-कथा पृष्ठ ४१६ का मूल्य तो केवल ।।=) रखा गया है।

सस्तीमाला के पृथम और द्वितीय वर्ष की पुस्तकें

(१) दक्षिण आफ्रिका का सत्याग्रह (म० गांधी) (पूर्वार्द्ध) पृष्ठ २७२ मूल्य ।।।)
(२) „ „ (उत्तरार्द्ध पृष्ठ २२८ मूल्य ।।)
(३) तामिलवेद (महर्षि तिरुवल्लुवर) धर्म, अर्थ और मोक्ष पर अमृतमय उपदेश—१५०० वर्ष पूर्व का प्राचीन ग्रंथ पृष्ठ २४८ मू० ।।=)
(४) हाथ की कताई बुनाई–(अनु० रामदास गौड़ एम. ए.) पृष्ठ २६६ मूल्य ।।=)
(५) भारत के स्त्री रत्न (प्रथम भाग) अनुवादक बाबू रामचन्द्र वर्म्मा पृष्ठ ४१० मूल्य १)
(६) स्त्रीरत्न (दूसरा भाग) पृष्ठ ३२८ मूल्य ।।।–)
(७) आत्मोपदेश–पृष्ठ १०४ मूल्य ।)
(८) जीवन-साहित्य (काका कालेलकर)
(प्रथम भाग) पृष्ठ २१८ मल्य ।।)
(दूसरा भाग) पृष्ठ २०० मूल्य ।।)
(९) शिवाजी की योग्यता–पृष्ठ १३६ मू० ।=)
(१०) दिव्य जीवन–पृष्ठ १३६ मू० ।=)
(११) व्यावहारिक सभ्यता–पृष्ठ १२८ मू० ।)।।
(१२) क्या करें? (टाल्सटाय) पृष्ठ २६६ मू० ।।=)
(१३) स्त्री और पुरुष-पृष्ठ १५४ मू० ।=)
(१४) हमारे जमाने की गुलामी-पृष्ठ १०० मू० ।)
(१५) कलवार की करतूत-पृष्ठ ४० मू० –)।।
(१६) चीन की आवाज़–पृष्ठ १३० म० ।–)

❀राष्ट्रनिर्माणमाला [सस्तीमाला]—तृतीय वर्ष

(१) आत्म-कथा (म० गांधीजी के सत्य के प्रयोग अथवा आत्मकथा) पृष्ठ ४१६ मू० ।।=)
(२) श्रीराम-चरित्र (ले० श्री चिंतामण विनायक वैद्य एम. ए.) पृष्ठ ४४० मूल्य १।)

प्रकीर्णमाला के प्रथम और द्वितीय वर्ष की पुस्

(१) कर्मयोग—पृष्ठ १५६
(२) कन्या-शिक्षा–पृष्ठ ९४ मूल्य ।=)
(३) सीताजीकी अग्निपरिक्षा–पृष्ठ १२४मू मूल्य
(४) स्वाधीनता के सिद्धान्त–पृष्ठ २०८ मू०
(५) यथार्थ आदर्श जीवन–पृष्ठ २६४ मू० ।।
(६) तरंगित हृदय—पृष्ठ १७५ म० ।=
(७) स्वामीजी (श्रद्धानन्दजी) का बलिदान और हमारा कर्तव्य—(ले. पं. हरिभाऊ उपाध्याय) पृष्ठ १२५ मू. ।–
(८) गंगा गोविन्दसिंह (श्री चण्डीचरणसे लिखित ऐतिहासिक उपन्यास) पृष्ठ २८८ मू०
(९) यूरोप का सम्पूर्ण इतिहास (मौलिक ग्रं (ले० श्री रामकिशार शर्म्मा बी.ए. विशार पृ० ८३० मल्य
(१०) गोरों का प्रभुत्व (रामचन्द्र वर्म्मा) पृष्ठ २७४ म० ।।
(११) अनोखा—विक्टर ह्यूगो के "The Laughing man" का हिन्दी-अनुवाद–अनुवादक ठाकुर लक्ष्मणसिंह बी० ए० एल० एल० बी० पृष्ठ ४७४ मू० १।
(१२) ब्रह्मचर्य-विज्ञान–इस विषय की सर्वो पुस्तक (ले० पं० जगन्नारायण देव साहित्य-शास्त्री) पृष्ठ ३७४ मूल्य ।।।)

❀राष्ट्रजागृतिमाला [प्रकीर्णमाला]—तृतीय

(१) सामाजिक कुरीतियां (टाल्सटाय) मूल्य पृष्ठ २८०
(२) घरों की सफाई (पृष्ठ ९२) मूल्य
(३) आश्रम-हरिणी (उपन्यास) पृष्ठ ६२ (श्री ले० वामन मल्हार जोशी एम.ए.) मूल्य

नियम—प्रतिवर्ष मण्डल से दोनों मालाओं में ३२०० पृष्ठों की लगभग पन्द्रह सोलह पुस्तकें निकलती हैं स्थाई ग्रा वार्षिक ग्राहकों से इन पुस्तकों का डाक व्यय-सहित केवल ८) वार्षिक मूल्य पेशगी लिया जाता है। स्थाई ग्राहक होनेवालों बनने के लिये केवल एक बार एक रुपया प्रवेश फ़ीस ली जाती है। इस तरह पहले ही पहले ग्राहक होनेवालों को ९) भेजना चाहिए। बाद में ८) लिया जायगा। वर्ष भर में तीन बार पुस्तकें ग्राहकों को भेजी जाती हैं। जिस के और जिस माला के जो ग्राहक बनें उसके पिछले वर्षों की सब या चुनी हुई पुस्तकों की एक एक प्रति मूल्य (पोने मूल्य) में वे मंगा सकते हैं।

(त्यागभूमि का विज्ञापन पीछे देखिए)

पता—सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर

नीचे लिखी पुस्तकें फिर से छप गई हैं

(१) **आत्मकथा** (प्रथम खण्ड) लेखक—**महात्मा गाँधी**। इसका प्रथम संस्करण तीन हज़ार का छपा था जो कि हाथों हाथ अति शीघ्र बिक गया। अब यह दूसरा संस्करण छपकर तैयार हुआ है। जो भाई मँगाना चाहें, शीघ्र आर्डर भेजदें। पृष्ठ संख्या ४१६ मूल्य लागत मात्र केवल ॥=)

(२) **स्वामीजी (श्रद्धानंदजी) का बलिदान और हमारा कर्त्तव्य**—ले० पं० हरिभाऊ उपाध्याय। इसका पहल संस्करण भी अति शीघ्र समाप्त हो गया था। अधिक मांग आने के कारण यह दूसरा संस्करण छपाया है। मूल्य केवल ।−)

(३) **कन्या शिक्षा** (द्वितीयावृत्ति) कन्याओं के लिए बड़ी उपयोगी पुस्तक मूल्य केवल ।)

(४) **व्यावहारिक सभ्यता** (तृतीयावृत्ति) मूल्य केवल ।)॥

शीघ्र प्रकाशित होने वाली पुस्तकें

(१) **खद्दर का सम्पत्तिशास्त्र** (मि० ग्रेग लिखित) अनु० पं० रामदासजी गौड़ एम. ए.
(२) **नीति-नाश के मार्ग पर** (ले० महात्मा गांधी)
(३) **अन्धेरे में उजाला** (टाल्सटाय का उत्कृष्ट नाटक) अनु. श्री क्षेमानंद राहत
(४) **शैतान की लकड़ी** (सचित्र) लेखक—श्रीवैजनाथ महोदय बी. ए.
(५) **समाज-विज्ञान**—लेखक—श्री चन्द्रराज भण्डारी
(६) **विजयी बारडोली** (सचित्र) लेखक—श्री बैजनाथ महोदय बी. ए.
(७) **जब अंगरेज़ नहीं आये थे**—पृष्ठ संख्या लगभग १२५

* * *

शुरू हो गया शुरू हो गया शुरू हो गया

'त्यागभूमि' का दूसरा वर्ष शुरू होगया

भारतवर्ष में यह सबसे सस्ती उच्च कोटि की मासिक पत्रिका है। इसमें हर मास १२० पृष्ठ रहते हैं पर इस के पहले अंक में लगभग १५० पृष्ठ और अनेक चित्र हैं। यदि आप इस पत्रिका के ग्राहक बनना चाहते हैं,तो इस के पहले अंक से ही ग्राहक बनिए ताकि वर्ष भर की पूरी फाइल आपके पास रहे। देर में ग्राहक होने से फिर यह अंक नहीं मिल सकेगा। अपने इष्ट मित्रों को भी सूचना दे दें। **आजही ४) मनीआर्डर से भेज दीजिए।**

पता—सस्ता-साहित्य-मंडल, अजमेर

चौथे अंक के कुछ लेखक और कवि

१—स्वर्गीय लाला लाजपतराय
२—साधु टी० एल० वास्वानी
३—डाक्टर विजनराज चटर्जी (पी० एच-डी०, डी० लिट्)
४—श्री हरि रामचन्द्र दिवेकर (एम० ए०, साहित्याचार्य, पेरिस)
५— श्री सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार
६—श्री रामनरेश त्रिपाठी
७—श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'
८—श्री गोपालशरणसिंह
९—श्री दयाशंकर दुबे (एम० ए०, एल-एल०, बी०)
और श्री भगवानदास केला
१०—श्री जी० एस० पथिक (बी० कॉम०)
११—श्री वासुदेवशरण (एम० ए०)
१२—रेवरेण्ड कौसल्यापति आनन्द (बी० ए०)
१३— श्री बी० एस० सिन्धु
१४—श्री 'प्रियहंस'
१५—श्री देवशर्मा वेदालंकार उपाचार्य गुरुकुल कांगड़ी इत्यादि।

मुद्रक और प्रकाशक—जीतमल लूणिया सस्ता-साहित्य प्रेस, अजमेर

के अत्याचार की आँच नहीं आने दी। हिन्दुस्थान की नुराग-वृत्ति ने मुसलमानों पर भी असर किया। उनके तों को और उनकी कल्पना को भारतीय बना दिया। सलमान होने पर भी उन्हें देश-भाषा हिन्दी में वृज-रंग-लीला का वर्णन करने में मज़ा आता था। इस काल के हास को देखिए तो मुसलमान संस्कृत सीखते और ओं के तत्वज्ञान को अपनाते थे। संस्कृत के हिन्दू विद्वान् न बादशाहों से धार्मिक मतभेद होने पर भी उन्हें राजा पना मानते थे, उनके दरबारों में जाते और उन्हें अपनी कृतियाँ भेंट करते थे। राजकवि राज-दरबारों में जो कवि-ताएँ बनाते थे, उनसे पता लगता है कि वे उन राज-दर-

करते हैं, जिससे पता लग सकता है कि मुसलमानों ने हिन्दुस्थान की कल्पनाओं को किस प्रकार कविताओं में स्वीकार किया था—

अहिल्या पाषाणा प्रकृतिपशुरासीत् कपिचमूः ॥
गुहोभूच्चाण्डाल स्मितय मपि नीतं निजपदम् ॥
अहं चित्तेनाश्यः पशुरपि तवार्चादिकरणे ।
क्रियाभिश्चाण्डालाः रघुवर न मा युद्धरसिकम् ॥

इस प्रकार मलिक मुहम्मद जायसी आदि कवियों ने अपने काव्यों में स्पष्ट दिखा दिया है कि काव्य के भाव-संसार में वे भी हिन्दुस्थानी हैं। नागरी-प्रचारिणी पत्रिका (कार्तिक) में प्रकाशित यह सूची हमारे इस आ-

---

(जीवन, जागृति, बल और बलिदान की पत्रिका)

आत्मसमर्पण होत जहँ, जहँ विशुभ्र बलिदान ।
मर मिटबे की साध जहँ, तहँ हैं श्रीभगवान ॥

सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर।
माघ संवत् १९८५
अंश ५
पूर्ण अंश १७

विनिमय की आकांक्षा

ऊपर शून्य अनन्त और नीचे है उसकी छाया ।
इनके बीच नाचती है किस मायावी की माया ?
विश्व स्तब्ध, नीरव निशीथ, कम्पन में धीमा सम है।
आज त्रिपथगा की लहरों में मिलनादेश विषम है ।
क्यों न जीर्ण यह तरी खोल दूँ आज अगाध-किनारे ?
उस तट पर है प्रलय कर रहा कितने मधुर इशारे ।
मधुराका—अञ्चल में हँसता है अमरों का स्वामी ।
आज न रह जाये रहस्य अन्तर में अन्तर्यामी ।
इस जीवन से उस जीवन का जो विनिमय हो जावे ।
तो यह क्षुद्र अनन्त गर्भ में प्रियतम के मिल जावे ॥

रामनाथलाल 'सुमन'

चौथे अंक के कुछ लेखक और कवि

१—स्वर्गीय लाला लाजपतराय

[illegible] से तंग होने से, [illegible] मता होने के लिए नीच जाति के लोग मुसलमान बन जाते थे। ऊँची जाति के हिन्दू सरदारों ने बादशाहों के यहाँ नौकरियाँ कर ली थीं, पर साधारण हिन्दुओं के पास कोई मार्ग न था कि जिससे वे हिन्दू रहते हुए आसानी से जीविका चला सकें। अतः अवस्थाओं से लाचार होकर वे हिन्दू मुसलमान बन जाते थे, परन्तु अवस्थाओं के बदलते ही वे बदल भी जाते थे—जैसे, राजा हरदत्त, महमूद ग़ज़नी के सामने ससैन्य मुसलमान बन गया और फिर उसके वहाँ से बाहर होते ही हिन्दू बन गया था। ऊँची जाति के कुलीन हिन्दू अपने गुणों के कारण हिन्दू रहते हुए भी जीवन-निर्वाह कर सकते थे, परन्तु नीची जातियों के पास कोई चारा न था। इसीलिए हम देखते हैं कि भारतीय राष्ट्र में नीची जातियों से होने वाले मुसलमानों की संख्या ज्यादा है। बंगाल में नीची जाति के 'काला पहाड़' नामक हिन्दू ने इस्लाम स्वीकार करके बंगाल में इस्लाम का प्रचार किया। मद्रास में भी इस्लाम का प्रचार मछियारों तथा अछूतों में ही हुआ था। उत्तर-भारत में किसानों तथा नीची जाति के लोगों में इस्लाम का ज्यादा प्रचार किया गया। इतनी अनुकूल अवस्थाओं के होने पर भी भारत में इस्लाम उस ज़ोर से नहीं फैला, जैसा कि दूसरे देशों में। इसका कारण यह है कि दूसरे देशों में राजशक्ति और ब्राह्मण-शक्ति कमज़ोर थी, परन्तु यहाँ—भारत में—ब्राह्मणों का जनता पर प्रभाव था—यहाँ के सन्त तथा कवि-लोगों के सामने यह आदर्श रखते थे कि हमें राजशक्ति की पर्वाह नहीं करनी चाहिए, सेना के एक अफ़सर की पुस्तक का यह उद्धरण देखिए—

"बनारस में, जिसकी प्रतिष्ठा वहां के विद्वानों के अब भी बनी हुई है, ब्राह्मणों का अध्ययन आज भी है। नवाब ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति खोदी है और अब अंग्रेज़ कम्पनी का एक दीन गुलाम मात्र रह गया है।

"यदि बनारस किसी विजेता के शस्त्रों द्वारा अवनत कर दिया जाय तो भी उस युद्ध के अन्धकार में ब्रा लोग अपने अध्ययन से च्युत नहीं होंगे। मुग़ल साम्रा जितनी क्रान्तियां हुईं, तथा मुसलमानों के आक्रम बंगाल की जो दुर्दशा हुई, उन सबके बीच भी ये लोग अ अध्ययन, अपने गुण, अपने रीति-रिवाजों की कोमल अपने सिद्धान्तों की गोपनीयता, अपने वंश एवं सदाचा उच्चता की रक्षा में ज्यों-के-त्यों बने रहे। उनके इन प्रशंसा की, उनके उन विजयी शत्रुओं ने भी प्रशंसा जिन्होंने स्वतः अपना नीचापन स्वीकार किया और उ प्रति विश्वव्यापी आदर-प्रदर्शन में भाग लिया है। इस प्र राज्यक्रान्तियों और दुनिया की घटनाओं की अपेक्षा अ उच्च विधि के साथ उन्होंने प्रत्येक जाति के मन पर अ महत्ता की छाप क़ायम रक्खी है। शस्त्रों द्वारा विजित शा डर के बिना ही उन्होंने सब पर विजय पाई है, और बि के बीच अकेले होकर भी उन्होंने स्वयं समय की गति भी विजय प्राप्त की है।"

इन ब्राह्मणों ने अपने प्रभाव से, अपने तत्वज्ञान द्वारा, मुसलमानी शासन-काल में भी जनता पर बि

के अत्याचार की आँच नहीं आने दी। हिन्दुस्थान की ग-वृत्ति ने मुसलमानों पर भी असर किया। उनके ों को और उनकी कल्पना को भारतीय बना दिया। मान होने पर भी उन्हें देश-भाषा हिन्दी में वृज-रंग-ों का वर्णन करने में मज़ा आता था। इस काल के को देखिए तो मुसलमान संस्कृत सीखते और के तत्वज्ञान को अपनाते थे। संस्कृत के हिन्दू विद्वान् बादशाहों से धार्मिक मतभेद होने पर भी उन्हें राजा मानते थे, उनके दरबारों में जाते और उन्हें अपनी ँ भेंट करते थे। राजकवि राज-दरबारों में जो कवि-बनाते थे, उनसे पता लगता है कि वे उन राज-दर-को विदेशी राज-दरबार नहीं समझते थे। संस्कृत के कवि राजपण्डित जगन्नाथ देश के भिन्न-भिन्न राज-रों में भटक कर अन्त में यह श्लोक कहते हैं—

रो वा जगदीश्वरो वा, मनोरथान्पूरयितुं समर्थः।
ः परिदीयमानं, शाकाय वा स्याल्लवणाय स्यात्॥

हिन्दी के प्रसिद्ध कवि देव ने अपनी कृति औरंगज़ेब आज़मशाह को भेंट की थी —

दिल्लीपति नवरंग के, आजमसाहि सपूत।
सराहो ग्रन्थ यह, अष्टयाम संजूत॥

केशव ने जहाँगीर-चन्द्रिका लिखकर बताया कि द या धर्मभेद होने पर भी वह राजा को राजा समझते हिन्दी-भाषा में इस काल के जितने भी महाकवि—, केशव, बिहारी, तुलसीदास आदि—हुए हैं, उनमें को छोड़ और किसी ने कलि-वर्णनों तक में मानों के प्रति घृणापूर्ण भाव प्रकट नहीं किये। नहीं ने बड़े कवियों के लिए उस समय की जनता की को अपने काव्यों में चित्रित करना कठिन कार्य था। इन महाकवियों के काव्य पढ़ने से मालूम होता साधारण जनता उस समय अमन-चैन में थी।

हिन्दी-भाषा के साहित्य का इतिहास जानने वाले हैं कि इस साहित्य को बनाने में मुसलमानों तथा ओं का सम्मिलित हाथ था। आजकल की तरह उन्हें फ़ारसी या उर्दू से विशेष पक्षपात नहीं था। ों के पुत्र रहीम की कविता का एक उदाहरण हम पेश करते हैं, जिससे पता लग सकता है कि मुसलमानों ने हिन्दुस्थान की कल्पनाओं को किस प्रकार कविताओं में स्वीकार किया था—

अहिल्या पाषाणा प्रकृतिपशुरासीत् कपिचमूः॥
गुहोभूच्चाण्डाल स्मितय मपि नीतं निजपदम्॥
अहं चित्तेनाश्यः पशुरपि तवार्चादिकरणे।
क्रियाभिश्चाण्डालाः रघुवर न मा युद्धरसिकम्॥

इस प्रकार मलिक मुहम्मद जायसी आदि कवियों ने अपने काव्यों में स्पष्ट दिखा दिया है कि काव्य के भाव-संसार में वे भी हिन्दुस्थानी हैं। नागरी-प्रचारिणी पत्रिका (कार्तिक) में प्रकाशित यह सूची हमारे इस आशय को और भी अधिक स्पष्ट कर देगी—

ग्रन्थ का नाम	संवत्	लेखक
मृगावती	**१५६६**	**कुतबन शेख़**
मधुमालती	**१६ वीं सदी**	**मंजन कवि**
पद्मावती	**१६०५**	**मुहम्मद जायसी**
माधवानल कामन्द०	**१६४८**	**आलम कवि**
चित्रावली	**१६७०**	**उस्मान कवि**
ज्ञानदीपक	**१६७६**	**शेख़ नबी**
हंस जवाहिर	**१७९४**	**क़ासिमशाह**
इन्द्रावली	**१८०१**	**नूरमुहम्मद**
प्रेमरत्न	**१९०५**	**फ़ाज़िलशाह**
चित्रमुकुटकी कथा	**२० वीं सदी**	**अज्ञात**

राज-दरबारों के कवि तथा अन्य प्रसिद्ध कवि समय-समय पर अवस्था तथा परिस्थिति-भेद के कारण जनता की मनोवृत्ति को असली रूप में चित्रित करने में संकोच भी कर सकते हैं; परन्तु दिन-रात जनता में भ्रमण करने वाले संत, फ़क़ीर, तथा साखी गाने वाले लोगों की साखियाँ और वाणियाँ लोगों की ज़बान पर चढ़ जाती हैं, और जनता के भावों को बताने तथा प्रकट करने वाली होती हैं। रामानन्द, कबीर, नानक, दादू, पलटू, बुल्ला-शाह, यारी, ये सब अपने गीतों में हिन्दू-मुसलमानों के साम्प्रदायिक भावों की निन्दा करके उन्हें कूपमण्डूकता और अन्धविश्वासों से ऊपर उठाने का यत्न करते हैं।

बुल्लाशाह मुसलमान थे, उनकी यह साखी सुनने लायक़ है—

ना खुदा मसीते लभदाँ ना खुदा खाना काबे
ना खुदा कुरान कितेबां ना खुदा नमाज़े
मसीतां बिच कोली रहे दे आसिफ़र हदां अलग

इस प्रकार के सन्त प्रायः जनता में भ्रमण करते थे; यही लोकमत को बनाते थे। आज भी देहातों के मेले-त्यौहारों को देखिए। गाने वाले देहाती जिन गीतों को गाते हैं, उनमें हिन्दू-मुसलमान का फ़र्क़ नहीं किया जाता—दोनों अपनी-अपनी धुन में मस्त होकर जनता को मुख़ातिब करते हैं। इन गीतों ने लोगों के दिलों से कट्टरता को दूर कर दिया था। परन्तु आज 'मेरे मौला बुलाले मदीने मुझे' आदि बाज़ारों के गीत, तथा देहातों और गाँवों तक में सरकारी अफ़सरों का हिन्दू मुसलमान-भाव को फैलाना, इस वैमनस्य को बढ़ा रहा है। एक उद्धरण देकर इस विषय को समाप्त करते हैं।

संवत् १७२५–८० दिल्ली वासी मुसलमान यारी साहब रत्नावली में लिखते हैं—

वे वदन वे चून अकेला, हिन्दु तुरक-से न्यारा है।
सोई दरवेस दरस जिन पायो, सोई मुसलम सारा है?
आवे न जाय मरै नहीं जीवै; 'यारी' यार हमारा है॥

भीमसेन विद्यालंकार

यूरोप के अनुभव

['त्यागभूमि' के लिए]

(१)

जर्मनी, फ्रांस और स्वीज़लैंण्ड सहित इस महाद्वीप में यह मेरा दूसरा भ्रमण है; और भिन्न-भिन्न अवसरों पर इंग्लैण्ड के प्रत्येक भाग में जाकर वहाँ के मनुष्यों के सब हाल-चाल और दशाओं को भी मैं देख चुका हूँ। अलावा इसके अन्तर्राष्ट्रीय महत्व के आदमियों से लम्बे वार्तालाप करने का अवसर भी मुझे मिला है, जिन्होंने महायुद्ध से लगातार अबतक बड़ी सावधानी के साथ स्थिति का अध्ययन किया है और जो बढ़ती हुई आशा-आशंकाओं के साथ प्रगति के उतार-चढ़ाव का सूक्ष्म निरीक्षण करते रहते हैं। अतएव, इंग्लैण्ड तथा शेष महाद्वीप में यूरोप की आज जो स्थिति मैंने देखी है, उसपर अपने विचार प्रकट करने के लिए मुझसे कहा गया है।

इसमें सन्देह नहीं कि यूरोप की सामान्य दशा धीरे-धीरे उन्नत हो रही है, हालांकि यह उन्नति अभी तक निश्चित तौर पर राजनैतिक क्षेत्र में नहीं पहुँची है। वहाँ तो अभी भी वही पुरानी धूर्ततापूर्ण सन्धियाँ अबाध्यरूप से चली आ रही हैं और एक दूसरे राष्ट्र के प्रति स्पर्धा भी लगभग अटूट ही बनी हुई है। इसका कारण बतलाना बड़ा मुश्किल है, क्योंकि राजनीति के बाहर का यूरोप का सारा वातावरण निश्चित तौर पर बदल गया है। इससे तो केवल यही ज़ाहिर होता है कि राजनीति की भित्ति पर स्थापित यूरोप का राष्ट्रवाद अभी भी कितना [illegible] बना हुआ है और इसलिए अन्तर्राष्ट्रीय विचार का प्रवेश कराना कितना अधिक कठिन है।

हाँ, आर्थिक दृष्टि से सब ओर बन्धन टूटते हुए मालूम पड़ते हैं और पूँजी अपने सतत-वृद्धिगत प्रवाह से एक देश से दूसरे को जा रही है। संसार के बड़े-बड़े धनिक एक-दूसरे से मिलते और अपने आर्थिक-हितों की व्यवस्था करते हैं—और, उन्हें उतनी अधिक कठिनाई नहीं होती, जितनी राजनीतिज्ञों को अपनी सन्धियों की व्यवस्था करने में

है। युवक-आन्दोलन, स्त्री-आन्दोलन इत्यादि सर्व-प्रिय हलचलें बड़ी आसानी के साथ सीमाओं से आगे बढ़ी जा रही हैं। हर साल अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों की वृद्धि ही दिखाई है, जो सारे ग्रीष्म-भर एक सिरे से दूसरे सिरे ते रहते हैं। फिर स्वयं जेनेवा में संसार की ड़ी-बड़ी हलचलें और साहचर्य (Fellowshi- सम्मिलित केन्द्र पा रहे हैं और वहाँ इसे बनाने के लिए धन की कठिनाई भी बहुत । स्वयं जेनेवा, नई दिल्ली की तरह, एक ओर शहर की सीमाओं से कहीं आगे बढ़ रहा है ील के किनारों पर संसार की एक नई राज- न रही है। हालाँ कि अभी तक यह वृद्धि पूरे तौर पर यूरोप तक ही परिमित रही है, तो केवल एक परिशिष्ट या पुछल्ले के तौर है, मगर इतने पर भी सारे महाद्वीपों को रखने वाले विश्वव्यापी आन्दोलन का आरम्भ ा है और यह लगभग निश्चय है कि जेनेवा श्रीगणेश हुआ है वह जारी भी अवश्य । ऐसे काम के लिए स्वीज़रलैंड में इस शहर ाव के कई कारण हैं। सर्व-प्रथम तो स्वीज़- को ही लीजिए। यह तो एक ऐसा देश है, जो तटस्थ है। साथ ही वहाँ राजनैतिक तथा दोनों प्रकार की स्वतन्त्रता एवं प्रगति की ी बहती है। फिर संसार की यह नई राजधानी कार से प्रगति का अपना ही रास्ता पकड़ेगी। बड़े महत्व की बात है कि संसार की यह भावी नी किसी पुरानी महान् राजधानी के साथ जकड़ी हीं है और इसलिए अतीत के जाल में पड़े बिना ुर व्यक्तित्व को उन्नत कर सकती है।

हाँ यूरोप में मैं देखता हूँ कि इंगलैंड प्रगति ाय प्रतिक्रिया के लिए ही मशहूर हो चुका है। ब्रिटिशसाम्राज्य के प्रति यूरोप में कोई प्रेम नहीं रहा है। स्वार्थपूर्ण हितों के लिए चाहे ग्रेट-ब्रिटेन से मित्रता के प्रयत्न होते रहें, परन्तु यह निश्चय है कि साथ-साथ यूरोप-भर में यह ख़याल फैला हुआ है कि अतीत काल की नाईं भविष्य में भी ग्रेट-ब्रिटेन अपना प्रभुत्व स्थापित करने की चेष्टा करेगा। इसीलिए जब उसके विश्वव्यापी साम्राज्य में कोई कठिनाई उपस्थित होती है, जिससे कि किसी हद तक राजनैतिक क्षेत्र में उसकी शक्ति और प्रभाव को धक्का पहुँचने की सम्भावना हो, तो क़रीब-क़रीब सबको सन्तोष-सा होता है।

मेरे लिए निश्चयात्मक रूप से यह कहना कठिन है कि क्या हो रहा है; परन्तु जब कि मैं यहाँ यूरोप में हूँ, मुझे इस बात का पता है कि आज न केवल फ्रांस और जर्मनी जैसी महाशक्तियों में, बल्कि छोटी-छोटी शक्तियों (देशों) में भी ग्रेट-ब्रिटेन के प्रति सद्भाव का अभाव है। सारे महाद्वीप में इस तरह का एक ख़याल बद्धमूल है कि यूरोप का वास्तविक संघ, चाहे वह आरम्भ में बिलकुल आर्थिक ही क्यों न हो, सम्भवतः अमल में नहीं आ सकता, जब कि ग्रेट-ब्रिटेन एक ओर तो अपने विश्वव्यापी साम्राज्य के द्वारा यूरोप के प्रभाव के दायरे से बाहर रहता है और दूसरी ओर यूरोपीय राजनीति में भी बराबर दख़ल-दराज़ी कर रहा है। जैसा कि मैं कह चुका हूँ, इसे शब्दों में रखना और इसका कारण बतलाना कठिन है; परन्तु स्वयं यूरोप में जितना ही अधिक अध्ययन मैंने उसकी स्थिति का किया है, उतना ही अधिक मैंने इस बात को जाना है कि ग्रेट-ब्रिटेन दिन-ब-दिन अधिक-से-अधिक अकेला होता जा रहा है और साथ-ही-साथ यूरोपीय शक्तियों द्वारा अधिक-से-अधिक नापसन्द किया जा रहा है।

सी॰ एफ़॰ एराडरूज़ (लन्दन)

अन्तर्राष्ट्रीय प्राच्यवित्परिषद्

['त्यागभूमि' के लिए]

सति विविध विधत्वे देश भाषादि भेदैः
हृदि विलसति विद्या प्रीति साधारणो यः ।
मिलितुमपि च नैकान्पण्डितान्संचकर्ष
स जयतु खलु लोके दुर्लभो बन्धुभावः ॥

विद्या का आनन्द असीम है और विशेषतः उस विद्या का, जो इस स्वार्थी दुनिया में प्रत्यक्ष लाभदायक नहीं, और इसीलिए जिसकी ओर जन-साधारण का प्रायः दुर्लक्ष्य रहता है । समय और स्थल दोनों की दृष्टि से प्राचीन बातों का ज्ञान प्राप्त करने वाले या उसकी खोज में परिश्रम करने वाले लोग प्रत्येक देश में बहुत थोड़े रहते हैं । परन्तु इसी क्षेत्र में कार्य करने वाले विशेषतः पाश्चात्य प्राच्यवित् लोगों की अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् कई सालों से होती आ रही है । इस परिषद् का प्रथम अधिवेशन पेरिस में सन् १८७३ में हुआ था । तबसे १९१२ तक एक, दो, तीन या चार सालों के अन्तर से इस परिषद् के १६ अधिवेशन हो चुके थे, जिनके स्थान और वर्ष नीचे लिखे अनुसार हैं—

(१) पेरिस १८७३ (२) लन्दन १८७४
(३) सेंटपीटर्सबर्ग १८७६ (४) फ्लोरेन्स १८७८
(५) बर्लिन १८८१ (६) लैडेन १८८३
(७) वीएना १८८६ (८) स्टॉकहोम १८८९
(९) लन्दन १८९२ (१०) जिनेवा १८९४
(११) पेरिस १८९७ (११) रोम १८९९
(१३) हैम्बर्ग १९०२ (१४) अलजियर्स १९०५
(१५) कोपनहेगेन १९०८ (१६) एथेन्स १९१२ ।

एथेन्स के अन्तिम अधिवेशन के बाद अगला अधिवेशन ऑक्सफ़ोर्ड में सन् १९१५ में होना निश्चित हुआ था । पर इस बीच महायुद्ध छिड़ गया और पाश्चात्य लोग स्वभावतः उसमें मग्न हो गये । युद्ध समाप्त होने पर भी अन्तर्राष्ट्रीय द्वेष, विद्वेष, प्रद्वेष तथा आर्थिक और मनुष्य-विषयक हानि आदि कारणों से यह अधिवेशन भविष्य पर टाला जाता रहा । अन्त में १९२८ ई० में यह अधिवेश ऑक्सफ़ोर्ड में हुआ, जिसमें थोड़ा भाग लेने का सौभा मुझे भी प्राप्त हुआ । 'त्यागभूमि' के पाठकों के लिए इस का कुछ हाल यहाँ दिया जाता है ।

प्रबन्धकारिणी समिति की स्थापना जून १९२७ में हो चुकी थी । ऑक्सफ़ोर्ड के संस्कृत-अध्यापक डा० टाम इसके अध्यक्ष थे । अधिवेशन की सफलता का अधिकां श्रेय आप ही को है । सब प्रबन्ध बड़ी कुशलतापूर्वक कि गया था । आरम्भ में अधिवेशन के निम्नलिखित नौ विभ किये गये थे—

(१) साधारण विभाग
(२) असीरिया, मेसोपोटामिया तथा एशिया माइ विभाग
(३) मिश्र और आफ्रिका-विभाग
(४) मध्य-एशिया या उत्तरी-एशिया-विभाग
(५) इन्डोचीन, मलाय-एशिया तथा पालिनेशिया-विभ
(६) भारतवर्ष तथा ईरान-विभाग
(७) हिब्रू तथा एरामिक भाषा-विभाग
(८) इस्लाम-विभाग
(९) प्राच्यकला-विभाग

सब देशों के प्राच्यवित् पण्डितों को अपने-अ अभ्यस्त विषयों पर एक लेख लिखकर भेजने की विज्ञ प्रकाशित की गई थी । विज्ञप्ति के अनुसार कई लेख आ ख़ासकर भारतवर्ष विषयक लेखों की संख्या इतनी बढ़ कि अन्त में छठे विभाग के पहले दो और फिर तीन वि करने पड़े । लेखों के लिए फ़्रेंच, जर्मन और अंग्रेज़ी भाषायें नियत थीं; पर लेखक की इच्छा हो तो अन्य भ में भी लेख लिखकर पढ़ने की उसे मुमानियत न थी । लेख अरबी में भी पढ़े गये । प्रबन्धकारिणी-समिति ने पढ़े जाने का समय ऐसी बुद्धिमत्ता से निश्चित किया था अपने विषय के सब लेख सुनने में किसी को ज़रा

न होती थी। कुछ लेख मैजिकलैण्टर्न की सहायता दिखाकर भी पढ़े गये। कुल मिलाकर २५२ लेख जिनमें ६३ छठे विभाग में थे। भारतीय विद्वानों मिलाकर २६ लेख थे। प्रतिनिधियों की संख्या जो १८ राष्ट्रों, ५८ विद्यापीठों और ६५ संस्थाओं से चुने गये थे।

भिन्न-भिन्न विषयों पर थे। अपने-अपने विभाग में लोगों के लेख पढ़ने के लिए समय नियत किया जिसके पश्चात् उस विषय पर थोड़ी चर्चा भी। कुछ लेख बड़े महत्त्व के और अत्यंत खोज-पूर्वक थे। पर कुछ ऐसे भी थे, जिनमें कुछ तत्त्व न था; विद्वानों के थे, इसीलिए उपस्थित सज्जन उन्हें सुनते तीय विद्वानों के लेखों में से बहुत-से, अत्यंत खेद के ना पड़ता है, इसी श्रेणी के थे। तिसपर भी बहुतेरे नुपस्थित थे, जो मिल जाता वही ऐसे लेख पढ़ने खड़ा कर दिया जाता। लेखों में नवीनता का नाम न तो पहले छपे हुए और पढ़े हुए भी थे। ऐसी यदि भारतीय विद्वत्ता का नाम ऊँचा न रहे तो ही क्या? यदि दो-चार लेख ऐसी ऊँची श्रेणी के न लेखक की अनुपस्थिति में पढ़े जाने पर भी सर्वमान्य हमारी विद्वत्ता की पूरी भद्द उड़ती। जान पड़ता से लेखकों ने केवल अपना नाम छपाने की ग़रज़ लिखकर भेज दिया था! आगे से हमें इस विषय सचेत रहना चाहिए।

धिवेशन का आरंभ २७ अगस्त को रात के ९ बजे सभापति लार्ड चामर्स ने छोटी-सी वक्तृता के बाद निधियों का केवल मीठे शब्दों से ही नहीं बल्कि चीजों से भी स्वागत किया। तत्पश्चात् लगातार सुबह ८॥ से १ बजे तक और शाम को ५॥ से ७ से १०॥ तक लेख पढ़े जाते रहे। रोज़ कहीं-न-कहीं चाय-पार्टी भी होती। २८ तारीख़ की दोपहर को सरकार की ओर से सब प्रतिनिधियों को भोज दिया। ३१ ता० को परिषद् का रात्रि-भोज था। इस जाते समय बड़ी अव्यवस्था रही। न तो समय, न बैठने का प्रबंध। थोड़ी देर के लिए तो यह भ्रम होने लगा कि हम अत्यंत सुसंघटित और वक्त के पाबंद लोगों के देश में आहूत अतिथि हैं या ठाकुरजी के प्रसाद के लिए बिना बुलाये आये हुए अव्यवस्थित भारतीय देहाती? पर थोड़े ही समय में सब व्यवस्था जम गई। शाकाहारी लोगों के लिए भी अच्छा इंतज़ाम था।

साधारण सभा के समय और विशेषतः भारतीय विभाग के अधिवेशन में अमेरिका के वयोवृद्ध अध्यापक लॉनमन साहब ने एक बड़ी मार्के की बात कही। भारतीय विषयों का विचार करते समय प्रायः यूरोपीय विद्वान् उन्हें केवल प्राचीन वस्तु की दृष्टि से ही देखते हैं। इसपर कटाक्ष करते हुए आपने कहा कि भारतीय वस्तुओं से और प्राचीन भारतीय सभ्यता के अनेक अंगों से यूरोपीय सभ्यता बहुत कुछ सीख सकती है। परिषद् के रात्रि-भोज के समय भी बैरिस्टर यूसुफ़अली साहब ने यही बात बड़े अच्छे ढंग से दुहराई। आपने कहा, 'एक समय वह था, जब हम भारतवासी सब पाश्चात्य बातों को बुरी नज़र से देखते थे और केवल अपनी ही सभ्यता की डींग हाँकते थे। पर समय पलट गया है। भारतवासियों को आध्यात्मिक उन्नति के लिए आधिभौतिक पाश्चात्य संस्कृति की अनेक बातें सीखनी चाहिएँ और साथ-साथ पाश्चात्य संस्कृति को भी यह ध्यान में रखना चाहिए कि जबतक वह पूर्व की आध्यात्मिक बातें न सीखेगी उसकी आधिभौतिक उन्नति अपूर्ण ही रहेगी।'

इसी दृष्टि से परिषद् ने एक प्रस्ताव पास किया। सब विद्वान् लोग इस एक बात पर सहमत थे कि भारत के बाहर रहकर भारतीय बातों के सीखने से उनका यथार्थ ज्ञान नहीं हो पाता। आँख और कान के बीच का यह अंतर निकाल डालने के लिए यह प्रस्ताव पास किया गया कि भारत-सरकार से प्रार्थना की जाय कि भारतवर्ष में प्राच्यविद्या की एक ऐसी संस्था खुले, जहाँ पाश्चात्य तथा अन्य देशों के विद्वान् भारतीय विद्वानों के साथ रहकर सुविधा-पूर्वक विचार-विनिमय कर सकें। इस प्रस्ताव के अनुसार भारत-सरकार कुछ करे या न करे, पर अंतर्राष्ट्रीय प्राच्यविद्यावित् लोगों की दृष्टि किस ओर झुक रही है, यह प्रस्ताव उसका स्पष्ट प्रमाण है।

शनिवार ता० १ सितम्बर के दिन अंतिम साधारण सभा हुई, जहाँ सब प्रस्ताव पास किये गये और आगामी अधिवेशन के लिए लैंडेन (इंग्लैंड) का निमंत्रण स्वीकार किया गया। प्राच्यविद्या इस समय दुनिया-भर में भ्रातृभाव उत्पन्न करने का एक बड़ा साधन है, इस बात पर ज़ोर देते हुए श्री लॉनमन साहब ने कहा, 'सांसारिक स्वार्थों के वशीभूत होकर स्वार्थी लोग एक दूसरे के प्रति द्वेष फैलावें या चाहे जो करें, पर इस निरपेक्ष विद्या से विभूषित हम लोगों को यह बात सदा ध्यान में रखनी चाहिए कि विश्वबन्धुत्व का प्रसार ही हमारा कर्त्तव्य है।' सचमुच यह देखा गया है कि जब हृदय किसी एक ही भाव से भरा रहता है तब न तो धर्म-भेद चित्त दूषित करता है न देश-भेद, न भाषा-भेद। एक भाषा एक धर्म, एक देश के रहने वाले लोगों में बंधुता हो तो आश्चर्य ही क्या विश्वबंधुत्व इन भेदों की ओर नहीं देखता। इन भेदों जो व्यापक आत्म-भेद है वही उसका लक्ष्य है। परमात्म करें, यह विश्वबंधुत्व दिन-दूना रात-चौगुना बढ़ता रहे।

हरि रामचन्द्र दिवेकर (पेरिस)

सोवियट रूस में शिक्षा-प्रचार

(१)

मानव समाज की उन्नति और किसी देश के उत्थान में शिक्षा का कितना महत्त्वपूर्ण स्थान है, यह किसी भी समझदार मनुष्य से छिपा नहीं है। जिस देश में शिक्षा का समुचित प्रचार, उसके लिए वांछनीय सहूलियतें और उत्कृष्ट से उत्कृष्ट शिक्षण-संस्थायें हैं, वह देश संसार में आज अपना शिर ऊँचा उठाये अपनी गौरव-पताका फहराता रहता है। जहाँ शिक्षा का अभाव है, और जहाँ के लोग अज्ञान-अन्धकार में पड़े हैं, वह देश न तो किसी भी प्रकार अपनी उन्नति कर सकने में समर्थ होता है, और न ऐसे देश की संसार में कहीं कुछ पूछ होती है। आधुनिक रूस ने शिक्षा के इस असली महत्व को भलीभाँति समझा है और यही कारण है कि सोवियट शासन के आरम्भ-काल से ही वहाँ वाले अशिक्षा का अन्त करने के लिए जी-जान से जुटे हुए हैं। सिर्फ़ गत दस वर्षों में इस दिशा में उसने जो उन्नति की है, वह चकित करने वाली तथा किसी भी देश के लिए सर्वथा अनुकरणीय है।

ज़ार के ज़माने में रूसी जनता की शिक्षा का प्रबन्ध विशेषकर पादरियों के हाथ में दे दिया गया था। देश की विभिन्न श्रेणियों के लोग प्रारम्भिक शिक्षा तक प्राप्त क से रोके जाते थे। कुछ थोड़े से आदमी जो प्रारम्भिक शि प्राप्त भी कर लेते थे, उन्हें उच्च शिक्षा प्राप्त करने मनाही थी। लोग तड़प-तड़प कर रह जाते थे, पर उ उच्च तथा अच्छी शिक्षा प्राप्त करने की इजाज़त न मिलती थी। उन दिनों वहाँ पर शिक्षा सिर्फ़ ख़ास अ धनी-मानी व्यक्तियों के लिए रक्षित-सी कर दी गई थ जो थोड़ी-सी शिक्षा दी भी जाती थी, उसका उद्दे शिक्षार्थी को ज़ार की भक्ति सिखाना, कट्टर धार्मिक बना तथा सरकारी दफ्तरों के लिए क्लर्क तैयार करना मात्र थ चतुर्थ शिक्षा-मन्त्री शिशकोव ने ज़ार अलेक्ज़ैण्डर अनुमति से उस समय इस आशय की एक घोषणा प्र शित करवा दी थी—"ज्ञान तभी लाभदायक है, जब जनता की परिस्थिति और ज़रूरत के अनुसार नमक समान स्वल्प परिमाण में उसे दिया जाय.........स जनता को अथवा उनमें से अधिकांश को शिक्षि करना लाभप्रद होने के बदले हानिकर अधिक है। "इ ज़माने के एक और शिक्षा मंत्री ने तो यह एक नियम ब रक्खा था कि "कोचवान, नौकर, रसोइये, धोबी और

ों को नीची श्रेणी से ऊपर उठने के लिए उत्सा- करना चाहिए। इससे अनुमान किया जा सकता ाँ पर शिक्षा की क्या हालत होगी।

समय बालकों को पूजा, राजभक्ति, गुलामी और ने मात्र की शिक्षा दी जाती थी। १९०४ ई० लिखे आदमियों की संख्या सिर्फ़ ३ फ़ी सदी थी। ा-पद्धति तथा अध्यापकों और विद्यार्थियों पर नी रक्खी जाती थी। अध्यापकों को वेतन भी मिलता था। विद्यार्थी संयुक्त रूप से न तो कोई दे सकते थे, और न कोई पर्चा या नोटिस ही ते थे। उन्हें किसी भी प्रकार की सभा-समितियों होने या उनके सदस्य बनाने की भी सख्त ी। किसी प्रकार का चन्दा वसूल करना जुर्म ा था और इसके विरुद्ध आचरण करने वाले ों को बड़ी कड़ी सज़ा दी जाती थी। किसी सर- या क्लब में भाग लेने के लिए भी विद्यार्थियों अलग, व्यक्तिगत रूप में, आज्ञा लेनी पड़ती थी। न्धनों और नियंत्रणों का एकमात्र कारण यह को सदा भय रहता था कि विद्यार्थियों में कहीं स्वाभिमान, संघ-शक्ति और क्रान्ति के भाव न जिससे मेरे अत्याचार और निरंकुशता का दुर्ग हो जाय! फिर उसकी निरकुशता और उच्छृं- ख इसी दिशा में न थी; वह तो सर्वतोमुखी यह भीषण लीला कबतक चल सकती थी। ताओं और अत्याचारों से ऊब उठी और उसके और कुछ सहना असह्य हो गया। फलस्वरूप न्ति काली का प्रादुर्भाव हुआ और उसके साथ ारे अनाचारों का विनाश—

के बाद, सोवियट शासन-प्रणाली क़ायम होते लिए शिक्षा-प्राप्ति की पूरी स्वतन्त्रता ही नहीं ई; बल्कि वह अनिवार्य कर दी गई और निश्चय कि सोवियट शासन-काल के दसवें वार्षिकोत्सव ई०) तक शिक्षा का इतना अधिक प्रचार कर कि रूस में एक भी व्यक्ति अनपढ़ न रह जाय। के आक्रमण, उनके घेरे, घरेलू लड़ाई, आर्थिक कठिनाई आदि के कारण उसे अपने इस निश्चित लक्ष्य की पूरी प्राप्ति तो न हुई; फिर भी इन दस वर्षों में, इतनी दिक़्क़तों के होते हुए भी, उसने शिक्षा-प्रचार में कमाल की उन्नति कर दिखाई। सोवियट सरकार का शिक्षा का उद्देश मनुष्य की सर्वांगीण उन्नति करना है। वह शिक्षा द्वारा अपने राष्ट्र के एक-एक व्यक्ति को स्वस्थ, साहसी, सबल, कार्यक्षम, विचार और कार्य में पूर्ण स्वतन्त्र, अनेक विषयों में पारंगत और मज़दूरों तथा किसानों के लिए कार्य करने में अपनेको गौरवान्वित मानने वाला बनाना चाहती है। इसी उद्देश्य को लेकर वह आगे बढ़ रही है।

सोवियट रूस की शिक्षा-पद्धति की उल्लेखनीय विशेषता जनता के लिए ही अपनेको शिक्षित और संगठित करना है। आजकल संसार के अधिकांश देशों में उच्च और उन्नत शिक्षा सम्पत्तिशालियों की बपौती-सी हो गई है। पर रूस में ठीक इसके विपरीत सरस्वती-मन्दिर का द्वार न केवल सबके लिए खोल ही दिया गया है, बल्कि उस पुनीत मन्दिर में प्रवेश कर अपनी मनोकामना की पूर्ति के लिए प्रशस्त मार्ग और सुलभ पूजा-सामग्री पर्याप्त परिमाण में प्रस्तुत करने का प्रचुर प्रयत्न किया जा रहा है। वहाँ की शिक्षा सहयोगमूलक सिद्धान्त पर अवलम्बित है। अर्थात् वहाँ शिक्षा प्राप्त करने का मुख्य उद्देश्य व्यक्तिगत कुशलता और ख्याति प्राप्त करना नहीं, बल्कि उससे परोपकारिणी शक्ति प्राप्त करना तथा उसे कार्यरूप में परिणत करना है। वहाँ की शिक्षा-प्रणाली की दूसरी विशेषता अध्यापकों और शिक्षकों का बाहरी दुनिया से सदा सम्बन्ध बनाये रखना है। अन्य देशों—ख़ासकर भारतवर्ष—के समान यहाँ के विद्यार्थियों के दैनिक या भावी नागरिक जीवन से शिक्षा अलग नहीं रक्खी जाती। इस उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए रूस के विद्यार्थियों को इसतरह शिक्षित बनाने की कोशिश की जाती है कि वे जीवन-संग्राम में पूरी विजय प्राप्त करें। सभी अध्यापकों पर इस बात का ज़ोर दिया जाता है कि वे अपने छात्रों की जीवनचर्या और मनोवृत्ति से अच्छी तरह वाक़िफ़ हों, जिससे उन विद्यार्थियों की रुचि और शक्ति के अनुसार अधिक से अधिक उपयोगी शिक्षा-क्रम बनाया जा सके। तीसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता मातृ-भाषा

द्वारा शिक्षा देना है। साधारण दृष्टि से देखनेवाले लोग यही कहेंगे कि मातृभाषा द्वारा शिक्षा देने में कौनसी विशेषता है—यह तो एक मामूली बात है ? परन्तु रूस जैसे देश में जहाँ पचासों जातियाँ और पचासों भाषायें प्रचलित हैं, उन सब जातियों की शिक्षा का माध्यम एक-मात्र रूसी भाषा न बनाकर उनकी ही मातृभाषाओं-द्वारा उनकी शिक्षा का प्रबन्ध करना कुछ कम महत्व की बात नहीं है। यद्यपि यह मार्ग अत्यन्त कठिन है, फिर भी सोवियट सरकार बड़ी दृढ़ता के साथ इसपर आरूढ़ है।

शिक्षा का सारा काम शिक्षा-विभाग (Commissariat for Education) के द्वारा होता है। इसके अधीन निम्नलिखित ११ उप-विभाग हैं—

(१) शासन-संगठन-बोर्ड (The administrative organising board)। यह शिक्षा की केन्द्रीय, प्रान्तीय आदि संस्थाओं के प्रबन्ध तथा संगठन का कार्य करता है। इनकी आर्थिक व्यवस्था का कार्य तथा नये शिक्षणालयों की स्थापना का कार्य भी इसीके सुपुर्द है।

(२) प्रधान् शिक्षा-बोर्ड (The chief board for general and technical education)। इसका काम बच्चों तथा नाबालिग़ों की शिक्षा और रक्षा है।

(३) व्यावसायिक-शिक्षा-बोर्ड (The chief board for technical education)। इसका काम कृषि, व्यवसाय, कला, स्वास्थ्य तथा ऐसे अन्य विषयों की शिक्षा का समुचित प्रबन्ध करना है।

(४) पूर्व-स्कूल शिक्षा तथा वयस्क-निरक्षर शिक्षा-बोर्ड (The chief board for pre-school-education and adult education)। इसका काम स्कूली जीवन के पूर्व, बच्चों तथा निरक्षरों की शिक्षा की व्यवस्था करना है।

(५) ग़ैर-रूसी भाषा शिक्षा-बोर्ड (The board for education in non-Russian languages)। इस बोर्ड का काम सोवियट सरकार के अधीन ग़ैर-रूसी-भाषा-भाषी जातियों की शिक्षा का, उनकी ही मातृभाषा-द्वारा, प्रबन्ध करना है।

(६) सरकारी वैज्ञानिक कौंसिल (The state scientific council)। इसका काम विभिन्न शिक्षा-प्रणालियों का अध्ययन करके उनकी विशेषता जानना सभी विद्यालयों के लिए पाठ्य-क्रम तैयार करना है।

(७) विज्ञान-कला-बोर्ड (The chief bo for scientific and art institutions)। बोर्ड का काम विद्या-परिषदों, वैज्ञानिक समितियों, संस्थाओं आदि की देख-भाल करना तथा ऐतिहा स्थानों, वस्तुओं तथा अजायब घरों की रक्षा करना सरकारी थियेटर, सरकस एवं संगीत-विद्यालयों संचालन करना है।

(८) साहित्य-प्रकाशन बोर्ड (The chief rd for literature and publication)। काम प्रकाशित पुस्तकों, सिनेमा के फ़िल्मों आदि निगरानी करना है।

(९) सरकारी प्रकाशन एजेंसी (The s publishing agency) इसका काम अच्छी से और सस्ती से सस्ती पुस्तकें प्रकाशित करना है।

(१०) सिनेमा-प्रबन्धक बोर्ड (The Manag board of state cinametograph en prises)। इसका काम सरकार द्वारा संचालित सिने का प्रबन्ध करना है।

(११) सप्लाई बोर्ड (The supply boar इसका काम विद्यार्थियों को साधारण शिक्षा की प्रदान करना है।

समस्त देश में शिक्षा-विभाग की स्थानिक खुली हुई हैं। ये स्थानिक शाखायें किसानों और के प्रतिनिधियों (डिपुटियों) की कार्यकारिणी समि अधीन होती हैं। केन्द्रीय शिक्षा-विभाग में ८४, प्र शिक्षा-विभाग में अमूमन ३५, और अन्य शिक्षा शाखा साधारणतः ५ कार्यकर्त्ता होते हैं। इनके सिवा बहु स्थानिक पंचायतों (लोकल सोवियटों) में शिक्षा का विशेष भाग भी होता है और उसमें तत्स्थानीय बड़ी स्वतन्त्रता और उत्साह के साथ भाग लेते हुए की समुचित व्यवस्था और उन्नति करते हैं। लेनि के इस प्रकार के शिक्षा-विभाग में ३६३ व्यक्ति हैं विभिन्न कमिटियों द्वारा अलग-अलग भागों में काम कर

(२)

यट साम्यवाद प्रजातंत्र शासन-मंडल (unions alist soviet Republics) की शिक्षा- ुख्यतः तीन विभागों में बाँटी जा सकती है— ाधारण (General), (२) औद्योगिक ical), और (३) वयस्क निरक्षर (Adult)। रण शिक्षा-सम्बन्धी संस्थायें तीन प्रकार की पूर्व स्कूल-शिक्षा (Pre-school education), थमिक शिक्षा (Elementary education), यमिक शिक्षा (Secondary education)। ान समय में रूस में बच्चों |की पूर्व-स्कूल शिक्षा ूलों में भर्ती होने के पहले की शिक्षा का बहुत ान रक्खा जाता है। पूर्व-स्कूल-शिक्षा ३ से ७ वर्ष तक को दी जाती है। प्रत्येक कारख़ाने के साथ 'शिशु- 'किण्डरगार्टन' नामक दो प्रकार की संस्थायें कारख़ानों में काम करनेवाली स्त्रियाँ अपने बच्चों के समय, इन्हीं संस्थाओं में रख जाती हैं। शिक्षा- मास से लेकर ३ साल तक के और ार्टन' में ३ से ७ साल तक के बच्चे रहते हैं। ातायें कारख़ाने से लौटती हैं, उनके बच्चे इन्हीं में बड़े आराम से रक्खे जाते हैं। प्रतिदिन सवेरे में बच्चों के आते ही उनके घर के कपड़े उतार ते हैं और उन्हें नहला-धुलाकर वहाँ के साफ़ कपड़े ये जाते हैं। इस बीच में नियत समय पर उन्हें लाया जाता, खेल खिलाया जाता, खेलना सिख- ाता, हवा खिलाई जाती तथा निश्चित समय पर दिया जाता है, और उनमें कोई बीमार हुआ तो क्टरों द्वारा उसकी चिकित्सा भी कराई जाती है।* लगभग दस हज़ार ऐसे शिशु शिक्षणालय खुल इस उम्र तक कारख़ानों के किण्डरगार्टन के तथा इसके बाहर रहनेवाले इस उम्र के बच्चों को और शिक्षा देने की अपेक्षा चरित्र-निर्माण पर ही अधिक ज़ोर दिया जाता है; उनमें साहस, निर्भीकता, वीरता, स्वाभिमान आदि के उत्कृष्ट भाव भरे जाते हैं। स्वच्छ रहना और गन्दी आदतों को छोड़ अच्छी आदतें ग्रहण करने का अभ्यास कराया जाता है। इन सब बातों पर ध्यान रखने और बालक-बालिकाओं को अधिक उन्नतिशील बनाने के लिए सरकारी शिक्षा-विभाग की ओर से विभिन्न प्रकार की समितियाँ खुली हुई हैं, जो बड़ी मुस्तैदी के साथ अपना-अपना काम करती हैं। बच्चों की मनोवृत्ति और रुचि का ठीक-ठीक पता लगाने के लिए जगह-जगह केन्द्र क़ायम हैं। इन केन्द्रों में शिक्षक, डाक्टर और मनोवैज्ञानिकों की एक मण्डली बनी होती है। यह मण्डली लड़के-लड़कियों की रुचि का ठीक-ठीक पता लगा कर उन्हें उनके अनुकूल शिक्षणालयों में भेजने का यत्न करती है।

रूस में अनाथ, लूले, लँगड़े, अन्धे, बहरे गूँगे आदि असमर्थ बच्चों की रक्षा तथा शिक्षा-दीक्षा का भी पूरा ख़याल रक्खा जाता है। इनकी शिक्षा-दीक्षा और उन्नति के लिए १९२५ तक ५४० संस्थायें खुल चुकी थीं, अपराधियों और अवगुणियों के लिए जगह-जगह एक कमीशन होता है। इस कमीशन (समिति) में एक अध्यक्ष, एक शिक्षक, एक मजिस्ट्रेट और एक डाक्टर होते हैं। इसका मुख्य काम अपराधी (Criminals) और अवगुणी (Defectives) बच्चों की शिक्षा की उत्तम से उत्तम युक्ति सोच निकालना है। कमीशन के शिक्षक उन बातों और परिस्थितियों का पता लगाते हैं, जिनके कारण बच्चे अपराध करते हैं। साथ ही उनका यह भी काम होता है कि पता लगावें कि बच्चों पर सज़ा का क्या असर पड़ता है। उन्हें बच्चों के घर पर के, स्कूल के, अथवा अन्य जगहों के आचरण की निगरानी भी करनी पड़ती है और उनके आचरण-सुधार में अपना नैतिक प्रभाव डालना पड़ता है। शिक्षक जैसी रिपोर्ट देते हैं, कमीशन सब बातों को सोचकर उसके अनुसार काम करता है। एक शिशु-निरीक्षक-विभाग भी होता है। इसका काम रेलवे-स्टेशनों, बन्दरगाहों, सार्वजनिक स्थानों, या ऐसी अन्य जगहों में

माताओं के निश्चिन्ततापूर्वक काम करने और बच्चों ेत पालन-पोषण के लिए ही यह व्यवस्था की गई के लिए माताओं को कुछ ख़र्च भी नहीं करना पड़ता; ारख़ानों की ओर से यह व्यवस्था होना अनिवार्य है।

बच्चों द्वारा किये गये दुर्व्यवहारों का पता लगाना है। घर-हीन तथा माता-पिता-रहित बच्चों के लिए अनाथालय खुले हुए हैं। ये दिन-रात खुले रहते हैं। इनमें भूले-भटके, अ-रक्षित, अनाथ आदि प्रकार के बच्चों का पालन-पोषण अच्छे से अच्छे ढंग से होता है। भूले-भटकों के घर-बार का जबतक पता नहीं लग जाता, तबतक वे वहीं रक्खे जाते हैं। ये संस्थायें लड़के और लड़कियों के लिए अलग-अलग खुली हुई हैं। इनमें एक जगह साधारणतः ४०-५० बच्चे रहते हैं।

७ वें साल के बाद बच्चों का स्कूली जीवन आरम्भ होता है। ८ से १२ साल तक के लड़के-लड़कियाँ प्रथम श्रेणी (First standard) में रक्खे जाते हैं और उन्हें शिक्षा की आरंभिक बातें सिखलाई जाती हैं। दूसरी श्रेणी (Secondary education or second standard) १३ से १६ वर्ष की अवस्था तक रक्खी गई है। इस समय उन्हें साधारण ज्ञान (जैसी कि हिन्दुस्थान के इन्ट्रेन्स स्कूलों में पढ़ाई होती है) की शिक्षा दी जाती है। प्राथमिक और माध्यमिक दो विभागों में विभक्त होते हुए भी यह संयुक्त समझा जाता है, तथा इस संयुक्त विभाग की पूरी शिक्षा ७ से ९ वर्षों के अन्दर समाप्त हो जाती है। स्कूलों में प्रवेश के लिए या उत्तीर्ण करने के लिए विद्यार्थियों की परीक्षायें नहीं ली जातीं, बल्कि विद्यार्थियों की योग्यता तथा एक वर्ष के कार्य को देखकर उन्हें भर्ती या उत्तीर्ण कर दिया जाता है। उनकी योग्यता की जाँच उनकी एक दिन की परीक्षा से नहीं, बल्कि उनके साल भर के काम से होती है।

इन सभी विद्यालयों में लड़के-लड़कियाँ एकसाथ पढ़ते हैं। उनके स्वास्थ्य की सदा परीक्षा कराई जाती है और इस बात का ख़याल रक्खा जाता है कि पढ़ाई का बोझ विद्यार्थी या विद्यार्थिनी पर इतना न पड़ जाय कि उसके स्वास्थ्य को हानि पहुंचे। जो बच्चे कमज़ोर होते हैं, उन्हें उनकी शक्ति के अनुसार ही पढ़ने दिया जाता है। जिनकी आँखें कमज़ोर होती हैं, वे क्लासों में आगे बैठाये जाते हैं। विद्यार्थियों को योग्य बनाने की दृष्टि से इस बात का भी पूरा ख़याल रक्खा जाता है कि वे जो कुछ पढ़ें उसे अच्छी तरह से समझकर ग्रहण कर लें—अपना लें।

विद्यार्थी और विद्यार्थिनी अध्ययन इसलिए नहीं करते
वे परीक्षा पास करें और गुलामी की जंजीरों से अप
जकड़ दें बल्कि इसलिए करते हैं कि शिक्षित होकर मा
कर्त्तव्य को समझें और फिर मानव-समाज का अधिक
अधिक उपकार कर सकें। स्वतन्त्र और गुलाम देश के
की मनोवृत्ति में यही अन्तर है।

१९२६ ई० में प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कू
शहर और देहात के दो भागों में बाँट दिया गया।
प्रकार उस वर्ष शहरों में सात वर्ष के कोर्स वाले
स्कूलों की संख्या ६९३० थी, जिनमें १८,९३,३८६
पढ़ते थे। देहात में ऐसे स्कूल ९२६३७ थे, जिनमें
वाले विद्यार्थी और विद्यार्थिनियों की संख्या ७४,९८,
थी। इस प्रकार के सेकेण्ड-क्लास के स्कूल, जिनमें ९
का कोर्स था, उस वर्ष शहरों में १२१८ (विद्यार्थियो
सख्या ३,६५,५५२) और देहातों में ४७० (विद्या
की संख्या १,७३,३५०) थे।

माध्यमिक शिक्षा-समाप्ति के बाद विद्यार्थी टेक
स्कूलों में प्रवेश करते हैं। टेक्निकल स्कूलों में वि
अमूमन अपनी जीविका-निर्वाह-सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त
हैं। रूस के ये टेक्निकल स्कूल हिन्दुस्थान या अन्य
के कृषि, इन्जिनियरिंग, मेडिकल या ऐसे ही अन्य क
के समान होते हैं। परन्तु हिन्दुस्थान के या अन्य दे
इन कालेजों के विद्यार्थियों की अपेक्षा रूस के इन
निकल स्कूलों के विद्यार्थी और विद्यार्थिनियों को
अधिक सुविधायें और साधन प्राप्त होते हैं। ये टेक
स्कूल कई विभागों में बँटे होते हैं और उनमें अनेक
की शिक्षा दी जाती है। विद्यार्थी अपनी रुचि के अ
कोई एक विषय पसन्द कर लेता है और उसीका अ
करता है। इसमें किसी विषय में ३ और किसी में
लगते हैं। इस अवधि में विद्यार्थियों को सैद्धान्तिक
व्यावहारिक दोनों प्रकार की शिक्षा दी जाती है;
सिद्धान्तों की अपेक्षा व्यवहार पर ही अधिक ज़ोर
जाता है। व्यावहारिक शिक्षा के लिए शिक्षणाल
साथ बड़े-बड़े कारख़ाने, प्रयोगशालायें आदि भी खुली
हैं। ऐसा भी प्रबन्ध किया गया है कि जो लोग दि

मित रूप से यह शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकते, वे रात्रि
कर शिक्षा प्राप्त करें। १९२५-२६ ई० में विभिन्न
र के टेक्निकल स्कूलों की संख्या ४५८६ थी, जिनमें
६,६८७ शिक्षार्थी अध्ययन कर रहे थे।

टेक्निकल स्कूल की साधारण शिक्षा समाप्त करके
कोई विद्यार्थी और भी उच्च शिक्षा प्राप्त कर किसी
य का महान् विशेषज्ञ बनना चाहे, तो उसके लिए
संस्थायें अलग स्थापित हैं। इन उच्च विद्यालयों और
ओं में प्रविष्ट होकर विद्यार्थी खोज, आविष्कार या
विषय में विशेषता प्राप्त करने के लिए विशेष रूप
अध्ययन करते हैं। १९२५ ई० में यहाँ (साधारण
निकल स्कूलों के सिवा) ऐसी ९१२ संस्थायें
जिनमें १,५९,१७६ व्यक्ति शिक्षा प्राप्त कर रहे थे।
ऐसे लोग जिनकी उम्र तो बहुत अधिक हो गई है
ज़ारशाही ज़माने की निन्दनीय और दूषित शिक्षा-
णाली के कारण शिक्षा नहीं प्राप्त कर सके, उन्हें भी
क्षित करने के लिए सोवियट सरकार बड़े ज़ोरों से काम
रही है। ऐसे वयस्क निरक्षर व्यक्तियों को पढ़ाने के
र वहाँ तीन प्रकार के स्कूल खोले गये हैं—
) आन्हिक (Day school), रविवार के (Sunday
hool), और (३) राजनैतिक स्कूल (Political
hool)। आन्हिक स्कूल दो प्रकार के होते हैं—(क)
सम्बन्धी, और (ख) औद्योगिक। जहाँ जैसी परि-
थति और क्षेत्र होता है, उसके अनुसार वहाँ ये कृषि या
द्योगिक स्कूल खोले जाते हैं। इनका कोर्स दो वर्ष का
ता है। किन्तु जहाँ ज़रूरत समझी जाती है वहाँ तीसरे
र्ष की शिक्षा की भी व्यवस्था की जाती है, जिससे वहाँ
ध्ययन करनेवाला चाहे तो उच्च शिक्षा प्राप्त करने लायक़
योग्यता प्राप्त कर सके। रविवार के स्कूल बिलकुल दूसरे
ीक़े के होते हैं और उनमें केवल वे मज़दूर या किसान
कर मामूली शिक्षा प्राप्त करते हैं, जो सप्ताह-भर प्रतिदिन
ने में अपना समय लगाने में असमर्थ होते हैं। राजनैतिक
ल दो प्रकार के होते हैं—प्राथमिक और उन्नत। प्राथमिक
जनैतिक विद्यालयों में स्थानीय और ज़िला सोवियट
पंचायत), ट्रेड-यूनियन (मज़दूर-संघ) तथा ऐसी अन्य संस्थाओं की शाखाओं में काम करने के योग्य कार्यकर्त्ता तैयार किये जाते हैं। उन्नत राजनैतिक विद्यालयों में केन्द्रीय और प्रान्तीय कार्यालयों में काम करने लायक़ कार्यकर्त्ता तैयार किये जाते हैं। अप्रैल १९२३ ई० में ऐसे विद्यालयों की संख्या २३२ थी, और उनमें १६,००० विद्यार्थी शिक्षा पा रहे थे। (गत ५ वर्षों के अन्दर तो उनकी संख्या दुगुनी से भी अधिक हो गई होगी।) इनके सिवा वयस्क अनपढ़ व्यक्तियों की शिक्षा के लिए, उपरोक्त सरकारी विद्यालयों के सिवा, वहाँ की कम्युनिस्ट पार्टी के भी कई ख़ास विश्व-विद्यालय हैं, जो साधारण शिक्षा-ज्ञान प्रदान करने के बाद कम्युनिज़्म के सिद्धान्तों और उनके व्यवहारों की उच्च-शिक्षा प्रदान करते हैं। वयस्क व्यक्तियों को शिक्षित करने वाले विभिन्न प्रकार के स्कूल १९२५-२६ ई० में १,०८,१८७ थे, जिनमें १९,०२,४१६ आदमी शिक्षा पा रहे थे। इनके साथ ही और भी कुछ ऐसे मज़दूर-शिक्षणालय (Workers' faculties) खुले हुए हैं, जिनमें वयस्क निरक्षरों को तीन वर्ष तक शिक्षा देकर काफ़ी योग्यता प्राप्त करा दी जाती है। १९२० ई० में ऐसे शिक्षणालयों की स्थापना का आरम्भ हुआ और १९२१ ई० में ही विभिन्न मज़दूर-संघों ने अपने १७,००० सदस्य इन संस्थाओं में पढ़ने के लिए भेजे। १९२२ ई० में इन शिक्षणालयों की संख्या ८१ हो गई और उनमें पढ़ने वालों की संख्या ४०,००० तक पहुँच गई। इन शिक्षणालयों में मजदूर और किसान दोनों ही समुदाय के आदमी शिक्षा प्राप्त करने के लिए जाते हैं। ऐसे शिक्षणालय अधिकांश में मास्को और लेनिनग्राड में ही हैं।

(३)

स्कूलों और कालेजों में पढ़नेवाले छात्र और छात्राओं को भी स्कूल-कालेजों के संचालन में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, और इस प्रकार उन्हें मानों किसी सरकार के शासन-सूत्र को हाथ में लेने की व्यावहारिक शिक्षा प्रदान की जाती है। प्रत्येक स्कूल, कालेज और विश्व-विद्यालय में विद्यार्थियों की ऐसी परिषद् होती है, जो विद्यार्थियों के सम्बन्ध की सब बातों पर अधिकार रखती है। उसे अपने स्कूल या कालेज के विद्यार्थियों के सम्बन्ध में कार्य-क्रम निश्चित करने का अधिकार होता है। उसे विद्यार्थियों

के हित के प्रत्येक कार्य करने की पूरी स्वतंत्रता होती है। वह नियम-पालन, खेल-कूद आदि बातों के लिए ज़िम्मेदार होती है। प्रत्येक स्कूल या कालेज में माता-पिताओं और शिक्षकों की भी एक निरीक्षक सभा होती है, जिसे उन संस्थाओं के सब मामलों में सर्वोपरि अधिकार होता है। विद्यार्थी-परिषदों का सभापति भी, जो एक विद्यार्थी ही होता है, इस निरीक्षक-सभा का सदस्य होता है और उसका यह अधिकार है कि वह उस सभा में अपने सहपाठी विद्यार्थियों की शिकायतों और माँगों को रक्खे तथा वहाँ पर सब विद्यार्थियों की तरफ़ से उनके हितार्थ लड़े। स्कूलों और कालेजों में इन दो संस्थाओं के अतिरिक्त एक प्रबन्ध-समिति भी होती है, जो संस्कृति-रक्षा, वाचनालय, पुस्तकालय आदि की व्यवस्था करती है।

जीवनक्षेत्र में अधिक से अधिक सफल और उपयोगी बनने-बनाने के लिए रूसी विद्यार्थियों को कोरी अक्षर-विद्या के अलावा अन्य प्रकार की साधारण शिक्षा भी दी जाती है। उनमें एक मिश्रित (Complex or Project) प्रणाली है। इस प्रणाली में ऐसा होता है कि किसी एक विषय को ले लेते हैं और विद्यार्थी को उसकी हरएक बात की पूरी जानकारी प्राप्त कराते हैं। जैसे ग्राम-संघटन की बात ले लीजिए। इसमें ग्राम्य-जीवन, वहाँ के रीति-रिवाज, वहाँ की फ़सल और व्यापार, ग्राम और नगर का परस्पर संबन्ध, ग्राम्यजीवन की कठिनाइयाँ और त्रुटियाँ तथा उनके सुधारने के उपाय, ग्राम का शासन, ग्रामों की सफ़ाई, वहाँ की उन्नति, वहाँ के सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं के सहयोग की आवश्यकता आदि विषयों की शिक्षा दी जायगी।

इसी प्रकार अगर किसी छात्र को स्वास्थ्य-सम्बन्धी बातों की शिक्षा दी जाती है तो उसे व्यक्तिगत स्वास्थ्य, उसके घर के लोगों के स्वास्थ्य तथा समाज के लोगों के स्वास्थ्य-रक्षा की विधि बतलायी जाती है। उसे शरीर-विज्ञान, खाद्य, सामग्री, पाचन-क्रिया आदि का भी साधारण ज्ञान कराया जाता है। इसके साथ ही शराब तथा अन्य मादक पदार्थों के सेवन की बुराइयाँ बतला कर उनसे दूर रहना सिखाया जाता है। इसी प्रकार अन्य अनेक विषयों की भी शिक्षा दी जाती है। छात्रों में समाज-सेवा का भाव जागृत किया जाता है, जिससे वे ज्ञान-प्राप्ति को केवल व्यक्तिगत स्वार्थ में ख़र्च न कर सार्वजनिक हित के लिए उपयोग करने की चेष्टा करें।

इन विषयों की शिक्षा का विस्तृत कार्य-क्रम शिक्षा-विभाग द्वारा शिक्षकों के पास भेज दिया जाता है पर, साथ ही उन्हें यह भी बतला दिया जाता है कि वे परिस्थिति के अनुसार सब शिक्षकों तथा छात्रों के परामर्श से अपना कार्यक्रम निश्चित करें। छात्रों को केवल नैतिक शिक्षा दी जाय, इस भाव को निरुत्साहित किया जाता है; और इस बात के लिए प्रोत्साहन दिया जाता है कि वे स्वाधीनता-पूर्वक सोचना और अपने सिद्धान्तों को स्वयं निश्चित करना सीखें।

हिन्दुस्थान या अन्य गुलाम देशों के समान रूस के विद्यार्थियों और बच्चों को राजनीति से हौआ के समान डराया नहीं जाता, बल्कि वहाँ उन्हें अधिक-से-अधिक और न केवल रूस की ही बल्कि उनकी योग्यता के अनुसार समस्त संसार की वर्त्तमान राजनीति के सम्पर्क में रखने और उसकी वाक़फ़ियत प्राप्त कराने का प्रयत्न किया जाता है। सामाजिक तथा राजनैतिक शिक्षा सभी बच्चे और विद्यार्थियों के लिए अनिवार्य है। रूस का एक १४-१५ वर्ष का लड़का राजनीति वा अन्य किसी भी विषय पर उतनी ही अच्छाई और आसानी के साथ बातचीत कर सकता है, जितना कि दूसरे देशों का एक योग्य और वयस्क शिक्षित व्यक्ति। इस सम्बन्ध में यहाँ पर एक घटना का ज़िक्र करना अप्रासंगिक न होगा। एक महात्मा लेनिन के जीवन-काल की बात है। एक अंग्रेज़ पर्यटक (Tourist) ने, जो रूस में भ्रमण कर रहा था, एक दस वर्ष के लड़के से पूछा—"तुम्हें ज़ारशाही शासन-प्रणाली की अपेक्षा सोवियट शासन-प्रणाली क्यों पसन्द है? लेनिन भी तो एक ज़ार ही है, फिर उसे क्यों पसन्द करते हो।" यह बात सुनते ही वह दस वर्ष का लड़का आग-बबूला होगया और अकड़ कर बोला—"आप की बात बिलकुल थोथी और द्वेष से भरी हुई है। हम लोग ज़ार के भयंकर शासन के अधीन नहीं हैं। हम लोग स्वयं अपनी सोवियट सरकार (पंचायती

तंत्र सरकार) के संरक्षण में हैं, इस सरकार का ज़ार-ी से भला क्या मुक़ाबला हो सकता है ? यह सरकार है, जिसमें मेरे पिता और लेनिन के अधिकार बिलकुल बर हैं। लेनिन को हम लोगों ने देश का अधिपति या है और चाहें तो उसे आज इस पद से हटा सकते सोवियट सरकार आप लोगों के देशों के जैसे पूँजीप-ों के हाथ में नहीं है, यह सर्व-साधारण के हाथों में है। वियट हमारा एक बड़ा परिवार है और हम सब उसके ग हैं। हमारे ग्रामों और नगरों से ज़िला-सोवियट के , ज़िलों से प्रान्तीय सोवियटों के लिए. और प्रान्तों से ीय सोवियट के लिए प्रतिनिधि चुने जाते हैं और इस हमारे देश के सभी आदमी अपने शासन-कार्य में न रूप से भाग लेते हैं।" इस छोटे-से लड़के की इन ों को पढ़कर पाठक भलीभाँति समझ सकते हैं कि वहाँ द्यार्थियों का राजनैतिक शिक्षण कैसा होता है और उनमें ी शासन-प्रणाली की श्रेष्ठता एवं स्वाभिमान का भाव ना कूट-कूट कर भरा होता है।

फिर शिक्षा-सम्बन्धी जिन व्यवस्थाओं का विवरण दिया गया है, वह शहरवासी और ग्रामीण दोनों ही लिए समान रूप से हैं और दोनों ही देश में फैली हुई शिक्षा-संस्थाओं से लाभ उठाते हैं। पर इतना ज़रूर है शहरों से अनेक ग्रामों के दूर पड़ने तथा कुछ अन्य ुविधाओं के कारण वहाँ शहरों के ही अनुपात में शिक्षा प्रचार नहीं हो सका है। किन्तु ऐसे स्थानों में भी क से अधिक शिक्षा-प्रचार का पूरा प्रयत्न किया जा है। सरकार तो यत्नवान है ही, इसके साथ ही ग्रामीण ता स्वयं भी इस कार्य में बड़ी दिलचस्पी ले रही है। स्थानों में तो उन्होंने स्वयं अपने हाथों स्कूलों के न बना दिये हैं। वे इस बात के लिए स्वयं ही परेशान ते हैं कि वे सब के सब जहाँ तक जल्द हो सके, ने-पढ़ने लग जायँ। इनके उत्साह और लगन का ाज़ा इसीसे लगाया जा सकता है कि १९२३ ई० में तों में जहाँ केवल २८०० लेटरबक्स थे, वहाँ १९२६ में इनकी संख्या ६४ हजार तक पहुँच गई थी और क शायद ७० हज़ार से भी अधिक हो गई होगी। सड़क से दूरस्थ ग्रामों के लिए सफ़री डाकख़ाने भी हैं। इन सफ़री डाकख़ानों के डाकिये खेती के सामान भी बाँटा करते हैं। पहले किसानों की पत्र-पत्रिकायें नहीं के बराबर थीं, परन्तु १९२५ ई० में किसानों के १२१ पत्र निकलते थे और उनकी ग्राहक-संख्या १९,१३,००० थी। 'किसान-गज़ट' नाम का अख़बार जो १९२३ में निकाला गया था, १९२४ ई० में उसकी दो लाख प्रतियाँ निकलती थीं—और, आजकल दस लाख से भी ऊपर प्रकाशित होती हैं। इस अख़बार में किसानोपयोगी सभी बातों का उल्लेख रहता है। इस पत्र के कार्यालय में ऐसे लाखों पत्र आते रहते हैं, जिनमें कृषि-सम्बन्धी बातें और अफ़सरों की शिकायतें आदि होती हैं। इसे दिनों दिन किसानों के लिए और भी अधिक उपयोगी बनाने का यत्न किया जा रहा है।

रूस की राज्यक्रान्ति का श्रीगणेश वहाँ के नगर-निवासी श्रमजीवियों ने ही किया था और शुरू में ज़ोर-शोर के साथ भाग भी उन्हींने लिया था। पर बाद को किसान भी धीरे-धीरे इस आन्दोलन की ओर आकृष्ट हुए और फिर बड़ी दिलचस्पी से भाग लेने लगे। पर महात्मा लेनिन के साम्यवाद की शुरू की आर्थिक नीति के कारण नगर और ग्रामवासियों का कुछ मेल नहीं खाता था, जिससे आगे चलकर उन्हें कुछ परिवर्तन करना पड़ा। इसके बाद धीरे-धीरे दोनों में काफ़ी सहयोग बढ़ रहा है। वर्त्तमान सोवियट सरकार के अधिकारी नगरवासियों और ग्रामीणों के परस्पर सहयोग के लिए बड़े उत्सुक हैं और इसके लिए अन्य प्रकारों के साथ शिक्षा द्वारा भी सहयोग पैदा करने का यत्न कर रहे हैं। १९२३ ई० में इस उद्देश्य से मज़दूरों की एक सभा की गई थी, जिसकी अनेक शाखायें आज-कल देश-भर में फैली हुई हैं और जिसके इस समय तक लाखों किसान और मज़दूर सदस्य हो चुके हैं। जहाँतक होता है यह भी कोशिश की जाती है कि नगर में रहनेवाले और वहाँ के आस-पास के ग्रामीणों की शिक्षा एकसाथ एक ही जगह हो। इसके अलावा कारख़ानों के दल, मज़दूर-क्लब आदि भी गाँवों की दशा सुधारने में ग्रामीणों की पूरी सहायता करने की कोशिश करते और इस ढंग से उनकी सहानुभूति प्राप्त करके सहयोग बढ़ाते हैं। गाँवों में रहने और पढ़नेवाले विद्यार्थी कभी-कभी

शहरों में और शहर के विद्यार्थी कभी-कभी देहातों में इस उद्देश्य से घूमने भी जाया करते हैं।

यह पहले बतलाया जा चुका है कि सोवियट रूस में ऐसी अनेक अल्पसंख्यक जातियाँ हैं, जिनकी मातृभाषा अलग-अलग हैं, परन्तु इन अल्पसंख्यक भाषा-भाषी जातियों के लिए भी उनकी मातृभाषा द्वारा ही शिक्षा देने का अधिक से अधिक यत्न किया जा रहा है। उन विभिन्न जातियों की स्थानीय भाषाओं की उन्नति की पूरी चेष्टा की जाती है। विभिन्न प्रान्तों के सोवियट शासन का कार्य उन प्रान्तों की भाषा में ही करने के लिए उत्साहित किया जाता है। सरकारी समाचारपत्र और पुस्तकें उन्हीं भाषाओं में प्रकाशित होते हैं। लेनिनग्राड, मास्को तथा अन्य कई स्थानों में इन भाषाओं में लोगों को शिक्षित करने के लिए ख़ास स्कूल खोले गये हैं। इस समय तक ऐसे ४५ विद्यालय खुल चुके हैं। सोवियट रूस में पोलस, यूक्रेनियन, लतवियन, जर्मन, एस्पोनियन, फिन, हिब्र, अर्मीनियन, गोरेरूसी, समावेड, ओस्टिम, मंगोलियन, याकुत, तातार, बशकिर, टुँगा, बरयट, युकागिर, कामकाडोल, एस्किमो, किरगिज, हकासियन, ओयराट, टोहुवास, कोमी, मारी, कलमुक, कोरियन, मोर्डवान, उत्तर-काकोशिआ के असोरियन, इंगश आदि अनेक अल्प-संख्यक जातियाँ हैं। इनमें प्रत्येक को शिक्षा और संस्कृति सम्बन्धी उन्नति करने की पूरी स्वतन्त्रता प्राप्त है। इस समय वहाँ की केवल ६ कुछ बड़ी अल्प-संख्यक जातियों की पाठशालाओं की संख्या ५,६३६ से भी ऊपर है। इस समय यहाँ की ६२ विभिन्न भाषाओं में प्राथमिक शिक्षा दी जाती है। इनकी उच्च शिक्षा के लिए भी प्रबन्ध है और ऐसे शिक्षणालयों की संख्या १९२७ ई० में २८ थी। इन छोटी जातियों की ५२ भाषाओं में पत्र प्रकाशित होते हैं और १९२७ ई० में केवल इन लोगों के २०१ समाचारपत्र निकलते थे, जिनकी ग्राहक-संख्या ९२८,५८० थी। इन छोटी जातियों की शिक्षा-दीक्षा का भी कहाँ तक ख़याल किया जाता है, उसका पता एक इस बात से लग सकता है—साइबेरिया के इर्कुटस्क प्रान्त में कारकस नामक एक ख़ानाबदोश जाति रहती है। इस जाति के कुल मनुष्यों (आबाल-वृद्ध) की संख्या सिर्फ़ ४०२ है। इनकी भाषा अपभ्रंश तुर्की है। पर, इतनी अल्पसंख्या और ख़ानाबदोश होते हुए भी इनके बच्चों की शिक्षा के लिए स्कूल खोले गये हैं, जहाँ उन्हे जाड़े के दिनों में शिक्षा दी जाती हैं; क्योंकि गर्मियों में ये लोग घूमते रहते हैं। इसी प्रकार जिप्सी आदि अन्य कई, बहुत छोटी-छोटी जातियों के लिए भी स्कूल खोले गये हैं और खुलते जा रहे हैं। राज्य-क्रान्ति के पूर्व ऐसी अनेक जातियां थीं, जिनको भाषा की कोई लिपि न थी। इस समय ऐसी जातियों के लिए वर्णमालायें तैयार की जा रही हैं अथवा जिनकी वर्णमाला कठिन और ख़राब थी, उनको वैज्ञानिक ढंग से सुधार कर सुगम बनाया जा रहा है। अबतक १६ जातियों के लिए नई लिपि तैयार की जा चुकी है। और तारीफ़ की बात तो यह है कि न केवल पुरुषों के लिए ही, बल्कि इनकी स्त्रियों के लिए भी शिक्षा आदि का प्रबन्ध पुरुषों के समान ही किया गया है।

अभी कुछ दिन हुए, समाचारपत्रों में यह समाचार प्रकाशित हुआ था कि लेनिनग्राड (रूस की वर्तमान राजधानी) के विज्ञान-विभाग ने बौद्ध-सभ्यता के अध्ययन के लिए एक विश्वविद्यालय की स्थापना की है। इस विश्वविद्यालय की ओर से बौद्ध साहित्य का एक विश्वकोष भी तैयार किया जा रहा है तथा इस सम्बन्ध में कुछ अधिक प्रकाश डालने के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस करने की भी व्यवस्था की जा रही है।

देवव्रत शास्त्री

वीर बनो !

बजी दुन्दभी भेरी धमकी,
उठो शूर रण-धीर बनो ।
जन्म-भूमि की रक्षा कर लो,
आन रखो प्रण-वीर बनो ।
असुर-नाश हित त्रिपुरारी के,
सुभटो ! तीखे तीर बनो ।
देश-जाति पर मर मिटने को,
भारतीय अब बीर बना ॥१॥

× × ×

कायरता दो छोड़ अड़ो अब
युद्ध-स्थल में बन चट्टान ।
हा नृसिंह गर्जो केहरि-सम,
जय निश्चय, लो मन में ठान ।
अविचल गिरि से रहो विपद में
सागर-सम गम्भीर बनो ।
देश-जाति पर मर मिटने को
भारतीय ! अब वीर बनो ॥२॥

× × ×

अहा ! तुम्हारे पूर्व-पुरुष तो
करते थे भूतल पर राज ।
नहीं देश अपना अब अपना
पड़ी तुम्हीं पर ऐसी गाज ।
हाँ ! दधीचि-सन्तान कहा कर,
अब तो वज्र-शरीर बनो ।
देश-जाति पर मर मिटने को,
भारतीय ! अब वीर बनो ॥३॥

× × ×

इसी भूमि पर तो जन्मे थे
वीर शिवाजी और प्रताप ।
हां स्वतन्त्र' यह मन्त्र हमारा,
करते रहें इसी का जाप ।
पैज पालने को तत्पर हों,
हठ-धारी हम्मीर बनो ।
देश, जाति पै मर मिटने को,
भारतीय ! अब वीर बनो ॥४॥

× × ×

नन्दन-बन सा फूल रहा था,
लगी उसी में है अब आग ।
सदा दैव अनुकूल रहा था,
हाय ! उसी का यह दुर्भाग ।
उजड़ गया जो उपवन उसकी
तुम ही सुरभि-समीर बनो ।
देश, जाति पर मर मिटने को
भारतीय ! अब वीर बनो ॥५॥

× × ×

एक वार तो ज्योति जगाकर,
अन्धकार को करो विलीन ।
चाहे क्षण में जीवन-दीपक
हो अनन्त में अन्तर्लीन ।
चपला-सी उर-नभ में दमके,
ऐसी ललित-लकीर बनो ।
देश, जाति पै मर मिटने को
भारतीय ! अब वीर बनो ॥६॥

× × ×

गिरे हुए जो भाई नीचे,
उन्हें उठाकर, करलो प्यार ।
मिले तुम्हारे हृदय-सिन्धु में
उनके क्षुद्र-प्रेम की धार ।
पतितों के पावन करने को,
निर्मल गङ्गा-नीर बनो ।

देश, जाति पर मर मिटने को,
भारतीय ! अब वीर बनो ।।७।।

× × ×

कातर जन को शीतल कर दे,
निकलें ऐसे मीठे बोल।
शान्त-मूर्त्ति अभिराम राम सी,
परशु-हृदय का ले मन मोल।
क्षमा-शील वसुधावत् होकर,
मृदुभाषी कल-कीर बनो।
देश, जाति पर मर मिटने को,
भारतीय ! अब वीर बनो ।।८।।

× × ×

तुम भविष्य के निमाता हो,
अतः न होना कभी निराश।
विफल-मनोरथ आज हुए तो,
कल निश्चय हो सुफल-प्रयास।
जननी की आशा के अम्बर,
मत चिन्ता के चीर बनो।
देश, जाति पर मर मिटने को,
भारतीय ! अब वीर बनो ।।९।।

× × ×

द्वार-द्वार पर अलख जगाते,
राष्ट्र-गीत की छेड़ो तान।
जन्म-सिद्ध स्वाधीन सभी हैं,
यह ही गाओ तुम भी गान।
जगे जाति हो यही कामना,
सब कुछ त्याग फ़कीर बनो।
देश, जाति पर मर मिटने को,
भारतीय ! अब वीर बनो ।।१०।।

× × ×

देख-भालकर भी दृग मींचें,
जो अन्धों की करते होड़।
सत्य मार्ग पर लाना उनको,
विनय-सहित दोनों कर जोड़।
भूले-भटकों के दुख हरने,
तुम रमते रहगीर बनो।
देश, जाति पर मर मिटने को,
भारतीय ! अब वीर बनो ।।११।।

× × ×

चाहे विपदाओं का सिर पर,
भारी पर्वत टूट पड़े।
हो न धैर्य्य का बन्धन ढीला,
पड़ें कष्ट पर कष्ट कड़े।
क्लेश न दे औरों को किञ्चित,
ऐसी पर की पीर बनो।
देश, जाति पर मर मिटने को,
भारतीय ! अब वीर बनो ।।१२।।

× × ×

हृदय-कुञ्ज में हे बलवीरो,
विकसे नव आशा का फूल।
जन्म-भूमि को भेंट करो फिर,
कञ्ज-कलेवर मङ्गल-मूल।
सद्योदित सौभाग्य-सूर्य्य हो,
मत फूटी तक़दीर बनो।
देश, जाति पर मर मिटने को,
भारतीय ! अब वीर बनो ।।१३

× × ×

शौर्य्य-शील योधागण ! बढ़कर,
नूतन युग में करो प्रवेश।
महावीर बलधाम बनोगे,
तो सीधे होंगे भुवनेश।
विश्व-विदित यह सत्य समझकर,
बस 'मराल' मतिधीर बनो।
देश, जाति पर मर मिटने को,
भारतीय ! अब वीर बनो ।।१४

हरिशरण श्रीवास्तव "मराल

समाज-संगठन

जब मनुष्य-समाज असभ्यावस्था में था, तब वह शिकार खेलता या जंगली कंद- और फलों को खाकर जीवन-निर्वाह कर लेता था। र के लिए, जंगली पशुओं से रक्षा के लिए, या अन्य शत्रु से लड़ने के लिए धनुष-बाण आदि शस्त्र भी ही बना लेता और स्वयं ही अपने शिकार को भूनकर -मूल उबालकर खा लेता था। शीत से रक्षा के लिए जिन वा छाल से तन ढकता वह भी खुद ही प्राप्त करता गुफा इत्यादि भी स्वयं खोदकर तैयार कर लेता था। समय उसको किसी दूसरे की सहायता की आवश्य- न थी। बिना किसी दूसरे मनुष्य की सहायता के अकेला जीवन-निर्वाह कर सकता था तथा वह जो भी करता था, केवल अपने और अपने परिवार के ! अधिक से अधिक अपने साथियों के लिए। उसका भी उस समय बहुत सीमित था।

धीरे-धीरे मनुष्य ने उन्नति की। मनुष्य-समाज में -विकास का प्रारम्भ हुआ। अब भोजन पैदा वाले अलग हैं, कपड़ा बनाने वाले अलग, लड़ने वाले देश की रक्षा करनेवाले अलग, और समाज को शिक्षा वाले अध्यापक और सदाचार-शिक्षक (धार्मिक गुरु) हैं। अब भोजन पैदा करना या कपड़ा बनाना प्रत्येक काम न होकर समाज के कुछ व्यक्तियों का काम हो है। और ये व्यक्ति (वैश्य) अन्न या कपड़ा केवल लिए अर्जन नहीं करते, प्रत्युत् सारे समाज के लिए; वाले (क्षत्रिय) केवल अपनी रक्षा के लिए शस्त्र नहीं करते, बल्कि समाज के लिए। अध्यापक तथा मिक गुरु अपने ही बच्चों को शिक्षा-दान तथा सन्मार्ग- न नहीं करते, प्रत्युत समाज को। अर्थात् अब कोई कि किसी काम को केवल अपने ही लिए नहीं करता र सारे समाज के लिए करता है।

ये वर्ण या पेशे प्रत्येक समाज और देश में पाये जाते और उनके बिना कोई समाज नहीं चल सकता। समाज उन्नति इसीपर निर्भर है कि प्रत्येक मनुष्य जिस काम को करता है वह उसको यथाशक्ति अच्छी तरह करे और अपना सारा ध्यान और शक्ति उसीमें लगा दे। उसको इसीमें दिलचस्पी हो कि वह जिस काम को करता है उसको किस प्रकार अच्छी तरह करे कि उससे समाज को अधिक से अधिक लाभ हो, अर्थात् वह समाज की अधिक से अधिक सेवा कर सके।

किन्तु वर्तमान समाज-संगठन इस प्रकार का है कि यह उद्देश्य पूरा नहीं होता। आजकल के समाज-संगठन में वर्णों का संकर हो गया है, या यों कहिए कि वैश्यत्व अर्थात् रोटी कमाना सब वर्णों में मिल गया है। कोई व्यक्ति किसी पेशे को यह समझता हुआ नहीं करता कि 'उससे समाज-सेवा होगी और इस समाज का लाभ और उन्नति होगी, जिसका वह भी एक सदस्य है; यदि समाज को लाभ पहुँचेगा तो उसको भी लाभ पहुँचेगा।' उसका मुख्य उद्देश्य अपना पेट भरना रहता है और समाज-सेवा गौण। इस प्रकार वह पहले यह सोचता है कि उसको अधिक से अधिक धन-प्राप्ति किस तरह हो सकती है और पीछे वह समाज की सेवा कैसे कर सकता है। यही नहीं, उसका लक्ष्य सदा यही रहता है कि वह किस प्रकार समाज की कम-से-कम सेवा करके अधिक-से-अधिक लाभ उठा सके। उदाहरणार्थ एक दूकानदार या कारख़ाने का मालिक सदा यह सोचता रहता है कि वह कैसे रद्दी से रद्दी माल देकर अधिक से अधिक नफ़ा उठा सकता है, दूसरे शब्दों में किस प्रकार अपने ग्राहकों को अधिक-से-अधिक ठग सकता है—धोखा दे सकता है। क्योंकि आजकल की व्यापार-विधि का यह मूलमंत्र है कि कम से कम ख़र्च करना और अधिक से अधिक नफ़ा उठाना। यदि वह कभी शुद्ध और अच्छा माल देता है तो इसलिए नहीं कि उसका ग्राहकों, चीज़ का उपयोग करने वालों को अच्छा माल देना, समाज की अच्छी सेवा करना, अभीष्ट है; बल्कि इसलिए कि बुरा माल पहचान लिया जायगा और वह अच्छे माल से साफ़ तौर पर भिन्न मालूम होगा, जिससे अन्त में बिक्री घटेगी। इसी प्रकार एक क्षत्रिय शस्त्र-धारण केवल वेतन

के लिए करता है और ब्राह्मण भी शिक्षा देने तथा समाज के मार्ग-प्रदर्शन का कार्य केवल वेतन के लिए ही करता है—उसको शिक्षा के कार्य से सच्ची दिलचस्पी नहीं है। अधिकांश अध्यापक स्कूल में जाकर समय पूरा कर देना ही अपना उद्देश्य समझते हैं।

इसपर कुछ लोग कहते हैं कि स्वार्थ हुए बिना तो कोई आदमी कुछ कार्य न करेगा। किन्तु वे यह भूल जाते हैं कि हमारे समाज की इस स्वार्थमय मनोवृत्ति का कारण हमारा वर्तमान समाज-संगठन और उसकी स्वार्थमयी नीव हैं। प्रत्येक व्यक्ति जन्म से ही यह सीखता है कि जो कोई काम भी करना अपने लिए ही करना। इसके विपरीत यदि जन्म से ही प्रत्येक बच्चे को सिखलाया जाय कि जो कर्म भी करना समाज के लिए करना, समाज के फ़ायदे से उसका भी फ़ायदा है, तो वह जो भी कर्म (काम, व्यवसाय आदि) करेगा उसको उसी की धुन लग जायगी और वह उसको यथाशक्ति अच्छी तरह से पूर्ण करेगा।

यह सब होते हुए भी समाज में दो प्रकार के व्यक्ति पाये जाते हैं। एक वे जो प्रत्येक काम केवल अपने व्यक्तिगत फ़ायदे के लिए करते हैं। ये साधारण श्रेणी के मनुष्य हैं और समाज में अधिकांश व्यक्ति इसी श्रेणी के पाये जाते हैं। किन्तु स्वार्थमयी मनोवृत्ति उत्पन्न करनेवाली इन परिस्थितियों के होते हुए भी कुछ व्यक्ति ऐसे होते हैं, जो अपने फ़ायदे के लिए नहीं वल्कि समाज के हित का ध्यान रखकर ही काम करते हैं। बुद्ध, ईसा और दयानन्द आदि बड़े बड़े महात्मा और न्यूटन, लापलास आदि बड़े-बड़े आविष्कारक और विद्वान् इसी श्रेणी के लोगों में हुए हैं। इन महात्माओं ने अपने जीवन को मनुष्य-जाति के हित के लिए उत्सर्ग कर दिया, अपने व्यक्तिगत सुख के लिए उनको किसी प्रकार की कोई इच्छा नहीं थी। वराहमिहिर, भास्कराचार्य तथा न्यूटन आदि विद्वानों ने अपना जीवन खपाकर ज्ञान-सागर का आलोडन करके जिन रत्नों को प्राप्त किया उनको अपने किसी स्वार्थ की पूर्ति का साधन बनाने के लिए नहीं। रेलवे इंजिन के तथा अन्य बड़े आविष्कारों के आविष्कारकों ने उनका आविष्कार सिर्फ इसलिए नहीं किया कि वे उनको पेटेण्ट कराके उनसे धनी बनें। किन्तु, उनको उन आविष्कारों की—कोई नया साधन निकालने की—धुन थी। प्रायः सभी बड़े-बड़े आविष्कारों के आविष्कारक, जिनके आधार पर हमारी भौतिक सभ्यता स्थित है, रात-रात और दिन-दिन भर उसी में लगे रहते थे; किन्तु उनको कोई ऐश्वर्य प्राप्त नहीं हुआ, वे प्रायः ग़रीब ही रहे। उनको किस फल की प्राप्ति हुई? केवल आत्म-सन्तोष की। उन आविष्कारों से लाभ पहुँचा सारी मनुष्य-जाति को। इसी प्रकार व्यापार-क्षेत्र में देखिए। सहयोग-समितियों जैसी संस्थाओं का संगठन करने वालों ने ये सब काम केवल जनता के हित के लिए किये। इससे एक लाभ यह भी होता है कि स्वार्थी श्रेणी के लोगों को भी अपने स्वार्थों को कुछ सीमित करना पड़ता है और जनता की सेवा का ख़याल रखना पड़ता है। इस श्रेणी के लोगों को जिस सुख की—जिस आत्म-सन्तोष की—प्राप्ति होती है, उसीको हमारे यहाँ ब्रह्मानन्द नाम से पुकारा गया है। इसी प्रकार के लोगों पर मनुष्य-समाज स्थित है। यह निःस्वार्थ भाव पाया सबमें जाता है; किन्तु किसी में कम, किसी में अधिक। किसीमें स्वार्थी प्रवृत्ति इस प्रवृत्ति को दबा लेती है और किसीमें यह स्वार्थी प्रवृत्ति को दबा लेता है। जिनमें यह बहुत प्रबल होता है वे ही महात्मा, विद्वान्, आविष्कारक आदि बनते हैं।

आजकल का हमारा समाज-सगठन इस प्रकार का है कि वह प्रारम्भ से ही मनुष्य में इस प्रवृत्ति को अनुत्साहित करता है। इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्य कर्म (पेशे) के मुख्य उद्देश्य की ओर से ही उदासीन हो जाता है और इसके कारण उसमें अच्छी तरह उन्नति नहीं कर सकता। फल यह होता है कि समाज में स्वार्थ का राज्य छा जाता है और संसार में जितने अपराध होते हैं, उन सबका मूल भी स्वार्थ में ही पाया जा सकता है। दूसरी बड़ी हानि इस स्वार्थमयी प्रवृत्ति से यह होती है कि समाज की भौतिक उन्नति तो किसी अंश में उसके रहते भी हो सकती है; किन्तु आध्यात्मिक, मानसिक और शारीरिक उन्नति में एक बड़ा विघ्न उपस्थित हो जाता है; क्योंकि प्रत्येक काम तो धन की प्राप्ति के उद्देश्य से किया जाता है। इस हालत में ज्ञान-वृद्धि तथा कला की उन्नति

कौन उद्योग करे, क्योंकि उससे तो धन-प्राप्ति ती ? अस्तु ।

माज की उन्नति इसीमें है कि उसका आत्मिक, क; शारीरिक, और भौतिक—चतुरस्र विकास हो । इन चारों प्रकार की उन्नति से ही सुख की अधिकतम मात्रा की प्राप्ति हो सकती है । केवल धनी होने से ही कोई सुखी नहीं हो सकता ।

सिद्धगोपाल काव्यतीर्थ

आश्रम-व्यवस्था के पुनरुद्धार की आवश्यकता

भारतवर्ष की जो पुरानी बातें सर्व-कालीन भली थीं, उन्हींमें आश्रम-व्यवस्था की होनी चाहिए । इस व्यवस्था के लोप हो जाने से बड़ी हानि हुई है । प्राचीन आश्रम व्यवस्था में रीर और स्वभाव की आवश्यकताओं का पूरा-पूरा था; साथ ही उसमें जीवन के आदर्शों को, अन्तिम को, अंगाङ्गि-सम्बन्ध के नाते जोड़ दिया था । आश्रम-व्यवस्था में मनुष्य-जीवन के मोटे तौर वर्ष मान लिये गये थे । प्रथम पाँच वर्ष घर ाने पर लड़के का उपनयन-संस्कार होता था, यानी शिष्ट संस्कार द्वारा वह शिक्षा-दीक्षा के लिए किसी पास भेज दिया जाता था । आजकल उपनयन ी व्रतबंध) संस्कार का इतना विकृत और हास्यास्पद हो गया है कि कुछ कह नहीं सकते । उसका सार में नाम को भी नहीं है, पर उसके ढाँचे को उत्सव रूप प्राप्त हो गया है । इसके सुधार की अत्यन्त यकता है । उपनयन-संस्कार होने पर लड़का पच्चीस ी उम्र होने तक गुरु के पास व्रतपूर्वक रहता, भिक्षा र अपनी और गुरु की उदरपूर्ति करता, तथा प्राप्त करता था । शिक्षा समाप्त होने पर गुरु की पाकर वह विवाह करता, यानी अब गृहस्थ होता, न्धा करके अपना, अपनी पत्नी और बाल-बच्चों र्वाह करता तथा इस जीवन से सम्बन्ध रखनेवाले कार्य करता था । पचास वर्ष की उम्र के बाद बाल- और सम्पत्ति से दूर होकर वन में जाकर धर्मार्जन था । यहाँ पच्चीस वर्ष बिताने पर वह निःसंग रहता था, यानी सन्यासी हो जाता था ।

जैसा ऊपर कह चुके हैं, इस व्यवस्था में शरीर और मन की आवश्यकताओं की पूर्ति होती थी, साथ ही जीवन का अन्तिम उद्देश भी उससे सिद्ध होता था । मनुष्य-शरीर के लिए भोजन, आच्छादन और वासस्थान की अत्यन्त आवश्यकता है । इन बातों के बिना उसकी रक्षा हो ही नहीं सकती । इसलिए उनका अर्जन करना प्रत्येक प्रौढ़ पुरुष का कर्तव्य होना चाहिए । मनुष्य में काम-वासना स्वभावतः रहती है । प्रौढ़ होने पर पुरुष और स्त्री का मैथुन-सम्बन्ध होना स्वाभाविक है । इसीसे मानव-सृष्टि का क्रम भी चलता है । विवाह करके गृहस्थाश्रम में रह कर द्रव्यार्जन करना और बाल-बच्चे होने पर उनका पालन-पोषण-शिक्षण करना प्रत्येक गृहस्थ का कर्तव्य है । परन्तु इस गृहस्थाश्रम में केवल अर्थ और काम की ही सिद्धि की बात नहीं थी, उसमें धर्म की भी सिद्धि हो सकती थी । क्योंकि नियम-पूर्वक जीवन बिताने से धर्म का उच्च सीढ़ी पर पैर रखने की क्षमता प्राप्त होती थी । गृहस्थाश्रम में कुछ तो काम की सिद्धि होती है और कुछ उसे दमन करना भी सीखना पड़ता है । क्योंकि एक पत्नी-व्रत और एक पति-व्रत स्वयं यथेष्ट कठिन व्रत हैं । इस दुनिया में जो इनके अनुसार रहते हैं, वे नीति के मार्ग पर चलते कहे जाते हैं । फिर जिन्हें बाल-बच्चों का पालन-पोषण-शिक्षण करना पड़ता है उन्हें तो अपनी वासनायें दमन करने के, शान्ति से सारे सांसारिक कष्टों को सहने के, न जाने कितने प्रसंग आया करते हैं ! उनसे मानव प्राणी के पशुत्व का दमन अवश्य होता है । इस प्रकार कुछ-काम सिद्धि करने पर और मनोविकारों का दमन होने पर मनुष्य अपना उच्च उद्देश्य प्राप्त करने की तैयारी में लग सकता है । इसी-

लिए हमारे यहाँ गृहस्थाश्रम चलाने का सब के लिए आदेश किया है। तीसरे आश्रम में सारी कामनाओं का दमन होकर ईश्वर-चिन्तन में लगना चाहिए। इस समय पति-पत्नी दोनों इस कार्य में लगे रहते थे और यहाँ भी परस्पर के कार्य में एक दूसरे की सहायता करते थे। इस प्रकार मनोदमन, मन की शुद्धि और ईश्वर में संलग्नता प्राप्त होने पर मनुष्य इस संसार के सब सम्बन्धों से दूर हो सकता था। इसलिए 'संन्यास' लेने पर किसीसे किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रह जाता था। अब स्त्री-पुरुष वाला भेद भी मानने की आवश्यकता न थी। इस समय मनुष्य पूर्ण निःसङ्ग हो कर रहता था। किसी प्रकार की संपत्ति पास में रखना या एक ही स्थान में बहुत काल तक रहना भी मना था। ऐसे पुरुष जनता के धर्म के रक्षक, उपदेशक और आदर्श होते थे। शरीर को आवश्यकताओं के कारण यदि वे समाज पर अवलंबित रहते थे, तो धर्म-रक्षा, उपदेश और आदर्श द्वारा वे समाज की सेवा भी करते थे। साथ ही वे ऐसे होते थे, जिन्होंने संसार के समस्त अनुभव प्राप्त तो कर लिये हैं पर अब किसी प्रकार का बन्धन नहीं रहा है। ऐसे ही पुरुष समाज को उपदेश दे सकते हैं और उसके आदर्शस्वरूप हो सकते हैं। इस प्रकार समाज का क्रम संयमपूर्वक चलता था और व्यक्ति अपने उच्च उद्देश्य प्राप्त कर सकता था। समाज-व्यवस्था के साथ व्यक्ति के ऐहिक और पारलौकिक उद्देशों की सिद्धि की संभावना इस प्रकार बड़े ही अच्छे ढंग से गूँथ दी गई थी।

पर समय के साथ सभी बातें बदल जाती हैं। और-और बातों के साथ हिन्दुओं की आश्रम-व्यवस्था में भी बहुत रद्दोबदल हो गया है। वास्तव में यह कहना अनुचित न होगा कि अब यह व्यवस्था रह ही नहीं गई। पहले तो केवल शूद्रों को ही इस व्यवस्था से वंचित रक्खा था—द्विज यानी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य ये तीन वर्ण इस व्यवस्था से बंधे थे। पर अब क्षत्रिय और वैश्यों में तो इस सम्बन्ध का कोई बंधन रहा ही नहीं है। उन्हें तो प्राचीन काल के उपनयन-संस्कार से अब कोई वास्ता है नहीं। इनमें से कुछ लोग विवाह के अवसर पर जनेऊ धारण कर उपनयन-संस्कार की पूर्ति कर लेते हैं। अन्यथा, कई लोगों में उपनयन-संस्कार की नक़ल भी नहीं रही। ब्राह्मणों में भी उपन संस्कार के अनेक संस्कार हो चुके हैं। उसके मूल उद्देश्य तो कहीं पता ही नहीं है। हाँ, दक्षिणी ब्राह्मणों-जैसे लोगों में उसने एक बड़े भारी उत्सव का रूप धारण लिया है और उसमें सैकड़ों रुपये ख़र्च हो जाते हैं। ब्राह्मणों में वह क्षत्रियों के समान जनेऊ धारण करवा विवाह के अवसर पर पूर्ण कर लिया जाता है। अब हिन्दुओं उपनयन या व्रतबंध संस्कार होना चाहिए या नहीं, और हो तो वह किस रूप में हो, यह एक अच्छा विचारणीय विषय वह इस लेख का विषय न होने के कारण हम उसका पर विशेष विचार नहीं करेंगे। हाँ, कुछ थोड़े से वि यथास्थान दे दिये हैं। इसका एक उद्देश्य यह था कि ल पच्चीस वर्ष तक पूर्ण ब्रह्मचर्य से रहें। पर आज तो इ कहीं ठीक-ठिकाना रहा ही नहीं। कई लोगों में नाम के विवाह बचपन में ही होजाते हैं। बाल-विवाह की आम तौर से प्रचलित होगई है। १८ से २० वर्ष के भ लड़के एक-दो बच्चों के बाप हो जाते हैं और पच्चीस तक चार-पाँच बच्चों के बाप बन जाना कोई आश्चर्य बात नहीं है। यदि विवाह शीघ्र न भी हुआ तो नीति-मार्गों से लड़के अपने वीर्य का नाश १६-१७ वर्ष से करने लग जाते हैं। क्षत्रिय और वैश्य तो क्या, सै ब्राह्मण भी 'निरक्षर भट्टाचार्य' बने बैठे हैं—अप 'पण्डित' और 'महाराज' कहते हैं और छुआछूत द्वारा अपनेको सबसे श्रेष्ठ दिखलाते हैं। विद्या के नाम कोसों दूर हैं। इसलिए कोई आश्चर्य नहीं कि छुआ और जात-पाँत की बलिहारी के कारण उत्तर-हिन्दुस्थान कई ब्राह्मणों का धन्धा रसोई बनाने का होगया है 'महाराज' का अर्थ रसोइया बन गया है। हाँ, गृहस्था का एक कार्य यानी विवाह करके प्रजोत्पत्ति सब ही वि करते हैं। इस कार्य ने तो इधर ब्रह्मचर्य की अवस्था थोड़ा-बहुत अधिकार कर लिया है और वानप्रस्थाश्रम संन्यास को पूरी रीति से निगल डाला है। सारांश, आ कल प्रजोत्पत्ति के कार्य के सिव, प्राचीन आश्रम-व्यवस्था और कोई कार्य हिन्दू लोग सामान्य रीति से नहीं कर इससे अनेक हानियाँ हुई हैं। पहले तो छोटी अवस्था

न्धन में फँस जाने के कारण शिक्षा, संयम और का कोई महत्व नहीं रह गया। इसके कारण शरीर, विद्या समाज में बहुत कम रह गई है। यदि हममें से बहुतेरे दुर्बल और रोगी, दुश्चरित्र ढ़ हों तो हमें आश्चर्य न करना चाहिए। म में भी संयमपूर्वक न रहने के कारण हमारे और रोगी शरीर और दुश्चरित्र एवं ख़राब प्रजोत्पत्ति का कार्य बिना रोक-टोक के चलते रहने के कारण हम अर्थोत्पादन में भर ऐसे संलग्न रहते हैं कि कोई भी हमें देख कह सकता है कि अर्थ और काम के सिवा इनका उद्देश्य है ही नहीं। धर्म का ढकोसला हममें गया है, परन्तु वाणी और हाथ की धार्मिक बातों आत्मा पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। धर्म खाने और कहने भर को रह गया है, आत्मा से कोई सम्बन्ध नहीं रहा। वानप्रस्थाश्रम और द्वारा व्यक्ति की जो धार्मिक उन्नति होती थी, अब कहीं पता ही नहीं देख पड़ता। लोग यह ठे हैं कि ढकोसलों से ईश्वर-प्राप्ति हो सकती नप्रस्थाश्रम और संन्यास के लोप हो जाने से सच्चे समाजसेवी अब देख नहीं पड़ते। अब लोग इधर श्रम चलाते हैं और उधर समाज-सेवा के बड़े-बड़े में भी हाथ बँटाते हैं। इसके कई बुरे परिणाम होते र्म के ढकोसले के समान यह भी एक ढकोसला हो । आजकल आर्थिक उन्नति के लिए और समाज गी कहलाने के लिए समाज-सेवा का स्वाँग भरने रुष बहुत अधिक हो गये हैं। वे बहुत-कुछ स्वार्थ में समाज-सेवा उनके लिए एक व्यवसाय है। यदि च्चे समाज-सेवक बनने का प्रयत्न करते हैं, तो वे हानि उठाते हैं और उनका गृहस्थाश्रम दरिद्र, और क्लेशपूर्ण हो जाता है। इसका परिणाम उनके के शरीर, शक्ति और शिक्षा पर पड़ता है। क्योंकि लिए उनके पास न तो यथेष्ट समय रहता है, और श्यक द्रव्य ही होता है। गृहस्थाश्रम और सच्ची सेवा हमारी समझ में कुछ अंश तक असंगत बातें हैं। निःस्वार्थ सेवा अच्छी तरह-से पूरी तौर पर वे ही कर सकते हैं कि जो अपना अर्थ और काम सिद्ध कर चुके हैं, जिनका मन अब निःस्वार्थ और शुद्ध हो चुका है, जो अपनी वासनाओं को दबा चुके हैं। यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि भिन्न-भिन्न सभाओं के सदस्य होने के लिए लोग जो इतने मरे जाते हैं, वह क्या केवल सच्ची समाज-सेवा की इच्छा की प्रेरणा है? चाहे जिस प्रौढ़ पुरुष को चाहे जिस सभा का सदस्य होने का अधिकार होने से और उच्च सभाओं का सदस्य होने पर स्वार्थपूर्ति की आशा अधिक होने से लोग स्वार्थवश ही भिन्न-भिन्न सभाओं का, और बहुधा उच्च सभाओं का, सदस्य होने के लिए तड़फड़ाते रहते हैं और अर्थ और काम की सिद्धि में संलग्न रहते हैं। इसलिए हमारी समझ में तीस वर्ष के पहले किसी को भी किसी सभा का सदस्य होने का अधिकार न होना चाहिए। पच्चीस से तीस वर्ष तक पाँच साल वे समाज में रहकर उसके कार्यों, आवश्यकताओं और कठिनाइयों को जानें-समझें। तदनन्तर दस वर्ष तक उन्हें केवल म्युनिसिपैलिटी, लोकलबोर्ड, डिस्ट्रिक्ट कौंसिल आदि का, यानी ज़िले के भीतर की सभाओं का, स्थानीय स्वराज-शासन का, सदस्य होने का अधिकार होना चाहिए। जो कोई पुरुष इन सभाओं का सदस्य कम-से-कम तीन साल रह चुका हो, वही पुरुष प्रान्तीय धारा-सभा का सदस्य हो सके, पर यह अधिकार उसे चालीस वर्ष का होने पर ही प्राप्त हो। प्रान्तीय सभा का सदस्य कम-से-कम तीन साल रहने पर और पचास वर्ष का होने पर ही अखिल-भारतीय धारा-सभा का सदस्य होने का अधिकार किसी को प्राप्त हो। वानप्रस्थ पुरुष भी इन सभाओं के सदस्य हो सकें, पर संन्यासी नहीं। स्त्रियों के सम्बन्ध में हमें यह कहना है कि चालीस वर्ष की विधवा स्त्रियाँ तथा पचास वर्ष की सधवा स्त्रियाँ ही इन सभाओं की सदस्या हो सकें। उनके विषय में अन्य रोक-टोक रखना कठिन है। परन्तु हिन्दू स्त्री और पुरुष का जो सम्बन्ध समझा जाता है, उसके अनुसार वानप्रस्थ स्त्रियों को छोड़ अन्य सधवा स्त्रियों को इन सभाओं की सदस्या होने का अधिकार नहीं दिया जा सकता, क्योंकि गृहस्थाश्रम में स्त्री और पुरुष में

हिन्दू समाजतत्त्व के अनुसार अभेद भावना रहती है। स्त्रियों पर गृह-संचालन और सन्तति-पोषण की भारी ज़िम्मेदारी रहने के कारण उन्हें इन कार्यों से वंचित करना ठीक नहीं है। साथ ही, इस बात पर भी ध्यान रखना ज़रूरी है कि पति और पत्नी में भेदभाव पैदा करना और इस प्रकार उनके गार्हस्थ्य में फूट के बीज बोना अनुचित है।

हमने प्रसंगवश स्त्री और पुरुषों के भिन्न-भिन्न सभाओं के सदस्य होने के विषय में कुछ संक्षेप में कह डाला। परन्तु हमें अब मुख्य बात की ओर दृष्टि फेरनी चाहिए। आश्रम-व्यवस्था के लोप होने से और इस प्रकार गृहस्थाश्रम के कार्यों में रोक-टोक होने से गृहस्थों के अर्थोपार्जन के मार्ग बदल जाते हैं और जहाँ केवल निःस्वार्थ समाज-सेवा होनी चाहिए, वहाँ भी लोग स्वार्थ की पूर्ति का प्रयत्न किया करते हैं। इसके विपरीत बूढ़े लोग घर पर रहकर अनेक अनैतिक अत्याचार किया करते हैं। हमें ऐसे उदाहरण मालूम हैं और हमने कुछ समाचारपत्रों में पढ़े भी हैं कि बूढ़े पिता ने अपने लड़के की तरुण पत्नी पर पुत्र के समाज-सेवा में संलग्न और अनुपस्थित रहने के कारण बलात्कार किया है। बहुत काल तक गृहस्थी के सुखों में लगे रहने से और घर पर ख़ाली मन और शरीर को कोई कार्य न होने से ऊपर बताये अनैतिक अत्याचारों का पैदा होना अवश्यंभावी है।

इन सब हानियों और बुराइयों को दूर करने के लिए आश्रम-व्यवस्था का पुनरुद्धार होना अत्यन्त आवश्यक है। 'सर्वेण्ट आव् इण्डिया सोसायटी' जैसी जो-कुछ संस्थायें स्थापित होने लगी हैं उनसे भी यह आवश्यकता प्रतिपादित होती है। आज आवश्यकता इस बात की है कि समाज में कुछ लोग ऐसे रहें जो पूर्ण रीति से समाज-सेवा में लगे रहें। हम बता ही चुके हैं कि मानवी मन और शरीर की आवश्यकताओं के कारण बहुत-से तरुण लोगों का ऐसे कार्यों में लगे रहना असम्भव है। यह कार्य उन्हींसे हो सकता है जिन्होंने संयमपूर्वक गृहस्थाश्रम बिताया है और अब लड़कों-बच्चों में बहुत अधिक संलग्न रहने की आवश्यकता नहीं है। जिनपर भारी ज़िम्मेदारी है, जिन्होंने सांसारिक सुखों का अनुभव नहीं किया है, जिन्हें अभी तक इन्द्रिय-सुखों की लालसा बनी हुई है, वे सच्चे दिल से समाज-सेव नहीं कर सकते। जिन्होंने पच्चीस-तीस वर्ष गृहस्थाश्रम बिताये हैं वे ही समाज-सेवा करने के योग्य हैं। उन्हीं निःस्वार्थ और सच्ची समाज-सेवा हो सकती है। तरुण लोग की समाज-सेवा में शीघ्र ही स्वार्थपरता की धुन लग जात है। इसलिए आश्रम-व्यवस्था के पुनरुद्धार की आवश्यक बिलकुल स्पष्ट है। प्रश्न केवल इस बात का है कि आ व्यवस्था का स्वरूप क्या हो ?

पहले पाँच वर्षों के सम्बन्ध में कोई प्रश्न है ही नहीं यह तो बहुधा खेल-कूद का समय है। यदि कुछ शिक्षा भी सकती है तो वह केवल खेल-कूद से ही। उसे 'विहि शिक्षा (Formal education) की श्रेणी में न रख सकते। इस प्रकार की शिक्षा पाँच वर्ष के बाद ही शु हो सकती है। इसलिए छठे वर्ष में 'विद्याव्रत' की दीक्षा कर विद्यारम्भ कराना चाहिए। प्राचीनकाल में इसी वय 'व्रत-बंध' या 'उपनयन' संस्कार कराके लड़के गुरुजी हाथ शिक्षा-कार्य के लिए सौंप दिये जाते थे और वहाँ विद्या पढ़ते, गुरु की सब प्रकार की सेवा करते, उसक आज्ञा में रहते और भिक्षा माँगकर अपना औ अपने गुरु का निर्वाह करते थे। अब आज प्राचीनकाल गुरु दुर्लभ हैं। आजकल शिक्षा के कार्य पर सरकारी निय न्त्रण भी है। 'रिकग्नाइज़्ड' (सरकार द्वारा स्वीकृत पाठशालाओं और कालेजों के लड़कों को ही सरकारी नौक मिल सकती है। इसका परिणाम यह हुआ है कि सरका द्वारा स्वीकृत पाठशालाओं और कालेजों की ओर सब लड़ दौड़े पड़ते हैं। ख़ानगी विद्यालयों की क़ीमत कुछ भी न रही। इसका भी परिणाम बुरा हुआ है। यदि नौकरियों लिए अलग-अलग परीक्षायें रहें और चाहे जिस शाला पढ़े विद्यार्थी को उनमें प्रवेश करने का अधिकार रहे, त प्राचीन काल के विद्यालय और विद्यापीठ थोड़े-बहुत अवश्य चल निकलेंगे। तथापि अब जो थोड़े-बहुत विद्यालय हैं उन यह सिद्ध होता है कि कुछ विद्यालय अब भी चल सक हैं। यदि विद्यालयों के सब लड़कों को (ग़रीब और श्रीमा का भेदभाव दूर करके) भिक्षार्जन करने में लगाया जाय औ इस प्रकार जो द्रव्य एकत्र हो, वह विद्यालय में लगाया जा

ई विद्यालय चल निकलेंगे। जिस भारतवर्ष में अच्छे भले-को भीख अच्छी तरह मिल सकती है, वहाँ विद्यार्थियों को लयों के नाम अवश्य भिक्षा मिलेगी। विद्यार्थियों से ाम लेने में हम कोई बुराई नहीं समझते। इससे अनेक की शिक्षायें मिल सकती हैं। ग्यारहवें वर्ष में लड़कों से न कराया जाय और उन्हें धर्म की आचारात्मक, और ायिकाओं और सरल पुस्तकों द्वारा विचारात्मक शिक्षा य। इसी समय समाज-सेवा का भी व्रत उनसे कराया अर्थात् समाज को साधारण बातों में सहायता का काम उनसे लिया जाय। आज-कल की ट-संस्था के समान उद्देश्य उसमें सम्मिलित कर जायँ, पर इसके व्रत का प्रारम्भ धर्मव्रत के साथ चाहिए। वह आज-कल की नाईं सरकार-प्रणीत न होना चाहिए। चौदहवें वर्ष में ब्रह्मचर्य-व्रत की दी जाय। इसी समय लड़के इसका महत्व समझ हैं। समय-समय पर इस विषय में उपदेश देना न आवश्यक है। ये तीनों संस्कार अत्यन्त सादी रीति ात्र किये जायँ। आज-कल के नाममात्र के 'व्रतबन्ध' ाहें वे ख़र्चीले उत्सव न बन जायँ। इस प्रकार आज-के व्रतबन्ध के सब उद्देश्य उचित समय पर सिद्ध हो ो। जनेऊ वग़ैरह धारण करने के प्रश्न कम महत्व के हैं। म यह मानते हैं कि प्रत्येक व्रतसंस्कार का कुछ चिन्ह ों को धारण करना अत्यावश्यक है, ताकि वे अपने व्रत रण सदैव बनाये रक्खें।

हमने लड़कियों के विषय में अवतक कुछ नहीं कहा मारी समझ में लड़कों की नाईं लड़कियों के भी संस्कार भेद केवल इतना ही रहे कि लड़कियों का ब्रह्मचर्य-व्रत र्ष के स्थान में बारहवें वर्ष में ही हो। बारहवें वर्ष के लड़कियों से भिक्षार्जन का कार्य बन्द करा दिया जाय। लड़के पच्चीस वर्ष के और लड़कियाँ सोलह वर्ष की होने पर उन्हें विवाह करने की अनुमति दी जाय, परन्तु वस्थाओं के पूर्व नहीं। पुरुष ५० वर्ष तक और स्त्रियाँ र्ष तक विवाह कर सकें, परन्तु तदनन्तर नहीं। स्त्रियों-की अवस्था में हमारी समझ में विशेष अन्तर न चाहिए। दस या बारह वर्ष से अधिक अन्तर हमारी मति में अनुचित होगा। आजकल क्या यूरोप-अमेरिका और क्या भारतवर्ष, सभी देशों में स्त्रियों-पुरुषों की अवस्था के अन्तर के विषय में कोई नियम नहीं है। यूरोप-अमेरिका में तो इस सम्बन्ध में बड़ी ही विचित्र बातें दिखाई पड़ती हैं। कभी पत्नी की उम्र ७५ वर्ष की और पति की उम्र १५-१६ वर्ष की रहती है तो कभी पत्नी की उम्र १५-१६ वर्ष की और पति महाशय ७५ वर्ष के रहते हैं, और लड़के स्वयं अपनी बूढ़ी माता का "कन्यादान" करते हैं! इससे अधिक हास्यास्पद और हानिकारक बात और भी कोई हो सकती है? हमारे देश में तरुण पति की पत्नी बूढ़ी नहीं रहती, पर दस या पाँच वर्ष की लड़की के पति महाशय ६०-७० वर्ष के हो सकते हैं। इससे जो अनाचार होते हैं वे सब पर प्रकट ही हैं। पति-पत्नी की अवस्था में दस-बारह वर्ष से अधिक अन्तर होना कानूनन नाजायज़ कर दिया जाय तो प्रौढ़ विधुर पुरुष विधवाओं से अवश्य विवाह करेंगे। इस प्रकार विधवा-विवाह का प्रश्न हल हो जायगा और बूढ़े पतियों की तरुण पत्नियाँ होने से जो बुराइयाँ होती हैं वे बहुत-कुछ दूर हो जायँगी। प्रत्येक पुरुष को पत्नी-व्रत और स्त्री को पतिव्रता होना चाहिए। इसका उल्लंघन करने पर वे कानून की रू से समाज में किसी प्रकार कलङ्कित किये जायँ। नियोग की प्रथा को जायज़ करना बुरा न होगा। पर इसके लिए दोनों पक्षों के पति पत्नियों की स्पष्ट सम्मति रहे, अन्यथा ऐसा कार्य अनाचार समझा जाय। समाज के लोगों को बंधन में रहकर संयम सीखना होगा। पहले-पहल नैतिक अनाचार करने वाले पुरुषों को बेतों की सजा दी जाय अथवा उनके नामों का रजिस्टर प्रत्येक ज़िले के सरकारी दफ्तर में रहे, अथवा प्रसंगानुसार दोनों सज़ायें दी जायँ। दूसरी बार वही अपराध करने पर उनका नाम सरकारी दफ्तरों में लिखा जाना आवश्यकीय हो। तीसरी बार वही अपराध करने पर कैद की कुछ सज़ा दी जाय। इस प्रकार अपराध के गुरुत्व और संख्या के अनुसार उत्तरोत्तर अधिक दण्ड दिया जाय। स्त्रियों को बेंत की सज़ा न दी जाय, पर शेष दण्ड सामान्य रहे। इसी प्रकार आजकल नैतिक अनाचार दूर होने की संभावना है। पाश्चात्य संसर्ग के

कारण हम लोग भी विलासी बन बैठे हैं और इसलिए इसमें कोई बुराई नहीं देखते। पर इससे चरित्र और शरीर की जो हानि हो रही है, उसके कारण समाज रसातल को जा रहा है। इस अधोगति को रोकने के उपाय करने ही होंगे।

५५ वर्ष की अवस्था होने पर पुरुष और ४५ वर्ष की अवस्था होने पर स्त्रियाँ चाहें तो गृहस्थाश्रम को त्याग कर प्राचीन वानप्रस्थाश्रम के स्थान में 'सेवाश्रम' में पैर रक्खें। परन्तु प्रत्येक ६० वर्ष के पुरुष को तथा ५० वर्ष की स्त्री को गृहस्थाश्रम त्यागना ही होगा। इसके लिए प्रत्येक गाँव और शहर में सेवाश्रम रहें। उनको चलाने के लिए प्रत्येक गृहस्थी से हैसियत के अनुसार कुछ कर लिया जाय और उनका संचालन अर्ध-सरकारी रीति से हो। इनके नियम वगैरः सरकार ही बनावे। ईश्वर–चिन्तन, अध्यात्मशास्त्र और दर्शनादि के मनन के सिवा प्रत्येक सेवाश्रमी को समाज की हर प्रकार की सेवा करने का व्रत धारण करना ही होगा। कोई भी सेवाश्रमी निजी तौर से द्रव्य न कमावे। सरकारी नौकरी करने के कारण मिलने वाली पेंशन की आमदनी हो तो वह चाहे अपने लड़कों–बच्चों को देता जाय अथवा सेवाश्रम को दे दे। हमारी समझ में पेंशन के नियमों की अपेक्षा सरकारी नौकरी पूर्ण होने पर एक मुस्तक़िल रक़म उसे दे देना अधिक उचित है। इससे वह अपने लड़कों-बच्चों के आवश्यक पालन–पोषण का प्रबंध कर सकता है। सब जायदाद उसे अपने लड़कों-बच्चों को या अन्य किसी को पहले ही सौंप देनी होगी। सेवाश्रम में वह 'बंधविनिर्मुक्त' रहे, उसका सारा निर्वाह सेवाश्रम से ही हो, और वह भी अत्यन्त सादा हो। यदि सेवाश्रमी की उस समय के कार्यों के कारण कुछ सरकारी आमदनी हो तो वह सेवाश्रम की सम्पत्ति में दाख़िल की जाय। जनता में से कोई उन्हें कुछ न दे; जिसे जो कुछ देना हो वह उसके बाद सेवाश्रम को ही दे। सेवाश्रमी अपने बाल-बच्चों को उपदेश भले ही दे सकें, पर अपने घर पर न रहें। इस प्रकार सेवाश्रमी लोभ-मोहादि से दूर हो सकेगा।

७० वर्ष की अवस्था पर सेवाश्रमी चाहे तो संन्यास धारण कर ले। इस अवस्था में समाज का उसपर और इसका समाज पर कोई विशेष बन्धन न रहेगा। सर्वसाधारण नियमों का पालन उसे भी करना होगा, पर इनके सिवा उसके लिए कोई विशेष नियम न रहेंगे। उसका निर्वाह समाज की ऐच्छिक उदारता पर निर्भर रहेगा। उसका कार्य केवल ईश्वर-चिन्तन, दर्शनादि मनन, और समाज को उपदेश देना होगा।

इस प्रकार समाज की बिगड़ी दशा बहुत-कुछ सुधर सकती है। यह स्पष्ट ही है कि हमने जात-पाँत के झगड़े को अपनी इस व्यवस्था में कोई स्थान नहीं दिया है। वास्तविक बात यह है कि अब उसके और उसके अनुषंगी छुआछूत के अस्तित्व की कोई आवश्यकता नहीं रह गई है। और न हमने किसी एक दल को इस आश्रम-व्यवस्था से वंचित ही रक्खा है। हम सबको मनुष्य के नाते पूरी तर आश्रम-व्यवस्था के अधिकारी मानते हैं, सब को आत्मिक विकास के अवसर देना न्याय्य और आवश्यक है। हम नहीं समझ सकते कि प्राचीन काल में शूद्रों को क्यों इस अधिकार से वंचित रक्खा गया था। कदाचित् प्रारम्भ का द्वेषभाव ही इसके लिए ज़िम्मेदार हो, अथवा गृहस्थों को घरू चाकरी के लिए जिस प्रकार शूद्रों को विद्या से वंचि रक्खा कदाचित् उसी प्रकार द्विजों ने उन्हें आत्मिक विकास से भी वंचित रक्खा हो।

केवल एक प्रश्न का उत्तर देना आवश्यक है। जो लो पूर्ण पच्चीस वर्ष तक विद्या-प्राप्ति में लगे न रह सकें वे क्य करें? इसका उत्तर यह है कि दश वर्ष तक सबको स कारी तौर पर अनिवार्य शिक्षा दी जाय। तदनन्तर लड़के लड़कियां किसी काम-धन्धे में लग जायँ। घरू काम काज के लिए इन्हींमें से सैकड़ों लोग मिल जायँ। द वर्ष के बाद शिक्षा का पाना ऐच्छिक रहे। हाँ, विद्या प्रा करनेवालों को थोड़ी-बहुत सहायता देना समाज क कर्त्तव्य है। परन्तु लड़के-लड़कियाँ दस वर्ष के बाद कई पढ़ें या न पढ़ें, पर उनके इस अवस्था के बाद संस्का होना और उन व्रतों का पालन सब के लिए आवश्य होना चाहिए।

क्या हम आशा करें कि विद्वान् लोग उपरिलिखि सूचनाओं पर विचार करेंगे?

गोपाल दामोदर तामसक

आँसू

(१)

स्वर्गलोक-भर में बुद्धदेवता हँसी और मखौल के पात्र बने हुए थे। उनके छोटे और चौड़े डील-डोल के कारण, जो देवता उन्हें था, उनपर कोई न कोई आलोचना करने के का संवरण न कर सकता था। ख़ास कर देवइन्द्र की सभा में उनके प्रवेश करते ही सदस्यों स्य का फ़व्वारा छूट पड़ता। जब वह सभा में करते, तब सारी सभा खिलखिला कर हँस उठती। दिन देवराज इन्द्र स्वयं बुद्ध से विचित्र-विचित्र करके उन्हें खूब परेशान किया करते थे। इस तरी में तंग आकर जब बुद्ध खीझ उठते थे, उनका चेहरा और उनके हाव-भाव देखने योग्य जाते थे। देवताओं को बुद्ध का यह खीझना बहुत पसन्द था; इन्द्र प्रायः उनकी इस इच्छा को पूरी ा करते थे।

बुद्ध शान्तस्वभाव चन्द्र के पुत्र थे। चन्द्रदेव को ने एक-मात्र पुत्र की यह दशा बहुत अखरती थी, तु वह लाचार थे। देवराज इन्द्र के सामने भला क्या कर सकते थे? इसलिए, वह मन मार कर चाप अपने पुत्र के इस भयंकर अपमान को सहन लिया करते थे। अस्तु।

एक दिन देवराज इन्द्र मात्रा से अधिक सुरा-पान गये। प्याले पर प्याला चढ़ाते-चढ़ाते वह बिलकुल -शून्य हो गये। इसी अवस्था में उन्होंने सुरा-पान उछाल कर दूर फेंक दिया। बुद्ध उनके सामने ही थे; देवराज ने बड़े कर्कश स्वर में उनसे कहा—ो बुद्धू! जा, सुरापान उठा ला।" एक देवता को इस प्रकार की आज्ञा देना उसका घोर अपमान करना था, अतः बुद्ध अपने स्थान से नहीं हिले।

बुद्ध के पिता चन्द्र भी पास ही बैठे थे, वह पुत्र का यह भयंकर अपमान न सह सके। उन्होंने बिगड़ कर कहा—"इन्द्र! होश सम्हाल कर बात करो।"

चन्द्रदेव जोश में आ कर यह बात कह तो बैठे, परन्तु दूसरे ही क्षण अपने दुस्साहस के परिणाम को सोच कर उनका हृदय काँप उठा। इतने में ही कुपित देवराज ने गरज कर कहा—"क्या बकता है छोकरे! अभी पतित हो कर मर्त्य-लोक में जन्म ले।" चन्द्रदेव के मुँह पर हवाइयाँ उड़ने लगीं। इतनी छोटी-सी अवज्ञा का इतना भयंकर दण्ड!

सारी सभा में सन्नाटा छा गया। सब देवता यह सुन कर काँप गये, परन्तु देवराज से कुछ कहने की हिम्मत किसीको न हुई। केवल गुरु बृहस्पति ही इस अवस्था में भी ज़रा न घबराये। उन्होंने ख़ूब गम्भीर हो कर देवराज इन्द्र को उपदेश देना प्रारम्भ किया। बृहस्पति की बादल की गरज के समान गम्भीर वाणी के प्रभाव से शीघ्र ही देवराज का नशा उतर गया। चेतनावस्था में आ कर उन्हें अपने कार्य का अनौचित्य स्पष्ट दीखने लगा। थोड़ी देर में ख़ूब शान्त होकर उन्होंने कहा—"जाओ चन्द्रदेव, मेरा शाप नहीं टल सकेगा। मर्त्यलोक में जाओ और वहाँ की सर्वोत्कृष्ट वस्तु लाकर मुझे दो। उस वस्तु में स्वर्गलोक की मधुरता हो, पापियों को कँपा देने की वह शक्ति रखती हो; वह सबसे अधिक करुणापूर्ण और पवित्र हो, वह आदर्श प्रेम का उज्ज्वल और मधुरतम स्वरूप हो। जाओ, चन्द्र, मर्त्यलोक में जाकर मेरे लिए शीघ्रही ऐसा उपहार ढूँढ लाओ।"

चन्द्रदेव अभीतक थर-थर काँप रहे थे ।

(२)

खूब तपी हुई बालुका पर वह गौर-वर्ण देवदूत बिलकुल नंगा होकर बैठा था । गरम लू चल रही थी; कहीं हरियाली का नाम भी नहीं था । दूर पर श्यामल वर्ण के कुछ वृक्ष अस्पष्ट रूप में दिखाई पड़ रहे थे । देवदूत—निर्वासित देवदूत—इस दशा में अत्यन्त कष्ट अनुभव कर रहा था । जिस मर्त्यलोक को वह अपनी शुभ्र ज्योत्स्ना से प्रतिदिन शीतल किया करता था वह लोक इतना गरम, नीरस और शून्य होगा, इसकी उसे कल्पना भी न थी । देवदूत का शरीर जल रहा था, उसमें मनुष्यों की अपेक्षा बहुत अधिक सहनशक्ति थी, अतः ऊपर अनन्त नीले आकाश की ओर आँखें किये हुए पड़ा रहा । शायद वह तृषित नेत्रों से स्वर्ग की ओर ताक रहा था ।

सहसा देवदूत को अपना कर्तव्य याद आया; वह एकदम उठ खड़ा हुआ । वह सोचने लगा कि इस नीरस-निर्जन मर्त्यलोक में से मैं देवराज का वांछित उपहार कहाँ प्राप्त कर सकूँगा ? परन्तु उसे प्राप्त किये बिना भी तो काम नहीं चल सकता । वह दूर पर दिखाई देनेवाले वृक्षों के झुरमुट की ओर चला । वहाँ पहुँच कर उसने देखा कि वृक्षों के पास ही मटियाले रंग के विविध प्रकार के सैकड़ों स्तूप-से बने हुए हैं । देवदूत पहले-पहल यह निर्धारित न कर सका कि ये क्या हैं; परन्तु, थोड़ी देर बाद, जब वह अपना कौतूहल शान्त करने के लिए, एक स्तूप के पास गया, तब उसे मालूम हुआ कि ये मिट्टी के बेढंगे ढेर इस अभागे लोक के निवासियों के घर हैं ! चन्द्रदेव बिना किसी प्रकार की झिझक के एक मकान में प्रविष्ट हो गये ।

मकान के दालान की बाईं ओर एक बरामदा था । इस बरामदे में तीन चारपाइयाँ बिछी हुई थीं । एक चारपाई पर बिछे हुए मैले-कुचैले कपड़ों पर एक छः बरस का बालक लेटा हुआ था; शेष दो पर एक वृद्ध स्त्री और एक वृद्ध पुरुष लेटे हुए थे । ये सब प्राणी सर्वथा क्षीण, दीन और दुर्बल थे । बालक की शय्या बीच में थी और वृद्धा तथा वृद्ध उसके दोनों ओर लेटे हुए थे । बालक बड़े करुण स्वर में "हाय-हाय" कर रहा था । दोनों वृद्ध पति पत्नी बड़ी व्यथा से उसकी ओर देख रहे थे । विचित्र दृश्य था । चन्द्रदेव बहुत ही आश्चर्य तथा दुःख में पड़ गये । ओह ! इस लोक के निवासी इतने हीन, क्षीण और शक्ति रहित होते हैं ! थोड़ी देर में बालक रोती हुई आवाज़ में, चिल्ला कर, पुकार उठा—"पानी, पानी !" दोनों वृद्ध व्यक्तियों ने, मानों बालक की आवाज़ को प्रतिध्वनित करते हुए, क्षीणस्वर में धीरे से कहा—"पानी, पानी !"

देवदूत को अब पूरी बात समझने में देर न लगी । वह स्वर्गलोक में अनेक बार मर्त्यलोक के भयंकर अकालों का वर्णन सुन चुका था । परन्तु इन कष्टों की इतनी भीषणता की उसे कल्पना भी न थी । बात यह थी कि इस वर्ष फ़ारस देश में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा हुआ था । अन्न तो क्या, कहीं पानी का भी नामो-निशान न था । ये तीनों अभागे प्राणी इसी दुर्भिक्ष के शिकार थे । तीनों प्यासे थे, तथापि दोनों वृद्ध व्यक्तियों को अपनी अपेक्षा पुत्र की प्यास बुझाने की अधिक चिन्ता थी; परन्तु वे लाचार थे, कुछ हो ही नहीं सकता था । चन्द्रदेव हृदय थामकर इस करुण दृश्य को देखते रहे, उन्हें मर्त्यलोक में किसी जीव की सहायता करने का अधिकार नहीं था ।

थोड़ी देर बाद बालक फिर चिल्लाया—"पानी, पानी !" परन्तु इस बार उसका स्वर पहले की अपेक्षा बहुत क्षीण था । शायद बालक की निष्पाप आँखों ने उसकी माँग पूरी करने का यत्न किया ।

आँखों के दोनों गढ़े आँसुओं से भर गये। ही देर में बालक को हिचकी आई, और बाद उसकी देह प्राण-शून्य होगई! दोनों वृद्ध ी अनिमेष नेत्रों से अपने प्राणाधिक पुत्र की देखते रह गये!

वदूत एकदम प्रफुल्लित हो उठा; नहीं मालूम, सन्नता का क्या कारण था? उसने शीघ्रता से के आँसुओं का संग्रह कर लिया और इसके ह अपने शुभ्र पंखों की सहायता से स्वर्गलाक ला गया।

× × ×

वराज इन्द्र स्नान-ध्यान समाप्त करने के अन- भा-भवन की ओर जा ही रहे थे कि चन्द्रदेव कर उन्हें प्रणाम किया। चन्द्र के हाथ में क्या है—यह देखते ही देवराज उसकी सारी कथा जान गये। उन्होंने धीरे से कहा—"यह ोक का सर्वोत्कृष्ट उपहार नहीं है। जाओ!" चन्द्रदेव मन मारकर रह गये।

(३)

ऊंची अट्टालिका की छत पर से ही चन्द्रदेव उन और प्रेमिका की बातें सुनने लगे। प्रेमिका ने आवाज़ को स्थिर करके धीरे से कहा—तम, मातृ-भूमि शत्रुओं से घिरी हुई है।"

"सो मैं जानता हूँ" कहकर वह अपनी प्रेमिका की ओर देखने लगा।

युवती कुछ कहना चाहती थी, परन्तु लज्जावश से कहते-कहते रुक जाती थी। उसकी अन्त- बार-बार जिस बात को उसके गले तक लाती उसका हृदय उसे मुँह से बाहर निकलने का शा न देता था। दोनों थोड़ी देर तक चुपचाप हे। इसके बाद प्रेमिका ने बड़े यत्न से कहा—तम हेरिस, कल शायद हमारी मातृ-भूमि की स्वतन्त्रता का अन्तिम दिन है; इसके बाद पराधीनता का घना अन्धकार हमारी मातृ-भूमि फ़्रांस को सदा के लिए आच्छादित कर लेगा।"

नवयुवक हेरिस इसपर भी कुछ न बोला। उसने एक बार अपनी प्रेमिका की ओर देखकर ठण्डा स्वांस लिया। मानों वह कह रहा था—'प्रिये, अभी तो हमें परस्पर मिले थोड़े ही दिन हुए हैं। क्या इतनी शीघ्र इस स्नेह-बन्धन का विच्छेद कर देना पड़ेगा?'

थोड़ी देर और चुप रहने के बाद प्रेमिका ने फिर कहा—"प्रिय हेरिस, मैं चाहती हूँ कि मैं भी तुम्हारे साथ मातृ-भूमि के शत्रुओं का मुक़ाबला करने चलूँ।"

यह वाक्य कहते हुए उसका स्वर काँप रहा था। नवयुवक हेरिस डरपोक नहीं था। अपनी प्रेमिका की अन्तिम बात सुनकर उसकी अस्थिरता दूर हो गई। उसने शीघ्रता से अपना कर्तव्य निश्चित कर लिया। इसके बाद दोनों प्रेमी एक दूसरे के गले में हाथ डालकर प्रेमभरी बातें करते रहे। चन्द्रदेव उन सब बातों को सुन रहे थे।

सारी रात दोनों प्रेमी बिलकुल नहीं सोये। उनकी बातों का कभी समाप्त न होनेवाला अक्षय कोष प्रातःकाल के नवीन सूर्य की नरम किरणों ने बीच में ही बन्द कर दिया। नवयुवक हेरिस की बिदाई का समय आ गया।

अन्त में वीर-स्वभाव हेरिस ने ठण्डी आह भर कर अनिश्चित काल के लिए बिदा ले ली। जबतक वह गली में दीखता रहा, प्रेमिका दर्वाज़े पर खड़ी होकर अनिमेष नेत्रों से उसे निहारती रही। इसके बाद युवती ऊपर की छत पर जाकर नगर के राज-मार्ग पर जाते हुए हेरिस के साथ रूमाल हिला-हिला कर प्रेमालाप करती रही।

जब नवयुवक हेरिस बहुत दूर जाकर, प्रातःकाल की धुंध में लीन होकर, प्रेमिका की आँखों से ओझल हो गया, तब उस देवी ने दूर पर धुंधले परन्तु शून्य आकाश की ओर देखते रहकर एक ठण्डी आह भरी, इसके साथ ही उसकी बड़ी-बड़ी आँखों से दो बूँद आँसू टपक कर उसके गुलाबी चेहरे पर से ढुलकते हुए नीचे की ओर खिसक गये। चन्द्रदेव अभी तक शान्त होकर इस दृश्य को देख रहे थे, उन्होंने अदृश्य रूप से पास आकर पवित्र प्रेम की पुण्य-स्मृति-स्वरूप उन आँसुओं को चुरा लिया। इसके बाद वह अपने पंखों की सहायता से स्वर्ग की ओर उड़ गये।

× × ×

देवराज इन्द्र बड़ी गम्भीरता से गुरु बृहस्पति का प्रातःकालीन उपदेश सुन रहे थे। इतने में चन्द्रदेव वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने बड़ी नम्रता से देवराज को नमस्कार किया। परन्तु देवराज ने एक बार चन्द्र की ओर देख कर बड़ी शान्ति से केवल इतना ही कहा—"चन्द्र ! तुम्हारा यह उपहार सचमुच बहुत उत्कृष्ट है, तथापि यह मर्त्यलोक की सर्वोत्कृष्ट वस्तु नहीं है।"

चन्द्रदेव का दिल टूट गया। वह मर्त्य लोक के भयंकर चित्र की कल्पना करके काँप उठे।

(४)

एक सुन्दर बाग़ में एक सोने का पिंजरा टँगा हुआ था। चारों ओर विविध रंगों के बड़े-बड़े फूल खिले हुए थे। ठण्डी हवा चल रही थी; हरे-हरे वृक्षों के पत्तों से मधुर शब्द उत्पन्न हो रहे थे। पिंजरे के अन्दर किशमिश, अंगूर, अनार आदि कई फल पड़े हुए थे। इस पिंजरे में एक काबुली तोता, जिसके गले पर लाल रंग की कुण्डली बनी हुई थी, सिर नीचा किये बैठा था।

मगध के सम्राट् समुद्रगुप्त ने अपनी कन्या अपराजिता के लिए ख़ास काबुल से यह तोता मंगवाया था। अपराजिता इस तोते को बहुत प्या करती थी; उसे सब प्रकार से सुखी करने का प्रय करती थी। परन्तु, वह कभी प्रसन्न न होता था अपराजिता के प्रेम के प्रभाव से, वह उसके रटाये हु वाक्य तो अवश्य सुना देता था; परन्तु उसका म सदैव उदास रहता था। इस बात को राजकुमा अपराजिता भी जानती थी कि यह काबुली तोता इ रमणीक उद्यान को कन्धार की सूखी पहाड़ियों सामने कुछ भी मूल्य वाला नहीं समझता।

सायंकाल का समय था; लता-कुञ्जों में लट हुए पिंजरे में वह काबुली तोता सिर नीचा किये बै था। इसी समय चन्द्रदेवता उसके पास आकर ख हो गये। आज सम्राट् समुद्रगुप्त के इस सुन्दर उद्या को देख कर उनकी यह धारणा नष्ट हो गई, मर्त्यलोक सर्वथा नीरस है। सहसा कुञ्जों की घनी छा के नीचे पिंजरे में बैठे हुए तोते पर उनकी नज़र पड़ पहली नज़र में उसकी शोकमग्नता उनसे छिपी रही। वह चुप-चाप खड़े होकर उसकी ओर देखने लगे

ठीक इसी समय पश्चिमी दिशा से एक अ तोता आकर पिंजरे के पास वाले मौलश्री के पेड़ बैठ गया। इस तोते के गले पर भी लाल रंग कुण्डल बना हुआ था। वृक्ष पर बैठते ही तोता चि उठा—"टीं, टीं"। पिंजरे में बैठे हुए तोते की मानों सह नींद टूट गई। वह झुकी हुई गर्दन को उठा कर बैठ ग और सामने वाले मौलश्री के पेड़ पर बैठे अपने देश-बन्धु की ओर देखकर कातर स्वर से व भी पुकार उठा—"टी !, टीं !!" इसके साथ साथ उसकी आँखों से दो बूँद आँसू टपक पड़े चन्द्रदेव शेष दृश्य को देखने की प्रतीक्षा न कर शीघ्रता से उन आँसुओं के जल से भीगी हुई मि को उठाकर स्वर्गलोक की ओर चल दिये।

× × ×

वराज इन्द्र स्वर्ग की अप्सराओं का नाच देख । इसी समय चन्द्र ने आकर मरकतमणि से हलके नीले रंग की थाली में रक्खी हुई वह ल-सिंचित मिट्टी उन्हें भेंट की । देवराज ने प्रसन्न होकर कहा—"चन्द्रदेव, अब तुम पाप-मुक्त हुए । सचमुच यह मर्त्यलोक का सर्वोत्कृष्ट उपहार है।"

चन्द्रगुप्त विद्यालंकार

अन्तिम दृश्य

गम अथाह सिन्धु लख, वीर-हृदय, मत घबराना।
ह कठिन परीक्षा तेरी, आह नहीं मुँह पर लाना।
यु-मंडल में तुमने नाविक बन कर खेला है।
रिधि में सागरोर्मि की, भीषणता का मेला है।

× × ×

केवल माया का आडम्बर, देख रूप मत फँस जाना।
जीवन-मरण समझ क्रीड़ा-सा, अन्तिम दृश्य दिखा जाना॥

चन्द्रदीप पाण्डेय 'पुलकित'

बृहत्तर भारत

['त्यागभूमि' के लिए]

[५]

कम्बुज-सम्राट् यशोवर्मन्

यशोवर्मन् के (जो नवीं शताब्दी के अंतिम भाग में राज्य करता था और जयवर्मन् के बाद तीसरा राजा था) राज्य-काल में भी क ही लेख को ग्यारह विभिन्न शिलालेखों में भिन्न स्थानों पर उद्धृत किया हुआ पाते हैं। से प्रत्येक शिलालेख पर एक ही लेख दो-दो खुदे हुए हैं। एक जगह तो दक्षिण-भारतीय के कम्बुज वा कम्बोडियन अक्षरों में और जगह बंगला से कुछ-कुछ मिलते-जुलते उत्तर-य अक्षरों में। इन शिलालेखों में दोहराई गई में कम्बुज-सम्राट् की राजधानी के शिव-रों के नियमादि के सम्बन्ध में बड़े मनोरंजक ण मिलते हैं। लिखा है—"सम्राट् यशोवर्मन् वी, सोना, चाँदी, गाय, घोड़े, भैंसें, हाथी, पुरुष, स्त्रियाँ, बाटिकायें इत्यादि जितनी भी चीजें यशोधराश्रम को दी हैं, उन्हें सम्राट् वा दूसरा कोई व्यक्ति ले नहीं सकता। केवल राजा, ब्राह्मण और क्षत्रिय ही अपने आभूषण उतारे बिना आश्रम के भीतरी भाग में प्रवेश कर सकते हैं। जमींदारों तथा श्रीमानों के सहचर बिना माला के दीन वेश में प्रवेश कर सकते हैं। साधारण जन वहाँ अपने साथ किसी प्रकार का भोजन वा चबाने की, पान इत्यादि, चीजें न ले जायँ × × बुरे आचरण के साधु-संन्यासी इसमें प्रवेश न करने पायँगे। × × × सम्राट् के अतिरिक्त और सबको आश्रम के सामने से गुजरते समय रथ से उतर जाना और बिना छाते के चलना चाहिए। × × × आश्रम के अध्यक्ष-पद पर नियुक्त तपस्वी को, ब्राह्मण, क्षत्रिय,

मंत्री, सेना-नायक, शैव एवं वैष्णव-सम्प्रदायों के साधु तथा साधारण जन में से श्रेष्ठ लोगों की, अतिथि के रूप में, सदैव भोजन-पानी एवं पान से अभ्यर्थना करनी चाहिए । इस स्थान पर लिखी मर्यादा के अनुसार उनका आदर-सत्कार किया जाना चाहिए । जबतक सूर्य-चन्द्र स्थित हैं, तबतक इस प्रकार निश्चित 'शासन' (नियम) को तोड़ने एवं उल्लंघन करनेवाले नरक में जावें ।"

एक दूसरे मन्दिर पर, इन ग्यारह शिलालेखों से भिन्न एक और शिलालेख है, जिसमें कहा गया है—'नीले या अनेक रंगों के वस्त्र पहनकर लोग इस मन्दिर में न जायँ। देवों की पूजा करने के इच्छुक सच्चे स्त्री-पुरुष, अपनी मर्यादा एवं सुविधा के अनुसार, भेंट-सामग्री ले जा सकते हैं । जिनके पास भक्ति के सिवा दूसरा धन नहीं है, वे केवल एक फूल लेकर भी प्रवेश कर सकते हैं । भग्नाङ्ग, अकृतज्ञ, कुबड़े, बौने, महापापी, गुण्डे, विदेशी, कोढ़ी एवं दण्डित व्यक्ति शिव-मन्दिर की परिधि में नहीं जा सकते । मन्दिर में प्रतिष्ठित भगवान् की सेवा एवं पूजा उन्हें ही करनी चाहिए, जो माहेश्वर-सम्प्रदाय के हों, जिनका अपने ऊपर अधिकार हो, जो अच्छे कुटुम्ब एवं अच्छे चरित्र के हों, तथा जिन्हें मन की शान्ति प्राप्त हो चुकी हो । जो लोग इन नियमों का उल्लंघन करेंगे, उनमें जो ब्राह्मण होंगे, चूँकि जुर्माने की वा अन्य शारीरिक सज़ा उन्हें नहीं दी जा सकती इसलिए, वे केवल मन्दिर की सीमा के बाहर कर दिये जायँगे । राजकुमारों को २० पला सोना और सम्राट के सम्बन्धियों एवं मंत्रियों को इसका आधा अर्थात् १० पला सोना जुर्माना देना पड़ेगा । जो लोग सोने के हैण्डिल का छाता ले चलने के अधिकारी हैं उन्हें इसका आधा अर्थात् ५ पला और प्रधान व्यापारियों को इसका भी आधा अर्थात् ढाई पला जुर्माना होगा। शिव और विष्णु के उपासकों को इसका आ अर्थात् १$\frac{१}{४}$ पला और साधारण जनों को $\frac{५}{८}$ प दण्ड देना पड़ेगा । साधारण जनों में जो जुर्मा नहीं दे सकेंगे उनकी पीठ पर बेंत लगेंगे । यदि पू विधि, मन्दिर के पात्रों एवं उपासना के स पवित्रता के विरुद्ध कोई काम किया जायगा, प्रधान वा अध्यक्ष से लेकर साधारण कर्मचारी त मन्दिर के समस्त रक्षकों पर, अपराधी के साथ जुर्माना किया जायगा । इस जुर्माने की मात्रा पला सोने से लेकर पद के विचार से निश्चित नि के अनुसार होगी ।"

एक दूसरे शिलालेख में एक दूसरे आश्रम सम्बन्ध में—जो उस स्थान पर है, जिसका न इण्डोचीनी भाषा में थानलबरे है—विशेष विव मिलता है । लिखा है--"जो आचार्य शैव पाशुपत धर्म के सिद्धान्तों और संस्कृत व्याकरण पण्डितों में सबसे अधिक विद्वान् होगा, उसे महाआश्रम में सर्वोच्च सम्मान दिया जायगा । ध मित्र, अवस्था (आयु), पुण्य, कर्म और विद्या— क्रमानुसार उच्चतर मर्यादा एवं सम्मान पाने कारण हैं (यह मनु का वाक्य है)।...युवक, वृ अशक्त, दीन एवं अनाथ सबको भलीभाँति भो एवं दवा देनी चाहिए । जिन्होंने कर्तव्य-पालन रणक्षेत्रों में प्राण उत्सर्ग किये हैं, जिन वफ़ाद मनुष्यों का देहावसान हो गया है, और जिनके प कोई सम्बन्धी तर्पण करनेवाले नहीं रह गये उन सबके लिए मास के अन्त में श्राद्धाञ्जलि दे की व्यवस्था की जाय । पहले सब सामग्री आश्रम प्रस्तुत की जाय; फिर वहां से यशोधरामील के पर लाकर श्राद्धाञ्जलि दी जाय ।"

सुदूर इण्डोचीन में नवीं शताब्दी में हिन्दू प्रभा कितना अधिक था, इसके ये कतिपय प्रमाण हैं ।

बिजनराज चटर्जी

जैन सम्राट् श्रेणिक बिम्बसार

इतिहास के पाठकों से यह बात छिपी हुई नहीं है कि आधुनिक शृंखलाबद्ध इतिहास जैन श्रेणिक से ही आरम्भ होता है। और उनसे पूर्व के सिक काल को सभी ऐतिहासिक विद्वान् एक स्वर से स-पूर्वकाल (Pre-historic age) मानते हैं। उनकी सम्मति में, जैन सम्राट् श्रेणिक ही प्रथम भारतीय सत्ता-सम्पन्न शासक हैं। यह भगवान् के शिष्य थे, इसलिए उनके समकालीन होने के इनका समय जो ईसा से पूर्व ५४३ से ४९१ का या है वह ठीक बैठता है। अपने राज्यकाल में राजगृह नामक अपनी राजधानी को फिर से निर्माण था और अपने वंश-परंपरागत प्राप्त राज्य की वृद्धि थी। *

ह अपने प्रारम्भिक जीवन में बल्कि युवावस्था के क बौद्धधर्मावलम्बी रहे थे, ऐसा जैनियों के शास्त्र यक्त करते हैं, परन्तु अवशेष जीवन भर अपनी रानी के प्रयत्न से जैनी बने रहे। सम्भवतः इसी कारण स्त्रों में इनके अन्तिम जीवन का कोई निश्चित नहीं है, जिसका न होना ठीक भी है—क्योंकि, ज श्रेणिक का बौद्ध से जैन हो जाना जैनधर्म की थी। भला कोई भी व्यक्ति अपने प्रतिपक्षी की का वर्णन क्यों करेगा? यही कारण है कि बौद्धों ने पुत्र कुणिक को—जो अपने पिता की भाँति अपने भक जीवन में जैनधर्म का श्रद्धालु था—'सर्व दुष्कृत्यों मर्थक और पोषक' लिखा है। आज हम इस लेख में खलावेंगे कि इतिहास-काल के प्रथम सम्राट् को ही इतिहास में 'प्रथमग्रासे मक्षिकापातः' वाली नीति ार्थ की गई है।

नशास्त्रों में महाराज श्रेणिक के पिता का नाम उप- क लिखा है। वह राजगृह में रहकर मगध देश पर राज्य करते थे। मगध देश के अतिरिक्त और भी कई देश उनके शासन में थे, चन्द्रपुर के दुर्दण्ड राजा सोमशर्मा ने भी उनकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। सम्भवतः उनकी इसी शूरवीरता के कारण हिन्दुओं के विष्णुपुराण में शिशुनाग-वंश के चौथे राजा का नाम क्षत्रोजस् लिखा है, जब कि श्रेणिक उसी वंश के पाँचवें राजा हैं। इस प्रकार क्षत्रोजस जैनशास्त्रों के उपश्रेणिक ही प्रतीत होते हैं।

श्रेणिक का जन्म महाराज उपश्रेणिक की इन्द्राणी के गर्भ से हुआ था। कुमार श्रेणिक क्रमशः बढ़ने लगे। वह अपने बाल्यकाल से ही बुद्धि की चतुराई के कारण सज्जनों को मान्य हो गये थे।

एक समय महाराज उपश्रेणिक एक नये घोड़े की परीक्षा कर रहे थे कि वह घोड़ा उनको अज्ञात स्थान को ले भागा और उन्हें एक गहन वन में जा पटका। वहाँ पर भीलों के अधिपति यमदण्ड ने उन्हें अपने यहाँ रक्खा। यह यमदण्ड एक क्षत्रिय राजा था, जो राज्यभ्रष्ट होकर यहाँ रहता था। महाराज उपश्रेणिक उसकी सुन्दर कन्या तिलकवती के रूप-लावण्य पर मुग्ध हो उससे उसकी याचना करने लगे। उसने इस शर्त पर वह कन्या इनको दे दी कि उसका ही पुत्र राज्याधिकारी होगा। तदनुसार इस तिलकवती के पुत्र चलाती को आगे चलकर गद्दी दी गई थी। कुमार श्रेणिक को कुछ दोष लगाकर देशनिकाले का कठोर दण्ड मिला था और मन्त्री आदि के कहने से उन्होंने पितृ-आज्ञा का उल्लंघन न कर उसको पालन किया था। ऐसा ही उल्लेख सर रमेशचन्द्र दत्त ने अपने 'भारतवर्ष की सभ्यता के इतिहास' में पृष्ठ २२ पर किया है—"...मगध के एक राजकुमार... को... ईसा के पहले पाँचवी शताब्दी में उसके पिता ने...देश से निकाल दिया था।" अधिक सम्भव यही है कि यह राजकुमार श्रेणिक ही हों। राजगृह से निकलकर वह नन्दिग्राम पहुँचे, परन्तु वहाँ के ब्राह्मणों ने उनको आश्रय नहीं दिया; इसलिए वह आगे चलकर बौद्ध संन्यासियों के आश्रम में गये, और वहाँ उनका आतिथ्य स्वीकार किया और बौद्धधर्म के पक्के अनुयायी

---

* Oxford History of India by V. Smith. 56.

हो गये। यद्यपि गौतम बुद्ध इनके समकालीन ही थे, किन्तु इस बात का पता नहीं चला कि वह बौद्धाचार्य गौतम बुद्ध थे, अथवा कोई अन्य व्यक्ति। जो हो, कुमार श्रेणिक कुछ दिनों तक वहीं रहे।

कुछ दिनों के पश्चात् वह बौद्धाश्रम से इन्द्रदत्त सेठ के साथ-साथ चलते हुए उसके नगर बेणपद्म में पहुँच गये। इन्द्रदत्त के यहाँ एक नन्दिश्री नाम की सर्वगुण-सम्पन्न कन्या थी। वह कुमार श्रेणिक के गुणों की श्रेष्ठता के कारण उनपर आसक्त हो गई। इन्द्रदत्त ने उसका पाणिग्रहण कुमार श्रेणिक के साथ कर दिया। अब कुमार श्रेणिक यहाँ आनन्द से रहने लगे। इधर महाराज उपश्रेणिक का देहान्त हो गया और चलाती प्रजा पर अन्याय करने लगा, जिसके कारण प्रजा ने दुःखी होकर कुमार श्रेणिक को बुला भेजा। कुमार का आगमन सुनकर चलाती भयभीत होकर भाग गया और श्रेणिक राज्यारूढ़ होकर नीति-पूर्वक प्रजा का पालन करने लगे।

इस समय कुमार श्रेणिक के, नन्दिश्री के गर्भ से, अभयकुमार नामक पुत्र उत्पन्न हो चुका था। यह बड़ा धार्मिक, न्यायी और बुद्धिमान था। भगवान् महावीर से भेंट होने पर, इसने, युवराज होते हुए भी राजपाट को लात मार कर परम-प्रशंसनीय मुनि-मार्ग का आश्रय लिया था।

कुमार अभय का उल्लेख बौद्ध ग्रन्थों में भी है। उनमें कुमार अभय को महाराज श्रेणिक बिम्बसार का पुत्र लिच्छवी स्त्री के गर्भ से हुआ लिखा है। बौद्धों के तिब्बतीय दुल्व नामक ग्रन्थ में उसका इस प्रकार वर्णन है—"वैशाली में एक लिच्छावी महानामन नामक था, इनके बग़ीचे के आम्रकुंज में एक कदली के वृक्ष से सुन्दर कन्या उत्पन्न हुई, जिसके सम्पूर्ण अंग सुडौल थे। उसको इसने आम्रपाली कह कर प्रसिद्ध किया। जब यह युवावस्था को प्राप्त हो गई, तो वैशाली के नियमानुसार—कि सुन्दर स्त्री की शादी न की जाय, बल्कि जनता के लिए उसको रख छोड़ा जाय—वह वेश्या (courtezan) हो गई। गोपाल के द्वारा मगधेश बिम्बसार ने इसके विषय में सुना और वह उसके निकट वैशाली में आये, यद्यपि उस समय वह वैशाली से युद्ध कर रहे थे, और सात दिन तक उसके यहाँ रहे। आम्रपाली को उनसे गर्भ रह गया औ एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसको उसने उसके पिता के पा भेज दिया। यह बालक राजा के निकट निर्भयरूप पहुँचा और उनकी छाती पर चढ़ गया। इसपर उन्हों कहा कि इस बालक को भय तनिक भी नहीं है। अतए वह अभय नाम से विख्यात हुआ।"

उक्त कथा श्री बिमलचरण लॉ (एम० ए०, बी एल०) की पुस्तक (The Kshatriya Clans Buddhist India; पृष्ठ १२७-१२८) में दी गई है उसपर श्री लॉ ने कहा है—"यह कथा जो अभय, अथ जैनशास्त्रानुसार अभयकुमार, को वैशाली की वेश्या आ पाली का पुत्र व्यक्त करती है, पाली (बौद्ध) ग्रन्थों विरुद्ध है।" बहुत सम्भव है कि अभयकुमार के प जैन होने के कारण जैनियों से अपना द्वेष निका के लिए बौद्धों ने इस कथा को यह रूप दिया हो।

अभयकुमार का जैन होना बौद्ध ग्रन्थों के निम्न-लिखि वर्णन से प्रकट है—

"जब आनन्द (बुद्ध के मुख्य शिष्य) वैशाली में तब अभय नामक लिच्छावी और एक अन्य पण्डित कुम नामक लिच्छावी आनन्द के पास आये। अभय ने आन से कहा—"निग्रन्थ नात्तपुत्त (भगवान् महावीर) सर्व और सर्वदर्शी हैं, वह ज्ञान के प्रकाश को जानते हैं, उन्हों जाना है कि ध्यान द्वारा पूर्व कर्मों को नष्ट किया जा सक है। कर्मों के नष्ट होने से दुःख का होना बन्द हो जाता दुःख के बन्द हो जाने से हमारी विषय-वासना नष्ट जाती है और विषय-वासना के क्षय हो जाने से संसार आगे दुःख नहीं होगा। इस वर्तमान जीवन में दुःख निवृत्ति शुद्धता द्वारा है।"[*]

राजकुमार श्रेणिक के गद्दी पर बैठते ही दक्षिण केटला नगरी के राजा मृगांक ने अपनी पुत्री विलासव महाराज को भेंट भेजी। सम्भवतः इसीका उल्लेख बौ

---

[*] अंगुत्तर निकाय; Vol, I. (P. T. S.). P. 220-221.

तीय दुल्व में वासवी नाम से है, और उसके गर्भ क अजातशत्रु का होना लिखा है। सम्भवतः कुणिक राज चेटक की पुत्री चेलना से उत्पन्न न बता कर से उत्पन्न हुआ इसीसे बताया गया है कि कुणिक में जैन-धर्म का पक्षपाती था, और इसीलिए उक्त न्थ में वासवी को एक साधारण लिच्छावी नायक लिखा है, जब कि लिच्छवी जाति की कन्या चेटक की पुत्री और श्रेणिक की रानी चेलना है। बौद्ध में महाराज श्रेणिक की एक अन्य रानी कौशल के की बहन बताई गई है। इनका उल्लेख जैनशास्त्रों में । सम्भवतः यही रानी खेमा होगी, जो बौद्ध हो ।[‡]

ज्याधिरूढ़ होते ही पहले श्रेणिक ने नन्दिग्राम के ों को दण्ड देना चाहा, किन्तु अभयकुमार की चतु- उनकी रक्षा हो गई।

इस समय मगध, कौशल, वत्स, काशी और अवन्ती तन्त्र थे तथा दूसरी ओर शाक्य, कालाप, कोलीय, , मल्ल, लिच्छवी और विदेह में लोकतन्त्र था।

इस समय विदेह देश की वैशाली नगरी के अधिपति की सात कन्यायें थीं। इनमें से प्रथम प्रियकारिणी वाह कुण्डलपुर के स्वामी महाराज सिद्धार्थ के साथ था, जिससे भगवान् महावीर उत्पन्न हुए थे। द्वितीय वत्सदेश में कौशाम्बीपुर के स्वामी महाराजनाथ सार को ब्याही गई थी। तीसरी कन्या वसुप्रभा का दशार्ण (दशासन) देश में हेरकच्छपुर (कसैठपुर) मी सूर्यवंशी राजा दशरथ से किया गया था। चतुर्थ प्रभावती का विवाह कच्छदेश के दोसकपुर के स्वामी र के साथ हुआ था। जैनियों के उत्तरपुराण में कच्छ- के स्वामी का नाम उद्दायन तथा श्रेणिक-चरित्र में र बतलाया गया है। इधर डॉ० डी० आर० भाण्डारकर वासवदत्ता और प्रतिज्ञापौगन्धरायण नामक दो मुख्य ग्रन्थों से प्रकट करते हैं कि 'सहनीकके पुत्र और सहश्रेणिक के पौत्र उद्दायन भारत-वंश में हुए प्रतीत होते हैं और वह 'विदेहपुत्र' अपनी माता के कारण कहलाते थे, जो कि विदेह के राजा की पुत्री थी।' हम जानते हैं कि शतनीक कौशाम्बी के नृपति थे; परन्तु श्रेणिक-चरित्र और उत्तरपुराण में वहाँ के राजा का नाम क्रम से नाथ और सार लिखा है। इसलिए यह सम्भव हो सकता है कि कौशाम्बी के राजा का तीसरा नाम अथवा यथार्थ नाम शतनीक हो, जिनके पुत्र उद्दायन विदेह-पुत्र कहलाते थे। और यदि डॉ० भाण्डारकर के सहश्रेणिक एवं श्रेणिक-चरित्र के उपश्रेणिक एक व्यक्ति हैं, तो उद्दायन सम्राट् श्रेणिक के पिता उपश्रेणिक के पौत्र हो सकते हैं; क्योंकि, राजा श्रेणिक की रानी चेलना इनकी माता की बहन थीं। इस तरह श्रेणिक-चरित्र में रोहकपुर स्वामी का नाम महाहुर लिखना ठीक प्रतीत होता है; और उद्दायन कौशाम्बी के राजकुमार थे, यह भी ठीक प्रतीत होता है।

अब कौशाम्बी और कच्छदेश का सम्बन्ध प्रकट करना शेष रह जाता है; क्योंकि राजा चेटक की राजधानी विशाला (वैशाली) का श्रेणिक-चरित्र में कच्छदेश में होना लिखा है, जब कि विशाला अथवा वैशाली विदेह में थी। अतः यह सम्भावना प्रकट होती है कि जैनाचार्यों ने उस देश को कच्छदेश के नाम से लिखा था, जिसमें विशाला कौशाम्बी और रोहकपुर अवस्थित थे। फलतः नृप उद्दायन कौशाम्बी के नृपति शहनीक के पुत्र मृगावती से थे, जो राजा चेटक के धेवते थे और राजा उपश्रेणिक के नाती थे।

महाराज चेटक की शेष तीन कन्यायें अभी कुँवारी ही थीं। इनमें से एक की योजना गांधार-देश के महापुर के राजा महीपाल के पुत्र सात्यकी ने की थी। सम्भवतः बौद्धों के जातक कथानक के गांधार-देश के राजा बोधिसत्त ही यह सात्यकी हैं, बोधि शब्द सत्त के साथ बौद्धलेखकों ने व्यवहृत किया होगा। इस कथानक में इन्हीं बोधिसत्त को पंचव्रत धारण करते लिखा है और संन्यास लेना भी लिखा है।[❀] इससे सात्यकी और बोधिसत्त का एक व्यक्ति होना प्रतीत होता है। अस्तु, इन सात्यकी की याचना को चेटक ने स्वीकार नहीं किया, जिसके कारण वह दीक्षा ले गया।

[‡] Gotam Buddha, by K. J. Saunders; e 53.

[❀] The Kshatriya clans in Buddhist India; p. 152.

उत्तरपुराण की छन्दोबद्ध हिन्दी आवृत्ति में यह उल्लेख है कि राजा चेटक मगध पर आक्रमण के समय राजगृह के निकट ठहरा हुआ था। वहाँ पर इसे किसी चित्रकार ने इसकी पुत्रियों का चित्रपट दिया था। इस लड़ाई का उल्लेख डॉ० भाण्डारकर भी करते हैं और कहते हैं कि राजा श्रेणिक का पाणिग्रहण वैदेही (चेलना) के साथ इस युद्ध के आपसी निपटारे के उपरान्त हुआ था। और उत्तरपुराण के वर्णन से भी, जो श्रेणिक-चरित्र की निम्न घटना के सदृश ही है, यही प्रकट होता है कि इस युद्ध के पश्चात् राजा श्रेणिक का विवाह चेलना के साथ हुआ था। राजा चेटक का एक अन्य युद्ध अंगदेश के राजा कुणिक के साथ भी हुआ था। इसी सम्बन्ध में श्रेणिक-चरित्र में वर्णन है कि चित्रकार ने वहीं पर पट ले जा कर महाराज श्रेणिक को दिया और इसका सर्व वृत्तान्त बताया और यह भी जतलाया कि महाराज चेटक अपनी पुत्रियों को जैनी के अतिरिक्त अन्य किसीको नहीं देते। श्रेणिक उनपर आसक्त हो गये थे। कुमार अभय वैशाली से उन कन्याओं को छल से लेने गये और वहाँ पर अपनेको जैनी प्रकट करते हुए उक्त कन्याओं को राजा श्रेणिक की ओर विशेष उपायों से आकर्षित करने लगे। अन्त में वे सब उनके साथ चलने को राज़ी हो गईं, परन्तु बड़ी दो पिता के भय से लौट गईं। चेलना यद्यपि अकेली रह जाने के कारण जाने को तैयार न थी, परन्तु अभयकुमार उसे लिवा ही ले गये; और, राजगृह में जा कर, उसका पाणिग्रहण श्रेणिक से कराया। परन्तु जब उसे यह ज्ञात हुआ कि श्रेणिक बौद्ध धर्मानुयायी हैं, तो उसे अति दुःख हुआ, और मलीन-चित्त रहने लगी। श्रेणिक के इसका कारण पूछने पर उसने कहा, 'यह राजसी भोगोपयोग की सामग्री किस काम की, जब प्राणों को हितवर्धक प्यारे सत्यधर्म का पालन ही न हो सके?' इसपर श्रेणिक ने उसको अपने गुरुओं की विनय आदि करने की आज्ञा दे दी।

बौद्ध ग्रन्थों में चेलना का उल्लेख है। श्वेताम्बर-संप्रदाय के प्रख्यात ग्रन्थ निर्यावली-सूत्र में भी चेलना को वैशाली के राजाओं में एक राजा चेटक की पुत्री लिखा है, जिसकी बहन क्षत्राणी रानी त्रिशला महावीर स्वामी की माता थी। बुद्ध के एक तिब्बतीय जीवनचरित्र में चेलना का नाम श्रीभद्रा और कहीं-कहीं भद्रा भी लिखा है, सम्भवतः राज श्रेणिक की पहली रानी नन्दश्री को ऐसा लि होगा। वैसे साधारण-रीत्या बौद्ध ग्रन्थों में चेलना उल्लेख वैदेही के नाम से आया है और उसके पुत्र कुणि अजातशत्रु का नाम विदेहपुत्र के नाम से व्यवह हुआ है। बौद्ध ग्रन्थ दिव्यावदान के एक अवदान में अजा शत्रु को वैदेही-पुत्र करके लिखा है। और उसी ग्रन्थ अन्यत्र वर्णन है कि "राजगृह में राजा बिम्बसार रा करता है, वैदेही उसकी महादेवी (पटरानी) है, अजातशत्रु उसका पुत्र एवं युवराज है।" ❀ इससे प्रकट कि अजातशत्रु का जन्म राजा चेटक की पुत्री वैदेही (चेलन के गर्भ से हुआ था।

यह बतलाया जा चुका है कि राजा श्रेणिक ने चेल को अपने गुरुओं की विनय-पूजा और जैन-धर्म पालन कर की अनुमति दे दी थी। इसके आगे श्रेणिक-चरित्र में वर्ण है कि इस बात को सुनकर बौद्ध-गुरु राजा श्रेणिक के पा आये थे और रानी चेलना को बौद्ध धर्म स्वीकार करा के प्रयत्न में लगे थे। उन्होंने अपने को सर्वज्ञ बतलाया चेलना ने उनकी परीक्षा ली, जिसमें वह अनुत्तीर्ण हुए इस परीक्षा के कृत्य से उनकी अवज्ञा भी हुई, जिस कारण जैन गुरुओं के प्रति श्रेणिक महाराज के हृदय में द्वे धधकने लगा।

महाराज एक दिन आखेट को गये थे कि उन्होंने मा में एक जैन मुनि को ध्यानारूढ़ देखा। देखते ही अपने गु की अवज्ञा का बदला चुकाने के लिए महाराज श्रेणिक ने उन गले में एक मरा हुआ साँप डाल दिया और वापस राजगृ को लौटे। उधर दिगम्बर मुनि ने अपने पर उपसर्ग आय जान अपनी ध्यानमुद्रा और भी चढ़ा दी।

बौद्ध गुरुओं को यह सब हाल राजा श्रेणिक ने क सुनाया, जिससे वे अति प्रसन्न हुए। परन्तु यह सुनक रानी चेलना को बहुत दुःख हुआ, और उसके नेत्रों अविरल अश्रुधारा बह निकली। राजा श्रेणिक से अपन प्रिया का रुदन नहीं देखा गया, वह उसे सान्त्वना देने

❀ The Kshatriya clans in Buddhist Indi P. 125.

कहने लगे—"प्रिये, तू इस बात के लिए तनिक भी न कर; वह मुनि गले से सर्प फेंककर कब का वहाँ से चला होगा।" यह सुनकर रानी ने कहा—"नाथ! का यह कथन भ्रममात्र है। मेरा विश्वास है, यदि वह च्चे गुरु हैं, तो कदापि उन्होंने अपने गले से सर्प न ला होगा।" इसपर महाराज श्रेणिक रानी-सहित स्थान पर गये, जहाँ उन्होंने मुनि को छोड़ा था। वहाँ कर उनके आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उन्होंने कि वह अविचल ध्यानी मुनि अपने ध्यान से ज़रा भी हीं हुए हैं और वह मृत सर्प उनके गले में पड़ा हुआ पि उसमें अब चींटियाँ लग गई थीं।

जा और रानी ने उनके गले का सर्प निकाल कर शरीर के ताप को दूर करने के लिए चन्दन से उनका क किया। मुनिराज के समयानुसार ध्यान खोलने जा और रानी, दोनों ने उन्हें प्रणाम किया। इसपर कहा, 'तुम दोनों की धर्मवृद्धि हो। मुनि महाराज आशीर्वाद से श्रेणिक अवाक् रह गये, उनको मुनि ज के शत्रु-मित्र से समान-बर्ताव के कारण उनपर भक्ति हो गई। राजा ने उनसे कई प्रश्न करके धर्म का रूप पूछा, जिसका उन्होंने विस्तार से वर्णन किया। मुनिराज के पास उपदेश पाकर राजा श्रेणिक को र्म से कुछ प्रीति-सी हो गई थी, परन्तु बौद्धाचार्यों के ने पर उन्हें पुनः जैन गुरुओं में अश्रद्धा हो गई। जैन मुनियों की फिर परीक्षा ली, जिससे सन्तुष्ट हो नके हृदय में पुनः जैनधर्म के प्रति सद्भाव हो गये।

इसके कुछ दिनों पश्चात् भगवान् महावीर का समव- (जैन तीर्थंकरों के उपदेश देने का संगठित संघ) ह के निकट विपुलाचल पर्वत पर आया, तब श्रेणिक, न् के समवशरण में गये। वहाँ जाकर उन्होंने उन- दना-पूजा की और जैनधर्म का वास्तविक स्वरूप ा, जिससे उनको जैनधर्म में पूर्ण श्रद्धा हो गई। अन्त राज श्रेणिक भगवान् महावीर के सबसे प्रधान गृहस्थ होकर परमोच्च श्रावक हो गये और सदा ही जैनधर्म भावना में लीन रहने लगे। इतिहासज्ञों का विचार है ज़ारीबाग़ के पारसनाथ पर्वत (जैनियों के सम्मेदशिखर) पर तीर्थंकरों के मोक्षस्थानों पर उन्होंने ही टोंकें (Shrines) बनवाई थीं, जैसा कि टी० डी० बनर्जी, सब-जज, पटना-हाईकोर्ट, ने अपने उस पर्वत-सम्बन्धी मुक़द्दमे के निर्णय में लिखा है—

"जनवरी १९२४ के एशियाटिक सोसायटी के पत्र में जो हिन्दू यात्री ने हाल प्रकट किया है, उससे प्रकट है कि श्री महावीर स्वामी के समकालीन मगध-देश के राजा श्रेणिक ने तीर्थंकरों के मोक्षस्थानों की खोज की और वहाँ चरण स्थापित किये।"

इन्हीं दिनों में महाराज के कुणिक नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। इस पुत्र के, गर्भ और जन्म से ही ऐसे लक्षण प्रकट हुए थे, जिनसे प्रकट हो गया कि वह अवश्य ही महाराज श्रेणिक का शत्रु है। कुणिक का जन्म महाराज श्रेणिक के जैनमुनियों की परीक्षा होने के पश्चात् और भगवान् के समवशरण में आने के पूर्व हो चुका था। रानी चेलना ने इसको अपने पति का शत्रु जान कर अन्यत्र भेज दिया था, परन्तु राजा ने पुत्र-मोह से उसे मँगवा लिया। राजकुमार कुणिक दिन-प्रति-दिन बढ़ते बढ़ते यौवनावस्था को प्राप्त हो गये। महारानी चेलना के कुणिक के अतिरिक्त वारिषेण, हल्ल, विदल, जितशत्रु और गजकुमार ये पुत्र और भी उत्पन्न हुए। किन्तु अभयकुमार के समान ये सब भी गृहस्थ-बन्धन को तोड़कर मुनि बन गये थे, जिससे कुणिक को ही युवराज-पद मिला।

इसके कुछ वर्ष पश्चात् महाराज श्रेणिक ने अपना समय धर्मध्यान के लिए सुरक्षित रखने के विचार से समस्त राजों को एकत्र करके बड़े समारोह-पूर्वक अपना विशाल राज्य युवराज कुणिक को दे दिया। युवराज कुणिक अजातशत्रु नाम धारण करके मगध के सिंहासन पर बैठे।

अपनी बाल्यावस्था में जैन होने पर भी यह बौद्ध लोगों से मिलते-जुलते रहते थे, गौतमबुद्ध के प्रतिस्पर्धी देवदत्त से इनका बड़ा घनिष्ट सम्बन्ध था और वह प्रति दिन बढ़ता ही जाता था। इस समय कुणिक अपने माता-पिता की लज्जा के कारण केवल ऊपर से जैन बना हुआ था, किन्तु अन्दर से वह पूर्णतया बौद्ध बन गया था। देवदत्त उसके मन की परिस्थिति को समझ गया, उसने उसको अपने पिता के ही विरुद्ध इस प्रकार उकसाना आरम्भ किया कि अजातशत्रु की बुद्धि एकदम फिर गई। पिता के

प्रति उसका रोष दिन-प्रति-दिन बढ़ने लगा और अन्त में यहाँ तक बढ़ा कि उसने अपने पिता को पकड़ कर एक काठ के पिंजरे में कैद कर दिया। महाराज कुणिक के साथ पुत्र का ऐसा व्यवहार देखकर रानी चेलना ने उसे बहुत रोका, किन्तु उसने एक न मानी। वह अपनी माता को ही मर्मभेदी दुर्वाक्य सुनाने लगा। आरम्भ में महाराज को खाने के लिए रूखा-सूखा कोदों का अन्न दिया जाता था, भोजन के समय अजातशत्रु अनेक प्रकार के कुवचन भी कहा करता था। महाराज श्रेणिक चुपचाप उस पिंजरे में पड़े रहते और कर्म के वास्तविक स्वरूप को जानते हुए पाप के फल पर विचार करते रहते थे। यह घटना भगवान् महावीर के निर्वाण के पश्चात् की प्रतीत होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह घटना अजातशत्रु के ईसा-पूर्व ४११ में सिंहासन पर बैठने के कुछ ही दिनों पीछे की है। कुछ दिनों के पश्चात् महाराज श्रेणिक को वह कोदों का अन्न मिलना भी बन्द हो गया। इसपर चेलना अपनी पीठ को भोजन से सान कर राजा श्रेणिक के पास जाने लगी, राजा पींजरे में से जीभ निकाल कर उस भोजन को चाट लेते थे। कुछ दिनों तक राजा के न मरने पर अजातशत्रु ने पहरे वालों से पूछा तो उसे यथार्थ कारण विदित हो गया। तब उसने आज्ञा दी कि रानी चेलना अपने वस्त्र दिखाकर ही राजा श्रेणिक के पास जा सकेगी। इस प्रकार बेबस होने पर रानी चेलना अपने हार में अंगूरों का रस छिपाकर राजा के दर्शन को जाने लगी। बौद्ध ग्रन्थ अमितापुरध्यानसूत्र में इस घटना के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें पाई जाती हैं—"अजातशत्रु ने देवदत्त के कहने पर अपने पिता बिम्बसार को पकड़वा लिया और उन्हें सात दीवारों से घिरे हुए कारावास में डाल दिया। बिम्बसार की परम-हितैषी महादेवी वैदेही (चेलना) ने स्नानादि क्रिया कर अपने हार में अंगूरों का रस छिपा कर उनके दर्शन कर रस देकर उनके प्राण बचाये। अजातशत्रु ने अपने पिता के विषय में पहरे वाले से पूछ कर जाना कि वैदेही ने क्या किया था। इससे वह क्रुद्ध हो गया और उसने अपनी माता को मारना चाहा। परन्तु इसपर मन्त्रियों ने उसको रोका और उसने ऐसा करने का भाव छोड़ दिया। वैदेही को भी एकान्त स्थान में रक्खा गया।" इस प्रकार अंगूर के रस से प्राण बचाने पर बेचारी चेलना की अपनी स्वतन्त्रता भी छीन ली गई।

जिस देवदत्त का वर्णन ऊपर किया गया है, वह बुद्ध के स्थान पर स्वयं संघ का नायक होना चाहता था। कुणिक का बौद्धों से कुमारावस्था में सम्बन्ध होने के विषय में श्री के० जे० सॉण्डर्स अपनी 'गौतम बुद्ध' नामक अंग्रेज़ी पुस्तक के पृष्ठ ७० में लिखते हैं—

"यद्यपि इस समय वह (गौतम बुद्ध और अजातशत्रु) पहले-ही-पहल मिले, परन्तु यह प्रकट है कि कम से-कम संघ के कुछ व्यक्तियों का अजातशत्रु से सम्बन्ध उनकी राजकुमारावस्था से था।"

इससे प्रकट है कि बौद्धों के उकसाने से अजातश कुणिक ने अपने पिता श्रेणिक बिम्बसार को, जो कि जैन धर्मानुयायी थे, कष्ट दिया था और इसीसे बौद्ध ग्रन्थ उन अन्तिम परिणाम का कुछ निश्चित उल्लेख नहीं करते।❀

श्रेणिक-चरित्र में लिखा है कि अन्त में रानी चेलना कुणिक को बहुत समझाया और पिता के मोह को दर्शाय कि राजा श्रेणिक ने कुमार कुणिक के लिए कितने कष्ट स थे; इससे कुणिक को दया आ गई और वह श्रेणिक व बन्धनमुक्त करने के लिए बहुत दिनों पीछे उसके पा गया। राजा श्रेणिक ने जो उसे आते देखा, तो घबरा ग और सोचने लगे कि न जाने आज यह क्या अनर्थ करेगा उससे डरकर, अथवा पुत्र के द्वारा अपमान या त्रास सह की ग्लानि से, उन्होंने अपना सिर दीवार से दे मारा! क दिन के भूखे तो थे ही, प्राण न जाने कहाँ अटके हुए थे निदान दीवार में सिर मारते ही उनका देहान्त हो गया!

इस घटना से कुणिक और चेलना, दोनों ही दुःखी हुए चेलना ने चन्दना नाम की आर्यिका के निकट दीक्षा ले और तपकर देवगति को प्राप्त हुई।

कुणिक ने पिता की मृत्यु पर पहले तो ब्राह्मणों को दा दियो, किन्तु फिर-शीघ्र ही वह बौद्ध हो गया। इसी कुणि अजातशत्रु के पुत्र उदायी ने पाटलिपुत्र बसाया था और मग की राजधानी राजगृह से उठाकर पाटलिपुत्र में बनाई थी

चन्द्रशेखर शा

❀Saunder's Gotama Buddha, P. 71.

हिन्दी पत्रों के ह्रास के कारण

किसी गुलाम देश में उन्नति के साधनों का जिस प्रकार गला घोंटा जाता है, उसी का व्यवहार भारतवर्ष के साथ भी हो रहा है। यह क गुलाम देश है। और गुलामी का पाप मेघमाला भाँति उन्नति के आतप को सदा ढके रहता है। ी शासक स्वभावतः यह चाहते हैं कि शासित जाति कमज़ोर बनी रहे, ताकि उसको चूसने का अवसर हाथ से छूट न जाय। इसके लिए सबसे प्रधान उपाय त देश की संस्कृति और शिक्षा को कुचल देना है। िए ज्योंही कोई राष्ट्र किसी देश पर अधिकार जमाता ोंही वह उसकी शिक्षा और उसकी संस्कृति को बदल ा प्रयत्न करने लगता है। इन दोनों बातों को— और संस्कृति को—उन्नत करने के जितने उपाय हैं, विदेशी शासन का प्रहार पहले उन्हीं पर होता है। ारपत्र, शिक्षा-संस्थायें आदि इनकी उन्नति के साधन हैं; इसलिए, विदेशी शासकों का ध्यान पहले संस्थाओं पर पड़ता है। हमारे समाचारपत्रों के रोध का सबसे प्रमुख कारण यही है। पण्डित माखन-ी के शब्दों में "भारत के समाचारपत्रों का उत्थान विकास विदेशी सरकार के क़ानून के अस्त्रों द्वारा ार रेता गया है।" रेतने की यह क्रूरक्रिया आजतक है। ज्यों-ज्यों पत्रों के स्वर में उन्नति देखी जाती है, ों उनको दबाने के नये-नये उपाय सोच निकाले जाते समाचारपत्रों का स्वर तनिक ऊँचा होते ही झट प्रेस-का अनुसन्धान किया गया। यह भयानक दैत्य न-कितने नवजात और उन्नति-शील समाचारपत्र निगल । ज़रा-ज़रा-सी बात में ज़मानतों की तलबी, उनकी , स्वयं प्रेस तक की ज़ब्ती आदि से अनेक समाचार-शेषकर वे जिनके पास धन की या धन के साधनों मी थी—अकाल में ही काल-कवलित हो गये। अनेक ारपत्र इस राक्षस के भय से निकले ही नहीं। जो निकलते रहे और प्रहार पर प्रहार तथा आपदाओं पर आपदायें झेलते हुए भी चलते रहे, वे अपनी गति में आवश्यक और अपेक्षित उन्नति न कर सके। हमारे समाचारपत्रों के गत्यवरोध का सबसे प्रमुख कारण यही है। अब यद्यपि जनता की जागृति के कारण प्रेसऐक्ट की वह भयंकरता दूर हो गई है, तथापि अभी ताज़ीरात हिन्द, ज़ाब्ता फ़ौजदारी आदि में अनेक ऐसी धारायें मौजूद हैं, जिनके कारण हमारे मुँह और कलम पर सदा ताला पड़ा रहता है। कहीं १०७ धारा दिखाई जाती है, कहीं १२४ अ का प्रदर्शन होता है, कहीं १५३ अ का प्रयोग किया जाता है, कहीं क्रिमिनल ला अमेण्डमेण्ट ऐक्ट सामने आता है और कहीं पुलिसऐक्ट की लाल-लाल आँखें गुर्राती दिखलाई पड़ती हैं। शासकों की क्रूर-वृत्ति इतने पर भी सन्तोष नहीं करती। इन शस्त्रास्त्रों के होते हुए भी यह प्रयत्न बना ही रहता है कि लिखने और बोलने की आज़ादी छीनने के लिए नये-नये क़ानून सोचे और गढ़े जायँ। इसी उद्देश्य से धर्मसंरक्षण के नाम पर एक क़ानून अभी हाल ही में और बनाया गया है। अब बताइए। जहाँ शासक स्वयं नंगी तलवार लिए सदा सिर पर खड़ा रहता हो, वहाँ पत्रों की उन्नति हो तो कहाँ से ? हमें बात-बात में फूँक-फूँक कर क़दम रखना पड़ता है। एक ओर राष्ट्र की उन्नति के अर्थ अपने पत्रों को अधिक-से-अधिक उपयोगी बनाने के लिए छटपटाया करते हैं, और दूसरी ओर यह देखना पड़ता है कि कहीं क़ानून के फ़ौलादी पंजे में न आ जायँ। इस खींचातानी के कारण हमारे समाचारपत्रों का मार्ग बहुत संकीर्ण और कंटकाकीर्ण हो गया है। पण्डित माखनलाल जी ने समाचारपत्रों के गत्यवरोध के कारणों की ओर इशारा करते हुए, सम्पादक-सम्मेलन के सभापति की हैसियत से, कहा था—"हमारे समाचारपत्रों को तीन बातें ध्यान में रखनी पड़ती हैं—एक तो यह कि कहीं क़ानून न धर दबाये, दूसरे यह कि राष्ट्र की उन्नति कैसे हो। और तीसरे यह कि व्यावसायिक दृष्टि से समाचारपत्र कैसे जारी रक्खे जायँ।" हमारे समाचारपत्रों को इस प्रकार एक साथ

तीन-तीन बातों की ओर ध्यान रखना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि वे अपने निश्चित उद्देश्य की ओर निर्द्वन्द्व और निश्चिन्त होकर बढ़ ही नहीं पाते। और इसीलिए अपेक्षित उन्नति में व्याघात होता है। ये दोष और अवरोधक कारण विदेशी शासन के पाप के कड़ुए फल हैं।

शासक-गण हमें अन्य प्रकार की असुविधायें भी आये दिन डालते हैं। पोस्टआफ़िस, तार, रेलवे आदि में भी हमारे लिए इतने कड़े नियम और इतने अधिक महसूल रक्खे गये हैं कि उनको पूरा करने में हमें बहुत बड़ी क्षति उठानी पड़ती है। ये महसूल दूसरे देशों की अपेक्षा बहुत अधिक हैं। इन बातों के अलावा सरकार की ओर से हमें सरकारी रिपोर्ट, क़ानूनी मसविदे तथा अन्य सरकारी काग़ज़ात भी प्राप्त नहीं होते। अंग्रेज़ी पत्रों को वे बिना मूल्य भेजे जाते हैं, परन्तु हिन्दी पत्रों को नहीं मिलते।* इससे सरकारी हलचलों के सामयिक सम्पर्क में रहने में हमें बहुत अड़चन का सामना करना पड़ता है। अधिकांश में हमें उन हलचलों का पता बहुत दिन बाद ही मिलता है; या फिर शक्ति से अधिक व्यय-भार उठाकर काग़ज़ात प्राप्त करने की चेष्टा में असीम कष्ट उठाना पड़ता है।

यह तो हुई शासकों के कारण समाचारपत्रों के गत्यवरोध की बात। अब समाचारपत्रों के संचालकों, संपादकों और पाठकों के कारण पैदा होनेवाले अवरोध की बात सुनिए। श्री श्रीप्रकाशजी ने 'साहित्य-समालोचक' के एक विशेषांक में लिखा था—"हमारे यहाँ योग्य व्यक्ति पहले सरकारी नौकर होना चाहते हैं। इसे न पाकर वे वकील होने की चेष्टा करते हैं। जब इसमें असफल हुए और व्यापार-व्यवसाय के लिए अपने को अनुपयुक्त समझा, तब वे शिक्षक बन जाते हैं। जब किसी विद्यालय आदि में बड़ी तनख्वाह पर शिक्षक न हो सके तो किसी पत्र के सम्पादन, लेखन आदि विभाग में जाने का यत्न करते हैं। ···पत्रों की जो दुर्दशा अपने देश में है उसका प्रधान कारण यह है कि हम लेखक लोग ही अपने काम से प्रसन्न नहीं हैं। हमने अपने पेशे को खुद ही बिगाड़ रक्खा है।" मेरे विचार से यह बात लेखकों और सम्पादकों के सम्बन् में न कही जाकर यदि संचालकों के लिए कही जाय तो अधिक उपयुक्त होगी। संचालकगण (जहाँ संपादक स्वय संचालक होता है वहाँ की बात नहीं) इस काम को अध समझते हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि अन व्यापारों की अपेक्षा इसमें व्यापार की दृष्टि से आमदन कम है—कम-से-कम इस समय कम है। इसीलिए संचालक—खासकर ऐसे संचालक जो देश-सेवा, साहित्य सेवा समाज सेवा, धर्म-सेवा आदि सात्विक भावनाओं से प्रेरित होक समाचारपत्रों का संचालन नहीं करते वरन् धनोपार्जन क दृष्टि से करते हैं—इस पेशे को अधिक आदर की दृ से नहीं देखते। इसका परिणाम यह होता है कि इस काम को पूरे उत्साह से नहीं, कुछ दबे हुए मन करते हैं, और यह उत्साह-हीनता पत्रोन्नति के मार्ग में बाध होती है। एक बात और भी होती है। वह यह कि उ इस काम से अधिक आमदनी की आशा तो होती ही न इसलिए वे इसमें अधिक धन लगाने की भी इच्छा न करते। सस्ते-से-सस्ते काग़ज़, सस्ती-से-सस्ती स्याही, सस्ते- सस्ते अन्य सामान तथा सस्ते-से-सस्ते ही कर्मचारी रख की कोशिश करते हैं। कर्मचारियों की नियुक्ति के अवस पर वे इस बात का विचार नहीं करते कि अमुक मनु योग्य है वरन् उनका ध्यान यह होता है कि अमुक मनु सस्ता मिल रहा है इसलिए उसे रख लेना चाहिए। सर के साथ ही साथ वे कर्मचारियों की कमी पर भी बहुत ध्या रखते हैं। उनका ध्यान सदा यह रहता है दो आदमियों काम एक ही आदमी से लिया जाय। सम्पादकीय विभा में तो उनका यह दृष्टिकोण और भी अधिक प्रखर होता उस विभाग के लिए वे एक ही कर्मचारी को पर्याप्त समझ हैं। बेचारे सम्पादक को ही सम्पादक से लेकर रिपोर्ट संवाद-दाता, आलोचक, प्रूफ़रीडर के सब काम करने प हैं। इन तमाम बातों का समाचारपत्रों की उन्नति गहरा प्रभाव पड़ता है। किन्तु सन्तोष की बात है हालत सुधर रही है और व्यापारिक दृष्टि से भी समाच पत्रों का महत्त्व धीरे-धीरे बढ़ रहा है।

---

* अब सरकार ने सामग्री देना सबके लिए बन्द कर दिया है। 'त्या०—भू०'—सम्पादक

म्पादक और, लेखकगण अपने काम को गिरा हीं समझते। यह ठीक है कि इससे उन्हें उतनी ी नहीं होती, जितनी अन्य व्यापार-व्यवसाय से हो है; किन्तु इससे सम्पादक या लेखक काम को ही नते हों, या 'अधर्म' कहते हों सो बात नहीं। बात बिलकुल प्रतिकूल है। वे लोग इस कार्य को उलटा सम्मान और आदर की चीज़ समझते हैं। ा में तो यह कार्य इतना आकर्षक हो गया है कि द्यालयों के अन्दर से ही विद्यार्थी-अवस्था में खने का थोड़ा-बहुत अभ्यास हुआ तो, सम्पादक क बनने की चेष्टा करने लगते हैं। उनका सम्पादक क बनने का भाव यहाँ तक ज़ोर मारता है कि जल्दी- उस पद पर पहुँच जाने के लोभ में वे इस बात र्वाह नहीं करते कि उनमें उन पदों की प्राप्ति के युक्त योग्यता है भी या नहीं। अपनी अर्ध-शिक्षित अनुभव-शून्य अवस्था में विद्यालय से निकलते ही दक के गुरुतर पद पर आसीन होने के लिए छट- ाते हैं। इस प्रकार की भावना बहुत बढ़ रही है। कुछ दिन हुए म० गांधी को, इस बढ़ती हुई को किंचित संयत करने के लिए, 'नवजीवन' में ियाँ लिखने की आवश्यकता प्रतीत हुई थी। बात कि लोग सम्पादकीय कार्य के सम्मान से आकर्षित जाते हैं, किन्तु उसकी ज़िम्मेदारी का उन्हें ज्ञान नहीं वे विद्यालय से निकलते ही, साहित्य में किंचित ज्ञान हुआ तो, अपने को सम्पादकीय कार्य के सर्वथा समझ लेते हैं। सम्पादन-कला-सम्बन्धी ज्ञान की ड़ी न्यूनता रहती है और तत्सम्बन्धी अनुभव का न्त अभाव। हमारे यहाँ दुर्भाग्य से सम्पा- -सम्बन्धी शिक्षा का कोई साधन भी नहीं है। विद्यालयों में तो इस विषय में इनकी शिक्षा होती ही र बाहर निकल कर भी हमारे उत्साही और ांक्षी विद्यार्थीगण इस कला का ज्ञान प्राप्त करने ता नहीं दिखाते, वे तुरन्त ही सम्पादकीय पद पर हो जाना चाहते हैं; इसलिए समाचारपत्रों की में आघात होता है। सम्पादक जैसे गुरुतर और उत्तरदायित्वपूर्ण पद पर आसीन होने के लिए तत्सम्बन्धी उपयुक्त शिक्षा और अनुभव पहले प्राप्त कर लेना अनिवार्यतः आवश्यक होता है। इसके लिए पहले से ही सम्पादक बनने की आकांक्षा न करके पहले पत्र-कार्यालय का रिपोर्टर आदि निम्न श्रेणी का कर्मचारी बनकर अनुभव और ज्ञान बढ़ाते हुए ऊँचे पद को ग्रहण करने की कोशिश करनी चाहिए।

सम्पादकों के सम्पादनकला-सम्बन्धी ज्ञान, सम्पादकीय कर्त्तव्य और तत्सम्बन्धी अनुभव से शून्य होने के कारण समाचारपत्र आदर्श समाचारपत्र नहीं बन पाते। हमारे समाचारपत्र अधिकांश में उन समाचार-समितियों द्वारा भेजे हुए समाचारों से ही भरे होते हैं, जो नौकरशाही के हाथ की कठपुतली होती हैं। ये समितियाँ अधिकांश में लड़ाई-झगड़े और बाहरी आन्दोलनों के सम्बन्ध के समाचार भेजती हैं, वे भी नौकरशाही के रंग में रंगे हुए। हम उन्हीं समाचारों को छाप कर इतिकर्तव्यता मान बैठते हैं। प्रथम सम्पादक-सम्मेलन के सभापति श्री बाबूराव विष्णु पराड़कर के शब्दों में "हम और गहरे जाने का प्रयत्न नहीं करते। हमारे पाठक किन-किन श्रेणियों के हैं, उनका रहन-सहन कैसा है, उनकी जीविका के साधन क्या हैं, उनको जीवन-संग्राम में किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, उनका आमोद प्रमोद क्या है, उनकी रुचि कैसी है, वे क्या सोचते हैं, और क्या चाहते हैं, इन बातों का सम्पादकों को पता तक नहीं होता।"

सम्पादकों की ओर से पैदा होनेवाला गत्यवरोधक एक कारण और भी है। वह यह कि सम्पादक को पत्र-सम्पादन के विस्तृत कार्य के अतिरिक्त सार्वजनिक कार्यों में काफ़ी भाग लेने की आवश्यकता पड़ती है। यह तो सर्वमान्य बात है कि प्रतिष्ठा का प्रभाव अवश्य पड़ता है। अतः अपने पत्र का प्रभाव बढ़ाने के विचार से सम्पादक को इस बात की आवश्यकता पड़ती है कि वह सार्वजनिक कार्यों में, प्रचलित आन्दोलनों में, भाग लेकर प्रतिष्ठा प्राप्त करे। प्रतिष्ठा-प्राप्ति के इस प्रयत्न में उसकी शारीरिक, मानसिक और आर्थिक तीनों प्रकार की शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं। परिणाम यह होता है कि उनका उत्साह और उनकी कार्यशीलता तथा अन्य शक्तियाँ, जो अन्यथा केवल

सम्पादकीय कार्य में ही लगतीं, दो तरफ—दो ही तरफ क्यों, अनेक ओर—बँट बिखर जाती हैं और सम्पादकीय कार्य की यह विशदता, जो शक्ति-संचय से आ सकती, नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है।

अब रही पाठकों के कारण उत्पन्न होने वाले गत्यवरोध की बात। इस सम्बन्ध में सबसे प्रधान कारण जनता में साक्षरता का अभाव है। हमारे पाठकों का बहुत बड़ा समुदाय अशिक्षित अथवा अर्ध-शिक्षित है। जो पढ़े-लिखे हैं—शिक्षित हैं—वे हिन्दी पत्रों को हाथ से उठाना भी शान के ख़िलाफ़ समझते हैं, वे तो अंग्रेज़ी के ही अनुचर होते हैं। और जो अशिक्षित या अर्धशिक्षित हैं—उन्हींकी संख्या अधिक है—वे समाचारपत्र पढ़ने की कभी इच्छा नहीं करते। कहीं-कहीं यदि इच्छा होती है तो शक्ति नहीं होती और कहीं पर शक्ति होती है तो इच्छा नहीं होती।* ऐसी दशा में समाचार पत्रों की क़द्र हो तो कैसे और क़द्र हुए बिना कोई समाचारपत्र उन्नति करे तो कैसे? जनता में एक दोष और भी पाया जाता है। हमारे यहाँ प्रायः यह संस्कार-सा चला आ रहा है कि हम सांसारिक घटना-क्रमों को एक माया-जाल समझकर उससे उदासीनता दिखाते हैं। समाचारपत्रों में, संसार में आये दिन घटनेवाली घटनाओं का उल्लेख होता है। उन घटनाओं को हमारे पाठक मायाजाल और असार कह कर टालते हैं। यह उपेक्षा-भाव भी समाचारपत्रों की उन्नति का अवरोध करता है। हमारे अनेक पाठक यह समझते हैं कि समाचारपत्रों का पढ़ना अनावश्यक और केवल विलासिता है। इसलिए स्वतः पढ़ने की बात तो दूर रही हम दूसरों को भी समाचार पत्र पढ़ने के लिए उत्साहित नहीं करते। इतना ही नहीं प्रत्युत् कहीं-कहीं तो पढ़ने की रुचि रखनेवाले लोग निरुत्साहित तक किये जाते है यह बात हमारे व्यापारी भाइयों के यहाँ अधिक पाई जा है। उनमें कुछ कहावत है कि अपने काम से काम रख चाहिए, दुनिया में कहाँ क्या हो रहा है, इससे हमें पड़ी है? दूसरे लोग यह कहते हैं कि इनके पढ़ने में स नष्ट होता है, उतने समय में कोई काम किया जा स है। कुछ व्यापारी ऐसे हैं, जो इसीलिए समाचारपत्र मँगाते कि दूकान में आने से दूकान के कर्मचारी उन्हें प में लग जायँगे और इस प्रकार काम को हानि पहुंचे जहाँ पर इतना बारीक काता जाता हो वहाँ समाचार की उन्नति में यदि बाधा पड़े तो आश्चर्य ही क्या

जनता की दरिद्रता भी समाचारपत्रों की उन्नति बहुत बड़ा आघात पहुँचाती है। जिन्हें शौक़ है, जो स क्षते हैं, और समाचारपत्रों से लाभ उठाना चाहते हैं बेचारे इतने ग़रीब हैं कि पेट भरने के लाले पड़ रहे समाचारपत्र कौन ख़रीदे? जिन्हें थोड़ा-बहुत अवका वे भी भिन्न-भिन्न विषयों के अलग-अलग समाचार नहीं मँगा सकते। इसलिए वे चाहते यह हैं कि कोई समाचारपत्र मिले, जिसमें एकत्र ही अनेक वि पढ़ने को मिल जाय। इस रुचि के कारण समाचा अधिकाधिक विषयों का समावेश करने की कोशिश करते किन्तु संचालकों के धनाभाव के करण भिन्न-भिन्न वि के विभिन्न सम्पादक नहीं रक्खे जाते, एक ही सम्पादक सब विषयों का सम्पादन कराया जाता है। परिणा अनेक विषय बिना योग्यतापूर्ण सम्पादन के ही प्रका होते हैं। एक मनुष्य को सब विषयों का ज्ञान नहीं सकता, इसलिए इस प्रकार की त्रुटि रह जाना स्वाभा है। यह त्रुटि समष्टि रूप से हमारे समाचारपत्रों की उ के मार्ग में बाधक सिद्ध होती है।

गत्यवरोध के कुछ कारण और भी है। एक तो का स्याही आदि ऊपरी सामान हमें जितना चा उतनी सस्ती दर से नहीं मिलता। सरे युद्धारम्भ सम्बन्ध में भी कुछ असुविधायें होती हैं। हमारी वर्णम के दोषपूर्ण (छापे के सम्बन्ध में) होने के कारण ट बनाने और अक्षर जोड़ने आदि में बड़ी असुविधायें होती

---

* हमारे समाचारपत्र ऐसी सामग्री भी तो बहुत कम देते हैं, जिनका देश के अधिकांश निवासियों—किसानों एवं मजदूरों—से सम्बन्ध रहता है? बहुत कम सम्पादक उनकी पर्वाह करते हैं। जब उन्हींकी प्रवृत्ति इस ओर से उदासीन हो, तो दूसरी ओर से आशा ही क्या की जा सकती है?

—सम्पादक

नन्द चटर्जी ने गत्यवरोध का एक और कारण बताया
दिन हुए आपने 'माडर्नरिव्यू' में एक लेख लिखा
में हिन्दी के समाचारपत्रों पर भी प्रकाश डाला था।
आपने लिखा था कि हिन्दी भाषी जनता देश में दूर-
ों में बसी है। इस प्रकार दूर-दूर बसे होने के
क स्थान से निकलकर हिन्दी के समाचारपत्र सब-
सहूलियत से नहीं पहुँच सकते। इसलिए उनकी
ख्या कम होती है। यह बात, अधिक महत्त्वपूर्ण
र भी, तथ्यशून्य नहीं है। इन सब बातों के
हमारे व्यवसायी समुदाय की ओर से एक
ड़ा अवरोधक कारण पेश होता है। पारस्परिक प्रतिद्वंद्विता के कारण यह तो स्पष्ट ही है कि समाचारपत्रों के संचालकगण अपने पत्रों का अधिक मूल्य नहीं रख सकते, इसलिए उनकी आमदनी विज्ञापन पर ही अवलम्बित रहती है। किन्तु हमारा व्यवसायिवर्ग विज्ञापन के महत्व से अपरिचित-सा है इसलिए पत्रों को काफ़ी विज्ञापन नहीं मिलते और इसीलिए श्री श्रीप्रकाशजी के शब्दों में "हमारे समाचारपत्र पनपने नहीं पाते।"

इस प्रकार हमारे समाचारपत्रों की अवनति के नानाविध कारण हैं। समाचारपत्रों की उन्नति चाहनेवालों को इनके निराकरण का प्रयत्न करना चाहिए।

विष्णुदत्त शुक्ल

गांधीजी के साथ पन्द्रह दिन

जंगल की ओर से एक बैलगाड़ी को तेज़ी से दौड़ाते हुए तीन वृद्ध किसान आ रहे थे।
को देख कर सहसा उन्होंने गाड़ी रोकी। बड़ी
साथ अटपटे-से एक के बाद एक ने उतरकर गांधीजी
में अपने सिर रक्खा और चुप-चाप जैसे आये वैसे
में बैठ कर आगे चल दिये। न कुशल पूछी, न
अपना दुखड़ा रोया, न आँसू बहाया। वे खूब
कि गांधीजी का तो हर एक साँस ग़रीब के लिए
लता है, इसलिए कहें तो क्या और पूछें तो क्या?
ए तो मौन होकर सिर झुकाना ही काफ़ी था।
-लिखा होता तो छप्पन बातें पूछता, उलाहना
समालोचना करता, किन्तु ग़रीब में इतनी कृतघ्नता
वह तो दूर से ही दर्शन करके सन्तुष्ट है। यह तो
घटनाओं में की एक छोटी-सी साधारण घटना है,
ग़रीबों के हृदयों में गांधीजी का क्या स्थान है, कैसा
है, यह जानना हो तो ऐसे उदाहरण ही उपयुक्त
की मृत्यु के बाद किसी ने कहा था—"आज से
नहीं, मिस्टर गांधी कहो, अब तो गांधी का कोई
न पूछेगा।" किन्तु ग़रीब इस झमेले में क्यों पड़ें?
किसे कहते हैं और हिंसा किसे कहना चाहिए, यह तात्त्विक विवाद तो उन्हींको शोभा दे सकता है। जो कलाकन्द खाके बिजली के पंखे के नीचे लेट सकते हों। फ़ुरसती आदमियों के लिए वेदान्त का यह तात्त्विक विवेचन जी बहलाने का एक अच्छा साधन साबित हो सकता है। किन्तु ऊँट को पापड़ से क्या काम? आये साल अकाल और महामारी; न खाने को पूरा अन्न, न शरीर ढकने को वस्त्र; ज़मीदार की ज़्यादती, साहूकार की ज्यादती; और ऊपर से उपदेशकों की हिमायत। उन्हें क्या पता कि ग़रीब को रोग रोटी का है, न कि धर्म्म का। सुदामा की तरह गरीब को ज्ञान नहीं चाहिए, रोटी चाहिए। गांधी ग़रीबों को उपदेश देने नहीं जाता, गांधी उनके हृदय में प्रवेश करके ग़रीब के दुःख से दुःखी होता है—ग़रीब बनके रहता है और ग़रीबों के लिए जीता है; यही कारण है कि ग़रीबों के हृदय पर गांधी का एकछत्र अधिकार है। भारत के एक छोटे से छोटे ग्राम में जाइए और पूछिए, गांधी कौन हैं? तुरन्त उत्तर मिलेगा कि ग़रीबों का भला चाहने वाले। गांधी क्या पढ़े हैं, क्या लिखे हैं, क्यों कहते हैं, यह उनके लिए व्यर्थ की चर्चा है। गांधी बाबा अनाथों के, ग़रीबों के हितचिन्तक हैं, इसीमें उनके लिए गांधीजी की सारी जीवनी आ जाती है। चाहे यह जीवनी सूत्र-रूप से हो,

किन्तु संसार का अच्छे से अच्छा ग्रन्थकार इससे अधिक संक्षेप में और क्या कह सकता है ? थोड़े-से लोग चाहे गांधीजी को गोहत्यारा कहकर सन्तोष कर लें, किन्तु "गांधीजी की जय" आज भी आकाश को कँपा देती है ।

× × ×

आजकल गांधीजी वर्धा आये हुए हैं । वर्धा में जमनालालजी की प्रेरणा से श्री विनोबा ने एक सत्याग्रह-आश्रम खोल रक्खा है और गांधीजी वहाँ ठहरे हुए हैं। गांधीजी क्या आये, मानों घर में कोई बड़े-बूढ़े दादा आ गये हों । आश्रमवासी तो गांधीजी को बापू के ही नाम से पुकारते हैं किन्तु बापू होने पर भी बच्चों के साथ गांधीजी बच्चों की तरह ही रहते हैं । खाना, पीना, काम-काज भी आश्रम के नियमों के मुताबिक़ । आश्रमवासी शुद्ध घृत के अभाव में आजकल अलसी के तेल का व्यवहार करते हैं । गांधीजी ने भी बकरी के दूध की जगह अलसी का तेल खाना शुरू कर दिया है । जमनालालजी को इस फेरफार की ख़बर मिलते ही चिन्ता शुरू हुई । गांधीजी इस तरह के प्रयोग कर-करके कहीं अपना स्वास्थ्य न खो बैठें, इस आशंका से जमनालालजी ने गांधीजी को समझाना शुरू किया । बहस हुई, झगड़ा हुआ, अंत में जमनालालजी ने बल-प्रयोग किया—"बापू आप यहां मेरी देख रेख में हैं, जैसा मैं कहूँ वैसा कीजिए । इन प्रयोगों के कारण आप यहां से बीमार होके जायँ, यह मैं नहीं बर्दाश्त करने का ।" "तो दे डालो नोटिस मुझे, यहाँ से चला जाऊँगा' गांधीजी ने खिलखिलाकर कहा । जमनालालजी अब क्या कहते ? चुप रहे, गांधीजी का हठ क़ायम रहा ।

अग्रवाल-पंचायत ने जमनालालजी को जाति-बहिष्कृत कर रक्खा है । उनका सबसे बड़ा गुनाह यह बताया गया कि उन्होंने अस्पृश्यों के हाथ का खाया । जमनालालजी के कारण वर्धा में भी अग्रवालों में दो दल हैं । एक दल तो कट्टर पुराने विचार के लोगों का है; दूसरा दल भी यद्यपि पुराने विचारों का ही अनुयायी है, तो भी जमनालालजी को छोड़ना नहीं चाहता । जमनालालजी ने उन्हें समझाया कि मुझसे निबाहना कठिन काम है, इसलिए आप सामाजिक मामलों में मुझसे मोह तोड़ लें । किन्तु जिनका प्रेम है, वे जमनालालजी को कैसे त्याग दें ? एक दिन कुछ वृद्ध सज्जनों को अगुआ करके दूसरे दल की मण्ड जमनालालजी के पास पहुँची । "जमनालालजी विधव विवाह में शरीक हों, अस्पृश्यों की छुआछूत न मानें, उन लिए मन्दिर खोलें, इसमें तो हम शामिल हैं; कि अस्पृश्यों के हाथ का खान-पान हमें भी नहीं रुचता । चा हमारे सन्तोष के लिए ही सही, क्या जमानालालजी ह इतना विश्वास नहीं दिला सकते कि भविष्य में वे अछू के हाथ का पकाया नहीं खायँगे ? जब हम लोग इतने आ बढ़ने को तैयार हैं, तो जमनालालजी हमारे सन्तोष के लि थोड़ा-सा पीछे क्यों न हटें ?" यह संक्षेप में उनकी दली थी । जमनालालजी कहने लगे कि "आश्रम में तो स जाति के लोग रहते हैं, क्या मैं आश्रम में खाने से इन्क करूँ ?" "आश्रम की कौन कहता है, यह तो पुण्यभू है, तीर्थस्थान के लिए कोई रुकावट नहीं, आप अन्य स्था पर ऐसा न करें, यही हमारी मांग है ।" इस तरह से ब होती रही । अन्त में तय हुआ कि गांधीजी के सामने माम पेश किया जाय । दूसरे दिन वृद्ध लोगों का एक डेप्युटे गांधीजी के पास पहुँचा । गान्धीजी ने चर्ख़ा चलाते-चल समाज के अगुओं से बातें प्रारम्भ की । गांधीजी ने पूछा- "जमनालालजी अस्पृश्यों के हाथ का न खायँ, इसमें आप कौन-सा डर है ? समाज का या धर्म का ?" एक वृद्ध कहा—"धर्म तो हम क्या समझें, समाज की रूढ़ि है ऐसा नहीं करना चाहिए । हम जमनालालजी की सब बा मानते हैं, तो फिर हमारी इतनी बात जमनालालजी क नहीं मानें ?" गाँधीजी ने कहा—"क्यों न मानें, कि यदि रूढ़ि का ज़ुल्म हो तो उस रूढ़ि का नाश कर दे चाहिए । प्राचीन काल में ऐसा रूढ़ी का बन्धन था यह तो नहीं जानता । मैं तो समझता हूँ कि जो स्वच्छ शराबी नहीं है, व्यभिचारी नहीं है, उसके ह स्वच्छलता से पकाया हुआ खाने योग्य पदार्थ ह लिए अवश्य भोज्य है । उनको यदि हम कहें तुम्हारे हाथ का हम नहीं खावेंगे, तो वे क्यों ह साथ रहेंगे ? वे अवश्य हमारा त्याग कर देंगे । मैं तो के उनकी धमकी से भी नहीं डरता, किन्तु यदि हमारे दोष कारण वे हमारा त्याग कर दें तो मैं उसे कैसे बर्दाश्त

ता हूँ ? जो अपवित्र रहते हैं, मुर्दे का मांस खाते हैं,
ी हैं, उनके हाथ का खाने को तो मैं भी नहीं कहता।
े तो मैं कह सकता हूँ कि पहले तुम अपनी बुराइयाँ
रो तो मैं तुम्हारे हाथ का खाऊँ। किन्तु जो स्वच्छ हैं
के हाथ का तो न खाने से धर्म का नाश हो जायेगा।
में यदि साहस न हो तो आप ऐसा न करें। चाहे
नालालजी को छोड़ भी दें। किन्तु आप जमनालालजी
आशीर्वाद तो दें, क्योंकि वह तो धर्म ही के लिए ऐसा
े हैं। आप इनको क्यों पीछे हटाना चाहते हैं ? चाहे
जमनालालजी से प्रतिज्ञा करा लो कि जो शौचादि को
नें उस ब्राह्मण या अब्राह्मण किसी के भी हाथ का
खायँ। किन्तु इससे थोड़े ही आपका काम बनेगा।
तो पंचों के त्रास से भयभीत हैं और इसीलिए जमना-
लजी से आग्रह करते हैं। मैं यह कहना चाहता हूँ कि
ाज को तो मैं भी मान देता हूँ, हमें हर बात में समाज
नहीं लड़ना चाहिए। किन्तु आज का समाज कैसा समाज
यदि गंगोत्री मैली हो जाय तो क्या फिर गंगा का पानी
छ रह सकता है ? आज के पंच पंच कहाँ रह गये ?
तो गंगोत्री है। और जैसे गंगोत्री का पवित्र प्रवाह गंगा
बहता है वैसे ही पंच समाज को पवित्र प्रेरणा और
यबुद्धि देते हैं। किन्तु वर्तमान के पंच तो राक्षसी हैं।
ज के पंच पाखण्ड से, स्वार्थ से, क्रोध से और द्वेष से
े हुए हैं। मेरी तो यह भविष्यवाणी है। आप इसे सच
ानिए कि आज के पंचों का अन्याय हम नहीं मेट सके तो
समाज का नाश हो जायगा। पंच न्याय कहाँ करते
धर्म की बड़ी-बड़ी बातें बनाने से न्याय नहीं हो सकता।
मान के पाखण्डी पंचों से तो डरना भी अन्याय है।
के जुल्म का सामना करके मरना ही अच्छा है। पंच-
गोत्री मैली हो गई है। इसे शुद्ध करने के लिए हरएक
मर मिटना चाहिए। यह धर्म के नाम पर पाप फैलाया
ता है। उसी का जमनालालजी सामना कर रहे हैं।
हें आप आशीर्वाद दें। आगे की पीढ़ी तो कहेगी कि
मनालालजी ने धर्म को बचा लिया। लाखों अछूतों को
न्दू रख लिया। रावण के दस सिर क्या थे, यह तो
की दस तरह की दुष्ट बुद्धि थी। उसी दुष्ट बुद्धि का
सामना विभीषण ने किया। आप यदि सामना नहीं कर सकते, इतना साहस नहीं है, तो जमनालालजी आपको नहीं कहते कि आप भी उनके साथ चलें। जमनालालजी तो कहते हैं कि आप उनके साथ न चल सकें तो उन्हें छोड़ दें, किन्तु आप इनका मोह क्यों करते हैं ? उन्हें भी अग्रवाल-समाज के सुधार का मोह छोड़ देना चाहिए। जो संन्यासी हो गया उसे कौन बाँधता है ? जमनालालजी का तो आज विशेष धर्म बन गया। वह तो अब व्यापक समाज की ही सेवा कर सकते हैं। उसीमें अग्रवाल-समाज की सेवा भी आ जाती है। आप जमनालालजी को छोड़ दें, किन्तु उनके लिए प्रेम क़ायम रक्खें और पंचायत के जो लोग विरोधी हैं उनके प्रति भी क्रोध न करें। हम क्रोध को अक्रोध से और अशान्ति को शान्ति ही से जीत सकते हैं। पंचायत के लोग क्रोध के पात्र नहीं हैं, दया के पात्र हैं। वे तो अवश्य ही समझते हैं कि हम समाज का भला कर रहे हैं। उन्हें क्या पता कि वे धर्म के नाम पर जुल्म करना चाहते हैं। इसलिए आप तो उनसे भी प्रेम करो और जमनालालजी को आशीर्वाद दो कि वह धर्म की रक्षा और अन्याय का सामना करने में कृतकार्य हों।"

गांधीजी का वक्तव्य समाप्त होने पर सब लोग चुप हो गये, सन्नाटा-सा छा गया, किसीसे उत्तर देते नहीं बना। एक वृद्ध सज्जन ने चुपके से पगड़ी उतारकर गांधीजी के पैरों में रख दी और कहने लगे—"महाराज, आपने जो कहा उसे सुनकर तो मैं गद्गद हो गया।" उस वृद्ध से अधिक कहते न बन पड़ा, किन्तु पंचों के त्रास से वह भी भयभीत था।

हिन्दू-समाज, भगवान् तेरा भला करे !

× × ×

गांधीजी जब चर्खा चलाने बैठते हैं तो कातने की धुन में इतने मस्त रहते हैं, मानों त्रिलोक का राज्य मिल गया हो। और किसी भी गहन से गहन विषय पर उनसे बातें कीजिए, उनके कातने में कोई विघ्न नहीं पड़ता। असल में तो एक ओर सूत को अपने आप उनकी हाथ की पूनी में से निकलते जाना, दूसरी ओर उनकी अबाधित वचन-धारा का प्रवाह, और साथ में चर्खे का संगीत, यह हर भावुक के मन मोहने को पर्याप्त है। मैं तो हर रोज़ उनके कातने के

समय अपनी चक्की चलाने जा बैठता हूँ। एक दिन वही बछड़े की कथा छिड़ी। मैंने कहा—"महात्माजी, श्रीकृष्ण ने भी बछड़ा मारा था। किन्तु वह तो अलंकारिक ज़माना था, इसलिए बछड़े का वत्सासुर हो गया। किन्तु इस बीसवीं शताब्दी में तो लोग सीधी-सादी भाषा में ही बोलते हैं, इसलिए आपके इस काम ने लोगों में ख़ाली हलचल पैदा कर दी। आपने बहुत से साहस किये, किन्तु इसमें तो हद हो गई। मुझे तो मालूम होता है, आपने इससे अधिक साहस का कोई और काम अपने जीवन में नहीं किया होगा।" गांधीजी ने कहा,—"ऐसी तो क्या बात है, मैंने तो सब कुछ सहज स्वभाव से ही किया है।" "तो आपने ऐसा कौनसा काम किया है जिसे साहस की दृष्टि से आप अपने जीवन में ऊँचे से ऊँचा स्थान दे सकें?' मैंने पूछा।

"इस दृष्टि से तो मैंने कभी नहीं विचारा," गांधीजी ने कहा, "किन्तु, मैं समझता हूँ, बारडोली-सत्याग्रह स्थगित करके मैंने बहुत बड़े साहस का परिचय दिया। २४ घण्टे पहले सरकार को चुनौती देकर ललकारना और फिर अचानक सत्याग्रह को स्थगित करना, यह अपने आपको बेहद हास्यास्पद बनाना था, किन्तु मैं तनिक भी नहीं झिझका। जो सत्य था वही मेरा राजमार्ग था; और इसलिए मेरी अपनी हँसी होगी, इस विचार ने मुझे कभी भयभीत नहीं किया। मेरे जीवन के बड़े साहसिक कामों में का यह एक था, ऐसा मैं मान सकता हूँ।"

"सविनय आज्ञा-भंग अचानक बन्द करना पड़ा, इससे आपको क्लेश नहीं हुआ?"

"किंचित भी नहीं" दृढ़ता से गांधीजी ने कहा। जिस सीता के लिए लाखों बन्दर और राक्षसों के प्राण गये, उसे छोड़ देने में राम को कुछ हिचकिचाहट न हुई। और जिस सविनय आज्ञा भंग के लिए हज़ारों लोगों को जेल-यातनायें मिलीं उसे दाह देने में गांधीजी को कोई संकोच न हुआ। त्रेता में राम को लोगों ने भला-बुरा कहा होगा। कलि में गांधीजी को लोगों ने खरी-खोटी सुनाईं। किन्तु कौन कह सकता है कि गांधीजी ने जो किया वही ठीक न था? असल में तो बड़े लोगों को समझने के लिए कुछ प्रयास की ज़रूरत पड़ती है। गांधीजी लंगोटी मारके रहते हैं, सस्ते से सस्ता खाना खाकर निर्वाह करते हैं, तो भी उस सबके नीचे छिपी हुई चमक कभी-कभी लाखों में चकाचौंध मचा ही देती है। गांधीजी लंगोटी मारके ग़रीब की तरह रहते हैं, इससे उनकी बुद्धि ग़रीब नहीं हो गई। वस्तुस्थिति तो यह है कि बाज़-बाज़ मौक़ों पर गांधीजी के वचन और कर्म को ठीक-ठीक समझने के लिए मनुष्य को विशेष प्रयास की ज़रूरत पड़ती है। हम रोज़मर्रा देखते हैं कि अख़बारवाले गांधीजी से वार्तालाप करके अख़बार में कुछ छाप देते हैं और पीछे गांधीजी को उसका खण्डन करना पड़ता है। कारण यह है कि गांधीजी को लोग ठीक-ठीक नहीं समझ सकते। गांधीजी अहिंसा-अहिंसा पुकारते न कभी थके, न थकते हैं। अहिंसा के तो वह मानों अवतार बन गये हैं। फिर भी बछड़े की प्रख्यात हिंसा करते न केवल उन्हें हिचकिचाहट नहीं हुई, उलटा उन्होंने उसे धर्म माना। साधारण लोग तो सुनते ही हक्के-बक्के रह गये। किसीने आँसू बहाये, किसी ने गालियाँ दीं, किन्तु साबरमती के महात्मा पर उसका क्या असर हो सकता था? उन्हें तो लेना-देना है बस एक ही से। चर्ख़ा चलाते हैं तो उसमें ईश्वरीय संगीत सुनते हैं। अलसी के तेल से मिली रोटी खाते हैं तो उसमें ईश्वरीय स्वाद का अनुभव करते हैं। दुःख में, सुख में, हँसने में, रोने में, जागने में, सोने में, चलने में, फिरने में, अविच्छिन्न रूप से जो मनुष्य ईश्वरीय अनुभव करता हो उसे जगत् की क्या पर्वाह? "सन्तन संग बैठ-बैठ लोक-लाज खोई, अब तो बात फैल गई जाने सब कोई।"—यह गांधीजी का हाल है। जगत् से न उनको शर्म है, न जगत् का भय है।

मैंने एक रोज़ पूछा—"महात्माजी, उत्तरोत्तर आपकी आत्मोन्नति हो रही है, ऐसा कुछ आपको अनुभव होता है?" शील-संकोच-से गांधीजी ने कहा, "मेरा तो ऐसा ही ख़याल है।' मैंने कहा—"महात्माजी, आपके इर्द-गिर्द की मण्डली क्या समझती है, मैं नहीं जानता; किन्तु मुझे तो ऐसा जान पड़ता है, असहयोग-आन्दोलन के बाद आपकी आत्मा में बहुत चमक आ गई है।" महात्माजी मौन रहे। एक बार लार्ड रीडिंग से गांधीजी की चर्चा चली थी, उसका

स्मरण हो आया। गांधीजी उन दिनों जेल में थे। के नेताओं का जिक्र निकलने पर मैंने कहा, मेरी राय ांधी संसार के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हैं। वाइसराय ने कहा– , यह ठीक हो सकता था, यदि उनके संगी साथी सबके ईमानदार होते।" मैं वाइसराय का मतलब समझ ा। यह कोई नहीं कह सकता कि असहयोग के दिनों गांधीजी की सारी की सारी मण्डली भली थी। किन्तु ीजी को इससे क्या। मैंने उन दिनों एक बार कहा था– हात्माजी, आपके इर्द-गिर्द के लोगों में तो कितनेक बुरे मी भी आ गये हैं।" महात्माजी ने कहा "मुझे क्या है, मुझे कोई धोखा नहीं दे सकता। जो मुझे धोखा में अपनेको दक्ष समझते हैं वे स्वयं अपने आपको ा देते हैं। मैं तो शैतान के पास भी रहने को तैयार हूँ, तु शैतान मेरे पास कैसे रहेगा ? जो बुरे हैं वे स्वयं मुझे ा देंगे।" हुआ भी ऐसा ही। आज महात्माजी की डली में इने-गिने लोग बचे हैं। शुरू से आजतक के के जीवन पर दृष्टिपात करें तो सारा चित्र आँखों के मने नाचने लगता है। राजा ने छोड़ा रौलेट ऐक्ट Rowlette Act) के जन्म के समय। प्रजा ने छोड़ा डोली (Bardoli) के निश्चय के समय। हिन्दू, सलमान, ईसाई, जैन, आर्यसमाजी, सनातनी, जात- ं, मित्र, स्नेही, सबने—किसीने कब किसीने कब—महात्माजी को समय पर छोड़ दिया। युधिष्ठिर स्वर्ग में पहुँचे तो केवल एक कुत्ता साथ में निभा। महात्माजी के स्वर्गारोहण तक कौन उनके साथ टिक सकेगा, यह भविष्य के गर्भ में है। मैंने एक दिन कहा–"महात्माजी, आप इतनी तेज़ी से दौड़ लगा रहे हैं, मैं नहीं समझता अन्त तक बहुत व्यक्ति आपके साथ रह सकते हैं।" गांधीजी ने कहा—"यह तो मैंने २० साल पहले ही सोच लिया था और मुझे तो इसीमें सुख है।" मैंने कहा-"यदि प्राचीन समय होता और भारतवर्ष के बाहर आप पैदा हुए होते तो इतनी तेज़ी की चाल लोग बर्दाश्त न करते; या तो ईसा की तरह आपको सूली पर चढ़ना पड़ता, अथवा सुकरात की तरह ज़हर का प्याला पिलाया जाता। किन्तु यह तो ऋषियों का देश है और बीसवीं शताब्दी है इसलिए लोगों ने आपके महात्मापन को टाइटल छीन कर ही सन्तोष कर लिया।" गांधीजी ने हँसकर धीरे से कहा—"तो चढ़ा दें लोग मुझे भी सूली पर, मैं भी तैयार हूँ और प्रसन्नता के साथ तैयार हूँ।" पास बैठे लोगों ने लम्बी सांस ली। मेरे तो मन में आया कि इस मिश्रित अधर्म से तो कहीं अन्धकार ही अच्छा, जो अवतार को निकट ला देता। आज न तो अधर्म का ह्रास ही होता है और न अवतार ही आता है। यह दशा तो असहनीय है। किन्तु कोई क्या करे ?

घनश्यामदास बिड़ला

दुर्भिक्ष की राधा

मैं तो चाह रही हूं वैभव, 'उनके' अंकासन का राज
गली-गली गोकुल की गायें तृण को तरस रही हैं आज।
मेरा तो है कण्ठ अकेला कहता—"कहाँ छुपे गोपाल"
आकुल कोलाहल करते हैं कितने कँगलों के कंकाल !
मेरी तो दो ही आँखें हैं खोज रहीं पथ पर चितचोर
कितनी सूखी आँखें अपलक ताक रही हैं नभ की ओर !
बरसो घन, मत मिलें हृदयधन, चरण-चिन्ह मिट जाने दो
कृश-कृषकों को लुटी कुटी में हँसकर दीप जलाने दो

"मिलिन्द"

पवित्र मेरु

उक्त शीर्षक से एक लेख "त्यागभूमि" के प्रथम वर्ष की भाद्रपद संख्या में प्रकट हुआ है और उसमें मान्य लेखक ने हिन्दूकुश पर्वत के पार्श्व में स्थित "कोह मोर" को पवित्र मेरु प्रमाणित किया है। और यह एक हद तक ठीक है। किन्तु मान्य लेखक ने लोकमान्य तिलक के मत को उस पर विशेष ध्यान दिये बिना ही टाल दिया है। अतएव यहाँ पर संक्षेप में लोकमान्य तिलकजी की एवं अन्य मान्यताओं का दिग्दर्शन कर लेना समुचित है।

इस विषय का एक लेख मराठी के "विविध ज्ञान विस्तार" नामक पत्र (वर्ष ५२) में स्वर्गीय मिस्टर गोखले की क़लम से प्रकट हुआ था; जिसका किञ्चित उपयोग "वीर" (वर्ष २ पृ० २८५) में प्रकाशित हुये 'मेरु-पर्वत' शीर्षक लेख में हुआ है। इससे प्रकट है कि मत्स्य पुराण (अध्याय ११६) के अनुसार मेरु-पर्वत सर्व देशों के उत्तर में था। ("सर्वेषामुत्तरे मेरुः") इसी कारण उसे उत्तर-ध्रुव में स्थित अनुमान किया जाता है। इस अनुमान की पुष्टि महाभारत (वन पर्व अ० १६३) के इस वर्णन से होती है—"रात्रि होने पर वह मेरु पर्वत अपने अंग के तेज से अन्धकार को मेट-सा देता है और दिवस जैसा प्रकाश अपने चारोंओर फैला लेता है। उसको देखकर वहाँ पर यह जानना कठिन हो जाता है कि यह रात्रि है अथवा दिन।" इस प्रकाश को विद्वानों ने "ऑरोरा बोरीअलिस" (Aurora Borealis) अनुमान किया है। इस विषय में स्वर्गीय लोकमान्य तिलक महोदय ने यह लिखा था कि—

"These quotations are quite sufficient to convince anyone that at the time when the great Epic (महाभारत) was composed, Indian writgrs had a tolerably accurate knowledge of the meteorological and astronomical characteristics of the North Pole and this knowledge cannot be supposed to have been acquired by mere mathematical calculations, The reference to the lustre of the mountain is specially interesting in as much as, in all probtability it is a description of the Aurora Borealis Visibb at the north pole" Arctic home in the Vedas; pp. 69-70.

भावार्थ—उपरोक्त अवतरणों से यह स्पष्ट है कि जिस समय महाभारत रचा गया था उस समय भारतीय लेखकों को उत्तरध्रुव का वायुचक्र एवं ज्योतिष विषयक ज्ञान क़रीब-क़रीब बिलकुल ठीक था और वह गणित पर ही अवलम्बित नहीं था। पर्वत के प्रकाश विषय का उल्लेख मनोरंजक है, क्योंकि सम्भवतः वह उत्तरध्रुव में दृष्टि पड़ने वाले प्रकाश "ऑरोरा बोरीयलिस" का द्योतक है।

अब यदि हिन्दूकुश के समीप का कोहमोर मेरु माना जाय, तो वह सर्व देशों से उत्तर में प्रकट नहीं होता और उसपर "ऑरोरा बोरीयलिस" के समान किसी प्रकाश का होना असम्भव दीखता है। इतने पर भी यह नहीं कहा जा सकता कि "त्यागभूमि" के पूर्वोक्त लेख में कोहमोर को निराधार ही पवित्र मेरु प्रकट किया गया है। तो फिर इन दो विरोधों का एकीकारण कैसे हो ?

स्व० श्री गोखले प्रकट करते हैं कि जिस समय उत्तर-ध्रुव में हिम-प्रलय जैसी शीत बढ़ गई थी, तब वहाँ रहना दुष्कर हो गया था। इसी वजह से वहाँ से सब लोग देवादिक सहित दक्षिण की ओर चले गये थे और वहाँ उन्होंने नये मेरु की स्थापना की थी। यह स्थान मध्य एशिया में था। महाभारत के लिखे जाने के बहुत वर्षों पहले ही यह घटना घटित हो चुकी थी। इस काव्यग्रंथ के रचनाकाल के समय वे लोग उत्तरध्रुव की ओर अपने स्वर्गासीन पूर्वजों को नमस्कार करते थे। किन्तु मध्य-

ा में आकर जहाँ उन्होंने नवीन मेरु की स्थापना की, वर्णन "भीष्मपर्व" (अ० ६) में ख़ासा है। वहाँ मेरु की चारों दिशाओं में भद्राश्व, केतुमाल, जम्बूद्वीप र कुरु, ये चार द्वीप बताये हैं। किन्तु श्री गोखले चारों का ठीक पता लगाये बिना ही मेरु की नवीन ता का केन्द्र स्थापित किया है और इसमें वह सफल-हुए नहीं कहे जा सकते। उनके लेख का सारांश यह उन्होंने भीष्मपर्व के आधार से लिखा है, कि "उत्तर अधिक ठण्ड पड़ने के कारण वहाँ से निकलकर दक्षिण की ओर आये तो साइबेरिया में पहुँचे और सरोवर के निकट केतुमाल प्रदेश में बस गये। इस के पूर्व पार्श्व में उन्होंने मेरु पर्वत स्थापित किया। मेरु पर्वत की प्रदक्षिणा देते हुए जम्बू नदी उत्तर-कुरु निकलती है। मेरु के दक्षिण में निषध पर्वत उसपर नाग व सर्प रहते हैं। सर्प तुरक है और देश तुरक प्रान्त। यह प्रान्त मंचूरिया से खिंगण तक विस्तरित है। खिंगण पर्वत ही नवीन मेरु है, अनुमान किया जा सकता है। मेरु के दक्षिण का न द्वीप और जम्बू द्वीप कहाँ हैं, इसकी खोज करना है। खिंगण पर्वत के दक्षिण में चीन देश है। शायद श ही नाम सुदर्शन द्वीप होगा। सुदर्शन द्वीप का चीन देश के सिवा एशिया-खण्ड के दूसरे कोण तक सी देश को समान लागू नहीं है।' इसके उपरान्त "भागवत" (स्कंध ५ अ० १६) के अनुसार नौ के मध्य स्थित "इलावर्त्त" वर्ष के नाभि-स्थान में कुलपर्वतों में श्रेष्ठ मेरु पर्वत को मानकर उसे खिंगण से भी हटाकर तिब्बत में ले जाते हैं; क्योंकि 'भाग-के अनुसार इलावृत्त हिमालय के उत्तर में है। किन्तु एशिया से हटकर तिब्बत में आने के लिए कोई कारण ना चाहिए? जिस प्रकार हिम-प्रलय के समय शीत भीत होकर लोग उत्तर-ध्रुव से मध्य-एशिया में आ थे, उसी प्रकार मध्य-एशिया को छोड़कर तिब्बत में जा के लिए कोई पर्याप्त कारण नहीं दिखाई पड़ता। श्रीयुत जयशंकर "प्रसाद" जी के मतानुसार नवीन मेरु कुश के पार्श्व में मानना ही उचित प्रतीत होता है। भद्राश्व, केतुमाल, जम्बूद्वीप और उत्तर कुरु का उसके चारों ओर होना सम्भवनीय है।

स्व० श्रीयुत नन्दूलाल ने भी 'मेरु पर्वत' को हिन्दूकुश पर प्रमाणित किया था।* उनका कथन है कि रामायण (उत्तर० अ० २४-२५) के अनुसार रसातल के नागों और दानवों को परास्त करके रावण उसी गुफाद्वार (Hole) में से बाहर निकला, जिसमें से वह घुसा था और उसने वह रात सुमेरु (=मेरु) पर्वत पर बिताई थी। इससे प्रकट है कि रसातल के निकट मेरु था। महाभारत (भीष्म० अ० २) और मत्स्यपुराण (अ० १२१) में साफ़ लिखा है कि मेरु अथवा सुमेरु पर्वत शाकद्वीप में है। 'महाभारत' (आदि०, अ० ३०; उद्योग० अ० १००) में यह भी वर्णन है कि पातालवासी गरुड़ ने एक हाथी और एक कछुये को पकड़कर उन्हें एक बटवृक्ष की शाखा पर बैठकर खाना चाहा। शाखा टूट गई। कई बालखिल्य ऋषि उसपर तपस्या कर रहे थे। उनकी रक्षा करने के भाव से गरुड़ शाखा को अपनी चोंच में दबा कर गंधमादन पर्वत की ओर ले उड़ा, जहां उसके पिता काश्यप तपश्चर्या में लीन थे। काश्यप के आग्रह से उन ऋषियों ने गंधमादन पर्वत पर उस शाखा को छोड़ दिया और वे हिमालय पर जाकर तप करने लगे। नागों के राजा शेष ने गंधमादन पर्वत की यात्रा करके हिमालय पर स्थित बद्रिकाश्रम के दर्शन किये थे।' (महाभारत, आदि० अ० ३६) हिमालय पर्वत का गढ़वाल से पश्चिमकी ओर का भाग गंधमादन कहलाता है। इसलिए गंधमादन और हिमालय सुमेरु पर्वत से पूर्व की ओर प्रमाणित होते हैं। साथ ही यह निर्विवाद है कि गंधमादन का सम्बन्ध शाकद्वीपस्थ सुमेरु से था। मत्स्यपुराण (अ० ११२, श्लो० ४२-४३) में भी कथन है कि सुमेरु के पश्चिम में केतुमाल वर्ष था और मार्कण्डेयपुराण के अनुसार शक लोगों (Scythians) का निवास केतुमालवर्ष में था। (मार्कण्डेय० अ० ५९) इसलिए सुमेरु या मेरु हिन्दूकुश पर्वत है; जिसे ऐरियन ने Mount Meros लिखा है और जो पुराणवर्णित निशादपर्वत के न्यसगिरि के निकट

---

* इंडियन हिस्टॉरिकल क्वाटर्ली; भा० १, पृ० १३४-३५.

स्थित था। इसी पर्वत को यूनानियों ने Paropamisus कहा है।

अतएव 'त्यागभूमि' के पूर्वलेख में जो हिन्दूकुश पर मेरुपर्वत सिद्ध किया गया है, वह ठीक है। पहले मूल में मेरु उत्तर-ध्रुव में था। उपरान्त जब वहां से लोग मध्य-एशिया में चले आये, तो उन्होंने मेरु की नवीन स्थापना हिन्दूकुश पर की। इस प्रकार स्व० लो० तिलक के और श्रीयुत 'प्रसाद' के विभिन्न मतों का ऐकीकरण स्पष्ट है।

मेरु के इस चर्चा-प्रसंग में जैनमतानुसार मेरु का संक्षिप्त परिचय करा देना भी कुछ अनुपयुक्त न होगा। ख़ास बात जो इस विषय में दृष्टव्य है वह यह है कि जैनमतानुसार जम्बूद्वीप के अन्तर्गत स्थित भरतक्षेत्र के आर्यखंड में आजकल की जानी हुई सारी दुनिया आ जाती है। हिन्दू मान्यता के अनुसार वर्तमान के भारतवर्ष को ही आर्यावर्त (आर्यखंड) समझा जाता है; किन्तु जैनशास्त्रों के आर्यखंड में यूरोप, आफ्रिका, एशिया आदि देशों का समावेश हो जाता है। अतएव यह स्पष्ट है कि जैनों का मेरु पर्वत उपलब्ध दुनिया के किसी बाह्य प्रदेश में अवस्थित है। जैनशास्त्रानुसार उसका स्थान "आर्यखण्ड में न होकर उसके उत्तर में एक बड़े अन्तर पर है। यह अन्तर ठीक अठानबे लाख चौबीस हज़ार कोस का है। उस पर्वत के नितंब पर भद्रशाल वन है। उस वन से पांडुक वन पर्यन्त मेरु की ऊंचाई ९९ हज़ार योजन है। फिर उस पाण्डुक व
से मेरु का शिखिर ४० योजन पर्यन्त इन्द्रनीलमणि का है
प्रारंभ में वह १२ योजन विस्तार का है। फिर कम हो
होते ऊपर टोंक पर ४ योजन है। उस शिखर से केव
एक बाल के अन्तर से सौ धर्म इन्द्र का सभास्थान (इन्द्र
विमान) ४५ लाख योजन का है।...जम्बूद्वीप उसके द
णोत्तर व पूर्वपश्चिम एक एक लक्ष योजन का है। उस
लवणसमुद्र का विस्तार ४ लाख योजन है, जिस
दूसरी ओर ८ लाख योजन लम्बी 'धातकी खंड' हैं। धा
की खंड के कालोदधि समुद्र का विस्तार १६ लाख योज
का है। कालोदधि के सम्मुख १६ लाख योजन विस्तार
पुष्करार्धद्वीप है। यहां तक ढाई द्वीप के ४५ लाख योज
होते हैं। जम्बूद्वीप, धातकीखंडद्वीप व अर्धपुष्करद्वीप-इन
अढ़ाईद्वीप कहते हैं। इस अढ़ाई द्वीप तक ही मनुष्य
गम्यता है। उसके उपरान्त मनुष्यों का निवास नहीं है
इसलिए मनुष्य वहां पहुंच ही नहीं सकता है।" * सं
में जैनों के मेरु का यह परिचय है और इसका सादृ
हिन्दुओं के उस मेरु से प्रकट होता है जो सब देशों
उत्तर में बताया गया है। हिन्दुओं के सब देशों का समाव
जैनों के जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में ही हो जाता है, जिस
उत्तर में मेरु है। विशेष के लिए 'त्रिलोकसार' आदि जैनग्र
को देखना चाहिए।

कामताप्रसाद जै

वज्राघात

असमय में ही कुटिल काल ने, उन निर्दय हाथों के द्वारा,
मेरे इस कोमल मानस में, पीड़ा का पत्थर दे मारा।
उन्नति के इस नव-प्रभात में, गिनती थी मैं 'कलि' की घड़ियाँ;
मेरी निर्बल आशाओं पर, हाय! वज्र उठीं फिर हथकड़ियाँ।
मेरे छोटे से प्याले में, संचित थी जीवन की क्रीड़ा,
हाय निठुर ने टक्कारों से सोती हुई जगा दी पीड़ा।

× × × ×

जीर्ण हृदय पर, रे प्रतिपक्षी, करले तू गिन-गिन आघातें,
साध न मन की रहने पाये, फिर न मिलेंगी ये दिन-रातें।

देवीदीन दीक्षित "दिवाकर

---

* वीर, वर्ष २, पृ० २९३-२९४,

मित्र-धर्म

मित्र धर्म को निबाहना बड़ा कठिन है। वह तो भ्रातृ-धर्म से भी कठिन है। 'त्यागभूमि' और उसके पाठकों बीच यही प्रेम है। 'त्यागभूमि' के अभी लगभग तीन हजार ग्राहक हैं। अभी उसका मूल्य ७) प्रति ग्राहक छे पड़ता है। इस तरह अपने प्रत्येक पाठक भाई के लिए प्रतिवर्ष

तीन रुपये की घटी सहकर

यह पत्रिका निकाली जा रही है। सम्पादन, लेख-सामग्री तथा सात्विक आकर्षकता की दृष्टि से भी उसे वोत्तम बनाने के लिए हम कोशिश कर रहे हैं। पर पाठक भाइयों की एक बात में हमें भारी सहायता की जरूरत है। ने हिसाब लगाकर देख लिया है कि बारह हजार ग्राहक हो जाने पर 'त्यागभूमि' अपना खर्चा संभाल गी। यदि

पाठक भाई थोड़ा सा भी प्रयत्न करें

तो इतने ग्राहक बन जाना कोई कठिन बात नहीं है। यदि आप मानते हों कि 'त्यागभूमि' और समाज की सच्ची सेविका है तो उसे चिरंजिवी बनाये बिना आप कैसे रह सकते हैं? भला ापका स्वाभिमानी उदार हृदय इस बात को कैसे बरदाश्त करेगा कि 'त्यागभूमि' तो आपकी सेवा के ए प्रतिवर्ष हजारों की घटी सहे और आप से उसे स्वावलम्बिनी बनाने के लिए कुछ भी न बन पड़े।

बहुत भार नहीं

यह चिन्ता न करें कि १२००० ग्राहक कैसे बनेंगे? आदमी अगर अपनी ही जिम्मेदारी पूरी करने लग य तो सारे समाज का काम अपने आप सुव्यवस्थित हो जाय। प्रत्येक ग्राहक यदि कम से कम

एक एक ग्राहक बना देने का संकल्प कर लें

तो छः हजार ग्राहक बात की बात में हो जायँ और अगले वर्ष के अन्त में तो १२००० ग्राहक नकर यह पत्रिका चिरंजिवी हो जाय। आइए हम अभी से इसमें जुट पड़ें। देखिए वे एक मित्र आ रहे हैं। उन्हें ागभूमि' का प्रेमी बनावें। अपने गाँव वाले उस मित्र व सम्बन्धी को अभी पत्र लिख दें। यदि यह न हो तो

एक उपाय और भी है

कई विद्यार्थी, बालिकाएँ और पुस्तकालय वाले हमसे एक दो रुपये कम मूल्य पर 'त्यागभूमि' माँगा करते हैं। प अपनी शक्ति के अनुसार रुपये भेजकर उनके लिए रिआयती मूल्य पर 'त्यागभूमि' मिलने की सुविधा कर ते हैं। आपकी ओर से 'त्यागभूमि' में सूचना प्रकाशित हो जायगी।

बताइये, आप क्या कर सकते हैं? जो कर सकें वह तुरन्त ही शुरू कर दीजिए।

निवेदक—व्यवस्थापक, 'त्यागभूमि'

देश-सेवा करने और साथ ही साथ रुपये भी कमाने का सुअवसर

देश भर में प्रचारकों की आवश्यकता

क्रान्ति आ रही है

देश में फिर क्रान्ति के बादल उमड़ रहे हैं। संभव है अब की बार खूब घमासान लड़ाई छिड़े। इसके लिए देश को अभी से तैय्यार हो जाना चाहिए। पर **दृढ़ संगठन** प्रत्येक राष्ट्र का प्राण होता है। बिना देश-प्रेम के संगठन संभव नहीं। और देश की मौजूदा अवस्था से जब तक कोई परिचित नहीं हो जाता, देश-प्रेम उसके हृदय में कैसे उमड़ेगा? अतः देश की मौजूदा अवस्था को जानने का तथा हमारे समय की विकट समस्याओं के हल जानने का सब से बड़ा साधन हिन्दी की एक मात्र राष्ट्रीय पत्रिका

त्यागभूमि और मंडल द्वारा प्रकाशित राष्ट्रीय साहित्य

पढ़ना है जो कि राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में क्रान्तिकारी विचारों से ओतप्रोत है। किन्तु यदि हमें क्रान्ति को सफल करना है तो इस पत्रिका व राष्ट्रीय साहित्य का देश के कोने कोने में प्रचार होना परमावश्यक है।

मंडल का उद्देश केवल देश-सेवा है

और इसीलिए प्रति वर्ष हजारों की घटी सहकर ये दोनों कार्य किये जा रहे हैं। पत्रिका व पुस्तकें लागत से भी कम मूल्य में दी जा रही हैं। हम चाहते हैं कि भारत के प्रत्येक घर में यह शुद्ध सात्विक बलवर्धक साहित्य पहुँचे और देश के कोने कोने में वह स्वाधीनता के लिए व्याकुलता उत्पन्न कर दे।

स्वार्थ और परमार्थ भी

अतएव ऐसे उत्साही, लगनवाले, विश्वसनीय और परिश्रमी प्रचारकों की जरूरत है जो घर घर घूमकर त्यागभूमि व मण्डल के ग्राहक बनावें। कमीशन व वेतन पर काम करने वाले सज्जन ,पत्र-व्यवहार करें।

कालेज के विद्यार्थी व स्कूलों के मास्टर तथा गाँवों के पोस्टमास्टर व पटवारी, अपने-अपने गाँव व कस्बे में चार छः ग्राहक बना कर भी कमीशन प्राप्त कर सकते हैं।

मातृभूमि और मातृभाषा के सेवकों के लिए यह अनूठा अवसर है।

व्यवस्थापक—'त्यागभूमि' अजमेर।

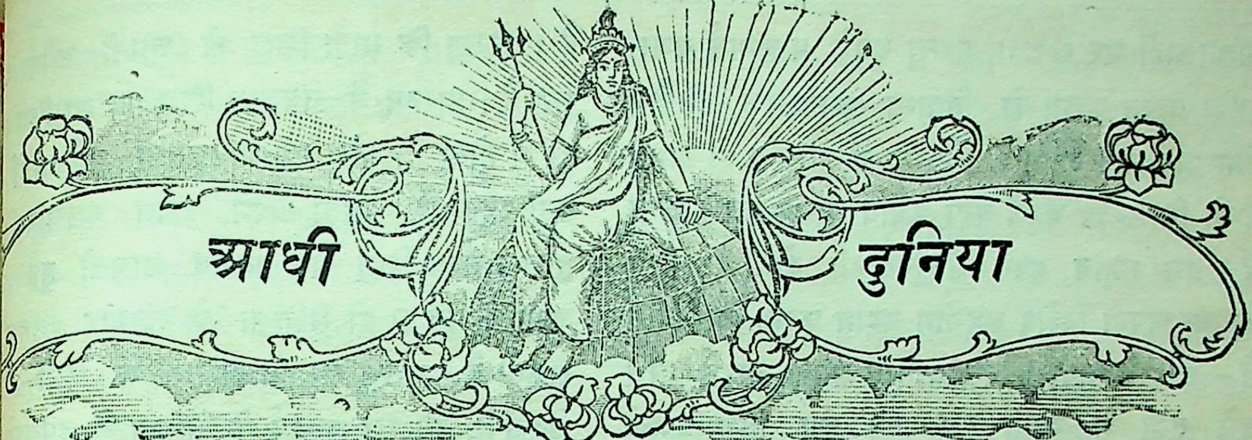

याँ और शृंगार-प्रियता

आज-कल यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया जा रहा है कि सृष्टि में स्त्री-जाति अपेक्षा पुरुष-जाति सुन्दरतर है। हमें स्वयं इसकी ई पर पूर्ण विश्वास नहीं। पर जान पड़ता है त्रियों को सदा ही इसका ज्ञान रहा है और ने अपनी उपर्युक्त न्यूनता की पूर्त्ति के निमित्त र-सम्बन्धी कृत्रिम साधनों का आश्रय लेना ा ठीक समझा है। परन्तु उन्हें यह भी जान चाहिए कि जबतक सौन्दर्य का कोई निश्चित र्श न हो तबतक उनके इस कार्य का अनुमो- कदापि नहीं किया जा सकता। ऐसे आदर्श का य करना अत्यन्त कठिन है। कारण कि इसकी रता मानवी रुचि के वैभिन्य पर है और वैभिन्य ायित्व कहाँ? यदि आज पुरुष को उसकी ी-मूँछ के सबब स्त्री से सुन्दरतर समझा जाता दि आज हस्ति को उसका सदन्त होना हस्तिनी अधिक शोभायुक्त बनाता है, यदि आज मयूर च्छ होने के कारण मयूरी पर प्रधानत्व पाता है, क्या यह सम्भव नहीं कि कल स्त्री की कान्ति- स्निग्धता और हस्तिनी तथा मयूरी की सारल्य- मनोहरता विचारकों की दृष्टि में अधिक चित्ता- क प्रतीत होने लगे और उन्हें अपनी राय बदलनी पड़े? असल बात तो यह है कि संसार में क्या पुरुष और क्या स्त्री, सभी अपना-अपना विशेष स्थान रखते हैं और इसी कारण सभी में अपना-अपना विशेष सौन्दर्य है, जो वस्तुतः अनुपम है शायद बुद्धिमान मनुष्य की अपेक्षा पशु-पक्षी इस बात को अधिक समझते हैं, अन्यथा वे अपने अन्य आवश्यक कामों के साथ ही अपने शरीर को भी वन्य-लताओं, पत्रों एवं पुष्पों से सुसज्जित कर लेते, जो सदा सुलभ ही हैं। अथवा यों कहो कि परमात्मा ने उन्हें आवश्यक कार्यों के लिए क्षमता ही नहीं दी। यह क्षमता केवल मनुष्य में है कि वह आवश्यक कार्यों के साथ ही अनावश्यक कार्य भी कर सकता है और प्रायः ऐसा ही करता भी है। स्वेच्छाचारिता का परिणाम यह होता है कि वह आवश्यक कार्यों के सम्पादन में बहुत-कुछ असमर्थ हो जाता है।

यह प्रकट है कि जीवन की दृष्टि से समय अत्यन्त अल्प एवं परिमित है। मनुष्य के सुविस्तृत उत्तरदायित्व को देखते हुए उसका विस्तार कुछ भी नहीं। इसी अल्प समय में उसे अगणित आवश्यकताओं की पूर्ति करनी है। उसका अपने प्रति, देश के प्रति, संसार के प्रति, तथा ईश्वर के प्रति कुछ कर्त्तव्य है। ऐसी दशा में उसके पास व्यर्थ की बातों के लिए अवकाश ही कहाँ है? यह ठीक है कि मनुष्य व्यष्टि-रूप से अपने कर्त्तव्यों का पर्याप्त

पालन नहीं कर सकता, परन्तु उनके पालनार्थ यथा-शक्ति प्रयत्न करना तो नितान्त आवश्यक ही है। फिर जब यही व्यष्टि समष्टि-रूप में परिणत हो जाता है तो निस्सन्देह बहुत बड़ा प्रभाव उत्पन्न कर सकता है। इस महान् कार्य में पुरुष-स्त्री दोनों के लिए अपना-अपना विशेष सहयोग प्रदान करना अनिवार्य है—यदि वे पापी और कृतघ्न न बनना चाहते हों। इसे दृष्टि में रखते हुए जब हम विश्वविजयी नेपोलियन के इस कथन पर विचार करते हैं—"The future of the child depends entirely on the mother"—अर्थात्, "बच्चे के भावी सदाचार या दुराचार की पूर्ण निर्भरता केवल उसकी माँ पर है," तो हमें ज्ञात होता है कि स्त्री का दायित्व पुरुष की अपेक्षा गम्भीरतर है। प्रसिद्ध आंग्ल विद्वान् स्माइल्स इसी उक्ति का अन्य रीति पर समर्थन करता है—"A pure womanhood must be accompanied by pure manhood," अर्थात्–'शुद्ध स्त्रीत्व का अवश्यम्भावी परिणाम शुद्ध पुरुषत्व है।" इमर्सन इन दोनों से बहुत आगे जाता है। वह कहता है,—"A sufficient measure of civilisation is the influence of good women" अर्थात्, "उत्तम स्त्रियों का प्रभाव पर्याप्त सभ्यता का सूचक है"। अब सोचना चाहिए कि जिस कार्य पर मानवी सभ्यता के बनने-बिगड़ने का प्रश्न निर्भर है उसे अनाप-शनाप के आडम्बरों से तो कभी पूरा नहीं किया जा सकता।

इसमें सन्देह नहीं कि संसार में स्त्रियों का बहुत बड़ा दायित्व है। उनका पद उन्हें इस दायित्व के योग्य बनाता है। "मातृमान पित्रमान, आचार्यमान पुरुषो वेद" में माता को प्रथम स्थान दिया गया है। जगत्प्रसिद्ध व्यवस्थाकार भगवान् मनु ने भी माता को पिता की अपेक्षा सहस्रगुणा सम्मानास्पद माना है। कारण कि माता शिशु की जननी और आदि गुरु है। प्रारम्भ में नवजात शिशु का सामीप्य माता ही से होता है, जो स्वाभाविकतया कई वर्षों तक बना रहता है। माता अपने उत्तम आचार-विचार द्वारा गर्भस्थ शिशु पर प्रभाव डालती हुई उसमें जन्म के पूर्व से ही सुशिक्षा के संस्कार उत्पन्न कर सकती है। परन्तु सम्प्रति संसार में ऐसी कितनी स्त्रियाँ हैं, जो इस सुकार्य के निमित्त से उपर्युक्त पद की अधिकारिणी प्रमाणित हो सकें? पश्चिमी स्त्रियाँ प्रेमोन्माद-वश नित-नये फ़ैशनों के आविष्कार और उनके धारण करने में व्यस्त हैं; और हमारी भारतीय स्त्रियों को माँग-चोटी, तेल-फुलेल, पाउडर-साबुन, गहनों-कपड़ों की चिन्तनाओं से अवकाश नहीं। यह सब किस लिए? स्त्री-सुलभ मर्यादा को भंगकर स्व-प्रकाशन के निमित्त—फिर चाहे तत्सम्बन्धी कार्य क्षेत्र विस्तीर्ण हो या सकुंचित। पर पश्चिमी स्त्रियों में अनेक अवगुणों के होते हुए भी कुछ गुण होते हैं। वे हैं उनकी मौलिकता और स्वातन्त्र्य-प्रियता, जब कि भारतीय स्त्रियों में स्वातन्त्र्य-प्रियता तो नाम को नहीं और अब मौलिकता से भी वे प्रायः वंचित होती जा रही हैं। परिणाम-स्वरूप एक की सन्तान साहसी और यशस्वी होकर संसार को पैरों-तले लाने का स्वप्न देख रही है, जबकि दूसरे की सन्तति प्रायः कायरों के सदृश अपने दासत्व में ही अपना गौरव समझती है। इस प्रकार भारतीय स्त्रियाँ अपनी व्यसन-पूजा-द्वारा देश की भावी संतति को भी बिगाड़ कर अधिकाधिक पुण्य-संचय का प्रयास कर रही हैं। ग़नीमत यह है कि अभी यह पूजा शहरों और क़स्बों तक ही परिमित है। शायद अन्नाभाव के कारण देहातों में इसकी पहुँच नहीं। अस्तु।

शृंगार-प्रियता विलास-प्रियता की द्योतक है और विलास-प्रियता का अन्त होता है अहंकारी, आलसी

कर्तव्यच्युत होने में। इतिहास साक्षी है कि किसी जाति में विलास-प्रियता आ जाती है, तो उसका सर्वनाश ही करके छोड़ती है। उसके बड़ी-बड़ी सभ्यतायें निःशेष हो गईं और बड़े-साम्राज्यों का नामोनिशान मिट गया। फिर जब विलास-प्रियता किसी अन्य देश की नक़ल होती है, श्चय ही इसका परिणाम अधिक भयंकर होता नक़ल करनेवालों में असल के गुण तो आते उलटे उन्हें अपने गुणों से भी हाथ धोना है। बस, वही मसल होती है—'न, खुदा ही न विसाले सनम—न इधर के हुए, न उधर ए।' अस्तु। जबतक यह व्यसन पुरुष तक ही त रहता है तबतक बहुत डरने की बात नहीं। ण कि, विद्वद्वर स्माइल्स के कथनानुसार, wife may be the making or the aking of the best of men"—अर्थात्, याँ सर्वोत्तम पुरुषों को बना वा बिगाड़ सकती स्त्री की सुसंस्कृति पुरुष को पुनः सुधार भी ती है और कम-से-कम भावी संतति के तो फिर सुरक्षित रहने की आशा की जा सकती है। पर एक बार स्त्रियों में व्यसन का संचार हो गया, समझिए कि सब मामला ही चौपट हुआ। बच्चे न से ही अनुकरण-प्रिय होते हैं। सम्भव है माता के पवित्र संस्कारों तथा उपदेशों से प्रभा-होकर आगे भी ठीक बने रहें। पर जब उन्हें भ से ही व्यसन के विषाक्त वातावरण में रहने का र मिले, तो फिर भगवान् ही मालिक हैं! दुःख के साथ कहना पड़ता है कि आज-कल के सम्पन्न घरानों में प्रायः यही बात दीख रही जिस रव में पुरुष बह रहे थे, उसी रव में स्त्रियाँ ह चली हैं। पाश्चात्य स्त्रियों की अंधा-धुन्ध हो रही है। पर किसमें? केवल व्यसन-पूजा में, और किसी बात में कहीं। पाश्चात्य स्त्रियों में वीरत्व है। वे परिश्रमी और स्वावलम्बिनी होती हैं। बड़ी-से-बड़ी अमीरज़ादी छोटे-से-छोटे शारीरिक कार्य से घृणा नहीं करती, प्रत्युत वह उसे अपने कर्तव्य-पालन तथा स्वास्थ्यप्रद व्यायाम का साधन समझती हैं। सारांश यह कि वे प्रकृति-पूजा के साथ प्रकृति के प्रत्येक अंश से लाभ उठाने की भर-पूर कोशिश भी करती हैं। यही बात उन्हें वर्तमान व्यसनजन्य परिस्थिति में भी सक्षम एवं सजीव बना रही है। इसके प्रतिकूल हमारे यहाँ की स्त्रियों को तो हाथ-पैर हिलाना कठिन है। उन्हें तनिक भी सुविधा हुई कि वे काम करना अपनी शान के ख़िलाफ़ समझती हैं और पंगु बने रहने में अपना बड़प्पन मानती हैं। इसका परिणाम है रुग्णता तथा निर्जीवता। अभी देखिए, गत-यूरोपीय महा-समर में वहाँ की स्त्रियों ने किस-किस प्रकार योग दिया। आज तो वे अपनी सेनायें तक बनाने पर आमादा हैं। पर भारत में कितनी स्त्रियाँ हैं, जो महारानी कैकेयी की तरह समर-भूमि में अपने पति के रथ के टूटे हुए धुरे के स्थान में अपना हाथ डाल दें, या राजपूत रानी की तरह अकबर प्रभृति सम्राट् को नीचा दिखाकर उसे मीना-बाज़ार नामक मेला बन्द कर देने पर मजबूर करें, या झाँसी की रानी की तरह क़िले में आक्रमणकारी सेना से घिर जाने पर भी अपने शौर्य-प्रदर्शन-द्वारा उसके बीच से साफ़ निकल जायँ? हम मानते हैं कि इस अवनति के और भी कारण हैं, फिर भी हमारी दृढ़ सम्मति है कि इसका एक प्रबल कारण है हमारी स्त्रियों की विलास-प्रियता।

अब हम इस बात का निराकरण करेंगे कि यह दोष क्योंकर उत्पन्न हुआ। हम प्रथम ही कह चुके हैं कि स्त्री-जाति सदा से ही श्रृंगार-प्रिय रही है। पर निस्सन्देह यह रुचि अत्यन्त न्यूनता के साथ तथा

अवसर-विशेष तक के लिए ही सीमित रही होगी और विलासिता की हद तक तो कदापि न गई होगी अन्यथा आर्य-जाति के अतीतकालिक अभ्युत्थान का दृश्य कभी न दीखता। और न भारतवर्ष में उन नर-नारियों का पुण्यकाल उपस्थित होता, जिनके नाम पर हमें आज भी अभिमान है और जिनका स्मरण होते ही गर्व-जनित उत्साह से आज भी हमारी छाती फूल उठती है। अस्तु! पर जब पौधा एक बार अंकुरित हो गया, तो यह हो सकता है कि वह किसी प्रतिकूल ऋतु में कम बढ़े पर अनुकूल ऋतु पाकर अवश्य बढ़ेगा। और जब संयोग से ऋतु की अनुकूलता बराबर बनी रहे, तो फिर उसकी बढ़ती का क्या कहना? यही बात प्रत्येक अच्छी-बुरी आदत के विषय में कही जा सकती है। व्यसन का भी यही हाल समझिए। अतः जबतक सुशिक्षा का प्रचार और तद्द्वारा कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान रहा तब तक व्यसनों की ओर से अधिकतर उदासीनता ही रही और जीवन की सादगी में ही काफ़ी बनाव-सिंगार समझा जाता रहा। अस्तु। हमारी धारणा है कि मुस्लिम शासन-काल के पूर्व से ही भारतीय स्त्रियों में इस दुर्गुण का आधिक्य होना शुरू हुआ। देश धन-धान्य से परिपूर्ण था ही, फिर कौन-सी रुकावट हो सकती थी? इसका कु-फल था आलस्य और कर्तव्य-पालन से पराङ्मुख होना, जिसका असर भावी संतति पर भी पड़ना स्वाभाविक ही था। फिर देश में मुस्लिम शासन का दौर-दौरा हुआ। इस शासन काल में और चाहे खूबियाँ रही हों, पर उसकी विलास-प्रियता प्रसिद्ध ही है। परिस्थितियों से सभी प्रभावित होते हैं। फलतः स्त्रियाँ भी अक्षुण्ण न रह सकीं और उनकी कुरुचि में अधिक वृद्धि हुई। परिणाम-स्वरूप आर्य-जाति अधिक आलसी और निकम्मी होती गई। पर अब भी बहुत बड़ी कसर बाक़ी थी। संसार में असंख्य शृंगारी वस्तुओं का निर्माण न हुआ था और न भारत में आघात के हेतु अब-जैसी सुगमता थी। वह कसर अंग्रेज़ी राजत्व-काल में पूरी हो गई—हमारा देश यूरोपीय माल की खपत के लिए अच्छी-ख़ासी मण्डी बन गया और हमारी रही-सही सजीवता भी नष्ट हो गई।

परन्तु इन पंक्तियों से हमारा यह अभिप्राय नहीं कि हम अपनी आधुनिक अवनति की सारी ज़िम्मेदारी स्त्रियों पर ही डाल दें और पुरुषों को सर्वथा निर्दोष प्रमाणित करें। हमने अंग्रेज़ों के जो वाक्य ऊपर उद्धृत किये हैं उनमें या तो स्त्री के दायित्व का वर्णन है या उसके प्रभाव का। पर इन बातों को क्रियात्मक रूप देने के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि स्त्री में काफ़ी जानकारी हो। जानकारी या तो पुस्तकावलोकन से हो सकती है, या मौखिक शिक्षण से। पर इसका एक प्रबलतम साधन और भी है; और वह है उदाहरण की उपस्थिति। पर्याप्त पुस्तकीय शिक्षा के अभाव में यह अन्तिम साधन बहुत बड़ा काम करता है। उदाहरण के वैपरीत्य की दशा में मौखिक शिक्षा कभी पूरा काम नहीं देती। स्त्री की पुरुष से नैसर्गिक घनिष्ठता है। दोनों एक-दूसरे की सम्पूर्ति करते हैं। अब तनिक देर के लिए संतति के बनाव-बिगाड़ के प्रश्न को छोड़ दीजिए-और समकालिक तथा समवयस्क मनुष्यों पर ध्यान दीजिए, तो विदित होगा कि जहाँ स्त्री पुरुष को प्रभावित कर सकती है वहाँ पुरुष भी स्त्री पर मनचाहा प्रभाव डाल सकता है। फलतः जो योग्यतर होगा वही दूसरे को स्वानुकूल बना लेगा। अब हम जानकारी की जाँच के निमित्त तनिक विचार करें तो ज्ञात होगा कि भारत में शिक्षा का ह्रास पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में शीघ्रतर हुआ होगा। पुरुषों में तो अब भी जानकारी है और तब भी रही

ी। ऐसी दशा में पुरुषों का यह कर्तव्य था कि यों को पर्याप्त सुविज्ञ बनाये रहने की ओर तर ध्यान देते जाते। पुस्तकों-द्वारा न सही तो ी तथा उदाहरण से। पर जब पुरुष स्वयं वास-ों से प्रेरित होकर अपनी रीति पर शृंगारी बनें स्त्रियों को भी वैसा बनने के लिए प्रोत्साहित तो फिर अनजान स्त्रियों की स्वाभाविक शृंगार-ता के बढ़ जाने में कौन-सी कसर बाक़ी रह ती है ? ऐसा ही हुआ होगा, और ऐसा ही हो है। विशेषतः वर्तमान समय में पाश्चात्य शिक्षा ुशिक्षित कहलानेवाला हमारा 'आँख का अंधा कान का बहरा पर गांठ का पूरा' पुरुष-वर्ग ही शृंगार-वैचित्र्य से स्त्रियों को भी मात करने कोशिश कर रहा है और साथ ही इस बात की ता भी कि स्त्रियाँ उसे मात करें ! इस होड़ में श की निर्धनता बढ़ती जा रही है और विदेश ा-माल हो रहे हैं। यदि देश का धन देश ही में ा तब भी हमारी कुछ-न-कुछ तसकीन होती ी—आधे से अधिक भारतीयों के भूखों मरने के क कारणों में यह एक कारण तो न होता !

सारांश यह कि स्त्रियों की वर्तमान दयनीय स्था के हेतु पुरुषवर्ग अवश्य उत्तरदायी है और बड़ी सीमा तक। अन्य बातों की तरह इसमें उसने अपनी स्वाभाविक सबलता का दुरुपयोग ा है। प्रतिक्रिया का घटित होना भी अनिवार्य और आज वही हम भारतीयों की कायिक मानसिक निर्बलता के रूप में प्रतिलक्षित हो है, जो अब सहस्र प्रयत्नों से भी दूर होने का नहीं लेती ; भारत में असहयोग-आन्दोलन का पात हुआ। देश ने पराधीनता से मुक्ति पाने के व्यसन-त्याग द्वारा शुद्धतर होने की पावन ज्ञा की, पर उसे पूरी न कर सका। पूरी कैसे करता ? मर्दों की पुरानी आन मिट जाती न ! और औरतों का त्रिया-हठ तो मशहूर ही है। स्वराज्य हो या न हो, हमें अपने हलुए-माँडे से काम— उसमें तो कोई कमी-बेशी नहीं होने की ! फिर जब शरीर की शोभा ही न रही, तो स्वराज्य लेकर क्या भाड़ में झोंकना है ? जले वह सोना, जिससे कान फटे ! यह है हमारे उस मध्यमश्रेणी के पुरुष-स्त्रियों की मानसिक प्रवृत्ति, जो स्वर्गीय लाला लाजपतराय के कथनानुसार किसी राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रारम्भ-कर्त्री हो सकती है। अस्तु। महात्माजी ने अहिंसा के ख़याल से देशी मिलों तक के कपड़ों को हेय बतलाकर खद्दर-प्रयोग का आदेश किया; पर उन्हें यह ख़याल नहीं कि खद्दर से तो हमारा, विशेषतः हमारी कोमलांगी कामिनियों का तो, कलेवर ही क्षत-विक्षत हो जायगा ! हमारे शरीर को तो बस रेशम, टसर तथा कोसा इत्यादि से ही आराम मिल सकता है, जो असंख्य कीटों की हत्या-द्वारा तैयार किया जाता है। फिर यदि सूती कपड़े का ही प्रश्न हो, तो ऐसा मोटा कपड़ा किस काम का, जिससे शरीर की आभा ही प्रफुल्लित न हो ? इसके अतिरिक्त मोटे कपड़ों का बोझ कौन सम्हाले ? यह कोई आभूषण थोड़े ही है कि जितने अधिक और भारी हों उतने ही कम और हलके जान पड़ें। आभूषण के मामले में तो हमारी शृंगार-प्रिय स्त्रियों ने कमाल ही कर दिया है। हम ऊपर कह आये हैं कि भारतीय स्त्रियाँ व्यसन-पूजा में पाश्चात्य स्त्रियों की अन्धानुयायिनी बन रही हैं। इसका अभिप्राय केवल यही है कि वे अपनी अधिक-से-अधिक नुमाइश करना चाहती हैं। नक़ल करनेवाले प्रायः ऐसा करते ही हैं। इसके निमित्त उन्हें पाश्चात्य स्त्रियों की अपेक्षा कहीं अधिक आभूषणों की आवश्यकता है और फिर इस प्रकार मानों वे अपनी भारतीय मौलिकता भी बनाये हुए

हैं, अतः क्षम्य हैं (?)। भारत दिनों-दिन ग़रीब हो रहा है और इस ग़रीबी को प्रकट करने के हेतु यहाँ की स्त्रियों में चाँदी के स्थान में सोने के जेवरों की बढ़ती है! इन्हें यह मालूम नहीं कि ऐसा करना भारत के ग़रीबों का उपहास करना है। इन बेचारियों को इस बात का पता नहीं कि जिसे वे अपने घर का धन समझती हैं वह वस्तुतः देश का धन है; और करोड़ों देशवासियों के भूखों मरते हुऐ इस धन-प्राप्ति को इस भाँति बेकार बना देने का उन्हें कोई नैतिक अधिकार नहीं है। उन्हें यह ज्ञात नहीं है कि "दानेन पाणिर्नतु कंकणेन"—अर्थात्, हाथ की शोभा दान से है, कंकण से नहीं। इसके अतिरिक्त भोजन-वस्त्र की बात तो समझ में भी आती है, पर आभूषण-भार से शरीर को पीड़ित करना कहाँ की बुद्धिमानी है? स्त्रियाँ तो स्त्रियाँ, परन्तु हम उन पुरुषों को क्या कहें, जो सब जानते-बूझते हुए, कभी-कभी कष्ट सहकर भी, अपनी वा अपनी स्त्रियों की व्यसन-पूर्ति कर रहे हैं? संक्षिप्ततः यह है उस श्रृंगार-प्रियता का हाल, जिसकी श्रृंखलाओं में हमारा पुरुषवर्ग और अधिकतर हमारा स्त्री-समाज आज जकड़ा हुआ है और जिसे छोड़े बिना कम-से-कम उस रीति पर तो हमारा देश स्वाधीन हो नहीं सकता, जिस रीति पर वह स्वाधीन होकर अपनी आध्यात्मिकता द्वारा समस्त संसार को नवयुग का संदेश देना चाहता है। हाँ, पशुबल की प्राप्ति तो चाहे थोड़े ही त्याग और प्रयत्न से हो सके, पर यह तो तयशुदा बात है कि अभीष्ट स्वाधीनता के निमित्त देश को उस बल की आवश्यकता नहीं।

जैसा हम इस लेख के आरम्भ में बतला चुके हैं यह बात तो स्वयं-सिद्ध हैं कि शारीरिक श्रृंगार का उद्देश्य है सौंदर्य-वृद्धि। पर सत्य तो यह है कि प्रकृति स्वयं सुन्दर है और उसे श्रृंगार की ज़रूरत नहीं। हाँ, वास्तविक सुन्दरता लाने के लिए यह ज़रूर होना चाहिए, कि प्राकृतिक विधानों का पूर्णतः पालन किया जाय। खान-पान, आचार-विचार, रहन-सहन की उत्तमता, शरी एवं आत्मा दोनों के लिए स्वास्थ्यप्रद है; और इस स्वास्थ्य में जो सौन्दर्य है, उसे दुनिया-भर का बनाव सिंगार पैदा नहीं कर सकता। फिर जो सौन्दर्य केवल कृत्रिम साधनों द्वारा प्राप्त किया जाय, उसका न तो कोई मूल्य है और न उसमें कोई स्थायित्व है, प्रत्यु कामवासना को अस्वाभाविक रीति पर उत्तेजित क वह हानिकारक अवश्य हो सकता है। अतः मानव जीवन के निमित्त से अधिक विचार करने प ज्ञात होगा कि आत्मा का श्रृंगार ही उस जीवन क सर्वस्व है, जिससे शरीर में भी ऐसे आकर्षण क प्रादुर्भाव निश्चित है, जो आयु-भर समान-रूपेण स्थि रहते हुए लाभदायक ही होगा। इसके हेतु स्त्रिय को सद्गृहिणी बनने की आवश्यकता है। उन्हें समझना चाहिए कि संसार में उनका अपना व्यक्ति भी है, जिसका उद्देश्य पवित्र एवं महान् है। उनक जन्म स्वयं अवनत होकर पुरुषों को अवनत बना के लिए नहीं हुआ, प्रत्युत स्वयं उन्नत होकर उन भी उन्नत बनाने के लिए हुआ है। महात्मा गांध अपनी "यङ्ग इण्डिया" नामक पुस्तक में कहते हैं—"Woman must cease to consider hersel the object of man's lust. The remedy more in her hands than man" अर्थात्, "स्त्रि को यह ख़याल छोड़ देना होगा कि वे पुरुष की भोग सामग्री हैं। उपाय पुरुष की अपेक्षा अधिकत उन्हींके हाथों में है।" प्रकट ही है कि जिस दि स्त्रियाँ अपने व्यक्तित्व को अनुभव करके और करा अपने कर्तव्यों की ओर ध्यान देंगी, उसी दिन इ आडम्बर-पूर्ण श्रृंगार की इतिश्री हो जायगी—उ दिन उनके शुद्ध श्रृंगार से वह आभा विकीर्ण होग

से पुरुषों के तमाच्छन्न हृदय भी आलोकित हो ो । हमारे यहाँ की स्त्रियों को यह ख़ूब ल रखना चाहिए कि सुधार अधिकतर अपने ही हुआ करता है, चाहे उसमें अन्यों का सा- ही क्यों न हो । पर वर्तमान अन्यायी संसार षों से यह आशा रखनी व्यर्थ है । कारण कि अपने उस अधिकार से सहज ही बंचित होना न करेगा, जिसके बरतने का वह शताब्दियों भ्यस्त हो रहा है । ऐसी दशा में क्या स्त्रियाँ ही जगद्विख्यात रूसो (Rousseau) के इस को कि "स्त्री की पुस्तक संसार है और संसार जितना समझती है उतना पुस्तकों से नहीं" ार्थ कर पर्याप्त सुशिक्षिता बनती हुई उन्नति के पर अग्रसर होने का पुण्य-प्रयास करेंगी ? क्या पाश्चात्य स्त्रियों की वे नक़ल कर रही हैं, उनके वेष-भूषा के स्थान में वे उनके आन्तरिक गुणों स प्रकार अपनाना सीखेंगी कि उसपर अपने- की गहरी छाप हो ? यह भी ख़याल रहे कि कार्य में उनका असफल होना जितना निश्चित तना ही दूसरे में सफल होना भी । फिर ऐसा पर नक़ल करने का इलज़ाम भी नहीं लग ा । सद्गुणों पर जाति-विशेष का इजारा नहीं, मनुष्य-मात्र की सम्पत्ति हैं । हाँ, यह दूसरी है कि जाति-विशेष की बाह्य क्रियाओं की दृष्टि युक्त गुणों में भी कुछ हेर-फेर दीखने लगे ।

ऊपर यह भी कहा जा चुका है कि स्त्रियों की न अवनति में पुरुषों का बहुत बड़ा हाथ है । थ ही यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि भले-बुरे का थोड़ा-बहुत ज्ञान प्रायः प्राणि-मात्र या जाता है । फिर स्त्रियाँ तो मनुष्य हैं; अतः के अभाव में भी वे ऐसी बहुत बातों को समझ ी हैं, जिनसे उनका हित या अहित हो । परि- ोगियों के प्राबल्य को मानते हुए भी यह बात टाली नहीं जा सकती । सभी स्त्रियाँ साधारणतः इतना तो जान ही सकती हैं कि उनके जिन व्यसनात्मक व्यवहारों से शरीर की नुमाइश होती अथवा गृह-कार्यों में अड़चन पड़ती है, वे सब त्याज्य हैं, अतः इस जानकारी की हद तक वे अवश्य दोषी हैं । इसमें तनिक भी सन्देह नहीं कि जितना शारीरिक शृंगारों को परित्याग किया जायगा उतना ही आत्मा शृंगारमयी होती जायगी, जिससे उत्तरोत्तर उन्नति होना निश्चय है । असहयोग-काल में जब महात्माजी देश-भ्रमण करते हुए आसाम पहुँचे थे, उस समय वहाँ की स्त्रियों की शृंगार-शून्य तथा आभूषण-रहित सादगी पर मुग्ध होकर उन्होंने वैसी ही स्त्रियों में भावी उन्नति के लक्षण होने की बात प्रकट की थी । हमें विश्वास है कि भारतीय स्त्रियाँ इस बात को हृदयङ्गम करती हुई अपने शरीरों को अनावश्यक बोझ से हलका कर "सरल जीवन और उच्च विचार" के अनुसार अपना रहन-सहन बनाने की कोशिश करेंगी और अपने सद्प्रयत्नों से पुरुषों—विशेषतः बच्चों—को सुधार कर भारत के प्रति अपने उस सहज वात्सल्य का परिचय देंगी, जिसके बिना आज उसकी यह अधोगति हो रही है । तथास्तु ।

इक़बाल वर्मा 'सेहर'

कामना

जग के झूठे वैभव को
लेकर क्या नाथ करूँगी मैं ।
कुम्हलाये आशा-कुसुमों से
पुनः न अङ्क भरूँगी मैं ।
रोम-रोम में रमो तुम्हीं नित—
नाम तुम्हारा ही गाऊँ ।
इच्छा है बस यही, तुम्हारे—
चरणों की रज बन जाऊँ ॥

लीलावती 'सत्य'

जनन-प्रक्रिया

(त का शेष)

पौधे

'फूल' पौधोंकी जनन-सम्बन्धी इन्द्रियाँ हैं। कुछ फूल 'नर'-तत्त्व को उत्पन्न करते हैं और कुछ फूल 'मादा'-तत्त्व को। फूलों के नर-भाग को अंग्रेज़ी में 'स्टेमन' तथा मादा-भाग को 'पिस्टिल' कहते हैं। नर-भाग (स्टेमन) एक प्रकार की सूक्ष्म शुद्ध धूलि होती है, जिसे पुँ-केसर (पोलन) कहते हैं। यही फूल का जनन-सम्बन्धी नर-तत्त्व है। मादा-भाग (पिस्टिल) फूल के मध्य में होता है और वहीं पर फूल का जनन-सम्बन्धी मादा-तत्त्व (ओव्यूल) रहता है। यदि नर तथा मादा-तत्त्व एक ही फूल के भीतर हों तो वहीं 'बीज' की सृष्टि हो जाती है, परन्तु यदि ये दोनों तत्त्व भिन्न-भिन्न पौधों पर स्थित हों तो नर-पुष्प के पुँ-केसर को वायु उड़ाकर निकटस्थ मादा-पुष्प के भीतर पहुँचा देती है। इस विधि से कई अवस्थाओं में नर तथा मादा-जाति के पुष्पों के बहुत दूर स्थित होने पर भी 'संयोग' हो जाता है। मधु-मक्खियाँ, पतंगादि अपने पंखों और पाँवों द्वारा उत्पादक धूलि को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाकर जनन-प्रक्रिया में बड़ी सहायता पहुँचाते हैं। छोटी चिड़िया और बेचारी 'स्नेल' इस दृष्टि से बड़े काम की हैं। पौधों की जनन-प्रक्रिया में भाग लेने वाले कई कीट, पतंगों का इतना महत्त्व है कि कविता की भाषा में उन्हें 'फूलों' के विवाह का 'पुरोहित' कहा गया है।

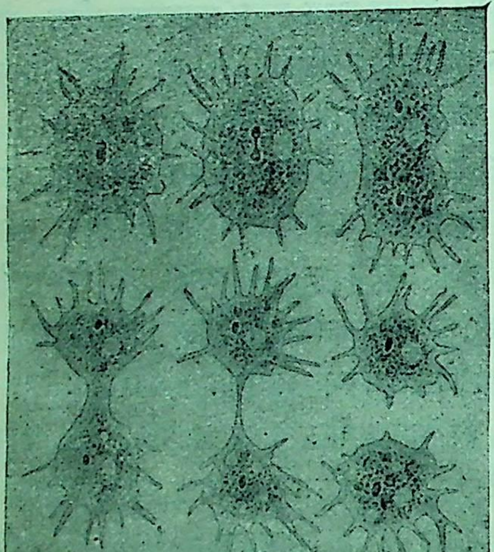

अमीबा और उसका विभजन

छोटे प्राणी

कुछ छोटे प्राणियों में जिन विधियों द्वारा 'संयोग' अथवा 'जनन-प्रक्रिया' होती है, वे पौधों की अपेक्षा विभिन्न, अनेक तथा अधिक आश्चर्यजनक हैं। उदाहरणार्थ, मछलियों तथा साँपों में माता पिता के शरीर से, उनके आपस में मिले बिना ही, नर तथा मादा तत्त्व निकल आते हैं और उन तत्त्वों का माता-पिता के शरीर के बाहर ही संयोग हो जाता है। इस अवस्था में एक का दूसरे से स्पर्श बिलकुल नहीं होता। प्राणियों की इस श्रेणी में जनन-प्रक्रिया ठीक वैसी ही होती है, जैसी उन पौधों में, जिनमें नर तथा मादा पुष्प एकही पौधे के भिन्न-भिन्न भागों में स्थित होते हैं। मादा मछली के शरीर में बहुत-से अण्डे ख़ास मौसम में पैदा हो जाते हैं। कई बार इनकी संख्या हज़ारों तक होती है। इसी समय नर-मछली के अण्डकोष, जो कि उसके शरीर में (कोष्ठगुहा—एबडोमिनल कैविटी में विद्यमान होते हैं, बढ़ने लगते हैं। इन्हीं अण्डकोष में वीर्य-कण होते हैं। जब मादा अपने अण्डों को सुरक्षित रखने के लिए जगह ढूँढती है तो नर चुपचाप उसके पीछे हो लेता है और ज्योंही वह अण्डे देती है त्योंही वह उनपर वीर्य-कण डाल देता

मछली

इसीसे संयोग हो जाता है और नई मछलियों ीवन प्रारम्भ हो जाता है। उत्तरी समुद्र का जल कई तों पर मछली के अण्डों से गदला हो जाता है। यह प्रक्रिया मेंडक की कई जातियों में ज्यों-की- मिलती है। जिस समय मादा अपने अण्डे सुरक्षित रखने वाली होती है, नर उसकी पीठ पर चढ़ जाता है; और तबतक चढ़ा रहता है, जबतक कि सब अण्डे सुरक्षित तौर रख नहीं दिये जाते। मादा-द्वारा अण्डों के रक्खे ही नर उनपर वीर्यकण डाल देता है। इस ार नर तथा दोनों के उत्पा- -तत्त्वों के संयोग जनन प्रारम्भ ा है। मादा को ाडे रखने में ी समय लगता तबतक नर इस- पीठ पर चढ़ा रहता है। इस मय उसके पाँवों अजीब प्रकार के अँगूठे-से निकल आते हैं जिनसे ह मादा की पीठ पर चिपटा रहता है। ये अँगूठे ी समय निकलते हैं। बच्चा पैदा करने का मौसम माप्त हो जाने पर ये क्षणिक अँगूठे लुप्त हो ाते हैं—क्योंकि, फिर उनकी कोई आवश्यकता नहीं हती। ये दोनों उदाहरण "बहिः संयोग" के हैं— नमें नर तथा मादा तत्त्वों का संयोग मादा के शरीर बाहर होता है।

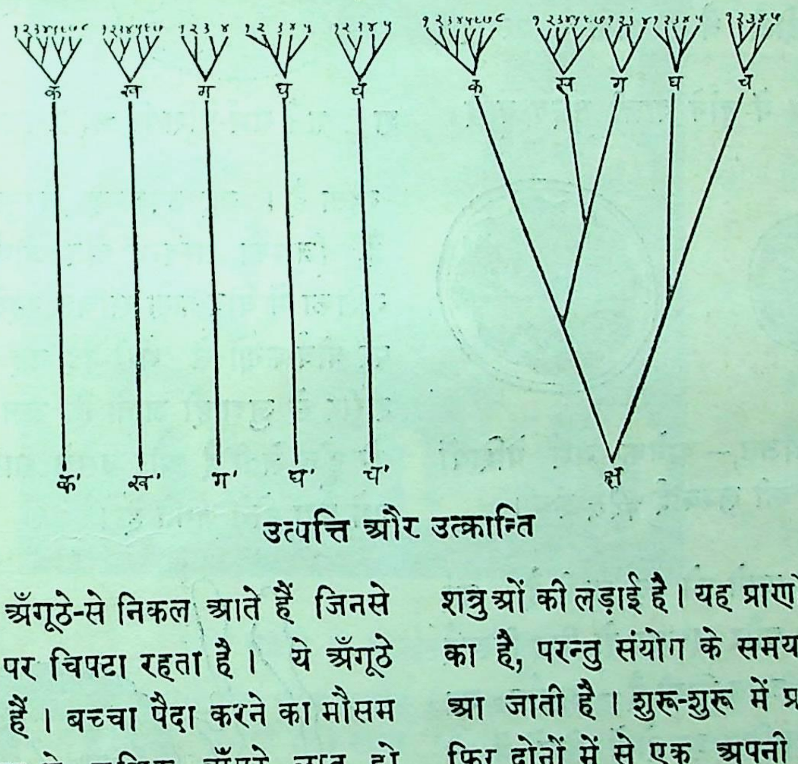

उत्पत्ति और उत्क्रान्ति

कुछ जातियों में, जिनमें "अन्तः संयोग" होता , नर और मादा एक-दूसरे को स्पर्श नहीं करते रन्तु फिर भी कई अज्ञात कारणों से नर का वीर्यकण मादा के शरीर में पहुँच जाता है और वहाँ पर नर-तत्त्व के संयोग से अण्डा बढ़ने लगता है। इस प्रकार की जनन-प्रक्रिया में नर तथा मादा का शारीरिक संयोग नहीं होता। संस्कृत-साहित्य में बादल के गर्जने से बगुली के गर्भ हो जाने का वर्णन पाया जाता है।

स्नेल

साँपों में नर तथा मादा की जननेन्द्रियों के पारस्परिक स्पर्श-मात्र से संयोग हो जाता है। स्नेल उभय-लिंगी प्राणी है—अर्थात्, एक ही स्नेल नर और मादा दोनों एक साथ होता है। टी. आर. जोन्स ने इसका वर्णन निम्न प्रकार किया है—

"इनमें जिस विधि से संयोग होता है, वह कुछ कम आश्चर्यजनक नहीं है। इस संयोग का प्रारम्भ असाधारण रीति से होता है। देखने वाला समझता है कि यह दो प्रेमियों का मिलाप नहीं परन्तु शत्रुओं की लड़ाई है। यह प्राणी स्वभाव से शान्त प्रकृति का है, परन्तु संयोग के समय दोनों में अजीब फुर्ती आ जाती है। शुरू-शुरू में प्रगाढ़ आलिंगन होता है, फिर दोनों में से एक अपनी ग्रीवा के दाईं ओर से एक चौड़ी और छोटी-सी थैली को खोलता है। यह थैली तनकर कटार जैसी हो जाती है और गले के साथ ऐसी लगी होती है, मानों दीवार के साथ चिपकी हुई हो। इस अजीब हथियार से दूसरे प्रेमी के असुरक्षित भाग पर प्रहार किया जाता है। वह भी जल्दी से अपने खोल में घुस कर इस आघात से बचने की पूरी कोशिश करता है। परन्तु अन्त में

किसी खुले स्थान पर चोट लग ही जाती है और उसके लगते ही इस प्रेम-प्रहार का बदला लेने के लिए आहत स्नेल उद्विग्न हो उठता है और अपने प्रतिद्वन्द्वी को चोट पहुँचाने में कुछ उठा नहीं रखता। इस प्रेम-कलह में उनकी कटारों पर लगे छोटे-छोटे काँटे प्रायः टूट कर ज़मीन पर गिर पड़ते हैं अथवा इनके ज़ख़्मों पर चिपक जाते हैं। इस प्रारम्भिक उत्तेजना के कुछ देर बाद दोनों स्नेल चेतन होकर अधिक प्रबलता से लड़ने के लिए आगे बढ़ते हैं। अब वह कटार संकुचित होकर शरीर में आ जाती है और एक दूसरी छोटी थैली दोनों के उत्पादक छिद्रों में से निकलकर आगे को बढ़ जाती है। यह स्नेल की जननेन्द्रिय है, और इसपर दो छिद्र दिखाई देते हैं। क्योंकि स्नेल उभय-लिंगी है—अर्थात् नर तथा मादा दोनों है—इसलिए इन दोनों छिद्रों में से एक तो स्नेल का मादा होने का छिद्र है और दूसरा नर होने का। इस दूसरे छिद्र में से दोनों की एक इञ्च लम्बी चाबुक-जैसी नर-इन्द्रिय धीरे-धीरे खुलती है। तब दोनों स्नेल परस्पर संयोग करते हैं और दोनों के, एक दूसरे से, गर्भ ठहर जाता है।”

मनुष्य की गर्भावस्था में होने वाली सूक्ष्म वृद्धि

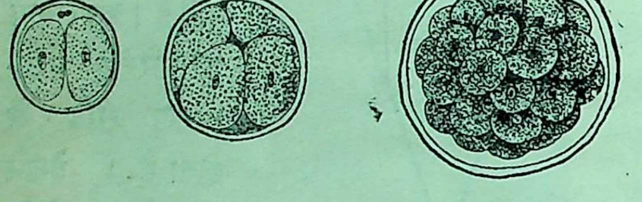

गर्भपेशी का विभजन,—अनेक गर्भ पेशियों का बन जाना; प्रत्येक की लम्बाई $\frac{१}{१२५}$ इंच।

ओयस्टर भी उभय-लिंगी प्राणी है, उसमें भी आत्म-संयोग हो जाता है। आरगोनट एक प्रकार की मछली होती है। इसमें संयोग बहुत ही विचित्र रूप से होता है। नर के शरीर के बायें हिस्से पर एक छोटी-सी थैली होती है, जिसमें एक कुण्डलीदार उपकरण रहता है। यह उपकरण वस्तुतः एक नलिका होती है, जिसका सम्बन्ध अण्डकोषों से होता है। उस नलिका में वीर्य-कण संचित रहते हैं। पूर्ण वृद्धि होने पर वीर्य-कणों से भरी हुई यह थैली आरगोनट के शरीर से जुदा हो जाती है, जल में तैरती-तैरती मादा को ढूँढ लेती है और उसके साथ संयोग से मादा को बच्चे पैदा होने लगते हैं।

आरगोनट

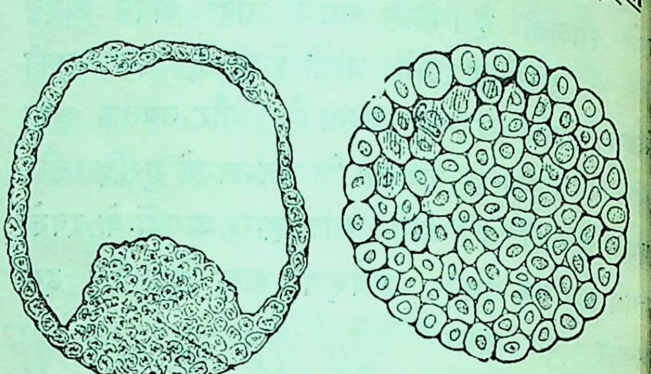

शनैः शनैः गर्भ-पेशियों की रचना ऐसी हो जाती है

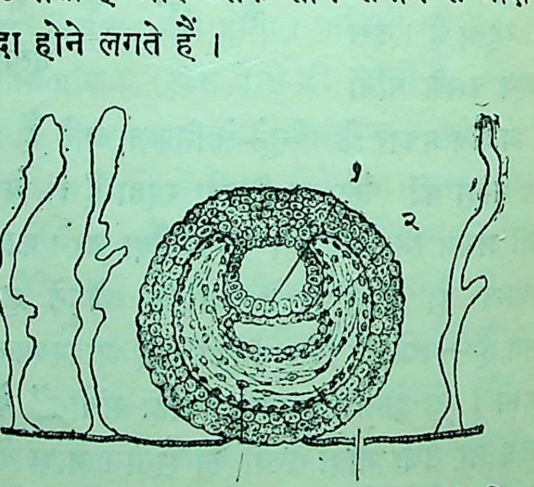

भीतर का वह शून्य स्थान तीन भागों में विभक्त हो जाता है। पहले भाग से अन्नपचन संस्था, दूसरे से त्वचादि बाह्य भाग और तीसरे से आगे चलकर अस्थि-संस्था, स्नायु संस्था आदि का निर्माण होता है।

एक विशेष प्रकार की मक्खी पाई गई है, जो की सड़ाँद की गन्ध से अण्डे देने लगती है।

यदि इस मक्खी के गन्ध लेने वाले ज्ञान-तन्तु काट लिये जायँ, तो वह अण्डे देना बन्द कर देती है। नाक पर आघात लगने लावा उसे दूर स्थानों पर कितनी बड़ी भी चोट न लगे, वह देना बन्द नहीं । जननेन्द्रिय साथ घ्राण के न्ध का यह त उदाहरण है कभी-कभी मधु-ी, नर के साथ संयोग किये बिना ही, देने लगती है उन अण्डों से । नर-मक्खी होती है। नर ाथ संयोग के वह छत्ते के में अण्डे देती ौर उन अण्डों मेशा मादा-पैदा होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि उसमें इच्छा के अनुसार, बिना संयोग के, अण्डे रने की शक्ति है, जिससे नर-मक्खियाँ पैदा है। मधु-मक्खियाँ, बड़ी मेहनत से, सैकड़ों क्खियों को रानी-मक्खी के सुख के लिए ी हैं। जब मधु-मक्खियों की 'रानी' संयोग के आकाश में उड़ती है, तो नर-मक्खियाँ उसके पीछे हो लेती हैं। जब एक नर-मक्खी का रानी-मक्खी से संयोग हो जाता है, तब वह अपनी जननेन्द्रिय को उसके शरीर में छोड़कर मर जाता है। अन्य नर-मक्खियाँ अब किसी काम की नहीं रहतीं, अतः पतझड़ में शक्तिशाली मक्खियाँ उनका संहार कर देती हैं।

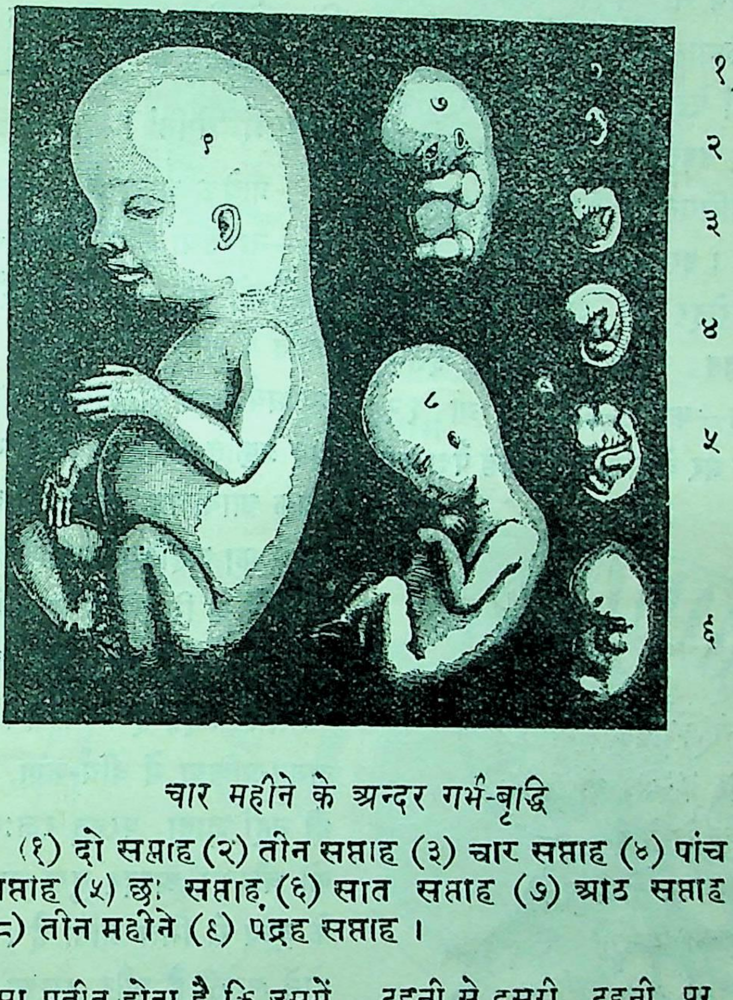

चार महीने के अन्दर गर्भ-वृद्धि

(१) दो सप्ताह (२) तीन सप्ताह (३) चार सप्ताह (४) पांच सप्ताह (५) छः सप्ताह (६) सात सप्ताह (७) आठ सप्ताह (८) तीन महीने (९) पंद्रह सप्ताह।

तितली

तितली का जनन-सम्बन्धी जीवन भी अनोखा है। वह कुछ महीनों तक रोमावृत्त अवस्था में रहती है—फिर साल-दो साल तक चमकते हुए कीट की अवस्था धारण करती है। इसके पीछे दीवार की दराज़ में या पेड़ की छाल के नीचे, रेशम के कीड़े के घर की तरह, एक खोल बनाकर सोई रहती है। अन्त में शानदार, रंगबिरंगे परों का शृंगार कर एक टहनी से दूसरी टहनी पर मँडराने लगती है। इसे भोजन की भी आवश्यकता नहीं होती। मादा बड़ी शान्त होती है, चुपचाप पड़ी रहती है। नर की घ्राण-शक्ति इतनी तीव्र होती है कि उसे कई मीलों से मादा की गन्ध आ जाती है और ज्योंही वह उड़ने योग्य हो जाता है, फ़ौरन खेतों और जंगलों को पार करता हुआ अपनी प्रिया के

पास जा पहुँचता है। प्रणय के प्रथम मिलन में ही वह अभागा इस संसार से चल बसता है। इसके बाद मादा भी अनगिनत अण्डे जनकर तत्क्षण अपने प्रीतम के पास उस लोक में पहुँच जाती है। यह प्रेम की कैसी करुण कहानी है!

चींटी

प्रकृतिवादी फ़ेबर महोदय ने चींटियों के जनन-सम्बन्धी जीवन के विषय में अनेक आश्चर्यजनक बातों का पता लगाया है। उनका कथन है कि कई चींटियाँ ऐसी होती हैं, जिनमें मादा संयोग के लिए उड़ती है। अनेक नर-चींटे उड़-उड़ कर उसका आलिंगन करते हैं और उसके पीछे ही वे मर जाते हैं। इस प्रकार मादा के पास वीर्य-कणों की एक धरोहर हो जाती है, जिसमें नरों के वीर्य-कण सुरक्षित रक्खे रहते हैं। इसके बाद वह कई साल तक—कम-से-कम ११ या १२ साल तक—बिना किसी नर के संयोग के अंडे पैदा कर सकती है। वस्तुतः यह बड़े अचम्भे की बात है कि इतने समय तक वीर्य-कण सुरक्षित रूप से पड़े रह सकते हैं।

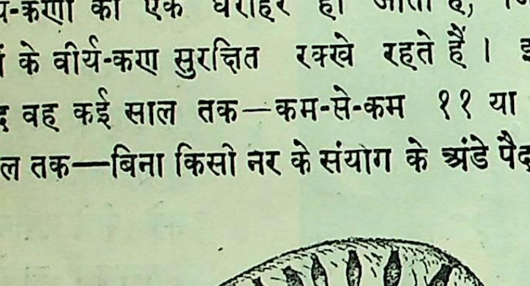

तीसरे सप्ताह में मनुष्य का गर्भ-पिण्ड (बढ़ा चित्र)

बड़े प्राणी और मनुष्य

बड़े प्राणियों में नर तथा मादा के उत्पाद तत्त्वों के मिलने से जीव उत्पन्न होता है। इ क्रिया के लिए कुछ सहायक तथा आवश्यक इन्द्रिय भी परमात्मा ने बनाई हैं—नर में 'शिश्न' तथ मादा में 'योनि'।

प्रत्येक जाति में—आदमी, घोड़ा, बकरी स में—नर तथा मादा के जनन-सम्बन्धी गुह्य अंग ए दूसरे को दृष्टि में रखकर ही बनाये गये हैं। प्रत्ये जाति के नर तथा मादा के गुह्य अंगों में ए आश्चर्यजनक पारस्परिक अनुकूलता पाई जाती है यह प्रकृति का बड़ा भारी चमत्कार है। यह आ श्यक आयोजन अपनी जाति को हमेशा बना रखने का जहाँ शक्तिशाली उपाय है, तहाँ दो विभि जातियों के मिलने के मार्ग में रुकावट भी है।

नर तथा मादा की जननेन्द्रियों के मेल 'संयोग' कहते हैं। संयोग ही जनन-प्रक्रिया है जनन-प्रक्रिया में वीर्य-कण, रजःकण से सिर्फ मि ही नहीं जाता, परन्तु रजःकण की पतली-सी भि को चीरकर अन्दर घुस जाता है और उसके अन के द्रव्य से मिल जाता है। फिर रजःकण की वृ होने लगती है और उसका क्रम वही होता है, जिस वर्णन 'कोष्ठ-विभजन' की क्रिया में पहले किया चुका है। कई मछलियों के रजःकणों में छोटे-छो छिद्र देखे गये हैं, जिनके द्वारा वीर्य-कण को अन्दर प्रविष्ट होने का मार्ग मिल जाता है। वीर्य की एक लम्बी-सी पूँछ होती है, उसकी सहायता वह रजःकण को ढूँढता हुआ योनि में गति करता

कण की पृष्ठ को छूते ही वह उसे चीर कर से अन्दर घुस जाता है। तत्पश्चात् रजःकण ष्ठ का द्रव्य बाहर से जम जाता है, जिससे कोई वीर्य-कण उसे र प्रविष्ट नहीं कता। यह जमाव कण की रक्षा के कवच का काम है। जब कभी रुग्ण कण में कई वीर्य- प्रविष्ट हो जाते एक अद्भुत की उत्पत्ति होती यदि रजःकण में वीर्य-कण प्रविष्ट जायँ, तो एक मिला जोड़ा पैदा होता परन्तु वह अस्वा- क अवस्था है।

जःकण वीर्य-कण संयुक्त हो जाता 'गर्भ' रह जाता रजःकण शीघ्र ही शय की आभ्यन्त- झिल्ली पर चिपक है और गर्भावस्था समय प्रारम्भ हो है। मनुष्य- में प्रायः यह समय कलैंडर के नौ महीनों या मास के दस महीनों का होता है। इस समय को मासिक-धर्म नहीं होता। यद्यपि कई में, गर्भ ठहरने पर भी, विशेषतः प्रारम्भिक महीनों में, मासिक-धर्म कुछ विस्तृत रूप में पाया जाता है, तथापि यह असाधारण अवस्था है।

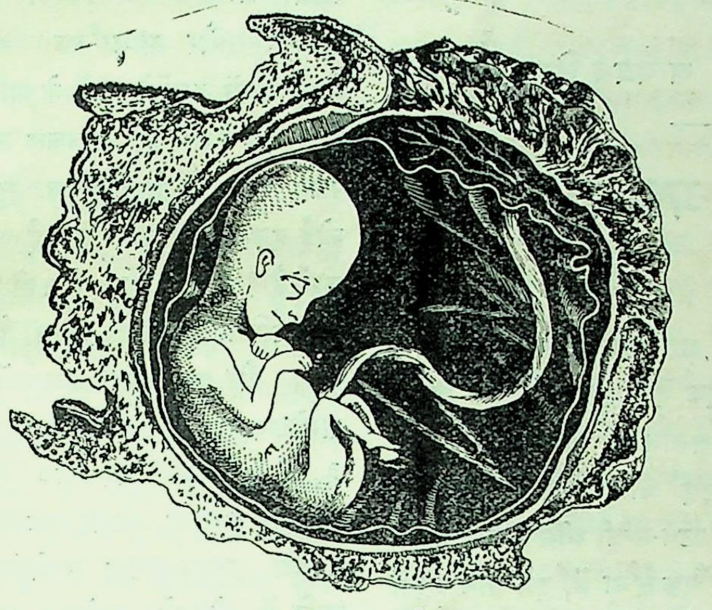

परिणत गर्भ

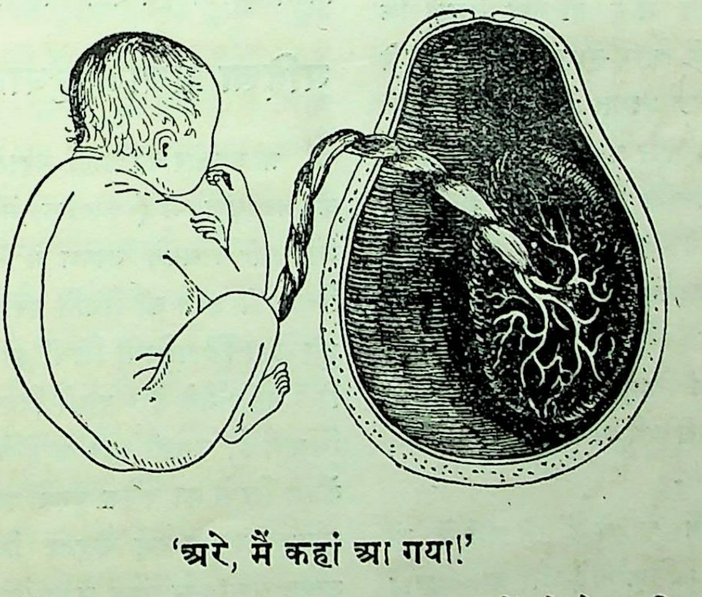

'अरे, मैं कहां आ गया!'

गर्भ के समय रजःकण विकास की विविध अवस्थाओं में से गुज़रता है। इनमें से कई परिवर्तन हूबहू वही होते हैं, जो हमें भिन्न-भिन्न प्रकार के छोटे प्राणियों में मिलते हैं। एक समय आता है जब बढ़ता हुआ मानवीय भ्रूण अण्डे से पैदा हुई छोटी-सी चिड़िया जैसा होता है। फिर समय आता है, जब कि वह कुत्ते की शक्ल से इतना मिलता है कि बड़े-बड़े विज्ञानवेत्ता धोखा खा सकते हैं। ऐसा भी समय आता है, जब भ्रूण के हाथ-पाँव एक ख़ास मछली के बाजुओं से बिलकुल मिलने लगते हैं। इसके बाद भ्रूण का सारा शरीर बन्दर की तरह बालोंसे ढक जाता है। भ्रूण की क्रमिक वृद्धि के इन दृष्टान्तों को देकर विकासवादी कहा करते हैं कि मनुष्य तथा अन्य छोटे प्राणियों का उद्भव-स्थान एक ही है। परन्तु यह उनकी भूल है। इन उदाहरणों से यह सिद्ध नहीं होता कि सबकी उत्पत्ति एक ही स्थान से

हुई है। हाँ, यह अवश्य पता चलता है कि इन विविध योनियों को बनानेवाला एक ही हाथ है, जिसकी कारीगरी के एक ही से निशान सर्वत्र बिखरे हुए दिखाई देते हैं।

सत्यव्रत सिद्धान्तालङ्कार

स्फुट प्रसंग

स्त्रियों की हलचल

"स्त्रियों का आन्दोलन आज संसार की बड़ी-से-बड़ी हलचलों में से एक है और एक ऐसी हलचल है कि जिसके अन्दर संसार-भर के मानव-समाज के जीवन का निर्णय समाविष्ट है।" यह कहते हुए अखिल-भारतीय महिला-शिक्षा-सुधार-सम्मेलन की संगठन-मन्त्री श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय ने, कलकत्ते की एक सभा में, इसे तीन भागों में विभाजित बताया है—राजनैतिक, शिक्षा-सम्बन्धी और सामाजिक। इसमें, उन्हीं के कथनानुसार, मताधिकार का आन्दोलन तो वस्तुतः भारत में है ही नहीं, जैसा कि यूरोप में है। (क्योंकि यूरोप में शिक्षा-द्वारा जागृति फैलने से स्त्रियों में स्वदेश-सेवा की इच्छा जागृत हुई है, अतः इससे पहले शिक्षा की ज़रूरत है) इस प्रकार शिक्षा-सम्बन्धी और सामाजिक सुधार ही भारतीय स्त्रियों के आन्दोलन का तात्कालिक प्रश्न है। और ये अन्योन्याश्रय हैं। शिक्षा बिना प्रगति कठिन है और शिक्षा में पूर्णता तबतक सम्भव नहीं जबतक कि सामाजिक कठिनाइयों को न दूर कर डाला जाय। इसलिए, उनके कथनानुसार, हमें अपने सामाजिक जीवन में बड़ा क्रान्तिकारी परिवर्तन करना है। और, इसके लिए, उनका कहना है—

"अगर आप समाज-सुधार चाहते हैं तो घरों में ही उसकी शुरुआत करनी होगी। सिर्फ़ पर्दे और बाल-विवाह का ही सवाल नहीं है, हमें तो स्त्रियों के प्रति (पुरुषों की) सारी मनोवृत्ति को ही बदल देना है। अगर हम इसे पूरी तरह कर सकें, तभी हमें किसी क़दर वास्तविक स्वतन्त्रता प्राप्त हो सकती है।"

दुहरी प्रगति

इस प्रकार, हम देखते हैं, इस समय भारतीय महिलाओं के सामने प्रगति की दुहरी समस्या है—शिक्षा सम्बन्धी और सामाजिक। हर्ष की बात है, इन दोन दिशाओं में उन्होंने ज़ोरों के साथ कार्यारम्भ भी कर दिय है। हम देखते हैं, आजकल उनकी हलचलों की धूम है पहले अख़बारों में ढूँढने पर मुश्किल से उनके सम्बन्ध कोई हलचल या बात दिखाई पड़ती थी, पर अब यह बा कहाँ है? अब तो प्रायः रोज़ ही उनके सम्बन्ध में कोई-न-को बात दृष्टिगोचर हो ही जाती है। फिर यह महीना त ख़ास तौर पर उनकी हलचलों का रहा है; कई सभा सम्मेलन हुए हैं, और होते चले जा रहे हैं। पटना ३, ४, ५ जनवरी को अ० भा० महिला शिक्षा-सुधा सम्मेलन हुआ है, उधर कलकत्ता में—कांग्रेस के दिनों—महिला समाज-सुधार सम्मेलन हुआ है, और अम्बाल आदि में छोटे-छोटे सम्मेलन हुए हैं। इधर अख़बारों विभिन्न लेख भी स्त्रियों के सम्बन्ध में निकल रहे हैं निस्सन्देह, ये सब बातें महिला-जागृति की द्योतक हैं।

महिला समाज-सुधार सम्मेलन

त्रावणकोर की छोटी महारानी श्रीमती सेतु पार्वतीबा की अध्यक्षता में (कलकत्ता में) यह सम्मेलन हुआ महारानी ने अपने भाषण में वैदिक काल की स्त्रियों क स्थिति से आज की स्थिति पर तुलनात्मक प्रकाश डालत हुए कहा कि पश्चिमी स्त्रियों को अपने अधिकार बिना युद्ध किये नहीं मिले हैं। हमारे विश्वास और व्यवहार में ज भिन्नता है, उसकी ओर उन्होंने बड़े कटाक्ष के साथ न केवल स्त्रियों का बल्कि पुरुषों का भी ध्यान आकर्षित किया सचमुच उनका यह कहना बिलकुल ठीक है—"बहुत स उत्कट समाज-सुधारक सभामंच पर तो बड़े-बड़े जोशील भाषण करते हैं, किन्तु अपने व्यवहार में उस जोश और उत्साह को भूल जाने के आदी हैं।" स्त्रियों की उन्नति के लिए उन्होंने शिक्षा का व्यापक कार्यक्रम तैयार करके उसके अनुसार कार्य करने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया

ठन में पर्दा तोड़ने, विधवा-विवाह करने, स्त्रियों की करने, लड़कियों को निःशुल्क और अनिवार्य प्रारम्भिक मिलने, दहेज बन्द करने, स्त्रियों को पुरुषों के नाधिकार मिलने तथा कारखानों में काम करने वाली जूरनियों का काम करने का समय प्रतिदिन आठ करने और उनके लिए स्त्री-डाक्टर नियुक्त करने के प्रस्ताव पास हुए ।

हिला शिक्षा-सुधार सम्मेलन

इसका तीसरा अधिवेशन मण्डी की रानी श्रीमती कुमारीदेवी की अध्यक्षता में (पटना में) हुआ । इस विषय पर बड़ा वाद-विवाद हुआ कि सम्मेलन क्षेत्र में समाज-सुधार को भी शामिल किया जाय । त्री ने अपने अभिभाषण में ही कह दिया था— मानते हैं कि हिन्दुस्थान की स्त्रियों की सामाजिक सामाजिक सुधार पर निर्भर है । × × × ऐसी में इन सम्मेलनों द्वारा हमारी यह भी कोशिश होनी ए कि इन सामाजिक कुरीतियों के, जो हमारी तालीम स्ते में बहुत बड़ी बाधा डालती हैं, हटाने की कोशिश । × × × अपनी सामाजिक दुर्दशाओं को सुधारते हुए ी तालीम (शिक्षा) बढ़ाने की यदि हम लोग पूरी श करेंगी तो शीघ्र ही हमारे स्त्री-समाज में बड़ी ी होगी ।” फिर भी एक मत यह था कि इस सम्मेलन कार्य-क्षेत्र शिक्षा-सम्बन्धी विषयों तक ही परिमित रहे । लिए जब श्रीमती कमलादेवी चटोपाध्याय, श्रीमती बृज-नेहरू, श्रीमती फ़रीदूँजी आदि ने इस बात पर दिया कि सम्मेलन अपनी नीति बदले बिना अपना क्षेत्र इतना फैला दे कि स्त्रियों के हिताहित से सम्बन्ध वाले सभी विषय उसमें आ जायँ तो श्रीमती सरला-चौधरानी और कुमारी लक्ष्मी कुट्टीआला आदि महि-ओं ने उसका विरोध किया । उन्होंने कहा—यह प्रस्ताव ार करके तो यह सम्मेलन अपके शिक्षा के आदर्श की को ही काट देगा और शिक्षा ही वह चीज़ है, जो स्त सामाजिक बुराइयों को र कर सकती है । अन्त ीमती फ़रीदूँजी के इस संशोधन के साथ यह स्वीकृत कि सामाजिक और शिक्षा-संबंधी कार्य दो भिन्न-भिन्न समितियों के सुपुर्द किये जायँ, जो स्थायी समिति के अधीन रहकर काम करें । एक विवाद इस प्रस्ताव पर भी छिड़ा कि स्त्रियों को औद्योगिक शिक्षा देने की व्यवस्था की जाय । प्रस्तावक बम्बई की कुमारी इंजीनियर ने सचमुच यह बड़ी अच्छी बात सोची है और उनका यह कहना ठीक ही है कि अगर जगह-जगह स्त्रियों को शिक्षा देने के लिए उद्योग गृह खोले जायँ तो ग़रीब स्त्रियाँ आत्म-सम्मान के साथ जीवन बिताते हुए स्वावलम्बी हो सकेंगी । अन्त में पञ्जाब की श्रीमती माइल्स अर्विन के इस संशोधन के साथ यह पास हुआ कि ऐसी संस्थाओं को आर्थिक सहायता देने के लिए प्रान्तिक सरकारों से अनुरोध किया जाय । साथ ही यह प्रस्ताव भी प्रशंसनीय है कि जिन स्कूलों में ग़रीब बच्चे पढ़ते हों उनमें दोपहर के समय मुफ्त जल-पान देने की व्यवस्था की जाय । इनके अलावा और भी कई उपयोगी प्रस्ताव पास हुए । बाल-विवाह का विरोध-किया गया । लड़के-लड़कियों के विवाह की वय क्रमशः २१ व १६ रखने को कहा गया । श्री हरविलास सारडा के बालविवाह-विधान का समर्थन किया गया । सरकार से एक कमिटी क़ायम करने के लिए कहा गया, जिसमें स्त्रियाँ भी सदस्य हों और जो स्त्रियों के स्वास्थ्य, सफ़ाई तथा आर्थिक अवस्था की जाँच करे और स्त्री-मजूरनियों को खानों के अन्दर काम न करने दिया जाय । एक प्रस्ताव यह भी पास हुआ है कि सम्मेलन राजनैतिक दलबन्दी में नहीं फँसेगा । समझ में नहीं आता, राजनैतिक मामलों से यह घबराहट हमारी बहनों को क्यों है—कहीं बात-बात में सरकार पर आधार रखने ही के लिए तो यह उपादान नहीं है ? खैर । संगठन-मंत्री इस वर्ष भी श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय हुई हैं और कोष में मण्डी की रानी सा० ने एक हज़ार रुपया प्रदान किया है । आशा है, इस वर्ष कार्य और अच्छाई के साथ होगा । क्या ही अच्छा हो कि हमारी ये 'बड़ी-बड़ी' बहनें अपने 'बड़े' वातावरण से ज़रा 'छोटे' वातावरण पर भी ध्यान दें—नहीं, उस ओर अधिक मुड़ें, और सरकार के बजाय जनता पर अपना आधार बढ़ाने पर अधिक प्रयत्नशील हों ! भारत की सर्व-साधारण जनता की स्थिति का ख़याल करके इन्हें

सादगी पर भी ध्यान देना चाहिए और यह तभी हो सकता है, जब बढ़िया और महीन विदेशी साड़ियों तथा दूसरे कपड़ों के बजाय शुद्ध खादी का आदर्श उपस्थित किया जाय। क्या हमारी प्रगति-शील बहनें ऐसा करेंगी ?

शिक्षा कैसी हो ?

महिला शिक्षा-सुधार-सम्मेलन की सभानेत्री श्रीमती रानी ललितकुमारी देवी ने अपने अभिभाषण में स्त्री-शिक्षा पर बहुत-कुछ विचार किया है। भारतीय स्त्रियों की शिक्षा-हीनता पर व कहती —"× × × हमारे देश में हज़ार में केवल इक्कीस स्त्रियाँ पढ़ी-लिखी हैं।......उन इक्कीस फ़ी हज़ार में वे भी शामिल हैं, जो केवल अक्षर का बोध रखती हैं और मुश्किल से चिट्ठी-पत्री लिख-पढ़ सकती हैं। भला आप विचार कर सकती हैं कि किसी देश का सुधार और उसकी तरक्की केवल हरफ़ पहचान लेने से कैसे हो सकती है, जब उसकी अधिकांश स्त्रियाँ अन्धकूप में पड़ी हों और अक्षर का बोध भी न रखती हों ? ऐसी दशा में हम अपने विषय में और क्या कह सकती हैं ?" आगे वह कहती हैं, "यद्यपि हमारी शिक्षा की हीन दशा है, पर जो उसके लिए अब-तक उद्योग किये गये हैं, वे भी संतोष-जनक नहीं हैं।......स्त्रियों की शिक्षा की तरक्की की रफ़्तार संतोष-जनक नहीं है। १९१६ ई० में १००० में ९ लड़कियाँ पढ़ी-लिखी समझी जाती और अब दस वर्ष के बाद १९२६ ई० में केवल १३ लड़कियाँ ऐसी मिलेंगी, जो मुश्किल से अपना नाम व पता लिख सकें। अब आप स्वयं अनुमान लगा सकती है कि जब दस वर्ष में यह तरक्की हुई है तब कितनेसौ वर्ष लगेंगे, जब हमारी बहनें अन्य देशों की तरह पढ़-लिख कर तैयार हो सकेंगी !" उनका कहना है—"मुझे तो इस बात में भी सन्देह है कि हमारे देशके लोगों ने इस बात पर पूरी तरह से विचार भी किया है या नहीं कि हमारे बच्चों की, ख़ासकर लड़कियों की, तालीम किस उसूल पर होनी चाहिए ?" निस्सन्देह, इस बात में बड़ा तथ्य है। और इसमें भी शक नहीं कि, जैसा उन्होंने कहा है, "लड़कियों की तालीम लड़कों से कहीं नाज़ुक है और इसपर विशेष ध्यान देने की ज़रूरत है। अस्तु।

अब रहा यह कि लड़कियों की तालीम या शिक्षा
कैसे ? इस सम्बन्ध में भी 'उन्होंने बड़ा सुन्दर वर्ण
किया है—

"यदि मुझे किसी छोटी-सी लड़की को तालीम देनी प
और वह मेरी ज़िम्मेदारी पर छोड़ दी जाय, तो मैं उ
बजाय पंडिता बनाने के उन बातों की तालीम पर ज़्याद
तवज्जह दूँगी, जिनसे उसकी ज़िंदगी सुख-शांति से व्यती
हो। मैं उसे एक तेज़ ज़िन्दा-दिल और समझदार लड़
बनाना पसन्द करूंगी। उसके मन में हरएक सुन्दर उ
वस्तु की, चाहे वह प्राकृतिक हो या बनावटी, प्रशंसा करन
सिखाऊँगी। मैं यह पसंद करूँगी कि वह हरएक सुंदर वस
से हमदर्दी करे। सुंदर पहाड़, पेड़, नदी के दृश्य, कवि
ताओं की मनोहर वाणी, उत्तम, लाभदायक और मनोह
बातें हैं; उनसे प्रेम करना सीखे। उसको सीने-पिरोने त
दस्तकारी के काम का शौक़ होना चाहिए। खाना बन
तथा आये हुए अतिथि को खिलाने में प्रसन्नता हो
चाहिए। घर कितना ही छोटा झोंपड़ा क्यों न हो, उ
साफ़ रखने की तमीज़ होनी चाहिए। कुत्ता, घोड़ा,
गाय, जो बोल नहीं सकते, उनसे प्रेम और दया करन
चाहिए। स्त्री को घर की मालिक होने के कारण दा
करना भी जानना उचित है। और सबसे बड़ी तालीम धै
की तालीम होनी चाहिए और हिम्मत की होनी चाहिए
ये बातें एक स्त्री के लिए जरूरी हैं। लड़कियों को बचप
ही से अच्छी और इन रीतियों पर तालीम देने के बारे
मेरा यही विचार है। रसकिन और रूसो का भी य
ख़याल था।"

लेकिन आजकल क्या हाल है ? कितने सुन्दर ढंग
वह कहती हैं—"आजकल की शिक्षा-प्रणाली में बिन
नुक़ता-चीनी किये एक प्रश्न पर आप सबका ध्यान दिलात
हूँ कि भारत की आजकल की कन्या-पाठशालाओं में क
तक ये बातें पूरी की जाती हैं।" खूब !

उच्च शिक्षा में आप स्त्री-पुरुषों की समान-शिक्षा
पक्ष में हैं। क्योंकि, 'स्त्रियों को उतना ही लाभ ऊँ
तालीम से पहुँचेगा, जितना मर्दों को। आशा है, इस विष
के विचारक इन बातों पर ध्यान देंगे।

ओं को सहानुभूति

भारत की वर्तमान स्त्री-हलचल में एक बात मार्के की हाँ पुरुष स्त्रियों की प्रगति का विरोध नहीं बल्कि से समर्थन कर रहे हैं । यह भारतीय पुरुषों की न्याय- और उनके औचित्य का प्रमाण है। सच तो यह है ज पुरुष स्त्रियों से भी अधिक ज़ोरों से उनके आन्दो- समर्थन कर रहे हैं । स्त्रियों के अधिकारों की पुकार तनी पुरुषों की ज़बान पर है, उतनी स्त्रियों की जबान हीं । यह उचित भी है । अस्तु । भारत के राष्ट्रीय सुधार-सम्मेलन के सभापति-पद से श्रीयुत जयकर ने ज़ोर के साथ स्त्रियों के साम्पत्तिक तथा विवाह, तलाक के अधिकारों की आवाज़ उठाई है, वह उन्हींने उप- है । उधर राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के मंच से ध्यक्ष श्रीयुत जतीन्द्रमोहनसेन गुप्त ने आवाज़ है—"हमारे सम्पूर्ण सामाजिक भवन की पूरी मरम्मत वश्यकता है । इसमें क्रान्ति की आवश्यकता है । हिन्दू सभ्यता का अर्थ है वर्ण-व्यवस्था और मुसलिम ता का अर्थ है बहुविवाह, तो दोनों को ही दूर करना ए ।" और इस वर्ष के हमारे राष्ट्रपति पण्डित मोती- नेहरू ने भी अपने अभिभाषण में इस वर्ष के क्रम में एक बात यह भी रक्खी है—"उन सामाजिक यों के विरुद्ध प्रचार करना, जो सामाजिक ऐक्य और उन्नति में बाधक हैं—ख़ासकर पर्दे और महिलाओं न्य अयोग्यताओं को दूर करना ।" और इस वर्ष का कार्यक्रम कांग्रेस में स्वीकृत हुआ, उसमें इसका समावेश गया है ।

सलाह

भारतीय महिला-शिक्षा-सुधार सम्मेलन को प्रेषित में चीन के त्राता स्वर्गीय सनयातसेन की सहध- ने बर्लिन से लिखा है—

"चीन की स्त्रियों की तरह आप लोग भी एक प्राचीन का अंग हैं । उसके सार्वजनिक जीवन में आप लोगों पना स्थान अवश्य गृहण करना चाहिए और ब्रिटिश ज्यवाद के पंजे से उसका उद्धार कर उसे पूर्ण स्वतंत्र के प्रयत्न में पुरुषों का हाथ बटाना चाहिए ।"

कितना सुन्दर सन्देश है यह ! और मानों इसके स्वागतार्थ ही सभानेत्री ने अपने अभिभाषण में कहा—

"भारत-माता की जिसकी गोद में हम पली हैं, सेवा करना हमारा धर्म है।"

लेकिन, हमें भय है, उस वक़्त तक यह बात पूरी तरह हो सकती है, जबतक कि भारतीय महिला समाज-सुधार सम्मेलन के स्वागताध्यक्ष की हैसियत से दी गई महारानी साहबा मयूरभंज श्रीमती सुरुचिदेवी की इस सच्ची सलाह पर पूरा ध्यान न दिया जाय—

"यह सच है कि प्रगति की भावना के साथ हमें चलना चाहिए; लेकिन जो कुछ भी सफलतायें हम प्राप्त करना चाहें, यह आवश्यक है कि वे भारतीय इतिहास और आदर्शों की परम्पराओं के अनुसार ही हों । जैसे कि भारतवर्ष अपने हिमालय, सिन्धु और गंगा के बिना सच्चा भारत नहीं हो सकता, उसी प्रकार वर्तमान सन्तति भी उन विशेषताओं के बिना हर्गिज देश के प्रति सच्ची नहीं हो सकती, जो कि भारतीय नारीत्व के सर्वोत्तम गुण हैं ।"

आपने हमारी बहनों के प्रकृतिवादी और राष्ट्रवादी (Natural and National) होने पर ज़ोर दिया है, जिसका आशय स्वर्गीय केशवचन्द्रसेन के शब्दों में है—'पृथ्वी पर परमेश्वर का निवासस्थान बनाने वाले इस विस्तृत संयुक्त परिवार के वक्षःस्थल में रहना ।' महारानी का कहना है—"बहनो ! आज हमारे सामने एक महान् कार्य है । हमें अपने आन्दोलन को संपूर्णतया स्वाभाविक और साथ ही राष्ट्रीय भी बनाये रखना है। हमें प्रगति करना है, पर देश और अपने आपके प्रति सच्चे रहकर । हमें अन्य राष्ट्रों से सबक़ सीखना है, पर अपने व्यक्तित्व की रक्षा करते हुए । आइए हम सेवा के लिए अपने आपको अर्पण करदें और भारत में परमात्मा के पुण्यधाम की रचना करें !"

आशा है, हमारी भारतीय बहनें इस सच्ची सलाह पर पूरा-पूरा ध्यान देंगी और अपना अमल-दरामद इसी के अनुसार रक्खेंगी ।

मुकुन्द

वतन के वास्ते

क्या हुआ गर मर गये अपने वतन के वास्ते।
बुलबुलें कुर्बान होती हैं चमन के वास्ते॥
तर्स आता है तुम्हारे हाल पै ऐ हिन्दियो!
ग़ैर के मोहताज हो अपने कफ़न के वास्ते॥
देखते हैं आज जिसको शाद है, आज़ाद है।
क्या तुम्हीं पैदा हुए रंजो मुहिन के वास्ते॥
दर्द से अब बिलबिलाने का ज़माना हो चुका।
फ़िक्र करनी चाहिए मर्ज़ कुहिन के वास्ते॥
हिन्दुओं को चाहिए अब क़स्द कावे का करें।
और फिर मुस्लिम बढ़ें गंगो जमन के वास्ते॥

रामचरणलाल शर्मा

आह्वान

"साहसवान बनो। स्वतन्त्रता आपके लिए हर समय विचारने की चीज़ हो। भारत के बच्चे और बच्चियाँ एक स्थान पर खड़े होकर समानता और मातृ-प्रेम को युद्ध की आवाज़ बनावें। आगे की ओर बिना आलस किये, बिना थकावट का अनुभव किये, और निर्भय होकर बढ़ो। अपनी सारी शक्तियाँ लगा दो। भारत के भविष्य को चमका दो। विशाल भारत को कला-विज्ञान में, अर्थात् सब प्रकार से, एक शक्तिशालो राष्ट्र बना दो। भारत हिन्दमहासागर का स्वामी हो। फिर एक बार यह संसार के गुरुदेव के आसन पर विराजमान हो।"

जतीन्द्रमोहनसेन गुप्त
(स्वगताध्यक्ष, कलकत्ता-कांग्रेस)

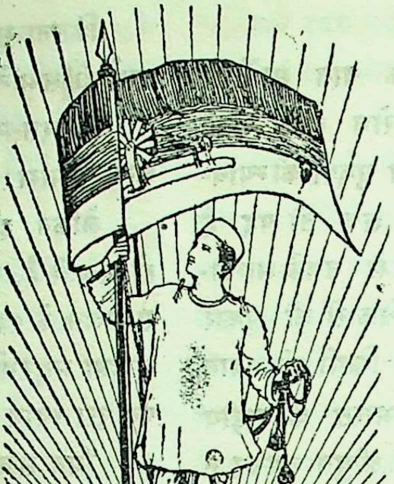

आत्म-सम्मान का सिद्धान्त

मानवता एक है। दूसरे गंभीर अर्थ में मानवता का इतिहास भी एक है; और एक है उसकी स्वतन्त्रता का इतिहास। स्वातन्त्र्य का संसारव्यापी आन्दोलन एक है। भारत की भावी स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में मेरा दृढ़ विश्वास मानवता के स्वतन्त्रता-संग्राम पर टिका हुआ है और मेरा विश्वास है कि जबतक भारत स्वाधीन नहीं होता मानवता भी स्वतन्त्र न होगी। लेकिन इस समय मैं इस विषय पर विचार नहीं करूँगा। इस अवसर पर तो मैं आप लोगों के सामने एक विचार उपस्थित करना चाहता हूँ। जिस तरह मानवता एक है, उसी तरह संसार के मनुष्यों के धर्म का इतिहास भी एक है। आपको पता चलेगा कि मानव-जाति के महान् अवसरों पर महान् आत्मायें एकसाथ अवतरित होती रही हैं। इसी कारण, विश्व कभी भी महान् विभूतियों के नेतृत्व से, उनके मार्ग-दर्शन से वंचित नहीं रहा। इस शांत प्रभात में मेरे विचार उस काल की यात्रा में तल्लीन हैं, जिसका सम्बन्ध हम ईसा के पूर्व छठी शताब्दी से जोड़ते हैं। वह छठी शताब्दी, जो मानवता के विकास की एक महान् सन्धि थी। उस समय विश्व के तीन विभिन्न भागों में तीन महापुरुषों ने अवतार लिया। एक भारत में प्रकट हुआ, वह महान् और था लाखों आज भी उसकी महानता की पूजा करते हैं। उसका नाम गौतम बुद्ध था। इसी शताब्दी में चीन के क्षितिज पर महर्षि कन्फ्यूशस का उदय हुआ और

में सुकरात ने अवतार लिया। तीनों आत्म- आत्म-बोध और आत्मानुभव के प्रतीक थे। योगज्ञान और बुद्धि की प्रकाशमयी प्रतिमा आज मैं कन्फ्युशस और सुकरात का जिक्र न । इस समय केवल बुद्ध के सम्बन्ध में दो कहूँगा। यह भारत में जन्मे और उनके जीवन आश्चर्यकारक ज्योति जगमगा उठी। उनका सौरभपूर्ण था—हाँ, कमल के सौरभ से भी सुवासित था। उनका जीवन सौन्दर्यमय उन्होंने आश्चर्यजनक सत्य सिखाये। धर्म का सन्देश लेकर वह आये थे। उन्होंने कहा— बहाने और अन्ध रूढ़ियाँ (पूजा-पाठ) पालने हें मुक्ति नहीं मिलेगी।" हमारा यह विचार है कि देवताओं की खुशामद करने से हमारे छूट जायँगे। खुशामद धर्म नहीं हो सकती। हम सचमुच सत्य की गवेषणा में हैं, तो हमें धर्म पालन करना चाहिए और, धर्म क्या है? वह "धारण करता है"—जीवन का नियामक न्त। धर्म का मार्ग संन्यासियों का मार्ग नहीं सात वर्षों की लम्बी तपस्या, समाधि और कष्टों बाद जब बुद्ध वन-प्रान्त से जनपद में आये, ओं ने उनसे पूछा—"स्वामिन! हमारे लिए कौन-मार्ग उचित है?" बुद्ध ने कहा—"मैं संन्यास-न का उपदेश न दूँगा, शरीर को कष्ट देने से मुक्ति न मिलेगी। हमीने भ्रम से धर्म को -विश्वासों, मतों, सम्प्रदायों और संन्यास-जीवन रूप दे दिया है।" तथागत ने फिर कहा—"नों पराकाष्ठाओं को छोड़ो। एक कठोर तपस्या पराकाष्ठा का जीवन है और दसरा भाग विलास-पराकाष्ठा का। इन दोनों को जाने दो।" इस वह महात्मन अपना सन्देश लोक-समूह के तम तक पहुँचाता हुआ जगह-जगह पर्यटन करता रहा। लेकिन इस समय उन महापुरुष के सन्देश विस्तारपूर्वक सुनाने के लिए मेरे पास समय नहीं है। हाँ, उनके जीवन का एक सुन्दर चित्र है, जिसे आज मैं आपके हृदयों पर अंकित कर देना चाहता हूँ। ८० वर्ष की उम्र में बुद्ध अपनी मृत्यु-शय्या पर पड़े हुए हैं। स्थूल-शरीर मरणशील है। अमर भी स्थूल-शरीर का त्याग करते हैं—हमारे अमर महात्मा बुद्ध भी रोगशय्या पर पड़े हुए हैं। उनके मर्त्य जीवन का वह आखिरी दिन है। वह चारों ओर अपने अनेक शिष्यों से घिरे हुए हैं। वे जानते हैं—महात्मा बुद्ध शीघ्र ही महा-प्रयाण करेंगे, इसीलिए वे आँसू बहा रहे हैं। तथागत का प्यारा आनन्द करुणापूर्ण आक्रोश कर रहा है। वह बुद्ध के निकट-सम्पर्क में रह चुका है। महान् पुरुषों की भांति बुद्ध के हृदय में भी आनन्द के प्रति निःसीम स्नेह है। महान् विभूतियाँ एकदम संन्यासी नहीं होतीं। ईसा को देखो, वह संन्यासी नहीं था। यह बाल-ब्रह्मचारी मेरे हृदय का प्यारा, आश्चर्यजनक रूप में पवित्र और प्रेममय था। ये महापुरुष अपने शिष्यों से अनन्य प्रेम करते हैं। ईसा जोन पर प्रेम करता था और कहा जाता है कि जोन माता की गोद के समान ईसा की गोद में लेटा करता था। बुद्ध ने भी आनन्द पर मातृनिर्विशेष वात्सल्य बरसाया था। एक बार तथागत आनन्द से मिले और उससे कहा—"तुम मेरे साथ नहीं चलोगे?" उस दिन से लेकर अन्तिम दिन तक आनन्द ने तथागत की अनन्य सेवा की। अपने गाँव-गाँव और नगर-नगर के भ्रमण में बुद्ध और आनन्द एक साथ दीख पड़ते थे। दोनों, वर्षों तक, एक साथ रहे हैं। इसी कारण बुद्ध के बीमार पड़ने पर आनन्द अपने आँसू नहीं रोक सकता था। उसने अश्रुपूर्ण नेत्रों से

कहा—"स्वामिन् ! आप जा रहे हैं। आपके बिना मैं किस तरह रहूँगा ? आप मुझे अपने साथ लेकर जगह-जगह घूमे हैं, आपने मुझ पर अपार आशीर्वादों की वर्षा की है, रात-दिन मैं आपके साथ रहा हूँ, आपने अपने बालक की तरह मेरी चिन्ता की है। आपने मुझे माता के कोमल प्रेम से सींचा है। मुझे और हम सबको छोड़कर आप जा रहे हैं।" मानव-जाति के इतिहास में यह एक अत्यन्त हृदय-द्रावक दृश्य था। आनन्द रो रहा है, लेकिन बुद्ध शान्त हैं-अविचलित हैं। बुद्ध ने आनन्द से कहा—"मेरे प्यारे, रोओ मत।" और, एक सच्चे शिष्य की भांति, आनन्द अपने मन से कहने लगा—"मुझे स्वामी की आज्ञा पालनी चाहिए, वह कहते हैं मैं न रोऊँ।" वह अपने आँसू सुखाकर, आत्म-संयम के साथ, तथागत के पास बैठ जाता है। और कहता है-"स्वामिन् ! आप प्रयाण कर रहे हैं, हमें अन्तिम सन्देश देते जाइए।" तथागत ने कहा—"तुम अपने प्रदीप आप बनो।" इस अन्तिम सन्देश में तथागत ने *आत्मबोध* के एक महान् सिद्धान्त का सुन्दर विवेचन किया है। धर्म का संगीत-प्रार्थनाओं और भावुक क्रियाओं से कोई सम्बन्ध नहीं है। धर्म विज्ञान है, और विज्ञान सिद्धान्तों का समूह है। धर्म भी सिद्धान्तों का समूह है। धर्म जीवन के नियामक सिद्धान्तों का विज्ञान है। जीवन का एक सिद्धान्त तथागत के अन्तिम सन्देश में समाविष्ट है। क्या मैं उसे आत्म-सम्मान का सिद्धान्त न कहूँ ? जो मनुष्य अपना सम्मान करता है, वह धार्मिक है। आत्म-सम्मान का मतलब शरीर और मन का सम्मान है। अपने शरीरों का निर्माण करो, उन्हें सुदृढ़ और पवित्र बनाओ। भारत दुःखी हुआ, इसलिए कि उसने सुदीर्घ काल तक भौतिकता का निरादर किया। शरीर आत्मा का आधार है ! मैं चाहता हूँ, मेरे प्यारे नौजवानो ! तुम अपने साथ महा-विद्यालयों, गाँवों और नगरों में आत्म-सम्मान के इस सन्देश को ले जाओ। अपने शरीर सशक्त और पवित्र रक्खो। शरीर आत्मदेव का मन्दिर है। अपने मन का भी सम्मान करो—केवल इसलिए कि बहुमत उस ओर है, किसी गन्दी रूढ़ि के गुलाम मत बनो। अन्धानुकरण के मार्ग पर मत दौड़ो। किसी का अनुसरण (नक़ल) न करो। सबके प्रति सम्मान रक्खो लेकिन अन्तरतम के आत्म-प्रकाश-के इंगितों पर चलना सीखो। "तुम अपने प्रदीप आप बनो !" यही वह सन्देश है, जो भारतीय राजनीति के लिए ज़रूरी है। भारत की परिस्थिति का सिंहावलोकन कर जाओ। हम क्यों बेभान पड़े हुए हैं ? हमारे अंग-अंग क्यों पराधीनता की पाश में जकड़े हुए हैं ? हमने अपने राष्ट्र का और अपना सम्मान करना नहीं सीखा। मेरे कुछ मित्र स्वराज्य के लिए इंग्लैंड के किसी दल-विशेष की कृपा या सरकार की रियायतों पर उधार खाये बैठे हैं। स्वाधीनता के लिए किसी पाश्चात्य राष्ट्र की मुँहजोई मत करो। तुम्हारा पराक्रम ही तुम्हें स्वतन्त्रता के निकट खींच लायेगा, तुम अपनी शक्ति के बल पर ही स्वातन्त्र्य-लक्ष्मी का वरण कर सकोगे। स्वाधीनता तभी मिलेगी, जब तुम अपनी शक्ति का विकास करोगे। भारत की समस्या को अर्जियाँ और धारासभाओं के प्रस्ताव हल नहीं कर सकते। स्वाधीनता हृदय की चीज़ है। मैं तुम्हें पुकारकर कहता हूँ, "अपना सम्मान करो, अपने देश का सम्मान करो, और अपने देश के आदर्शों—भारतीय आदर्शों का सम्मान करो। ऐ भारत ! अपने प्रति सच्चा बन; तू स्वाधीन होगा, तुझे सुख मिलेगा और तेरे साथ सारी दुनिया सुखी होगी !"

टी० एल० वास्वानी

नव-निर्माण कैसे हो ?

हाल ही में साधु टी० एल० वास्वानी ने 'तरुण भारत तथा नव-निर्माण' पर ने देश के युवकों के सामने एक भाषण दिया । उसमें उन्होंने हमारे आदर्श तथा भावी कार्य- की चर्चा की थी । उसपर 'अमृतबाज़ार-का' ने हाल ही के एक अंक में एक अग्रलेख ा है । 'पत्रिका' लिखती है—"साधु वास्वानी वकों को भविष्य का निर्माणकर्ता कहा है । उनको बताया है कि किस तरह वे अपना चरित्र- करें । साधुजी ने अपने व्याख्यान में पूर्वीय पश्चिमी सभ्यता के उन आधारभूत सिद्धान्तों र्चा की और उनमें जो मूलतः विरोध है उसकी ख़ास तौर से उनका ध्यान आकर्षित किया है। ने हमारे राष्ट्र के इन नव-विधाताओं को यह भी कि वे नक़ल करना नहीं निर्माण करना सीखें । कारण नहीं कि भारतीय युवक-आन्दोलन ा संगठन यूरोप के युवक-आन्दोलन के ढंग पर यूरोपीय सभ्यता में एक ऐसी प्रवृत्ति है, जिससे क संघ अपने आपको दूसरे से पृथक् समझता हमें इस वृत्ति से दूर रहना चाहिए । और हमें ानव-जीवन की स्वाभाविक प्र त्तियों को, यह क कर कि प्रत्येक सम्पूर्ण है और उसका दूसरी त्तियों से कोई सम्बन्ध नहीं है, एक दूसरे से ् करने की ग़लती नहीं करनी चाहिए । मतलब कि धर्म और राजनीति तथा मनुष्य की अन्य ाविक महत्वपूर्ण प्रवृत्तियों को पृथक् करने की जो चल पड़ी है उसके विरुद्ध साधुजी ने बड़े ज़ोरों आवाज़ उठाई है । पिछले दिनों जो अनिष्ट घट- हुई हैं उनका कारण धर्म नहीं बल्कि उन लोगों मानसिक संकीर्णता है, जो धर्म को जानते ही नहीं । वास्वानीजी का भाषण भारतीय संस्कृति के आदर्शों का विशदीकरण है, इसलिए वह अत्यन्त उपयुक्त है । हमारे लिए उसका महत्व इस समय तो और भी ज्यादा है, जब कि हम विचारों की उलझनों के कारण सर्व-सामान्य ध्येयों से दूर भटके जा रहे हैं ।"

हाल ही में मंगलोर के युवक और वहाँ के भारत युवक-संघ के कार्य और महत्वाकांक्षाओं की चर्चा करने वाला "देशबन्धु" नामक एक पत्र वहाँ से प्रकाशित हुआ है । उसके सम्पादक द्वारा लिखे एक पत्र का उत्तर देते हुए वास्वानीजी ने जो विचार प्रकट किये हैं, वे भी इस सिलसिले में महत्वपूर्ण हैं । वह लिखते हैं—"राजनीति, समाज-सुधार, शिक्षा, अर्थशास्त्र, उद्योग और धर्म आदि आधुनिक भारत के राष्ट्रीय जीवन के तमाम अंगों में जिस बात की सबसे बड़ी आवश्यकता है, वह है ईश्वर-निष्ठा । और यही आधुनिक संसार की भी आवश्यकता है ।" इसी प्रकार 'इण्डियन रिव्यू' के एक ताज़ा अंक में 'भारतीय शिक्षा का तत्त्वज्ञान' शीर्षक लेख में वास्वानीजी लिखते हैं—"शिक्षा मानव-जीवन का सबसे बड़ा प्रश्न है । शिक्षा के मानी हैं आत्मा को सुसंस्कृत करना । शिक्षा के इस उद्देश की आधुनिक पाठशालाओं में बड़ी उपेक्षा हो रही है । प्राचीन भारत ने इस सत्य को जान लिया था कि प्रत्येक विद्यार्थी एक आत्मा है । और वह पूर्व-जन्मों के संस्कार लेकर आता है । इसलिए विद्यार्थियों के विकास में सहायक होने के लिए शिक्षक के अन्दर एक नैतिक शक्ति और आध्यात्मिक वृत्ति होनी चाहिए, जिससे वह सद्ज्ञान को प्राप्त कर सके भारत के प्राचीन आश्रमों में इसी तत्त्व को ध्यान में रखकर शिक्षा दी जाती थी । विश्व की एकता और चराचर सृष्टि में वही आत्मा निवास करती है । यह उनकी शिक्षा का मध्यवर्ती दृष्टिबिन्दु था ।

आज यदि हमारा जीवन हीन है, तो उसका कारण केवल यही है कि हमारी शिक्षा भारतीय आदर्शों से बिछुड़ गई है। हमारे पास संगठन है। शिक्षा के लिए सुसंचालित संस्थायें हैं। पर उनमें आत्मा कहाँ है? हमारे विद्यार्थियों को विज्ञान और अच्छे नागरिक होने के गुण सिखाये जाते हैं। लेकिन उनमें से ऐसे कितने विद्यार्थी होंगे, जो किसी महान् विपत्ति के समय भी दृढ़ रहेंगे? उनमें ऐसे कितने लोग हैं, जिनके अन्दर अपने देश के प्रति ऐसा सच्चा प्रेम हो, जिससे वे विदेशियों के प्रति द्वेष या उन्हें हानि पहुँचाने के विचार को भी अपने हृदय में बिना स्थान दिये मातृ-भूमि की सेवा कर सकते हों? यदि भारत अपनी शिक्षा में आश्रम-जीवन के आध्यात्मिक आदर्शों को तथा आधुनिक विज्ञान के गहरे रहस्य को समझ ले और उसे अपने जीवन में परिणत कर दे, तो वह एक बार फिर सारे संसार को भव्य बना सकता है। तब यूरोप के विश्व विद्यालय भारत के ऋषियों के प्रति अपना आदर-भाव प्रकट करेंगे और भारत एक बार फिर अपने पुराने संदेश को लेकर दूसरे राष्ट्रों के पास जा सकता है।"

भारत-युवक-संघ के हृदय में आधुनिक विज्ञान के प्रति सम्पूर्ण आदर है, पर वह अर्वाचीन सभ्यता के भ्रम तथा निरर्थक बातों को अस्वीकार करता है। इनमें से एक भ्रम वही धर्म का विरोध करने वाली वृत्ति है। भारत के ऋषियों ने आत्मा के मूल्य को जान लिया है, और यह उन ऋषियों के प्रति अपना अगाध आदर प्रकट करता है। और इस राष्ट्र के नवयुवकों को आह्वान करता है कि वे भारत का नव-निर्माण पश्चिमी सभ्यता की नक़ल करके नहीं बल्कि भारतवर्ष की प्रतिभा और उसके जीवनादर्श को सामने रखकर करें।

आनन्द स्वामी

जीवन का लक्ष्य

शैशव और किशोरावस्था के बिदा होने प विद्यार्थी-जीवन के अन्त में, हम जीवन कर्मक्षेत्र पर अग्रसर होते हैं। उस समय हमें अपने-अप जीवन का लक्ष्य ठीक-ठीक निश्चित कर लेना पड़ता है। मनुष्य लक्ष्य स्थिर किये बिना ही कर्मक्षेत्र में चला आ है, वह आँखों के होते हुए भी सूर है; उसे अंधे ही के समा इधर-उधर भटकना पड़ता है। लक्ष्य-हीन जीवन शैवा जाल के समान है, जो अपनी उलझन में जल-तल पर इध उधर निरुद्देश तैरता रहता है। अथवा, वह जीवन उ नाव के समान है, जिसकी यात्रा का कोई स्थान नहीं बहुत-से लोग इस प्रतीक्षा में लक्ष्य-हीन बैठे रहते हैं जब अनुकूल समय आवेगा तब वह स्वतः हमें कि महत्वपूर्ण दिशा की ओर ले जायगा। किन्तु, उस नावि के लिए, जो अपना गंतव्य स्थान स्वयं निश्चित नहीं करत कभी अनुकूल वायु नहीं मिलती।

कभी-कभी आकस्मिक घटनायें भी हमारे जीवन लक्ष्य निश्चित कर देती हैं। ऐसी घटनायें प्रायः सभी जीवन में संघटित होती हैं, परन्तु उनका मर्म शायद ही को समझ पाता है। उसे समझना भी भाग्यवान होना है। गोस्वा तुलसीदास को विषयांध होकर जिस आकस्मिक घट का सामना करना पड़ा, और पत्नी-द्वारा कटुशब्दों में ज्ञान मिला, उससे उनकी जीवन-धारा कहाँ-से-कहाँ ब गई? भगवान् बुद्ध ने एक ज़ख़्मी बैल को दर्द और से पीड़ित देख कर जो ज्ञान पाया, जीवन का जो लक्ष बनाया, उससे सभी परिचित हैं। ऐसी घटनायें हम नि अपनी आँखों देखते हैं। किन्तु हमारी ऐसी समझ क जो उनका सदुपयोग करें?

आप अपने अंतःकरण से पूछिए—आप अपने जीव में क्या किया चाहते हैं, क्या बना चाहते हैं? जो उ मिले, वही आपका लक्ष्य होना चाहिए। उस लक्ष्य समझ लेने पर अपना सम्पूर्ण उत्साह, बल, बुद्धि, प्रति और जीवन उत्सर्ग कर देना चाहिए। एक अनुभवी लेख का कथन है कि "किसी कार्य को आरम्भ करने से पहले

भाँति समझ लेता हूँ कि वह कार्य-रूप में परिणत जा सकता है या नहीं; तब मैं उसे पूरा करने में कोई उठा नहीं रखता। मेरी सारी सफलता का मूल नियम है।" ऐसा ही विचारशील अपने जीवन का लक्ष्य रित करने वालों को भी होना चाहिए। आप प्राण-पन पनी लक्ष्य-सिद्धि में लग जाइए। पर्वाह नहीं, यदि मरते दम तक सफल-मनोरथ न हों; आपकी यह दृढ़ आपकी सन्तानों की नसों में संचरित होकर आपकी त्मा को निश्चय शान्ति देगी।

लक्ष्य-पथ पर जाते समय हममें पूरी एकाग्रता होनी ए। ठीक वैसी ही एकाग्रता, जैसी अर्जुन की उस वेध में थी—जिसमें वह अपने सामने सिर्फ पक्षी ही था। एक लेखक का उपदेश है—"कभी कल्प- और कोरी बातों के गोरखधन्धे में मत पड़ो। एक सोचो, एक लक्ष्य सामने रख लो, फिर उसपर कार्य और उस विषय की सम्पूर्ण सामग्री एकत्र कर लो; यमेव विजय और सफलता तुम्हारी है।" इस उपदेश नुकूल आचरण करना तभी संभव है, जब हममें पूरी ग्रता हो। एकाग्रता केवल ध्यान ही की नहीं चाहिए। सम्पूर्ण क्षमताओं को एक ओर प्रेरित कर देने का भी एकाग्रता है। जिस काम में हम अपना सम्पूर्ण लगा सकते हैं, उसमें सिर्फ एक हाथ लगाना सफ- के इच्छुकों के लिए उपहासास्पद है। यदि हम तन- न तथा मनसा-वाचा-कर्मणा से एकाग्र होकर ही पथ की ओर अग्रसर हों, तो हम अभीष्ट सीमा पर ही आसानी से पहुँचेंगे, जैसे तागा सूई के पार। हमें एकाग्रता को लक्ष्य की सीध में उसी प्रकार रखना ए, जैसे चुम्बक की सुई ध्रुवतारा की ओर रहती है।

लक्ष्य-पथ पर जाते समय हमें अपने छोटे-बड़े उन दूषणों को छोड़ना होगा, जो हमारी इष्ट-सिद्धि के बाधक हों। उन दूषणों को छोड़ने में आपको कष्ट ; किन्तु यह कष्ट तो आपका एक व्यसन-मात्र है। इस- स्त न होने में ही तो आपकी बुद्धिमानी है। यह तो नहीं, पग-पग पर न-जाने कितनी वास्तविक कठिनाइयों ष्ट आपको उठाना पड़ेगा। यदि आप चूकते हैं, तो अकर्मण्य हैं। इससे अच्छा तो यही है कि आप हाथ-पर हाथ रक्खे सड़क के किसी एक कोने में पड़े रहें, और प्रत्येक पथिक आप पर हँसता हुआ, आपकी बदनसीबी को चिढ़ाता हुआ, चला जाय। आप जो लक्ष्य अपने सामने रखते हैं, उसके मार्ग में आने वाली कठिनाइयों को भी अपने सामने रख लें। इतने पर भी आपमें वहाँ तक जाने का उत्साह और प्रेरणा रहे, तो खुशी से आगे बढ़िए।

जीवन का लक्ष्य वह सबसे आख़िरी स्टेशन है, जहाँ पहुँचकर हम अपने अभिलषित को पाते हैं; और जब लक्ष्य स्थिर करते हैं, तो वह प्रारम्भ पहला स्टेशन है। क्या आप यह पसन्द करेंगे कि भूल से ऐसे स्टेशन पर पहुँच जायँ, जहाँ आपको फिर पीछे लौटने की ज़रूरत पड़े? इसीलिए लक्ष्य स्थिर करते समय खूब सोच-समझ से काम लेना चाहिए। इसीमें आपकी उत्कट योग्यता और बुद्धिमत्ता की परीक्षा है।

अपना लक्ष्य स्थिर करने में आपको अपना सहायक आप होना पड़ेगा। क्योंकि, अपनी योग्यता और क्षमता को जितना आप समझ सकेंगे उतना कोई और नहीं। जितने लोग उतनी ही रायें। किन्तु क्या बनना होगा, इसका ठीक-ठीक निर्णय तो आप स्वयं ही कर सकते हैं। इस निर्णय के योग्य आपकी बुद्धि भी परपक्व हो जानी चाहिए, ताकि अपना आगा-पीछा और दीन-दुनिया को आप समझ सकें। हमारा विद्यार्थी-जीवन वस्तुतः इसी समझ की तैयारी के लिए है; पर, वह तो आजकल सिर्फ़ नौकरी करने की तैयारी-भर रह गया है!

अक्सर देखा जाता है कि माँ-बाप चाहते हैं, मेरा लड़का बड़ा होकर मास्टर बने या अन्य कोई नौकरी करके खूब माल पैदा करे। अपरिपक्व बालक की कोमल मति के सामने वे अपनी ही इच्छाओं से एक जटिल बोझ खड़ा कर देते हैं। इस कारण हम संसार के उन कितने ही होनहार नवयुवकों के उस मौलिक जीवन को नहीं देख पाते, जो अपनी इच्छा और बुद्धि से हमारे सामने न-जाने किस महान् रूप में आते!

हाँ, आगे चलकर जिन बालकों को स्वानुभूति और समझदारी मिलती है, वे माता-पिता के इच्छित छोटे-बड़े

साँचे में न ढलकर अपनी महान् व्यापक इच्छाओं के अनुकूल लक्ष्य बनाते हैं। एक उदाहरण लीजिए। किसी बालक के माँ-बाप की इच्छा है कि वह पढ़-लिखकर अपनी ज़मींदारी का काम सम्हाले। वे उसकी सम्पूर्ण ज़िन्दगी की सफलता इसीमें देखते हैं। किन्तु बड़ा होने पर बालक की तबीयत ज़मींदारी में नहीं लगती। माता-पिता अपनी इच्छानुकूल बनाने के लिए, उसे गृहस्थी के जूए में जोत देते हैं। किन्तु, वह, शादी न होने देने के लिए, एक दिन भाग निकलता है। वर्षों बाद हम एक तपस्वी ब्रह्मचारी को दीन-दुखियों की सेवा करते, ग़रीबों की झोंपड़ी में महात्मा की तरह पूजित होते, देखते हैं। यह कौन है?—वही नवयुवक!

मैं अन्य देशों की बात नहीं जानता; किन्तु वर्तमान भारतवर्ष के अधिकांश माता-पिता, संसार की विस्तृत सीमा से अपरिचित और अशिक्षित होने के कारण, अपनी संकुचित अभिलाषाओं से, होनहार बालकों की जीवनोन्नति में बाधक ही होते हैं। ऐसे समझदार माता-पिता या भाई-बन्धु शायद ही मिलें, जो बालकों की मनोवृत्तियों के विकास पर ध्यान देते हुए, बड़े होने पर, उनके अनुकूल लक्ष्य के लिए प्रोत्साहन और साधन देते हों। यदि वे ऐसा करें, तो उनका बड़प्पन सार्थक हो जाय।

इन छोटे-छोटे पौधों के सामने, सीखने के लिए बृहत् क्षेत्र होना चाहिए। एक देहाती बालक जबतक कि वह अपनी तहसील के मिडल स्कूल में पढ़ता था, चाहता था कि मैं हिन्दी स्कूलों का इन्सपेक्टर बनूँ। क्यों? इसीलिए कि उसके सामने उस लघु क्षेत्र में इसके अतिरिक्त और कोई महत् आदर्श न था। किन्तु, जब वह बड़ा हुआ, देहात से शहर में आया, तब हज़ारों लोगों के रंग-ढंग उसकी आँखों के सामने गुज़रने लगे। तरह-तरह के लोगों के साथ उठते-बैठते, उनके विचारों को सुनते, बड़े-बड़े नेताओं के भाषणों से लाभ उठाते, एवं उन्नत आत्माओं के जीवन का अध्ययन करते हुए, उसका लक्ष्य बदल गया। उसने मुझसे कहा—भाई, मैं तो अपनी शिक्षा समाप्त कर किसानों का सेवक बनूँगा। एक आदर्श कृषिशाला खोलूँगा और उसके द्वारा किसानों की उन्नति करने में जीवन लगा दूँगा। हम-तुम दोनों मिलकर उस कृषिशाला की नींव डालेंगे। मैंने उत्साहित करते हुए कहा—ज़रूर-ज़रूर!

लक्ष्य पर मर-मिटने के लिए तैयार होनेवालों को कुछ प्रोत्साहन की भी ज़रूरत है न? पर, लोगों में उत्साह देने की भी कृपणता दिखाई पड़ती है। उत्साह तो उगते हुए अंकुर को जल देने के समान है; जलदान देकर आप उसकी प्रत्येक नस में अपने प्रति कृतज्ञ-भाव पावेंगे। वह अंकुर एक दिन अपने उन्नत रूप में, परमात्मा के सामने, आपके उस पुण्य कर्त्तव्य का प्रतिनिधि रहेगा। फिर, यह कृपणता क्यों?

यथोचित उत्साह न मिलने से, कितने ही नवयुवक बीच रास्ते में ही रह जाते हैं। समझ में नहीं आता कि लोग उन्हें उत्साह नहीं दे सकते, तो फिर हतोत्साह क्यों करते हैं—बचा-बचाया उत्साह व्यर्थ क्यों छीनते हैं? दूसरों के पथ में रोड़े अटकानेवालों की संसार में सर्वत्र भरमार है। हमारा कर्तव्य यह होना चाहिए कि उनके रोड़ों को अपने सबल पैरों से गेंद की तरह लुड़काते हुए, उनकी तरफ़ बिना देखे ही, आगे बढ़ते चले जायँ।

और एक बात यह भी तो है—किसी के अनुत्साहित करने से हतोत्साह होना ही क्यों? हमारा हतोत्साह होना ही बतलाता है कि हमने या तो अपने लक्ष्य के महत्व को नहीं समझ पाया है, अथवा हमें अपनी क्षमता पर विश्वास नहीं है। भाई, यह कैसा अविश्वास! अविश्वास तो अकर्मण्य लोगों के अन्धकार में ढकेलने वाला है। जो दृढ़-निश्चयी है और अपने कर्तव्य की महत्ता को भली-भाँति समझता है, उसके मन में यह अविश्वास स्वप्न में भी नहीं आता। स्वामी सत्यदेव परिव्राजक जब छात्रावस्था में थे, तब उनकी यह दृढ़ प्रेरणा हुई कि किसी तरह अमेरिका पहुँचकर वहीं शिक्षा प्राप्त करूँ। अमेरिका जाने के लिए काफ़ी धन चाहिए और काफ़ी साहस। स्वामीजी ने अपना यह इरादा दो-एक मित्रों को सुनाया। उन्होंने स्वामीजी की बात को दूर की डींग समझकर हँसी में उड़ा दिया। जब स्वामीजी के माता-पिता और भगिनी ने यह इरादा सुना, तो उनकी हँसी का ठिकाना न रहा। उन्होंने कहा—पाग

गये हो क्या, जो ऐसे ख़्वाब में पड़े हो? चारों तरफ़ स्वामीजी को निराशा ही निराशा मिली। किन्तु, वह पने विचार से डिगे नहीं। ग़रीब होते हुए भी वह अपने दम्य उत्साह के कारण अमेरिका जा ही पहुँचे। वहाँ वर्षों क मज़दूरी करके पढ़ा-लिखा और जो कुछ अनुभव प्राप्त किया उससे अपने भाषणों और ग्रन्थों द्वारा देश को लाभान्वित किया और कर रहे हैं। उनकी पुस्तकें पढ़कर कितने नवयुवकों का पौरुष और उत्साह जाग उठता है, और क्षेत्र में आकर कुछ कर गुज़रने की इच्छा होती है। मारा उत्साह और निश्चय ऐसा ही दृढ़ होना चाहिए कि रों के निराशा-भरे शब्दों से छुईमुई की तरह मुरझा न यें, बल्कि दूसरों को भी साहस और प्रगति प्रदान कर सकें।

तरुण-हृदयों को चाहिए कि वे अपने मनोभाव हींके सामने खोलें, जो उनके व्यक्तित्व और लक्ष्य के हत्व को समझ सकें। उनसे उत्साह तो मिलेगा ही, साथ हम अपनी मनोवांच्छाओं को सबके सामने रखकर अपनी शक्ति क्षीण करते हैं, उसकी रक्षा होगी। और यदि कोई उत्साह नहीं देगा, तो भगवान् तो साथ हैं हीं।

अपने जीवन का लक्ष्य ढूँढ़ते समय किसीका अनुकरण कीजिए। क्योंकि, एक मनुष्य जो लक्ष्य अपने लिए स्थिर रता है वह अपनी ही क्षमता के अनुसार न कि दूसरों । आजकल हम देखते हैं कि कालेज के जो भी विद्यार्थी कलते हैं, वे सब एक दूसरे की देखा-देखी वकील, बैरिस्टर डाक्टर बन जाना चाहते हैं। यदि अपने काम में अस- लता हुई तो कहते हैं कि मेरी क़िस्मत ही खोटी है। किंतु टी तो उनकी वह धुन है, जो अन्धाधुन्ध बिना समझे कुछ कर बैठती है। यह तो स्वाभाविक ही नहीं कि क ही लक्ष्य के उपयुक्त सभी की मनःशक्ति हो जाय। सार में इतने प्राणियोंके, भिन्न-भिन्न रूप में, उत्पन्न होने कारण यह है कि हम जीवन के भिन्न-भिन्न ढांचों को सकें, ताकि यह दुनिया हमारे लिए एक प्रदर्शिनी के मान शिक्षाप्रद और मनोरंजक हो।

जिन लोगों में बड़े होने पर भी इतनी बुद्धि नहीं कि अपने जीवन का ठीक-ठीक लक्ष्य स्थिर कर सकें, उन्हें हिए कि वे अपने आस-पास ऐसे महापुरुषों की तलाश करें, जो उनके जीवन की सूई को उस चिन्हित पथ की ओर लगा दें, जिस लक्ष्य तक पहुँचना उनके लिए अनिवार्य है।

हमारा लक्ष्य ऐसा होना चाहिए, जो हमें निरन्तर उन्नत करता रहे। यदि जीवन का उद्देश्य अवनति करना भी होता, तो हमें दो आँखें खोपड़ी के पीछे भी चमकती मिलतीं। हमें आगे ही बढ़ना है, इसीलिए दृष्टि आगे है। जितने आगे बढ़ सकें, बढ़ना चाहिए। हमारा लक्ष्य दूरतक जाना चाहिए। सुदूरगामी लक्ष्य बनाने से, जो लोग जहाँ के तहाँ रह जाने वाले हैं, वे कुछ तो आगे बढ़ेंगे ही। कुछ न बनने से कुछ बनना तो अच्छा है। हमारा प्रयत्न यह होना चाहिए कि तीर आकाश को भेदकर पार हो जाय। यदि यह संभव न हुआ तो वह कम-से-कम एक ताड़ से ऊँचा तो जायगा ही।

किसी अनुभवी का कथन है—तुम सोचो, वह पाओगे; तुम इच्छा करो, वह तुम्हारी होगी। स्वामी रामतीर्थ भी कहा करते थे कि जो तुम इच्छा करोगे, वह अवश्य पूरी होगी, यदि वह तुम्हारे अन्तःकरण से उठी हो। इच्छा ही हमारे लक्ष्य की सीमा बनाती है। जितनी महान् या बलवती हमारी इच्छा होगी, वह वैसी ही गति से हमें लक्ष्य की ओर अग्रसर करेगी। इच्छा तो जीवन के एंजिन को चलाने वाली भाफ है; जितनी ही उसमें शक्ति होगी, वह उतनी ही दूर ज़िन्दगी को ले जायगी—और, वह जहां तक पहुँचा देती है वहीं तक हमारा लक्ष्य पूर्ण हो जाता है। लोग कहते हैं कि हम जो इच्छा करें वह प्राप्त हो; पर यह अनहोनी बात है। हाँ, जो इच्छा हमारे अन्तःकरण में बिजली की तरह उठती है, वह अपनी पूर्ति के लिए हमें इतना प्रयत्नशील बना देती है कि हमारा लक्ष्य सफल होकर ही रहता है।

अन्त में यही कहना है—

जिस पथ का अवलम्बन करके
हुए महज्जन स्मरणीय ;
उसी मार्ग को लक्ष्य बनाकर
हो सकते तुम भी वरणीय।

शांतिप्रिय द्विवेदी

साहित्य-संगीत-कला

अरुणोदय

(१)

रात अभी धुँधलाई हुई थी, तारीकी-सी छाई हुई थी,
लैलिए शब शर्माई हुई थी, तारों को नींद आई हुई थी,
नूरे सेहर उनवाने शफ़क़ था।
फीके चाँद का चेहरा फ़क़ था॥

(२)

महो थीं ख़ाबे नाज़ में कलियाँ, थीं ख़ामोश फ़िज़ाये बुस्ताँ,
चश्मों की आँखें थीं लरज़ां, दुनिया थी जुलमाते बदामाँ,
करती थी जब रात इशारा।
हँस देता था सुबह का तारा॥

(३)

ज़र्रों में इक ख़ामोशी थी, सब्ज़े में ग़फ़लतकोशी थी,
तारी शाने बेहोशी थी, मस्त अदाये रूपोशी थी,
पोशीदा दुनिया थी ऐसे।
बुरक़े में दूल्हन हो जैसे॥

(४)

सुबह के कुछ आसार ऐसे थे, चाँद के जलवे माँद पड़े थे,
बासी फूलों के गहने थे, सोने वाले ऐंड़ रहे थे,
आँख अभी मस्ताई हुई थी।
जुल्फ़ अभी बिखराई हुई थी॥

(५)

आख़िर ख़त्म हुआ यह आलम, शानसे निकला नैयरे आज़
रोशनतर इक नूरे मुजस्सिम, हाथों में किरनों का परचम,
आँखों को चमकाता निकला।
"भैरों राग" सुनाता निकला॥

(६)

ज़र्रये दरपन करने वाला, नज़्मे गुलशन करने वाला,
कोह को मादन करने वाला, चाँद को रौशन करने वाला,
दम भर में दुनिया चमका दी।
नूर की इक चादर फैला दी॥

(७)

पहले धरती माता जागी, फिर राजा फिर परजा जागी,
कोयल उट्ठी, मैना जागी, मस्त आँखों में निंदिया जागी,
मस्जिद ने दरवाज़े खोले।
मन्दिर जाग उठा, बुत बोले॥

(८)

कमसिन भोले-भाले उट्ठे, नींदों के मतवाले उट्ठे,
तनकर सोने वाले उट्ठे, मुँह पर आँचल डाले उट्ठे,
सखियाँ चल उपमान को उट्ठीं।
शलवारें अशनान को उट्ठीं॥

(९)

हर दर जागा, हर घर जागा, नज़रें जागीं, मंज़र जागा,
मैकश शीशा दरबर जागा, साक़ी जागा, 'साग़र' जागा,
चश्मे जादूज़ा जाग उट्ठी।
वह जागे दुनिया जाग उट्ठी॥

समद्यारखां 'साग़र'

स्मृति-चिन्ता

मैं यहाँ हूँ और वह ? वह हैं पवित्र गंगा-संगम पर। से होंगे ? चिन्तित; व्यथित; दुःखित। सामने की दूब ही हरी-भरी होगी। पौधे वैसे ही खिल रहे होंगे। सूर्य वैसे ही उनकी खिड़की में से झांकता होगा सन्ध्या समय वैसे ही उनको अन्तिम प्रणाम करके जाता होगा। सब वैसे ही होंगे, जैसे थे। पर क्या ी वैसे ही होंगे ?

या किसी की विरह-वेदना बार-बार उनको व्याकुल रही होगी ? क्या उनके जी में रह-रहकर यह प्रबल ा न उठती होगी कि 'उनके' केवल 'उनके'—एक र्शन ही हो जायँ। क्या इस जीवन में उनकी, उनकी × से और मेरी, पूज्य और पवित्र पदों से, कभी भेंट कती है ?

जिस समय परमात्मा ने पावन आत्मा को उस मणि र में से निकाला, उस समय भगवान् भुवन-भास्कर, -घनों से घनघोर युद्ध करते हुए अन्य लोक को चले े।

रजनी थी; रजनीपति नहीं थे और घन सुन्दरियाँ ायें ? वे भी बादल की काली चादर से मुँह ढांपे आँसू रही थीं।

चारों ओर अन्धकार था। ऊपर, नीचे; आगे, पीछे; बायें। आकाश उड़ता हुआ मालूम पड़ता था। धरा सी हुई। कदाचित् कराल-काल के कठोर-कृत्य को में वे असमर्थ थे।

पेड़ थे और पत्ते। सब नीरव; सब निस्तब्ध। पास के के पत्ते भी 'खर-खर' नहीं कर रहे थे। 'चल-दल' था।

टप-टप बन्द हुई। कठिन कन्धों पर दिव्य देह धरी। ान ले गये। जिस समय मैं यहाँ कांपते हुए करों से ीय कलेवर को कठिन काठ पर सदा के लिए स्वाहा ेने क. आयोजन कर रहा था वह यहाँ कैसे थे ? उफ़ हृदय है मेरा ?

चिता चुनी। 'उनको' उस पर लिटा दिया। वह मिंची आँखें और ललित ललाट। वह अधस्फुटित ओंठ और दमकते हुए दाँत। भान होता था, सौन्दर्य सो गया है; लावण्य मूर्छित हो गया है।

एक सज्जन बोले, 'आभूषण उतार लो।' मैंने प्रश्न किया—'मैं ?' बोले—'हाँ।' संसार की सारी असारता सामने केन्द्रीभूत होकर खड़ी हो गई। सोचा—'सब यहीं रक्खा रह जाता है।' उतारे।

दाह देने की बारी आई। कौन दे ? मुझ अभागे को वह भी करना पड़ा। उस समय अगर वह यहाँ होते ?

तारिकायें फिर व्याकुल होने लगीं। फिर आर्द्र। यदि मुझे मालूम होता कि नटवर के नाटक के इस दिव्य दृश्य का ऐसा कारुणिक यवनिका-पतन होगा तो क्या मैं कभी ऐसे दुःखान्त नाटक को देखने के लिए तैयार होता ?

सबेरा हुआ। ऐसा सबेरा ईश्वर किसी का न करे। सूरज का अब भी पता न था। और उनका ? उन्हें तो कुछ ज्ञात ही न था। तार दिया—'चले आइए।'

तार देने के पश्चात् पत्र मिला। लिखा था—"मैं बड़ा बेचैन हूँ। लिखो या फौरन जबाव दो तो चला आऊँ। अपनी......की बड़ी सावधानी रखना।"

पत्र पढ़ा। सनाका खिंच गया। हाय अब मैं क्या लिखूँ ? मैं उन्हें क्या उत्तर दूँगा ? क्या मुँह दिखाऊँगा ? क्या कहूँगा ? 'वह रहीं नहीं ?' हाय मैं भी......

सारा दिन इसी उथल-पुथल में बीता। और रात ? रात इतनी लम्बी, इतनी दीर्घ। कुछ जागते; कुछ झपते; कुछ सोचते; कुछ देखते।

फिर प्रातःकाल हुआ। वह आ रहे थे। उस समय उषा एक समस्या हो रही थी। कभी-कभी कोई-कोई कली अब भी चीत्कार कर उठती थी।

सूरज बड़ी शीघ्रता और उत्सुकता से उषा से मिलने के लिए चला आ रहा था। मन में बड़ी-बड़ी आशायें लिये हुए और मगन। साथ में उसके शृंगार के हेतु 'कुमकुम' भी लिये था। किन्तु ज्योंही वह क्षितिज के ऊपर पहुँचा, उषा तिरोहित थी !

वह भी उत्सुक, व्यग्र और उनको देखने के लिए

लालायित शीघ्रता से चले आ रहे थे। साथ में कुम-कुम की एक शीशी भी थी। उन्हें क्या ख़बर थी कि वह उनका मुँह भी न देख पावेंगे और कुम-कुम न जाने कहाँ रक्खा रह जायगा।

मुझे देखते ही बोले "क्या हाल है?" "बहुत बुरा," मैंने उत्तर दिया। मेरा चेहरा लटक गया। वह समझे, "यद्यपि दशा अच्छी नहीं है, पर जीवन अभी शेष है,।" बोले—"बहुत बुरा कैसा?"

उन्हें मालूम न था कि मर्ज़ और मरीज़ दोनों ही दुनिया से उठ गये हैं। मैंने कोई उत्तर न दिया। रो दिया। मेरी दशा देखकर बोले, "यह सब क्या है?" मैंने रोते हुए उत्तर दिया—"जीवन लीला समाप्त हो गई।" बोले—"ऐं !!!"

इस एक शब्द में कितनी व्यथा-भरी शक्ति थी? कितना कठिन कष्ट था? कितना दारुण दुःख था? और साथ ही वीभत्स, आश्चर्य? मैं तौल न सका।

विस्तृत ललाट पर बल देते हुए बोले—"तब आपने मुझे व्यर्थ ही बुलाया है। अगर साफ़ लिख देते तो कभी न आता।"

बल में विचित्रता थी; स्वर में कठोरता। और हृदय में?

कुछ उत्तर न दिया। दे न सका। उनके चरणों से लिपट कर रोने लगा। उन्होंने उठाया। सम्हाला। हृदय से लगाया। धधक रहा था। मेरे कंधे पर सर रखकर स्वयं रोने लगे।

पास ही दो गुलाब आपस में मिल रहे थे। पँखड़ी बिखेर रहे थे। क्यों? पँखड़ी क्यों बिखेर रहे थे?

मैंने सूक्ष्मता से देखा। एक भौंरा उनके नीचे पड़ा था। उड़ नहीं रहा था। उड़ सकता भी न था। उस समय मन्द-मन्द मारुत झंकोरे ले रहा था। निर्जीव; अशक्त। पंखड़ियाँ टूटतीं और सीधी भ्रमर पर गिरतीं। वह उनसे ढकता जा रहा था।

मैंने मन में कहा—"भौंरे! तुम धन्य हो। और पुष्प। तुम हम लोगों से लाख गुने उत्तम।"

वह दृश्य उन्हें नहीं दिखाया। न मालूम क्या हाल होता? कहा—"इधर से चलिये।" बोले—"क्यों बहाना किया—"जी घबराता है।" बोले—"चलो। भी भस्म-दर्शन करना चाहता हूँ।" मैंने सोचा—"ये अधिकारी हैं।" और उन्हें वहाँ ले गया।

वहाँ अब क्या था? भस्म और इधर-उधर बिखरी अस्थियाँ। उन्होंने हृदय की हड्डी उठाकर हृदय से लग जहाँ-की-तहाँ रख दी। रोने लगे।

मेरे भी आँसू आने को हुए; रोक लिये। बोला— आप क्यों रोते हैं?"

आत्मा की अमरता पर गीता के दो एक श्लोक सु स्वयं रोने लगा। आँसू रुके नहीं। निकल ही पड़े। श्ल का उन पर क्या प्रभाव पड़ा होगा? मुझे मालूम न पर उनके आँसू बन्द हो गये। पता नहीं श्लोकों के क या मेरे आँसुओं के कारण?

रूमाल से मेरे आँसू पोंछते हुए बोले—"अब आप क्यों रोते हैं? मैं आपको दुःखी नहीं देखना चाहत मैंने कहा—"यहाँ से भी चलिये।" बोले—"चलो।"

उन्होंने थोड़ी-सी भस्म उठाई। माथे पर ल चाही। वह सब-की-सब खिसककर उनके चरणों में पड़ी।

यह क्या हुआ? क्यों हुआ? कैसे हुआ?

उन्होंने फिर उठानी चाही। मैंने रोक दिया। कहा "जहाँ जाना चाहती थी, गई। स्वर्गीय आत्मा को जि सुख मिले; वही होगा।"

मैंने थोड़ी-सी चरण-भस्म उठाई। अपने माथे लगाई। उन्होंने अपने चरणों की ओर देखा। न मा आंखों से क्यों एक धारा छूट पड़ी? बोले—"चलो, च जल्दी चलो, अब यहाँ ठहरा नहीं जाता।"

मेरे कन्धों पर आ पड़े। उनके आँसू पोंछे। दोनों मेरे गले में डाल दिये। अर्धचेत-से हो गये।

उन्हें सम्हालता हुआ घर की ओर बढ़ा। पहुँ बोले—"चैन कहाँ मिलेगा? यहाँ तो कहीं नहीं दिखाई पड़त "कहाँ मिलेगा?" देर तक आकाश में गूँजता र किसी ने सुना होगा। फिर वह वहाँ से चल दिये।

और अब वह...?

उपालम्भ

प्रकृति के प्रति

(१)

शिखर पर मुकुट धार कर
रजत-कान्तिमय हिम का।
की आभा से आलोकित
उज्ज्वल धवल तुहिन का॥

(२)

हो उपहास देवि ! क्या
निराधार निर्धन का ?
ा, मणि-मुक्ता से सज्जित
सुन्दर राज-वदन का !

(३)

मत करना अभिमान देवि ! तुम
इस अस्थिर वैभव का।
दो दिन का यह रूप तुम्हारा
यही नियम है भव का॥

(४)

रौद्र सूर्य के प्रखर ताप से
जब तुषार बह करके।
प्रकट करेगा नग्न रूप तब,
नयनों में जल भरके॥

(५)

अश्रुपात-सम जल-प्रपात से
अपने करुण-रुदन में।
बिलख-बिलख कर किसे कहोगी
मन का भार विपिन में ?

श्रीगोपाल नेवटिया

मराठी-साहित्य की गति

मराठी भाषा के वाङ्मय के क्षेत्र की ओर अग्रसर होते समय पहले साहित्य की कार्य-निया- ंस्था की ओर नज़र जाना स्वाभाविक है। कार्य करने मराठी साहित्य-सम्मेलन तथा परिषद् की स्थापना रन्तु कार्य इतने धीरे-धीरे चल रहा था कि उनकी ा का भी कोई चिन्ह बीच में दिखाई न देता था। साहित्य-सम्मेलन का कार्य देखकर अब जरा मराठी- -सम्मेलन शर्माता हुआ कार्यशील हो रहा है। इस मध्यवर्ती संस्था के कार्य केवल उपदेशात्मक अधिकार मर्यादित थे। साहित्य के जीवन में इस का नाम कभी साल में एकाध बार सुनने में आता था। न कोई इसका अधिकार मानता था, न इससे सलाह पूछता था। इस अकर्मण्यता को दूर करने की सदिच्छा से ग्वालियर में गत वर्ष के साहित्य-सम्मेलन के शुभ अवसर पर एकत्र सज्जनों ने एक अपूर्व प्रस्ताव स्वीकार किया। मराठी के साहित्य-क्षेत्र में एक कार्यशील परिषद् (Royal Academy) स्थापित करके वाङ्मयिक जीवन में नियन्त्रण का अधिकार पूर्ण रूप से इसके अधीन किया जायगा। ग्रन्थ-रचना, खोज, नये विचार फैलाना और साहित्य के चिरस्थायित्व पर ध्यान देना इस संस्था का प्रधान कर्तव्य रहेगा। साहित्य में आजतक अंधाधुन्ध फैल रही थी, अब कुछ नियन्त्रण का प्रभाव देखने में आयगा।

प्रकाशित साहित्य के क्षेत्र में भी एक तरह की सजीवता का प्रादुर्भाव होता जा रहा है। परोपजीवी साहित्य अब पहले से अधिक कार्यक्षम, अधिक स्वतन्त्र और सुदृढ़ हो रहा है। स्वतन्त्र साहित्य की उपज अब दिन-दिन बढ़ती जाती है। परोपजीवी साहित्य से ग्रन्थ-संख्या बढ़ती है और स्वतन्त्र साहित्य से वाङ्मय की मर्यादा का पता चलता है। स्वतन्त्र साहित्य भावी उत्कर्ष की ध्वजा है। आशा है कि स्वतन्त्रता के विकास की गति दिन-दिन बढ़ती जायगी। प्रकाशित पुस्तकों में पहले ही लोकमान्य तिलक की जीवनी पर दृष्टि पड़ती है। इसके लेखक प्रसिद्ध नेता श्री नरसिंह चिन्तामणि केलकर हैं। तीन अंश में चरित्र समाप्त हुआ है। इसका हिन्दी अनुवाद भी निकल चुका है। स्वतन्त्र पुस्तकों में श्री वामन मल्हार जोशी कृत विचार-विलास, शं० द० जावडेकर का राजनीति-शास्त्र परिचय, अध्यापक लिमये कृत भारती यांच्या शासन-पद्धति, कॅ० मोडक-कृत 'प्रतापगढ़चे युद्ध,' श्री फड़के-कृत नवयुग-धर्म इत्यादि पुस्तकें साहित्य की स्थायी सम्पत्ति हैं। श्री जोशी की अगाध विद्वत्ता का परिचय उनके नीतिशास्त्र-प्रवेश ने अखिल-महाराष्ट्र को दिया है और रसिकता की याद तो 'रागिणी' चिरकाल सबको देती ही रहेगी। आपके कुछ लेख 'त्यागभूमि' में निकल चुके हैं। जावडेकर और लिमये की पुस्तकें मराठी में राजनीतिशास्त्र-विषयक पहली कृतियाँ हैं। ऐतिहासिक रूप में प्रतापगढ़ के युद्ध का वर्णन करके कॅ० मोडक ने राज-काज के एक महत्वपूर्ण अंग की आलोचना की है। आप ग्वालियर सेना के एक अनुभवी सेना-नायक हैं और सेना-नायक की दृष्टि से प्रतापगढ़ के चारों ओर घूमकर, निसर्ग की रचना आँखों से देखकर, आपने श्री शिवाजी महाराज और अफ़ज़लखाँ के बीच प्रतापगढ़ के दर्रे में हुए युद्ध का वर्णन किया है। सैनिक बातों पर प्रकाश डालने वाली ऐसी पुस्तक मराठी-साहित्य में पहली है। इन्दौर के श्री केलकर ने तुकाराम महाराज के अभंगों से उनके जीवन की आलोचना करके एक स्तक लिखी है; वह भी मननीय है। धार्मिक वाङ्मय में सदाशिव शास्त्री भिड़े-ह रहस्यदीपिका और श्री महादेव शास्त्री दिवेकर कृत ब्राह्मण-धर्म इत्यादि पुस्तकें भी म . ली जायँगी

ललित वाङ्मय में डा० केतकर कृत आशावादी
देशपांडे लिखित बंधनाच्या पलीकडे; "नवाकाल" के प्रसि
संपादक श्री खाडिलकर कृत सवतीमत्सर, श्री खांडेक
कृत रंकाचें राज्य, अध्यापक वहरे कृत ५७ साल के बं
इत्यादि पुस्तकें महत्वपूर्ण हैं। डा० केतकर लिखित आशा
वादी और देशपांडेजी की बंधनाच्या पलीकडे दोनों ह
प्रचलित सामाजिक रूढ़ियों पर प्रहार करने ाली पुस्त
हैं। आशावादी अपने घर के बंधन तोड़कर समाज-कार्य
कटिबद्ध हो जाने से कुछ आदर्श-सा बन गया है, परन्
बन्धनों से मुक्त होनेवाला नायक सामाजिक बंधन तोड़क
अपनी प्रिया के लिए परिवार को छोड़कर अलग रहने क
चेष्टा करता है। आशावादी और इसके बीच में यह ज़मीन
आस्मान का फ़र्क है। आशावादी समाज का सहायक
और यह विषय-लालसा का चित्र। भारत जबतक विषयलि
जनों को हीन समझता है तबतक ऐसे लोगों को सा
यिक बन्धन के बाहर ही रहना पड़ेगा। काव्य-पुस्तकों
अध्यापक पटवर्धन कृत सुधारक और गिरीशकृत आंबरा
पढ़ने योग्य हैं। श्री पटवर्धन सुधारक एवं नये मत
प्रचारक हैं और गिरीश अपनी प्राचीन प्रणाली को न छोड़
भी सामाजिक अत्याचारों के ऊपर गाढ़ प्रकाश डालते हैं
काव्य-शास्त्र में अध्यापक पटवर्धन की छन्दो रचना ए
विद्वत्तापूर्ण और संस्कृत 'काव्य-प्रकाश' जैसा नया अ
स्वतंत्र उपक्रम है।

मासिक पत्रिकाओं में विविधज्ञान विस्तार का मह
अधिक है। विस्तार के साथ क्रमशः प्रकाशित होने वा
इसके लेखों में 'आमचा गांव' अवश्य मननीय है; वै
ही दादाबा पांडुरंग का आत्मवृत्त। हमारे प
में या मासिक पत्रिकाओं में प्रकाशित होने वाले ले
बहुधा अल्पजीवी होते हैं, परन्तु मासिक रत्नाकर नें आ
निक मराठी पोवाडे, सामाजिक सुधारणा और रंगभू
इत्यादि लेख वास्तव में ऐतिहासिक विवेचना से पूर्ण ह
के कारण स्थायित्व प्राप्त कर सकते हैं। मनोरंजन पहले
ही स्त्रीवर्ग के लिए काम कर रहा था, अब गृहलक्ष्
स्त्रियों के लिए अवतीर्ण हुई है और महत्वपूर्ण कार्य

रही है। 'लोकशिक्षण' ने अवतार लेकर थोड़े ही दिनों च्च पद प्राप्त कर लिया है और उसमें प्रकाशित लेखों खकर अनुमान होता है कि इस स्थान से वह च्युत गा। किर्लोस्कर खबर ने इधर बहुत तरक़्क़ी की है। प्रकाशित होने वाली सब बातें अनुकरणीय होती हैं। आरम्भ में ही व्यंग-चित्र रहता है, उसमें भी कर्तव्य का बतलाने वाली कुछ बात रहती है। उस पृष्ठ पर जो रण रहता है वह भी आदर्श होता है। जैसा कि एक के पृष्ठ पर लिखा था—"अपयश का कारण, अवसर मिला यह नहीं होता वरन अवसर पाने पर भी नहीं किया यह होता है।" इसमें एक दैव और के सम्बन्ध में लेखमाला महादेव शास्त्री दिवेकर ने है, जिसमें उन्होंने योगवाशिष्ट और दूसरे संस्कृत ाकृत ग्रन्थों में से उदाहरण उद्धृत करके यह साबित है कि प्रयत्नवाद ही सर्वथा आदरणीय है। उसमें मर्थ रामदास का यह वचन उद्धृत किया है कि से भालपट्ट के ऊपर लिखी हुई ब्रह्मा की रेखा भी जा सकती है, यह हम सन्देश देखते हैं तो फिर के सम्बन्ध में टालमटोल करना कैसे उचित हो है, अस्तु।

स० वा० जोशी

पंखड़ियाँ

ामी! जब सुनता हूँ कि प्रलय-पयोधर की वारि-धारा जगती-तल को आत्मसात् कर लेगी रा मन ज़रा भी शंकित नहीं होता। मैं सोचता य किसका है? आपके प्रेम-पयोधि में तो मैं ही डूब चुका हूँ।

× × ×

व! तुमको सुमधुर स्वर-लहरी की तान छेड़ लाऊँ अथवा मौन रखकर भीतर ही भीतर आर्त्ती उतारा करूँ—इन दोनों में कौन-सा चुनूँ?

× × ×

उपासक-वृन्द को जब तेरी अर्चना के लिए विविध द्रव्य लाते देखता हूँ, तो मैं रिक्तहस्त लज्जावनत हो जाता हूँ। क्या मेरे नन्हे हाथ, हृदय का कुम्हलाया फूल लिये तुम्हारे चरणों तक नहीं पहुँच सकते?

विनोदचंद्र

साहित्य की दुनिया में—

महान् लेखकों की जयन्तियाँ

कलकत्ते के सुकवि "गुलाब" ने एक पत्र द्वारा मेरा ध्यान हमारी भाषा के महान् लेखकों की जयन्तियाँ मनाने की ओर आकर्षित किया है। वह शीघ्र ही प्रेमचन्दजी की जयन्ती मनाने की आयोजना भी करना चाहते हैं। प्रेमचन्द जी ने निस्सन्देह हिन्दी की गौरव-वृद्धि की है; उनके द्वारा हिन्दी का सन्देश बहुत दूर तक फैला है। वह हमारे जातीय लेखक हैं और उन्होंने हिन्दी की परिधि में व्यापकता लाने का सफल उद्योग किया है। उनकी कितनी ही रचनाओं के अनुवाद अन्य भाषाओं में हो चुके हैं और बराबर होते जा रहे हैं। यद्यपि अनेक बातों में उनसे मेरा मत-भेद है किन्तु इससे उनकी सेवा का महत्त्व कम नहीं हो सकता।

प्रेमचन्दजी या अन्य किसी बड़े लेखक के सम्मान में, उसकी सफलता के उपलक्ष में यदि कोई सम्मेलन किया जाय तो उसमें कौन हिन्दी-प्रेमी सम्मिलित न होगा? परन्तु जयन्ती मनाने की प्रथा की यों अपनी कोई उपयोगिता नहीं है। आप किसी को बधाई देते हैं, उसके किसी कार्य में सफलता प्राप्त करने पर अथवा उसके लिए प्रसन्नता का कोई अवसर उपस्थित होने पर, नकि इसलिए कि वह साठ वर्ष का हो गया है या उसकी सत्तरवीं वर्षगाँठ पड़ती है। इसका बड़ा अच्छा चित्र महान् जर्मन कवि, लेखक तथा 'नोबेल'-पुरस्कार-विजेता कार्ल स्पिटलर ने खींचा है—

"आप किसी सज्जन के पास बधाई के लिए पहुँचते हैं। क्या मैं पूछ सकता हूँ कि बधाई किस बात पर? जब

कोई आदमी अपने प्रयत्न या उद्देश्य में सफल होता है तब उसे बधाई दी जाती है किन्तु एक वार्षिकोत्सव के सम्बन्ध में पूछा जा सकता है कि बेचारे ने क्या चीज़, क्या सफलता प्राप्त की ? अपना सत्तरवाँ वर्ष ! यह तो बड़ा ख़राब पुरस्कार हुआ ! यह तो पेट में 'कैन्सर' की उत्पत्ति वा दिमाग़ की कमज़ोरी की अवस्था प्राप्त करने की बात हुई !''

जातीय दृष्टि से महान् कवियों, लेखकों एवं महापुरुषों के सम्मान में उत्सव मनाये जा सकते हैं और उन महापुरुषों की ज्योति को जगाये रखने के लिए एक प्रकार से इसकी आवश्यकता भी है पर ऐसे उत्सव सर्व-साधारण के स्वाभाविक और स्वप्रसूत उद्गार के द्योतक होने चाहिएँ; एक खास तिथि पर ही वे मनाये जाया करें, ऐसा निश्चय बुद्धि और कार्य-क्रम की व्यावहारिक सफलता दोनों दृष्टियों से उपयुक्त और उचित नहीं होगा।

मेरी समझ से प्रेमचन्दजी की जयन्ती की अपेक्षा योंही उनके सम्मान में कोई उत्सव मनाया जाय तो अधिक अच्छा होगा।

* * *

प्रगतिशील हिन्दी-साहित्य

विश्व के महागान से अपनी एकस्वरता स्थापित करने के उद्देश्य से भारत में जो महायज्ञ हो रहा है, उसने प्रत्येक क्षेत्र में हलचल उत्पन्न कर दी है। हलचल जीवन की प्रतिध्वनि है। समाज में, साहित्य में, राजनीति में, धर्म में, रहन-सहन में शिक्षा एवं विचार-जगत् में सर्वत्र क्षुद्र सीमायें कटती जाती हैं; नदी-कूल के करारे धारा की चोट और संघर्ष से अस्थिर हो रहे हैं। लोगों में प्यास उत्पन्न हो गई है—वह प्यास, जो ज्ञान के सम्पूर्ण रहस्यों को समझकर उसे प्राणों में स्थान देने को विकल है।

जीवन के इस धूप-छाँह में साहित्य की प्यास सबसे आगे है। भारत में तो सदैव ही साहित्य ने समाज का नेतृत्व किया है—इस समय भी कर रहा है। हमारी राजनैतिक, सामाजिक, शैक्षणिक सब प्रकार की वर्तमान वेदनायें उसी से व्यक्त हुई हैं।

वर्तमान हिन्दी-साहित्य पर भी जीवन की इस प्रक्रिया ने बड़ा प्रभाव डाला है। क्षुद्र से महान् की ओर, अपूर्ण से पूर्ण की ओर उसकी गति बढ़ती ही जाती है। चारों ओर पूर्णता लाने की चेष्टा हो रही है। प्यास बढ़ रही है और प्यास के साथ पीने और पिलाने वाले भी बढ़ रहे हैं।

इधर तीन महीनों के अन्दर नये ढंग की कविता ने कोई ख़ास उन्नति तो नहीं की पर मर्यादा बनी रही। संपादकों के अनिश्चित सिद्धान्तों और परख की कमी के कारण घास-भूसे से लेकर सुन्दरतम रचनाओं तक को एक ह पत्रिका में एक ही अंक में स्थान मिलता रहा है। राजनैति पत्रिकाओं के लिए तो इस प्रकार की कठिनाई एक सीम तक क्षम्य हो सकती है पर साहित्यिकता का दम भरनेवाल पत्रिकाओं की मर्यादा इससे नष्ट हो रही है। हिन्दी में को पत्रिका इस समय, अपनी कविताओं की सुन्दरता के कार प्रख्यात नहीं है। यह बड़े क्षोभ और दुःख की बात है।

फिर भी पाठकों की रुचि सुधर रही है और उन मांग के कारण सम्पादकों को भी कविताओं के निर्वाचन ज़रा ध्यान देना पड़ रहा है—यद्यपि इस ध्यान की मात्रा बहुत कम है। पत्रिकाओं में कभी-कभी अच्छी फुटकर क तायें पढ़ने को मिल जाती हैं। 'सुधा' में 'एक भारत आत्मा' की 'विदा' कविता बहुत सुन्दर निकली। श्री भ वतीचरण वर्मा, श्री रामअवध द्विवेदी, श्री रामकुमार व 'परम', श्री काले तथा श्री श्यामापति की कुछ अच्छी क तायें निकली हैं। निराला, सुमित्रानन्दन, गोविन्दवल् तथा महादेवी वर्मा की कवितायें इधर देखने में नहीं आ पाठक इनसे आशा रखते हैं।

इधर किसी कवि का कोई अच्छा संग्रह नहीं निकल पर पता लगा है कि 'मधुर' की कविताओं का संग्रह नि लने वाला है और भावुकता के उपासक श्री माखनल चतुर्वेदी उसकी भूमिका लिखने वाले हैं। श्री माहेश्वरी नाम के कोई सज्जन 'विहार के हिन्दी कवि' नाम की पुस्तक लिख रहे हैं।

इधर गद्य के क्षेत्र में पद्य की अपेक्षा अधिक उ हुई है। श्री वृन्दावनलाल वर्मा का 'लगन' उपन्यास में ही निकला है। 'अनाख्या' और 'कलानिधि' नाम रायकृष्णदास की छोटी कहानियों के दो संग्रह निकल रहे

र गम्भीर विषयों पर भी पुस्तकें लिखने का क्रम जारी है। शी-विद्यापीठ के शास्त्री श्री कमला-पति त्रिपाठी की 'मौर्य ाज्य' नामक पुस्तक मनोरंजन-पुस्तक-माला में पहले ही ाशित हो चुकी थी; इधर इंडियन प्रेस से गुरुकुल कांगडी अध्यापक श्री सत्यकेतु विद्यालंकार का लिखा हुआ 'मौर्य ाज्य का इतिहास' नामक एक सुन्दर और प्रामाणिक प्रकाशित हुआ है। इसे देखने का सौभाग्य मुझे प्राप्त चुका है और मैं सहज ही कह सकता हूँ कि इस ग्रन्थ हिन्दी-साहित्य के एक अभाव की पूर्ति हुई है। ग्रन्थ भग ६०० पृष्ठों का है और मूल्य ५) है।

'त्यागभूमि' के पाठकों के सुपरिचित श्री श्रीगोपाल िया की 'काश्मीर' नामक एक सुन्दर पुस्तक अभी ी मन्दिर' प्रयाग से निकली है। नेवटियाजी हाल में मीर की यात्रा करके लौटे हैं और उन्होंने इस पुस्तक पनी यात्रा तथा काश्मीर सम्बन्धी अन्य बातों का बड़ा व वर्णन किया है। पुस्तक अनेक रंगीन चित्रों से त है और सादे चित्र तो प्रत्येक पृष्ठ के साथ दिये गये सुन्दर सजिल्द पुस्तक है। भिन्न-भिन्न देशों के सम्बन्ध सी पुस्तकों की हिन्दी में बड़ी कमी है। कोई प्रकाशक ध्यान दें तो इस विषय का बड़ा सुन्दर साहित्य हो सकता है। सुना है, काश्मीर पर ही श्री दीन-ालु शास्त्री की लिखी एक पुस्तक इंडियन प्रेस से और लनेवाली है।

इन बातों से मालूम होता है कि साहित्य के अभ्युदय गति दिन-दिन बढ़ती जाती है और वह समय बहुत नहीं है, जब उन्नत यूरोपीय भाषाओं के साहित्यों के हिन्दी का अध्ययन करने के लिए भी रवि बाबू-जैसी ृत्ति रखने वाले हमारे देशी पर अन्य भाषा-भाषी भाई विदेशी विद्वान बाध्य होंगे।

श्री रामनाथलाल 'सुमन'

[नोट—प्रत्येक अंक में प्रगति की ऐसी संक्षिप्त सूचनायें का प्रबन्ध किया गया है। आशा है मेरे स्नेही मित्र और ु लेखकगण अपनी महत्वपूर्ण अप्रकाशित रचनाओं के ध में समय-समय पर सूचित करते रहेंगे। 'सुमन']

विविध

सुधारक-संघों की आवश्यकता

अपनी वर्तमान सामाजिक अवस्था के प्रति असंतोष की जो लहर इस समय देश में चल रही है, उसका आरम्भ लगभग सवा सौ वर्ष पहले हुआ था। समाज की कुरीतियों को दूर करने तथा उचित रूप से उसका नियमन करने का प्रयत्न भी तभी से किया जा रहा है। इस प्रयत्न ने अबतक अनेक रूप बदले हैं, किन्तु उसका उद्देश्य वही रहा है। समय और परिस्थिति के अनुसार कार्य-प्रणाली बदलती ही रहती है। वर्तमान युग के महापुरुषों में राजा राममोहनराय का ध्यान सबसे पहले इस ओर आकर्षित हुआ था। उन्होंने देख लिया था कि घातक रूढ़ियों का नाश किये बिना समाज की उन्नति नहीं हो सकती। उन्होंने हिन्दुओं की प्रत्येक धार्मिक और सामाजिक कुरीति के प्रति आवाज़ उठाई और उसे दूर करने का समयानुकूल प्रयत्न किया। यह वह ज़माना था, जब हिन्दुओं के आचार-विचार उनके प्राचीन शास्त्रों के बहुत कुछ प्रतिकूल होते हुए भी वे अपना सब काम शास्त्र की दुहाई देकर ही करते थे। उन्हें अपनी प्राचीन सभ्यता का गौरव और अभिमान था। इसी कारण जिन बातों को उन्होंने भ्रमवश भी शास्त्रानुमोदित समझ लिया, उन्हें छोड़ना उनके लिए असम्भव था। अतः उन कुरीतियों को दूर कराने के लिए भी शास्त्रों के प्रमाण की आवश्यकता थी। राजा राममोहनराय ने यही किया। अपने लेखों और व्याख्यानों में शास्त्रों के उद्धरण दे-देकर वह बतलाते थे कि हमरी मौजूदा रहन-सहन शास्त्रों के विरुद्ध है और इसे

त्याग कर सच्चा मार्ग ग्रहण करने की आवश्यकता है। वह शास्त्रों को ईश्वर-कृत नहीं मानते थे और आवश्यकता पड़ने पर उनके विरुद्ध जाने में भी उन्हें किसी प्रकार का संकोच नहीं था। वह सत्य-मार्ग के पथिक थे। किन्तु समाज को इस मार्ग पर लाने के लिए जिस हद तक शास्त्रों की सहायता ली|जा सकती थी, उस हद तक उनकी सहायता लेना उन्होंने अनुचित नहीं समझा। उनके कार्यों की कठिनाइयों का इस समय पूरी तरह अनुमान भी नहीं किया जा सकता है। आज सती-प्रथा का नाम सुनकर ही प्रत्येक व्यक्ति के मन में उसके प्रति विरोध का भाव उत्पन्न हो जाता है। पर उस समय वह एक धार्मिक पवित्र कृत्य समझा जाता था। उसे दूर करने के लिए भी यह साबित करने की आवश्यकता थी कि यह शास्त्र के प्रतिकूल है। अतः राजासाहब ने शास्त्रों का प्रमाण पेश किया।

धीरे-धीरे और भी कुरीतियों की ओर निगाह जाने लगी। श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर ने विधवाओं की करुणाजनक अवस्था पर तरस खाया और उसे सुधारने के लिए तत्पर हो गये। उन्होंने निश्चय-पूर्वक इस बात का अनुभव किया कि किसी भी अवस्था में विधवाओं को विवाह न करने देने की प्रथा अमानुषिक है। पर समाज को अपने पक्ष में लाने के लिए फिर भी शास्त्रीय प्रमाण की आवश्यकता थी। वह शास्त्रों का अध्ययन करने लगे और जब उन्हें अपने अनुकूल व्यवस्था मिली तब प्रसन्नता से उछल पड़े। आगे चलकर स्वामी दयानन्द ने समाज की गति-विधि को ही बहुत-कुछ बदल दिया। समाज में एक नई स्फूर्ति आगई। एक नया प्रवाह |बहने लगा। उन्नीसवीं शताब्दी के चौथे चरण में राजनैतिक आन्दोलन के साथ-साथ समाज-सुधार का कार्य भी संगठित रूप से होने लगा। कांग्रेस के साथ-साथ समाज-सुधार-सम्मेलन के अधिवेशन भी होने लगे। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया त्यों-त्यों सुधार की प्रणाली भी बदलती गई। जैसा कि हमने अभी देखा है, आरम्भ के सुधारक स्मृतियों आदि का सहारा लेकर ही सुधार का प्रस्ताव रखते थे। किन्तु धीरे-धीरे धर्मग्रन्थों का सहारा लेने की आवश्यकता दूर होती गई। यद्यपि वर्तमान समाज में भी ऐसे लोग हैं, जो स्मृतियों और पुराणों के अपने किये हुए अर्थ से एक इंच भी दायें या बायें हटने के लिए तैयार नहीं हैं, तथापि अब साधारणतया हमारा समाज स्वतंत्र रूप से अपने पुराने नियमों में परिस्थिति के अनुसार परिवर्त्तन कर लेने की आवश्यकता का क़ायल हो गया है। किन्तु अभी तक का कार्य अधिक तर मानसिक क्षेत्र में ही हुआ है। इतने दिनों के आन्दोलन ने जन-साधारण की विचार-शैली तो परिवर्तित कर दी है, पर व्यावहारिक क्षेत्र में अभी बहुत सी त्रुटियाँ ज्यों-की-त्यों मौजूद हैं। आज से बीस पच्चीस बरस पहले समाज-सुधार-सम्मेलनों के द्वारा जो प्रस्ताव पास होते थे, वे अभी तक बार-बार पास होते चले जा रहे हैं। पर उनमें से अनेक अभी तक कार्य रूप में परिणत नहीं हो रहे हैं। किन्तु अब आवश्यकता इस बात की है कि सुधार के जो तरीके निश्चित कि जायँ उनपर अमल भी किया जाय। प्रत्येक स्थान पर ऐसे व्यक्तियों का समुदाय हो, जो नवीन रूप से समाज को संगठित करने में व्यावहारिक सहायता पहुँचावे।

हमारे पीछे एक बहुत लम्बा इतिहास है। संसार के कई शताब्दियों के अनुभव से हम लाभ उठा सकते हैं। अतीत और वर्तमान के आधार पर ही भविष्य का स्वरू निश्चित होता है। पिछले सौ वर्षों से समाज-सुधार-सम्बन्ध विचारों और कार्यों के पश्चात् अब हम एक निश्चि नतीजे पर पहुँच चुके हैं। अब हमें भिन्न-भिन्न नियमों के स्वरूप और आदर्शों का निश्चय नहीं करना है। यह न देखना है कि अमुक कार्य के लिए शास्त्र की आज्ञा या नहीं, और न इसी बात पर विचार करना है कि अमु रूढ़ि तोड़ी जा सकती है या नहीं। यह सब काम बहु हद तक हो चुका। अब मुख्य कार्य है अपने निश्चित कि हुए सिद्धान्तों पर अमल करने का। इसके बिना न त हम सुधार के कार्य में सहायक हो सकते हैं, और न अपन गिरी हुई अवस्था में कोई लाभ-जनक परिवर्त्तन ही क सकते हैं। यों तो हमें बहुत-सी कुरीतियों को दूर कर है, किन्तु विशेष रूप से जो समस्यायें हमारे सामने हैं, वे हैं— स्त्री-जाति की अवस्था, विवाह-सम्बन्धी कुप्रथायें, ऊँच-नी और जाति-गत छुआ-छूत का भाव, दलित जातियों

स्था, धार्मिक तथा सामाजिक कृत्यों में होनेवाले अपव्यय धर्म और परम्परा के नाम पर होने वाली कुछ ी बुराइयाँ।

स्त्रियों की अवस्था बहुत ही शोचनीय है। स्वर्गीय राममोहनराय, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, स्वामी नन्द सरस्वती आदि ने उनका बहुत-कुछ उद्धार किया किन्तु उनकी साधारण अवस्था अभी बहुत गिरी हुई शिक्षित-समाज का एक अंश यह समझता है कि स्त्रियों क्षा का प्रचार बढ़ने से उनकी अवस्था सुधर जायगी। इसके पहले स्त्री-समाज के प्रति पुरुषों की मनोवृत्ति ने की आवश्यकता है। इस दृष्टि से स्त्री-जाति के र का प्रश्न भी बहुत हद तक पुरुष-जाति की शिक्षा पर र है। किन्तु यहाँ शिक्षा का अर्थ साक्षरता नहीं वरन् क है। जबतक हम इस बात का अनुभव नहीं करेंगे स्त्रियों की उपयुक्त सहायता और सहयोगिता के बिना रा उद्धार न होगा, तबतक हम आगे नहीं बढ़ सकेंगे।

ों की शिक्षा आवश्यक है, लेकिन पुरुषों का मनोभाव इसके मार्ग में बाधक है। स्त्रियों को पर्दे में रहने के मजबूर करना, बालिकावस्था में ही उनका विवाह देना, विधवा हो जाने पर उन्हें दूसरा विवाह करने अनुमति न देना, और इतना करते हुए भी स्त्रियों को क्षित करने का प्रयत्न करना उपहासास्पद है। इन बातों के स्त्रियों की अवस्था जितनी ख़राब हुई है उतनी उनकी क्षरता के कारण नहीं, बल्कि उनकी निरक्षरता उनकी परवशता का अनिवार्य परिणाम है। पर्दे की प्रथा शुरू हुई, उसके क्या लाभ थे, प्राचीन हिन्दू-समाज में का क्या रूप था, शास्त्रों में इसके सम्बन्ध में क्या व्यवस्था त्यादि प्रश्न इतिहास के विद्यार्थियों के काम के हैं। हमारे यह बात स्पष्ट है कि वर्तमान समाज में स्त्रियों को पर्दे खकर हम न केवल उन्नति नहीं कर सकते वरन् दिनोंदिन नति के गड्ढे में गिरते जायँगे। चाहे किसी समय यह हमारे लिए लाभदायक रही हो, पर अब इसकी याँ प्रत्यक्ष हैं। यही बात विधवा-विवाह के सम्बन्ध । हम यह नहीं कहते कि प्रत्येक विधवा का विवाह ही देना चाहिए। विवाह का आदर्श तो यही है कि यह सम्बन्ध सचाई के साथ जन्म-भर निबाहा जाय। पुरुष का देहान्त होने पर स्त्री और स्त्री का देहान्त होने पर पुरुष अपना शेष जीवन संयम और ब्रह्मचर्य से बितावें। किन्तु यह आदर्श है और साधारण समाज का नियम नहीं हो सकता। अतः जो स्त्री विधवा होने पर अपना शेष जीवन ब्रह्मचर्य से न बिता सके उसे अपना दूसरा विवाह करने का पूरा अधिकार होना चाहिए। किन्तु यह तो हुई बड़ी उम्र की विधवाओं के सम्बन्ध की बात। हमारे समाज में आज ऐसी भी लड़कियाँ विधवा कहलाती हैं, जो विवाह शब्द का अर्थ भी नहीं समझ सकतीं। वास्तव में तो वे विधवायें नहीं हैं और उनके अभिभावकों का कर्त्तव्य है कि उनका विवाह अवश्य ही कर दें। ऐसा न होने से समाज आदर्श की ओर बढ़ने की अपेक्षा दिन-बदिन गिरता ही जायगा।

दूसरी समस्या है विवाह-सम्बन्धी कुरीतियों की। कम उम्र में विवाह कर देना, पुरुषों का एक स्त्री के रहते और विवाह करना, अधिक उम्र के पुरुषों का कम-उम्र की लड़कियों से विवाह करना, विवाह के सम्बन्ध में तिलक-दहेज़ आदि के लिए मोल-भाव करना इत्यादि बुराइयाँ हमारे समाज को रसातल पहुँचा रही हैं। यद्यपि अब इनके सम्बन्ध में किसी तरह का मतभेद नहीं रह गया है। किन्तु खुले-आम परम्परा को तोड़ने की झिझक बाक़ी है यह कमज़ोरी बहुत ही घातक साबित हो रही है। उचित तो यही है कि पच्चीस वर्ष की उम्र के पहले लड़कों का और सोलह वर्ष के पहले लड़कियों का विवाह न हो, किन्तु यदि एकाएक यहाँ तक पहुँचने में कठिनाइयाँ अधिक पड़ती हों, तो लड़कों और लड़कियों का विवाह १८ और १४ वर्ष के पहले तो कदापि न किया जाना चाहिए। अनमेल विवाह का प्रश्न भी बड़ा जटिल है। पैंसठ-पैंसठ बरस के बूढ़े १३-१४ बरस की लड़कियों से विवाह कर लेते हैं। यह अमानुषिक प्रथा शीघ्र ही बन्द होनी चाहिए। पहले तो एक स्त्री के रहते दूसरा विवाह करने की अनुमति ही न होनी चाहिए। और यदि उस स्त्री के मरने पर कोई व्यक्ति अपना दूसरा विवाह करना चाहे तो उसे उचित है कि वह अपनी समवयस्क विधवा से ही अपना विवाह करे। तिलक-

दहेज़ की प्रथा ने वर-कन्या का एक बाजार ही खड़ा कर दिया है। इसके कारण ग़रीबों को कितना कष्ट उठाना पड़ता है,यह प्रत्येक आदमी जानता है—और, अधिकांश ने इसका अनुभव किया है।

तीसरी समस्या है जात-पाँत और उँच-नीच की। इसके पोषक भी इतिहास और पुराण के उद्धरण पेश करते हुए इसकी उपयोगिता साबित करना चाहते हैं। उनका दावा है कि जातियों का विभाग स्वाभाविक है। जहाँ तक स्वाभाविकता का प्रश्न है वहाँतक उसकी सत्ता के सम्बन्ध में किसीको एतराज़ नहीं हो सकता, और न इसी बात पर कोई झगड़ा हो सकता है कि सम्भवतः प्राचीन काल में हमारे समाज को इससे लाभ रहा हो। किन्तु इससे यह नहीं साबित होता कि जाति-प्रथा प्राचीन काल में जिस रूप में थी, उसी रूप में इस समय भी है। और यदि उसकी स्वाभाविकता की दुहाई दी जाय तो उसके लिए किसी प्रकार के कृत्रिम उपाय की आवश्यकता नहीं है। इसके अनुसार तो जो व्यक्ति अपनी प्रवृत्ति और अपने गुण के अनुकूल जिस पेशे को अख्तियार करे वही उसकी जाति होनी चाहिए। लकड़ी के काम में रुचि रखनेवाला बढ़ई, खेती में प्रवीण किसान और जूता बनाने वाला चमार कहा जाना चाहिए। किन्तु इस समय वर्तमान जाति-प्रथा के समर्थक उसकी आवश्यकता तो बतलाते हैं मनोवैज्ञानिक कारणों से, लेकिन उसकी रक्षा का उपाय उसके बिलकुल प्रतिकूल करते हैं। किसी व्यक्ति ने यदि ब्राह्मण के घर जन्म लिया हो तो, चाहे उसकी रुचि बढ़ई का काम करने की ही क्यों न हो, पर उसे 'ब्राह्मण' संज्ञा ही देंगे। यह उपरोक्त वैज्ञानिक सिद्धान्त के सर्वथा प्रतिकूल है। इसके अतिरिक्त वर्तमान जाति-प्रथा की सबसे भयानक बुराई है—ऊँच-नीच का भाव। कुछ जातियाँ ऊँची समझी जाती हैं और कुछ नीची। किन्तु जिन-जिन पेशों की समाज को आवश्यकता है उन-उन पेशों के करने वाले—केवल अपने पेशे के कारण—एक दूसरे से ऊँचे या नीचे नहीं समझे जा सकते। व्यक्तिगत विशेषताओं के कारण कोई भी व्यक्ति अपने समाज में सर्वश्रेष्ठ हो सकता है और इसी प्रकार व्यक्तिगत दूषणों के कारण दूसरा व्यक्ति पतित भी हो सकता है। लेकिन कोई भी पेश दूसरे पेशों से अच्छा या बुरा उस समय तक नहीं कहा ज सकता, जबतक समाज को उसकी भी उतनी ही आवश्य कता हो, जितनी कि दूसरे पेशों की। नाई, धोबी, दर्ज और अध्यापक—सभी एक दूसरे के बराबर हैं, क्यों किसी के भी बिना समाज का काम नहीं चल सकता। हाँ परोपकारिता, दयालुता, ईमानदारी, पवित्रता, सफ़ा आदि गुण जिस व्यक्ति में जितनी ही अधिक मात्रा होंगे वह उतना ही अधिक पूज्य समझा जायगा—चा वह किसी भी पेशे का करनेवाला हो। वर्तमान जाति प्रथा से अस्वाभाविकता को प्रोत्साहन मिलता है औ प्रत्येक व्यक्ति अपने अनुकूल मार्ग पर उन्नति करने का अवसर नहीं पाता। साथ ही ऊँच-नीच के भाव से परस्पर द्वे और घृणा के भावों की ही वृद्धि होती है। खान-पान में इ जातिगत छुआछूत के भावों के कारण और भी अनर्थ हो है। केवल किसी जाति-विशेष में जन्म लेने के कारण कोई व्यक्ति इतना पवित्र मान लिया जाता है कि उस रहन-सहन का तरीक़ा कितना ही गन्दा क्यों न हो उसका बनाया हुआ भोजन सभी खा सकेंगे। दूसरी ओ किसी दूसरी जाति में जन्म लेने के कारण ही सफ़ाई औ पवित्रता से रहने वाला व्यक्ति भी अयोग्य और नीच सम जाता है। यह कृत्रिम और अस्वाभाविक बन्धन समाज प्रगति में बाधा पहुँचता है। भिन्न-भिन्न जातियों में केव वर्तमान जातिगत भिन्नता के कारण ही विवाह न हो सक की बाधा भी इसी प्रकार अस्वाभाविक है।

चौथी समस्या अछूत कही जानेवाली जातियों की है इनके सम्बन्ध में मुख्य प्रश्न इनके सामाजिक और नागरि अधिकारों का है। इनकी वर्तमान गिरी हुई अवस्था लिए भी आजकल की ऊँची कही जाने वाली जातियाँ जिम्मेदार हैं। किन्तु यदि इस दृष्टि से इस प्रश्न प विचार न करें तो भी इन लोगों के नागरिक और साम जिक अधिकारों में हस्तक्षेप करने का किसीको अधिक नहीं है। जलाशयों से पानी लेने, पाठशालाओं में शिक्ष प्राप्त करने तथा देवालयों में देव-दर्शन करने के लिए जा से इन्हें कोई रोक नहीं सकता। यह दया नहीं वरन् अधि

का प्रश्न है। साथ ही इनकी अवस्था सुधारने का करना भी प्रत्येक ऊँची कही जाने वाली जाति के व्यक्ति का कर्तव्य है, क्योंकि इन्हें गिराने में उसका रहा है।

पाँचवाँ प्रश्न है अपव्यय का। विवाह आदि सामा- कृत्यों के अवसर पर होने वाले अपव्यय के कारण म श्रेणी के लोगों की अवस्था बहुत ही ख़राब होती ी है। सभी लोग इस क्लेश का अनुभव करते हैं, न इज़्ज़त का झूठा ख़याल उन्हें सच्चे रास्ते पर आने कता है। बड़ा अच्छा हो कि अधिक पैसे वाले व्यक्ति बढ़ें और ऐसे अवसरों पर होने वाले ख़र्चों को एकदम करके साधारण स्थिति के मनुष्यों की झिझक दूर । किन्तु साधारण स्थिति के लोगों को भी अब इसके अमीरों की प्रतीक्षा न करनी चाहिए। बहुत कम अमीर होंगे, जो लोक-हित को सामने रखकर इस ले में अग्रसर होंगे।

इनके अतिरिक्त अनेक दूसरी बुराइयाँ भी हैं, जो सारे ाज में या स्थान-विशेष में धन अथवा परम्परा के पर प्रचलित हैं। जैसे मृत्यु के अवसर पर भोज देने, त्रों को दान देने आदि सम्बन्धी कुप्रथायें। इन सबके न्ध में अब किसी तरह का तीव्र मत-भेद नहीं रह गया साधारणतया समाज अपने वर्तमान नियमों में परि- न की आवश्यकता का अनुभव करने लगा है। अब ार की प्रगति के लिए आवश्यकता इसी बात की है कि वहारिक क्षेत्र में इस ओर अग्रसर हुआ जाय। अर्थात्, क स्थान पर एक ऐसा समुदाय बने, जिसके सदस्य संकल्प कर लें कि —

(१) अपने अथवा अपने आश्रितों के विवाह के न्ध में इस बात का ख़याल रक्खेंगे कि विवाह के य वर और कन्या की उम्र क्रमशः १८ और १४ से कम न हो।

(२) विधुर होने पर यदि विवाह की आवश्यकता होगी तो अपनी समवयस्क विधवा से ही ह करेंगे।

(३) एक स्त्री के रहते अपना दूसरा विवाह न ।

(४) परिवार में यदि बाल-विधवायें होंगी तो अवश्य ही उनका विवाह कर देंगे।*

(५) अधिक उम्र की विधवायें यदि चाहेंगी तो उनका भी विवाह कर देंगे।

(६) विवाह के सम्बन्ध में तिलक-दहेज़ अथवा अन्य किसी रूप में लेन-देन का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से ठहराव नहीं करेंगे।

(७) अपने घर में पर्दे की प्रथा न रहने देंगे।

(८) किसी भी व्यक्ति को उसके पेशे के कारण ऊँचा-नीचा नहीं समझेंगे।

(९) परस्पर एक दूसरे के हाथ का भोजन करने में जातिगत छुआछूत का भाव न रक्खेंगे वरन् शुचिता का विचार करेंगे।

(१०) जाति-भिन्नता को विवाह-सम्बन्ध के मार्ग में बाधक नहीं समझेंगे।

(११) अछूत कही जाने वाली जातियों को उनके सामाजिक तथा नागरिक अधिकार दिलाने का प्रयत्न करते रहेंगे।

(१२) किसी ऐसे कृत्य में सहयोग न करेंगे, जिसमें उपरोक्त सिद्धान्तों के प्रतिकूल व्यवहार हो रहा होगा।

ऐसा होने पर, हमारा ख़याल है, हमारे समाज की दशा अब से कहीं उन्नत हो जायगी। †

रामशरण,
कन्हैयालाल शास्त्री

---

* हमारी समझ में अवश्य ही विवाह कर देने के बजाय उन्हें विवाह की पूरी छूट दे देना और तदनुसार व्यवस्था कर देना अधिक उपयुक्त होगा। —सम्पादक

† इन्हीं उद्देश्यों को सामने रखकर समाज में प्रचलित कुरीतियों को दूर करने की दृष्टि से काशी में एक सुधारक-संघ की स्थापना की भी गई है। वे सब सज्जन इस संघ के सदस्य हो सकेंगे, जो इसके उद्देश्यों और साधनों से सहमत होते हुए उसमें बतलाये गये सिद्धान्तों पर पूरी तरह अमल भी करेंगे। इस बात का विशेष रूप से ध्यान रक्खा गया है कि यह संघ केवल सुधार के सिद्धान्त

चीनी तुर्किस्तान में खरोष्ठी लिपि

आक्सफ़ोर्ड की अन्तर्राष्ट्रीय प्राच्यवित्परिषद् में जो अनेक लेख पढ़े गये थे उनमें से केम्ब्रिज-विश्वविद्यालय के संस्कृताध्यापक अध्या० रायसन साहब का उपरिनिर्दिष्ट शीर्षक लेख बड़े महत्व का था। 'त्यागभूमि' के पाठकों के लिए उसका सारांश यहाँ दिया जाता है।

प्राचीन लिपि के जानने वालों को यह भली-भाँति विदित है कि सम्राट अशोक मौर्य के काल में भारतवर्ष के वायव्य प्रदेश में खरोष्ठी नाम की एक लिपि प्रचलित थी। यह दाहिनी से बांई ओर लिखी जाती थी। शाहबाजगढ़ी नामक स्थान में अशोक की आज्ञायें इसी लिपि में खुदी हुई मिली हैं। विद्वान् लोगों की राय है कि ईरानी साम्राज्य काल में अर्थात् ईसा के पूर्व ५५८-३३० तक के काल में यह भारतवर्ष के वायव्य प्रदेश में प्रचलित हुई थी। यह लिपि अरमिक लिपि से निकली हुई है और ईरानी साम्राय· में अरमिक ही सर्वसाधारण लिपि मानी जाती थी। खरोष्ठी लिपि यद्यपि भारतवर्ष में उत्पन्न हुई, तथापि उसका विकास ख़ासकर चीनी तुर्किस्तान में हुआ था। संस्कृत के वर्णों को व्यक्त करने के लिए तो सब अक्षर इनमें निकाले ही गये थे पर ईरानी غ, ف, ز, ژ, जिनका प्रचार चीनी तुर्किस्तान की 'निया' नामक भाषा में था, वर्णों के उच्चारण के लिए भी भिन्न-भिन्न चिन्ह (अक्षर) बनाये गये थे।

सर ऑरेल स्टीन साहब ने चीनी तुर्किस्तान में जो खोज की है, उसमें ये सब खरोष्ठी लेख मिले हैं। वहाँ के रेगिस्तान में इन लेखों की प्राप्ति यह बात स्पष्टतया सिद्ध करती है कि उस प्रान्त तक भारतीय संस्कृति उन दिनों पहुँच चुकी थी। बहुत संभव है कि कुशण राजाओं के काल में बौद्ध धर्म के साथ-साथ इसका विस्तार वहाँ हुआ हो। जब चीनी तुर्किस्तान के रेतीले प्रदेश की· सीमा पर उपजाऊ और निवास-योग्य कुछ स्थान थे और जब स्थलमार्ग से ही चीन और पश्चिमी देशों में आमद-रफ्त होती थी. उस समय की सामाजिक और राजकीय स्थिति का थोड़ा-थोड़ा पता इन लेखों से मिलता है। लेख अधिकांश में मामूली बातों के विषय में ही हैं और इनका काल लगभग ई० सन ३८० का है। लेखों की भाषा अभीतक अज्ञात थी और बिलकुल नई है। भाषा-शास्त्र की दृष्टि से यह बड़े महत्व की है और भारतीय एवं ईरानी भाषाओं से निकली हुई और मध्यएशिया की भाषा के अनेक शब्दों से भरी हुई है।

लेखों की प्राप्ति 'लाप नोर' 'खुतन' नामक स्थानों के बीच में जो पुराने खण्डहर थे, वहाँ से हुई है। खुदाई के मिले हुए पदार्थ तथा लेखों में उल्लिखित पदार्थों के नाम साफ़-साफ ज़ाहिर करते हैं कि उस समय चीन, भारतवर्ष, पश्चिमी एशिया और यूरोप में ख़ासी आमदरफ्त थी। चीन का रेशमी कपड़ा, भारत के मसाले, शक्कर, कालीमिर्च इत्यादि पदार्थ, ईरानी गलीचे और यूनानी सिक्के तथा जवाहिर प्रायः अवशेष रूप में मिले हैं या लेखों में उल्लिखित हैं।

लेखों में खुतन, शानशान जिसका कि पुराना नाम क्रोरैम्न था और कूचा इन तीन स्वतंत्र राज्यों का उल्लेख है। यद्यपि कूचा के राजा का नाम नहीं मिला है तथापि खुतन के राजा 'अविजितसिंह और शानशान के पेपिय, तजक, अंगोक, महिरी और वश्मन नामक राजाओं के नाम मिले हैं। देवपुत्र श्री महाराज जितूध अंगुवक (अंगोक)

निश्चित करके उनका प्रचार करनेवाली संस्था ही न रहे; वरन् ऐसे व्यक्तियों का एक समुदाय हो, जो उन सिद्धान्तों पर पूरी तरह अमल भी कर रहे हों।

यह संघ कोई साम्प्रदायिक संस्था नहीं है। समाज-सुधार ही इसका एकमात्र उद्देश्य है। किन्तु हिन्दुओं के सामाजिक और धार्मिक रिवाज एक दूसरे से इस तरह मिले हुए हैं कि कई जगहों पर उन्हें अलग करना बड़ा कठिन है। इस कारण यह संघ उन सब कुरीतियों को भी दूर करने का प्रयत्न करेगा, जो धर्म के मूल तत्त्वों के विरुद्ध होते हुए भी वर्तमान समय में धर्म के नाम पर प्रचलित हैं और समाज को नुक़सान पहुँचा रही हैं। धार्मिक विश्वास के सम्बन्ध में संघ की नीति पूर्णतया उदार है। सभी तरह के धार्मिक विश्वास रखनेवालों के लिए इस संघ के भीतर स्थान है। —लेखक

य के १७ वें वर्ष में लिखे हुए दो लेखों पर एक मुहर है। मुहर में लिखे हुए चीनी लेख का अर्थ है शान के अधिकारी की मुद्रा'। इससे जान पड़ता है शानशान के अधिपति महाराज अंगोक थे। इन्हीं मिले हुए एक चीनी लेख का काल ई० सन् २६९ त किया गया है। इसपर से अनुमान किया जाता है त खरोष्ठी लेखों का भी वही काल होगा।

शानशान के राजाओं का क्रम भी प्रायः इन्हीं लेखों लगाया जा सकता है। यद्यपि राजाओं का वंश-क्रम दिया गया है, तथापि जिन दूसरे लोगों का लेखों में है उनका वंश-क्रम दिया हुआ है और उसपर से राजाओं का क्रम निश्चित किया गया है। कायस्थ के दो कुलों का वर्णन पाया गया है।

एक कुल का लेखक, उसका पिता और उसका पिता-मशः अंगोक, नजक और पेपिय के राज्य-काल में नजक के ज़माने के लेखक के लड़के तथा नाती के नाम अंगोक और महिरी के समय में पाये जाते हैं। इसी वश्मन के राज्य-काल में अधिकारारूढ़ एक मंत्री ता का महिरा के समय में मंत्री राहेन का भी उल्लेख ता है। इन राजाओं के राज्य-काल के जिन वर्षों के मिले हैं वे नीचे लिखे अनुसार हैं—

पेपिय	वर्ष ३—८
नजक	वर्ष ३
अंगोक	वर्ष ५–३८
महिरी	वर्ष ४–२७
वश्मन	वर्ष ३–११

मिले हुए लेखों की संख्या लगभग ७५० है। इनमें से लकड़ी के टुकड़ों पर लिखे हुए हैं, कुछ चमड़े पर हैं बहुत थोड़े क़ागज़ पर लिखे हुए हैं। लकड़ी के जिन पर ये लेख हैं उसमें से कुछ त्रिकोणाकृति पच्चड और कुछ सादे चतुष्कोण तख्तियों पर हैं। त्रिकोणाकृति पच्चडों पर के लेख प्रायः राजा की ओर से अधिकारियों को भेजे हुए हुक्म हैं; जिनमें से कुछ में अपराधियों को दण्ड देने की आज्ञा है और कुछ में झगड़ों का फ़ैसला दिया हुआ है। ये सब लेख निश्चित नमूने के हैं। राजा के पास जब कभी कोई शिकायत की जाती थी, तब वहाँ से अधिकारियों को उसकी जाँच करने का हुक्म छूटता था। अधिकारी गवाही लेता था और क़ायदे के मुताबिक़ फ़ैसला करता था। जब स्थानीय अधिकारी फ़ैसला न कर सकता था तब वह मुक़दमा राजा के पास भेजा जाता था और वहाँ आखिरी फ़ैसला किया जाता था। चौकोनी तख्तियों पर के लेख प्रायः इक़रारनामे और ख़रीदनामे हैं। मामूली ख़त भेजने के लिए भी कभी-कभी इन तख्तियों का इस्तेमाल किया गया है। चमड़े पर के लेख चडोत (निया का पुराना नाम) के अफ़सर को राजा की ओर से लिखे हुए हुक्म हैं। कुछ थोड़े एक अफ़सर ने दूसरे को लिखे हुए पत्र रूप में भी हैं।

एक किसान की कुछ टिप्पणियों में थोड़े संस्कृत श्लोक भी पाये गये हैं। खरोष्ठी लिपि में लिखे हुए शुद्ध संस्कृत के केवल यही उदाहरण हैं। श्लोक अनेक वृत्तों में हैं और प्रायः रीति-विषयक—संपति की चंचलता, दान का महात्म्य इत्यादि विषयों पर हैं। उदाहरणार्थ—

यथा मनुष्य पथिवर्तमानः
क्षणे क्षणे विश्रमति स्वकाले।
तथा मनुष्यस्य धनानि लोके
काले क्रमेणैव पुनर्भजन्ति ॥

श्लोक प्रायः सब शुद्ध संस्कृत में हैं और प्राकृत या अपभ्रंश शब्दों का नाम तक उनमें नहीं हैं।

इन सब बातों पर से भली-भाँति जाना सकता है कि ईसा की तीसरी सदी में बौद्ध धर्म के साथ-साथ भारतीय संस्कृत चीनी तुर्किस्तान तक पहुँच चुकी थी।

हरि रामचन्द्र दिवेकर (पेरिस)

अजमेर-प्रान्त में शिक्षा-प्रचार

(१)

प्रान्तीय शिक्षा-विभाग की ३१ मार्च १९२७ तक की पंचवर्षीय रिपोर्ट १९२८ के अक्तूबर मास के लगभग प्रकाशित हुई है। हमारे विचार में इसका प्रकाशन १९२७ के अन्त तक हो जाना चाहिए था। ख़ैर, जो हो, रिपोर्ट स्थानीय शिक्षा- सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य विषयों से परिपूर्ण है। प्रान्तीय शिक्षा के हिताकांक्षियों को इसका अवश्य अध्ययन करना चाहिए। इसके कई कारण हैं। अनेक अंशों में यह रिपोर्ट सरकार की ओर से प्रकाशित होने वाले अधिकांश विवरणों की भाँति एक ही दृष्टिकोण से संकलित की हुई प्रतीत नहीं होती। इसमें जहां एक ओर सरकार की नीति के प्रति संतोष तथा प्रशंसा के भाव प्रदर्शित किये गये हैं, वहाँ, दूसरी ओर, उसके प्रबन्ध की न्यूनताओं तथा त्रुटियों को भी दिखाने का प्रयत्न किया गया है, जिससे लेखक के विचारों की उदारता का परिचय मिलता है।

रिपोर्ट काफ़ी लम्बी है, अतएव हम उसके केवल मुख्य-मुख्य अंगों का सिंहावलोकन करेंगे।

१९२१-२२ में स्कूलों और विद्यार्थियों की संख्या क्रम से ३०४ तथा १५१२६ थी। यही १९२६-२७ में ३१५ तथा १७२६४ हो गईं। समय को देखते हुए यह वृद्धि नहीं के तुल्य है। शिक्षा-विभाग का कुल व्यय १९२१-२२ में ६४१३५९) रु० हुआ, जिसमें से ३९५३६५) रु० भारत-सरकार के कोष से दिये गये। १९२६-२७ में कुल-व्यय ६३२९०६) रु० हुआ, जिसमें से २८४६७४) रु० सरकारी कोष से प्राप्त हुए। १९२१-२२ की अपेक्षा १९२६-२७ में व्यय क्यों कम हुआ, इसका रहस्य हमारी समझ में नहीं आया। हाँ, सरकारी दान में कमी इस कारण कर दी गई बताते हैं कि शुल्क की आय में बहुत वृद्धि हो गई थी !

इन पाँच वर्षों में जो महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए वे निम्नलिखित हैं—

१—दिल्ली और अजमेर-मेरवाड़ा के सुपरिण्टेण्डेण्ट शिक्षा-विभाग का कार्य भारत-सरकार के शिक्षा-कमिश्नर को सौंप दिया गया।

२—स्थानीय गवर्नमेण्ट कालेज उठते-उठते रह गया

३—प्राथमिक पाठशालाओं में उर्दू भी शिक्षा का माध्य घोषित कर दी गई तथा देहातों में प्राथमिक शिक्ष निःशुल्क कर दी गई। परन्तु इससे कोई विशेष ला नहीं हुआ।

४—नार्मल स्कूल अजमेर में एंग्लो-वर्नाक्यूलर स्कूल के लिए एक शिक्षक-क्लास खोली गई।

५—शिक्षकों की सहायक निधि की आयोजना क लगभग सब ग़ैर-सरकारी पाठशालाओं ने स्वीकार कर लिया

६—प्रान्त में बालचर्य (Scouting) का भ अच्छा प्रचार हुआ।

रिपोर्ट में बतलाया गया है कि इन पाँच वर्षों शिक्षा के सभी विभागों में उन्नति हुई। परन्तु, क्य अविद्यान्धकार में पड़ी हुई अधिकांश जनता के उद्धार क भी कोई प्रयत्न किया गया ? हमारे विचार में विद्या क प्रकाश फैलाने की सबसे अधिक आवश्यकता देहातों है। आशा है कि भविष्य में इस उद्देश्य की पूर्ति के लि यथासाध्य कोशिश की जायगी। इस आवश्यकता क स्वयं लेखक ने भी स्वीकार किया है।

क्या राजनैतिक और क्या शिक्षा-विषयक, शासन प्रबन्ध के विचार से इस प्रान्त की अवस्था बहुत गि हुई है। इसका मुख्य कारण यहाँ की शोचनीय आर्थि स्थिति है। यहाँ के विभिन्न विभागों के व्यय का भा भारत-सरकार के ऊपर है, फल-स्वरूप यहाँ उपयुक्त अधि कारियों का सदा से अभाव रहा है। इस समय शिक्षा विभाग में केवल निम्न-लिखित चार अधिकारी हैं, जिन से दो को तो "बेगारी" ही समझना चाहिए—

१. भारत-सरकार के शिक्षा-कमिश्नर, जो दिल्ली और अजमेर-मेरवाड़ा के शिक्षा-विभाग के भी सुपरिण्टेण्डेण्ट हैं।	बहुत थोड़ा सम देते हैं।
२. गवर्नमेण्ट कालेजके प्रिंसिपल, जो यूरोपियन शिक्षा के सुपरिण्टेण्डेण्ट हैं।	"

३. अजमेर-मेरवाड़ा शिक्षा-ग के असिस्टेण्ट (सहायक) रिण्टेण्डेण्ट ।	पूरा समय देते हैं ।
४. पाठशालाओं के सब-डिप्टी क्टर ।	”

यह बात निर्विवाद है कि प्रान्तिक शिक्षा-विभाग की र्ण शासन-प्रणाली में भारी परिवर्तन की आवश्यकता इस विषय में लिटलहेल्स साहब (लेखक) की निम्न ति अवश्य ध्यान देने योग्य है—

“उक्त प्रणाली में तीन गुरुतर दोष हैं । इसका प्रबन्ध देख-भाल एक ऐसे अधिकारी के सुपुर्द है, जिसको स शिमला तथा ५ मास दिल्ली में रहना पड़ता है । -सरकार के शिक्षा-कमिश्नर, जो प्रान्तिक शिक्षा-ग के सुपरिण्टेण्डेण्ट हैं, वर्ष भर में कठिनाई से एक ो बार यहाँ सरसरी तौर पर भ्रमण कर जाते हैं । ो अजमेर के अतिरिक्त और कहीं जाने का अवकाश मिलता, अतएव उनका यहाँ की आवश्यकताओं से भिज्ञ रहना अनिवार्य है । तीसरे प्रान्तिक सुपरिण्टे- ट की हैसियत से वे जो आयोजनायें प्रान्तीय सरकार म्मुख रखते हैं, वे ही फिर भारत-सरकार के शिक्षा-श्नर की हैसियत में उन्हीं के पास अन्तिम निर्णय के पहुँचती हैं । इन सम्मिलित दोषों के होते हुए वर्त- प्रणाली किसी प्रकार भी प्रान्तीय शिक्षा-विभाग के में लाभदायक सिद्ध नहीं हो सकती ।”

भारत-सरकार के शिक्षा-विषयक प्रधान परामर्शदाता उच्च अधिकारी हैं । कार्यक्षेत्र विस्तृत होने के कारण ो अपने ही कार्य से अवकाश मिलना कठिन है । ऐसी ा में उनसे यह आशा करना असम्भव है कि वे अज-रवाड़ा प्रान्त की आवश्यकताओं और परिस्थितियों यं आकर अध्ययन करें । अब रहे एक असिस्टेण्ट ण्टेण्डेण्ट । उनके अकेले के लिए भी प्रान्तिक शिक्षा रे कार्य-भार को सम्हाल लेना असम्भव-सा ही प्रतीत है । तीसरे असि० सुप० का स्थान वेतन के लिहाज़ न्त के दो हेडमास्टरों से नीचा है । इससे भी प्रबन्ध में बड़ी अड़चनें उत्पन्न हो जाती हैं । सुपरिण्टेण्डेण्ट साहब तो यहाँ रहते नहीं; अतएव असि० सुप० को ही उक्त हेडमास्टरों के कार्य की देख-भाल करने के लिए बाध्य होना पड़ता है । इसी कारण कई बार आपस में मनमुटाव तक की नौबत पहुँच चुकी है, जिससे शिक्षा-विभाग के कार्य में बाधायें उपस्थित हो गई हैं । किसी यंत्र के सुचारु-रूप से चलने के लिए यह आवश्यक है कि उसका प्रत्येक अंग एक ही उद्देश्य की पूर्ति के लिए कार्य करे । उपर्युक्त त्रुटि को देखते हुए इस बात की बड़ी भारी आवश्यकता है कि कोई दूसरे प्रकार का प्रबन्ध किया जाय अथवा इस प्रान्त का शिक्षा-विभाग अन्य प्रान्तों की तरह स्वतन्त्र तथा सुव्यस्थित किया जाय । शिक्षा-विभाग के कुल व्यय ६३२९०६) रु० में से निरीक्षण-विभाग का कुल व्यय १५०००) रु० अर्थात् केवल २-३ प्रतिशत ही ठहरता है । इसमें अधिक मितव्ययिता का विचार करना ऐसा ही है, जैसा शरीर को भोजन से वंचित रख कर उत्तमोत्तम वस्त्राभूषणों से उसे सुसज्जित करके रखना ।

प्रान्तिक शिक्षा की नौकरियों में वेतनों की सीमा बढ़ा दी गई, परन्तु इससे केवल कालेज के अध्यापकों तथा हेडमास्टरों को ही लाभ हुआ । मातहत शिक्षकों—विशेषतया देहाती स्कूलों के अध्यापकों की शोचनीय दशा पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा । पर वृद्धि होने पर भी उक्त वेतन, युक्तप्रदेश, पंजाब इत्यादि में निर्धारित सीमाओं से अभी बहुत कम है । युक्तप्रदेश इत्यादि की भाँति इस प्रान्त में शिक्षकों के लिए सामयिक वेतन-वृद्धि का कोई प्रबन्ध नहीं है । इस विषय में यह आपत्ति की जाती है कि सामयिक वेतन-वृद्धि की प्रणाली से स्थायी होने के पश्चात् शिक्षक अपने कार्य में ढील डाल देते हैं । परन्तु अच्छा वेतन न मिलने के कारण बहुधा शिक्षकगण अपने समय का बहुत-सा भाग अन्य कार्यों-जैसे लड़कों को घर पर पढ़ाना इत्यादि-में व्यय करते हैं, और इससे भी पाठशाला के कार्य में शिथिलता आती है । अथवा कोई अच्छी जगह मिलने पर वे तत्काल छोड़ कर चले जाते हैं । सबसे अच्छा तरीक़ा यही हो सकता है कि वेतन की सीमायें अवश्य अच्छी

निर्धारित करदी जायँ, परन्तु सामयिक वेतन-वृद्धि में तनिक विचार से काम लिया जाय।

इस प्रान्त की ३१५ शिक्षा-संस्थाओं में से ११६ सरकारी, ५ ज़िला-बोर्ड की तथा १९८ गैर-सरकारी हैं। पाठशालाओं की कमी का दोष जनता की उदासीनता के मत्थे मढ़ा गया है। परन्तु ध्यान देने की बात है कि इस उदासीनता का कारण सरकार की नीति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। यदि सरकार अपने उत्तरदायित्व को भली प्रकार समझती है तो उसका कर्त्तव्य है कि जनता को भी उसके अधिकारों को समझाने का प्रयत्न करे। इसके लिए प्रचार की बड़ी भारी आवश्यकता है।

अजमेर की म्युनिसिपल कमेटी शिक्षा के लिए जो दान देती है वह बहुत कम है। जहाँ ब्यावर, केकड़ी इत्यादि की कमेटियाँ अपनी आय का दशांश शिक्षा के लिए व्यय करती हैं, वहाँ अजमेर की कमेटी केवल २प्रतिशत ही खर्च करती है। हम नगर के म्युनिसिपल कमिश्नरों का ध्यान इस ओर आकर्षित करना चाहते हैं कि वे वर्तमान काल में जिस प्रकार शारीरिक स्वास्थ्य एक आवश्यक वस्तु है उसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य का होना भी अत्यन्त आवश्यक है।

प्रान्त में मिशन स्कूल अच्छी संख्या में हैं, परन्तु उनका कार्य प्रशंसा के योग्य नहीं कहा जा सकता। अनेक अव्यस्थित पाठशालायें खोल देने से यह कहीं श्रेष्ठ है कि एक ही सुव्यस्थित पाठशाला रहने दी जाय।

सहायता-प्राप्त स्कूलों की आर्थिक स्थिति अच्छी न होने के कारण उनका कार्य भी कुछ अच्छा कहलाने योग्य नहीं है। अजमेर की जनता कदाचित् यह समझती है कि सार्वजनिक संस्थाओं के पास अतुल धन-सम्पत्ति है। परन्तु यह एक भारी भूल है। अजमेर में दर्जन-भर के लगभग ऐसे धनकुबेर हैं, जो स्वतन्त्र रूप से एक हाई-स्कूल खोल देने में समर्थ हैं। क्या ही अच्छा हो, यदि जनता अपने धनका सदुपयोग करना सीख जाय और हमें अपने बालकों को सरकारी स्कूलों के भरोसे न छोड़ना पड़े। गैरसरकारी पाठशालाओं में एक अनिवार्य दोष यह है कि उनका प्रबन्ध एक कमिटी के हाथ में होता है जिसके सदस्यों में अधिकांश शिक्षा जैसे महत्व पूर्ण विषय में उचित सम्मति दे सकने योग्य विशेषज्ञ नहीं होते। अनुभव यह बतलाता है कि हेडमास्टर के कार्य में अड़चनें उत्पन्न होना ही प्रायः इस प्रकार की कमिटियों का परिणाम होता है।

गुप्त

संसार में शिक्षितों की संख्या

(सन १९२४ प्रतिशत)

देश	पुरुष	स्त्रि
इंग्लैण्ड	९३·४	९१·
संयुक्त राज्य अमेरिका	९५·८	९३·
डेनमार्क	१००·०	१००·
जर्मनी	१००·०	१००·
जापान	९८·०	९६·
फिलिपाइन	७०·५	६१·
फ़्रान्स	९६·५	९४·
भारत	५·२	१·
बङ्गाल	९·५	१·७

भिन्न-भिन्न देशों में जन-संख्या के किस अनुपात से स्कूलों में बालक-बालिकायें शिक्षा पा रहे हैं इसका ब्यो इस प्रकार है—

जर्मनी	२९·५
इंग्लैण्ड	२९·२
फ़्रांस	२८·६
डेनमार्क	३५·४
ब्रिटिश भारत	३·२
जापान	३८·५
संयुक्त राज्य अमेरिका	३७·५

निम्न लिखित अंकों से इसके कारण का थो आभास आज मिलेगा—

बङ्गाल-सरकार और शिक्षा-प्रचार

(सन् १९२५)

जहाँ प्रत्येक यूरोपियन छात्र के लिए १०३।) रुप व्यय किये गये हैं, वहाँ प्रत्येक बंगाली छात्र के लिए केव २॥≡) ख़र्च किया है. और यह है पराधीनता का कडु परिणाम।

नन्दकिशोर अग्रवाल चौधर

सस्ता-मंडल से प्रकाशित नये मौलिक ग्रंथ

मानव-प्रगति

मानव-समाज के विकास का ज्ञान प्रत्येक मनुष्य को होना परम आवश्यक है।

समाज-विज्ञान

इस पुस्तक में शुरू से लेकर अबतक मानव-समाज किस तरह प्रगति करता गया इसका विहंगा-वलोकन है। इसमें मनुष्य के द्वारा की गई सभी प्रधान प्रगतियों का हाल है। धर्म, राजनीति, विज्ञान, साहित्य, अर्थशास्त्र, वैवाहिक पद्धतियाँ आदि अनेक बातें सम्मिलित हैं। इस विषय पर हिन्दी में इतने परिश्रम से लिखी गई यह पहली ही पुस्तक है। पृष्ठ संख्या ५८० मूल्य १॥)

मानव जाति के दुश्मन

संसार के उन्नत से उन्नत राष्ट्र जिनके पंजे में फँसे हैं और हमारे देश को जो निगलने को ही बैठे हैं, वे ही ानव जाति के दुश्मन हैं और वे हैं **व्यसन और व्यभिचार**

शैतान की लकड़ी (सचित्र)

व्यसनों में हम करोड़ों रुपये किस तरह बरबाद कर रहे हैं, व्यभिचार तो हमारे जीवन-सत्व ो ही नष्ट कर रहा है, इन से हम किस तरह बच सकते हैं, इन्हीं सब बातों का इस पुस्तक में वर्णन है। ारत की किसी भी देशी भाषा में इतनी सर्वाङ्गपूर्ण पुस्तक आज तक नहीं लिखी गई है। **से मँगाकर पढ़िए और अपने आप को तथा बालकों को इस बुराई से बचाने ी कोशिश कीजिए। मूल्य ॥=)**

बारडोली का महत्व

(१) बारडोली का युद्ध राजा राजा के बीच का युद्ध नहीं था, कुछ इने गिने लोगों का आन्दोलन भी नहीं , वह देश की वास्तविक जनता अर्थात् किसानों द्वारा संसार की सब से अधिक शक्ति के साथ छेड़ी गई लड़ाई थी।

(२) बारडोली ने यह सिद्ध कर दिया कि सत्याग्रह असंभव और अव्यवहार्य वस्तु नहीं बल्कि सशस्त्र न्ति की अपेक्षा अधिक सरल और देश की वर्तमान अवस्था में एक मात्र उपाय है।

विजयी बारडोली (६० चित्रों सहित)

बारडोली में किसानों की एकता, स्वयंसेवकों का अपूर्वसंगठन, सरदार वल्लभभाई पटेल का कौशल, तथा बारडोली की वीरांगनाओं की आल्हादजनक कथाओं आदि से परिपूर्ण यह बारडोली ाग्रह का शुरू से अन्त तक का क्रमबद्ध इतिहास है। पृष्ठ संख्या ५२० साठ चित्र पर मूल्य केवल २)

प्रत्येक भारतवासी को इसे पढ़ना चाहिए।

हृदय का आदेश

अपने हृदय के आदेश के अनुसार चलना कितना कठिन है ? व्यक्तिगत संपत्ति को बुरी समझ कर उसका त्याग करने की इच्छा करने वाले एक व्याकुल हृदय की यह झांकी है। वह अपने आदर्श के लिए घर के लोगों को अनुकूल करने की जो चेष्टा करता है उसका बड़ा ही करुण चित्र महात्मा टाल्स्टाय ने

अंधेरे में उजाला

नामक इस छोटे से नाटक में किया है। सर्वस्व त्याग कर देशसेवा व आत्मोन्नति करना ही जीवन का सार है यही इस नाटक का प्रधान विषय है। पृष्ठ १५८ मूल्य ।=)

संसार को कबूल करना पड़ेगा

आश्चर्य की बात है कि विज्ञान और अर्थशास्त्र के जानकार तो खादी की प्रशंसा करते हैं और वे लोग शोर मचाते हैं जो जानते नहीं कि विज्ञान अर्थशास्त्र काला है या पीला। आप पहले खद्दर का सम्पत्ति शास्त्र पढ़िए। इसे पढ़ने पर आपको विश्वास हो जायगा कि हाथ का कता बुना कपड़ा भारतवर्ष के लिए ही नहीं, वरन् समस्त संसार के लिए आर्थिक, वैज्ञानिक, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक और नैतिक सभी दृष्टि से हितकर है।

खद्दर का सम्पत्ति-शास्त्र

(श्री रिचार्ड ग्रेग को "Economics of Khaddar" का हिन्दी अनुवाद)

इसका अनुवाद श्री रामदास गौड़ एम. ए. ने किया है। यह वही पुस्तक है जिसे महात्मा गांधी, ला० लाजपतराय और पं. मालवीयजी ने प्रत्येक भारतवासी को पढ़ने की सिफ़ारिश की है। एक अमेरिकन की खद्दर के पक्ष में लिखी हुई यह पुस्तक पढ़ने योग्य है। पृष्ठ ३२४ मूल्य ॥।=)

श्री चरणों का प्रताप

ब्रिटिश गवर्नमेण्ट ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी से भारत का शासन अपने हाथ में लेने के पहले इस बात की तहकीकात के लिए कि पहले के भारतीय शासन में और कम्पनी के शासन में क्या अन्तर रहा है, एक कमेटी बिठाई थी सरकार ने तो सोचा होगा कि यह कमेटी अंग्रेज़ों के राज्य-शासन की खूब प्रशंसा करेगी पर इस कमेटी ने तो जाँच क बड़ी ऊट-पटाँग बातें कह डालीं। उसने तो बताया कि अंग्रेज़ों के जहाँ-जहाँ भी श्री चरण पड़े हैं भारत स्मशानसा हो गया है।

जब अंग्रेज़ नहीं आये थे !

नामक पुस्तक में इसी रिपोर्ट का अनुवाद है। प्रत्येक भारतवासी के पढ़ने की चीज़ है पृष्ठ १०० मूल्य ।)

मिलने का पता:—सस्ता-मंडल, अजमेर

समालोचना के लिए प्रत्येक पुस्तक की दो प्रतियाँ आना आवश्यक है। एक प्रति आने पर आलोचना न हो सकेगी। प्रत्येक पुस्तक का साहित्य-सत्कार तो उसी अंक में हो जाया करेगा—आलोचना, यदि हुई तो, सुविधानुसार बाद में होगी।]

वीर मराठे

लेखक—पं० भीमसेन
लंकार। मिलने का पता–
र पुस्तक भंडार, गुरुकुल
ड़ी, जि० बिजनौर (यू०
)। आकार डिमाई अठ-
पृष्ठसंख्या २१२।
) रु०

इस पुस्तक में महा-
के उत्थान से लेकर
तक का सारा इतिहास संक्षिप्त रूप से लिखा गया है।
क को महाराष्ट्र के इतिहास का अच्छा ज्ञान है। लिखने
शैली बहुत अच्छी, परिष्कृत और मनोरंजक है। पुस्तक
ढ़ने में उपन्यास का सा आनन्द आता है, फिर भी
हासिक सत्यों को तोड़ा-मरोड़ा नहीं गया। लेखक ने
ल इतिहास की नीरस घटनाओं का उल्लेख न कर
ालीन राजनैतिक व सामाजिक परिस्थितियों और उनके
हास पर क्या-क्या प्रभाव पड़े, इसका भी उत्तम विवे-
किया है। केवल अतीत घटनाओं के ज्ञान से इतिहास
कार्य पूर्ण नहीं हो सकता। इतिहास-ज्ञान का उद्देश्य तो
अतीत घटनाओं का स्वाध्याय करके अपने पूर्वजों के अनु-
ों से वर्तमान अवस्था में लाभ उठाना। आजकल के
ः सब इतिहास-लेखक केवल ऐतिहासिक घटनाओं का
लेख कर देने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते
। परन्तु प्रस्तुत पुस्तक इस दोष से बिलकुल शून्य है।
ीत घटनाओं से हम आज क्या सीख सकते हैं और हमें
न क्या करना चाहिए, यह इसमें लेखक ने स्थान-स्थान
अच्छी तरह समझाने का प्रयत्न किया है। यही इस
क की सबसे बड़ी विशेषता है। प्रस्तुत पुस्तक की
री विशेषता यह है कि इसमें लेखक ने महाराष्ट्र के इतिहास की प्रगतियों (Movements) का उल्लेख करते हुए अन्य प्रान्तों या देशों के इतिहासों से भी तुलना कर व्यापक ऐतिहासिक नियमों को बताने का प्रयत्न किया है। इससे इतिहास के विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक विशेष उपयोगी हो गई है। प्रत्येक पृष्ठ पर लेखक के राष्ट्रीय विचारों की छाप स्पष्ट मालूम होती है।

लेखक का यह दृढ़ विश्वास है कि महाराष्ट्र के अभ्युदय का मुख्य कारण राजनैतिक था, धार्मिक कट्टरता नहीं। उसमें स्वतन्त्रता की वह प्रबल भावना काम कर रही थी, जैसी भारत के अन्य प्रान्तों के इतिहास में नहीं पाई जाती। मराठा इतिहास को हिन्दू-मुस्लिम विद्वेष का कारण बनाना बड़ी भारी भूल है। इसी सिलसिले में लेखक ने लिखा है कि यदि अंग्रेजों ने बंगाल की खाड़ी की जगह महाराष्ट्र की ओर से यह राजनैतिक जाल फैलाने का यत्न किया होता तो भारत का इतिहास दूसरी तरह लिखा जाता। इसी तरह लेखक ने अन्यत्र भी स्थल-स्थल पर ऐतिहासिक दृष्टि से सम्पूर्ण विषय का विवेचन किया है, जिसके उदाहरण हम स्थानाभाव से नहीं दे सकते। प्रारंभ में श्रीयुत नरसिंह चिन्तामणि केलकर की संक्षिप्त भूमिका से पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है। परन्तु यदि यह भूमिका अंग्रेजी में न होकर हिन्दी में होती, तो अधिक अच्छा होता।

पुस्तक का अन्तिम भाग अधिक संक्षिप्त कर दिया गया है, जो कुछ खटकता-सा है। पुस्तक में यदि चित्र और मानचित्र दिये जाते, तो इसकी उपयोगिता और भी बढ़

जाती। आशा है कि आगामी संस्करण में इन त्रुटियों को दूर कर दिया जायगा।

पुरुष-परीक्षा

लेखक—श्री जनार्दन झा। प्रकाशक—हिन्दी पुस्तक भंडार, लहेरियासराय (विहार)। पृष्ठसंख्या १७६। सजिल्द। मू० १) रु०।

संस्कृत साहित्य में हितोपदेश और पंचतन्त्र आदि कथाग्रन्थों की तरह विद्यापति ठाकुर का बनाया हुआ पुरुष-परीक्षा भी एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसमें भी विभिन्न कथाओं द्वारा नीति, धर्म, व्यवहार आदि के उपदेश दिये गये हैं। इसकी विशेषता यह है कि इसकी कथाओं के पात्र पशु-पक्षी न होकर सब मनुष्य हैं। इस कारण यह कुछ ऊँची कक्षा के विद्यार्थियों के लिए भी लाभप्रद और मनोरंजक है।

इसी संस्कृत पुस्तक के आधार पर श्रीयुत जनार्दन झा ने इसकी रचना की है। मूल पुस्तक के गद्य-पद्य का इसमें भी गद्य पद्य में ही भाषान्तर किया गया है। भाषा अच्छी है, परन्तु कहीं-कहीं भाषा बालकों के लिए अधिक कठिन हो गई है।

भगवान बुद्ध

लेखक—पं० शशिनाथ चौधरी, बी० ए०। प्रकाशक—हिन्दी-पुस्तक-भंडार, लहेरियासराय। पृष्ठ संख्या १५४। सजिल्द। मू० १) रु०

यों तो महात्मा बुद्ध के कई छोटे-बड़े जीवनचरित्र हिन्दी में लिखे गये हैं, परन्तु उनमें से कोई बालकों को लक्ष्य में रखकर ही लिखा गया हो, ऐसा हमारे देखने में नहीं आया। प्रस्तुत पुस्तक केवल बालकों का ख़याल कर के लिखी गई है। भाषा और लेखनशैली सरल है, जिसे बालक बख़ूबी समझ सकते हैं। बुद्ध के जीवन के बाद बुद्ध की कही हुई कुछ उत्तम कथायें तथा उपदेश आदि भी दिये गये हैं, जिनसे पुस्तक और भी अधिक उपयोगी हो गई है।

यह सब होते हुए भी हमारी सम्मति में दो-एक त्रुटियाँ रह गई हैं, जिनकी तरफ़ ध्यान दिया जाना आवश्यक था। बालकों के लिए लिखी गई पुस्तकों में अवैज्ञानिक चमत्कारों का देना युक्तियुक्त नहीं है। इससे उनके दिलों में झूठे वहमों का ख़याल पैदा हो जाता है। कहीं-कहीं बुद्ध के गंभीर उपदेशों में कुछ कठिन स्थलों का समावेश हो गया है, जिन्हें बालक सरलता से नहीं समझ सकते। बालकों के लिए लिखी गई पुस्तकों की क़ीमतें भी कम होनी चाहिएँ।

कृष्णचंद्र विद्यालंकार

आयर्लैण्ड का स्वातंत्र्य-युद्ध

आयर्लैण्ड भी कुछ समय पूर्व हमारी तरह ब्रिटेन के अधीन था। उस समय वहाँ के स्वातंत्र्य-वादियों ने गुप्त रूप से जो प्रयत्न किये, वे वीरता के इतिहास में देदीप्यमान हैं। आज वहाँ जो बहुत-कुछ स्वतंत्रता प्राप्त हो गई है वह उन्हीं प्रयत्नों—वीर स्वातंत्र्य-वादियों के चुपचाप कष्ट सहन और साहसी कार्यों का ही परिणाम बताया जाता है। श्रीयुत डेन ब्रीन भी इन्हींमें के एक प्रमुख वीर योद्धा हैं। उन्होंने इस युद्ध में जो-जो किया, 'आयरिश स्वतंत्रता के लिए मेरा युद्ध' नाम से अंग्रज़ी में उसका रोचक और हृदयस्पर्शी वर्णन लिखा है। उसी पुस्तक का श्रीयुत 'बलवन्त' द्वारा किया हुआ यह भावानुवाद है। सारी पुस्तक इतनी रोचक है कि एक बार शुरू करके ख़त्म किये बग़ैर छोड़ने को जी नहीं चाहता। क्रान्तिकारियों के साहस और आत्मोत्सर्ग की गाथा पढ़ते-पढ़ते हृदय में कैसे-कैसे भाव उठते हैं! उनके आत्मोत्सर्ग और स्वार्थ-त्याग की भावना का तो प्रत्येक देशभक्त को अनुकरण करना ही चाहिए। अन्त में आयरिश स्वतंत्रता की प्राप्ति के बाद वर्तमान शासन के समर्थकों और पूर्ण स्वातंत्र्य-वादियों के मतभेद से उत्पन्न गृह-युद्ध का जो हानिकर परिणाम वर्णित है, वह हमारे देशवासियों के लिए पहले से चेत जाने का सबसे अच्छा दृष्टान्त है। हमारी समझ में अपने देश की स्वतंत्रता के उत्सुक व्यक्तियों का इससे मनोरंजन ही नहीं होगा बल्कि उन्हें स्फूर्ति भी प्राप्त होगी। पुस्तक की पृष्ठसंख्या सौ और कागज-छपाई साधारण है। मूल्य ।=) और मिलने का पता है—'प्रताप'-कार्यालय, कानपुर।

मुकुन्द

प्राकृतिक आरोग्य-विज्ञान

अनुवादक—श्री नारायण गोविन्द नावर । प्रकाशक—त्मिक अन्वेषण सभा, उज्जैन । मूल्य ।)

प्रस्तुत पुस्तक उक्त सभा द्वारा प्रकाशित राजयोग-माला का प्रथम पुष्प है । इस पुस्तक में भोजन के म, उपवास, शारीरिक व्यायाम, विचार अथवा वस्तु, ध प्रकार के स्नान आदि बहुत से प्रकरण हैं, जो काफ़ी ोगी हैं । पर ४० पृष्ठ की इस पुस्तिका में इन सब ों का ठूँस देना ठीक नहीं हुआ । आशा है, यह सभा ही इन सब विषयों पर अनुभवी लेखकों के द्वारा क पुस्तकें लिखाकर प्रकाशित करेगी और इस प्रकार न-सेवा और देश-सेवा का पुण्य उठायगी ।

ध्यान से आत्म-चिकित्सा

रूपान्तरकार—श्री व्योमचन्द्र । प्रकाशक—आध्यात्मिक षण सभा, उज्जैन । मूल्य ॥)

राज-योग-ग्रन्थमाला का यह दूसरा पुष्प श्री अर्नेस्ट मण्डे की एक पुस्तिका का हिन्दी-रूपान्तर है । अनुवाद फ़ी स्वतन्त्रता ली गई है—कहीं पर ईसाई-धर्म की नहीं पड़ने पाई है । हाँ, हिन्दूधर्म की छाप स्पष्ट है । "मानसिक दशा शारीरिक विग्रह का कारण होती है," सिद्धान्त पर चलकर "ये निबन्ध" मूल-लेखक के शब्दों रोगों के प्राचीनकाल में प्रचलित मानसिक या आध्या- चिकित्साओं के आधार-भूत सिद्धान्तों के व्यावहारिक ों" के रूप में लिखे गये हैं ।

पुस्तक में १२ अध्याय हैं, जिनके अनुसार चलकर मनुष्य न्देह आत्म-चिकित्सा कर सकता है—बशर्ते कि वह र अपना विश्वास जमा सके; क्योंकि ध्यान करते समय सिक स्थिति आलोचनात्मक नहीं, ग्राही होनी चाहिए । "परमात्मा स्वस्थ नहीं स्वास्थ्य है । मैं परमात्मा का तः स्वास्थ्य मेरा जन्म-सिद्ध स्वत्व है । मेरा शरीर है, क्योंकि मैंने आजतक इस महान् सत्य की अनुभूति पाई है । अब मैं कभी इससे अलग न होऊँगा ।" एक सरे दृष्टिकोण से सभी ध्यानों का लक्ष्य इसी केन्द्र पर है । तर्क सीधा-सादा है, सच्चा है, ज़बर्दस्त है । प्रश्न यह हो सकता है कि उसे समझ कितने सकेंगे ? उन थोड़े से समझनेवालों से हमारी प्रार्थना है कि वे इन ध्यानों का भलीभाँति मनन करें और नियमानुसार पाठकर इनके आन्तरिक अर्थ को खोज निकालने की चेष्टा करें । ये अवश्य उपयोगी सिद्ध होंगे ।

६६ पृष्ठों की पुस्तक का मूल्य ॥) अधिक जान पड़ता है । छपाई की भूलें भी बहुत हैं ।

शान्तिप्रसाद वर्मा

सामर्थ्य, समृद्धि और शान्ति

लेखक—श्री रामचन्द्र वर्मा । प्रकाशक—हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय, हीराबाग, गिरगांव, बम्बई । पृ० सं० २५५ । मू० १।।) रु०

प्रस्तुत पुस्तक डा० स्वेट मार्डेन की Peace, Power and Plenty नामक पुस्तक के आधार पर लिखी गई है। इसमें १९ लेखों में आत्म-विश्वास, दृढ़ निश्चय इत्यादि का महत्व बतलाया है । पुस्तक उपदेशपूर्ण एवं उपयोगी है । भाषा भी मँजी हुई है परन्तु यदि संस्कृत श्लोकों का हिन्दी में अनुवाद दे दिया जाता तो अच्छा रहता । इस ढंग के ग्रन्थों की हिन्दी में आवश्यकता है ।

गोपालस्वरूप भटनागर

खल-मण्डल

लेखक—श्री खल-कण । प्रकाशक—श्री अयोध्याप्रसाद शर्मा, स्वाधीन प्रेस झांसी । पृष्ठ सं० ५३ । मूल्य ≡)

प्रस्तुत पुस्तिका व्यंग्य-साहित्य के निर्माण का अधिकांश सफल प्रयत्न है । इसमें देश के जीवन के विविध अंगों की बुराइयों का व्यंग्य द्वारा मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद परिचय कराया गया है । हमारी राय में अगर श्री खल-कणजी इसमें व्यक्तिगत व्यंग्य को स्थान न देते तो अच्छा होता । वैसे पुस्तिका में मनोरंजन और शिक्षा की काफ़ी सामग्री है ।

त्रिवेदी

साहित्य-सत्कार

हिन्दी

१. बाल-विभव—रचयिता—पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'। प्रकाशक—हिन्दी-मन्दिर, शीतलपुर, पो० एकमा, ज़ि० सारन। पृ० ४१; मूल्य ≡)

२. घरौंदा—रचयिता—श्री जगन्नाथप्रसादसिंह। प्रकाशक वही। मूल्य ।-)

३. जैनियों की तरक्की—लेखक व प्रकाशक—श्री लक्ष्मीलाल सखसेया, जावद (मालवा)। पृ० सं० १५२; मू० ॥)

४. काश्मीर—लेखक—श्री श्रीगोपाल नेवटियां। प्रकाशक—हिन्दी-मन्दिर, प्रयाग। सजिल्द-सचित्र। मू० ५)

५. औषधि विज्ञान अर्थात् एलोपेथिक मेटीरिया मेडिका—अनुवादक-डा० महेन्द्रलाल गर्ग। प्रकाशक—पं० क्षेत्रपाल शर्मा, मालिक सुखसंचारक कम्पनी, मथुरा। पृ० सं० ६३९; मूल्य ६)

६. काकोरी के शहीद—संकलनकर्ता—श्री "भीष्म" प्रकाशक—प्रताप-कार्यालय, कानपुर। पृ० सं० ३५२ मू० ॥।=)

७ मायाक्षेत्र का महात्म और हरिद्वार का इतिहास—लेखक और प्रकाशक—श्रीयुत शामलाल पृ० सं० १७६, मू० १॥)

८. सुदर्शन (नाटक)—लेखक—पं मूलचंद जैन 'वत्सल'। प्रकाशक—साहित्य-रत्नालय, बिजनौर। पृ० सं० ११२; मू० ॥)

गुजराती

१ राजाजीनी वातो—लेखक—चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य। प्रकाशक—प्रस्थान-कार्यालय, अहमदाबाद। पृ० सं० ६२; मूल्य ≡)

पत्र-पत्रिकायें

१. क्रांति (साप्ताहिक)—संपादक व प्रकाशक—पं० सन्तराम 'विचित्र', दिल्ली। पृ० १८। वा० मू० ३)

२. युवक (मासिक)—संपादक—श्री रामवृक्ष शर्मा बेनीपुरी प्रकाशक—युवक-आश्रम, बांकीपुर, पटना। वा० मू० ४)

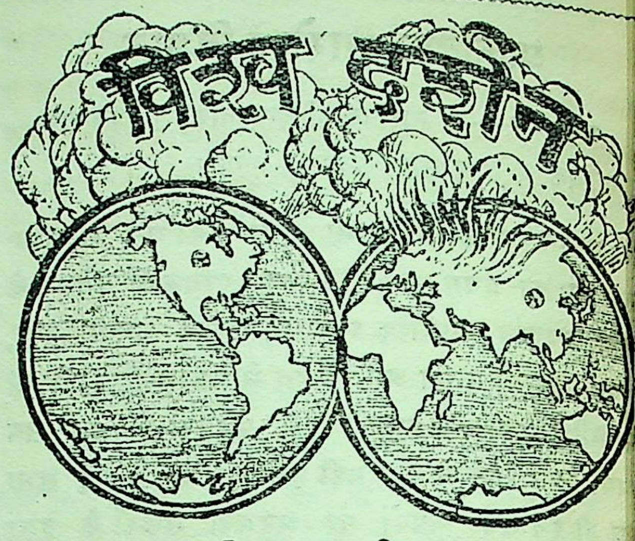

अफ़ग़ानिस्तान की समस्या

वर्तमान समय में प्रचलित राजपद्धतियों से सम्बन्ध रखनेवाली समस्यायें इतनी जटिल हो गई हैं कि उनका अन्धकार भेद कर जगत् के भविष्य को देख लेना अथवा उसका अनुमान कर लेना, अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के एक अच्छे विद्यार्थी के लिए भी, असम्भव हो रहा है। व्यक्ति, दल, समाज और राष्ट्र के पारस्परिक संघर्ष ने राजनीति को इतना अनिश्चित, इतना आकस्मिक और इतना विरूप कर दिया है कि ऊपर की घटनाओं के सहारे पर्दे के अन्दर की, भीतर-ही-भीतर चलने वाली चीज़ों का मुँह स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ता—उनका पहचानना मुश्किल हो रहा है। जो कुछ आज है, उसके सहारे कल का अनुमान लगाना एक हास्यास्पद चेष्टा है। कल क्या होगा, यह कोई नहीं कह सकता। ऊपर से विश्व-शान्ति स्थापन की चेष्टा कर रहा है और भीतर-ही-भीतर ज्वालामुखी का वह होम-कुण्ड तैयार हो रहा है, जिसकी लपटें, जब बाहर होंगी तो, आकाश के कलेजे फाड़ देंगी और बेचारे असहाय मानव-समाज के कितने ही कुटुम्ब उसमें कीट-पतंग बन होम हो जायँगे!

ऐसा ही एक विस्फोट अफ़ग़ानिस्तान में हुआ है। अभी कल तक वहाँ सब काम शान्ति के साथ और ठीक ठीक चल रहे थे; पर इस शान्ति के भीतर ही भीतर अज्ञान के बारूद की जो खानें एकत्र हो रही थीं, वे फट पड़ीं। आज वहाँ चारों ओर अशान्ति और विद्रोह है।

सम्राट् अमानुल्ला के शासन का इतिहास उनके अनेक नीय साहसिक कार्यों की एक सूची है। १ जून २ ई० से, जो उनका जन्मदिवस है, आज तक वह विलासिता के वातावरण में न रहे। इनके दादा तिक अफ़ग़ानिस्तान के जन्मदाता अमीर अब्दुर्रहमान त्यु के बाद १९०१ ई० में जब इनके पिता अमीर ल्लाखां गद्दी पर बैठे तब भी देश के विभिन्न फ़िर्क़ों तर ही भीतर मनोमालिन्य बढ़ रहा था। ग़िलज़ाई (जो अपना उद्गम तुर्कों से बताते हैं) उस समय शान्त थे और अन्त में उसी अशांति की आग में २० री १९१९ ई० को उन्हें होम हो जाना पड़ा। ग़िलज़ा-ने उनकी हत्या कर डाली। इस समय मौक़ा देखकर ाबाद में (जहाँ उस समय राजनिवास था) हबी-के भाई नसरुल्ला ने अपनेको बादशाह घोषित कर । अमानुल्ला उस समय काबुल के गवर्नर थे। जब यह बात मालूम हुई तो, युवराज न होते हुए भी, ने अपनी शक्ति एकत्र करके २८ फ़रवरी १९१९ को पर अधिकार कर लिया। सबको उनका अधिकार ना पड़ा।

गद्दी पर बैठने के बाद ही अमीर अमानुल्ला को स्वदेश कास की चिन्ता लग गई। अभी तक अफ़ग़ानिस्तान ों की छत्र-छाया में था। यह बात स्वाभिमानी अमानुल्ला के लिए असह्य थी। उन्होंने साधारण तैयारी करके ीय सीमा-प्रान्त पर आक्रमण कर दिया और अन्त में एवं ब्रिटिश सरकार को बराबरी की सन्धि करने ाध्य किया। इस प्रकार नवम्बर १९२२ में काबुल में न्धि हुई उससे अफ़ग़ानिस्तान अन्य स्वतंत्र देशों की में आ गया और आज उसके दूतावास सभी प्रधान की राजधानियों में बने हुए हैं।

अमानुल्ला ने संसार के राष्ट्र-समूह में अफ़ग़ानिस्तान च्चतर मर्यादा ही नहीं स्थापित की वरन् आन्तरिक ों पर भी ध्यान दिया। १९२३ के अन्त में उन्होंने मेण्टरी शासन का आरम्भ करने के उद्देश्य से एक विधान बनाया और विगत वर्ष की यूरोपीय यात्रा द कट्टरता को नष्ट करने और लोगों में सभ्य नागरिकता के भाव फैलाने के उद्देश्य से अनेक सामाजिक सुधारों की घोषणा की।

अशिक्षा और कट्टरता की गोद में सैकड़ों वर्ष से पलने वाले अफ़ग़ानिस्तान-निवासी राजनीति का महत्व क्या जान सकते थे? उन्हें क्या पता था कि इन सुधारों से देश की मर्यादा बढ़ेगी? अफ़ग़ान एक साहसी, अधिकार-प्रिय, स्थिति-पालक और प्रतिहिंसक मनुष्य है। जब अमानुल्ला यूरोपीय यात्रा में थे, उनकी विरोधी शक्तियाँ, भीतर ही भीतर प्रजा को उत्तेजित कर रही थीं। जिन मुल्लाओं का अफ़ग़ानिस्तान में जाना रोक दिया था, उनका भी इसमें हाथ रहा होगा। यूरोप-यात्रा से लौटकर जब उन्होंने नये सुधार जारी किये तो कुछ फ़िरके बिगड़ खड़े हुए; धर्म की दोहाई दे-देकर लोगों को उभाड़ा गया। देखते-देखते आग दूर तक फैल गई। मौक़ा देखकर बच्चा सकाऊ नामक एक अफ़गान ने (जिसे सेना से निकाल दिया गया था) इन बलवाइयों का नेतृत्व गृहण कर लिया। विद्रोहियों और राजकीय सेना में चार गहरे युद्ध हुए, जिसमें लगभग छः-सात हज़ार आदमी मारे गये। विद्रोहियों की शक्ति बढ़ती गई; फल-स्वरूप पहले तो अमानुल्ला ने उन्हें शान्त करने के लिए सुधारों के लौटा लेने की घोषणा की, किन्तु इससे भी शान्ति स्थापित होने की संभावना न देख निरीह प्रजा की रक्षा के लिए वह अपने बड़े भाई इनायतुल्ला को सिंहासन पर बैठा स्वयं क़ंदहार चले गये।

पिछली ख़बरों से मालूम होता है कि विद्रोही इस परिवर्तन से भी शांत नहीं हुए हैं और लड़ाई जारी है। बच्चा सकाऊ ने काबुल एवं उसके आस-पास के सब स्थानों पर अधिकार कर लिया है और हबीबुल्ला-ए-ग़ाज़ी नाम से अपनेको अमीर भी घोषित कर दिया है। इनायतुल्ला ने बिना क़िसी प्रतिरोध के गद्दी छोड़ दी। सुना गया है वह भी सकुटुम्ब क़ंदहार गये हैं। सबसे पिछली ख़बर यह है कि बच्चा सकाऊ की हत्या की भी अफ़वाह ज़ोरों से फैल रही है। उधर ख़बर आई है कि ग़ज़नी एवं क़न्दहार की प्रजा के सहारे अमानुल्ला काबुल पर क़ब्ज़ा करने जा रहे हैं। जलालाबाद पर उनके गवर्नर अहमदअली जान का अब भी अधिकार है, शिनवारी लोगों पर उनका

प्रभाव है। ऐसी हालत में यह संभावना की जाती है कि अमानुल्ला अफ़ग़ानिस्तान को अपने सामने नष्ट होते न देख सकेंगे और यदि दूसरी कोई दृढ़ एवं शक्तिमान केन्द्रीय सरकार स्थापित न हुई, तो अपनी बिखरी शक्तियाँ एकत्र कर पुनः सम्पूर्ण अफ़ग़ानिस्तान में केन्द्रीय सरकार स्थापित करने के प्रयत्न में लग जायँगे। भारत के मुसलमान भी जगह-जगह सभायें कर उनके साथ सहानुभूति प्रकट कर रहे हैं। सुनते हैं शिनवारियों ने नवीन सरकार के विरुद्ध काबुल पर चढ़ाई कर दी है और उधर अमानुल्ला भी सेना एकत्र कर रहे हैं।

इन बातों पर विचार करते समय इस बात पर भी पाठकों का ध्यान जाना चाहिए कि अन्तर्राष्ट्रीय और विशेषतः एशिया की राजनीति में अफ़ग़ानिस्तान का क्या महत्व है। अभी हाल में किसी अंग्रेज लेखक ने लिखा था—"It is the buffer between Red Russia and British India, one of the most coveted countries in the world × × ×" अर्थात् "यह सोवियट रूस और ब्रिटिश भारत के बीच का राज्य है और दुनिया का एक ऐसा देश है जिस पर बहुतों के दाँत लगे हुए हैं।" पहाड़ों ने इस राज्य को बहुत सुरक्षित और लगभग अजेय बना रक्खा है; ब्रिटेन की सम्पूर्ण शक्ति भी लगातार चार वर्ष तक इस पहाड़ी क़िले-बन्दी से टक्कर खाकर हार चुकी है। अफ़ग़ानिस्तान इस समय आधुनिक राजनैतिक संसार की कुंजी है। ऐसे देश के बहुत बलवान हो जाने में सोवियटरूस या ब्रिटिश भारत दोनों में से किसका कितना हानि-लाभ है, यह कहना कठिन है पर यह कहा जा सकता है कि अफ़ग़ान की उन्नति और स्वतन्त्रता का प्रभाव उसके पड़ोसी भारत की प्रजा पर भी पड़े बिना नहीं रह सकता था।

इन बातों के अतिरिक्त निम्नलिखित बातों पर भी विचार करना चाहिए—

१—अमानुल्ला पूर्वी राष्ट्रों का एक संघ बनाने के इच्छुक थे। इस संघ का प्रभाव स्वभावतः ही भारत पर पड़ता क्योंकि राजा महेन्द्रप्रताप का, सुनते हैं, इस कार्यक्रम में बड़ा हाथ था। इस पूर्वीय राष्ट्र-संघ का जेनेवा संघ से, जिसमें ब्रिटेन की तूती बोलती है, विरोध पड़ स्वाभाविक था और इस कार्य की सफलता से सम्भ था कि एशिया में ब्रिटिश-शक्ति की मर्यादा को कुछ धक्क पहुँचता।

२—अख़बारों से मालूम होता है कि अमानुल्ला यूरोप-यात्रा के आरम्भ में, बम्बई में, अपने पड़ोसी भार के स्वतन्त्र होने की कामना नमाज़ पढ़ते समय प्रकट थी; यहाँ के कट्टर मुल्लाओं को फटकारा था।

३—रोम में ब्रिटिश मिनिस्टर के प्रश्न के उत्तर उन्होंने जो कुछ कहा था उससे जहाँ उनकी मनोवृत्ति ठीक पता नहीं लगता, वहाँ यह भी मालूम होता है कि ब्रिटेन-प्रेमी (Pro-British) न थे।

४—लन्दन के "इम्पायर न्यूज़' में डाक्टर फ्रांसि हैवलाक ने एक लेख प्रकाशित कराया है। फ्रीप्रेस के लण्ड के प्रतिनिधि द्वारा भेजी सूचना के अनुसार डा० हैवल स्वयं साम्राज्यवादी हैं। उनके जीवन का बहुत बड़ा भा भारत और अफ़ग़ानिस्तान में बीता है और वह यूरोप-या में कुछ समय तक अमानुल्ला के साथ भी थे। वह क हैं कि सीमाप्रान्त पर युद्ध के पूर्व एक विचित्र मनुष्य दे गया था। वह जब-जब आता तब-तब उसके बाद बहु सा युद्ध का सामान तथा सोना इत्यादि अफ़ग़ानिस्तान ओर जाता दीख पड़ता। इसमें ब्रिटिश रायफलें भी थीं, विद्रोहियों के लिए भेजी गई थीं। अन्दाज़ किया जाता कि यह ब्रिटिश पार्लमेण्ट का भूतपूर्व सदस्य ट्रेविश लिं लन था। कहते हैं चीन में भी इसने कुछ झगड़े फैला थे। डा० हैवलाक यह भी कहते हैं कि नवम्बर के तीस सप्ताह में अफ़ग़ानिस्तान में एकाएक कर्नल लारेन्स आगमन हुआ था और उन्होंने अमानुल्ला, पुलिस अध्यक्ष तथा युद्ध-सचिव से भेंट भी की थी। भेंट करके कहाँ ग़ायब हो गये, इसका फिर पता न लगा। लारेन्स वहीं हैं जिन्होंने नाना प्रकार के कहानी-क़िस् फैलाकर और स्वयं अरबों-जैसी रहन-सहन धारण कर ब्रिटेन के पक्ष में कर लिया था। लारेन्स दुनिया का बहुत ही रहस्यमय व्यक्ति है। उसके सम्बन्ध में बहुत-

हित्य निकल चुका है, फिर भी उसका ठीक ज्ञान किसी नहीं है। जैसा कि भारत-सरकार की विज्ञप्ति से मालूम हैं, अभी १० दिन पूर्व तक यह लारेन्स "एयरक्रैफ्टस-शा" नाम से भार- वायुयान-विभाग एक अधिकारी भी यदि डा० हैवलाक विवरण ठीक है और लारेन्स एक ही भारत-सरकार का कारी होते हुए भी का नवम्बर के अन्त अफ़ग़ानिस्तान जाने क्या उद्देश्य हो ता है ? यह एक मय बात है। सब पिछला समाचार यह कि अमानुल्ला ने सराय को एक ल' दिया था कि आवश्यकता पड़ने मुझे भारत में आश्रय सकता है ? यह वायसराय को कल- में मिला था। सुनते उन्होंने भारत-सचिव इसकी बाबत पूछा था और वहाँ से मिला—हाँ। ठीक क्या है, कुछ समझ पड़ता।

अमीर अमानुल्ला और बेगम सुरैया

५—इधर प्रयाग भूतपूर्व अमीर अयूबख़ाँ के बड़े पुत्र के गायब हो का समाचार गतमास में मिला था। पेशावर कुछ लोगों का कहना है कि वह अफ़ग़ानिस्तान पहुँच गया है। एक अफ़वाह तो ऐसी भी है कि बच्चा सकाऊ ने उसे ही काबुल का गवर्नर नियुक्त किया है। हाल में भारत-सरकार और केन्द्रीय गुप्तचर विभाग की सूचना के आधार पर देहरादून, लाहौर और प्रयाग में इस भागे हुए शाहज़ादे के चार भाई तथा अन्य अफ़ग़ान शाहज़ादे गिरफ्तार किये गये और रंगून भेज दिये गये हैं। गिरफ्तारी के समय ये लोग खुश थे और एक ने कहा कि "ऐसी गिरफ्तारी तो खुशी की बात है।" न जाने क्या रहस्य है?

६—पिछले समाचारों से मालूम होता है कि काबुल एवं उसके पास की बाघी-बाला और डेल-कोहेक पहाड़ियों पर विद्रोहियों के नेता बच्चा सकाऊ का अधिकार है। ब्रिटिश दूतावास इन पहाड़ियों के पास ही है और फिर भी वहाँ विद्रोहियों द्वारा कोई कठिनाई उपस्थित किये जाने अथवा किसी ख़तरे का समाचार नहीं मिल रहा है। यह भी कहा जाता है कि बच्चा सकाऊ पहले ब्रिटिश-दूतावास से चन्द मील के ही फ़ासले पर रहता था।

इन बातों पर विचार करने से मन में अनेक भाव

उदय होते हैं। यह तो कहना ही पड़ता है कि जैसी भयंकर परिस्थिति उत्पन्न हो गई है, वह केवल मुल्लाओं के विरोध की उपज नहीं हो सकती। उसमें अन्य राजनैतिक उपकरण भी मिश्रित हैं। ये राजनैतिक उपकरण क्या हैं। यह कहना कठिन है। फार्म छपते-छपते मालूम हुआ है कि भारत-सरकार ने एक विज्ञप्ति द्वारा डा० हैवलाक की बातों का खण्डन किया और उसे कोरी गप्प बताया है। कहा जाता है कि अफ़गानिस्तान के विद्रोह से भारत-सरकार का कुछ लाभ नहीं हो सकता, हानि ही होगी। किसी समाचार पर एक दम विश्वास नहीं किया जा सकता क्योंकि इनमें अफ़वाहों की अधिकता है।

इस समय जो परिस्थिति है, उसमें अफ़ग़ानिस्तान में गृह-युद्ध की आशंका बढ़ गई है और केन्द्रीय सरकार की स्थापना होने में देर लगेगी। लोगों ने आशा प्रकट की है कि यदि इधर की ख़बरें ठीक हैं, तो अमानुल्ला के फिर सम्राट हो जाने की संभावना की जाती है।

इस अशान्ति का भारत पर क्या प्रभाव पड़ेगा, कहा नहीं जा सकता। पर यह कहना ही पड़ता है कि इस समय अफ़ग़ानिस्तान एक ख़तरे की चीज़ हो रहा है और बहुतेरे पत्रों ने तो 'पूर्व का बेलजियम' कहकर भावी संघर्ष के प्रति भयप्रद आशंका भी प्रकट की है।

'सुमन'

यूगोस्लेविया में

'त्यागभूमि' के किसी पिछले अंक में हमने 'यूगोस्लेविया का भविष्य' लेख में बताया था कि वहाँ क्रोट लोगों के विद्रोह की आशंका बहुत अधिक है, और यूगोस्लेविया का भविष्य अच्छा नहीं है। आख़िर वही हुआ। यूगोस्लेविया के राजा अलेक्जैंडर ने, अभी कुछ दिन हुए, एक घोषणा प्रकाशित कर यूगोस्लेविया के वर्तमान विधान को तोड़ दिया है, जिसके परिणामस्वरूप क्रोटिया एक स्वतंत्र राज्य बन गया है।

कृष्ण

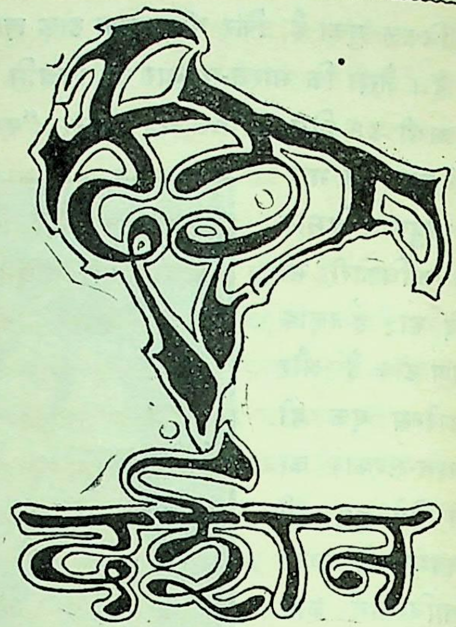

दर्शन

सामान्य वातावरण

कलकत्ता-कांग्रेस में स्वीकृत कार्यक्रम को दृष्टि में र कर और कांग्रेस के जोश को देखते हुए जिस प्रगति आशा की जाती थी, उसका प्रारम्भ अभी तक नहीं हु है। कांग्रेस में पूर्ण स्वतन्त्रता के आन्दोलनकारी भी इ समय महात्मा गांधी के प्रस्ताव को कोसने के सिवा कु करते नहीं दीख रहे। अछूतोद्धार, शराब-बहिष्कार, विदे वस्तु-बहिष्कार आदि अनेक ऐसे कार्य हैं, जो बहुत जोश साथ किये जा सकते हैं, परन्तु ऐसा मालूम होता है इनकी तरफ किसीका ध्यान ही नहीं गया। अबत किसी प्रान्त में इस कार्यक्रम की ओर विशेष ध्यान न दिया गया। यद्यपि कांग्रेस-कार्यक्रम के कारण देश में को देशव्यापी हलचल नहीं हो रही और न पूर्ण स्वतन्त्रतावादि के दल ने ही कोई निश्चित कार्यक्रम उपस्थित किया तथापि सरकार उनसे बहुत भयभीत हो गई है। सु गया है कि सरकार पूर्ण स्वतन्त्रतान्दोलन को कुचल का विचार कर रही है। बहुत संभव है कि वह दमन-नी प्रारम्भ भी करदे। देश के पत्रों ने इस अफ़वाह का स्वा किया है। महात्मा गांधी ने तो लिखा है कि भारत य चाहता है कि दमन हो, जिससे उसकी राजनैतिक भाव फिर दृढ़ और संगठित हो जायगी। इससे यह भी माल हो जायगा कि सरकार औपनिवेशिक स्वराज्य के क्या

ाती है। अभी नहीं कहा जा सकता कि सरकार क्या ती।

मध्यप्रान्तीय कौंसिल राष्ट्रीय दृष्टि से सबसे अधिक ल रही है। श्री उमेशदत्त पाठक दोनों मन्त्रियों अविश्वास का प्रस्ताव पेश करने वाले थे कि उससे दिन पूर्व ही श्रीयुत राघवेन्द्रराव और श्रीयुत केदार ने ागपत्र दे दिया। अब इस समय वहाँ कोई ी नहीं है।

पञ्जाब-सरकार पहले सैण्डर्स के हत्याकाण्ड की जांच मेें परेशान थी कि एक नई आफ़त आ खड़ी और वह है—

लाहौर का सैनिक-सत्याग्रह

पिछले यूरोपीय युद्ध में अंग्रेज़ी सरकार जिन भारतीय ाहियों के बल पर जीती थी, युद्ध समाप्त होते ही े उन सिपाहियों से किनारा कर लिया। बेचारे ग़रीब तीय सिपाही किसी तरह गुज़ारा करते रहे। उन कष्टों अधिक सहने में असमर्थ होकर पंजाब के सैकड़ों सैनिकों त दिसम्बर में लाहौर में इकट्ठे होकर सरकार से ा की कि वह उनके खाने-पीने का यथोचित प्रबन्ध । उन सैनिकों ने सरकार को यथोचित प्रबंध करने के एक मास की अवधि दी। परन्तु सरकार ने उस ना पर कुछ ध्यान नहीं दिया। इसपर अपने निश्चय नुसार हज़ारों सैनिक गवर्नर की कोठी पर उनसे मिलने लाहौर चले। पुलिस ने उन्हें रोक लिया और उनके को पकड़ लिया। दृढ़निश्चयी सैनिकों ने इसपर शन व्रत प्रारंभ कर दिया और उसी सड़क पर धरना या। श्रीमती अनूपसिंह उनका नेतृत्व कर रही हैं। अवसर पर लाहौर की अनेक संस्थाओं ने भोजन वस्तु से उनकी सहायता की। शनैः-शनैः स्थिति गंभीर गई। सरकार ने उन्हें एक ऐसा डेपुटेशन चुनने के कहा जो गवर्नर से मिले। परन्तु सैनिकों ने जवाब कि हमारे नेताओं के छूटने पर हम प्रतिनिधि । अन्त में निराश होकर सरकार ने उन नेताओं को दिया और उन सैनिकों की जांच के लिए एक तहसीलदार नियुक्त किया है, जो प्रत्येक सिपाही का नाम, पता, और उसकी शिकायत दरयाफ्त कर एक रिपोर्ट तैयार करेगा।

अहमदाबाद-कालेज के वीर विद्यार्थी

उधर अहमदाबाद में गुजरात कालेज के विद्यार्थी भी सत्याग्रह कर रहे हैं। अहमदाबाद में साइमन कमीशन के आने के दिन कालेज के विद्यार्थियों ने कालेज की परीक्षा में उपस्थित न होकर हड़ताल की थी। प्रिंसिपल ने उनसे जुर्माना देकर दूसरे किसी समय परीक्षा में बैठने को कहा, परन्तु विद्यार्थियों ने स्वीकार नहीं किया। प्रिंसिपल ने अब तीसरा समय निश्चित कर विद्यार्थियों से जुर्माना वसूल करना चाहा, परन्तु विद्यार्थी इस तरह परीक्षा देने को तैयार न हुए। परीक्षा के दिन कई गुजराती महिलाओं ने भी परीक्षा-भवन के दर्वाजे पर धरना दिया। स्थिति गंभीर हो गई है। ७५० विद्यार्थी दो सप्ताहों से हड़ताल किये बैठे हैं। प्रिंसिपल ने दो बार विद्यार्थियों के डेपुटेशन के सामने समझौते के लिए विभिन्न शर्तें पेश कीं, परन्तु डेपुटेशन ने उन्हें अपमानजनक कह कर स्वीकार नहीं किया। महात्मा गांधी, श्री जवाहरलाल नेहरू और नरीमन प्रभृति नेता विद्यार्थियों को दृढ़ रहने का उपदेश दे रहे हैं। यदि इसमें विद्यार्थियों को सफलता मिल गई, तो उसका गहरा प्रभाव देश के विद्यार्थियों पर अवश्य पड़ेगा। गत २१ जनवरी को अहमदाबाद के सब स्कूलों के विद्यार्थियों ने कालेज के विद्यार्थियों से सहानुभूति दिखाने के लिए हड़ताल की। श्रीयुत नरीमन इसी सम्बन्ध में भारत-भर के स्कूल-कालेजों में हड़ताल कराना चाहते हैं।

कलकत्ता में बहिष्कार

साइमन-कमीशन अपना काम करता हुआ १२ जनवरी को कलकत्ते पहुँचा। नगरवासियों ने पहले ही से उसके बहिष्कार-प्रदर्शन का प्रबन्ध कर रक्खा था। शहर में बहुत अधिक जोश था। आसाम से आनेवाली गाड़ी सियालदह स्टेशन पर आती थी, इसलिए उसी स्टेशन पर कमीशन के उतरने का निश्चय था। जनता हज़ारों की तादाद में वहाँ काले झण्डे लेकर सबेरे पहुँच गई थी। सरकार ने

इस बहिष्कार-प्रदर्शन के भय से कमीशन का रास्ता नैहारी स्टेशन से बदल कर उसे बहुत सबेरे हबड़ा स्टेशन पर उतारा। परन्तु इतना छिपाने पर भी जनता ने पता लगा ही लिया। फिर भी कुछ शंका के कारण जनता दो दलों में बँट गई और एक दल हवड़ा स्टेशन की ओर चला। पुलिस ने उन्हें हवड़ा पुल के इधर रोक लिया और स्टेशन पर न पहुँचने दिया।

दोनों स्टेशनों तथा उधर जाने वाली सड़कों पर पुलिस का कड़ा पहरा लगा दिया गया था। हवड़ा स्टेशन के सब मुख्य फाटक बन्द कर दिये गये थे और ६, ७ नम्बर के प्लेटफ़ार्म टीन के चादरों से घेरे गये थे। कमीशन के हवड़ा पहुँचने की ख़बर सुनकर हज़ारों लोग हरिसन रोड में आ गये। ६॥ बजे कमीशन हवड़ा पुल से गुज़रा। उस विशाल जनसमूह ने एक स्वर से "साइमन लौट जाओ" की आवाज़ से आकाश को गुंजा दिया। कमीशन शीघ्र ही निश्चित रास्ते से चला गया।

तब जनता ने भी सुभाषचन्द्र बोस आदि के नेतृत्व में कई दलों में विभक्त होकर शहर की मुख्य-मुख्य सड़कों पर जुलूस निकाले। सुबह से ४ बजे शाम तक नगर में हिन्दुओं की बस्ती में पूरी हड़ताल रही, परन्तु अंग्रेज़ और कुछ मुसलमानों ने दुकानें खोलीं। सभी ग़ैर-सरकारी स्कूल और कालेज बन्द रहे और जो बन्द नहीं हुए, उनमें बहुत कम विद्यार्थी गये। शाम को श्रीयुत जे० एम० सेन गुप्त के सभापतित्व में श्रद्धानन्द पार्क में सभा हुई। गत १९ ता० को कमीशन-बहिष्कार के सम्बन्ध में बड़ा भारी जुलूस निकला और सभा हुई। इसमें मज़दूरों ने बहुत भाग लिया।

मज़दूर-प्रगति

गत मास में झरिया में मज़दूर-संघ का अधिवेशन हुआ। उसमें मज़दूरों के हित-सम्बन्धी अनेक प्रस्ताव पास हुए, परन्तु उस सम्मेलन से मज़दूरों की प्रगति का इतना अच्छा ज्ञान नहीं हुआ, जितना कि कलकत्ते में इस अफ़वाह से कि २०००० मज़दूर आकर कांग्रेस-पण्डाल को अपने अधिकार में कर लेंगे। उस समय एक बार तो दिल में मजदूरों के प्रश्न की ओर ध्यान खिंचे बिना न रहा और भारत के राष्ट्रीय जीवन में एक ज़बर्दस्त क्रान्ति की कल्प हो उठी। अच्छा हुआ, यह अफ़वांह ठीक नहीं थी मज़दूर आये, उनके साथ बंगाली स्वयंसेवकों ने दुर्व्यंहार किया, उससे सम्भव था कि कोई दुर्घट हो जाती, परन्तु मज़दूरों की शान्ति और मोतीलाल की दूरदर्शिता ने वैसा अवसर न आने दिया, मज़दू की शान्तिपूर्ण विशाल सभा हुई। कांग्रेस-पण्डा पर उन्होंने अधिकार नहीं किया। परन्तु उस प्रदर्शन अं विशाल सभा से यह स्पष्ट हो गया कि भारतीय राजनी में अब मज़दूरों के प्रश्न की उपेक्षा करना बहुत हानिप्र होगा। मज़दूरों की यह बड़ी भारी जीत हुई कि कांग्रेस अपने मुख्य कार्यक्रम में मज़दूरों के संगठन को स्थान दिया।

अबतक कलकत्ता, बम्बई, कानपुर आदि में मज़दूरों के संगठन हो चुके हैं, परन्तु दिल्ली में भी कु समय से मज़दूरों ने एक संगठन-समिति बना ली है अहमदाबाद की जिनिंग मिल में जो झगड़ा चल रहा थ वहाँ भी मज़दूरों की विजय हुई।

परन्तु जहाँ हम मज़दूरों की प्रगति की प्रशंसा कर हैं, वहाँ बम्बई में मजदूरों के उपद्रवों की तरफ़ भी उन नेताओं का ध्यान खींचना चाहते हैं। मज़दूरों ये उपद्रव किसी तरह क्षन्तव्य नहीं हैं।

कांग्रेस सप्ताह

कांग्रेस सप्ताह में कलकत्ता में बड़ी हल चल रही कांग्रेस के अधिवेशन के साथ राष्ट्रभाषा-सम्मेलन, स्वाधी भारत-संघ, पूर्ण स्वतंत्रता-संघ, युवक-सम्मेलन, भारती सामाजिक सम्मेलन आदि अनेक सम्मेलनों के साथ क जातीय सम्मेलन भी हुए। कांग्रेस में अनेक महत्वप प्रस्ताव पास हुए, जिनमें से मुख्य प्रस्ताव आगे वि जा रहे हैं। सर्व दल सम्मेलन का विशेष महत्त्व रहा है।

कांग्रेस के कार्य-क्रम तथा प्रस्तावों पर आगे विच किया गया है। उसकी सफलता या असफलता का विचा यहाँ नहीं करना। परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता कि जितना बाह्याडंबर था, उतनी गम्भीरता नहीं थी

प्रेरक शक्ति

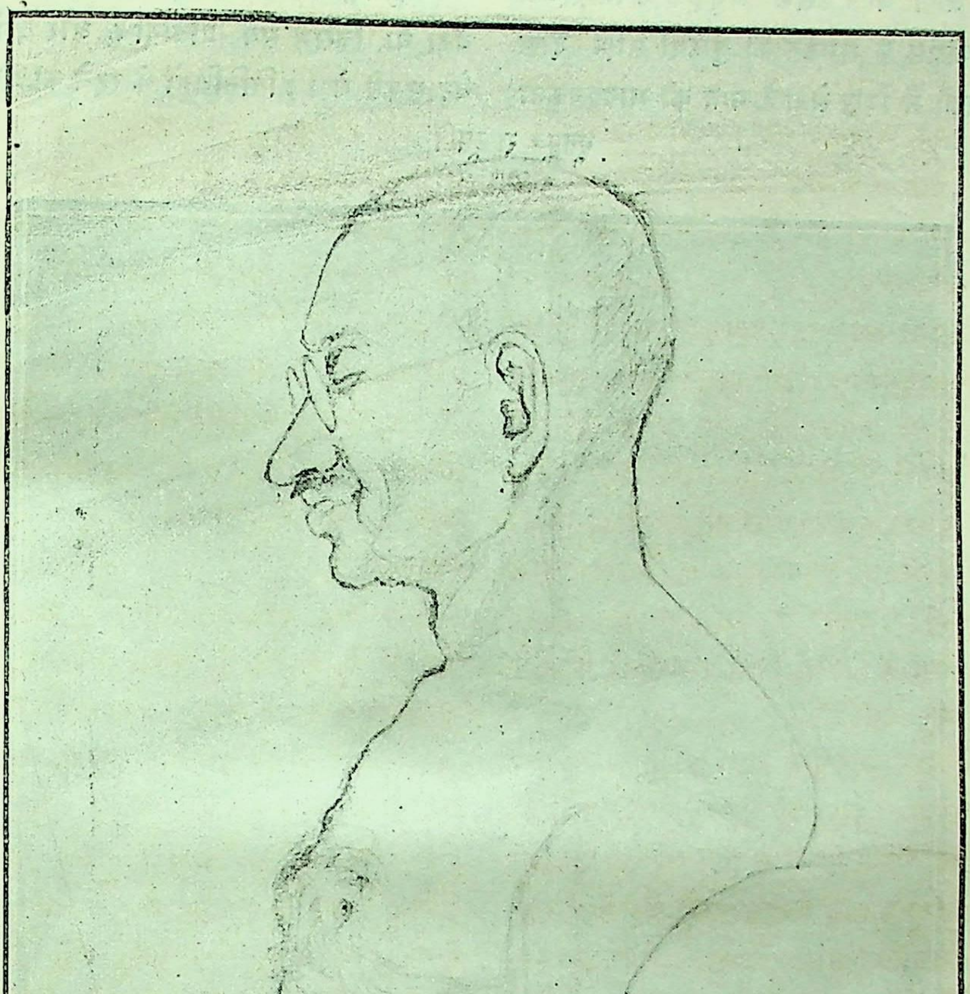

महात्मा गांधी

लोगों में जितना जोश था। उसके अनुकूल उनमें सच्ची लगन नहीं थी। कांग्रेस के संगठन की त्रुटियाँ साफ़ दीख रही थीं। स्वयंसेवकों में जिस सेवा के भाव की आवश्यकता थी, वह उनमें नहीं था। वे वर्तमान पुलिस के सिपाही-से मालूम होते थे। उनका व्यवहार प्रशंसनीय नहीं था। महात्मा गांधी ने कांग्रेस की जो समालोचना की है, उसका प्रत्येक अक्षर सत्य है।

भूतपूर्व राष्ट्रपति

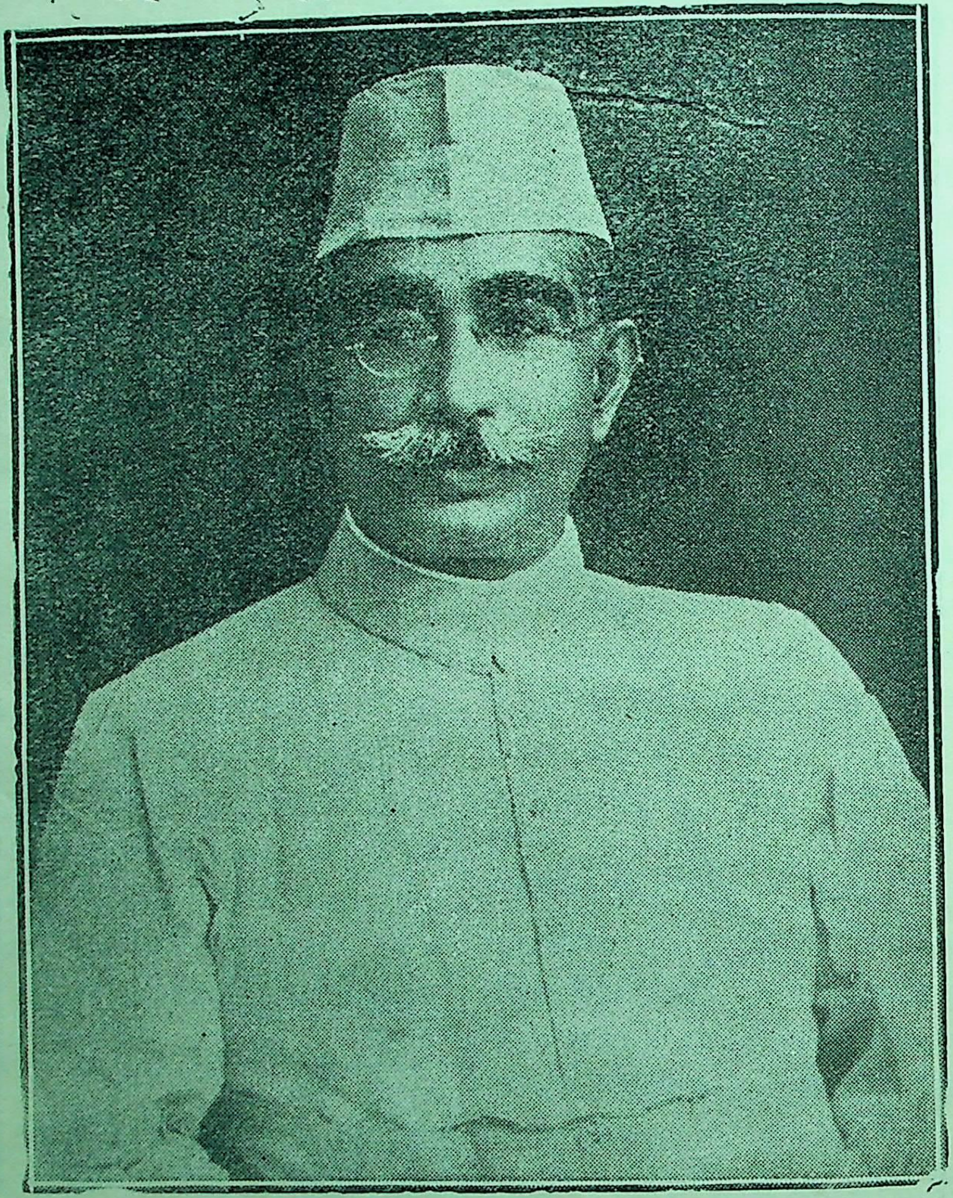

डा० अंसारी

कांग्रेस का प्रबन्ध बहुत अच्छा था। पण्डाल बहु बड़ा था, जिसमें सब प्रतिनिधि और दर्शक अच्छी तर बैठ सकते थे। प्रतिनिधियों के रहने का प्रबन्ध बहुत अच्छ था। देशबन्धु नगर की सफ़ाई वग़ैरा बहुत प्रशंसन थी। वहाँ की प्रदर्शिनी तो एक अजीब चीज़ थी। य उस में विदेशी वस्तुओं का बहिष्कार किया जाता, तो उ की उपयोगिता में कोई सन्देह नहीं था। पर स्वदे

बहुतसी सामानों को देखकर उसका वास्तविक उद्देश्य ी तर में नहीं आता था। बहुत से लोगों का यह ख़याल अच्छ केवल अर्थ-संग्रह के लिए इसका आयोजन किया गया है। प्रदर्शिनी की विशाल आयोजना को देख कर कभी-कभी यह सन्देह अवश्य होता था कि कांग्रेस बड़ी है या प्रदर्शिनी !

वर्तमान राष्ट्रपति

पं० मोतीलाल नेहरू

स्वतंत्र-पक्ष एवं युवक-दल के नेता

पं० जवाहरलाल नेहरू

एक बहुत दुःखजनक बात देखी गई कि वहाँ ग़रीबों के लिए कोई विशेष स्थान न था। किसी भी सम्मेलन में-चाहे वह युवक-सम्मेलन, सामाजिक सम्मेलन या राष्ट्र-भाषा सम्मेलन ही क्यों न हो—कोई व्यक्ति बिना टिकट के नहीं जा सकता था। कांग्रेस के अधिवेशनों—विषय-निर्धारिणी समिति, सर्वदल सम्मेलन आदि किसी अधिवेशन में दर्शक का टिकट १०) रुपये से कम नहीं था। ग़रीब प्रतिनिधियों के निवास के लिए ५) रुपये फ़ीस बहुत अधिक मालूम होती थी। बिहार से ४०० किसान पैदल कलकत्ता में आये थे, स्वागत-समिति ने उन्हें मुफ्त टिकट नहीं दिये, जैसा कि हर एक कांग्रेस के अवसर पर दिये गये थे। देशभक्त राजेन्द्र बाबू अड़ गये। बिहारी प्रतिनिधियों ने कांग्रेस में भाग लेने से इनकार कर दिया। आख़िर सुभाष बाबू ने आकर माफ़ी माँगी, किसानों को टिकटें देनी पड़ीं।

हमारी खोई धरोहर

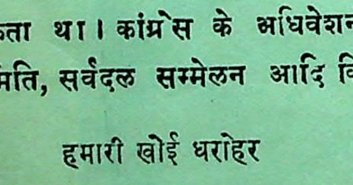

लाला लाजपत राय

बारडोली संग्राम के विजयी सेनापति

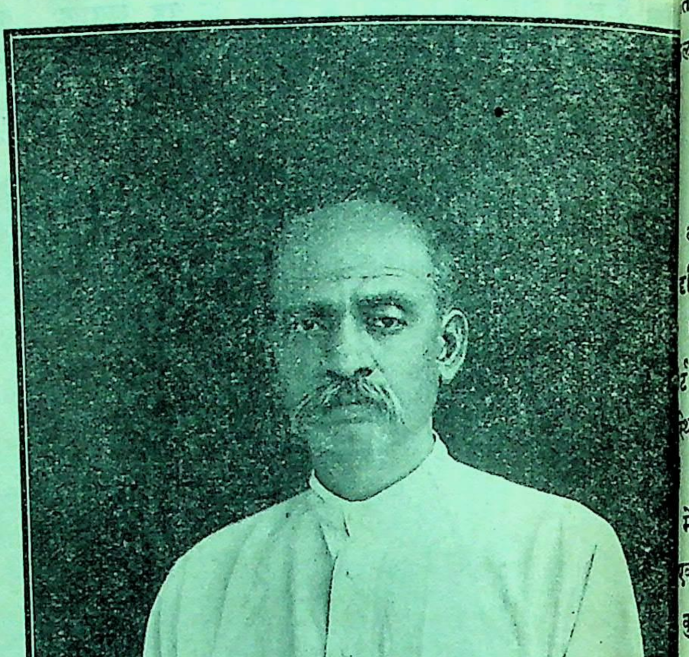

श्री वल्लभभाई पटेल

कांग्रेस में साधारण जनता में विशेष जोश था। वह किसी अच्छे नेतृत्व की प्रतीक्षा कर रही थी, उस समय की समस्याओं को महात्माजी ने जितनी अच्छी तरह से सुल

ा, उससे किसी अधिक की आशा भी नहीं की जा ती थी। यदि महात्माजी न आते, तो कांग्रेस की लता में सन्देह था ।

कांग्रेस-स्वागताध्यक्ष का भाषण

(सारांश)

कार्य्यारम्भ करने के साथ ही हमें अपनी वर्तमान अवस्था ष्टि डालनी है। आज के सामने नेहरू-र्ट की सिफ़ारिशें थत हैं। उसपर ही करने से हमारे में वर्तमान समय कता हो सकती कुछ लोग पूर्ण स्वत ा की भी बात कह हैं। किन्तु, सारा त उनकी राय से मत नहीं है । एक होकर औप-शिक स्वराज्य के लिए कर सकते हैं । -रिपोर्ट पूर्ण स्वत-ावादियों के कार्य अड़ंगा नहीं लगाती । हम सबको मिल-काम करने की ज़रू-है। अब प्रश्न यह क इस रिपोर्ट का ोग किस प्रकार हो । सरकार की ओर से ोग की आवाज़ आ रही है, किन्तु भारत इतना रू नहीं है कि उनके भुलावे में आ जाय । हम सहयोग कर चुके। हमारे सहयोग से ही ब्रिटिश स्थापित हुआ। अनेकों अवसरों पर भारतीयों योग के लिए स्वयं माँड़ पिया और सरकारी अधिकारियों को भात दिया। हमारे सहयोग से ही आफ्रका में उनका झण्डा फहराया था। सन् १८५७ ई० के समय, जब बोरिया-बँधना बँध रहा था, तब हमने ही इनके प्राण बचाये और यहाँ टिकाया। इनके सहयोग के लिए हमने क्या नहीं किया ? सहयोग में अपना व्यापार नष्ट किया, प्राण दिये, बच्चों को भूखा मारा। किन्तु सच्ची बात तो यह है कि ये सहयोग करना नहीं जानते। इन्होंने तो दमन का पाठ पढ़ा है और उसे ही बरतते हैं। इन्होंने किसी भी सहयोगी देश से सहयोग का व्यवहार नहीं किया। अमेरिका, टर्की, दक्षिण आफ्रिका, कनाडा, आयर्लैण्ड, मिश्र सभी देशों को इनके अन्याय की शिकायत थी और है। ब्रिटिश सरकार हमारी उन्नति की ठेकेदार बनती है। किन्तु इसने हमारी कैसी उन्नति की है, इसका अन्दाज़ा पूर्व और वर्तमान अवस्था का मिलान करने से लग जायगा। इनकी ठेकेदारी ने हमारा व्यवसाय, शिल्प, कला, शिक्षा, खेती, जहाज़ी शक्ति सभी कुछ चौपट कर दिया । हमारी सभी शक्ति इनके हाथ चली गई और अब ऐसे नियम बन गये हैं कि हमें सिर उठाना भी मुश्किल हो गया है। यहाँ के गोरे लोग स्कूल, कालेज, रेल, तार, डाक, बैंक का नाम लेकर हमारी उन्नति का राग अलापा करते हैं। किन्तु, ज़रा सा ही ध्यान देने से स्पष्ट हो जायगा कि इससे भारत का लाभ नहीं है, बल्कि इससे तो लाभ है तो

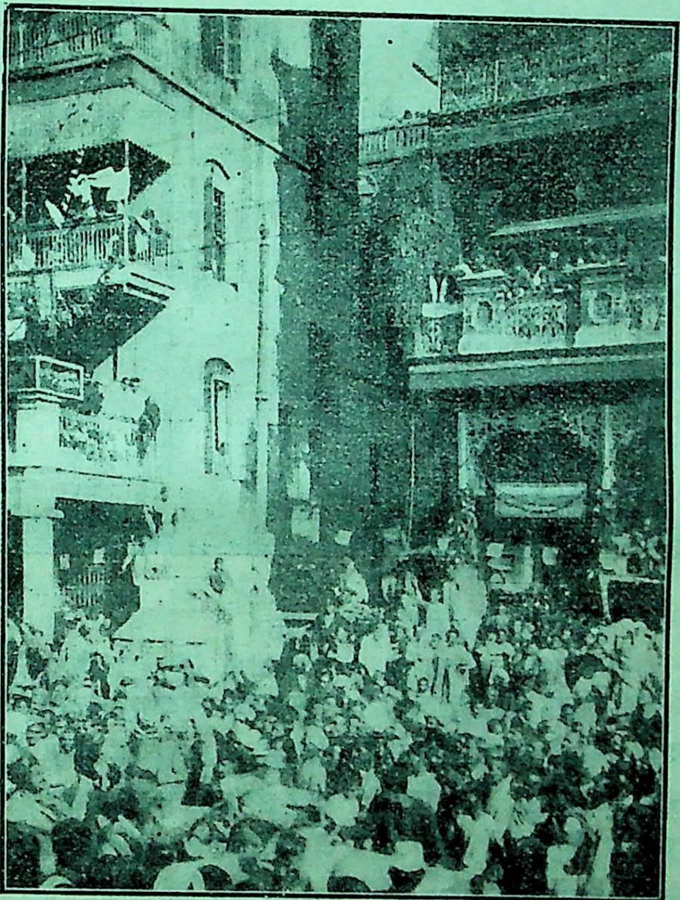

जुलूस में सुभाष बाबू

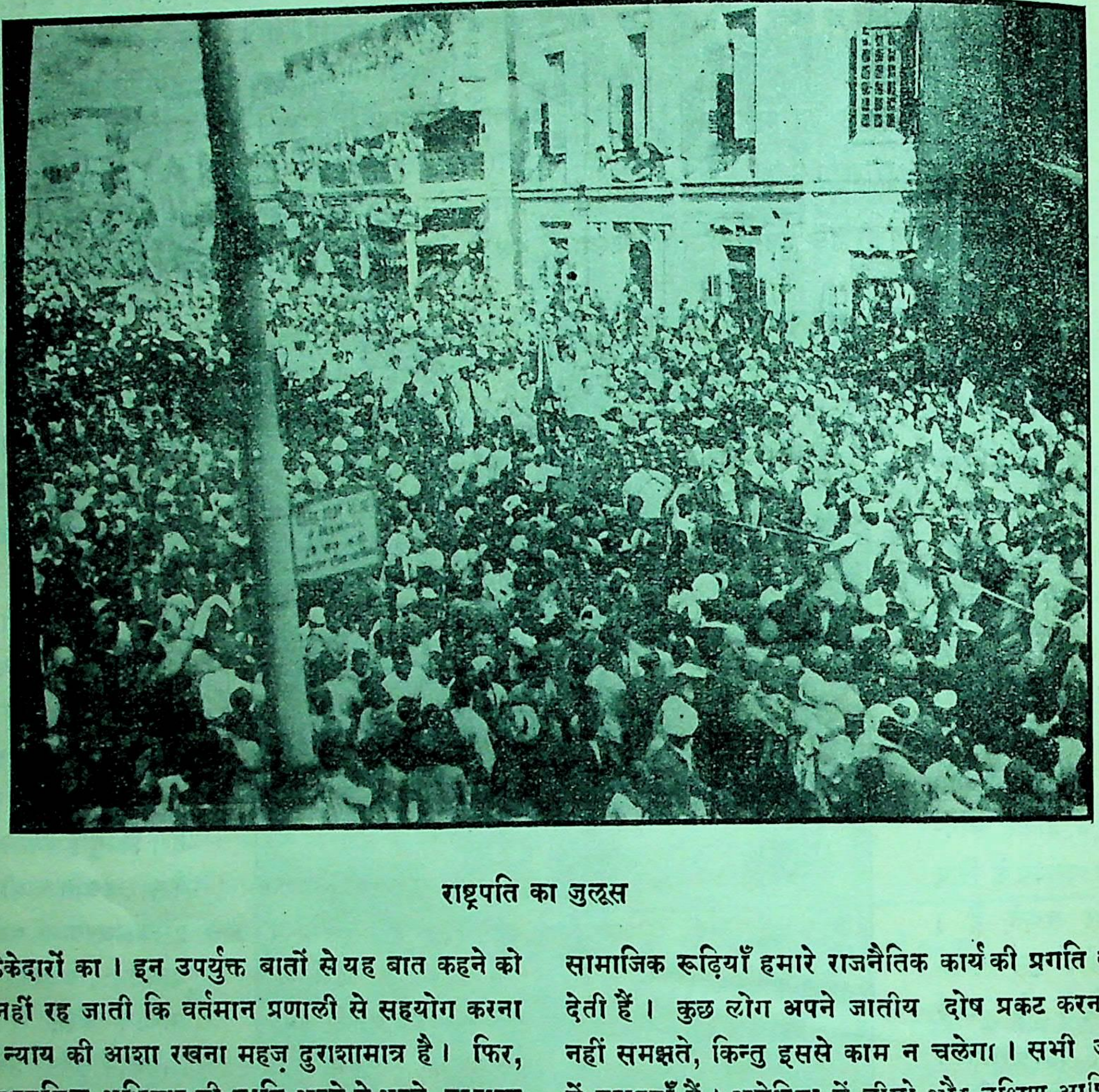

राष्ट्रपति का जुलूस

इन्हीं ठेकेदारों का। इन उपर्युक्त बातों से यह बात कहने को बाक़ी नहीं रह जाती कि वर्तमान प्रणाली से सहयोग करना अथवा न्याय की आशा रखना महज़ दुराशामात्र है। फिर, अपने जन्मसिद्ध अधिकार की प्राप्ति अच्छे-से-अच्छे परराज्य से अधिक आवश्यक है। परराज्य के सुखों से स्वराज्य की तुलना नहीं हो सकती। यही एक उपाय है, जिससे अपने को शान्ति हो सकती है। देश में न्याय और शान्ति-स्थापन के लिए गुलामी का नाश करना है। हमारे स्वराज्य के मार्ग में बाधा डालने वाली चीज़ वर्तमान शासन-पद्धति है। सहयोग से हम इस चीज़ को दूर नहीं कर सकते। असहयोग-आन्दोलन का जन्म इसी कारण हुआ था और ऐसे ही शस्त्रों से हमारा काम भी चल सकता है। हमारे स्वराज्य-प्राप्ति के मार्ग में बाधक कुछ हमारी घरू बुराइयाँ भी हैं। सामाजिक रूढ़ियाँ हमारे राजनैतिक कार्य की प्रगति को रोक देती हैं। कुछ लोग अपने जातीय दोष प्रकट करना ठीक नहीं समझते, किन्तु इससे काम न चलेगा। सभी जातियों में बुराइयाँ हैं। अमेरिका में नीग्रो और दक्षिण आफ्रिका में वहाँ के मूल अधिवासी हमारे यहाँ के अस्पृश्यों से कम नहीं समझे जाते। लेकिन कुछ भी हो, हमें राजनैतिक प्रगति को तीव्र करने के लिए इन बुराइयों और रूढ़ियों का निर्दयता-पूर्वक हनन करना पड़ेगा। हमें अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए बड़े-बड़े परिवर्तन करने पड़ेंगे। जिन रूढ़ियों का हमें मोह है, उनसे पल्ला छुड़ाना होगा। थोड़े शब्दों में यह कि स्वतन्त्रतादेवी के मन्दिर तक पहुँचने और उसका दर्शन पाने के लिए बड़े से बड़ा त्याग और प्रिय वस्तुओं का बलिदान हमें करना होगा।

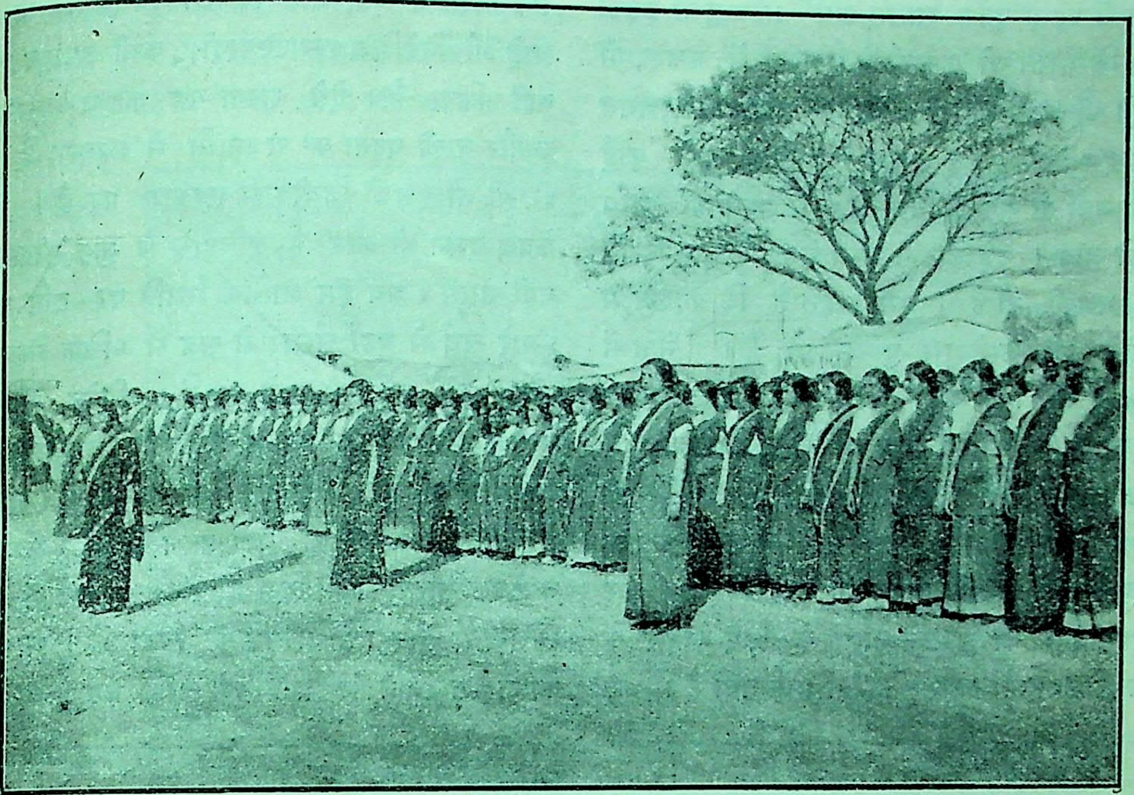

स्त्री-स्वयंसेविकायें

राष्ट्रपति का भाषण

(सारांश)

मित्रो, मैं व्यापक आदर्शवाद को बुरा नहीं समझता; आदर्श कितना ही ऊँचा क्यों न हो, उसकी प्राप्ति ए जो उपाय करने होते हैं वे प्रकृत अवस्था देखकर मेरा विश्वास है कि सब का आदर्श एक ही है, केवल नाम अलग-अलग दिये गये हैं । किन्तु खेद है कि मामूली मत-भेद को इतना बढ़ा दिया गया है कि बिल्कुल ही छिप गया है । अपने देश को रहने योग्य में सहायता देना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है । किंतु देश की अवस्था और उसका सुधार समयानुसार भिन्न हुआ करते हैं । हमारे सामने प्रश्न यह है कि हम देश और जिस अवस्था में रहते हैं उसके अनुसार जो साधन हमें प्राप्त हैं उनके सहयोग से हम क्या सकते हैं । हमें क्या करना है इस प्रश्न का उत्तर देने ए हमें तीन सवालों का जवाब देना होगा । हम कहां हैं ? हम कहां जाना चाहते हैं ? वहां कैसे पहुँच सकते हैं ? इनका उत्तर मैं अपनी व्यवहारिकता से दूँगा । हम कहाँ हैं ? इस प्रश्न के दो स्वरूप हैं । एक सरकार के सम्बन्ध का; दूसरा अपने सम्बन्ध का । पहले विषय में यह जान लेना चाहिए कि हमें जो अधिकार मिले हैं, वे उपहार के रूप में, और उनका उपयोग हम तभी तक कर सकते हैं जब तक शासक हम से प्रसन्न रहें । अपने विशेषाधिकारों से, जिनको उन्होंने अपने पास सुरक्षित रख लिया है, वे हमें सकारण या अकारण जब चाहें तब इन अधिकारों से वंचित भी कर सकते हैं और अब तक किया भी है । सभी जानते हैं कि वर्तमान सरकार ने राजनैतिक और आर्थिक क्षेत्रों में क़ानूनी तथा शासन-विषयक कार्यों से अपनी शक्ति बढ़ा ली है । उत्तरदायी शासन का शपथपूर्वक दिया गया वचन आज कमीशन के रूप में सामने आया है, जो खून से लथपथ सिर और टूटी हुई हड्डियाँ बखेरता हुआ हमारी गलियों में चक्कर लगा रहा है । 'स्टेट्समैन' आदि पत्र कमीशन को यह राय देने को उकसाते हैं कि "बीस साल

तक भारत में दृढ़ता पूर्वक शासन करो"। किन्तु मैं कहना चाहता हूँ कि भारत को गुलामी के पुरस्कार में उत्तरदायी शासन पाने की इच्छा नहीं है। वह कड़े शासन का स्वागत करता है। इस समय कड़े शासन से बढ़कर और कोई बात अच्छी नहीं हो सकती, जिससे सारे प्रश्न का तुरन्त निपटारा हो जाय। बड़े लाट ने कमीशन-बहिष्कार-प्रदर्शन के बारे में धमकी दी है। हम कहते हैं कि प्रदर्शन में उपद्रव होने की ज़िम्मेदारी पुलिस पर है। नेताओं ने ऐसे वक्तव्य भी निकाले हैं, किन्तु उनका खण्डन नहीं न हुआ। भारत के लिए जितना अप्रिय यह कमीशन है उतना अंग्रेज़ों का अप्रिय कमीशन क्या इंग्लैण्ड में ऐसी ही स्वतंत्रता से घूम सकता, दावतें उड़ा सकता, अथवा पुलिस प्रदर्शकों के घर में घुस कर उन्हें बेइज़्ज़त कर सकती? राष्ट्रीयता को कुचलने वालों के लिए लाहौर के पुलिस अफ़सर की हत्या का एक बहाना मिल गया है। अब तक किसी ने भी, चाहे वह पूर्ण स्वतंत्रतावादी हो औ चाहे औपनिवेशिक स्वराज्यवादी, कभी उपद्रव का समर्थ नहीं किया है। ऐसे समय यह कहना असम्भव है वि लाहौर वाली घटना का राजनीति से सम्बन्ध है और यदि हो भी तो इसकी ज़िम्मेदारी सरकार पर है। नौकरशाह केवल दमन ही करती है; इतिहास से कुछ सीखने की पर्वा नहीं करती। अब हम आर्थिक स्थिति पर दृष्टि डालते हैं हमारे खर्च से यहाँ संसार से सब से अधिक व्यय के फ़ौज और मुल्की कर्मचारी रखे गये हैं। ब्रिटेन की बनी हु वस्तुओं की बिक्री का बाज़ार भारत बनाया गया है। आज सभी स्थानों पर विदेशियों का कब्ज़ा है। सरकार क मुद्रा-नीति ने भारत की बड़ी हानि की है। लंकाशायर ने न केवल भारत को ही लूटा है, बल्कि इंग्लैण्ड में भी अपने आस-पास के देहातों को नष्ट कर दिया है। भारतवासिय का जहाज़ बनाने का शिल्प बुरी तरह नष्ट किया गया है

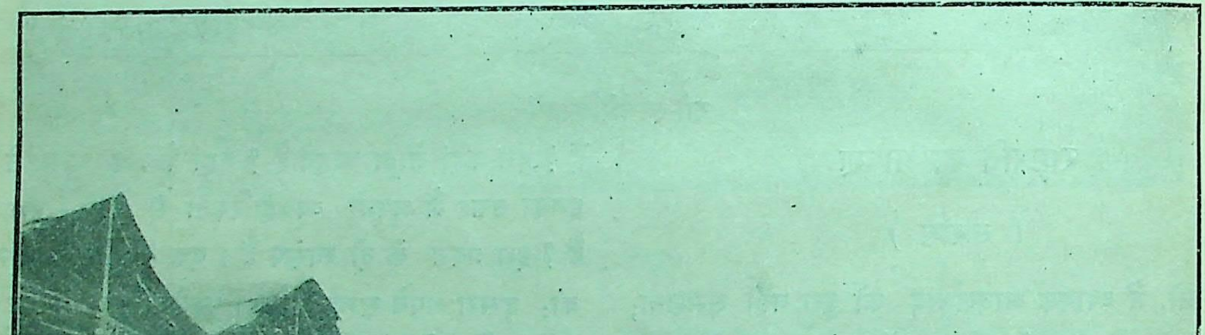

राष्ट्रीय सैनिक; महासभा-मण्डप के सामने

हास का अंगभंग करके ही इस बणिक राज को संतोष
हुआ । इसके साथ ही हमारी गुलामी की ज़िम्मेदारी
तरी बुराइयों पर भी है । धर्म की उच्च कल्पना चाहे
हो, हमारे नित्य
जीवन में उसका
स्वमत-विषयक
ग्रह और उन्माद,
सहिष्णुता और
कुचित वृत्ति
दि ही हमारी
लता का कारण
नेहरू-कमिट
जो रिपोर्ट इस
बन्ध में दी है,
ही इसका इलाज
परिस्थिति के
न से आपको
लूम हुआ होगा
हमारे मार्ग में
अड़चनें हैं—
तो परदेशी
से उत्पन्न
दूसरी खुद
से । यही
पहले प्रश्न
उत्तर है । अब
दूसरे प्रश्न पर
चार करना है ।
स्वतंत्रता
रा लक्ष्य है ।
ठोस होनी चा-
। आप उसे
जिस नाम से पुकारें । मैं पूर्ण औपनिवेशिक
राज्य का विरोधी नहीं । उतना ही पूर्ण, जितना किसी
उपनिवेश को मिल गया हो—बशर्ते कि वह ऐसे

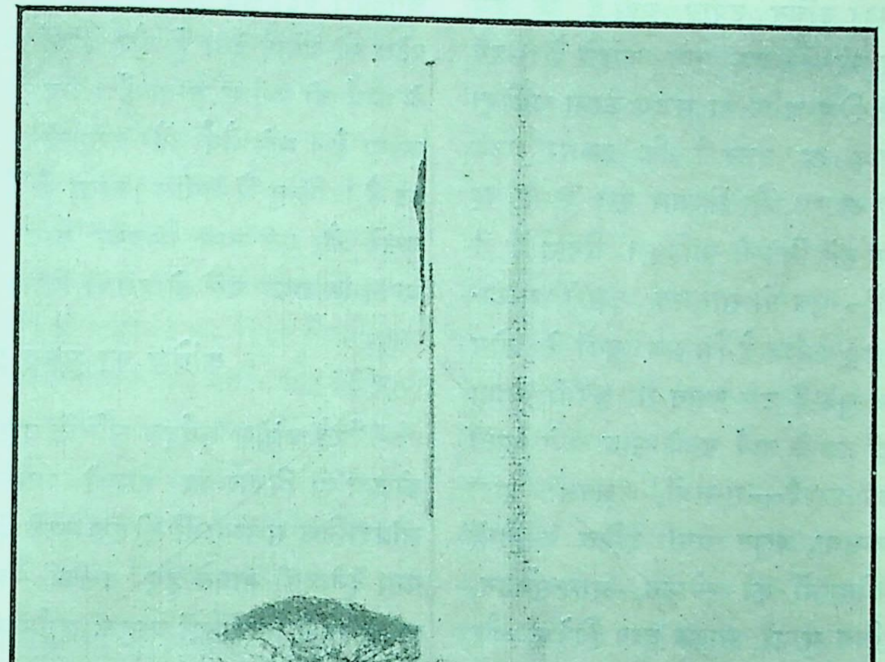

महात्माजी मोटर के ऊपर से मजूरों को उपदेश दे रहे हैं !

समय मिले, जब-तक कि उसका आकर्षण समाप्त न हो गया हो । आज जो ब्रिटेन से हमारा सम्बन्ध है, उसे तोड़ डालने के मैं पक्ष में हूँ, परन्तु जैसा कि ब्रिटेन और दूसरे उपनिवेशों में सम्बन्ध है, उसका मैं विरोधी नहीं । अगर हमें औपनिवेशिक स्वराज्य मिला तो हमारा पद स्वतंत्र राष्ट्र, ब्रिटिश स्वतंत्र राष्ट्रसमूह, का समानाधिकार सदस्य-सा होगा । हमने साम्राज्य के भीतर स्वराज्य प्राप्त करने की बहुत चेष्टा की, किन्तु ब्रिटेन ने हमारी सहायता न की । इसलिए मेरी सहानुभूति उन लोगों के साथ है, जो पूर्ण स्वाधीनतावादी हैं । किन्तु यह उस समय की बात है, जब हमारा बल अधिक हो जायगा । यदि हमें औपनिवेशिक स्वराज्य मिल गया तो हम ब्रिटेन-विच्छेद को देखेंगे भी नहीं । पर जैसा कि गांधीजी ने कहा है कि यदि ब्रिटेन के दोष से हमें सम्बन्ध-विच्छेद करना आवश्यक हो जाय तो हम उसमें भी आगा-पीछा न करेंगे । यदि उपस्थित की गई

शर्तें दोनों पक्ष के लिए सम्मानास्पद हैं, तो हमें इसकी पर्वा नहीं कि कौन पेश कर रहा है। ब्रिटेन ने हमें औपनिवेशिक अधिकार देने की घोषणा की थी। किन्तु वह हमें मिला नहीं। इसका उचित उपाय यही है कि हम अपनी ओर से ज़ाहिर करें कि हम क्या चाहते हैं। हमें अपनी शर्तें मनवाने के लिए शक्ति का संचय करना चाहिए। यही हमारे दूसरे प्रश्न का उत्तर है कि हमारा लक्ष्य स्वतन्त्रता है। उसका स्वरूप और विस्तार उस समय पर निर्भर है, जिसमें वह हमें मिलनी चाहिए। रिपोर्ट में दो प्रकार की सिफारिशें हैं—एक तो सामान्य, दूसरी साम्प्रदायिक। कांग्रेस का यह कर्तव्य है कि सब दलों के लोग जिस स्थान तक पहुँच चुके हैं उस स्थान से अपनी यात्रा आरम्भ करे और जहाँ तक वे जायँ उनके साथ आगे बढ़ती चले। राष्ट्रीय कार्यक्रम यह है—सभाओं, अख़बारों द्वारा रिपोर्ट को लोकप्रिय बनाना, अछूत तथा दलित जातियों सम्बन्धी कार्य, मजूर-किसानों का संगठन, ग्राम-संगठन, स्वदेशी-प्रचार, सामाजिक सुधार, मादक द्रव्य निषेध और प्रकाशन-कार्य। अब धन-संग्रह कैसे होगा? इसके लिए सन् २० की भांति धनी से ग़रीब तक अपना हिस्सा दें। कांग्रेस को अनेक उपसमितियाँ बनाकर कार्य बाँट देना चाहिए। यही सब दलों के लिए कार्यक्रम है। मैं सरदार पटेल को बधाई देता हूँ और शास्त्रीजी के दक्षिण आफ्रिका के कार्य की प्रशंसा करता हूँ। अब दो शब्द युवकों के प्रति कहना है। मुझे धैर्य और उतावलेपन—दोनों—की ज़रूरत है। किन्तु मैं अपील करता हूँ कि युवकगण दल न बढ़ावें और एक साथ मिलकर काम करें। हम कन्धे से कन्धा मिलाकर चलें तो हमारी विजय निश्चय है।

कांग्रेस का मुख्य प्रस्ताव

“यह कांग्रेस सर्वदल समिति द्वारा प्रस्तावित शासन-योजना पर विचार कर उसको भारतकी राजनैतिक और सांप्रदायिक समस्याओं को हल करने में बहुत अधिक सहायता देनेवाली मानते हुए उसका स्वागत करती है और अपनी सभी सिफ़ारिशें वस्तुतः सर्वसम्मति से ही करने के

काँग्रेस साइकल वाले स्वयंसेवक

समिति को बधाई देती है, और यद्यपि यह कांग्रेस स के पूर्ण स्वाधीनता के निश्चय पर क़ायम है तथापि ति की तैयार की हुई शासन-योजना को राजनैतिक ति का बहुत बड़ा साधन मानकर पसन्द करती है-ख़ास इस विचार से कि वह देश के मुख्य राजनैतिक दलों के क मतैक्य के आधार पर बनाई गई है। यदि ब्रिटिश ार ने ३१ दिसम्बर १९२९ तक इस योजना को मंजूर लिया, तो कांग्रेस-बशर्ते कि राजनैतिक स्थिति बदल न —इस शासन-विधि को स्वीकार कर लेगी, पर यदि अवधि तक ब्रिटिश सरकार ने इस योजना को मंजूर न लिया या उसके पहले ही नामंजूर कर दिया तो कांग्रेस अहिंसात्मक असहयोग आरम्भ कर देगी और सरकार र तथा दूसरी सहायतायें देना बन्द कर देने की सलाह को देगी। इस प्रकार यह निश्चय कांग्रेस के नाम पर स्वाधीनता के लिए आन्दोलन करने में कदापि बाधक ोगा। इस निश्चय से उसका विरोध न हो।"

आगामी वर्ष का कार्य-क्रम

(१) व्यवस्थापक सभाओं में और उनके बाहर मादक ों का व्यवहार और मद्यपान बिलकुल बन्द करने के न्ध में पूरा प्रयत्न किया जायगा और शराब तथा मादक ों की दूकानों पर यथोचित और यथासम्भव पहरा का प्रबन्ध किया जायगा। (२) व्यवस्थापक सभाओं के र और बाहर, स्थिति के अनुसार विदेशी वस्त्रों के बहि- के उपायों का अवलम्बन किया जायगा। इसके साथ ाथ के कते खादी और हाथ के बुने वस्त्र के तैयार करने पहनने की सलाह दी जायगी और लोगों को ऐसे वस्त्र ने को उत्साहित किया जायगा। (३) जहाँ कहीं शिका- मालूम होंगी और जहाँ के लोग उन्हें दूर करने को तैयार होंगे, वहाँ की शिकायतों को दूर करने के लिए उसी तरह अहिंसात्मक कार्य किया जायगा, जिस तरह हाल में बारडोली में किया गया था। (४) कांग्रेस की ओर से खड़े होकर जो उम्मीदवार व्यवस्थापक सभाओं के सदस्य चुने जायँगे वे भारतीय कांग्रेस कमिटी द्वारा समय-समय पर निर्धारित कार्य पूरा करने में अपना अधिकांश समय लगावेंगे। (५) कांग्रेस के सदस्य बढ़ाना। (६) स्त्रियों की अयोग्यतायें दूर करने के सम्बन्ध में कार्य किये जायँगे और उन्हें राष्ट्र-निर्माण के कार्य में उचित भाग लेने के लिए निमंत्रित तथा उत्साहित किया जायगा। (७) देश की सामाजिक कुप्रथाओं को दूर करने के सम्बंध में कार्रवाई की जायगी। (८) सब हिंदू कांग्रेस वालों का कर्तव्य होगा कि जहाँ तक हो सके वे अस्पृश्यता र करने के सम्बन्ध में प्रयत्न करें और अछूत कहे जाने वालों को अपनी अयोग्यतायें दूर करने और अपनी स्थिति सुधारने के सम्बन्ध में प्रत्येक सम्भव मार्ग से सहायता दें। (९) चर्खा और खादी के सम्बन्ध में जो कार्य हो रहा है उसके अतिरिक्त शहरों और गावों में स्वयंसेवक भर्ती किये जायँगे। (१०) अन्य ऐसे कार्य किये जायँगे जिनसे राष्ट्र-निर्माण के सब विभागों के कार्य आगे बढ़ेंगे और जिनसे कांग्रेस राष्ट्रीय कार्यक्रम को पूरा करने में विभिन्न पेशों के लोगों का सहयोग प्राप्त कर सके। कांग्रेस के कार्यक्रम को चलाने की आर्थिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए प्रत्येक कांग्रेस के सदस्य को अपनी मासिक आय का कुछ अंश कांग्रेस को देना चाहिए। इन दो प्रस्तावों के अतिरिक्त अखिल एशिया-सम्मेलन को निमन्त्रण देने, चीन को बधाई देने, विदेशी वस्तु और ब्रिटिश माल के बहिष्कार, सरकारी उत्सवों में भाग न लेने, भावी महासमर में सहायता न देने आदि के सम्बन्ध में अनेक प्रस्ताव स्वीकृत हुए।

कृष्ण

चंक्रम

हमारी भावी पार्लमेण्ट

देश में राष्ट्रीय महासभा ही एक ऐसी बड़ी और प्रातिनिधिक संस्था है, जो हमारी भावी पार्लमेण्ट कही जा सकती है और जो समय आने पर पार्लमेण्ट का स्थान ले सकती है। कलकत्ते में इसका जो अधिवेशन त्यागमूर्ति पं० मोतीलालजी के सभापतित्व में हुआ, उसमें भीड़-भड़क्का, बाहरी सजधज और धूमधाम को छोड़ दें तो काम की बातें तो सिर्फ़ दो ही हुईं और वे भी समय और स्थिति को देखते हुए आशा से अधिक अच्छी हुईं। एक तो यह कि स्वाधीनता-वादियों और नेहरू-रिपोर्ट के हिमायतियों का समझौता यद्यपि शब्दतः नहीं हुआ तथापि कार्यतः हो गया; क्योंकि जो कार्यक्रम १९२९ के लिए देश के सामने रक्खा गया है उससे दोनों विचार के लोग सहमत हैं, और दोनों की संयुक्त कार्य-समिति ने उसे सफल बनाने का बीड़ा उठाया है, एवं स्वाधीनतावादी युवकों के नेताओं ने आश्वासन दिया है कि शब्दों और आदर्शों की लड़ाई इस साल के लिए अब ख़तम हो गई है और अब हम सबके लिए काम में जुट पड़ना ही चाहिए। दूसरी बात है स्वयं कार्यक्रम। इस कार्यक्रम के अभाव में, यह तय कर लेने पर भी कि महासभा नेहरू-रिपोर्ट को अर्थात् औपनिवेशिक स्वराज्य को स्वीकार करती है या पूर्ण स्वाधीनता को जिससे कि अंग्रेज़ी साम्राज्य का कुछ भी सम्बन्ध न रहे, महासभा का अधिवेशन एक तमाशा ही रहता। क्योंकि औपनिवेशिक स्वराज्य और स्वाधीनता के शब्दों पर जो कुछ खींचातानी हुई उसका मूल्य शब्दों के झगड़े से अधिक नहीं है। मद्रास में और बाद को दिल्ली में नवयुवकों के साथ-साथ पं० मोतीलालजी भी ब्रिटिश-सम्बन्ध-रहित स्वाधीनता के प्रस्ताव को स्वीकार कर चुके थे; पर बाद को जाकर उन्होंने देखा कि जहाँ तक ज़ाब्ता कार्रवाई से सम्बन्ध है औपनिवेशिक स्वराज्य और पूर्ण स्वाधीनता दोनों बातें महासभा ए साथ नहीं कह सकती; फिर ऐसी दशा में तो पण्डितज की स्थिति और भी विषम हो गई, जब कि स्वयं महास के ही प्रस्ताव से नेहरू-कमिटी बनी और अब उसीक रिपोर्ट इतनी उलझन और विवाद का कारण बन रही है इधर पं० जवाहरलाल आदि युवक-दल के और स्वाधीनत पक्ष के नेता देहली में जितना क़दम बढ़ा चुके थे, उस पीछे हटना न चाहते थे, न चाह सकते थे। इस तरह दोनों कठिनाइयाँ वास्तविक थीं। इसमें से रास्ता निकालने के लि भारत के बूढ़े बाबा को पण्डितजी के बुलाने पर साबरम के कोने से दौड़कर कलकत्ते जाना पड़ा। उन्होंने दोनों प वालों से खूब दिल खोलकर बातें कीं। उन्हींकी एक ऐ हस्ती थी, जिसका असर दोनों दलों पर पड़ता था अ जो दोनों को दो-दो बातें कह सकते थे। उन्होंने यह ह पेश किया कि महासभा अभी नेहरू-रिपोर्ट को स्वीकार क ले, वह देश की सम्मिलित माँग के रूप में वाइसराय भेज दी जाय और १९३० तक यदि वह स्वीकार न हो असहयोग का युद्ध छेड़ दिया जाय और आवश्यक सम जाय तो स्वाधीनता का झण्डा फहरा दिया जाय। पर पण्डित जवाहरलाल ने युवकोचित दृढ़ता और अधीरता कहा—मैं आपकी बात को समझता तो हूँ, पर स्वाधीन की बात किये बिना मैं दो साल तो क्या दो घण्टे भी नहीं सकता। स्वाधीनता के आदर्श के बिना मुझे अपने जी में कुछ उत्साह ही नहीं मालूम होता। अन्त को यह त पाया कि नेहरू-रिपोर्ट स्वीकृत न की जाय, सिर्फ़ पस की जाय, १९३० की जगह १९२९ मीयाद रक्खी ज और वाइसराय को रिपोर्ट भेजने की बात निकाल दी जा क्योंकि युवकों को ऐसा करना असहयोग-सिद्धान्त के अ आत्माभिमान के विरुद्ध मालूम हुआ—हालांकि महात्मा ने बड़ी सुन्दरता और मार्मिकता के साथ यह समझा था कि स्वयं मैं, असहयोग का जनक, इसमें असहय के विपरीत कोई बात नहीं देखता। हमारा असहय व्यक्तियों के साथ नहीं, बुराइयों के साथ है। स्वराज्य चर्चा या समझौते के लिए वाइसराय से बात-चीत कर असहयोग के ख़िलाफ़ नहीं है और यदि हम ज़ोर से क

तो इसी साल यह स्थिति ला सकते हैं कि वाइसराय हमसे शर्तें करने के लिए मजबूर होना पड़े और साइ-कमीशन को कहना पड़े कि हमारी रिपोर्ट और कुछ , नेहरू-रिपोर्ट ही है। अस्तु।

पर यहाँ यह लिखते हुए बड़ा दुःख होता है कि धीनतावादी समझौता करके भी, वचन देकर भी, उस क़ायम न रह सके। समझौता प्रस्ताव अच्छा है या , त्रुटियुक्त है अथवा नहीं, यह प्रश्न नहीं था। स्वयं त्माजी भी मानते थे कि पहले प्रस्ताव से बाद प्रस्ताव अच्छा नहीं है। और समझौते के प्रस्तावों में और न्यायशास्त्र के सिद्धान्तों और विधियों का पालन भव हो जाता है, परन्तु एक बात कहकर, हाँ करके, जाना स्वाधीनता-वादियों के लिए श्रेय की बात नहीं । उनकी तरफ़ से बंगाल के युवक नेता श्री सुभाषचन्द्र ने समझौता-प्रस्ताव का, जो कि महात्माजी ने पेश ा था, विरोध किया। अन्त में १३०० विरुद्ध ९०० से महात्मा जी का प्रस्ताव पास हुआ। इससे न केवल धीनता-दल में अनुशासन की कमी मालूम होती है; प्रामाणिकता की भी प्रतिष्ठा कम दिखाई देती है। अनुभव कम से कम मुझ जैसे युवक के लिए बुरा वत हुआ। चूँकि महात्माजी ने स्वयं इसपर इन्हें ार बताई है, इसलिए यहाँ उसपर अधिक लिखना वश्यक है।

पर इस विवाद और विरोध का कोई यह अर्थ न समझे युवकों और बूढ़ों में खाई पड़ गई और दोनों एक- के विरोधी हैं, नहीं। दोनों एक दूसरे की स्थिति को कठिनाइयों को समझ रहे हैं और अपने-अपने विचारों कार्यक्रमों में दोनों एक-दूसरे को उचित स्थान दे रहे यद्यपि कहीं से चुनाव, कहीं नेतागिरी, कहीं से प्रति-ता, और कहीं से कुछ अनिष्ट बातों की भनक कान पर ाया करती है; फिर भी मेरी तो यही धारणा है कि तक स्वराज्य या स्वाधीनता की प्राप्ति से संबंध है युवक और क्या बड़े-बूढ़े-दोनों एक-दूसरे से बढ़कर हैं। बड़े-बूढ़ों का सिर्फ इतना ही कहना है कि भाई, गरमागरम बातों से काम न चलेगा, बढ़-बढ़कर बातें करने के साथ ही ठोस संगठन का काम भी दिलोजान से करना होगा। एक तो युवक स्वभाव से ही जोशीले होते हैं, दुनिया का अनुभव कम होता है, इसलिए हर चीज़ को आसान और अपनी शक्ति के अन्दर मान लेते हैं। यदि उनमें इतना आशावाद, इतना उत्साह, इतनी उमंग न हो, तो फिर वे युवक ही क्या रहे? पर बड़े-बूढ़े कटु अनुभवों के कारण अधिक विचारशील और फलतः धीमे हो जाते हैं। यदि ऐसा न हो तो उनके सफेद बालों का, चेहरे की झुर्रियों का कुछ मूल्य न रहे। फिर कुछ लोग स्वभावतः वक्ता, लेखक या प्रचारक अच्छे होते हैं और कुछ लोग कार्य-प्रिय, कार्य-कुशल। समाज और देश को दोनों के उपयोग की आवश्यकता होती है और रहती है। ऐशी दशा में दोनों प्रकृति वाले एक दूसरे के विभेदों पर ज़ोर दें, इससे यह कहीं अच्छा है कि दोनों के समान गुणों, समान स्थितियों की ओर ध्यान दिलावें और 'अंध कंध पर बैठ-करि पंगु यथा फल खाय' की कहावत को, स्वराज्य-प्राप्ति के महायज्ञ में सार्थक करें और मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है कि दोनों ऐसा ही मान और कर रहे हैं। दोनों के दिमाग़ में चाहे अन्तर हो, अवस्था और अनुभव में अन्तर हो, पर दोनों का दिल एक है और वह मज़बूत है। यह स्वराज्य या स्वाधीनता-प्राप्ति की पूरी और सच्ची गारण्टी है।

इस तरह इस महासभा ने दो बड़े कार्य किये-(१) युवकों और बूढ़ों को एक कार्यक्रम में जोत दिया और (२) देश के सामने ठोस काम का संगठन और अनुशासन का सर्वांगपूर्ण कार्यक्रम रख दिया। वर्तमान परिस्थिति में इससे अच्छा रास्ता देश को नहीं दिखाया जा सकता था। महासभा के इस कार्य के सामने स्वागताध्यक्ष और अध्यक्ष के भाषणों का पर्यालोचन या समालोचन अपने-आप पीछे रह जाता है। दोनों अध्यक्षों के भाषण एक-दूसरे के पूरक थे और दोनों भाषणों ने इन प्रस्तावों की स्वीकृति के लिए ज़मीन तैयार की। पण्डितजी ने अपने भाषण में जो उपाय स्वराज्य के लिए सुझाये वही कार्यक्रम के रूप में प्रस्ताव में स्वीकृत हुए हैं। अध्यक्षों ने या वक्ताओं ने भाषण में क्या कहा, कैसी दलीलों के साथ अपनी बात या दावे को पुष्ट

किया, कैसी खूबी से व्यंग्य या उपालम्भ किया, प्रतिपक्षियों को कैसा बनाया, कैसा निरुत्तर किया, इन बातों में अब देश को उतना अनुराग नहीं रह गया है, जितना इस बात में उनकी दिलचस्पी बढ़ रही है कि महासभा में हमारे नेताओं ने क्या तय किया है, हमारे लिए अब उनका क्या आदेश है, हमें क्या क्या करना होगा और सबसे बढ़कर यह कि महात्माजी कब देश का नेतृत्व ग्रहण करेंगे? अतएव व्याख्यानों की समालोचना को मैं भी यहाँ छोड़ देता हूँ। पण्डितजी और श्री सेनगुप्त के व्याख्यानों के महत्वपूर्ण अंश पाठकों को अन्यत्र मिलेंगे ही। देश ने क्या निर्णय किया है, और हमें इस एक साल में क्या-क्या करना है, यह महासभा के प्रस्तावों से प्रकट ही है। अब सिर्फ महात्माजी के नेतृत्व का प्रश्न रह जाता है। इसका सर्वोत्तम और सच्चा उत्तर वही है जो पण्डित मोतीलालजी ने एक मित्र के प्रश्न करने पर दिया था—"अरे भाई, महात्माजी कब बागडोर हाथ में लेंगे, यह सवाल ही क्या है? महात्माजी ही तो अगुआ हैं—चाहे साबरमती में बैठकर डोर हिलावें चाहे इलाहाबाद से।" और श्रीमती एनी बेसेंट ने भी अपनी एक बातचीत में कहा है कि यह कांग्रेस तो गांधी-कांग्रेस हुई है। गांधी आया, उसने एक दृष्टिपात किया, और विजय ने उसके गले में माला डाली। महात्माजी कब देश का संचालन-सूत्र ग्रहण करेंगे, यह एक प्रकट रहस्य-सा है। पहला प्रस्ताव महासमिति में महात्माजी के उपस्थित करते ही सारे कलकत्ते में बिजली दौड़ गई थी कि अब महात्माजी मैदान में आ गये। पर महात्माजी तो ठहरे भुक्तभोगी, दुनिया की रगड़ खाये हुए। उन्होंने कहा—भाई तुम स्वच्छता से, सचाई से और अनुशासन को मानकर काम करना चाहते हो तो मुझे अपने बीच में ही समझो। इस एक साल में यह और अच्छी तरह मालूम हो जायगा कि देश सचमुच महात्माजी जैसे कठोर और दीर्घदृष्टि सेनापति की कमान का ताप सहन कर सकता है या नहीं। यदि देश ने इस अरसे में काफ़ी तैयारी कर ली तो आगामी वर्ष पंजाब में या तो हमें स्वराज्य मिला होगा, या उग्र असहयोग और कर न देने का संग्राम छिड़ जायगा। दोनों बातें देश के हाथ में हैं। अब देखें, परमात्मा क्य चाहता है!

भावी रूप ऐसा हो——

महासभा में होने वाली भारी भीड़ और अनाप-शना खर्च को देखते हुए तथा इसके कारण महासभा की कारवाई की गंभीरता का महत्व घटता देखकर महासभा अधिवेशन के रूप में परिवर्तन करने की आवश्यकत मालूम होती है। यदि स्वराज्य, या स्वाधीनता के भा और रूप का प्रचार हमें देश के कोने-कोने और घर-घर करना है, एक-एक गाँव को इसके लिए तैयार करना है, त फिर अब बड़े-बड़े शहरों में महासभा के अधिवेशन होने इस उद्देश की पूर्ति नहीं हो सकेगी। और बिना बड़े शह के इतना भारी आयोजन आज की स्थिति में होना असम्भव है। अतएव या तो ग्राम-वासियों को महासभा संदेश, कार्यक्रम और लाभ से वंचित रहना होगा, य महासभा का ऐसा रूप बनाना होगा जो गाँवों में फैल स या महासभा का ऐसा बेतुका और अस्तव्यस्त रूप रहे जो न अपनी पूरी गंभीरता, कार्यक्षमता और विचारशील की रक्षा कर सकेगा, न लोगों को ही भले प्रकार संगठि कर सकेगा। कई विचारशील मित्रों ने इस विचार क पसन्द किया है कि अब से महासभा का अखिल भारती रूप घट कर प्रान्तीय रूप का विकास हो। अर्थात् महासभ पार्लमेण्ट का रूप धारण करे, देश के चोटी के चुने ह प्रतिनिधि ही उसमें उपस्थित रहें और वे खूब शान्ति साथ विवाद और विचार करके अपने निर्णयों, मन्तव् और संदेशों को प्रान्तिक परिषदों के द्वारा जनता तक प चावें। इधर प्रान्तिक परिषदों को महासभा का मह प्राप्त हो जाय और वे अपने प्रान्तों के छोटे-छोटे गाँवों त में अपनी बैठकें करें। अपने लोकमत के द्वारा वे अखि भारतीय महासभा को प्रभावित करें और महासभा निर्णयों का प्रचार लोगों में करें। प्रचार और प्रभाव ख़याल से कुछ अखिल भारतीय नेता भी बारी-बारी उनमें उपस्थित हों। और हर पाँचवें साल सारी महास का विस्तत और विराट् अधिवेशन हुआ करे। पूरे एक व

ले से उसकी तैयारी और तालीम का प्रबन्ध हो और सब तरह से हमारी प्रबन्ध-पटुता, कार्यदक्षता, विचार-लता, योग्यता, संगठन-निपुणता और देशभक्ति तथा योग का नमूना हो। यदि ये पंक्तियाँ नेताओं तक वें तो, आशा है, वे इन पर विचार करने की कृपा गे।

ंग्रेस संस्थाओं की शुद्धि

कलकत्ता-महासभा में इस बात की बड़ी अन्धाधुन्धी कि कितने ही प्रान्तों से झूठे प्रतिनिधि बना लिये गये कहीं तो रुपये ले-लेकर भी ऐसे लोग प्रतिनिधि बनाये जो शायद ही उस प्रान्त के सदस्य भी हों। खेद के लिखना पड़ता है कि हमारे अजमेर की भी गिनती प्रान्तों में हुई है और इस बार भी यहाँ के बनाये तिनिधि ख़ारिज कर दिये गये। यद्यपि कई कारणों से हम ाँ की प्रान्तिक समिति से उदासीन और अलिप्त रहे हैं पि प्रान्तवासी के नाते हमें इस बुराई पर खेद होता है। छा होता यदि यहाँ के जिम्मेवार पदाधिकारी, जिनकी की सेवाओं के प्रति हमारे हृदय में मान है, इस बुराई अपनी समिति को बचा पाते। अब सुना गया है कि -समिति ने स्थानिक कांग्रेस कमिटी को तोड़ दिया है उसकी जगह नई कमिटी और नये पदाधिकारी चुने वाले हैं। अतएव यह परम आवश्यक है कि आगे जो न इस भार को उठाना चाहें वे इससे काफी सबक लें अपनी जिम्मेवारी को पूरा-पूरा समझकर उसे पवित्रता साथ निबाहें।

और जब कि कुछ दूसरे प्रान्तों में भी गन्दगी पाई गई तो यह बहुत ही जरूरी है कि तमाम प्रान्तिक समितियों एक बार शुद्धि कर दी जाय और उनका संगठन ठोस दृढ़ बना दिया जाय जिससे आगामी वर्षों में देश सर- से लोहा ले सके और आगे दक्षता के साथ स्वराज्य-लन कर सके। इसके सम्बन्ध में महात्माजी ने अपने विचार प्रदर्शित किये हैं, वे सब तरह से मनन और रण करने योग्य हैं। वह 'यंग इण्डिया' में लिखते हैं—

"यदि लड़ाई, फिर वह स्वतन्त्रता के नाम से पहचानी जाय या औपनिवेशिक स्वराज्य के नाम से,—को सुदृढ़ और सच्ची लड़ाई बनाना है, तो कार्यकारिणी समिति का सबसे पहला और आवश्यक काम महासभा का पुनःसंगठन करना और उसकी ओर अपना ध्यान गड़ाना है। कोई भी बात दबाई नहीं जानी चाहिए। चुपचाप की नीति से हमें तनिक भी लाभ नहीं होगा। इस रोग का सफलतापूर्वक निवारण करने के पहले महासभा की दुनिया में इसका सब ओर प्रचार हो जाना चाहिए। कोई भी संगठन हो, यदि वह ज़िन्दा रहना चाहता है तो, उसमें वृद्धि होनी चाहिए। लेकिन महासभा तो आन्तरिक क्षय से पीड़ित है। और जिस तरह तपेदिक़ का बीमार अकसर सुख़-तन्दुरुस्त और मोटा-ताज़ा दीखता है, उसी तरह महासभा भी एक क्षयरोग से पीड़ित रोगी की सुर्ख़ी और मोटाई का प्रतिवर्ष प्रदर्शन करती हुई अपने हकीम के चर्मचक्षुओं को उसके निकट नाश के अचूक लक्षणों को देखने नहीं देती। आज जैसा संगठन है, उसके द्वारा महासभा कैसा भी सच्चा, संगठित और अकाट्य विरोध नहीं कर सकती।"

आगामी तूफ़ान

जैसी कि आशा की जाती है, एक ओर यदि स्वाधीनतावादियों ने ब्रिटिश-सम्बन्ध को तोड़ देने का आन्दोलन जारी रक्खा और उसे ज़ोर-शोर के साथ बढ़ाया, तथा दूसरी ओर यदि महात्माजी ने विदेशी-वस्त्र के वहिष्कार के और श्री राजगोपालाचार्य ने मद्यपान-निषेध के आन्दोलनों को जोर से चलाया और तीसरी ओर यदि महासभा का संगठन प्रत्येक प्रान्त में स्वच्छ और सुदृढ़ कर दिया गया तो इसमें कोई सन्देह नहीं कि सरकार के लिए स्वराज्य की इस प्रगति को रोके बिना चारा नहीं। ऐसी दशा में शीघ्र ही धरपकड़ और दमन की अपेक्षा चारों ओर से की जा रही है। स्वाधीनतावादियों पर तो क़ानूनी कार्रवाई करने की अफवाह अभी से उड़ने लगी है। ऐसी दशा में यदि देश आगामी कुछ महीनों में अधिक उत्तेजना और दोनों ओर से लड़ाई की गम्भीरता को देखे तो आश्चर्य नहीं। यदि देश एक ओर पूर्ण शान्ति के साथ अपने आन्दोलन, संगठन और विधायक

कार्यों में जुट पड़ा और जुटा रहा तो १९३०ई० की महासभा में कुछ चमत्कार अवश्य नज़र आ सकता है। क्या देश १९३० ई. में कुछ उथल-पुथल कर दिखाने की चेष्टा करेगा? क्या वह उसकी शर्तें पूरी करने और उसकी पूरी क़ीमत चुकाने के लिए तैयार हो रहा है? देश के जीवन में यह समय ऐसा आ रहा है जब या तो उसे उठकर, जुटकर और डटकर काम करना होगा और या एक साल के बाद फिर खिझे हुए मन से विघ्न-सन्तोषियों के ताने सुनने होंगे—"बस, ले लिया स्वराज्य १९३० में। हम तो पहले ही कहते थे कुछ होना जाना नहीं है।" देखना है ईश्वर गुलामी का और अत्याचर का पोषण करता है या बलिदान और कष्ट-सहन की हिमायत। जैसा कि महात्माजी ने कहा है—यह दमन की आशंका सच निकल जाय तो हमें पता चल जायगा कि औपनिवेशिक स्वराज्य का अर्थ सरकार क्या करती है और हम क्या करते हैं। हमें जब चाहे पूर्ण स्वाधीन बनने की स्वतन्त्रता उसमें है या नहीं। साइमन-कमीशनके बहिष्कार का बदला दमन के रूप में देना ब्रिटिशों के फ़ौलादी पंजे के लिए अस्वाभाविक नहीं है। इसमें एक शंका यह उठती है कि अभी हिन्दुओं और मुसलमानों का समझौता और मेल नहीं हो पाया है। हिन्दुओं ने न्याय से अधिक मुसलमानों को देना स्वीकार कर लिया, फिर भी मुसलमान ऐसे नाजुक अवसर पर ज़िद से बाज़ नहीं आते, यह चिन्ता की बात अवश्य है, परन्तु कइयों की अन्तरात्मा और सब के अन्तःकरण को हिलानेवाली स्वराज्य की अधीरता कहती है कि जब दमन और अत्याचार अपना नग्नरूप धारण करेगा तब दोनों के और ख़ासकर मुसलमानों के आज़ादी और उसके लिए दरियादिली के भाव अवश्य जागृत होंगे और या तो वे अपना हठ छोड़कर हिन्दुओं से मिल जायँगे या हिन्दू उन्हें सर्वस्व देकर अपना बना लेंगे। यदि गरीबों की आह में कुछ जोर है, यदि अत्याचार के प्रहार अन्त में अत्याचारी पर ही पड़ते हैं और यदि भारत में एक ओर ग़रीबी, गुलामी और बेबसी है और दूसरी ओर अन्याय और अत्याचार है तो—

"अन्यायी अपराधि का, पतन कुकृति का कुफल है।
शस्त्रों की तो बात क्या, तृण तक इसमें सफल है॥"

अलवर-नरेश की ज्युबिली !

श्रीमान् अलवर-नरेश संस्कृत के अच्छे पण्डित कहे जाते हैं। सुनते हैं, अंग्रेज़ी, हिन्दी और संस्कृत का उनका अस्खलित भाषण मुग्ध कर लेता है। वह प्राणायाम भी अच्छा करना जानते हैं। मीठी-मीठी बातें करने में भी कुशल हैं। मेधावी भी सुने जाते हैं। यदि यही गुण किसी व्यक्ति को राज्यपद के योग्य, अपने क़ो प्रजा का 'प्रभु' कहलाने के योग्य और ज्युबिली मनाने के योग्य समझे जाते हों, तो बात दूसरी है। अन्यथा, यदि प्रजा की सेवा, दिन-रात प्रजा-हित की चिन्ता, प्रजा के जीवन में एक-रस हो जाना, ये बातें सच्चे राजा की कसौटी हों तो आजकल के कितने राजा और शासक अच्छे साबित होंगे? फिर श्रीमान् अलवर-नरेश, जो नीमूचाणा-हत्याकाण्ड के लिए भारत में प्रसिद्ध हो चुके हैं, जिनके अन्तःपुर की घृणित कहानियाँ अख़बारों में छपती रहती हैं, कैसे 'प्रभु'-पद के अधिकारी मान लिये गये, यही आश्चर्य की बात है! फिर जब मैंने यह पढ़ा कि उनकी ज्युबिली में केवल बहुतेरा धन ही बर्बाद नहीं हुआ, बल्कि श्री शंकराचार्य जैसे धर्म-गुरु और पण्डित मोतीलाल नेहरू तथा डा० अन्सारी जैसे लोक-नेता सम्मिलित हुए, तब तो आश्चर्य का ठिकाना ही न रहा कुछ दुःख भी हुआ। लोग कहते हैं कि ऐसे उत्सव अपने कुकृत्यों को ढांकने के लिए किये जाते हैं और हमारे धर्म-गुरुओं और नेताओं से अपनी ढाल का काम लिया जाता है। यदि ऐसा ही हो तो यह और भी दुःख की बात है। पर मेरा अनुमान है कि ये लोग इतने मूर्ख नहीं हैं कि अलवर-नरेश की ढाल बनने के लिए वहाँ गये हों। अलवर-नरेश यदि धूर्तराज हों तो पण्डित मोतीलालजी को गुरु घण्टाल समझना चाहिए। ज़रूर वह और डा० अनसारी किसी गुरुतर उद्देश्य से वहाँ पहुँचे होंगे। एक अनुमान तो सहज ही किया जा सकता है। वह है नेहरू-रिपोर्ट में स्थिर की गई देशी राज्यों के सम्बन्ध की नीति पर परामर्श करना तो इधर ज्युबिली में जाकर महाराज पर उपकार करना तो उधर उनसे अपना कुछ काम निकाल लेना, राजनीतिज्ञों और राजकाजियों के लिए कोई नई बात नहीं है। पर

जनीति की इन तथा और गहरी बातों को न समझने वाले म मोटी बुद्धि के लोगों को तो इसपर आश्चर्य और दुःख होता है कि जो लोग प्रजा की बात नहीं सुनते, उसे सते ही चले जाते हैं, और जिनके व्यक्तिगत आचरण की ड़ी शिकायतें सुनी जाती हैं, उनको अपने आतिथ्य का भ देना, प्रजा को गुमराह करने-जैसा है। मैं खुश होता दि इस ज्युबिली के अवसर पर श्रीमान् अलवर-नरेश को स अवसर की बधाई भेज पाता—आज तो दुःख के साथ नके इस उत्सव पर टीका ही करने का अवसर है !

आश्रम का प्रसाद

अभी हाल ही कलकत्ते से लौटकर "हिन्दी नवजीवन" सिलसिले में मुझे साबरमती-आश्रम में जाने का लाभ ला था। बछड़ा जिस प्रकार अपनी माता के पास जाने लिए दौड़ता है वैसा ही मेरा हृदय आश्रम के लिए ड़ता रहता है। जब-जब अपनी दुर्बलतायें यहाँ की टों से घबरा देती हैं तब-तब आश्रम की ओर मन दौड़ने गता है और कहने लगता है कि वहाँ के प्रशान्त और वित्र वायुमण्डल को छोड़कर यहाँ कहाँ उलझनों में आ सा ? परन्तु ऐसे समय

"अंगीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति"

उत्साह-वचन मेरी सहायता के लिए दौड़ पड़ता है। की अवस्था में जब-जब आश्रम जाने का थोड़ा भी अवसर य लगता है, तो मैं माता के स्तन की ओर झपट पड़ने ले भूखे बालक की तरह झपट पड़ता हूँ।

कुछ महीनों से सत्याग्रहाश्रम का नाम "उद्योग-मन्दिर" दिया गया है। इसका कारण यह है कि ज्यों-ज्यों त्माजी और आश्रमवासी आश्रम के व्रतों की सूक्ष्मता विचार करते गये, त्यों-त्यों उन्हें यह मालूम होता गया सूक्ष्म अर्थ में सब व्रतों का सोलहो आना पालन अनेक श्रमवासियों से नहीं हो रहा है। अतएव उन्होंने त्याग्रहाश्रम" नाम अपने लिए अपनी वर्तमान अवस्था हुत ऊँचा समझा और "उद्योग-मन्दिर" नाम उचित । सुबह ४ बजे से रात के ९ बजे तक १७ घण्टे रोज़ ने काम और उद्योग का हिसाब देने की तैयारी रखने आश्रमवासियों ने "उद्योग-मन्दिर" अपने लिए अधिक सार्थक देखा और महात्माजी की छत्रच्छाया में और प्रोत्साहन तथा मार्ग-प्रदर्शन से वे फिर "सत्याग्रहाश्रम" का नाम धारण करने के योग्य बनने का उद्योग कर रहे हैं। यह उनके सत्यानुराग और नम्रता का अचूक प्रदर्शन है और अबकी मैंने देखा कि "सत्याग्रहाश्रम" का नाम धारण करके आश्रमवासी जितने ऊँचे नहीं उठे थे, उतने "उद्योग-मन्दिर" नाम रखकर उठ गये। इस समय उनके जीवन में जो स्वच्छता, गंभीरता, नियम-निष्ठुरता, सुश्रृंखलता, और एकरागिता दिखाई दी, वह पहले कभी न दिखाई दी थी।

आश्रम में महात्माजी सुबह-शाम, अवसर पाकर, अपना हृदय आश्रमवासियों के सामने उँडेला करते हैं। इसमें आश्रमवासियों को अमोल आध्यात्मिक, धार्मिक, व्यावहारिक और राजनैतिक ज्ञान और उपदेश मिला करता है। आजकल आश्रम में महात्माजी को एक ही धुन है—आश्रम सब अर्थों में स्वावलम्बी और स्वाधीन हो जाय। इसके लिए वे एक तो इस बात पर जोर देते हैं कि सब लोग स्वेच्छापूर्वक अपने बनाये नियमों और व्रतों का पालन हृदय के पूरे अनुराग और सचाई के साथ करें और दूसरे प्रबन्ध में किसी प्रकार की कोई त्रुटि न रहने पावे और एक-एक मिनिट काम में लगा रहे। इसके लिए वे स्वच्छता, शान्ति और छोटी-छोटी बातों पर पूरा ध्यान देने का बराबर आग्रह करते रहते हैं। एक रोज़ किसी आश्रमवासी या अतिथि ने आश्रम के रास्ते पर थूक दिया। महात्माजी ने रास्ते पर थूक पड़ा देखा तो उसपर मिट्टी डाल दी और शाम को प्रार्थना के बाद कहा—"आश्रम में पाख़ाना-पेशाब का स्थान तो निश्चित ही है; परन्तु लोग कभी-कभी रास्ते पर थूक देते हैं; या नाक साफ़ कर लेते हैं, यह भी ठीक नहीं। रास्ते के किनारे जहाँ लोगों के पैर या नज़र न पड़े, ऐसी जगह थूकना या नाक साफ़ करना चाहिए और हो सके तो वहाँ भी उसपर मिट्टी डाल देना चाहिए। रास्ते पर यदि कहीं हमें ऐसी गंदगी दिखाई दे तो हमारा काम है कि उसपर मिट्टी डालकर और उठाकर उसे ऐसी जगह फेंक दें, जहाँ सहसा किसी का पैर न पड़ता हो। आज मेरा कर्त्तव्य तो यही था कि मैं भी उस

गंदगी को वहाँ से उठाकर फेंक देता; पर एक तो मैं राह चल रहा था, दूसरे हाथ धोने के लिए पानी पास नहीं था। इसलिए मिट्टी डालकर ही ख़ामोश हो रहा—फिर भी मैं मानता हूँ कि अपने कर्त्तव्य-पालन में मैंने त्रुटि रख दी। हमारा तो काम है, लोग जहाँ-जहाँ बिगाड़ करें, हम वहाँ-वहाँ सुधार करें। लोग बिगाड़ते चले जायँ और हम सुधारते चले जायँ। तब जाकर इस देश का उद्धार होगा।"

आश्रम में आजकल एक-दो अपवाद को छोड़कर सब आश्रमवासी स्त्री-पुरुष संयुक्त भोजनालय में भोजन करते हैं। छोटे-बड़े १७५ के लगभग लोग एक साथ बैठकर भोजन करते हैं। महात्माजी भी सबके साथ ही खाना खाते हैं। इस समय भी वह अपना समय एक मिनिट नहीं जाने देते। या तो चिट्ठियाँ पढ़ते हैं, या किसीको बातचीत का समय दे देते हैं। एक रोज़ तो मैंने उन्हें एक लेख या चिट्ठी लिखते हुए भी वहाँ देखा था। एक दिन गुजरात-कालेज के हड़ताली विद्यार्थियों के नेता इसी समय उनसे परामर्श कर रहे थे। भोजनालयों में बर्त्तनों का तथा लोगों की बातचीत का शोर होना स्वाभाविक है। परन्तु महात्माजी की यह कोशिश है कि वहाँ भी इतनी शान्ति रहे कि लोग लिख सकें और ख़ानगी बातें कर सकें। एक रोज़ अतिथि लोग ज़ोर-ज़ोर से बातें कर रहे थे। महात्माजी ने प्रार्थना के समय इसका जिक्र किया और सुझाया कि "कृपया शान्त रहिए। इस आशय की छोटी-छोटी कई तख्तियाँ भोजनालय में जुदी-जुदी भाषाओं में लिख कर लगा दी जायँ। जबतक भोजन के समय इतनी शांति न रहेगी कि दूसरे आदमी के किसी काम में ज़रा भी ख़लल न पहुँचे, तबतक हमारा प्रबन्ध अपूर्ण ही समझना चाहिए।"

छोटी-छोटी बातों का इतना ध्यान महात्माजी रखते हैं कि बड़ा आश्चर्य होता है और उनके सामने खूब शर्मिन्दा होना पड़ता है। एक-दो दिन, अभ्यास न रहने के कारण, कुछ अतिथि सुबह चार बजे की प्रार्थना में सम्मिलित न हो पाये। तुरन्त उन्हें मीठा उलहना पहुँच गया। कुछ छोटी लड़कियाँ अधिक शाक लेकर डरती आँख से महात्माजी की ओर देखती हुई ज़बर्दस्ती शाक खा रही थीं—झट महात्माजी की नज़र उधर दौड़ गई और परोसने वालों को प्रेम का उलहना सुनना पड़ा। मेरे साथ में कुछ अतिथि बिन पहले से सूचना दिये आश्रम पहुँच गये। महात्माजी पहला प्रश्न यही किया कि व्यवस्थापक को आने की भोजन की सूचना दी या नहीं? एक अतिथि बातचीत का समय माँगकर ज़रा पिछड़ कर पहुँचे, झट उन शर्मिन्दा किया गया—मेरी आँखें तो आपको समय प इधर-उधर खोज रही थीं। इसी तरह छोटी-छोटी बातों प पूरा ध्यान रखने की आवश्यकता बताते हुए एक सज्जन उन्होंने कहा—हमें हर एक बात की तफ़सील में उतर उसे देखना चाहिए। ऊपर-ऊपर देखकर किसी चीज़ न छोड़ देना चाहिए। छोटी बात समझ कर उसक उपेक्षा न करनी चाहिए। किताबें अपनी जगह रक्खी हु हैं या नहीं, एक जगह की चीज़ दूसरी जगह तो किस ने नहीं रख दी, बताया काम दूसरे ने ठीक उसी तर किया है या नहीं, इन बातों में कार्यकर्ता को बड़ी सावध नी और जागरूकता रखनी चाहिए। जो छोटे कामों की उपेक्ष करता है, उसके बड़े कार्यों को भी यह त्रुटि बिगाड़ देती है

आश्रम में एक घण्टे में कम से कम १६० तार सु कात लेने का नियम रक्खा गया है। एक दिन महात्माजी सूत कातकर सदा की तरह गिनने वाले के भरोसे छो दिया। उस दिन १६० में कुछ तार कम थे। गिनने वा इसकी सूचना महात्माजी को समय पर देना भूल गया प्रार्थना में जब महात्माजी का नाम पुकारा गया और १६० तार कम होने की बात उन्हें मालूम हुई तो उन्हें ब दुःख हुआ। 'मेरे नाम पर और आज तार कम लिखे जायँ यह मेरे लिए कितनी शर्म की बात है। यह मेरा प्रमा है, गिनने वाले का दोष नहीं। मुझे अपना काम खुद कर चाहिए था। मैंने उसके भरोसे क्यों छोड़ा; दूसरे दिन से खुद तार गिनने लगे!

एक दिन एक विद्यार्थी ने पूछा—बापूजी, यज्ञार्थ कातना आवश्यक है, न कि १६० तार कातना?' इ महात्माजी ने उत्तर दिया, 'भारतवासी की हैसियत से हमने नित्य कात लिया तो हमारा यज्ञ हो गया, प आश्रम ने तो १६० तार नित्य कातने का नियम बनाया इसलिए आश्रमवासी के लिए १६० तार कातने पर थ

079957

Compiled
1999-2000